

ब्रह्मपुराणम्

[हिन्दीअनुवादसहितम्]

○

अनुवादक
तारणीश झा
व्याकरण-वेदान्तार्थ

○



शक १८९८ : सन् १९७६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशकीय

भारतीय वाच्य में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता अमदिष्ट है और वे भारत की अतीतकालीन हिन्दू-मस्तिष्क के मूर्तमान गौरव प्रतीक हैं। आज के वैज्ञानिक युग की यात्रिक सभ्यता भी पुराणों के प्रभाव और उनके महत्व को रचमात्र भी कम नहीं कर पायी है। आज भी उनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान का भाव दृष्टिगोचर होता है, जैसा आदि-काल से प्रचलित रहा है।

सम्मेलन के प्रतिष्ठापक स्वर्गीय राजपि पुरपोत्तमदास जी टडन ने सम्मेलन द्वारा पुराणों के हिन्दी अनुवाद तथा उनके मुद्रण की योजना बनायी थी, जिससे वे घर-घर सुगमता से पहुँच सकें और जन जन उनके अध्ययन से लाभान्वित हो सकें। कार्य श्रममाध्य व्ययसाध्य और समयसाध्य था, फिर भी सम्मेलन ने इस दिशा में सत्रिय पग उठाया और मत्स्य पुराण और वायु पुराण का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया।

अनेक अप्रत्याशित कारणों कठिनाइयों और बाधाओं के कारण यह कार्य उस गति से न चलता रह सका, जैसा कि इसके प्रणेता चाहते थे। फलतः इसमें शिथिलता आने लगी। पर सौभाग्य से सम्मेलन के वर्तमान प्रजातांत्रिक प्रशासन ने अपने त्रिवापिक कार्यक्रम के अन्तर्गत इस महत्वपूर्ण कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न करने का सक्लप किया है। परिणामस्वरूप ब्रह्मपुराण का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद विज्ञ पाठकों को देते हुए हम अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

मत्स्य एवं वायु पुराणों का केवल अनुवाद मात्र प्रकाशित किया गया था। वर्तमान स्थायी समिति ने, अनेक विद्वानों के सुझाव पुर, मूल पाठ पाठान्तर क साथ अनुवाद सहित पुराण-प्रकाशन का निश्चय किया। तदनुसार ब्रह्मपुराण का सम्पादन प्रकाशन इसी आधार पर किया गया है। भविष्य में अन्य पुराणों को भी इसी पद्धति से सम्पादित एवं प्रकाशित करने की योजना है, जिसके लिए विज्ञपत्र विद्वानों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

आशा ही नहीं प्रत्युत विश्वास है कि हमारा इस महत्वपूर्ण प्रकाशन का विज्ञ जन महदयता से अपनाकर हमें बल प्रदान करेंगे कि हम अपनी इस बृहद् योजना को निर्बाध गति से आगे बढ़ा कर राजपि टडन जी के स्वप्न का साकार कर सकें।

प्रभात शास्त्री

प्रधानमंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

आदर्श पुस्तकों का नामोल्लेख

००

[प्रस्तुत सस्वरण की पाद-टिप्पणी में जिन महाग्रन्थों की पुस्तकों से 'क' 'ख' आदि संकेतों में पाठभेद दिये गये हैं उनके नाम तथा संकेत इस प्रकार हैं—]

क. संकेत वाली पुस्तक जनस्थाननिवासी वे० शा० स० साठे नारायण शास्त्री की है और पूर्ण है।

ख. संकेत वाली पुस्तक आष्टे ग्रामनिवासी लिये महोदय की है जो गौतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

ग. संकेतवाली पुस्तक दक्षिणापथवर्ती विशालय के पुस्तकालय की है। यह भी गौतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

घ. संकेत वाली पुस्तक रा० रा० भाऊसाहेब नगरकर की है। इसमें केवल गौतमी माहात्म्य है।

ङ. संकेत वाली पुस्तक श्री 'पतञ्जलि सस्थान भोर' की है। इसमें भी केवल गौतमी माहात्म्य है।

च. संकेत वाली पुस्तक चोपडे ग्रामनिवासी वे० रा० रा० 'वामनबुआ अयाचित' की है। इसमें भी केवल गौतमी-माहात्म्य है।

भूमिका

००

यो विद्याच्चतुरो वदान् सागोपनिषदो द्विज ।

न चेत्पुराणं सविद्यानैव स स्याद्विचक्षण ॥

(ब्रह्माण्डपुराण अ० १)

अर्थात् जा० कि मागापाग चारा वदा और उपनिषदों को जानता है पर पुराणा को नहीं जानता वह विद्वान् नही हो सकता।

उपयुक्त कथन सत्य प्रतीत होता है कारण पुराण सब क एहलौकिक और पारलौकिक कल्याण-सम्पदा के अक्षय भाण्डार हैं। ज्ञान वरास्य भक्ति प्रेम श्रद्धा विश्वास धन दान तप सयम यम नियम सेवा भक्त दया वणधम आश्रमधन राजधम मानवधम अविधम स्व धम सदाचार अर नाना श्रमिया के पुरुषा के विभिन्न कल्याणकार उपदेश सुन्दर सरल अर उपादेय भाषा में इनमें मिले गये हैं। एतदतिरिक्त पुरुष प्रवृत्ति महत्त्व प्रवृत्ति विवृति भूगोल खगोल ऋषिवश तथा राजका का वणन अर स्वावर-जगम सृष्टि का बहुत सुन्दर रति स सूक्ष्म विवेचन किया गया है। कोण दानन व्याकरण छन्द ज्योतिष निरुक्त शिक्षा कला आयुर्वेद गणितवेद स्थापत्यवेद राजन ति समाजनीति योग तत्व आदि शास्त्रों का भी परिचय हमें इनसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक एवं आधिदैविक विषया के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद का भी प्रचुर सामग्र पुराणा में पाया जात है।

हरिदत्त शास्त्र व गण्डा में पुराणा से ह अणुशक्ति का ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मविद्या दशन व प्रवर्तक मन्त्रि विद्याद ने आकाश में निष्पष्ट परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सात पदार्थों व उत्पत्ति का सिद्धान्त स्वकारा है इस समय अणुव्यवस्था पर भौतिक अनुसंधान के विवेचना ने सकारक अणुशक्ति का पता लगाया है किन्तु अभी प्रजनन अर पालन अणुशक्ति का पता उनका नही है १६ विज्ञान पुराणादि में उल्लिखित है। इस पर ध्यान दनर यन्त्रा द्वारा अनुसंधान करने प्रत्यक्षीकरण किया जाये तो समार का महान उपकार हो सकता है। दक्षिण शकराचार्यजी सौन्दर्यलक्ष्मी में महाशक्ति से अणु व उत्पत्ति का रूपक किस प्रकार बताया गया है—

दन्तीवात पासु तव चरणपकेदहभयम

विरञ्जित सञ्चिचयन विरचयति ल कानविकलम ।

वह्ययन शीरि कपमपि सहस्रं गिरसा

हर सक्षुभ्यन भजति भस्ति डलनविधिम ॥

अर्थात् आकाशरूपिण अथवा महाशक्ति से अणुओं की वृष्टि हुई। उन अणुओं में से सज्जनात्मक अणुओं को सचिन करके सत्तार के रचना में आई। इसे ब्रह्मा अणुशक्ति कहते हैं। दूसरे प्रकार के अणुओं को सचिन

नरके वैष्णव अणु स सत्ता की पालनात्मक सामग्री बन है। फिर सहारात्मक अणु (विस्फोटक पदार्थ) एकत्र नरके रौद्र अणुओं के पिण्डीकरण से सत्ता के विनाश की शक्ति बना है। इस प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्र अणुसंवि—य तीन प्रकार के अणु बनाये गये हैं। यदि वर्तमान अणुपर क्षण समिति सर्व नतम वैज्ञानिक उपलब्ध साधना से इनका गभीर परीक्षण नरेत्ता वर्तमान काल भी पुराण-काल के समान वैज्ञानिक महत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं।

पुराणा म सिद्धीरीठस्थली भूमण्डल के विभाग पुण्यसंस्थित महुानद सरोवर मरुस्थल और शस्य-
श्यामल भूभाग—इत्यादि का वर्णन आया है। इनसे प्रचुर मात्रा में ब्राह्मी वंशजों अरर रीतों अणुसक्ति के विषय
में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

स्वन्दुराण म एक कथा आती है कि बंकर नाम का एक राजकुमार था, जिसका मुख बकर के मुख के समान था। वह शारीरिक निर्माण के कारण का ज्ञान प्राप्त करके अपने मुखखण्ड को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्वारा उसी शरीर में बकरी के मुख से सुन्दर मानवमुख के रूप में बदलकर चन्द्रमुखी हो गई। उस राजकुमारी के आठ भाई और एक बहन थी। उसको पिता ने सम्पूर्ण देश को दो भागों में विभक्त करके प्रत्येक को एक एक खण्ड दे दिया। तब स भारतवर्ष नवखण्ड नाम से कहा जाने लगा। उन पृथक् पृथक् खण्डों में अनेक प्रकार के भूगर्भगत घातुआ वा वर्णन है। इससे अनिश्चित पुराणों में आकाशवारी ब्रह्मक्षत्रा की दूरी और उनकी गति, शिखरारोहक प्रवस्थान उत्तराखण्ड दक्षिणाखण्ड श्रुति साक्ष आदि का विज्ञान भी निहित है।

पुराणा का प्रमुख उद्देश्य ब्रह्म के तत्त्वा का ज्ञान साधारण तक पहुँचाना है। वेद में सूत्ररूप में जो बातें नहीं गई हैं उन्हीं का व्याख्या पुराणा में भाष्यरूप से की गई है। यह ज्ञान पुराण-रचयिता व्यास जी ने स्वयं नहीं है—‘इतिहासपुराणम्यां वेद समुद्ब्रूहेत्य’ अर्थात् इतिहास (रामायण महाभारत) और पुराणा की सहायता से वेदा का अर्थ समझना चाहिए। यहाँ कारण है कि वेदा में जिन बातों की सूचना मात्र है पुराणा में उपाख्याता के द्वारा उन्हीं का विस्तार है। जैव ऋग्वेद के ‘इदं विष्णुद्विक्रमे प्रेषा त्रिदशे पथम्’ विष्णु व अवतार की सूचना मात्र है पर वामनपुराण में त्रिविक्रम नामक वामनावतार के प्रसंग में तथा अथ पुराणा में भी विष्णु व वामनावतार का विस्तार से वर्णन दिया गया है। इसी तरह अथर्ववेद (क० ८० सू० प्र० ३४।५) में राजा युगु का पूर्ववर्द्धन सपथ में वर्णित है पर अथर्वभागवत में उसी का विस्तृत रूप में वर्णन है।

पुराणा में जितनी सरलता से धर्म अथ, काम और मोक्ष रूप जगद्वर्ग की सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं है। १८ पुराणा में परापरकार का सब धर्मों का सादृश्य पुण्य बताया गया है और पर्याप्त का महा पाप। यह पाप-पुण्य का परिभाषा मानवता का जितना सुन्दर और मौलिक आचरण बता रहा है।

पुराणा में गत्य का अन्वेषण करते हैं। दृष्टि से, मयवादी हरिश्चन्द्र आदि के उपाख्यान में ज्ञान हुआ है कि उन्होंने गत्य की मूल्यवत्ता का जितना आत्मसात् किया था। सती अनुसूया मीना माविर्न मुकुन्दा आदि स्त्रियाँ ने ज्ञान, निष्ठा और सत्य से अलौकिक घमत्कार की सिद्धि प्राप्त की। यी। भगवान् राम की जवनवर्षों से उनमें चरित की विशेषता और सदाशय-पालन की सर्वदातृपण एवं हृदयप्राप्ति निष्ठा मिलती है। राम ने जवनन का सम्मान कर अपनी घमपर्णा मत्त। मीना का छत्र दिया था। पेंच अनुयायन और आत्मा का आदा स्थिर करने के लिए राम की भी स्थापन किया एवं अत्याचार का शमन करने के लिए एक स्वेच्छाचारी अधिनायक का नियुक्त किया। योत्सव के चरित में जो आदा हैं तथा जिस उच्च भूमिका पर समाज के जवन का नीति साम्राजिक चरित्रित धार्मिक व्यावहारिक आध्यात्मिक और अधिर्मात्रिक स्तर प्रतिष्ठित करते हैं अतिरिक्त रूप है उसका दर्शन

अन्यत्र कुलम् है। रामराज्य के सम्बन्ध में व्यास जी ने लिखा है—‘न पुत्रवरणं केचिद्वामे राज्यं प्रशासति।’ इसी बात को महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है—

न पुत्रवरणं केचिद्रक्ष्यन्ति पुण्यां वरचित्।
नार्यश्चाविषया नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रता॥

अर्थात् राम के राज्य में कोई पुरुष पुत्र की मृत्यु नहीं देखना था, कोई स्त्री विधवा नहीं होती। श्री और सभी पतिव्रता होती थी।

पुष्पसासन का यही आदर्श है। क्या राम के शासन के अनुरिक्त सत्तार के किसी भी शासन का यह आदर्श मिलता है?

इसी प्रकार मार्कण्डेय मुनि के जीवन से दीर्घायु तथा दीर्घाचि, सिद्धि आदि के चरित्र से त्याग आदि का आदर्श पुराणा के द्वारा ही मिलता है। इसलिए पुराण अन्य भारतवर्ष की बहुत बड़ी निधि है।

पुराणों का आविर्भाव

महर्षि वाल्मीकिन ने अपने न्यायदर्शनभाष्य में लिखा है कि वेदों और पुराणा का आविर्भावकाल समान ही है। जैसे वेद अर्षाक्षरेय हैं, गीतम, वसिष्ठ अत्रि वस्यप, भारद्वाज, वामदेव आदि ऋषि वेद-मन्त्रों के द्रष्टा मात्र हैं वरतों नहीं, वैसे ही पुराणों की मौलिक सामग्रियों का वरतों कोई भी नहीं है, किन्तु वेद-प्रतिपादित पुराणा के स्मर्ता ब्रह्मदेव हैं और वक्ता अनेक ऋषि हैं। नातर्य यह है कि जो वेद के द्रष्टा हैं वे ही पुराणा के स्मर्ता एवं वक्ता हैं। जिस प्रकार वेद का आरम्भ ब्रह्मा से है उसी प्रकार पुराणा का आरम्भ भी ब्रह्मा से ही हुआ है। विशेषतः इतनी है कि मन्त्रोपदेश से पूर्व विनियोग आवश्यक है तथा विनियोग की पूर्णता के लिए ऋषि, देवता, छन्द तथा चरित्र का ज्ञान भी आवश्यक है। अब पहले पुराणों को जान लेने पर ही मन्त्रोपदेश सफल हो सकना है, अन्यथा नहीं। इसी अभिप्राय से पद्मपुराण के सृष्टितण्ड के अध्याय १०४ में मिथ किया गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा के मुण्ड से पुराणा का ही स्मरण हुआ, पश्चात् उनके मुख से वेदमन्त्र निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तर च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

इस सम्बन्ध में अपने समय के अद्वितीय विद्वान् विशाखाचर्यपति मधुसूदन ओझा का अभिमत है कि मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद-ग्रन्थों के आविर्भाव से पहले या उनके समकाल ही ब्रह्माण्डपुराण नामक वेद-विशेष था, जिसमें सृष्टि और प्रलय का निरूपण था। इसीलिए शतपथब्राह्मण के ‘ऋग्वेदो यजुर्वेदं सामवेदोऽथर्वागिरस इति-हस्त-पुराणं विद्या उपनिषद् इत्यादि सूत्रात्मकव्याख्यानानि व्याख्यातानि’ वाक्य में ‘पुराण’ शब्द का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण के निम्नलिखित श्लोक भी इस बात को पुष्ट करते हैं—

पुराणमेवमेवासात्तदा ब्रह्माण्डोत्पत्तिम्।
विश्वोत्पादनं पुण्यं शतकोटिप्रवृत्तिरम्॥१॥
कालेनापहृतं दृष्ट्वा पुराणस्य तत्तः नृप।
तदष्टावतार्या कृत्वा भूतैश्चिन्तितं प्रकाशयत्॥२॥

पद्मपुराण एवं बृहन्नारदीयपुराण में भी इन तरह के उक्त पाये जाते हैं। इसमें सिद्ध होता है कि पहले के प्रसिद्ध पुराण ग्रंथ का आधार पर ही अठारह पुराणों का उत्पत्ति हुई है। उसी आदिम ब्रह्माण्डपुराण से मात्रा योंपयागा आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक उपाख्यान को लेकर महर्षया ने ब्राह्मणग्रंथों में सन्निविष्ट कर दिया। इस लिए एतरेय ब्राह्मण का निम्नलिखित मंत्र में सिद्ध आख्याना के वक्तव्यों का ही प्रतिपादन किया गया है—

सामो य राजाऽमुनिम लोके असोऽतदवसव ऋषयश्चाम्यध्यायन—कथमयमस्मान् सः स राजा गच्छदिति ते ऋक्वज छन्दांसि श्रया न इम सोम राजानमाहूतति तथति ते सुपर्णा भूवोदतपन त यत सपर्णा भूवोदतपन तदतत सोपणमिति आख्यातविद आचक्षत ।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथा में महापया ने ही आख्यानों को कहा है किन्तु वे आख्यान ब्राह्मणग्रंथों में महर्षियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं क्योंकि मन्त्राद्य के उपाख्यान में उन आख्यानों का उपादान होने से उन्हें मन्त्र रचना के बाद की कल्पना का विषय नहीं माना जा सकता। इसलिए ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत चिरात ब्रह्माण्डपुराण सह ये आख्यान संकलित किये गए हैं ऐसा मानना चाहिए। ब्राह्मणग्रंथा में उल्लिखित पुराणाद्य—आख्याना को ब्रह्मवृत्त मानकर ही पद्मपुराण का सृष्टिवर्णन किया गया है—

सूतेतानक्रमेण च पुराण सम्प्रकाशितम् ।

ब्राह्मणेषु पुरा षष्ठं ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम् ॥

इन ब्राह्मणग्रंथा में प्रायः सभी विद्याया का उल्लेख है किन्तु वे कमबड्ढा में रहित स्वरूप में अस्पष्ट हैं। अतएव उक्त बुद्धिप्राप्त बनाने के लिए विविचिन्त्यबुद्धिगाला महर्षयो ने अपन प्रतिभा के बल पर उन ब्राह्मण ग्रंथा से उन विद्याया को अलग करके युक्ति प्रयुक्ति अर सिद्धि का द्वारा विगद करने लोचनकल्पाणाय प्रसारित किया। जस कपित अर पतञ्जलि आदि ने साम्य अर ध्यान का चाल्पायन आदि ने कामसूत्र का मनु आदि ने धर्मसूत्र को पञ्चतन्त्र आदि ने आयुर्वेद को यास्क आदि ने निरुक्त का और ईश पाणिनि आदि ने व्याकरण का प्रवर्तित किया इसी प्रकार बसिष्ठ ने प्रश्नोत्तर शक्ति का पात्र और परात्मा के पुत्र सत्यवत का ग्रन्थ से उत्पन्न भगवान् कृष्णउपायन ने लावाणकार का लिए समस्त ब्राह्मणग्रंथों से समा उपाख्याना एवं गाथाया का संकलन करके क्या प्रमग में आया हुई वेदपुष्टिया को भी ठाक-ठाक जोड़कर शक्ति आख्याना से मिलित तथा सगनिबद्ध करके पूर्वोक्त वर्णन ब्रह्माण्डपुराण में कहे गये जगत्सृष्टि-प्रलयकण पण्यों का आख्यान उपाख्यान गाथा और बलागुद्धि का मुक्ति कर अठारह स्रष्टा में विभक्त एवं पुराण-संहिता का निर्माण किया। उन पुराण संहिता इसलिए कहे हैं कि उसमें पुराण का अमिहित तथा ब्राह्मण आदि ग्रंथा में उल्लिखित किंच सृष्टि विद्याया का एक जगह सङ्ग करके समाहार किया गया है। फिर कृष्णउपायन ने अपने गिण्य मूलात्मन कामहृषण को बह संहिता पद्वामी। कामहृषण ने भी सम्पूर्ण संहिता का पञ्चर १ सग (सृष्टि) २ प्रतिसग (प्रलय) ३ का (द्वारा एवं पितरा का वगावत्) ४ मन्त्रर (विम मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा ५ वागनुवर्तन (मूय चन्द्र प्रभूति राजकाय में उत्पन्न होने वाले राजाया का मितन वजन)—इन पाँच विषया में विभक्त करके एक लोमकण नाम का संहिता बनाया। उक्त अपन उक्त गिण्या—१ सुमति २ अमिबचन ३ मित्रयु ४

१ स्वयं दम गद विषया का वजन। २ कण-परस्पर द्वारा मुन गये विषया का वजन। ३ विवरण परनाक अववा अत्याय विभिन्न विषया का गीत का अनुभूतिको। ४ थाद्यकण्य आदि का निषय।

मुनिमा ५ अष्टनवत्रिंशत् आर ६ सामदत्ति को पदा दिया। यह छह अक्षिण गात्र-नाम व क्रम से १ आत्रय २ भार-
द्रात्र ३ वसिष्ठा ४ गागापायन ५ वास्यप आर ६ सार्वणि बह जाने हैं। इन छह ने भा पूर्वोक्त संहिताद्वय
का आधार पर स्वच्छानुसार क्रम रखकर छह संहिताओं का निमाण किया। उन छह संहिताओं में विज्ञाता आभ्यास
मवाद एवं प्रवृत्ति व अनुराग स प्रमगत् सगिप्त और विमृत्त अन्त कथानक जान दिये गये। जिससे उनके
आकारों में भिन्नता आ गयी, परसग प्रतिगत आनि सामान्य घम उनमें बराबर हा बने रह। इन प्रकार पुराणों
का आठ संहितायें बन गई यह जिन्हा आचार्यों का मत हैं। वैंम वायुपुराण आर विष्णुपुराण का मत स चार हा
संहितायें हैं—१ लामहृषणिका वास्यपिका सार्वणिका आर गागापायनिका। इन चार संहिताओं के आधार पर
ह वदव्यास न ब्रह्मपुराण आदि प्रसिद्ध अठारह पुराणों का रचना का आर उनमें उपश्रवा प्रभृति मूला न
सन्निधि व ।

आग चलकर उन चार संहिताओं में उल्लिखित कथाओं में मिश्रता आ गई। इसका कारण यह है कि
समय-समय पर मुनियों का गण्डित्य में उन पर चर्चा हुला रह। जिसमें सात्त्विक राजस और तामस उपासना
का भेद स उनका भिन्न भिन्न प्रकार स निरूपित किया गया फलतः मुख्य उद्देश्य में मिश्रता आ जान स इतिहास
अर प्रवचन में भा भेद हा गया। बाद में उन उन पुराणों में आर हुए पुनरुत्पन्न एवं भाग्य और परागर एवं मन्त्र
आदि के मन्त्रों का प्रकार करन क लिए कमा कामहृषणसूत नमिपारण्य में जाकर वदव्यास हा के द्वारा विवक्त
किये गये अठारह पुराणों का गीतक आदि त्रिणामु मुनियों का मुनाने लगे। यद्यपि वेदव्यास द्वारा व्यवक्त किये गये
पुराणों का पूर्वोक्त क्रम दूसरे प्रकार में निर्धारित था किन्तु कामहृषण सूत ने त्रिणामुओं के अनुरोध स निवारित
क्रम की उपेक्षा करके क्रम ब्रह्मपुराण पद्मपुराण विष्णुपुराण कूर्मपुराण मत्स्यपुराण वामनपुराण वाराहपुराण
ब्रह्मवैवर्तपुराण नारदीयपुराण तथा भविष्यपुराण—इन दस पुराणों का पूण रूप स मुनाकर अग्निपुराण को आधा
हा मुनाया। इसा वाच मयाग से नमिपारण्य में आये हुए बलभद्र ने अवगिण्ट अग्निपुराण को मुनाते हुए हा सूत
का यह बिना मरा अभिवादन किये गद हेकर पुराण मुना रहा है—एसा सचकर कथाका में मार डाला। तब
लामहृषण व दिवगत् हा जान पर गागाकुलित गीतक आदि मुनियों न लामहृषण क पुत्र उपश्रवा नामक सूत
का बुलाकर योग गद। पर वडाकर उसमें अग्निपुराण व अवगिण्ट आध भाग के साथ और भी सात पुराण मुन
किये। यह बात पद्मपुराण व उत्तरावगत् में आया है। कामहृषण का जिवितावस्था में भा निव वे हा मुनियों
का पुराण नहीं मुनान थे अपितु उनका आना में उपश्रवा न नमिपारण्य में जाकर मुनियों का पुराण मुनाया
करन था। यह बात भा पद्मपुराण स ह विनि हुता है।

पहला पुराण

पूर्वोक्त चार संहिताओं पर आधारित अठारह पुराणों में प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण ह है। इस वाद की भग
वान परागर न मन्त्र स कहा है—

चतुष्पदाप्यतन संहितानामि मून।

आद्य सत्रपुराणाना पुराण ब्राह्ममूख्यत ॥

(विष्णुपुराण)

इस दलाक में ब्रह्मपुराण को आद्य मानकर इतर पुराणों को तदुत्तरवर्ती एवं संहिताचतुष्पदमूलक प्रतिपादित

किया गया है। केवल देवाभागवत को छोड़कर अन्य पुराणों में भी इस बात का पुष्टि का गई है। इसका स्पष्टकरण आगे किया गया है।

पुराणों का क्रम

विष्णुपुराण के अनुसार पुराणों का रचना (सृष्टि) का क्रम इस प्रकार है —

१ ब्रह्म	७ साकण्डव	१३ स्वन्द
२ पथ	८ अग्नि	१४ वामन
३ विष्णु	९ भविष्य	१५ कूर्म
४ वायु (मित्र)	१० ब्रह्मवैवत	१६ मत्स्य
५ भागवत	११ ऋग	१७ गरुड
६ नारदाय	१२ वाराह	१८ ब्रह्माण्ड

इन्हीं अग्राह्य पुराणों का आद्य अन्तर लेकर निम्नलिखित श्लोक में मात्र सूचा प्रस्तुत की गई है—

महर्षे भद्रर्षे च व द्रष्टव्यं वचतुष्टयम् ।
अनापहृत्स्वर्गलोकानि पुराणानि प्रचक्षते ॥

दा म	दा भ	तान म	चार व अ० ना० प० क० स्व० लि० ग०
७	५	१	३ ८ ६ २ १५ १३ ११ १७
१६	९	१०	१२
		१८	१४

४ (मन्मथदा)

पुराणों का क्रम रहस्य

य ब्रह्ममणि त्रिपाठा न सारदा म पुराणा न/ सृष्टि प्रक्रिया न/ वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देवता ही तो ही समुद्र म शेषशायी भगवान् विष्णु का ध्यान न किए। ही सहागर म नैषनाग का गम्या बनाकर भगवान् विष्णु लेटे हुए हैं। जगज्जनन। लक्ष्मी उनका पर दत्ता रहीं हैं और मत्पि नारद पाल म सदा हार स्तुति कर रहे हैं। अब विष्णु का सृष्टि रचने का इच्छा होती है तब उनका नाम स एव कमल निकलता है। उससे ब्रह्मा का प्रादुर्भाव होता है। उस पर बत्तकर चतुर्मुख ब्रह्मा बन पाठ करते हैं। यही सृष्टि न रचयिता है। इस चित्र का ध्यान म रखकर पुराणों का क्रम पर विचार करना चाहिए। सबसे पहले यह विज्ञाना उत्पन्न होता है कि इस दायमान ब्रह्माण्ड के रचयिता कौन हैं? इसका उत्तर प्रथम ब्रह्मपुराण देता है। इसमें यह सूचित होता है कि ब्रह्मा ब्रह्मभस्वस्वयम् इस तत्तिराय श्रुति के अनुसार ब्रह्मा है। ब्रह्मा का रूप म सृष्टि न रचयिता है। अर्थात् स्वावर-जगत्पामन दू-पत्रय न निमाणा ब्रह्मा का मरव प्रथम ब्रह्मपुराण बतलाता है। पश्चात् दूसरा ग्रन्थ उपस्थित होता है कि ब्रह्मा क्यों स पैदा हुए? इसका उत्तर पथपुराण देता है कि ब्रह्मा ब्रह्म के नाशिकमल से उत्पन्न हुए। अब तीसरा ग्रन्थ उपस्थित होता है कि पथ कहां से निकला? इस सवा का समाधान करने के लिए स सारा विष्णुपुराण आता है। हमने बाल सारा हाया है

की सृष्टि, प्रलय आदि का निरूपण करते हैं। इसलिए १८ भाव विकारा को व्यक्त करने के लिए पुराण भी १८ माने गये हैं। फिर कल्प भी १८ माने जाते हैं। एक एक कल्प में एक एक पुराण की प्रचलना रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी पुराणा की अष्टादश संख्या के रहस्य का उद्घाटन होता है।

उपपुराण और औपपुराण

पुराणा की तरह उपपुराण और औपपुराण भी सत्त्वा में अष्टादश ही हैं। यथा—उपपुराण—(१) सनत्कुमारवृत्त आदिपुराण (२) नरसिंहपुराण (३) कुमारकृत स्कन्दपुराण (४) शिवधर्मपुराण (५) दुर्वास-पुराण (६) नारदपुराण (७) कपिलपुराण (८) वामनपुराण (९) अश्विनतपुराण (१०) ब्रह्माण्डपुराण (११) कालिकापुराण (१२) वरुणपुराण (१३) मातृश्वरपुराण (१४) साम्बपुराण (१५) सौरपुराण (१६) पाराशर पुराण, (१७) मारीचपुराण और (१८) भास्करपुराण हैं।

औपपुराण—(१) सनत्कुमारपुराण (२) बृहन्नारदीयपुराण (३) आदित्यपुराण (४) सूर्यपुराण (५) नन्दिश्वरपुराण (६) कौर्मपुराण (७) भागवतपुराण (८) वसिष्ठपुराण (९) भार्गवपुराण (१०) मुद्गगल पुराण (११) कल्किपुराण (१२) देवपुराण (१३) महाभागवतपुराण (१४) बृहद्वर्मपुराण (१५) परानन्द पुराण (१६) नक्षिपुपुराण (१७) पशुपतिपुराण और (१८) हस्तिनापुराण हैं।

इन उपपुराणा और औपपुराणा की रचना पुराणा के आधार पर ही हुई है। प्राचीन काल के विभिन्न विद्वानों ने १८ महापुराण की छाया लेकर ही इनकी रचना की है। विस्तार के भय से इनमें कहीं-कहीं तो कथायुक्त सूक्ष्म कर दी गई हैं। वही-कहीं पर विलक्षण कथाओं का भी समावेश कर दिया गया है और कहीं-कहीं कथाओं में नार्वे-य खाने के लिए परिवर्तन भी कर दिया गया है। इनका अन्तर होने पर भी इनका मूल अष्टादश पुराण ही है। श्रीमद्भागवत के यशस्वी टीकाकार श्रीधर स्वामी के प्रचलन सिद्ध नीलकण्ठ ने दर्वीभागवत की टीका में इस विषय का स्पष्ट संकेत भी किया है—

अष्टादशसंख्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते।
विजानीध्व द्विजश्रेष्ठास्तथा तस्मै विनिर्गतम् ॥

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

महात्पुरा ह्यनवतीतं पुराणं तत्र तत्समूहम्।
निश्चयमस्य या वेद सर्वपात्रे प्रमुच्यते ॥

अर्थात् सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश करने में कारण समूह, 'पुराण' मन्त्रा हुआ। इसकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति जो जानने हैं वे सब पात्रों से छूट जाते हैं।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—पुरा नं यते इति पुराणम् पुरा/नी + ङ(अ) ईकार का लोप भत्व। अथवा पुरा भवम् इति पुराणम् पुरा + ट्यु (यु) सामयिकरमाहूषमनेऽद्यमेत्युत्पुकी तुट् च' इस मूल से। अतः पुरा के स्थान में युवराजा के मूल से अन आदेश नकार को 'अट्टकुप्वाट्टनुम्ब्यवायजि' मूल से भत्व। यही 'सामयिकर—इत्यादि मूल से ट्यु प्रत्यय का हाना है पर तुट् का आगम नहीं हो पाता है कारण, 'पूर्व

काव्यमवतरत्पुराणत्वककला समानाधिकरणत इम मूत्र म पाणिनि न पुराण शब्द का निर्णय किया है। यदि तुट हा जायगा तो उक्त मूत्र म पठित पुराण शब्द कमे बनेगा ? अथवा पुराणप्राक्तन ब्राह्मणकल्प इम भूत्र निर्देश म निपातन करके पुराण शब्द बन सकता है।

निश्चय म पुराण शब्द का निश्चयन इम प्रकार आया है—पुरा नव भवति जिसके नव छवि सबम प्रथम प्रकट हुई वह पुराण है। इसलिए भगवान् वं भा पुराणमुरूप कल्पे है। पुराण का अर्थ जण नहा है अपितु जाति विकास है। गाथा म भगवान् का प्रायना म आया है—ववि पुराणमनुासितार अथात भगवान् काल्पार्थी तथा पुराण हान स सबक अनुागमक है। अत पुराण शब्द स आदि साहित्य का तात्पर्य है। आदि साहित्य वह है जिमम आदिन्व आत्मा का प्रकाश हा। इस आदि विद्या का वेदव्यास ज न जगत्कल्याण क लिय सर्गादि पांच लक्षणा म ग्रथित कर दिया। इस का पुराण कहत है। पुराण शब्द को मुनित ह व्यामकृत अप्पन्ना पुराण क मूर्ति हा जाता है।

पुराण-लक्षण

स्वयं पुराणाम हं पुराण क कई पुराण लिय गये हैं। काव्यारा म अनुसार उसका सर्वाधिक प्रचलित लक्षण यह है—

सगश्च प्रतिसगश्च र्थगो म वतराणि च।
वशानुचरितञ्चैव पुराण पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् जिमम सग ईश्वरजन सष्टि (कारणमष्टि) प्रतिसग गुन (कार्य) मष्टि अर लय स्वता आ एव विधरा का बगावला समस्त मन्वन्तर (जिस मनु का वने तक अविकार रता है) तथा वशानुचरित (मूप चर प्रमति राजवशा म उत्पन्न हान बाल राजाआ क सक्षिप्त वणत) पुराण क यह पंच लक्षण है। इस लक्षण स सर्वांगक पठित हान वाले प्राय अविकारा महापुराण हैं पर कुछ ऐसे भा हैं जिमम सब लक्षण पठित नहा हात। पुराण शब्द का व्यवहार अवतवद गतपदब्राह्मण छांदोग्य बृहदारण्यक तैत्तिरीयारण्यक आश्वलायनगह्यमूत्र आप्पन्ना यममूत्र मनुसंहिता रामायण महाभारत प्रमति हिन्दू जाति क प्राचननम एव सम्माय श्रया म विद्या गया है। पर यह विवादास्पद ह कि उस समय भा पुराण का यह लक्षण था। अवतमहिता के श्रुत सामानि छद्मांसि पुराण यन्त्रया सह (अथवा ११ ७ २४) इस मत का श्रुत साम छन्द अर पुराण य साथ उत्पन्न हुए यन् स्पृष्ट अर ह। बृहदारण्यक अर गतपदब्राह्मण म एक स्थान पर यह वणत किया गया है कि जिम प्रकार गले बाण्ड म उत्पन्न अग्नि म पुष्पक-पुष्पक पुत्र निकलता ह उस प्रकार इस मांनू भूत क निन्वाम स क्रमवद यनुवन् साम का अवयवद इतिहास पुराण विद्या उपनिषत् इत्या मूत्र व्याख्यान अर अनुव्याख्यान निकले है। य सभी दशा निन्वाम हैं। इमम भा पुराण का इतिहासादि स पयक कथन किया गया है। शशांग्यागनिपत ने स हावाव श्रुतवेद भगवत्प्रेमि यजुषदमायवण चतुर्थमितिहास पुराण पञ्चम वेदाना वेदम। (छांदोग्य ३० ७ १) इस वचन द्वारा पुराण भा कन्मसू म पाचर्वा क माना गया है। इम प्रकार मांभारत और रामायण म भी पुराण शब्द का अनेक स्थान पर प्रयोग हुआ है। भगवान् पुराणवाच न ग दारण्यक क भाष्य म पुराण शब्द क व्याख्या क है। उनका कन्ना है कि वंश म उक्ता अर पुराणवा क यथागतथन जाति ब्राह्मणभाग का नाम इतिहास अर मन्त्रे य ल एकमात्र अमन् या इयाति मूर्ति प्रक्रिया क पठित वृत्तांत का नाम पुराण है। इम प्रकार आचार्य

साधन ने भी वेदों में आये हुए पुराण गद्य को निरक्षर करते हुए सृष्टि-प्रक्रिया घटित वृत्तान्त को पुरा माना है। तब राधाय एवं साधन का परिभाषा के अतिरिक्त महाभारत एवं रामायण में पुराणा का जो परिचय दिया गया है उसमें सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्त के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के आदि पर्व में महर्षि गौतम ने कहा है—

पुराणं हि कथा दिव्या आदिवशाच्च धीमताम्।

कथ्यते य पुरास्त्माभि श्रुतपूर्व पितृस्तव॥

(महाभारत आदिपर्व ५२)

अर्थात् पुराणा में स्थित कथाओं एवं परम बुद्धिमान् व्यक्तियों के आदिवशात् वर्णन है। यही नहीं महाभारत व आदिपर्व में उन समस्त राजाओं का नामावली है जिनके वर्णन पुराणा में है। इसी प्रकार रामायण के बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में लेकर ग्यारहवें सर्ग तक वर्णित कथाओं को भी पुराण माना जा रहा है। इन बातों पर विचार करने से पता लगता है कि वह काल से लेकर रामायण एवं महाभारत काल तक जो पुराण प्रचलित थे उनमें सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्त दिया कथाओं एवं परम बुद्धिमान व्यक्तियों के आदिवशात् वर्णन था। पुराण व अतृणा प्रचलित साधन प्रतिसाधन इस उपयुक्त लक्षण से इसका समानता है। अस्तु

उपयुक्त सर्वसाधारण प्रतिसाधन इत्यादि लक्षण व अतिरिक्त ब्रह्मवन्पुराण में महापुराण के दूसरे लक्षण भी बताये गए और उस सर्वसाधारण लक्षण का उपपुराणों का लक्षण बताया गया—

सृष्टिश्चापि त्रिसृष्टिश्च स्थितिस्तथाञ्च पालनम्।

रक्षणं वासनावातामनूनाञ्च क्रमणं च॥

वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम्।

उदकीकृतं हृदये दत्तानाञ्च पथकं युक्तम्।

वैश्वामिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम्॥

(१३२ ३५ ३७)

इन प्रकार यदि ब्रह्मवन्पुराण का मन माना जाय तो महापुराण में उपयुक्त दस लक्षण होते चाहिये और उपपुराणों में पाँच। किन्तु हमने भी अमरकोश में वर्णित उक्त सर्वसम्मत लक्षण का ही मापना सिद्ध किया है। क्योंकि उपपुराणों में उक्त पाँच लक्षण भी नहीं मिलते।

क्या पुराण इतिहास है ?

परिष्कृत पुराणमतिष्ठ पुराणं तेन तत् समतम् अर्थात् पुराण में इतिहास होता है इतिहास में पुराण कहते हैं। इसमें स्पष्ट है कि पुराण इतिहास में भिन्न नहीं है। फिर हमारे परिवर्तन का है। सममानुसार अनुष्ठान व विचार तथा अभिरुचि का परिवर्तन होता रहता है। जो बात आज हमें प्रिय है व दूरी है वह प्राचीन काल में भी वही हो थी या नहीं और आज भी वही हो जाएगा या नहीं यह कोई नहीं कह सकता। अतएव इतिहास व जो परिभाषा आज है वही प्राचीन काल में भी थी यह निश्चयपूर्वक कहा जाता जा सकता पर ऐतिहासिक पुस्तकों का जो उपयोग आज है वही प्राचीन काल में पुराणों का था। इतिहास व जो लक्षण उन समय बताये गए हैं वे सब पुराणों में पाये जाते हैं। यथा देशभोजन में भिन्न है—

अर्थात् जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष के उपदेशों से युक्त तथा पुरावृत कथाओं से सवलित हों, उसे इतिहास कहते हैं।

जैन आचर्य इतिहास में सन् सबत् सहित घटनायें रहती हैं अर्थात् सन् सबत् युक्त घटना-समूह या सूची का इतिहास कहते हैं, वैसे ही प्राचीन काल में भी था। किन्तु अतीत काल का इतिहास आधुनिक काल के इतिहास से पूर्णतया भिन्न था अर्थात् अतीत काल में इतिहास की वह परिभाषा न थी जो आज है। पूर्वकालीन इतिहास की व्युत्पत्त्यात्मक व्याख्या से यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। देखिए विष्णुपुराण में इतिहास की व्याख्या—

‘इतिहृत्यव्ययम् पारम्पर्योपदेशाध्यायी, तत्प्राप्तनम् आस. अवस्थितिरितेष्टिविति।’ अर्थात् ‘इतिह’ अव्यय है, जिसका अर्थ है परम्परागत उपदेशयुक्त कथायें और ‘आस’ का अर्थ है—अवस्थिति। अर्थात् जिसमें परम्परागत उपदेशपूर्ण कथाएँ हों, वह ‘इतिहास’ है। अमरकाश में भी ‘इतिहास’ का यही लक्षण दिया गया है। यथा, ‘पारम्पर्योपदेशो स्यादितिहासमितिहास्यम्। इतिहास पुरावृत’ अर्थात् परम्परागत प्राचीन घटनाओं का विवरण ही इतिहास है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन तथा प्राचीन इतिहास में भेद केवल काल या समय का है। आचर्य के इतिहास का तात्पर्य सन्, सबत्, तिथि सहित बहुत-सी घटनाओं के वृत्तान्त से है, परन्तु प्राचीन काल में सन्, सबत् आदि की अपनी आवश्यकता नहीं थी केवल सन् के समय में व्यक्ति तथा घटना-काल का अनुमान लगा लिया जाता था। अतः पुराण निरं धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं हैं अपितु उनमें भारत के अतीत का इतिहास भरा पड़ा है। वे प्रागैतिहासिक काल के महत्वपूर्ण इतिहास हैं।

पुराणों का वर्गों में विभाजन

उक्त अष्टादश पुराणों का वर्गों में भी विभक्त किया गया है। स्कन्दपुराण में केदारखण्ड में यह वर्गीकरण आया है कि अठारह महापुराणों में दस गीत चार ब्रह्म दो शाक्त और दो वैष्णव हैं। फिर उसी पुराण में शिवरत्नस्य-संज्ञान्तर्गत सम्भवकाण्ड में लिखा है कि शिव, भविष्य, मार्कण्डेय त्रिग वाराह स्कन्द मत्स्य कूर्म वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण गीत हैं। इन सब की श्लोक संख्या ३ लाख है। विष्णु भागवत नारदाय और गण्ड—ये चार वैष्णव हैं इनमें भगवान् विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्रह्म और पद्म—ये दो पुराण ब्रह्मा से सम्बन्धित हैं। अग्निपुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य की महिमा में पूर्ण हैं। चारों वैष्णव पुराणों में अधिपति शिव और विष्णु का माहात्म्य वर्णित किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर का साम्य प्रतिपादित करने हुए भी ब्रह्मा का श्रेष्ठ और सूर्य का त्रिदेवात्मक मित्र किया गया है। इसी प्रकार गीत पुराणों में शिव का सभी देवताओं में अधिपति शक्तिशाली माना गया है। मत्स्यपुराण में यद्यपि विष्णु के मात्स्याकर्तार का ही वर्णन किया गया है, पर शिव के विविध अवतार एवं कार्यों का भी इसमें वर्णन मिलता है। इसी प्रकार वाराह, वामन और ब्रह्माण्ड में भी शिव की अनेक शक्ति का वर्णन किया गया है जिसमें सम्मुख विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति सभी देवा एवं शक्तियों का कई बार प्रभावहीन होने दिखाया गया है। गीत मन की प्राचीनता एवं उसके उदात्त विचारों का ही यह परिणाम है कि अधिकांश पुराणों में उसके वर्णन की गई है। ऋक् यजुः साम आर अथर्व चारों वैदिक महिमाओं में ऋक् की स्तुति मिलती है। इनमें यजुर्वेदान्तर्गत ह्यष्टाध्यायी का आठवाँ अध्याय भी इस प्रकार है। यद्यपि इस बात में विवाद उठाया गया

है कि ब्रह्मिण रुद्रह। प राणिक गिब अववा रुद्र है पर यह परम्परा इतना प्रचलित हुआ गई है कि वह तब नहीं स्वीकार करता। वाजसनेय संहिता में गणना के बाव बाव में गिब गिरान पगुपति न लख ब गिनिकण्ड भव शव महात्मा इत्यादि नामा का दखने से रुद्र और गिब के एकत्व में अविश्वास नहीं रह जाता। अववसंहिता में भी महादेव भव पगुपति आदि नामा का उल्लेख हुआ है। अस्तु शैव पुराणा में प्रायः इन्हीं उपयुक्त नामा का चरित्रावता मनोहर बताया गया है। इनके अतिरिक्त सात्विक राजस एवं तामस—इन तीन गुणा का आधार पर भी पुराणा का वर्ग विभाग किया गया है।

पुराणों की श्लोक संख्या और अध्यायों का विवरण

उपयुक्त अंतराहा पुराणा में आए हुए द्वाका एवं अयाया का संख्या नारदीय पुराण एवं मत्स्यपुराण में उल्लिखित संख्या के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है—

	नारदीय पुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	मत्स्यपुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	(अध्याय संख्या)
१ ब्रह्मपुराण	१००००	१३०००	२४५
२ पद्मपुराण	५५०००	५५०००	६४१
३ विष्णुपुराण	२००००	२३०००	१२७
४ शिवपुराण	२४०००	२४०००	४६४
५ भागवत	१८०००	१८०००	५३२
६ नारदीयपुराण	२५०००	२५०००	२०७
७ भावार्थपुराण	९०००	९०००	१०४
८ अग्निपुराण	१५०००	१६०००	२८३
९ भविष्यपुराण	१४०००	१४५००	६०५
१० ब्रह्मवर्णपुराण	१८०००	१८०००	२६६
११ त्रिगपुराण	११०००	११०००	१६०
१२ वाराणपुराण	२४०००	२४०००	२१८
१३ स्कन्दपुराण	८११००	८१०००	१६७१
१४ कामनपुराण	१००००	१००००	५५
१५ कर्मपुराण	१७०००	१८०००	७९
१६ मत्स्यपुराण	१५०००	१४०००	२९०
१७ गरुडपुराण	१९०००	१८०००	३१८
१८ ब्रह्माण्डपुराण	१२०००	१२२००	१६१

इन पुराणा के जो संस्करण आज तक मिल रहे हैं उनमें केवल भागवत त्रिगपुराण मत्स्यपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में उपयुक्त अंतराहा ही है। पर सात पुराणा का अंतराहा संख्या में पर्याप्त अंतर है।

ब्रह्मपुराण

यह पुराण विष्णुपुराण के अनुसार अंतराहा पुराणा में गणना का पुराण है—

आठ सप्तपुराणादी पुराण ब्रह्मपुराण के।

अष्टादश पुराणानि पुराणाना प्रचलने॥

किन्तु दस भागवन के अनुसार ब्रह्मपुराण पंचवक् पुराण है। नारद पुराण के अनुसार ब्रह्मपुराण में दस हजार श्लोक होने चाहिए किन्तु मत्स्यपुराण में ब्रह्मपुराण के त्रहस हजार श्लोकों का गणना उल्लिखित है। यत्न महाभारतपुराण वाराणसीपुराण कम्पुपुराण अथ पद्मपुराण में भी उल्लिखित है। किन्तु प्रस्तुत सम्बन्ध में त्रहस हजार मान में विरामा श्लोक उपर्युक्त हैं। यह सम्बन्ध आनन्दश्रम सूता में प्रकीर्तित प्रति के आधार पर तयार किया गया है।

ब्रह्मपुराण के दो भाग हैं—पुरुषभाग और उत्तरभाग। दोनों भागों में मिलकर कुल २४६ अध्याय हैं। जिनमें पुरुषभाग में दस और अमुरा प्रजापतिया तथा दस आदि के उत्पत्ति का वर्णन है। फिर भगवान् मूय के वक्ता का वर्णन तथा भगवान् राम के चतुर्व्यवहार का उल्लेख है। तदनन्तर चन्द्रका का वर्णन एवं जगन्नाथ के कृष्ण का चरित्र चित्रित है। तत्पश्चात् दशानुसंधि वर्या पात्रा स्वर्ग और नरक का वर्णन मिलता है। फिर मूय के स्तुति एवं पावन का जन्म और विवाह वर्णन हैं। इसके बाद दशका आस्थान और एकाग्रपद का वर्णन मिलता है। वन संहार में पुरुषभाग में इतना ही विषय आया है।

उत्तरभाग में पुरुषात्मन्त्र का विस्तार में वर्णन तथा तापशास्त्र का विस्तार निम्नित है। पन महाभा कृष्ण चरित्र पर प्रमाण डाला गया है। अन्तर ब्रह्मलोक का वर्णन विनूयाद का विधान वर्णश्रममय का निर्माण युगा का आस्थान तथा प्रलय का वर्णन किया गया है। तदपराध पाप तथा माय के शक्त्या ब्रह्मवाद का निर्माण और ब्रह्मपुराण के फलभूति का कानन किया गया है।

वम तो मय प्रसिद्ध का सम्बन्ध और वागनुचरित—य सभी पुराणों में प्राप्त गमान् हैं। किन्तु ब्रह्मपुराण के आदि पुराण होने में इसके श्लोक भा कुट पुराणों में ज्यादा-क्या कम मिले गए हैं। जम ब्रह्मपुराण के निम्नलिखित श्लोक विष्णुपुराण एवं नारदपुराण में अतिवर्णन में आ गए हैं—

गोपीपरिवृता रात्रि परवत्प्रभवोरमाय ।
मानयामास गाविन्दो रासारम्भरसस्मृक् ॥
गोपशिव वृन्देण कृष्णवर्णस्वामनमृतय ।
अपदेण गन कृष्ण चन्द्रवृन्दावनांतरम् ॥
ब्रह्ममस्तास्ततो गोप्यो निरागा कृष्णदगन ।
कृष्णस्य चरणी रवी दृष्ट्वा वृन्दावन द्विजा ॥
एवं नानाप्रकाराणु कृष्णवर्णानु ताणु च ।

(ब्रह्मपुराण अध्याय १८)

गोपीपरिवृता रात्रि परवत्प्रभवोरमाय ।
मानयामास गाविन्दो रासारम्भरसस्मृक् ॥
गोपशिव वृन्देण कृष्णवर्णस्वामनमृतय ।
अपदेण गन कृष्ण चन्द्रवृन्दावनांतरम् ॥

एवं नानाप्रकाराणु कृष्णवर्णानु ताणु च । (विष्णुपुराण अध्याय १३)
धूम्रावर्णं तस्य विष्णुस्य गुरुमहम् ।
तन्मन्त्रात्कृत्यायाम प्रतिमा शुभमश्रया ।

प्रथमं शुक्लवर्णाभि शारदेन्दुसमप्रभम् ।
 आरवताक्षं महाकायं जटाविकटमस्तकम् ॥
 नीलाम्बरधर चोप भल बलमदोद्धतम् ।
 कुण्डलंकधर दिव्यं गवामुशलधारिणम् ॥
 द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजोमूतसन्निभम् ।
 अतसोपुष्पसकाश पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥
 पोतवाससमयुग्म शुभ्र श्रोतस्तलक्षणम् ।
 चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहर हरिम् ॥
 तृतीयां स्वर्णवर्णाभा पद्मपत्रायतेक्षणाम् ।
 विचित्रवस्त्रसद्युक्ता हारकेयूरभूषिताम् ॥
 विचित्राभरणोपेता रत्नहारविलम्बिताम् ।
 पोतोन्नतकुचां रम्या विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥
 ध्रुवतटचन तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत् ।
 तत्क्षणात् कारयामास प्रतिमा शुभलक्षणा ॥
 कुण्डलाभ्यां विशिष्टाभ्या कर्णाभ्यां सुविराजिता ।
 चकलाङ्गलविन्यासहस्ताभ्यां साधुसम्भृताः ॥
 प्रथमं शुक्लवर्णाभि शारदेन्दुसमप्रभम् ।
 सुरकाङ्कु महाकायं जटाविकटमस्तकम् ॥
 नीलाम्बरधर चोप भल बलमदोद्धतम् ।
 कुण्डलंकधर दिव्यं महामुशलधारिणम् ॥
 द्वितीयं पुण्डरीकाक्ष नीलजोमूतसन्निभम् ।
 अतसोपुष्पसकाश पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥
 श्रोतस्तलक्षणं भोज्योपेतवाससमभ्युतम् ।
 चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहर हरिम् ॥
 तृतीयां स्वर्णवर्णाभा पद्मपत्रायतेक्षणाम् ।
 विचित्रवस्त्रसद्युक्ता हारकेयूरभूषिताम् ॥
 विचित्राभरणोपेता रत्नमालाविलम्बिताम् ।
 पोतोन्नतकुचां रम्या विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥

(ब्रह्मपुराण, ५०, ४८-५६)

(नारदोपपुष्पगुर्वारं अध्याय ५४)

यह भूमिका लिखने में मुझ जित विद्वानों की कृतिया से सहायता मिली है, उनमें प्रति तथा विशेष रूप से १० श्रीभीष्ममणि त्रिगोठी के प्रति में अपनी हादिव कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

सन २०१३ दि०

राजनरमो

—तारणीश भा

विषय सूची

००

[ब्रह्मपुराण के अष्टावता अध्यायों के क्रम से विषयों व अनुक्रमणिका]

अध्याय १

मगलावरण तथा नदिपारण्य-वर्णन

मगलावरण के इलाक नदिपारण्य का वर्णन मुनियों का शुभाशुभ नदिपारण्य में सूत्रों का जाना तथा ऋषियों का उनसे पुराण सुनने के लिए निवेदन करना लोमूषण (मू०) ज द्वारा पुराणकथा का आरम्भ। सृष्टि के सम्बन्ध में विवरण जल के उत्पत्ति ब्रह्मा का जाविर्भाव ब्रह्मा द्वारा अण्ड का दो भाग करना ब्रह्मा से मर वि आदि ऋषियों के उत्पत्ति रू आदि का उदभव वस्वन् मनु का उत्पत्ति आदि सग व सुनने का फल। १-६

अध्याय २

स्वयम्भुव मनु का वग-वर्णन

स्वयम्भुव मनु के साथ गतरूपा का विवाह गतरूपा से प्रियव्र उत्तानपादा पुत्र एवं काम्यो नामक कन्या के जन्म का आश्वासन उत्तानपादा के वग का वर्णन प्रसंग से पशु का जन्म प्रच आ का उत्पत्ति प्रच आ का मुरास्मि सवक्षा का जन्म। उनका वक्ष-पुत्र मारिषा से विवाह मारिषा से दक्ष का उत्पत्ति एवं दक्ष का वग-वर्णन इस कथा के सुनने का फल। ६-११

अध्याय ३

देव-दानव त्पत्ति-वर्णन

देवात्पत्ति का वर्णन सवप्रथम दश के मानव सन्तान का वर्णन पुन मथुन धर्म में अस्तिव नामक पत्नी में होना का जन्म। पिता व आना सव वान ५ इच्छक हयका का नारद या उग्रका और उनका वन में जाना। फिर गदलाव नामक पुत्र का जन्म उनका न नारद का उग्रका से पुत्रवत् पुन वन में जाना। अनन्तर दश द्वारा पुन माठ कन्याओं का जन्म दत्ता त्पत्ति विवा एवं उनका मत्तिका का वर्णन। महर्षण के उत्पत्ति। भूत सृष्टि सुनने का फल। ११-२१

अध्याय ४

देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

विश्वामित्र द्वारा उन उन स्थानों में किए गए दशरथा का राज्याभिषेक-वर्णन। पृथु-करिड का आरम्भ। वन का धरिण। वन व दुश्चरित्रा का देवर्षि ऋषियों द्वारा शाप र्णन। ऋषियों के शाप में मरे हुए वन के शत्रु व

मन्यन से पृथु का जन्म, पृथु का राज्याभिषेक, पृथु के राज्य की स्थिति का वर्णन, सूत, मागध एवं बन्दी जन द्वारा पृथु की स्तुति। देवताओं के साथ पृथु द्वारा पृथ्वी का दौड़ना, जिसमें बछड़े, पाव, दूध आदि का वर्णन है। २१-३१

अध्याय ५

मन्वन्तरो का वर्णन

मन्वन्तरा में देवपि, इन्द्र आदि का निरुपण। महाप्रलय एवं अल्प प्रलय का वर्णन।

३१-३६

अध्याय ६

सूर्योत्पत्ति का वर्णन

सूर्यके पुत्र एवं कन्या का वर्णन छाया एवं सज्ञा का संवाद और उनका चरित्र-वर्णन। सूर्य एवं यम का संवाद। छाया का घाटी रूप धारण करना सूर्य का अश्व रूप से छाया के साथ संगम। देव-बैद्य अश्विन-पुमार की उत्पत्ति। संक्षेप से सूर्य-स्तुति यमुना सनैश्चर तथा सावर्णि का वर्णन। देव-सृष्टि के सुनने का माहात्म्य।

३६-४०

अध्याय ७

सूर्य-वश का वर्णन

सूर्य-वश में इला की उत्पत्ति इला एवं मेनावरण का संवाद। इला का बुध के साथ समागम। सुसुम्न आदि का जन्म, उनका वश-वर्णन, इक्ष्वाकु आदि मनु-पुत्रा का वश-वर्णन। कुश-स्थली का निर्माण। बलदेव और रेवती का विवाह। कुवलयाश्व के चरित्र का वर्णन। पिता के द्वारा कुवलयाश्व का चरित्र-वर्णन। पिता के द्वारा कुवलयाश्व का राज्याभिषेक एवं कुवलयाश्वके धर में उत्तक मुनि का आगमन और उनके द्वारा धुन्धु राक्षस के चरित्र का वर्णन। पिता की आज्ञा से कुवलयाश्व का उत्तक के साथ धुन्धु राक्षस को मारने के लिए जाना। धुन्धु राक्षस का वश। धुन्धुमार को उत्तक का वरदान। धुन्धुमार के वश में होने वाले राजाज्ञा का संक्षेप में चरित्र-वर्णन। सत्यव्रत राजा का चरित्र-वर्णन एवं गालव का चरित्र-वर्णन।

४१-५०

अध्याय ८

सूर्य-वश का वर्णन

सत्यव्रत का त्रिगुप्त नाम पड़ना त्रिगुप्त का सत्तरीर स्वर्ग जाना। हरिश्चन्द्र का जन्म-वचन। राजा सगर का अश्वमेध यज्ञ करना। घोड़े का राजनेत्र के लिए पृथ्वी को खादने हुए साठ हजार सगर-पुत्रों को कपिल मुनि का श्राप। अवशिष्ट चार पुत्रों को कपिल का वरदान। साठ हजार पुत्रों का जन्म-वचन। भगीरथ की उत्पत्ति, गंगा का भगीरथी नाम पड़ना।

५०-५७

अध्याय ९

चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन

अग्नि ऋषि का तप एवं अग्नि के नेत्रों से दश प्रकार की सृष्टि। चन्द्रमा की उत्पत्ति। चन्द्र का बीज एवं ओगयिमा का स्वामी बनना। रात्रिमुख यज्ञ का आरम्भ। चन्द्र द्वारा वृक्षपति की स्त्री तारा का हरण, उनके निमित्त

देव-दानवा का युद्ध। बृहस्पति का तारा की प्राप्ति, गर्भ-त्याग के लिए तारा से बृहस्पति वा सक्राप कथन, इषीका-स्तम्भ में तारा द्वारा गर्भ-त्याग एवं बुध का प्राधुर्भाव।

५७-६०

अध्याय १०

चन्द्रवश का वर्णन

साम-पुत्र बुध के अश्व में पुरूरवा की उत्पत्ति। पुरूरवा के पुत्र वा आख्यान-वर्णन। गाधि-राज का जन्म। गाधि-कन्या सत्यवती का ऋचीक ऋषि के साथ विवाह। ऋचीक द्वारा सत्यवती को दश घर देना—एक उसके लिए और दूसरा उसकी माना के लिए। घर के बदल जाने से उसके प्रभाव से उत्पन्न पुत्रा वैशुण-स्वभाव में व्यत्यय होगा—ऐसा ऋचीक द्वारा सत्यवती के प्रति कथन। सत्यवती का ऋचीक से वरदान की प्राप्ति। जमदग्नि की उत्पत्ति। रेणुका एवं जमदग्नि का विवाह। परशुराम की उत्पत्ति। विश्वामित्र का जन्म एवं तप आदि का वर्णन।

६०-६६

अध्याय ११

चन्द्र-वश-वर्णन

आयु के पाँच पुत्रों की उत्पत्ति। रजि का चरित्र-वर्णन। रजि से पाँच सौ पुत्रों की उत्पत्ति। देव-दानवा का युद्ध। दैत्या को जीतने के लिए देवताओं द्वारा रजि से प्रार्थना। रजि द्वारा इन्द्र पद की माँग। पश्चात् रजि से दैत्या का पराजय और रजि को इन्द्र-पद की प्राप्ति। रजि और इन्द्र का प्रमालाप। रजि के पुत्रों द्वारा इन्द्र पद का हर्ण एवं इन्द्र द्वारा उनका वध। इन्द्र को पुनः अपने पद की प्राप्ति। राजा अना की सन्तान का वर्णन। धनु नामक राजा से घन्धस्तारि का जन्म तथा भरद्वाज से आयुर्वेद की प्राप्ति। आयुर्वेद के आठ भाग कर के अपने शिष्यों का वितरण करना। काशी को निकुम्भ का शोपदान तथा शाप के अन्त में अलक द्वारा पुनः स्थापन।

६६-७१

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

नहुष से ययाति आदि पुत्रा का जन्म। ययाति के वंश का वर्णन। ययाति से ५ पुत्रा का उत्पत्ति। यदु के प्रति ययाति के, अपन-बुद्धावस्था ग्रहण करने की आज्ञा। बुद्धत्व का ग्रहण न करने पर यदु का ययाति का शाप। पुष्ट से ययाति को युवावस्था का दान और भोग करने के बाद ययाति का ज्ञान।

७१-७५

अध्याय १३

पुरु के वंश का वर्णन

पुरु-वंश का वर्णन। पुरु-वंश के अन्तर्गत वग-वंश का कथन। दुष्यन्त का जन्म। दुष्यन्त से शकुन्तला नामक पत्नी में भरत की उत्पत्ति। भरत के वंशजों की 'भारत' उपाधि। जहनु के द्वारा मगार्ज्ज का शाप। क्रुष्ट से निमित्त क्रुष्टश्रेय का वर्णन। सोम-वंश में प्रसिद्ध राजाओं—शान्तनु से जनमजय तक—का वर्णन। पुरुवंश की समाप्ति। कार्तवीर्यार्जुन का वर्णन, कार्तवीर्य का आपव मुनि का शाप।

७६-९२

विषय सूची

अध्याय १४

यइ पुत्र ऋषि के वंश का वंश

यदु के पुत्र ऋषि के वंश का वंश। वसुदेव का जन्म। वसुदेव क चौदह पत्निया क नामावली। सक्षप मे कृष्ण प्रम-वर्णन। कालयवन के भय से कृष्ण सहित सादेवा का भाग जाना। ९२-९७

अध्याय १५

वृष्णि के वंश का वंश

वृष्णि-वंश का वंश। वसुदेव के पुत्र व्यास का चरित्र वर्णन। वसुदेव दवावध का महिमा का वर्णन। देवक के सात बन्धाभा का उद्घाटन हाना एवं कंस का जन्म। ९७-१०२

अध्याय १६

सत्राजित का उपाख्यान

सत्राजित क चरित्र का वर्णन। स्वमतक मणि का आख्यान। कृष्ण का जाम्बवत के साथ विवाह। ऋक्षराज जाम्बवान् स स्वमतक मणि का लाना। कृष्ण और सत्यभामा का विवाह-वर्णन। १०२-१०७

अध्याय १७

स्वमतक मणि का क्या

स्वमतक क लिए गतयन्त्रा क द्वारा सत्राजित क मृत्यु। अकर के पास स्वमतक मणि का मिलना। १०७-११०

अध्याय १८

भुवन-क का वंश

भुवन-क का वर्णन। मुनिया का लानहृषण क साथ सेवा। भूगोल का वर्णन। सात द्वीप का वर्णन। जम्ब द्वीप का वर्णन एवं मरु परत का वर्णन। भरत आदि राजा का वर्णन। मयदिग्गवता का वर्णन। १११-११६

अध्याय १९

जम्ब द्वीप का वर्णन

जम्ब द्वीप का वर्णन। भारतवर्ष का वर्णन। नंद एवं उपनिषा क नामावली का वर्णन। जम्ब द्वीप का प्रशास। ११६-११८

अध्याय २०

जम्ब द्वीप-वर्णन

जम्ब द्वीप का वर्णन। पल इन्द्र का वर्णन तथा वंश पर पल का मृत्यु की आयु का प्रमाण। शात्मल द्वीप गुणद्वीप श्रीश्वद्वीप शाकद्वीप पुण्ड्रद्वीप और लाताशाकद्वीप का वर्णन। ११९-१२६

अध्याय २१

पाताल के प्रमाण का वर्णन

पाताल आदि सात लोकों का वर्णन तथा अन्न का पराक्रम-वर्णन ।

१२६-१२८

अध्याय २२

नरक का वर्णन

नरक वर्णन—रौरव आदि नरकों की नामावली । पाप का वर्णन । पाप से नरक-प्राप्ति । पापी पुष्पा के पाप का नाम करने के लिए हरि-स्मरण ही प्रायश्चित्त है ।

१२९-१३३

अध्याय २३

भूर्, भुवर् आदि लोकों का वर्णन

आकाश और पृथ्वी का वर्णन । सौरादि मण्डला का तथा भूर्भुवादि सात लोकों का प्रमाण-वर्णन । महादादि की उत्पत्ति का वर्णन ।

१३३-१३७

अध्याय २४

ध्रुव की स्थिति का वर्णन

सिधुमारचक्र का वर्णन, ध्रुवस्थिति का वर्णन ।

१३७-१३९

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

शरीरार्थ का वर्णन । जितन्द्रिय पुरुष की प्रशंसा । सक्षप से तीर्थों का नामावचन । तीर्थों के माहात्म्य पढ़ने का फल-वर्णन ।

१३९-१४५

अध्याय २६

ब्रह्मा और महर्षि का संवाद-वर्णन

वेदभ्यास से मुनियों का संवाद । मोक्ष के विषय में ब्रह्मा से मुनियों का प्रश्न ।

१४५-१४८

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

भरत-मण्ड की प्रशंसा । भरत-मण्ड में होने वाले पर्वत और नदियों का वर्णन और वहाँ पर होने वाले नाश देव का वर्णन । भरत-मण्ड के माहात्म्य का पठन एवं श्रवण का फल ।

१४८-१५५

अध्याय २८

काणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ओङ्क (उडीमा) का वर्णन तथा वहाँ पर रहने वाले बाह्यणा की प्रशंसा । काणादित्य नामक सूर्य की महिमा

का वर्णन। सूर्य की पूजा विधि का वर्णन। मदनभञ्जिका नामक यात्रा का प्रस्ता। रामेश्वरम् नामक शिवलिंग की महिमा का वर्णन। १५५-१६०

अध्याय २६

सूर्य-पूजा का प्रकरण

सूर्य के ध्यान, पूजा और भक्ति के माहात्म्य का वर्णन। माघ मास में सप्तमी के दिन सूर्य की आराधना से विशेष फल प्राप्ति का वर्णन। १६१-१६६

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति सूर्य से ही है, ऐसा वर्णन। इन्द्र घाता आदि बारह सूर्यों से शत्रुनाश एवं त्रिविध प्रजा की उत्पत्ति, आदित्याख्यान का फल-वचन। १६६-१७४

अध्याय ३१

आदित्य का नाम-माहात्म्य

त्रिलोकी का मूल एवं परम देव सूर्य ही है। आदित्य के सामान्यतः द्वादश नामों का वर्णन। विष्णु आदि बारह आदित्यों का श्रेष्ठ आदि द्वादश मासा में तपन-वचन। सूर्य के विकर्तनादि २१ नामों का वर्णन एवं फल-वचन। १७४-१७७

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

दैत्यो से पीड़ित देवों के दुःख-नाश के लिए आदिति द्वारा सूर्य की आराधना एवं स्तुति। अदिनि को सूर्य का दर्शन। अदिनि की प्रार्थना से प्रसन्न सूर्य का वरदान माँगने के लिए प्रेरित करना। 'मेरे पुत्रों को यज्ञभागी बनाइए'—ऐसा अदिनि का वर माँगना। मैं तुमसे जन्म लेकर तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूँगा—ऐसा वर देकर सूर्य का अलङ्घित होना। देवमाना अदिनि के गर्भ में सूर्य की स्थिति। वृच्छ एवं चान्द्रायणादि व्रता में गर्भ धारण करती हुई अदिनि से 'तुम इनने कठिन व्रतों के द्वारा गर्भ को क्या नष्ट कर रही हो'—इस प्रकार वक्ष्य का कहना। तदनन्तर पनि के वचना से कुपित अदिनि का गर्भ-त्याग। गर्भण्ड में प्रकट हुए आदित्य की वक्ष्य द्वारा स्तुति। यह गर्भण्ड नामक तुम्हारा पुत्र होगा—यह आकाशवर्णी का वचन। आकाशवर्णी मुन कर देवताओं का आगमन। गर्भण्ड की सहायता में देवताओं का दैत्या के साथ युद्ध। युद्ध में दैत्या की पराजय। प्रसन्न हुए देवताओं द्वारा सूर्य की स्तुति। सूर्य का सजा के साथ विवाह। सूर्य की सत्ताना का वर्णन। सजा और छाया का संवाद। सजा का रिता के घर जाना। अन्तर छाया की सत्ताना का वर्णन। छाया का सजा की सत्ताना के साथ विषम भाव। स्वर्ण और गजरा के मन्त्रों में सूर्य-चरित्र-वर्णन। देवकृत सूर्यस्तुति। सूर्य के तेज का स्तुतीकरण। १७७-१८८

अध्याय ३३

सूर्य के नामों का माहात्म्य

अन्वकार से विमल ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा सूर्य की स्तुति। देवताओं को सूर्यदेव का वरदान। सूर्य के १०८ नामों का माहात्म्य और उसका फल। १८८-१९२

अध्याय ३४

रुद्र का आख्यान-वर्णन

रुद्र की महिमा का वर्णन। संधेप से दक्ष-गुत्रियों का यज्ञोत्सव देखने के लिए पिता के घर जाना। दक्ष और सती का संवाद। त्रैलोक्य सती का योगाग्नि से शरीर-दाह। शक्र और दक्ष का परस्पर शाप-दान। ब्रह्मा और मुनिषा का संवाद। पार्वती के आख्यान का आरम्भ। हिमालय से उमा की उत्पत्ति। कश्यप और हिमालय का संवाद। तप करने हुए हिमालय को ब्रह्मा का वरदान। हिमालय से मेवा में तीन कन्याओं की उत्पत्ति एवं उनका नामकरण। तप करती हुई पार्वती को ब्रह्मा का वरदान। १९३-२०३

अध्याय ३५

पार्वती का उपाख्यान-वर्णन

उमा का देवताओं के साथ संवाद। विकृतरूपधारी महादेव का पावता के पास जाना। विकृत रूप का वर्णन। शिव-पार्वती का संवाद। विकृतरूपधारी शिव का हिमालय के साथ वार्तालाप। ये शिव हैं ऐसा जानकर पार्वती द्वारा शिव का वरण। अशोक वृक्ष की प्रति शिव का वरदान। शिव का अन्वेषण करना। ग्राह से प्रसूत बालक का रादन एवं पार्वती तथा ग्राह का संवाद। 'मेरा तप नष्ट हो गया' यह जानकर पार्वती का पुनः तप करना और पार्वती का शक्र का वरदान। २०३-२१०

अध्याय ३६

पार्वती का स्वयंवर-वर्णन

पार्वती के स्वयंवर में सम्पूर्ण देवताओं का आगमन। देवताओं द्वारा पार्वती की प्रशंसा। शिशुरूप से शक्र का पार्वती की गोद में साना। आषयुक्त इन्द्र आदि देवताओं द्वारा शिव पर शस्त्र प्रहार। शिव द्वारा समस्त देवों का सम्मन। सम्पूर्ण देवताओं को छुड़ाने के लिए ब्रह्मा द्वारा शिव की स्तुति। स्तुति सुनकर शक्र का प्रादुर्भाव। पार्वती द्वारा शक्र के चरणों में माला का अर्पण। ब्रह्मा द्वारा हिमालय की प्रशंसा। शिव के विवाह के लिए ब्रह्मा के द्वारा नगर का निर्माण। देव गन्धर्व आदि का आगमन एवं वसन्त आदि छह ऋतुओं का समागम। पार्वती और शक्र का विधिपूर्वक विवाह होना। २१०-२२३

अध्याय ३७

शिव की स्तुति पर वर्णन

देवदुष्ट महादेव की स्तुति। शिव के सम्मुख देवताओं का वर के लिए जाना। अपने गणों के साथ शवर का अपने ह्वान पर गमन। २२४-२२७

अध्याय ३८

मदन-दाह का वणन

महेश्वर की नम्रान्नि से कामदेव का जलना। रति को महेश्वर का वरदान। पावत और गवरक का डा। पावत का माना के घर जाना। माना मैना के द्वारा पावत का उपहस। शिव के आगे माना व उपम का वणन। पावता के क्रोध को गान्त करने के लिए महादेव का सुन्दर हास्यालाप। २२७-२३२

अध्याय ३९

दक्ष के यज्ञ का वि वस

इन्द्र आदि देवताओं का दक्ष के पास जाना। देवताओं का साथ ऋषि दक्ष चि का सवाद। दक्ष चि का दक्ष के साथ सवाद। पावत और महेश्वर का सवाद-वणन। वरभद्र के उत्पत्ति और शिव के आना से वरभद्र का दक्ष के यज्ञ में जाना एवं यज्ञ का वि वस। इन्द्र आदि का वरभद्र से प्रार्थन करना और वरभद्र का शिव के आना से यज्ञ नष्ट करने के लिए आगमन रूप उत्तर देना। मगरूप धारण कर के दक्ष का आकाश में जाना। क्रुद्ध गणगात्र व ललाट के स्वेद बिन्दु से अग्नि के उत्पत्ति। बह्म पर उत्पन्न हुए पुष्ट के द्वारा यज्ञ का वि वस। यज्ञ-कर्म में देवता आपको भाग देंगे—इस प्रकार ब्रह्मा का शक्ति के प्रति कथन। शक्ति से दक्ष का वर प्राप्ति। २३२-२४२

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव को स्तुति

दक्ष द्वारा शिव-सहस्र नाम का वणन तथा प्रसन्न होकर शक्ति का दक्ष को वरदान। सम्पूर्ण वस्तुओं में शक्ति के द्वारा शक्ति को विभक्त करना। ज्वरोत्पत्ति के पठन और श्रवण का फल। दक्षस्तोत्र का फल-कथन। २४२-२५३

अध्याय ४१

एकाग्रकक्षत्र-वणन

एकाग्रकक्षत्र का माहात्म्य-कथन।

२५३-२६०

अध्याय ४२

उत्कलक्षत्र का वणन

विद्यादेव वनरणा और कपिला आदि अष्ट तथों का वणन। उत्कलक्षत्र का वणन और बह्म पर पुण्यात्मक दक्ष का माहात्म्य तथा छद्म आदि दत्तों के स्वर्ण का वणन। २६०-२६४

अध्याय ४३

अवन्तिना-वणन

ब्रह्मा के प्रति मुनियों का प्रश्न और अवन्तिना-वणन का वणन। महाबाल नामक शिव का महिमा का वणन तथा क्षिप्र नाम का वणन। बह्म पर गोविन्द स्वामी नामक विष्णु का महिमा का वणन। २६५-२७१

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिण-समुद्र के तट पर जाना

अवनिदेश के राजा इन्द्रद्युम्न का वर्णन और सम्पूर्ण नगरवासियों के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर जाना।

२७२-२७७

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा के प्रति मुनिया का प्रश्न। मुनिया का सदेह दूर करने के लिए इतिहास-कथन। सुमेरुवर्ण पर बैठ हुए लक्ष्मी और विष्णु का संवाद। विष्णु के द्वारा पुरुषोत्तम नामक तीर्थवर्णन के प्रसंग में सृष्टि का वर्णन। ब्रह्मा और विष्णु का वातालाप। पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थित बट वृक्ष का वर्णन। बट वृक्ष के दक्षिण की तरफ मन्दिर में विष्णु-मूर्ति के दर्शन से सत्र मनुष्या का वैकुण्ठ-गमन। तदनन्तर यम के द्वारा विष्णु की स्तुति। मूर्ति को ढकने के लिए यम की प्रार्थना। तत्पश्चात् यमराज का अपनी नगरी समयन्ती का जाना।

२७८-२८५

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन और वहाँ पर स्वित्रोत्सला नामक नदी का माहात्म्य। नदी के दोनों तरफ के गाँवों वहाँ पर रहने वाले एवं वर्णाश्रम धर्म को धारण करने वाले पुराण और स्त्रिया का वर्णन। राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा रमणीय स्थान दत्त कर मन कामना पूर्ण करने का संकल्प।

२८५-२८८

अध्याय ४७

मन्दिर बनवाने के लिए राजाओं का आह्वान

राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा करीबगरी के शुभ मुहूर्त में मन्दिर का निर्माण आरम्भ करने के लिए आज्ञा प्रदान। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उत्तम शिला स्तन के किए कलिगादि माण्डलिक राजाओं का विन्ध्यावन्त के प्रति प्रस्थान। इन्द्रद्युम्न के दूत द्वारा सप्ताह के समस्त राजाओं को सूचना देने पर उस क्षेत्र में आने का वर्णन। इन्द्रद्युम्न का राजाओं के साथ संवाद। राजा के द्वारा यज्ञ मित्रि के किए सब सामग्रियों की जुटावा। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उसके पुराहिण द्वारा यज्ञस्थल-निर्माण और वहाँ सब लोगों के प्रवेश का वर्णन। यज्ञ का आरम्भ नया यज्ञ के समारंभ का दसकर राजा का हर्ष की प्राप्ति। यज्ञ के घोड़े आदि मय पदार्थ लाने के किए राजा का आदेश। ब्राह्मणों का वस्त्र आभूषण आदि अनेक दान देने का वर्णन। सबकी आज्ञा के द्वारा मृत्ति। यज्ञ और प्रासाद की समाप्ति।

२८८-२९६

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिभा का निर्माण

प्रतिभा प्राप्ति के लिए दिन रात विन्ध्या से व्याकुल राजा द्वारा सब भोगों का परित्याग।

२९६-२९७

अध्याय ४९

इन्द्रधुम्न द्वारा भगवान् की स्तुति

राजा के द्वारा भगवान् की स्तुति। स्तुति-पाठ का फल।

२९८-३०३

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

चिन्ताप्रस्त राजा को स्वप्न में भगवान् का दर्शन। प्रतिमा प्राप्ति का उपाय बताया। प्रातःकाल उठ कर नित्यकर्म करने के बाद अष्टाक्ष राजा का मूर्ति दूढ़ने के लिए जाना। बड़ बूझ का काटते हुए राजा के प्रति ब्राह्मण-वेशधारी विष्णु एवं विश्वकर्मा का प्रजन। प्रतिमा निर्माण के लिए यत्न कर रहा हूँ—ऐसा राजा के बहने पर भगवान् का प्रसन्न होना और विश्वकर्मा की तीन प्रतिमा बनाने की आज्ञा देना। विष्णु की आज्ञा से विश्वकर्मा द्वारा तीन मूर्तियों का निर्माण। कीर्तुष' व' साथ मूर्ति को देखने हुए राजा का 'आप कौन है यह प्रश्न।

३०४-३०९

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रधुम्न का संवाद

सर्वजगन्निष्कृत आदि गुणा से मुक्त मैं ही पुरुषोत्तम हूँ—ऐसा भगवान् का वचन। राजा का निर्गुण आदि गुण विसिष्ट भगवत्पद प्राप्ति के लिए स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करना। भगवान् का 'तथास्तु बह्वर वरदान देना और अन्तर्धान हो जाना। पुरुषोत्तमशब्द में तीन मूर्तियों का शुभ मुहूर्त में स्थापन। इस प्रकार राजा के मनारथ की पूर्ति एवं विष्णुपद की प्राप्ति। ब्रह्मा द्वारा पुरुषोत्तम क्षत्र में आए हुए पंच तीर्थों का वचन।

३१०-३१६

अध्याय ५२

मार्कण्डेय मुनि का वटवृक्ष-दर्शन

मार्कण्डेय आख्यान का आरम्भ—बलराम में अनेक प्रकार के बड़ों में व्याकुलित मार्कण्डेय का वटवृक्ष का दर्शन।

३१७-३१८

अध्याय ५३

अध्याय ५६

विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद

विस्तार से विष्णु एवं मार्कण्डेय का संवाद-वर्णन और भगवान् का अन्तर्धान ।

३२९-३३६

अध्याय ५७

पञ्चतर्षीयों की विधि का वर्णन

पञ्चतर्षीयों का वर्णन तथा मार्कण्डेय नामक तालाव की प्रशंसा । षट्पृष्ठ की पूजा-विधि विशेष रूप से पञ्चतर्षीयों का वर्णन तथा कृष्णदर्शन का माहात्म्य ।

३३६-३४१

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा और मुनिषा के संवाद में नरसिंह-भूजा का विधान तथा नरसिंह-माहात्म्य का वर्णन ।

३४२-३४८

अध्याय ५९

श्वेतमाधव का माहात्म्य-वर्णन

कपाल गौतम ऋषि के मृतपुत्र की जिलाने के लिए श्वेत राजा की प्रतिज्ञा । ब्रह्मा के प्रति श्वेतमाधव की स्थापना के लिए मुनिषा का प्रश्न । वैष्णव पद की प्राप्ति के लिए श्वेतवृत्त विष्णु-स्तुति । श्वेत राजा को विष्णु का वरदान ।

३४९-३५७

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

नारायण के अष्टाक्षर मंत्र की प्रशंसा एवं नारायण-कवच का वर्णन । समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन । जल में ही स्नान के अंग सव्या आदि नित्यकर्म एवं देवता ऋषि और पिता का तर्पण करना ।

३५७-३६२

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

शरीर-शुद्धि का वर्णन । पाशोपचार सहित पूजन-विधि का वर्णन ।

३६३-३६९

अध्याय ६२

समुद्र स्नान का माहात्म्य

समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य-वर्णन ।

३६९-३७१

अध्याय ६३

पञ्चतर्षीयों का माहात्म्य-वर्णन

पञ्चतर्षीयों के माहात्म्य का निरूपण ।

३७१-३७३

अध्याय ६४

महागर्ग्यी की प्रशंसा

महागर्ग्यी (उषेष्ठा नक्षत्रयुक्त तिथि) की प्रशंसा का वर्णन । प्रयागादि तीर्थों तथा गंगा आदि नदियों में स्नान और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर स्नान-दान करने से प्राप्त होने वाले फल के समान महागर्ग्यी में स्नान, कृष्ण और सुभद्रा का दान करने से फल की प्राप्ति ।

३७४-३७५

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का माहात्म्य-वर्णन

कृष्ण के स्नान का विधि तथा स्नान का माहात्म्य । दशनाभा का कृष्ण का स्तुति करना । कृष्ण की मूर्ति का दर्शन करने से फल-प्राप्ति । ३७६-३८४

अध्याय ६६

गुडियायात्रा का माहात्म्य-कथन

हं भगवन् ! मेरे तालाब के निकट आपका यात्रा साल दिना तक हूँ। चाहिए—इस प्रकार राजा इन्द्रवज्र द्वाप्य भगवान् से प्रार्थना करने पर भगवान् का स्वीकारावृत्ति का नाम गुडियायात्रा पडना । ३८५-३८७

अध्याय ६७

बारह यात्रा का माहात्म्य-वर्णन

प्रत्येक यात्रा का फल-कथन । यात्रा के प्रसंग से पूजा विधि का वर्णन । द्वादश यात्रा का फल-वर्णन । ३८७-३९४

अध्याय ६८

विष्णुलोक का वर्णन

विष्णुमन्दिर विष्णुस्वरूप और विष्णुलोक के महत्त्व का वर्णन । यहा पर जाने वाला का निर्णय । ३९४-४००

अध्याय ६९

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निर्णय

पुरुषोत्तमक्षत्र का माहात्म्य-वर्णन । ४०१-४०४

अध्याय ७०

तीर्थसंख्याविषयक प्रश्न

ब्रह्मा से नारद का तार्यों की संख्या के संबंध में प्रश्न करना । ४०४-४०८

अध्याय ७१

पद्मा की उत्पत्ति की रक्षा

पद्मा का उत्पत्ति का वर्णन । तारशामुर के भय से देवताओं का विष्णु की स्तुति करना । विष्णु की आज्ञा से दशनाभा का हिमाश्रय के निकट गमन । वृहस्पति की आज्ञा से कामदेव का शक्ति के पास जाना और शक्ति के नेत्राग्नि से कामदेव का दाह । ४०९-४१३

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

हिमालय का वर्णन । निब के विवाह का वर्णन । गौरी के रूप-दान में ब्रह्मा का वीर्यपात तथा उससे वीर्य से अश्विनिलया की उत्पत्ति । ४१४-४१७

अध्याय ७३

यक्षि की प्रशंसा का वर्णन

राजा बलि की प्रशंसा । राजा बलि के एश्वर्य का सहन न कर दशनाभा का विष्णु के पास जाना । देवताओं

द्वाग विष्णु की स्तुति। माना अर्चिनि के गम स वामन की उत्पत्ति। राजा बलि के यज्ञ म वामन वा गमन। राजा बलि और द्यूताचार्य का सवाद। वामन का भूमिदान तथा बलि और वामन का परस्पर सवाद। भगवान् वामन से राजा बलि का वरदान की प्राप्ति। गंगा का महेश्वर की जटा म समा जाना। ४१७-४२४

अध्याय ७४

गंगा के दो भेदा का कथन

गंगा का दो रूपा का कथन। शंकर का जटा से गंगा का अलग करने के लिए पार्वती और गणेश का वार्ता। गान्धर्वा की प्रशंसा तथा आश्रम का वर्णन। स्वामी कातिकेय के साथ गणेश का गौतम के आश्रम मे जाना। गणेश की आज्ञा से गारुड धारण करके जया का गौतम के आश्रम म जाना गौतम के रोकन पर जया का गिन्ना। गावर्ध का पाप का दूर करने के लिए गौतम का उपाय बतलाना। अपने सकल्प की सिद्धि के लिए गौतम की प्रार्थना। सबका अपने अपने स्थान मे जाना। शंकर का प्रसन्न करने के लिए गौतम का कैलास पर्वत पर गमन। ४२५-४३४

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

गौतम का उमा-महेश्वर की स्तुति करना। गौतम का उमा-महेश्वर का दर्शन। तत्कालीन गंगा प्राप्ति व लिए गौतम की प्रार्थना। गंगा की प्रशंसा और गौतम का लाना। ४३४-४४०

अध्याय ७६

स्वर्ग आदि मे गंगा का गमन

स्वर्ग मत्स्य और पानाल म विभक्त होकर १५ आकृतिया से गंगा का गमन। गादावरी तीर्थ की स्तान-विधि। ४४१-४४३

अध्याय ७७

गौतमी का महत्त्व-वर्णन

गौ म/ का महत्त्व वर्णन करना सत्र तद्विधा म गौतमी का श्रेष्ठ सिद्ध करना। ४४३-४४५

अध्याय ७८

सगर का आस्थान

पुत्रहन् राजा सगर का वशिष्ठ से सन्तान विषयक प्रश्न पूछना। वशिष्ठ व वरदा स सगर का पुत्रा की प्राप्ति। इंद्र द्वारा चुराये गए पोडे की खोज के लिए सगर-पुत्रा का इचर-उधर जाना। निद्रा-मुक्त के अनुभव व लिए देवताशा की आज्ञा से कपिल मुनि का रसातल म गमन। कपिल व प्रणि सगर-पुत्रा का पुर्वचन। कपिल के क्रोध से सगर का पुत्रा का भस्म हुना। सगर का नारद मे अपन पुत्रा के नष्ट हुन का वृत्तान्त सुनना। असमञ्जस का स्वदण्ड से निराचना। कपिल की आज्ञा से पुत्रा को उद्धार के लिए भर्गिरथ का कौलम व प्रणि गमन। भर्गिरथ की रतुनि से प्रसन्न होकर सगर का वर देना। कपिल के शाप से मृत पुत्रा का पवित्र करने के लिए गंगा के साथ भर्गिरथ का रसातल म जाना। ४४५-४५२

अध्याय ७९

वराहतीय का वणन

वराहताय का माहात्म्य-वणन।

४५३-४५४

अध्याय ८०

कपोततीय का वणन

लुब्धक-चरित्र का वणन। कपाता के विरह से दुःख। कपोत का विलाप। कपात के विलाप को सुनकर पति के प्रति कपोत का वचन। कपात द्वारा अग्नि का प्रशंसा। लुब्धक के लिए कपोत का अग्नि प्रवण। लुब्धक से कपोत की मुक्ति। कपातीकृत पतिव्रता धर्म की प्रशंसा। कपाती का दह-याग। कपात और कपाता का स्वर्ग-गमन। पाप दूर करने के लिए लुब्धक का प्रायश्चित्त। तदनन्तर गावमा-स्नान से तथा पाप-कर्म से स्वर्ग प्राप्ति का वणन।

४५५-४६३

अध्याय ८१

कुमारतीय का वणन

स्वामा कातिकेय का विषयो म आसक्ति। कुमारताय का वणन।

४६३-४६५

अध्याय ८२

कृतिकतीय का वणन

नारद के वचन से कृतिकाया का पशुव के पास जाना। कृतिकाय-वणन का उपसंहार।

४६६-४६७

अध्याय ८३

दशार्धमधरीय का वणन

भौवन का वक्ष्य क प्रति किस देश में पन क सम्पत्ति प्राप्त होगा यह प्रश्न। गुरु और गौतम का प्रसाद से भौवन का एक अवशेष से दस अवशेषों के फल का प्राप्ति। आकाशवाणी का वचन। दशार्धमधरीय का विधान।

४६७-४७०

अध्याय ८४

पद्माक्षतय का वणन

वेमरा वानर का दक्षिण समुद्र क प्रति गमन। अञ्जन पवन क ऊपर अगस्त्य का जाना। अगस्त्य से अञ्जना और अद्रिका का पुत्र प्राप्ति का वचन। निरुद्धि और वायु क सम्पर्क से अञ्जना और अद्रिका का पुत्र प्राप्ति। पद्माक्षतय का विधान एवं प्रयाजन।

४७१-४७२

अध्याय ८५

क्षुपातय का वणन

गौतम के शिष्य का नमन करने हुए कण्ड का सम्पत्ति उपाजन के लिए गमन। कण्ड द्वारा गंगा एवं क्षुपा का स्तुति और उनका सन्निधि में दा करवाना क प्रायश्चित्त। क्षुपातय का प्रयाजन-वचन।

४७३-४७५

अध्याय ८६

शक्रताय और गनिका क संगम का वणन

शिवपरबन्ध का पुनः करने पर गङ्गापुनः प्रवाह। शक्रताय का संगम से गौतम क प्रति गमन। पुष्पा

वा इन्द्र के पास जाना । पृथ्वी और इन्द्र का संवाद । इन्द्र की आज्ञा से सिद्धिकिन्नरो का वैवस्वतपुर से यमराज को लाने के लिए जाना । यम कहाँ है ?—इस प्रकार इन्द्र का सूर्य के प्रति प्रश्न । सूर्य से यह पता चलने पर कि यम गौतमी-तट पर तप करने के लिए गया है इन्द्र द्वारा अप्सराओं से पूछना कि यमराज के तप को नष्ट करने के लिए उन (अप्सराओं) में से कौन समर्थ है । चतुर्वर्ग का कारण-वर्णन । तप भग करने के लिए इन्द्र की प्रेरणा से गणिका का यमराज के पास गमन । प्रजाओं का नाश करने वांछा कम करने लिए यमराज से सूर्य का वचन । यमराज द्वारा अस्वीकार । अनन्तर दोना का अपन-अपन स्थान पर गमन । ४७६-४८१

अध्याय ८७

अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

अहल्या की यौवन प्राप्ति पर नृक्ष करने के लिए गौतम को ब्रह्मा का आदेश । जो पुरुष पृथिवी की परिक्रमा करके सबसे पहले ब्रह्मा के पास पहुँच जाएगा उसी का अहल्या दी जाएगी—ऐसी ब्रह्मा की प्रतिज्ञा । अनन्तर अहल्या का प्राप्ति के लिए देवताओं का पृथ्वी की परिक्रमा करना । फिर ब्रह्मा द्वारा समस्त देवा का छाड़कर गौतम को अहल्या-प्राप्ति का उपाय-कथन । विवाह के पश्चात् ब्रह्मा के पास देवताओं का आगमन । विम वेश में इन्द्र का अहल्या के लिए गौतम के आश्रम में जाना । तत्पश्चात् गौतम का इन्द्र को शाप पुन इन्द्र की गौतम से शापोद्धार के लिए प्रार्थना । गौतमी-स्नान से पापा को दूर करने का गौतम द्वारा उपाय-कथन । इन्द्रतीर्थ के आख्यान का वर्णन । ४८२-४८८

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

राजा जनक द्वारा याज्ञवल्क्य से मुख से मुक्ति कैसे होगी यह प्रश्न पूछना । वरुण से पूछने के लिए याज्ञवल्क्य के बहूने पर जनक और याज्ञवल्क्य का वरुण के पास जाकर वही प्रश्न दुहराना । गृहस्थ धर्म पालन से ही भुक्ति और मुक्ति मिलनी है—ऐसा वरुण का मत-दर्शन । जनक और याज्ञवल्क्य के यह पूछने पर कि भुक्ति मुक्ति-दाना कौन द्या और कौन तीर्थ है वरुण द्वारा गौतमी को ही सब से श्रेष्ठ तीर्थ घोषित करना । अनन्तर जनक और याज्ञवल्क्य का अपने अपने स्थानों पर जाना । जनस्थानतीर्थ का प्रयोजन । ४८९-४९१

अध्याय ८९

अरुणा-वरुण-सगम और अश्विनाशु तीर्थ का वर्णन

छाया से यह कह कर कि मैं पिता के घर जाती हूँ मेरे लौटने तक बच्चा की देख रेल करो सूर्य-पत्नी उषा का पिता के घर जाना । त्वष्टा का पुत्र पनि के घर जाने का आदेश । उषा का उत्तर कुक्षेत्र देश में तप करने के लिए जाना । छाया की सन्ताना का जन्म-वर्णन । छाया द्वारा यमराज को शाप । यमराज का पिता से यह कहना कि यह मुझे त्रापक, दृष्टि से देखनी है अश्विनी माता महा है । उत्तरकुक्षेत्र में घाड़ी का रूप धारण कर उषा रहती है—ऐसा जानकर घाड़े का रूप बनाकर सूर्य का बहू जाना । आधिरक्ष के लिए गौतमी पर वरुणा का जाना और उसके पीछे सूर्य का भी वहाँ जाना । ऋषियों के प्रति सूर्य का शाप-कथन । पुन अश्विनाशुमारा की उत्पत्ति । उषा के निमित्त तेज का समन करने के लिए सूर्य से त्वष्टा का कहना । ४९२-४९६

अध्याय ९०

गण्डतीर्थ का वर्णन

गण्ड से अमयदान प्राप्ति के लिए भणिनाग नामक गेय-युक्त द्वारा गिव की स्तुति । गन्ध से वरदान प्राप्त

अध्याय ९७

पीलस्त्यतीय का वणन

माता के वचन से रावण कुम्भकण और विभीषण का तर करने के लिए वन में जाता। रावण द्वारा कुबेर की पराजय। रावण को पुष्पकादि की प्राप्ति। भाई द्वारा निकाले गये बन्धवण का पुलस्त्य के पास जाना। पुलस्त्य की आज्ञा से स्त्री सहित गौतमी पर गमन और वहाँ कुबेर द्वारा शंकर की स्तुति। पश्चात् आकाशवाणी। शंकर का अपने स्थान पर गमन। पीलस्त्य तीर्थ का माहात्म्य।

५२३-५२६

अध्याय ९८

अग्नितीर्थ का वणन

मधुदैत्य द्वारा जातवेदा और दक्ष का वध। भाई के मरने पर अग्नि का गंगा में प्रवेग। अग्नि के पास देवताओं का जाना। अग्नितीर्थ का माहात्म्य वणन।

५२७-५२८

अध्याय ९९

ऋगमन्त्रचतुर्थ का वणन

ऋगमन्त्र से मुक्त होने के लिए विवाह करना आवश्यक है—एसा वशीवान् का अपने पुत्र से कहना। पुत्रों को विवाह के लिए उत्तमिन् देखकर स्नान के लिए गौतमी पर जान की आज्ञा प्रदान करना। ऋगमन्त्र तीर्थ का माहात्म्य।

५२९-५३०

अध्याय १००

कङ्क-सुपर्णा-सगमतीर्थ का वणन

कश्यप से बालकिल्या का यह कहना कि हमारे लिये हुए आद्य तप से इन्द्र का गर्भ चूर करने वाला पुत्र उत्पन्न करना। पुत्र प्रजापति कश्यप द्वारा अथ तप को ग्रहण कर सुपर्णा एवं कङ्क में गम की स्थापना करने वही भी न जाने की आज्ञा प्रदान करना। कङ्क और सुपर्णा का ऋषियन्त्र में जाना। वहाँ पर दोनों को नन्दी हान का शाप। गौतमी पर जाकर शंकर की स्तुति करने से फिर स्त्री होगी—यह कश्यप से बालकिल्या का वचन। स्तुति करने पर कश्यप को स्त्रियों की प्राप्ति। कङ्क को ऋषि का शाप।

५३१-५३४

अध्याय १०१

सरस्वती-सगम आदि तीर्थों का वणन

ब्रह्मा की समा में पुरुष का जाना। उवशी और पुरुष का समापण। पुरुष का व पास सरस्वती का गमन। ब्रह्मा के शाप से भयभीत सरस्वती का गौतमी पर गमन। सरस्वती के शाप को दूर करने के लिए ब्रह्मा के प्रति गया का वचन। स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन।

५३५-५३६

अध्याय १०२

पञ्चमीय का माहात्म्य-वणन

हरिण रूप पारो ब्रह्मा से व्याप रूप पारो निव का वचन। सावित्री आदि पाँच नन्तियों का ब्रह्मा के पास जाना। पञ्चमीयों का माहात्म्य।

५३६-५३७

पर बुध के आश्रम में जाना। इला का बुध के साथ सवाद और दोनों का विवाह। बुध से इला में पुत्रोत्पत्ति तथा देवताओं का वहाँ आना। वाल्म का पुष्करवा नामकरण। इला के साथ उसका सवाद। पुष्करवा से इक्ष्वाकु-कुल का वर्णन और अपना पहले का वृत्तान्त-वर्णन। बुध और ऐल का सवाद। इला को पुस्त्व की प्राप्ति के लिए पुष्करवा का प्रयत्न। ऐल और इला का हिमालय पर जाना और वहाँ पर शहर की स्तुति। देवी से पुस्त्व की याचना। शक्र और पार्वती के अनुग्रह से पुस्त्व की प्राप्ति। ऐल का अभिषेक। ५६५-५७८

अध्याय १०९

चतुर्थी का वर्णन

पार्वती का दक्ष के यज्ञ में जाना। वहाँ पर शिव-निन्दा सुनकर पार्वती का देहत्याग। महेश्वर का दक्ष के यज्ञ में आना। यज्ञ का वर्णन। वीरमद द्वारा यज्ञ-विध्वंस। देवताओं द्वारा शिव स्तुति। दक्षवृत्त शिव-स्तुति। देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। दैत्या से उत्पन्न भय को जानकर देवताओं के साथ विष्णु का परामर्श। विष्णु के द्वारा चक्र-प्राप्ति के लिए शिव की आराधना। विष्णु को शक्र का वरदान और चक्र का होना। ५७९-५८४

अध्याय ११०

पिप्पलीतृतीय का वर्णन

पिप्पलीतृतीय का वर्णन। दधीचि ऋषि एव लक्ष्मामुद्रा का वर्णन। दधीचि ऋषि के आश्रम में सब देवताओं का आगमन। अस्त्रा को रखने के लिए देवताओं का दधीचि से प्रश्न। लक्ष्मामुद्रा का दधीचि के साथ वार्तालाप। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्र रखना। दैत्यों के डर से दधीचि द्वारा अस्त्रों के तेज का पाना। दैत्यों से देवताओं को नय-प्राप्ति। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्रों के लिए आना। देवों के लिए दधीचि का अस्थि-दान। देवताओं का अस्त्र निर्माण। दधीचि ऋषि की पत्नी का आगमन और उसका अग्नि के साथ सवाद। तदनन्तर अग्निवृत्त समाधान। प्रातिघेयी के द्वारा वृद्धिस्थ पुत्र का निर्गलना। प्रातिघेयी का अग्नि प्रवेश, आश्रम में स्थित वृक्षा का विलाप। दधीचि के पुत्र को अमृत-प्राप्ति तथा पिण्लाद नाम की प्राप्ति। पिण्लाद के साथ वृक्षा का सवाद और अपने माता-पिता का पूर्ववृत्तान्त-श्रवण। सोम से पिण्लाद को विद्या की प्राप्ति और सोम की आत्मा से शहर की स्तुति में प्रवृत्त होना। प्रसन्न हुए शहर से देवताओं का नाश करने के लिए वर माँगना। पिण्लाद के तप का वर्णन और शहर के तृतीय नेत्र का दर्शन। तृतीय नेत्र से उत्पन्न कन्या को देवताओं के सहार के लिए आदेश। वृत्त्या से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के डर से देवताओं का शहर के पास जाना। देवताओं द्वारा शहर की स्तुति। शहर एव देवताओं का सवाद। देवताओं का पिण्लाद के साथ सवाद। अपने माता-पिता को दिसलाने के लिए पिण्लाद का देवताओं से अनुरोध। पिण्लाद का स्वर्गलोक में जाना। वहाँ पर माता-पिता का दर्शन। विवाह करने के लिए दधीचि और पिण्लाद का सवाद। देवताओं के सहार के लिए उत्पन्न वृत्त का समाधान। वृत्त्या को नदीरूप की प्राप्ति। शहर के साथ देवताओं का सवाद। दधीचि की अस्थिया, देवताओं तथा मायों का पवित्र होना। देवताओं का अपने अपने स्थानों पर जाना एव मूय का वही रहना। पिण्लाद का योगम की युक्ती के साथ विवाह। पिण्लादतीर्थ पर पिण्णेश्वर नाम की प्राप्ति। ५८४-६१२

अध्याय १११

भागनीर्थ का वर्णन

भागनीर्थ का वर्णन। सामवतोत्पन्न मूरतेन के चरित्र का वर्णन। मूरतेन से सार्य की उत्पत्ति। सार्य एव धूमरेन

अध्याय १२०

धान्यतीर्थ का वर्णन

धान्यतीर्थ का वर्णन। गंगा तट पर दान का माहात्म्य।

६४६-६४८

अध्याय १२१

विदर्भा-सगन आदि तीर्थों का वर्णन

विदर्भा और रेवती का गंगा न साथ सगम। रेवती न साथ बठ का विवाह।

६४८-६५१

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

पूर्णादि तीर्थों का वर्णन। ब्रह्मा के साथ राजा धन्वन्तरि का सवाह। धन्वन्तरि का तपामग। धन्वन्तरि-
इन विष्णु स्तुति और उसको देवराज्य की प्राप्ति। ब्रह्मा, बृहस्पति और इन्द्र का सवाह। इन्द्र द्वारा हरिहर
की स्तुति। हरिहर के साथ इन्द्र का भवाद। बृहस्पति न द्वारा इन्द्र का अभियेक।

६५१-६६२

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

रामतीर्थ का वर्णन। राजा दशरथ का वर्णन। देव दानवा का युद्ध। देव-दानवा का दशरथ के पारा
आना। दशरथ द्वारा देवताओं की सहायता। युद्ध में कौशिकी का वर्णन। दशरथ के द्वारा मुनि-बाल्य की मृत्यु।
पुत्र का मृत्यु से माता-पिता का विलाप और उसी शास्त्र में मृत्यु। राम आदि का जन्म वर्णन। विश्वामित्र का
पुत्र गर्भारण। अहल्या का उद्धार और राक्षस का वध। सीता का विवाह। दशरथ की मृत्यु और नरका की
प्राप्ति तथा नरका से मुक्ति। दशरथ का यम चित्रों के साथ सवाह। राम, लक्ष्मण और दशरथ का सवाह।
दशरथ का दुग्ध धनन करना। शास्त्र-निवृत्ति के लिए सीता का वचन। देवताओं न साथ राम का सवाह। राम
के द्वारा शतर की स्तुति।

६६३-६८४

अध्याय १२४

गुप्तनाथ का वर्णन

गुप्तनाथ का वर्णन। वरुण न साथ दिति का सवाह। दिति और दनु का सवाह। मय के साथ इन्द्र का
सवाह और मरुता का जन्म।

६८५-६९९

अध्याय १२५

यमनीय का वर्णन

कणा और उलूक का युद्ध। ह्रीं नामक कणा का अग्नि की स्तुति करना और उलूकी न द्वारा यम
की स्तुति। उलूकी न साथ यम का सवाह। यमनीय का वर्णन।

७००-७०६

अध्याय १२६

तपस्वीय का वर्णन

अग्नि का वर्णन। दक्ष, ब्रह्मा और मुनियों का सवाह। तपस्वीय का वर्णन।

७०६-७१०

अध्याय १२७

देवतीर्थ का वर्णन

आष्टिवेग राजा का आख्यान एव हयमेघ का वर्णन। मिथ नामक दैत्य के द्वारा पुरोहित सहित वीक्षित राजा को रसातल में ले जाना। पुरोहित-पुत्र देवापि के द्वारा पिता के वारे में माता से पूछना। माता द्वारा पुत्र को सारे वृत्तान्त स अद्यगत करना। देवापि की प्रतिज्ञा। नन्दि द्वारा मिथ का वध। रसातल से देवापि के पिता का आगमन। हयमेघ की समाप्ति। अनेक तीर्थों का वर्णन। ७११-७१८

अध्याय १२८

तपचन आदि तीर्थों का वर्णन

सक्षेप में कर्तिवेग का आख्यान। सन्तान के विषय में अग्नि और स्वाहा का संवाद। तारकासुर के मय से दुःखित देवी द्वारा अग्नि की प्रार्थना। शुकृष्ण से अग्नि का शिव के पास जाना। शिव-पार्वती का संवाद। अग्नि-पत्नी स्वाहा के गर्भ से मिथुन (युग्म) की उत्पत्ति और उनका नामकरण (सुवर्ण-सुवर्णा) एव विवाह। सुवर्णा और सुवर्ण को सुरासुर का शाप। शाप-विमोचन के लिए ब्रह्मा के वचन से अग्नि का गौतमी के पास जाना। वहाँ पर अग्नि द्वारा शिव की स्तुति। शाप-मुक्ति के लिए शंकर का धरदान। गौतमी-तट पर शिवलिंग की स्थापना। तपोवनादि तीर्थों का वर्णन। ७१८-७२६

अध्याय १२९

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

गंगा और फेन का संगम। इन्द्र द्वारा भमुचि दैत्य का वध। हिरण्य दैत्य के पुत्र महाशनि से इन्द्र की पराजय। इन्द्र की पाताल में स्थिति। वरुण को पराजित करने के लिए महाशनि का प्रस्थान। वारुणी और महाशनि का विवाह। इन्द्र की मुक्ति के लिए देव और विष्णु का संवाद। विष्णु की आज्ञा से महाशनि के पास वरुण का जाना। वरुण के वचन से इन्द्र की मुक्ति। इन्द्र और इन्द्राणी का संवाद। इन्द्राणी के वचन से इन्द्र का गौतमी के प्रति जाना। इन्द्र द्वारा शंकर की स्तुति। शिव और इन्द्र का संवाद। शिव के वचन से इन्द्र द्वारा विष्णु की आराधना। प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु द्वारा महाशनि दैत्य का वध। ७२६-७३९

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

आपस्तम्ब मुनि की प्रशंसा और उनके आश्रम में अगस्त्य मुनि का गमन। आपस्तम्ब द्वारा अगस्त्य का पूजन और तीनों देवों में कौन श्रेष्ठ है, यह प्रश्न। तीनों देवों में भेद न होते हुए भी शिव ही सब सिद्धियों के दाता हैं—ऐसा अगस्त्य का उत्तर। अगस्त्य के वचन से आपस्तम्ब का गौतमी पर जाना और वहाँ शंकर की स्तुति करना। तदनन्तर आपस्तम्ब को शंकर का धरदान और आपस्तम्ब तीर्थ की महिमा का वर्णन। ७३९-७४३

अध्याय १३१

यस्तीर्थ का वर्णन

यस्तीर्थ के प्रसंग में सरमा के आख्यान का वचन। देव-गाया की रक्षा करने वाली सरमा को लोभ देखकर दैत्या द्वारा गायों का हरण। 'मूँसे बांधकर दैत्य गायों को ले गये—ऐसा इन्द्र के प्रति सरमा का कथन।' परमात्मा 'सरमा मिथ्या बोलती है' ऐसा बृहस्पति द्वारा इन्द्र के प्रति वचन। तब इन्द्र द्वारा सरमा पर पाद प्रहार और

गायन। गायन को लाने के लिए इंद्र द्वारा विष्णु की स्तुति। विष्णु और दैत्या का युद्ध तथा दैत्या की पराजय। देवताओं को गायन की प्राप्ति। अपनी माता को शाप से छड़ाने के लिए सरमा के पुन का यम से प्रदत्त। सूर्य और यम का संवाद। सूर्य के वचन से यम का गौतमी पर जाना। गौतमीतटवर्ती वसिष्ठ तीर्थों का वणन। वहाँ स्नान करने वाला का अनेक फल की प्राप्ति।

७४४-७४९

अध्याय १३२

यक्षिणी-सगम का माहात्म्य-वर्णन

यम करने वाले ऋषियों का विदवावसु की बहन पिप्पला को शाप। विदवावसु की प्रार्थना से गाप का निवारण। दुर्गातीर्थ का वणन और यक्षिणी सगम तीर्थ का माहात्म्य।

७५०

अध्याय १३३

गुक्लतीर्थ का वणन

गुक्लतीर्थ में भरद्वाज का यज्ञ वणन। यम से पुरोडाश भक्षण करते हुए हव्यघ्न नामक राक्षस को मुनि का वचन। भरद्वाज और हव्यघ्न का संवाद। सम्पूर्ण अमृता (जल) में गौतमी जल की विशेषता। गौतमी जल से हव्यघ्न का अमिषक और कृष्ण रूप से गुक्लत्व की प्राप्ति एवं यज्ञ की समाप्ति। शुभगाणि तीर्थों का वणन।

७५१-७५३

अध्याय १३४

चक्रतीर्थ का वणन

चक्रतीर्थ में वशिष्ठादि सप्तर्षियों का यज्ञारम्भ। राक्षसी के विघ्न करने पर ब्रह्मा के पास जाना। ब्रह्मा की आज्ञा से माया द्वारा विघ्न का निवारण फिर यज्ञारम्भ। गम्बर दैत्य द्वारा माया का भक्षण कर लिये जाने पर ऋषियों द्वारा विष्णु की प्रार्थना। परचात् उनकी रक्षा के लिए विष्णु द्वारा चक्र प्रदान और उस चक्र से राक्षसों का वध एवं यम की समाप्ति। गंगाजल में चक्र का प्रक्षालन। चक्रतीर्थ आदि पाँच तीर्थों का वणन।

७५४-७५५

अध्याय १३५

बाणी-सगम-साय का वणन

ब्रह्मा और विष्णु का अपने अपने महत्त्व पर संवाद। ब्रह्मा और विष्णु के प्रति आकाशावासी की उक्ति तत्पश्चात् ज्योतिर्मूर्तिसंज्ञक शिवलिंग के अन्त का पता लगाने के लिए ब्रह्मा विष्णु का प्रश्न। अन्त को न देखते हुए विष्णु और ब्रह्मा का गिब के पास क्रम से समय और असत्य कहना। ब्रह्मा के मुख से निकली हुई बाणी को हरिहर का शाप। पुन गाप का निवारण। गौतमी और बाणी सगम का अनेक प्रकार से वणन। दोनों के तटों पर स्थित एवं सौ उन्मील तारों का माहात्म्य।

७५५-७५८

अध्याय १३६

विष्णुतीर्थ का वणन

माद्गल्य चरित्र का वर्णन। मौग्गल्य द्वारा सदाचार का वणन। विष्णु और मौग्गल्य का संवाद। मौग्गल्य द्वारा दान की प्रशंसा। विष्णुतीर्थ की प्रशंसा।

७५८-७६२

अध्याय १४४

पहण्णो-संगम-तीर्थ का वर्णन

अत्रि ऋषि का उपाख्यान। अत्रि को चार पुत्ररत्ना की प्राप्ति। अत्रि ऋषि की कन्या आनन्द का चरित्र। आनन्द और ज्वलन का आख्यान। पहण्ण संगम के निकटवर्ती तः १० हजार तीर्थों का वर्णन। ७८८-७९१

अध्याय १४५

मार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

मार्कण्डेय आदि मुनियों का ब्रह्मा के साथ सवाद। मार्कण्डेयतीर्थ का महिमा का निरूपण। उसके निकट वृता अट्टानवे तीर्थों का वर्णन। ७९२-७९३

अध्याय १४६

कालञ्जरतीर्थ का वर्णन

ययानि का आख्यान। कालञ्जर के निकटवर्ती एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन। ७९३-७९८

अध्याय १४७

अप्सरसगमतीर्थ का वर्णन

दो अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र ऋषि के तपोमग का वर्णन। विश्वामित्र के शाप से अप्सराओं का नदीत्व की प्राप्ति। ७९९-८०१

अध्याय १४८

कार्दितोर्थ का वर्णन

प्रसगनुसार कण्व के पुत्र बाल्लुक का आख्यान। कण्व के निकट पचास तीर्थों का वर्णन। ८०१-८०३

अध्याय १४९

नारसिंहतीर्थ का वर्णन

हिरण्यकशिपु की प्रशंसा। नारसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध। नारसिंह का गौतमा के प्रति आश्रय तथा अम्भय सन्नत दैत्य का हवन। नारसिंह द्वारा म स्नान दान आदि करने वाला का गाना फलों की प्राप्ति का वर्णन। नारसिंहादि आठ तीर्थों का वर्णन। ८०४-८०५

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

पैशाचतीर्थ का वर्णन। अर्जुन का आख्यान। अर्जुन द्वारा गुनशेष नामक अपने पुत्र का वेषना। पुत्र का वेषने के पाप से अर्जुन के का नरक की प्राप्ति। रते हुए पिशाच के प्रति गुनशेष का प्रसन्न। पिशाच की योगि में पड़े हुए अपने पिता का वचन सुनकर दुःखी अन्नकरण वाले गुनशेष द्वारा पिशाच के ऊपर गौतमा का जल छिड़कना। गौतमी-जल का स्पर्श होने ही अर्जुन का विष्णुपद की प्राप्ति। पैशाचतीर्थ की महिमा पैशाच आदि तान सौ तीर्थों का वर्णन। ८०६-८०८

अध्याय १५१

निम्नभेदतौर्य का वर्णन

उर्वशीगमन से दुःखित गुरूरवा ने प्रति वशिष्ठ का उपदेश। निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन।

८०८-८११

अध्याय १५२

आनन्दतौर्य का वर्णन

चन्द्र द्वारा तारा का हरण। गुरु के पास गुरु का जाना। गुरु के लिए स्त्री-हरण कथन। तारा का लाने के लिए गुरु की प्रतिज्ञा। चन्द्र का गुरु का दाप। तारा की मुक्ति के लिए देवताओं ने प्रति गुरु का प्रश्न। गंगा के गुरु का वचन आनन्दतौर्य का वर्णन।

८११-८१५

अध्याय १५३

भावतौर्य का वर्णन

भावतौर्य आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन।

८१५-८१७

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

रावण आदि को मारकर अयोध्या के प्रति परिवार सहित राम का गमन। लोकायुद्ध के कारण राम की आज्ञा से वाल्मीकि के आश्रम के पास लक्ष्मण द्वारा सीता का त्याग। राम के अश्वमेध में लव-कुश का जाना। सहस्रकुण्ड आदि दस तीर्थों का वर्णन।

८१७-८२०

अध्याय १५५

कपिशतौर्य का वर्णन

अगिरा को दक्षिण में आदित्य द्वारा भूमिदान। कपिला सगमादि १०० तीर्थों का वर्णन।

८२०-८२१

अध्याय १५६

शालग्रह नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा का खाने के लिए आते हुए राक्षसा का विष्णु-वक्त्र द्वारा वध। शालग्रह आदि अमृत तीर्थों का वर्णन।

८२२-८२३

अध्याय १५७

विष्णिन्वातौर्य का वर्णन

रावण-वध के उपरान्त सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का गौतमी पर जाना। रामकृत गौतमी की प्रशंसा। राम एवं वानरों का गौतमी पर स्नान और शिवलिंगपूजादि वर्णन। राम के प्रति विनीषण का वचन। विष्णिन्वातौर्य का महत्त्व।

८२३-८२७

अध्याय १५८

व्यासतौर्य का वर्णन

अगिरसा का उत्पत्ति। माता की आज्ञा के बिना तप करने के लिये गये हुए अगिरसों को विघ्न होना।

अगस्त्य के आश्रम में अगिरसा का गमन व सवाद। अगस्त्य की आज्ञा से उनका गौतमी पर जाना। व्यासतीर्थ की महिमा।

८२७-८३१

अध्याय १५९

वजरा-सगम नामक तीर्थ का वर्णन

दानभाव का प्राप्त हुए गृह्य का अपनी माता विन्ता के प्रति प्रसन्न। 'मैं अपने हा अपराध से दासीभाव का प्राप्त हुई हूँ—एसा माना का उत्तर। कटू के वचन से गृह्य का सर्पों का सूर्यलाक म ले जाना और उनका अघ-पतन। तदर्थ कटू का विन्ता के प्रति दुर्वचन। सर्पों की जरा दूर करने के लिए गृह्य का रमातल से जल लाना। उस जल के प्रादण से सर्पों की जरा का दूर करना और उसी से वजरा की उत्पत्ति। वजरा-सगमादि सर्वा हाउ तीर्थों का वर्णन।

८३१-८३७

अध्याय १६०

देवागम नामक तीर्थ का वर्णन

घन के निमित्त दध-दानको की ईर्ष्या। ब्रह्मा की आज्ञा से देवताया का अमुरा व साथ युद्धारम्भ। युद्ध के आरम्भ में गौतमी-नद पर देवताया का विष्णु एक शकर की स्तुति करना। गौतमी, हरि एवं शकर की कृपा से देवताओं की विजय।

८३७-८३९

अध्याय १६१

कुशतर्पणतीर्थ का वर्णन

कुशतर्पणतीर्थ का वर्णन। ब्रह्मा की उत्पत्ति और सृष्टि का क्रम। यज्ञ-सामग्री का वर्णन। विराट् पुरुष की उत्पत्ति। प्रणीता-सगम कुशताय आदि उियासी हजार तीर्थों का वर्णन।

८४०-८४६

अध्याय १६२

मन्युताय का वर्णन

अपना विजय के लिए और शूकर पुरुष की प्राप्ति के लिए देवताया द्वारा महेश्वर का स्तुति। शकर की कृपा से प्राप्त मन्यु नामक पुरुष के प्रति सामर्थ्य-परीक्षा के लिए देवताया का वचन। मन्यु व स्वरूप का वर्णन। द्रवीं द्वारा मन्यु की स्तुति। मन्यु के आश्रम से देवताया का विजय प्राप्ति।

८४७-८५०

अध्याय १६३

सारस्वतीतीर्थ का वर्णन

ब्राह्मण का रूप धारण करने परशु नामक राक्षस के द्वारा शाकल्य मुनि से भाजन माँगना। भाजन के समय 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ तुम्हारा शत्रु हूँ तुम्हें मारने के लिए आया हूँ—एसा परशु का शाकल्य से वचना। परशु शाकल्य द्वारा अपना अपूर्व शरीर दिखलाना। परशुराक्षम द्वारा शाकल्य की स्तुति। शाकल्य की आज्ञा से परशु द्वारा सारस्वती की स्तुति और उसका स्वर्ग की प्राप्ति।

८५०-८५५

अध्याय १६४

चिञ्चिकतीर्थ का वर्णन

पवमान राजा का चिञ्चिक नामक पशु से सवाद। पवमान राजा के प्रति चिञ्चिक पशु का पूर्वज-मनुत्त

वयन। ब्रह्मरूपा सदा पापा का वधन। चिच्चिक का मुक्ति व नष्ट राजा का प्रश्न। अपन मुक्ति के लिए श्वेतपवन स्थित भगवान् गदाधर के पास ले चलन के लिए चिच्चिक द्वारा राजा से प्रायना। राजा के साथ गया और गदाधर के दान के लिए चिच्चिक का गमन। चिच्चिक द्वारा गया का स्तवन एवं स्वर्ग की प्राप्ति। राजा पवमान का अपने सबका के साथ अपने नगर में आना। ८५५-८६०

अध्याय १६५

भद्रतीय का वधन

कन्या के विवाह के विषय में सूर्य का विचार। विवाह की अवधि का कथन। वनादान के लिए कुल आदि का विचार। वनाक प्राप्ति। कन्या आदि का विक्रय में निषेध। विवाह-काल के उत्सव में दाप-वधन। विश्व रूप और विष्टि का विवाह। भद्रतीय का वधन। ८६१-८६५

अध्याय १६६

पतत्रितोय-वधन

सूर्य के किरणों से जलते हुए जटायु और संपाति को विष्णु द्वारा आश्वासन। पतत्रितोय का वर्णन। ८६६-८६७

अध्याय १६७

विप्रतीय का वधन

सते हुए ब्राह्मण पुत्र आसदिब का लेकर राक्षस का भागना। आसन्दिब और राक्षस का संवाद। किरा ब्राह्मण-कन्या के साथ आसदिब का विवाह। नारदगण द्वारा राक्षस का वध। विप्रतीय का वधन। ८६७-८७१

अध्याय १६८

भानुतीय का वधन

राजा अभिष्टुत का हृषिकेश आरभ। याचना का लघुत्व-वधन। ब्राह्मणवेशधार दयों का यज्ञ में जाना। भावादि सी तीर्थों का वधन। ८७१-८७४

अध्याय १६९

भिल्लतीय का वर्णन

वद नामक ब्राह्मण का शिवपूजा के अनन्तर भिक्षाटन के लिए गमन। व्याघ का शिवपूजा प्रकार। विधान से क हुई पूजा का विवस करने वाले के प्रति वेद के मन में क्रोध का उत्पत्ति। आदिके और वेदों का संवाद। व्याघ की भक्ति का वधन। व्याघ का वर का प्राप्ति। ८७५-८७९

अध्याय १७०

चक्रुस्त्य का वधन

चक्रुस्त्य का वधन। चक्रुस्त्य और कुण्डल का धन उत्पन्न विषय का संवाद। पुत्र घम का वर्णन। घम का प्रशंसा। घम के प्रशंसा करने वाले कुण्डल का नेत्र का नाश। विमर्षण का पुत्र के साथ संवाद। कुण्डल वध को नेत्रादि का प्राप्ति। महाराजा नामक राजा के पुत्र का नेत्र का प्राप्ति। कुण्डल का राजकन्या का प्राप्ति। ८७९-८८९

अध्याय १७१

उवशीतोष का वणन

इन्द्र अर प्रमिति का सवाण। इन्द्र भीर प्रमिति का आडन-वणन। प्रमिति आर चित्रसन का काडन वणन। मयुज्ज्वल क साथ प्रमिति-पुत्र सुमति क द्वारा प्रमिति का छन कडा स विनष्ट राज्य की प्राप्ति। अष्ट पुरया क लिय दिना छल क वृत्ति का विधान। ८८९-८९४

अध्याय १७२

सामुद्रतीक्ष का वणन

गंगा अर सागर का सवाण। गंगा के सप्त रूप का वणन। ८९५-८९७

अध्याय १७३

भीमश्वरतीक्ष का वणन

गंगा के सात नामा का वणन। ऋषि-यन मे देव गन्तु विश्वरूप का आगमन। विवस्वत और ऋषि का सवाण। ८९७-९०१

अध्याय १७४

गंगा और सागर के सगम का वणन

गंगा-सागर-सगम-वणन। देवताज्ञा द्वारा हरि-हर का स्तवन। साम-ताथ का माहात्म्य। नारदभूत साम स्तुति। आदित्य और बाहस्पत्यादि तथ्यों का वणन। ९०१-९०५

अध्याय १७५

तीक्ष्ण आदि के चार प्रकार के होने का वणन

ब्रह्मा के कमण्डलु मे विष्णु के वरण मे शिव के गडाजट मे ब्रह्मागिरि मे अर पूव समुद्र मे क्रमशः गंगा का स्थिति का वणन। चार प्रकार के तथ्यों का निरूपण। तथ्यों का सत्यपुण्यनिर्माण से क्रम से त्रिवेदत्वभाव होने से कल्पियुग मे भव दश भाव का निरूपण। तथ्यों का युगक्रम से दश आमुर् आप अर मनुष्यत्व प्राप्ति का वणन। गणना गवर का जटा से गंगावनरण का पावत द्वारा वणन। पावता अर गणना के सवाण मे ब्रह्मागिरि पर्वत से समस्त पवन गन्त के दना तटा क स्थिति का वणन। गौतम के प्रति हृषपुत्रकृत शिव का वरप्रदान। शिव द्वारा वणन गौतम के यात्राणि का वणन। विस्तारमहित गौतमा माहात्म्य का फल-वचन। ९०५-९१३

अध्याय १७६

अनंत वामुदेव का माहात्म्य निरूपण

अनंत वामुदेव भगवान् का माहात्म्य। ब्रह्मा के विवस्वतर्मा का वामुदेव भगवान् क मति बनाने के लिए आना। देवताज्ञा के साथ रावण का सप्राप्त। रावण से इन्द्र के पराजय। रावण का इन्द्रपुरी मे गमन। वहाँ पर स्थित भगवान् वामुदेव की माल का पुण्य विमान द्वारा लका मे ले जाना। रावण से विभीषण का मान का प्राप्ति। राम अर रावण का यद्ध। यद्ध मे रावण के मृत्यु। भगवान् राम का अयाध्या के प्रति गमन। ९१३-९१८

अध्याय १७७

पुण्योत्तमक्षत्र का माहात्म्य-वणन

पुण्योत्तमक्षत्र के महिमा का वणन।

अध्याय १७८

वण्ड श्रुति के चरित्र का वर्णन

वण्ड व आश्रम में मुनि का तप भंग करने के लिए प्रयत्नोत्साह का जाना। वण्ड और प्रयत्नोत्साह का संवाद। तप नष्ट होने से वण्ड का पुरुषात्तम क्षत्र में जाना और विष्णु के स्तुति एवं वरदान के प्राप्ति तदनन्तर मुक्ति। वण्ड के आख्यायिका का पठन एवं श्रवण का फल और पुरुष तम क्षत्र के मर्त्या का वर्णन। १२२-१३८

अध्याय १७९

कृष्णावतार के सम्बन्ध में व्यास से मुनियों का प्रश्न
सर्गावधिष्ट मुनियों द्वारा व्यास से कृष्णावतार के सम्बन्ध में प्रश्न करना। १३९-१४४

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित्र का आरंभ

मुनियों के प्रश्नात्तर में व्यासकृत भगवत्स्तुति के नामावतारा का वर्णन। धनुर्व्यह-वर्णन। १४५-१४८

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

भगवान् के अवतार धारण करने का प्रयोजन वर्णन। भार से पीड़ित पृथिवी का ब्रह्मा के पास जाना और अपने दुःख का निवेदन। भगवान् का प्रश्ना से गर्वित दन्ताश्रम के प्रति ब्रह्मा का वर्णन। ब्रह्मा द्वारा विष्णु का स्तुति। स्तुति-श्रवण के अनन्तर ब्रह्मा का विष्णु द्वारा श्वेत और कृष्ण दोनों वेशों का दान। विष्णु का सह्यायता के लिए इंद्र आदि देवताओं का अवतार। गरुड के मुख से यह सुनकर कि देवक के आठवें गर्भ से कंस का मांस होगा कुबिपत कंस द्वारा वासुदेव तथा देवक को कारागार में डालना। देवक के छह पुत्रों का वध द्वारा वध। विष्णु और माया के संवाद में माया के प्रति भगवान् का आज्ञा। १४८-१५३

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

भगवान् का आज्ञा से माया द्वारा देवकी के गर्भ का आकषण और रोहिणी के गर्भ में स्थापन। यशोदा के उदर में माया के स्थिति। देवका के उदर में भगवान् का प्रवेश। भगवान् के अवतार के समय दन्ताश्रम द्वारा पुष्प-चण्डि वसुदेव देवक द्वारा भगवान् का स्तुति। देवका के प्रति भगवान् का वचन। गावुल में जाकर वसुदेव द्वारा यशोदा के गृह में पुत्र के स्थापना कर कन्या को लेना। बालक का रात में सुनकर देवक के पुत्रजन्म का दूता द्वारा वर्णन। कारागार में वध का आगमन। कंस द्वारा रात हुई देवक से हठपूर्वक कन्या का छन लेना और पश्चात् माया का स्वयं-गमन। १५३-१५७

अध्याय १८३

कंस का अपना विचार बहना

अश्वत्थ कंस द्वारा प्रलम्ब आदि वंश का कन्या का वृत्तान्त वर्णन। कंस द्वारा दसों को बालकों को मारने का आदेश। १५७-१५८

अध्याय १८४

श्रीकृष्ण का बाल-चरित-वर्णन

मथुरा में ही नन्द के पास बमुदेव का जाना। बमुदेव और नन्द का प्रेम-मवाद। बमुदेव की आज्ञा से नन्द आदि गोपों का गोष्ठ में आना। कृष्ण के द्वारा पूजना का वय। गोष्ठ्यादि से कृष्ण की रक्षा। नन्द द्वारा कृष्ण का स्वस्ति-वाचन करवाना। बालक के चरण-प्रहार से शकट का गिरना। उसने गोपियों का आश्चर्य। तदनन्तर यमोदा द्वारा शकट की पूजा। बमुदेव से प्रेरित गर्ग द्वारा गुप्त रूप से बालकों का मामकरण। बाललीला का वर्णन। यम-लार्जुन का उद्धार। उत्पत्तों के भय से गोप-गोपियों का वृन्दावन में प्रवेश। वृन्दावन की शोभा का वर्णन। बालकों की क्रीड़ा का वर्णन। . . .

१५९-१६४

अध्याय १८५

कालीय-धनन का आख्यान

बलराम के बिना गोपों के साथ कृष्ण का कालीयहृद पर जागमग। उसको विषयुक्त देखकर कृष्ण का कालीयहृद में बूढ़ना। वहाँ सपरिवार कालीय का आ धमकना एवं कृष्ण को डँसना। गोपियों का विलाप। नन्द आदि के दुःख को मिटाने के लिए बलदेव का कृष्ण के प्रति स्पर्धीकरण। नागपत्नी द्वारा कृष्ण की स्तुति। कालीय द्वारा कृष्ण की स्तुति। समुद्र में जाने के लिए कालीय के प्रति कृष्ण की आज्ञा। सपरिवार कालीय का समुद्र के प्रति गमन। कृष्ण का हृद से बाहर आना। . .

१६४-१६९

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

गोपों के साथ बलराम और कृष्ण का तालकल के प्रति जाना। ताल-फल की इच्छा से गोपों का रामकृष्ण के प्रति विज्ञापन। रामकृष्ण द्वारा तालकल को गिराना। धेनूकामुर के द्वारा राम-कृष्ण के वक्षस्थल पर ताड़न। कृष्ण द्वारा धेनूकामुर का वध।

१७०-१७१

अध्याय १८७

राम और कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन

बाह्यबाहूक नामक मेल के बहने बलदेव द्वारा प्रलम्बामुर का वध। गोपों द्वारा बलराम की प्रशंसा। वज्र के प्रति गमन। शरद् का वर्णन। गोवर्चनलीला का वर्णन। . . .

१७१-१७६

अध्याय १८८

गोवर्धन का आख्यान

कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उद्धार और इन्द्र का मान-भग। इन्द्र द्वारा कृष्ण-स्तुति। कृष्ण को गोविन्द नाम की प्राप्ति। इन्द्र द्वारा अर्जुन के विषय में प्रार्थना। इन्द्र और कृष्ण का अपने-अपने स्थान में जाना। . . .

१७७-१८१

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

रासक्रीडा का वर्णन और अरिष्टामुर का वध। . . .

१८१-१८६

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के संवाद का वर्णन

इन्द्र के साथ श्रु कृष्ण का संवाद। द्वारका में भगवान् का आगमन। कल्पवृक्ष का वर्णन। १०४२ १०४४

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का अस्त्र-वर्णन

हविमथा आदि स्त्रियां व पुत्र एवं पत्नी व नामा का वर्णन। उपा और अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन। बाणासुर का पुत्र। उपा का गारा से संवाद। चित्रलेखा का लेखनकला व पशुरक्षा का वर्णन। १०४४ १०४७

अध्याय २०६

बाण के युद्ध का वर्णन

भगवान् गजर के साथ बाणासुर का संवाद और युद्ध के लिए प्रायश्चित्त। उपा के अश्वपुर में चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध का लेखन। बाणासुर और अनिरुद्ध का युद्ध। अनिरुद्ध का वर्णन। कृष्ण और बलदेव का युद्ध के लिए आना। बाणासुर के साथ भगवान् का युद्ध। भगवान् और गजर का युद्ध। हरिहर-संवाद। भगवान् का सपत्नीक अनिरुद्ध के साथ द्वारका में आना। १०४७-१०५१

अध्याय २०७

पौण्ड्रक-वध-वर्णन

काशिराज पौण्ड्रक के दूत का द्वारका में आगमन। दूत के साथ कृष्ण का संवाद। श्रु कृष्ण के साथ पण्डुरव का युद्ध। पण्डुरव का वध। गजर के वरदान से काशिराज व पुत्र द्वारा कृष्ण का उत्थापन। सुदाम चक्र के भय से कृष्ण का वाराणसी में प्रवेश। चक्रद्वारा वाराणसी का दाल पर्याप्त चक्र का कृष्ण के हाथ में वापिस आना। १०५२ १०५६

अध्याय २०८

बलदेव का गृह-संभरण-वर्णन

व्यास और ऋषियों के संवाद में बलदेव के पराक्रम का वर्णन। साम्ब द्वारा दुर्योधन की कन्या का हरण। दुर्योधनादिका द्वारा साम्ब का वधन। बलदेव का हस्तिनापुर में आगमन। कौरवों के साथ बलदेव का संवाद। बलदेवकृत हस्तिनापुर का आक्रमण। कौरवों द्वारा बलदेव की प्रायश्चित्त। १०५६ १०६०

अध्याय २०९

द्विविध नाम्न वानर का वध-वर्णन

व्यास और ऋषियों का संवाद। बलदेवकृत द्विविध वानर का वध। १०६० १०६२

अध्याय २१०

पर्वत के भार उतारने का वर्णन

व्यास और ऋषियों के संवाद में भूमि के भार उतारने का वर्णन। यादवकुल के उपसंहार का वर्णन। भगवान् का द्वारका त्याग तथा निजघाम-गमन। यादवा व शाप का हेतु-वर्णन। देवताओं द्वारा भेजे हुए दूत का आक्रमण तथा कृष्ण के साथ संवाद। महोत्सवों के गमन के लिए यादवों का प्रयास में आना। भगवान् का उद्वेग के साथ संवाद। यादवा का नाश-वर्णन। १०६२ १०६८

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

भगवान् का कृपा से व्याघ्र का स्वर्ग-गमन।

१०६८ १०६९

अध्याय २१२

इतिमणो आदि का परलोक-गमन

इतिमणो आदि रानिया का स्वगाराहण। आनार और अजुन का संवाद एवं युद्ध। अजुन का पराजय। म्नेच्छा द्वारा श्रेष्ठ द्वित्रया का हरण। अजुन के विषाद का वर्णन। व्यास और अजुन के संवाद में व्यास द्वारा अजुन का समाधान। अष्टावक्र के आश्विन का वर्णन। अष्टावक्र के तप का वर्णन। त्रिशोत्तमा रमा आदि अष्टराश्री द्वारा अष्टावक्र के प्रशंसा। रमा का पुरुषोत्तम पति प्राप्ति रूप अष्टावक्र का वर प्रदान। जल से बाहर आये मुनि के गरार का टेनापन शतकर रमा द्वारा हास्य। रमा के हास्य से कुपित मुनि का गगन परचान् प्रसन्न होकर वर प्रदान। सवायव पाण्डवा का महाप्रस्थान। पराशरि का राक्षस-दान तदुपराज वन-गमन। कृष्ण चरित्र का समाप्ति का वर्णन।

१०७० १०७८

अध्याय २१३

वाराह-अवतार का वर्णन

वाराह अवतार का वर्णन। वाराहरूपा परमेश्वर के गरार के अगा का वर्णन। यन्त्रवाराहृत पृथ्वा का उद्धरण। नृसिंह अवतार का वर्णन। हिरण्यकशिपु के मर का वर्णन एवं वरप्रदान। ब्रह्मा के साथ देवताओं का भगवान् का समापन गमन। देवताओं द्वारा भगवान् का स्तुति। भगवान् का नृसिंहरूप में अवतरण होना। नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु का वध। वामन अवतार का वर्णन। दत्ता के नामावली का वर्णन। दत्तात्रय के अवतार का वर्णन। पराशरम के अवतार का वर्णन। मत्स्य में श्रीरामचरित्र का वर्णन। श्री कृष्णावतार का वर्णन। कलि अवतार का वर्णन। भगवान् के अवतार के चरित्र का वर्णन एवं वर्णन का फल।

१०७८ १०९२

अध्याय २१४

नरका का वर्णन

नरका के नाम तथा वर्णन। दहत्याग का वर्णन। यमदूता का वर्णन। धार्मिक एवं पाप-जना का वर्णन। यमपुरा का वर्णन एवं पुर के द्वारा का वर्णन।

१०९२ ११०२

अध्याय २१५

दक्षिण माग का वर्णन

दक्षिण माग में जान बाल प्राणिया के दुःख का वर्णन। चित्रगुप्त द्वारा पापिया का वर्णन। भयंकर नरका का वर्णन। अनेक प्रकार के पाप का वर्णन। पाप के अनुसार नरक प्राप्ति का वर्णन।

११०२ १११३

अध्याय २१६

नारक य मुक्तिद्वारा परमावरण का वर्णन

नरका के दुःख-निवारण के लिए मुनियों द्वारा व्यास के प्रति प्रार्थना। व्यास द्वारा धर्म के आचरण से मुक्ति का वर्णन।

१११४ ११२०

अध्याय १९०

बेशी नामक अमुर का वध

कस और नारद का संवाद। बलराम और कृष्ण को लगने के लिए कस का अमुर को भेजना। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए कस की मल्लयुद्ध योजना। कृष्ण के वध के लिए बेसिका का वृन्दावन जाना। बेसि के शब्दों से गोपों को भय। कृष्ण द्वारा बेशी का वध। नारदवृत्त कृष्ण-वर्णन। ९८७-९९१

अध्याय १९१

अमुर के जाने का वर्णन

अमुर का गोठुल गमन। अमुर द्वारा कृष्ण का वधन।

९९१-९९४

अध्याय १९२

अमुर के लौटने का वर्णन

अमुर द्वारा कृष्ण का नमस्कार। अमुर द्वारा कस को उक्ति का वधन। कस के वध के लिए कृष्ण की उक्ति। मयूर के लिए राम कृष्ण और अमुर का गमन। कृष्ण के गमन से दुखित गायिका का परस्पर सभापण। यमुना-जल में अमुर का भगवान् का दर्शन। अमुर द्वारा कृष्ण की स्तुति। कृष्ण और अमुर का संवाद। मयूर में बलराम और कृष्ण-वराह-वर्णन। ९९५-१००२

अध्याय १९३

कुम्भा का उद्धार-वर्णन

कुम्भा के प्रति कृष्ण का कथन। कृष्णवृत्त अनुग्रह का वधन। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए चाणूर और मुष्टिक को कस की आज्ञा। नागरिका द्वारा बलराम और कृष्ण का वधन। कृष्ण और चाणूर का युद्ध। मुष्टिक और बलराम का युद्ध। चाणूर और मुष्टिक का वध। वसन्ध। वसुदेव द्वारा भगवत्स्तुति। १००२-१०१०

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद। कृष्ण द्वारा कस को पत्नी का समाधान। कृष्ण द्वारा उपसेन का राज्याधिकार। उपसेन को सुयस्य नामक सभा की प्राप्ति। बलदेव और कृष्ण को गुरु सादीपनि द्वारा अस्त्रप्रदान। सान्दीपनि को पुत्र प्राप्ति। १०१०-१०१३

अध्याय १९५

जरासन्ध के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

जरासन्ध के साथ राम जनादन का युद्ध। जरासन्ध का तिरस्कार। जरासन्ध का युद्ध के लिए फिर आना। जरासन्ध की पराजय। १०१३-१०१५

अध्याय १९६

कालयवन का उपाख्यान

कालयवन की उत्पत्ति का वर्णन। कालयवन द्वारा पादचोरा का नाश। पादचोरों की शक्ति के लिए कृष्ण द्वारा दारका का निर्माण। भुवुकुन्द द्वारा कालयवन का नाश। भुवुकुन्द द्वारा भगवत्स्वरूप का वर्णन। १०१५-१०१९

अध्याय १९७

शैकुण्ड मे यन्त्ररान का लोटना

मुचुकुन्द को भगवान् का वर प्रदान। तप के लिए मुचुकुन्द का वाघमादन व प्रति गमन। बलदेव का वागुल म आना।

१०१९ १०२१

अध्याय १९८

बलराध को पीडा का वधन

वरुण और वाण्णी का सभाद। यमुना आर बलदेव का सवाद। बलदेव का मधुरा म गमन।

१०२१ १०२३

अध्याय १९९

रविमणी के विवाह का वधन

कृष्ण द्वारा रविमणी का हरण। कृष्ण से रुक्म को पराजय। रविमणा विवाह ०व प्रद्युम्न की उत्पत्ति।

१०२३ १०२४

अध्याय २००

प्रद्युम्न का आस्थान-वर्णन

शम्बरानुर द्वारा प्रद्युम्न का हरण। शम्बर का प्रद्युम्न को समुद्र म फेंकना। मत्स्य के उदर से शम्बर का स्त्री का प्रद्युम्न का प्राप्ति। शम्बर को स्त्री से नारद का सवाद। शम्बर और प्रद्युम्न का युद्ध। शम्बर का मरण। शरणा म प्रद्युम्न का आगमन। श्र कृष्ण नारद सवाद।

१०२५-१०२८

अध्याय २०१

अनिहद के विवाह मे रुक्म का वध

रविमणी के पुत्रा व नाम। कृष्ण व रविमणी का नाम। अनिहद का विवाह। रुक्मी और बलदेव का युद्ध वधन। बलदेव द्वारा रुक्मी का वध।

१०२८ १०३१

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वधन

इन्द्र का शारदा म आना। इन्द्र द्वारा नरकासुर की वधना व वधन। यमराज्यसुर के प्रति कृष्ण का गमन। कृष्ण द्वारा मुरदेव का वध। कृष्ण द्वारा नरकासुर का वध। पुत्र द्वारा कृष्ण का कुण्डल दान। अग्नि को कुण्डल देने के लिए भगवान् का स्वयमगमन।

१०३१ १०३४

अध्याय २०३

अदिति द्वारा भगवान् का स्तुति

मरिचिहृन् भगवत्स्तुति। कृष्ण आर अदिति का सवाद। मलयभामा के वधन म कृष्ण द्वारा बलराध का लाता। वनगान्धा व माय श्रीकृष्ण का सवाद। वनगान्धा व माय सत्यभामा का गवोविन। ध्वजाभा के साथ श्रीकृष्ण का पुर। इन्द्र के साथ सत्यभामा का सवाद। इन्द्र द्वारा भगवद्वधन।

१०३५-१०४२

अध्याय २१७

धर्म की श्रद्धा का वर्णन

धर्म का श्रद्धा का वर्णन। "१२२ व" उत्पत्ति का वर्णन पुण्य एवं पाप व अनुराग से अनन्त मानिया
में जन्म होने का वर्णन। अनन्तर पाप पुण्य का वर्णन। ११२१ ११२०

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

शुभप्राप्तिविषयक मुनियों का व्यास व प्रति प्रश्न अन्न की प्रशंसा। अन्नदान से शुभ प्राप्ति का वर्णन। ११३० ११३३

अध्याय २१९

श्राद्धविधि का वर्णन

श्राद्धविधि का निरूपण पितरों के साथ चन्द्र-कन्या का संवाद। चन्द्रमा का पितरों को शाप। सामन्तों
का कोका नामक नंद वर्णन। पितरों द्वारा भगवान् की स्तुति। पितरों व उद्धार का वर्णन। अग्निवर्ण और
पिण्डदान का विधि। ११३३ ११४४

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प का वर्णन

श्राद्धकल्प का वर्णन। प्रतिदिन आदि तिथि क्रम से श्राद्ध करने का फल वर्णन। सपिण्डकरण का
विधान श्राद्ध में ब्राह्मण विचार। ११४४-११३२

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

सदाचार का वर्णन धर्म वर्णन। मालादि उत्सव एवं आचमन के विधि का वर्णन। अनन्तव्याप्त निरूपण।
कन्या-वर्णन तथा शत्रु-काल में व्रत प्रकार। देव पूजा वर्णन। देवता तथा पितरों के तपण का वर्णन।
वश्यदेव का विधान। विष्णु के निवासस्थान देशों का वर्णन। भूतक का विचार। ११६२ ११७७

अध्याय २२२

वर्णश्रम का वर्णन

वर्ण और मुनियों के संवाद में वर्णश्रम का वर्णन। ११७७ ११८१

अध्याय २२३

सर्व जाति का लक्षण-वर्णन

उमा अथ महेश्वर के संवाद में ब्राह्मणों का वर्णन प्राप्ति का वर्णन। शूद्र आदि को उत्तम-वर्ण की प्राप्ति
का वर्णन। ११८२ ११८७

अध्याय २२४

मनुष्यों का उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा और महेश्वर के संवाद में मनुष्या को उत्तम गति मिलने का वर्णन। स्वर्ग-प्राप्ति के हेतुभूत धर्म का कथन। धर्म के फल का कथन। . ११८८-११९३

अध्याय २२५

देवलोक की प्राप्ति का कारण बताया

उमा और महेश्वर के संवाद में देवलोक की प्राप्ति का कथन। कृपण आदि के नरक में जाने का वर्णन। स्वधर्मरत प्राणियों का वर्णन। पापिष्ठ प्राणियों की नरक-प्राप्ति का कथन। . ११९३-११९८

अध्याय २२६

वासुदेव की महिमा का वर्णन

मुनि और महेश्वर के संवाद में वासुदेव भगवान् की महिमा एवं भगवत्स्वरूप का वर्णन। मनु के वंश का वर्णन। शासकों और मुनियों के संवाद में कृष्णपूजा के फल का कथन। . ११९९-१२०४

अध्याय २२७

मुनिया और ब्यास के संवाद में विष्णु-पूजकों की गति का निरूपण

विष्णु की उपासना करने वालों का दिव्य लोकों की प्राप्ति एवं उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति। १२०४-१२०८

अध्याय २२८

विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

चाण्डाल और राजस के संवाद का वर्णन। उर्वशी और मूर्धे ब्राह्मण का संवाद। विष्णु भगवान् के जागरण में भगवद्भजन का फल। चाण्डाल और राजस का संवाद। जागरण के पुण्य प्राप्ति के लिए राजस द्वारा मोक्ष की प्रार्थना। ब्रह्मराक्षस के पूर्वजन्म का कथन एवं राजसत्व की प्राप्ति। चाण्डाल के पूर्वजन्म का कथन। मूर्धे ब्राह्मण और उर्वशी का संवाद। शकटदास का महात्म्य। १२०८-१२२२

अध्याय २२९

विष्णु-भक्ति का कारण-वर्णन

ब्यास और मुनिया के संवाद में विष्णुभक्ति का हेतु-कथन। मूर्धे आदि देवा के आराधना का वर्णन। अर्ध-पुण्य के प्राप्ति का कारण-वर्णन। भगवान् के मोक्ष का वर्णन। कामदमत का आख्यात। कर्णाम्नाचननीयों की उत्पत्ति का वर्णन। कामदमत का स्वर्ग-गमन। १२२३-१२३२

अध्याय २३०

महाप्रलय का वर्णन

ब्यास और मुनिया के संवाद में महाप्रलय का वर्णन। बलि के स्वरूप का वर्णन। कल्पियुग में भविष्य का वर्णन। . १२३३-१२४०

अध्याय २३१

शारदयुग के अन्त का वर्णन

मष्ट धर्म के निमित्त का कथन। भविष्य का कथन। .

१२४०-१२४८

अध्याय २३२

सहार के लक्षण का वर्णन

स्थान और मुद्रिया का संबंध में सहार-लक्षण का वर्णन। कल्प का मान-वर्णन। नम्रित्व लक्ष्य का स्वरूप वर्णन। १२४८ १२५१

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

प्राकृत लय का स्वरूप-वर्णन। १२५२ १२५५

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

आव्यामिक आदि तानो तैयों का वर्णन। गिरा, जकाम सौना आदि आव्यामिक ताप का निरूपण। काम क्रोध आदि मानसिक ताप का निरूपण। मृग पक्ष आदि से होने वाले अधिर्मांस ताप का वर्णन। गगन जल वृद्धावस्था आदि से उत्पन्न अधिद्विक ताप का वर्णन। रक्त में स्थित प्राणा का दुःसावस्था का निरूपण। बाल अवस्था वृद्धावस्था और मरणावस्था का वर्णन। पाप कर्मों में नरक प्राप्ति का वर्णन एवं मुक्ति और ज्ञान का महिमा का वर्णन। १२५६ १२६२

अध्याय २३५

योगाभ्यास निरूपण

योगाभ्यास का वर्णन। १२६२ १२६५

अध्याय २३६

साध्य-य-निरूपण

विस्तारपूर्वक योग और साध्य का निरूपण। १२६५ १२७१

अध्याय २३७

तानियों को मोक्ष प्राप्ति का निरूपण

तानिया का मोक्षप्राप्ति का निरूपण एवं कम करने वाला न बमानुसार स्वर्गादि लोको का प्राप्ति का वर्णन। आकाश आदि पञ्च भूतमहा के गुणों का वर्णन। १२७१ १२७९

अध्याय २३८

गुणों की सृष्टि का प्रतिपादन

गुणों का रचना का वर्णन। विद्वान् को अभय और मृत्यु का भय का प्राप्ति का वर्णन। सर्व धर्मों में विनिष्ट धर्म का वर्णन। क्षमा आदि के द्वारा क्रोध आदि का नाश-वर्णन। १२८० १२८५

अध्याय २३९

य-यविधि का निरूपण

योग और साध्य के विद्वान् के दया आदि आचरणा का समता का वर्णन। योग का विशेष प्रशंसा। योग के विहित और निषिद्ध आहारा का वर्णन। काम आदि सम्पूर्ण शत्रुओं का जय का वर्णन। योग के अभ्यास से नारायण-पद की प्राप्ति। १२८५ १२९०

अध्याय २४०

सांख्य-विधि का निरूपण

सांख्यविधि का निरूपण। मनुष्य आदि के विषय-ज्ञान का कथन। सत्त्व आदि गुण और सांख्य के ज्ञान का निरूपण। दृष्टि आदि के रूप आदि में सत्त्व होने का कथन। मोक्ष की दुर्लभता का निरूपण। सांख्य-ज्ञान की महिमा का वर्णन। सांख्य-योग से भ्रष्ट जनों की उत्तम कुल में उत्पत्ति।... १२९१-१३००

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

क्षर (नाशवान्) और अक्षर (ध्रुव) का वर्णन। मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। वसिष्ठ और कराल-जनक का संवाद। ससार का क्षरत्व से प्रतिपादन और ईश्वर का अक्षरत्व से प्रतिपादन। चौबीस तत्त्वों का वर्णन तथा तामसादिकों की नरकप्राप्ति और निर्गुण की मोक्ष-प्राप्ति का कथन।... १३००-१३०४

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद-वर्णन

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद। क्षर और अक्षर का ज्ञान न होने से बहुविध जन्मों की प्राप्ति। अभिमानों पुरुषों के बहुत्व-से साधनों का कथन।... १३०४-१३०९

अध्याय २४३

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

वसिष्ठ के प्रति मोक्ष-धर्म के विषय में जनक का प्रश्न। ग्रन्थ का अर्थ जाने बिना ग्रन्थ का धारण करना केवल भार है—यह कथन। ग्रन्थ के तत्त्व को न जानकर लोग से विवाद करने वाले को नरक की प्राप्ति। अक्षर और क्षर का लक्षण। योगलक्षण का वर्णन। सांख्यज्ञानकथन। क्षेप-क्षेपज्ञ का लक्षण।... १३०९-१३१६

१

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

विद्या और अविद्या का स्वरूप-कथन। क्षर और अक्षर का विस्तार से वर्णन। प्रवृत्ति के त्याग से विमुक्ति का कथन। अनेक से सांख्ययोग का कथन।... १३१७-१३२१

अध्याय २४५

ब्रह्म का अनेक होना

अब परमात्मा भी विकारों से अनेक रूपों में भागित होता है। एतत्त्व और नागात्त्व का लक्षण। ज्ञान और निज्ञान से सजित मोक्ष का वर्णन। इस ज्ञान के दाताई अविर्कार का निर्णय। जनक के प्रति वसिष्ठ का यह कथन कि उन्हें यह ज्ञान ब्रह्म से प्राप्त हुआ था। ज्ञान-प्राप्ति की परम्परा का कथन।... १३२१-१३२७

अध्याय २४६

इस पुराण के श्रवण और पाठ का फल-वर्णन

पुराण-श्रवण के उपरान्त मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। अनन्तर समस्त मुनियों का अपने-अपने आश्रमों में जाना। ब्रह्मपुराण के श्रोता एवं अन्वेता को मिलने वाली फल का कथन। धर्म की प्रशंसा।... १३२७-१३३१

○
ब्रह्मपुराणम्
(हिन्दी-अनुवाद सहितम्)
○

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

तत्रादौ नैमिषारण्य-वर्णनम् ,

यस्मात् सत्त्वमिदं 'प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते, यस्मिंस्तिष्ठति' याति, चान्तसमये, कल्पान्कल्पे पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुव, तं वन्दे पुण्योत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं' निश्चलम् ॥१॥
यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं, नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सत्त्वैश्वरं निर्गुणम् ।
व्यवताव्यवतपरं प्रपञ्चरहितं 'ध्यानैकगम्यं' विभु, तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुवित्तदम् ॥२॥
सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे । नानामुनिजनाकीर्णं नानापुण्योपशोभिते ॥३॥
सरलं कर्णिकारंश्च पतसंधं वलादिरं । आग्रजम्बूकपिर्यंश्च न्यग्रोधैर्देवदारभिः ॥४॥
अश्वत्थं पारिजातंश्च चन्दनागुरपाटलं । बकुलं सप्तपर्णंश्च पुद्गानं गङ्गेशरं ॥५॥
शालस्तालंस्तमालंश्च 'नारिकेलं तथा जुनं । अन्यंश्च बहुभिर्वृक्षैश्चम्पकाद्यंश्च शोभिते ॥६॥
नानापक्षिगणाकीर्णं नानामृगगणैर्युतं । नानाजलाशयैः 'पुण्यैर्दोषिकाद्यैरलङ्कृतं ॥७॥

अध्याय १

जिससे यह विस्तार के साथ रचा हुआ मायामय सम्पूर्ण सत्त्वर उत्पन्न होता है, जिसमें स्थित रहता है तथा प्रत्येक कल्प के अन्त में लीन हो जाता है और जिसका ध्यान करने मुनिगण प्रपञ्चरहित मोक्ष को प्राप्त करते हैं उस निर्मल, नित्य, व्यापक, अबल, पुण्योत्तमसङ्ग ब्रह्म का प्रणाम करता हूँ ॥१॥ समाधि की अवस्था में विद्वान् (साधक) जिसका ध्यान करते हैं, उस आकाश के समान स्वच्छ, आनन्दमय, सदा प्रसन्न, निर्मल, सर्वेश्वर, निर्गुण, स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से परे, सृष्टि से रहित, केवल ध्यानपीठ से प्राप्त करने योग्य, व्यापक, सत्त्वर के प्रलय के कारण, अजर और मोक्षदायक हरि को प्रणाम करता हूँ ॥२॥ मुनिगणों से व्याप्त, अनेक प्रकार के पुष्पा से सुशोभित, पुष्परूप, पवित्र और मनोहर नैमिषारण्य की वनस्पती हरल (सुडर), आम्बानक (अमन्तास), कटहल, पत्र, खदिर (खैर), आम, जामून, कटकेल, बरगद, देवदारु, पीरल, पारिजात, चन्दन, अगर, पाटला, मोलसिरी, सातला, पुद्गल, नागनेसर, शाल (सायू), ताल, तमाल, नारिकेल, अर्जुन और चम्पा आदि नानाविध वृक्षों से भी सुशोभित थी ॥३-६॥ वह अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों, पवित्र बावली आदि अनेक जलाशयों से

१. य. ०ञ्चरचित मा। २. क. ०नि लीयते तु यः। रा. ०ति लीयते च यः। ३. निष्पन्नः।
४. शानैकगम्य। ५. प्रमू। ६. क. ०म् ॥२॥ ये पुः। ७. ग. ०लं। यः। ८. ग. ०नार्ण गङ्गादीनां।
९. क. ड. नालिकेरंस्तः। १०. क. पुण्ये वैदिराः।

ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्येः शूद्रेश्चान्येश्च जातिभिः। वानप्रस्थेर्गृहस्थेश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः॥८॥
 सम्पन्नैर्गोत्रुल्लेखैश्च सर्वत्र समलङ्कृते। यवगोधूमचणकैर्मण्डमृदुगल्लेक्षुभिः॥९॥
 चीनकाष्ठैस्तथा मेघैः शरयश्चान्येश्च शोभिते। तत्र दीप्ते हृतबहे हूयमाने महामखे॥१०॥
 यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके। आजगमुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्येऽपि द्विजातयः॥११॥
 तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजा चक्षुर्यथोचिताम्। तेषु तनोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च॥१२॥
 तत्राजगाम सूतस्तु मतिमल्लोमहर्षणः॥ तं दृष्ट्वा ते मुनिवरा। पूजां चक्षुर्मुदाम्बिता॥१३॥
 सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव सविशेष वरासने। कथा चक्षुस्तद्वान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः॥१४॥
 कथान्ते व्याससिष्यं ते पप्रच्छ। शंशयं मुदा। ऋत्विग्भिः सहितः सर्व्वे सवस्यैः सह दीक्षिताः॥१५॥

मुनय ऊचुः ।

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासानि सत्तम। जानासि देवदेत्यानां चरितं जन्म कर्म च॥१६॥
 न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्देवे॥ शास्त्रे च भारते। पुराणे मोक्षशास्त्रे च सर्व्वज्ञोऽसि महामते॥१७॥

अलङ्कृतं था ॥७॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्वासी—चारों वर्ण और आश्रम के लोग वही निवास करते थे ॥८॥ पर्याप्त पशुधन एवं जौ, गेहूँ, चना, उड़द, मूँग, तिल ईख और चीन आदि पवित्र अन्नो से वह क्षेत्र सपन्न था ॥९॥ उस क्षेत्र में नैमिषारण्यवासी वारह वर्षों में समाप्त होने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। महायज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी पड़ रही थी। उस यज्ञ में बहुत से मुनि और दूसरे ब्राह्मण लोग भी आए हुए थे ॥१०-११॥ उन आगन्तुकों का नैमिषारण्यवासियों ने यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया। ऋत्विजों के सहित आए हुए ब्राह्मणों, मुनियों के बैठ जाने पर सुप्रसिद्ध मेघावी सूत लोमहर्षण वहाँ उपस्थित हुए ॥१२॥ उन्हें देखते ही आनन्दित मुनिगण ने यथोचित सत्कार किया। तदनंतर लोमहर्षण सूतजी भी उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रकट करते हुए व्यासछोट पर आसीन हो गये। फिर सूतजी सहित उपस्थित द्विप्रबृद्ध परस्पर कथा वार्ता करने लगे ॥१३-१४॥ कथा के समाप्त होने पर सदस्यो सहित दीक्षित हुए ऋत्विज् और मुनिवृद्ध अपनी शकाओं के समाधान हेतु सूतजी से नम्रतापूर्वक प्रश्न करने लगे ॥१५॥

मुनियों ने कहा—मगवन्! पुराण, अगम, शास्त्र और इतिहास एवं देवता राक्षसों के जन्म, कर्म और चरित्र के आप विज्ञाता हैं ॥१६॥ वेद, शास्त्र, महामारत, पुराण, मोक्षशास्त्र—इनमें से कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसे आप न जानते हो। महाधीमन्! आप सर्वज्ञ हैं ॥१७॥ हे सूतजी! प्रारम्भ में देवता, राक्षस, गन्धर्व,

१क ०मि। समदैर्घ्यं०। ख. ०मि। समूर्द्धगं०। २ग ०मि। शालिमिश्च तथा। ३क ०न्ये च द्वि। ४क ख ०षोदिता०। ५क. ०मारोम०। ६ग ०पि ता प्रतिगृह्यं। ७क ०स्ताथाऽन्यो। ८क यह ते द्वि०। ९ख। ०न्ते च न्या०। १०क. तु। ११क. ०प्रचक्षुस्तेऽन्य मु०। १२क. ०देवशास्त्रेषु मा०।

यथापूर्वमिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् । समुद्रासुरगन्धर्वं सैन्यक्षोरगराक्षसम् ॥१८॥
 श्रोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्वं यथा । जगत् । बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥१९॥
 यतश्चैव जगत् । सूत यतश्चैव 'चराचरम् । लीनमासोत्तया यत्र लयमेव्यति यत्र च' ॥२०॥

लौमहर्षण उवाच

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैवरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥२१॥
 नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्मणे ॥२२॥
 एकानेकरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने । नमः । अव्ययताव्ययतभूताय विष्णवे 'मुक्तिहेतवे' ॥२३॥
 सर्गस्थितिविनाशाय 'जगतो 'षोऽजरामर । मूलभूतो' नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥२४॥
 आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयासमणीयसाम् । प्रणम्य 'सर्वभूतस्यमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥२५॥
 ज्ञानस्वरूपमत्यन्त निम्मलं परमार्थतः । 'तमेवार्थस्वरूपेण' भ्रान्तिदर्शनत स्थितम् ॥२६॥
 विष्णुं प्रसिष्णुं विदधस्य स्थितौ । 'सर्गे तथा प्रभुम् । सर्वज्ञं जगतामोशमजमक्षयमव्ययम् ॥२७॥
 आद्य 'सुसूक्ष्म' विद्वेश ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च' । इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥२८॥
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम् । गुहं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥२९॥

यज्ञ, सर्ग, वैद्य आदि धीनियो सहित यह चराचर जगत् जिस प्रकार उत्पन्न हुआ उस प्रजिया को हम लोग मुनना चाहते हैं रूपया मुनाइए ॥१८॥ महाभाग सूतजी । जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और प्रलय के बाद जिस प्रकार फिर उत्पन्न होगी तथा चराचर सहित जगत् जिसमें लीन रहकर उत्पन्न हुआ और फिर जिसमें लीन होगा उसका समस्त उत्पत्ति एवं लयत्रय हम बतलाइये ॥१९-२०॥

लौमहर्षण बोले—निर्विकार शब्द शुद्ध, नित्य सर्वात्मा, शाश्वत, सर्वव्यापक सर्वजयी हिरण्यगर्भ, हरि, गङ्गा, वासुदेव—नामधारी अविनाशकारण सृष्टि स्थिति प्रलय के कारणभूत एव और अनेक स्वरूप धारण करने वाले, स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले, व्यक्त और अव्यक्त तथा मोक्ष के कारण सगवान् विष्णु को नमस्कार है । ॥२१-२३॥ सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत अजर, अमर, नित्य परब्रह्म विष्णु को नमस्कार है । ॥२४॥ विष्णु के आधार मूढमातिमूढम एव सभी प्राणियों में स्थित पुरुषोत्तम भगवान् अव्यक्त को प्रणाम है । ॥२५॥ तत्त्वन ज्ञानस्वरूप और अत्यन्त निम्नल ठोस हुए मोक्षम से पदार्थरूप से भावित सबको प्रयत्नवाले विद्वत् की उत्पत्ति स्थिति करन में समर्थ सबज्ञ तारा के स्वामी जन्म मरण ह्रास से रहित सब के आदि और अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्माण्डनायक विष्णु को तथा ब्रह्मा आदि देवों को प्रणाम है । ॥२६-२७॥ वेद और वेदाङ्ग में निष्णात इतिहास, पुराण तथा सभी शास्त्रों के तत्त्वन पराशर मुनि के पुत्र परमगुह व्यासजी को प्रणाम है । मैं जो कुछ

१४ ०पाणनम् । ४० २४ ०मल्लवे म० । ३४ मविष्यति । ४४ मा । ५४ स गृह्याम् ।
 ६४ ०धमाय त न० । ७४ व्यक्तहेतवे । ८४ न ०शाना ज० । ९४ न मा जगमय । म० ।
 १०४ ०तोऽव्ययतमे । ११४ ०मृताम० । १२४ तमेव स्वस्व० । १३४ ०वाऽज्जमस्व० । १४४ म्विनिसर्ग ।
 म म्विनिसर्ग । १५४ ०स मू० । १६४ ०दम य वि० । १७४ वै ।

कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः । पृष्टं प्रोवाच भगवानग्नयोनिः । पितामहः ॥३०॥
 शृणुष्व सम्प्रत्यक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । कथ्यमानां मया त्तित्रा बहूषां श्रुतिविस्तराम् ॥३१॥
 यस्त्विवमा धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभोऽणशः । स्ववशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥३२॥
 अव्यक्त कारणं यत्तन्निर्गुणं सदसदात्मकम् । प्रधानं परमस्तस्मात्त्रिममे विश्वमोऽद्वयम् ॥३३॥
 तं बुध्यध्वं मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणममितीजसम् । स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥३४॥
 अहङ्कारस्तु महत्तस्तस्माद्भूतानि जग्निरे । भूतभवाश्च भूतेभ्य इति सर्गं सनातनम् ॥३५॥
 विस्तरावयव चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुतिः । कीर्त्यमानं शृणुष्व न सर्वेषां कीर्तिवद्धनम् ॥३६॥
 कीर्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यवद्धनम् । तत् स्वयम्भूभगवान् सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ॥३७॥
 अप एव सत्तज्ज्वादी तासु धीर्यमयासृजतः । आपो नारा इति प्रोक्ता आपो च नरसूतवः ॥३८॥
 अयनं तस्य तां पूर्वं तेन नारायणं स्मृतम् । हिरण्यवर्णं भगवानुपित्वा परिदत्तस्मृतम् ॥३९॥
 तत्र जले स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति न श्रुतम् । हिरण्यवर्णो भगवानुपित्वा परिदत्तस्मृतम् ॥४०॥

क्यों वेदों के अनुकूल कहेंगे । ॥३८॥ २९॥ पूर्वकाल में दक्ष आदि मुनियों द्वारा पूछ जाने पर उन्हें पितामह ब्रह्मा ने जिस प्रकार बताया था वैसे ही मैं वचन करता हूँ मुनिये । मैं पापनाशिनी कथा दूंगा ॥३०॥ वदिव रहस्यवाद एवं श्लेष-सहित कथा को जो व्यक्ति बार-बार सुनेगा या धारण करेगा वह अपने वश का वशपर बनकर स्वर्गलोक में पूजित होगा ॥३१॥ ३२॥ जो अव्यक्त कारण है वह सत-असत नियम प्रकृति और परम है । उसी से ईश्वर ने विश्व की रचना की है ॥३३॥ मुनिश्रेष्ठ ! उस ईश्वर को आप सब प्राणियों का स्रष्टा तथा नारायण का अभित अयन्त तेजस्वी ब्रह्मा समझिये । ॥३४॥ महत्-तत्त्व में अहंकार उत्पन्न हुआ अहंकार से पंचमहाभूत और उनसे उनके मद उत्पन्न हुए । यही सनातन सृष्टि है ॥३५॥ अब जसा मैं मना है और जसी मेरी गति मति है तदनुसार उसका विस्तृत वचन करता हूँ आप लोग सुन । यशः शरीर से अमर व्यक्तियों का स्मरण पुण्यप्रद होता है यह सृष्टि कथा आप लोगों की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली है ॥३६॥ स्वयम् भगवान् ने अनक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा रखकर पहले जल की ही सृष्टि की । उसमें बीज डाला । नारः शब्द जल राशि और नर-पुत्र इन दो अर्थों में प्रयुक्त होता है ॥३७॥ ३८॥ उस परम परम का आत्म्य पहले जल राशि ही थी । इसलिए उसने नारायण कहा गया । जल में सोये हुए परम परम की नामि से एक सुवर्णमय अंडा उत्पन्न हुआ ॥३९॥ उससे स्वयम् ब्रह्मा उत्पन्न हुए —एसा हमने सुना है ।

१क ०मजो नियम पि० । २क ०प्रमोचिनी० । ३प तिसमिताम । ४ग ०मीदशम । त । ५क व । ६ख ग ०प्यकमणाम । ७स ०मवास० । ८क ०ति विभ० ।

१ नार ज्ञान तस्य अयन स्थान नारायण —इस व्यक्तिके अनुसार ज्ञान के धाम को नारायण कहा जाता है । नार का तात्पर्य ज्ञान से है अर्थात् भौतिक सृष्टि से पूर्व ब्रह्मा न ज्ञान-सृष्टि की । २ ब्रह्म में अन्तर्निहित 'गनवोश' का रहित होना सुवर्णमय अंडा है । इस प्रकार इस कथा के श्लेष का भी ध्यान रखना चाहिए ।

तदण्डमकरोद्दधं दिवं भुवमयापि च। तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१॥
 अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशया दधे। तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमयो रतिम् ॥४२॥
 ससर्जं सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्। मरीचिमश्रयङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं ऋतुम् ॥४३॥
 यस्मिच्छं महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्। सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४॥
 नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्। ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा ह्रदं रोपात्मसम्भवम् ॥४५॥
 सनत्कुमारं च विभुं पूर्वैर्यामपि पूर्वजम्। सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा क्रदाश्च भो द्विजा ॥४६॥
 स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य निष्ठतः। तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः ॥४७॥
 क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्घृताः। विद्युतोऽग्निमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूय च ॥४८॥
 ययांसि च सप्तर्षादो पर्जन्यश्च सप्तर्जं ह। ऋचो यजूंषि सामानि निर्म्ममे यत्सिद्धये ॥४९॥
 साध्यान्जनयद् देवानित्येवमनुसृजन्गुः। उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जतिरे ॥५०॥
 आपवश्यं प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापते। सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१॥
 द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विबिधाः प्रजाः ॥५२॥
 दिवश्च पृथिवीं चैव महिम्ना ध्याध्वं तिष्ठति। विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरं विराट् ॥५३॥

हिरण्यगर्भं भगवान् ने वर्षों तक वास करके उस अर्द्धे को स्वर्ग और पृथ्वी इन दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया ॥४०॥
 परमात्मा ने उन दोनों टुकड़ों के मध्य भाग में आकाश बनाया और जल में डूबी हुई पृथ्वी तथा दमो दिशाओं को
 धारण किया ॥४१॥ तदनन्तर काल, मन, वाणी, काम, क्रोध और रति की रचना की और फिर प्रजापतियों की
 सृष्टि की दृष्टा रखकर मरीचि, अग्नि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह ऋतु, और यस्मिच्छ—इन सात ऋषियों की मानकी
 सृष्टि की ॥४२-४३॥ पुराणा में ये सात ब्रह्मा निश्चित हैं। नारायणके अंश में उत्पन्न हुए इन सात प्रजापतियों
 से पहले ब्रह्मा ने क्रोध से यद्रा का उत्पन्न किया ॥४४-४५॥ फिर पूर्वजों के भी पूर्वज तथा सर्वत्र व्याप्त सनत्कुमार
 को भी उत्पन्न किया। इन सप्तर्षियों से, ब्राह्मणों। प्रजाओं और स्त्रियों की उत्पत्ति हुई ॥४६॥ स्कन्द और सन-
 त्कुमार अपने अपने तेज को समेट कर स्थित हैं। उनके दिव्य और देवगणों से युक्त सात महावंश त्रियाश्वान् प्रजा-
 वान् और महर्षियों से अश्रुत हैं ॥४७॥ आदि में बिजली, वज्र, लाल इन्द्रधनुष जल और मेघ को रखकर यज्ञ-
 सिद्धि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का निर्माण ब्रह्मा ने किया ॥४८-४९॥ परवान उल्टान छाव्यों
 और देवताओं को भी उत्पन्न किया। फिर छोटे-बड़े सब प्राणी ब्रह्माजी के अंग में उत्पन्न हुए ॥५०॥ 'आपव'
 नामक प्रजापति जब सृष्टि करते हैं, सब सर्जनों की जाने वाली प्रजा जब-तब नहीं बढ़ती है ॥५१॥ ब्रह्मा
 ने अपनी देह के दो भाग लिए। आधे भाग में पुरुष यत्न और आधे भाग में स्त्री यत्नी। उस स्त्री में उन्होंने
 अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥ अपनी महिमा में स्वर्ग और पृथिवी को ध्यात करने के स्थित हैं।
 विष्णु ने विराट् की सृष्टि की। विराट् ने पुरुष को उत्पन्न किया ॥५३॥ उस पुरुष को मनु मर्मान्य। उसी का

११. दधी। १२. अपि। १३. न ० रम पु०। १४. न। १५. अनुसृजता। १६. म्।
 तपस्व्या। १७. ०ज स्वेषा अ०। १८. रत्स्य। १९. निष्ठति। २०. ०र्जयिता। २१. ०ध्यातव्यान्गण
 देशा। २२. न ०नुधुम्। २३। न ०नुधुम्। २४। २५. अप्य च प्र०। २६. न निष्ठति।

पुरुष त मनु विद्यास्तस्य मन्वन्तर स्मृतम् । द्वितीय मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥५४॥
 स वैराज प्रजासर्गं ससर्जं पुरुषं प्रभु । नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याध्ययीनिजा ॥५५॥
 आयुष्मान् कीर्तिमान् पुण्यप्रजावाश्च भवेन्नर । आदिसर्गं विदित्वैव यथेष्टां क्षानुयाद् गतिम् ॥५६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदिसर्गवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

तत्रादौ स्वायम्भुवमनुवशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

स सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वं प्रजापति । लेभे वं पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥
 आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः धर्मणैव मुनिष्येष्टां शतरूपां व्यजायत ॥२॥
 सा तु वर्षायुत तप्तवा तप परमदुश्चरम् । भर्तारं द्रोप्ततपसः पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३॥
 स वै स्वायम्भुवो विभ्रा पुरुषो मनुरुच्यते । तस्यैकसप्ततिभुग मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

मन्वन्तर (वर्ष) होता है और मानस मनु का वह दूसरा अन्तर कहा जाता है ॥५४॥ विराट् से उत्पन्न शक्तिशाली पुरुष ने प्रजा की सृष्टि की । नारायण के अंश से उत्पन्न हुए उस पुरुष की भी प्रजाएँ अयोनिज हुई ॥५५॥ जो व्यक्ति इस प्रकार आदि सृष्टि की रचना की सम्मग्रा, वह आयुष्मान् कीर्तिमान् तथा पवित्रप्रजावान् होगा और यथामि-
 लपित गति की प्राप्ति करेगा ॥५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आदिसर्गवर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

स्वायम्भुव मनु का वश-वर्णन

लोमहर्षण बोले—इस प्रकार आपव नामक प्रजापति ने प्रजा की रचना कर अयोनिज कन्या शतरूपा को अपनी पत्नी बनाया ॥१॥ मुनिवर्चवृन्द ! अपनी महिमा से स्वर्ग को ढककर स्थित हुए आपव के धर्म से ही शतरूपा उत्पन्न हुई थी ॥२॥ उसने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या करके अति तेजस्वी पुरुष को पति के रूप में प्राप्त किया था ॥३॥ ब्राह्मण ! वही पुरुष स्वायम्भुव मनु कहलाता है । इन्हतर युग का उसका एक मन्वन्तर कहा जाता है ॥४॥ उस पुरुष से शतरूपा ने और नामक पुत्र को उत्पन्न किया । और की स्त्री काम्या से प्रियव्रत

वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत । प्रियव्रतोत्तानपादौ धीरात् काम्या व्यजायत ॥५॥
 काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः । काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिविराट्प्रभुः ॥६॥
 उत्तानपादं जग्राह पुत्रमग्निः प्रजापतिः । उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुपुत्रे सुतान् ॥७॥
 धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता । उत्पन्ना वाजिमधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥८॥
 ध्रुवश्च कीर्त्तिमन्तश्च आयुष्मन्तं वसुं तथा । उत्तानपादोजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥९॥
 ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि विव्यानि भो द्विजाः । तपस्तेषु महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः ॥१०॥
 तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमस्मत्समं प्रभुः । अबलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥११॥
 तस्याभिमानमुद्विञ्च महिमानं निरीक्ष्य च । देवासुराणामाचार्य्यः श्लोकं प्रागुशना जगौ ॥१२॥
 अहोजय तपसो वीर्य्यमहा श्रुतमहोद्भूतम् । यमस्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३॥
 तस्माच्छिल्पितं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत* । शिल्पितेराघत सुच्छाया पञ्च पुत्रानवल्मयान् ॥१४॥
 रिपुं रिपुञ्जयं वीरं वृकलं वृकतेजसम् । रिपोराघत बृहती चक्षुषं सव्यंतेजसम् ॥१५॥
 भोजीजनत् पुष्करिण्यां वैरिण्यां चाक्षुषं मनुम् । प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः ॥१६॥
 मनोरजायन्त दश नड्वलायां* महोजसः । कन्यायां मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापतेः ॥१७॥

और उत्तानपाद उत्पन्न हुए ॥५॥ काम्या कर्दम नामक प्रजापति की ज्येष्ठ कन्या थी। काम्या ने चार पुत्र हुए—
 सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु ॥६॥ पुत्र उत्तानपाद को अग्नि प्रजापति ने ग्रहण किया। उत्तानपाद से सूनृता
 ने चार पुत्रों को प्रसव किया ॥७॥ अश्वमेध यज्ञ से उत्पन्न और सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर बटि वाली घम की
 कन्या ध्रुव की कल्याणी माता हुई ॥८॥ प्रजापति उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्त्तिमान्, आयुष्मान् और वसु नामक पुत्र।
 जो सूनृता से उत्पन्न किया ॥९॥ विप्रबृन्द ! ध्रुव ने महान् यश की इच्छा में तीन हजार देववर्ष पर्वन्त
 वास्या की ॥१०॥ ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर सप्तर्षियों के आगे उसे अपने समान अबल स्थान दिया ॥११॥
 ध्रुव ने अभिमान, ऐश्वर्य और माहात्म्य की देखकर देवता और दैत्यों ने आचार्य धृञ् उसकी प्रशंसा
 करने लगे—॥१२॥ अहो ! ध्रुव की तपस्या शक्ति आश्चर्य्य है ! इसका श्रुत (शास्त्र-ज्ञान या कीर्त्ति) आश्चर्य्य
 है ! आज इसी ध्रुव की आगे करने सत्तर्षि अवस्थित हैं ॥१३॥ ध्रुव से शिल्पित और मध्य की शम्भु ने उत्पन्न किया ।
 शिल्पित से मुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को जन्म दिया—॥१४॥ रिपु, रिपुञ्जय, वीर, वृकल और
 वृकलतेजः । रिपु से बृहती ने बड़े तेजस्वी चक्षुष को उत्पन्न किया ॥१५॥ चक्षुष से वैरिणी पुष्करिणी
 ने चाक्षुष मनु की जन्म दिया । पुष्करिणी महात्मा प्रजापति वीरण की कन्या थी ॥१६॥ नड्वला से
 चाक्षुष मनु के बड़े तेजस्वी दश पुत्र हुए । मुनिश्रेष्ठ ! नड्वला वैराज प्रजापति की पुत्री थी ॥१७॥ उसने

१. स. स. ०म मुनिश्रेष्ठः १०। २ग. ०सान्ते प्रा०। ३. ०णि वर्षाणि मो०। ४ग. ०नड्वलि।
 *स. ०। ६. ग. ०स्माल्पिटि। ७. ०त। सृष्टे०। ८. ०या मन्त्रपूतान०। ९. ०पुत्रय पुरजय पुत्र
 १०। १०ग. विप्र। ११. ०. ०जायामरस्यस्य। १२. नड्वला०।

कुत्स १ 'पु६ शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कवि । अग्निष्टुदतिरात्रश्च' 'सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८॥
 अभिम-युश्च' दशमो मङ्गलाया' महौजस' । पुरोरजनयत् पुत्रान् षड्गन्धेयी महाप्रभान् ॥१९॥
 अङ्ग सुमनस' स्वाति क्रतुमङ्गिरस' मयम् । अङ्गात् सुनीथापस्य व वेनमेक व्यजायत ॥२०॥
 अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् । प्रजार्यमूषयो यस्य समन्वुर्दक्षिण करम् ॥२१॥
 वेनस्य मयिते पाणौ सबभूव 'महान्प । त दृष्ट्वा मुनय प्राहुरेव वै मुदिता प्रजा ॥२२॥
 करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्त्यते महत् । स धन्वी कवची जातो' 'ज्वलज्ज्वलनसन्निभ ॥२३॥
 पृथुर्वैन्यस्तथा 'चेमां ररक्ष' 'क्षत्रपूर्व्वज । राजसूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ॥२४॥
 तस्माच्चर्व्व समुत्पन्नो निपुणो सूतमागधो । 'तेनेय गोर्म्मूनिधेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५॥
 प्रजाना वृत्तिकामेन 'देवं सर्पिगणं सह । पितृभिर्दानवैश्चैव 'गन्धर्व्वरप्सरोगणं' ॥२६॥
 सर्पे पुण्यज्जनेश्चैव वीरिद्रि पव्वतस्तथा । तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ॥२७॥
 प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन् । पृथोस्तु पुत्रो धर्ममज्ञो जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनौ ॥२८॥
 शिखण्डिनो हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत । हविर्धानात् षड्गन्धेयी' 'धिपणाजनयत् सुतान् ॥२९॥
 प्राचीनवर्हिष शुक्र गय कृष्ण गजाजिनौ । प्राचीनवर्हिभंगवान्महानासोत्प्रजापति ॥३०॥

पुत्र । क नाम कुत्स पुर शतद्युम्न तपस्वी सत्यवाक् कवि अग्निष्टुदतिरात्र अग्निष्टुदतिरात्र मुद्युम्न और अभिम-यु ये ॥१८॥
 पुत्र से आगन्था ने छह महातपस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया । वे अग सुमनस् स्वाति ऋत अगिरस और
 मय नाम से रचात हुए ॥१९॥ अग स सुनीय न वन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥२०॥ वेन के अनाचार से मुनिगण
 अत्यन्त क्रुपित हुए और उन्होने सन्तान के लिए उसका दाहिने हाथ का मयन किया ॥२१॥ उसने एक महान् राजा उत्पन्न
 हुआ । उसे देखकर मुनिया ने कहा— यह प्रजा को आनन्दित करेगा महान् तपस्वी होगा और बड़ी प्रतिष्ठा
 प्राप्त करेगा ॥ २२॥ उसन धनुष और कवच धारण किये थे । वह अग्नि के समान कान्तिमान् था ॥२३॥ उसका नाम पृथु
 पट्टा । उस राजा न पृथ्वी की रक्षा की । वह राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में पहला राजा हुआ ॥२४॥ उसी से
 अग्नी गूत और मागध उत्पन्न हुए । मुनिभट्ट' राजा पृथु ने प्रजाओं को जीविका देने की इच्छा ने इस पृथिवी
 से अन्न का दाहन किया ॥२५॥ उसका साथ देवता ऋषिगण पितर राक्षस राधव अप्सराएँ, सपगण पुण्यजन,
 रक्षा और पवत भी (दूहन में लगे हुए) थे ॥२६॥ उन उन पात्रों में दुही गई पृथिवी ने यथेष्ट दूध दिया । उसने
 प्रजाओं न प्राण धारण किये । यज्ञ के अन्त में पृथु के अन्तर्धि और पातिन् नामक दो धर्मज्ञाता पुत्र हुए ॥२७-२८॥
 शिखण्डिनो न अन्तर्धान सह हविर्धान को उत्पन्न किया । अग्नि की पुत्री धिपणा ने हविर्धान ने छह पुत्र पैदा
 किये ॥२९॥ प्राचीनवर्हिष शुक्र गय कृष्ण यज्ञ और अजिन । उनमें भगवान् प्राचीनवर्हिष महान् प्रजापति

१४ २८ । ग ऊर । २१ पूर । ३२ ०ष्टुवनि० । ४२ ०मदवापि ते । ५२
 अनिम० । ६१ मङ्गला० । ७१ ०य । ऊरो० । ८२ स्वाति । ९१ ग गयम् । १०१ हानुपि ।
 १११ राजा । १२१ वेमां । १३१ दशपुत्र । १४१ तन पृथ्वी मुनि० । १५१ देवैरुपि० ।
 १६१ ०धर्व्विष० । १७१ ०धरसा ग० । १८१ ०पी पुन्यजन० ।

हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन संवर्द्धिताः प्रजाः। प्राचीनवर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः॥३१॥
 समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः। महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः॥३२॥
 सवर्णापित्त सामुद्रो दश प्राचीनवर्हिषः। सर्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगान्॥३३॥
 अपृथग्धर्माचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः॥३४॥
 तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतासु महीरुहाः। अरक्ष्यमाणामावब्रूवन्भूवाय प्रजाक्षयः॥३५॥
 नाशकृन्मास्तो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः। दश वर्षसहस्राणि न शोकुश्चेष्टितुं प्रजाः॥३६॥
 तद्रुपश्रुत्य तपसा युक्ता सर्वे प्रचेतसः। मूखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जितमग्नयवः॥३७॥
 'उन्मूलानय' वृक्षास्तु कृत्वा वायुरशोषयत्। तानग्निरदहद्घोर एवमासोद्द्रुमक्षयः॥३८॥
 द्रुमक्षयमयो बुध्दवा 'किञ्चिच्छिद्येयुः' शाखिण्यु। उपगम्याव्रवीदेतांस्तदा सोमः प्रजापतिन्॥३९॥
 कोपं गच्छत राजानः सर्वे प्राचीनवर्हिषः। वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निरास्तो॥४०॥
 रत्नभूतं च कन्देयं वृक्षाणां घरवणिनी। भविष्यं जानता तात धृता गर्भेण वं मया॥४१॥
 मारिया नाम नाम्नेया वृक्षाणामिति निर्मिता। भार्या वीजस्तु महाभागा सोमवन्शविवर्द्धिनी॥४२॥
 युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चोर्द्धेन तेजसः। अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दशो नाम प्रजापतिः॥४३॥
 स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वं। अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति॥४४॥

हुए॥३०॥ मुनिश्रेष्ठ! हविर्धान से प्रजाओं की वृद्धि हुई। भगवान् प्राचीनवर्हिस् पृथिवी के नीचे गये॥३१॥ बहुत तपस्या करने के बाद सवर्णा नाम की समुद्र-कन्या से प्रभु प्रजापति ने विवाह किया॥३२॥ समुद्र-पुत्री सवर्णा ने प्राचीनवर्हिस् से दस पुत्र उत्पन्न किये। धनुर्वेद में पारगत् के सब पुत्र प्रचेता नाम से विख्यात हुए॥३३॥ एक ही वर्ष के अनुष्ठान करने वाले प्रचेताओं ने दस हजार वर्षों तक समुद्र के जल में शयन करते हुए कठिन तपस्या की॥३४॥ प्रचेतागण की तपस्या के समय वृक्षों ने अमुरादिन पृथ्वी को आच्छादित कर दिया। तब प्रजा का नाश होने लगा॥३५॥ वृक्षों में डबे हुए आवाज में वायु नहीं बह सका। दस सहस्र वर्षों तक प्रजा निश्चेष्ट पड़ी रह गई॥३६॥ यह सुनकर तपस्वी प्रचेताओं की क्रोध हुआ। उन्होंने मूल से वायु और अग्नि की सृष्टि की॥३७॥ वायु ने वृक्षों को उखाड़ कर मुखा दिया। उनकी अग्नि ने जला दिया। इस प्रकार वृक्षों का महान् वन नष्ट हो गया॥३८॥ जब कुछ ही वृक्ष बच गये, तब वृक्षों का विनाश जानकर सोम उन प्रचेतागण प्रजापतियों के पास जाकर बोले—॥३९॥ 'हे प्राचीनवर्हिस् राजाओं! आप क्रोध का स्थान करें। पृथिवी वृक्षा से शून्य हो गई है। अग्नि और वायु को आप शान्त करें॥४०॥ हे तात! वृक्षों की इस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को मरिष्य जानते हुए मैंने गर्भ में धारण किया था॥४१॥ मारिया नाम की यह कन्या वृक्षों द्वारा रची गई है। महानुभावगण! सोमवत्स की बदले वाली यह मारिया आपकी पत्नी हो॥४२॥ आपने और मेरे आर्धे-आर्धे तेज से दश नाम का विद्वान् प्रजापति इससे उत्पन्न होगा॥४३॥ अग्नि के समान

१४. य. ०रिण। ४०। २४. च। ३९. ०तं सम०। ४४. ०कश्चयितु। ५४. ०छान्य ततो वृक्षान्मृत्वा। ६९. ०य तान्मृत्वा। ७४. ०त्। दिव्याग्नि०। ८४. ०रमेव०। ९४. ०पृथ्वा। १०४. ०यु मो दिवाः। ३०। ११४. ०देताग्रा सो०। १२४. ४. ०या छातु य०। १३४. ०भागा सो०।

ततः सोमस्य वचनाञ्जगृह्णते प्रचेतसः^१। संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः^२ पत्नीं धन्मणे मारिषाम्^३॥४५॥
 वदाम्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापतिः। दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्याशेन भो द्विजाः॥४६॥
 अचराश्च चराश्चैव द्विपदोऽयं क्षतुष्पदः। स सप्तधा^४ मनसा^५ दक्षः पदचादसृजत स्त्रियः॥४७॥
 ददौ^६ दश स धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। शिष्टाः सोमाय राज्ञे च^७ नक्षत्रास्या ददौ प्रभुः॥४८॥
 तामु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः। गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः॥४९॥
 ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मय्युनसंभवाः। सङ्कल्पाद्दशानात्सपत्न्यात्पूर्ध्वेषां प्रोच्यते प्रजा॥५०॥

मुनय ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। सभेवस्तु श्रुताऽस्मान्निर्दक्षस्य च महात्मनः॥५१॥
 'अद्भगुष्ठाद्ब्रह्मणो'^१ जज्ञे दक्षः किल शुभ्रतः। वामाद्भगुष्ठात्तया चैवं तस्य पत्नी व्यजायत॥५२॥
 कथं प्राचेतसत्वं स^२ पुनर्लभे महातपाः। 'एतन्नः संशयं सूत ध्यास्यातुं'^३ त्वमिहहंसि॥
 दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः॥५३॥

लोमहर्षण उवाच

'उत्पत्तिश्च निरोधश्च'^१ नित्यं भूतेषु भो द्विजाः। अपयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः॥५४॥

तेजस्वी दक्ष आपने तेजस्व अग्नि से दण्ड हुई इस पृथिवी पर फिर प्रजा को बढ़ाएगा^१॥४४॥ तब सोम ने वचन से प्रचेतागण ने त्र्योच त्यागकर वृक्षों से मारिषा को धर्मपूर्वक पत्नी रूप में ग्रहण किया।॥४५॥ विप्रवृन्द ! दक्षो प्रचेताओं से मारिषा ने महान् तेजस्वी प्रजापति दक्ष को सोम के अन्न से उत्पन्न किया॥४६॥ उस दक्ष ने स्थावरो और दो पैर वाले तथा चार पैर वाले जगमा की मानसी सृष्टि कर पीछे स्त्रियों की रचना की॥४७॥ उस प्रभु ने दश न्यायों धर्मों को और तेरह वक्ष्य को दीं। अवशिष्ट नक्षत्ररूपी न्यायों साम राजा को दीं॥४८॥ उन न्यायों से देव, परी, गौ, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सरा और दूसरी जातियाँ उत्पन्न हुईं॥४९॥ विप्रवन्द ! तभी से मैयूनी सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। पहले सबल्प, दशान और स्पसं से प्रजा उत्पन्न हुआ करती थी॥५०॥

मुनिगण बोले—देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस योनियो और महात्मा दक्ष की भी उत्पत्ति हम ने सुनी॥५१॥ ब्रह्मा के अगूठे से शुभांश दक्ष का जन्म हुआ। उसी प्रकार वायें अगूठे से उसकी पत्नी की उत्पत्ति हुई॥५२॥ फिर उस महान् तपस्वी ने प्रचेताओं का पुनश्च कैसे प्राप्त किया ? सूतजी ! आप हमारी इस दावा का समाधान करें कि चन्द्रमा का दौहित्र (दक्ष) चन्द्रमा का ससुर कैसे बना ?॥५३॥

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द ! प्राणिमो म उत्पत्ति और निरोध (मरण) नित्य होत रहत हैं। मृनि और विज्ञान् लोग इसम माहित नहीं हुआ करत॥५४॥ ये दक्ष आदि राजा लोग हर युग म उत्पन्न हात हैं और फिर नष्ट

१। स तपोयता। २। सुतेयु। ३।

४। मत्स्याऽस्मत्समो द्विः। ५। ऽप्या मानसान्दक्षः।

६। ऽसा मय पः। ७। ऽवसात्सुत्रमित्रयः। ८। स ऽदी स दण धः। ९। स. तु। १०। ऽपयः।

११। ऽपयः। १२। ऽपयः। १३। ऽपयः। १४। ऽपयः। १५। ऽपयः। १६। ऽपयः। १७। ऽपयः। १८। ऽपयः। १९। ऽपयः। २०। ऽपयः।

२१। ऽपयः। २२। ऽपयः। २३। ऽपयः। २४। ऽपयः। २५। ऽपयः। २६। ऽपयः। २७। ऽपयः। २८। ऽपयः। २९। ऽपयः। ३०। ऽपयः।

३१। ऽपयः। ३२। ऽपयः। ३३। ऽपयः। ३४। ऽपयः। ३५। ऽपयः। ३६। ऽपयः। ३७। ऽपयः। ३८। ऽपयः। ३९। ऽपयः। ४०। ऽपयः।

युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपा । पुनश्चैव निरर्घ्यन्ते विद्वास्तत्र न मुह्यति ॥५५॥
ज्येष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्व्वं नासीद्विजोत्तमा । तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥
इमा विस्मृष्टि दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् । प्रजावानाम्युत्तीर्णं स्वर्गलोके महीयते ॥५७॥
इति ब्राह्ममहापुराणे स्मृष्टिकथन नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

देवदानवोत्पत्ति-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

देवाना दानवाना च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्ति विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्तय ॥१॥

लोमहर्षण उवाच

प्रजा सृजति व्यादिष्ट पूर्व्वं दक्ष स्वयम्भुवा । यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजा ॥२॥

हो जाते हैं । विद्वान् इष्टम मोहित नहीं होता ॥५५॥ द्विजगण ! पहले इनम ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता का भेद नहीं था प्रत्युत तप और तप का प्रभाव ही मुख्य कारण माना जाता था ॥५६॥ दक्ष की इस चराचर सृष्टि को जो जानता है वह प्रजावान् और आयुष्मान् होकर स्वर्ग में पूजित होता है ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सृष्टि कथन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

देवो और दानवो की उत्पत्ति का वर्णन

मुनिगण बोले—आय लोमहर्षण ! देवता दानव गन्धव नाग और राक्षसा की उत्पत्ति तथा विस्तार प्रवृत्त सुनान की कृपा करें ॥१॥

लोमहर्षण बोले—विप्रगण ! ब्रह्मा द्वारा प्रजा की सृष्टि रचना का आदेश प्राप्त कर दक्ष ने जिस प्रकार प्रजियों की सृष्टि की वह (रचना विधान पहले) सुनिये ॥२॥ प्रारम्भ में प्रभु ने मानसी सृष्टि की रचना की,

१क रा ०त सर्वे दशा ० । २क विपद्यन्ते । ३क ०ति । जम चैव विपत्तिदय पू० । ४क ०मा सु सु० ॥ ५क ग ०चरम् । ६क सूत । ७क ग पूर्वद० ।

मानसान्ध्र्यं भूतानि^१ पूर्यमेवासृजत् प्रभुः। श्रुषीन्देवान् सगन्धर्वान्सुरान्धक्षराक्षसान् ॥३॥
 यदास्य मानसी^२ विप्रा न व्यवर्द्धत वै प्रजा। तदा सञ्चिन्त्य धर्मात्मा प्रजाहेनोः प्रजापतिः ॥४॥
 स मयुनेन धर्मेण सिस्कुर्विविधाः प्रजाः। असिकनीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ॥५॥
 सुतां सुतपसा^३ द्रुक्ता महतीं लोकधारिणीम्। अय पुत्रसहस्राणि वरण्यां^४ पञ्च वीर्यवान् ॥६॥
 असिकन्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः। तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्संविद्वर्द्धयिषून् प्रजाः ॥७॥
 देवपिः प्रियसंबादो नारदः प्राब्रवीदिदम्। नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥८॥
 यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठीं ध्यजीजनत्। दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९॥
 पूर्य स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः। असिकन्यामय वरण्यां^५ भूयो देवपिसत्तमः ॥१०॥
 तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम्। तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्षयथा इति विश्रुता ॥११॥
 निर्म्मम्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः। तत्परोक्षतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ॥१२॥
 ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना। ततोऽभिसन्धिद्वक्त्रे यं दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३॥
 कन्यायां नारदो^६ मह्यं तव पुत्रो भवेदिति। ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ॥
 स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादपिः ॥१४॥

फिर मुनि, देवता, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष और राक्षस योनिमें की रचना की ॥३॥ किन्तु जब मानसी सृष्टि से प्रजा नहीं बढ़ी, तब धर्मात्मा प्रजापति ने प्रजा की वृद्धि के कारण पर अच्छी तरह विचार किया और मयुन धर्म से अनेक प्रकार की प्रजाओं के रचने की इच्छा की ॥४॥ फिर वीरण प्रजापति की अत्यन्त तपस्विनी और लोकधारिणी कन्या असिकनी को पत्नी बनाया। ॥५॥ शक्तिशाली दक्ष प्रजापति ने वीरण-पुत्री असिकनी से पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥६॥ प्रजाओं की बढ़ाने की इच्छा करने वाले उन महाभागों को देखकर प्रियमापी देवपि नारद ने उनसे नाश के लिये और अपने शाप के लिये यह बात कही ॥७-८॥ पितामह कश्यप ने जिस पुत्र-श्रेष्ठ को उत्पन्न किया, वह मुनि नारद दक्ष शाप के भय से कश्यप से दक्ष की कन्या में पहले उत्पन्न हो गया था ॥९॥ फिर देवपियों में श्रेष्ठ कश्यप ने उस मुनिश्रेष्ठ नारद को वीरण प्रजापति की कन्या असिकनी में पिता की तरह उत्पन्न किया ॥१०॥ नारद ने हर्षयथा नाम में विष्णुवत् दक्ष के पुत्रों को मथकर निःसन्देह विनष्ट किया था। तब अत्यन्त पराक्रमी दक्ष नारद का नाश करने के लिये तैयार हो गया ॥११-१२॥ कश्यप ने ब्रह्मर्षियों को आगे बढ़ते दक्ष से याचना की। इससे बाद कश्यप ने दक्ष से प्रतिज्ञा की—॥१३॥ 'आपकी कन्या से मेरा पुत्र नारद उत्पन्न होगा।' तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या कश्यप को दे दी। वह मुनि नारद शाप के भय में फिर उसमें उत्पन्न हुआ ॥१४॥

१ग. ०ति प्रजागिरिखामुत्रम्। २क. ०वीरणस्यसंख रा०। ३ग. तान। ४म. जुष्टां।
 ५क. वीरण्यां न वीरिण्यां। ६क. स वीरिण्यां। ७क. वीरण्यां। ८क. मुनिपुङ्गवः। ९ग. मयि चक्रे।
 १०क. ०दीनय त०।

मनुज ऊचुः

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा । प्रजापतेः सूतव्यं श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५॥

लोमहर्षण उवाच

दक्षस्य पुत्रा ह्ययंश्वा विबद्धं पिपवः प्रजाः । समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१६॥

नारद उवाच

बालिशा वत 'ययं वै नास्या जानीत वै भुवः । प्रमाणं स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥१७॥
अन्तरुद्ध्वंमघश्चैव कथं सृजय' वै प्रजाः । ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशः ॥१८॥
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः । ह्ययंश्वेष्टव्य नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥१९॥
वैरण्यामय पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः । विबद्धं पिपवस्ते तु शबलाश्वास्तथा प्रजाः ॥२०॥
'पूर्वोक्तं वचनं' ते तु नारदेन प्रचोदिताः । अन्योन्यमूचस्ते सर्वे सम्भगाह 'महानृपिः ॥२१॥
श्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः । ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्वाश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥२२॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतो दिशम् । अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३॥

मुनिगण बोले—आयं सूतजी ! महर्षि नारद ने प्रजापति के पुत्रों का वैसे नाश किया—यह बात हम लोग यथार्थ रूप से सुनना चाहते हैं ॥१५॥

लोमहर्षण बोले—प्रजाओं को बढ़ाने की इच्छा रखने वाले दक्ष के पुत्र महाबली हयंश्व नारद के पास आये । नारद ने उनसे कहा—॥१६॥

नारद बोले—दक्ष-पुत्रों ! तुम लोग मूल हैं ही । प्रजा की सृष्टि करना चाहते हो, किन्तु इस पृथिवी के प्रमाण—ऊपर, नीचे और मध्य—को नहीं जानते । कैसे प्रजाओं की सृष्टि-रचना कर सकोगे ? ॥१७॥ मुनि की ऐसी बात सुनकर वे सब विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाने के बाद फिर नहीं लौटती उसी प्रकार वे आज तक अपने-अपने स्थानों से नहीं लौटे ॥१८॥ हयंश्व ने नष्ट हो जाने पर प्रचेता के पुत्र समर्थ दक्ष ने फिर वैरणी से हजार पुत्रों की उत्पन्न किया । उनकी शबलाश्व सजा पड़ी । उन्होंने प्रजाओं को बढ़ाना चाहा ॥१९-२०॥ उनसे भी नारद ने वही बात कही । वे परस्पर कहने लगे—'मुनि ने ठीक कहा ॥२१॥ माइयों का मार्ग जानने के लिये जाना चाहिये । इसमें कोई सदेह नहीं कि पृथिवी का प्रमाण जानकर हम लोग सुख से प्रजाओं की सृष्टि करेंगे ॥२२॥ वे भी उसी मार्ग से विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थित हुए और समुद्र से नदियों की तरह आज तक नहीं लौटे हैं ॥२३॥ तब से माई की लोख में गया हुआ माई शीघ्र नष्ट हो जाता

१क. ऋषयः । २क. ख ० पतेस्तु मयवज्ज्योतुः । ३. ० वास्ते सर्वे वि० । ४क. भूयो । ५क. रक्षय । ६क. दिशम् । ७क. ० न । वीरण्याः । ८क. ० चनास्ते तु । ९क. ख ० देनैव वि० । १०क. ० हामुनि । आ० ।

तदा प्रभृति वै ग्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः^१। प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥२४॥
 तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः। यष्टिं ततोऽसृजत् कन्या^२ वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥२५॥
 तास्तदा प्रतिजग्राह 'आभ्यर्थ्य कश्यपः प्रभुः। सोमो धर्मश्च भो विप्रास्तथैवाप्ये महर्षयः ॥२६॥
 ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२७॥
 द्वे चैव बहूपुत्राय चेवाङ्गिरसे तथा। द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि^३ मे श्रुणु ॥२८॥
 अरुण्यती वसुर्यामि^४ लम्बा^५ भानुमरत्वती। सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विदवा च भो द्विजाः ॥२९॥
 धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि^६ बोधत। विश्वेदेवास्तु विदवायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥३०॥
 मरत्वत्या मरत्वन्तो वसोस्तु वसवः^७ सुता^८। भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः ॥३१॥
 लम्बायाश्चैव 'घोषोऽथ नागवीथी च^९ 'यामिजा। 'पृथिवीविषयं सध्वमरुण्यत्यां व्यजायत ॥३२॥
 'सङ्कल्पायास्तु^{१०} 'विदवास्ता जज्ञे सङ्कल्प एव हि। 'नागवीथ्याञ्च^{११} 'यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥३३॥
 परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ। सर्वा नक्षत्रनाम्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिता ॥३४॥
 ये त्वन्ये ह्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमा^{१२}। वसवोऽष्टौ समाहयातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३५॥
 आपो ध्रुवश्च^{१३} 'सोमश्च^{१४} 'धवदञ्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६॥
 आपस्य पुत्रो वैतण्ड्य^{१५}। 'श्रमः^{१६} 'श्रान्तो मुनिस्तथा। ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो 'लोकप्रकालनः ॥३७॥

हे। विद्वान् को ऐसा नहीं करता चाहिए ॥२४॥ दक्ष प्रजापति ने उन पुत्रों को नष्ट जानकर वैरणी से साठ कन्यायें उत्पन्न की—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उन कन्याओं को प्रम कश्यप, सोम, धर्म तथा दूसरे महर्षियों ने पत्नी बनाने के निमित्त ग्रहण किया ॥२६॥ दशने दश कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहूपुत्र को, दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशाश्व को दी। अब उनके नाम मुझसे सुनिये—॥२७-२८॥ विप्रवृन्द! अरुण्यती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विदवा—ये दश कन्याएँ धर्म की पत्नी हुईं, उनकी स्तान्तावे के नाम सुनें—॥२९,३०॥ विदवा से विश्वेदेव, साध्या से साध्व, मरत्वती से मरत्वान्, वसु से वसु भानु से भानु, मुहूर्ता से मुहूर्त और लम्बा से घोष उत्पन्न हुए। यामि से नागवीथी उत्पन्न हुई ॥३०-३१॥ पृथिवी के सब विषय अरुण्यती से उत्पन्न हुए। सद्यार के सब सत्त्व सङ्कल्पा से उत्पन्न हुए। नागवीथी यामिनी से वृषल उत्पन्न हुआ ॥३२-३३॥ प्राचेतानुन दक्ष ने बाद में जो कन्यायें सोम को दीं, वे सब नक्षत्र नाम से ज्योतिष में बड़ी गयी हैं ॥३४॥ जो दूसरे स्थानिप्राप्त तथा ज्योति के आगे चलने वाले देव हैं, वे आठ वसु कहलाये। उनका मैं यहाँ पर विस्तृत-वर्णन करूँगा ॥३५॥ वे वसु आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनन, प्रत्यूष और प्रभास—इन नामों से स्थान हुए ॥३६॥ आपने वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त और मुनि नामक पुत्र हुए।

१क-भ्य र। २क-न्या वैरिण्याः। ३क-न्या वैरिण्याः। ४क-भार्या। ग-भार्यावे।
 ५-रिषनः। ५स-नि बोधत। अ०। ६न-भुर्दामी। ७न-नरवा। ८न-नि यानि च। वि०।
 ९न-सकनया। मा०। १०न-स्मृता। ११न-पायदव। १२न-जामिजा। १३-०-विषया विषये स०।
 १४न-न्यायां तु दर्शयाम। १५न-वर्तयाम। १६न-वीथी च जामि०। १७न-न्यां विदवा-
 न्यायाः। १८न-नय वलरवे०। १९न-परतवे०। २०न-वैतण्ड्य। २१न-स्तान्ताः। २२न-कन्यास्तः।

सोमस्य भगवान् वच्चा वच्चास्वी येन जायते । धवस्य पुत्रो द्रविणो हृतहृव्यवहस्तया ॥३८॥
मनोहराया शिशिर प्राणोऽय रमणस्तस्या । अनिलस्य शिवा भार्या तस्या पुत्रो मनोजव ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥३९॥
अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बेभिया वृत । तस्य शाखो विशालश्च नैगमेयश्च पृष्ठज ॥४०॥
अपत्य कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृत । प्रत्यूषस्य विबु पुत्रमृषि नाम्नाय देवलम् ॥४१॥
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनोविणौ । बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्रौ ब्रह्मवादिनी ॥४२॥
'योगसिद्धा जगत्' कृतस्नमसवता' विचचार ह । प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु ॥४३॥
विदवकर्म महाभागो प्रत्या 'जने' 'प्रजापति । कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानाञ्च वादिक ॥४४॥
भूषणानाञ्च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वर । य सर्वेषां विमानानि दवतानां चकार ह ॥४५॥
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन । सुरभी' कश्यपाद्द्राणेकादश विनिष्क्रमे ॥४६॥
महादेवप्रसवेन तपसा भाविता सती । अजंकपादहिबुध-यस्त्वष्टा' रुद्रश्च वीर्यवान् ॥४७॥
हरश्च बहुरूपश्च श्यम्बकश्चापराजित । घृपाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥४८॥
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च द्विजोत्तमा । 'एकादशेते विहयाता रद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥४९॥
शत त्वेव समाख्यात रुद्राणाममितीजसाम् । पुराणे मुनिशादर्बूला यैर्ध्यापित सचराचरम् ॥५०॥

ध्रुव का पुत्र लोक-सहाराक तथा शक्ति सम्पन्न काल हुआ ॥३७॥ सोम का (पुत्र) भगवान् वचस् हुआ जिससे लोग तेजस्वी बनते हैं । धव के पुत्र द्रविण और हृतहृव्यवह हुए । मनोहरा से शिशिर, प्राण और रमण हुए । अनिल की स्त्री शिवा थी । उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञातगति हुए । सरपत के गुच्छों में सुषमा सम्पन्न अग्नि का पुत्र कुमार उत्पन्न हुआ । उसने शाख विनाश (नामक) पुत्रों के अलावा पीठ से उत्पन्न नैगमेय (नामक पुत्र) हुआ ॥३८-४०॥ कृत्तिका से उत्पन्न होनेवाली सतान कार्तिकेय कहलायी । प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि हुआ ॥४१॥ देवल के भी क्षमावान् और मनोपी दो पुत्र हुए । स्त्रियों में श्रष्ट ब्रह्मवादिनी याग से सिद्ध आर आशक्ति से रहित बृहस्पति का बहन सपूण ससार में विचरने लगी ॥४२॥ वह प्रमास नामक आठव वसु की स्त्री हुई जिससे महामाग प्रजापति विचवर्मा की उत्पत्ति हुई जो हजारों शिल्पों का निर्माता देवताओं का शिल्पी सब आमरणों का निर्माता और सर्वथष्ट शिल्पी हुआ ॥४३-४४॥ उसने देवताओं के सारे विमान बनाये और उस महामा की शिल्पविद्या से मनुष्य जीविका उपार्जन करते हैं ॥४५॥ महादेव जी की प्रसन्नता से तप सिद्धा सती सुरभी ने कश्यप से ग्यारह रुद्रों की रचना की ॥४६॥ ब्राह्मणश्रष्टी । अजंकपाद अहिबुध य त्वष्टा शक्तिशाली रू हर, बहुरूप श्यम्बक अपराजित घृपाकपि घामु वपनी रैवत मृगव्याध शर्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र तीनों लोक के ईश्वर कहलाये ॥४७-४९॥ मुनिवयवृद्ध । इस तरह पुराण में अत्यन्त तेजस्वी एक सौ रुद्र प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने चराचर सहित ससार को व्याप्त किया ॥५०॥

१क बलस्य । ख वरस्य । रल तु । ३ख ०म्बेयु यो वृत । ४ग ०ह्रवादिनी । यो० । ५ कतप सिद्धा । ६क ०मथान्ता वि० । ७ख ०सक्त वि० । ८ख हि । ९क यस्या । १०ख जात । ११ख युवपति । १२ सुरभि । १३ ०बुधस्तव० । १४ख ०दधेति वि० ।

दारान् श्रृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः। अदितिदितिदंनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१॥
 सुरभिर्धनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रुर्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२॥
 पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः। तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५३॥
 उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। हितार्थं सव्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥५४॥
 आगच्छत द्रुत देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै। मन्वन्तरे प्रसूयामस्तत्रः श्रेयो भविष्यति ॥५५॥

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ता तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। मारीचात् कश्यपाज्जातास्त्वदित्या दक्षकन्यया ॥५६॥
 तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि। अयमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तयैव च ॥५७॥
 विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च। अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८॥
 सप्तविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः। तासामपत्यान्यभवन 'दीप्तान्यमिततेजसः ॥५९॥
 अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह पोडश। बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो 'विद्युतः स्मृताः' ॥६०॥
 चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वं ऋचो ब्रह्मपिसत्कृताः। कृशाश्वस्य च देवयंदेवप्रहरणाः स्मृताः ॥६१॥
 एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत् कामजाः ॥६२॥
 तेषामपि च भो विप्रा निरोषोत्पत्तिरुच्यते। यया सूर्यस्य गगन उदयास्तमयाविह ॥६३॥
 एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे। 'दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपाविति नः धृतम् ॥६४॥

टिप्पण्यो ! प्रजापति कश्यप की पत्नियों के नाम सुनिये—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि। विप्रगण ! उनकी संतानों के सम्बन्ध में सुन लीजिये ॥५१-५२॥ पूर्व मन्वन्तर में तुषिता नामक बारह उत्तम देवता हुए। वे वैवस्वत मन्वन्तर में एक-दूसरे से कहने लगे—॥५३॥ 'देव-ताम्रो ! चाक्षुष मन्वन्तर आने पर सब लोगों के कल्याण के लिये परस्पर एकत्रित होकर दीध आओ। अदिति में प्रवेश कर मन्वन्तर में हम लोग जन्म लें। इससे हमारा कल्याण होगा ॥५४-५५॥

लोमहर्षण बोले—ये सब इस तरह कहकर चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि-पुत्र कश्यप से दक्ष की कन्या अदिति में उत्पन्न हुए ॥५६॥ कश्यप से फिर विष्णु और इन्द्र की उत्पत्ति हुई। अयमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अश और महातेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाये ॥५७-५८॥ सोम की छत्तारह महासती पत्नियों की संतानें अत्यन्त तेजस्वी हुई ॥५९॥ अरिष्टनेमि की त्रियों के सोलह संतानें हुई। विदन् बहुपुत्र के चार विद्युत संतान हुई ॥६०॥ पहले चायुष मन्वन्तर में ब्रह्मर्षियों से समानित ऋचायें प्रकाशित हुई। देविषु कृशाश्व से देवप्रहरण नामक गण उत्पन्न हुए ॥६१॥ ये देवगण हजार युगों के अन्त में फिर जन्म ग्रहण करते हैं। इनमें तीर्थाय नाम से उत्पन्न होते हैं ॥६२॥ ब्राह्मणों ! उनकी भी उत्पत्ति और लय होता है। जैसे आकाश में सूर्य का उदय और अस्त होता है, उसी तरह देव-समूह युग-युग में होते हैं ॥६३॥ हमने सुना है कि

१ग. ०प्तानामतित०। २क. संयुता। ३ग. ०ठा। प्रत्यङ्गिरवः श्रेष्ठा ऋ०। ४क. पूर्वमूमवा कीर्तित०। ५क. ०मने विह। ६. ०मने इह। ६क. दित्या।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च धीर्यवान् । सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥६५॥
 संहिकेया इति श्याता यस्याः पुत्रा महाबलाः । हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितोजसः ॥६६॥
 ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव धीर्यवान् । संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद् ह्लादपुत्रो ह्रदस्तया ॥६७॥
 ह्रदस्य पुत्रो द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च । विरोचनस्तु प्राह्लादिवर्तिलज्जे विरोचनात् ॥६८॥
 बलैः पुनशतं स्वासीद्बाणज्येष्ठं तपोधनाः । धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥६९॥
 कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरिपेयमादयः । बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पञ्चपतेः प्रियः ॥७०॥
 पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम् । पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥७१॥
 'हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः । भर्भरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तया ॥७२॥
 'महानाभश्च विप्रान्तः कालनाभस्तथैव च । अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः ॥७३॥
 तपस्विनो महाधीर्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान् । द्विमूर्द्धाशंकुकर्णश्च तथा ह्यशिरा विभुः ॥७४॥
 अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा । मारोचिर्मघर्वाश्चैव इल्वलः स्वसूमस्तया ॥७५॥
 विशोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ । इन्द्रजित्सर्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥७६॥
 एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः । वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७॥
 स्वर्भानुर्वृषपर्वा च विप्रचित्तिश्च धीर्यवान् । सध्वं एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजजिरे ॥७८॥

कश्यप से दिति के दो शक्तिशाली पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष । तथा सिंहिका नाम की कन्या उत्पन्न हुई, जो विप्रचिति का व्याही गई, और जिसके महाबली पुत्र संहिकेय (राहु) गण के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥६५-६५३॥
 हिरण्यकशिपु व महातेजस्वी चार पुत्र—ह्लाद, अनुह्लाद, पराक्रमी प्रह्लाद और चौथा संह्लाद हुए । उसी तरह ह्लाद का पुत्र ह्रद हुआ ॥६६-६७॥ ह्रद के दो वीर पुत्र हुए—शिव और काल । प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ । विरोचन स बलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६८॥ मुनिवृन्द । बलि के धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि इत्यादि नाम से विख्यात सौ पुत्र हुए ॥६९३॥ उन सब में ज्येष्ठ बाण अत्यन्त बलवान् और शिव का प्रिय पान था ॥७०॥ पहले कल्प में बाण ने उमापति भगवान् शिव को प्रसन्न कर मैं 'आपके' पाम ही विहार करें' ऐसा वरदान उनसे मागा ॥७१॥ हिरण्याक्ष के पुत्र मर्भर, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाभ, विप्रान्त और कालनाभ बड़े बलवान् और विद्वान् हुए ॥७२३॥ दनु के अत्यन्त पराक्रमी, तपस्वी और महाशक्तिशाली सौ पुत्र हुए । उनमें से प्रमुखों के नाम बताता हूँ—॥७३३॥ द्विमूर्धा, शंकुकर्ण, शक्तिशाली ह्यशिरा, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मारोचि, मघवान्, इल्वल, स्वसूम, विशोभण, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सर्वजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, महाबलवान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वर्भानु वृषपर्वा, शक्तिशाली विप्रचिति । ये सब दनु के पुत्र कश्यप में उत्पन्न हुए ॥७४-७८॥ इन सब महाबली दानवों में विप्रचिति प्रधान था ।

१ ख पुत्रोऽप्यापुर्वे शि० । २ क गर्दमश्च । ३ ख सुता पञ्च वि० । ४ ख ऊर्जरा । ग. हर्षवि ।
 ५ ख महामागश्च । ६ क य शङ्कुशिरा । ७ क द्विजा । ८ ख एकचक्रो । ९ ग ऽहस्यावरश्च ।

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः^१ सुमहाबलाः। एतेषां^२ पुत्रपौत्रन्तु न तच्छयं द्विजोत्तमाः ॥७९॥
 प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम्। स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥८०॥
 'उपदीप्तिर्ह्यशिराः शर्मिष्ठा वार्यपर्वणो। पुलोमा कालिका चैव वंशवानरसुते उभे ॥८१॥
 बह्वपत्ये 'महापत्ये' मरीचेस्तु परिग्रहः। तयोः पुत्रसहस्राणि पृथिद्वानवचन्दनाः ॥८२॥
 चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः^३। मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ॥८३॥
 पौलोमा, कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः। अवघ्पा देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८४॥
 पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना। ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिवारणाः ॥८५॥
 सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा। दंत्यदानवसंयोगाज्जातारतोद्यपराक्रमाः ॥८६॥
 'संहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः'। वंशः शल्पश्च^४ बलिनी नलश्चैव तयाबलः ॥८७॥
 'धातापिर्नमुचिश्चैव' इत्वलः स्वसूतस्तथा। 'अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥८८॥
 'सरमानस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्यवान्'। एते यं^५ दानवाः^६ श्रेष्ठा दनोर्वंशविवर्धनाः ॥८९॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः। संह्लादस्यतु दंत्यस्य निवातकवचा कुले ॥९०॥
 समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भाषितात्मनः। तिस्रः कोटयः सुतास्तेषां मणिवर्षा निवासिनः ॥९१॥
 अवध्यास्तेऽपि देवानामर्जुनेन निपातिताः। पट्सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः ॥९२॥

द्विजवर्ष ! बहुत और अन्त होने के कारण इनके पुत्र-पौत्रों को नहीं गिना सकता हूँ ॥७९॥ स्वर्गनु को कन्या प्रभा हुई। पुत्रोमा की शची हुई। उपशानवी ह्यशिरा की और शर्मिष्ठा वृषपर्वा की (कन्या) हुई ॥८०॥ वंशवानर की पुलोमा और कालिका—ये दो कन्यायें बहुत-सी सतान वाली हुईं। उनका विवाह मरीचि से हुआ। साठ हजार दानव पुत्र इनसे उत्पन्न हुए ॥८१-८२॥ महान् तपस्वी मरीचि ने दूसरे चौदह सौ हिरण्यपुर वासिन्दाओं को उत्पन्न किया ॥८३॥ वे हिरण्यपुरवासी महाबलवान् दानव पौलोम और कालकेय नाम से ख्यात हुए, जो ब्रह्माजी की कृपा से देवताओं से अवघ्य (न मारने योग्य) होने हुए भी अर्जुन के द्वारा मारे गये ॥८४॥ उनके अनिष्टित वृत्त में महाभाषिताली समस्त दानव विप्रचित्ति से सिंहिका में उत्पन्न हुए। विप्रचित्ति के तेरह पुत्र दंत्य और दानव के गणों में बड़े पराक्रमी और सिंहिकेय नाम से प्रसिद्ध हुए ॥८५-८६॥ उनके नाम ये हैं—वनीवद और माय, नल, बल, धातापि, नमुचि, इत्वल, स्वसूत, अञ्जिक, नरक, कालनाभ, सरमान और दानि-शारी स्वरकल्प। वे श्रेष्ठ दानव दनु के वंश की बान्ने वाले हुए ॥८७-८८॥ उनके सैकड़ों और हजारों पुत्र और पौत्र हुए। संह्लाद नामक दंत्य के कुल में निवातकवच नामक बड़े तपस्वी पुत्रगण उत्पन्न हुए ॥९०॥ उनके मणिवर्षी में निवास करने वाले तीस करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए। वे भी देवताओं से न मारने योग्य हुए और अर्जुन के द्वारा मारे गये।

१ कं नका वै म०। २ गं गं मयस्य तु। ३ गं गं नदानवी ह्य०। ४ कं गं महापत्ये। ५ गं गं मरी०। ६ अट्टिष्य दिन०। ७ गं न०। मरी०। ८ कालकेया। ९ कं गं। रित्ता स्वयम्। गं गं। शत शान्तिव०। १० गं वर्यो। ११ कं गं। नारी मम०। १२ कं न्येय। मृग०। १३ कं अत्रि०। १४ कं नानामन्त्रवै। १५ कं तु। १६ कं ननये०।

'श्रीञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका । 'श्रीञ्ची' तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥९३॥
 श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासानृपाश्च गृध्रपि । शुचिरोदकानृपक्षिणानृसुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥९४॥
 अश्वानृष्टानृ गदर्शभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः । विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारणौ ॥९५॥
 'गरुडः पततां श्रेष्ठो दाहणः स्वेन कर्मणा । सुरसायाः सहस्रानृ सर्पाणाममितौजसाम् ॥९६॥
 अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम् । काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ॥९७॥
 सुपर्णवशगा नापा जशिरे नैकमस्तकाः । येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥९८॥
 ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतराबुधौ । एलापत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥९९॥
 महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ । कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००॥
 शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलौ वामनस्तथा । नट्टपः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः ॥१०१॥
 तेषां पुत्राश्च पोत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः । चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशितान् ॥१०२॥
 गणं श्रोधवशं विप्रास्तस्य सर्वेषु च दंष्ट्रिणः । स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥१०३॥
 गान्तु वै जनयामास 'सुरभिर्महिषीस्तथा । इरां वृक्षलता वलीस्तृणजातीश्च सर्व्वेशः ॥१०४॥
 खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरस्तथा । अरिष्टा तु महासिद्धा गंधर्व्वानिमितौजसः ॥१०५॥

ताम्रा के छह भाग्यशालिनी कन्याय हुई ॥९१-९२॥ श्रीञ्ची, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका । ब्राह्मण-
 तिरोमणि । श्रीञ्ची ने उलूको (उलूक पक्षी) और प्रत्यलूकका को, श्येनी ने श्येनी (बाजो) को, भासी ने भासी को,
 गृध्री ने गिद्धो को, शुचि ने जल पक्षियों को और सुग्रीवी ने घोडो, ऊँडो और गधो को उत्पन्न किया । यह ताम्रा-
 वश कहलाया ॥९३-९४॥ विनता क दो प्रसिद्ध पुत्र हुए—गरुड और अरण ॥९५॥ पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड अपन
 कम से समकर हुआ । द्विजवृन्द । सुरसा से उत्पन्न तेजस्वी, आकाशचारी, मनस्वी और अनक फन वाले हजार
 सौ हुए । कद्र के महामृ शक्तिशाली किन्तु गम्भ के अधीनस्थ और अनेक शिरवाले नाग हुए, जिनमें सदा शेष,
 वासुकि और तक्षक प्रधान रहे ॥९६-९७॥ ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शङ्ख, कर्कोटक, धनञ्जय,
 महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र दुर्मुख, सुमुख, शङ्ख, शङ्खपाल, कपिल, वामन, नट्टप, शङ्खरोमा,
 मणि इत्यादि नामों के नाम हैं ॥९९-१००॥ उनके सैकड़ों हजारों पुत्र-पौत्र हुए । द्विजगण । उन क्रूर सर्पों की
 सख्या चौदह हजार थी ॥१०१॥ वे सब श्रोणी और वट्टे वट्टे दाँतो वाले थे । जल और स्थल में उत्पन्न पक्षी पृथिवी की
 सतान मान गये हैं ॥१०२॥ सुरभि ने गायी और मैमोका उत्पन्न किया । इरा ने वृक्षों, लताओं और सुपर्ण तृण जाति
 को उत्पन्न किया ॥१०४॥ खसा से यक्ष और राक्षसों की एवम् मुनि से अप्सरा की उत्पत्ति हुई । महासिद्ध अरिष्टा ने
 अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वों का उत्पन्न किया ॥१०५॥ ये स्थावर और जगम वनस्पती वे वंशज कहलाते हैं, जिनके

१ ख ऋची । २ ख ऋची । ३ ग ०ञ्ची श्रीञ्चानजनयदुलू । ४ ख ग वंशा प्र० ।
 ५ ग ग ०तिता । वि० ६ क ख ०याश्च पुत्री द्वावरणी गरुडस्तथा । ७ ख ग सुपर्ण । ८ क ०ष्ट्रमहाबली । कु० ।
 ९ ख ०लो मानस्त० । १० क ०णि सर्पाणा० । ११ ग ०हिपास्त० । १२ क ०श । शरमा य० ।
 १३ क. ख महासत्त्वा ।

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्याणुजङ्गमाः। येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६॥
 एषां मन्वन्तरे विप्राः सर्गः। स्वारीक्षिणे स्मृतः। वैवस्वतेऽतिमहतिं वारुणे दितते क्रतौ ॥१०७॥
 जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते। पूर्व्वं यत्र समुपन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८॥
 पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः। ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९॥
 दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्। कश्यपस्तु प्रसन्नारामा सम्पन्नाराधितस्तथा ॥११०॥
 वरेण च्छन्दयामास सा च वशे वरं तदा। पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥१११॥
 स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपा। दत्त्वा च धरमत्युग्रो नारीचं समभाषत ॥११२॥
 इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदो शतम्। यदि धारयसे शोचतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३॥
 तयेत्यभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः। धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४॥
 ततोऽभ्युपागमद्विषां गर्भमाधाय कश्यपः। रोधयन् वै गण श्रेष्ठं देवानाममितौजसम् ॥११५॥
 तेजः संहृत्य दुर्धर्षमवध्यममरेरपि। जगाम पर्वताप्येव तपसे शशितप्रता ॥११६॥
 तस्यादचंबान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः। जाते वर्षशते चास्या वदशान्तरमध्वयुतः ॥११७॥
 अहृत्वा पादयोः शीघ्रं दितिः शयनमाविशत्। निद्रां चाहारयामास तरयां कुक्षिं प्रविश्य सः ॥११८॥
 यत्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं म्यकृन्तयत्। स पाटघमानो गर्भोऽयं वज्रेण प्रररोद ह ॥११९॥

सैवर्षी-हजारो पुत्रयोग है ॥१०६॥ द्विअण' स्वारीक्षिण नामक मन्वन्तर मे यह मृष्टि हुई। अब धैवरवन नामक अत्यन्त महान् मन्वन्तर मे वरुण ने विभूत यज्ञ मे आहुति देते हुए ब्रह्माग्नी को प्रजा-मृष्टि के वारे मे मैं बहूँया ॥१०७॥ ब्रह्मा न पहले सात महाविषयो की मानगी मृष्टि की थी ॥१०८॥ द्विअण्द' देव-दानव-मुञ्च मे अपने दैत्य-गुहो के मर जाने पर दिनि ने कश्यप का मनुष्ट किया ॥१०९॥ दिनि द्वारा सम्पूजित प्रसन्न ऋषि कश्यप ने उसमे वर मांगने के लिए कहा। अब उसने इन्द्र के वर के लिये अत्यन्त नेत्रवी समर्थ पुत्र को वर-दान रूप मे माँगा तो उस महान् सपम्बी ने उसी अभीष्ट वरदान दे दिया। वर देने के बाद अग्नि उग्र होकर कश्यप ने दिनि मे कहा—॥११०—११२॥ 'तुम्हारा पुत्र इन्द्र हन्ता होगा, यदि तुम पवित्रतापूर्वक व्रत करते हुए सो वर्षों तक गर्भ धारण करा ॥११३॥ मुनिश्रेष्ठ' उस देवी ने महान् तपस्वी स्त्राणी मे 'ऐसा ही करेगी' कहकर पवित्रतापूर्वक गर्भ धारण किया ॥११४॥ अब कश्यप अत्यन्त तेजस्वी और श्रेष्ठ देवगण के रोकते हुए देवताओं से भी अवश्य अपने उग्रुष्ट तेज की दिनि के गर्भ मे स्थापित करने तपस्या के लिये पर्वत पर चले गये ॥११५ ११६॥ इन्द्र दिनि के गर्भ मे प्रवेश करने का अवसर तारने लगा। तीसरे धीन जाने पर इन्द्र को अवसर मिला ॥११७॥ (एक दिन) दिनि बिना पैर धोये राग्या पर जाकर मा गई। हाथ मे वज्र लिए हुए इन्द्र ने उसने पेट मे पैठ कर (बस मे) उस गर्भ के छान टुकड़े कर दिए ॥११८॥ वज्र मे गांठिन किए जाने वाला गर्भ (विधन

१ क. १११। २ क. ए३। ३ क. सर्वे। ४ क. स्मृता। ५ क. स विप्राः। ६ क. ० मययो।
 ७ क. ० रीषयामः। ८ क. ० पायमापय गर्भमाधाय वारुणः। ९ क. ० वज्र। १० क. ऊन।
 ११ क. ह।

मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरथाश्रवीत् । सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रपितः पुनः ॥१२०॥
 एकैकं सप्तधा चक्रेः वज्रेणैवारिकर्षणः । मरुतो नाम ते देवाः बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥१२१॥
 यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन् । देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१२२॥
 तेषामेवं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः । रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम् ॥१२३॥
 निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् । त्रयशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वार्णि भो द्विजाः ॥१२४॥
 स हरिः पुरयो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः । पञ्चन्यस्तपनोऽन्तस्तस्य सध्वमिदं जगत् ॥१२५॥
 भूतसर्गमिमं सम्प्राप्तवानतो द्विजसत्तमाः । नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥१२६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवसुराणामुत्पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्याभिषेक-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

‘अभिविद्याधिराजेन्द्र’ पृथुं वैन्यं पितामहः । ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेत्समुपचक्रमे ॥१॥

यितु) रोने लगा ॥११९॥ इन्द्र ने उगमे कहा—‘मन रोओ।’ उस गर्भ के सात मास हो गये। शत्रु को दमन करने वाले इन्द्र ने जीव करके ध्वज ही से एक एक के सान सान टुकड़े कर दिये ॥१२०॥ विप्रवर्ष के मरुत् (वायु) नामक देवता हुए ॥१२१॥ जैसे इन्द्र ने कहा, वैसे ही वे उनवासो वायु देवता इन्द्र के सहायक बन गये ॥१२२॥ द्विजवर्ष । इस प्रकार उत्पन्न हुए प्राणिमो तथा अत्यन्त तेजस्वी देवताओ के समूह का प्रसन्न करने वाले हरि न राजा पृथु के बाद के राज्या को प्रत्येक समूह में प्रजापतिया को दे दिया ॥१२३-१२४॥ द्विजवर । वही हरि पुरण, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति मघ, मूर्ध और अन्त (शेष) कहलाता है। उससे यह सपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है ॥१२५॥ जो व्यक्ति इस प्राणि-सृष्टि को जानता है, उसका फिर जन्म नहीं होता, परलोक का तो उस भय ही क्या है ? ॥१२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में देवता और राक्षस का उत्पत्ति कथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

पृथु से लेकर सभी देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

लोमहर्षण बोले—वैन के पुत्र पृथु का राज्याभिषेक कर ब्रह्मा क्रम से राज्यों का वितरण करने लगे ॥१॥

१ क अनरवाप ह। २ स बाल। ३ क हरि। ग हवि। ४ क अपतिम्। क०। ग अपति। क०। ५ व अपसा व्यक्त कृष्ण स०। ६ ग ओ व्यक्तस्त०। ७ क न च। ८ क अपापयन्त्र रा०। ९ ग अचान्द्रि०।

द्विजानां वीरधा चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा । यजानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२॥
 'अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्वर्यं पतिम् । आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥३॥
 प्रजापतीनां दक्षं तु भरतामथ वासवम् । दैत्यानां दानवानां वै प्रह्लादममितोजसम् ॥४॥
 वैवस्वतं पितृणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् । यक्षाणां राक्षसानाञ्च पायिवानां तथैव च ॥५॥
 सर्व्वभूतपिशाचानां गिरीशं शूलपाणिनम् । शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ॥६॥
 गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् । नागाणां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥७॥
 वारणानां तु राजानमैरावतमथादिशत् । उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडञ्चैव पक्षिणाम् ॥८॥
 मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषन्तु गवा पतिम् । वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाम्भ्यषेचयत् ॥९॥
 एवं विभज्य राज्यानि 'क्रमेणैव पितामहः । दिशां पालानथ ततः स्थापयामास स प्रभुः ॥१०॥
 पूर्व्वस्या दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः । दिशं पालं सुघन्वानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥११॥
 दक्षिणस्यां दिशि तथा वर्द्धमस्य प्रजापतेः । पुत्रं 'शङ्खपवं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१२॥
 पश्चिमस्या दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् । केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१३॥
 तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः । उदीच्यां दिशि दुद्रुघं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१४॥
 तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सप्ततना । यथाप्रदेशमद्यापि धर्मणेन प्रतिपात्यते ॥१५॥
 'राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेतैरराधिपैः । वेददृष्टेन विधिना 'राजा राज्ये तराधिपः ॥१६॥

ज्ञात्वा, रत्ना, नक्षत्र, ग्रह यत् और तपस्या का राज्य में उन्होंने सोम की अभिविक्त किया ॥२॥ जल का राज्य वरुण को दिया और कुवेर को राजा का कारवागी बनाया । विष्णु को आदित्या का राजा, अग्नि को वसुओं का, दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतो का और अत्यन्त तेजस्वी प्रह्लाद को दैत्यो और दानवों का, सूर्यपुत्र यम को पितरों का तथा यक्ष, राक्षस राजा, सम्पूर्ण मृत और पिशाचों का 'वामी शूलपाणि महादेव जी को बनाया ॥३॥ हिमालय को पहाड़ों का राजा, समुद्र को नदियों का, विनरथ को गन्धर्वों का, वासुकि को नागों का, तक्षक को साँपों का, ऐरावत हाथियों का, उच्चैः श्रवा को घोड़ों का, गरुड को पक्षियों का, बाघ को मृगों का, बिल को गौओं का और वरुण को वनस्पतियों का राजा बनाया ॥४॥ इस प्रकार क्रमशः राज्या को बाँटकर प्रभु ब्रह्मा ने दिशाओं की स्थापना की ॥१०॥ पूर्व दिशा का राजा वैराज प्रजापति के पुत्र सुघन्वा को बनाया ॥११॥ दक्षिण दिशा में वर्द्धम प्रजापति के पुत्र शङ्खपद को राजा बनाया ॥१२॥ पश्चिम दिशा का राजा रजस् के पुत्र महात्मा केतुमान् को बनाया ॥१३॥ और उत्तर दिशा में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र प्रचक्षु तक्षरी हिरण्यरोमा को राजा बनाया ॥१४॥ उन राजाओं द्वारा अब तक सातों द्वीप, नगर और प्रदेश सहित इस पृथिवी का धर्मपूर्वक पालन हो रहा है ॥१५॥ इन राजाओं ने राजसूय धाम में अभिविक्त पृथु को वेद में बतलाये हुए विधान के अनुसार राजा बनाया ॥१६॥

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि। वैवस्वताय मनवे पृथिव्यां राज्यमादिशत् ॥१७॥
तस्य विस्तरमाह्वयस्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह। भवतां चानुकूल्याय यदि श्रोतुमिहेच्छस्य।
महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम् ॥१८॥

मुनय ऊचुः

विस्तरेण पृथोजन्म लोमहर्षण कीर्तय। यथा महात्मना तेन दुग्धा वेयं वसुधरा ॥१९॥
यया वापि नृभिर्दुग्धा यया धेर्वमहर्षिभिः। यया दैत्यैश्च नागैश्च ग्रन्था यक्षैर्यया द्रुमैः ॥२०॥
यया शैलः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमः। राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यया दुग्धा वसुधरा ॥२१॥
तेषां पात्रविशेषांश्च ववन्तुमर्हसि सुव्रत। अस्तक्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपुध्वंश ॥२२॥
यस्माच्च कारणात् पाणिर्वैणस्य मथितः पुरा। वृद्धमहर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय ॥२३॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुष्व कीर्तयिष्यामि पृथोवैण्यस्य विस्तरम्। एकाप्रां प्रयताश्चैव पुण्याथं चै 'द्विजपंभा' ॥२४॥
नाशुवे क्षुद्रमनसो नाशित्यस्याव्रतस्य च'। कीर्तयेयमिदं विप्राः कृतघ्नायाहिताय च ॥२५॥
स्वर्ग्यं' यशस्यमायुष्य धन्य वेदैश्च सम्मितम्। रहस्यमपिभिः प्रोक्तं शृणुष्व वै दद्यातायम् ॥२६॥
यदचेम' कीर्तयेत्त्रितयं पृथोवैण्यस्य विस्तरम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम् ॥२७॥

इत्येव अनंतरं अत्यंत तेजस्वी चाक्षुष भवन्तरं वीत जाने पर वैवस्वत मनु को पृथिवी का राज्य चलाने के लिए ब्रह्मा ने आदेश दिया ॥१७॥ यदि आप मुनना चाहेंगे तो उस वैवस्वत मनु का विस्तृत वर्णन मैं आप लोगों के बख्शान के लिये कहूँगा। यह महान् चरित्र पुराण में चित्रित किया गया है ॥१८॥

मुनियो ने कहा—आर्य लोमहर्षण! पृथु की जन्म क्या का विस्तृत वर्णन कीजिये। जिस प्रकार उस महात्मा ने इस पृथिवी का दोहन किया, या जैम राजाभा ने दन्तारो ने महर्षिया ने दैत्या ने, नागा ने यक्षा ने, वृक्षा ने, पहाड़ों के, पिशाचा ने गयकों ने, द्विजवरो ने और महापराक्रमी राक्षस न पृथिवी का दुग्धा उनको मित्र मित्र पाशा को, चखड़ों तथा दूध को और दुहने वाला का ब्रमश बतलाइये ॥१९ २०॥ भगवन ! पहले जिस कारण पृथु होकर महर्षिया ने वेण के हाथ का भयन किया या वह कारण भी बतलाइये ॥२३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठो! वेण के पुत्र पुत्र का वर्णन मैं विस्तार से कहूँगा। धर्म के लिये आप लोग एकाग्र और सावधान होकर मुनिये ॥२४॥ ब्राह्मणो! अपवित्र हृदयहीन, अशिय अत्रती, कृतघ्न और घनु को यह नहीं मुनाऊँगा ॥२५॥ ऋषिया ने इस रहस्य को स्वर्गप्रद यश, धन और आय देने वाला तथा वेद-सम्मत कहा है। इसे पथार्थ रूप से सुनिये ॥२६॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणा को नमस्कार करके वेण के पुत्र पुत्र को क्या का विस्तृत वर्णन प्रतिदिन करेगा, वह विहित और अविहित कर्मों से दुरी नहीं होगा ॥२७॥

१ ग ०यिवांरा०। २ क ०वतामानु०। ३ छ म्ना। ४ स ०या च पितृभिः०। ५ क स ०वैर्ययि०।
६ स ०वत्साक्षीर०। ७ क तत्परी०। ८ क मून। ९ स प्रगता०। १० क स द्विजोत्तमा। ११ स वा।
१२ स ०यं परमा०। १३ स ०म यथये०।

आसीद्धर्मस्य संगोष्ठा पूर्वमग्रिसमः प्रभुः। अत्रिवंशे समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥२८॥
 तस्य पुत्रोऽभवद्वेणो नात्यर्थं धर्मकोविदः। जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥२९॥
 'स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः। स्वधर्मं पृथतः कृत्वा 'कामलोभे'त्ववर्त्तत ॥३०॥
 मर्यादां' भेदयामास 'धर्मोपेतां स पार्थिवः। वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥३१॥
 नि.स्वाध्यायवपट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रजापते। प्रवृत्तं न पपु सोमं हृत यज्ञेषु देवताः ॥३२॥
 न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः। आसीत् प्रतिज्ञा कुरेय विनाशं प्रत्युपस्थिते ॥३३॥
 अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगूद्वह'। मयि'यज्ञो 'विधातयो मयि होतव्यमिदमपि ॥३४॥
 तमतिश्रान्तमर्घ्यादिमाददानमसाम्प्रतम् । ऊचुर्महर्षयः सध्वं मरीचिप्रमुखास्तदा ॥३५॥
 ययं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्। अधर्मं कुरु मा वेण एय' धर्मः सनातनः ॥३६॥
 निघनेऽग्रेः प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्। प्रजाश्च पालयिष्येऽहमितिह' समयः कृतः ॥३७॥
 तांस्तथा ब्रुवतः सर्वाग्महर्षीन्ब्रवीत्तदा। वेण. प्रहरय दुर्बुद्धिरिदमर्थमनर्थदित् ॥३८॥

वेण उवाच

'यष्टा धर्मस्य कश्चान्य. श्रोतव्यं कस्य वा मया। श्रुतवीर्यतप सत्यमया वा कः समो भुवि ॥३९॥

पूर्वाहल मे धर्म-रक्षक और अनिष्टस्य ऐदरगंशार्थ अग नामक प्रजापति अत्रिवंश म उत्पन्न हुआ। ॥२८॥ उसका पुत्र वेण नामक धर्मज प्रजापति, मृत्यु की पुत्री सुनीथा से उत्पन्न हुआ ॥२९॥ वह मृत्युवन्ध्यापुत्र अपने मानासह के दोष से स्वधर्म वा छाडकर काम और लोभ म प्रवृत्त हुआ ॥३०॥ और पार्थिव सीमाओं का तोड-तारकर, वेद धर्मों का उल्लंघन कर पापाचरण मे अनुरक्त हो गया ॥३१॥ उस प्रजापति के काज मे प्रजा वेश्यापयन और मद्य-त्रय से वञ्चित हो गई थी। यज्ञा मे आहुति दिनु हुए योग का पान देवगण नहीं करते थे ॥३२॥ सर्वनाग उपस्थित होने पर उस प्रजापति की यह पुर आज्ञा थी—“कोई याग न करे, वाँ हवन न करे” ॥३३॥ भृगूद्वेष्ट । उसकी घोषणा थी कि—“मैं ही यज्ञ हूँ, यज्ञ करने याग्य और याजि हूँ। मुझे ही त्वय्यर यज्ञ और हवन करे” ॥३४॥ मर्यादा का उल्लंघन करने काज और यज्ञा म अनुचित भाग लेन काज उस प्रजापति मे मरीचि-आदि मनुष्यनि उगे समझाने हुए कहा—॥३५॥ वेण । हम लोग अभी बहुत वर्षा तक यज्ञ दीक्षा प्राप्त करते। तुम अपने मन करो। यह सुनान धर्म है ॥३६॥ निगदेह तुम अगि मे उपन्न प्रजापति ह। अत्रि मे देहात हने पर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रजा का पालन करूँगा ॥३७॥ महर्षिपदा द्वारा दन प्रहार बड़े जाले पर अर्थ मे अनभिज्ञ दुर्बुद्धि वेण न हँसकर कहा ॥३८॥

येण ने कहा—मुझे छोड धर्म का निमोता दूसरा कौन है? मैं निमोता उपदेस मुन? धुनि, शक्ति, तपस्या और गुण म मर बराबर सगार मे कौन है? ॥३९॥ उस प्राणिदा का विरोधकर धर्मो का उपनिषदात

१ ग म गिता० २ ग म बामा-रामे० ३ क म ०दा स्यापया० ४ क म धमरि० ५ ग अत्रुद्वह०
 ६ ग यज्ञा ७ ग विपाप्या ८ ग मय ९ क ०मिनि ह य० १० ०मिनि मे य० ११ क म कर्ता०

प्रभव सर्वभूताना धर्माणां च विदोषत । सम्मूढा न विदुर्नूनं भवतो^१ मा विचेतस ॥४०॥
 इच्छन् दहेयं पृथिवीं^२ वायवेयं जलेस्तथा । द्वा वै भुवश्च रक्षयेय नाम कार्या विचारणा ॥४१॥
 यदा न शक्यते मोहादवल्लोकाच्च पायिव । अपनेतु तदा वेणस्तत कुट्टा महर्षेय ॥४२॥
 त निगूह्य महात्मानो विस्फुरन्त महाबलम् । ततोऽस्य सद्यमूर ते ममन्युर्जातिमन्यव ॥४३॥
 तस्मिन्निर्मयमाने धं राज ऊरौ तु जजिवान । ह्युरयोऽतिमान् पुरुष कृष्णश्चेति बभूव ह ॥४४॥
 स भीत प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्यिदानीं द्विजसत्तमा । तमन्निविह्वल दृष्ट्वा निषीदंत्यश्नवीत्तदा ॥४५॥
 निपादवशकृत्तसौ बभूव यदता वरा^३ । धीवरानसृजच्चापि वेणकल्मषसम्भवान ॥४६॥
 ये चाये विन्ध्यनिलयास्तथा^४ पर्वतसंश्रया । अधम्मंरुचयो विप्रास्ते तु धं वेणकल्मषा ॥४७॥
 तत पुनर्महात्मान पाणि वेणस्य दक्षिणम् । अरणीमिव सरंधा ममन्युर्जातिमन्यव ॥४८॥
 पृथुस्तस्मात् समुत्पन्न कराज्ज्वलनसन्निभ । दीप्यमान स्वयंपुषा रक्षादग्निरिव^५ ज्वलन् ॥४९॥
 अथ सोऽजगव नाम धनुगूह्य महारक्षम् । शराश्च दिव्यान् रक्षार्थं क्वच च महाप्रभम् ॥५०॥
 तस्मिन् जातेऽस्य भूतानि सम्प्राहृष्टानि^६ सध्वज । सगोपेर्तुर्महाभागा वेणस्तु त्रिदिग् ययौ ॥५१॥
 समुत्पन्नेन भो विप्रा सत्पुत्रेण महात्मना । त्रात स पुरपट्याद्य पुद्गाम्नो नरयात्तदा ॥५२॥
 त समुद्राश्च नद्यश्च रत्नाग्यादाय सध्वज । तोयानि चाभिषेकाय सध्व एवोपतस्थिरे ॥५३॥

मैं हूँ । आप लोग मूल और हृदयगण्य हैं निश्चय ही मय महा पहचानते हैं ॥४०॥ मैं चाटू तो पृथिवी को जला पू जल से वहा पू पृथिवी और आकाश को रोक द इसम सदेह न काजिये ॥४१॥ जब मनि लोग राजा वेण को अनान अ र अङ्कार मे अलग नहा कर सब तब जाकी कोष आ गया ॥४२॥ और उस तजस्वी महाबली को टप्ता स पकड़ कर रोष से उसकी बाया जाघ का मथन किया ॥४३॥ मथन पर उसकी जघा से एक बहुत छोटा और कृष्ण पुरुष उत्पन्न हुआ ॥४४॥ द्विजवर ! वह नवजात पुरुष डरा हुआ मा हाथ जोर कर खाडा हो गया । उसे व्याकुल देखकर अग्नि न बठ जान को कहा ॥४५॥ मनिवय ! वह निपादवश का वर्ता हुआ तथा वेण के पाप से उत्पन्न धीवर (मालाहो) का भा खाटा हुआ ॥४६॥ विप्रबृद्ध वेण क पाप से उत्पन्न अधमपरायण व धीवर विन्ध्यपर्वत एवं अथ पहाड़ के आश्रय म रहने लगे ॥४७॥ उसके बाद बृद्ध मनिगण वेण के दाहिने हाथ को अरणी (यज्ञीय अग्नि मयन काष्ठ) को तरह मथन लगे ॥४८॥ उस हाथ से शशाङ्क अग्नि के समान दीप्तिमान वध उत्पन्न हुआ ॥४९॥ प्रजा की रक्षा के लिये उसन मयवर ध्वनि वादक अजगध नामक धनुष तथा दिग् बाणा अर अग्निमान क्वच को धारण किया ॥५०॥ महानुभावगण ! पथु के उत्पन्न होने पर मय प्राण हृषित होकर उसके पास पहुँचे । वेण तो स्थग चला गया था ॥५१॥ द्विजवय ! महात्मा सत्पुत्र के जन्म लेने स व पूरपट वग पनामक नरक से बच गया ॥५२॥ एवं नार के समुद्र आर नगिन्य पथु के अभिषेक के लिय रत्न और जल लेकर उपस्थित हुई ॥५३॥ दत्तात्रय अर अगिरा-युद्धा के साथ

१ ख ० नो मोमच० । २ क ० तो पस० । ३ क ख तस्मिन्स्तु म० । ४ ख वरः । ५ ख ० यास्तुपारास्तम्युरस्तथा ।
 ७० । म यास्तुपारास्तम्युरस्तथा । ७० । ६ क ख त सध्वजः । ७ क ० रियापरः । ७० । ८ क ग ० नु । आभिमज्ज० ।
 ९ ग ० प्रहृष्टा० ।

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसं सह। स्यावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः ॥५४॥
 समागम्य तदा वैष्णमम्यपिञ्चन्नराधिपम्। महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥५५॥
 सोऽभिविषतो महातेजा विधिबद्धर्मकोविदः। आधिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैष्णः प्रतापवान् ॥५६॥
 पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः। अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजाभ्यजायत ॥५७॥
 आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः। पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥५८॥
 अकृष्टपक्ष्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नाति चिन्तनात्। सर्वकामदुषा गावः पुटके पुटके मधु ॥५९॥
 एतस्मिन्नेव काले तु यजे पैतामहे शुभे। सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽह्नि महामतिः ॥६०॥
 तस्मिन्नेव महायजे यजे प्राज्ञोऽय मागधः। पृथोः स्तवायं तो तत्र समाहूतो महर्षिभिः ॥६१॥
 तावूचुर्ह्ययः सर्वे स्तूयतामेव पार्थिवः। कर्मतदनुरूपं वा पात्रं चायं नराधिपः ॥६२॥
 तावूचतुस्तदा सर्वास्तानुपीन् सूतमागधो। आवां देवानूपीश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥६३॥
 न चास्य विद्मो वै कर्म नाम वा लक्षणं यशः। स्तोत्रं येनास्य कुर्व्याव राजस्तेजस्विनो द्विजाः ॥६४॥
 ऋषिभिस्तो नियुपतो नु भविष्यः स्तूयतामिति। यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः ॥६५॥
 ततः प्रभृति वं लोके स्तवेपु मुनिसत्तमा। आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥६६॥
 तयोः स्तवान्ते सुप्रीत पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः। अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥६७॥

ब्रह्मा, स्यावर और अगम प्राणी सब तरफ से आकर वैष्णु-पुत्र (पृथु) का राज्यमिषेव करने लगे ॥५४॥ महाराज पृथु ने प्रजावर्ग को हर माँति से प्रसन्न किया ॥५५॥ तब धर्मज्ञ ने महान् तेजस्वी पृथु का सविधि राज्यमिषेक किया ॥५६॥ (आचरण से) जो प्रजा उनके पिता से विरक्त थी, उसे उन्होंने पुनः अनुरक्त बना लिया। प्रजा द्वारा अनुराग मिले जाने के कारण पृथु का नाम राजा पड गया। ॥५७॥ महाप्रतापी राजा पृथु जब समुद्र की तरफ गमन करता था तो समुद्र का जल स्वमित हो जाता था और पर्वत उसे रास्ता दे देते थे। उसकी पताका बनी नहीं मुड़ी ॥५८॥ बिना बीज बोये ही केवल चिन्तन से ही पृथिवी अन्न उत्पन्न करती थी। गायें इच्छानुसार दूध देती थी। दोना घर घर बाह्य मिलती थी ॥५९॥ इसी समय ब्रह्मा के मगधमय यज्ञ में सूती से महामति सूत सौत्य नामक दिन में उत्पन्न हुआ ॥६०॥ और उसी महायज्ञ में विद्वान् मागध भी उत्पन्न हुआ। महर्षियों ने सूत और मागध को पृथु की स्तुति करने के लिये वही आमन्त्रित किया ॥६१॥ ऋषियों ने सूत और मागध से पृथु की स्तुति करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहा—‘यह कार्य आपके योग्य है और यह राजा भी सुगम है’ ॥६२॥ तब सूत और मागध ने ऋषियों से कहा—‘द्विजगण! हम दोना अन्न बमों में देना और ऋषियों को समुत्पन्न करेंगे ॥६३॥ किन्तु तेजस्वी राजा के कर्म, नाम, लक्षण, और यश से अपरचित होने के कारण हम कैसे स्तुति करें’ ॥६४॥ ऋषिया ने उनसे कहा—‘भविष्यत् बमों से आप स्तुति करिये’ मुनिष्येत्। तब से लेकर महाबलवान् पृथु ने जितने जो कर्म किये, उन सब का प्रयोग सूत, मागध और बड़ी जन आशीर्वाद के रूप में करने लगे ॥६५-६६॥ उनकी स्तुति के अन्त में प्रजा के स्वामी पृथु ने प्रसन्न

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्रोचुर्मनीषिणः । वृत्तीनामेव वो दाता भविष्यति नराधिप ॥६८॥
 ततो वैष्णं महात्मानं प्रजा समभिदुद्रुवुः । त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति मर्हापि वचनात्तदा ॥६९॥
 सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया । धनुर्गृह्य पृथक्काश्च पृथिवीमाद्रवद्वली ॥७०॥
 ततो वैष्णभयत्रस्ता गोभूत्वा प्राद्रवन्महो । तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥७१॥
 सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैष्णभयात्तदा । प्रवददर्शप्रतो वैष्णं प्रगृहीतशरासनम् ॥७२॥
 ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दोस्ततेजसमन्ततः । महायोगं महात्मानं दुर्द्धयं समरैरपि ॥७३॥
 अलभन्तो तु सा त्राणं वैष्णमेवान्वपद्यत । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकेऽस्त्रिभस्तदा ॥७४॥
 'उवाच वैष्णं' नाधम्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि । कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् बिना मया ॥७५॥
 मयि लोकाः स्थिताः राजन्मयेदं धाम्यते जगत् । मद्धिमाशे चित्तयेयुः प्रजा पार्थिव विद्धि तत् ॥७६॥
 न मामहंसि हन्तुं वै । श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि । प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥७७॥
 उपायतः । समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः । उपायं पश्य येन त्वं धारयेथा प्रजामिमाम् ॥७८॥
 हत्वापि । मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पोषणं नृप । अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोपं । महामते ॥७९॥
 अवध्यां च स्त्रियं । प्राहुस्तिव्यंग्योनिगतेष्वपि । श्रेयोऽयं पृथिवीपाल । न धम्मं त्यक्तुमर्हसि ॥८०॥

होकर अनूप देश सूत को दिया और मगध देश मागध को ॥६७॥ पृथु को देखकर अत्यन्त प्रसन्न विद्वानो ने प्रजाओं से कहा—'यह राजा तुम्हें जीविका प्रदान करेगा' ॥६८॥ तब महात्मा पृथु के पास जाकर प्रजा कहने लगी—'आप हमें जीविका दें' तब मर्हापियो के वचन से प्रजाओं से घिरे हुए बली पृथु ने प्रजा के कल्याण की इच्छा से धनुष और बाण लेकर पृथिवी को छेदेगा ॥६९-७०॥ पृथु के नय से काँपती हुई पृथ्वी गाय का रूप धारण कर मापन लगी । मगती हुई पृथ्वी के पीछे धनुष लेकर पृथु भी पीछे लगा ॥७१॥ मयमीत पृथिवी ब्रह्म-लोक आदि सभी लोकों में गई, विन्तु उसने अन्त तक चमकते हुए तीक्ष्ण बाणों से बान्तिमान्, महायोगी, महात्मा और देवताओं से भी अजेय पृथु को अपने सामने धनुष लिए हुए देखा ॥७२-७३॥ वही त्राण न पाकर (अन्ततः) पृथु की ही धारण में जाकर वह त्रिभुवन-पूज्या पृथ्वी हाथ जोड़कर उससे कहने लगी—॥७४॥ 'स्त्री के मारने में अधर्म को आप नहीं देखते? राजन्! मेरे बिना प्रजाओं का धारण आप कैसे करेंगे? ॥७५॥ सब लोक मुझे स्थित है । मैं सत्तार को धारण करती हूँ । राजन्! मेरा नाश हो जाने पर प्रजाओं का भी नाश ही समझिये ॥७६॥ यदि आप प्रजाओं का कल्याण करना चाहते हैं, तो मुझे न मारें । पृथ्वीपति! मेरी बात सुनिये ॥७७॥ उपाय करने से सब काम सिद्ध हो जाते हैं । इसलिये आप उपाय कीजिए, जिससे प्रजाओं का धारण कर सकेंगे ॥७८॥ राजन्! मुझे मारकर भी प्रजाओं के पालन में आप समर्थ नहीं हो सकते । महामतिमान्! श्रेय त्यागिये । मैं आपका कहना मानूँगी ॥७९॥ पक्षी-योनि में जाने पर भी स्त्रियाँ अवश्य वही गई हैं । राजन्! यदि ऐसा है, तो आपके लिए धर्म का परित्याग करना

१ क ख ०जाः प्राहुर्म । २ ग वृत्तिं तामे । ३ ख ०मार्दद्व । ४ क वैष्णायपत्र ० । ५ क ०दा । ६ क ०पार्थिवे ततो वै । ७ क ख ०मव्युत्तम् । म ० । ८ क चैन । ९ ग ०ण्य माज्य ० । १० ख सिरार । ११ क श्रेया यत्त्व । १२ क ०यसहिता रम्या ख । १३ क ०पि मामश ० । १४ ख ०महीपते । ग ०महायुत । १५ क ०मता अपि । १६ ख वि । सपश्यम्पि ० । १७ क ०सपश्य । १८ क ०ल अय ।

एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना । कोप निगूह्य धम्मन्तिमा वसुधाभिदमद्भवीत् ॥८१॥

पृथुस्वाच

एकस्यायै^१ तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा । दहून् वा प्राणिनोऽनन्त भवेत्तस्येह पातकम् ॥८२॥
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिन्सु निहतेऽशुभे । तस्मिन् हते नास्ति भद्रे^२ पातकं चोपपातकम् ॥८३॥
सोऽहं प्रजानिमित्तं^३ त्वा हनिष्यामि वसुधरे । यदि मे ध्वचनाद्वाहं करिष्यसि जगद्धितम् ॥८४॥
त्वा निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् । आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता स्वयम् ॥८५॥
सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृता वरे । सञ्जीव्य प्रजा सर्व्वां समर्था ह्यसि धारणे ॥८६॥
दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम् । नियच्छेय त्वद्वधार्थमुद्यन्त घोरदर्शनम् ॥८७॥

वसुधोवाच

सर्व्वमेतदहं वीर विधास्यामि न सशय ।^४ जित्तु मम सम्पदय क्षरेय येन वत्सला ॥८८॥
समाञ्च कुरु सर्व्वत्र मा त्वं धर्मभृता वर । यथा^५ विस्पन्दमान मे क्षीर सर्व्वत्र भावयेत् ॥८९॥

लोमहर्षण उवाच

तत उत्सारयामास शैलाञ्जलसहस्रश । धनुष्कोट्या तदा वैण्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥९०॥
न हि पूर्व्वं विसर्गे^६ वै विपमे पृथिवीतले । सविभा पुराणा वा ग्रामाणा वाभवत्तदा ॥९१॥

उचित नहीं है ॥८०॥ इस तरह की बहुत सी बात मुनिकर महामना धर्मात्मा राजा शान्त हो पृथ्वी से कहन लगा ॥८१॥

पृथु ने कहा—मद्र । एक अपन लिए अथवा दूसरे के लिए बहुत प्राणिया को अपना एक को जो मारता है, उसको अनन्त पाप लगता है ॥८२॥ जिन पापी के मरने में वन्दने मुग्न हो उगव मरने में पाप और उपपाप नहीं लगत ॥८३॥ पृथ्वी ! मेरी जाना मैं यदि तुम सत्कार का कल्याण नहीं करती हो तो प्रजा के धारण में तुम्हें मार डालूंगा ॥८४॥ शासन को न मानने वाला तुमको आज मार कर मैं प्रजा को धारण करने के लिए अपना विस्तार करूंगा ॥८५॥ अतः हे धर्मधरण तुम मेरा शासन स्वीकार कर प्रजा का पालन पोषण करो । प्राज्ञ को धारण करने में तुम पूण समर्थ हो ॥८६॥ यदि तुम्हें मेरी पुत्री बनना स्वीकार हो तो तुम्हारे वध के लिये तैयार इस मयकर बाण को मैं रोक दूँ ॥८७॥

पृथिवी ने कहा—वीर ! निःसन्देह मज्ज रात्र स्वाकार है । पर आप भेरे बछड़े को देखिये जिससे मैं वात्सल्यपूर्ण होकर दूध दूँ ॥८८॥ धर्मधरीण ! आप मुझ गव और मैं उमंगल बना दें जिससे मेरा डारा हुआ दूध सब जगह पहुँच सके ॥८९॥

लोमहर्षण ने कहा—नय पूय न धनुष न गिर न सैन्धवा द्वारा पवता को उखाड़ दिया । इससे पहाड़ बढ़ गये ॥९०॥ पहली सृष्टि में जब पृथ्वी पर साहू ऊषण-वायु भी नव गाँवा या नगर का विमाण नहीं

१ क ०त् । ए० । २ ग ० स्वर्णाय यो । ग ० स्वर्णाय यो । ३ न ० नो मदे म० । ४ स मुने । ५ क ० मित त्वा । ६ स ० वन नाय । ७ स ० त्व स्वममृत य० । ८ ग ० म त य० । ९ क चत्पा । १० म ० ले । प्रवि० ।

म शस्यानि न गोरध्वं न कुपिर्न धनिकृपयः । नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मर्त्सरः ॥९२॥
 वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते । वैष्णवात्प्रभृति वै विप्राः सर्व्वस्यैतत्प्र सम्भवः ॥९३॥
 यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजाः । तत्र तत्र प्रजाः सर्वा विदासं समरोचयन् ॥९४॥
 आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा । कृच्छ्रेण महता ययुत इत्येवमनुशुश्रुम ॥९५॥
 साकल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्यायम्भुवं शत्रुम् । स्वपाणी पुरुषध्याप्तो बुद्धो पृथिवीं ततः ॥९६॥
 शस्यजातानि सर्वाणि पृथर्व्वेयः प्रतापवान् । तेनाग्नेन प्रजाः सर्वा वत्सन्तेऽद्यापि सर्व्वशः ॥९७॥
 ऋषयश्च तदा देवाः पितरोऽप्य सरीसृपाः । दैत्या यक्षाः पुण्यजना गन्धर्वाः पर्व्वता नगाः ॥९८॥
 एते पुरा द्विजश्रेष्ठा द्रुवद्रुधरर्णा किल । क्षीरं वत्सश्च पात्रं च तेषां दोग्धा पृथक्पृथक् ॥९९॥
 ऋषीणामभवत्सोमो वत्सो दोग्धा बृहस्पतिः । क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दासि भो द्विजाः ॥१००॥
 देवानां काञ्चनं पात्रं वत्सस्तेषां शतक्रतुः । क्षीरमोजस्करो चैव दोग्धा च भगवान्रविः ॥१०१॥
 पितॄणां राजतं पात्रं यमो वत्सः प्रतापवान् । अन्तर्कशचाभवद्दोग्धा क्षीरं तेषां शुधा स्मृता ॥१०२॥
 नागानां तक्षको वत्सः पात्रं चालाबुसज्ञकम् । दोग्धा त्वैरावतो नागस्तेषां क्षीरं विप स्मृतम् ॥१०३॥
 असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम् । विरोचनस्तु वत्सोऽभूदायस पात्रमेव च ॥१०४॥
 यक्षाणामामपात्रं तु वत्सो वैश्रवणः प्रभु । दोग्धा रजतनाभस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च ॥१०५॥
 'सुमाली राक्षसेन्द्राणां वत्सं क्षीरं च शोणितम् । दोग्धा रजतनाभस्तु कपालं पात्रमेव च ॥१०६॥

हुता वा ॥९१॥ अत्र गोरक्षा, सेती वाणिज्य सत्य मित्या, लोभ, डाह—ये सब नहीं थे ॥९२॥ द्विजवर्ष ।
 वैवस्वत मान्वन्तर होने पर पृथु-नाल म ही इनकी उत्पत्ति हुई ॥९३॥ विप्रवृन्द । जहाँ-जहाँ पृथ्वी बराबर थी, वहाँ
 सर्वत्र प्रजा बसने लगी ॥९४॥ उस समय की जनता परिश्रम और कष्ट से फल-मूल नोजन प्राप्त करती थी—
 ऐसा हमने सुना है ॥९५॥ पुरुष-युगव पृथु ने भमर्य स्वायम्भु मनु की बछड़ा बनाकर अपन हाथ से पृथ्वी को
 जब दुहा तो सभी प्रकार के अन्न पैदा हुए । उन्हीं माज्यपदार्थों से जनता का पोषण अब भी हो रहा है ॥९६-९७॥ द्विजवर ।
 ऋषि, देवता, पितर, नाग, इत्ये यक्ष राक्षस गन्धर्व पहाड़, वृक्ष—इन्होंने पहले पृथिवी की दुहा ॥९८॥ विप्रवृन्द ।
 जन्मे दूध, बछड़ा, पात्र, दुहने वाला—ये सब अलग अलग व्यक्ति हुए ॥९९॥ ऋषिया न सोम की बछड़ा बृहस्पति
 को दुहनवाला, और वेदा की दोहने। बनाकर तपस्या रूप दूध को दुहा ॥१००॥ देवताओं न स्वर्ण की दोहनी मद्भद्र
 को बछड़ा और मगवान् सूय की दुहनवाला बनाकर तेजस्वर दूध को दुहा ॥१०१॥ पितरों ने चाँदी को पात्र, प्रतापी
 यम की बछड़ा, अन्तर (काल) की दुहने वाला बनाकर अमृत रूप दूध का दोहन किया ॥१०२॥ नागों ने तक्षक की
 बछड़ा, तूवी की पात्र, ऐरावत नाग की दुहनवाला बनाकर विप रूप दूध को दुहा ॥१०३॥ दैत्या ने मधु (दैत्य)
 को दुहनवाला, विरोचन (ब्रह्माद-पुत्र) की बछड़ा और लोहा की पात्र बनाकर माया रूप दूध को दुहा ॥१०४॥ यक्षों न
 चाँच की पात्र, कुबेर की बछड़ा, रजतनाभ की दुहनवाला बना कर अन्तर्धान (छिप जाँन की विद्या) रूप दूध को
 दुहा ॥१०५॥ राक्षसों ने सुमाली की बछड़ा, रजतनाभ की दुहनवाला और कपाल की पात्र बनाकर शोणित रूप

१ ग गोरक्षा । २ ल कृच्छ्र । ३ य ० म । सक० । ४ व ० पिवीतलम् । स ० । ५ छ सर्वत । ६ व ० ण्टर सप्तम्य
 ० तरोऽपि स० । ७ छ । ० रमूर्जस्व ० । ८ क ० नावन्वि । ९ ग स्वधा । १० ग सुमना ।

गन्धर्वाणां त्रिप्ररयो वत्सः पात्रं च पञ्चजम् । दोग्धा च सुरदिः क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः ॥१०७॥
 शैलं पात्रं पर्वतानां क्षीरं रत्नोपधीस्तथा । वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुमहागिरिः ॥१०८॥
 प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः । पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदाघप्ररोहणम् ॥१०९॥
 तेषां घात्रो विघात्रो च पावनी च वसुन्धरा । चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥११०॥
 सर्वकामदुधा दोग्ध्री सर्वशस्यप्ररोहणी । आसीदिय समुद्रान्ता मेदिनी परिविभ्रुता ॥१११॥
 मधुकटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता । तेनेय मेदिनी देवो उच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
 ततोऽभ्युपगमाद्वाज्ञः पृथोर्वैण्यस्य भो द्विजाः । बुद्धित्वमनुधाप्ता देवो पृथ्वीति चोच्यते ॥११३॥
 पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा । शस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनशालिनी ॥११४॥
 एवम्प्रभावो वैण्यः स राजासीद्वाजसत्तमः । नमस्पर्शैव पूजयन्न भूतप्रार्थनं संशयः ॥११५॥
 ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारंगः । पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥११६॥
 पार्थिवैश्च महाभागः पार्थिवत्वमिहेच्छुभिः । आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ॥११७॥
 यो धरणि च विक्रान्तः प्राप्तुर्कामैर्जयं युधि । आदिराजो नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥११८॥
 यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम् । स घोररूपात्संग्रामात् क्षेमो भवति कीर्त्तिमान् ॥११९॥
 वैश्यैरपि च विस्तार्यैर्वैश्यवृत्तिविधायिभिः । पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशः ॥१२०॥

दूध को दुहा ॥१०६॥ गन्धर्वों ने चित्ररथ को बछड़ा कमल को पात्र, सुरदि को दुहनेवाला बनाकर पवित्र गन्ध रूप
 दूध को दुहा ॥१०७॥ पहाड़ों ने शिला को पात्र, हिमालय को बछड़ा और मुनेर को दुहनेवाला बनाकर रत्न और
 ओषधि रूप दूध दुहा ॥१०८॥ वृक्षों ने पाकर को बछड़ा, पुष्पित साल को दुहनेवाला पलाश को पात्र बनाकर कटे-
 जले हुए वृक्षों से निकला कोपलरूप दूध दुहा ॥१०९॥ वहीं पृथ्वी विघात्री, पावनी वसुधरा, जतनी, सर्वकामदोग्ध्री,
 गर्वमस्यप्ररोहणी और मेदिनी नाम से विख्यात है और समुद्र तक फैली हुई है ॥११०॥ १११॥ मधु-नैटम के मेद से व्याप्त
 होने के कारण ब्रह्मवादी इसे मेदिनी कहते हैं ॥११२॥ विप्रण । राजा पृथु द्वारा पृथ्वीरूप में स्वीकार की जाने से यह
 पृथ्वी कहलाई ॥११३॥ पृथु ने पृथ्वी को विभक्त कर उसका तत्कार किया, जिससे यह धन, धान्य, गोव, नगर
 आदि से समृद्ध हुई ॥११४॥ इस तरह प्रतापी और नृपधेय राजा पृथु प्राणियों में पूज्य और प्रणम्य बनें, इसमें
 शक्य नहीं ॥११५॥ वेद-वेदांगों में पारंगत महामाग ब्राह्मणों को चाहिए कि सनातन और ब्रह्मयानि पृथु को ही नमस्कार
 करें ॥११६॥ राजत्व चाहने वाले महामाग राजाओं को भी परम प्रतापी आदिराजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये ।
 ॥११७॥ मुद्र में जय की इच्छा रखने वाले पराक्रमी योद्धाओं को भी आदि राजा पृथु को नमस्कार करना
 चाहिये ॥११८॥ जो सैनिक राजा पृथु का स्मरण करते मुद्र में जाता है, वह घोर संग्राम में भी विजयी होता है ।
 ॥११९॥ महायजनान् वैश्य भी जीविका देनेवाले महायशस्वी पृथु को ही नमस्कार करें ॥१२०॥ उर्गों तथा

१ क. वित्तस्य । २ क. ०सा च पट्टि ० । ३ क. ०रघावकी च सा । ए० । ४ ग. ०यव नमस्कार्यो मं ० । ५ ग. ०यै
 फलेष्पुमि । ६ ०भानैरापु ० । ७ ग. ०यों वृत्तिदाता महायशः । या । ८ ग. ०मातरनि बह्वी ० । ९ म. ०सायं
 वैश्य ० ।

तथैव शूद्रेः^१ शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः। पृथुरेव नमस्कार्यः श्रेयः परमिहेप्सुभिः॥१२१॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च। पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि वः॥१२२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं

नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर-वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

मन्वन्तराणि सख्याणि विस्तरेण महामते। तेषां पूर्व्वदिसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्त्तय॥१॥
यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च। मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥२॥

लोमहर्षण उवाच

न शक्यो विस्तरो विप्रा वक्तुं वर्षशतैरपि। मन्वन्तराणां सर्व्वेषां संक्षेपाच्छृणुत द्विजा^२॥३॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा^३। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥४॥

तीनों वर्णों की सेवा करने वाले पवित्र शूद्र भी परम कल्याण के लिए पृथु को ही नमस्कार करे॥१२१॥ ये विशेष बछड़े, दुहने वाले, दूध और पात्र मेंने बतला दिये। अब और क्या वर्णन करूँ, कहिये॥१२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पृथु का जन्म माहात्म्य-वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

अध्याय ५

मन्वन्तरो का वर्णन

मुनियोंने कहा—महाप्राज्ञ लोमहर्षण, सभी मन्वन्तरो और उनकी पूर्व्वसृष्टि का वर्णन विस्तार से कीजिये॥१॥
महाप्राज्ञ सूत^१ जितने मनु, जितने काल और जितने मन्वन्तर हुए हैं, उनको तत्त्वतः हम सुनना चाहते हैं॥२॥

लोमहर्षण बोले—विप्रबुन्द^२। सभी मन्वन्तरो का विस्तार पूर्व्वक वर्णन मैं सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता। इसलिये संक्षेपतः श्रवण कीजिए॥३॥

सर्व्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुआ। उसके बाद क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और आक्षुष—ये पन्ध्र हुए॥४॥

वेवस्वतश्च भो विप्रा साम्प्रत मनुर्हृषते। सार्वणिश्च मनुस्तद्वद्रेभ्यो^१ रौच्यस्तथैव च॥५॥
 तथैव मेहसावर्ण्यश्चत्वारो मनव स्मृता। अतीता वत्समानाश्च तथैवानागता द्विजा॥६॥
 कीर्त्तिता मनवस्तुभ्य मयैवंते यथाश्रुता। ऋषीस्त्वेषा प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा॥७॥
 मरीचिरत्रिभंगवानङ्गिरा पुत्रहृन्नु पुत्रस्त्यदश्च वशिष्ठश्च सप्तते ब्रह्मण सुता॥८॥
 उत्तरस्या विशि तथा द्विजा सप्तर्षयस्तथा। अग्निघट्टाग्निबाहुश्च मेधो^२ मेधातिथिवंस्तु॥९॥
 ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हृष्य^३ सबल पुत्रसशक। मनो स्याद्यभुवरयंते दश पुत्रा महौजस॥१०॥
 एतद्रे प्रथम विप्रा मन्वन्तरमुदाहृतम्। और्वी वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्ब^४ रुद्रय एव च॥११॥
 प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽग्निश्च्यवनस्तथा। एते महर्षयो विप्रा वायुप्रोक्ता महाधृता॥१२॥
 देवाश्च तुषिता गग स्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे। हविष्ठा^५ सुवृत्तिर्ज्योतिरापोमूर्तिरपि स्मृत॥१३॥
 प्रतीतश्च नभस्यश्च नभ^६ ऊर्जस्तथैव च। स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्विप्रा महात्मन॥१४॥
 कीर्त्तिता पृथिवीपाला महावीर्य्यपराक्रमा। द्वितीयमेतत्कथित विप्रा मन्वन्तर मया॥१५॥
 इव तृतीय चक्ष्यामि तदुप्यध्य द्विजोत्तमा। वसिष्ठपुत्रा सप्तसन् वासिष्ठा इति विश्रुता॥१६॥
 हरिण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाता^७ सुतेजस। श्रुषयोऽत्र मया प्रोक्ता कीर्त्त्यमानाप्रियोधत॥१७॥
 औत्तमेया मुनिधेष्ठा दश पुत्रान्मनोरिमान्। इष ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च॥१८॥
 शुचि शुक्ल सहदश्चैव नभस्यो नभ एव च। भानवस्तान् देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्॥१९॥

द्विजवृन्द^१। इस गण्य वैवस्वत मनु है। सार्वणि रैभ्य रच्य और मरगावण्य—य चारों भा मनु बहलक हैं॥५॥
 द्विजवृन्द^२। जगत वनमान और मयिष्य म हान वाल मनुआ को मैं अनुभूति के अनुसार आप लोग म बलदा दिया,
 अत्र इनके ऋषि पुत्र और दवत्राभा का वणन करेगा॥६॥ मर नि अनि भगवान् अगिरा पुत्रहृन्नु पुत्रस्त्य
 और वशिष्ठ—य सता ब्रह्मा के पुत्र कहाना॥८॥ ब्रह्मण्यवन् उत्तर दिसा म य साता सप्तर्षि बहलक हैं।
 आग्नीध्र अग्निबाहु मध्य मेधातिथि वगु ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हृष्य रच्य और पुत्र—ये महापराक्रमी दसा
 पुत्र स्वायम्बुव मनु व हूए॥९॥ ब्रह्मण्यगर्भ^३। यह पहल मन्वन्तर का वणन मैं किया है। वशिष्ठ का पुत्र और्व,
 स्तम्ब बन्द्य प्राण द्युम्पनि दत्त अनि अत्र च्यवन—य वायु स बह गए महाधृती महर्षि और तुषिति नामक
 देवा स्वाराचिष मन्वन्तर म हूए॥११॥ हरिण्य मृत्ति ज्योति आप मुनि प्रवीत मन्त्रय नभ और ऊर्ज—
 य महर्षी स्वाराचिष मन्वन्तर म पुत्र का पत्रात्रमा गात्रा हूए॥१३॥ यह दूसर मन्वन्तर का वणन मैं किया॥१५॥
 विप्रवर^४। अत्र तत्तम मन्वन्तर का दणन मैं करेगा मुनिय। वशिष्ठ म साता पुत्र वासिष्ठ नाम म प्रशिष्ठ
 हूए॥१६॥ हरिण्यगर्भ^५। अत्र तत्तम मन्वन्तर का वणन मैं किया हूए। मुनिय^६। अत्रिया म चार म मैं बलदा दिया॥१७॥
 अब आनिम म दश पुत्रा नाम मुनिय—एष ऊर्ज तनुज मधु मायव गुर्वि शुक्ल सह नभस्य और नभ। उष (मन्व
 न्तर) म भानु दक्षता हूए। यह मन्वन्तर मैं बह दिया॥१८॥ अब चाप मन्वन्तर व त्रियय म मैं आपन करेगा।

१ ग ऋद्धिप्यार ०। २ ग मरगा। ३ ग ऋषिभूमि। ग्या ०। ४ ग ० ग्या मनुस्मृत्यैव च। म ०।
 ५ ग कचिन्ता। ६ ग त्रिनिष्ठिया। ७ ग महाबला। ८ ग हविष्य। ९ ग हविष्य। १० ग मन्वन्तर ०। ११ ग नभ।

मन्वन्तरं चतुर्थं व । कथयिष्यामि साम्प्रतम् । काव्यं पृथुस्तथैवाग्निर्जहनुर्धाता द्विजोत्तमा ॥२८॥
 'कपीवानरूपीवाश्च तत्र सप्तपथो द्विजा । पुराणे कीर्तिता विप्रा पुत्रा योत्राश्च भो द्विजा ॥२९॥
 'तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनो । द्युतिस्तपस्य सुतपास्तपोभूतः सनातन ॥३०॥
 तपोरतिरकल्माषस्तन्वी' धन्वी' परतपः । तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा प्रकीर्तिता ॥३१॥
 वायुप्रोक्ता' मुनिश्चेष्टाश्चतुर्थं चैतवन्तरम् । देवबाहुयधुश्च मुनिर्वेशिरास्तथा ॥३२॥
 हिरण्यरोमा पञ्चन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः । सत्यनेत्रस्तथात्रेय एते सप्तथ्योऽपरे ॥३३॥
 'वेवादिचाभूतरजस्तस्या प्रकृतयः स्मृताः । वारिण्यश्च रन्मश्च' मनोरन्तरमुच्यते ॥३४॥
 'अथ पुत्रानिमास्तस्य बुध्यध्वं यदतो मम । धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निहस्तुक ॥३५॥
 आरण्यश्च प्रकाशश्च 'निर्मोह' सत्यवाक्कृती । रेवतस्य मनो पुत्रा पञ्चमं चैतवन्तरम् ॥३६॥
 पृष्ठं तु सम्प्रवक्ष्यामि तदबुध्यध्वं द्विजोत्तमा । भृगुर्नभो विवस्वाश्च सुधामा विरजास्तथा ॥३७॥
 'प्रतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते' च महर्षयः । चाक्षुषस्यान्तरे विप्रा' मनोर्देवास्त्वमे स्मृताः ॥३८॥
 आबालप्रथितास्ते ये पृथक्त्वेन दिवौकसः । लेखाश्च नामतो विप्रा' पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥३९॥
 रुपेरङ्गिरस्त पुत्रा महात्मा भोजसः । नाडकलेयाः मुनिश्चेष्टा दश पुत्रास्तु विश्रुताः ॥४०॥
 रुद्रप्रभृतयो विप्राश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो । पृष्ठं मन्वन्तरं प्रोक्तं सप्तमं तु निबोधत ॥४१॥

ब्राह्मणश्रुतः । काव्यं पृथु अग्निं जहनु धृता कपीवानर अर अकपावान—ये सातो कृषिं चतुर्थं मन्वन्तरं मे हृष्टं । तामसं भवन्तरं मन के पुत्र पात्र तथा देवसमुहं वा भी वणन पुराण मे विज्ञा गया है ॥२८॥ २९॥ द्युति तपस्य सुतपस तपो मन सनातन तप अतिफलभाष तन्वी धन्वी आर परतप—ये दणा पुत्र तामस मनु के कहलाये—एसा वायु का कहना है । यह च था भवन्तर मैन वतला विप्रा ॥२९॥ ३०॥ (पाचव मन्वन्तर म) देवबाहु यदुध्र मनि वदशिरा हिरण्य रोमा पञ्चन्य सोम से उत्पन्न ऊर्ध्वबाहु अर अग्नि-पुत्र स यनत्र—ये सातो कृषि हृष्ट ॥२९॥ ३१॥ रजोविह न प्रहृष्टियौ देवता हुइ । वारिण्य आर रन्म भी भगु के अन्तर कहलाते हैं ॥३२॥ अब मनु के पुत्रों के नाम मुनिमे । धृतिमान अव्यय युक्त तत्त्वदर्शी निहस्तुक आरण्य प्रकाश निर्मोह सत्यवाक् अर कृती—ये रेवत मन के पुत्र हृष्ट । यह पांचवा मन्वन्तर मैन वणन विप्रा ॥२७॥ ३८॥ ब्राह्मणश्रुतः । अब छठ के बारे मे कहूंगा मुनिमे । भग नम विवस्वान् सुधामा विरजा अतिनामा आर सहिष्णु—ये साता महर्षि चाक्षुष मन्वन्तर मे हृष्ट ॥२९॥ ३९॥ लेखा नाम से प्रसिद्ध पाच देवता हृष्ट जिनके नाम पृथक् रूप से बालक तक मी जानत हैं ॥३९॥ मुनिवर' अगिरा मुनि के महा परावर्ता रुद्र प्रमति दश पुत्र नाडकलेय नाम से प्रसिद्ध हृष्ट ॥३९॥ चाक्षुष मन्वन्तर नामक छठा भवन्तर मैन वणन

१ क तु । छ चा २ क दश वांकिवादिचव ३ ० ३ ख सत्या । ४ व ० नो । धृतिस्तप सुतरयस्तपोमूल स ० ५ ख । ० धोमल ६ ० । ६ व ० स्तविप ० । ७ क ० पविप ० । ८ क ० ० पा । ० ० । ९ ख ० क्ताश्च भो विप्रश्च ० । १० क भोमप । ११ व वारच भू ० । १२ ख ० ता । पारि ० । १३ ग वैश्वरव । १४ ख ग अरण्यच । १५ क निर्मो । १६ क ० तिप मा । १७ ग ० त्तप्रतिम ० । १८ ख चते । १९ क ० ता । अप्रमदश्च काव्य पृथुशायी विवाक । २० ख नाडके ० । २१ क ० ता । गृष्ट ० ।

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृपिः। गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च॥३४॥
 तथैव पुत्रो भगवान्चीकश्य महात्मनः। सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि॥३५॥
 साध्या रुद्राश्च विश्वे च वसवो मरुतस्तथा। आदिस्थाश्चाश्विनौ चापि देवौ धैवस्वतौ स्मृतौ॥३६॥
 मनोर्वैवस्वतस्म्यंते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे। इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः॥३७॥
 एतेषां कीर्तितानान्तु महर्षीणां महौजसाम्। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्व्वसु भो द्विजाः॥३८॥
 मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु प्रागासन् सप्त सप्तकाः। लोके धर्ममव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च॥३९॥
 मन्वन्तरे ध्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः। कृत्वा कर्म दिवं घान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥४०॥
 ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानं तत्पूरयन्त्युत। अतीता वर्तमानाश्च ऋषेणैतेन भो द्विजाः॥४१॥
 अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः। मनोरन्तरमासाद्य सावर्ण्येह भो द्विजाः॥४२॥
 रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमन्तो बह्मभुताः। भारद्वाजस्तथा द्रोणिरश्वत्थामा महाद्युतिः॥४३॥
 'गौतमश्चाजरश्चैव' शरद्वात्राम गौतमः। कौशिको गालवश्चैव और्व्वः काश्यप एव च॥४४॥
 एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमा। वैरो चैवाध्वरीवांश्च शमनो धृतिमान् वसुः॥४५॥
 अरिष्टश्चाप्यघृष्टश्च वाजी सुमतिरेव च। सावर्ण्यस्य मनोः पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमाः॥४६॥
 एतेषां कल्यमुत्थाय कीर्तनात् सुखमेधते। यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च 'भवेन्नरः'॥४७॥

कर दिया। अब सातवें के विषय में सुनिये। ॥३३॥ अत्रि, वसिष्ठ, भगवान् कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीक महात्मा का सातवां पुत्र जमदग्नि—ये सब ऋषि इस समय स्वर्ग में हैं ॥३४-३५॥ साध्य, रुद्र, विश्वे-देव, वसु, मरु आदिय और अश्विनीकुमार—ये सब देवता वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के हैं ॥३६॥ इस मनु के इक्ष्वाकु आदि दश पुत्र हैं ॥३७॥ ब्राह्मणवृन्द ! पहले सभी मन्वन्तरो में लोक में धर्म व्यवस्था तथा लोक-संरक्षण के लिए इन व्यक्ति महान् तेजस्वी महर्षिणा के तथा इनके पुत्र-पौत्रा के सब दिशाओं में सात सप्तक अर्थात् विभिन्न यात सात ढल थे ॥३८-३९॥ मन्वन्तर बीत जाने पर बार सप्तक-गण कार्य समाप्त करके रोगादि से रहित ब्रह्मलोक की चले जाते थे ॥४०॥ तब दूसरे तपस्वी उस स्थान की पूर्ति करते थे। विप्रवृन्द ! अतीत, वर्तमान और भविष्यत् इस त्रय में ये सात महर्षि स्वर्ग में बहते गये हैं ॥४१॥ विप्रवृन्द ! सावर्ण्य मन्वन्तर में राम, व्यास, अत्रि-युत्र, भारद्वाज, द्रोणाचार्य के पुत्र महातेजस्वी अवस्थामा, गौतम, अजर, वाय्दाम् नामक गौतम, कौशिक, गालव, और्व्व, काश्यप—य सात महात्मा होंगे ॥४२-४३॥ मुनियेष्टो ! वैरो, अध्वरीवान्, शमन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अपृष्ट, वाजी, सुमति—ये सात महर्षि सावर्ण्य मनु के पुत्र होंगे ॥४४-४६॥ प्रातःकाल उठकर इनमें नाम लेने से मनुष्य सुख, यश और पूर्ण आयु प्राप्त करता है ॥४७॥ विप्रवृन्द ! य सप्तक गण मैंने तत्त्वना बतला दिये। अब आने वाले मन्वन्तर

१ क ऋषियस्माच्च जज्ञिरे। या०। २ स. ०पु प्रथिना सप्त। ३ क. ०श्च ऋषयाणि च यो। ४ क ०मस्याऽदितो दि०। ५ प संत्यादिना दि०। ५ क ०ता। मर०। क. ग. ०मस्याऽजमरश्च०। ७ क ०व भरद्वाजोऽप गौ०। ८ स द्रांष्य। ९ क सुमन्तो। १० स. ०वेत्सदा। ए०।

एतान्युक्तानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्त्वतः । मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतांगतान्यपि ॥४८॥
 सावर्णा मनवो विप्राः पञ्च तांश्च निबोधत । एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥४९॥
 परमेष्ठिसुता विप्रा मेरुसावर्ण्यातां गताः । दक्षस्यंते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृपाः ॥५०॥
 महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महोजसः । रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रोच्यो नाम मनुः स्मृतः ॥५१॥
 भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भोत्यो नाम रुचेः सुतः । अनागताश्च सप्तंते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः ॥५२॥
 तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सप्तनरा । पूर्णं युगसहस्रं परिपाल्या द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 प्रजापति (ते) इव तपसा संहारं तेषु नित्यशः । युगानि सप्ततिस्तानि साधाणि कथितानि च ॥५४॥
 कृतत्रेतादिपुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते । चतुर्दशंते मनवः कथिताः कीर्त्तिवर्धनाः ॥५५॥
 वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः । प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेपां प्रकीर्त्तनम् ॥५६॥
 मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः । न शक्यतेऽन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥५७॥
 विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भो द्विजाः । मन्वन्तरेषु संहाराः ध्रुयन्ते द्विजसत्तमाः ॥५८॥
 सदोपास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह । तपसा ब्रह्मचर्येण धृतेन च समन्विताः ॥५९॥
 पूर्णं युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते । तत्र भूतानि सर्वाणि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥६०॥
 ब्रह्माणमप्रतः कृत्वा सहादित्यगर्णद्विजाः । प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठ हरिनारायणं प्रभुम् ॥६१॥
 स्रष्टारं सर्वभूतानां कल्पाप्तेषु पुन पुनः । अव्यक्तं शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥६२॥

के बारे में भी संक्षेप से सुन लीजिये ॥४८॥ ब्राह्मणवृन्द । सावर्णं मनुर्षाच है, उन्हें सुनिये । उनमें से एक तो वैवस्वत मनु है और चार प्रजापति परमेष्ठी के पुत्र कहलाते हैं, जो मेरुसावर्ण्यभाव को प्राप्त हो गये हैं ॥४९॥ ये महोत्तरेजकी राजा, जिन्होंने सुमेरु पर्वत पर बड़ी तपस्या की है, प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और प्रिया से इनकी उत्पत्ति हुई है ॥५०॥ प्रजापति रुचि का पुत्र रोच्य नामक मनु कहलाया ॥५१॥ रुचि का वह पुत्र, जो भूति नामक देवी से उत्पन्न हुआ था, मीत्य नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस कल्प में ये सातों मनु होने वाले हैं ॥५२॥ ब्राह्मणवर । इनसे साता द्वीप और नगरी सहित यह सम्पूर्ण पृथिवी पूरे हजार युग तक पाली जायी है । प्रजापति की तपस्या से इनका नाश भी नित्य होता रहता है ॥५३॥ सत्ययुग, त्रेता आदि सत्तर युग मन्वन्तर कहलाते हैं । वेदों और पुराणों में कीर्त्ति-वर्धक ये ब्रह्महा मनु प्रजा के स्वामी माने गये हैं । ब्राह्मणवृन्द । इनका वर्णन कल्याण-दायक है ॥५४॥ मन्वन्तरी का संहार हुआ करता है और संहार के बाद फिर मन्वन्तर होते हैं । इनके अन्त का वर्णन संक्षेप से वर्णों में भी नहीं किया जा सकता ॥५५॥ विप्रवर । मन्वन्तरी में प्रजा की सृष्टि तथा संहार सुने जाते हैं ॥५६॥ वहाँ सप्तर्षियों के साथ देवता लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य और वेदों के प्रभाव से बच जाते हैं ॥५७॥ हजार युग पूर्ण हो जाने पर निःशेष नामक कल्प होता है, जिसमें सूर्य की किरणों से सब प्राणी दग्ध हो जाते हैं ॥५८॥ ब्राह्मणवृन्द । तब समस्त प्राणी आदित्य-गंगा के साथ ब्रह्मा की आग के कल्याण के अन्त में पुन पुन प्राणियों की सृष्टि-वर्त्ता, देव-श्रेष्ठ तथा व्यापक हरि-नारायण में प्रविष्ट हो जाते हैं ॥५९॥ हरि भगवान् अव्यक्त और सनातन हैं । उन्हीं के अधीन यह सपूर्ण संसार

अत्र व.^१ कीर्त्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै। विसर्गं मुनिशार्दूलाः साम्प्रतस्य महाद्युतेः॥६३॥
 अत्र वंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम्। यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिवंशिणकुले^२ प्रभुः॥६४॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्त्तनं नाम
 पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

आदित्योत्पत्ति-कथनम्

लोमहर्षण उवाच

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोत्तमाः। तस्य भार्याभिवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः॥१॥
 सुरेश्वरीति^३ विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी^४। सा वं भार्या भगवतो मार्त्तण्डस्य महात्मनः॥२॥
 भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी। संज्ञा नाम^५ सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता॥३॥
 आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा^६। गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत्॥४॥
 न खल्वस्य मृतोऽण्डस्य इति स्नेहादभायत। अजानन् काश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड इति चोच्यते॥५॥
 तेजस्त्रय्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः। येनातितापयामास त्रैलोक्यान् कश्यपात्मजः॥६॥

है॥६२॥ मुनिवर्य^१। अब मैं वर्तमान महातेजस्वी वैवस्वत भन्नु की सृष्टि का वर्णन आपसे कहूँगा॥६३॥ वक्ष्ये^२ वं प्रसंग से मैं उस प्राचीन वृष्णि-कुल का वर्णन कहूँगा, जिसमें वे सर्वशक्तिमान भगवान् हरि उत्पन्न हुए थे॥६४॥

श्री ब्रह्म महापुराण में मन्वन्तर-कीर्त्तन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥५॥

अध्याय ६

सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—विप्रवर^१। कश्यप और दक्ष की पुत्री के संयोग से विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुआ। उस विवस्वान् की पत्नी त्वाष्ट्री की पुत्री संज्ञा हुई॥१॥ भगवान् सूर्य की स्त्री (संज्ञा) तीना लोक में सुरेश्वरी नाम से विख्यात है॥२॥ तपस्या और कान्ति से युक्त संज्ञा सौन्दर्य और रीतिवत् से परिपूर्ण थी। स्वामी का रूप उसे पसन्द न था॥३॥ अगो में जलन पैदा करने वाला सूर्यमण्डल का वह तेजस्वी रूप उसे नहीं भाता था॥४॥ उसने स्नेह से कहा कि यह अण्डस्य भरा नहीं है। इसलिए कश्यप पुत्र (सूर्य) का नाम मार्त्तण्ड पड़ा॥५॥ उस विवस्वान् में अत्यन्त तेज होने के कारण वह तीनों लोकों को तपाने लगा॥६॥ विप्रवृन्द^२। अतितेजस्वी सूर्य ने

१ क ते। २ क ख ऽकुलोद्भवः। ३०। ३ क उरेणुरिति। ख. सुरेणुरिति। ४ क, माविनी। ५ ख

•म स्वतः०। ६ क ख सुतेजसः।

श्रीण्यपत्यानि भो विप्राः संज्ञायां तपतां वरः। आदित्यो जनयोमास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥७॥
मनुर्वैवस्वतः पूर्व्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः। यमश्च यमुना चैव यमजो सम्भूवतुः ॥८॥
श्यामवर्णन्तु तद्रूपं संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वतः। असहन्ती तु स्वां छायां सवर्णां निर्भर्त्सते ॥९॥
मायामयो तु सा संज्ञा सस्यां छायासमुत्थिताम्। प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छायां संज्ञां द्विजोत्तमाः ॥१०॥
उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते। स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिन ॥११॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः। त्वयैव भवने मह्यं वस्तु च निर्विशङ्कया ॥१२॥
इमो च बालको मह्यं कन्या चैवं सुमध्यमा। सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित् ॥१३॥

सवर्णोवाच

आ कश्चप्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्। आख्यास्यामि नमस्तुभ्यं गच्छ देवि ययासुखम् ॥१४॥

लोमहर्षण उवाच

समादिश्य सवर्णान्तु तथेत्युक्ता तदा च सा। त्वष्टुः समीपमगमद्ब्रीहितेव तपस्विनी ॥१५॥
पितुः समीपना सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता शुभा। भर्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥१६॥
आगच्छद्बड्या भूत्वाच्छाद्य रूपमनिन्दिता। कुरुनयोत्तरान् गत्वा तृणान्यय चचार ह ॥१७॥

सज्ञा से एक कन्या और दो प्रजापतिया को उत्पन्न किया। ॥७॥ पहले प्रजापति श्राद्धदेव मनु विवस्वान् से उत्पन्न हुए। फिर यम और यमुना दोनों यमज (जुड़वाँ) उत्पन्न हुए। ॥८॥ विवस्वान् के श्यामवर्ण रूप को न सहती हुई सज्ञा ने अन्न। छाया सवर्णा को रचा ॥९॥ ब्राह्मणवर्त्य। माया से रची हुई वह छाया अजलि बौधकर सज्ञा के सामने खड़ी हो गई और बोली—हे गुदरी। मैं आपके अधीन हूँ आपके लिए मुझे क्या करना है? आज्ञा दीजिए ॥१०-११॥

सज्ञाबोली—वैरा कल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाऊँगी। तू मेरे घर में निवास होकर रह ॥१२॥
इन दोनों बालका तथा इस सुन्दरी कन्या का पालन-पोषण करना। विन्तु यह रहस्य किसी मगवान् मूर्ख से नहीं कहना ॥१३॥

सवर्णा बोली—जब तक मेरी छोटी नहीं पकड़ी जायगी और शाप नहीं पड़ेगा, तब तक मैं इस रहस्य को प्रकट नहीं करूँगी। देखि, सुदूर प्रणाम। आप आनन्द से जाइये ॥१४॥

लोमहर्षण ने कहा— इस तरह सवर्णा के कहने पर उसको आज्ञा देकर तपस्विनी सज्ञा एगिजत-सी होती हुई त्वष्टा के पास गई ॥१५॥ पिता के समीप जाने पर पिता ने निडकत हुए, उस साध्वी से कहा—‘तू अपने पति के पास जा।’ और कार-बार इसके लिए प्रेरित किया ॥१६॥ तब वह अपने रूप को छिपा कर छोटी का स्वरूप धारण कर उत्तर दिशा में नुरूपेण से जाकर घास चरने लगी ॥१७॥ ‘यह सज्ञा है’ ऐसा समझते हुए मूर्ख ने दूधरी सज्ञा में

१ ख ० नि कारव्य स०। २ क ० या मगवास्तत। ओ०। ३ ख ० सज्ञा ततो द्विजा। उ०। ४ ख त्वयैह म०। ५ ख मन्वे। ६ ख स शुभे। ७ न ग ० भि मत तुभ्य। ८ ख तयैव सा। ९ क पितु। १० क ० मद्भीतिव च त०। ११ क ख पुत्र। १२ ग, खे।

द्वितीयाया तु सजायां सजेयमिति चिन्तयन् । आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसम तदा ॥१८॥
 पूर्वजस्य मनोविप्रा सदृशोऽयमिति प्रभु । मनुरेवाभयप्राप्ता साधन इति चोच्यते ॥१९॥
 द्वितीयो य सुतस्तस्या स विज्ञेय शनैर्दधर । सजा तु पार्थिवी दिप्रा स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥२०॥
 चक्षुराम्पयिक स्नेह न तथा पूर्वजेषु वै । मनुस्तस्या क्षमत्तस्तु यमस्तस्या न चक्षमे ॥२१॥
 स वै रोयाच्च बाल्याच्च भाविनोऽयस्य वानघ । पदा स तज्जयामास सजा वैयस्वतो दम ॥२२॥
 त शशाप तत क्रोधात् सायर्णजननी तदा । चरण पततामिष तवेति भृशदु खिता ॥२३॥
 यमस्तु ततपितु सव्यं प्राञ्जलि प्रत्यवेदयत । भृश शापभयोद्विग्न सजावाक्यैर्विशङ्कित ॥२४॥
 शापोऽयं विनिवर्त्तत प्रोवाच पितर द्विजा । मात्रा स्नेहेन सव्येषु धातितव्य सुतेषु च ॥२५॥
 'सेयमस्मानपास्येह' विवस्वन सम्बभूवपति । तस्या भयोद्यत पादो न तु देहे निपातित ॥२६॥
 बाल्याद्वा यदि वा लौल्यामोहात्तत्क्षन्तुमहसि । शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपता वर ।
 तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥२७॥

विवस्वानुवाच

असंशय पुत्र महदभविष्यत्यत्र कारणम् । येन स्वामाविशत क्रोधो घम्भज्ञ सत्यवादिनम् ॥२८॥
 न शक्यमेतमिष्या तु कर्त्त मातृवचस्तव । कुमयो मासमादाय यात्यन्यवनिमेव च ॥२९॥

अपन समान पुत्र उत्पन्न किया ॥१८॥ ब्राह्मणों यह (बालक) अपने पूज्य मनु व समान था । इसलिए मनु ही इसका नाम पड़ा । यह सावण भी कहलाता है ॥१९॥ उस (सवर्णा) के दूसरे पुत्र को शनैश्चर समझिये । निम्नवर्ण । सवर्णा सजा के पुत्रों की अपेक्षा अपन पुत्रों से अधिक स्नेह करता थी ॥२०॥ मनु ने तो छाया का यह व्यवहार सह लिया पर यम नहीं सह सका ॥२१॥ उस सूर्य-पुत्र यम न काव व कारण या वचन के कारण या होनहार के बल से सवर्णा को पैर से ताड़न किया ॥२२॥ तब अत्यन्त दुःखी होकर क्रोध से सवर्णा न उसको शाप दिया— तब यह पर गिर जाए ॥२३॥ ब्राह्मणों ! शाप के मय से अत्यन्त चंचल होकर छाया के वचनों से शक्ति होत हुए यम ने हाथ जोड़कर अपने पिता से निवेदन किया— ॥२४॥ मेरा शाप दूर कीजिये । माता को सब पुत्रों में समान भाव से बतना चाहिये । पर यह हमको छोड़कर छोटी पर अधिक स्नेह करती है । इसलिए बालभाव से या मूखता से मैंने उसपर पर तो उठाया पर देह पर गिराया नहीं ॥२५ २६॥ यह मेरा अपराध क्षमा कीजिये । लोक-पति महातजस्विन माता न मुझ शाप दिया है आप कृपा कर जिससे कि मेरा पर न गिरने पाये ॥२७॥

सूर्य ने कहा—पुत्र ! निःसन्देह इसमें कोई महान कारण होगा जिससे कि तुम जैसे धर्मात्मा अर सत्यवादी को क्रोध उत्पन्न हो गया ॥२८॥ तुम्हारी माता के वचन को मैंमिष्या नहीं कर सकता । कुमि (छोटे बौद्ध) तुम्हारे पर से मास ले लेकर पृथ्वी पर जायगे ॥२९॥ इस तरह तुम्हारी माता का वचन सत्य होगा । शाप का

१ क ग सावण्य । २ ख अस्तस्या स । ३ ख सताड्यामास । ४ ख सा । ५ क ग अव्ययज० । ६ ख स्वपितु ७ ग अति प्रो० । ८ क ख तदा । ९ ख अन्तर्हाय यवयास । १० ग अह यवायास । ११ ख वा मोहात्तद भवान् क्षतु० । १२ ख अहति । १३० ।

कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि॥३०॥
आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमयं तनयेषु वै। तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकस्मिन् प्रियते त्वया॥३१॥
सा तत् परिहरन्ती तु नाचक्षते विवस्वते। स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत्॥३२॥
तां शप्नुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः। मूर्द्धजेषु निजग्राह स तु तां मुनिसत्तमाः॥३३॥
ततः सर्वं ययावत्तमाचक्षते विवस्वते। विवस्वानय तच्छ्रुत्वा जुह्वस्त्वष्टारमभ्यगात्॥३४॥
दृष्ट्वा तु तं ययान्यायमर्चयित्वा विभावसुम्। निर्दग्धुकाम रोषेण सान्त्वयामास वै तदा॥३५॥

त्वष्टीवाच

तयातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते। असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शाद्वले॥३६॥
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वा भाव्यां शुभचारिणीम्। इलाध्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते॥३७॥
अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम सम्मतम्। रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम॥३८॥
ततोऽभ्युपागमत्वष्टा मात्संशस्य विवस्वतः। अग्निमारोप्य तत्तेजः सातयामास भो द्विजाः॥३९॥
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा सहतेन वै। कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा॥४०॥
ददर्श योगमास्थाय स्वा भाव्यां वडवा ततः। अधृष्या सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च॥४१॥
वडवावपुषा विप्राश्चरन्तीमकुतोभयाम्। सोऽद्वहृषेण भगवांस्ता मुखे समभावयत्॥४२॥

निवारण करके तुम भी सुरक्षित हो जाओगे॥३०॥ सूर्य ने छाया से कहा—'क्यों तुम समान पुत्रों में से एक पर अधिक स्नेह करती हो?'॥३१॥ उसने उस रहस्य को गुप्त करती हुई सूर्य को उत्तर नहीं दिया। सूर्य ने भी योग से समाधि लगाकर सत्य का पता लगा लिया।॥३२॥ मुनिश्रेष्ठो! भगवान् सूर्य ने उसको शाप देने की इच्छा रखने हुए भी शाप नहीं दिया, बल्कि उसका केश पकड़ लिया॥३३॥ तब छाया ने सूर्य से सब वृत्तान्त कह दिया। सूर्य यह सुनकर क्रोध से त्वष्टा के पास गया॥३४॥ जलान की इच्छा रखने वाले क्रुपित सूर्य को देखकर त्वष्टा ने समयाचित मत्कार करके उसको शान्त किया॥३५॥

त्वष्टा ने कहा—'आपने इस अत्यन्त तेजस्वी रूप को न सहती हुई संज्ञा छोड़ी बनकर वन की दरियाली में जाती है॥३६॥ हे सूर्य! आज आप कल्याणमयी, प्रशस्त के योग्य और योगबल से युक्त अपनी पत्नी को देखोगे॥३७॥ हे शत्रु-नाशन! हे देव! यदि मेरी सलाह को आप अनुकूल समझें तो आज मैं आपके रूप की सुन्दर बना दूँ॥३८॥ ब्राह्मणों! तब सूर्य की स्वीकृति पाकर त्वष्टा ने भ्रामण-यन्त्र के द्वारा सूर्य के तेज को छिन्न भिन्न अर्थात् सूक्ष्म कर दिया॥३९॥ इससे (अर्थात् तेज के सक्षिप्त हो जाने से) अत्यन्त मध्य रूप हो गया। तब वह सुन्दर से सुन्दर रूप पहनने से अधिक सुशोभित होने लगा॥४०॥ ब्राह्मणों! तत्पश्चात् सूर्य ने समाधि लगाकर अपनी पत्नी छोड़ी की देता। वह तेज और नियमों में सब प्राणियों से बढकर थी॥४१॥ छोड़ी का शरीर धारण कर निर्भय होकर वह चर रही थी। भगवान् सूर्य ने अब का स्वरूप बनाकर मैयुन के लिए चेष्टा करती हुई अपनी पत्नी के मूर्ह में

मैयुनाय विचेष्टन्तीं परमुसोऽवशङ्क्या। सा तस्मिन्वमच्छृङ्ग नासिकान्यां विवस्वत ॥४३॥
 देवी तस्यामजायेतामश्विनी भिषजां थरो। नासत्यश्चैव दत्तश्च स्मृती द्वावश्विनाविति ॥४४॥
 'मात्तं' षडस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापते। ता तु रूपेण कातेन दशंयामास भास्वर ॥४५॥
 सा तु दृष्ट्वैव भर्तारं ततोप मुनिसत्तमा। यमस्तु कर्मणा तेन भूश पीडितमानस ॥४६॥
 धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इमा प्रजा। स लेभे कर्मणा तेन शुभेन परमद्युति ॥४७॥
 पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च। मनु प्रजापतिस्त्वासीत्सार्वाणि स तपोयता ॥४८॥
 भाव्य समागते तस्मिन्मनु सार्वाणिकेऽन्तरे। मेरुपृष्ठे तपो नित्यमद्यापि स चरत्युत ॥४९॥
 भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्व स तु लब्धवान्। त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोऽवक्रमवल्पयत् ॥५०॥
 तदप्रतिहृतं पुष्टे दानवान्तर्विकीर्णया। यवोयसी तु साप्यासीद्यामी रुन्वा यशस्विनी ॥५१॥
 अभवच्च रारिच्छेष्टा यमुना लोचपायनी। मनुस्मृत्युध्यते लोके सावर्णं इति चोच्यते ॥५२॥
 द्वितीयो य सुतरतस्य मनोभ्रता शनैश्चर। ग्रहत्व स च लेभे वै सध्वंलोकाभिपूजित ॥५३॥
 य इदं जन्म देवानां शृणुयान्नरसत्तम। आपदं प्राप्य मुध्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥५४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्योत्पत्तिकथन

नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

मैयुन किया ॥४२॥ उसने दूसरे पुरुष की शक्ति से मूय के बाय को अपनी नाक के द्वारा बाहर निकाल दिया ॥४३॥
 उससे वैद्यो मे श्रष्ट और निर्व्यरूप वाले अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। दाना अश्विनीकुमार नाम 'य' अर दत्त नाम से
 विख्यात हुए ॥४४॥ ये दाना अठव प्रजापति मातृशब्द के पुत्र हुए। पश्चात् मूय ने दिव्य रूप से अपनी मर्मा को
 देखा ॥४५॥ ब्राह्मणश्रष्टो। वह अपन स्वामी को देखत ही सन्तुष्ट हो गई। यम उस कम से अत्यन्त दुःखी
 हुआ और धर्मराज नाम से ख्यात होत हुए धर्मपूवक प्रजा का पालन करने लगा ॥४६॥ प्रजापालनरूप शुभ काम
 के द्वारा अत्यन्त कान्तिमान् यम ने पितरों का स्वामित्व तथा लोकपाल का पद प्राप्त किया। वह तपस्वी सवगा
 पुत्र सार्वर्णिन मन्वन्तर मे प्रजापति मनु होगा ॥४७ ४८॥ वह आज भा मेरुपर्वत के पृष्ठभाग मे तप कर रहा
 है ॥४९॥ उसका भाई शनैश्चर ग्रह हुआ। त्वष्टा ने दैत्या के नाश करने की इच्छा से मूय के उस तज से युद्ध म
 नष्ट न होत वाला विष्णु का चक्र बनाया ॥५०॥ वह भी प्रशस्त यशवाली यम का छोटी वहन नदिया मे श्रष्ट अर
 लोगों को पवित्र करने वाली यमुना नाम से ख्यात हुई ॥५१॥ लोग मनु अर सावर्ण दोना नाम कहते हैं ॥५२॥
 मूय का दूसरा पुत्र जो मनु का भाई शनैश्चर कहलाता है सब लोगों के पूजन योग्य ग्रहमात्र को प्राप्त हुआ ॥५३॥
 जो मनुष्य देवताका के इस जन्म को सुनया वह सब विपत्तियों से बचकर महान् यश प्राप्त करेगा ॥५४॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे मूय-जन्म कथन नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः ।

सूर्यवश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

मनोर्वैवस्वतस्यासन पुत्रा वै नव तत्समा १। इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो घृष्ट शर्यातिरेव च ॥१॥
नरिष्यन्तश्च १ पाण्डो १ वै प्राज्ञ रिष्टश्च सप्तमः । रूपश्च १पृषधश्च नवते मुनिसत्तमा ॥२॥
अकरोत् पुत्रकामस्तु १ मनु रिष्टि प्रजापति । मित्रावरुणयोर्विप्रा पूर्वमेव महामति ॥३॥
अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजा । तस्या च वत्तमानायामिष्टया च द्विजसत्तमा ॥४॥
मित्रावरुणयोरशो १नुराहुतिमावहत् १ तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥५॥
दिव्यसहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुति । तामिलेत्येव १ होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ॥६॥
अनुगच्छस्व मा भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह । धर्मयुक्तमिदं वाक्य पुत्रकाम प्रजापतिम् ॥७॥

इलोवाच

मित्रावरुणयोरशो जातास्मि वदता वर । तयो सकाश यास्यामि न मा धर्महता कुरु ॥८॥
संवभुत्वा मनु देव मित्रावरुणयोरिला । गत्वान्तिक वरारोहा प्राञ्जलिर्वाषियमश्रवीत ॥९॥

अध्याय ७

सूर्यवशुका वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—वैवस्वत मनु के अपन ही समान इक्ष्वाकु नामाग घृष्ट शर्याति नरिष्यन्त प्राज्ञ,
रिष्ट रूप अर पृषध—ये न। पुत्र ये ॥१२॥ विप्रवृ १ इन पुत्रो की उत्पत्ति से पहले बुद्धिमान प्रजापति मनु ने
पुत्र की इच्छा से मित्रावरुण का यज्ञ किया ॥३॥ द्विजवय । उस वतमान यग म मनु न मित्रवरुण के अश से
अग्नि मे बहुतसी आहुतियाँ दी ॥४॥ उस यज्ञ मे दिव्य वस्त्राभरण से अलङ्कृत तथा दिव्यरूपकी कन्या उत्पन्न
हुई ॥५॥ दण्डधारी मनु न उसका नाम इला रखकर कहा—पुत्रि । तुम मेरे साथ चलो । तब पुत्रार्थी प्रजापति
से इला न यह धम-युक्त वाक्य कहा ॥६॥

इला बोली—हृ श्रष्ट वक्ता । मैं मित्रावरुण के अग से जनमी हूँ । इसलिये उन्हीं के पास आऊँगी । आप
मुझ धम से च्युत न कर ॥८॥ ऐसा कहकर वह सुन्दरी इला मित्रावरुण के पास चली गई और अञ्जलि
वापकर कहने लगी ॥९॥

१ क ख सत्तमा । २ ख ० तस्तु य० । ३ ख ० ० १ नाम गोर्लिष्टश्च सत्तमा । क० । ४ ग पुरषध
५ क ० स्तु मुनिरि० । ६ क ० मनुर्होत् । ७ ख ० वपत् । ८ क ख ० लेतीति हो० ।

इलोवाच

अंशेऽस्मि' युवयोजिता देवो किं करवाणि धाम्। मनुना चाहमुचता वा अनुगच्छस्य मामिति ॥१०॥
तो तथावादिनां साध्वीभिलां धर्मंपरायणाम्। मित्रदच वरणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११॥

मित्रावरुणावूचतुः

अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च। सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतो स्वो वरवर्णिनि ॥१२॥
आवपोस्त्व महाभागे ह्य्यातिं कथ्येति यास्यसि। मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्तवमेव च भद्रिष्यसि ॥१३॥
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने। जगत्प्रियो धर्मंशौलो मनोर्व्वंशविघट्टनः ॥१४॥
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥१५॥
बुधेनान्तरमासाद्य मेयुनायोपमन्त्रिता। सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्यां जज्ञे पुह्रवा ॥१६॥
जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता। सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥१७॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्चदच। भो द्विजा। उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्चदच। पद्मिचमा ॥१८॥
दिक्पूष्वां भुनिशाद्दंला गयस्य तु गया स्मृता। प्रविष्टे तु मनो विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥१९॥
दशधा तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्। इक्ष्वाकुज्यैष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥२०॥
कन्याभावात् सुद्युम्नो नैतद्वाज्यमवाप्तवान्। वसिष्ठवचनात्वासीत्' प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२१॥

इला ने कहा—हे देवताओ। आप दोनों के अश से मैं उत्पन्न हुई हूँ। चिन्तु मनु न मुझे अपन साथ चलने के लिए कहा था ॥१०॥ अब आप मुझे आदेश दे, क्या करूँ? द्विजवर्ग' उस धर्म-परायण साध्वी इला के ऐसा कहने पर मित्रा-वरुण ने उससे कहा ॥११॥

मित्रावरुण बोले—हे सुन्दर कटि वाली! हे महाभागे। तुम्हारे इस धर्म, विनय, शान्ति और सत्य से हम प्रसन्न हैं ॥१२॥ तुम हमारी पुत्री रूप में सस्यार में ख्यात होगी। हे शोभने! मनु का वंश-वर्षक पुत्र तुम्हीं होगी ॥१३॥ जगत् प्रिय, धर्मन्ध्या और मनु-वंश-वर्षक सुद्युम्न—इस नाम से तीनों लोक में विख्यात होगी। यह सुनकर वह पिता के यहाँ से लौट पड़ी ॥१४—१५॥ तो अक्सर पाकर चन्द्रमा ने पुत्र वृष ने उससे रति की प्रार्थना की। और वृष से इला ने पुह्रवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१६॥ उसको उत्पन्न कर इला सुद्युम्न बन गई। विप्रवृद्ध' सुद्युम्न ने परम धार्मिक तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्च ॥१७॥ मुनिज्यैष्ठो। उत्कल की उत्कला, विनताश्च की दिक्पूष्वा और गय की गया नामक नगरी बनी ॥१८॥ द्विजवृन्द। जब मनु ने क्षत्रयूदन सूर्य में प्रवेश किया, तब उसके पुत्रों न इस पृथिवी को फिर दस भागों में बाँट दिया ॥१९॥ ज्यैष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को मध्यदेश मिला ॥२०॥ कन्याभाव होने के कारण सुद्युम्न को यह राज्य नहीं मिला। ब्राह्मणवर। वसिष्ठ के वचन से धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा महात्मा पुरुषों के समान होने लगी ॥२१॥

१ ख ० स्मि युव०। २ क मनुवश०। ३ क ० पयसिता। ४ ख ० धाद्राजा तस्माज्जज्ञे। ५ क. विजिता०।
६ क विजिता०। ७ क ० धा तदमूलज०। ग ० धा तु कुलक्षेत्रम०। ८ ख ० कुयैष्ठदा०। ९ ग ० तदगुण म०।
१० ख ० नाच्चाऽप्री०।

प्रतिष्ठा धर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः। तत्पुत्रवरसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशः॥२२॥
मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः। धृतास्तामिलेत्येवं सुद्युम्नेति च विभ्रुतः॥२३॥
नारिष्यन्ताः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजाः। अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः॥२४॥
घृष्टस्य धार्ष्टिकं क्षत्रं रणदुप्तं बभूव ह। कल्पस्य च काल्पाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः॥२५॥
नाभागघृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः। प्राशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः॥२६॥
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो यमः। शर्यातिमियुनं त्वासीदानर्तो नाम विभ्रुतः॥२७॥
पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह। आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महाद्युतिः॥२८॥
आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली। रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मो नाम धार्म्मिकः॥२९॥
ज्येष्ठः पुत्रः स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्। स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्व्वं ब्रह्मणोऽन्तिके॥३०॥
मुहूर्त्तभूतं देवस्य तस्यो बहुयुगं द्विजाः। आजगाम स चैवाथ स्वां पुरीं यादवैवंताम्॥३१॥
कृतां द्वारवतीं नाम धृद्द्वारां मनोरमां। भोजवृष्णन्धर्कागुप्तां वसुदेवपुरोगमैः॥३२॥
तत्रैव रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वं द्विजोत्तमाः। कन्यां तां बलदेवाय सुभद्रां नाम रैवतीम्॥३३॥
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः॥३४॥

महान् यशस्वी सुद्युम्न ने राज्य प्राप्त कर पुत्ररत्ना को दे दिया॥२२॥ मुनिवर । स्त्री-पुरुष उभय लक्षणो से युक्त सुद्युम्न को देखकर लोग उसे दत्ता और सुद्युम्न दोनों नाम से पुकारने लगे॥२३॥ विप्रबृन्द । नरिष्यन्त के शक जाति वाले पुत्र हुए। नामाग के राजाओं में श्रेष्ठ अम्बरीष पुत्र हुआ॥२४॥ घृष्ट के युद्ध-गर्वी धार्ष्टिक नामक क्षत्रिय-पुत्र हुआ। कल्प के मुद्राभिमानी काल्प नामक क्षत्रिय-पुत्र थे॥२५॥ नामाग और घृष्ट के क्षत्रिय-पुत्र वैश्य बन गये। प्राशु के एक पुत्र हुआ जो प्रजापति कहलाया॥२६॥ नरिष्यन्त का पुत्र यम दण्ड धारी राजा हुआ। शर्याति के आनर्त्त नामक पुत्र और सुकन्या नामक पुत्री हुई। सुकन्या च्यवन मुनि की पत्नी बनी। आनर्त्त का पुत्र महातेजस्वी रैव हुआ॥२७-२८॥ आनर्त्त देश में दत्ता राज्य था और कुशस्थली (द्वारका) राजधानी थी। रैव का धर्म्मरत्ना पुत्र रैवत और ककुद्मी दोनों नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२९॥ वह ज्येष्ठ पुत्र था और उसी को द्वारका का राज्य मिला। गान्धर्व्व वेद को सुनकर वह अपनी कन्या सहित ब्रह्मा के पास चला गया॥३०॥ वहाँ वह देवताओं की दो मंडी के बराबर बहुत युगों तक उनके पास ठहर गया। फिर यादवों से व्याप्त अपनी नगरी द्वारका पुरी नामक लौट आया॥३१॥ नगरी बहुत द्वारों वाली और मनोहर थी। भोज, वृष्णि और अन्धक वगैरे, जिनमें वसुदेव प्रयात थे, उधरों रक्षा करते थे॥३२॥ विप्रवर । उसी नगर में श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम के यथार्थ तत्त्व को जानकर रैवत रैवती नामक अपनी सुन्दरी कन्या बलदेव को समर्पित कर तपस्या करने के लिए मुनेश पर्वत पर चला गया। धर्म्मरत्ना बलराम भी रैवती के साथ मुखपूर्वक रमण करने लगे॥३३-३४॥

१ ख. ०त्येव मु०। २ ग. विभ्रुति। ३ ख. ०वत्पुष्पिमतमा। घृ०। ४ ग. रैवो। ५ ख. ग. पुत्रगत०। ६ ख. ०री पादपर्व०। ७ ख. ०ता द्वारवती नाम्ना व०। ८ ख. सततद्रैव०। ९ ग. यायान्त्य। १० ग. सन्धित।

मुनय उचुः

वथं बहुयुगे काले रमतती महामते । न जरा रेवतीं प्राप्ता रवतं च ककुद्मिनम् ॥३५॥
मेरं गतस्य वा तस्य शर्यातिः सन्ततिः कथम् । स्थिता पृथिव्यामद्यापि धीतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६॥

लोमहर्षण उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः । ऋतुचक्रं प्रभवति । ब्रह्मलोके सदानयाः ।
ककुद्मिनः । स्वर्लोकं तु रवतस्य गतस्य ह ॥३७॥
हृता । पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली । तस्य भ्रातृशतं । त्वासीर्द्धाम्मिषस्य महत्मानः ॥३८॥
तद्वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राशामदच्युताः । विद्वत्स्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९॥
अन्ववायरतु सुमहास्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः । तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शर्याता इति विभ्रुताः ॥४०॥
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्वीसु विभ्रुताः । सर्व्वशः सर्व्वगहनं प्रदिष्टारते महोजसः ॥४१॥
नाभागरिष्टपुत्रो द्वौ वंश्यो ब्राह्मणता गतो । कश्यपस्य तु कार्याः क्षत्रिया युद्धदुर्मन्दाः ॥४२॥
पुष्यो हिंसयित्वा तु गुरोर्गा द्विजसत्तमाः । शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवते परिकीर्त्तिता ॥४३॥
वैवस्वतस्य तनया मुनेर्ध्वं मुनिसत्तमाः । क्षुचतस्तु मनोविप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीद्विषवाकोर्भूरिदक्षिणम् । तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु । विकुक्षित्वादयोधताम् ॥४५॥

मुनियों ने पूछा—महाप्रज ! बहुत युग बीत जाने पर रेवती और ककुब्ज रवत को बुद्धता क्यों नहीं प्राप्त हुई ? ॥३५॥ या मेरु पर्वत पर उनके चले जाने पर शर्याति राजा की सन्तान आज भी पृथ्वी पर कैसे अवस्थित है ? यह बात हम लोग तत्त्वत मुनना चाहते हैं ॥३६॥

लोमहर्षण बोले—निष्पाप मुनिवृन्द ! बुद्धापा, मूख, प्यास, मृत्यु और ऋतु-परिवर्तन आदि ब्रह्मलोक में नहीं हुआ करते हैं । ककुब्जी रवत के देव-लोक चले जागे पर राक्षसों ने दारुका पर अधिकार कर लिया ॥३७॥ उस धार्मिक राजा के सौ भाई थे, जो राक्षसों से पीड़ित होकर विभिन्न दिशाओं में भाग गये ॥३८॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो ! उन भागे हुए भाइयों का वंश बहुत बड़ा था । उसी वंश के लोग मय दिशाओं में शर्याति नाम से विख्यात सर्वगुण संपन्न क्षत्रिय थे । वे महान् राजस्वी सब ओर से सब वनों में प्रविष्ट हुए ॥३९-४१॥ नामगारिष्ट के वैश्य जाति वाले दो पुत्र ब्राह्मण बन गये । कश्यप के कश्यप नाम से प्रसिद्ध युद्धामिभानी क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥४२॥ विप्रवर ! पुष्य गुरु की माय को मारने के कारण शाप से शूद्र हो गया । मुनिश्रेष्ठो ! ये नौ पुत्र वैवस्वत मनु के कहलाये ॥४३॥ ब्राह्मणों । मनु की छीक से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ ॥४४॥ इक्ष्वाकु के बहुत-सी दक्षिणा देने वाले सौ पुत्र हुए । उनमें विकुक्षि सबसे ज्येष्ठ था । वह पेट की गडबडी के कारण युद्ध करने में असमर्थ रहा ॥४५॥ परम धर्मज्ञ

१ क ०ति तत्र लो० । २ ख ०दिक्षिर्नव स्व० । ३ क ग हृता । ४ ख ०त वा ऽऽसी० । ५ ख. ०दप्युत ।
वि० । ६ क ०मा । एव ते तु मु० । ७ क ०पामेते । ८ क ०ष्टाश्च म० । ९ ग ०क्षिण । १० । १० क. ०कुक्षि
श्रेष्ठ० । ११ क विकर्म रुद्रमनिम । ख विकर्मेण समन्वित । प्र० ।

प्राप्तः परमधम्मन्तः^१ सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः। शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः॥४६॥
 उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः। चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि॥४७॥
 वशातिप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमाः। इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षि वा अष्टकायामयादिशत्॥४८॥
 मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः। श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टो अकृते श्राद्धकर्मणि॥४९॥
 भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः। इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः॥५०॥
 इक्ष्वाको संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत्। शशादस्य तु दायादः वकुत्स्यो नाम वीर्यवान्॥५१॥
 अनेनास्तु^२ ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेन स स्मृतः^३। विष्टराश्वः^४ पृथोः पुत्रस्तस्मादाद्रस्त्वजायत॥५२॥
 आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तत्सुतो द्विजाः। जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावर्ततो येन निर्मिता॥५३॥
 श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महोपतिः। कुबलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः॥५४॥
 यः^५ स धुन्धुदघात्राजः धुन्धुमारत्वमागतः॥५५॥

मुनय उचुः

धुन्धोर्वध^६ महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। दध्वात्कुबलाश्वोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः॥५६॥

लोमहर्षण उवाच

कुबलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो बुरासदाः॥५७॥

विकुक्ष अयोध्या का शासक था। उसके शकुनि आदि पाँच सौ पुत्र हुए॥४६॥ जिनमें से चालीस उत्तरापथ के और
 अठारह दक्षिणापथ के महाबली रक्षक थे॥४७॥ ब्राह्मणश्रेष्ठों। वशाति आदि दूसरे भी रक्षक थे। एक समय
 अष्टका (पितर और देवताओं के कर्म के दिन) में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि से कहा—'महाबली! श्राद्ध के लिए मृगा
 को मारकर मांस ले आओ'॥४८॥ ब्राह्मणों! श्राद्ध-कर्म में निपुण विकुक्षि श्राद्ध-कर्म के सम्पन्न हुए बिना
 ही खरगोश को खाकर शिवार खेलने के लिए चला गया। तब घमिष्ठ ने आदेश से राजा इक्ष्वाकु ने (खरगोश खान
 थाले) शशाद विकुक्षि का परित्याग कर दिया॥४९॥ इक्ष्वाकु के बाद शशाद राजा हुआ। शशाद का पुत्र
 अतिशक्तिशाली वकुत्स्थ हुआ।॥५१॥ वकुत्स्थ से अनेन स आर अनेन स से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु से विष्टराश्व
 और उमने आर्द्र हुआ।॥५२॥ विप्रवृन्द! आर्द्र का पुत्र युवनाश्व आर उसका पुत्र थाव हुआ। थाव के पुत्र
 श्रावस्तक ने श्रावस्तः नाम की नगरी बनायी।॥५३॥ श्रावस्तक का पुत्र राजा बृहदश्व हुआ। उसका पुत्र परम
 धर्मात्मा राजा कुबलाश्व हुआ, जिसका नाम धुन्धु नामक दैत्य के मारने से धुन्धुमार पड़ गया॥५४-५५॥

मुनियों ने कहा—हे महाविद्वन्! हम धुन्धु के मारने का आख्यान तत्त्वपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिसके
 मारने से कुबलाश्व धुन्धुमार बहलौया॥५६॥

लोमहर्षण बोले—कुबलाश्व के उत्तम धनुर्धर, सब विद्या-विशारद, बलवान्, सुन्दर, धर्मात्मा, यश-वर्ता और

१ क० भन्त पृथिव्याधि०। २ स० शिः इणदप्र०। ३ स० अनस क०। ४ स० अतः। वाराश्वस्तु पू०।
 ५ क० विष्णारस पू०। ६ क० स० यस्तु धु०। ७ क० ०ध वय ब्रह्मप्राप्तु०।

बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिवक्षिणाः। कुबलाश्वं पिता^१ राज्ये बृहदश्वो^२ न्ययोजयत् ॥५८॥
पुत्रसंक्रामितश्चीस्तु वनं राजा विवेश ह। तमुत्तङ्कोऽथ विप्रयिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तच्च कर्तुं^३ त्वमर्हसि। निरुद्धिमस्तपश्चर्तुं^४ नहि शक्नोमि पार्थिव ॥६०॥
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु। समुद्रो बालुकापूर्णं उदालक इति स्मृतः ॥६१॥
देवतानामवध्यदश्च महाकायो महाबलः। अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तहितो महान् ॥६२॥
राक्षसस्य^५ मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुरः^६। शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥६३॥
संवत्सरस्य पय्यन्ते स निद्रासं विमुञ्चति। यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४॥
तस्य निश्वासवातेन रज उद्भूयते महत्। आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥६५॥
सविस्फुलिङ्ग सङ्गारं सधूममतिदारुणम्। तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६॥
तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया। लोकाः स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहृते त्वया ॥६७॥
त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते। विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्व्वयुगे नृप ॥६८॥
यस्तं महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम्। तस्य त्वं वरदानेन तेजश्चाख्यापयिष्यसि ॥६९॥
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते। निर्दग्धु पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि ॥७०॥

बहु-वक्षिणा-दाता सौ पुत्र हुए ॥५७३॥ पिता बृहदश्व ने कुबलाश्व को राज्य प्रदान किया। इस प्रकार राज्य-लक्ष्मी पुत्र के अधीन कर राजा ने वन में प्रवेश किया। पर उत्तंक नामक ब्रह्मर्षि ने उसको अपने से रोक दिया ॥५८-५९॥

उत्तंक ने कहा—राजन्! तुम्हें रक्षा करनी चाहिये तुम उत्तरे योग्य हो, मैं निश्चिन्ततापूर्वक तपस्या नहीं कर पाता ॥६०॥ क्योंकि मेरे आश्रम के समीप मरुधन्वा नामक देश में बालू से भरा हुआ समुद्र उदालक नाम से ख्यात है ॥६१॥ वहाँ पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर रेत से आच्छादित, देवताओं से भी अवध्य, महाकाय और महाबली यशु नामक राक्षस का पुत्र घुघु नामक महाराक्षस कठिन तपस्या करके लोक विनाश के लिए शयन करता है ॥६२-६३॥ पृथिवी-पाल! वरुण ने अन्त में जब वह साँस छाड़ता है तब वहाँ भू-कम्प हो जाता है ॥६४॥ उसकी साँस के वायु से उड़कर धूल सूर्य के मार्ग को आच्छादित कर देती है। सात दिन तक पृथ्वी कांपती रहती है ॥६५॥ घूर्ण से युक्त अग्नि से भयानक चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। तात! इसी कारण मैं अपने आश्रम में नहीं ठहर पाता हूँ ॥६६॥ जन-वल्याण की कामता से तुम उस महाकाय राक्षस को मारो। तुम्हारे द्वारा उसका वध हो जाने पर जनता स्वस्थ, सन्तुष्ट हो जायगी। ॥६७॥ राजन्! उसका वध करने में तुम्हीं समर्थ हो। पूर्व युग में विष्णु ने मुझे वरदान दिया था कि जो उस भयंकर महाराक्षस को मारेगा, उसके पंज को वरदान से तुम बढ़ाओगे ॥६८-६९॥ पृथिवीपते! महातेजस्वी घुघु अल्प तेज से सैकड़ों युगों तक वध नहीं किया जा सकता ॥७०॥ उसका महापराक्रम

१ क. ख सुग। २ क. ख ऽश्वोऽन्मपेवय०। ३ ग. प्रयात। ४ क. ख कर्तुमिहाहं०। ५ ख ऽमुद्रवा०।
६ ख उज्जानक०। ७ ख ऽत। दैव०। ८ ख अतुमूमि०। ९ ख ऽसस्तु म०। १० ख ऽत। मस्तु को०।
११ क. लोकाश्च सुखमेधन्ते त०।

वीर्यञ्च सुमहत्तस्य देवरपि दुरासदम् । स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना ।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मिन् धुन्धुनिबर्हणे ॥७१॥

बृहदश्व उवाच

भगवन्व्यस्तशस्त्रोऽहमय तु तनयो मम । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न सशय ॥७२॥
स त व्यादिश्य तनय राजर्षिर्धुन्धुमारणे । जगाम पर्वतायैव नृपति सशितप्रत ॥७३॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजा । प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्योस्तस्य निबर्हणे ॥७४॥
तमाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभु । उत्तङ्कस्य नियोगाद्वं लोकानां हितकाम्यया ॥७५॥
तस्मिन् प्रयाते दुष्टर्षे दिवि शब्दो महानभूत् । एष श्रीमानवधोऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥७६॥
दिव्यगन्धंश्च माल्यंश्च त देवा समवाकिरन् । देवदुन्दुभयदत्तं प्रणेतुं द्विजसत्तमा ॥७७॥
स गत्वा जयता श्रेष्ठस्तनयं सह वीर्यवान् । समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमध्ययम् ॥७८॥
तस्य पुत्रं खनद्भिदं बालुकान्तरहितस्तदा । धुधुरासावितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥७९॥
मुखजेनाग्निना क्रोधात्लोकानुद्धंसं पद्मिन् । वारि सुस्त्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥८०॥
सोमस्य मुनिशादर्दूला वरोर्मिकलिलो महान् । तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिर्हनु रक्षसा ॥८१॥

देवतात्रा से मा अजय है। महात्मा उत्तङ्क क एसा कहन पर राजर्षि न अपन पुत्र कुवलाश्व को धुन्धुनय क निमित्त उस मुनि को दे दिया ॥७१॥

बृहदश्व ने कहा—भगवन ! मैं ता शस्त्र का त्याग कर दिया है। किंतु मरा यह पुत्र निस्सन्देह धुधु को मारगा ॥७२॥ इसक बाद अपन पुत्र को धुधुनय का आदेश देकर वह राजर्षि तपस्या करन क लिए पर्वत पर चला गया ॥७३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणो ! स पुत्रा को संग ले कुवलाश्व ने उत्तङ्क के साथ धुधु का मारन के लिए प्रस्थान किया तो लोकहित क लिए उत्तङ्क की आज्ञा से भगवान् विष्णु उस कुवलाश्व क शरीर में प्रविष्ट हुए ॥७४७५॥ राजा क प्रस्थान करत ही आवागवाणा का महानाद हुआ कि यह राजा अवध्य है अर धुधु का मारगा ॥७६॥ देवतात्रा न उसक ऊपर दिव्य मुग्धित पुष्पा की वृष्टि की। दुन्दुमा वजन लगा ॥७७॥ जय गीला म श्रेष्ठ वह पराक्रमी राजा अपन पुत्रा क साथ जाकर बालू स परिपूर्ण समुद्र को खुदवाने लगा ॥७८॥ ब्राह्मणो ! राजा-धुधु के खानन के समय बालू क भीतर छिपा धुधु पश्चिम दिशा को दक कर सडा हो गया ॥७९॥ अर श्रेष्ठ से विश्व का सहार करन क लिए मुख स अग्नि निकालत हुए चन्द्रोन्म म अत्यन्त तरंगित महासागर की तरह वेग से जल बढाने लगा ॥८०॥ मुनिवृन्द ! राक्षस न तान को छोड कर सब पुत्रा को जला दिया ॥८१॥

ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम्। आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः॥८२॥
 तस्य वारिमयं धेगमापीय स नराधिपः। योगी 'योगेन वह्निञ्च शमयामास वारिणा॥८३॥
 निहत्य' तं महाशायं बलेनोदकराक्षसम्। उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः॥८४॥
 उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने। ददौ तस्याक्षय वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम्॥८५॥
 धर्म्मं रतिञ्च सततं स्वर्गं वासं तयाक्षयम्। पुत्राणां चाक्षयाल्लोकान् स्वर्गं ये रक्षसा हताः॥८६॥
 तस्य पुत्राश्चयः शिष्टाः दृढादवो ज्येष्ठ उच्यते। चन्द्रादवकपिलादवो तु कनीयांसो कुमारको॥८७॥
 धौन्धुमारोर्दृढादवस्य हर्म्यदववात्मजः स्मृतः। हर्म्यदवस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरतः 'तदा॥८८॥
 संहतादवो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः। अकृशादवकृशादवो तु संहतादवसुतो द्विजाः॥८९॥
 तस्य हेमवती कन्या सतां मता दुष्यती। विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रदवास्याः प्रसेनजित्॥९०॥
 लेभे प्रसेनजिद्भाष्यौ गौरीं नाम पतिव्रताम्। अभिशस्ता तु सा भर्मा नदो बं बाहूदाभवत्॥९१॥
 तस्य पुत्रो महानासोद्युवनादवो नराधिपः। मान्धाता युवनादवस्य त्रिलोकविजयी सुतः॥९२॥
 तस्य चैत्ररथो भार्म्यः शशविन्दोः सुताभवत्। साध्वी विन्धुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि॥९३॥
 पतिव्रता च ज्येष्ठा च श्रातृणामयुतस्य वै। तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः॥९४॥
 पुरकुत्सं च धर्म्मजं मुकुन्दं च पापिवम्। पुरकुत्ससुतस्त्वासीत्प्रसदस्युर्महीपतिः॥९५॥

तब कान्तिमान् एव महानेक्षस्वी यह धुन्धुनामक राजा उस महाबली धुन्धु के पाग पहुँचा॥८२॥ उस योगी राजा ने
 वापिनिचा के बल से उसने जलमय वेग को पीकर जल से अग्नि को शान्त किया॥८३॥ उस महाशाय जल-राक्षस
 को बल से मारकर हृत्त इन्द्र राजा ने उत्तङ्क को दिलाया॥८४॥ उत्तङ्क में उस राजपति का यह बरदान दिया—
 'अश्व धन सुहृदों पाय होगा, शत्रुओं में पराजय नहीं होगा, धर्म में सदा अनुत्तम रहेगा, अश्व रूप से स्वर्ग में
 जाय होगा और तिन पुत्रों को राक्षसों से मारा, उन्हें स्वर्ग में अश्व लोक मिले'॥८५-८६॥उस राजा के अविनाश
 तीन पुत्रों में दुःशस्त्र ज्येष्ठ था। कुमार चन्द्रादव और कपिलादव छोटे थे॥८७॥ धौन्धुमार-पुत्र दुःशस्त्र के हर्म्यदव
 नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्म्यदव का सदा क्षत्रिय-धर्म में तत्पर निकुम्भ नामक पुत्र हुआ॥८८॥ निकुम्भ के पुत्र-
 कुशादव मान्धातव पुत्र हुआ। विन्धु- महानास के दो पुत्र हुए—अकृशादव और कृशादव॥८९॥ गृह्णादव के
 सुतपुत्रों की आदरणात्मा और तिला-लोचन दुष्यन्ती नाम से विख्यात हेमवती नामक कन्या हुई। इनसे प्रसेनजित्
 नामक पुत्र हुआ॥९०॥ प्रसेनजित् की पतिव्रता कन्या का नाम गौरी था। पति के साथ में बर्हि गौरी बहूदा
 नामक नहीं बनी॥९१॥ प्रसेनजित् का पुत्र युवनास महात् राजा हुआ। युवनास के पत्नीस्य विजयी मायाता
 पुत्र हुआ॥९२॥ सतिवन्दु की कन्या चैत्ररथी उसकी भार्या हुई। वह अनुत्तम सुन्दरी, विदुमती नाम से प्रशस्त,
 पतिव्रता और सदा श्रातृणों में सब से बड़ी थी॥९३॥ द्विजगण। मायाता ने उससे दो पुत्र उत्पन्न किए—
 पुरकुत्स और राजा मुकुन्द। पुरकुत्स का पुत्र प्रसदस्यु नामक राजा था॥९४-९५॥ उनसे नसेरा में उत्पन्न

नम्मंदायामथोत्पन्नः 'सम्भूतस्तस्य चात्मजः। सम्भूतस्य तु दाय्यावस्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः॥९६॥
 राजस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वान्त्रिध्याख्यः' प्रभुः। तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभूमहाबलः॥९७॥
 परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः। येन भार्या कृतोद्वाहा हता* चंच परस्य ह॥९८॥
 बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च। जहार कन्यां कामार्तः कस्यचित् पुरवासिनः॥९९॥
 अधर्मशङ्कुना तेन तं स त्रय्यारणोऽयजत्। अपध्वंसेति बहुशो बधन् क्रोधसमन्वितः॥१००॥
 सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः। पिता च तमयोवाच श्वपार्कः सह वर्तय॥१०१॥
 नाहं पुत्रेण* पुत्रार्थी स्वयाद्य कुलपांसन। इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात् पितुः॥१०२॥
 न च तं धारयामास वसिष्ठो भगवान्पुनः। स तु सत्यव्रतो विप्राः* श्वपाकावसथान्तिके॥१०३॥
 पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पितार्यस्य वनं ययौ। ततस्तस्मिंस्तु विषये नावयत् पाकशासनः॥१०४॥
 समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्म्येण वै तदा। दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः॥१०५॥
 संन्यस्य सागरास्ते तु चकार विपुलं तपः। तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥१०६॥
 शेषस्य भरणार्थाय ध्यक्रोणाद्गोशतेन वै। तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः॥१०७॥
 महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजः। सत्यव्रतो महाबाहुभरणं तस्य चाकरोत्॥१०८॥
 विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च। सोऽभक्षद्गालयो नाम गले बन्धान्महातपाः।

समूत नामक पुत्र हुआ। समूत का पुत्र विधवा शत्रु का मर्दन करनेवाला था॥९६॥ राजा विधवा के त्रय्यारण नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसने सत्यव्रत नामक महाबली कुमार हुआ॥९७॥ वह बड़ा दुष्टबुद्धि था, लोगों के विवाहों में विघ्न करता था, दूसरे की विवाहिता पत्नी का अपहरण कर लेता था॥९८॥ उसने बचपन, काम, मोह, चाहस तथा चंचलता के कारण काम से पीड़ित हो किसी नगरवासी की कन्या चुन ली।॥९९॥ उसके अधर्माचरण के कारण त्रय्यारण ने क्रोध से बहुत गालियाँ बकते हुए उसका परित्याग कर दिया। परित्यक्त पुत्र पिता से बारम्बार कहने लगा—'मैं कहाँ जाऊँगा?' तब पिता ने कहा—'बादलों के साथ रह। रे कुलागार।' आज तुन जैसे पुत्र से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।'॥१००-१०१॥ इस प्रकार पिता के बचन से वह नगर से निकल गया॥१०२॥ भगवान् वसिष्ठ ने भी उसे जाने से नहीं रोका। विप्रगण। वह वीर सत्यव्रत पिता से त्यक्त होकर चाशल के घर रहने लगा। उसका पिता भी वन चला गया॥१०३॥ ब्राह्मणों। तब इन्द्र ने बारह वर्षों तक उसने राज्य में दृष्टि नहीं की। महातपस्वी विश्वामित्र अपनी पत्नी को उसके राज्य में छोड़कर समुद्र-तट पर धीरे तपस्या करने लगे॥१०४-१०५॥ उनकी स्त्री अपने गसले पुत्र के गले को बाँध कर शेष कुटुम्ब के पालन के लिए उसे सी गाँवों के मूल्य में बेचने को चली॥१०६॥ विप्रवृन्द। इस प्रकार बेचे हुए महर्षिपुत्र को देखकर धर्मात्मा सत्यव्रत ने उसे छुड़ा दिया और विश्वामित्र की प्रसन्नता तथा अनुकम्पा के निमित्त उसका भरण-पोषण भी किया॥१०७-

महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन] वीरेण मोक्षित ।

इति श्रीब्राह्म महापुराणे सूर्यवंशनिरूपण नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णनम्

लोमहर्षेण उवाच

सत्यव्रतस्तु भवत्या च कृपया च प्रतिभया । विश्वामित्रकलत्र तु बभारु विनये स्थित ॥१॥
हत्वा मुगान् वराहांश्च महिषाश्च घनेचरान् । विश्वामित्राश्रमाभ्यासे मास वृक्षे बबन्ध च ॥२॥
उषानुवनमास्थाय दीक्षा द्वादशवार्षिकीम् । पितृनियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे ॥३॥
अयोध्यां चैव राज्यं च तयंवात पुर मुनि । याज्योपाध्यायसयोगाद्बसिष्ठः पर्यरक्षत ॥४॥
सत्यव्रतस्तु दाल्याच्च भाविनोऽयं स्य वै बलात् । वसिष्ठेऽभ्यधिकं मयु धारयामास नित्यशः ॥५॥
पित्रा हि त तदा राष्ट्रात्पूज्यमान प्रिय सुतम् । निवारयामास मुनिबहुना कारणेन च ॥६॥

१०८॥ गले में बघन पट्टन के कारण यह मुनि-पुत्र गालव नाम से विख्यात महातपस्वी हुआ । विद्वान् महर्षि कौशिक
भीर सत्यव्रत के द्वारा जमुवन बिये गये ॥१०९॥

श्री ब्रह्म-महापुराण में सूर्यवंश निरूपण नामक यातवी अध्याय समाप्त ॥७॥

अध्याय ८

सूर्यवंश वा वर्णन

लोमहर्षेण ने कहा—सत्यव्रत मुक्ति कृपा, वित्त तथा प्रतिभा से विश्वामित्र की पत्नी का पालन करने
लगा ॥१॥ यह मृग मूषर भैरव और जल्मी जानवरों को मारकर मांस को विश्वामित्र के आश्रम में मुनी पर बांध देता
था ॥२॥ राजा के वन बसे जाने के बाद यह उषानुवन (अथ कोई नहीं जान सका एका नियम) स्वर्णार वर बाण
बनों की दीक्षा लहर निता की आता के अनुसार रहने लगा ॥३॥ यजमान-पुरोहित के सम्बन्ध से बसिष्ठ जी अयोध्यापुरी,
राज्य तथा अलपूर (उज्जैन) की देश भ्रम करने लग ॥४॥ सत्यव्रत बबान तथा माती के कारण बसिष्ठ जी
के प्रति अविश्वसिष्ठ तथा कारण करने लग ॥५॥ जब निता में विय पुत्र का राज्य से निरास किया या तब
बसिष्ठ जी ने अनेक कारणों से उषा निवारण नहीं किया था ॥६॥ विवाह-मन्त्र की गिटा (अर्थात् विवाह का

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे। न च सत्यव्रतस्तस्माद्भुतवान् सप्तमे पदे ॥७॥
 जानन् धर्मवसिष्ठस्तु न मात्रातीति भो द्विजाः। सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८॥
 गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतधास्तथा। न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९॥
 तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः। तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनम् ॥१०॥
 तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहं भुवि। कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११॥
 न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्। अभिषेक्षाम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥१२॥
 स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्बली। अदिद्यमाने मांते तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३॥
 सर्वकामदुघा दोग्ध्रौ स ददर्श नृपालमजः। तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥१४॥
 देशधर्मगतो राजा जघान् मुनिसत्तमाः। तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥१५॥
 भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चक्रुधे ॥१६॥

वसिष्ठ उवाच

पातयेद्यमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्। यदि ते द्वाविमौ शङ्कु न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७॥
 पितुश्चापरितोषेण शूद्रद्वौ प्रीवधेन च। अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८॥
 एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपा। त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन सस्मृतः ॥१९॥
 विश्वामित्रस्य च दाराणामनेन भरणं कृतम्। तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतिस्त्रिशङ्कुवे ॥२०॥

पर्यवसान) सप्तपदी में जाकर होती है। इसलिए सत्यव्रत ने सप्तपदी में कन्या का अपहरण नहीं किया ॥७॥
 विप्रवृत्त। 'वसिष्ठ धर्म को जानते हुए भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं' ऐसा सोचकर सत्यव्रत ने वसिष्ठ के प्रति मन में क्रोध किया ॥८॥ भगवान् वसिष्ठ ने तो उसका हित समझ करके ऐसा किया था। पर सत्यव्रत ने उनका आशय नहीं समझा ॥९॥ उसके ऊपर महात्मा पिता का पूर्ण असंतोष था। इसलिए बारह वर्षों तक इन्द्र ने वर्षा नहीं की ॥१०॥ द्विजगण। बारह वर्ष की कठिन दीक्षा से इसके कुल का परिशोध (अर्थात् प्रायश्चित्त) हो जायगा। तब इसके पुत्र का अभिषेक मैं कर दूंगा।' ऐसा सोचकर भगवान् वसिष्ठ ने उसे गंभीर रोका था, जब पिता ने उसका परित्याग कर दिया था ॥११॥ १२॥ वह बारह वर्षों तक दीक्षा धारण किए रहा। (एकदिन) मांस मिलने पर महात्मा वसिष्ठ की कामधेनु गाय को राजपुत्र (सत्यव्रत) ने देखा ॥१३॥ मुनिश्रेष्ठो! भूखे राजा ने क्रोध, मोह, और श्रम के कारण देशधर्म के अनुसार उस गाय को मार डाला ॥१४॥ उसके मांस को स्वयं भी खाया और विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिलाया। यह सुनकर वसिष्ठ जी आग बबूला हो गये ॥१५-१६॥

वसिष्ठ ने कहा—'दुष्ट'। मैं तेरे शङ्कु (पाप या अपराध) को दूर कर देता, यदि तूने वे दो शङ्कु गंभीर किये होते ॥१७॥ पिता का असंतोष, शूद्र की गाय का घब और असंस्कृत मांस का भक्षण—ये तीन प्रतिकूल कार्य तूने किये हैं ॥१८॥ इस प्रकार उसके तीन शङ्कुओं को देखकर मुनि ने उसे 'त्रिशङ्कु' कहा। इसी से उसका नाम त्रिशङ्कु पड़ा ॥१९॥ विश्वामित्र के स्त्री-बच्चों का पालन उसने किया था। इससे मुनि (विश्वामित्र) ने प्रसन्न होकर त्रिशङ्कु को

१ ख ०त। हत्वा भेनु ततो रा०। २ ख जयाम। ३ ख तु। ४ ख शङ्कु न संशयः। य०। ५ क ख गुरो-
 दोग्ध्री०। ६ क ख ०वस्तु दा०। ७ क ख ०पामागती भरणे वृते। ततस्तस्मै।

छन्दमानो वरेणाय वर वप्रे नृपात्मज । सशरीरो ब्रजे स्वर्गमित्येव याचितो वर ॥२१॥
 अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके । मिश्रे राज्येऽभिषिच्याय याजयामास पार्थिवम् ॥२२॥
 मिपता देवताना च वसिष्ठस्य च कौशिक । दिवमारोपयामास सशरीरं महातपा ॥२३॥
 तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कंकेयवर्णा । कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४॥
 स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्ख इति स्मृत । आहर्ता राजसूयस्य सम्प्राडिति ह विभ्रुत ॥२५॥
 हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिव । हरितो रोहितस्याय चञ्चुर्हारित उच्यते ॥२६॥
 यिज्यश्च 'मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चुपुत्रो बभूव ह । जेता स सत्त्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृत ॥२७॥
 'रुद्रस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थिकोविद । रुद्रस्य बृ' पुत्रो वृकादबाहुस्तु जज्ञिवान् ॥२८॥
 'हंह्यास्तालादघादच निरस्यति स्म त नृपम् । तत्पत्नी गभमादाय और्वस्याश्रममाविशत् ॥२९॥
 'नासायो धार्म्मिकश्चैव स हि धर्ममुनेऽभवत् । सगरस्तु सुतो बाहोयजे सह गरेण वै ॥३०॥
 और्वस्याश्रममासाद्य भागवेणाभिरक्षित । आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भागंवात् सगरो नृप ॥३१॥
 जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजडघान सहह्वान । शकानां पङ्क्तवाना च धर्मं निरसदच्युत ॥
 क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठा पारदानां च धम्मवित् ॥३२॥

मुनय ऊचुः

अथ स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युत । क्रिमर्थं च शत्रुादीनां क्षत्रियाणां महोजसाम् ॥३३॥

धर्मान्नुलोचितान राजा क्रुद्धो निरसदच्युत । एतन्न सर्व्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥३४॥

लोमहर्षण उवाच

बाहोर्व्यसनिन पूर्वं हृत राज्यमभूत किल । हंह्येस्तालङ्गजघंश्च शकं सादं द्विजोत्तमा ॥३५॥
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पल्लवास्तथा । एते ह्यपि गणा पञ्च हंह्याय पराक्रमम् ॥३६॥
हूतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वन ययौ । पत्न्या चानुगतो दुःखी तत्र प्राणानवासृजत् ॥३७॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽञ्जगात् । सपत्न्या च गरस्तस्य दत्तं पूर्वं क्लिलाया ॥३८॥
सा तु भर्तुश्चिता कृत्वा यने तामम्परोहत् । और्व्वस्तां भार्गवो विप्रा कारण्यात् समवारयत् ॥३९॥
तस्याश्रमे च गर्भं स गरेणैव सहाच्युत । व्यजायत महाबाहु सगरो नाम पार्थिव ॥४०॥
और्व्वस्तु जातकर्मर्बिस्तस्य कृत्वा महात्मन । लघ्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्तु प्रत्यपादयत् ॥४१॥
आग्नेयं तु महाभागा अमरैरपि दुःसहम् । स तेनास्त्रबलेनाज्ञो बलेन च समन्वित ॥४२॥
हंह्यान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्र पशूनिव । आजहार च लोकेषु कीर्त्तिं कीर्त्तितता वर ॥४३॥
ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा । पहलवाश्चैव नि शेषान् कर्त्तं व्यवसितो नृप ॥४४॥
ते वध्यमाना घोरैरेण सगरेण महात्मना । वसिष्ठ शरणं गत्वा प्रणिपेतमनीषिणम् ॥४५॥
वसिष्ठस्त्वय तान दृष्ट्वा समयेन महाद्युति । सगर वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा ॥४६॥
सगरः स्वा प्रतिज्ञां तु गुरोर्विक्रिय निशम्य च । धर्म्मं जघान तेषां वै वेशानयाचक्षार ह ॥४७॥

राजाओ को उनका कुल घर्म्मों से च्युत किया ? हे महाविद्वान् ! यह सब विस्तार से हमलोगों का दत्तान्ये ॥३४॥

लोमहर्षण बोले—

ब्राह्मणयष्टो । पहिले हेतुय तालजघ आर गव न दव्यसनी बाह्वे राय का अपहरण कर लिया था ॥३५॥ शक यवन पारद काम्बोज आर पहलव—ये भी पाच गण हेतुय क सन्यायक थे ॥३६॥ तब राज्य से वञ्चित बाहु वन चला गया । पत्नी भी पीछे से गई । दखी होकर बाहु न बही पर प्राण त्याग कर दिया ॥३७॥ राजा की गमिणी पत्नी यादवी (यदवश में उत्पन्न) को सत न विप दे दिया ॥३८॥ वह वन में पति की चिंता पर जलन लगी । पर मगुवशी आव न दयावश उसकी जलन नहीं दिया ॥३९॥ मनि के आश्रम में विप के साथ ही उसके गम से राजा गगर उत्पन्न हुआ ॥४०॥ आव न बालक का जितवम आदि सरकार करने उसे वेद शास्त्र पढ़ाया । महाभाग ! तब मनि न देवताओं से भी सहन न करने योग्य आनयास्त्र उसकी दिया ॥४१॥ सेना से यक्त हो सगर मनि प्रदत्त अस्त्र से हैन्या को उसी तरह मारन लगा जिस तरह क्रुद्ध हुए रुद्र न पाओ को मारा था । मगस्त्रिया में श्रष्ट वह राजा सशर म अपनी काति फैलान लगा ॥४२॥ पश्चात् शकी यवना काम्बोजो पारदा अर पहलवा को निनेप करने में राजा प्रवत्त हुआ ॥४३॥ महामा वर सगर क द्वार द्विगष्ट हान हुए वे सब विद्वान् वसिष्ठ की शरण में गये आर उनके दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥४४॥ तब महातजस्वी वसिष्ठ न उनसे प्रतिज्ञा कराकर सगर को रोक दिया अर उन्हें अमयदान दिया ॥४५॥ सगर न अपनी प्रतिज्ञा याद कर आर गुरु के आक्षेप सुनकर उनके घर्म्मों का नाश किया आर उनके वेशा को बदल दिया ॥४६॥ शका क आश शिर को आर

१ ख ०मध्यरो० । २ ख ०य । केम सुदा स लो० । ३ ख यश० । ४ ख तदा स य० । ५ ख ०नामज्ञा जाम्बो० । ६ ख ०गरस्ता प्र० ।

अद्वं शत्रूनां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् । यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८॥
 पारदा मुक्तकेशश्च पल्लवाः श्मश्रुधारिणः । निःस्वाध्यायवपट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९॥
 शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः । कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वश्चोलाः सकेरलाः ॥५०॥
 सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः । वसिष्ठवचनाद्राजा 'सगरेण महात्मना ॥५१॥
 स धर्मविजयी राजा विजित्येषां वसुन्धराम् । अद्वं प्रचारयामास वाजिमेघाय दीक्षितः ॥५२॥
 तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वं दक्षिणे । घेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥५३॥
 स तं वेशं तदा पुत्रः खानयामास पायिवः । आसेदुस्ते तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥५४॥
 तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् । विष्णुं कपिलरूपेण 'स्वपन्तं' पुरुषं तदा ॥५५॥
 तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः । दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥५६॥
 'बर्हिक्तेतु, सुकेतुश्च तथा 'धर्मरथो नृपः । शूरः पञ्चनदश्चैव' तस्य वंशकरा' नृपाः ॥५७॥
 प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् । अक्षयं वंशमिच्छाकोः कीर्त्तिं चाप्यनिर्व्वर्त्तिनीम् ॥५८॥
 पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गं चासं तयाक्षयम् । समुद्रद्रव्यार्घ्यमादाय वन्दे तं महिषतिम् ॥५९॥
 सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य ह । तं चाश्वमेधिकं सोऽद्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥६०॥
 आजहारान्वधमेघानां शतं स सुमहात्मा । पुत्राणां च सहस्राणि पट्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ॥६१॥

यवनो तथा काम्बोजो वे सम्पूर्ण शिर को मुँडवा कर छोड़ दिया । ॥४८॥ पारदो को मुक्तकेश (बिखरे वाले वाले) और पहलवो को दाढ़ी-मूँल-मुक्त बनाकर छोड़ दिया । विप्रवर ! शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोणिसर्प, माहिषक, दर्व, चोल, केरल—ये सब क्षत्रिय वेदाध्ययन, जप आदि से वंचित कर दिये गये । वसिष्ठ ने वचन से राजा सगर ने इनके घमों का नाश कर दिया ॥४९-५१॥ धर्म-विजयी राजा ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर अश्व को छोड़ दिया ॥५२॥ वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के समीप अपहृत होकर पृथिवी में प्रविष्ट हुआ तो राजा ने अपने पुत्रों के द्वारा उस प्रदेश को खुदवाया ॥५३॥ महासमुद्र को खोदते हुए वे राजपुत्र वही पहुँचे, जहाँ आदि पुरुष, देव, हरि, कृष्ण, प्रजापति—सबका विष्णु भगवान कपिल मुनि के रूप में ध्यान कर रहे थे ॥५४-५५॥ मुनिवर ! भगवान् ने जगन पर उनकी आँखों के तेज से सगर के सब पुत्र दग्ध हो गये । केवल बर्हिक्तेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ, वीर पचनद—ये चार राजपुत्र वंश बढ़ाने के लिए बच गये ॥५६-५७॥ परचातु भगवान् नारायण ने सगर को वरदान दिया—'दरवाज' का अंगण बरा रहेगा, तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी, तुम्हें समुद्र पुत्र होगा और तुम अक्षय स्वर्गवाच प्राप्त करोगे' ॥५८॥ समुद्र भी अर्घ्य लेकर राजा की वन्दना करने लगा ॥५९॥ उसी वर में समुद्र सागर बहलया । उस अश्व को राजा ने समुद्र से प्राप्त किया और सौ अश्वमेध यज्ञों को सम्पन्न किया । उसने साठ हजार पुत्र हुए—ऐसा हमने सुना है ॥६०-६१॥

१ क ०मा । केल्सर्पा महर्णाता ओर्वाश्वाडा ए० । स ०मा । नेल्सर्पा माहिपदा द्वाव्वोलाश्च स० ।
 २ क ग कृतार्षेण । ३ क ग स्वयम् । ४ स ग बर्हिक्ते० । ५ क बर्हिरथो । स बर्हिक्तेथो । ६ स ग. खट । ७ क
 उच्चनरथै० । ८ स ०करोमवत् । प्रा० । ९ क स ०हायसा । पु० ।

मुनय ऊचुः

सगरास्यात्मजा, धीराः कथं जाता महाबलाः। विक्रान्ताः पट्टिसाहस्रा, विधिना केन सत्तमः ॥६२॥

लोमहर्षण उवाच

द्वे भार्य्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकित्त्वये। ज्येष्ठा विदभंजुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३॥
कनोपसी तु महती पत्नी परमघर्म्मिणी। अरिष्टमेभिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४॥
भ्रौर्व्वंस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्वृध्यध्वं द्विजोत्तमाः। पट्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी ॥६५॥
एकं वंशधरं त्वेका ययेष्टं वरयत्विति। तत्रैका जगृहे पुत्रान् पट्टिसाहस्रसम्मितान् ॥६६॥
एकं वंशधरं त्वेका तयेत्याह ततो मुनिः। राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युतिः ॥६७॥
इतरा सुपुत्रे तुम्बी बोजपूर्णमिति श्रुतिः। तत्र पट्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥६८॥
संबभूवुर्ग्रथाकाल ववृधुश्च ययासुसम्। घृतपूर्णं कुम्भेषु तान् गर्भाभिर्वधे ततः ॥६९॥
धात्रीश्चर्ककंशः प्रादात्तावती। पोषणे नृपः। ततो दशसु भासेषु समुत्सयुर्यथाक्रमम् ॥७०॥
कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्द्धनाः। पट्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥७१॥
गर्भादिलाबुमध्याह्ने जातानि पृथिवीपतेः। तेषां नारायण तेजः प्रविष्टाना महात्मनाम् ॥७२॥
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह। शूरः पञ्चजनस्यासीदशुमाश्रमा ॥७३॥

मुनियो ने पूछा—हे सूतजी! सगर के वीर, महाबली तथा पराक्रमी साठ हजार पुत्र कैसे हुए? ॥६२॥

लोमहर्षण बोले—तपस्या से निष्पाप हुई दो भार्य्यें सगर की थी। केशिनी नामक विदभ-राजकुमारी उनमें ज्येष्ठ थी ॥६३॥ छोटी पत्नी अरिष्टनमि की कन्या थी। जो अनुपम सुन्दरी और परम घर्मात्मा थी ॥६४॥ विप्रवृन्द! ओंवे मुनि ने उन्हें जो वरदान दिया था, उसे सुनिये।

मुनि ने कहा—एक स्त्री साठ हजार पुत्रों को उत्पन्न करेगी और दूसरी वंश का धारण करने वाले एक ही पुत्र को। जिसको जो पसन्द हो, वह माँग ले ॥६५॥ तब मुनि की स्वीकृति के अनुसार एक स्त्री ने साठ हजार पुत्रों को और दूसरी ने एक ही वंशधर पुत्र की याचना की। वंशधर पुत्र पञ्चजन नामक महतेजस्वी राजा हुआ ॥६६-६७॥ ऐसी प्रसिद्धि है कि दूसरी स्त्री ने बीज से भरी हुई एक तुम्बी (तुमड़ी) का प्रयत्न किया। उसमें से एक तिल के बराबर साठ हजार गर्भ (पुत्र) उत्पन्न हुए ॥६८॥ समय और सुख के अनुसार वे सब बढ़ने लगे। उनको भी वे भरे हुए बडों में रख दिया गया ॥६९॥ राजा ने प्रत्येक बच्चे के लिए एक एक दाई नियुक्त की। दस महीने बीत जाने पर वे कुमार क्रमशः खड़े होने लगे ॥७०॥ यथासमय वे सभी राजकुमार सगर के लिए प्रीतिवर्धक हुए। द्विजगण! इस प्रकार उस राजा के साठ हजार पुत्र हुए ॥७१॥ उन बच्चों की उत्पत्ति तुम्बी के मीतल से हुई थी। उन मनस्वी बालकों में नारायण का तेज निहित था ॥७२॥ पञ्चजन नामक पुत्र राजा हुआ। पञ्चजन का पुत्र अत्यन्त वीर अशुमान् था ॥७३॥ उसका पुत्र विलीप था, जिसका नाम खट्वांग भी था,

१ क ख. सूतज। २ ख तपस्विनी। ३ ग ०भाल्लंभ्याभ्यामुत्पन्नहस्तया। ए०। ४ क ततोऽथ दशमे भासे स०। ५ ख सुत। ६ क ०सीदशुमा०।

दिलीपस्तस्य तनयः^१ सद्वाङ्म इति विद्युतः । येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य 'जोवितम् ॥७४॥
 त्रयोऽभिसन्धिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघा । दिलीपस्य तु दायादो 'महाराजो भगीरथः' ॥७५॥
 य स गङ्गा सरिच्छेष्टामवातारयत प्रभु । समुद्रमनयचर्चणा दुहितृत्वेष्यकल्पयत् ॥७६॥
 तस्माद्भगीरथो गङ्गा कथ्यते 'वशचिन्तके' । भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविद्युतः ॥७७॥
 नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्र परमधार्म्मिक । अम्बरीषस्तु नाभागि सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८॥
 अयुताजितु दायाद सिन्धुद्वीपस्य दीर्घ्यवान् । अयुताजितुस्तत्स्वासीदुत्तुपर्णो महायशः ॥७९॥
 दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली । ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदात्तपर्णिमहायशः ॥८०॥
 सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत् । सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पाथिवः ॥८१॥
 स्यात् कल्माषपादो^२ वै राजा मित्रसहोऽभवत् । कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मन्ति विद्युतः ॥८२॥
 अनरण्यस्तु पुनोऽभूद्विद्युतः सर्वकर्मणः । अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतु ॥८३॥
 अनमित्रो रघुश्चैव पाथिवर्षभसत्तमौ । अनमित्रसुतो राजा विद्वान् 'दुलिदुहोऽभवत् ॥८४॥
 दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः । दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५॥
 अयोध्याया महाराजो^३ य पुरास्मिन्हाबलः । अजस्तु राघवो जज्ञे 'तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६॥
 रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशः । रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसजितः ॥८७॥

आरजिस्ने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर दो घड़ी भर जीवित रहकर बुद्धि आर सत्य से तीनों लोक को जोड़ दिया ॥७४॥
 दिगीप के महाराज भगीरथ पुत्र हुआ, जिस नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी को इस लोक में अवतरित किया आर पृथ्वी-
 भाव से उस मानित हुए समुद्र में मिला दिया ॥७५॥ ७६॥ इसलिये वंश को समझने वाले लोग गंगा को भगीरथी
 कहते हैं। भगीरथ के श्रुत नामक परम विख्यात पुत्र हुआ ॥७७॥ श्रुत का पुत्र नाभाग परम धर्मात्मा था।
 नाभाग का पुत्र अम्बरीष सिन्धुद्वीप का पिता हुआ ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुताजित् शक्तिशाली हुआ। अयुता-
 जित् का पुत्र महायशस्वी ऋतुपर्ण था ॥७९॥ वह राजा पासी के खेलन में अतिचतुर (या दूरदर्शी तथा हृदयज्ञ)
 आर नल नामक राजा का मित्र था। ऋतुपर्ण का पुत्र आत्तपर्णि महायशस्वी था ॥८०॥ उसका सुदास नामक
 पुत्र इन्द्र का मित्र था। सुदास का पुत्र सुदास नामक राजा था ॥८१॥ यही कल्माषपाद आर मित्रसह नामा से भी
 प्रसिद्ध हुआ। कल्माषपाद का पुत्र का नाम सर्वकर्मा था ॥८२॥ सर्वकर्मा के अनरण्य नामक पुत्र हुआ। अनरण्य
 के निघ्न नामक पुत्र हुआ। निघ्न का दोनूपभ्रष्ट पुत्र हुए— ॥८३॥ अनमित्र आर रघु। अनमित्र का पुत्र दुलिदुह हुआ,
 जो राजा आर विद्वान् दोनों था ॥८४॥ उसके पुत्र दिलीप हुआ, जो राम का प्रपितामह (परदादा) था। दिलीप
 का लम्बी बाहुवा वाला रघु नामक पुत्र हुआ ॥८५॥ जो पूर्वकाल में अयोध्या का महाराज था। रघु से अज
 उत्पन्न हुआ आर अज से दशरथः ॥८६॥ दशरथ से अत्यन्त यशस्वी आर धर्मात्मा राम की उत्पत्ति हुई। राम के कुश
 नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८७॥ कुश से अति ममत्वा आर धर्मात्मा अतिथि उत्पन्न हुआ। अतिथि के निपथ

१ क० भु। ततो मि० २ क० भिन्विन्ति। ३ क० महाराजो। ४ क० भु। स्वर्गासितुस०। ५ क० धमविस्तर्कः।

६ क० भगवत् तस्याऽप्या०। ७ क० भदागमूनाम्ना मि०। ८ क० भुदुहो०। ९ क० भो रघुरासी०।

१० क० तस्माद्विषयोऽभवत्।

अतिथिस्तु कुशाज्जने धर्मात्मा सुमहायशः। अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषधो नाम धीर्यवान् ॥८८॥
 निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु। नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥८९॥
 क्षेमधन्वसुतस्त्वसोद्देवानीकः प्रतापवान्। आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥९०॥
 अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥९१॥
 उव्यो नाम स धर्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह। वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२॥
 नलो द्वावेव विख्यातो पुराणे मुनिसत्तमाः। वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुलोद्बहः ॥९३॥
 इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः। एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥९४॥
 पठन् सम्यग्भिर्मां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः। श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च।
 प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यवंशानुकीर्तनं
 नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिभंगवानुविः। ब्रह्मणो मानसात्पूर्वं प्रजासर्गं विधिस्ततः ॥१॥

नामक पराक्रमी पुत्र हुआ। ॥८८॥ निषध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुआ। नभ से पुण्डरीक और उससे क्षेमधन्वा उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमधन्वा का पुत्र प्रताप देवानीक था। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनगु था ॥९०॥ अहीनगु का पुत्र सुधन्वा नामक राजा हुआ। सुधन्वा से राजा शल की उत्पत्ति हुई ॥९१॥ शल के उव्य नामक धर्मात्मा पुत्र हुआ। वज्रनाभ उससे पुत्र हुआ। उस महात्मा के नल नामक पुत्र हुआ ॥९२॥ मुनिवर! पुराणों में दो ही नल प्रसिद्ध हैं—एक वीरसेन का पुत्र और दूसरा इक्ष्वाकु-वंश में समुद्भूत ॥९३॥ इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न प्रमुख राजा का वर्णन कर दिया गया। ये सभी परम तेजस्वी राजा सूर्यवंशी हैं ॥९४॥ प्रजा के पोषक और श्राद्ध के देव भगवान् सूर्य की इस सृष्टि का पढ़ने वाला अनुष्य सूर्य की धर्मानता प्रत्यक्ष करता है ॥९५॥

धी ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-वंश-कीर्तन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ६

चन्द्रवश-वर्णन

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द! पूर्वकाल में प्रजा-सृष्टि के इच्छुक ब्रह्मा ने मन से चन्द्रमा के पिता

अनुत्तर नाम तपो येन तप्तः^१ हि तत्पुरा । त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि न श्रुतम् ॥२॥
 ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेत सोमत्वमीयिवान् । नेत्रान्म्या वारि सुखाव दशधा द्योतयन् दिशः ॥३॥
 त गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्ततः । समेत्य धारयामासुनं च ता समशवनुवन ॥४॥
 यदा न धारणे^२ शवतास्तस्य गर्भस्य ता दिशः । ततस्ताभि स^३ त्वतस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५॥
 पतित सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह । रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥६॥
 तस्मिन्निपतिते^४ देवा पुत्रेऽग्रे परमात्मनि । तुष्टुब्रह्मण पुत्रास्तथान्ये^५ मुनिसत्तमा ॥७॥
 तस्य सस्तूयमानस्य तेज सोमस्य भास्वत । आप्यायनाय लोकाना भावयामास सध्वत ॥८॥
 स तेन रथमुत्प्रेने सागरान्ता वसुन्धराम् । त्रि सप्तकृत्वोऽतिवशादचकाराभिप्रदक्षिणाम् ॥९॥
 तस्य^६ अचरित तेज^७ पृथिवीमन्वपद्यत । ओषध्यस्ता समुद्भूता याभि सन्धार्यते जगत् ॥१०॥
 स लब्धतेजा भगवान् सस्तवैश्च स्वकर्म्मभि । तपस्तप्ते महाभाग पद्माना^८ दर्शनाय स ॥११॥
 ततस्तस्मै ददौ राज्य ब्रह्मा ब्रह्मविदावर । धीजीषधोना^९ विप्राणामपा च मुनिसत्तमा ॥१२॥
 स तत्प्राप्य महाराज्य सोम सौम्यवतावर । समाजह्ने राजसूय सहस्रशतदक्षिणम् ॥१३॥
 दक्षिणामददात् सोमस्त्रींस्त्यलोकानिति न श्रुतम् । तेभ्यो ब्रह्मपिमुष्येभ्य सदस्येभ्यश्च भो द्विजा ॥१४॥
 हिरण्यगर्भो ब्रह्मात्रिभृगुश्च ऋत्विजोऽभवत् । सदस्योऽभूदरिस्तन मुनिभिर्बहुभिर्दत् ॥१५॥

भगवान् अत्रि मुनि उत्पन्न हुए ॥१॥ मुनि १ हजार देव वष तक उग्र तपस्या का—एसा हमन मुना है ॥२॥ उनका वीं शरीर के ऊर्ध्वभाग में जाकर अमृत बन गया । दशो दिशाओं को प्रकाशित करने हुए जल दोनो ओर स बहने लगा ॥३॥ ब्रह्मा की आज्ञा से उस तज समुक्त जल रूप गम को दशो दिशाओं में फैलकर धारण किया । पर वे धारण करने में समर्थ नहीं हुए ॥४॥ तब उन्होंने गम को त्याग दिया । गम पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥५॥ गिरे हुए अमृत रूपा गम को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा १ लोकों के कल्याण के लिये गम को रथ पर स्थापित कर दिया ॥६॥ मुनिवर ! अत्रि के उस परमात्मा पुत्र के गिर जान पर देवता अत्र ब्रह्मा के दूसरे पुत्र उचची स्तुति करने लगे ॥७॥ स्तुति विज जान बाले उस प्रकाशमान सोम (चंद्रमा) का तज लोकोकी वृद्धि के लिए सब तरफ फैल गया ॥८॥ चंद्रमा उस रथ से समुद्र पथत पृथिवी की इक क बार परिक्रमा का ॥९॥ चंद्रमा का जो तज पृथ्वी में व्याप्त हुआ उससे सब ओषधियाँ उत्पन्न हुई । जिनसे ससार का पापण होता है ॥१०॥ अपन कर्मों से तज प्राप्त कर भगवान् चंद्रमा १ पचास दान के लिए (पच सख्या बाले वर्षों तक ?) तपस्या की ॥११॥ तब ब्रह्मवैताशा म भेट ब्रह्मा १ चंद्रमा को बीज अर्पण ब्रह्मण अत्र जल का राज्य दिया ॥१२॥ उस महाराज्य को प्राप्त कर चंद्रमा १ एव लाख दक्षिणा वाने राजसूय यज्ञ को सम्पन्न किया ॥१३॥ द्विजगण ! ब्रह्मपि आदि सदस्या को सोम १ दक्षिणा म तना लोक दिए एसा हमन मुना है ॥१४॥ यज्ञ म साक्षात् ब्रह्मा ब्रह्मा हुए । अत्रि आर मृग ऋत्विज हुए । बहुत मुनिया से युक्त साक्षात्

१ त ०५१ महतु० । २ स ०१॥ स्ता गमस्य दिना दग । त० । ३ ग सहस्रवा ५०० नि० । ४ स देवे । ५ स ०३ च सुप्रक्षाम० । ६ स ०५१ तमु० । ७ क यत्सवित । स ०५१ व्यापित । ८ स ०५१ विधी समप० । ९ प दाना दग । १० । १० ०१० राजान निममे मु० ।

तं सिनीश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः । कीर्त्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सियेविरे ॥१६॥
 प्राणायवभूयमप्यग्र्यं सध्वंदेर्विपूजितः । विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥१७॥
 तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमेश्वर्यमपि सत्कृतम् । विबन्धाम मतिस्ताताविनयादनयाहृता ॥१८॥
 बृहस्पतेः स वै भाग्यमिदं वयं मदमोहितः । जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम् ॥१९॥
 स याच्यमानो देवैश्च 'तथा देवविभिर्मुहुः । नैव व्यसज्जयन्तारां तस्मा अङ्गिरसे तदा ॥२०॥
 उशना तस्य जग्राह पार्णिमङ्गिरसस्तथा । रुद्रश्च पार्णिं जग्राह गृहीत्वाजगत्वं धनुः ॥२१॥
 तेन ब्रह्मशिरो नाम परमाश्रं महात्मना । उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ॥२२॥
 तत्र तदपुद्गमभयत् प्रख्यातं तारकामयम् । देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३॥
 तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः । ब्रह्माणं शरणं जम्बुरादिदेवं सनातनम् ॥२४॥
 तदा निवार्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम् । वदावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥२५॥
 तामन्त प्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः । मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥२६॥
 इधोकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा द्योतसज्जं ह । जातमानः स भगवान् देवानामाक्षिपद्गुः ॥२७॥
 तत संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमा । सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याय बृहस्पते ॥२८॥
 पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नह सा विबुधान् किल । तदा तां शप्नुमारब्धः कुमारो 'वस्युहन्तमः ॥२९॥

हरि सदस्य हृष्ट ॥१५॥ सिनीवाली (पूर्व अमावास्या), कुहू (उत्तर अमावास्या) द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्त्ति, धृति, लक्ष्मी—ये नौ देवियां चन्द्रमा की सेवा करती थी ॥१६॥ यश को समाप्त कर देवता और ऋषियों से पूजित हो राजाओं में प्रधान चन्द्रमा दशो दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सुशोभित होने लगा ॥१७॥ ऋषियों से सहित उस अलम्ब्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर चन्द्रमा की बुद्धि अनीति से उच्छृंखल हो उठी ॥१८॥ ऐश्वर्य के मद से भक्त चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी का अपहरण कर लिया ॥१९॥ देवताओं और मुनियों द्वारा बारबार भमसाया जाने पर भी उनमें बृहस्पति को तारा नहीं लौटायी ॥२०॥ तब चन्द्रमा का पक्ष शुक्राचार्य ने लिया और बृहस्पति का पक्ष अजगव नामक धनुष धारण कर महादेवजी ने लिया ॥२१॥ महारमा शिव ने ब्रह्मशिर नामक एक महास्त्र देव्यों के ऊपर फेंका, जिससे देव्यों का यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर लोक-क्षय करने के लिए तारकामय नाम से विख्यात देव-दानव युद्ध हुआ ॥२३॥ द्विजगण उस युद्ध में जो तुपित नामक देवता ध्वज गये, वे सब आदिदेव और सनातन ब्रह्मा की शरण में गये ॥२४॥ तब शुक्राचार्य और महादेव जी का हठावर स्वयं ब्रह्मा ने बृहस्पति का तारा लौटा दी ॥२५॥ गर्भवती तारा को देखकर बृहस्पति ने कोप से कहा—'गुप्तसे सर्वन्वित योगिने मे तुम वही गर्भ धारण नहीं कर सकती ॥२६॥ तब मूँज के गुच्छों पर तारा ने गर्भ का त्याग कर दिया । जन्म लेते ही वह बालक दिव्यरूपधारी हो गया ॥२७॥ देवताओं ने सदेह करके तारा से पूछा—'सत्य बोलो कि यह पुत्र चन्द्रमा का है या बृहस्पति का ?' ॥२८॥ देवताओं से पूछी जाने पर जब वह नहीं बोली, तब चोरो का नाश करने वाला बालक उसको

१ ग तदा । २ क ग ०पि सह । नं ० । ३ ख तस्यैवागिरसस्तदा । ४ ख ०ष्टतया नाशाय धनुना । त० । ५ क स मुनिससमा ।

तं निवार्यं ततो ब्रह्मा तारां प्रपच्छ संशयम् । यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥३०॥
 उवाच प्राञ्जलिः सा तं सोमस्येति पितामहम् । तदा तं मूर्ध्नि चाधाय सोमो राजा सुतं प्रति ॥३१॥
 बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः । प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥३२॥
 उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकम् । तस्यापत्यं महातेजः बभूवैल । पुरुरवाः ॥३३॥
 उर्व्वशीयां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः । एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्त्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४॥
 वंशमस्य मुनिश्रेष्ठाः कीर्त्त्यमानं निबोधत । धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम् ॥३५॥
 सोमस्य जन्म श्रुत्वा पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथनं नाम

नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरुरवा । तेजस्वी दानशीलश्च यज्ञा विपुलदक्षिणः ॥१॥

शाप देने के लिए तैयार हो गया ॥२९॥ उसको निवृत्त कर ब्रह्मा ने तारा से सदेह पूछा—‘तारे’ सत्य बतलाना । यह किधना पुत्र है?’ ॥३०॥ उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—‘चन्द्रमा वा ।’ तब राजा सोम ने बालक के मस्तक को मूँच कर उस बुद्धिमान् बालक का नाम ‘बुध’ रखा । अतएव बुध का आवास मे प्रतिकूल उदय होता है ॥३१-३२॥ वैराज मनु की कन्या से बुध ने पुत्र उत्पन्न किया । उसका इला से उत्पन्न पुरुरवा नामक पुत्र महातेजस्वी हुआ ॥३३॥ पुरुरवा से उर्व्वशी मे सात पुत्र उत्पन्न हुए । मुनिश्रेष्ठो । चन्द्रमा की यह कीर्त्ति बढ़ाने वाली उत्पत्ति मैंने आपसे कही ॥३४॥ अब इसके वंश का वर्णन मुनिये । धन्यवाद के पात्र, आयु और आरोग्य के दायक तथा अमिलपा को पूर्ण करने वाले चन्द्रमा के जन्म को सुनने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥३५-३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे सोमोत्पत्तिकथन नामक सर्वा अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १०

लोमहर्षण बोले—मुनिवर ! बुध के विद्वान्, तेजस्वी दानी, यज्ञ करनेवाला, बहुत दक्षिणा देने वाला,

ब्रह्मवादी पराक्रान्तः 'शत्रुभिर्मुग्धि दुर्दमः। आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य 'यज्ञानाञ्च महोपतिः॥२॥
 सत्यवादी पुण्यमतिः 'सम्यक् संवृत्तमंथुनः। अतोव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमः' सदा॥३॥
 तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्वशी वरयामास हित्वा मानं 'यशस्विनी॥४॥
 तथा सहस्रसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च। षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश 'वाष्टौ च भो द्विजाः॥५॥
 वने चैत्ररथे रम्ये 'तथा मन्दाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥६॥
 उत्तरान् स कुर्वन् प्राप्य 'मनोरमफलद्रुमान्। गन्धमादनपादेषु 'मेरुशृङ्गे तथोत्तरे॥७॥
 एतेषु वनमूह्येषु सुरैराचरितेषु च। उर्वशीया सहितो राजा रेमे परमया मृदा॥८॥
 देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते। राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥९॥
 एवम्प्रभावो राजासीद्वैलस्तु नरसत्तमः ॥१०॥

लोमहर्षण उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते' सप्त' देवसुतोत्तमाः'। गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्धोमानमावसुः'॥११॥
 विश्वायुश्चैव धर्म्मार्त्मा श्रुतायुश्च तयापरः। दृढायुश्च वनायुश्च ब्रह्मायुश्चोर्व्वशीसुताः॥१२॥
 अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट्। श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः॥१३॥

ब्रह्म-वेत्ता, युद्ध मे शत्रुओं से अजेय, अग्निहोत्री, राजा, सत्यवक्ता, पवित्र विचार वाला मंथुन मे सयमी और तीनों लोकों मे सदा अनुपमेय यशस्वी पुरुष का नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१-३॥ उस ब्रह्मवादी, सत्यवादी, शान्त और धर्म्मज्ञ पुरुष का को यशस्विनी उर्वशी ने मान त्याग कर वरण किया ॥४॥ विप्रवृन्द! राजा ने उर्वशी के साथ चैत्ररथ नामक सुन्दर वन मे दश वर्ष, मन्दाकिनी नदी के तट पर पाँच वर्ष, अलकापुरी मे छह वर्ष, बदरी पुरी मे पाँच वर्ष नन्दन वन मे सात वर्ष, मनोरम फल-वृक्षों से युक्त उत्तर कुक्षों के देश मे आठ वर्ष, गन्धमादन पर्वत पर दस वर्ष और सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग मे आठ वर्ष तक वास किया ॥५-७॥ इन प्रदान कनो मे और देवताओं के जौडा-स्थानों मे उर्वशी के सग राजा परम हर्ष से रमण करता रहा ॥८॥ राजा ने पवित्रतम और महर्षियों से स्तुत प्रयाग-क्षेत्र मे अपनी राजधानी बनायी ॥९॥ इस प्रकार प्रभावशाली, महामानव और महायशस्वी पुरुष का गंगाजी के उत्तर तट पर रहता था ॥१०॥

लोमहर्षण ने कहा—देव-पुत्रों के समान पुरुष का के सात पुत्र हुए। आयु विद्वान अमावसु विश्वायु धर्म्मार्त्मा श्रुतायु, दृढायु, वनायु और ब्रह्मायु—ये उर्वशी के पुत्र थे ॥११२॥ अमावसु के, राजा का भी राजा भीम नामक पुत्र हुआ। भीम के श्रीमान् काचनप्रभ पुत्र हुआ ॥१३॥ काचनप्रभ के महाबली सुहोत्र पुत्र हुआ। सुहोत्र का पुत्र जह्नु,

१ छ शत्रूना युधि दुर्जय । २ छ सुमन्त्रया । ३ क ०म्यग्निभूत० । ४ क ०तिमो युधि । त । ५ छ ०दा । विरव हि ब्रह्मस्तत्तस्य कर्मापि विलय गतम् । उर्वशी व० । ६ छ ०नीम् । त० । ७ छ वा ष्टौ । ८ छ वा ष्टौ । ९ क देशे । ख तदः । १० ग ०रथक० । ११ क ०स्पृष्टान्तरेषु च । ए० । १२ ख ०स्ते स्मरदे० । १३ क सर्वे । १४ ख ०गा । दिवि जाता महात्मान् वा० । १५ ख ०मान्निमाव० ।

विद्वास्तु काञ्चनस्यापि सहोत्रोऽभू महाबलः । सहोत्रस्याभवज्जहनु केशिया गर्भसम्भव ॥१४॥
 धाजह्ने यो महत सत्र सर्पमेध महामखम । पतिलोभेन य गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५॥
 नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सद । स तथा प्लावित दष्टवा यज्ञवाट समतत ॥१६॥
 सोहोत्रिरशपदगङ्गाः क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा । एष ते विफल यत्नः पितृघ्नम्भ करोम्यहम् ॥१७॥
 अस्य गङ्गेऽवस्तेपस्य सद्यः फल्मवानुहि । जह नुराजपिणा पीता गङ्गा दृष्टवा महर्षय ॥१८॥
 उपनियमहाभागां दुहितृत्वेन जाह नवीम । युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह नुरावहत् ॥१९॥
 युवनाश्वस्य नापेन गङ्गाद्धेन विनिर्गता । कावेरीं सरिता श्रुता जहोर्भाष्यमिनिविताम् ॥२०॥
 जह नुस्तु दयित पुत्र सनद्यः नाम धाम्निंयम । कावेर्यां जनयामास अजयस्तस्य चात्मज ॥२१॥
 "अजयस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपति । बभूव भृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२२॥
 कुशपुत्रा बभूवुर्ह चत्वारो देवचरचंस । कुशिकः कुशनाभश्च कुशाग्रो मूर्त्तिभास्तथा ॥२३॥
 बलध्वं सह सपृद्धो राजा वनचर सदा । कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसम प्रभुः ॥२४॥
 लभेयमिति त शत्रुशत्रासादभ्येत्य जमिवान् । पूर्णं वर्षसहस्रे च तत शत्रो ह्यपश्यत् ॥२५॥
 धृत्युग्रतपस दृष्टवा सहस्राक्ष पुरन्दर । समय पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥२६॥

कृत्वा च गम स उत्पन्न हुआ जिसन सपमेध अर महामग सत्र मयायन विद्य अर जिसने पास पति बनाने के लोभ से गंगाजी गई थी ॥१४॥ १५॥ गंगा जी से विरक्त जन्तु का यज्ञस्थल को गंगा डरो दिया । चारों तरफ यज्ञस्थल को जलमग्न देखकर राजा जहनु ने श्रेष्ठ म अतिर गंगा को शाप दिया कि गग ! मैं जल पीकर लहारे यत्न को बिना करता हूँ । तूम अपन मय अमिमान का पत्र सत्कार प्राप्त करो । ॥१६॥ १७॥ राजपि जह न व द्वारा पिपी गई गंगा को देखकर महर्षिमा न उनको जन्म की पुत्रा बना दिया ॥१८॥ पन्नातु जहनु न युवनाश्व की पुत्री कावेरी म विवाह किया ॥१९॥ युवनाश्व का नाप से गंगा आध भाग म नदिया म अष्ट तथा अनिर्वय जन्तु का पत्नी कावेरी म मिता गई ॥२०॥ जन्तु न मुनय नामक धर्मात्मा पुत्र को कावेरी स उत्पन्न किया । २१॥ उसने अजय नामक पुत्र हुआ । अजय का पुत्र राजा बलाकाश्व गितार मेहन म बना पत । उसने कुश नामक पुत्र हुआ । २२॥ कुश का देवता का समान तस्वी तार पुत्र हुए—कुशिक कुशनाभ कृशाग्र अर मतिमान् ॥२३॥ राजा कृशिक मय बन ही म अतिर ने साथ पात्र गया । मैं हूँ क समान च प्राप्त कर इस पत्नी म व तप करन गया । यत्न जातिर मयका म उग्रत पात्र गा। हवार वप बात जान पर मत्र न उग्र गया । मय अजय उग्र तस्वी का देखकर पुत्रपात्रन म समय मुग्धभट्ट ह मय उग्रत पुत्र बना । कुशिक

१ ग ० नृप च मन्त्रः । २ क ० अरुन्धः । ३ क ० त्रिप ओषध मणिप्याप पितृभ्यः । ४ ग जम । ५ म ० मज्जय्यापि मः । ६ क म ० भागाः । ७ क ० न । गंगापेन मय नदी गंगादिभिर्मयः । वा० । ८ ग निमिः । वा० । ९ क मन्त्रः । १० क मन्त्रः । ११ क मन्त्रः । १२ म गान्धामुनिः । ग गान्धामुनिः । १३ ग ० वा । ग गान्धामुनिः । १४ म प्रभुः ।

पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्र सुरसत्तम । स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिक स्वयम् ॥२७॥
 पीरा यस्याभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत । गाधे कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८॥
 सा गाधि काव्यपुत्राय ऋचीकाय वदौ प्रभु । तस्या प्रीत स वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दन ॥२९॥
 पुत्रार्थं साधयामास चरु गाधेस्तथैव च । उवाचाहूय ता भार्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०॥
 उपयोज्यदचरुय त्वया मात्रा स्वयं शुभे । तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमानृक्षत्रिदपम ॥३१॥
 अजेय क्षत्रियैर्लोकैः क्षत्रियैर्भूतसूदन । तवापि पुत्र कल्याणि धृतिमत तपोधनम् ॥३२॥
 शमात्मक द्विजश्रेष्ठ चरुय विधास्यति । एवमुक्त्वा तु ता भार्यामृचीको भृगुनन्दन ॥३३॥
 तपस्यभिरतो नित्यमरण्य प्रविशेद ह । गाधि सदारस्तु तदा ऋचीकाश्चमम्यगात् ॥३४॥
 तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुता द्रष्टुं नरेश्वर । चरुद्वयं गृहीत्वा सा ऋषे सत्यवती तदा ॥३५॥
 चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् । माता तु तस्या देवेन दुहित्वे स्व चरु वदौ ॥३६॥
 तस्याश्चरुमयाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह । अयं सत्यवती सध्वं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥३७॥
 धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना । तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८॥
 ततोऽश्र्वीद्विजश्रेष्ठ स्वा भार्यां वरवर्णिनीम् । मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ॥३९॥
 जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्म्मोतिदारुण । श्रुता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधन ॥४०॥

पुत्र इन्द्र गाधि नामक राजा हुए ॥२४२७॥ कुशिक की पत्नी पुरा से गाधिक उत्पत्ति हुई या । गाधि के महामाग्य भार्यानी सत्यवत नामक कन्या हुई । ॥२८॥ गाधि न उस पुत्री को भृगु-पुत्र ऋचाक को समर्पित किया । ऋचक न गाधि का कन्या से प्रसन्न होकर अपने अरु गाधि के पुत्र होने के लिए चरु बनाया अरु अपना पानी को बुलाकर कहा—॥२९३०॥ प्रिये ! यह चरु तुम अपनी माता को देना । इस खान से तुम्हारी माता अत्यन्त तजस्वी क्षत्रिय-श्रेष्ठ पुत्र को उत्पन्न करेगी जो इस लोक में राजाओं से अजेय तथा नृप-श्रेष्ठा का सहायक होगा ॥३१३॥ कल्याण ! तुम्हें भी इस दूसरे चरु के खान से घोर, तपस्वी शान्त अरु द्विजवर पुत्र उत्पन्न होगा । ॥३२३॥ इस प्रकार पत्नी से कहकर भृगु-पुत्र ऋचीक तपस्या में निरत हो वन में प्रविष्ट हुआ । तदुपरांत तीर्थयात्रा के प्रसंग से पुत्री को देखन के लिए राजा गाधि अपनी माया सहित ऋचक के आश्रम में गया ॥३३३४॥ सत्यवता न अपि न देना चाहता जो लाकर माता को समर्पित किया ॥३५३॥ परन्तु दक्षयोग से माता न पुत्र का अपना चरु दे दिया अरु अनानता से उसका चरु स्वयं खा लिया ॥३६३॥ इसका बाद सत्यवती न सब क्षत्रिया का नाम करने वाला गम धारण किया । शरीर में तज रहत हुए भी वह देखन में भयकर लगता थी ॥३७३॥ ऋचाक उस देखत ही योग-बल से सब कुछ समझ गया अरु बोला—मद ! माता न तुम्हें ठग लिया । चरु बदल जान के कारण तुम्हें अत्यन्त भयकर अरु क्रूर बन करन वाला पुत्र उत्पन्न होगा पर तुम्हारा भाद ब्रह्मवत्ता तपस्वी होगा ॥३८४०॥

१ स ०भ्ययात् । २ क चरु विद्या गृहीत तमूष । ३ क ०दा । विषयपातदा त वै सा । ४ क स त्रभदेन । ५ क ०शत्या आत्म० ।

विश्व' हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम् । एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१॥
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदुशो भवेत् । ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥४२॥

ऋचीक उवाच

नय सकल्पत कामो मया भद्रे तयास्त्विति । उपक्रम्य भवेत् पुत्रं पितुर्मातुश्च कारणात् ॥४३॥
पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीद्विदम् । इच्छल्लोकानपि मुने सुजेथा किं पुन सुतम् ॥४४॥
शमात्मकमूजु त्वमे पुत्रं दातुमिहार्हसि । काममेवविधं पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥४५॥
यद्यन्यथा न शक्य वै कर्तुमेतद्विजोत्तम । तत् प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥४६॥
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वावर्यर्वाणि । त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥४७॥
तत् सत्यवती पुत्रं जनयामास भागवम् । तपस्यभिरत दाग्नं जमदग्निं शमात्मकम् ॥४८॥
भृगोर्जगत्या वशोऽस्मिञ्जमदग्निरजायत । सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥४९॥
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तये महानदी । इक्ष्वाकुवशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिप ॥५०॥
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका । रेणुकाया तु कामत्या तपोविद्यासमन्वित ॥५१॥
आर्चीको जनयामास जामदग्न्य सुदारणम् । सत्यविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२॥

क्याकि उस चरु मे मैं तपस्या के बल से विश्वरूपी ब्रह्म को निहित कर दिया था।' पति से यह बात सुनकर सौभाग्यवती सत्यवती ने उनसे यह प्रश्नता की कि आप जैसे ब्राह्मण-श्रेष्ठ से मुझे इस तरह का पुत्र न हो ऐसी कृपा करें। तब मुनि ने कहा ॥४१-४२॥

ऋचीक बोला—भद्रे । तुम्हें इस तरह का पुत्र हो—ऐसा सबल मैंने नहीं किया था। पिता मरता के कारण उपक्रम करनेवाला पुत्र होगा ॥४३॥ फिर सत्यवती बोली—'मुन । आप चाह, तो तीन लोक की सृष्टि कर सकते हैं, फिर एक पुत्र की ता बात ही क्या ॥४४॥ प्रभो । शान्त तथा कोमल स्वभाव वाला पुत्र मुझे दीजिये । द्विज-धर्म । यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो कम से कम इतना कीजिये कि मेरा पति ऐसा (प्रापित पुत्र की तरह) हो । ॥४५॥ तब मुनि ने तपस्या के बल से उसका ऊपर कृपा की और कहा—'मुन्दर । मैं पुत्र और पति मन्वोई भेद नहीं मानता। भद्रे । तुमन जैसा कहा वैसे ही होगा ॥४६-४७॥ तब सत्यवती ने तपस्या मे निरत, इन्द्रिया को दमन करने वाल जमदग्नि नामक मृगवशी पुत्र को उत्पन्न किया ॥४८॥ सखार म भृगु के इस वश म जमदग्नि मुनि उत्पन्न हुए। सत्य तथा धर्म म परायण और पवित्र वह सत्यवती कौशिकी नाम स विख्यात महानदी हुई ॥४९॥ इक्ष्वाकु वश म उत्पन्न रेणु नामक राजा की कन्या, कामली और रेणुका नाम से प्रसिद्ध थी ॥५०॥ उस रेणुका म तपस्वी और विद्वान् जमदग्नि के अतिमयातक सब विद्याओं म निष्णात, धनुर्वेद म पारंगत, क्षत्रियो के विनाशक और अग्नि के समान तपस्वी राम (परगुराम) नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५१-५२॥ इस

१ य हि तपसा ब्रह्म म० । २ व० ॥ न य स० । ३ य सुतो । ४ व स भद्रे । ५ व० गोशब्दविपर्ययि जम० । ग० गजदक्षिणपदि रोदधन्वज्या पुरा । यजनाद्वैणव चायं जम० । ६ क स० धानुगधे० ।

रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदोषतमिव पावकम् । ओर्वर्त्यवमृचोक्षस्य सत्यवत्यां महायशः ॥५३॥
जमदग्निस्तपोबीर्यग्नज्ज्ञे ब्रह्मविदांवरः । मध्यमश्च शुनःशेषः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥५४॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः । जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५॥
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां धोष्यं ब्रह्मर्षितां गतः । विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥५६॥
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकद्वन्द्वशब्दनः । विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ॥५७॥
प्रह्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्यतः परम् । देवरातः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः ॥५८॥
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणुजनेऽप्य रेणुकः । सांकुतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चैव विश्रुतः ॥५९॥
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टमः । कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः ॥६०॥
तेषां ह्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् । पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६१॥
शर्षपा देवराताश्च शालङ्कायनवाष्कलाः । लोहिता यमदूताश्च तथा कारुणकाः स्मृताः ॥६२॥
पोरवस्य मुनिश्रेष्ठा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च । सम्बन्धोऽप्यस्य वंशोऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥६३॥
विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेषोऽग्रजः स्मृतः । भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥६४॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेषोऽभवत् किल । हरिद्विषस्य यज्ञे तु पशून्वे विनियोजितः ॥६५॥
देवेदंतः शुनःशेषो विश्वामित्राय वै पुनः । देवेदंतः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥६६॥

प्रकारतः शक्ति से ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ और महायशस्वी जमदग्नि मुनि सत्यवती से उत्पन्न हुए । मञ्जले पुत्र का नाम शुनः शेष और छोटे पुत्र का नाम शुनः पुच्छ हुआ ॥५३-५४॥ कुशिक के पुत्र गाधि ने तपस्वी, विद्वान् और धान्त विश्वामित्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५५॥ धर्मात्मा विश्वामित्र, जिसका नाम विश्वरथ भी था, ब्रह्मर्षियों की समानता को प्राप्त करके ब्रह्मर्षि बन गया ॥५६॥ भृगु की कृपा से कौशिक के वंश को बढ़ाने वाला पुत्र हुआ । विश्वामित्र के पुत्र देवरात आदि नाम से विख्यात हुए ॥५७॥ तीनों लोकों में प्रख्यात उन पुत्रों के नाम मुनिषे—देवरात और कति, जिसमें कति के कात्यायन नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥५८॥ शालावती नामक स्त्री से हिरण्यक्ष उत्पन्न हुआ । रेणु, रेणुक, सांकुति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, कच्छप, हारित—ये विश्वामित्र के पुत्र कहलाये ॥५९-६०॥ उन महात्मा कौशिकों के गोत्र प्रसिद्ध हैं । मुनिश्रेष्ठो ! पाणिन, बभ्रव, ध्यान, जप्य, पाण्डव, देवरात, शालकायन, बाष्कल, लोहित, यमदूत, कारुण्य—ये सब ब्रह्मर्षि कौशिक के वंशज कहलाते हैं ॥६१-६२॥ इस वंश में ब्राह्मण और क्षत्रिय का सम्बन्ध प्रसिद्ध है । विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेष श्रेष्ठ था । मुनि-श्रेष्ठ भार्गव कौशिकत्व को प्राप्त हुआ ॥६३-६४॥ विश्वामित्र का पुत्र शुनःशेष हुआ । हरिद्विष (हरिद्विष) के यज्ञ में शुनःशेष पशु की जगह नियुक्त किया गया था ॥६५॥ देवताओं ने फिर शुनःशेष को विश्वामित्र को दे दिया । देवताओं के द्वारा दिया जाने के कारण उसका नाम 'देवरात' पड़ा ॥६६॥ विश्वामित्र के

१ ख ० व श्रुची ० । २ ख. ० दासमन्वितम् । ३ व ख ० व दे ० । ४ व तेषामास्यामि गो ० । ५ क ० तायन-
शरीताष्टकायाजना स्मृ ० । ६ ग याम-भूताश्च । ७ ग. कारुण्य ।

देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः। दृषद्वतीसुतदत्तापि। वंश्वामित्रस्तथाष्टकः॥६७॥
 अष्टकस्य सुतो लोहिः। प्रोक्तो जहनुगणो मया। अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः॥६८॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशोऽभावसुवंशानुकीर्तनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

तत्रादौ सोमवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

आयोः पुत्राश्च ते पञ्च सर्व्वे घोरा। महारथाः। स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृपाः॥१॥
 नहुयः प्रयमं जज्ञे बृद्धशर्मा ततः परम्। रम्भो रजिरनेनाश्च त्रियु लोकेषु विश्रुताः॥२॥
 रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै। राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम्॥३॥
 यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारणे। देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमयान्नयन्॥४॥

देवासुरा ऊचुः

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति। ब्रूहि नः सध्वंभूतेश्चोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥५॥

देवरात आदि सप्त पुत्र ये। विश्वामित्र के दृषद्वती से अष्टक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥६७॥ अष्टक के लोहि नामक पुत्र हुआ। मैंने जहनु-परिवार को बतला दिया। अब इसके बाद महात्मा आयु नामक राजा के वंश का वर्णन करेगा॥६८॥

श्री ब्रह्महर्षपुराण के सोमवंश के वर्णन-प्रसंग में अभावसु-वंशानुकीर्तन नामक दशवीं अध्याय समाप्त॥१०॥

अध्याय ११

लोमहर्षण बोले—आयु के वीर और महारथी पाँच पुत्र स्वर्भानु की प्रभा नामक बन्वा से उत्पन्न हुए॥१॥ पहले नहुय उत्पन्न हुआ। इसके परवान् सौतेले लारा म क्रियाय बृद्धशर्मा, रम्भ, रजि और अनेक उत्पन्न हुए॥२॥ रजि म पौत्रार्थः पुत्र उत्पन्न दिये, जो इन्द्र को बतान वाले रात्रेय नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए॥३॥ एक बार भयवत् देवागुरु-सभाय छिड़ जान पर देवरात्रा और राक्षसा ने ब्रह्मा के पाद आकर यह निवेदन किया॥४॥

देवासुरों ने कहा—भगवन्! आप क्षत्रीशक्ति के स्वामी हैं, हम तत्काल यह जानना चाहें हैं कि हम दोनों में से कौन क्या विजयी होगा? कृपया बताइए?॥५॥

ब्रह्मोवाच

येषामनर्थाय संप्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः। योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः॥६॥
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः। यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा॥७॥
ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजि तदा। अम्यथुर्जयमिच्छन्तो वृष्वानातं नरर्षभम्॥८॥
स हि स्वर्भानुदोहित्रः प्रभायां सम्पद्यत। राजा परमतेजस्वी सोमवंशविवर्द्धनः॥९॥
ते हृष्टमनसः सध्वं रजिं च देवदानवाः। ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकाम्मुक्म्॥१०॥
अयोवाच रजिस्तत्र तयोर्वं देवदेवयोः। अर्जतः स्वार्थमुद्दिश्य यशः त्वं च प्रकाशयन्॥११॥

रजिषवाच

यदि दैत्यगणान् सर्वान् जित्वा क्षीय्ये वासवः। इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे॥१२॥
देवाः प्रथमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः। एवं मयेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव॥१३॥
भूत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा। पप्रच्छासुरमुख्यास्तु यया देवानपृच्छत॥१४॥
दानवा द्यंसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावागम्य ह। प्रत्यूचुस्तं नृपवरं सभिमानमिदं वचः॥१५॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यायं विजयामहे। अस्मिंस्तु समरे राजस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—युद्ध में जिसके पक्ष से शस्त्र धारण कर रजि युद्ध करोगा जिससे वह वही त्रींल्लोक विजयी होगा
॥१॥ क्योंकि जहाँ रजि होगा वहाँ धर्म, जहाँ धर्म वहाँ लक्ष्मी, जहाँ लक्ष्मी वहाँ धर्म और जहाँ धर्म होगा वहाँ विजय
निश्चित होगी॥७॥ ब्रह्मा के वचन को सुनकर देवता और दानव प्रसन्न हो विजय की अभिलाषा करते हुए रजि को
बरण करने के लिए उसके पास गये॥८॥ स्वर्भानु का नाती रजि, जो सोमवंश को बढ़ाने वाला परम तेजस्वी राजा
था, प्रमा से उत्पन्न हुआ था॥९॥ प्रसन्नचित्त देवता और राक्षस रजि से कहने लगे कि आप हमारी जय के लिये
संयुक्त धारण कीजिये॥१०॥ तब अभिप्राय को जाननेवाले रजि ने स्वार्थ का उद्देश्य सम्मुख रखकर अपनी नीति को
प्रकाशित करते हुए देव-दानवों से कहा॥११॥

रजि ने कहा—‘यदि मैं शक्ति से दैत्यगणों को जीत कर धर्म से इन्द्र हो जाऊँ तो मैं सधाम म युद्ध करूँगा’
॥१२॥ देवताओं ने प्रथमतः प्रश्न होकर कहा—‘गन्तु’ आपकी इच्छा पूरी होगी॥१३॥ देवताओं की बात
सुनकर राजा रजि ने प्रमुख राक्षसों से भी वही बात पूछी जो देवताओं से पूछी थी॥१४॥ तब धर्म से पूर्ण दानवों
ने केवल अपने ही स्वार्थ को जानकर राजा से अभिमानपूर्वक यह कहा॥१५॥

दानवों ने कहा—‘हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद हैं, जिनके लिये हम विजय चाहते हैं। राजन्! यदि आप
हमारे इन्द्र होने की इच्छा रखते हैं तो आप इस युद्ध में हमारे विपक्षी बनिये’॥१६॥ राजा ने कहा—

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यतिचोदितः। भविष्यसीन्द्रो जित्वेनं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः॥१७॥
 जघान दानवान् सर्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः। स विप्रनष्टां देवानां परमथोः श्रियं वशी॥१८॥
 निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः। ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः॥१९॥
 रजिपुत्रोऽहमित्यूक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः। इन्द्रोऽसि तात१ देवानां सर्वेषां नात्र संशयः॥२०॥
 यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते स्यातिं यास्यामि कर्मभिः। स तु शत्रुवचः श्रुत्वा बञ्चितस्तेन मायया॥२१॥
 तथैवेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतश्रतुम्। तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ॥२२॥
 दायाद्यमिन्द्रादाजहः राज्यं तत्तनया रजेः। पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः॥२३॥
 समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोके त्रिविष्टपम्। ते यदा तु स्वसम्भूटा रागोन्मत्ता विषमिर्माणः॥२४॥
 ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः। ततो लेभे स्वमैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्॥२५॥
 हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान्। य इदं व्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः।
 शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दोगंत्यमाप्नुयात् ॥२६॥

लोमहर्षण उवाच

रम्भोऽनपत्यस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेनसः। अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो१ महायशः॥२७॥
 १प्रतिक्षत्रसुतश्चासीत् सञ्जयो नाम विश्रुतः१। सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः॥२८॥

‘एवमस्तु’। तब देवताओं ने राजा से कहा—‘आप इनको मार कर इन्द्र हो जायेंगे’॥१७॥
 राजा ने उन सब दैत्यों को, जो इन्द्र से अवध्य थे, मार कर चिरकाल से नष्ट देवताओं की श्री को राक्षसों से ग्रहण किया॥१८॥ तदुपरान्त इन्द्र ने देवताओं के साथ आकर रजि से कहा—‘मैं रजि का पुत्र हूँ। तब! निःसंदेह आप सब देवताओं के इन्द्र हैं। जिन आप का पुत्र मैं इन्द्र हूँ—इस स्याति को मैं वीरों से प्राप्त करूँगा’॥१९-२०॥ वह राजा इन्द्र की बात सुनकर माया से मोहित हो सतुष्ट हो गया और इन्द्र से बोला—‘ऐसा ही सही!’॥२१॥ तब देवताओं के समान उस राजा के स्वर्ग चले जाने पर उसके पुत्रों ने इन्द्र से राज्य छीन लिया। उसके पाँचवाँ पुत्रों ने अनेक बार स्वर्गलोके पर आक्रमण किया॥२२-२३॥ जब उन भूत, रागोन्मत्त, विषमों और ब्रह्म-द्रोही रजि-पुत्रों का पराक्रम नष्ट हो गया, तब इन्द्र ने काम क्रोध से रत इन सब रजिपुत्रों को मारकर अपने ऐश्वर्य और उत्तम स्थान को प्राप्त किया॥२४-२५॥ जो आदमी इन्द्र के इस उत्थान-पतन को सुनेगा या धारण करेगा, उसकी अपोगति बुरी नहीं होगी॥२६॥

लोमहर्षण बोले—रम्भ तो सन्तान हीन था, इसलिये अनेक वंश का वर्णन मैं करूँगा। अनेक का पुत्र प्रतिघन महान् यशस्वी राजा हुआ॥२७॥ प्रतिघन का सजय नामक पुत्र बड़ा प्रसिद्ध था। सजय का पुत्र

१ वं तावदेवा०। २ स सुमपुष्टा। ३ ग. प्रतिक्षत्रो। ४ ग. ०तिक्षत्रसु०। ५ वं स ०सीत्सञ्जयो०।

६ वं स ०त। सञ्जय०।

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्ष्यत्वतः^१ सुतः। 'हर्ष्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥२९॥
 सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन^२ इति विश्रुतः। नदीनस्य^३ जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः॥३०॥
 सङ्कृतेरपि^४ धर्मात्मा शत्रवृद्धो महायशः। अनेनसः समाख्याताः शत्रवृद्धस्य चापरः॥३१॥
 शत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशः। सुनहोत्रस्य दाय्यादास्त्रयः पमघामिकाः॥३२॥
 काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः। पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः॥३३॥
 ब्राह्मणाः सत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च। शलात्मज^५ आष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः॥३४॥
 काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा। 'धनुस्तु^६ दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः॥३५॥
 तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः। पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मनुष्येष्विह जन्मनि॥३६॥
 नस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा। 'काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः॥३७॥
 आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भियक्क्रियः। तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥३८॥
 'धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः। अयं केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः॥३९॥
 पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः। दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यपिपोऽभवत्॥४०॥
 एतस्मिन्नेव काले तु पुरो वाराणसो द्विजाः। शून्या निवेश्यामास क्षेमको नाम राक्षसः॥४१॥

अयं और उसका पुत्र विजय हुआ ॥२८॥ विजय के कृति नामक पुत्र और उसके हर्ष्यत्वत नामक पुत्र हुआ। हर्ष्यत्वत का पुत्र सहदेव प्रतापी राजा हुआ ॥२९॥ सहदेव का धर्मात्मा पुत्र नदीन नाम से विख्यात हुआ। नदीन के जयत्सेन नामक पुत्र और जयत्सेन के सङ्कृति नामक पुत्र हुआ ॥३०॥ सङ्कृति के भी महायशस्वी और धर्मात्मा शत्रवृद्ध नामक पुत्र हुआ। अनेना का वश बतला दिया, अब शत्रवृद्ध का सुनियो ॥३१॥ शत्रवृद्ध के सुनहोत्र नामक महायशस्वी पुत्र हुआ। सुनहोत्र ने काश, शल और गृत्समद नामक तीन धर्मात्मा पुत्र थे ॥३२॥ गृत्समद का पुत्र शुनक और उसका शौनक था। उसी से ब्राह्मण, सत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उत्पन्न हुए। आष्टिसेन शल का पुत्र था। उसका पुत्र काश्यप था ॥३३-३४॥ काश के पुत्र राजा काशिप और दीर्घतपा थे। दीर्घतपा के धनु नामक पुत्र हुआ और उससे विद्वान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुए ॥३५॥ वृद्ध और धीमान् धनु के कठिन तप के अन्त में देवता धन्वन्तरि मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए ॥३६॥ इस जन्म में उसने घर में उत्पन्न देव धन्वन्तरि ने, जो सर्वरोग-विनाशक तथा महाराज काशिराज कहलते थे भरद्वाज मुनि से आयुर्वेदको प्राप्त कर उसने आठ भाग करके शिष्यों को पढ़ा दिया ॥३७-३८॥ धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध था। केतुमान् का पुत्र भीमरथ रहा और हुआ ॥३९॥ भीमरथ का पुत्र दिवोदास प्रजापति का स्वामी हुआ। धर्मात्मा दिवोदास काशी-नरेश हुआ ॥४०॥ विप्रवृन्द^१ इसी समय क्षेमक नामक राक्षस ने शून्य काशीपुरी में प्रवेश किया ॥४१॥ कयोपि महात्मा

१ क हर्ष्यत्वत । ख हर्ष्यत्वन । २ क हर्ष्यत्वतमु० । ख हर्ष्यत्वतमु० । ३ क नदीन । ४ क न दीजस्य ।
 ५ ग सहति । ६ ग सहते० । ७ ख कृतवर्मा । ८ ग अत्मज पार्ष्णिसे० । ९ ग अतमास्त० । १० ख धन्वस्तु ।
 ११ ग अतमसो । १२ ग मगिराजो । १३ क अन्तरे सुतो नमः के० ।

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना । शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न संशयः ॥४२॥
 तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः । विषयांते पुरीं रम्यां गोमत्या संन्यवेक्ष्यतु ॥४३॥
 भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् । भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥४४॥
 हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः । भद्रश्रेण्यस्य तद्वाज्यं हृतं येन बलीयसा ॥४५॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः । दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६॥
 हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः । आजह्ने पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥४७॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना । वैरस्यान्तो महाभागाः कृतश्चात्मीयतेजसा ॥४८॥
 दिवोदासाद्दूषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः । तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९॥
 प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वत्सभ्यो^१ सुविश्रुतौ । वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०॥
 अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः । अलर्कं प्रति राज्ञि^२ श्लोको गीतः पुरातनः ॥५१॥
 पण्डितवर्षसहस्राणि पण्डितवर्षशतानि च । युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्बहूः ॥५२॥
 लोपामुद्राप्रसादेन परमापुरवाप्तवान् । तस्यासीत् सुमहद्वाज्यं रूपयौवनशालिनः ॥५३॥
 शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् । रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥५४॥
 सभ्रतेरपि दायादः सुनीयो नाम धार्मिकः । सुनीयस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशः ॥५५॥
 क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः । सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६॥

निकुम्भ ने कासी पुरी को शाप दिया था कि 'तुम हजार वर्ष तक नि सदेह शून्य रहोगी' ॥४२॥ जब कासीपुरी शापग्रस्त हो गयी तब राजा दिवोदास ने गोमती नदी के तट पर सुन्दर नगर रववर प्रजा को बसाया ॥४३॥ पहले भद्रश्रेण्य की कासीपुरी हो गई थी। भद्रश्रेण्य के सौ उत्तम धनुर्धारी पुत्रों को मारकर राजा दिवोदास ने बलपूर्वक भद्रश्रेण्य की राज्य-हरण कर अपना बना लिया ॥४४-४५॥ भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम से विख्यात पुत्र को दिवोदास ने बालक समस्त कर दयाकर छोड़ दिया ॥४६॥ राजा ने हैहय की पितृ-सपत्ति छीन ली। महाभाग भद्रश्रेण्य के पुत्र महात्मा दुर्दम ने दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये पितृ-भग पर अपना प्रभुत्व फिर स्थापित कर लिया और अपने पराक्रम से शत्रु का अन्त कर दिया ॥४७-४८॥ दिवोदास की दूषद्वती से वीर प्रतर्दन उत्पन्न हुआ। प्रतर्दन ने फिर उस राज्य को अपने अधीन कर लिया ॥४९॥ प्रतर्दन से वत्स और सगं नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। वत्स के पुत्र का नाम अलर्क और उद्यवे पुत्र का नाम सनति था ॥५०॥ अलर्क ब्रह्मचारी तथा सत्यवादी था। राजपि अलर्क के विषय में ऐसा सुना जाता है कि छोट्ट हजार वर्षों तक वह युवक ही बना रहा ॥५१-५२॥ लोपामुद्रा की कृपा से उसने परमाय प्राप्त की थी। रूपयौवनशाली प्रतर्दन का राज्य बृहत् विस्तृत था ॥५३॥ शाप के अन्त में प्रतर्दन ने क्षेमक राक्षस को मारकर रमणीय कासी पुरी को फिर से बसाया ॥५४॥ सनति का भी सुनीय नामक पुत्र धर्मात्मा था। सुनीय के क्षेम नामक महायशस्वी पुत्र हुआ ॥५५॥ क्षेम के पुत्र केतुमान् से सुकेतु उत्पन्न हुआ। सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु कहलाया ॥५६॥ धर्मकेतु का पुत्र महारथी सत्यकेतु हुआ। सत्यकेतुने किम्

धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः। सत्यकेतुस्तुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥५७॥
 आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारश्च तत्सुतः। सुकुमारस्य पुत्रस्तु घृष्टकेतुः सुधार्मिकः॥५८॥
 घृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः। वेणुहोत्रस्तुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः॥५९॥
 वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः। एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽय भार्गवे॥६०॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्चत्रयः पुत्राः सहस्रशः। इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत॥६१॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे बृद्धक्षत्रप्रसूतिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

सोमवंशवर्णन आयुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महोजसः। नहुषस्य तु दायादाः षड्विंशोपमतेजसः॥१॥
 यतिर्ययातिः सयातिरायातिर्यातिरेव च। सुयातिः यष्टस्तेपां यं ययातिः पार्यिवोऽभवत्॥२॥

नामक प्रजेश्वर पुत्र हुआ॥५७॥ विभु के पुत्र का नाम आनर्त और उसके पुत्र का नाम सुकुमार था। सुकुमार का पुत्र घृष्टकेतु बड़ा धार्मिक था॥५८॥ घृष्टकेतु का पुत्र वेणुहोत्र प्रजापति का स्वामी हुआ। वेणुहोत्र का पुत्र भार्ग नामक प्रजेश्वर हुआ॥५९॥ वत्स के वत्सभूमि नामक पुत्र हुआ। भार्ग के पुत्र का नाम भार्गभूमि था। ये अगिरा के पुत्र मनुवश में उत्पन्न हुए॥६०॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन पुत्र हजारों की संख्या में वत्सप-वश में उद्भूत हुए। अब नहुष के वंश को सुनि॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के सोम-वंश के वर्णन-प्रसंग में बृद्धक्षत्र-प्रसूति-निरूपण नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥११॥

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—महातेजस्वी नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी छह पुत्र विरजा नामक पितृकन्या से उत्पन्न हुए—यति, ययाति, सयाति, आयाति याति और छठा सुयाति। उनमें से ययाति राजा हुआ॥१-२॥ परम धार्मिक ययाति ने कपुत्स्थ की गो नामक कन्या को प्राप्त किया। यति मोक्ष में विलीन होकर ब्रह्मनिष्ठ मुनि बन

१ ग ०८। स्वविभुस्तु २ स भर्गो। ३ स ०स्तु भर्गो। ४ क भूतिस्तु। ५ ग भार्गवात्। ६ क ०स्था आयो पुत्रा। ७ स. ०न्द्रोपेन्द्रते०।

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लभः परमधार्मिकः। यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवत् मुनिः॥३॥
 तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम्। देवयानीमुशनसः सुतो भार्यामवाप सः॥४॥
 शर्मिष्ठाभासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः। यदुञ्च तुल्यं सञ्चैव देवयानी व्यजयित॥५॥
 द्रुह्यं चानुं च 'पुत्रं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्'॥६॥
 अङ्गदं काञ्चनं दिव्यं दिव्यं परमधार्जिभिः। युक्तं मनोजवं शूश्रूषेन कार्थ्यं समुद्रहन्॥७॥
 स तेन रथमुत्थेन पद्माश्रेणाजयन्महीम्। ययातिर्मुधि दुर्ध्वंस्तथा देवान् सदानवान्॥८॥
 स रथः 'कोरवाणां तु सर्वेषामभवत्तदा। संवर्तवसुनामस्तु कोरवाज्जनमेजयात्'॥९॥
 कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्रराजः पारिक्षितस्य ह। जगाम स रथो नाशं शापाद्वर्गस्य धीमतः॥१०॥
 वर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः। कालेन हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः॥११॥
 स लोहगन्धो राजर्षिः परिषादघ्नितस्ततः। पौरजानपदेस्तथगतो न लेभे शर्मं कर्हिचित्॥१२॥
 ततः स दुःखस्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित्। 'विश्रेष्ठं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत॥१३॥
 याजयामास' च ज्ञातो शौनको जनमेजयम्। अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः॥१४॥
 स लोहगन्धो ध्यनशतस्यावभृथमेत्य ह। स च दिव्यरथो राज्ञो वशश्चेदिपतेस्तदा॥१५॥
 दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः। बृहद्रथात्प्रमेर्णव गतो बार्हद्रथं नृपम्॥१६॥

गया। ययाति ने पाँचों भाइयों की पृथ्वी को जीतकर गुजाचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया ॥३-४॥
 पञ्चात् उछने वृषपर्वा नामक राक्षस की दामिष्ठा नामक पुत्री को पत्नी बनाया। यदुञ्चर तुल्यं नामक दो पुत्र देवयानी से उत्पन्न हुए ॥५॥ दामिष्ठा ने द्रुह्य, अनु और पुत्र नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। ययाति को इन्द्र ने प्रथम होकर मन के वेग के समान वेग वाले तथा सफेद रंग वाले दिव्य घोड़े से युक्त और परम प्रकाश से सुशोभित सुवर्ण-निर्मित रथ दिया ॥६-७॥ उस रथ से युद्ध में अथर्वे ययाति ने छह रात्रि में देवता और राक्षस रहित सपूर्ण पृथ्वी को जीत लिया ॥८॥ अश्वमेध नामक बृह रथ कुत्सगिरी के पास रहा। परन्तु महाप्राज परीक्षित के पुत्र—जनमेजय के समय बृह रथ महारथ गार्ग के हाथ से नष्ट हो गया ॥९-१०॥ कदाचित् राजा जनमेजय द्वारा गर्ग के पुत्र की हत्या हो जाने से उसे ब्रह्महत्या का दोष लग गया ॥११॥ तब लोहगन्ध से युक्त राजा जनमेजय ऊपर-ऊपर भागने लगा। जनता ने उसका परित्याग कर दिया। उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी ॥१२॥ अतएव अचान्त, सन्तप्त राजा विश्वरथ शौनक के पास गया ॥१३॥ ब्राह्मण-श्रेष्ठ ज्ञानी शौनक ने राजा जनमेजय को पवित्र करने के लिए उससे अश्वमेध यज्ञ कराया ॥१४॥ यज्ञान्त में राजा का लोहगन्ध नष्ट हो गया। उस समय इन्द्र ने सत्पुत्र होकर मही दिव्यरथ राजा परिक्षित (सिन्धु-नाल) को दे दिया। उससे बृहद्रथ न प्राप्त किया ॥१५॥ अतएव बृह रथ बृहद्रथ के हाथ से बार्हद्रथ (जराधर) नामक राजा के हाथ में पड़ा ॥१६॥ तब कुत्सगिरी मीम ने जराधर की मातृकर मही उत्तम रथ

१ ग य पूषः २ ग ०म्। महाप्राज कः ३ ग ० न च दिव्यं। ४ ग मनोरथं। ५ ग ० न दिव्यवेन
 ७ १ ग ० न विदेमहाप्राजः ८ ग न पौरवाणां ९ ग ० न विश्रेष्ठः १० ग भास्वरः ग वाक्पूरः ११ ग
 सः। दुर्ध्वपुत्री राः १२ ग होतारः ग इन्द्रात् १३ ग ० न केन्द्रेण १४ ग ० न कर्वासेः १५ ग ० न

ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् । प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवचन्दनः ॥१७॥
 सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् । विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुपस्तदा ॥१८॥
 ययातिर्विंशि पूर्व्वस्यां यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् । मध्ये पुंश्च राजानमभ्यदिञ्चत् स नाहुपः ॥१९॥
 विंशि दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वसुं मतिमान्मृपः । तैरियं पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपां सप्ततना ॥२०॥
 ययाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते । प्रजास्तेषां पुरस्तात् वदयामि मुनिसत्तमाः ॥२१॥
 धनुर्न्यस्य पुपत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषपंभैः । जरावानभयद्राजा भारमावेदय बन्धुषु ॥२२॥
 विक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः । प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥२३॥
 एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमश्रवीत् । जरां मे प्रतिगृणीष्व पुत्र हृत्यान्तरेण वै ॥२४॥
 तदणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् । जरां त्वयि समापाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२५॥

यदुस्त्वाच

अनिदिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिभृता । अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६॥
 जरायां बहवो दोषाः धानभोजनकारिताः । तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमह्मुक्तहे ॥२७॥
 सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप । प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमग्न्यं वृणीष्व वै ॥२८॥
 स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः । उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्ह्यम् सुतम् ॥२९॥

प्रीतिपूर्व्वकं वासुदेव (कृष्ण) को दिया ॥१६-१७॥ ययाति ने समुद्र सहित सातद्वीप वाली इस पृथिवी को जीतकर
 इसके पाँच भाग करके पुत्रों में बाँट दिया ॥१८॥ नहुप-पुत्र ययाति ने पूर्व दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियुक्त किया,
 मध्य देश में राजा पुंश्च का अभियेक किया और दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य तुर्व्वसु को दिया ॥१९॥ ये आज भी
 नगर सहित इस सप्तद्वीपा पृथ्वी का अपन-अपन प्रदेश में धर्मपूर्व्वक प्रतिपालन कर रहे हैं। मुनिवर ! उनकी
 प्रजाओं का वर्णन आगे चलकर कहेंगे ॥२०-२१॥ धनुष और बाणों का त्याग कर पाँचों पुरुष-ज्येष्ठ पुत्रों को
 सब मार खोप कर राजा ययाति बुढ़ावस्था को प्राप्त हुआ ॥२२॥ शस्त्रों का त्याग कर अजेय राजा ययाति प्रसन्नता
 से पृथ्वी का परिभ्रमण करने लगा ॥२३॥ इस प्रकार पृथिवी का विभाग करते ययाति ने अपने पुत्र यदु से कहा—
 'पुत्र ! मेरी बुढ़ावस्था को ग्रहण करो। मैं अपना बुढ़ावा तुम्हें देकर तुम्हारी युवावस्था को स्वयं लेकर कार्यान्तर से
 इस पृथिवी पर विचरण कहेंगे।' पिता की बात सुनकर यदु ने उत्तर दिया ॥२४-२५॥

यदु बोला—मैंने अपराध मिला देने के लिए एक ब्राह्मण से प्रतिज्ञा की थी। राजन् ! उसकी पूर्ति किए बिना
 मैं अपना बुढ़ावा ग्रहण नहीं कर सकता ॥२६॥ राजन् ! खान-पान से उत्पन्न अनेक प्रकार के रोग बुढ़ावस्था में
 होते हैं। इसलिए मैं उसे ग्रहण करने का उत्साह नहीं दिला सकता ॥२७॥ मुझसे बढ़कर प्रिय आपसे अनेक पुत्र हैं। हे
 धर्मज्ञ ! उनमें से किसी को आप उसकी जवानी लेने के लिए चुन लें ॥२८॥ यदु के इस प्रकार कहने पर राजा क्रुपित
 हुआ। कन्याओं में श्रेष्ठ ययाति ने पुत्र की मर्त्याना करते हुए कहा ॥२९॥

ययातिरुवाच

‘कृत्वाश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते। मामनादृत्य दुर्वृद्धे यदहं तव देशिकः॥३०॥
 एवमुक्त्वा यदुं विप्राः शशापेन स मन्यमान्। अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न’ संशयः॥३१॥
 द्रुह्यं च तुर्व्यं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः। एवमेवाद्भवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि॥३२॥
 शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः। यथावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः॥३३॥
 एवं शप्त्वा सुतान् सर्व्वान्श्चतुरः पुरुषूर्ध्वजान्। तदेव वचनं राजा पुरुषप्याह भो द्विजाः॥३४॥
 तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय त्वं पुरो यदि मन्यसे॥३५॥
 स जरां प्रतिजग्राह पितुः पुरुः प्रतापवान्। ययातिरपि रूपेण पुरोः पर्य्यंचरन् महीम्॥३६॥
 ‘स मार्गमाणः’ कामानामन्तं नृपतिसत्तमः। विदवाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः॥३७॥
 यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः। तदा पुरोः सकाशाद्धै रथां जरां प्रत्यपद्यत॥३८॥
 यत्र गायामुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना। याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्व्वशोऽङ्गानि कूर्म्मवत्॥३९॥
 न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हृषिया कृष्णवर्त्मनो भूय एवाभिवर्द्धते॥४०॥
 यत्पृथिव्यां श्रोहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नाल्मेकस्य तत्सर्व्वमिति वृत्त्वा न मुह्यति॥४१॥

ययाति बोला—दुर्वृद्धे ! मेरा अनादर करने का न ऐसा आश्रम था धर्म है, जिसका तुम आचरण करोगे ?
 ‘क्योंकि मैं तुम्हारा गुरु हूँ॥३०॥ विप्रवृन्द ! ऐसा बहुराज्यी राजा ने यदु को शाप दिया—“मूर्ख ! तेरी प्रजा
 राज्यहीन होगी, इसमें कोई संदेह नहीं॥३१॥ द्विजवर ! राजा ने इसी प्रकार द्रुह्य, तुर्व्वसु और अनु से भी कहा और उन
 लोगों ने भी शपथ अस्वीकार कर दिया॥३२॥ द्विजश्रेष्ठ ! अनेक ययाति ने अत्यन्त शोध में आकर उन को भी वही शाप
 दिया। इससे बरे में मैंने सब कुछ धर्माप्य कहा॥३३॥ पुरु से ज्येष्ठ चार पुत्रों को इस तरह शाप देकर राजा ने
 पुरु से भी कहा—‘पुरु ! यदि तुम स्वीकार करोगे तो मैं अपनी बुढ़ाई तुम्हें देकर और तुम्हारी युवावस्था को ग्रहण
 कर पृथिवी-मण्डल का चक्कर लगाऊँ॥३४-३५॥ प्रजापी पुरु ने पिता की बुढ़ाई ले ली। ययाति भी पुरु का रूप
 लेकर पृथ्वी पर बिचरने लगा॥३६॥ बामो का अन्त करने के विचार से राजा ययाति विदवाची के सम चैत्ररथ
 नामक वन में रमण करने लगा॥३७॥ पटु जब बामो के भोग से यह तृप्त नहीं हुआ, तब उसने पुरु से अपनी
 बुढ़ावस्था को लेकर उसकी जवानी लीटा दी॥३८॥ मुनिश्रेष्ठो ! उस समय राजा ययाति ने गाथाएँ गाईं,
 त्रिनारो मुनिकर मनुष्य बामो को उगी प्रकार सन्तुष्ट कर के त्रिज प्रकार कष्टों को अपने अंगों को सब आर से छुट्ट
 देता है॥३९॥ “बामो का उपभोग करने छूटने से बाम नहीं मिलता, बल्कि धीं हालने से आय की तरह वह और भी बढ़
 जाता है॥४०॥ पृथ्वी पर जिनमें अन्न, सात्व, वसु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक आदमी के लिए भी पर्याप्त नहीं
 हैं। शरीर मनुष्य को मोह में नहीं पड़ना चाहिए॥४१॥ त्रिज व्यक्ति का मनवा वाचा-धर्मगा प्राणिमान में

१ ग नराधिप। २ ग पुरुषूर्ध्वजान्। ३ स ०५ पुरु पृष्ठ०। ४ ग ०माणस्तदानीं मुपसो नृपत०।
 ५ ग स पुरो।

यदा भावं न कुर्वते सर्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२॥
 यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मान् बिभ्यति । यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३॥
 यादुस्त्यजा दुर्मतिभिर्यान जीर्यन्ति जीर्यतः । योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजत सुखम् ॥४४॥
 जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः । घनाशा जीविताशा च जीर्यन्तोऽपि न जीर्यन्ति ॥४५॥
 यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नाहन्ति षोडशौ बलम् ॥४६॥
 एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् । कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः ॥४७॥
 भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशः । अनशनं देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८॥
 तस्य धंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः । यय्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥४९॥
 यदोस्तु धंशं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसत्तवृत्तम् । यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्धृष्णिकुलोद्बहः ॥५०॥
 सुख्यः प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमाश्च भवेन्नरः । ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

पाप-नाशना नदी होती, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है । ॥४२॥ जो न किसी से डरता है, न जमी से कोई डरता है, न कुछ चाहता है और न किसी से द्रोह करता है, वही ब्रह्म में लीन होता है ॥४३॥ जो तृष्णा बुद्धिवायों से दुस्त्या-
 ण्य है, बुद्धावस्था के साथ बूढ़ नहीं होती और प्राणों का नाश करने वाला रोग है, उस तृष्णा को त्यागन में मुक्त
 मिलता है ॥४४॥ शरीर के जीर्ण होने पर वेग और दौन जीर्ण हो जाते हैं, पर छन और प्राणा की आशा (शरीर
 के जीर्ण हो जाने पर भी) जीर्ण नहीं होती । ॥४५॥ लक्ष्मि मे जो काम-मुक्त है और जो स्वर्गीय महान् सुख है,
 वे सब सुख तृष्णाक्षयसुख सुख के सोपान हैं हिस्से के बराबर भी नहीं हैं ॥४६॥ इस प्रकार कहकर राजर्षि ययाति
 वन में प्रविष्ट हुए । दीर्घकाल तक उस महान् तपस्या की ॥४७॥ तप के अन्त में पवन के गिरने
 पर निराहार रहकर उसने शरीर को त्याग दिया । उस महायशस्वी राजाने पत्नी छति स्वर्ग को प्राप्त किया ॥४८॥
 मुनिवर ! उसने वन में पाँच राजर्षि-श्रेष्ठ हुए, जिनसे यह सपूर्ण पृथ्वी वैभे ही व्याप्त हुई जैसे सूर्य
 की गिरणों से यह व्याप्त रहती है ॥४९॥ राजाओं से सत्तवृत्त यदु का वन मैं कहूँगा, जहाँ धृष्णि-मुक्त में रामान् नारा-
 यण अवतीर्ण हुए थे ॥५०॥ आप लोग सुनो । द्विजवर ! जो व्यक्ति इस ययाति-चरित का निय श्रवण करेगा,
 वह स्वस्थ, प्रजावान्, आयुष्मान् और कीर्तिमान् होगा ॥५१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अष्टावक्रवर्णन प्रथम में ययाति चरित निरूपण नामक चारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

पुरुवंश-वर्णनम्

ब्राह्मणा ऊचुः

पुरोवंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। द्रुह्यस्यानोर्यदोदचैव तुवंतोदच पृथक् पृथक्॥१॥

लोमहर्षण उवाच

धृणुध्वं मुनिशादूलाः पुरोवंशं महात्मनः। विस्तरणानुपुष्ट्या च प्रथमं वदतो मम॥२॥
पुरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य^१ चात्मजः। राजा चाभयदो नाम भनस्योरभवत् सुतः॥३॥
तयंवाभयदस्यासीत् सुधन्वा^२ नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वरतस्य चात्मजः॥४॥
रौद्राश्वस्य दशार्णवः^३ ऋकण्येयुस्तथैव च। कक्षेयुस्थण्डिलेयुश्च स्रुतेयुस्तथैव च॥५॥
ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबलः। धनेयुश्च धनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः॥६॥
भद्रा^४ शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा^५। खलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च॥७॥
तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश। ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे च तासां भर्ता प्रभाकरः॥८॥
भद्रायां^६ जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्। स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम्॥९॥

अध्याय १३

पुरु के वंश का वर्णन

ब्राह्मणों ने कहा—सूतजी। पुरु, द्रुह्य, अनु, यदु और तुवंसु के वंशों को हमलोग तत्त्वपूर्वक पृथक्-पृथक् सुनता चाहते हैं॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिभेष्टो! पहले आप पुरुवंश का प्रथम विस्तृत वर्णन सुनिए, मैं कह रहा हूँ॥२॥
पुरु के सुवीर नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र मनस्यु और मनस्यु का पुत्र अभयद नामक राजा हुआ॥३॥ उसी तरह अभयद का पुत्र सुधन्वा नाम का राजा हुआ। सुधन्वा का पुत्र सुबाहु और उसका पुत्र रौद्राश्व था॥४॥ रौद्राश्व के दशार्णव, ऋकण्येयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, स्रुतेयु, ऋचेयु, जलेयु, महाबली स्थलेयु, धनेयु वनेयु—ये दस पुत्र थे। उसकी बन्ध्याएँ भी दस थी—॥५-६॥ भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलदा, मलदा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला और स्त्रीरत्नकूटा॥७॥ अत्रि-वंश में उत्पन्न प्रभाकर नामक ऋषि इनका पति था॥८॥ भद्रा से यशस्वी सोम की उत्पत्ति हुई। रघु ने जब सूर्य को प्रसन्न किया और सूर्य आकाश से पृथ्वी पर गिराने लगे तब प्रभाकर ने ही अनेकों से युक्त लोक में प्रकाश डाला और

१ रा ननस्पस्त०। २ रा ननस्पस्याम०। ३ रा न्वा च महीपति। सु०। ४ रा दशार्णव। ग. दशार्णव। ५ क न्वापु०। ६ रा सन्ने०। ७ रा महायमा। ८ क ग धनित्यो। ९ क धनेयुश्च। १० ग रुद्रा। ११ रा ० वा। सन्वाकलात०। १२ क शलदा। १३ क रा खरदा। १४ ग रुद्राया।

तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्तिता । स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्वा वै पतमानो दिवाकरः ॥१०॥
 वचनात्तस्य विप्रर्षेण पपात दिवो महोम् । अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यद्वचकार महातपा ॥११॥
 'यज्ञेष्वग्नेर्बलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम् । स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान्' ॥१२॥
 दश पुत्रान् महासत्त्वास्तपस्युप्रे रतास्तथा । ते तु भोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगा ॥१३॥
 स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किञ्च त्रिधनवर्जिताः । कथोयोस्तनयारत्वात्संस्त्रय एव महारथाः ॥१४॥
 सभानरदचाक्षुषश्च परमन्यस्तथैव च । सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५॥
 कालानलस्य धर्मजः सृञ्जयो नाम वै सुत । सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६॥
 जनमेजयो मुनिश्रेष्ठा पुरञ्जयसुतोऽभवत् । जनमेजयस्य राज्यमैहाशालोऽभवत् सुत ॥१७॥
 देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशो भुवि । महामना नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः ॥१८॥
 जने घोरः सुरगणैः पूजितः सुमहामना । महामनास्तु पुत्रो द्वौ जनयामास भो द्विजाः ॥१९॥
 उशीनरञ्च धर्मजं तिसृष्वञ्च महाबलम् । उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राज्यिवंशजाः ॥२०॥
 नृगा कृमिनंवा दर्व्या पञ्चमी च दृपद्वती । उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु क्लोदृष्टाः ॥२१॥
 तपसा च य महता जाता वृद्धस्य चात्मजा । नृगायास्तु नृग पुत्रः कृम्याः कृमिरजायत ॥२२॥
 नवायास्तु नवः पुत्रो दर्व्यायाः सुप्रतोऽभवत् । दृपद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिबिरीशीनरी नृपः ॥२३॥

सूर्य से कहा—“तुम्हारा कल्याण हो” ॥१-१०॥ उस विप्रर्षि के वचन से सूर्य पृथ्वी पर नहीं गिरे । उसी तपस्वी ने अग्नि के आश्रय नाम से विख्यात गोशो को कहाया और यज्ञो मे देवताओं के साथ अग्नि को भाग दिल्वाया ॥११॥ उसने उन कन्याओं से महासत्त्वशाली और तपस्या मे निरत दश पुत्रों को उत्पन्न किया । वे पुत्र वेदपारंगत, स्वस्त्यात्रेय नाम से विख्यात, तीन प्रकार के धर्मो से वर्जित और गोत्रवर्षक हुए ॥१२-१३॥ कथों के तीन ही महारथी पुत्र थे—सभानर चाक्षुष और परमन्यु । सभानर का पुत्र कालानल विद्वान् तथा राजा था ॥१४-१५॥ कालानल का सृञ्जय नामक पुत्र धर्मज था । सृञ्जय का पुत्र पुरञ्जय वीर राजा हुआ ॥१६॥ मुनिवर । पुरञ्जय के जनमेजय नामक पुत्र हुआ । राजर्षि जनमेजय के महाशाल नामक पुत्र हुआ ॥१७॥ वह देवताओं मे विख्यात और सत्कार मे महायशस्वी हुआ । महाशाल के महामना नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो देवताओं से पूजित तथा महावीर था ॥१८॥ विप्रवृन्द । महामना ने दो पुत्र उत्पन्न किये—धर्मज उशीनर और महाबली तिसृषु । उशीनर की राजर्षि-वश मे समुत्पन्न पाँच पत्नियाँ थी— ॥१९-२०॥ नृगा कृमि, नवा, दर्व्या और दृपद्वती । उशीनर ने उनसे वश को कारण करन वाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२१॥ बड़ी तपस्या करने के बाद वृद्ध उशीनर के ये पाँचो पुत्र उत्पन्न हुए थे । नृगा से नृग कृमि से कृमि, नवा से नव और दर्व्या से सुव्रत उत्पन्न हुए ॥२२॥ दृपद्वती से शिवि नामक औशीनर राजा की उत्पत्ति हुई । शिवि के शिवि नामक और नृग के भोविय

१ क. यज्ञे ह्यग्नेर्षेण च० । २ क. ऋषिजान्त्वकान् । ३ क. ऋषा । पुत्रयो० । ४ क. ऋषाश्चात्मनो वपश्च म० । ५ क. ऋषिजान् । ६ क. जनमेज० । ७ क. मना सुतो जने म० । ८ क. स धार्मिक । ९ क. दर्व्या । १० क. कृम्या । ११ क. दर्व्याया

शिवेस्तु शिवयो विप्रा योधेयास्तु नृगस्य ह। नवस्य 'नवराष्ट्रन्तु' कृमेस्तु 'कृमिला पुरी' ॥२२॥
 सुप्रतस्य 'तथाम्बष्टा' शिविपुत्रान्निबोधत। शिवेस्तु शिवय' पुत्रादचत्वारो लोकविश्रुता ॥२५॥
 वृषदर्भ' सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा। तेषां जनपदा स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६॥
 वृषदर्भा 'सुवीराश्च' तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा । नितिक्षुरभवद्राजा पूर्व्वस्यां विंश भो द्विजा ॥२७॥
 उषद्रयो महावीर्य' फेनस्तस्य सुतोऽभवत् । फेनस्य' सुतया जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८॥
 जातो मानुषयोनी तु स राजा काञ्चनेपुधि' । महायोगी स तु बल्विर्भूव नृपतिः पुरा ॥२९॥
 पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि। अङ्ग प्रथमतो जज्ञे बङ्गः सुहस्तयेव च ॥३०॥
 पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेय' । क्षत्रमुच्यते। बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा ॥ भुवि ॥३१॥
 बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वर' प्रीतेन भो द्विजा । महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणत ॥३२॥
 'बले' चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वायदर्शनम् । संप्राप्ते चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानताम् ॥३३॥
 त्रेलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं ॥ प्रसवे तथा । चतुरो नियतान् वर्णास्त्वञ्च स्थानप्राप्तेति च ॥३४॥
 इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ । कालेन महता विप्राः ॥ स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५॥

नामक पुत्र उत्पन्न हुए। नव का राष्ट्र नव नामक था और कृमि की राजधानी कृमिला पुरी नाम से
 विख्यात थी ॥२२-२४॥ सुप्रत के अम्बष्ट नाम से ख्यात पुत्र हुए। अब शिवि के पुत्रों के नाम सुनिये।
 शिवि के शिवि सभा वाले चार पुत्र लोक में प्रसिद्ध हैं ॥२५॥ जिनका नाम वृषदर्भ, सुवीर, केकय और
 मद्रक है। उनके धन पाय-मपत्र देस केकय, मद्रक, वृषदर्भ और सुवीर नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रजायें तितिक्षु
 की हैं ॥२६॥ त्रिप्रवृद्ध । तितिक्षु पुर्व्व दिशा का राजा हुआ। उसका पुत्र महाराजितशाली उपद्रम हुआ। उपद्रम
 के फेन नामक पुत्र हुआ। फेन के सुतपसा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपसा से बलि की उत्पत्ति हुई ॥२७-२८॥
 सुवर्ण का तरङ्गश घारण करने वाला राजा बलि मनुष्य-योनि में उत्पन्न हुआ। वह राजा बलि महायोगी था ॥२९॥
 उग्रने अग, वग गुह्य, पुण्ड्र और बलिग नामक वंश को बढ़ाने वाले पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। यह प्रसिद्ध दानि-
 वंश बालेय नाम से कहा जाता है। बलि के वंश में बालेय नाम से ख्यात ब्राह्मण भी पुत्र हुए ॥३०-३१॥ द्विजगण !
 ब्रह्मा न प्रथम होकर बलि को वरदान दिया—'राजत्'। तुम महायोगी होगे, एक कल्प की तुम्हारी आयु होगी ॥३२॥
 बल भ तुम्हारे समान कोई नहीं होगा, तुम धर्म के तत्त्व को जानने वाले होगे, युद्ध में तुम्हें कोई नहीं पीत दक्षिणा
 धर्म में तुम्हारी प्रधानता रहेगी ॥३३॥ तुम तीनों लोक में दर्शन करोगे। तुम्हारे पुत्रों की ख्याति केनी और
 तुम चारों वर्णों की स्थापना करोगे ॥३४॥ इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर राजा बलि परम शान्ति को प्राप्त हुआ।
 त्रिप्रवृद्ध । चिरकाल के बाद राजा अपने स्थान पर आया ॥३५॥ उसके पुत्रों के देस अग, वग, गुह्य, बलिग और

१ क ०राष्ट्रास्तु ह०। २ क कृमिला। ३ क ०था त्वेष्टा शि०। ४ क वृषदर्भ। ५ क वृषदर्भा।
 ६ क ०था। तैति०। ७ ०मा। तैतिगबोद०॥ ७ क ०यं शास्त्र०। ८ क शालय। ९ क बली। १० ग बालेय।
 ११ क ०गगुह्यवा। द०। १२ क व' चाप्रतिम तस्य तथा धर्मार्थचित्तवत्। १३ क ०यं सर्व्वतत्तवा।
 १४ क विदा वज्रपा०।

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा बङ्गाः ससुहाकाः । कालिङ्गाः पुण्ड्रकादश्च प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम् ॥३६॥
 अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः । दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरयोऽभवत् ॥३७॥
 पुत्रो दिविरयस्यासीच्छत्रसुत्यपराक्रमः । विद्वान् धम्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥३८॥
 तेन धम्मरथेनाथ तदा कालञ्जरे गिरौ । यजता सह श्रेणे सोमः पीतो महात्मना ॥३९॥
 अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् । लोमपादः इति ह्यातो यस्य शान्ता सुतमभवत् ॥४०॥
 तस्य दाशरथिर्वारश्चतुरङ्गो महायशः । ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वशविवर्द्धन ॥४१॥
 चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः । पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशः ॥४२॥
 चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्ग्यभवत् पुरा । पूर्णभद्रप्रसादेन हृष्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥४३॥
 ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारण शक्रवारणम् । अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥४४॥
 हृष्यङ्गस्य सुतस्तत्र राजा भद्ररथः स्मृतः । पुत्रो भद्ररथस्यासीदबृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥४५॥
 बृहद्वर्मः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मना । बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ॥४६॥
 नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्बृहदथो नृपः । आसीद्बृहदथस्यापि विद्वज्जिजनमेजयो ॥४७॥
 दायादस्तस्य धेकर्णो विकर्णस्तस्य चात्मजः । तस्य पुत्रश्च त्यासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम् ॥४८॥
 एतेऽङ्गवशजा सव्ये राजानः कीर्तिता मया । सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥४९॥

पुण्ड्रक नाम से विख्यात है। अब अग की सतान का वर्णन सुनिये ॥३६॥ अग का पुत्र महान् राजा दधिवाहन था। दधिवाहन का पुत्र राजा दिविरय हुआ ॥३७॥ दिविरय का पुत्र इन्द्र व सुत्य पराक्रमी था। उक्तका पुत्र विद्वान् धम्मरथ था। धम्मरथ का पुत्र चित्ररथ था ॥३८॥ कालञ्जर नामक पहाड़ पर इन्द्र ने छाया यज्ञ करत हुए धम्मरथ ने सोम (अमृत) का पान किया ॥३९॥ चित्ररथ का पुत्र दशरथ हुआ, जिसकी ह्याति लोमपाद नाम से थी, और जिसने शान्ता नामक कन्या हुई ॥४०॥ ऋष्यशृङ्ग मुनि की कृपा से दशरथ के चतुरग नामक महायशस्वी और वश-वर्धक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ चतुरग व पृथुलाक्ष नामक पुत्र हुआ। पृथुलाक्ष का पुत्र महायशस्वी चम्प हुआ ॥४२॥ चम्प ने मालिमी पुरी का नाम चम्पा रख दिया। पूर्णभद्र मुनि की कृपा से चम्प के हृष्यङ्ग नामक पुत्र हुआ ॥४३॥ उसी के समय वैभाण्डकि (ऋष्यशृङ्ग मुनि) ने मन्त्रों के बल से इन्द्र के ऐरावत नामक हाथी को पृथ्वी पर उतारा था ॥४४॥ हृष्यङ्ग का पुत्र राजा भद्ररथ हुआ। भद्ररथ का पुत्र प्रजापति का स्वामी बृहत्कर्मा था ॥४५॥ बृहत्कर्मा का पुत्र बृहद्वर्म और उसका पुत्र बृहन्मना था। राजेन्द्र बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिसने बृहत्थ नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥४६॥ बृहत्थ के पुत्र विद्वज्जिन् का नाम सुनस्तर रोग करिये से। उसका पुत्र वैकर्ण और वैकर्ण का पुत्र विकर्ण था। उक्त ही पुत्र थे, जो अग-वश को बहाने वाले हुए ॥४७-४८॥ अग-वश में उत्पन्न सत्यवती, महात्मा, प्रजावान्

ऋचेषोस्तु मुनिश्रेष्ठा रोद्रादवतनयस्य वै। शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राज्ञस्तु भो, द्विजाः॥५०॥
 ऋचेषोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः। मतिनारसुतारत्वास्तरश्चयः पररुधाग्निर्मकाः॥५१॥
 वसुरोधः। प्रतिरथः। सुबाहुश्चैव धार्मिकः। सत्त्वं। वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः। सत्यवादिनः॥५२॥
 इला नाम तु यस्यासीत् षण्या वै मुनिसत्तमाः। ब्रह्मवादिन्यधिरात्री सा तंसुस्तामभ्यगच्छत्॥५३॥
 तंसोः सुतोऽयं राजर्षिर्धम्मनेत्रः प्रतापवान्। ब्रह्मवादी पराश्रान्तस्तस्य भाष्योपदान्वी॥५४॥
 उपदान्वी ततः पुत्राश्चतुरोऽज्जनयच्छुभान्। दुष्यन्तमथ शुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा॥५५॥
 दुष्यन्तस्य तु बायादो भरतो नाम धीर्यवान्। स सत्त्वबन्धनो नाम नापायुतदलो महान्॥५६॥
 चक्रवर्त्तो सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः। शत्रुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः॥५७॥
 भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः। मातृणां तु प्रकोपेण मया। तत्कथितं पुरा॥५८॥
 बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः। अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः प्रभुभिर्विभुः॥५९॥
 पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि। ततोऽयं वितथो नाम 'भरद्वाजासुतोऽभवत्'॥६०॥
 तथोऽयं वितथे जाते भरतस्तु दिवं दयी। वितथं चाभियिच्छाय भरद्वाजो धनं दयी॥६१॥
 स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास दृष्ट्वै वै। सुहोत्रश्च सुहोतारं गर्पं 'गर्पं तप्येव च'॥६२॥

कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् । काशिकञ्च महासत्यं तथा गृत्समतिं नृपम् ॥६३॥
तथा गृत्समतेः पुत्रो ब्राह्मणः क्षत्रिया विशः । काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४॥
बभूव दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिः सुतः । घन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥६५॥
तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः । पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६॥
दिवोदास इति ख्यातः सत्त्वशत्रुप्रणाशनः । दिवोदासस्य पुत्रस्तु धीरो राजा प्रतर्दनः ॥६७॥
प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वत्सो भार्गव एव च । अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् ॥ भुवि ॥६८॥
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महोपतिः । आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥६९॥
भद्रश्रेष्ठस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना । दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥७०॥
अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै । तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः ॥७१॥
वैरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधितस्ततः । अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२॥
पटिं वर्षसहस्राणि पटिं वर्षशतानि च । युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्बहः ॥७३॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः । वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४॥
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृपः । अलर्कस्य तु दायादं क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५॥
क्षेमकस्य तु पुत्रो वै यर्षकेतुस्ततोऽभवत् । यर्षकेतोश्च दायादो विभूर्नाम प्रजेऽवरः ॥७६॥

वे दो पुत्र हुए—सत्यवादी काशिक और राजा गृत्समति ॥६१-६३॥ गृत्समति के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हुए । काशिक के दीर्घतपा नामक पुत्र हुआ ॥६४॥ दीर्घतपा के विद्वान् घन्वन्तरि पुत्र हुआ । घन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६५॥ केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ । भीमरथ का पुत्र काशीपुरी का स्वामी हुआ, जो दिवोदास नाम से प्रख्यात और सब शत्रुओं का विनाशक था ॥६६॥ दिवोदास का पुत्र राजा प्रतर्दन था । प्रतर्दन के दो पुत्र थे—वत्स और भार्गव ॥६७॥ वत्स का पुत्र अलर्क बहुत बुद्धिमान् राजा हुआ । राजा (दिवोदास) ने हैहय की पैतृक-संपत्ति छीन ली ॥६८॥ भद्रश्रेष्ठ के दुर्दम नाम से ख्यात पुत्र ने, जिसको दिवोदास ने बालक जानकर दयावश छोड़ दिया था, दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये अपने पितृ घन पर फिर अविचार कर लिया ॥६९-७०॥ भीमरथ के पुत्र का नाम अष्टारथ भी था । उसके पुत्र प्रतर्दन ने शत्रु का नाश करते हुए फिर अपना पैतृक-वन प्राप्त कर लिया ॥७१॥ काशिराज अलर्क, जो ब्रह्मवादी तथा सत्यवादी था, छलछद्म हजार वर्ष तक युवक ही बना रहा ॥७२-७३॥ लोपामुद्रा की कृपा से उसने परमायु प्राप्त की थी । मुनिवर ! आयु के अन्तिम भाग में प्रतर्दन ने क्षेमक नामक राजसूय को मारकर रमणीय काशीपुरी को फिर से बसाया ॥७४॥ अलर्क का पुत्र क्षेमक नामक राजा हुआ । क्षेमक का पुत्र यर्षकेतु हुआ । यर्षकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजापति

१ क काशिक । २ क मृगमति । ३ क मृगमे । ४ क काशिकस्य । ५ अय क स । ६ ख्यातो योगदुष्टनिर्हण । दि० । ७ ख अंक्षात्र० । ८ ख पुत्रोऽमूदीरो । ९ क. ०स्तु सत्यवादी प्र० । १० स वसो । ११ ख ०मानपि । हे० । १२ क स दायादो । १३ ग ०य श्रुत० । १४ क ०वाप्तवान् । व० । १५ क पुत्र । १६ क. तु दायादो व० । १७ क. ०गुर्महीपतिः व० ।

आनतस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्ततोऽभवत् । सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथ ॥७७॥
 सुतोऽभवत् महातेजा राजा परमधार्मिक । वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु^१ भार्गवात् ॥७८॥
 एते त्वङ्गिरस पुत्रा जाता वशेऽय भार्गवे । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च मुनिसत्तमा ॥७९॥
 आजमीढोऽपरो वश श्रूयता द्विजसत्तमा । सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहत्स्तनयाश्चर्य^२ ॥८०॥
 अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् । अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो^३ वै यशसाश्रिता ॥८१॥
 नीली^४ च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना । अजमीढस्य^५ केशिया जने जह्नु प्रतापवान् ॥८२॥
 आजह्ने यो महासन्न श्वमेधमख विभुम् । पतिलोभेन य गङ्गा विनीतेव ससार ह ॥८३॥
 नेच्छत प्लावकामास तस्य गङ्गा च तत्सद । ततया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समतत ॥८४॥
 जह्नुष्यवबोधगङ्गा क्रुद्धो विप्रास्तदा नृप । एष ते निषु लोकेषु सक्षिप्याप पिबाम्यहम् ॥८५॥
 अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि । तत पीता महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गा महपय ॥८६॥
 उपनिष्य महाभागा दुहितृत्वन जाह्नवीम् । युवनायस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरायहत ॥८७॥
 गङ्गाशापेन वेहाढं^६ यस्या पद्मान्नदीकृतम् । जह्नुस्तु दपित पुत्रो अजको नाम वीर्यवान् ॥
 अजकस्य तु वापादो चलाकाश्वो महोपति ॥८८॥
 भूभूव मृगयागोल^७ कुशिकस्तस्य चात्मज । पल्लवं सह सवृद्धो राजा यनचरं सह ॥८९॥

हुआ ॥७५, ७६॥ विभु वा पुत्र आनत अर उसका पुत्र सुकुमार हुआ । सुकुमार वा पुत्र महारथी महातजस्वी अर परमधर्मी राजा सत्यकेतु हुआ ॥७७॥ वत्सभूमि से वत्स अर भागव स भगभूमि उत्पन्न हुआ ॥७८॥ मुनिश्रेष्ठो । भागव-वत्स म य सब अगिरा के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वय और शूद्र हुए ॥७९॥ द्विजश्रेष्ठो । अब आजमीढ नामक दूसरे का के विषय मे आप लोग सुनिये । सुहोत्र क यहत नामक पुत्र हुआ । बहत् क तीन पुत्र थे—अजमीढ द्विमीढ अर क्षत्रिसम्पन्न पुरुमीढ ॥८०॥ अजमीढ की तीन यशस्विनी एव सुदरी पत्नियाँ थी—नीला केशिनी और धूमिनी ॥८१॥ केशिनी से प्रतापी जह्नु उत्पन्न हुआ जिसने सबसभ नामक मन्त्र्यन किया अर जिसने पाश पति के लोभ से (अर्पित स्वामी बनाने के लिए) गंगा मानो विनीत होकर गई य ॥८२, ८३॥ गंगा का पत्नी रूप में स्वीकार करने पर गंगा ने जह्नु के यन-स्थल को डुबो दिया । विप्रवृत् । चार। तएष न यज्ञ-स्थल को जलमग्न देखकर अ न गंगा से कहा—अमी मैं तीना लोको मे तरे जा के वम करने पी जाता हूँ । गये । तू अपने इस वम का तत्कार फल पाये । तदुपरांत महामा महोपिया न पिपी हुई गंगा को देखकर उसने जह्नु की पुत्री बना दिया । जह्नु ने युवनाय की पुत्रा कावेरी से विवाह किया जिसका आधा शरीर गंगा क आप से तनी बन गया था । जह्नु क अजक नामक शक्ति मय पुत्र हुआ । अजक का पुत्र राजा चलाकाश्व गिरार मोहन म आसक्त था । उसका पुत्र राजा कुशिक हुआ जो पल्लव गणत वनचरा क साथ पाल-योग गया था ॥८४, ८५॥ कुशिक न द्रव क समान पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करने के

१ क ०स्तु प्यवनो नाम भार्गव । ए० । २ क ०यामत । अ० । ३ क ०श्री रूपगणाश्रितः ।
 ४ क नीलिनी के० । ५ क ०यस्य पत्नस्तु जह्नुः प्र० । ६ ग ०मेव महारथ । प० । ७ य तस्य । ८ क ०हापादाय प० । ९ क ०हृता । ज० । १० क निपात ।

कुशिकस्तु तपस्तेपे' पुत्रमिन्द्रसमं विभुम् । लभेयमिति तं-शक्रस्त्रासादभ्यस्य जज्ञिवान् ॥९०॥
 स गाधिरभवद्वाजा मघवा कौशिकः स्वयम् । विश्वामित्रस्तु गाधयो' विश्वामित्रात्थाष्टकः ॥९१॥
 अष्टकस्य' सुतो लोहिः प्रोक्तो ज गणो मया' । आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां मुनिसत्तमाः ॥९२॥
 अजमीढात् नौल्यां' धं सृशान्तिरुदपद्यत । पुरुजातिः' सृशान्तिश्च बाह्याश्च' पुरुजातितः ॥९३॥
 बाह्याश्च तनयाः 'पञ्च स्फीता जनपदावृताः । मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिपुस्तया ॥९४॥
 यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्च पञ्चमः । पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ॥९५॥
 पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः । अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥९६॥
 मुद्गलस्य तु दायावो मोद्गल्यः सुमहायशाः । इन्द्रसेना यतो गर्भं ब्रध्नश्च प्रत्यपद्यत ॥९७॥
 आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः । सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥९८॥
 सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः । सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥९९॥
 अजमीढसुतो जातः क्षीणे वशे तु सोमकः । सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ॥१००॥
 तेषां यवीयान् पृथतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः । आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मास्तु सोमकाः ॥१०१॥
 महिषो त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रपृथ्विनी । पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥१०२॥
 सा च पुनायिनी देवी व्रतचव्यंसमन्विता । ततो वर्षायुतं तत्पदा तपः परमबुधचरम् ॥१०३॥

लिए तपस्या की। इन्द्र हर वर स्वयं उसका पुत्र बन गये और गाधि नाम से प्रख्यात हुए। गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। विश्वामित्र के अष्टक नामक पुत्र हुआ ॥९०-९१॥ अष्टक का पुत्र लोहि नाम से ख्यात हुआ। मुनिश्रेष्ठो' मैंने अह्नु-गण को वतला दिया। अब अजमीढ का वंश-वर्णन मुनिये ॥९२॥ अजमीढ से नीली में सुरान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुरान्ति से पुरुजाति और पुरुजाति से बाह्याश्च की उत्पत्ति हुई ॥९३॥ बाह्याश्च के पाँच पुत्र हुए—मुद्गल, सृञ्जय राजा बृहदिपु, पराक्रमी यवीनर और पाँचवाँ कृमिलाश्च ॥९४॥ ये पाँचो देशों की रक्षा करने में समर्थ थे। उन पाँचों के पञ्चाल देश जनपदों से आवृत तथा समृद्ध थे। उनकी रक्षा करने में समर्थ होने के कारण वे देश पञ्चाल नाम से प्रसिद्ध हुए ॥९५-९६॥ मुद्गल का पुत्र महायशस्वी मोद्गल्य हुआ, जिससे इन्द्रसेना में ब्रध्नश्च नामक पुत्र की उत्पत्ति किया (?) ॥९७॥ महात्मा सृञ्जय का पुत्र पञ्चजन हुआ। पञ्चजन का पुत्र राजा सोमदत्त और उसका पुत्र महायशस्वी सहदेव हुआ ॥९८॥ सहदेव का पुत्र सोमक नाम से प्रख्यात हुआ। वंश के क्षीण होने पर अजमीढ के सोमक नामक पुत्र हुआ ॥९९॥ सोमक के जन्तु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके सौ पुत्र थे ॥१००-१०१॥ उनमें युष्क पृथत के द्रुपद नामक पुत्र हुआ। ये सब महात्मा सोमक के पुत्र अजमीढ-वंश के कहलाये ॥१०१॥ मुनिवर' अजमीढ की धूमिनी नामक पत्नी पतिव्रता, कुलीना और महाभाग्यात्मिनी थी ॥१०२॥ पुत्र की आकांक्षा से धूमिनी ने व्रत-विषमादि से समन्वित होकर दस हजार वर्षों तक उग्र तपस्या की ॥१०३॥ वह

१ क ०पे रम्पमिन्द्रपद प्रमु। ल०। २ क यो राजा विश्वरथस्तथा। ३ ख अलकंस्य। ४ ख ग ०या। अज०। ५ क ख नीलिन्या मु०। ६ क ०जानिमु०। ख ०जातिमुशान्ते च बा०। ७ क बाह्याश्च। ८ ख ०ह्याश्च पुरुजातिजा। बाह्याश्च तनया पञ्च बभूवुरमरोमा। म०। ९ क बाह्यस्य त०। १० क ०ञ्च बभूवुरमरोमा। म०।

हृत्वानिं विधिवत्सा तु पवित्रामितभोजना । अग्निहोत्रकुशोदेव सुध्वाप मुनिसत्तमाः ॥१०४॥
 धूमिन्या स तथा देव्या त्वजमोढः समोयिवान् । ऋक्षं सञ्जनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम् ॥१०५॥
 ऋक्षात् संवरणो जने कुरुः संवरणात्तया । यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥१०६॥
 पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेधितम् । तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाय कौरवाः ॥१०७॥
 कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा । परीक्षितश्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥१०८॥
 परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः । श्रुतसनोऽप्ससेनश्च भीमसेनश्च नामतः ॥१०९॥
 एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः । जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो मतिमांस्तथा ॥११०॥
 सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जने विदूरथः । विदूरथस्य दापाद ऋक्ष एव महारथः ॥१११॥
 द्वितीयस्तु भरद्वाजाप्राप्ता तेनेव विश्रुतः । द्वावृक्षौ सोमवंशोऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ ॥११२॥
 भीमसेनास्त्रयो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयो । ऋक्षश्च तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥११३॥
 प्रतीपो भीमसेनात् प्रतीपस्य तु शान्तनुः । देवापिर्बाहिलकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥११४॥
 शान्तनोस्त्वभवद्भीष्मस्तस्मिन् वंशो द्विजोत्तमाः । बाह्लिकस्य तु राजर्षेर्वंश श्रुत भो द्विजाः ॥११५॥
 बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशः । जशिरं सोमदत्तात् भूरिभूरिश्च शलः ॥११६॥
 उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनि । च्यवनपुत्र कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥११७॥

अग्नि म हवन करती, पवित्रता से रहती परिमित भोजन करती और अग्निहोत्र के कुशो पर ही सीती थीं । एक समय राजा न धूमिनी से सगम किया, जिससे सुन्दर धूमवर्ण वाला ऋक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१०४ १०५॥ राजा के संवरण नामक पुत्र हुआ और संवरण से कुरु की उत्पत्ति हुई । कुरु ने प्रयाग से जाकर पवित्र, सुन्दर तथा धर्मिणी व्यक्तियों से श्रुतेवित कुरुक्षेत्र का निर्माण किया ॥१०६॥ उसने महान् बल म उत्पन्न लीन और व नाम से विख्यात हुए ॥१०७॥ कुरु के चार पुत्र थे—सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित और अरिमेजय ॥१०८॥ परीक्षित का धर्मिणी पुत्र जनमेजय था, श्रुतु श्रुतसेन अप्ससेन और भीमसेन भी (उनके) पुत्र थे ॥१०९॥ ये सब बड़े महारथी, यवान् तथा पराक्रमी थे । जनमेजय का पुत्र बुद्धिमान् सुरथ था ॥११०॥ सुरथ के विदूरथ नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ । विदूरथ के महारथी पुत्र का नाम ऋक्ष था ॥१११॥ ऋक्ष नाम से ही प्रशिद्ध द्रुपद वर्णात्त महाकाय से उत्पन्न हुआ था । सोमवन् म दा ऋक्ष और दो परीक्षित उत्पन्न हुए थे ॥११२॥ तीन भीमसेन और दो जनमेजय भी हुए थे । द्वितीय ऋक्ष के भीमसेन नामक पुत्र हुआ ॥११३॥ भीमसेन से प्रतीप और प्रतीप से शान्तनु दगापि और बाह्लिक— ये तीन ही महारथी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११४॥ विप्रवर । उग्र वध म शान्तनु से भीष्म उत्पन्न हुआ । द्विजगण । अब राजा बाह्लिक का वध-यजन सुनिय ॥११५॥ बाह्लिक का पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हुआ । सोमदत्त से भूरि भूरिश्च और शल भी उत्पत्ति हुई ॥११६॥ मुनि देवर्षि देवताओं का उपाध्याय हुआ ।

१ क ०विप्रः ५० । २ क ०विप्रः ० । ३ ग सुदर्शन । ४ क ग ०तन । ५ । ५ क परीक्षितो । ग परीक्षितः । ६ ग जन्मजः । ७ ग पुत्रो बभूवुरः । ग पुत्रो तु मुः । ८ ग धनः । ९ ग ग मरुतः । १० क ग ०यत्नः ३३३३ नाम्ना । ११ क ०मिन्विष्यामी द्विजगताः । भीः । १२ क ग पात । १३ क ०नर्वागीनामः । १४ ग ०नु हविर्भूरिः । १५ ग ०वन पुत्रः । १६ ग इन्द्रजित् ३३३३ महामनि । दाः ।

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कीरवाणां धुरन्धरः। शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११८॥
 गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः। स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥११९॥
 काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भो द्विजाः। शान्तनोर्द्वयितं पुत्रं धर्मात्मानमकल्मषम् ॥१२०॥
 कृष्णद्वैपायनाच्चैव शत्रे वैचित्रवीर्यके। धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजो जनतु ॥१२१॥
 धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्या पुत्रानुत्पादयच्छतम्। तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सत्त्वैवामपि स प्रभुः ॥१२२॥
 पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौमद्रस्तस्य चात्मजः। अभिमन्योः परोक्षितुः पिता पारोक्षितस्य ह ॥१२३॥
 पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्भववतुः। चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ॥१२४॥
 चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। जानमेजयमित्येवं क्षानः भुवि परिश्रुतम् ॥१२५॥
 तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वाराणसाह्वये। सत्यकर्णो महाबाहुर्द्वयं वा विपुलदक्षिणः ॥१२६॥
 सत्यकर्णस्य दायाद इवेतर्कः प्रतापवान्। अपुनः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥१२७॥
 तस्माद्भगता गर्भं यादवो प्रत्यपद्यत। सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ग्राहमालिनी ॥१२८॥
 सम्भूते स च गर्भे च इवेतर्कः प्रजेदवरः। अन्वगच्छत् वृतं पूर्वं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥१२९॥
 सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च लिली पृच्छतोऽन्वगात्। सुचारोर्दुहिता साध्वी धने राजीवलोचना ॥१३०॥
 पयि सा सुपुत्रे बाला सुकुमार कुमारकम्। तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत् ॥१३१॥

अथ यन् मुनि के कृतक नामक पुत्र के साथ इसकी मित्रता थी ॥११७॥ कीरवा ने राजा शान्तनु बड़ा प्रतापी हुआ।
 उसने त्रैलोक्य में प्रख्यात वंश का वर्णन मैं कहूँगा ॥११८॥ उसने देवव्रत नामक पुत्र को गंगा में उत्पन्न किया।
 देवव्रत पाण्डवों का पितामह भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥११९॥ द्विजगण। काली न धर्मात्मा, निष्पाप तथा
 प्रियपुत्र विचित्रवीर्य को शान्तनु से उत्पन्न किया ॥१२०॥ वेदव्यास न विचित्रवीर्य की पत्नी में धृतराष्ट्र पाण्डु और
 विदुर को उत्पन्न किया ॥१२१॥ धृतराष्ट्र ने गान्धारी में से पुत्र उत्पन्न किये। उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था ॥१२२॥
 पाण्डु का पुत्र धनञ्जय (अर्जुन) हुआ और उसका पुत्र साम्ब (अभिमन्यु)। अभिमन्यु का पुत्र परोक्षित और
 परोक्षित का पुत्र पारिक्षित (जनमेजय) हुआ ॥१२३॥ पारिक्षित न काश्या से दो पुत्र उत्पन्न किये—राजा
 चन्द्रापीड और मोक्ष सूर्यापीड ॥१२४॥ चन्द्रापीड के उत्तम धनुर्धारी से पुत्र हुए जिनका जनमेजय नाम से
 प्रसिद्ध क्षत्रियवध सत्वर में प्रचलित हुआ ॥१२५॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ सत्यकर्ण, जो बहुत दक्षिणा देने वाला, यज्ञ
 करने वाला और पराक्रमी था वाराणसी पुरी में वास करता था ॥१२६॥ सत्यकर्ण के इवेतर्क नामक प्रतापी
 पुत्र हुआ। धर्मात्मा सत्यकर्ण पुत्र की अभिलाषा से तपोवन में पत्नी सहित प्रविष्ट हुआ ॥१२७॥ वन में
 यदुवशी, सुचार की मालिनी नामक सुन्दरी कन्या ने उससे गर्भ धारण किया ॥१२८॥ गर्भ प्रकाशित होने पर
 राजा इवेतर्क स्वर्ग की यात्रा करने लगा ॥१२९॥ मालिनी न भी पति का अनुगमन किया। वन में (जाती हुई)
 कमलनयना पतिव्रता मालिनी ने मार्ग में सुकीमल बालक को प्रयत्न किया ॥१३०॥ बालक को वही पर छोड़कर
 वह महामाया मालिनी राजा ने पीछे-पीछे उसी प्रकार चलने लगी जिस प्रकार पतिव्रता द्रौपदी ने अपने पतिव्रतों के

पतिव्रता महाभागा 'द्रौपदीव' पुरा सती। कुमारः सुकुमारोऽसौ गिरिपृष्ठे हरोद ह॥१३२॥
 दयार्थं तस्य मेधास्तु प्रादुरासन्महात्मनः। श्रविष्ठायास्तु पुत्री द्वौ पौष्पलादिच कौशिकः॥१३३॥
 दृष्ट्वा कृपाम्ब्वती गृह्यती प्राक्षात्यतां जले। निघृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलायां दधिरप्लुतौ॥१३४॥
 अजश्यामः स पार्श्वाम्यां घृष्टाम्यां सुसमाहितः। अजश्यामौ तु तत्पाशौ देवेन सम्बभूवतुः॥१३५॥
 अयाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ। स तु रमकशालाया द्विजाम्यामभिर्वाद्धितः॥१३६॥
 रमकस्य तु भार्या तमुद्रहत् पुत्रकारणात्। रमत्या स तु पुनोऽभूद्ब्राह्मणौ सच्चिवौ तु तौ॥१३७॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्सुल्यजीविनः। स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम्॥१३८॥
 श्लोकौर्षि चात्र गौतोऽयं नाहुपेन ययातिना। जरासंक्रमणे पूर्व्वं तदा प्रीतेन धीमता॥१३९॥
 अवन्नाक्रं प्रहा भूमिर्भवेदियमस्तं शयम्। अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन॥१४०॥
 एष वः पौरवो वंशो विलपातः कथितो मया। तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुहोदवानोर्ध्वदोरतथा॥१४१॥
 तुर्व्वसोऽस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोस्तु सुतो राजा ऐशानुरपराजितः॥१४२॥
 करन्धमस्तु ऐशानोर्मण्डस्तस्य चात्मजः। अग्नस्तवाविशितो राजा मरुतः कथितो मया॥१४३॥
 अनस्तोऽभवद्वाजा यज्वा विपुलदक्षिणः। दुहिता संयता नाम तस्यासौत् पयिवीपते॥१४४॥

पीछे-पीछे स्वर्ग का प्रस्थान किया था ॥१३१३॥ वह सुकोमल बालक पर्वत-पृष्ठ पर रोने लगा। उसके उपर दया करने के लिये मेघ वहाँ प्रादुर्भूत हुए ॥१३२३॥ श्रविष्ठा के दो पुत्र थे—पौष्पलादि और कौशिक ॥१३३॥ दोनों व्यक्तिपौ ने सद्य प्रसूत बालक को देखकर दया से प्रवित हो उसे जल से धो डाला। बालक के दोनों पार्श्व शिला पर धिस जाने के कारण शोणित से लय-मय हो गये ॥१३४॥ पार्श्व के धिस जाने पर देव सयोग से पार्श्वसहित उसका शरीर बनने के समान बरछा पड़ गया ॥१३५॥ इसलिए उन दोनों व्यक्तियों ने उसका नाम 'अजपार्श्व' रख दिया। रमक मुनि के आश्रम मे उन दोनों ब्राह्मणों ने उसका पालन-भोषण किया ॥१३६॥ रमक की पत्नी ने अपना पुत्र बनाने के लिए उसे पाला। अतः रमती का वह पुत्र कहलाया और वाना ब्राह्मण उसके मंत्री बने ॥१३७॥ उनके पुत्र और पौत्र भी एक जैसे जीवन धारण करने वाले हुए। यही महात्मा पाण्डव का पौरव वंश है ॥१३८॥ इस वंश के बारे मे दृढावस्था से पूर्व नहुष-मुनि ययाति ने एक गाथा नहीं थी कि "कदाचित् पृथ्वी सूर्य-चन्द्रमा से रहित हो भी सकती है, पर पौरव वंश से रहित नहीं हो सकती" ॥१३९-१४०॥ यह प्रसिद्ध पौरव वंश मैंन कहा, अग्न तुर्व्वगु, दुह्य, अनु और यदु का वंश-वर्णन करेगा ॥१४१॥ तुर्व्वगु का पुत्र वह्नि और उसका पुत्र गोमानु हुआ। गोमानु का पुत्र ऐशानु नामक अजय राजा हुआ ॥१४२॥ ऐशानु का पुत्र करषम और उरणा पुत्र मरुत हुआ। दूरग्रे अविशित के पुत्र राजा मरुत का वंशन पहले ही किया जा चुका है ॥१४३॥ मरुत के सत्तान न थी। उसने बड़े-बड़े यज्ञ किये, बहुत सी दक्षिणा दी। पश्चात् उसने सयना नामक कन्या उत्पन्न हुई जिसे उसने सयनं नामक महात्मा

१ ग ऽपती च पु०। २ स ऽदी च पुरातनी। पु० ३ स कुमार। ४ स गिरिकुम्भे। ५ क ह। पार्श्व-
 तस्तस्य। ६ स ऽप्यन्पादि। ७ क ख स। ८ क दधिरप्लुतौ। ९ ग ऽश्यामस्य पा०। १० क ऽश्याम्या-
 मुमाभ्या।

दक्षिणायं तु सा दत्ता सवर्त्ताय महात्मने । दुष्यन्त पौरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५॥
 एव यथातिशयेन जरासक्रमणे तदा । पौरव सुवर्त्तसोर्वंश प्रविवेश द्विजोत्तमा ॥१४६॥
 दुष्यन्तस्य तु दाय्याद करारोम प्रजेश्वर । 'कहरोमादयाह्नीदिशच्चतवारस्तस्य चात्मजा ॥१४७॥
 पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कालश्चोलश्च पाण्डिव । द्रुह्योश्च तनयो राजन बभ्रुसेतुश्च पाण्डिव ॥१४८॥
 अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुता पतिरुच्यते । यौवनाशयेन समरे कुच्छ्रेण निहतो बली ॥१४९॥
 युद्धं सुमहदप्यासीन्मासान् 'परिचतुर्दश । अङ्गारसेतोर्दायादो गान्धारो नाम पाण्डिव ॥१५०॥
 ख्यायते' यस्य नाम्ना ये गान्धारविषयो महान् । गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिना वरा ॥१५१॥
 अनोस्तु पुत्रो 'धम्मोऽभूदद्युतस्तस्यात्मजोऽभवत्' । घृताद्वनद्रुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥१५२॥
 प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितास्तुर्वसोर्मया । बभूवुस्ते यदो पुत्रा पञ्च देवसुतोपमा ॥१५३॥
 सहस्राव पयोदश च श्रोष्टा' नीलोऽञ्जिकस्तथा । सहस्रादस्य दाय्यादाश्चैव परमधार्मिका ॥१५४॥
 हैहयश्च' ह्यश्चैव राजा वेणुहयस्तथा । हैहयस्याभवत् पुत्रो धम्मनेत्र इति श्रुत ॥१५५॥
 धम्मनेत्रस्य कात्तस्तु' साहज्जस्तस्य चात्मज । साहज्जनी नाम पुरी तेन राजा निवेशिता ॥१५६॥
 आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान् । भद्रश्रेण्यस्य दाय्यादो दुर्वमो नाम विश्रुत ॥१५७॥
 दुर्वमस्य सुतो धीमान्कनको नाम नामत । कनकस्य तु दाय्यादाश्चतवारो लोकविश्रुता ॥१५८॥
 कृतवीर्यं' कृताजाश्च कृतघवा' तथैव च । कृताग्निस्तु' चतुर्योऽभूत् कृतवीर्यादियाज्जुन' ॥१५९॥

को दक्षिणा मे दे दिया ॥१४५॥ सयता से दप्यन्त नामक पौरव वशी निष्पाप पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४५॥
 द्विजवर । इस प्रकार वद्विषया मे राजा यथाति के शाप से तुवमु का वंश पौरव वंश मे मिल गया ॥१४६॥
 दप्यन्त का पुत्र कहरोम प्रजाजी का स्वामी हुआ । कहरोम का पुत्र अयाह्याद अर उसके चार पुत्र हुए—
 पाण्ड्य करल वाल अर बोल ॥१४७॥ द्रुह्य का पुत्र राजा बभ्रुसेतु हुआ ॥१४८॥ बभ्रुसेतु व अगारसत नामक पुत्र
 हुआ जो मरुतो का स्वामी कहा गया है अर जिसे युद्ध म यौवनाश्व न बड़ी कठिनाई से मारा था ॥१४९॥ चावह
 मास तक उन दोनों म घमासान युद्ध हुआ था । अगारसेतु का पुत्र गान्धार नामक राजा हुआ जिसके नाम से गान्धार
 देश प्रसिद्ध है ॥१५०॥ गान्धार देश के धोन् अहुत अच्छ होते हैं । अनु का पुत्र धम अर उसका पुत्र दत्त हुआ । दत्त से
 वनद्रुह उत्पन्न हुआ अर उसस प्रचेता ॥१५१॥ प्रचेता के सुचेता नामक पुत्र हुआ । सुचस का वंश वणन मैने
 कर दिया । दद के देव-पुत्र के समान पाँच पुत्र उत्पन्न हुए—॥१५२॥ सहस्राव पयोव श्रोष्टा नील तथा अञ्जिक ।
 सहस्राव के तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय ह्य अर वेणुहय ॥१५३॥ हैहय का पुत्र धमनेत्र हुआ ॥१५४॥
 धमनेत्र का कर्त्त अर उसका साहज्ज । उस राजा न साहज्जनी नामक नगर बसाया ॥१५५॥ महिष्मान् का पुत्र
 मद्रश्रेण्य प्रतापी था । मद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्वम नाम से विख्यात था ॥१५६॥ दुर्वम का विद्वान पुत्र कनक नाम से प्रसिद्ध
 था । कनक के लोक प्रसिद्ध चार पुत्र थे—॥१५७॥ कृतवीर्य कृताजा कृतघवा अर चौथा कृताग्नि ॥१५८॥

१ ग ० हयामा० । २ व ० परिचरदश । ३ ख ख्यातस्तु । ४ ख ० भूदभूत० । ५ ख ० तु । घृता
 चतुर्दश । ६ ख ० श्रोष्टा ५ मिलो ५० । ७ ख ० ह्यश्च हैहयश्चैव । ८ ग ० स्तु कात्तपुत्रास्तथा ५ भवन् । कु० ।
 ९ ख कृतकर्मा । १० क कृताग्निदप्यु० ।

योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् । जिगाय पृथिवीमेको रवेनादित्यवच्चंसा ॥१६०॥
 स हि वर्षायुतं तप्त्वा तप परमदुश्चरम् । दत्तमाराधयामास कात्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥१६१॥
 तस्मै दत्तो वरान प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः । पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥१६२॥
 अयम्वेऽधीयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् । उप्रेण पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुरञ्जनम् ॥१६३॥
 सप्रामाणं सुबहून् जित्वा हृत्वा धारीन् सहस्रशः । सप्रामे वर्तमानस्य वधं चाभ्यधिक्षाद्रेणे ॥१६४॥
 तस्य बाहुसहस्रं तु द्यूयतं किल भा द्विजा । योगादयोगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥१६५॥
 तनेयं पृथिवीं सर्व्वां सप्तद्वीपा सप्ततना । सप्तमुद्रा सनगरा उप्रेण विधिना जिता ॥१६६॥
 तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै । प्राप्तानि विधिना राज्ञा धूयन्ते मुनिसत्तमा ॥१६७॥
 सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठा सहस्रशतदक्षिणा । सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे पाञ्चनवेदय ॥१६८॥
 सर्व्वे देवैर्मुनिश्रेष्ठा विमानस्थैरलङ्कृता । गन्धर्व्वरप्सरोगेभिश्च नित्यमेवापशोभिता ॥१६९॥
 यस्य यज्ञो जगौ गावां गन्धर्व्वान् नारदस्तथा । 'वरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मिता ॥१७०॥

नारद उवाच

न नूनं कात्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिव । यज्ञोदनेस्तपोभिश्च विक्रमेण ध्रुतेन च ॥१७१॥
 स हि सप्तसु द्वीपेषु चर्मो लङ्गो शरासनी । रथो द्वीपाननुचरन् योगी सद्दृश्यते नृभिः ॥१७२॥

कृतवाय स अजून की उत्पत्ति हुई जो हजार मुजाआ व प्रताप से साता द्वीपा का अधः कर बन गया था । उसने
 मय व समान तजस्वा रथ से जयिले मयूष पृथ्वा को जाल लिया ॥१६०॥ अर उसने दश हजार वर्षों तक बटिन
 तपस्या करके अग्नि मुनि व पुत्र दत्त का प्रसन्न किया ॥१६१॥ तत्त न उस चार अयत तजस्वा धरदान दिया ।
 अर्जुन न प्रार्थना का— मुग हजार मुजाएँ हो जाएँ सत्युक्त्य मुझ अयम स वचारें अपन उप कत्तध्य स पृथ्वी को
 जीत कर पचात घम स मैं प्रजाआ का अनुरञ्जन करूँ ॥१६२ १६३॥ अर बहुत स सप्रामा को जीतकर हजारो
 सन्ध्या को मार कर युद्ध म अपन स अतिर दलगाटा पुरष व हाथ स भरूँ ॥१६४॥ द्विजपुत्र । जिस प्रकार
 याग माया व वज्र स योगीश्वर का चमकृत गति हो जाती है उस प्रकार युद्ध करने समय उसने हजार मुजाएँ
 प्रकट हो जाता था ॥१६५॥ एग मुना जाता है कि उसने अपन उप कत्तध्य स माना द्वीप पवन मयूष अर नगर सन्नि
 इम पृथ्वी को जाल लिया अर गन्ता द्वीप म सान स यज्ञ किया ॥१६६ १६७॥ उगन एक-एक सप्त दक्षिणा दी
 था । सप्त यज्ञा म मुनि व यज्ञसम्भ अर मुनि वी हो वनी यन्त्राई गई था ॥१६८॥ अलङ्कृत विक्रान्त पर रिपय
 स्रमा दवना गन्धर्व्व अर अप्सराय यज्ञसम्भ का मुगोभित करने थी ॥१६९॥ अजून व यज्ञ म गन्धर्व्व अर वरदाय
 के पुत्र विद्वान् नारद न उमरी मन्त्रिया स विस्मित होकर माया मार ॥१७०॥

नारद ने कहा— यज्ञ दान तप पण्यम और साधन ज्ञान म कृतवाय व पुत्र (अजून) की गति को कोई राजा
 नहीं प्राप्त कर सकता है ॥१७१॥ बाल तजस्वा यन्त्र वी पाटा कर आर रथ म रिपय हो द्वीपद्वीपान्तर म

१ ग ङीगापिमा ५ म० । २ ग ङता स्वयमेवानु० । ३ ग ङल भारत । यो० । ४ रा वरणा० ।
 ५ रा मिर्वा वि० ।

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विग्रमः। प्रभावेण मया राज्ञः प्रजा धर्म्मणे 'रक्षत ॥१७३॥
 'स सर्वरत्नभाक्' सग्राह्य चक्रवर्ती बभूव ह। स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च ॥१७४॥
 स एव बुद्ध्या पर्जन्यो योगित्वादज्जुनोऽभवत्। स धै बाहुसहस्रेण ज्याघातपठिनत्वचा ॥१७५॥
 भाति रश्मिसहस्रेण शरदोव च भास्वरः। स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्या महाश्रुति ॥१७६॥
 'रुक्मिण्यस्तुनात् जित्वा पुण्यां तस्या न्यवेद्यात्। स वै वेग समुद्रस्य प्राघृष्टकालेऽम्बुजेक्षण ॥१७७॥
 क्रीडन्निव भुजोर्ध्वं प्रतिस्तोतश्चकार ह। लुण्ठिता क्रीडता तेन' नदी तदग्राममालिनी' ॥१७८॥
 चन्द्रार्मिसहस्रेण 'शङ्खिताभ्येति नमन्दा। तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ ॥१७९॥
 मयान्निलीना निश्चेष्टा पातालस्या महासुरा। चूर्णाकृतमहावीचि' चलन्मीनमहातिमिम् ॥१८०॥
 'भास्वताविद्वफेनोद्यमावर्तक्षोभसङ्कुलम्'। प्रावर्तयत्तदा राजा सहस्रेण' च बाहुना ॥१८१॥
 देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिव मन्दर'। मन्दरक्षोभचकित'। अमृतोत्पादशङ्खिता ॥१८२॥
 सहस्रोत्पतिना भीता भीम इष्ट्वा नृपोत्तमम्। नता निश्चलमूर्धनो बभूवुस्ते महोरगा ॥१८३॥
 सायाह्ने कवलीखण्डा कम्पिता इव वायुना। स वै ब्रध्वा धनुर्गर्भाभिरुत्सवत पञ्चभि शरैः ॥१८४॥

विचरण करता हुआ वह यात्री अर्जुन साताहोपी मनुष्यो से देखा जाता है ॥१७२॥ प्रजाआ का धमपुत्र पालन कर रहा है महाराज अर्जुन का द्रव्य-क्षय बचाने नहीं होता थाकि अर धर्म भी नहीं होता ॥१७३॥ उसने पात सब प्रकार के रत्न थे। वह चक्रवर्ती राजा था। वह पशुपाल अर क्षेत्रपाल भी था ॥१७४॥ योग के प्रताप से वही मेघ रूप होकर वर्षा भी करता था। वही शरद ऋतु म सुष की सहस्र किरणों के समान धनुष व आघात से कठिन त्वचा वाली हजार मुक्तियों स सुशोभित था ॥१७५॥ उसी न कर्कोटक के पुत्रों को जीतकर माहिष्मती परी मे मनुष्यों व बीच नागों को बसाया अर वर्षाकाल में समुद्र के वेग म शीला करत हुए अपनी मुजाओं से समुद्र के बहुत-से सोत बना दिये ॥१७६ १७७॥ उसी की क्रीडा के समय नमदा नदी जिसमें हजारों तरंग उठ रहें थी शक्ति होकर सम्मुख आयी ॥१७८॥ जब उसने हजार बाहुआ से समुद्र को क्षोभित किया तब पातालवासी महाराज मय से निश्चेष्ट होकर छिप गये ॥१७९॥ पूव काल में जैसे देवता अर असुरा न मदराचल स समुद्र का मथन किया था उसी प्रकार उस राजा न हजार मुजाओं स समुद्र मथन किया। समुद्र की महातरंग चूर-चूर कर दी गई मच्छ और महामच्छ कौन लगे, पवन के वेग से नगा का समूह उत्पन्न हो गया, आका (मंदर) फैल लगे ॥१८०-१८१॥ मदराचल के सचालन से बकित आर अमृत की उत्पत्ति से शक्ति ये समुद्रवासी महासर्प हठात् उठकर बारा और निहारने लगे। उस मयानक राज-श्रेष्ठ को देखकर डर से उनके सिर निश्चल हो गये आर सायकाल में बायु से कपित केले क पत्त की तरह वे धरयरान लगे ॥१८२ १८३॥ उर्मी राजा न धनुष की धोरी से मुक्त पंच वाणों से सेनासहित लवापति राखण को मोहित कर अपने वश म करके माहिष्मती

१ ग सहत। २ ग रक्षित। ३ क स तु सर्वत्र मोगादयश्चक्रः। ४ ह ऋक्षानाक्षिप्या पुः। ५ ग न फेनवद्विह्वलः। ६ ग नी। वलः। ७ ग ऋक्षिताभ्येः। ८ ग ऋचि वलः। ९ क ऋक्षोद्भिन्नकः। १० ग मनुसहम्। ११ क ऋक्षेण वाः। १२ अर। तत्सक्षोभेणाऽऽ चरितास्ताड्यमनशः। १३ क तास्ताड्यमनशः।

लङ्घेयं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् । निजित्य वशमानीय माहिम्नया बबन्ध तम् ॥ १८५ ॥
 श्रुत्वा तु बद्धं पोलस्त्यं रावणं त्वज्जुनेन च । ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमज्जुनं बद्धो स्वयम् ॥ १८६ ॥
 मुमोच रक्षः पोलस्त्यं पुलस्त्येनाभिधाचितः । यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥ १८७ ॥
 युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव । अहो बत मूढे वीर्यं भागंवस्य यदच्छिन्त ॥ १८८ ॥
 राज्ञी बाहुसहस्रस्य ह्रमं तालवनं यथा । तृपितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥ १८९ ॥
 स भिक्षामदवाद्धीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः । पुराणि ग्रामयोषांश्च विषयांश्चैव सत्त्वशः ॥ १९० ॥
 जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्वदक्षया । स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः ॥ १९१ ॥
 दवाह कातं वीर्यस्तु शलांश्चैव वनानि च । सन्नयमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥ १९२ ॥
 दवाह बलवद्भूतिश्चित्रभानुः सहेह्यः । यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥ १९३ ॥
 वशिष्ठं नाम स मुनिः ह्यात आपव इत्युत । तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छतवानज्जुनं विभुः ॥ १९४ ॥
 यस्मान्न यज्जितमिदं वनं ते मम हेह्य । तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥ १९५ ॥
 रामो नाम महाबाहुर्जामदग्नयः प्रतापवान् । छित्त्वा बाहुसहस्रान्ते प्रमथ्य तरसा बली ॥ १९६ ॥
 तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति । स भागवः । अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकपिणः ॥ १९७ ॥
 प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मण रक्षतः । प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुने ॥ १९८ ॥

पुत्री से बाँपा था ॥ १८४-१८५ ॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बाँये गये पुलस्त्य-युध रावण की बान सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये ॥ १८६ ॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसने हजार भुजाओं के घनुष की टकार प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा निजली की बटक के समान होती थी, रावण का मुक्त कर दिया ॥ १८७ ॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परमुराम न शत्राग्रे में उसी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान काट दिया ॥ १८८ ॥ जिसी समय अग्नि ने तुष्णा से मुक्त हो अर्जुन से मित्रा मार्गः । उस वीर ने अग्नि को सातों द्वीप मित्रा म दे दिये ॥ १९३ ॥ तब अग्नि उसके नगर, ग्राम और देवों को सब ओर से जलाने लगे ॥ १९० ॥ उस महारामा पुरोपेन्द्र अर्जुन ने प्रभाव से अग्नि न पर्वतों और वनों को जला डाला । उसी हैट्य (अर्जुन) के साथ होकर अत्यन्त प्रयत्नित अग्नि ने वरुण के पुत्र के मृत्यु तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला ॥ १९१-१९३ ॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था, वह क्षमिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था ॥ १९३ ॥ उस क्षमिष्ठपुत्र आपव ने क्रोध से अर्जुन को शाप दिया— हैट्य । जिस उद्देग्य से तुमने मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उगे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा ॥ १९४-१९५ ॥ प्रतापी तथा क्षमिष्ठवाली जमदग्नि-युध परमुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर वेग से मथ कर तुमको मारेगा ॥ १९६ ॥ जिस राजा के इच्छा का क्षय नहीं होता था, जो मनुष्य का महार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

१ ग रागण । २ ग तेजस्वी । ३ ए ग यपिष्यति । ४ क तस्य । ५ क ग प्रभावण । ६ क ग.

वरस्तयैव भो विप्राः स्वयमेव दत्तः पुरा । तस्य पुत्रशतं त्वासौत् पञ्च शया महात्मनः ॥१९९॥
 कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः । शूरसेनश्च शूरश्च धृषणो मधुपध्वजः ॥२००॥
 जयध्वजश्च नाम्नासोदाबन्त्यो नृपतिमंहान् । कात्तंवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः ॥२०१॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः । तस्य पुत्रशतं स्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥२०२॥
 तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हंह्यानां महात्मनाम् । वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चाबन्तयः स्मृताः ॥२०३॥
 शोण्डिकेराश्च विरपातास्तालजङ्घास्तथैव च । भरताश्च सुजाताश्च बहुस्वाभान्नकोत्तिताः ॥२०४॥
 वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्मिणः । वृषो वंशपरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥२०५॥
 मधोः पुत्रशतं त्वासौद्वृषणस्तस्य वंशकृत् । वृषणाद्वृषणयः सत्त्वं मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥२०६॥
 यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हंह्याः । न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥२०७॥
 कात्तंवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः । एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥२०८॥
 कीर्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै । भूतानो व मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यावरजङ्गमान् ॥२०९॥
 ध्रुत्वा पञ्च विसर्गास्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः । वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥२१०॥
 लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभानिह लोकिकान् । आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानेश्वर्य्यं भूतिमेव च ॥२११॥

के शाप से हो गई॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द । उसने स्वयं ही ऐसा वरदान पहले मांगा था। उसने साँ पुत्रों में से पांच, ही बली, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, घर्मात्मा, बीर, यक्षबी और महात्मा पुत्र बन गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुघ्वज और जयघ्वज । जयघ्वज अवन्तीपुरी का राजा हुआ॥१९९-२००३॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसंपन्न थे॥२०१॥ जयघ्वज के तालजघ नामक महाबली पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजघ नाम से प्रसिद्ध थे॥२०२॥ मुनिवर । उन महात्मा हैहयो ने वन में वीतिहोत्र, सुजात, भोज; अबन्ति, तौण्डिकेर, तालजघ और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-मय से यहाँ नहीं गिनाये जा सकते हैं॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द । वृष नामक राजा से लेकर यदुवंशी घर्मात्मा हुए। वह वराहर हुआ। उसने मधु नामक पुत्र हुआ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वराहर वृषण हुआ। वृषण के वराजर वृष्णि कहलाये और मधु के माधव॥२०६॥ यदु के वन में उत्पन्न वे हैहय यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-कथा नित्यप्रति पढ़ेगा, सुनेगा, करेगा, उसका वित्ताभास नहीं होगा और नष्ट हुआ भी इत्यनु मिल जायगा॥२०७३॥ द्विजवर । ये पाँचों वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पञ्चमहाभूतो की तरह स्थावर-जगम सहित श्रीलोकाय दीजवर । ये पाँचों वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पञ्चमहाभूतो की तरह स्थावर-जगम सहित श्रीलोकाय को धारण करते हैं॥२०८-२०९॥ इन पाँचों वंशों को मुनकर धर्म-अर्थ गो जानने वाला राजा पाँचों वंशों के अधीन अर्थात् प्रियपात्र तथा बिम्बिताम्न हो जाता है॥२१०॥ द्विजगण । इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य संसार में बुलंद आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विभीतिरूप पाँच वरो को प्राप्त करता है॥२११३॥ मुनिश्रेष्ठो ! अब

१ क ख ०शतान्यासत्यञ्च । २ क घन्विन । ३ ग ०श्च द्रुष्टोक्त छ एव च । ज० ४ ख
महावीर्य । ५ ग ०जात्याश्च । ६ क तौडिके० । ख तौण्डिके० । ७ क. च । मार० । ८ ख ०पमष्टतपो
वि० । ९ क ०णा लोकधारणहेतव । भू० । १० ख लोकास्तार० । ११ ख वा ।

लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्। निर्जित्य वशमानोय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्॥१८५॥
 श्रुत्वा तु बद्धं पीलस्त्यं रावणं त्वज्जुनेन च। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमज्जुनं ददौ स्वयम्॥१८६॥
 मुमोच रक्षः पीलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः। यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्योतिस्त्वनः॥१८७॥
 युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव। अहो वत मूढे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्॥१८८॥
 राज्ञौ बाहुसहस्रस्य हेमं तालवनं यया। तूयितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना॥१८९॥
 स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः। पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः॥१९०॥
 जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्ददक्षया। स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महत्तमनः॥१९१॥
 ददाह कातंवीर्य्यस्तु शलांश्चैव वनानि च। सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै॥१९२॥
 ददाह बलवद्भूतिश्चित्रभानुः सहृहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्॥१९३॥
 वशिष्ठं नाम स मुनिः हयात् आपव इत्युत। तत्रापवस्तु तं श्रीघोच्छ्रष्टवानज्जुनं विभुः॥१९४॥
 यस्मान्न वज्जितमिदं धनं ते मम हंहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति॥१९५॥
 रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्। छित्त्वा बाहुसहस्रन्ते प्रमथ्य तरसा बली॥१९६॥
 तपस्वीं ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गव। अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामिन्द्रकपिणः॥१९७॥
 प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः। प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शोषान्महामुनेः॥१९८॥

पुरी में बाँधा था॥१८४-१८५॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बाँधे गये पुलस्त्य-पुत्र रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये॥१८६॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हजार भुजाओं के धनुष की टावर प्रत्येकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा बिजली की कटक के समान होती थी, रावण को मुक्त कर दिया॥१८७॥ पर आश्चर्य तो यह है कि पराचुराम न सप्राम में उसी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान काट दिया।॥१८८॥ किसी समय अग्नि ने तूष्णा से मुक्त हो अर्जुन में मित्रा मागी। उस वीर ने अग्नि को सारी द्वीप मित्रा में दे दिए॥१९१॥ तब अग्नि उषवे नगर, याम और देवों को सब और से जलाने लगे॥१९०॥ उस महात्मा पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वतों और घनों को जला डाला। उसी दैत्य (अर्जुन) के साथ होकर अत्यन्त मयभीत अग्नि न वरुण के पुत्र के शून्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला॥१९१-१९२॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था वह वशिष्ठ नामक मुनि आपव नाम में भी प्रसिद्ध था॥१९३॥ उस शक्तिगणन आपव ने जीप से अर्जुन का साथ दिया—‘दैत्य’ जिस उद्देश्य से मुने मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उन्हे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा॥१९४-१९५॥ प्रतापी तथा शक्तिशाली जमदग्नि-पुत्र पराचुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर वेग से मथ कर तुमको मारेगा॥१९६॥ जिस राजा के शून्य का साथ नहीं होता था, जो शत्रुओं का महार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

१ ग साण। २ ग तेजस्वी। ३ रा ग वशिष्ठनि। ४ क तस्य। ५ क ग प्रभावेण। ६ क ग.

वरस्तथैव भो विप्रा स्वयमेव द्यूतः पुरा। तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शपा महात्मनः॥१९९॥
 कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः। शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः॥२००॥
 जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्। कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महाबलाः॥२०१॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतं स्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः॥२०२॥
 तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हेहयानां महात्मनाम्। वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः॥२०३॥
 तोण्डिकेराश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च। भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नुकीर्त्तिताः॥२०४॥
 वृषप्रभृतयो विप्रा यादवा पुण्यकर्मिणः। वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥२०५॥
 मधो पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्। वृषणाद्वृष्णयः सध्वं मधोस्तु माधवाः स्मृताः॥२०६॥
 यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हेहया। न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥२०७॥
 कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः। एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः॥२०८॥
 कीर्त्तिता लोकावीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै। भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यावरजङ्गमान्॥२०९॥
 भूत्वा पञ्च विसर्गास्तु राजा धर्मार्थकोविदः। वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः॥२१०॥
 लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्। आयुः कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूतिमेव च॥२११॥

के शाप से हो गई॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द। उसन स्वय ही ऐसा वरदान पहले मागा था। उसके सौ पुत्रो मे से पाँच ही बनी, अश्व-शस्त्रो से सुसज्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अजन्तीपुरी का राजा हुआ॥१९९-२००॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिशाली थे॥२०१॥ जयध्वज के तालजघ नामक महाबली पुत्र हुआ। उसने सौ पुत्र हुए, जो तालजघ नाम से प्रसिद्ध थे॥२०२॥ मुनिवर। उन महात्मा हेहया के वंश में वीतिहोत्र, सुजात भोज, अश्विनि, तोण्डिकेर, तालजघ और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-मय से यहाँ नहीं गिनये जा सकते हैं॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द। वृष नामक राजा से लेकर यदुवर्मा धर्मात्मा हुए। वह वंशधर हुआ। उसने मधु नामक पुत्र हुआ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वंशधर वृष्ण हुआ। वृष्ण के वंशज वृष्णि कहलाये और मधु के माधव॥२०६॥ यदु के वंश में उत्पन्न वे हेहय यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-मृत्वा नित्यप्रति पट्टेगा, मुनगा, बरेगा, उसका वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्यपुनः मिल जायगा॥२०७॥ द्विजवर। ये पाँच वंश उन महावीर ययाति-पुत्रो के हैं, जो पचमहामूर्तों की तरह स्यावर-अगम सहित प्रलोचय को धारण करते हैं॥२०८-२०९॥ इन पाँच वंशों को मुनकर धर्म-अर्थ को जानने वाला राजा पाँचो वंशों के अर्पित अर्पण प्रियशत्रु तथा विमृनिमान् हो जाता है॥२१०॥ द्विजगण। इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य सदाशिव मनुजें आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विमृनिहय पाँच वंशों को प्राप्त करता है॥२११॥ मुनिश्रेष्ठो। अब

१ क स ० सातायासत्यश्वः। २ क पयितः। ३ ग ० द्य वृष्टीकः दृष्ट एव च। ज०। ४ स महावीर्या। ५ ग ० ज्ञायादश्च। ६ क तोण्डिके०। ग तोण्डिके०। ७ क. च.। भार०। ८ स ० मपट्यतयो वि०। ९ क ० नां लात्पाकरणद्वयः। नू०। १० स लोकास्मर०। ११ स या।

धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः। क्रोटोर्ध्वंशं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं गदतो मम ॥२१२॥
 यदोर्ध्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्मिणः। क्रोटोर्ध्वंशं हि श्रुत्वैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१३॥
 यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णि कुलोद्बहः।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययातिवंशानुकीर्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

तत्रादौ यदुपुत्र-क्रोटुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

गान्धारी चैव माद्री च क्रोटोर्भाग्यं बभूवतु। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥१॥
 माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमोदुपम्। तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥२॥
 माद्रीयाः पुत्रौ तु जज्ञाते 'श्रुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ। जज्ञाते तनयौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकरतथा ॥३॥
 'श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्मात्मा' यत्र वर्तते। नास्ति ध्याधिभयं तत्र' नावर्षस्तपमेव च ॥४॥

क्रोटु का वंश-वर्णन मुनिसे मुनिसे, जिस वंश में वृष्णि-वंश-उद्धारक साक्षात् विष्णु भगवान् अवतीर्ण हुए। यज्ञवर्ती, धर्मात्मा तथा 'वाचारक' यदु और क्रोटु के वंश-श्रवण से ही मनुष्य सब पापों से दूर हो जाते हैं ॥२१२-२१३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ययाति-वंशानुकीर्तन नामक तीरह्वा अध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

यदु-पुत्र क्रोटु के वंश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—क्रोटु की दो पत्नियाँ थी—गान्धारी और माद्री। गान्धारी ने अनमित्र नामक महाबली

पुत्र उत्पन्न किया ॥१॥ माद्री के युधाजित् और देवमोदुप नामक दो पुत्र हुए। उनके तीन प्रकार के वंश चले, जो वृष्णियों के वंश को बढ़ाने वाले हुए ॥२॥ माद्री ने वृष्णि और अन्धक नामक और दो पुत्रों को उत्पन्न किया। वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥३॥ मुनिवर! धर्मात्मा श्वफल्क जहाँ रहता है, वहाँ ध्याधि तथा अनावृष्टि का भय नहीं होता ॥४॥ मुनिगण! ऐसा मुना है कि किसी समय वासिष्ठ के राज्य में

१ त्राटवम। २ स य श्रुत्वं। ३ क य दृगौ। ४ क ० फल्कात् मु० १५ धर्मो नैवात्यवर्तनं। ना०।

६ क ० य न चावृष्टिमय तथा। क०।

कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः॥ त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावर्षत् पाकशासनः॥५॥
 स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमाचित्तम्॥ श्वफल्कपरिवर्त्तनं वर्षं हरिवाहनः॥६॥
 श्वफल्कः काशिराजस्य सुता भाष्यमिविन्दत॥ गान्दिनी नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः॥७॥
 दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः॥ अकूरः सुपुत्रे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिणः॥८॥
 उपमद्गुस्तथा मद्गुमंदुरश्चारिमेजयः॥ अविक्षितस्तयाश्लेषः शत्रुघ्नश्चारिमर्दनः॥९॥
 धम्मं धृगु यतिधर्मा च॥ धर्म्मोक्षान्धकरस्तथा॥ आवाहप्रतिवाहा च सुन्दरी च वराङ्गना॥१०॥
 अकुरेणोप्रसेनाया सुगात्र्यां द्विजसत्तमाः॥ प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ॥११॥
 चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपुत्रेव च॥ अश्वप्रीवोऽश्वबाहुश्च स्वपाश्वकगवेपणौ॥१२॥
 अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्म्मभूतया॥ सुबाहुर्विबुबाहुश्च श्वविष्ठाश्ववणे स्त्रियौ॥१३॥
 अतिव्या जनयामास शूरं वै देवमोदुपम्॥ महिष्यां जज्ञिरे शूरा भोज्यायां पुर्या दश॥१४॥
 वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः॥ जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि॥१५॥
 आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद्विदिवि॥ पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जननी महान्॥१६॥
 मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि॥ यस्यासौतुष्याग्ध्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यया॥१७॥

लगातारतीन वर्ष तक अनावृष्टि रही ॥५॥ तो काशिराज श्वफल्क को सम्मानपूर्वक अपने साथ ले आए। उनके
 बाते ही वृष्टि प्रारम्भ हो गई ॥६॥ प्रसेन काशिराज ने अपनी कन्या गान्दिनी का विवाह श्वफल्क के साथ कर
 दिया। गान्दिनी नित्यप्रति ब्राह्मणों को गोदान दिया करती थी ॥७॥ श्वफल्क ने अकूर नामक दाता, यज्ञकर्ता,
 वीर, विद्वान्, अतिथि-पूजक तथा भूरि-दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८॥ उपमद्गु मद्गु, मंदुर, अरिमेजय,
 अविक्षित, अश्लेष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मवृक्ष, यतिधर्मा, धर्म्मोक्ष अन्वक्थ, आवाह, प्रतिवाह—ये पुत्र तथा सुन्दरी
 नाम की एक कन्या भी श्वफल्क से उत्पन्न हुई ॥९-१०॥ चित्रवर! अकूर की सुशामना पत्नी उपसेना से प्रसेन
 और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ चित्रक ने पृथु विपुत्र, अश्वप्रीव
 अश्वबाहु, स्वपाश्वक, गवेपण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्म्मभूत, सुबाहु और बहूबाहु नामक पुत्र तथा
 श्वविष्ठा और श्रवणा नामक दो कन्यायें उत्पन्न हुई ॥१२-१३॥ देवमोदुप ने अमिकनी में शूर नामक
 पुत्र उत्पन्न किया। शूर की भोज्या नामक रानी में शूर नाम वाले दश पुरष उत्पन्न हुए, जिनमें पहले वसुदेव
 की उत्पत्ति हुई ॥१४॥ वसुदेव ने जन्म-समय आकाश में दुन्दुभियाँ बजी थीं, इसलिए उन्हें 'आनकदुन्दुभि'
 भी कहा जाता है। शूर के घर में पुष्प-वर्षा के साथ अन्तरिक्ष में वज्रत हुए बाला की ध्वनि सुनाई
 पड़ी ॥१५-१६॥ मनुष्य लोक में वसुदेव अप्रतिम सौन्दर्यशाली थे। चाँदनी-सी चमकती हुई उनमें प्रभा थी ॥१७॥

१ क ०मा। पुरा द्वादशवर्षाणि ना०। २ ग वर्षसहस्राणि ना०। ३ ख ०व वासया०। ग ०व
 याजया०। ४ ग परमाचित्। ५ क ०रिचारेण व०। ६ ख ०मवाप ह। गा०। ७ क ०दा। जाता
 यज्ञप्रिया दशा श्रुतज्ञा चातिथिप्रिया। अ०। ८ क ०मनुस्तथा मनुष्यै०। ९ ख ०दुर्मुंदर०। ग ०दुर्मुंदरश्वा०।
 ९ ग ०य। पतिप्रियस्तथा ऽत्यक्ष श०। १० ख अरिप्रियस्तपोपेक्ष श०। ११ ग च गुध्रमो जान्तवस्त०।
 १२ क वरानना। १३ ख कुणन्दनी। १४ क ख मुनिवर्चसौ। १५ ग ०रव्यश्च। १६ ख ०दृत्वास्वा०।

‘देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः। अनाधृष्टिः^१ कनक्को^२ वत्सवानय^३ गूञ्जमः॥१८॥
 श्यामः शमीको गण्डूयः पञ्च चास्य वराङ्गनाः। पृथुकीर्ति^४ पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा॥१९॥
 राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः। श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु^५ शिशुपालोऽभवन्नृपः॥२०॥
 हिरण्यकशिपुर्गोप्सो^६ दैत्यराजोऽभवत्पुरा। पृथुकीर्त्या तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्मणः^७॥२१॥
 कल्याधिपतिर्वीरो दन्तवको महाबलः। पृथां दुहितर चक्रे कुन्तिस्तं पाण्डुरावहत्॥२२॥
 यस्या^८ स धर्मविद्राजा धर्मो जज्ञे युधिष्ठिरः। भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः॥२३॥
 लोकेऽप्रतिरथो वीरः शत्रुतुल्यपराक्रमः। ‘अनभिप्राच्छिनिर्जने’^९ ‘कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्’॥२४॥
 शनैः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः। उद्धघो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्॥२५॥
 पण्डितानां परं प्राहृद्वैश्वस्यसमुत्तमम्^{१०}। अश्मवयं^{११} प्राप्तवान् ‘पुत्रमनाधृष्टिर्यश्चिन्तितम्’॥२६॥
 ‘निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं’^{१२} श्रुतदेवा त्वजायत^{१३}। श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैपादिर्यः परिश्रुतः॥२७॥
 एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निपादे^{१४} परिवर्द्धितः। वत्सवते^{१५} त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्॥
 अद्भिर्द्वंदो सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्^{१६}॥२८॥
 गण्डूपाय ह्यपुत्राय विष्णुक्सेनो वदो सुतान्। चारुदेणं सुदेणञ्च^{१७} पञ्चालं कृतलक्षणम्॥२९॥
 असंप्रामेण यो वीरो नावर्त्तत^{१८} कदाचन। रौक्मिणेयो महाबाहुः^{१९} कनीयान् द्विजसत्तमाः॥३०॥

बभूव्ये के पञ्चात्, देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनक्को, वत्सवान्, गूञ्जम, श्याम, शमीको और गण्डूय नामक पुत्र तथा पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नामक पाँच पुत्रियाँ भी उत्पन्न हुईं। ये पाँचो नव्यायें वीर-माताएँ थीं॥१८-१९॥ पूर्व जन्म में दैत्यराज हिरण्यकशिपु नाम से विख्यात चेदिराज शिशुपाल की उत्पत्ति श्रुत-श्रवा से हुई॥२०॥ पृथुकीर्ति में वृद्धशर्मा के महाबली, वीर तथा कल्याण का स्वामी दन्तवक्त्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥२१॥ मुनि नामक राजा ने पृथा की अपनी पुत्री बनाया। पृथा का विवाह पाण्डु से हुआ, जिसने धर्म से धर्मराज युधिष्ठिर, वायु से भीमसेन तथा इन्द्र से इन्द्र तुल्य पराक्रमी अद्भिर्द्वि योद्धा अर्जुन को पैदा किया। सबसे छोटे वृष्णि-मुत्र अनमित्र से सिनि उत्पन्न हुआ॥२२-२३॥ सिनि से सत्यन और सत्यन से महातपी सात्यकि की उत्पत्ति हुई। देवभाग का पुत्र महामाण्यशाली उद्धव हुआ॥२४-२५॥ देवश्रवा महापण्डित था। उसने अश्मवय नामक पुत्र को प्राप्त किया। अनाधृष्टि ने निवृत्तशत्रु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। और श्रुतदेवा से शत्रुघ्न पैदा हुआ॥२६॥ मुनिश्रेष्ठ श्रुतदेवा के एकलव्य नाम का पुत्र हुआ, जो निपादे द्वारा पाले-पामे जान के कारण नैपादि नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२७॥ वत्सवान् के बौद्ध पुत्र न था अतः प्रतापी दूर-मुत्र वसुदेव ने अर्जुन और पुत्र कौशिक की जल से उत्पत्ति करके उसे दे दिया॥२८॥ पुनरुद्भूत गण्डूय का विष्णुक्सेन ने चारुदेण, सुदेण, पञ्चाल और कृतलक्षण नामक पुत्रों को दे दिया॥२९॥ विप्रवर^१ चारुदेण रक्मिणी का छोटा पुत्र था, जो निरन्तर मुद्र-रत्न रत्ना

१ क० वनाय०। २ क० अनाधृष्टि। ३ क० वीरो वयो तस्य वयुव ह। श्या०। ४ ग० अनममुञ्जय। श्या०। ५ ग० अत्यशिशु०। ६ ग० शमीचैतारा०। ७ क० विस्ववर्मणा। ८ क० यस्या। ९ ग० अनाच्छिनिर्जने०। १० ग० अष्टाद्विप०। ११ ग० अमुद्रवम्। १२ ग० अश्ववयं। १३ क० ग० अनाधृष्टिप०। १४ क० विमित्र-शत्रु। १५ ग० निवर्त्तयु। १६ ग० अज नै०। १७ ग० अज शत्रादेन व्यज्रा०। १८ ग० अज। १९ क० धातुदेवात्प्रजातस्तु नै०। १७ क० वत्सामातरस्य पौत्राय शी०। १८ क० वीरव०। १९ क० मुव०। २० ग० अवर्त्त०।

वायसानां सहस्राणि यं यान्तुं पृष्ठतोऽन्वयुः। चारुनद्योपभोक्ष्यामश्चार्देणहेतानिति ॥३१॥
तन्निजस्तन्निपालश्च सुतो कनवरुस्य तो। वीरश्चाश्वहनुश्चैव वीरो तावय गृञ्जिमी ॥३२॥
श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत्। जगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमाप सः ॥३३॥
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः। वसुदेवसुतान् धीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतः परम् ॥३४॥
वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बह्वशाखं महोजसम्। धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥३५॥
याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गताः। पौरवी रोहिणी नाम मदिराक्षितयापरा ॥३६॥
यैशास्त्री च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी। सहदेवा शान्तिदेवा धीदेवी देवरक्षिता ॥३७॥
वृषदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी। सुतनुवडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥३८॥
पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत्। ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥३९॥
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शरण्यं शठमेव च। दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥४०॥
वित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नवः। चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः ॥४१॥
वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशः। रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥४२॥
सुभद्राया रथो पार्यादभिमन्युरजायत। अक्रूरस्तकाशिकग्याया सत्यकेतुरजारतः ॥४३॥
वसुदेवस्य भाव्यासि ॥ महाभागसु सप्तसु। ये पुत्रा जज्ञिरे शूराः ॥ समस्तास्तान्निबोधत ॥४४॥

या और जिसके पीछे-पीछे 'आज चारुदेण के द्वारा मारे गए वीरों के' मास का स्वादिष्ट भोजन करेंगे, ऐसा सोचते हुए हजारों काँए चला करत थे ॥३०-३१॥ कनवरु के दो पुत्र थे—तन्निज और तन्निपाल। गृञ्जिमी के बौक और अश्वहनु नामक दो पुत्र थे ॥३२॥ श्याम का पुत्र शमीक था। शमीक ने राज्य-शान्ति की और भोज-राज्ञा से अपने अश्वहनु नामक दो पुत्र थे ॥३३॥ श्याम का पुत्र शमीक था। शमीक ने राज्य-शान्ति की और भोज-राज्ञा से अपने अश्वहनु नामक दो पुत्र थे ॥३३॥ अजातशत्रु नामक शत्रु विनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब वसुदेव की निश्चित मानते हुए राजसूय यज्ञ किया ॥३४॥ उसने अजातशत्रु नामक शत्रु विनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब वसुदेव के वीर पुत्रों का वर्णन करने का ॥३४॥ इस प्रकार अनेक शास्त्रात्मा मे विस्तृत एवं वृष्णि अध्याय भाग—इन तीन वर्गों में विभक्त महापराक्रमी वंश का धारण करते हुए वसुदेव किसी प्रकार के अनर्थ के मागी नहीं हुए ॥३५॥ पुर वशी रोहिणी, मदिरा, वैदादी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, धीदेवी देवरक्षिता, वृषदेवी, उपदेवी और देवकी ये चौदह पत्निया थी और सुतनु और वडवा—उनकी दो सेविकाएँ थी ॥३६-३८॥ पुत्रवशी रोहिणी बाह्लिक की पुत्री थी। मुनिवर। वसुदेव की प्रिय ज्येष्ठा पत्नी से राम तथा शरण्य, शठ दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक और उशीनर नामके पुत्र उत्पन्न हुए ॥३९-४०॥ और रोहिणी से वित्रा सुभद्रा आदि प्रख्यात नौ कन्याएँ पैदा हुई ॥४१॥ मुनिवर। नामके पुत्र उत्पन्न हुए ॥४२॥ अर्जुन की पत्नी सुभद्रा से रथो अभिमन्यु की उत्पत्ति हुई। अक्रूर की पत्नी काशिक्या से पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४३॥ अर्जुन की पत्नी सुभद्रा से रथो अभिमन्यु की उत्पत्ति हुई। अक्रूर की पत्नी काशिक्या से पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४३॥ वसुदेव की महाभाव्यकी साल पत्नियों से गूर नाम वाले जो पुत्र पैदा हुए, उन सबके नाम

१ क ०ञ्जिनी। धर्मात्मानो तपोवित्रा अमीको राजमस्तमः। जगुप्समानो भोजत्सु राजः। २ ग महोन्नमः। ३ स शरणः। ग शरणः। ४ स शवनेः। ५ ग दशनः। ६ क ०णीदयिता दशः। चि०। ७ ग दशः। ८ क वित्रा। ९ क पिपयो। ग निपयो। १० क स रोहिण्या। ११ क हम्नः। स पुनः। १२ क ०राज्ञाजः। १३ क ०सु तामु सप्तसु मो वित्राः। ये। १४ स शूरा नामवत्सः०।

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुताद्युभौ। वृकदेवः सुनामायां गदश्चासौ सुताद्युभौ॥४५॥
 अगावहं महात्मानं वृकदेवो व्यजायत। कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भार्या। वै शिशिरायणे॥४६॥
 जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चत्कन्दे च पौरुषम्। कृष्णायससमप्रत्यो धर्मे द्वादशमे तथा॥४७॥
 मिथ्याभिज्ञस्तो गार्ग्यस्तु भन्युनातिसमीरितः। घोषकन्यामुपादाय मंथुनायोपचक्रमे॥४८॥
 गोपाली चाम्परास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी। धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम्॥४९॥
 मानुष्यां गर्गभार्यायां नियोगाच्छूद्रपाणिनः। स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः॥५०॥
 वृत्तपूर्ववर्द्धिकायस्तु सिंहसंहननो युवा। अपुत्रस्य स राजस्तु वयूधेज्जन्तपुरे शिशुः॥५१॥
 यवनस्य मुनिश्रेष्ठाः स कालयवनोऽभवत्। आमूध्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्विजोत्तमम्॥५२॥
 वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद्विभुः। अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा॥५३॥
 दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्। ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्॥५४॥
 समेता मन्त्रयामासुर्गयवनस्य भयात्तदा। कृत्वा विनिश्चयं सर्व्वे पलायनमरोचयन्॥५५॥
 विहाय मथुरा रम्यां मानयन्तः। पिनाकिनम्। कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः॥५६॥

सुनिये॥४४॥ शान्तिदेवा के दो पुत्र हुए—भोज और विजय। सुनामा से वृकदेव और गद पैदा हुए। वृकदेव ने महात्मा अगावह को उत्पन्न किया॥४५॥ किसी समय त्रिगर्त्तराज की कन्या ने, जो शिशिरायण की भार्या थी, गार्ग्य मुनि का वीर्य की परीक्षा की। पर मुनि का वीर्य-स्खलन नहीं हुआ। ता यादवी ने नपुंसक वह कर उनकी हँसी उड़ाई। जिससे क्रुद्ध हुए मुनि का शरीर लोहे के तवे के समान काला पड़ गया। बारह वर्ष धीत जाने पर मुनि ने किसी गोप-कन्या के साथ मैथुन करने का निश्चय किया॥४६-४८॥ गोपी-वेष धारण किए हुए गोपाली नाम की अप्सरा ने, गार्ग्य से समागम किया और नष्ट न होन वाले प्रचण्ड गर्भ को धारण कर लिया॥४९॥ शक्र की प्रेरणा से गर्गमुनि की मानुषी भार्या ने कालयवन नामक महाबलवान् राजा को उत्पन्न किया, जिसका शरीर सिंह का जैसा था और देह का पूर्वावर्त वृत्ताकार था॥५०॥ पुत्र-विहीन यवनराज के अन्तपुर में पालन-पोषण होने के कारण उसका नाम कालयवन पड़ गया॥५१॥ युद्ध की कामना रखते हुए कालयवन ने मुनिश्रेष्ठ नारद से पूछा कि किससे युद्ध करें? नारद ने उसे वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं से लड़ने का सुझाव दिया॥५२॥ तदनुसार कालयवन एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा की ओर चल पड़ा॥५३॥ पहले उसने वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं के पास अपना दूत भेजा। उसका युद्ध-सदश पाकर वृष्णि-अन्धक-वर्षिणो ने नीति-निपुण कृष्ण को अगुवा बना कर परामर्श किया। और फिर कालयवन के भय से मथुरा छोड़ देने का निश्चय किया॥५४-५५॥ राजा को मानने वाले उन सब लोगों ने सुरम्भ मथुरा पुरी को

१ ग भर्ता। २ क वैष्णवायणा। जि०। ३ ग ष्यणा। त्रि०। ४ ग पौरवे। ५ क ऽस्त्वन्दास्य
 पी०। ६ ख ऽम्। स्तन्द। य०। ७ क ऽप्रत्येव०। ग ऽप्रत्येवर्षे। ८ क तदः। मिश्रस्तो गार्ग्यं शालेन
 म०। ९ क ऽना समुदीरि०। रा ऽनामिस०। १० ग ऽतः। गोपक०। ११ ऽली तस्य सद्रा तु गो०।
 १२ क भर्गस्य। १३ ग गर्दमा०। १४ ख ग वृषपू०। १५ ग ऽस्तुमवत्त्वात्रिनी रणे। अ०। १६ क
 मुपूध्यमानो। ग अयूध्यमानो। १७ ख ग ऽसमान्। वृ०। १८ क ऽकुले त०। १९ ग ऽयद्विजा।
 अ०। २० ख भावयन्तः।

इति कृष्णस्य जन्मेइ' य शुर्विनियतेन्द्रियः । पर्वसु श्रावयेद्विद्वाननृण स सुखी भवेत् ॥५७॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्तन नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

वृष्णिवश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

कोष्ठोरथाभन्त पुत्रो वृजिनीवान्महायशः । वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहाकृता वरम् ॥१॥
स्वाहिपुत्रोऽभयद्राजा उपदगुर्वंशता' वर । महाकबुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणं ॥२॥
तत प्रसूतिमिच्छत् वै' 'उपदगु सोऽयमात्मजम् । जजे चित्ररथस्तस्य पुत्र कर्मभिरन्यित ॥३॥
आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्जा विपुन्दक्षिण । शशविन्दु पर वृत्त' राजर्षीणामनुष्ठित' ॥४॥
पृथुथवा पृथुयशः 'राजासीच्छाशविन्दव' । शसन्ति च पुराणज्ञा पार्थश्रवसमन्तरम् ॥५॥
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् । उपतो' यज्ञमखिल स्वधर्म्म' च कृतावर ॥६॥
शिनेयुरभवत् पुत्र उपत' शत्रुतापन । महत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥७॥

छात्र कर द्वारका पुरी में हा रहने का निश्चय कर लिया ॥५६॥ जो पवित्र अर जितप्रिय होकर कृष्ण व इस
जन्म चरित्र को पद वे दिन सुनाएगा वह सब प्रकार के जहानों से मुक्त होकर सुखी होगा ॥५७॥

श्री ब्रह्महर्षपुराण में कृष्ण जन्मानुकीर्तन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

वृष्णि-वश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—कोष्ठ का पुत्र वृजिनीवान् परम यशस्वी हुआ । वृजिनीवान् का पुत्र स्वाहि सर्वोच्च यज्ञकर्ता
प्रसिद्ध हुआ ॥१॥ स्वाहि का पुत्र वरताया में श्रेष्ठ राजा उपदगु था, जिसने भूरि दक्षिणा सम्पन्न अनेक महयज्ञ किये ॥२॥
पुत्रो रति वी कामना से उपदगु ने चित्ररथ नामक अपने प्रथम पुत्र को उत्पन्न किया, जो वरमा ल था ॥३॥ चित्ररथ का
पुत्र शशविन्दु यज्ञकर्ता विपुलदक्षिणादाता, वरिमष्ठ तथा राजर्षि श्रेष्ठ था ॥४॥ शशविन्दु का पुत्र महायशस्व
पृथुथवा था । पुराणज्ञा का कहना है कि पृथुथवा का पुत्र अन्तर अन्तर का पुत्र सुयज्ञ अर सुयज्ञ का पुत्र उपत हुआ
जो निम्निल-यज्ञ-कर्ता तथा निष्ठावान् धार्मिक था ॥५-६॥ उपत् से परतप शिनयु उत्पन्न हुआ । अर शिनयु का

१ व ०मेहय । २ क जा पञ्चवी वद० - ३ ख पयूव० । ४ क न्वं पदवाँ आप वाऽऽतम० । ५ ख उपणु ।
६ ख ०रिञ्जित । ७ व कृत्य । ८ ख ०सीच्छा० । ९ ख ०विभुज । ग० । १० क उपितो । ११ ख धममुखता वर ।
० ग धर्ममुखता वर । १२ व ०र । शिनयुर० । १३ उपित ।

'मरुतोऽलभत ज्येष्ठ सुत कम्बजर्वाहपम् । घवार विपुल धर्मममर्पात्' प्रत्यभागपि ॥८॥
 स सतप्रसूतिमिच्छन्' वै सुत कम्बजर्वाहप । बभूव रुक्मकवच शतप्रसवत' सुत ॥९॥
 निहत्य रुक्मकवच शत कवचिना रणे । धन्विना निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥१०॥
 जज्ञे च रुक्मकवचात्' परजितपरवीरम् । जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या' पराजिता ॥११॥
 रुक्मेपु पृथुरुक्मश्च ज्यामघ पालितो हरि । पालित च हरि चैव विदेहेभ्य' पिता ददौ ॥१२॥
 रुक्मेपुरभवद्राजा' पृथुरुक्मस्य सश्रयात् । ताम्या प्रयाजितो राजा ज्यामघोऽयसदाश्रमे ॥१३॥
 प्रशान्तश्च' तदा राजा ब्राह्मणैश्चावबोधित । जगाम धनुरादाय देशमय ध्वजो रथो ॥१४॥
 नम्मदाकृन्मेकाकीमेकला' मृतिवावतीम् ॥' शृक्षवन्त' गिरिजित्वा' शुक्तिमत्यामुवास स ॥१५॥
 ज्यामघस्याभवदभार्या' शैव्या घलघती सती । अपुत्रोऽपि स राजा वै नार्या भार्यामिविदत् ॥१६॥
 तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र ज्यामवाप स । भार्यामुवाच सत्रस्त स्तुपेति' स जनेश्वर ॥१७॥
 एतच्छ्रुत्वाप्रवीददेवी कस्य देव स्तुपेति वै' । अजवीतदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तम ॥१८॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते' पुत्रस्तस्य भार्यापपादिता

॥१९॥

पुत्र मरुत राजपि द्वा ॥७॥ त्रिसहा ज्येष्ठ पुत्र कम्बजर्वाहप सा । पापी होतेहुइ भी कम्बजर्वाहप ईर्या से महान धार्मिक बना ॥८॥ उक्त' पुत्र शतप्रसव स रुक्मकवच नाम वा पुत्र उत्पन्न हुआ ॥९॥ रुक्मकवच न युद्ध मे सा रुक्मकवारिना तथा धनुर्वारिना को अपने तीक्ष्ण बाणा से मारकर धार जित प्राप्त का । १०॥ रुक्मकवच व धनु सहारण पुत्र परजित् से स्वमेपु पृथुरुक्म ज्यामघ पालित अर हरि ये पाँच महान्वितशानी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ पालित अर हरि को पिता न विदे' को दिया ॥१२॥ स्वमेपु पृथुरुक्म वा आर्य तैर राजा बना । उन दोनों ने मिलकर राजा ज्यामघ को विवाहित कर दिया । ज्यामघ गात्ररित होकर आश्रम में रहने लगा ॥१३॥ वही उसे ब्राह्मण न जब बाव बरपाया तब उसने रथ-पराशर स युक्त हो धनुष तैर दूधरे देग व लिए प्रस्थान किया ॥१४॥ नमता सती व किनारे एकत्री विबरण करत हुआ ज्यामघ मेनका मृतिवावता अर शृक्षवान् नामक परत को जीतकर सुविजयता नामक नगरी में यश गया ॥१५॥ ज्यामघ का शाब्दा नामक बनी पतिव्रता पत्नी, वी' नि सन्तान हान हुए भी राजा न दूसरा विवाह नहीं किया ॥१६॥ वह राजा एन युद्ध में विजय हुआ विजयश्री व साथ वही उसे एक बच्चा प्राप्त हुई । उस बच्चा को अपना पत्नी व नाम उ जानकर राजा ने कहा— यह मुम्हारी पुत्र-वध है । यह मुनिर रत्न न कहा— राजन्' यह पुत्र-वध किस है? नृपश्रेष्ठ ज्यामघ । कहा— ॥१७ ॥८॥

राजा बोला—मुम्हारा जो पुत्र उत्पन्न होत। उर्नी की यह पत्नी बनगी ॥१९॥

१ ग ० रुक्मकवचच्छुट । २ स ० पाराय ० । ३ ग ० पाराय जाग ० । ३ स ग ० वि ० । सतप्रसू ० । ४ स ग ० छति मु ० । ५ स ० वता मु ० । ६ ग ० तारावि ० । ७ स ० वायपरायमा । ८ ० । ८ स समय । ९ ग ० ज्यामघ । १० ग ० रथि ह्याम ० । ११ स ० तारित तवरुक्मकवच ० । १२ स ० रुक्म ० । १३ स ० वरिम् । १४ स ० तान्न । १५ ग ० त्वा श्रिय ० । १६ स ० स ० पामन्या ० । १७ ग ० ह्याम ० । १७ स ० पय से ज ० । १८ स ग ० । १९ ग ० पुत्रो भाय सत्य जाननी । उ ० ।

लोमहर्षण उवाच

उप्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत। पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती॥२०॥
 'राजपुत्र्यां तु विद्वांसो स्नुषायां' ऋषिकैशिकी। पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरो रणविशारदो॥२१॥
 भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्। कुन्तेर्घुष्टः सुतो जज्ञे रणघुष्टः प्रतापवान्॥२२॥
 घुष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः। 'आवन्तश्च दशाहंश्च बली विपहरदच' सः॥२३॥
 दशाहंस्य सुतो द्योमा द्योम्नो जीमूत उच्यते। जीमूतपुत्रो विवृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः॥२४॥
 अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा। तस्य चासीद्दशरथः 'शकुनिस्तस्य चात्मजः॥२५॥
 'तस्मात्करम्मः फारम्भिर्देवरातोऽभयन्नपः। देवक्षत्रोऽभवत्तस्य' बृद्धक्षत्रो महायशः॥२६॥
 देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः। मधूनां वंशकुद्राजा मधुर्मधुरवागपि॥२७॥
 मधोर्जज्ञेऽयं वेदधर्मा पुष्ट्रान्पुष्ट्रपोत्तमः। ऐश्वर्याकी चाभवद्भार्या॥ मधोस्तस्यां व्यजायत॥२८॥
 'सत्यान् सत्त्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्त्तिवर्द्धनः। इमां' विसृष्टिं विज्ञाय 'ज्यामघस्य महात्मनः॥
 युज्यते 'परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत्' सदा॥२९॥

लोमहर्षण उवाच

सत्त्वतः सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या॥ सुपुत्रे सुतान्। भगिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम्॥३०॥

लोमहर्षण बोले—उस कन्या को उप्रेण तपस्या से सीमागम्यवती पतिव्रता शैब्या ने विदर्भ नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥२०॥ पश्चात् विदर्भ ने उसी राजपुत्री मे विद्वान्, वीर तथा युद्धविशारद ऋष और कैशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये॥२१॥ विदर्भ का पुत्र भीम और उसका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्ति के घुष्ट नामक प्रतापी तथा युद्ध-नुशल पुत्र उत्पन्न हुआ॥२२॥ घुष्ट के तीन वीर तथा परम धर्मात्मा पुत्र हुए—आवन्त, दशाहं और बली विपहर॥२३॥ दशाहं का पुत्र द्योमा और द्योमा का जीमूत कहा जाता है। जीमूत का पुत्र विवृति और उसका पुत्र भीमरथ कहा जाता है॥२४॥ भीमरथ का पुत्र नवरथ था। नवरथ का दशरथ और उसका पुत्र शकुनि था॥२५॥ शकुनि से करम्म और करम्म से राजा देवरात की उत्पत्ति हुई। देवरात का पुत्र देवक्षत्र और उसका पुत्र महायशस्वी तथा देवपुत्र के समान तेजस्वी बृद्धक्षत्र था॥२६॥ बृद्धक्षत्र के देवपुत्र के समान मधु नामक मधुरवक्ता तथा मधु-वश वर्ता पुत्र उत्पन्न हुआ॥२७॥ मधु से वैदर्भी में पुष्टपोत्तम पुष्ट्रान् की उत्पत्ति हुई। पुष्ट्रान् की ऐश्वर्याकी नामक भार्या मे सब गुणो से युक्त सात्वतां कीर्त्तिवर्धक सत्त्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥२८॥ महात्मा ज्यामघ की इस सृष्टि को जानकर मनुष्य अल्पज प्रयत्न तथा सदा प्रजावान् होता है॥२९॥

लोमहर्षण बोले—सत्त्वान् से कौशल्या ने सत्त्वसपन्न भागी, भजमान, दिव्य, राजा देवावृध, महाशक्तिशाली

१ क राजपुत्री। २ ग ऋषिकैशिकम्। ५ क अचरदच। ५ क अवधर०। ६ क ख य। ७ क ख ऋषीवृत्तिस्त०। ८ ख सुत। ९ ग नरर०। १० ग तथा। ११ क शत्रुज्योऽस्य। १२ क तत वरम्भिस्तस्यावच देव०। १३ ख ग ऋष्य देवक्षत्रिर्मह०। १४ क दा। हेमग०। १५ क ऋषिस्तस्य च प्रियधुर्वह। ऐश्वर्याकिरमवद्वाराजासत्त्वस्तस्य व्य०। १६ ख र्या सावस्त०। १७ ख ऋत्वास्तत्त्वम्०। १८ क मा च सु०। १९ ग ज्यामघस्य। २० ख रम प्रि०। २१ क मवेद्द्विज। २२ ख ऋच। सात्वतान्तरव०। २३ क ऋषिकीर्त्तिं मु०। २४ क भगिन। स. भजिन। २५ ग देववृध।

अन्धकं च 'महाबाहुं धृष्टिं' च यदुत्तमम् । तेषां विसर्गादिवत्पारो विस्तरेणेह कीर्तितः ॥३१॥
 भजमानस्य सृञ्जय्यो बाह्यरायोपबाह्यः । आस्तां भार्यं तयोस्तस्माज्जिह्वे गृह्यः सुताः ॥३२॥
 क्रिमिद्व 'क्रमणद्वयं धृष्टः' शूरः पुरञ्जयः । एते बाह्यसृञ्जय्यो भजमानाद्विजिह्वे ॥३३॥
 'अयुताजित्' 'सहस्राजिच्छाजित्स्य' दासः । उपबाह्यसृञ्जय्यो भजमानाद्विजिह्वे ॥३४॥
 यज्या देवायुषो राजा घचार विपुलं तपः । पुत्रः सत्वंगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः ॥३५॥
 'संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशया जलं स्पृशन् । 'सदोपस्पृशतस्तस्य चक्षार प्रियमापगा ॥३६॥
 'चिन्तयामिपरीता' सा न जगामिव' निश्चयम् । ब्रह्मणात्वाग्ररपतेस्तस्य सा निम्नगोस्तमा ॥३७॥
 नाप्यगच्छतु तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः । भवेत्तस्मात् स्वयं गत्या भयान्तरस्य सदानुगा ॥३८॥
 अयं भूया कुमारी सा विभ्रतो परमं वपुः । यस्यामास नृपतिं तामिषेयं च स प्रभुः ॥३९॥
 'यस्यामापत्तं गर्भं स तेजस्यिन्मृदारयोः । अयं सा दशमे मासि सुपुत्रे सतितां यरा ॥४०॥
 पुत्रं सत्वंगुणोपेतं यधुं देवायुष द्विजाः । अत्र यंसे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥४१॥
 गुणान् देवायुषस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः । ययंवापे तया ब्रूतात्पदमागस्ताश्चदन्तिवात् ॥४२॥
 वधूः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवदेवायुष समः । दष्टिश्च 'धृष्टं च पुण्याः सट्प्राणि च सप्त च' ॥४३॥
 एतेऽमृतत्वं प्राप्ता ये बभ्रुर्वेवायुषादपि । यज्या 'वानपतिर्धोमान् ब्रह्मणः सुदुदायुष ॥४४॥

अन्धक और यदुत्तम इन धृष्टि की उत्पत्ति किया ॥३०३॥ उनसे चार बन्धो का विस्तृत वर्णन मैंने कर दिया ॥३१॥ भजमान की सृञ्जय-गुयी बाह्यरा और उपबाह्यरा नामक दो भार्ययें थीं । उन्होंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये ॥३२॥ भजमान से बाह्यरा में क्रिमि, वणम, धृष्ट, शूर और पुरञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न हुए । उपबाह्यरा में भजमान से अयुताजित् सहस्राजित्, घाताजित् और दासक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया ॥३३-३४॥ 'यव गुणो से युक्त पुत्र मुझे हों' ऐसी निश्चय कर यज्ञकर्त्ता राजा देवायुष उष तप करने लगा ॥३५॥ तपस्या से सयमी होकर वह पर्णाश्रम नदी के जल का स्नान करता था । यथा सर्व करने से नदी उससे प्रेम करने लगी ॥३६॥ पर राजा ने विषय में सोचती हुई वह कई निश्चय नष्टा कर पती । तब उस राजा का बरवाण चाहने वाली उस उत्तम नदी ने बोला—'राजा की जो स्त्री है उसम इस तरह का पुत्र ही भड़ी सस्ता । इसलिए मैं स्वयं जाकर उसकी पत्नी बन जाती हूँ' ॥३७-३८॥ तदनन्तर उनसे परम सुन्दरी कुमारी का रूप धारण कर राजा का वर्णन किया । राजा ने भी स्वीकृति दे दी ॥३९॥ उदार राजा से उस नदी घेष्ट न तेजस्वी गर्भ का धारण किया और दशवें मास में बभ्रुदेवायुष नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किया ॥४०३॥ यिष्वन् । दश वन के बारे में पुराणज्ञों का कहना है कि—'महात्मा देवायुष ने गुणों का गान करते हुए हम लोग जैसे उसकी सामने देखते हैं वैसे दूर से भी बिलकुल पास ही में देखते हैं ॥४१-४२॥ मनुष्य-श्रेष्ठ बभ्रुदेवायुष देवता के समान है । सात हजार छाछट पुराणों में बभ्रुदेवायुष से अमृत प्राप्त किया ॥४३३॥ बभ्रु का विशाल वंश यज्ञकर्त्ता महादानी, ब्रह्मवादी और महायोद्धा हुआ, जिसमें सतिवाचत आदि भोज हुए ।

१ क० ०हुप्रथित य० । २ ख वृजि । ३ क० ०ता । इमि० । ४ ग त्रिमि । ५ ख वृप । ६ क० ०ष्ट-सुरसुकोपम । ए० । ७ ख ०युतजि० । ८ य० ०हस्रजि० । ९ क० सजुष्टकायस्त० । १० क० ०दोप्रतपसस्त० । ११ क० चित्तेन परिताप सा । १२ ख ०ताज्जमा ज० । १३ क० ०र्मका विनि० । ख० ०मैक विनि० । १४ ख सहयता ० अ । १५ क० तस्मादागत्य सा गर्भं दधार परया मुदा । अ० । १६ क० दष्टि पु० । ख पङ्क्ति पु० । १७ ख च । १८ क० ०तिविद्वान् ।

तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये सात्त्विकावताः । अन्वकात्काश्यदुहिता चतुरङ्गलभतात्मजान् ॥४५॥
 कुकुरं भजमानं च सत्सकं बलवर्धयम् । कुकुरस्य सतो वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६॥
 कपोतरोमा तस्याय । तिलिरिस्तनयोऽभवत् । ज्ञेये पुनर्वसुस्तस्मावभिजिच्च पुनर्वसोः ॥४७॥
 तथा वै पुत्रमियुनं वभूवाभिजितः किल । आहुकः आहुकश्चैव ख्यातो ख्यातिमतां वरो ॥४८॥
 इमां चोवाहरन्त्यत्र गार्गा प्रति तमाहुकम् । श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ॥४९॥
 "अशीतिवर्षेणा युक्त आहुकः प्रथमं जनेत् । नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुयः ॥५०॥
 नाशुद्धकर्म्म नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत् । पुनर्वस्यं दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल ॥५१॥
 सोमास्तङ्गान्कृपाणां ध्वजिनां सचरुधिनाम् । रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥५२॥
 रोग्यकाञ्चनरक्षाणां सहस्राण्येकविंशतिः । तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ॥५३॥
 आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति व्याकिङ्किणीकिनः । आहुः किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं बहुरन्धकाः ॥५४॥
 आहुकस्य तु काश्याया "द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु । देवकश्चोपसेनश्च" देवगर्भसमावभौ ॥५५॥
 देवकस्याभवन् पुत्रादक्षत्वारस्त्रिदशोपमाः । देववानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥५६॥
 कुमार्यः सप्त चास्याय वसुदेवाय ता ददौ । देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥५७॥
 वृकदेव्युपदेवी च सुतामनी चैव सप्तमी । नवोपसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पृथ्वेज ॥५८॥

काश्य की कस्या ने अन्वक ने कुकुर, भजमान, सत्सक और बलवर्धय नामक चार पुत्र उत्पन्न किए ॥४५॥ कुकुर का पुत्र वृष्टि और वृष्टि का पुत्र कपोतरोमा था । कपोतरोमा को पुत्र तिलिरि हुआ । उसके पुनर्वसु की उत्पत्ति हुई । पुनर्वसु से अभिजित उत्पन्न हुआ ॥४६॥ अभिजित के आहुक और आहुक नामक महप्रसिद्ध दो पुत्र हुए ॥४८॥ आहुक के विषय में यह गाया प्रसिद्ध है कि 'वह श्वेत परिवार से युक्त किशोर के समान था ॥४९॥ अस्सी कवचों से युक्त वह अग्रणी बनकर चलता था और उसके चारों तरफ पुत्रवान् यशवर्ता, सैकड़ों दानशता, सैकड़ों हजारों वर्षे जीन वाले और शुद्ध कर्म करने वाले लोग गमन करते थे ॥५०॥ भोज के साथ पूर्व दिशा में दस हजार हाथी, दस हजार सेना, मेघ के समान शब्द करने वाले दस हजार रथ और अक्षतीस हजार मीन-बाँदी के बस रहते थे । उत्तर दिशा में भी उसने साथ उतर्नी ही । तस्या में उक्त चीजें रहती थी ॥५१-५३॥ भोजन के सभी राश प्रत्यक्षा के राज्य से युक्त रहते थे । और भी कहा जाता है कि अन्वका ने अवन्तियों को अपनी महन दी ॥५४॥ आहुक की पत्नी काश्या से देवक और उपसेन नामक देवसदृश तेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥५५॥ देवक के देवता के समान चार पुत्र—देववान्, उपदेव, सदेव और देवरक्षित उत्पन्न हुए ॥५६॥ इसकी सात कन्यायें देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुतामनी वसुदेव के साथ व्याही गई ॥५७॥ उपसेन के कंस, न्यग्रोच,

१ क जानामार्तिकावताम् । अ० । ग० जाजिमातिफारता । अ० । २ क० काश्यस्य दु० । ख० काश्यस्य दु० ।
 ३ ख० समक दल० । ४ क० वृष्टिर्वृष्टेस्तु । ५ क० श्वेततिरि० । ६ क० दन्दिमिच । ७ क० अहुक अहुकी वंशः । ८ क०
 मतिमता । ९ ख० अहुकम् । १० क० निवर्म० । ख० तिचर्म० । ११ ख० वज्रन् । १२ ग० वक्ष्याना स० । १३ क० अजाश्व
 सः । ख० अजास्ते सा तिष्ठन्किङ्किणी किल । अ० । १४ क० ग० आहुकी चा० । १५ ख० अरन्धका । १६ ग० काश्याया ।
 १७ ख० अंसुतादु० । १८ ग० वरानु० । १९ अरन्ध सदे० । २० ख० अस्त्यापस्या० । २१ क० सदेवी ।

न्यग्रोधश्च सुतामा चतया कडक^१ सुभूषण । राट्टपालोऽथ सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥५९॥
 तेषां स्वसार पञ्चासन् कसा कसवती तथा । सुतनू राट्टपात्री च कडका चैव वराङ्गना ॥६०॥
 उपसेन सहापत्यो व्याख्यात पुकुरोद्भूय । पुकुराणामिम वश धारयन्नमितोजसाम् ॥६१॥
 आत्मनो विपुल वश 'प्रजायान्पुन्याम्नर'^२ ॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे वृष्णिवशनिरूपण नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

सत्रादौ सत्राजिदुपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽथ 'रथमुख्यो विदूरथ । राजाधिदेव शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१॥
 राजाधिदेवस्य सुता जजिरे वीर्यवत्तरा । 'क्षतातिदत्तो वल्लो शोणाश्व श्वेतवाहा ॥२॥
 शमी च दण्डशर्मा च 'दन्तशत्रुश्च शत्रुजित । धवणा^३ च श्वविष्टा च स्वसारो सम्बभूवतु ॥३॥
 'शमिपुत्र प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्रस्य 'आत्मज' । स्वयम्भोज^४ स्वयम्भोजदभदिक^५ सम्बभूव ह ॥४॥

सुतामा कक सुभूषण राट्टपाल सुतनू अनावृष्टि और पुष्टिमान् नामक नौ पुत्र हुए जि मे वस सन्ने ज्येष्ठ था ॥५९॥ उनकी कसा कसवती सुतनू राट्टपाली अ कसा नामक पाच रूपवती बहन थी ॥६०॥ इन सतानो व सहित उपसेन पुकुर का वश कहलगा। पुकुरो व अयत्त सजसी वश को सुनने से मनुष्य महान प्रजावान होता है ॥६१ ६२॥

अ प्रह्लामहापुराण में वृष्णि वश निरूपण नामक पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

अध्याय १६

सत्राजित् का उपारयान

लोमहर्षण ने कहा—भजमान का विदूरथ नामक महारथी पुत्र हुआ और विदूरथ के राजाधिदेव नामक पुत्र हुआ ॥१॥ राजाधिदेव के दत्त अतिदत्त शोणाश्व श्वेतवाहन शमी दण्डशर्मा दन्तशत्रु अर शत्रुजित् एवं अयत्त शक्तिशाली पुत्र एवं धवणा और श्वविष्टा नाम की दो कमाए उत्पन्न हुई ॥२ ३॥ शमी का पुत्र प्रति और प्रतिक्षत्र का स्वयम्भोज था। स्वयम्भोज से भदिक उत्पन्न हुआ ॥४॥ भदिक के महापराक्रमी पुत्रा मे

१ क काङ्क । २ क 'वाप्राप्नु' । ३ क जयमानो । ४ क 'स्तामिद' । ५ क 'न्तवक्रव' । ६ क वीरा । ७ क 'ख गमी पु' । ८ क 'जाददीक' । ख जाद्वि' ।

तस्य पुत्रा बभूवुर्ह सत्त्वं भीमपराक्रमाः। कृतवर्माप्रजस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः॥५॥
 देवान्तश्च नरान्तश्च भियर्बतरणश्च यः। सुदान्तश्चातिदान्तश्च निहायः कामदम्भकः॥६॥
 देवान्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबहिषः। असमौजा सुतस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ॥७॥
 अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे। सुदंष्ट्रश्च सुचारश्च कृष्ण इत्यन्धकाः। स्मृताः॥८॥
 गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभाय्यं बभूवतु। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥९॥
 माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीदृशम्। अनमित्रममित्राणा जेतारमपराजितम्॥१०॥
 अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः। प्रसेनश्चायं सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ॥११॥
 प्रसेनो द्वारकत्यां तु नियसन् यो महामणिम्। दिव्यं स्यमन्तकं नाम। स सूर्यादुपलब्धवान्॥१२॥
 तस्य सत्राजितः सूर्यः यथा प्राणसमोऽभवत्। स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिना वरः॥१३॥
 "तोयकूलमपः स्पष्टमुपस्थातुं ययौ रविम्। तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्यानप्रतः स्थितः"॥१४॥
 विस्पष्टमूर्तिर्भगवास्तेजोमण्डलवान् विभुः। अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमप्रतः॥१५॥
 पयैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषा पते। तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्॥१६॥
 को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः "सत्येनोपगतस्य वै। एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥१७॥

सबसे ज्येष्ठ कृतवर्मा और मञ्जला शतधन्वा था॥५॥ इनसे छोटे देवान् नरान्, सुदान्, अतिदान्, भियर्बतरण, निका-
 श्य तथा कामदम्भक थे॥६॥ देवान् का पुत्र विद्वान् कम्बलबहिष था। उसके असमौजा और नासमौजा नामक
 दो पुत्र थे॥७॥ पुत्र-विहीन असमौजा को अन्धक न सुदंष्ट्र सुचार अर कृष्ण नामक पुत्र दिये, जो अन्धक नाम
 से ही प्रख्यात हुए॥८॥ क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री नामक दो स्त्रियाँ थीं। गान्धारी न अनमित्र नामक महाबली
 पुत्र को उत्पन्न किया॥९॥ माद्री से युधाजित् अर देवमीदृश नामक पुत्रो की उत्पत्ति हुई। देवमीदृश शत्रुओं
 का भी मित्र तथा सर्वेश विजयशील था॥१०॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न था। निघ्न ने के दो पुत्र थे—प्रसेन और
 सत्राजित्। दोनों शत्रु विजयी थे॥११॥ प्रसेन द्वारकापुरी में वास करता था। सत्राजित् न सूर्य से स्यमन्तक नामक
 दिव्य महामणि को प्राप्त किया था॥१२॥ उस सत्राजित् का प्राणप्रिय आराध्य सूर्य था। इसी समय राजा के अवसान
 में सूर्योपस्थान करने के लिए महाएश्वरी सत्राजित् रथ पर आरुढ़ होकर नदी के किनारे गया॥१३॥ जब वह
 सूर्योपस्थान कर रहा था तब स्पष्ट मूर्तिमान् तेजोमण्डल से युक्त तथा शक्ति-सामग्न भगवान् सूर्य उससे साम-
 न्निपत हो गए। राजा ने सूर्य से निवेदन किया॥१४॥१५॥ हे ज्योतिष्मन्! जैसे आकाश में मैं आपको सदा
 तेजोमण्डल से युक्त देखता हूँ वैसे ही अपन साम-न भी देख रहा हूँ॥१६॥ इसलिए आपसे हाथ मेली घनिष्ठता
 में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ? यह सुनकर भगवान् सूर्य ने अपन गले से स्यमन्तक मणि को उतार कर एकाग्र

१ क य। युवान्तश्चापि निष्कोशयो निष्कोश्याकाम०। २ क तामसौजाश्च। स नामसौजाश्च। ३ स
 ०यन्त्रका। ४ क स क्रोष्टोभार्ये। ५ क महादुनी। ६ क तथा। ७ क ०मित्र च शत्रूणां। ८ क ०सचारि स्त०। ९ स
 ०वसश्च म०। १० क ग समुद्रादु०। ११ स ०लमुपस्थातु स राजा च य०। १२ क ०त। अथ०। १३ क देव।
 १४ स. सहायत्व य०।

स्वकण्ठादवमुच्याय' एकान्ते न्यस्तवान् विभुः। ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥१८॥
 प्रीतिमानय तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम्। तमभिप्रस्थितं भूपो विवस्वन्त स सत्रजित्॥१९॥
 लोकान् भासयसे सर्वान् येन त्वं सततं प्रभो। तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि॥२०॥
 ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा। स तमावधाय नगरं प्रविवेश महोपतिः॥२१॥
 तं जनाः पर्यथावन्तः सूर्योऽयं गच्छतीति ह'। स्थां पुरं स विसिष्णुमाय राजा त्वन्त पुरं तथा॥२२॥
 तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददौ ग्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥२३॥
 स मणिः स्यन्दते ह्रस्वं वृष्ण्यन्धकनिवेशने। फालवर्षो च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्॥२४॥
 लिप्तां चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके। गोविन्दो न च त लेभे भक्तोऽपि न जहार सः॥२५॥
 कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। स्यमन्तककृते सिंहाद्वयं प्राप यनेचरात्॥२६॥
 अयं सिंहं प्रधावन्तमृशराजो महाबलः। निहत्य मणिरत्नं तदादाय प्राविशद्गुहाम्॥२७॥
 ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्। प्रार्थनां ता मणेर्यद्वा सध्वं एव शशङ्किरे॥२८॥
 स "शङ्कयमानो धर्मात्मा अकारो तस्य कर्मणः। आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ॥२९॥
 यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ। प्रसेनस्य पद गृह्य पुरपरान्तकारिभिः"॥३०॥

स्थान में रख दिया॥१७३॥ तब राजा ने शरीरवाणी सूर्य को देखा और प्रसन्नता से दो घड़ी तक उससे बातचीत किया॥१८३॥ जब सूर्य चलने लगे तब सत्राजित् ने फिर कहा—'भगवन्' जिस मणिध्रेष्ठ से आप सब लोका को सदा प्रकाशित करते हैं, वह मुझे दे दीजिये॥१९२०॥ तब सूर्य ने स्यमन्तकमणि उसे दे दी। उसने भी मणिको बाँधकर अपने नगर में प्रवेश किया॥२१॥ नगर के लोग 'यह सूर्य आ रहा है' ऐसा मन्त्र कर भागने लगे। इस प्रकार नगरवासियों को विस्मित करते हुए राजा अन्तपुर में चला गया॥२२॥ राजा सत्राजित् ने अपने भाई प्रसेन को वह दिव्य मणिरत्न स्यमन्तक प्रेम से दे दिया॥२३॥ वृष्णि-अन्धक कुल वालों के घर में वह मणि सोना झरती थी। मणि के रहते द्वारिकापुरी में कभी अवृष्टि या अत्यावृष्टि नहीं होती थी, व्याधि का भय तो कहीं नहीं था॥२४॥ कृष्ण को स्यमन्तक मणि की लालसा थी, पर उन्हें नहीं मिली। सामर्थ्यवान् होते हुए भी वे हरण नहीं कर सकते थे॥२५॥ किसी समय मणि से विभूषित होकर प्रसेन शिकार खेलने गया। वन में विचरते हुए एक सिंह प्रसेन को मालकर स्यमन्तक मणि लेकर भाग गया॥२६॥ दौड़ते हुए उस सिंह को महाबलवान् ऋद्धराज (जाम्बवान्) ने मार डाला और मणि लेकर वह अपनी गुहा में प्रविष्ट हो गया॥२७॥ पश्चात् कृष्ण स्यमन्तक लेना चाहते थे, ऐसी आशंका कर वृष्णि-अन्धक-वशियों ने श्रीकृष्ण पर प्रसेन के वध का आरोप लगाया॥२८॥ धर्मात्मा कृष्ण दोषरहित होते हुए भी मिथ्यारोप से बचने के लिए 'मैं मणि लाऊंगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वन में गये॥२९॥ जहाँ प्रसेन शिकार खेलने गया था उस (स्थान) को आप्त व्यक्तियों के द्वारा निश्चित कराकर उसके पद-चिह्नों के उपर

१ छं ०मुर्यैवमेका०। ग मुर्यैवमेका०। २ क ग कान्दुमासयस्येतान्ये०। ३ ख ०मामुच्यन०। ४ ख ह। पुरी विस्मापयित्वा तु स राजाज्जत०। ५ क ख ततो। ६ ग ०सेनात्तुम०। ७ क ०द्वधमाप। ८ ग ०तु तु आदाय वनमाधिशत्। त। ९ क ०शदिबलम्। १० क प्राधित त मणि बुद्ध्वा। ११ क शङ्कमा०। १२ ख, ०रात्मका०।

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तम् । अन्वेययन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥३१॥
साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम् । अयं सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविवूरतः ॥३२॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदं ऋक्षस्तु सूचितः । पदं स्तैरन्वितायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ॥३३॥
स हि ऋक्षविले वाणीं शुश्राव प्रमदेरितम् । धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥३४॥
शोडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरितम् ॥३५॥

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥३६॥
‘अप्यविततस्तस्य शब्दस्य’ तूर्णमेव बिलं ययौ । प्रविश्य तत्र भगवांस्तद्वक्षबिलमञ्जसा ॥३७॥
स्यापयित्वा बिलद्वारे यदूल्लाङ्गलिना सह । शाङ्गधन्वा बिलस्यं तु जाम्बवन्त ददर्श सः ॥३८॥
युपुधे वासुदेवरतु बिले जाम्बवता सह । बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसनेकविंशतिम् ॥३९॥
प्रविष्टेऽयं बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः । पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥४०॥
वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् । लभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥४१॥
मणिं स्यमन्तकं चैव “जप्राह्मविशुद्धये । अनुनीयशंराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात् ॥४२॥
उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनोतैः पुरःसरैः । एवं स मणिराहृत्य विशोऽध्यात्मानमच्युतः ॥४३॥

कृष्ण चलन लगे । पर्वत-श्रेष्ठ ऋक्षवान् और पर्वतोत्तम विन्ध्य पर्वत में मणि को ढूँढ़ते हुए जब वे थक गये तो अश्व सहित निहत प्रसेन दिखायी पड़ा किन्तु मणि वहाँ भी नहीं थी ॥३०-३१॥ इस-उपर देखने पर प्रसेन ने शव के पास ही रीछ द्वारा निहत सिंह दिखाई पड़ा ॥३२॥ रीछ ने पदचिह्नों का अनुसरण करत हुए श्रीकृष्ण उसकी गुहा तक पहुँच गए । रीछ की खोह में श्रीकृष्ण को जाम्बवान् के बालक को मणि से खेलती हुई घात्री के मुख से निकली हुई ‘मत रोओ’ यह वाणी सुनाई पड़ी ॥३३-३५॥

घात्री ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जाम्बवान् ने । हे सुपुत्र ! मत रोओ, यह तुम्हारी ही स्यमन्तक मणि है ॥३६॥ उसने शब्द स्पष्ट सुनते ही कृष्ण ने उस खोह में प्रविष्ट होने से पूर्व बिल-द्वार पर बल्लभ सहित यदुवशियो को खड़ा कर दिया । शाङ्ग नामक धनुष को धारण करके बाले कृष्ण ने खोह में स्थित जाम्बवान् को देखा ॥३७-३८॥ बिल में वासुदेव जाम्बवान् के साथ मल्लयुद्ध करने लगे । इन्कीस दिनो तक दोनों बाहु-युद्ध करते रहे ॥३९॥ कृष्ण ने खोह में प्रविष्ट हो जाने पर बलदेव सहित यदुवशियो ने द्वारका आकर लागा से कह दिया कि कृष्ण मारे गये ॥४०॥ कृष्ण ने महाबलशाली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की इच्छानुसार उसकी कन्या जाम्बवती से विवाह कर आत्मशुद्धि के लिए (दहेज में) उसी स्यमन्तक मणि को प्राप्त किया । फिर वे जाम्बवान् को सन्त्य ना देकर बिल से बाहर निकले ॥४१-४२॥ तब अपने वित्तियों अनुयायियों के साथ कृष्ण द्वारका पहुँचे । इस प्रकार मणि

१ ग अक्षवन्त । २ क. ग अन्वेयय परि० । ३ ख ०ष्ट पाई० । ४ ०क्षस्य मादित । ख ०क्षस्य सू० । ५ ख म्पकविंशतस्य श० । ग व्यक्तीकृतस्य श० । ६ ख शब्दश्च । ७ क ०विष्टस्तत्र । ८ क ०भ्यामय गो० । ९ क. महाबल ।

१० ख समतम् । ११ ख जहाराऽऽन० ।

ददौ सत्राजिते' तं ये सर्वसात्वतसंसदि'। एवं मिथ्याभिशास्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥४४॥
 आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम् । सत्राजितो दशत्वास्तु भार्यास्तासां शतं सुताः ॥४५॥
 ह्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्व्वजः । वीरो वातपतिश्चैव वसुमेघस्तथैव च ॥४६॥
 कुमार्यश्चापि तिलो ये दिक्षु ह्याता द्विजोत्तमाः । सत्यभामोत्तमा तासां प्रतिनो च दृढव्रता ॥४७॥
 तथा प्रस्वापिनो चैव भार्याः कृष्णाय ता ददौ । सभाक्षो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमो ॥४८॥
 जज्ञाते गुणसम्पन्नो विश्रुतो रूपसम्पदा । माद्र्याः पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो मुधाजितः ॥४९॥
 जज्ञाते तनयो वृष्णे । श्वफल्कश्चित्रकस्तथा । श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामिविन्दत ॥५०॥
 गान्दिनी नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता । तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः ॥५१॥
 अकूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः । उपमद्गुस्तथा मद्गुम्मुदरश्चारिमर्दनः ॥५२॥
 अरिक्षेपस्तयोपेक्षः । शत्रुहा चारिमेजयः । धर्मभृच्छापि । धर्मा च । गृध्रभोजान्धकस्तथा ॥५३॥
 'आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना । विश्रुतादवस्य' महिषो कन्या चास्य 'वसुधरा ॥५४॥
 रूपयौवनसम्पन्ना सर्व्वसत्त्वमनोहरा । अकूरेणोप्रसेनाया' सुतो ये कुलनन्दनौ ॥५५॥
 वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्ध्वसौ । चित्रकस्याभवन् पुत्रा । पृथुर्ध्रुवपृथुरेव च ॥५६॥

लेखर आत्म-शुद्धि के लिए वासुदेव ने यादवों से बरी हुई सभा में वह मणि सत्राजित् को दे दी ॥४४॥ इस प्रकार मिथ्या-
 पवाद को प्राप्त शत्रु-नाशन कृष्ण ने स्यमन्तक मणि को जीत कर पाप से अपनी शुद्धि की ॥४४॥ सत्राजित् के दस
 पत्नियों और साँ पुत्र थे । उन पुत्रों में तीन ही प्रशस्त हुए । भङ्गकार ज्येष्ठ था और वीर वातपति तथा वसुमेघ
 छोटे थे ॥४५-४६॥ विप्रवर । सर्वत्र विख्यात सत्यभामा, दृढव्रता तथा प्रस्वापिनी नामक तीन कन्यायें भी
 उसकी थीं । सत्राजित् ने उन कन्याओं का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया ॥४७॥ भगकार के सभाक्ष और नावेय
 नामक रूप-गुण-सम्पन्न नरोत्तम पुत्र उत्पन्न हुए ॥४८॥ माद्री का पुत्र मुधाजित हुआ । वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक
 नामक दो पुत्र हुए । श्वफल्क ने काशिराज की गान्दिनी नामक पुत्री से विवाह किया ॥४९-५०॥ पिता गान्दिनी
 को सदा गावें दिया करता था । गान्दिनी से अकूर नामक वीर, विडान्, अतिथि पूजक, महाभाग्यशाली तथा
 बहुत्र दक्षिणा देन वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५१॥ अकूर के उपमद्गु, मद्गु, मुदर, अरिमर्दन, अरिक्षेप, उपेक्ष,
 शत्रुहा, अरिमेजय, धर्मभृत्, धर्मा, गृध्रभोजान्धक, आवाह और प्रतिवाह—ये पुत्र थे । उसकी वसुधरा नामक कन्या,
 जो रूप-यौवन आदि सर्वगुणों से संपन्न थी, राजा अश्व की रानी बनी ॥५२-५३॥ अकूर की पत्नी उपसेना से वसुदेव
 तथा उपदेव नामक दो देवसदृश तेजस्वी कुल-धर्मक पुत्र उत्पन्न हुए ॥५४॥ चित्रक के पृथु, ध्रुव अश्वघ्रीव,

१ ख ०ते चैव स० । २ क ०व्यादवस० । ३ ग ०पां नगका० । ४ क ०ज । विरोधापि० । ५ क ०व
 उपश्रावस्त० । ६ क ग स्त्रीणा । ७ ख ०क्षोभाङ्ग० । ८ ख सारयेव । ९ ख रूपसद्वती । १० क ग ०न । गिरि० ।
 ११ क ग ०स्तयाशेष० धा० । १२ ग धर्मी । १३ क ०धसौ जाम्बवस्त० । ग ०धसौ जातुवस्त० । १४ क आवाह
 प्रतिवाहश्च सु० । १५ ०ता सा च महिषक० । ग ता० स्वस्य म० । १६ ख वराङ्गना । १७ ग ०सेन्या तु सु० ।
 १८ क ०नौ । वृषदे० ।

‘अश्वप्रोबोऽश्वबाहुश्च सुपाद्वंकगवेपणौ। अरिष्टनेमिश्च सुता धर्मो धर्मभूदेव च॥५७॥
सुबाहुर्वहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ। इमा मिथ्याभिज्ञस्ति य कृष्णस्य समुदाहृतम्॥५८॥
वेद मिथ्याभिज्ञापास्त न स्पृशन्ति कदाचन
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्यमन्तकप्रत्यानयननिरूपण नाम षोडशोऽध्याय ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

स्यमन्तकोपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तकम्। ददावहारयद्वभ्रभोजेन शतघनवान्॥१॥
सदा हि प्राययामास सत्यभामामनिन्दिताम्। अक्रूरोऽतरमन्विष्य मणिं च व स्यमन्तकम्॥२॥
सत्राजित ततो हत्वा शतघनवा महाबलः। रात्रौ त मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्॥३॥
अक्रूस्तु तदा विप्राः रत्नमादाय चोत्तमम्। समय कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽह त्वयेत्युत॥४॥
‘वयमन्यूत्प्रपत्स्याम कृष्णेन’ इवा ‘प्रघर्षितम्। ममाद्य द्वारका सर्व्वा वशे तिष्ठत्यसशयम्॥५॥
हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा’ मनस्विनी। प्रययौ रथमाहूह नगर वारणावतम्॥६॥

अश्वबाहु सुपाद्वक, गवेपण घम घमभूत् सुबाहु और बहुबाहु पुत्र उत्पन्न हुए। उसके श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो बेटायों भी थीं॥५६ ५७॥ कृष्ण क इस मिथ्यापवाद की वया को जो जानता है, उसे मिथ्यापवाद कभी नहीं लगता॥५८ ५९॥

श्री ब्रह्मपुराण मे स्यमन्तक प्रत्यानयन निरूपण नामक सोलहवा अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

स्यमन्तक मणि की कथा

लोमहर्षण बोले—जिस स्यमन्तक मणि को कृष्ण न सत्राजित् को दिया, उसे भोजवत् शतघनवा ने चुरा लिया॥१॥ अश्वप्रोबोऽश्वबाहु आ अक्रूर सत्त्व अनिय सुदरी सत्यभामा से स्यमन्तक मणि क लिए प्रायना किया करता था॥२॥ एक रात महाबली शतघनवा न सत्राजित् को मारकर स्यमन्तक मणि लाकर अक्रूर को दे दिया॥३॥ विप्रवृन्द । उस उतम मणि को प्राप्त कर अक्रूर न शतघनवा से यह प्रतिज्ञा कराया कि अक्रूर व पास मणि है—यह रहस्य तुम निर्वर्तिते नहीं बतलाना॥४॥ यदि कृष्ण तुम्हारा कोई अनिष्ट करे तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे। आज सारी द्वारका मेरे अधीन है इसमे कोई सशय नहीं॥५॥ निदान सत्राजित् व वय से दुखी मनस्विना सत्यभामा रथ पर

१ छ ०श्वसेनोऽश्व०। २ क ०प्रा मणि मा०। ३ छ वय कृष्ण प्रप०। ४ क ०ण्य चत्वा। ५ क प्रघर्षति।
६ ग ०मा यन्स्वि०।

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतघन्वनं । भर्तुर्निषेधं वृत्तात् पादर्वस्याभूष्यवर्त्तयत् ॥७॥
पाण्डवानां च दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम् । शुल्पायै चापि पाण्डुनां न्यषोजयत् सात्यकिम् ॥८॥
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदन । पूर्वजं हलिनं धीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

हृत् प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतघन्वना । स्थमन्तवस्तु मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम् । स्थमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति ॥११॥

लोमहर्षण उवाच

ततः प्रववृत्ते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः । शतघन्वा ततोऽकूरं सर्व्वतोदिशमक्षत ॥१२॥
संरब्धो तावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनी । शशतोऽपि शापाद्वादिषयमकूरो नान्वपद्यत ॥१३॥
अपमाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयादितः । योजनानां शतं साग्रं हृदया प्रत्यपद्यत ॥१४॥
विह्वयता हृदया नाम शतयोजनगामिनी । भोजस्य चडवा विप्रा यया कृष्णमयोधयत् ॥१५॥
क्षीणा ज्वेन हृदयामध्वनः शतयोजने । दृष्ट्वा रथस्य रथां वृद्धिं शतघन्वानमद्वंदयत् ॥१६॥
ततस्तस्या हतापास्तु श्रमात् खेदाच्च भो द्विजा । खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममयाब्रवीत् ॥१७॥

चडकर वारणावत नामक नगर को चली गई ॥६॥ सत्यभामा शतघन्वा का संपूर्ण वृत्तान्त अपने स्वामी से निवेदन कर उन्हीं के पास खड़ी होकर राने लगी ॥७॥ श्री कृष्ण ने दग्ध पाण्डवों को जलाजलि देकर उनके अस्थि-संस्कार के लिए सात्यकि को नियुक्त कर दिया और फिर द्वारका पहुँच कर अपने ज्येष्ठ भाई बलभद्र से कहा ॥८-९॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रभो ! सिंह ने प्रसेन की मार डाली और शतघन्वा ने सत्राजित को । अब स्थमन्तक मणि का स्वामी मैं हूँ ॥१०॥ इसलिए हम लोग शीघ्र रथाखड हार शतघन्वा को मारकर स्थमन्तक मणि ग्रहण कर ॥११॥

लोमहर्षण बोले—हृदयवन्द, डूबने बाद कृष्ण और शतघन्वा में घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया । शतघन्वा चारों तरफ अकूर को ताकन लगा ॥१२॥ परन्तु जब युद्ध में प्रवृत्त शतघन्वा और कृष्ण को देखकर सामर्थ्यवान् होते हुए भी अकूर शाप के कारण शतघन्वा की सहायता करने के लिए न आया तब भय से पीड़ित शतघन्वा ने भागने का विचार किया ॥१३॥ विप्रमण ! तब हृदया चार सौ कोस दूर चली गई ॥१४॥ भोज की हृदया नाम से विह्वलत पीड़ी सौ योजन तक चलन वाली थी जिस पर सवार होकर शतघन्वा कृष्ण से युद्ध कर रहा था ॥१५॥ परन्तु चार सौ कोस पहुँचने पर हृदया का वेग क्षीण हो गया । तब अपने रथ को आगे बढ़ाकर श्रीकृष्ण शतघन्वा को पीड़ित करने लगे ॥१६॥ पश्चात् अथर्व ऋषि के कारण हृदया ने प्राणपक्षे उड़ गये । तब कृष्ण ने राम से कहा ॥१७॥

श्रीकृष्ण उवाच

निष्ठेह त्वं महाबाहो वृष्टवोषा ह्या मया । पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्वमन्तकम् ॥१८॥
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमव्युतः । मिथिलामभितो विप्रा जघान परमस्त्रिवित् ॥१९॥
स्वमन्तकं च नापश्यद्वत्वा भोजं महाबलम् । निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं भणिं देहीति लाङ्गली ॥२०॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो ख्याम्बितः । धिक्शब्दपूर्वमसकृत् प्रत्युवाच जनाद्दन्तम् ॥२१॥

बलराम उवाच

भ्रातृत्वान्मर्थयाम्येय स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् । कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२॥
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्वनः । सर्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां धरः । नानारूपान् कृतुं सध्वानाजह्वार निरगेलान् ॥२४॥
दीक्षामयं स कवचं रक्षायं प्रविवेश ह । स्वमन्तककृते प्राज्ञो गान्धोमुत्रो महायशः ॥२५॥
अय रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च । पण्डितं वर्याणि धर्म्मार्त्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६॥
अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः । बह्वृषदक्षिणाः सध्वं सर्वकामप्रदायिनः ॥२७॥
अय दुर्योधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः । गदाशिक्षा ततो दिव्या बलदेवादवाप्तवान् ॥२८॥
सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः । अनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२९॥
अक्रूरश्चान्यकैः सार्द्धमायातः गुरुवर्षभः । हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहवधू महाबल ॥३०॥

श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो! आप यही रहिये, घोड़ी नष्ट हो चुकी है, अब मैं पैदल ही जाकर मणिरत्न स्वमन्तक को ले आऊँगा ॥१८॥ तब परमबलवान् कृष्ण ने पैदल जाकर मिथिलापुरी के पास शतधन्वा को मार पर महाबली भोज के मारने पर भी स्वमन्तक मणि नहीं मिली । कृष्ण के लौटने पर बलराम ने उनसे मणि मांगी डाला ॥१९॥ ॥२०॥ उन्होंने जवाब दिया कि मिली ही नहीं। यह सुन बलराम क्रुद्ध होकर कृष्ण को बार-बार धिक्कारने लगे ॥२१॥

बलराम ने कहा—भानु-रनेह के कारण मैं तुम्हारा यह अपराध क्षमा कर रहा हूँ । अच्छा, तुम्हारा बल्याण हो, मैं जाता हूँ । मुझे न तो द्वारका से, न तुमसे, न वृष्णियो से ही कोई कार्य है ॥२२॥ तब शत्रु-नाशन राम ने मिथिलापुरी में प्रवेश किया । मिथिलापति ने अनेक उग्रशूरो से राम की पूजा की ॥२३॥ इसी समय बुद्धिमानों ने श्रेष्ठ अनूर ने नाना प्रकार के यज्ञ विधे और स्वमन्तक की रक्षा के निमित्त दीक्षामय कवच भी धारण किया ॥२४॥ स्वमन्तक के लिए उस महायशस्वी तथा बुद्धिमान् गान्धी-पुत्र अनूर ने सठ वर्षों तक अनेक प्रकार के रत्न तथा धन यज्ञों में लगाये ॥२५-२६॥ उस महात्मा के बहुत अन्न और दक्षिणा वाले तथा सब कामनाओं को देने वाले वे यज्ञ 'अनूर-यज्ञ' नाम से विख्यात हुए ॥२७॥ इसके बाद राजा दुर्योधन मिथिलापुरी जाकर बलदेव जी से दिव्य गदा-शिक्षा प्राप्त करने लग, ॥२८॥ कुछ दिनों बाद महारथी वृष्णि-अन्धक वशिष्ठों के साथ कृष्ण बलराम को द्वाटका लिवा लाये ॥२९॥ वन्तु सहित सोये सत्राजित् को मारकर

जातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितयास्तदा। अपयाते तदाकूरे नावर्षत्पाकशासन' ॥३१॥
 अनावृष्ट्या तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम्। तत प्रसादयामासुरकूरं कुकुरान्धकाः ॥३२॥
 पुनर्द्वारवर्तीं प्राप्ते तस्मिन् दानपती ततः। प्रववर्ष सहस्राक्षः कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३॥
 कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मतम्। अकूरः प्रददौ' धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमा ॥३४॥
 अयं विज्ञाय' योगेन कृष्णो 'बभ्रुगतं मणिम्। सभामध्यगतः' प्राह तमकूर जनार्दनः ॥३५॥

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्वलं 'मणिवरं' तव हस्तगतं विभो। तत्प्रयच्छ' च मानाहं मयि मानार्थकं कृया' ॥३६॥
 पण्डितवर्गते काले' यो' रोषोऽभून्ममानघ। स 'सख्योऽसकृत् प्राप्तस्ततः' कालात्ययो महान् ॥३७॥
 स ततः 'कृष्णवचनात् सध्वंसात्त्वतसंसदि। प्रददौ त मणिं बभ्रुवलेशेन 'महामति' ॥३८॥
 ततस्तमार्जवात् प्राप्तं च भ्रोहंस्तादरिन्दम। ददौ हृष्टमना' कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥३९॥
 स कृष्णहस्तान् सम्प्राप्त' मणिरत्नं स्थमन्तकम्। आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराज्ञाशुमानिव ॥४०॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवशकयन नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

महाबली अकूर भी अन्धक वशिषो ने' साथ आया ॥३०॥ उस समय बन्धु-भेद के भय से कृष्ण ने उसका परित्याग कर दिया। अकूर के चले जाने पर इन्द्र ने वर्षा नहीं की ॥३१॥ अनावृष्टि के कारण राष्ट्र विप्लव हो गया। तब कुकुर और अन्धक वंशवालों ने अकूर को प्रसन्न किया ॥३२॥ फिर उस दानपति के आने पर इन्द्र ने द्वारका में वृष्टि की ॥३३॥ मुनिवर। बुद्धिमान् अकूर ने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए स्वसा नामक अपनी सुशील कन्या उन्हें समर्पित कर दी ॥३४॥ पर योगबल से कृष्ण अकूर के पास मणि का जानकर सभा मध्य में स्थित अकूर से कहने लगे ॥३५॥

श्री कृष्ण ने कहा—हे शक्ति-भरत! आपके पास जो मणि रत्न है, उसे आप समर्पित कर दीजिये, मेरे साथ अनार्य वंश-व्यवहार न कीजिये ॥३६॥ हे निष्पाप! मणि सबधी जो मेरा श्रेय था, वह अब शान्त हो गया है, क्योंकि इस बीच महान् काल व्यतीत हो गया अर्थात् तब से आज तक साठ वर्ष बीत गये ॥३७॥ तब कृष्ण के वचन सुनकर महाबुद्धिमान् अकूर ने यादवों की सभा में प्रसन्नतापूर्वक मणि कृष्ण को लौटा दी ॥३८॥ अकूर के हाथ से मणि प्राप्त कर कृष्ण ने पुन बड़ी प्रसन्नता से मणि उसी को लौटा दी ॥३९॥ वह गान्दिनी-पुत्र (अकूर) स्थमन्तक मणि को अपने गले में बाँध कर सूर्य की तरह सुशोभित होने लगा ॥४०॥

श्री ब्रह्महंपुराण में चन्द्र-वश-कयन नामक सप्तहर्षा अध्याय समाप्त ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

तत्रादौ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । भारतानां च सर्वेषां पाथिवानां तथैव च ॥१॥
 देवानां दानवानां च गन्धर्व्योरगरक्षसाम् । दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥२॥
 अत्यद्भुतानि कर्म्मणि विक्रमा धर्म्मनिश्चयाः । विविधाश्च कथा दिव्या जन्म चागमनुत्तमम् ॥३॥
 सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्स्त्वया प्रोक्ता महामते । प्रजापतीनां सर्वेषां गुह्यकाप्सरसां तथा ॥४॥
 स्थावरं जङ्गमं सध्वंमुत्पन्नं विविधं जगत् । त्वया प्रोषतं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम् ॥५॥
 कथितं पुण्यफलदं पुराणं इलक्षणया गिरा । मनःकर्णसुखं सम्यक् प्रोणात्यमृतसम्मितम् ॥६॥
 इदानीं श्रोतुमिच्छामः सकलं मण्डलं भुवः । वक्तुमर्हसि सध्वं परं कीर्तूहलं हि नः ॥७॥
 यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः । वनानि सरितः पुण्यदेवादीनां महामते ॥८॥
 यत्प्रमाणमिदं सध्वं यदाधारं यदात्मकम् । संस्थानमस्य जगतो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥९॥

अध्याय १८

भुवन-कोश-द्वीप का वर्णन

मुनियो ने कहा—आपने भारतो (भरत-वन्दोत्पन्न) तथा सब राजाओ का महान् आख्यान एवम् देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, गुह्य और सिद्ध के अद्भुत कर्म, पराक्रम, धर्म निश्चय, अनेक प्रकार की दिव्य-कथा और उत्तम जन्म वर्णन किये ॥१-३॥ हे महाबुद्धिमान् ! प्रजापति का सृष्टि-वर्णन भी आपने अच्छी तरह किया। सब प्रजापतियो, गुह्यको, अप्सराओ, स्थावर, जंगम और विविध प्रकार के जगत् का चित्रण भी आपने सूब किया। हमने मन और कर्ण को सुख देने वाला, मनोहर तथा पुण्यफल प्रद अमृत तुल्य पुराण आपके मुख से श्रवण किया ॥४-६॥ अब पुन्वी के सम्पूर्ण मण्डल का वर्णन श्रवण करने की हमारी इच्छा है। हे सर्वज्ञ ! हमें बड़ी उत्कण्ठा है। अतः आप मुनाने की कृपा करें ॥७॥ हे महामते ! जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और पवित्र देवस्थल हैं एवम् जितने प्रमाण वाला, जिस आधार वाला और जिस स्वरूपवाला इस जगत् का सत्त्वात है, उन सबका यथोचित वर्णन करें ॥८-९॥

लोमहर्षण उवाच

मुनयः श्रूयतामेतत् 'संक्षेपाद्दत्तो मम। नास्य वर्षशतेनापि घवतुं 'शवयोऽतिविस्तरः॥१०॥
 'जम्बूद्वीपा द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विजाः। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥११॥
 एते द्वीपाः 'समुद्रंस्तु सप्तसप्तभिरावृताः। लवणेशुसुरीर्सापिर्दधिदुग्धजलैः 'समम्॥१२॥
 जम्बूद्वीपः 'समस्तानामेतेषां 'मध्यसंस्थितः। तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्राः मेरुः कनकपर्वतः॥१३॥
 चतुरशीतिसाहस्रैर्वर्षैर्नस्तस्य चोच्छ्रयः। प्रविष्टः षोडशाघस्तावद्वात्रिंशन्मूर्ध्नि' विस्तृतः॥१४॥
 मूले षोडशाहस्रैर्विस्तारस्तस्य सर्वतः। 'भूपद्मस्यास्य शंखोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः॥१५॥
 हिमवान् हेमकूटश्च निपथस्तस्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च श्रृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥१६॥
 लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये' दशहीनास्तथापरे। सहस्रद्वितयोच्छ्रयास्तावद्विस्तारिणश्च ते'॥१७॥
 भारतं प्रथमं वर्षं ततः किपुरुष स्मृतम्'। हरिवर्षं तथैवायन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः॥१८॥
 रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैव' तु हिरण्यम्। उत्तरा' कुरवश्चैव यथा वै भारत' तथा॥१९॥
 नवसाहस्रमेकैरुमेतेषां द्विजसत्तमाः। 'इलावृतं च तमध्ये' सौवर्णो मेरुश्छिन्नः॥२०॥
 मेरोरश्चतुर्दिशं तत्र' नवसाहस्रविस्तृतम्। इलावृतं 'महाभागाश्चत्वारश्चात्र पर्वताः॥२१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द । इसका विस्तृत वर्णन स. वर्ष में भी नहीं हो सकता, इसलिये संक्षेपतः सुन ॥१०॥
 द्विजगण ! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीप हैं ॥११॥ सातों द्वीप लवण, ईश्वर, मदिरा, घृत, दही दूध और जल के साथ सात समुद्रों से वेष्टित हैं ॥१२॥ इन सब द्वीपों के मध्य में जम्बूद्वीप स्थित है।
 द्विजवर ! उसके भी बीच में सुवर्ण का मेरुपर्वत है ॥१३॥ मेरुपर्वत चारोंसी हजार योजन ऊँचा सोलह हजार योजन पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट बर्तिस हजार योजन गस्तक (चाटी) में और सोलह हजार योजन मूल में विस्तृत है ॥१४॥ पृथ्वी रूपी कमल के लिये मेरु कर्णिका (कमल का छत्ता या पंखुरी) है। दक्षिण भाग में हिमवान्, हेमकूट और निपथ नामक पर्वत स्थित हैं। उत्तर में नील, श्वेत, और शृंगवान् नामक वर्ष पर्वत स्थित है ॥१५-१६॥ बीच में एक-एक लाख योजन विस्तृत दो पर्वत हैं तथा नब्बे हजार विस्तृत अन्य पर्वत भी हैं। उन पर्वतों की ऊँचाई तथा चौड़ाई दो हजार योजन की है ॥१७॥ द्विजगण ! मेरु से दक्षिण पहले भारतवर्ष तब किपुरुष वर्ष, हरिवर्ष तथा अन्य वर्ष भी स्थित हैं ॥१८॥ उत्तर की ओर रम्यक वर्ष, हिरण्यवर्ष और उत्तरवर्ष भारत ही की तरह स्थित है ॥१९॥ द्विजवर ! इलावृतवर्ष समेत ये सब नौ हजार योजन विस्तृत हैं। उनके बीच सुवर्ण का ऊँचा मेरु पर्वत स्थित है ॥२०॥ महाभाग ऋषिवृन्द ! मेरु के चारों तरफ नौ हजार योजन विस्तृत इलावृत वर्ष है। इलावृत वर्ष में मेरु तब फैले हुए दश हजार योजन विस्तृत चार पर्वत भी हैं ॥२१॥ मेरु से पूर्व मन्दरा-

१ ख ग ०पाद्गद० २ क शक्यते विस्तरम्। ज०। ३ ग जम्बूद्वी०। ४ क ख शाल्मलिश्चा०। ५ क ख. ०द्वैच सप्तमि परिवारिता। ६ क समा। ७ ग जम्बूद्वी०। ८ क फ समुद्राणाम०। ९ क ०ध्यत स्थि०। १० ख ०द्वाविंशमूर्ध्नि। ११ ख भूमिपदमस्य। १२ ग मध्यो। १३ क ये। १४ क द्विजा। १५ ख ग ०स्मिन्वानु द्वि०। १६ क. ०स्तास्तथा। १७ क ०वृत्तश्चतसू। १८ क ०ध्ये योजनानुविस्तृत। १९ क तज्व। २० क महद्वीप चत्वार०।

विष्कम्भा' वितता मेरोर्योजनापुतविस्तृताः। पूर्व्वेण मन्दरो' नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥२२॥
 विपुलः पश्चिमे पादर्व सुपादर्वश्चोत्तरे स्थितः। कदम्बस्तोपु जम्बूद्वीपे पितृलो वट एव च॥२३॥
 एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः। जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूनमहेतुद्विजोत्तमाः॥२४॥
 महागजप्रमाणानि जम्बास्तस्याः कलानि च। पतन्ति भूभूतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः॥२५॥
 रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै। सरित्प्रवर्तते सा च पीयते तत्रिवातिभिः॥२६॥
 न खेदो' न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः। तत्पानस्त्वस्थमनसां जनानां तत्र जायते॥२७॥
 तोरमुत्तद्रसं प्राप्य सुखवायुविशोपिता'। जम्बूनदायं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥२८॥
 भद्राश्वं' पूर्व्वतो मेरोः केतुमालञ्च' पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिधोऽस्तयोर्मध्ये' त्विलावृतम्॥२९॥
 वनं चैत्ररथं पूर्व्वे' दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं रसुतम्॥३०॥
 अरुणोदं' महाभद्रमसितोदं समानसम्। सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि 'सध्वंदा'॥३१॥
 शान्तवांश्चक्रकुञ्जश्च कुरुरो माल्यवास्तथा'। वैकट्यप्रमुखा मेरोः पूर्व्वतः 'केसराचला'॥३२॥
 त्रिकूटः 'शिशिरश्चैव पतङ्गी रुचकस्तथा। निपघादयो दक्षिणतस्तस्य केसरपर्व्वता'॥३३॥
 शिखिवासः' सर्वदूर्य्यः कपिलो गन्धमादनः। 'जानुधिप्रमुखास्तद्वत्' पश्चिमे केसराचलाः॥३४॥
 'मेरोरन्तरास्ते च 'जठरादिष्ववस्थिताः'। शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापराः॥३५॥

चल, दक्षिण गन्धमादन, पश्चिम विपुल और उत्तर सुपादर्व स्थित हैं ॥२२॥ इन चारो पर्वतो पर वदम्य, जामुन, पीपल और वट ग्यारह सी योजन लम्बी पताका के रूप में स्थित हैं ॥२३॥ द्विजवर' वही जामुन 'जम्बूद्वीप' नाम होने का कारण है। उस जामुन के विशाल हाथी के बराबर-बराबर फल पककर पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरते रहते हैं ॥२४-२५॥ उन फलों के रस से जम्बूनदी नाम से विख्यात नदी बह रही है, जिसका रस वहाँ के निवासी पीते हैं ॥२६॥ उस रस के पान करने वालों को खेद, दुर्गन्ध, बुढ़ापा, और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता ॥२७॥ वहाँ के उत्तम वायु में तट की मृत्तिका सूखकर जम्बूद नाम से ख्यात सुवर्ण बनकर सिद्धों का आभूषण होती है ॥२८॥ मुनिगण। मेघ से पूर्व भद्राश्वपर्व, पश्चिम केतुमालपर्व और इन दोनों के मध्य में इलावृतपर्व हैं ॥२९॥ पूरव में चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दन नामक वन हैं ॥३०॥ अरुणाद, महाभद्र, असितोद और मानस नामक चार देव-भोग्य चार खरोवर हैं ॥३१॥ शान्तवान्, चक्रकुञ्ज, कुरुरा, माल्यवान् और वैकट्य नामक चैत्र पर्वत मेघ के पूर्व में स्थित हैं ॥३२॥ त्रिकूट, शिशिर, पतंग, च और निपघ नामक केसरपर्वत दक्षिण में स्थित हैं ॥३३॥ शिखिवास, सर्वदूर्य, कपिल, गन्धमादन और जानुधि नामक चैत्र पर्वत पश्चिम में स्थित हैं। शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कालञ्जर नामक केसरपर्वत उत्तर में स्थित हैं ॥३४-३५॥

१क ०म्भारविता। २ख ०रो मेरोरंशितः। ३क जम्बूद्वीप। ४क सर्वशः। ५क स स्थेदी।
 ६क नराणा। ७स ०पितम्। जा०। ८क स ०द्राश्व पू०। ९क स ०मालरच प०। १०क ०मध्य
 इला०। ११क पूर्व। १२क ०भद्र शुचितीय स०। ग ०भद्र सपीतो०। १३क ०दा। दशितानक कुरुरा च
 कुपी मा०। ग ०दा। शीताममच कुमुजश्च कुवरी। १४क ०था। पानेन्दुप्र०। १५क चैत्रारथला।
 १६क शिखर०। १७क वासा स०। १८क जारधि०। १९क ०नविप्र०। २०क ०भ्रान्तरे श्रेष्ठज०।
 २१क ०रादी व्यवस्थि०। २२क ०द्वस्त्योऽथ।

कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः । चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी ॥३६॥
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः कथिता दिवि । तस्यां समन्तदक्षाष्टी दिशासु विविदिशासु च ॥३७॥
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः । प्रवराः पुरः । विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयन्तीन्दुमण्डलम् ॥३८॥
समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्था गङ्गा पतति वै दिवि । सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्था प्रत्यपद्यत ॥३९॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् । पूर्व्वेण सीता शैलाच्च शैलं घान्त्यन्तरिक्षगाः ॥४०॥
ततश्च पूर्व्ववर्षेण भद्राश्वेनेति सार्णवम् । तथैवालकनन्दा च दक्षिणेनेत्य भारतम् ॥४१॥
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः । चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सक्लास्ततः ॥४२॥
पश्चिम केतुमालाख्यं वर्षमन्वेति सार्णवम् । भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तराश्च तथा कुरुन् ॥४३॥
अतीत्योत्तरमग्न्यधिं समम्येति द्विजोत्तमा । आनीलनिषधायामो माल्यवद्गन्धमादनौ ॥४४॥
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः । भारताः केतुमालाश्च भद्राश्च कुरवस्तथा ॥४५॥
पद्माणि लोकांस्तस्य मर्यादाशैलवाहचतः । जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्व्वतावभौ ॥४६॥
तो दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतो । गन्धमादनकैलासौ पूर्व्वपश्चात् तावभौ ॥४७॥
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्ध्वस्थितौ । निषध पारियात्रश्च मर्यादापर्व्वतावभौ ॥४८॥
तो दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतो । मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्व्वौ तथा स्थितौ ॥४९॥

३५३॥ १३प्रवर । भर पर ब्रह्मा की चौदह हजार योजन विस्तृत महापुरी स्थित है ॥३६॥ उसके चारो ओर दिशाओं और कोनों में इन्द्र आदि लोकपालों की आठ नगरियाँ प्रख्यात हैं ॥३७॥ विष्णु के पैर से समुद्रमूल आकाश-गंगा चन्द्र-मण्डल को प्लावित करती हुई ब्रह्मा की नगरी के चारो तरफ़ गिरती है ॥३८॥ वहाँ से गंगा चार दिशाओं में क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु, और भद्रा नाम से निकलती है ॥३९॥ सीता नामक आकाश-गंगा पर्वत से पूर्व की ओर जालर पर्वत में ही मिलती है । फिर वही गंगा भद्राश्व नामक वर्ष-पर्वत से मिलकर समुद्र में मिल जाती है ॥४०॥ द्विजगणधेनु । उसी तरह अलकनन्दा सात भागा में बँटकर दक्षिण की ओर भारतखण्ड होते हुए समुद्र में मिल जाती है ॥४१॥ चक्षु नामक गंगा पश्चिम दिशा के सब पर्वतों का अतिव्रमण कर केतुमाल नामक वर्ष-पर्वत होकर समुद्र में मिल जाती है ॥४२॥ भद्रा नामक आकाशगंगा उत्तर के पर्वतों तथा कुरु देश का अतिव्रमण कर उत्तर समुद्र में मिल जाती है ॥४३॥ द्विजवर । नील से निषध तक एक माल्यवान से गन्धमादन तक मध्यपर्वत के नीचे के आकार में स्थित है ॥४४॥ मर्यादापर्वत के बाहर लोकपर्वत के भारन, केतुमाल, भद्राश्व और कुरु पर्व हैं । जठर और देवकूट मर्यादा-पर्वत हैं ॥४५॥ ये दोनों दक्षिण-उत्तर में नील और निषध तक विस्तृत हैं । पूर्व-पश्चिम की ओर गन्धमादन और कैलाश अस्ती योजन लम्बे तथा समुद्र तक विस्तृत हैं ॥४६॥ निषध और पारियात्र दोनों मर्यादा-पर्वत कहलाते हैं । ये दोनों भी दक्षिण-उत्तर में नील-निषध तक विस्तृत हैं तथा मेरु के पश्चिमदिग्भाग में वे दाना पूर्व की तरह ही अवस्थित हैं ॥४७॥ त्रिशुग और

१ ग प्रथिता । २ दिव । ३ ग ० गहमोलाच्छीनाल से० । ४ ग ० न्यागि द० । ५ ग. मतामने ।

६ ग ० वषपय । ७ ग तवरो । ८ ग ० दयायता० । ९ ग ० न्तव्यय० ।

त्रिशृङ्गो जाह्नविदध्व उत्तरो । वर्षपर्वन्तो । पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ ॥५०॥
 इत्येते हि मया प्रोक्ता मर्यादापर्वन्ता द्विजाः । जठरावस्थिता मेरोर्येषा द्वौ द्वौ चतुर्विंशम् ॥५१॥
 मेरोश्चतुर्विंश ये तु प्रोक्ताः कैसरपर्वन्ताः । सीतान्ताद्या द्विजारस्तेषामतीव हि मनोहराः ॥५२॥
 शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः । सुरभ्याणि तथा ताम् काननानि पुराणि च ॥५३॥
 लक्ष्मीविष्णवग्निसूर्य्येन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः । तास्वायतनवर्षाणि जुष्टानि नरकिन्नरैः ॥५४॥
 गन्धर्व्वयक्षरक्षासि तथा दंतैयदानवाः । क्रोडन्ति ताम् रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम् ॥५५॥
 भोमा ह्येते स्मृताः सर्गा धर्मिणामालया द्विजाः । नन्तेषु पापकर्तारो यान्ति जन्मशतरपि ॥५६॥
 भद्राश्वे भगवान् विष्णुरास्ते ह्यशिरा द्विजाः । वाराहः केतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक् ॥५७॥
 मत्सररूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते सनातनः । विश्वरूपेण सर्व्वत्र सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ॥५८॥
 सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजा आस्तेऽखिलत्मकः । यानि किमुपपादानि धर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तमाः ॥५९॥
 न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुब्धयादिकम् । सुस्थाः प्रजा निरासङ्काः सर्व्वदुःखविवर्जिताः ॥६०॥
 दशद्वादशवर्षाणा सहस्राणि स्थिरायुषः । नन्तेषु भोमान्यन्यानि क्षुत्पिपासादि नो द्विजः ॥६१॥

जाह्नवि नामक वर्षपर्वन्त पूर्व-पश्चिम की ओर विस्तृत होकर समुद्र तक चला गया है ॥५०॥ द्विजगण । उन मर्यादा-पर्वन्तो के बारे में मैंने बतला दिया, जो दो-दो करके मेरु पर्वन्त की चारों दिशाओं में स्थित हैं ॥५१॥ मेरु के चारों तरफ स्थित कैसर पर्वन्त के विषय में भी मैंने बतला दिया, जिनके आदि-अन्त शीतल एवं मनोहर हैं ॥५२॥ विप्रवृन्द । उन पर्वन्तों के मध्य में सिद्ध-चारणों से सेवित अन्तर द्रोणियाँ (पर्वन्तों के बीच की भूमि) हैं । जहाँ लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं के रमणीय वन तथा नगर हैं ॥५३॥ मुनिवर । नर किन्नरों से मुनेष्वेत उन उत्तम स्थानों में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव निवास करते हुए उन रमणीय पर्वन्त-श्रेणियाँ में दिनरात शोका किया करते हैं ॥५४-५५॥ द्विजगण । धर्मिणियों के लिए उस भूमि के गृह स्वर्गीय गृह हैं । पापात्मा लोग सैकड़ों जन्म के बाद भी वहाँ नहीं जा सकते ॥५६॥ विप्रवर । भद्राश्ववर्ष में ह्यशिरा तथा केतु-माल में वाराह नाम से प्रसिद्ध विष्णु रहते हैं । भारता में कूर्म तथा मत्सररूपधारी विष्णु रहते हैं । कुरु देशों में सनातन गोविन्द वास करते हैं ॥५७॥ सर्व्वेश्वर हरि विश्वरूप से सब जगह रहते हैं ॥५८॥ विप्रधर्म । अखिलात्मा विष्णु सब के आधार हैं । किमुप आदि आठ वर्ष जो पहले कहे गये हैं, उनमें शोक, परिश्रम, उद्वेग और क्षुचा-भय का लेना नहीं है ॥५९॥ वहाँ की प्रजा स्वस्थ, अतिकरुणित और सब प्रकार के दुःखों से विवर्जित रहती है ॥६०॥ वहाँ मनुष्यों की आयु दस हजार अथवा बारह हजार वर्षों की होती है । विप्रवृन्द । यहाँ के लोगों की तरह उन्हें भूख-प्यास नहीं सताती ॥६१॥ उन स्थानों में वृत्तयुग, श्रिता आदि

१ख च । २ख ०ठराद्यास्थि० । ३क व्यवस्थितौ । ४ख नेशर० । ५क ०ता । सीता० । ग० ०ता । पीता० । ६ख ०नाभुत्तद्रो० । ७क ०नि च सर्वन्त । ल० । ८क तान्याय० । ९क ०नमु-
 स्थानि जु० । १०क ०र । अप्सरीय० । ११क ०या गन्धर्वकिन्नर । श्री० । १२ग वाराह । १३ख ०य ।
 न तेषु पर्वन्ते देवो भोमान्यग्मासि तेषु च । कु० ।

कृतत्रेतादिका नव तेषु स्थानेषु कल्पना । सर्व्वेध्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलीचला
नद्यश्च शतशस्तेभ्य प्रसूता या द्विजोत्तमा ।

॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णनं नामाष्टादशोऽध्याय ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे । वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सतति ॥१॥
नवयोऽनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमा । कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥२॥
महेन्द्रो मलय सह्यः शुक्तिमान्क्षपर्व्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुसुपर्व्वता ॥३॥
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयाति वै । तिम्यंश्च नरक चापि यात्यतः पुरयाद्विजा ॥४॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चाते क्वच गच्छति । न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते ॥५॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदात्रिशामयः । इन्द्रद्वीपः कसेतुमास्तान्नवर्णो गभस्तिमान् ॥६॥

युगो की कल्पना नहीं है। विप्रवच । इन सब वर्षों में भी सात सात पवत स्थित हैं और उन पवतों से सैकड़ों नदियाँ निकलती हैं ॥६२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में भुवन कोश-द्वीप वर्णन नामक अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय १९

जम्बूद्वीप का वर्णन

समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण भारतवर्ष है जहाँ की सन्तति भारती नाम से पुकारी जाती है ॥१॥ विप्रवच । भारतवर्ष नाम हजार योजन विस्तृत है । स्वर्ग और मास के इच्छुकों के लिए यह वर्ष भूमि है ॥२॥ यहाँ पर महेन्द्र मलय सह्य शुक्तिमान् क्षुद्र विन्ध्य और पारियात्र—ये सात पर्व्वत हैं ॥३॥ यहाँ के मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं । यहाँ से पुरण पनायोनि में और नरक में भी जात हैं ॥४॥ यहाँ से मध्यमाल मस्वर्ग और अन्तराल में मोक्ष की भी प्राप्ति करते हैं । मनुष्यों के दिन इससे अतिरिक्त कर्मभूमि बड़ी नहीं

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वय वारणः । अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंबृतः ॥७॥
 योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् । पूर्वै किरातास्तिष्ठन्ति पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥८॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः । इज्यायुद्धवणिज्याद्युत्तिमन्तो ध्यवस्थिताः ॥९॥
 शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिःसृताः । वेदस्मृतिमुखान्छाच्याः पारियात्रोद्भवा मुने ॥१०॥
 नर्मदासुरमाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः । तापीपयोष्णीनिर्विन्ध्याकावेरोप्रमुखा नदीः ॥११॥
 ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः । गोदावरोभीमरथीकृष्णावेण्यादिकास्तथा ॥१२॥
 सह्यापादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः । कृतमालातार्पणीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥१३॥
 त्रिसांध्यऋषिकुल्याद्याः महेंद्रप्रभवाः स्मृताः । ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमन्पादसम्भवाः ॥१४॥
 आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यम्यास्तु सहस्रशः । तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः ॥१५॥
 पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः । प्रोण्डा कलिङ्गा मगधा दक्षिणात्याश्च सर्वशः ॥१६॥
 तयापरान्त्याः सोराष्ट्रा शूद्राभीरास्तयाऽर्बुदाः । माहका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ॥१७॥
 सोवीराः सैन्धवापन्नाः शाल्वा शाकलवासिनः । मद्रासोमास्तयाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा ॥१८॥
 आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा । समोपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः ॥१९॥
 वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने । कृतं त्रेता द्वापर च कलिश्चाप्यत्र न ववचित् ॥२०॥
 तपस्तप्यन्ति यतयो जुह्वते चात्र यज्विनः । दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्यमादरात् ॥२१॥

है । इस भारतवर्ष के नौ भेद हैं—इन्द्रद्वीप, कसेतुमान्, तापस्पर्ण, समस्तिमान् नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारण आर स्वयं नवा द्वीप भारत है, जो समुद्रों से घिरा हुआ है ॥५॥ दक्षिण उत्तर की तरफ यह एक हजार योजन विस्तृत है । इसके पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन और मध्य में यज्ञ, गुड, व्यापार आर सेवा वृत्ति वाले क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं ॥८-९॥ शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालय से निकली हैं । तथा मुने । वेद, स्मृति प्रधान अन्य नदियाँ पारियात्र से उत्पन्न हुई हैं ॥१०॥ नर्मदा, सुरमा आदि नदियाँ विन्ध्य से उद्भूत हुई हैं । तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, कावेरी आदि नदियाँ ऋक्षपर्वत से निकली हैं जो पापी का हरण करती हैं ॥११॥ पाप भय की मिटान वाली गोदावरी, भीमरथी कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्या पर्वत में उत्पन्न हुई हैं ॥१२॥ कृतमाला, तार्पणी आदि नदियाँ मलयाल से निकली हैं ॥१३॥ त्रिसांध्य, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महेंद्र पर्वत से उत्पन्न हैं । ऋषिकुल्या-कुमारा आदि नदियाँ शुक्तिपर्वत से समुत् । इन नदियों की हजारों उपनदियाँ हैं ॥१४॥ कुरु, पञ्चाल, मध्यदेश, पूर्वदेश कामरूप, पण्ड्र, कलिङ्ग, मगध, दक्षिणदेश, परान्त्य, सोराष्ट्र, शूद्र, आभार अर्बुद, माहक, मालव, पारियात्र, सोवीर, सैन्धव शाल्व, शाकल, मद्र, राम, अम्बष्ठ, पारसीक (फारस) आदि देश निवासी जन इन नदियों के जल पीते हैं ॥१५-१८॥ महामुन । इस भारतवर्ष में महामुन्यवान् हृष्ट-पुष्ट मनुष्य युगों से बस रहे हैं । सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलियुग भारतवर्ष में अतिरिक्त बड़ी नदी होते ॥१९-२०॥ यहाँ मुनि लोग तपस्या करते हैं, यज्ञकर्त्ता लोग याग करते हैं और परलोक के लिए यथामूर्तक दान दिया करते हैं ॥२१॥ जम्बूद्वीप में मनुष्य सदा विष्णु-यज्ञ करते हैं । यहाँ यज्ञों द्वारा यज्ञमय

पूरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते। यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥२२॥
 अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने। यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ॥२३॥
 अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम। कदाचित्कलभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥२४॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
 धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
 स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते, , ,
 भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः ॥२५॥
 कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि, , ,
 संन्यस्य विष्णो परमात्मरूपे।
 अवाप्य तां कर्ममहोमनन्ते, ,
 तस्मिँल्लयं ये स्वमलाः प्रयान्ति ॥२६॥
 जानीम नो तत्तु वयं विलीने,
 स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम्।
 प्राप्स्यन्ति धन्याः खलु ते मनुष्यः,
 ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः ॥२७॥

नववर्षञ्च भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया। लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं द्विजाः ॥२८॥
 जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः। भो द्विजा वलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्वहः ॥२९॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे जम्बूद्वीपनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विष्णु की आराधना की जाती है और अन्य द्वीपों में अन्य प्रकार से यजन होता है ॥२२॥ महामुनि ! इस जम्बू-द्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, यह (भारतभूमि) कर्मभूमि है और दूसरे (अथं या द्वीप) भोग-भूमि हैं ॥२३॥ यहाँ पर हजारों जन्मों बाद कदाचित् जीव पुण्य-संचय के बल में मनुष्य शरीर प्राप्त करता है ॥२४॥ भारत की महिमा गाते हुए देवगण, कहते हैं—'वे मनुष्य धन्य हैं जो स्वर्ग और माला की प्राप्ति के कारणभूत भारत-भूमि पर जन्म लेते हैं और उस कर्म-भूमि को प्राप्त कर निर्मल कर्मों तथा उनके अव्ययित फलों को परमात्मरूप विष्णु को समर्पित करने निर्मल बन जाते हैं और फिर अन्त में लय हो जाते हैं ॥२५-२६॥ हम यह नहीं जानते कि स्वर्गप्रद कर्मों के (विष्णु से) विलीन हो जाने पर जीव शरीर का बंधन प्राप्त करते हैं, किन्तु वे मनुष्य धन्य हैं जो भारत में इन्द्रियों से अत्यन्त हीन (अर्थात् अपय) नहीं हैं ॥२७॥ विप्रवृन्द ! नीं शय्य सहित जम्बू द्वीप तथा उससे लक्षयोजन परिमित विस्तार का भी वर्णन मैंने संक्षेप कर दिया। इस जम्बू-द्वीप को लक्ष यात्रण विष्णु क्षीर समुद्र घेर कर बलयाकार में स्थित है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जम्बूद्वीप-निरूपण नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

'क्षीरोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिधेयितः । संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥१॥
'जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रतन्मितः । स एव द्विगुणो विप्राः प्लक्षद्वीपेऽप्युदाहृतः ॥२॥
सप्त भेषातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै । श्रेष्ठः शान्तमयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम् ॥३॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च । ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥४॥
पूर्वं शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखं तथा । आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥५॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपञ्चमताः । सप्तैव तेषां नामानि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥६॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा । सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥७॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघा । दसति देवगणध्वंसहिताः सहितं प्रजाः ॥८॥
तेषु पुण्या जनपदा वीरा न भ्रियते जनः । नाघयो व्याघयो वापि सर्वकालसुखं हि तत् ॥९॥
तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणाम्बु समुद्रगाः । नामतस्तथाः प्रवक्ष्यामि धृताः पापं हरन्ति याः ॥१०॥
अनुत्पत्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः । अमृता सुकृता चैव सप्तैतैस्तत्र निम्नगाः ॥११॥

अध्याय २०

जम्बू-द्वीप का वर्णन

लोमहर्षण बोले—जैसे क्षीर समुद्र से जम्बूद्वीप वेष्टित है वैसे ही प्लक्ष-द्वीप क्षार-समुद्र से वेष्टित है ॥१॥ विप्रवृन्द ! जम्बूद्वीप लक्ष-योजन-विस्तृत है और प्लक्ष-द्वीप उससे द्विगुण विस्तृत है ॥२॥ प्लक्ष-द्वीप के स्वामी भेषातिथि के सात पुत्र हैं । उनमें सबसे ज्येष्ठ शान्तमय है और उससे छोटे शिशिर, सुखादय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव हैं । ये सब प्लक्ष-द्वीप के अधिपति हैं तथा मर्यादापर्वत कहलाते हैं । मुनिवर ! इनके अतिरिक्त दूसरे वर्षपर्वत भी सात ही हैं । उनके नाम मुनि ॥३-६॥ गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना, और वैभ्राज ॥७॥ पुण्यलोक मुनिवृन्द ! इन रमणीय वर्षपर्वतों पर प्रजासहित देव-गणध्वंस करते हैं ॥८॥ वहाँ स्थित देश पवित्र तथा बौर है, वहाँ के निवासी अमर हैं । उन्हें आचि-व्याधि का बिजुल डर नहीं है । वहाँ सदा सुख ही सुख का साम्राज्य रहता है ॥९॥ उन पर्वतों से निचल तथा समुद्र में मिलने वाली अनुत्पत्ता, शिखा, विप्राशा, त्रिदिवा, अमृता, सुकृता और क्रमु—ये पापनाशिनी सात नदियाँ हैं ॥१०-११॥

१ क्ष क्षीरोदेन । २ क जम्बूस० । ३ ख ०शा निवे० । ४ क ग जम्बूद्वी० । ५ ख ०भेषाति० । ६ ख सप्त । ७ क ०दा विरादुद्भिपते । ख ० दाविचराधिय० । ८ ख ०काल सु० । ९ ग प्रसृता ।

एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथिता द्विजाः । क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः ॥१२॥
 ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते । अवसर्पिणी नदी तेषां न चैवोत्सर्पिणी द्विजा ॥१३॥
 न तेष्वस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तषु । त्रेतायुगसमः कालः सत्त्वदेव द्विजोत्तमाः ॥१४॥
 प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै । पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामया ॥१५॥
 धर्मश्चतुर्विधवस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः । वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् बुधा प्रवदामि वः ॥१६॥
 आर्यकाः कुरुवश्चैव विविशा भाविनश्च ये । विप्रक्षत्रियवैश्यास्तैश्चैव मुनिसत्तमाः ॥१७॥
 जम्बूवृक्षप्रमाणान्तु तन्मध्ये सुमहातरुः । प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 इज्यते तत्र भगवांस्तैर्वर्णैरायंकादिभिः । सोमरूपी जगत्स्रष्टा सत्त्वः सत्त्वैश्वरो हरिः ॥१९॥
 प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः । तयैवैश्वरसोदेन परिषेपानुकारिणा ॥२०॥
 इत्येतद् वो मुनिश्रेष्ठाः प्लक्षद्वीप उदाहृत । सक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं तं निबोधत ॥२१॥
 शाल्मलस्यैश्वरो वीरो वपुष्मांस्तत्सुता द्विजाः । तेषान्तु नाम संज्ञानि सप्त दर्पाणि तानि वै ॥२२॥
 श्वेतोऽयं हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा । वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः ॥२३॥
 शाल्मलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेश्वरसोदकः । विस्ताराद्द्विगुणेनायं सत्त्वतः संवृतः स्थितः ॥२४॥

द्विजगण । प्रचान पर्वतो तथा नदियो के नाम तो मीने पिया दिये है । इनके अतिरिक्त हजारो क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं ॥१२॥ वहाँ के निवासी सदैव उन्हीं नदियों का जल ग्रहण पीते हैं । विप्रगण । उनकी नदियाँ घटती-बढ़ती नहीं हैं ॥१३॥ उन सात स्थानों में युगों की कल्पना भी नहीं है, बल्कि त्रेतायुग के समान काल वहाँ सदैव चलता है ॥१४॥ त्रिप्रबन्ध । प्लक्षद्वीप से लेकर जाव द्वीप तक में मनुष्य पाँच हजार वर्ष रोगरहित होकर जीते हैं ॥१५॥ वहाँ वर्णाश्रमविभाग के अनुसार चार प्रकार के धर्म प्रचलित हैं । वहाँ के चार वर्णों के धर्म में आपस घटलाता है ॥१६॥ मुनिवर । वहाँ जो आर्यक, कुरु, विविश्व और भावी हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और सूत्र हैं ॥१७॥ जम्बूद्वीप में जामुन का वृक्ष जितना बड़ा है उतना ही बड़ा पावर का वृक्ष प्लक्षद्वीप में है । इसी से इसका नाम प्लक्षद्वीप पड़ा ॥१८॥ द्विजश्रेष्ठा । वहाँ आर्यक आदि जाति के लोग जगत्स्रष्टा सर्वेश्वर सोमरूपी हरि के लिए याग करते हैं ॥१९॥ प्लक्षद्वीप के बराबर विस्तृत मण्डलाकार में दशु-समुद्र से प्लक्षद्वीप वेष्टित है ॥२०॥ महामुने । प्लक्षद्वीप का वर्णन करने के बाद अब मैं शाल्मलद्वीप का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ कृपया सुनें ॥२१॥ शाल्मलद्वीप का स्वामी, मरीट्पारी बर है । उसके पुत्रों के नाम से श्वेत, हरित, जीमूत, राहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ ये सात वर्णवर्ग प्रसिद्ध हैं ॥२२॥ शाल्मलद्वीप भी दशु-समुद्र से वेष्टित है और विस्तार में पहले द्वीप से द्विगुण है ॥२३॥ वहाँ भी सात नदियाँ और सात रत्नमयित

१ ग ०ते। आग० । २ ग, न तेषां वै न । ३ क स. निष्ठानि । ४ क ०रयश्चै० । ५ क विद्या भोजवि० ।
 ६ ग विद्यामा० । ७ ग ०वास्वैवर्ष्यो० । ८ ग जगद्धेष्ट । ९ ग ०ष्मास्तु तथादि० । १० ग ग ०स्तुतादि० ।
 ११ ग ०जामय० । १२ स ०प लोहित० । १३ स. ०तो हरित० । १४ ग ०स्तारा द्विगु० ।

तथापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोगिनः। वर्षाभिव्यञ्जकाराते'तु तथा सप्तैव निम्नगाः॥२५॥
 'बुभुक्षोऽन्नतदञ्च तृतीयस्तु बलहृजः। द्रोणो यत्र महोपध्यः स 'चतुर्थो महोपरः॥२६॥
 कटहस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा। ककुब्मान् पर्वतवरः सरिद्रामान्यतो' द्विजाः॥२७॥
 धोणो तोया वितृष्णा 'च चन्द्रा' शुक्रा विमोचनी। निवृत्तिः सप्तमो तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः॥२८॥
 श्वेतश्च लोहितश्चैव जीमूतं हरितं तथा। घट्टतं मानसञ्चैव सुप्रभं नाम सप्तमम्॥२९॥
 सप्ततानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ष्यं युतानि च। वर्षाश्च शात्मले ये च वसन्त्येषु द्विजोत्तमाः॥३०॥
 फलितश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक्। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः शूद्राश्चैव 'यजन्ति तम्॥३१॥
 भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्। वायुभूतं मखश्रेष्ठं यज्वानो' 'यत्संस्थितम्॥३२॥
 देवानामत्र साक्षिष्यमतीव सुमनोहरे। शात्मलश्च महावृक्षो' नाम निवृत्तिकारकः॥३३॥
 एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन' समावृतः। विस्ताराच्छात्मलेश्चैव समेन तु समन्ततः॥३४॥
 सुरोदक' परिवृतः कुशद्वीपेन सध्वतः। शात्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः॥३५॥
 ज्योतिष्मतः 'कुशद्वीपे ध्रुवश्च तस्य पुत्रकान्। उद्भिदो वेणुमाश्चैव 'स्वैरयो रम्यतो' धृतिः॥३६॥
 प्रभाकरोऽयं फलितस्तद्गाम्ना' वर्षपद्धतिः। तस्या वसन्ति मनुजं सह देतयेदानवाः॥३७॥
 तथैव देवगन्धर्वा यक्षकिम्बुधादयः। वर्षास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः॥३८॥

पर्वत हैं। उन पर्वता से वहाँ स्थित द्वीपों का बोध होता है॥२५॥ पहला पर्वत बुभुक्ष, दूसरा अन्नत, तीसरा कटहल, चौथा महोपधिया से युक्त द्रोण, पाँचवाँ कज, छठा महिष और सातवाँ पर्वतश्रेष्ठ ककुब्मान् है। चितवर । अब नदियाँ के नाम सुनिये—॥२६-२७॥ आर्षा, तोया, विनृष्णा, चन्द्रा शुक्रा, विमोचनी और निवृत्ति। ये सब नदियाँ पापनाशिनी हैं॥२८॥ श्वेत, लालित, जीमूत, हरित, घट्टत, मानस और सुप्रभ ये मान वर्ण (द्वीप) चार वर्गों में युक्त हैं॥२९॥ शात्मलद्वीप के त्रयसां कविल (भूरा) अरण (लाल) पीत और कृष्ण वर्ण वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सर्वात्म्या, अव्यय, धातुभूत एवं यज्ञ स्थित भगवान् विष्णु की आराधना करें वहाँ यज्ञों में करते हैं॥३०-३२॥ इस सुन्दर द्वीप में देवताओं का साक्षिष्य बना रहता है। महा-वृक्ष शात्मल (मेमर) के होतेसे इस द्वीप का नाम शात्मलद्वीप पड़ा॥३३॥ यह द्वीप मृगा-समुद्र में वेष्टित है और शात्मल वृक्ष यहाँ चला और फँसा हुआ है॥३४॥ मृग समुद्र में ही वेष्टित शात्मल द्वीप में द्विगुण विष्णुत कुशद्वीप है। कुशद्वीप का स्वामी ज्योतिष्मान् है। उद्भिद, वेणुमान्, स्वैरयो, रम्यतो, धृति, प्रभाकर और कविल नाम के द्वीप उसके पुत्र रूप में विख्यात हैं॥३५-३६॥ उन वर्गों में मनुष्य, दैत्य, दानव, देव, गन्धर्व, वन, विष्णुगण आदि बना करते हैं॥३७॥ वहाँ मौं चातुर्वर्ष्य-व्यवस्था है। धृष्ट द्विज । वर्णों के निवर्तन, दर्मा, नृप्पी,

१ क म • शात्मलतः० २ क बुभुक्षा कानरा चैव ३ क चतुर्थो ४ क • मानि माद्रिः० ५ क म • आ ।
 पात्रिः० ६ म विनृष्णा चन्द्रा ७ क निरया । ८ म चन्द्रा । ९ म म • रम्यतोः । १० क
 • रम्यतोः । ११ क नातानि० १२ म • मयुत्तमका० १३ क पुत्रादि । १४ म • मयुत्तमकादि० १५ म
 वेणुमाश्चैव विष्णुतः० १६ म मुरयो । १७ क • रम्यतोः । १८ म रम्यतोः ।

'दमिनः शुष्मिणः' स्नेहा मान्दहाश्च द्विजोत्तमाः । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥३९॥
 यथोक्तवर्त्मकत्वात् 'स्वाधिकारक्षयाय ते । तत्र ते तु कुशद्वीपे ब्रह्मरूप जनादर्दनम् ॥४०॥
 'यजन्त क्षययन्त्युग्रमधिकारकल्पप्रदम्' । 'विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्टिर्मास्तथा ॥४१॥
 कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः । वर्षाचलास्तु सप्तं द्वीपे तत्र द्विजोत्तमाः ॥४२॥
 नद्यश्च सप्त तासां तु वश्ये' नामान्यनुक्रमात् । धृतपापा शिवा चैव पवित्रा' सम्मतिस्तथा ॥४३॥
 'विद्युदम्भो मही' चान्या सव्यपापहरास्त्विमा । अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥४४॥
 कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्समुत्तम् । तत्प्रमाणेन स द्वीपो धृतीदेन समावृतः ॥४५॥
 धृतोदश्च समुद्रो वै श्रोञ्चद्वीपेन संवृतः । श्रोञ्चद्वीपो मुनिश्रेष्ठाः श्रूयता चापरो महान् ॥४६॥
 कुशद्वीपस्य विस्तारद्विगुणो यस्य विस्तरः । श्रोञ्चद्वीपे द्युतिमतः 'पुत्राः सप्त महात्मनः ॥४७॥
 तन्नामानि च वर्षाणि तेषां' चक्रे महामनाः । "कुशगो" मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽपान्यकारकः ॥४८॥
 मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तं तत्सुता 'द्विजा' । तत्रापि देवगन्धर्वसंवेदिताः 'सुमनोरमाः ॥४९॥
 वर्षाचला मुनिश्रेष्ठास्तेषां नामानि भो द्विजा । श्रोञ्चद्वीपे धामनश्चैव तृतीयश्चान्यकारकः ॥५०॥
 देवप्रतो' धमश्चैव तथान्यः पुण्डरीकवान् । दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम् ॥५१॥
 "द्वीपाद्द्वीपेषु" ये" शैलास्तथा" द्वीपानि ते तथा । वर्षेप्येतेषु रम्येषु" वर्षशैलवरेषु" च ॥५२॥

स्नेह और मान्दह जगम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ॥३८-३९॥ अपने-अपने अधिकार की रक्षा के लिए ये चारों वर्ग स्वधिकृत बर्मा में लगे रहते हैं । कुशद्वीप में लगे अधिकार-क्षय प्रद ब्रह्मरूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते हैं ॥४०॥ बिम्बर' वही विद्रुम, हमशील, द्युतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेश, हरि, मन्दराचल—ये सात क्षय-वर्जन हैं ॥४१-४२॥ और धृतपापा, शिवा, पवित्रा यमनि, विद्युदम्भ, मही और कन्या—ये सात पापनाशिन । नदियाँ हैं ॥४३॥ इनके अतिरिक्त वहाँ और भी हजारों क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं । कुशद्वीप में कुशों का समूह होने से उसका नाम कुशद्वीप पड़ा है ॥४४॥ वह द्वीप अपनी ही परिधि के परिमाण के घृतममुद्र में वेष्टित है और घृत-ममुद्र श्रोञ्चद्वीप से आवृत है ॥४५॥ महामुन' अब महान् श्रोञ्चद्वीप का वर्णन मुनिये—श्रोञ्चद्वीप कुशद्वीप की अग्रेषा द्विगुण विस्तृत है ॥४६॥ उनमें द्युतिमान् के सात महात्मा पुत्र हैं । महामना द्युतिमान् में उसी के नामा पर धर्ती के वर्षों (द्वीपा) के भी नाम कुशग, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि रहे हैं । द्विजगण । वहाँ के मनोहर पर्वतीय द्वीपा पर देव, गन्धर्व और रहते हैं । श्रोञ्च, धामन, अन्धकारक, वज्रग, धम, पुण्डरीकवान और महावत दुन्दुभि—ये वहाँ के पर्वतीय द्वीप हैं, जो एक दूसरे से दूरे हैं ॥४७-५१॥ उन रमणीय वहाँ में तथा वर्षा-पर्वता पर देवगणा के साथ आनन्दरहित जनता वास करती है । बिम्बर !

१ क दमिनः । २ दमिनः । ३ न ० न गदा महेन्द्रच महामुने । ४ ० । ३ क ० न्यामिषाक्षत्रिया हि ते । ५ न पर्वतः । ५ न । ० मिषा ० । ६ क धिममा । ७ न श्रुतु । ८ क ० न्यामिषा तथा । ९ क ० न्याम ० । १० न्याम ० । १० न मरा । ११ क ग पुत्रात्मन्य म० । १२ क तेषु । १३ क न महेन्द्राणि । १४ क कुशवृद्धा वषवर तासां गन्धरा ० । १५ न ० न्यामसुन्दरीष पर्वतः । १६ न मुने । १७ न ० न्यामि गये ते मु० । १८ क देवपुत्रैः मरावेज्जगता ० । १९ क द्वीपानि ० । २० ग ० न्यामि ० । २१ न वै । २२ क ० न्यामया द्वीपेन ते । २३ क ० न्यामया द्वीपेन ते । २४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । २५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । २६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । २७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । २८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । २९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३० न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३१ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३२ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३३ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ३९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४० न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४१ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४२ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४३ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ४९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५० न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५१ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५२ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५३ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ५९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६० न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६१ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६२ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६३ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ६९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७० न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७१ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७२ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७३ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ७९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८० न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८१ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८२ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८३ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ८९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९० न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९१ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९२ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९३ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९४ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९५ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९६ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९७ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९८ न ० न्यामया द्वीपेन ते । ९९ न ० न्यामया द्वीपेन ते । १०० न ० न्यामया द्वीपेन ते ।

निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः । पुष्कला पुष्करा धन्यास्ते' ह्यथातश्च द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः । तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा याः पिबन्ति तु ते सदा ॥५४॥
 सप्त प्रधानाः शतशस्तयान्याः क्षुद्रनिम्नगाः । गौरी कुमुदती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ॥५५॥
 एयातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः । तत्रापि 'वर्णभगवान् पुष्कराष्टौर्जनाद्वतः ॥५६॥
 ध्यानयोगे रुरूप इज्यते यज्ञसन्निधौ । क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु ॥५७॥
 आवृतः सध्वतः क्रौञ्चद्वीपस्तुत्येन' मानतः । दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ॥५८॥
 क्रौञ्चद्वीपस्य 'विस्तारद्विगुणेन द्विजोत्तमाः । शाकद्वीपेऽवरस्यापि 'भद्वरस्य समुहात्मनः ॥५९॥
 सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः । जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो 'मनोरकः' ॥६०॥
 'कुसमोदश्च मोदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः । तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात् ॥६१॥
 तत्रापि पर्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारकाः । पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलधारस्तथापरः ॥६२॥
 तथा रैवतकः श्यामस्तथैवाम्भोगिरिद्विजाः । आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वन्तोत्तमः ॥६३॥
 शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्व्वसेवितः । 'यत्पञ्चवातसंस्पृशद्वाह्वादो जायते परः ॥६४॥
 तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्धसमन्विताः । निवसन्ति महात्मानो निरातङ्का निरामयाः ॥६५॥
 नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्व्वपापभयापहाः । सुकुमारी कुमारी च नर्मिनी 'रेणुका च या ॥६६॥
 इक्षुश्च' धेनुका' चैव गभस्ती सप्तमी तथा । 'अन्यास्तत्त्वयुतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥६७॥

वहाँ के निवासी पुष्कल, पुष्कर धन्य और ह्यात हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र वर्णों के समान हैं ॥५३॥ ५३ ॥
 उस द्वीप में गौरी, कुमुदती, सध्या, रात्रि, मनोजवा, ह्याति और पुण्डरीका ये सात प्रधान नदियाँ हैं । इनके
 अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ हैं । वहाँ के निवासी सदा उन्नी नदिया का जल पान करते हैं ॥५४॥ ५४ ॥ वहाँ
 भी पुष्कर आदि वर्ण रुरूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते हैं । क्रौञ्चद्वीप अपने बराबर विस्तृत दधि समुद्र से वेष्टित
 है ॥५५॥ ५५ ॥ द्विगुण । दधि समुद्र भी शाकद्वीप से आवृत है, जिसका विस्तार क्रौञ्चद्वीप की अपक्षा
 द्विगुण है ॥५६॥ ५६ ॥ शाकद्वीप के स्वामी महात्मा भव्य के सात ही पुत्र हैं जिनके नाम से जलद कुमार मुकु-
 मार, मनोरक, कुसमोद, मोदाकि और महाद्रुम ये सात वर्ष प्रसिद्ध हैं ॥५९॥ ५९ ॥ द्विगुण । शाकद्वीप में भी
 उदयगिरि, जलधार, रैवतक, श्याम, अम्भोगिरि, रमणीय आस्तिकेय और पर्वन्तोत्तम केसरी ये सात वर्षपर्वत
 हैं ॥६२॥ ६२ ॥ उस द्वीप में शाक का महावृक्ष सिद्ध-गन्धर्वों ने सुसज्जित है, जिसके पत्रों के 'वायु' के स्पर्श से मनुष्य
 अजन्मिन् हो जाता है ॥६४॥ ६४ ॥ उस द्वीप में चारों ओरों में समन्वित पवित्र देग स्थित हैं । उन देगों में नीला
 निराद महात्मा लोग वास करते हैं ॥६५॥ ६५ ॥ वहाँ सुकुमारी, कुमारी, नर्मिनी, रेणुका, दधु, धेनुका और गभस्ती
 नाम की पापनाशिनी पवित्र नदियाँ हैं ॥६६॥ ६६ ॥ महाद्रुम । इनके अतिरिक्त दस हजार और क्षुद्र नदियाँ हैं ॥६७॥ ६७ ॥

१ ख ०न्यामिष्यास्याश्च । २ ख वर्षे भग० । ३ ख ०पञ्चमेन । ४ ख ०स्ताराद्विगु० । ५ ख म
 मक्षिष्यस्य म० । ६ ख मरीचिः । ७ ख मरीचकः । ८ ख कुमोदः मनोरा० । ९ ख कुमुदाः मयो० ।
 १० ख पञ्चतडा० । १० ख वेणुका । ११ ख धेनुका । १२ ख ०दधमपुष्करवैव । १३ ख विपुषा । १४ ख ०न्याम्बु शतग० ।

महोषरास्तया सन्ति शतशोऽप्य सहस्रश । ता पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिता ॥६८॥
 वर्षेषु ये 'जनपदाश्चतुर्यार्यसमन्विता । नद्यश्चात्र महापुण्या स्वर्गादिभ्येत्य मेदिनीम् ॥६९॥
 धर्महानिर्न' तेष्वस्ति न 'सहर्षो न शुक् तया । मर्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥७०॥
 मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तया । मगा ब्राह्मणभूमिष्ठा मागधा क्षत्रियारतु ते ॥७१॥
 वंश्यास्तु मानसारतेषा शूद्रा जेयास्तु मन्दगा । 'शाकद्वीपे स्थितं विष्णु सूर्यं हृष्यधरो हरि ॥७२॥
 यथोक्तैरिज्यते' सम्पक्कर्मभिर्नियतात्मभि । शाकद्वीपस्ततो विप्रा क्षीरोदेन समन्तत ॥७३॥
 शाकद्वीपप्रमाणेन बलयेनेव वेष्टित । 'क्षीराब्धि सध्वतो विप्रा पुष्करारयेन वेष्टित ॥७४॥
 द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्तत । पुष्करे सवनस्यापि 'महावीतोऽभवत् सुत ॥७५॥
 घातश्चिद्व तयोस्तद्वद्वे वर्षे नामसजिते । 'महावीत तयं वाग्धृष्टात्कीलण्डसजितम् ॥७६॥
 एकश्चात्र महाभागा प्रहयातो वर्षपथ्यंत । मानसोत्तरसप्तो वै मध्यतो वन्द्याकृति ॥७७॥
 योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छिन ' । तावदेव च विस्तीर्णं सध्वंत परिमण्डल ॥७८॥
 पुष्करद्वीपवलय मध्येन विभजत्रिव । स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्न जात' वर्षद्वय हि तत् ॥७९॥
 बलयाकारमेकं तयोर्मध्ये महागिरि । दशवयसहस्राणि तत्र जीवति मानवा ॥८०॥
 निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिता । अपमोत्तमो न तेष्वस्तां न यध्यवधको द्विजा ॥८१॥
 'नेर्ष्यासूया भय रोषो दोषो लोभादिक' न च । महावीत बहिर्ध्वयं घातकीलण्डमन्तत ॥८२॥

मानसोत्तरशैलस्य देवदेत्यादिसेवितम्। सत्यानृते न तत्रारतां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते ॥८३॥
न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते। तुल्यवेपास्तु मनुजा देवैस्तत्रैकरूपिणः ॥८४॥
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्माहरणवर्जितम्। त्रयीवार्तादण्डनीतिशुश्रूषारहितं च तत् ॥८५॥
वर्षद्वयं ततो विप्रा भौमस्वर्गोऽप्यमुत्तमः। सर्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्जितः ॥८६॥
पुष्करे धातकीखण्डे महावीते च वै द्विजाः। न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥८७॥
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः। स्वादूढकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः ॥८८॥
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलात्तथा। एवं द्वीपाः समुद्रंस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ॥८९॥
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानो द्विगुणो परौ। पयासि सर्वदा सर्व्वसमद्रेषु समानि वै ॥९०॥
न्यूनातिरिक्तता तेषा कदाचिन्नैव जायते। स्थालीस्थमग्निं संयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ॥९१॥
तथेन्दुवद्भौ सलिलमम्भोधो मुनिसत्तमाः। अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो हसन्ति च ॥९२॥
उदयास्तमने त्विन्दोः पक्षयोः शुक्लऋष्णयोः। दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि च ॥९३॥
अपां वृद्धिपक्षो दृष्टो 'सामुद्रोणा द्विजोत्तमाः। भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥९४॥
भुञ्जन्ति पङ्क्तं विप्राः प्रजाः सर्व्वाः सदैव हि। स्वादूढकस्य परितो दृश्यते लोपसंस्थितिः ॥९५॥
द्विगुणा 'काञ्चनी भूमि' 'सर्व्वजन्तुर्विजिता। लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविरतृतः ॥९६॥
उच्छ्रयेणापि तावन्ति 'सहस्राण्यावल्लोहि सः। ततस्तमः समावृत्य त शैल सर्व्वतः स्थितम् ॥९७॥

है ॥८२॥३। वर्षद्वययुक्त पुष्करद्वीप में सत्य, मिथ्या, नदी और पर्वत नहीं हैं। वहाँ देवतुल्य मनुष्य एक ही स्वरूप के हैं ॥८३-८४॥ दोनों धर्मों में वर्णाश्रम-धर्म, पाप, वाणिज्य, दण्डनीति, शुश्रूषा आदि कुछ नहीं है ॥८५॥ विप्रवृन्द। वे दोनों उत्तम भू-स्वर्ण है। वहाँ सदा सबके लिए सुखद समय रहता है, बुढ़ापा और रोग का भय नहीं है ॥८६॥ पुष्कर द्वीप में एक बट वृक्ष ब्रह्मा का उत्तम स्थान माना जाता है। उस स्थान में ब्रह्मा सुर असुरों से पूजित होते हैं ॥८७॥ यह द्वीप अपने बटवर विस्तृत तथा मण्डलाकार स्वादिष्ट जल वाले समुद्र से वेष्टित है। इस प्रकार सातों द्वीप सातों समुद्रों से आवृत है ॥८८-८९॥ द्वीप और समुद्र समान हैं। सब समय सब समुद्रों में जल समान ही रहता है ॥९०॥ उसमें कभी-बेशी कमी नहीं होती। पर जैसे पात्र में स्थित जल अग्नि-संयोग से उफाने लगता है उसी तरह चन्द्रमा की वृद्धि होने पर समुद्र में जल उफानता है। महामुने। शुक्ल-ऋष्ण पक्ष में क्रमशः चन्द्रमा के उदय-अस्त होने पर समुद्रों का जल पाँच से दस अंगुलि प्रमाण बढ़ता घटता है ॥९१-९३॥ विप्रवर। समुद्र जल उदय-अस्त होने पर समुद्रों का जल पाँच से दस अंगुलि प्रमाण बढ़ता घटता है ॥९१-९३॥ विप्रवर। समुद्र जल का बढ़ाव-घटाव तो ऐसा ही है। पुष्करद्वीप के निवासियों को सदा आप से आप छह प्रकार के रस। से युक्त मांजन प्राप्त हो जाते हैं ॥९४॥ स्वादिष्ट जल वाले समुद्र के चारों तरफ लोको की अवस्थिति है ॥९५॥ फिर उससे द्विगुण सुवर्णमय भूमि है, जो जन्तुमात्र से रहित है। उसने बाद लोकालोक पर्वत दस हजार योजन विस्तृत और उतना ही ऊँचा भी है ॥९६॥ फिर अपकार उस पर्वत को सब आर से ढक कर स्थित है ॥९७॥ वह अपकार चारों तरफ अष्टवट्टाह

१ क ०त्र धर्म शैल वा द्वी०। २ ख ग धर्मादि०। ३ क ०मार्हास्विव०। ४ क तिशुश्रूषार०। ५ क ०केन द०। ६ क ०ण्डलस्य च। ७ डी०। ७ क ख समुद्राणा। ८ ख ग पुरतो। ९ क तावर्तः। १० ख ०वशाद्वि०। ११ ख ०साध्याव०। ग ०सानाव०।

'तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवष्टितम् । पञ्चाशत्कोटिविरतारा सेयमुखो द्विजोत्तमाः ॥१८॥
सहैवाण्डकटाहेन सद्बीषा समहोधरा । सेय धात्री विधात्री च सध्वभूतगुणाधिका ।
आधारभूता जगतासर्वेषा सा द्विजोत्तमाः ॥१९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णन नाम विंशोऽध्याय ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

तनादी पातालप्रमाणवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

विस्तार एष कथित पृथिव्या मुनिसत्तमा । सप्ततिरनु सहस्राणि 'तदुच्छ्रायोऽपि ऋक्षते ॥१॥
दशसाहस्रमेकं पाताल मुनिसत्तमा । अतल वितलञ्चैव' नितल' सुतल तथा ॥२॥
तलातलं रसातलं पातालञ्चापि सप्तमम् । कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा' शैलकाञ्चनी ॥३॥
भूमयो यत्र विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोभिता । तेषु 'दानयदंतेयजातय' शतशः' दिव्यताः' ॥४॥

(ब्रह्मांड ?) से परिवेष्टित है । महामुने । पचास करोड़ योजन विस्तृत यह पृथ्वी, अण्डकटाहो द्वीपों और पर्वता से युक्त है । यही धात्री, विधात्री, प्राणीमात्र के गुणा से अधिक गुणवाली तथा समार का आधार बनी हुई है ॥१८ १९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में समुद्र द्वीप परिमाण-वर्णन नामक चौथी अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

पाताल के प्रमाण का वर्णन

लोमहर्षण बोले—मुनिवर । पृथिवी के विस्तार का वर्णन मैं किया । उसकी सत्तर हजार याजन परिमित ऊँचाई के बारे में भी कहा जा रहा है ॥१॥ मुनिवर । एक एक पाताल दस दस हजार याजनप्रमाण विस्तृत है । अतल वितल, नितल, सुतल, तलातल, रसातल, और पाताल—य सात पाताल हैं जहाँ कृष्णा शुक्ला, कृष्णा, पीला, शर्करा और शैलकाञ्चनी नामक पृथिवी उत्तम भवना से युक्त हैं ॥२-३॥ उन स्थाना में नैऋत

१ क तम राण्ड । २ क ०त्री । ३ क ० त्रयोपि । ४ स ० व तलातल गमस्तिम् ।
महातलास्य मुत्तं पा० । ५ ग ० ल व गमस्तिम् । महास्य मुत्तं पाप्य पा० । ६ क ल ० रा र्वैव पा० । ७ क
० र्वैव पा० । ८ ग ० र्वैव पा० । ९ ग ० र्वैव पा० । १० ल ० न ।
निबन्धि महापापा पन० । ग ० ता । निबन्धि महापापा जात० ।

नागानाञ्च महाङ्गानां ज्ञातयश्च द्विजोत्तमाः। स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारद ॥५॥
 प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालेभ्यो गतो दिवम्¹। आह्लादकारिणः² शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ॥६॥
 नागाभरणभूपाश्च पातालं केन तत्समम्। दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च³ शोभिते ॥७॥
 पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते। दिवाकर्करश्मयो यत्र प्रभास्तन्वन्ति नातपम् ॥८॥
 शशिनश्च न शीताय निशि शीताय केवलम्। भक्ष्यभोग्यमहापानमदमत्तंश्च भोगिभिः ॥९॥
 यत्र न जायते कालो गतोऽपि दनुजदिभिः। वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकरा ॥१०॥
 पुंस्कोकिलादिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च। भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाद्यञ्चानुलेपनम् ॥११॥
 वीणावेणुमृदङ्गानां निःस्वनाश्च सदा द्विजाः। एतान्यस्यानि रम्याणि भाग्यभोग्यानि दानवैः ॥१२॥
 दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः। पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्वा तामसी तनुः ॥१३॥
 शेषास्या यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः। योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवैर्विपूजितः ॥१४॥
 सहस्रशिरसा ध्यवतः स्वस्तिकामलभूषणः। फणामणिसहस्रेण यः स द्विद्योतयन् दिशः ॥१५॥
 सत्त्वान् करोति निर्वाध्यान् हिताय जगतोऽसुरान्। मदाधूणितनेत्रोऽसौ यः सदैर्वककुण्डलः ॥१६॥
 क्रिरीटो स्रग्धरो भाति साग्नित्वेन इवाचलः। नीलवासा मदोत्सवस्त इवेतहारोपशोभितः ॥१७॥

दैत्य-दानव रहते हैं ॥४॥ महासर्पों की बहुत-सी जातियाँ निवास करती हैं। पाताल स्वर्ग से भी रमणीय है ॥५॥
 एक बार पाताल से स्वर्ग जाकर नारद ने देवसमा में कहा—“सुखदायक अच्छी कान्तिवाली स्वच्छ
 मणियों से परिपूर्ण एवम् मर्त्य-भूषणा से भूषित पाताल की उपमा किसी से दी जा सकती है ? ॥६॥ इतस्त
 दैत्य-दानवों की कन्याओं से सुशोभित पाताल में पहुँचकर किस मुक्ता पुरुष को भी प्रीति उत्पन्न नहीं हो
 जाती ? ॥७॥ वहाँ दिन में सूर्य की किरणों प्रकाश फैलती हैं न कि धूप। रात्रि में चन्द्रमा भी केवल प्रकाश
 ॥८॥ पातालवासी दानव, दैत्य और सर्प वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर कमलों से युक्त तालाव पुरप बाकिला
 का आलाप, मनोहर वस्त्र, अतिरमणीय भूषण, पुष्प-अनन्द गन्ध, वीणा, बाँसुरी और मृदंगों के शब्द आदि रमणीय
 पदार्थों का भाग करते हैं ॥९-१०॥ पातालों के नीचे विष्णु का शेष नामक शरीर है, जिसके गुण-गान करने
 में दैत्य-दानव भी समर्थ नहीं हैं ॥११॥ उसी शेष का नाम अनन्त है। वह सिद्ध, देवता और देवपिया से पूजित
 तथा ध्येयतत्त्व है। उसके हजार शिर तथा दिव्य आभूषण हैं। वह अपन पण की हजार मणियाँ से दिवाओं
 को प्रकाशित करता है ॥१४-१५॥ जगत्कल्याण के लिए वह सब असुरों को शक्ति-रहित बनाकर छोड़ता है।
 उसकी आँखें सदा मद से चञ्चल रहती हैं। मुकुट-कुण्डल-माला को धारण किये हुए शेष अग्नियुक्त स्वेतपर्वत के
 समान सुशोभित होता है ॥१६॥ वह नीलवस्त्रधारी, मद से उन्मत्त, श्वेत हार से सुशोभित है ॥१७॥ आनाप

१ ग ० लादीनि ना०। २ क ख दिवि। ३ क ०ण सर्वा भूमयाञ्च मनोहरा। नानाम०। ४ ख ० तद्व
 शतयो०। ५ क ० किल विराटश्च म०। ६ ग गन्धाद्य। ७ ग दैवैर्देवपि०। ८ ग ० जिते। स०।

साश्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कंचासाद्रिरिवोत्तमः^१। लांगलासवतहस्ताग्रो बिभ्रन्मुशलमुत्तमम् ॥१८॥
 उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्तया। कल्पान्ते यस्य वक्ष्येभ्यो विषानलक्षितोऽज्वलः ॥१९॥
 संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्याति जगत्त्रयम्। स बिभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ॥२०॥
 आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः। तस्य वीर्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च ॥२१॥
 न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि। यस्याया सकला पृथ्वी कणामणिशिखाशृणा ॥२२॥
 आस्ते कुसुममालेव यस्तद्वीर्यं वदिष्यति। यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ॥२३॥
 तदा चलति भूरेया साद्रितोयाधिकानना। गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः 'क्षिप्ररोगवारणाः ॥२४॥
 नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमध्ययः'^२। यस्य नागवधूहस्तैर्लापितं हरिचन्दनम् ॥२५॥
 मुहुः श्वासानिलायस्तं याति दिक्पटवासिताम्। यमाराध्य पुराणविगर्भो ज्योतोऽपि तत्त्वतः ॥२६॥
 ज्ञातवान् सकलं चैव 'निमित्तपठितं फलम्'। तेनेयं 'नागवर्येण शिरसा विधृता मही।
 विभ्रति सकलाल्लोकान् स देवासुरमानुषान् ॥२७॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालप्रमाणकीर्तनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ नरकवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रोरवादयः। पापिनो येषु पातयन्ते ताडच्छृणुष्वं द्विजोत्तमाः॥१॥
 रोरवः शौकरो 'रोषस्तानो' 'विशसनस्तथा। महाज्वालस्तप्तकुड्यो' महालोभो विमोहनः॥२॥
 हविरान्यो' वसातप्तः 'कृमीशः' कृमिभोजनः। असिपत्रवनं कृष्णो 'जालाभक्षश्च' दारुणः॥३॥
 तथा पूयवह' पापो वह्निज्वालो' ह्यधःशिराः। सदंशः कृष्णसूत्रश्च 'तमश्चावीचिरेव च॥४॥
 श्वभोजनोऽप्राप्रतिष्ठोमावीचिश्च तथापरः। इत्येवमादयश्चान्ये नरका भूशदारुणाः॥५॥
 यमस्य विपये घोराः शस्त्राग्निविषदंशिनः। पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्मरताश्च ये॥६॥
 कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो वदेत्। 'यश्चान्यदन्तं वदितं स नरो याति रोरवम्॥७॥
 भ्रूणहा 'पुरहन्ता च गोघ्नश्च' मुनिसत्तमाः। यान्ति ते 'रोरवं' घोरं 'यश्चोच्छ्वासनिरोधकः॥८॥
 सुरापो 'ब्रह्महा' हर्ता सुवर्णस्य च शूकरे'। प्रयाति 'नरके' यश्च तैः ससर्गमुपैति वै॥९॥
 राजन्यवंश्यहा चैव तयैव 'भुवतल्पगः। तप्तकुम्भे' 'स्वसुगामो' हन्ति राजभटञ्च यः॥१०॥

अध्याय २२

नरको का वर्णन

लोमहर्षण बोले—विप्रबन्ध ! अब इसके बाद रोरव आदि नरको के बारेमें मुनिये, जिनमें पापों लोभ गिराये जाते हैं॥१॥ द्विजश्रेष्ठो ! रोरव, शौकर, रोषस्तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुड्य, महालोभ, विमोहन॥२॥ हविरान्य, वसातप्त, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, जालाभक्ष, दारुण॥३॥ पूयवह, पाप, वह्निज्वालो, अघ शिरा, सदंश, कृष्णसूत्र, तम, आवीचि॥४॥ श्वभोजन, अप्रतिष्ठ, मावीचि आदि और दूसरे भी अत्यन्त भयंकर नरक हैं॥५॥ यम के राज्य में पाप-कर्म में गिरत शस्त्र अग्नि तथा विष का प्रयोग करने वाले मयानक पुरुष नरको में गिरते हैं॥६॥ जो मनुष्य झूठे, गधाही, देता, पक्षपात करता है, मिथ्या बोलता है, वह रोरव नरक जाता है॥७॥ मुनिघर ! गर्भपात, नगर-ध्वंस तथा गोहत्या करने वाले और गला घोटकर हत्या करने वाले मनुष्य भयंकर रोरव नरक में जाते हैं॥८॥ मद्यपान करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, सुवर्ण चुराने वाले तथा उनके समर्थ करने वाले मनुष्य शौकर नरक में जाते हैं॥९॥ शत्रिय, वैश्य तथा राजदूत के हत्या, गुरुपत्नीगामी, और

१ क पण्यन्ते। २ क ख शूकरो। ३ क रोष शौलो विशसन०। ४ क ०स्तालो वि०। ५ क ०शनसस्त०। ६ क ०प्तकुम्भो म०। ७ क ग ०न्यो वैतरणी क०। ८ क कृमिश। ९ क कृमिश। १० क ०क्ष मुदा०। १० क वह्निज्वालोऽप्यध। ११ क ०श्चागूचि०। १२ क यस्तावद०। १३ क गुहहत्या। १४ क निरय। १५ क यश्च स्वस०। १६ क ०हाहत्याबन्धुव०। १७ क मूपक। १८ क नरक। १९ क ०ग। ये कुञ्जेषु मृगान्यान्ध्रज्जित राजभटाश्च ये। सर्वत्रियकर्ता वै पाप के। २० ख स्वसागा०।

‘मयुहा’ ग्रामहन्ता च याति ‘वैतरणो नर । रेत पानादिपत्तारो ‘मर्यादाभेदिनश्च ये’ ॥२३॥
 ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये । अग्निपत्रवनं याति वनच्छदी बृधेव य ॥२४॥
 ओरभ्रिका मृगव्याधा बह्निज्वाले पतन्ति वै । यान्ति तत्रैव ते विप्रा यदक्षापाकेषु बह्निद ॥२५॥
 वतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च य । सः दशयातनामध्ये पततरतावुभावपि ॥२६॥
 दिवा स्वप्नेषु स्थन्वाते ये नरा ब्रह्मचारिण । पुनैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने ॥२७॥
 एते चान्ये च नरका शतशोऽथ सहस्रश । येषु दुष्कृतकर्मणि पच्यन्ते यातनायता ॥२८॥
 तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रश । भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचरं ॥२९॥
 वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म कुर्वन्ति ये नरा । कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥३०॥
 अथ शिरोभिर्दृश्यन्ते नारकादिव देवता । देवाश्चाधोमुखान् सत्त्वनिध पश्यन्ति नारकान् ॥३१॥
 स्यावरा ‘कृमयोऽजाश्च पक्षिण पशवो नरा । धार्मिकाश्चिदशरतद्वग्मोक्षिणश्च यथ क्रमम् ॥३२॥
 सहस्रभागः’ प्रयमाद्वितीयोऽनुक्रमास्तथा । सर्वे ह्येते महाभागा यावन्मुवितसमाश्रया ॥३३॥
 यावन्तो जन्तव स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः । पापकृद्वापि नरक प्रायश्चित्तपराङ्मुख ॥३४॥
 पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा । तथा तथैव समृत्य प्रोवतानि परमणिभि ॥३५॥

जाते हैं । बर्ष आदि का पान करने वाले मर्यादा का भेदन करने वाले अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आज
 बिना करने वाले कृच्छ्र नरक में जाते हैं ॥२३॥ व्यथही वृक्षा का छदन करने वाले अग्निपत्रवन नरक में जाते
 हैं ॥२४॥ भेद से जीविका कमाने वाले मृगा का शिकार करने वाले बह्निज्वाले नरक में जाते हैं । पाकरोहित
 भोजन में मा अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य में उस नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ वत का लोप करने वाले
 और अपने आश्रम से व्युत्त होन वाले सदायातना नरक में जाते हैं ॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में
 स्वप्नदाप होता है व तथा पुत्रा से पडने वाले मनुष्य स्वमाजन नरक में जाते हैं ॥२७॥ इनके अतिरिक्त और
 दूसरे म.संका-हजारा नरक हैं जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पवाये जाते हैं ॥२८॥ इस तरह नरकगाम, जीव
 हजारा पापों का फल भोगते हैं । कम मन और वाण से वर्णाश्रम विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पडते
 हैं ॥२९३०॥ मा.के सिर वाले नरकास ज.व स्वर्गगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अधोमुख नारक या
 को न.के देखते हैं ॥३१॥ महाभाग कृपिगण स्थावर वृमि जलजन्तु पक्ष, पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुवत पुरप-
 प सब क्रमश उत्तरोत्तर योगियों को प्राप्त करते हुए मोक्ष पान तक ह. रहते हैं ॥३२३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में
 हैं उतनेह नरक में भी हैं । प्रायश्चित्त न करने वाले पाप मनुष्य नरक में जाते हैं ॥३४॥ पपा के अनुरूप
 प्रायश्चित्त के बारे में मुनिना ने चिन्तन करके बतलाया है ॥३५॥ विप्रवर । स्थायमुव आदि मनुष्य ने भार

१ क वयुहा । २ क णी द्विना । मूल्यन सध्याक० । ३ क ंदानिदिताश्च । ४ ग ये । य वृष्ण या० ।
 ५ ल) प्रसिद्धि । ६ क ंश्रय इवशा० । ७ क य । सः दश पापमाश्रित प्रवृत्तता० । ८ क स्पन्दल । स स्पन्दल ।
 ९ क स ंवाणवयो० । १० क ंमय तस्याता प० । ११ क ंसमागतिव्यमादित यात्रमगन्तया । स
 ंसमागतिव्यमा द्वितया तु क्रमास्तथा ।

माध्वीविक्रप्रकृद्ध्यपाल 'वैसरविक्रयी'। तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भवतं परित्यजेत् ॥११॥
 सुता स्नुषाञ्चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते। अवमन्ता गुरुणा यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः ॥१२॥
 वेदद्रूपयिता यश्च वेदविक्रयकश्च यः। अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शबलं द्विजा ॥१३॥
 चोरो विमोहे पतति मर्यादाद्रूपकस्तथा। 'देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नद्रूपयिता च यः ॥१४॥
 स याति कृमिभक्ष्ये वै कृमोक्षे' तु दुरिष्टिकृत्। पितृदेवातिथीन् यरतु पर्य्यदनाति नराधमः ॥१५॥
 लालाभक्ष्ये स यात्युप्रे शरकर्ता च वेधके। करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादिकृन्नरः ॥१६॥
 प्रयान्त्येते विनाशने नरके भृशदारुणे। असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यधोमुखे ॥१७॥
 अवाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचकः। कृमिपूये नरश्चैको याति मिष्टान्नभुक् सदा ॥१८॥
 लाक्षामासुरसानाञ्च तिलानां लवणस्य च। विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विजाः ॥१९॥
 माज्जरीकुबकुटच्छाणश्वराहविहङ्गमान्"। पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तमा ॥२०॥
 रङ्गोपजीवी क्वचत् कुण्डाशी गरदस्तथा। सूची माहिषिकश्चैव पर्व्वगामी च यो द्विजः ॥२१॥
 अगारदाही 'मित्रघ्नः' शकुनिग्रामयाजकः। रुधिराग्ने पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये ॥२२॥

मणिनीगामं। मनुष्य तप्तबुम्भ नरक में जाते हैं ॥१०॥ मद्य तथा वैसर-विश्रेता, वध करने योग्य व्यक्ति का रक्षण
 एवम् भवत-स्यामी। मनुष्य तप्तलोह नरक में जाते हैं ॥११॥ पुत्री तथा पुत्रवधू गामी एवम् गुरु निन्दक तथा गुरु का
 अमान करने वाले नीच मनुष्य महाज्वाल नरक में गिराये जाते हैं ॥१२॥ वेद विभ्रंता, वेद निन्दक तथा
 अगम्यागमन करने वाले मनुष्य शबल नरक में जाते हैं ॥१३॥ चोर, मर्यादानाशक, रत्ननाशक, देवता, ब्राह्मण
 तथा पिता के शत्रु। मनुष्य विषाह नरक में जाते हैं ॥१४॥ दूषित यज्ञ करने वाले तथा पिता, देवता और अनधिकारी
 निराश्रय करने वाले नीच मनुष्य कृमिभक्ष्य या कृमोक्ष नरक में जाते हैं ॥१५॥ विपत्ति वाणा के निर्माता मनुष्य
 लालाभक्ष्य या वेधक नरक में जाते हैं। रिगुन (धुलखोर) तथा तलवार आदि के निर्माता मनुष्य अत्यन्त
 मयानक विनाशन नरक में जाते हैं ॥१६॥ अनुचित दान देने वाले, अनधिकारी व्यक्तिनामे यज्ञ करने वाले तथा
 नश्वार्थ, स्वना देने वाले (उपनिषद् के व्यवहारी)। मनुष्य अवागुप्त नरक में जाते हैं ॥१७॥ सदा मिष्टान्न खाने वाले
 मनुष्य कृमिपूय नरक में जाते हैं ॥१८॥ लास, मांस, रक्त, तिल तथा लवण विक्रेता ब्राह्मण भी, उर्ग, नरक में जाते हैं ॥१९॥
 द्विजवर्ग। बिल्कल, मुर्ग, बकरी, अश्व, घोड़ा और पत्नी का पालने वाले मनुष्य भी, उर्ग, नरक में जाते
 हैं ॥२०॥ रक्त के द्वारा जीविकापार्जन करने वाले, रक्षक (दास या धोतर), कुण्ड (जाल-पुत्र) के अन्न भक्षण,
 विष देने वाले, मिलाई से जीविका अर्जन करने वाले, भोग में जीवन निर्वाह करने वाले और पर्यन्त में रक्षक
 प्रयोग करने वाले ब्राह्मण, गृह जलान वाले, मित्र का मारा जाने, गुरु पिता की जानने वाले, प्रायश्चित्त, और मद्य-
 विषाह रुधिराग नरक में जाते हैं ॥२१-२२॥ मद्य शरण करने वाले तथा प्रायश्चित्त करने वाले मनुष्य वैतरणी, नरक में

१ म ० ह्यो वै पात वे०। २ म ० मरिचि०। ३ म ० दी०। ४ म ० पातु ५०। ५ म ० पातु ५०। ६ म ० मरिचि०। ७ म ० मरिचि०। ८ म ० मरिचि०। ९ म ० मरिचि०। १० म ० मरिचि०। ११ म ० मरिचि०। १२ म ० मरिचि०। १३ म ० मरिचि०। १४ म ० मरिचि०। १५ म ० मरिचि०। १६ म ० मरिचि०। १७ म ० मरिचि०। १८ म ० मरिचि०। १९ म ० मरिचि०। २० म ० मरिचि०। २१ म ० मरिचि०। २२ म ० मरिचि०।

मधुहा' ग्रामहृता च याति 'वैतरणीं नरः। रेतःपानादिकर्तारो 'मर्यादाभेदिनश्च ये' ॥२३॥
 ते कृच्छ्रे यान्त्यशोचाश्च कुहकाजीविनश्च ये। अग्निपत्रवनं 'याति वनच्छदी वृथैव य' ॥२४॥
 औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै। यान्ति तत्रैव ते विप्रा' यश्चापाकेषु वह्निदः ॥२५॥
 व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विद्युतश्च यः'। सन्दंशयातनामध्ये पततरतावभावपि ॥२६॥
 दिवा स्वप्नेषु 'स्थन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने ॥२७॥
 एते चान्ये च नरकाः शतशोऽप्य सहस्रशः। येषु दुष्कृतरुग्मणः पच्यन्ते यातनागताः ॥२८॥
 तथैव पापाग्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरंगोचरैः' ॥२९॥
 वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म कुर्वन्ति ये नराः। कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥३०॥
 अधःशिरोभिर्दंश्यन्ते नारकैर्दिव देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सत्त्वानधः पश्यन्ति नारकान् ॥३१॥
 स्यावराः 'कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नरा। धार्मिकास्त्रिदशारतद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥३२॥
 सहस्रभागः' प्रथमाद्वितीयोऽनुक्रमात्तथा। सर्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्षितसमाश्रयाः ॥३३॥
 यावन्तो जन्तवः स्वर्गं तावन्तो नरकोकसः। पापकृद्वाति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ॥३४॥
 पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव सस्मृत्य प्रोक्तानि परमदिभि ॥३५॥

जाने हैं। वीर्य आदि का पान करने वाले, मर्यादा का भेदन करने वाले, अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आजी-
 विता करने वाले कृच्छ्र नरक में जाते हैं। ॥२३॥ व्यर्थ ही वृक्षा का छेदन करने वाले अतिपत्रवन नरक में जाते
 हैं ॥२४॥ भेड से अधिक का कमाने वाले, मृगी का शिकार करने वाले वह्निज्वाले नरक में जाते हैं। पाकरहित
 माजिन में भी अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य भी उसी नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ वत का लोप करने वाले
 और अपने आश्रम से व्युत्त होने वाले सदशयातना नरक में जाते हैं ॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में
 स्वप्नदाप होता है वे तथा पुत्रों से पडने वाले मनुष्य श्वभोजन नरक में जाते हैं ॥२७॥ इनके अतिरिक्त और
 दूसरे भी सैकड़-हजार नरक हैं, जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पकाये जाते हैं ॥२८॥ इसी तरह नरकगामी जीव
 हजारों पापों का फल भोगते हैं। कर्म, मन और वाणी से वर्णाश्रम-विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पडते
 हैं ॥२९-३०॥ नीचे स्थिर वाले नरकवासी जीव स्वर्गगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अपमुख नारकियों
 को नीचे देखते हैं ॥३१॥ महामाग ऋषिगण, स्यावर हृषि, जलजन्तु पक्षी, पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुक्त पुरुष-
 ये सब क्रमशः उत्तरोत्तर मौनिया को प्राप्त करते हुए मोक्ष पाने तक ही रहते हैं ॥३२-३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में
 हैं, उतने ही नरक में भी हैं। प्रायश्चित्त न करने वाले पापी मनुष्य नरक में जाते हैं ॥३४॥ पापा के अनुरूप
 प्रायश्चित्तों के बारे में मुनियों ने चिन्तन करके बतलाया है ॥३५॥ विप्रवर! स्वायम्भुव आदि मनुओं ने भारी

१ क बभ्रुहा। २ क णी द्विजा। मूल्यन सध्याक०। ३ क ०दानिन्दिताश्च। ४ ग ये। ये हृण्ये पा०।
 ५ ख। यान्ति। ६ क ०या य श्वपा०। ७ क य। सद्स पापमाश्रिय व्रतस्ता०। ८ क स्पन्दन्त। ग स्पन्दन्ते।
 ९ क य ०वार्णवगो०। १० क ०मय-स्याता प०। ११ क ०समार्गात्प्रथमाद्विर्ति याऽनमशमथा। ख
 ०समार्गात्प्रथमा द्विर्ति या तु क्रमास्तथा।

पापे गुरुणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः। प्रायश्चित्तानि विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवादयः॥३६॥
 प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणा कृष्णानुस्मरणं परम्॥३७॥
 कृते 'पापेऽनुतापो वै यस्य पुनः प्रजायते। प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥३८॥
 प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः 'पापक्षयाघ्नरः॥३९॥
 विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तबलेशसञ्चयः। मुवितं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्तनात्॥४०॥
 वासुदेवे मनो यस्य जपहोमाश्चर्चनादिषु। तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्यादिकं फलम्॥४१॥
 यत्र नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिर्लक्षणम्। यत्र जपो वासुदेवेति मुवित्वीजमनुत्तमम्॥४२॥
 तस्माद्बर्हिनिशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो द्विजः। न याति नरकं शुद्धः संक्षीणाखिलपातकः॥४३॥
 मनःप्रोतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः। नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः॥४४॥
 वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेष्योदयाय च। कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं कुतः॥४५॥
 तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते। तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते॥४६॥
 तस्माद्दुःखात्मक नास्ति न च क्रिञ्चित्सुखात्मकम्। मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः॥४७॥
 ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञानं बन्धाय' च्येयते। 'ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्॥४८॥

पाप के भारी प्रायश्चित्त तथा अल्प पाप के अल्प प्रायश्चित्त बताए हैं॥३६॥ तपस्या, मुकर्म, आदि प्रायश्चित्त हैं। पर समस्त प्रायश्चित्तों के बाद श्रीविष्णु का स्मरण करना उत्कृष्ट है॥३७॥ जिस पुरुष को पाप करने पर अनुताप होता है, उसका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्रीहरि का स्मरण॥३८॥ प्रातःकाल, सन्ध्याकाल, रात तथा दिन में नारायण का स्मरण करने वाले मनुष्य का सब पाप-क्षय हो जाता है॥३९॥ विप्रवृन्द ! विष्णु के सम्यक् स्मरण से क्षमस्त वेशों को नष्ट कर मनुष्य हरि-कीर्तन के बल में मुक्त हो जाता है॥४०॥ जिस मनुष्य का मन, जप होम-गूआ वें द्वारा वासुदेव में लगता है उसे विन्त बाधा नहीं सताती, तथा इन्द्र-मद भी उसके लिए तुच्छ है॥४१॥ वहाँ पुनर्जन्म-दायक स्वर्गगमन और वहाँ सर्वोत्तम मोक्षदायक वासुदेव का जप॥४२॥ इसलिए दिन-रात विष्णु का स्मरण करने वाला शुद्ध ब्राह्मण, जिससे भगवन् पाप नष्ट हो जाते हैं, नरक नहीं जाता है॥४३॥ स्वर्ग मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला है और नरक उसका प्रतिबल (अर्थात् दुःखायक है)। द्विजवर्य ! पाप-पुण्य नरक-स्वर्ग सजा वाले हैं॥४४॥ एक ही वस्तु दुःख, सुख, ईर्ष्या और भोय उत्पन्न करती है। इसलिए कोई पदार्थ दुःखजनक नहीं है॥४५॥ जो पदार्थ सुख देकर दुःख देता है, वही फिर भोय और प्रसन्नता उत्पन्न करता है। इसलिए दुःख सुख नामक कोई चीज नहीं है॥४६॥ सुख दुःख होना—यह तब मन का परिणाम है। ज्ञान ही परब्रह्म है और अज्ञान बन्धन में डालता है॥४७॥ यह संसार ज्ञान रूप है और ज्ञान से बढ़कर कुछ नहीं है॥४८॥ विप्रवृन्द ! विद्याज्ञा से जानने योग्य पदार्थों में ज्ञान ही को धारण करना चाहिये।

१ स ० नि भो विप्रा ज०। २ स ० वे च ता०। ३ क कृष्णानुस्मरण। ४ स ग ० क्षय नर। ५ स ग ० तस्त्वेकमेव स्वर्गसंज्ञे विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवादयः। वा०। ६ क ०म्। नाकपृष्ठादिग०। ग ०म्। आना०। ७ क ० ग्राह्यपा०। ८ स ग ० क्षयम्। ज्ञा०। ९ क स ब्रह्मज्ञा०। १० क ० य नेप्य०। ११ क ज्ञानमेव पर वि०। स ज्ञान च कामद वि०।

विधिं हि'भो विप्रा ज्ञानमेवावधार्यताम्। एवमेतन्मयारयात् भवता मण्डल भुव ॥४९॥
 ज्ञानं च सर्वानि तथैव नरका द्विजा । समुद्रा पर्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगा
 पात् सर्वमाख्यात किं भूय श्रोतुमिच्छय' ॥ ॥५०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्तन नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भूर्भुव स्वरादिवर्णनम्

मुनय ऊचु

यित भवता सर्वमस्माक सकल तथा। भुवर्लोकैर्लोकान्' श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥
 भव' प्रहसत्यान प्रमाणानि यथा तथा। समाचक्ष्व महाभाग यथावत्लोकमहर्षण ॥२॥

लोकमहर्षण उवाच

विचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते'। ससमुद्रसरिच्छेला तावती पृथिवी स्मृता ॥३॥
 विप्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला। नभस्तावत्प्रमाण हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥४॥

इम प्रकार मैंने आपसे पृथ्वी मण्डल अलिल पाताऊ तथा नरको का वर्णन किया ॥४९॥ द्विजगण ।
 इस पर्वता द्वीपा वर्षों तथा नदिया के बारे में मैं सक्षय से सब कुछ कह दिया । अब आप फिर क्या सुचना
 दत है ? ॥५०॥

अ. ब्रह्म मन्त्रपुराण म पातालनरक-वर्तन नामक बार्हस्पती अध्याय समाप्त ॥२२॥

अध्याय २३

भूः, भुवः और स्वः आदि लोका का वर्णन

मुनियों ने कहा—आपने सब कुछ हमसे कहा । अब हम भुवः स्व आदि लोका के बारे में सुचना
 दत है ॥१॥ हे महाभाग महा व स्थिति तथा प्रमाण के सम्बन्ध में मैं यथायतन सब बता दूँ ? ॥२॥

लोकमहर्षण बोले—मूल चन्द्रमा के, किरणा गजहों तक समुद्र नदी और पर्वत सहित पृथिवी, प्रकाशित
 होता है वहाँ तक उत्तम प्रमाण है ॥३॥ विस्तार और मण्डल सहित पृथ्वी का जितना परिमाण है उतना है।

१ व' हि य विप्रा ज्ञान तथा पर मतम् । २ क म ०च्छत । ३ व' ०दियवोन्माञ्छता ० । ४ व' नभ
 पहाणि स ० । ५ क ०वत्किरणैः ० ।

भूमेयोजनलक्षे तु सौर विप्रास्तु मण्डलम् । लक्षे दिवाकराच्चापि' मण्डलं शशिन स्थितमा
 पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात् प्रकाशते ॥
 द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् । तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्यप्युशना स्थित ॥
 अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थित । लक्षद्वयेन भोमस्य स्थितो देवपुरोहित ॥
 सौरिर्बृहस्पतेरुर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थित । सप्तविमण्डलं तस्मात्क्षमेकं द्विजोत्तमा ॥
 ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतावृद्धे व्यवस्थित । मेढोभूतं समस्तस्य उद्योतिश्चन्द्रस्य वै ध्रुव ॥१
 त्रैलोक्यमेतत् कथितं सक्षेपेण द्विजोत्तमा । 'इज्याफलस्य' भरेया 'इज्या' चात्र प्रतिष्ठिता ॥१॥
 ध्रुवावृद्धं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः । एकयोजनकोटी' तु' महर्लोको विधीयते ॥
 द्वे कोट्यो तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मण सुता । सनन्दनाद्या 'फयिता' विप्राश्चामलक्षेतस' ॥१॥
 चतुर्गुणोत्तर' चोर्ध्वं जनलोकात्तप स्मृतम्' । वैराजा यत्र ते दवा स्थिता देहविवर्जिता ॥
 षड्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते । 'अपुनर्मरिक्' यत्र सिद्धादिमुनिसंविताम् ॥
 पादगन्धयुतं यत् किञ्चिद्वदस्त्वस्ति पृथिवीमयम् । स भूर्लोकं समाख्यातो विरहाराशेभ्यः स्योदित ॥
 भूविमूर्ध्नांतरं यत् सिद्धादिमुनिसंविताम् । भुवर्लोकरतु सोज्ज्वलतो द्वितीयो मुनिसत्तमा ॥

परिमाण विस्तार और परिमण्डल सहित आकाश का भाग है ॥४॥ विप्रबृद्ध' पृथिवी से एक लाख योजन
 पर सूर्य मण्डल स्थित है और सूर्य से उतना ही दूर पर चन्द्र मण्डल स्थित है ॥५॥ चन्द्रमा से एक लाख :
 ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित होता है ॥६॥ नक्षत्र मण्डल से दो लाख माजन उत्तर बुध मण्डल है
 बुध से उतना ही दूर उत्तर शुक्र स्थित है ॥७॥ शुक्र से उतनी ही दूरी पर मंगल में स्थित है । मंगल से दो
 माजन दूर पर बृहस्पति स्थित है ॥८॥ बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि स्थित है । द्विजधृष्टो' ।
 एक लाख योजन ऊपर सप्तवि मण्डल है ॥९॥ सप्तवि मण्डल से एक लाख योजन ऊपर समस्त उद्योतिश्चन्द्र' क
 बना हुआ ध्रुव स्थित है ॥१०॥ विप्रवर' सक्षप शनिता लोह का अणव मीने कर दिया । यन्मन्त्रकं, यह पूर्ण
 यज्ञ यही प्रतिष्ठित हुआ है । ध्रुव से ऊपर महर्लोका है जहाँ कल्पवासि' जन रहते हैं ॥११॥ मन्त्रिक वरणी
 एक बराह याजन है । दो करोड़ याजन प्रमाण जनोत्तमा है जहाँ ब्रह्मा ने निमल वित्त वा सनन्दन आदि गुत्र
 हैं ॥१२॥ १३॥ जनराज' म चोगुना ऊपर तपाग्री है जहाँ वैराज सप्त' देवता गगर रहित होकर स्थित हैं ॥
 तपाग्री से छह गुना ऊपर सत्यग्री विराजमान है जहाँ सिद्ध आदि मुनिया में सविता ब्रह्मलोक में है ॥
 वैरा से समन करण घाय्य आ कुछ भा पाथिब्यं यस्तु है वह भूर्लोक, कहलाता है । इसका विस्तार मैं बता चु
 ॥१६॥ मुनिधृष्टा' सिद्ध आदि मुनिया से सविता उच्च और सूर्य से अंतर तथा भुवर्लोका के बारे में मैं कह चु

शरीरं यत्तु नियतानि चतुर्दश। स्वर्लोकं सोऽपि कथितो 'लोकसंस्थानचि तर्क' ॥१८॥
 मतत वृत्तक विप्रंश्च परिपठ्यते। जनसत्परा तथा सत्यमिति चावृत्तक त्रयम् ॥१९॥
 तत्रो' मध्ये महर्लोक इति स्मृत। शूयो भवति कल्पाते योऽत' न च विनश्यति ॥२०॥
 महालोका मया व कथिता द्विजा। पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्य विस्तर ॥२१॥
 कटाहेन तिथ्यपूर्वध्वमधस्तथा। कपित्थस्य यथा बीज सत्त्वतो वै समावृतम् ॥२२॥
 एण पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तदवृतम्। स चाभ्युपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहि ॥२३॥
 वायुना वायुविप्रास्तु नभसावृत'। आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महा परिवेष्टित ॥२४॥
 राण्येवापि विप्राश्चैतानि सप्त वै। महातञ्च समावृत्य प्रधान समवस्थितम् ॥२५॥
 स्य न तस्यात सहायन चापि विद्यते। तदन तमसह्यात प्रमाणेनापि वै यत ॥२६॥
 अग्नौ यस्य प्रकृति सा परा' द्विज। अण्डाना तु सहस्राणा सहस्राभ्युतानि च ॥२७॥
 ना तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च। दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत् पुमानिह ॥२८॥
 नेज्वस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदन। प्रधानञ्च पुमाश्चैव 'सर्वभूतानुभूतया ॥२९॥

। लाह स्थिति चित्तका का कहना है कि ध्रुव और सूर्य के व च एक करोड़ चाल म लाख योजन प्रमाण का है। विप्रा न इसका नाम वृत्तकत्रिलोकी रखा है ॥१८॥ जन सप्त तथा मय—यह म अद्वैत विचारों में स्थित है ॥१९॥ वृत्तक और अद्वैत व मध्य महर्लोक माना गया है जो कल्पान्त में गाय हो जाता है। एत नहीं हुआ ॥२०॥ द्विजगण' मैं सत्ता महात्मा क तथा सत्ता पानाल म युक्त ब्रह्माण्ड व विस्तार का कर दिया ॥२१॥ जैसे कपित्थ (कटार) का बीज सब ओर में डका रहता है उसी तरह यह ब्रह्माण्ड कटाह में ऊपर-नीचे और तिरछ डका हुआ है ॥२२॥ द्विजगण' दस गुन जल म यह ब्रह्माण्ड आवृत है। राग में बाहर अग्नि से वेष्टित है ॥२३॥ अग्नि तो वायु में और वायु आकाश से आवृत है। मनिभ्रष्टा' गामा महवत्क व परिवेष्टित है ॥२४॥ विप्रवन्' ये सम्पूर्ण माता-पिता (अर्थात् सप्त) हैं। महात्मा आवृत कर प्रधान (प्रकृति) अवस्थित है ॥२५॥ उम अनन्तर देव का अन्त और मम्या नहीं है अत एव अनन्त का प्रमाण भी नहीं बनाया जा सकता है ॥२६॥ द्विजगण' अथेव ब्रह्माण्ड का कारण परा प्रकृति है। ही हजार व हजार और करोड़ व करोड़ अपरिमित ब्रह्माण्ड हैं। जम वाष्प म अग्नि और तिल म तेल म रहता है उमा तरह व्याक बेतन आत्मा प्रधान म अवस्थित है। द्विजगण' सब प्राणिमा म अनु वेष्ट विष्णु पति प्रकृति और पुरुष आध्यक्ष म कारण करते हैं। प्रकृति-पुरुष ने पाषण्ड तथा आध्यक्ष का

१ ग ० कूर्मोत्तर। २ क ० ना द्विजस्तत्त्वविचि०। ३ ग ० ब्रह्मपालविचि०। ४ क ० क। लाहय व वृत्तक।
 ५ ० क्षत्राध्वय। ६ ग या ह्येनैम। ७ य सत्वमन०। ८ ग ० क। भूमाग्नि नम माग्नि म०। ९ ग ० रात्रिना।
 १० ग ० मानरा। प्र०। ११ क ० नैव स्थि०। १२ क ग ० नामभू०।

विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा धृतौ संश्रयधर्म्मिणौ। तपोः संव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च॥३०॥
 क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमाः। यथा शैत्यं जले वातो विभक्ति कणिकागतम्॥३१॥
 जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्। यथा च पादपी मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः॥३२॥
 'आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि च ततः। प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्येये परे द्रुमाः॥३३॥
 तेषां तत्त्वक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः। एवमव्याकृतात् पूर्वं जायन्ते महादायः॥३४॥
 'विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः। तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः॥३५॥
 बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः। भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा॥३६॥
 सन्निधानाद्यथाकाशकलाद्याः कारणं तरोः। तस्यैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः॥३७॥
 श्रीह्रियोजे यथा 'मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा। काण्डकोयास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः॥३८॥
 गुपाः कणाश्च सन्तो वै यन्त्याविर्भावमात्मनः। प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिरुत्तमाः॥३९॥
 तथा 'कर्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः। विष्णुशक्तितं समासाद्य प्ररोहमुपयागति ये॥४०॥
 स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्। जगच्च यो यत्र चेदं 'यस्मिन्विलयमेप्यति॥४१॥
 तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्। यस्य सर्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम्॥४२॥
 स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तहृषी जगच्च सः। तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्र च तिष्ठति॥४३॥

कारण भी शक्ति ही है, जो सृष्टिकाल में क्षोभ का कारण बन जाती है॥३०-३०३॥ द्विजवर! जैसे वायु जल-वण से प्राप्त शैत्यको घारण करता है वैसे सृष्टि-काल में सचालन-कारण भूत विष्णु-शक्ति प्रकृति-गुरूप रूप जगत् का घारण करती है॥३१३॥ जैसे मूल-स्वल्प-शाखा आदि से समुक्त वृक्ष प्रथम बीज से उत्पन्न होता है दूसरे बीज उस वृक्ष से और अन्य वृक्ष उन बीजों से उत्पन्न होने हैं तथा हे द्विजो! वे भी उमी लक्षण वाले द्रव्य के कारण के अनुगत होने हैं, उमी तरह अव्याकृत (मूल प्रकृति) से पूर्व महादादि उत्पन्न होत हैं॥३२-३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष उनमें अन्तिम होता है उनसे ही सब गुरु आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं, फिर उनसे पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन पुत्रों के भी परम पुत्र-मीत्रादि हुआ करते हैं॥३५॥ जैसे बीजों के रहते हुए वृक्ष का अभाव नहीं होता उमी प्रकार प्राणि-सृष्टि से प्राणिया का अभाव नहीं हो सकता॥३६॥ जैसे सन्निधान से वृक्ष के आकाश, काल आदि कारण होने हैं उमी तरह विश्व के अपरिणाम के होने से मयवान् श्री हरि कारण हुआ हैं॥३७॥ जैसे धान के बीज में मूल, नाव, पत्र, अङ्कुर, काण्ड (पार) बाँध (आवरण) पुष्प, दूध, फल, गुप (मूली) और बग अङ्कुर की कारण-सामग्री को प्राप्त कर उत्पन्न हो जाते हैं उमी प्रकार अनन्त प्रकार के बर्षों में स्थित देव आदि के शरीर विष्णु शक्ति को प्राप्त कर अङ्कुरि हो जाते हैं॥३८-४०॥ यह विष्णु परब्रह्म है जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह लीन हो जायगा॥४१॥ यह ब्रह्म परम धाम, गत् जगत् रूप और परम पद है, जिसमें यह चराचर सतिन सम्पूर्ण जगत् अवधि है॥४२॥ वही मूल प्रकृति और व्यक्तरूप सगार है। उमी में यह जगत् स्थित रहता है तथा लीन होता है॥४३॥ यही बर्षा विना,

१ क ०ष्टा। प्रवृत्तपथ०। २ ग आदिर्बी०। ३ क ०श्रयस्य तप०। ४ क ०मेतु वि०। ५ ग ०न पना-
 भूतपाजरे। ६ ग ०मेतु लोके०। ७ ग यस्मिन्नेव लय०॥

कर्ता क्रियाणां स च इज्यते त्रु, स एव तत् कर्मफलञ्च तस्य यत् ।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो हरेन किञ्चिच्चद्व्यतिरिषत्तरित तत् ॥४४॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भूर्भुव स्वरादिकी तंन नाम त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ध्रुवसंस्थितिरूपणम्

लोमहर्षण उवाच

तारामय भगवत शिशुमाराकृति प्रभो । दिवि रूप हरेयंतु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुव ॥१॥
संप भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् । भ्रमतमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥२॥
सूर्याचंद्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहे सह । वातानीकमयैवं धेध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३॥
शिशुमाराकृति प्रोक्त यद्रूप ज्योतिषा दिवि । नारायण पर धाम तस्याधार स्वय हृदि ॥४॥
उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम् । स ताराशिशुमारस्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थित ॥५॥

यनरूप से पूजित और कर्म फल भी है । उसी हरि से समस्त युग होते हैं और उससे अतिरिक्त कोई पदार्थ ही नहीं है ॥४४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म भूर्भुव स्व आदि लोको के वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

ध्रुव की स्थिति का वर्णन

लोमहर्षण बोले—तारे से व्याप्त तथा शिशुमार तारे (ताराचक्र का भेद) की आकृति जैसे भगवान्
हरि के दिव्य रूप के पुच्छ पर ध्रुव स्थित है ॥१॥ स्वय घूमता हुआ वह ध्रुव सूर्य-चंद्र आदि ग्रहों को भी घुमाता है ।
घूमते हुए ध्रुव के पीछे नक्षत्र समूह चक्र की तरह घूमता है ॥२॥ सूर्य चंद्रमा तारे नक्षत्र सह—ये सब वायु
समूह रूपी बधन से ध्रुव म बंधे हुए हैं ॥३॥ आशान म शिशुमार की आकृति की तरह जो ज्योतिषा का रूप कहा
गया है उसका आधार स्वय परमधाम नारायण है ॥४॥ ध्रुव उस प्रजापति की उपासना कर शिशुमार की पूछ

१ ग ०या वै स । २ स ०दि यसापनमप्यग ० । ग ०दि तत्सापनमप्यरो । ३ व ०यच्च त ० । ४ व

०मयैपानं ध्रु ० ।

आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः। ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवः। भानुर्यवस्थितः॥१॥
 तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम्॥७॥
 विवस्वानप्यभिर्मसिर्प्रसत्यापो। रसात्मिकाः। वर्षत्यम्बु ततश्चाप्रमघ्नादमखिलं जगत्॥८॥
 विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्। सोमः। पुष्ट्यत्येन्दुश्च वायुनाङ्गिमयैर्दिवि॥९॥
 जलैर्विशिष्यतेऽश्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्तिषु। न भ्रश्यति यतरतेऽग्नौ जलाग्न्यभ्राणि तान् दत्तः॥१०॥
 अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। संस्कारं कालजनित विप्राश्चासाद्य निर्मलाः॥११॥
 "सरित्समुद्रा" भोमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः। चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सदिता द्विजाः॥१२॥
 आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गमस्तिमान्। अनभ्रगतमेवोर्ष्या सद्यः क्षिपति रश्मिभिः॥१३॥
 तस्य संस्पर्शनिर्धूतापापपङ्क्तौ द्विजोत्तमाः॥ न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्समुत्तम्॥१४॥
 "दृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः। आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवैः॥१५॥
 कृत्तिहादिषु श्रेष्ठेषु विषमेष्वम्बु यदिदवः। वृष्ट्वाकं पतितं जपे तद्गाङ्गं दिग्गजोद्धृतम्॥१६॥
 युग्मशेषु तु यत्तोषं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः। तत्सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते॥१७॥
 उभयं पुण्यमत्ययं नृणां पापहरं" द्विजाः। आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं" द्विजोत्तमाः॥१८॥

पर ध्ववस्थित हुआ ॥५॥ शिशुमार का आधार सर्वाध्यक्ष जनार्दन है। ध्रुव का आधार शिशुमार है और ध्रुव म सूर्य अवस्थित है ॥६॥ विप्रवन्द ! वह सूर्य देवता, राजस और मनुष्य सहित इस जगत् का जिस विधान से आधार है वह अब आप सुनिये ॥७॥ आठ मासो मे सूर्य रसरूप जल को पीचता है। तब जलवृष्टि होती है, उससे अन्न उपजता है और अन्न को खाने वाला निखिल जगत् है ॥८॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणो से जगत् के जल को ग्रहण कर सोम का पोषण करता है और वह इन्दु वायुमय नाटियो के द्वारा आकाश मे स्थित होकर जल को धूम, अग्नि और वायु रूप मेध मे बिखेर देता है। वही से जल के न गिरने के कारण उसका नाम अभ्र (बादल) पडा है ॥९-१०॥ विप्रवन्द ! वायु से प्रेरित बादल का निर्मल जल कालजन्म सत्कार को प्राप्त कर गिरता है ॥११॥ द्विजगण ! भगवान् सूर्य नदी, समुद्र, पृथिवी और प्राणी से उत्पन्न चार प्रकार के जल को ग्रहण करते हैं ॥१२॥ सूर्य आकाशगंगा के जल को भी ग्रहण कर बिना बादल के ही अपनी किरणा से पृथ्वी पर (उत्ते) बरसाते हैं ॥१३॥ द्विजवर्य, उस जल के स्पर्श से मनुष्य का पाप-पङ्क धुल जाता है और इस दिव्य स्नान के बाद उसे नरक मे नही जाता पडता है ॥१४॥ सूर्य के न दिखाई पडनेपर भी बिना बादल के जो वर्षा होती है, वह आकाश-गंगा का जल सूर्य-किरणो के द्वारा प्रक्षिप्त होता है ॥१५॥ कृत्तिहा आदि विषम नक्षत्रो मे जो सूर्य-दर्शन के साथ वर्षा होती है, उमे दिग्गजो के द्वारा उद्धृत-आकाश गंगा का जल समझना चाहिये ॥१६॥ युग्म नक्षत्रों मे जो आकाश से जल बरसाता है, उस जल को सूर्य-रश्मियाँ तत्काल ग्रहण कर प्रक्षिप्त करती हैं ॥१७॥ द्विजगण ! वह जल अत्यन्त पवित्र और पापहारी है। आकाश-गंगा का जल दिव्य स्नान है ॥१८॥ द्विजगण ! मेघो से बरसा हुआ जल ओदरिणीयों को पुष्ट करता है और वह जल प्राणियो के जीवन के लिए

१ग ध्रुवचन्द्रोऽप्यव०। २क संत्येवो २०। ३क रसात्मकम्। ४क ०पेन्द्रमुरम तम्भादप्रादाप्याये ज०। ५ग ०न्दुरम तम्भादप्रादाप्याये०। ६क सोमेन्द्र पुष्ये केन्दुवादि०। ७ग ०प्यत्येन्द्रव०। ८ग ०वि। नालैरिजितमेधेषु। ९क ०प्य मेधेषु। १०क ०पि। समु०। ११क ०मुद्र मुमि चत०। १२ग ०नम। न०। १३ग दृष्ट्वा मू०। १४क ०पु निगन्त्यम्बु। १५क पापगह। १६क स्थान।

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः । पुष्पात्योषधयः सर्व्वी जीवनायामृतं हि तत् ॥१९॥
 तेन वृद्धिं परा नीतः सकलश्चोपवीगणः । साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥२०॥
 तेन यज्ञान् ययाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः । कुर्वन्तेऽहरहृश्चैव देवानाप्यादयन्ति ते ॥२१॥
 एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्व्वकाः । सर्व्वदेवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥२२॥
 वृष्ट्या घृतमिदं सर्व्वं जगत्स्यावरजङ्गमम् । सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥२३॥
 आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः । ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥२४॥
 हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः । विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥२५॥
 एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् । भूसमुद्रादिभिर्मुक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिर्हणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सर्वतीर्थंमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । ववतुमर्हसि धर्मंश्च श्रोतुं नो वस्तंते मनः ॥१॥

अमृतरूप है ॥१९॥ उस जल से सब ओपधियाँ सर्वाधिक होती हैं । ओपधि समूह फलने-पूलने और पकने तक प्रजाओं के उपयोग में आता है ॥२०॥ इसलिए शास्त्ररूप चक्षु वाले मनुष्य देवताओं की पुष्टि के लिए प्रतिदिन यज्ञ करते हैं ॥२१॥ इस प्रकार यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, देव समूह, पशु-प्राणी-गण, स्थावर, जगम—एतद्रूप यह समूह जगत् वृष्टि के द्वारा धारण किया जाता है । मुनिवर्य ! वह वृष्टि भी सूर्य से निष्पन्न होती है ॥२२-२३॥ मुनिवर ! सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार और वह भी नारायण का आश्रित है ॥२४॥ शिशुमार के हृदय में सब प्राणियों का धारण करने वाले आदिकारण सनातन नारायण स्थित हैं ॥२५॥ मुनिवर्य ! इस तरह पृथ्वी, समुद्र आदि से युक्त ब्रह्माण्ड का वर्णन मैंने कर दिया । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ? ॥२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ध्रुव-संस्थिति-निर्हण नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे धर्मज्ञ ! पृथिवी पर जितने पवित्र तीर्थ तथा आश्रम हैं, उन सबके बारे में हम सुनना चाहते हैं ॥१॥

१ख सकल० । २क ०कान्तस्तमादेवत्प्रजाय० । ३क देव । ४क स वन्त्यह० । ५ख ०हर्षदेव दे० । ६ख कृपयो । ७क ०श्च सर्वमू० । ८ग सर्वमन्त्र निष्पाद्यते यया । साऽ० । ९क ०म् । एव निष्पाद्यते वृष्ट्या सा विभ्याम्० । १०क धवोऽपि शि० । ११ख ०नि धान्यान्या० ।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, वाचा^१ तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च^२ ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३॥
वित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेनं शुध्यति । शतशोऽपि जलं धीं तं सुराभाष्टमिवाश्नुचि ॥४॥
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमा । दुष्टाशय^३ दम्भरुचि^४ पुनन्ति^५ व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र^६ यत्र वसेन्नर । तत्र तत्र^७ कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥६॥
'तस्माच्छृणुष्व वक्ष्यामि तीर्थान्यापतनानि च । सक्षेपेण मुनिश्चेठा पृथिव्या यानि वानि वै ॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि । प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमा । धेनुक^८ चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च ॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च । गया^९ प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं कनकलं तथा ॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्वाक्षं भीमारण्यं^{१०} कुशस्थलीम् । लोहाकुलं^{११} सकेदारं मन्दारारण्यमेव च ॥११॥
महाबलं^{१२} कोटितीर्थं सर्वपापहरं तथा । 'रूपतीर्थं शूकरव'^{१३} चक्रतीर्थं महाफलम् ॥१२॥
योगतीर्थं^{१४} सोमतीर्थं तीर्थं साहोदकं^{१५} तथा । तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥१३॥
सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं^{१६} स्कन्दाश्रमं तथा । कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिलं^{१७} तथा ॥१४॥

धर्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च क्रुशदण्डञ्च विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्वकामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव ववरी सुप्रभं तथा। ब्रह्माकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा॥१७॥
चतुःश्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तयोर्ध्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च॥ सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमामिषेचनम्॥१९॥
महाश्रोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारं चतुर्धारञ्च तीर्थं चामरफण्टकम्॥२०॥
शाङ्गप्रभं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवहृदं तीर्थं विष्णुहृदं तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुत्रागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं सगान्धर्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदम्। सातीर्थं लोकपालारय मणिपूरगिरि तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चहृदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा। मलयं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमागं तथोत्तमम्॥२५॥
गमस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवट महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्मदातीर्थमपरं तीर्थव्रजं तथार्बुदम्। पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुसङ्गमम्॥२७॥
तीर्थं दीर्घासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मवृद्धं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थं, अग्निपद तीर्थं, पञ्चशिल ॥१४॥ धर्मोद्भव कोटितीर्थं, बाधप्रमोचन तीर्थं, गङ्गाद्वार, पञ्चकूट, मध्य-
केसर ॥१५॥ चक्रप्रभ, मतङ्ग, प्रसिद्ध क्रुशदण्ड दंष्ट्राकुण्ड, विष्णुतीर्थं, सार्वकामिकतीर्थं ॥१६॥ मत्स्यतिल बदरी, सुप्रभ,
ब्रह्माकुण्ड, वह्नि कुण्ड, सत्यपदतीर्थं ॥१७॥ चतुःश्रोत, चतुः शृङ्ग, शैल, द्वादशधारक, मानस स्थूलशृङ्ग, उर्वशी- तीर्थ
॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाह्व, शैल, सदाप्रभ, मेरुकुण्ड, सोमामिषेचन तीर्थं ॥१९॥ महाश्रोत, कोटरक, पञ्चधार
॥२०॥ शाङ्गप्रभ, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुम, विल्वप्रभ, देवहृद विष्णुहृद
त्रिधार, सप्तधार, एकधार, चामरफण्टक तीर्थं ॥२०॥ शालग्राम, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुम, विल्वप्रभ, देवहृद विष्णुहृद
॥२१॥ शङ्खप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, अग्निप्रभ, पुत्राग, देवप्रभ ॥२२॥ विद्याधर गान्धर्व, श्रीतीर्थं ब्रह्महृद सातीर्थं,
॥२३॥ लोकपाल, मणिपूरगिरि ॥२३॥ पञ्चहृद, पिण्डारक, मलय, गोप्रभाव गोवर, वटमूलक ॥२४॥ स्नानदण्ड, गुह्य
विष्णुपद, प्रयाग, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमागं ॥२५॥ गमस्तितीर्थं, ययातिपतन, कोटितीर्थं भद्रवट, महाकालवन
॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थव्रज, अर्बुद, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठ, पृथुसङ्गम ॥२७॥ दीर्घासिक पिञ्जरक, ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
वृद्ध, वसुतीर्थं, कुमारिक ॥२८॥ शत्रुतीर्थं, पञ्चनद, रेणुकातीर्थं, पैतामह, विमल, रुद्रपाद ॥२९॥ मणिमत्त, कामाक्ष्य,
गुग, वसुतीर्थं, कुमारिक ॥२८॥ शत्रुतीर्थं, पञ्चनद, रेणुकातीर्थं, पैतामह, विमल, रुद्रपाद ॥२९॥ मणिमत्त, कामाक्ष्य,

१५ ०र्थं सर्वपापप्र०। १६ ०र्थं सार्वकामिकमेव च। सूर्यप्रभ महाकुण्ड तीर्थं सो०। २७ गङ्गाधर। २८
शत्रुकुण्ड। २९ दंष्ट्राकुण्ड। ३० विष्णुकुण्ड। ३१ ०शवार०। ३२ स्थूलशृङ्ग। ३३ स्थूलकूट। ३४ मेतपार।
३५ ०मार्जिनी०। ३६ ०च। सूर्यप्रभ मयुकु०। ३७ ०हाश्रोव कोनद ७०। ३८ ०ज्वरि०। ३९ ०
शान्ति०। ४० वज्रतीर्थं। ४१ ०र्थं वदनीहृदमेव च। ४२ ०र्थं वदनीहृदमेव च। ४३ ०र्थं वदनीहृदमेव च। ४४ ०र्थं
विमल०। ४५ ०र्थं विष्णुप्रभ।

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम्^१। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥२॥
 मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, वाचा^२ तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च^३।
 एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति॥३॥
 वित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि॥४॥
 न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः। दुष्टाशयं दम्भरुचिं पुनन्ति^४ ध्युत्थितेन्द्रियम्॥५॥
 इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः। तत्र तत्र^५ कुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा॥६॥
 'तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च। संक्षेपेण मुनिश्चेष्टा' पृथिव्यां यानि दानि वै॥७॥
 विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि। प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च॥८॥
 प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमाः। धेनुकं^६ चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च॥९॥
 पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं कनकलं तथा॥१०॥
 भृगुतुङ्ग हिरण्याक्षं भीमारण्यं^७ कुशस्थलीम्। लोहाकुलं^८ सकेदारं मन्दरारण्यमेव च॥११॥
 महाबलं^९ कोटितीर्थं सर्वपापहरं तथा। रूपतीर्थं शूकरव^{१०} चक्रतीर्थं महाफलम्॥१२॥
 योगतीर्थं^{११} सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं^{१२} तथा। तीर्थं कोकामुलं पुण्यं बदरीशैलमेव च॥१३॥
 सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं^{१३} स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं^{१४} तथा॥१४॥

लोमहर्षण बोले—जिसके हाथ, पैर और मन में समान है तथा विद्या, तप और कीर्ति है, वह तीर्थ फल को प्राप्त करता है॥२॥ पुरुष के शुद्ध मन और वाणी तथा इन्द्रियो का निग्रह तीर्थरूप हैं। ये शरीरजात तीर्थ स्वर्ग के मार्ग का बोध कराते हैं॥३॥ सौ बार जल से धोया जाने पर भी मद्य-पान जैसे पवित्र नहीं होता उसी तरह दुष्ट मन तीर्थस्नान से शुद्ध नहीं होता है॥४॥ तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम दुष्ट चित्त वाले दम्भी तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य को पवित्र नहीं कर सक्ते॥५॥ इन्द्रिया को वश में करके मनुष्य जहाँ निवास करेगा, वही उसको कुक्षेत्र, प्रयाग तथा पुष्कर आदि तीर्थ प्राप्त हो जायेंगे॥६॥ मुनिश्चेष्ट^४। इसलिए पृथिवी पर जितने तीर्थ तथा आश्रम हैं, उनके सम्बन्ध में आप संक्षेप से सुन लीजिये। विस्तार से तो सौ वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता है॥७॥ द्विजवर्ग! प्रथम तीर्थ पुष्कर है। तब नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चम्पकारण्य, सैन्धवारण्य॥८-९॥ पवित्र मगधारण्य, दण्डवारण्य, गया प्रभास, श्रीतीर्थ दिव्य कनकलं॥१०॥ भृगुतुङ्ग, हिरण्याक्ष, भीमारण्य, द्वारवा-पुरी, लोहाकुल, बेदार, मन्दरारण्य॥११॥ महाबल कीटितीर्थ, सर्वपापहर, रूपतीर्थ, शूकरव, महाफलदायक चक्र-तीर्थ॥१२॥ योगतीर्थ, सोमतीर्थ, साहोटक तीर्थ, कोकामुल पवित्र बदरीशैल॥१३॥ सोमतीर्थ, तुङ्गकूट, स्कन्दाश्रम,

१ स समान० २ वाचो मनस्विन्द्रि०। ३ वाच्य मनस्विन्द्रि०। ४ स ग ०ग्रहत्प।
 ५ ०। ४ ग ०न नाप्र शु०। ५ क ०ण्डमयानु०। ६ क दुष्टबुद्धि। ७ स ०चि न पु०। ८ क ०नन्तीह
 द्विजोत्तमा। ९ स ०नन्त्यजिते०। १० ग तत्र। १० स ग तस्य। ११ स तस्य श्रु०। १२ स
 वेणव। १३ क ०मासतीर्थं च दि०। १४ क द्विमारण्य। १५ क ०हामलं च के०। १६ क द्विमारण्य। स महाण्य।
 १७ क सूर्यतीर्थ। १८ क सुद्धिवर। स शूकर च च०। १९ क घोरतीर्थ। स व्यामतीर्थ। २० क साकोट०।
 स सागोट०। २१ क क्षमतीर्थ। २२ क स्कन्दाश्रम०। २३ क स ०था। सूर्यप्रभ धेनुसदृ, सप्तमापवित्र तथा।

धर्मोद्भवं कोटितीयं तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकैसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च ब्रुहदण्डञ्च विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्वकामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभ तथा। ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपद तथा॥१७॥
चतुःश्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तथोर्ध्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च॥ सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमामिषेचनम्॥१९॥
महाश्रोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारं चतुर्धारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शाङ्गग्रामं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवहृदं तीर्थं विष्णुहृदं तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं यज्ञायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुत्रागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं सगान्धर्व्यं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदम्। सातीर्थं लोकपालारथं मणिपूरगिरिं तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चहृदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा। मलयं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमागं तथोत्तमम्॥२५॥
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्मदातीर्थमपरं तीर्थं वज्रं तथार्बुदम्। पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुशृङ्गम्॥२७॥
तीर्थं दीर्घासिकं नाम तथा पिङ्गरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मनुजं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पेंतामहञ्च विमलं रद्रपादं तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थं, अग्निपद तीर्थं पञ्चशिख ॥१४॥ धर्मोद्भव कोटितीर्थं, बाधप्रमोचन तीर्थं, गङ्गाद्वार, पञ्चकूट, मध्य-
कैसर ॥१५॥ चक्रप्रभं मतङ्गं प्रसिद्धं ब्रुहदण्डं दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं, सार्वकामिकतीर्थं ॥१६॥ मत्स्यतिल, बदरी, सुप्रभ
ब्रह्मकुण्ड, वह्निकुण्ड, सत्यपदतीर्थं ॥१७॥ चतुःश्रोत, चतुःशृङ्ग शैल, द्वादशधारकं मानसं स्थूलशृङ्ग उर्वशी तीर्थं
॥१८॥ लोकपाल, मनुवर, सोमाह्वं शैलं सदाप्रभं मेरुकुण्डं सोमामिषेचन तीर्थं ॥१९॥ महाश्रोत कोटरकं पञ्चधार,
॥२०॥ शाङ्गग्राम, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुम विल्वप्रभं देवहृद, विष्णुहृद
त्रिधार, सप्तधार, चतुर्धार, चामरकण्टक तीर्थं ॥२०॥ शालग्राम, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुम विल्वप्रभं देवहृद, विष्णुहृद
॥२१॥ शङ्खप्रभं, देवकुण्ड, यज्ञायुध, अग्निप्रभं, पुत्रागं, देवप्रभं ॥२२॥ विद्याधर गान्धर्व्यं श्रीतीर्थं ब्रह्महृद, सातीर्थं,
॥२३॥ शङ्खप्रभं, देवकुण्ड, यज्ञायुध, अग्निप्रभं, पुत्रागं, देवप्रभं ॥२२॥ विद्याधर गान्धर्व्यं श्रीतीर्थं ब्रह्महृद, सातीर्थं,
लोकपाल, मणिपूरगिरि ॥२३॥ पञ्चहृद, पिण्डारक, मलय गोप्रभाव गोवर वटमूलक ॥२४॥ स्नानदण्ड, गुह्य,
विष्णुपद, प्रयाग, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमागं ॥२५॥ गभस्तितीर्थं ययातिपतनं कोटितीर्थं भद्रवट, महाकालवन
॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थं वज्रं, तथार्बुदं, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठ, पृथुशृङ्ग ॥२७॥ दीर्घासिकं पिङ्गरकं ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
॥२८॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थं वज्रं, तथार्बुदं, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठ, पृथुशृङ्ग ॥२७॥ दीर्घासिकं पिङ्गरकं ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थं वज्रं, तथार्बुदं, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठ, पृथुशृङ्ग ॥२७॥ दीर्घासिकं पिङ्गरकं ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
॥२८॥ शत्रुतीर्थं पञ्चनदं, रेणुकातीर्थं, पेंतामहं विमलं रद्रपादं ॥२९॥ मणिमत, कामाख्य,

१४ ०४ सार्वकामिकमेव च। सूर्यप्रभं महाकुण्डं तीर्थं सो०। २४ गंगाधर। ३५
गङ्गाधर। ४६ दंष्ट्राकुण्ड। ५५ विष्णुकुण्ड। ६५ गङ्गाधर। ७५ स्थूलशृङ्ग। ८५ मनुवर।
१०५ मणिपूर। ११५ च। सूर्यप्रभं मधुकु०। १२५ महाश्रोतं वासिष्ठं ग०। १३५ जम्बूमागं। १४५
वासिष्ठ। १५५ ययातिपतनं। १६५ ०४ वदनीहृदमेव च। वि०। स ०४ वदनीहृदमेव। १७५ ०५।
विमलं। १८५ ग विष्णुप्रभं।

मणिमतञ्च कामाक्ष्य कृष्णतीर्थं कुशाविलम् । यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मबालुक्म् ॥३०॥
 पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम् । दीर्घसत्रं ह्यपदं तीर्थं चानशनं तथा ॥३१॥
 गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदमेव च । वस्त्रापदं दाहवल् छायारोहणमेव च ॥३२॥
 सिद्धेश्वरं मित्रबलं कालिकाश्रममेव च । वटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम् ॥३३॥
 द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा । रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्वाचनामितम् ॥३४॥
 स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम् । सत्ततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदको ॥३५॥
 दशाश्वमेधिकं तीर्थं सपिञ्ज विषयान्तिकम् । कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदम् ॥३६॥
 पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाटं तथोत्तरम् । बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥३७॥
 लोहद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च । सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च ॥३८॥
 तीर्थञ्च यक्षराजस्य ब्रह्मवर्तं सुतीर्थकम् । कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा ॥३९॥
 स्नानलोमापहञ्चैव मातृसत्तरकं तथा । दशाश्वमेधं केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च ॥४०॥
 सप्तपिण्डकुण्डञ्च तथा तीर्थं देवशः सुजम्बुकम् । इहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जपं तथा ॥४१॥
 कारण्डव्यं चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमयापरम् । पाणिखातं मिथकञ्च मधुवटमनोजवौ ॥४२॥
 कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम् । दिव्यञ्च नृगधूमाक्ष्यं तीर्थं विष्णुपदं तथा ॥४३॥
 अमराणां हृदं पुण्यं कोटितीर्थं तयापरम् । श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशोऽञ्च विभ्रुतम् ॥४४॥
 ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं न्यातीर्थं तथैव च । ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै काष्ठावनम् ॥४५॥
 सोमन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती । ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम् ॥४६॥
 त्रिशूलधारं माहेन्द्र देवस्थानं कृतालजम् । शारम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं हृदम् ॥४७॥
 क्षीरस्रव विरूपाक्ष भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् । ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्व्वतमेव च ॥४८॥

कृष्णतीर्थं कुशाविलं, यजनं, याजनं, ब्रह्मबालुकम् ॥३०॥ पुष्पन्यासं, पुण्डरीकं, मणिपूरं, दीर्घसत्रं, ह्यपदं, अनशनं ॥३१॥
 गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदं, वस्त्रापदं, दाहवल्, छायारोहणं ॥३२॥ सिद्धेश्वरं, मित्रबलं, कालिकाश्रमं, वटावटं,
 भद्रवटं, कौशाम्बीं दिवाकरम् ॥३३॥ द्वीपं, सारस्वनं, विजयं, कामदं, रुद्रकोटिं, सुमनसं, सद्वाचनामितं ॥३४॥ स्यमन्त-
 पञ्चकं, ब्रह्मतीर्थं, सुदर्शनं सत्ततं, पृथिवीसर्व्वं, पारिप्लव, पृथूदकः ॥३५॥ दशाश्वमेधिकं, सपिञ्जं, विषयान्तिकं, कोटि-
 तीर्थं, पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदं, ॥३६॥ पुण्डरीकं, सोमतीर्थं, मुञ्जवाटं, बदरीवनं, रत्नमूलकं, ॥३७॥ लोहद्वारं
 पञ्चतीर्थं, कपिलातीर्थं सूर्य्यतीर्थं यक्षिनी, गवां भवनं ॥३८॥ यक्षराजतीर्थं, ब्रह्मवर्तं, सुतीर्थकं, कामेश्वरं, मातृतीर्थं
 शीतवनं ॥३९॥ स्नानलोमापहं मातृसत्तरकं, दशाश्वमेधं केदारं, ब्रह्मोदुम्बरं ॥४०॥ सप्तपिण्डकुण्डं, सुजम्बुकं
 इहास्पदं, कोटिकूटं किन्दानं किञ्जपं ॥४१॥ कारण्डव्यं, अवेध्यं, त्रिविष्टपं, पाणिखातं, मिथकं, मधुवटं, मनोजवौ, ॥४२॥
 कौशिकी, देवतीर्थं ऋणमोचनं, नृगधूमं, विष्णुपदं ॥४३॥ देवनाजो वा पवित्रं हृदं कोटितीर्थं, श्रीकुञ्जं शालितीर्थं
 प्रविष्टं नैमिषं ॥४४॥ ब्रह्मस्थानं, सोमतीर्थं, न्यातीर्थं ब्रह्मतीर्थं, मनस्तीर्थं, काष्ठावनं ॥४५॥ सोमन्धिकवनं,
 मणितीर्थं, सरस्वती, ईशानतीर्थं, प्रवरं, पावनं, पाञ्चयज्ञिकं ॥४६॥ त्रिशूलधारं, माहेन्द्रं, देवस्थानं, कृतालजं, शारं-
 भरी, देवतीर्थं, सुवर्णाक्षं, कलिं, हृदं ॥४७॥ क्षीरस्रव, विरूपाक्ष, भृगुतीर्थं, कुशोद्भवं, ब्रह्मतीर्थं, ब्रह्मयोनिं, नीलपर्व्वतं, ॥४८॥

कुब्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपदमेव च। स्वर्गद्वार प्रज्ञाद्वार कालिकाश्रममेव च॥४९॥
 द्वावत्तं सुगन्धाश्व कपिलावनमेव च। भद्रकण्हदञ्चैव शङ्खुदण्हद तथा॥५०॥
 सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमीशनस तथा। कपालमोचनञ्चैव अदकीर्णञ्च काम्यकम्॥५१॥
 चतुसामुद्रिकञ्चैव शक्तिकञ्च सहस्रिजम्। रेणुक पञ्चवटक विमोचनस्योजसम्॥५२॥
 स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वार कुशध्वजम्। विश्वेश्वर मानवक कूप नारायणाश्रयम्॥५३॥
 गङ्गाहृद वटञ्चैव धदरीपाटन तथा। इन्द्रमार्गमेकरात्र क्षीरकावासमेव च॥५४॥
 सोमतीर्थं दधीञ्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजा। कोटितीर्थस्थलोञ्चैव भद्रकालीहृद तथा॥५५॥
 अरुघतीवनञ्चैव ब्रह्मावत्तं तयोत्तमम्। अश्ववेदी कुब्जावन यमुनाप्रभव तथा॥५६॥
 वीर प्रमोक्ष सिन्धूस्थमृषिकुल्या सकृत्तिकम्। उर्वोत्तममणञ्चैव मायाविद्योदभव तथा॥५७॥
 महाश्रमो वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रमम्। बाहुतीर्थं नारदो विमलाशोकमेव च॥५८॥
 तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमत। सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा॥५९॥
 सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थमशोकवनमेव च। अरुणास्पद कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुपम्॥६०॥
 पिशाचमोचनञ्चैव सुभद्राहृदमेव च। कुण्ड विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च॥६१॥
 ज्येष्ठस्थानहृदञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा। जंगोपव्यगुहा चैव हरिकेशदन तथा॥६२॥
 अजामुलसरञ्चैव घण्टारुणहृद तथा। पुण्डरीकहृदञ्चैव वापी वर्र्णिकस्य च॥६३॥
 सुवर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थहृद तथा। कुण्ड घर्षरिकायाश्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका॥६४॥
 श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकहृद तथा। कूप सिन्धूदभवञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा॥६५॥
 रुद्रावास तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम्। भक्तहृद क्षीरसर प्रेताधार कुमारकम्॥६६॥
 ब्रह्मावत्तं कुशावत्तं दधिकर्णोदपानकम्। शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी॥६७॥

कुब्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपद स्वर्गद्वार प्रज्ञाद्वार कालिकाश्रम॥४९॥ रुद्रावत् सुगन्धाश्व कपिलावन भद्रकण्हद
 शङ्खुदण्हद॥५०॥ सप्तसारस्वत औशनस कपालमोचन अवकाण काम्यक॥५१॥ चतुसामुद्रिक शक्ति सह
 सिक् रेणुक पञ्चवट विमोचन औजस॥५२॥ स्थाणुतीर्थ कुशध्वज स्वर्गद्वार कुशध्वज विश्वेश्वर मानवक
 कूप नारायणाश्रय॥५३॥ गङ्गाहृद वट बदरीपाटन इन्द्रमार्ग एकरात्र क्षीरकावास॥५४॥ सोमतीर्थ दधीच
 श्रुततीर्थ कोटितीर्थस्थला भद्रकालीहृद॥५५॥ अरुघतीवन ब्रह्मावत्त अश्ववेदी कुब्जावन यमुनाप्रभव॥५६॥
 वीर प्रमोक्ष सिन्धूस्थ मृषिकुल्या सकृत्तिक उर्वोत्तममण मायाविद्योदभव॥५७॥ महाश्रम वैतसिकारूप सुन्दर
 काश्रम बाहुनाय चारुत्तनी विमलाशोक॥५८॥ विद्वान् मार्कण्डेय का पञ्चवनदीय सोमतीर्थ सितोद मत्स्योदरी
 ॥५९॥ सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थ अशोकवन अरुणास्पद कामद शुक्रतीर्थ सवालुप॥६०॥ पिशाचमोचन सुभद्राहृद
 विमलदण्ड कुण्ड चण्डेश्वर-तीर्थ॥६१॥ ज्येष्ठस्थानहृद पवित्र ब्रह्मसर जंगोपव्यगुहा हरिवेश्वरन ॥६२॥ अजा
 मुलसर पञ्चङ्गाहृद पुण्डरीकहृद वर्र्णिक-वापी॥६३॥ सुवर्णास्योदपान श्वेततीर्थहृद घर्षरिकाकुण्ड श्यामाकूप
 चन्द्रिका॥६४॥ श्मशानस्तम्भकूप विनायकहृद सिन्धूदभवकप पवित्र ब्रह्मसर॥६५॥ रुद्रावास नागतीर्थ पुलोमक
 भक्तहृद क्षीरसर प्रेताधार कुमारक ॥६६॥ ब्रह्मावत्तं कुशावत्तं दधिकर्णोदपान शृङ्गतीर्थ महातीर्थ, तीर्थश्रेष्ठा,

दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षाक्षयं वटम् । दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम् ॥६८॥
 कपिलोद्भवं गृध्रवटं सावित्रीहृदमेव च । प्रभासनं सीतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम् ॥६९॥
 धन्यकं कौशिकारूपञ्च मतङ्गहृदमेव च । पितृकूपं रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम् ॥७०॥
 ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नहृदं तथा । कौशिक्यं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा ॥७१॥
 विदेवेश्वरं कल्पसरः कन्यासवेद्यमेव च । निश्चीवाप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२॥
 देवकूटञ्च कूपञ्च वसिष्ठाश्रममेव च । घोरश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥
 कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिवरमेव च । शुनः कुण्डोऽथ तीर्थञ्च नन्दितीर्थं तथैव च ॥७४॥
 कुमारवासं श्रीवाससौर्वीशीतीर्थमेव च । कुम्भकर्णहृदञ्चैव कौशिकीहृदमेव च ॥७५॥
 धर्मतीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालकं तथा । सन्ध्यातीर्थं फारतोयं कपिलं लोहितार्णवम् ॥७६॥
 शोणोद्भवं वंशगुल्ममूपमं फल्तीर्थकम् । पुण्यादतीहृदं तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम् ॥७७॥
 रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च । मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८॥
 रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत् । सानुगर्तं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा ॥७९॥
 इयुतीर्थं वाप्यंभञ्च कावेरीहृदमेव च । कन्यातीर्थञ्च गोवर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥८०॥
 बदरीहृदमग्न्यश्च मध्यस्थानं विकर्णकम् । जातीहृदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च ॥८१॥
 सत्यदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमहृदं तथा । तयान्यद्वालखिल्यानां सपूर्वाणां तयापरम् ॥८२॥
 तयान्यञ्च महर्षीणामखण्डितहृदं तथा । तीर्थेष्वेतेषु विविधत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥८३॥
 स्नानं करोति यो मर्त्यः सोपवासी जितेन्द्रियः । देवान्पृथोन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तप्यं च व्रमात् ॥८४॥
 अन्यैर्य्यं देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम् । पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः ॥८५॥

महानदी ॥६७॥ गयाशीर्षाक्षयवट, दक्षिण, उत्तर, गोमय, रूपशीतिक, ॥६८॥ कपिला हृद, गृध्रवट, सावित्रीहृद, प्रभासन, सीतवन, योनिद्वार, धेनुक ॥६९॥ धन्यक, कौशिकारूप, मतङ्गहृद, पितृकूप, रुद्रतीर्थ, शक्रतीर्थ, सुमाली ॥७०॥ ब्रह्मस्थान, सप्तकुण्ड, मणिरत्नहृद, कौशिक्यं भरत, ज्येष्ठालिका ॥७१॥ विदेवेश्वर, कल्पसर, कन्यासवेद्य, निश्ची-
 वाप्रभव, वसिष्ठाश्रम ॥७२॥ देवकूट, कूप, घोरश्रम, ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥ कुमारधारा, श्रीधारा, गौरीशिवर, शुन-
 कुण्ड, शुनस्तीर्थं नन्दितीर्थं ॥७४॥ कुमारवास, श्रीवास, सौर्वीशीतीर्थं?, कुम्भकर्णहृद, कौशिकीहृद ॥७५॥ धर्म-
 तीर्थं, कामतीर्थं, उद्दालकतीर्थं मध्यस्थानं, फारतोय, कपिल लोहितार्णव ॥७६॥ शोणोद्भवं, वंशगुल्म, ऊपम, फल्-
 तीर्थक, पुण्यादतीहृद बदरिकाश्रम ॥७७॥ रामतीर्थं, पितृवन, विरजातीर्थं, मार्कण्डेयवन, कृष्णतीर्थं, वटतीर्थं ॥७८॥
 रोहिणीकूपप्रवर, इन्द्रद्युम्नसर सानुगर्तं, समाहेन्द्र, श्रीतीर्थं, श्रीनद ॥७९॥ इयुतीर्थं, वाप्यमतीर्थं, कावेरीहृद, कन्या-
 तीर्थं, गोवर्णं, गायत्रीस्थान ॥८०॥ बदरीहृद, मध्यस्थान, विकर्णक, जातीहृद, देवकूप, कुशप्रवण ॥८१॥ सत्यदेवव्रत, कन्याश्रमहृद—ये तीर्थं और आश्रम है । इसी प्रकार वालखिल्या और दूसरे मर्त्यियों के भी अगणित हृद अपान्ती-
 तीर्थस्थान हैं ॥८२॥ '॥ द्विजगण ' जो मनुष्य जितेन्द्रिय, उपवासी तथा पूर्ण श्रद्धा होकर इन तीर्थों में स्नान करता है और व्रमात् देव, ऋषि, मनुष्य, तथा जिनका वह तर्पण कर देह-पूजन करते हुए तीन रात बड़ी वास करता है, वह

प्राप्नोति हयमेघस्य नरो नास्त्यत्र संशयः । यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

तत्रादी स्वयम्भूब्रह्मपिसवादवर्णनम्

मुनय ऊचुः ॥

‘पृथिव्यामुत्तमा’ भूमिं धर्म्मकामार्थमोक्षदाम्^१ । तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतावर ॥१॥

लोमहर्षण उवाच

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्मुनयः पुरा । तमहं सम्प्रक्षयामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमा ॥२॥

स्वाश्रमे सुमहापुण्ये^२ नानापुष्पोपशोभिते । नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥३॥

पुत्रागः कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः । शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्घवत्खादिरैः ॥४॥

पाटलाशोकवकुलैः करवीरैः सचम्पकैः । अग्यैश्च विविधैर्बृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः ॥५॥

प्रत्येक तीर्थ में पृथक्-पृथक् अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है । जो इस उत्तम तीर्थ-माहात्म्य का श्रवण-पठन करेगा या करायेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जायेगा ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य-वर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा और ब्रह्मपियो^३का सवाद-वर्णन

मुनियों ने कहा—हे वक्ताओ मे श्रेष्ठ । पृथिवी में धर्म अर्थ-काम-मोक्षदायक उत्तम भूमि तथा तीर्थों में उत्तम तीर्थ को हमें बतलाइये ॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवन्द । पहले मुनियां ने यही प्रश्न मेरे गुरु से पूछा था । इसे मैं बतलाऊँगा, आप लोग मुनिये ॥२॥ महापवित्र, नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित, अनेक वृक्ष-रूतों से व्याप्त, पशु-पक्षीगणों से युक्त, पुत्राग, कर्णिकार (कनैल या बनकचम्पा), सरल (सडर) देवदारु, शाल (साखू), ताल तमाल, पनस (बटहल), घव, खादिर (खैर), पाटला, अशोक, वकुल (मोलसिरी) करवीर, चम्पा और विविध प्रकार के दूमरे

कुक्षेत्रे समासीनं व्यास मतिमतां वरम् । महाभारतकर्त्तारं सव्यशास्त्रविशारदम् ॥६॥
 अध्यात्मनिष्ठं सर्वज्ञं सर्वभूतहिते रतम् । पुराणागमविवारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७॥
 पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् । ब्रह्ममध्याययुः प्रोत्था मुनयः संशितव्रतः ॥८॥
 कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽय गौतमः । वसिष्ठो जैमिनिर्घोष्यो मार्कण्डेयोऽय वाल्मीकिः ॥९॥
 विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽय आसुरिः । सुमन्तुर्भागवो नाम कश्यो मेधातिविगुरुः ॥१०॥
 माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा । मोद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११॥
 संवतः कौशिको रंभ्यो मैत्रेयो हरितस्तथा । शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्वासा लोमशस्तथा ॥१२॥
 नारदः पर्वतश्चैव वंशम्पायनगालवो । भास्करिः पूरणः सूत पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३॥
 उल्लूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः । सनत्कुमारः पेलश्च कृष्णः कृष्णानुभोक्तिः ॥१४॥
 एतन्मुनिवरेश्चान्येद्युतः सत्यवतीसुतः । रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५॥
 तानागतान्मुनीन् सर्वान् पूजयामास वेदवित् । तेषां प्रतिपूर्वय कथां चक्रुः परस्परम् ॥१६॥
 कथान्ते ते मुनिधेष्ठाः कृष्ण सत्यवतीसुतम् । प्रपच्छुः सशयं सर्वं तपोवननिवासिनः ॥१७॥

मुनय ऊचुः

मुने वेदाश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् । भूतं भव्य भविष्यञ्च सर्वं जानासि घाट्मयम् ॥१८॥

वृक्षो तथा पुष्पो से श्री सुगोमिन् गुरुभो म अपने आधम म वेडे हुए शान्त, विद्वत्प्रेष्ठ, महाभारत-रचयिता, सर्वशास्त्र निष्णात, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सब प्राणियों के कल्याण म निरत, पुराण-शास्त्र-वक्ता, वेद-वेदाङ्ग-पारगत और कमल के समान दीर्घ नत्र बाल पराशर-पुत्र व्यास के दर्शन करने के लिये महाप्रणी मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक आये ॥१८॥ कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, जैमिनि, घोष्य, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य, गार्ग्य आसुरि सुमन्तु भागव, कश्य, मेधातिथि, माण्डव्य, च्यवन, धूम्र, असित देव, मोद्गल्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद, अकृतव्रण मयने, कौशिक रंभ्य, मैत्रेय, हरित वाण्डिल्य, विभाण्ड, दुर्वासा, लोमश, नारद, पर्वत, वंशम्पायन, गालव, भास्करि पूरण, सूत पुनस्त्य, कपिल, उल्लूक, पुलह, वायु, देवस्थान, चतुर्भुज, सनत्कुमार, पेल, कृष्ण, कृष्णानु-भोक्ति—इन मुनिधेष्ठा तथा दूसरे भी कृपिया के मध्य व्यास उनी प्रहार गोमिन् हो रहे थे जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा ॥९-१५॥ वेदवेत्ता व्यास ने आगन्तुक मुनियों का सम्मान किया । उन्होंने श्री व्यास की पूजा कर आपन म कथा-वार्ताकाण छेड़ दिया ॥१६॥ मुनिवर ! कथा के अन्त में तपोवन-निवासियों ने व्यास से सदेह पूछा ॥१७॥

मुनिपों ने कहा—हे मुन ! आप वेद, शास्त्र पुराण आगम महाभारत मूत्र, भविष्य, वर्तमान—गद्यबुद्ध

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे'। रागप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥१९॥
 इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोमिशतसङ्कुले। मोहपङ्काविले दुर्गे 'लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०॥
 निमज्जजगदालोवय निरालम्बमचेतनम्। पृच्छामस्तथा महाभाग ब्रूहि नो 'मुनिसत्तम ? ॥२१॥
 धेयः किमत्र संसारे भैरवे लोमहर्षणे। उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्तुमर्हसि ॥२२॥
 दुर्लभं परमं क्षेत्रं वक्तुमर्हसि मोक्षदम्। पृथिव्यां 'कर्ममूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३॥
 कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्मभूमौ 'यथोदितम्। प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्मतः ॥२४॥
 मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति 'पुरुषः सुधीः'। तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥२५॥
 श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। व्यासः 'प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२६॥

व्यास उवाच

शृणुष्वं मुनयः सर्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ ॥१॥ यः संवादोऽभवत् पूर्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥२॥
 मेष्पृष्टे' तु विस्तीर्णं नानारत्नविभूषिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥२८॥
 नानापक्षिते रम्ये 'नानाप्रसवनाकुले। नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते ॥२९॥
 नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते। नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥३०॥

जानते हैं ॥१८॥ अनुराग रूपी प्राहा से व्याप्त, मयकर, विषयरूपी जल से परिपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवर्तों (मंवर) से युक्त, सैकड़ों तरंगों से सङ्कुल, मोहरूपी कीचड़ से समन्वित, कठिन, लोमरूपी गम्भीरता से दुस्तर तथा कष्टमय इस कारहीन भवसागर में चेतनाहीन और नि सहाय होकर डूबते हुए विश्व को देखकर हम आपसे पूछते हैं कि इसे भयानक तथा रोमाञ्चोत्पादक संसार में क्या नाम देना है ? ॥१९-२१॥ हे महाभाग ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उपदेश देकर लोगों का उद्धार कर सकते हैं। परम दुर्लभ तथा मोक्ष-दायक क्षेत्र को हमें बतलाइये। पृथिवी पर कर्ममूमि के बारे में भी हम सुनना चाहते हैं ॥२२-२३॥ मूमि पर शास्त्रविहित कर्मों को करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है तथा कुर्म करने से नरक भी जाता है ॥२४॥ उसी प्रकार विद्वान् पुरुष मोक्ष-क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिए, हे महाविद्वन् ! हे द्विजवर्य ! जो हमने पूछा है, उसे बतलाइये ॥२५॥ वरयात्मा मुनियों के वचन सुनकर मृत-मविष्य-वर्तमान-वेत्ता भगवान् व्यास बोले ॥२६॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द ! यदि आप पूछते हैं तो मुनिये। पहले ब्रह्मा के साथ ऋषिया का जो संवाद हुआ था, वही मैं बतलाऊंगा ॥२७॥ नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त, विविध पुष्पों से सुगुणित, विभिन्न पक्षियों से शब्दायमान, अनेक जीव-जन्तुओं से परिव्याप्त, अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओं से समन्वित विभिन्न वर्णों की शिलाओं तथा धातुओं से विभूषित, अनेक मुनिजनो तथा आश्रमा से युक्त एवम् विस्तृत सुमेरु पर्वत के पीठ पर बैठे हुए विद्वानाथ, जगत् के उत्पत्तिस्थान, विश्ववन्द्य, संसार के आधार तथा शासक ब्रह्मा को

१क. ०रेरोग०। २क. ०हमोकाचले। ३ग. लोहग०। ४ क. स द्विजसत्तम। ५क. प्राणिना।
 ६ग. ०मंसिस्त्रैव श्रो०। ७क. यदीरित०। ८ख. वा। ९क. स परम। १०क. मुचि। ११ख. ०व
 मतिमान्०। १२क. ०य। यस्त्वा०। १३क. स ०ष्टे मुचि०। १४क. ०प्रधवगान्विते। ना०।

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् । जगत्पतिं जगद्वन्धं जगदाधारमीश्वरम् ॥३१॥
 देवदानवगन्धर्व्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः । 'मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमग्न्यदिवालयैः ॥३२॥
 (केचित् स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाप्रतः' । केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३॥)
 एवं प्रमुदिते काले सर्व्वभूतसमागमे । नानाकुसुमगन्धाद्यै दक्षिणानिलसेविते ॥३४॥
 भृग्वाद्यास्तं तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् । 'इममर्थमपिचरा' प्रपच्छुः पितरं द्विजाः ॥३५॥

ऋषय ऊचुः

भगवञ्छुतुमिच्छामः कर्मभूमिं महोत्तले । वशुतुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥३६॥

व्यास उवाच

तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः । पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥३७॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूवर्द्धापिस्त्रवादे प्रश्ननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भारतवर्षवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं मुनयः सर्व्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् । पुराणं वेदसम्बद्धं भुवितभुवितप्रदं शुभम् ॥१॥

देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, सर्प, मुनि सिद्ध, अप्सरा तथा और भी दूसरे देवता घेरकर बैठे हुए थे । ॥२८-३२॥
 कोई ब्रह्मा की स्तुति करते थे तो कोई उनके आगे गाते थे । (कोई बाजे बजाते थे तो कोई नाचते थे ॥३३॥) मुनि-
 बृन्द । इस प्रकार आनन्दित, नाना प्रकार के पुष्पा से सुगन्धित तथा मलयानिल से सुगन्धित प्राणियों के समायम-
 काग म मृग आदि मुनि ब्रह्मा को प्रणाम कर यही प्रश्न पूछने लगे ॥३४-३५॥

मुनियों ने कहा—भगवन् । पृथ्वी-तल पर कर्मभूमि के बारे में हम सुनना चाहते हैं । हे देवता के
 स्वामी । दुर्लभ मोक्षक्षेत्र की भी बतला दीजिये ॥३६॥

व्यास बोले—मुनिवर । उनके वचन सुनकर देवेश ब्रह्मा उनके सारे प्रश्नों का उत्तर देने लगे ॥३७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ब्रह्मपिता के संवाद प्रमाण में प्रश्न निरूपण नामक छत्र्विंशोऽध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर । इस समय मैं वेदा से सम्बन्ध रखने वाले तथा मोक्ष-मोक्ष की देनेवाले पवित्र

१ वं ऽनिमिदवाप्सः । २ वं ऽवितु नर्तनदेव । ३ वं तन्वत । ४ म् लोहे । ५ ऽद्या मुनयो देवा प्र० ।
 ६ वं ऽमर्षं तदा देवा य० । ७ वं ग० ऽजा । ८ वं ऽहं य० ।

पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्मभूमिर्बदाहता^१। कर्मणः फलभूमिश्च स्वर्गञ्च नरकं तथा ॥२॥
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा धम्मञ्च भो द्विजाः। अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥३॥
ब्राह्मणाद्याः स्वकं कर्म कृत्वा सम्यक्सुसंयताः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं तस्मिन्वर्षे न संशयः ॥४॥
धम्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः। प्राप्नोति पुरयः सत्त्वं तस्मिन् वर्षे सुसंयतः ॥५॥
इन्द्राद्याश्च सुरा सत्त्वं तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः। कृत्वा सुशोभनं कर्म देवत्वं प्रतिपेदिरे ॥६॥
अन्येऽपि लेभिरे मोक्षं पुरपाः संयतेन्द्रियाः। तस्मिन् वर्षे ब्रूयाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः ॥७॥
ये चापि स्वर्गं तिष्ठन्ति धिमानेन गतज्वराः। तेऽपि कृत्वा शुभं कर्म तस्मिन् वर्षे दिवं गताः ॥८॥
निवासं भारतं वर्षं आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः। स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्यामः कदा वयम् ॥९॥

मुनय ऊचुः

यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म^२ नान्यत्र पुण्यदम्। पापाय वा सुरश्रेष्ठ वर्जयित्वा च भारतम् ॥१०॥
तत् स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं तच्च गम्यते। न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥११॥
तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद। यदि तेऽस्ति दयात्मासु यथावस्थितिरेव च ॥१२॥
तस्माद्वर्षमिदं नाथ ये दास्मिन् वर्षपर्वताः। भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्वानशेषतः ॥१३॥

पुराण के बारे में कहेंगा आप लोग सुनें ॥१॥ पृथिवी पर कर्मभूमि के रूप में भारतवर्ष बतलाया गया है। कर्म-फल की भूमि तथा स्वर्ग-नरक भी यहीं है ॥२॥ विप्रवृन्द ! भारतवर्ष में मनुष्य पाप-पुण्य करने उनके शुभ अशुभ फल अवश्य पाते हैं ॥३॥ इस वर्ष में ब्राह्मण आदि वर्ण समयपूर्वक अपने-अपने कर्मों को करके निःसन्देह परा सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥४॥ द्विजश्रेष्ठो ! इस वर्ष में पुरुष सयमी होकर धर्म-अर्थ-काम मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर सकता है ॥५॥ विप्र-वर ! इस वर्ष में इन्द्र आदि देवगण उत्तम कर्म करके देवत्व को प्राप्त हुए ॥६॥ दूसरे भी जितेन्द्रिय, विद्वान् शान्त, वीतराग तथा ईर्ष्यारहित पुरुषों ने इस वर्ष में मोक्ष को प्राप्त किया ॥७॥ जो भी तापरहित होकर विमान के द्वारा स्वर्ग में विराज रहे हैं वे भी इसी वर्ष में शुभ कर्म करके स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥८॥ स्वर्ग-मोक्ष-दायक भारतवर्ष में वास करने के लिये देवता लोग सदा लालायित रहते हैं ॥९॥

मुनियो ने कहा—हे देवश्रेष्ठ ! आपने जिसलिए यह कहा है कि पाप-पुण्य-दायक कर्म भारतवर्ष की छोड़कर कहीं नहीं होता एवम् मनुष्यों के लिए भारतवर्ष ही स्वर्ग-मोक्ष-दायक कर्म भूमि है इसलिए भारतवर्ष के विषय में हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये। ब्रह्मन् ! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा है तो भारतवर्ष, इसके वर्षपर्वत तथा वर्ष के भेदों को निःशेष करके बतला दीजिए ॥१०-१३॥

१क ०हृतम्। व०। २ख ०मिहि स्व०। ३ख कर्म। ४ख ०ंगाद्यास्तु यत्कर्म०। ५क ०त्वा तु गो०। ६क ख सयता। ७क सजिते०। ८ ०क ०रा। देवा स्व०। ९ख ०ने विग०। १०ख ते कृ०। ११ख मुमु०। १२क उत्पश्याम। १३क ०मं चान्य०। १४ख पापद। १५ख वर्जयित्वा। १६ख ०ध्यश्चान्तरच ग०। १७क ०ते। तनचान्यत्र। १८ख न चाल्य चात्र। १९क ते स्निग्धताऽस्मा। २०क. ०द यावद्येऽप्यस्मि०।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व भारत वर्षं नवभेदेन भो द्विजा । समुद्रात्तरिता ज्ञेयारते' समाश्च परस्परम् ॥१४॥
 इन्द्रद्वीप' कजोदश्च ताम्रपर्णी गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो' वारुणस्तथा ॥१५॥
 अदन्तु नवमस्तपेया द्वीप सागरसंवृत । योजनाना सहस्र वं द्वीपोऽय' दक्षिणोत्तर ॥१६॥
 पूर्वो किराता दश्यासन पश्चिमे यवनारतया' । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च ते स्थिता द्विजा ॥१७॥
 इज्यायुद्धवणिज्याद्यै' दर्मभि कृतपावता । तेषां सव्यवहारश्च एभि' कर्मभिरिष्यते' ॥१८॥
 स्वर्गापवर्गहेतुश्च' पुण्य पापञ्च वं तथा । महेंद्रो मत्स्य सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत ॥१९॥
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवान् कुलाचला । तेषां सहस्रशश्चाये भूधरा ये समीपगा ॥२०॥
 विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानव । कोलाहल' स वं भ्राजो मदरो दददुराचल' ॥२१॥
 वातघयो' वंध्युतश्च मंताक' सुरसस्तथा । तुङ्गप्रस्थो नागगिरिगोधन पाण्डराचल' ॥२२॥
 पुष्पगिरिवैजयतो' रवतोऽब्जुद' एव च । ऋष्यमूक स' गोमय' कृतशैल' कृताचल' ॥२३॥
 श्रोपावतश्चकोरश्च शतशोऽये च पर्वता । तैर्विमिथा जनपदा' म्लेच्छाद्याश्चैव भागश ॥२४॥
 तं पीयूते सरिच्छेद्यस्ता ब्रुधध्व द्विजोत्तमा । गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्च द्रभागा तथापरा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । भारतवर्ष व नौ भेदा को मुनिय जो परस्पर समुद्रा स व्यवहित हैं ॥१४॥

त्रस—“द्रष्टव्यं वनेर सान्द्रवण गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्य गान्धर्व वारुण और नवौ यहा द्वीप (भारतवर्ष) है जो समुद्र स आवृत है ॥१५॥ दक्षिण उत्तर स यह द्वीप एक हजार योजन विस्तृत है । इसा पूर्व भाग स किरात पश्चिम स यवन और जय स ब्राह्मण क्षत्रिय वय और पाद्र रहते हैं ॥१६ १७॥ द्विजवृत् । ब्राह्मण आनि वण जमना यक्ष यक्ष व्यापार आर तथा रूप रमौ स पवित्र होत है । इन्द्रा वर्मो स उनका परम्पर व्यवहार चलता है ॥१८॥ मय्य गोम और पण्य-याग का उत्पत्ति-स्थान यहा द्वीप है । यहाँ महेंद्र मत्स्य सह्य शुक्तिमान ऋष्य विन्ध्य और पारियात्र नामक शान पर्वत हैं ॥१९॥ उनका पास दूमेरे भी हजार पर्वत हैं जो विस्तृत उच्च रमणीय तथा चित्र विविध गिरि-वा- है । जग—नाल-हल यन्त्राज मन्दर ददुराचल वातघय वशन मन्ताक सुरग सगप्रस्थ नागगिरि गान्धन पाण्डराचल पुष्पगिरि वैजयन्त रवत अबु' ऋष्यमूक गोमय कृतशैल कृताचल श्रोपावन कोर तथा दूसर स सरसा पर्वत हैं ॥२० २३॥ इन पर्वता स मित्रित म्लेच्छ जाति अनेक देग हैं जिनका निवासा उग्र नरिया का जग पर्वत है ॥२४॥ द्विजपट्टा । उन नरिया व नाम मुनिय । जग—

यमुना शतद्रुविपाशा वितस्तेरावती कूटः । गोमती धूतपापा च बाह्वा च दृढती ॥२६॥
विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठोवा गण्डकी तथा । कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥२७॥
देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च । वेण्या तु चन्दना चैव सदानोरा मही तथा ॥२८॥
चर्मण्वती वृषी चैव विदिशा वेदवत्यपि । सिन्ध्रा हवन्ती च तथा पारियात्रानुगा स्मृताः ॥२९॥
शोणा महानदी चैव नर्मदा सुरया क्रिया । मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥३०॥
विजोत्पला वेनवती । करमोदा पिशाचिजा । तयान्यातिलघुधोणी विपाप्मा शैवला नदी ॥३१॥
सपेरजा शक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमुः । ऋषपादप्रसूता वै तयान्या वेगवाहिनी ॥३२॥
सिन्ध्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापो चैव सरिद्धरा । वेणा वंतरणी चैव सिनीवाली कुम्भंती ॥३३॥
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा । विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥३४॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणा तथापगा । तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तयान्या पापनाशिनी ॥३५॥
सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिता वराः । कृतमाला ताम्रपर्णी पुण्यजा प्रत्यलावती ॥३६॥
मलयद्रिसमुद्भूताः पुण्या शीतजलास्त्विमाः । पितृसोमपिकुल्या च वज्रजुला त्रिदिवा च या ॥३७॥

गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रमाणा, यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, एरावती कुहू शामती घृतनापा, वाहुदा, दूषडती, देविका, चद्रु, निष्टीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये नदियाँ हिमाचल से निकली हैं ॥२७-२३॥ देवस्मृति, देववती, वातप्री, सिन्धु, वेण्या, चन्द्रना, सदानारा, मही, चमण्वती वृषी, विदिशा बडवनी सिप्रा अवन्ती—ये नदियाँ पारियात्र से निम्न हैं ॥२८-२९॥ शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरथा क्रिया मन्दाकिनी, दनार्णा बिजवटा, और ऋषि ऋषपर्वत से बहिर्भूत हैं ॥३०-३२॥ सिप्रा, पयोप्पी, निरिन्ध्या, नदीश्रेष्ठ तापी, वेणा, वैतरणी, निनीवाली, कुमुदी, सोया, महागोरी, दुर्गा, अन्तशिला—य पवित्र जलवाली नदियाँ दिन्ध्य पर्वत से निकली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा और भी पापनाशिनी श्रेष्ठ नदियाँ खल्ल पर्वत से निकली हैं ॥३५३॥ इतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पा, प्रत्यलावनी—य दक्षिण पवित्र नदियाँ मलयपर्वत से निकली हैं ॥३६३॥ पितृ दीर्घपर्वत, बज्रनुला, विदिवा लाङ्गुलिनी और वराह पर्वत से निकली हैं ॥३७३॥ सुविकाला, कुमारी, मनुगा मन्दगामिनी और श्यापलासिनी शुक्तिमान्

१म. कुर। २म हतपापा। ३क ग वदना। ४म ०दापारामकी त०। ५म ०या। परा धर्मप्वती च०।
६म नृपी। ग मूपा। ७म क्षेत्रव०। ८क ०क्षिप्रा। ख शीघ्रा। ९म ग सोणो। १०क हृपा। ११म
क्षेत्रहृपा। १२क धैरवती। १३क ख विपाशा। १४म जैवला। १५क समेरजा। ख समेरजा। १६म
मुक्तिमती। १७क यनु। ख कुट। १८क ०या भद्रावदिनी। १९क चित्रा। २०क विन्ध्यान्ता।
२१म ०वालार्कमुमुक्षुता। तो०। ग ०वाला कु०। २२क वापी। २३क शतमाला। २४क ०जात्युत्पला०।
२५क. च चन्द्रमाला दि०। २६म. इक्षुना।

लाङ्गुलिनी' वंशकराः। महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः। सुविकाला कुमारी च मन्गुग मन्वगामिनी ॥३८॥
 क्षयापलासिनी चैव शक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः। सर्व्वीः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वी गङ्गाः समुद्रगाः ॥३९॥
 विश्वस्य मातरः सर्व्वीः सर्व्वीः पापहराः स्मृताः। अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥४०॥
 प्रावृत्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्चैवाः। मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशला ॥४१॥
 अङ्घ्रकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकेः सह। मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ॥४२॥
 सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३॥
 गोवर्द्धनपुरं रम्य भागवस्य महात्मनः। वाहीका वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥४४॥
 अपरान्ताश्च शूद्राश्च वाह्लिकाश्च सकेरलाः। गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥४५॥
 शतद्रुहः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूपिकाः। माठराश्चैव कनकाः कंकेया दम्भमालिका ॥४६॥
 क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च। काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्बराश्च सलीकिकाः ॥४७॥
 वीराश्चैव तुपाराश्च पल्लवाधायता नराः। आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥४८॥
 लम्पकाः शुन शोकाश्च कुलिका जाङ्गले सह। औपध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः ॥४९॥
 तोमरा हसमागाश्च काश्मीरा कर्णनास्तया। शूलिकाः कुहकाश्चैव भागधाश्च तथैव च ॥५०॥
 एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान्निबोधत। अन्धा वामद कुराकाश्च वल्लकाश्च मखान्तका ॥५१॥

पर्वत से निकली हैं ॥३८॥ द्विजवर। ये सभी नदियाँ पवित्र हैं और सभी गंगा में गिरती हैं। ये सब नदियाँ पापहारिणी तथा विश्वमाताएँ हैं ॥३९॥ इनके अतिरिक्त अन्यान्य छोटी मोटी नदियाँ और भी हैं। इनमेंसे कुछ तो केवल वरसाती है और कुछ सदा बहती रहती हैं ॥४०॥ मत्स्य, मुकुटकुल्य, कुन्तल, काशिकोशल, अङ्घ्र, कलिङ्ग, शमक और वृक ये जनपद मध्यदेश बहलाते हैं ॥४१-४२॥ सह्यपर्वत के उत्तर भाग में जहाँ गोदावरी नदी है, वह प्रदेश सम्पूर्ण पृथ्वी में (सर्वाधिक) मनोरम है ॥४३॥ वहाँ महात्मा मार्गव का गोवर्धनपुर रमणीय है। वाहीक, वाटधान, सुतीर, कालतोयद, अपरान्त, शूद्र, वाह्लिक, केरल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र, शतद्रुह, कलिङ्ग पारद, हारभूपिक, माठर, कनक, कंकेय, दम्भमालिक—ये क्षत्रियोपम देश हैं तथा वैश्य एवं शूद्रकुल हैं ॥४४-४६॥ द्विजन्द्रो। काम्बोज, बर्बर, लीविक, वीर, तुपार, पल्लव, आधायत, नर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लम्पक, शुनसोक, कुलिक, जाङ्गल, औपधि, चलचन्द्रा, किरात-जाति, तामर, हसमान, काश्मीर, कर्ण, शूलिक, कुहक और भागध—य उत्तर दिशा के देश हैं। अब जो पूर्व दिशा के देश हैं उन्हें भी समझ लीजिए ॥४७-५०॥ अन्ध, वामकुराव, वल्लक, मखान्तक, अङ्ग, बङ्ग, मलद, मालवर्षिक, बद्रुङ्ग, प्रतिजय, भार्माङ्ग, अपमर्दक, प्राग्-

१क लाङ्गली चैव श०। २क ख सर्वपा०। ३ख ०या। भाग्या कुमुदमान्याश्च चत्रग्य वा०। ४क प्रतुगा। ५क अपमर्दक। ६क वृषः। ७र ०ह्यश्चैवात०। ८क बाधिकाश्चैव भाग्याश्च मुनिरावाली०। ९न ०श्च पादपाश्चमं सङ्ख्या। गा०। १०क शतदुर्गा। स शतद्रुवा। ११ग ०रभूपि। १२क वरणाश्चैव पादा सुनासिवा। १३क ०का। चीनादर्ब०। १४ क ०श्च उर्णा दीर्घास्तथैव च। ए०। १५र पञ्चवा-
 लायतीन०। १६ क ०पराश्च। १७ क एव। १८ क प्राच्या दिशि निबो०। १९ ग ०अथवा मुहुराश्च वस्मीरा वरणास्तथा। शूलिकाः कुहकाश्चैव समनिरवर्णिता। त०।

एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम् । दक्षिणे परतो यस्य पूर्वं चैव महोदधिः ॥६५॥
हिमवानुत्तरेणास्य कामुकस्य यथा गुणः । तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तमः ॥६६॥
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं महतां तथा । भृगयक्षाप्सरयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः ॥६७॥
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभे । प्रयान्ति कर्मभूविप्रा नान्या लोकेषु विद्यन्ते ॥६८॥
देवानामपि भो विप्राः सदेवैर्य मनोरयः । अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रत्युता क्षितौ ॥६९॥
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः । तत्कर्मनिगदग्रस्तेरतत्कर्मक्षयणोऽमुखैः ॥७०॥
न भारतसम वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजा । यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुयन्त्यभिवाञ्छितम् ॥७१॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमा । धर्मार्थिकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२॥
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् । सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ॥७३॥
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा । देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ॥७४॥
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् । नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥७५॥
अहिंसादिफलं सम्यक्फलं सर्व्वविवाञ्छितम् । ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६॥
यत् फलं वनवासेन सन्यासेन च यत्फलम् । इष्टापूर्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्मणाम् ॥७७॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तम । कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान्द्विजाः ॥७८॥
एवं सम्यङ्मया प्रोवते भारतं वर्षमुत्तमम् । सर्व्वपापहर पुण्यं धन्यं बुद्धिबिद्वन्म ॥७९॥

दक्षिण म समुद्र और उत्तर में धनुष की डोरी की तरह हिमालय स्थित है । द्विजवर ! यह भारतवर्ष सभी वस्तुओं की उत्पत्ति का केन्द्र है ॥६४-६६॥ यहाँ से जीव अपने-अपने दूम अरुम कर्मों के द्वारा ब्रह्मत्व, देवत्व, देवेशत्व और वामुत्व को तथा भूम, यक्ष, अप्सरा, सर्प और स्थावर की योनि को प्राप्त करते हैं । विप्रबृन्द ! सत्सारमर म केवल भारतवर्ष ही कर्मभूमि है ॥६७-६८॥ द्विजगण ! देवताओं की सदा यही लालसा रहती है कि हम देवत्व से च्युत होकर पृथ्वी पर मनुष्य-योनि को प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य जो कर्म कर सकता है, वह कर्मस्वी श्रुलला म बद्ध तथा कर्म-क्षय करने के लिए उद्यत देवता और राक्षस नहीं कर सकते ॥७०॥ द्विजगण ! पृथिवी पर भारत के समान कोई वर्ष नहीं है, जहाँ ब्राह्मण आदि वर्ण अमिलपित पत्र प्राप्त करते हैं ॥७१॥ वे उत्तम मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं जो भारतवर्ष में जन्म लेकर धर्म अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥७२॥ भारतवर्ष में तपस्या, सर्व्वदान, सर्व्वयज्ञ, तीर्थयात्रा, गुरुसेवा, देवता-आराधन और स्वाध्याय का परम दुर्लभ फल प्राप्त होता है ॥७३-७४॥ इस वर्ष में गुरु-जन्म पाने के लिए देवतागण उत्कण्ठित रहते हैं । द्विजवर्ष ! नानाव्रत, नानाशास्त्र, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वनवास, सन्यास, इष्टापूर्त (यज्ञ विशेष) तथा दूसरे शुभकर्मों का फल भारतवर्ष से अन्यत्र कहीं नहीं मिलता ॥७५-७७॥ द्विजगण ! भारत के अतिरिक्त गुणा का वर्णन वीन कर सकता ? ॥७८॥ इस प्रकार सप्त

१ व ० ने धी पुरामाक्षा पू० । स ० ने च पुरी चास्य पू० । २ व ० गपक्षा० । ३ व ० जा । नानावत्सव० ।

४ व ० धनपान्यवि० । स धनवृ० ।

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा' नित्यतेन्द्रियः। सत्त्वर्पापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८०॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः। ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१॥
समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम्। देशोऽतो पुण्यशीलानां गुणैः सध्वैरलङ्कृतः ॥२॥
तत्र देशप्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः। तपस्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा ॥३॥
श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे वाचार्यकर्मणि। प्रशस्ताः सध्वैर्कार्येषु तत्रदेशोद्भवा द्विजा ॥४॥
पदकर्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः। इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥५॥

पापों को हरने वाले, बुद्धि को बढ़ाने वाले, स्तुत्य, पवित्र, तथा उत्तम भारतवर्ष का वर्णन मैंने कर दिया ॥७९॥
जो व्यक्ति इन्द्रियों को बस म करके इस आत्मान का नित्य श्रवण या पठन करेगा, वह सब पापों से रहित होकर
विष्णुलोक को प्राप्त करेगा ॥८०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा तथा ऋषियों के संवाद प्रकरण में भारतवर्षानुकीर्तन नामक
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अध्याय २८

कोणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—भारतवर्ष में दक्षिण समुद्र के समीप स्वर्ग-मोक्षदायक ओण्ड्रदेश विख्यात है ॥१॥ समुद्र
से उत्तर विरजमण्डल तक सब गुणों से विभूषित पुण्यात्मा मनुष्यों का निवास ओण्ड्र देश है ॥२॥ उस देश के ब्राह्मण
जितेन्द्रिय, तप और स्वाध्याय में निरत, वन्दनीय एवम् पूजनीय होते हैं ॥३॥ वे ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ या
वाचार्यकर्म तथा सब कार्यों में प्रशस्त माने जाते हैं ॥४॥ वे पदशास्त्री, वेदपारग, इतिहास-वेत्ता, पुराण विशारद,
संवेशान-कुशल, यज्ञ-वर्ता, ईश्वर-हित, स्त्री-पुत्र धन से युक्त, दाता तथा सत्यवादी हैं। उनमें से कोई अग्निहोत्री

१ क. ख जपेद्वा। २ क. ०पापविनि। ३ क. ०त। भद्रदे०। ४ क. ०र यावद्भद्रेति जयम०। ५ ०रयावद्भ्रम्
विर०। ६ ख ०सी गुणशी०। ६ क श्राद्धकाले वि०। ७ क. च ये ज्ञेया पुण्यक०। ८ क. ०र्वयेतेपु।

सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो^१ द्योतमत्सराः। अग्निहोत्ररता^२ केचित् केचित् स्मार्त्ताग्निमतपराः॥६॥
पुत्रदारधनैर्वृता दातारः^३ सत्यवादिनः। निवसन्त्युत्कले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते॥७॥
इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसयता। 'स्वकर्म्मनिरता' शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्मिकाः^४॥८॥
कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे^५ व्यवस्थितः^६। यं दृष्ट्वा भास्कर मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९॥

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्यस्य साम्प्रतम्। तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः॥१०॥

ब्रह्मोवाच

लवणह्योदधेरतीरे पवित्रे सुमनोहरे। सर्वत्र बालुकाकीर्णं देशे सर्वगुणान्विते॥११॥
चम्पकाशोकबकुलं, करवीरं सपाटलं। पुन्नागैः कणिकारैश्च बकुलैर्नागकेसरैः॥१२॥
तगरैर्धवबाणैश्च अतिमुक्तैः सकुटजकैः। मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः॥१३॥
'केनकीवनक्षणेऽथ' 'सर्वस्तुकुसुमोज्ज्वलं'। 'कदम्बैलंकुचैः' शालैः पनसैर्देवदारुभिः॥१४॥
सरलैर्मूचुकुन्दैश्च^७ चन्दनैश्च सितेतरैः। अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आभ्यं रात्रातकैस्तथा॥१५॥
तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वतः समलङ्कृतम्^८॥१६॥
क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम्। समन्तादप्योजनं साध्रं भुवितमुवितफलप्रदम्॥१७॥

(वैदिक कर्म करनेवाले) है तो कोई स्मार्त-अग्नि-निरत (स्मृति विहित कर्म करनेवाले) है। उस पवित्र देश में नित्य यज्ञ उत्सव होता रहता है॥५-७॥ वहाँ ब्राह्मण के अनिरक्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्णों की अपने अपने कर्म में निरत, सयमी, शान्त तथा धर्मिणा होकर वास करते हैं॥८॥ उस देश में व्यवस्थित 'कोणादित्य' नाम से प्रसिद्ध सूर्य को देखने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है॥९॥

मुनियों ने कहा—सप्रति हम लोग उस सूर्य के क्षेत्र का वर्णन सुनना चाहते हैं। हे सुरश्रेष्ठ! उस स्थान के बारे में कहिये, जहाँ वे सूर्य रहते हैं॥१०॥

ब्रह्मा बोले—लवण समुद्र के पवित्र, मनोहर, सर्वगुणवन्मय तथा बालू से परिपूर्ण तट पर चम्पा, असोह, मोलसिरी अशोक करवीर पाटला, पुनाग, बनबचम्पा, नागबन्धर, तगर, धव, अनिमुक्त, कुञ्जक, मालती, कुन्द, मल्लिका बेवडा, कदम्ब, बडहर, साखू, बटहल देवदारु, सरजू मुषुबुन्द, चन्दन, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, आभ्र, इमली, ताल, सुपारी, नारियल, बेंधा और अन्य प्रकार के दूसरे वृक्षा से विभूषित, पवित्र तथा जगत्प्रसिद्ध सूर्य का क्षेत्र है॥११-१६॥ जा चारा तरफ एव-एक योजन विस्तृत एवम् भोग-भाग के फल को देनेवाला है। वहाँ साक्षात्

१ क जानिना। २ स हानार। ३ क स स्वयमे०। ४ क ०वा। वर्णादि०। ५ स ०न्देवादिवाकर। ६ ०।
६ क मुनेत्सरा। ७ स ०र्वावाणरव०। ८ स ०द्व बकुलैर्नागकेसरैः। ९ क १ क ०र्वा कु०। १० क कदम्ब-
बकुलानां प०। ११ क ०श्च मुक्तैरिति परं। अ०। १२ क ०ष्टैः। क्ष०।

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः। कोणादित्य इति ह्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥१८॥
 माये मासि सिते पक्षे सप्तम्यां संयतेन्द्रियः। कृतोपवासो यत्रेत्य स्नात्वा तु मकरालये॥१९॥
 धृतशोचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम्। सागरे विधिवत् स्नात्वा शब्दव्यंग्ये समाहितः॥२०॥
 देवान्पुण्योन्मुष्याश्च पितॄन् सन्तप्य च द्विजाः। उत्तोम्यं घासतो घौते परिधाय 'सुनिर्मले'॥२१॥
 आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदयेः। उपविशोदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा॥२२॥
 विलिय पद्मं मेधावी रक्तचन्दनधारिणः। अष्टपत्रं केसराढ्यं 'धत्तुलं' चोर्ध्वकर्णिकम्॥२३॥
 तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसयुतम्। रक्तपुष्पं सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने॥२४॥
 ताग्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटं कृत्वा तिलादिकम्। पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण धिन्यसेत्॥२५॥
 करम्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गहृदयादिभिः। आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्यक् श्रद्धासमन्वितः॥२६॥
 मध्ये चाग्निदले धोमांशं श्रुते इवसने दले। वामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत्॥२७॥
 प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्। सम्पूज्य पद्मनावाह्य गगनात्तत्र भास्करम्॥२८॥
 कर्णिकोपरि संस्थाप्य ततो 'मुद्रां' प्रदर्शयेत्। कृत्वा स्नानादिकं सर्वं ध्यात्वा तं सुसमाहितः॥२९॥
 सितपद्मोपरि 'रवि' तैजोविष्ये व्यवस्थितम्। पिङ्गाक्षं द्विभुजं रक्तं 'पद्मपत्रारुणाम्बरम्'॥३०॥

सहस्र किरणधारी सूर्य रहते हैं जो कोणादित्य नाम से प्रसिद्ध तथा भोग मोक्ष-दायक हैं ॥१७-१८॥ माघमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में वहाँ जाकर जितेन्द्रिय होकर मनुष्य उपासपूर्वक समुद्र में स्नान करे। स्नान के बाद मुद्ग वृत्त से सूर्य का ध्यान करे। रात के अन्त में सावधान होकर त्रिपुर्वक समुद्र में स्नान करे॥१९-२०॥ देवता, ऋषि और मनुष्यों का तर्पण कर दो स्वच्छ वस्त्रा को धारण करे ॥२१॥ उसी समुद्र के तट पर आचमन से पवित्र होकर सूर्योदय काल में पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाये ॥ २२ ॥ फिर विद्वान् व्यक्ति लाल चन्दन मिश्रित जल से आठ पक्षी बाले, केसर (फूला के बीच के पतले २ सीके) से परिपूर्ण गोशार्कर और ऊपर की ओर कर्णिका (बरग फूल) व समान कमल को लिखकर तिल, चावल, जल, रक्तचन्दन, रक्तपुष्प और कुश की तावे के पात्र में रखे ॥२३-२४॥

मुनिवर्य ! ताव के अग्राभ में जान के पक्षी के दोने में निज आदि रखे और हे मुनीन्द्र ! उस पात्र को दूसरे पात्र में ढाँकर न्यास करे ॥२५॥ फिर हृदय यदि अग्रा में अङ्गन्यास तथा करन्यास अच्छी तरह करके धन्वा-पूर्वक सूर्य का ध्यान करे ॥२६॥ विद्वान् मनुष्य मध्यदल में अग्नि नैर्ऋत, ईशान तथा वायु कोण के दल में और फिर मध्य दल में पूजा करे ॥२७॥ पदवान् प्रभूत, विमल, सार आराध्य और परम सुख कमल को पूजकर आग्राभ में सूर्य का आवाहन करे ॥२८॥ कर्णिका (कमल का छत्ता) के ऊपर स्थापित कर मुद्रा प्रदर्शित करे। स्नान के अनन्तर सावधान मन से स्वच्छ कमल के ऊपर तैजोमण्डल में स्थित, पीत नेत्रवाले, दो मुखावा बाले,

१ क. ख. ०क्तिप्रदायक॥ मा०। २ क. ख. ०त्वा सर्वेन्द्रियग०। ३ क. विनिर्मले। ४ ग. दहल। ५ क. ०ल
 ६ क. ०। ६ ग. ०प. ख. द०। ७ ख. ०न्। अग्न्यासकरन्यास। ८ क. ख. ०र स०। ९ क. ख. ०दामावग०। १० क. ०तः।
 अर्चयेदग्निपानिधौ प्रहाराचैव समाहारात्। ईशानशोणं तच्च पु०। ११ क. विमुम्। १२ क. मुद्रा। १३ ख. प्रदायकम्।
 १४ ख. ०वि तोये तत्र ध्य०। १५ क. ०जामूर्ति यनानवम्। १६ ख. ग. ०पहस्ता०। १७ ख. ०दण रविम्।

सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वभरणभूषितम् । सुखं चरत् शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१॥
 उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम् । ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणीं गतः ॥३२॥
 कृत्वा शिरसि तन्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यतः । श्रद्धाशरेण तु मन्त्रेण सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥३३॥
 अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नेवाध्वं प्रयच्छति । श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यतः ॥३४॥
 अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्वादिदिक्षु च । हृच्छिरश्च शिलावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५॥
 दस्वाध्वं गन्धधूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च । जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्जयेत् ॥३६॥
 ये वाध्वं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः ॥३७॥
 भक्तिभावेन सतत विशुद्धेनान्तरात्मना । ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥३८॥
 त्रैलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेचरम् । ये संश्रयन्ति मनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम् ॥३९॥
 यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम् । तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ॥४०॥
 तस्मात् प्रयतनमास्थाय दद्यादध्वं दिने दिने । आदित्याय शुचिर्भूत्वा पुष्पगन्धर्मनोरमैः ॥४१॥
 एवं ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्यां सुसमाहितः । आदित्याय शुचि स्नातः स लभेदीप्सितं फलम् ॥४२॥

लाल कमल के समान अर्घ्य यत्र घारी, सर्वलक्षण-संपन्न, सब आभूषणों से विभूषित, सुन्दर रूपवाले, चर देनेवाले, शान्त और प्रभा मण्डल से मण्डित सूर्य का ध्यान और पूजन करे ॥३१-३१॥ फिर सघन सिन्दूर के समान उदित होते हुए सूर्य को देखकर पूर्वोक्त पात्र को ग्रहण करे और घुटने टेककर उस पात्र को मस्तक पर रखकर वाक्स्यमी तथा सावधान हो तीन अक्षर वाले मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दे ॥३२-३३॥ अदीक्षित मनुष्य केवल सूर्य का नाम लेकर अर्घ्य दे, क्योंकि सूर्य श्रद्धा, भाव और भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं ॥३४॥ अग्नि, निर्ऋति, वायु, ईशान, मध्य और पूर्व आदि दिशाओं में हृदय शिर, शिला, नेत्र, कवच और अस्त्र की भी पूजा करे ॥३५॥ अर्घ्य, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य देकर जप, स्तुति और नमस्कार करके मुद्रा बाधकर विसर्जन करे ॥३६॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सयमी होकर भक्ति भाव तथा विशुद्ध मन से सतत सूर्य को अर्घ्य प्रदान करते हैं, वे अमिलपित भोगों को भोगकर उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं ॥३७-३८॥ जो मनुष्य तीनों लोकों को प्रवासित करनेवाले आकाश-विहारी सूर्यदेव की उपासना करते हैं, वे सुखों के भोक्ता होते हैं ॥३९॥ जबतक सूर्य को यथा विहित अर्घ्य न दिया जाय तबतक विष्णु, शंकर या इन्द्र की पूजा नहीं की जा सकती ॥४०॥ इसलिए प्रतिदिन पवित्र होकर सुन्दर पुष्प-गन्ध आदि से यत्नपूर्वक सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार सप्तमी तिथि को स्नान करके पवित्र तथा सावधान होकर जो सूर्य को अर्घ्य देता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है ॥४२॥ सूर्यार्घ्य देने से रोगी

१ ख उद्यन्तः । २ ख अस्त्राध्वं मा० । ३ ख ०त् । पडशरेण म० । ४ ख नाम्नाऽऽग्राह्यं प्रयुज्येत् । श्र० ।
 ५ ख जप्त्वा । ६ ख ०द्रा-सुम० । ७ ख ये च स्मरन्ति । ८ ख पूजयन्ति । ९ ख ०स्ते सर्वे मु० । १० ख सुतमागिनः ।
 ११ ख ०त्तमागिनः । या० । १२ ख ०त्ते भक्त्या मा० । १३ ख ०रायां उत्तमः । ता० । १४ ख निवेदितम् । १५ ख ख
 शुचि स्ना० ।

रोगाद्विमुच्यते रोगो वित्तार्थी लभते धनम् विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥४३॥
य य काममभिध्यायन् सूर्यायाध्यं प्रयच्छति तस्य तस्य फलं सम्यक् प्राप्नोति पुरय 'सुधो ॥४४॥
स्नात्वा' वै सागरे दत्त्वा सूर्यायाध्यं प्रणम्य च । नरो वा यदि वा नारी सर्वकामफलं लभेत् ॥४५॥
तत् सूर्यालयं गच्छेत् पुष्पमादाय वागयत् । प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्वा तु 'त्रि' प्रदक्षिणम् ॥४६॥
पूजयेत् परया भवत्या कोणार्कं मुनिसत्तमा । गन्धं पुष्पैस्तथा 'दीपैर्धूपैः नवैद्यकैः' रपि ॥४७॥
दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तवं " । एव सम्पूज्य तं देवं सहस्रांशु 'जगतपतिम् ॥४८॥
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः । सर्वपापविनिर्म्ममतो युवा 'दिव्यवपुर्नरं ॥४९॥
"सप्तावरान् सप्त" परान् वशानुदधृत्य भो द्विजा । विमानेनार्कवर्णेन कामगेन सुवर्चसा ॥५०॥
उपगोषमानो गन्धर्व सूर्यलोकं स गच्छति । भुवतवा तत्र वरान् भोगान् यावदाभूतसत्त्वबन्धम् ॥५१॥
पुण्यक्षयादिहायात् प्रवरे योगिना कुले । चतुर्वेदो 'भवेद्विप्रः' स्वधम्मनिरतः 'शुचि ॥५२॥
योग विवस्वत् " प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् । चित्रे मासि सिते पक्षे यात्रा मदनभञ्जिवाम् ॥५३॥
य करोति नरस्तत्र पूर्वोक्तं स फलं लभेत् । शप्नोत्थापने भानो सप्तात्या विपुवायने ॥५४॥

रोग से मुक्त हो जाता है धन भी धन विद्यार्थी विद्या एवम् पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है ॥४३॥ जो विद्वान् पुरय मन
म जिस इच्छा को रखकर सूर्य को अर्घ्य देता है उसका वह इच्छा मिला माति पूरा होती है ॥४४॥ पुरय
या स्ना—जो कोई समुद्र में स्नान कर सूर्य को प्रणाम करके अर्घ्य देता है उसकी सब कामनाएँ पूरा होती हैं ॥४५॥
तदुपरान्त सूर्य मन्दिर में मीन होकर हाथ में पुष्प लेकर सूर्य का तीन बार प्रदक्षिणा कर पूजा करे ॥४६॥
मुनिवत् । गन्ध-पुष्प धूप दण्ड-नवद्यैः स थोड़ा मन्त्र पूर्वक वाणिक सूर्य का पूजा करना चाहिए ॥४७॥
द्विजगण । दण्डवत् प्रणाम जय गन्ध व उच्चारण एवम् स्तुति स पूर्व कथित विधि के अनुसार सहस्रांशु जगतपति
सूर्य का पूजाकर मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है और सब पापों से मुक्त होकर दिव्य देहधारी
युवक बन जाता है । ॥४८-४९॥ उसकी आग का सात पीढ़ी तथा बाद का सात पक्षों का उद्धार हो जाता है ।
और अन्त में वह सूर्य व समान तेजस्वी तथा इच्छागामा विमान में स्थित होकर गन्धर्वों से प्रार्थित होता हुआ
सूर्यदेव को प्राप्त करता है ॥५०॥ वहाँ बहुत दिनों तक उत्तम मागा का भोगकर पुण्यक्षय होने पर मत्स्यलाक में
गणिका व उत्तम कुल में जन्म लेकर धारा बना व जाता स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होकर सूर्य से याग
को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥५१-५२॥ चित्रमास व शुक्ल पक्ष में जो मनुष्य काम को मण्ड करनेवाली
कोणार्क की यात्रा करता है वह पूर्वोक्त फल का प्राप्त करता है ॥५३॥ विप्रवन्द । सूर्य व गयन उत्थापन

१४ परम् । २ क स्नात्व सा० । ख स्नात्व सा० । ३ क ख व्याप प्र० । ४ क ख ण् । पूष
गगामसा स्नात्वा कुर्वाणमिच्छ मूषनि । सर्वपापविनिर्मुक्ता नरा याति त्रिविष्टपम् । त० । ५ क सत्वर । ६ क त ।
७ घ ष्टा धू० । ८ क षर्त्त० । ९ ख षर्त्त० । १० क षर्त्त० । ११ क ख षर्त्त० ।
१२ क विचक्रम् । १३ घ ष्यवचिन् । १४ ग ष्यवचिन् । १५ क ष्यवचिन् । १६ घ ग ष्यवचिन् ।
१७ क ख ष्यवचिन् । १८ क मवह धू० । १९ ख देवापत् ।

वारो रवेस्तिथौ' चैव पर्वकालेऽथवा द्विजाः। ये तत्र यात्रां कुर्वन्ति श्रद्धया संयतेन्द्रियाः॥५५॥
 विमानेनाकवर्णं सूर्यलोकं व्रजन्ति ते। आस्ते तत्र महादेवस्तोरे' नदनदीपतेः॥५६॥
 रामेश्वर इति ख्यातः सर्वकामफलप्रदः। ये तं पश्यन्ति कामारि स्नात्वा सम्यग्महोदधौ॥५७॥
 गन्धं पुष्पैस्तथा धूपदीपैर्नैवेद्यकैर्ध्वरैः। प्रणिपातैस्तथा 'स्तोत्रैर्गतिर्वाद्यैर्मनोहरैः'॥५८॥
 राजसूयफलं सन्ध्यावाजिमघफलं तथा। प्राप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां तथा॥५९॥
 कामगेन विमानेन क्रिद्धिणीजालमालिना। उपगीयमाना गन्धर्व्वे शिवलोकं व्रजन्ति ते॥६०॥
 आभूतसंप्लवं यावद्भुवत्त्वा भोगान्मनोरमान्। पुण्यक्षयादिहागत्य' चातुर्ध्वंदा भवन्ति ते॥६१॥
 शङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते। यस्तत्र' सवितुः क्षेत्रे प्राणास्त्यजति मानवः॥६२॥
 स सूर्यलोकमास्थाय' देववर्गमोदते दिवि'। पुनर्मनुषतां' प्राप्य राजा भवति धार्मिकः॥६३॥
 योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एवं मया मुनिश्रेष्ठाः' प्रोक्तं क्षेत्रं सुबुद्धिभम्॥६४॥
 कोणाकंस्योदधेश्वरे' भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥६५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवादे कोणादित्यमाहात्म्यकीर्तनं

नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

सत्रानि, उत्तरायण, रविवार तथा सप्तमी तिथि म, अथवा पर्वकात्र मे जो मनुष्य इन्द्रिया वा सयमन कर
 श्रद्धापूर्वक वहाँ की यात्रा करत है, वे सूर्य सदा वर्णवाले विमान म बैठकर सूर्यलोक को जाते हैं ॥५४-५५॥
 उसी के निश्चय समुद्र तट पर सत्र कामनाया का पत्र देनेवाले रामेश्वर नाम मे प्रख्यात महादेव हैं ॥५६॥ जो
 मनुष्य समुद्र म अच्छी तरह स्नान कर उन महादेव के दर्शन करते हैं एवम् गन्ध, पुष्प धूप दीप, नैवेद्य, प्रणाम, स्तोत्र
 और सुन्दर गीत-वाद्यो मे उनकी पूजा करत है वे महात्मा राजसूय और अश्वमेध यज्ञो के फल तथा परम सिद्धि को
 प्राप्त करते हैं और इच्छानुबल समत करनवाले क्रिद्धिणी-जात्र से सिद्धिपति विमान पर चढ़कर गन्धर्वो द्वारा
 प्रशस्ति होत हुए शिव-लोक को जाते हैं ॥५७-६०॥ वहाँ बहुत दिनों तक उत्तम योगो को योगेश्वर पुण्य-क्षय होने
 पर फिर इस लोका म आते हैं और चारों ओर क जाता होकर शास्त्र याग म आस्था रखते हुए मुक्ति प्राप्त
 करते हैं ॥६१॥ जो मनुष्य उस सूर्य-क्षेत्र म प्राणत्याग करता है वह सूर्यलोक म जाकर स्वर्ग म देवता के समान
 आनन्द प्राप्त करता है ॥६२॥ और फिर वह मनुष्य योगि म जाकर धर्मात्मा राजा होता है और सूर्य-याग
 को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥६३॥ मुनिवर्ग' इस प्रकार मैने परम दुर्लभ, भोग मात्र के फलदायक
 तथा समुद्र तट पर स्थित कोणाक-क्षेत्र का बान कठ सुनाया ॥६४-६५॥

श्री ब्रह्महृषिगण म ब्रह्मा और ऋषिवा क गण्ड प्रसारण म बाणादित्य-माहात्म्य-
 वर्णन नामक अष्टाविंशो अध्याय समाप्त ॥२८॥

१ क रा रत गियनदर्वच २ ग ० र तथा सुपेन वै ० ग ० ३ ग य पूत्रयनि दवा स्ना ० ४ ग ० र्गैर्नैर्नै ० ।
 ५ ग ० नारम् १ ग ० ६ ग ० न सिध्मन्ति नियम म्मया ३ ग ० ० हापता गियनोत्र व्रजन्ति ८ क यत्रात्र ।
 ९ क रा ० मागप ८ ० । १० क ग चिरम् । ११ क ० नुष्यते प्रा ० । १२ क ० धेय्या मयादगनिं दितम् ।
 १३ क ० रे माहात्म्य मुक्तिद नृणाम् ।

एकोनविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सूर्यपूजाप्रकरणम्

मुनय ऊचुः

धृतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् । भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥
न तृप्तिमधिगच्छाम श्रूयन्तः सुखदां कथाम् । तव वक्त्रोद्भवां पुण्यामादित्यस्थाघनाशिनीम् ॥२॥
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर । देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥३॥
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे । दीपधूपप्रदाने च सम्भाज्जनविधौ च यत् ॥४॥
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं 'नक्तभोजने' । अर्घ्यंश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा संप्रदीयते ॥५॥
कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति । एतत् सत्त्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

अर्घ्यं पूजादिकं सत्त्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः । भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥७॥
मनसा भावना 'भक्तिरिष्टा' श्रद्धा च कीर्त्यन्ते । ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुष्व सुसमाहिताः ॥८॥
तत्कथां ध्यायेद् यस्तु तद्भवतान् पूजयति वा । अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥९॥
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा । तत्कर्मकृद्भवेद् यस्तु स वै भक्तः सनातनः ॥१०॥

अध्याय २६

सूर्य-पूजा का प्रकरण

मुनियों ने कहा—हे देवश्रेष्ठ ! आपसे वर्णित भोग-भोग-फल-दायक सूर्य-क्षेत्र के बारे में हमने सब कुछ सुना ॥१॥ पर आपके मुख से निःसृत सूर्य की पापनाशिनी, पवित्र तथा सुख-दायक कथा को सुनने से तृप्ति नहीं होती ॥२॥ अतः वाञ्छितवार, प्रभो ! उस देव की पूजा का फल, दान का फल और प्रणाम, नमस्कार, प्रदक्षिणा, दीप धूप-दान, मार्जन, उपवास तथा रात्रि-भोजन में जो पुण्य होता है, वह भी हम बतलाइये ॥३-४॥ हे सुरश्रेष्ठ ! अर्घ्य कंसा होना चाहिये या नहीं देना चाहिये, भक्ति कैसे की जाती है और वह देव कैसे प्रसन्न होत है—यह सब हम लोग सुनना चाहते हैं ॥५-६॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य ! सूर्य के अर्घ्य, पूजा, भक्ति, श्रद्धा, समाधि की पद्धति बतला रहा हूँ, आपलोग सुनें ॥७॥ मन से की जाने वाली भावना ही द्रष्टृ भक्ति और श्रद्धा कहों गयी है । और ध्यान योग ही समाधि है । आपभोग मावधान होकर सुनें ॥८॥ जो मनुष्य सूर्य की कथा को सुनाएगा या उनके भक्तों की पूजा करेगा तथा अग्निहोत्री हागा, वही सनातन भक्त कहा जाएगा ॥९॥ जो सदा सूर्य ही में अपने चित्त-मन को लगाता है, उन्हीं

१ रा. ० ने । देवस्तान कथ प्रोक्त वि च वास प्र० । २ व. ० का वीदुग्वास प्र० । ३ व. स्तव । ४ व. भक्ति :
सना । ५ व. ० काऽभूयतस्तदा । अ० ।

देवार्थे' क्रियमाणानि य कर्माध्यनुमन्यते। कीर्तनाद्वा परो विप्राः स वै भवत्तरो नरः॥११॥
 नाम्यसूते तद्भक्तान् न 'निन्द्याच्चान्यदेवताम्'। आदिश्रवतचारी च स वै भवत्तरो नरः॥१२॥
 गच्छस्तिष्ठन् स्वपञ्जिघृन्मिपन्नमिपन्नपि। यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भवत्तरो नरः॥१३॥
 एवं विद्या त्वयं भक्तिः सदा कार्या विजयता। भक्त्या समाधिना चैव श्रुत्येन मनसा तथा॥१४॥
 क्रियते नियमो यस्तु दान विप्राय दीयते। प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा॥१५॥
 पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद्भवत्या समुपाहृतम्। प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा नास्तिकान् वञ्जयन्ति च॥१६॥
 भावशुद्धिं प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता। भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफलं भवेत्॥१७॥
 स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः। उपवासेन भक्त्या च सध्वपापैः प्रमुच्यते॥१८॥
 प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः। तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१९॥
 भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तर्षीपा वसुधरा॥२०॥
 सूर्य्यं मनसि यः कृत्वा कुप्यद्विध्योमप्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वं देवा भवन्ति हि॥२१॥
 एकाहारो नरो भूत्या पठ्यां योऽञ्चयते रविम्। नियमव्रतचारी च भवेद्भक्तिसमन्वितः॥२२॥
 सप्तम्यां वा महाभाषाः सोऽद्यमेवफलं लभेत्। अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भस्करम्॥२३॥

वी पूजा म निरत रहता है और उनके लिए कर्म करता है वह सनातन भक्त है॥१०॥ विप्रवृन्द । देवता के निमित्त क्रियमाण कर्मों का जो अनुमोदन या कीर्तन करता है, वह मनुष्य महामक्त है॥११॥ जो मनुष्य देव-भक्तों से ईर्ष्या नहीं रखता, अन्य देवता की निन्दा नहीं करता और सूर्य-व्रत का पारण करता है, वह महामक्त है॥१२॥ जो मनुष्य जाते स्थित होते, सोते, सुंघते और नत्रा की खोलते तथा मोक्षते सूर्य वा नित्य स्मरण करता है, वह महामक्त है॥१३॥ विज्ञा पुरुष का इस प्रकार की भक्ति सदा करनी चाहिये। जो मनुष्य भक्ति, गमाधि, स्तुति तथा मन से नियम करता है तथा ब्राह्मण को दान देता है, उसका दान को देवता, मनुष्य और पितर स्वीकार करते हैं॥१४-१५॥ पत्र, पुष्प, फल जल—जो कुछ भी भक्तिपूर्वक समर्पित किया जाता है, उसे देवता स्वीकार करते हैं। पर देवता नास्तिकों का दान स्वीकार नहीं करते॥१६॥ नियम और आचार पूर्वक भाव-शुद्धि होनी चाहिये। भाव शुद्धि से जो कुछ भी दिया जाता है वह सब सफल होता है॥१७॥ सूर्य की पूजा स्तुति, जप, उपहार और उपवास से मनुष्य सर्व-पाप-रहित हो जाता है॥१८॥ जो भूमि पर निर रखकर सूर्य को नमस्कार करता है, उसने तत्काल सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं॥१९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, वह सातों द्वीप सहित पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त करता है॥२०॥ जो मन म सूर्य का ध्यान करने आकाश में प्रदक्षिणा करता है वह सब देवताओं की प्रदक्षिणा करता है॥२१॥ जो मनुष्य एकाहार करने पट्टी या सप्तमी तिथि में नियम, व्रत और भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करता है वह अक्षमेव यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥२२॥ अहोरात्र

१ ग वेदार्थे। २ ग न्यादान्य०। ३ ग भवता। ४ ग ० कनधरो जन। ५ ग शुद्धेन।
 ६ ग ० वा। देवमुद्दिश्य माय त दा०। ७ ग ० य तत्सव। ८ ग भावेन हि कृत यच्च तत्स०। ९ ग ० त्। तनुनायु-
 पचारे०। १० ग पठ्या। ११ ग र रवेर्भक्ति०। १२ ग ० त। कृष्ण०।

सप्तम्यामयवा पट्यां स याति परमां गतिम् । कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥२४॥
 'सर्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् । पद्मप्रभेण घानेन सूर्यलोकं स गच्छति ॥२५॥
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः । सर्वशुक्लोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२६॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति । अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत् ॥२७॥
 त्रयवद्ध्या 'चतुर्विंशमेकं क्षपयेत् पुनः । द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२८॥
 सर्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी । शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥२९॥
 सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् । स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥३०॥
 सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् । ये चादित्यदिने प्राप्ते धादं कुर्वन्ति मानवाः ॥३१॥
 यजन्ति च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम् । येषां धर्म्याः क्रियाः सर्वाः सर्वबोद्धिदयभास्करम् ॥३२॥
 न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा । श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकायापि वा ॥३३॥
 उपलेपनकर्त्ता तु विन्तितं लभते फलम् । चित्रभानुं विचित्रंस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४॥
 पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितान् लभेत् । घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतलेन वा पुनः ॥३५॥

उपवास करके जो सप्तमी या अष्टमी तिथि में सूर्य की पूजा करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥२३॥
 कृष्ण पक्ष की सप्तमी में जो इन्द्रिय-सयमपूर्वक उपवास करके सब रत्नों के उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह कमल की-सी शान्ति वाले विमान से सूर्यलोक को जाता है ॥२४-२५॥ जो मनुष्य शुक्ल पक्ष की सप्तमी में उपवास करके सर्वथा स्वच्छ उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक को प्राप्त करता है ॥२६॥ यदि चौबीस दिनों तक क्रमशः एक-एक की वृद्धि कर आकर के दोनों से प्रभूत जल पिये और फिर क्रमशः एक-एक का ह्रास करे तो दो वर्ष तक इस प्रकार करते रहने से नियम की समाप्ति हो जाने पर यह अर्क सप्तमी सब कामनाओं को देनेवाली होती है ॥२७-२८॥
 जब शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार पड़ जाता है तब वह विजया सप्तमी कहलाती है, उसमें दान देने से महाफल होता है । विजया सप्तमी में स्नान, दान, तप, होम और उपवास—ये सब मयकर पापों का नाश करने वाले होते हैं ॥२९-३०॥ जो मनुष्य रवि के दिन धादं तथा सूर्य की पूजा करते हैं । उन्हें मनोवाञ्छित फल मिलता है ॥३१॥ जिनकी सब क्रियायें धार्मिक तथा सूर्य को उद्देश्य करके होनी हैं उनके कुल में कोई दरिद्र या रोपी नहीं होता ॥३२॥ श्वेत, रक्त या पीत मृत्तिका से जो सूर्यालय को लीपता है, वह अमिलपित फल प्राप्त करता है ॥३३॥ चित्र-विचित्र प्रकार के फूलों तथा गन्धों से जो उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करता है, वह ईप्सित फल की प्राप्ति करता है ॥३४॥ घृत या तिल के तेल से दीप जलाकर जो सूर्य की पूजा करता है, उसे कोई

१ क ०भ्या पूजयेद्योऽङ्गः । २ क ०रत्नोप० । ३ क ०देवो दिवाकरः । ४ ग ०त् । हरास० । ५ स ग ०यदे० । ६ क प्रतिष्ठा । ७ क सर्वरी । ८ क ०म् । प्रदान उपहोमी च उ० । ९ क ०पत्न्यामनन्तप० द स्मृतम् । १० ग जपति । ११ ग धर्माः ।

आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स होयते। दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते॥३६॥
 'तिलाः पवित्र' तिलं वा तिलगोदानमुत्तमम्। अग्निकार्यं च दीपे च महापातकनाशनम्॥३७॥
 दीपं ददाति यो नित्यं देवतायतनेषु च। चतुष्पथेषु रथ्यासु रथवान् सुभगो भवेत्॥३८॥
 हविर्भिः प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चोषधीरसः। वसामेदोस्थिनिर्घासिनं तु देयः पथञ्छन॥३९॥
 भवेद्बुद्ध्वंगतिर्दीपो न कदाचिदप्यगतिः। दाता दीप्यति चाप्येवं न तिर्यग्गतिमाप्नुयात्॥४०॥
 ज्वलमाने सदा दीपं न हरेन्नापि नाशयेत्। दीपहर्ता नरो बन्धं नाशं क्रोधं तमो व्रजेत्॥४१॥
 दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते। यः समालभते नित्यं कुडकुमाणुहचन्दनैः॥४२॥
 सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन यशसां धिया। रथतचन्दनसंमिश्रे रथतपुषेः शुचिनरः॥४३॥
 उदयेऽर्घ्यं सदा देव्या सिद्धिं संवत्सराल्लभेत्। उदयात् परिवर्त्तत यावदस्तत्स्थने स्थितः॥४४॥
 'जपप्रभिमूलः' 'किञ्चिन्मन्त्रं रतोग्रमयापि वा। आदित्यव्रतमेतत् महापातकनाशनम्॥४५॥
 अर्घ्येण 'सहितञ्चैव सध्वं' साङ्गं प्रदापयेत्। उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४६॥
 सुवर्णधेनवनदुहवसुधावस्त्रसंयुतम्। अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम्॥४७॥

नेत्र विचार नहीं होता॥३५३॥ सूर्य को दीप दान देने से मनुष्य ज्ञान रूपी दीप प्राप्त करता है॥३६॥ तिल या तिल का तेल पवित्र होता है। (अतएव) तिल की गाय बनावर दान करता उत्तम है। यह दान हवन तथा दीपदान के समय करने से महापातकी का विनाश करने वाला होता है॥३७॥ जो व्यक्ति नित्य देवालय में, चौराहे पर तथा गलियों में दीप देता है, वह रूपवान् तथा भाग्यवान् होता है॥३८॥ पहला पक्ष तो यह है कि धी से दीप जलाना चाहिये, दूसरा पक्ष-ओषधीरस अर्थात् तिल आदि के तेल से जलाये, लेकिन बरग, मेद और अस्थि के तेल से बदायि नहीं जलाना चाहिये॥३९॥ जिस प्रकार दीप को सदा ऊर्ध्वगति होती है, अथगति बर्मी नहीं होती। द्रमी तरह दीप-दाता तिर्यग् गति प्राप्त कर ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है॥४०॥ जलते हुए दीप का हरण तथा नाश बर्मी नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर मनुष्य बधन, नाश, शोष और अन्धकार को प्राप्त होता है॥४१॥ जो व्यक्ति सूर्य को दीपदान देता है वह स्वर्ग में दीपमाला की तरह सुगोमिन होता है। और जो मनुष्य नित्यप्रति कुङ्कुम, अगर तथा चन्दन से सूर्य की पूजा करता है, वह दूसरे जन्म में श्रीकृति-धर्मय साधन होता है॥४२॥ एक वर्ष तक पवित्र होकर रथ चन्दन मिश्रित रथ पुष्प से उदयकाल में सूर्य को अर्प देने में सिद्धि प्राप्त होती है॥४३॥ सूर्य के उदय से अस्त होने तक सूर्य के सम्मुख सूर्य मन्त्र या स्तोत्र का जो जप या पाठ किया जाता है वह महापातनाशन आदित्यव्रत कहलाता है॥४४-४५॥ सूर्योदय काल में जो मनुष्य धडा से सूर्य को अर्प सहित धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करता है, वह सब पापा से मुक्त हो जाता है॥४६॥ मुक्त निमित्त गाय, बैल एवं पृथिवी और अन्न सहित अर्प देने वाला मनुष्य छान जन्मा तक पन्न प्राप्त करता रहता है॥४७॥ अग्नि, जल, आवाग,

१ रा ग तिलप०। २ ग ० न परम नि० ग ० न परम निजानां दा०। ३ ग ० नि। दद्यादेकद्वय दीप न। ४ ब ईनेन चाप्यन न। ५ ब ० र्ग्योनिमा०। ६ ब दीपदाता। ७ ब रा ० नै। सपुत्रये। ८ ब ० न यपथि०। ९ ब ० मिमन नि०। १० ब ० विष्णवाह्मो नर शुचि। आ०। ११ ग सहिता। १२ ग सर्वपापां प्र०। ग यजमानां प्र०।

अग्नौ तोषेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च । प्रतिमायां तथा 'पिण्ड्यां' देवमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥४८॥
 नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदः । सघृतं गुग्गुलं वापि रवेर्भक्षितसमन्वितः ॥४९॥
 तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । श्रोत्रासं चतुरश्रञ्च देवदारं तथैव च ॥५०॥
 कर्पूराग्रहपूपाणि दत्त्वा वै स्वर्गंगामिनः । अग्ने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने ॥५१॥
 पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापः प्रमुच्यते । विषुवेष्वपरागेषु षडशीतिमुखेषु च ॥५२॥
 पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापः प्रमुच्यते । एवं बेलासु 'सर्ध्यासु' सर्व्वकालञ्च मानवः ॥५३॥
 भवत्यां पूजयते योऽङ्कं सोऽङ्कलोके महीयते । कृसरः पायसः पूषः 'फलमूलघृतोदनैः' ॥५४॥
 बालि 'कृत्वा' तु सूर्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् । घृतेन तर्पणं कृत्वा 'सर्व्वसिद्धो भवेन्नरः' ॥५५॥
 क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापेन युज्यते । दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धिं लभेन्नरः ॥५६॥
 स्नानार्थमाहरेद् यस्तु जलं भानोः समहितः । तीर्थेषु शुचितापघ्नः "स याति परमां गतिम्" ॥५७॥
 छत्रं ध्वजं वितानं वा पताकां चामराणि च । श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥५८॥
 यद्यद्दग्धं नरो भवत्या आदित्याय प्रयच्छति । तत्तस्य शतसाहस्रमुत्पादयति भास्करः ॥५९॥
 मानसं वाचिकं वापि" कायज यच्च दुष्कृतम् । सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन" तदशेषं व्यपोहति ॥६०॥

पवित्र भूति, प्रतिमा और पीठ (चीकी या आसन) पर यत्नपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए ॥४८॥ अर्घ्य कभी भी दाहिनी
 तथा बायी ओर न दे, बल्कि मदा ही अभिमुख होकर अर्घ्य देना चाहिए । गुग्गुलु या घृत के साथ मन्त्रपूर्वक
 सूर्य्यार्घ्य देने से मनुष्य निमदेह तत्काल सब पापा से मुक्त हो जाता है ॥४९॥ श्रोत्रास, देवदार, कर्पूर, अगर
 और घूप चढ़ाने से मनुष्य स्वर्गगामी होता है ॥५०॥ उत्तरायण या दक्षिणायन में सूर्य की विशेष पूजा करने
 में मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥५१॥ विषुव में (अर्थात् उग्न समय जब दिन-रात का मान बराबर
 होता है) ग्रहण काल में और षडशीतिमुख (तुला राशि से छियासी दिना के समय) में सूर्य की विशेष पूजा
 करने से मनुष्य सब पापा से मुक्त हो जाता है ॥५२॥ इस प्रकार सब दिन सब समय मन्त्रपूर्वक सूर्य की पूजा
 करने मनुष्य सूर्यलोचन में पूजित होता है ॥५३॥ क्षीर, मालुआ, फल, मूल, घृत और चावल से सूर्य को बलि
 देने में सब कामनाएँ पूरी होती हैं ॥५४॥ सूर्य को घन वा तर्पण करने से मनुष्य पूर्ण सिद्धि हा जाता है ॥५५॥
 दूध वा तर्पण करने में मनस्ताप दूर होता है । दही में तर्पण करने को कार्य-सिद्धि होती है ॥५६॥ जो सावधान होकर
 सूर्य को स्नान करने के लिए तीर्थ से पवित्रता पूर्वक जल लाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥५७॥ सूर्य
 को छत्र, ध्वज, चंदोडा, पताका, और चामर-श्रद्धापूर्वक समर्पित कर मनुष्य वांछित गति को प्राप्त करता है ॥५८॥
 मनुष्य भस्मपूर्वक सूर्य को आस्था दान करता है, उसे मगवान् सूर्य उससे दान से लाख गुना अधिक करने लीटा
 देते हैं ॥५९॥ सूर्य की कृपा में वाचिक, वाचिक और मानसिक त्रयताप और पाप, सभी नष्ट हो जाते हैं ॥६०॥

१ स पुष्य । २ क देवो अर्घ्यं प्र० । ३ स ० मु मन्त्रमन्मानबोतम । म० । ४ ग मुखेलासु । ५ क ० कया
 मयूय तरणि मूर्धलो० । ६ क स पल्लोन्मिध्रतोदन । ७ स ० त्वा तर्पयेच्च स० । ८ क त्वा म० । ९ क तीर्थाद्वा
 मु० । १० क ० चित्वा ग्यानास्तया० । ११ स ० पि कर्मणाऽप यवत्तन० । १२ क स ० प्रणामेन ।

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् । यथोक्तदक्षिणं विप्रैर्न तत् क्रतुशतरपि ॥६१॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यपूजादि नामकोनत्रिशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं जगत्पते । भास्करस्य सुरश्रेष्ठ वदतस्तेषु दुर्लभम् ॥१॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पूछामो जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः ॥२॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽप्य भिक्षुः । य इच्छेन्मोक्षमास्यातुं देवतां कां यजेत सः ॥३॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निश्चयसं परम् । स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते पुनः ॥४॥
देवानां चात्र को देवः पितृणाञ्चैव कः पिता । यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥५॥
कुतः सृष्टमिदं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम् । प्रलये च कमम्येति तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥६॥

सूर्य की एक दिन की पूजा से जो फल प्राप्त होता है, वह विधिविधान सहित किए गए दक्षिणा पुरस्सर की यशो से भी नहीं मिलता है ॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद प्रकरण में सूर्य-पूजा-निमग्न-
भक्ति-माहात्म्यवर्णन नामक उत्तीसवीं अध्याय समाप्त ॥२९॥

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! हे जगत्पते ! आपने सूर्यदेव का दुर्लभ माहात्म्य सुनाया, अब हमारी एक जिज्ञासा और है। हमें यह जानने की बड़ी उत्कण्ठा है कि गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी जो भी मोक्षार्थी हो वह किस देवता की उपासना करे ॥१-३॥ वह कौन सा ऐसा वर्म है जिसे करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त कर फिर वहां से च्युत नहीं होता है ॥४॥ हे ब्रह्मन्, देवाधि-देव कौन है ? पितरों का पिता कौन है ? जिससे बदवर कुछ भी नहीं है, वह कौन है ? ॥५॥ स्थावर-जगम सहित संपूर्ण विश्व की सृष्टि किससे हुई ? प्रलयकाल में यह जगत् किसमें लीन होता है ?—यह सब हमें बतलाइये ? ॥६॥

ब्रह्मोद.

'उद्यन्नेवंप कुक्षते जगद्वितिमिरं करैः। नातः परतरो, देवः, कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः॥७॥
अनादिनिघ्नो ह्येष' पुरुषः, शाश्वतोऽव्ययः। तापयत्येष' श्रील्लोकान् भवनरश्मिभिरुत्खणः॥८॥
सर्वदेवमयो ह्येष तपतां' तपनो धरः। सर्वस्य जगतो नाथः सर्वसाक्षी जगत्पतिः॥९॥
सक्षिपत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः। एष भाति तपत्येष' वर्णत्येष गभस्तिभिः॥१०॥
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः। न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः॥११॥
पितृणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता। ध्रुवं स्थानं स्मृतं ह्येतद्यस्मान्न च्यवते पुनः॥१२॥
संग्रहणे जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते। प्रलये च तमन्येति भास्करं दीप्ततेजसम्॥१३॥
'योगिनश्चाप्यासंख्यातास्त्यक्त्वा' गृहकलेवरम्'। यायुर्भूत्वा' विशन्त्यस्मिंस्तोजोराशौ दिवाकरे॥१४॥
अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमाः। वसन्त्याश्रित्य भुनयः संसिद्धा दंदतैः सह॥१५॥
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो' योगधर्मिणः। बालस्त्रिहयादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिनः॥१६॥
वानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाद्या' भिक्षवस्तथा। योगमास्थाय सर्वे ते प्रविष्टाः सूर्यमण्डलम्॥१७॥
शुको व्याससुत. श्रीमान् योगधर्ममवाप्य स'। आदित्यकिरणान् गत्या ह्युपुनर्भवमास्थितः॥१८॥

ब्रह्मणे कहा—द्विजवर! जा उदित होते हुए अपनी किरणों से सत्तार को अघार-रहित कर देता है, उसमें बकरबोई देव नहीं है॥७॥ यही अनादि और अनन्त है, पुरुष, शाश्वत (नित्य) और अव्यय (नागरहित) भी यही है, यही अपनी वीक्षण रश्मिया से तीनों लोक को तपता है॥८॥ यह सर्वदेवमय, तपानेवालों में थोष्ट, सपूर्ण जगत् का स्वामी, सब का साक्षी, जगत्पति, प्राणिमा का महारज तथा सृष्टिकर्ता, किरणों के द्वारा प्रकाश तथा वषा करने वाला, धाता, विधाता, भूनादि, भूतपालक, क्षयरहित और नित्य अक्षयमण्डल वाला है॥९-११॥ यहीं पितरा का पिता, देवताओं का देवता और ध्रुव का अक्षय स्थान है क्योंकि यहीं से फिर पतन नहीं होता॥१२॥ सृष्टिकाल में सपूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है और प्रलय का भी उसी अत्यन्त तेजस्वी आदित्य में लीन हो जाता है॥१३॥ अवश्य योगी भी घटीर रूपों गृह को छोड़कर वायु का रूप धारण कर उसी तेजराशि मूल में प्रवेष्ट करते हैं॥१४॥ सूर्य को हजार किरणों का आश्रय पाकर देवताओं के साथ सिद्ध-मुनि उनी तरह वाम करते हैं, जिग तरह पशुगण वृक्षा को घाताओं पर रहते हैं॥१५॥ गृहस्थ होने हुए भी योगी राजा जनक आदि, ब्रह्मवादी मुनि वानप्रस्थ आदि, वानप्रस्थ और सन्यासी, व्यास आदि जो कोई भी थे, वे सब याग को प्राप्त कर सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हुए हैं॥१६-१७॥ व्यास-मुनि श्रीमान् ध्रुव ने योग को प्राप्त कर सूर्य-किरणों में जाकर पुनः उत्पन्न न होने की स्थिति को प्राप्त किया॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता शब्दमात्र से गम्य हैं, पर तिमिर-नाशन सूर्य तो प्रत्यक्ष-

१ ग उद्यन्नेव कु०। २ क देव। ३. क ०५ लोकांश्रीनामन्तिमिरनु०। ४ ग ०ना वा शुमान्। ५ ग शुमान्। ६ क ०५ प्रजापत्यस्वग०। ७ स स्वग०। ८ स ०त सस्य यन्मा०। ९ स ०प्रजाप०। १० क ग ०वचन स०। ११ क ग ०क्षयश्च त्यक्त्वा। १२ स ०म्। एवीमूना वि०। १३ क ०शान्तेन तेजोमूर्ति निराशम्। ४०। १४ क ०नो ये च धामिकाः। वा०। १५ क. ब्रह्मकिरणः। १६ स ०या वसतः०।

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः ॥१९॥
 तस्मादग्नयत्र भक्तिर्हि न कार्या शुभमिच्छता । यस्माददृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०॥
 अतो भवद्भिः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः । स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥२१॥
 अनाद्यो लोकनायोऽसौ रश्मिभाली जगत्पतिः । मित्रवैद्ये च स्थितो यस्मात्तपस्तेषु द्विजोत्तमाः ॥२२॥
 अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च । सृष्ट्वा सप्तांगान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥२३॥
 लोकानां स हितार्थाय स्थितश्चन्द्रसरित्ते । सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान्सृष्ट्वा च विविधा प्रजाः ॥२४॥
 ततः शतसहस्रांशुरव्यवतश्च पुनः स्वयम् । कृत्वा द्वादशधास्मानमादित्यमुपपद्यते ॥२५॥
 इन्द्रो धाताय पर्जन्यस्त्वष्टा पूषा अयमा भगः । विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ॥२६॥
 अभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥२७॥
 तस्य या प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता । स्थिता सा देवराजत्वे देवाना रिपुनाशिनी ॥२८॥
 द्वितीया तस्य या मूर्तिर्नाम्ना धातेति कीर्तिता । स्थिता पञ्जपतित्वेन विविधा सृजते प्रजाः ॥२९॥
 तृतीयाकंस्य या मूर्तिः पर्जन्य इति विधृता । मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्धते जगभस्तिभि ॥३०॥
 चतुर्थी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विधृता । स्थिता धनरपती सा तु ओषधीषु वसच्चतः ॥३१॥
 पञ्चमी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना पूषेति विधृता । अग्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजापुष्पाति नित्यशः ॥३२॥

देव है ॥१९॥ इसलिए कन्याण चाहने वाले को सूर्य को छोड़ कर अन्यत्र भक्ति नहीं करनी चाहिये। जिसलिए विष्णु आदि देव अप्रत्यक्ष हैं अतः आप लोगों को सतत सूर्य की अर्चना करनी चाहिये ॥२०॥ सूर्य ही निखिल जगत् का माता पिता है। विप्रवर । यह अनादि, लोकनाय, किरणों की भाला वाला, जगत्पति, मित्रत्व में स्थित होकर तप करने वाला, जन्म-मरण से रहित, ब्रह्मा, नित्य और अक्षय है ॥२१-२२॥ समुद्रों और द्वीपों सहित चौदहों भुवन की सृष्टि करने के लोक कल्याण के लिए सूर्य चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित हुआ ॥२३॥ प्रजापतियों और विविध प्रजाओं का निर्माण कर सौ हजार किरण वाले उस अयक्त ने बारह आदित्यों के रूप में अपने आत्मा को विभक्त कर दिया ॥२४-२५॥ द्विजवर्ग । इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अयमा, भग, विवस्वान्, विष्णु अथ, वरुण और मित्र—इन बारह मूर्तियों से परमात्मा सूर्य ने समस्त जगत् को व्याप्त कर रखा है ॥२६-२७॥ उस सूर्य की इन्द्र नामक जो पहली मूर्ति है, वह देवताओं के शत्रुओं को नष्ट करने वाली है तथा देवराजत्व पर स्थित है ॥२८॥ धाता नाम की उसकी दूसरी मूर्ति प्रजापति बनकर विविध प्रजाओं की सृष्टि करती है। उसकी तीसरी मूर्ति, जो पर्जन्य नाम से प्रख्यात है, बादलों में है। स्थित रहती है और किरणों के द्वारा वर्षा करती है ॥२९-३०॥ त्वष्टा नाम से प्रख्यात उसकी चौथी मूर्ति ओषधी जनरपतियों में स्थित है ॥३१॥ पूषा नाम से विख्यात उसकी पाँचवी मूर्ति अन्न में स्थित होकर नित्य प्रजा को पुष्टि प्रदान करती है ॥३२॥ सूर्य की अयमा नाम से प्रतिष्ठ छठी मूर्ति देवों में ही

१ स ०ता । दृष्टरोगापहो यस्माददृष्ट नित्यमेव हि । अ० । ग ०ता । दृष्ट न बाधते यस्माददृष्ट नित्यमेव हि । अ । २ क घाता । ३ क ०रयुवच । ४ स विधाता ।

मूर्ति पट्टी' रवेर्या तु अय्यमा इति विश्रुता। वायोः संसरणा सा तु देवेष्वेव समाधिता॥३३॥
 भानोर्या सप्तमी मूर्तिर्नाम्ना भोगेति विश्रुता। मूर्तिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम्॥३४॥
 मूर्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता। अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम्॥३५॥
 नवमी चित्रभानोर्या मूर्तिर्विष्णुश्च नामतः। प्रादुर्भवति सा नित्यं देवनामरिसूदनी॥३६॥
 दशमी तस्य या मूर्तिरंशुमानिति विश्रुता। वायो प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः॥३७॥
 मूर्तिस्त्वेकादशी' भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता। जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः॥३८॥
 मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता। लोकानां सा हितार्या स्थिता' चन्द्रसरित्ते॥३९॥
 'वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मंत्रेण चक्षुषा' अनुगृह्णन् सदा भवतान् वरर्नानाविधैरुत सः॥४०॥
 एष' सा जगतां मूर्तिर्हिताय विहिता पुरा। तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम्॥४१॥
 अभिर्द्वादशमिस्तेन सवित्रा परमात्मना। कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः॥४२॥
 तस्मादप्येयो नमस्यश्च द्वादशस्थानु मूर्तिषु। भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तदगतेनान्तरात्मना॥४३॥
 इत्येवं द्वादशादित्याग्रमस्कृत्वा तु मानवः। 'नित्यं श्रुत्वा' पठित्वा च सूर्यलोके महीयते॥४४॥

काश्चित् होवर वायु की सचालन-गति को बटाती है ॥३३॥ मग नामवाली सातवी मूर्ति भूमि मे स्थित होकर देहधारियों के शरीर मे प्रवेद करती है ॥३४॥ विवस्वान् नामक आठवी मूर्ति अग्नि मे प्रतिष्ठित होकर देहधारियों के अन्न को पचती है ॥३५॥ विष्णु नामक नवी मूर्ति देवताओं के शत्रुओं का वध करने के लिए नित्य अवतार लेती है ॥३६॥ अशुमान् नाम से प्रख्यात दसवी मूर्ति वायु मे प्रतिष्ठित होकर प्रजाओं को आनन्दित करती है ॥३७॥ सूर्य की ग्यारहवी मूर्ति, जो वरुण नाम से प्रसिद्ध है, जल मे अवस्थित होकर नित्य प्रजाओं का पोषण करती है ॥३८॥ मित्र नामक बारहवी मूर्ति लोह-वस्त्राण के लिए चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित रहती है ॥३९॥ मित्रतापूर्ण नेता से अनेक प्रकार के वरदानों द्वारा भक्तों के ऊपर कृपा करते हुए सूर्य ने वेबल वायु भक्षण करने' तपस्या की ॥४०॥ इस प्रकार जगत्कल्याण के लिए उसने मूर्तियों का विचार किया। मित्रभाव से स्थित होने के कारण यह मित्र कहाया ॥४१॥ द्विजवर! परमात्मा सूर्य ने इन बारह मूर्तियों से अखिल जगत् की व्याप्त कर दिया है ॥४२॥ इसलिये भक्तिमान् मनुष्य नित्य सूर्य मे चित्त लगाकर बारह मूर्तियों मे स्थित आदित्य की नमस्कार करे ॥४३॥ इस तरह बारह आदित्यों की नमस्कार करने नित्य उनसे माहात्म्य का श्रवण-गठन करने से मनुष्य सूर्य-लोक मे पुजित होता है ॥४४॥

१ क ०ष्टी तपामातार्यमेत्यमिवि०। २ क स व्यवस्थिता। ३ म स ०ती या तुमानोर्वद०।
 ४ क म ०ता। सा जीवयति वै कृत्स्न जगदम् प्रनिष्ठिताम्। मू०। ५ क ०ता मूर्ति स०। ६ स ०न्द्रम्य
 मण्डले। बटुकात् तपस्तेपे स्थित स तु सरित्ते। वा। ७ म ०मुभूत सदा। ८ स एवमाप्य हित स्थान
 परस्वावाधनधारिता। त०। ग एवमाप्य हि तस्यान यदवागच्छास्तेन चावस्थिताम्। त०। ९ क ०त्य ममाहिनी
 मृता मू०। १० स पवित्रो य मू०।

मुनय ऊचु

प्रदि तावदय सूर्यश्चादिदेव सनातन । तत कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सु । प्राकृतो यथा ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एतद् सप्रवक्ष्यामि पर गुह्य विभावसो । पृष्ट मित्रेण^१ यत पूर्व नारदाय महात्मने ॥४६॥
 प्राडमयोक्तास्तु युष्मभ्य रवेर्द्वादश मूर्तय । मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासा तपसि सस्थितौ ॥४७॥
 अबभक्षो^२ वरुणस्तासा तस्थौ पश्चिमसागरे । मित्रो मित्रवो चास्मिन वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥४८॥
 अय मेरुगिरे शृङ्गात् प्रच्युतो गधमादनात् । नारदस्तु महायोगी सर्वलोकाश्चरन वशी ॥४९॥
 आजगामाय तत्रैव धैत्र मित्रोऽचरत्तप । त दृष्ट्वा तु तपस्यत तस्य वीतूहल ह्यभूत् ॥५०॥
 योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्त सनातन । धृतमेकात्मक धेन त्रैलोक्य सुमहात्मना ॥५१॥
 य पिता सर्वदेवाना पराणामपि^३ य पर । अयजददेवता^४ कास्तु पितृन वा कानसौ यजेत् ॥
 इति सञ्चित्य मनसा त देव नारदोऽब्रवीत् । ॥५२॥

नारद उवाच

वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे । त्वमज शाश्वतो धाता त्व निधानमनुत्तमम् ॥५३॥
 भूत भव्य भवच्चैव त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । चत्वारश्चाश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तयैव हि ॥५४॥

मुनियो ने कहा—यदि यह सूर्य सनातन आदिदेव है तो साधारण व्यक्ति की तरह वर-लोहप होकर तपस्या क्या करने लगा ? ॥४५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह एक ऐसा रहस्य है जिसे स्वयं सूर्य ने महात्मा नारद से बतलाया था। वह मैं आपसे बतलाऊंगा ॥४६॥ मैं पहले यह चुका हूँ कि सूर्य का बारह मूर्तियाँ हैं। उनमें से मित्र और वरुण तपस्या करने लगे ॥४७॥ वरुण जल भाग्य कर पश्चिम समुद्र में स्थित हुआ और मित्र वायु भाग्य कर मित्रवन में रहने लगा ॥४८॥ तत्परात मरुपर्वत की चोटी पर से उतर कर गधम दन पर्वत होते हुए सब ओरों में विचरण करने का वश्याभा तथा महाभाग्य नारद वही आये जहाँ मित्र तप कर रहा था ॥४९॥ तब करते हुए मित्र को देखकर नारद को बड़ा बुतूह हुआ कि जो सब देवा का पिता व्यक्त अव्यक्त सनातन अभय अयय त्रैलोक्यपारी और परात्पर है वह भला किस देवता या पितर का उपासना करेगा। ऐसा मन में सोचकर नारद ने मित्र से कहा ॥५०-५२॥

नारद बोले—सागोपाग बद-पुराणा में आप ही का स्तुति की जाती है आप अन्नमा निय धाता सर्वोत्तम और सब निधान हैं भूत भविष्य वनमान—यैव आप ही में प्रतिष्ठित हैं गृहस्थ आदि चारों आश्रम

१ स धराया। २ व स भयण। ३ व अघ्यगो। ४ व अघ्यक्ता। ५ स य ऽमभश्चरत्तप। अ०। ५ व ऽन दवोऽव०। ६ व य ऽलाययिन्माभ०। ७ व ऽरायि च य। ८ व ऽर। सोय०। ९ वना वीतुं पूजयति नियम। १०।

यजन्ति त्वामहरहृस्त्वां भूर्तिस्त्वं समाधृतम् । पिता माता च सर्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५५॥
यज्ञे पितरं कं त्वं देवं वापि न विद्महे ॥५६॥

मित्र उवाच

अवाच्यमेतद्वक्ष्यं परं गुह्यं सनातनम् । त्वयि भक्षितमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७॥
यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमव्ययतमचलं ध्रुवम् । इन्द्रियैरिन्द्रियायैश्च सर्व्वभूतैर्विबर्ज्जितम् ॥५८॥
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते । त्रिगुणाद्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९॥
हिरण्यगर्भो भगवान् सेव युद्धिरिति स्मृतः । महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०॥
साध्ये च कथ्यते योगे नामभिर्यदुष्वात्मकः । स च त्रिरूपो विद्वात्मा शर्व्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥६१॥
धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना । अक्षरीयः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२॥
वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्यते कर्मभिः । ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहस्तस्यिताः ॥६३॥
सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित् । सगुणो निर्गुणो विद्मो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४॥
सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः । सर्व्वतः श्रुतिर्मात्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥६५॥
विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः । एकश्चरति यं क्षेत्रे स्वैरक्षरी यथासुखम् ॥६६॥
क्षेत्राणो ह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम् । तानि वेति स योगात्मा ततः क्षेत्रञ्च उच्यते ॥६७॥

नित्य प्रति आप ही की मूर्तिपा की पूजा किया करते हैं और आप सबसे माता पिता तथा सनातन देव हैं। हे देव।
ऐसी परिस्थिति में आप किस देवता की उपासना करते हैं—यह मुझे नहीं जान पड़ता। ॥५३-५६॥

मित्र ने कहा—ब्रह्मन् । यद्यपि यह सनातन रहस्य कहने योग्य नहीं है तो भी आप जैसे भक्तों से मैं छिपाऊँगा नहीं ॥५७॥ जो मूढ, अज्ञेय, अध्वकृत, अचल, ध्रुव, और इन्द्रिया, इन्द्रिया के विषय तथा सब प्राणियों से बिर्वाजित है, वह प्राण्या का अन्तरात्मा थीर क्षेत्र कहलाता है ॥५८॥ सत्त्व-रज-तम—इन त्रिगुणा से परे पुरुष भी वही कहलाता है ॥५९॥ वहीं भगवान् हिरण्यगर्भ तथा बुद्धि भी कहलाता है। योगी में उसे महान् तथा प्रधान (प्रवृत्ति) कहते हैं ॥६०॥ साध्य-योग में उसे बहुत नामों से कहा गया है। उसी के नाम त्रिरूप, विश्वात्मा, शर्व और अक्षर हैं ॥६१॥ उसने प्रजेत्य का घारण किया। वह शरीर रहित हाकर सब देहा में निवास करता है ॥६२॥ पर शरीरा हैं ॥६३॥ उसने प्रजेत्य का घारण किया। वह शरीर रहित हाकर सब देहा में निवास करता है ॥६४॥ पर शरीरा में वाय करने हुए भी कर्मों से लिप्त नहीं होता। वह मेरा, आपका और जितने देहधारी हैं—सब का साक्षात् है। वह वही किसी से गूँझत नहीं होता ॥६५॥ वह समुच्च निर्गुण, विश्व, ज्ञानगम्य और सब ओर हाय-पर नेत्र-विश्व तथा नान वाला है। वह सबको वेष्टित कर स्थित है ॥६६-६७॥ वह विश्वसूत्री, विश्वमुञ्ज और विश्वरूप पर-कार तथा बर्ण वाला है। वह सबको वेष्टित कर स्थित है ॥६८-६९॥ वह विश्वसूत्री, विश्वमुञ्ज और विश्वरूप पर-कार तथा बर्ण वाला है। वह सबको वेष्टित कर स्थित है ॥६९॥ यहाँ क्षेत्र परीर को कहा गया है। वह योगी क्षत्रा को आत्मनों से जानता रहता है। इसलिए उनका नाम क्षेत्र पदा

१ स गुप्त । २ व ० मज्जर मते । ३ ० ३ स ० व । पक्वित् ० । ४ व सत्त्वगुणे वि० । ५ स म लिप्यति ।

६५ मन्त्र ।

अव्यक्तं' च पुरे शीते पुरुषस्तेन चोच्यते। विश्व बहुविध ज्ञेयं स च सर्वत्र उच्यते ॥६८॥
 तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतं। तस्यैकस्य महत्त्वं हि स चैकः पुरः स्मृतः ॥६९॥
 महापुरुषशब्दः हि विभक्त्यैकः सनातनः। 'स तु विधिक्रियायत्' सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०॥
 शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा। कोटिशश्च करोत्येषः प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१॥
 आकाशात् पतित तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा। भूमेः रसविशेषेण तथा 'गुणरसात्तु स ॥७२॥
 एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा। एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न संशयः ॥७३॥
 स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम्। सत्तां तथा मुने सोऽग्नौ ब्रह्मादिषु तथानुयान् ॥७४॥
 यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते। तथा रूपसहस्राणि स एकः सम्प्रसूयते ॥७५॥
 यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवलः। 'एकत्वप्रलये' चास्य बह्व्यञ्चः प्रवर्तते ॥७६॥
 नित्यं हि नास्ति जगति भूतस्यावरजङ्गमम्। अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्वगश्च स उच्यते ॥७७॥
 तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमा। अव्यक्ताव्यक्तभावस्या धा सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८॥
 तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः। लोके च पूज्यते योऽसौ देवे पित्र्ये च कर्मणि ॥७९॥

है ॥६७॥ अव्यक्त पुर मे वह सोता है। इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। विश्व बहुत प्रकार का है और उसे सबत्र कहा गया है ॥६८॥ इसलिए अनेक रूप होने के कारण उसका विश्वरूप नाम पड़ा। उसी एक का महत्त्व अर्थात् महत्त्व है और वही एक पुरुष कहलाता है ॥६९॥ वही एक सनातन महापुरुष के शब्द को धारण करता है। वह विधिक्रिया के अर्थ न आत्मा से आत्मा का सजन किया करता है ॥७०॥ वह आत्मा से प्रत्यगात्मा (जीवात्मा) को ही हजार लाल और करोड़ प्रकार का बना डालता है ॥७१॥ आकाश से पतित जल जैसे भूमि रस के संयोग से मित्र प्रकार के स्वाद को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार जैसे गुणों के रस-संयोग से वह विषेण रस को धारण करता है ॥७२॥ जैसे एक ही वायु शरीर में पाँच प्रकार से रहता है उसी प्रकार उसका एकत्व और पृथक्त्व है प्रथम कोई संदेह नहीं ॥७३॥ जैसे अग्नि स्थानान्तर के कारण दूसरी-दूसरी सत्ता को प्राप्त होता है वैसे वह भी ब्रह्मा आदि सत्ताएँ प्राप्त करता है ॥७४॥ जैसे हजारों दीपों को एक ही दीप उत्पन्न कर देता है वैसे वह भी एक होकर हजारों रूपों को उत्पन्न करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा को जानता है तब केवल रूप होता है अर्थात् एक ही रहता है और एकत्व का नाम जान पर उसका बहुत्व अर्थात् बहुरूप हो जाता है ॥७६॥ मयार में स्थावर-जगम नित्य नहीं है। पर वह अथाव अप्रमेय (न मापने योग्य) और व्यापक है ॥७७॥ द्विजवत्! इसलिए उनी से अव्यक्तरूप त्रिगुण उत्पन्न होता है और अव्यक्त से व्यक्त भाव में जो स्थित है वही प्रकृति कहलाता है ॥७८॥ जो सत्-असत् रूप और लोक में देव गिनु वम में पूजित होता है वह ब्रह्मा को योनि है ॥७९॥

१ स ० अक्षितः पु०। २ क ममत्वः। स समत्वः। ३ क ग स त्वं वि०। ४ क ग ० यात्र म०। ५ क ० पृथगा०। ६ क भूमी र०। ७ क ० ध्याय ध्यायती महान्। ए०। ८ क ० नवयानुय०। ए०। ९ क ० ज्ञां यथाऽध्वरा ह्यु यथाऽह्यु तथा ज्ञाते। य०। १० क ग ० रत्न प्र०। ११ क ० प्रत्यय य०। १२ स च ततो भवेत्। नि०। १३ क प्रपद्यतः। १४ क त्रिगुणः।

नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः । आत्मना स तु विज्ञेयस्तत्तत् पूजयाम्यहम् ॥८०॥
स्वर्गेष्वपि हि ये कौचित्तं नमस्यन्ति देहिनः । तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफलां गतिम् ॥८१॥
तं देवाः स्वाश्रमस्याश्च नानामूर्तिसमाश्रिताः । भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चैषां ददाति सः ॥८२॥
स हि सर्वगत्तश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते । एवं मत्वा ययाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥८३॥
ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्वं समाश्रिताः । एतदप्यधिकं तेषां यदेकं प्रविशन्त्युत ॥८४॥
इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः । अस्मद्भवत्यापि देवर्षे त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५॥
सर्वेषां मुनिभिर्व्यापि पुराणैर्व्वरदं स्मृतम् । सर्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

एवमेतत् पुराण्यतं नारदाय तु भानुना । मयापि च समाख्याता कथा भानोद्विजोत्तमाः ॥८७॥
इदमाख्यानमाख्येयं मयाख्यातं द्विजोत्तमाः । न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देयं कदाचन ॥८८॥
यश्चेत्तच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चेव शृणुयान्नरः । स सहस्राक्षिपं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥८९॥
मुञ्चेत्तत्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् । जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गतिमिष्टां तर्पेव च ॥९०॥
क्षणेन लभतेऽध्वानमिदं यः पठते मुने । यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥९१॥

उमने ब्रह्मर अन्य कोई पिता, द्विज और देव नहीं है। वह आत्मा द्वारा जानन योग्य है। अतः उमने की पूजा में करता हूँ ॥८०॥ हे देवर्षि! स्वर्ग में भी जो कोई उमने नमस्कार करते हैं, वे उमने अपने अमीष्ट की पूजा में प्राप्त करते हैं ॥८१॥ अनेक मूर्तियाँ मैं आश्रित देवता अपने आश्रम में ही रहकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं और उमने अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं। वह सब में व्याप्त और निर्गुण कहलाता है ॥८२॥ एका जानकर मैं अपने ज्ञानानुसार सूर्य की पूजा करता हूँ। सूर्य से प्रेरित होकर एक तत्त्व को प्राप्त कर फिर उमी एक (सूर्य) मे प्रवेश करते हैं ॥८३॥ हे नारद! यह रहस्य मैंने आपसे बतला दिया और हमारी भक्ति से आपने भी गुना ॥८४-८५॥ देवता या पुराणज मुनियाँ ने उन सूर्य का वरदायक कहा है। सभी परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर्य! पहले इस प्रकार नारद से सूर्य ने कहा था और अब मैं भी आप लोगों से बतला दिया ॥८७॥ ब्रह्मर! मेरे द्वारा ब्रह्मर इस आख्यान को आप लोग भी सुनाएँगे, पर सूर्य के अमर को बनी दिया ॥८८॥ जो मनुष्य नित्य इसका ध्यान करेगा या कराएगा, वह सहस्रकिरणधारी देव में प्रविष्ट होगा ॥८९॥ इस कथा की आदि से मुने से रागी रोग-मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु ज्ञान तथा अमीष्ट वस्तु का लाभ करता है ॥९०॥ मुने! जो इसका पाठ करता है, वह तत्काल मार्ग-प्राप्ति करता है। त्रिमयी

१ क ग त। २ क ग ० व कथ्यते श्याणुब्रह्ममे। ए०। ३ क ० क ह्यधिक पुनः। ४०। ४ स ० भार्य च म०। ग ० मा। ५ अमरताय न देय वै शठायापि कथयन। ६ क ० वच्छ्राद्धे य०। ७ ग वं दिवाकर दे०।

तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः । स च धाता विधाता च सर्वस्य जगतः । प्रभुः ॥१२॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं मुनिसत्तमा । भवत्यस्माज्जगत् सद्यं सदेवासुरमानुषम् ॥१॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवोकसाम् । महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं साध्वैर्लौकिकम् ॥२॥
सर्वार्त्तामा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदेवतम् ॥३॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्घृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥४॥
सूर्यात् प्रसूयते सद्यं तत्र चैव प्रलीयते । भावाभावौ हि लोकानामादित्याग्निः सूतौ पुरा ॥५॥
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम् । तत्र गच्छन्ति निर्वर्णं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥६॥

जो कामना हो, वह इसके पाठ में निःसन्देह पूर्ण हो जाती है ॥११॥ इसलिए आप राग सदा भगवान् सूर्य का स्मरण करें। वही धाता, विधाता और संपूर्ण जगत् का स्वामी है ॥१२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-माहात्म्य-वर्णनं

नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

आदित्य के नाम का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! समस्त त्रैलोक्य का मूल सूर्य है। देवता, राक्षस और मनुष्य सहित यह संपूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न है ॥१॥ विप्रगण ! रुद्र, इन्द्र, विष्णु और महाकान्तिमान् देवताओं का मार्गलौकिक तेज यह सूर्य ही है ॥२॥ सर्वार्त्तामा, सब लोक का स्वामी, देव-देव, प्रजापति, परमदेवता और त्रैलोक्य का मूल भी सूर्य ही है ॥३॥ अग्नि में प्रक्षिप्त आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य में वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा ॥४॥ सूर्य से सब की उत्पत्ति होती है और उन्हीं में सब लीन होते हैं। पृथक् लोका के भाव (सत्ता) और अभाव (दत्ता) सूर्य से निम्न हुए ॥५॥ वही ध्यानिया का ध्यान और माहात्म्या का मोक्ष है। उन्हीं में मनुष्य निर्वाण

क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः। मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च॥७॥
 अथादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते। कालादृते न नियमो नाम्नौ विहरणक्रिया॥८॥
 ऋतूनामविभागश्च ततः पुष्पफलं कुतः। कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः॥९॥
 अभावो व्यवहारार्थां जन्तूनां दिवि चेह च। जगत्प्रभावाद्विशते 'भास्कराद्धारितस्करात्'॥१०॥
 नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति'। नावृष्ट्या परिधिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः॥११॥
 घसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः। श्वेतो वपसि वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः॥१२॥
 हेमन्ते ताम्रवर्णाभिः शिशिरे लोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्यस्य ऋतुसम्भवाः॥१३॥
 ऋतुस्वभाववर्णश्च सूर्यः क्षेमसुभिक्षकृत्। अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः॥१४॥
 द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः। आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोजकः प्रभाकरः॥१५॥
 मार्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः। रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः॥१६॥
 विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्यमा। विवस्वानंशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः॥१७॥
 इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः। उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात्॥१८॥
 विष्णुस्तपति चेत्रे तु वैशाखे चार्यमा तथा। विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आपादे चांशुमान्॥१९॥

प्राप्त करते हैं और उसी से पुन पुन उत्पन्न होते हैं॥६॥ क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग—इन सब की कालसंख्या बिना सूर्य के नहीं हो सकती है॥७॥ बिना काल के कोई नियम नहीं हो सके और न अग्नि में विहरण क्रिया ही हो सकती है। ऋतुओं का विभाग नहीं हो सकता, फल फूलों की तो बात ही क्या। धान्य तृण और ओषधियों की उपज भी नहीं हो सकती॥८-९॥ पृथ्वी तथा आकाशमें जीवों का व्यवहार नहीं हो सकता। जल चुराने वाले सूर्य से जगत् प्रभावित होता है॥१०॥ बिना वृष्टि के सूर्य न तप सकता है, न भूत सकता है। वृष्टि के अभाव में सूर्य अपनी परिधि को भी धारण नहीं कर सकता। जल से ही तो यह दीप्त होता है॥११॥ सूर्य घसन्त ऋतु में कपिल रूप, ग्रीष्म में सुवर्ण के समान, वर्षा में श्वेत, शरद् में पाण्डु, हेमन्त में ताम्रवर्ण और शिशिर में रक्त हो जाता है॥१२॥ सूर्य के ये ऋतुकालीन वर्ण मैंने वर्णन कर दिये। अब ऋतुओं के अनुसार सूर्य सुमिक्ष करता है—यह जानकर आप उसके सामान्य नामों की भी सुन लीजिये॥१३-१४॥

द्विजगण। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर और रवि—ये सामान्य नाम हैं॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित हैं। ये बारह महीना में क्रमशः उत्थान करते हैं॥१७-१८॥ विष्णु चैत्र में, अर्यमा वैशाख में, विवस्वान् ज्येष्ठ में, अंशुमान् आपाद में, वरुण भाद्रपद में, इन्द्र

१ क० ख० पा०। धातूना०। २ क ख ०६४ पु०। ३ क ख ०णमूलफ०। ४ ख ०प्रमाण हि दृते।
 ५ ख ०स्वरौ वारि०। ६ ख ०स्वर। ७०। ७ क परिनिद्यते। ८ ख ०न श०। ९ ख ०दि श्यामवर्णेन। हे०।
 १० क ०शो मन। ११ क ०शुमास्तथा। प०।

पज्जन्त्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रोष्ठसंज्ञके। इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्तिके ॥२०॥
 मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः। माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१॥
 शतैर्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दोष्यते सदा। दोष्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरग्न्यामा ॥२२॥
 द्विःसप्तकैर्विवस्वास्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभिः। विवस्वानिव पज्जन्त्यो वरुणश्चाग्न्यामा तथा ॥२३॥
 मित्रवद्भगवांस्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च। इन्द्रस्तु द्विगुणैः पद्भिर्घातैकादशभिः शतैः ॥२४॥
 सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभिः शतैः। उत्तरोपक्रमेऽकस्य वद्धंते रश्मयस्तथा ॥२५॥
 दक्षिणोपक्रमे भूयो हसन्ते सूर्य्यरश्मयः। एवं रश्मिसहस्रन्तु 'सूर्य्यलोकादनुग्रहम्' ॥२६॥
 एवं 'नाम्नां चतुर्विंशदेक' एषां प्रकीर्तितः। विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरग्न्यत् प्रकीर्तितम् ॥२७॥

मुनय ऊचुः

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्येकं प्रजापते। तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशादूर्ध्वलाः सारभूतं सनातनम्। अलं^१ नामसहस्रेण 'पठन्नेवं' रतवं शुभम् ॥२९॥
 यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च। तानि यः कीर्तयिष्यामि शृणुध्वं भारस्कस्य वै ॥३०॥
 विकर्त्तनो विवस्वाश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः^२ श्रीर्मातृलोकचक्षुर्महेश्वरः ॥३१॥

आविन मे, धाता कार्तिक मे, मित्र अगहन मे, पूषा पौष मे, भग माघ मे और त्वष्टा फाल्गुन मे तपते हैं ॥१९-२१॥
 वारहसी किरणा से विष्णु, तेरह सौ किरणों से अयंमा, चौदह सौ किरणा से विवस्वान् और पन्द्रह सौ किरणा से
 अशुमान् सदा तपा करते हैं ॥२२॥ विवस्वान् के बराबर किरणों से पज्जन्त्य, वरुण और अयंमा दीप्त होते
 हैं ॥२३॥ ग्यारहसौ किरणों से मित्र, धाता, और त्वष्टा दीप्त होते हैं। वारहसौ किरणों से इन्द्र और नौसौ
 किरणा से पूषा दीप्त होते हैं ॥२४॥ उत्तरायण मे सूर्य की रश्मियाँ बढ़ती हैं और दक्षिणायन मे घटती हैं।
 इस प्रकार ये सहस्र किरणें सूर्यलोक से अनुग्रह किया करती हैं ॥२५-२६॥ सूर्य के चौबीस नाम तो मैं न बतला
 दिये, पर उनसे सहस्र नाम भी हैं ॥२७॥

मुनियो ने कहा—हे परमेश्वर! हे प्रजापते! जो मनुष्य उन सहस्र नामों से सूर्य की स्तुति करते हैं,
 उनको क्या पुण्य प्राप्त होता है, कौन सी गति मिलती है? ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिगण! सूर्य के सहस्र नामों से क्या प्रयोजन? जो उनकी सनातन तथा सारभूत शुभ स्तुति
 है, उसे मुनिये ॥२९॥ सूर्य के जो पवित्र, शुभ तथा गुप्त नाम हैं, उन्हें मैं आपको बतला रहा हूँ, मुनिये ॥३०॥ विकर्त्तन,
 विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक-प्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, वर्ता, हर्ता,
 तमिस्रहा, तान, तापन, शुचि, सप्तास्ववाहन गभस्तिहन्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्तुत—इन इक्कीस नाम का स्तोत्र

१ क ०लोके च सप्र०। २ य ०वानुसप्रह। ए०। ३ स नाम्ना। ४ स ०देवतया प्र०। ५ क एव। ६ क
 पठित्वेव स्त०। ७ घ ०छादिस्त०। ८ क ०शन धौ०।

लोकसाक्षी त्रिलोकेश ' कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा । तपनस्तापनश्चैव शुचि सप्ताश्ववाहन ॥३२॥
गमस्तिहस्तो ब्रह्मा' च 'सर्वदेवनमस्कृत । एकविंशतिरित्यप स्तव इष्ट सदा 'रवे ॥३३॥
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्कर । स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु 'विश्रुत ॥३४॥
य एतेन द्विजश्रेष्ठा' द्विसाध्योऽस्तमनोदये । स्तोति' सूर्यं शुचिर्भूत्वा सर्वपापं प्रमुच्यते ॥३५॥
मानस वाचिक वापि देहज कर्मज तथा । एकजप्येन ततस्त्वं नश्यत्यर्क्षस्य सन्निधौ ॥३६॥
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च । धूपमन्त्राध्यमन्त्रश्च' बलिमन्त्रस्तथैव च ॥३७॥
अन्नप्रदाने' दाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे । पूजितोऽय महामन्त्र सर्वपापहर शुभ ॥३८॥
तस्मादयूय' प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजा । स्तुवीध्व वरव देव सर्वकामफलप्रदम् ॥३९॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मातृण्डस्यैकविंशतिनामानुकीर्त्तन नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मातृण्डजन्ममाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

निर्गुण शश्वतो देवस्त्वया प्रोक्तो दिवाकर । पुनर्द्वाविंशधा जात श्रुतोऽस्माभिरव्योदित ॥१॥

सूर्य को सदा प्रिय है ॥३१ ३३॥ यह स्तवराज तनो लोक में प्रसिद्ध और आराध्य धन तथा यग को देनेवाला है ॥३४॥ जो मनुष्य पवित्र होकर दानों सध्या इस स्तव का पाठ करता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥३५॥ कमणा मनसा वाचा तथा शरीर से जो कोई भी पाप किया गया है वह सब सूर्य की सन्निधि में एक बार इस स्तव का जप करने से नष्ट हो जाता है ॥३६॥ यही स्तवराज जप होम सध्यापासन धूप मन्त्र अथ-मन्त्र और बलि-मन्त्र है ॥३७॥ अन्न-दान दान प्रणाम और प्रदक्षिणा में पूजित किया गया यह महामन्त्र सब पापों का हरण कर लेता है ॥३८॥ द्विजगण ! इसलिए आप लोग इस स्तव से वर-दायक तथा सर्व-काम फल प्रद सूर्य का स्तुति न किया ॥३९॥

श्री ब्रह्म महापुराण में सूर्य के उषक स नामा का अनुकृतन नामक

एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

मुनियो ने कहा—आपने निर्गुण तथा नित्य सूर्यदेव के बारे में कहा । सूर्य बारह प्रकार के हो गये—

१ क कशो दस्युह० ख ० केनो लोकवर्त्तित० । २ ख ब्रह्मण्य स० । ३ क ० वलोकन० । ४ ख ग ० वे ।
थीदारोग्यकरश्चै० । ५ ख ० त । पठनवर्द्धि० । ६ ख ० श्रुत्योद्धि० । ७ ख याति । ८ क ख ० त्राघम० । ९ ख
० दानमन्त्रश्च प्राप्तमन्त्रस्तथैव च । पू० । १० क ख ० स्माज्यूय प्र० । ११ ख तन्त्र कन्धपा जात ।

तस्य तेजसो' रश्मि त्रिषा गर्भे महावृत्तिः । सम्भूतो भास्वरौ जातस्तत्र न सशयो महान् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

'व्यास्य हि सुता श्रेष्ठा यभूय पटि गोभगा । अदिनिदितिनृदच्य विनताछास्तयं च ॥३॥
दशस्ता प्रदवी पया वश्यपाय प्रयोद्वि । अदिनिजनयामास देवास्त्रिभुवनेश्वरान् ॥४॥
दंर्यादितिनृदच्योपादानवान वदपितान् । विनताछास्तया चाया सुपुष्य रथाणुजङ्गमान् ॥५॥
तस्याय पुत्रदोहित्रं पौत्रदोहित्रकादिभिः । स्यात्पमेतज्जगत् सार्यं तेषां तातां च ये मुने ॥६॥
तया वश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणा । सास्त्रिका राजासादवायं तामसादच गणा रमता ॥७॥
दवानयजभुजदक्षत्रे तया त्रिभुवनेश्वरान् । स्रष्टा ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ॥८॥
तानवायत संहिता सापत्यादवैर्यदानवा । ततो निरावृत्तान् पुत्रान्दंतेर्देवानवैर्यतया ॥९॥
हत् त्रिभुवन दृष्टवा अदितिमुनिसत्तमा । आदिष्टनवयजभागादच क्षुधासापोहितान् भूयम् ॥१०॥
आराधनाय सवितु पर यत्न प्रचक्षमे । एकाया नियताहारा पर नियममास्थिता ॥
तुष्टाव तेजसां राग्नि गगनस्य दिवाकरम् ॥११॥

यह भी हमने जाना कि पर एन क्या गन्हेह हम यह हा रहा है नि महाकान्तिमान् तथा सत्रराग्नि मूप रबी के गम रा वसे उत्तम हुए ? ॥१२॥

ब्रह्मा बोल—रा व गात्र गुल्मी क्याय हुई जिनम स अग्नि निति दनु और विनता आग्नि तेरह क्यायें दश म क्याय का दीं ॥३॥ अग्नि ने तीना भुवन के स्वाम दवा का उत्पन्न किया ॥४॥ निति ने दत्ता को दनु न उग्र तथा वज्रमिमान् दानवा का और विना आग्नि दूगरं क्याया न स्यादर-जगमा का उत्पन्न किया ॥५॥ क्याय व पुत्र-दोहित्र तथा पौत्र-दोहित्र आग्नि स यह मपूण जगत् व्य प्त है ॥६॥ क्याय-पुत्रा म देवता तो सावित्र है पर दूरे पुत्र राजग तथा तामम हैं । ब्रह्मवेत्ताआ म श्रेष्ठ प्रजापति क्याय न देवताओ को त्रिभुवन-स्व म तथा यज भोक्ता बनाया ॥७॥ उन दमात्रा का दय और दानव पया देन लग । मुनिगण । दय तथा दानवा न दवताओ को भगाकर उनका दय भाग आहरण कर लिया । दवाना को अत्यन्त पीडित तथा त्रिभुवन को विनष्ट ह ने हुए देखकर अग्नि मूप की आराधना करने लगी । वह नियमित भोजन तथा कठिन नियमों को धारण कर एकाग्रचित होकर आकाशस्य तेजाराग्नि मूप की स्तुति करने लगी ॥११॥

१ ख ०मा राग्निगगनजा म० । २ ख ०रो देवस्त० ३ ग ०क्षान्तिर सर्वाव० । ४ व ०ति । दानवा यक्षसंहिता सपला दायानवा राक्षसाश्च तता यक्ष तयामास त्सुदारणम् । न्यिय वपसहस तु तत्राजीयन्त दवता । जयवन्ताऽभवस्तत्र बलिनो दायदानवा । त० । ५ व ०मा । विच्छि० । ६ ख यत्नमुपस्थिता । ए० । ७ क ०म । जिताहारा तमनस्का प० ।

अदितिर्वाच

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं 'विभ्रतेश्चुलम्। धाम धामवतामोशं' धामाधारं च शाश्वतम् ॥१२॥
 'जगतामुपकाराय त्वामहं स्तोमि' गोपते। आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥१३॥
 प्रहीनुमष्टमासेन 'कालेनाम्बुमयं' रसम्। विभ्रतस्तस्य यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥१४॥
 समेतमग्निपोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैवयेन तपते तव ॥१५॥
 विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो। यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् ॥
 अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम्। निराहारा विवस्वन्तमारिराघयिषुद्विजाः ॥१७॥
 ततः कालेन महता भगवांस्तपनो द्विजाः। प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंवृतम्। भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिबुद्धं शम् ॥१९॥
 तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता ॥२०॥

अदिति ने कहा—हे पृथ्वीपते ! तुम्हें नमस्कार है। तुम परम सूक्ष्म, अनुपमेय तेज को धारण करने वाले, तेजधारिणी के स्वामी, तेजा के आधार तथा नित्य हो ॥१२॥ ससार के उपकार के लिए मैं तुम्हारे स्तुति करती हूँ। तुम्हारे तीक्ष्ण रूप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१३॥ जाठ महीना में जलमय रस को धारण करने वाले आपके अत्यन्त तीक्ष्ण रूप को नमस्कार है ॥१४॥ सत्त्व-रज-तम से युक्त तथा अग्नि-सोम सहित आपके रूप को नमस्कार है। ऋक्, यजुस् और साम की एकता से जो आपका रूप तपता है, उसे नमस्कार है ॥१५॥ विश्वात्मक जो आपका रूप है, उसे नमस्कार है। हे सूर्य ! सब से परे जो आपका ओम् रूप है उसे नमस्कार है। हे सनातन ! आपके अस्थूल, स्थूल और निर्मल रूप को भी नमस्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! सूर्य की आराधना करने वाली अदिति निराहार तथा नियमों से युक्त होकर इस प्रकार सूर्य की स्तुति किया करती थी ॥१७॥ विप्रबुद्ध ! बहुत दिनों बाद भगवान् सूर्य उस दक्ष-पुत्री के सामने प्रकट हुए ॥१८॥ विप्रवर ! अदिति ज्वालाओं के कारण देखने न पाय, तेजोरशि और भूमि पर स्थित सूर्य को देखकर अत्यन्त डर गई ॥१९॥

अदिति बोली—हे गोपते ! हे जगत् के आदि ! प्रसन्न हो ! मैं आप को नहीं देखती। इसलिए वृषा

अदितिरुवाच

जगदाद्य' प्रसीदति न त्वां पश्यामि गोपते। प्रसादं कुरु पश्येयं यदूपं ते दिवाकर
भवतानुकम्पक विभो त्वद्भूषतान् याहि मे सुतान्। ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसु'। अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः॥२२॥
ततस्तां प्रगतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजा'। प्राह' भास्वान् वृणुष्वकं वरं मत्तो यमिच्छसि॥२३॥
प्रणवा शिरसा सा तु जानुपीडिनमेदिनी। प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम्॥२४॥

अदितिरुवाच

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम। यज्ञभगाश्च दंतैर्येदनिर्वंश्च बलाधिकं॥२५॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा ताम्राशये रिपून्॥२६॥
यया मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो। भवेयुरधिपाश्चैव प्रलोक्ष्यस्य दिवाकर॥२७॥
तयानुत्तपं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम। कुरु प्रसन्नातिहर कार्यं कर्ता त्वमुच्यते'॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्माह भगवान् भास्करो धारितस्करः। प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः॥२९॥

कर मुने अपना रूप दिखलाइये। हे भक्तो पर अनुकम्पा करने वाले। हे विभो! आप अपने भक्त मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिये॥२०-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त सूर्य उस तेज से निकलकर तप्त तावे के समान कान्तिमान् होकर अदिति के सामने प्रकट हुए॥२२॥ और प्रणाम करता हुई अदिति से सूर्य ने कहा—‘तुम एक वर जो चाहो मुझसे माग लो॥२३॥ घुटने टक कर प्रणाम करता हुई अदिति ने वर देने के लिए प्रस्तुत सूर्य से कहा॥२४॥

अदिति बोली—हे देव! प्रसन्न हो। अधिक बल वाले दैत्य मानवों ने मेरे पुत्रों से तीनों लोक तथा यज्ञ भागों को छीन लिया॥२५॥ हे गणपते! उन्हीं के निमित्त आप मुझ पर अनुग्रह करें। अपने एक अंग से आप उनके माई बनकर शत्रुओं का नाश कीजिये॥२६॥ हे प्रभो! जिस प्रकार मेरे पुत्र पुन' यज्ञ-भोक्ता और त्रिलोकी के स्वामी बनें उसी प्रकार की कृपा आप मुझ पर करें। हे शरणागतों की पीड़ा हटाने वाले! आप सबके कर्ता कहे जाते हैं, मेरा मनोरथ पूरा कर दीजिये॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—ध्रियवृन्द! तब जल चुराने वाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर दण्डवत् करती हुई अदिति से बोले॥२९॥

सूर्य उवाच

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः । त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागतः । निर्वृता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिल्वाङ्घ्रिता ॥३१॥
ततो रश्मिसहस्रास्तु सुपुष्पाह्वयो रवेः करः । ततः संवत्सरस्यान्ते तत्कामपूरणाय सः ॥३२॥
निवासं सचिता चक्रे देवमानुस्तदोदरे । कृच्छ्रवान्द्रायणादींश्च सा चक्रे सुसमाहिता ॥३३॥
शुचिना धारयाम्येनं दिव्यं गर्भमिति द्विजाः । ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कौपिल्युताक्षरम् ॥३४॥

कश्यप उवाच

किं मारयसि 'गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी ॥

ब्रह्मोवाच

सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना । न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति ॥३५॥
इत्युक्त्वा तं तदा 'गर्भमुत्सासजं सुरारणिः । जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वंचनकोपिता ॥३६॥
तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवच्चंसम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा 'वाग्भिराद्याभिरादरात् ॥३७॥

सूर्य ने कहा—मैं अपने हजारअंश से तेरे गर्भ में वास करूँगा और तेरे पुत्रों के शत्रुओं को सौघ ही नष्ट कर दूँगा ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और अदिति भी वाञ्छित फल प्राप्त कर तपस्या से निवृत्त हुई ॥३१॥ एक वर्ष बाद अदिति की कामना पूर्ण करने के लिए सहस्र किरणों में से सुपुष्पा नामक सूर्य किरण आकर देवमाता के गर्भ में वास करने लगी ॥३२॥ अदिति भी सावधान होकर कठिन चान्द्रायण आदि व्रत करने में प्रवृत्त हुई । द्विजगण । 'मैं पवित्रता से गर्भ धारण करूँगी' ऐसा निवेदन करती हुई अदिति से कश्यप ने कोप मुक्त कुछ बातें कही ॥३३-३४॥

कश्यप ने कहा—नित्य उपवास करके क्या तुम गर्भस्थ अंडे को मार रही हो ?

ब्रह्मा ने कहा—अदिति भी कोप में आकर बोली—देखो, यह गर्भस्थ अंड (बालक) नहीं मर रहा है । वल्कि इससे शत्रुओं की मृत्यु होगी, ॥३५॥ इतना कहकर पति के वचन से क्रुपित अदिति ने तेज से जाज्वल्यमान गम का त्याग कर दिया ॥३६॥ उदयवालीन सूर्य के समान तेजस्वी उस गर्भ को देखकर कश्यप मुक्तकर आद्य वागियों

१ ग ०८ । विप्रावतारसचक्रदे० । २ ख कृच्छ्रास्तुधारण तस्य सा । ३ ख गर्भेण्ड० । ४ ख ०र्ममायस० ।
५ ख ०र्मरोदयमि० ।

संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् । पद्मपत्रसवर्णाभिस्तेजसा ध्याप्तदिङ्मुखः ॥३८॥
अयान्तरिक्षादाभाप्य वक्ष्यपं मुनिसत्तमम् । सतोयमेघगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥३९॥

वागुवाच

'भारतिमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं' त्वयादितेः । तस्मान्मुने सुतस्तेज्यं मार्तण्डाह्वयो भविष्यति ॥४०॥
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् । देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम् ॥४१॥
प्रहृष्यन्मनुर्लं याता दानवाश्च हतो जसः । ततो युद्धाय दंतेयानामुहाव शतश्रतुः ॥४२॥
सह देवं मुदा युक्ता दानवाश्च तमम्ययुः । तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ॥४३॥
शस्त्रास्त्रवृष्टिस्तन्दीप्तसम्भुतभवान्तरम् । तस्मिन् युद्धे भगवता मार्तण्डेन निरीक्षिता ॥४४॥
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महामुराः । ततः प्रहृष्यन्मनुर्लं प्राप्ताः सव्यं दिवो वसः ॥४५॥
सुष्टुयुस्तेजसां योनिं मार्तण्डमदिति तया । स्वाधिकारांस्ततः प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् ॥४६॥
भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमयाकरोत् । कदम्बपुष्पवद्भास्वानघश्चोद्धर्धञ्च रश्मिभिः ।
'वृतोऽग्निपिण्डसदृशो दध्ने नातिस्फुटं यपु ॥४७॥

मुनय ऊचुः

कथं कान्ततरं पद्माद्रूपं संलब्धवान् रविः । कदम्बगोलकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥४८॥

से आदिसूर्यक उसकी स्तुति करने लगे ॥३७॥ स्तुति किये जाने पर जब गर्गस्य अङ्ग से निकल कर कमल-पत्र के समान कान्तिमान् सूर्य तेज से दशा दिशाओं का ध्याप्त करते हुए प्रकट हुए तब मुनि-श्रेष्ठ वक्ष्यप को लक्ष्य करके सजल मेघ के समान गम्भीर आकाशवाणी हुई ॥३८-३९॥

वाणी ने कहा—हे मुने ! जिसलिए तुमने अदिति से कहा था कि कबो अङ्ग को मार रही हो इसीलिए यह पुम्हाया पुत्र मार्तण्ड नाम से प्रख्यात होगा ॥४०॥ यह यज्ञ भागों को हरने वाले असुरों का संहारक होगा । आकाशवाणी सुनकर देवा अत्यन्त प्रसन्न हुए और दानव निरन्तेज हुए ॥४१॥ तब इन्द्र ने दैत्या को युद्ध के लिए आह्वान किया । दानव भी देवताओं के साथ सग्राम में प्रसन्नतापूर्वक जुट गये । बड़ा नयानक देवासुर-सग्राम हुआ ॥४२-४३॥ उनके शस्त्र अस्त्रों की वृष्टि से निमुवन ध्वास्त हो गया । उस युद्ध में भगवान् मार्तण्ड ने देखा कि तेज से सब महर्देव्य भस्मसात् हो गये ॥४४॥ तब देवगण अत्यन्त हर्षित होकर तेजोपाशि सूर्य की स्तुति करने लगे । भगवान् की कृपा से देवताओं को पूर्ववत् अपना-अपना अधिकार मिल गया ॥४५-४६॥ स्वयं सूर्य ने भी स्वाधिकार प्राप्त कर अग्नि पिण्ड के समान किञ्चित् अस्फुट शरीर को धारण किया, जो कदम्ब-पुष्प के सदृश रश्मियों से कान्तिमान् था ॥४७॥

मुनियों ने कहा—हे जगत्पते ! सूर्य का कदम्ब के समान गोल तथा रमणीयतर रूप कैसे हुआ ? ॥४८॥

१ ग ०त्रमुव० । २ ख ०रितस्ते यत् प्रो० । ३ ख त्वयोदितम् । त० । ग त्वयोदिते । त० ।
४ ख. ०तोऽपि पि० ।

ब्रह्मोवाच

त्वष्टा तस्म ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते । प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥४९॥
श्रीष्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः । द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां तथा ॥५०॥
यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्तण्डस्य विवस्वतः । तेन तितापयामास त्रौ लोकां सचराचरान् ॥५१॥
तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः । असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः । निर्विकारं त्वयात्रैव स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥५३॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी । सम्भाव्या नैव चाश्चेयमिदं भगवते त्वया ॥५४॥

छायोवाच

आ कचग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् । आश्यास्यामि मत्तुभ्यं गन्धता यत्र वाञ्छितम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा श्रीद्विता संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् । यस्तराणा सहस्रन्तु वसमाना पितुर्गृहे ॥५६॥
भर्तुः समीपं याहोति पित्रोवता सा पुनः पुनः । आगच्छद्वडवा भूत्वा कुहनयोत्तरांस्ततः ॥५७॥
तत्र तेषे तपः साध्वी निराहारा द्विजोत्तमा । पितुः समीपं याताया सजायां वाक्यतत्परम् ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—त्वष्टा नामक प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य को नित्य नमस्कार के द्वारा प्रसन्न करके
समानामक अपनी कन्या व्याह दी ॥४९॥ सूर्य से संज्ञा मे दो पुत्र और एक यमुना नामक कन्या को उत्पत्ति हुई ॥५०॥
मार्तण्ड का जो अत्यधिक तेज था, वह चराचर सहित तीनों लोकों का बहुत तपाता था ॥५१॥ उसने गोलकार
रूप को देखकर महान् तेज को न सहती हुई संज्ञा अपनी छाया से बोली ॥५२॥

संज्ञा ने कहा—मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ । शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो । मेरी आज्ञा से तुम यही
पर निर्विकार होकर रहो ॥५३॥ हे सुन्दरी ! मेरे दोनों बालक तथा कन्या का पालन-पोषण करना । पर भग-
वान् से इस आख्यान को बनी न कहना ॥५४॥

छायाने कहा—हे देवी ! जब तक मेरे बाल नहीं पकड़े जायेंगे और शाप नहीं पड़ेगा तब तक मैं इधर रहस्य
को बर्नी नहीं बतला सकती । तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ ॥५५॥ इस प्रकार नहीं जाने पर लज्जार्त हुई संज्ञा
निःशुद्ध हो चली गयी । वहाँ एक हजार वर्ष तक वास करने के उपरान्त पिता ने उसे अपने स्वामी के पास
लौट जाने के लिए विवस्वत कहा ॥५६॥ तब पतिव्रता संज्ञा छोड़ी का रूप धारण करने उत्तर-कुरु देश में आयी और
निग्रहार रहकर तपस्या करने लगी ॥५७॥ द्विजगण ! संज्ञा के अपने पिता के पास चली जाने पर उसी का रूप

१ क ग अथ । २ स तत्र । ३ क अन्ती तदा तेज । ४ ग व्याप्ययथे० । ५ स आ वेशप्र० । ६ स तु ।
७ स अनेवोत्त० ।

तद्रूपधारिणी छाया भास्कर समुपस्थिता । तस्याञ्च भगवान् सूर्यं सजेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
 तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ' कन्यका तथा । सज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजाना तथाकरोत् ॥६०॥
 स्नेहं न पूर्वज्जातानां तथा' कृतवती' तु सा । मनुस्तत्क्षान्तवास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
 बहुधा पीडयमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽयं बलान्ते ॥६२॥
 पदा सतज्जनयामास न तु देहे न्यपातयत्

छायोवाच

पदा तज्जयस यस्मात्पितुर्भाष्यां गरीयसीम् । तस्मात्तथैव चरणं पतिष्यति न सशय ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन शापेन भृश पीडितमानसः । मनुना सह धर्मात्मा पित्र सख्यं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु' माता देव न वर्तते । विसृज्य ज्यायस भवत्या वनीयास वृभूषति ॥६५॥
 तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भूवान् क्षतुमहसि ॥६६॥
 शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः । ततो मये न जननीमिमां वै तपतांवर ॥६७॥
 तव प्रसादाच्चरणौ भगवन् न पतेदयथा । मातृशोषादय मेऽष्ट तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८३॥ भगवान् सूर्य ने उसे सनाहा समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया ॥५९३॥ अब नकल सज्ञा अपने पुत्र-पुत्री का सच्चा सना के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लग । मनु ने तो इसका सहन किया पर यम नहीं सह सका ॥६०६१॥ उसने विमता द्वारा बहुत प डित होने पर कोप या लज्जकपन या भावी अनय के कारण छाया को लात मारना चाहता पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छायाने कहा—जिस चरण से तु माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पड़गा इसमें कोई सशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शाप से अत्यन्त दुःख होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास आकर उनसे सारी बात निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव ! माता को समान भाव से हम लोगों के साथ बरतना चाहिये पर वह तो बड़ को छोड़ कर छोटे ही को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पर उड़ाया किन्तु मारा नहीं । आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात ! हे तपनश्रद्ध ! माता ने क्रोध से मुझ गाप दे दिया । इससे मैं समझता हूँ कि यह मेरा माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन् ! मातृ गाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें ॥६८॥

१ ख तदा सम० । २ ख सुती । ३ क यथा । ४ क ता पुरा । म० । ५ क वशात् । ६ ख मनु
 आत्मजेयु न ।

रविहवाच

असन्धं महत्पुत्रं भविष्यत्यनं कारणम् । येन त्वामाविशत्क्रोधो धम्मंजं धम्मगीलिनम् ॥६९॥
सर्वपापमव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते । न तु मात्राभिगन्तानां क्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥७०॥
न गण्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं 'मातुवचस्तव । किञ्चित्तेह विधास्यामि 'पुनस्नेहादनुग्रहम् ॥७१॥
इमयो मासमादाय प्रयास्यति महीतलम् । 'कृतं तस्या वचं सत्य' त्वञ्च ज्ञातो भविष्यति ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

आदित्यस्त्वग्रवीच्छाया किमर्थं तनयेषु धैः । तुल्येत्त्वप्यधिकं स्नेहं एकं प्रति कृतस्त्वया ॥७३॥
नूनं नृपा त्वं जननीं सज्जां कापि त्वमागता । निर्गुणेष्वप्यपत्येषु मातां शापं न दास्यति ॥७४॥
सा 'तत्परिहरन्ती च शापादभीता तदा रवे । कथयामास वृत्तात् स श्रुत्वा श्वशुरं ययौ ॥७५॥
स चापि तं ययायायमच्चयित्वा तदा रविम् । निदाघुकामं रोपेण सात्त्वयानरतमब्रवीत् ॥७६॥

विदधकर्मोवाच

तयाति तेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहती तु तत्सज्जा वने चरति वै तप ॥७७॥
द्रव्यते ता भवानद्य स्वाभाष्यं शुभचारिणीम् । रुपायं भवतोऽरण्ये चरतीं सुमहत्तप ॥७८॥
धृतं मे ब्रह्मणो जायय तव तेजोऽवरोधने । रूपं निवर्तयाम्यद्य तव कातं दिवस्पते ॥७९॥

सूय न कहा—पुत्र । नि मन्त्रह इत्यम कोई मन्त्र कारण है जिसम तुम्हारे अस धमन तथा धमना का वा
नय आ गया ॥६९॥ सबसे पापा का प्रतीकार है कि तु माता से अभिगन्ता का शाप निवर्तित नहीं होना । ७०॥
मे तुम्हारे माता के वचन को मिथ्या नहीं कर सकना । फिर भी पुत्र-स्नेह का कारण मैं कोई उपाय करूँगा । ७१॥ किंतु
तुम्हारे पैर का मांस लोकर पृथ्वी पर जायेंगे इसम उसका वचन भी मान्य होगा और तुम भी वच जाओगे ७२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसका उदात्त सूय ने छाया में कहा—क्या तुम ममान पुत्रा में एक का प्रति अति
स्नेह कर रहे हो ? ॥७३॥ (इसम जान पड़ता है कि) निश्चय ही तुम स्नेह माता नहीं हो कोई दूसरा मना
आ रहा है। क्योंकि गुणहीन सत्तान को भी माता शाप नहीं देता ॥७४॥ तब सूय का शाप मय स छाया ने मारा
कत्तान कह दिया । सूय में यह मुनिकर अपने श्वशुर के पास गया । विदधकर्म न ब्राह्मण स दण्ड करने का
इसका सूय को समयाचित पूजा की और सान्त्वना देने हुए उनसे कहा । ७५॥

विदधकर्म ने कहा—आपका अत्यंत तेज से व्याप्त इस दमट रूप वान सृष्टी दुर्मन्त्रा वन में तपस्या
कर रही है ॥७७॥ आपसे रूप का लिए वन में घास तपस्या करत हुई पवित्र आचरण आता अपन पन का आज
आने लगे ॥७८॥ आपसे तेज को अवरुद्ध करने के विषय में मैं ब्रह्मा का वाक्य मना है । मैं जानता हूँ
रहानी । आज मैं आपका रूप का मनाहर बना दूंगा ॥७९॥

१ स ० मगावतम् । २ स ० विलाप ० । ३ स ० मातवच ० । ४ स ० प्रयास्यामि । ५ स ० त्वं । ६ स ० य
तपि पुत्र ० । ७ स ० य । ८ स ० अन्विषा ० । ९ स ० वचं सति ते स्नेह रोवने । १० ।

तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता । 'तस्याञ्च भगवान् सूर्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ' कन्यकां तथा । संज्ञा तु पार्थिवो तेषामात्मजानां तथा-रुरोत् ॥६०॥
स्नेहं न पूर्वज्जातानां तथा' कृतवती' तु सा । मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
बहुधा षोडशमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥
पदा सन्तर्जयामास न तु देहे न्यपातयत् ॥६२॥

छायोवाच

पदा तर्जयस्य यस्मात्पितुर्भाष्या गरीयसीम् । तस्मात्तवैष चरणः पतित्यति न संशयः ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सह धर्मात्मा पितृ सत्त्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मात्सु' माता देव न वर्तते । विसृज्य ज्यायसं भक्त्या वनीयांसं वृभूषति ॥६५॥
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हसि ॥६६॥
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः । ततो मन्ये न जननीमिमां वै तपतावर ॥६७॥
तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा । मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८॥ भगवान् सूर्य ने उसे संज्ञा ही समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया ॥५९॥ अब नकली संज्ञा अपने पुत्र-पुत्री को सच्चि, संज्ञा के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लगी । मनु ने तो इसका सहन किया, पर यम नहीं सह सका ॥६०-६१॥ उसने विमाता द्वारा बहुत पीड़ित होने पर कोप या लडकपन या भावी अनर्थ के कारण छाया को लात मारना चाहा, पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छायाने कहा—जिस चरण से तू माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पड़ेगा, इसमें कोई संशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के शाप से अत्यन्त दुखी होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर उनसे सारी बातें निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव । माता को समान भाव से हम लोगों के साथ बरतना चाहिये, पर वह तो बड़े बड़े छोड़ कर छोटे हैं। को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पैर उड़ाया, किन्तु मारा नहीं । आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात । हे तपनश्रद्ध । माता ने क्रोध से मुझे शाप दे दिया । इससे मैं समझता हूँ कि यह मेरी माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन् । मातृ शाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें ॥६८॥

१ ख तदा सम० । २ ख सुतो । ३ क यथा । ४ क ०ती पुरा । म० । ५ क. वसात् । ६ ख ०
आत्मजेषु न ।

अग्निराद्याश्च भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा युताः । त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥९३॥
 त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डविवर्तिनाम् । सम्पूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते ॥९४॥
 शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥९५॥
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् । ऊचुस्ते विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ॥९६॥
 सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन । ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुहस्तया ॥९७॥
 उपगन्धितमुरब्धा गान्धर्वकुशला रविम् । पङ्कजमध्यमगान्धारगानन्धविशारदाः ॥९८॥
 मूर्च्छनाभिश्च तालंश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम् । विश्वाची च घृताची च उध्वंश्च य तिलोत्तमा ॥९९॥
 मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसांवरा । ननुतुजंगतामोक्षे लिख्यमाने विभावरी ॥१००॥
 भावहासविलासाद्यान् कुर्वन्त्योऽभिनयान्बहून् । प्रावाद्यन्त ततस्तत्र बीणा वेण्वादिशरंराः ॥१०१॥
 पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः । देवदुन्दुभय शङ्खा शतशोऽप्य सहस्रशः ॥१०२॥
 गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः । सूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् ॥१०३॥
 ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनग्रात्ममूर्त्तयः । लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणमः सर्वदेवता ॥१०४॥
 ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे । तेजसः शततनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥१०५॥
 आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विदवकर्मणा । नाम्न्यनन्दतु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥१०६॥

॥९१३॥ वाल्मिल्य सप्तक मुनिगण ने भी वेदोक्त मन्त्रों से भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवों ने भी सरादे जाते हुए सूर्य की हर्षपूर्वक स्तुति की—‘तुम मुक्तों के मोक्ष और ध्यानिना के ध्येय हो ॥९२-९३॥ कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने वाले प्राणिना की गति भी तुम्ही हो। हे देवेश । तुम पूज्य हो । हे जगत्पते । हमारा मंगल हो । द्विपदे तथा चतुष्पदे जीवा से नित्य हमारा कल्याण हो ॥९४॥ ५ तब यक्ष, राक्षस, सर्प और विद्याधर गण ने अजलि बांध शिर झुका कर सूर्य को प्रणाम किया और मन तथा काना को सुख देने वाली अनेक बातें भी कही ॥९५-९६॥ ‘हे मृतपाल । आपका तेज हम सह्य हो ।’ तब हाहा, हूहू, नारद और तुम्बुक जो गान्धर्व विद्या में कुशल तथा पङ्कज, मध्यम और गान्धार—इन तीनों गानों में विशारद थे, मूर्च्छना और तालों के साथ सुख-प्रद गीत गाते लगे ॥९७-९८॥ विश्वाची, घृताची, उध्वशी, तिरोत्तमा, मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ प्रद गीत गाते लगे ॥९९-१००॥ विश्वाची, घृताची, उध्वशी, तिरोत्तमा, मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ कल्पार्पण, भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करती हुई नाचने लगीं । बीणा, वंशी, शोष, डोल, नवकारे, मृदग, ढमक, देवदुन्दुभि और शङ्ख आदि वाजे सैकड़ों-हजारों की सत्या में बजने लगे । गन्धर्व तथा अप्सरागणों के गान, नाच और मेरी आदि वाजा के शब्द से महान् कोलाहल हुआ ॥९९-१०३॥ तब भक्ति से नतमस्तक हो अजलि जोडकर सब देवताओं ने सूर्य को प्रणाम किया ॥१०४॥ देवों के एकत्रित होने से कोलाहल मच गया । उसी जोडकर सब देवताओं ने सूर्य को प्रणाम किया ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से ऊपर तक सूर्य को सराद समय विदवकर्मा ने धीरे धीरे तेज को सक्षिप्त कर दिया । ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से ऊपर तक सूर्य को सराद

१ क ०ता । २ क ०ण्डप्रव० । ३ क ०रच मुप्र० । ४ क ०यागमु० । ५ क ०रा । तुम्बुजं० । ६ क ०मीश लि० । ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि म० । ८ ख दामन । ९ ख ०न । अयानीलिनि० ।

ब्रह्मोवाच

ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः । ततो विवस्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम् ॥८०॥
 विश्वकर्मा त्वनुजातः शाकद्वीपे विवस्वता । अग्निमारोप्य तत्तेजःशतनायोपचक्रमे ॥८१॥
 अमताशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता । समुद्राद्रिवनोपेता त्वाखरोह महो नभः ॥८२॥
 गगनञ्चाखिलं विप्राः सचन्द्रग्रहतारकम् । अधो गतं महाभागा बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥८३॥
 विक्षिप्तसलिलाः सर्वे बभूवुश्च तथाग्वाः^१ । द्यभिमन्त महाशैलाः शोणंसानुनिबन्धनाः^२ ॥८४॥
 ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तमाः । ब्रुचद्वश्मिनिबन्धीनि बन्धनानि अधो ययुः ॥८५॥
 वेगभ्रमणसम्पातवायुक्षिप्ता सहस्रशः । द्यशीर्यन्त महामेघा घोराशवविराविणः ॥८६॥
 भास्वदभ्रमणविभ्रान्तभूम्याकाशरसतलम् । जगदाकुलमत्यर्थं^३ तदासीन्मुनिसत्तमाः ॥८७॥
 त्रैलोक्यमाकुलं दौक्ष्य भ्रममाणं सुरर्षयः । देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥८८॥
 आदिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वभूतये भुवः । स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥८९॥
 स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ^४ धर्मवर्ष दिवाकर । इन्द्रादयस्तदा देवा लिख्यमानमयास्तुवन्^५ ॥९०॥
 जय देव 'जगत्स्वामिन् जयाशेष जगत्पते । ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमा ॥९१॥
 तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्ति स्वस्वीतिवादिनः । वेदोचितभिरयाग्याभिर्वालित्याश्च तुष्टुवुः'^६ ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् सूर्य ने त्वष्टा से कहा—ऐसा ही सही ।^१ तब सूर्य का रूप पहले मण्डल-कार था ॥८०॥ पश्चात् शाकद्वीप में सूर्य की आशा से विश्वकर्मा ने उनको अग्नि (भ्रमण-यन्त्र) पर चढ़ा कर उनके तेज को विशीर्ण अर्थात् सक्षिप्त करना प्रारम्भ किया ॥८१॥ समस्त जगत् के नामिरूप सूर्य के भ्रमण से समुद्र, वन आदि सहित पृथिवी आकाश में चली गई ॥८२॥ विप्रवृन्द । चन्द्रमा, ग्रह और तारा सहित निखिल आकाश व्याकुल होकर नीचे आ गया ॥८३॥ समुद्र का जल चंचल हो उठा । चाटियों के शीर्ण विशीर्ण हो जाने से बड़े-बड़े पर्वत टूटने लगे ॥८४॥ मुनिगण । ध्रुव रूपी आधार वाले समस्त नक्षत्र, जिनकी किरणों के बन्धन टूट गये, नीचे गिर पड़े ॥८५॥ भ्रमण-वेग से पतित वायु के द्वारा हजारों घोर शब्द करने वाले मेघ उल्लास कर फेंक दिये गये ॥८६॥ मुनिगण । सूर्य-भ्रमण के समय भूमि, आकाश और पाताल आदि विशिष्ट जगत् अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥८७॥ तृतीय लोक को भ्रमण से आकुल देखकर ब्रह्मा सहित देवगण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥८८॥ 'तुम देवा के आदिदेव हो, तुम ससार की उत्पत्ति के लिए हा और सृष्टि स्थिति प्रलय—तीनों काल में तुम तीन प्रकार से रहते हो ॥८९॥ हे दिनकर । हे जगन्नाथ । हे ताप धरने वाले । तुम्हारा कल्याण हो ।' उस समय इन्द्र आदि देवताओं ने भी सरादे जाते हुए सूर्य की स्तुति की ॥९०॥ हे देव । आप की जय हो । हे अशेष जगत् के स्वामी । आपकी जय हो । वसिष्ठ, अत्रि आदि सप्तर्षि भी स्वस्तिवाचन पूर्वक अनेक प्रकार के स्तोत्रों से सूर्य की स्तुति करने लगे

अग्निराद्यादच भास्व त लिह्यमान मुदा युता । त्वनाय मोक्षिणा मोक्षो ध्येयस्त्व ध्यानिना पर ॥९३॥
 त्व गति सर्वभूताना 'कर्मकाण्डविर्वात्तिनाम् । सम्पूज्यस्त्व तु देवेश श नोऽस्तु जगता पते ॥९४॥
 ' नोऽस्तु द्विपदे नित्य श नश्चास्तु चतुष्पदे । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगा ॥९५॥
 कृताञ्जलिपुटा सर्वे शिरोभि प्रणता रविम् । ऊचुस्ते विविधा वाचो मन श्रोत्रसुखावहा ॥९६॥
 सह भवतु तेजस्ते भूताना भूतभावन । ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुदस्तया ॥९७॥
 उपगन्धितुमारब्धा गाघर्ध्वकुशला रविम् । यदजमध्यमगाधारगानत्रयविशारदा ॥९८॥
 मूच्छनाभिश्च तालेश्च' सम्प्रयोगे' सुखप्रदम् । विद्वाची च घृताची च उर्ध्वद्वय तिलोत्तमा ॥९९॥
 मेनका सहजया च रम्भा चाप्सरसावरा । ननृतुजंगतामीने' लिह्यमाने विभावसी ॥१००॥
 भावहासविलासाद्यान कुर्वन्त्योऽभिनयानबहून् । प्रावाद्यत ततस्तत्र वीणा वेण्वादिमञ्जरा ॥१०१॥
 पणवा' पुष्करादचैव मृदङ्गा पटहानवा । देवदुर्धमय शङ्खा शतशोऽप्य सहस्रश ॥१०२॥
 गायदभिश्चैव नृत्यदभिर्गाघर्ध्वै' रप्सरोगणै । तूर्ग्यवादिप्रघोषैश्च सर्वे कोलाहलीवृतम् ॥१०३॥
 तत कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्तय । लिह्यमान सहस्राशु प्रणेमु सर्वदेवता ॥१०४॥
 तत कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे । तेजस 'शातन चक्रे विश्वकर्मा' शनै शनै' ॥१०५॥
 वाजानुलिखितश्चासौ निपुण विद्वक्कर्मणा । नाम्यन दत्तु लिखन् ततस्तेनावतारित ॥१०६॥

॥१११॥ वाल्मिय सप्तक मुनिगण ने भी वेत्त।वन मन्त्रा स भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवो ने
 स सपने जाने हुए सूर्य की हृषपूवक स्तुति क --- तुम मुक्ता के मोक्ष और ध्यानिदा क ध्येय हो ॥९२ ९३॥
 कमला' का अनुष्ठान करने वाल प्राणिया क गति भ। तम्ही हो। हे देवो । तुम पूय हो। हे जगत्पते । हमारा
 मन्त्र हो। ' द्विप तथा चतुष्प' ज वा से निय हमारा क्याण हो ॥९४॥ तब यक्ष राक्षस सप और विद्याधर
 गण न अजलि बाध गिर पका कर सूर्य का प्रणाम किया और मन तथा काना को मुख देने वाला अनेक बात मो
 कहा ॥९५ ९६॥ हे भूतपाल । आपका तेज हम साथ हो। तब हाहा हूहू नारद और तुम्बक जो गाघव
 विद्या मन्त्र तथा पडज मध्यम और गाधार—इन स ना गानो मे विगारद य मठना और ताला के साथ मुत्
 प्र यत गाये लग ॥९७ ९८ ॥ विन्वाचा घृताचा उवग तिलोत्तमा मेनका सहजया और रम्भा—ये श्रष्ट
 अमराए हाव भाव तथा विलास पूवक अभिनय करत हुई नाचने लग वणा वग वाझ डोल नवकारे मदग
 डमर दवदुर्धम और गव आदि बाजे सकडा-हजारा क सख्या मे बजने लगे। गाघव तथा अप्सरागणो के
 गान नाच और भेर आदि वाजा क गल्ल से महान कालाहल हुआ ॥९९ १०३॥ तब भक्ति से नतमस्तक हो अजलि
 जाकर सब दयनात्रा ने सूर्य का प्रणाम किया ॥१०४॥ देवो के एकत्रित होने ने कोलाहल मच गया। उसा
 समय विश्वकर्मा ने ध रे ध रे तेज को सक्षिप्त कर दिया। । १०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जब तक सूर्य को सराद

१ क ०ता । वनामस्मरणा'मक्षो । २ क ०णप्रव० । ३ क ०श्च सुप्र० । ४ क ०यगसु० ।
 ५ क ०रा । तुष्टवज० । ६ क ०म'ग लि० । ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि म० । ८ ख ०गमन । ९ ख ०न ।
 अयान लि० ।

न तु निर्भस्तिंतं रूपं तेजसो हननेन तु । कान्तात्कान्ततरं रूपमधिकं शुशुभे ततः ॥१०७॥
 इति हिमजलघम्मंकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
 तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्भ्रंजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥१०८॥
 एवं जन्म रवेः पूर्वं बभूव मुनिसत्तमाः । रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्तितम् ॥१०९॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मातृण्डजन्मशरीरलिखनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्तण्डमाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

भूयोऽपि कथयास्माकं कथां सूर्यसमाश्रिताम् । न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम् ॥१॥
 योऽयं दीप्तो महातजा वह्निराशिसमप्रभः । एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे । 'प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु' पूर्वं बुद्धिरजायत ॥३॥

दिया। यद्यपि सूर्य इससे प्रसन्न नहीं हुए, फिर भी सशिष्ट तेज वाले रूप की उन्होंने निन्दा भी नहीं की। और अब उनका रूप सुन्दर से भी सुन्दर बन गया ॥१०६-१०७॥ हिम, जल, धर्म और काल के कारण तथा ब्रह्मा विष्णु-महेश से स्तुत सूर्य के सरादे जाने के सम्बन्ध में सुनकर आयु के अन्त में मनुष्य सूर्य-लोक को प्राप्त करता है ॥१०८॥ मुनिवर! पहले इस प्रकार सूर्य का जन्म हुआ। उनके परमरूप के बारे में भी मैंने कह दिया ॥१०९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सूर्य-जन्म शरीर लिखन नामक वर्तिकावां अध्याय समाप्त ॥३२॥

अध्याय ३३

सूर्य के अप्सोत्तरशत नामों का कीर्तन

मुनियो ने कहा—फिर हम सूर्य सम्बन्धी कथा सुनाइये। क्योंकि उस पवित्रकथा को सुनते हुए हमें तृप्ति नहीं हो रही है। हम जानना चाहते हैं कि अग्नि राशि के समान कान्तिमान् तथा महातेजस्वी (सूर्य) को इतना प्रभाव कैसे प्राप्त हुआ ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब तीनों लोक अन्धकारमय थे और स्थावर-जगम नष्ट हो चुके थे तब पहले (त्रिगुणा-

अहङ्कारस्ततो 'जातो' महाभूतप्रवर्तकः । यावद्विनाशः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत ॥४॥
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोकाः सप्त चैव प्रतिष्ठताः । पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चैव सप्तभिः ॥५॥
तत्रैवावस्थितो ह्यासीदहं दिष्णुर्महेश्वरः । विमूढास्तामसाः सर्वे प्रध्यायन्ति तमोश्वरम् ॥६॥
ततो वै सुमहातेजाः प्रादुर्भूतस्तमोनुदः । ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञातं सविता तदा ॥७॥
ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्वं एव पृथक् पृथक् । दिव्याभिः स्तुतिभिर्देवः स्तुतोऽऽस्माभिस्तदेवः ॥८॥
आदिवेदोऽसि देवानामेश्वर्यार्च्य च त्वमोश्वरः । आदिकर्त्ताऽसि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ॥९॥
जीवनं सर्वंभूतानां देवगन्धर्व्वरक्षसाम् । मुनिकिन्नरसिद्धिनां तयैवोरगपक्षिणाम् ॥१०॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः । वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवश्वानृधरणस्तथा ॥११॥
त्वं शूलः सृष्टिकर्त्ता च हर्त्ता भर्त्ता तथा प्रभुः । सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च ॥१२॥
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः । ईश्वरत्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ॥१३॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः । सर्व्वेनः पाणिपादाङ्गः सर्व्वतोक्षिशिरोमुखः ॥१४॥
सहस्रांशुः सहस्रास्त्यः सहस्रचरणेक्षणः । भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जनः ॥१५॥
प्रदोषं दोषनं दिव्यं सर्व्वलोकप्रकाशकम् । दुर्निरीक्षं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१६॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भगवन्नृपुलहादिभिः । स्तुतं परममव्ययं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१७॥

तिम्हा) प्रकृति की हेतुमूलबुद्धि उत्पन्न हुई ॥३॥ बुद्धि से पचमहामूल प्रवर्तक अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार से बायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से आकाश, आकाश से मूमि और मूमि से अण्ड उत्पन्न हुआ ॥४॥ उस अण्ड में सागालाफ और साता द्वीप तथा साता समुद्र सहित पृथिवी प्रतिष्ठित हुई ॥५॥ उसी अण्ड में मैं, विष्णु और शंकर भी अवस्थित थे। विमूढ़ तामसी जीव उतरी, ईश्वर का ध्यान करते हैं ॥६॥ तब अन्धकार-नाशक महादेवजी, सूर्य जबस्थित थे। विमूढ़ ध्यान-योग से हमने समया ॥७॥ उन्हें परमात्मा जानकर दिव्य स्तावना के द्वारा हमन उनकी स्तुति प्रकट हुए, जिन्हें ध्यान-योग से हमने समया ॥७॥ उन्हें परमात्मा जानकर दिव्य स्तावना के द्वारा हमन उनकी स्तुति की—॥८॥ 'तुम देवा के आदिदेव हो, ऐश्वर्य के कारण ईश्वर हो, प्राणिमा के आदिकर्ता हो, देवाधिदेव हो, दिनकर हो और देव, गन्धर्व, रक्ष, भुनि, विजय, सिद्ध, नाग, यक्षी तथा सब प्राणिमा के जीवन हो ॥९-१०॥ तुम्ही ब्रह्म, तुम्ही महादेव, तुम्ही विष्णु, तुम्ही प्रजापति, वायु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, तथा वरुण भी तुम्ही हो ॥११॥ तुम्ही बाल, मूर्ति, कर्ता, हर्ता, भर्ता, प्रभु नदी, समुद्र, पर्वत, विष्णु, इन्द्र धनुष, प्रलय, उत्पत्ति, ध्वस्त, अन्धकार और सनातन हो ॥१२॥ ईश्वर से परे बिद्या, विद्या से परे शिव और शिव से बरकर परमेश्वर तुम्ही हो ॥१३॥ तुम्हारे हाथ, पैर, नत्र, शिर तथा मुख सब जगह है। तुम हजार मुख, हजार चरण, हजार नेत्र और हजार किरण वाल हो ॥१४॥ तुम प्राणिमा के आदि हो। मूर्ध, मुख, स्वर, महर्, सत्य, तपम् तथा जनम् लाकवाला, दिव्य, सर्व-लोक प्रकाश, उदीप्त, उदीपक और देवताओं से दुर्निरोद्ध जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१५-१६॥ देवता और तिडगणा से सेवित तथा भूय, अग्नि, पुलह आदि भुनिया से प्रशंसित जो परम अयस्क तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१७॥

वेद्यं वेदधिदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१८॥
 विश्वकृद्भिरुच्यते च वशवानरसुरार्चितम् । विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१९॥
 परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः । परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२०॥
 अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानागतमध्ययम् । अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२१॥

नमो नमः कारणकारणाय, नमो नमः पापविमोचनाय^१ ।

नमो नमस्ते दितिजार्दनाय, नमो नमो रोगविमोचनाय^२ ॥२२॥

नमो नमः सर्व्ववरप्रदाय, नमो नमः^३ सर्व्वसुखप्रदाय ।

नमो नमः सर्व्वधनप्रदाय, नमो नमः सर्व्वमतिप्रदाय ॥२३॥

स्तुत. स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थितः । उवाच वाचा कल्याणया को वरो वः प्रदीयताम् ॥२४॥

देवा ऊचुः

तवातिर्तैजसं रूपं न कश्चित्सोढुमुत्सहेत् । सहनीयं तद्भवतु हिताय जगतः प्रभो ॥२५॥
 एवमस्तिवति सोऽप्युक्त्वा^४ भगवानादिकृतं प्रभुः । लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं धर्ममवर्षहिमप्रदः^५ ॥२६॥
 ततः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकाङ्क्षिणः । ध्यायन्ति^६ ध्यायिनो देवं हृदयस्थं दिवाकरम् ॥२७॥
 सर्व्वलक्षणाहीनोऽपि^७ युक्तो वा सर्व्वपातकः । सर्व्वञ्च तरते पापं^८ देवमकं समाश्रितः ॥२८॥

वेद-वेदाओं से जानने योग्य, नित्य सब ज्ञानों से युक्त तथा सब देवा के रूप से बहकर जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१८॥ विश्व-कर्ता, विश्वरत्ना, अग्नि तथा देवताओं से पूजित, ससार में स्थित और अचिन्त्य जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१९॥ यज्ञ, वेद, लोक और आकाश से परे तथा परमात्मा नाम से विख्यात जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२०॥ अविज्ञेय, अवोच्य, ध्यान से अगम्य, अव्यय, अनादि और अनन्त जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२१॥ कारणा के कारण रूप तुम्हें नमस्कार है, पाप विमोचन रूपी प्रभो ! तुम्हें नमस्कार है, दैत्यों के नाश करने वाले तुम्हें नमस्कार है, रोगों से उन्मुक्त करने वाले तुम्हें नमस्कार है, सब वरदानों को देने वाले तुम्हें नमस्कार है, सब के सुखदायक तुम्हें नमस्कार है, सब को धन देने वाले तुम्हें नमस्कार है और सब को ब्रह्म देने वाले तुम्हें नमस्कार है ॥२२-२३॥ इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् सूर्य तैजस रूप को धारण कर कल्याणमयी वाणी से कहने लगे—‘आप लोगों को मैं कौन सा वरदान दूँ?’ ॥२४॥

देवताओं ने कहा—‘प्रभो ! तुम्हारे इस तैजस रूप को कोई नहीं सह सकेगा । इसलिए ससार के कल्याण के निमित्त अपने रूप को सहन करने योग्य बनाने की कृपा करो ॥२५॥ तब ‘एवमस्तु’ कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य लोकों के कल्याण के लिये धाम, धर्मा तथा हिम देने लगे ॥२६॥ तर्मा से साख्य, योगी और मोक्षावाशी जन हृदयस्थ मास्कर वा ध्यान किया करते हैं ॥२७॥ सब लक्षणा से हीन तथा सब पापों से युक्त मनुष्य भी सूर्यदेव का आश्रय

१ क ख ०विनाशना० । २ क ख ०विनाशना० । ३ क. ०म स्वर्गमतिप्र० । ४ ग ०प्युक्तो ग० ।

५ क ख ०प्रभु । त० । ६ ख मनसा ७ ग मुक्तो । ८ ख तुल्य । ९ ख ०वमाश्रित्य मानव । ध० ।

'अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । भानोर्भक्तिनमस्कारकलां नार्हन्ति योऽशीम् ॥२९॥
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मंगलम् । पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते' दिवाकरम् ॥३०॥
शक्राद्यैः संस्तुतं 'देवं ये नमस्यन्ति भास्करम् । सर्वकलिवपनिर्मुक्ताः सूर्यलोकं व्रजन्ति' ते ॥३१॥

मुनय ऊचुः

चिरात्प्रभृति नो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते । नाम्नामष्टशतं ब्रूहि यत्त्वयोक्तं पुरा रवे ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुध्वं गदतो मम । भास्करस्य परं गुह्यं स्वर्गमोक्षप्रदं द्विजाः ॥३३॥
ॐ सूर्योऽयं नाम भगस्त्वष्टा पूषाऽर्कः सविता रविः । गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्घाता प्रभाकरः ॥३४॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् । सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥३५॥
इन्द्रो विवस्वान्दीप्ताशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्वजो यमः ॥३६॥
वैद्यतो जाठरश्चाग्निर्ऋतस्तैजसा पतिः । धर्म्मध्वजो वेदकर्त्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥३७॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमराधयः । कलाकाष्ठामूर्त्ताश्च क्षपा यामास्तथा क्षणाः ॥३८॥
संवत्सरकरोऽश्वत्यः कालचक्रो विभावसुः । पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥३९॥

ब्रह्म कर पाप-समुद्र को पार कर जाता है ॥२८॥ अग्निहोत्र, वेद, यज्ञ, बहुत दक्षिणा—ये सब सूर्य को भक्तिपूर्वक नमस्कार करने की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ॥२९॥ मन्वन्तलोक तीर्थों के तीर्थ, मंगल के मंगल और पवित्रों के पवित्र सूर्य को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ जो मनुष्य इन्द्र आदि द्वारा स्तुति किए गए सूर्यदेव को नमस्कार करते हैं, वे सब पापा से मुक्त होकर सूर्य-लोक को जाते हैं ॥३१॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् ! चिरकाल से हमारी सुनने की इच्छा है, अतः आप सूर्य के एकसौ आठ नामा की बताइए, जो आपने पहले कहा था ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! (यदि यही इच्छा है तो) भास्कर के गुह्य तथा स्वर्ग-मोक्ष-दायक अष्टोत्तरशत नामा की मुनिये—आ सूर्य, अर्चमा, मग, त्वष्टा पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, घाता, प्रभाकर, ॥३४॥ पृथिवी, आप, तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक, ॥३५॥ इन्द्र, विवस्वान्, दीप्ताशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, वैश्वज, ॥३६॥ यम, वैद्युत, जाठर, अग्नि एतन्, तेजस्पति, धर्म्मध्वज, वेदकर्त्ता, वेदान, वेदवाहन ॥३७॥ कृत, त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वमराधय, कला, काष्ठा, मूर्त्त, क्षपा, याम, क्षण, ॥३८॥ संवत्सरकर, अश्वत्य, कालचक्र, विभावसु, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, ॥३९॥ कालाप्यक्ष, प्रजाप्यक्ष,

१ ख ग ०होत्राश्च वे० । २ ग ०यज्व दि० । ३ ख देवैर्येन० । ४ ख प्रयाति । ५ क सोमश्च ।
६ ग ०गोपम । ७ ख ०म । विकर्तनश्च ब्रह्मश्च त्वीश्वरस्ते० । ८ क सत्य । ९ ख कलि । १० ख ०श्च पक्षा
मासास्त० । ११ क ०पा मासास्त० ।

कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। धरुणः 'सागरोऽशश्च' जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥४०॥
 भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको बह्निः सर्वस्याऽऽदिरलोलुपः ॥४१॥
 'अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो धरदः सर्वभूतनिपेवितः' ॥४२॥
 मनः सुपर्णो भूतादिः शोघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूमफेनुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥४३॥
 द्वादशात्मा रविर्दक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥४४॥
 देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मंत्रेयः 'करुणान्वितः ॥४५॥
 एतद्वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः। नाम्नामष्टशतं रयं मया प्रोक्तं द्विजोत्तमा ॥४६॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं, ह्यसुरनिशाकरसिद्धवन्दितम्।
 वरकनकहुताशनप्रभं, प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥४७॥
 सूर्योदये यः सुप्तमाहितः पठेत्, स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान्।
 लभेत् जातिस्मरतां नरः स तु, स्मृतिञ्च मेधाञ्च स विन्दते पराम् ॥४८॥
 इमं स्तव्यं देववरस्य यो नरः, 'प्रकीर्तयेच्छुद्धमना' समाहितः।
 विमुच्यते शोकदवाग्निसागरात्लभेत् कामान्मनसा' ययेप्सितान् ॥४९॥
 इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंभूविसंवादे सूर्यनामाष्टोत्तरशतं
 नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

विश्वकर्मा, तमोनुद, धरुण सागर, अश, जीमूत, जीवा, अरिहन्, ॥४०॥ भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक, बह्नि, सर्वादि, अलोलुप, ॥४१॥ अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विशाल, धरद, सर्वभूतनिपेवित, ॥४२॥ मन, सुपर्ण, भूतादि, शोघ्रग, प्राणधारण धन्वन्तरि, धूमफेनु, आदिदेव, अदितिमुत, ॥४३॥ द्वादशात्मा, रवि, दक्ष, पिता, माता पितामह स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप ॥४४॥ देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्व-
 तोमुख चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मंत्रेय और करुणान्वित ॥४५॥ द्विजवर्य ! अमित तेजस्वी तथा कीर्तनीय सूर्य के रमणीय अष्टोत्तरशत नामों को मैंने तुना दिया ॥४६॥ देवगण, पिता तथा यक्षा से सेवित, राक्षस, चन्द्रमा तथा सिद्धों से वन्दित और अग्नि तथा सुवर्ण के समान कान्तिमान् सूर्य को जगत् कल्याण के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥ जो मनुष्य सूर्योदयकाल में सावधान होकर इन नामों का पाठ करेगा, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न समूह पूर्वजन्म के स्मरण, स्मरण-शक्ति और उत्तम बुद्धि को प्राप्त करेगा ॥४८॥ देवश्रेष्ठ सूर्य ने इस स्तोत्र का जो मनुष्य सावधान होकर शुद्ध मन से कीर्तन करेगा, वह शोकाग्निहर्षी सागर से मुक्त होकर ययेप्सित कामनाओं का प्राप्त करेगा ॥४९॥

श्री ब्रह्म महापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में सूर्य के अष्टोत्तरशत नामों तैत्तिरीय अध्याय समाप्त ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्राख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

योऽसौ सर्वगतो देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः । उमाप्रियकरो रुद्रश्चन्द्रार्द्धवृत्तशेखरः ॥१॥
विद्राज्य विबुधान् सर्वान् सिद्धविद्याधरानुषीन् । गन्धर्व्यप्रक्षनागांश्च तथाग्यांश्च समागतान् ॥२॥
जघान पूर्वं दक्षस्य यजतो धरणीतले । यज्ञं समृद्धं रत्नाढ्यं 'सर्वसम्भारसंभूतम्' ॥३॥
यस्य प्रतापसन्त्रस्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवीकृतः । शान्तिं न लेभिरे विप्राः 'कैलासं शरणं गताः' ॥४॥
स आस्ते तत्र चरदः शूलपाणिर्वृषध्वजः । पिताकपाणिर्भगवान् 'दक्षयज्ञविनाशनः' ॥५॥
'महादेवोऽकले देशे कृत्तिवासा धूपध्वजः । एकाम्रके मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदो हरः' ॥६॥

मुनय ऊचुः

'किमयं स भवो देवः सर्वभूतहिते रतः । जघान यज्ञं दक्षस्य देवं सर्वैरलङ्घृतम्' ॥७॥
न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मन्यामहे वयम् । धोतुमिच्छामहे ब्रूहि पर कौतूहलं हि नः' ॥८॥

अध्याय ३४

रुद्र का आख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो ये सर्वव्यापक, त्रिपुर-शत्रु, त्रिनेत्र, पावर्त, प्रिय, रुद्र और मस्तक पर अर्धचन्द्रधारी देव है, जहानि सिद्ध, विद्याधर, प्रदधि, गन्धर्व, यक्ष, नाग, देवता तथा दूसरे भी समागत व्यक्तियाँ बा तिरस्कार कर पहले धूम्र-मल पर पतन करते हुए दक्ष के समुद्र, रत्नों से परिपूर्ण और सब प्रकार के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञ वा विषम कर दिया ॥१-३॥ विप्रवृन्द ! जन्मे प्रताप से मयस्त इन्द्र आदि देवता पान्ति न प्राप्त कर क्षणरूप कैलाश पर्वत पर गये ॥४॥ मुनिवर्ष ! वहाँ वे वट्यायक, शूलपाणि, धूपध्वज, पिताकपाणि, दक्ष-यज्ञ-विनाशन, भगवान्वासी, व्याघ्र-चर्मधारी, हर तथा एकाग्र (स्थानविशेष) में सर्वकामप्रद भगवान् महादेव रहने हैं ॥५-६॥

मुनियों ने कहा—सब प्राणियों में हित में निरत उस राक्षसदेव ने सब देवा से अङ्गुल दक्ष ने यज्ञ को क्या लप्स किया ? प्रभो ! अवश्य ही इसका कोई मठान् कारण होगा ? हम गुनता चाहते हैं, हम बड़ी उत्सुकता हैं यही है, कृपया सुनाइए ॥७-८॥

१ स ० वैलोर्दक्ष सस्तुतः । २ क ० स । न धर्म ले ० । ३ क ग पुनस्तः । ४ क ० ता । यथास्ते चरदो देव ० । ५ क स ० शत्रुवि ० । ६ क स ० चोराले । ७ क स ० र्थ भगवान्देव । ८ क ० हे कृत्यार ।

ब्रह्मोवाच

दक्षस्याऽऽसन्नष्ट कन्या यादृचं पतिसङ्गता । स्वैर्म्यो गृह्यन्म्यश्चाऽऽनीयता पिताऽभ्यर्चयदगृहे ॥९॥
 ततस्त्वभ्यर्चिता विप्रान्मयवस्ता पितुर्गृहे । तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या 'भ्यम्बकस्य वै' ॥१०॥
 नाऽज्जुहावाऽमजा ता वै दक्षो रुद्रमभिद्विपन । अकरोत्सन्नति दक्षे न च काञ्चिन्महेश्वर ॥११॥
 जामाता इवशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थित । ततो जात्वा सती सर्वास्तास्तु प्राप्ता पितुर्गृहम् ॥१२॥
 जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम् । ताम्यो हीना पिता चक्रे सत्या पूजामसम्मताम् ॥
 ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधसमाकुल ॥१३॥

सत्युवाच

यद्यौसीम्य श्रेष्ठाऽहं किं न पूजति मां प्रभो । असत्कृतामवस्थां यं कृतवानसि गर्हिताम् ॥
 अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा च मां त्वं सत्कर्तुंमर्हसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वोऽब्रवादेना दक्ष सरषतलोचन

॥१५॥

दक्ष उवाच

त्वत् श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बाला सुता मम । तासां ये चैव भर्तारस्ते मे बहुमता सति ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—दक्ष की आठ कन्याएँ थीं जिन्हें उसने यथायोग्य पतियों से व्याहृ दिया। (एक समय) यज्ञ में) दक्ष ने सब कन्याओं को बुलाकर सत्कार किया ॥९॥ विप्रवृद्ध । वे सम्मानित कन्याएँ तब से पिता के ही घर में वास करने लगीं । उनमें बड़ी बहिन सती थी जो शिव की पत्नी थी और जिसे दक्ष ने रुद्र से शत्रुता के कारण नहीं बुलाया था ॥१०॥ शिव ने इससे दक्ष के प्रति कोई क्षोभ नहीं प्रकट किया । स्वभाव से तेजस्वी जामाता इवशुर के प्रति तटस्थ रहा ॥११॥ तब सब बहनें पिता के घर गईं हैं—यह जानकर सती बिना बुलाये ही पिता के घर चली गई ॥१२॥ पिता ने और कन्याओं की अपेक्षा सती का कम आदर किया । तब क्रोध से आकुल सती ने पिता से कहा ॥१३॥

सती बोली—प्रभो ! छोटी बहनों से मैं बड़ी हूँ । फिर आप सम्मान क्यों नहीं करते ? मेरा निरादर करके मेरा अवस्था का क्यों बुरा बना रहे हैं । मैं श्रेष्ठ और ज्येष्ठ हूँ । मेरा भी सत्कार काजिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—सती की यह बात सुनकर दक्ष ने आल लाल कर उससे कहा ॥१५॥

दक्ष ने कहा—सत । तुमसे श्रेष्ठ उत्तम और पूज्य मेरी छोटी पुत्रियाँ हैं । उनके जो स्वामी हैं वे

१ ग ०सगता । २ क ख ०चिता सवा निवसति पि० । ३ क शकरस्य । ४ ख दक्षो । ५ ख ०श्वरे ।
 आजगामाप्यनाहू० । ६ क ख ०सगता० । ७ क ०ष्ठा च पूज्या च ।

ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्याश्च महायोगा सुधार्मिका । गुणैश्चैवाधिका इलाभ्या सर्व्वे ते श्र्यम्बकात् सति ॥१७॥
 वसिष्ठोऽग्निं पुलस्त्यश्च अङ्गिरा पुलहं क्रतु । भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥१८॥
 तैश्चापि स्पृष्टं ते शर्व्वं सर्व्वे ते चैव त प्रति । तेन त्वा न बुभूषामि प्रतिकूलो हि मे भव ॥१९॥
 इत्युक्तवास्तदा दक्ष सम्प्रमूढेन नेतसा । शापायमात्मनश्चैव धेनोवता वै महर्षयः ।
 तयोक्ता पितर सा वै क्रुद्धा देवी तमब्रवीत् ॥२०॥

सत्युवाच

वाङ्मन कर्म्मभिर्यस्मादबुद्धा मां विगर्हसि । तस्मात्त्यजाम्यहं दहामिमां तात तवाऽऽत्मजम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तोनापमानेन सती दुःखादमर्षिता । अब्रवीद्वचनं देवी नमस्तुभ्य स्वयम्भव ॥२॥

सत्युवाच

येनाहमपवेहा वै पुनर्दहेन भास्वता । तत्राप्यहमसम्मूढा सम्भूता धार्मिकी पुनः ।
 गच्छेय धर्म्मपत्नीत्व श्र्यम्बकर्येव धीमत ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्रैवाप समासीना दृष्टाऽऽत्मानं समादधे । धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारणामात्मनाऽऽत्मानं ॥२४॥

मेरे सम्माननीय हैं ॥१६॥ सता ! वे सब जामाता गिव से अधिक गुणवान् ब्रह्मिष्ठ व्रती महायोगी धर्मात्मा तथा
 भगवन्नीय हैं ॥१७॥ वसिष्ठ अग्नि पुलस्त्य अगिरा पुलह, क्रतु भृगु और मरीचि—ये मेरे श्रेष्ठ जामाता हैं ॥१८॥
 इनसे गिव स्पर्षा करता है और उससे ये सब इस कारण गिव को मैं अपना गद्गु समय कर मुन्हाया मान नहीं करना
 चाहता ॥१९॥ इस प्रकार दक्ष ने बिना सोचे समझ बहू कया दिया मानो उसने अपने को शप दिलाने के लिए ही
 मर्दपिया का नाम ले लिया । पिता का यह उत्तर सुनकर सती ने क्रुद्ध होकर कहा ॥२०॥

सती बोली—तात ! जिसगिए आप मन वाणा और कम से मुझे दुष्ट तथा निम्नित बना रहे हैं इसलिए
 आपसे उलान्न इस कारण का अब मैं त्याग कर रही हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब उग अपमान के दुष्ट से बुधिन सती ब्रह्मा को नमस्कार करने बहने लगी ॥२२॥

सती बोली—इस देह का परित्याग करने पर फिर जो मुझे कान्तिमान् गरीर मिले उग गरीर मैं भी
 मैं विवेकीय तथा धर्मात्मा होऊँ और बुद्धिमान् गिव की ही पत्नी बनूँ ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—तनुपरान्त रही परबैठी क्रुद्ध सता ने आत्मा को समाहित किया और आत्मा ने आत्मा

ततः स्वात्मानमुत्पाप्य वायुना समुदीरितः । सर्वाङ्गेभ्यो विनिस्तृत्य वह्निर्भस्म चकार ताम् ॥२५॥
तदुपश्रुत्य निघ्नं सत्या देव्याः स शूलधृक् । संवादञ्च तयोर्बद्ध्वा यायातम्येन, शङ्कुरः ॥
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभुः ॥२६॥

श्रीशङ्कर उवाच

यस्मादवमता दक्ष सहसैवाऽऽगता सती । प्रशस्ताश्चेतराः सर्वास्त्यस्तुता भर्तृभिः सह ॥२७॥
तस्माद्देवस्वते प्राप्ते पुनर्रेते महर्षयः । उत्पत्स्यन्ति द्वितीये वै तव यज्ञे ह्ययोनिजाः ॥२८॥
'हुते वै ब्रह्मणः सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः' । अभिव्याहृत्य सप्तर्षीन् दक्षं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥२९॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । प्राचीनर्बाह्यः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ॥३०॥
दक्ष इत्येव नाम्ना एव मारिष्यां जनिष्यति । वन्याया' शाखिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे ॥३१॥
अहं तन्नापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते । धम्मकामार्थयुक्तेषु कर्मस्त्विह पुनः पुनः ॥३२॥
ततो वै व्याहृतो दक्षो रुद्रं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥३३॥

दक्ष उवाच

यस्मात्त्वं मरुते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि । तस्मात् साद्वै सुरयंसे न त्वां यक्षयन्ति वै द्विजाः ॥३४॥
कृत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अप स्पृशन्ति कर्मसु । इहैव वरस्यसे लोके दिवं हित्वाऽभ्युपक्षयात् ॥
ततो देवैस्तु ते साद्वै न तु पूजा भविष्यति ॥३५॥

मे आनेर्नो धारणा को जब धारण किया तब वायु से प्रेरित अग्नि ने सती के सब अंगों से निकल कर उसे मस्मनात् कर दिया ॥२४-२५॥ सती देवी का मरण सुनकर तथा दक्ष और सती वा सवाद यथार्थ जान कर दक्ष के विनाश के लिए मगधान् शक्र ने क्रोध किया ॥२६॥

श्री शंकर बोले—'दक्ष ! जिसलिए हठात् आई हुई सती का तुमने अपमान किया और इतर पुत्रियों वा स्त्रियों के साथ सम्मान किया इसलिए द्वितीय वैवस्वत मनु के आने पर पुन ये महर्षि तुम्हारे यज्ञ में अयोनिव होकर उत्पन्न होंगे ॥२७-२८॥ चाक्षुष मन्वन्तर में ब्रह्मा के यज्ञ में फिर उत्पन्न होंगे ।' इस प्रकार सप्तर्षियों को शाप देकर शिव ने फिर से दक्ष को शाप दिया ॥२९॥ चाक्षुष मन्वन्तर में तुम मनुष्यों के राजा, प्राचीनर्बाह्य के पौत्र प्रचेता के पुत्र तथा 'दक्ष' इसी नाम से प्रख्यात होंगे और वृक्ष की पुत्री मारिष्या से तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३१॥ दुष्ट-बुद्धे ! वहाँ मैं तुम्हारे धर्म अर्थ, और काम से युक्त कर्मों में बार-बार विघ्न डालूँगा ॥३२॥ इस प्रकार कहे गये दक्ष ने भी रुद्र को शाप दिया ॥३३॥

दक्ष ने कहा—'क्रूर ! मेरे कारण तुमने ऋषियों को शाप दिया है, इसलिए ब्राह्मणगण यज्ञ में देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे ॥३४॥ क्रूर ! पुण्य कर्म करते समय तुम्हें आहुति देकर लोग जलस्पर्श करेंगे । स्वर्ग छान्दकर मुग बीतने तक तुम इसी लोक में धास करोगे । देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं होगी ॥३५॥

इत्येयोऽनुशयो 'ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरं गतः'। प्रजापतेरिदं दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः॥४९॥
 'तस्मान्नानुशयः कार्थ्यो' वरेष्विह कदाचन। जत्यन्तरगतस्यापि भावितस्य' शुभाशुभैः॥
 जन्तोर्न भूतये ह्यातिस्तत्र कार्थ्यं विजानता ॥५०॥

मुनय ऊचुः

कथं रोपेण सा पूर्व' दक्षस्य दुहिता सती। त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे प्रभो॥५१॥
 देहान्तरे' कथं तस्याः' पूर्वदेहो बभूव ह। भवेन सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम्॥५२॥
 स्वयंवरः कथं वृत्तस्तस्मिन् महति जन्मनि। विवाहश्च जगन्नाथ सव्याश्चार्थ्यसमन्वितः॥५३॥
 तत्सर्वं विस्तरद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे पुण्यां कथां चातिमनोहराम्॥५४॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूलः कथां पापप्रणाशनीम्। उमाशङ्करयोः पुण्यां सर्वकामफलप्रदाम्॥५५॥
 कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कश्यपं द्विपदां वरम्। अपृच्छद्विमवान् वृत्तं लोके ह्यातिकरं हितम्॥५६॥
 केनाक्षयाश्च लोकाः स्युः ह्यातिश्च परमा मुने। तथैव चाचर्चनीयत्वं तस्य तत्कथयस्व मे॥५७॥

का ऐसा पूर्व वैर था, जिसका परिणाम जन्मान्तर मे जाकर निकला॥४९॥ इसलिये बड़ो के साथ वैर नहीं करना चाहिये। जीवो को पूर्व वैर का फल जन्मान्तर मे भी भुगतना पड़ता है। अतः विद्वान् को ऐसा नहीं करना चाहिये॥४९-५०॥

मुनियो ने कहा—प्रभा! पहले कयो कौष से दक्ष की पुत्री सती अपने शरीर का त्याग कर हिमालय के गृह मे उत्पन्न हुई? ॥५१॥ दूसरे जन्म मे भी कैसे उसको पहली देह मिली? शिव के साथ संयोग कैसे हुआ? महादेव ओर पार्वती का सवाद कैसे हुआ? ॥५२॥ उस महान् जन्म मे स्वयंवर तथा विवाह कैसे हुआ? हे जगन्नाथ! यह सब आश्चर्यजनक बात है॥५३॥ ब्रह्मन्! यह सब विस्तरपूर्वक हमे बतलाइये। अत्यन्त मनोहर तथा पवित्र कथा को हम सुनना चाहते है॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर्गवृन्द! उमा और शंकर की पापनाशिनी, पवित्र तथा सब कामनाओ को देनेवाली कथा को आप लोग सुनिये॥५५॥ किसी समय अपने गृह से आये हुए मानवा मे श्रेष्ठ कश्यप से हिमालय ने लोक मे ह्याति-वर्धक तथा कल्याणकर वृत्तान्त पूछा—'मुने' किस तरह अक्षय लोक मिलेंगे, परम ह्याति होगी और सत्पुरुषो में प्रतिष्ठा बढ़ेगी—यह हमे बताइये॥५६-५७॥

१ क ० श्रुतेषु तेष्वन्तराज्तरा। प्र०। २ ख गते। ३ क ० स्माद्य सस०। ४ ख ० योर्धरे। ५ क ० स्य मुरैरपि। ज०। ६ ख मै। देहान्तरे कथं तस्य पुनर्देहं न मुञ्चति। वासना न जहात्येव देहान्तरगतेऽपि वा। दुःख त्वनुयायात्यन्तस्तत्र कार्या विजानता। गु०। ७ क पूर्णा। ८ ग ० रे पुनस्तस्या कथं दे०। ९ ख ० स्या पुनर्देहो।

कश्यप उवाच

अपत्येन' महाबाहो सव्यमेतदवाप्यते । ममाऽऽख्यातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभि सह ॥५८॥
किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मा परिपृच्छसि । वर्त्तयिष्यामि यच्चापि यथादृष्टं पुराऽचल ॥५९॥
धाराणसीमहं गच्छन्नपश्य सस्थितं दिवि । विमान' सुनद्य दिव्यमनीषम्यं महर्द्धिमत् ॥६०॥
तस्याधस्तादात्तनादं गतं स्थाने शृणोम्यहम् । तमहं तपसा ज्ञात्वा तत्रैवावर्त्तितं स्थित ॥६१॥
अथागात्तत्र शैलेन्द्र' विप्रो नियमवान् शुचिः । तीर्थाभिषेकपूतात्मा परे तपसि सस्थित ॥६२॥
अथ स व्रजमानस्तु व्याघ्रेणाऽऽभीषितो द्विज । विवेश त तदा देशः स गतो यत्र भूधर ॥६३॥
गर्तायां वीरणस्तम्बे लम्बमानास्तदा मुनीन् । अपश्यदार्तोऽबुधोऽस्मान् पृच्छच्च स द्विज ॥६४॥

द्विज उवाच

के यूय वीरणस्तम्बे लम्बमाना ह्यधोमुखा । दुःखिता केन मोक्षश्च युष्माकं भविता जनघा ॥६५॥

पितर ऊचुः

वयं ते कृतपुण्यस्य पितरः सपितामहा । प्रपितामहाश्च क्लिश्यामस्तत्र दुष्टेन कर्मणा ॥६६॥
नरकोऽयं महाभाग गतरूपेण सस्थितः । त्वं चापि वीरणस्तम्बस्त्वयि लम्बामहे वयम् ॥६७॥
यावत्स्य जीवसे विप्र तावदेव वयं स्थिता । मृते त्वयि गमिष्यामो नरकं पापचेतसः ॥६८॥

कश्यप ने कहा—हे महाबाहो ! सन्तान से सब कुछ प्राप्त होता है । ब्रह्मा और ऋषियों के साथ मेरी ख्याति सन्तान ही से है ॥५८॥ हे शैलेन्द्र ! क्या यह आप देख नहीं रहे हैं जो मुझसे पूछते हैं । हे पवन ! तो भी जैसा मैंने देखा है वैसा बतलाऊंगा ॥५९॥ जब मैं वाराणसी जा रहा था तब आकाश में स्थित नवन दिव्य अनुपम तथा महर्द्धव्य-सम्पन्न एक विमान मुझ दिलाई पड़ा ॥६०॥ उस विमान के नीचे गतस्थान (गडडा) में मैंने आतनाद सुना । उसको तपस्या से मैं जानकर वहीं अवर्त्तित होकर ठहर गया ॥६१॥ इसके उपरान्त हे शैलेन्द्र !, एक समय भी पवित्र त यन्त्रानो से पवित्रात्मा और उत्कृष्ट तपस्वी ब्राह्मण वहाँ आया ॥६२॥ गमन करते हुए ब्राह्मण को एक व्याघ्र ने डरा दिया । हे भूधर ! तब वह द्विज उस स्थान में चला गया जहाँ वह गडडा था ॥६३॥ गडडे में वीरण (खस) के गुच्छों से लटकते हुए दुःखपीडित मुनियों को देखकर उस द्विज ने पूछा ॥६४॥

द्विज ने कहा—वीरण के गुच्छों से लटकते हुए नीचे मुख किये हुए तुम कौन हो ? किसने तुम्हें यह दुःख दिया है ? हे निष्पाप ! किस प्रकार तुम्हें छुटकारा मिल सकता है ? ॥६५॥

पितरों ने कहा—तुझ पुण्यात्मा के पितामह प्रपितामह आदि पितर तेरे दुष्ट कर्म से कष्ट पा रहे हैं ॥६६॥ महाभाग ! गत रूप में स्थित यह नरक ही है । तू ही वीरण का गुच्छा है । तुझमें ही हम लोग लटक रहे हैं ॥६७॥ विप्र ! जब तक तू जी रहा है तभी तक हम लोग स्थित हैं । तेरे मर जाने पर हम सब पापी नरक को जायेंगे

१ ख तपसि । २ क ० ख्याति परा तेन । ३ ख ० न स्वस्ति महिष्य मनोवेग म० । ४ ख ० द वसिष्ठो नियमस्थित । टी० ।

यदि त्वं वारसयोगं कृत्वापत्यं गुणोत्तरम् । उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम वयमेतत् ॥६९॥
नान्येन तपसा पुत्रं तीर्थानाञ्च फलेन च । एतत् कुरु महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात् ॥७०॥

कश्यप उवाच

स तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वजम् । पितॄन् गतास्समुद्धृत्य गणपान् प्रवकार ह ॥७१॥
स्वयं रुद्रस्य दयितं सुवेशो नाम नामतः । सम्मतो बलचादचंच रुद्रस्य गणपोऽभवत् ॥७२॥
तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्यं गुणवद्भृशम् । उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्वं वरवर्णनीम् ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

स एवमुक्त्वा ऋषिणा शैलेन्द्रो नियमस्थितः । तपश्चकाराप्यतुल्यं येन तुष्टिरभून्मम ॥७४॥
तदा तमुत्पपाताह वरदोऽस्मीति चाब्रवम् । ब्रूहि तुष्टोऽस्मि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत ॥७५॥

हिमवानुवाच

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणं सर्वैरलङ्कृतम् । एव वरं प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजा । तदा तस्मै वरं चाह 'दत्तवान्मनसेप्सितम् ॥७७॥

॥६८॥ यद्विदुः विवाहं करं गुणवान् सन्तानं को उत्पन्नं करता है तो उसी से हम लोगो की मुक्ति हो जायगी ॥६९॥ पुत्र ! और किसी तपस्या या तीर्थों के फल से हमारी मुक्ति सम्भव नहीं है। महाबुद्ध ! ऐसा करके मय से पितरो का उद्धार कर ॥७०॥

कश्यप ने कहा—द्विज ने ऐसा ही कहेंगा यह प्रतिज्ञा कर शिव की आराधना की और गत से पितरो का उद्धार कर उन्हें गणपालक बना दिया ॥७१॥ वह स्वयं रुद्र का सुवेश नामक प्रिय बुद्धिमान तथा बलवान् गणपाल हुआ ॥७२॥ हे शैलेन्द्र ! इसलिए घोर तपस्या करके अत्यन्त गुणवान् पुत्र तथा सुदरी कन्या को उत्पन्न कीजिये ॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋषि द्वारा इस प्रकार का सुभाव प्राप्त कर शैलेन्द्र नियमयुक्त होकर अतुल्य तप करने लगा जिससे मैं प्रसन्न हो उसके समीप जाकर बोला—मैं वर देने आया हूँ। हे शैलेन्द्र ! तुमसे पूरा सतुष्ट हूँ ! हे सुव्रती ! मागो इस समस्या का फल तुम क्या चाहते हो ? ॥७४ ७५॥

हिमवान् ने कहा—भगवन ! मैं सवर्गसम्पन्न सन्तान चाहता हूँ। प्रभो ! यदि आप सतुष्ट हैं तो ऐसा ही वरदान मझ दीजिये ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! हिमालय के वचन को सुनकर मैंने उक्त यह भवोन्मिलित वरदान दिया

कन्या भवित्री' शैलेन्द्र' तपसाग्नेन सुव्रत। यस्याः प्रभावात्सर्वत्र कीर्तिमाप्स्यसि शोभनाम् ॥७८॥
 अर्चितः सर्वदेवानां तीर्थकोटिसमावृतः। पावनश्चैव पुण्येन देवानामपि सर्वतः ॥७९॥
 ज्येष्ठा च सा भवित्री ते अन्ये चात्र ततः शुभे ॥८०॥
 सोऽपि कालेन शैलेन्द्रो मेनायामुदपादयत्। अपर्णामेकपर्णाञ्च तथा चैवैकपाटलाम् ॥८१॥
 भ्यप्रोधमेकपर्णन्तु पाटलञ्चैकपाटलाम्। अशित्वा भवेकपर्णान्तु अनिकेतस्तपोऽचरत् ॥८२॥
 शतं वर्षसहस्राणां दुश्चरं देवदानवैः। आहारमेकपर्णं तु एकपर्णा समाचरत् ॥८३॥
 पाटलेन तय्येन विदधे चैकपाटला। पूर्णं वर्षसहस्रे तु आहारं ता प्रव्रजतुः ॥८४॥
 अपर्णा तु निराहारा तां माता प्रत्यभाषत। निषेधयन्ती चोमेति मातृस्नेहेन दुःखिता ॥८५॥
 सा तयोक्ता तथा मात्रा देवी दुश्चरचारिणी। तेनैव नाम्ना लोकेषु विख्याता सुरपूजिता ॥८६॥
 "एतत् त्रिकुमारीकं जगत्स्यावरजङ्गमम्। एतासां तपसां वृत्तं यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥८७॥
 तप शरीरास्ताः सर्वास्तिष्ठो योगं समाश्रिताः। सर्वाश्चैव महाभागास्तथा च स्थिरयौवना ॥८८॥
 तालोकमातरश्चैव ब्रह्मचारिण्य एव च। अनुगृह्णन्ति लोकाश्च तपसा स्वेन सर्वदा ॥८९॥
 उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी। महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥९०॥

॥७७॥ 'सुव्रती' शैलेन्द्र। इस तपस्या से तुम्हें कन्या होगी, जिसके प्रभाव से तुम सर्वत्र सुन्दर कीर्ति प्राप्त करोगे ॥७८॥ बरोडो तीर्थों से तुम आवृत रहोगे। सब देवताओं से पूजित तथा देवताओं को भी पुण्य से पवित्र करने वाले होगे ॥७९॥ वह तुम्हारी ज्येष्ठ कन्या होगी और दो दूसरी कन्याएँ भी होंगी ॥८०॥ यथासमय शैलेन्द्र ने मेना मे अपर्णा, एकपर्णा और एकपाटला नाम की कन्याएँ उत्पन्न की ॥८१॥ बरगद के पत्र को खाने वाली एकपर्णा, पाटला वृक्ष के पत्तों का आहार करने वाली एकपाटला और पत्र को न खाने वाली अपर्णा— ये तीनों देवियाँ एक लाख वर्ष तक देव-दानवों से भी दुःसाध्य तप करती रही ॥८२॥ एकपर्णा एक पत्र तथा एक पाटला एक पाटल-पत्र का भोजन किया करती थी। हजार वर्ष पूर्ण होने पर उन्होंने भोजन किया ॥८३-८४॥ किन्तु अपर्णा फिर भी भोजन नहीं करती थी। सब सन्तान स्नेह से वातर माता ने 'उमा' कहकर उसका निवारण किया। घोर तप करने वाली देव-वन्धा वह देवी तब से तीनों लोक में उमा नाम से विख्यात हुई ॥८५-८६॥ स्यावर-जगम रूप यह जगत् इन तीनों कुमारियों द्वारा धारण किया जाता है। इनकी तपस्या का वृत्तान्त तब तक प्रचलित रहेगा जब तक कि यह पृथ्वी रहेगी ॥८७॥ तप शरीर धारण करने वाली ये तीनों देवियाँ योग से अन्वित, महामायवती, स्थिरयौवना, ब्रह्मचारिणी तथा लोक मातायें हैं। ये तपस्या के द्वारा सदा लोको को अनुगृहीत करती हैं ॥८९॥ इनमें सबसे ज्येष्ठ उत्तम, सुन्दरी और महायोगिनी उमा ने शिव को

१ क ख भवतु। २ क ख ०न्द्र सुता ते वरवर्णिनी। य०। ३ क ख पुष्कलाम्। ४ ख ०व देवानामृषी-
 पाम्०। ५ क ख अन्या चानृत०। ६ क ख प्रभो। ७ क ०प्रोधा चैकपर्णान्। ८ क ख पाटला। ९ ग ०पर्णतु।
 १० क ख दुष्कर। ११ ख ०तत्रिकु०। १२ क ख ०पसा व्याप्त मा०। १३ क ख ०ना। १४ ख ०ना। १५ ख ०ना।

दत्तकद्वयशना तस्य पुत्रः स भृगुनन्दनः। आसीत्तस्यैकपुत्रा तु देवलं सुपुत्रं सुतम् ॥९१॥
 या तु तासां कुमारीणां तृतीया ह्येकपाटला। 'पुत्रं सा तमलकस्य जंगोपव्यमुपस्थिता ॥९२॥
 तस्याश्च शङ्खलिखितो स्मृतो पुत्रायोनिजो। उमा तु या मया तुभ्यं कीर्तिता वरवर्जिनी ॥९३॥
 अयं तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा। प्रपूयितमिहाऽऽलक्ष्य यच्चस्तामहमब्रवम् ॥९४॥
 देवि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने। त्वया सृष्टमिदं सर्वं मा कृत्वा तद्विनाशय ॥९५॥
 त्वं हि धारयसे लोकानिमान् सर्वान् स्वतेजसा। ब्रूहि किं ते जगन्मातः प्रार्थितं सम्प्रतीह नः ॥९६॥

देव्युवाच

यदर्थं तपसो ह्यस्य धरणं मे पितामह। त्वमेव तद्विजानीषे ततः पृच्छसि किं पुनः ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रवं चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे। स त्वां स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति ॥९८॥
 शर्वं एव पतिः श्रेष्ठः सर्वलोकेश्वरेश्वरः। ययं सर्वदेव यस्पेमे वदया वे किङ्कुराः शुभे ॥९९॥
 स देवदेव, परमेश्वरः स्वयं, स्वयम्भुरायास्पति देवि तेऽनतिकम्।
 उदाररूपो विकृतादिरूपः^१, समानरूपोऽपि न यस्य^२ कस्यचित् ॥१००॥

प्राप्त किया ॥९०॥ दत्तक का पुत्र भृगु-वशी शुक्र या, जिससे व्याह्वर एकपुत्रा मे देवल नामक पुत्र को उत्तर
 दिया ॥९१॥ इन कुमारियो म तीसरी एकाटला का विवाह अलक के पुत्र जंगोपव्य से हुआ ॥९२॥ उसके शख
 और लिखित नामक दो अयोनिज पुत्र हुए। जिस सुन्दरी उमा के बारे मे मैने आपसे कहा है, उसने तपस्या के
 बल से सपूर्ण त्रिलोकी को प्रवासित कर दिया। यह देखकर मैने उससे कहा ॥९३-९४॥ हे देवि ! हे सुन्दरि !
 क्या तुम तपस्या से लोको को तपाओगी ? तुमने सब की सृष्टि की है। ऐसा करके पुन उनका विनाश मत
 करो ॥९५॥ तुम्ही अपने तेज से लोको को धारण करती हो। हे जगन्माता ! बहो, तुम्हे क्या अभीष्ट है ॥९६॥
 देवी ने कहा—पितामह ! मैं जिसलिए तप कर रही हूँ, वह तो आप जानते ही हैं। फिर क्यों पूछ रहे
 हैं ? ॥९७॥

ब्रह्मा ने कहा—तब मैने उससे कहा—'शुने ! तुम जिसके लिए तप कर रही हो, वह स्वयं यहाँ आकर
 तुम्हे स्वीकार करेगा ॥९८॥ कल्याणमयी ! सब लोको ने ईश्वर के ईश्वर शिव ही श्रेष्ठ पति हैं, जिनके सदा हम
 वस्य तथा दास बने रहते हैं ॥९९॥ देवी ! वह देव-देव, स्वयम्भु, परमेश्वर स्वयं तुम्हारे पास आयेगे, जो उदार
 रूप विकृत आदिरूप महेश्वर, पर्वतलीकवासी, चराचर के स्वामी, प्रथम, अप्रमेय (न मापने योग्य), चन्द्रमा

महेश्वरः पर्वतलोकवासी, चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः ।
विनेन्दुना हीन्द्रसमानवच्चंसा, 'विभोपणं' रूपमिवास्त्यतो यः ॥१०१॥
इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि-संवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पार्वत्युपाख्यान-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततस्ताम्रधुवन् देवास्तदा गत्वा तु सुन्दरीम् । देवी शीघ्रेण कालेन धूर्जटिर्नोल्लोहितः ॥१॥
स भर्ता तव देवेशो भविता' मा तपः कृयाः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य देवा विप्रा गिरेः सुताम् ॥२॥
जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह । सा देवी सूक्तमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे ॥३॥
द्वारि जातमशोकञ्च समुपाश्रित्य चास्थिता । अयागाच्चन्द्रतिलकस्त्रिदशार्तिहरो हरः ॥४॥
विकृतं रूपमास्याय ह्रस्वो बाहूक एव च । विभग्ननासिको भूत्वा कुञ्ज- केशान्तपिङ्गलः ॥५॥
उवाच विकृतास्यश्च देवि त्वां वरयाम्यहम् । अयोमा योगतंसिद्धा जात्वा शङ्करमागतम् ॥६॥

के बिना ही इन्द्र के समान तेजस्वी तथा भयानक रूप के सद्गुरु अवस्थित हैं और जिनके समान रूप वाला कोई नहीं है ॥१००-१०१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्म और ऋषि के संवाद प्रकरण में चौतीसवीं अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

पार्वती का उपाख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त देवता लोग जाकर उस सुन्दरी से कहने लगे—‘हे देवि ! अब शीघ्र ही देवी के स्वामी महादेव जी तुम्हारे पति होंगे । तप मत करो’ ॥१३॥ ऐसा कहकर देवगण पार्वती की प्रदक्षिणा कर अदृश्य हो गये । और पार्वती भी विश्राभ करने लगी ॥२३॥ वह देवी ‘अच्छा कहा’ ऐसा कहकर अपने पवित्र आश्रम के द्वार पर उत्पन्न अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥३३॥ इसके अनन्तर देव-कुलहारी, चन्द्रमा की मस्तक पर धारण करने वाले महादेव वहाँ आये, जिनके रूप तथा मुख विवृत थे, नाक कटी हुई थी, केशों का अन्तिम भाग पीला था और बाहें छोटी थी । उन्होंने गिरि-नन्दिनी से कहा—‘देवी ! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ’ ॥४-५॥ इसने बाद ब्रह्मणप्रिय,

अन्तर्भावविशुद्धात्मा' कृपानुष्ठानलिप्ताया। तमुवाचाध्वं पाद्याभ्यां मधुपर्कं चैव ॥७॥
सम्पूज्य सुमनोभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया ॥८॥

देव्युवाच

भगवन् स्वतन्त्राहं पिता मे त्वप्रणोर्गृहे। स प्रभुर्म्मम दाने ये कन्याहं द्विजपुङ्गव ॥९॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्। स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवान् देवस्तथैव' विकृतः प्रभुः। उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट् ॥११॥
स त विकृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमयाव्ययम्। भीतः शापारुच विमना इदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥

शैलेन्द्र उवाच

भगवन्नावमन्येऽहं ब्राह्मणान्' भुवि देवताः। मनीषितन्तु यत् पूर्वं तच्छृणुष्व महामते ॥१३॥
स्वयंवरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः। वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्तास्या भविष्यति ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः। देव्या समीपमागत्य इदमाह महामना ॥१५॥

शिव उवाच

देवि पित्रा त्वनुज्ञातः स्वयंवर इति श्रुतिः। तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्ता भवेदिति ॥१६॥

योग से सिद्ध तथा विमुक्त अन्तरात्मा उमा ने शंकर के आगमन को जानकर उनकी कृपा पाने की लिप्सा से उन्हें अर्घ्य आचमनीय तथा मधुपर्क दिया और पुष्पो से उनकी पूजा करके कहा—॥६-८॥

देवी बोली—भगवन्! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे घर में पिताजी मुख्य हैं। द्विजश्रेष्ठ! मैं तो कन्या हूँ। वे ही मेरे दान करने में समर्थ हैं। अतः आप जाकर के उन विनाशरहित पर्वतराज से याचना कीजिये। विप्र! यदि वे मुझे आपको दे दें तो उचित है ॥९-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—उदन्तर पूर्ववत् विकृतरूपधारी भगवान् शिव ने पर्वतेश्वर से कहा—'शैलराज! मुने आप अपनी कन्या दें।' तब पर्वतराज ने विकृत रूप से ही उन्हें अविनाशी रुद्र समझ कर शाय के डर से दुखी होकर यह वचन कहा ॥११-१२॥

शैलेन्द्र ने कहा—भगवन्! मैं पृथ्वी पर देवरूप ब्राह्मणों का अपमान नहीं करता। महामेधाविन्! मेरी ओ इच्छा है वह आप सुनिये ॥१३॥ मेरी कन्या का ब्राह्मणों से सत्कृत स्वयंवर होगा। वहाँ वह जिसका वरण करेगी, वही उसका पति होगा ॥१४॥ पर्वतेश्वर के ये वचन सुनकर भगवान् शिव पार्वती के समीप आकर बहने लगे ॥१५॥

शिव ने कहा—देवी! ऐसा सुना जाता है कि तुम्हारे पिता की आज्ञा से स्वयंवर होगा, उसमें तुम

तदापृच्छ्य गमिष्यामि 'बुलंभां त्वां वरानने। रूपवन्तं समुत्सृज्य वृणोष्यसदृशं कथम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्ती तदीरितम्। भावञ्च खद्वनिहितं प्रसादं मनसस्तथा ॥१८॥
सम्प्राप्योवाच देवेशं मा तेऽभूदबुद्धिरन्यथा। अहं त्वां वरयिष्यामि 'नाद्भुतन्तु कथञ्चन ॥१९॥
अथवा तेऽस्ति सन्देहो मयि विप्र कथञ्चन। इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्तान्यां तत्र संस्थिता। स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृतोऽसि मे ॥२१॥
ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृतस्तदा। उवाच तमशोकं वै वाचा सञ्जीवयन्निव ॥२२॥

शिव उवाच

यस्मात्तव सुपुष्येन स्तवकेन वृतोऽस्म्यहम्। तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्तवमरः सम्भविष्यति ॥२३॥
कामरूपी कामपुष्यः कामदो दयितो मम। सर्वभरणपुष्पाढ्यः 'सर्व्वपुष्पफलोपगः' ॥२४॥
सर्व्वान्नभक्षकश्चैव अमृतस्वाद' एव च। सर्व्वगन्धदच देवानां भविष्यति दृढप्रियः ॥२५॥
निर्भयः सर्व्वलोकोप' भविष्यति सुनिर्वृतः। आश्रमं वेदमतयथं चित्रकूटेति विश्रुतम् ॥२६॥

शिवजी चुनोगी, वही तुम्हारा स्वामी होगा। हे सुमुखी ! इसलिए तुम्हें दुष्प्राप्य जानकर मैं जा रहा हूँ, क्योंकि रूपवान् को छोड़कर मला तुम कैसे कुरूप का वरण करोगी ? ॥१६-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त शिव के प्रति अपने भाव और मन को प्रसन्न करने वाली उनकी वाणी को सोचती हुई उमा ने देवताओं के स्वामी शंकर से कहा—'आप अन्यथा न मानें। मैं आप ही का वरण करूँगी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। अथवा हे विप्र ! हे महाभाग ! यदि आपकी किसी प्रकार का सदेह होता है, तो यही पर मैं आपकी मन से वरण किए लेती हूँ।' ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा ने यही पर स्थित अशोक की मजरी को हाथों से उठाकर शिव के कंधे पर रखकर कहा—'आप मेरे वृत (वरण किये गये) हो चुके।' तब भगवान् शिव उमा से वृत होकर उस अशोक वृक्ष से इस प्रकार कहने लगे मानो वाणी से उसे जीवित कर रहे हो ॥२१-२२॥

शिव बोले—तुम्हारी इस पवित्र मजरी से जैसे मैं वृत हुआ हूँ वैसे ही तुम भी अजर-अमर हो जाओगे ॥२३॥
तुम कामरूपी, कामरूप पुष्पवाले, काम देने वाले, मेरे प्रिय, सब आमूषण रूप पुण्यो से घनी, सब प्रकार के पून-फल्यो से पुष्प, सब अन्नो का मक्षण करने वाले, अमृत के समान स्वादिष्ट, निखिल गन्धों से परिपूर्ण तथा देवताओं के आत्यन्त प्रिय होगे ॥२४-२५॥ समस्त लोक में तुम निश्चिन्त तथा निर्भय रहोगे। चित्रकूट नाम से प्रसिद्ध इस

१ ख. ०लंमात्रसि व०। २ व. ०वा। देवीप्रोवा०। ३ व. ०द्विद्विगी। अ०। ४ ग. नाप्यद्भुत व०।

५ व. ०वैरल्ल०। ६ ख. ०पुष्पकृतोपम। स०। ७ व. ०तपव ए०। ८ व. ०तस्वर ए०। ८ ख. ०पु. सर्व्वं भविष्य०।

यो हि यास्यति पुण्यार्थी^१ सोऽश्वमेधमवाप्स्यति । यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं न गच्छति ॥२७॥
यश्चात्र नियमं युक्तं प्राणान् सम्पक् परित्यजेत् । स^२ देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

'एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छय^३ हिमवत्सुताम् । अन्तर्दग्धे जगत्प्रष्टा सध्वंभूतप^४ ईश्वरः ॥२९॥
सापि देवो गते तस्मिन् भगवत्यभितात्मनि । तत^५ एवोन्मुखी भूत्वा शिलायां सम्बभूव ह ॥३०॥
उन्मुखी सा भवे तस्मिन् महेशे जगतां प्रभो । निशेव चन्द्ररहिता न^६ बभौ विमनास्तदा ॥३१॥
अयं शुश्राव शब्दञ्च बालस्यार्तस्य शैलजा । सरस्युदकसम्पूर्णं समीपे चाश्रमस्य च ॥३२॥
स कृत्वा बालरूपन्तु देवदेव स्वयं शिवः । क्रीडाहेतो^७ सरोमध्ये ग्राहप्रस्तोऽभवत्तदा ॥३३॥
योगमाया समास्थाय प्रपञ्चोद्भवकारणम् । तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्वैवं समभाषत ॥३४॥

बाल उवाच

प्रातु मा कश्चिदित्याह ग्राहेण हृतचेतसम् । धिक्कष्टं बाल एवाहमप्राप्तार्थमनोरथ ॥३५॥
प्रयामि निधनं वक्त्रे ग्राहस्यास्य दुरात्मन । शोचामि न स्वकं देहं ग्राहप्रस्तं सुदुःखितः ॥३६॥
यथा शोचामि पितरं मातरञ्च तपस्विनीम्^८ । ग्राहगृहीतं मा श्रुत्वा प्राप्तं निधनमुत्सुको ॥३७॥

आश्रम पर जो कोई पुण्यामिलापी व्यक्ति आयेगा, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा ॥२६३॥ जो यहाँ मरेगा वह भी ब्रह्मलोक को जाएगा। और जो यहाँ नियमपूर्वक प्राण-त्याग करेगा, वह देवी की तपस्या से युक्त होकर महा-गणाधिपति होगा ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सब मृतो के पालक, जगत्प्रष्टा, तथा ऐश्वर्य सम्पन्न शकर उमा से बिदाई लेकर अन्तर्धान हो गये ॥२९॥ पावती भी सर्वात्मा शिव के चले जाने पर उन्हीं का ध्यान करती हुई शिला-खड पर बैठ गई ॥३०॥ उस समय उसी जगत्प्रभु महेश्वर शिव ने मन लगाये हुई दुःखी उमा चन्द्रमा रहित रात्रि की तरह शोमाहीन थी ॥३१॥ कुछ समय बाद पार्वती ने आश्रम के समीप ही जल से परिपूर्ण सरोवर में बालक का आर्तनाद सुना ॥३२॥ देवताओं के भी देव स्वयं शिव ही बालक का रूप धारण करके क्रीडा के निमित्त बीच सरोवर में ग्राह-प्रस्त हो गये थे ॥३३॥ योगमाया में स्थित होकर ससार की उत्पत्ति के कारणभूत शिव अपने रूप को इस प्रकार मध्य सरोवर में करके बोले ॥३४॥

बालक ने कहा—ग्राह के द्वारा नष्ट चेतना वाले मुझे कोई बधाये ! हाय कष्ट है ! मैं बालक ही रहा, अपनी अमिलापा को भी पूरी नहीं कर सका ॥३५॥ इस दुरात्मा ग्राह के मुँह में मैं मर रहा हूँ। ग्राह के प्रसवे से अत्यन्त दुःखी मुझे अपनी देह की उतनी चिन्ता नहीं है जितनी कि पिता तथा तपस्विनी माता की है ॥३६३॥ मैं ग्राह-गृहीत होकर मर गया—एसा सुनकर मेरा प्यार करने वाले तथा एक पुत्र वाले माता पिता निश्चय ही

१ ख यात्रार्थं । २ ग देवस्त० । ३ ख ०क्त्वा वृक्षराजमशोकं हि० । ४ क ०च्छय गिरिजां द्रुतम् ।

५ क ०तगणेश्व० । ख ०तमहेद्व० । ६ ख ०त्यमलात्म० । ७ ख तर्द्वं दुःखी भूत्वा सा समाया सविषेय ह ।

८ ख सा । ९ क मनस्विनीम् ।

'प्रियपुत्रावेकपुत्री प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यत' । अहो बत सुकष्टं वै योऽहं बालोऽकृताश्रम ॥
अन्तर्ग्रहिणं प्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तु देवी तं नादं विप्रस्याऽऽत्तस्य शोभना । उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठत्यसौ द्विज ॥३९॥
सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुहृषिणम् । ग्राहस्य मुखमापन्न वेषमानमवस्थितम् ॥४०॥
सोऽपि ग्राहवर, श्रीमान् दृष्ट्वा देवीमुपागताम् । त गृहीत्वा द्रुत यातो मध्यं सरस एव हि ॥४१॥
स कृष्यमाणस्तेजस्वी नादमात्तं तदाकरोत् । अयाह देवी दुःखार्तां बालं दृष्ट्वा ग्राहवृत्तम् ॥४२॥

पार्वत्युवाच

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम् । विमुञ्चेम महादंष्ट्र क्षिप्र भीमपराश्रम ॥४३॥

ग्राह उवाच

यो देवि दिवसे पठे प्रथमं समुपैति माम् । स आहारो मम पुरा विहितो लोकवृत्तिभि ॥४४॥
सोऽयं मम महाभागे पठेऽहनि गिरिन्द्रजे । ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैन मोक्षये कथञ्चन ॥४५॥

देव्युवाच

यन्मया हिमवच्छृङ्गे चरित तप उत्तमम् । तेन बालमिममुञ्च ग्राहराज नमोऽस्तु ते ॥४६॥

प्राणी को त्याग दोगे । अहो छेद तथा कष्ट है कि मैं अकृताश्रम बाऊन (आश्रम धर्म को बिना प्राप्त किया हो) बीच सरोवर म ग्राह-भक्त हुए मर जाऊँगा ॥३७-३८॥

ब्रह्मा ने कहा—सुन्दरी उमा दुःखी बालक व उस आत्तनाद को सुनत ही उठकर उपर ही चल पड़ी, त्रिपर वह ब्राह्मण-बालक था ॥३९॥ चन्द्रमुखी उमा ने ग्राह के मुँह म पड़े हुए तथा नापत हुए गुरुपवान् बालक को देगा ॥४०॥ देवी को देखते ही वह ग्राहराज बालक को सीचकर बीच सरोवर म ले जाने लगा तब तदस्वी बालक आननाद करने लगा ॥४१॥ अनन्तर ग्राह-गृहीत बालक को देखकर दुःख-पीडित देवी कहन लगी ॥४२॥

पार्वती बोली—हे महापराश्रमी ग्राहराज ! हे महादंष्ट्र ! इस बालक को क्षीघ्र छाड़ दो । हे महासत्त्व शामी ! यह अपने माँ-बाप का एक ही पुत्र है ॥४३॥

ग्राह ने कहा—हे देवि ! छडेदिन पहले-यहल जो मुझे प्राप्त होता है वही मेरा आहार होता है—ऐसा विधान मे मेरे लिए पहले से विधान बना रखा है । हे महामागे ! हे गिरिन्दिनी ! नि मन्देह यह आज छडे दिन ब्रह्मा से प्रेरित भोजन मुझे मिला है । मैं इसे किसी (भी) अवस्था म नहीं छोड़ूँगा ॥४४-४५॥

देवी ने कहा—हे ग्राहा के स्वामी ! तुम्ह नमस्कार है । मैंने हिमाग्न्य व गिरि पर जो कुछ भी उत्तम तापस्या की है उससे इस बालक को छोड़ दो ॥४६॥

१ क० वा तु सा नूनमप्य प्राणास्त्यजि० । २ क० व्यजि । अ० । ३ श० ०६ बालस्याऽऽ० । ४ श० निगु । ५ श० दुर्गार्त । ६ क० प्राये । ७ क० ०ङ्गे चीर्णं वीज० ।

ग्राह उवाच

मा व्ययस्तपसो दवि' भूय बालं शुभानने । यदब्रवीमि कुरु श्रेष्ठे तथा मोक्षमवाप्स्यति ॥४७॥

देव्युवाच

ग्राहाधिप वदस्वाशु यत् सतामविर्गाहितम् । तत् कृतं नात्र सन्देहो यतो मे ब्राह्मणा प्रिया ॥४८॥

ग्राह उवाच

यत् कृतं वं तप' किञ्चिद्भवत्यां स्वतपमुत्तमम् । तत् सर्वं मे प्रयच्छाऽऽशु ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥४९॥

देव्युवाच

जन्मप्रभृति यत् पुण्य महाप्राह कृतं मया । तत्ते सर्वं मया दत्तं बाल मुञ्च महाप्रह ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूयित । आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यस्तदाभवत् ॥५१॥

उवाच चैव दुष्टात्मा' देवी' लोकस्य धारिणीम् ॥५२॥

ग्राह उवाच

देवि किं कृत्यमेतत्ते' सुनिश्चित्य महाव्रते । तपसोऽप्यर्जनं दुःखं तस्य त्यागो न शस्यते ।

ग्राह ने कहा—हे बाले ! हे सुमुखी ! हे देवी ! व्रतिन तपस्या का व्यय मत करो ! हे श्रेष्ठे ! मैं जो कहता हूँ वह करो ! उसी से इसको मुक्ति मिलेगी ॥४७॥

देवी ने कहा—ग्राहराज ! शीघ्र कहो ! जो सज्जनो से अनिन्दित बात है उसे मैं अवश्य कल्लों इससे कोई सदेह नहीं । क्योंकि ब्राह्मण मुझे प्रिय है ॥४८॥

ग्राह ने कहा—तुमने जो कुछ थोडा कि-तु उत्तम तप किया है वह सब मुझे शीघ्र दे दो ताकि इसे मोक्ष मिल जाय ॥४९॥

देवी ने कहा—हे महाप्राह ! जन्म से लेकर जो कुछ भी मैंने पुण्य किया है वह सब तुम्हें समर्पित है बालक को मुक्त कर दो ॥५०॥

ब्रह्मा ने कहा—उदुपरान्त वह ग्राह उस तपस्या से भूयित हो मध्याह्नकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान तथा दुर्निरीक्ष्य हो गया । प्रसन्नचित्त ग्राह लोक धारिणी देवी से कहने लगा ॥५१॥

ग्राह बोला—हे महाव्रतधारिणी देवी ! तुमने ऐसा क्यों किया ? तपस्या का अजन बहुत दुःख से होता है । उसका त्याग ठीक नहीं है । हे सुन्दर कटि वाली ! तुम इस बालक का साथ साथ अपना तप भी ले लो ! तुम्हारी

गृहाण तप एव त्वं बाल चेमं सुमध्यमे^१। तुष्टोऽस्मि ते विप्रभवत्या वर तस्माद्ब्रह्म त ॥
सा त्वेवमुक्ता ग्राहेण^२ उवाचेद महाव्रता ॥५३॥

देव्युवाच

देहेनापि मया ग्राह रक्ष्यो विप्र प्रयत्नत । तप पुनर्मया प्राप्त न प्राप्यो ब्राह्मण पुन ॥५४॥
सुनिश्चित्य महाग्राह कृत बालस्य मोक्षणम् । न विप्रेभ्यस्तप श्रेष्ठ श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मता ॥५५॥
वत्सा चाह न गृह णामि ग्राहेन्द्र विहित हि ते । न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रदत्त पुनराहरेत् ॥५६॥
दत्तमेतन्मया तुभ्य नाऽऽवदानि हि तत् पुन । त्वय्येव रमतामेतदबालश्चाप विमुच्यताम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तपोक्तस्ता प्रशस्याथ मुक्त्वा बाल नमस्य च । देवीभादित्यावभासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५८॥
बालोऽपि सरसस्तोरे मुक्तो ग्राहेण वं तदा । स्वप्नलब्ध इवार्थोपस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५९॥
तपसोऽपचय मत्वा देवी हिमगिरीन्द्रजा । भूय एव तप कर्तुमारेभे नियमस्थिता ॥६०॥
कर्तुंकामा तपो भूयो ज्ञात्वा ता शङ्कर स्वयम् । प्रोवाच वचन विप्रा^३ मा कृथास्तप इत्युत ॥६१॥
महामेतत्तपो देवी त्वया दत्त महाव्रते । तत्सेनवाक्ष्य तुभ्य भविष्यति सहस्रधा ॥६२॥
इति लब्ध्वा वर देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम् । स्वयंवरमुदीक्षन्ती तस्यौ प्रीता मुदा युता ॥६३॥

ब्राह्मण मन्त्रि से मैं सन्तुष्ट हूँ । अतः वर देता हूँ । ग्राह के इस प्रकार कहने पर उस महाव्रतधारिणी देवी ने यह कहा ॥५२५३॥

देवी बोली—हे ग्राह^१ ! मुझ लो शरीर देकर भी ब्राह्मण की मनपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । हे महाग्राह^२ ! तप ता मैं पुन प्राप्त कर सकता हूँ ब्राह्मण नहीं—एसा सोच कर मैंने बालक को मुक्त कराया है ॥५४१॥ तपस्या ब्राह्मणो स श्रेष्ठ नहीं है ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है—यह मेरा मत है । हे ग्राहेन्द्र ! मैं अपना तप देकर फिर उसे ग्रहण नहीं करूंगी । क्योंकि कोई भी मनुष्य दत्त वस्तु का पुनर्ग्रहण नहीं करता है । मैंने तुम्हें यह दे दिया अब वापस नहीं ले सकती । इस तपस्या का उपभोग तुम्हीं करो और बालक को छोड़ दो ॥५५५७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सूर्य ने समान कान्तिमान बहू ग्राह बालक को छोड़ देवी की प्रशंसा करके उसे नमस्कार करके वहीं पर अन्तर्धान हो गया ॥५८॥ सरोवर के तीर में ग्राह से मुक्त बालक मा स्वप्न में प्राप्त धनराशि का सरह उसा जगह अन्तर्हित हो गया ॥५९॥ गिरिनदिना उमा ने तपस्या का हूँ स जानकर पुन नियम में स्थित हो तप करना आरम्भ कर दिया ॥६०॥ पुन तप करने का इच्छुक उमा का देखकर स्वयं शंकर ने उससे कहा—तप मत करो ॥६१॥ हे महाव्रते । हे देवि ! तुमने मझ अपना तप लिया है । इसलिए तुम्हारा तप अक्षय रूप सटनारगुना अधिक हो जायगा ॥६२॥ अक्षय तथा उत्तम तप रूप वर्तमान प्राप्त कर पावना आनन्ति हो

इव पठेद्यो हि नर सदेव, बालानुभावाचरण हि शम्भो ।

स देहभेद' समवाप्य पूतो' भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्य

॥६४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि सवादे पार्वत्या सत्त्वदर्शन नाम पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

पटत्रिंशोऽध्यायः

पार्वतीस्वयवर-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले । अभवत् स तु कालेन शैलपुण्या स्वयवर ॥१॥
अथ पर्वतराजोऽसौ हिमवान्' ध्यानकोविद । दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमन्त्रितम् ॥२॥
जानन्नपि महाशैल समयारक्षणेप्सया । स्वयवर ततो देव्या सत्त्वंलोकैष्वधोपयत् ॥३॥
देवदानवसिद्धानां सत्त्वंलोकनिवासिनाम् । वृणुयात् परमेशानि समक्ष यदि मे मे सुता ॥४॥
तदेव सुकृत इलाप्य ममाम्युदयसम्मतम् । इति सञ्चित्य शैलेन्द्र धृत्वा हृदि महेश्वरम् ॥५॥

स्वयवर की प्रताक्षा करती हुई रहने लगी ॥६३॥ जो मनुष्य शर के इस बालमावानुकूल आचरण को सदा पढ़ना वह पवित्र हानरदेह भेद प्राप्त कर (अर्थात् शरीर-स्पर्शकर) गणशतया कार्तिकेय के समान हो जायगा ॥६४॥

आ ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण में पार्वती के सत्त्वदर्शन नामक पतीसवा अध्याय समाप्त ॥३५॥

अध्याय ३६

पार्वती स्वयवर का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सैकड़ों विमानों से व्याप्त विस्तृत हिमालय के पष्ठ पर समय पाकर गिरि-पुत्र का स्वयवर हुआ ॥१॥ ध्यानशाल पर्वतराज हिमालय ने शिव के द्वारा अपन कन्या का अभिमन्त्रण (स्वीकार) जानकर भी समय निर्धारण (शिष्टाचार) करने के इच्छा से देवा का स्वयवर सब लोकों में घोषित कर दिया ॥२॥ सत्त्वलोकनिवासी देव गानव सिद्धों के समक्ष यदि मेरा कन्या शिव का वरण कर लेगा तभी मेरा इलाक्षणीय पुष्पोदय होगा—एसा सोचकर गैलेन्द्र ने अपने हृदय में महेश्वर का ध्यान कर देवी के स्वयवर के लिये ब्रह्मलोक तक के देशों की रत्नों

'आब्रह्मकेपु	देवेषु देव्या शैलेन्द्रसत्तम । कृत्वा रत्नाकुल देश स्वयवरमचीकरत् ॥६॥
	अयं वमाधोपितमात्र एव, स्वयवरे तत्र नगेद्रुपुत्र्या ।
	देवादय सर्वजगन्निवासा, समाययुस्तत्र गृहीतवेशा ॥७॥
	प्रफुल्लपद्मासनसन्निविष्ट, सिद्धेर्दंतो योगिभिरप्रमेयं ।
	विज्ञापितस्तेन महीधराज्ञाऽऽगतस्तदाह त्रिदिशं रपेत ॥८॥
	अक्ष्णा सहस्र सुरराट् स बिम्बद दिव्याङ्गहारस्त्रगुदाररूप ।
	ऐरावत सर्व्वजगेन्द्रमुख्य, स्वयंमदासारकृतप्रवाहम् ॥९॥
	आरुह्य सर्व्वामरराट् स वज्र, बिम्बत् समागतं पुरतः सुराणाम् ।
	तेजः प्रभावाधिकतुल्यरूपी, प्रोद्भासयन् सच्चिदिशो विवस्वान् ॥१०॥
	हैम विमानः स बल्लपताकमारुह आगात्स्वरितः जवेन ।
	मणिप्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलश्च बह्वर्कतेजः प्रतिमे विमाने ॥११॥
	समन्यगात् कश्यपसूनुरेक, आदित्यमध्याद्भग्नानामधारी ।
	पीनाङ्गपट्टि सुकृताङ्गहारतेजोबलज्ञासदृशप्रभाव ॥१२॥
	दण्डः समागूह्य कृतान्त आगादाहूय भीम महिष जवेन ।
	महामहीप्रोच्छ्रयपीनगात्र स्वर्णादिरत्नाञ्जितचारुवेश ॥१३॥

स मुनिर्जित विया ॥५॥ पावनी क स्वयवर का धापणा हान ही मूषण चणत् क निवामा देव आग्नि गण मुन्दर वग बनाकर वही पधार ॥३॥ पहलू विकसित वमनौ क आसन पर उपविष्ट अप्रमय यागिया तथा सिद्धा स आवन पनाआ मयुक्त हाकर भर वनी पहुचन की मचना पवनराज की मिली ॥८॥ तत्पतर महमनत्रणरा त्रिय अगा क हार तथा पुष्पमात्रा धारण किय हुए उगार रूप वाले गजद्रा म मूष्य तथा बहूत हुए मत् व मूलधार बरिष्ठ सधार बनात हुए ऐरावत मामक हाथा पर आरुह और वज्र की धारण किय हुए मन्त्र देवनाआ के अग्रगामा हाकर वनी आये ॥९॥ अनन्तर तज क प्रभाव मे अधिक मन्त्र और छत्र-पताका से युक्त मुखण क विमान पर स्थित मूष मत्र आग्नि को प्रकाशित करत हुए वग स गीप्र वही आये । अग्नि तथा मूष क तज क समान विमान पर आरुह और प्रणीप्त मणि क उर्व्वर कुण्डल का धारण किय हुए एक अग नामक आग्नि जो कचप के पुत्र कहलान है आगिया क मध्य स निकल कर वही आये ॥१०॥ नयानक मणि पर चडकर अगा को हार आग्नि से मुमज्जित कर नेत्र बल और आभा के समान प्रभाव वाल तथा स्थल नेत्र वाले यमराज दण्ड की धारण किय हुए वही पहुँचे ॥११॥ महापवन क समान उच्च तथा पट्ट शरीर वाले मुखण आग्नि रत्ना म जग्नि चारु वग वाले और निमिल दण्ड क पापक बायु स्त्री विमान पर चढकर आये ॥१२॥ अधिक तजवान तज म अतः प्रत मर दव रक्षा का की

समोरणः सर्वजगद्विभर्ता, विमानमारुह्य समभ्यगाद्धि।	
सन्तापयन् सर्वसुरासुरेशास्तेजोधिकस्तेजसि सन्निविष्टः	॥१४॥
वह्निः समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये, ज्वलन् प्रतस्थौ वरवेशधारी	।
नानामणिप्रज्वलिताङ्गयष्टिजंगद्वरं दिव्यविमानमग्रम्	॥१५॥
आरुह्य सर्वद्रविणाधिपेश, स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाच्च	।
आप्याययन् सर्वसुरासुरेशान्, कान्त्या च वेशेन च चारुरूपः	॥१६॥
ज्वलन्महारत्नविचित्ररूपं, विमानमारुह्य शशी समायात्	।
श्यामाङ्गयष्टिः सुविचित्रवेशः, सध्वीङ्ग आबद्धसुगन्धिमाल्यः	॥१७॥
ताक्ष्यं समारुह्य महोद्यकल्पं, गदाधरोऽसौ त्वरितः समेतः	।
अथाश्विनौ चापि भिषग्वरी द्वावेकं विमानं त्वरयाऽधिरुह्य	॥१८॥
मनोहरो प्रज्वलचारुवेशो, आजगमुद्वेववरो सुवीरो	।
सहस्रनागः स्फुरदग्निवर्णं, विभ्रतदानी ज्वलनाकैतेजाः	॥१९॥
साद्धं स नागैरपरमंहात्मा, विमानमारुह्य समभ्यगाच्च	।
दितेः सुतानाञ्च महासुराणां, बह्व्यर्कशक्रानिलतुल्यभासाम्	॥२०॥
घरानुरूपं प्रविधाय वेशं, वृन्दं समायात् पुरतः सुराणाम्	।
गन्धर्वराजः स च चारुरूपो, दिव्याङ्गदो दिव्यविमानचारी	॥२१॥

सतापित करनेवाले और सुन्दर वेश धारण करने वाले जलते हुए अग्नि भी देवताओं के मध्य मग्नित हुए ॥१४॥ अनेक मणियां के सदृश कान्तिमान् शरीर वाले तथा सब धनो के स्वामी बुवेर समार म श्रेष्ठ दिव्य विमान पर आरुढ़ होकर शीघ्रता से आये ॥१५॥ मनोहर रूप वाले चन्द्रमा महारत्ना से विभिन रूप वाले विमान पर चढ़कर अपनी कान्ति तथा वेग से सब देव अमुरा को गुप्ट करते हुए आये ॥१६॥ श्याम शरीर वाले विचित्र वेशवाले और सपूर्ण अगाध सुगन्धित मानाओं को धारण करने वाले विष्णु पर्वत सदृश गरुड पर सवार होकर वेग से आये ॥१७॥ अन्तर वैद्य-श्रेष्ठ, देवश्रेष्ठ सुन्दरवीर मनोहर तथा चारुवेश वाले दोनो अश्विनकुमार भी एक ही विमान पर चढ़कर शीघ्रता से आये ॥१८॥ हजारों नागा को धारण करने वाले अग्नि के समान कान्तिमान् और मूर्ध के सदृश तेजस्वी महारत्ना शर भी बहुत से नागा के साथ विमान पर आरुढ़ होकर उम समय वहाँ पधारे ॥१९॥ ये, इन्द्र और वायु के तुल्य कान्तिमान् दिति-मुत्र राक्षसा का समूह भी वर के याग्य वेग बना कर देव-हले उपगन्धित हुआ ॥२०॥ इन्द्र की आज्ञा से सुन्दर रूप वाले गन्धर्वराज विरवाकमु भी दिव्य चक्र गन्धर्वमूढ और अप्सराओं के साथ वहाँ आये ॥२१॥ और भी गन्धर्व, यक्ष, तान्,

गन्धर्व्वसङ्घः सहितोऽप्सरोभिः, शक्राजया तत्र समाजगाम।
 अन्ये च देवास्त्रिदिवास्तदानीं, पृथक् पृथक् चारुगृहीतवेशा ॥२२॥
 आजगमुराहृया विमानपृष्ठं, गन्धर्व्वक्षोरगकिन्नराश्च।
 शचीपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये, रराज राजाऽधिकलक्ष्यमूर्त्ति ॥२३॥
 आज्ञाबलैश्वर्य्यकृतप्रमोदः, स्वयवरं तं समलञ्चकार।
 हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूतेर्माता च तेषां स सुरासुराणाम् ॥२४॥
 पत्नी च शम्भोः पुण्यस्य धीमतो, गीता पुराणे प्रकृतिः परा या।
 दक्षस्य कोपाद्धिमवदगृहं सा, कार्यायमायास्त्रिदिवीकसा हि ॥२५॥
 'विमानपृष्ठे' भणिहेमजुष्टे, स्थिता बलञ्चामरवीजिताङ्गी।
 'सर्व्वर्त्तुपुष्पा' सुसुगन्धमाला, प्रगृह्य देवी प्रसभं प्रतस्थे ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

माला प्रगृह्य देव्यान्तु स्थिताया देवसंसदि। शक्राक्षरागतदेव्यं स्वयवर उपागते ॥२७॥
 देव्या जितासया शम्भुर्भूत्वा पञ्चशिक्ष शिशुः। उत्सङ्गतत्संसुप्तो बभूव सहसा विभुः ॥२८॥
 ततो ददर्श तं देवी शिशुः पञ्चशिक्ष स्थितम्। ज्ञात्वा स समवध्यानज्जगृहे प्रीतिसयुता ॥२९॥
 अथ सा शुद्धसङ्कल्पा काङ्क्षितं प्राप्य सत्पतिम् ॥३०॥ निवृत्ता च तदा तस्यौ कृत्वा सा हृदि तं विभुम् ३०॥
 ततो वृष्ट्वा शिशुं देवा देव्या उत्सङ्गवर्त्तिनम्। कोऽयमत्रेति संमन्य चन्द्रशुभं शमोहिता ॥३१॥

किन्नर आदि देवता पृथक्-पृथक् सुन्दर वेश बनाकर विमान पर आरुढ होकर स्वर्ग से वहाँ आये ॥२२॥

राजाओं से अधिक सुन्दर और आज्ञा, बल तथा ऐश्वर्य से प्रमोद करने वाले इन्द्र देवताओं के मध्य में
 सुभावित होते हुए स्वयंवर समा की अलङ्कृत करने लगे ॥२३॥ ससार की उत्पत्ति व कारण सुरासुरों की
 माता, धीमान् पुण्य शहर की पत्नी पुराण में परा प्रकृति नाम से प्रख्यात दश के शाप से देवताओं के वायु व
 लिए हिमालय के गृह में उत्पन्न, मणि तथा सुवर्ण जड़ित विमान पर स्थित एवम् छत्र चामरा से वीजित अगा
 वाली उमा सब ऋतुओं के पुष्पा की सुगन्धित माला को ग्रहण कर हुआ प्रस्थित हुई ॥२४ २६॥

ब्रह्मा ने कहा—जब स्वयंवर इन्द्र आदि देवता उपस्थित हुए और देवसमा में पार्वती भी मान लेकर
 उन्मथित हो गई तब देवी के मनोभाव को समझने के लिए भगवान् शहर एकाएक पंचविखाधारी मोद में सोया हुआ-सा
 बालक, बन गये ॥२७ २८॥ देवी ने उस बालक को देखकर ध्यान योग से पहचानकर प्रीतिपूर्वक पकड़ लिया ॥२९॥
 सुदृढ सत्व वाली उमा अमिलयित सत्यनि की प्राप्ति कर उस प्रभु बालक को हृदय में लगाकर निवृत्त हो गई ॥३०॥
 देवगण देवी के त्रिद-देश में स्थित बालक को देखकर मोहित हो गये और 'यह कौन यहाँ इस प्रकार

१ ग ०मोहा वषाधिक यत्नमुमा च०। २ क ०नवर्ग म०। ३ क ०मृष्ट स्थि०। ४ क ०गुणधुपुष्पा।
 ५ स ०अनर्घपुष्पा। ४ स ०वरगन्धमाला। ६ क ०स्थे। मा०। ७ क ०स ०मु। अकस्मादेव त। ८ ग ०ज्वरहृये
 श्री०। ९ क ०ता। तपस शु०। १० क ०सत्पलम्। ११ ग ०गमादिना।

वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा। स 'बाहुहस्तियत्तस्य तथैव समतिष्ठत॥३२॥
स्तम्भितः 'शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना। 'वज्रं क्षेप्तुं न शशाक वृत्रहा चलितुं न च॥३३॥
भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली। उत्क्षिप्य (चिक्षेप) आयुधं दीप्तं छेतुमिच्छन्
विमोहित॥३४॥

तस्यापि भगवान् बाहुं तथैवास्तम्भयत्तदा। बलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः॥३५॥
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवेक्षत। अयं तेषु स्थितेष्वेवं मन्युमत्सु सुरेषु च॥३६॥
अहं परमसंघिनो ध्यानमास्थाय सादरम्। बुद्धवान् देवदेवेशमुत्सङ्गे समास्थितम्॥३७॥
ज्ञात्वाहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सादरम्। बवन्दे चरणं शम्भोः स्तुतवास्तमहं द्विजाः॥३८॥
पुराणैः 'सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः। अजरत्वमजरौ देवः स्रष्टा विभुः 'परापरम्॥३९॥
प्रधानं पुरुषो यस्त्वं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्'। अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत्॥४०॥
ब्रह्मसूक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्व्वकृतप्रकृतेः परः। इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम्॥४१॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता। नमस्तुभ्यं महादेव देव्या वै सहिताय च॥४२॥
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः। देवाद्यास्तु इमा सृष्टा महास्त्वयोगमायया॥४३॥

परस्पर धारण करन लगे ॥३१॥ इन्द्र ने तो वज्र उठाकर उस पर फेंकना चाहा, पर उनकी भुजा जैसे उठी थी, वैसे रुक गई ॥३२॥ बालक रूपवारी देव देव शंकर ने उनका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र न तो वज्र को फेंक सके न चल सके ॥३३॥ तब ब्रह्मपुत्र-पुत्र मग नामक बली आदित्य बिना सांचे-समझे उस बालक को धारण के लिए प्रवीण अस्त्र फेंकन लगे, पर उनकी भी भुजा का भगवान् शिव ने स्तम्भित कर दिया। शिवजी ने बल, तेज और योग का भी स्तम्भन कर दिया ॥३४-३५॥ शिर को कंपाते हुए विष्णु शंकर को देखन लग। सब देवा ने इस प्रकार क्रुपित हो जान पर मैं बहुत चिन्तित हुआ और ध्यामस्थित होकर देवन के बाद उमा की गोद में समम्भन स्थित देवा ने स्वामी शंकर को समझ पाया ॥३६-३७॥ द्विजगण । मैं महादेव जानकर शीघ्र उठा और सत्वारपूर्वक घामु की चरण-वदना कर पुराण सामवेदाक्त मगीत और उनके पवित्र गुप्त नामा से उनकी यह स्तुति करने लगा ॥३८॥ 'आप अजर अमर देव, सृष्टिकर्ता व्यापक, परास्पर, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्म, ध्यान करने योग्य, अविनाशी, अमृत, परमात्मा ईश्वर कारण महत्त्व ब्रह्म-स्रष्टा 'गृहीत-स्रष्टा, प्रकृति से परे और सर्व ज्ञाता हैं ॥३९-४०॥ ये देवी आपकी प्रकृति हैं जो सदा सृष्टि कारण तथा जगत्कारण होतीं हुई आपकी पत्नी के रूप में आई हैं ॥४१॥ हे महादेव ! देवी महति आपकी नमस्कार है। हे दवज ! आपकी कृपा तथा आज्ञा से मैंने योगमाया के बन्ध से देव आदि मूढ़ प्रजा की मृष्टि की है ॥४२-४३॥ अब आप इनके ऊपर अनुग्रह करें ताकि ये पहले की तरह हो जायें।'

कुरु प्रसादमेतेषा यथापूर्वं भवत्स्वमे । तत एवमह विप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥४४॥
 स्तम्भितान सच्चदेवास्तानिद चाह तदोक्तवान् । मूढाश्च देवता सर्वानेन ब्रुध्यत गङ्गुरम् ॥४५॥
 गच्छध्व शरण शीघ्रमेनमेव महेश्वरम् । सार्धं मयैव देवश परमात्मानमव्ययम् ॥४६॥
 ततस्त स्तम्भिता सर्व्वे तथैव त्रिदिवीकृतः । प्रणमुमनसा सर्व्वं भावशुद्धेन चतसा ॥४७॥
 अथ तपा प्रसन्नोऽभददेवदेवो महेश्वर । यथापूर्वं चकाराऽऽगु देवताना तनूस्तदा ॥४८॥
 तत एव प्रवत्से तु सच्चदेवनिवारणे । वपुश्चकार दवेष्टश्चक्ष परममबभूतम् ॥४९॥
 तजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चक्षु सर्व्वे यमोलयन् । तेभ्य सपरम चक्षु स्ववपुर्दृष्टिशक्तिमत ॥५०॥
 प्रादोत परमदेवेशमपश्यस्ते तदा विभुम् । ते दष्ट्वा परमेष्ठानं तृतीयक्षणधारिणम् ॥५१॥
 गङ्गाया मेनिरे देवा सर्व्व एव सुरेश्वरा । तस्य दबो तदा हृष्टा समक्ष त्रिदिवीकसाम् ॥५२॥
 पादयो स्थापयामास खड्गालामनितद्युति । साधु साध्विति ते होबु सर्व्वे दद्या पुनर्विभुम् ॥५३॥
 सह देव्या नमश्चक्रु शिरोभिभूतलाथिते । अथास्मिन्नतरे विप्रास्तमह देवतं सह ॥५४॥
 हिमवत महागैलमुक्तवाश्च महाद्युतिम् । इलाध्य पूज्यश्च वच्छश्च सर्व्वेषा त्वमहानति ॥५५॥
 गवैण सह सम्बन्धो यस्य तस्मद्युदयो महान् । क्रियता चारुद्धाह क्रिमर्थं स्थीयते परम् ॥
 तत प्रणम्य हिमवास्तदा मा प्रत्यभाषत ॥५६॥

विप्रः । इस प्रकार गिव की वन्दना कर चक्र के बाग में स्तम्भित देवगणा से कहा— ४४३॥ तुम सब देवता मख हो। भगवान् गिव को नहीं जानत हो अब इन्ही परमात्मा अव्यय तथा देवग महेश्वर की पारण म मरे साथ गाध चगे यह सुन कर समस्त स्तम्भित देवगण भाव गुड चित से मन हा मन गकर की प्रणाम करते लग ४५ ४७। तब उन पर प्रसन्न हाकर देव-देव मनेवर न गीप्र हो उह पूववन कर दिया। इन प्रकार सब देवा का दुख निवारण करके देवग ने अपना तीन आला बाग अन्तत गरीर बना दिया ४८ ४९ उनके तज से देवगण नष्ट हुने लगे। सब ने आग भूग ॥ तब गिव ने देवा की अत्यन्त दष्टि गतिन वाटे नय न्य जिनसे वे शरकर का देवने लगे ५० ५१। तनीय नवधारी परमेश्वर का देवकर इन् आनि समस्त देव उह महान्व मानने लगे ५२ ५३॥ देवतात्रा के समस्त अत्यन्त कान्तिमयी पावता ने हृष से पुणमाग गिव क चरणा पर समपित कर दा ५४ ५५॥ फिर देवगण ने साथ साथ कृत्कर पावनी सहित गकर की पध्वी पर माया न्य कर प्रणाम किया ५६ ५७॥ विप्रवद्व इस उपरान्त देवतात्रा क साथ म मन्त्राकान्तिमान पवनराज हिमालय ने कहने लगा— ५८ ५९। आप इलाधनय सबके पूज्य वान्नय तथा महान हैं। आपक साथ जिसका सम्बन्ध होगा उसका महान अभ्यन्य कहना चाहिये। अब आप गविव विवाह मरकार सम्पन्न कर दर हो रही है। तब हिमाग्य ने मय प्रणाम कर क ५९ ६०।

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्वोदये मम । प्रसादः सहस्रोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि ॥
उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्वि (क्तं वि) धत्स्व पितामह ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तत एवं वचः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः उद्वाहः क्रियतां देव इत्थहं चोक्तवान् विभुम् ॥५८॥
मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकयः । तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्मितं पुरम् ॥५९॥
उद्वाहार्थं महेशस्य नानारत्नोपशोभितम् । रत्नानि मणयश्चित्रा हेममौक्तिकमेव च ॥६०॥
मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलञ्चक्रुः पुरोत्तमम् । चित्रा मारुततो भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता ॥६१॥
भास्वत्स्फटिकभित्तिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता । तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्मिता ॥६२॥
शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः । सोमादित्यो समं तत्र तापयन्तो महामणी ॥६३॥
सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय मारुतः । प्रववौ सुखसंस्पर्शो भवभक्तिं प्रदर्शयन् ॥६४॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः अक्राधाश्च सुरोत्तमाः । देवनद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव च ॥६५॥
'गन्धर्व्याप्सरसः सर्व्वे नागा यक्षाः सराक्षसाः । औदकाः खेचराश्चान्ये किन्नरा देवचारणाः ॥६६॥

हिमालय ने कहा—हे देव । हम सब के अम्बुदय में आप ही कारण हैं । अबस्मात् जो हम लोगों को प्रसन्नता उत्पन्न हो गई, इसमें भी आप ही कारण है । हे पितामह । जब और जिस तरह विवाह सम्पन्न हो, उसकी व्यवस्था आप ही करेंगे ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । तब पर्वतराज के वचन सुनकर मैंने परमेश्वर से कहा—'देव । विवाह कीजिये' ॥५८॥ शैव-पालव शंकर ने भी मुझसे कहा—'जैमी आप सबकी इच्छा ।' विप्रबृन्द । तत्काल ही हमने गिब व विवाह के निमित्त अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित नगरी का निर्माण किया ॥५९॥ चित्र चित्रित रत्न मणि, मोती और सुवर्ण माना शरीर धारण कर उस श्रेष्ठ नगरी को अलङ्कृत कर रहे थे । यहाँ की भूमि भरवत मणिमय थी, जहाँ मुक्ता के स्तम्भ सुशोभित हो रहे थे ॥६०-६१॥ देवों के देव भगवान् गिब के विवाह के लिए उम रमणीय नगर के द्वार पर निमित्त चमकते हुए स्फटिकों की दीवार सुशोभित हो रही थी, जहाँ मातिया के हार लटक रहे थे ॥६२॥ यहाँ महामणि रम्य मूर्ध-चन्द्रमा समान रम्य से प्रकाश फैला रहे थे । गिब भक्ति की प्रकट करते हुए वायु, त्रिनाग रागों सुगन्धाय या सुगन्धित तथा मनारम गन्ध में युक्त होकर बढ़ रहे थे ॥६३-६४॥ चारों समुद्र, इन्द्र आदि देवता, देवनदियाँ, महानदियाँ सिद्ध मुनि, गन्धर्व, अप्सरा नाग, यक्ष, रागाग, जलचर, आकाशचर, किन्नर, देवचारण, मुमुक्षु नागद हाहा, हूह, और माम गाने गाते (यथायाय) रमणीय वाद्यों का शेर

तुम्हर्नरिदो हाहाहूहूश्चैव तु सामगोः । रम्याण्यादाय वाद्यानि तत्राऽऽर्जभुस्तदा' पुरम् ॥६७॥
 ऋषयस्तु कथास्तत्र वेदगीतास्तपोधनाः । पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेषुः संहृष्टमानसाः ॥६८॥
 जगतो मातरः सर्व्वा देवकन्याश्च कृत्स्नशः । गायन्ति हृषिताः सर्व्वा उद्वाहे परमेष्ठिनः ॥६९॥
 ऋतवः पट् समं तत्र नानागन्धसुखावहाः । 'उद्वाहः शङ्करस्येति' मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥७०॥
 'नीलजीमूतसङ्काशैर्मन्त्रध्वनिप्रहर्षिभिः । केकायमानैः शिखिभिन्त्यमानैश्च सर्वैः ॥७१॥
 विलोचपिङ्ग, स्पष्टविद्युत्लेखाविहासिता' । 'कुमुदापीडशुक्लाभिर्बलाकाभिश्च' शोभिता ॥७२॥

प्रत्यप्रसञ्जातशिलीन्ध्रकन्वलीलताद्रुमाद्युदगतपल्लवो शुभा ।
 शुभाम्बुधाराप्रणयप्रबोधितमंहालसंभेकगणैश्च नादिता ॥७३॥
 प्रियेषु मानोद्धतमानसनां, मनस्विनीनामपि कामिनीनाम् ।
 मयूरकेकाभिरुतैः क्षणेन, मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः ॥७४॥
 'तया विवर्णोज्ज्वलचात्ममूर्तिना, शशाङ्कुलेखाकुटिलेन सर्वतः ।
 पयोदसङ्घातसमोपवर्तिना, महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता ॥७५॥
 'विचित्रपुष्पाम्बुभवं सुगन्धिभिर्धानाम्बुसम्पर्कतया सुशीतलः ।
 विकम्पयन्ती पवनमनोहरैः, सुराङ्गनानामलकावलीः शुभाः ॥७६॥

वहाँ उपस्थित हुए ॥६५-६७॥ तपोधन ऋषिगण वेदविहित कथा और विवाह-सवयी पवित्र मन्त्रों का जो हर्ष पूर्वक करने लगे ॥६८॥ निखिल जगन्माताएँ तथा देवकन्याएँ शिव के विवाह में हर्ष से गान करने लगी ॥६९॥ नाना प्रकार की गन्ध तथा सुख को देने वाली छोटी ऋतुएँ समान रूप से शकर के विवाह में शरीर धारण कर उपस्थित हुई ॥७०॥ (धर्पा ऋतु के जाने पर) नील मेघ के समान कान्ति वाले और मन-ध्वनि से हृषित होने वाले मयूर शब्द करते हुए नाचने लगे ॥७१॥ वह ऋतु चंचल तथा पिगलवर्ण वाली विद्युत्-पनितियों से आभासित एवम् कुमुदों की माला के समान शुक्ल बलाकाओं (बगलियों) से सुशोभित थी ॥७२॥ बदली, लता और वृक्षों के अमिनव पल्लवों से उसकी अपूर्व शोभा थी । कल्याणमय मेघों के प्रेम के कारण जने हुए अत्यन्त आलसी मेढवों से एवम् प्रियजनों के प्रति मान करने से उद्धत मन वाली मनस्विनी कामिनियों के क्षण भर में मान-मग्न के हेतुमत् मनोहर मयूर-वाणी के शब्दों से वह शब्दायमान हो रही थी ॥७३-७४॥ विविध वर्ण तथा उज्ज्वल वर्ण वाले, सुन्दर रूप वाले चन्द्र-लेखा के समान सब ओर से कुटिल तथा मेघसमूह के समीपवर्ती इन्द्र-धनुष से वह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥७५॥ नाना प्रकार के पुष्पों के रस से सुगन्धित और मेघ-जल के सपर्क से सुशीतल मनोहर पवनों के द्वारा वह मानों देवायनाओं की पवित्र अलङ्कार-वस्त्रिया (वेश समूह) को कपित कर रही थी ॥७६॥ गरजते हुए बादल में चन्द्रबिम्ब को छिपाने वाली तथा

१ क ०मुनिरे पु० । २ क ०नन्या सहस्रशः । ३ क ख उद्वाहे । ४ क ०रस्येह मु० । ५ ख ०रैकनाकारं प्रदक्षितं । ६ क ०विनामिता । ७ क कुमुदार्पाः । ८ ख ०दावरमु० । ९ ग ०या त्रिव० । १० क ०पुष्पामरणं मु० । ग ०पुष्पन्य रतै मु० ।

गर्जत्पयोदस्य गितेन्दुबिम्बा, नवाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा ।
निरोक्षिता सादरमुत्सुकाभिनिश्वासधूत्रं पथिकाङ्गनाभिः ॥७७॥

हंसनूपुरशब्दाद्या समुन्नतपयोधरा । चलद्विद्युल्लताहारा' स्पष्टपद्मविलोचना ॥७८॥
असितजलदधोरध्वानवित्रस्तहसा, विमलसलिलधारोत्पातनम्रोत्पलाग्रा' ।
सुरभिक्षुसुमरेणुबल्लस्तसर्वाङ्गशोभा, गिरिदुहितृविवाहे प्रावृडाविदम्भूव ॥७९॥
मेघकञ्चुकिनिर्मुक्तता' पद्मकोशोद्भवस्तनी । हंसनूपुरनिह्लादा' सर्वशस्यदिगन्तरा' ॥८०॥
विस्तीर्णपुलिनश्रोणी कूजत्सारसमेखला । प्रफुल्लेन्दोविरदयामविलोचनमनोहरा ॥८१॥
पद्मविम्बाधरपुटा कुन्ददन्तप्रहासिनो । नवश्यामलताश्यामसोमराजिपुरस्कृता ॥८२॥
चन्द्रांशुहारवर्णेण कण्ठोरस्यलगामिना । प्रह्लादयन्तो चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवीकसाम् ॥८३॥
समदाङ्गुलुद्वीगतमधुरस्वरभाषिणी । चल्त्कुमुदसंघातचारुकुण्डलशोभिनी' ॥८४॥
रक्ताशोकप्रशालोत्पलवाङ्गलिधारिणी । तत्पुष्पसञ्चयमयेवासोभिः समलङ्कृता ॥८५॥
रक्तोत्पलाप्रचरणा' जातीपुष्पनखावली । कदलीस्तम्भवामोरः शशाङ्कुवदना तथा ॥८६॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता । प्रेम्णा स्पृशति वान्तेव सानुरागा मनोरमा ॥८७॥

नवीन जल से सिक्त सुन्दर घासवाली वर्षा ऋतु की राह चलने वाली रमणीया आदर तथा उत्सुकता से देखकर अपनी साँसों से मानों धूमिल कर रही थी ॥७७॥ वह ऋतु मानों समुन्नत पयोधर (मेघ, स्तन) वाली, विवस्तिन वमन सदृश नेत्र वाली, चञ्चल विद्युल्लता रूप हार वाली तथा हृम (हम पक्षी, पैर के कड़े) और नूपुर के शब्दों से युक्त रमणी थी ॥७८॥ यह काले बादल के गम्भीर गर्जन से त्रस्त हस वाली, निर्मल जलधारा के गिरने से अवतन कमल के अग्रभाग वाली और गुणगुणित पुष्पों की रेणु से सुगोमित सर्वाङ्ग वाली थी । इस प्रकार वर्षा ऋतु गिरिजन्या के विवाह में आविर्भूत हुई ॥७९॥ (तदनन्तर धारद् ऋतु का आगमन) । मेघरूप वचुकी में निर्मुक्त, कमल की बलियों रूपी स्तनों वाली, हस और नूपुर में शब्दिन, मग्न दिशाओं में अग्रों में परिपूर्ण, विस्तृत तट रूप नितम्ब वाली, शब्द करत हुए सारस पक्षी रूप मेघमग्न वाली, विवस्तिन नील वमन रूपी मनोहर नेत्र वाली, पद्मे विम्ब फल (कुन्दरु के फल) रूपी अधर वाली, कुन्द पुष्प रूपी दाँतों से ढँकी वाली, श्यामलता रूपी कृष्ण रोमावलिवा । ये युक्त, गले से वक्ष स्पष्ट तक लटकत हुए चन्द्रारिण रूपी हारा में देहाङ्गों के चित्त की आह्लादित करने वाली, मदमत्त धमरों के गीत रूपी मधुर स्वर में बोलने वाली चञ्चल कुमुद-पुष्पनामक रूपी सुन्दर कुण्डला से घामित रक्त अंगों की शाला के पल्लव रूपी अंगुलियों धारण करने वाली, साल अशोक-मुष्णा के सचय रूपी वस्त्रा में अलङ्कृत, रक्त कमल के अग्रभाग रूपी चरणों वाली, चनेरी के पुष्प रूपी नख-पंक्ति वाली कदली-स्तम्भ रूपी सुन्दर जघा वाली, चन्द्रमूर्ती, समग्र लक्षणों में मग्न और सब प्रकार के भूषणों से भूषित धारद् ऋतु मानों अनुरागपूर्ण सुन्दरी स्त्री की तरह प्रेम में रानी बनी

निर्मृक्तासितमेघऋचुकपटा पूर्णन्दुबिम्बानना, नीलाम्भोजविलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी ।
नानापुष्परजःसुगन्धिपवनप्रह्लादनी चेतसां, तत्राऽऽसीत् कलहंसनूपुररवादेव्या विवाहेशरत् ॥८८॥
अत्यंशोत्तमाभोभिः प्लावयन्तो दिशः सदा । ऋतुं हेमन्तशिगिरी आजगमतुरतिद्युतो ॥८९॥
ताम्रामृतुम्या 'संप्राप्तो हिमवान् स नगोत्तमः । प्रालेयचूर्णवर्षिभ्यां क्षिप्रं रीप्यहरो 'दभौ ॥९०॥
तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालयः । अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागरः ॥९१॥
ऋतुपर्यायसम्प्राप्तो बभूव स महागिरिः । साधूपचारात् सहसा 'कृतार्थ' इव दुर्जनः ॥९२॥
प्रालेयपटच्छत्रं शृङ्गस्तु शुशुभे नगः । छत्रैरिव महाभागः पाण्डरैः पृथिवीपतिः ॥९३॥

मनोभवोद्रेकफराः 'सुराणां' सुराङ्गनानाञ्च मूढः समीराः ॥

स्वच्छाम्बुपूणिच' तथा नलिन्यः पद्मोत्पलानां कुसुमंरुपेताः ॥९४॥

विवाहे गुरुकन्याया वसन्तः समगादतुः ॥९५॥

इपस्तमुद्भिन्नपयोधराया नाभ्यो यया रम्यतरा बभूवुः ॥

नात्युष्णशोतानि' पयःसरांसि" किञ्चजत्कचूर्णैः कपिलीकृतानि ॥

चक्राह्वयुन्मंरुपनादितानि ययुः प्रहृष्टाः सुरदन्तिमुख्याः ॥९६॥

प्रिगङ्गाश्चूततरवश्चूताश्वापि प्रियङ्गवाः । तज्ज्वरत इवान्योन्यं मञ्जरीभिश्चकाशिते ॥९७॥

पा ॥८०-८७॥ इष्टा मघ रूपी वचुकी स निर्मुक्त पूर्ण-चन्द्र बिम्ब के समान मुख वाली नील कमल के समान नेत्र वाली, सूर्य निरज से विकसित कमल के समान स्तन वाली, अतः पुण्योकी रेणु से सुगन्धित पवना द्वारा चित को अनन्द देने वाली तथा राजहंस के समान मूषुरा द्वारा शब्द करने वाली शरद् ऋतु पार्वती क विवाह म उपस्थित हुई । ॥८८॥ जलन्त नील जल से दिवाजा की सदा प्लाविन करती हुई मन्त्राकान्ति वाली हेमन्त तथा शिगिरी ऋतुओं में आयी ॥८९॥ हिम चूर्णों को वरमन वाली उन ऋतुभा से प्राप्त (सम्मिलित) पर्वतश्रेष्ठ हिमालय शीघ्र ही चांदनी के आलनों की तरह शामिल होन लगा ॥९०॥ हिमवर्षा करने वाले अगाध मेघ से हिमालय शीघ्र-ममुर की तरह सुगन्धित हुआ ॥९१॥ अच्छे उपचारों से जैसे दुर्जन इतार्थ हो जाता है वैसे ऋतुओं के आगमन से वह महागर्वन (इतर्हय) हुआ ॥९२॥ हिम समूह में आच्छादित शिखरा से पर्वत की वस्ती ही गोमा हुई जैसी महा-गुदर स्वन छत्र ग राजा की होती है ॥९३॥ दक्षना तथा देवागनाभा म कामादीपन करने वाले पवन बार-बार बहने लगे । अत्राय स्वच्छ जल से पूर्ण एवं कमल और कुम्भ के पुष्पा से युक्त हुए ॥९४॥ पवन-गुर्वा के विवाह म वसन्त ऋतु आई ॥९५॥ (उसके आनं पर) जैसे घोड उमरे हुए स्तनाय वाली नारियां अधिक रमणीय होती हैं वैसे न अधिक गरम न अधिक ठंड जल वाले सरोवर पुष्परणु (या कमल के सरो) से परित्र वण बन शामिल हो रहे थे । शरवा बर्षा में मन्दिन उन सरोवरों म देवताओं के श्रेष्ठ हाथी हर्ष से जाते थे ॥९६॥ प्रियगुवृण आम्रवृषा को भीर काश्रवृण प्रियगुवृषा । का माना परस्पर धकेलते हुए मञ्जरीया से सुसोमिन हो रहे थे ॥९७॥ हिमालय के उज्ज्वल

१ ग ०ना लला० । २ क सम्पाज्नी । ३ ल ०मो । हिमपप्रव० । ४ ग हुनार्थ । ५ ग ०वादेगक० ।
६ ग ०नां नमग० । ७ क रुमंरणा । ल मुचिवा । ८ ग ०म्भुपर्णा० । ९ ल ०नि दिव पयानि । १० ल
सटपयानि । ११ क ०पलाञ्जिता० ।

'हिमशृङ्गेषु शुक्लेषु तिलकाः' कुसुमोत्कराः । शशुभुः कार्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः ॥९८॥
फुल्लशोकलतास्तत्र रेजिरे शालसंश्रिताः । कामिन्य इव' कान्तानां कण्ठालम्बितबाहवः' ॥९९॥

तस्मिन्मृतो शुभ्रकदम्बनीपास्तालास्तमालाः सरलाः कपित्थाः ॥१००॥

अशोकसज्जिज्जिनकोविदाराः पुष्पागमगेश्वरकणिकाराः ।

लवङ्गतलापुष्टस्तपर्णा न्यग्रोधशोभाञ्जननारिकेलाः ॥१०१॥

वृक्षास्तथाऽन्ये फणुष्पवन्तो 'दृश्या बभूवुः सुमनोहराङ्गाः ।

जलाशयाश्चैव सुवर्णतोयाश्चक्राङ्गकारण्डवहंसजुष्टाः ॥१०२॥

कोपटिदात्यूहबाणयुक्ता 'दृश्यास्तु पद्मोत्पलमोनपूर्णाः ।

खगाश्च नानाविधभूषिताङ्गा 'दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः ॥१०३॥

श्रीङ्गासु' युक्तानय' तज्जंघन्तः कुर्वन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः ।

तस्मिन् गिरावद्रिसुताविवाहे वयुश्च वाताः सुखशीतलाङ्गाः ॥१०४॥

पुष्पाणि 'शुभ्राण्यपि पातयन्तः शनैर्नगैर्मयो मलयद्रिजाताः ।

तथैव सर्वे ऋतवश्च पुष्पाश्चकाशिरेऽन्योन्यविमिश्रिताङ्गाः ॥१०५॥

७ , येषां सुलिङ्गानि च कीर्तितानि, ते तत्र आसन् सुमनोज्ञरूपाः ॥१०६॥

समदालिकुलोद्गीतशिलाकुसुमसञ्चयैः । परस्पर हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे ॥१०७॥

शिलारो पर पुष्पा से युक्त तिलक वृक्ष कार्य के उद्देश्य से आये हुए वृद्ध पुष्पा की तरह शोभा पा रहे थे ॥९८॥
साखू से लिपटी हुई प्रफुल्लित प्रशाकलता प्रियतम के गले में अपनी बांह डाले हुई कामिनी की तरह विराजमान थीं ॥९९॥ उस ऋतु में सफेद कदम्ब, नील अशोक, ताल, तमाल, सरल, बँधा, असोक, सज (साखू) अर्जुन, बबनार, पुष्पाग, मागेश्वर बनबचम्पा लवग, अगर, सप्तवर्ण (छितवन) बट, शामाञ्जन (सहिजन), नारियल और दूसरों की फल-पत्र वाले वृक्ष अत्यन्त सुन्दर अर्थात् म दिखी पड़े ॥१००-१०१॥ सुवर्ण के समान जल वाले, चक्राङ्ग, कारण्डव और ह्रमा से सजित टिटिंग, दात्यूह (बटफोडया) तथा बलाको में युक्त एवम् कमल, कृमुद तथा मछलियाँ से पूर्ण तालाब देखने योग्य थे ॥१०२॥ वृक्षों पर चित्र विचित्र पक्ष वाले तथा विविध भूषणों से भूषित परीगण वाम-विश्रुत होकर श्रीङ्गा में निरत पक्षियाँ की (घबू से) मारते हुए कलरव कर रहे थे ॥१०३॥ पर्वतों के विवाह में उम पर्वत पर मुग तथा शीतल स्पर्श वाला वायु बह रहा था ॥१०४॥ पर्वतों से घीरे-घीरे मलय-निल निराल कर श्वेत पुष्पा की गिरा रहा था । उसी प्रकार सब पवित्र ऋतुएँ परस्पर मिलकर विराज रही थीं ॥१०५॥ जिन ऋतुओं के सब चिह्न बना दिय गये हैं, वे सब मनोहर रूप में बड़ी थीं ॥१०६॥ मदमत भ्रमरों से सुश्रित शिलागुप्त के समूह से परम्पर मिलती हुई मालती लता में शामिल हो रही थी ॥१०७॥ सरावर का जल नील

१ क हिमाञ्चपथ शृङ्गाः । २ क कुसुमाकरा । ३ क करालः । ४ क नतमूर्धन्य । ५ क ग दृश्यान्
सर्वान् म० । ६ क ग दृश्यन्ति । ७ क ग दृश्यन्ति । ८ ख ० डा प्रयुक्तास्तव्यः । ९ ग ० क्तास्तव्यः । १० रा पनाप्यः ।

नीलानि नीलाम्बुदहः पयांसि, गौराणि गौरैश्च मृणालदण्डैः ।
रक्तैश्च रक्तानि भृशं कृतानि, मत्तद्विरेकावलज्जुष्टपत्रैः ॥१०८॥
हंमानि विस्तीर्णजलेषु केषुचिन्निरन्तरं चारतराणि केषुचित् ।
वेदूय्यनालानि सरःसु केषुचित्प्रजज्ञिरे पद्मवनानि सर्वतः ॥१०९॥

वाप्यस्तत्राभवन्नरम्याः कमलोत्पलपुष्पिताः । 'नानाविहङ्गसंजुष्टा' हंमसोपानपद्मवतः ॥११०॥
शृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः । समुच्छ्रितान्यविरलहंमानोव धर्मुद्विजा ॥१११॥
इषद्विभिन्नकुसुमैः पाटलैश्चापि पाटलाः । संबभूवुर्दशः सर्वाः पवनाकम्पिमूर्तिभिः ॥११२॥
कृष्णाज्जुना वशागुणा नीलाशोकमहोरुहाः । गिरी ववृधिरे फुल्लाः स्पधंयन्तः परस्परम् ॥११३॥
वायरावबिजुष्टानि विश्वकानां वनानि च । पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरेजिरे ॥११४॥
तमालगुल्मस्तस्यासीत्सच्छोभा हिमवतस्तदा । नीलजीमूतसङ्घातैर्नीलोन्नैरिव सन्धिषु ॥११५॥

निकामपुष्पैः सुविशालशाखैः, समुच्छ्रितैश्चन्दनचम्पकैश्च ।
प्रमत्तपूरकोकिलसम्प्रलपैर्हिमाचलोत्तीव तदा रराज ॥११६॥

भूत्वा 'शब्दं' मृदुमदवलं सर्वतः कीकिलानां, चञ्चत्पक्षाः सुमधुरतरं नीलकण्ठा दिनेदुः ।
तेषां शब्दरूपचित्तबलः पुष्पचापेषु हस्तः, सज्जीभूतस्त्रिदशवनिता वेदुमङ्गेष्वनङ्गः ॥११७॥
पटुः सूर्यतिपद्मापि प्रायशोऽल्प (त्यो) जलाशयः । देवोविवाहसमये प्रीत्य आगाद्विहिमालम् ॥११८॥

कमलो म से नील, श्वेत मृणालदण्डो से श्वेत तथा मदमत्त भ्रमरावली से सेवित पत्रवाले लाल कमलो से लाल हो गया था ॥१०८॥ किसी विस्तीर्ण जल वाले सरोवर में स्वर्ण वर्ण वाले, किसी में अत्यन्त रमणीय और किसी में वेदूय्य मणि के मृणाल वाले कमला के वन उत्पन्न हुए थे ॥१०९॥ वहाँ कमल तथा कुमुद पुष्पा से युक्त अनेक पक्षिया से सेवित तथा सुवर्ण की पीढ़ियों से समन्वित बावर्लियाँ थी ॥११०॥ द्विजगण । उस पर्वत के विस्तृत शिखर सघन वनत्रयस्था वृक्षो से मुपुष्पित होकर सोने की तरह छिटाव रहे थे ॥१११॥ वायु से कम्पित बिज्जित् विरसित पाटला के पुष्पो से सब दिशायेँ श्वेत-रक्त वर्ण की हो गई थी ॥११२॥ पर्वत पर नील जसोव वृक्ष तथा कृष्ण अर्जुन वृक्ष परस्पर स्पर्षा करते हुए दश गुना बढ़ने लगे ॥११३॥ मनोहर शब्दो से सेवित पलाश के वन पर्वत के नितम्ब पर विराज रहे थे ॥११४॥ सधियों (सन्ध्या समय) में छिपे हुए वाले बादलो के समूह जैसे तमाल वृक्षो से हिमालय की शोभा हो रही थी ॥११५॥ अतिशय पुष्पित विशाल शाखाओ से युक्त तथा विस्तृत चन्दन और चम्पा वृक्षो से और मत्त पुष्प-कोकिलो के प्रलप से हिमालय अत्यन्त शोभित हो रहा था ॥११६॥ कीकिलो के मृदु तथा मद से भरे शब्दो को सुनकर मयूर पक्षो को फँसाकर अत्यन्त मधुर शब्द करने लगे । उनके शब्दो से बल प्राप्त कर पुष्पो का घनप हाथ में लेकर तैयारी के साथ कामदेव देवायनाओं को वेष करने लगा ॥११७॥ सूर्य की विरलें तीक्ष्ण होने लगी और प्राय तालाबो में जल घटने लगा, जब देवी

१ क ० गमयुता है० । २ ग सपुष्टा । ३ क ० पदुस्मिन्न० । ४ अ ० वत शुभा । नी० । ५ स सानुप ।

६ क शब्दमुमु० । ७ ग ० निता वे० ।

स चापि तरुभिस्तत्र बहूभिः कुसुमोत्तरैः। शोभयामास शृङ्गाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः॥११९॥
 तथाऽपि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः। ववुः पाटलविरतीर्णं दम्बाउर्जुनगन्धिनः॥१२०॥
 वायः प्रफुल्लपद्मोधकेसराक्षणमूर्तयः। अभवंस्तदसंधु (जु) षट्करहंसकदम्बकाः॥१२१॥
 तथा कुरवकाऽपि कुसुमापाण्डुमूर्तयः। सर्वेषु भगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः॥१२२॥
 बकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभूतः। उत्तसर्जं मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः॥१२३॥
 इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा विविधविहङ्गमनादरम्यदेशः ।
 'हिमगिरितनयाविवाहभूयं षड्पदयुक्तांबो मुनिप्रवीराः ॥१२४॥
 तत एवं प्रवृत्ते तु सत्वेभूतसमागमे। 'नानावाद्यसमाकीर्णं' अहं तत्र द्विजातयः॥१२५॥
 शैलपुत्रीमलंकृत्य योगप्रभरणसम्पन्नः। पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भो द्विजाः॥१२६॥
 ततस्तु पुनरेवेशमहं चंबोवतवान् विभुम्'। हविर्जुहोमि' बह्वो ते उपाध्यायपदे स्थितः॥१२७॥
 वदासि मह्यं यद्यानां कर्त्तव्योऽयं क्रियाविधिः। मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः॥१२८॥

शिव उवाच

'यदुद्दिष्टं सुरेशान तत्कुलपत्य दयेप्सितम्। कर्त्ताऽस्मि वचनं सर्वं ब्रह्मांस्तव जगद्भिभो॥१२९॥

वे विवाह के समय ग्राम ऋतु हिमालय पर जा पहुँचा ॥११८॥ वह भी प्रचुर पुष्पा से युक्त वृक्षा से हिमालय के शिखरों को सब ओर से शोभित कर रही थी ॥११९॥ पर्वत पर पाटला, विस्तीर्ण कदम्ब तथा अर्जुन के गन्धा से युक्त मनोहर वायुवह रहा था ॥१२०॥ वायवर्ण्य विवस्तिन पद्म-ममूह के बेभरी से अरण्य रंग की हो गई थी ॥१२१॥ त्रिनके तट कच्छसा और नदम्बा से सजिन थे ॥१२१॥ देवतवर्णं व कुसुमों से युक्त तथा भ्रमरावलि से सेवित कुरव वृक्ष समस्त पर्वत शिखरों पर शोभित हो रहे थे। पर्वत के विद्याज निगम्बा पर मौन-सिरी मनोहर पुष्पों को चारा ओर बिखेर रहे थे ॥१२२-१२३॥ मुनिवर ! सब वृक्ष पुष्पों से विचित्र दीप्तते थे। विविध पक्षियों से सब स्थान रम्य लगने थे। गिरिपुत्री का विवाहोत्सव मनाने के लिए छहों ऋतुएँ उत्पन्न हुई ॥१२४॥ द्विजगण ! तदुपरान्त नानाप्रकार के वाद्या से युक्त सद्यः प्राणियों का समागम होना पर मीने पार्वती को समुचित आभूषणा से अलङ्कृत कर स्वयं लेकर नगर में प्रवेश कराया ॥१२४-१२६॥ तब भगवान् शिव से मैंने कहा—'भगवन् उपाध्याय-पद पर स्थित होकर मैं ब्रजन करूँगा। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यह क्रिया प्रारम्भ करूँ।' तब देवदेव जगन्पति शिव ने मुझसे कहा ॥१२७-१२८॥

शिव बोले—'देवता ! एवमन्तु। बहन् ! जगत्पामी ! मैं तुम्हारे सभी वचनों का अनुमोदन करता हूँ ॥१२९॥

१ क. *सपुटः। २ क. *हृत्पत्यं। ३ ग. *घातापी। ४ क. *णै देवास्तत्र द्विजा स्वयम्। ५ क. *दा। सम्प्रा। ६ क. *यन्पामागु स्वः। ७ क. *यु। वदितं जूहोः। ८ क. *मि विषिवकुणः। ९ क. *न। इति तस्य वदन्त्य-स्वर्नादृश्या क्रियाविधिः। १०। १. न यददिष्टः।

ब्रह्मोवाच

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम् । हस्तं देवस्य देव्याश्च योगबन्धेन युक्तवान् ॥१३०॥
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिपुटः स्थितः । श्रुतिगीतमंहामन्त्रमूर्तिमद्विरूपस्थितम् ॥१३१॥
ययोक्तविधिना हृत्वा सर्पिस्तवभूतं हवि । ततस्तं ज्वलन सर्वं कारयित्वा प्रदक्षिणम् ॥१३२॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितः सर्वदेवतैः । पुत्रंश्च मानसं सिद्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१३३॥
वृत्त उद्वाहकाले तु प्रणम्य च वृषध्वजम् । योगेनैव तयोर्विप्रास्तदुमापरमेशयोः ॥१३४॥
उद्वाहः स परो वृत्तोयं देवा न विदुः क्वचित् । इति च सर्वमाख्यातं स्वयवरमिदं शुभम् ।
उद्वाहश्चैव देवस्य शृणुध्व परमाद्भुतम् ॥१३५॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषिसवादे उमामहेश्वरयोर्विवाहनिरूपणं
नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

यहमा ने कहा—उसके बाद मैं प्रसन्न होकर शीघ्र कुशों को लेकर देवी और देव के हाथों को योगबन्धन से बाँध दिया ॥१३०॥ स्वयं अग्नि हाथ जोड़ कर वहाँ उपस्थित थे । शरीर धरकर वहाँ उपस्थित वेदविहित महामन्त्रों से विषागपूर्वक मैंने हुवन किया । वहाँ धी की जगह अभूत ही था ॥१३१॥ तब अग्नि की प्रदक्षिणा करा कर उनका हस्तबन्धन छोड़वा दिया । विप्रवृन्द ! विवाह काल के समाप्त होने पर मैंने प्रसन्न चित्त से सभी देवताओं, अपने मानस पुत्र तथा सिद्धों के साथ शिव को प्रणाम किया । योग ही से उमा और महेश्वर का विवाह सम्पन्न हुआ—इस वृत्तान्त को वही देवताओं ने नहीं समझा । इस शुभ स्वयंवर का सबन्धन मैंने आपसे कर दिया ॥१३२-१३४॥ अब शिव के परम अद्भुत विवाह के विषय में भी सुन लीजिये ॥१३५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण म उमा और महेश्वर के विवाह
निरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अयं वृत्ते विवाहे तु' भवत्प्रामिततेजसः। प्रहर्षमदुलं गत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥
'तुष्टुवर्वाग्भिराद्याभि.' प्रणेमुर्ते महेश्वरम् ॥१॥

देवा ऊचुः

नमः पर्वतलिङ्गाय' पर्वतेशाय च' नमः। नमः पवनवेगाय विरूपायजिताय च ॥
नमः बलेशविनाशाय दात्रे च' शुभसम्पदाय ॥२॥
नमो नीलशिलण्डाय अम्बिकापतये नमः। नमः पवनरूपाय' शतरूपाय' च' नमः ॥३॥
नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च'। नमः सहस्रनेत्राय सहस्रचरणाय च ॥४॥
नमो देववयस्याय वेदाङ्गाय नमो नमः। विष्टम्भनाय शक्रस्य बाह्योर्वेदाङ्कुराय च ॥५॥
चराचराधिपतये शमनाय नमो नमः। सलिलशैर्पेलिङ्गाय गुगान्ताय नमो नमः ॥६॥
नमः कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे। नमः कपालहस्ताय दण्डिने' गदिने नमः ॥७॥

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अमित तेजस्वी शिव के विवाह सम्पन्न हो जाने पर इन्द्र को अगुवा बनाकर देवगण अत्यन्त हर्ष से महेश्वर के पास गए और प्रणाम करके आद्य वाणी से उनकी स्तुति करने लगे ॥१॥

देवद्वन्द्व धोले—पर्वतलिङ्ग को नमस्कार है, पर्वतेश को नमस्कार है, पवनवेग, विरूप और अजित को नमस्कार है, बलेश-नाशक तथा गुम्भ-नाशिकाय को नमस्कार है ॥२॥ नीलशिलण्ड को नमस्कार है, अम्बिकापति को नमस्कार है, पवनरूप को नमस्कार है, शतरूप को नमस्कार है ॥३॥ भैरवरूप तथा विरूपाक्ष को नमस्कार है, सहस्रनेत्र तथा सहस्रचरण को नमस्कार है ॥४॥ देवमित्र को नमस्कार है, वेदाय को नमस्कार है, दण्ड की बाँधी को स्तम्भित करने वाले तथा वेदाङ्कुर को नमस्कार है ॥५॥ चराचर के स्वामी तथा शमन को नमस्कार है, जलाशय में लिंग वाले तथा गुणों का अन्त करने वाले को नमस्कार है ॥६॥ कपालमाला तथा कपाल-सूत्र धारी को नमस्कार है, कपाल,

१ क. तु शिवः। २ क. ० गिरिध्यामि ०। ख ० गिरिपट्यामि ०। ३ क. ० धामिरमया सह शक्रः ०।
४ ख ० तत्रागमय नमः पर्वतधारिणे। न०। ५ ख पर्वतत्रापात्रे। ६ ग ख मुनयः ०। ७ क. पर्वतरूपाय।
ख. पर्वतनाशाय। ८ क श्वेतरूपाय। ९ क. ख। सहस्रनेत्ररीपाय। १० ग दण्डिणे।

नमस्त्रेलोक्यनाथाय पशुलोकरताय च । नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमथार्तिहराय च ॥८॥
 नमो , यज्ञशिरोहस्त्रे कृष्णकेशापहारिणे । भगनेप्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च ॥९॥
 नमः पिनाकशूलसिखङ्गमुद्गरधारिणे । नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च ॥१०॥
 अन्तकान्तकृते चैव नमः 'पर्वतवासिने । सुवर्णरेतसे चैव नमः कुण्डलधारिणे ॥११॥
 वैतयानां' योगनाशाय योगिनां गुरवे नमः । शशाङ्खादित्यनेत्राय ललाटनयनाय च ॥१२॥
 नमः श्मशानरतये श्मशानवरदाय च । 'नमो वैचतनाथाय श्यम्बकाय नमो नमः ॥१३॥
 गृहस्थसाधवे नित्यं जटिले ब्रह्मचारिणे । नमो मुण्डार्धमुण्डाय पशूनां पतये नमः ॥१४॥
 सलिले तप्यमानाय योगेश्वर्यप्रदाय च । नमः शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे ॥१५॥
 नमोऽङ्गुष्ठकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नमः । नमो रुद्राय वसव आदिस्थायाशिवने नमः ॥१६॥
 नमः पित्रेऽय साङ्ख्याय विश्वेदेवाय वै नमः । नमः शर्वाय उग्राय शिवाय वरदाय च ॥१७॥
 नमो भीमाय सेनार्ये पशूनां पतये नमः । शुचये वैरिहानाय सद्योजाताय वै नमः ॥१८॥
 महादेवाय चित्राय' विचित्राय च वै नमः । प्रधानायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च ॥१९॥
 पुराणाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च । नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे ॥२०॥

दण्ड तथा गदाधारी को नमस्कार है ॥७॥ त्रिलोकीनाथ तथा पशुलोक में रत रहने वाले को नमस्कार है, खट्वाण (अस्त्र विशेष) धारी तथा प्रमथ (शिव के अनुचर) की आति को हरने वाले को नमस्कार है ॥८॥ यज्ञ शिर के हस्ता तथा कृष्णवेश (मृगचर्म ?) के अपहर्ता को नमस्कार है, भग देवता के नेत्र को गिराने वाले तथा पूषा के दन्तो को तोड़ने वाले को नमस्कार है ॥९॥ पिनाक (शिवधनुष), त्रिशूल तलवार, खांडा तथा मुद्गर धारण करने वाले को नमस्कार है, कालों के काल तथा तृतीय नेत्रधारी को नमस्कार है ॥१०॥ बालनाशन तथा पर्वतवासी को नमस्कार है, सुवर्णरूप धीर्यवाले (?) तथा कुण्डल धारण करने वाले को नमस्कार है ॥११॥ दैत्या के योग के नाशकर्ता तथा योगियों के गुरु को नमस्कार है, सूर्य-चन्द्रमा-रूपी नेत्रों वाले तथा मस्तक पर नेत्र वाले को नमस्कार है ॥१२॥ श्मशान में रत तथा श्मशान में वर देने वाले को नमस्कार है, देवताओं के स्वामी तथा श्यम्बक (तीन नेत्र वाले) को नमस्कार है ॥१३॥ गृहस्थों में साधु, नित्य जटाधारी तथा ब्रह्मचारी को नमस्कार है, मुण्ड, अर्ध-मुण्ड तथा पशुपति को नमस्कार है ॥१४॥ जल में तप्त होने वाले तथा योग-ऐश्वर्य को देने वाले को नमस्कार है शान्त, दान्त तथा मृष्टि प्रलयकारी को नमस्कार है ॥१५॥ अनुग्रहकर्ता तथा स्थिति-कर्ता को नमस्कार है, रुद्र, वसु आदित्य तथा अश्विनीकुमार को नमस्कार है ॥१६॥ पिता, साख्यरूप तथा विश्वेदेव को नमस्कार है, शर्व, उग्र, शिव तथा वरद को नमस्कार है ॥१७॥ भीमरूप, सेनानी तथा पशुपति को नमस्कार है, पवित्ररूप, अनुनाशन तथा सद्य उत्पन्न को नमस्कार है ॥१८॥ महादेव, चित्त तथा विचित्ररूप को नमस्कार है, प्रधान, प्रमेय, कार्य तथा कारणरूप को नमस्कार है ॥१९॥ पुरुष तथा पुरुषरूप पुत्र की इच्छा करने वाले को नमस्कार

१ म. भाग्यहा। २ क. वृषभगामिने। ३ क. राहवे। ४ ख. श्रेष्ठजनना। ५ ख. म।

मुनिशतमुमा। ६ ख. म। साध्याय विश्वपतये वि०। ७ ख. म. मुनिने च नमः न०।

प्रवर्तकाय प्रकृते पुरुषस्य च सर्वेशः। कृताकृतस्य 'सत्कर्त्रे' फलसयोगदाय च॥२१॥
 कालज्ञाय च 'सर्वेषां नमो नियमकारिणे। नमो वैषम्यकर्त्रे च गुणानां वृत्तिदाय च॥२२॥
 नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन। शिव सौम्यमुखो द्रष्टुं भव सौम्यो हि नः प्रभो॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स भगवान् देवो जगत्पतिरुमापति। स्तूयमान सुरैः सर्वैरमरानिदमब्रवीत्॥२४॥

श्रीशङ्कर उवाच

द्रष्टुं सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भो. सुरा। 'वर वरयत क्षिप्र दाताऽस्मि तमसशयम्॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रणताः सर्वे सुरा ऊचुस्त्रिलोचनम्॥२६॥

देवा ऊचुः

तवैव भगवन् हस्ते वर एषोऽवतिष्ठताम्। यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमोप्सितम्॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति तानुक्त्वा विसृज्य च सुरान् हरः। लोकाश्च 'प्रमये' साथि विवेश 'भवनं' स्वकम्॥२८॥

है पुरुष-सयोग से प्रधान गुण व करने वाले को नमस्कार है ॥२०॥ प्रकृति पुरुष व प्रवक्तृ को नमस्कार है
 कृत और अकृत के सत् करने वाले को तथा कर्त्तव्ययोग देने वाले को नमस्कार है ॥२१॥ वाञ्छ तथा सब के
 नियामक को नमस्कार है और विषम करने वाले तथा गुणा की वृत्ति देने वाले को नमस्कार है ॥२२॥ हे देवदेवेश !
 हे प्राणिमा की उत्पत्ति करनेवाले ! आपकी नमस्कार है ! हे शिव ! हे प्रभो ! अग दान करने के योग्य सौम्य
 रूप तथा सौम्यमुखवाले हो जायें ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवगणों द्वारा स्तुति किया जाने पर जगत्पति तथा उमापति भगवान् धक्कर न
 उठने बहा ॥२४॥

श्रीशङ्कर ने कहा—देववृद्ध ! मैं देवताओं व ऋषि मुनि से देने योग्य तथा सौम्यरूप हूँ। आप लोग
 जो वरदान माँगते चाह उससे मैं निमदेह दूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तब सद्यन्त देवता शिव का प्रणाम करते हुए बोले ॥२६॥

देवताओं ने कहा—भगवा ! आप हम जो वरदान देना चाहते हैं, अपने पास सुरगण रखें। जब आरम्भ करने
 पड़ेगी तब आप हम अमित्रयित वरदान दीजिएगा ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—एवमस्तु ब्रह्मन् भगवान् शिव न देवताओं को विदा दिया और प्रमथ नामक गुण व साथ

यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेन गापति देवतविप्रसमक्षम् ।

सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो देहविषय्यमेत्य सुखी स्यात् ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्या स्तव हीम भृणुयाद्वा पठेच्च य । स सर्वलोकगोदेवं पूज्यतेऽमरराडिव ॥३०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसवादे शिवस्तुतिनिरूपण

नाम सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

मदनदहन-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रणिष्टे भवत देवे सूपविष्टे यरासने । स वक्रो मन्मथ क्रूरो देव येदृमना भवत् ॥१॥

तमनाचारसायुधत दुरात्मान कुलाधमम् । लोकान् सध्वान् पीडयन्त 'सर्वाङ्गावरणात्मकम्' ॥२॥

अपन भवन म प्रवर्ग किया । जो देवना तथा ब्राह्मणा व समस्त गिव व इस अन्धुन उत्तम वा गान करणा वह मरन पर गणा व समान दह प्राप्त कर सुखी हागा ॥२८ २९॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवर ! जो इस म्मोत्र को मुनगा या पागा वह समस्त लोक वा प्राप्त कर देवनाश द्वारा इन्द्र व समान पूजित होगा ॥३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि व मवाद प्रकरण म शिवस्तुतिनिरूपण

नाम सैनीसवी अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

मदन-दाह वा वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जब गिव न अपन भवन म प्रविष्ट हाकर धष्ट आसन ग्रहण किया ता कृत्ति कर बन्दन ने उठ नाम-आयना म विचित्रि करता बागा ॥१॥ विप्रवर ! अनाचार म मरुक्त दरमा वन म अपन

श्रद्धीणां विघ्नकर्त्तार नियमानां व्रतं सह। चक्राह वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम्॥३॥
 अयाऽस्ततायिन विप्रा वेदुक्काम सुरेश्वर। नयनेन तृतीयेन सावज समवक्षत॥४॥
 ततोऽस्य नेत्रजो बह्विज्वालामालासहस्रवान। सहसा रतिभर्तारमदहत् सपरिच्छदम्॥५॥
 स दह्यमान करुणमात्तोऽक्रोशत विस्वरम्। प्रसादपश्व त देव पपात धरणीतले॥६॥
 अय सोऽग्निपरीताङ्गो ममथो लोकतापन। पपात सहसा मूच्छा क्षणेन समपद्यत॥७॥
 पत्नी तु करुण तस्य विललाप सुदु खिता। देवो देवञ्च दुःखार्ता अयाचत् करुणावती॥८॥
 तस्याश्च करुण ज्ञात्वा देवो तो करुणात्मको। ऊचतुस्तां समालोक्य समाश्वत्स्य च दुःखिताम्॥९॥

उमामहेश्वरावचतु

दग्ध एव ध्रुव भद्रे नास्योत्पत्तिरिहव्यते। अशरीरोऽपि ते भद्रे कार्यं सर्वं करिष्यति॥१०॥
 यदा तु विष्णुभगवान् वसुदेवसुत शुभे। तदा तस्य सुतो यश्च पतित्ते सम्भविष्यति॥११॥

ब्रह्मोवाच

तत सा तु वर लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना। जगामेष्ट तदा देश प्रीतियुक्ता 'गतबलमा'॥१२॥
 दग्ध्वा काम ततो विप्रा स तु देवो वृषध्वज। रेमे तत्रोमया सार्द्धं प्रहृष्टस्तु हिमाचले॥१३॥

समस्त लोगो का उत्पीडन करने वाले सब अगो को आवन करने वाले आयिया व नियमा एव व्रता म विष्णु करने वाले चक्र के का रूप धारण कर रति क साथ आने वाले अयाचारी और गिव को विचलित करने के इच्छा उस काम को महादेव ने अपने तीसरे नेत्र स तिरस्कार पूर्वक देखा॥२४॥ तन्मन्तर सहसा ज्वालाओ वाला अग्नि गिव के नेत्र से उत्पन्न होकर वस्त्र आमूषण सहित कामदेव को सहसा जलने लगा ॥५॥ दग्ध होना हुआ काम दुःखी होकर जोर स चिल्लाये लगा और गिव को स्तुति करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६॥ लोकतापन काम अग्नि से सर्वांगदग्ध होकर सहसा मूर्छित हो गया॥७॥ उसकी पत्नी रति दुःखिन होकर करुण विलाप करने लगी। करुणावती दुःखपीडिता रति गिव तथा पावनी स याचना करन लगी ॥८॥ उसकी करुण स्थिति समझकर करुणारूप भवानी गकर दुःखिन रति को आश्वासन देन हुए बोले—॥९॥

उमा और महेश्वर ने कहा—मम। यह तो दग्ध हो गया। अब इसकी उत्पत्ति नहीं होगा। पर गरीर न होने पर भी यह तुम्हारा सब काम कर देगा। शुभे। जब विष्णु भगवान् वसुदेव के पुत्र हाने तब उनका पुत्र तुम्हारा पनि होगा। १० ११

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त कल्याणमयी कामपत्नी वर प्राप्त कर प्राप्त रतिन हा गई और प्रसन्न होकर अमीष्ट स्थान को चली गई॥१२॥ द्विजगण कामको दग्ध कर भगवान् गकर उमी हिमाचल पर प्रसन्नतापूर्वक उमा व साथ रमण करने लगे। १३। रमणाव वन्त्राभाम पद्मवनाम पुष्पाभाम मनाहर शीला म वनचक्षुष्यवना

कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु^१ च । निर्गरेषु च रम्येषु कर्णिकारवनेषु च ॥१४॥
 नदीतीरेषु कान्तेषु किन्नराचरितेषु च । शृङ्गेषु शंलराजस्य तडागेषु सरसु च ॥१५॥
 वनराजिषु रम्यासु नानापक्षिस्तेषु च । तीर्थेषु पुण्यतीर्थेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥१६॥
 एतेषु पुण्येषु^२ मनोहरेषु, देशेषु विद्याधरभूषितेषु ।
 गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु, रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्र^३ ॥१७॥
 देवैः सहैन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धैर्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः ।
 अन्यैश्च सर्वैर्विविधैर्वृतोऽसौ, तस्मिन्नेव हृष्यमवाप शम्भुः ॥१८॥
 मृत्यन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा, गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः ।
 दिव्यानि वाद्यान्यथ वादयन्ति, केचिद्भुतं^४ 'देववरं स्तुवन्ति' ॥१९॥
 एवं स देवः स्वगणैरुपेतो, महाबलं, शक्रयमानितुल्यं ।
 देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता, गिरिं न तस्याज तदा महात्मा ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा । अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

भगवान् हिमयच्छृङ्गे स हि देव्या. प्रियेच्छया । गणेशंविधाकारं^१ सं सञ्जनयन् मुहुः ॥२२॥

म, सुन्दर नदी-तटा पर, किन्नरा से सेवित पर्वतराज के शिखर पर तालावा म, सरोवरा म मनोरम तथा नाना पशियों के कलरव से प्रतिध्वनित बना म पवित्र जल वाले तीर्थों म और मुनिया के आश्रमा म—मनोहर, विद्याधरो स भूषित और गन्धर्व, यथा तथा देवताआ से सेवित पवित्र स्थाना म—शक्र ने भवानी के साथ रमण किया ॥१४ १७॥ उमो पर्वत पर इन्द्र आदि देवता, मुनि, यथा, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, राक्षस एवं विविध गणा से आवृत होकर शक्र हर्षित हुए ॥१८॥ [यहाँ अप्सरायें नाच करती थी, देवता तथा गन्धर्वगण प्रसन्न होकर गान करत थे कोई दिव्य वाजे बजाते थे और कोई हुन गति स शक्र की स्तुति करने थे ॥१९॥] इस प्रकार इन्द्र और यम के तुल्य महा बलवान् अपने गणा से युक्त होकर भग देवता के नेत्र को नष्ट करने वाले महात्मा शम्भु ने प्रिया के निमित्त पवन को नहीं छोड़ा ॥२०॥

ऋषियो ने कहा—काम-नाशन भगवान् शिव न वहाँ रहत हुए उमा की प्रसन्नता के लिए क्या किया—यह हम समझना चाहत है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—हिमालय के शिखर पर उमा के मनोरञ्जन के लिए भगवान् शिव अनन्य प्रकार के

देवीं बालेन्दुतिलको रमयश्च रराम च। महानुभावं सर्वज्ञं कामरूपधरं शुभे ॥२३॥
 अयं देव्याससादंका मातरं परमेश्वरी। आसीनां काञ्चने शुभ्र आसने परमावभुते ॥२४॥
 अयं दृष्ट्वा सतीं देवीभगता सुररूपिणीम्। आसनेन महार्हेणासम्पादयदनिदिताम् ।
 आसीना तामथोवाच मेना हिमवत प्रिया ॥२५॥

मेनोवाच

चिरस्यागमनं तेऽद्य वद पुत्रि शुभेक्षणे। दरिद्रा क्रीडन्तस्त्व हि भर्त्रा क्रीडन्ति सङ्गता ॥२६॥
 ये दरिद्रा भवन्ति स्म तथैव च निराश्रया। उभे त एव क्रीडन्ति यथा तव पति शुभे ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

संवमुक्ताऽयं मात्रा तु नातिहृष्टमनाभवत्। महत्या क्षमया युक्ता न किञ्चित्तामुवाच ह।
 विसृष्टा च तदा मात्रा गत्या देवमुवाच ह ॥२८॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश नेह वत्स्यामि भूधरे। अयं कुश ममाऽऽवाप्त भुवनेषु महाद्युते ॥२९॥

देव उवाच

सदा त्वमुच्यमाना धं मया वासार्थमोदधरि। अयं न रोचितवती वास धं देवि कर्हिचित् ॥३०॥

गण-नायका के साथ बार बार हास्य करते थे ॥२२॥ वाग्वाक्प तिलकारी गिव इच्छानुसार रूप धारण करने वाले क-पाणमय सवन तथा विगाड ह्मयवाले गण-पतिया के साथ हास्य करके उमा को प्रमृगित करते थे तथा स्वयं आनन्दित होते थे ॥२३॥ एक समय पावनी मुखण के स्वच्छ तथा परम अमन आसन पर बैठी हुई माता क-पाम ग ॥२४॥ देव रूपधारिणी सती को देखकर हिमालय की पत्नी मेना न उम अनिष्ट देवी को बहुमूल्य आसन पर बैठाया और कहा ॥२५॥

मेना बोली—हे क्षम नन्ना बाला पुत्र-! बहुत त्ति। पर तुम आई हो। कहा स्वामी के सग श्रीग करते करने तुम भा दरिद्र हो गई क्या ? जो दरिद्र तथा आश्रयहीन होते हैं वे हा इस प्रकार श्रीग करते हैं जैसे कि तुम्हारा पनि कर रहा है ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—माता का यह बात सुनकर उमा हसित न हुई। क्षमागता होने के कारण वह माता के प्रिय कुछ नहीं बिग होकर गकर के पास जाकर बोली ॥२८॥

पार्वती ने कहा—भगवन् ! हे देव-देवेश ! मैं अब इस पवन पर नहीं रहूँगी। हे महाकर्मात्मन् ! मेरे लिए त्रिभुवन में कहा दूगम आवास-न्याय दंडिय ॥२९॥

देव ने कहा—ओ ! ईश्वरी ! मैं तो आगस्थान के लिए तुमसे सग कहना था पर तुम्हें तो कभी

इदानीं त्वयमेव त्वं वासमन्यत्र शोभने । कस्मान्मृगयसे देवि ब्रूहि तन्मे शुचिस्मिते ॥३१॥

देव्युवाच

गृह गताऽस्मि देवेश पितुरद्य महात्मन । दृष्ट्वा च तत्र मे माता विजने लोकभावेन ॥३२॥
आसनादिभिरभ्यर्च्य सा मामेवमभाषत । उमे तव सदा भर्ता दरिद्रः क्रीडनं शुभे ॥३३॥
क्रीडते न हि देवानां क्रीडा भवति तादृशी । यतः किल त्वं महादेव गणेश च विविधैस्तथा ॥३४॥
रमतो तदनिष्ट हि मम मातुर्वर्षध्वजः

ब्रह्मोवाच

ततो देव प्रहस्याऽऽह देवीं हासयितुं प्रभु

ਦੇਵ ਉਵਾਚ

एवमेव न स देह कस्मात्पुनरभूतव । कृत्वासां ह्यवासाश्च श्मशाननिलयश्च ह ॥३६॥
अनिकेतो ह्यरण्येषु पर्वतानां गुहासु च । विचरामि 'गणनं नंदंतोऽभोजविलोचने ॥३७॥
मा कृधो देवि मात्रेऽव तस्य माताऽवदत्तव । न हि मातृसमो बधुर्जन्तूनामस्ति भूतले ॥३८॥

देव्युवाच

न मेऽस्ति बाधभिः किञ्चित् कृत्यं सुरवरेण्यवरः । तथा कुरु महादेव यथाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥३९॥

दूमरी जगह रुका ही नहीं। मुंदरी। पवित्रहास्य वा० । क्या कारण है कि इस समय तुम स्वयं दूमरी जगह जाह्न हो? ॥३० ३१॥

देवी ने कहा—वेग। आज मैं पूज्य पिता के घर गई थी। वहाँ जन मन भावन एकान्त स्थान में बस माता को मन देया। आसन आदि प्रदान कर मेरा साकार करता हुई वह मुझसे इस प्रकार कहने लग—उम। मुन्दारा पति त्राडा करते-करते दरिद्र हो गया है। इसलिए कि देवताभा की तरह वह श्रीडा नहीं करता। हे भग्येव। आप जो विविध गणा के साथ रमण करते हैं वह मर माता को बुरा लगता है ॥३२ ३४॥

ग्रह्या ने कहा—तब प्रभु स्वयं हगवर देवी को हसाते हुए बोले ॥३५॥

देव ने कहा—वान एमी ही है इसम कोई साग्य नहा है तुम्ह क्या बोध हुआ ? हे पद्मोत्तरे ! मैं पद्म पहन्ता हूँ नही भी कुछ पहन्ता हूँ "मगान म रहता हूँ नही मां वही रहता हूँ और बना म तथा पवता मी गुणात्रा म नमन गणा के साथ बिचरण करता हूँ। देवी ! तुम माता के ऊपर काय मत करो ! उसन साग्य नहा है। पृथ्वीतल पर प्राणियो के लिए माता के समान कोई शयु नहीं है ॥२३ ३८॥

देवी ने कहा—वधू ! मुख बधआ मे मुछ करना नही है। मन्दादेन अब आप वही नीत्रिये दिगमे
मम मुख मिले ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वा स देव्या वचनं सुरेशस्तस्याः प्रियार्थे 'स्वगिरिं विहाय ।
जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं', भार्यासहायः स्वगणैश्च युक्तः ॥४०॥
इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवादे उमा-महेश्वरयोर्हिमवत्परित्यागनिरूपणं
नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञविध्वंसनम्

ऋषय ऊचुः

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे । 'विनाशमगमद्' ब्रह्मन् ह्यमेध.' प्रजापते ॥१॥
देव्या 'मन्युवृत्तं बुध्वा ऋद्धः सर्वात्मक' प्रभुः । कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततेजसः ॥२॥
महादेवेन रोषाद्धे तन्नः प्रब्रूहि विस्तरात् ॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवी क वचन सुनकर उसकी अमोघ सिद्धि के लिए धार अपने पर्वत को छोड़कर मार्ग
और अपने गणों से युक्त होकर देवता तथा मित्रों से सुमेवित मेरुपर्वत पर चले गए ॥४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में शिव और पार्वती के
हिमालय-त्याग निरूपण नामक अष्टोत्तवीं अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३६

दक्ष के यज्ञ का विध्वंस

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् । ईशस्वत नामक मन्त्रान्तर में प्रचना-युक्त प्रजापति दक्ष का अरथमय यज्ञ
कैसे विनष्ट हुआ ? देवी के क्रोध (अन्य विनाश) की जानकारी हुई सर्वात्मक प्रभु ने अमित तेजस्वी दक्ष के
यज्ञ का विनाश कैसे किया ? महादेव ने क्रोध में जो किया वह विष्णुपूर्वक हम बतलाए ॥१-२॥

१ क ग स्वगुर । २ क ०१ ह्युष्टाग्य सर्वग ० । ३ क ०तागः स्वमवदृष्ट ० । ४ ग ०दक्षमवदृष्ट ० ।
५ क ग ०मेधप्र ० । ६ ग ०इनेत्यनु ० ।

पर्युपासत तं देवं रुषिणी द्विजसत्तमाः। एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरविभिः॥१७॥
 देवंश्च 'सुमहाभागं महादेवो व्यतिष्ठत। कस्यचित्त्वय कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः॥१८॥
 पूर्वोक्तेन विधानेन 'यक्ष्यमाणोऽग्न्यपद्यत। ततस्तस्य 'मखे देवाः सर्वे शक्रपुरागमाः'॥१९॥
 स्वर्गस्थानादथाऽग्न्य 'दक्षमापेदिरे तथा। ते विमानमहात्मानो'ज्वलद्भ्रुज्वलनप्रभाः॥२०॥
 देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः। गन्धर्वाप्तिरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम्॥२१॥
 'ऋषिसिद्धेः'परिवृतं दक्षं धर्मभूता वरम्। पृथिव्यामन्तरिक्षे 'च ये च स्वर्लोकासिनः॥२२॥
 सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम्। आदित्या वसवो रुद्राः 'साध्याः सर्वे मरुद्गणाः॥२३॥
 विष्णुना सहिताः सर्वे आगता 'यज्ञभागिनः। ऊर्मपा धूमपाश्चैव आग्न्यपाः सोमपास्तथा॥२४॥
 अश्विनौ मरुतश्चैव 'नानादेवगणैः सह। एते चान्ये च बहवो भूतप्राप्तास्तथैव च॥२५॥
 जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव स्वेदजो जिह्मदः। 'आगताः 'सत्रिणः सर्वे देवाः' 'स्त्रीभिः सहविभिः॥२६॥
 विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः'। तान् दृष्ट्वा मग्न्याऽऽविष्टो दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्॥२७॥

की उपासना में लगी रहती थी॥१५-१६॥ इस प्रकार देवपिता तथा महाभाग देवताओं से पूज्यमान भगवान् शिव वही रहने थे। कुछ काल बाद दक्ष नामक प्रजापति ने पूर्वोक्त विधान के अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया॥१७-१८॥ ऐसा मुना जाता है कि उसके यज्ञ में इन्द्र आदि देवता स्वर्ग से आकर उपस्थित हुए। जलते हुए अग्नि के समान कान्तिवाले वे महाभाग शिव की अनुमति पाकर गंगा-द्वार (हरिद्वार) में पहुँचे।—॥१९-२०॥ पृथिवी, आकाश तथा स्वर्गलोकासी—मखे सब गन्धर्व तथा अप्सराओं से समन्वित, नाना वृक्ष-लताओं से आवृत, ऋषि, तथा सिद्धा में वसित और धर्मधारियों में श्रेष्ठ प्रजापति दक्ष को हाथ जोड़कर उपागमन हुए॥२१-२२॥ विष्णु महिम्न आदित्य, वसु रुद्र, माध्य और मरुद्गण—ये सब यज्ञ में भाग लेने के लिए आये॥२३॥ ऊर्म पान करने वाले धूम पान करने वाले, घी पान करने वाले, सोमरस पान करने वाले, अश्विनीकुमार, नाना देवगण, मरुद्गण—य तथा दूसरे बहुत स प्राणी—जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिग्ज वही आये। सब देवगण ऋषियों तथा त्रिषया के साथ विमान में स्थित होकर अग्नि के समान दीप्यमान तथा शोभायमान होने हुए पथारे। उन्हें देखकर ऋषि से जाग्रित हो दधीचि ने कहा॥२४-२५॥

दधीचिरुवाच

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने । नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा^१ तु विप्रपिः पुनर्दक्षमभाषत ॥२९॥

दधीचिरुवाच

पूज्यञ्च पशुभर्तारं कस्मान्नार्चयसे प्रभुम्^२ ॥३०॥

दक्ष उवाच

'सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कर्पाद्दिनः । 'एकादशस्यानगता नान्यं विद्मो महेश्वरम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं ममेशो न निमग्नितः । यथाऽहं शङ्करादूर्ध्वं नान्यं पदयामि देवतम् ।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥३२॥

दक्ष उवाच^३

विष्णोश्च भागा विविधाः प्रदत्तास्तथा च रुद्रेभ्य उत प्रदत्ताः ।
अन्येऽपि देवा निजभागयुक्ता, ददामि भागं न तु शङ्कराय ॥३३॥

दधीचि बोले—अपूज्या के पूजन तथा पूज्या के अपूजन से मनुष्य महापाप का मागी होता है इसमें कोई संशय नहीं ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रपि इनका कहकर फिर दक्ष से कहने लगे ॥२९॥

दधीचि ने कहा—सर्वशक्तिमान् पशुपति की पूजा क्या नहीं करते हो ? ॥३०॥

दक्ष ने कहा—प्यारह स्वाना में प्राप्त, जटाधारी तथा विमूल हाथ में लिए अनवर रुद्र मेरे पास हैं मैं हमारे महेश्वर को नहीं जानता ॥३१॥

दधीचि ने कहा—सबका एकमात्र यही कहता है कि मेरे प्रभु का निमग्नित नहीं किया गया । जिस प्रकार मैं शवर से कहकर किसी हमारे देव को नहीं समझता उसी प्रकार दक्ष का यह बृहत् यज्ञ (सम्पन्न) नहीं होगा ॥३२॥

दक्ष ने कहा—मैंने विष्णु को विविध भाग दिये, रुद्रा को दिये और हमारे देवों ने भी अपने-अपने भाग पाये, पर मैं शवर को यज्ञ-भाग नहीं दे सकता हूँ ॥३३॥

१ ग ० च वा मुनिविश्रात्यनुवर्तयाम ० । २ य विभुम् । ३ स सन्निहित ० । ४ य ० य तथा चाग्य विप्रदे ने म ० । ५ ग ० च । एतन्मतेनाय मुक्कणपात्र हवि समस्त विधिभक्तपूजम् । विष्णुस्त्वयस्याप्रतिवेद्य भाग न यज्ञभाग तु महेश्वराय । जगत्प्रभुस्य दधीचि भाग विष्णोश्च नित्य विवृषं प्रदत्तम् । तस्मादहं देववराय दद्या यन्मय भाग ।

ब्रह्मोवाच

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तवा । उवाच ध्वजनं 'शर्वं देवं पशुपतिं पतिम् ॥३४॥

उमोवाच

भगवन् कुत्र गन्त्येते देवाः शत्रुपुरोगमाः । ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥३५॥

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः । हयमेधेन यजते तत्र गान्ति दिव्योक्तः ॥३६॥

देव्युवाच

यज्ञमेतं 'महाभाग किमर्थं नानुगच्छसि । केन वा प्रतिपेधेन गमनं ते न विद्यते ॥३७॥

महेश्वर उवाच

सुरैरेव' महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम् । यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥३८॥

पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण वरवर्णिनि । न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥३९॥

उमोवाच

भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावान्मधिको गुणः । अजेयश्चाप्यध्व्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥४०॥

अनेन तु महाभाग प्रतिपेधेन भागतः । अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च महानयम् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब (दक्ष के यज्ञ में) गये देवताओं को जानकर गिरि-कुमारी अपने पति पशुपति शिव से कहने लगी ॥३४॥

पार्वती बोली—भगवन् ! ये इन्द्र आदि देवता वहाँ जा रहे हैं ? हे तत्त्वज्ञ ! बतलाए, मुझे बड़ा संशय हो रहा है ॥३५॥

महेश्वर ने कहा—महाभागे ! दक्ष नामक उत्तम प्रजापति अस्वमेध यज्ञ करते हैं। वही ये देवता लोग जा रहे हैं ॥३६॥

देवी बोली—हे महाभाग ! इस यज्ञ में आप क्या नहीं जाते ? आपने गमन पर कान-सा प्रतिबन्ध लग गया है ? ॥३७॥

महेश्वर ने कहा—महाभाग ! देवताओं ने ही यह शत्रु किया है। किसी भी यज्ञ में मुझे भाग नहीं मिलता। श्रेष्ठ वर्ण-वाली ! पहले के मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिये। देवता लोग यज्ञ में धर्मपूर्वक भाग मुझे नहीं देते ॥३८-३९॥

उमा ने कहा—भगवन् ! समस्त देवताओं से आप अधिक प्रभावशाली तथा गुणवान् हैं। तेज, यश और श्री में भी आप अजेय तथा अध्व्य (न दबाने योग्य) हैं ॥४०॥ भाग ने इस निषेध के कारण मैं बड़ी दुर्गता हूँ,

किं नाम दान नियम तपो वा, 'कुर्यामिह येन पतिर्ममाद्य
लभेत भाग भगवानचिन्त्यो, यज्ञस्य' चेन्द्राद्यमरं विचित्र (भवत्) म्

॥४२॥

ब्रह्मोवाच

एव श्रुवाणा भगवान् विचित्र्य, पत्नीं प्रहृष्ट क्षुभितामुवाच

महेश्वर उवाच

न वेत्सि मा देवि कृशोदराङ्गि, किं नाम युक्त वचन तवेवम्

॥४३॥

अहं विज्ञानामि विशालनेत्रे, ध्यानेन सर्वं च विदन्ति सन्त

तवाद्य' मोहेन सहेन्द्रदेवा, लोकत्रय सर्वमयो विनष्टम्

॥४४॥

मामध्वरेश नितरा स्तुवन्ति, रयन्तर साम गायन्ति मह्यम्

मा ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैर्व्यजति, ममाध्वर्यवं कल्पयन्ते च भागम्

॥४५॥

देव्युवाच

विस्त्यसे प्राकृतयत् सर्वस्त्रीजनसत्सवि। 'स्तोपि गर्वापसे' चापि स्वमात्मान न सशय ॥४६॥

भगवानुवाच

नाऽऽत्मान स्तोमि देवेश यथा त्वमनुगच्छसि। सत्तदयामि' वरारोहे भागार्थं वरवर्णिनि ॥४७॥

मेरा शरीर काँप रहा है ॥४१॥ मैं कौन सा दान नियम या तप कर जिससे मेरे अचिन्त्य तथा शक्तिमान् पति यज्ञ म इन्द्र आदि देवताओं से भी विरूपाक्ष भाग प्राप्त करेंगे ॥४२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहत हुई इस ली पत्नी को दत्त कर प्रसन्न भगवान् गवर बोले।

महेश्वर ने कहा—हे क्षीण बटि वाली ! देवी ! क्या तुम मुझ नहीं जानती हो ? क्या यह तुम्हारा वचन युक्ति-मगत है ? ॥४३॥ हे विजालाक्षी ! मैं सब कुछ जानता हूँ क्योंकि योगीजन ध्यान से सब कुछ समझ लेत हैं। आज तुम्हारे मोह के कारण इन्द्र आदि देवता महित तीना लोक नष्ट हो जायेंगे ॥४४॥ ब्राह्मण लोग मुझ यज्ञपति की स्तुति करते हैं मेरे लिए रयन्तर साम का गान करते हैं तथा वेन् मन्त्रों म यज्ञ करते हैं और अध्वर्यु मझ भाग देन है ॥४५॥

देवी ने कहा—स्त्रिया की समा म साधारण मनुष्य की तरह आज अपनी बर्नाई करत हैं डींग हाँकत है तथा गव करते हैं इसम कोई सनेह नहीं ॥४६॥

भगवान् ने कहा—हे देवताओं की स्वामिनी ! मैं अपना प्रणाम नही करता जैसा कि तुम समझ रहा हो। हे स्त्रार रत्न ! हे मुन्दर वण वात्री ! मैं अपने भाग क लिए मृष्टि करूँगा ॥४७॥

१ क' इयां मम येन विभागमय। २ ग ० स्य भाग ह्ययवानूर्तयग। ३ स कालेन। ४ ग ० च-प्राप्तुं गीह पुर्य सव०। ५ ग स्तोमि। ६ स ० र्वाभिन्तस्तु त्वमा०। ७ क' स प्रवक्ष्यामि।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमां प्राणैरपि प्रियाम्। सोऽसृजद्भगवान् 'ववत्राद्भूतं क्रोधाग्निसम्भवम् ॥४८॥
तमुवाच मखं गच्छ दक्षस्य त्वं महेश्वर। नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दक्षस्य मदनुज्ञया ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहवेपेण लीलया। देव्या मन्युकृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥५०॥
मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी। आत्मनः 'कर्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥५१॥
स एष भगवान् क्रोधः प्रेतावासकृतालयः। वीरभञ्जने विख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥५२॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य 'आत्मनैव गणेश्वरान्। रुद्रानुगान्गणान् रौद्रान् रुद्रवीर्यपराक्रमान् ॥५३॥
रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः। ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽय सहस्रशः ॥५४॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव। समभूत् सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः ॥५५॥
तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिवौकसः। पर्वताश्च व्यशीर्यन्त चकम्पे च वसुन्धरा ॥५६॥
महतश्च ववुः क्रूराश्चक्षुभे वरुणालयः। अग्नयो वै न दीप्यन्ते न चादीप्यत भास्करः ॥५७॥
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः। ऋषयो न प्रभासन्ते न देवान च दानवाः ॥५८॥
एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति गणेश्वराः। प्रभञ्जन्त्यपरे यूपान् घोरान्तुषाटयन्ति च ॥५९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राणाधिक प्रिया उमा से इस तरह कहकर भगवान् ने क्रोधाग्नि के द्वारा अपने मुख से एक भूत को उत्पन्न किया। उससे शक्र ने कहा—'तुम दक्ष के यहां दीप्ति आकर उसके यज्ञ का विध्वंस करो।' ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर रुद्र ने भेजे हुए उम भूत ने लीला में सिंह का वेप धारण कर पार्वती का क्रोध जानकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट किया ॥५०॥ क्रोध से महाभयकर भद्रकाली माहेश्वरी भी आत्मा को कर्म-साक्षी बनाकर भूत के साथ ही बल पड़ी ॥५१॥ उस बली, क्रोधहारी, समानवासी तथा देवी के त्राप को मिटाने वाले भूत का नाम वीरभद्र था ॥५२॥ उसने अपने रोम-रूपा से रुद्र के अनुगामी, भयकर तथा रुद्रतुल्य पराक्रमी गण-नायका की सृष्टि की ॥५३॥ सबके साथ रुद्रतुल्य पराक्रमी तथा रुद्र के अनुचर थे। ये सबको हजारों की संख्या में दीघता से टूट पड़े ॥५४॥ विप्रबुद्ध! तब रुद्रगणा की विल्लकारी इतनी अधिक हुई कि (उससे) आकाश भर गया ॥५५॥ उस महाशब्द से देवता डर गये, पर्वत टूटने लगे, पृथ्वी काँप उठी, वायु घुरता से बहने लगा, समुद्र मग्न हो उठा, अग्नि दीप्त पड़ गया, सूर्य, ग्रह नक्षत्र और तारे प्रकाश से बँटे और ऋषि, देव तथा दानव तजोहीन हो गए ॥५६-५८॥ इस प्रकार सर्वत्र तिमिरावृत्त हो जाने पर वे

प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्वन्ति तथा परे । स्वरितं नै प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ॥६०॥
 चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि । शीर्यमाणान्यद्वयन्त तारा इव नभस्तलात् ॥६१॥
 दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्वतोपमाः । क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकूर्दमाः ॥६२॥
 मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करबालुकाः । पट्टरसान्निवहन्त्यया गुडकुल्या मनोरमाः ॥६३॥
 उच्चावचानि मांसानि भक्ष्यानि विविधानि च । यानि कानि च दिव्यानि लेह्यचोष्वाणि यानि च ॥६४॥
 भुञ्जन्ति विविधैर्वन्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च । रुद्रकोपा महाकोपाः कालाग्निस्तदुपमाः ॥६५॥
 भक्षयन्तोऽय शैलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः । क्रीडन्ति विविधकारादिचक्षिपुः सुरयोषितः ॥६६॥
 एवं गणाश्च तैर्धुवतो वीरभद्रः प्रतापवान् । रुद्रकोपप्रयुक्तश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥६७॥
 तं यज्ञमदहच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः । चक्रुरग्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान् ॥६८॥
 छित्त्वा शिरोऽग्रे यज्ञस्य व्यनदन्त भयङ्करम् । ततः शक्रादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ॥६९॥
 ऊचुः पाञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति

वीरभद्र उवाच

नाहं देवो न दैत्यो वा न च भोवतुमिहागतः । नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कीतूहलान्वितः ॥७०॥

गणेश्वर यज्ञमण्डप को जलान लगे । कोई मयानव भूपो (यज्ञ स्तम्भो) को तोड़ते उलाढते, तो कोई अव्यक्त शब्द करते थे । कोई कुत्सित शब्द करते थे और कोई वायु तुल्य या मन तुल्य शीघ्रता से दौड़ते थे ॥५९-६०॥
 यज्ञ-पात्र चूर-चूर कर दिये गये । यज्ञ-गृह टूट कर इस प्रकार गिरे जैसे आकाश से तारे गिरते हैं ॥६१॥ (वहाँ) दिव्य अन्न, पान तथा भक्ष्य पदार्थों की राशि पर्वत की तरह थी । दूधवी नदियाँ बह रही थी । घी तथा खीर रूप की बड़ वाली, मधु तथा मट्ठा रूप जल वाली और खाड़ तथा शक्कर रूप रेत वाली दूसरी दिव्य नदियाँ बह रही थी । छोटी रसो की बहाने वाली अन्य मनोरम गुड की नहरें थी ॥६२-६३॥ छोटे-बड़े मांस तथा चाटने योग्य और चूसने योग्य विविध प्रकार की भक्ष्य सामग्रियाँ थी ॥६४॥ (इन पदार्थों को) रुद्र कौपरूपी, महाकौपरूपी, कालाग्नि की उपमा देने योग्य तथा पर्वताकार गणेश्वर अनेक मुखों से खाते और फाँटते थे । अनेक रूपवारी गण सामग्रियों को खाते, लोपो को डराते, क्रीड़ा करते तथा देवागनाआ के ऊपर प्रक्षेप करते थे ॥६५-६६॥ इस प्रकार गणों से युक्त, रुद्रकोप से उत्पन्न, प्रतापी वीरभद्र ने निखिल देवों से सुरक्षित उस यज्ञ को भद्रकाली के सामने ही शीघ्र जला डाला । अतिरिक्त गणों में से कुछ तो प्राणीमात्र को मयानक लगने वाले शब्द करने लगे और कुछ यज्ञ के शिर को काट कर भीषण चीत्कार करने लगे । तदनन्तर शक्र आदि देवता और प्रजापति दक्ष ने अजलि बाघ बन पूछा कि आप कौन हैं ॥६७-६९॥

वीरभद्र ने कहा—देवश्रेष्ठो ! मैं न देव हूँ, न दैत्य हूँ, न खाने के लिए आया हूँ, न देखने के लिए आया हूँ और न मुझे कुतूहल ही है ॥७०॥ देववृन्द ! मैं तो दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने के लिए आया हूँ । वीरभद्र

दक्षयज्ञविनाशार्थं सम्प्राप्तोऽहं सुरोत्तमा । वीरभद्रेति विख्यातो रुद्रकोपाद्विनि सृत ॥७१॥
भद्रकाली च विख्याता देव्या क्रोधाद्विनिर्गता । प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागतं ॥७२॥
शरण गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुपापतिम् । वर क्रोधोऽपि देवस्य न वरः परिचारकं ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

निखातोत्पाटितेऽप्येव विद्वंस्ततस्ततः । उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रेरामिषगृध्नुभिः ॥७४॥
पक्षवातविनिर्धूतं शिवारुतविनावृतं । स तस्य यज्ञो नृपतेर्बाध्यमानस्तदा गणं ॥७५॥
आस्थाय भृगरूपं वै लभेवाभ्यपतत्तदा । तन्तु यज्ञ तयारूपं गच्छन्तमुपलभ्य स ॥७६॥
घनुरादाय बाणञ्च तदर्थमगमत् प्रभु । ततस्तस्य गणेशस्य क्रोधादमिततेजसः ॥७७॥
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदविन्दुर्बभूव ह । तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदविन्दो तदा भुवि ॥७८॥
प्रादुर्भूतो महानग्निर्ज्वलत्कालानलोपमः । तत्रोदपद्यत तदा पुरयो द्विजसत्तमा ॥७९॥
ह्रस्वोऽतिमात्रो रवताक्षो हरिच्छमभ्रुर्विभीषणः । ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्गः शीणकर्णस्तथैव च ॥८०॥
करालकृष्णवर्णश्च रवतवासास्तथैव च । त यज्ञ स महासत्त्वोऽवहत्क्षमिवानलः ॥८१॥
देवाश्च प्रद्रुता सर्वे गता भीता दिशो दश । तेन तस्मिन्विचरता विक्रमेण तदा तु यैः ॥८२॥
पृथिवी व्यचलत्सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः । महाभूते प्रयुक्ते तु देवलोकभयकरे ॥८३॥

मेरा नाम है । रुद्रकोप से मेरी उत्पत्ति हुई है ॥७१॥ पार्वती के क्रोध से उत्पन्न भद्रकाली की भी शक्ति ने यज्ञ के संधीप भेजा है । राजेन्द्र ! देव-देव उपापति की शरण में जाओ । महान् का नौप भी वरदान होता है और नीच का वरदान भी हेष होता है ॥७२-७३॥

ब्रह्मा ने कहा—तोड़े उखाड़े तथा दधर ऊपर बिखरे हुए यूपों उड़ते गिरते तथा पत्ता के दायु स बँपान मांसाभिन्नायी गिद्धों और शृगालों के शब्दों द्वारा जब रुद्र गण राजा के यज्ञ में बाधा डालने लगे तब यज्ञ मृग का रूप धारण कर आकाश में उड़ गया ॥७४-७५॥ यज्ञ को उस प्रकार जात हुए देख कर प्रभु वीरभद्र न घनुष और बाण लेकर उसका पीछा किया ॥७६॥ त्रौप में उस अग्नि तजस्वी गणनायक का मस्तक से मयकर स्वेद बिन्दु टपन पड़ा ॥७७॥ द्विजप्रेत्यो ! पृथ्वी पर उस स्वेद बिन्दु का गिरत ही बालाग्नि का समान जल्ला हुआ महान् अग्निरूप पुरुष उसमें उत्पन्न हुआ ॥७८-७९॥ वह अत्यन्त छाया था उसका नत्र लाल थे दाढ़ी-मूँह नीला तथा मयकर थी कर्णों के ऊपर की ओर उठे थे अंगों में बहुत रोएँ थे बाल लाल थे वण भयानक तथा बाण था और वस्त्र लाल था ॥८०॥ उस महाशक्ति ने यज्ञ को उगी तरह जग डाला जैसे अग्नि मृग गुण को जग देता है । देवगण डर के मारे दगा दिया आग में भोग गये ॥८१॥ जब वह जीव पराक्रम से विचरण करने लगा तब माना और महान् पृथिवी काग उठी ॥८२॥ देव समूह को डराने वाले उस महाशक्ति के उत्पन्न

१ स ० नागशेखरः ॥ २ क परः ३ क ० ररेः । नि० ४ क ग ० नेर्वध्यः । ५ स बाणारव तः ।
६ क ० स्यगुणं मयकर था० । ७ क ० निगर्जनामार्ग मयकर । तः । ८ क ० गता तदस्तः । ९ क महाशक्तिः ।
ग महाशक्ति का प्रत्येक दः ।

तदा चाहं महादेवमब्रुवन् प्रतिपूजयन् । भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दारयन्ति वै प्रभो ॥८४॥
 क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर स्वया । इमाश्च देवताः सर्वा ऋषयश्च सहस्रशः ॥८५॥
 तव श्रोष्ठान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे । यश्चैष पुरुषो जातः स्वेदजरते सुरर्षभ ॥८६॥
 ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति । एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेनसः प्रभो ॥८७॥
 समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम् । इत्युक्तः समया देवो भागे चापि प्रकल्पिते ॥८८॥
 भगवान्मातृ तयेत्याह देवदेवः पिनाकधृक् । परा च प्रीतिमगमत्स स्वयं च पिनाकधृक् ॥८९॥
 दक्षोऽपि मनसा देवं भवं शरणमन्वयात् । प्राणापानौ समावृध्य चक्षुस्थाने प्रयत्नतः ॥९०॥
 विचार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरभिन्नजित् । स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥९१॥
 धाविते च महास्थाने देवाना पितृभि सह । तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देव प्रजापति ॥
 भीतः शङ्खुरचित्तस्तु सबाष्पवदनेक्षणः ॥९२॥

दक्ष उवाच

यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽहं तव प्रियः । यदि चाहमनुप्राह्यो यदि देवो वरो मम ॥९३॥
 यद्बुध्यं भक्षित पीतं त्रासितं यच्च नाशितम् । चूर्णीभृतापविद्धं च यज्ञसभारमीदृशम् ॥९४॥
 दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च सञ्चितम् । न च मिथ्या भवेन्मह्य त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥९५॥

होने पर मैंने शिव की पूजा करते हुए उनसे कहा—‘प्रभो! आपको भी सब देवता भाग देगे ॥८३॥ ८४॥
 हे समस्त देवो के ईश्वर! आप संहार को रोकिये। आप के श्रोत्र के कारण ये सब देवता और हजारों
 मुनि शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! जो यह आपके पसीने से उत्पन्न पुरुष है यह तीनों
 लोक में ज्वर नाम से प्रसिद्ध होगा ॥८५-८६॥ हे प्रभो! एकत्रीभूत इस तेज को धारण करने में संपूर्ण पृथिवी
 समर्थ नहीं हो सकती। अतः इसको अनेक कर दीजिये’ ॥८७॥ जब इतना मैंने श्वर से कहा और उनका भाग भी
 ठीक कर दिया तब पिनाक नामक धनुषधारी महादेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुझसे कहने लगे कि ऐसा ही होगा
 ॥८८ ८९॥ दक्ष भी मन से शिव की शरण में गया। तब नेत्रस्थान में प्राण अपान वायु को यत्नपूर्वक रोक कर सब तरफ
 से दृष्टि हटाकर बहुदृष्टि वाले तथा शत्रुजित् शिव ने मुस्कराते हुए दक्ष से कहा—‘बहिये प्रजापति मैं आपका
 क्या उपचार करूँ?’ भयभीत, सन्निकित तथा नेत्रों में आसू भरते प्रजापति दक्ष ने पितरों के साथ देवताओं
 का महान् बाष्पान सुना कर हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥९०-९२॥

दक्ष ने कहा—हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और मैं आपका प्रिय हूँ मुझपर आपकी कृपा
 है और आप मुझे बर देना चाहते हैं, तो जो मेरी छात्र सामग्रियाँ लायी गई तथा नष्ट की गई और जो चिरकाल
 से महान् प्रयत्न से सचित यज्ञ-यदार्थ तोड़-ताड़ कर चूर चूर कर दिये गये वे सब मिथ्या न ही अर्थात् फिर
 मुझे प्राप्त हों ॥९३ ९५॥

१ क ग ०वतोऽपि । २ ख समाधाय । ३ ख चित्तस्थाने । ४ न विस्तार्य । ५ क ०रमावजि० ।

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्विह भगवान्भगनेत्रहरो हर । धर्माध्यक्षं महादेव त्र्यम्बकं च प्रजापति ॥९६॥
 जानुभ्यामवर्त्नी गत्वा दक्षो सन्ध्या भवाद्वरम् । नाम्ना चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्बृषभध्वजम् ॥९७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुक्त्युपनिषादे दक्षयज्ञविध्वसनं नामकोनचत्वारिंशो-
 शोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षकृतिशिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव दृष्ट्वा तदा दक्ष 'शभोर्वीर्यं द्विजोत्तमा । प्राञ्जलिं प्रणतो भूत्वा सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१॥

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन । देवेन्द्र त्वं बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—भग नामक आदित्य के नेत्र की फोड़ने वाले शिव ने ऐसा ही सही यह कहा । प्रजापति दक्ष शिव से घर प्राप्त कर पृथ्वी पर घुटने टेककर घम के अध्यक्ष तीन नेत्र से युक्त तथा वृषभारू महादेव की स्तुति करने लगा ॥९६ ९७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में दक्ष-यज्ञ विध्वसन नामक अठारहवीं अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव की स्तुति

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर ! राम के ऐसे पराक्रम की देखकर दण्ड हाथ जोड़कर सस्तन श्रुति कर उनकी स्तुति करने लगा ॥१॥

दक्ष ने कहा—हे देवदेव ! आगरी नमस्कार है । हे अथर्व नामक दैत्य की मारने वाले ! आगरी

सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय। सर्व्वत.पाणिपादस्त्वं सर्व्वतोक्षिशिरोमुख ॥३॥
 सर्व्वत ध्रुतिमांलोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठसि। शङ्खुकर्णो महाकर्णः। कुम्भकर्णोऽर्णवालयः ॥४॥
 गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते। शतोदरः शतावर्तः शतजिह्व सनातनः ॥५॥
 गायन्ति त्वां 'गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमार्कणः। देवदानवगोप्ता च' ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः ॥६॥
 मूर्तिमांस्त्वं महामूर्तिः समुद्रः सरसां निधिः। त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽसते ॥७॥
 त्वसतः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम्। आदित्यमय विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम् ॥८॥
 क्रिया करणकार्यं च कर्ता कारणमेव च। असत्त्वं सदसत्त्वं च तयं प्रभवाद्य (प्य) यो ॥९॥
 नमो भवाय शर्वाय हृदाय वरदाय च। पशूना पतये चैव नमोऽस्त्वन्धकधातिने ॥१०॥
 त्रिजटाय त्रिशोर्पाय त्रिशूलवरधारिणे। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरधनाय वै नमः ॥११॥
 नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च। 'दण्डिने शङ्खुकर्णाय' 'दण्डिदण्डाय' वै नमः ॥१२॥
 नमोऽर्धदण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च। विलोहिताय घूम्राय' नीलप्रोदाय वै नमः ॥१३॥
 'नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च। सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताश्विने ॥१४॥
 नमः प्रमथनाशाय वृषस्कन्धाय वै नमः। नमो हिरण्यगर्भाय' हिरण्यकवचाय च ॥१५॥

नमस्कार है। देवेन्द्र। बलश्रेष्ठ। देवदानवपूजित। सहस्राक्ष। विरूपाक्ष। त्रिनेत्र। कुबेर के सत्ता। आप सब ओर हाथ-पैर वाले हैं, सब तरफ नेत्र शिर वाले हैं, सब जगह कान वाले हैं और लोक में सबको आवृत करने स्थित हैं ॥३-३॥ शङ्ख के समान कर्ण वाले, महाकर्ण, धड़े के समान कर्णवाले, समुद्र में रहने वाले मन्त्रेन्द्र सदृश कर्णवाले गो सदृश कर्णवाले और सौ कर्णवाले आपको नमस्कार है ॥४॥ आप सौ उदर वाले सौ आवृत वाले सौ जिह्वा वाले तथा सनातन हैं ॥५॥ गायत्री के उपासक आपका भान करते हैं और सूर्य के उपासक सूर्य रूप में आप ही की पूजा करते हैं। आप देव-दानवों के रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्र हैं ॥६॥ आप मूर्तिमान् महामूर्तिमान् तथा सरोवरों की निधि समुद्र हैं। जैसे गावें गोष्ठ (गोठ) में रहती हैं वैसे अखिल देवता आप में रहते हैं ॥७॥ आप ही से सारी मयें चन्द्रमा, अग्नि, वज्र, सूर्य, विष्णु ब्रह्मा और बृहस्पति की देवता हैं ॥८॥ आप क्रिया करण कार्य कर्ता कारण, सत्-असत् तथा उत्पत्ति प्रलय रूप हैं ॥९॥ भव, शर्व, रद्र तथा वरद को नमस्कार है। पापुनि तथा अन्धव-माशन को नमस्कार है ॥१०॥ तीन जटा वाले, तीन शिर वाले, तीन नेत्र वाले त्रिशूलधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले शिव को नमस्कार है ॥११॥ चण्ड, मुण्ड, विश्वचण्डधर दण्ड धारण करने वाले शङ्खकर्ण तथा दण्डिया के दण्डरूप को नमस्कार है ॥१२॥ अर्ध दण्ड तथा बेचा वाले, शुष्क, विकृत, रक्त-कृष्ण वर्णवाले और नीलप्रोद को नमस्कार है ॥१३॥ अनुपमेय रूप वाले, विरूप, शिव, सूर्य, सूर्यपति एवम् सूर्यध्वज की पताकावाले को नमस्कार है ॥१४॥ प्रमथनाशन तथा वृषस्कन्ध को नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यहृत्तट तथा हिरण्यपति को

१ व. स. सनातन। २ व. ०५ ब्रह्मरूप सूर्यपति च त्रिजि०। ३ व. चण्डिने। ४ व. चण्डिदण्डाय। ५ व. ताम्राय।
 ६ व. ० मोस्तु प्र०। ७ व. ०५ घन्विने। न०। ८ व. ०५ चण्डिगि।

हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः। शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशयाय च॥१६॥
 नमः स्तुताय' स्तुतये स्तूपमानाय च' नमः। सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥१७॥
 नमो होमाय' मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने। नमोऽनम्नाय' मन्त्राय नमः किलकिलाय च॥१८॥
 नमस्त्वा शयमानाय शयितायोत्थिताय च। स्थिताय धावमानाय कुञ्जाय कुटिलाय च॥१९॥
 नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे। बाष्पापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे॥२०॥
 नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे॥२१॥
 नमः कषाहस्ताय सितभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च'॥२२॥
 नानाविधकृतवधनाय खड्गजिह्वोप्रदंष्ट्रिणे। पक्षमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च॥२३॥
 अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च। नमः शिवाय शान्तायः नमः शान्ततमाय च॥२४॥
 'नमो बुद्धाय' शुद्धाय' सविभागप्रियाय च। पवनाय' पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च॥२५॥
 नमश्छन्दोबध्नाय घण्टाजल्पाय घण्टिने। सहस्रशतघण्टाय' घण्टामालाप्रियाय च॥२६॥
 प्राणदण्डाय नित्याय 'नमस्ते लोहिताय च। हूँकाराय' रुद्राय 'भगाकारप्रियाय च॥२७॥
 नमोऽपारवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च। नमो यज्ञाधिपतये भूताय' प्रस्तुताय' च॥२८॥

नमस्कार है॥१५३॥ शत्रुघाती, चण्ड तथा पत्नी पर सोने वाले को नमस्कार है॥१६॥ स्तुत, स्तुति, और स्तूपमान को नमस्कार है। सबके रूप, सर्वमथक तथा सब प्राणियों के अन्तरात्मा को नमस्कार है॥१७॥ होम, मन्त्र तथा मुख ध्वज-पताका वाले को नमस्कार है। अनम्य, नम्य तथा किलकिला शब्द करने वाले को नमस्कार है॥१८॥ सोते हुए, मुक्त, उत्थित स्थित, शोडते हुए, कुञ्ज तथा कुटिल आपको नमस्कार है॥१९॥ (नर्तनशील, गीत बजाने वाले, बाष्पा नष्ट करने वाले, व्यापक-रूपधारी तथा गाना-बजाना करने वाले आपको नमस्कार है॥२०॥ ज्येष्ठ श्रेष्ठ और बल प्रमान का नमस्कार है। उग्र को नित्य नमस्कार है। दशभुजाधारी को नमस्कार है॥२१॥ छ.प म पचास लिये, स्वच्छभस्मप्रिय, विभीषण, भीम, भीष्मव्रतधारी, अनेक विभूत मुग वाले, साङ्ग के गमन विह्वल तथा सौदण्यदृष्टा वाले, पक्ष, मास, तथा अर्ध एक रूप, तुम्बी तथा बीणा के प्रिय, अघोररूप, घोर रूप, घोरतरुण और अघोरतरुण आपको नमस्कार है॥२२-२३॥ शिव, शान्त तथा शान्ततम को नमस्कार है। बुद्ध, शुद्ध, विभागप्रिय पवन तथा पतङ्ग को नमस्कार है। सांख्यपरायण रूप को नमस्कार है॥२४-२५॥ एकचक्र घण्टा वाल घण्टा के शब्द करने वाले घण्टाधारी, हूँकार-रुद्र। घण्टा धारण करने वाले, घण्टा की माला के प्रिय, प्राण-दण्ड रूप, नित्य तथा रक्त वर्ण वाले का नमस्कार है॥२६॥ 'हूँ हूँ' करने वाले, रुद्र तथा भगवत्कार के प्रेमी को नमस्कार है॥२७॥ पाररहित तथा पवन-पृथ के प्रेमी को नित्य नमस्कार है। यज्ञार्थि, युवक, शत्रुघ्न, यज्ञ के

१ न स्तुत्यायास्तुत्याय नमः० २ क रा होमाय। ३ क ०मो देवनम्याय नमः० ४ क भीमाय० ५ क मन्त्राय। ६ क ०मो मुखध्वजपताय नमः० ७ क बुद्धाय। ८ क लुब्धाय। ९ क ०य सांख्यपराय० १० क नमो लोहिणे० ११ क रुद्रकारप्रियाय। १२ क हूँकारप्रियाय। १३ क भूताय। १४ क प्रस्तुताय।

घनवाहीय दान्ताय तप्याय^१ च भगाय च। नमस्तटाय^२ तट्ठाय तटिनीपतये नमः॥२९॥
 अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च॥३०॥
 सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च॥३१॥
 नमो बालार्करूपाय कालक्रोडनकाय च। नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च॥३२॥
 तरङ्गाङ्घ्रिकेशाय मुवतकेशाय च नमः। नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनियताय च॥३३॥
 वर्णाश्रमाणा विधिवत्पूज्यधर्मप्रवर्तिते। नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च॥३४॥
 श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तक्षणाय च। धर्मकामार्थमोक्षाय क्रयाय क्रयनाय च॥३५॥
 साह्याय साह्यमुह्याय योगाधिपतये नमः। नमो रघ्याधिरघ्याय चतुष्पयपथाय च॥३६॥
 कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिते। ईशान^३ रुद्रसघात हरिकेश नमोऽस्तु ते॥३७॥
 ध्रुवकायाम्बिकानाथ व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते। कालकामदकामघ्न^४ दुष्टोद्धृत्तनिपूतन॥३८॥
 सर्वगहितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते^५। उन्मादनशतावतं गङ्गातोयाद्रमूर्धज॥३९॥
 घन्द्रार्पसद्युगावतं मेघावतं नमोऽस्तु ते। नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः॥४०॥
 अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल। जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च॥४१॥

अश्वरूप, दान्त, तपने योग्य और भग रूप को नमस्कार है ॥२८३॥ तटरूप, तट से युक्त तथा नदियों के स्वामी को नमस्कार है ॥२९॥ अन्न देनेवाले अन्नपति तथा अन्नभोक्ता को नमस्कार है। सहस्र शिर वाले सहस्र चरणवाले हकार उद्धत त्रिशूल वाले तथा सहस्र नेत्र वाले को नमस्कार है ॥३०॥ बाल सूर्य के समान वर्ण वाले तथा बाल रूप धारीको नमस्कार है ॥३१॥ बालार्करूपी तथा बाल से खेलने वाले को नमस्कार है। शुद्ध बुद्ध क्षोभ रूप, शयनरूप तरंगों से अक्षित केश वाले तथा बिखरे केश वाले को नमस्कार है ॥३२॥ छहों वर्गों में निष्ठा रखने वाले तीन वर्गों में नियमित तथा वर्णाश्रमों के पूज्य-पूज्य धर्मों के प्रवर्तक को नमस्कार है ॥३३॥ ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा कलकल शब्द बरने वाले को नमस्कार है। श्वेत पिङ्गल नेत्र वाले रक्त कृष्ण नेत्रवाले धर्म अर्थ-व्यापक, श्रेष्ठ तथा कलकल शब्द बरने वाले को नमस्कार है। श्वेत पिङ्गल नेत्र वाले रक्त कृष्ण नेत्रवाले धर्म अर्थ-व्यापक मोक्ष रूप, भारण छेदन रूप साह्य (सम्पूरण) रूप, साह्यो में प्रधान तथा योग के अधिपति को नमस्कार है ॥३४३५॥ रघ्या (गली) रूप, गलियों के स्वामी, चौराहेरूप कृष्णमृग-धर्म के उत्तरीय वाले तथा सर्प के यज्ञोपवीत धारीको नमस्कार है ॥३६॥ ईशान। रुद्रों के समूह। हरिकेश। आपको नमस्कार है ॥३७॥ पार्वतीपति। व्यक्त-अव्यक्त। तीन नेत्र वाले आपको नमस्कार है। बाल। काम-दाता। कन्दर्पनाशन। दुष्टों की उद्धृति (उद्धार) को दवाने वाले। सब बुरादमों की समाप्ति करने वाले। सद्य उत्पन्न। आपको नमस्कार है ॥३८॥ सैकड़ों उन्मादन भँवरों वाले। गंगाजल से सिक्त मस्तक वाले। अर्धचन्द्र युक्त। मेघ रूप आवृत वाले आपको नमस्कार है ॥३९॥ अन्नदान करने वाले, अन्नदाताओं के स्वामी, अन्नभोक्ता तथा रक्षक आपको नमस्कार है। आप ही प्रलयानि हैं। जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आप ही हैं ॥४१॥ हे देवदेवेश। चार

१ क पप्याय। २ तट्ठाय वितपाय। ३ रुद्र अस्तङ्गारुद्राय। ४ रुद्र अन्नदाता। ५ रुद्र अन्नदाता। ६ रुद्र अन्नदाता। ७ रुद्र अन्नदाता। ८ रुद्र अन्नदाता। ९ रुद्र अन्नदाता। १० रुद्र अन्नदाता। ११ रुद्र अन्नदाता। १२ रुद्र अन्नदाता। १३ रुद्र अन्नदाता। १४ रुद्र अन्नदाता। १५ रुद्र अन्नदाता। १६ रुद्र अन्नदाता। १७ रुद्र अन्नदाता। १८ रुद्र अन्नदाता। १९ रुद्र अन्नदाता। २० रुद्र अन्नदाता। २१ रुद्र अन्नदाता। २२ रुद्र अन्नदाता। २३ रुद्र अन्नदाता। २४ रुद्र अन्नदाता। २५ रुद्र अन्नदाता। २६ रुद्र अन्नदाता। २७ रुद्र अन्नदाता। २८ रुद्र अन्नदाता। २९ रुद्र अन्नदाता। ३० रुद्र अन्नदाता। ३१ रुद्र अन्नदाता। ३२ रुद्र अन्नदाता। ३३ रुद्र अन्नदाता। ३४ रुद्र अन्नदाता। ३५ रुद्र अन्नदाता। ३६ रुद्र अन्नदाता। ३७ रुद्र अन्नदाता। ३८ रुद्र अन्नदाता। ३९ रुद्र अन्नदाता। ४० रुद्र अन्नदाता। ४१ रुद्र अन्नदाता। ४२ रुद्र अन्नदाता। ४३ रुद्र अन्नदाता। ४४ रुद्र अन्नदाता। ४५ रुद्र अन्नदाता। ४६ रुद्र अन्नदाता। ४७ रुद्र अन्नदाता। ४८ रुद्र अन्नदाता। ४९ रुद्र अन्नदाता। ५० रुद्र अन्नदाता। ५१ रुद्र अन्नदाता। ५२ रुद्र अन्नदाता। ५३ रुद्र अन्नदाता। ५४ रुद्र अन्नदाता। ५५ रुद्र अन्नदाता। ५६ रुद्र अन्नदाता। ५७ रुद्र अन्नदाता। ५८ रुद्र अन्नदाता। ५९ रुद्र अन्नदाता। ६० रुद्र अन्नदाता। ६१ रुद्र अन्नदाता। ६२ रुद्र अन्नदाता। ६३ रुद्र अन्नदाता। ६४ रुद्र अन्नदाता। ६५ रुद्र अन्नदाता। ६६ रुद्र अन्नदाता। ६७ रुद्र अन्नदाता। ६८ रुद्र अन्नदाता। ६९ रुद्र अन्नदाता। ७० रुद्र अन्नदाता। ७१ रुद्र अन्नदाता। ७२ रुद्र अन्नदाता। ७३ रुद्र अन्नदाता। ७४ रुद्र अन्नदाता। ७५ रुद्र अन्नदाता। ७६ रुद्र अन्नदाता। ७७ रुद्र अन्नदाता। ७८ रुद्र अन्नदाता। ७९ रुद्र अन्नदाता। ८० रुद्र अन्नदाता। ८१ रुद्र अन्नदाता। ८२ रुद्र अन्नदाता। ८३ रुद्र अन्नदाता। ८४ रुद्र अन्नदाता। ८५ रुद्र अन्नदाता। ८६ रुद्र अन्नदाता। ८७ रुद्र अन्नदाता। ८८ रुद्र अन्नदाता। ८९ रुद्र अन्नदाता। ९० रुद्र अन्नदाता। ९१ रुद्र अन्नदाता। ९२ रुद्र अन्नदाता। ९३ रुद्र अन्नदाता। ९४ रुद्र अन्नदाता। ९५ रुद्र अन्नदाता। ९६ रुद्र अन्नदाता। ९७ रुद्र अन्नदाता। ९८ रुद्र अन्नदाता। ९९ रुद्र अन्नदाता। १०० रुद्र अन्नदाता।

त्वमेव देवदेवेश भूतप्राप्तश्चतुर्विधः। चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च॥४२॥
 त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते। सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः॥४३॥
 ऋषसामानि तयोकारमाहुस्त्वा ब्रह्मवादिनः। हायि हायि हरे हायि हुवाहावेति वाऽसकृत्॥४४॥
 गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः। यजुर्मय ऋद्धमयश्च सामाथर्वयुतस्तथा॥४५॥
 पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया धैर्याः शूद्रा वर्णाश्रमाश्च ये॥४६॥
 त्वमेवाऽऽश्रमसंघादश्च विद्युत्स्तनितमेव च। संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्धमेव च॥४७॥
 कला फाष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च। धृषाणा ककुदं त्वं हि गिरीणा शिखराणि च॥४८॥
 सिंहो 'मृगाणा पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम्। क्षीरोदो ह्युदयोनां च मन्त्राणा प्रणवस्तथा॥४९॥
 वर्जं प्रहरणाना च व्रतानां सत्यमेव च। त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शमः क्षमा॥५०॥
 व्यवसायो धूर्तलोभः कामक्रोधो जयाजयो। त्वं गदो त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मृद्गरी तथा॥५१॥
 छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता मन्ताऽसि नो मतः। दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च॥५२॥
 'इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च। लतावलयस्तूणीपथ्यः पशवो मृगपक्षिणः॥५३॥
 द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः। आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योकार एव च॥५४॥
 हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः। बह्विधश्च कपिलो बभ्रुः कपोतो मच्छ (तस्य) कस्तथा॥५५॥

प्रचार के प्राणी समूह भी आप ही हैं। चराचर के स्रष्टा तथा संहारक आप ही हैं॥४२॥ हे विश्वेश ! आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही वो लोग ब्रह्म कहते हैं। आप सब की उत्कृष्ट योनि तथा ज्योतिषों की निधि चन्द्रमा हैं॥४३॥ ब्रह्मवादी आप ही को ऋग्वेद, सामवेद तथा ओंकार कहते हैं। साम गाने वाले सुरश्रेष्ठ ब्रह्मवादी 'हायि ह यि-हरे हायि-हुवाहावा' इमसे बार-बार आप ही का गान करते हैं॥४४॥ यजुर्वेदमय, ऋग्वेदमय, सामवेदमय तथा अपर्ववेद से युक्त आप ही ब्रह्मवेत्ताओं तथा कल्प और उपनिषद्गणों द्वारा पढ़े जाते हैं॥४५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णाश्रम और आश्रम समूह भी आप ही हैं। आप विद्युत्, मेघजनन, वर्ष, ऋतु, मास, मासार्ध, कला, फाष्ठा, निमेष, नक्षत्र युग वलयों के ककुद, पर्वतों के शिखर, मृगों के स्वामी सिंह, खों में अनन्त और तथा, समुद्रों के क्षीरमय, मन्त्रों में प्रणव (ओ), अस्त्रों में वज्र और व्रतों में सत्य हैं॥४६-४९॥ आप ही द्रष्टा, द्वेष, राग, मोह, शम, क्षमा, व्यवसाय, धर्म लोभ, काम, क्रोध जय और पराजय हैं॥५०॥ आप गदाधारी, बाणधारी, धनुषधारी, गद्वांगधारी, मृद्गधारी, छेदन करने वाले, भेदन करने वाले, प्रहार करने वाले, नेता और मानने वाले हैं—यह मेरा मत है॥५१॥ आप दश प्रकार के लक्षणों से युक्त धर्म अर्थ, काम, चन्द्रमा, समुद्र, नदियाँ, तालाब, सरोवर, लता, वन, तूण ओषधियाँ पशु मृग, पक्षी, द्रव्य, धर्म और गुणों के आरम्भ, समय पर पञ्च-यूद्ध देने वाले, आदि, अन्त, मध्य गायत्री, आचार, हरित-लोहित-कृष्ण-नील-पीत (रंग), क्षण, बहु, कपिल, बभ्रु, कपुतर और मत्स्य हैं॥५२-५५॥

भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः। भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः॥७१॥
 ब्रह्मावर्तः 'सुरावर्तः' कामावर्तः नमोऽस्तु ते। 'कामबिम्बविनिर्हन्ता' कर्णिकारस्त्रजप्रिय ॥७२॥
 गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः। त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता 'गोगर्ग' (?) एव च॥७३॥
 अलण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः। चतुर्मुखो बहुमुखो रणध्वभिमुखः सदा॥७४॥
 हिरण्यगर्भः शकुनिर्धनदोऽर्धपतिविराट्। अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः॥७५॥
 तिष्ठन्तिथरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः। दुर्वारणो दुर्विपहो दुःसहो दुरतिक्रमः॥७६॥
 दुर्धरो दुर्वंशो नित्यो दुर्वंशो विजयो जयः। शशः शशाङ्कनयनशीतोष्णः क्षुत्तृपा जरा॥७७॥
 आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः। सह्यो यज्ञमृगव्याधो व्याधिनामाकरोऽकरः॥७८॥
 शिखण्डो पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः। दण्डधृक्क्षत्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशनः॥७९॥
 विषपोऽमृतपश्चैव सुराप क्षीरसोमपः। मधुपश्चाऽऽपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः॥८०॥
 'वृषाङ्गराम्भो' (?) वृषभस्तथा वृषभलोचनः। वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंस्तुतः॥८१॥
 चन्द्रादित्यो चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः। अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधितः॥८२॥
 न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणश्रूयणो न च। माहात्म्यं वेदितुं शक्ता यायातथ्येन ते शिवः॥८३॥
 शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम्। ताभिर्मा 'सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवोरसम्'॥८४॥
 रक्ष मा रक्षणीयोऽहं तवानघ ममोऽस्तु ते। भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तदश्चाहं सदा त्वयि॥८५॥

वर्तमान, उद्भव, भू, भुव, स्वर, अग्नि, महेश्वर, ब्रह्मावर्त, सुरावर्त और कामावर्त रूप आपको नमस्कार है॥६९-७१॥ आप कन्दर्पनाशन, वनकचम्पा की माला के प्रेमी, गो-नेता, गो प्रचारक, गोवृषेश्वरवाहन त्रैलोक्यपराज, गो लाम करने वाले, सरक्षक, गोगर्ग (?) ॥७२-७३॥ पूर्णचन्द्रमुख, सुमुख, दुर्मुख, मुखरहित, चतुर्मुख बहुमुख सदा रणतमुख ॥७४॥ हिरण्यगर्भ, शकुनि, धनद, धनपति, विराट्, अधर्मनाशन, महादक्ष, दण्डधार रणप्रिय ॥७५॥ खड़े होनेवाले, स्थिर स्थाणु कम्परहित, निश्चल, दुर्वारण, दुर्विपनाशन, दुःसह, दुर्लभ्य ॥७६॥ दुर्धर, दुर्वंश, नित्य, दुर्वंश, विजय, जय धरगोश, चन्द्रनेत्र, शीत, उष्ण, मूष व्यास बुद्धिपा ॥७७॥ आधि, व्याधि, व्याधिनाशन, व्याधिप (?), सह्य यज्ञरूपी मृग के लिए व्याध, व्याधिनामक, निधि अकर्ता ॥७८॥ मयूर, कमल, कमलनेत्र, दण्डधारी, क्षत्र-दण्ड, रौद्रभागविनाशन ॥७९॥ विष पीने वाले अमृत पीनेवाले, मदिरा पीने वाले, दूध तथा सोमरस पीने वाले, मधु पीने वाले, जल पीनेवाले, सब पीने वाले, बलाबल ॥८०॥ बैला का (रामना) (?) बैल, बैल के समान नेत्र वाले, वृषभ नाम से विख्यात तथा लोक-संस्तुत हैं ॥८१॥ सूर्य-चन्द्रमा आपके नेत्र हैं ब्रह्मा हृदय है और अग्नि ष्टोम धर्म-वर्म से साधित शरीर है ॥८२॥ हे शिव ! ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि कोई भी आपके माहात्म्य को मयाप्यंत नहीं जान सकते ॥८३॥ आपकी ओर मूर्ध्नि शिवमूर्ति हैं, उनका मुझे दर्शन हो। उनसे मेरी सब तरह रक्षा कीजिये जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है ॥८४॥ मेरी रक्षा कीजिये। मैं रक्षा करने योग्य हूँ। हे निष्पाप ! आपको नमस्कार

१ स स्वरावर्तः । २ स ऽम्बनिहता च क० । ३ स गोमाङ्गी मार्गः । ४ स ऽन्ता सागराभ्याम् प्रमृण्यद्व
 मुखा उवत् । आ० । ५ ग ऽमागवि० । ६ च वृषादधान्यो । ७ स द्युतव ।

यं सहस्राण्यनेकानि पुसामावृत्य दुर्दृशाम् । तिष्ठत्येवं समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यश ॥८६॥
यविनिद्रा जितेशासा सत्त्वस्था समदर्शिनः । ज्योति पश्यन्ति युञ्जन्तास्तरमंयोगात्मने नमः ॥८७॥
समक्ष्य सर्वभूतानि युगात्ते समुपस्थिते । यं शेते जलमध्यस्थस्य प्रपञ्चेऽम्बुशायिनम् ॥८८॥
प्रविश्य चदन राहोर्धं सोम पिबते निशि । प्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव ॥८९॥
अद्गुण्डमात्रा पुरुषा देहस्याः सर्वदेहिनाम् । रक्षन्तु ते च मा नित्य नित्य चाऽऽप्यायन्तु माम् ॥९०॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये । तेपा स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥९१॥
येन रोहन्ति देहस्या प्राणिनो रोदयन्ति च । हर्षयन्ति न कृष्यन्ति नमस्तेऽस्तु नित्यश ॥९२॥
ये समुद्रे नदीदुर्गं पर्वतेषु गुहासु च । वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु फान्तरागहनेषु च ॥९३॥
चतुष्पयेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च । हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानाल्पेषु च ॥९४॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च । इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्राकरश्मिषु ॥९५॥
रसातलगता ये च ये च तस्मात्पर गता । नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वश ॥९६॥
सर्वस्य सर्वंगो देव सर्वभूतपतिर्भव । सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्व न निमन्त्रित ॥९७॥
त्वमेव चेज्यसे देव यज्ञोर्विधिपदक्षिणं । त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्व न निमन्त्रित ॥९८॥

है। भगवान् भक्त के ऊपर कृपा करते हैं। मैं आपका सदा भक्त हूँ ॥८५॥ जा हारा दृष्टि वाले पुण्या को
अवृत्त कर समुद्र के अन्त में एक की वाम करते हैं व मरी नित्य रक्षा करें ॥८६॥ जिनको ज्यानिरूप म निद्रा
तथा स्वाम को जीतने वाले सत्त्व गुण में स्थित एवम समदर्शी जन दक्षत हैं उन योगात्मा को नमस्कार है ॥८७॥
जो युगान्त उपस्थित होने पर सब प्राणिया का भक्षण करके जल मध्य म सोते हैं उन जलानी की मैं प्राप्त हूँ ॥८८॥
जो राहु के मुख म प्रवेश कर रात म सोम-पान करते हैं चन्द्राग्नि तथा राहु बनकर सूर्य को ग्रसते हैं ॥८९॥
और सब प्राणियों के गरोर म अगुष्ठ प्रमाण-गुण्ड के रूप म वस करते हैं वे मरी नित्य रक्षा करें और मम निय
समुद्र बनायें ॥९०॥ जिन्होंने जल को विभक्त करके उत्पन्न किया जिनको स्वाहा और स्वधा प्राप्त होता है तथा आस्वादन
करती हैं और जो देह स्थित होत हुए मा जम नहीं लेते प्राणिया को हलात प्राणित्त करते और स्वय जाहृष्ट
नहीं होत उनको निय नमस्कार है ॥९१ ९२॥ जो समुद्र म दुस्तर नय्या म पवना म गुफाओ म वामला म
गाण्डा म वान्तारा म बनो म चतुष्पया म गलिया म चबरा म ममाजा म हाया घो तथा रथ की गालात्रा
मे जीण उसानालया म पञ्च महानूतो म दिगात्रा म विन्गात्रा मे सूप-चन्द्रा मे मध्य म चन्द्र-सूय की विरणा
म और रसानगे म प्राप्त हैं तथा रसानल से भी आगे गये हुए हैं उहे नमस्कार है उहें नमस्कार है उहें सब
वर म नमस्कार है ॥९३ ९६॥ आप सब हैं सबगन हैं सब प्राणिया व स्वामी हैं भव नाम वाले हैं और सब प्राणिया
के अतरा मा हैं। इस कारण मैं आपको निमन्त्रण नहीं किया ॥९७॥ हे देव ! विविध दमिणा वाटे यना व द्वारा
आप ही यन किये जात हैं। आप ही सबके कर्ता हैं। इस कारण आपको निमन्त्रित नहीं किया ॥९८॥ अथवा हे देव !

१ स नित्यवश्य स्व०। २ स सोम तथा रविम। अ०। ३ स हृष्यन्ति। ४ स ०। ५ स्यगजलन दुर्ग।

५ स नित्या।

अथवा मायया देव मोहितः^१ सूक्ष्मया तव । तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमन्त्रितः ॥१९॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम । त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चाभ्योऽस्तोति मे मतिः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वं स महादेवं विरराम प्रजापति । भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ॥१०१॥

श्रीभगवानुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत । बहुना तु किमुवतेन मत्समीपं गमिष्यसि ॥१०२॥

ब्रह्मोवाच

तथैवमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः । कृत्वाऽऽश्वात्करं वाक्यं सर्वज्ञो वाक्यसहितम् ॥१०३॥

श्रीशिव उवाच

दक्ष दुष्टं न पतंष्यं यज्ञविध्वंसनं प्रति । अहं यज्ञहनस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुराऽनघ ॥१०४॥
भूयश्च त्वं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत । प्रसन्नसुमुखो भूत्वा मर्मकाग्रमनोः शृणु ॥१०५॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य वै । प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ॥१०६॥
वेदान्यङ्गान्वुध्यस्व साध्ययोगांश्च कृत्स्नशः । तपश्च विपुलं तप्तवा^२ दुश्वरं देवनानवैः ॥१०७॥

मैं आपकी सूझ माया से मोहित हो गया था । इस कारण भी मैंने आपकी निमन्त्रित नहीं किया ॥१९॥ हे देवेश ! प्रसन्न होइय, आप ही मेरे रक्षक हैं, गति है तथा प्रतिष्ठा है । आपके सिवाय भरा दूसरा कोई नहीं है—ऐसी मेरी धारणा है ॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार महादेव की स्तुति करके प्रजापति विरराम करने लगा । भगवान् शिव भी प्रसन्न होकर दक्ष से बोले ॥१०१॥

श्री भगवान् ने कहा—हे सुव्रती दक्ष ! मैं तुम्हारी इन स्तुति से मनुष्ट हूँ । मैं अधिक क्या कहूँ, तुम मेरे समीप जाओ ॥१०२॥

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन के स्वामी सर्वज्ञ शरर सात्त्विकादायक तथा वाक्यसमूह रूप वाक्य इस प्रकार बोले ॥१०३॥

ब्रह्मा ने कहा—दक्ष ! यज्ञ विध्वंसक प्रति तुम सब मन करो । निषण्ण । पहले तुमने देगा है कि तुम्हारे यज्ञ का नाशनाश मैं हूँ । फिर तुम मुझसे वर माँगो ॥१०४॥ सुव्रती ! प्रसन्न होकर एकाग्र मन से (मेरे कथन) सुनो ॥१०५॥ प्रजापति । मेरी कृपा से तुम मत्स्य अश्वमेध तथा वाजपेय यज्ञों के फलभागी होओ ॥१०६॥ छह अंगों सहित वेदा तथा साम्य-योगों का पूर्ण ज्ञान करो । दक्ष ! देव-दानवों से दुःशाप्य प्रचुर तप करो ॥१०७॥

अव्द्वेद्वादशभिर्युक्तं गूढमप्रज्ञनिन्दितम् । वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विनीतं न क्वचित्त्वचिन्त ॥१०८॥
समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् । सर्वेषामाश्रमाणां च मया पाशुपतं धृतम् ॥१०९॥
उत्पादितं दक्ष शुभ सर्वपापविमोचनम् । अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् ॥
तच्चास्तु सुमहोभाग मानसस्त्यज्यता ज्वरः ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु देवेशः सपत्नीकः सहानुग । अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥१११॥
अवाप्य च तया भागं ययोक्त चोमया भवः । ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजतदा ॥११२॥
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वमय धे द्विजा । शिखाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजनु ॥११३॥
अपां तु नीलिका विद्यान्निर्मोको भुजगेषु च । खोरकः सौरभेयाणामूखरः पृथिवीतले ॥११४॥
शुनामपि च धर्मज्ञा दुष्टिप्रत्यवरोधनम् । रन्ध्रागतमयाश्वानां शिखोद्भेददक्ष बहिणाम् ॥११५॥
नेत्ररागः कोकिलानां द्वेषः श्रोतवो महत्तमनाम् । जनानामपि भेददक्ष सर्वेषामिति न श्रुतम् ॥११६॥
शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रोच्यते ज्वरः । शार्दूलैष्वय धे विप्राः श्रमोज्वर इहोच्यते ॥११७॥
मानुषेषु च सर्वज्ञा ज्वरो नामधे कीर्तितः । मरणे जन्मनि तथा मध्ये चापि निवेशितः ॥११८॥
एतन्माहेश्वर तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः । नमस्त्यदश्चैव मान्यदक्ष सर्वप्राणिभिरोद्वरः ॥११९॥

बाह्य वर्षों में सम्पन्न होने वाले कठिन मूर्खों द्वारा निर्दित वर्णाश्रम विहित धर्मों से युक्त बड़ी-बड़ी नदी प्राप्त निश्चित, सब आश्रमा को पाशुपाश से मुक्त करने वाले सब पापों से छुड़ाने वाले तथा पवित्र पाशुपत नामक धन को देने उत्तम किया है । महानाग ! इस वृत्त का जो पर्याप्त उत्तम फल है, यह मुझें मिलेगा । तुम मन मपीडा मत करो ॥१०८-११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कह कर पत्नी और अनुचर सहित महेश्वर अग्नि तेजस्वी दश के दृष्टि-रूप में बहिर्भूत हो गए ॥१११॥ पार्वती सहित सब धर्मों के ज्ञाना शिव अपना माग जैसा कि पहल कहा गया है, प्राप्त कर ज्वर का अनेक नागों में बाँट दिया ॥११२॥ द्विजगण ! धर्म के ज्ञानात्रा ! प्राणानात्र की शान्ति के लिए अब आप सुनिए । नागों का शिखाभिगण, पर्वतों का शिलाजनु, जल का नीलिका, अपों का निर्मोको या पाशुपत का खोरक, पृथ्वी का ऊखर, कुत्ता का दुष्टिप्रत्यवरोध नाम का रन्ध्रागत, मयूरों का शिखाद्भेद, बाघों का नेत्रराग, महात्माओं का द्वेष, व्यवस्था का भेद, राजाओं का हिक्किका और बाघों का धर्म नामक ज्वर कहा जाता है ॥११३-११७॥ सबका श्रुतिगण ! मनुष्यों में यह ज्वर नाम यही प्रसिद्ध है, जो मरणनाश, जन्मनाश तथा मध्य में भी प्रवेश करता है ॥११८॥ अथवा ज्वर नाम में प्रसिद्ध यह शिव का तब अत्यन्त प्राणियों में

१ ग विद्वान् । गतांतरव्य० । २ य श्रमोक्षणम् । ३ य यथाप्राप्त मयो म० । ४ य परः । ५ ग श्रुतः । ६ य दक्षिणः । ७ य श्रमोक्षो ज्वर उच्यते । ८ य धर्मज्ञः ।

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः, पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः

विमुक्तरोगः स नरो मुदायुतो, लभेत कामाश्च यथामनीर्यितान्

॥१२०॥

दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा । नाशुं प्राप्नुयात्किञ्चिद्दोषमायुरवाप्नुयात् ॥१२१॥

यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवान्भवः । तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां दक्षनिर्मितः ॥१२२॥

यशःस्वर्गसुरैश्चर्यवित्तादिज्यकाङ्क्षिभिः । स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः ॥१२३॥

व्याधितो दुःखितो दीनो नरो प्रस्तो भयादिभिः । राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥१२४॥

अनेनैव च देहेन गणानां च महेश्वरात् । इह लोके सुखं प्राप्य गणैर्दुपजायते ॥१२५॥

न यश्चान पिशाचा वा न नागान विनायकाः । कुर्याद्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः ॥१२६॥

शृणुयाद्वा इदं नारी भवत्याज्य भवभाविता । पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्या भवति चैव ह ॥१२७॥

शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभोक्षणैः । तस्य सर्वाणि कौर्याणि सिद्धिं गच्छन्त्येविघ्नतः ॥१२८॥

मनसा विनित्तं यच्च यच्च वाचाऽप्युदाहृतम् । सर्वे संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात् ॥१२९॥

देवस्य सगुहस्याथ देव्या नन्दीश्वरस्य च । बलि विभज (भाग) तः कृत्वा दमेन नियमेन च ॥१३०॥

ततः प्रयुक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम् । इप्सितस्तल्लभतेऽप्यर्थाङ्कामानभोगांश्च मानवः ॥१३१॥

भूतद्वयं स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रसमावृतः । सर्वकामसुयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकः ॥१३२॥

आदर्शार्थं तथा नमस्कार करने योग्य है ॥११९॥ जो मनुष्य तावधान हाकर दीनता रहित मन से इस ज्वरोत्पत्ति का सदा पाठ करेगा, वह मनुष्य रोग-मुक्त तथा प्रीतियुक्त हो कर यथेप्सित कामनाओं को प्राप्त करेगा ॥१२०॥ दक्ष के द्वारा कथित स्तोत्र का जो कीर्तन या श्रवण करेगा, उसे किसी प्रकार का अशुभ नहीं होगा और वह दीर्घायु प्राप्त करेगा ॥१२१॥ जैसे सब देवा में भगवान शंकर श्रेष्ठ हैं वैसे सब स्तोत्रों में दक्ष निर्मित यह स्तोत्र श्रेष्ठ है ॥१२२॥ यश, स्वर्ग, देव विमूक्ति, वित्त तथा जय के अमिलापियों का भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए । विद्या चाहने वाला का ता यत्न से इसका पाठ करना चाहिए ॥१२३॥ (इस स्तोत्र के पाठ से) व्याधि-पीडित, दुःख-पीडित, दीन, भय आदि से प्रस्त, राज कार्य में नियुक्त मनुष्य महामय से मुक्त होता है और इसी देह से गणा का ईश्वर बन कर तथा इस लोक में सुख प्राप्त कर गण-राज हो जाता है ॥१२४॥ न यश, न पिशाच, न नाग, न विनायक ही उस घर में विघ्न करते हैं, जहाँ शिव की स्तुति की जाती है ॥१२५॥ जो स्त्री शिव में मन लगा कर भक्ति से इस स्तोत्र को सुनती है, वह पिता के घर तथा पति के यहाँ भी सम्मानित होती है ॥१२६॥ जो इसका बार-बार कीर्तन या श्रवण करेगा, उसके सब कार्य बिना विघ्न के सिद्ध हो जायेंगे ॥१२७॥ इस स्तव के कीर्तन से मन से चिन्तित या वाणी से कथित सब काम सिद्ध हो जाते हैं ॥१२८॥ दम तथा नियम से शिव, कार्तिकेय, पार्वती और नन्दीश्वर के अलग अलग बलि चढ़ा कर शीघ्र ही कामानुसार नामों के ग्रहण करने से मनुष्य यथा मिलपित कामनाओं तथा भोगों को प्राप्त करता है और मरण पर हजारों स्त्रियों से आवृत होकर स्वर्ग प्राप्त करता है ॥१२९-१३१॥ मनुष्य सब कामनाओं से युक्त हो या सब पापों से युक्त हो पर दक्षवृत्त स्तोत्र का पाठ करने से सब पापों

पठन्ब्रह्मस्तोत्रं सर्वपापं प्रमुच्यते। मृतश्च गणसायुज्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ॥१३३॥
 ध्रुवेण विनिपुवतेन विमानेन विराजते'। आभूतसत्त्ववसायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥१३४॥
 इत्याह भगवान्ध्यासः पराशरस्तु प्रभु। नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छ्राव्यं च कस्यचित् ॥१३५॥
 श्रुत्वेन परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापघोनय। वेश्या स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः ॥१३६॥
 ध्यावधेद्यश्च विप्रैर्मयः सदा पर्वसु पर्वसु। रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वं नात्र सशयः ॥१३७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूतसिंहादे दक्षस्तवनिरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

एकाम्रकक्षेत्रमाहात्म्यकथनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वं वं मुनिश्रेष्ठा यथा पापप्रणादिनीम्। रुद्रक्रोधोद्भवा पुण्या व्यासस्य धृतो द्विजा ॥१॥
 पापं पापश्च तथा रोषं क्रोधं शमोश्च दुःसहम्। उत्पत्तिं वीरभद्रस्य भद्रकाल्याश्च स भवम् ॥२॥

हे मुनि हा जाता है मरन पर मुर जसुरो म पूजित हाते हुए गण सायुज्य प्राप्त करता है वृष-मुनि विमान पर विराजता है और महाप्रणय तब रुद्र का अनुचर होता है ॥१३२ १३४॥ ऐसा पराशर-मुनि भगवान् ध्यास ने कहा है। इस वार्दे नहीं जानता है यह किसी का नहीं सुनाना चाहिए ॥१३५॥ जा वार्दे भी पापपापि वैश्य स्त्री तथा शूद्र इसे सुनेंगे व रुद्रलोक का प्राप्त करेंगे। जा द्विज पक्काज म ब्राह्मण का यह स्नान सुनता है उसे निगदेह निवलाव की प्राप्ति होती है ॥१३६ १३७॥

श्रीब्रह्महपुराण म ब्रह्मा और मुनि के संवाद प्रकरण म दक्ष-स्तुति निरूपण नामक चत्वारिंशो अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

एकाम्रक क्षेत्र का माहात्म्य-कथन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर! इस प्रकार रुद्र काय से उत्पन्न पापनाशिनी पवित्र कथा का एतम् पार्वी के रोष नाम्ने देवगण काय वीरभद्र तथा भद्रकाली की उत्पत्ति इस-थन विनाग शहर

दक्षयज्ञविनाशं च धीर्यं शंभोस्तथाऽद्भुतम् । पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ॥३॥
 यज्ञभागं च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः । हृष्टा बभूवुः संप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः ॥४॥
 पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं 'कथाशेषं' तथा द्विजाः । पृष्टः प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाम्नाकं पुनः ॥५॥

व्यास उवाच

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुंगवाः । प्रशशंसुस्तदा हृष्टा रोमाञ्चिततनूहर्हाः ॥६॥

ऋषय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शंभोः प्रकीर्तितम् । दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्वंसनं तथा ॥७॥
 एकाम्नाकं क्षेत्रवरं वक्तुमर्हसि सांप्रतम् । श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि न ॥८॥

- व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा लोकनाथश्चतुर्मुखः । प्रोवाच शंभोस्तत्क्षेत्रं भूतले दुष्कृतच्छदम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासतः । सर्वपापहरं पुण्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१०॥
 लिङ्गकोटिसमायुक्तं वाराणसीसमं शुभम् । एकाम्नाकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम् ॥११॥
 एकाम्नावृक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमाः । नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाम्नाकमिति श्रुतम् ॥१२॥

के अद्भुत पराक्रम, महात्मा दक्ष के ऊपर पुनः शिव की कृपा, रुद्र के यज्ञ-भाग तथा दक्ष के यज्ञ-फल को व्यास से सुन कर द्विजगण हृष्ट तुष्ट तथा विस्मित हो कर फिर व्यास से कथा का अवशिष्ट भाग पूछने लगे ॥१-५॥

व्यास ने कहा—ब्रह्मा द्वारा कही गई पवित्र कथा को सुन कर हर्षित तथा रोमाञ्चित शरीर होकर ऋषिगण प्रशंसा करने लगे ॥६॥

ऋषियो ने कहा—अहो ! देवश्रेष्ठ ! आपने शम्भु का माहात्म्य तथा दक्ष का यज्ञ-विध्वंस वर्णन किया । अब एकाम्नाके क्षेत्र का वर्णन कीजिए । ब्रह्मन्, हम सुनना चाहते हैं, हमें बड़ी उत्सुकता है ॥७-८॥

व्यास ने कहा—उनके इस वचन को सुनकर लोकपति ब्रह्मा भूतल पर पावनपावन शम्भु के उस क्षेत्र के बारे में कहने लगे ॥९-१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर्य ! मुनिये, मैं संक्षेप से कहूँगा । सब पापों को हरने वाला, परम दुर्लभ, करोड़ा लिंगों से युक्त, वाराणसी के समान शुभदायक तथा पवित्र एकाम्नाक नाम से प्रसिद्ध तीर्थ आठ तीर्थों से युक्त है ॥१०-११॥ द्विजवर ! पहले वहाँ एक आम का वृक्ष था । उसी के नाम पर वह क्षेत्र

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम् । विद्वांसग (शावद्ग) णभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम् ॥१३॥
 गृहगोपुरसंवाधं त्रिकचाद्वारभूयितम् । नानावणिक्समाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥१४॥
 पुराट्टालकसंयुक्तं रथभिः समलंकृतम् । राजहंसनिभं शुभ्रं प्रासादेरुपशोभितम् ॥१५॥
 मार्गगद्गारसंयुक्तं सितप्राकारशोभितम् । रक्षितं शस्त्रसंघेयं परिखाभिरलंकृतम् ॥१६॥
 सितरत्नैस्तथा पीतैः कृष्णश्यामैश्च वर्णकैः । समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलंकृतम् ॥१७॥
 नित्योत्सवप्रमुदितं 'नानावादित्रनिस्वनैः । वीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणोभिरलंकृतम् ॥१८॥
 देवतायतनैर्दिव्यैः 'प्राकारोद्यानमण्डितैः । पूजाविचित्ररचितैः सर्वत्र समलंकृतम् ॥१९॥
 स्त्रियः प्रमुदितास्तत्र दृश्यन्ते तनुमध्यमाः । 'हारैरलंकृतग्रीवाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥२०॥
 पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः* । स्थिरालकाः सुकपोलाः काञ्चीनूपुरनादिताः ॥२१॥
 सुकोण्यचारुजघनाः कर्णान्तरामृतलोचनाः । सर्वलक्षणसपन्नाः सर्वाभरणभूयिताः ॥२२॥
 दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काश्चित्काञ्चनसनिभाः । हंसवारणगामिन्यः कुचभारावनामिताः ॥२३॥
 दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः कर्णभरणभूयिताः । मदालसाश्च सुश्रोण्यो नित्यं प्रहसिताननाः ॥२४॥
 ईषद्विस्पष्टदशना विम्बोष्ठा मधुरस्वराः । ताम्बूलरञ्जितमुख्या विदग्धाः प्रियदर्शनाः ॥२५॥

एकप्रक नाम से विख्यात ॥१२॥ हृष्ट-पुष्ट जना से प्रपूर्ण, नर-नारिया से समन्वित, विद्वद्गणा से परिपूर्ण, धन धान्य आदि से समृद्ध ॥१३॥ गृह तथा पुरद्वारों से सज्जीर्ण, त्रिकोण द्वारों से भूयित, अनक व्यापारिया से व्याप्त, नाना रत्ना से सुशोभित ॥१४॥ नगर की अट्टालिकाया से सम्युक्त, रथ वाली से अलंकृत, राजहंस के समान उज्ज्वल प्रासादों से शोभित ॥१५॥ मार्ग-द्वारों से सम्युक्त, श्वत चहारदीवारिया से शोभित, शस्त्रसमूहा से रक्षित, श्यामा से अलंकृत ॥१६॥ वायु द्वारा चंचल और सफेद, लाल, पीत, कृष्ण तथा श्याम वर्ण वाली पताकाओं से अलंकृत ॥१७॥ नित्य उत्सवों से प्रमुदित, अनक प्रकार के वाद्या—वीणा, वेणु, मृदंग और क्षेपणी के शब्दों से अलंकृत ॥१८॥ और चहारदीवारी युक्त उद्यानों से मण्डित तथा पूजा की विविध रचनाओं से युक्त देवालया से भूयित है ॥१९॥ वहाँ क्षीण कटिवाली, युवत-दिव्य हारा से अलंकृत ग्रीवा वाली, कमलशोचना ॥२०॥ स्पूल तथा उन्नत स्तनों वाली, श्यामा, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली, स्थिर केश वाली, सुन्दर कपाल वाली, वरपत्नी और नूपुर का शब्द करने वाली ॥२१॥ सुन्दर केशवाली, सुन्दर जघा वाली, बाना तन लम्बी आँखों वाली, सब लक्षणों से सपन्न, सब नूपणों से भूयित ॥२२॥ दिव्यवस्त्रधारिणी, गौरवर्णा, युवर्ण-समान वर्ण वाली, हंस तथा हाथी के समान चाल वाली, स्तनों के मार से झुरी हुई ॥२३॥ दिव्य गन्धा से लित अंग वाली, बानों के गहनों से भूयित, मद से अलसग्रीव हुई, सुन्दर नितम्ब वाली, सदा हंसमुख ॥२४॥ निमिज्वर स्पष्ट दाँता वाली, विम्बोष्ठी, मधुर स्वर वाली, ताम्बूली से रञ्जित मुख वाली, चतुर, प्रिय-

१ ग नवदितम् । यो० । २ ख ०कारैर्घातुम० । ३ ग हावमावानत० । ४ ख ०न्द्रसमान० ।
 ५ ख गुरुष्ट्यो ।

सुभगाः प्रियवादिन्यो नित्यं यौवनगर्विताः । दिव्ययस्त्रधराः सर्वाः सदा चारित्रमण्डिताः ॥२६॥
 क्रीडन्ति ताः सदा तत्र स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । स्वे स्वे गृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ वराननाः ॥२७॥
 पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते रूपयौवनगर्विताः । सर्वलक्षणसंपन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥२८॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः । स्वधर्मनिरतास्तत्र निवसन्ति सुधार्मिकाः ॥२९॥
 अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुल्काः मुलोचनाः । घृताचीमेनकातुल्यास्तथा समतिलोत्तमाः ॥३०॥
 उर्वशीसदृशाश्चैव विप्रचित्तिनिभास्तथा । विश्वाचीसहज्यभाभाः प्रम्लोचासदृशास्तथा ॥३१॥
 सर्वास्ताः प्रियवादिन्यः सर्वा दिहसिताननाः । कलाकौशलयुक्ताः सर्वास्तः गुणसंयुताः ॥३२॥
 एव पण्यस्त्रियस्तत्र नृस्यगीतविशारदाः । निवसन्ति मुनिश्रेष्ठाः सर्वस्त्रीगुणगर्विताः ॥३३॥
 प्रेक्षणाक्षपकुञ्जानः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः । न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिकाः ॥३४॥
 यासां कटाक्षपातेन मोहं गच्छन्ति मानवाः । न तत्र निर्धनाः सन्ति न मूर्खा न परद्रिपः ॥३५॥
 न रोगिणो न मलिना न क्रूर्या न मायिनः । न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिणः ॥३६॥
 तिष्ठन्ति मानवास्तत्र क्षेत्रे जगति विभ्रुते । सर्वत्र सुखसंचारं सर्वसत्त्वसुखावहम् ॥३७॥
 'नानाजनसमाकीर्णं सर्वसत्यसमन्वितम् । कर्णिकारंश्च पनसेश्चम्पकं नगिकेसरं ॥३८॥
 पाटलाशोकवकुलैः कपित्थैर्बहुलैर्धवैः । चूतनिम्बकदम्बैश्च तथाऽप्यं पुष्पजातिभिः ॥३९॥
 नीपकैर्धवलैर्विरलैर्लाभिश्च विराजितम् । शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैः शुभाञ्जने ॥४०॥

दर्शना ॥२५॥ सौभाग्यवती, प्रियवादिनी, नित्य यौवन से गर्वित और सुचरित्रा स्त्रियां दीक्षती हैं ॥२६॥
 अप्सराओं के समान वे श्रेष्ठ स्त्रियां दिनरात अपने अपने घरों में हर्ष से क्रीडा करती रहती हैं ॥२७॥
 वहाँ रूप यौवन-गर्वित, सर्वलक्षण-संपन्न तथा सुन्दर मणि-कुण्डलों से युक्त पुरुष देखे जाते हैं ॥२८॥ मुनिवर्ग,
 स्वधर्मपरायण अत्यन्त धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वहाँ वास करते हैं ॥२९॥ वहाँ और भी
 घृताची, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी, विप्रचित्ति, विश्वाची तथा प्रम्लोचा तुल्य सुन्दर नेत्र वाली वैश्याएँ रहती
 हैं ॥३०-३१॥ वे सब प्रियवादिनी, हास्ययुक्त मुख वाली, कला-कौशल समुक्त तथा सर्वगुण-सम्पन्न हैं ॥३२॥
 मुनिवर्ग । इस प्रकार नृत्य-गीत विशारद, समस्त स्त्रीगुणों से गर्वित, ताकने तथा बातचीत करने में कुशल, प्रिय
 दीखने वाली, सुन्दरी गणिकाएँ वहाँ बसती हैं, जो न रूप से हीन, न दुराचारिणी और न दूसरे से द्रोह
 करने वाली हैं, जिनके कटाक्षपात से ही मनुष्य मुग्ध हो जाते हैं ॥३३-३४॥ वहाँ न निर्धन, न मूर्ख,
 न परद्रोही, न रोगी, न म्लच्छ, न कृमण, न मायाकारी, न रूपहीन और न दुराचारी मनुष्य रहते हैं
 ॥३५-३६॥ इस जगद्विख्यात क्षेत्र में सब जगह सुख का संचार है, सब जीवों को सुख ही सुख होता है ॥३७॥
 वह क्षेत्र अनेक प्रकार के मनुष्या से व्याप्त, सब तरह के अन्नो से समन्वित, बनकच्चा, कटहल, चम्पा, नाग-
 केसर ॥३८॥ पाटला, अशोक, मौलसिरी, कैया, आम, नीम, बदम्व तथा दूसरी पुष्प जातियां ॥३९॥
 कदम्ब, धव, खैर और लताओं से विराजित, साधु, ताल, तमाल, नारियल, सहिजन ॥४०॥ अर्जुन, समपर्ण,

अर्जुनैः समपर्णेश्च कोविदारैः । सपिप्पलैः । लकुचैः सरलैर्लोम्रेहिन्तालेर्देवदारुभिः ॥४१॥
 पलशैर्मूचकुन्दैश्च पारिजातैः सकुण्डलैः । कदलीवनखण्डैश्च जम्बूपूगफलैस्तथा ॥४२॥
 केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तैश्च किशुकैः । मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तथाऽप्यैः पुष्पजातिभिः ॥४३॥
 नानापक्षिस्तैः सेव्यैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः । फलभारागतैर्वृक्षैः सर्वैर्तुकुसुमोत्करैः ॥४४॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः । कलविड्ममयूरैश्च प्रियपुत्रैः शकैस्तथा ॥४५॥
 जीवजीवकहारोतिंश्चातकैर्बनवेष्टितैः । नानापक्षिगणैश्चान्यैः कूजदिभर्मधुरस्वरैः ॥४६॥
 दीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः । नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥४७॥
 कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शभैः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४८॥
 कारण्डवैः प्लवहैस्तथाऽप्यैर्जलचारिभिः । एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः ॥४९॥
 नानाजलाशयैः पुष्पैः शोभितं तत्समगततः । आस्ते तत्र स्वयं देवः कृत्तिवासा वृषध्वजः ॥५०॥
 हिताय सर्वलोकस्य भुक्तिमभितप्रदः शिवः । पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरासि च ॥५१॥
 पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपाश्च सागराः । तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलविन्दून्यथवपुयक् ॥५२॥
 सर्वलोकहितार्थाय रुद्रः सर्वसुरैः सह । तीर्थं बिन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमः ॥५३॥
 चकार ऋषिभिः सार्धं तेन बिन्दुसरः स्मृतम् । अष्टम्यां बह्वले पक्षे मागशीर्षे द्विजोत्तमः ॥५४॥

वचनार, पीपल, बडहल, सरल, लोम्रे, हिन्ताल, देवदारु ॥४१॥ पलाश, मुचुकुन्द, पारिजात, कुण्ड, कदलीवन-
 खण्ड, जामुन, सुपादी ॥४२॥ केतकी, करवीर, अतिमुक्त, पलाश, मन्दार, कुन्द तथा दूसरी पुष्प-जातियो ॥४३॥
 नाना पक्षियो के शब्दो, नन्दनवन के समान सेव्य उद्यानो, फलो के भार से झुके वृक्षो, सब ऋतुओं में होने वाले
 पुष्पो की राशि ॥४४॥ चकोर, शतपत्र (कठफोडवा), भृङ्गराज, कोकिल, चटक (गौरैया), मयूर, प्रियपुत्र, ताते
 ॥४५॥ जीवजीवक, हारीत, पपीहे, तथा वन में व्याप्त मयूर स्वर से बोलने वाले अन्य पक्षीगण ॥४६॥ बावली,
 तालाव, पुष्करिणी तथा कमलनी-वन मण्डित अनेक जलाशय ॥४७॥ कुमुद, वमल, सुन्दर नीलकमल, हंस,
 चक्रवाक, जलकुक्कुट ॥४८॥ कारण्डव, प्लव, हंस तथा अन्य जलचर पक्षियो एवम् अनेक प्रकार के वृक्षो, पुष्पो तथा
 पवित्र जलाशयो से चारो ओर सुगोमित है ॥४९॥ वहाँ स्वयं चर्म रूप वस्त्रधारी शिव रहते है ॥५०॥ भुक्ति-
 मुक्ति-दाता शिव ने सब लोकों के कल्याण के लिए पृथिवी पर जितने तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाव,
 बावलियाँ, कुएँ तथा समुद्र हैं, उन सब से वपुय-वपुय जल बिन्दुओं को लाकर वहाँ स्थापित कर दिया ॥५१-५२॥
 द्विजधेनो ! सर्वलोक-हित के लिए अखिल देवगण तथा मुनिवृन्द सहित रुद्र ने उस क्षेत्र में बिन्दुसर नामक तीर्थ
 का निर्माण किया। बिन्दुओ से बनने के कारण उसका नाम बिन्दुसर पड़ा ॥५३॥ द्विजवर्य ! जो अगहन-वृष्ण-
 अष्टमी तिथि एव विपुल में (बहु समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) उस क्षेत्र में लिए यात्रा करता

१ ख ०कुञ्जवर्कः। २ ख ०म्बूकन्दफ०। ३ ख ०सुमाकरैः। ४ ख ०स्वर्नैः। दी०। ५ ख ०रिष्याश्च
 रात्रिभिः। ६ ख ०वैजने। ना०। ७ ख. सदा।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

कुरुते विपुवे विजितेन्द्रियः। विधिवद्विन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः॥५५॥
 मांश्च पितृसतप्यं वाग्यतः। तिलादकेन विधिना नामगोत्रविधानवित्॥५६॥
 स्नात्वा च विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्। ग्रहोपरागे विपुवे सश्राग्यामयने तथा॥५७॥
 युगादिषु षडशीत्यां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ। ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति घनादिकम्॥५८॥
 अन्यतीर्थाच्छतगुण फलं ते प्राप्नुवन्ति वै। पिण्डं ये संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः सरस्तस्ते॥५९॥
 पितृणामक्षया तृप्तं ते कुर्वन्ति न संशयः। ततः शभोग्रहं गत्वा वाग्यतः संयतेन्द्रियः॥६०॥
 प्रविश्य पूजयेच्छर्वं कृत्वा तं त्रिप्रदक्षिणम्। घृतक्षीरादिभिः स्नानं कारयित्वा भवं शुचिं॥६१॥
 चन्दनेन सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च। ततः सपूजयेद्देवं चन्द्रमौलिमुमापतिम्॥६२॥
 'पुष्पेर्नानाविधैर्मध्यैर्वित्वाकंकमलादिभिः। आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शंकरम्॥६३॥
 अदीक्षितस्तु नाम्नेव मूलमन्त्रेण चार्चयेत्। एवं संपूज्य तं देवं गन्धपुष्पानुरागिभिः॥६४॥
 धूपदीपैश्च नैवेद्यरूपहारैस्तथा स्तवैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः॥६५॥
 नृत्यजप्यनमस्कारंजयशब्दैः प्रदक्षिणैः। एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवमुमापतिम्॥६६॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगावितः। कुलैकविंशमुद्धृत्य दिव्याभरणभूषितः॥६७॥
 सोवर्णेन विमानेन शिङ्खिणीजालमालिना। उपगोपमानो गन्धर्वरप्सरोभिरलंकृतः॥६८॥

है अर्थात् जितेन्द्रिय होकर विधिपूर्वक विन्दुसर मे स्नान कर श्रद्धापूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरो का तिल-जल से नाम-गात्र उच्चारण कर के तर्पण करता है, वह इस प्रकार विधिवत् स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५४-५६॥ सूर्य और चन्द्रके ग्रहणों में, तुला और मेष राशि की सकान्ति में, अथन में (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के दिन), युगारम्भ में (अश्व तृतीया के दिन), मिथुन, कन्या, घन तथा मीन राशि में और अन्य शुभ तिथि में जो वहाँ पर ब्राह्मणों का घन आदि दान देते हैं, वे अन्य तीर्थों से सौ गुना अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥५७-५८॥ जो उस सारावर के तट पर पितरा को पिण्ड देते हैं, वे नि सन्देह पितरो का अक्षय वृत्ति प्रदान करते हैं ॥५९॥ इसके अनन्तर शिवालय में जाकर वाक्स्थयम तथा इन्द्रिय सयम कर के शिव की तीन बार प्रदक्षिणा कर के पूजा करे ॥६०॥ पवित्रतापूर्वक धी, दूध आदि से शिव को स्नान कराये। फिर सुगन्धित चन्दन तथा कुकुम लेप कर नानाविध पुष्प, पवित्र दिक्पत्र, आक तथा कमल से एवम् आगमावृत और वेदोक्त मन्त्र से चन्द्र मुकुटधारी उमापति की पूजा करे ॥६१-६३॥ अदीक्षित व्यक्ति केवल नाम ही लेकर मूलमन्त्र से पूजा करे। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, स्तुति, दण्डवत् प्रणाम, गीत, मनाहर वाद्य, नृत्य, जप, नमस्कार, जय शब्द तथा प्रदक्षिणा से विधिपूर्वक उमापति की पूजा करने से मनुष्य सर्वपापरोहित, रूप-यौवन-गावित, इक्कीस कुलों का उच्चारक, दिव्य मूपणा से भूषित तथा क्षुद्रघण्टिकाया की माला से युक्त सुवर्ण के विमान पर आरुढ़ होकर गन्धर्व और अप्सराया से स्तुत

उद्योतयन्दिशं सर्वां शिवलोकां स गच्छति । भुक्त्वा तत्र सुखं विप्रामनसं प्रीतिदायकम् ॥६९॥
 तत्तल्लोकवातिभिः सार्धं यावदाभूतसत्त्वबन्धम् । ततस्तस्मादिहाऽऽज्यातं पुण्यं पुण्यसन्धये ॥७०॥
 जायते योगिनां गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमा । योगं पादुपेतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७१॥
 क्षणोत्थापने चैव सत्रात्यानयने तथा । अगोत्राहया तथाऽष्टभ्यां पवित्रारोपणे तथा ॥७२॥
 ये च पश्यन्ति तं देवं कृत्तिवातसमुत्तमम् । विमानेनार्चयन्नेन शिवलोके व्रजन्ति ते ॥७३॥
 सर्वेशालेऽपि तं देवं ये पश्यन्ति समेषसः । तेऽपि पापविनिर्मुक्ता शिवलोके व्रजन्ति ये ॥७४॥
 देवस्य पश्चिमे पूर्वे दक्षिणे चोत्तरे तथा । योजनद्वितीयं सार्धं क्षेत्रं तदभूषितमुषितम् ॥७५॥
 तस्मिन्नेतरे स्निग्धं भास्वरेऽश्वरसन्निभम् । पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा पुण्ड्रे महेश्वरम् ॥७६॥
 आग्निर्धेनाग्निं पूर्वं देवदेवं त्रिजोचनम् । सर्वपापविनिर्मुक्तं विमानवरमास्थिता ॥७७॥
 उपवीयमाना गार्ध्वं शिवलोके व्रजन्ति ते । तिष्ठन्ति तत्र मुदिता कल्पमेव द्विजोत्तमा ॥७८॥
 भुक्त्वा तु त्रिपुराभोगादिष्टवक्रोक्ते मनोरमान् । पुण्यक्षयादिहाऽऽज्याता जायन्ते प्रवरे बुद्धे ॥७९॥
 अपवा योगिनां गेहे वेदवेदान्तपारगाः । उत्पद्यन्ते द्विजवरा सर्वभूतहिते रता ॥८०॥
 योगिनास्त्रायकुण्डं सर्वत्र समयुद्धम् । योगे शमोर्वरं प्राप्य ततो मोक्षं व्रजन्ति ते ॥८१॥
 तस्मिन्नेतरे पुण्ये स्निग्धं यद्वद्विजया । पूजयापूज्यं च सर्वत्र धने रम्याऽन्तरेऽपि वा ॥८२॥

घृतुप्पये श्मशाने वा यत्र कुत्र च तिष्ठति। वृष्ट्वा तल्लिङ्गमप्यग्रः श्रद्धया सुसमाहितः॥८३॥
 स्नापयित्वा तु तं भक्त्या गन्धैः पुष्पैर्मनोहरैः। घूपैर्दोषैः सन्वेद्येनमस्कारैस्तथा स्तवैः॥८४॥
 दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा। संपूज्यैवं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः॥८५॥
 नारी वा द्विजशार्दूलः संपूज्य श्रद्धयाऽन्विता। पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥८६॥
 कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समग्रान्मुनिसत्तमाः। तस्य क्षेत्रवरस्यायः श्रुते देवान्महेश्वरात्॥८७॥
 तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाऽश्रद्धयाऽपि वा। 'माघवादिषु मासेषु नरो वा यदिवाऽङ्गना'॥८८॥
 यस्मिन्त्यस्मिंस्तिथौ विप्राः स्नात्वा विन्दुसरोम्भसि। पश्येद्देयं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम्॥८९॥
 'गणं' चण्डं 'कातिकेयं' गणेशं वृषभं तथा। कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति॥९०॥
 स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्पापनाशने। प्राप्नोत्यभिमतान्कामाश्रित्यलोकं स गच्छति॥९१॥
 यः स्तम्भं तत्र विधिवत्करोति नियतेन्द्रियः। कुलं कविशमृद्धस्य शिवलोकं स गच्छति॥९२॥
 एकाम्रके शिवक्षेत्रे धाराणसीसमे शुभे। स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम्॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसंवाद एकाम्रक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं

नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

लिंग वन में गलियों में, चौराहों पर, श्मशान में या जहाँ-वहाँ भी मिले, उस लिंग को प्रसन्नता, श्रद्धा तथा सावधानी से स्नान करा नर मन्त्रपूर्वक गन्ध, मनोहर पुष्प, घूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तुति, दण्डवत्प्रणाम (तथा नृत्य-गीत आदि से पूजे) इस प्रकार विधानपूर्वक लिंग की पूजा करने से मनुष्य शिवलोक को जाता है॥८३॥
 ८५॥ द्विजवर्य! स्त्री भी अगर श्रद्धान्वित होकर इस तरह पूजा करेगी तो वह पूर्वोक्तफलमायिनी होगी, इसमें सोचने की कोई आवश्यकता नहीं॥८६॥ मुनिवर! महेश्वर को छोड़कर कौन ऐसा व्यक्ति है, जो उस उत्तम क्षेत्र में समग्र गुणों का वर्णन कर सके?॥८७॥ विप्रगण! पुरुष या स्त्री जो कोई भी श्रद्धा या अश्रद्धा से उस उत्तम क्षेत्र में जाकर वैशाख आदि मासों में किसी किसी तिथि को विन्दुसर में स्नान कर विरूप मेघ वाले शिव, वर देने वाली पार्वती गण, कातिकेय, गणेश, वृषभ कल्पद्रुम तथा सावित्री का दर्शन करेगा, वह शिवलोक को जायेगा॥८८-९०॥ वहाँ पापनाशक कापिल तीर्थ में विधिवत् स्नान कर के मनुष्य अमिलपिठ भोगों को प्राप्त करता है तथा शिवलोक को जाता है॥९१॥ जो जितेन्द्रिय होकर ध्वजारोपण करता है, वह इक्कीस कुलों का उद्धार कर शिवलोक को जाता है॥९२॥ धाराणसी के समान पवित्र उस एकाम्रक नामक शिव-क्षेत्र में जा स्नान करता है उसे निश्चय ही मुक्ति मिलती है॥९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में एकाम्र-क्षेत्र माहात्म्य-वर्णन

नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४१॥

१ क ० य तस्य देवस्य शूलिनः। त०। २ ख व्या परयाऽ०। ३ ख माघायादि०। ४ ख ०ना। तस्मिन्क्षेत्रे स्मितो वि०। ५ ख गणेशचन्द्र का०। ६ ख ०मे। काल नयति।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्कलक्षेत्र-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विरजे विरजा माता ब्रह्माणी संप्रतिष्ठिता । यस्याः 'संदर्शनात्मन्यः पुनात्यासप्तमं कुलम्' ॥१॥
सृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च । नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति ॥२॥
'अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति विरजे' लोकमातरः । सर्वपापहरा देव्यो वरदा भक्तवत्सलाः ॥३॥
आस्ते वंतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी । यस्यां स्नात्वा नरश्रेष्ठः सर्वपापः प्रमुच्यते ॥४॥
आस्ते 'स्वयंभूस्तत्रैव' श्रोडहूपो हरिः स्वयम् । दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या परं विष्णुं व्रजन्ति ते ॥५॥
कापिले गोप्रहे सोमे तीर्थे चालाबुसंजिते । 'मृत्युंजये' श्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकेश्वरे ॥६॥
तीर्थेष्वेतेषु भक्तिमान्विरजे संयतेन्द्रियः गत्वाऽऽत्तीर्थं विधिवत्स्नात्वा देवान्प्रणम्य च ॥७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः । उपगोयमानो गन्धर्वमम लोके महीयते ॥८॥
विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै । स 'करोत्यक्षयां तृप्तिं पितॄणां नात्र संशयः ॥९॥
मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा विरजे ये कलेश्वरम् । परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥१०॥
स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम् । पश्येद्देवीं च वाराहीं स याति त्रिदशालयम् ॥११॥

अध्याय ४२

उत्कलक्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विरज नामक क्षेत्र मे विरजा नामक माता ब्रह्माणी प्रतिष्ठित है, जिसके दर्शन करने से मनुष्य सात कुला को पवित्र करता है ॥१॥ एक बार उस देवी के दर्शन करने भक्तिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य अपने वंश का उद्धार कर भेदे लोक को प्राप्त करता है ॥२॥ उस विरज-क्षेत्र मे दूसरी भी सब पापों को हरने वाली, वर देने वाली तथा भक्तवत्सला लोकमातायें रहती हैं ॥३॥ वहाँ निखिल पापनाशिनी वंतरणी नामक नदी है, जिसमे स्नान कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥४॥ वही पर साक्षात् बराहहूपी स्वयम्भू हरि विराजते हैं । उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥५॥ विरज-क्षेत्र मे कापिल, गोप्रह, सोम, अलाबु, मृत्युंजय, श्रोडतीर्थ, वासुक तथा सिद्धकेश्वर नामक तीर्थों मे जो बृद्धिमान मनुष्य इन्द्रिय समपूर्वक स्नान करके देवताओं को प्रणाम करता है, वह सब पापों से रहित तथा उत्तम विमानम स्थित हो विरज-गन्धर्वों से स्तुत होते हुए भेदे लोक मे पूजित होता है ॥६-८॥ भेदे विरज-क्षेत्र मे जो पिण्डदान करता है, उसके पितर लोग अन्नय तृप्ति प्राप्त करते हैं, इसम कोई संशय नहीं ॥९॥ मुनिवर्ग ! भेदे विरज-क्षेत्र मे जो शरीर त्याग करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥१०॥ जो मनुष्य समुद्र मे स्नान कर भगवान् कपिल तथा वाराही देवी का

१ ग ००ने मर्त्य । २ स ०म् । तत्र दृष्ट्वा ३ स अथान्यास्तत्र । ४ स विरजा । ५ स ०य मु तर्त्य ॥

६ स ०व श्रीऽप्रति ह ॥ ७ स ०क्त्या नरस्तु मत्पुर व्रजेत् । वा ० । ८ स मृत्युंजये । ९ स वराति परां त् ० ।

सन्ति चान्यानितीर्यानि पुण्यान्यायतनानि च । तत्काले तु मुनिध्रेष्ठा वेदितव्यानि तानि वै ॥१२॥
 समुद्रस्योत्तरे 'तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः । 'आस्ते गुह्यं पर क्षेत्रं मुक्तित्वं पापनाशनम् ॥१३॥
 सर्वत्र बालुकाकोर्णं पवित्रं सर्वकामदम् । दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१४॥
 अशोकाजृन्पुनर्गावकुलं सरलद्रुमैः । पनसैर्नारिकेलैश्च शालैस्तालैः कपित्थकैः ॥१५॥
 चम्पकैः कणिकारैश्च चूतविल्वैः सपाटलैः । कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचेर्नागिकसरैः ॥१६॥
 प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्धन्वादिभिः । सर्जभूजशिवकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः ॥१७॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च मय्योधागुरुचन्दनैः । खजूराम्नातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सक्किशुकैः ॥१८॥
 अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च मधुघारशुभाञ्जनैः । शिशुपामलकैर्नोपेनिम्बतिल्वुविभीतकैः ॥१९॥
 सर्वतुफलगन्धाद्यैः सर्वतुकुसुमोज्ज्वलैः । मनोह्लादकरैः शुभ्रैर्नानाविहगनादितैः ॥२०॥
 श्रोत्ररम्यैः सुमधुरैर्बलनिदमनैरितैः । मन्तसः प्रीतिजनकैः शब्दैः खगमलैरितैः ॥२१॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोकिलैः फलबिज्जैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥२२॥
 प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तयाज्यैर्मधुरस्वरैः । श्रोत्ररम्यैः प्रियकरैः कूजदिभश्चावधितैः ॥२३॥
 केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः । भाल्तीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितैर्तरैः ॥२४॥
 जम्बोरकण्ठान्ज्जोर्लाडिमैर्बीजपूरकैः । मातुलुङ्गैः पूगफलैर्हिन्तालैः कदलीवनैः ॥२५॥
 अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः । रत्नावितानगुल्मैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥२६॥

दर्शन करता है, वह देवलोक जाता है ॥११॥ मुनिवर्य । दूसरे भी बहुत से तीर्थ तथा आलय हैं, जिन्हें इस समय जानना चाहिए ॥१२॥ द्विजवर । समुद्र के उत्तरी तट पर एक पापनाशन, मोक्षदायक परम गुप्त, बालुकामय, पवित्र सर्वकामप्रद, दश याजन प्रमाण विस्तृत तथा परम दुर्लभ क्षेत्र है ॥१३-१४॥ वह अशोक, अर्जुन, पुत्राग मौलसिरी सरल, कटहल, नारियल, सालू, ताल; कटवेल, चम्पा, कनकचम्पा, आम, बेल, पाटला, कदम्ब, कचनार, बड़हर, नागकेसर, जलामलक, लोध, नारंगी, कैथा, खैर, सर्ज, भोजपत्र अश्वकर्ण, तमाल, देवदारु, मदार, पारिजात वरगद अगर चन्दन खजूर, आमडा, मुचुकुन्द, पलाश, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, मधुर सहिजन शिशुपा, आमला, नीप, निम्ब तिल्वु वहेडा आदि वृक्षों से तथा मन को आनन्दित करने वाले, शुक्ल वर्ण वाले, नाना पक्षियों के शब्दों से शान्दित और सब ऋतुआ में फल फूलों से सम्पन्न वृक्षों से सुशोभित है ॥१५-२०॥ सुनने में मनोरम, अत्यन्त मधुर, कामप्रेरित तथा मन में प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षी-मुखाच्चरित शब्दा से, चकोर, शतपत्र, भृङ्गराज, तोते, काकिल गौरये, हारीत जीवजीवक प्रियपुत्र, आतक तथा दूसरे भी मधुर स्वर से आलाप करने वाले और प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षियों से और केतकीवन, अतिमुक्त, कुब्ज, भाल्ती, कुन्द बाण, लाल करवीर नीबू, करुण, अकाल, दाडिम, बीजपूरक, मातुलग, सुपारी, हिन्ताल कदलीवन तथा अन्य विविध वृक्षों एवं मनोहर पुष्पों से भी वह अलङ्कृत है ॥२१-२५॥ वहाँ रत्नाओं का विस्तार विविध

१ ग उल्के । २ ख भागे । ३ ख अस्ति । ४ ख सावित्र । ५ ख नालिबेरैश्च । ६ ख नै । शिरियाम ।

७ ख नरेवर्णाज्जोर्नारमूर्गितै । ८ ख नमुखादितै । ९ ख नदपुष्पैश्च । १० ख ननारमै । ल० ।

दीर्घिकाभिस्तडागैश्च^१ पुष्करिणीभिश्च धापिभिः । नानाजलाशयैः पुष्पैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥२७॥
 सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा मीलोत्पलैः शुभैः ॥२८॥
 बह्मारेः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुवकुटैः ॥२९॥
 कारण्डवैः^२ प्लवहैः कूर्मैर्मत्स्यैश्च मद्गुभिः । वात्यूहसारसाकीर्णैः कोयटिबकशोभितैः ॥३०॥
 एतैश्चायैश्च कज्जदिभैः^३ समन्ताज्जलचारिभिः^४ । खर्गजैलचरैश्चाग्नैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः ॥३१॥
 एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैः स्थलजलोद्भवैः । ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥३२॥
 स्वधर्मनिरतैर्घणैस्तथाऽन्यैः समलंकृतम् । हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ॥३३॥
 अशेषविद्यानिलयं सर्वधर्मगुणाकरम् । एव सर्वगुणोपेतं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥३४॥
 आस्ते तत्र मुनिधेष्ठा विख्यातः पुरुषोत्तमः । यावदुत्कलमयाद्वा दिक्षमेण प्रकीर्त्तिता ॥३५॥
 तावद्वृष्णप्रसादेन देशः पुण्यतमो हि सः । यत्र तिष्ठति विद्वत्त्वादेशे स पुरुषोत्तमः^५ ॥३६॥
 जगद्वायी जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अहं रुद्रश्च शक्रश्च देवश्चाग्निपुरोगमा ॥३७॥
 निवत्तामो मुनिधेष्ठास्तस्मिन्देसे सदा ययम् । गन्धर्वाप्सरसः सर्वाः पितरो देवमानवाः ॥३८॥
 यक्षा विद्याधराः सिद्धा मुनयः सशितव्रताः । ऋषयो बालखिल्याश्च कश्यपाद्याः प्रजेश्वराः ॥३९॥
 सुपर्णा किनरा नागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः । साङ्गाश्च चतुरो वेदाः शास्त्राणि विविधानि च ॥४०॥

अशेष, दीर्घिकाएँ, तालाव, पुष्करिणियाँ, बाघलियाँ, कमलिनी-वन-मण्डित माना जलाशय और कुमुद, कमल, नील कमल तथा लाल कमल से परिपूर्ण सरोवर हैं ॥२६-२८॥ कादम्ब, चक्रवाक, जल-कुवकुट, कारण्डव, प्लव, हंस, मद्गु (पानिवौडि), बालनण्ड और बक—ये तथा दूसरे भी जलचर पक्षा और जल में उत्पन्न होने वाले फूल उस क्षेत्र की शान्ता वशा रहे हैं ॥२९-३१॥ इस प्रकार नाना वृक्षा स्थल और जल में होने वाले पुष्पा, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासिया और स्वधर्मपरायण चारों वर्गों से बहु अलंकृत है ॥३२॥ वह हृष्ट-पुष्ट ध्यस्तिया से प्रपूर्ण तथा नर-नारिया से समन्वित है । अशेष विद्यावा बा वेन्द्र तथा समस्त धर्म-गुणा की निधि वह माना जाता है । इस प्रकार वह क्षेत्र निखिल गुणा से युक्त एवम् परमदुर्लभ है ॥३३-३४॥ मुनिधेष्ठो^१ वहाँ पुरुषोत्तम नाम से विख्यात वृष्ण भगवान् रहते हैं । दिया के भ्रम से जहाँ तक उत्कल (उड़ीसा) की सीमा है वहाँ तक वह देश वृष्ण की अनुकम्पा से पुण्यतम माना गया है ॥३५॥ जिस देश में विद्वत्त्वादेश, जगद्वायी, जगन्नाथ, पुरुषोत्तम वास करते हैं, वहाँ सब कुछ स्थित है ॥३६॥ मुनिवर । ऋ, रुद्र, इन्द्र और अग्नि आदि देवता उस देश में सदा वास करते हैं ॥३७॥ गन्धर्व, अप्सराएँ, पितर, देव, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, मुनि, महाप्रती ऋषि बालखिल्य, प्रजापति कश्यप आदि, मुण्य, विद्भर, नाग तथा अन्य स्वर्गवासी, अगा रहित चारा वेद, विविध शास्त्र इतिहास, पुराण, उत्तम दक्षिणा वाले यज्ञ, अनन्त पवित्र नदियाँ,

१ स. ०द्व बागारंरश्च समन्ततः । ना० । २ म् अमुकं । ३ स ०ण्डवैर्दं० । ४ स कीर्त्तिनि । ५ स ०सशपिभिः । ६ स अस्ति । ७ स । ०म आदमा स्वय ज० ।

इतिहासपुराणानि यज्ञाश्च वरदक्षिणाः। नद्यश्च विविधाः पुण्यास्तीर्थान्यापतनानि च॥४१॥
 सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देहे व्यवस्थिताः। एवं पुण्यतमे देशे देवर्षिपितृसेविते॥४२॥
 सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते। श्रेष्ठत्वं कस्य देशस्य किं 'चान्यदधिकं ततः'॥४३॥
 आस्ते यत्र स्वयं देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः। धन्यास्ते विबुधप्रहया य वसन्त्युत्कले नराः'॥४४॥
 तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमे। स्वर्गं वसन्ति ते मर्त्या न ते यान्ति यमालये॥४५॥
 ये वसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमे। सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेघसाम्॥४६॥
 ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम्'। चारुभूकेशमुकुटं चारुकर्णवतंसकम्'॥४७॥
 चारुस्मितं चारुदन्तं चारुकुण्डलमण्डितम्। सुनासं सुकोपलं च सुललाटं सुलक्षणम्॥४८॥
 प्रेलोभयानन्दजननं कृष्णस्य मुखपद्भुजम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभु-ऋषिसंवाद उत्कलक्षेत्रवर्णनं नाम
 द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

तीर्थ, देवालय, समुद्र और पर्वत उस देश में व्यवस्थित हैं॥३८-४१॥ ऐसे देवर्षियो तथा पितरो से सेवित, समस्त उपभोग पदार्थों से युक्त एवम् पवित्रतम देश में किसको बसने की इच्छा नहीं होती? उससे भला कौन देश श्रेष्ठ है? कहाँ उससे अधिक पदार्थ है? ॥४२-४३॥ जिस उत्कल देश में साक्षात् मुक्ति-दायक पुरुषोत्तम देव रहते हैं, वहाँ के निवासी देवसुख हैं और धन्यवाद के पात्र हैं॥४४॥ जो मनुष्य तीर्थराज के जल में स्नान कर पुरुषोत्तम के दर्शन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं, समपुरी कभी नहीं जाते॥४५॥ जो बुद्धिमान् पुरुषोत्तमाश्रित उस उत्कल क्षेत्र में बसते हैं उनका जीवन सफल है॥४६॥ जो देवश्रेष्ठ, विकसित कमल सदाश नेत्र वाले, सुन्दर माँ, केश, और मुकुट वाले, मनोहर कर्ण-भूषणो वाले, सुन्दर हास्य और दाँत वाले, सुन्दरकुण्डलो से विभूषित, सुन्दर नाक, कपाल, ललाट और लक्षण वाले तथा तीनों लोक को आनन्द देने वाले कृष्ण के मुखकमल को देखते हैं, उनका जीवन सफल है॥४७-४९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में उत्कल क्षेत्र-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

पञ्चतोर्यं च विधियत्कृत्वा तत्र महोपति । स्नान दान तपो होम देवताप्रेक्षण तथा ॥१२॥
भक्ष्या चाऽऽराध्य विधियत्प्रत्यह पुरपोत्तमम् । प्रसादाद्देवदेवस्य ततो मोक्षमवाप्तवान् ॥१३॥
'मार्कण्डेय च कृष्ण च दृष्ट्वा राम च भो द्विजा । सगरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्ष लभेद्भुवम् ॥१४॥

मुनय ऊचुः

कस्मात्ता नृपति पूवमिन्द्रद्युम्नो जगत्पति । जगाम परम क्षेत्र मुक्तिव पुरपोत्तमम् ॥१५॥
गत्या तत्र सुरश्रेष्ठ यथ स नृपसत्तम । वाजिमेघेन विधिवद्विष्टवान् पुरपोत्तमम् ॥१६॥
अथ स सर्वकन्दे क्षेत्रे परमदुर्लभे । प्रासाद कारयामास 'चेष्ट' प्रलोक्यविश्रुतम् ॥१७॥
अथ स कृष्ण राम च सुभद्रा च प्रजापते । निर्ममे राजशार्दूल क्षेत्र रक्षितवान्कथम् ॥१८॥
अथ तत्र महोपाल प्रासादे भुवनोत्तमे । स्थापयामास मतिमान्कृष्णादौस्त्रिदशाचिताम् ॥१९॥
एतत्सर्वं सुरश्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम् । वक्षतुमहंश्यशेषेण चरित तस्य धीमत ॥२०॥
न तृप्तिमधिगच्छामस्तव वाक्यामृतेन वं । श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्पर कौतूहल हि न ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

श्लाघु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्व पुरातनम् । सर्वपापहर पुण्य भुक्तिमुक्तिप्रद शुभम् ॥२२॥
वक्ष्यामि तस्य चरित यथावत् कृते युगे । शृणुध्व मुनिशार्दूला प्रयता सयतेन्द्रिया ॥२३॥

निर्माण कर स्नान दान तप तथा देव-दान किया और प्रतिदिन भक्ति से विधिपूर्वक पुरुषोत्तम की पूजा करके देवदेव की कृपा से मोक्ष प्राप्त किया ॥१२॥ द्विजगण ! मार्कण्डेय कृष्ण तथा राम का दान कर इन्द्रद्युम्न नामक सागर में स्नान करने से निश्चय ही मुक्ति मिलती है ॥१४॥

मुनियो ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! पहले किसलिए जगत्पति इन्द्रद्युम्न नामक राजा पुरपोत्तम सन्नक भक्ष्यादायक परम क्षेत्र को गया ॥१५॥ वहां जाकर कैसे उस श्रेष्ठ राजा ने अश्वमेध यज्ञ द्वारा विधिपूर्वक पुरपोत्तम की आराधना की ? ॥१६॥ कैसे सफलप्रद परमदुर्लभ क्षेत्र में उसने जैलक्ष्य प्रसिद्ध श्रेष्ठ भवन बनवाया ? ॥१७॥ हे प्रजापति ! कैसे उसने कृष्ण राम तथा सुभद्रा का निर्माण किया और क्षेत्र की रक्षा की ? ॥१८॥ कैसे बुद्धिमान राजा ने तीनों लोक में उत्तम उस भवन में देवताओं से अर्चित कृष्ण आदि देवों की स्थापना की ? ॥१९॥ देवश्रेष्ठ ! उस धीमान् के समस्त चरित्र विस्तार से यथावत् वर्णन कीजिए ॥२०॥ आपका वचनानुसार से हमें तृप्ति नहीं मिलती । ब्रह्मन् ! सुनने के लिए हमें बड़ी उत्सुकता हो रही है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! ठीक है ! ठीक है ! जो आपने प्राचीन सर्वपापनाशन भुक्ति मुक्ति प्रद तथा पवित्र चरित्र पूछा है उसे मैं कहूंगा । सत्ययुग में जैसे वह बताता हुआ या वैसे आप पवित्रता से इन्द्रिय मयमपूषक सनिये ॥२२॥ २३॥ उस राजा की मालव देश में अवन्ती नाम से प्रसिद्ध नगरी मानो पृथिवी का कण्ठ

अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विभुता^१। बभूव तस्य नृपते पृथिवी ककुदोपमा ॥२४॥
 हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारतोरणा। दृढयन्त्रागन्धारा^२ परिखाभिरलकृता ॥२५॥
 नानावर्णस्समाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया। रथ्यापणवती रम्या^३ सुविभवत्तनुपण्या ॥२६॥
 गृहगुपुरसबाधा वीथीभिः समलकृता। राजहसनभिः शुभ्रैश्चित्रप्रोबमनोहरैः ॥२७॥
 अनेकशतसाहस्रं प्रासादं समलकृता। यज्ञोत्सवप्रमुदिता गीतवादिनस्त्वना ॥२८॥
 नानावर्णपताकाभिर्ध्वजैश्च समलकृता। हस्तपदवरथसकीर्णपदातिगणसकुला ॥२९॥
 नानायोधसमाकीर्णा नानाजनपदैर्युता। ब्राह्मणे क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव द्विजातिभिः ॥३०॥
 समृद्धा सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्भिः समलकृता। न तत्र मलिना सति न मूर्खा^४ नापि निधना ॥३१॥
 न रोगिणो न होनाङ्गा^५ न द्यूतव्यसनाविता। सदा हृष्टा सुमनसो दृश्यते पुरुषा स्त्रिय ॥३२॥
 क्रीडति स्म दिवा रात्रौ हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक्। सुधेयः पुरुषास्तत्र दृश्यते मृष्टकुण्डला^६ ॥३३॥
 मूर्ध्ना सुगुणादर्थं दिव्यालकारभूयिता। कामदेवप्रतीकाशा सवलक्षणलक्षिता ॥३४॥
 सुकशा सुवपोलश्च सुमुखा श्मश्रुधारिणः। जातारः सवशास्त्राणा भेत्तारः शत्रुवाहिनीमः ॥३५॥
 दातारः सवरत्नाना भोक्तारः सर्वसपदामः। स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यते सुमनोहरा ॥३६॥
 हसवारणगामि^७ प्रफुल्लाम्भोजलोचना। समध्या^८ सुजघना पीनोन्नतपयोधरा ॥३७॥

(डिल्ला) है। वह नगरी हृष्ट पुष्ट लागो से परिपूर्ण दृढ प्राकार-तोरण (चहार दीवारी-बदनवार) वाली दृढ यत्र (ताला) तथा अगला (जजीर) यन्त्र द्वार वाली खाइयो से अलंकृत अनेक व्यापारियों से प्रपूर्ण विविध वस्तुओं के विक्रय से युक्त गलियों और बाजारों से समवित्त रमणीय अच्छी तरह विभक्त चौपटो से सज्यत गहो तथा नगर-द्वारों से पूर्ण गलियां से अलंकृत राजहंस के समान उज्ज्वल तथा मन हर सकडो हजारों चित्र विविध महला से भूषित यनों द्वार उत्सवों से आनंदित गीत तथा वाद्य से गूँदित अनेक वर्णों की ध्वजा पताकाओं से सुशोभित हाथी घोड़े रथ तथा पैदल सेनाओं से परिपूर्ण और नाना यन्त्राओं तथा जनपदों से युक्त है ॥२५-२९॥ मुनिवयः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र जातियों और विद्वद्वर्गों वह विभूषित है ॥३०॥ वहाँ न मल्ल न मूर्ख न निधन न रोगी न हीन अंग वाले और न जजरी रहते हैं ॥३१॥ वहाँ सदा हृष्ट प्रसन्न स्त्री-पुरुष दिन रात पथक पथक क्रीडा करते हैं ॥३२॥ वहाँ के पुरुष सुंदर वन तथा कुण्डलधारी रूपवान् गुणवान् दिव्य अलंकारों से भूषित कदपतुय सवलक्षण सम्पन्न सुंदर केश कपोल तथा मुख धाले दाढ़ी मूळ धारण करने वाले सब शास्त्रों के ज्ञाता शत्रु सेना के छदनकर्ता अखिल रत्नों के दाता और निखिल सम्पत्तियों के भोक्ता हैं ॥३३-३५॥ मुनिवयः वहाँ की मनोहर हंस तथा गज के समान चलने वाली विकसित कमल के समान नेत्र वाली सुंदर बटि तथा जघा धाली

१ छ ०ता। इद्रुमन्स्य। २ ग ०त्राकुल०। ३ छ ०म्या चतुण्यविनयिता। पुराट्टालकस्यकता सुविभक्त०। ४ ग नातिनि०। ५ छ ०ङ्गा नातानव्य०। ६ ख ०ल। प्रथा सुमगा दूरादि०। ७ ग सवका मानो। ८ छ ०य कर्णात्तायतलो०। ९ छ ०मध्याश्च सु०।

सुकोशाश्वाखदनाः सुखपोलः स्थिरालकाः^१। हावभावानतग्रीवाः कर्णाभरणभूषिताः॥३८॥
 बिम्बोष्ठ्यो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिताः॥ सुवर्णाभरणोपेताः सर्वालंकारभूषिताः॥३९॥
 श्यामावदाताः सुश्रोण्यः काञ्चीनूपुरनादिताः। दिव्यमाल्याम्बधरा दिव्यमग्नानुलेपनाः॥४०॥
 विद्यधाः सुभगाः कान्ताश्चावङ्ग्यः प्रियदर्शनाः। रूपलावण्यसंयुक्ताः रत्नाः प्रहसिताननाः॥४१॥
 श्रीङ्गयश्चन्द्रमदोन्मत्ताः सभासु चतुरेषु च। गीतावाद्यकथालापे रमयन्त्यश्च ताः स्त्रियः॥४२॥
 वारमुखाश्च दृश्यन्ते नृश्यगीतविशारदाः। प्रेक्षणालापकुशलाः सर्वयोषिदगुणान्विताः॥४३॥
 अन्धाश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्याः कुलस्त्रियः। पतिव्रताश्च सुभगा गुणैः सर्वैरलंकृताः॥४४॥
 धनश्चोपवनैः पुष्पैरुद्यानैश्च मनोरमैः। देवतायतनैर्विध्यनानाकुसुमशोभितैः॥४५॥
 शालस्तालेस्तमालैश्च बकुलैर्नागकेशरैः। पिप्पलैः^२ कर्णिकारैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः॥४६॥
 पुंनागैर्नारिकेरैश्च पनसैः सरलद्रुमैः। नारङ्गैर्लवङ्गैर्लोध्रैः सप्तपर्णैः शुभाञ्जनैः॥४७॥
 चूतविल्वकदम्बैश्च शिशपैर्धवलादिरैः। पाटलाशोकतगरैः करवीरैः सितैतरैः॥४८॥
 पीताम्बुनकमल्लतैः सिद्धैराम्रातकैस्तथा। न्यग्रोधाश्च तथा काशमयैः पलाशैर्वैवदाहभिः॥४९॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च तिल्लिङ्गीकविभोतकैः। प्राचीनामलकैः प्लक्षजैश्च शिरीषपादपैः॥५०॥
 कालैः^३ काञ्चनारैश्च मधुजम्बोरितन्दुकैः। खजूरैरगस्त्यैश्च शालोटकहरीतकैः॥५१॥
 कङ्कालैर्मुचुकुन्दैश्च हिन्तालैर्बीजपूरकैः। केतकीयनखण्डैश्च अतिमुक्तेः सकुञ्जकैः॥५२॥

स्मूल तथा उन्नत स्तनी वाली, सुन्दर केश, मुख तथा ऋषोल वाली, स्थिर लट वाली, हाव-भाव से सुकी ग्रीवा वाली, कर्णाभूषणों से भूषित, बिम्बोष्ठी, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, सुवर्ण के आभूषणों से युक्त, अशेष अलंकरण से भूषित, श्याम तथा श्वेत वर्णवाली, सुनितम्बा, काञ्ची (करधनी) और नूपुरों से श्रद्धित, दिव्य माला तथा वस्त्रधारिणी, दिव्य गन्ध तथा लेप से युक्त, चतुर, सौभाग्यवती, रमणीय, मनाहर अंग वाली, देखने में आकर्षक, रूप-सौन्दर्य से युक्त और हंसमुख स्त्रियाँ मदोन्मत्त हाँकर समाओ म, चतुरो पर ब्रीडा करती हैं और गीत, वाद्य, कथा तथा आलपों से मनोरंजन करती हैं॥३९-४२॥ (यहाँ नाचने गाने में निपुण, कटाक्ष तथा आलाप करने में कुशल और समस्त स्त्रियों के गुणों से सम्पन्न वेश्यायें देखी जाती हैं॥४३॥) दूसरी भी कुलवधुएँ वहाँ मिलती हैं, ज. गुणों में आचार्य पतिव्रता, सौभाग्यवती और सर्वगुण सम्पन्न हैं॥४४॥ वना से पवित्र उपवन से मनोरम उद्यान। से, दिव्य तथा नाना पुष्प समन्वित देवाल्यों से,॥४५॥ साबू ताल, तमाल, मौलसिरी, नागकेशर, पीपल, कनकचम्पा वृक्ष, चन्दन, अगर, चम्पक,॥४६॥ पुत्राग, नारियल, कटहल, सरल, नारंगी, वडहूर, लोध, सप्तपर्ण सहिजन॥४७॥ आम, बेल, कदम्ब, सीरान, कैय, खैर, पाटल, अशाक, तगर, लाल करवीर,॥४८॥ पीतअर्जुन, मल्लत, सिद्ध, आम्रातक, बरगद, अश्वत्थ, काशमय, पलाश, देवदारु,॥४९॥ मदार, पारिजात, तिल्लिङ्गीक, बहेडा, प्राचीनामलक (जलआमला) पाकर, जामुन, शिरीष,॥५०॥ कालेय (काला चंदन), कंचनार, मधु, नौदू, खजूर, अगस्त्य, शालोटक, हरीतक,॥५१॥ कङ्काल, मुचुकुन्द, हिन्ताल

मल्लिकाकुन्दवाणेश्च कदलीखण्डमण्डितः। मातुलुङ्गः पूगफलः करुणः सिन्धुवारकः ॥५३॥
 बहुवारः कोविदारचंदरः सकरञ्जकः। अन्येऽपि विविधे पुष्पवृक्षेऽप्यन्ये मनोहरः ॥५४॥
 लतागुल्मेऽपि वितानेऽपि उद्यानेऽपि नन्दोपमः। सदा कुसुमगन्धादयः सदा फलभरातः ॥५५॥
 नानापक्षिते रम्येऽनानामृगगणावृतः। चकोरः शतपत्रश्च भृङ्गारः प्रियपुत्रकः ॥५६॥
 कलविद्धं मंपूरंश्च शुकः कोकिलकंस्तथा। कपोतः खञ्जरीतश्च श्येनः पारावतस्तथा ॥५७॥
 खगंश्चान्येऽपि विविधेः श्रोत्ररम्येऽपि नोरमः। सरितः पुष्करिण्यश्च सरासि सुबह्वि ॥५८॥
 अन्येऽपि जलाशयेः पुण्येः कुमुदोत्पलमण्डितः। पद्मेः सितेतरः शुभ्रेः कल्लारश्च सुगन्धिभिः ॥५९॥
 अन्येऽपि विविधेः पुष्पेऽपि जलेः सुमनोहरः। गन्धामोदकरेऽपि विविधेः सर्वतुल्यसुमोऽपि ज्वलः ॥६०॥
 हंसकारण्डवाकोणेऽपि च नवाकोपशोभितः। सारसेऽपि बलाकेश्च कूर्मं मत्स्यः सनकः ॥६१॥
 जलपादेः कदम्बश्च प्लवश्च जलकुक्कुटः। खगजं लवरेऽपि चान्येऽपि नारवविभूषितः ॥६२॥
 नानावर्णः सदा हृष्टैरपि वितानि समन्ततः। एवं नानाविधेः पुष्पेऽपि विविधेऽपि जलाशयेः ॥६३॥
 विविधेः पादपेः पुण्येऽपि वितानेऽपि विविधेऽपि जलस्थलचरैश्च विविधेऽपि विविधेऽपि ॥६४॥
 देवतायतनेऽपि विविधेः शोभिता सा महापुरी। तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ॥६५॥
 महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः। शिवकुण्डे नरः स्नात्वा विविधस्तपनाशने ॥६६॥

वीरपूरक, केतकीवन, अतिमुक्त, कुड्ज, ॥५२॥ मल्लिका, कुन्द, वाण, केला, मातुलुङ्ग, सुपारी, करुण, सिन्धु-
 वारक, ॥५३॥ बहुवारक, कोविदार, बेर, करञ्ज आदि वृक्षा से, अन्य अनेक मनोहर पुष्प-वृक्षो से, ॥५४॥ लता
 के गुच्छा से, नन्दन वन के समान विस्तृत उद्याना से, सदा पुष्प-गन्धो से सुसम्पन्न वृक्षो से, सदा फलो के मार
 से अपनत वृक्षा से ॥५५॥ नाना पक्षियों के मनोरम शब्दो से, विभिन्न पशुगणो से और चकोर, शतपत्र, भृङ्गार
 प्रियपुत्रक ॥५६॥ गौरये भयूर, ताते, कोयल, कबूतर, खञ्जन, बाज, पारावत तथा और भी विविध मनोरम
 पक्षिया से वह नगरी आवृत है ॥५७॥ वहाँ नदियाँ, पुष्करिण्याँ और बहुत से सरोवर तथा तालाब हैं जो
 कुमुद-कमला से, श्वेत से इतर वर्ण वाले कमलों से, सुगन्धित श्वेत कमलो से, दूसरे भी अनेक जलात्पन्न मनोहर
 पुष्पा से और अत्यन्त गन्ध युक्त, दिव्य तथा सब ऋतुओं में होने वाले उज्ज्वल पुष्पो से सुशोभित हैं ॥५८-६०॥
 जिनमें हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस, बलाक, कूर्म, मत्स्य, नरक, जलपाद, कदम्ब प्लव जलकुक्कुट
 और दूसरे भी नाना प्रकार के शब्दा से विभूषित तथा सदा प्रसन्न, अनेक वर्ण वाले जलचर पक्षीगण रहते
 हैं ॥६१-६२॥ इस प्रकार विविध पुष्प, जलाशय, वृक्ष, उद्यान, जल तथा स्थलचारी पक्षी और दिव्य
 देवालय में वह महानगरी सुशोभित है ॥६३-६४॥ वहाँ महाकाल नाम से विख्यात सब कामनाओं के दाता,
 त्रिनेत्रधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् शिव रहते हैं ॥६५॥ (विद्वान् मनस्य पापनाशन
 शिवकुण्ड म विधिपूर्वक स्नान कर देवता, पितर तथा ऋषियो का विधान से तर्पण कर दिवालय में जाये।

देवान्पितॄन्पुंशंचैव संतप्य विधिवद्बुध । गत्वा शिवालये पदवास्तुत्वातं त्रिप्रदक्षिणम् ॥६७॥
 प्रविश्य संयतो भूत्वा धीतवासा जितेन्द्रियः । स्नानं पुष्पैस्तथा गन्धर्पंदोषैश्च भक्तितः ॥६८॥
 नैवेद्यैरुपहारेश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः । दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यैः स्तोत्रैश्च शंकरम् ॥६९॥
 सपूज्य विधिवद्भुक्त्वा महाकालं सकृच्छिवम् । अश्वमेधसहस्रस्य फल प्राप्नोति मानवः ॥७०॥
 पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः । आरह्य त्रिदिव याति यत्र शंभोर्निकेतनम् ॥७१॥
 दिव्यरूपधरं श्रीमान्दिव्यालकारभूषितः । भुङ्क्ते तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥७२॥
 शिवलोके मुनिश्रेष्ठा जराभरणवर्जितः । पुष्पक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे ब्राह्मणे कुले ॥७३॥
 चतुर्वेदी भवेद्विप्रः सर्वशास्त्रविशारदः । योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७४॥
 आस्ते तत्र नदी 'पुण्या शिप्रा' नामेति विश्रुता । तस्यां स्नातस्तु विधिस्तसंतप्य पितृदेवतः ॥७५॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः । भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तमः ॥७६॥
 आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दनः । गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुविर्भुक्तिप्रदो हरिः ॥७७॥
 त दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुतः । विमानैर्नाकवर्णैर्न किङ्किणीजालमालिना ॥७८॥
 सर्वकामसमुद्धेन कामगेनास्थिरेण च । उपगोयमानो गन्धर्वैर्विष्णुलोके महोद्यते ॥७९॥
 भुङ्क्ते च 'विविधान्कामान्निरातङ्को' गतज्वरः । आभूतसंप्लवं यावत्सुरूपं सुभगः सुखी ॥८०॥

पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा कर पवित्रवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय तथा सयमी होकर स्नान, पुष्प, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, गीत, वाद्य, प्रदक्षिण, दण्डवत् प्रणाम, नृत्य और स्तोत्र से महाकाल शिव की विधिपूर्वक भक्ति से पूजा करे। (इस तरह एक बार पूजा करने से) मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और समस्त पापों से रहित हो स्वेच्छाचारी विमानों पर चढ़ कर शम्भु के निवास स्थल को जाता है ॥६६-७१॥ वहाँ दिव्य मृगणों से मूर्धित तथा दिव्यरूपधारी होकर कल्पान्त तक अनेक प्रकार के उत्तम भोगों का भोगता है ॥७२॥ मुनिवर्य! शिवलोक में बुढ़ापा तथा मृत्यु नहीं होती। पुष्पक्षय होने पर जीव यहाँ आकर उत्तम ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है और चारों वेदों का ज्ञाता तथा सर्वशास्त्र-कुशल होकर पाशुपत योग प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति कर लेता है ॥७३-७४॥ वहाँ एक शिप्रा नाम से प्रसिद्ध पवित्र नदी है। उसमें स्नान तथा विधिपूर्वक पितर देवताओं के तर्पण करने से मनुष्य सर्वपाप रहित हो जाता है और उत्तम विमान द्वारा स्वर्गलोक जाकर अनेक भोगों का उपभोग करता है ॥७५-७६॥ वही पर गोविन्दस्वामी नाम से प्रसिद्ध, मुक्ति-मुक्ति दायक, देवों के देव, भगवान् जनार्दन रहते हैं ॥७७॥ उनका दर्शन कर मनुष्य मुक्त हो जाता है और इक्कीस कुलों के साथ सूर्य के समान वर्ण वाले, शुद्ध घण्टिकाओं की माला वाले, सब कामनाओं के पूरणकर्ता, स्वेच्छाचारी तथा अस्थिर विमान में स्थित होकर गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुलोक में पूजित होता है ॥७८-७९॥ वहाँ वह आतङ्क तथा ज्वर से रहित, रूपवान्, मायवान् तथा सुखी होकर

कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मण स्यान्महीतले । प्रवरेधोगिना गेहे वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥८१॥
 धेष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् । विक्रमस्वामिनामान विष्णु तत्रैव भो द्विजा ॥८२॥
 दृष्ट्वा नरो वानारी वा फलपूर्वोदित लभेत् । अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवा शशपुरोगमा ॥८३॥
 मातरश्च मुनिधेष्ठा सबकामफलप्रदा । दृष्ट्वा तान्विधिवदभवत्या सपूज्य प्रणिपत्य च ॥८४॥
 'सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम् । एव सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ॥८५॥
 नित्योत्सवप्रमुदिता यथेन्द्रस्यामरावती । पुराष्टादशसयुक्ता सुविस्तीर्णचतुष्पथा ॥८६॥
 धनुर्न्याघोषनिनदा सिद्धसगमभूषिता । विद्यावद्गुणभूषिता वेदनिर्घोषनादिता ॥८७॥
 इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च । काव्यालापकथाश्चैव श्रूयन्तेऽहनिश द्विजा ॥८८॥
 एवमभागुणाढयासातद्वु (सोज्ज) यिनी समुदाहृता । यस्या राजाऽभवत्पूवमिन्द्रद्युम्नो महामति ॥८९॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसवादेऽवन्तिकादर्पणं नाम त्रिवत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

मत्पान्त तक विविध मन्त्र का संग्रह है ॥८०॥ फिर समय पाकर भूतल पर आकर यमियों के उत्तम घर में जन्म लेता है और वेद शास्त्रों का तत्त्वज्ञान ब्राह्मण होकर वैष्णव योग में स्थित होते हुए मोक्ष प्राप्त करता है ॥८१॥ द्विजगण ! वही पर विक्रमस्वामी नामक विष्णु ४ दशन करने से नर या नारी पूर्वोक्त फल लाभ करते हैं । मुनिधर ! वहाँ दूसरे भी इन्द्र आदि देवता तथा सब कामना आका देने वाले मातृगण विद्यमान हैं । उनका दशन कर मक्ति से विधिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य सबपाप रहित होकर स्वर्ग जाता है ॥८२ ८४॥ (इस प्रकार श्रद्धा राजा से पालित वह रमणीय नगरी अमरावती की तरह नियजसवा से प्रमुदित रहता है ॥८५॥ द्विजगण ! उस नगरी में अट्ठारह विस्तृत चौराहे हैं धनप-गणा के महागण्ड होते रहते हैं अनेक सत् महात्मा तथा विद्वदगण वेद ध्वनि करते रहते हैं और इतिहास पुराण विविध शास्त्र काय कथा तथा आख्यायिकों की चर्चा रात दिन चलती रहती है ॥८६ ८८॥ इस प्रकार वर्णित उस गुण-सम्पन्न नगरी का नाम उज्जयिनी है जिसमें पहले इन्द्रद्युम्न नामक महाबुद्धिमान राजा हुआ था ॥८९॥)

श्री ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में अवन्तिका-वर्णन

नामक ततालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य दक्षिणोदधितटगमनम्

ब्रह्मोवाच

तस्यां स नृपति. पूर्वं कुर्वन्नाज्यमनुत्तमम्। पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिबोरसान् ॥१॥
 सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः। मतिमान्धर्मसंपन्नः सर्वशास्त्रभूतां वरः ॥२॥
 सत्यवाञ्छीलवान्दान्तः श्रीमान्परपुरंजयः। आदित्य इव तेजोभी रूपैरादिवनयोर्विव ॥३॥
 वर्धमानसुराश्चर्यः शत्रुतुल्यपराक्रमः। शारदेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणं. समलंकृतः ॥४॥
 आहर्ता सर्वयज्ञानां हयमेधाविकृत्तया। दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च तत्तुल्यो नास्ति भूपति ॥५॥
 सुवर्णमणिमुपताना गजाश्वानां च भूपतिः। प्रवदो विप्रमुह्येभ्यो यागे यागे महाधनम् ॥६॥
 हस्त्यश्वरथमुत्थाना कम्बलाजिनवाससाम्। रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य न विद्यते ॥७॥
 एवं सर्वधनैर्युक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः। सर्वकामसमृद्धात्मा कुर्वन्नाज्यमश्वष्टकम् ॥८॥
 तस्येयं मतिरुत्पन्ना सर्वयोगेश्वरं हरिम्। कथमारार्थयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम् ॥९॥
 विचार्य सर्वशास्त्राणि तन्त्राण्यागमविस्तरम्। इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥१०॥

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिणसमुद्र के तट पर जाना

ब्रह्मा ने कहा—पहले उमनगरी में उत्तम राज्य करते हुए वह बुद्धिमान् राजा अपने पुत्रों की तरह प्रजाओं का पालन करता था ॥१॥ वह सत्यवादी महाविद्वान्, वीर, सर्वगुणाकर, बुद्धिमान्, धर्मगण, वाञ्छाओं में श्रेष्ठ, धनवान्, मीलवान्, गदमी, श्रीमान्, शत्रुविजयी, मूर्ध्नि के समान तेजस्वी, अस्त्रवीरुकार के मनुष्य रूपवान्, देवताओं का शक्ति करने वाला, इन्द्रतुल्य पराक्रमी, शरद् ऋतु के चन्द्र तुल्य वाग्निमान् अग्निज ल्पणों में अश्रुत अस्त्रमेघ आदि यज्ञों का कर्ता और दान, यज्ञ तथा तप करने में अतीव राजा था ॥२-९॥ वह प्रणियज में उत्तम वाञ्छणों का पर्याप्त धन—गुणों, मणि, माला, हाथी और घोड़े—देता था। उक्त हाथी, घोड़े, रथ, कम्बल, वस्त्र, दान तथा धन धान्यों का अन्त नहीं था। इस तरह सब प्रजा के धन में युक्त, गमरन गुणा में अश्रुत तथा सब कामनाओं में परिपूर्ण वह राजा अश्वष्टक राज्य करता था ॥६-८॥ उक्त धन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं भुक्ति-मुक्ति-दायक प्रभु हरि की सेवा उपायता हूँ। तब वह अस्त्र वाहन, तन्त्र, आगम, इतिहास, पुराण, वेदांग, धर्मशास्त्र, ऋषिशास्त्र नियम तथा विद्याओं के रचना के

धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमानृषिभाषितान् । वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि ॥ यानि च ॥ ११ ॥
 गुरुं संसेव्य ॥ यत्नेन ब्राह्मणावेदपारगान् । आधाय परमां काष्ठां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२ ॥
 संप्राप्य परमं तत्त्वं वासुदेवाख्यमव्ययम् । भ्रान्तिज्ञानादतोतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः ॥ १३ ॥
 कयमारोपयिष्यामि देवदेवं सनातनम् । पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥
 वनमालावृत्तोरस्कं पद्मपत्रायतेक्षणम् । श्रीवत्सोरःसमायुक्तं मुकुटाङ्गदशोभितम् ॥ १५ ॥
 स्वपुरातन तु निष्क्रान्त उज्जयिन्याः प्रजापतिः । बलेन महता युक्तः सभृत्यः सपुरोहितः ॥ १६ ॥
 अनुजामुस्तु तं सर्वे रयिनः शस्त्रपाणयः । रथविमानसकाशिनः पताकाध्वजसेवितः ॥ १७ ॥
 सादिनश्च तथा सर्वे प्रासतोमरपाणयः । अश्वैः पवनसकाशैरनुजामुस्तु तं नृपम् ॥ १८ ॥
 हिमवत्सभवंमन्तैर्वारणः पर्वतोपमः । ईपादन्तैः सदा मत्तैः प्रवण्डैः पण्डितैः ॥ १९ ॥
 हेमकक्षैः सपताकैर्घण्टारवविभूषितैः । अनुजामुश्च तं सर्वे गजयुद्धविशारदाः ॥ २० ॥
 असह्येयाश्च पादाता धनुष्प्रासासिपाणयः । दिव्यमाल्याम्बधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥ २१ ॥
 अनुजामुश्च तं सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः । सर्वास्त्रकुशलाः शूराः सदा सङ्ग्रामलालसाः ॥ २२ ॥
 अन्तपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वाः स्वलङ्कृताः । विम्बोष्ठचारुदशनाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ २३ ॥
 दिव्यवस्त्रधराः सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिता । दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥ २४ ॥

विचार कर यत्नपूर्वक वेदपारगत ब्राह्मण तथा गुरु की सेवा कर चरम सीमा पर पहुँचकर कृतकृत्य हो गया ॥ १-१२ ॥ पश्चात् काल वासुदेव सत्त्वक अविनाशी परम तत्त्व को प्राप्त कर मुमुक्षु, जितेन्द्रिय तथा भ्रमात्मक ज्ञान से परे होकर देवों के देव, सनातन, पतवस्त्रधारी, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र गदाधारी वनमाला से आवृत वक्षस्थल वाले, विकसित कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त तथा मुकुट और अगद (बाहुभूषण) से युक्तमित (कृष्ण की केशे आराधना करें) यह सोचते हुए राजा अपने नगर उज्जयिनी से चल पड़ा ॥ १३-१५ ॥ उसके पीछे विशाल सेना, नौकर-चाकर, पुरोहित और शस्त्र हाथी म लिए सब रथारोही ध्वजा-पताकाओं से सेवित, विमान तुल्य रथों में स्थित होकर चल पड़े ॥ १६-१७ ॥ अश्वारोहीगण भी पवन तुल्य वेगी अश्वों पर चढ़ कर माले और तोमर धारण कर राजा के पीछे हो लिए ॥ १८ ॥ हिमालय प्रदेश में उत्पन्न, पर्वताकार, हरिण के समान दाँत वाले, सदा मतवाले भयंकर, साठ वर्ष वाले सुवर्णमय होदा तथा पताका से युक्त और घटा के शब्दों से विभूषित हाथियों पर चढ़ कर गजयुद्धविशारदवृन्द राजा का अनुसरण करने लगे ॥ १९-२० ॥ दिव्यमाला वस्त्र और सुगन्धित लेपधारी, सब प्रकार के अस्त्र चलाने में कुशल वीर, सदा सङ्ग्राम में अमिलीये तथा सुन्दर कुण्डलों से विभूषित असह्य युवक धनुष, माले और तलवार हाथों में लिये पैदल ही राजा का अनुगमन करने लगे ॥ २१-२२ ॥ विम्बोष्ठी, सुन्दर दाँत वाली, अशेष आभूषणा से अलङ्कृत, दिव्यवस्त्रधारिणी, दिव्य मालाओं से विभूषित,

१ ख ० नि सर्वश । गु० । २ ख समाव्य ३ ख सौदत्ता । ४ ख रेखादन्त । ५ ख ० वै जययु० ।
 ६ ग सादिपा० । ७ ख रूपयौवनसम्पन्ना ।

सुमध्यमाश्चास्वेपाश्चादकर्णालकाञ्चिताः । ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः ॥२५॥
 यान्तरुचावचैः शुभ्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः । उपगीयमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः ॥२६॥
 वेष्टिताः 'शस्त्रहस्तैश्च' पद्मपत्रायतेक्षणाः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजमुदच तं नृपम् ॥२७॥
 वणिग्प्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः । धने रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः ॥२८॥
 अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः । तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः ॥२९॥
 रङ्गोपजीविनः सर्वे मासविक्रयिणस्तथा । तेलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा ॥३०॥
 फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा । तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रशः ॥३१॥
 गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये वस्त्रसूचकाः । मेघपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः ॥३२॥
 धान्यविक्रयिणश्चैव सवतुविक्रयिणश्च ये । गुडविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः ॥३३॥
 (गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः । शैलूपाः 'कथकाश्चैव' पुराणार्थविशारदाः ॥३४॥)
 कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः । विषयना गारुडाश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः ॥३५॥
 व्योकारास्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्चरुठकाः । कौयकाराश्चित्रकाराः कुन्दकाराश्च पावकाः ॥३६॥

विषय गन्धाः से लिप्त अग वाली, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर वेश वाली, कानो पर लटकते हुए वाली से सुशोभित, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, रत्नगणा से सुरक्षित, सब तरह की मणि काञ्चन भूषित सवारिया पर स्थित, मागधदन्तियो से स्तुत, पद्म पत्र के समान दीर्घ नेत्र वाली और शस्त्रधारिया से आवृत अन्त पुर की स्त्रिया अन्धी तरह सज घज कर राजा के पश्चात् प्रस्थित हुई ॥२३-२६॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा धन रत्न, सुवर्ण, स्त्री और सामानो को साथ लिये बणिक-समूह, अस्त्र-विश्रेता ताम्बूल तथा जूए से जीविका उपार्जन करने वाले, घास-विश्रेता, लकड़ी का व्यापार करने वाले ॥२७-२९॥ रत्ना से जीविका कमाने वाले, मास विश्रेता, तेल विश्रेता, वस्त्र-विश्रेता, ॥३०॥ फल विश्रेता पत्र विश्रेता, घास ढाने वाले, हजारी धात्री, ॥३१॥ अहीर, नाई, दर्जी, गडरिये, बकरी पालने वाले, हरिण पालने वाले, हंस पालने वाले, ॥३२॥ धान्य विश्रेता, सतू बेचने वाले, गुड बेचने वाले, लवण विश्रेता ॥३३॥ (गवैः, नर्तक, बदी, नट कथक, पौराणिक, ॥३४॥ कवि, काव्यरत्नी, नाना काव्यनिपुण विषयज्ञ, विषयप्रज्ञाता, रत्ना के परीक्षक, ॥३५॥) लोहार, बसेरा, कोतकार, चित्रकार

१ स यष्टिहस्तैश्च । २ स ०श्च अ० । ३ स ०५ । वश्या सर्वाङ्गमुख्यो नानालकारभूषिता । परिवार-गणं मार्धमनुजमुत्तया नृपम् । तथा मणि ग० । ४ स ०२ । साङ्गवेदविदश्चैव नानागास्त्रार्थपारणा । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या गूढास्त्रैवाष्टज्ञातवः । स्वर्णकाराश्च कर्मारा लङ्काराश्चमनुष्टुका । मणिकारा कुम्भकाराश्चवर्णकाराश्च पावका । पराकारा क्षेत्रकारा मुद्रणकाराश्च शिल्पिनः । वेगकारास्तुम्बिकारा इपुकारा स्वजीविन । स्वर्णकारा सङ्गकारा स्वधाकाराश्च बाहका । अपूपकारा सर्वेत्यविव्रयकास्तथा । मालाकारा पर्वकारा सर्वविक्रयिणश्च ये । मत्स्यविक्रयिणश्चैवमा० । ५ स ०५ । मुखविषयकाश्चैव ताम्बूरीपण्यजीविन । तृणविक्रयकाश्चैव बाटविक्रय-कास्तथा । रङ्गोपजीविनश्चैव रज० । ६ स कत्यका० ।

दण्डकाराश्चासिकारा सुराद्यतोपजीविनः । मत्स्यं दूताश्च कायस्या ये चान्ये कर्मकारिणः ॥३७॥
तन्नुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाठका । लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपक्ष्यपुष्पजीविनः ॥३८॥
गजवेद्याश्च घंटाश्च नरवेद्याश्च ये नरा । वृक्षवेद्याश्च गोवेद्या ये चान्ये छेददाहका ॥३९॥
एते नागरिका सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिता । अनुजम्बुस्तु राजान समस्तपुरवासिनः ॥४०॥
यथा व्रजन्त पितर प्रामान्तर समुत्सुका । अनुयागन्ति यथा पुत्रास्तथा त तेऽपि नागरा ॥४१॥
एव स नृपति श्रीमान्वृत सर्वे मंहाजनैः । हस्तद्वयपादातैर्जगाम च शनं शनं ॥४२॥
एव गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम् । सर्वैस्तैर्दीर्घकालेन दलैरनुगत प्रभु ॥४३॥
ददश 'सागर रम्य नृत्यन्तमिव च स्थितम् । अनेकशतसाहसैरुमिभिश्च समाकुलम् ॥४४॥
नानारत्नालय पूर्णं नानाप्राणिमहाकुलम् । वीचीतरङ्गबहुल महाश्चर्यसमन्वितम् ॥४५॥
तीर्थराज महाशब्दमपार सुभयकरम् । मेघवृन्दप्रतीकाशमगाध मकरालयम् ॥४६॥
मत्स्ये कूर्मैश्च शङ्खैश्च धुवितकानकशङ्खभिः । शिशुमारैः कर्कटैश्च घृत सर्पैर्महाविषैः ॥४७॥
लवणोद हरे स्थान शयनस्य नदीपतिम् । सर्वपापहर पुण्य सर्ववाञ्छाफलप्रदम् ॥४८॥
अनेकावर्तगम्भीर दानवाना समाश्रयम् । अमृतस्यारणि दिव्य देवयोनिमपा पतिम् ॥४९॥
विशिष्ट सर्वभूताना प्राणिना जीवधारणम् । सुपवित्र पवित्राणा मङ्गलाना च मङ्गलम् ॥५०॥

शरादने वाले हटक ? पावक (तपस्वी ?) ॥३६॥ दण्ड बनाने वाले तलवार बनाने वाले मद्य विक्रता
पहुँचान दूत कायस्थ अय कर्मचारी ॥३७॥ जुलाहे सोनार, वार्तिक (जामूस) तैलपाठक (तेली) लावा पक्षी
से आबिका कमाने वाले तीतर पक्षी से निर्वाह करने वाले पशु पक्षियों से जीने वाले ॥३८॥ हाथी के वैद्य
वैद्य मनुष्य वैद्य वृक्ष-वैद्य गो वैद्य छदनकर्ता दाह-कर्ता—ये नागरिक और दूसरे भी समस्त पुरवासी
जिनके नाम नहीं लिख गए राजा के अनुगमन करने लगे ॥३९॥ जैसे दूसरे गाँव को जाने वाले
पिता का पुत्र उत्सुकता से अनुगमन करते हैं उसी तरह वे नागरिक भी भी राजा के अनुयायी हुए ॥४०॥
इस प्रकार हाथी घोड़े रथ पैदल सेना और समस्त नागरिकों से वेष्टित राजा धीरे धीरे प्रस्थान करने
लगा ॥४१॥ इस प्रकार वह राजा सकल सैनिका के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँचा ॥४२॥
राजा ने नाचते हुए से स्थित रमणीय सैकड़ों-हजारों तरंगा से व्याप्त ॥४३॥ नाना रत्नों के आलय पूर्ण
अनेक जीव जंतुजा से भरे महान आश्चर्यजनक ॥४४॥ तीर्थराज महापद्मकारी पाररहित अतिभयकर
मेघसमूहदुल्य अगाध ग्राहा के घर ॥४५॥ मत्स्य कूर्म शंख गवितका (सितुही) नर शङ्ख शिशुमार
कर्कट तथा महाविषधर सर्पों से युक्त ॥४६॥ खारे जल वाले हरि के शयन-स्थान नदिया के पति सब
पापों के हरने वाले पवित्र सब कामनाओं के फल देने वाले ॥४७॥ अनेक आवतों से गम्भीर, दानवी के आश्रय
अमृत के उत्पत्ति-स्थान दिव्य देव-योनि जल के स्वामी ॥४८॥ सब के प्रिय प्राणिमा के जीव धारण

तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादसां पतिम् । चन्द्रवृद्धिक्षयस्येव यस्य मानं प्रतिष्ठितम् ॥५१॥
 अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम् । उत्पत्तिस्थितिसंहारहेतुभूतं सनातनम् ॥५२॥
 उपजोद्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम् । दृष्ट्वा तं नृपतिश्चेष्टो विस्मयं परमं मतः ॥५३॥
 निवासमकरोत्तत्र वेलामासाद्य सागरीम् । पुण्ये मनोहरे देशे सर्वभूमिगुण्युते ॥५४॥
 वृतं शालैः कदम्बैश्च पुनर्णैः सरलद्रुमैः । पनसर्नारिकेलैश्च दकुलैर्नागकेसरैः ॥५५॥
 तालैः पिप्पलैः खजूरैर्नारङ्गैर्बौजपूरकैः । शालैरात्रातकैर्लोध्रैर्बकुलैर्बहुवारकैः ॥५६॥
 कपित्थैः कर्णिकारैश्च पाटलालशोकचम्पकैः । दाडिमैश्च तमालैश्च पारिजातैस्तयाज्जुनैः ॥५७॥
 प्राचीनामलकैर्विल्वैः प्रियंगुवटखादिरैः । इङ्गदीसप्तपर्णैश्च अदवत्यागमरयजम्बुकैः ॥५८॥
 मधुकैः कर्णिकारैश्च बहुवारैः सतिन्दुकैः । पलाशवदरैर्नारैः सिद्धनिम्बशुभाञ्जनैः ॥५९॥
 वारकैः कोविदारैश्च भल्लातामलकैस्तथा । इति हिमालयकाञ्चोलैः करञ्जैः सविभीतकैः ॥६०॥
 ससर्जमधुकाशमयैः शालमलीदेवदारुभिः । शालोदकैर्निम्बवटैः कुम्भीकोष्ठहरीतकैः ॥६१॥
 गुग्गुलैश्चन्दनैश्च क्षेस्तयैश्चागुरुपाटलैः । जम्बीरकहर्षणैश्च क्षेस्तिन्तिडीरक्षतचन्दनैः ॥६२॥
 एवं नानाविधैर्वृक्षैस्तथाऽन्यैर्बहुपादपैः । कल्पद्रुमैर्नित्यफलैः सर्वतृकुसुमोत्तरैः ॥६३॥
 नानापक्षिस्तैर्दिव्यैर्मत्तकोकिलनादितैः । मयूरचरसंपुटैः शुकसारिखसंतुलैः ॥६४॥
 हारीतैर्भृङ्गैराजैश्च चातकैर्बहुपुत्रकैः । जीवजीवककाकोलैः कलविड्मूः कपोतकैः ॥६५॥

करने वाले, पवित्रों में पवित्र, मगला में मगल, ॥५०॥ तीर्थों में उत्तम तीर्थ, नाश-रहित, जलजन्तुओं के स्वामी, चन्द्रमा की वृद्धि तथा क्षय की तरह मान (सीमा प्रमाण) वाले, ॥५१॥ सब प्राणियों से अजेय देवताओं के अमृतालय, उत्पत्ति-स्थिति-संहार के कारण, सनातन, ॥५२॥ सब के आश्रय और नदनदिया के स्वामी सागर को देखा । देख कर वह अत्यन्त विस्मित हो गया । समुद्र-तट पर पहुँचकर राजा वहाँ निवास करने लगा ॥५३॥ (उस) पवित्र, मनोहर तथा भूमि के समस्त गुणों से युक्त देश में शाल, कदम्ब, पुलाश, सरड, कदहूल, नाट्यिल, मौलसिरी, नागकेसर, ॥५४-५५॥ ताल, पीपल, खजूर, नागमी, बौजपूर, आत्रातक, लघु, बहुवारक, कठवेल, वनकचम्पा, पाटला, अशोक, चम्पा, अनार, तमाल, पारिजात, अर्जुन, ॥५६॥ प्राचीनामलक, वेल, प्रियंगु, वट, खैर, हिंगाट, छतिवन अश्वरथ, अपस्त्य, नीबू, ॥५७॥ महुआ, तिन्दुल, पलाश, बेर, कदम्ब, सिद्ध, नीम, सहिजन ॥५८॥ वारक, कचनार, भल्लात, आमलक, हिलाल, बाङ्गोड, करञ्ज, बहेडा, ॥६०॥ सर्ज, मधु, नाशमय, तेमल, देवदारु, शालोदक कुम्भीकोष्ठ, हरै, ॥६१॥ गुग्गुलु चन्दन, अगर, करण तिन्तिडी, रक्षतचन्दन—एस नाना प्रकार के वृक्षों में, नित्य फूलने वाले तथा सब शत्रुओं में फूलने वाले कल्पवृक्षों से, ॥६२-६३॥ नाना पक्षियों के दिव्य शब्दों से, मत्त बोकिल, मयूर, ताजे, मैने, हारीत, भृङ्गराज, पपीहे, बहुपुत्रक, जीवजीव (चकोर), गोरिये, नतूर—पक्षियों में तथा दूधरे

१ ख ०श्च लघुचर्मा । २ ख ०म्बगुपत्रं । वा० । ३ ख ०या । टीति । ४ न ०पाद । ज० ।
 ५ ख ०मैर्नीलप० ।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे । किं तत्र प्रतिमा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो ॥१॥
 येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलवाहनः । स्थापयामास कृष्णं च 'रामं भद्रा शुभप्रदाम् ॥२॥
 संशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च नः ॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं पूर्वसंवृतां कथां पापप्रणाशिनीम् । प्रवक्ष्यामि सप्तासेन श्रिया पृष्टः सुरा हरिः ॥४॥
 सुमेरोः काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चर्यसमन्विते । सिद्धविद्याधरंयक्षैः किनररूपशोभिते ॥५॥
 देवदानवगन्धर्वनगिरप्सरसा गणैः । मुनिभिर्गुह्यकैः सिद्धैः सोपणैः समरुद्गणैः ॥६॥
 अन्यर्देवा रयैः साध्यैः कश्यपाद्यैः प्रजेश्वरैः । वालखिल्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे ॥७॥
 कर्णिकारवर्नदिव्यैः सर्वतंकुसुमोत्करैः । जातरूपप्रतीकाशैर्भूषिते सूर्यसंनिभैः ॥८॥
 अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः शालतालादिभिर्वनैः । पुंनागाशोकसरलन्यग्रोधान्नातकार्जुनैः ॥९॥
 पारिजाताम्रखदिरनीपबिल्वकदम्बकैः । धवलादिरपालाशशोर्षामलकतिन्दुकैः ॥१०॥

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियो ने कहा—प्रभो ! क्या विष्णु के उस पवित्र पुरस्करित क्षेत्र में पहले कोई वैष्णवी प्रतिमा नहीं थी, जो सेना वाहना के साथ आकर उस राजा ने वहाँ कृष्ण, राम और कल्याण-दायिका सुमद्रा की स्थापना की ? जगत्पते ! इसमें हमें बड़ा संशय है और आश्चर्य भी है। हम सविस्तर सुनना चाहते हैं। आप इसका कारण बतलायें ॥१-३॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिये, जो क्या पूर्वकाल में लक्ष्मी ने विष्णु से पूछी थी, उसी पापनाशिनी कथा का मैं सक्षप से वर्णन करूँगा ॥४॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, निन्नर, देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरागण, मुनि, गुह्यक, सोपण, समरुद्गण, साध्य, कश्यप आदि प्रजापति, वालखिल्य आदि ऋषि तथा देवालयों से घासित, अत्यन्त मनोहर, सब ऋतुओं में सुनहले पुष्पों से समन्वित, दिव्य वनक चम्पा वृक्षा में भूषित, सूर्य के समान वर्ण वाले पुष्पा से युक्त, दूसरे भी बहुत से वृक्षा से अलंकृत, शाल, ताल, पुत्राग, अशाक सरह बट, आन्नातक, अर्जुन, पारिजात, आम, खैर, नीप, बेल, कदम्ब, रूँध, पलाश, शिरीष, औरला, तिन्दुक, ॥५-१०॥

१ स रामचन्द्र शुभप्रदम् ।

नारिङ्गकोलवकुललोध्रवाडिमदारकं । सर्जंश्च कर्णंस्तगरं शिशिभूजंवनिम्बकं ॥११॥
 अन्यंश्च काञ्चनंश्चैव फलभारंश्च नामितं । नानाकुसुमगन्धाद्यैर्भूषितं पुष्पपादपै ॥१२॥
 मालतीपूयिकामललीकुन्दवाणकुण्डकं । पाटलागस्त्यकुटजमन्दारकुसुमादिभि ॥१३॥
 अन्यंश्च विविधैः पुष्पैर्मनसं प्रीतिदायकं । नानाविहगसंपंश्च कूजह्रिमधुरम्बरैः ॥१४॥
 पुंस्कोकिलशतैर्दिव्यैर्मन्त्रबहिष्णनादितं । एवं नानाविधैर्दंशैः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥१५॥
 खगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते । तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्रष्टारमव्ययम् ॥१६॥
 सर्वलोकविधातारं वासुदेवाख्यमव्ययम् । प्रणम्य शिरसा देवीं लोकानां हितकाम्यया ॥
 पप्रच्छेभं महाप्रश्नं पद्मजा तमनुत्तमम् ॥१७॥

श्रीरुवाच

ब्रूहि त्व सर्वलोकेश सशयं मे हृदि स्थितम् । मर्त्यलोके महाश्चर्यं कर्मभूमौ सुदुर्लभे ॥१८॥
 लोभमोहप्रहृष्टरते कामक्रोधमहान्बन्धे । येन मुच्येत देवेश अस्मात्ससारसागरात् ॥१९॥
 आचक्ष्व सर्वदेवेश प्रणतां यदि मन्यसे । त्वद्वृत्ते नास्ति लोकेऽस्मिन्बन्धता सशयनिर्णये ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा च वचन तस्या देवदेवो जनार्दन । प्रोवाच परमा प्रीत्या परं सारामृतोपमम् ॥२१॥

नारंगी, कोल, मौलसिरी लोध, अनार, दारुक, सर्ज, कनैल, तगर, शिशिभू (?) , जय अर नीम वृक्षा से तथा फला के मार से भुके हुए अन्य वृक्षा से गडित, मालती, कूही, मल्लिका बुन्ध, बाण कुण्डक, पाटला, अगस्त्य, कुटज मन्दार आदि पुष्पा से तथा मन को प्रसन्न करने वाले अन्य विविध पुष्पो से विभूषित, मधुर स्वर से आलाप करने वाले नाना पक्षिमा से समूहा से तथा ककिल एवम् मस्त मयूरा से शब्दित, देवताओं से सुमेवित, समस्त आश्चर्यजनक वस्तुओं से समन्वित मेरुपर्वत के सुवर्णमय शिखर पर स्थित जगत्स्रष्टा जगत्पति, अविनाशी, सब लाका के विधाता, वासुदेव को शिर युवा कर प्रणाम करने लक्ष्मी ने लक्ष-वत्याण के लिए उनसे यह महाप्रश्न पूछा ॥११-१७॥

रमाने कहा—हे त्रिमूयन के स्वामी ! मेरे हृदय में जो सशय है, उसका आप निराकरण कीजिए । देवेश ! महान् आश्चर्यजनक, अत्यन्त दुर्लभ, कर्म की भूमि, लोभ-मोह रूपी घाही से ग्रस्त, काम क्रोध रूपी महासमुद्र से युक्त मर्त्य लौक में मनुष्य इस ससार सागर से किस प्रकार मुक्त हो वह उपाय आप बतलाइये । हे जलिल देवो के स्वामी ! इस लोक में आपको छोड़कर दूसरा कोई सशय निर्णय करने में समर्थ नहीं है ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी के ऐसे वचना को सुन कर देव-देव जनार्दन बहूत प्रेम से अमृत-पुत्र सार वात बतलाने लगे ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसम्फलः । आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरषोत्तमः ॥२२॥
 न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते । कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकैः ॥२३॥
 न विज्ञातोऽमरः 'सर्वे'नं दैत्यैर्न च दानवैः । मरीच्यार्धमुनिश्वरैर्गोपित मे वरानने ॥२४॥
 तत्तेज्ज् संप्रवक्ष्यामि तीर्थराज च साप्रतम् । भावेनैकेन सुशोणि शृणुष्व वरवर्णिनि ॥२५॥
 'असीत्कल्पे' 'समुत्पन्ने' नष्टे स्थावरजङ्गमे । 'प्रलीना' 'देवगन्धर्वदैत्यविद्याधरोरगा' ॥२६॥
 तमोभूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन । तस्मिञ्जगति भूतात्मा परमात्मा जगद्गुरुः ॥२७॥
 श्रीमान्स्त्रिमूर्तिर्ब्रह्मदेवो जगत्कर्ता महेश्वरः । वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हरिरादित्यः ॥२८॥
 सोऽसृजद्योगनिद्रागते नाभ्यभ्योऽहमध्यगम् । 'पद्मकेशरसंकाश ब्रह्माणं भूतमव्ययम्' ॥२९॥
 तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा सर्वलोकमहेश्वरः । पञ्चभूतसमापुक्तं सृजते च शनैः शनैः ॥३०॥
 मात्रायोगीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च । चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ॥३१॥
 ततः प्रजापतिर्व्रह्मा चक्रे सर्वं चराचरम् । संचिंत्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥३२॥
 मरीच्यादीन्मुनीन्सर्वाग्देवासुरपितृनपि । यज्ञविद्याधरांश्चाभ्यान्मृगाद्याः सरितरतथा ॥३३॥

श्री भगवान् ने कहा—देवी । उत्तम तीर्थों में प्रसिद्ध पुरषोत्तम नामक तीर्थ सुख से उपासना करने योग्य, शासनतया साधना करने योग्य, मनोहर तथा सफलदायक है । उसके समान तीनों लोक में कोई नहीं है । उसका कीर्तन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं ॥२२-२३॥ अष्ट मुख वाली । न देवता, न दैत्य, न दानव, न मरीचि आदि मुनि ही उस गुप्त स्थान को जानते हैं ॥२४॥ हे सुन्दर कटि वाली । हे सुन्दरी । इस समय मैं उस तीर्थराज के बारे में कहता हूँ, तुम एकाग्र मन से सुनो ॥२५॥ कल्प उत्पन्न होने पर (कल्पांत में) स्थावर जगमा के नष्ट हो जाने पर तथा देवा, गन्धर्वों, दैत्यों, विद्याधर, और सर्पों के लीन हो जाने पर यह सब कुछ अन्धकारमय दीखता था, कुछ भी मालूम नहीं पड़ता था ॥२६॥ इस समय प्राणिमा के आत्मा, परमात्मा, जगद्गुरु, श्रीमान्, त्रिमूर्तिवृत् (सर्व रजस् तमःमय), देव, जगत्कर्ता, महेश्वर, ईश्वर, वागात्मा, हरि (इत्यादि नामधारी) वासुदेव जागते थे ॥ २७-२८॥ उन्होंने योगनिद्रा के अन्त में नाभि रूपी कमल के मध्य में स्थित, कमल के बेसर के रुद्राक्ष, सत्य रूप तथा अविनाशी, ब्रह्मा की सृष्टि की ॥२९॥ तदुपरांत समस्त लावा में महान् ईश्वर ब्रह्मा धीरे-धीरे पञ्चभूतमय सृष्टि करने लग्य ॥३०॥ मात्रामूलक स्थूल-सूक्ष्म जिनके चार प्रकारके स्थावर-जड़म है, उन सब को उन्होंने रचा ॥३१॥ तब प्रजापति ब्रह्मा न समस्त चराचरा को उत्पन्न किया । मन से आत्मा का ध्यान कर विविध प्रजाजा की उत्पत्ति की ॥३२॥ मरीचि आदि समस्त मुनि, देव राक्षस, पितर, यक्ष विद्याधर गणा आदि नदी मनुष्य, वन्दर, सिंह, विविध

१ स ०र्वैर्न दित्यैः । २ स ०सीतपय सः । ३ स ०त्तमः । ४ स ०गर्जने । ५ स ०गन्धर्वदैत्यैः । ६ स ०रगैः । ७ स ०ऽहमध्यगैः । ८ स ०र । आर्द्धरुद्राः । ९ स ०ध्या । १० स ०वारा । ११ स ०म् । आविर्भूतः । १२ स ०देव । १३ स ०म । १४ स ०नैः । विद्वच्चक्रात्माः ।

नरवानरसिंहाश्च विविधांश्च विहंगमान् । जरायून्ष्टब्धजान्देवि स्वदेजोभेदजास्तथा ॥३४॥
 ग्रहाक्षरं तथा वैश्यं शूद्रं चैव चतुष्टयम् । अन्त्यजातश्चैव स्लेच्छांश्च ससर्जं विविधान्पृथक् ॥३५॥
 यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम् । ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे सचराचरम् ॥३६॥
 दक्षिणाङ्गे तथाऽऽजमानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम् । वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत् ॥३७॥
 ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मंथुनसंभवा । 'अथमोत्तममध्याश्च मम क्षेत्राणि यानि च ॥३८॥
 एवं संचिन्त्य देवोऽसी पुरा सलिलयोनिजः । जगाम ध्यानमास्थाय वासुदेवात्मिका तनुम् ॥३९॥
 ध्यानमात्रेण देवेन स्वयमेव जन्तार्दनः । तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥४०॥
 सहस्रशोर्षा पुरुषः पुण्डरीकीकनभक्षणः । सलिलध्वातमेषाभः श्रीमाऽष्टीवत्सलक्षणः ॥४१॥
 अपश्यत्सहसा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः । आसनैरथ्यपाद्यैश्च अक्षतैरभिनन्द्य च ॥४२॥
 तुष्टाय परमैः स्तोत्रैर्विरिञ्चिद्, सुसमाहितः । ततोऽहमुत्तमो देव ब्रह्माण कमलोद्भवम् ॥
 कारणं यद् मां तात मम ध्यानस्थ साप्रतम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

जगद्विषयाय देवेश मर्त्यलोकांश्च दुर्लभम् । स्वर्गद्वारस्य मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च ॥४४॥
 योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थानि विविधानि च । विहाय सर्वमेतेषां सुखं तत्साधनं वद ॥४५॥
 स्यान् 'जगत्पते मह्यमुत्कृष्टं च ददुच्यते । सर्वेषामुत्तम स्थानं ब्रूहि मे 'पुरुषोत्तम ॥४६॥

पक्षी, जरायुज अण्डज स्वदेज और उदिभज्ज जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज (अद्यूत), स्लेच्छ—सब को पृथक् पृथक् रचा ॥३३-३५॥ जा कुछ भी जीवमज्जक पास पात कीड़े मकोड़े हैं, उन सब चराचरा का निर्माण उन्होंने ब्रह्मा ही कर किया ॥३६॥ अपन दाहिन अंग में पुरुष और वाम अंग में स्त्री की कल्पना कर के स्वयम् द. हा. गए ॥३७॥ तब से लक्ष मे प्रजा की मंथुनी सृष्टि होती है। मेरे जितन उत्तम-मध्यम-अधम दाध (शरीर) है, उन सबकी चिन्तना कर ब्रह्मा ध्यान स्थित हो कर वासुदेव के शरीर का प्राप्त हुए ॥३८-३९॥ ध्यानमात्र से ही तत्क्षण सहस्रनेत्र, सहस्रचरण और सहस्रगिरि, कमल-नयन, नील नीरद तुल्य सुन्दर तथा श्रीवत्स चिह्न से युक्त स्वयम् जनार्दन प्रकट हुए ॥४०-४१॥ सहसा उनका देख कर लक्ष रचयिता ब्रह्मा आसन, अर्घ्य, पाद्य और अक्षत से उनकी पूजा कर प्रणतिपूर्वक सावधान मन से स्तुति करने लगे। तत्परवात् कमलात्मक ब्रह्मा से मैंने कहा—तात! किस हेतु तुमने इस समय मेरा ध्यान किया है? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवेश! जगत्कल्याण के लिए स्वर्ग-द्वार के मार्ग—यज्ञ दान तप, व्रत, योग, सत्य, श्रद्धा और विविध तीर्थ—इनका छोड़ कर मर्त्यलोक में दुर्लभ जा सुख-साधन है, उसे बतलाइए ॥४४-४५॥ जगत्पते! 'पुरुषोत्तम'। पृथ्वी पर सब से उत्कृष्ट स्थान जो हो, उसे भी बतला दीजिए ॥४६॥ श्रिये! ब्रह्मा के

विधातुर्वचनं श्रुत्वा ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये। शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि 'निर्मलं भुवि दुर्लभम् ॥४७॥
 उत्तमं सर्वक्षेत्राणां धन्यं ससारतारणम्। गोब्राह्मणहितं पुण्यं चातुर्वर्ण्यसुखोदयम् ॥४८॥
 भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां क्षेत्रं परमदुर्लभम्। महापुण्यं तु सर्वेषां सिद्धिदं च पितामह ॥४९॥
 'तस्मादासीत्समुत्पन्नं तीर्थं राजं सनातनम्। विख्यातं परमं क्षेत्रं चतुर्वर्गनिधेयितम्' ॥५०॥
 सर्वेषामेव देवानामृषीणां ब्रह्मचारिणाम्। दैत्यदानवसिद्धानां गन्धर्वोरपरक्षसाम् ॥५१॥
 नानाविद्याधराणां च स्थावरस्य चरस्य च। उत्तमं पुरुषो यस्मात्तस्मात्स पुरुषोत्तम ॥५२॥
 दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥५३॥
 यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महवु (त्यु) त्कानिबर्हणे। 'विनाशं नैवमभ्येति स्वयं तत्रैवमास्थितः ॥५४॥
 दृष्टिमात्रे वटे तस्मिदद्यामाश्रम्य चासृजत्। 'ब्रह्महृत्यातप्रमुच्येत पापेऽवग्रेयुः का कथा ॥५५॥
 प्रदक्षिणा कृता येस्तु नमस्कारश्च जन्तुभिः। 'सर्वे विधूतपाप्मानरते गताः केशवालक्षम् ॥५६॥
 न्यग्रोधस्त्योत्तरे क्रिबिदक्षिणे केशवस्य तु। प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पदं धर्ममयं हि तत् ॥५७॥
 प्रतिभा तत्र च दृष्ट्या स्वयं देवेन निर्मिताम्। अनायासेन च यान्ति भुवनं मे ततो नरा ॥५८॥
 गच्छमानास्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट् प्रिये। मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाञ्जवीत् ॥५९॥

वचनं सुनकर मैंने कहा—ब्रह्मन्। सुनिष्ट, पृथ्वी पर दुर्लभ निमल निखिल क्षत्रा म उत्तम, धन्यवाद के योग्य
 ससार-तारण ग, ब्राह्मणा का हितकारक, पवित्र चारों वर्णों के लिए सुखदायक, मुक्ति मुक्ति प्रद परम दुर्लभ
 महापुण्यवर्षक और सब के लिए सिद्धिदाता स्थान मैं बतलाऊंगा ॥४७-४९॥ चारा युग म रहने वाला, सनातन
 तीर्थों का राजा और परम विख्यात एक क्षेत्र है ॥५०॥ वहाँ पर समस्त दैत्य, ब्रह्मचारी, दैत्य, दानव, सिद्ध,
 गन्धर्व, रूप राक्षस नाग विद्याधर, स्थावर, जगम और सब से उत्तम पुण्य वास करते हैं अतः उत्तम नाम
 पुरुषोत्तम पड़ा है ॥५१-५२॥ दक्षिण समुद्र के तट पर जहाँ बट वृक्ष है, वहाँ दश याजन प्रमाण विस्तीर्ण क्षेत्र
 परम दुर्लभ है ॥५३॥ जो कल्प के उत्पन्न होने पर (कल्पान्त म) महान् उल्कापात होने पर (ससार के विनष्ट
 होने पर) स्वयं विनष्ट नहीं होता, वे उत्ती क्षत्र म स्थित होते हैं ॥५४॥ एक बार उस बट के दाँत बर छाया म
 बैठन से ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है, और पापा की तब बात ही क्या है? ॥५५॥ जिन प्राणियों ने उसकी
 प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया है, वे सब निर्पाप होकर वैकुण्ठ गए हैं। बट से उत्तर और कृष्ण से कुछ दक्षिण जो
 मन्दिर है वह धर्ममय स्थान है। वहाँ साक्षात् भगवान् द्वारा निर्मित प्रतिमा का दर्शन कर मनुष्य अनायास ही
 वैकुण्ठ पहुँच जाते हैं। प्रिय! एक समय वैकुण्ठ जात हुए उन मनुष्यों का दत्त बर धर्मराज भरे पास आकर
 प्रणाम करते हुए नमस्कार लगा ॥५६-५९॥

१ रा निर्मित। २ रा ०मसामनम्। ३ रा ०पा वसता प्रिय०। ४ रा सतदा०। ५ रा ०गयुगादिरत्।
 ग०। ६ रा ०नाग नैव वसने स्वयं तत्रैव दुर्लभ। ७०। ७ रा ०हत्या विनश्यत्। ८ रा ०वे त पापनिमज्जा गच्छति
 च पिशा०। ९ रा मवन।

यम उवाच

नमस्ते भगवद्देव लोकनाथ जगत्पते । क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम् ॥६०॥
 वरं वरेण्यं वरदं 'वर्तारमकृतं प्रभुम् । विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम् ॥६१॥
 नीलोत्पलदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम् ॥६२॥
 सर्वलोकदिघातारं 'सर्वलोकसुखावहम् । पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यतं सनातनम् ॥६३॥
 परावराणां स्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम् । श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥६४॥
 पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् । हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गधारणम् ॥६५॥
 सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥६६॥
 भावाभाविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम् । नमस्यामि, जगन्नाथमोश्वरं सुखदं प्रभुम् ॥६७॥
 इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा' न्यग्रोधसन्धौ । स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा ॥६८॥
 तं दृष्ट्वा तु महाभागे प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् । स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम् ॥६९॥
 वैवस्वत महाबाहो सर्वदेवोत्तमो ह्यसि । किमर्थं स्तुतवान्मां त्वं संक्षेपात्तद्ब्रवीहि मे ॥७०॥

धर्मराज उवाच

अस्मिन्नापतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे । इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सावकामिकी ॥७१॥
 तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया । श्वेताख्यं भवनं यान्ति निष्कामाश्चैव मानवाः ॥७२॥

यम ने कहा—भगवन् ! देव ! जगत्पते ! लोकनाथ ! आपको नमस्कार है । क्षीरसमुद्रवासी, शेषसायी, ॥६०॥ श्रेष्ठ, वरदाता, वर्ता, अविनाशी, समर्थ, विश्वेश्वर, अजन्मा, विष्णु, सर्वज्ञ, अपराजित, ॥६१॥ नील वमल के पत्र के समान श्याम, कमलनयन सर्वज्ञ निर्गुण, शान्त, जगत् धारणकर्ता, नित्य, ॥६२॥ सर्वलोक-विघाता, सर्वलोक-मुखदायक, प्राचीन पुरुष, जानने योग्य, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, ॥६३॥ उच्च-नीच सब के स्रष्टा, लोकनाथ, जगद्गुरु, वक्ष स्थल पर थीवत्स चिह्न-धारी, वनमाला से विभूषित, ॥६४॥ पीतवस्त्र-शङ्ख-चक्र-गदा हार-केयूर-मुकुट-अगद-धारी ॥६५॥ चतुर्भुज, सर्वलक्षण संपन्न, सब इन्द्रियो से वर्जित, कूटस्थ, अचल, सूक्ष्म, ज्योतिरूप सनातन, ॥६६॥ भाव अभाव से निर्मुक्त व्यापक, प्रकृति से परे, जगन्नाथ, ईश्वर, सुखदाता और सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है ॥६७॥ इस प्रकार पूर्वकाल में बट वृक्ष के समीप धर्मराज ने अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर मुझ प्रणाम किया ॥६८॥ महाभागे ! मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए यम से स्तुति का कारण पूछा ॥६९॥ सूर्य के पुत्र ! महाबाहो ! तुम सब देवा में उत्तम हो । किसलिए तुमने मरी स्तुति की ? संक्षेपत बताओ ? ॥७०॥

धर्मराज ने कहा—इस पवित्र तथा विख्यात पुरुषोत्तम क्षेत्र में सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली इन्द्रनील-मणि की उत्तम प्रतिमा है ॥७१॥ पुण्डरीकाक्ष ! अन्य भाव से श्रद्धापूर्वक उस प्रतिमा का दर्शन करके मनुष्य

अतः कर्तुं न शक्नोमि व्यापारमरिसूदन। 'प्रसीद सुमहादेव संहार प्रतिमां विभो॥७३॥
श्रुत्वा 'वैवस्वतर्च्येतद्वाक्यमेतदुवाच ह। यम ता गोपयिष्यामि सिकताभिः समन्ततः॥७४॥
ततः सा प्रतिमा देवि वलिभिर्गोपिता' मया। यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकाङ्क्षिणः॥७५॥
प्रच्छाद्य वलिकर्कदेवि जातरूपपरिच्छदः। यम प्रस्थापयामास रवा पुरीं दक्षिणां दिशम्॥७६॥

ब्रह्मोवाच

लुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजाः। तस्मिन्क्षेत्रवर् पुण्ये विख्याते पुरषोत्तमे॥७७॥
यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनादेनः। तं सर्वं कथयामास स तस्यै भगवान्पुरा॥७८॥
इन्द्रद्युम्नस्य गमनं क्षेत्रसंदर्शनं तथा। क्षेत्रस्य वर्णनं चैव प्रासादकरणं तथा॥७९॥
हयमेधस्य यज्ञं स्वप्नदर्शनमेव च। लवणस्योदधेस्तीरे 'काष्ठस्य दर्शनं तथा॥८०॥
दर्शनं वासुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजाः। निर्माणं प्रतिमायास्तु यथावर्णं विशेषतः॥८१॥
'स्थापनं चैव सर्वेषां प्रासादे भुवनोत्तमे। 'यात्राकाले च विप्रेन्द्राः 'कल्पसकीर्तनं तथा॥८२॥
मार्कण्डेयस्य चरितं स्थापनं शंकरस्य च। पञ्चतीर्थस्य माहात्म्यं दर्शनं शूलपाणिनः॥८३॥
वटस्य दर्शनं चैव व्युष्टिं तस्य च भो द्विजाः। दर्शनं बलदेवस्य कृष्णस्य च विशेषतः॥८४॥
सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्यं चैव सर्वशः। दर्शनं नरसिंहस्य व्युष्टिसंकीर्तनं तथा॥८५॥

निष्काम हो जाते हैं और श्वेतसक्त्र मन की जाते हैं॥७२॥ शमुनाशन ! इसलिए मैं अपना कार्य नहीं कर सकता। महादेव ! विभो ! मुझ पर प्रकृत हूँ, प्रतिमा को हटा दीजिए॥७३॥ यम की यह बात सुनकर मैंने कहा—'यम ! मैं बालुआ से उस प्रतिमा का चारों ओर स डक दूँगा॥७४॥ देवी ! तब मैंने लताआ से उस प्रतिमा का छिपा दिया, जिससे स्वर्गामिक्षा मनुष्य उसका दर्शन न कर पाये॥७५॥ गुनहारी लताआसे उगे आच्छादित कर मैंने यम का दक्षिण दिशा की ओर अपनी नगरी के लिए बिदा कर दिया॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! उस पवित्र तथा प्रसिद्ध पुरषोत्तम नामक श्रेष्ठ क्षेत्र में इन्द्रनील मणि की प्रतिमा के लुप्त हो जान पर आ दशा वहाँ की हुई उसे भगवान् जनादेन ने लक्ष्मी को बतला दिया॥७७-७८॥ विप्रवन्द ! इन्द्रद्युम्न का गमन, क्षत्र का दर्शन तथा वर्णन, मवन निर्माण,॥७९॥ अरवमेध यज्ञ, स्वप्नदर्शन, क्षार समुद्र के तट पर काष्ठ का दर्शन,॥८०॥ वानुदेव तथा शिल्पिराज का दर्शन, प्रतिमा का उचित वर्णानुसूल निर्माण॥८१॥ तथा तीना लला म हय मे उत्तम मवन म स्थापन, यात्राकाल म कल्पा का कीर्तन, मार्कण्डेय का चरित्र, लखर की स्थापना, पञ्चतीर्थ का माहात्म्य, शिव का दर्शन,॥८२-८३॥ वट का दर्शन तथा स्तुति, बलदेव, कृष्ण तथा मुमक्ष का दर्शन और माहात्म्य, नरसिंह का दर्शन, स्तुति तथा कीर्तन, अनन्त वानुदेव के दर्शन तथा

१ स ०दस्व म०। २ स ०स्थल वाक्य युक्तमतदचिन्तयम्। सा तदा प्र०। ३ स ०मिदच्छादिता।

४ स ०छन्दम०। ५ स ०स्थापना। ६ स ०वात् च। ७ स ०मर्कन०।

'अनन्तवासुदेवस्य दर्शनं गुणकीर्तनम् । श्वेतमाधवमोहात्म्यं स्वर्गद्वारस्य दर्शनम्' ॥८६॥
उदधेर्दर्शनं चैव स्नानं तर्पणमेव च । समुद्रस्नानं माहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजाः ॥८७॥
पञ्चतीर्थफलं चैव महाज्येष्ठं तथैव च । स्थानं कृष्णस्य हलिनः पर्वथात्राफलं तथा ॥८८॥
वर्णनं विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुनः पुनः । पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यैव स पुरुषोत्तमः ॥८९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवऋषिसंवादे पूर्ववृत्तानुवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥८५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महीपते । तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः । क्षेत्रसंदर्शनं चैव कृत्यं तस्य च भूपते ॥२॥

गुणों का वीर्तन, श्वेतमाधव का माहात्म्य, स्वर्ग का दर्शन, समुद्र का दर्शन तथा उसमें स्नान और तर्पण, समुद्र-स्नान तथा इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य, पञ्चतीर्थ का फल, महाज्येष्ठ (ज्येष्ठ की पूर्णिमा), कृष्ण तथा बलराम का स्थान, पर्व यात्रा का फल, विष्णु लोक का वर्णन, क्षेत्र का पुन-पुन वर्णन—यह सब भगवान् पुरुषोत्तम ने लक्ष्मी को बतला दिया ॥८४-८९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में पूर्व वृत्तान्त वर्णन नामक पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियो ने कहा—देव । हम राजा की अवशिष्ट कथा की सुनना चाहते हैं । उस उत्तम क्षेत्र में जाकर राका ने क्या किया ? ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर । मुनिये, मैं संक्षेप से उस राजा के कर्म तथा क्षेत्र-दर्शन का वर्णन करता हूँ

१ स अप्रय तु वा० । २ स पुण्यकीर्तनम् । ३ स वर्णनम् । ४ स ० न सर्व० । ५ स स्वयम् । ६ स स्वस्नानम् । ७ स जात ।

गत्वा तत्र महोपालः क्षेत्रे त्रैलोक्यविश्रुते। ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा ॥३॥
 नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता। स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा ॥४॥
 गङ्गातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी। महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा ॥५॥
 'दक्षिणस्योदधेर्गमं गताऽऽवर्तातिशोभिता। उभयोस्तटयोर्यस्या ग्रामाश्च नगराणि च ॥६॥
 दृश्यन्ते मुनिशार्दूलः सुसस्याः सुमनोहराः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णा वस्त्रालंकारभूयिताः ॥७॥
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक्। स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥८॥
 ताम्बूलपूर्णवदना मालादामविभूयिताः। वेदपूर्णमुखा विप्राः सयङ्गपदक्रमाः ॥९॥
 अग्निहोत्ररता केचित्कोचिदोपासनक्रियाः। सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणा ॥१०॥
 चत्वरं राजमारोग्यं वनेषूपवनेषु च। सभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च ॥११॥
 इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गाः सुलक्षणाः। काव्यशास्त्रकथास्तत्र श्रूयन्ते च महाजनैः ॥१२॥
 स्त्रियस्तद्देशवासिन्यो रूपयौवनगविताः। संपूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डला ॥१३॥
 सरोरुहमुखाः श्यामाः शरच्चन्द्रनिभाननाः। पीनोन्नतस्तनाः सर्वाः समृद्धा चारुदर्शनाः ॥१४॥
 सौवर्णवलयाक्रान्ता दिव्यैर्वस्त्रैरलंकृताः। कदलीगर्भसंकाशाः पद्मकिञ्जल्कसप्रभाः ॥१५॥
 बिम्बाधरपुटाः फान्ताः कर्णान्तापतलोचनाः। सुमुखाश्चारुकेशाश्च हावभावावनामिताः ॥१६॥

॥२॥ त्रैलोक्य प्रसिद्ध उस क्षेत्र में जाकर राजा ने रमणीय स्थानों तथा नदियों को देखा ॥३॥ वहाँ विन्ध्य-
 पर्वत से निकली स्वित्रोपला नामक नदी है, जो अलिल पापों को हरने वाली, कल्याणमयी, गंगातुल्य, महा-
 खातवाली, दक्षिण समुद्र की ओर जाने वाली, महानदी नाम से विख्यात, पवित्रसलिला, नदिया में श्रेष्ठ,
 दक्षिण समुद्र के गर्भ में प्राप्त तथा आवर्तों से सुशोभित है ॥४॥ मुनिवर्ग। उस नदी के दोनों तट पर
 घन धान्य-सम्पन्न सुन्दर ग्राम और नगर हैं, जो हृष्ट-मुष्ट लोगों से प्रपूर्ण तथा वस्त्र-अलंकारों से भूषित हैं ॥५॥
 वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मों में निरत, शान्त, शुभलक्षण सम्पन्न मालाया से विभूषित
 तथा ताम्बूल से पूर्ण मुखवाले दीखते हैं ॥८॥ वहाँ के ब्राह्मण छोटी अथ पद और त्रय सहित वेदा के ज्ञाता,
 सब धाम्ना में कुशल, यज्ञकर्ता तथा विपुल-दक्षिणादाता होते हैं। उनमें कोई अग्निहोत्री तो कोई कर्मकाण्डी
 होते हैं ॥९-१०॥ वहाँ चतुर्वेदों पर, राजमारोग्य में, वनों में, उपवनो में, सभामण्डल में तथा देवाल्यों में इतिहास,
 पुराण, अथ संहिता वेद, सुन्दर काव्य, शास्त्र और कथायें महान् व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती हैं ॥११-१२॥ उस
 देश की स्त्रियों रूप यौवन से गवित समस्त लक्षणों से युक्त विशाल नितम्ब वाली, ॥१३॥ कमलमुखी, श्यामा,
 शरच्चन्द्र-तुल्य मुख वाली, स्फुल तथा उन्नत स्तन वाली, सुन्दर दीखने वाली, ॥१४॥ साने की शूडियाँ पहनने वाली, दिव्य
 वस्त्रों से अलंकृत, केली के (भीतरी भाग) के सुन्दर, (वर्ण वाली), कमल के केसर के समान कान्ति वाली ॥१५॥
 बिम्बावती, मनोरम, काना तथा लम्बी आँखों वाली, सुमुखी, सुन्दर नेत्र वाली, हाव भाव दिखाने में चतुर, ॥१६॥

१ छ ०ता। विन्ध्योत्पले०। २ छ. शुभा। ३ छ ०द्वे फान्ता दुहितृगतया०। ४ न गयत्रा। ५ अ
 ०स्थामरत्नम्०। ६ छ ०विद्यापावनप्रिया०। ७ न. ०कलापा दृश्यन्ते शुभहासिनः। स्त्रि०।

कादिचत्पद्मपलाशाक्ष्य कादिचदिन्दोबरेक्षणा । विद्युद्विस्पष्टदशनास्तन्वद्भग्यश्च तथाऽपरा ॥१७॥
 कुटिलालकसयुक्ता सीमन्तेन विराजिता । श्रीवाभरणसयुक्ता माल्यदामविभूषिता ॥१८॥
 कुण्डलं रत्नसयुक्तं कर्णपूरंमनोहरं । देवयोषितप्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥१९॥
 दिव्यगीतवरधन्यं क्रीडमाना वराङ्गना । वीणावेणुमूढङ्गंश्च पणवंश्चैव गोमुखं ॥२०॥
 शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नानावाद्यैर्मनोहरं । क्रीडन्त्यस्ता सदा हृष्टा विलासिन्य परस्परम् ॥२१॥
 एवमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदा । दिवा रात्रौ समायुक्ता कामोन्मत्ता वराङ्गना ॥२२॥
 भिक्षुवैखानसं सिद्धं स्नातकैर्बह्वचारिभिः । मन्त्रसिद्धैस्तप सिद्धैश्चसिद्धैर्निषेवितम् ॥२३॥
 इत्येव दृढशे राजा क्षेत्र परमशोभनम् । 'अत्रैवाऽऽराधयिष्यामि भगवत सनातनम् ॥२४॥
 जगद्गुरु पर देव पर पार पर पदम् । सर्वेश्वरेश्वर विष्णुमनन्तमपराजितम्' ॥२५॥
 इदं तमानस तीर्थं ज्ञात मे पुरुषोत्तमम् । कल्पवृक्षो महाकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ॥२६॥
 प्रतिमा चेन्द्रनीलाख्या स्वयं देवेन गोपिता । 'न चात्र दृश्यते चान्या प्रतिमा वैष्णवी शुभा ॥२७॥
 तथा' यस्तं करिष्यामि यथा देवो जगत्पतिः । प्रत्यक्ष'मम चाम्येति विष्णु सत्यपराक्रम ॥२८॥
 यत्तर्दानंस्तपोभिश्च होमैर्धनंस्तथाऽर्चनं । उपवासेश्च विधिवच्चरेय व्रतमुत्तमम् ॥२९॥

कमलपत्रिणा विजया की तरह छिद्रकृते हुए दाँतो वाली कामलाङ्गी ॥१७॥ घुघुराले बाला से युक्त सीमन्त (स्त्रिया की माँग) से गुणामित गङ्गक आमूषणा से युक्त मालाबा से विभूषित ॥१८॥ रत्न-सयुक्त कुण्डला तथा मन-हर कणपूरा से अलङ्कृत देवागना तुल्य और समस्त धूम लक्षणा से सपन्न देखी जाती हैं ॥१९॥ व विलासिनियाँ दिव्य गीत वीणा वेणु मृग ढाल गामुख (तुरही) शंख नगाड तथा अनेक दूसरे मनाहर वाद्या स परस्पर प्रसन्नता पूर्वक ब्रीडा करती हैं ॥२०॥ २१॥ अनेक गीत-वाद्य विगारद कामिनियाँ काम स उन्मत्त होकर रात दिन विलास करती रहती हैं ॥२२॥ वहाँ राजा ने सचासी बानप्रस्थी, सिद्ध स्नातक, ब्रह्मचारी मन्त्र सिद्ध तप सिद्ध तथा यत्सिद्धा द्राप सुसज्जित एव अत्यन्त मनाहर धन देखा । पश्चात् वह सोचने लगा—यही पर मैं सनातन जगद गुरु परम देव परा से भी परे परम पद सर्वेश्वर, अनन्त अपराजित भगवान् विष्णु की आराधना करूँगा ॥२३॥ ॥२५॥ यह पुरुषोत्तम तीर्थ उनका मानस तीर्थ है—एसा मुझ ज्ञात हा रहा है । यहाँ कल्पवृक्ष रूपी विनालकाय वट वृक्ष स्थित है ॥२६॥ इन्द्रनील मणि की प्रतिमा का स्वयं देव ने छिपा दिया था । यहाँ कोई दूसरी वैष्णवी प्रतिमा नहीं देख पड़ती ॥२७॥ मैं बीसा यत्न करूँगा जिससे जगत्पति सत्यपराक्रमी विष्णु मेरे प्रत्यक्ष हाग । अन्य मन से

१ स अत्र त्वारा० । २ स ०३वर विष्णुरूपमरूपमय० । ३ स ०म । ददत चापवगत जान मा पु० । ४ स न वा न्तः दृश्यते चापि यत्तिर्लामर्षण० । ५ स ०या चात्र क० । ६ स ०य दृश्यते सर्वविष्णु ।

अनन्यमनसा चैव तन्मना नान्यमानस । विष्णुवायतनविन्यासे^१ प्रारम्भ च करोम्यहम् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुक्त्युपनिषादे क्षेत्रवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रासादकरणार्थं राजामाह्वानम्

ब्रह्मोवाच

एव स पृथिवीपालश्चित्तयित्वा द्विजोत्तमा । प्रासादार्थं हरेस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तदा ॥१॥

आनाय्य गणकान्सर्वानाचार्याञ्छास्त्रपारयान् । भूमिं सशोध्य यत्नेन राजा तु परमा मुदा ॥२॥

ब्राह्मणं ज्ञानसपन्नैर्वेदशास्त्रार्थपारगं । अमात्यैर्मित्रभिश्चैव वास्तुविद्याविशारदं ॥३॥

तैः सार्धं स समालोच्य सुमुहूर्तं शुभे दिने^२ । सुचक्रतारसयोगे ग्रहानुकूल्यसमृते ॥४॥

जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यैर्मनोहरं । वेदाध्ययननिर्घोषिणीं^३ सुमधुरस्वरं ॥५॥

अर्थात् उही में मन क लगा कर यज्ञ दान तप हेम पूजा तथा उपवास से मैं विधान पूरक उत्तम अथ करूँगा ।

विष्णु मन्दिर का निर्माण तो प्रारम्भ ही कर रहा हूँ ॥२८३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में क्षेत्रवर्णन

नामक छियालीसवा अध्याय समाप्त ॥४६॥

अध्याय ४७

मन्दिर बनाने के लिए राजाओं का आह्वान

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर^१ ! इस प्रकार सोचने के बाद उस राजा ने हरि मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया ॥१॥ उसने परम हर्ष से गान्धर्व-प रागत आचार्यों तथा ज्योतिषियों को बुलवाकर यज्ञपूजक भूमि का शायन कराया ॥२॥ फिर वेदशास्त्र-कुशल ज्ञानसपन्न वास्तु विद्या विगारद ब्राह्मणों तथा अमात्य-मन्त्रियों से सलाह करके सुन्दर मुहूर्त शुभ दिन सुन्दर चन्द्रमा और नक्षत्रों के साथ ग तथा ग्रहा की अनुकूलता में जय मङ्गलाब्दों अनेक मनाहर वाद्या वेध्वनिया गीता मधुर स्वरा पुष्प-लाजा-अशाना गंधा पूष्पकुम्भा तथा

१ स विष्णुप० २ स न्यासप्र० ३ स सूत उवा० ४ स ०ने । सञ्चद्र० ५ स ग्रहलक्ष्णे दाम तथा । ज० । ६ ग ०रस्तवै । पु० ।

गुप्फलाजाक्षतर्गन्धं पूर्णकुम्भं सदोषकं । ददावर्घ्यं ततो राजा श्रद्धया सुमासित ॥६॥
दत्त्वंवमर्घ्यं विविददानाग्न्य स महोपति । कलिङ्गाधिपति शूरमुत्कलाधिपति तथा ॥
कोशलाधिपति चैव तानुवाच तदा नृप ॥७॥

राजोवाच

गच्छध्व सहिता सर्वे शिलार्थे सुसमाहिता । गृहीत्वा शिल्पिमुत्पाशच्च शिलाकर्मविशारदान् ॥८॥
विन्ध्याच्चल सुविस्तीर्णं बहुकन्दरशोभितम् । निरुध्य सर्वेसानूनि छेदयित्वा शिला शुभा ॥
सवाह्यन्ता च शकटैर्नोकाभिर्मा विलम्बय ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एव गन्तु समादिश्य ताभूषांस महोपति । पुनरेवाब्रवीद्वाक्य सामात्यांस पुरोहितान् ॥१०॥

राजोवाच

गच्छन्तु दूता सर्वत्र ममाऽऽज्ञा प्रवदन्तु वं । यत्र तिष्ठन्ति राजान पृथिव्या तासुशोभना ॥११॥
हस्त्यश्वरथपादात् सामात्यं सपुरोहितं । गच्छत सहिता सर्वे इन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

एव दूता समाज्ञाता राजा तेन महात्मना । गत्वा तदा नृपानूचुर्वचन तस्य भूपते ॥१३॥
श्रुत्वा तु ते तथा सर्वे दूताना वचन नृपा । आजगमुस्त्वरिता सर्वे स्वसंघे परिवारिता ॥१४॥

दीपा स पूजा की ॥३५॥ तत्पश्चात् सावधान हूँ कर श्रद्धा स अर्घ्यदन किया । विधिपूर्वक अथ देकर भूपति ने कलिङ्गनरेण गुरुपति उत्तल के अधिपति तथा काल महाराज से कहा ॥६७॥

राजा ने कहा—आप उलग मिलकर सावधानी से गिला लाने के लिए जाएँ । गिलाकर्म में निपुण अच्छे कारीगरों के साथ लेकर अनेक गुफाओं से शान्ति तथा अल्पत विस्तीर्ण विन्ध्याचल पर जाकर उसकी गिराईय शिलाओं को कटा कर नावा द्वारा शीघ्र ले आइए ॥८९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार राजाओं के आदेश देकर भूपति ने फिर मंत्री और पुरोहितों से कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—सब जगह दूत जायें और मेरी आज्ञा घ पित करें कि— पृथ्वी पर जितने राजा रण हैं वे शीघ्र ही हाथी घोड़े रथ सिंघा और पुरहित सहित इन्द्रद्युम्न के पास जायें ॥१११२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस महात्मा राजा की आज्ञा पाकर दूत राजाओं के पास जाकर उसकी आज्ञा सुनाने लगे ॥१३॥ दूतों का वचन सुनकर राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाओं के साथ शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥१४॥

येनृपाः सर्वदिग्भागे ये च दक्षिणतः स्थिताः । पश्चिमायां स्थिता ये च उत्तरापथसंस्थिताः ॥१५॥
 प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च संनिधिवासिनः । पावंतीयाश्च ये केचित्तथा द्वीपनिवासिनः ॥१६॥
 रथेर्नागैः पदातैश्च वाजिभिर्धनविस्तरैः । संप्राप्ता बहुशो विप्राः श्रुत्वेन्द्रद्युम्नशासनम् ॥१७॥
 तानागतान्पान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान् । प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सादरम् ॥१८॥

राजोवाच

शृणुध्वं नृपशार्दूला यथा किंचिद्ब्रवीम्यहम् । अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुक्तिभुक्तिप्रदे शिवे ॥१९॥
 ह्यमेघ महापज्ञं प्रासादं चैव वृण्वम् । कथं शक्नोम्यहं कर्तुमिति चिन्ताकुलं मनः ॥२०॥
 'भर्त्राङ्गः सुसहायस्तु 'सर्वमेतत्करोम्यहम् । यदि यूयं सहाया मे भवध्वं नृपसत्तमा ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वदमानस्य राजराजस्य धीमतः । सर्वे प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तस्य शासनात् ॥२२॥
 ववृपुधंनरत्नैश्च सुवर्णमणिभूषितकैः । कम्बलाजिनरत्नैश्च राज्ञावास्तरणैः शुभैः ॥२३॥
 वज्रवद्वृषमाणिक्यैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः । गजंरत्नैर्वर्णैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः ॥२४॥
 असह्यैर्पर्वद्गुह्यैर्द्रव्यैश्चैव चावचैस्तथा । शालिग्रीहियवैश्चैव मापमुदगतिर्लेस्तथा ॥२५॥
 सिद्धार्थचणकैश्चैव गोधूमैर्मसुरादिभिः । श्यामाकर्मधुकैश्चैव नीवारैः सकुल्यकैः ॥२६॥
 अन्यैश्च विविधैर्धान्यैर्ग्राम्यारण्यैः सहस्रशः । बहुधान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः ॥२७॥

सब दिशाओं के राजा लोग अर्थात् दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के रहने वाले, मन्त्रेन्द्रदेववासी, समीप के रहने वाले, पर्वत प्रदेश के वासी तथा द्वीपनिवासी राजा हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे तथा पर्याप्त धन लेकर चल पड़े ॥१५-१६॥
 इन्द्रद्युम्न की आज्ञा सुनकर बहुत से ब्राह्मण भी पहुँचे । अमात्य-पुरोहिता के साथ आए हुए उन राजाओं को देखकर इन्द्रद्युम्न हर्षित होकर आदर से अपने कार्य का उद्देश्य बताने लगा ॥१७-१८॥

राजा ने कहा—नृपवर ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आपलगा ध्यान से सुनें । भुक्ति भुक्तिदायक, कल्याणमय, पवित्र इस उत्तम क्षेत्र में मैं अदरमेघ महापज्ञ तथा विष्णु के मन्दिर की रचना करूँ—इस चिन्ता से मेरा मन व्याकुल हो रहा है । नृपवर्य ! यदि आप लोग सहायता करें तब आप जैसे मुख्य सहायक पाकर मैं सब कुछ कर सकूँगा ॥१९-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—बुद्धिमान महाराज की बात सुनकर उसने शासन में रहने वाले समस्त राजकुन्द हर्षित हुए ॥२२॥ उन्होंने धन, रत्न सुवर्ण, मणि, मर्ती, कम्बल, चर्म पवित्र मृगरोम निर्मित विस्तर (काशीन) वस्त्रमणि, वैदूर्यमणि, पद्मराग, इन्द्रनील, अमर्य तथा अनक प्रकार के हाथी-घोड़े-रथ, छटे-बट द्रव्य, धान, दूध, चावल, उडद, तिल, दूधेन मरगा, घना, गेहूँ, मसूरी, श्यामाक, मधुक, नीवार, कुल्यक तथा दूसरे भी विविध प्रकार के ग्राम्य एवम् जंगली अन्न, गन्ध पत्त के सौकडा-हजारा घड़े, अनक मधु, मोग्य तथा लेप करने के पदार्थ—इन सब

गव्यस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः । तथाऽर्घ्यैर्विविधैर्द्रव्यैर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः ॥२८॥
 राजानः पूरयामासुर्यैस्त्रिकविद्ब्रह्मसंभवेः । तान्वृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसंपरसमन्वितान् ॥२९॥
 यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान् । शास्त्रेषु निपुणान्वक्ष्यान्कुशलान्सर्वकर्मसु ॥३०॥
 ऋषींश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान् । ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च वानप्रस्थान्प्रतीस्तथा ॥३१॥
 स्नातकान्ब्राह्मणान्श्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्तिथान् । आचार्योपाध्यायवरान्स्वाध्यायतपसाऽन्वितान् ॥३२॥
 सदस्याञ्छास्त्रकुशलंस्तिथ्याऽन्यान्पावकान्बहून् । दृष्ट्वा ताम्रपतिः धीमानुयाध स्वं पुरोहितम् ॥३३॥

राजोवाच

ततः प्रपान्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः । वाजिमेधार्थं सिद्ध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तं स तथा चक्रे वचनं तस्य भूपतेः । हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राजपुरोहितः ॥३५॥
 ततो ययौ पुरोधश्च प्राज्ञः स्यपतिभिः सह । ब्राह्मणान्प्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मणि ॥३६॥
 तं देशं धीवरप्राप्तं सप्रतोऽत्रिद्विद्विद्वन्मू । कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाटं यथाविधि ॥३७॥
 प्रासादशतसंवायं 'मणिप्रवरशोभितम् । इन्द्रसदमनिभं रम्य हेमरत्नविभूषितम् ॥३८॥
 स्तम्भान्कनकचित्राश्च तोरणानि बृहन्ति च । यज्ञायतनदेशेष् दत्त्वा शब्दं च काञ्चनम् ॥३९॥

द्रव्य से प्राप्त हुआने वाली सामग्रियों को पूरा किया ॥२३-२८॥ अरिबल संपत्ति-समन्वित यज्ञ सामग्रियों, यज्ञकर्मवेत्ता, वेद वेदांगपारगत्, शास्त्री म निपुण तथा सब कर्मों में कुशल ब्राह्मणा, ऋषिया, महर्षियों, देवर्षियों, तपस्वियों, ब्रह्मचारियों, गृहस्था, वानप्रस्था, सन्यासियों, स्नातका, अग्निहोत्री ब्राह्मणों, आचार्यों, उपाध्याया, स्वाध्याय तथा तपस्या से युक्त विप्रों, शास्त्र-कुशल सदस्यों और अन्य बहुत स पवित्र मनुष्यों का देखकर राजा ने अपने पुरोहित से कहा ॥२९-३३॥

राजा ने कहा—वेदपारगत् विद्वान् ब्राह्मण जाये और अवमेधयज्ञ की सिद्धि के लिए यज्ञ-स्थल का निरीक्षण करें ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के वचन सुनकर राजपुरोहित ने वैसा ही किया । वह प्रसन्न होकर मंत्रियों के साथ चल पड़ा ॥३५॥ यज्ञ-कर्मों में दक्ष ब्राह्मणों का आगे बढके कारीगरों के साथ विद्वान् पुरोहित गलिमो तथा विटका (कबूतरों के अङ्ग) से युक्त धीवर श्रम को विधानपूर्वक दक्षस्थल बनवाये ॥३६-३७॥ उत्तम मणियों से शोभित, सुवर्ण-रत्नों से विभूषित, मनोरम तथा इन्द्र भवन तुल्य सैकड़ों महल बनवाये । सुवर्ण के चित्र विविध स्तम्भ अनेक तारण, शुद्धसुवर्णमय यज्ञ गृह और नाना देश निवासी राजाओं के अन्तःपुर को उस धर्मात्मा ने

१ स तथैव विवि० । २ स ०न्सर्वान्यानसम० । ३ स दिशः । ४ स याज्ञिका । ५ स ०णान्पुरतः । ६ ग ०रुद्विद्विद्वन् । कारयामास विधिबद्धम् ।

अन्तःपुराणि राज्ञा च नानादेशनिवासिनाम् । कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि ॥४०॥
 ब्राह्मणानां च वैश्यानां नानादेशसमीपयाम् । कारयामास विधिकच्छालास्तत्राप्यनेकशः ॥४१॥
 प्रियार्थं तस्य नृपतेराययुर्नृपसत्तमाः । रत्नान्यनेकाभ्यादाय स्त्रियश्चाऽऽययुरस्त्वे ॥४२॥
 तेषां निर्वाहतां स्वेषु शिविरेषु महात्मनाम् । नदतः सागरस्येव दिविस्पृगभवद्ध्वनिः ॥४३॥
 तेषामभ्यागतानां च स राजा मुनिसत्तमाः । ध्यादिदेशाऽऽद्यत्तनानि शय्याश्चाप्युपचारतः ॥४४॥
 भोजनानि विवित्राणि शालीक्षुयवगोरसः । उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो ध्यादिदेश स्वयं तदा ॥४५॥
 तथा तस्मिन्महायज्ञे बहवो ब्रह्मवादिनः । ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽस्तग्विजसत्तमाः ॥४६॥
 समाजगमुः 'सशिष्यास्तानप्रतिजग्राह पाथिवः । सर्वाश्च ताननुद्यौ यावदावसथानिति ॥४७॥
 स्वयमेव महतेजा दम्भं त्यक्त्वा नृपोत्तमः । ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽप्ये चये तदा ॥४८॥
 'कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञे तदा तस्मै न्यवेदयन् । ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतन्द्रितः ॥
 हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन् यज्ञे प्रवृत्ते तु धाम्निनो हेतुवादिभिः । हेतुवादान्बहूनाहुः परस्परजिगीषवः ॥५०॥
 देवेन्द्रस्येव (?) विहितं राजसिंहेन भो द्विजाः । बद्धशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि च ॥५१॥
 शय्यासनविकाराश्च 'सुबहूग्नस्तनसंचयान्' । घटपात्रीकटाहारानि फलशान्बर्धमानकान् ॥५२॥

अच्छी तरह बनवाया ॥३८-४०॥ अनेक देशवासी ब्राह्मणों तथा वैश्याओं बहुत सी शाला, यों विधिपूर्वक बनवायी ॥४१॥
 दन्द्रयुग्म के हित के निमित्त राजा और स्त्रियाँ भी विविध रत्ना क, लेकर उत्सव म आयी ॥४२॥ जद वे महात्मा-
 नन्द अपने-अपने शिविर के अन्दर थे उस समय समुद्र-गर्जन की तरह आकाशवाणी ध्वनि हुने लगी ॥४३॥
 मुनिगण ! तब राजा ने स्वयं वहाँ जाकर उन अभ्यागतों का गृह, शय्या, अद्भुत भोजन—चावल, गुड, यव,
 दूध, घी आदि—देने की आज्ञा दी ॥४४-४५॥ द्विजवर ! उस महायज्ञ म जितने शिष्य सहित ब्रह्मवादी
 द्विजवर आये हुए थे, उन सब का राजा ने सत्कार किया और स्वयं उनको घर तक पहुँचाया ॥४६-४७॥ महा-
 तेजस्वी नृप ने दम्भ का परित्याग कर दिया । जितने शिल्पी लाग थे, उन्होंने अपनी कारीगरी अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञ-
 विधि (यज्ञस्थल के निर्माण) को पूर्ण कर राजा से निवेदन किया कि सब कार्य सम्पन्न हो गया—यह सुन कर
 आलस्यरहित राजा मंत्रिया सहित आनन्द से गद्गद हो गया ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने, हा—उस यज्ञ के प्रारम्भ म परस्पर विजय के इच्छुक वाग्मी लोग हेतुवादिया से अनेक कारणवाद
 कहने लगे ॥५०॥ द्विजगण ! उस श्रेष्ठ मूर्ख ने दन्द्र की तरह कार्य किया । वहाँ सुवर्णमय तारण, घट, पात्र तथा

१ ग वैश्वानि । २ ग ० वद्विदितात्मा ह्यने० । ३ ख ० स्तान्प्रत्या ज० । ४ क कृत्स्नयज्ञविधान
 शास्त्रदा । ५ ए वादिनी । ६ ख ० द्रस्य विधि चित्त्य रा० । ७ ख ० बह्वन्नस्य स० । ८ ख ० नृ । स्फटिकानि
 च मेहानि क० ।

महिं कश्चिदसौवर्णमपश्यद्वसुधाधिप । यूपाश्च शास्त्रपठितान्दारवाहेमभूषितान् ॥५३॥
 उपक्षिप्तान्वयाकालविधिवद्भूरिवर्चसः । स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन द्विजा ॥५४॥
 सर्वानेव समानोत्तानपश्यस्तत्र ते नृपाः । गाश्चैव महिषोश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च ॥५५॥
 ओदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वर्षासि च । जरायुज्जलज्जातानि श्वेदजा युद्धिभक्षानि च ॥५६॥
 पवतायुषधान्यानि भूतानि ददृशुश्च ते । एव प्रमुदितः सर्वं पशुतो धनधान्यतः ॥५७॥
 यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा विस्मयपरमगताः । ब्राह्मणानां विशा चैव बहुमिष्टान्नमृद्धिमतः ॥५८॥
 पूर्णं शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम् । दुन्दुभिर्मध्यनिर्घोषान्मुहुर्मुहुरथाकरोत् ॥५९॥
 विनानावासकृच्छ्रापि दिवसे दिवसे गते । एव स ववृधे यज्ञस्तस्य राजस्तु धीमतः ॥६०॥
 अग्नस्य सुबहूनिवप्रा उत्सर्गन्निर्गन्तोपमानः । दधिकुलयाश्च ददृशुः पयसश्च हृद्दारतया ॥६१॥
 जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदयुतः । द्विजाश्च तत्र दृश्यन्ते राजस्तस्य महामखे ॥६२॥
 तत्र यानि सहस्राणि पुरुषाणां ततस्ततः । गृहोत्वा भोजनजम्बूद्वीपं द्विजसत्समाः ॥६३॥
 श्राविणश्चापि ते सर्वे समुष्टमणिकुण्डलाः । पर्यवेष्टयन् द्विजातीञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥६४॥
 विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः । ते धे नृपोपभोग्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददुः सह ॥६५॥
 समामगतान्वेदविदो राजश्च पृथिवीश्वरान् । पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिवक्षिण ॥६६॥
 (दिग्देशादागताग्रातो महासङ्ग्रामशालिनः । नटनर्तककादोऽश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥६७॥)

बडाहू और रत्नजटित गम्या आसन एवम वनधे उपकरण थे ॥५१ ५२॥ राजा ने एसा कोई चाज नहीं देखी जा सोने की नहा थी। उन्होंने शास्त्रविहित काष्ठ के यूपा के स्वर्णमणित अर्पित तजस्वी तथा ठाक समय से विधिपूर्वक गडत हुए दला। विप्रवन्द । स्थलचर और जलचर सभी जंतु वहा लाय गए ॥५० ५४॥ गाय भसे बडा स्त्रियाँ जलाम ज त हिसक जत पक्षागण जरायुज्ज अडज स्वदज उदमिडज पवत अन्न, प्राण—नय वही विद्यमान थे ॥५५ ५६॥ इस प्रकार पशुओं और धनधायों से आर्गदित यज्ञस्थल के देख कर राजा लग आश्चर्यचकित रह गए ॥५७॥ ब्राह्मणों और वक्षों के पास पर्यन्त मिष्टान्न था। वहा एक लाख वर्षों तक ब्राह्मण भोजन ह ता रहा ॥५८॥ येष-भजन के समान नगाडों के अनवरत घाप हो रहे थे। इस प्रकार उस बद्धिम न राजा का यज्ञ काय विस्तार होने लगा ॥५९ ६०॥ विप्रवन्द । अन्न जितना खच ह ता था उतना हा बढता जाता था। दही के सर वर और दूध के शालें वहाँ दाखली थी ॥६१॥ द्विजनय । अनेक देश से यकत सम्पूर्ण जम्बूद्वीप हा उस राजा के महामण से उपस्थित हुआ था ॥६२॥ द्विजवय । हजारों पुरुष पात्रों के लकर बहा पहुचे। निमल मणि-कुण्डला से यकत सकल हजारा मकल ग ब्राह्मणों का अलकृत करते राजा के खाने योग्य भोजन कराते और विविध प्रकार के अन्न न दते थे ॥६३ ६४॥ विधिपूर्वक मूरि दक्षिणा देने वाला राजा आये हुए वेदवेत्ताओं तथा पथिवेश्वर राजाओं की पूजा करता था ॥६५॥ (सभी दिगाओं के देवों से वहाँ महासधामशाली राजवन्द तथा गीत-स्तुति विशारद नट नतक आदि

१ ख ० रिदक्षिण । स्थ० । २ ख च । पावत यानि भूतानि भतपा ६० । ३ ग यामास० । ४ ख ० मा । ते वै ।

पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधरा । इन्दोवरपलाशाक्ष्यं शरङ्गद्वनिभाजना ॥६८॥
 कुलश्रीगुणोपेता सहस्रैक शताधिकम् । एव तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥६९॥
 रत्नमालाकुल दिव्य पताकाध्वजसेवितम् । रत्नहारयुत रम्य चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥७०॥
 'वरिण पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलान्' । दातुं कोटिसघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणैः ॥७१॥
 'वातवेगजवेरद्वयं सिन्धुजातं सुशोभनं' । 'श्वेताद्वयं श्यामकर्णेश्च कोट्यनेकैर्जगन्दिनैः' ॥७२॥
 सनद्वन्द्वरुक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतं । असह्येयं पदाशतैश्च देवपुत्रोपमंस्तथा ॥७३॥
 इत्येव ददृशे राजा 'यज्ञसभारविस्तरम्' । 'मुद लेने तदा राजा सहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥७४॥

राजोवाच

आनयध्व ह्यश्वेष्ट सर्वलक्षणलक्षितम् । चारयध्व पृथिव्यां धीं राजपुत्रा सुसज्जता ॥७५॥
 विद्वद्भिर्धर्मविदिभ्यश्च अत्र होमो विधीयताम् । कृष्णच्छाग च महिष कृष्णसारमूग द्विजान् ॥७६॥
 अरुणवाह च गाडचैव सर्वाश्च पशुपालकान् । इष्टयश्च प्रवर्तन्ता प्रासाद वैष्णव तत ॥७७॥
 सर्वमेतच्च विप्रेभ्यो दीयता मनसोन्तितम् । स्त्रियश्च रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च 'गराणि च' ॥७८॥
 सम्पत्तमृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् । अन्त्यानि द्रव्यजगतानि मनोज्ञानि वटूनि च ॥७९॥
 सर्वेषां याचमानानां नारित ह्येतन्न भाषयेत् । तादृशप्रवर्ततां यज्ञो 'वापदेव पुरा त्विह' ॥
 प्रत्यक्ष मम चाभ्येति यज्ञस्यास्य समीपतः ॥८०॥

आए हुए थे ॥६७॥) दृष्टुम् नहीं स्यात् सी मन्तरम पत्नियां बी जा स्थूल और उन्नत स्तन वाली कमल-लक्ष्मिना,
 'गरुड-चक्र' सुय मुग वाली और कुल शील तथा गुणा ग सम्पन्न थी ॥६८॥ इस प्रकार पत्नीगण स समन्वित रत्न
 मालाभा ग व्याप्त दिव्य ध्वजा-पताका आ ग सज्जित और चन्द्रकान्तमणि के समान वातिमान वह दण-नयन
 था ॥६९॥ ७०॥ पर्वताकार, महाबल, मद स सिकत और दन्त रूप आभूषणों से युक्त करण हाथिया व झण्डा ग
 पवन सुय वेग वाल सिध दण लग्न मुदर तथा श्वेत अग बाण कराड़ा श्यामवर्ण पाडा स और कवचधारी
 वद्वन्द्व अनेक अश्व आरथा मे सुसज्जित तथा देव-पुत्र तुल्य असह्य सैनिकों से युक्त-नयल सुगमिन था ॥७१-७३॥
 इस प्रकार दण-स्थान 'महान टाट-काट का देन कर राजा अत्यन्त आनन्दित हो कर बोलता ॥७४॥

राजा ने कही—ममस्त लक्षणा स सम्पन्न उत्तम पात्र का गयमी राजकुमार लाये और फिर पृथिवी
 पर उगवा विचरण करायें ॥७५॥ विद्वान तथा धर्मवेत्ता लोग हवन करें। कान् बकरे महिष कृष्णमूग ब्राह्मणा
 बैल गाय और समस्त पशु-पक्षी का बलि कर यज्ञ आरम्भ किया जाए। विष्णु का मंदिर बन ॥७६-७७॥ शिवा
 का अभिर्जित दान दिया जाय याचना का। स्त्रियां रत्न गाँव नगर अच्छी उपजाऊ भूमि राज्य तथा दूगरे
 मुदर दण दिए जायें ॥७८॥ किया भी याचना स नहीं है ऐसा पद नहीं कहा जाय। जब तक भगवान् यज्ञ
 वेदी में प्रत्यक्ष प्रवृत्त न हो तब तक यज्ञ होता रहे ॥७९-८०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विप्रा राज्ञसिहो महाभुज । ददौ सुवर्णसंघात कोटीना चंच भूषणम् ॥८१॥
 करेणुशतसाहस्र वाजिनो नियुतानि च । अर्बुद चंच वृषभ स्वर्णभृङ्गीश्च धनुका ॥८२॥
 सुरूपं सुरभीश्चैव कास्यदोहा पयस्विनी । प्रायच्छत्स तु विप्रेभ्यो वेदविदभ्यो मुदायुत ॥८३॥
 वासांसि च महार्हाणि राज्ञावास्तराणानि च । सुशुक्लानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥८४॥
 अददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥८५॥
 वज्रवैद्युर्मणिमयमुक्तिकाद्यानि यानि च । अलङ्कारवती शुभ्रा कन्या राजीवलोचना ॥८६॥
 शतानि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्ट प्रदत्तवान् । स्त्रिय पीनपयोभारा कञ्चुके स्वस्तनावृता ॥८७॥
 मध्यहीनाश्च सुशोण्य पद्मपत्रायतेक्षणा । हावभावाङ्घ्रिवत्प्रोवा बहुध्वो वलयभूषिता ॥८८॥
 पादनूपुरसयुक्ता पटटद्रुकूलवासस । एकैकशोऽदवात्तस्मिन्काभ्याश्च कामिनीर्बहू ॥८९॥
 अग्निभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो ह्यमेधे द्विजोत्तमा । भक्ष्य भोज्य च सपूर्णं नानासंभारसयुतम् ॥९०॥
 खण्डकाद्यान्धनेकानि स्विन्नपत्रवाशश्च पिष्टकान । अन्नान्यन्यानि मेध्याश्च घृतपूराश्च खण्डवान् ॥९१॥
 मधुरास्तजितानूपानस्र मृष्ट सुपाकिकम् । प्रीत्यर्थं सर्वसत्त्वानां दीयतेऽन्नं पुन पुन ॥९२॥
 दत्तस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते । एव दृष्ट्वा महायज्ञदेवदेव्या सत्वा (चा) रणा ॥९३॥
 गन्धर्वाप्सरस सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वरा । विस्मय परमं याता दृष्ट्वा धनुर्वरं शुभम् ॥९४॥
 पुरोधा मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव सर्वश । न तत्र मलिनं कश्चिन्नदीनो न क्षुधाऽङ्घ्रित ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर उस महाबलवान् नृपवर ने हृषपूवक सुवर्ण समूह कर 'डा भूषण' एक लाख हाथी दस लाख घोड़े एक अरब बैल तथा स्वर्णभृङ्गी मुदरहपवती एवम् दुषारु भायें वेदवत्ता ब्राह्मणों को दान में दी ॥८१॥ ८३॥ तथा बहुमूल्य वस्त्र उज्ज्वल मृगरोम निमित्त बिस्तर (कालीन) उत्तम प्रवाल मणियाँ और विविध रत्न भी दिए ॥८४॥ ८५॥ वज्रमणि वैद्युमणि मत्ती तथा अङ्कारों से युक्त गौरवर्ण एवम् कमल के समान नेत्रों वाली पाँच सौ कन्यायें राजा ने प्रसन्न होकर विप्रों को दी ॥८६॥ ८९॥ द्विजवय ! अथमेध यज्ञ में स्थल तथा कपुकिथों से आवृत स्तना वाली क्षीण कटि वाली मुदर नितम्ब वाली कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्रों वाली हाव भावों से अवन्त श्रोत्रों वाली ककण तथा नपुंसों से विभ्रमित वीरोधवस्त्रधारिणी बहुत सी कामिनियों को राजा ने एक एक कर के ब्राह्मण आदि याचकों को दे दिया ॥८७॥ ८९॥ अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त पर्याप्त भक्ष्य भोज्य खाद्य मिश्रित विविध अन्न तथा उवाश्कर बनाये गए पीसकर बनाये गए पवित्र तथा घृतपूण खाद्य के बने मधुर अच्छी तरह पकाये हुए खाद्यान्न एवं पूए—समस्त प्राणियों की तृप्ति के लिए बार-बार दिये जाते थे ॥९०॥ ९२॥ दिए गए तथा दिए जाने वाले अन्न का अन्त नहीं था ! इस प्रकार महायज्ञ के देखकर देव दैत्य चारण गणध्व अप्सरा सिद्ध ऋषि तथा प्रजापति अत्यन्त विस्मित हुए ॥९३॥ ९४॥ पवित्र तथा उत्तम यज्ञ को देखकर पुरोहित मन्त्री राजा—सब के सब हर्षित हुए । वहाँ में कोई मलिन न दीन और न क्षुधा-पीडित

न बोधसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽधयो व्याधयस्तथा । नाकालमरणं तत्र न दंशो न ग्रहा विषम् ॥९६॥
 हृष्टपुष्टजना सर्वे तस्मिन् राज्ञो महोत्सवे । ये च तत्र तपःसिद्धा मुनयश्चिरजीविनः ॥९७॥
 न जातं तादृशं यज्ञं धनधान्यसमन्वितम् । एवं स राजा विधिवद्वाजिमेषं द्विजोत्तमाः ॥
 ऋतुं समापयामास प्रासादं वैष्णवं तथा ॥९८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भूतिसवादे प्रासादकरणं नाम
 सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणम्

मुनय ऊचुः

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छाम पुरातनम् । यथा ताः प्रतिमाः पूर्वमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिताः ॥१॥
 केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधव । तत्सर्वं वद आस्माकं पर कोतूहलं हि न ॥२॥

ब्रह्मोवाच

भृगुध्व मुनिशार्दूलः पुराण वेदसंमितम् । कथयामि पुरा यत्तं प्रतिमाना च संभवम् ॥३॥

दिखायी पड़ता था ॥९५॥ उत्पात, ग्लानि, आधि-व्याधि, अकाल मृत्यु, दश, ग्रह और विष किसी प्रकार की विपत्ति नहीं थी ॥९६॥ राजा के उस महात्सव में सब लोग हृष्ट-पुष्ट, तपस्वी, मुनि तथा चिरजीवी थे ॥९७॥ वैसा धन धान्य-समन्वित यज्ञ वही नहीं हुआ था। द्विजवय ! इस तरह राजा ने विधानपूर्वक अश्वमेध यज्ञ तथा विष्णु के मंदिर के सम्पन्न किया ॥९८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद-प्रकरण में मंदिर-निर्माण नामक
 सैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिमा का निर्माण

मुनियो ने कहा—हे देवदेवेश ! हम यह प्रार्थना क्या मुनता चाहते हैं कि इन्द्रद्युम्न ने उन प्रतिमाओं का निर्माण कैसे कराया ? किस प्रकार माधव उससे सतुष्ट हुए ? यह सब हमसे कहिए, हमें यही उत्सुकता है ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! वेदसम्मत पुराण को मुनिः । मैं पूर्वकालीन, वृत्तान्त—प्रतिमाओं का

प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निमित्ते । चिन्ता तस्य बभूवाय प्रतिमार्थमर्हनिशम् ॥४॥
 न वेद्यि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम् । सर्गस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥५॥
 चिन्ताविष्टस्त्वभूद्राजा शोते रात्रौ दिवाऽपि न । न भुङ्क्ते विविधान्भोगाश्च न स्नानं प्रसाधनम् ॥६॥
 नैव वाद्येन गन्धेन गायनैर्वर्णकैरपि । न गर्जमन्दपुष्पतैश्च न चानेकैर्हयान्वितैः ॥७॥
 मेन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागमयनैः च । सुवर्णरजताद्यैश्च वज्रस्फटिकसयुतैः ॥८॥
 बहुरागार्थकामैर्वा न वन्यैरन्तरिक्षिणैः । बभूव तस्य नृपतेर्मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥९॥
 शैलभृद्दारुजातेषु प्रशस्तं किं महीतले । विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥१०॥
 एतरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम् । स्थापिते प्रीतिमम्येति इति चिन्तापरोऽभवत् ॥११॥
 पञ्चरात्रविधानेन संपूज्य पुरुषोत्तमम् । चिन्ताविष्टो महीपालः सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मेन्द्रशुभनस्य प्रतिमानिर्माणविधानं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

निर्माण—वनलाता है ॥३॥ महायज्ञ का आरम्भ तथा मन्दिर का निर्माण हो जाने पर राजा को दिनरात प्रतिमा की चिन्ता लगी रहती थी ॥४॥ “मैं नहीं जानता कि किस प्रकार देवों के स्वामी, सब के स्वामी, लोकपावन तथा मूर्ति स्थिति प्रलयकर्ता पुरुष तम भगवान का दर्शन कर सकूँगा। इस चिन्ता के कारण राजा का एक क्षण भी नींद नहीं आती थी। स्नान, शृंगार तथा भोग से भी वह विरक्त हो गया था ॥५॥ वाद्य गन्ध, गाना मन्दपुष्प हाथी घाडे, इन्द्रनील महनील, पद्मराग, साना, चांदी, वज्रमणि स्फटिकमणि अनुराग उत्पन्न करनेवाले वहुत स वन्य तथा गगन विहारी पक्षी—नाई भी राजा के मन का सन्तुष्ट नहीं कर पाता था ॥६॥ भूतल पर पत्थर मिट्टी और लकड़ी—इन तीन चीजों में कौन विष्णु की प्रतिमा गाय, सर्वलक्षण सम्पन्न तथा प्रशस्त है? इन्हीं तीनों में से किसी वस्तु की प्रतिमा देवताओं का प्रिय होती है। प्रतिमा स्थापित होने पर ही भगवान प्रसन्न होंगे। इस तरह राजा साधने हुए पञ्चरात्र के विधान से पुरुषोत्तम की पूजा कर चिन्तामग्न स्थिति में ही स्वति करने लगा ॥१०॥ १२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में प्रतिमानिर्माण विधान नामक अठ्ठालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नकृतभगवत्स्तुति

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण । त्राहि मा सर्वलोकेषु जन्मसंसारसागरात् ॥१॥
 निमलाम्बरसकाश नमस्ते पुरषोत्तम । सख्येण नमस्तेऽस्तु त्राहि मा धरणीधर ॥२॥
 नमस्ते हेमगर्भाय नमस्ते मकरध्वज । रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मा सबराजक ॥३॥
 नमस्तेऽञ्जनसकाश नमस्ते भक्तवत्सल । अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मा वरदो भव ॥४॥
 नमस्ते त्रिवुधाज्ञान नमस्ते विबुधप्रिय । नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मा शरणागतम् ॥५॥
 नमस्ते बलिना थ्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गभयुध । चतुर्मुख जगद्धाम त्राहि मा प्रपितामह ॥६॥
 नमस्ते नीलमघाभ नमस्ते त्रिदशाजित । त्राहि विष्णो जगन्नाथ मम मा भवसागरे ॥७॥
 प्रलयानलसकाश नमस्ते दितिजातक । नरसिंह महावीर्य त्राहि मा दीप्तलोचन ॥८॥
 यथा रसातलादुर्वी त्वया दष्ट्रोद्धता पुरा । तथा महाबराहस्त्व त्राहि मा दुःखसागरात् ॥९॥
 तवेता मूतप कृष्ण वरदा सस्तुता मया । तवेमे बलदेवाद्या पृथग्रूपेण सन्निधत्ता ॥१०॥
 अङ्गानि तव देवेश गरुमाद्यास्तथा प्रभो । दिक्पाला सामुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽस्तुत ॥११॥

अध्याय ४९

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान की स्तुति

वासुदेव ! आपका नमस्कार है । म मोक्षकारण ! आपको नमस्कार है । अतिल लोका व स्वामी ! मुझ जन्म तथा संसार सागर से बचाइए ॥१॥ स्वच्छ गगन पुत्र ! पुरष उत्तम ! आपको नमस्कार है । सख्येण ! आपको नमस्कार है । धरणीधर ! मेरी रक्षा करें ॥२॥ हिरण्यगम् ! आपको नमस्कार है । मकरध्वज ! आपको नमस्कार है । रतिकर्षि ! आपको नमस्कार है । सबराज ! मेरी रक्षा कर ॥३॥ अञ्जननृत्य ! आपको नमस्कार है । भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार है । अनिरुद्ध ! आपको नमस्कार है । मेरी रक्षा करें तथा वरनाथ बन ॥४॥ दशनाभ ! स स्यान् ! आपको नमस्कार है । देवप्रिय ! आपको नमस्कार है । नारायण ! आपको नमस्कार है । मुझ शरणागत की रक्षा कर ॥५॥ बलिना म थ्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है । हन्त युध ! आपको नमस्कार है । चतुर्मुख ! जगद्धाम ! प्रपितामह ! मेरी रक्षा करें ॥६॥ नीलमेघ व गमान्वाति बाल ! आपको नमस्कार है । दशभुक्ति ! आपको नमस्कार है । विष्णु ! मेरी रक्षा करें । जगन्नाथ ! भवसागर से मया उद्धार कर ॥७॥ प्रलय विजय सङ्ग ! दैत्यनाशन ! आपको नमस्कार है । नरसिंह ! महाकालिनाम्नी ! दीप्त नेत्र बाल ! मेरी रक्षा करें ॥८॥ आपन किस प्रकार महाबराह का रूप धारण कर अपने दाँत पर पताल से पृथ्वी का उद्धार किया था वैसे मुझ भी दुःखसागर से बचाओ ॥९॥ कृष्ण ! वर देने आप वागी आप ही की इन मूर्तियों की मीने स्तुति की है । आप ही व म बलदेव आदि रूप पृथग्-पृथग् स्थित हैं ॥१०॥ दश ! प्रभो ! गरुड आदि आपसे

ये ज्ञान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः । तेषां सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन ॥१२॥
मयार्जुनः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः । प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥१३॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संसृष्यादयः । तव पूजार्थसंभूतस्तत्तत्स्वयि समाश्रिताः ॥१४॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः । विशिष्यं तव 'यद्रूपमुवत्' तदुपचारतः ॥१५॥
अद्वैतं त्वा कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोतिमानवः । 'एकरत्नं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः ॥१६॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम् । निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥१७॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामाश्रयवस्थितम् । तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो ॥१८॥
अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गधारिणम् ॥१९॥
श्रीवत्सोरस्वसंपुवत् वनमालाविभूषितम् । 'तदच्यन्ति विबुधा ये ज्ञान्ये तव संश्रयाः ॥२०॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ भवतानामभयप्रद । त्राहि मां पद्मपत्राक्ष महान् विषयसागरे ॥२१॥
नामं पश्यामि लोकेषु यस्याहं शरणं व्रजे । त्यामूते कमलाकाशे प्रसीद मधुसूदन ॥२२॥
जराव्याधिशर्तयवतो नानादुःखेनिपीडितः । ह्यंशोकाग्निवतो मूढः कर्मपाशैः सुयन्त्रितः ॥२३॥
पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे । विषमोदककुण्डलारे रागद्वेषप्रपाकुले ॥२४॥

अग है। अच्युत ! विष्णुपाल तथा आयुधधारी केशव आदि नी आपके अवयव हैं ॥११॥ प्रसन्न तथा लम्बे नेत्र वाले जगन्नाथ ! विद्वानों ने जितने आपके भेद बतलाए हैं, उन सबको मैंने पूजा तथा स्तुति की और आपकी नमस्कार किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायक वरदान मुझे दोजिए ॥१२-१३॥ हरे ! आपके सङ्कर्षण आदि जितने भेद हैं, वे सब आपकी पूजा के लिए उत्पन्न होकर आपही के आश्रित हैं ॥१४॥ देवेश ! परमार्थदृष्टि से आपका कोई भेद नहीं है। आपके जो वे विविध रूप बह गये हैं, वे औपचारिक हैं ॥१५॥ आप अद्वैत हैं, मला मनुष्य आपको वैसे द्वैत कह सकता है। हरे ! आप एक, व्यपक, चित्स्वभाव तथा निरञ्जन हैं ॥१६॥ प्रभो ! आपका जो भाव-अभाव से बजित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, सब उपाधियों से निर्मुक्त तथा सत्ताभाव से व्यवस्थित रूप है, उसे तो देवता भी नहीं जानते, मैं कैसे जानूँ ॥१७-१८॥ आपका दूसरा जो पीतवस्त्र, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा, मुकुट तथा अगद (बाज्रबद्ध) धारी, वक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिह्न से युक्त और वनमाला से विभूषित रूप है, उसी की पूजा आपके आश्रित देवगण करते हैं ॥१९-२०॥ देवो वै देव ! सुरश्रेष्ठ ! भवतो को अमर देने वाले ! पद्म-पत्र वै समान नेत्रों वाले ! विषयसागर में डूबे हुए मुझको बचाइए ॥२१॥ लोभेश ! आपको छेड़कर मैं किसी दूसरे को नहीं देखता, जिसकी शरण में जाऊँ। कमलाकाश ! मधुसूदन ! मुझ पर प्रसन्न हों ॥२२॥ मैं सैकड़ों जरा-व्याधियों से युक्त, नाना दुःखा से पीडित ह्यंशकों से समन्वित मुग्ध तथा कर्म-जाल में निबद्ध होकर महाभयकर संसारसागर में गिर चुका हूँ ॥२३॥ प्रभो ! विषय-जल के कारण दुष्पार, राग-द्वेष रूपी मीनी से प्रपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवतों से गभीर, तृष्णा शाक रूपी तरंगों से व्याप्त, आश्रय

इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोर्मिसंकुले । निराश्रये निरालम्बे निःसारोऽस्मिन्तच्छब्दचले ॥२५॥
 मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो । नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः ॥२६॥
 मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च । विविधान्यनुभूतानि संसारोऽस्मिन्जनार्दन ॥२७॥
 वेदाः साङ्गा मयाऽधोतः शास्त्राणि विविधानि च । इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः ॥२८॥
 असंतोषाश्च संतोषाः संवपाश्च व्याप्याः । मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्धक्षयेतराः ॥२९॥
 भार्यारिमित्रबन्धूना बियोगाः संगमास्तथा । पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया ॥३०॥
 दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः । प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरोज्ञातयस्तथा ॥३१॥
 मयोपितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विष्मन्नपिच्छले । गर्भवासे महाबुधमनुभूतं तथा प्रभो ॥३२॥
 दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनयोचरे । वार्धके च हृषीकेशतानि प्राप्तानि वै मया ॥३३॥
 मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये । मया तान्यनुभूतानि नरके यातनस्तथा ॥३४॥
 कुमिकीटद्रुमाणां च हस्तयश्वमृगपक्षिणाम् । महिषोष्ट्रगवां चैव तथाऽज्येषां वनोक्तसाम् ॥३५॥
 द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु । घनिना क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥३६॥
 नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽज्येषां च बेहिनाम् । गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥३७॥
 गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम् । दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामिरत्वं च तथा गतः ॥३८॥
 हतो मया हताश्चान्ये घातितो घातितास्तथा । दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥३९॥

तथा अवलम्ब सह रहित, सह रहित अति अत्यन्त चञ्चल भवसागर मे माया मेमोहित होकर चिरकाल से मैं भ्रमण कर रहा हूँ (अर्थात् डूब रहा हूँ) ॥२४-२५॥ जनार्दन । इस संसार मे नाना प्रकार की जातियो मे हजारो-लाखो बार जन्म लेकर मैंने विविध सुख-दुःख का अनुभव किया ॥२६-२७॥ जगन्नाथ । मैंने चारो वेदो, छहो शास्त्रो, इतिहास-पुराणो तथा अनेक शिल्पो का अध्ययन किया ॥२८॥ असंतोष, संतोष सबय, अपचय, ध्यय, क्षय, वृद्धि तथा अक्षय मुझे प्राप्त हुए ॥२९॥ भार्या, शत्रु, मित्र तथा वधुओ से सत्यत विरयोग हुए, अनेक पितर मातर देने ॥३०॥ शिक्षण सुख-दुःखो का अनुभव किया, बहुत से माई-बपु मिले ॥३१॥ स्त्रियो के मूल मूल से पिच्छल (फिसलन वाले) कोष्ठ मे वास किया, गर्भ-वास मे महान् दुःख का अनुभव किया ॥३२॥ हृषीकेश । काल्यावस्था, यौवनकाल तथा बुढ़ापे मे जितने कष्ट होते हैं, वे सब मुझे मिले ॥३३॥ मरणकाल मे, यम के मार्ग से तथा यमालय मे जितने दुःख होते हैं, उन सब का मैंने अनुभव किया, नरक मे यातनाये भी सही ॥३४॥ वृद्धि-कीट वृक्ष हाथी, घोड़े, मूल, परी, महिष, ऊँट, गो तथा अन्य जंगली पशु, द्विज एवम् शूद्र की योनि मे और घनवान् क्षत्रिय, दरिद्र, तपस्वी नृप, राजा के नौकर तथा अन्य प्राणियो के घरों मे मैं बार-बार उत्पन्न हुआ ॥३५-३७॥ नाथ । मैं अनेको मनुष्य तथा दामो की दास बना दण्डि, घनी तथा स्वामी भी बना ॥३८॥ मैंने दूसरो की माघ और दूसरो ने मुझे माघ, मैंने दूसरा पर आपात किया और दूसरा ने मुझ पर आपात किया, मुझे दूसरो ने दिया और मैंने दूसरो को दिया ॥३९॥

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च। धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम्॥४०॥
 उक्त दैन्यं च त्रिविधं त्वयत्वा लज्जा जनार्दन। देवतिर्थङ्गमनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च॥४१॥
 न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गत प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते॥४२॥
 कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यगतेषु च। जलदन्त्रे दद्या चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना॥४३॥
 याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति। तथा चहं सुरथेष्ट फर्मरज्जुसमावृतः॥४४॥
 अधश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गच्छामि योगतः। एवं संसारकृष्णस्तिम्भैरये रोमहर्षणे॥४५॥
 भ्रमामि सुत्रिर् कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित्। न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुरितेन्द्रियः॥४६॥
 शोभतृष्णाभिभूतोऽहं कादिशीको विचेतनः। इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः॥४७॥
 ग्राहि मां दुःखितं कृष्ण भग्नं संसारसागरे। कृपा कुह जगन्नाथ भवतं मा यदि मन्यसे॥४८॥
 त्वदृते नास्ति मे बन्धुयोजसो त्रिन्तां करिष्यति। देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित्॥४९॥
 जोषिते मरणे चैव योगक्षेमोऽयं वा प्रभो। ये तु त्वां निधिवद्देव नाचंयन्ति नराधमाः॥५०॥
 सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात्। किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जोषितेन च॥५१॥
 येषां न जायते भक्तिजगद्धातरि केशवे। प्रकृतिं त्वामसुरीं प्राप्य ये त्वा निन्दन्ति मोहिताः॥५२॥
 पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः। न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात्॥५३॥

पिता, माता, मित्र, भाई, स्त्री धनी, धार्मिक, दरिद्र और तपस्वियों के लिए मैंने बहुत कुछ किया॥४०॥ जनार्दन !
 मैंने लाख छ ड़कर विविध प्रकार की दीनता प्रकट की। प्रभो ! देव, पक्षी, मनुष्य, स्थावर और जगमा मे एसा
 कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं नहीं गया॥४१॥ जगत्पते ! मैं कम खपी रस्सी से बँधा हुआ कर्मी नरक मे, कर्मी
 स्वर्ग मे कर्मी मनुष्य लोक मे और कर्मी तिर्यग् योनि मे उसी प्रकार नीचे-उपर भ्रमण कर रहा हूँ, जैसे जलदन्त्र
 मे रस्सी से बँधा हुई गगरी ऊपर-नीचे तथा मध्य मे घूमती रहती है॥४२-४४॥ इस प्रकार भयंकर तथा रोमाचकारी
 संसार-धन मे मैं विरवाल से घूम रहा हूँ, कहीं अन्त नहीं देखता॥४५॥ हरे ! मैं नहीं जानता हूँ कि क्या कर्म
 मेरी इन्द्रियों व्याकुल हो गई हैं, मैं शोक-तृष्णा से अभिमूत तथा अचत हूँ रहा हूँ, मुझे इतना भी नहीं पता
 कि किस दिशा मे जाऊँ। देव ! इस समय विह्वल होकर मैं आपकी शरण मे आया हूँ॥४६-४७॥ कृष्ण ! संसार-
 सागर मे निमग्न मुझ पीछित की रक्षा करें। जगन्नाथ ! यदि आप मुझ भक्त समझते हैं तो कृपा कीजिए॥४८॥
 अपना छोड़कर मेरा कोई बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करे। देव ! आपका स्वामी के रूप मे प्राप्त कर जीवन,
 मरण या यागक्षेम—इसी भी मुझे भय नहीं हाता॥४९॥ प्रभो ! जो नपुंसक विधिपूर्वक आपकी पूजा नहीं
 करते, उन्हें संसार-बन्धन मे कैसे मुक्ति मिले ? जिनको जगद्धाता मे शय मे भक्ति नहीं है, उन्हें कुल-शील, विद्या
 तथा जीवन से क्या प्रयोजन ?॥५०-५१॥ आसुरी प्रकृति को प्राप्त कर माह्वय जा आपकी निन्दा करते हैं, वे
 बार-बार जन्म लेकर घोर नरक मे गिरते हैं। देव ! जो दुराचारी तथा अधम मनुष्य आपका द्वेषित करते हैं,

ये हूयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषाधमाः। यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥५४॥
 तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चारतु वृद्धा सदा। आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चाग्रेऽपि संयतः ॥५५॥
 जवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वा देव न पूज्येत। न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे ॥५६॥
 कथं मानुषबुद्ध्याऽहं स्तोमि त्वा प्रकृतेः परम्। तथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥५७॥
 तत्क्षमस्वापरार्थं मे यदि तेऽस्ति दया मयि। कृपापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥५८॥
 तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रितः। स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥
 साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतास्तदा तेन प्रसन्नो गण्डध्वजः। ददौ तस्मै मुनिश्रेष्ठाः सकलं मनसेप्सितम् ॥६०॥
 यः संपूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तोति मानवः। स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम् ॥६१॥
 त्रिसंध्यं यो जपेद्विद्वानिदं स्तोत्रवरं शुक्तिः। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥६२॥
 यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि श्रावयेद्वा समाहितः। स लोकं शाश्वतं विष्णोर्वाप्तिं निर्धूतकल्मषः ॥६३॥
 धनं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्। गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥६४॥
 न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने। न दुष्टमतये दद्यान्नाभवताय कदाचन ॥६५॥

उनका नरकारणव से उद्धार नहीं होता ॥५२-५३॥ हरे! कर्म-बन्धन मे पड़ कर जहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो वहाँ-वहाँ आपमे मेरी वृद्ध भक्ति बनी रहे ॥५४॥ सयमी, देव, दैत्य, मनुष्य तथा दूसरो ने भी आपकी आराधना कर परम सिद्धि प्राप्त की है। देव! कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? हरे! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्य-बुद्ध्या में कैसे प्रकृति से भी परे आपकी स्तुति करूँगा? प्रभो! तो भी अज्ञानता से मैंने आपकी स्तुति की ॥५५-५७॥ यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो मेरे इस अपराध को आप क्षमा कर दें। हरे! अपराधी पर भी क्षमा लीज दया करते हैं। देवेश! इसलिए भक्त के स्नेहवश आप प्रसन्न हो। देव! भक्ति-युक्त चित्त से जो मैंने आपकी स्तुति की, वह सब पूर्ण हो। वासुदेव! आपका नमस्कार है ॥५८-५९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा ने इस प्रकार स्तुति की। भगवान् उससे प्रसन्न हुए। मुनिवर्य! भगवान् ने उसकी समस्त अभिलाषायें पूरी की ॥६०॥ जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ की पूजाकर इस स्तोत्र से स्तुति करता है वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है ॥६१॥ जो विद्वान् मनुष्य पवित्र होकर तीनों सध्या इस उत्तम स्तोत्र का जप करता है वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करता है ॥६२॥ जो सावधान होकर इस स्तोत्र को पढ़ेगा या सुनेगा या सुनाएगा वह निष्पाप होकर शाश्वत विष्णु-लोक का जाएगा ॥६३॥ यह स्तोत्र धन्य, पापहारी, भुक्ति मुक्तिदायक, कल्याणकारी, गणनीय, अतिदुर्लभ और पवित्र है। यह हर किसी को नहीं देना चाहिए ॥६४॥ नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, अभिमानी, अनक्त तथा दुष्ट बुद्धि का यह कभी भी नहीं देना चाहिए ॥६५॥ भक्त भगवान्, सीलवान्,

दातव्यं भवित्युक्ताय गुणशीलान्विताय च । विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने ॥६६॥
 इदं समस्ताघविनाशहेतुः, कारुण्यसंज्ञं सुखमोक्षदं च ।
 अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठं, स्तोत्रं मयोक्तं पुरुषोत्तमस्य ॥६७॥
 ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारि, ध्यायन्ति नित्यं पुरयं पुराणम् ।
 ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं, मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वरान्नो ॥६८॥
 एकः स देवो भवदुःखहन्ता, परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत् ।
 द्र (ख) ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता, विष्णुः समस्ताखिलसारभूतः ॥६९॥
 किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां, यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरग्नैः ।
 येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे, जगद्गुरो मोक्षसुखप्रदे च ॥७०॥
 लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः ।
 ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता, यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाह्वये ॥७१॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूत्पिसंवादे कारुण्यस्तवर्णनं नामकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

विष्णु भक्त, शान्त, श्रद्धालु और अनुष्ठानशाली को यह देना चाहिए ॥६६॥ पुरुषोत्तम का यह समस्त पापों के नाश का कारण कारुण्यसंज्ञक सुखमोक्षदायक, अशेष कामना फल दाता और सब से श्रेष्ठ स्तोत्र मैंने बतला दिया ॥६७॥ जो निर्मल पुरुष उस अत्यन्त सूक्ष्म, पुराण पुरुष तथा मुरारिक दैत्य के शत्रु विष्णु का नित्य ध्यान करते हैं वे मोक्षाधिकारी होकर विष्णु में उसी तरह प्रवेश करते हैं जिस तरह मन्त्रों से छोड़ा गया घी अग्नि में प्रवेश करता है ॥६८॥ वह देव एक, ससार-दुःखनाशन, परों से भी परे, अद्वितीय, द्रष्टा, रक्षक, नाशकर्ता, ध्यायक और अखिल पदार्थों के सारभूत है ॥६९॥ जिसको जगद्गुरु तथा मोक्षसुखदाता कृष्ण में भक्ति नहीं है, उसे विद्या, गुण, यज्ञ, दान और उग्र तप से क्या, लाभ? ॥७०॥ लोक में वही धन्य, पवित्र, विद्वान्, यज्ञकर्ता, तपस्वी गुणवान्, ज्ञाता, दाता और सत्यवक्ता है, जिसकी पुरुषोत्तम कृष्ण में भक्ति है ॥७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में कारुण्यस्तुतिवर्णन

नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रतिमोत्पत्तिकथनम्

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वञ्च मुनिशादूला प्रणम्य च सनातनम् । वासुदेवं जगन्नाथं सवकामफलप्रदम् ॥१॥
 द्विन्तांश्चिदो महोपा ॥ कुशानारतीय भूतल । दस्त्रं च ० मना भूत्वा सुधापधरणीतले ॥२॥
 कथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनादन । मम चाऽऽतिहरो देवस्तदाऽऽतिबिति चित्तदन ॥३॥
 'सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगदगुरु । आत्मानं दशधामास' शङ्खचक्रगदाभूतम् ॥४॥
 स ददश तु संप्रेम दवदेव जगदगुरुम् । शङ्खचक्रधरं देवं गदाचक्रोपपाणिनम् ॥५॥
 शाङ्खबाणधरं देवं ज्वलन्तेजोतिमण्डलम् । युगांतात्तिर्यदणभं नीलवैदूर्यसनिभम् ॥६॥
 सुपर्णाति तमासीनं योडशधनुजं शुभम् । स वारम् प्राङ्मुखीद्वीर्यं साधु राजन्महामत ॥७॥
 प्रसुप्ताग्नेन दिव्येन तदा भवत्या च श्रद्धया । तुष्टोऽस्मि ते महोपाल वृथा हिमनुशोचसि ॥८॥
 यदत्र प्रतिमा राजञ्जगत्पूज्या सनातनी । यथा सा प्राप्यते भूप तदुपायं ब्रवीमि ते ॥९॥

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवय ! इस प्रकार स्तुति कर चकने के बाद राजा ने सवकामफलप्रद सनातन वासुदेव जगन्नाथ के प्रणाम किया और फिर भूमि पर कुण्ड एवं वस्त्र को बिछा कर चित्तोन्मत्त राजा जमान पर स गथा ॥१॥२॥ रात समय उत्तम मन मयहो भावना बना रहा कि किस प्रकार देवाधिदेव दुखानाक भगवान वासुदेव मरे नेत्रों के सम्मुख हों ॥३॥ सय हुए उस राजा के गल-चक्र-गदा धार जगदगुरु भगवान ने अपना रूप दिखाया ॥४॥ उस राजा ने बर प्रेम से देवा के देव ससार कगुरु (माह नाग) भगवान को इस प्रकार दत्ता कि जने हाथों में गल चक्र गदा धनुष आर बाण थे प्रलयकालीन प्रच्छन्न मूर्त के समान अत्यन्त तेज मय शरीर से एकदन्त प्रमाणुज चारों ओर बिसर रहा था न लम्पि सत्त्व मगलमय विग्रह धारण किया हुए अष्टभुजाधार भगवान गरुड सन पर ओम् न थे । मनिरण । इस प्रकार प्रकट हो कर भगवान के —अनल्पमति राजन ! तुम घबरा ॥५॥६॥ महोपाल ! मैं तुम्हारे इस उत्पृष्ट यज्ञ मन्त्रित तथा श्रद्धा से प्रसन्न हूँ तुम व्यथना के कर रहे हो ? ॥८॥ राजन ! इस ससार मजगत्पूज्य ज सनातनी प्रतिमा है उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुमको बता रहा हूँ ॥९॥ सूर्योप

१ स ० ति दृष्टमम ज० । २ स ० न । स महाति० । ३ स सुदुम्नस्य तु न० । ४ ग ० स स्वप्ने तस्य समशक्त । स । ५ ग तु स्वप्ने वै दे० । ६ स ० म । तत्ता राजानमासाद्य विभुं प्राह महा० । ७ स दानेन । ८ स ते । प्रमादे विमते जाते नि० ।

गतायामद्य शय्ययां निमले भास्वरोदिते । सागरस्य जलरश्मिन्ते मानाद्रुमविभूयिते ॥१०॥
जलं तप्येय घेलायां दृश्यते तत्र ये मृत् । एवणरयोदधे राजरतरङ्गं समभिप्लुतम् ॥११॥
बूलाते हि महायुध स्थित स्थलजलेषु च । घेलाभिर्हृन्ममानश्च न चासौ क्षपते द्रुम ॥१२॥
परमुमादाय हस्तेन ऊर्मरन्तरततो यज । एकाकी विहरन्नाजन्त त्व पश्यसि पादपम् ॥१३॥
इंदुविबुधं समालोक्य छेदय स्वमशङ्कित । छेद्यमान तु त वृक्ष प्रातरद्भुतदर्शनम् ॥१४॥
दृष्ट्वा तेनैव सच्चिन्म ततो भूपालदर्शनात् । कुर ता प्रतिमां दिव्यां जहि चिन्तां विमोहिनीम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शनं हरि । स चापि स्वप्नमालोक्य पर विस्मयमागत ॥१६॥
तां निशां स समुद्रोदय स्थितस्तद्गतमानस । द्याहर्न्वैश्वान्मन्त्रांसूतं धेयं तदात्मकम् ॥१७॥
प्रगतायां रजग्यां तु उत्थितो नान्यमानस । सस्नातया सागरे सम्पद्यथावद्विदिता तत ॥१८॥
वश्या दानं च विप्रेभ्यो ग्रामादथ नगराणि च । कृत्वा पीवींस्तु कर्म जगाम स नृपोत्तम ॥१९॥
न चादयो न पदानिदथ न गजो न च सारथि । एकाको स महावेदी प्रविषेत् महोपति ॥२०॥
तं ददर्श महायुध तंजहन्त महाद्रुमम् । महातिगमहरोहं पुष्पं दिपुल्मेन च ॥२१॥
'महोत्सेय महाबाहो' प्रसुप्तं च जलान्तरम् । साद्रमाटिज्जठवर्णान् नामजातिविचित्रतम् ॥२२॥

नरनाशस्तदा विप्रा' हुम दृष्ट्वा मुदाऽन्वित । परशुना शातयामास निश्चितेन दृढेन च ॥२३॥
 द्विधीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसख स च । निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥२४॥
 विश्वकर्मा' च विष्णुश्च विपरुषधरावुभौ । 'आजगमतुर्महाभागौ तदा तुल्याप्रजन्मानौ ॥२५॥
 'ज्वलमानौ स्वतेजोभिर्दिव्यस्त्रगनुलेपनौ' । अथ तौ त समागम्य नपमिन्द्रसख तदा ॥२६॥
 तावच्चतुर्महाराज किमत्र त्व करिष्यसि । किमर्थं च महाबाहो शातितश्च धनस्पति ॥२७॥
 असहायो महाद्वर्गं निर्जने गहने वने । महासिन्धुतटे चैव' कथं यः शातिनो हुम ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

तयो भ्रुत्वा वचो विप्रा स तु राजा मुदाऽन्वित । वभाषे वचनं ताभ्या मृदुल मधुर तथा ॥२९॥
 दृष्ट्वा तौ' ब्राह्मणौ तत्र चन्द्रसूर्याविवाऽऽगतौ । नमस्कृत्य जगन्नायाववाङ्मुखमयस्थित ॥३०॥

राजोवाच

देवदेवमनाद्यन्तमनन्त 'जगता पतिम् । आराधयितुं प्रतिमां करोमीति मतिर्मम ॥३१॥
 अहं स देवदेवेन परमेण महात्मना । स्वप्नान्ते च समुद्दिष्टो भवद्भ्या आवृत मया ॥३२॥

कथा है ज्ञानि कथा है ॥२२॥ ब्राह्मणम् । उस वृक्ष का देखकर अत्यंत प्रसन्न चित्त राजा ने अपने कठर तीक्ष्ण कुटार से काट कर गिरा दिया ॥२३॥ इंद्र का सलाह वह राजा उसका दश भागों में काटने की इच्छा में देवने लगा कि इनमें से ही उसकी अमृत दान हुआ ॥२४॥ उस समय ब्राह्मण-वगैरे म अत्यंत तेजस्वी तथा रूप और वय में समान विष्णु और विश्वकर्मा जा आये ॥२५॥ गारुडिक कान्ति से प्रदीप्त उनमें अग्रा पर दिव्य रूप और दिव्य भावा मुगमिती ॥२६॥ विप्र वेपथारी विष्णु और विश्वकर्मा राजा के समीप आकर पूछने लग कि महाराज । आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? महाबाहु । इस महावृक्ष के काटने का क्या प्रयोजन है ? अब के इस जन्म में सपने हुए मम आकर महासागर तट पर स्थित इस वृक्ष का किसलिए काट डाला ? ॥२७-२८॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणवर्ग । चन्द्रमा और सूर्य के समान देहाप्यमान उपस्थित उन द ब्राह्मणों का देख कर और उनकी जिज्ञासा सुनकर प्रसन्नचित्त राजा ने गिर कुटार पर उन्हें प्रणाम किया । फिर विनम्र वाणी से बोला ॥२९-३०॥

राजा ने कहा—प्रभो । हम काष्ठ से देवाधिदेव विष्णुपति आद्य-तरङ्गिण भगवान का आराध्य प्रतिमा बनाने की मरी इच्छा है । देवाधिदेव परमात्मा द्वारा मुझे इस प्रकार प्रतिमा बनाने का जा आदेश स्वप्न में प्राप्त हुआ है । उग मीने आप मुझे मुता दिया ॥३१-३२॥

ब्रह्मोवाच

राजस्तु वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रप्रतिमस्य च । प्रहस्य तस्मै विश्वेशस्तुष्टो वचनमब्रवीत् ॥३३॥

विष्णुस्वाच

साधु साधु महीपाल 'यदेतन्मतमुत्तमम्' । संसारसागरे घोरे कदलीदलसनिभे ॥३४॥
नि.सारे 'दुःखबहुले कामक्रोधसमाकुले । इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे ॥३५॥
नानाव्याधिशतावर्ते जलबुद्बुदसंनिभे । यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराधनाय वै ॥३६॥
धन्यस्त्वं नृपशार्दूल गुणैः सर्वैरलंकृतः । सप्रजा पृथिवी धन्या सशैलवनकानना ॥३७॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णरत्नकृता । यत्र त्वं नृपशार्दूल प्रजाः पालयिता प्रभुः ॥३८॥
एहोहि सुमहाभाग दुमेऽस्मिन्सुखशीतले । आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं 'कथाभिर्धर्मसंश्रितः ॥३९॥
अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिना वर' । विश्वकर्म्मसमः' साक्षान्निपुणः' सर्वकर्मसु ॥
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तदं त्यज ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेवं वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः । सागरस्य तदं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—मगवत्प्रतिमा-निर्माण सम्बन्धी ऐसी बातें सुनकर विश्वपति विष्णु हँसते हुए राजा से बोले—॥३३॥

विष्णु ने कहा—मूपाल ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम्हारा यह सबलप उत्तम है । इस घाट, केले के पत्त के समान नि सार, दुःखा से भरे काम क्रोध से युक्त, इन्द्रिय रूपी आवर्त से गहन, कठिनाई से पार करने योग्य, भयकर, अनेकों व्याधियों से व्याप्त और जल बुद्बुद के समान क्षणभंगुर संसार सागर से विरक्त हो तुम्हारा ध्यान मगवान् की उपासना की आरम्भ है इसलिए तुम धन्य हो । नृपशार्दूल ! तुम सब गुणा से विभूषित हो । यह पर्वत, वन, वानन और प्रजाओं से युक्त पृथ्वी जो चारों वर्णों से और पुर, ग्राम, नगरों से सुशोभित है, धन्य है जिस पर प्रजा के पालक और शासक के रूप में तुमने जन्म लिया है । महाभाग ! तुम परम धार्मिक हो, आज्ञा, आज्ञा, इस वृक्ष की सुखद, शीतल छाया में हम लोगों के साथ बैठो, और कोई धर्म-वर्चों सुनाओ । यह मेरा साथी उत्तम शिल्पी है, साक्षात् विश्वकर्मा के समान सब कलाओं में कुशल है । यह मेरे आदेशानुसार प्रतिमा बना देगा । तुम तट छोड़ कर मेरे पास आओ ॥३४-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! तब वह राजा ब्राह्मण की ऐसी बातें सुन सागर-तट को छोड़ कर वृक्ष की

तस्यो स नृपतिश्चेष्टो वृक्षच्छाये सुशीतले । ततस्तस्मै स विश्वात्मा ददावाज्ञा द्विजाकृति ॥४२॥
 शिल्पिमुखाय विप्रेन्द्रा बुह्य प्रतिमा इति । कृष्णरूप पर शान्त पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४३॥
 श्रीवत्सकोस्तुभधर शङ्खचक्रगदाधरम् । गौराङ्गक्षीरवर्णाभि द्वितीय स्वस्तिकाङ्कितम् ॥४४॥
 लाङ्गलास्त्रधर देवमनन्तारय महाबलम् । देवदानवागन्धर्वयक्षविद्याधरोरगे ॥४५॥
 न विज्ञातो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृत । भगिनीं वासुदेवस्य ह्वमवर्णा सुशोभनाम् ॥४६॥
 तृतीया च सुभद्रा च सर्वेक्षणलक्षिताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्यैतद्वचन तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत । तत्क्षणत्कारयामास प्रतिमा शुभलक्षणा ॥४८॥
 प्रथम शुक्लवर्णाभि शारदेन्दुसमप्रभम् । आरवताक्ष 'महाकाय स्फटाविषटमस्तकम् ॥४९॥
 नीलाम्बरधर चोप' बल यत्रमदोद्धतम् । कुण्डलैरुधर विद्य' गदामुशलधारिणम् ॥५०॥
 द्वितीय पुण्डरीकाक्ष नीलज्योमूतसनिभम् । अतसीपुष्पसकाश पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥५१॥
 पीतवाससमत्युग्र शुभ श्रीवत्सलक्षणम् । चक्रपूर्णकर विद्य सर्वपापहर हरिम् ॥५२॥

गीतक छाया मे उनके समीप बैठ गया । उसके बाद ब्राह्मणवेशधारी परमात्मा ने मेरे कथनानुसार मूर्तियाँ बनाओ^१
 ऐसा आज्ञा उस श्रेष्ठ शिल्पी ने दी ॥४१-४२॥ पहली कृष्ण का मूर्ति है। जो कृष्णवर्ण की अत्यन्त शान्त कमल के
 समान नेत्रवाणी श्रीवत्स आर कोस्तुममणि से युक्त वदा स्थलवाली तथा गल चन आर गदा धारण किए हुए है।
 दूसरी गौर वर्ण दूध के समान धवल और स्वस्तिक से युक्त हृदय म हूँ (अस्त्र) धारण किए हुए अनन्त दब की मूर्ति
 बनाओ। इनका अन्त (रहस्य) देव दानव गन्धर्व यक्ष विद्याधर और नगा ने भी नहीं जाना इसीलिए ये
 अनन्त इस नाम से प्रसिद्ध हुए। तिसरा स्वर्ण वर्ण के अत्यन्त मन हर और सब लक्षणा विशेषता है। स युक्त भगवान्
 वासुदेव की बहिन सुभद्रा का प्रतिमा की रचना करो ॥४३-४७॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्राह्मणवेषधारी विष्णु का उपयुक्त बर्तें गुन वर देवगित्या विश्वकर्मा ने ग १ ही
 मन हर तथा सब का तथा स युक्त प्रतिमायेँ बना दी ॥४८॥ पहला है अस्त्र तथा बल व गन्धर्व उद्धत बन्धुदेव जी की
 प्रतिमा थी जो गौर वर्ण शरदानीन चन्द्रमा के समान कीर्तिमान थे जिनके नेत्र कुल लङ्क पण से युक्त
 विषटमस्तक महाकाय गौर पर नाल स्त्रेन वान म एक दिग्ग वृष्ण हृदय म गदा और गुण तथा ॥४९
 ५०॥ दूसरी सब पापों के हरन वात्र कमल नन नाल मध के समान त्यागमारार वात्र भगवान् कृष्ण की मूर्ति
 थी जो पीत वस्त्र पहन हुए श्रीवत्स से युक्त भिन्न थे। जिनके गौरव का आभा अतसी के कुसुम के समान थी
 जिन कमल के समान थे और हाथ म चक्र था ॥५१-५२॥ तिसरी मन्मथर मूर्ति रानि के समान पीत वर्ण
 वाणी मुमद्रा का थी जिनकी आँखें कमल के समान बड़ी बड़ी थी जो विचित्र वस्त्रा से अलङ्कृत थी जिनके अग्र

तृतीयां स्वर्णवर्णाभा पद्मपत्रायतेक्षणाम् । विचित्रवस्त्रसल्लभ्रा हारकेयूरभूषिताम् ॥५३॥
विचित्राभरणोपेता रत्नहारवलम्बिताम् । पीनोन्नतकुचा रम्या विदम्बकर्मा विनिममे ॥५४॥
स तु राजाद्भुत दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिता । दिव्यवस्त्रयुगच्छत्रा नानारत्नरत्नकृता ॥५५॥
सर्वलक्षणसपत्ना प्रतिमा सुमनोहरा । विस्मय परम गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥५६॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवो 'समनुप्राप्ती द्विजरूपधराबुभौ । उभौ चाद्भुतकर्मणौ देववृत्तावमानुषौ ॥५७॥
देवौ वा मानुषौ वाऽपि 'यक्षधियाधरो युवाम् । किन्तु ब्रह्महृषीकेशौ किं वसू किमुतादिवनौ ॥५८॥
नवेक्षि सत्यसद्भावो मायारूपेण सस्थितौ । युवा गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्रकाशयताम् ॥५९॥
इति श्री महापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भृपिसवादे प्रतिमोत्पत्तिकथन नाम पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५०॥

प्रत्यय हार केयूर आदि विचित्र आभूषणा से भूषित थे बीजा मे रत्ना के हार लटक रहे थे और जिनके कुच पीन और ऊँचे थे ॥५३॥ ५४॥ जब राजा ने देखा कि इस शिल्पी ने क्षण भर मे ही दिय युगल वस्त्र से युक्त अनेक आभूषणा से सुगन्धित समा लक्षणा से युक्त मन हर मूर्तिया बना दीं तो इस आश्चर्यजनक कौशल पर उसे अत्यंत विस्मय हुआ और आश्चर्य-चकित हो पूछने लगा—॥५५॥ ५६॥

इन्द्रद्युम्न ने कहा—क्या आप लग देवता हैं । जैसा ब्राह्मण-वैष्णव मे मुख कृताय करने के लिए आये हुए हैं ? आप दानों महानुभावों के काम अदम्य हैं, व्यवहार देवोचित हैं आप लग में नव नहीं जात हल । आप देव हैं या मनुष्य ? यक्ष हैं या विद्याधर अथवा ब्रह्म हृषिकेश वसु या अश्विनीकुमार हैं ? मैं इस समय सत्यत्व और रहस्य का नहीं समझ पा रहा हूँ कि आप देना मे माया वेश धारण कर रखा है । मैं आप लोगों का शरण मे हूँ । कृपा कर अपने यथाथ परिचय के प्रकाश से मेरे अतत्करण को प्रकाशित कर ॥५७॥ ५८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अंतगत स्वयम्भू और ऋषि के सवाद प्रकरण मे प्रतिमोत्पत्ति कथन नामक पचासवा अध्याय समाप्त ॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवदिन्द्रद्युम्नसवादकथनम्

श्रीभगवानुवाच^१

नाहं देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट्^२ । न ब्रह्मा न च रुद्रोऽहं बिद्धि मां पुरुषोत्तमम्^३ ॥१॥
 अतिहा सर्वलोकानामनन्तबलपीरुषः । आराधनीयो भूतानामन्तो यस्य न विद्यते ॥२॥
 पठ्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते । यमाहुर्जानगम्येति वासुदेवेति योगिनः ॥३॥
 अहमेव स्वयं ब्रह्मा 'अहं विष्णुः शिवोऽप्यहम् । इन्द्रोऽहं देवराजश्च' जगत्संयमनो यमः ॥४॥
 पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेतानिहुंतभुङ्क्ष्व^४ । वरणोऽपा पतिश्चाहं धरित्री च महीधरः ॥५॥
 यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम् । चराचरं च यद्विश्वं मदन्यप्राप्तिं किञ्चन ॥६॥
 प्रीतोऽहं ते नृपश्चेष्ट वरं धरय सुव्रत । यद्विष्टं तत्प्रयच्छामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम् ॥७॥
 भद्रदर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते । त्वं पुनर्वृद्धमवितृत्वात्प्रत्यक्षं दृष्टवानसि ॥८॥

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रद्युम्न का संवाद

श्री भगवान् ने कहा—“मैं न देव हूँ न यक्ष, न दैत्य न तो देवराज इन्द्र । मैं ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं । राजन् मुझे पुराण पुरुषोत्तम जानो ॥१॥ जिसका अन्त नहीं है, जो समस्त प्राणियों का एवमात्र आराध्य है, जिसका बल और पराक्रम नि सीमा है, जो अखिल-लोक की पीड़ा दूर करने वाला है, जिसकी सभी शास्त्रों में चर्चा है, जो वेदान्त का वण्य विषय है, जिसकी योगीजन ज्ञान-गम्य (ज्ञान से प्राप्त करने योग्य), वासुदेव (सर्व व्यापक) कहा करते हैं । मैं ही स्वयं ब्रह्मा हूँ, विष्णु और शिव भी मैं ही हूँ । देवराज इन्द्र और ससार का नियन्त्रण भ रखने वाला यम (मृत्यु देव) मैं ही हूँ ॥२-४॥ नृप । पृथ्वी आदि पाँच महाभूत, आहुति ग्रहण करने वाले तीनों अग्नि मैं ही हूँ । जल मे स्वामी वरुण, धरणी और पहाड़ भी मेरे ही रूप हैं ॥५॥ ससार का सारा वाङ्मय, स्थावर जगम रूपत्मक जगत् और जो कुछ भी चराचर विश्व है वह मुझसे अतिरिक्त नहीं है ॥६॥ नृपश्चेष्ट । मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । सुव्रत । वर माँगो । तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हाये, मनोवांछित फल तुम्हें दूँगा । देखो, मेरा दर्शन पुण्य न करने वाले को स्वप्न में भी नहीं होता । तुमने अपनी अविचल मन्ति द्वारा ही मेरा यह प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है” ॥७-८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वां वासुदेवस्य वचनं तस्य भो द्विजाः । रोमाञ्चिततनुभूत्वा इदं रतोत्रं जगौ नृपः ॥९॥

राजोवाच

धियः कान्त नमस्तेऽस्तु श्रोपते पीतवाससे । श्रीदश्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन ॥१०॥
आद्यं पुरपमोशानं सर्वेशं सर्वतोमुखम् । निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥११॥
शब्दातीतं गुणातीतं भावाभावविवाजितम् । निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम् ॥१२॥
प्रावृष्मेधप्रतीकाशं योब्राह्मणहिते रतम् । सर्वेषामेव गोप्तारं व्यापिनं सर्वभाविनम् ॥१३॥
शङ्खचक्रधरं देवं गदामुशलधारिणम् । नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलदलच्छविम् ॥१४॥
नागपर्यङ्कुशयनं क्षीरोदार्णवशायिनम् । नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम् ॥१५॥
पुनस्त्वां देवदेवेशं नमस्ये वरदं विभुम् । सर्वलोकेऽवरं विष्णुं भोक्षकारणमव्ययम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुत्वा तु तं देव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—वासुदेव की इस प्रकार की बातें सुन कर, द्विजगण । उस राजा को रोमांच हो गया, यह आनन्द विमोर हो यह स्तब्ध गाने लगा ॥९॥

राजा ने कहा—हे लक्ष्मीकान्त 'श्रीपते' पीत वस्त्र धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। लक्ष्मी के देने वाले 'श्री के स्वामी' 'श्री निवास' 'श्री निकेतन' आपको नमस्कार है ॥१०॥ आप आद्यपुरुष, सामर्थ्यवान, सब के स्वामी और सबतुल्य (चारा ओर मुख वाले, व्यापक) हैं। निरवयव, सनातन, परम (गुण) देव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ शब्द-गुण से परे भाव और अभाव से रहित आसक्तिहीन, निर्गुण (गुण रहित) सूक्ष्म, सब कुछ जानने वाले, और सब के एकमात्र ध्येय आपको प्रणाम है। वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम, गो-ब्राह्मणों के हित में लीन, सभी के रक्षक, व्यापक और सर्व भावी (स्रष्टा) तथा शस्त्र, चक्र गदा और मुशल धारण करने वाले, नीलकमल की पलडिया के समान वाग्निमय वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ। शेष-सौम्या पर सोने वाले क्षीर-सागर शायी, इन्द्रिया के स्वामी, पाप-नाशन हरि को नमस्कार है। देवदेवेश, वरदाता, व्यापक, सब लाला के स्वामी, भोक्षदाता और अव्यय (नष्ट न होने वाले) विष्णु रूप का नमस्कार है ॥१२-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् को स्तुति करने के बाद करबद्ध हास्याग दण्डवत् करते हुए राजा ने कहा—॥१७॥

राजोवाच

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि वरमुत्तमम् । देवासुरा सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगा ॥१८॥
 सिद्धविद्याधरा साध्या किन्नरा गृह्यकास्तथा । 'ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदा ॥१९॥
 परिब्राड्योगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तका । मोक्षमागविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परम पदम् ॥२०॥
 निर्गुण निर्मल 'शान्त यत्पश्यन्ति मनीषिण । तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

'सर्वं भवतु भद्र ते यथेष्ट सर्वमाप्नुहि । भविष्यति यथाकाम मत्प्रसादान्न सशय ॥२२॥
 दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च । अविच्छिन्न महाराज्यं कुरु त्वं नृपसत्तम ॥२३॥
 प्रयास्यसि पदं दिव्यं दुर्लभं यत्सुरासुरैः । पूर्णमनोरथं शान्तं गृह्यमव्यक्तमव्ययम् ॥२४॥
 परात्परतरं सूक्ष्मं निर्लेपं निष्कलं ध्रुवम् । चिन्ताशोकविनिर्मुक्तं क्रियाकारणवर्जितम् ॥२५॥
 तदहं दर्शयिष्यामि ज्ञेयाख्यं परमं पदम् । यः प्राप्य परमानन्दं प्राप्स्यसि परमां गतिम् ॥२६॥
 कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्यत्र महीतले । यावद्धना नभा यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२७॥
 यावत्समुद्रा सप्लवं यावन्मेवादिपर्वता । तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र चाव्यया ॥२८॥

राजा ने कहा—नाथ । यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं यही उत्तम वर माँगता हूँ कि देव असुर गन्धर्व यक्ष राक्षस महानाग सिद्ध विद्याधर साध्वयण किन्नर और गृह्यक तथा मित्र मित्र शास्त्री के पारंगत महामायगाल ऋष साध्या यथा वेद के रहस्य जानने वाले आर मन्त्र भाग के नाता जिस परम पद का ध्यान करते हैं तथा मनीषी (ज्ञानी) जिस अमल न निर्गुण अर शान्त परम पद का देखा करते हैं उस दुर्लभ परम पद का आपका कृपा से प्राप्त करूँ । यहाँ मेरी अमिल पा है ॥१८ २१॥

श्री भगवान् ने कहा—सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण होगा तुम अपने समा मनोरथ प्राप्त करोगे । मेरी कृपा से तुम्हारे सभी कार्य इच्छानुरूप होंगे इसमें सन्देह नहीं ॥२२॥ नृप-अर्थ । पहले तुम दश हजार नी सौ वर्ष निरन्तर अपने साम्राज्य का शासन कर । तदनन्तर उस दिव्य परमपद का प्राप्त करोगे जो देव दानवा के लिए दुर्लभ मनोरथ का पूरा करनेवाला शान्त रहस्यमय अप्रत्यक्ष और निरूप है जो परात्पर (सर्वोपरि) सूक्ष्म निर्लेप अलण्ड अटल चिन्ता ग क से रहित कार्यकरण मुक्त (अनादि-अनन्त) है ॥२३ २५॥ मैं उसे नय परम पद का दिवाङ्गम जिसकी पाकर तुम अत्यन्त अनादित हो म स पद प्राप्त करोगे ॥२६॥ राजेन्द्र । जब तक मेघ आकाश चन्द्रमा सूर्य आर तारा मण्डल एवं जब तक केवल समुद्र तथा सात मेघ आदि पर्वत और स्वर्गल क में देव गण स्थित हैं तब तक इस मही मण्डल पर तुम्हारी अशय कांति फैली रहेगी ॥२६ २८॥ यह द्रष्टुम्

इन्द्रद्युमत्तरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम् । यत्र स्नात्वा सकृत्लोकः शशलोचमवाप्नुयात् ॥२९॥
 दापयिष्यति यः पिण्डांस्तटेऽस्मिन्सरसः शुभे । कुलकविशममुद्धृत्य शश्लोकं गमिष्यति ॥३०॥
 पूज्यमानोऽप्सररोभिश्च गन्धर्वैर्गतिनिस्वनैः । विमानेन वसेत्तत्र यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३१॥
 सरसो दक्षिणे भागे नैऋत्यां तु समाधिते । न्यप्रोधस्तिष्ठते तत्र तत्समीपे तु मण्डपः ॥३२॥
 केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः । नारिकेलैरसह्येयैश्चम्पकैर्बकुलावृतैः ॥३३॥
 अशोकैः कर्णिकारैश्च पुंनागैर्नागकैसरैः । पाटलाभ्रातसरलैश्चन्दनैर्देवदारुभिः ॥३४॥
 न्यप्रोधाश्चत्पल्लविरः पारिजातैः सहजुनेः । हित्तालैश्चैव तालैश्च शिशपैर्बदरैस्तथा ॥३५॥
 करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः पनसैर्बलिघातुकैः । अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥३६॥
 आपादस्य सिते पक्षे पञ्चम्या पितृदेवते । ऋक्षे नेष्यन्ति नस्तत्र नीत्वा सप्त दिनानि वै ॥३७॥
 मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेद्याभिः सुशोभनैः । क्रीडाविशेषबहुलैर्नृत्यमोक्तमनोहरैः ॥३८॥
 चामरैः स्वर्णदण्डैश्च व्यजनैः रत्नभूषणैः । वीजयन्तस्तथाऽस्मभ्यं स्थापयिष्यन्ति मङ्गला ॥३९॥
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च द्विजोत्तमाः । वानप्रस्था गृहस्थाश्च सिद्धाश्चाम्ये च ब्राह्मणा ॥४०॥
 नानावर्णपदैः स्तोत्रैर्ऋग्यजुःसामनिस्वनैः । करिष्यन्ति स्तुतिं राजन्नामकैश्चदयोः पुनः ॥४१॥
 ततः स्तुत्वा च दृष्ट्वा च सप्रणम्य च भविततः । नरो वर्षायुतं दिव्यं श्रीमद्वरिपुरे वसेत् ॥४२॥

सर यज्ञांग से उत्पन्न पवित्र और अमर तीर्थ होगा, जिसमें एक बार स्नान करने से भी मनुष्य इन्द्रलोक को प्राप्त करेगा ॥२९॥ जो इस सरोवर के पुनीत तट पर पिण्डदान करेगा वह अपनी इक्ष्मीसपीडों का उद्धार कर स्वयं देव-लोक का अधिकारी होगा ॥३०॥ वहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ अपनी मधुर गीत-श्रवण से उसकी पूजा करेंगी। जब तक चौदहो इन्द्र रहेंगे तब तक वह पुण्यात्मा विमान द्वारा बिहार करता हुआ स्वर्ग में निवास करेगा। सरोवर के दक्षिण तीर पर नैऋत कोण में एक बट वृक्ष है जिसके निकट केतकी वन से घिरा हुआ एक मण्डप है। जिसके चारों ओर अनेक वृक्ष, अनगिनत नारियेल, चम्पक और मौलिसिरी, वी पवित्रता हैं ॥३२-३३॥ अशोक, कर्णिकार (कनेर), पुनाग, नागकैसर, पाटल, आभ्रात (आमडा), सरल, चन्दन, देवदार, बट, पीपल खदिर, अर्जुन पारिजात हिताल, ताल, शीशम बदर (बेर) तथा करञ्ज, लकुच (बड़हर), प्लक्ष (पाकड़), कटहल, बिल्व घातुक एवं अन्य बहुत प्रकार के वृक्षों से वह मण्डप सुसज्जित है ॥३४-३६॥ उस मण्डप में आपाद वै शुक्ल पक्ष की मघा नक्षत्र वाली पञ्चमी तिथि में जो हमारी मूर्ति ले जा कर प्रतिष्ठित करेगा और सात दिन तक सुन्दर वेश्याओं के मधुर गान, विभिन्न क्रीडाओं एवं मनोहर नृत्य-गीत द्वारा समाराहपूर्वक पूजन करेगा, चँवर और रत्नजटित स्वर्ण-दण्ड वाले पतंगों से आदरपूर्वक पक्षा झलते हुए मांगलिक पूजा करेगा राजन् । जो ब्रह्मचारी, यति, स्नातक, उत्तम वेदपाटी, वानप्रस्थाश्रमी गृहस्थ, सिद्ध अथवा जो कोई ब्राह्मण भिन्न भिन्न वर्ण-पद वाले स्तोत्र पाठ से, ऋग्यजुः, साम के ऋचा-गाठ से राम और वेशव की स्तुति करेगा और स्तुति के उपरान्त भवितपूर्वक दर्शन एवं प्रणाम करेगा, वह नर दिव्य अमृत (दश हजार) वर्ष तक विष्णु लोक में निवास

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वगीतनिस्वनेः। हरेरनुचरस्तत्र श्रीडते केशवेन् । वै ॥४३॥
विमानेनाकं वण्णं रत्नहारेण भ्राजता । सर्वकाममहाभोगं स्तिष्ठते भुवनोत्तमे ॥४४॥
तपःक्षयाविहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् । कोटीधनपतिः श्रीमाश्चतुर्वेदी भवेद्भुवम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एव तस्मै वर दत्त्वा कृत्वा च समयं हरिः । जगामादर्शनं विप्राः सहितो विश्वकर्मणा ॥४६॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चिततनुरहः । कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने संदर्शनाद्वरे ॥४७॥
ततः कृष्णं च रामं सुभद्रां च वरप्रदाम् । रथैर्विमानसंकाशैर्मणिकाञ्चनचित्रितैः ॥४८॥
संवाह्य तास्तदा राजा महामङ्गलनिस्वनेः । आनयामास भूमिमात्समात्यः सपुरोहितः ॥४९॥
नानावादित्रनिर्धोर्धनानावेदस्वनेः शुभैः । संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे ॥५०॥
ततः शुभतिथौ काले नक्षत्रे शुभलक्षणे । प्रतिष्ठां कारयामास सुमुहूर्ते द्विजैः सह ॥५१॥
यथोचतेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा । आचार्यानुमतेनेव सर्वं कृत्वा महोपतिः ॥५२॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभुः । ऋत्विग्भ्यश्च विधानेन तथाऽभ्येश्यो धनं ददौ ॥५३॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिवत्प्रासादे भवनोत्तमे । स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५४॥

करेगा ॥३७-४२॥) उस लोक में उस भगवद्भक्त की गन्धर्व और अप्सरायें अपने मधुर गीत गा-गाकर सवा करेंगी। वह भगवान् केशव के साथ वहाँ सुखपूर्वक क्रीड़ा करेगा ॥४३॥ उस उत्तम लोक में वह रत्नहार से सुसज्जित, सूर्य के समान चमकीले विमान पर सवार हो अपनी सभी कामनाया की तृप्ति और भोगों का उपभोग करता हुआ निवास करेगा। इस प्रकार भाग द्वारा पुण्य क्षीण हो जाने पर वह इस मृत्युलोक में आकर चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण तथा वैभवशाली कराडपति होगा ॥४४-४५॥

ब्रह्मा बोले—'विप्रगण । इस प्रकार भगवान् उस राजा का वर देकर तथा एसी प्रतिज्ञा करके विश्वकर्मा के साथ स्वयं अन्तर्हित हो गए। वह राजा भगवान् के इस अद्भुत दर्शन से अत्यंत प्रसन्न हुआ, उसने रोम आनन्द से पुलकित हो गए, वह अपने वो कृतकृत्य-सा समझने लगा ॥४६-४७॥ इसके उपरान्त मंत्रियों और पुरोहितों के साथ वह बुद्धिमान् राजा मणि, सुवर्ण से अलंकृत विमान के समान रथ पर कृष्ण, बलराम और वर देने वाली सुभद्रा की मूर्तियों को चढ़ा कर परम माणलिक वाद्य ध्वनि के साथ ले आया ॥४८-४९॥ मित्र मित्र प्रकार की वाद्य ध्वनि और माणलिक वेद-ध्वनि के साथ पवित्र शुभ, मनोहर प्रदेश में मूर्तियाँ स्थापित की गई ॥५०॥ तदनन्तर शुभ तिथि, काल और शुभ लक्षण वाले नक्षत्र में ब्राह्मणों द्वारा प्रतिष्ठा की प्रतिष्ठा कराई गई ॥५१॥ महोपति ने आचार्य की अनुमति से शास्त्राक्त नियमानुष्ठान पूर्वक सारा देवकार्य समाप्त किया, विधिपूर्वक आचार्य, तथा ऋत्विजों को दक्षिणा दी, अनाय ब्राह्मणों को, पित्र्य के अनुसार धन दान दिया। इस प्रकार राजा ने सर्वोत्तम भवन में मूर्ति की प्रतिष्ठा कर शास्त्र-सम्मत कर्म से स्थापन किया समाप्त की ॥५२-

ततः संपूज्य विधिना नानांपुष्पैः सुगन्धिभिः । सुवर्णमणिमुक्ताद्यैर्नावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५५॥
रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्गन्धपतनैः । बभौ चान्यान्स^१ विषयाभ्युराणि नगराणि च ॥५६॥
एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा यथोचितम् । इष्ट्वा च विविधैर्गैर्देवैश्च दानान्गन्धकेशः ॥५७॥
कृतकृत्यस्ततो राजा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । जगाम परम स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कथितो वो नृपोत्तमः । क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥५९॥

विष्णुरुवाच

श्रुत्वं च चचनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । आश्चर्यं मेतिरं विप्राः पप्रच्छइहच पुनर्मुदा ॥६०॥

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले 'सुरश्रेष्ठ गन्तव्यं पुरषोत्तमम् । विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमिति प्रभो ॥६१॥
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम् । - देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक्पृथक् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत् । जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम् ॥६३॥

५४॥ तदनन्तर राजा ने भगवान् की अनेक सुगन्धित पुष्पों से विधिवत पूजा की, स्वर्ण, मणि, मुक्ता एवं आभूषण
बढाये, अनेक सुन्दर वस्त्र, विविध रत्न, दिव्य आसन भगवान् को अर्पित किए, बहुत से गाँव पत्तन, अनेकों विषय
(जिले), पुर और नगर इच्छानुसार दान में दिए गए ॥५५-५६॥ इस प्रकार इच्छानुरूप बहुविध दान देकर
राजा ने न्यायपूर्वक शासन किया। विविध यज्ञों में अनुष्ठान, तथा अनेक प्रकार के दान से उसने अपने कृतकृत्य
समझा। अन्त में सारी इच्छाओं और वस्तुओं का परित्याग कर विष्णु के परम पद को प्राप्त किया ॥५७-५८॥
श्रेष्ठ मुनिगण! मैंने राजा इन्द्रद्युम्न का चरित्र और क्षेत्र की महिमा आप लोगों को बतलायी, इससे अतिरिक्त
आप लोग क्या सुनना चाहते हैं? ॥५९॥

विष्णु ने कहा—अव्यक्तजन्मा (अनादि) ब्रह्मा की उपर्युक्त बातें सुन कर ब्राह्मणों की अत्यन्त आश्चर्य
हुआ, फिर प्रसन्न मन से प्रश्न किया ॥६०॥

मुनिपों ने पूछा—“सुरश्रेष्ठ! किस समय पुरषोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए, किस विधि से पाँचों
तीर्थों को करना चाहिए। एक-एक तीर्थ के स्नान, दान और देव-दर्शन का ज्ञान। फल होता है उसका। अलग-अलग
समझा कर बताएँ ॥६१-६२॥

ब्रह्मा ने कहा—“कुरुक्षेत्र में सात अयुत (सत्तर हजार) वर्ष तक इन्द्रिय-समयपूर्वक शोध को बरा में कर

१ क ०न्यानि वित्तानि ग्रामाणि न० । ३ ख. त्यक्त्वा देहं दिव ययो । देवदेवप्रसादेन जगाम परम प० ।

३ ख. मुनिश्रेष्ठ ।

दृष्ट्वा 'सदा ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम् । कृतोपवासः प्राप्नोति ततोऽधिपतरं फलम् ॥ ४॥
 तस्माज्ज्येष्ठे मुनिश्रेष्ठाः प्रयत्नेन सुसंयतः । स्वर्गलोकेऽप्सुविप्राद्यैर्ब्रह्मैव्यः पुरुषोत्तमः ॥ ६५॥
 'पञ्चतीर्थं तु विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तमः । शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां पश्येत् पुरुषोत्तमम् ॥ ६६॥
 ये पश्यन्त्यव्ययं देवं द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् । ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन ॥ ६७॥
 तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं भो द्विजोत्तमाः । कृत्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं ब्रह्मैव्यः पुरुषोत्तमः ॥ ६८॥
 सुद्वारस्योऽपि यो भवत्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम् । अहन्यहनि शूद्रात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ ६९॥
 यात्रा करोति कृष्णस्य श्रद्धया यः समाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ ७०॥
 चक्र दृष्ट्वा हरेर्द्वारात्प्रासादोपरि संस्थितम् । सहसा मुच्यते पापाश्ररो भवत्या प्रणम्य तत् ॥ ७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पुरुषोत्तमवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१॥

एक पैर पर खड़ा हो, निराहार तपस्या करने से जितना फल मनुष्य को मिलता है, उससे अधिक ज्येष्ठ-शुक्ल-
 द्वादशी के दिन निराहार रह कर पुरुषोत्तम के दर्शन से प्राप्त होता है ॥ ६३-६४॥ इसलिए, ज्येष्ठ मुनिगण! स्वर्ग
 चाहने वाले, समयमाल ब्राह्मण आदि मनुष्यों को ज्येष्ठ मास में प्रयत्न पूर्वक पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए
 ॥ ६५॥ ज्येष्ठ मास में उत्तम मनुष्य पाँचों तीर्थों की विधिवत् यात्रा करके अवश्य पुरुषोत्तम तीर्थ का दर्शन करे ॥ ६६॥
 जो द्वादशा के दिन अव्यय पुरुषोत्तम देव का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक में जाते हैं, कभी भी उनका वहाँ से
 पतन नहीं होता है ॥ ६७॥ इसलिए हे ज्येष्ठ ब्राह्मण! ज्येष्ठ मास में प्रयत्नपूर्वक पञ्चतीर्थों की यात्रा कर पुरुषोत्तम
 का दर्शन करना चाहिए ॥ ६८॥ तीर्थ-यात्रा में असमर्थ व्यक्ति अत्यन्त दूर रह कर भी यदि भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम
 का दर्शन करे, तो वह भी दिन-प्रतिदिन पाप-रहित हो कर विष्णुपुर का अधिकारी होगा। और जो व्यक्ति
 एक घण्टा से थोड़ापूर्वक इस कृष्ण-तीर्थ की यात्रा करता है, वह सब पापों से मुक्त हो कर विष्णुलोक का निश्चय
 हो प्राप्त करता है। दूर से ही कृष्ण-मन्दिर के ऊपर घने हुए चक्र का देव कर जो भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह
 मनुष्य सहसा (सीधे ही) पापा से मुक्त हो जाता है ॥ ६९-७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भू और ऋषि के संवाद प्रकरण में पुरुषोत्तम वर्णन नामक दशवाक्यवा
 अध्याय समाप्त ॥ ५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

'आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठा संप्रवृत्ते महाक्षये । नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्यावरजङ्गमे ॥१॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगर्जिते । विद्युदुत्पत्तिसंघाते सभग्ने तरुपर्वते ॥२॥
लोके च संहृते सर्वे महदुल्कानिबन्धने । शुष्केषु संवतोयेषु सरसु च सरित्सु च ॥३॥
ततः संवतको वह्निर्वायुना सह भो द्विज । लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यैरुपशोभितम् ॥४॥
पञ्चात्स पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसातलम् । देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत् ॥५॥
निर्दहन्प्राग्लोकं च यच्च किञ्चित्क्षिताविह । अघस्तान्मुनिशार्दूलं सर्वं नाशयते क्षणात् ॥६॥
ततो योजनविज्ञाना सहस्राणि शतानि च । निर्दहत्याशुगो वायुः स च संवतकोऽनलः ॥७॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् । ततो दहति सदीप्तः सर्वमेव जगत्प्रभुः ॥८॥
प्रदीप्तोऽसौ महारोद्रः कल्पान्निरिति संभ्रुतः । महाज्वालो महाहिम्मान्संप्रदीप्तमहात्स्वने ॥९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा । त्रिलोचनं चादहत्पूर्णं ससुरासुरमानुषम् ॥१०॥

अध्याय ५२

मार्कण्डेयमुनि का वटवृक्ष-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—श्रेष्ठ मुनिगण ! जब कल्पान्त में महानाशप्रारम्भ हो गया तब सूर्य चन्द्र नष्ट हो गए वायु, स्यावर, जगम सभी विनष्ट हो गए । प्रलय-सूर्य आकाश में चमकने लगे, प्रचण्ड मेघ गरजन लगे बार-बार बिजली गिरने से तरु-पर्वत टूट फूट गए महाभयंकर उल्कापात में सारा संसार भस्म हो गया । सर, सरिता और समुद्र का जल सूख गया ॥१-३॥ इसके बाद विप्रवृन्द । वायु के साथ संवतर्क अग्नि (बारह) सूर्यो में शीमन लाने में प्रविष्ट हुआ ॥४॥ वहाँ वह नाश लीला समाप्त कर पृथ्वी का फाड़ना हुआ रमाने लगे । पट्टेचा त्रिमे देव कर देव, दानव, यक्ष सभी मय-भस्त हो गए ॥५॥ नगरों के जलाकर पृथ्वी और रसातल में जा कुछ पा सब क्षण भर में जला डाला ॥६॥ तदनन्तर शीघ्रता से चलने वाला वह वायु और सवर्तर्क अग्नि बीस हजार बीस बीस योजन (बाइस हजार योजन) में फैल कर जलाने लगे । ॥७॥ इस भाँति प्रभु न देव-असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षसा सहित सम्पूर्ण संसार को जला डाला ॥८॥ इस प्रकार प्रचण्ड, प्रदीप्त कल्पाग्नि नाम से प्रगिष्ट उस अग्नि ने शीघ्र ही सुद, असुर तथा मनुष्या से युक्त इस विश्व को भस्म कर दिया । उसकी लपटें बड़ी भयंकर और व्यापक थी । ज्वाला प्रचण्ड थी । उससे घोंट लपट हो रहे थे । वह कराड़ा सूर्य के समान, अपन तेज से

एवंविधे महाघोरे महाप्रलयदारुणे । ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥११॥
 एकः संतिष्ठते विप्रा मार्कण्डेयेति विधुतः । मोहपाशनिबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः ॥१२॥
 स वृष्ट्वा तं महार्वाह्ण शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । तृष्णार्तः प्रस्खलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः ॥१३॥
 बभ्राम पृथिवीं सर्वां कादिशीको विचिंतनः । त्रातारं नाधिमच्छन्वं इतश्चेतश्च धावति ॥१४॥
 न लेभे चतदाशर्मं यत्र विश्राम्यता द्विजाः । करोमि किं जानामि यस्याहं शरणं व्रजे ॥१५॥
 कथं पश्यामि तं देवं पुरुषेशं सनातनम् । इति संचितयन् देवमेकाग्रेण सनातनम् ॥१६॥
 प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम् । पुरपेशमिति ख्यातं वटराजं सनातनम् ॥१७॥
 त्वरायुक्तो मुनिश्चासौ न्यप्रोद्यत्यान्तिकं द्यौः । आसाद्य तं मुनिश्रेष्ठास्तस्य मूले समाविशत् ॥१८॥
 न कालाग्निभयं तत्र न चाङ्गारप्रवर्षणम् । न संवत्तगमस्तत्र न च वज्राग्निस्तथा ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयेन
 वटदर्शनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

स्वयं जलता दृष्ट्वा सा जान पड़ता था ॥९-१०॥ ऐसे महाघोर, दारुण प्रलयकाल में, विप्रगण ! परम धर्मात्मा, ध्यान योग में लीन रहने वाले केवल मार्कण्डेय नामक ऋषि यत्र गए थे । उनकी इन्द्रियाँ भूख-प्यास से व्याकुल हो रही थी, वह माह-बन्धन से मुक्त होते हुए भी माह-बन्धन से बंधे थे ॥११-१२॥ उस समय उस महान् अग्नि को देखते ही उनके कण्ठ, ओंठ और तालु सूख गए, मग से वे विह्वल हो गए और भूख प्यास के कारण उनके पैर सीधे न पड़ते थे ॥१३॥ वे चेतना-शून्य, दिशा-ज्ञान रहित हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगे, वही कोई राक्षस न पाकर इधर-उधर दौड़ने लगे ॥१४॥ विप्रवृन्द ! वह जहाँ वही गए उनकी सुख नहीं मिला । “क्या करे नहीं समझ पाता कि किसी शरण में जाऊँ ॥१५॥ किस प्रकार सनातन पुरुषोत्तम देव का देख पाऊँ इस प्रकार एकाग्र भाव से सनातन देव भगवान् का स्मरण करने लगे ॥१६॥ इतने ही में महाप्रलय का कारण, पुरपेश नाम से प्रसिद्ध, भगवान् का दिव्य पद, सनातन वटराज (अश्वयुट) उन्हें दिखायी पड़ा तो लपक कर दौड़ता ते वे उस वट वृक्ष की ओर बढ़े । मुनिश्रेष्ठ ! उस वृक्ष के पास जाकर वे उसकी जड़ में घुस गए । वहाँ न मृत्यु का भय था, न ता प्रलय अग्नि की ज्वालायें अगार बरसा रही थी न तो संवत्तं (अग्नि) अथवा वज्र की ही वहाँ पहुँच थी ॥१७-१९॥

श्री ब्रह्ममहापुरुष ने स्वयंभू और ऋषि के संवाद प्रकरण में मार्कण्डेय
 का वटदर्शन नामक वाक्यवर्ग अध्याय समाप्त ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ॥

ततो गजकुलप्रस्थास्तडिन्मालाविभूषिताः । समुत्तस्युर्महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥१॥
 केचिन्नोलोत्पलश्यामाः, केचिन्कुमुदसंनिभाः । केचिरिक्ञ्जल्लसंकाशाः केचिर्पिताः ॥२॥
 केचिद्धरितसंकाशाः काकाण्डसंनिभास्तथा । केचित्कमलपत्राभाः केचिद्विङ्गसंनिभाः ॥३॥
 केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिवरोपमा । केचिद्वज्रजनसंकाशाः केचिन्मरकतप्रभाः ॥४॥
 विद्युन्मालापिन्दाङ्गाः समुत्तस्युर्महाघनाः । घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः ॥५॥
 ततो जलधराः सर्वे समावृष्वन्नभस्तलम् । तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा ॥६॥
 आपूरिता दिशः सर्वाः सलिलौघपरिप्लुताः । ततस्ते जलदा घोरा वारिणा मुनिसत्तमाः ॥७॥
 सर्वतः प्लावयामासुश्चोदिताः परमेष्ठिता । वर्षमाणा महातोयं पूरयन्तो वसुंधराम् ॥८॥
 सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति स्म पावकम् । ततो द्वादश वर्षाणि पयोदाः समुपप्लवे ॥९॥
 पाराभिः पूरयन्तो वं क्षोद्यमाना महात्मना । ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रामन्ति भो द्विजा ॥१०॥

अध्याय ५३

मार्कण्डेयमुनि का प्रलय-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर आकाश में गजकुल नाम के विचित्र महामेघ प्रकट हुए, जिनके बीच विजयी चमक रही थी ॥१॥ उनमें कुछ नीलचमक के समान व्यामवर्ण के, कुछ कुमुद के समान, कुछ कमल-केसर के समान और कुछ पीत वर्ण के थे । कुछ बादल हरे-हरे तथा कुछ कौआ के अण्डे के समान, कुछ कमल-पत्र के समान एवं कुछ हिमालय वर्ण के समान थे ॥२-३॥ विस्तार में कुछ तो बड़े-बड़े नगरों के समान विस्तीर्ण तो कुछ हिमालय के समान विस्तार में, कुछ तो बाजल के समान अत्यन्त बाले, कुछ मरुभूमि मणि के समान प्रमाणुर्ण थे ॥४॥ ऐसे भयंकर आकार वाले मेघ—जिनके मध्य विजयी बार-बार चमक रही थी, जा भयंकर गर्जना कर रहे थे—आकाश मण्डल में चारा ओर फैल गये । पितामह ब्रह्मा की प्रेरणा से उन मेघों ने पर्वत-वना सहित पृथ्वी को आच्छादित कर लिया । सम्पूर्ण दिनाये जल प्रवाह से व्याप्त हो गईं । अष्ट मुनिवृन्द ! उन घोर बादलों ने जल से चारों ओर भर दिया । अत्यधिक जल से सारी पृथ्वी परिपूर्ण हो गई जिससे पृथ्वीतल का वह अत्यन्त भयंकर, अक्षयपानकर और प्रचण्डान्ति शाली हो गया ॥ ब्रह्मा की प्रेरणा से इस प्रकार बारह वर्षों तक निरन्तर वर्षा होती रही ॥५-९॥ मूसलपार वर्षा से सभी समुद्र लबाक हो गए और जल की अधिकता से अपनी तट-सीमा का

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त मही चाप्सु निमज्जति । सर्वतः सुमहाभ्रन्तास्ते पयोदा नभस्तलम् ॥११॥
 संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगसमाहताः । ततस्तं मातुतं घोरं स विष्णुर्मुनिसत्तमः ॥१२॥
 आदिपद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भो द्विजाः । तस्मिन्नेकाणवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥१३॥
 नष्टे देवासुरनरे यक्षराक्षसवर्जिते । ततो मुनिः स विश्रान्तो ध्यात्वा च पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
 ददर्श चक्षुःशून्यो जलपूर्णां वसुधराम् । नापश्यत्तं वटं नोर्वीं न दिगादि न भास्करम् ॥१५॥
 न चन्द्रार्काग्निपवनं न देवासुरपन्नगम् । तस्मिन्नेकाणवे घोरे तमोभूते निराश्रये ॥१६॥
 निमज्जन्स तदा विप्राः संतर्तुमुपचक्रमे । बभ्रन्मासौ मुनिश्चाऽऽतं इतश्चेतश्च संप्लवन् ॥१७॥
 निममज्ज तदा विप्रास्त्रातारं नाधिगच्छति । एवं तं विह्वलं दृष्ट्वा कृपया पुरुषोत्तमः ॥
 प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा ध्यानेन तोषितः ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स श्रान्तोऽसि बालस्त्वं भवतत्र मम सुव्रत । आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं त्वं मार्कण्डेय भ्रमान्तिकम् ॥१९॥
 मा त्वयैव च भेतव्यं संप्राप्तोऽसि भ्रमाप्रतः । मार्कण्डेय मुने घोरं बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥२०॥

उल्लस्य करने लगे ॥१०॥ जिससे सभी पर्वत गल गए, पृथ्वी जलमग्न हो गई। पुन वे उपद्रवी, दधर उधर घूमने वाले आकाशवापी मेघ वायुवेग से टक्कर खाकर स्वयं नष्ट हो गए ॥११॥ मुनिवर ! उस घोर वायुका भी आदि कमल के आधार भगवान् विष्णु पीकर उस घर महासागर में, जब कि उस समय स्थावर जगम देव अमुर यक्ष राक्षस सभी नष्ट हो चुके थे, सो गए। दधर यथेष्टादि मार्कण्डेय मुनि ने जब भगवान् के ध्यान के बाद आँखें खोली तब बैजल जल से भरी हुई पृथ्वी दिखाई दी, न वट, न पृथ्वी, यहाँ तक कि दिखाये, सूर्य चन्द्र अग्नि वायु तथा देव, राक्षस, नाग कोई भी वहाँ दिखाई नहीं पड़ता था ॥१२-१५॥ उस घोर अन्धकारमय, आश्रयहीन महासमुद्र में जब मार्कण्डेय मुनि डूबने लगे तब उसको पार करने के उपाय सोचने लगे। कोई सघन न पार करने योग्य हो, दधर-उधर जलप्रवाह में मटकते हुए घूमन लगा। विप्रवर ! उस समय मुनि को कोई राक्षस न मिलने से वे असहाय होकर डूबने लगे। मुनिशार्दूल ! उनका इस प्रकार विह्वल देख कर भगवान् उनकी ध्यान-भावना से प्रसन्न होकर कृपा करके बोले ॥१६-१८॥

श्रीभगवान् बोले—'वत्स ! सुव्रत ! भवतत्र'। तुम बालक हो, भवनहीन इस समय यहाँ गए हो। आओ मार्कण्डेय ! शीघ्र भरे समीप आओ। तुम इस प्रकार मत डरो, अब मेरे समीप आ गए हो। घोर मार्कण्डेय मुनि ! तुम श्रम से दुःखी बालक जान पड़ते हो ॥१९-२०॥

१ वं ऽण्णुद्विजसः । २ वं सः ० रे समामूने निराश्रये । न० ३ वं ० रमानवम् । ४ वं सत्त्वये । ५ सः ० रस प्रीतिरिति वा० । ६ सः शीघ्रेण मा० ।

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनि परमकोपितः । उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहुः ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

कोऽयं नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्निव । बहुवर्षसहस्राय धर्पयन्निव मे वपुः ॥२२॥
न ह्येष समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः । मा ब्रह्मा स'च देवेशो दीर्घायुरिति' भाषते ॥२३॥
कस्तपो घोरशिरसो मनाद्य स्यक्तजीवितः । मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्युं गन्तुमिहेच्छति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच ॥

एवमुक्त्वा तदा विप्राश्चिन्तान्निष्ठोऽभवन्मुनिः । किं स्वप्नोऽयं मया दृष्टं किंवा मोहोऽयमागतः ॥२५॥
इत्य चिन्तयतस्तस्य उत्पन्ना दुःखहा मतिः । व्रजामि शरणं देव भवत्याहुः पुरपोतमम् ॥२६॥
स गत्वा शरणं देवः मुनिस्तद्गतमानसः । ददर्श तं वटं भूयो विशालं सलिलोपरि ॥२७॥
शाखायां तस्य सौवर्णं विस्तीर्णायो महाद्भुतम् । रुजिर दिव्यपर्यङ्कुरवित् विश्वकर्मणा ॥२८॥
ध्वजैर्वह्नीरवित् मणिविद्रुमशाभितम् । पद्मरागादिभिर्जुष्टं रत्नैरग्यैरलंकृतम् ॥२९॥
नानास्तरणसबीतं नानारत्नोपशोभितम् । नानाश्चर्यसमायुक्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—विष्णु की उन बातों को मुन कर मुनि तो पहले अत्यन्त कुपित हुए परन्तु शीघ्र ही विस्मित हो बाले—॥२१॥

मार्कण्डेय ने कहा—कौन है यह जो मेरी विरसचित्त तपस्या और मेरे इस दायजीवी शरीर की उपेक्षा करता हुआ सा मेरा नाम लेकर युक्त रहा है। ऐसा शिष्टाचार तो देवों में भी नहीं देखा है मुन देवेश ब्रह्मा भी दीर्घायु' इस नाम से पुकारते हैं। यह कौन है जिसका जीवन का मोह नहीं जा आज तपोमार्गी मुझ मार्गण्डेय' ऐसा कहे कर मेरे द्वारा मृत्यु पाना चाहता है ॥२२ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस कहे कर विप्रगण' उस समय मुनि विताग्रस्त हो गए। क्या मैंने यह स्वप्न देखा है अथवा यह मोहता नहीं हो गया ॥२५॥ इस प्रकार सच ही रहे थे कि उनके हृदय में मैं अवश्य मक्ति पूर्वक भगवान की शरण चला इसी दुःखनाशिनी सदबुद्धि उत्पन्न हो गई ॥२६॥ मुनि इस प्रकार अनन्य भाव से भगवान की शरण में गए। पुन उन्होंने जल के ऊपर विशाल वट वृक्ष को देखा जिसकी विस्तृत शाखा पर विष्वक्कर्मा द्वारा निर्मित परम अद्भुत शाश्वत दिव्य परम था जो वज्र और वैदूय मणि का बना था जिसमें विद्रुम पद्मराग आदि मणि जड़ हुए थे जो मित्र मित्र रत्नों से अलंकृत और नाना प्रकार के विद्यैतों से सुसज्जित था ॥२७ २९॥ इस प्रकार की आश्चर्यजनक प्रभामण्डल से सुशोभित शय्या पर कराडो मूय के समान प्रकाशमान अत्यन्त तज्ज्वल

१ ख वपुः । २ ग ० व तेजसा । न । ३ क म । ४ क ० मयमभाषत । क० । ५ ख कि साहो मां समाह्वय कि वा असौम्य० । ६ क ख दुःखहा । ७ क ख विष्णु ।

तस्योपरि स्थितं देवं कृष्णं बालवपुर्धरम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं दीप्यमानं सुवर्चसम् ॥३१॥
 'चतुर्भुजं सुन्दराङ्ग पद्मपत्रापतेक्षणम् । श्रीवत्सवक्षस देव शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३२॥
 वनमालावृत्तोरसकं दिव्यकुण्डलधारिणम् । हारभारापितग्रीव दिव्यरत्नविभूषितम् ॥३३॥
 दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्फुल्ललोचन । रोमाञ्जिततनुर्देव प्रणिपत्येवमब्रवीत् ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच

अहो चैकाग्रं घोरे विनष्टे सचराचरे । कथमेको ह्ययं बालस्तिष्ठत्यत्र 'सुनिर्भयः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

भूत भव्यं भविष्यं च जानन्नपि महामुनि । न बुबोध तदा देव मायया तस्य माहितः ॥३६॥
 यदा न बुबुधे चैनं तदा' खेदाबुवाच ह ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

यथा मे तपसो धीर्यं यथा ज्ञानं यथा क्रिया । यथा मे जीवितं दीर्घं यथा 'मानुष्यमेव च ॥३७॥
 योऽहं सप्त न जानामि पर्यङ्क्षु दिव्यबालकम् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

एवं सच्चिन्तयन्विप्रः प्लवमानो विचेतनः । त्राणार्थं विह्वलश्चासौ निषेधं गतवास्तदा ॥३९॥

कृष्ण भगवान् का बाल रूप में बैठे हुए देखा, जिनके चार भुजाएँ थी, मनाहर अग, नेत्र कमल के समान बड़े थे, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, हाथा में शङ्ख, चक्र और गदा थी, उस प्रदेश वनमाला से ढँका, कानों में दिव्य कुण्डल और ग्रीवा में हारावली लटक रही थी। इस प्रकार दिव्य रत्ना से सुशोभित देव को देखकर मुनि की आँखें आश्चर्य-चकित हो गई, शरीर में रमाव हो गया। वे प्रणाम कर बहने लगे—॥३०-३४॥

मार्कण्डेय बोले—अहा! इस चराचर मूल्य धार सागर में कैसे यह निर्भीक बालक रह रहा है ॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय महामुनि उस देव की माया से माहित होने के कारण उस विषय में कुछ नहीं जान सके यद्यपि वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता थे। जब वे देव के विषय में कुछ न जान सके तब दुःखी होकर वे बोले ३६॥

मार्कण्डेय ने कहा—मरी तपस्या, ज्ञान और शक्ति व्यर्थ हैं, सारी क्रियाएँ विफल हैं, मर्यादहीन जीवन यहाँ तक कि मानव जन्म भी व्यर्थ है जो आज मैं इस दिव्य पण्य पर समय बालक को नहीं जान पा रहा हूँ ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्ता मग्न मुनि चेतना गूँथ-गूँथ हो कर, इधर उधर जलप्रवाह में मटकने लगे, रक्षा के लिए व्यावृत्ता बदन लगी, अन्त में असमर्थता के कारण दुःखी हो गए। इससे अनन्तर प्रमातृत्व के

ततो बालाकंसंकाशं स्वमहिम्ना व्यवस्थितम् । सर्वतोजोमय विप्रा न शशाकाभिर्वीक्षितम् ॥४०॥
वृष्ट्वा तं मुनिमायान्त स बालः प्रहसन्निव । प्रोवाच मुनिशार्दूलस्तदा मेघौघनिस्वनः ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स जानामि श्रान्तं श्वा प्राणार्थं मामुपस्थितम् । शरीरं विश मे क्षिप्रं विश्रामस्ते मयोदितः ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स पर्वतं तस्य किञ्चिन्नोवाच मोहितः । विवेश वदनं तस्य विवृतं चावशो मुनिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंभूषितवादे मार्कण्डेयप्रलयदर्शनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स प्रविश्योदरे तस्य बालस्य मुनिसत्तम । बदशं पृथर्वीं कृत्स्ना नानाजनपदं वृताम् ॥१॥

सूर्य के समान, तेजस्वी, महामहिमाशाली उस बालक को देखने में भी असमर्थ हो गए । मुनिवर्यवृन्द । मुनि को अपनी आर आता देख कर, हैसता हुआ सा वह बालक मेघ के समान गम्भीर स्वर से बोल उठा ॥३९-४१॥

भगवान् बोले—वत्स ! मैं जानता हूँ कि तुम थक गए हो और अपनी रक्षा के लिए मेरे पास आए हो । शीघ्र ही मेरे शरीर में घुस जाओ, यही तुम्हारे लिए सुख का स्थान है जिसे मैंने तुम्हें बता दिया ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की इन बातों ने मुन कर मुनि मोहित हो गए, कुछ भी न कह सके, और विवेश हो उनके (विवृत) फँसे हुए मुख में घुस गए ॥४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भू और ऋषि के सवाद-प्रकरण में मार्कण्डेय का प्रलय दर्शननामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

मार्कण्डेय का भगवान् की कुक्षि में प्रवेश

ब्रह्मा बोले—उस बालक के उदर में घुसकर मार्कण्डेय मुनि ने अनेक जनपदों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को

१ स्वमहिम्नि । २ स शशक च धीः । ३ व स त्वाप्राणार्थिनम् । ४ क विपयस्ते ।

लवणेशुसुरासपिदंघिदुग्धजलीदधीन् । ददर्श तान्समुद्रांश्च जम्बु प्लक्षं च शात्मलम् ॥२॥
 कुशं श्रोञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददर्श सः । भारतादीनि वर्षाणि तथा सर्वांश्च पर्वतान् ॥३॥
 मेहं च सर्वरत्नाद्यमपश्यत्कनकाचलम् । 'नानारत्नान्वितः शृङ्गभूषितं बहुकन्दरम् ॥४॥
 नानामुनिजनाकीर्णं नानावृक्षवनाकुलम् । नानासस्यसमायुक्तं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥५॥
 व्याघ्रः सिंहवराहश्च चामरंमहिषगजैः । मृगैः शालामृगैश्चान्यैर्भूषितं सुमनोहरम् ॥६॥
 शक्राद्यैर्विविधैर्देवैः सिद्धचारणपन्नगैः । मुनियक्षाप्सरोभिश्च वृतेश्चान्यैः सुरार्यैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एवं सुमेहं श्रीमन्तमपश्यन्मुनिसत्तमः । पर्यटन्स तदा विप्रस्तस्य बालस्य चोदरे ॥८॥
 हिमवतं हेमकूटं निषधं गन्धमादनम् । श्वेतं च दुर्धरं नीलं कैलासं मन्दरं गिरिम् ॥९॥
 महेन्द्रं मलयं विन्ध्यं पारियात्रं तथाऽर्बुदम् । सह्यं च शुक्तिमन्तं च मैनाकं वक्रपर्वतम् ॥१०॥
 एताश्चान्याश्च बहवो यावन्तः पृथिवीधराः । ततस्तांस्तु मुनिश्रेष्ठाः सोऽपश्यन्मनोभूषितान् ॥११॥
 कुरुक्षेत्रं च पाञ्चालान्मत्स्यान्मद्रासकैकयान् । वाह्लीकान्मारुतेनांश्च काश्मीरंस्तङ्गणान्खसान् ॥१२॥
 पावंतीपाण्डिकरातांश्च कर्णप्रावरणान्महान् । अन्त्यजानन्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१३॥
 मृगाञ्छालामृगान्सहान्वराहान्समूराञ्छशान् । गजैश्चान्यास्तथा सत्त्वान्तोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१४॥

देवा ॥१॥ वही लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दुग्ध और जल के सागरो को जम्बु (जामुन), प्लक्ष (पाकड़), शात्मली (सेमर), कुश, शीशु, शाक, पुष्कर नामक द्वीपों को भारत आदि वर्णों को एक सभी पर्वतों और सभी रत्नों से युक्त मरु नामक सुवर्णपर्वत पर्वत को देवा । जिसकी चोटियाँ अनेक रत्नों से विभूषित थी जिसकी कन्दरायें अनेक मुनियाँ से व्याप्त थी ॥२-४॥ जहाँ मित्र मित्रप्रकार के वृक्षा से सुराभित वन थे जो अनेक आश्चर्यजनक दृश्योत्तमा विभिन्न जीवा से युक्त था, जहाँ बाघ, सिंह, पुष्कर, चामर (चमरी गौ), महिष, शमी, मृग, बन्दर एवं अन्य विविध जीवा से सुगन्धित सपने मन को प्रसन्न कर रहा था, जहाँ इन्द्र आदि विविध देवता, सिद्ध, चारण, पन्नग, मुनि, यक्ष एवं अप्सरायें निवास करती थी । इसी प्रकार अनेकों देव मन्दिरों से बहु मेघ पर्वत सुगन्धित था ॥५-७॥ इस प्रकार अनिमोमागाली सुमेघ पर्वत को देवने के बाद मुनि उस बालक के उदर-प्रदेश में घूमने लगे ॥८॥ श्रेष्ठ मुनिगण ! वही मरुपर्वत के अतिरिक्त हिमाञ्च, हेमकूट, निषध, गन्धमादन, श्वेत, दुर्धर, नील कैलास, मन्दरा-चल, महेन्द्र, मलय विन्ध्य, पारियात्र, अर्बुद, सह्य, शुक्तिमान् मैनाक, वक्र आदि पर्वतों और अगण्य रत्नों से अलङ्कृत पहाड़ों का उन्मूलन देवा ॥९-११॥ इसके बाद उस बालक के उदर में कुरुक्षेत्र, पाञ्चाल, मत्स्य, मद्र, केरल, वाह्लीक, मारुतेन, काश्मीर, तम्रग, रत्न आदि देशों और वहाँ के निवासिया एवं पहाड़ी, चिराल, कर्ण प्रावरण मरुदेशवासियों, अय्यत्रा और अगण्य जातियों के लोगों को भी देखा । ऐसे ही मृग, बन्दर, सिंह, बघाह, मृगराज (सरहें), गज आदि अन्य जीवा का तथा समस्त तीर्थों, गाँवों, नगरों, कृषि, मोरछा, व्यापार, वन विषय

पृथिव्यां यानि त्रीणि ग्रामाश्च नगराणि च । कृषिगोरक्षवाणिज्यं क्रयविक्रयणं तथा ॥१५॥
 नाकादीन्विबुधाच्छ्रेष्ठास्तयाऽन्याश्च दिवौकसः । गन्धर्वाप्सरसो यथानूर्पाश्चैव सनातिनान् ॥१६॥
 देवपदानवसंघाश्च नागाश्च मुनिसत्तमाः । सिंहिकातनयाश्चैव ये चान्ये सुरशत्रवः ॥१७॥
 यत्किञ्चित्तेन लोकैऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम् । अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 अथवा किं बह्वक्तेन कीर्तितेन पुनः पुनः । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् ॥१९॥
 भूलोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च द्विजोत्तमाः । महज्जन्तस्तपः सत्यमतलं वितलं तथा ॥२०॥
 पाताल सुतलं चैव वितलं च रसातलम् । महातलं च ब्रह्माण्डमपश्यत्तस्य चोदरे ॥२१॥
 अध्याहृतं गतिस्तस्य तदाऽभूद्विजसत्तमाः । प्रसादात्तस्य देवस्य स्मृतिलोपश्च नामवत् ॥२२॥
 भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्नं जगदिदं द्विजाः । नान्तं जगाम देहस्य तस्य विष्णोः कदाचन ॥२३॥
 यदाऽतो माऽऽगतवान्तं तस्य देहस्य भो द्विजाः । तदा तं वरदं देव शरणं गतवान्मुनिः ॥२४॥
 ततोऽतो सहसा विप्रा वायुवेगेन निःसृतः । महात्मनो मुलात्तस्य श्रिवृतात्पुरुषस्य सः ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसवादे मार्कण्डेयस्य भगवत्कुक्षिपरिवर्तनं नाम चतुष्पञ्चाश-
 त्तमोऽध्यायः ॥५४॥

आदि कर्मों को भी वहाँ देला ॥१२ १५॥ इन्द्र आदि देवता एवं अन्य स्वर्गलोकवासी, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सनातन
 ऋषिगण दैत्य-दानव-समूह नाग सिंहिका-युत्र (राहु-वेधु) और अन्य जितने देवशत्रु हैं उन सबको यहाँ तक कि
 इस सप्ताह में सभी पूर्व परिचित चराचर व। उस बालक के उद मे उन्होंने देला ॥१६ १८॥ अथवा नाम गिनाने
 से क्या लाभ ? ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त (जड़ पदार्थ तक) चर अचर जो कुछ है उन सब को भू, भुव, स्व
 मह जन तप, सत्य आदि लोका अतल, वितल तथा पाताल, सुतल, वितल रसातल, महातल पर्यन्त ब्रह्माण्ड को
 उस मुनि ने उस बालक के उदर मे देला ॥१९ २१॥ श्रेष्ठब्राह्मणवर्ग । उस समय उस देव के प्रभाव से मुनि को
 अध्याहृत (बर्तन करने वाला) गति प्राप्त हो गई । उनकी स्मरण शक्ति भी लुप्त नहीं हुई ॥२२॥ द्विजवर्गवन्द । उदरस्य
 सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भ्रमर लगाते हुए मार्कण्डेयमुनि किसी भी प्रकार से भगवान् विष्णु के शरीर का अन्त न पा
 सके ॥२३॥ द्विजगण । जब मुनि ने उस देव के शरीर का अन्त न पाया तब विवश होकर वह भनोरप्यदाता देव की
 शरण मे गये ॥२४॥ और परमात्मा के कहे हुए मुख से वायु के वेग के समान एकाएक बाहर निकल आये ॥२५॥

श्री ब्रह्महमपुराण मे स्वयम्भू और ऋषि के सवाद-प्रकरण मे मार्कण्डेय का भगवत्कुक्षि-

परिवर्तन नामक चौवनवा अध्याय समाप्त ॥५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स निष्कम्पोदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमा । पुनश्चैकाग्रं ब्रामुर्वीमपश्यज्जनर्वाजिताम् ॥१॥
 पूर्वंदृष्टं च त देवं ददर्श शिशुरूपिणम् । शालायां वटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥२॥
 श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । जगदादाय तिष्ठन्तं पञ्चपत्रायतेक्षणम् ॥३॥
 सोऽपि तं मुनिमावातं 'एलवमानमचेतनम् । दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्क्रान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

कच्चिद्वयोषित वत्स विश्रान्त च ममोदरे । भ्रममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्टवानसि ॥५॥
 भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ श्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रितः । तेन त्वामुपकाराय सभाषे पश्य मामिह ॥६॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचन तस्य संप्रहृष्टतनूकहः । ददर्श तं सुदुष्प्रेक्षं रत्नैर्दिव्यैरलंकृतम् ॥७॥
 प्रसन्ना निर्मला दृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजाः । प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा ॥८॥

अध्याय ५५

मार्कण्डेय द्वारा भगवान् की स्तुति

ब्रह्मा बोले—उस बालक ने उबर से निकलकर मुनि ने पुनः जनगूय, समुद्रमय पृथ्वी देखी। सामने बही पहले का देखा हुआ बालरूपधारी देवता दिखाई दिया, जो वटवृक्ष की शाला पर अवलम्बित पालने पर लेटा हुआ था। श्रीवत्स से सुशोभित वक्षस्थल, कमल ने समान बड़े बड़े नेत्र, चार भुजाएँ और पीताम्बर से सुशोभित उमरा धारी था। ऐसा यह दिव्य बालक ससार का समेट कर स्थित था। अपने मुख से बाहर निकले हुए और जलप्रवाह म मटकते हुये चेतनारहित मुनि का अपनी ओर आता देख कर मुस्कराता वह बालक बोला ॥१४॥

श्री भगवान् बोले—वत्स! मेरे उदर में तुमने निवास किया। यह क्यों हुआ क्या? घूम घूमकर तुमने यौन-सा आश्चर्यजनक दृश्य देखा है? मुनिश्रेष्ठ! तू मेरे भक्त हुआ, आश्रित हो, यह क्यों हुआ, तुम्हारे हित के लिए मैं तुमसे यह रहा हूँ। मेरा यह रूप देखो ॥५-६॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की यह बात सुनकर मुनि के राम शीम पुलकित हो उठे, उन्होंने दिव्य-रत्नालङ्कार से अलङ्कृत, कठिनाई से देखने योग्य भगवान् को देखा। भगवान् की कृपा से द्विजवर्ग। क्षणभर में ही मुनि की दृष्टि

रक्ताङ्गुलितलौ पादौ ततस्तस्य सुरार्चितौ । प्रणम्य शिरसा विप्रा हृष्यदगदया गिरा ॥११॥
कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुन पुन । दृष्ट्वा त परमात्मान सस्तोत्रमुपचक्रमे ॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

देवदेव जगताय मायाबाल्यपुर्धर । त्राहि मा चारुपद्माक्ष दु खित शरणागतम् ॥११॥
सतप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ सवर्ताख्येन बह्निनना । अङ्गारव्यभोत च त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१२॥
शोपितश्च प्रचण्डेन वायूना जगदामुना । विह्वलोऽह तथा श्रान्तस्त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१३॥
तापितश्च तशामास्यं (?) प्रलयावर्तकादिभि । न शान्तिमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१४॥
तृपितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दु खितश्च जगत्पते । त्रातार नात्र पश्यामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१५॥
अस्मिन्नेकाण्ये घोरे विनष्टे सचराचरे । न चा तमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१६॥
तद्योदरे च देवेश मया दृष्ट चराचरम् । विस्मितोऽह विषण्णश्च त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१७॥
ससारोऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम । प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय ॥१८॥
प्रसीद विबुधा नाथ प्रसीद विबुधालय । प्रसीद सवलोकेश जगत्कारणकारण ॥१९॥

पुन प्रसन्न निमल और नवीन हो गई। इसने अनन्तर उनसे रक्तवर्ण अगुलिय और तलवों से सुगोमित चरणों पर जिनका पूजा में देवगण सदा निरत रहते हैं शिर रखकर प्रणाम किया। परमात्मा के उस मनोहर रूप को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न और आश्चर्यमग्न हो गये। पुन हाथ जोड़कर बार-बार भगवान् को देखते हुए मुनि गद गद वाणी से स्तुति करने लगे ॥७-१०॥

मार्कण्डेय बोले—देवाधिदेव ! ससार के स्वामी ! माया से बालरूप धारण करने वाले ! सुन्दर कमल के समान नेत्र वाले ! चरण में आये हुए मुझ दुःखा व रक्षा कीजिये ॥११॥ सुरश्रेष्ठ ! मैं इस सवत्तनामक अग्नि से जला जा रहा हूँ। पुरुषोत्तम ! अंगार की वर्षा से भयमात मेरी रक्षा कीजिये ॥१२॥ ससार के प्राणाधार आज के इस ज्वालामय वायू से मैं झूल गया हूँ और मय से व्याकुल होकर थक गया हूँ पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ॥१३॥ इन प्रलयकारी आवृत्तक आग्नेय सूर्यों से मैं जल गया हूँ। किसी प्रकार मुझे शांति नहीं मिल रही है पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ॥१४॥ जगत्पते ! मैं व्यासा हूँ भूला हूँ अति दुःखी हूँ इस ससार में किसी के भी अपना रक्षण नहीं देख रहा हूँ हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा कीजिये ॥१५॥ इस भयंकर घोर एकांत सागर में जबकि चराचर विनष्ट हो गया है मैं अत नहीं पा रहा हूँ हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा कीजिये ॥१६॥ देवेश ! आपके ऊपर मैंने चराचर-व्याप्त विश्व देखा है। इसलिये मैं आश्चर्यचकित हूँ खिन्न हूँ पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ॥१७॥ पुरुषोत्तम ! इस अवलम्बहीन ससार में मुझ आश्रयहीन पर प्रसन्न हो देवश्रेष्ठ ! प्रसन्न हो देवप्रिय ! प्रसन्न हो ॥१८॥ देवा व स्वामी ! देवा के एकमात्र सहायक ! प्रसन्न हो ! अलिल लोक के स्वामी ! जगत के कारण

प्रसीद सर्वकृद्देव' प्रसीद मम भूधर। प्रसीद' सलिलावात' प्रसीद मधुसूदन॥२०॥
 प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद त्रिदशेश्वर। प्रसीद कंसकेशिघ्न प्रसीदारिष्टनाशन॥२१॥
 प्रसीद कृष्ण दैत्यघ्न प्रसीद दनुजान्तक। प्रसीद मयुरावास प्रसीद यदुनन्दन॥२२॥
 प्रसीद शक्रावरज प्रसीद वरदाख्य'। त्वं मही त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः॥२३॥
 त्वं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव व। त्व बुद्धिः प्रकृतिश्चैव 'सत्त्वाद्यास्त्व' जगत्पते'॥२४॥
 पुरुषस्त्व 'जगद्वायो' पुरुषादपि चोत्तमः। त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि शब्दाद्या विषयाः प्रभो॥२५॥
 त्वं दिक्पालाश्च धर्माश्च वेदा यज्ञाः सदक्षिणा'। त्वमिन्द्रस्त्व शिवो देवरात्वं हविरत्वं हुताशनः॥२६॥
 त्वं यमः पितृराट्त्वे त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम्। वरुणस्त्वमपा नाय' त्वं 'वायुस्त्वं धनेश्वरः॥२७॥
 त्वमोज्ञानस्त्वमनन्तस्त्वं गणेशश्च यन्मुखः। शसवस्त्वं तथा रुद्रास्त्वमादित्याश्च खेचराः॥२८॥
 दानवास्त्वं तथा यक्षारत्वं दैत्याः समरुद्गुणाः। सिद्धाश्चाप्सरसो नागा गन्धर्वास्त्वं सचारणाः॥२९॥
 पितरो बालखिल्याश्च प्रजातां पतयोऽप्युत। मुनयस्त्वमुषिगणारत्त्वमश्विनौ निशाचराः॥३०॥
 अन्याश्च जातयस्त्वं हि यत्किञ्चिज्जीवसज्जितम्। क्रिञ्चात्र बहुनोवतेन ब्रह्मादिस्तम्बगोचरम्॥३१॥
 भूतं भव्यं भविष्यं च त्वं जगत्सचराचरम्। यत्ते रूप परं देव कूटस्थमवलं ध्रुवम्॥३२॥

के भी कारण' प्रसन्न हो॥१९॥ सबके कर्त्ता देव' पृथ्वी के पालक' मेरे उपर कृपा करें। जलधारी' मधुसूदन ! प्रसन्न हो॥२०॥ कमलाकात' देवेश्वर' प्रसन्न हो। वसु, केसी और अरिष्टाशुर के संहारक' मुझ पर प्रसन्न हो'॥२१॥ कृष्ण' दैत्या के नाशक' दानवों के संहारक' प्रसन्न हो। मयुरावासीन्' यदुनन्दन कृष्ण' आप प्रसन्न हो जायें॥२२॥ इन्द्र के लघुभ्राता' वरदाता' अख्य' आप मुझ पर प्रसन्न हो। देव' तुम मही हो, जल हो, तुम्हीं अग्नि और वायु भी हो।॥२३॥ तुम आकाश मन और अहंकार भी हो, जगत्पते' तुम बुद्धि, प्रकृति, और सत्त्व आदि गुण हो॥२४॥ तुम समार म व्याप्त करने वाले पुरुष (अक्षर ब्रह्म) मे भी उत्तम पुरुष (पुरुषात्मा) हो। प्रमः' तुम्हीं सभी इन्द्रियों और उनसे विषय शब्द, स्पर्श, रस आदि का हो'॥२५॥ तुम दश दिक्पाल, धर्म, वेद और दक्षिणायुक्त (उत्तम) यज्ञ हो, इन्द्र, शिव, देव, हवि यहाँ तक कि हुताशन (अग्नि) भी तुम्हीं हो॥२६॥ देव' तुम पितरा के अधिपति यम हो, राक्षसा के राजा भी स्वयं तुम्हीं हो। जल के स्वामी वरुण, वायु, धनेश्वर कुबेर तुम्हीं हो॥२७॥ तुम इज्ञान (शिव) अनन्त, गणेश और कालिकेश भी हो। तुम वसु, तथा रुद्र हो और अनाशचार, आदित्य भी हो॥२८॥ तुम दानव, यक्ष तथा मरुद्गुण सहित दैत्य हो। सिद्ध, अप्सरायें, नाग, चारणा सहित गन्धर्व, य सभी तुम्हीं हो॥२९॥ अप्युत' पितर, बालखिल्य (ऋषि) प्रजात्रा के पति (प्रजापति), मुनि, ऋषिगण, अश्विन, अथवा निशाचर तुम्हीं हो॥३०॥ जो कुछ जीव नाम से प्रसिद्ध दूसरों जानिये हैं सभी तुम हो अथवा बहुत अधिक वर्णन से क्या प्रयोजन? ब्रह्मा से लेकर रुद्र (ईश्वर) पर्यन्त दिखाई पड़नेवाले मूल, मध्य भविष्यत् सचराचर जगत् तुम्हारे ही रूप हैं॥३१॥ वव' जो तुम्हारा कूटस्थ, अवल,

१ स सर्वदेवता। २ व ० द मे श्रीनिवासा। ३ स कमलाकाम। ४ व ० दापक। त्व। ५ व सत्य त्व व ज०। ६ स जगत्प्रमा। ७ स ० ते। जगत्स्रष्टा जगदीज पु०। ८ व जगदीज। ९ स ० व व ०। १० स ० स्य वमदेवता। त्व०।

ब्रह्माद्यास्तत्र जानन्ति फयमन्येऽल्पमेधसः । देव शुद्धस्वभावोऽसि नित्यस्त्वं प्रकृतः परः ॥३३॥
अव्यक्तः शाश्वतोऽनन्तः सर्वव्यापी महेश्वरः । त्वमाकाशः परः शान्तो अजरस्त्वं विभुरव्ययः ॥३४॥
एवं त्वां निर्गुणं स्तोतुं कः शक्नोति निरञ्जनम् । स्तुतोऽसि यन्मया देव विफलं नाल्पचेतसा ॥
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाव्यय ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे
भगवत्स्तवनरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः
विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम्

ब्रह्मोवाच

'इत्थं' स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजा । प्रीतः प्रोवाच भगवान्मेघगम्भीरया गिरा ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि कामं मुनिश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते । ददामि सर्वं विप्र्ये मत्तो मदभिवाञ्छसि ॥२॥

ध्रुव, पर (उत्कृष्ट निरञ्जन) रूप है उसको तो ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, हमारे शाही बुद्धि बालो की तो सर्वा भी व्यर्थ है ॥३२३॥ देव । तुम शुद्ध स्वभाव वाल, नित्य और प्रकृति स परे हो । तुम अव्यक्त, शाश्वत (नित्य), अनन्त, सर्वव्यापी, महेश्वर, आकाश, पर (सर्वश्रेष्ठ) और शान्त तथा अजर, व्यापक, अव्यय भी हा ॥३३-३४॥ इस प्रकार निरञ्जन, निर्गुण तुम्हारी कौन स्तुति कर सकता है, जा कुछ विफल, अल्पबुद्धि मैन तुम्हारा स्तुति की है, देवदेवेश, अव्यय । वह तुमग क्षमा के योग्य है । अर्थात् उसका क्षमा कर दा ॥३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण का भगवत्स्तवन नामक पंचपनवी अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

विस्तार से विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद-कथन

ब्रह्मा बोले—मार्कण्डेय ऋषि द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जान पर हे ब्राह्मण वग । अत्यन्त प्रसन्न भगवान् मेघ के समान गम्भीर वाणी से बोले—॥१॥
भगवान् ने कहा—मुनिश्रेष्ठ । अपनी मन कामना बताओ ? विप्र्ये । मैं तुम्हारे सभी मनारथ पूर्ण करूंगा ॥२॥

१ स विद्वले ० । २ क एव ।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचन विप्रा 'शिशोस्तस्य महात्मन । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा माया वं तव चोत्तमाम् । त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहोयते ॥४॥

द्वृतमन्त शरीरेण सतत पर्यं (रि) र्थतितम् । इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातु त्वामहमध्ययम् ॥५॥

इह भूत्वा शिशु साक्षात्कि भवानवतिष्ठते । पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥६॥

किमयं च जगत्सर्वं शरीरस्य तवाऽनघ । कियन्त च त्वया कालमिह स्थेयमरिदम ॥७॥

ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषत । त्वत्त कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥

महदेतदचिन्त्य च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः । सान्त्वयन्स तदा वाक्यमुवाच वदता धर ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामदेवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तत्त्वत । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! परमात्मता गिगु की उस बातें मुनिकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु में तत्पर होकर बाले ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव ! मैं आपका और आपकी इस अन्य माया का जानना चाहता हूँ । देव ! आपके प्रसाद से मेरी स्मृति उत्पन्न नहीं हुई है ॥४॥ पुण्डरीकाक्ष ! आपसे शरीर में प्रवेश कर मैंने अभी-अभी घूम घूमकर सब कुछ देखा है । अविनाशी ! अब आपकी जानना चाहता हूँ ॥५॥ आप शरीरेसंगर को उदरस्थ कर स्वयं गिगु रूप धारण किए हुए क्या यहाँ विराजमान हैं ? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये ॥६॥ निष्पाप ! जिस प्रयाजन से रात्रि समार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है ? सद्गुरुदत्त ! जितने समय तक इस प्रकार तुम्हारे यहाँ निवास होगा ॥७॥ देव ! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ सम्पूर्ण रूप में सब कुछ मुझसे कहें । प्रभो ! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है । कमलनयन ! मैं यथाथ रूप से तुम्हारे मुँह से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमेश्वर के प्रभु भगवान् से कहा । तत्पश्चात् परमेश्वरी मुनि की आज्ञावश दत्त हुए भगवान् बाले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र ! देवता भी मुझसे यथाथ और पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं । किन्तु तुम्हारे प्रस

पितृभक्तोऽसि विप्रप्रे'मामेव शरण गत । ततो दृष्टोऽस्मिते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
 आपो नारा इति पुरा सनात्कर्म कृत मया । तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम' तास्त्वयन सदा ॥१२॥
 अहं नारायणो नाम प्रभव' शाश्वतोऽव्यय । विधाता सर्वभूताना सहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
 अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शाश्वत्वापि 'सुराधिप । अहं वैश्रवणो राजा यम' प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
 अहं शिवश्च सोमश्च चन्द्रश्च प्रजापति । अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
 अग्निरास्य क्षिति पादो च द्वादित्यो च लोचने । 'द्यौर्मूर्धा' खदिदा श्रोत्रे तथाऽऽप स्वेदसंभवा ॥१६॥
 सदिश च नभ कायो वायुमनसि मे स्थित' । मया 'प्रनुशतं रिष्ट' बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणं ॥१७॥
 यजते वेदविदुषो मा देवयजने स्थितम् । पृथिव्या क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिव स्वर्गकाङ्क्षिण ॥१८॥
 यजन्ते मा तथा वैश्या स्वर्गलोकजिगीषव । क्षतु समुद्रपर्यन्ता मेहमन्दरभूषणम् ॥१९॥
 गोषो 'भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुधराम्' । वाराह रूपमास्याय ममेव जगती पुरा ॥२०॥
 मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्रूता । अग्निश्च वाङ्मयो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥२१॥
 विबाम्यप समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम् । ब्रह्म षष्ठ्य भुजो क्षत्रमूरु मे सश्रिता विशा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं विप्राः^१ शिशोस्तस्य महात्मनः । उवाच परमप्रोतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा मायां वै तव चोत्तमाम् । त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥४॥
 द्रुतमन्तः शरीरेण सततं पर्यं (रि) वर्तितम् । इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम् ॥५॥
 इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते । पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥६॥
 किमर्थं च जगत्सर्वं शरीरस्थं तवाऽनघ । कियन्तं च त्वया कालमिह स्येममरिदम ॥७॥
 ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषतः । त्वत्तः कमलपत्राक्ष विस्तरणे यथातथम् ॥
 महबेतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः^२ । सान्त्वयन्स तदा^३ वाक्यमुवाच वदता वरः ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामं देवाश्च मा विप्र नहि जानन्ति तत्त्वतः । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण^१ परमात्मा शिशु की एसी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु मे तन्मय होकर बाले ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव ! मैं आपका और आपकी इस अज्ञय माया का जानना चाहता हूँ । देवेश ! आपने प्रसाद से मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई है ॥४॥ पुण्डरीकाक्ष ! आपने शरीर में प्रवेश कर मैंने अमी-अमी घूम-घूमकर सब कुछ देखा है । अविनाशी ! अब आपको जानना चाहता हूँ ॥५॥ आप सारे ससार को उदरस्थ कर स्वयं शिशु रूप धारण किए हुए क्या यहाँ विराजमान हैं ? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये ॥६॥ निष्पाप ! किस प्रयोजन से सारा ससार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है ? यन्मुखन^२ ! कितने समय तक इस प्रकार तुम्हारा यहाँ निवास होगा ॥७॥ देवस ! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ, सम्पूर्ण रूप में सब कुछ मुझसे कहें । प्रभो ! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है । कमलनयन^३ ! मैं यथाय रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमदेव तेजानन्द भगवान् से कहा । तदनन्तर परमवामी मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान् बाले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र ! देवता भी मुझका यथाय और पूण रूप से नहीं जानते हैं । किन्तु तुम्हारे प्रेम

पितृभक्तोऽसि विप्रयैः' मामेव शरणं गतः। ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म' कृतं मया। तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम' तास्तत्त्वयनं सदा ॥१२॥
अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः। विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
अहं विष्णुरुहं ब्रह्मा शक्रश्चापि 'सुराधिपः। अहं ब्रह्मणो राजा यमः 'प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च' प्रजापतिः। अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
अग्निरास्यं क्षितिः पावो चन्द्रादित्यौ च लोवने। द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसंभवाः ॥१६॥
सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः। मया' क्रतुशतैरिष्टं' बहुभिश्चाऽऽस्तदक्षिणैः ॥१७॥
यजन्ते वेदविदुषो मा देवयजन्ते स्थितम्। पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पायिवाः स्वर्गं काद्विक्षणैः ॥१८॥
यजन्ते मां तथा वेदयाः स्वर्गं लोकजिगीषवः। चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेहमन्दरभूषणाम् ॥१९॥
शेषो 'भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुंधराम्'। वाराहं रूपमास्थाय ममेयं जगती पुरा ॥२०॥
मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्धृता। अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाहं द्विजसत्तम ॥२१॥
पिबाम्यपः समाधिष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्। ब्रह्मा वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरु मे संश्रिता विशः ॥२२॥

वस जिस प्रकार इस जगत् का विसर्जन करता है कहेंगा ॥१०॥ विप्रों । तुम पितृ-मक्त हो, मेरी ही धारण मे
आए हो, इसके बाद मैंने स्वयं तुम्हारे महान् ब्रह्मचर्य व्रत को देखा है ॥११॥ आदि काल मे मैंने जल का नार, यह
नामकरण किया है। मेरा जल ही सर्वदा निवास-स्थान है, इसलिए मैं नारायण कहलाता हूँ ॥१२॥ द्विजोत्तम । मैं
नारायण नाम से प्रसिद्ध आदिकारण, नित्य, अविनाशी, सभी भूतों का विधाता और विनाशकर्ता हूँ ॥१३॥ मैं ही
विष्णु, ब्रह्मा और देवराज इन्द्र हूँ । मैं ही वैश्रवण नामक राजा तथा प्रेतपति यम हूँ ॥१४॥ मेरा ही नाम शिव
सोम और प्रजापति वरुण है। द्विजवर्य । मैं ही सब का स्रष्टा, पालक तथा यज्ञ भी हूँ ॥१५॥ मेरा मुख अग्नि,
चरण पृथ्वी, नेत्र चन्द्र और सूर्य, छाी (स्वर्ग) मूर्धा, आकाश और दिशाये मेरे कर्ण हैं ॥१६॥ और जल मेरे पसीने
से उत्पन्न है। सम्पूर्ण दिशाया सहित नम मेरा शरीर है, वायु मेरे मन मे स्थित है। बहुतक्षक मरुपुर दक्षिण
वाले सैकड़ो यज्ञा मे मैं पूजित हूँ ॥१७॥ देव-यज्ञ मे प्रतिष्ठित मेरा ही पूजन वेदज्ञ लोग किया करते है। दत्त पृथ्वी
पर स्वर्गलोक के इच्छुक वड़े-वड़े प्रतापी सम्राट् तथा स्वर्गनाम्ना वाले वैश्य (धनिक वर्ग) मेरी ही पूजा करते
हैं ॥१८॥ मैं ही अकेला शेष रूप होकर चारो समुद्र तक विस्तोर्ण, मेघ, मन्दर आदि पर्वता से मुचामित, गुरु
मार वाली वसुन्धरा को धारण करता हूँ ॥१९॥ प्राचीन काल मे वाराह रूप धारण कर मैंने ही जल मे दूवी
हूई पृथ्वी का अपने पराक्रम से उद्धार किया था। द्विजवर । विप्र । बहवानल हृकर मैं ही सम्पूर्ण जल कां पी
जाता हूँ और इस प्रकार अपने उदर मे जल का समावेश कर पुन उत्सवा छोड मी दत्ता हूँ ॥२०-२१॥ ब्राह्मण
मेरा मुख, शत्रिय मेरी भुजायें और वैश्य मेरे ऊरु के आश्रित हैं। दानित और त्रम (श्रेणी) के रूप से शूद्र मेरे

पादो शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च। ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्त्वयवर्ण ॥२३॥
 मत्तः प्रादुर्भवत्येते मामेव प्रविशन्ति च। यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो वृभुस्तवः ॥२४॥
 कामक्रोधद्वेषमुक्ता नि सङ्गा वीतकल्मषाः। सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥२५॥
 मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते। अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥२६॥
 अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः। तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले ॥२७॥
 मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम। रत्नाकरा समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥२८॥
 वसतं शयनं चैव निलय चैव विद्धि मे। कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च ॥२९॥
 ममेव विद्धि रूपाणि सर्वाण्येतानि सत्तम। प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥३०॥
 सत्यं दानं तपश्चोपमांसां सर्वजन्तुषु। मद्भिधानेन विहिता मम देहविदारिणः ॥३१॥
 मयाऽभिभूतवित्तानाश्चेष्टयन्ति न कामतः। सम्पद्वेदमधीयाना यजन्तो विविधमंलैः ॥३२॥
 'शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः। प्राप्तुं शक्यो न चेवाहं नरेर्दुष्कृतकर्मभिः ॥३३॥
 लोभाभिभूतं कृपणैरनार्यैरकृतकर्मभिः। तन्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम् ॥३४॥
 सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम्। यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥३५॥

वर्ण हैं। ऋक्, यजुस्, साम और अवर्ण ये चारों वेद मुझमें उत्पन्न होते पुन मुझमें प्रविष्ट हैं जाते हैं ॥२२-२३॥ यान्ति के परमात्मक, सधर्मी, जिज्ञासु (ब्रह्मज्ञान के इच्छुक) यती एव काम, क्रोध, द्वेष से दूर रहने वाले, अनासक्त, निष्पाप, सार्विक, अहंकार-रहित (परम विनित) सर्वदा अध्यात्म (ज्ञान) के ही उपासक ब्राह्मण सर्वदा मेरा ही चिन्तन और मेरी ही उपासना किया करते हैं ॥२४-२५॥ आकाश मण्डल में तारागण के रूप में दिखायी पड़ने वाले सवर्तक (प्रलयकारीन) ज्योति, सवर्तक अग्नि, सवर्तक सूर्य और सवर्तक वायु मैं ही हूँ। द्विजवर्ग। इहे मेरे ही रोग छिद्र जाओ। चारों दिशाओं में फैले रहने के माण्डार इन समुद्रों का ही मेरा वस्त्र, शय्या और घर जाना ॥२६-२८॥ काम, क्रोध, हर्ष, भय, मोह, इन सब को भी मुनिघेष्ट। मेरे ही रूप जानो ॥२९॥ विप्र। जिन दुष्ट ज्यों के अनुष्ठान से मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं वे भी मेरे ही रूप हैं। सत्य, दान, उग्र तपस्या, सब प्राणिमा में अहिमा, की भावना करने वाले मनुष्य मेरे ही विधान से रचे गए हैं और मेरे ही शरीर में विचरण करने हैं ॥३०-३१॥ व मेरे द्वारा अहिमृतवित्तान वाले होने के कारण ऐसी चेष्टा करते हैं न कि अपनी इच्छा से। सम्पद रूप में वेद का अध्ययन करने वाले, विविध यज्ञ से धन करने वाले, शान्त चित्त वाले, क्रोध का अपने पास में बर्णन वाला द्विजानि ही मुझे प्राप्त करते हैं ॥३२॥ दुरे काम करने वाले, लोभ, कृपण, अनार्य और स्वेच्छा-धारी, अनाश्रित के साथ अप्राप्य हैं ॥३३॥ सुदृढ़ हृदय वाला मनुष्य के जीवन का (प्राप्य) महापत्र मुझसे जाना। विमूढ़ कुप-निषेव (असत्य पर वर्णन वाले) जनों में मैं अत्यन्त दुष्प्राप्य हूँ ॥३४॥ हे सज्जनराष्ट्रों! अब-अब धर्म का हानि, और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अवर्तन होता हूँ ॥३५॥ जब हिमा में लित

अन्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् । दैत्या हिंसानुरवताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ॥३६॥
 राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्मयोत्पत्त्यन्ति दाहणाः । तदाऽहं सप्तसूयामि गृहेषु पुण्यधर्मणाम् ॥३७॥
 प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् । सृष्ट्वा देवमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥३८॥
 स्यावराणि च भूतानि संहारम्यात्ममायया । कर्मकाले पुनर्वहेमनुदितस्य सृजाम्यहम् ॥३९॥
 आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात् । श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥४०॥
 रवतो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा । त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥४१॥
 अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदाहणः । त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्याद्वज्रज्जम् ॥४२॥
 अहं त्रिधर्मा विदवात्मा सर्वलोकसुखावहः । अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रम ॥४३॥
 कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत् । क्षमनं सर्वभूतानां सर्वभूतशुतोद्यमम् ॥४४॥
 एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम । सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन ॥४५॥
 सर्वलोके च मां भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः । यच्च किञ्चित्त्वया प्राप्तं मयि बलेशात्मकं द्विज ॥४६॥
 सुखोदयाय तत्सर्वं ध्येयं च तवानघ । यच्च किञ्चित्त्वया लोके दृष्टं स्याद्वज्रज्जम् ॥४७॥
 विहितः सर्वं एवाप्तो मयाऽऽत्मा भूतभावनः । अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः ॥४८॥

रहने धात्रे (हिसक) दैत्य देवताओं से न मारे जा सकेंगे और इस लोक में दाहण, घोर राक्षस उत्पन्न होने तक मैं पुण्य कर्म करने वाले, सृजना के घर में जन्म लूँगा ॥३६-३७॥ इस प्रकार मैं मनुष्य-देह में प्रविष्ट होकर सब कुछ गान्धर्व्याम् । देव, मनुष्य, गन्धर्व नाग तथा राक्षस स्यावर तथा सभी भूता (प्राणिया) का उत्पन्न कर अपनी माया में मैं इनका पुनः संहार भी करता हूँ । काम के समय अर्थात् काय की आवश्यकता पड़ने पर मैं पुनः विचार कर शरीर धारण करता हूँ ॥३८-३९॥ इस प्रकार लोको मर्यादा भी रक्षा के लिए मानव-शरीर में प्रवेश कर मैं सत्ययुग में श्वेत, त्रेता में श्याम, द्वापर और पर २२०० वर्ष और कलियुग में कृष्णवर्ण का स्वरूप धारण करता हूँ ॥४०॥ उस काल में अविश्य, वेता में श्याम, द्वापर और पर २२०० वर्ष और कलियुग में कृष्णवर्ण का स्वरूप धारण करता हूँ ॥४०॥ उस काल में (कलियुग) अधर्म के भी तीन भाग हो जाते हैं । प्रलय काल आ जाने पर मैं अतिमयकर बाल रूप हो कर अवेत्ते (व्यापक), सम्पूर्ण लोका का मुझ देने वाला, अभिन्न (एक), सर्वग, अनन्त, हृषीकेश (इन्द्रिया का स्वामी) उरु क्रम (शक्तिशाली विष्णु) हूँ ॥४३॥ अवेत्ता ही कालचक्र का संचालन करता रहता हूँ । वह सम्पूर्ण भूता की क्षमता (शक्तिशाली विष्णु) हूँ ॥४३॥ अवेत्ता ही कालचक्र का संचालन करता रहता हूँ ॥४४॥ मुनिवन्द्य । सभी पदार्थों में मेरा वर्णन वाला, अविलोक्य के बलयाधार्य यत्नशील ब्रह्मरूप भी मेरा ही है ॥४४॥ सम्पूर्ण भुवन में मननजन आत्मा मर्माभाति व्याप्त है फिर भी हे विप्रेन्द्र । मुझ कार्य भी नहीं जान पाता ॥४५॥ सम्पूर्ण भुवन में मननजन भव प्रकार में मेरी पूजा करते हैं । द्विज । मेरे लिए जो कुछ तुमने कष्ट उठाया है, अनप । वह सब तुम्हारे मायाद्वय और मंगल का कारण होगा । लज्जामय जो कुछ स्यावर, जगम रूप में तुमने देखा है, सब मेरे द्वारा ही विहित है, मया ही भूत भावन (उत्पादक) रूप सबव व्याप्त है । मैं शङ्ख-चक्र-गदा-धारी नारायण हूँ ॥४६-४८॥ विप्रेन्द्र !

गुणानां विप्रर्षे सहस्रं परिवर्तते । तावत्स्वपिति विश्वः सार्वविश्वानि मोहयन् ॥४९॥
 सर्वमहं कालमिहाऽऽसे मुनिसत्तम । अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ॥५०॥
 च दत्तो विप्रन्द्र वरस्ते ब्रह्मरूपिणा । असकृत्परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित ॥५१॥
 'कार्णवं कृत्वा नष्टे स्यावरज्ज्वमे । निर्गतोऽसि मयाऽऽज्ञातस्ततस्ते दशितं जगत् ॥५२॥
 न्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम । दृष्ट्वा लोकं समस्तं हि विस्मितो नावबुध्यसे ॥५३॥
 'सि चक्राद्विप्रर्षे द्रुतं नि सारितो मया । आख्यातस्ते मया चाऽऽज्ञातः दुर्जयो हि सुरासुरैः ॥५४॥
 'स भगवान्ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः । तावत्स्वमिह विप्रर्षे विश्वधश्चर वं सुखम् ॥५५॥
 विबुद्धे तस्मिन्सु सर्वलोकपितामहे । एको भूतानि स्रक्ष्यामि शरीराणि द्विजोत्तम ॥५६॥
 'तान् पृथिवीं ज्योतिर्वायुः सलिलमेव च । लोके यच्च भवेत्किञ्चिदिह स्यावरज्ज्वमम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तुत्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधव । पूर्णं युगसहस्रे तु भेषगम्भीरनिस्वनः ॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि यदर्थं मां स्तुतवान्परमार्थतः । धरं वृणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि नचिरादहम् ॥५९॥

तक चारा युग एक हजार बार व्यतीत होते हैं तब तक मैं विश्व को अपने वश में कर सोना रहता हूँ ॥४९॥
 श्रेष्ठ ! जब तक ब्रह्मा उत्पन्न नहीं होते तब तक बालक न होते हुए भी मैं बाल रूप में यहाँ विराजमान
 ॥५०॥ विप्रेन्द्र ! विप्रर्षिगणा से पूजित मुनि ! ब्रह्म स्वरूप मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर तुमको यह वर
 'है । स्यावर-जगम ने नष्ट हो जाने पर जब सारी पृथ्वी समुद्भय हो गई तब तुम मेरी आज्ञा से निर्गत हुए
 जब तुम मेरे शरीर के भीतर प्रविष्ट हुए तब तुमने सारे विश्व का देखा, समस्त ब्रह्माण्ड को देवकर भी
 आश्चर्यचकित हो कुछ जान न पाए ॥५१-५३॥ तदनन्तर विप्रर्षे ! मेरे ही द्वारा तुम मुख से शीघ्र निकाले
 । गुरु, असुरा के द्वारा दुःख से जानने योग्य अपने स्वरूप को मैंने तुमसे कहा है ॥५४॥ इसलिए यावत् काल
 त्र महातपस्वी ब्रह्मा प्रकट नहीं होते तब तक हे विप्रर्षे ! तुम यहाँ सुखपूर्वक विरजस्त हो, स्वच्छता से विचरण
 ॥५५॥ तदनन्तर सबलोक-पितामह ब्रह्मा के प्रकट हो जाने पर द्विजोत्तम ! अवेला मैं सम्पूर्ण भूता की
 ' रक्षणा ॥५६॥ इस प्रकार युग-सहस्र बीत जाने पर आकाश, पृथ्वी, वायु, तेज जन्म अथवा इस लोक में
 कुछ स्यावर जगम रहा, सब का निर्माण करूँगा ॥५७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने के बाद एक सहस्र युग बीत जाने पर फिर मध के समान गम्भीर वाणी वाले
 तब ने मार्गण्डेय से कहा—॥५८॥ हे मुने ! परमार्थ रूप से जिस लिए तुमने मेरी स्तुति की है—बड़ी,

आयुष्मानसि देवाना मद्भवतोऽसि दृढव्रत । तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दोषायुरापनुहि ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वाणीं शुभा तस्य विलोक्य स तदा पुन । मूर्ध्ना निपत्य सहसा प्रणम्य पुनरब्रवीत् ॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

दृष्ट परं हि देवेश तव रूपं द्विजोत्तम । मोहोऽयं विगत सत्यं त्वयि दृष्टे तु मे हरे ॥६२॥
एवमेवमहं नाथ इच्छेयं त्वत्प्रसादतः । लोकानां च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६३॥
शिवभागवतानां च वादार्थप्रतिषेधकम् । अस्मिन्क्षेत्रे चरे पुण्ये निर्मले पुरुषोत्तमे ॥६४॥
शिवस्याऽऽयतनं देव करोमि परमं महत् । प्रतिष्ठेयं तथा तत्र तव स्थानं च शक्यम् ॥६५॥
ततो ज्ञास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्तीं हरीश्वरी । प्रत्युवाच जगन्नाथ स पुनस्तं महामुनिम् ॥६६॥

श्रीभगवानुवाच

यदेतत्परमं देव कारणं भुवनेश्वरम् । लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६७॥
ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्रं शिवालयम् । तत्प्रभावाच्छिवलोके तिष्ठ त्वं च तथाऽक्षयम् ॥६८॥
शिवे सरथापिते विप्रं मम सरथापनं भवेत् । नाऽऽवयोरन्तरं किञ्चिदेकभावो द्विधा कृतो ॥६९॥

वह थप्ट वर भाग, मे तुम्हे शास्त्र ही प्रदान करेगा। तुम देवताओं से भी अधिक दीर्घायु हो मेरे भक्त हो
दृष्टप्रती हो। इसलिए विप्रवय ! तुम पुन दीर्घायु प्राप्त कर ॥५९-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—मगवान की इस मंगलमयी वाणी को सुनकर पुन प्रसन्नता से उनकी ओर देख कर
मुनि ने चरणा पर गिर झुका कर प्रणाम करते हुए कहा—॥६१॥

मार्कण्डेय बोले—श्वेन ! द्विजोत्तम ! मैंने तुम्हारा उत्कृष्ट स्वरूप देखा। हरे ! निश्चय ही तुम्हारे
रूप-दर्शन से मेरा आ तबिध मोह नष्ट हो गया। तुम्हारे प्रसाद से नाथ ! मैं ऐसा चाहता हूँ कि लक्ष हित की
दृष्टि से मित्र मित्र भावनाओं (साम्प्रदायिकता) का नाश के लिए जिससे कि शिव और भागवतो की प्रतिद्वन्द्विता
मिट जाय इस पवित्र निर्मल थाठ पुरुष रूप क्षेत्र में देव ! बृहत् शिव मन्दिर का निर्माण करें और वहाँ तुम्हारे
स्थान पर शिव की प्रतिष्ठा करें। ऐसा करने से उपरांत इस संसार में लोग समझेंगे कि शिव और हरि (विष्णु)
एक रूप ही हैं। इसी बातें सुन कर जगन्नाथ ने महामुनि से पुन कहा ॥६२-६६॥

श्री भगवान् बोले—विप्रद ! जो ये उत्कृष्ट कारण स्वरूप भुवनेश्वर महादेव हैं उनसे लिंग की आराधना
का निमित्त विभिन्न भावा की शक्ति के लिए मेरे आदेश से शीघ्र ही शिव मन्दिर का निर्माण करो ॥६७३॥ इस
सुवृत्ति के प्रभाव से तुम शिव लिंग में अक्षय रूप से निवास करोगे। विप्र ! शिव की स्थापना से मरी ही स्थापना
होगी हम दोनों में कोई अन्तर नहीं नाम्ना दो रूपों में विभक्त होते हुए भी हम लोग मयावत एक

यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्मो विष्णुः स महेश्वरः । उभयोरन्तरं नास्ति पद्मनाकाशयोरिव ॥७०॥
 मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः । वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम् ॥७१॥
 तव नामाङ्कितं तस्मात्कुरु विप्र शिवाल्यम् । उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम् ॥७२॥
 मार्कण्डेयहृदो नाम नरलोकेषु विद्युतः । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत । मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥७४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूषिसंवादे मार्कण्डेयस्य
 श्रीभगवद्दर्शनं नाम षट्षञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ सप्तञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजा । यत्फलं स्नानदानेन दत्ताप्रेक्षणेन च ॥१॥

ही हैं ॥६८-६९॥ जा रुद्र वही स्वयं विष्णु और जो विष्णु वही स्वयं महेश्वर (शिव) हैं । दाना में पवन और आकाश में समान कुछ भी अन्तर नहीं है ॥७०॥ भार्या-मूढ़ व्यक्ति नहीं जानता है कि जा गरुडध्वज है वही त्रिपुर नाशक, विष्णुध्वज वृषध्वज (शिव) हैं ॥७१॥ इसलिए विप्र 'देव देव शिव मे मन्दिर में उत्तर भाग में अपने नाम से अर्पित एक सुन्दर तीर्थ में बनव, आ ॥७२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस लोक में सब पापों को दूर करने वाला वह तीर्थ 'मार्कण्डेयहृद' नाम से विख्यात हुआ ॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—एसी बातें कह कर हे मुनिवर ! सर्वव्यापी जनार्दन भगवान् वही अन्तर्धान हो गए ॥७४॥

श्री ब्रह्महृदपुराण में मार्कण्डेय ऋषि का श्रीभगवद्दर्शनं नामक छणनवा अध्याय समाप्त ॥५६॥

अध्याय ५७

पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—द्विजाण ! अब मैं पञ्चतीर्थ करने की विधि, उन तीर्थों में स्नान, दान और देव दर्शन का

मार्कण्डेयहृदं गत्वा नरदक्षोदङ्मुखः शुचिः। निमज्जेतत्र वारांस्त्रीनिभं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥
 संसारसागरे भग्नं पापप्रसक्तमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥३॥
 नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥४॥
 नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषोन्। तिलोदकेन मतिमान्पितृद्वन्द्वान्याश्च तर्पयेत् ॥५॥
 स्नात्वा तर्प्य चाऽऽज्रम्य ततो गच्छेच्छिवालयम्। प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ॥६॥
 मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेद्वरम्। अधोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥७॥
 त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण। त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥८॥
 मार्कण्डेयहृदे त्वेवं स्नात्वा वृष्ट्वा च शंकरम्। दशानामश्चमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥९॥
 पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०॥
 इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुधुतः। शाकरं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥११॥
 कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्। पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम् ॥१२॥
 ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे। महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोघाय नमोऽस्तु ते ॥१३॥
 अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेदचाऽऽयतनं वट। न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥१४॥

फल वतल रहा है ॥१॥ मार्कण्डेय हृद म उत्तरामिमुख हाकर, पवित्र भाव से तेल वार डुबकी लगा कर स्नान करने के बाद निम्नातिन मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे भगनेत्रघ्न, त्रिपुरारे, तुम्हें नमस्कार है। मैं भवसागर में निमज्जित पापलिप्त और ज्ञान शून्य हूँ—मेरी रक्षा करो ॥३॥ पापनाशन, शान्त शिव को नमस्कार है। हे देवेश। मैं स्नान कर रहा हूँ, मेरे सभी पापों को अप नष्ट करें ॥४॥ इस प्रकार नामि पद्यत जल में स्नान कर बुद्धिमान् व्यक्ति तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरा आदि का यथाविधि तर्पण करे ॥५॥ फिर आचमन करने के बाद शिवालय में जाकर तीन बार प्रदक्षिणा कर मूल मन्त्र से मार्कण्डेय ऋषि से सहित शिव की पूजा करे। तदनन्तर शिर झुका कर इस अवलिखित अथोर मन्त्र स भगवान् शिव की स्तुति कर— हे त्रिलोचन। हे चन्द्रभूषण। ओं नमो नमस्कार है, हे विरूपाक्ष। तुम मेरी रक्षा कर, महादेव। तुम्हें नमस्कार है ॥६-८॥ इस प्रकार मार्कण्डेय हृद में स्नान और शंकर का दर्शन करने से मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥९॥ वह सब पापों से निर्मुक्त हो कर शिवालय में जाता है और वहाँ कल्पान्त तक दिव्य भागा का भोग करता है ॥१०॥ भोग समाप्त होने पर मृत्युलोक में बहनु, विद्वान्, ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है और शाकर योग का अभ्यास कर मोक्ष पद प्राप्त करता है ॥११॥ स्नान पूजन कर चुकने के बाद कल्पवृक्ष (वट वृक्ष) के पास जाकर उसकी तीन परिजमा कर अनन्य भक्ति भावना से निम्नातिन मन्त्र से वट की पूजा करे। चाहिए ॥१२॥ मन्त्र—‘ओ, महाप्रलयकर, प्रलय रूप वट वृक्ष को नमस्कार है महान् रम (अमृत) पर सर्वदा स्थित (अमृत पान करने वाले) न्यग्रोध (वट) का नमस्कार है ॥१३॥ वट। तुम दाश्चत हा। तुम कल्पान् म मी अमर हो,

भवत्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः। सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वञ्च द्वोरयः॥१५॥
 छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः। ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा॥१६॥
 दृष्ट्वा कृष्णान्निभं नृपं ब्रह्मतेजोमयं परम्। न्यग्रोधोऽकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः॥१७॥
 राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम्। तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥१८॥
 वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम्। सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं यजेत्॥१९॥
 दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमा गतिम्॥२०॥
 प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिं प्रदक्षिणम्। संकर्षणं स्वमन्त्रेण भवत्याऽऽपूज्य प्रसादयेत्॥२१॥
 नमस्ते हृलधूप्राम नमस्ते मुशलायुध। नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भवतवत्सल॥२२॥
 नमस्ते बलिनां थ्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर। प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥२३॥
 एषं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशाक्षितम्। कैलासशिखराकारं चन्द्रातकाग्नतराननम्॥२४॥
 नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम्। महाबलं हृलधरं कुण्डलं कविभूषितम्॥२५॥
 रौहिणेयं नरो भवत्या लभेदभिमतं फलम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥२६॥

तुम विष्णु के निवास-स्थान हो, न्यग्रोध ! मेरे पापों को दूर करो, कल्प-वृक्ष ! तुम्हें नमस्कार है ॥१५॥ मन्त्र-पूर्वक कल्पवृक्ष की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से एकाएक उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार सर्प अपने पुराने चर्म (बैँचुली से) ॥१५॥ द्विजगण ! उस कल्पवृक्ष की छाया में बैठने से मनुष्य ब्रह्म-हत्या से भी मुक्त हो जाता है तो फिर अन्य पापों से मुक्त होने के विषय में कहना ही क्या है ? ॥१६॥ ब्राह्मण-गण ! कृष्णाग से उत्पन्न, ब्रह्मदेव से व्याप्त, पर, न्यग्रोध की आरुति वाले विष्णु की प्रणाम कर मनुष्य राजसूय और अश्वमेध से भी अधिक फल प्राप्त करता है और अपने वंश का उद्धार कर स्वयं विष्णुजाय को प्राप्त करता है ॥१७-१८॥ कृष्ण के अग्रगण्य में स्थित गरुड को नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से विनिर्मुक्त हो विष्णु-पुर को जाता है ॥१९॥ जो मनुष्य वट एवं बिलतापुत्र गरुड का दर्शन कर पुष्प-तप्त, संकर्षण (वक्रमद) और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है ॥२०॥ विष्णु के मन्दिर में प्रवेश कर तीन बार परिणमा करने के बाद भगवान् संकर्षण की पूजा निम्नांकित मन्त्र से मन्त्रपूर्वक करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिए ॥२१॥ मन्त्र—हे हृत्पर राम ! तुम्हें भरा नमस्कार है। मुशलायुध, रेवतीनान्त ! हे मन्त्रवत्सल, तुम्हें नमस्कार है ॥२२॥ बलिनाथ म अग्रगण्य ! धरणीधर ! आपको नमस्कार है। हे प्रलम्ब-नृप, कृष्णाग्रज ! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा करो ॥२३॥ इस प्रकार अनन्त, सबविजयी, देवा से पूजित, कैलास-शिखर के समान शुभ आकार वाले, चद्रमा में भी अधिक रम्य मूलशाले, नीलवस्त्रधारी, शेषपण में मुगामित विकट मस्तक वाले, एक कुण्डल से अञ्जित, महाबली, राक्षसिपुत्र हृत्पर का अनन्य मन्त्र से प्रसन्न कर अपने मन चाहे फल को प्राप्त करता है। वह सब पापों से मुक्त हो कर दीप्त हो विष्णुलोक का प्राप्त करता है ॥२४-२६॥

आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरः^१। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥२७॥
 ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः^२। ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्^३ ॥२८॥
 एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः^४। द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः^५ ॥२९॥
 द्विपट्वचर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम्^६। पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै^७ ॥३०॥
 न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोमपाः^८। या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः^९ ॥३१॥
 तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम्^{१०}। संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत्^{११} ॥३२॥
 जप कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाधिनाशन^{१२}। जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिपूदन^{१३} ॥३३॥
 जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर^{१४}। जय नीलाम्बुदरयाम जय सर्वसुखप्रद^{१५} ॥३४॥
 जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन^{१६}। जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद^{१७} ॥३५॥
 ससारसागरे घोरे^{१८} निःसारे दुःखफेनिले^{१९}। क्रोधप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे^{२०} ॥३६॥
 "भानारोगोमिकलिले मोहावर्तसमुदस्तरे^{२१}। निमग्नोऽहं सुरथेष्ठ त्राहि मा पुरुषोत्तम^{२२} ॥३७॥
 एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम्^{२३}। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्^{२४} ॥३८॥

वहाँ प्रलय काल तक नाना दिव्य सुखा का भाग कर पुन पुण्यक्षय होने पर इस मृत्यु लाव म आकर थोष्ट योगी के यश म उत्पन्न होता है ॥२७॥ इस प्रकार थोष्ट ब्राह्मण हो कर, सम्पूर्ण शास्त्र का पारगत् विद्वान् हो जाता है और शास्त्राभ्यास के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर दुर्लभ मुक्ति का अधिकारी हो जाता है ॥२८॥ हलधर की पूजा के बाद एकप्रमत्त होकर द्वादशाक्षर मन्त्र से कृष्ण की विधिवत् पूजा करनी चाहिए ॥२९॥ या धीरमति सर्वदा द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा करते हैं वे निश्चय ही भाग लाभ करते हैं ॥३०॥ विप्रमणः द्वादशाक्षर मन्त्र के जप म सर्वदा लीन रहने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, उस गति को देवता, यणी तथा सोम-रस का पान करने वाले भी महा प्राप्त करते ॥३१॥ इसलिए उसा मन्त्र स भक्तिपूर्वक जगद्गुरु कृष्ण का गन्ध, पुष्पादिद्वारा विधिवत् पूजन कर स्तुति से प्रसन्न करे ॥३२॥ स्तुति—हे जगन्नाथ कृष्ण ! तुम्हारी जय हः । हे सम्पूर्ण पापा के नाश करने वाले ! चाणूर, कैशी के मारने वाले, कंस प्राण हर ! आपकी जय हो, जय हो ॥३३॥ कम्-दल के समान आवत नेत्र वाले ! जपहा, चक्र गदा धारण करने वाले ! नीलमय के समान स्थान वर्ण वाले ! सर को मुख देने वाले ! (तुम्हारी) जय हो ॥३४॥ जगत्पूज्य ! ससार का संहार करने वाले देव ! जय हो ! अखिल लोका के स्वामी ! अमिवाजित फल के दन वाले नाथ ! तुम्हारी जय हो ॥३५॥ इस महाघार निःसार, दुःखहारी फल से परिपूर्ण, क्रोध-रूपी प्राह से व्याप्त, भयकर, विषयवासना-रूपी जल से भरे हुए, अन्ध राग रूपा तरंगा से सुन्न, मोह के जलावर्त (मँवर) से पार करने म अति कठिन ससार रूपी सागर म मग्न, हे गुरुथेष्ठ पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा करो ॥३६-३७॥ इस प्रकार स्तुति से वरदाता भक्तवत्सल, सभी पापा का

१ ग युध । २ क निश्चितम् । ३ क ंत । विप० । ४ छ शाम्पा । ५ क ंचिन्तवा । छ० ।
 ६ छ सर्वविना० । ७ क वसप्रमर्दन । ८ छ ंद देवदे० । ९ क ०रे दुःखसताप० । १० ग ंनावेगा० ।
 ११ छ ंम् । योगिध्येपद विष्णु प० ।

पीतांशं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम् । महोरगं महाबाहुं पीतयस्त्रं शुभाननम् ॥३९॥
 शङ्खचक्रगदापाणिं मुमुटान्मदभूषणम् । सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥४०॥
 दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्पणिपथ्यं च । अद्वयमेषस्तस्मात् फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ॥४१॥
 यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रदीतितम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४२॥
 यत्फलं सर्वरत्नाजैरिष्टं बहुसुवर्णैः । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४३॥
 यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । तत्फलं समयाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥४४॥
 यत्फलं सर्वदानेन घनेन नियमेन च । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४५॥
 तपोभिर्विविधैरप्रयत्नैः समुदाहृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४६॥
 यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक्वीर्णेन तत्कृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४७॥
 यत्फलं च गृहस्थस्य ययोस्ताचारवर्तिनः । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४८॥
 यत्फलं वनवासेन यानप्रस्थस्य कीर्तितम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४९॥
 सन्यासेन ययोवतेन यत्फलं समुदाहृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥५०॥
 किं चात्र महानोस्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः । दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१॥

हरने वाले भूपूर्ण माताया का देने का प्रयत्न करने वाले, दा भुजा वाले, पद्म-पत्र के समान भनोहर नेत्र वाले, विशाल वक्र, महाबाहु, पील वस्त्रधारी, शुभानन, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म से युक्त, मुमुट और केयूर से अलङ्कृत, सर्व लक्षण सम्पन्न, वनभागा से सुगोमिन दवेश कृष्ण को प्रसन्न कर और उनका दर्शन कर भगुप्य करवड सध्या दण्डवत् करने, तो द्विजगण ! यह भगुप्य निश्चय ही सहज अद्वयमय का फल प्राप्त करता है ॥३८-४१॥ सब तीर्थों में स्नान करने से, दान देने से जो फल बड़े गये हैं, उन सब का भगुप्य कृष्ण का दर्शन और प्रणाम करने से प्राप्त करता है ॥४२॥ जो फल सब प्रकार के रत्नाएँ प्रबुर सुवर्ण में धन करने पर प्राप्त होते हैं, भगुप्य उन सब फल को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है ॥४३॥ सकल वेद (वेदान्त) तथा समस्त यज्ञ (वेद अनुष्ठान) से जो फल प्राप्त होता है उस फल को भगुप्य कृष्ण का प्रणाम करके प्राप्त कर लेता है ॥४४॥ जो फल सब प्रकार के दान प्रत एव सधर्म से प्राप्त होता है, उस फल को भगुप्य कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है ॥४५॥ विविध कठिन तपस्या से जो फल बड़े गये हैं, वे सभी कृष्ण के दर्शन और प्रणाम करने से भगुप्य को प्राप्त होते हैं ॥४६॥ मलीमाति ब्रह्मचर्य-व्रत पालन और शास्त्रान्त विधि से सन्यास ग्रहण करने से जो फल मिलते हैं वे सभी फल कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से मिलते हैं ॥४७॥ शास्त्रानुसार आचार-पालन करने वाल गृहस्थ का जो फल प्राप्त होता है, वे सब फल कृष्ण के दर्शन और उहे प्रणाम करने से प्राप्त हो जाते हैं ॥४८॥ वन में निवास कर वानप्रस्थाश्रम के पालन से जो फल बड़ा गया है वह फल भगुप्य का कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त होता है ॥४९॥ शास्त्रान्त विधि से सन्यास-पालन से जिन फलों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है वे फल भगुप्य को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से अनायास प्राप्त हो जाते हैं ॥५०॥ अथवा द्विजगण ! कृष्ण दर्शन माहात्म्य के विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, कृष्ण के दर्शन से भगुप्य दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर

पार्ष्विमुक्त शुद्धात्मा कल्पजोऽसिमुदभव । धिया परमया युक्त सर्व समुदितो^१ गुणे ॥५२॥
 सर्वकामेसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुर व्रजेत् ॥५३॥
 तत्र कल्पशत यावद्भुक्त्वा भोगान्भनोरमान् । गन्धर्वाप्सरसे^२ सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः ॥५४॥
 च्युतस्तस्माद्विहाज्यातो विप्राणा प्रवरे कुले । सर्वज्ञ सर्ववेदो च जायते गतमत्सर ॥५५॥
 स्वधर्मनिरत शान्तो^३ दाता भूतहिते रत । आसाद्य वैष्णव ज्ञान ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५६॥
 'तत संप्रप्य म त्रय सुभद्रा भक्तवत्सलाम'^४ । प्रसादयेत्ततो विप्रा प्रणिपत्य कृताञ्जलि ॥५७॥
 नमस्ते सर्वेण देवि नमस्ते शुभसौख्यदे । त्राहि मा पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८॥
 एव प्रसाद्य ता देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् । बलदेवस्य भगिनीं सुभद्रा वरदा शिवाय ॥५९॥
 कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुर व्रजेत् । आभूतसप्लव यावत्प्रीडित्वा तत्र देववत् ॥६०॥
 इह मानुषता प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवत् । प्राप्य योग हरेस्तत्र मोक्ष च लभते ध्रुवम् ॥६१॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयंभुवःपिसवादे कृष्णदर्शनमाहात्म्य

नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५७॥

लगा है ॥५१॥ कृष्ण-देवान के प्रभाव से मनुष्य करता है कल्याण के सचित पापों से मुक्त होकर निमल हृदय हो जाता है वह सर्वगुण सम्पन्न बन जाता है और परम-आ से युक्त हो जाता है ॥५२॥ अपने पुण्य प्रभाव से वह इसको कुल परम्परा का उद्धार कर सब इच्छित पदार्थ से पूर्ण सजाय विमान पर आरुढ़ होकर विष्णु लोक प्राप्त करता है ॥५३॥ वहाँ सौ कल्प तक चतुर्भुज भगवान विष्णु के समान गंधर्व और अप्सराओं के साथ मन-हर्ष भागा का भाग करता है ॥५४॥ पुन वहाँ से पुण्यक्षय होने पर च्युत हो कर इस लोक में अष्ट ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करता है । अहाँ आकर वह सब गन्तव्य का जाता अनुभव ईश्वरहित अपने धर्म में निरत गीत वादी और सम्यक् प्राणियों के हित में लगा रहता है । तदनंतर भागवत ज्ञान का प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥५५॥ कृष्ण का इस प्रकार पुन पुन करने के बाद मनुष्य भक्तों पर पुनवत् प्रेम करने वाला सुभद्रा जी की भक्ति द्वारा पूजा कर होय जड कर प्रणाम कर आदि इस स्तुति से उन्हें प्रसन्न कर ॥५७॥ स्तुति—हे सबव्यापिनी शुभ सौख्य प्रदान करने वाली देव । तुम्हें नमस्कार है पद्मपत्राक्षि । मेरा स्था कर । कात्यायनि । आपका प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार जगत् का धारण करने वाला सत्सर का कल्याण करने वाला वरदाधिनी मण्डलाधिनी बलदेव की भगिनी सुभद्रा की स्तुति और थडापूवक पूजन से प्रसन्न कर मनुष्य इच्छा-परिचालित विमान पर आरुढ़ हो कर विष्णुलोक को जाता है । वहाँ वह देवताओं के समान कल्प पयत विहार कर पुन मनुष्यत्व में आने पर मनुष्य य नि म वदन ब्राह्मण होता है और भागवत ज्ञान का प्राप्त कर निदक्य हो भाग लभ करता है ॥५९६१॥

श्री ब्रह्मपुराण म कृष्ण-देवान माहात्म्य नामक सत्तावनवा अध्याय समाप्त ॥५७॥

१ न समुदितो । २ सर्व धर्म । ३ क ख सत्यवाणी । ४ ल दान्तो । ५ ख ग ० त पूज्य स्वम० । ६ क भद्रचारिणीम् ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय

नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव दृष्ट्वा बलं कृष्णं सुभद्रां प्रणिपत्य च । धर्मं चाथ च कामं च मोक्षं च लभत ध्रुवम् ॥१॥
 निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः । प्रणम्याऽऽयतनं पश्चादब्रजत्तत्र समाहितः ॥२॥
 इन्द्रनीलमयो विष्णुयन्त्राऽस्तं बालुकावृतं । अतर्धानगतं नत्वा ततो विष्णुपुरं व्रजतः ॥३॥
 सवदेवमयो योऽसौ हृतवानसुरोत्तमम् । स आस्त तत्र भो विप्रा सिंहाय कृतविग्रहः ॥४॥
 भक्त्या दृष्ट्वा तु तं देवं प्रणम्य नरकसरोरम् । मुच्यत पातकमत्यं समस्तनात्र संशयः ॥५॥
 नरसिंहस्य यं भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः । न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्फलं स्याद्यद्यदीप्सितम् ॥६॥
 तस्मात्सर्वप्रपन्नं नरसिंहं समाश्रयत । धर्माय कामोक्षाणां फलं यस्मात्प्रपच्छति ॥७॥

मुनय ऊचुः

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम् । यथा कथयस देव तन नो विस्मयो महान् ॥८॥

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मा बोल—उपयुक्त विधि से बलराम कृष्ण तथा सुमन् का दान और प्रणाम करने से मनुष्य धर्म अथ काम और मोक्ष प्राप्त करता है यह धर्म है ? उस देवालय से निकलने पर मनुष्य वृत्तव्य हो जाता है। इस इस प्रकार देव मन्दिर से निकल कर उसको प्रणाम कर तत्पश्चात् उस स्थान पर अन्य भाव से जाय जहाँ इन्द्रनीलमय विष्णु बाल की ढरी में दबे हुए हैं वहाँ इस प्रकार बालुकामय मूर्ति में छिपे हुए भगवान् को प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक की प्राप्ति करता है ॥२३॥ विप्रगण ! जिन सवदेवमय (सम्पूर्ण देवा के तेज से सम्पन्न) ने असुरोत्तम हिरण्य वक्ष्य की मारा व बंदी पर हैं जिनका आपा गरीर सिंह का है अर्थात् जो नृसिंह कहे जाते हैं। उन नृसिंह भगवान् को देख कर जा मय (मानव) भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह समस्त पापों से छूट जाता है इससे लगभग भी सदेह नन् ॥४५॥ इस मूलोक में जो नरसिंह के भक्त होते हैं उनके सभी पाप मिट जाते और वे मनचाहे फल की प्राप्ति करते हैं ६ इसलिए मनुष्य प्रमेक प्रकार स भगवान् का आश्रय प्राप्त कर जिससे उसे धर्म अथ काम और मोक्ष की प्राप्ति हो। ७।

मुनियो न कथा—देव ! इस लोक में दुर्लभ और सुखद नरसिंह देव के योग्य मय का जिस रूप में अपने

प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥९॥
यया प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः । भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते ॥१०॥
प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः । ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह ॥११॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम । अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिभुक्तिप्रदस्य च ॥१२॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तांस्तस्य भो द्विजाः । सिहार्थकृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः ॥१३॥
याः कारिचरित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते देयमानुषाः । प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशयः ॥१४॥
स्वर्गे भव्ये च पाताले दिक्षु तोये पुरे नगे । प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यध्याहृता गतिः ॥१५॥
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे । नरसिंहस्य भो विप्राः सदा भक्तानुकम्पिनः ॥१६॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम् । येन प्रसीदेच्चैवासौ सिहार्थकृतविग्रहः ॥१७॥
शृणुष्वं मुनिशार्दूलः कल्परज सनातनम् । नरसिंहस्य तत्त्वं च यत्र ज्ञात सुरासुरैः ॥१८॥
शाकयाथकमूलैस्तु फलपिण्याकसधतुकैः । पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा यतयेत्साधकोत्तमः ॥१९॥
कोशकौपीनवासादच ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः । अरण्ये विजने देशे पठते सिन्धुसगमे ॥२०॥

वर्णन किया है, इससे हम लोग को महान् विस्मय हो रहा है ॥८॥ जगत्पते । उस देवता के प्रभाव को विस्तार-पूर्वक सुनना चाहते हैं, कहिए, हम लोगों को अत्यन्त उत्सुकता हो रही है ॥९॥ देव । जिस प्रकार महाबली नरसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं । उसका भक्ता के उपकार के लिए कहिये, आपको हमारा नमस्कार है ॥१०॥ नरसिंह की कृपा से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनको कहिए । प्रपितामह । हम लोग पर अत्यन्त बीजिए ॥११॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण । उस अजित, अप्रमेय (जिसका मयार्थ शून्य न हो) भुक्ति और मुक्ति के दान वाला नृसिंह देव के प्रभाव को मैं कह रहा हूँ, तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो ॥१२॥ द्विजगण । उस देवता के—जिसका आधा शरीर सिंह का है—समस्त गुणों का वर्णन बोल कर सकता है, इसलिए संशय में ही कह रहा हूँ ॥१३॥ इस प्रकार से जो कुछ सिद्धियाँ देवा या मनुष्य के सुनी जाती हैं, वे सभी सिद्धियाँ उस देव की कृपा से प्राप्त होती हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥१४॥ उस देव की कृपा से स्वर्ग, भव्य, पाताल लोक तथा दिशाया म, जल, पुर और पहाड़ में सर्वत्र मनुष्य की अन्याहृत गति हो जाती है ॥१५॥ विप्रगण । सर्वदा भक्तजनता पर कृपा करने वाले, नरसिंह देव के लिए इस सचराचर जगत् में कुछ भी असाध्य अथवा अदेय नहीं है ॥१६॥ मैं भक्तजनता के लिए उपहार उन नियमों को बत रहा हूँ, जिनसे आधा सिंह का शरीर धारण करने वाले नृसिंह भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥१७॥ मुनिवर । नरसिंह देव के उस सनातन, कल्परज (कल्पान्त में भी विद्यमान रहने वाले अमृत) तत्व का गुण, जो सब प्राण देव और अमुरों से अज्ञात रहा है ॥१८॥ विप्रब्रह्मद । पहले उत्तम साधक, शाक, मायक (अलकन, अन्न विशेष), बन्द मूल, फल, पिण्याक (तिल से बना कोई भोग्य), कर्तू अथवा बैरल दुग्धाहार का निर्वहण करे,

ऊपरें सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा । प्रतिष्ठाप्य स्वयं वाजपि पूजां कृत्वा विधानतः ॥२१॥
 द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुंगवाः । जपेल्लक्षाणि वै विशन्मनसा संयतेन्द्रियः ॥२२॥
 उपपातकपुत्रश्च महापातकसंयुतः । मुक्तो भवेत्ततो विप्राः साधको नात्र संशयः ॥२३॥
 कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंहं प्रपूजयेत् । पुण्यगन्धादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥२४॥
 कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके । प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते ॥२५॥
 भगवान्सर्वकार्येषु न वचिन्प्रतिहन्यते । तेजः सोढुं न शक्नोति स्फुटं ह्यरुद्रादयः सुराः ॥२६॥
 किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः । विद्याधरा यक्षगणाः सक्त्रिरमहोरगाः ॥२७॥
 मन्त्रं यानासुरान्हन्तुं जपत्येकेऽप्यसाधकाः । ते सर्वे प्रलयं यागन्ति दृष्ट्वाऽऽदित्याग्निवर्चसः ॥२८॥
 सङ्गजप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम् । द्विजंस्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२९॥
 गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः । भूताः पिशाचा रक्षांसि ये चाग्न्ये परियन्यतः ॥३०॥
 त्रिजंस्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः । द्वादशान्यन्तरे चैव योजनानां द्विजोत्तमाः ॥३१॥
 रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः । ततो गत्वा विलङ्घारमुपोष्य रजनीचयम् ॥३२॥

कोश अथवा बौरीन वस्त्र धारण करे, सर्वदा ध्यानपरायण और जितेन्द्रिय रहे फिर किसी वन, निर्जन प्रदेश, पर्वत, नदिया का संगम स्थान, उसर, सिद्ध क्षेत्र अथवा नृसिंह के मन्दिर में ही स्वयं नरसिंह भगवान् की मूर्ति स्थापित कर विधिपूर्वक पूजा करे ॥१९-२१॥ मुनिपुंगव । वह साधक शुक्ल पक्ष की द्वादशी को निराहार व्रत रहे, इस प्रकार सयमपूर्वक वह बीस लक्ष मन्त्र का मानस जप करे ॥२२॥ इस प्रकार साधक चाहे उपपातक से युक्त अथवा महापातक से युक्त क्या न हो, मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥२३॥ जप के अनन्तर प्रदक्षिणा कर पुष्प, गन्ध, धूप आदि से नरसिंह की पूजा करे ॥२४॥ पुन शिरस्त्राज्य पर प्रभुको प्रणाम कर कर्पूर-चन्दन में रंगे जाती पुष्प (जूही) को नरसिंह देव के मस्तक पर चढ़ाये । इस प्रकार नियमपूर्वक पूजन तथा जप से सिद्धि प्राप्त होती है ॥२५॥ इस प्रकार का साधक सब कार्यो का करने में समर्थ हो जाता है, उसकी गति कहीं भी रोक नहीं जा सकती, उसके तेज का ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता सहने में असमर्थ हो जाते हैं तो उसके सामने इस लोक के राजा, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य, विद्याधर और किन्नर, महानागो सहित यश की क्या गणना ॥२६-२७॥ अन्य विविध साधक जिन अमुरा का भारने के अतिप्राय से मन्त्र का जप करते हैं, वे सभी अमुर आदित्याग्नि के समान तेजस्वी, उस साधक को देख कर ही नष्ट हो जाते हैं ॥२८॥ एक बार नरसिंह-वस्त्र का जप करने से सभी प्रकार के उपद्रवों से रक्षा होती है । दो बार जप हुआ वह दिव्य कवच देव-दानवा से रक्षा करता है, गुरु एवं क्षत्रिया से अभेद्य यह दिव्य कवच जब तीन बार जप जाता है तब गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, नाग, मूल, पिशाच, राक्षस तथा अन्य दूमरे विप्लव करने वाला से हे द्विजात्तमवृन्द । महावीर भगवान् नरसिंह देव बारह याजन तन रक्षा करते हैं ॥३०-३१॥ सदनन्तर विरङ्गार के पास जाकर तीन रात्रि तन निराहार रह कर पत्राश की लपड़ी से भगवन् अग्निदेव को प्रणमन कर मयू म दुर्वाद दो सौ पलाश की समिधा का वपुस्कार मन से वह साधक उस

पलाशकाष्ठं प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम् । पलाशसमिधस्तत्र जुहुयादितमधुप्लुता ॥३३॥
 'द्वे शते द्विजशार्दूला' वषट्कारेण साधकः । ततो विवरद्वारं तु प्रकट जायते, क्षणात् ॥३४॥
 ततो विशेषेण निःशङ्कुं कवचो विवरं ध्रुव । गच्छतः सकट तस्य तमोमोहश्च नश्यति ॥३५॥
 राजमार्गं सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि (श्चि)त । नरसिंह स्मरंस्तत्र पातालं विशते द्विजा ॥३६॥
 गत्वा तत्र जपेत्सत्त्वं नरसिंहाख्यमव्ययम् । तत स्त्रीणा सहस्राणि धोणावादनकर्मणाम् ॥३७॥
 निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागत ता वदन्ति च । प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम् ॥३८॥
 ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति द्विजोत्तमाः । पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबलः ॥३९॥
 'श्रीडते सह कन्याभिर्पावदाभूतसंप्लवम् । भिन्नदेहो वासुदेवो लोयते नान सशयः ॥४०॥
 यदा न रोचते वासस्तस्मात्त्रिगच्छते पुनः । पट्टं शूलं च खड्गं च रोचना च मणि तया ॥४१॥
 रस रसायन चैव पादुकाञ्जनमेव च । कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा गुटिका च मनोहराम् ॥४२॥
 कमण्डलुं चाक्षसूत्रं यष्टिं सज्जीवनीं तथा । सिद्धविद्यां च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वर ॥४३॥
 ज्वलद्बहिस्फुलिङ्गोमिवेष्टितं त्रिशूलं हृदि । सकृन्त्यस्तं दहेत्सर्वं वृजिन जन्मकोटिजम् ॥४४॥

प्रज्वलित अग्नि मे हवन करे ॥३२-३३॥ विप्रवर । इतनी साधना करने के बाद उस विवर का द्वार उसी क्षण प्रकाश हो जायगा ॥३४॥ इससे अनन्तर वह कवचधार कनारी निशक भाव से उस विल म प्रकाश करे, उग विवर म प्रवेश करने वाले साधक की सारी विपत्तियाँ और अज्ञानावधार नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥ प्रवेश करने पर वहाँ भ्रमरावलिवा से सुसामित विस्तीर्ण राक्षस दिखाई देगा । द्विजगण । वह साधक भगवान् नरसिंह का स्मरण करते हुए पाताल म प्रवेश करे ॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक मन्त्र तत्त्व का जप करे । जप के प्रभाव से बीणावादन करती हुई सहस्रो स्त्रियाँ उससे आग उपस्थित हो जाती हैं और उस साधक-गिरामणि का होश पकड़ कर विवर म ले जाती हैं ॥३७-३८॥ वहाँ ल जाकर उसका दिव्य रसायन पिलाती हैं, पीतही वह साधक दिव्य शरीरधारी और बलशाली हो जाता है । वह मान्यशाली कलात्त पर्यन्त उन कन्याओं के साथ प्रकाश करता है तथा शरीर त्याग करने के बाद वासुदेव म लीन हो जाता है, इसम कोई सन्देह नहीं ॥३९॥ मुनिप्रवर । यदि उस साधक का वहाँ का निवास प्रिय नहीं जान पड़े, तब भी वह साधक शिरामणि पट्ट गूँ खड्ग, राचना (वस्त्राञ्जन या गीरोजन) मणि तथा रस (शोधित द्रव्य), रसायन पादुका, अञ्जन कृष्णमृगचर्म कनाहर गुटिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र (रस्सा), सज्जीवनी यष्टी (एक लकड़ी का मन्त्र का जिगती है) सिद्ध विद्या और शास्त्रा का प्राप्त कर उस पाताल देश से निवृत्त है ॥४१-४३॥ उस कवच का प्रभाव ऐसा है कि यदि जन्म अग्नि की लपटा से वेष्टित कर उसको हृदय पर एक बार रखा जायता कराडा जन्म के पापा का जला देता है । विप

१९० अधिपतय । १९१ अधिपतय । २०० अधिपतय । २१० अधिपतय । २२० अधिपतय । २३० अधिपतय । २४० अधिपतय । २५० अधिपतय । २६० अधिपतय । २७० अधिपतय । २८० अधिपतय । २९० अधिपतय । ३०० अधिपतय । ३१० अधिपतय । ३२० अधिपतय । ३३० अधिपतय । ३४० अधिपतय । ३५० अधिपतय । ३६० अधिपतय । ३७० अधिपतय । ३८० अधिपतय । ३९० अधिपतय । ४०० अधिपतय । ४१० अधिपतय । ४२० अधिपतय । ४३० अधिपतय । ४४० अधिपतय । ४५० अधिपतय । ४६० अधिपतय । ४७० अधिपतय । ४८० अधिपतय । ४९० अधिपतय । ५०० अधिपतय । ५१० अधिपतय । ५२० अधिपतय । ५३० अधिपतय । ५४० अधिपतय । ५५० अधिपतय । ५६० अधिपतय । ५७० अधिपतय । ५८० अधिपतय । ५९० अधिपतय । ६०० अधिपतय । ६१० अधिपतय । ६२० अधिपतय । ६३० अधिपतय । ६४० अधिपतय । ६५० अधिपतय । ६६० अधिपतय । ६७० अधिपतय । ६८० अधिपतय । ६९० अधिपतय । ७०० अधिपतय । ७१० अधिपतय । ७२० अधिपतय । ७३० अधिपतय । ७४० अधिपतय । ७५० अधिपतय । ७६० अधिपतय । ७७० अधिपतय । ७८० अधिपतय । ७९० अधिपतय । ८०० अधिपतय । ८१० अधिपतय । ८२० अधिपतय । ८३० अधिपतय । ८४० अधिपतय । ८५० अधिपतय । ८६० अधिपतय । ८७० अधिपतय । ८८० अधिपतय । ८९० अधिपतय । ९०० अधिपतय । ९१० अधिपतय । ९२० अधिपतय । ९३० अधिपतय । ९४० अधिपतय । ९५० अधिपतय । ९६० अधिपतय । ९७० अधिपतय । ९८० अधिपतय । ९९० अधिपतय । १००० अधिपतय ।

विषे न्यस्त विषं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनी स्थितम् । स्वदेहे भ्रूणहृत्पादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति ।
 'महाप्रहृगुहोतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत् । हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दाहणा ग्रहाः ।
 बालानां कण्ठके' बद्धं रक्षा भवति नित्यशः । गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं' कुरुते ध्रुवम् ।
 व्याधिजाते समिद्धिश्च घृतक्षीरेण होमयेत् । त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत् ।
 असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे । यां यां कामयते सिद्धिं तां ता प्राप्नोति स ध्रुवम् ।
 अष्टोत्तरशतं त्वेके पूजयित्वा मृगाधिपम् । मृत्तिकाः सप्त बल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे ॥
 रक्तचन्दनसमिधा गवा क्षीरेण लोडयेत् । सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडङ्गुलाम् ॥
 लिभ्येतया भूजपत्रे रोचनया समालिखेत् । नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित् ॥
 जपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये । यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्संयमितेन्द्रियः ॥
 जलाकोर्णा मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी । अथवा शुष्कवक्ष्मात्रे नरसिंहं तु पूजयेत् ॥
 जप्त्वा चाष्टशतं तत्त्वं वपन्तं विनिवारयेत् । तमेवं पिञ्जके' बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः ॥
 महावातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नान सशपः । पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस (ज)प्तेन वारिणा ॥
 अथ तां प्रतिमां द्वारि निखनेद्यस्य साधकः । गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते' चैव शान्तिदः ॥

म स्थापित करने पर विष प्रभाव को नष्ट कर देता है और किसी कोड़ी के शरीर पर रखने से कुछ रोग को देता है। स्वयं भ्रूण-हृत्पादि पापा को करने वाला व्यक्ति अपने शरीर पर वह दिव्य तबक धारण करने से पाप हो, गुड़ हो जाता है ॥४४-४५॥ महादुष्ट ग्रहा से पीड़ित व्यक्ति यदि अपन हृदय में उस त्रेकोमय का स्मरण तो शीघ्र ही उससे शरण ग्रह नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ बालका के कण्ठ में बाँधने से उसकी सर्वदा व्याधि रक्षा होती है और गण्ड, पिण्डक, कृता आदि रोग निश्चय ही मिट जाते हैं ॥४७॥ व्याधि उत्पन्न होने पर भी प्रतिष्ठा कर एक महीने तक समिधा, घी और दूध से तीना काल—प्रातः, मध्याह्न और संध्या—हवन स सभी राग विनष्ट हो जाते हैं ॥४८॥ उस साधक के लिए इस चराचर युक्त त्रिभुवन में कुछ भी असाध्य देखा रहा है, वह तो जिन-जिन सिद्धियाँ की वादना करना है, निश्चय ही उन-उनका प्राप्त कर लेता है ॥४९॥ मू (नृसिंह) की एक सौ आठ बार पूजा कर, वर्मक्षि, श्मशान, चौराहे आदि से युक्त मृत्तिका का कर, उसमें चन्दन मिलाय। पुन गौ दुग्ध में उसका मित्रा कर छह अंगुल प्रमाण की सिंह की प्रतिमा बनाय ॥५०॥ राजपत्र पर सातवन से गुड़ कर नृसिंहचक्र लिख कर वह भस्मस उत्पन्न नरसिंह के कण्ठ में बाँधे ॥५१॥ साधक उग मूर्ति को किसी जलाशय में स्थापित कर सप्ताह पर्वन् पूजन कर बिना गणना किए का जप कर ॥५३॥ ऐसा करने से क्षण भर में पृथ्वी जल स परिपूर्ण हो जाती है अथवा यदि गूने बुध के भाग पर नृसिंह देव का पूजन और एक सौ आठ बार जप करेता वृष्टि का निवारण हो जाता है ॥५४॥ मृत्ति को रस्सी में बाँध कर घुमान स क्षण भर मही जाता की औषी आ जाती है, इसमें कुछ भी सन्देह पुन उसका शीघ्र ही जल में सान कर दिया देता वह महावान रोग ही क्षान्त भी हो जाता है ॥५५-५६॥

तस्मात्तं मुनिशार्दूल भक्त्या संपूजयेत्सदा । मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८॥
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ॥५९॥
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् । मुच्यन्ते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भूतैः ॥६०॥
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् । देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं च भो द्विजाः ॥६१॥
 यक्षविद्याधरत्वं च तथाऽन्यच्चाभिवाञ्छितम् । दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा संपूज्य 'नरकेसरीम् ॥६२॥
 प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम् । नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम् ॥६३॥
 निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति । सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ॥६४॥
 'मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भूतैः । संग्रामे संकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५॥
 कान्तारे प्राणसंदहे विषवाह्नजलेषु च । राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६॥
 स्मृत्वा तं पुष्टयः सर्वे राजप्राप्तैर्विमुच्यते । सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम् ॥६७॥
 तथा संदर्शने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः । गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८॥
 नरसिंहे प्रसन्ने तु प्राप्नोत्यन्यांश्च वाञ्छितान् । यान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम् ॥६९॥

अनन्तर साधक यदि किसी के द्वार पर उसको खोद कर गाड़ दे, तो उसके वंश का उच्चाटन हो जाय, उखाड़ देने से पुन वही प्रतिमा शान्तिप्रद हो जाती है ॥५७॥ इसलिए है मुनिवर । सर्वदा उस महापराक्रमी, सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले नरसिंह भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से वह भक्त सब पापा से मुक्त होकर विष्णुपुर को प्राप्त करता है ॥५८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियो, शूद्र और चाण्डाल पापा से मुक्त होकर विष्णुपुर को प्राप्त करता है ॥५८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रियो, शूद्र और चाण्डाल सभी उस सिंह शरीर धारण करने वाले देव को भक्ति से पूज कर करोड़ों जन्म के किए पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥५९-६०॥ उस सुर श्रेष्ठ की पूजा कर द्विजो ! मनुष्य इच्छित देवपद, इन्द्रपद अथवा गन्धर्वपद को प्राप्त कर लेते हैं ॥६१॥ नरसिंह की पूजा, दर्शन, स्तुति और नमस्कार से मनुष्य, यक्ष, विद्याधर अथवा अन्य मन चाहे पद, राज्य, स्वर्ग और दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं । नरसिंह का दर्शन कर मनुष्य अभिमत फल को प्राप्त कर अपने पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥६२-६३॥ श्रद्धापूर्वक सिंह शरीरधारी देव को एक बार देख कर भी मनुष्य करोड़ा जन्म के पापा से अपने को मुक्त कर लेता है ॥६४॥ संग्राम में संकट या अठिनाइयाँ आ पड़ने पर, चोर, व्याघ्र आदि से बच्य पाने के समय जगल में, प्राण-संकट उपस्थित होने पर, विष, अग्नि, जल से मय होने पर राजा, समुद्र, ग्रह, रोगादि से पीडित होने पर उस नृसिंह का स्मरण कर मनुष्य उन सभी संकटा से इस प्रकार छूट जाता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर निविड अन्धकार से यह लोक ॥६५-६७॥ इसी प्रकार उसके दर्शन से सारे उपद्रव भी नष्ट हो जाते हैं । मनुष्य श्रीनृसिंह के प्रसन्न हो जाने पर गुटिका-ञ्जन, पाताल-पादुका (वह खडाउ जिसको पहन कर पाताल लोक में मनुष्य चला जाता है), रसायन तथा अन्य मनोरथा को भी प्राप्त करता है । जिन जिन कामनाओं को हृदय में रख कर मनुष्य नरवैसरी की

१स सर्वश्रेष्ठ । २क ग अन्यच्च प्रपच्छति । ३क । ३क । ०केशवम् । ४क ०ते बलमयै । सर्वश्रेष्ठ ।

५स । समुद्रादये । ६स ०त्यन्यच्च वा । ७स ०ञ्छितम् । पा० ।

तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०॥
 दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत् । पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१॥
 सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः । सौवर्णेन विमानेन किकिणीजालमालिना ॥७२॥
 सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा । तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३॥
 दिग्भ्रष्ट्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना । कुलं कविशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४॥
 स्तूपमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः । भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५॥
 गन्धर्वैरप्सरैर्युक्तः कृत्वा ह्य चतुर्भुजम् । मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसंलघम् ॥७६॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽपातः प्रवरे योगिनां कुले । चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
 वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मोऽस्वयंभृषिसंवादे नरसिंहमाहात्म्यवर्णनं
 नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

उपासना करता है, उन-उनको वह नि सन्देह प्राप्त करता है ॥६८-६९॥ उस देव-देवेश का दर्शन कर, भक्ति से उसका पूजन तथा प्रणाम कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञ के दश गुने फल को (सौ अश्वमेध के बराबर) प्राप्त करता है। वह सब पापों से मुक्त हो सभी गुणों से विभूषित हो जाता है ॥७०-७१॥ वह जरा मृत्यु से मुक्त हो सभी मनोरंजनों को प्राप्त कर लेता है, क्षुद्र द्रष्टृवाजों से युक्त, सभी इच्छित साधनों से सुसज्जित, तेजोमय, द्रव्या-परिचालित स्वर्णमय, तपन सूर्य के समान प्रकाशमान विमान पर आरुह्य हो, मुक्ताहार से सुसोमित, दिव्य गान और वादन में निरत सैकड़ों स्वर्गाङ्गनायों से घिरा, देवता के समान आनन्द मग्न और सुखी वह व्यक्ति अपने इक्ष्वांस कुल का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को प्राप्त करता है, उसके में अप्सरायें उत्तरी स्तुति बर्तनी जाती हैं ॥७२-७४॥ द्विजवर । वह गन्धर्व और अप्सराओं के साथ ब्रीडा करता हुआ, मन को आनन्द और सुख देने वाले चतुर्भुज रूप को धारण कर कल्पान्त तक दिव्य मोगों का आस्वादन करता है। पुनः पुण्य क्षय होने पर इस भक्त्योग से पुनर्जित योगि कुल में जन्म लेकर वेद, वेदांग का पारदर्शी, चतुर्वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मण होता है। तदनंतर वैष्णव योग (भागवत ज्ञान) का अभ्यास कर मोक्ष-मदवी प्राप्त करता है ॥७५-७७॥

श्री ब्रह्ममहापुरुष के अन्तर्गत स्वयम् और ऋषि के सवाहककरण में नरसिंह-
 माहात्म्य-वर्णन नामक अष्टाध्यायना अध्याय समाप्त ॥५८॥

ब्रह्मपुराणम्

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च । सर्वपापघनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम् ॥१॥
मया चाऽऽराधितश्चासी शनेण तदन्तरम् । विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान् ॥२॥
श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम् । मत्स्याख्य माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥३॥

मुनय ऊचुः

श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः । विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमां तस्य च हरेः ॥४॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले । श्वेताख्यं माधवं देवं कस्तं स्थापितवान्पुरा ॥५॥

ब्रह्मोवाच

अभूत्कृतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली । मतिमान्धर्मविच्छूरः सत्यसधो दृढव्रतः ॥६॥
यस्य राज्ये तु वर्षाणां सहस्रं दश मानवाः । भवन्त्यायुष्मन्तो लोका बालस्तस्मिन्न सोदति ॥७॥
वर्तमाने तदा राज्ये किञ्चित्काले गते द्विजाः । कपालगीतमो नाम ऋषि परमधार्मिकः ॥८॥

अध्याय ५६

श्वेतमाधव का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्य अनन्त नामक वासुदेव का भक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करने से सब पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। सर्वप्रथम मैंने इस वासुदेव की आराधना की तदनन्तर इन्द्र, विभीषण और राम ने। अब वीर ऐसा मनुष्य है जो उस देव की आराधना न करेगा। जो मनुष्य श्वेत गंगा में स्नान कर श्वेतमाधव और मत्स्यमाधव का दर्शन करता है वह श्वेतद्वीप को प्राप्त करता है ॥१-३॥

मुनिगण बोले—जगन्नाथ। श्वेतमाधव का माहात्म्य और उनकी प्रतिमा के विषय में विस्तारपूर्वक बतलाइए। उस पुरातन, जगतीतल पर प्रसिद्ध शुभ क्षेत्र में सर्वप्रथम किसने श्वेतमाधव देव की स्थापना की ॥४-५॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण। कृतयुग में श्वेत नाम का बगी, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धूर, सत्यप्रमी और दृढव्रती राजा हुआ। जिसके राज्य में मनुष्य दश हजार वर्ष आयु वाले होते थे, बालकों की मृत्यु नहीं होती थी। उस समय द्विजगण! उसके राज्यकाल के कुछ वर्ष बीत जाने पर परम धार्मिक और बुद्धिमान् कपालगीतम नामक ऋषि

सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः' कालवशाद् द्विजाः। तमादाय ऋषिर्धोमाद्रूपस्यान्तिकमानयत् ॥९॥
दृष्ट्वेवं नृपतिः सुतं कुमारं गतच्चेतसम्। प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनेत्यर्थं शिशोस्तदा ॥१०॥

राजोवाच

यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदने गतम्। माऽऽनये'सप्तरात्रेण चिता दीप्तां समाह्वहे ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वाऽसितैः पद्मैः शतैर्दशशतादिकं। सपूज्य च महादेवं राजा'विद्या'पुनर्जपेत् (?) ॥१२॥
अतिभक्तिं तु संचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वर। सानिध्यमगमत्पुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया ॥१३॥
श्रुत्वेवं गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम्। भस्मदिग्धं विहृपाक्ष शरत्कुन्देन्दुवर्चसम् ॥१४॥
शार्दूलचवर्मवसनं शशाङ्काङ्कितमूर्धजम्। महीं निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत् ॥१५॥

श्वेत उवाच

कालस्य यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि। कालस्य वशमापन्नो' बालको द्विजपुत्रकः' ॥१६॥
जीवत्वेष पुनर्बाल इत्येवं श्रुतमाहितम्। अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्वयम् ॥
ययोक्तायुष्यसयुवत क्षेमं कुरु महेश्वर। ॥१७॥

काल की प्रणना से मरे पुत्र को—जिसके अभी दाँत भी नहीं निकले थे—लेकर उस राजा ने पास आए। विप्रगण !
राजा ने इस प्रकार उस सत्ये से, गत प्राण बालक को देख कर उसका पुनर्जीवित कर देने की प्रतिज्ञा की ॥६-१०॥

राजा ने कहा—यदि मैं सात दिन के भीतर यमलोक गए इस बालक को लौटा न लाऊँ तो जलती चिता में प्रवेश कर मरुम हो जाऊँगा ॥११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार प्रतिज्ञा कर राजा शत सहस्र (एक लाख) नील कमला से महादेव की पूजा कर पुनर्विद्या (मन्त्र) का जप करने लगा। जगदीश्वर शंकर राजा की उस उत्कृष्ट भक्ति को देख कर अति प्रसन्न हुए और पार्वती के सहित नृपति के समीप आकर बोले—'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।' भगवान् शंकर की ऐसी वाणी को सुन कर राजा ने अकस्मात् देखा कि शरीर पर भस्म लगाए, तीन नेत्र बाले, शरत्कालीन चन्द्रमा और पुच्छ के समान शुभ्र, व्याघ्रचर्मधारी, मालचन्द्र शंकर सामने खड़े हैं, तुरन्त साष्टांग दण्डवत् विद्या और फिर उसने कहा— ॥१२-१५॥

श्वेत ने कहा—प्रभो ! यदि मुझको देख कर आपके हृदय में करुणा उत्पन्न हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो 'यम' के वश मे गया (मृत) यह ब्राह्मण-शिशु पुनर्जीवित हो जाय, ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की है।' अकस्मात् मरे हुए इस बालक पर अनुग्रह कर इसे पूर्ववत् जीवित (दीर्घायु) कर दीजिए। महेश्वर ! यही शुभ अनुग्रह कीजिए ॥१६-१७॥

१ क य ० त पाचशताब्दिक । त० । २ क ० येय सपुत्रो हि चि० । ३ क स राजवि० । ४ स ० नयंयेत् ।
५ क ० प्रो जीवतु द्वि० । ६ क ० कः । आनयिष्ये पु० ।

ब्रह्मोवाच

इवेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुदं प्राप हरस्तदा। कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयंकरम्॥१८॥
नियम्य कालं दुर्धयं यमस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः। बालं सजीवयामास मृत्योर्मुह्यगतं पुनः॥१९॥
कृत्वा क्षेम जगत्सर्वं मुनेः पुनं स त द्विजाः। देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥२०॥
एवं सजीवयामास मुनेः पुनं नृपोत्तमः॥२१॥

मुनय ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवाव्यय। ब्रूहि नः परमं तथ्यं श्वेताख्यस्य च सांप्रतम्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्ङ्गलाः सर्वसत्त्वहितावहम्। प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छथ ममानघाः॥२३॥
माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्भुव प्राप्नोति भानव॥२४॥
श्रुतवानृषिभिः। पूर्व माधवाख्यस्य भो द्विजाः। शृणुध्वं ता कथां दिव्या भयशोकातिनाशिनीम्॥२५॥
स कृत्वा राज्यमेकाग्र्यं वर्षाणां च सहस्रशः। विचार्य 'लौकिकान्धर्मान्वैदिकान्प्रियमास्तथा॥२६॥
कोशवाराधने विप्रा' निश्चितं व्रतमास्थितः। स गत्वा परमं क्षेत्रं सागरं दक्षिणाश्रयम्॥२७॥
तटे तस्मिन्नुदुम्बे रम्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके। श्वेतोऽथ कारयामास प्रसाद शुभलक्षणम्॥२८॥

ब्रह्मा बोले—राजा श्वेत की इन बातों को सुन कर सकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सब प्राणियों को भयभीत करने वाले काल की आज्ञा दी। यम देव के आज्ञाकारी दुर्धय काल की वशीभूत कर मृत्यु के मुख में गए बालक को पुन जीवित कर दिया। इस प्रकार विप्रवृन्द। शंकर ने उस मुनिभुव को जीवित कर सारे ससार का कल्याण किया। और देवी पार्वती के सहित वह वहीं पर अन्तर्हित हो गए॥१८-२१॥

मुनियों ने कहा—हे त्रैलोक्य के आदिकारण, अव्यय, देवाधिदेव जगत्पते। इस समय राजा श्वेत की परम रहस्यमयी बातें अधिकतर रूप से हम लोगों को बतलाइये॥२२॥

ब्रह्मा बोले—हे निष्पाप मुनिवृन्द। जो मुझसे पूछ रहे हो, उस सम्पूर्ण लोक के लिए उपकारक रहस्य को यथार्थ रूप से कह रहा हूँ, तुम लोग मुने॥२३॥ श्वेतमाधव का माहात्म्य अखिल पापी का नाशक है, जिसको सुन कर मनुष्य अपनी इष्ट कामनाओं का निरवय हो प्राप्त करता है॥२४॥ विप्रवृन्द। प्राचीनकाल में ऋषिपति ने इस श्वेत माधव की कथा सुनी, उसी दिव्य, मय, दौक और वीरता को मध्य करने वाली कथा को तुम लोग सुने॥२५॥ उस राजा श्वेत ने एकाग्र भाव से एक हजार वर्ष तक लोक-धर्म और वैदिक नियमों का यथावत् पालन करते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया॥२६॥ विप्रवृन्द। राज्य-शासन के अनन्तर उसके मन में भगवान् की आराधना का दृढ संकल्प उत्पन्न हुआ। इस विचार से दक्षिण दिशा में पवित्र समुद्र के तट पर स्थित शुभ तीर्थ में इष्ट मन्दिर के समीप

धन्यन्तरशतं चक्रे देवदेवस्य दक्षिणे । ततः श्वेतेन विप्रेन्द्रा श्वेतशत्रुमयेन च ॥२९॥
 कृतं स भगवान्छ्वेतो माधवश्चन्द्रसन्निभः । प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टा स्वयं तु स ॥३०॥
 दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो 'दीनानाथतपस्विनाम् । अथानन्तरतो राजा माधवस्य च सन्निधौ ॥३१॥
 महीं निपत्य सहस्रा ओंकारं द्वादशाक्षरम् । 'जपन्त मौनमास्थाय मासमेकं समाधिना ॥३२॥
 निराहारो महाभाग सम्यग्विष्णुपदे स्थितः । जपान्ते स तु देवेश सस्तोतुमुपचक्रमे ॥३३॥

। श्वेत उवाच

ओ नमो वामुदेवाय नमः सकर्षणाय च । प्रद्यम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४॥
 नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे । निर्गुणायान्तर्ध्याय शुचये 'शुक्लकर्मणे ॥३५॥
 ओ नमः पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च । नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नमः ॥३६॥
 ओ नमः पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय मीढुषे । नमः सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७॥
 ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे । वरिष्ठाय 'वरेण्याय' शरण्यायाच्युताय च ॥३८॥
 ओ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च । बालार्कसोमनेत्राय मुञ्जकेशाय धीमते ॥३९॥
 केशवाय नमो नित्यं नमो नारायणाय च । माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४०॥

ही परम मनोहर सौधान्तर (४०० हाय) की नाप का उत्तम मन्दिर बनवाया उसमें श्वेत पत्थर की चट्टानों
 रमान स्वच्छ भगवान् श्वेतमाधव की विधिवत् मूर्ति स्थापित का दान अनाथ और तपस्वी ब्राह्मणों का दान दिया
 ॥२७ ३०॥ इसके उपरान्त राजा ने माधव मूर्ति के समीप जाकर सहस्रा स्तोत्रों प्रणाम किया। वह एक
 मास तक मौन रह कर समाधिसुख हो द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करता रहा। जप-काल में वह भू-भ
 निरुद्ध रह कर अपने मन का भगीर्नाथ विष्णु के चरणों में लगा रहा। जप में उपरान्त वह शत्रु
 देवों की स्तुति करने लगा ॥३१ ३३॥

श्वेत ने कहा—आ वामुदेव सन्तपन प्रद्युम्न अनिरुद्ध और नारायण का नमस्कार है ॥३४॥ बहुरूपाय
 विश्वरूप विष्णु तर्कित अगम्य पवित्र तथा शुभ वस्त्र धारण करने वाला ब्रह्मा का नमस्कार है ॥३५॥ पद्मनाभ कमल वस्त्र धर
 उत्तम दाता का तथा कमल के समान वण और हस्त वाल प्रभु का नमस्कार है ॥३६॥ पद्मगर्भ समान सृष्टि मन्त्र
 का वामानादाता की नमस्कार है। सहस्र चरण और मुखावा भद्र (यन्त्र रूप) की नमस्कार है ॥३७॥
 वरद मुष्टि प्रतिमा वाक् श्रेष्ठ वरण्य शरण्य और अच्युत भगवान् वरद को नमस्कार है ॥३८॥ बालरूप धारण
 करने वाला नवीन कमल के समान वाक् शिवीन सुख और चन्द्रमा रूपी मन्त्र तथा कामल वंश वाक् शिव
 का नमस्कार है ॥३९॥ केशव का नमस्कार है, नारायण का मेघ नियम नमस्कार तथा वरिष्ठ माधव और गोविन्द

१ स ० श्वेतमा० । २ स ० नाना च त० । ३ स ० अथाप मो० । ४ स ० स सर्वकर्मणाम् । ५ स ० यते नमः ।
 ६ स ० १ स वरिष्ठाय० । ७ स ० ४ स वरदाय० ।

ओं नमो विष्णवे नित्यं देवाय यस्तुरेतसे। मधुसूदनाय नमः शुद्धायाशुघराय च॥४१॥
 'नमोज्जन्ताय सूक्ष्माय नमः। श्रीवत्सधारिणे। त्रिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च॥४२॥
 सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं गोप्त्रे धात्रे' नमो नमः। नमोऽस्तु गुणभूताय निर्गुणाय नमो नमः॥४३॥
 नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे। नमो वामननेत्राय नमो वामनबाहिने॥४४॥
 'नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वव्यवतएपिणे। अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च॥४५॥
 सत्सारार्णवपीताय प्रशान्ताय स्वरूपिणे। शिवाय सौम्यरूपाय च्छ्वायोत्तारणाय च॥४६॥
 भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च। भवसंघातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः॥४७॥
 ओं नमो दिव्यरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च। 'सोमसूर्याशुकेशाय गोब्राह्मणहिताय च॥४८॥
 ओ नमः ऋग्वत्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे। ऋग्वस्तुताय नमस्तुभ्य नमः ऋक्सामताय च॥४९॥
 ओं नमो यजुषा धात्रे यजुरूपधराय च। यजुर्याग्याय जुष्टाय यजुषा पतये नमः॥५०॥
 ओ नमः श्रीपते देव श्रीधराय धराय च। श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने॥५१॥
 ओ नमः सामरूपाय सामध्वनिधराय च। ओं नमः सामसौम्याय सामयोगविदे नमः॥५२॥
 साम्ने च सामगीताय ओ नमः सामधारिणे। सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च॥५३॥
 नमस्त्वयर्वेशिरसे नमोऽयर्वस्वरूपिणे। नमोऽयर्वपादाय नमोऽयर्वधराय च॥५४॥

१। बार-बार नमस्कार है॥४०॥ विष्णु, वासुदेव देव का भरा नित्य नमस्कार है, शुद्ध स्वरूप, तजामय मनुसूदन का नमस्कार है॥४१॥ अन्तः, सूक्ष्म, श्रीवत्सधारी, त्रिनित्रम, दिव्य पीत वस्त्र धारण करने वाले भगवान का नमस्कार है॥४२॥ सृष्टि, पालन और पापण करन वाल, गुणभूत, निर्गुण ब्रह्म को बार-बार नमस्कार है॥४३॥ वामन रूप वामन कर्म, वामन नेत्र और वामन अश्व (यान) वाले वामन भगवान् को नमस्कार है॥४४॥ रम्य, पूज्य, अन्यक्त स्वरूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और मय दूर करने वाल भगवान् को नमस्कार है॥४५॥ सत्सार रूपा सागर के पार करने के लिए पीत के समान, प्रशान्त रूप वाल, सौम्य रूप शिव, उद्धारकर्ता हृद, सत्सार का नाश करने वाले, सत्सार के मुचदाता, सत्सारव्यापी और सृष्टिकर्ता को नमस्कार है। दिव्य रूप वाले, साम, अग्नि और वायु रूप म लाख म प्रसिद्ध साम और सूर्य की किरण रूपी केश वाले तथा या ब्राह्मण के हितकारी ब्रह्म का नमस्कार है॥४६-४८॥ पद नम रूपवाले ऋग्वेद स्वरूप ऋचाया स स्तुत, ऋग्वेद की सायना व परम लम्ब्य तुमको नमस्कार है॥४९॥ यजुर्वेद की धारण करने वाले फिर भी यजुषरूपधारी यजुष स पूजित और त्रुपन वन्दित पालन ब्रह्म को नमस्कार है॥५०॥ श्रीपति ! हे देव ! आपका नमस्कार है, श्रीधर, लक्ष्मी के स्वामी, उदार, य गया के द्वारा स्नान और स्वयं भी यागी नारायण का नमस्कार है॥५१॥ साम स्वरूप साम की सौम्य ध्वनि स गेय, साम के समान मधुर और सामग्रान के ज्ञाता, साम से गाए गए और सामवदधारी, साम यज्ञ व ज्ञाता और साम के कर्त्ता का नमस्कार है॥५२-५३॥ अथर्व निर, अथर्व रूप वाल, अथर्व रूपा चरण वाल अथर्व अथर्व के कर्त्ता के लिए

१। स तुभ्यं। २। वं य सूर्ये०। ३। ऋग्वेद अजरा०। ४। नम पी०। ५। वं भवधरा०। ६। हर्षे।
 स हर्षे। ७। स गुणयुक्ताय। ८। स ओज्जन्ताय। ९। धर धररूपधराय। १०। सूर्याग्निके०।

ओ 'नमो वज्रशीर्षाय मधुकंठभघातिने । महोदधिजलस्थाय । वेदाहरणकारिणे ॥५५॥
 नमो 'दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः । नमो भगवते सुम्य वासुदेवाय ते नमः ॥५६॥
 नारायण नमस्तुभ्य नमो लोकहिताय च । ओ नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च ॥५७॥
 गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च । प्रलोक्यतेजसा कर्त्रे नमस्तेज स्वरूपिणे ॥५८॥
 योगीश्वराय 'शुद्धाय' रामायोत्तरणाय च । सुखाय सुखनेत्राय नमः सकृत्धारिणे ॥५९॥
 वासुदेवाय बन्धाय धामदेवाय वै नमः । देहिना देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च ॥६०॥
 देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमौलिने । नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च ॥६१॥
 ओ नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय' च । नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने ॥६२॥
 यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे । सकर्षणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च ॥६३॥
 'भेदघोषस्वनोत्तोरणवेगलाङ्गलधारिणे । नमोऽस्तु ज्ञानिना ज्ञान नारायणपरायण ॥६४॥
 न मेऽस्ति त्वामूते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो । अतस्त्वां सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल ॥६५॥
 मल यत्कायज वार्षपि मानसं चैव केशव । न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामूतेऽच्युत ॥६६॥
 ससर्गाणि समस्तानि बिहाय 'त्वामुपस्थित' । सगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्सलाभाय वेशय ॥६७॥
 कष्टमापत्सुदुष्पार ससार वेद्मि केशव । तापत्रयपरिक्लिष्टस्तेन त्वां शरण गतः ॥६८॥

हमारा नमस्कार है ॥५४॥ वज्र का समान गिर वाले, मधुकंठम को मारने वाले एवं महान् समुद्र के जल में स्थित और वेदा के उद्धारकर्त्ता का नमस्कार है ॥५५॥ परम प्रभामय हृषीकेश वासुदेव भगवान् तुमका भय नमस्कार है ॥५६॥ नारायण । लोक हित करने वाले, माहताप, मयम गवारी आपका नमस्कार है ॥५७॥ ससार का गति देने वाला, बाधाहारी को नमस्कार है, निर्दोष का तेजोमय करने वाला, तेजस्वरूप भगवान् का नमस्कार है ॥५८॥ योगीश्वर, शुद्ध शक्ति से उद्धार करने वाला यम का नमस्कार है, सुखद नेत्र वाले, सुखस्वरूप और सुदृढ धारण करने वाले को नमस्कार है ॥५९॥ बन्धनाय वासुदेव धामदेव, देहधारिणा के सप्टा और भदमाव को नष्ट करने वाला को नमस्कार है ॥६०॥ देवताओं से वर्तित दिव्य मुकुट वाला, वास रूप, निवास रूप तथा वासव्यवहार का नमस्कार है ॥६१॥ वसु (जत्र) की मूर्ति करने वाला, वसु का वाम देने वाले, यज्ञ स्वरूप योगी और यज्ञपति का नमस्कार है ॥६२॥ यति और योगिया का ईश यज्ञाङ्गधारी प्रलम्ब नामक अंगुल के मारने वाले शक्यण का नमस्कार है ॥६३॥ मय ध्वनि से मा अधिष्ठ गम्भार ध्वनि वाला, हल धारण करने वाला ज्ञानिना म जान रूप तथा नारायण-परायण को नमस्कार है ॥६४॥ प्रभो । इस तरह से पार उलटने का गति तुमसे बढ़ कर कोई मया महापद नहीं है, अतः भक्त-वत्सल । मैं सब प्रकार से आगवा शरण में हूँ ॥६५॥ देवता । अच्युत । भगव । तुमको छोड़ कर शरणरहित और मानसिक पाप का पाप वाला दूसरा कोई नहीं है ॥६६॥ भगव । मैं समस्त सम्बन्धों का त्याग कर तुम्हारे समीप आया हूँ इसलिए तुम्हारे साथ मय दुःख सबय हा जाय जिससे आत्मज्ञान का जाऊँ ॥६७॥ भगव । कष्ट

१४ ओ वासिष्ठी ० १५ दीश्वर ० १६ वागीश्वराय । ४४ वा शुद्धाय । ५४ वा ०५ धामा ०
 १६ एतत्तत्त्वज्ञान । ७८ ०५ देवता ० । ८८ ० मुपाधिक । ९४ वा ०८ । वागीश्वर ०

एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव। आकर्षितं च लोभाद्यं रतस्त्वामहमाश्रितः॥६९॥
नास्ति किञ्चित्सुखं विष्णो संसारस्यस्य देहि नः। यया यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते॥७०॥
तया फलविहो न तु सुखमात्मयन्तिकं लभेत्। नष्टो विवेकद्रव्योऽस्मि दूषयते जगदातुरम्॥७१॥
गोविन्द नाहि संसारान्मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि। भग्नस्य मोहसलिले निवृत्तारे भवार्णवे॥
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते॥७२॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राजा श्वेतेन भो द्विजा। तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरोत्तमे॥७३॥
भक्तिं तस्य तु सचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरुः। आजगाम नृपस्याग्रे सर्वदेवैर्बतौ हरिः॥७४॥
नीलजोमूतसंकाशः पद्मपत्रायतेक्षणः। दधत्सुदर्शनं धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम्॥७५॥
क्षीरोदजलसंकाशो विमलश्चन्द्रसनिभः। रराज वामहस्तेऽस्य पाञ्चजन्यो महाद्युतिः॥७६॥
पश्चिराजष्वजः श्रीमान्गदाशाङ्गासिधूकप्रभुः। उवाच साधु भो राजग्यस्य ते मतिरुत्तमा॥
यदिदं वर भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

ध्रुवैव देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम्। प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः॥७८॥

और आपत्तिया के कारण, दुःख से पार पाने योग्य इस संसार को मनीमार्ति जानता हूँ। अब मैं त्रिविध ताप से सतप्त हो गया हूँ, इसलिए प्रभो! आपकी धारण आया हूँ॥६८॥ तुम्हारी माया के कारण यह साप संसार कामनाया से मुख, लिप्त और लाम त्राघादि से आच्छादित है, अतः मैं तुम्हारा आश्रित हूँ॥६९॥ विष्णो! सांसारिक जीवा का कुठ भी मुख प्राप्त नहीं। यज्ञेश! ज्या-ज्यो आप मे मनुष्य का चित्त लगता जाता है, त्यो-त्यो पञ्चाकाशा रहित आत्यन्तिक मुख उसकी मिलते जाते हैं। मैं ज्ञान शून्य और नष्ट-सा हूँ, यह साप संसार व्याकुल दिग्विद पड रहा है। गोविन्द! रक्षा करो। तुम्हीं संसार-सागर से मेरा उद्धार कर सकते हो। पुण्डरीकाक्ष! इस मोह रूपी जल से भरे, पार न करने योग्य संसार सागर में मग्न (डूबे हुए) मुझ जैसे के उद्धारक तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है॥७०-७२॥

ब्रह्मा बोले—‘विप्रबृन्द’ उस दिव्य, प्रसिद्ध पुरोत्तम नामक पवित्र तीर्थ में इस प्रकार राजा श्वेत ने भगवान् की स्तुति की। उसकी भक्ति से आच्छादित होकर नील मेघ के समान कान्तिमान् कमल-पत्र के समान बड़े और मनोहर नेत्र वाले, हस्ताग्र में प्रकाशमान सुदर्शन धारण किये निर्मल चन्द्रमा के समान कान्तिमान्, क्षीरसागर के जल के समान प्रमाणपूर्ण, बाघों हाथ में महातेजोमय पाञ्चजन्य दण्ड धारण किये हुए गरुड के ऊपर आसीन तथा यदा, धनुष, सङ्ग धारण किये हुये देवदेव जगद्गुरु हरि देवतात्रा के सहित राजा के पास आए और बोले—‘राजन्! तुम धन्य हो, तुम्हारी उत्तम बुद्धि प्रशंसनीय है। अनघ! अभीष्ट वर माँगो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ,॥७३-७७॥

ब्रह्मा बोले—देवाग्निदेव भगवान् की ऐसी परम सुधापयी वाणी को सुनकर राजा श्वेत ने नमस्सल्य हो प्रणाम करते हुए कहा—॥७८॥

श्वेत उवाच

यद्यहं भगवन्भवतः प्रयच्छ वरमुत्तमम्। आब्रह्मभवनाद्बुधं वैष्णवं पदमव्ययम् ॥७९॥
विमलं विरजं शुद्धं संसारसङ्गवर्जितम्। तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०॥

श्रीभगवानुवाच

यत्पदं विबुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः। नाभिगच्छन्ति यद्रम्यं परं पदमनामयम् ॥८१॥
यास्यति परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च। सर्वाल्लोकानतिश्रम्य मम लोकं गमिष्यति ॥८२॥
कीर्तिस्तवान्न राजेन्द्र त्रींल्लोकांश्च गमिष्यति। सानिध्यं मम चैवान्न सर्वदेव भविष्यति ॥८३॥
श्वेतगङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः। कुशाग्रैणापि राजेन्द्र श्वेतगाङ्गेयमम्बु च ॥८४॥
स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भुक्ता ये समाहिताः। यस्त्विमां प्रतिमाङ्गच्छेन्माधवाख्यां शशिप्रभाम् ॥८५॥
शङ्खगोक्षीरसकाशामशेषाघविनाशिनीम्। तां प्रणम्य सकृद्भुक्त्वा पुण्डरीकनिभेक्षणाम् ॥८६॥
बिहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीयते। मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः ॥८७॥
गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः। भुङ्क्ति विपुलान्भोगान्यथेष्टं मामकं सह ॥८८॥
च्युतस्तस्मादिहाऽजात्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। वेदवेदाङ्गविच्छ्रीमान्भोगवाञ्छिचरजीवितः ॥८९॥
गजाश्चरथयानादयो धनधान्यावृतः शुचिः। रूपवान्बहुभाग्यश्च पुत्रपौत्रसगन्वितः ॥९०॥

श्वेत बोले—भगवन्! यदि मैं तुम्हारा भक्त हूँ, तो मुझे यह उत्तम वर दो। जगत्पते! मैं तुम्हारे अनुग्रह से उस परम अज्यय वैष्णव पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जो ब्रह्मलोक से भी ऊपर, विमल, रजोगुण से रहित, शुद्ध और संसार के आवर्पण से परे हैं ॥७९-८०॥

श्री भगवान् बोले—सभी देवता, मुनि, सिद्ध और योगीजन भी जिस मनोहर, व्याधि-रहित परम पद को नहीं प्राप्त करते हैं, राज्य-सुख भोग कर भी तुम सब लोको से परे मेरे उस परम स्थान एवं श्रेष्ठलोक को जाओगे ॥८१-८२॥ राजेन्द्र! तुम्हारी कीर्ति विभुवन में फैलेगी और मेरा सर्वदा ही इस क्षेत्र में निवास रहेगा। इस जलोदधि को श्वेत गंगा, इस नाम से देव और दानव पुकारेंगे। राजेन्द्र! इस श्वेतगंगा के जल को कुशाग्र से भी छूँकर मेरे एतान्न भवन स्वर्ग प्राप्त करेंगे। जो शशि के समान वाग्मिनी, शल तथा गो दुग्ध के समान श्वेत, समस्त पापों को नष्ट करने वाली और मनोहर कमल के समान नेत्रवाणी इस माधव की प्रतिमा के समीप जाता है एवं एक बार भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह भक्त सब लोकों को छोड़कर मेरे लोक में स्थान प्राप्त करता है और पूजित होता है ॥८३-८६॥ वह परमन्तर पयन्त देव-नन्दाओं के साथ रह कर मधुर भान का भवन करता है, सिद्ध भक्त उनकी सेवा करते हैं और वह मेरे पार्षदों के साथ विपुल भोगों का श्रेष्ठ भोग करता है ॥८७-८८॥ पुनः वही मेरे च्युत होकर इस लोक में ब्राह्मण पुत्र में जन्म लेता है वह वैद-वैशाख का ज्ञानी श्रीमार्ग विरज्जीवी, गन, अश्वरथ, राजा के यन्त्रों से सज्ज, पवित्र, रूपवान्, भाग्यशाली और पुत्र-पौत्रादि वाग्म होता

पुण्योत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽयं सागरे । त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥९१॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवद्विषंवादे श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम् । एकार्णवजले 'पूर्वं' रोहितं रूपमास्थितम् ॥१॥
वेदानां 'हरणार्थाय' रसातलतले स्थितम् । चिन्तयित्वा क्षितिं सम्पत्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
आद्यान्तरणं रूपं माधवं मत्स्यरूपिणम् । प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सर्वदुःखाद्विमुच्यते ॥३॥
प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम् । काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४॥
यत्समाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः । दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वैष्णवः सत्यसंगरः ॥५॥

है ॥९०॥ तदुपरान्त पुण्योत्तमतीर्थं मे आकर सागर तट पर स्थित वट की छाया में भगवान् का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर परम पद को प्राप्त करता है ॥९१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में श्वेतमाधव-माहात्म्य-वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—श्वेतमाधव का दर्शन कर समीप में ही स्थित उस मत्स्यमाधव को विलम्ब भाव से प्रणाम करने पर मनुष्य सब दुःखों से छूट जाता है। पूर्वकाल में मत्स्यमाधव ने समुद्रमग्न पृथ्वी पर रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था तथा वेदा का उद्धार करने के लिये वह रसातल में स्थित रहे और पृथ्वी को पुनः पूर्व स्थान पर प्रतिष्ठित किया था, यही भगवान् का मत्स्यरूप में प्रथम अवतार था। वह मनुष्य, जो मत्स्य को प्रणाम करता है वह उसी स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ भगवान् विष्णु स्वयं निवास करते हैं। समय पर (सृष्टि काल में) वह पुनः इस मृत्युलोक में आकर राजा होता है। मनुष्य मत्स्यमाधव का दर्शन कर अत्यन्त पराक्रमी, धन्य, दानी, भोगी यत्कर्ता, विष्णुमूल और सत्यप्रेमी होता है। लौकिक सुख-भोग के पश्चात् वैष्णव योग को पाकर मोक्ष प्राप्त

१क. ख. पूर्ण। २क. मोहित। ३ख. करणार्थाय।

योग प्राप्य हरे पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात् । मत्स्यमाधवमाहात्म्य मया सपरिकीर्तितम् ॥
य दृष्ट्वा मुनिशार्दूल सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६॥

मुनय ऊचुः

भगवञ्श्रोतुमिच्छामो मार्जनं वरुणालये । क्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफलं वद ॥७॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि । भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सप्राप्य पुण्यमुत्तमम् ॥८॥
मार्कण्डेयहृदे स्नानं पूर्वकाले प्रशस्यते । चतुर्दश्या विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥
तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकालं प्रशस्यते । पौर्णमास्या विशेषेण हयमेधफलं लभेत ॥१०॥
मार्कण्डेय वट कृष्ण रोहिणेय महोदधिम् । इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थीविधि स्मृत (?) ॥११॥
पूणिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्ष यदा भवेत् । तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थं राजं परं शुभम् ॥१२॥
कायवाङ्मानसं शुद्धस्तद्भावो नान्यमातसः । सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो वोतरागो विमत्सर ॥१३॥
कल्पवृक्षवट रम्य तत्र स्नात्वा जनादनम् । प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत त्रिवारं सुसमाहित ॥१४॥
यदृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भवात् । पुण्यं चाऽऽप्नोति विपुलं गतिमिष्टां च भो द्विजा ॥१५॥

करता है। मुनिवर ! मैंने मत्स्यमाधव का माहात्म्य कह दिया जिसका दशन कर मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है ॥१६॥

मुनियो ने कहा—भगवन् ! अब हम लोग समुद्र में स्नान करने की विधि स्नान दानादि करने का फल भलीभाँति सुनना चाहते हैं कृपया सुनाइए ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! मार्जन की विधि और भक्तिपूर्वक अन्य भाव से तीर्थ में जाने से जो उत्तम पुण्य प्राप्त होता है उसे सुनिए ॥८॥

मार्कण्डेय हृद का प्रातःकालीन स्नान पापनाशक होता है चतुर्दशी के दिन का स्नान तो विशेष रूप से सभी पापों को दूर करता है ॥९॥ उसी प्रकार यो तो सबदा समुद्र का स्नान प्रशस्त माना गया है परन्तु पूणिमा के दिन स्नान करने से विशेष रूप से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥१०॥ मार्कण्डेय हृद कृष्ण वट रोहिण्य महोदधि (सागर) इन्द्रद्युम्न सर—इन पाँच तीर्थों के स्नान की विशेष विधि कहीं गई है ॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूणिमा यदि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन विशेष रूप से परम शुभ तीर्थराज की यात्रा करनी चाहिये ॥१२॥ वहाँ शरीर वाणी और मन से शुद्ध एवं सभी प्रकार के आन्तरिक द्वन्द्व राग ईर्ष्या से मुक्त हो अनन्य मन और भावना से मनोहर कल्पवटवृक्ष के समीप स्नान कर एकाग्र हो जनादन की तीन बार प्रदक्षिणा करे ॥१३॥ १४॥ विप्रगण वहाँ पर जनादन भगवान् का दशन कर मनुष्य अपने सात जन्म के पापों से छूट जाता है और अत्यन्त पुण्य तथा मनचाहे

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाणं च युगे युगे। यथासंख्यं च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम्॥१६॥
 वटं वटेश्वरं 'कृष्णं' पुराणपुराणं द्विजाः। वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु॥१७॥
 योजनं पादहीनं च योजनार्थं तदर्धकम्। प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादीं परिकीर्तितम्॥१८॥
 'ययोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु तं वटम्। दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम्॥१९॥
 यनासौ दृश्यते विष्णुः' स्वर्गद्वारं मनोरमम्। सागरान्मभः 'समाकृष्टं' काष्ठं सर्वगुणान्वितम्॥२०॥
 प्रणिपत्य ततस्तं भो परिपूज्य ततः पुनः। मुच्यते सर्वरोगाद्यस्तथा पापैर्ग्रहदिभिः॥२१॥
 उपसेनं पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण 'सागरम्'। गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायणं परम्॥२२॥
 न्यसेदष्टाक्षरं मन्त्रं पश्चाद्वस्तशरीरयोः। ॐ नमो नारायणायेति यं वदन्ति मनीषिणः॥२३॥
 किं कार्यं बहुभिन्नेर्मनोविग्रमकारकैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥२४॥
 आपो नरस्य सूनृत्वान्नारा इतीह कीर्तिताः। विष्णोस्तास्त्वयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥२५॥
 नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः। नारायणपरा यज्ञा नारायणपराः क्रियाः॥२६॥
 नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः॥२७॥
 नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः। अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके॥२८॥

फल को प्राप्त करता है ॥१५॥ विप्रण। मैं उस वट के नाम युगानुसृत प्रमाण और कृतादि युगा के अनुसार सख्या क्रमपूर्वक कहूँगा, ध्यानपूर्वक सुनो। द्विजगण। कृत आदि युगा में इस वट के वट, वटेश्वर, कृष्ण और पुराण पुराण—ये नाम कहे गये हैं ॥१६-१७॥ इस कल्पवृक्ष का प्रमाण एक योजन, पादोन योजन (तीन कोस) आधा (दो कोस) उसका आधा (एक कोस) त्रयश कृत त्रेता, द्वापर और कलि में कहा गया है ॥१८॥ ययोक्त मन्त्र से उस वट का नमस्कार कर दक्षिण की ओर तीन सौ घन्वन्तर (१२०० हाथ) पर्यंत जाना चाहिए। जहाँ विष्णु मनारम स्वर्गद्वार तथा सनूत्र-जल के द्वारा लाया गया सर्वगुणसम्पन्न काष्ठ दिखाई देता है ॥१९-२०॥ वहाँ पर भगवान् न। नमस्कार और पुनः पूजन करने से मनुष्य सब प्रकार के रोग, पाप और ग्रह-पीडा से छूट जाता है ॥२१॥ पहले उपसेन का दशन कर स्वर्ग द्वार से सागर के समीप जाकर, आचमन करके पवित्र हो जाय, फिर नारायण का स्मरण कर हाथ और शरीर पर 'ओ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र से न्यास करे। अन्य बहुत से भ्रम पैदा करने वाले मन्त्रों से कोई लाभ नहीं, यह ओ नमो नारायणाय मन्त्र ही सभी अर्थों का साधक है ॥२२-२४॥ नर से उत्पन्न होने के कारण आप (जल) को 'नार' इस नाम से इस लोक में कहा गया है, वह पहले-पहल विष्णु का निवास-स्थान बना इसलिये विष्णु 'नारायण' इस नाम से विख्यात हुये ॥२५॥ वेद द्विज, यज्ञादि सभी क्रियायें पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि वायु और मन सभी नारायण पर हैं, अर्थात् नारायण की उपासना में लीन और नारायण रूप हैं। अहंकार और बुद्धि दोनों नारायणात्मक हैं, मूल, मध्य, मविष्य और समस्त जीव नाम से प्रसिद्ध पदार्थ तथा स्थूल, सूक्ष्म पर ये सभी नारायणात्मक हैं ॥२६-२९॥ शब्द, रस आदि सभी विषय, श्रोत्र (कान) आदि इन्द्रियाँ, प्रकृति—यहाँ तक कि पुरुष भी

१क पूर्व। २ग पूर्वोक्तेन। ३क ग चिह्न। ४ग ०माकीर्ण का०। ५ख ०ते दुष्टरोगैस्तु तथा।
 ६क सगतम्। ७क ०त्वा तत्र शुचिर्भूत्वा ध्या०। ८क ०स्तास्त्वय०।

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञितम्। स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम्॥३९॥
 शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि च। प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मकाः॥४०॥
 जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे। अयच्छम्य इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः॥४१॥
 किं चान्न बहुनोक्तेन जपदेतच्चराचरम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम्॥४२॥
 नारायणात्परं किञ्चित्त्रेह पश्यामि भो द्विजाः। तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम्॥४३॥
 आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः। तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम्॥४४॥
 स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः। स्मरेत्तारायणं ध्यायेद्वस्ते काये च विन्यसेत्॥४५॥
 ओंकारचनकारं च अङ्गुष्ठे हस्तयोग्यं सेत्। शेषहं (पाहं) स्ततलं (ले) यावत्तर्जण्यादिषु विन्यसेत्॥४६॥
 ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत्। मोकारं वामकट्या तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत्॥४७॥
 राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके। णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत्॥४८॥
 अयश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽप्रतः। ध्यात्वा नारायणं पश्चाद्वारभेत्कवचं बुधः॥४९॥
 पूर्वं मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः। पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे॥४०॥
 पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैऋते माधवोऽज्ययः। वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः॥४१॥
 भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रमः। कृत्वेव कवचं पश्चादात्मानं चिन्तयेत्ततः॥४२॥

नारायणात्मक है॥३९॥ जल, स्थल, पाताल, स्वर्ग, लोक, आकाश और पहाड़ सर्वन प्रभु नारायण व्यापक रूप से स्थित है॥३९॥ इस त्रिपय में और अधिक क्या कहा जाय, यह सचराचर जगत् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सब कुछ नारायणात्मक है॥४०॥ द्विजगण । नारायण के अतिरिक्त कोई भी वस्तु यहाँ नहीं दिखाई दे रही है, यह सारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चराचरात्मक जगत् उसी नारायण से व्याप्त है॥४१॥ विष्णु का जल ही निवास स्थान है वे ही जल के स्नानी हैं इसलिये जल में सर्वदा उस अग्रह नारायण का स्मरण करना चाहिये॥४२॥ स्नान के समय तो विशेष रूप से जल में पवित्र भाव से स्थित होकर नारायण का स्मरण, ध्यान और हस्त तथा शरीर पर 'अग्न्यास करना चाहिये॥४३॥ पहले ओंकार और नकार को हाथों के अंगुष्ठों पर न्यास करे, शेष मन्त्रभाग से हस्त तल (हथेली) से लेकर तजनी आदि तक न्यास करना चाहिए॥४४॥ पुन ओंकार का बायें और नकार को दाहिने चरण पर न्यस्त करे। मोकार को वाम तथा नाकार को दक्षिण कटि भाग पर स्थापित करे॥४५॥ इसी प्रकार णकार को नाभि-देश में, यकार को बाईं मुड़ा पर, णकार को दाहिनी मुड़ा पर रखकर यकार को शिर भाग पर स्थापित करे।॥४६॥ तदनन्तर अध, ऊर्ध्व, हृदय, पार्श्व (बागल) पृष्ठ (पीछे) और अग्र भाग में नारायण का ध्यान कर विद्वान् आगे कहे हुये नारायण कवच का पाठ प्रारम्भ करे॥४७॥ गोविन्द पूर्व में, मधुसूदन दक्षिण में, श्रीधर पश्चिम में, इसी प्रकार उत्तर में केशव देव मेरी रक्षा करे॥४८॥ और अग्निर्कोण में विष्णु नैऋत में अविनाशी माधव, वायव्य में हृषीकेश तथा ईशान में भगवान् वामन मेरी रक्षा करें॥४९॥ एव नू-पठ पर वाराह तथा आकाश में त्रिविक्रम विष्णु मेरी रक्षा करें। मैं ही सब, चक्र और गदाधारी भगवान् नारायण

अहं नारायणो देव शङ्खचक्रगदाधरः । एव ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३॥
 त्वमग्निद्विपदा' नाय रेतोधा कामदीपन । प्रधानं सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्यय ॥४४॥
 अमृतस्मारणस्त्व हि देवयोनिरपा पते । वृजिन हर मे 'सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४५॥
 एवमुच्चार्य विधिवत्तत स्नानं समाचरेत् । अन्यथा भो 'द्विजश्रेष्ठा स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६॥
 कृत्वा तु वेदिकमन्त्रैरभिषेकं च मार्जनम् । अन्तर्जले 'जपेत्पश्चात्त्रिरावृत्त्याऽधमर्पणम् ॥४७॥
 हयमेधो यया विप्रा सर्वपापहरः शत्रु । तयाऽधमर्पणं चात्र सूत सर्वघनाशनम् ॥४८॥
 उत्तीर्थं वाससी धौते निमले परिधाप्य वै । प्राणानायम्य चाऽऽचम्य सध्या चोपास्य भास्करम् ॥४९॥
 'उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम् । उपस्थायोर्ध्वं बाहुद्वयं तल्लिङ्गं भास्करं ततः ॥५०॥
 गायत्रीं पावनो देवो जपेदष्टोत्तरं शतम् । अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठ समाहितः ॥५१॥
 कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च । स्वाध्यायं प्राङ्मुखं कृत्वा तर्पयेद्देवतान्युपोनु ॥५२॥
 मनुष्याश्च पितृश्चान्यान्नामागोत्रेण मन्त्रवित् । तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः ॥५३॥
 तर्पणं देवतानां च पूजं कृत्वा समाहितः । अधिकारी भवेत्पश्चात्पितृणां तर्पणे द्विजः ॥५४॥
 श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत् । तर्पणे 'तूभयं कुर्यादप्येव विधिः सदा ॥५५॥

हैं इस प्रकार नारायण रूप में अपने को ध्यान में रखकर इस आगे कहे हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥४३॥
 हे नरनाथ ! तुम अग्नि वीथ धारण वाले और प्राणियों के हृदय में काम को दीप्त करने वाले हो तुम सभी मूर्तों
 (जीव या पदार्थ) में प्रधान और जीवों के अविनाशी प्रभु हो ॥४४॥ जल के स्वामी ! तुम अमृत के निधान और
 देवयोनि हो तीर्थराज ! मेरे सभी पापा को दूर करो तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥४५॥ इस प्रकार मन्त्रोच्चारण कर
 विधिवत् स्नान करना चाहिये । विप्रवय ! अन्यथा (अविधि से) समुद्र में स्नान करने का कोई विशेष फल नहीं
 होता ॥४६॥ वैदिक मन्त्रों से अभिषेक और मार्जन करने के पश्चात् जल में डूबकर तीन बार अधमर्पण मन्त्र का जप
 करे ॥४७॥ ब्राह्मणो ! जिस प्रकार अश्वमेध सब पापों को नष्ट करनेवाला यज्ञ है उसी प्रकार इस लोक में
 अधमर्पण सब पापों को नष्ट करने वाला सूक्त है ॥४८॥ जल से निकल कर स्वच्छ धुले उत्तरीय वस्त्र पहनकर
 प्राणायाम और आचमन कर विधिवत् सध्यापासन करे । तदनन्तर पुष्पयुक्त जलाञ्जलि देकर खड़ा होकर सूर्यो
 पस्थान करे ऊर्ध्वबाहु हो पूज प्रकार से ही सूर्योपस्थान करने के बाद एतादृशित से पवित्र गायत्री देवी का एक सौ
 आठ बार और अन्य सूत्रमन्त्रों का भी जप करे ॥४९॥ पुनः सूर्य की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार कर आसनस्थ
 हो पूज की ओर मुख कर स्वाध्याय करे । मन्त्रज्ञ मनुष्य स्वाध्याय के बाद तिलमिश्रित जल से विधिपूर्वक एकाग्र
 मन से देवताओं ऋषियों और नाम गोत्रपूजक मनुष्या पितरों एवं अन्य मूर्तों का तर्पण करे ॥५०॥ ब्राह्मण
 एकाग्र मन से देवतर्पण करने के बाद ही पितृतर्पण का अधिकारी होता है । श्राद्ध और हवन काल में एक हाथ से ही
 निर्वपण (श्राद्ध या हवन की क्रिया) करना चाहिये । तर्पण में दोनों हाथों से क्रिया करे यही सनातन विधि है ॥५४॥

१क ख - द्विपदा ना० । २ख ना च प्रमुख्यक । अ० । ३ख ख ०य । यतस्तस्या० । ४क देव ।
 ५ख मुनिश्रेष्ठा । ६क ०३वामन्त्र चाप्यध० । ७क ०३ततो विप्रां नि० । ८क नर । ९क तपयेत् । १०ख द्विपदा ।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। 'तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः॥५६॥
 कायस्थैर्येस्तिर्लेमोहात्करोति पितृतर्पणम्। तर्पितास्तेन पितरस्त्वद्भ्राससधिरास्थिभिः॥५७॥
 अङ्गस्थेन तिलं। कुर्याद्वेतापितृतर्पणम्। रुधिरं तद्भूवेत्तोय प्रदाता किंलिप्यो भवेत्॥५८॥
 भूम्यां यदीयते तोय दाता चैव जले स्थित। यथा तन्मुनिशार्दला नोपतिष्ठति कस्यचित्॥५९॥
 स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदक नरः। पितृणां नोपतिष्ठेत सलिल तन्निरयंकम्॥६०॥
 उदके नोदक कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन। उत्तोर्यं तु शुची देशे कुर्यादुदकतर्पणम्॥६१॥
 नोदकेषु न पात्रेषु न वृद्धो नैकपाणिना। नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते॥६२॥
 पितृणामक्षयः स्थानमहीदत्ता मया द्विजाः। तस्मात्तत्रैव दातव्यं पितृणां प्रीतिमिच्छता॥६३॥
 भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्यां चैव च संस्थिताः। भूम्यां चैवलयं याता भूमौ दद्यात्ततो जलम्॥६४॥
 आस्तीर्य च कुशान्ताप्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रतः। प्राचीनाग्रेषु वै देवान्याम्प्राग्रेषु तथा पितृन्॥६५॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिद्वाह्ये स्वयम्भुवपिसंवादे समुद्रस्तनविधिनिरूपण नाम
 षष्ठितमोऽध्यायः॥६०॥

५५॥ अन्वारब्ध (वायें पैर को मोड़कर बैठना) हो वायें हाथ से दाहिने हाथ में जल गिराता हुआ बाणी का समय कर नाम गोत्र का उल्लेख करता हुआ 'तृप्यताम्' इस मन्त्र से तर्पण करना चाहिये। जो मनुष्य शरीर पर तिल रख कर अज्ञान वश पितृतर्पण करता है वह अपने पितरों का मांस, रुधिर और चर्म अस्थि से तर्पण करता है॥५६-५७॥ इसलिये शरीर पर रखे तिलों से कभी भी देव पितृ तर्पण नहीं करना चाहिये क्योंकि तर्पण में दिया वह जल रुधिर के समान होता और वह दाता पाप का भागी होता है॥५८॥ मुनिवयः^१ दाता द्वारा स्वयं जल में स्थित होकर भूमि पर दिया हुआ जल व्यर्थ जाता है वह किसी पितर या देव को प्राप्त नहीं होता॥५९॥ इसी प्रकार जो स्थल पर बैठ कर जल में तर्पण जग गिराता है वह जल व्यर्थ हो जाता है, किसी पितर को प्राप्त नहीं होता॥६०॥ जल में स्थित होकर जल में कभी भी तर्पण नहीं करना चाहिये किन्तु जल से बाहर निकल कर पवित्र स्थान पर जल-तर्पण करना चाहिए॥६१॥ क्रुद्ध होकर, एक हाथ से, जल में या किसी पात्र में तर्पण जल नहीं गिराना चाहिये क्योंकि वह जल जो पृथ्वी पर नहीं दिया जाता व्यर्थ जाता है किसी अमीष्ट उद्दिष्ट पितर या देवता को प्राप्त नहीं होता॥६२॥ हे द्विजगण! मैंने पितरों को पृथ्वी ही अक्षय स्थान के रूप में दी है इसलिये पितृप्रेमी व्यक्ति पितरों को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर ही तर्पण जल दे॥६३॥ पितर लोग इस भूपृष्ठ पर ही उत्पन्न हुये, भूमि पर ही रहे और अतः से भूमि में ही लीन भी हो गये इसलिये भूमि पर ही अग्रभागसहित कुशाओं को फैलाकर, उनका मन्त्रों से आवाहन कर पूर्वोत्तरभाग में देवताओं के लिये और दक्षिण भाग में पितरों के लिये जल देना चाहिये॥६४-६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में समुद्रस्तनविधि निरूपण नामक साठवाँ अध्याय समाप्त॥६०॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

पूजाविधिवचनम्

ब्रह्मोवाच

देवान्पितृस्तथा चान्यान्स्तत्प्याऽऽचम्य ध्यायत । हस्तमानचतुष्कोण चतुर्द्वार सुशोभनम् ॥१॥
पुर विलिख्य भो विप्रास्तोरे तस्य महोदधे । मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्र सर्कार्णकम् ॥२॥
एव मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजा । अष्टाक्षरविधानेन नारायणमज विभुम् ॥३॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् । 'अकार' हृदये ध्यात्वा चक्ररेखासमन्वितम् ॥४॥
ज्वलन्तं त्रिशूलं चैव दहन्त पापनाशनम् । 'चन्द्रमण्डलमध्यस्थ' 'राकार' मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५॥
'शुक्लवर्ण' प्रवर्णन्तममृत प्लावयन्महीम् । एव निर्धूतपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥६॥
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽत्मनो ब्रुध । वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥७॥
पञ्चाङ्गं वैष्णवं चैव चतुर्व्यूहं तथैव च । करशुद्धिं प्रतुर्वीर्यं मूलमन्त्रेण साधक ॥८॥
एकैकं चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक् । ओकारपृथिवीं शुक्लं वामपादे तु विन्यसेत् ॥९॥
नकारं 'शा'भवं श्यामोदक्षिणे तु व्यवस्थित । मोकारं कालमेवाऽऽहुर्वामकट्या निधापयेत् ॥१०॥

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव पितर और मनुष्या का तपण कर मोन हो आचमन कर विप्रगण उस महोदधि के तट पर एक हाथ लम्बा उठना ही चौड़ा एक सुन्दर चतुर्मुख क्षत्र बनाये जिसके चारो ओर चार द्वार हो उसके मध्य में आठ पक्षुडियो वाला कमल बनाये । द्विजबृन्द ! ऐसा मण्डल बना कर उसमें अष्टाक्षर मात्र से अज, व्यापक नारायण की स्थापना कर पूजा करे ॥१॥ ३॥ अब इसके बाद उत्तम शरीर-शोधन की विधि बतला रहा हूँ । पहले हृदय में चक्र रेखा से युक्त आकार का जिसमें पापों को नष्ट करने वाले प्रज्वलित अग्नि का भी रूप हो—ध्यान करे और मस्तक में चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित शुक्ल वर्ण और अपनी अमृत-वर्षा से पृथ्वी को डुबाने या गरते हुए से 'रा' का ध्यान करे ॥४॥ ५॥ इस प्रकार ध्यान करने से मनुष्य पापमुक्त और दिव्य देहवाला हो जाता है । तदुपरान्त विद्वान् मनुष्य अपने बायें पैर से आरम्भ कर क्रमशः अन्य अंगों में अष्टाक्षर मन्त्र से अद्भ्यन्यास करे ॥६॥ ७॥ वह साधक फिर वैष्णवं पञ्चाङ्ग तथा चतुर्व्यूह और मूल मन्त्र से करशुद्धि करे ॥८॥ अङ्गुलिया पर पृथक्पृथक् एक एक वर्ण का और बायें पैर पर शुक्ल वर्ण पृथिवी आकार का न्यास करे ॥९॥ दक्षिण

१ख विलिप्य । ग प्रलिप्य । २ग क्षकार । ३ख ग चित्त्य । ४ख ०रेफस० । ५ख चतुर्मुखः । ६क वकार । ७ख चकार । ७क रक्तवर्ण । ८ख ०व्यहस्तस्त० । ९क शोभन ।

नाकार 'सर्वबीज' तु दक्षिणस्या व्यवस्थित । राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थित ॥११॥
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रित । णाकार सर्वगो ज्येष्ठो दक्षिणांशे व्यवस्थित ॥
यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोका प्रतिष्ठिता ॥१२॥

ॐ विष्णवे नमः शिरः । ॐ ज्वलनाय नमः शिखा । ॐ विष्णवे नमः कवचम् । ॐ विष्णवे
नमः स्फुरण दिशो बन्धाय । ॐ हुफडस्त्रम् । ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति । ॐ आ ललाटे
रक्त सकपणो गह्मन्वाङ्मस्तेज आदित्य इति । ॐ आ ग्रीवाया पीत प्रद्युम्नो वायुमेव इति ।
ॐ आं हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्ति समन्वित इति । एव चतुर्व्यूहमात्मानं कृत्वा ततः कर्म
समाचरेत् ॥१३॥

ममाग्रेऽवस्थितो विष्णु पृष्ठतश्चापि केशव । गोविन्दो दक्षिणे पाश्वर्षे वामे तु मधुसूदन ॥१४॥
"उपरिष्ठात्तु वङ्कुष्ठो वाराह पृथिवीतल । अवान्तरदिशो यास्तु तामु सर्वासु माधव ॥१५॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रत स्वपतोऽपि वा । नरासहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम् ॥१६॥
एव विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभत् । यथा" देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७॥

पाद पर स्थानवर्ण के शम्भु प्रतीक 'न' को स्थापित करे । 'मो' को काल ही कहा जाता है उसको वाम कटि पर
और सबके बीज रूप 'ना' को दक्षिण कटि पर स्थापित करे । 'रा' को तेज कहा जाता है उसको नाभि प्रदेश में बा
प्रतीक 'य' को वायं वक्त्रे पर व्यवस्थित करे । णकार को सर्वव्यापक जानना चाहिये । इसी प्रकार ण को दाहिने
पर तथा 'य' को —जिसमें सब लोक प्रतिष्ठित हैं—शिर पर स्थापित करे ॥१० १२॥

पुनः ॐ विष्णवे नमः कहकर शिरः ॐ ज्वलनाय नमः कहकर शिखा ॐ विष्णवे नमः कहकर कवच ॐ विष्णवे
नमः और हुं फडस्त्रम् कहकर नेत्र-स्थान और दिग्बन्ध करे । इसके पश्चात् ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव (शिर पर शुक्ल
वासुदेव) ॐ आ ललाटे (ललाट पर) रक्त सकपणो गरुडान् वङ्गिस्तज आदित्य ॐ आ ग्रीवाया (ग्रीवा में) पीत
प्रद्युम्न वायुमेव ॐ आ हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिसमन्वित इन मात्रा से अपने को चतुर्व्यूह से सुरंगित कर
के बाद आगे कहीं बिधि का अनुष्ठान करे ॥१३॥ मरे अग्रभाग में विष्णु पीछे बैराव दाहिने पाश्वर्ष म गोवि
न्दों मधुसूदन ऊपर में वङ्कुष्ठ पृथिवी-तल पर भगवान् वाराह सम्पूर्ण दिशाओं और अवान्तर दिशाओं (कोनों में
माधव रक्षा करें इसी प्रकार चलते बैठते जागृत और सोने समय मेरी नृसिंह भगवान् के द्वारा रक्षा है
अब मैं वायुदेवमय हो गया । इस प्रकार भवना से विष्णुमय हुआकर अग्रिम कर्म का प्रारम्भ करे और त्रि
प्रकार शरीर पर सब तत्त्वा की योजना की उसी प्रकार देव पर (मण्डलस्थ देव पर) सम्पूर्ण तत्त्वा की योजना करे ॥१

१ ग पूर्वबीज । २ क ० वे ह्रुः । ३ स ० म स्फुरम्भारः । ४ ग ० म शारशारः । ५
० धम्मत्रम । ५ क ० नि । ६ स ० नि । ७ स ० नि । ८ स ० नि । ९ ग ० नि । १० ग ० य ह्रुः । ११ क ० पतिष्ठतु वै ।
१२ स ० धामनि तः ।

ततश्च प्रकुर्वीत प्रोक्षण 'प्रणवेन तु । फट्कारान्त समुद्दिष्ट सर्वविघ्नहर शुभम् ॥
'तत्रार्कचन्द्रबह्वीना मण्डलानि विचिन्तयेत् । पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णु' पवनस्याम्बरस्य च ॥
ततो विचिन्त्य हृदय ओंकार ज्योतीरपिणम् । कर्णिकाया समासीन ज्योतीरूप सनातनम् ॥
अष्टाक्षर ततो मन्त्र विन्यसेच्च यथाक्रमम् । तेन व्यस्तसमस्तेन पूजन परम स्मृतम् ॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देव सनातनम् । ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकाया बहिन्यसेत् ॥
चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम् । चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनात
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्र त्रयेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥

आवाहनमन्त्र —मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन । आयातु देवो
मम नारायणोऽग्रतः । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥
स्थापनमन्त्र —कर्णिकाया सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम् । सर्वसत्त्वहितार्थाय त्रिष
मधुसूदन । ओ नमो नारायणाय नमः ॥
अधमन्त्र —ॐ त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः । ओं
नारायणाय नमः ॥

१७॥ इतमी क्रिया के पश्चात् विघ्न विनाशक गुप्त प्रणव से प्रारम्भ फट्कारान्त वाले मन्त्र (ॐ नमो नारा
यणाय) प्रोक्षण (जल सिंचन) करे ॥१८॥ उस मण्डल में मूल चन्द्र अग्नि वायु और आकाश के चक्र स्थापि
पद्म के मध्य भाग में विष्णु की स्थापना करे ॥१९॥ तदुपरांत अपने हृदय में पद्मपत्र पर स्थित ज्योतिः
सनातन ज्योतिर्मय ओंकार का ध्यान कर त्रयपूर्वक अष्टाक्षर मन्त्र का निन्यास करे फिर उसी मन्त्र से अलग
और समूहात्मक रूप में पूजन करना परम उत्कृष्ट कहल गया है ॥२० २१॥ द्वादशाक्षर मन्त्र से सनातन है
पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार पूजन के बाद हृदय में भगवान् का ध्यान और सनातन ज्योति रूप महायोग
स्मरण कर कर्णिका के बाहरी भाग में महापराक्रमी कोटि सूर्य के समान तेजस्वी चतुर्भुज भगवान की रु
पर मन्त्रा का क्रम से ध्यान कर आवाहन करे ॥२२ २३॥ आवाहन के मन्त्र— मीनरूप वराह
और वामन रूप धारण करने वाले वरद नारायण देव मेरे सम्मुख आवें । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२४॥

स्थापन मन्त्र—इस सुन्दर कर्णिका के पीठ पर पद्म रूप में बलिप्त आसन पर हे भगवन् । अक्षित
के कल्याण के लिए तुम बठो । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२५॥

अधमन्त्र—ॐ त्रिभुवनपति के भी पति देवदेव हृषीकेश विष्णु को नमस्कार है ॐ नमो नारायणाय नमः ।

१क प्रवर्णन । २ग प्रवरेण । ३क ०शायधच० । ३क ०द्विष्णुमवमस्यापरस्य तु । त० । ४ख ०या हरि
५ग ०त्र० । मुमै० पादपीठ तं प० । ६क तीनामन्यथै० । ७ख ०यैऽन्यथै० ।

पाद्यमन्त्रः—ओं पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन। विष्णो कमलपत्राक्ष गुहाण
मधुसूदन। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्कमन्त्रः—मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव। मया निवेदितं भक्त्या गुहाण
पुण्योत्तम। ओ नमो नारायणाय नमः ॥२८॥

आचमनीयमन्त्रः—मन्दाकिन्या सित वारि सर्वपापहरं शिवम्। गुहाणाऽऽचमनीयं त्वं
मया भक्त्या निवेदितम्। ओ नमो नारायणाय नमः ॥२९॥

स्नानमन्त्रः—स्वमाप. पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च। लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा
स्नापयाम्यहम्। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्रमन्त्रः—देवतत्त्वसमायुक्तं यज्ञवर्णसमन्वित। स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव।
ओं नमो नारायणाय नमः ॥३१॥

विलेपनमन्त्रः—शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव च केशव। मया निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य
विलिप्यताम्। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीतमन्त्रः—ऋग्यजु साममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना। सावित्रीप्रथितं पुनर्वसुवर्णव
त्तवापये। ओ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

पाद्य मन्त्र—हे पद्मनाभ सनातन देव ! तुम्हारे चरणों पर पाद्य अर्पित कर रहा हूँ, कमलपत्राक्ष ! मधुसूदन !
विष्णो, ग्रहण करो, ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्क मन्त्र—महादेव ! ब्रह्मा आदि द्वारा कल्पित तुम्हारे इस मधुपर्क को मैं भक्तिपूर्वक अर्पित कर
रहा हूँ, पुरोत्तम ! ग्रहण करो। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२८॥

आचमनीय मन्त्र—इस सर्वपापहर शुभ मन्दाकिनी के जल को आचमन के लिये भक्तिपूर्वक अर्पित कर
रहा हूँ, देव ! तुम ग्रहण करो। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२९॥

स्नान मन्त्र—तुम जल, पृथिवी, और ज्योति रूप हो, तुम्हीं वायु हो, फिर भी लोकपते ! केवळ औपचारिक
रूप से जल से स्नान करा रहा हूँ, ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्र मन्त्र—देवतत्त्व से युक्त यज्ञवर्ण से समन्वित देव ! केशव ! ये तुम्हारे लिये स्वर्णवर्ण के
वस्त्र हैं। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३१॥

विलेपन मन्त्र—केशव ! तुम्हारे शरीर को नहीं जानता न तो तुम्हारी इच्छाओं को ही जानता हूँ, पुनर्वसु
यह मुगन्धित लेप अर्पित कर रहा हूँ, इसको ग्रहण कर अपने शरीर पर लगा लो। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीत मन्त्र—ऋषयानि ब्रह्मा द्वारा ऋग्, यजु और सामवेद के मन्त्रों से तीन बार स्मरण हुआ और
सावित्री द्वारा बनाई गीठा से युक्त इस उपवीत को अर्पित कर रहा हूँ। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

अलकारमन्त्र — दिव्यरत्नसमायुक्त वह्निभानुसमप्रभ । गात्राणि तव शोभन्तु सालकाराणि

॥३४॥

माधव । ओ नमो नारायणाय नम

ओ नम इति प्रत्यक्षर समस्तेन मूलमन्त्रेण वा पूजयेत्

॥३५॥

धूपमन्त्र — वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्य 'सुरभिश्च ते । मयानिवेदितो भक्त्या धूपोऽय

॥३६॥

प्रतिगृह्यताम् । ओ नमो नारायणाय नम

दीपमन्त्र — सूर्यचन्द्रसमो ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव ज्योतिषा देव दीपोऽय

॥३७॥

प्रतिगृह्यताम् । ओ नमो नारायणाय नम

नैवेद्यमन्त्र — अत्र चतुर्विधं चैव रसं पङ्क्तिं समन्वितम् । मया निवेदित भक्त्या नैवेद्य

॥३८॥

तव केशव । ओ नमो नारायणाय नम ।

पूर्वं दले वासुदेव याग्ये सकर्पणं न्यसेत् । प्रद्युम्न पश्चिमे कुर्यादनिरुद्ध तथोत्तरे ॥३९॥

वाराह च तथाऽऽग्नेये नरसिंह च नैऋते । वायव्ये माधव चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥४०॥

तथाऽऽत्तरक्षरदेवस्य गण्ड पुरतो न्यसेत् । वामपार्श्वे तथा चक्र शङ्ख दक्षिणतो न्यसेत् ॥४१॥

तथा महागदा चैव न्यस्तद्देवस्य दक्षिणे । ततः शार्ङ्गं धनुर्विद्वान्यसेद्देवस्य वामतः ॥४२॥

दक्षिणेनेवुधो दिव्ये खड्ग वामे च विन्यसेत् । श्रियं दक्षिणतः स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥४३॥

अलङ्कार मन्त्र—दिव्य रत्ना से आभूषित अग्नि और भान के समान प्रभा वाले माधव । तुम्हारे अङ्ग
इन भेरे दिये गए आभूषणों से सुसोमित हूँ । ॐ नमो नारायणाय नम ॥३४॥

ओ नम इति प्रत्येक अक्षर से या समस्त मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिये ॥३५॥

धूप मन्त्र—मैं तुम्हारे लिये इस दिव्य गन्ध से भरे सुरमित वनस्पति रस धूप को श्रद्धा से समर्पित कर रहा
हूँ देव । ग्रहण करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३६॥

दीप मन्त्र—सुगन्ध चन्द्र विद्युत और अग्नि के समान ज्योतिष्मान् हो तुम ही प्रकाश-पुञ्ज हो देव ।
यह दीप स्वीकार करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३७॥

नैवेद्य मन्त्र—चार प्रकार का घनरस से युक्त भण्डुर भोजन श्रद्धापूर्वक अर्पित कर रहा हूँ केशव । स्वीकार
करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३८॥ (इन उपयुक्त मन्त्रों से सबविधि भगवान् की पूजा करने के बाद पुन देवन्वास
करो) पूव दक्ष पर वासुदेव को दक्षिण पर सकर्पण को एवं पश्चिम दक्ष पर प्रद्युम्न को एवं उत्तर बाँके दक्ष पर
अनिरुद्ध को न्यस्त करो ॥३९॥ इसी प्रकार अग्नि निऋति वायव्य और ईशानकोण में क्रमशः वाराह नरसिंह
माधव और त्रिविक्रम का याग करो ॥४०॥ इस प्रकार आठ अक्षरों में — स्त देवता के अध्रमान में गण्ड का
तथा वाम पार्श्व और दक्षिण पार्श्व मन्त्र शस्त्र का न्यास कर देव के दक्षिण महागदा तथा वामभाग में शार्ङ्ग धनुष
का विद्वान् मनुष्य न्यास करो ॥४१॥ ४२॥ पुन दक्षिण आर दो दिव्य तरकस और बायी ओर खड्ग का न्यास करो ।
शस्त्रन्यास के उपरान्त दक्षिण और श्री को उत्तर ओर पुष्टि को आगे की ओर वनमाला श्रीवत्स और कौस्तुभ तथा

धनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ । विन्ध्यसेदधूवयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥४४॥
 ततोऽस्त्र देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्ध्यसेत् । इन्द्रमार्गं यम चैव नैऋतं वरुणं तथा ॥४५॥
 वायु धनदमीशानमनन्त ब्रह्मणा सह । 'पूजयेत्तान्त्रिकमन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च ॥४६॥
 एवं संपूज्य देवेशं मण्डलस्य जनार्दनम् । लभेदभिमतान्कामाप्सरो नास्त्यत्र संशयः ॥४७॥
 अनेनैव विधानेन मण्डलस्य जनार्दनम् । पूजितं यः सपश्येन स विशेषद्विष्टुमव्ययम् ॥४८॥
 सकृदप्यर्चितो येन विधिनाऽनेन केशवः । जन्ममृत्युजरा तीर्त्वा स विष्णोः पदमाप्नुयात् ॥४९॥
 यः स्मरेत्सतत भक्त्या नारायणमनन्दितः । 'अन्वह तस्य वासाय इवेतद्दीपः प्रकल्पितः ॥५०॥
 ओंकारादिसमायुक्तं नमःकारान्तदीपितम् । तन्नाम सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥५१॥
 अनेनैव विधानेन गन्धपुष्प निवेदयेत् । एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु ॥५२॥
 मुद्रास्त्रतो 'निबध्नीयाद्योक्तक्रमचोदिताः । जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥५३॥
 अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तरं तथा । कामेषु च यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः ॥५४॥
 पद्म शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गङ्घ एव च । चक्र खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः ॥५५॥
 विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परंस्थानं पुराणपुरुषोत्तम । यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परम पदम् ॥५६॥

हृत्पादि को पूर्वादि चारा दिशाओ म प्रमानुसार न्यस्त करना चाहिये ॥४३-४४॥ तदनन्तर कोण म देवदेव के अस्त्रो की स्थापना कर इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त आदि देवो का द्रष्टा के साथ अध और ऊर्ध्व भाग म आवाहन कर तान्त्रिक मन्त्रो से पूजन करे ॥४५-४६॥ इस प्रकार मण्डल मे स्थित देवेश जनार्दन का पूजन करने से मनुष्य अपने अमीष्ट कामनाओ को अवश्य प्राप्त करता है इसमे सन्देह नहीं ॥४७॥ इसी विधि से पूजित मण्डलस्य जनार्दन का जो दर्शन करता है वह भी अविनाशी विष्णु का सामुख्य प्राप्त करता है ॥४८॥ एवं बार भी जो मनुष्य देवत्व की इस प्रकार अर्चा करता है वह जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे को पारकर विष्णु लोक को प्राप्त करता है ॥४९॥ जो मनुष्य सर्वदा आलस्य-रहित हो नारायण का स्मरण करता है उसके निवास के लिये प्रतिदिन स्वर्णद्वीप की व्यवस्था की जाती है ॥५०॥ ओंकार जिसके आदि मे और नमःकार जिसके अन्त मे लगा हो वह सम्पूर्ण तत्त्वा का सार है और वही श्रेष्ठ मन्त्र कहा गया है ॥५१॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्प अर्पित करना चाहिये एवं यथोद्दिष्ट क्रम से एक एक देव का पूजन करना चाहिये ॥५२॥ पूजनानन्तर यथोक्त क्रम से मुद्रा बन्धन कर मन्त्रज्ञ मनुष्य मूल मन्त्र का जप करे ॥५३॥ मित्र मित्र कामनाओ के लिये जिस प्रकार सख्या का विधान है उसी के अनुसार यथान्क्ति एकाग्रचित्त हो अर्द्धार्द्ध आठ अथवा एक सौ आठ बार जप करे ॥५४॥ पद्म, शङ्ख श्रीवत्स गदा गङ्घ, चक्र खड्ग और शार्ङ्ग धनुष मही आठ मुद्राये वही गई हैं ॥५५॥

विसर्जन का मन्त्र—'हे पुराणपुरुषोत्तम ! अपने उस परम स्थान को जाओ, जाओ, जहाँ जाकर ब्रह्मा

अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथोदितम्। ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥५७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूषितंवावे पूजाविधिकथनं नामकपठितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं संपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरिता पते। तीर्थराज नमस्तेऽस्तु ब्राहि मामच्युतप्रिय ॥२॥
स्नात्वैव सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजाः। तीरे चाम्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३॥
रामं कृष्ण सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम्। शतानामश्वमेधानां फल प्राप्नोति मानवः ॥४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविर्जितः। वृन्दारक इव श्रीमान्पूषयौवनगवितः ॥५॥

आदि देवता परम पद को प्राप्त करते हैं।" इस मन्त्र से विसर्जन करे ॥५६॥ जो मनुष्य ऊपर कहे गये मन्त्रों से हरि का पूजन करना नहीं जानते हैं वे वहाँ मूल मन्त्र से ही सर्वदा अच्युत विष्णु की पूजा करें ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद मे पूजाविधि-कथन नामक
इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

समुद्र-स्नान का माहात्म्य

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम का विधिवत् पूजन और नतमस्तक होकर प्रणाम करने के बाद सागर की यह स्तुति करनी चाहिए—हे नदियों के स्वामी! तुम सब प्राणियों के जीवन और उत्पादक हो, तीर्थराज! तुम्हें प्रणाम है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा करो ॥१-२॥ विप्रगण, इस विधि से इस पुनीत और श्रेष्ठ तीर्थ में आकर स्नान कर और तीर पर अनामय (निर्विकार) नारायण की विधिवत् पूजा कर राम, कृष्ण, सुभद्रा और सागर को प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सौ अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त करता है, वह सब पापों और दुःखों से रहित हो, तेजस्वी तथा रूप-यौवन से सुशोभित हो जाता है ॥३-५॥ और सूर्य

विमानेनाकं वर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना। कुलं कथं शमदधृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र वरानभोगान्क्रीडित्वा चाप्सरः सह। मन्वन्तरदातं साप्र' जरामृत्युविषयजितः ॥७॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते। रूपवान्तुभगः श्रोगान्सात्यवादी जितेन्द्रियः ॥८॥
 वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु यं षण्वः। योगं च वं षण्वं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९॥
 ग्रहोपरागे संक्रान्त्यामयने विषुवे तथा। युगादिषु षडशीत्या व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०॥
 आपाद्यां चैव कार्तिकायां माघ्यां वाऽन्ये शुभे त्रयो। ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति सुमेधसः ॥११॥
 फलं सहस्रगुणितमन्यतीर्याल्लभन्ति ते। पितॄणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तत्र विधानतः ॥१२॥
 अक्षयां पितरस्तेषां तृप्तिं संप्राप्नुवन्ति वै। एवं स्नानफलं सम्यक्सगरस्य मयोदितम् ॥१३॥
 दानस्य च फलं विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि। धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम् ॥१४॥
 भुक्तिमृक्त्तिफलं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम्। सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥
 नास्तिकायनवक्तव्यं पुराणं च द्विजोत्तमः। तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वं पृथक्पृथक् ॥१६॥
 यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः। पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वकं फलम् ॥१७॥

के समान प्रकाशमान, स्वर्गीय गन्धर्वों के जयकार, तथा स्तुतिगान से मुखरित विमान पर आरुढ़ होकर, देवता के समान, अपने इक्ष्कीस कुलों का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को जाता है ॥६॥ वहाँ वह जरामृत्यु से रहित हो अगले ही मन्वन्तरो तक दिव्य भोगों का भोग करता हुआ अप्सराओं के साथ न्रीडा कर पुनः पुण्य के क्षीण हो जाने पर इह लोक में सब गुणों से युक्त परिवार में जन्म ग्रहण करता है। इस जन्म में भी अपने पुण्य के प्रभाव से रूपवान्, गान्यशाली, धनवान्, सत्यवक्ता, जितेन्द्रिय, वेद शास्त्रों का ज्ञाता और वं षण्व भक्त विप्र होता है। अन्तकाल में वं षण्व योग को पाकर मोक्ष लाभ करता है ॥७॥ ९॥ जो बुद्धिमान् उस पुनीत क्षेत्र में ग्रहण, सन्नति, अयन, विषुव (तुला और मेष सन्नति काल), युगादि काल में तथा षडशीति, व्यतीपात, दिन-क्षय और आपाड़ी कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा के दिन अथवा अन्य शुभ तिथियों में ब्राह्मणों को दान देते हैं, एवं विपान पूर्वक पितरों को पिण्डदान देते हैं वे अन्य तीर्थों की अपेक्षा हजार गुना अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥१०-१२॥ उनके पितर भी निश्चय ही अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मैंने समुद्र स्नान पिण्डदान का फल कह दिया ॥१३॥ वस्तुतः हे द्विजगण, धर्म, अथ और मोक्ष को देने वाले, आमु बढाने वाले, कीर्ति एवं यश फैलाने वाले, मुक्तिमृक्त्तिदाता दुस्वप्ननाशक, मनुष्यों को शुभ फल देनेवाले, सर्व पाप-हर, पवित्र और सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले पुराणों को अधडालु नास्तिकों से नहीं कहना चाहिए ॥१४॥ १५॥ सभी तीर्थों तक ही अलग अलग अपने माहात्म्य के गर्व से गरजते रहते हैं जब तक द्विजगण। तीर्थराज पुरुषोत्तम तीर्थ का माहात्म्य नहीं कहा जाता है ॥१६॥ पुष्कर आदि तीर्थ तो केवल अपने फल को ही देते हैं परन्तु यह तीर्थराज तो पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों का फल देता है ॥१७॥ पृथ्वी-तल के जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं वे सागर में

तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः। भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च॥१८॥
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठता गतः। राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पतिः॥१९॥
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः। तमोनाशं यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः॥२०॥
स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य संक्षयः। तीर्थराजसमं तीर्थं न भूत न भविष्यति॥२१॥
अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै। कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः॥२२॥
कोदयो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै। तस्मात्स्नानं च दानं च होमं जप्य सुरार्चनम्।
यत्किंचित्क्रियते तत्र चाक्षयं क्रियते द्विजाः॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुक्तपिसंवादे समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनं
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणम्

॥ ब्रह्मोवाच

ततो गच्छेद्द्विजथेष्ठास्तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवं। इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽस्ते पावनं शुभम्॥१॥

किसी न किसी रूप से प्रवेश करते हैं (सभी जलाशयों का जल समुद्र से आता अथवा समुद्र में जाता है) इसलिये यह तीर्थराज सर्वथेष्ठ पदवी का अधिकारी है॥१८॥ समुद्र सब नदियों का स्वामी है, समस्त तीर्थों (जलाशयों) का राजा है इसलिये यह सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब मनोरथों का दाता है॥१९॥ द्विजवर ! जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अग्निरार स्वयमेव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार तीर्थराज के स्नान से मनुष्य के पापों का नाश हो जाता है॥२०॥ तीर्थराज के समान न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा॥२१॥ प्रभु नारायण का जहाँ सबदा वास है हे द्विज-वृन्द ! उस तीर्थराज के गुणों को बहने में वीन समर्थ हो सकता है॥२२॥ जहाँ पर नवासी करोड़ तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं, वहाँ स्नान दान, होम, जप, देवपूजन अथवा जो कुछ भी किया जाता है निश्चय ही द्विजवृन्द ! वह अलग हो जाता है॥२३॥

श्री ब्रह्महपुराणे मे समुद्रस्नान-माहात्म्य वर्णन नामक वासठवीं अध्याय समाप्त॥६२॥

अध्याय ६३

पञ्चतीर्थी का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—द्विजथेष्ठ ! तदनन्तर यज्ञों के कारण शुभ, पवित्र इन्द्रद्युम्न तीर्थ में जाकर विवेकी मनुष्य

गत्वा तत्र शुचिर्धोमानाचम्य मनसा हरिम् । ध्यात्वोपस्थाप्य च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥
 अश्वमेधाङ्गसभूत तीर्थं सर्वाघनाशन । स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥३॥
 एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देशानूपोत्पितुम् । तिलोदकेन चान्यादश्च संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ॥४॥
 दत्त्वा पितृणां पिण्डांश्च संपूज्य पुरुषोत्तमम् । दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः ॥५॥
 सप्तारवरांस्तन् पराश्वंशानुद्धृत्य देववत् । कामयेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र 'सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम् । च्युतस्तस्मादिहाऽऽपातो मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥७॥
 एव कृत्वा 'पञ्चतीर्थैर्मेकादश्यामुपोषितः । ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्या यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥८॥
 स पूर्वोक्तं फलं प्राप्य श्रीदित्वा वाऽच्युतालये । प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥९॥

मुनय ऊचुः

मासान्यान्परित्यज्य 'माघादीन्प्रपितामह । प्रशंसति कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः । ज्येष्ठं मासं तथा तेभ्यः प्रशंतामि पुनः पुनः ॥११॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च । पुष्करिण्यस्तडामानि वाप्यः कृपास्तथा हृदाः ॥१२॥

पवित्र भाव से आचमन और हृदय से भगवान् हरि का ध्यान कर जल के निकट इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥१-२॥
 मन्त्र—'अश्वमेध वे अङ्ग से उत्पन्न । सब पापों के विनाशक हे तीर्थ ! आज मैं तुम्हारे जल में स्नान कर रहा हूँ, मेरे पापों को दूर करो, तुम्हें नमस्कार है ॥३॥ इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण कर विधिवत् स्नान करता चाहिये । पुनः तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरों और दूसरे देवों का तर्पण और आचमन कर वाणी पर समय रख पितरों को पिण्ड दान दे और भगवान् पुरुषोत्तम की विधिवत् पूजा करे । ऐसी क्रिया का विधिवत् अनुष्ठान कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥४५॥ अपने सान पिछले एव सात अगले वष का उद्धार कर देवता के समान इच्छानुसार चलने वाले विमान से विष्णुलोक को जाता है ॥६॥ वहाँ वह जब तक चन्द्र, सूर्य और तारागण रहते हैं तब तक सुखमय भागों का भोग करता है । भोग के बाद वहाँ से लौटकर इस लोक में उत्तम कुल में जन्म ग्रहण करता और अन्त में निश्चयही मोक्ष प्राप्त करता है ॥७॥ उक्त नियम के अनुसार जो मनुष्य एकादशी के दिन निराहार रहकर पञ्चतीर्थों एव ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है अथवा अच्युत हरि के लोक में सुखपूर्वक निवास कर उस लोक को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः नहीं लौटता ॥८॥

मुनिपों ने कहा—प्रपितामह ! भाघ आदि अन्य महीनों को छोड़ कर क्यों आप जेठ महीने की इतनी प्रशंसा करते हैं । प्रभो ! इसका कारण बताइए ॥१०॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवर अन्य महीनों की अपेक्षा जेष्ठ मास भी प्रशंसा का कारण सदापः में सुनाता है ॥११॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ, सरिता, सरोवर, पुष्करिणी (पोखरियाँ), तालाब, बावलियाँ, कुएँ, झीलें, अनेक नदियाँ और

नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे । ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा ॥१३॥
 स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः । यत्किञ्चित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षयं भवेत् ॥१४॥
 शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे भासि द्विजोत्तमाः । हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥१५॥
 यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१६॥
 उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वपने पुरुषोत्तमम् । दृष्ट्वा रामसुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१७॥
 नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । फाल्गुन्या प्रपद्यते भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥१८॥
 विपुवद्विक्से प्राप्ते पञ्चतीर्थो विधानतः । कृत्वा संस्मरणं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रा च भो द्विजाः ॥१९॥
 नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥
 यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनहृषितम् । वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्विरम् ॥२१॥
 ज्येष्ठ्यां ज्येष्ठार्धयुगतायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । कुलं विश्वमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंस्वूपिसंवादे पञ्चतीर्थोमाहात्म्यनिर्णयः
 नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

समुद्र हैं, वे सभी इस पुरोत्तम तीर्थ में जेठ शुक्ल की दशमी आदि तिथियां को एक सप्ताह तक सर्वदा प्रत्यक्ष रूप में रहते हैं ॥१२-१३॥ इसलिये द्विजगण । उस समय स्नान, दान, देव-दर्शन अथवा अन्य जो कुछ पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं ॥१४॥ विप्रवृन्द । ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी दशविध पापों को नष्ट करती है इसलिये यह 'दशहरा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ जो मनुष्य एकाग्र मन से बलराम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह सब पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१६॥ विप्रवृन्द । उत्तर और दक्षिण अथवा काल में भी पुरुषोत्तम राम और सुभद्रा का दर्शन कर मनुष्य विष्णुलोक का अधिकार प्राप्त करता है ॥१७॥ मनुष्य फाल्गुन पूर्णिमा के दिन झूले में झूलते हुए पुरुषोत्तम का अनन्य भाव से दर्शन करके गोविन्दलोक को जाता है ॥१८॥ द्विजगण । जो मनुष्य विपुव दिन आने पर विधिपूर्वक पञ्चतीर्थों की यात्रा करके राम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह समस्त यज्ञों के दुर्लभ फल को पाता है और सब पापों से छूट कर विष्णुलोक का अधिकारी होता है ॥१९॥ जो वैशाख मास की कृष्ण-तृतीया को चन्दन अर्पित कृष्ण का दर्शन करता है वह अच्युतलोक को प्राप्त करता है ॥२०॥ ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठ पूर्णिमा को जो पुरुषोत्तम का दर्शन करता है वह अपने इच्छित कुलों का उद्धार कर स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२२॥

श्री ब्रह्महापुराण में पञ्चतीर्थोमाहात्म्यवर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

महाज्येष्ठीप्रशसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यदा भवेन्महाज्येष्ठी राशिनक्षत्रयोगतः। प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्यं पुण्योत्तमम्॥१॥
 कृष्णं दृष्ट्वा महाज्येष्ठ्यां राम भद्रां च भो द्विजाः। नरो द्वादशयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम्॥२॥
 प्रयागे च कुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करे गये। गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसंगमे॥३॥
 कोकामुखे शूकरे च मथुरायां मत्स्थले। शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे॥४॥
 पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले द्विजाः। शङ्खोद्दारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे॥५॥
 'लोहकुण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने। कामालये कोटितीर्थे तथा चामरकण्ठके॥६॥
 लोहागले जम्बुमार्गे सोमतीर्थे पृथूदके। उत्पलावर्तके चैव पृथुतुङ्गे सुकुञ्जके॥७॥
 एकाम्रके च केदारो काश्या च विरजे द्विजाः। कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने॥८॥
 महेन्द्रे मलये विन्ध्ये पारियात्रे हिमालये। सह्ये च श्रुतिमन्ते च गोमन्ते चार्बुदे तथा॥९॥
 गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः। सारस्वतेषु गोमत्या ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु॥१०॥
 गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा। तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः॥११॥

अध्याय ६४

महाज्येष्ठी की प्रशसा

ब्रह्मा ने कहा—जब उत्तम राशि, नक्षत्र से युक्त महाज्येष्ठपूर्णिमा हो, उस समय प्रयत्नपूर्वक मनुष्य को पुण्योत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये॥१॥ हे विप्रवृन्द ! मनुष्य ज्येष्ठ की महापूर्णिमा को कृष्ण, राम और सुगन्धा का दर्शन करके बारह बार तीर्थ यात्रा का फल प्राप्त करता है॥२॥ द्विजगण ! प्रयाग, कुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, हृद्दार, कुशावर्त, गंगासागर संगम॥३॥ कोकामुख, शूकरक्षेत्र, मथुरा, मत्स्थल, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धुसागर॥४॥ पिण्डारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शङ्खोद्दार, द्वारका, बदरिकाश्रम॥५॥ लोहकुण्ड, सब पापों को दूर करने वाले अश्वतीर्थ कामालय, कोटितीर्थ, अमरकण्ठ॥६॥ लोहागल, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक, उत्पलावर्तक, पृथुतुङ्ग, सुकुञ्जक॥७॥ एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन॥८॥ महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, श्रुतिमन्त, गोमन्त, अर्बुद॥९॥ गंगा के सभी तीर्थ एवं यमुना, सरस्वती, गोमती और ब्रह्मपुत्र के सप्त तीर्थ॥१०॥ गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी,

१ ग ० रे च कुब्जाम्रे ग०। २ क ० करके म०। ३ क ख ० हृद्गडे। ४ क र्दमाले। ग. कर्दमाले।
 ५ क. जम्बुतीर्थ। ६ क. पृथुतुङ्गे। ख. पृथुतुङ्गे।

वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुबहिवा तथा । ऋषिकुल्या कुमारी च विपाशा च द्यूढती ॥१२॥
 'सरयूनाकिगङ्गा च गण्डकी च महानदी । कौशिकी करतोया च त्रिस्रोता मधुवाहिनी ॥१३॥
 महानदी वंतरणी याश्चान्या नानुकीर्तिताः । अथवाकि बहुक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमाः ॥१४॥
 पृथिव्या 'सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वायत्तनेषु च । सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च ॥१५॥
 यत्फलं स्नानवानेन राष्ट्रप्रस्ते दिवाकरे । तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्येष्ठ्या लभेन्नरः ॥१६॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे । महाज्येष्ठ्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः ॥१७॥
 दृष्ट्वा रामं महाज्येष्ठं कृष्ण सुभद्रया सह । विष्णुलोकं नरो याति समुद्रतः सम कुलम् ॥१८॥
 भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् । पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ॥१९॥
 स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभवतो जितेन्द्रियः । वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुत्पत्तिवादे महाज्येष्ठीप्रशसावर्णनं नाम
 चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

शिवा, चर्मण्वती ॥११॥ वितस्ता, चन्द्रभागा, शतद्रु (सतलज) तथा बाहुवा, ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, द्यूढती ॥१२॥
 ॥१३॥ सरयू, स्वर्गगा, गण्डकी, महानदी कौशिकी (कोसी), करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहिनी ॥१३॥ महानदी,
 वंतरणी, या जो अन्य नदियाँ लोक प्रसिद्ध हैं अथवा द्विजवर्षवृन्द । बहुत अधिक बहने से क्या लाभ ॥१४॥ पृथ्वी
 के सम्पूर्ण तीर्थों में जाने से सब मन्दिरों में दान करने से, सागर, शैल, नदी और सरोवरों में स्नान करने दान देने
 एवं सूर्यग्रहण के समय स्नान और दान से जितना फल मिलता है, उस सम्पूर्ण फल को ज्येष्ठ की उस अतिपवित्र
 पूर्णिमा के दिने कृष्ण के दशन करने से मनुष्य प्राप्त करता है ॥१५-१६॥ इसलिये मुनिधर्मवृन्द । सब मनोरथा
 को पाने की कामना करने वाले मनुष्यों को अपने सभी प्रयत्नों से पुरुषोत्तम तीर्थ को जाना चाहिए ॥१७॥ वहाँ
 मनुष्य सुभद्रा सहित ज्येष्ठ राम और कृष्ण का दर्शन करके अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करता है और स्वयं
 विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१८॥ वहाँ मरणात्प्राप्त तक दिव्य भोगों का भोग करता है । पुनः पुण्यक्षय हो जाने पर
 इस मार्ग लोक में चतुर्वेदपाठी ब्राह्मण होता है ॥१९॥ वहाँ वह जीवन पर्यन्त अपने धर्म में निरत रहने वाला,
 शान्त, जितेन्द्रिय और कृष्ण का भक्त होता है । पुनः वैष्णव भक्ति या ज्ञान को पाकर मोक्ष की प्राप्ति
 करता है ॥२०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में महाज्येष्ठी-प्रशसा वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

अथ पञ्चपण्डितमोऽध्यायः

कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव । विधिना केन तद्ब्रूहि ततो विधिविदां वर ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य घटतो मम । रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाघनाशनम् ॥२॥
 'मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदंबते । पीर्णमास्या तदा स्नानं सर्वकालं हरेर्द्विजा ॥३॥
 सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः । तदा भोगवतो तत्र प्रत्यक्षा भवति द्विजाः ॥४॥
 तस्माज्ज्येष्ठ्या समुद्रृत्य हैमादयैः कलशैर्जलम् । कृष्णरामाभिप्रेकार्यं सुभद्रायाश्च भो द्विजाः ॥५॥
 कृत्वा सुशोभनं मञ्च पताकाभिरलंकृतम् । सुदृढं सुखसचारं वस्त्रं पुष्पैरलंकृतम् ॥६॥
 विस्तोर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः । सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम् ॥७॥
 तत्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्ण नीलाम्बरं द्विजाः । मध्ये सुभद्रां चाऽऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनैः ॥८॥

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का महात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—कमल से उत्पन्न, विधियों में श्रेष्ठ । किस समय और किस विधि से भगवान् कृष्ण का स्नान होता है, कृपया बताइए ॥१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिगण । मैं कृष्ण, राम और सुभद्रा के शुभ और अशुभ पापों को नष्ट करने वाली स्नान-विधि का वर्णन कर रहा हूँ सुनो ॥२॥ द्विजगण । जेठ के महीने में चन्द्रदेवत नक्षत्र (ज्येष्ठा) से युक्त पूर्णिमा के दिन भगवान् का स्नान सदा प्रशस्त और शुभ माना गया है ॥३॥ उस समय कूप निर्मल, पवित्र और सम्पूर्ण तीर्थों के जल से युक्त हो जाता है और भोगवती प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित हो जाती है ॥४॥ इसलिये ! द्विजगण । कृष्ण, राम और सुभद्रा के अभिषेक के लिये सुवर्ण-कलशों में कुर्थ से जल निकाल लिया जाता है ॥५॥ इसके पूर्व पताकाओं से सुशोभित दृढ़, सुविधा से इधर उधर घुमा देने योग्य, विस्तृत और मनोहर मंच बनाना चाहिए । उसको रंग बिरंगे फूलों और पुष्पों से सजाकर धूप से सुगन्धित कर देना चाहिये । उस भगल मंच पर राम-कृष्ण के स्नान के लिये श्वेत वस्त्र मुक्ताहार आदि विविध सामग्री एकत्र कर रख देनी चाहिये ॥६-७॥ ऐसे सुसज्जित मंच पर अनेक बाजे बजाते हुए, जयकार और मंगल ध्वनि के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य जातियों के लोगों

१ ख ० व । के च तत्कारयन्तीह स्नान तस्य विधिं वद । ३० । २ क ख मासे । ३ ग प्रत्यक्ष ।

४ ख. ० व १३ । ५० ।

ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः । अनेकशतसाहस्रैर्वन्तः, स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः ॥९॥
 गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः । स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥१०॥
 तथा समस्ततोयानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः । स्वोदकैः पुष्पमिश्रंश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक् ॥११॥
 पश्चात्पट्टहास्त्याद्यैर्भेरीमुरजनिस्वनैः । काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्हर्षैस्तथा ॥१२॥
 अन्यैश्च 'विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः । स्त्रीणां मञ्जूलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३॥
 जयशब्दैस्तथा स्तोत्रवीणावेणुनिनादितैः । श्रूयते सुमहाच्छब्दः सागरस्यैव गर्जतः ॥१४॥
 मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः । नानास्तोत्ररवैः पुष्पैः सामशब्दोपबृंहितैः ॥१५॥
 यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः । स्नानकाले सुरश्रेष्ठः स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६॥
 श्यामवैश्याजनैश्चैव कुचभारावनामिभिः । पीतरक्ताम्बराभिश्च भाल्यदामावनामिभिः ॥१७॥
 सरत्नकुण्डलैर्विभ्यैः सुवर्णस्तवकाभिर्वन्तैः । चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवो ॥१८॥
 यक्षविद्यापरैः सिद्धैः किनरैश्चाप्सरोगणैः । परिचार्याम्बरगतैर्देवगन्धर्वचारणैः ॥१९॥
 आदित्या वसवो वज्राः साध्या विद्वे महद्गणाः । लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम । सगंस्थित्यन्तकृद्देव लोकनाथ जगत्पते ॥२१॥
 ब्रूलोवयधारिण देवं ब्रह्मण्य' मोक्षकारणम् । त नमस्यामहे भवत्या सर्वकामफलप्रदम् ॥२२॥

एव अनेक सैकडा हजारो स्त्री पुरो को साथ समारोहपूर्वक राम, कृष्ण और सुमन्ना की स्थापना की जाती है ॥८९॥
 ऐसे शुभ मुहूर्त में पहले गृहस्थ, स्नातक, यति, और वेदपाठी ब्रह्मचारी मञ्च पर अवस्थित हलधर राम और कृष्ण को नट्वाते हैं ॥१०॥ इसी प्रकार ऊपर कहे गये सम्पूर्ण तीर्थ भी पृथक् पृथक् पुष्प मिले अपने जल से अप्रत्यक्ष रूप से स्नान कराते हैं ॥११॥ तदनन्तर वहाँ पट्ट, शख, भेरी, मुरज, काहल, मृदग, झंझर एवं अन्य विविध बाजो की ध्वनि और स्त्रियों के मंगल शब्द, मनोहर स्तुतिपाठ, जयध्वनि, स्तोत्रपाठ, और वीणा-वेणु की मधुर ध्वनि से गरजते हुये समुद्र की गम्भीर ध्वनि के समान महान् शब्द सुनाई पड़ता है ॥१२-१४॥ उस समय स्नान-काल में अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मुनिगण वेदपाठ से, अपर आपि मन्त्रोच्चारण से, नानास्तोत्रों के पाठ से, पवित्र स्वरयुक्त सामवेद के गान से, यति, स्नातक, गृहस्थ और ब्रह्मचारी स्तुति करते हैं ॥१५-१६॥ श्यामाङ्गनी, स्तनभार से विनम्र, पीले, लाल वस्त्र धारण करने वाली रत्नजडित कुण्डल आदि आभूषण एवं पुष्पमाला से सजो हुई गणिकायें अनेक शिल्पकलाओं से आभूषित रत्नजडित स्वर्ण के बने ज्वेलर राम और वैशद्य को डुलाती हैं ॥१७-१८॥ आकाश में यक्ष, विद्यापर, सिद्ध, किनर, अप्सरायें, देव, गन्धर्व आदि भण्डल बनाकर एवं आदित्य, वसु, रुद्र, साध्यगण, विश्वदेव, महद्गण, और लोकपाल सभी पुरुषोत्तम की इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥१९-२०॥ 'देवदेवेश' पुराणपुरुषोत्तम । सृष्टि पालन और विनाश करने वाले देव । लोक के स्वामी । जगत्पते । आपको नमस्कार है ॥२१॥ हम सब मनोरथों को देने वाले, निम्बन पालन करने वाले, ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, मोक्षदायक भगवान् को नमस्कार नमस्कार

१क ख ०वैश्वोर्वर्ष० । २ख ०काञ्चित् । ३ ख ०रै रत्नमद० । ४ख ०र्ष । सविचार्य वरगुणैर्द० ।

५क. ०यामरणैर्द० । ६क ख ब्रह्माण ।

स्तुतवैव विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम् । सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाशे व्यवस्थिताः ॥२३॥
 गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरस्तथा । देवतूयोष्यवाद्यन्त वाता यान्ति सुशीतलाः ॥२४॥
 पुष्पमिश्रं तदा मेघा वप्यन्त्याकाशोचराः । जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५॥
 शक्राद्या विबुधाः सर्वं ऋषयः 'पितरस्तथा । प्रजाना पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६॥
 ततो मङ्गलसभारं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । आभिषेचनिकां द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥२७॥
 इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यं सूर्याचन्द्रमसौ तथा । धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥२८॥
 पूषा भर्गोऽयमा त्वष्टा अशुनैव विवस्वता । पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥२९॥
 रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः । विश्वेदेवेमं सद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥३०॥
 गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपद्मगं । देवपिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मपिभिरंशुः ॥३१॥
 वैखानसंवालखिल्यैर्वाग्व्याहारैर्मरीचिर्षः । भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठैः ॥३२॥
 सर्वविद्याधरः पुष्ययोगसिद्धिभिरावृतः । पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥३३॥
 अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च । ऋतुहंरः प्रचेताश्च भनुर्दक्षस्तथैव च ॥३४॥
 'ऋतवश्च ग्रहाश्चैव' ज्योतीर्षि च द्विजोत्तमाः मूर्तिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः ॥३५॥
 समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च । पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः ॥३६॥

करते हैं, ॥२२॥ मुनिगण । देववृन्द इस प्रकार कृष्ण, महाबलशाली राम और सुभद्रा की स्तुति कर आकाश में स्थित हो जाते हैं । (उस समय देवगन्धर्व गाने हैं, अप्सरायें नृत्य करती हैं, और देव वाद्य बजाने लगते हैं, शीतल वायु चलने लगता है ॥२३-२४॥) आकाश से मेघ पुष्पो से मिश्रित जल की वृष्टि करते हैं, मुनि, सिद्ध, और चारण, इन्द्र आदि देवता, सभी ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग और अन्य सभी स्वर्ग में निवास करने वाले देव विशेष जयध्वनि करते हैं ॥२५-२६॥ तदनन्तर मागलिक सामग्रियों के साथ यथाविधि वेदध्वनि की जाती है । उस समय अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर देवगण, इन्द्र, महापराक्रमी विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विधाता, वायु, अग्नि ॥२७॥ पूषा, भग, अयमा, त्वष्टा, तथा अशु (किरण) विवस्वान्, मित्र, वरुण, पत्नियो सहित धीमान्, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विन् सहित प्रभु, विश्वेदेव, मरुद्, साध्य, पितरो के साथ गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष-राक्षस, पद्मग, असंख्य देवपिगण तथा श्रेष्ठ ब्रह्मपिगण ॥२८-३१॥ वैखानस, वायु का आहार करने वाले, किरण पान कर जीवन बिताने वाले बालखिल्यगण, भृगुवशी, सब विद्याओं में निपुण अङ्गिरस् ॥३२॥ सब शुभ विद्याधरो, तथा योग-सिद्धिवा के साथ पितामह, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु ऋतु, हर, प्रचेता, मनु दक्ष, ऋतु, ग्रह, ज्योति पिण्ड, मूर्तिमती नदियाँ, नित्य सनातन देवता, समुद्र, ह्रद, सरोवर, विविध तीर्थ, पृथिवी, आकाश, दिशाये, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती,

१क ग ०तरोऽय्यया । प्र० । २ग ०ता । रुद्राश्विस० । ३ख ०द्व यतिमिश्च महात्मभि । स० ।
 ४क ख. ०श्यपश्चैव म० । ५ख मधु० । ६क ईश्वराश्च । स ऐश्वराश्च । ७क ख. ०व नक्षत्राणि द्वि० ।
 ८ग. ०तो वेदाश्चै० ।

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती । उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः । कुहूः ॥३७॥
 राका च धियणा चैव पत्युश्चान्या दिव्योक्तसाम् । हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकभृङ्गवान् ॥३८॥
 ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च । मासाधं मासश्रुतवस्तथा राश्यहनी समाः ॥३९॥
 उच्चैःश्रवा हयधेष्ठो नागराजश्च वामनः । अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चोपधिभिः सह ॥४०॥
 धर्मश्च भगवान्देवः । समाजग्मुर्हि संगताः । कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥४१॥
 बहुलस्वान्च भोक्ता ये विविधा देवतागणाः । ते देवस्याभिपेकार्यं समापान्ति ततस्ततः ॥४२॥
 गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिव्योक्तसः । आभिपेक्षनिकं द्रव्यं मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३॥
 दिव्यसंभारसंपुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्द्विजाः । सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोषाभिरेव च ॥४४॥
 'तोयैनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण संगतम् । सपुष्पं काञ्चनैः कुम्भैः स्नापयन्त्यवनिस्थिताः' ॥४५॥
 संचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे' तथा । उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६॥
 दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः । गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७॥
 एवं तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं रामेण संगतम् । स्नापयित्वा सुभद्रां च सस्तुवन्ति मुदाऽन्विताः ॥४८॥
 जय जय लोकपाल' भवतरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय जय भूतचरण जय जयाऽऽदिदेव

उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू ॥३३-३७॥ राका, धियणा एव अन्य देवपरित्याग, ह्यालय, विन्ध्य, अनेक
 शिखरों वाला मेरु ॥३८॥ अनुचरो सहित ऐरावत, कला काष्ठा (समय परिमाण) पक्ष मास, ऋतु, रात्रि, दिन, वर्षा
 उत्तम अथ उच्चैःश्रवा, नागराज शेष, वामन, अरुण, गरुड, ओपधियों के सहित वृक्ष ॥३९-४०॥ काल, यम, मृत्यु,
 एव यम के अन्य अनुचर, भगवान् धर्म, ये सभी देवता वहाँ इकट्ठे होते हैं । इसी प्रकार अन्य विविध अगणित देव-
 गण बिनवा नाम यहाँ अधिकता के कारण नही कहा गया है—अपने अपने स्थानों से वहाँ अभिपेक्ष के लिये आते
 हैं ॥४१-४२॥ विप्रवृन्द । उस समय वे सभी देवलोकावासी देवता स्वयं पृथ्वी पर स्थित हो मागलिक अभिपेक्षोचित
 सामग्रियों एवं दिव्य स्नानोचित द्रव्यों से भरे सुवर्ण कलशों में पवित्र सरस्वती आदि नदियाँ एवं आकाशगंगा का
 दिव्य जल भरकर पुष्पादि सुगन्धित द्रव्यों से सुवर्ण कुम्भों से बलराम सहित कृष्ण और सुभद्रा
 को स्नान कराते हैं ॥४३-४५॥ उस समय आकाश में देवताओं के छोटे बड़े, मनोहर, दृढ़ और इच्छानुसार चलने
 वाले (इच्छा-परिचालित) विमान हथर-उधर उड़ने दिखाई देते हैं ॥४६॥ आकाश मण्डल अप्सराओं के दिव्य
 और विविध विविध आभूषणों, चारा ओर पड़ती हुई मनोहर पताकाओं से जगमगा जाता है गन्धर्वों और वन्द-
 षष्ठ मधुरालापी अप्सराओं के गान एवं बाद्य से आकाश मूक उठता है ॥४७॥ मुनिगण । इस प्रकार ब्रह्मन्
 मन्त्र हो बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा को स्नान कराने के उपरान्त सभी श्रद्धापूर्वक स्तुति करने लगते
 हैं ॥४८॥ हे लोकपाल ! भक्तों के रक्षण, शरणगतों पर वात्सल्य भाव रखने वाले, आदिदेव प्राणिमान म स्थित

१ ग ०धेई स० । २ क ०रातथा । ३ ० । ४ त तोयैराका० । ५ त ०यन्नि घरास्थि० । ५ ग ०न्यम्बरे
 स्थि० । ६ य ०धन्तरे । ७ क ०ल जय जयजय वादसण जय जय पद्मनाभ जय जय परायण । ग ०ल जय जय
 पद्मनाभ मुर० ।

बहुकारण' जय जय वासुदेव जय जयासुरसहरण जय जय 'दिव्यमीन' जय जय त्रिदशवर जय जय जलधिषयन जय जय योगिवर' जय जय सूर्यनेत्र जय जय देवराज जय जय कंटभारे जय जय वेदवर' जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर' जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिञ्जय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय घरणीधर जय जय शेषशायिञ्जय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनचक्र' जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय धर्मकेतो जय जय महीनिवास जय जय 'गहनचरित्र' जय जय योगिगम्य जय जय मखनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शान्तिकर जय जय योगिचित्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भायवेद्य' जय जय मुक्तिकर' जय जय विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय' जय जय गुणसमृद्ध' जय जय यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कातिपुत्र जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीपुत्र जय जय पञ्चजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत जय जयातसीकुसुमश्यामदेह' जय जय 'समुद्रविष्टदेह' जय जय लक्ष्मीपञ्चजपटचरण जय जय भक्तवश जय जय लोककांत जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्षकर जय जय कल्पहर

॥४९॥

बहुकारण वासुदेव असुर विनाशक निर्व्यमत्यरूपधारिण देववर समुद्र में सोने वाले योगिश्रेष्ठ देवों के स्वामी, सूर्यनेत्र कंटम के शत्रु वेद रूप कूर्मवितार धारण करने वाले यज्ञवर पद्मनाभ शैलचर! आपकी जय हो जय हो। हे प्रलयकांत मे योगमाया मे शयन करने वाले वेगवर विश्वरूप चक्रधर मूर्तों के नाथ पृथ्वी को धारण करने वाले, शेष पर शयन करने वाले पीताम्बर चक्र के समान कान्तिमान् योग-वास मुख से अग्नि उत्पन्न करने वाले धर्मरूप, गुणों के कोष श्री के वासस्थान (पति) गरुड पर गमन करने वाले सुख के सागर धर्म की पतावा पहचानने वाले, पृथ्वी व्यापक गड चरित्र वाले योगियो द्वारा प्राप्त होने वाले यज्ञों मे वास करने वाले वेदों के द्वारा जानने योग्य, शान्ति दाता योगियो से ध्यान किये जाने वाले भगवन्! आपका जय जयकार हो। हे पुष्टिकर्ता! पान के स्वरूप कमलाकर भावनाओं द्वारा जानने योग्य मुक्तिदाता निषण्ण स्वरूप वाले सत्त्व के निधान गुणशाली (सगुण) यज्ञकर गुणातीत मोक्षदाता लोकरक्षक कान्तिमान् लोकाश्रय लक्ष्मीपति कमलनेत्र सृष्टि करनेवाले अल्सी (तीसी) के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले धनश्याम! सागर के मध्य निवास करने वाले लक्ष्मीरूपी कमल वा भ्रमर के समान मधुपान करने वाले भक्तजनो के वश रहने वाले लोकपति परमशान्त! आपकी जय हो जय हो। हे परमस्व! चक्रधर! हे सपशायिन् नीलाम्बर (बलराम) शान्तिकर मोक्षप्रद और कल्पहरण करने वाले! आपकी

१ग ०हुकर०। २ख दिव्यगीत। ३व ०न जय जय जल०। ४क ०वन्द ज०। ५क ख वैश्वर ६क यज्ञरूप। ७ख यनचर। ८क ख दहनचक्र। ९ग गहनगैहनिवास। १० ०नगमन जय जय भवाध्विबास ज०। १०क भववैद्य। ११क ख मृत्तिकर। १२क ख प्रीतिकर। १३ग गुणसमृद्ध। १४ख ०म ज०। १५क ख सप्तसमु०। १६क ख ०ध्मेह०।

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सकर्षणानुज । जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०॥
जय मालावतोरस्क जय चक्रगदाधर । जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तुते ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

एव स्तुत्या तदा देवा शक्राद्या हृष्टमानसा । सिद्धचारणसघादिव ये चान्ये स्वर्गयासिन ॥५२॥
मुनयो वाल्खिल्याश्च कृष्ण रामेणसगतम् । सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा प्रणिपत्याम्बरे स्थिता ॥५३॥
दृष्ट्वा स्तुत्या नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवीकस । कृष्ण राम सुभद्रा च यान्ति स्व स्व निवेशनम् ॥५४॥
सचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा । उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥५५॥
दिव्यरत्नाविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगण । गीतवाद्यं पताकाभि शोभितानि समतत ॥५६॥
तस्मिन्काले तु ये मर्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् । बलभद्र सुभद्रा च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥५७॥
सुभद्रारामसहित मञ्चस्थ पुरुषोत्तमम् । दृष्ट्वा निरामयस्थानं याति नास्त्यत्र सशय ॥५८॥
कपिलाशनशनेन यत्फलं पुष्करे स्मृतम् । तत्फलं कृष्णमालोचय मञ्चस्थ सहलापुषम् ॥
सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा प्राप्नोति शुभहृत्तर ॥५९॥
वन्द्याशतप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम् । तत्फलं कृष्णमालोचय मञ्चस्थ लभते नर ॥६०॥
सुवर्णशतनिष्काणां दानेन यत्फलं स्मृतम् । तत्फलं कृष्णमालोचय मञ्चस्थ लभते नर ॥६१॥

जय हो ॥५९॥ कृष्ण ! जगत्पते ! बलराम के छोटे भ्राता ! पद्मपत्र के समान मनोहर नेत्रवाले ! मनोरथ सिद्ध करने वाले ! सर्वदा वसुस्थल पर वैजयन्ती माला धारण करने वाले ! वज्रगन्धारिन् ! सम्भीपते विष्णो ! आपकी जय हो ! आपको हमारे असह्य नमस्कार हैं ॥५०-५१॥

ब्रह्मा घोले—मुनिवर ! उस समय इस प्रकार इंद्र आदि देवता सिद्ध और चारणा वा समूह एवं अन्य सभी स्वर्गवासी देवता समस्त मुनिगण और वाल्मिल्य प्रमुनि ऋषिगण राम सहित कृष्ण और सुभद्रा की स्तुति करते तथा प्रणाम कर आकाश में स्थित हो जाते हैं ॥५२-५३॥ इसके अनन्तर वे देवबन्ध कृष्ण राम एवं सुभद्रा का दान स्तुति अथवा नमस्कार कर अपने-अपने निवास-स्थान को चले जाते हैं ॥५४॥ उस समय अर्वाङ्ग में मनोहर छोटे बड़े उत्तम दृढ़ विमान उड़ते हुये दिखाई देते हैं आकाश रंग विरगी पताकाआ और अम्बररात्रि के विचित्र विचित्र आभूषणा से सुभाषित हो जाता है अस्तराआ के मनोहर मन्दुर गान और वाद्य स स्वयं गाना हुआ सा जान पड़ता है ॥५५-५६॥ उस समय जो मनुष्य राम कृष्ण और सुभद्रा का दान करते हैं वे अजय पद को प्राप्त करते हैं । मञ्च पर बैठ सुभद्रा राम के सहित पुरुषोत्तम कृष्ण का दान कर मनुष्य निरामय स्थान को प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं । ७॥ मुनिवर ! पुनरु श्रेष्ठ में सैकड़ा गौआ के दान से जो फल मिलता है उस फल व पुनः वाय करनशाना मनु मञ्चस्थ कृष्ण वन्द्याम और सुभद्रा को दसकर प्राप्त करता है ॥८॥ सैकड़ा वन्द्यामन में जो फल प्राप्त होता है मनुष्य उसका मञ्चस्थ कृष्ण के दान से प्राप्त करता है ॥६०॥ मी निज (एक निज १६ भाग)

गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६२॥
 भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६३॥
 यत्फलं चाश्वदानेन अर्घातिथ्येन कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६४॥
 वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६५॥
 यत्फलं तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६६॥
 तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं संप्रकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६७॥
 गजाश्वरथदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६८॥
 सुवर्णशृङ्गोदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६९॥
 जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७०॥
 दानेन घृतधेनवाश्च फलं यत् समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७१॥
 चान्द्रायणेन चोर्णेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७२॥
 मासोपवासविधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७३॥
 अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः। तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमाः॥७४॥
 यत्फलं सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्त्य मञ्चस्थं सहलायुधम्॥७५॥
 सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृत्तरः। तस्मान्नरोऽथवा नारो पश्येत्तं पुण्योत्तमम्॥७६॥
 ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम्। स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते॥७७॥
 वन्द्या भूतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता। राक्षसाद्यैर्गृहीता वातया रोगैश्च संहता॥७८॥

परिमित स्वर्णदान से हजार गौओ के दान से, विधिपूर्वक भूमिदान करने से एवं अन्नदान और अतिथि सकार से जो फल मिलते हैं वे सभी मञ्चस्थ कृष्ण का दर्शन करने से मनुष्यो को मिल जाते हैं॥६१-६४॥ इसी प्रकार विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग आद्य करने से गर्मी के दिनों में जल पिलाने से, तिलधेनु (कूटे हुए तिल का बनी गाय की प्रतिमा) के दान से, हाथी घोड़े और रथ के दान से सोने से मछे सींग वाली गौओ के दान से, जल घेनु, घृत घेनु (घी से बनी घेनु) के दान से जो फल श स्नानान्तर प्राप्त होते हैं वे फल मञ्च पर आसीन पुण्योत्तम कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होते हैं॥६५-७१॥ चान्द्रायण व्रत एवं विधिपूर्वक एक मास के उपवास से जो फल प्राप्त होता है वह मञ्च पर स्थित कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को मिलता है॥७२॥ द्विजवर! उस मञ्चस्थ देव कृष्ण के दर्शन की महिमा को इस प्रकार बार बार अधिक बहने से क्या लाभ? सब तीर्थों के करने दान देने और व्रतों के अनुष्ठान से जो फल होते हैं वे सभी मञ्चस्थ बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा के दर्शन से पुण्यवान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥७३-७५॥ इसलिये भर अथवा नारी अवश्य उस पुण्योत्तम का दर्शन करे॥७६॥ इसके अतिरिक्त कृष्ण के अभिषेक से बचे जल से जो स्नान करता है वह सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का फल पाता है॥७७॥ वन्द्या, भूतवरसा, विषवाया भाग्यहीन, ग्रहों से पीडित, भूतप्रेमादि

सद्यस्ता स्नानशेषेण उदकेनाभिवेक्षिताः । प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९॥
 पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्तोभाष्य च सुखार्थिनी । रोगार्ता मुच्यते रोगाद्भन च धनकाङ्क्षिणी ॥८०॥
 पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले । तानि स्नानावशेषस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥८१॥
 तस्मात्स्नानावशेषं यत्कृष्णस्य सलिलं द्विज । तेनाभिविञ्चेद्गात्राणि सर्वकामप्रदं हि तत् ॥८२॥
 स्नात पश्यन्ति ये कृष्णं व्रजन्त दक्षिणामुखम् । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते तेन तशय ॥८३॥
 शास्त्रेषु यत्फलं प्रोक्तं पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणं । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४॥
 तीर्थयात्राफलं यत्तु पृथिव्या समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८५॥
 वदयां यत्फलं प्रोक्तं दृष्ट्वा नारायणं नरम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८६॥
 गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८७॥
 प्रयागे च महामाध्या यत्फलं समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८८॥
 शालग्रामे महार्चय्या स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८९॥
 महाभिधानकातिवया पुष्करे यत्फलं स्मृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९०॥
 यत्फलं स्नानदानेन गङ्गासागरसगमे । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९१॥
 प्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९२॥

से दुखी और रोगग्रस्त स्त्रिया यदि उस स्नान से बचे जल से स्नान करें तो तक्षण ही अपनी सम्पूर्ण इच्छा और मनोरथा को प्राप्त कर लेती हैं ॥७९॥ पुत्र की कामना करने वाली स्त्री पुत्र को पाती है, सुख चाहने वाली अपने सौभाग्य को प्राप्त करती है, रोगी अपन रोगों से छूट जाती है और धन की इच्छा रखने वाली धन प्राप्त करती है ॥८०॥ इस पृथ्वीतल पर जितने प्रकार के जल पाये जाते हैं वे सभी इस स्नान से बचे जल के सोलहव भाग के बराबर भी पुण्य देने वाले नहीं होते ॥८१॥ द्विजपण । इसलिये कृष्ण के स्नान से बच जल अ अवश्य अपने गात्रों का अभिषेक करना चाहिये क्योंकि वह सब मनोरथा को देने वाला है ॥८२॥ जो मनुष्य स्नान किये हुए और दक्षिण की ओर जाने वाले (यहाँ रथयात्रा से अभिप्राय है) स्नान के बाद रथ पर कृष्ण को चढ़ाकर घुमाया जाता है) कृष्ण को देखता है वह नि सन्देह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है ॥८३॥ शास्त्रों में पृथ्वी की तीन बार प्रदक्षिणा करने से जो फल कहे गये हैं वे दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य का प्राप्त होते हैं ॥८४॥ पृथ्वी पर तीर्थयात्रा करने से जो फल मिलते हैं, बदरिकाश्रम जाकर नारायण के दशन करने से जो फल मिलते हैं हरद्वार कुक्षेत्र में स्नान करने एवं दान देने से जो फल मिलते हैं मायी अमावस्या को श्रयण में स्नान करने से जो फल मिलते हैं, वे सभी दक्षिणाभिमुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य को मिलते हैं ॥८५॥ ८८॥ पुण्यदायक चैत्रमास में शालग्राम तीर्थ में स्नान करने, और दान देने से, महापुण्यदायिनी नातिव-मृणिमा के दिन पुष्कर क्षेत्र में स्नान और दान से, गङ्गासागर सगम के स्नान और दान से, सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में स्नान करने और दान देने से जो

गङ्गाया सर्वतीर्थेषु' यामुनेषु च भो द्विजा । सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सरसु च ॥९३॥
 यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९४॥
 पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके । नर्मिषादियु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥९५॥
 यत्फल स्नानदानेन राहुपस्ते दिवाकरे । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९६॥
 अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुन पुन । यत्किञ्चित्कथितं चात्र फल पुण्यस्य कर्मण ॥९७॥
 वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमा । धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभि ॥९८॥
 दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल सहलायुधम् । सकल भद्रया साध यजन्त दक्षिणामुखम् ॥९९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूषिसवादे कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम
 पञ्चपण्डितमोऽध्याय ॥६५॥

फल होता है वह दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दान से होता है ॥८९ ९२॥ गंगा के सभी तीर्थों यमुना के सभी तीर्थों सरस्वती एवं अन्य सरोवरों के तीर्थों में विधिवत् स्नान और दान से जो फल कहे गये हैं वे सभी फल दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दान से मनुष्य को प्राप्त होते हैं ॥९३ ९४॥ सप्तम भ पुष्कर गया अमरकण्टक नर्मिषारण्य इत्यादि तीर्थों शत्रो एवं देवमन्दिरों में जाने दान करने दान देने तथा सूर्यग्रहण काल के स्नान-दान से जो फल मिलते हैं वे सभी फल उस भाग्यवान् मनुष्य को मिलते हैं जो दक्षिणामुख जाते हुए कृष्ण का दान करता है ॥९५ ९६॥ अथवा बार बार पुनरुक्त भाषण करने से क्या प्रयोजन ? वेदशास्त्र पुराण महामारत तथा सभी धर्माशास्त्रों और अन्यत्र भी विद्वानों द्वारा जो पुण्य-फल कहे गये हैं वे सभी उस मनुष्य को प्राप्त होते हैं जो बलराम और सुमद्रा के सहित दक्षिण की ओर जाते हुए कृष्ण का दान करता है ॥९७ ९९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कृष्ण माहात्म्य-वर्णन नामक पसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

गुडिवायानामाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

'गुडिवा मण्डपं यातुं ये पश्यन्ति रथे स्थितम् । कृष्णं बलं सुभद्रां च ते यातुं भवन् हरे ॥१॥
ये पश्यन्ति तदा कृष्णं सप्ताहं मण्डपे स्थितम् । हलिनं च सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥२॥

मुनय ऊचुः

कनः सा निर्मिता यात्रा दक्षिणस्यां जगत्पते । यात्राफलं च किं तत्र प्राप्यते ब्रूहि मानवं ॥३॥
विमर्यं सरसस्तीरे राजस्तस्य जगत्पते । पवित्रे विजने देवे गत्वा तत्र च मण्डपे ॥४॥
कृष्णं सकर्यणश्चैव सुभद्रां च रथेन त । स्वस्थानं सपरित्यज्य सप्तरात्रं वसति वै ॥५॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्रद्युम्नेन भो विशा पुरा वै प्रार्थितो हरिः । सप्ताहं सरसस्तीरे मम यात्रा भवत्यिति ॥६॥
गुडिवा नाम देवेश भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । तस्मै बिलं घरं चासी ददौ स पुरयोत्तम ॥७॥

अध्याय ६६

गुडिवायानां वा माहात्म्यं कथनम्

ब्रह्मा बोल—जा मनुष्य रथ पर बढ कृष्ण बन्धु राम और सुभद्रा का गुडिवा मण्डप की बार जात हुए दान
हैं वे विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं । और जो मण्डप में स्थित कृष्ण राम और सुभद्रा का एक सप्ताह पश्यत दान
करते हैं वे विष्णुलोक को जाते हैं ॥१॥ २॥

मुनिषो न पूछा—जगत्पते ! जिसने मगवान् की उस दक्षिण की ओर की यात्रा का नियम निवाला और
इस यात्रा के दान से मनुष्या को कौन सा फल मिलता है कृपा करके सुनाय्ये । जगन्पते ! उस इन्द्रद्युम्न सर के
तीर पर पवित्र निजने प्रान्त में कृष्ण बन्धु राम और सुभद्रा माँद स रथ द्वारा " " जाकर उस मण्डप में
एक सप्ताह तक निमग्न रह जाने हैं ॥३॥ ५॥

ब्रह्मा ने हा—विप्रन्द् ! पन् इन्द्रद्युम्न ने मगवान् से प्राप्त की था कि मेरे शरीर के तट पर एक
सप्ताह तक आसकी यात्रा हो दान । वह यात्रा राम और मोन को देवेनाग्ने गुडिवा नाम से विख्यात है ।
ऐसी प्राप्तता मुनकर पुरयोत्तम ने उसको मतवाहा कर प्रदान किया ॥६॥ ७॥

१. गुडिवा० । २. गुडिवा० । ३. दक्षिणास्यां । ४. गुडिवास्यां । ५. य जगन्पते । ६. यात्रा ।

श्रीभगवानुवाच ।

सप्ताहं सरसस्तोरे तव राजन्भविष्यति । गुडिवा' नाम यात्रा मे सर्वकामफलप्रदा ॥८॥
 ये मां तत्रार्चयिष्यन्ति श्रद्धया मण्डपे स्थितम् । संकर्षणं सुभद्रां च विधिवत्सुसमाहिताः ॥९॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः स्त्रियः शूद्राश्च वं नृप । पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यैर्वरैः ॥१०॥
 उपहारैर्बहुविधैः प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः । जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्गातैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥११॥
 न तेषां दुर्लभं किञ्चित्फलं यस्य यदीप्सितम् । भविष्यति नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादादसंशयम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

[एवमुक्त्वा] तु तं देवस्तत्रैवान्तरधीयत् । स तु राजवरः श्रीमान्कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१३॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन 'गुडिवायां' [द्विजोत्तमाः । सर्वकामप्रदं] देवं पश्येत्तं पुरोत्तमम् ॥१४॥
 अमुत्रो लभते पुत्राग्निर्धनो लभते धनम् । रोगाच्च मुच्यते रोगो कन्या प्राप्नोति सत्यतिम् ॥१५॥
 आयुः कीर्तिं यशो मेधां बलं विद्यां धृतिं पशून् । भरः संततिमाप्नोति रूपयौवनसपदम् ॥१६॥
 धान्यान्समोहते' भोगान्दृष्ट्वा तं पुरोत्तमम् । नरो वाऽप्ययवा नारी तास्तान्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१७॥
 यात्रां कृत्वा 'गुडिवाख्यां' विधिवत्सुसमाहितः । आपादस्य' सिते पक्षे नरो योपिदद्यापि वा ॥१८॥

श्री भगवान् ने कहा—राजन् ! तुम्हारे सरोवर के तट पर मेरी सब मनोरमों को देनेवाली गुडिवा नाम की यात्रा एक सप्ताह पर्यन्त होगी । जो एकाग्र चित्त से मण्डप में स्थित मेरी, बलराम और सुभद्रा की पुष्प, गंध, धूप दीप, नैवेद्य तथा विविध उत्तम उपहारों से विधिवत् पूजा कर नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करेंगे तथा जयध्वनि, स्तोत्रपाठ मनोहर गान, वाद्य आदि से मुझे सतुष्ट करेंगे, नृप । वे चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी क्या न हों उनके लिये सप्ताह में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा । नृपश्रेष्ठ ! मेरी इष्टा से उनको निश्चित ही इच्छानुसूल फल प्राप्त होंगे ॥८-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् विष्णु राजा से कहकर अन्तर्हित हो गये । वह प्रमादवाली राजा भी अत्यन्त इतुष्ट हो गया ॥१३॥ इन्द्रिये, द्विजवर ! मनुष्य को प्रमत्त करने गुडिवा यात्रा के समय सब मनोरम मिष्ट करने वाले पुरोत्तम देव का दर्शन करना चाहिये ॥१४॥ पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रों को, और धनहीन धन को प्राप्त करता है । इसी प्रकार रोगी अपने रोग से मुक्त हो जाता है और कन्या इच्छानुसूल उत्तम पति प्राप्ता करती है ॥१५॥ भगवान् पुरोत्तम के दर्शन से मनुष्य आयु, कीर्ति, यश, बुद्धि, बल, विद्या, धैर्य, रूप, यौवन, धन और उन सब सत्त्व प्राप्त करता है ॥१६॥ नर हो या नारी सभी भगवान् के दर्शन से जित जित गुणों की इच्छा करते हैं, निमन्त्रेण उनकी वे सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं । नर हो अथवा स्त्री कोई भी आपाद से शुद्ध पक्ष में अनन्य भाव से विधि-

दृष्ट्वा कृष्णं च रामं च सुभद्रां च द्विजोत्तमाः । दशपञ्चादवमेधानां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥१९॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य चाऽऽत्मनः । कामगेन विमानेन सर्वरत्नैरलङ्कृतः ॥२०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेव्यमानो यथोत्तरैः । रूपवान्सुभगः शूरो नरो विष्णुपुरं यजेत् ॥२१॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् । सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ॥२२॥
पुण्यभयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् । वैष्णवं योगमास्याप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुश्चपिस्वादे गुडिवायात्रामाहात्म्यनिरूपणं
नाम पट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

द्वादशयात्रामाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

एकैकस्यास्तु यात्रायाः फलं ब्रूहि 'पुण्यपुण्यम् । यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा नारी' वा तत्र संयता' ॥१॥

पूर्वकं गुडिवा नाम की यात्रा कर एव कृष्ण, राम और सुभद्रा का दर्शन कर द्विजपुत्र । पन्द्रह अद्वैतमेव यज्ञो से भी अधिक फल प्राप्त करता है ॥१७-१९॥ वह अपने सात बीते और सात आने वाले वशों का उद्धार कर स्वयं इच्छागामी विमान से सब रत्ना से अलङ्कृत होकर विष्णुलोक को जाता है ॥२०-२१॥ वहाँ उसकी गन्धर्व और अप्सराओं द्वारा उत्तरोत्तर क्रम से सेवा होती है और वह रूपवान्, साम्यशाली एवं शरवीर होता है । उस विष्णुलोक में वह जल-मृत्यु से रहित और शान्त होकर कल्पान्त तक उत्तम भोगों का भोग करता है । पुनः पुण्य क्षीण हो जाने पर हम लोक में आकर चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण होता है । तदनन्तर वैष्णव योग (ज्ञान) को पाकर मोक्ष का अधिकारी होता है ॥२२-२३॥

और ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद में गुडिवा-यात्रा माहात्म्य-वर्णन नामक छाछठवा अध्याय समाप्त ॥६६॥

अध्याय ६७

चारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

मुनियों ने कहा—उन यात्राओं को अनन्य भाव से करके स्त्री पुरुष क्या फल पाते हैं कृपया एव-एव यात्रा का फल अलग-अलग कहिये ॥१॥

१४. स. ०भासाद्यतः । २४. ०शिविभोः य० । ३४. ०रीमिस्त्र सं० । ४४. स. समुत्तः ।

ब्रह्मोवाच

प्रतिप्राप्ताकल विप्रा शृणुष्व गदतो मम । यत्प्राप्नोति नर कृत्वा तस्मिन्क्षेत्रे सुसयत ॥२॥
गुडिवाया तयोत्थाने फालगुन्या विषुवे तथा । यात्रा कृत्वा विधानेन दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥३॥
सकर्पण सुभद्रा च लभेत्सर्वत्र धै फलम् । नरो गच्छेद्विष्णुलोके यावद्विन्द्रादचतुर्दश ॥४॥
यावद्यात्रा ज्येष्ठमासे करोति विधिधन्रर । तावत्कृत्वा विष्णुलोकं सुखं भुङ्कते न सशय ॥५॥
तस्मिन्क्षेत्रेवरे पुष्य रम्य श्रोत्रुष्योत्तमे । भुविमुक्ताप्रदं नृणां सर्वसत्त्वसुखावहे ॥६॥
ज्येष्ठे यात्रा (त्रा) नर कृत्वा नारी वा सयतन्द्रिय । ययोक्तन विधानेन दश ' द्वे च समाहित ॥७॥
प्रतिष्ठा कुरुते यस्तु शाठ्यदम्भविजित । स भुक्त्वा विविधान्भोगान्मोक्षं चा ते लभेदध्रुवम् ॥८॥

मुनय ऊचु

श्रोतुमिच्छामहे देव प्रतिष्ठा ददतस्तव । विधानं चार्चनं दानं फलं तत्र जगत्पते ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल प्रतिष्ठा विधिचोदिताम् । या कृत्वा तु नरो भवत्या नारी वा लभते फलम् ॥१०॥
यात्राद्वादशसपूर्णा यदा स्यात्तु (स्पुस्तु) द्विजोत्तमा । तदा कुर्वीत विधियत्प्रतिष्ठा पापनाशिनीम् ॥११॥

अथा बोलै—विप्रबुद्ध । सयमी व्यक्ति उस तीथ (गुडिका) की यात्रा को समाप्त कर प्रवेश यात्रा का जो फल प्राप्त करते है उसका मैं बह रहा हू गुता ॥२॥ फालगुन का पूर्णिमा विषुव (जिग निन रात्रि निन समान होत है) काठ म तथा देवोत्थान एकान्ती क निन गुल्फि यात्रा नर विविपूवक कृष्ण वडराम तथा मुभन को प्रणाम कर मनुष्य मत्र पत्रा का प्राप्त करता है और चौन्ह इन्द्रा व भाग-काठ तक विष्णु व जोर म निवास करता है ॥३॥ ४॥ जठ के महाने म मनुष्य विनन वार विधिपूर्वक यात्रा करता है वह जलन ही कन्या तत्र विष्णु जोर म भुन भोग करता है इगम सन्टे नह ॥५॥ सपवित्र मनाहर भोग और मान को देने वाले सभी प्राणिमो को मुन पदुवान वाले पुरातम क्षत्र म जा निनाय्य गारी या नर अनन्य भाव मे विधान के अनुसार बारह बार ज्येष्ठ मास म यात्रा करत तथा पत्रा और पत्रा का छाडकर त्व प्रतिष्ठा करेगे वे विविध भागा का भोग कर अन्तर्गत म विनित ही भोग प्राप्त करत ॥६॥ ८॥

मुनिगण बोल—देव । अभी आपने जा तगयति की प्रतिष्ठा की पचां की है उग प्रतिष्ठा के विधान पूजन दान और पत्र के विषय म हम त्याग गुनना चाहते हैं कृपाकर गुताइय ॥९॥

अथा न पहा—मुनिवत द्विज देव प्रतिष्ठा क करत म मनुष्य उत्तम पत्रा का प्राप्त करता है उग प्रतिष्ठा की विधि मैं बता रहा हू धन्यपूर्वक गुतो ॥१०॥ उगम द्विजबुद्ध । जब बारह बार यात्रा पूरी हो जाय तब

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्वेकादश्या समाहित । गत्वा जलाशय पुण्यमाचम्य प्रयत शुचि ॥१२॥
 आवाह्य सर्वतीर्थानि ध्यात्वा नारायण तथा । तत स्नान प्रकुर्वीत विधिबस्तुसमाहित ॥१३॥
 यस्य यो विधिरुद्रिष्ट ऋषिभि स्नानकर्मणि । तेनैव तु विधानेन स्नान तस्य विधीयते ॥१४॥
 स्नात्वा सम्यग्विधानेन तत देवानूपीप्सितुन् । सतर्पयेत्तथाऽन्याश्च नामगोत्रविधानवित ॥१५॥
 उत्तीर्णं वाससी धीते निर्मले परिधाय वै । उपस्पृश्य विधानेन भास्कराभिमुखस्तत ॥१६॥
 गायत्रीं पावनो देवीं मनसा वेदमातरम् । सर्वपापहरा पुण्यां जपेदष्टोत्तर शतम् ॥१७॥
 पुण्याश्च सौरमन्त्राश्च श्रद्धया सुसमाहित । त्रिप्रदक्षिणमावृत्य भास्कर प्रणमेत्तत ॥१८॥
 वेदोक्तेन त्रिषु वर्णेषु स्नानं जाप्यमुदाहृतम् । स्त्रीशूद्रयो स्नानजाप्य वेदोक्तविधिवर्जितम् ॥१९॥
 ततो गच्छेद्गृहं मोनी पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । प्रक्षाल्य हस्ती पादौ च उपस्पृश्य यथाविधि ॥२०॥
 धृतेन स्नापयेद्देव क्षीरेण तदनन्तरम् । मधुगन्धोदकेनैव तीर्थचन्दनवारिणा ॥२१॥
 ततो वस्त्रयुग श्रेष्ठ भक्त्या त परिषापयेत् । चन्दनागच्छर्पूरे कुङ्कुमेन विलेपयेत् ॥२२॥
 पूजयेत्परया भक्त्या पञ्चदश पुरुषोत्तमम् । अन्यैश्च वैष्णवं पुष्पैरर्चयेन्मल्लिकादिभि ॥२३॥
 सपूज्यैव जगन्नाथ भुवि नमुक्तिप्रद हरिम् । धूप चागुरुसयुक्तं दहेद्देवस्य चाग्रत ॥२४॥

विधिपूर्वक इस पापनाशिनी प्रतिष्ठा को करना चाहिये ॥११॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल-एकादशी के दिन सयत भाव से उस पवित्र जलाशय के समीप जाकर आचमन कर पवित्र होना चाहिये ॥१२॥ पुनः सब तीर्थों का आवाहन कर तथा भगवान् का ध्यान कर विधिपूर्वक समाहित हित से उसमें स्नान करना चाहिये ॥१३॥ ऋषिया ने स्नान-कर्म में जिसके लिये जो विधि बताई है उसी विधि से स्नान करना चाहिये ॥१४॥ तदनन्तर मली भोजन स्नान कर नाम गोत्र का जानने वाला व्यक्ति देव ऋषि पितर तथा अन्य देवों का तपण करे ॥१५॥ इसके बाद जल से निक्कल कर स्वच्छ निमल घुले वस्त्र पहन कर सूर्याभिमुख हो विधिपूर्वक आचमन करे ॥१६॥ आचमन से पवित्र हो सब पापों को दूर करने वाली पवित्र वेत्ता गायत्री देवी का मन में जप करे ॥१७॥ इसके अनन्तर पवित्र सूयमन्त्रों का पाठ करते हुए थड़ा और सयत भाव से तीन बार प्रणिष्ठा कर सूय को प्रणाम करे ॥१८॥ मैंने तीन वर्णों के लिये वेत्ता द्वारा कहे गये स्नान और जपविधान को कहा है स्त्री गार्हो के लिये वेदविधि से स्नान और जप वर्जित है ॥१९॥ इस प्रकार सच्चा बन्दन से निवृत्त होकर मोन हो घर जाय वहाँ हाथ-पैर धोकर यथाविधि आचमन कर पुरुषोत्तम की पूजा प्रारम्भ करे ॥२०॥ पहले भगवान् को घृत से तदनन्तर दूध से नहलाय फिर मधु-गुग्गुल से युक्त जल तथा चन्दन मिश्रित तीर्थ-जल से उहलाकर भक्तिपूर्वक भगवान् को उत्तम युगल वस्त्र पहनाय घीर से चन्दन अगर कुङ्कुम और कपूर का लेप लगाय तथा अत्यन्त भक्तिभाव से कमल एवं अजय मल्लिका आदि विष्णु की प्रिय लगने वाले फूलों से पुरुषोत्तम की पूजा करे ॥२१॥ २३॥ इस विधि से भक्ति-भक्ति-दाना नाकपति भगवान् विष्णु देव की पूजा कर उनके आगे अगुरु मिले घूर और गुग्गुलिन गुग्गुल को जलाये दक्षिण के अनुसार भक्तिपूर्वक

१ ग ० न जप्य० । २ स ० णा । नम्यव० । ३ क मन्त्रैश्च । स यथैश्च । ४ क विविधै ।

५ क ० कर्त देवदेव० ।

गुग्गुलु च मुनिश्रेष्ठा दहेदगन्धसमन्वितम् । दीप प्रज्वालयेद्भक्त्या ययाशक्त्या (वित्) घृतेन वै ॥२५॥
 अन्याश्च दीपकान्दद्याद्द्वादशैव समाहित । घृतेन च मुनिश्रेष्ठास्तिलतलेन वा पुन ॥२६॥
 नैवेद्ये पापसाप्पशङ्कुलीवटक तथा । मोदक फणित चाऽल्प कलानि च निवेदयेत् ॥२७॥
 एव पञ्चोपचारेण सपूज्य पुरुषोत्तमम् । नमः पुरुषोत्तमायेति जपेदष्टोत्तर शतम् ॥२८॥
 ततः प्रसादयेद्देव भक्त्या तं पुरुषोत्तमम् । नमस्ते सर्वलोकेश भक्तानामभयप्रद ॥२९॥
 ससारसागरे मग्नं ब्राह्मि मा पुरुषोत्तम । यास्ते मया कृता यात्रा द्वादशैव जगत्पते ॥३०॥
 प्रसादात्तव गोविन्द सपूर्णास्ता भवन्तु मे । एव प्रसाद्य तं देव दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥३१॥
 ततोऽर्घ्येदगुरु भक्त्या पुष्पवस्त्रानुलेपनं । नानाधोरन्तर यस्माद्विद्यते मुनिसत्तमा ॥३२॥
 देवस्थोपरि कुर्वीत श्रद्धया सुसमाहित । नानापुष्पैर्मुनिश्रेष्ठा विचित्र पुष्पमण्डपम् ॥३३॥
 कृत्वाऽवधारण पश्चाज्जागर कारयेन्निशि । कथा च वासुदेवस्य गीतिका चापि कारयेत् ॥३४॥
 'ध्यायन्पठन्स्तुबन्देव' प्रणयेद्भजनं बध । ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां द्वादशैव तु ॥३५॥
 'निमग्नयेद्भक्तस्तानान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् । इतिहासपुराणशास्त्रोत्रियान्सयतेन्द्रियान् ॥३६॥
 स्नात्वा सम्पग्विधानेन धीतवासा जितेन्द्रिय । स्नापयेत्पूर्ववत्तत्र पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥३७॥

घृत का दीपक जलाये । इसी प्रकार मुनिवय । घृत के अथवा तिल-तैल के अन्य बारह प्रीप श्रद्धापूर्वक भगवान् को न्दियाये । भोजन के लिए विभिन्न प्रकार के मयुर पत्ताय खीर मालपूजा पूरी लड्डू राब एव फल भगवान् को अर्पित करे ॥२४-२७॥ इस प्रकार पञ्चोपचार से भगवान् की पूजा कर नमः पुरुषोत्तमाय इस मात्र का एक सौ आठ बार जप करे ॥२८॥ जप के बाद भगवान् पुरुषोत्तम को स्तुति द्वारा प्रसन्न करे । भक्ता को अमय दान देने वाले देवेन । आप को नमस्कार है । पुरुषोत्तम । ससार-सागर में डूबे हुए मेरी रक्षा करो । जगत्पते । मैंने आप की कृपा से जो ये तुम्हारी द्वादश यात्राये की हैं वे पूजार्थ से मंग फल दें । इस प्रकार स्तुति में भगवान् को प्रसन्न कर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये ॥२९-३१॥ मुनिश्रेष्ठ । गुरु और भगवान् में थोड़ा भी अन्तर नहीं है इसलिय भगवान् की पूजा के बाद गुरु की पूजा वस्त्र और गुग्गुलु द्रव्यों से पूजा करनी चाहिये । मुनिश्रेष्ठ । भगवान् की प्रसन्नता के उद्देश्ये उनके ऊपर अनेक पुष्पों का विचित्र मण्डप श्रद्धापूर्वक अनन्य भाव से बनाना चाहिये ॥३२-३३॥ इस प्रकार देव प्रतिष्ठा कर रात्रि में जागरण करना चाहिये वासुदेव की मनोहर कथा और गीत भी गाये जाने चाहिए । बुद्धिमान् व्यक्ति का को चाहिये कि इस प्रकार पुरुषोत्तम का ध्यान स्तुति और स्तोत्र पाठ करने हुये रात बिताए ॥३४॥ तदनन्तर द्वाण्णी के तिन प्रातःकाल वेद के प्रवाण्ड विद्वान् इतिहास-पुराणा के गाता धोत्रिय जितेन्द्रिय और व्रती बारह द्वाहणों को निमन्त्रित करे ॥३५-३६॥ स्वयं स्नान कर धुले हुए वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक सयन भाव से भगवान् पुरुषोत्तम को पहले की तरह स्नान कराये विविध पुष्पा उपहार नैवेद्य दीप तथा विविध उपकारा

गन्धं. पुष्पं ह्यहारेर्नैवेद्येर्दोषकंस्तथा । उपचारं बहुविधं प्रणिपातः, प्रदक्षिणं ॥३८॥
 माष्यं स्तुतिनमस्कारं गौतवाद्यैर्मनोहरं । सपूज्यं च जगन्नाथं ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः ॥३९॥
 द्वादशैव तु गास्तेभ्यो दत्त्वा कनकमेव च । छत्रोपानद्युग चैव श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥४०॥
 भक्त्या तु सधन तेभ्यो दद्याद्ब्रह्मादिकं द्विजा । सद्भावैव तु गोविन्दस्तोष्यते पूजितो यतः ॥४१॥
 आचार्याय ततो दद्याद्गोवस्त्र कनक तथा । छत्रोपानद्युग चान्यत्कास्यपानं च भवितत ॥४२॥
 ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्भोज्य पायसपूर्वकम् । पक्वान्नं भक्ष्यभोज्य च गुडसपि समन्वितम् ॥४३॥
 ततस्तान्नक्षतुप्ताश्च ब्राह्मणान्बन्धमानसान् । द्वादशैवोदकुम्भाश्च दद्यात्तेभ्यः समोदकान् ॥४४॥
 दक्षिणां च यथाशक्त्या (वित्त) दद्यात्तेभ्यो विमत्सरः । कुम्भं च दक्षिणां चैव आचार्याय निवदयेत् ॥४५॥
 एव सपूज्य तान्द्विप्रान्गुरु ज्ञानप्रदायकम् । पूजयेत्परया भक्त्या विष्णुतुल्य द्विजोत्तमाः ॥४६॥
 सुवर्णैस्त्रिगोवाभ्यैर्द्व्यंशवान्यैर्बर्बुध । सपूज्य त नमस्कृत्य इम मन्त्रमुदीरयेत् ॥४७॥
 सर्वव्यापी जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर । अनादिनिघ्नो देवः प्रीयतां पुष्ट्योत्तम ॥४८॥
 इत्युच्चार्य ततो विप्रास्त्रि वृत्वा च प्रदक्षिणाम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या आचार्यं तु विसर्जयेत् ॥४९॥
 ततस्तान्ब्राह्मणान्भक्त्या चाऽऽसीमान्तमनुव्रजेत् । अनुव्रज्य तु तान्सर्वाग्निमस्कृत्य निवर्तयेत् ॥५०॥

से विधिवत् पूजा करे पुन दण्डवत् और प्रदक्षिणा कर भगवान् को मनोहर गान, स्तुति, नमस्कार और जप द्वारा प्रसन्न करे । इस प्रकार भगवान् की पूजा करने के बाद उन निमन्त्रित ब्राह्मणों की यथा विधि पूजा करे ॥३७-३९॥ प्रत्येक को एक-एक माष सुवर्ण छत्रा, और एक एक जाड़े जूते भक्तिपूर्वक दान दे ॥४०॥ द्विजगण । प्रत्येक ब्राह्मण को घन सहित वस्त्र आदि भी दे । क्यापि सद्भावपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करने से भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होते हैं ॥४१॥ ब्राह्मणों की पूजा के बाद भक्तिपूर्वक आचार्य को गौ, वस्त्र, सुवर्ण, छत्र और उपानह आदि प्रदान करे । फिर उन ब्राह्मणों को पायस, पक्वान्न एक गुड, घी से बने स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों का भोजन कराये । उस भोजन से तृप्त ब्राह्मणों को मोदक के साथ बारह जल के घड़े दे और यथाशक्ति विनम्र भाव से दक्षिणा भी दे । इसी प्रकार अपने आचार्य को भी जल-वस्त्र दक्षिणा सहित प्रदान करे ॥४२-४५॥ द्विजात्तम । इस प्रकार उन ब्राह्मणों तथा विष्णुतुल्य ज्ञान दाता गुरु की अत्यन्त श्रद्धा से पूजा करे ॥४६॥ पुन सुवर्ण वस्त्र, गौ एवं दूसरे उत्तम पदार्थों से चतुर व्यक्ति गुरु की पूजा और नमस्कार कर इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥४७॥ सर्वव्यापक, जगत् के स्वामी, दण्ड, चक्र और गदा के धारण करने वाले और अनादि अनन्त पुष्ट्योत्तम देव प्रसन्न हो जायें ॥४८॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्राह्मणों की तीन बार प्रदक्षिणा करे, पुन आचार्य को विनम्र प्रणाम कर विदा करे ॥४९॥ उन ब्राह्मणों के पीछे-पीछे ग्राम की सीमा तक भक्तिपूर्वक जाय और वहाँ से उन ब्राह्मणों का नमस्कार कर लौटा दे ॥५०॥ घर लौटकर बान्धव, स्वजन एवं अन्य उपासक, दीन, मित्रक तथा

बान्धवैः स्वजनैर्युक्तस्ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।^१ अन्यैश्चोपासकैर्दीनैर्भिक्षुकैश्चाप्यकाङ्क्षिभिः ॥५१॥
 एवं कृत्वा नरः सम्पन्नो नरो वा लभते फलम् । अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥५२॥
 अतीतं शतमादाय पुरुषाणां नरोत्तमाः । भविष्यं च शतं विप्राः स्वर्गत्या दिव्यरूपधृक् ॥५३॥
 सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वालंकारभूषितः । सर्वकामसमुद्भात्मा देवद्विगतज्वरः ॥५४॥
 रूपयौवनसंपन्नो गुणैः सर्वैरलंकृतः । स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैः समलंकृतः ॥५५॥
 विमानैर्नार्कवर्णैर्न कामगेन स्थिरेण च । पताकाध्वजयुक्तेन सर्वैरत्नैरलंकृतः ॥५६॥
 उद्योतयन्दिशः सर्वा आकाशे विगतबलम् । युवा महाबलो धीमान्विष्णुलोकं स गच्छति ॥५७॥
 तत्र कल्पशतं यावद्भुङ्क्ते भोगान्यप्येसितान् । सिद्धाप्सरोभिर्गन्धर्वैः सुरविद्याधरोरगैः ॥५८॥
 स्तूयमानो भुनिवरेस्तिष्ठते विगतज्वरः । यथा देवो जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ॥५९॥
 तयाऽसौ मुदितो विप्रा कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् । भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्'क्रोडा कृत्वा सुरैः सह ॥६०॥
 तदन्ते ब्रह्मसदनमायाति सर्वकामदम् । सिद्धविद्याधरैश्चापि शोभितं सुरकिन्नरैः ॥६१॥
 कालं नवतिकल्पं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः । तस्मादायाति विप्रेन्द्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥६२॥
 रदलोकं सुरगणैः । सेवितं सुखमोक्षदम् । अनेकशतसाहस्रैर्विमानैः समलंकृतम् ॥६३॥

मुखे व्यक्तिधो के साथ मोन होकर भोजन करे ॥५१॥ कोई भी स्त्री या पुरुष इस प्रकार मली नाति
 शत वा अनुष्ठान कर हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ के बराबर फल प्राप्त कर सकते हैं ॥५२॥ नरप्रेष्ठ ।
 इस प्रकार देवानुष्ठान-परायण व्यक्ति अपने कुल के अतीत काल के सौ और आने वाले सौ व्यक्तिधा के सहित
 दिव्य रूप धारण कर, सत्र लक्षणों से युक्त, मन आभूषणा से आभूषित, पूर्णमनोरथ, देवता के समान ताप रहित,
 रूप और यौवन से युक्त, सब गुणों से सुशोभित होकर रग मिरये पताकाओं से सुसज्जित, दंड और
 सूर्य के समान चमरने वाले इच्छागामी विमान से विष्णुआर को जाता है ॥५३-५७॥ साथ-साथ अप्सरायें और
 गन्धर्व स्तुति गान करते जाते हैं । आकाश में वह अपनी देह-वर्णित से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करता जाता है ।
 इस प्रकार वह युवा, महाबली, ज्ञानवान् व्यक्ति शान्तचित्त से आकाश मार्ग से विष्णुलोक को प्रयाण करता है ।
 वहाँ वहाँ की बल्य तक अपन ईप्सित भोगों का भोग करता है, पिंड, अप्सरायें, गन्धर्व, देवता, विद्याधर, नाग और मुनिप्रवर
 उसका यत्नागन करते हैं, वह शत चक्र-गदाधारी विष्णु का चतुर्भुज रूप स्वयं धारण कर ह विभ्रगण । शान्त भाव से,
 प्रसन्नचित्त हो निद्राम करता है । वहाँ उत्तम भोगों का भाग तथा देवयुग्मों के साथ पीडा करने उग विष्णु-
 मन्दिर में स्थान पाता है जो गुरु, किन्नर, सिद्ध और विद्याधरा से सुशोभित रहता है ॥५८-६१॥ वहाँ से वह व्यक्ति
 नब्बे कल्प तक गुप्ता का उपभोग कर ह विभ्रगण । पुन उस रदलोक में जाता है जो सम्पूर्ण मनोरथा को पूर्ण
 करने वाला, गुरु-भूमूह से मरा हुआ, गुरु और मोक्ष को देने वाला है, जो अनेक सहस्र देव विमानों से सुशोभित है,

सिद्धविद्यावर्यं भूर्भुवि न दत्तवानवः । अशीतिकल्पकालं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः ॥६४॥
तदन्ते याति गोलोकं सर्वभोगसमन्वितम् । सुरसिद्धाप्सरोभिश्च शोभितं सुमनोहरम् ॥६५॥
तत्र सप्ततिकल्पास्तु भुक्त्वा भोगमनुत्तमम् । दुर्लभं त्रिषु लोकेषु स्वस्थचित्तो यथाऽमरः ॥६६॥
तस्मादागच्छते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् । गन्धर्वाप्सरसैः सिद्धैर्मुनिविद्याधरैर्वृतः ॥६७॥
षष्टिकल्पानुसुखं तत्र भुक्त्वा नानाविधं मुदा । तदन्ते शक्रभवनं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥६८॥
गन्धर्वैः किनरैः सिद्धैः सुरविद्याधरैरगैः । गुह्यकाप्सरसैः साध्यैर्वृत्तैश्चान्यैः सुरोत्तमैः ॥६९॥
आगत्य तत्र पञ्चाशत्कल्पान्भुक्त्वा सुखं नरः । सुरलोकं ततो गत्वा विमानैः समलकृतः ॥७०॥
चत्वारिंशत्कल्पास्तु भुक्त्वा भोगान्सुदुर्लभान् । आगच्छते ततो लोकं नक्षत्राण्य सुदुर्लभम् ॥७१॥
ततो भोगान्भरान्भुङ्क्ते त्रिंशत्कल्पान्यथेप्सितान् । तस्मादागच्छते लोकं शशाङ्कस्य द्विजोत्तमाः ॥७२॥
यत्रासी तिष्ठते सोमः सर्वदेवैरलकृतः । तत्र विंशतिकल्पास्तु भुक्त्वा भोगं सुदुर्लभम् ॥७३॥
आदित्यस्य ततो लोकमायाति सुरपूजितम् । नानाश्चर्यमयं पुण्यं गन्धर्वाप्सरसैर्वृतम् ॥७४॥
तत्र भुक्त्वा शुभान्भोगान्दश कल्पान्द्विजोत्तमाः । तस्मादायाति भुवनं गन्धर्वाणां सुदुर्लभम् ॥७५॥
तत्र भोगान्समस्ताश्च कल्पमेकं यथासुखम् । भुक्त्वा चाऽऽयाति मेदिन्या राजा भवति धार्मिकः ॥७६॥
चक्रवर्ती महावीर्यो गुणैः सर्वैरलकृतः । कृत्वा राज्यं स्थवर्मण यज्ञैरिष्ट्वा सुदक्षिणं ॥७७॥

जो दैत्य, दानव, सिद्ध, विद्याधर और यक्ष गणा से अलङ्कृत है, वहाँ असी कल्प तक वह मनुष्य सुखा का भोग करता है ॥६४-६४॥ तदनन्तर सब भोग-सुख से युक्त देव, सिद्ध और अप्सराओं से सुशोभित और चित्ताकर्षक गोलोक को जाता है। वहाँ स्वस्थचित होकर सत्तर कल्प तक देवताओं के समान तीनों लोकों में दुर्लभ सुखों का उपभोग करता है ॥६५-६६॥ वहाँ से वह सर्वोत्तम प्राजापत्य लोक को आता है, जो सबदा सिद्ध, मुनि, विद्याधर, और गन्धर्वों से घिरा रहता है ॥६७॥ वहाँ सौ कल्प तक प्रसन्नता से नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। तदनन्तर वह नाना आश्चर्यों से भरे इन्द्र भवन को जाता है ॥६८॥ वहाँ सर्वदा गन्धर्व, किनर, सिद्ध, विद्याधर, सुर, नाग, गुह्यक अप्सरा, साध्य एवं अन्य देववृन्दा से घिरा रहता है ॥६९॥ वह मनुष्य वहाँ आकर पचास कल्प तक सुखा का उपभोग कर पुन विमानों पर आरुढ़ होकर देवलोक को जाता है। वहाँ वह चालीस कल्प तक सुदुर्लभ भोगों का आनन्दपूर्वक भोग करता है। इसके अनन्तर वह उस लोक को जाता है जो दूसरों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है ॥७०-७१॥ वहाँ वह तीस कल्पों तक ईप्सित उत्तम भोगों का भोग करता है। वहाँ से पुन वह चन्द्रलोक को आता है जहाँ चन्द्र देवता सब देवताओं के साथ विराजमान रहते हैं। वहाँ बीस कल्प तक सुदुर्लभ भोगों का भोग करता है ॥७२-७३॥ तदनन्तर नाना आश्चर्यों से भरे, पवित्र सूर्यलोक को आता है, जो देवताओं से भी पूजित है, जहाँ गन्धर्व और अप्सरायें सर्वदा विराजमान रहती हैं ॥७४॥ द्विजोत्तम । दस कल्प तक शुभ भोगों को भोग कर वह वहाँ से दुष्प्राप्य गन्धर्व-लोक में आता है। वहाँ सुखपूर्वक एक कल्प तक समस्त भोगों को भोगकर पुन पृथ्वी पर परम धार्मिक राजा बनकर आता है ॥७५-७६॥ यहाँ वह महापराक्रमी, सब गुणों से विभूषित चक्रवर्ती राजा होकर न्यायपूर्वक शासन करता है

तदन्ते योगिना लोक गत्वा मोक्षप्रदं शिवम् । तत्र भुक्त्वा चरान्भोगान्यावदाभूतसत्त्ववम् ॥७८॥
 तस्मादागच्छते चात्र जायते योगिना कुले । प्रवर वैष्णव विप्रा दुर्लभे साधुसमते ॥७९॥
 चतुर्वेदी विप्रवरो यज्ञैरिष्टवाऽऽप्तदक्षिणं । वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥८०॥
 एव यात्राफल विप्रा मया सम्यगुदाहृतम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां किमन्यच्छीतुमिच्छथ ॥८१॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूतिसवादे द्वादशयात्राफलमाहात्म्यनिरूपण
 नाम सप्तषष्टितमोऽध्याय ॥६७॥

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

विष्णुलोकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव 'विष्णुलोकमनामयम् । लोवानन्दकरं कान्तं सर्वाश्चर्यसमन्वितम् ॥१॥

और बड़ बड़ यज्ञ करता है जिनमें ब्राह्मणा को भरपूर दक्षिणाय देता है ॥७७॥ इसके उपरान्त मोक्ष देने वाले योगियों के धूम लोक में जाकर बल्य पदन्त उत्तम भोगों को भोगता है ॥७८॥ वहाँ से इस पृथ्वी पर दुर्लभ सर्वोत्तम वैष्णव भक्ता के कुल में—जिसकी साधु जन भी इच्छा करते हैं—जन्म लेता है और चतुर्वेद का ज्ञाता ब्राह्मण होता है जो द्योष्ट दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है । पुनः वैष्णव योग को प्राप्त कर मोक्ष का अधिरार प्राप्त करता है ॥७९, ८०॥ विप्रगण ! मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाले इस यात्रा के फल को मैंने बड़ा सुनाया अब तुम लोग और क्या सुनना चाहते हो ॥८१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भूतया अपि के सवाद प्रकरण में द्वात्रिंशयात्रात्रमाहात्म्यवर्णन नामक सरसठवीं अध्याय समाप्त ॥६७॥

अध्याय ६८

विष्णुलोक का वर्णन

मुनियों ने कहा—देव ! सब आदित्यजात्र यन्त्राग्न में भस्म करके पवित्र मनोहर लोक को आनन्द देने वाले और

प्रमाण तस्य लोकस्य भोग कान्ति बल प्रभो । कर्मणा केन गच्छन्ति तत्र धर्मपरायणा ॥२॥
दशनास्पर्शनाद्वाऽपि तीर्थस्नानादिनाऽपि वा । विस्तराद्ब्रूहि तत्त्वेन पर कौतुहल हि न ॥३॥

ब्रह्मोवाच

भृशुध्व मुनय सर्वे यत्पर परम पदम् । भक्तानामीहित धन्य पुण्य सारनाशनम् ॥४॥
प्रवर सर्वलोकानां विष्ण्वाख्य वदतो मम । सर्वाश्चर्यमय पुण्य स्थान त्रैलोक्यपूजितम् ॥५॥
अशोकं पारिजातेश्च मन्दारश्चम्पकद्रुमं । मालतीमल्लिकार्कुन्दैर्वकुलनागकेशरैः ॥६॥
पुष्पागैरतिमुक्तैश्च प्रियङ्गुतगराजैर्नृपैः । पाटलाचूतखदिरैः कणिकारवनोज्ज्वलैः ॥७॥
नारङ्गं यनसंलोकैर्निम्बशडिमसर्जकैः । द्राक्षाक्षकुवलयैर्मधुकैर्द्वारकैर्द्वैतैः ॥८॥
कपित्थैर्नारिकेलैश्च तालैः श्रीफलसम्भवं । कल्पवृक्षैरसह्यैश्च वन्यैरन्यैः सुशोभनैः ॥९॥
सरलैश्चन्दनैर्नर्पिदैर्वदारशुभाञ्जनैः । जातीलवङ्गकङ्कालैः कर्पूरामोदवासिभिः ॥१०॥
ताम्बूलपत्रनिचयैस्तथा पूगोफलद्रुमैः । अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वतुल्यशोभितैः ॥११॥
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव लनागुच्छसमुद्भवं । नानाजलाशयैः पुष्पैर्नानापक्षिस्तैर्वरैः ॥१२॥
सौधिकाशनसथातैस्तोयपूर्णैर्मनोहरैः । कुमुदैः शतपत्रैश्च पुष्पैः कोकनदैर्वरैः ॥१३॥
रवतनीलोत्पलैः कान्तैः कङ्कारैश्च सुगन्धिभिः । जन्यैश्च जलजैः पुष्पैर्नानावर्णैः सुशोभनैः ॥१४॥

पाणिप्रद विष्णुलोक के विषय म हम लोग सुनना चाहते हैं । इसलिए उस लोक के प्रमाण भोग शोभा और बल (आयु) के बार म कहिए । दान स्नान अथवा तीर्थस्नान आदि विन गुप्त कर्मों से धर्माचरण-परायण व्यक्ति वहाँ जाते हैं श्रृणुया मयायरूप से विस्तारपूर्वक कहिये हम लोगो को सुनने की अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवृन्द । वह विष्णुलोक नाम से प्रसिद्ध पवित्र परम पद सत्तार व दुष्का को नष्ट करने वाग सब लोको से श्रेष्ठ आश्चर्यमय और पण्य है उस पाने के लिये भक्तजन प्रयत्न किया करते हैं वह लोक सम्पूर्ण लाना से पूजित है ॥४५॥ असोक पारिजात मन्दार चम्पक मालती मल्लिका कुन्द वकुल नागकेशर ॥६॥ अनिमृक्त (माधवी) प्रियदगु तगर अजुन पाटल आम खदिर उज्ज्वल कणिकार ॥७॥ नाग्य यनस लोच निम्ब अनार सर्जक द्राक्षा कुच (वडहर) खजूर मधुनैः आदि फल ॥८॥ और वृक्षा तथा कपिच नारियेल ताड श्रीफल असम्भ कल्पवृक्षा और अय मनोहर जलली वक्षा ॥९॥ सरल चन्दन अनाक देवदारु गुग्गुलु (सहिबन) जानी (चमेली) लवग ककोन कपूर आदि सुगन्ध फलाने वाले वृक्षा ॥१०॥ ताम्बूल पुगी फल इमी प्रकार अन्य प्रत्येक श्रृष्टु म फलने वाले वृक्षा ॥११॥ नाना प्रकार की लताम्रा और गुच्छो से उत्पन्न होने वाले पुष्पा स सुशोभित है जहाँ नाना प्रकार के पवित्र जलनाय और जल से मरी मनोहर सज्जा बावर्गिया स्थित हैं जिनम मित्र मित्र प्रकार के पानी बरकर करते रहते हैं ॥१२॥ जो जलनाय कुम्भ शतपत्र कमल मनाहर कोकनद, नीलरमल, बहलार एवं अनेक सुगन्धित कमला से सुशोभित है जहाँ इस कारणव मनोहर चक्रवाक कोषटिक,

हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः । कोयटिकैश्च दात्यूहैः कारण्डवरवाकुलैः ॥१५॥
 चातकैः प्रियपुत्रैश्च जीवजीवकजातिभिः । अन्यैर्दिव्यैर्जलचरैर्विहारमधुरस्वनैः ॥१६॥
 एवं नानाविधैर्दिव्यैर्नानादचयैरसमन्वितैः । वृक्षैर्जलाशयैः पुष्पैर्भूषितं सुमनोहरं ॥१७॥
 तत्र दिव्यैर्विमानैश्च नानारत्नविभूषितैः । कामगैः काञ्चनैः शुभ्रैर्दिव्यगन्धर्वनादितैः ॥१८॥
 तरुणादित्यसंकाशैरप्सरोभिरलंकृतैः । हेमशय्यासनयुतैर्नानाभोगसमन्वितैः ॥१९॥
 खेचरैः सपताकैश्च मुक्ताहारावलम्बिभिः । नानावर्णैरसंख्यातैर्जातैरुपपरिच्छदैः ॥२०॥
 नानाकुसुमगन्धाढ्यैश्चन्दनागुरुभूषितैः । सुखप्रचारबहुलैर्नानावादित्रनिस्वनैः ॥२१॥
 मनोमास्ततुल्यैश्च किङ्किणीस्तवकाकुलैः । विहरन्ति पुरे तस्मिन्वैष्णवे लोकपूजिते ॥२२॥
 नानाङ्गनाभिः सततं गन्धर्वाप्सरसादिभिः । चन्द्राननाभिः कान्ताभिर्योषिद्भिः सुमनोहरैः ॥२३॥
 पीनोन्नतकुचाप्राभिः सुमध्याभिः समन्ततः । श्यामावदातवर्णाभिर्मंसमातङ्गगामिभिः ॥२४॥
 परिवार्य नरश्रेष्ठं बीजयन्ति स्म ताः स्त्रियः । चामरं दशमदण्डैश्च नानारत्नविभूषितैः ॥२५॥
 गीतनृत्यैस्तथा वाद्यैर्मोदमानैर्मदालसैः । यशस्विद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२६॥
 सुरसंघैश्च ऋषिभिः शुशुभे भुवनोत्तमम् । तत्र प्राप्य महाभोगान्प्राप्नुवन्ति मनोयिनि ॥२७॥

टिट्ठिम (टिट्ठिहरी) दात्यूह (कारण्डक) चातक, प्रियपुत्र, चकोर, एवं अन्य दिव्य जङ्गर विहार करते और जो उनकी मधुर ध्वनि से सुज्जित रहते हैं ॥१३-१६॥ इस प्रकार वह लोक मित्र-मित्र प्रकार के आश्चर्य-जनक वस्तु, पवित्र मनोहर जलाशय से सुशोभित है ॥१७॥ उस लोक में नाना रत्नो से विभूषित, सुवर्णमय (गुनहले) तरुण सूर्य के समान चमकने वाले शुभ्र दिव्य विमानों पर आरुढ़ गन्धर्वगण मधुर गान करते रहते हैं । वे अप्सराओं एवं स्वर्णमय शय्या आसन और नाना प्रकार की भोग-सामग्रियों से सर्वदा भरे रहते हैं, जिन पर आकाश में पहराने वाली पताकायें लहराती रहती हैं जो अनगिनत, रंग बिरंगे गुनहले वस्त्रों से सजे रहते हैं ॥१८-२०॥ जो नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों चन्दन अमुर आदि से सुगन्धित और नाना प्रकार की सुगन्धित सामग्रियों से युक्त रहते हैं, जिन पर अनेक प्रकार के वाद्य बजते रहते हैं, किङ्किणी की ध्वनि होती रहती है और जो मन तथा वायु के समान गतिमान हैं, उसमें पुष्पवान् स्थित बैठकर उस लोकपूज्य वैष्णव लोक में विहार करते हैं ॥२१-२२॥ उन भाग्यशाली श्रेष्ठ व्यक्तियों के चारों ओर सर्वदा अनेक चन्द्रमयी स्त्रियाँ, गन्धर्व अप्सरायें, और मनोहर श्यामाङ्गणी, मत्त हराती के समान रमन करने वाली मनोहर कटिवाली अङ्गनायें जिनके कुच बटोर और उमड़े हुए रहते हैं घेर कर घेटी रहती हैं और नाना रत्नो से सुशोभित स्वर्ण दण्ड वाले चामर टुलाती रहती हैं । (वह उत्तम लोक प्रसन्न, नये में झूमते यश, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओं के नृत्य गीत तथा वाद्य से सुगन्धित और ऋषिणा से सुशोभित रहता है उस लोक में जाकर भाग्यशाली ज्ञानी मनुष्य अनेक गुणा का भोग करते हैं ॥२३-२७॥)

वटराजसमीपे तु दक्षिणस्योदधेस्तटे । दृष्टो धर्मगवान्कृष्ण 'पुष्कराक्षो जगत्पति ॥२८॥
 श्रोत्रपत्पसरसं सार्धं यावद्योश्च व्रतारकम् । प्रतप्तहेमसकाशा जरामरणवजिता ॥२९॥
 सत्रंदु खविहीनाश्च तृष्णाग्लानिविजिता । चतुर्भुजा महावीर्या वनमात्राविभूयिता ॥३०॥
 धीवत्सलान्ठनैर्युक्ता शङ्खचक्रगदाधरा । केचिन्नोलोत्पलश्यामा केचित्काञ्चनसनिभा ॥३१॥
 केचिभरवत्प्रण्या केचिद्वैदूर्यसनिभा । श्यामवर्णा कुण्डलिनस्तथाऽन्ये वज्रसनिभा ॥३२॥
 न तादृशवदवाना भाति लोका द्विजोत्तमा । यादृग्भाति हरेर्लोकं सर्वाश्चयसमवित ॥३३॥
 न तत्र पुनरावृत्तिर्गमनाज्जायते द्विजा । प्रभावात्तस्य देवस्य यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३४॥
 विचरन्ति पुरे दिव्ये रूपयौवनगविता । कृष्ण राम सुभद्रा च पश्यति पुरुषोत्तमे ॥३५॥
 प्रतप्तहमसकाशा तरुणादित्यसनिभम् । पुरमध्ये हरेर्भाति मन्दिर ररनभूयितम् ॥३६॥
 अनेकशतसाहस्रं पतार्कं समलकृतम् । योजनायतविस्तीर्णं हेमप्राकारवष्टितम् ॥३७॥
 नानावर्णध्वजैश्चित्रैः कल्पितं सुमनोहरं । विभाति शारदो यद्वनशर्नं सह चद्रमा ॥३८॥
 चतुर्द्वारं सुविस्तीर्णं कञ्चुकीभिः सुरक्षितम् । पुरसप्तकसयुक्तं महोत्सेकं मनोहरम् ॥३९॥
 प्रथम काञ्चन तत्र द्वितीय मरकतैर्भूतम् । इदानील तृतीय तु महानील ततः परम् ॥४०॥

ओ मनुष्य दक्षिण सागर के तट पर स्थित वटराज के समीप जगत्पति कमल-नेत्र भगवान् कृष्ण का दशन करते हैं वे जब तक आकाश में चद्र और तारागण रहने हैं तब तक अप्सराया के स य नीना करते हैं वे जरामरण के मय से मुक्त सब द्रव्यो तृष्णा और आत्मग्लानि से रहित हो जाते हैं तपे सोने के समान कान्तिमान चतुर्भुज ग्ल चक्र-गदाधारी धीवत्स और वनमाला से सुगोमित महापराक्रमी हो जाते हैं ॥२८-३०॥ उनसे कोई नील-वामन के समान श्याम कोई सोने के समान गौर वण कोई मरकतमणि के समान कोई वैदूर्यमणि के समान कोई श्यामवर्ण के कुण्डल पहने हुये और अन्य वष के समान कान्तिमान होते हैं ॥३१-३३॥ द्विजगण 'सम्पूर्ण देव लोको की भी वैसी गोमा नहीं होती जैसी उम आन्ध्रयजनक विष्णुलोक की गोमा होती है ॥३३॥ विप्रवन्द्य ! विष्णु देव के प्रभाव में कल्प पयन्त पुनत्रम नहीं होता ॥३४॥ जा पुरुषोत्तम क्षत्रम जाकर राम कृष्ण और सुभद्रा का दशन करते हैं वे अपने रूप और यौवन पर इतरान हुये उम दिव्य पुर में विचरण करते हैं ॥३५॥ उस पुर के मध्य में रत्ना स सुगोभन तपाये हुए सोने की भाँति कान्तिमान और तरण सूप के समान चमकता हुआ भगवान का मन्दिर है ॥३६॥ उसके चारो ओर दश लाख योजन विस्त्राण मनुहली चहार त्रिवारी बनी हुई है । असंख्य पत काशा मनाहर रग विरगी चित्र विचित्र ध्वजाया स सुगोमित बहु मन्दिर नक्षत्रों से घिरे चद्रमा के समान गोमा देता है ॥३७-३८॥ उस चहार दीवारी में चार बड़ ब-द्वार हैं जो रत्ना स सुगोमित हैं । भीतर ऊँचे ऊँचे भक्ता वाङ मनोहर सात उपपुर हैं ॥३९॥ पन्ना काञ्चन (मनो-पन्ना) दूसरा मरकत मणिया से जड़ा हुआ नील वण का तीसरा इन्द्र नीलमणि का बना चौथा महानीलमणि का पाचवाँ

पुरं तु पञ्चमं दीप्तं पद्मरागमयं पुरम् । षष्ठं वज्रमयं विप्रावैदूर्यं सप्तमं पुरम् ॥४१॥
 नानारत्नमयैर्हर्मप्रवालाङ्कुरभूषितैः । स्तम्भैरद्भुतसंकाशैर्भाति तद्भवनं महत् ॥४२॥
 दृश्यन्ते तत्र सिद्धाश्च भासयन्ति विशोदश । पीर्णमास्या सनक्षत्रो यथा भाति निशाकरः ॥४३॥
 आरूढस्तत्र भगवान्सलक्ष्मीको जनादेनः । पीताम्बरधरः श्यामः श्रीवत्सलक्ष्मसंयुतः ॥४४॥
 ज्वलत्सुदर्शनं चक्र धोर सर्वास्त्रनायकम् । दधार दक्षिणे हस्ते सर्वतेजोमयं हरिः ॥४५॥
 कुन्देन्दुरजतप्रह्व हारमोक्षीरसनिभम् । आदाय तं मुनिश्रेष्ठाः सव्यहस्तेन केशवः ॥४६॥
 यस्य शब्देन सकल संक्षोभ जायते जगत् । विधुतं पाञ्चजन्येति सहस्रावर्तभूषितम् ॥४७॥
 दुष्कृतान्तकरीं रौद्रा दैत्यदानवनाशिनीम् । ज्वलद्बल्लिशिखाकारां दुःसहाम् त्रिदशैरपि ॥४८॥
 कौमोदकीं गदा चासौ धृतवान्दक्षिणे करे । वामे विस्फुरति हास्य शार्ङ्गं सूर्यसमप्रभम् ॥४९॥
 शरैरादित्यसंकाशैर्ज्वालाभालाकुञ्जैरैः । योऽसौ संहरते देवश्रेणीक्यं सचराचरम् ॥५०॥
 सर्वानिन्दकरः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः । सर्वलोकगुरुर्देवः सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥५१॥
 सहस्रमूर्धा देवेशः सहस्रचरणेक्षणः । सहस्राक्षः सहस्राङ्गः सहस्रभुजयान्त्रभुः ॥५२॥
 सिंहासनगतो देवः पद्मपत्रायतेक्षणः । विद्युद्विस्पष्टसंकाशो जगन्नाथो जगद्गुरुः ॥५३॥

चमकते पद्मराग मणियो से बना अति सुशोभित, छठा वज्रमय और सातवाँ वैदूर्यमणि से बना हुआ है ॥४०-४१॥
 ऐसे उपपुरो के मध्य वह ऊँचा हरिमन्दिर माना रत्नो से बने हुए और प्रवाल खण्डो से जड़े हुए अद्भुत वर्ण के स्तम्भों
 से सुशोभित है ॥४२॥ उस मन्दिर में सिद्ध समूह रहते हैं, जो दशो दिशाओं को जगमगाते रहते हैं । उस भवन की वैसी
 शोभा होती है मानो पूर्णिमा की जगमग रात्रि में नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा शोभायमान हो ॥४३॥ वहाँ सिंहासन पर
 पीताम्बर पहने हुए, श्रीवत्स से अङ्कित, श्यामवर्ण के भगवान् जनादेन लक्ष्मी के सहित विराजमान रहते हैं ॥४४॥
 वे हरि अपने दाहिने हाथ में सब अस्त्रों में श्रेष्ठ, मयङ्कर सर्वतेजोमय और अग्नि के समान जलता हुआ-सा सुदर्शन
 चक्र धारण किये रहते हैं ॥४५॥ बायें हाथ में कुन्द, चन्द्रमा और रजत के समान सुभ्र हार, गोदुग्ध के समान श्वेत,
 सहस्रो आवर्तों (चक्रर घुम,व) से सुशोभित वह प्रसिद्ध पाञ्चजन्य शब्ध रहता है, जिसकी ध्वनि से सारा ससार
 क्षुब्ध हो जाता है ॥४६-४७॥ दाहिने हाथ में प्रलय मचा देने वाली, मयङ्कर, दैत्य दानवों को विनष्ट करने वाली,
 जलते अग्नि के लपटों के समान और देवताओं से भी घटिनाई से राहो जाने योग्य कौमोदकी गदा को धारण किये
 रहते हैं ॥४८॥ उसी प्रकार उनके बायें हाथ में मूर्ध के समान प्रभापूर्ण शार्ङ्गनामक धनुष रहता है । वह भगवान्
 उसी धनुष से छूँटे हुए अमन्य लपटों से जगमाने, सूर्य के समान जलते बाणों से सचराचर जगत् का संहार करते
 हैं ॥४९-५०॥ ऐसे सबको आनन्द देने वाले श्रीमान् सम्पूर्ण शारत्रों के ज्ञाता, सब लोका के गुरु, देवगुरु, सहस्र
 शिर, सहस्रचरण और सहस्र नेत्रवाले, अनन्त नामा से प्रसिद्ध, सहस्र भुजाओं से युक्त देवेश, जगन्नाथ जगद्गुरु
 भगवान् सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, जिनके नेत्र पद्म के समान बड़े और जिनके शरीर की कति विद्युत् के

परीतः सुरसिद्धेश्च गन्धर्वाप्सरसा गणैः। यक्षविद्याधरैर्नागैर्मनिसिद्धैः सचारणैः॥५४॥
 सुपर्णैर्दानवैर्देवैश्च राक्षसैर्गुह्यकिनरैः। अन्यैर्देवगणैर्दिव्यैः स्तूयमानो विराजते॥५५॥
 तत्रस्था सततं कीर्तिः। प्रता मेधा सरस्वती। बुद्धिमतिस्तथा क्षान्तिः। सिद्धिर्मुक्तिस्तथा द्युतिः॥५६॥
 गायत्री चैव सावित्री मङ्गला सर्वमङ्गला। प्रभामतिस्तथा कान्तिस्तत्र नारायणी स्थिता॥५७॥
 श्रद्धा च कौशिकी देवी विद्युत्सोदामिनी तथा। निद्रा रात्रिस्तथा माया तथाऽज्यामरयोषितः॥५८॥
 वासुदेवस्य सर्वास्ता भवने। संप्रतिष्ठिताः। अथ किं बहुनोक्तेन सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम्॥५९॥
 घृताची मेनका रम्भा सहजन्त्या तिलोत्तमा। उर्वशी चैव निम्लोचा तथाऽज्या वामना परा॥६०॥
 मन्दोदरी च सुभगा विश्वाची विपुलानना। भद्राङ्गी चित्रसेना च प्रम्लोचा सुमनोहरा॥६१॥
 मुनिसंमोहनी रामा चन्द्रमध्या शुभानना। सुकेशी नीलकेशा च तथा मन्मथदीपिनी॥६२॥
 अलम्बुषा मिथकेशी तथाऽज्या मुञ्जिकस्थला। ऋतुस्थला वराङ्गी च पूर्वचित्तिस्तथा परा॥६३॥
 परावती महारूपा शशिलेखा शुभानना। हसलोलानुगामिन्यो मत्तवारणगामिनी॥६४॥
 बिम्बोष्ठी नवगर्भा च विष्वाताः सुरयोषितः। एतादृशान्या अप्सरसो रूपयौवनगविता॥६५॥
 समध्याश्चाहवदना सर्वालकारभूषिता। गीतमाधुर्यसयुक्ताः सर्वलक्षणसयुताः॥६६॥
 गीतवाद्ये च कुशलाः सुरगन्धर्वयोषितः। नृत्यन्त्यनुदिनं तत्र यत्रासौ पुरुषोत्तमः॥६७॥

समान है, जिनको सुर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराय, यक्ष, विद्याधर, नाग, मुनि, सिद्ध, चारण, सुपर्ण (गर्दभ) दानव, दैत्य, राक्षस, गुह्य, किन्नर एवं अन्य दिव्य देवगण चारों ओर से घेरे हुए स्तुति किया करते हैं ॥५१-५५॥ वहाँ सर्वदा कीर्ति, प्रज्ञा, मेधा, सरस्वती, बुद्धि, मति, क्षान्ति, सिद्धि, मूर्ति, द्युति, गायत्री, सावित्री, मङ्गला सर्वमङ्गला, प्रभा, मति, कान्ति, नारायणी, श्रद्धा, कौशिकी, देवी, विद्युत्, सोदामिनी, निद्रा, रात्रि, माया तथा अन्य देवस्त्रियाँ भगवान् के मन्दिर में विराजमान रहती हैं। अधिक वहाँ तक कहा जाय ? वहाँ सब कुछ सर्वदा विद्यमान रहता है ॥५६-५९॥
 (घृताची, मेनका, रम्भा, सहजन्त्या, तिलोत्तमा, उर्वशी, निम्लोचा, वामना, मन्दोदरी, सोमाम्बवती, विश्वाची, विपुलानना, भद्राङ्गी, चित्रसेना, अत्यन्त मनोहर प्रम्लोचा, मुनिजनों को भी मुग्ध करने वाली रामा, सुन्दर मुख वाली चन्द्रमध्या, सुरेशी, नीलकेशा, मन्मथदीपिनी, अलम्बुषा, मिथकेशी, मुञ्जिकस्थला वराङ्गी, ऋतुस्थला, पूर्वचित्ति, परावती, महारूपा, शुभानना शशिलेखा, आदि हसी के समान झीड़ा करने वाली, मत्त पत्र के समान गमन करने वाली बिम्ब के समान लाल ओठों वाली विष्वात सुर-सुन्दरियाँ एवं अन्य अपने रूप और यौवन पर गर्व करन वाली वाली अप्सराय, तथा सब आभूषणों से आभूषित, सुन्दर मुख वाली तथा क्षीण कटि वाली सर्वलक्षणसम्पन्न सुर-गन्धर्वों की गीत और वाद्य में कुशल स्त्रियाँ प्रतिदिन, अपने मधुर गान और नृत्य से भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न किया करती

१स. सतति। २ख स. ०दिर्मुति०। ३ख मुवने। ४क स. ०शी सुरसेना च त०। ५ख स. वामना।

६क. महोद०। ७ख जम्बुवस्तना। ८ख जन्तुस्थला। ९क. पञ्चजन्या। १०. क. शलिलेखा।

न तत्र रोगो नो म्लानि न मृत्युर्न हिमातपी । न क्षुत्पिपासा न जरान्वेक्ष्य न चासुखम् ॥६८॥
 परमानन्दजनन सर्वकामफलप्रदम् । विष्णुलोकात्परलोक नात्र पश्यामि भो द्विजा ॥६९॥
 ये लोका स्वर्गलोक तु श्रूयन्ते पुण्यकर्मणाम् । विष्णुलोकस्य ते विप्रा कला नाहन्ति षोडशम् ॥७०॥
 एव हर पुरस्थान सर्वभोगगुणान्वितम् । सर्वसौख्यकर पुण्य सर्वाश्चर्यमय द्विजा ॥७१॥
 न तत्र नास्तिका यान्ति पुरुषा विषयात्मका । न कृतघ्नान पिशुनानो स्तेना नाजितेन्द्रिया ॥७२॥
 येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेव जगदगुहम् । ततत्र वैष्णवा यान्ति विष्णुलोक न सशय ॥७३॥
 दक्षिणस्योदधस्तीर क्षत्र परमदुलभ । दृष्ट्वा कृष्ण च राम च सुभद्रा च द्विजोत्तमा ॥७४॥
 कल्पवृक्षसमीप तु ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते तत्र मनुजा यान्ति मृता ये पुरुषोत्तमे ॥७५॥
 वटसागरयोर्मध्य य स्मरेत्पुरुषोत्तमम् । तेऽपि तत्र नरा यान्ति ये मृता पुरुषोत्तमे ॥७६॥
 तेऽपि तत्र पर स्थान यान्ति नास्त्यत्र सशय । एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णुलोक सनातन ॥
 सर्वानन्दकर प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूषिसवादे विष्णुलोकानुकीर्तननामाष्ट-
 पण्डितमोऽध्याय ॥६८॥

हैं ॥६० ६७॥ मुनिगण । उस लोक में रोग म्लानि (मानसिक चिन्ता) मृत्यु हिम और आतप का भय नहीं न तो मूल
 प्यास की ही चिन्ता और न तो बुढ़ापा अङ्गदोष और किसी दुःख की ही सम्भावना रहती है ॥६८॥ हे विप्रगण । इस
 सृष्टि में विष्णुलोक से अधिक आनन्ददायक और मनोरथ पूरा करने वाला कोई लोक नहीं है । स्वर्गलोक में जो कोई
 अन्य पुण्य देवलोक मुने जाते हैं वे विष्णुलोक की सोलहवीं बला की भी समानता नहीं कर सकते ॥६९ ७०॥
 द्विजगण । भगवान का इस प्रकार का वह पावन लोक है जहाँ प्रत्येक प्रकार की भोगसामग्रियाँ विद्यमान रहती हैं ।
 उस आश्चर्यमय पवित्र स्थान पर जाकर भक्त जन सुख का अनुभव करते हैं ॥७१॥ उस पुण्य लोक में नास्तिरा विषयी
 या इन्द्रियलाभ मनुष्य नहीं जा सकते न ता विद्वत्संघातो न चुगुल्लोर और न चोर ही वहाँ जा सकते हैं ॥७२॥
 इन्होंने विपरीत जो वण्य भक्त सबदा भक्तिपूर्वक जगन्गुरु वामुदेव की उपासना में रत रहते हैं वे ही उस लोक
 में जाते हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ॥७३॥ द्विजात्तम । दक्षिण समुद्र के तट पर उस परम दुर्लभ पवित्र क्षत्र में
 राम कृष्ण और सुभद्रा का दान कर जो मनुष्य कल्पवृक्ष के समीप शरीर त्याग करते हैं पुरुषोत्तम क्षत्र में मरने वाले
 वे मनुष्य उसी लाभ में जाते हैं ॥७४ ७५॥ जो मनुष्य वट और सागर के मध्यवर्ती पुनीत प्रदेश में भगवान् का स्मरण
 करते हुए प्राण त्याग करते हैं वे भी विष्णुलोक की प्राप्ति करते हैं इसमें षोडश भी सन्देह नहीं ॥७६॥ मुनिगण ।
 आप लोग वे इच्छानुसार सब आनन्द का दान पाते और भुक्ति भुक्ति उभय प्रदान करने वाले विष्णुलोक का वचन
 मैंने सुना दिया ॥७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णुलोकानुकीर्तन नामक अष्टाष्टवी अध्याय समाप्त ॥६८॥

अथोनसप्ततितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

ब्रह्माश्चर्यस्त्वया प्रोक्तो विष्णुलोको जगत्पते । नित्यानन्दकरः श्रीमान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१॥
 क्षेत्रं च दुर्लभं लोके कीर्तितं पुरुषोत्तमम् । त्यक्त्वा यत्र नरो देहं याति सालोक्यतां हरे, ॥२॥
 सम्यक्क्षेत्रस्य माहात्म्यं त्वया सम्यक्प्रकीर्तितम् । यत्र स्वदेहसंत्यागाद्विष्णुलोकं यजेन्नरः ॥३॥
 'अहो मोक्षस्य मार्गोऽयं देहत्यागस्त्वयोदितः । नराणामुपकाराय पुरुषाख्ये न संशयः ॥४॥
 अनायासेन देवेश देहं त्यक्त्वा नरोत्तमाः । तस्मिन्क्षेत्रे परं विष्णोः पदं यान्ति निरामयम् ॥५॥
 श्रुत्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं विस्मयो नो महानभूत् । प्रयागपुष्करादीनि क्षेत्राण्यायतनानि च ॥६॥
 पुण्ड्र्यां सर्वतोर्थाणि सरितश्च सरासि च । न तथा तानि सर्वाणि प्रशंससि सुरोत्तम ॥७॥
 यथा प्रशंससि क्षेत्रं पुरुषाख्यं पुनः पुनः । आतोऽस्माभिरभिप्रायस्तवेदानीं पितामह ॥८॥
 येन प्रशंससि क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् । पुरुषाख्यसमं नूनं क्षेत्रं नास्ति महीतले ॥
 तेन त्वं विबुधध्रेष्ठ प्रशंससि पुनः पुनः ॥९॥

अध्याय ६६

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निरूपण

मुनियों ने कहा—जगत्पते ! आपने नित्य आनन्दप्रद मुक्ति और मुक्ति के दाता, शोभाशाली विष्णुलोक के विषय में बहुत सी आश्चर्यजनक बात सुनाई ॥१॥ आपसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह पुरुषोत्तम क्षेत्र इस सत्तार में दुर्लभ है और वहाँ पर देहत्याग कर मनस्य हरि की सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥२॥ आपने इस पवित्र क्षेत्र की महिमा भी मलीर्गति बतलाई जहाँ देहत्याग करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥३॥ अहा ! आपने लोक के उपकार के लिये यह मोक्ष का सरल मार्ग बतलाया (कि इस पुरुषोत्तम तीर्थ में देह त्याग करने से निश्चय ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है) ॥४॥ देवेश ! आपने यह भी बतलाया कि इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में देह त्याग कर मनुष्य अनायास विष्णुपद को प्राप्त कर लेता है ॥५॥ इस क्षेत्र की महिमा सुनकर हम लोगों को महान् आश्चर्य हुआ । सुरोत्तम ! आप जिस प्रकार इस तीर्थ की प्रशंसा करते हैं, वैसे प्रशंसा प्रयाग, पुष्कर आदि क्षेत्र, अन्य देव-मन्दिर या पृथ्वीपर के किसी तीर्थ, नदी या सरोवर की नहीं करते ॥६-७॥ आप जिस अभिप्राय से बार-बार इस क्षेत्र की प्रशंसा करते हैं, हे पितामह ! आपके उस अभिप्राय को हम लोगों ने जान लिया ॥८॥ इस मुक्तिदायक पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रशंसा से ज्ञात होता है कि निश्चय ही इस धरातल पर पुरुषोत्तम के समान अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है । इसीलिये हे देवेन्द्र ! आप इसकी बार बार प्रशंसा करते हैं ॥९॥

१क जगत्पते । २ख ०या ब्रह्मन्की० । ३ग अथ । ४क वर ।

ब्रह्मोवाच

सत्य सत्य मुनिश्रेष्ठा भवद्भिः समुदाहृतम् । 'पुरुषाख्यसम क्षेत्र 'नास्त्यत्र पृथिवीतले ॥१०॥
 सन्ति यानि तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । तानि श्रीपुरुषाख्यस्य कला नाहन्ति षोडशीम् ॥११॥
 यथा सर्वेश्वरो विष्णुः 'सर्वलोकोत्तमोत्तम । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
 आदित्यानां यथा विष्णुः श्रेष्ठत्वे समुदाहृत । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१३॥
 नक्षत्राणां यथा सोमः सरसा सागरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
 वसूनां पावको यद्वद्ब्रह्माणां शकरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
 वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वनतेयश्च पक्षिणाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
 शिखरिणां यथा मेरुः पर्वतानां हिमालयः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१७॥
 प्रमदानां यथा लक्ष्मीः सरिता जाह्नवी यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
 ऐरावतो गजेन्द्राणां महर्षीणां भृगुर्यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१९॥
 सेनानीनां यथा स्कन्दः सिद्धानां कपिलो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 उज्ज्वे श्रवा यथाऽऽवाना कवीनामुशनः कविः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२१॥
 मुनीनां च यथा व्यासः कुबेरो यक्षरक्षसाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२२॥
 इन्द्रियाणां मनो यद्वद्भूतानामवनी यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
 अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां पवनः प्लवतां यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आप लोगों का कथन सत्य है। वास्तव में इस पृथ्वी-तल पर पुरुषोत्तम तीर्थ के समान तीर्थ नहीं हैं ॥१०॥ जिसने तीर्थ और पुनीत क्षत्र हैं वे सभी श्री पुरुषोत्तम तीर्थ के सोलहवें भाग की सी बराबरी नहीं कर सकते ॥११॥ जिस प्रकार सब के ईश्वर विष्णु सम्पूर्ण क्षेत्रों में सबभ्रष्ट हैं उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ भ्रष्ट है ॥१२॥ जिस प्रकार आदित्या में विष्णु की भ्रष्टता स्वीकार की गई है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ भ्रष्ट है ॥१३॥ जिस प्रकार नक्षत्रों में चन्द्रमा और जलाशयों में सागर की बसुओं में पावन की तथा रुद्रों में शकरो की भ्रष्टता है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ भ्रष्ट है ॥१४ १५॥ जिस प्रकार वर्णों में ब्राह्मण वर्णों में वरिष्ठ पितर वाला में मेरु तथा पर्वतों में हिमालय और शिखरों में शमी नदियों में गङ्गा भ्रष्ट मानी जाती है उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ भ्रष्टतम है ॥१६ १७॥ मुनिगण ! जिस प्रकार गजेन्द्रों में ऐरावत महर्षियों में भृगु सेनापतियों में स्कन्द सिद्धों में कपिल अस्त्रों में उज्ज्वे श्रवा नदियों में भृगु मुनियों में व्यास यज्ञ और रसोद्योगों में कुबेर, इन्द्रियों में मन और सम्पूर्ण तत्त्वों में पृथ्वी भ्रष्टतम है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ भ्रष्ट है ॥१९ २३॥ और जिस प्रकार सब वर्णों में अश्वत्थ (पीपल) सपरिणतील पदार्थों में

भूपणानां तु सर्वेषां यया चूडामणिद्विजा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२५॥
 गन्धर्वाणां चित्ररथ इन्द्राणां कुलिशो यया । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२६॥
 अकारं सर्ववर्णानां गायत्री छन्दसां यया । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२७॥
 सर्वाङ्गैर्म्यो यया श्रेष्ठमुत्तमाङ्गं द्विजोत्तमा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२८॥
 अरुण्यतो यया ह्रोणां सतीनां श्रेष्ठता गता । तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥२९॥
 यया समस्तविद्यानां मोक्षविद्या परा स्मृता । तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥३०॥
 मनुष्याणां यया राजा धेनूनामपि कामधुक् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३१॥
 सुवर्णं सर्वरत्नानां सर्पाणां वासुकिर्यया । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३२॥
 प्रह्लादं सर्वदेव्यानां राम इन्द्रभृता यया । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३३॥
 शपाणां मकरो यद्वन्मुगाणां मृगराडश्च यया । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३४॥
 समुद्राणां यया श्रेष्ठं क्षीरोदं सरिता पति । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३५॥
 वरुणो यादसा यद्वृद्धमं सयमिना यया । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३६॥
 देवर्षीणां यया श्रेष्ठो नारदो मुनिसत्तमा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३७॥
 घातूनां काञ्चन पट्टपवित्राणां च दक्षिणा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३८॥

पवनं श्रेष्ठं है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२४॥ द्विवृन्द । जिस प्रकार सम्पूर्ण आमूषणों में चूडामणि श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२५॥ जिस प्रकार गधर्वों में चित्ररथ रात्रा में वरुण श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२६॥ तथा जिस प्रकार सब ऋषयों में अकार छन्दों में गायत्री श्रेष्ठ छन्द है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२७॥ द्विज श्रेष्ठ । जिस प्रकार सब ऋषयों में मस्तक उत्तम अङ्ग है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम उत्तम तीर्थ है ॥२८॥ जिस प्रकार सती स्त्रियों में अरुण्यतो परमश्रेष्ठ सती मानी गई है है उसी प्रकार तीर्थों में पुरपातम श्रेष्ठ तीर्थ माना गया है ॥२९॥ जिस प्रकार समस्त विद्याओं में मोक्ष विद्या परा (सर्वोत्तम) विद्या मानी गयी है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम सर्वोत्तम माना गया है ॥३०॥ जिस प्रकार मनुष्यों में राजा दूध देने वाली गायों में कामधनु उत्तम धनु है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ उत्तम है ॥३१॥ जिस प्रकार सब रत्नों में सुवर्ण और सोपानों में वासुकि श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३२॥ जिस प्रकार सब देवियों में प्रह्लाद और धनुर्धारिणी में राम श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३३॥ जिस प्रकार मनुष्यों में मकर और वन्य पशुओं में सिंह श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३४॥ जिस प्रकार समुद्रों में सरित्वर्षि क्षीरसमुद्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३५॥ जैम यादव (जलचर) समूह में वरुण और शङ्खों में यम श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३६॥ मुनिगण्डू । जिस प्रकार देवर्षियों में नारद श्रेष्ठ है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३७॥ तथा जिस प्रकार घातुओं में काञ्चन (सोना) पवित्र द्रव्यों में दक्षिणा पवित्र है उसी प्रकार

प्रजापतिर्यथा दक्ष ऋषीणा कश्यपो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३९॥
 ग्रहाणा भास्करो यद्वन्मन्त्राणां प्रणवो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥४०॥
 अश्वमेधस्तु यज्ञानां यथा श्रेष्ठः प्रकीर्तितः। तथा समस्ततीर्थानां क्षेत्रं च तद्विजोत्तमा ॥४१॥
 ओषधीनां यथा धान्यं तृणेषु तृणराड्यया। तथा समस्ततीर्थानामुत्तमं पुरुषोत्तमम् ॥४२॥
 यथा सप्तस्ततीर्थानां धर्मः ससारतारकः। तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिंसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्यनिर्घण
 नार्मकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अथसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति तीर्थसख्याविषयको नारदप्रश्नः

ब्रह्मोवाच

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः। जपहोमप्रताना च तपोदानफलानि च ॥१॥
 न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सदृशं भुवि। किंचात्र बहूनावतेन भाषितेन पुन पुन ॥२॥

सप्तस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम क्षेत्र पवित्र है ॥३८॥ जिस प्रकार प्रजापतियों में दक्ष, ऋषियों में कश्यप श्रेष्ठतम माने गये हैं उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ माना गया है ॥३९॥ जिस प्रकार ग्रहा में भास्कर (सूर्य) और मन्त्रों में प्रणव (ओंकार) श्रेष्ठतम माने गए हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥४०॥ जिस प्रकार यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया गया है उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ को श्रेष्ठ कहा गया है ॥४१॥ मुनिवृन्द! जिस प्रकार ओषधियों (जीवन-दायि-यदायों) में धान्य (अन्न) और तृणों में तृणराड़ (गुन) की श्रेष्ठता नहीं गई है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम की श्रेष्ठता है ॥४२॥ जिस प्रकार सप्तस्त तीर्थों में धर्म ससार से उद्धार करने वाला है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ (ससारोद्धारक) है।

श्री ब्रह्मपुराण में पुरुषोत्तम-माहात्म्य-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९॥

अध्याय ७०

ब्रह्मा से नारद का तीर्थसख्याविषयक प्रश्न

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! इस संसार के जितने तीर्थ क्षेत्र, जप होम, दत्त तप और दान आदि हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो पुरुषोत्तम तीर्थ के समान पवित्र तथा फल देने वाला हो। इसकी महिमा के विषय में बार-

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत् । पुरुषाख्यं सकृद्बुद्ध्वा सागराम्भ.समाप्लुतम् ॥३॥
 ब्रह्मविद्या सकृज्ज्ञात्वा गर्भं वासतो न विद्यते । हरेः सनिहिते स्थान उत्तमे पुरुषोत्तमे ॥४॥
 सबत्सरमुपासीत मासमात्रमयापि वा । तेन जप्तं हृतं तेन तेन तप्तं तपो महत् ॥५॥
 स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः । भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोपित्समन्वितः ॥६॥
 कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः । जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्ञेयोद्यतो गृहे ॥७॥
 सप्राप्य वैष्णव योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत् । कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह ॥८॥
 मार्कण्डेयेन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च । स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात् ॥९॥
 मार्जनस्य ययाकाले भागीरथ्याः समागमम् । सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छस्य ॥१०॥
 इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया । सर्वाश्चर्यं समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम् ॥
 पुराण परम गुह्यं धन्यं संसारमोचनम् ॥११॥

मुनय ऊचुः

नहि नस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां तीर्यविस्तरम् । पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥
 परं तीर्यस्य माहात्म्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥१२॥

बार कहने से क्या लाभ ? ॥१-२॥ समुद्र-जल से सुशोभित परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम तीर्थ का एक बार भी दशन करने से तथा ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य कभी भी जन्म-मरण के पन्दे में नहीं पँसता, यह निश्चय ही परम श्रेष्ठ सत्य है । भगवान् के शाश्वत निवास इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो व्यक्ति एक वर्ष या एक मास रह कर उपासना करता है उसे जप, हवन और तप से प्राप्त होनेवाले सभी फल प्राप्त होते हैं और वह उस परम स्थान को जाता है जहाँ स्वयं योगेश्वर हरि निवास करते हैं ॥३-५॥ विप्रगण ! देवकन्याओं के साथ वह विचित्र भोगों को भोग कर कल्पान्त में पुन इस मृत्यु लोक में ज्ञान और श्रेय की जिज्ञासा रखने वाला वह सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति योगियों के कुल में जन्म लेता है ॥६-७॥ पुन देह त्यागने के बाद वह नरोत्तम वैष्णव ज्ञान को प्राप्त कर हरिलोक में सामीप्य भक्ति प्राप्त करता है । मैंने इस प्रकार कल्पवृक्ष एवं सुमद्रा सहित राम कृष्ण, मार्कण्डेय, इन्द्रद्युम्न, माधव स्वर्गद्वार, और सागर वा माहात्म्य क्रमशः सुना दिया ॥८-९॥ भागीरथी के तट पर जाने का समय और स्नान विधि आदि बातें भी मैंने सुना दीं, जिनके सुनने के लिये तुम लोगों को अत्यन्त उत्पन्ना थी ॥१०॥ इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य पुरुषोत्तम की रहस्यमयी और आश्चर्यजनक बातें तथा ससार के बलेशी को मिटाने वाले इस परम गुह्य शुभ पुराण को भी सुना दिया ॥११॥

मुनिगण बोले—मनवन् । तीर्थों की इस विस्तृत विवेचना को सुनकर भी हम लोग अभी तृप्त नहीं हुए हैं । इसलिये पुन तीर्थों का माहात्म्य और सर्वोत्तम तीर्थ की परम रहस्यमय बातें पूरा रूप से सुनाइये ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमा । नारदेन प्रयत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम् ॥१३॥

नारद उवाच

तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां^१ पावनं स्मृतम् । सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते ॥१४॥
'किंपन्ति सन्ति तीर्थानि' स्वर्गमर्त्यरसातले । सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले । देवानि मुनिर्षादूल आसुराण्यारुपाणि च ॥१६॥
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः । मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्यं तीर्थमनुत्तमम् ॥१७॥
आर्येभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम् । आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं देवं तत्सर्ववामिकम् ॥१८॥
ब्रह्मविष्णुशिवश्चैव निर्मितं देवमुच्यते । त्रिम्यो यदेकं जायेत तस्मात्प्रातः परं विदुः ॥१९॥
त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेध्यमुदाहृतम् । तत्रापि जाम्बव्यं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोदयम् ॥२०॥
जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । कर्मभूमिपतं पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते ॥२१॥
तत्रैव यानि तीर्थानि यान्युक्तानि मया तव । हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पण्डितो देवसम्भवा ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य ! पूर्वकाल में नारदमुनि ने इसी प्रश्न को मुझसे पूछा था । उस समय मैंने जो कुछ कहा, उसी को पुनः कह रहा हूँ ॥१३॥

नारद ने कहा—जगत् के आदि कारण ! जगत्पते ! आपसे मैंने तप, यज्ञ, दान और तीर्थों का पवित्र माहात्म्य पूर्णरूपेण सुना । अब यह बतलाइये कि स्वर्ग, मर्त्य और रसातलो में कितने तीर्थ हैं और उन सब तीर्थों में किसकी महत्ता सर्वदा मानी जाती है ॥१४-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिर्षादूल ! देवताओं एवं तत्त्वज्ञानियों ने स्वर्ग, मर्त्य और रसातल में स्थित देव आसुर, आर्य और मानुष—ये चार प्रकार के तीर्थ बतलाये हैं । इनमें मानुष तीर्थों से आर्यतीर्थ उत्तम माने गये हैं आर्य से आसुरतीर्थ अधिक पुण्यप्रद माने गये हैं, और आसुरतीर्थों से देवतीर्थ सब मनोरथों के दाता कहे गये हैं । ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर द्वारा प्रतीष्ठित तीर्थ देवतीर्थ कहे जाते हैं । इन तीनों देवा द्वारा जो तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ उस देव तीर्थ से श्रेष्ठ कोई अन्य तीर्थ नहीं है ॥१६-१९॥ या ता तीनां लोका के तीर्थ पवित्र माने गये हैं । परन्तु उत्तम भी जम्बु द्वीप के तीर्थ बहुत उत्तम पात्र देने वाले हैं ॥२०॥ जम्बुद्वीप के तीर्थों से भी भारतवर्ष किमुक्त प्रसिद्ध तीर्थ हैं । चूँकि यह भारतवर्ष कर्मभूमि है इसलिये यह तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ उस देश में कितने तीर्थ हैं उनके विषय में मैंने सुप्त कहा है कि हिमाग्न्य और विन्ध्य गिरि के मध्य की छह नदियाँ देवनदियाँ हैं ॥२२॥ उसी प्रकार है नाम ।

१ य तीर्थमेवमनुत्तमम् । २ त्रि यमु० । ३ य जगत्प्रमो । ४ य ० यन्मेदाणि ती० । ५ य ० नि हिमग्न्यानि गुरेश्वर । ग ।

तथैव देवजा ब्रह्मन्दिशिगणैर्विबन्ध्योः। एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥२३॥
अभिसंपूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम्। कर्मभूमिरतो देवैर्वर्षं तस्मात्प्रकीर्तितम्॥२४॥
आर्याणि चैव तीर्थानि देवजानि ववचित्कवचित्। आसुरैरावृत्तान्यासंस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते॥२५॥
देवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः। देवप्रभावात्तपस आर्याण्यपि च तान्यपि॥२६॥
आत्मनः श्रेयसे मुख्ये पूजायै भूतपेक्षया। आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुनः॥२७॥
मानुष्यैः कारितान्याहुर्मनुषाणीति नारद। एवं चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तमा॥२८॥
भेद न वदिवज्जानाति श्रोतु युक्तोऽसि नारद। बह्वर्षं पण्डितमन्या शृण्वन्ति कथयन्ति च॥
सुकृती कोऽपि जानाति धवतुं श्रोतुं निर्जगुर्गणः॥२९॥

नारद उवाच

तेषां स्वरूप भेद च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशयः॥३०॥
ब्रह्मकृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते। तीर्थसेवा विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम्॥३१॥
न त्वया सदृशो धातव्यता ज्ञाताऽथवा ववचित्। त्वनाभिकमले विष्णो संजातोऽखिलपूर्वजः॥३२॥

ब्रह्मोवाच

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका। तापी पयोणी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः॥३३॥
भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिताः॥३४॥

विन्ध्य और दक्षिण सागर के मध्य की छह नदियाँ भी देवनदियाँ हैं। ये बाच्छ नदियाँ प्रधान रूप से श्रेष्ठ मानी गई हैं॥२३॥ क्योंकि भारत सबसे पूजित, अधिक पुण्य देने वाला और कर्मभूमि है, अतएव इसको देवों न वर्ष (श्रेष्ठ) कहा है॥२४॥ आर्य और वही वही देवतीर्थ भी आसुर प्रदेशों अथवा असुर-समूह से घिरे हैं, इसीलिय उनको आसुर कहा गया है॥२५॥ देव प्रदेशों में ही ऋषिया ने तपस्याकर देव प्रभाव या अपनी तपस्या के प्रभाव से आर्य तीर्थों का निर्माण किया है॥२६॥ लोक-वल्याण, मुक्ति, पूजा, ऐश्वर्य प्राप्ति अथवा अपनी अभीष्ट-सिद्धि या यश प्राप्ति के लिये मनुष्या न जिन तीर्थों को बनाया, वे ही मानुष तीर्थ कहे जाते हैं॥२७॥ मुनिवर नारद। इस प्रकार तीर्थों के चार भेद हैं। नारद। इस भेद को कोई नहीं जानता। तुम्हीं इस भेद को सुनने के अधिकारी हो। यद्यपि बहुत से पण्डितमन्य लोग इस भेद को सुनते और सुनाते हैं, किन्तु कोई पुण्यवान् व्यक्ति ही अपने गुणों के कारण सुनने और कहने (प्रवचन) का अधिकारी होता है, सभी नहीं॥२८-२९॥

नारद बोले—ब्रह्मन्। यथार्थ रूप से मैं उपयुक्त तीर्थों का स्वरूप और भेद सुनना चाहता हूँ जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। कृतयुग आदि में थोड़े भ्रम से भगवत् सिद्ध करने वाली तीर्थ-सेवा के अनिश्चित और कोई उपाय भी तो नहीं है। धात। तुम्हारे समान ज्ञाता और वक्ता वही नहीं है, क्योंकि तुम विष्णु के नाम-कमल से उत्पन्न हुए हो और सबके पूर्वज हो॥३०-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—विन्ध्य के दक्षिण भाग में गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, वेणिका, तापी, पयोणी, ये नदियाँ ही गई हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता ये हिमालय पर्वत से निकली हैं॥३३-३४॥

एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्यान्मुदाहृताः । गयः 'कोट्लासुरो वृत्रस्त्रिपुरो ह्यन्धकस्तथा ॥३५॥
 ह्यमूर्धा च लवणो नमुचिः ॥ शृङ्गकस्तथा । यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च ॥३६॥
 एतैराबूततीर्थानि आसुराणि शुभानि च । प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा ॥३७॥
 वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः । इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद ॥३८॥
 अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो माधाता मनुरेव च । कुरुः कनखलश्चैव भद्राश्वः' सगरस्तथा ॥३९॥
 अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिदमः । इत्यादिमानुषैर्विप्र निर्मितानि शुभानि च ॥४०॥
 यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद । स्वतोद्भूतानि दैवानि यत्र यवापि जगत्त्रये ॥
 पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तोयंभेदो मयोदितः ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे' स्वयंभुवपिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये तीर्थभेदवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥
 गौतमीमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

ये नदिर्या अत्यन्त पुण्यजनक और देवतीर्थ बही गयी हैं । गय, कोट्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अंधक, ह्यमूर्धा, लवण नमुचि, शृङ्गक, यम, पातालकेतु, मय और पुष्कर इन असुरों से अधिष्ठित अथवा घिरे हुये तीर्थ आसुर हैं और शुभ भी हैं ॥३५-३६॥ प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नरनारायण, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, कश्यप और मनु इत्यादि ऋषियों से सेवित आर्यतीर्थ हैं ॥३७-३८॥ अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्याता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नाचिकेता, वृषाकपि, अरिदम, आदि से निर्मित शुभ मानुषतीर्थ हैं । नारद ! इसलोक में यश तथा ऐश्वर्य की मिट्टि के निर्मित बनये गये या स्वय उत्पन्न दैवतीर्थ जहाँ-वही भी इन तीनों लोकों में हैं, वे सभी पुण्यतीर्थ बहे जाते हैं । इस प्रकार मैंने तीर्थ के भेद सुना दिये ॥३९-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थं माहात्म्यं ने नाम मे तीर्थं भेद-वर्णनं नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७०॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गोत्पत्तिकथोपक्रम

नारद उवाच

त्रिदंष्ट्र तु यत्तीर्थं सर्वेभ्यो ह्यवतमुत्तमम् । तस्यैव स्वरूपभेदं च विस्तरणं द्रष्टुं मे ॥१॥

ब्रह्मोवाच

तावदयानि तीर्थानि तावन्ता पुण्यभूमयः । तावद्यज्ञादयो यावत्त्रिदंष्ट्रं न दृश्यते ॥२॥
गङ्गा सरिता श्रेष्ठा सर्वकामप्रदायिनी । त्रिदंष्ट्रया मुनिश्रेष्ठ तदुत्पत्तिमतः शृणु ॥३॥
वर्षाणामयुनात्पूर्वं देवकाय उपस्थिते । तारको बलवानासीन्मन्त्रादतिगवितः ॥४॥
देवानां परमेश्वर्यं हृतं तनं बलीयसा । ततस्तं शरणं जग्मुर्देवाः सद्रूपरोचना ॥५॥
क्षीरोदगायिनं देवं जगतां प्रपितामहम् । कृताञ्जलिपुटा दबा विष्णुमूचुरनया ॥६॥

देवा ऊचुः

त्वं ज्ञाता जगतां नाथ देवानां कीर्तिवर्धन । सर्वेश्वर जगद्योने त्रयोमूर्ते नमोऽस्तु त्वं ॥७॥

अध्याय ७१

गंगा की उत्पत्ति की कथा

नारद ने कहा—आपन जो त्रिदंष्ट्र तीर्थ को सबसे उत्तम तीर्थ कहा है सो उसके स्वरूप और भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझ सुनाइव ॥१॥

ब्रह्मा बोले—तब तक ही अन्य तीर्थों पुण्यभूमा और अन्य यज्ञा का महत्त्व है जब तक कि त्रिदंष्ट्र तीर्थ का दान न हुआ होना है । मुनिश्रेष्ठ ! यह गंगा नहीं ही—जो सब नष्टिमा भक्ष्य है सम्पूर्ण पशु को देन वाली है—त्रिदंष्ट्रया है, अन उसकी उत्पत्ति की कथा सुनो । आज स दत्त हजार वर्ष पूर्व एक देवकाय उपस्थित हुआ । उस समय तारक नामक एक अमुर था जो मृगमे वर पाकर अत्यन्त मनोदत्त हो गया था । उस महाबली ने बलपूर्वक देवताओं का सारा वैभव छीन लिया । इसलिये वे देवगण हतसवस्व इन्द्र को अगुवा बना कर देवताओं के एकमात्र रक्षक शारंग या जगन्मूर्ति विष्णु की शरण में गये । उनके पास जाकर देवगण हाथ जोड़कर बहने लगे ॥२॥

देवगण बोले—समस्त लोक के स्वामी ! हे देवों की कीर्ति बढ़ाने वाले सर्वेश्वर ! तुम हमारे एकमात्र रक्षक हो ससार के उत्पत्ति-स्थान ! हे त्रिमूर्ति ! आपको नमस्कार है ॥३॥ तुम्हीं अनुशो को मारने वाले लोक के

लोकप्रवृत्ताऽसुरान्हुन्ता त्वमेव जगता पति । स्थित्युत्पत्तिविनाशाना कारण त्व जगमय ॥८॥

प्राता न कोऽप्यस्ति जगत्त्रयेऽपि, शरीरेणा सर्वविपदगतानाम् ।

त्वया विना वारिजपत्रनेत्र, तापत्रयाणा शरण न चान्यत

॥९॥

पिता च माता जगतोऽखिलस्य, त्वमेव सवासुलभोऽसि विष्णो ।

प्रसीद पाहीश महाभयम्योऽस्मदातिहन्ता वद कस्तवदय

॥१०॥

आदिकर्ता वराहस्त्व मत्स्य कूर्मस्तथैव च । इत्यादिहपभेदेनो रक्षसे भय आगते ॥११॥

हृतश्चाम्पान्सुरगणान्हुतदारान्गतापद । कस्मान्न रक्षसे देव अनयशरणान्हरे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवाञ्छेषशायी जगत्पति । कस्माच्च भयमापन्न तद्ब्रुवतु गतज्वरा ॥

तत भियर्पति प्राहुस्त तारकवध प्रति

॥१३॥

देवा ऊचु

तारकाद्भयमापन्न भीषण रोमहर्षणम् । न युद्धंस्तपसा शापेहं तु नैव क्षमा वयम् ॥१४॥

अर्वाक्षशाहाद्यो बालस्तस्मान्मृत्युमवाप्स्यति । तस्माद्देव न चान्येभ्यस्तन ॥ नोतिविधीयताम् ॥१५॥

निर्माता और ससार के स्वामी हो । हे ससारमय ! ससार की सृष्टि पालन और विनाश के कारण तुम्ही हो ॥८॥

इन तीनों लोको में सब प्रकार की विपत्तियों में पक्षि जीवा व रक्षक तुम्हा हो दूसरा कोई नहीं । कमलनेत्र !

त्रिताप से सतप्त प्राणियों को तुम्हारे अतिरिक्त कोई आश्रय देनेवाग नहीं है । विष्णो ! इस अखिल लोक में तुम्ही

पिता और माता हो और तुम्ही केवल सेवा द्वारा सुलभ हा । ईश ! प्रसन्न हो जाओ । इस महाविनाश से हम लोग

की रक्षा करो । तुम्हारे सिवा और कौन हम लोग के कष्ट को दूर कर सकता है ? ॥९॥१०॥ विपत्ति आ जाने

पर तुम्ही आदिकर्ता वराह मत्स्य तथा कूर्म आदि रूपा में अवतार लेकर हमारी रक्षा करते हो । देव ! हरे ! इन

अनन्यगण तथा विपत्तियों में पक्षि देवों की—जिनके सारे अधिकार छीन लिये गये हैं और जिनकी स्त्रियाँ छूट ली

गई हैं—क्या नहीं रक्षा करते ? ॥११॥१२॥

ब्रह्मा बोले—इन बातों को सुनकर जगत्पति शेषशायी भगवान् न पूछा—देववन्द ! तुम लोगों को किससे

भय है ? निश्चक होकर बहो । भगवान् की बातें सुनकर देवा न तारक के वध व सबध में उनसे बहा ॥१३॥

देवों ने कहा—भगवन् ! तारकामुर के भीषण रोमाञ्चवारी अत्याचारा से हम लोग भयभीत हो गये

हैं । हम लोग युद्ध तप शाप आदि किन्हीं उपायों से उनको मारन में समर्थ नहीं हैं । देव ! दस दिन के बाद

वा ही गिगु उतकी मृत्यु का कारण होगा हमारे से उतकी मृत्यु नहीं होगी । इसलिये कोई उपाय ब्रह्म

निकालिये ॥१४॥१५॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्नारायणः प्राह नाहं बल्लोक्तः सुराः। न मत्तो मदपत्याच्च न देवेभ्यो वधो भवेत्॥१६॥
 ईश्वराद्यदि जायेत अत्यं बहुशक्तिमत्। तस्माद्वधमवाप्नोति तारको लोकवाचुः॥१७॥
 तद्गच्छामः सुराः सर्वे यतितुमृषिभिः सह। भार्यायं प्रयमो यत्नः कर्तव्यः प्रभविष्णुभिः॥१८॥
 तथेत्युक्त्वा सुरगणा जग्मुस्ते च नगोत्तमम्। हिमवन्तं रत्नमयं मेनां च हिमवत्प्रियाम्॥१९॥
 इदमूचुः सर्व एव सभार्यं तुहिनं गिरिम् ॥२०॥

देवा ऊचुः

दाक्षायणी लोकमाता या शक्तिः संस्थिता गिरी'। बुद्धिः प्रज्ञा धृतिर्मेधा लज्जा पुष्टिः सरस्वती॥२१॥
 एवं त्वनेकया लोके या स्थिता लोकपावनी। देवानां कार्यसिद्ध्यं 'युवयोगंममाविशत्'॥२२॥
 समुत्पन्ना जगन्माता शंभोः पत्नी भविष्यति। अस्माकं भवतां चापि पालनी च भविष्यति॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हिमवानपि तद्वाक्यं सुराणामभिनन्द्य च। मेना चापि महोत्साहा अस्त्वित्येवं वचोऽब्रवीत्॥२४॥
 तदोत्पन्ना जगद्वात्री गौरी हिमवतो गृहे। शिवध्यानरता नित्यं तन्निष्ठा 'तन्मनोगता'॥२५॥
 तां च प्रोचुः सुरगणा ईशार्यं तप आविश। तथा हिमवतः पृष्ठे गौरी तपे तपो महत्॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर मगवान् नारायण ने कहा—'देवगण ! मैं उत्कट बलशाली नहीं हूँ और उसका वध न मुझसे न मेरे पुत्र से न देवताओं से ही हो सकता है। यदि शत्रु से कोई अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हो तो वह लोक-पीडक तारक उससे मारा जा सकता है। इसलिये प्रभावशाली ऋषियों के सहित हम सब प्रयत्न करने के लिये चले। सर्वप्रथम उनके विवाह के लिये प्रयत्न करना चाहिये। 'ऐसा ही हो' यह कहकर वे देवगण 'रत्नपूर्ण' नपाचिराज हिमालय और उसकी स्त्री मेना के पास गये। सभी उसकी भार्या मेना और हिमालय से बोले ॥१६-२०॥

देवों ने कहा—लोक-माता शक्तिस्वरूपिणी दाक्षायणी तुम्हारे यहाँ विराजमान हैं। लोक को पवित्र करने वाली उस जननी के, बुद्धि, प्रज्ञा, धृति, मेधा, लज्जा, पुष्टि, सरस्वती आदि अनेक नाम लोक में प्रसिद्ध हैं। वही देवा की कार्य-सिद्धि के लिये आपके गर्भ में प्रविष्ट हुई हैं। उत्पन्न होकर वह जगन्माता भविष्य में शंभु की पत्नी होगी और हम लोगों की तथा आप लोगों की भी वह रक्षिका बनेगी ॥२१-२३॥

ब्रह्मा बोले—यवनराज हिमालय ने भी देवों के इस प्रस्ताव की सराहना की और मेना ने भी बड़े उत्साह से कहा कि 'ऐसा ही हो।' उस समय हिमालय के घर में उत्पन्न जगन्माता गौरी भी सर्वदा शिव के ध्यान में मग्न रहती थी। उनकी निष्ठा और मन उनमें ही लगा रहता था। देवों ने उस हिमवन्ता से कहा कि तुम मगवान् को पति रूप में पाने के लिये तप करो। तब गौरी भी हिमालय के ऊपर बैठकर बठोर तपस्या करने लगी। पुनः

पुनः संमन्त्रयामासुरीशो ध्यायति तां शिवाम् । आत्मानं वा तयाज्यद्वा न जानीमः कथं भवः ॥२७॥
 मेनकायाः सुतायां तु चित् दध्यात्सुरेश्वरः । तत्र नीतिविधातव्या ततः धेष्टचमवाप्त्यय ॥
 ततः प्राहु महाबुद्धिर्वाचस्पतिरदारधोः ॥२८॥

बृहस्पतिस्वाच

यस्त्वयं मदनो धीमान्कन्दर्पः पुष्पचापधृक् । स विध्यतु शिवं शान्तं बाणैः पुष्पमयैः शुभैः ॥२९॥
 तेन विद्वस्त्रिनेत्रोऽपि ईशायां बुद्धिमादधेत् । परिणेष्यत्यसौ नूनं तदा तां गिरिजां हरः ॥३०॥
 जयिनः पुञ्चबाणस्य न बाणाः क्वापि कुण्ठिताः । तयोढाया जगद्वाज्यां शंभोः पुत्रो भविष्यति ॥३१॥
 जातः पुत्रस्त्रिनेत्रस्य तारकं स हनिष्यति । वसन्तं च सहायार्थं शोभिष्ठं कुसुमाकरम् ॥३२॥
 आह्लादनं च मनसा कामार्थेन प्रयच्छत ॥३३॥

ग्रहोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा मदनं कुसुमाकरम् । प्रेषयामासुरव्यग्राः शिवान्तिकमरिदमाः ॥३४॥
 संजगाम त्वरां कामो घृतचापो समाधवः । रत्या च सहितः कामः कर्तुं कर्म सुदुष्करम् ॥३५॥
 गृहीत्वा सशरं चापमिवं तस्य मनोजभवत् । मया वेध्यस्त्यवेध्यो वै शंभुर्लोकगुरुः प्रभुः ॥३६॥
 ग्रैलोक्यजयिनो बाणाः शंभो मे किं ब्रूढा न वा । तेनासौ चाग्निनेत्रेण भस्मशोपस्तदा कृतः ॥३७॥

देवताओं ने मन्त्रणा की कि मगवान् शर स्वयं गौरी या अपने आपका या अन्य किसी वस्तु का चिन्तन करते हैं इन्द्रघात को हम नहीं जानते। अतः सुरेश्वर शर किस प्रकार मैनानुनी में अपना मन लगावेंगे, इस बात के लिए कुछेक समय करना चाहिये, तभी सफलता प्राप्त होगी। इसकी बातें सुनकर महाबुद्धिमान्, उदारचेता बृहस्पति ने कहा ॥३४-३८॥

बृहस्पति बोले—जो यह कुसुम-यनुष धारण करने वाला बुद्धिमान् कामदेव है, वह शान्त मित्र को अपने पुष्प-पुष्पबाणा में मारे। पुष्पगणा से विधे त्रिनेत्र गौरी की ओर आश्रित हो, तब निदराय ही शर गिरिजा का पाणिग्रहण करे। विजयी कामदेव के बाण वहाँ भी असफल नहीं होंगे। इस प्रकार पावती से विवाह हो जाने पर राम ने पुत्र उत्पन्न होगा। शर से उत्पन्न वह पुत्र तारक का यश करेगा। इसके पूर्व मनोहर वसन्त को जो कि मनु में आह्लाद उत्पन्न कर देता है—गहायता के लिए मदन को दे दिया जाय ॥२९-३३॥

ग्रहा ने कहा—यही टीका है—ऐसा बहुर धनुषमदन देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक बगल में साथ मदन को धिक्के में समीप भेजा। कामदेव भी वसन्त और रति के साथ हाथ में अपना अमोघ धनुष लेकर उग दुन्दर बाणों को बुरे में जिसे शीघ्रता से गया। हाथ में बाण रहित धनुष लेकर कामदेव मन में सोचने लगा कि शीघ्रपुण्य (अनघ) न वेधने योग्य प्रभु शर अवश्य मेरे बाणों के लक्ष्य बनेंगे। विभुवन को वस में करने वाले मेरे बाणों में शर भरना प्रभाव दिगावेंगे कि नहीं, कामदेव यह सोच ही रहा था कि इतने ही में वह मगवान् के नेत्र में निक्षेप

तदेव कर्म सुदृढमोक्षितुं सुरसत्तमाः । आजग्मुस्तत्र यद्वृत्तं शृणु विस्मयकारकम् ॥३८॥
 शंभुं दृष्ट्वा सुरगणा यावत्पश्यन्ति मन्मथम् । तावच्च भस्मसाद्भूतं कामं दृष्ट्वा भयातुराः ॥
 , नुष्टुबुस्त्रिदशेशानं कृताञ्जलिपुटाः ॥ सुराः ॥३९॥

देवा ऊचुः

तारकाद्भयमापन्नं कुरु पत्नीं गिरेः सुताम्

॥४०॥

ब्रह्मोवाच

विद्वच्चित्तो हरोऽप्याशु मेने वाक्यं सुरोदितम् । अरुण्यतौ वसिष्ठं च मां तु चक्रधरं तथा ॥४१॥
 प्रेयषामासुरमरा विवाहाय परस्परम्, संबन्धोऽपि तयाऽप्यासीद्विभवल्लोकनाययोः ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिसंवादे गङ्गोत्पत्तौ शंभुविवाहसंभवो

॥

॥ नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ज्वाला से जलकर मम्म हो गया । इस कठोर कर्म को देखने के लिये वहाँ ये देवता आये । इसके आगे जो आश्चर्य-जनक घटना हुई उसको हे पुत्र ! सुनो । रामु को देखने के बाद देवगण ज्योंही मदन की ओर ताकने लगे त्योंही उसको भस्मीभूत देखकर मय से अधीर हो गये । तब हाथ जोड़कर देवताओं ने देवेश शंकर की स्तुति की ॥३४-३९॥

देवो ने कहा—तारकासुर से हम लोग त्रस्त हैं, हमारे उद्धार के लिये (श्रमो) पावन्ती को अपनी पत्नी बनाइये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—इधर मदन-भीड़ित शंकर ने भी धीघ ही देवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली । अपना मनोरथ सिद्ध जानकर देवताओं ने अरुण्यती, वसिष्ठ, भूस (ब्रह्मा) को और विष्णु को विवाह का सपटन (घटकैती) करने के लिये भेजा । गयायं में वह विवाह भी हिमालय और लोकस्वामी शंकर के पद और प्रणिष्टा के अनुरूप ही था ॥४१-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में गणोत्पत्ति-प्रकरण में रामुविवाह की समाप्ति नामक

इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

हिमवद्वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

हिमवत्पर्वत श्रेष्ठे नानारत्नविचित्रितः । नानावृक्षलताकीर्णं नानाद्विजनिपेविते ॥१॥
 नदीनदसरःकूपतडागादिभिरावृते । दवगन्धवयक्षादिसिद्धचारणसेविते ॥२॥
 शुभमास्तसपन्ने हर्षोत्कर्षककारणः । मेरुमन्दरकलासर्पनाकादिनगवृते ॥३॥
 वसिष्ठागस्त्यपौलस्त्यलोमशादिभिरावृते । महोत्सव वतमान विवाहः समजायत ॥४॥
 तत्र वदी रत्नमयी शोभिता स्वर्णभूषिता । वज्रमाणिक्यवन्द्यतन्मयस्तम्भशोभिता ॥५॥
 जयालक्ष्मीशुभाशान्तिकीर्तिपुञ्चादिसंवृता । मेरुमन्दरकलासरवर्ते परिशोभिते ॥६॥
 पूजितो लोकनायक विष्णुना प्रभविविष्णुना । मैनाकः पवतश्छटो रेजेऽस्तीव हिरण्मयः ॥७॥
 ऋषयो लोकपालाश्च आदित्या समरुदगणा । विवाह वेदिकां चक्रुर्देवदेवस्य शूलिनः ॥८॥
 विश्वकर्मा स्वयं त्वष्टा वेदो चक्र सतोरणाम् । सुरभी नन्दिनी नन्दा मुनन्दा कामदोहिनी ॥९॥
 अभिस्तु शोभितशान्त्या विवाहः समजायत । समुद्रा सरितो नागा ओषधयो लोकमातरः ॥१०॥

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नाना रत्ना के विचित्र गोमांगली श्रेष्ठ हिमाश्रय-पर्वत पर जो अनेक वृक्ष और लताओं से प्रपूज्य था जहाँ मित्र मित्र रूप के अनेक पौधे रहते थे जो नदी नद सरोवर कूप और तडाग आदि से घिरा हुआ था जहाँ देव गंधर्व वन आदि तथा सिद्ध चारण निवास करते थे और वसिष्ठ अगस्त्य पौलस्त्य लोमश आदि विवाहोत्सव देखने के लिये आये थे—यह समारोह के साथ विवाह-कृत्य शुभ बना में प्रारम्भ हुआ ॥१॥ वहाँ सोने से सुसज्जन रत्नज्वलित बेनी बनाई गई उस पर वज्र-माणिक्य और बहूय जड़ स्तम्भ खड़े किये गये ॥५॥ जया लक्ष्मी शुभाशान्ति कीर्ति पण्डित आदि दक्षिण वहाँ विवाह-मण्डप में उपस्थित थी मेरु मन्दर वैलांग रत्न आदि विराजमान थे और लोकस्वामी सबसमर्थ विष्णु से सम्मानित स्वर्णमय पवन गिरामणि मनाक वहाँ अर्थात् मुण्डोमिन हा रहा था ॥६॥ उस पर्वत के विवाह में ऋषि लोकपाल तथा मरुदगणा के साथ आग्नि-यज्ञों के मिलकर बेनी बनाया देव गिरापी विश्वकर्मा ने तोरण से उसको सज्जाया । तदनन्तर सुरभी नन्दिनी नन्दा मुनन्दा कामधेनु आदि सन्तिया के मध्य मुण्डोमिन पावती का विवाह सम्पन्न हुआ । समुद्र सरिता पवन ओषधियाँ लावनाताय

सवनस्पतिबीजाश्च सर्वे तत्र समाययुः । भुवः कर्म इला चक्रे ओषध्यस्त्वन्नकर्म च ॥११॥
 वरुणः ॥ पानकर्माणि दानकर्म धनाधिप । अग्निश्चकार' तत्राग्न यच्चेष्ट लोकनाथयो ॥१२॥
 तत्र' तत्र पूयकपूजा चक्रे विष्णुः सनातन । 'वेदाश्च सरहस्या' वै गायन्ति च' हसन्ति च ॥१३॥
 नृत्यन्त्यप्सरसाः सर्वा जगुर्गन्धर्वाकनरा । लाजाधृवचापि मैनाको बभूव मुनिसत्तम ॥१४॥
 पुण्याहवाचनं वृत्तमन्तर्वेदमग्नि नारद । वेदिकायमुपाविष्टो दपती सुरसत्तमौ ॥१५॥
 प्रतिष्ठाप्याग्निं विधिवदश्मानं चापि पुनःक । हृत्वा लाजाश्च विधिवत्प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥१६॥
 अश्मनः स्पर्शहेतोश्च देव्यङ्गुष्ठं करेऽप्युशत् । विष्णुना प्रेरितः शर्भुर्दक्षिणस्य पदस्य च ॥१७॥
 ताम्रदशमं ह तत्र होमं 'कुदन्हरान्तिके' । दृष्टेऽङ्गुष्ठे दुष्टबुद्ध्या वीर्यं सुखाय मे तदा ॥१८॥
 लज्जया फल्गुभीतः स्कन्धं वीर्यमचूर्णयम् । महीर्याच्चूर्णितात्सूक्ष्माद्वालिख्यास्तु ॥ जज्ञिरे ॥१९॥
 ततो महानभूत्तत्र हाहाकारः सुरोदितः । लज्जया परिभूतोऽहं निर्गतस्तु तदाऽऽसनात् ॥२०॥
 पश्यत्सु देवसघेषु तूर्णोभूतेषु नारद । गच्छन्तं मा महादेवो दृष्ट्वा नन्दितमब्रवीत् ॥२१॥

वनस्पति बीज सभी वहाँ उत्सव में सम्मिलित हुये ॥८१॥ नारद । उस उस सब में इला ने पृथ्वी-कर्म (शांता लीपना आदि) किया आपधिया ने अन्न-सामग्री जुटायी वरुण ने जलपान का प्रबन्ध किया धनपति कुबेर ने दान-दक्षिणा देने का कार्य किया अग्नि ने शिव की इच्छा के अनुष्ण विविध स्वादु भोजन बनाया ॥११॥ सनातन विष्णु ने स्थान स्थान पर विवाहोचित पूयक-पूयक पूजा की । वहाँ सागोपाग वेद स्वयं गान करते थे तथा हँसते भी थे ॥१३॥ सभी अप्सराओं ने अपना नृत्य दिखाया गन्धर्व और किन्नरा ने मधुर गान गाया मुनिभेष्ट । मैनाच ने मागलिक ध्वन के लाजा (लावा) बिखेरने की विधि पूरा की ॥१४॥ नारद । अन्तर्गह में पुण्याहवाचन हुआ और दोनों देव-दम्पति ने वेदिका पर बैठकर विधिपूर्वक अग्नि और पत्थर की प्रतिष्ठा की । तदनन्तर लाजा-होम और अग्नि प्रदक्षिणा विधि समाप्त हुई । विष्णु की प्रेरणा से शम्भु ने पावती के दाहिने पैर के अंगुष्ठ का पत्थर से स्पर्श कराने के लिये हाथ से स्पर्श किया । पुनः । उस समय मैं शक्र के समीप हवन कर रहा था । मैंने पावती को देख लिया । उनके अंगुष्ठ को देखने से ही मेरे हृदय में कामभावना जागरित हो गई और वीर्य-पात हो गया ॥१५॥ लज्जा से सङ्कुचित होकर मैंने उस गिरे हुए वीर्य को चूषण कर दिया । उस वारीक चूषण क्रिये वीर्य से बालस्थित उत्पन्न हुये ॥१९॥ यह देखकर देवताओं ने बड़ा हाहाकार मचाया । तब लज्जा से आसन छोड़कर मैं बाहर चला आया ॥२०॥ नारद । इस प्रकार लज्जित और मण्डप से बाहर जाते मुझ देखकर सभी देवता मोन हो गये । किन्तु मुझको जाते देखकर शक्र ने नन्दी से कहा ॥२१॥

शिव उवाच

ब्रह्माणमाह्वयस्वेह गतपापं करोम्यहम् । कृतापराधेऽपि । जने सन्तः सकृपमानसाः ॥
मोहयन्त्यपि विद्वांसं विषयाणामियं स्थिता । ॥२२॥

ब्रह्मोद ।

एवमुक्त्वा स भगवानुमया सहितः शिवः । ममानुकम्पया चैव लोकानां हितकाम्यया ॥२३॥
एतच्चकार लोकेशः शृणु नारद यत्नतः । पापिना पापमोक्षाय भूमिरापो भविष्यति ॥२४॥
तपोश्च सारसर्वस्वमाहरिष्यामि पावनम् । एवं निश्चित्य भगवांस्तपो सारं समाहरत् ॥२५॥
भूमिं कमण्डलुं कृत्वा तत्रापः सनिवेश्य च । पावमान्यादिभिः सूक्ष्मैरभिमन्त्र्य च यत्नतः ॥२६॥
त्रिजगत्पावनीं शक्तिं तत्र सत्स्मार पापहा । मामुवाच स लोकेशो गृहाणेम कमण्डलुम् ॥२७॥
आपो वै मातरो देव्यो भूमिर्माता तथाऽपरा । स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतुत्वमुभयोः स्थितम् ॥२८॥
अत्र प्रतिष्ठतो धर्मो ह्यत्र यज्ञः सनातनः । अत्र भुक्तिश्च मुक्तिश्च स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२९॥
स्मरणात्मानसं पाप वचनाद्वाचिकं तथा । स्नानपानाभिषेकाच्च प्रणश्यत्यपि कायिकम् ॥३०॥
एतदेवामृतं लोके नैतस्मात्पावनं परम् । मयाऽभिमन्त्रितं ब्रह्माण्गृहाणेम कमण्डलुम् ॥३१॥
अत्रत्य धारि यः कश्चित्स्मरेदपि पठेदपि । स सर्वकामानान्नोति गृहाणेमं कमण्डलुम् ॥३२॥

शकर बोले—तुम ब्रह्मा को यहाँ बुलाओ, मैं उनको निष्पाप करूँगा । सन्त मनुष्य अपराधी पर भी दया
दिखलते हैं, विषयवासानाओ की यह स्थिति है कि वे जानी को भी बशीभूत कर लेती हैं ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा के सहित शकर ने ऐसा कहकर मेरे ऊपर वृषाकर, लोक-हित की भावना से आगे बढ़ा
किया उसको तुम सावधानी से सुनो । उन्होंने कहा कि पृथ्वी और जल पापियों के पाप को नष्ट करने में सहायक
होते हैं । मैं इनके पवित्र सार भाग को निकालूँगा, ऐसा निश्चय कर भगवान् शकर ने उनके सार भाग को निकाल
लिया ॥२३-२५॥ पृथ्वी को कमण्डलु बनाकर उसमें जल को रख दिया । पावमान्य आदि वैदिक मन्त्रों से मलीमानी
अभिमन्त्रित कर उस पाप-विनाशक ने उसमें तीनों लोकों को पवित्र करने वाली शक्ति का आवाहन किया ।
पुनः लोकपति शकर ने मुझसे कहा कि इस कमण्डलु को लो ॥२६-२७॥ सुनो, जल मातृदेवी है, तथा पृथ्वी भी दूसरी
माता है । इन दोनों भू सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण निहित हैं ॥२८॥ इनमें धर्म प्रतिष्ठित है ।
सनातन यज्ञ इनमें वर्तमान है । इनमें मुक्ति और भुक्ति है । स्थावर, जंगम सभी इनमें ही रहते हैं ॥२९॥ जड़ के
स्मरण से मन के पाप, इससे विषय में चर्चा करने से वचन के पाप और इसके स्नान, पान और अभिषेक से शरीर के
पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥ यही ससार में अमृत है । इससे अधिक कोई भी वस्तु पवित्र नहीं । मैंने इसको अभि-
मन्त्रित कर दिया है, इस कमण्डलु को ग्रहण करो ॥३१॥ इस कमण्डलु के जल का जो कोई स्मरण करेगा अथवा
इसका स्तोत्र पाठ करेगा, उसके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, अतः इस कमण्डलु को लो ॥३२॥ पञ्च महाभूतों से प्रक-

भूतैर्म्यश्चापि पञ्चम्य आपो भूत महोदितम् । तासामुत्कृष्टमेतस्माद्गृहाणेन कमण्डलुम् ॥३३॥
अत्र यद्वारि शोभिष्य पुण्य पावनमेव च । स्पृष्ट्वा स्मृत्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्मन्पाद्विमोक्ष्यसे ॥३४॥
एवमुक्त्वा महादेव प्रादान्मम कमण्डलुम् । ततः सुरगणा सर्वे भक्त्या प्रोचुः सुरेश्वरम् ॥
आह्लादश्च महास्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत ॥३५॥

देवोत्सवे मातुरज पदाग्र, समीक्ष्य पापात्पतितत्वमाप ।

प्रादात्कृपालु स्मरणात्पवित्रा गङ्गा पिता पुण्यकमण्डलुस्थाम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तौ ब्रह्म-

कमण्डलुदान नाम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥७२॥

गौतमीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्याय ॥३॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

वलिप्रशसावर्णनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी तव पुण्यविर्वाधिनी । यथा मर्त्यं गता नाथ तमे विस्तरतो वद ॥१॥

तत्त्व स्पष्ट कहा गया है । यह तो उसका सार तत्त्व होने के कारण उससे भा अति उत्कृष्ट है इसलिये इस कमण्डलु को ग्रहण करो ॥३३॥ ब्रह्मन् ! इस कमण्डलु में जा जड़ है वह पवित्र पापनाशक और शुभदायक है । इससे स्नान स्मरण और दान से मनुष्य पापा से छूट जाता है ॥३४॥ ऐसा कहकर महादेव ने मुझको कमण्डलु दे दिया । इस घटना का देखकर सबका अत्यन्त प्रसन्नता हुई जब घोष की तुमुल ध्वनि से मण्डप गूँज उठा । देवताओं ने मन्त्रिपूवक सुरेश्वर गजर से कहा ॥३५॥ देवोत्सव के अवसर पर माता के चरण के अंगूठ को देखकर ब्रह्मा अपने पाप से पतित हो गए परन्तु कृपालु पिता गजर ने इतना स्मरण करके भी परम पवित्र गंगा का कमण्डलु में रखकर ब्रह्मा को दे दिया ॥३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य-अकरण म मगावृत्ति नामक बहत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥७२॥

अध्याय ७३

वलि की प्रशसा का वर्णन

नारद ने कहा—ब्रमा ! आपने कमण्डलु में रहने वाली पुण्यदायिनी गंगा त्रिसप्ततर मन्वन्तर म आयी होने भी विस्मरपूवक सुनाइये ॥१॥

ब्रह्मोवाच

बालिनाम महादयो देवारिरपराजित । धर्मेण यशसा चैव प्रजासंरक्षणेन च ॥२॥
 दुष्टभक्त्या च सत्येन वीर्येण च बलेन च । त्यागेन क्षमया चैव त्रैलोक्ये नोपमीयते ॥३॥
 तस्यैद्विमुद्रता दृष्ट्वा देवाश्चिन्तापरामणा । मयि समूचुरमरा जेष्यामी यदि कथं बलिम् ॥४॥
 तस्मिञ्ज्ञासति राज्यं तु त्रैलोक्यं हृतकण्टकम् । नारयो व्याधयो घातयि नाऽऽधयो वा कथंचन ॥५॥
 अनावृष्टिरधर्मो वा नास्तिशब्दो न दुर्जन । स्वप्नेऽपि नैव दृश्येत बलौ राज्यं प्रशासति ॥६॥
 तस्योन्नतिशरंभेना कीर्तिलङ्घद्विधावृता । तस्याऽऽज्ञाशक्तिभिन्नाङ्गा देवा शर्म न लेभिरे ॥७॥
 ततः समग्रयामासु कृत्वा मात्सर्यमप्रत । तद्यशोनिप्रदीप्ताङ्गा दिष्णु जग्मु सुविह्वला ॥८॥
 देवा ऊचुः

आर्ता स्म गतसत्या स्म शङ्खचक्रगदाधर । अस्मदर्थं भवार्तिव्यामुधानि बिभर्ति च ॥९॥
 त्वयि नाथे जगन्नाथ अस्माकं दुःखमोदशम् । त्या तु प्रणमती वाणी वयं दैत्य नमस्यति ॥१०॥
 मनसा कमणा वाचा त्वामेव शरणं गता । त्वदङ्घ्रिशरणा सन्त वयं दैत्य नमोमहि ॥११॥
 यजामस्तथा महायज्ञैर्वदामी वाग्भिरच्युत । त्वदेकशरणा सन्त वयं दैत्य नमोमहि ॥१२॥

ब्रह्मा न कह्यो—बलि नामक एक महान्त्य था जो दवताओं का परम गानु था। दवता उरको बली भी पराजित न कर सार। वह अपने घम-आत्मन का प्रजा-संरक्षण गुरु भक्ति साथ घोरप पराक्रम त्याग और क्षमा आदि गुणों का कारण तीनों लोकों में अनुपम था। उसका महान्त्य भव को दखकर दवता अत्यंत विचित्र हो उठ। वे परस्पर कहने लगे कि त्रिस प्रचार बलि का हम लोग जीत राखें ॥२॥४॥ इसका शासनकाय म तो मारा ससार निष्पष्टक है न शत्रु है न राग है अर न विषा का विषा प्रकार की मानमित्र चित्ता ही है ॥३॥ अनावृष्टि (सूता) अधम नास्तिकता और दुष्ट मनुष्य महा है। और क्या महा ताप इस यज्ञ का शासन-बाल म रखन म भी य सब महा देख जाय ॥६॥ इस प्रकार उसकी उन्नति रूपी गरज म व हतासाह हो गय उरक यगन्ना गद स आहत हो गय उसकी प्रमृता गति का देखकर व दव क्षण रिगत अपात् विरह हो गय। उनका विभी प्रचार शान्ति महा मिली ॥७॥ अन्त म ईर्ष्यामित्र म मित्र-जुनकर उन गंगा म मन्त्रणा का और उसका मन्त्रणा अग्नि से जो भुन व दव अत्यन्त व्याकुल होकर भगवान् दिष्णु का समीप गय ॥८॥

दैत्यो न कह्यो—गण चक्र गण का घोरण करने वाला। हम लोग का रक्षा का यज्ञ ही थाप सबका रक्षा घोरण करने हैं फिर भी हम लोग दुःखा हैं अधिराज म यज्ञि ह। जगन्नाथ। आपका रक्षा करने पर भी हम लोग की यह दुर्गति। आप का सबदा स्तुति करने वाली यह वाणी त्रिस प्रकार म अधमन्त्र का शक्ति कारण ॥९॥१०॥ हम सभी मन बचन और क्रम से आप का ह्रा गरज म रहन ह। मन्त्र आप का शरणा का रखन हम मन्त्र का बोले नमस्कार करगें ॥११॥ हम महायज्ञ का द्वारा जानका ह्रा आराधना करने हैं। अच्युत। अपना यानी है आप का ही स्तुति गान करते हैं एवमात्र आपका ही शरण म रहा था हम वयं उस दैत्य का नमस्कार कर उठते

त्वद्वीर्यमाश्रिता नित्य देवा सेन्द्रपुरोगमा । त्वया दत्त पद प्राप्य कथं दैत्य नमेमहि ॥१३॥
 खण्डा त्वं ब्रह्ममूर्त्यां तु विष्णुर्भूत्वा तु रक्षसि । सहर्ता खड्गशक्त्या त्वं कथं दैत्य नमेमहि ॥१४॥
 ऐश्वर्यं कारणं लोके विनैश्वर्यं तु किं फलम् । हतैश्वर्या सुरैश्चान कथं दैत्य नमेमहि ॥१५॥
 अनादिस्त्व जगद्धातरनन्तस्त्व जगदगुरु । अन्तवन्तममुं शत्रुं कथं दैत्य नमेमहि ॥१६॥
 तवैश्वर्येण पुष्टाङ्गा जित्वा त्रैलोक्यमोजसा । स्थिरा स्याम सुरैश्चान कथं दैत्य नमेमहि ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतदेव यचन श्रुत्वा दैतेयसूदन । उवाच सर्वानमरादेवानां कार्यसिद्धये ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसौ बलिर्दैत्यो ह्ययच्छोऽसौ सुरासुरं । यथा भवन्तो मत्पोष्यास्तथा पोष्यो बलिर्मम ॥१९॥
 विना तु सागर देवा हत्वा राज्यं निविष्टये । बलिं निबध्य मन्त्रोक्त्या राज्यं व प्रददाम्यहम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा राजमुद्विगमेव हि । भगवानपि दवेशो हृद्यदित्या गभमाविशत ॥२१॥
 तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु उत्सवाश्च यन्भूविर । जातोऽसौ वामनो ब्रह्मन्यतशो यत्नपूरय ॥२२॥

हैं? ॥१२॥ इन्द्र आदि हम सभी देव आपके पराक्रम के सहार जीते हैं आपके द्वारा प्राप्त अधिकार को पकर
 वैसे अधिकारहीन (याचन) की भाँति उस दाय को नमस्कार कर ॥१३॥ प्रभो आप ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते
 हैं विष्णु होकर रक्षा करते हैं और रुद्र-शक्ति से विनाश करते हैं फिर हम कैसे उसको नमस्कार कर ॥१४॥
 इस लोको में एवमही जीने का आधार है त्रिमूर्तान जीवन सँकला लाम देवा क गुनेच्छ । एवमहीन हम कैसे
 उसको नमस्कार कर ? ॥१५॥ जगन के पालक आप अनारि है अनन्त हैं जगन के एवमात्र गुरु हैं आपके
 रुद्र रूप इस नखर दाय को गुरु मानकर हम डोम कने नमस्कार कर ॥१६॥ आप ही प्रभाव सा हम वन परा
 कमी होकर अप पराक्रम सतीन लोका को जीन कर स्थिर और शान्त हयि । सुरपात्रक । आपके समान शक्त
 पाकर कैसे न्या नैत्य को समस्तार कर ॥१७॥

ब्रह्मा ऽवस्था—देवनाभा का इतना बात गुनकर दयारि भगवान् न कहा—॥१८॥

श्रीभगवान् बोले—यह दैत्य बलि मरा भया है और देव दानव कोई इसे मार नही सकते । जिस प्रकार
 जग लोका का पालन करता है उगी प्रकार बलि भी मेरा पोष्य है । फिर भी देववन्द विना युद्ध के ही उसमे
 राज्य छीनकर मैं मूर्ख सा उसी की स्वीकृति सा ही उसको बीचकर स्वयं का राज्य लुप्त लोका को द दगा ॥१९, २०॥

ब्रह्मा ऽवस्था—एसा हा हो यह बखतर गुरुगण स्वयं धके गय । इधर दया भगवान् न भी
 अरि के मन में प्रथम विद्या ॥२१॥ ब्रह्मा यनय दयपूरय वामन के रूप में उत्पन्न हुए उनके उत्पन्न

एतस्मिन्नतरे ब्रह्महयमेधाय दीक्षित । बलिर्बलवता श्रेष्ठ ऋषिमुख्यं समाहित ॥२३॥
 पुरोधसा च शुक्रेण वेदवेदाङ्गवेदिना । मखे तस्मिन्वर्तमाने यजमाने बलौ तथा ॥२४॥
 आत्विज्य ॥ ऋषिमुख्ये तु शुक्रे तत्र पुरोधसि । हविर्भाग्यमासन्नदेवगन्धर्वपन्नगे ॥२५॥
 दीयता भुज्यता पूजा क्रियता च पृथक्पृथक् । परिपूर्णं पुन पूर्णमेव वाक्ये प्रवर्तति ॥२६॥
 शनैस्तद्देशमभ्यागाद्दामन सामगायन । यज्ञवाटमनुप्राप्तो 'वामनश्चित्रबुण्डल' ॥२७॥
 प्रशसमानस्त यज्ञ वामन । प्रेक्ष्य भार्गव । ब्रह्मरूपधर देव वामन दैत्यसूदनम् ॥२८॥
 दातार यज्ञतपसा फल हन्तार रक्षसाम् । ज्ञात्वा त्वरन्नयोवाच राजान भूरितेजसम् ॥२९॥
 जेतार क्षत्रधर्मेण दातार भविततो धनम् । बलि बलवता श्रेष्ठ सभार्य दीक्षित मखे ॥३०॥
 ध्यायन्त यज्ञपुरुषमुत्सृजन्त हवि पृथक् । तमाह भृगुशार्दूल शुक्र परमबुद्धिमान् ॥३१॥

शुक्र उवाच

धोऽसौ तव मख प्राप्तो ब्राह्मणो वामनाकृति । नासौ विप्रो बले सत्य यज्ञेशो यज्ञवाहन ॥३२॥
 शिशुस्त्वा याचितु प्राप्तो नून देवहिताय हि । मया च सह समन्त्र्य पश्चाद्देय त्वया प्रभो ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बलिस्तु भार्गव प्राह पुरोधसमर्चिदम्

॥३४॥

होने पर बड़-बड़ उत्सव मनाये गये ॥२२॥ ब्रह्मन् ! इसी बीच बलवाना म श्रेष्ठ बलि ने अवमेष यज्ञ की दीक्षा ली । उसने यज्ञ में प्रमुख प्रमुख ऋषि सम्मिलित हुए ॥२३॥ वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता शुक्र पुरोहित थे । उस यज्ञ में बलि यजमान बनकर बैठा हुआ था ऋषि-वर शुक्र पुरोहित बन हुये थे और आपन आपन हवि भाग पाने के लिये देव गन्धर्व और नाग उपाय यत्न थे । पुरोहित शुक्र यहाँ अमुक सामग्री दो यहाँ वस्त्र दो यहाँ पूजा करो इस प्रकार पथक पथक आदेश दे रहे थे और परिपूर्ण पुन पूणम् आति वाक्य कह रहे थे कि इनने मैं सामवेद का यज्ञ करने हुए हाथ में विविध वस्त्रण्डल लिये हुए भगवान वामन यज्ञ प्रान्त में पहुँच गये और उता यज्ञ की प्रशंसा करने लगे । भागव शत्रु विप्रवपारी दैत्यारि वामन को—ऐसकर समय गया कि य यज्ञ और तप के फल से वाट रागना के विनागर भगवान् हैं । इसलिये परम बुद्धिमान् भृगु श्रेष्ठ शुक्र ने अत्यन्त पराक्रमी पराक्रम में युद्ध में मगरा तीन बार गणनीय यज्ञमान वस्त्र से जो मन्त्रिपूर्वक धन का दान किया करता था और उस समय यज्ञ पुण्य का ध्यान कर पथक उनके निमित्त हवि देने को प्रस्तुत था कहा—॥२४ ३१॥

शुक्र ने कहा—यज्ञ स्थल में आया हुआ वामन रूप यज्ञ शस्त्राण शस्त्राण नष्ट हैं अगिनि सागान् यज्ञपुरुष यज्ञ के स्वामी हैं । बलि ! अबय ही यज्ञ गिणु देवताओं की भलाई करने के लिये तुममें याचना करने आया है । इसलिये रात्रन् मरे साथ परामर्श करने के बाद ही इसको दान दत्ता उचित होगा ॥३२ ३३॥

ब्रह्मा नृपति—शत्रु-मूलक बलि ने परोक्ष भागवत में कहा ॥३४॥

बलिहवाच

धन्योऽहं मम यज्ञेशो 'गृहमायाति मूर्तिमान्। आगत्य याचते किंचित्किं' मन्त्र्यमवशिष्यते ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सभार्योऽसौ शुक्रेण च पुरोधसा। जगाम यत्र विप्रेन्द्रो वामनोऽदितिनन्दन ॥३६॥
कृताञ्जलिपुटो 'भूत्वा केनायित्थं तदुच्यताम्। वामनोऽपि तदा प्राह पदत्रयमिता भुवम् ॥३७॥
देहि राजेन्द्र नान्येन कार्यमस्ति धनेन किम्। तथेत्युक्त्वा तु कलशानानारत्नविभूयितात् ॥३८॥
वारिधारा, पुरस्कृत्य वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु शुक्रे चैव पुरोधसि ॥३९॥
पश्यत्सु 'लोकनाथेषु वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु दैत्यसधेषु जयशब्दे ॥४०॥
शनैस्तु वामन प्राह स्वस्ति राजन्तुष्वी भव। देहि मे समिता भूमिं त्रिपदामानु गम्यते ॥४१॥
तथेत्युवाच दैत्येशो यावत्पश्यति वामनम्। यज्ञेशो यज्ञपुरपञ्चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥४२॥
यया स्याता 'सुरा मूर्ध्नि बद्धे विक्रमाकृति। अनन्तश्चाच्युतो देवो विक्रान्तो विक्रमाकृति' ॥
त दृष्ट्वा दैत्यराट् प्राह सभार्यो विनयान्वित ॥४३॥

बलि बोले—मैं धन्य हूँ कि आज स्वयं यथा मूर्तिमान् होकर मेरे घर आये हुये हैं। यदि आकर कुछ माँगत ही हा तो इस विषय में मन्त्रणा की क्या आवश्यकता है? ॥३५॥

ब्रह्म ने कह—एसा कहकर पुराहित गुन को साथ लेकर भार्या सहित राजा बलि उस स्थान पर गया जहाँ अग्निपुत्र ब्राह्मण निरोमणि वामन विराजमान थे ॥३६॥ हाथ जोड़कर बलि ने कहा कि आप किस वस्तु की इच्छा करते हैं। वामन ने कहा 'बैठ तीन डग माय भूमि। राजेन्द्र! केवल मुझ इतनी ही भूमि दे दो अन्य किसी वस्तु या धन की आवश्यकता नहीं है ॥३७॥ एसा ही हो' यह कहकर नानारत्ना से विभूषित वर्णा में जल निकाल कर ऋषियों के देगन-देयने पुरोहित गुन के सामने वामन को (तत्परिमित) पृथ्वी दे दी। इस दान को लोक-पात्र और दानको का समूह भी देय रहे थे। इस अपूर्व दान का देखकर आनन्द-मुग्ध हो सबने जय ध्वनि की ॥३८॥ ४०॥ इसपर भगवान् वामन ने घीरे स कहा—'राजन्! स्वस्ति हो तुम सुखी बनो। मरी अमीष्ट तीन डग पृथ्वी तीव्र दे दो मैं तीव्र चञ्चल जाऊँ ॥४१॥ एसा ही हो' यह कहकर दत्ताराज जया ही वामन का देलता है त्प्राही वर्णा यग्यरूप का दत्ता विराट् रूप दिखाई दिया कि चद्र और सूर्य उससे वगैरह पर दिखाई देने लग ॥४२॥ वे अत्यन्त अच्युत जब इतन बड़ विराट् दिखाई पड़ कि सुरराज भी उत्तर मन्त्रक में दिखाई पड़न लग। तब भार्या व सहित विनय से नम्र दैत्यराज ने कहा—॥४३॥

१ व ० मागय यन्त्रः। आ०। २ व ० विविम'दव०। ३ व ० त्वा मम इत्य तु उद३। बा०।
४ व लोकात्पा०। ५ व सुरागानो वः। ६ व विदमायय'।

बलिखाच

त्र विष्णो लोकेऽयं यावच्छक्त्या (क्ति) जगन्मय । जित मया सुरेशान सर्वभावो विश्वकृत् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

असमकाल तु विष्णु प्राह महाकृत ॥४५॥

विष्णुरुवाच

श्वर महाबाहो क्रमिष्ये पश्य दैत्यराट् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

वदन्त स प्राह त्रम विष्णो पुन पुन ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

गृष्टे पद न्यस्य बलियज्ञ पद न्यसत । द्वितीय तु पद प्राप ब्रह्मलोक सनातनम् ॥४८॥

यस्य पदस्यान स्यात् नास्त्यसुरेश्वर । यव क्रमिष्ये भुय देहि बलि त हरिरब्रवीत् ॥

स्य बलिरप्याह सभार्य स कृताञ्जलि ॥४९॥

बलिखाच

। सुष्ट 'जगत्सर्वं न स्रष्टाऽह सुरेश्वर । त्वद्दोषादल्पमभवत्किं करोमि जगन्मय ॥५०॥

यत्ति न यत्ति—लोह-स्वामिन व्यापक । विष्णु अपनी गति व अनुसार नाप ले । गुरुस्वामिन् ।
। व रविका । मैंने तम प्रकार स गमार को जीत लिया है नाप 'श्रीविष ॥४४॥

ब्रह्मा १ एव—उत्तरे बार के साथ हा महाकाय विष्णु न कहा—॥४५॥

विष्णु बोले—भगवान् । ज्वलन् । दसो मैं तम उग रग हू । दयसाज । देना ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—तम प्रकार की गिण की बात मतार प्रति १ कहा—विष्णु यथारवि अत्र अत्र ग ॥४७॥

ब्रह्मा न कहा—भगवान् ने मा ग्य चरक वच पीठ पर गतर दूगरा रग यत्ति के वच न रग गिण
'दमर १। सनातन ब्रह्मणा पन्त पन्त गया । प्रा गयना १ यत्ति मा कहा—अगुरेश्वर । तामर दम व
। अत्र स्थान १। १ ना वना । तमा गुताव वरग रग । (अ तामर ग्य व गिणे) पूष्पो दा । हगतर आता
। व तामर यत्ति ने हाय आगतर वग—॥४८॥ ४९ ।

यत्ति बोले—गुह्यतर । हमने सम्पूर्ण गमार को बकासा है मैंने कहा । (अगुरेश्वर) गुह्यतर दोष स बनी

तथाऽपि नानृतपूर्वं कदाचिद्वच्मि वशव। सत्यवाक्यं च मा कुचमत्पृष्ठं हि पदं यस्य ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवान्प्रयोमूर्तिं सुरार्चितं

॥५२॥

भगवानुवाच

वरं वृणोष्व भद्रं तं भक्त्या प्रीतोऽस्मि दंत्यराट्

॥५३॥

ब्रह्मोवाच

स तु प्राह जगन्नाथ न याच त्वा त्रिविधमम। स तु प्रादात्सवयं विष्णुं प्रीतः समनसस्सितम् ॥५४॥
रसातलपतित्वं च भावि चन्द्रपदं पुनः। आत्माधिपत्यं च हरिरविनाशि यशो विभु ॥५५॥
एव दत्त्वा बलं सर्वं ससुतं भाययाऽर्चितम्। रसातलं हरिं स्थाप्य बलिं त्वमरवैरिणम् ॥५६॥
शतक्रतोस्तथा प्रादात्सुरराज्यं यथाभवं। एतस्मिन् तरं तत्र पदं प्रागात्सुरार्चितम् ॥५७॥
द्वितीयं तत्पदं विष्णोः पितुममं महामतः। यत्पदं समनुप्राप्तं रूहं दृष्ट्वाऽप्यचि तथम् ॥५८॥
किं कृत्यं यच्छुभं मं स्यात्पदं विष्णोः समागतं। सब्रह्मं च समालोच्य श्रेष्ठो मं स्यात्कमण्डलुः ॥५९॥
तद्वारि यत्पुण्यतमं दत्तं च त्रिपुरारिणा। वरं वरं वरं वरं शान्तिकरं परम् ॥६०॥
शुभं च शुभदं नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। मातस्वत्पुत्रं लोकानाममृतं भयजं शुचिं ॥६१॥

हो गई जगन्नाथ म क्या कर फिर भी हे कृपा मैं कभी भी असत्य नहीं करता हूँ इसलिये मेरे साथ की रक्षा के लिये मेरी पीठ पर अपना चरण रखिये। ५१।

ब्रह्मा न कहा—तदनन्तर तीन मति वाल तथा दयताया द्वारा पूज गय भगवान न प्रसन्न होकर कहा—
‘तुम वर मागा तुम्हारा क्याण हागा दयराज। तुम्हारी मति स मैं प्रसन्न हूँ। ५१।

ब्रह्मा न कहा—राजा बलि न कहा कि मैं तीन डगा सं सम्पूर्ण राज को नापने वां तुम जगपति से कुछ नहा मागया। परंतु भगवान् न प्रसन्न होकर स्वयं उसको अपना इच्छा के अनुसार वर लिया कि तुम सम्प्रति रसातल के स्वामी बनो और भविष्य में इस की पत्नी तुम्हें मिलगी तुम्हारी अशक्त कीर्ति लाख में पानी और तुम्हारा एकमात्र आधिपत्य रहेगा। ५४-५५। इस प्रकार जगन्नाथ भगवान् हरि ने पूत्र और माया के सन्ति बलि को सब कुछ वर देकर उस देव गन्धर्वा (बलि) को परिवार सन्ति रसातल में भेज लिया और इन्द्र का पूज की मति स्वयं का राज्य दे लिया। ५६॥ महामते! इसा बीच जबकि भगवान् दूसरे चरण से नापने का प्रयत्न कर रहे थे तब वह देवा से पूजित द्वितीय चरण मेरे लोक में आया। मैं अपने पिता के चरण को अपने घर में आया देखकर सोचने लगा कि मेरे घर आय इस चरण की क्या सेवा करूँ कि भरा गम हा। इस विचार से मैं सब कुछ देखने गया तब तक ध्यान में आया कि यह मेरा कमल ही इस काय के लिये श्रेष्ठ है। इसमें त्रिपुरारि गन्धर्वा का लिया हुआ वह जल है जो पावन वर देने वाला श्रेष्ठ अमृत शान्तिप्रद गुण गुण दनवांग सबदा मुक्ति और मति देने वाला माता के समान लोकपालक अमृत रोगनाशक पवित्र पूज्य सर्वोत्तम और उत्तम गुणा सं युक्त है। जिसके स्मरण मात्र से

पवित्रं पावनं पूज्यं ज्येष्ठं श्रेष्ठं गुणान्वितम् । स्मरणादेव लोकानां पावनं किं नु दर्शनात् ॥६२॥
 तादृग्वारि शुचिर्भूत्वा कल्पयेऽर्घाय मे पितुः । इति सचिन्त्य तद्वारि गृहीत्वाऽर्घाय कल्पितम् ॥६३॥
 विष्णो. पादे तु पतितमर्घ्यवारि सुमन्त्रितम् । तद्वारि पतित मेरौ चतुर्धा व्यगमद्भुवम् ॥६४॥
 पूर्वं तु दक्षिणे चैव पश्चिमे चोत्तरे तथा । दक्षिणे पतितं यत्तु जटाभिः शंकरो मुने ॥६५॥
 जग्राह पश्चिमे यत्तु पुनः प्रायात्कमण्डलुम् । उत्तरे यत्तु पतितं विष्णुर्जग्राह तज्जलम् ॥६६॥
 पूर्वस्मिन्नुपयो देवा पितरो लोकपालका । जगृह. शुभदं वारि तस्माच्छ्रेष्ठं तदुच्यते ॥६७॥
 या दक्षिणां दिश प्राप्त आपो वै लोकमातरः । विष्णुपादप्रसृतास्ता ब्रह्मण्या लोकमातरः ॥६८॥
 महेश्वरजटासंस्थाः पर्वजातशुभोदयाः । तासां प्रभावस्मरणात्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंभूपिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये गंगाया महेश्वरजटागमन-
 निरूपणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥
 गौतमोमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

प्राणी पवित्र हो जाते हैं, दर्शन के विषय में तो कहना ही क्या ? तो आज इस पवित्र जल से, स्वयं पवित्र होकर अपने पिता को अर्घ्य प्रदान करें, ऐसा सौचकर उस जल को लेकर अर्घ्य देने को प्रस्तुत हुआ ॥५७-६३॥ जब मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस अर्घ्य-जल को विष्णु ने चरण पर गिराया तो वह जल वहाँ से मेघ पर्वत पर गिर कर चार भागा में बँट कर पृथ्वी पर कुछ पूर्व, कुछ पश्चिम, कुछ उत्तर और कुछ दक्षिण की ओर गिर पड़ा ॥६४॥ जो जल-धारा दक्षिण की ओर गिरी उसका, हम मुने, शंकर ने अपनी जटा में धारण कर लिया । पश्चिम की ओर गिरा जन मेरे कमण्डलु में आया । उत्तर दिशा में जो गिरा उसको विष्णु ने ले लिया और जो पूर्व की ओर गिरा, उस मण्डल-प्रद जल को ऋषि, देव, पितर और लोकपाला ने ले लिया । इस प्रकार विष्णु का अर्घ्य के रूप में दिया गया वह जल और अधिक पवित्र हो गया । जो जल दक्षिण दिशा में गया वह विष्णु चरण से विद्यमान हुआ, लोभ-माता, और ब्रह्म-सबधी है । जिसको पवित्र जानकर स्वयं महेश्वर ने अपनी जटा में स्थापित किया, और जिसका पर्ववेल में उदय (उत्पत्ति) हुआ है । इसलिय ऐसे जल की महिमा का स्मरण करने से मनुष्य सन मनोरथों को प्राप्त करता है ॥६५-६९॥

यही ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्य-प्रकरण में गंगा का महेश्वर की जटा में आगमन निरूपण नामक निहत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥७३॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गाया द्वैरूप्यकथनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता । श्रुता देव यया मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे ॥१॥

ब्रह्मोवाच

महेश्वरजटास्या या आपो देव्यो महामते । तासा च द्विविधो भेद आहर्तुर्द्वयकारणात् ॥२॥
एकाशो ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना । गौतमेन शिव पूज्य आहृतो लोकविश्रुत ॥३॥
अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण बलीयसा । आराध्य शकर देव तपोभिनियमैस्तथा ॥४॥
भगीरथेन भूपेन आहृतोऽशोऽपरस्तथा । एव द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम ॥५॥

नारद उवाच

महेश्वरजटास्था या हेतुना केन गौतम । आहर्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ययाऽऽनीता पुरा यत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा । तत्सर्वं विस्तरेणाह वदिष्ये प्रीतये तव ॥७॥

अध्याय ७४

गंगा के दो भेदों का कथन

नारद ने कहा—कमण्डलु में रहने वाली देवी जिस प्रकार महेश्वर की जटा में आयी उसको तो मैंने सुना । अब जिस प्रकार वे मर्त्यलोक में आयी, उसको सुनाइये ॥१॥

ब्रह्मा बोले—महामते ! महेश्वर की जटा में रहनेवाली जल-देवी को पृथ्वी पर लाने वाले दो व्यक्ति थे इसलिये उसने दो भेद हो गये । एक अश को गौतम नामक ब्राह्मण व्रत दान और समाधि से शकर की पूजाकर पृथ्वी पर लाया, यह लोक में प्रसिद्ध है । महाभाग ! दूसरे अश को बलवान् भगीरथ नामक क्षत्रिय राजा तप और नियम से शकर को प्रसन्न करके ले आया । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार गंगा के दो भेद हो गये ॥२॥ ५॥

नारद ने कहा—महेश्वर की जटा में रहने वाली गंगा के एक अश को किस कारण गौतम और दूसरे अश को किस कारण क्षत्रिय (यहाँ) लाये, सो बतलाइये ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—पूर्वकाल में जिस कारण ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय गंगा को पृथ्वी पर लाये, इन सब बातों

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवतिप्रिया । तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शभोर्महामते ॥८॥
 मम क्षोपापनोदाय चिन्तयाम शिवस्तदा । उमया सहित श्रीमान्देवीं प्रेष्य विशेषत ॥९॥
 रसवृत्तौ स्थितो यस्मात्प्रिमं रसमुत्तमम् । रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रेणत्वात्पावनत्वत ॥१०॥
 सर्वान्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाऽभूद्विजसत्तम । तामव चिन्तयानोऽसौ । र्वदाऽस्ते महेश्वर ॥११॥
 संबोद्भूता जटामार्गात्कस्मिन्चित्कारणान्तरे । स तु सगोपयामास गङ्गा शभुजटागतम् ॥१२॥
 शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा । सोढु ब्रह्मज्जटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुन पुन ॥१३॥
 अमर्षेण भव गौरी प्रेरयस्वेत्यभाषत । नवासौ प्रेरयच्छभू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४॥
 जटास्वेव तदा देवीं गोपायन्त विमृश्य सा । विनायक जया स्कन्द रहो वचनमब्रवीत् ॥१५॥
 नवाय त्रिदशेशानो गङ्गा त्यजति कामुक । साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति ता प्रियाम् ॥१६॥
 एव विमृश्य बहुशो गौरी चाऽह विनायकम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

न देवैर्नासुरैर्यक्षेणैः सिद्धैर्भवताऽपि च । न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभु ॥१८॥
 पुनस्तस्यामि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम् । अथवा ब्राह्मणं पुण्यैस्तपोभिर्हृतकल्मष ॥१९॥

को मैं तुम्हारी प्रसन्नता के विय विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ ॥७॥ महामत । जिस समय उमा शिव की पत्नी हुई उसी समय गंगा भी शम्भु की प्रिय पत्नी हुई ॥८॥ उस समय भरे दाप को दूर करने के लिए पावती सहित गङ्गा ने चिन्तन करते हुए विगेष रूप से देवी को देखा । उस समय रसभाव म रहने के कारण उन्होंने उत्तम रस (शृंगार) का निर्माण किया । द्विजवर ! रसिक प्रिय स्त्रीमन्त्रा (माया मन्त्र) तथा लासपावन होने के कारण गङ्गा की सबसे अधिक प्रीति गंगा में हो गई । महेश्वर दिन रात उसी गंगा में ध्यान में मग्न रहन ग ॥९१०॥ बड़ा गंगा जिसा अन्य कारण जटा भाग से प्रवृत्त हुई । गङ्गा की ने जटा में आयी हुई गंगा को जिया लिया ॥१११२॥ ब्रह्मन् । उस समय उमा गंगा को गिर पर प्रतिष्ठित दशवर् दस बात को सह न सवा । जटाजूट में स्थित गंगा को बार बार दशवर् गौरी ने शेष से गंगा को हटा देने के लिये गङ्गा से कहा । किन्तु रसिन गिरामणि शिवर ने उत्तम रस बनवाली गंगा को महा हटाया । गौरी ने फिर भी गंगा को जटा में ही टिगात दशवर् विनायक स्कन्द और जया से एकात में कहा कि यह देवा के स्वामी कामी गिब गंगा को नहा छोड रहे हैं वह इनकी प्रिया भी इनका नहा छोड रही है तो ये किस प्रकार गंगा को छोड सकत ह ? एगा कहने के बाद सोच विचारर गौरी ने गङ्गा से कहा ॥१३१७॥

पावती बोली—य शिवर देवा अमुरा यथा गिद्धा राजाया गङ्गा अथवा अय किसी के कहने से गंगा को नहीं छोड रहे हैं । इसलिए या ता मैं इस बात के लिय पुन नगाधिराज हिमाय पर शिवर स्वयं तराया करगी

१४ ०५ । आत्मना मरुते गङ्गा जानायव उपैति वै । गङ्गा अगन्मुखं करिम् ० । २४ ०५ ।
 उमा तत्रावद्गङ्गायास्मीति च तदा । ७० । ३५ ०५ मयैम् ० ।

तेर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमान्पुयात्

॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मातृवाक्यं मातरं प्राह विघ्नराट् । भ्रात्रा स्कन्देन जयया संमन्त्र्येह 'च युज्यते ॥२१॥
तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गां यथा त्यजति मे पिता । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मघ्ननावुष्टिरजायत ॥२२॥
द्विद्विंश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा । ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२३॥
विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामदम् । त्रष्टुकामः पुरा पुत्र स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२४॥
कृतो यज्ञो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः । मन्नामा तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा ॥२५॥
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः । तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे ॥२६॥
आधयो व्याधयो वाऽपि दुर्भिक्ष वाऽप्यवर्षणम् । भयशोको च दारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन ॥२७॥
तदाश्रमं विनाऽन्यत्र हव्य वा कव्यमेव वा । नास्ति पुत्र तया दाता होता पट्टा तथैव च ॥२८॥
यदेव गौतमो विप्रो ददाति च जुहोति च । तदेवाप्ययनं स्वर्गं सुराणामपि नान्यतः ॥२९॥
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः । होता दाता च भोक्ता च स एवेति जना विदुः ॥३०॥
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे नानाश्रमनिवासिनः । गौतमाश्रममापृच्छन्नागच्छन्तस्तपोधनाः ॥३१॥

अथवा तपस्या द्वारा निष्पाप एवं पवित्र ब्राह्मण को प्रार्थना से प्रसन्न होकर गया पृथ्वी पर जाय, ऐसा कोई प्रयत्न करना चाहिये ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की इन बातों को सुनकर विघ्नराज विनायक ने कहा कि भाई स्कन्द और जया से इसके लिए परामर्श करना ठीक होगा । इनके परामर्श से मैं वही प्रयत्न करूँगा जिससे कि मेरे पिता गया को मस्तक से हटा सकें ॥२१॥ ब्रह्मा । इसी बीच समस्त प्राणिमात्रों को प्रसन्न करने वाला बारह वर्ष का अकाल पड़ गया । सारा स्थावर जगमात्मक ससार विनष्टप्राय हो गया केवल सब मनोरथों को देने वाला गौतम का आश्रम ही शेष रहा । पुत्र । इसका कारण यह है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जब स्थावर (अचल) जगम (चल) की सृष्टि की इच्छा मेरे मन में उत्पन्न हुई तब उसी देवयजन गिरि पर मैंने यज्ञ किया था । तभी से सर्वदा के लिए वह पहाड़ मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२२-२५॥ वह गौतम उसी श्रेष्ठ पर्वत पर अपना आश्रम बना कर सदा रहता है । उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर बने अतिपवित्र शुभ आश्रम में रोग, मानसिक चिन्ता, दुर्भिक्ष, सूना, मय, शोक और दरिद्रता आदि कभी भी नहीं सुने गये हैं ॥२६-२७॥ पुत्र । उस आश्रम को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी अन्य कव्य (पितरों को दिया जाने वाला अन्न) दाता, होता, और यज्ञकर्ता नहीं थे ॥२८॥ जब भी विप्र गौतम, पितरों को अन्न देते या हवन करते थे, तभी स्वर्ग में देवताओं को भी तृप्ति मिलती थी । अन्य किसी प्रकार से नहीं ॥२९॥ देव या भूतलोक में गौतम ऋषि की ही प्रसिद्धि थी । सभी यही जानते थे कि हवन करने वाले, दान देने वाले और सुख भोगने वाले केवल गौतम ऋषि ही हैं । इस पर्वत को

तेषां मुनीनां सर्वेषामागतानां स गौतम । शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पौषकोऽभवत् ॥३२॥
 यस्य (तेषां) यथेप्सितं कामं यथायोग्यं यथाक्रमम् । यथानुरूपं सर्वेषां शुश्रूषामकरोन्मुनिः ॥३३॥
 आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोपध्वो लोकमातरः । आराधिताः पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३४॥
 जायन्ते च तदौपध्वो लूयन्ते च तदेव हि । सपत्न्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५॥
 सर्वा समृद्धयस्तस्य ससिध्यन्ते मनोगताः । प्रत्यहं वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६॥
 पुत्रवद्विष्टप्यवच्छेदं प्रेष्ठ्यवत्करवाणि किम् । पितृवत्पौषयामास सवत्सरगणान्वहून् ॥३७॥
 एव वसत्सु मुनियुः त्रैलोक्ये ह्यातिराश्रयात् । ततो विनायकं प्राह मातरः भ्रातरं जयाम् ॥३८॥

विनायक उवाच

देवानां सद्ने मातर्गोयते गौतमो द्विज । यन्न साध्यं सुरगणैर्गौतमं कृतवानिति ॥३९॥
 एव श्रुतं मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम् । स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गा जटागताम् ॥४०॥
 तपसा वाञ्छ्यतो घाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम् । स एव च्यावयेदेना जटास्था मे पितृप्रियाम् ॥४१॥
 तत्र नीतिविधातव्या ता विप्रो याचयेद्यथा । तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२॥

मुनिकर अनेक आश्रमा के रहने वाले ऋषिमुनि गौतम के आश्रम को पूछते हुए आने लगे । ऋषि ने भी उन आगत सभी मुनियों की योग्यतानुसार किसी का गिप्य के समान किसी का भक्ति नम्र पुत्र के समान और किसी का पिता के समान आदर और पालन पोषण किया ॥३२-३३॥ जिसकी जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार यथायोग्य मुनि ने सेवा-सत्कार किया । गौतम की इस अतिथि सेवा और तपस्या से ब्रह्म विष्णु और महेश भी अत्यन्त प्रसन्न हो गए ॥३३-३४॥ उनकी आज्ञा से लोक का भरण पोषण करने वाली मानुस्वरूप अपरिचिता धोड़ी ही देर में बड़ जाती थी और पुनः काट भी ली जाती थी । ऋषि के तप प्रभाव से बोते ही बोते पत्र कर तैयार भी हो जाती थी ॥३५॥ इस प्रकार सबका उस अतिथि सेवकी गौतम ऋषि का मनोवाञ्छित वैभव प्राप्त हो जात था । प्रतिदिन वे ऋषि आश्रम में आये हुए अतिथियों से विनयपूर्वक बहस करते थे कि पुत्र के समान गिप्य के समान मुनिको आज्ञा दीव्य कि मैं आप लोगों की कौन सी सेवा करूँ ॥३६-३७॥ इस प्रकार अनेक वर्षों तक पिता के समान ऋषि ने आश्रमी से आये अतिथियों का पालन किया और इस प्रकार वहाँ मुनियों के निवास करने से गौतम ऋषि की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई ॥३८॥ गौतम की इस नीति का मुनिकर गणना में अपनी माता भाई और जया से बड़ा ।

गणः । बोल—माता । स्वयं मैं गौतम का बड़ा गुण-गान हो रहा है । सभी कहते हैं कि इन्होंने वह कार्य कर लिया जो देवताओं में भी नहीं हो सकता था । इस प्रकार मैंने ब्राह्मण गौतम के तपावन को सुना है । वह विप्र निम्न ही जगत् में उठी रहा वाणी गया था वहाँ से हुआ देगा । तपस्या या अन्य किसी प्रकार से वह जितने शक्ति को प्रसन्न कर अवश्य ही पिता की प्यारी सेवा को जटा से च्युत कर देगा । इस विषय में कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि गौतम गंगा की याचना करे । उसने प्रभाव में गंगा (गिप्य के) गिर से उतर सकती है ॥३९-४२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मातरं आश्रया जयया सह विघ्नराट् । जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधरः कृशः ॥४३॥
वसन्कतिपयाहं सु गौतमाश्रममण्डले । उवाच ब्राह्मणान्सर्वास्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४॥
गच्छाम स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च । पुष्टा स्म गौतमाश्रमे पृच्छामो गौतम मुनिम् ॥४५॥
इति समन्वयं पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमा । स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पृथक् ॥४६॥

गौतम उवाच

कृताञ्जलिं सविनयमासध्वमिह चैव हि । युष्मच्चरणशुश्रूषां करोमि मुनिपुंगवा ॥४७॥
शुश्रूषो पुत्रवन्नित्यं मयि तिष्ठति नोचितम् । भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८॥
इदमेवाऽऽश्रमं पुण्यं सर्वेषामिति मे मतिः । अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा 'मुनेर्वाक्यं विघ्नकृत्यमनुस्मरन् । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिप ॥५०॥

गणाधिप उवाच

अन्नक्रीता वयं किं नो^१ निवारयत गौतम । साम्ना^२ नैव वयं शक्ता गन्तु^३ स्त^४ स्व निवेशनम् ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार माता स कहकर विघ्नराज विनायक भाई स्कन्द और जया के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ यनोपवीतधारी दुबले-पतले गौतम थे । कुछ दिना तक गौतम के आश्रम में रहने के बाद विघ्नराज वहाँ के सब ब्राह्मणों से कहा— हम लोग गौतम के अन्न को खाकर स्वस्थ और पुष्ट हो गये हैं अब अपन-अपने घरों पवित्र आश्रमों को चलना चाहिये इससे लिये मुनि गौतम से पूछ लेना चाहिये । इस प्रकार परामर्श कर उन श्रेष्ठ मुनियों ने गौतम से पूछा । उनके इस प्रकार के प्रस्ताव को सुनकर मुनि ने बड़ स्नेहपूर्वक उन मुनियों को जाने से रोका ॥४६॥

गौतम ने कहा—मुनिपुंगव ! मैं हाथ जोड़कर विनयपूर्वक आप लोगों से प्रायश्चात करता हूँ कि आप लोग मेरे आश्रम में रहें । आप लोग की और अधिक चरण सेवा करना चाहता हूँ । क्योंकि अभी इस क्षुद्र सेवा से मुझ सतोष नहीं है । पुत्र के समान सेवा करने की इच्छा रखने वाले गौतम के रहते आप भूखा वा दूसरे आश्रम को जाना ठीक नहीं है । मेरा विचार है कि यह पवित्र आश्रम ही आप लोगों के रहने के लिये सबया उचित है । मुनिबुद्ध ! आप लोगों का अन्य आश्रमों में जाना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है ॥४७-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की बातों को सुनकर बाबा डालने वाले कार्यों का स्मरण करते हुए गणपति ने हाथ जोड़कर ब्राह्मणों से कहा ॥५०॥

गणपति बोले—क्या हम लोग अन्न से खरीद लिये गये हैं कि गौतम हमको घर जाने से रोक रहे हैं ?

नायमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तमः। तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः क्रियतामित्यनुब्रुवन्। एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३॥
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुह। ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा मेने वाक्यं गणाधिपः ॥५४॥

विनायक उवाच

क्रियते गुणरूपं यद्गीतमस्तु विशेषतः

॥५५॥

ब्रह्मोवाच

अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुनः पुनरुवाच योः। स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः ॥५६॥
मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्जयां प्राह गणेश्वरः

विनायक उवाच

यया नान्यो विजानोते तथा कुह शुभानने। गोरूपधारिणो गच्छ गीतमो यत्र तिष्ठति ॥५७॥
शालीन्खाद विनाशाय विकारं कुह भामिनि। कृते प्रहारे हुंकारे प्रेक्षिते चापि किंचन ॥५८॥
पत दीनं स्वनं कृत्वा न म्रियस्व न जीव च

शान्त (मीने) उपाय से हम अपने-अपने घर को जाने में सर्वथा समय नहीं हैं, परन्तु इस उपकारी ब्राह्मण को कोई दण्ड देना भी उचित नहीं है। श्रमणिये मैं चतुर्दश से एक नई व्यक्ति कर रहा हूँ। आप सभी इसका समर्थन करें ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसने उपरान्त उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने कहा—‘धीर है, ऐसा ही कीजिये। लोभ-हित की दृष्टि से इस श्रेष्ठि व उपाय एव हम सभी ब्राह्मणों के बल्याण की दृष्टि से जो कुछ आपको श्रेयस्कर जान पड़े वही करें।’ गणनायक ने ब्राह्मणों की स्वीकृति सुनकर उनसे यचना की सराहना की। पुनः कहा कि जो गीतम के गुण और प्रतिष्ठा के अनुस्यू हो विविध रूप से उसी कार्य को करना चाहिए ॥५३-५५॥

ब्रह्मा बोले—बार-बार उन सभी ब्राह्मणों को सान्त्वना देकर और उनका समर्थन प्राप्त कर उधार बुद्धि गणेश जी ने स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण किया और पुनः ब्राह्मणों को प्रणाम किया। अपनी माना की भी स्वीकृति लेकर विद्वान् गणेश न ब्रवा से कहा ॥५६॥

विनायक बोले—मगधसूरी! जिसको दूगरे न जान मर्गे इस रूप से कार्य करा। तुम भी का रूप धारण कर जहाँ गीतम है वहाँ जाओ। भामिनि! वहाँ जाकर चावड मान लगे अथवा उनको पैरों से कुचकर नष्ट कर दो। इसका दण्ड कर यदि गीतम मारें या हुंकार के साथ मुंहारी और देंगे, तो मुरख बहो आर्तनाद कर फिर जाओ। न तो मरना न तो जीना ही, अथवा ही पड़ जाना ॥५७-५८॥

ब्रह्मोवाच ,

तया चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता । यत्राऽऽसीदगौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५९॥
जगाम शालीन्खादन्तो ता ददर्श स गौतम । गा दृष्ट्वा विकृता विप्रस्ता तूणेन न्यवारयत ॥६०॥
निवार्यमाणा सा तेन स्वन कृत्वा पपात गौ । तस्या तु पतिताया च हाहाकारो महानभूत ॥६१॥
स्वन श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम् । व्यथिता ब्राह्मणा प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृता ॥६२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

ह्रुइतो गच्छामहे सर्वे न स्यातव्य तवाऽऽश्रमे । पुत्रवत्पोषिता सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुंगव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ह्रुइति श्रुत्वा मुनिर्वायप विप्राणा गच्छता तदा । वज्राहत इवाऽऽतीत्स विप्राणा पुरतोऽपतत ॥६४॥
तमूचुर्ब्राह्मणा सर्वे पश्यमा पतिता भुवि । ख्वाणा मातर देवी जगता पावनी प्रियाम ॥६५॥
तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्या गवि विधर्बलात । पतिताया मुनिश्रेष्ठ गतव्यमवशिष्यते ॥६६॥
चीर्णं व्रत क्षय याति यथा वासस्त्वदाश्रमे । वय नान्यधना ब्रह्मकेवल तु तपोधना ॥६७॥

ब्रह्मा बोल—विघ्नराज के मत को मान कर जया ने बसा ही किया । वह जया गो रूपधारणकर वहाँ गई जहाँ विप्र गौतम विराजमान थे । वह जाकर चावल खाने लगी । गौतम ने चावल खाती हुई उस गाय को देखा और उसे दुबल जानकर एक तिनके से उसको हाने लगे । उसको गौतम हाँक रहे थे कि वह निबल गौ बरणाजनक पन्दन कर गिर पड़ी । उसके गिर जाने पर वहाँ महान् हाहाकार हुआ । गौ की आतध्वनि को सुनकर और गौतम की घेपटाजा को देखकर वे ब्राह्मण बहुत दुखी हुये और विघ्नराज के साथ जाकर गौतम से बोले ॥५९-६२॥

ब्राह्मणों ने कहा—हम सभी यहाँ से जा रहे हैं तुम्हारे आश्रम म रहना अब उचित नहीं । मनिवय ! तुमने पुत्र के समान हम लोगों का पालन किया है इसलिये हम तुमसे विदा ले रहे हैं ॥६३॥

ब्रह्मा बोल—मुनि गौतम उस समय ब्राह्मणों की बात सुनकर और आश्रम से उनको जात देखकर वज्राहत-से हो गये और ब्राह्मणों के सामने पृथ्वी पर गिर पड़ । ब्राह्मणा ने कहा—ससार को पवित्र करने वाली प्रिय इस खदो की माता को जो धरती पर पड़ी हुई है देखो । काल की प्ररणा से तीर्थ-देव-रूप गो के इस प्रकार मूर्च्छित हो गिरने पर मुनिश्रेष्ठ ! हम लोगों का यहाँ से चला जाना ही एकमात्र उचित उपाय है । अब तुम्हारे आश्रम में पूव की भाँति निवास करत से हमारा यह धिरसञ्चित व्रत (पुण्य-तप) नष्ट हो जायगा । ब्रह्मन् ! हम लोगों के पास अन्य कोई धन नहीं केवल तप ही धन है । ॥६४-६७॥

ब्रह्मोवाच

विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतमः

॥६८॥

गौतम उवाच

भवन्त एव शरणं पूतं मा कर्तुमर्हं

॥६९॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवान्विघ्नराजं ब्राह्मणं ब्रूत

॥७०॥

विघ्नराज उवाच

न वै यः म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम् । वदामोऽस्मिन्सुसदिग्धे निष्कृतिः गतिमेव वा ॥७१॥

गौतम उवाच

कथमुत्थास्यतीत्य गौरय चास्मिन्निष्कृतिम् । वक्तुमर्हं तत्सर्वं करिष्येऽहमसशयम् ॥७२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सर्वेषां च मतेनायं वदिष्यति च बुद्धिमान् । एतद्वाक्यमथास्माकं प्रमाणं तव गौतम ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणं प्रेर्यमाणोऽसी गौतमेन बलीयसा । विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिदं वचः ॥७४॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणों की इन बातों को सुनकर गौतम ने विप्रा के सामने विनीत भाव से खड़े होकर कहा— मेरे एक मात्र सहायक आप ही लोग हैं । आप लोग मुझ अवश्य पवित्र करने में समर्थ हैं ॥६८-६९॥

ब्रह्मा न कहा—गौतम की वरुण बातों को सुनकर ब्राह्मणा से घिरे हुए विघ्नराज ने कहा—‘यह गौ न तो मरी ही है और न तो जीवित ही जान पड़ती है । तो इससे क्या प्रयोजन ? मैं इस अत्यन्त सन्देहजनक अवसर पर इसके बचाव और उद्धार का उपाय बताता हूँ ॥७०-७१॥

गौतम ने कहा—यह गौ वित्त प्रवार उठ खड़ी होगी और मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा इसकी आप लाभ बतायें । मैं निश्चय ही उन सब बातों का पालन करूँगा ॥७२॥

ब्राह्मणों ने कहा—गौतम । सबकी ओर से यह चतुर ब्राह्मण बड़ेगा । इसने बड़े वचन हमारे और आपके लिए प्रमाण स्वरूप हागे ॥७३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणा और स्वयं तपस्वी गौतम की प्रेरणा से ब्राह्मण वेदमारी उस विघ्नराज ने सबकी सुनाकर यह कहा ॥७४॥

विघ्नराज उवाच

सर्वेषां च मतेनाह वदिष्यामि यथार्थवत् । अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गीतमोऽपि च ॥७५॥
महेदवरजटाजूटे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन । कमण्डलुस्थित वारि तिप्यतीति हि शुश्रुम ॥७६॥
तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च । तेनाभिपिञ्च गामेता भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेदमनि ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युपतवति विघ्नेन्द्रे ब्राह्मणानां च सप्तदि । तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयदाब्धौ ध्यवर्धत ॥
तत कृताञ्जलिर्नम्रो गीतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

गीतम उवाच

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादत । भवता च प्रसादेन मत्सकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति त विप्रा आपृच्छन्मुनिपुणवम् । स्वानि स्थानानि ते जग्मुः समृद्धान्यत्रवारिभि ॥८०॥
यातेषु तेषु विघ्नेषु भ्राना सह गणेश्वर । जयया सह सुप्रीत कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१॥
गतेषु ब्रह्मसुन्दरु गणेशे च गते तथा । गीतमोऽपि मुनिश्रष्टस्तपसा हतकल्मष ॥८२॥

विघ्नराज बोले—मैं सारा प्रणाम और राय से यथायथा कह रहा हूँ । आप यहाँ के उपस्थित सभी मुनि और गीतम मरी बात का समर्थन करें । भावना गहरा कर जगज्जात्र मध्यस्तत्रमा ब्रह्मा के कमण्डलु का पवित्र जल स्थित है ऐसा हम सभी सुनते हैं । उस जल का योग-साधना तपस्या या नियमानुसार अनुष्ठान से लाजो । नमस्कार । उन्हीं को इस धरता पर पण गौ पर छिड़का । ऐसा करने से ही हम सभी पहले की भाँति मुंहान आश्रम में रह सकेंगे ॥७५-७७॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणा की उस समता में विघ्नश्रष्ट के इतना कहने पर वहाँ आवागम संपन्ना का वधाहृद् और तारा का जल-रति हुई । तदनन्तर गीतम ने अञ्जलि वाक्य कर बड़ी नम्रता से यह कहा—॥७८॥

गीतम बोले—तपस्या अग्निव्य की कृपा देवा और ब्राह्मणा के अनुग्रह और आप लोगों की दया से मरा यह कल्मष मिटि हो ॥७९॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे सकल पूज्य हैं । ऐसा कहकर ब्राह्मणा ने उस मुनिवर गीतम से विदा लेकर अत्र और जत्र से समुद्र-आन-अनन निवास-स्थान का चले गए । उन ब्राह्मणा के चल जान पण जया और भाई (स्वल्प) के साथ गंगा-प्रसङ्गना में कुनाथ द्वार लौट गए । उन ब्राह्मणा और गणेश जी के चले जाने पर मुनिश्रष्ट गीतम भी तपस्या से ध्यान की निगाह समझ कर इस धरता पर विचार करने लगे । वे सोचने लगे कि मेरे द्वारा यह क्या हुआ । इस प्रकार बार-बार ध्यान करने पर अन्त में अपने ज्ञान से इन सब बातों को जान गए । दश-बाप

ध्यायस्तदयं स मुनि किमिदं मम सस्थितम् । इत्येव बहुशो ध्यायञ्जानेन ज्ञातवान्निज ॥८३॥
 निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मन कित्विषा गतिम् । लोकानामुपकारं च शमो प्रीणनमेव च ॥८४॥
 उमाया प्रीणनं चापि गङ्गानयनमेव च । सर्वं श्रेयस्कारं मन्ये मयि नैव च कित्विषम् ॥८५॥
 इत्येव मनसा ध्यायन्तुप्रीतोऽभूद्विजोत्तम । आराध्य जगतामीशं त्रिनेत्रं द्रुपमध्वजम् ॥८६॥
 आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठां प्रीताऽस्तु गिरिजा मम । सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता ॥८७॥

एव हि सत्त्वस्य मुनिप्रवीरः, स गौतमो ब्रह्मगिरेर्जंगमः ।

कलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना, सुराचित प्रियया ब्रह्मद्वन्द्वं

॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिसखादे तीर्थमाहात्म्ये विनायकगौतमध्यापार-

निरूपणं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवनम्

नारद उवाच

कलासशिखरं गत्वा गौतमो भगवानूपि । किञ्चकार तपो वाऽपि का चक्रे स्तुतिमुत्तमाम् ॥१॥

का मिद्धि अरुने पापा का उद्धार सत्तार का बल्याण उमा और गङ्गा की प्रसन्नता और गया का पृथ्वी पर आपन्न
 य समा बल्याणकर है । इसमें मुग काई पाप नष्ट होगा । इस प्रकार मन में ध्यान करत हुए वह त्रिजवर अत्यन्त
 प्रसन्न हुआ । उनमें प्रतिष्ठा की कि मैं जगत् के स्वामी द्रुपमध्वज त्रिनेत्र की आराधना कर पवित्र नदी गया को
 अवश्य उज्जा । गिरिजाया पावनी और जगन्माता की सौत महेश्वर की जगत् भर करने वाली गया मुग पर प्रसन्न
 है । इस प्रकार वह मुनिवर गौतम आनन्द मा में दृढ़ संकल्प कर ब्राह्मण वृन्द के आशानुसार ब्रह्मगिरि को छेदकर
 देवा में पूजित बंगाल पर्वत पर गये जहाँ उग्र धनुष धारण करने वाले शरत्, प्रिया पावती के साथ रहते थे ॥८०-८८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में गङ्गा और गौतम के वाप निरूपण नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७४॥

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

नारद ने कहा—भगवान् श्रुति गौतम ने बंगाल गिर पर जाकर गौतमी तट पर गौतमी उत्तम
 स्तुति की ॥१॥

ब्रह्मोवाच

गिरिं गत्वा ततो॑ वत्स वाच सयम्य गौतम । आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥२॥
उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं चेद ततो जगौ । अपतत्पुष्पवृष्टिद्वयं स्तूयमाने महेश्वरे ॥३॥

गौतम उवाच

भोगार्थिना भोगमभोप्सितं च, दातु महान्त्यष्टवपूषि घत्ते॑ । ॥४॥
सोमो जनानां गुणवन्ति नित्यं, देयं महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४॥
कर्तुं स्वकीर्यैर्विषयं सुखानि, भर्तुं समस्तं सचराचरं च । ॥५॥
सपत्न्ये ह्यस्य॑ विबुद्धये च, महीमयं रूपमितीश्वरस्य ॥५॥
सृष्टे स्थिते सहरणाय भूमेराधारमाधातुमपा स्वरूपम् । ॥६॥
भजे शिवं शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम् ॥६॥
'कालव्यवस्थाममृतत्व च, जीवस्थितिं सृष्टिमथो विनाशनम् । ॥७॥
मुदं प्रजानां सुखमुन्नतिं च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमयं शरीरम् ॥७॥
धृद्धिं गतिं शक्तिमथाक्षराणि, जीवव्यवस्थां मुदमप्यनेकाम् । ॥८॥
त्वष्टु कृतं वायुरितीशरूपं, त्वं घेत्सि नूनं भगवन्भवन्तम् ॥८॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! तदनन्तर विवेकी गौतम पर्वत पर जाकर अपनी वाणी को वश में कर कुशाओ को बिछा कर पर्वतो में अष्ट कैलाश पर बैठ गये । पुनः पवित्र होने के बाद जब वे यह स्तोत्रगान करने लगे तो फूलों की वर्षा होने लगी ॥२॥

गौतम ने कहा—जो भगवान् सोम (शकर) भोग चाहते वाले मनुष्यों की भोगेच्छा की पूर्ति और मनचाहे पदार्थों को देने के लिये आठ महात शरीरों को धारण करते हैं और जिस नियम देव को विवेकी जन महादेव कहकर स्तुति किया करते हैं ॥४॥ जिस ईश्वर ने समस्त चर-अचर जगत् को अपनी महिमा से उत्पन्न पदार्थों से सुख देने के लिए और इसका भरण पोषण करने के लिये इसको एवम युक्त बनाने तथा इसकी रक्षा के लिये महीमय (पृथ्वी) रूप धारण किया है ॥५॥ जिस शान्त वपुः शिव ने सजन पालन और सहार के लिये भूमि का आधार रूप बनने के लिए (अर्थात् पृथ्वी को सहारा देने के लिये) जनसमूह को सुख देने के लिए और धर्म की रक्षा के लिये लोकप्रसिद्ध जल के रूप को धारण किया है ॥६॥ जिसने अपने सूर्य चन्द्र और अग्निमय शरीर से समय की व्यवस्था (सूर्यरूप से) सुधा की वृष्टि (चन्द्ररूप से) जीव की स्थिति (पालन) सृष्टि और विनाश (अग्निरूप से) किया है एवं प्रजा को सुख आनन्द और उन्नति दी है ॥७॥ भगवान् ! ऐसे आपने वृद्धि गति शक्ति और अक्षर (नियम पदार्थ) जीव व्यवस्था तथा अनेक प्रकार के आनन्द की सृष्टि करने के लिये ही वायु इस ईशरूप (शक्तिशाली स्वरूप) को धारण किया है । आप स्वयं इन सब रहस्या को निश्चय ही जानते हैं ॥८॥

भेदैर्विना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यत्र दिशोऽन्तरिक्षम्	।
द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्तवेऽश	॥१॥
धर्मं व्यवस्थापयितुं व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखा	।
लोके च गाथा स्मृतयः पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति	॥१०॥
यष्टा ऋतुर्पान्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेशः (य) फलदेशकाला	।
त्वमेव शभो परमार्थतत्त्व, वदन्ति यज्ञाङ्गमयं यपुस्ते	॥११॥
कर्ता प्रदाता प्रतिभू प्रदान, सर्वज्ञसाक्षी पुरुष परश्च	।
प्रत्यात्मभूत परमार्थरूपस्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासं	॥१२॥
न वेदशास्त्रैर्गुरुभिः प्रदिष्टो, न नासि बुद्ध्यादिभिरप्रधृष्य	।
अजोऽग्रमेव 'शिवश्च द्वाच्यस्त्वमस्ति (मेव) सत्यं भगवत्प्रमस्ते	॥१३॥
आत्मैकता स्वप्रकृति कदाचिदंक्षच्छिव सपदियं ममेति	।
पृथक्तदेवाभवदप्रतवर्चाचिन्त्यप्रभावो बहुविद्बभूव	॥१४॥
भावोऽभिवृद्धा च भवे भवे च, स्वकारण कारणमास्थिता च	।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा या, विलक्षणा विश्वकारस्य शक्ति	॥१५॥

ईं। भेदा के बिना न तो कृति न धर्म न आत्मीयता न अन्य पदार्थ न दिग्व्य न अन्तरिक्ष न आकाश न पृथिवी और न भुक्ति या मुक्ति की ही व्यवस्था सम्भव हो सकती है। अतः हे नाथ। इसलिए यह जो है वह तुम्हारा ही है ॥१॥ आग इस लोक में धर्म की व्यवस्था (स्थापना) करने के लिये ऋक् यजु साम आदि वेद और गाथाय तथा ग्रास्त्र गायत्र स्मृतियाँ और पुराण आदि शब्दामक रूप धारण करते हैं ॥१०॥ यज्ञकर्ता यज्ञ समी साधन ऋत्विक् प्रदेग पञ्च दण और बाल एव परमायतत्त्व आत्मा सब कुछ तुम्हीं हो। तुम्हारा शरीर यज्ञागमय है ॥११॥ वर्त्ता प्रजाता प्रतिभू (जामिन) प्रदान भवन साक्षी सर्वोपरि पुरुष सब जाति में बलमान रहने वाला और परमाय रूप आदि सब कुछ तुम्हा हो। इस विषय में अधिक बहने में क्या लाभ ॥१२॥ तुम वेद ग्रास्त्र और गुरुआ में भा अन्य हूँ अर्थात् वेद ग्रास्त्र और ऋषि मुनियोंने भी तुम्हें नहीं जान पाया। बुद्धि आत्मा की पड़च में तुम परे हो। तुम अज्ञ (जम रहित) अप्रमय (बुद्धि से न जानने योग्य) और निव ग्रास्त्र के वाच्य (अर्थ) हो। भगवन्! तुम्हें एकमात्र माय हो। इसलिये सायम्भ भगवान् का भरा नमस्कार है ॥१३॥ जब किसी समय अपने में लीन अपनी प्रकृति को यह भरा सात्मा मोह्य हो इस रूप में देवने लगने हो उसी समय यह प्रकृति तुममें अलग हो जाता है और अप्रत्यक्ष (विशेष विषय भक्त न किया जा सके) अक्षिप प्रभाव (विशेष प्रभाव न जाना जा सके) तुम विश्व के अनेक रूपों में प्रतिमान् हो जाते हो ॥१४॥ समार न रक्षयिना गहर की निच सब मुक्तता से यज्ञ निरा विरूपण शक्ति है जो अपना स्वयं कारण हान हुए भी भगवान् का कारण है

उत्पादन सस्थितिरन्नवृद्धिलया सता यत्र सनातनास्ते	।
एकैव' मूर्तिर्न समस्ति किञ्चिदसाध्यमस्या दयिता हरस्य	॥१६॥
यदर्थमन्नानि धनानि जीवा, यच्छन्ति कुर्वन्ति तपांसि धर्मान्	।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्रो, प्रिया तु सोमस्य' महासुकीर्ति	॥१७॥
यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि, यन्नामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च	।
या व्याप्य विश्व विमलीकरोति', सोमा सदा सोमसमानरूपा	॥१८॥
ब्रह्मादिजीवस्य' चराचरस्य, बुद्ध्यक्षिचैतन्यमन सुखानि	।
यस्या प्रसादात्फलवन्ति नित्य, वागीश्वरी लोकगुरो सुरम्या	॥१९॥
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीन, किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता	।
गङ्गाऽवतार विविधैरुपायै, सर्वं जगत्पावयितुं चकार	॥२०॥
श्रुती समालक्ष्य हरप्रभुत्व, विश्वस्य लोक सकलैः प्रमाणं	।
कृत्वा च धर्मान्बुभुजे च भोगान्विभूतिरेषा तु सदाशिवस्य	॥२१॥
कार्यत्रियाकारकसाधनानां, वेदोदितानामथ लौकिकानाम्	।
यत्साध्यमुत्कृष्टतमं प्रियं च, प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुं	॥२२॥

और जो मव (अम) मव म अपने भाव मे अभिवृद्ध है ॥१५॥ शंकर की सनातन शक्ति से ही विश्व के पदार्थों की उत्पत्ति सस्थिति पालन होता है और पुन उसी म लय भी हो जाता है इस प्रकार शंकर की एक ही शक्ति के लिये इस ससार म कुछ भी अनाध्य नहीं है। जगत को पैदा करने वाली जिस जननी को ससार के जीव अन्न और धन का उपहार देते हैं और जिसकी प्रसन्नता के लिये तपस्या करते हैं वह जयन्त गोमन कीर्ति वाली जगज्जननी शिव की प्रिया है ॥१६ १७॥ इन्द्र की जिस शिव प्रिया शिवा की रूप को चाहते ह जिसके नाम लेने से ही कल्याण की प्राप्ति होती है जो इन विश्व मे व्यापक होकर इसको निमल बना देती है यानी तमोगुण का नाश कर देती है वह सोमा (गिवा) सदा सोमस्वरूप (गिर्वस्वरूप) ही है ॥१८॥ ब्रह्मा म शंकर चराचर जीव की बुद्धि क्षेत्र चैतन्य (नान) मन और मुख जिस लोक-गुरु की स्मरणीय वागीश्वरी की प्रसन्नता और रूप से पश्य रहे होते है उस माता ने अय जलुआ की वीन बहे ब्रह्मा के भी मन को मग्नि रखकर विविध उपाया मे ससार का पवित्र करने के लिये गंगा को पृथ्वी पर अवतरित किया ॥१९ २०॥ सम्पूर्ण ससार वेदो मे वर्णित गिव महिमा को समग्र कर समस्त प्रमाणा के आधार पर विविध विधि निषधा की कल्पना कर जो विविध भोगा का भोग कर रहा है यह सब सदाशिव शंकर की ही विभूति है (उनका ही प्रभाव है) ॥२१॥ वेदोक्त अथवा लौकिक कार्य त्रिया बारन और साधना का जो परम उत्कृष्ट प्रिय साध्य है वह अनानि ससार स्रष्टा शंकर की सिद्धि ही है जहाँ वैदिक लौकिक कार्य-कलाप और प्रयत्ना का एवमात्र उद्देश्य शंकर को प्रसन्न

ध्यात्वा वर ब्रह्म पर प्रधान, यत्सारभूत यदुपासितव्यम्
 यत्प्राप्य मुक्ता न मुतर्भवन्ति, सद्योगिनो मुक्तिरुमापति स ॥२३॥
 यथा यथा शम्भुरमेयमायारूपाणि धत्ते जगतो हिताय
 तद्योगयोग्यानि तथैव धत्से, पतिव्रतात्वं त्वयि मातरेवम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादवूषभध्वज । उमया सहित श्रीमान्गणेशादिगणैर्वृत ॥२५॥
 साक्षादागत्य त शम्भु प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत ॥२६॥

शिव उवाच

किं ते गौतम दास्यामि भक्तिस्तोत्रव्रतं शुभं । परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्यं वाक्यविशारद । हृषवाप्यपरोताङ्गो गौतम पर्यचिन्तयत् ॥२८॥
 अहो दैवमहो धर्मो ह्यहो वै विप्रपूजनम् । अहो लोकगतिश्चिन्ता अहो धातर्नमोऽस्तु त ॥२९॥

गौतम उवाच

जटास्थितां शुभां गङ्गा दहि मे त्रिदशाक्षित । यदि तुष्टोऽस्ति देवेश प्रयीधाम नमोऽस्तु ते ॥३०॥

करता ही है ॥२२॥ जिस परम ब्रह्म सारभूत प्रधान तत्त्व का योगीजन ध्यान करते हैं जिसकी उपासना करते हैं और जिस तत्त्व का पाकर मुक्तजन आकाशमन के बंधन से छूट जाते हैं वे अच्छे योगीजनों के मुक्तिप्राप्त उमापति गण ही हैं ॥२३॥ जगन् के बंधन से छुट्टी मिले जिस प्रकार भगवान् गुरु न जानन माय माया के रूप धारण करते हैं उनसे अनुरूप ही हे माता पिता । तब भी उनमें अपनी दक्ष पतिमति धारण करती हो ॥२४॥

ब्रह्मा न कहा—इस प्रकार गौतम की स्तुति सुनकर उमा सहित श्रीमान् गुरु जी गणा आदि गणा को साथ लिये हुए भूमि के गामने प्रयाग रूप में आय और प्रसन्नोपवृत्त गौतम से कहने लगे ॥२५॥ २६॥

शिव बोले—गौतम । तुम्हें क्या दे । तुम्हारी भक्ति स्तुति और तुम सब के अनुष्ठान से प्रसन्न हूँ । तुम सब मांगो देव-रूप में भी तुम्हें दूंगा । ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—जगन्मूर्ति गुरु की वाता का सुनकर वाणी प्रयाग में निष्पन्न गौतम गुरु से गुरु हो गए और मां से विचार करने लगे कि अहा ! देव क्या है धर्म और विद्या की पूजा मां क्या है अहं । गुरु की भक्ति भी क्या विधि है अहा ! जाना । आसने नमस्कार है ॥२८॥ २९॥

गौतम बोले—वां के पूज्य गुरु । देवेश । यदि आप मुझे पर प्रसन्न हैं तो अपनी जगत् में रहने वाला कल्याणी गंगा को मुझे दीजिये । हे त्रैलोक्यवाग्मि ! आपकी नमस्कार है ॥३०॥

ईश्वर उवाच

अपाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया । आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभय ॥३१॥

गीतम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वा च देवी स्तुवन्ति वः । सर्वकामसमृद्धा स्युरेतद्धि धरयाम्यहम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति देवेश परितुष्टोऽब्रवीद्वच । अन्यानपि वरान्मत्तो याचस्व विगतज्वर ॥३३॥

एवमुक्तस्तु हर्षेण गीतम प्राह शकरम् ॥३४॥

गीतम उवाच

इमा देवी जटासस्था पावनो लोकपावनेम् । तव प्रियां जगन्नाथ उत्सृज ब्रह्मणो गिरौ ॥३५॥

सर्वासा तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम् । ब्रह्महत्यादिपापानि मनोबाधकायिकानि च ॥३६॥

स्नानमात्रेण सर्वाणि विलय यान्तु शकर । चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा ॥३७॥

सक्नान्तो बंधूतो पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् । अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्य जायता हर ॥३८॥

श्लाघ्य कृते तप प्रोक्त त्रेताया यज्ञकर्म च । द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव फलौ युगे ॥३९॥

शकर ने कहा—तुमन ता तीना लोका के उपकार के लिये यह याचना की है अपने उपकार के लिये भी कुछ भागो इसमें डरने की का२ आवश्यकता नहीं ॥३१॥

गीतम न कहा—जो वक्त इस स्तोत्र से आपकी ओर देवी गौरी की स्तुति कर वे भी अपनी सब कामनाओ से परिपूर्ण होकर विभववाली बन यही वर मैं चाहता हूँ ॥३२॥

ब्रह्मा न कहा—प्रसन्न भगवान् शकर ने कहा कि ऐसा ही हाँ तुम निष्काम होकर दूसरे वर को भी मुझसे मागो । इस प्रकार आवाचन पान पर गीतम ने प्रसन्न होकर शकर से कहा—३३ ३४॥

गीतम न कहा—जगन्नाथ ! इस लोक को पवित्र कर देने वाली जग्न म रहन वाली अपनी पुनीत प्रिया गंगा को ब्रह्मगिरि पर छाड़ दा ॥३५॥ शकर ! सब तीर्थों का स्वरूप यह गंगा जहाँ तक सागर म जाती है वहा तक अर्थात् जगन्म से सगम तक इसके जल म स्नान करने मात्र से भनूप्या के ब्रह्महत्या आदि पाप अथवा मन बचन और शरीर स त्रिय गय पाप विनष्ट हा जाय ॥३६॥ अय पवित्र तीर्थों म चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय अयन काल म तथा विषुवकाल म सन्नान्ति और वधूनि योग मे स्नान करने से जो फल (पुण्य) मिलते हैं वे सब पुण्य इनके स्मरण मात्र से मिल जाय ॥३७ ३८॥ इतमयुग म तपस्या व्रता म यन द्वापरे म यन और दान तथा कलि युग म केवल दान महत्वपूर्ण कहा गया है ॥३९॥ इसी प्रकार युगधम तथा सब दानधम एव दानाल के सपाग म जो धर्म श्रष्ट माने गये हैं और अन्यत्र स्नान दान तप आदि से जो पुण्य प्राप्त होते हैं, हर ! वे सभी पुण्यफल

युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च । देशकालादिसयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०॥
 यदन्यत्र कृत पुण्य स्नानदानादिसयमे । अस्यास्तु स्मरणादव तत्पुण्य जायता हर ॥४१॥
 यत्र यत्र त्वय याति धावत्सागरगामिनी । तत्र तत्र त्वया भाव्यमथ चास्तु वरो वर ॥४२॥
 योजनाना तूपरि तु दश यावच्च सत्यया । तदन्तरप्रविष्टाना महापातकिनामपि ॥४३॥
 तत्पितृणा च तेषा च स्नानायाऽऽगच्छता शिव । स्नान चाप्यन्तर मृत्योमुक्तिभाजो भवतु मे ॥४४॥
 एकत सवतीर्थानि स्वगमत्यरसातले । एषा तभ्यो विशिष्टा तु अल शभो नमोऽस्तु त ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

तदगौतमवच श्रुत्वा तथाऽस्त्वित्यब्रवीच्छिव । अस्या परतर तीर्थं न भूत न भविष्यति ॥४६॥
 सत्य सत्य पुन सत्य वेदे च परिनिष्ठितम् । सर्वेषा गौतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽतरधीमत ॥४७॥
 ततो गत भगवति लोकपूजिते, तदाज्ञया पूणबल स गौतम
 जटा समादाय सरिद्धरा ता, सुरैर्वृतो ब्रह्मगिरिं विवश ॥४८॥
 ततस्तु गौतम प्राप्ते जटामादाय नारद । पुण्यवृष्टिरभूत्तत्र समाजम्भु सुरेश्वरा ॥४९॥
 ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणा क्षत्रियास्तथा । जयशब्देन त विप्र पूजयतो मुदाविता ॥५०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुन्हृषिसवाद तीर्थमाहात्म्य गौतम्यानया नाम
 पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥७५॥
 गौतमीमाहात्म्य पट्टोऽध्याय

इस (गौतमी) नगा के स्मरण मात्र से मनुष्या को मिल जाय ॥४० ६१॥ जहाँ जहाँ यह जाय और जब तब सागर म न मिले वहाँ वहाँ आप अवश्य विराजमान रहें यही मरे लिय श्रेष्ठ वरदान होगा । फिर । दण योवन तब के भीतर स्नानेवाले या इस सीमा तत्र प्रवां पा जाने वाले महापातकिया स्नान के लिय आय हुए मनुष्या और उनके पितरा क भी पाय इस नगा म स्नान करने स नष्ट हो जाय और व मनुषु क वात् निश्चित रूप स मुक्ति के अधिकारी हो जाय । स्वर्ग मय और रसातल के सभी तर्षों म यह उद्दिनाय ताय है और सबम यह विनिष्ट मानो जाय । गंगा बस यहा इच्छा है । अब आपको मेरा नमस्कार है ॥४२ ६५॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के (उपयक्त) गंगा को सुनकर गकर न वहाँ एसा हा हो गया । पट तीर्थ न तो हुआ और न होगा । यह सत्य है सत्य है पुन सत्य है और वे स प्रमाणों है कि गौतमी सब तीर्थों स विनिष्ट तीर्थ है यह कहकर वे अर्पित हो गय ॥४६ ४७॥ तदनन्तर गङ्गा-पूजित भगवान् गकर क चके जाने पर उनका आज्ञा स पूणमनोरथ और तपायशाली गौतम फिर वी जग और उसम स्थित महिला गिरामाय नगा को स्मर देवताओं के सहित ब्रह्मगिरि पर आय ॥४८॥

गङ्गा जग को स्मर कर मुनि गौतम अत आश्रम म आय तब वन (जरागा म) वृक्षा की बटि में सब देवता बट उतरिये हो गए । माय-भाय ऋषिगण भाव्यगंगा ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सभी वहाँ लहरिया हो गए और वह आनन्द म गौतम की पूजा कर जयप्रकार करने लगे ॥४९ ५०॥

था ब्रह्ममहापुराण म गगानयन नाम पञ्चहतरवी अध्याय समाप्त ॥७५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

स्वर्गादौ पचदशाकृत्या गङ्गाया गमनम्

नारद उवाच

महेश्वरजटाजूटाद्गङ्गामादाय गौतम । आगत्य ब्रह्मण पुण्ये तत किमकरोद्गिरी ॥१॥

ब्रह्मोवाच

आदाय गौतमो गङ्गां शुचि प्रयतमानस । पूजितो देवगन्धर्वैस्तथा गिरिनिवासिभि ॥२॥
गिरेर्मूर्ध्नि जटा स्थाप्य स्मरन्देवं त्रिलोचनम् । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तम ॥३॥

गौतम उवाच

त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकामप्रदायिनि । क्षमस्व मात शान्ताऽसि सुख याहि हित कुर ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम् । दिव्यरूपधरा देवी दिव्यस्नगनुलेपना ॥५॥

गङ्गोवाच

गच्छेयं देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम् । रसातल वा गच्छेय जातस्त्व सत्यवागसि ॥६॥

अध्याय ७६

१५ रूपवनाकर स्वर्ग आदि में गंगा का गमन

नारद ने पूछा—महेश्वर की जटा से गंगा को ले आने के बाद गौतम ने उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर क्या किया ॥१॥

ब्रह्मा बोले—पवित्रात्मा, सयमी गौतम जब गंगा को लेकर उस पर्वत पर आये तब देव गन्धर्व और पर्वत-निवासियों ने उनकी बड़े प्रेम से पूजा की । पर्वत के शिखर पर जटा की स्थापना कर विनेत्र शंकर का स्मरण करते हुए उन्होंने गंगा से कहा ॥२-३॥

गौतम बोले—त्रिलोचन की जटा से उत्पन्न होन वाली । सब मनोरथों को पूरा करने वाली माता । आप अपराधों को क्षमा कीजिये । आप शान्तिपूर्वक सुख से जायें और हम लोग का कल्याण करें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्राचना सुनकर दिव्य रूप धारण करने वाली और दिव्य माला तथा लेप से विभूषित अगा वाली गंगा ने कहा ॥५॥

गंगा ने कहा—मैं देवलोक जाऊँ या ब्रह्मा के कमण्डलु में अथवा रसातल जाऊँ ? तुम सत्यवादी मानव हो, इसलिये बतलाओ ॥६॥

गौतम उवाच

॥ त्रयाणामुपकाराय लोकानां याचिता मया । शुभानां च तथा दत्ता देवि तन्नाम्यया भवत ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवचं श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजैरितम् । त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याय स्वर्गमत्यरसात्तल ॥८॥

स्वर्गे चतुर्थं व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले । रसात्तले चतुर्थं सव पञ्चदशावृत्ति ॥९॥

सर्वत्र सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी । सर्वकामप्रदा नित्यं सैव वदे प्रगीयते ॥१०॥

मर्त्यमित्यंगतामेव पश्यन्ति न तल गताम् । नैव स्वर्गगता मर्त्यः पश्यत्यज्ञानमुदयः ॥११॥

यावत्सागरगता देवी तावद्देवमयी स्मृता । उत्सृष्ट्वा गौतमनैव प्रायात्पूर्वाण्यव प्रति ॥१२॥

ततो देवर्षिभिर्जुष्टां मातरं जगत् शुभाम् । गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥१३॥

त्रिलोचनं सुरेशानं प्रथमं पूज्य गौतमः । उभयोस्तीरयो स्नानं करोमोति दधे सतिम् ॥१४॥

स्मृतमानस्तदा तत्राऽऽविरासीत्कृष्णार्णवः । तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येव शयमब्रवीत् ॥१५॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भविततमस्त्रिलोचनम् ॥१६॥

गौतम उवाच

॥ देवदेव महेशानं तीयस्नानाविधौ मम । ब्रूहि, सम्यग्महेशानं लोकानां हितकाम्यया ॥१७॥

गौतम ने कहा—तीना लोका व उपकार के लिय मैंने 'गमु' से प्रायतनपूर्वक आपकी माँगा है। 'गमु' ने भी इसी उद्देश्य से प्रदान किया है इसलिये देवि 'इसने विपरीत नही होना चाहिए ॥३॥

ब्रह्मा न कहो—एसी बात सुन कर गया ने गौतम की बात मान ली और स्वर्ग मय एक रसात्तल म जान के लिये अपने को तीन भागा म बाँट कर स्वर्ग म चार रूप से मत्स्यरूप म सात रूप से और रसात्तल म चार रूप से प्रवेश किया । इस प्रकार गया की पंद्रह आवृत्तियाँ हुई ॥८॥ सब जगह सब रूप से सब प्राण का दिनाग करनेवाणी तथा सबके मनोरथ को देने वाणी उस गया का वेष न मान लिया है ॥९॥ मत्स्यरूपवासी अपने लोह का रंग को ही देखत हैं रसात्तल वाली गया का नही । इसा प्रकार अपना व्यक्ति स्वयं म गया गया का भी नहीं देखत हैं ॥१०॥ सागर तक की गया अर्थात् जिस स्थान पर गया सागर म मिल जागी है वही ठा वह दमदमी मने जाती है ॥११॥ इस प्रकार गौतम से छोटी यथी गया पूष सागर का आर चगी गद । तत्पश्चात् दक्षिण द्वाग पूजित जगत् वा वत्स्याण करने वाली 'गमु' गया की मुनिशार्दूल गौतम न प्रणिता की ॥१२॥ पुनः शेष मे गुरुवामी त्रिलोचन की पहले पूजा की ओर फिर मैं दाना तथा घर जाकर स्नान करे इस प्रार्थना का निश्चय मन म किया ॥१४॥ तत्र स्मरण मात्र से बरणा के सागर 'गमु' रही प्रगट हो गय । गौतम न हाथ जाकर प्रणाम विनम्र हावर गवर से बड़ा कि जिस विधि म मैं स्नान करे द्विपक्षर आप बनत य ॥१५॥ ॥१६॥

गौतम ने कहा—हे देवा के देव 'महेशान' 'लोह-हृद की ब्रह्मता म आज आज प्रगीम इस तीय स्नान की विधि बतलाइये ॥१७॥

शिव उवाच

महर्षे शृणु सर्वं च विधि गोदावरीभवम् । पूर्वं नान्दीमुखं कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च ॥१८॥
 ब्राह्मणान्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च । ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिताः ॥१९॥
 यस्य हस्तो च पादौ च मनश्चैव सुसम्यक्तम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२०॥
 भायर्बुष्टिं परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः । श्रान्तसावाहनं कुर्वन्वद्यावत्तं यथोचितम् ॥२१॥
 अकिञ्चनेभ्य साधुभ्यो दद्यादस्त्राणि कम्बलान् । शृण्वन्हरिक्यां दिव्यां तथा गङ्गासामुद्रयाम् ॥
 अनेन विधिना गच्छन्सम्पत्तीर्यफलं लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥
 गौतमीमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥७७॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमीमहत्त्ववर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रम्यवदच्च इति प्राह गौतम मुनिभिर्वृतम्

॥१॥

शिव ने कहा—महर्षि गौतम ! गोदावरी तीर्थ की गनी विधियां सुनो । पहले नान्दी मुख श्राद्ध कर
 भोजन नि घरीर-शुद्धि करनी चाहिये । पुन ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनमें आज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य पूर्वक यात्रा
 प्रारम्भ करनी चाहिये । मार्ग में पतिता स यार्जात्रय सर्वथा निषिद्ध है । जिस मनुष्य ने हाथ पैर और मन वसा में
 रखने हैं एवं जो अपनी विद्या तप और कीर्ति पर अभिमत्न नहीं करता यही तीर्थ का फल प्राप्त करता है । अपनी
 आन्तरिक दुष्ट सावनाओं को छाहकर अपने धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखकर यदि मादि यात्रिया की यात्राओं को दूर करते
 हुये यथावन्निव मोर्वाणि अन्न प्रसाद करता चाहिये । दरिद्रों और साधुओं को कम्ब और कम्बल प्रसाद करना
 चाहिये और हरिश्वा तथा स्वर्गीय गंगा मन्त्रों तथा गुरुनी चाहिये । इस विधि से तीर्थयात्रा करा पर पूर्णत्व
 से तीर्थ का फल मित्रा है ॥१८ २२॥

श्रीब्रह्मपुराण में तीर्थमाहात्म्य प्रकरण में त्रिहत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥७६॥

अध्याय ७७

‘गौतमी का महत्त्व-वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसमें ब्राह्म कृष्णों से चिरे हुए गौतम का शिव ने पुन यह कहा ॥१॥

शिव उवाच

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सभविष्यन्ति गौतम । सर्वत्राह सनिहित सर्वकामप्रदस्तथा ॥२॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सगरसगमे । एतेषु पुण्यदा पुतां मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३॥
नमदा तु सरिच्छूष्ठा पर्वतेऽमरकण्टके । यमुना सगता तत्र प्रभासे तु सरस्वती ॥४॥
कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद । तिसृणा सगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिव नृणाम् ॥५॥
पयोष्णी सगता यत्र तनत्या तच्च मुक्तिदम् । इय तु गौतमी वत्स यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया ॥६॥
सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्ति प्रदास्यति । किञ्चित्काले पुण्यतम किञ्चित्तीर्थं सुरागमे ॥७॥
सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र सशय । तिल कोट्योऽर्धकोटी च योजनाना शतद्वये ॥८॥
तीर्थानि मुनिशार्दूल सभविष्यन्ति गौतम । इय माहेन्द्वरी गङ्गा गौतमी वृष्णदीति च ॥९॥
ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी । ब्रह्मतेज समानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०॥
स्मरणादेव पापौघहर्त्री मम सदा प्रिया । पञ्चानामपि भूतानामाप श्रेष्ठत्वमागता ॥११॥
तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादाप परा स्मृता । तासां भागीरथी श्रेष्ठा ताम्योऽपि गौतमी तथा ॥१२॥

शिव बोले—गौतम । दो हाथ परिमित स्थानों पर तीर्थ रहते हैं और सबके मनोरथ को पूरा करने वाला मैं सब स्थानों पर सबदा विद्यमान रहता हूँ ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिद्वार प्रयाग तथा गंगासागर सगम में मुक्तिदायिनी भागीरथी अधिक पुण्य देनेवाली है ॥३॥ नदियाँ भी श्रेष्ठ नमदा अमरकण्टक पर्वत पर यमुना सगम क्षेत्र में और सरस्वती प्रभास क्षेत्र में अधिक पुण्यप्रद मानी गयी हैं ॥४॥ नारद । कृष्णा भीमरथी तुङ्गभद्रा ये तीनों नदियाँ जहाँ मिलती हैं वह तीर्थ मनुष्यों के लिये भी उदायक है ॥५॥ पयोष्णी नदी जहाँ सगम बनाती है वह स्थान और जो नदी उससे मिलती है दोनों भी प्रद हैं । वत्स । इस गौतमी पद्मा में जहाँ-वही भी स्नान किया जाय यह मेरी आज्ञा से सब लोगों को सर्वत्र मोक्ष प्रदान करेगी । कुछ तीर्थ किसी विशेष अवसर पर देवताओं के आगमन पर अत्यन्त पुण्यदायक होते हैं परन्तु गौतमी सब के लिये सब काल में पुण्यप्रद तीर्थ है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । तीन करोड़ पचास लाख दो सौ योजन परिमित क्षेत्र में हे मुनिगान्धर्व गौतम । बहुत से तीर्थ हैं और हमने परन्तु ये माहेन्द्वरी गंगा गौतमी वृष्णवी ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी आदि नदियाँ ब्रह्म तेज से पृथ्वी पर लाई गयी हैं इसलिये सब पापों को नष्ट करने वाली हैं । परन्तु मेरी प्रिया गौतमी स्मरण मात्र से ही पाप-समूह का नाश करने वाली है । पापों में महाभूतों में जल श्रेष्ठ है । उसमें भी तीर्थोद्भूत जल अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है । उन तीर्थों में भी भागीरथी परमश्रेष्ठ मानी गई है परन्तु भागीरथी से भी गौतमी श्रेष्ठतर मानी गई है । मुने ! यद्यपि स्वर्ग पृथ्वी और पाताल के

आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम् । स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने । साक्षाद्वरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४॥

एव सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता । तत्स्वरूपं च कथितं कुतोऽन्या श्रवणस्पृहा ॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सगराख्यानकथनम्

नारद उवाच

द्विविधा संव गदिता एकाऽपि सुरसत्तम । एको भेदस्तु कथितो ब्राह्मणेनाऽऽहृतो 'यत ॥१॥

क्षत्रियेणापरोऽप्यशो जटास्वेव व्यवस्थित । भवस्य देवदेवस्य आहृतस्तद्वदस्व मे ॥२॥

समी तीर्थं मनोरणपूर्ण करने वाले हैं किन्तु गौतमी जटासहित यहाँ लाई गई है अतः इससे अधिक सुमदायक अन्य तीर्थ नहीं है ॥६१३॥

ब्रह्मा बोले—पुत्र ! य सारी बात स्वयं हर ने प्रसन्न होकर गौतम से कही थी जिन्हें मैंने तुमसे कह दिया । इस प्रकार वह गौतमी गंगा सबसे अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुई । इसके स्वरूप का परिचय मैंने दे ही दिया अब अधिक क्या सुनने की इच्छा है ? ॥१४१५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थं माहात्म्य प्रसंग में सप्तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७७॥

अध्याय ७८

सगर का आख्यान

नारद बोले—सुरश्रेष्ठ ! आपने उस एक ही गंगा के दो भेद कहे हैं उनमें से एक अश्व जिस प्रकार ब्राह्मण द्वारा जहाँ से लाया गया उसको तो कह दिया अब दूसरा अश्व जो कि देवदेव शिव की जटा में ही रह गया था, वह क्षत्रिय मनीष द्वारा किस प्रकार लाया गया उस भी कहने की इच्छा कर ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतान्वये जात इक्ष्वाकुकुलसम्भव । पुरा वै सगरो नाम राजाऽऽसीदतिथार्थिकः ॥३॥
यज्वा दानपरो नित्य धर्माचारविचारवान् । तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्पतिभक्तिपरायणम् ॥४॥
तस्य च सततिर्नाभूदिति चितापरोऽभवत् । वसिष्ठ गृहमाहूय संपूज्य विधिवत्तत् ॥५॥
उवाच घचन राजा सतत कारण प्रति । इति तद्वचनं श्रुत्वा ध्यात्वा राजानमब्रवीत् ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

सपत्नीक सदा राजनृपिपूजापरो भव

॥७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्विप्र यथास्थानं जगाम ह । एकदा तस्य राजर्षेर्गृहमागतपौनिधिः ॥८॥
तत्सर्पे पूजनं चक्रे स सतुष्टोऽब्रवीद्वच । वर ब्रूहि महाभागत्पुत्रं पुत्रासं चाबृणोत ॥९॥
स मुनिः प्राह राजानमकस्या वशधारक । पुत्रो भूयात्तथाऽयस्यां पृष्टिंसाहस्रकं सुतः ॥१०॥
वरं दत्त्वा भुनोति याते पुत्रा जाता सहस्रशः । स यथासुखं हृद्यं ह्ययमथासुदक्षिणाम् ॥११॥
एकस्मिन् हयमथ च दीक्षितो विधिवन्नृप । पुत्रान्ययोजयद्राजा सतया हयरक्षणम् ॥१२॥
वचिदन्तरमासाद्य हयं जहृ शतक्रतु । मार्गमाणांश्च तं पुत्रं नवापश्य हयं तदा ॥१३॥

ब्रह्मा न कह — प्राचीन काळ में वैवस्वत नाम की इक्ष्वाकु कुल-परम्परा में सगर नाम का एक अग्रज धार्मिक राजा हुआ । वह धर्मानुराग आचार और विचार का पालन करता था और नियत यत्नान्तरा एक दान दिया करता था । उसकी दो पतिव्रता स्त्रियाँ थीं । सन्तानहीन होने का कारण वह सदा राजान्तरा दान ही दीया रहता था । एक दिन उमने घर बगिच्छ का घेर बलाकर उतरी विधिवत् पूजा की । तत्पश्चात् पुत्रोत्पत्ति का कारण पूछा राजा ने प्रश्न को सुनकर कुछ समय ध्यान करके वसिष्ठ का ॥

वसिष्ठ ने कहा—राजन तुम सदा पत्नी मन्त्रि ऋषि-पूजा दिया करो ॥३॥

ब्रह्मा योल—मन्त्रा कहकर मन्त्रि वसिष्ठ अपने स्थान को चले गए । एक दिन एक राजर्षि ने घर एक तपस्वी आया ॥८॥ राजा ने उस ऋषि की भक्तिपूर्वक पूजा की । उसकी पूजा में प्रमत्त होकर ऋषि ने कहा—
‘महामातृ । वर माँगे । तब राजा ने ऋषि से पुत्रोत्पत्ति का वर माँगा ॥९॥

मन्त्रि न राजा मन्त्रा—सुहृद्गारी एक स्त्री में वन-यान काया यन्त्रा पत्र शोभा । दूसरी में गाठ हज्जार लक्ष उत्पन्न होगी ॥१०॥ इस प्रकार वर देकर मन्त्रि चले गए । पश्चात् राजा ने मन्त्रा का उन्मत्त रूप । राजा ने बहुत से आश्चर्य यत्न किये किन्तु ब्राह्मणा को मरपूर श्रद्धा नहीं थी ॥११॥ तब आश्चर्य यत्न में जब राजा ने विधिपूर्वक दीक्षा ली तब अपने पुत्रों को मन्त्रा ने माया यन्त्रा की रक्षा में नियत निरस्त किया ॥१२॥ किन्तु घनक्रतु दत्त ने उस घोर का हरण कर लिया । सगर-पुत्र पांडु को दूत कर हार गया परन्तु कहा पत्नी नहीं

सहस्राणां तृतीया षष्टिर्नानासुद्विविशारदा । तेषु पश्यत्सु रक्षासि पुत्रेषु सगरस्य हि ॥१४॥
 प्रोक्षितं तद्वयं नीत्वा ते रसानलमागमन् । राक्षसान्मायया युवतान्नैवापश्यन्त सागरा ॥१५॥
 न दृष्ट्वा ते ह्य पुत्रा सगरस्य बलीयसः । इतश्चेतश्चरन्तस्ते नैवापश्यन्त्य तदा ॥१६॥
 देवलोकं तदा जग्मुः पर्वताश्च सरासि च । वनानि च विचिन्वन्तो नैवापश्यन्त्य तदा ॥१७॥
 कृतस्वस्त्ययनो रागा ऋषिभिः कृतमङ्गलः । अदृष्ट्वा तु पशुरस्य राजा चिन्तामुपेयिवान् ॥१८॥
 'अदन्त सागरा सर्वे' देवलोकमुपागमन् । ह्य तमनुचिन्वन्तस्तत्रापि न ह्योऽभवत् ॥१९॥
 ततो महौ समाजग्मुः पर्वताश्च वनानि च । तत्रापि च ह्य नैव दृष्टवन्तो नृपात्मजा ॥२०॥
 एतस्मिन्तन्तरे यत्र दैवो यागभवत्तदा । रसातले, ह्यो यद्ध आस्ते नायत्र सागरा ॥२१॥
 इति श्रुत्वा ततो याच्य गन्तुवामा रसातलम् । अखनन्पृथिव्या सया परितः सागरास्ततः ॥२२॥
 ते क्षुमाता मूढ दुष्का भक्षयन्तस्त्वहनिशम् । न्यलनश्चापि जग्मुश्च सत्वरस्ते रसातलम् ॥२३॥
 तानापतन्भूषणुत्तान्सागरावति नृतीन् । श्रुत्वा रक्षासि सन्नस्ताः पृथगमकपिलान्तिकम् ॥२४॥
 कपिलोऽपि महाप्राज्ञस्तत्र शते रसातले । पुरा च साधितं तेन देवानां कार्यमुत्तमम् ॥२५॥
 विनिद्रेण ततः स्थान्तं सिद्धं कार्यं सुराग्रति । अन्नवीत्कपिलं श्रीमान्निद्रास्थानं प्रयच्छय(त) ॥२६॥
 रसातलं बहुस्तस्मै पुनराह सुराङ्गुनि । यो मामुत्थापयेन्मन्दो भस्मो भूयाच्च सत्वरम् ॥२७॥

चला ॥१३॥ मित्रं मित्रं प्रकारं वा युद्धविद्यां म कुलं उन साठ हजार सगर-पुत्रा के देखते रहने पर भा (इंद्र के अनुगामी) राक्षस गगन में यामिपिक्त अन्ध का लहर रसातल चल गये । किन्तु सगरपुत्रा ने मायावी राक्षसा का नहा देखा ॥१४॥ १५॥ राजा सगर के बलवान् पुत्र अन्ध को न पाकर इधर-उधर दूढ़त हुए देवलोक में गये पर्वत संरोवर वना में छान डाला फिर भी घोडा का कुछ पता न चला ॥१६॥ १७॥ इधर राजा ने स्वस्त्ययन क्रिया की और ऋषिवांन मगन क्रिया की परंतु उन यन्त्रों को जाय न देखकर राजा अधिक विवर्तित हो गया ॥१८॥ देवराज मरुतन के पत्नी सागर-पुत्रा पृथ्वी पर जाय पर्वता और वना को छान डाला किन्तु घोडा कहा भी नियाई न पडा ॥१९॥ २०॥ उसी बीच यह जावनावापी हुई कि सगर-पुमार । रसानल में घोडा बंधा हुआ है दूसरी जगह नहा है ॥२१॥ ऐसा जावनावापी मुन वर व सब रसानल जान के लिय चारा ओर स पृथ्वी का खाने गये ॥२२॥ मून में घातुल व लोग सूची निद्रा सन्ध्यावर रात्रिनि परिधम कर पृथ्वी सोद कर रसातल में पहुच गये ॥२३॥ उन वनी कमर एन वाय-कुल सगर उभागा का अगमन सुनकर रात्रि भयवस्त हो कपिल मुनि के समाप चल गये ॥२४॥ महाननी कपिल मुनि ने उन समय रसातल में ही साग द्वे थे । बटन पहल उन्हने दवताआ का एक उत्तम वाय सिद्ध किया ॥२५॥ रात नि जाग कर काय करत स धर हुए कपिल मुनि न दवताआ स कहा कि मुझ साने के निधे स्थान दो ॥२६॥ तत्र देवताआ न उह मान के लिए सरानल शक दे निया कपिलमुनि न देवा से कहा— जा बाद मन्मथि मुख जगाय ॥२७॥ वह साध ही मस्म हा जाय ऐसा होने पर ही मैं रसानल में जाकर सो

तत इये तलगतो नो चेन्न स्वप्न एव हि । तथेत्युक्त सुरगणैस्तन शोते रसातले ॥२८॥
 तस्य प्रभाव ते ज्ञात्वा राक्षसा मायया युता । सागराणा च सर्वेषा वधोपाय प्रचक्रिरे ॥२९॥
 विना युद्धेन ते भीता राक्षसा सत्वरस्तादा । आगत्य यत्र स मुनि कपिल कोपनो महान् ॥३०॥
 शिरोदेशे ह्य ते वै बद्ध्वाऽथ त्वरयाऽन्विता । दूरे स्थित्वा मौनिनश्च प्रेक्षन्त किं भवेदिति ॥३१॥
 ततस्तु सागरा सर्वे निर्विशन्तो रसातलम् । ददृशुस्त ह्य बद्ध शयान पुरष तथा ॥३२॥
 त मेनिरे च हतारं क्रतुहन्तारमेव च । एन हत्वा महापाप नयामोऽश्व नृपान्तिकम् ॥३३॥
 केचिदूचु पशु बद्ध नयामोऽनेन किं फलम् । तदाऽऽहुरपरं शूरा राजान शशका वयम् ॥३४॥
 उत्थाप्येन महापाप हन्म क्षात्रेण धर्चसा । ते त जघ्नुर्मुनि पार्दक्ष्वन्तो निष्ठुराणि च ॥३५॥
 तत कोपेन महता कपिलो मुनिसत्तम । सागरान्भीक्ष्यमास ता कोपाद्भ्रमसात्करोत् ॥३६॥
 जग्बलुस्ते ततस्तत्र सागरा सर्व एव हि । तत्तु सर्व न जानाति बोक्षित सगरो नृप ॥३७॥
 नारद कथयामास सगराय महात्मने । कपिलस्य तु सत्यान ह्यस्यापि तु सत्पितम् ॥३८॥
 राक्षसाना तु विकृति सागराणा च नाशनम् । ततश्चिन्तापरो राजा कर्तव्य नावबुध्यत ॥३९॥
 अपरोऽपि सुतश्चाऽऽसीदसमञ्जा इति श्रुत । स तु बालास्तया पौरान्मोर्ख्यात्किपति चाम्भसि ॥४०॥
 सगरोऽप्यथ विज्ञप्त पौरं समिलितस्तदा । दुर्नय तस्य त ज्ञात्वा तत क्रुद्धोऽब्रवीन्नृप ॥४१॥

सकता हूँ अथवा मुच नीद नहीं आयेगी । देवताओं ने उनकी इच्छा का अनुरूप धर दे दिया । इसीलिये वे वहाँ रसातल में सोये हुए थे ॥२८॥ मायावी राक्षसा ने मुनि के उस प्रभाव को जानकर (मायापूवक) उन सगर-पुत्रों के वध का उपाय किया ॥२९॥ भयभीत राक्षस विना युद्ध किये ही शीघ्र वहाँ आये जहाँ महाकोपी कपिलमुनि थे और उनके गिर की ओर घोड़ को बाँध कर तुरत वहाँ से हट गया । दूर जाकर चुपचाप छिपकर यह देखने लगे कि क्या परिणाम होता है ॥३०-३१॥ इसके अनन्तर वे सब सगरपुत्र रसातल में पहुँचे । वहाँ उन लोगों ने बँधे हुये घोड़ और सांघे हुए एक पुरष को देखा ॥३२॥ उस पुरष को ही उन सब ने घाड़ का चोर और यन्त्रविध्यसक समझा । उनमें से कुछ लोगों ने कहा कि इस पापी को मारकर अरव को राजा में निकट ल चल ॥३३॥ किसी ने कहा कि बंध हुये घोड़ को ही ले चलना चाहिये इस पुरष को मारने से क्या लाभ ? यह सुनकर दूसरे कुछ गूर पुरषा ने कहा कि हम शासक राजा हैं ॥३४॥ इस मन्त्रपापी को उठाकर छात्र तेज से इसको मारग । ऐसा कहकर मुनि को अनुचित बातें कहते हुए व पैरा में मारने लग ॥३५॥ इस पर महामुनि कपिल अत्यन्त क्रोध से उन सगर-पुत्रा को देखा और देखत ही वे सब मुनि के प्रोशानि में मग्न हो गए ॥३६॥ इस दुषटना को धन में दीनित नृप सगर नहीं जानते थे ॥३७॥ नारद ने आकर उनमें कपिल का रसान्त में रहता और वहाँ घोड़े का बाँधा जाना राक्षसा का बधट ध्वजहार तथा उनके पुत्रों का सर्वनाश आदि सारा बात बता दी ॥३८॥ इन बातों को सुनकर राजा अत्यन्त विवर्तित हो गये अब क्या करना चाहिये यह भा न गाव मक ॥३९॥ राजा का दूसरा पुत्र एक असमजस नाम का था । वह अपनी दुष्टता और अमानता के कारण नगर के बाग़ों को जल में पक देता था ॥४०॥ नगरवातिया ने मित्रकर राजा से यह बात बताई । उसने इस अत्याचार को जानकर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और मंत्रिया से बोला कि असमजस क्षत्रिय-धर्मभ्रष्ट और बाग़ों को मारने वाला है । इसलिये यह दण्ड से

स्वानमात्यास्तदा राजा देशत्याग करोत्वयम् । असमञ्जा क्षत्रधर्मत्यागो धै बालघातक ॥४२॥
 सगरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽमात्यास्त्वरान्विताः । तत्पुत्रजन्मपते पुत्रमसमञ्जा गतो यनम् ॥४३॥
 सागरा ब्रह्मशापेन नष्टा सर्वे रसातले । एकोऽपि च वनं प्राप्त इदानीं का गतिर्मम ॥४४॥
 अनुमानिति विख्यातं पुत्रस्तस्यासमञ्जसः । आनाय्य बालकं राजा कार्यं तस्मै न्यवेदयत् ॥४५॥
 कपिलं च समाराध्य अनुमानपि बालकः । सगराय ह्य प्रादात्तत् पूर्णोऽभवत्कृतुः ॥४६॥
 तस्यापि पुत्रस्तेजस्वी दिलीप इति धार्मिकः । तस्यापि पुत्रो मतिमानभगीरथ इति श्रुतः ॥४७॥
 पितामहाना सर्वेषां गतिं श्रुत्वा सुदुःखितः । सगरं नृपशार्दूलं पप्रच्छ विनयान्वितः ॥४८॥
 सागराणां तु सर्वेषां निष्कृतिस्तु कथं भवेत् । भगीरथं नृपं प्राह कपिलो वेत्ति पुत्रकः ॥४९॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बालः प्रायाद्रसातलम् । कपिलं च नमस्कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥५०॥
 स मुनिस्तु चिरं ध्यात्वा तपसाऽऽराध्य शकरम् । जटाजलेन स्वपितृनाम्नाऽप्य नृपसत्तम ॥५१॥
 ततः कृतार्थो भविता त्वं च ते पितरस्तथा । तथा करोमीति मुनिं प्रणम्य पुनरब्रवीत् ॥५२॥
 यत्तु गच्छेऽहं मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं चापि तद्वद ॥५३॥

कपिल उवाच

बलासं तं नरश्रेष्ठं गत्वा स्तुहि महेश्वरम् । तपः कुर्वथाशक्तिं ततश्चेप्सितमाप्स्यसि ॥५४॥

निकाल किया जाय ॥४१॥ ४२॥ राजा सगर की आज्ञा सुनकर मन्त्रियां न शीघ्र ही राजपुत्र को देण म निकाल दिया । वह वन का चला गया ॥४३॥ राजा सावन लग कि मर साठ हजार पुत्र रसातल में मुनि शाप से मर गये और एक जाया वह भी वन को चला गया । अब मर गये कौन-सा माग है ॥४४॥ अनुमान नाम से प्रसिद्ध अमर मन्त्र का एक पुत्र था । राजा ने उस बाग्य का बुद्धि कर यह कायमार उसको सौंप दिया ॥४५॥ बालक अनामान् ने कपिल मुनि का प्रसन्न कर घांटा लाकर सगर का द दिया । तत्पुत्र नर वह यम समान हुआ ॥४६॥ अनामान् का पुत्र दिलीप तज्ज्वा तथा धार्मिक था । उसका भगीरथ नाम का बुद्धिमान् पुत्र हुआ ॥४७॥ अनामान् का पुत्र मतिमान् भगीरथ ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक नृप-शार्दूल सगर से पूछा ॥४८॥ मर विनामह का उद्धार क्या होगा । राजा ने भगीरथ से कहा—पुत्रक । इसको कपिल मुनि ही जानते हैं ॥४९॥ यह सुनकर बालक भगीरथ कपिलमुनि के पास रसातल जाकर गया । मुनि को नमस्कार कर मारी कथा उससे की ॥ ५०॥ तब मुनि बोले—नृपश्रेष्ठ । निकाल तब ध्यानावस्थित होकर अपना नाममात्र सगर का आराधना करने प्रसन्न करो । उसको जगत् में स्थित गंगा का जल में अपने पितरा को अभिषिक्त करो ॥५१॥ तुम स्वयं कृतार्थ (सन्तुष्ट) होओ और अपने पितरा को भी कृतार्थ कर सकोगे । मैं आपसे आपेनातुमार काय करूँगा । यह कह कर भगीरथ ने मुनि को प्रणम कर कहा—मुनिश्रेष्ठ । मैं वहीं जाऊँ कि प्रसार मायना करने कृतार्थ यह भी बन जाइय ॥५२॥ ५३॥

कपिल ने कहा—नरश्रेष्ठ । बलास पर जाकर महेश्वर का स्तुति और यथाशक्ति तपसा करो । तभी तुम अपने अमाष्ट का प्रसन्न कर सकोगे ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनेर्वाक्यं मुनिं नत्वा त्वगान्नगम् । कैलासं स शुचिभूत्वा बालो बालश्रियान्वितः ॥
तपसे निश्चयं कृत्वा उवाच स भगीरथः ॥५५॥

भगीरथ उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो । नाहं किमपि जानामि ततः प्रीतो भव प्रभो ॥५६॥
वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चामरेश, सोमं नमस्यामि सुरादिपूजयम् ॥५७॥
उत्पादितो यैरभिर्वाधितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
तेपामभोष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु ब्रुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिबः । वरेण च्छन्दयानो' वं भगीरथमुवाच ह ॥५९॥

शिव उवाच

यन्न साध्यं सुरगणैर्देयं तत्ते मया ध्रुवम् । वदस्व निर्भयो भूत्वा भगीरथ महामते ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—वह बालक मुनि की बातों को सुनकर उन्हे प्रणाम करके कैलाश पर्वत पर चला गया । वहाँ पवित्र होकर अपने बाल-गुलम व्यवहार के साथ तपस्या का दृढ़ निश्चय करके शंकर की स्तुति करने लगा ॥५५॥

भगीरथ ने कहा—बालचन्द्र को पारण करने वाले प्रभो ! मैं बाल हूँ, बालबुद्धि हूँ, कुछ भी नहीं जानता हूँ । इसलिए प्रभो ! मुझ बालक पर प्रसन्न हो जाओ ॥५६॥ देवेश, जो किसी समय मेरा मन वाणी और वर्ण से सदा उपकार और हित नियम करते थे, उन्हीं पूर्वजा के उद्धार के लिये मैं देवों के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥५७॥ जिन महापुरुषों का द्वारा मैं उत्पन्न किया गया हूँ, पाल-पोस कर बड़ा बनाया गया हूँ, जिनका मैं सहायी और सचर्मी हूँ, उनवीं इष्ट सिद्धि (उद्धार) शिवजी करें, मैं बालचन्द्र को पारण करनेवाले शंकर का नित्य प्रणाम करता हूँ ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगीरथ प्रार्थना कर ही रहे थे कि शंकर जी ने वरदान देने की इच्छा से भगीरथ से कहा ॥५९॥

शिव बोले—महामति भगीरथ ! जो देवों के लिये दुष्प्राप्य है उस वर को भी तुम प्राप्त कर सकते हो । इसलिए निर्भीक होकर कहो ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भगीरथः प्रणम्येशं हृष्टः प्रोवाच शंकरम्

॥६१॥

भगीरथ उवाच

जटास्थितां पितॄणां मे पावनाय सरिद्धराम्। तामेव देहि देवेश सर्वमाप्त ततो भवेत् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

महेशोऽपि विहस्याय भगीरथमुवाच ह

॥६३॥

शिव उवाच

दत्ता मयेयं ते पुत्र पुनस्तां स्तुहि सुव्रत

॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा तदर्थं तु तपो महत्। स्तुतिं चकार गङ्गाया भक्त्या प्रयतमानसः ॥६५॥

तस्या अपि प्रसादं च प्राप्य बालोऽप्यबालवत्। गङ्गा महेश्वरात्प्राप्तामादायागाद्रसातलम् ॥६६॥

न्यवेदयत्स मृतये कपिलाय महात्मने। धयोदितप्रकारेण गङ्गा सस्याप्य धनतः ॥६७॥

प्रदक्षिणमथाऽऽवर्त्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत्

॥६८॥

भगीरथ उवाच

देवि मे पितरं शापात्कपिलस्य महामुनेः। प्राप्तास्ते विगतिं मातस्तस्मात्तान्पातुमर्हसि ॥६९॥

ब्रह्मा बोले—भगीरथ ने शंकर को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा ॥६१॥

भगीरथ ने कहा—मेरे पितरों के उद्धार के लिये अपनी जटा में रखी हुई उत्तम सरिता (गंगा) को प्रदान करें। इस दान से ही मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे ॥६२॥

ब्रह्मा बोले—इसके बाद शंकर ने हँसकर भगीरथ से कहा ॥६३॥

शिव बोले—युव! मैंने गंगा को तुम्हें दे दिया। सुव्रत! अब उसकी स्तुति करो ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् शंकर की बातों को सुनकर भगीरथ ने गंगा को प्रसन्न करने के लिये एकाग्र मन से महान् तपस्या और गंगा की स्तुति की। बालक होते हुए भी भगीरथ ने अबालक के समान गंगा का कृपापात्र बनकर महेश्वर द्वारा दी गई गंगा को लेकर रसातल चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनि से सब कुछ कहा और उनके आदेशानुसार यत्नपूर्वक गंगा की स्थापना की। सदनन्तर उनकी परिजमा कर बड़ा-बलि होकर कहा ॥६५-६८॥

भगीरथ ने कहा—देवि! मेरे पितर महामुनि कपिल के शाप से दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं। उस पप से हे माता! तुम्ही उन लोगों का उद्धार कर सकती हो ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरनदी सर्वेषामुपकारिका । लोकानामुकारार्थं पितृणा पावनाय च ॥७०॥
 अगस्त्यपीतस्वाम्भोधे पूरणाय विशेषतः । स्मरणादेव पापाना नाशाय सुरनिम्नया ॥७१॥
 भगीरथोदित चक्रे रसातलतले स्थितान् । भस्मीभूतामृपसुतान्सागराश्च विशेषतः ॥७२॥
 विनिर्दग्धान्थाऽऽप्लाव्य खातपूरमथाकरोत् । ततो मेरु समाप्लाव्य स्थिता बालोऽब्रवीदमृप ॥७३॥
 कर्मभूमौ त्वया भाव्य तथेत्यागाद्विभालयम् । हिमवत्पर्वतात्पुण्याद्भारत वर्षमभ्यगात् ॥७४॥
 तन्मध्यतः पुण्यनदी प्रायात्पूर्वार्णव प्रति । एवमेषाऽपि ते प्रोक्ता गङ्गा क्षात्रा महामुने ॥७५॥
 माहेश्वरी वैष्णवी च सैव ब्राह्मी च पावनी । भागीरथी देवनदी हिमवच्छिखराश्रया ॥७६॥
 महेश्वरजटावारि एव द्वैविध्यमागतम् । विन्ध्यस्य दक्षिणे गङ्गा गौतमी सा निगद्यते ॥
 उत्तरे साऽपि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसवादे भागीरथ्यवतरण नामाष्ट-
 सप्ततितमोऽध्याय ॥७८॥

गौतमीमाहात्म्ये नवमोऽध्याय ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—सबका उपकार करने वाली देवनदी गंगा ने ऐसा ही हो वह यह कहकर लोक-वस्त्याण के लिये पितरा को पुनीत करने के लिये विशेषरूप से अगस्त्य द्वारा पान किये गये समुद्र को भर देने के लिये, और स्मरणभाव से पापा का नाश करने के लिये भगीरथ के बचनानुसार कार्य किया। पहले ता उसने प्रधानरूप से भस्मीभूत राजा सगर के पुत्रा को जल से मलोत्थीति अभिषिक्त किया तदनन्तर उनसे खादे गये गङ्गा को जल से भर दिया। फिर वहाँ से मेरु पर्वत पर आकर विराजमान हो गयी। यह देखकर बान्क राजा भगीरथ ने कहा आपका कमभूमि (भाग्यभूमि) पर चरना चाहिये। इसको भी स्वीकार कर वह हिमाग्न्य पर्वत पर चली गई। उस हिमाग्न्य पर्वत से पुण्य भूमि भारतवर्ष में आ गई। उससे मध्य में जाकर वह पुण्य नदी पूर्वसागर (बङ्गसागर) की ओर चली गई (और उसमें मिल गई)। महामुनि नारद । इस प्रकार मैंने क्षत्रिय द्वारा लाई हुई गंगा के विषय में गुना दिया। वही माहेश्वरी वैष्णवी और पवित्र ब्राह्मी है। उसी को भगीरथी देवनदी और हिमाग्न्य के शिखर पर रहने वाली (हिमालयशिखराश्रया) कहते हैं। इस प्रकार महेश्वर की जटा का वह धूम जल दो भागों में विभक्त हो गया। विन्ध्य के दक्षिण में वह गंगा गौतमी नाम से बही जाती है और विन्ध्य के उत्तर प्रदेश की गंगा से भगीरथी इस नाम से पुकारी जाती है ॥७०-७७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भागीरथी-अवतरण नामक अष्टहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८॥

अयोनाशीतितमोऽध्यायः

वराहतीर्थवर्णनम्

नारद उवाच

न मनस्तृप्तिमाप्सते वया शृण्वत्त्वपेरिता । पूयक्तीर्यफल श्रोनु प्रवृत्त मम मानसम् ॥१॥
क्रमशो ब्राह्मणानीतां गङ्गां मे प्रथम यद । पूयक्तीर्यफल पुण्य सेतिहास यथाक्रमम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थानां च पूयग्भाव फल माहात्म्यमेव च । सर्वं वक्तु न शक्नोमि न च त्व श्रवणे क्षम ॥३॥
तथाऽपि किञ्चिद्वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः । यान्युक्तानि च तीर्थानि श्रुतिवाक्यानि यानि च ॥४॥
तानि वक्ष्यामि सक्षेपाग्रमस्कृत्वा त्रिलोचनम् । यत्रासी भगवानासीत्प्रत्यक्षस्त्र्यम्बको मुने ॥५॥
त्र्यम्बक नाम तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । वाराहमपर तीर्थं त्रिपु लोकेषु विद्युतम् ॥६॥
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि नाम विष्णाययाऽभवत् । पुरा दवान्पराभूय यज्ञमादाय राक्षस ॥७॥
रसातलमनुप्राप्त सिन्धुसेन इति श्रुतः । यज्ञ तलमनुप्राप्ते निर्यज्ञा ह्यभवमहो ॥८॥
नाय लोकोऽस्ति न परो यज्ञे नष्ट इतीवरा । सुरास्तमेव विविशू रसातलमनुद्विपम् ॥९॥

नाशक्तुवंस्तु तं जेतुं देवा इन्द्रपुरोगमाः। विष्णुं पुराणपुरुषं गत्वा तस्मै न्ययेदयन् ॥१०॥
 राक्षसस्य तु तत्कर्म यज्ञभ्रंशमशेषतः। ततः प्रोवाच भगवान्वाराहं वपुरास्थितः ॥११॥
 शङ्खचक्रगदापाणिर्गत्वा चैव रसातलम्। आनयिष्ये मलं पुण्यं हत्वा राक्षसभुगवान् ॥१२॥
 स्व प्रयान्तु सुरा सर्वे व्येतु वो मानसो ज्वरः। येन गङ्गा तलं प्राप्ता पया तेनैव चक्रधृक् ॥१३॥
 जगाम तरसा पुत्र भुव भित्त्वा रसातलम्। स वराहवपुः श्रीमान्रसातलनिवासिनः ॥१४॥
 राक्षसान्दानवान्हत्वा मुखे धृत्वा महाध्वरम्। वाराहहृषी भगवान्मलमादाय यज्ञभृक् ॥१५॥
 येन प्राप तलं विष्णु पया तेनैव शत्रुजित्। मुखे न्यस्य महायज्ञं निश्चक्राम रसातलात् ॥१६॥
 तत्र ब्रह्मागिरौ देवा प्रतीक्षा चक्रिरे हरैः। पथस्तस्माद्विनिःसृत्य गङ्गास्त्रवणमभ्यगात् ॥१७॥
 प्राक्षालयच्च स्वाङ्गानि असृग्लिप्तानि नारद। गङ्गाम्भसा तत्र कुण्डं वाराहमभवत्ततः ॥१८॥
 मुखे न्यस्त महायज्ञं देवानां पुरतो हरिः। दत्तवास्त्रिदशश्रेष्ठो मुखाद्यज्ञोऽभ्यजायत ॥१९॥
 ततः प्रभृति यज्ञाङ्गं प्रधानं सुव उच्यते। वाराहरूपमभवदेवं वै कारणान्तरात् ॥२०॥
 तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं वाराहं सर्वकामदम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वकृत्यफलप्रदम् ॥२१॥
 तत्र स्थितोऽपि यः कश्चित्पितृन्स्मरति पुण्यकृत्। विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ॥२२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वराहतीर्थवर्णनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥
 गौतमीमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः ॥१०॥

नेतृत्व में जाने वाले वे देव उसको जीत न सके, इसलिये पुराणपुरुष विष्णु के पास जाकर उन्होंने राक्षस का वह कुट्य और यज्ञलोप होने का समाचार पूर्णरूप से निवेदन किया ॥१०॥ सुनकर भगवान् ने कहा कि मैं वराह शरीर धारण कर हाथ में शङ्ख चक्र गदा लेकर रसातल को जाऊँगा और वहाँ के बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर पुनीत यज्ञ को ले आऊँगा ॥११॥ आप सब देवगण स्वर्गलोक को जाइये और मानसिक चिन्ता को छोड़ दीजिये। पुत्र ! जिस मार्ग से गंगा रसातल लोक को गयी थी उसी मार्ग से वह चक्रधारी भगवान् पृथ्वी को फाड़ कर चले गये ॥१२॥ वह वराहरूपधारी श्रीमान् रसातल निवासी राक्षसों एवं दानवों को मारकर, महायज्ञ को मुख पर रख लिया। पुनः वराहरूपधारी यज्ञ के भोक्ता तथा शत्रुओं के विजेता विष्णु जिस पथ से गये थे उसी पथ से महायज्ञ को मुख पर रखे हुये रसातल से निकल आये ॥१४॥ इसर ब्रह्मागिरि पर देवता भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे थे। नारद ! उस मार्ग से निकल कर विष्णु गंगा की धारा में पहुँचे ॥१७॥ वहाँ गंगा-जल से रक्त लगे अपने अंगा को धोया। इसलिये वहाँ का वह कुण्ड वाराह नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१८॥ देव सिरोमणि भगवान् हरि ने मुख पर रखे हुए महायज्ञ को देवताओं ने सामने रख दिया। इसलिये मुख से यज्ञ की पुनः उत्पत्ति हुई ॥१९॥ तभी से सुव प्रधान यज्ञांग कहा जाता है, इस प्रकार कारणान्तर से वाराह रूप हुआ ॥२०॥ इस कारण वाराह सब कामा को देने वाला तीर्थ है। वहाँ का स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञों के फल देने वाला है ॥२१॥ जो कोई पुण्यकर्मा वहाँ स्थित होकर भी अपने पितरों का स्मरण करता है उसके वे पितर सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में चले जाते हैं ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वराहतीर्थवर्णन नामक उन्वासीवां अध्याय समाप्त ॥७९॥

अथाशीतितमोऽध्यायः

कपोततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशावर्तस्य माहात्म्यमहं ववतु न ते क्षम । तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नर ॥१॥
कुशावर्तमिति ख्यातं नराणां सर्वकामदम् । कुशोनाऽऽवर्तितं यत्र गौतमेन माहात्मना ॥२॥
कुशोनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास तां मुनिः । तत्र स्नानं च दानं च पितृणां तृप्तिदायकम् ॥३॥
नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा नि सृता नीलपर्वतात् । तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रयतो नरः ॥४॥
सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणां तृप्तिदायकम् । विभुतं त्रिषु लोकेषु कपोत तीर्थमुत्तमम् ॥५॥
तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुने शृणु महाफलम् । तत्र ब्रह्मगिरौ कश्चिद्द्वयाधः परमदारुणः ॥६॥
हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्मृतोन्गोपक्षिणो मृगान् । एवभूतं स पापात्मा त्रोधनोऽनृतभाषणः ॥७॥
भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः । दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः ॥८॥
ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभश्चनः । पाशहस्तः पापचित्तः पापिष्ठः सधनुः सदा ॥९॥

अध्याय ८०

कपोततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं कुशावर्ततीय की महिमा तुमसे कहने में समर्थ नहीं हूँ। उसके स्मरण मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥१॥ जहाँ पर महात्मा मुनि गौतम ने कुशा से घुमाया था वह मनुष्या के सब मनोरथों को देने वाला स्थान कुशावर्त नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२॥ मुनि कुश से गंगा को घुमा कर लाया था। वहाँ का स्नान और दान पितरों को तृप्त करने वाला है ॥३॥ नील गंगा नाम की उत्तम नदी नील पर्वत से निकली हुई है उसमें मनुष्य एकाग्रचित्त से स्नान आदि जो कुछ करता है वह पितरों के लिये अक्षय तृप्ति को देनेवाला होता है ॥४॥ तीनों लोकों में कपोत तीर्थ अति प्रसिद्ध उत्तम तीर्थ है ॥५॥ मुने! उसका इतिहास और फल बता रहा हूँ सुनो—ब्रह्म पर्वत पर कोई एक अतिकूर (शिकारी) रहता था ॥६॥ वह ब्राह्मण साधु यति गौ पक्षी और जंगली जीवों को मारा करता था। ऐसा हिंसक वह पापात्मा त्रोधो असत्यवादी भयकर आकारवाला और अत्यन्त उद्धत था। उसकी आँख नीचे रण की मुजायें छोटी छोटी दाँत निकले हुये नाक चिपटी एक आँख बानी पैर छोटे छोटे पैर लम्बा और मोटा और उसका स्वर गर्दह के समान था। वह कुक्ष्य पापी सबदा हाय स पाश और धनुष लिये हुए माप (हिंसा) की ही धारें सोचा करता था। नारद! उसकी स्त्री और बच्चे भी उसी के समान थे ॥ ७-९॥

तस्य भार्या तयाभूता अपत्यान्यपि नारद। तया तु प्रेयमाणोऽसौ विवेश गहनं यनम्॥१०॥
 स जघान मृगान्याप पक्षिणो बहुवृषिण। पञ्जरे प्राक्षिपत्वाश्चिञ्जीवमानास्तथैतरान्॥११॥
 क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृपया तया। भ्रान्तदेशो बहुतर न्ययतंत गृहं प्रति॥१२॥
 ततोऽपराङ्मे सप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे। क्षणात्तडिर्गजितं च साभ्रं चंबाभवत्तदा॥१३॥
 ववौ वायु साश्मवर्षो वारिधारतिभीषण। स गच्छत्लुब्धकं भ्रान्तं पन्यान् नावबुध्यत॥१४॥
 जलं स्थलं गतंमयो पन्यान्मयवा दिशः। न बुबोध तदा पापं भ्रान्तं शरणमप्यय॥१५॥
 यव गच्छामि यव तिष्ठेयं किं करोमीत्यचिन्तयत्। सर्वेषां प्राणिनां प्राणानाहर्ताऽहं यथाऽन्तक॥१६॥
 ममाप्यन्तकरं भूतं सप्राप्तं चाश्मवर्षणम्। त्रातारं नैव पश्यामि शिलां वा वृक्षमन्तिके॥१७॥
 एव बहुविधं व्याधौ विचिन्त्यापश्यदन्तिके। धने वनस्पतिमिव नक्षत्राणां यथाऽत्रिजम्॥१८॥
 मृगाणां च यथा सिंहमाश्रमाणां गृहाधिपम्। इन्द्रियाणां मन इव त्रातारं प्राणिनां नगम्॥१९॥
 श्रेष्ठं विटपिनं शुभ्रं शाखापल्लवमण्डितम्। तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्त्विलघ्नवासा स लुब्धकः॥२०॥
 स्मरन्भार्यामपत्यानि जीवेयुरयवा न वा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्तं प्राप्तं दिवाकरं॥२१॥
 तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह। पुत्रपौत्रं परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगोत्तमे॥२२॥

एक दिन अपनी स्त्री की प्ररणा से वह घने जंगल में घुस गया। उस पापी ने बहुत-से मृगों और रंग बिरंगे पक्षियों को मारा। अपने पिंजरे में कुछ जीवित और कुछ मृत पक्षियों को भी भर लिया॥१०-११॥ बहुत इधर उधर घूमने के कारण भूल की ज्वाला से उसका शरीर जलने लगा और वह प्यास से व्याकुल हो गया। विवश हो वह भटकता हुआ घर की ओर लौटा॥१२॥ तत्पश्चात् उस जेठ की दुपहरी बीत जाने पर तीसरे पहर क्षण भर में बिजली गरजने लगी आकाश बादलों से घिर गया वायु जोरों से चलने लगी अति भीषण दृष्टि होने लगी और साथ-साथ पत्थर गिरने लगे। ऐसे समय वह बहेलिया चलते चले थक गया और अपना मार्ग भी भूल गया॥१३-१४॥ उसको जल स्थल या गड्ढे का ज्ञान न रहा। न तो उस समय उसको माग और दिशाआ का ही ज्ञान रहा। वह यका भादा पापी यह भी नहीं जान पाता था कि कहाँ उसको शरण (रहने की स्थान) मिलेगी।॥१५॥ वह चिन्ता करने लगा कि कहाँ जाऊँ कहाँ रहूँ क्या करूँ। जिस प्रकार सब प्राणियों के प्राण का धातक मैं सबके लिये यमराज के समान हूँ उसी प्रकार मेरे प्राणों का अन्त करने वाला यम के रूप में यह पत्थर की वर्षा भी आ गई है। यहाँ कोई अपना रक्षक नहीं देख पड़ता न तो समीप में कोई चट्टान या वृक्ष ही दिखाई देते हैं कि अपनी रक्षा कर सकूँ॥१६-१७॥ इस प्रकार वह व्याध अपने मन में मित्र मित्र प्रकार से सोच ही रहा था कि इतने में उसे समीप ही वन में वनस्पति के समान, नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा के समान पशुओं में सिंह के समान आश्रमों में गहस्थ के समान इन्द्रियों में मन के समान प्राणियों का रक्षक एक वृक्ष दिखाई पड़ा॥१८-१९॥ शाखाओं और पत्तों से सुशोभित शुभ्र उस उत्तम वृक्ष के नीचे आकर वह बैठ गया। उस शिकारी के वस्त्र भीग गये थे वह धर-धर काँप रहा था। वह सोच रहा था कि मेरे बच्चे और स्त्री जीवित रहेंगे या नहीं। इसी बीच सूर्य भी अस्त हो गया॥२०-२१॥ उसी वृक्ष पर अपना (बसेरा) बनाकर एक बबूतर अपनी स्त्री पुत्र और पौत्रों के साथ रहता था। उस उत्तम वृक्ष पर वह सतुष्ट और

सुखेन निर्ममो भूत्वा सुतुष्टः प्रीत एव च। बहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिणः॥२३॥
 पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चैव हि। कोटरे तन्मने श्रेष्ठे जलवाग्बग्निर्वाजते॥२४॥
 भार्यापुत्रैः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः। तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी॥२५॥
 भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमन्यगात्। साऽपि दैववशात्पुनः पञ्जरस्थैव वर्तते॥२६॥
 गृहीता लुब्धकेनाथ जीवमानेव वर्तते। कपोतकोऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च॥२७॥
 वर्षं च भीषणं प्राप्तमस्तं यातो दिवाकरः। स्वकोटरं तयाहीनमालोच्य बिललाप सः॥२८॥
 तां बद्धां पञ्जरस्यां वा न बुबोध कपोतराट्। अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम्॥२९॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणी मम हर्षविबन्धिनी। मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी॥३०॥
 धर्मर्यिकामभोक्षाणां संव नित्यं सहायिनी। तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी॥३१॥
 सखी मन्त्रेषु सा नित्यं मम वाक्यरता सदा। नाद्याप्यायाति कल्याणी संप्रयातेऽपि भास्करे॥३२॥
 न जानाति व्रतं मन्त्रं देवं धर्मर्यमेव च। पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया॥३३॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि वयं यामि वा। किं मे गृह काननं च तया हीनं हि दृश्यते॥३४॥
 तया युक्तं म्रिया युक्तं भीषणं चाऽपि शोभनम्। नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम्॥३५॥

प्रसन्न पक्षी निर्मम होकर मुखपूर्वक रहता था। इस प्रकार उस वृक्ष पर रहते हुये उस पक्षी के बहुत वर्षं बीत गये थे ॥२२-२३॥ उसकी पतिव्रता भार्या भी उससे अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। उस श्रेष्ठ वृक्षके कोटर (घोड़ा) में जहाँ अग्नि-जल और वायुका नय नहीं था—वह वैचारा वृक्षतर भार्या और पुत्रके साथ सर्वदा निवास करत था ॥२४॥ दैववश उसी दिन कपोत और कपोती दोनों भोजन की खोज में बाहर गये हुए थे। कपोत तो उस वृक्ष पर पुन लौट आया। पुत्र! दैवयोग से वह कपोती भी उस शिकारी के पिंजरे में ही थी ॥२५-२६॥ यद्यपि व्याध ने उसको पकड़ लिया था परन्तु वह अभी जीवित थी। वैचारा कपोत अपने मातृ हीन बच्चा को देखकर और यह देखकर कि इतनी भीषण वर्षा हो रही है, सूर्य भी डूब गया है, कोटर मेरी कपोती से दूग्न्य है, विलाप करने लगा ॥२७-२८॥ उस कपोतराज ने नहीं जाना कि कपोती यही पिंजरे में बधी पड़ी है। वह अपनी प्रिया की बड़ाई इस प्रकार करने लगा ॥२९॥ वह कल्याणी मेरे आनन्द को बढ़ाने वाली मेरे धर्म की जननी और मेरे शरीर की स्वायिनी अब तक नहीं आ रही है। वह मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में सर्वदा सहायता करने वाली रही है। मेरे प्रसन्न रहने पर वह स्वयं प्रसन्न रहती थी और मेरे दुःख के समय सात्वना देकर दुःख का दूर कर देती थी ॥३०-३१॥ आवश्यक परामर्श के समय वह सखी के समान थी। वह सर्वदा मेरे कहने के अनुसार ही काम करती थी। सूर्य डूब गया, परन्तु अब तक वह कल्याणी नहीं आई ॥३२॥ वह कोई व्रत मन्त्र, दैव या धर्म के तत्त्व नहीं जानती है, वह तो केवल पतिव्रता है, पतिप्राणा है, पति की आज्ञाकारिणी और पतिप्रिया है वह कल्याणी अब तक नहीं आ रही है। क्या कहें, कहाँ जाऊँ? उसके बिना आज यह मेरा घर और कानन क्या मूना दिखाई दे रहा है ॥३३-३४॥ उसके साथ रहने पर मैं सचट काल अथवा मुख के क्षणा में सर्वदा श्रीसम्पन्न रहा। ऐसी मरी भार्या नहीं आ रही है, जिसके रहने से ही गृह गृह बहा गया है (गृहिणी गृहमुच्यते) ॥३५॥ उनमें बिना मैं जिवित नहीं रहूँगा, अपने इस प्रिय शरीर को छोड़ दूँगा। परन्तु मेरे ये बच्चे क्या करेंगे, कैसे रहेंगे, पुन मैं तो दोना हूँ मैं धर्म

विनाज्जया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रिया तनुम् । किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहे पुन ॥३६॥
एव विलपतस्तस्य भर्तुर्वाक्य निशम्य सा । पञ्जरस्थैव सा वाक्य भर्तारमिदमब्रवीत् ॥३७॥

कपोतवयुवाच

अनाहमस्मि यद्वैव विवशाऽस्मि खगोत्तम । अनोताऽहं लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते ॥३८॥
ध्याज्जन्मगुह्योताऽस्मि पतिवर्जित गुणान्मम । सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्थाऽहं न सशय ॥३९॥
तुष्ट नर्तारि नारीणां तुष्टा स्युः सर्वदेवता । विपर्यये तु नारीणामवश्य नाशमाप्नुयात् ॥४०॥
त्व दैव त्व प्रभुमंह्य त्व सुहृत्स्व परायणम् । त्व व्रत त्व पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च ॥४१॥
मा चिन्ता गुरु कल्याण धर्मे बुद्धि स्थिरा कुरु । त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया ॥४२॥
अल खेदेन मज्जेन धर्मे बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यमुत्तार नगोत्तमात् । यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोती वर्तते त्वर (द्रुत)म् ॥४४॥
तानागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम् । मोक्षयामोति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना ॥४५॥
मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सबन्धमस्थिरम् । लुब्धानां खेचरा ह्यस्र जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६॥
नापराध स्मरान्मस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु । गुरुरग्निद्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरु ॥४७॥

छोड़ रहा हूँ । ३६॥ इस प्रकार विलाप करते हुए अपने पति की बात सुनकर उस कपोती ने पित्रे से ही अपने पति से य शब्द कहे ॥३७॥

कपोती ने कहा—खगोत्तम । मैं यही बधी हुई हूँ विवस हूँ । महामति । व्याध पाश से बांधकर मुझको यहाँ रखा है । मैं धन्य हूँ अनुगृहीत हूँ कि मेरे रहते या न रहते हुए भी आप मेरे गुणों का वणन कर रहे हैं । इसलिये निश्चय ही मैं कृताय हो गई । पति के प्रसन रहने पर नारी के ऊपर सब देवता प्रसन्न रहते हैं अन्यथा नारियों का निश्चय ही नाश होता है । तुम मेरे देवता हो मेरे लिये तुम ईश्वर हो तुम सुहृद हो मेरे एवमात्र रक्षक हो तुम्हारे व्रत हो परब्रह्म तुम्हीं हो मेरे लिये मोक्ष अथवा स्वर्ग भी तुम्हीं हो । कल्याण । तुम चिन्ता मत करो, धर्म मैं अपनी बुद्धि स्थिर करो । तुम्हारे अनुग्रह से मैंने विविध भोगों को गोपा है । यह खेद ध्य है । इस प्रकार चिन्तामग्न होना उचित नहीं । तुम धर्म (कृतव्य) मैं अपनी बुद्धि (आस्था) स्थिर करो ॥३८४३॥

ब्रह्मा बोल—पत्नी की इन बातों को सुनकर वह वृक्ष से उतर आया और जहाँ उसकी पञ्जरबद्ध कपोती थी वहाँ सीधे ही चला गया । प्रिया के समीप जाकर अपनी प्रिया को साथ ही मत की माति अर्थात् व्याध को देखकर उसने अपनी प्रिया से कहा कि अभी तुमको छुड़ाता हूँ । इस समय शिकारी चेतना-शून्य सा हो रहा है ॥४४४५॥ यह सुनकर कपोती ने कहा कि महाभाग । पतिपत्नी के सम्बन्ध को अस्थिर (थोड़ा समय का) समयकर मुझ मत छड़ाओ । तुम्हें के लिये पक्षी ही अन्न (भोजन) है जीव ही जीव का भोजन है ॥४६॥ इससे इसका मैं कुछ भी अपराध नहीं समझ रही हूँ । अपनी धार्मिक भावना को दब कर दो । ब्राह्मणों के गुरु अग्नि और इतर वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं । स्त्रियों के गुरु पति ही हैं परन्तु अतिथि सब के गुरु माने गये हैं ॥४७३॥ जो घर पर आये अतिथि

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। अन्यागतमनुप्राप्तं वचनंस्तोषयन्ति ये॥४८॥
तेषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम्। तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात्॥४९॥
पितरः पादशोचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः। तस्योपचाराद्धं लक्ष्मीविष्णुना प्रीतिमाप्नुयात्॥५०॥
शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः। अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योदं गृहमागतम्॥
तं विद्याद्देवहृषेण सर्वशत्रुफलो ह्यसौ॥५१॥

अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति, देवाश्च सर्वे पितरोऽनपश्यन्।
तस्मिन्हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति, गते निराशेऽपि च ते निराशाः॥५२॥
तस्मात्सर्वात्मना कान्तं दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज। कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर॥५३॥
उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति संमतौ। उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः॥५४॥
अपकारिषु यः साधु पुण्यभाक् स उदाहृतः॥५५॥

कपोत उवाच

आवयोरनुरूपं च त्वयोक्तं साधु मग्यसे। किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने॥५६॥
सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः। आत्मानं च सुखेनान्यो वयं कष्टोदरंभरा॥५७॥
गर्तधान्यधनाः केचिन्कुशूलधनिनोऽपरे। घटक्षिप्तधनाः केचिच्छञ्चुक्षिप्तधना वयम्॥५८॥
पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिदं शुभे॥५९॥

को अपनी मयूर वाणी से सातुष्ट करते हैं उन पर वागीश्वरी देवी निश्चय ही प्रसन्न होती है॥४८॥ उसको अन्न देने से स्थय द्रष्टृ तृप्त होते हैं, पर धोने से पितर और अन्न भोजन कराने से प्रजापति (ब्रह्मा) तृप्त होते हैं। उसकी सेवा करने से विष्णु सहित लक्ष्मी प्रसन्न होती है॥४९-५०॥ शयन कराने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिये 'अतिथि सबसे पूज्य हैं। सूर्यास्त के समय शक्रा मर्दाना अतिथि यदि घर आये तो उसको देवरूप समझना चाहिये, क्योंकि वह सब यज्ञों के फल के रूप में वहाँ आता है॥५१॥ यके अतिथि के पीछे-पीछे सब देवता पितर और अग्नि चलते हैं। उसके तृप्त हो जाने पर वे भी आनन्दित होते हैं और अतिथि के निराश होने पर वे भी निराश हो जाते हैं॥५२॥ इसलिये कान्त। सब प्रकार से दुःख का परिहाय कर आप शान्त हो जाएँ अपनी बुद्धि को निर्मल बना कर धर्मकार्य करें॥५३॥ उपकार और अपकार दोनों श्रेष्ठ माने गये हैं। उपकार करने वाले के प्रति सभी उपकार करते हैं परन्तु अपकार करने वाले के प्रति जो उपकार करता है वही पुण्य का अधिकारी कहा गया है॥५४-५५॥

कपोत ने कहा—तुमने तो दोनों के अनुरूप ही कहा है। मैं इसको उचित मानता हूँ। किन्तु सुमुख ! भैंरों भी कथन सुनो ! कोई हजारों का मरण-शोषण-करता है, कोई सो का अन्य कोई दश का और कोई सुख-पूर्वक अपना भी मरण-शोषण कर लेता है, परन्तु हम लोग कष्ट से अपनी उदर-प्रीति कर पाते हैं। कोई गन (सहस्रगुने), मर घान के धनी होते हैं, कोई कुशूल (बखार) परिमित धान के सो कोई घड़े भर घान के ही धनी होते हैं, किन्तु हम तो केवल चोब मर घान के ही धनी हैं। सुभे ! इस अवस्था में मैं किस प्रकार दश धने हुए अतिथि की पूजा करूँ॥५६-५९॥

कपोतुवाच

अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत् । एतदप्यग्निने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम् ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं वृक्षमारुह्य पशिराट् । आलोकयामास तदा बह्वि दूरं ददर्श ह ॥६१॥
स तु गत्वा बह्विदेशं चञ्चुनोत्मुकमाहरत् । पुरोर्ज्ज्वलयाभास लुब्धकस्य कपोतकः ॥६२॥
शृङ्गकाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः । अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपोतराट् ॥६३॥
तर्पणं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः । अवशानि स्वकाङ्गानि प्रताप्य सुखमाप्तवान् ॥६४॥
क्षुधाग्निना बहुधमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी । मा मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत् ॥६५॥
स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम् । इष्टातिथीनां ये लोकास्तांस्त्वं प्राप्नुहि सुव्रत ॥६६॥

कपोत उवाच

मयि तिष्ठति नैवायं तव धर्मो विधीयते । इष्टातिथिर्भवामीह अनुजानीहि मां शुभे ॥६७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽग्निं त्रिरावृत्यं स्मरन्देवं चतुर्भुजम् । विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥६८॥
यथासुखं जुषस्वेति धदन्नग्निं तथाऽऽविशत् । तं दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजीवं लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥६९॥

कपोती ने कहा—अग्नि, जल, शुभवाणी, तृण, काष्ठ आदि जो कुछ हो, वही वाचक को दे देना चाहिये । यह व्याध तो शीत से दुःख पा रहा है ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इन बातों को सुनकर पशिराज कपोत वृक्ष पर चढ़ गया । उसने चारों ओर देखा तो दूर अग्नि दिखाई पड़ा । वह उस अग्नि वाले स्थान पर गया और अपनी चोंच से जलती लकड़ी ले आया । कबूतर ने शिकारी के आगे अग्नि जला दिया । उस अचोरी रात में वह कपोतराज सूखे काष्ठ, पतियाँ, और तिनके ला-लाकर बार-बार उसमें छोड़ने लगा । अग्नि को इस प्रकार जलता हुआ देखकर शीत से दुःखी वह शिकारी ठिठुरे हुये अपने अगो को आग से सेंक कर सुखी हुआ । भूख की ज्वाला से जलते हुए उस व्याध को देखकर कपोती ने अपने स्वामी से कहा—महाभाग ! भूख को मत छुड़ाओ, मत छुड़ाओ । यह मैं अपने शरीर से दुःखी शिकारी की भूख मिटाकर उसे प्रसन्न करूँगी । सुव्रत ! तुम (मेरी इस सेवा से) अतिथि-भूजको के जो लोक हैं, उन्हें प्राप्त करो ॥६१-६६॥

कपोत ने कहा—मेरे रहते दुम्हारा यह धर्म नहीं है । मैं स्वयं अतिथि का इष्ट-साधक बनूँगा । शुभे ! भूख को आशा दो ॥६७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा कर विश्वरूप, शरण्य, भक्तवत्सक, चतुर्भुज भगवान् महाविष्णु का स्मरण करता हुआ 'तुम सुखपूर्वक भोजन करो' यह कहकर अग्नि में घुस गया । इस प्रकार कबूतर को अपने को अग्नि में फेंकता हुआ देखकर शिकारी ने यह अगले वाक्य कहे ॥६८-६९॥

लुब्धक उवाच

अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम । यदिदं पक्षिराजेन मदर्थं साहसं कृतम् ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत्

॥७१॥

कपोत्युवाच

मां त्वं मुञ्च महाभाग दूरं यात्येष मे पतिः

॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्था कपोतकीम् । लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३॥

साऽपि प्रदक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ

॥७४॥

कपोत्युवाच

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम् । वेदे च विहितो मागः सवल्लोकेषु पूजितः ॥७५॥

व्यालप्राही यथा व्यालः विलादुद्धरते बलात् । एष त्वनुगतां नारीं सह भर्ता दिवं व्रजेत् ॥७६॥

तिष्ठ । कोटघोषंकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥७७॥

नमस्कृत्या भुवं देवानाङ्गा चापि वनस्पतीन् । आश्वत्थं तान्यपत्यानि लुब्धकः वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—अहा ! मेरे मानव शरीर के इस जीवन को धिक्कार है । क्योंकि आज पक्षिराज ने मेरे लिये अपूर्व साहस किया है ॥७०॥

ब्रह्मा ने कहा—वपोती ने इस प्रकार उसको बहता हुआ देखकर यह वाक्य कहा ॥७१॥

कपोती ने कहा—महाभाग ! तुम मुझको छोड़ दो देखो मेरा यह पति मुझसे दूर जा रहा है ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—कपोती की उन बातों को सुनकर वह शिकारी कुछ डर-सा गया और उसने बंधी हुई कपोती को गीघ छोड़ दिया । वह भी अपने पति और अग्नि की परित्रमा कर आगे बड़ी हुई बातें कहने लगी ॥७३-७४॥

कपोती ने कहा—'मर्ता के साथ सहगमन ही स्त्रियों का उत्तम धर्म है । मही मार्ग वेदों में प्रतिपादित है, और सब लोकों में यह श्रेष्ठ माना गया है । जिस प्रकार सँपरा साँप को बिल से बलपूर्वक बाहर खींच लाता है उसी प्रकार पति के साथ अनुगत (सती होनेवाली) नारी पति को लेकर स्वर्ग चली जाती है । जो अपने पति के साथ घती होगी है, वह मनुष्य के शरीर में जितने तीव्र करोड़ पचास लाख के लगभग रोग हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग में निवास करती है ।' इस प्रकार सहगमन की महिमा कह कर कपोती ने पूष्णी, देवगन्ध गंगा और वनस्पतियों को नमस्कार किया, अपने बच्चों को दाँस बँधाया और पुनः शिकारी से कहा ॥७८॥

कपोत्युवाच

त्वत्प्रसादान्महाभाग उपपन्न ममेदृशम् । अपत्याना क्षमस्वेह भर्त्रा यामि त्रिविष्टपम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हुताशनम् । प्रविष्टायै हुतबहे जयशब्दो न्यवर्तत ॥८०॥
गगने सूर्यसकाश विमानमतिशोभनम् । तदाऽऽत्तदौ सुरनिभौ दपती ददृशे ततः ॥८१॥
हर्षेण प्रोचतुर्भौ लुब्धक विस्मयान्वितम् ॥८२॥

दंपती ऊचतुः

गच्छावस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽसि महामते । आवयो स्वर्गसोपानमतिथिस्त्व नमोऽस्तु ते ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

विमानवरमाहूदौ तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि स । सधनु पञ्जरं त्यक्त्वा कृताञ्जलिरभापत ॥८४॥
लुब्धक उवाच

न त्यक्तव्यो महाभागी देय किञ्चिदजानते । अहमत्रातिथिर्मान्यो निष्कृति वक्तुमर्ह्यः ॥८५॥

दंपती ऊचतुः

गौतमीं गच्छ भद्र ते तस्या पाप निवेदय । तत्रैवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपापैर्विमोक्ष्यसे ॥८६॥
मुक्तपापः पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने । अश्वमेधफल पुण्य प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७॥

कपोती ने कहा—महाभाग ! तुम्हारी कृपा से मुझे यह मुश्रवसर प्राप्त हुआ । मेरे बच्चों को क्षमा करना अर्थात् बच्चों पर कृपा करना । मैं अब स्वामी के साथ स्वर्ग जा रही हूँ ॥७९॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर वह साध्वी कपोती अग्नि में प्रवेश कर गई । उसके अग्नि में प्रवेश करते ही जयध्वनि हुई । आकाश में अतिमनोहर सूर्य के समान चमकीला विमान और उस पर बैठ हुये वे पक्षी के जोड़े देवता के समान दिखाई पड़े । आश्चर्य में डूबे हुये उस व्याघ्र से उन दोनों ने आनन्दपूर्वक कहा ॥८० ८१॥

दपती ने कहा—हम दोनों देवलोक को जा रहे हैं । तुम से विश्व चाहते हैं । महामति ! तुम हम लोगों के स्वर्ग की सीढ़ी के समान अतिथि हो अर्थात् तुम्हारे अतिथि होने से ही स्वर्ग मिला है । तुमको नमस्कार है ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—उन दोनों को उत्तम देव विमान पर आरुढ़ देखकर वह शिकारी भी धनुष और पिंजरा पेंचकर हाथ जोड़ कर बोला ॥८४॥

व्याघ्र ने कहा—हे महाभाग ! मुझ अज्ञानी को इस प्रकार छोड़ना उचित नहीं । इस अनजान को भी कुछ ज्ञान देते जाइये । मैं आज मान्य अतिथि हूँ । इसलिये मेरे उद्धार का माग बताने की कृपा कीजिये ॥८५॥

दम्पती ने कहा—गौतमी नदी के तट पर जाओ । उनसे अपने पापों का निवेदन करो । तुम्हारा बह्मण्य हुआ । वही एक पक्ष तक स्नान करने से तुम सब पापों से छूट आओगे । पुनः पापमुक्त होकर उस गंगा में स्नान

सरिद्वरायां गीतम्यां ब्रह्मविष्णुवीशतंभुवि। पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम् ॥८८॥
विमानवरमाहूढः स्वर्गं गन्ताऽस्त्वसंशयम् ॥८९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा यचनं ताम्या तथा चक्रे स लुब्धकः। विमानवरमाहूढो दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः। कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा ॥
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे यै दिव्यमात्रमन् ॥९१॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कपोतमिति विभ्रुतम्। तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च ॥९२॥
जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३॥

इति श्रीमहमपुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपोततीर्थवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥
गीतमीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

कुमारस्तीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कार्तिकेयं परं तीर्थं कौमारमिति विभ्रुतम्। यन्नामश्रवणादेव कुलवाचूपधानभवेत् ॥१॥

करने से अरवमेष का फल पाकर पवित्र हो जाओगे। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर द्वारा प्रकट की हुई उस उत्तम सरिता में पुनः स्नान करने से ही अपने पापमय शरीर को छाड़कर उत्तम विमान पर चढ़कर निःसन्देह स्वर्ग चले जाओगे ॥८६-८९॥

ब्रह्मा ने कहा—उन बोना से ऐसी बात सुनकर व्याध ने वैसा ही किया। जिसके फलस्वरूप वह दिव्यदेह-पायी होकर उत्तम विमान पर आनंद हो गया, उत्तम दिव्य माला और वस्त्रा स सुशोभित हो गया और अप्सराएँ उसकी पूजा करने लगी। इस प्रकार वे कपोत, कपोती तथा तीसरा व्याध य तीना गीतमी गणा ने प्रभाव से स्वर्ग-लोक को चले गये। तब से वह तीर्थ कपोत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थ में स्नान दान पितृपूजन और जप, यज्ञ आदि कर्म करने से अक्षय और अनन्त पुण्य प्राप्त होते हैं ॥९०-९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कपोततीर्थ वर्णन नामक अस्तीर्वा अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय ८१

कुमारस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—कार्तिकेय नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जिसकी प्रसिद्धि कौमार तीर्थ नाम से भी है। उस

निहते तारके दंत्ये स्वस्थे जाते त्रिविष्टपे। कार्तिकेयं सुतं ज्येष्ठं प्रीत्या प्रोधाच पार्वती॥२॥
 यथासुखं भुङ्क्ष्व भोगांस्त्रैलोक्ये मनसः प्रियान्। ममाऽज्ञया प्रीतमनाः पितुश्चैव प्रसादतः॥३॥
 एवमुक्तः स वै मात्रा विशालो देवतास्त्रियः(?)। यथासुखं बलाद्रेमे देवपत्न्योऽपि रेमिरे॥४॥
 ततः संभुज्यमानासु देवपत्नीषु नारदः। नाशक्नुवन्वारयितु कार्तिकेयं दिवौकसः॥५॥
 ततो निवेदयामासु पार्वत्यं पुत्रकर्म तत्। असकृद्वायमाणोऽपि मात्रा देवं स शबितयूक्॥६॥
 नैवासावकरोद्वाक्यं स्त्रीध्वासक्तस्तु षण्मुखः। अभिशापभयाद्भूरीता पार्वती पर्यचिःतयत्॥७॥
 पुत्रस्नेहात्तयैवेशा देवानां कार्यसिद्धये। देवपत्न्यदिचर रक्षया इति मत्वा पुनः पुनः॥८॥
 यस्यां तु रमते स्कन्दः पार्वती त्वपि तादृशी। तद्रूपभात्मनः कृत्वा वर्तयामास पार्वती॥९॥
 इन्द्रस्य वरुणस्यापि भार्यामाहूय षण्मुखः। यावत्पश्यति तस्यां तु मातृरूपमपश्यत्॥१०॥
 तामपास्य नमस्याथ पुनरग्यामथाऽऽह्वयत्। तस्यां तु मातृरूपं स प्रेक्ष्य लज्जामुपेयिवान्॥११॥
 एवं बह्वीषु तद्रूपं दृष्ट्वा मातृमयं जगत्। इति संचिन्त्य गाङ्गेयो वैराग्यमगमत्तदा॥१२॥
 स तु मातृकृतं ज्ञात्वा प्रवृत्तस्य निवर्तनम्। निवार्यश्चेदहं भोगात्किं तु पूर्वं प्रवर्तितं॥१३॥
 तस्मान्मातृकृतं सर्वं मम हास्यास्पदं त्विति। लज्जया परया युक्तो गौतमीमगमत्तदा॥१४॥

तीर्थ का स्मरण करने मात्र से मनुष्य रूपवान् और पुत्रप्रीतिदि से संपन्न हो जाता है॥१॥ जब तारक नामक असुर के मारे जाने पर स्वर्ग में शान्ति स्थापित हो गई तब युद्ध में थके अपने ज्येष्ठ प्रिय पुत्र कार्तिकेय से पार्वती ने कहा॥२॥ 'तुम मेरी आशा और पिता की प्रसन्नता से इस त्रिभुवन में प्रसन्नतापूर्वक प्रिय भोगों का यथेच्छ उपभोग करो'॥३॥ माता से इस प्रकार आशा पा जाने पर कार्तिकेय बलपूर्वक देव स्त्रियों के साथ स्वेच्छापूर्वक विहार करने लगे देवस्त्रियाँ भी उनके साथ विहार करने लगी॥४॥ नारद । तदनन्तर इस प्रकार देवपत्नियों के साथ विहार करनेवाले कार्तिकेय को देवता किसी प्रकार से भी रोक न सके॥५॥ विवश हो उन्होंने माता पार्वती से उनके पुत्र का यह अनुचित कर्म कहा । माता और देवताओं से बार-बार मना किये जाने पर भी वे शक्तिशाली षण्मुख स्त्रीजनों में अधिक आसक्त हो जाने के कारण अपने को उस कार्य से विरत न कर सके॥६॥ तब अभिशाप (निन्दा) के भय से डरकर माता पार्वती सोचने लगी — 'पुत्र-स्नेह तथा देवा को कार्य सिद्धि के लिये देवपत्नियों भी चिररक्षणीय हैं' यह बार-बार सोचकर अन्त में जिस स्त्री से कार्तिकेय विहार करते थे उसी के समान अपना रूप बनाकर पार्वती रहने लगी॥७॥ ९॥ इधर इन्द्र और वरुण की स्त्रियों को समीप बुलाकर स्कन्द ने ज्यों ही देखा त्यों ही उनको उनमें मातृत्व का आभास मिला॥१०॥ यह देखकर वे अत्यन्त लज्जित हो गये । उनको हटाकर और प्रणाम कर पुन दूसरी को बुलाया । उसमें भी मातृरूप देखकर वे और भी लज्जित हुये॥११॥ उन बहुत सी देवभार्याओं में मातृत्व का दर्शन करने से उनको यह सारा ससार ही मातृमय है यह ज्ञान हो जाने से वैराग्य हो गया॥१२॥ उन्होंने 'यह सारा रहस्य कामासक्त मुझको निवृत्ति की ओर ले जाने के लिये ही माता द्वारा किया गया है यह जान लिया । वे सोचने लगे कि यदि मुझको भोगों से निवृत्त करना था तो क्यों पहले भोग की ओर भुझे झुकाया गया ? इसलिए माता द्वारा किया गया यह सब कुछ मेरे लिए हास्यास्पद है । यह सोचकर अत्यन्त लज्जित होकर गौतमी

इयं च मातृरूपा मे शृणोतु मम भाषितम् । इतः स्त्रीनामधेयं यन्मम मातृसमं मतम् ॥१५॥
एवं ज्ञात्वा लोकनाथः पार्वत्या सह शंकरः । पुत्रं निवारयामास वृत्तमित्यब्रवीद्गुरुः ॥१६॥
ततः सुरपतिः प्रीतः किं वदामीति चिन्तयन् । कृताञ्जलिपुटः स्कन्दः पितरं पुनरब्रवीत् ॥१७॥

स्कन्द उवाच

सेनापतिः सुरपतिस्तव पुत्रोऽहमित्यपि । अलमेतेन देवेश किं वरैः सुरपूजित ॥१८॥
अथवा दातुकामोऽसि लोकानां हितकाम्यया । याचेऽहं नाऽऽत्मना देव तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
महापातकिनः केचिद्गुरुद्वाराभिगामिनः । अत्राऽऽप्लवनमात्रेण धीतपापा भवन्तु ते ॥२०॥
आप्नुवन्तूत्तमा जातिं तिर्यञ्चोऽपि सुरेश्वर । कुरूपो रूपसंपत्तिमत्र स्नानादवानुयात् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति त शंभुः प्रत्यनन्दत्सुतेरितम् । ततः प्रभृति तत्तीर्थं कार्तिकेयमिति श्रुतम् ॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वकृतुफलप्रदम् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कुमारतीर्थवर्णनं नामकाशीतित-
मोऽध्यायः ॥८१॥

गीतमीमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

की ओर चले गये ॥१३-१४॥ वहाँ जाकर गीतमी को सम्बोधित करते हुये कहा कि यह गीतमी मेरी माता के समान है, अतः हे माता ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो 'आज से स्त्री मात्र का नाम मेरे लिये मातृनाम के तुल्य होगा, ऐसा मेरा विचार है' ॥१५॥ पार्वती के सहित लोचपति शंकर ने जब इस प्रकार की घटना सुनी तब अपने विरागोपुत्र को वहाँ से लौटाने का प्रयत्न किया और कहा कि जो कुछ होना था सो हो गया, अब चलो । पुनः गुरु-स्वामी शंकर प्रसन्न होकर सोचने लगे कि स्कन्द को क्या दिया जाय । इसपर स्कन्द हाथ जोड़कर पिता से बोले ॥१६-१७॥

स्कन्द ने कहा—देवेन्द्र ! मैं सेनापति (देव-सेनापति) हूँ, गुरु और तुम्हारा पुत्र भी हूँ, इसलिये मुझे वर देने से क्या प्रयोजन । अथवा यदि तुम वर देना ही चाहते हो तो मैं अपने लिये नहीं प्रत्युत लोकहित के लिये याचना करता हूँ, सो हे देव ! मुझे प्रदान कीजिये । जो कोई महापातकी हो, चाहे वे गुरु-पत्नीगामी ही क्यों न हो, व समी यहाँ गीतमी में स्नान मात्र से पाप मुक्त हो जायें । सुरेश्वर ! यहाँ के स्नान से तिर्यग्योनि में उत्पन्न भी उत्तम योनि को प्राप्त करें, और कुरूपजन रूप-सम्पदा को प्राप्त करें ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—शम्भु ने 'ऐसा ही हो' यह कहकर अपने पुत्र की वही हुई बातों का समर्थन कर उसको प्रसन्न किया । तभी से वह तीर्थं वातित्रेय नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से समस्त यत्नों का फल प्राप्त होता है ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कुमारतीर्थ-वर्णन नामक द्वाविंशोऽध्याय समाप्त ॥८१॥

अथ द्वयशीतितमोऽध्यायः

कृत्तिकातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्स्यात् कृत्तिकातीर्थं कार्तिकेयादनन्तरम् । तस्य श्रवणमात्रेण सोमपानफलं लभेत् ॥१॥
 पुरा तारकनाशाय भवरेतोऽपिबत्कवि । रेतोर्गर्भं कविं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्योऽस्पृहमुने ॥२॥
 सप्तर्षीणामृतुस्नाता वर्जयित्वा त्वरन्धतोम् । तासु गर्भं समभवत्पदसु स्त्रीषु तदाऽग्निनत ॥३॥
 तप्यमानास्तु शोभिष्या (?) ऋतुस्नातास्तु ता मुने । किं बुर्भं वयं नु गच्छाम किं कृत्वा सकृत् भवेत् ॥४॥
 इत्युक्त्वा ता मिथो गङ्गा व्यग्रा गत्वा व्यपीडयन् । ताम्यस्ते नि सृता गर्भा फेनरूपास्तदाऽम्भसि ॥५॥
 अम्भसा त्वेकता प्राप्ता वायुना सर्व एव हि । एकरूपस्तदा ताम्य षप्मुखं समजायत ॥६॥
 स्वावयित्वा तु तानाभानृषिपत्न्यो गृहाययु । तासां विकृतहृषाणि दृष्ट्वा ते ऋषयोऽद्भुवन ॥७॥
 गम्यता गम्यता शीघ्रं स्वरीं वृत्तिर्न युज्यते । स्त्रीणामिति ततो वत्स निरस्ता पतिभिस्तु ता ॥८॥
 ततो दुःखं समाब्रिष्टास्त्यक्ता स्वपतिभिश्च घट । ता दृष्ट्वा नारद प्राह कार्तिकेयो हरोद्भव ॥९॥

अध्याय ८२

कृत्तिकातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा न कहा—कार्तिकेय तीर्थ के बाद कृत्तिका नामक तीर्थ प्रसिद्ध है । उसके नाम सुनने मात्र से सोमपान का फल प्राप्त होता है ॥१॥ प्राचीन काल में तारक के वध के लिये कवि (अग्नि) ने शकर का धोय पी लिया । मुने । कवि को इस प्रकार शिववीर्य से युक्त देखकर ऋषिपत्नियों के मन में इच्छा उत्पन्न हुई ॥२॥ उस समय अश्वत्थी को छोड़ शेष सप्तर्षियां की पत्नियां ऋतु-स्नाता थीं । उन छह स्त्रियों को इच्छामात्र से अग्नि के द्वारा गम रह गया ॥३॥ मुनिनारद । वे ऋतुस्नाता सुंदर स्त्रियां यह देखकर अनुताप करने लगीं सोचने लगीं कि क्या करें हम वहाँ चले क्या करने से हमारा कल्याण होगा ॥४॥ इस प्रकार आपस में विचार कर व्याकुल हो गयीं के पास गइ । वहाँ जाकर अपने पेट को बलपूर्वक दबाने लगीं । जिससे उन सबों का गम फेन के रूप में बाहर जल में निकल पड़ा ॥५॥ वायु की प्रेरणा से और जल के वेग से सभी एक में मिल गये । तब वह मिलित गम एक शरीर और छह मुखवाला हो गया ॥६॥ ऋषिपत्नियां भी गम-साव के बाद अपने-अपने घर चली गयीं । उनके विरूप मुख को देखकर उन ऋषियों ने कहा—॥६॥ 'जाओ तुम लोग यहाँ से शीघ्र जाओ । स्त्रियों के लिये स्वरी वृत्ति (परपुरुष की कामना) उचित नहीं है । वस ! उसके बाद वे सभी स्त्रियां अपने पतियों से बहिष्कृत हो गइ ॥८॥ तब पतित्यक्ता वे छहो स्त्रियां अत्यन्त दुःखी हुई । उनको इस प्रकार दुःखी देखकर नारद ने कहा—शकर के पुत्र कार्तिकेय के पास जो

गाङ्गेऽग्निभवश्चेति विख्यातस्तारकान्तकः। तं यान्तु न चिरादेव प्रीतो भोगं प्रदास्यति ॥१०॥
 देवर्षेर्वचनादेव समभ्येत्य च घण्मुखम्। कृतिकाः स्वयमेवंतद्यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥११॥
 ताम्यो वाक्यं कृतिकान्यः कार्तिकेयोऽनुमन्य च। गौतमीं यान्तु सर्वाश्च स्नात्वाऽऽपूज्य महेश्वरम् ॥१२॥
 एष्यामि चाहं तत्रैव यास्यामि सुरमन्दिरम्। तथेत्युक्त्वा कृतिकाश्च स्नात्वा गङ्गा च गौतमीम् ॥१३॥
 देवेश्वर च संपूज्य कार्तिकेयानुशासनात्। देवेश्वरप्रसादेन प्रपद्युः सुरमन्दिरम् ॥१४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृतिकातीर्थमुच्यते। कार्तिकायां कृतिकायोगे तत्र यः स्नानमाचरेत् ॥१५॥
 सर्वकृतुफलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः। तत्तीर्थस्मरणं वाऽपि यः करोति शृणोति च ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कृतिकातीर्थवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥
 गौतमीमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

दशाश्वमेधतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दशाश्वमेधिक तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने। यस्य श्रवणमात्रेण ह्ययमेधफलं लभेत ॥१॥

गागेय (गंगा के पुत्र) अग्निमव (अग्नि से उत्पन्न) और तारकान्तक (तारक के वध करने वाले) नाम से प्रसिद्ध हैं, जाओ। वे सीधे ही प्रसन्न होकर मुक्ति के उपाय बतलायेंगे ॥९-१०॥ देवर्षि नारद ने कहने से घण्मुख स्कन्द के पास जाकर उन कृतिकाओं (ऋषि-मलियों ने) स्वयं जैसा हुआ था वैसा कह सुनाया। उन कृतिकाओं के मुख से इन बातों को सुनकर कार्तिकेय ने स्वयं विचार किया और कहा कि गौतमी नदी के पास आप सब जायें। वहाँ स्नान कर महेश्वर की पूजा करें। आप सबका उद्धार हो जायगा। मैं भी वहाँ आजँगा और देवमन्दिर में चला ॥११-१२॥ कृतिकाओं ने भी 'ठीक है' यह कहकर गौतमी गंगा में स्नान किया और कार्तिकेय के कथनानुसार महेश्वर की पूजा की। इस प्रकार देवेश्वर की कृपा से वे स्वर्ग को चली गईं ॥१३-१४॥ उस समय से वह स्थान कृतिकातीर्थ का नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जो कृतिका नक्षत्र से युक्त कार्तिकी पूर्णिमा को स्नान करता है, वह सब यज्ञों का फल प्राप्त करता है और परम धार्मिक राजा होता है। जो व्यक्ति उस तीर्थ का स्मरण करता है या वर्णन सुनता है, वह भी सब पापों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है ॥१५-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कृतिकातीर्थ वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८२॥

अध्याय ८३

दशाश्वमेधतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—'महामुनि। अब दशाश्वमेधिक तीर्थ के विषय में मुने, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य दस

विश्वकर्म्मसुतः श्रीमान्विश्वरूपो महाबलः। तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः॥२॥
 पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः। तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवनः॥३॥
 यक्ष्येहं हयमेधेश्च युगपद्दशभिर्मुने। इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं यव यक्ष्यामि सुरानिति॥४॥
 सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम। यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रावर्तन्त महाकृतून्॥५॥
 तत्राभवन्नृपिगणा आर्त्विज्ये मखमण्डले। युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा॥६॥
 पूर्णतां नाऽऽयुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः। विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्कृतून्॥७॥
 उपाक्रमत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययुः। दृष्ट्वाऽपूर्णास्ततो यज्ञान्ग्राज्जा गुरमभायत॥८॥

राजोवाच

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वा। पूर्णतां नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिनः॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च दुःखितो राजा कश्यपेन पुरोधसा। गीष्पतेभ्रातरं ज्येष्ठं गत्वा संवर्तमचनुः॥१०॥

कश्यपभौवनावूचतुः

भगवन्युगपत्कार्याभ्यश्चमेधानि मानद। दश संपूर्णतां याति तं देश तं गुरुं वद॥११॥

अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है॥१॥ महाबलवान् श्रीमान् विश्वरूप विश्वकर्मा का पुत्र था। उसके एक पुत्र था। उसके भी बलवान् भौवन नाम का एक पुत्र हुआ॥२॥ सब विद्याओं में निपुण कश्यप जी उसके पुरोहित थे। उस महापराक्रमी, सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा भौवन ने उनसे पूछा—॥३॥ ‘मुने! मैं एक ही साथ दस अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ।’ फिर उसने ब्राह्मण गुरु से पूछा कि कहाँ मैं देवताओं का यजन करूँ॥४॥ कश्यपजी ने उन-उन स्थानों को—जहाँ-जहाँ द्विजवर्योंने बड़े-बड़े यज्ञों को कराया था—यज्ञ करने के लिये बताया॥५॥ पुरोहित द्वारा एक साथ दस अश्वमेधयज्ञ प्रारम्भ करा दिये गये और उस यज्ञ-मण्डल में ऋत्विक् का कार्य करने के लिये ऋषिगण नियुक्त भी कर दिये गये। परन्तु वे यज्ञ पूर्ण नहीं हुये। यह देखकर राजा चिन्तित हो गये। पुनः वहाँ उन देव-यज्ञों को छोड़कर अन्यत्र उन्हीं दस यज्ञों को प्रारम्भ किया। वहाँ भी ज्योंही यज्ञ प्रारम्भ हुये, विघ्न और दोष उत्पन्न हो गये। फिर यज्ञों को अपूर्ण देखकर राजा ने गुरु से कहा॥६-८॥

राजा ने कहा—देश दोष, समय दोष से, मेरे अथवा आपके दोष से ही मेरे ये दस अश्वमेध यज्ञ पूर्ण नहीं हो रहे हैं॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर पुरोहित कश्यप के साथ वृत्तस्पति के बड़े भाई सप्तर्षि के पास जाकर कहा॥१०॥

कश्यप और भौवन ने कहा—भगवन्! प्रतिष्ठा देने वाले। दस अश्वमेध यज्ञ एक ही साथ करना चाहता हूँ। जहाँ और जिससे पूर्ण होंगे, उस स्थान और गुरु को बताइये॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा ऋषिश्रेष्ठः संवर्तो भौवनं तदा । अन्नवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदित्यति ॥१२॥
 भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना । आगत्य मामन्नवीच्च गुरुं देशादिकं च यत् ॥१३॥
 ततोऽहमन्नं पुनः भौवनं कश्यपं तथा । गौतमीं गच्छ राजेन्द्र स देशः यतु पुण्यवान् ॥१४॥
 अयमेव गुरुः श्रेष्ठः कश्यपो वेदपारगः । गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः ॥१५॥
 एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः । सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधानि बाजिनः ॥१६॥
 तच्छ्रुत्वा भौवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात् । कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षितः ॥१७॥
 ततः प्रवृत्ते यज्ञेन हयमेधे महाकृतौ । संपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यतः ॥१८॥
 ततोऽन्तरिक्षे वागुर्चरवाच नृपसत्तमम् । पूजयित्वा स्थितं विप्रानृत्विजोऽय स दस्पतीन् ॥१९॥

आकाशवागुवाच

पुरोधसे कश्यपाय ससंलवनकाननाम् । पृथिवीं दातुकामेन दत्त सर्वं त्वया नृप ॥२०॥
 भूमिदानस्पृहा त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम् । नान्नदानसमं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१॥
 विशेषतस्तु गङ्गाया श्रद्धया पुलिने मुने । त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः ॥
 कृतकृत्योऽस्ति भद्र ते नात्र कार्या विचारणा ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि-श्रेष्ठ संवर्त ने कुछ समय तक ध्यानस्थ होकर भौवन से कहा—‘ब्रह्मा के पास जाओ, वही गुरु और उचित स्थान को बतायेंगे।’ महाज्ञानी भौवन ने भी गुरु कश्यप के साथ मेरे पास आकर गुरु और देश आदि के विषय म पूछा। पुनः इसके बाद मैंने भौवन और कश्यप से कहा—‘राजेन्द्र । गौतमी के तट पर जाओ, वही यज्ञ के योग्य पुण्यभूमि है। वही वेदा के पारंगत विद्वान् कश्यप उत्तम गुरु हैं। इनकी और गौतमी की कृपा से एक ही अश्वमेध यज्ञ करने से और पुनः उसमें स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञ सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् दस अश्वमेध यज्ञ का फल होगा। उन बातों को सुन कर राजा भौवन गौतमी तीर पर गुरु कश्यप के साथ गये और यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। इससे उपरान्त महायज्ञ तथा यज्ञराज अश्वमेध के प्रारम्भ हो जाने पर राजा ने विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त किया। तब यह गुरु कश्यप को दक्षिणा म पृथ्वी देने के लिये उद्यत हो गया। तदनन्तर जब उसने विप्र, ऋत्विज और सदस्या की पूजा समाप्त कर ली तब अतर्गित म उच्च स्वर से राजा ने प्रति आकाशवाणी ने कहा ॥१२-१९॥

आकाशवाणी ने कहा—नृप । पुरोहित कश्यप को सौल, वन, वाननसहित दान देने की इच्छा कर तुमने सब कुछ दे दिया। इसलिये भूमिदान की इच्छा छोड़कर तुम अन्नदान दो, इससे बड़ा फल होगा। अन्नदान के समान पुण्यदायक दान इन तीनों लोकों म नहीं है। मुनि । यज्ञ के तट पर अन्नदान देने से सा और विशेष फल होता है। तुमने ही इस यज्ञ (गौतमी) के तट पर यह महान् अश्वमेध यज्ञ किया है, जिसम बहूत दक्षिणा दी गई है। इसलिये तुम कृतकृत्य हो गये। तुम्हारा कल्याण होगा। इस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥२०-२२॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम्

॥२३॥

पृथिव्युवाच

विश्वकर्मज सार्वभौम मा मा देहि पुनः पुनः । निमज्जोऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीयताम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च भौवनो भोत, किं देयमिति चाब्रवीत् । पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ग्राहणं वृत्तम् ॥२५॥

भूम्युवाच

तिला गावो धनं धान्यं यत्किंचिद्गौतमीतटे । सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६॥

गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेकं ददाति यः । तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

तद्भुयो धचनं श्रुत्वा भौवनः सार्वभौवनः । तथेति मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः । दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्स्यते ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दशाश्वमेधतीर्थवर्णनं नाम अश्वत्थामोऽध्यायः ॥८३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना मुन लेने पर भी उमने पृथ्वी दान वा विचार नहीं छोडा तब स्वयं पृथ्वी ने भौवन से कहा ॥२३॥

पृथ्वी ने कहा—विश्वकर्मा के बराबर ! सार्वभौम ! मुझको बार बार दान में मत दो । एसा करने से मैं जल में डूब जाऊँगी, इसलिये मेरा दान मत करो ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—यह बात सुनकर भौवन डर गया और पूछा—कि चीज तो बहुत देनी चाहिए । इसको सुनकर पुन पृथ्वी ने ब्राह्मणों से थिरे भौवन से कहा ॥२५॥

पृथ्वी ने कहा—निल, गौ, धन, अन्न आदि जो कुछ गौतमी के तट पर दिया जाता है, यह सब अक्षय दान होता है, तो भौवन ! क्या मुझे दान कर रहे हो ? जो इस गंगातीर पर आकर एक बौर अन्न भी दान दे देता है, उमने मैं गन्धूर्ग रूप से दान में दे दी जाती हूँ । इसलिये भौवन ! क्या मुझे दान में दे रहे हो ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी की बात सुनकर पत्रवर्तो भौवन ने उसको स्वीकार कर लिया और प्रचुर अन्न विप्रे को दिया । तब से यह तीर्थ दशाश्वमेध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वहाँ स्नान करने से दश अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में दशाश्वमेधतीर्थ वर्णन नामक त्रिगवीश अध्याय समाप्त ॥८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाचं तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद। तस्मिञ्शैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा ॥२॥
अञ्जना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी। केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाप्सरा ॥३॥
साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा। उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते ॥४॥
दक्षिणार्णवमम्यागात्केसरी लोकविश्रुतः। एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जनं पर्वतमभ्यगात् ॥५॥
अञ्जना चाद्रिका चैव अगस्त्यमृपिसत्तमम्। पूजयामासतुरुभे यथान्यायं यथासुखम् ॥६॥
ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे प्रियता वरः। ते आहूतुरुभेऽगस्त्यं पुत्रौ देहिं भुनीश्वर ॥७॥
सर्वेभ्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ। तथेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगामाऽऽशां स दक्षिणाम् ॥८॥
ततः कदाचित्ते काले अञ्जना चाद्रिका तथा। गीतं नृत्यं च हास्यं च कुर्वन्त्यौ गिरिमूर्धनि ॥९॥
वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मिती सुरौ। कामाशान्तधियो चोभौ तदा सत्वरमीयतु ॥१०॥

अध्याय ८४

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गौतमी के दाहिने किनारे पर पैशाच नामक एक दूसरा तीर्थ है, जिसकी ब्रह्मजानी भी पूजा करते हैं। उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ ॥१॥ नारद^१ ब्रह्मगिरि के बगल में अञ्जन नाम का एक पर्वत है। मुनिवर! उस पर्वत पर अञ्जना नाम की एक शाप-भ्रष्ट श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका शिरोभाग वानरी का था। उसके पति का नाम केसरी था। दूसरी अद्रिका नाम की थी ॥२-३॥ वह भी शापभ्रष्ट थी और उसी केसरी की स्त्री थी। उसका मुख मार्जारी के समान था ॥४॥ वही अञ्जन पर्वत पर वह भी रहती थी। एक समय लोकविख्यात केसरी दक्षिण सागर के समीप गया। इसी बीच ऋषि अगस्त्य अञ्जन पर्वत पर गये ॥५॥ ऋषि को आया देखकर अञ्जना और अद्रिका दोनों ने ऋषि-श्रेष्ठ अगस्त्य जी की यथोचित और सुखदायक पूजा की ॥६॥ उनकी सेवा से प्रसन्न होकर भगवान् अगस्त्य ने कहा 'वर माँगो'। उन दोनों ने अगस्त्य से कहा कि हे मुनीश्वर! सबने अधिक बलवान्, उत्तम गुण सम्पन्न और सब लोको का उपकार करने वाले दो पुत्र दीजिये। 'ऐसा ही होगा' ऐसा कहकर अगस्त्य जी दक्षिण दिशा की ओर चले गये ॥७-८॥ इसके अनन्तर किसी समय अञ्जना और अद्रिका दोनों पर्वत के शिखर पर गीत, हास्य और नृत्य कर रही थीं उस समय वायु और निर्ऋति नामक दो देवता उन दोनों को देखकर प्रसन्न हो गये और काम के बशीभूत होकर धीप्र ही वहाँ आ गये ॥१०॥ और कहा कि 'तुम दोनों हम वर देने वाले देवताओं की स्त्रियाँ हो जाओ'। उन दोनों

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

क्षुधातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षुधातीर्थमिति ख्यातं शृणु नारद तन्मताः । कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥१॥
 ऋषिरासीत्पुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः । परिग्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः ॥२॥
 गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्धं चान्नवारिणा । आत्मानं च क्षुधायुक्तं समृद्धं चापि गौतमम् ॥३॥
 द्दोक्ष्य कण्वोऽयं वपुष्यं वैराग्यमगमत्तदा । गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः ॥४॥
 समेन याच्ञाऽप्युक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवदेशमनि । न भोक्ष्येऽहं क्षुधार्तोऽपि पीडितोऽपि कलेवरे ॥५॥
 गच्छेयं गौतमीं गङ्गामजयेय च सपदम् । इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गां च पावनीम् ॥६॥
 स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य क्रुशासने । तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधां च परमापदम् ॥७॥

कण्व उवाच

नमोऽस्तु गङ्गे परमातिहारिणि, नमः क्षुधे सर्वजनातिकारिणि ।
 नमो महेशानजटोद्भवे शुभे, नमो महामृत्युमुखाद्विनि सृते ॥८॥

अध्याय ८५

क्षुधातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद । क्षुधातीर्थ नाम एक प्रसिद्ध तीर्थ है । मनुष्यों के सम्पूर्ण मनोरथा को पूर्ण करने वाले उस महापवित्र तीर्थ के विषय में अब कहूँगा, तुम एकाग्र मन से सुनो । प्राचीन काल में कण्व नामक वद-वेत्ता और तपस्वी ऋषि थे । वे एक बार क्षुधा से पीडित होकर विभिन्न आश्रमों का भ्रमण करते हुये गौतम ऋषि के पवित्र आश्रम में पहुँचे जो अन्न और जल से परिपूर्ण था । अपने को भूख से व्याकुल तथा गौतम को समृद्धिवाली देखकर कण्व को कठोर वैराग्य हो गया । सोचने लगे कि गौतम भी ब्राह्मण हैं, मैं भी उसी के समान तपस्या में निरत रहने वाला उत्तम ब्राह्मण हूँ । समान श्रेणी और ज्ञान रखने वाले से याचना करना अनुचित है इसलिये मैं गौतम के आश्रम में भूख से व्याकुल और शारीरिक कष्ट सहते हुए भी भोजन नहीं करूँगा । शीघ्र ही गौतमी गंगा के पास जाऊँगा और विमल अर्जन करूँगा । इस प्रकार का दृढ़ निश्चय कर वह मेधावी ऋषि परम पवित्र जगत् पर गया और स्नान से पवित्र हो बुशासन पर एकाग्रचित्त हो बैठ गया तथा गंगा और आपत्ति स्वरूपिणी 'क्षुधा' देवी की स्तुति करने लगा ॥१-७॥

कण्व बोले—ममानक कष्टों को दूर करने वाली गङ्गा ! तुमको नमस्कार है, सब लोगों को कष्ट देने वाली क्षुधा ! तुमको भी नमस्कार है । महेश की जटा से उत्पन्न होने वाली शुभे ! तुमको नमस्कार है और महामृत्यु के मुख से निकलने वाली भगवती क्षुधा ! तुमको भी नमस्कार है ॥८॥ पुण्यात्माओं के लिये शान्तरूपवाली ।

पुण्यात्मना शान्तरूपे शोधरूपे दुरात्मनाम् । सरिद्रूपेण सर्वेषां तापपापापहारिणि ॥९॥
क्षुधारूपेण सर्वेषां तापपापप्रदे नमः । नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रतर्दिनि ॥
नमः शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यनाशिनि ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवदद्वयम् । एकं गङ्गां मनोहारिं ह्यपरं भीषणाकृतिम् ॥
नमः कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तम ॥११॥

कण्व उवाच

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे । वैष्णवि त्र्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
त्र्यम्बकस्य जटोदभूतं गोतमस्याघनाशिनि । सप्तधा सागरं यान्ति गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सर्वपापकृता पापे धर्मकामायनाशिनि । दुष्टलोभमयि देवि क्षुधे तुम्यं नमो नमः ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

सत्कण्ववचनं श्रुत्वा सुप्रीते आहुतुर्द्विजम् ॥१५॥

गङ्गाक्षुधे ऊचतु

अभीष्टं यद वत्स्याणं वरावर्यं मुनत ॥१६॥

दुरात्माजी के लिये शोधस्वरूपे ! और सरिता के रूप में पापी तथा सज्जन सबके ताप पाप दोनों को हरन वाली भग ! तुमको नमस्कार करता हूँ । सबको भूषण के रूप में ताप और पाप देने वाली क्षुध ! तुमको नमस्कार करता हूँ । श्रेय (वत्स्याण) करने वाली ! पापा को नष्ट करने वाली तुमको नमस्कार है । शान्ति प्रदान करने वाली देवि ! तुमको नमस्कार करता हूँ । दारिद्र्यता का नष्ट करने वाली ! तुमको नमस्कार है ॥९-१०॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—इस प्रकार कण्व श्रुति कर रहे थे कि उनके सामने दो विभिन्न रूपवाली मूर्तियाँ प्रकट हुईं । एक गंगा की मनोहर मूर्ति दूसरी क्षुधा की भयंकर आकृति । यह देखकर कण्व हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करने लगे ॥११॥

कण्व शील—सब ममला को देने वाली भयंकरिणी ! ब्राह्मि ! शुभे ! माहेश्वरि ! वैष्णवि ! त्र्यम्बके ! देवि ! गोदावरि ! तुमको नमस्कार है । शिरोधन की जगह से उत्पन्न हो वाली ! गोत्रम के पापा को नष्ट करने वाली ! सात धाराओं में विभक्त होकर सागर में मिलन वाली ! गोदावरि ! आररा नमस्कार है । सब पापिणी के लिये पापकृत वाली ! धर्म काम अथ को नष्ट करने वाली ! दुष्ट लाभ से परिपूर्ण क्षुध ! देवि ! तुमको बार-बार नमस्कार है ॥१२-१४॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—श्रुति कण्व का वाग मुनिकर दाना देवियाँ प्रमत्त होकर ब्राह्मण कण्व न बाली ॥१५॥
गंगा और क्षुधा बीसी—वत्स्याण ! जाना मरारण ब्रह्मा ! मुनत ! कर मन्त्रा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

प्रोवाच प्रणतो गङ्गा कण्व क्षुधा यथाश्रमम्

॥१७॥

कण्व उवाच

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभव मम । आर्युचितं च भुक्तिं च मुक्तिं गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गीतमीं गङ्गां क्षुधा चाऽऽह द्विजोत्तम

॥१९॥

कण्व उवाच

भयि मद्दशजे चापि क्षुधे तृष्णे दरिद्रिणि । याहि पापतरे रक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०॥

अनेन स्तवेन ये धै त्वा स्तुवन्ति क्षुधातुरा । तेपा दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्वरोऽपर ॥२१॥

अस्मिन्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम् । ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२॥

यस्त्विद पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे । तस्य दारिद्र्यदुःखेभ्यो न भय स्याद्दरोऽपर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वमालयम् । तत प्रभृति तत्तीर्थं काण्व गाङ्ग क्षुधाभिधम् ॥

सर्वपापहर वत्स पितृणा प्रीतिवर्धनम्

॥२४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये क्षुधातीर्थवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥८५॥

गीतमोमाहात्म्ये षोडशोऽध्याय ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—विनीत कण्व ने क्षुधा और गंगा से त्रमयूक कहा ॥१७॥

कण्व बोले—देवि । मुझ मनोहर वामनाएँ और सम्पत्ति दो । गये । आयु धन भुक्ति और मुक्ति मुझे दो ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर द्विजवर कण्व ने पुन गीतमी गंगा और क्षुधा से कहा ॥१९॥

कण्व बोले—अतिपापे । तुम जाओ भरे अथवा मेरे वसजा के समीप क्षुधा । तृष्णा । दरिद्रा । रुद्धा । कक्का । तुम सभी मत आना । जो कोई क्षुधा पीनित व्यक्ति इस स्तुति से तुम्हारी प्रार्थना कर उनको दरिद्रता और दुःख सभी न सताय । दूसरा एव और घर है—इस महापुण्यवान् तीर्थ में जो कोई स्नान दान जप आदि भक्तिपूर्वक करे वह अवश्य धनवान् हो । जो इस स्तोत्र को तीर्थ अथवा घर पर ही पढ़ उसको दरिद्रता और दुःख से भय न हो । यह एक मेरा और घर है ॥२०-२३॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही हो यह कहकर वे दोनों अन्तर्हित हो गई । इधर कण्व भी अपने घर चले गये । उस समय से वह तीर्थ काण्व गांग या क्षुधा-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । वत्स । वह तीर्थ सब पापा को दूर करने वाला और पितरा की प्रीति बढ़ाने वाला है ॥२४-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में क्षुधातीर्थ वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

चक्रतीर्थगणिकासंगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अस्ति ब्रह्मन्महातीर्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम्। तत्र स्नानान्नरो भक्त्या हरेर्लोकमवाप्नुयात् ॥१॥
 एकादश्या तु शुक्लायामुपोष्य पृथिवीपते। गणिकासंगमे स्नात्वा प्राप्नुयादक्षयं पदम् ॥२॥
 पुरा तत्र यथा वृत्तं तन्मे निगदत शृणु। आसीद्विश्वधरो नाम वैश्यो बहूधनान्वितः ॥३॥
 उत्तरे वपसि श्रेष्ठस्तस्य पुत्रोऽभवदुपे। गुणवाद्रूपसंपन्नो विलासी शुभदर्शनः ॥४॥
 प्राणेश्योऽपि प्रियः पुनः काले पञ्चत्वमागतः। तया दृष्ट्वा तु तं पुत्रं दंपती दुःखपीडिता ॥५॥
 कुर्वति स्म तदा तेन सहैव मरणे मतिम्। हा पुत्र हन्त कालेन पापेन सुदुरात्मना ॥६॥
 योवने वर्तमानाऽपि नीतोऽसि गुणसागर। आवयोदध तयैव त्वं प्राणेश्योऽपि सुदुर्लभः ॥७॥
 इत्थं तु रुदितं श्रुत्वा दंपत्योः करुण यमः। त्यक्त्वा निजपुरं तूर्णं कृपयाऽऽपिष्टमानसः ॥८॥
 गोदावर्याः शुभे तीरे स्थितो ध्यायञ्जनार्दनम्। अपि स्वल्पेन कालेन प्रजा वृद्धाः समन्ततः ॥९॥
 इयत् इति मे पृथ्वी कथ्यतां येन पूरिता (?)। न कश्चिन्म्रियते जन्तुर्भारान्ता वसुंधरा ॥१०॥

अध्याय ८६

चक्रतीर्थ और गणिकातीर्थ का संगम-वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्मन्। चक्रतीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध महातीर्थ है, उस तीर्थ में भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१॥ पृथ्वीपते। मुख्यपथ की एकादशी को उपास कर गणिकासंगम में स्नान करने से मनुष्य अक्षय पद को प्राप्त करता है ॥२॥ पहले यहाँ जो कुछ हुआ, उसको मैं कह रहा हूँ, गुनो। कोई विश्वधर नाम का एक अत्यन्त धनवान् वैश्य था ॥३॥ श्रुये। उसकी दम्पती दुर्दैवक्या से उसको एक गुणवान् रूपवान् देखने में मुश्किल और दिलासी उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ प्राणो मे भी अधिक प्रिय वह पुत्र युवावर्या में ही मर गया। इस प्रकार अपने बालक को मराने के दोनो पति-पत्नी अत्यन्त दुःख से व्याकुल हो गये और पुत्र के ही साथ मरने का निश्चय कर लिया ॥५॥ इस प्रकार निश्चय कर पुत्र शीघ्र में विनाश करने लग—हा पुत्र! हे गुणसागर। लोक है कि पापी दुरात्मा काल के द्वारा तुम युवावर्या में ही हर लिये गये हो। तुम हम लोभ के लिए प्राणों में भी अधिक प्रिय और दुर्लभ हो ॥६-७॥ इस प्रकार दम्पति का करुणा उत्पन्न करने वाला विष्णु गुणकर यम का हृदय करुणा में पिघल गया और वे अपने लोक को छोड़कर शीघ्र ही गोदावरी के पवित्र तीर पर आकर बैठ गये और समस्त जनार्दन का ध्यान करने लगे ॥८॥ इसलिये मनुष्य जन्म के कारण छोड़े ही समय में पार और प्रजा की मर्यादा बढ़ गई। किसी भी प्राणी की मृत्यु नहीं होती थी इसलिए समुद्रपथ मार में आता न हो गई ॥९-१०॥ यम सोचने लगे कि इनके छोड़े समय में किमने मेरी पृथ्वी को भार में पूर्ण कर दिया।

ततो देवी गता तूर्णं वसुधा मुनिसत्तम। यत्रास्ति सुरसयुक्तं शक्रं परपुरजय ॥
दृष्ट्वा वसुधरामिन्द्रं प्रणिपत्येवमब्रवीत् ॥११॥

इन्द्र उवाच

किमागमनकार्यं त इति मे पृथ्वि कथ्यताम् ॥१२॥

धरोवाच

भारेण गुरुणा शक्रं पीडिताऽहं विना वधम्। कारणं प्रष्टुमायाता किमिदं कथ्यतां मम ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महीवाक्यमिन्द्रो वचनमब्रवीत् ॥१४॥

इन्द्र उवाच

कारणं यदि नाम स्यात्तदानीं ज्ञायते मया। सुराणां हि पतिर्यस्मादहं सर्वासु(?) मेदिनि ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अथ पृथ्वी तदा वाक्यं श्रुत्वा चाऽहं शचीपतिम्। यम आदिश्यतां तर्हि यथा सहारते प्रजा ॥१६॥
इति श्रुत्वा वचो मह्यं आदिष्टां सिद्धकिन्नराः। यमस्याऽऽनयने शीघ्रं महेन्द्रेण महामुने ॥१७॥
ततस्ते सत्वरं याता सर्वे धैवस्वतः पुरम्। नैवापश्यन्धमं तत्र ते सिद्धा सह निनरे ॥
तथाऽऽपत्य पुनर्वैपाढ्वार्तां शक्रे निवेदिता ॥१८॥

मुनिशास्त्र। इसके बाद वसुधरा देवी दौड़ी हुई वहाँ गई जहाँ देवताओं में युवक वायुपुर की जीतने वाले इन्द्र विराजमान रहते हैं। वसुधरा को देखकर इन्द्र ने प्रणाम किया और कहा ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देवि पृथ्वि! तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है? मुझसे कहो ॥१२॥

धरा ने कहा—इन्द्र! मैं भार की अधिकता से विना वध की ही (अर्थात् विना किसी से भार साधे ही) अत्यन्त पीड़ित हूँ। इसका कारण पूछने के लिए आई हूँ क्या कारण है मुझमें कहिये ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—पृथ्वी की उपर्युक्त बातें सुनकर मैंने यह बात कही ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—मेदिनि! यदि कोई कारण है तो अवश्य मैं उसको जान सक्ता हूँ क्योंकि मैं (मैं) अब स्यातां मे देवताओं का स्वामी हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—तब पृथ्वी ने इन्द्र की बात सुनकर पुनः इन्द्र से कहा—यदि ऐसा बात है तो यम को जागा दीजिये ताकि वे प्रजाओं का सहारा करें। पृथ्वी की यह बात सुनकर मरुट्ट ने सिद्ध किन्नरों का आदेश दिया कि यम को शीघ्र यहाँ बुला लाओ। तदनन्तर वे किन्नर गीघ्र ही यमपुरी में गये परन्तु उन किन्नर और सिद्धा ने वहाँ यमराज को नहीं देखा। तब गीघ्र ही वहाँ से लौटकर इन्द्र से सारी बातें कह सुनाई ॥१६-१८॥

सिद्धकिन्नरा ऊचुः

यमो यमपुरे नाथ अस्माभिनविलोकिता । महताऽपि सुयत्नेन वीक्ष्यमाण समन्तत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तोपा पृष्ट शक्रेण वै तदा । सविता स पिता तस्य यम कुत्राऽस्त इत्यय ॥२०॥

सूर्य उवाच

शक्र गोदावरीतीरे कृतान्तो वर्ततेऽधुना । चरस्तत्र तपस्तीव्र न जाने किं नु कारणम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो भानो शक्र शङ्कामुपाविशत् ॥२२॥

शक्र उवाच

अहो कष्ट महाकष्ट नष्टा मे सुरनायता । गोदावर्या तप कुर्याद्यमो वै दुष्टचेष्टित ॥

जिघृक्षुर्मत्पद नून देवा इति मतिर्मम ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सहस्रेन्द्रेण आहूतश्चाप्सरोगण ॥२४॥

इन्द्र उवाच

का भवतीषु कालस्य स्थितस्य तपसि द्विष । तप प्रणाशने शक्ता इति मे शीघ्रमुच्यताम् ॥२५॥

सिद्ध किन्नर बोले—नाथ ! यमलोक में हम लोग ने यम को नहीं देखा यद्यपि बड़े परिश्रम से चारों ओर खोज की ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—उन की इन बातों को सुनकर इन्द्र ने यम के पिता सविता से पूछा यम हम समय कहाँ है ? ॥२०॥

सूर्य ने कहा—इन्द्र ! पुत्र यम इस समय गोदावरी के तीर पर बैठा हुआ उग्र तपस्या कर रहा है मैं यह नहीं जानता कि क्या कारण है ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—सूर्य की यह बात सुनकर इन्द्र को सादेह हो गया ॥२२॥

इन्द्र बोले—अहो ! कष्ट है महाकष्ट है । मरी दबड़ की पदवी लुप्त होना चाहती है । यम निदबड़ ही ईर्ष्या भावना से गोदावरी तीर पर तपस्या कर रहा है । दबड़ ! निदबड़ ही वह मेरे पद को लुप्त करना चाहता है यही मरी चारणा है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र न इस प्रकार बहुर सहसा अंगरात्रा को बुलवाया ॥२४॥

इन्द्र बोले—तपस्या में लालीन शत्रु यम की तपस्या भंग करने में आप लोग सब से शीघ्र सफल है यह प्रश्न शीघ्र बतलाइए ? ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

इति शक्रवच श्रुत्वा नोचे काऽपि महामुने । अथ शक्र प्रकोपेण प्रत्युवाचाप्सरोगणम् ॥२६॥

इन्द्र उवाच

उत्तर नास्त्वोत्किञ्चिद्यामस्तहि वय स्वयम् । सज्जा भवन्तु विबुधा संग्रहयान्तु मा चिरम् ॥
घातयामो वय शत्रु तपसा स्वर्गकामुकम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते सति देवाना सेना प्रादुर्बभूव ह । इतीन्द्रहृदय ज्ञात्वा हरिणा लोकावारिणा ॥२८॥
प्रेषित चक्रिणा चक्र रक्षणाय यमस्य हि । चक्र यनाभवत्तत्र चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥२९॥
अयेन्द्र मेनका प्राह शङ्कितेति वचस्तदा ॥३०॥

मेनकोवाच

कालावलोकने नाल काचिदस्ति सुरदेवर । मरण च वर देव भवतो न यमात्युन ॥३१॥
रूपयौवनमत्तेय गणिकायाचन प्रभो । प्रेषण तत्प्रयच्छंसा स्वामित्व मन्यते त्वया ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या शक्र सुरवरेदवर । आदिदेशाबला क्षामा सत्कृत्य गणिका तया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—महामुन । इन्द्र की यह बात सुनकर किसी ने कुछ नहीं कहा । तब इन्द्र ने दद त्रिव से अप्सराया स कहा ॥२६॥

इन्द्र बोले—तुम लोग कुछ उत्तर नहीं दे रही हो, इसलिए हम स्वय जा रहे हैं । देवताया । तैयार हो जाओ, अपन सैनिका ने साथ युद्धाय प्रस्थान करो विलम्ब न हा । हम स्वय तपस्या द्वारा स्वय की इच्छा करने वाले शत्रु का वच करण ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—इतना कह देने पर दवताया की सना प्रस्तुत हो गई । इन्द्र की इस कुटिलता को जान कर शोकरसक, चक्र धारण करने वाले विष्णु ने यम की रक्षा के लिये चक्र को भेज दिया । जहाँ चक्र रक्षाय प्रवृत्त हुआ वह परम श्रेष्ठ चक्रतीर्थ हो गया । यह देखकर शक्ति मेनका न इन्द्र स यह वचन कहा ॥२८-३०॥

मेनका ने कहा—सुरेस्वर । हम लोगा म स कोई मृत्यु देव की ओर आँख उठाकर देखन का साहस नहीं कर सकती है । देव । आपने हाथ की मोन अच्छी है यम क नहीं । प्रभा । रूप और यौवन स मतवाली इस गणिका की यही प्रार्थना है । यदि आप भेजना चाहन हैं तो मुझे भेजिय, आपका प्रम-आदग मुझे सबदा स्वीकार है ॥३१-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उस गणिका की इन बाता का सुनकर मुनयाय इन्द्र न अच्छे प्रकार स सत्कार कर उस वृषाणी अबला गणिका को आज्ञा दी ॥३३॥

शक्र उवाच

गणिके गच्छ मे कार्यं कुरु सुन्दरि मा चिरम् । कृतकृत्याऽऽगता भूयो बल्लभा मे यया शची ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्यावप्य बच्च शक्रादुत्पत्य गणिकां दिशः । क्षणेन यमसानिध्यमायाता चारुपिणी ॥३५॥
यमान्तिकमनुप्राप्ता द्योतयन्ती दिशो दश । सलीलललित बाला जगौ हिन्दोलकलम् (चञ्चला) ॥३६॥
ततश्चचाल कालस्य मनो लोल चलाचलम् । अथोन्मील्य यमो नेत्रे कामपावकपूरिते ॥३७॥
तस्या व्यापारयामास श्रयशत्रो महामुनः । ततो विलीय सा सद्य सरित्त्वमगमत्तदा ॥३८॥
गौतम्या तु समागम्य गणिकागर्णाककरं । गीयमाना गता स्वर्गे तस्य तीर्थप्रभावतः ॥३९॥
गच्छन्तीं गणिकां दृष्ट्वा विमानस्यां दिव प्रति । विस्मय परम प्राप्त कालस्तरललोचन ॥
आऽऽदित्यन चाऽऽगत्य एवमुक्ता यमस्तदा ॥४०॥

सूर्य उवाच

कुरु पुत्र निज वम प्रजानां त्वं परिक्षयम् । पश्य धात सदा धान्त सृजन्तं येषां प्रजा ॥
पर्यटन्तं त्रिलोकं मा बहन्तीं वसुधां प्रजा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा यमो व्याप्य पितृवचनमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र बोले—गणिका ! जाओ मेरे बाप को पूरा करा । मुन्दरि ! बिम्ब न हो । सफलता प्राप्त करने पर तुम शची की भाँति मेरी प्रिया बनावो ॥३४॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—इन्द्र की इत बाला को मुनकर मनाहर रूप वाली वह मनका आकाश मार्ग से उड़कर राग भर मही यम के समाप आ गई। (जाना गरीर-वार्ति से दगा गिआआ को प्रकाशित करती हुई वह बाला (गणिका) यम के समाप आकर बड़े हाव भाव से आशयन हिन्दोलकल (राग) गान लगी। उसने मधुर गान को मुनकर यम का चञ्चल मन विचलित हो गया।) महामुनः ! यम न बोधामि त मरे नेत्रा को शायकर बत्थाण भार्य म बाधा पट्टवान बाला गणिका की आर दगा । दगन ही वह उसी क्षण अन्त्य होकर मनीष्य म परिणत हो गई और गौतमा म मिल गई। उम ताप के प्रभाव से वह गणिका गंगा और विप्ररा के गान से सगुन हाकर स्वर्ग को गयी गई। विमान म बैठकर जब वह स्वर्ग की ओर जान लगी तब यह दगकर चञ्चललाचन बाल को अत्यन्त आश्रय हुआ। तल्लवान् उम समय स्वयं मूय न आकर यम से कहा—॥३५ ४०॥

सूर्य न ब्रह्मा—पुत्र ! अपना वसन्त—प्रजा का गान करो। देगा ब्रह्मा यशस्य प्रजा की श्रुति करन रहने है बापू गवना बहन रहने है मैं गवना विमुचन का चक्रर लगावा करना हूँ और पृथ्वी अपने वसन्त पर प्रजा का गान बाना रहती है ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—गिआ की दग बाला का मुनकर यम न कहा—॥४२॥

यम उवाच

एतन्न गंहित कर्म कुर्यामहमिदं ध्रुवम् । कर्मण्यस्मिन्महाकूरे समादेष्टु न वाऽर्हसि ॥४३॥
 इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं भानुर्ध्वचनमब्रवीत् । किं नाम गंहित कर्म तव कर्तुमलं यम ॥४४॥
 किं न दृष्टा त्वया यान्ती गणिका गणिकिकरं । गीयमाना दिवं सद्यो गीतमीतोयमाप्नुता ॥४५॥
 त्वया चात्र तपस्तीव्रं कृतं पुत्रं सुदुष्करम् । नैवान्तं तस्य पश्यामि तस्माद्गच्छ निजं पुरम् ॥४६॥
 इत्युक्त्वा भगवान्भानुस्तत्र स्नात्वा गतो दिवम् । यमोऽपि सगमे स्नात्वा ततो निजपुरं ययौ ॥४७॥
 भूतहाऽपि ततः शङ्कां सत्याजं च महामुने । तथा दृष्ट्वा यमं यान्तं चक्रे चक्रं प्रयाणकम् ॥४८॥
 भगवान्यत्र गोविन्दो वनमालाविभूषितः । इति यं शृणुयान्मर्त्यं पठेद्वाऽपि समाहितः ॥४९॥
 आपदस्तस्य नश्यन्ति दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थगणिकासगमवर्णनं नाम पडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥
 गीतमीमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

यम बोले—यह कूर और नित्य कर्म में नहीं करूँगा यह ध्रुव है। यह जति कूर कम करने के लिये आप आदेश न दीजिये। पुत्र यम की इन बातों को सुनकर सूर्य ने कहा—यम ! क्या मैं तुमको गंहित कर्म करने के लिये बन्नी भी कह सकना हूँ। क्या तुमने अभी-अभी गीतमी-जल में स्नान करने के फलस्वरूप गणिका को स्वयं की आर जाते नहीं देखा जिसका गुणगान देवगण सेवक भाव से करते जा रहे थे? पुत्र ! तुमने तो इस नदी के पुनीन तीर पर अर्न्धों से न करने योग्य कठिन तप किया है इस तपस्या का अन्त (नाश) नहीं देख रहा हूँ इसलिये तुम वीर अपने लोक को जाओ। यह कह कर भगवान् सूर्य गीतमी में महाकर स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर यम भी सगम में स्नान कर अपने लोक को चले गये। महामुने ! प्राणिया का वध करने वाले यम ने भी (गंहित वध करने की) शक्ता को छोड़ दिया। इस प्रकार यम को जाते हुए देखकर चक्र भी जहाँ वनमाला से सुशोभित भगवान् गोविन्द के वहाँ चला गया। इस उपर्युक्त कथा को जो कोई मनुष्य एवाप्रचित से सुनता है या पढ़ता है उसको सभी आप तियाँ दूर हो जाती हैं और वह दीर्घायु प्राप्त करता है ॥४३-५०॥

धी ब्रह्ममहापुराण मे चक्रतीर्थ-गणिका-सगम-वर्णन नामक टियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अहल्यासगमेन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अहल्यासगम चेह तीर्थं त्रैलोक्यपावतम्। शृणु सम्यङ्मुनिश्रेष्ठ तत्र वृत्तिमिदं यया ॥१॥
 कौतुकेनातिमहता मया पूर्वं मुनीश्वर। सृष्टा कन्या बहुविधा रूपवत्यो गुणान्विता ॥२॥
 तासामेका श्रेष्ठतमा निर्ममे शुभलक्षणाम्। ता बाला चास्सर्वाङ्गीं दृष्ट्वा रूपगुणान्विताम् ॥३॥
 को वाऽस्या पोषणे शक्त इति मे बुद्धिराविशत्। न दैत्याना सुराणां च न मुनीना तथैव च ॥४॥
 नास्त्यस्या पोषणे शक्तिरिति मे बुद्धिरन्वभूत्। गुणज्येष्ठाय विप्राय तपोयुक्ताय धीमते ॥५॥
 सर्वलक्षणयुक्ताय वेदवेदाङ्गवेदिने। गौतमाय महाप्राज्ञमददा पोषणाय ताम् ॥६॥
 पालयस्व मुनिश्रेष्ठ यावदाप्स्यति यौवनम्। यौवनस्या पुनः साध्वीमानयेया ममान्तिकम् ॥७॥
 एवमुक्त्वा गौतमाय प्रादा कन्या सुमध्यमाम्। तामादाय मुनिश्रेष्ठ तपसा हतकल्मषः ॥८॥
 ता पोषयित्वा विधिवदलकृत्य ममान्तिकम्। निर्विकारो मुनिश्रेष्ठो ह्यहल्यामानयत्तदा ॥९॥

अध्याय ८७

अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार में त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला अहल्या-सगम नाम का एक तीर्थ है। मुनिश्रेष्ठ ! इस विषय में जो कुछ हुआ, उसको मलीमाति मुनी ॥१॥ मुनीश्वर ! बहुत पहले मैंने अत्यन्त कौतूहल वश बहुत-सी रूपवती और गुणवती कन्याओं को बनाया ॥२॥ उनमें से एक को सर्वलक्षणसम्पन्न और अतिगुन्द बनवाया। उस रूप और गुण सम्पन्न, मनोहर अर्थात् बाली बाला को देखकर इसके पालन-पोषण का भार कौन उठा-येगा, यह भावना मेरे मन में उत्पन्न हुई ॥३॥ इस पालन-पोषण की क्षमता न तो दैत्यों न देवताओं और न तो मुनियों में ही है ऐसी मरी धारणा हुई। यह सोचकर गुणश्रेष्ठ, परमनरसवी, बुद्धिमान्, वेद-वेदांग वे ज्ञाता, सर्वलक्षण-सम्पन्न विप्र गौतम को पालन करने के लिये उस परम बुद्धिमती कन्या को दे दिया और कहा कि मुनिश्रेष्ठ ! तुम इसका तब तक पालन करो जब तक कि यह युवावस्था को न प्राप्त हो जाय। पुनः युवनी हो जाने पर इस साध्वी को मर समीप ले आना ॥४-७॥ यह कहकर मैंने उस गुन्दर कटिवाली कन्या को गोतम को दे दिया। मुनिश्रेष्ठ ! तब से पापा को दूर कर देने वाले उस मुनि ने उसको ले लिया और नियत अवधि तक उसका विधिक पालन-पोषण किया। और इसका बाद आभूषण से आभूषित कर निर्विकार भाव से अहल्या को मरे समीप ले आया ॥८-९॥ उस समय उसको देखकर सब अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवता 'गुरेयान्'। मुनको दीक्षित, मुनको दीक्षित'

ता दृष्ट्वा विबुधा सर्वे शशग्निवरुणादयः । मम देया सुरेशान इत्पूचुस्ते पृथक्पृथक् ॥१०॥
तयैव मुनय साध्या दानवा यक्षराक्षसाः । तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा कान्यार्थमयः सगताम् ॥११॥
इन्द्रस्य तु विशेषण महाश्वाभूतदा ग्रहः । गौतमस्य तु माहात्म्य गाम्भीर्यं धैर्यमेव च ॥१२॥
स्मृत्वा सुविस्मितो भूत्वा ममैवमभवत्सुधी । देयेय गौतमार्येव नान्ययोग्या शुभानना ॥१३॥
तस्मा एव तु ता दास्ये तयाऽप्येवमचिन्तयम् । सर्वेषां च मतिर्धैर्यं मयित् चालयाऽनया ॥१४॥
अहल्येति सुरं प्रोक्तं मया च ऋषिभिस्तदा । देवानुर्पीस्तदा वीक्ष्य मया तत्रोक्तमुच्चकं ॥१५॥
तस्मै सा दीयते सुभ्रूयं पृथिव्या प्रदक्षिणाम् । कृत्वोपतिष्ठते पूर्वं न चान्यस्मै पुनः पुनः ॥१६॥
ततः सर्वे सुरगणा श्रुत्वा वाक्य मयेरितम् । अहल्यार्य सुरा जग्मु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥१७॥
गतेषु सुरसधेषु गौतमोऽपि मुनीश्वरः । प्रयत्नमकरोत्कचिदहल्यार्यनिभः तथा ॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्सुरभिः सर्वकामधुक् । अर्धप्रसूता ह्यभवत्ता ददर्श स गौतमः ॥१९॥
तस्याः प्रदक्षिणं चक्रे ह्यमुर्वीति सस्मरन् । लिङ्गस्य च सुरेशस्य प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥२०॥
तयोः प्रदक्षिणं कृत्वा गौतमो मुनिसत्तमः । सर्वेषां चैव देवानामेकं चापि प्रदक्षिणम् ॥२१॥
नैवाभवद्भुवो गन्तुं सजातं द्वितयं मम । एव निश्चित्य स मुनिर्ममान्तिकमयाम्यगात् ॥२२॥

इस प्रकार अलग अलग कहने लगे ॥१०॥ इनी प्रकार सभी मुनि साध्य दानव यक्ष राक्षस कन्याओं मायने के लिये आ गये । इस प्रकार कन्या के लिये सबको सामूहिक रूप से आया देखकर और इस विषय में इंद्र का विशेष रूप से महान् आग्रह देखकर मुझको उत्पन्न आश्चर्य हुआ ॥११॥ इसके साथ ही गौतम का धैर्य गम्भीरता और उसकी महत्ता को स्मरण कर मैं तो अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया । इतने में मुझे यह सुबुद्धि हुई कि यह शुभाचना गौतम को ही दी जानी चाहिए यह दूसरा के योग्य नहीं ॥१२ १३॥ अतः उसको ही दूँगा । फिर भी मैंने इस प्रकार सोचा कि इस बात ने सबके मान और धैर्य को मथ डाला है इसलिये इसका नाम अहल्या रखा जाय इसका समर्थन ऋषिया और देवताओं ने भी किया ॥१४॥ तब मैंने देवताओं और ऋषियों की ओर देखकर ऊँचे स्वर से कहा कि यह सुन्दर भौं बाली कन्या उसी को दी जायगी जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर सबसे पहले आ जायगा दूसरे को दो बार बार नहीं दी जायगी ॥१५ १६॥ इससे वाद मेरी वही हुई बात को सुनकर सब देवता अहल्या को प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिये चले गये ॥१७॥ मुनीश्वर । देवताओं के चले जाने पर गौतम ने भी अहल्या के लिए कुछ इस ढंग का प्रयत्न किया । ब्रह्मन् । इसी बीच सब कामनाओं को देने वाली कामधनु अर्ध प्रसूता (आधा बच्चा जनने वाली) हुई । गौतम ने उसको देख लिया ॥१८ १९॥ यह पृथ्वी है इस बात का स्मरण कर उसने उसी की प्रदक्षिणा की और सुरेश शङ्कर के लिंग की भी प्रदक्षिणा की ॥२०॥ उन दोनों की प्रदक्षिणा कर मुनि गौतम 'सब देवताओं ने अब तक पृथ्वी की एक ही प्रदक्षिणा नहीं की तब तक प्रदक्षिणा करने वाले मैंने तो दो प्रदक्षिणाएँ कर दी यह मन में निश्चय कर मेरे समीप आया ॥२१ २२॥ महामति गौतम ने मुझे नमस्कार करके यह

नमस्कृत्वाऽग्रवीद्वाक्य गौतमो मां महामति । कमलासन विश्वात्मन्नमस्तेऽस्तु पुन पुन ॥२३॥
 प्रदक्षिणीकृता ब्रह्मन्मयेयं वसुधाऽखिला । यदत्र युक्त दवेश जानीने तद्भूवास्वयम् ॥२४॥
 मया तु ध्यानयोगन ज्ञात्वा गौतममब्रवम् । तवैव दीयते सुभ्रू प्रदक्षिणमिदं कृतम् ॥२५॥
 धर्म जानीहि विप्रये दुर्ज्ञेय निगमैरपि । अर्घप्रसूता सुरभि सप्तद्वीपवती मही ॥२६॥
 कृता प्रदक्षिणा तस्मा पृथिव्या सा कृता भवेत् । लिङ्गं प्रदक्षिणीकृत्य तदेव फलमाप्नुयात् ॥२७॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नन मुने गौतम सुप्रत । तुष्टोऽहं तव धर्मेण ज्ञानेन तपसा तथा ॥२८॥
 दत्तयमृषिशार्दूल कन्या लोकवरा मया । इत्युक्त्वाऽहं गौतमाय अहल्यामददा मुने ॥२९॥
 जात विवाहे ते देवा कृत्वेलाया प्रदक्षिणम् । शनं शनैरयाऽऽगत्य वदंशु सर्व एव ते ॥३०॥
 त गौतममहल्या च दाम्पत्य प्रीतिवर्धनम् । ते चाऽऽगत्याय पश्यन्तो विस्मिताश्चाभवन्सुरा ॥३१॥
 अतिक्रान्ते विवाहे तु सुरा सर्वे दिव ययुः । समत्सर शचीभर्ता तामीष्य च दिव मयौ ॥३२॥
 तत प्रीतमनास्तस्मै गौतमाय महात्मने । प्रादा ब्रह्मगिरिं पुण्य सर्वकामप्रदं शुभम् ॥३३॥
 अहल्याया मुनिश्रेष्ठो रेमे तत्र स गौतम । गौतमस्य कयां पुण्या श्रुत्वा शत्रस्त्रिविष्टपे ॥३४॥

वाक्य कहा— कमलासन । विश्वात्मन् । आपको मेरा बार बार नमस्कार है ॥२३॥ ब्रह्मन् । मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर दी । देवेश । इस विषय में जो कुछ सचता है उसको आप स्वयं जानते हैं, ॥२४॥ मैंने भी ध्यानावस्थित होकर योग-दृष्टि से यह सब कुछ जान लिया और गौतम से कहा यह मुंदर की वाली अहल्या तुमको ही दी जायगी क्योंकि तुमने प्रदक्षिणा समाप्त कर दी है ॥२५॥ विप्रयि । गार्हो स भी कठिनाई से जानने योग्य घम का तुम जानते हो । सबमुच अधप्रसूता (आधी ब्याई) कामधनु सात द्वीप वाली पृथ्वी है ॥२६॥ इनकी की हुई प्रदक्षिणा पवित्री की की हुई प्रदक्षिणा के बराबर हुई और गिरिवर्ग की प्रदक्षिणा से पृथ्वी प्रदक्षिणा का ही फल मिलता है ॥२७॥ इमालिये मुने । उत्तम व्रत करने वाल गौतम । तुम्हारे धर्म ज्ञान और तपस्या से मैं मली मति प्रसन्न हूँ ॥२८॥ श्रियिमादूल । सबमुन्दरी यह कन्या तुमको दे दी गई । मुन । यह बहुरं मैन गौतम को अहल्या दे दी ॥२९॥ इयर विवाह हा जाने पर वे देवता पृथ्वी की पतिव्रता कर धीरे धीरे मेने पाग आये और यह सब कुछ दखा ॥३०॥ वे देवता आकर अहल्या और गौतम का प्रेम बढ़ाने वाला दाम्पत्य (विवाह-मन्त्र) देकर अत्यन्त विस्मिन् हो गय ॥३१॥ इस प्रकार विवाह विधि समाप्त हो जाने पर सब देवता स्वर्ग को चले गय । परन्तु शचीपति इंद्र ने अत्यन्त ईर्ष्या की दृष्टि से अहल्या को देगते हुए स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥३२॥ इनका बाद मैंने प्रसन्न होकर महामा गौतम को सब कामनाओं को देने वाला पवित्र ब्रह्मगिरि दे दिया । उस पर्वत पर मुनिधृष्ट गौतम आनन्द-पूवक अहल्या के साथ बिहार करने लगे इस पवित्र शुभमयक गौतम के दाम्पत्य प्रेम की कथा को इंद्र ने स्वर्ग में

तमाश्रमं तं च मुनि तस्य भार्यामनिन्दिताम् । भूत्वा शोहाणयेण द्रष्टुमागच्छतऋतु ॥३५॥
 म दृष्ट्वा भवनं तस्य भार्या च विभवं तथा । पापीयसीं मतिं कृत्वा अहल्यां समुदक्षत ॥३६॥
 नाऽऽमानं न परं देशं कालं शापादुपेभयम् । न बुबोध तदा चत्स कामावृष्टः शतऋतु ॥३७॥
 तद्व्यामपरमो नित्यं सुरराज्येन गवितः । संतप्ताङ्गः कयं कुर्या प्रवेशो मे कयं भवेत् ॥३८॥
 एवं वसन्विप्रहृषो नान्तरं त्वध्यगच्छतः । स कदाचिन्महाप्राज्ञः कृत्वा पीर्वाङ्गिकीं त्रयाम् ॥३९॥
 सहितो गौतमः शिष्यनिर्गतश्चाश्रमाद्बहिः । आश्रमं गौतमीं विप्रान्धान्यानि विविधानि च ॥४०॥
 द्रष्टुं गतो मुनिवर इन्द्रस्तं समुदक्षतः । इदमन्तरमित्युक्त्वा चक्रे कार्यं मन प्रियम् ॥४१॥
 रूपं कृत्वा गौतमस्य प्रियेषुः स शतऋतुः । ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमहल्या वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

आकृष्टोऽहं तव गुणं रूपं स्मृत्वा स्खलत्पद । इति बुबुहसः भूस्तमादायान्त समाविशत् ॥४३॥
 न बुबोध त्वहल्या त जात मेने तु गौतमम् । रममाणः यथासीह्यं प्रागाच्छिष्यं स गौतमः ॥४४॥

मुना ॥३३-३४॥ ईर्ष्यालु शतऋतु इन्द्र उस आश्रम, उस मुनि और मुनि की पवित्र पतिव्रता भार्या को देखने के लिये ब्राह्मण के देश में आया ॥३५॥ गौतम के भवन भार्या और विभव को देखकर उसके मन में पापवृद्धि उत्पन्न हो गई । उसने दूरी दृष्टि से अहल्या को देखा ॥३६॥ वत्स ! उस काम के वशीभूत शतऋतु इन्द्र ने न तो आत्मगौरव न श्लोकपवाद, न देश, न काल को ही समझा और न तो ऋषि-शाप के भय का ही उसको ज्ञान रहा ॥३७॥ वह कामाग्नि से दग्ध शरीरवाला सर्वदा अहल्या के ही ध्यान में मस्त रहा । उसको अपने सुर राज्य पर अभिमान था । वह तो यही सोचता रहा कि 'बया कर्ह' कैसे ऋषि के घर में मेरा प्रवेश होगा' ॥३८॥ इस प्रकार ब्राह्मण के देश में छिपा हुआ इन्द्र ऋषि-आश्रम में रहने लगा किन्तु उसको अवसर नहीं मिला । किसी समय वह महाबुद्धिमान् गौतम मुनि पूर्वाङ्ग की नित्यत्रिया समाप्त कर शिष्यों के साथ आश्रम से बाहर चले गये ॥३९॥ इन्द्र ने देखा कि मुनि आश्रम गौतमी, विप्रों और विविध धान्यों को देखने के लिए चले गये हैं । तो अब मुझे अवसर मिला, यह कहकर अपना अभिलषित कार्य करने लगा ॥४०॥ प्रिय अहल्या को पाने की इच्छा रखने वाले शतऋतु ने गौतम का रूप धारण कर लिया और उस सर्वाङ्ग सुन्दरी अहल्या को देखकर यह कहा ॥४१॥

इन्द्र ने कहा—मैं तुम्हारे गुणों से शिवा हुआ (वशीभूत) हूँ । तुम्हारे रूप का स्मरण कर मेरे पैर सीधे नहीं पड़ते (अपने पद से भ्रष्ट हो गया हूँ) । यह कहकर हँसता हुआ उसका हाथ पकड़कर अन्त पुर में घुस गया । अहल्या ने उसको जार (उपपति) नहीं समझा किन्तु गौतम ही मान लिया । इसलिय उसके साथ मुख-पूर्वक विहार करने लगी । इसी समय अपने शिष्यों सहित गौतम पहुँच गये । नित्यप्रति प्रिय वचन कहने वाली

आगच्छन्त नित्यमेव अहल्या प्रियवादिनी । प्रतिपाति' प्रिय वक्ति तोषयन्ती च त गुणं ॥४५॥
 तामदृष्ट्वा महाप्राज्ञो मेने तन्महदभुतम् । द्वारस्थित मुनिश्रेष्ठ सर्वे पश्यन्ति नारद ॥४६॥
 अग्निहोत्रस्य शालाया रक्षिणो गृहकमिण । ऊचुर्मुनिवर भीता गौतम विस्मयान्विता ॥४७॥

रक्षिण ऊचु

भगवन्निमिद चित्र बहिरन्तश्च दृश्यसे । प्रिययाञ्जत प्रविष्टोसि तथैव च बहिर्भवान् ॥
 अहो तप प्रभावोऽय नानारूपधरो भवान् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्त्वन्त प्रविष्टः को नु तिष्ठति । प्रिये अहल्ये भवति किं मा न प्रतिभायसे ॥४९॥
 इत्थंपेवंचन श्रुत्वा अहल्या जारमग्नवीत् ॥५०॥

अहल्योवाच

को भवान्मुनिरूपेण पाप त्व कृतवानसि । इति श्रुती शयनादुत्थिता सत्वर भयात् ॥५१॥
 स चापि पापकृच्छ्रो विडालोऽभून्मुनेर्भयात् । प्रस्तां च विकृता दृष्ट्वा स्वप्रिया दूयिता तदा ॥५२॥

अहल्या गौतम के आने पर उनका सत्वार करने के लिये द्वार तक जाती मधुर वचन बोलती थी और अपने स्त्रीमुलम गुणों से उनको सतुष्ट करती थी । किन्तु आज उसको पूरा की भाँति न देता वह उस महाप्राज्ञ को अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ा । नारद ' द्वार पर खड़े मुनिश्रेष्ठ को समीप देखने लगे । अग्निहोत्राग्य के रक्षण और घर पर काम करने वाला सेवक आश्चर्य चकित और मयभीत हात्तर मुनि से कहने लगे ॥४३-४७॥

रक्षकों ने कहा—भगवन् ! यह क्या ! आप बाहर और भीतर सबत्र दिगाई दान हैं अभी प्रिया व माय अतः पुर म प्रविष्ट दृष्ट और अभी उसी प्रकार बाहर भी दिगाई दे रहे हैं । अहा ! यह तपस्या का प्रभाव है आप विभिन्न रूप धारण करने वाले हैं ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह मुनिर विस्मित गौतम घर व भीतर च गये और बोले—यहाँ कौन है ? प्रिय ! अह-र ! तुम आज मूखों के नहीं प्रतिभायण कर रही हो ? अग्नि की शान्ति को मुनिर अहल्या ने जोर म कहा ॥४९-५०॥

अहल्या बोली—तुम कौन हो ? तुमने मुनि का रूप धारण कर मेरे साथ पाप कम किया है । यह कहती हुई मय म पीप्र पलग म उठ गई । वह पापकर्मा इन्द्र भी मुनि के मय म विडाल बन गया । उग समय मय-म भीन चित्त और दूयित अपनी प्रिया को देखकर उग मुनि न जाय म कहा कि ममन यह को-मा माहम (भृगु

उवाच स मुनि कोपात्किमिदं साहसं कृतम् । इति ब्रुवन्तं भर्तारं साऽपि भोवाच लज्जिता ॥५३॥
अन्वेयस्तु तं जारं बिडालं ददृश मुनिः । को भवानिति तं प्राह भस्मीकृत्यै मृषा वदन ॥५४॥

इन्द्र उवाच

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चैवमाह शचीपति । शचीभर्ता पुरा भेत्ता तपोधन पुरुषटुत ॥५५॥
ममेदं पापमापन्नं सत्यमुक्तं मयाऽनघ । महद्विग्रहितं कर्म कृतवानस्म्यहं मुने ॥५६॥
स्मरसायकनिभन्नहृदया किं न कुर्वते । ब्रह्मन्मयि महापापे क्षमस्व करुणानिधे ॥५७॥
सन्तं कृतापराधेऽपि न रीक्ष्य जातु कुर्वते । निशम्य तद्वचो विप्रो हरिमाह ख्याञ्जित ॥५८॥

गौतम उवाच

भगवन्कृत्या कृतं पापं सहस्रभगवात्भव । तामप्याह मुनि कोपात्त्व च शुष्कनदी भव ॥५९॥
ततः प्रसादयामास कथयन्ती तदाकृतिम् ॥६०॥

अहल्योवाच

मनसाऽप्यन्यपुरुष पापिष्ठा कामयन्ति या । अक्षयायान्ति नरकास्तासां सर्वेऽपि पूजया ॥६१॥

कर्म) कर डाला । इस प्रकार भर्ता को कहते हुए देखकर वह भी लज्जा के मारे कुछ न कह सकी । मुनि भी जार को दूँने गये इतने में एक बिडाल दिखाई दिया । उन्होंने उससे कहा कहा— तुम कौन हो ? असत्य बोलोगे तो मरम् कर दूँगा ॥५१ ५४॥

इन्द्र बोल—हाथ जोड़कर इन्द्र ने इस प्रकार कहा— तपोधन । शची का भर्ता पुरा राक्षस को मारने वाला पुरुषटुत (बहुत नाम वाला) इन्द्र हूँ । मुझसे ही यह पापकर्म हुआ । मैंने सत्य कहा है । मुने । महान निर्दित कर्म मैंने किया है । काम के बाणों से आहत हृदय वाले (कामात) मनुष्य क्या नहीं कर देते हैं ? ब्रह्मन् । करुणा सागर । मुझ महापापी को क्षमा कीजिये । सत पुरुष अपराधियों पर भी क्रोध नहीं करते । इन्द्र की बातों को सुनकर मुद्ध विप्र ने इन्द्र से कहा— ॥५५ ५८॥

गौतम बोल—तुमने भग के प्रम से यह काम किया है इसलिये हजार भग (मोनि) वाले हो जाओ । मुनि ने क्रोध से अहल्या से भी कहा कि तुम भी सूखी नदी हो जाओ । तदनन्तर इन्द्र की आकृति का वर्णन करती हुई अहल्या उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी ॥५९ ६०॥

अहल्या न कहा—जो पापिष्ठा नारी मन से भी परपुरुष की कामना करती है उसकी तो कौन कहे उसके सभी पूज्य भी कभी न नष्ट होने वाले नरक को जाते हैं । भगवन् । प्रसन्न होकर मेरी बातों पर विचार कीजिये ।

१ वं ०ता । अममाण भयोड्डिन वि० । २ वं ०यी सहानुगम् । ३० । ३ क ०त । त्वया गफ वृ० ।

४ घ ०गमागम् ।

भूत्वा प्रसन्नो भगवन्नवधारय मद्वचः। तव रूपेण चाऽऽगत्य मामगताक्षिणस्त्वमे ॥६२॥
तथेति रक्षिणः प्रोचुरहल्या सत्यवादिनी। ध्यानेनापि मुनिर्ज्ञात्वा शान्तः प्राह पतिव्रताम् ॥६३॥

गौतम उवाच

यदा तु सगता भद्रे गौतम्या सरिदोशया। नदी भूत्वा पुनरूपं प्राप्यसे प्रियकृन्मम ॥६४॥
इत्युपेवंचनं श्रुत्वा तथा चक्रे पतिव्रता। तया तु संगता देव्या अहल्या गौतमप्रिया ॥६५॥
पुनस्तद्रूपमभवद्यन्मया निमित्तं पुरा। ततः कृताञ्जलिपुटः सुरराट् प्राह गौतमम् ॥६६॥

इन्द्र उवाच

मां पाहि मुनिशार्दूल पापिष्ठ गृहमागतम्। पादयोः पतितं दृष्ट्वा कृपया प्राह गौतमः ॥६७॥

गौतम उवाच

गौतमीं गच्छ भद्रं ते स्नानं कुरु पुरंदर। क्षणाग्निर्धूतपापस्त्वं सहस्राक्षो भविष्यसि ॥६८॥
उभयं विस्मयकरं दृष्टवानस्मि नारद। अहल्यायाः पुनर्भावं शचीभर्ता सहस्रदृक् ॥६९॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमहल्यासंगमं शुभम्। इन्द्रतीर्थमिति श्रुत्वा सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिष्वाह्ये तीर्थमाहात्म्येऽहल्यासंगमोद्गतीर्थवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

वह आप का ही रूप धारण कर मेरे पास आया, इसने ये रसक सासी हैं। उन रसकों ने भी कहा कि अहल्या सत्य कह रही है। मुनि ने भी अपने योगशल से जानकर शान्त हो पतिव्रता भार्या से कहा ॥६१-६३॥

गौतम ने कहा—कल्याणि। जब तुम नदी होकर नदियों की स्वामिनी गौतमी से मिलोगी तब पुनः मेरे प्रिय करनेवाले रूप को प्राप्त करोगी। श्रुति की बात सुनकर पतिव्रता अहल्या ने बैसाही किया। देवी गौतमी से मित्रजाने पर गौतम की प्रिया अहल्या पुनः उस रूप को पा गई जैसा कि मैंने पहले बताया था। इसने बाद सुरराज इन्द्र ने हाथ जोड़कर गौतम से कहा—॥६४-६६॥

इन्द्र बोले—‘मुनिशार्दूल’। घर में आये हुए हम महापापी की रक्षा कीजिये’। हम प्रकार इन्द्र को वीरो पर गिरा हुआ देखकर कल्याण स आर्द्र मुनि ने कहा—॥६७॥

गौतम ने कहा—गौतमी के पास जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। पुरंदर! उगम जा कर स्नान करो, एक क्षण में ही तुम्हारे पाप धुल जायेंगे और तुम सहस्राक्ष हो जाओगे’। नारद! मैंने आत्सर्व्य में दास देने वाली दोना घटनाओं को—पत्नी अहल्या का नदी होकर भी पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त होता और दूसरी सचीर्षीन का सहस्राध्वाना—दग्गा है। तब से वह शुभतीर्थ अहल्या-संगम या इन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो मनुष्या के सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला है ॥६८-७०॥

श्री ऋद्धिमहापुराण में अहल्या-संगम इन्द्रतीर्थ-वर्णन नामक गतासीदा अध्याय समाप्त ॥८७॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

जनस्थानतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तस्मादप्यपर तीर्थं जनस्थानमिति ध्रुतम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिव नृणाम् ॥१॥
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनक पुरा । सोऽपापतेस्तु तनुजामुपयेम गुणार्णवाम् ॥२॥
धर्मार्थकाममोक्षानां जनका जनको नृप । अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३॥
याज्ञवल्क्यश्च विप्रन्द्रस्तस्य राज्ञ पुरोहित । तमपृच्छनृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्य पुरोहितम् ॥४॥

जनक उवाच

भुक्तिमुक्ती उभे श्रेष्ठे निर्णति मुनिसत्तम । दासीदासेभ्युरगरथाद्यैर्भुक्तिरुत्तमा ॥५॥
कित्त्वन्तविरसा भुक्तिर्भुक्तिरेका निरत्यया । भुक्तेर्भुक्ति श्रेष्ठतमा भुक्त्या मुक्ति कथं व्रजेत् ॥६॥
सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिं सुदुःखत । तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्तिं कथं भवेत् ॥७॥

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—उसके बाद जनस्थान नाम से प्रसिद्ध चार योजन तक विस्तृत एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है । प्राचीन काठ मे वैवस्वत वंश मे जनक नाम के एक राजा उत्पन्न हुए । उन्होंने जल के स्वामी वरुण की बन्धा गुणागवा (गुण का समुद्र अत्यन्त गुणवती) से—जो वि धर्म धन वरम और मोक्ष को देने वाली थी—विवाह किया । उस राजा जनक की भार्या गुणागवा अपने अनुरूप गुणा के कारण वास्तव मे गुणागवा (गुण-सागर) थी । विप्रन्द्र याज्ञवल्क्य उस राजा के पुरोहित थे । एक दिन नृपश्रेष्ठ जनक ने पुरोहित याज्ञवल्क्य से पूछा—॥१-४॥

जनक बोले—भुक्ति और मुक्ति दोनों श्रेष्ठ हैं ऐसा श्रेष्ठ मुनिया ने निर्णय किया है । यद्यपि दासी दास, हाथी, घोड़े और रथ आदि सुख सामग्रिया के कारण मुक्ति उत्तम मानी जाती है परन्तु मुक्ति का अन्त आनन्द से रहित है केवल मुक्ति ही निरत्यय (नित्य और अविनाशी) है । मुक्ति से मुक्ति श्रेष्ठ है परन्तु भोग के बाद मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है । सब प्रकार की व्यसक्ति के त्याग से ही मुक्ति प्राप्त होती है इसलिये यह मुक्ति अत्यन्त दुःख से प्राप्त करने योग्य है । अतः हे द्विजशार्दूल ! मुक्ति सुखपूर्वक कैसे प्राप्त की जा सकती है यह कहिये ॥५-७॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अपापतिस्तव गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तया । तं गत्वा पूच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८॥
याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुणं तदा । गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम् ॥९॥

वरुण उवाच

द्विधा तु सस्थिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि । वेदे च निदिशितो मार्गः कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥१०॥
सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरपार्यचतुष्टयम् । अकर्मणैवाऽऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मूपोच्यते ॥११॥
कर्मणा 'सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम । तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः ॥१२॥
तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तीह मानवाः । अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च ॥१३॥
जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित् । आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद ॥१४॥
चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यं स्मृतम् । तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान् । वरुणं पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः ॥१६॥
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । तद्वदस्व सुरभ्रेष्ठ सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७॥

याज्ञवल्क्य ने कहा—जल के स्वामी वरुण तुम्हारे स्वशुर गुरु (ज्ञानदाता) तथा प्रिय करने वाले हैं । नृपति ! तुम उन्हीं के पास जाकर पूछो । वे तुम्हारे अनुकूल ज्ञान का उपदेश करेंगे । तब याज्ञवल्क्य और जनक दोनों ने राजा वरुण के पास जाकर दान्तमात्र से यथाक्रम मुक्तिमार्ग के विषय में पूछा ॥८-९॥

वरुण ने कहा—मुक्ति की स्थिति दो प्रकार की है, एक कर्म द्वारा, दूसरी अकर्म द्वारा, परन्तु वेदों में यही मार्ग निदिशित किया गया है कि अकर्म से कर्म ही श्रेयस्कर है । सब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरपार्य कर्म सह ही आवद्ध हैं । अतः 'कर्मत्याग मुक्ति का मार्ग है' यह कहना व्यर्थ है । नृपभ्रेष्ठ ! कर्म से ही सब धान्यो की भी प्राप्ति होती है अतः सब प्रकार से वेदोक्त कर्म करना चाहिये । मनुष्य उस कर्म के द्वारा ही लोक में मुक्ति और मुक्ति प्राप्त करते हैं । अकर्म की अपेक्षा कर्म ही श्रेयस्कर है । चारों आश्रमों में भी कर्म की ही प्रधानता है । राजेन्द्र ! धर्म के ज्ञानने वाले ! उन कर्मों में भी जाति में सम्बन्ध रखने वाले कर्म को मुनो । मानद ! चारों आश्रम भी कर्म के द्वारा ही बनाए गये हैं । चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम पुण्यप्रद कहा गया है । उसी गृहस्थाश्रम से मुक्ति और मुक्ति दोता प्राप्त होती हैं, यह मेरा विचार है ॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर जनक और बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने वरुण की पूजा कर पुनः यह वचन कहा—'कोन-ना देव और कोन से तीर्थ, मुक्ति और मुक्ति को देने वाले हैं । सुरभ्रेष्ठ ! आप सर्वज्ञ हैं । इस बात को बतलाइये । आपकी नमस्कार है' ॥१६-१७॥

वरुण उवाच

पृथिव्यां भारतं वर्षं दण्डकं तत्र पुण्यदम् । तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८॥
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम् । तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

याज्ञवल्क्यश्च जनको याचं श्रुत्वा हर्षापतेः । वरुणेन ह्यनुज्ञातो स्वपुरीं जग्मतुस्तदा ॥२०॥
अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृपः । याज्ञयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य यज्ञान्मुक्तिमवाप राट् । तथा जनकराजानो बह्वस्तत्र कर्मणा ॥२२॥
मुक्तिं प्राप्नुर्महाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः । ततः प्रभृति तत्तीर्थं जनस्थानेति विवृणुत ॥२३॥
जनकानां यज्ञसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४॥
तत्र स्नानेन दानेन पितृणां तर्पणेन तु । तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भुक्तिसेवनात् ॥२५॥
सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं च समवाप्नुयात् ॥२६॥

इति श्रीमहपुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये जनस्थानतीर्थवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

वरुण बोले—इस भूमण्डल में भारतवर्ष और उसमें भी दण्डकवन पुण्यदायक प्रदेश है । उस क्षेत्र में किये गये कर्मों से मनुष्य को मुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है । तीर्थों में गौतमी गंगा श्रेष्ठ और मनुष्यों को मुक्ति देने वाली है । वहाँ यज्ञ करने और दान देने से भोगों से मुक्ति मिल जाती है ॥१८-१९॥

ब्रह्म ने कहा—याज्ञवल्क्य और राजा जनक वरुण की उपर्युक्त बातों को सुनकर उनसे आज्ञा लेकर अपनी नगरी को चले गये । वहाँ जाकर नृप जनक ने अश्वमेधादि यज्ञों को किया और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने (पुरोहित बनकर) नृप जनक से यज्ञ करवाया । उस राजा ने इस प्रकार गंगा-तीर का आश्रय लेकर यज्ञों द्वारा मुक्ति प्राप्त की । इसी प्रकार बहुत से जनक वंश के राजाओं ने वहाँ पर कर्म करने से और गौतमी की कृपा से मुक्ति प्राप्त की । तब से वह तीर्थ जनस्थान नाम से प्रसिद्ध हो गया । जनकधर्मी राजाओं का यज्ञभवन ही जनस्थान कहा गया है, जो चार योजन विस्तीर्ण है । उसके स्मरण से ही सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं । वहाँ स्नान करने, दान देने और पितृतर्पण करने और तीर्थ के स्मरण करने, अथवा भक्तिपूर्वक वहाँ जाने और तीर्थ-सेवन करने से मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त कर भन्त में मुक्ति प्राप्त करता है ॥२०-२६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जनस्थान-तीर्थ-वर्णन नामक अष्टाशीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८॥

अथोत्तमवतितमोऽध्यायः

अरुणावरुणासगमाश्वभानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अरुणा वरुणा चैव नद्यौ पुण्यतरे शुभे । तयोश्च सगम पुण्यो गङ्गाया मुनिसत्तम ॥१॥
 तदुत्पत्तिं शृणुष्वेह सर्वपापविनाशिनीम् । काश्यपस्य सुतो ज्येष्ठ आदित्यो लोकविश्रुत ॥२॥
 त्रैलोक्यचक्षुरतीक्ष्णः सप्ताश्वो लोकपूजित । तस्य पत्नी उपा रयाता त्वाष्ट्री त्रैलोक्यसुन्दरी ॥३॥
 भर्तुं प्रतापतीब्रह्ममसहन्ती सुमध्यमा । चिन्तयामास किं कृत्य मम स्यादिति भामिनी ॥४॥
 तस्या पुत्री महाप्राज्ञो मनुवेवस्वतो यम । यमुना च नदी पुण्या शृणु विस्मयकारणम् ॥५॥
 साऽकरोदात्मनश्छायामात्मरूपेण यत्नत । तामवतीक्षतश्चोया त्व च भस्मदृशी भव ॥६॥
 भर्तारं त्वमपत्यानि पालयस्व ममाऽज्ञया । यावदागमन मे स्यात्पत्युस्तावत्प्रिया भव ॥७॥
 नाऽऽत्त्यातव्यं त्वया क्वापि अपत्याना तथा प्रिये । तथेत्याह च सा छाया निजगाम गृहादुपा ॥८॥
 ह्रत्पुत्वा सा जगामाऽऽशु शान्त रूपमभीप्सती । सा गत्वोपा गृहं त्वष्टु पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥९॥
 त्वष्टाऽपि चकितः प्राह ता सुता सुतवत्सल

॥९॥

अध्याय ८६

अरुणा-वरुणा-सगम और अश्वभानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिज्येष्ठ । अरुण और वरुण नाम की दो शुभ पवित्र नदियाँ हैं । उनका सगम जो गंगा में मिलने से बनता है—अत्यन्त पुण्य देने वाला है । उनकी उत्पत्ति की कथा—जो सब पापों को नष्ट करने वाली है—सुनो । कश्यप के ज्येष्ठ पुत्र लोक प्रसिद्ध आदित्य हैं—जो तीनों लोकों के नेत्रस्वरूप तीक्ष्ण चिरणवाले और शूर-पूजित हैं । उनके सात बच्चे हैं । उनकी पत्नी त्वाष्ट्री की कथा विमुचन-मुन्दरी उपा हुई । वह सुन्दर बटि वाली भार्या पति के तीव्र तन को नहीं सह पाती थी इसलिए अपने मन में विचार किया कि मुझ क्या करना चाहिये । उसके दो परम प्रभावान् वैवस्वत मनु और यम पुत्र हुए । परम पवित्र यमुना नदी पुत्री हुई । आगे कौन सी विस्मय उत्पन्न करने वाली घटना हुई उसको सुनो । उसने अपनी छाया को बड़े यत्न से अपने रूप के समान ही बनाया । इसक अनन्तर उपा ने अपनी मूर्तिभर्ती छाया से कहा—तुम मेरे समान हो जाओ । मेरी आज्ञा से मेरे पति और वरुणा का पालन करो जब तक मैं न आऊँ तब तक तुम मेरे पति की प्रिया बनो । प्रिये ! इस रहस्य को कहा पर किसी से भी यहाँ तक कि अपने बच्चों से भी मत कहना । छाया ने इसको स्वीकार कर लिया । तब उपा घर से बाहर चली गई । इस प्रकार छाया को समझा कर शीघ्र आत्मगान्ति प्राप्त करने की इच्छा से अपने पिता त्वष्टा के घर जाकर पिता से सब कुछ कह सुनाया । सुतवत्सल त्वष्टा भी यह सुनकर चकित हो गये और पुत्री उपा से कहा—॥१९॥

त्वष्टोवाच

नैतद्युक्तं भर्तृमत्या यत्स्वरेण प्रवर्तनम् । अपत्यानां कथं वृत्तिर्भर्तुर्वा सवितुस्तव ॥
बिभेमि भद्रे शिष्टोऽहं भर्तुर्गोहं पुनर्वज ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पित्रा सा नेत्युक्त्वा वै पुनः पुनः । उत्तरं च कुरोदेशं जगाम तपसे स्वरा ॥११॥
तथ तेपे तपस्तीव्रं वडवारूपधारिणी । दुष्प्रेक्षं तं स्वकं कान्तं ध्यायन्ती निश्चला उपा ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तात छाया चोपास्वरूपिणी । पत्यौ सा वर्तयामास अपत्यान्यथ जगिरे ॥१३॥
सार्वणिश्च शनिश्चैव विष्टिर्या दुष्टकन्यका । सा छाया वर्तयामास वैपम्येणैव नित्यशः ॥१४॥
स्वेष्टवपत्येषु चोपाया यमस्तत्र चुकोप ह । वैपम्येणाय वर्तन्ती छाया तां मातर तदा ॥१५॥
ताडयामास पादेन दक्षिणाशापतिर्यमः । पुत्रदोर्जन्यसंक्षोभाच्छाया वैवस्वतं यमम् ॥१६॥
शशाप पाप ते पादो विशीर्यतु ममाऽऽजया । विशीर्णचरणो दुस्त्राद्रुदन्पितरमभ्यगात् ॥
सवित्रे तं तु वृत्तान्तं न्यवेदयदशेषतः ॥१७॥

यम उवाच

नेयं माता सुरश्रेष्ठ यया शप्तोऽहमोदशः । अपत्येषु विरुद्धेषु जननी नैव कुप्यते ॥१८॥
यद्वाल्यादध्वं किंचिदयवा दुष्टृतं कृतम् । नैव कुप्यति सा माता तस्मात्त्रेयं ममाम्बिका ॥१९॥

त्वष्टा ने कहा—यह पति वाली स्त्रिया किये उचित नहीं है कि वह स्वेच्छा से कार्य करे। मला बताओ तो तुम्हारे भर्ता सविता और सतान की क्या स्थिति होगी। भद्रे ! मैं शिष्टता के नाते डर रहा हूँ, तुम पुनः अपने स्वामी के घर चली जाओ ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पित्रा ने इस प्रकार कहने पर उस उपा ने बार बार “नहीं, नहीं” कहा और कुह से उत्तर प्रदेश की ओर धीघ्रता से तपस्या करने चली गई। वहाँ वडवा (घोड़ी) का रूप धारण कर उपा ने निश्चल भाव से अपने कटिनाई से देखे जाने योग्य पति का ध्यान करती हुई तीव्र तप किया। तात ! इस बीच उपा की प्रतिनिधि छाया ने पनि के साथ दाम्पत्य व्यवहार किया और सार्वणि तथा शनि नाम के दो पुत्रों एवं विष्टि नाम की दुष्ट कन्या को उत्पन्न किया। वह छाया नित्य प्रति अपने पुत्रों और उपा के पुत्रों के साथ असमान व्यवहार करने लगी। यह देखकर यम क्रुद्ध हो गये। दक्षिण दिशा के स्वामी यम न उस समय असमान व्यवहार करने वाली उस माता छाया को पैर से मारा। पुत्र को इस अशिष्टता को देखकर छाया को अत्यन्त क्षोभ हुआ। उसने वैवस्वत यम को शाप दिया कि पापी ! मेरे शाप से तूरे चरण गल जायें। माना कि शाप से यम के पैर गल गए, दुःख से राना हुआ वह शिवा के समीप गया और सविता म आदि से अन्त तः सारा वृत्तान्त कहा सुनया ॥११-१७॥

यम ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! बिभेमि मुझे इस प्रकार शाप दिया है, वह मेरी माता नहीं है। मला न के अति टा आचरण करने पर माता कभी भी क्रोध नहीं करती है। बाल्य-काल में जो कुछ मैंने कहा था अशिष्टता की है,

यदपत्यकृतं किंचित्साध्वस्वाधु यथा तथा । मातृस्यां सर्वमप्येतत्तस्मान्मातेति गीयते ॥२०॥
प्रधक्ष्यन्तीव मा तात नित्यं पश्यति चक्षुषा । वक्तृपिनिकालसदृशा वाचा नेयं मदम्बिका ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवचन श्रुत्वा सविताऽचिन्तयत्ततः । इयं छाया नास्य माता उषा माता तु साऽन्यतः ॥२२॥
मम शान्तिमभीप्सन्ती देशेऽन्यास्मिस्तपोरता । उत्तरे च कुरी त्वाष्ट्री वडवारूपधारिणी ॥२३॥
तत्राऽस्ते सा इति ज्ञात्वा जगामेशो दिवाकरः । यत्र सा वर्तते फान्ता अश्वरूपं स्वयं तदा ॥२४॥
ता दृष्ट्वा वडवारूपां पर्यधावद्वयाकृति । कामातुरं हयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वै हेषितस्वनम् ॥२५॥
उषा पतिव्रतीपेता पतिध्यानपरायणा । हयधर्पणसंभीता को न्वयं चेत्पजानती ॥२६॥
अपलायत्पतीं प्राप्ते दक्षिणाभिमुखी त्वरा । को नु मे रक्षकोऽत्र स्यादुपयो वाऽयवा सुरा ॥२७॥
धावन्तीं ता प्रियामश्वामश्वरूपधर. स्वयम् । पर्यधावद्वतो याति उषा भानुस्ततस्ततः ॥२८॥
स्मरप्रह्वशो जातः को दुश्चेष्ट न चेष्टते । भागीरथीं नदीश्चान्या वनान्युपवनानि च ॥२९॥
नर्मदां चाय विन्ध्यं च दक्षिणाभिमुखावु (खीउ) भौ । अतिरम्य भयोद्विग्ना त्वाष्ट्यभ्यगाच्च
गौतमीम् ॥३०॥

आतारः सन्ति मुनयो जनस्थान इति श्रुतम् । श्रुषीणामाश्रमं साऽश्वा प्रविष्टा गौतमीं तथा ॥३१॥

उसकी देखकर वह मेरी माता कभी भी नृद्ध नहीं हुई । इसलिये यह मेरी माता नहीं है । जिस किसी प्रकार का सतान द्वारा किया हुआ कर्म चाहे वह अच्छा हो या बुरा सब कुछ उस माता के कारण हृदय में जाकर ही शान्त हो जाता है, इसीलिए उसकी (माति अस्याम्) माता कहते हैं । तात ! मुझ को यह इस प्रकार देखती है मानो आँखों से जला देगी और सर्वदा कालाग्नि के समान बाणी से ही बोलती है, इसलिये यह मेरी माता नहीं है ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त सविता अपने पुत्र की बातों को सुनकर विचार करने लगे कि यह छाया इसकी माता नहीं है । इसकी माता उषा तो दूसरे स्थान पर है । वह त्वष्टा की पुत्री तो वडवा का रूप धारण कर इस समय उत्तर कुश प्रदेश में मेरी शान्ति की कामना से तपस्या में लीन है । 'यह वहाँ ही है' यह जानकर भगवान् दिवाकर स्वयं अश्व का रूप धारण कर उस प्रदेश में गये जहाँ उनकी प्रिया उषा तपस्या कर रही थी । प्रिया उषा को इस प्रकार वडवा के रूप में देखकर स्वयं अश्व की आकृति वाले मूर्त्यं कामातुरहो उसकी ओर दौड़ पड़े । घोड़े को कामातुर देखकर और उसकी हिनहिनाहट को सुनकर पतिव्रता, पति ध्यान में तल्लीन उषा अश्व की छिटाई से डर गई । 'यह कौन है' यह जानकर पति के आने पर भी वह शीघ्र ही दक्षिण दिशा की ओर भाग चली और सोचने लगी कि अब इस परिस्थिति में मेरा कौन रक्षक होगा ऋषियण अथवा देवगण । उस अरुनी प्रिया वडवा को भागती हुई देखकर अश्वरूप धारी मूर्त्यं भी स्वयं दौड़ने लगे । वह दौड़ती हुई त्रिधर जाती थी मूर्त्यं भी ऊपर ही दौड़ते हुये जाते थे । कामदेव रूपी यह वे वन में हो जाने पर कौन है जो अगिष्ट चेष्टायें नहीं कर देगा ? इस प्रकार वे दोनों दक्षिण की ओर मूख त्रिये हुये भागीरथी, अन्वान्य नदिवा वन उपवन तथा नर्मदा और विन्ध्यपर्वत को पार कर गये । उषा किसी प्रकार अरुनी रथा में देखकर भय से उद्विग्न हो गौतमी के समीप गई । यह सुनकर कि ऋषिमुनि इस लोभ में दुःखिया की पीडिता के रक्षक हैं, वह वडवा गौतमी-जट पर स्थित ऋषि-आश्रम में पहुँची । कुछ देर

अनुप्राप्तस्तथा चाश्वो भानुस्तुद्रूपवास्तत । अश्व निवारयामासुजनस्या मुनिदारका ॥
तत कोपादूर्पोस्ताश्च शशापोयापति प्रभु ॥३२॥

भानुरुवाच

निवारय मा यस्माद्वृद्धा यूय भविष्यथ ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञानदृष्ट्या तु मुनयो मेनिरेऽश्वमुपापतिम् । स्तुवन्तो देवदेवेश भानु त मुनयो मुदा ॥३४॥
स्तूयमानो मुनिगणैरश्वो भानुरथागमत् । वडवाया मुखे लग्न मुख चाश्वस्वरूपिणम् ॥३५॥
ज्ञात्वा त्वाष्ट्री च भर्तारं मुखाद्वीर्यं प्रसुप्नुवे । तयोर्वीर्येण गङ्गायामश्विनौ समाजयताम् ॥३६॥
तत्राऽऽगच्छन्मुरगणा सिद्धाश्च भुनयस्तथा । नद्यो गावस्तथौषधयो देवा ज्योतिर्गणास्तथा ॥३७॥
सप्ताश्वश्च रथ पुण्यो ह्यरुणो भानुसारथि । यमो मनुश्च वरुण शनिर्वैवस्वतस्तथा ॥३८॥
यमुना च नदी पुण्या तापी चैव महानदी । तत्तद्रथ समास्थाय नद्यस्ता विस्मयामुने ॥३९॥
दृष्ट्वा ते विस्मयाविष्टा आजग्मु श्वशुरस्तथा । अभिप्राय विदित्वा तु श्वशुर भानुरब्रवीत् ॥४०॥

भानुरुवाच

उपाया प्रोतये त्वष्ट कुर्वत्यास्तप उत्तमम् । यन्त्रारुढ च मा कृत्वा छिन्धि तेजास्यनेका ॥
यावत्सौख्य भवेदस्यास्तावच्छिन्धि प्रजापते ॥४१॥

बाद भानु भी अश्व के रूप में वहाँ पहुँच गये । आश्रम में रहने वाले मुनि-कुमारों ने उस घोड़े को रोका । इस प्रकार रोके जाने पर क्रुद्ध होकर उपापति सूर्य ने उनको तथा ऋषियों को शाप दे दिया ॥२२ ३२॥

भानु ने कहा—तुम लोग मुख जिम कारण निवारण कर रहे हो इसलिये बट बूझ हो जाओगे ॥३३॥

ब्रह्मा न कहा—ज्ञान दृष्टि से देखने पर मुनिया ने उस अश्व को उपापति समझ लिया । तब प्रसन्न होकर उस देवदेवेश सूर्य की स्तुति करने लगे । इस प्रकार मुनिगणों द्वारा स्तुति किये जाने के बाद सूर्य वडवा के पास गये और अपने घोड़े के मुख के आकार वाले मुख को वडवा (घोड़ी) के मुख में मिला दिया । 'वाष्ट्री ने मुखस्पर्श से अपने पति को पहचान कर मुख से वीर्य त्याग किया । गंगा में उन दोनों के वीर्य मिलने से अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई । मुने । यह घटना देखकर विस्मित हो वहाँ पर मुरगण सिद्ध मुनि नदियाँ गोव अ पधियाँ देवता नक्षत्र सूर्य या सातो घोड़े तथा दिव्यरथ के सहित सूर्यसारथी अरण यम मनु वरुण वैवस्वत शनि पवित्र नदी यमना तापी और महानदी आदि नदियाँ अपने रूप को धारण कर कीर्तुहलवश देखने के लिये आइ । उस समय सूर्य के श्वशुर त्वष्टा भी आश्चर्यचकित होकर वहाँ चले आये । उपा के अभिप्राय को समझकर सूर्य ने अपने ससुर त्वष्टा से कहा ॥३४ ४०॥

भानु न कहा—त्वष्टा ! उत्तम तप करने वाली उपा की प्रसन्नता के लिये मुखको यत्र पर चबाकर अनेक प्रकार से भेरे तेज को काट डालो (खराद डालो) । प्रजापति ! जितने से इसको मुख हो अर्थात् जितना तेज सह सके उतना मेरा तेज काट डालो ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्त्वष्टा सोमनाथस्य संनिधौ। तेजसां छेदनं चक्रे प्रभासं तु ततो विदुः॥४२॥
 भर्त्रा च सगता यत्र गौतम्यामश्वरूपिणी। अश्विनोर्यत्र चोत्पत्तिरश्वतीर्थं, तदुच्यते॥४३॥
 भानुतीर्थं तदाख्यात तथा पञ्चवटाश्रमः। तापी च यमुना चैव पितरं द्रष्टुमागते॥४४॥
 अरुणावरुणानद्योगेद्वायां संगमः शुभः। देवानां तत्र तीर्थानामागतानां पूषक्पूषक्॥४५॥
 नव त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च। तत्र स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम्॥४६॥
 स्मरणात्पठनाद्वापि श्रवणादपि नारद। सर्वपापविनिर्मुक्तो धर्मवान्स सुखी, भवेत्॥४७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽरुणावरुणासंगमाश्वभानुतीर्थवर्णनं नामोत्तमोऽध्यायः-

मोऽध्यायः ॥८९॥

गौतमोमाहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

गरुडतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

गरुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—“ऐसा ही होगा” यह कहकर त्वष्टा ने सोमनाथ के समीप सूर्य के तेज का छेदन किया। तब से वह स्थान प्रभास नाम से लोक-प्रसिद्ध हो गया। जहाँ गौतमी के तीर पर अश्वरूप धारण करनेवाली उषा का पति के साथ संयोग हुआ और जहाँ अश्विनीकुमार की उत्पत्ति हुई वही अश्वतीर्थ कहा जाता है। जहाँ तापी और यमुना अपने पिता का दर्शन करने के लिए आईं, वह भानुतीर्थ अथवा पञ्चवटाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जहाँ अरुणा और वरुणा गंगा नदी में मिलती हैं, वह सगमस्थल अत्यन्त पुनीत एवं शुभ है। वहाँ देवताओं और अन्य तीर्थों के आने से वहाँ पूषक्-पूषक् सत्ताऽस सहस्र पुण्यप्रद तीर्थ हुए। वहाँ स्नान करने और दान देने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। नारद! जो मनुष्य इस तीर्थ के माहात्म्य का स्मरण, पाठ या श्रवण करता है वह धार्मिक सब पापों से मुक्त होकर सुखी होता है॥४२-४७॥

थी ब्रह्ममहापुराण में अरुणा-वरुणासंगम, अश्वतीर्थ वर्णन नामक नवतीर्थों अध्याय समाप्त ॥८९॥

अध्याय ६०

गरुडतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गरुड नामक तीर्थ, सब विघ्नों को नष्ट करने वाला है। नारद! उसकी महिमा का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।

मणिनाग इति त्वासीच्छेपपुनो महाबल । गरुडस्य भयाद्भूत्वा तोषयामास शकरम् ॥२॥
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वर । तमुवाच महानाग वर वरय पन्नग ॥३॥
नाग प्राह प्रभो मह्य देहि मे गरुडाभयम् । तथेत्याह च त शर्भुरडादभय भवेत् ॥४॥
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात् । क्षीरोदसायो यन्नाऽऽस्ते क्षीराण्वसमीपत ॥५॥
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशीतले । गरुडोऽपि च यन्नाऽऽस्ते त देशमपि यात्यसौ ॥६॥
गरुड पन्नग दृष्ट्वा चरन्त निर्भयेन तु । त गृहीत्वा महानाग प्राक्षिपत्स्वस्य वेदमनि ॥७॥
त बद्ध्वा गरुडं पार्श्वगरुडो नागसत्तमम् । एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेश जगत्प्रभुम् ॥८॥

नन्दिकेश्वर उवाच

नून नागो न चाऽऽयाति भक्षितो बद्ध एव वा । गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न सन्नजेत् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

नन्दिनो वचन श्रुत्वा ज्ञात्वा शम्भुरयाव्रवीत्

॥१०॥

शिव उवाच

गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम् । गत्वा त जगतामीश विष्णु स्तुहि जनार्दनम् ॥११॥
बद्ध नाग काश्यपेन मद्वाक्योदानय स्वयम् । तत्प्रभोर्वचन श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रिय पतिम् ॥१२॥
व्यनापयत्स्वय वाक्य विष्णु लोकपरायणम् । नारायण प्रीतमना गरुड वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

शेषनागका पुत्र महाबलवान् मणिनाग था । उसने गरुड के भय से भक्तिपूर्वक हो शङ्कर को सन्तुष्ट किया । उसकी भक्ति से प्रसन्न हो भगवान् परमेश्वरी गुरु ने उस महानाग से कहा— पन्नग ! वर मागो । नाग ने कहा— प्रभु ! मुझे गरुड से अभय होने का वरदान दीजिये । गुरु ने कहा ठीक है गरुड से निर्भीक हो जाओ । तब वह नाग अरुण के छोटे गाई गरुड से निमग्न होकर निकला और जहाँ क्षीरसागरी मगलान् थ उस क्षीरसागर के समीप सही होकर इधर उधर गुस्सा-पाति व साथ घूमन लगा । यहाँ तक कि जहाँ स्वयं गरुड था वहाँ पर भी वह निर्भीक नाग जाता था । गरुड ने जब इस प्रकार निर्भीक भाव से नाग को टहलते हुए देखा तो उस नाग धृष्ट को पकड़कर और गरुड-पात से बाँधकर अपने घर में बन्द कर दिया । उसी बीच यह घटना देखकर नन्दी ने भगवान् गुरु से कहा ॥१-८॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—सुरेशान । वह नाग इस समय नहीं आता है तो अवश्यमेव उसे गरुड ने खा लिया होगा या बाँध दिया होगा । यदि ऐसा न होता और वह जीवित रहता तो क्या नहीं आता ? ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दी की बातों को सुनकर महेश्वर ने कहा ॥१०॥

शिव बोले—गरुड क घर में वह नाग बँधा हुआ है इसलिये वीर्य ही जगत के स्वामी जनान् विष्णु के पास आकर उनकी स्तुति करो । स्वयं मेरी ओर से कहकर गरुड द्वारा बंध गये नाग को रू आओ ।

विष्णुवाच

विनतात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पन्नगम् । कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहंगमः ॥
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनोऽन्तिके ॥१४॥

गरुड उवाच

यद्यस्मिन्प्रियतम किञ्चिद्भूत्येभ्य प्रभविष्णवः । दास्यन्त्यग्रे भवान्नैव मयाऽऽनीत हरिष्यति ॥१५॥
पश्य देवं त्रिनयन नाग मोक्षयति नन्दिना । मयोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने ॥१६॥
त्वां वहामि सदा स्वामिन्मम देय सदा त्वया । मयोपपादितं नागं वक्तुं देहीति नोचितम् ॥१७॥
सता प्रभूणा नेय स्याद्बृतिः सद्बृत्तिकारिणाम् । सन्तो दास्यन्ति भूत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान् ॥१८॥
दैत्याञ्जयसि सप्रामे मद्वलेनैव केशव । अहं महाबलीत्येवं मुर्धव श्लाघते भवान् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

गरुडस्येति तद्वाक्य श्रुत्वा चक्रगदाधरः । विहस्य नन्दिनः पार्श्वे पश्यद्द्विलोकपालकः ॥२०॥
इदमाह महाबुद्धिर्मां समुह्य कृशो भवान् । त्वद्वलादसुरान्तर्बाञ्जेप्येह खगसत्तम ॥२१॥
इत्युक्त्वा श्रोपतिर्ब्रह्मज्ञान्तकोपोऽब्रवीदिदम् । बहोर्ङ्गुलिं करस्याऽऽशु कनिष्ठा नन्दिनोऽन्तिके ॥२२॥
गरुडस्य ततो मूर्धन न्यस्येदं पुनरब्रवीत् । सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहंगम ॥२३॥

प्रभु वी बाता का मुनकर नदी ने लक्ष्मीपति विष्णु के पास जाकर लोक बत्स्याण मे रत रहने वाले मगवान् से सारी घटना कह सुनाई । नारायण ने भी प्रसन्न होकर गरुड स से पब्द बहे ॥११-१३॥

विष्णु ने कहा—विनतासुत । मेरे कहने से पन्नग को नन्दी के हाथ दे दो । इस बात को मुनकर गरुड न कांपन हुए 'नही' ऐसा कहा । नन्दी के सामने ही उसने क्रोध से विष्णु से ओर भी कहा ॥१४॥

गरुड ने कहा—दूसरे समर्थ स्वामी सेवका के जो जो पदार्थ प्रिय होते हैं उन सब पदार्थों को देने हैं, किन्तु आप ही ऐसे हैं जो कि मेवक के लय हुए पदार्थ को भी (उससे) छीन लेते हैं । निनेत्र मकर को दखिये वह नदी के द्वारा नाग को मुक्त कराते हैं और मेरे द्वारा पाये हुए नाग को आप नन्दी को दे रहे हैं । स्वामी ! मैं आपको सर्वदा होता हूँ अतः आपको सर्वदा मुझे कुछ न कुछ देना चाहिए । अतः मेरे द्वारा पाये हुए 'नाग का दे दो' ऐसा कहना उचित नहीं है । गन्धर्वगटार बरन वाले स्वामी का ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिये । सज्जन लोग अपने मृग्य को पुष्कल दत्त है और आप तो मेरे द्वारा प्राप्त वस्तु को भी हर लेते हैं । केवल । मेरे बल से ही आप दैत्यों को जीतते हैं । और स्वयं मैं महाबलवान् हूँ ऐसी व्यर्थ म डोग हाँकते हैं ॥१५-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—महाबुद्धिमान् चक्रगदाधारी विष्णु ने गरुड की उन बातों को सुनकर हँसकर नन्दी के समीप बैठे लोचपात्र के सामने ही गरुड ग कहा 'तुम सचमुच मुझे पीठ पर डीन डाने दुर्बल हा मय हो । सग-
धत् । तुम्हारे बल सही मैं मय अमुरों को जीतता हूँ, जीतता भी । ब्रह्मन् । यह बल अपने शेष को छिपाकर लोभोपनि न कहा—मेरी बनिष्ठता अंगुली को शीघ्र ही नदी के समीप तक डो कर ले चलो । इतना कहकर ब्रह्म-
वान् ने गरुड के गिर पर अपनी अङ्गुली रख दी और फिर कहा कि 'विहङ्गम ! यदि तुम सचमुच मुझसे नित्य

न्यस्ताया च ततोऽङ्गुल्या शिरः कुक्षौ समाविशत् । कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्छूर्णितोऽभवत् ॥
ततः कृताञ्जलिर्दीनो व्यथितो लज्जयाऽन्वितः ॥२४॥

गरुड उवाच

ब्राहि ब्राहि जगन्नाथ भूत्य मामपराधिनम् । त्वं प्रभु सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च ॥२५॥
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णव । कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा ॥२६॥
वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम् । रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्माम्बुजनिवासिनि ॥
कमले बालकं दीनमार्तं तनयवत्सले ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृपान्विता देवी श्रीरम्याह जनार्दनम् ॥२८॥

कमलोवाच

रक्ष नाथ स्वकं भूत्य गरुड विपदं गतम् । जनार्दन उवाचेदं नन्दिनं शम्भुबाहनम् ॥२९॥

विष्णुरुवाच

नय नाग सगरुडं शभोरन्तिकमेव च । तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः ॥
आत्मीयं च पुनः रूपं गरुडं समवाप्स्यति ॥३०॥

ढोतेही तो इसका निणय आज देखो । इसके उपरांत अंगुली के रखते ही शिर दबकर कोख में घुस गया और कोख दोनों पैरों के बीच घुस गया इस प्रकार वह बेचारा खुर मूरहो गया । तब वह अत्यंत लज्जित दीन व्यथा से करा हता हुआ हाथ जोड़ कर विनीत भाव से बोला ॥२० २४॥

गरुड ने कहा—जगन्नाथ ! मुझ अपराधी मृत्यु की रक्षा करो रक्षा करो । तुम सम्पूर्ण ससार के धारण करने वाले प्रभुहो तुम्ही संपूर्ण लोक के धार्य (धारण करने योग्य) भी हो । समय व्यथित हजारा अपराधी को क्षमा कर देते हैं और अपराधियों पर उनकी सर्वदा कृपा रहती है । सब मुनि तुमको ही वरुणा का कोश कहते हैं । हे कमल भनिवास करने वाली ! जगन्माता ! मुझ दुखी की रक्षा करो । कमरे । पुत्रवत्सल । इस दीन दुखी बालक की रक्षा करो ॥२५ २७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनंतर करुण हृदयवाली कृपालु लक्ष्मी ने भी जनार्दन से कहा ॥२८॥

कमला ने कहा—नाथ । अपने इस विपत्ति में पड़ हुए सेवक गरुड की रक्षा कीजिये । जनार्दन ने यह सुनकर शम्भुबाहन नन्दी से कहा ॥२९॥

विष्णु बोले—गरुड के सहित इस नाग को शकर के समीप ले जाओ । उनकी कृपा से यह गरुड जब ये अपनी कृपा दृष्टि से इसको देखे तो पुनः अपने स्वरूप स्वरूप को प्राप्त करेगा ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च । शनैः स शंकरं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥
शकरोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१॥

शिव उवाच

याहि गङ्गा महाबाहो गीतमीं लोकपावनीम् । सर्वकामप्रदां शान्ता तामाप्लुत्य पुनर्वपुः ॥३२॥
प्राप्स्यसे सर्वकामादश्च शतधाऽप्य सहस्रधा । सर्वपापोपतप्ता ये दुर्देवोन्मूलितोद्यमाः ॥
प्राणिनोऽभीष्टदा तेषां शरणं तग गीतमी ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽभ्यगात् । गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम सः ॥३४॥
ततः स्वर्णमय पक्षी चन्द्रदेहो महाबलः । वेगी भवन्मुनिश्चेष्ट पुनर्विष्णुमियात्सुधीः ॥३५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गरुड सर्वकामदम् । तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रपतो नरः ॥
सर्वं तदक्षयं यत्त शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गरुडतीर्थवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

गीतमीमाहात्म्ये एकाविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—‘आपकी जैसी आज्ञा यह कहकर नन्दी नाग और गरुड के साथ मन्दगति से शंकर के पास गया और सारी घटना कह सुनाई । चन्द्रशेखर शंकर ने भी गरुड से कहा—॥३१॥

शिव ने कहा—महापराक्रमी ! लोक को पुनीत करने वाली गीतमी गंगा के पास जाओ । उस शान्त, सब कामनाओं को देने वाली गंगा में स्नान करने से तुम पुन अपना शरीर तथा अपने मनोरथ का सौगुना, हजार गुना अधिक फल प्राप्त करोगे । खग ! सब पाप रूपी अग्नि से जले टूटे, दुर्भाग्य से विफल परिश्रम वाले प्राणियों को यह मनोरथ पूर्ण करने वाली गीतमी एक मात्र शरण देने वाली है ॥३२-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—गरुड भगवान् शंकर की बातों को विनीत भाव से सुनकर गंगा के समीप गया, उसमें स्नान किया और शिव तथा विष्णु को प्रणाम किया । मुनिश्चेष्ट ! स्नान के बाद गरुड स्वर्णमय पक्ष वाला, महाबली, वज्र के समान देह वाला और अति वैभवान् हो गया । तब वह महाबुद्धिमान् गरुड विष्णु के समीप चला गया । तब से वह स्थान सब कामनाओं को देने वाला गरुडतीर्थ कहा जाने लगा । जो व्यक्ति अतन्त्रभाव से उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ सत्कर्म करता है वत्स ! वह सब कुछ अक्षय हो जाता है तथा उससे शिव, विष्णु दोनों प्रसन्न होते हैं ॥३४-३६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में गरुडतीर्थवर्णन नामक नववेदा अध्याय समाप्त ॥९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

गोवर्धनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो गोवर्धन तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् । पितृणां पुण्यजनन स्मरणादपि पापनुत् ॥१॥
तस्य प्रभाव एष स्थान्मया दृष्टस्तु नारद । ब्राह्मणं कर्षकं कश्चिज्जावालिरिति विभुत् ॥२॥
न विमुञ्चत्यनङ्वाहौ मध्यं यातेऽपि भास्करे । प्रतोदेन प्रतुवति पृष्ठतोऽपि च पादवयो ॥३॥
तौ गावावभूषणक्षीं दृष्ट्वा गौ कामदोहिनी । सुरभिर्जगता माता नन्दिने सर्वमब्रवीत् ॥४॥
स चापि व्यथितो भूत्वा शभवे तन्यवेदयत् । शभुश्च वृषभं प्राह सर्वं सिध्यतु ते वच ॥५॥
शिवाज्ञासहितो नन्दी गोजातं सर्वमाहरत् । नष्टेषु गोषु सर्वेषु स्वर्गं मर्त्यं ततस्त्वेव ॥६॥
मामवोचन्सुरगणा विना गोभिर्न जोष्यते । तानबोच सुरान्तर्वाञ्छकर यात याचत ॥७॥
तर्ध्वेश तु ते सर्वे स्तुत्वा कार्यं न्यवेदयन् । ईशोऽपि विबुधानाह जानाति वृषभो मम ॥८॥
ते वृष प्रोचुरमरा देहि गा उपकारिण । वृषोऽपि विबुधानाह गोसर्वं त्रियता ऋतु ॥९॥

अध्याय ६१

गोवर्धन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर सब पापों को नष्ट करने वाला और पितरों को सुख देने वाला गोवर्धन तीर्थ है जिसके स्मरण से ही पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ नारद । उसका प्रभाव मैंने अपने नत्रा से देखा है वह इस प्रकार है—जावालिन नाम से प्रसिद्ध कोई कृपक ब्राह्मण था ॥२॥ वह मध्याह्न हो जाने पर भी अपने बैठा को नहा छोड़ता था अपितु चाबुक से उनके पृष्ठ और पाद्व भाग पर मारता था ॥३॥ इस प्रकार पीड़ित आसू से भरे नत्रे वाले बैला को देखकर अगत की माता कामधनु गी ने नन्दी से जाकर सब कुछ कहा ॥४॥ नन्दी ने भी उन मक पशुआ की व्याधा से व्यथित होकर भगवान् गौतर से निवेदन किया । साम्ने नन्दी से कहा कि तुम्हारी इच्छाआ के अनुसार ही वाय मिद्धि हामी ॥५॥ नन्दी ने शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण गो-समूह को ही छिपा दिया । इस प्रकार गो-समूह के नष्ट हो जान पर स्वर्ग और मृत्युलोक में खलवली मच गई ॥६॥ देवताआ ने शीघ्रता से भरे पाप आकर कहा कि गौओं के बिना हम सब कैसे जी सकत हैं । उन देवताआ से मैंने कहा कि शिव के पास जाआ और उनसे याचना करो ॥७॥ भरे कहने के अनुसार उन सब देवताओं ने शिव की स्तुति की और उनसे अपना अनिप्राय व्यक्त किया । शिव ने भी कहा कि इस विषय को मेरा वृषभ नन्दी ही जानता है ॥८॥ उन देवताआ ने पुन नन्दी से कहा कि उपकारी गौआ को दे दो । नन्दी ने भी उनसे कहा कि आप लोग गोसर्व नामक यज्ञ करें ॥९॥ तभी जितनी

तत प्राप्स्यथ गा सर्वा या दिव्या याश्च मानुषा । तत प्रवर्तते यज्ञो गोसवो देवनिर्मित ॥१०॥
 गौतम्याश्च शुभे 'पाद्वे' गावो वदधिरे तत । गोवर्धन तु तत्तीर्थं देवाना प्रीतिवर्धनम् ॥११॥
 तत्र स्नान मुनिश्चेष्ट गोसहस्रफलप्रदम् । किञ्चिद्दानादिना यत्स्यात्फल तत् न विद्महे ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गोवर्धनतीर्थवर्णनं नामकनवतितमोऽध्याय ॥९१॥
 गौतमीमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्याय ॥२२॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

पापप्रणाशनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पापप्रणाशनं नाम तीर्थं पापभयापहम् । नामधेयं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ॥१॥
 धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो लोकविश्रुतः । तस्य भार्या मही नाम तरणी लोकसुन्दरी ॥२॥
 तस्य पुत्रः सुयनिभः सनाज्जात इति श्रुतः । धृतव्रत तथाऽर्कवर्णमृत्यु कालेरितो मुने ॥३॥
 तत सा बालविधवा बालपुत्रा सुरूपिणी । नातार नैव पश्यन्ती गालवाश्रममभ्यगात् ॥४॥

दिव्य और मत्स्यलोक की गोएँ हैं प्राप्त हो सकती हैं । तदनन्तर देवों की योजना के अनुसार गोसव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ ॥१०॥ यज्ञ के परिणामस्वरूप गौतमी के पवित्र कछार में गोओं की वृद्धि होने लगी । वह गोवर्धन तीर्थ देवताओं को अधिक प्रसन्न करने वाला है ॥११॥ मुनिश्चेष्ट उस तीर्थ का स्नान सहस्र गोदान का फल देता है । वहाँ दान देने का जो फल है उसको तो मैं भी नहीं जानता अतः कहने में असमर्थ हूँ ॥१२॥

श्रीब्रह्म महापुराण गोवर्धनतीर्थवर्णन नामक इत्ययानवर्वा अध्याय समाप्त ॥९१॥

अध्याय ६२

पापप्रणाशन तीर्थ का वर्णन

नारद ! पाप भय को दूर करने वाला एक पाप प्रणाशन नामक तीर्थ है । उसका यह नाम क्या पड़ा इसको मैं कह रहा हूँ तुम मनपूर्वक सुनो ॥१॥ धृतव्रत नाम का एक परम लोकप्रसिद्ध ब्राह्मण था । उसकी मही नाम की विश्व-सुन्दरी युवती स्त्री थी ॥२॥ उसने स्य के समान तेजस्वी सनाज्जात नामक एक पुत्र हुआ । मुनि । काल की प्ररणा से मृत्यु ने उस धृतव्रत को खींच लिया ॥३॥ इसने अनन्तर वह सुन्दरी बाल विधवा जिसका पुत्र अभी अवोध था—विधवा को अपना रखकर गालव आश्रम के आश्रम में चली गई ॥४॥ गावों को अपना पुत्र

तस्मै पुत्रं निवेद्याय स्वरिणो पापमोहिता । सा बभ्राम बह्वन्देशान्युस्कामा कामचारिणी ॥५॥
 तत्पुत्रो मालवगृहे वेदवेदाङ्गपारग । जातोऽपि मातृदोषेण वेदेष्वरितमतिस्त्वभूत् ॥६॥
 जनस्थानमिति एषात् नानाजातिसमावृत्म् । तत्रासी पथ्यवेपेण अध्यास्ते च मही तथा ॥७॥
 तत्सुतोऽपि बह्वन्देशान्परिवभ्राम वामुक । सोऽपि कालवशात्तत्र जनस्थानज्वसत्तत्र ॥८॥
 स्त्रियमात्राडक्षते वेश्या धृतव्रतसुतो द्विज । मही चापि धन दातृनुरपान्तमपभते ॥९॥
 मेने न पुत्रमात्मीय स चापि न तु मातरम् । तयो समागमश्चाऽऽसीद्विधिना मातृपुत्रयो ॥१०॥
 एष बहुतिथे काले पुत्र मातरि गच्छति । तयो परस्पर ज्ञान नवाऽऽसीन्मातृपुत्रयो ॥११॥
 एष प्रवर्तमानस्य पितृपूजेण सन्मति । आसीत्तस्याप्यसद्वृत्ते शृणु नारद चित्रवत् ॥१२॥
 स्वैरस्पित्या वर्तमानो मेव स परिहातवान् । ब्राह्मो सध्यामनुष्ठाय तदूध्व तु धनार्जनम् ॥१३॥
 विद्याबलेन वित्तानि बहून्पार्श्वं ददात्पत्नी । तथा स प्रातस्तथाय गङ्गा गत्या यथाविधि ॥१४॥
 शीचादि स्नानसध्यादि सर्वं कर्षं यथाक्रमम् । कृत्वा तु ब्राह्मणाग्रत्वा ततोऽभ्येति स्वकर्मसु ॥१५॥
 प्रातःकाले गीतमीं तु यदा याति विरुपयान् । कुप्यसर्वाङ्गशियिल पूयशोणितनिस्त्रव ॥१६॥
 स्नात्वा तु गीतमीं गङ्गा यदा याति सुरुपध्व् । शात सूर्याग्निसदृशो मूर्तिमानिव भास्वर ॥१७॥

इतरेषु स्वर्गाचारिणी पाप कर्मा क आचरण म माप्ति होय । योन मुल की वामना स स्वच्छ दनापूर्वक बहुत देना म धूमन ग्या ॥५॥ यद्यपि उसका पुत्र मातृक क आश्रम म बंद बनाया का पाना हुआ तथापि मातृदोष र कारण उमरी वयागमन की जार प्रवृत्ति हो गई ॥६॥ इत महा जनस्थान नामक नगर म—जनी विभिन्न जाति क लोग रहत थे—वया दूति स रहन ल्या ॥७॥ उसका वामनपुत्र भी इधर-उधर बहुत स देना का भ्रमण करता रहा । उग समय वह भी समय की प्रणय म उमी जनस्थान म रहता था ॥८॥ इधर ब्राह्मण धूमन क पुत्र वया नागा की इच्छा करता था उधर महा मा धन न बाल रम्यद पुरषा की अपना रगती थी । ॥९॥ उग समी पुत्र न न तो माता की और न माता न ही अपन ओरम पुत्र को पहचाना । स्वयं उन माता-पुत्रा का परस्पर समागम हुआ ॥१०॥ इस प्रकार बहुत समय बीत गया माता पुत्र म परस्पर अनुचित संबंध बना रहा परन्तु उन दाना का माता-पुत्र क पारम्परिक सम्बन्ध का ज्ञान नही था ॥११॥ नारद । मुनी यह आश्चर्य का विषय है कि इस प्रकार अनुचित व्यवहार म प्रवृत्त रहन वा उन दानमी ब्राह्मण म विना क प्रभाव क कारण सम्बुद्धि थी ॥१२॥ इस प्रकार स्वच्छा म लीन रहन हुए भी उसने अपने नित्यक्रम का नही छोड़ा । प्रतिनिधि वह प्रातः मध्या का अनुष्ठान करता तत्पश्चात् धन कमान क लिए जाता था ॥१३॥ वह अपने विद्या क प्रभाव म धन कमाता पुत्र उमी को मायका दे दता था । प्रातःकाल उठ कर यथाविधि समाज पर जाता था और जम पूर्वक दीव स्नान सध्या आदि सब क्रियाय समाज कर ब्राह्मणा की नमस्कार करता था । तत्पश्चात् अपन पादम लय जाता था ॥१४॥ प्रातःकाल जब वह गीतमा की जाता था तब वह विष्णु रहता सर्वज्ञ बुद्धि राग स निविष्ट रहता उमर करीर क वन से पूत और रत्न पहना रहता था । जब उधर म स्नान क बाद लोन्ता था तब गुन्तर रूप वाला दान्त मुख और अग्नि के समान तज्ज्वली होकर आता था । वह अपनी जाति म एषा ज्ञान होता था मानो मुनिमान् भास्वर है ॥१५॥ ॥१७॥ परन्तु वह ब्राह्मण अपन इन दाना क्य की नही दन पाता था

एतद्रूपद्वयं स्वस्य नैव पश्यति स द्विज । गालवो यत्र भगवास्तपोज्ञानपरायण ॥१८॥
 आश्रित्य गौतमीं देवीं आस्ते च मुनिभिर्वृत । ब्राह्मणोऽपि च तत्रैव नित्यं तोर्यं समेत्य च ॥१९॥
 गालव च नमस्याथ ततो याति स्वमन्दिरम् । गङ्गायाः सेवनात्पूर्वं सनाज्जातस्य यद्वपुः ॥२०॥
 स्नानसध्द्योत्तरे काले पुनर्यदपि तद्विज्ञे । उभय तस्य तद्रूपं गालवो नित्यमेव च ॥२१॥
 दृष्ट्वा सविस्मयो भेने किञ्चिदस्त्यत्र कारणम् । एव सविस्मयो भूत्वा गालव प्राह त द्विजम् ॥२२॥
 गच्छन्त तु नमस्याथ सनाज्जातं गणहृम् । आहूय यत्नतो धीमान्कृपया विस्मयेन च ॥२३॥

गालव उवाच

को भवान्क्व च गन्ताऽसि किं करोषि वयं भोक्ष्यसि । किनामा त्वं वयं शय्या ते का ते भार्या घदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

गालवस्य वचं श्रुत्वा 'ब्राह्मणोऽप्याह तं मुनिम् ॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

इव कथ्यते मया सर्वं ज्ञात्वा कार्यविनिर्णयम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गालव तं सनाज्जातो गृहं ययौ । भुक्त्वा रात्रीं तथा सम्यक्शय्यामासाद्य बन्धकीम् ॥
 उवाच चक्षितं स्मृत्वा गालवस्य तु यद्वच ॥२७॥

तप और ज्ञान में राबदा त 'तीन' रहन याके गालवमुनि अपने साथी मुनियों के साथ जहाँ गौतमी के तट पर सन्यास-पदनादिकरते थे वही वह ब्राह्मण भी नित्य आता और मिलता था तथा गालव मुनि को प्रणाम कर अपने घर को जाता था ॥१८-१९॥ गया स्नान के पूर्व सनाज्जात वा जैसा शरीर रहता था और पुनः स्नान सध्या के बाद उस ब्राह्मण वा जैसा रूप हो जाता था उसके उस उभय रूपा को नित्य देखकर मुनि गालव को बहुत आश्चर्य हुआ सोचा इसमें अवश्य कुछ कारण है ॥२०-२१॥ निदान उस प्रकार विस्मित होकर बुद्धिमान गुरु गालव ने नमस्कार के बाद घर जाने के लिय प्रस्तुत उस ब्राह्मण को बुलाकर दृष्टा और आश्चर्य से युक्त होकर वचन से पूछा ॥२२-२३॥
 गालव ने कहा—तुम कौन हो ? कहाँ जा रहे हो ? क्या कार्य करते हो ? कहाँ भोजन करते हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? कहाँ सोते हो ? तुम्हारी भार्या कौन है ? इन प्रश्नों का उत्तर मुझे दो ॥२४॥

ब्राह्मण ने कहा—मैं कल मलीर्मांति विचार कर उत्तर दूंगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार गालव मुनि से कहकर सनाज्जात अपने घर को चला गया । रात्रि में भोजन के पश्चात् उस वेश्या के साथ मलीर्मांति शय्या पर बैठ कर गालव की बातों का स्मरण करता हुआ वह चक्षित होकर वेश्या से बोला ॥२७॥

ब्राह्मण उवाच

त्व तु सर्वगुणोपेता बन्धक्यपि पतिव्रता । आबधो सद्दशी प्रीतिर्यावज्जीव प्रवतताम् ॥२८॥
तयाऽपि किञ्चित्पूच्छामि किनामन्ती त्व यव वा कुलम् । किनु स्थान यव वा बन्धुर्मम सर्वं निवेद्यताम् ॥२९॥

बन्धक्युवाच

धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो दीक्षित शुचिः । तस्य भार्या मही चाह मत्पुत्रो गालवाश्रमे ॥३०॥
उत्सृज्यो मतिमान् बाल सनाज्जात इति धृत । अह तु पूर्वदोषेण त्यक्त्वा धर्मं कुलागतम् ।
स्वैरिणो त्विह वर्तेऽह विद्धि मा ब्राह्मणो द्विज ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मर्मविद्ध इवाभवत् । पपात सहसा भूमौ येदया त वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥

वेश्योवाच

किं तु जातं द्विजश्रेष्ठ वयं च प्रीतिर्गता तव । किं तु वाक्यं मया धोवत तव चित्तविरोधकृत् ॥३३॥
आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य ब्राह्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रत पिता विप्रस्तत्पुत्रोऽहं सनाद्यत । माता मही मम इयं मम देयादुपागता ॥३५॥

ब्राह्मण ने कहा—तुम सब गुणा स युक्त वेदया होत हुए भी पतिव्रता हो। यह हम लोग का समान प्रेम जीवन भर रहे। फिर भी मैं कुछ पूछ रहा हूँ। तुम्हारा नाम क्या है? कुल क्या है? तुम्हारा कौन सा स्थान (जन्मभूमि) है? तुम्हारे बन्धु (हितच्छ माता पिता या परिवार) कहाँ रहते हैं? इन बातों को मुझ बताओ ॥२८ २९॥

बन्धकी ने कहा—धृतव्रत नाम का पवित्र एवं यमनिष्ठ ब्राह्मण था। उसी की मैं भार्या हूँ। मेरा नाम मही है। मैंने अपने सनाज्जात नामक बृद्धिमान् पुत्र को गालवाश्रमा में ही गालव व आश्रम में छोड़ दिया। स्वयं अपने पूर्वजन्म के श्रेष्ठ के कारण कुलधर्म को छोड़कर इस प्रकार वेश्या बनकर रह रही हूँ। द्विज! मुझे ब्राह्मणों की यही क्या है ॥३० ३१॥

ब्रह्म ने कहा—उसकी उन बातों को सुनकर वह ममाहृत माहो गया। वह एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर वेश्या ने उस ब्राह्मण से कहा ॥३२॥

वेश्या ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! क्या क्या हो गया? तुम्हारा वह प्रेम कहाँ गया? क्या मैं एक वाक्य कह न्ये जा तुम्हारे हृदय में विरह भावना उत्पन्न करने वाला हूँ? इन बातों को सुनकर ब्राह्मण ने तब अपने को सम्मान कर कहा ॥३३ ३४॥

ब्राह्मण ने कहा—धृतव्रत मेरे पिता का नाम है। मैं उसी का पुत्र विप्र सनाज्जात हूँ। यह मेरी ही माता मही है जो देवयोग से मेरे समान इस रूप में आई है ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तस्य वाक्यं साऽप्यभूदतिदुःखिता । तयोस्तु शोचतोः पश्चात्प्रभाते विमले रवौ ॥
गालवं मुनिशार्दूलं गत्वा विप्रो न्यवेदयत् ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतसुतो ब्रह्मंस्त्वया पूर्वं तु पालितः । उपनीतस्त्वया चैव महो माता मम प्रभो ॥३७॥
किं करोमि च किं कृत्वा निष्कृतिर्मम वै भवेत् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा गालवः प्राह मा शुचः । तवेदं द्विविधं रूपं नित्यं पश्याम्यपूर्ववत् ॥३९॥
ततः पृष्टोऽसि वृत्तान्तं श्रुतं ज्ञातं मया तथा । यत्कृत्यं तव तत्सर्वं यद्गर्भात् प्रत्यगात्स्र्यम् ॥४०॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादस्या देव्याः प्रसादतः । पूतोऽसि प्रत्यहं वत्स नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥
प्रभाते तव रूपाणि सपापानि त्वहनिशम् । पश्येज्ज्ञं पुनरप्येव रूपं तव गुणोत्तमम् ॥४२॥
आगच्छन्त त्वागोयुक्तं गच्छन्त त्वामनागसम् । पश्यामि नित्यं तस्मात्त्वं पूतो देव्या कृतोऽधुना ॥४३॥
तस्मान्न कार्यं ते किंचिदवशिष्टं भविष्यति । इयं च माता ते विप्र ज्ञाता या चैव बन्धकी ॥४४॥

ब्रह्मा बोले—उसकी इन बातों को सुनकर वह भी अत्यन्त दुःखी हुई । इस प्रकार पश्चात्ताप करते-करते प्रातः हो गया । निर्मल सूर्य प्राची में चमकने लगे । तब विप्र ने मुनिपुंगव गालव से कहा ॥३६॥

ब्राह्मण ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं धृतव्रत का पुत्र हूँ । शैशव में आपने ही मेरा पालन पोषण और उपनयन (यशोपवीत) किया है । प्रभु ! यही मेरी माता है । मैं क्या कहूँ ? क्या करने से मेरा उद्धार होगा ? ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—उस विप्र की बातें सुनकर गालव ने कहा—‘मत् उरो । तुम्हारे इन दो रूपों को प्रतिदिन अनोखे स्वरूप में मैं देखता हूँ । इसके पश्चात् जैसा कि मैंने सुनाया और अनुमान द्वारा जाना, उसी वृत्तान्त को मैंने पूछा है । तुम्हारे प्राचीन किये हुए सभी दुष्कर्म इस समय गौतमी में नष्ट हो गये । वत्स ! इस तीर्थ के माहात्म्य वश, इस देवी की कृपा से तुम प्रतिदिन पवित्र हो । इस विषय में अधिक शोक करने की आवश्यकता नहीं । प्रतिदिन प्रातः काल तुम्हारे पापयुक्त स्वरूप को देखता हूँ, पुनः तत्काल ही तुम्हारे उस रूप-गुण से सम्पन्न आकृति को भी देखता हूँ ॥३९-४२॥ नित्य ही आते समय तो तुम को रोगयुक्त देखता था परन्तु जाते समय स्वस्थ एवं रूपमय । अतः तुमको देवी गौतमी ने इस समय पवित्र बना दिया ॥४३॥ ता तुम्हारा कोई भी कार्य शेष नहीं रह गया है । विप्र ! यह तुम्हारी माता, जो वेश्या के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी अत्यन्त पश्चात्ताप की ज्वाला में जल चुकी है । इसलिये वह भी पाप से सर्वथा मुक्त हो गई । वत्स ! प्राणियों की विषयों के प्रति आसक्ति स्वाना-विक है, परन्तु यह भी सत्य है कि देववश सत्सग अन्य महापुण्य से निवृत्ति भी हो जाती है । इसके अतिरिक्त पूर्व-

पश्चात्तापं गताऽत्यन्तं निवृत्ता त्वय पातकात् । भूतानां विषये प्रीतिर्वत्स स्वाभाविकी यतः ॥४५॥
 सत्सङ्गतो महापुण्याग्निवृत्तिर्देवतो भवेत् । अत्यर्थमनुत्प्लेयं प्रागाचरितपुण्यतः ॥४६॥
 स्नानं कृत्वा चात्र तीर्थे ततः पूता भविष्यति । तथा तौ चशत्रुभौ मातापुत्रौ च नारद ॥४७॥
 स्नानाद्बभूवतुष्टभौ गतपापावसंशयम् । ततः प्रभृति तत्तीर्थं धौतपापं प्रचक्षते ॥४८॥
 पापप्रणाशनं नाम गालवं चेति विश्रुतम् । महापातकमल्पं वा तथा यच्चोपपातकम् ॥
 तत्सर्वं नाशयेदेतद्धौतपापं सपुण्यदम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्ये धौतपापमाहात्म्यनिरूपणं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥
 गौतमीमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

विश्वामित्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्र वाशरथी रामः सौतया सहितो द्विज । पितृन्सर्तप्यामास पितृतीर्थं ततो विदुः ॥१॥
 तत्र स्नानं च दानं च पितॄणां तर्पणं तथा । सर्वमशयतामेति नात्र कार्या विचारणा ॥२॥

जन्मदूत पुण्यो के फलस्वरूप यह अत्यन्त अनुत्पत्त भी है ॥४४-४६॥ इसलिये इस तीर्थ में स्नान करने से यह शीघ्र पवित्र हो जायगी । नारद ! उन दोनों माता और पुत्र ने ऋषि के कथनानुसार सारा कार्य किया । स्नान के करने से ही वे दोनों निश्चिन्त हो पवित्र हो गये ॥४७॥ तभी से वह तीर्थ धौतपाप नाम से प्रसिद्ध हो गया, साथ ही उसके पापप्रणाशन (पाप नष्ट करने वाला) और गान्धर्व नाम भी प्रसिद्ध हैं । यह अत्यन्त पुण्य देने वाला गालव नामक तीर्थ चाहे अधिक पाप हो चाहे कम अथवा जो कुछ उपपाप भी हैं उनको क्षणभर में नष्ट कर देता है ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धौतपाप-माहात्म्य निरूपण नामक बानबेदा अध्याय समाप्त ॥९२॥

अध्याय ६३

विश्वामित्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ दशरथ-पुत्र राम ने सीता के सहित अपने पितरों को दूष्ट किया, उसको पितृ-तीर्थ कहा जाता है । उस तीर्थ में स्नान, दान और पितरों का तर्पण, ये सभी अशय पुण्य के देने वाले हैं, इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं । जहाँ पर दशरथ पुत्र राम ने महामुनि विश्वामित्र की तरबट्टा मूर्तिबनों के सहित पूजा

यत्र दाशरथी रामो विश्वामित्रं महामुनिम् । पूजयामास राजेन्द्रो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥३॥
 विश्वामित्रं तु तत्तीर्थमृषिजुष्टं सुपुण्यदम् । तत्स्वरूपं च वक्ष्यामि पठितं वेदवादिभिः ॥४॥
 अनावृष्टिरभूत्पूर्वं प्रजानामतिभोषणा । विश्वामित्रो महाप्राज्ञः सशिष्यो गौतमीमगात् ॥५॥
 शिष्यान्पुत्राश्च जायां च कृशान्दृष्ट्वा क्षुधातुरान् । व्यथितः कौशिकः श्रीमाञ्शिष्यानिदमुवाच ह ॥६॥

विश्वामित्र उवाच

यथाकर्तव्यं चिच्छत्किञ्चिद्यत्र यवापि यथा तथा । आनीयतां किंतु भक्ष्यं भोज्यं वा मा विलम्ब्यताम् ॥
 इदानीमेव गन्तव्यमानेतद्व्यं क्षणेन तु ॥७॥

ब्रह्मोवाच

ऋषेस्तद्वचनाच्छिष्याः क्षुधितास्त्वरया ययुः । अटमाना इतश्चेतो मृतं ददृशिरं शुनम् ॥८॥
 तमादाय त्वरायुक्ता आचार्याय न्यवेदयन् । सोऽपि तं भद्रमित्युक्त्वा प्रतिजग्राह पाणिना ॥९॥
 विशसध्वं श्वमासं च क्षालयध्वं च वारिणा पचध्वं मन्त्रवच्चापि हुत्वाऽग्नीं तु यथाविधि ॥१०॥
 देवानृषीन्पितृन्पितृन्पितृणां स्तर्पयित्वाऽतिथीन्गुरुन् । सर्वे भोक्ष्यामहे शोषमित्युवाच स कौशिकः ॥११॥
 विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शिष्याश्चक्रुस्तथैव तत् । पच्यमाने श्वमासे तु देवदूतोऽग्निरभ्यगात् ॥
 देवानां सदनं सर्वं देवैश्च्यस्तन्यवेदयत् ॥१२॥

की, उस शुन, पुण्यप्रद, ऋषियो से अहर्निश सेवित विश्वामित्र तीर्थ के स्वरूप का परिचय दे रहा हूँ, जिसका वेदाभ्यासी लोग सर्वदा गान किया करते हैं। आज से बहुत पहले का समय था। प्रजा को अत्यन्त कष्ट देने वाला भयकर सूखा (अनावृष्टि) पड़ा। यह देखकर महाप्राज्ञ विश्वामित्र अपने शिष्यवर्ग के साथ गौतमी के तट पर गये। अपने पुत्र स्त्री, और शिष्यो को कृशकाय और मूल से व्याकुल देखकर श्रीमान् विश्वामित्र व्यथित हो गये। उन्होंने अपने शिष्यो से कहा ॥१-६॥

विश्वामित्र बोले—जिस किसी प्रकार जो कुछ, जहाँ कहीं भी खाने योग्य या पीने योग्य पदार्थ मिलें ले आओ। विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं। अभी-अभी चले जाओ और क्षण भर में ही लाना होगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—ऋषि की बातें सुनकर भूखे वे शिष्य शीघ्र इधर-उधर चले गये। इधर उधर घूमने पर उन लोगों ने एक मृत हुत्त को देखा। उसको लेकर बड़ी क्षीघ्रता से आचार्य विश्वामित्र को अर्पित कर दिया। उन्होंने भी कल्याणही ऐसा कह कर अपने हाथों से ले लिया और कहा कि इस श्वमास को काट डालो, पानी से धो डालो और अग्नि में डाल कर विधिपूर्वक मन्त्र के साथ इसको पकाओ, पुन देवता, ऋषि, पितर, एवं अन्य अतिथि गुरु-जनों को तृप्त कर वचै हुए भाग को हम सब भोजन करेंगे। विश्वामित्र भी उपर्युक्त बातें सुनकर शिष्यो ने तृती तरह किया। इस प्रकार जब कुत्ते का मास पकाया जाने लगा तब उसी समय देवदूत अग्नि देवों के समीप गये और सब देवों से उस घटना को कह सुनाया ॥८-१२॥

अग्निश्वाच

देवं ' इयमास भोवतव्यमापन्नमृषिकल्पितम्

॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अग्नेस्तद्वचनादिन्द्र इयेनो भूत्वा विहायसि । स्यालीमयाहर्त्तृणां मांसेन 'पिहिता तदा ॥१४॥
तत्कर्म वृष्ट्वा शिष्यास्ते ऋषे' इयेन ग्यवेदयन् । हुता स्याली मुनिश्रेष्ठ इयेनेनाकृतबुद्धिना ॥१५॥
ततश्चुकोप भगवाञ्छाप्तुकामस्तदा हरिम् । ततो ज्ञात्वा सुरपति स्यालीं चक्रे मधुप्लुताम् ॥१६॥
पुनर्निषेद्यामामास उत्कास्वेव खगो हरि । मधुना तु समायुक्ता विश्वामित्रश्चुकोप ह ॥
स्यालीं धोक्ष्य ततः कोपादिदमाह स कौशिक ॥१७॥

विश्वामित्र उवाच

इयमांसमेव नो देहि त्व हरामृतमुत्तमम् । नो चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यामिन्द्रो भीतस्तदाऽग्रधीत् ॥१८॥

इन्द्र उवाच

मधु हृत्वा यथायाप पिब पुत्रं समन्वित । किमनेन इयमांसेन अमेध्येन महामुने ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रोऽपि नेत्याह भुक्तेर्नरेण किं फलम् । प्रजा सर्वाश्च सोदन्ति किं तेन मधुना हरे ॥२०॥

अग्नि ने कहा—ऋषि द्वारा बनया हुआ कुत का मांस आप देवा को खाता होगा ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि की उन बात को सुनकर इन्द्र इयेन (बात्र) बनकर मांस से परिपूर्ण और दही हुई स्याली को लेकर आराग्य म उड़ गया । ऋषि शिष्या ने यह व्रम देखकर इयेन क इस घोर व्रम को ऋषि से निवदन किया कि 'मुनिश्रेष्ठ' जिसी अविवेकी बात्र ने मांस की स्याली चुरा ली है । तत्पश्चात् भगवान् विश्वामित्र इन्द्र को राग देने की इच्छा से अत्यन्त क्रुणित हुए । इस अभिप्राय को जानकर बात्ररूपधारी इन्द्र ने स्याली का मधु से परिपूर्ण कर दिया और उसको पुनः जड़ों की हृदय लवङ्गिया पर रख दिया । विश्वामित्र मधु में परिपूर्ण स्याली को देखकर और अधिक क्रुणित हो गये । तब बात्र से उन्होंने कहा ॥१४-१७॥

विश्वामित्र बोले—तुम हम लोगों को कुत का मांस ही दोग अपना उत्तम अमृत ल बात्रों नहा तो तुमको मरम कर दूंगा । इन्द्र मुनि की कोप मुद्रा को देखकर मयभीत हो गये और बोले ॥१८॥

इन्द्र ने कहा—मधु को ही यथाभाग वितरित कर पुत्र परिवार सहित पीजिये । महामुने ! इस अपवित्र, कुत का मांस खाने से क्या लाभ होगा ? ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—विश्वामित्र न भी कहा कि नहीं केवल हम लोगों के भोजन कर लेने से क्या लाभ होगा ? इन्द्र ! शारी प्रजा चष्ट पा रही है । तो उम मधु या मधुपान से क्या लाभ होगा ? यदि सबके लिये अमृत का प्रबंध

सर्वेषाममृत चेत्स्याद्भोक्ष्येऽहममृत शुचि। अथवा देवपितरो भोक्ष्यन्तोऽवमासकम् ॥२१॥
 पश्चादहं तच्च मास भोक्ष्ये नानृतमस्ति मे। ततो भीत सहस्राक्षो मेघानाहूय तत्क्षणात् ॥२२॥
 वर्षं चामृत वारि ह्यमृतेनापिना प्रजा। पश्चात्तदमृत पुण्य हरिदत्त यथाविधि ॥२३॥
 तर्पयित्वा सुरानादौ तर्पयित्वा जगत्त्रयम्। विप्र समुक्तवाञ्छिष्यैर्विश्वामित्र स्वभायया ॥२४॥
 तत प्रभृति तत्तीर्थमाख्यात चातिपुण्यदम्। यत्राऽऽगत सुरपतिर्लोकानाममृतार्पणम् ॥२५॥
 तज्जात मासवर्जं तु तत्तीर्थं पुण्यद नृणाम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वैरनुफलप्रदम् ॥२६॥
 तत प्रभृति तत्तीर्थं विश्वामित्रमिति स्मृतम्। मधुतीर्थमयं च श्येन पर्जन्यमेव च ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रतीर्थवर्णनं नाम

त्रिनवतितमोऽध्याय ॥९३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्याय ॥२४॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्वेततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेततीर्थमिति ख्यातं त्रैलोक्ये विश्रुतं शुभम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापं प्रमुच्यते ॥१॥

हो तो मैं भी पवित्र अमृत का पान कर्हूँगा नहीं तो देव पितर सभी उस अमृत्य मास को ही खावेंगे। इसके बाद मैं उस मास को खाऊँगा मेरा कथन असत्य नहीं है। विश्वामित्र की इन बातों से सहस्र नेत्र वाले इंद्र भयभीत हो गये। उसी समय मेघों को बुलाकर अमृत मय जल की वर्षा कर सम्पूर्ण प्रजा को अमृतदान से तृप्त किया। इसके अनंतर इंद्र के दिये हुए पवित्र अमृत को लेकर यथाविधि पहले देवताओं को और तीनो लोक को विश्वामित्र ने तृप्त किया पुन अपनी भार्या और शिष्यों के साथ स्वयं पान किया। उस समय से वह तीर्थ अत्यंत पुण्यप्रद माना जाने लगा। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से सब यशों का फल प्राप्त होता है। और उसी समय से वह विश्वामित्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। कोई उसका मधुतीर्थ ऐंद्र श्येन, और पञ्चमी कहते हैं ॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विश्वामित्रतीर्थ वर्णन नामक तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९३॥

अध्याय ६४

श्वेततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—त्रिमुक्ता में अति प्रसिद्ध श्वेततीर्थ नामक एक तीर्थ है। उस तीर्थ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। प्राचीन काल में श्वेत नामक एक ब्राह्मण ऋषि गौतम का रहता था। वह गौतमी

श्वेतो नाम पुरा विप्रो गौतमस्य प्रिय सखा । आतिथ्यपूजानिरतो गौतमीतीरमाश्रित ॥२॥
मनसा कर्मणा वाचा शिवभक्तिपरायण । ध्यायन्त त द्विजश्रेष्ठ पूजयन्त सदाशिवम् ॥३॥
पूर्णायुष द्विजवर शिवभक्तिपरायणम् । नेतु दूता समाजमुर्दक्षिणाशापतेस्तदा ॥४॥
नाशक्नुवन्गृह तस्य प्रवेष्टुमपि नारद । तदा काले व्यतिक्रान्ते चित्रको मृत्युमब्रवीत् ॥५॥

चित्रक उवाच

किं नाऽऽयाति क्षीणजीवो मृत्यो श्वेत कथत्विति । नाद्याप्यायान्ति दूतास्ते मृत्योर्नवोचित तु ते ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च कुपितो मृत्यु प्रायान्छ्वेतगृह स्वयम् । बहि स्थितास्तदा पश्यन्मृत्युर्दूताभ्यादितान् ॥
प्रोवाच किमिदं दूता मृत्युमूचुश्च दूतका ॥७॥

दूता ऊचुः

शिवेन रक्षित श्वेत वयं नो वोक्षितु क्षमा । येषां प्रसन्नो गिरिशस्तेषां का नाम भीतय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

पाशपाणिस्तदा मृत्यु प्राविशद्यत्र स द्विज । नासी विप्रो विजानाति मृत्यु वा यमकिंकरान् ॥९॥

के तीर पर आश्रम बना कर रहता था । सबदा द्वार पर आये अतिथिया के आतिथ्य-सत्कार में लगा रहता था । मन ध्यान और कर्म से उसकी शिव में निष्ठा रहता थी । एक दिन जब उस शिव भक्ति-परायण द्विजवर की आयु का अन्त समय आया तब सदाशिव की पूजा में रत और ध्यानमग्न उस श्रेष्ठ द्विज को ले जाने के उद्योग में दूत आये । नारद ! उस शिवभक्त के तब से हतवीर्य हो के यमदूत उसका गृह में प्रवेश नहीं कर पाते थे । उधर विलम्ब होने पर चित्रक ने मृत्यु से पूछा—॥११॥

चित्रक ने कहा—मृत्यु ! आयु क्षीण हो जाने पर भी श्वेत क्यों नहीं आ रहा है ? अब तक तुम्हारे तभी नहीं आये यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥९॥

ब्रह्मा बोले—इस पर मृत्यु कुपित होकर स्वयं विप्र श्वेत के घर गया । वहाँ अपन मयवस्तु दूता को बाहर बैठ देखकर बोले—दूतो ! यह क्या है ? यह मुनिकर दूता न मृत्यु से कहा ॥७॥

दूता ने कहा—सिद्ध के द्वारा रक्षित श्वेत को हम लोग आँख उठाकर भी देखने में समर्थ नहीं हो रहे हैं । जिनने उपर स्वयं कलाशपति गकर प्रसन्न हैं उनको डर किस बात का ॥८॥

ब्रह्मा बोले—यह मुनिकर मृत्यु हाथ में पाश लिये हुए उस स्थान पर पहुँचा जहाँ वह विप्र विराजमान था । उसने अपनी तमयता के कारण मृत्यु अथवा यमदूता को नहीं पहचाना । वह तो भक्तिपूर्वक शिवाराधन में ही लगा रहा । ऐसे भक्त श्वेत के समीप पाशहस्त मृत्यु को देख कर दण्डी ने अत्यन्त विस्मित हो उससे पूछा—॥९॥

शिवं पूजयते भक्त्या श्वेतस्य तु समीपतः। मृत्युं पाशधरं दृष्ट्वा दण्डी प्रोवाच विस्मितः॥१०॥

दण्ड्युवाच

किमत्र वीक्षसे मृत्यो दण्डिन मृत्युरब्रवीत्

॥११॥

मृत्युर्वाच

श्वेतं नेतुमिहाऽऽयातस्तस्माद्वीक्षे द्विजोत्तमम्

॥१२॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गच्छेत्यब्रवीदण्डी मृत्युः पाशानयाक्षिपत्। श्वेताय मुनिशार्दूल ततो दण्डी चुकोप ह॥१३॥
शिवदत्तेन दण्डेन दण्डी मृत्युमताडयत्। ततः पाशधरो मृत्युः पपात धरणीतले॥१४॥
ततस्ते सत्वर द्रुता हतं मृत्युमवेश्य च। यमाय सर्वमवदन्वधं मृत्योस्तु दण्डिना॥१५॥
ततश्च कुपितो धर्मो यमो महिषवाहनः। चित्रगुप्तं बहुबलं यमदण्डं च रक्षकम्॥१६॥
महिषं भूतवेतालानाधिव्याधौस्तथैव च। अक्षिरोगान्कुक्षिरोगान्कर्णशूलं तथैव च॥१७॥
ज्वरं च त्रिविधं पापं नरकाणि पृथक्पृथक्। त्वरन्तामिति तानुक्त्वा जगाम त्वरितो यमः॥१८॥
एतैरन्यैः परिवृतो यत्र श्वेतो द्विजोत्तमः। समायात यमं दृष्ट्वा नन्दी प्रोवाच सायुधः॥१९॥
विनायक तथा स्कन्द भूतनाथ तु दण्डिनम्। तत्र तद्युद्धमभवत्सर्वलोकभयावहम्॥२०॥

दण्डी बोला—मृत्यु! यहाँ क्या देख रहे हो? ॥११॥

मृत्यु ने दण्डी से कहा—श्वेत को ले जाने के लिए यहाँ आया हूँ इसलिये द्विजश्रेष्ठ श्वेत को देख रहा हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तुम चले जाओ, दण्डी ने कहा। मुनिशार्दूल! इसके बाद मृत्यु ने श्वेत के लिए पाश फेंका। यह देख दण्डी के त्रिष का ठिकाना न रहा। उसने शिव-दत्त दण्ड से मृत्यु पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप यम पाश हाथ में लिये ही पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१३-१४॥ वे यमदूत इस प्रकार मृत मृत्यु को देखकर शीघ्र ही यम के पास गये और उसने दण्डी के द्वारा मृत्यु का वध आदि सब कुछ यम को सुना दिया ॥१५॥ इसको सुनकर महिष वाहन यम कुपित हो गया। उसने अपने अतिबलशाली चित्रगुप्त, रक्षा करने वाले यमदण्ड, मैसा, भूत, वेताल, व्याधि, इसी प्रकार नेत्ररोग, उदररोग, कर्णशूल तीन प्रकार के ज्वर पाप और विविध प्रकार के नरकों में 'जल्दी करो' यह कहकर बड़ी शीघ्रता से सबको साथ लेकर घटनास्थल पर पहुँचा ॥१६-१८॥ इस प्रकार उपर्युक्त गणों एवं अन्य सहायकों के साथ यम वहाँ पहुँचा जहाँ श्वेत बैठा था। राक्षसजित यम को इस प्रकार आते देखकर राक्षस सम्हालते हुए नन्दी में विनायक, स्कन्द तथा दण्डधारी भूतनाथ शंकर से यम की दुरन्तिस्थि कह सुनाई। अब वहाँ सम्पूर्ण लोक को मय देने वाला मयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥१९-२०॥ युद्ध में वार्तिकेय ने स्वयं अपनी शक्ति

कार्तिकेय स्वयं शक्त्या बिभेद यमकिंकरान् । दक्षिणाक्षापति चापि निजघ्नान बलान्वितम् ॥२१॥
 हतावशिष्टा याम्यास्ते आदित्याय न्यवेदयन् । आदित्योऽपि सुरैः सार्धं श्रुत्वा तन्महदभुतम् ॥२२॥
 लोकपालैरनुवृत्तो ममान्तिकमुपागमत् । अहं विष्णुश्च भगवानिन्द्रोऽग्निर्वैरुणस्तथा ॥२३॥
 चन्द्रादित्यावश्विनौ च लोकपाला मरुद्गणा । एते चान्ये च बहवो ध्येया यामान्तिकम् ॥२४॥
 मृत आस्ते दक्षिणेशो गङ्गातीरे बलान्वित । समुद्राश्च नदा नागा नानाभूतान्यनेकश ॥२५॥
 तन्नाञ्जलिं पुनः सुरेशान द्रष्टुं वैवस्वत यमम् । त दृष्ट्वा हतसैन्यं च यम देवा भयादिता ॥
 कृताञ्जलिपुटा शम्भुर्मुचुः सर्वे पुन पुन ॥२६॥

देवा ऊचुः

भक्तप्रियत्व ते नित्यं दुष्टहन्तृत्वमेव च । आदिकर्तनमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥
 ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु देवप्रिय नमोऽस्तु ते ॥२७॥

श्वेतं द्विजं भक्तमनायुषं ते, नेतुं यमादि सकलोऽसमर्थः ।
 सतोषमाप्ता परमं रामीक्ष्य, भक्तप्रियस्य त्वयि नाथ सत्यम् ॥२८॥
 ये त्वा प्रपन्ना शरणं कृपालु, नालं कृतान्तोऽप्यनुधीक्षितुं तान् ।
 एव विदित्वा शिव एव सर्वे, त्वामेव भक्त्या परया भजन्ते ॥२९॥
 त्वमेव जगता नाथ किं न स्मरसि शक्र । त्वा विना कः समर्थोऽत्र व्यवस्थां कर्तुमीश्वर ॥३०॥

ये यमदूता को छेदं डागा । पुन उन्हाने चल्यवित दक्षिण दिशा के स्वामी यम को भी मार गिराया ॥२१॥ हतशेष
 यम के अनुचरो ने यमपिता आदित्य से सारी कथा कही । आदित्य भी इस अद्भुत सप्राप्त को सुनकर देवताओं
 और लोकपालों को साथ के मरे पास आय ॥२२॥ म (ब्रह्मा) विष्णु भगवान् इन्द्र अग्नि वैरुण चन्द्र आदिय
 अश्विन लोकपाल मरुद्गण तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत से देव यम के समीप गये ॥२३- २४॥ वहां
 गंगा के तट पर अपनी मना सहित दक्षिणायं यम मरा हुआ पड़ा था । सभी समुद्र नद नाग एवं अन्य मणवज
 प्राणी देवस्वामी वैवस्वत यम को दलाने के लिये वहाँ पहुँचे हुए थे । उसको इस प्रकार सैन्य सहित मरा दलकर सभी
 देवता यम से व्याकुल हो गये । व हाथ जोड़कर भगवान् शंकर से पुन पुन कहत गये ॥२५ २६॥

देवो ने कहा—तुम्हारा भक्ता के प्रति सदा स्नेहभाव रहता है । तुम दुष्टों के वध के लिये सदा तत्पर
 रहते हो । आदित्या ! तुमको नमस्कार है नीलकण्ठ ! तुम्हारा हम नमस्कार करते हैं । ब्रह्मप्रिय ! आपको
 नमस्कार है । देवप्रिय ! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२७॥ तुम्हारा इस गतायुष भक्त द्विज श्वेत को के जाने
 म यमादि सभी असमर्थ हो गये । नाथ ! तुम भक्तवात्सल्य का यह उत्कृष्ट सत्यस्वरूप दर्शकर हम अत्यंत
 सन्तुष्ट हैं । जो व्यक्तित्व कृपालु, तुम्हारी शरण में जाते हैं उन लोगों की आरंभ यम भी जान उठाकर देखने का साहस
 नहीं कर सकता । निम्न ! तुम्हारी इस कृपालुता को जानकर सब तुमको अत्यन्त भक्ति में भजते हैं । शंकर !
 क्या आप स्मरण नहीं करते कि आपही सत्कार का स्वामी हैं । तुमको छोड़कर कौन ऐसा है जो इस सत्कार में व्यवस्था
 स्थापित करने में समर्थ हो सकता है ॥२८ ३०॥

ब्रह्मोवाच

एष तु स्तुवतां तेषां पुरस्तादभवच्छिवः । किं वदामीति तानाह इदमूचः सुरा अपि ॥३१॥

देवा ऊचुः

अयं वैवस्वतो धर्मो नियन्ता सर्वदेहिनाम् । धर्माधर्मव्यवस्थायां स्थापितो लोकपालकः ॥३२॥
नायं वधमयान्तेति नापराधी न पापकृत् । विना तेन जगद्वातुर्नैव किञ्चिद्भविष्यति ॥३३॥
तस्माज्जीवय देवेश यम सबलवाहनम् । प्रार्थना सफला नाथ महत्सु न वृथा भवेत् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवाञ्जीवयेयमसशयम् । यम यदि वचो मेऽद्य अनुमन्यन्ति देवताः ॥३५॥
ततः प्रोचुः सुरा सर्वे कुर्मो वाक्यं त्वयोदितम् । हरिब्रह्मादिसहितं वशे यस्याखिलं जगत् ॥३६॥
ततः प्रोवाच भगवानमरान्समुपागतान् । मद्भूततो न मूर्तिं यातु नेत्यूचुरमराः पुनः ॥३७॥
अमराः स्युस्ततो देव सर्वलोकाश्चराचरा । अमर्त्यमर्त्यभेदोऽयं न स्याद्देव जगन्मय ॥३८॥
पुनरप्याह ताञ्शशु शृण्वन्तु मम भाषितम् । मद्भूतानां वैष्णवानां गौतमीमनुसेवताम् ॥३९॥
वयं तु स्वामिनो नित्यं न मृत्युः स्वाम्यमर्हति । वाताऽप्येषां न कर्तव्या धमेन तु कदाचन ॥४०॥
आधिपत्याध्यादिभिर्जातु कार्यो नाभिभवः क्वचित् । ये शिवं शरणं यातास्ते भुक्तास्तत्क्षणादपि ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार देवों की प्रार्थना सुनकर आशुतोष शिव उन देवों के सामने प्रत्यक्ष हुये । उन्होंने कहा—वया दूं ? यह सुनकर देवों ने कहा ॥३१॥

देवगण बोले—यह वैवस्वत धर्म सब प्राणियों पर अनुशासन करनेवाला है । यही धर्माधर्म की व्यवस्था के लिये लोकपालक के रूप में प्रतिष्ठित है । यह न तो अपराधी ही और न पापकर्म करनेवाला ही है । अतः यह वष के योग्य नहीं है इसके बिना विधाता की सृष्टि में कोई व्यवस्था नहीं हो सकेगी । देवेश ! इसलिये इस यम को सैन्य, वाहन के सहित जीवित कर दो । नाथ ! महानों से की गई प्रार्थना सफल होती है, व्यर्थ नहीं ॥३२-३४॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् शंकर ने कहा 'मैं अवश्य यम को जीवित कर दूंगा, यदि आप सब देवता आज मेरे प्रस्ताव का समर्थन कर । यह सुन कर सब देवताओं ने कहा कि आप की कही हुई बातों का हम सब अक्षरसा पालन करेंगे । जिसके अधिकार में विष्णु, और ब्रह्मा सहित सारा जगत है, उसकी कौन उपेक्षा कर सकता है ? तत्पश्चात् भगवान् ने आगत देवों से कहा—'मेरे भक्त कभी मृत्यु मुख में न जायें' पुनः देवताओं ने कहा 'नहीं । देव' तब तो चराचरात्मक सारा जगत् अमर हो जायगा । जगद्दयापक ! देव ! अमर्त्य (देव) और मरणवर्मा मनुष्य का भेद भी मिट जायगा ।' इन उपर्युक्त तर्कों को सुनकर शंकर ने पुनः कहा—मेरी कही हुई बातों का अभिप्राय मुनो 'मेरे भक्तों (सैव) और वैष्णवों—जो कि सर्वदा गौतमी गंगा के आश्रय में रहते हैं—के स्वामी हम सब ही हैं अतः उन भक्तों पर मृत्यु का आधिपत्य कभी भी रहना उचित नहीं । अधिकार को कौन कहे,

सानुगस्य यमस्यातो नमस्या सर्व एव ते । तथेत्पूच सुरगणा देवदेव शिव प्रति ततश्च ॥४२॥
भगवान्नाथो नन्दिन प्राह वाहनम् ॥४३॥

शिव उवाच

गौतम्या उदकेन स्वमभिपिञ्च मृत यमम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

ततो यमादय सर्वे अभिषिक्तास्तु नन्दिना । उत्पिताश्च सजीवास्ते दक्षिणाशा ततो गता ॥४५॥
उत्तरे गौतमीतीरे विष्णवाद्या सर्वदेवता । स्थिता आसन्पूजयन्तो देवदेव महेश्वरम् ॥४६॥
तत्राऽऽसन्नपुताग्न्यष्ट सहस्राणि चतुर्दश । तथा षट्च सहस्राणि पुन षट्च तथैव च ॥४७॥
पङ्चदक्षिणे तथा तीरे तीर्थानामयुतत्रयम् । पुण्यमाख्यानमेतद्धि श्वेततीर्थस्य नारद ॥४८॥
यत्रासौ पतितो मृत्युर्मृत्युतीर्थं तदुच्यते । तस्य श्रवणमात्रेण सहस्र जीवते समा ॥४९॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वपापप्रणाशनम् । श्रवणं पठनं चापि स्मरणं च मलक्षयम् ॥
करोति सर्वलोकानां भुक्तिमृक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उत्तरतीरस्थैकलक्षद्वादशसहस्रतीर्थदक्षिण
तीरस्थानशतसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

इन लोगों के विषय में यम कभी बातें तक न करे । वे कभी किसी अवस्था में आधि ध्याधि से सताये न जायें
जो शिव की शरण में चले जाते हैं वे तत्क्षण ही मुक्त समझे जाते हैं । अतः वे सभी अनुचर सहित यम के लिये बन्ध
नीय हैं अचनीय हैं । यह सुनकर देवताओं ने देवाधिदेव शंकर से कहा— ऐसा ही हो । इसके अनन्तर भगवान्
शंकर ने अपने वाहन नन्दी से कहा ॥३५४३॥

शिव ने कहा—तुम गौतमी के जल से मृत यमराज का अभिषेक करो ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब सभी यम आदि के ऊपर नन्दी ने गौतमी का जल छिड़का । वे सभी जल स्पशते ही
सजीव हो उठ गये और अपनी प्रिय दक्षिण दिशा की ओर चले गये । इधर उत्तर की ओर गौतमी के तीर पर
विष्णु आदि सब देवताओं ने आसन जमाया और देवाधिदेव महेश्वर की सविधि पूजा की । वहाँ उस समय एक सौ
छह हजार तीर्थ उपस्थित हुये थे । इसी प्रकार दक्षिण तीर पर छत्तीस हजार तीर्थ उपस्थित थे । नारद । यही श्वेत
तीर्थ का पुण्यदाता आख्यान है । जहाँ मृत्यु युद्ध में आहत हो गरासायी हुए थे वही मृत्युतीर्थ कहा जाता है । उस
मृत्युतीर्थ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सहस्र वर्ष तक जीवित रहता है । वहाँ स्नान करने और दान देने से सब
प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं । इस तीर्थ का माहात्म्य श्रवण पठन अथवा स्मरण सम्पूर्ण लोक का पाप नष्ट करता है
और सबको मुक्ति मुक्ति प्रदान करता है ॥४५५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

शुक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्रतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिहरं नृणाम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥१॥
 अङ्गिराश्च भृगुश्चैव ऋषीः परमधार्मिकौ । तयोः पुत्रौ महाप्राज्ञौ रूपबुद्धिविलासिनौ ॥२॥
 जीव कविरिति ख्यातौ मातापित्रोर्वंशे रतौ । उपनीतौ सुतौ दृष्ट्वा पितराबूचतुर्मय ॥३॥

ऋषी ऊचुः

आवपोरेक एवास्तु शास्ता नित्यं च पुत्रयोः । तस्मादेकं शासिता स्यात्तिष्ठत्वेको यथासुखम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततः शीघ्रमङ्गिराः प्राह भार्गवम् । अध्यापयिष्ये सदृशं सुखं तिष्ठतु भार्गव ॥५॥
 एतच्छ्रुत्वा चाङ्गिरसो वाक्यं भृगुकुलोद्बुधः । तथेति मत्वाऽङ्गिरसे शुक्रं तस्मै न्यवेदयत् ॥६॥
 उभावपि सुतौ नित्यमध्यापयन्ति वै पृथक् । वैषम्यबुद्ध्या तौ बालौ चिराच्छुक्रोऽग्नवीदिदम् ॥७॥

अध्याय ६५

शुक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब मनष्यों के मनोरथ को पूरा करने वाला शत्रुतीय नामक एक विश्वविख्यात तीर्थ है जो मनुष्य के सब पापों को दूर करता और सब प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है। अङ्गिरा और भृगु नाम के दो परम धार्मिक ऋषि थे। उनके दो पुत्र थे जो परम बुद्धिमान तथा रूप और बुद्धि के कोश थे। उन लोगों का नाम जीव (वहस्पति) और वलि (गुह) था जो सबदा माता और पिता के आज्ञा-पालन में निरत रहते थे। पुत्रों के यथोपवीत सत्कार हो जाने के बाद उन दोनों बालकों के पिता ने आपस में मन्त्रणा की ॥१॥ ३॥

दोनों ऋषियः १ कहा—हम दोनों में से एक ही सबदा इन दोनों का अभिमत करे। इसलिये एक तो इनका अभिभावक हो और दूसरा पुत्रपालन से निश्चित होकर सुखपूर्वक रहे ॥४॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर अङ्गिरा ने भागव से शीघ्र कहा—म समान भाव से दोनों बालकों को पढ़ाऊँगा भागव सुखपूर्वक रहे। ऋषि अगिरा की इन बातों को सुनकर भृगुकुलोद्बुध ने उसको स्वीकार कर लिया और शुक्र को अगिरा के हाथ समर्पित कर दिया। गुरु उन दोनों बालकों को चिरकाल तक पृथक्-पृथक् असमान भाव से नियम पढ़ाते थे। यह चिरकालीन विषम अध्यापन देखकर गुह ने कहा ॥५॥ ७॥

शुक्र उवाच

वैषम्येण गुरो मां त्वमध्यापयसि नित्यशः। गुरुणां नेहमुचितं वैषम्यं पुत्रशिष्ययोः॥८॥
वैषम्येण च वर्तन्ते मूढाः शिष्येषु देशिका। नैपा विषमबुद्धीनां संख्या पापस्य विद्यते॥९॥
आचार्यं सम्पज्ज्ञातोऽसि नमस्येऽहं पुनः पुनः। गच्छेयं गुरुमन्यं वै मामनुज्ञातुमर्हसि॥१०॥
गच्छेयं पितरं ब्रह्मन्वद्यसौ विषमो भवेत्। ततो वाऽन्यत्र गच्छामि स्वामिन्पृष्टोऽसि गम्यते॥११॥

ब्रह्मोवाच

गुरुं बृहस्पतिं दृष्ट्वा अनुज्ञातस्त्वगात्ततः। अवाप्तविद्यः पितरं गच्छेयं चेत्पचिन्तयत्॥१२॥
तस्मात्कमनुपृच्छेयमुत्कृष्टः को गुरुर्भवेत्। इति स्मरन्महाप्राज्ञमपृच्छद्बुद्धगौतमम्॥१३॥

शुक्र उवाच

को गुरुः स्यान्मुनिश्रेष्ठ मम ब्रूहि गुरुर्भवेत्। त्रयाणामपि लोकानां यो गुरुस्तं ब्रजाम्यहम्॥१४॥

ब्रह्मोवाच

स प्राह जगत्तामीशं शंभुं देवं जगद्गुरुम्। क्वाऽऽराधायासि गिरिशमित्युक्तः प्राह गौतमः॥१५॥

शुक्र बोले—गुरुदेव ! तुम तो नित्य ही मुझको असमान रूप से पढ़ाते हो। गुरुजनों का इस प्रकार पुत्र और शिष्य के प्रति विषम व्यवहार उचित नहीं। मूर्ख गुरु ही शिष्यों के प्रति पक्षपात युक्त व्यवहार करते हैं, ऐसे पक्षपाती गुरुओं के पापों की गणना नहीं हो सकती। आचार्य ! तुम मलीमांस पहचाने गये। तुमको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ। अब अन्य गुरु के समीप जाना चाहता हूँ कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान कीजिये। ब्रह्मन् ! यदि वहाँ जाने पर भी ऐसा ही विषम व्यवहार होगा तो पिता जी के पास चला जाऊँगा अथवा दूसरे गुरु के समीप चला जाऊँगा। स्वामिन् ! आप से पूछ लिया, अब जा रहा हूँ॥८-११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार गुरु और सहपाठी बृहस्पति से भेट कर उनसे विदा माँग कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। सोचने लगा कि सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता होकर ही पिता के समीप चलना चाहिये। इसलिये किससे पूछूँ, कौन ऐसा उत्कृष्ट व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो। इस प्रकार सोचते हुए उसने महाबुद्धिमान् गौतम से पूछा—॥१२-१३॥

शुक्र ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! इस लोक में कौन ऐसा ज्ञानी व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो, यह मुझको बतलाइये। तीनों लोकों के जो गुरु हैं, उनके समीप भी मैं जा सकता हूँ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—गौतम ने जगत् के स्वामी, जगद्गुरु भगवान् शंकर को ही गुरु के योग्य बताया। यह पूछने पर कि उनकी आराधना वहाँ कैसे, गौतम ने कहा॥१५॥

१८ ०म्। शुक्र प्राह कथं तत्रै पर्येष विदशेश्वरम्। गौतम प्राह धर्मज्ञो बृह शुक्र गुरुश्रियम्। गौतम्या।

गौतम उवाच

गौतम्यान्तु शुचिर्भूत्वा स्तोत्रैस्तोष्य शङ्करम् । ततस्तुष्टो जगन्नायः स ते विद्यां प्रदास्यति ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

गौतमस्य तु तद्वाक्यात्प्रागादगङ्गां स भार्गवः । स्नात्वा भूत्वा शुचिः सम्यक्स्तुतिं चक्रे स बालकः ॥१७॥

शुक्र उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो । नाहं जानामि ते किञ्चित्स्तुतिं कर्तुं नमोऽस्तु ते ॥१८॥

परित्यक्तस्य गुरुणा न समास्ति सुहृत्सखा । त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाय नमोऽस्तु ते ॥१९॥

गुरुर्गुह्यमतां देव महतां च महानसि । अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते ॥२०॥

विद्यार्यं हि सुरेशान नाहं वेदमि भवद्गतम् । मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षित्रमोऽस्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूत्सुरेश्वरः ॥२२॥

शिव उवाच

कामं वरय भद्रं ते यच्चापि सुरदुर्लभम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

कविरप्याह देवेशं कृताञ्जलिर्द्वारधीः ॥२४॥

गौतम बोले—गौतमी में स्नान कर पवित्र हो स्तोत्र-पाठ से शंकर को प्रसन्न करो । तब जगत्पति प्रसन्न होकर तुमको विद्या प्रदान करेंगे ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—वह भार्गव (शुक्र) गौतम के कथनानुसार गंगा की तीर पर गया । स्नान कर पवित्र हो उस बालक ने विधिपूर्वक शंकर की स्तुति की ॥१७॥

शुक्र बोले—द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने वाले ! प्रभो ! मैं बालक हूँ, बाल-बुद्धि (अल्पबुद्धि) हूँ । किञ्चित्मात्र भी तुम्हारी स्तुति करना नहीं जानता, तुमको मेरा नमस्कार हो । गुरु से परित्यक्त मेरा कोई भी सहायक या मित्र नहीं है । जगन्नाय ! सब प्रकार से तुम्हीं मेरे प्रभु हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ । तुम धेड़ों में धेड़ तथा महानों के भी महान् हो । मैं तो अत्यन्त अल्पबुद्धि बालक हूँ । जगद्व्यापक ! आपको मेरा नमस्कार है । सुरेशान ! मैं विद्या-प्राप्ति के लिये आपकी शरण में आया हूँ, परन्तु आपकी गति नहीं जानता । अतः आप मुझको कृपा-दृष्टि से देखिए । लोकसाक्षिन् ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बालक की स्तुति-प्रार्थना सुनकर सुरेश्वर शंकर प्रसन्न हो गये ॥२२॥

शंकर ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो । तुम अमिलपित वर माँगो । जो देवों से भी दुष्प्राप्य हो वह भी माँगो ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—उत्तर बुद्धि शुक्र ने भी अञ्जलि दायकर देवेश से कहा—॥२४॥

शुक्र उवाच

ब्रह्मादिभिश्च ऋषिभिर्षा विद्या नैव गोचरा। तां विद्यां नाय याचिष्ये त्वं गुरुर्मम देवतम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

मृतसंजीवनीं विद्यामज्ञातां त्रिदशैरपि। तां दत्तवान्सुरश्रेष्ठस्तस्मै शुवाय याचते ॥२६॥
इतरा लौकिकी विद्या वैदिकी चान्यगोचरा। किं पुनः शंकरे तुष्टे विचार्यमवशिष्यते ॥२७॥
स/तु लब्ध्वा महाविद्यां प्रायात्स्वपितरं गुरुम्। दैत्यानां च गुरुश्चाऽऽसीद्विद्यया पूजितः कविः ॥२८॥
ततः कदाचित्तां विद्यां कस्मिंश्चित्कारणान्तरे। कचो बृहस्पतिसुतो विद्यां प्राप्तः कवेस्तु ताम् ॥२९॥
कचाद्बृहस्पतिश्चापि ततो देवाः पूयक्पूयक्। अवाप्तुमर्हतीं विद्यां यामाहुर्मृतजीविनीम् ॥३०॥
यत्र सा कविना प्राप्ता विद्याऽऽपूज्य महेश्वरम्। गीतम्या उत्तरे पारे शुक्रतीर्थं तदुच्यते ॥३१॥
मृतसंजीविनीतीर्थमायुरारोग्यवर्धनम्। स्नानं दानं च यत्किञ्चित्सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसवादे मृतसंजीविनीतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम

पञ्चनवतितामोऽध्यायः ॥२५॥

गीतमीमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

शुक्र ने कहा—जिस विद्या को ब्रह्मादि देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना, नाथ । उसी विद्या की याचना करता हूँ, तुम मेरे गुरु हो, देवता हो ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—जब देवों से भी अज्ञात मृतसंजीवनी विद्या को सुरश्रेष्ठ शंकर ने शुक्र की याचना पर दे दिया तो इतर लौकिक, वैदिक या अन्य विद्याओं के दान के विषय में प्रसन्न शंकर के लिये कुछ सोच विचार करने का अवसर ही कहाँ रहा ? अर्थात् इतर विद्यायें तो अनायास शंकर से प्राप्त हो गईं। वह महाविद्या को प्राप्त कर अपने गुरु के समीप चला गया। अपनी विद्या के कारण पूजित कवि दैत्यों के गुरु हुये। तदनन्तर किसी समय कारणवश बृहस्पति पुत्र कच ने कवि से मृत संजीवनी विद्या प्राप्त की। कच से बृहस्पति और बृहस्पति से देवताओं ने पूयक्पूयक् उस श्रेष्ठ विद्या को—जिसको मृतसंजीवनी (मरे को जिलाने वाली) कहते हैं—प्राप्त किया। जिस स्थान पर शुक्र ने महेश्वर की आराधना कर उस विद्या को प्राप्त किया था, वही गीतमी के उत्तम तीर वाला स्थान शुक्रतीर्थ कहा जाता है। वह मृतसंजीवनीतीर्थ आयु-आरोग्य को बढ़ाने वाला है। वहाँ पर स्नान, दान, आदि जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय पुण्य को देता है ॥२६-३२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मृत संजीवनी माहात्म्य-वर्णन नामक पञ्चनवविंशोऽध्याय समाप्त ।

अथ घण्णवतितमोऽध्यायः

पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यात ब्रह्महत्याविनाशनम्। स्मरणादपि पापीषवलेशसघविनाशनम्॥१॥
 पुरा बृत्रवधे वृत्ते ब्रह्महत्या तु नारद। शचीपति चानुगता ता दृष्ट्वा भीतवद्भरि॥२॥
 इन्द्रस्ततो बृत्रहन्ता इतश्चेतश्च धावति। यत्र यत्र त्वसौ याति हत्या साऽपीन्द्रगामिनी॥३॥
 स महत्सर आविश्य पद्मनालमुपागमत्। तत्रासौ तन्तुवद्भत्वा वास चक्रे शचीपति॥४॥
 सरस्तीरेऽपि हत्याऽऽसौद्विष्य धर्षयत्सहस्रकम्। एतस्मिन्नन्तरे देवा निरिन्द्रा ह्यभवन्मुने॥५॥
 मन्त्रयामासुरव्यग्रा कथमिन्द्रो भवेदिति। तत्राहमवध देवान्हत्यास्थान प्रकल्प्य च॥६॥
 इन्द्रस्य पावनार्थाय गौतम्यामभिषिच्यताम्। यत्राभिषिक्त्य पूतात्मा पुनरिन्द्रो भविष्यति॥७॥
 तथा ते निश्चय कृत्वा गौतमीं शीघ्रमागमन्। तत्र स्नात सुरपति देवाश्च ऋषयस्तथा॥८॥
 अभिषेवतुकामास्ते सर्वे शचीकान्त च तस्थिरे। अभिषिच्यमानमिन्द्र त प्रकोपाद् गौतमोऽब्रवीत्॥९॥

अध्याय ६६

पुण्या-सिक्ता सगम, इन्द्रतीर्थ आदि सप्त सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्महत्याजय पापों को भी नष्ट कर देने वाला इन्द्र तीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से सब पाप और क्लेश-समूह विनष्ट हो जाते हैं। नारद। प्राचीन काल में वृत्रासुर वध के पश्चात् ब्रह्महत्या साकार रूप में शचीपति के पीछे चली। उसको देखकर इन्द्र भयभीत-से हो गये। तब बृत्रहन्ता इन्द्र इधर उधर भागने लग। जहाँ जहाँ जाते थे वह ब्रह्महत्या भी उनके पीछे-पीछे जाती थी। अन्ततोगत्वा इन्द्र महासरोवर में घुसकर कमल नाल में छिप गये वहाँ तन्तु के रूप में शचीपति इन्द्र निवास करने लगे। वह हत्या भी उस सरोवर के तीर पर दिव्य सहस्र वर्षों तक निवास करती रही। मुने। इतने वर्षों तक देवता बिना इन्द्र के हो गये। आपस में उन देवों ने शान्त चित्त से परामश किया कि किस प्रकार पुन इन्द्र प्रकट होंगे। उस समय मैंने देवों से कहा कि कुछ समय तक हत्या को एक निर्दिष्ट स्थान दे दिया जाय और इन्द्र को हत्या से मुक्त करने के लिये गौतमी में उनको स्नान कराया जाय। उस गौतमी में अभिषिक्त होने से इन्द्र पुन पवित्र होकर इन्द्रत्व को प्राप्त कर लगे। ऐसा निश्चय कर वे देव शीघ्र ही गौतमी के तीर पर आये। वहाँ गुरेश को स्नान करा कर, उनका अभिषेक करने की इच्छा से देव श्रुति आदि प्रस्तुत हो गये। अभिषेक किये जाने वाले इन्द्र को देखकर गौतम ने क्रुपित होकर कहा—॥१-९॥

गीतम उवाच

अभिषेक्यन्ति पापिष्ठं महेन्द्रं गुह्यतल्पगम् । तान्स्वर्गान्भस्मसात्कुर्यां शीघ्रं यान्त्वसुरारय ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तद्देवैर्वचनं श्रुत्वा परिहृत्य च गीतमीम् । नर्मदामगमन्सर्वं इन्द्रमादाय सत्वरतः ॥११॥
उत्तरे नर्मदातीरे अभिषेकाय तस्मिन् । अभिषेक्यमाणमिन्द्रं तं माण्डव्यो भगवानुपि ॥१२॥
अग्रधीद्भस्मसात्कुर्यां यदि स्यादभिषेचनम् । पूजयामासुरमरा माण्डव्यं युक्तिभिः स्तवैः ॥१३॥

देवा ऊचुः

अयमिन्द्रः सहस्राक्षो यस्मिन्देशेऽभिषिच्यते । तत्रातिदारुणं विघ्नं मुने समुपजायते ॥१४॥
तच्छान्तिं कुरु कल्याण प्रसीद वरदो भव । मलनिर्घातनं यस्मिन्कुर्मस्तस्मिन्वरान्बहून् ॥१५॥
देशो दास्यामहे सर्वे तदनुज्ञातुमर्हसि । यस्मिन्देशे सुरेन्द्रस्य अभिषेको भविष्यति ॥१६॥
स सर्वकामदः पुसां धान्यवृक्षफलैर्युतः । नानावृष्टिर्नन्दुभिः भवेदत्र कदाचन ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

मेने ततो मुनिश्रेष्ठो माण्डव्यो लोकपूजितः । अभिषेकः कृतस्तत्र मलनिर्घातनं तथा ॥१८॥
देवैस्तदोक्तो मुनिभिः स देशो मालवस्ततः । अभिषिक्ते सुरपती जाते च विमले तदा ॥१९॥

गीतम बोले—यदि गुह्यतल्पगामी पापी इन्द्र का तुम लोग अभिषेक करोगे तो सबको अपने शापाग्नि से भस्म कर दूंगा, अतः राक्षसों के शत्रु देवगण यहाँ से शीघ्र चले जायें ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की बात सुनकर गीतमी को छोड़कर इन्द्र को साथ ले वे देवता शीघ्र ही नर्मदा के तट पर चले गये । वहाँ नर्मदा के उत्तर तीरे पर अभिषेक करने के लिये स्थित हुये । इस प्रकार इन्द्र के अभिषेक का समारोह देखकर भगवान् ऋषि माण्डव्य ने कहा—‘यदि यहाँ अभिषेक हुआ तो सबको मरमावशेष कर दूंगा । यह देखकर देवा ने अनेक मुक्तिपथों और स्तुतिपाठ से माण्डव्य ऋषि की पूजा की ॥११-१३॥

देवों ने कहा—इस सहस्र नेत्र वाले इन्द्र का जिस देश में अभिषेक होगा मुनिवर ! उस देश में अति भयंकर विघ्न उत्पन्न होगा । कल्याणमूर्ति ! आप प्रसन्न होइये, उन विघ्ना की शांति कीजिये । वर देने वाले होइये । हम जिस प्रदेश में मल मोचन करेंगे, उस प्रदेश को हम सब उत्तम कल्याणमय वरों से समृद्ध कर देंगे इसलिये आप कृपा वर आशा प्रदान करें । जिस प्रदेश में सुरराज का अभिषेक होगा वह प्रदेश भाँति भाँति के धान्य और फलदार वृक्षों से सुशीमित रहेगा एवं मनुष्यों की कामनाओं की पूर्ति करेगा । वहाँ समयानुकूल वृद्धि होती रहेगी, कमी भी दुर्मिष न होगी ॥१४-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—इतनी प्रार्थना के उपरान्त लोक-पूजित माण्डव्य ऋषि ने इसको स्वीकार किया । वहाँ इन्द्र का अभिषेक तथा पापमोचन कर्म किया गया । तब देवताओं और मुनियों के द्वारा उस देश का मालव नामकरण किया गया । इस प्रकार अभिषेक हो जाने पर सुरपति इन्द्र पापमुक्त हो गये । पुनः उनको गीतमी गंगा के तट पर

आनीय गौतमो गङ्गा त पुण्यायाभिषेचिरे । सुगश्च ऋषयश्चैव अहं विष्णुस्तथैव च ॥२०॥
 वशिष्ठो गौतमश्चापि अगस्त्योऽत्रिश्च कश्यप । एते चान्ये च ऋषयो देवा यक्षा सपत्न्या ॥२१॥
 स्नानं तत्पुण्यतोयेन अकुर्वन्नाभिषेचनम् । मया पुनः शचीभर्ता कमण्डलुभवेन च ॥२२॥
 वारिणाऽप्यभिषिक्तश्च तत्र पुण्याऽभवत्तदी । सिक्ता चेति च तत्राऽऽसीत्ते गङ्गाया च सगते ॥२३॥
 सगमौ तत्र विरपातौ सर्वदा मुनिसंविता । ततः प्रभृति तत्तीर्थं पुण्यासगममुच्यते ॥२४॥
 सिक्तायाः सगमः पुण्यमेन्द्र तदभिधीयते । तत्र सप्त सहस्राणि तीर्थान्यासञ्चुभानि च ॥२५॥
 तपुः स्नानं च दानं च विशेषेण तु सगमे । सर्वं तदक्षयं विद्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥
 यदेतत्पुण्यमाख्यानं यः पठेच्च शृणोति वा । सर्वपापं स मुच्येत मनोवाक्कायकर्मजं ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनं
 नाम पणवतितमोऽध्यायः ॥१६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तावशोऽध्यायः ॥२७॥

लाकर सुरगण आदि में (ब्रह्मा) विष्णु वशिष्ठ गौतम अगस्त्य अत्रि कश्यप तथा अन्य ऋषि देव यक्ष और
 नागो आदि ने पुण्याथ उनका अभिषेक किया । प्रथम उस नदी के पवित्र जल से स्नान हुआ पुनः अभिषेक क्रिया
 समाप्त हुई । तदनंतर स्वयं मने अपने कमण्डलु-जल से शचीपति का अभिषेक किया । उस अभिषेक के जल से
 वहाँ पुण्या नदी उत्पन्न हुई वहाँ एक सिक्ता नदी भी थी वे दोनों नदियाँ गङ्गा में जाकर मिल गई । उन दोनों के सगम
 स्थान अत्यन्त विख्यात तीर्थ हो गये वहाँ सर्वदा मुनिजन निवास करने लगे । तब से वह तीर्थ पुण्या-सगम के नाम
 से प्रसिद्ध हुआ । सिक्ता के सगम स्थान पर जो तीर्थ हुआ वह इंद्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वहाँ सात हजार
 पवित्र तीर्थों का निवास है उन तीर्थों में स्नान और वहाँ का दान अक्षय होता है सगम का स्नान और दान तो विशेष
 महत्त्व रखता है इसमें विचार या सन्देह करने की आवश्यकता नहीं । जो इस पवित्र आख्यान को पढ़ता अथवा
 श्रवण करता है वह अपने मानसिक और वाक्चिक पापों से मुक्त हो जाता है ॥१८२७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पुण्या सिक्ता-सगम इंद्रतीर्थ आदि सप्तसहस्रतीर्थों का वर्णन नामक
 अध्याय समाप्त ॥१६॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

पीलस्त्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पीलस्त्यं तीर्थमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् । प्रभावं तस्य वक्ष्यामि भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥१॥
उत्तराशापतिः पूर्वमृद्धिसिद्धिसमन्वितः । पुरा लङ्कापतिश्चाऽऽसीज्येष्ठो विश्रवसः सुतः ॥२॥
तस्येते भ्रातरश्चाऽऽसन्बलवन्तोऽमितप्रभाः । सापत्ना रावणश्चैव कुम्भकर्णो विभीषणः ॥३॥
तेऽपि विश्रवसः पुत्रा राक्षस्यां राक्षसास्तु ते । मदत्तेन विमानेन धनवो भ्रातृभिः सह ॥४॥
ममान्तिकं भवित्युक्तो नित्यमेति तु याति च । रावणस्य तु या माता कुपिता साऽऽब्रवीत्सुतान् ॥५॥

रावणमातोवाच

मरिष्ये न च जीविष्ये पुत्रा बह्व्यकारणात् । देवाश्च दानवाश्चाऽऽसन्सापत्ना भ्रातरो मयि ॥६॥
अन्योन्यवधमीप्सन्ते जयंश्चर्यवशानुगाः । तद्भुवन्तो न पुरया न शक्ता न जयंषिणः ॥७॥
सापत्नं योऽनुमन्यते तस्य जीवो निरर्थकः ॥७॥

अध्याय ६७

पीलस्त्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—अनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला पीलस्त्यनामक प्रसिद्ध तीर्थ है । राज्यच्युत ध्यक्षित को पुनः राज्य दिलाने वाले उस तीर्थ की महिमा का वर्णन कहूँगा । विश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर पहले एका का अधिपति था । पहले वह ऋषि, सिद्धि से युक्त अत्यन्त वैभवशाली था । उसके अमित तेजस्वी, अत्यन्त बलवान् रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण नामक सौतेले भाई थे । वे भी विश्रवा के, राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न राक्षस पुत्र थे । मेरे द्वारा दिये गये विमान से नित्य कुबेर अपने भाइयों के साथ मवित पूर्वक आता और जाता था । रावण की माता इस प्रकार मातृ-प्रेम देखकर कुपित हो गई, उसने अपने पुत्रों से कहा ॥१-५॥

रावण को माता बोली—पुत्रो ! तुम लोगों के प्रकृति विरुद्ध कार्य को देखकर न तो मरती ही हूँ न जीवन-सुख ही प्राप्त करती हूँ । अब तक देवता और दानव आपस में सौतेले भाई थे । वे विजय और ऐश्वर्य की कामना से एक दूसरे का वध करना चाहते थे । इसलिये तुम लोग न तो पुरुष हो, न शक्तिशाली और न तो विजयाकांक्षी हो । उन लोगों का जीवन निरर्थक है जो अपने सौतेले भाई के अनुचर होकर रहते हैं ॥१-७॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा भ्रातरस्ते त्रयो मुने । जग्मुस्ते तपसेऽरण्यं कृतवन्तस्तपो महत् ॥८॥
 मत्तो वरानवापुश्च त्रय एते च राक्षसाः । मातुलेन मरीचेन तथा मातामहेन तु ॥९॥
 तन्मातृवचनाच्चापि ततो लङ्कामयाचत । रक्षोभावान्मातृदोषाद्भ्रात्रोर्वरमभन्महत् ॥१०॥
 ततस्तदभवद्युद्धं देवदानवयोरिव । युद्धे जित्वाऽप्रजं शान्तं धनं भ्रातरं तथा ॥११॥
 पुष्पकं च पुरीं लङ्कां सर्वं चैव व्यपाहरत् । रावणो घोषयामास प्रेलोक्ये सचराचरे ॥१२॥
 यो दद्यादाश्रयं भ्रातुः स च वध्यो भवेन्मम । भ्रात्रा निरस्तो वैश्वणो नैव प्राप्ताऽऽश्रयं क्वचित् ॥१३॥
 पितामहं पुलस्त्यं तं गत्वा नत्वाऽब्रवीद्धृदः ।

धनद उवाच

भ्रात्रा निरस्तो दुष्टं किं करोमि वदस्व मे । आश्रयं शरणं यत्स्याद्वै वा तीर्थमेव च ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तत्पौत्रवचनं श्रुत्वा पुलस्त्यो वाक्यमब्रवीत्

॥१५॥

पुलस्त्य उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्वं स्तुहि देवं महेश्वरम् । तत्र नास्य प्रवेशः स्याद्गङ्गाया जलमध्यतः ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—मुने ! माता की बातों को सुनकर वे तीनों माई तपस्या करने के लिये जंगल में चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने घोर तपस्या की और उन राक्षसों ने मुझसे वरदान भी पा लिया । तदनन्तर मामा मरीच मातामह तथा उस माता की वाणी से प्रेरित होकर उन तीनों ने ज्येष्ठ भ्राता कुबेर से लंका का अधिपत्य माँगा । एक तो स्वयं राक्षस होने के कारण दूसरे माता की दुष्टता से उन भाइयों में महान् वैर हो गया । इसके परिणाम स्वरूप देव और दानव के समान ही उन सौतेले भाइयों में युद्ध हुआ । रावण ने अपने परम शत्रु जेठ माई कुबेर को युद्ध में पराजित कर पुष्पक विमान लंकापुरी एवं सारी संपत्ति छीन ली और सारे चराचर युक्त ससार में घोषित करा दिया कि जो कोई उसके माई को आश्रय देगा वह मेरे हाथों द्वारा मारा जायगा । इस प्रकार वह वैश्वण अपने माई से निर्वासित कर दिया गया उसको किसी के यहाँ आश्रय नहीं मिला । अतः वह विवश होकर अपने पितामह पुलस्त्य के यहाँ गया और प्रणाम कर कहा—॥८॥ १३॥

कुबेर ने कहा—मैं अपने ही माई रावण से निर्वासित कर दिया गया हूँ अब क्या करूँ मुझ ब्रह्मदेव का भरोसा करना होगा या तीर्थ की शरण लेनी होगी ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पौत्र की बातें सुनकर पुलस्त्य ने कहा ॥१५॥

पुलस्त्य ने कहा—पुत्र ! गौतमी के तीर पर जाओ वहाँ महेश्वर की स्तुति करो उस स्थान पर गया जल के

तिर्दिष्टं प्राप्स्यसि कल्याणो तथा कुर्व मया सह

॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामासी सभायों धनवस्तथा । पित्रा मात्रा च वृद्धेन पुलस्त्येन धनेश्वर ॥१८॥
गत्वा तु गौतमीं गङ्गा शुचि स्नात्वा यतव्रत । तुष्टाव देवदेवेश भुक्तिमुक्तिप्रद शिवम् ॥१९॥

धनद उवाच

स्वामी त्वमेवास्य चराचरस्य, विश्वस्य शम्भो न परोऽस्ति कश्चित् ।
त्वामप्यवज्ञाय यदीह मोहात्प्रगल्भते कोऽपि स शोच्य एव ॥२०॥
त्वमष्टमूर्त्या सकल विभर्षि, त्वदाजया धर्तत एव सर्वम्
तथाऽपि वेदेति बुधो भवन्त, न जात्वविद्वान्महिमा पुरातनम् ॥२१॥
मलप्रसूत यदवोचदम्बा हास्यात्सुतोऽय तव देव शूर
त्वत्प्रेक्षिताद्य स च विघ्नराजो, जज्ञे त्वहो चेष्टितमीशदृष्टे ॥२२॥
अभुप्लुताङ्गी गिरिजा समीक्ष्य, विपुक्तदापत्यमितीशमूचे
मनोभवोऽभून्मदनो रतिश्च, सौभाग्यपूर्वं (णं) त्वमवाप सोमात् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादि स्तुतस्तस्य पुरतोऽभूत्त्रिलोचन । वरेण च्छन्दयामास हर्षान्नोवाच किञ्चन ॥२४॥

बीच से इसका प्रवेश न हो सकेगा । वहाँ अवश्य तुम कल्याणमयी सफलता प्राप्त कर करोगे । इसलिये चलो मेरे साथ पूर्वोक्त कार्य का अनुष्ठान प्रारम्भ करो ॥१६ १७॥

ब्रह्मा बोले—आपके कथनानुसार कार्य कहेगा यह कहकर अपनी भार्या तथा पिता माता और वृद्ध पुलस्त्य के साथ धनेश्वर कुबेर गौतमी तट पर चला गया । वहाँ जाकर उसने गंगा में स्नान कर अपने को पवित्र किया और शत की दीक्षा लेकर एकाग्र मन से देवदेवेश भुक्ति और मुक्ति के दाता शिव की स्तुति प्रारम्भ की ॥१८ १९॥

धनद ने कहा—तुम्हीं इस चराचर विश्व के स्वामी हो शम्भो ! आपसे बढ़कर और कोई नहीं है । यदि इस ससार में आपकी उपेक्षा कर कोई मनुष्य मोहवश अभिमान करता है तो वह अघम शोचनीय है ॥२०॥ आप अपनी आठ मूर्तियों से सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं । आपकी ही आज्ञा से सारा सृष्टि विधान संचालित होता है । तथापि विद्वान् ही सनातन आपको जानते हैं अविद्वान् कभी भी आपकी महिमा नहीं जान पाते ॥२१॥ हँसी में जननी ने अपने मल स उत्पन्न बालक को तुम्हारा बलवान् पुत्र कहा पर तु देव ! तुम्हारी कृपादृष्टि से वही विघ्नराज विनायक हो गया । अहा ! आपकी कृपादृष्टि का यह फल है ॥२२॥ रति के करुण विन्यास से आँसू से व्याप्त अगों वाली पार्वती ने बरुणापूर्वक रति और मदन का पारस्परिक सम्बन्ध भग्न हो गया है—इस विषय की चर्चा भगवान् शिवर से नहीं, जिससे कल्याण करने वाले आपकी कृपा से मदन ने मनोभव-पदवी और रति न अपना सौभाग्य-मुख प्राप्त किया ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति सलग्न कुबेर के सम्मुख विवेक शक्ति स्वयं उपस्थित हो गये और वादान से उसको कृतज्ञत्व किया, परन्तु धनद कुबेर आनन्दविरक्त से कुछ न बोले ॥२४॥ कुबेर और पुलस्त्य ने इस प्रकार

तूष्णींभूते तु धनदे पुलस्त्ये च महेश्वरे। पुनः पुनर्वरस्वेति शिवे वादिनि हर्षिते॥२५॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी। प्राप्तव्यं धनपालत्वं वदन्तीदं महेश्वरम्॥२६॥
 पुलस्त्यस्य तु यच्चित्तं पितुर्वैश्रवणस्य तु। विदित्वेव तदा वाणी शुभमर्थमुदीरयत्॥२७॥
 भूतवद्भूतवित्तं स्याद्वास्त्यमानं तु दत्तवत्। प्राप्तव्यं प्राप्तवत्तत्र देवो वागभवच्छ्रुत्वा॥२८॥

प्रभूतशत्रुः परिभूतदुःखः, सपूज्य सोमेश्वरमाप लिङ्गम् ।

दिगीश्वरत्वं द्रविणप्रभुत्वमपारदातृत्वकलनपुत्रान्

॥२९॥

तां वाचं धनदः श्रुत्वा देवदेयं त्रिशूलिनम्। एवं भवतु नामेति धनदो वाक्यमब्रवीत्॥३०॥
 तथैवास्त्विति देवेशो देवीं वाचममन्यत। पुलस्त्यं च वरंः पुण्यंस्तथा विश्रवसं मुनिम्॥३१॥
 धनपालं च देवेशो ह्यभिनन्द्य ययौ शिवः। ततः प्रभूति तत्तीर्थं पौलस्त्यं धनदं विदुः॥३२॥
 तथा वैश्रवसं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम्। तेषु स्नानादि यत्किञ्चित्तत्सर्वं बहुपुण्यदम्॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥२७॥
 गौतमीमाहात्म्येऽष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

मीन होने पर शकर जी अति प्रसन्न होकर 'वर मांगो', वर मांगो, यह शब्द बार बार कहने लगे ॥२५॥ इसी बीच वहाँ आकाशवाणी ने शकर से कहा कि यह धनपाल (कुबेर) की पदवी ही प्राप्त करना चाहता है ॥२६॥ पुलस्त्य और पिता वैश्रवण के मन में जैसी इच्छा थी उसको जानकर ही आकाशवाणी ने उस समय यह कल्याणमय अति-प्राय व्यक्त किया ॥२७॥ भविष्य भूत के समान समृद्धिपूर्ण, प्राप्तव्य, प्राप्त के समान और दिया जाने वाला, दिये दूधे के समान हो ऐसी उस समय शुभ देववाणी हुई ॥२८॥ अनेक शत्रुवाले, अनेक कष्टों से दुखी कुबेर ने सोमेश्वर लिंग की पूजा कर दिक्पाल पदवी, प्रभूतधन, अमितदान की शक्ति और स्त्री-पुत्र को प्राप्त कर लिया ॥२९॥ उपर्युक्त आकाशवाणी को सुनकर कुबेर ने त्रिशूलधारी, देवों के देव शकर से कहा कि ऐसा ही हो ॥३०॥ देवेश शकर ने भी आकाशवाणी का ही समर्थन करते हुए कहा कि ऐसा ही हो। इस प्रकार पुलस्त्य, मुनि विश्रवा और कुबेर को पवित्र, उत्तम वरों से सम्मानित कर देवेश शकर जी अन्तर्हित हो गये। उस समय से वह तीर्थ पौलस्त्य और धनद नाम से प्रसिद्ध हो गया, तथा सब मनोरथों को देने वाला, शुभ, पवित्र वैश्रवस् तीर्थ भी वही कहा गया। उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ किया जाता है वह बहुत पुण्यप्रद होता है ॥३१ ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पौलस्त्यतीर्थवर्णन नामक सप्तानवेवां अध्याय समाप्त ॥२७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अग्नितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अग्नितीर्थमिति ख्यात सर्वकृतुफलप्रदम् । सर्वविघ्नोपशमन तत्तीर्थस्य फलं शृणु ॥१॥
जातवेदा इति ख्यातो अग्नेभ्राता स हव्यवाद् । हव्यं बहन्त देवानां गौतम्यास्तीर एव तु ॥२॥
ऋषोणा सन्नसदने अग्नेभ्रातरमुत्तमम् । भ्रातुं प्रियं तथा दक्षं मधुर्दितिसुतो बली ॥३॥
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि । हव्यं देवा नैव चाऽऽप्नुमते घं जातवेदसि ॥४॥
मृते भ्रातरि स त्वग्निं प्रिये घं जातवेदसि । कोपेन महताऽविष्टो गाङ्गमम्भं समाविशत ॥५॥
गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नौ देवाश्च मानुषा । जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मता ॥६॥
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्तं देशं सर्वं एव ते । आजग्मुर्विद्युधा सर्वं ऋषयः पितरस्तथा ॥७॥
विनाऽग्निना न जीवामस्तुवन्तोऽग्निं विशेषतः । अग्निं जलगतं दृष्ट्वा प्रियं चोर्चुर्दिव्यौकस ॥८॥

देवा ऊचुः

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितृस्तथा । मानुषान्नपाकेन बीजानां बलेदनेन च ॥९॥

अध्याय ६८

अग्नितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो सब यज्ञों के फल को देने वाला सम्पूर्ण विघ्नों को शान्त करने वाला प्रसिद्ध अग्नितीय है उसके फल को सुनो । जातवेदस नाम का अग्नि का एक भ्राता था वह यज्ञो म हव्यवाहक था । एक समय वह गौतमी के तीर पर ऋषिमा के यज्ञमण्डप में हव्य (हवनसामग्री) को डो रहा था । उसी समय बलवान् दिति-सुत मधु ने देवताओं और मुख्य ऋषियों की आँखा के सामने ही अग्नि के उत्तम प्रिय कायकुशल माई को मार डाला । जातवेदस के मर जाने पर देवताओं को हव्य नहीं प्राप्त होता था । इधर अपने प्रिय भ्राता जातवेदस के मर जाने से अग्नि अत्यन्त कुपित होकर गंगा के जल में प्रविष्ट हो गये । अग्नि के गङ्गा में इस प्रकार प्रविष्ट हो जाने पर सभी देवता मनुष्य निर्जीव से हो गये । क्योंकि सभी अग्नि के ही आचार पर जीने वाले प्राणी हैं । वे सब देवता ऋषि और पितर गण जहाँ जल में अग्नि प्रविष्ट हुए थे वहाँ आ गये । हम लोग अग्नि के बिना जीवित नहीं रह सकते इस प्रकार विशेषरूप से अग्नि का गुणगान करने लगे । और प्रिय अग्नि को जल में प्रविष्ट देखकर सब देवता प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥१८॥

देवों ने कहा—आप हव्य प्रदान कर देवताओं को और कव्य दान से पितरों को जीवित कीजिये । इसी प्रकार अन्न का परिष्कार कर तथा बीजों को उगाकर मनुष्यों को जीवन-दान दीजिये ॥९॥

अग्निरप्याह तान्देवाऽश्रवतो यो मे गतोऽनुजः। त्रियमाणे भयत्वार्ये या गतिर्जातवेदसः॥१०॥
 सा वाऽपि स्थान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने। कार्यं तु सर्वतस्तस्य भयतां जातवेदसः॥११॥
 इमां स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे कथं भवेत्। इह धामुत्र च ध्याप्ती शक्तिरप्यत्र नो भवेत्॥१२॥
 अयापि त्रियमाणे धं कार्यं संव गतिर्मम। देवास्तमूचुर्भविन सर्वेण श्रय्यस्तया॥१३॥
 आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्ती शक्तिश्च दीयते। प्रयाजाननुयाजांश्च दास्यामो हव्यवाहन॥१४॥
 देवानां त्व मुख श्रेष्ठमाहुत्यः प्रयमास्तव। त्वया दत्तं तु यद्द्रव्यं भोक्ष्याम। सुरसत्तम॥१५॥

ग्रहोवाच

ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्वैवाक्याद्ययानमम्। इह धामुत्र च ध्याप्ती हव्ये वा लौकिके तथा॥१६॥
 सर्वत्र वह्निरभयः समर्थोऽभूत्सुराजपा। जातवेदा बृहद्भानुः सप्तार्चिर्नीललोहितः॥१७॥
 जलगर्भं शमीगर्भं यज्ञगर्भं स उच्यते। जलादाकृत्य विबुधा अभि (भ्य) पिच्य वि (ञ्चन्वि) भावसुम्॥१८॥
 उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत्। यथागतं सुरा जम्बुवह्नितीयं तदुच्यते॥१९॥
 तत्र सप्त शतान्यासंस्तौर्यानि गुणवन्ति च। तेषु स्नानं च दानं च यः करोति जितात्मवान्॥२०॥
 अश्वमेधफलं साधु प्राप्नोत्यधिकलं शुभम्। देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम्॥२१॥

ग्रह्या बोले—अग्नि ने भी उन देवताओं से कहा कि जो मेरा समर्थ शक्तिशाली छोटा भाई था वह तो चल गया। आप लोगो के कार्य करते रहने पर जो गति उस जातवेदम् की हुई, वही गति मेरी भी हो जायेगी। इसलिये, देवगण। आप लोगो के कार्य सम्पादन करने के लिए मुझे उत्साह नहीं हो रहा है। आप लोगो के कार्य को मलीमांति करने वाला बेचारा जातवेदस् जब इस अवस्था को प्राप्त हुआ तो मेरी कैसी दुर्दशा होगी। साथ ही मृत्युलोक, स्वर्गलोक और ध्याप्ति मे कार्य करने की शक्ति भी तो मुझमे नहीं है। इसके अतिरिक्त आप लोगो के कार्य करते रहने पर भी तो वही मेरी गति होगी। यह सुनकर देवो तथा ऋषियो ने सब प्रकार से अग्नि से कहा—हम लोग आयु कर्म मे प्रेम और ध्याप्ति मे शक्ति दे रहे हैं। हव्यवाहन। प्रयाज और अनुयाज (यज्ञ भाग) भी हम आपको देगे। तुम देवो के श्रेष्ठ मुख हो इसलिए पहली आहुतियां तुम्हे दी जाएंगी। मुरश्रेष्ठ द्वारा दिये गये इव्य को ही हम लोग ग्रहण करेंगे ॥१०-१५॥

ग्रह्या ने कहा—इसके अनन्तर देवताओं के कहने से अग्नि प्रसन्न हो गये। और त्रमानुसार भूलोक, स्वर्लोक, व्याप्ति हव्य तथा लौकिक कार्यों मे सर्वत्र ही देवो की आज्ञा से अग्नि भयरहित और शक्तिशाली हो गये। अब वे जलगर्भ (जल मे रहनेवाला वडवानल) शमीगर्भ और यज्ञगर्भ नाम से प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार देवों ने जल से अग्नि को निकाल कर अग्निपेक द्वारा सतुष्ट कर (लोक-प्रतिष्ठित) किया। तब लोक, परलोक दोनों मे अग्नि का निवास हुआ। तदनन्तर देवो के अनुग्रह से अग्नि सर्वव्यापक हुये। इस प्रकार अग्निप्रतिष्ठा कर देवगण जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। वह स्थान भी इसीलिए वह्नि तीर्थ कहा जाता है। वहाँ पर और भी सात सौ पवित्र, पुण्यप्रद तीर्थ हैं। जो जितात्मा उन तीर्थों मे स्नान और दान करता है वह सम्पूर्ण रूप से अश्वमेध का शुभ, उत्तम

अग्निप्रतिष्ठित लिङ्गं तत्राऽऽस्तेऽनेकवर्णवत् । तद्देवदर्शनादेव सर्वंकुपल लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आविष्त्राहो तीर्थमाहात्म्येऽग्नितीर्थवर्णन नामाष्टनवतितमोऽध्याय ॥१८॥

गीतमीमाहात्म्ये एकोत्रिंशत्तमोऽध्याय ॥२९॥

अयं कोनशततमोऽध्यायः

ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋणप्रमोचन नाम तीर्थं वेदविदो विदुः । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मना ॥१॥

आसीत्पृथुधवा नाम प्रिय कक्षीवत सुत । न दारसग्रहं लेभे वराग्यान्नाग्निपूजनम् ॥२॥

कनीयांस्तु समर्थोऽपि परिवर्तिभयान्मुने । नाकरोद्धारकर्मादि नैवान्नीनामुपासनम् ॥३॥

ततः प्रोचुः पितृगणा पुत्र कक्षीवत शुभम् । ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथङ्पृथगिदं वच ॥४॥

पितर ऊचुः

ऋणप्रयापनोदाय क्रियता दारसग्रह

॥५॥

फल प्राप्त करता है। वहीं पर अग्नितीर्थ जातवेदा और देवतीष भी है। तथा अनेक वण के अग्नि द्वारा प्रतिष्ठित लिंग भी हैं। उन देवों के दशन मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण यन्त्रों का फल प्राप्त करता है ॥१६ २२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अग्नितीर्थवर्णन नामक अठानवेंवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय ६६

ऋणप्रमोचनतीर्थ वा वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ऋण प्रमोचन नामक तीर्थ को वेदज्ञ लोग जानते हैं। नारद ! मैं उसके स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ मत लगा कर मुनो। पृथुधवा नाम का कक्षीवान का प्रिय पुत्र था। उसने विरक्ति के कारण न तो विवाह ही किया और न तो अग्निपूजन (अग्नि स्थापन) ही। मुने ! कनिष्ठ पुत्र ने योग्य हाते हुए भी परिवर्ति (ज्येष्ठभ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे भाई के विवाह से उत्पन्न पाप या दुःख) के मय से स्वयं विवाह या अग्निस्थापन आदि व्रत नहीं किया। यह देखकर पितृगणों ने कक्षीवान् का प्रिय ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र से अलग अलग ये शब्द कहे ॥१ ४॥

पितरों ने कहा—तीन ऋणा से उद्धार पाने के लिये तुम लोगों को अपना विवाह कर लेना चाहिये ॥५॥

ब्रह्मोवाच

नेमुवाच ततो ज्येष्ठ. किमृण षेन युज्यते। कनीयास्तु पितृप्राह न योग्यो दारसंग्रहः ॥६॥
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञ परिचितिभयादिति। तावुभी पुनरप्येवमूचुस्ते वं पितामहाः ॥७॥

पितर ऊचुः

यातामुभी गौतमीं तु पुण्या कक्षीयत. सुती। कुरुतां गौतमीस्तानं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥८॥
गच्छतां गौतमीं गङ्गा लोकत्रितयपावनीम्। स्नानं च तर्पणं तस्या कुरुतां श्रद्धयाऽन्वितौ ॥९॥
दृष्ट्वाऽवनामिता ध्याता गौतमी सर्वकामदा। न देशकालजात्यादिनियमोऽत्रावगाहने ॥
ज्येष्ठोऽनूणस्ततो भूयात्परिवित्तिनं चेतः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तत पृथुश्रवा ज्येष्ठ कृत्वा स्नानं सतर्पणम्। त्रयाणामपि लोकाना काक्षीवतोऽनूणोऽभवत् ॥११॥
तत. प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते। श्रौतस्मार्तऋणेभ्यश्च इतरेभ्यश्च नारद ॥
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्त सुखी भवेत् ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋणमोचनतीर्थवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिशोऽध्यायः ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—पितरा के उपदेश सुनने पर भी ज्येष्ठ पुत्र ने कहा नहीं, 'कौन सा ऋण है ? उससे किस प्रकार मनुष्य ऋणी हो जाता है ? छोटे पुत्र ने पितरों से कहा—जेठ भाई के रहते बुद्धिमान् छोटे भाई को विवाह नहीं करना चाहिये ऐसा करने से वह परिवित्ति दोष का भागी होता है ॥६-७॥

पितरों ने कहा—कक्षीवान् के तुम दोनों पुत्र पवित्र गौतमी तट पर जाओ, सब मनोरथों को देनेवाली गौतमी में स्नान करो। तीनों लोकों में अति पुनीत उस नदी के तट पर जाओ, उसमें श्रद्धापूर्वक स्नान और तर्पण करो। गौतमी के दशन प्रणाम और ध्यान से सम्पूर्ण कामनायें प्राप्त होती हैं उसमें स्नान करने के लिये देश, काल जाति आदि का कोई बन्धन नहीं। ऐसा करने से ज्येष्ठ भ्राता अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जायगा और छोटे को भी परिवित्ति दोष नहीं लगेगा ॥८-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पितरों के उपदेशानुसार ज्येष्ठ पुत्र पृथुश्रवा ने गौतमी गंगा में स्नान और तर्पण आदि किया जिससे कि वह तीनों लोकों तथा पिता कक्षीवान् के ऋण से उन्मृष्ट हो गया। उसी समय से वह तीर्थ ऋण-मोचन तीर्थ कहा जाने लगा। नारद। वह तीर्थ श्रौत स्मार्त अथवा अन्य सब प्रकार के ऋणों से मनुष्य को मुक्त कर देता है। उस तीर्थ में स्नान और दान से ऋणी मनुष्य ऋण से मुक्त हो सुखी हो जाता है ॥११-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ऋणमोचनतीर्थवर्णनं नामक निन्यानवेक अध्याय समाप्त ॥९९॥

अथ शततमोऽध्यायः

कद्रूसुपर्णासिगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सुपर्णासिगम नाम काद्रवांसिगम तथा । महेश्वरो यत्र देवो गङ्गापुच्छिममाश्रित ॥१॥
अग्निकुण्ड च तत्रैव रौद्रं विष्णुबभूव च । सौर सौम्य तथा ब्राह्म कौमार वारण तथा ॥२॥
अप्सरा च नदी यत्र सगता गङ्गया तथा । तत्तीर्थं स्मरणादेव कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥३॥
सर्वपापप्रशमनं शृणु यत्नेन नारद । इन्द्रेण हिंसिता पूर्वं बालस्त्रितया महर्षयः ॥४॥
दत्तार्धतपस सर्वं प्रोचुस्ते काश्यप मुनिम् ॥४॥

बालस्त्रितया ऊचुः

पुत्रमुत्पादयानेन इन्द्रवर्षं हर शुभम् । तपसोऽर्धं तु दास्यामस्तथेत्याह मुनिस्तु तान् ॥५॥
सुपर्णायां ततो गर्भमादधे स प्रजापति । कद्रवा चैव शनैर्ब्रह्मसर्पाणां सर्वमातरि ॥६॥
ते गर्भमप्यावुभ आह गन्तुकाम प्रजापति । अपराधो न च क्वापि कार्यो गमनमथ च ॥७॥
अन्यत्र गमनाच्छापो भविष्यति न शस्य ॥८॥

अध्याय १००

कद्रूसुपर्णासिगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सुपर्णा सिगम और काद्रवा सिगम नाम के दो तीर्थ हैं जहाँ भगवान् गकर गंगा तट पर बिद्यमान हैं । वहीं पर अग्निकुण्ड रौद्रकुण्ड विष्णुकुण्ड सौरसौम्य ब्राह्म कौमार और वारणकुण्ड है । जहाँ अप्सरा नाम की नदी गंगा से मिलती है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । नाथ ! उस सब पापों को शांत करने वाले तीर्थ के विषय में ध्यानपूर्वक सुनो । याज्ञ से बहुत पहले इन्द्र ने बालस्त्रितय महर्षियों से बहुत अधिक दीर्घायु की । ये सब अपनी तपस्या का आधा भाग काश्यप मुनि को देकर मुनि से बोले ॥१४॥

बालस्त्रितयो ने कहा—मुनि काश्यप ! आप हमारी तपस्या के इस आधा भाग से इन्द्र के दण को चर कराने वाले कल्याणकारी पुत्र की उत्पत्ति कीजिये । इस कार्य के लिए तपस्या का आधा भाग दे रहे हैं । मुनि ने भी कहा कि अवश्य ऐसा बहैगा । तदनन्तर उस प्रजापति काश्यप ने सुपर्णा नामक पत्नी से गर्भाधान किया । ब्रह्मान् सर्पों की माता कद्रू से भी उन्होंने सापों की उत्पत्ति के लिये गर्भाधान किया । एक दिन प्रजापति के मन में आयत्त जाने की इच्छा हुई उन्होंने अपनी दोनों गमिणी पत्नियों से कहा—तुम लोगों को न कोई अपराध करना चाहिए और न बर्हो जाना चाहिए । अन्यत्र जाने से अवश्य साप पडगा ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स ययौ पत्न्यौ गते भर्तरि ते उभे। तदं व जग्मतुः सत्रमूषीणां भावितात्मनाम्॥९॥
 ब्रह्मबृन्दसमाकीर्णं गङ्गातीरसमाश्रितम्। उन्मत्ते ते उभे नित्यं यय.संपत्तिर्गविते॥१०॥
 निवार्यमाणे बहुशो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। विकुर्वन्त्यौ तत्र सत्रे समानि च हव्यौ च॥११॥
 योयितां दुर्विलसित फः सवरितुमीदवरः। ते दृष्ट्वा क्षुभ्रुविप्रा अपमार्गरते उभे॥१२॥
 अपमार्गस्थिते यस्मादापगे हि भविष्यथ। सुपर्णा चैव कद्रूश्च नद्यौ ते संबभूवतुः॥१३॥
 स कदाचिद्गृहं प्रायात्कश्यपोऽयं प्रजापतिः। ऋषिभ्यस्तत्र वृत्तान्तं शापं ताभ्यां सविस्तरम्॥१४॥
 श्रुत्वा तु विस्मयाविष्टः किं करोमीत्यचिन्तयत्। ऋषिभ्यः कथयामास वालखिल्या इति श्रुताः॥१५॥
 त ऊचुः कश्यप जिप्रं गत्वा गङ्गां तु गीतमीम। तत्र स्तुहि महेशानं पुनर्भयि भविष्यतः॥१६॥
 ब्रह्महत्याभयादेव यत्र देवो महेश्वरः। गङ्गामध्ये सदा ह्यास्ते मध्यमेश्वरसंज्ञया॥१७॥
 तयेत्युक्त्वा कश्यपोऽपि स्नात्वा गङ्गां जितश्रतः। तुष्टाय स्तवनैः पुण्यैर्देवदेवं महेश्वरम्॥१८॥

कश्यप उवाच

लोकत्रयं काधिपतेनं पश्य, कुत्रापि चस्तुन्यभिमानलेशः

स सिद्धनाथोऽखिलविद्वकर्ता, भर्ता शिवाया भवतु प्रसन्नः

॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कहकर प्रजापति कश्यप चले गये। पति के चले जाने पर दोनों पत्नियाँ उसी समय शुद्धहृदय ऋषिया के यज्ञ में चली गयी, जो गंगा तट पर हो रहा था और जहाँ ब्राह्मण-मण्डली एकत्र थी। अपनी युवावस्था पर गर्व करने वाली उन्मत्त वे दोनों प्रतिदिन तत्त्वदर्शी ऋषियों के बार बार मना करने पर भी उस यज्ञ में हविष्य (पदार्थों) को दूषित या विकृत कर देती थी। मला बीन ऐसा व्यक्ति है जो नारियों की अनुचित पटा (व्यापार) को रोकने की शक्ति रखता है? इसलिए वे ऋषि बार बार अनुचित व्यापार में लगी रहने वाली उन दोनों नारियों को देखकर शुब्ध हो गय और शाप दिया कि तुम दोनों अपमार्ग पर स्थित हो इसलिये आपणा (नदी) हो जाओ। वे दोनों शाप वश घोर नदियाँ बन गईं। इसके अनन्तर किसी समय प्रजापति कश्यप घर की ओर लौटे जा रहे थे। उन्होंने ऋषियों के मुख से उन दोनों के शाप की घटना को विस्तार रूप से सुना। सुनकर विस्मित हो गये सोचने लगे कि 'अब क्या करें'। विवश हो उन्होंने ऋषियों से कहा कि 'मैं वालखिल्यो से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। यह सुनकर ऋषियों ने विप्र कश्यप से कहा—गीतमी गंगा के समीप जाइये, वहाँ जाकर गङ्गेय की स्तुति कीजिये जहाँ वे ब्रह्महत्या के भय से देवमहेश्वर सर्वदा गंगा के मध्य में मध्यमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होकर रहते हैं। (ऐसा करने से) पुन आपकी मायामें पहले के समान हो जायेंगी। "ऐसा ही कहेंगा" यह कहकर परम व्रती कश्यप ने भी गंगा में स्नान कर मगलमय स्तुतियों से देवदेव की स्तुति की ॥९-१८॥

कश्यप ने कहा—तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी होते हुए भी जिस शक्ति ने किसी की अवस्था में लेश-मात्र अधिकार गव नहीं किया वे सम्पूर्ण विश्व के कर्ता, सिद्धनाथ, शिवा के भर्ता मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥१९॥ त्रिताप

तापत्रयोष्णश्रुतितापितानामितस्ततो वं परिधावतां च
 शरीरिणां स्यावरजङ्गमानां, त्वमेव दुःखघ्नपनोददक्ष.
 सत्त्वादियोगस्त्रिविधोऽपि यस्य, शक्रादिभिवंक्तुमशक्य एव
 विचित्रवृत्तिं परिचिन्त्य सोमं, सुखी सदा दानपरो वरेण्यः

॥२०॥

॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिस्तुतिभिर्देवः स्तुतो गौरीपतिः शिवः। प्रसन्नो हृददाच्छंभुः कश्यपाय वरान्वहन् ॥२२॥
 भार्यायिनं तु तं प्राह स्यातां भार्ये उभे तु ते। नदीस्वरूपे पत्न्यौ ये गङ्गां प्राप्य सरिद्धराम् ॥२३॥
 तत्संगमनमात्रेण तान्यां भूयात्स्वक वपुः। ते गर्भिण्यौ पुनर्जाते गङ्गापाद्वि प्रसादतः ॥२४॥
 ततः प्रजापतिः प्रीतो भार्ये प्राप्य महामना। आह्वयामास तान्विप्रान्गौतमीतीरमाश्रितान् ॥२५॥
 सोमन्तोन्नयन चक्रे ताम्यां प्रीत प्रजापतिः। ब्राह्मणान्पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२६॥
 भुषतवत्स्वयं विप्रेषु कश्यपस्याथ मन्दिरे। भर्तृसमीपोपविष्टा कद्रूविप्रान्निरीक्ष्य च ॥२७॥
 ततः कद्रूश्र्मणोदश्यां प्राहसत्ते च चुक्षुभुः। येनाश्यां हसिता पापे भक्ष्यतां तेऽक्षि पापवत् ॥२८॥
 कणाऽभवत्ततः कद्रूः सर्पमातेति धोच्यते। ततः प्रसादयामास कश्यपो भगवानृषीन् ॥२९॥

ततः प्रसन्नास्ते प्रोचुर्गौतमी सरितां यरा । अपराधसहस्रेभ्यो रक्षिष्यति च सेवनात् ॥३०॥
 भार्यान्वितस्तथा चक्रे कश्यपो मुनिसत्तमः । ततः प्रभृति तत्तीर्थमुभयोः संगमं विदुः ॥
 सर्वपापप्रशमनं सर्वश्रुतफलप्रदम् ॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे कद्रुसुपर्णासंगमतीर्थवर्णनं नाम
 शततमोऽध्यायः ॥१००॥

गौतमीमहात्म्ये एकात्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

सरस्वतीसंगमपुष्करवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनम्

ब्रह्मोपाच

पुष्करवसमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः । स्मरणादेव पापाना नाशनं किंतु दर्शनात् ॥१॥
 पुष्करवा ब्रह्मसदः प्राप्य तत्र सरस्वतीम् । यदृच्छया देवनदीं हसन्तीं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥
 तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नामुर्वशीं प्राह भूपतिः ॥२॥

राजोवाच

केयं रूपवती साध्वी स्थितेयं ब्रह्मणोऽन्तिके । सर्वासामुत्तमा योषिद्वीपयन्ती सभामिमाम् ॥३॥

उत्तम कीटि की गौतमी गंगा सेवा करने से सहस्री अपराधों से रक्षा करती है ॥३०॥ तब मुनि कश्यप ने भार्या सहित गौतमी की सेवा कर भार्या के नेत्रदोष को दूर किया । उस समय से वह तीर्थ सब पापों को नष्ट करने वाला, सब यज्ञों ने फल को देने वाला सुपर्णासंगम या काद्रवसंगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥३१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कद्रु-सुपर्णा-संगमतीर्थ नामक तीर्थों अध्याय समाप्त ॥१००॥

अध्याय १०१

सरस्वतीसंगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—वेदज्ञ व्यक्ति उस पुष्करवा नामक तीर्थ को जानते हैं, जो स्मरण मात्र से पापों को नष्ट कर देता है । उसके दर्शन के फल को तो कहना ही क्या । एक समय पुष्करवा ब्रह्मा के भवन में गया । वहाँ उनके समीप अकारण हास करती हुई देवनदी सरस्वती को देखा । सुपति पुष्करवा ने उस रूपवती को देखकर उर्वशी से पूछा ॥१-२॥

राजा ने कहा—यह रूपवती साध्वी कौन है ? जो सब स्त्रियों में उत्तम है, अपनी शरीरकान्ति से इस देवसभा को प्रकाशित कर रही है—और ब्रह्मा के समीप बैठी हुई है ॥३॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी प्राह राजानमपि देवनदी शुभा । सरस्वती ब्रह्मसुता नित्यमेति च याति च ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा आनयेमा ममान्तिकम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी पुनरप्याह राजान भूरिदक्षिणम् ॥५॥

उर्वशीवाच

आनीयते महाराज तस्या सर्वं निवेद्य च ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ता प्राहिणोत्तत्र राजा श्रुत्वा तदोर्वशीम् । सा गत्वा राजबन्धन न्यवेदयदथोर्वशी ॥७॥
सरस्वत्यपि तन्मेने उर्वश्या यन्निवेदितम् । सा तथेति प्रतिज्ञाय प्रायाद्यत्र पुनरवा ॥८॥
सरस्वत्यास्ततस्तीरे स रेमे बहुला समा । सरस्वानभवत्पुत्रो यस्य पुत्रो बृहद्वय ॥९॥
तां गच्छन्तीं नृपगृह्ण नित्यमेव सरस्वतीम् । सरस्वन्त ततो लक्ष्म ज्ञात्वाऽप्येषु तथा कुतम् ॥१०॥
तस्ये ददावह शाप भूया इति महानदी । मच्छापभीता वामोशा प्रागाद्देवीं च गीतमीम् ॥११॥
कमण्डलुभवा पूता मातर लोकपावनीम् । तापत्रयोपशमनीर्महिकामुष्मिकप्रदाम् ॥१२॥
सा गत्वा गीतमीं देवीं प्राह मच्छापमादित । गङ्गाऽपि मामुवाचेद विनापा कर्तुमर्हसि ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—उर्वशी ने राजा से कहा—यह ब्रह्मपुत्री पवित्र देवनदी सरस्वती है जो यहाँ सदा आती और जाती है । यह सुनकर राजा विस्मित हो गया और कहा—इसको मेरे समीप ले आओ ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—उर्वशी ने अत्यन्त दक्षिणा (दान) देने वाले राजा से पुत्र कहा ॥५॥

उर्वशी बोली—महाराज ! मैं उससे सारी बातें कहकर अभी ले आ रही हूँ ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके पश्चात् राजा न प्रेमपूर्वक उर्वशी को सरस्वती के समीप भेजा । सरस्वती ने भी उर्वशी ने जो कुछ कहा उसको स्वीकार कर लिया । और अवश्य मैं मित्रूमी यह प्रतिज्ञा कर जहाँ पुरवाच वहाँ वह पहुँच गई । पुरवाच ने बहुत वर्षों तक सरस्वती के तीर पर उमके साथ विहार किया । उसके गम से एक सरस्वान् नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र बृहद्वय नामक प्रतापी राजा हुआ ॥७९॥ मैं सरस्वती को प्रतिदिन राजा के घर जाते देखता था । सरस्वान को भी उसके आकार जिल्हा एवं दूसरा से कहे गये सकेता स सरस्वती का पुत्र जान लिया । अतः मैं यह सारा रहस्य जानकर सरस्वती से शाप दे दिया कि तুম महानदी हो जाओ ॥१०॥ मेरे शाप से डरी हुई वामोद्वरी गीतमी देवी के समीप गई । उसने कमण्डलु से उत्पन्न पवित्र लोकपावनी जगन्माता तीना तापा को दूर करने वाली एह्वि एवं पारलोत्रिच मुखा को देनेवाली गीतमी के पास जाकर आदि स अन्त तक मेरे पास का विवरण सुनाया ॥१११२॥ उसको सुनकर गया ने भी मुझसे कहा कि अवश्य इसको शापमुक्त कर देना चाहिए । सरस्वती को जो बुध्न शाप दे दिया, यह ठीक नहीं किया क्योंकि स्थिरा का यह स्वभाव है कि वे प्रायः

न युक्तं यत्सरस्वत्या. शापं त्वं वत्तवानसि। स्त्रीणामेव स्वभावो वं पुंस्कामा योपितो यतः॥१४॥
 स्वभावचपला ब्रह्मन्योपितः सकला अपि। त्वं कथं तु न जानीषे जगत्स्रष्टाऽम्बुजासन॥१५॥
 विडम्बयति कं वा न कामो वाऽपि स्वभावतः। ततो विशापमवदं दृश्याऽपि स्यात्सरस्वती॥१६॥
 तस्माच्छापाव्रदी मर्त्ये दृश्याऽदृश्या सरस्वती। यत्रापा संगता देवी गङ्गाया शापविह्वला॥१७॥
 तत्र प्रायाद्रूपवरो धार्मिकः स पुरुरवाः। तपस्तप्त्वा समाराध्य देवं सिद्धेश्वरं हरम्॥१८॥
 सर्वान्कामानयावाप गङ्गायाश्च प्रसादतः। तत प्रभृति तत्तीर्थं पुरुरवसमुच्यते॥१९॥
 सरस्वतीसंगम च ब्रह्मतीर्थं तदुच्यते। सिद्धेश्वरो यत्र देवः सर्वकामप्रदं तु तत्॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सरस्वतीसंगमपुरुरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनं

नामैकाधिकशततमोऽध्यायः॥१०१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती। एतानि पञ्च तीर्थानि पुण्यानि मुनयो विदुः॥१॥

पुरपसान्निध्य की कामना करती हैं॥१३-१४॥ ब्रह्मन् । सभी स्त्रियाँ स्वभाव से ही चंचल होती हैं, पकजासन । तुम जगत् के सृष्टिकर्ता होकर भी इसको क्यों नहीं जानते हो॥१५॥ स्वभावतः कामदेव सहज में ही किसीको अपने जाल में नहीं फँसा लेता है ? गौतमी की बातों को सुनकर मैंने उसको शाप से मुक्त कर दिया कि सरस्वती दृश्या (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली) भी हो॥१६॥ मेरे उस शाप के कारण ही इस मर्त्यलोक में सरस्वती दृश्य और अदृश्य दो रूपों की हो गईं। जहाँ यह सरस्वती शापविह्वल होकर गंगा में मिली, वहाँ वह धार्मिक, श्रेष्ठ राजा पुरुरवा गया। वहाँ तपस्या तथा सिद्धेश्वर शरर की आराधना करके उसने गंगा की कृपा से अपने सब मनोरथों को प्राप्त किया। उस समय से वह पुरुरवा तीर्थ कहलाता है, सरस्वतीसंगम और ब्रह्मतीर्थ भी उसी को कहते हैं। जहाँ सिद्धेश्वर महादेव विराजमान है, वह पुनीत तीर्थ सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला है॥१७-२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में सरस्वतीसंगम पुरुरवस ब्रह्मतीर्थ सिद्धेश्वर वर्णन नामक एक सौ पहला अध्याय समाप्त॥१०१॥

अध्याय १०२

पञ्चतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, और सरस्वती ये पांच तीर्थ अत्यन्त पवित्र हैं, इनको

तत्र स्नात्वा तु पीत्वा तु मुच्यते सर्वकल्मषात् । सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती ॥२॥
 एता' मम सुता ज्येष्ठा धर्मसंस्थानहेतव । सर्वास्तमुत्तमा काचिन्निर्ममे लोकसुन्दरोम् ॥३॥
 ता दृष्ट्वा विकृता बुद्धिर्ममाऽऽसीन्मुनिसत्तम । गृह्यमाणा मया बाला सा मा दृष्ट्वा पलायिता ॥४॥
 मृगीभूता तु सा बाला मृगोऽहमभव तदा । मृगव्याधोऽभवच्छब्दधर्मसरक्षणाय च ॥५॥
 ता मञ्जरीता पञ्च सुता गङ्गानीयमंहानदीम् । ततो महेश्वर प्रयाद्वर्मसरक्षणाय स ॥६॥
 धनुर्गृहीत्वा सशरमीशोऽपि मृगरूपिणम् । मामुवाच वधिय्ये त्वा मृगव्याधस्तदा हर ॥७॥
 तत्कर्मणो निवृत्तोऽहं प्रादा कन्या विवस्वते । सावित्र्याद्या पञ्च सुता नदीरूपेण सगता ॥८॥
 ता आगता पुनश्चापि स्वर्गं लोकममास्तिकम् । यत्र ता' सगता देव्या पञ्च तीर्थानि नारद ॥९॥
 सगतानि च पुण्यानि पञ्च नद्यः सरस्वती । तेषु स्नानं तथा दानं यत्किञ्चित्कुरते नर ॥१०॥
 सर्वकामप्रदं तस्माद्भक्त्यर्प्यन्मुक्तिदं स्मृतम् । तत्राभवन्मृगव्याध तीर्थं सर्वार्थदं नृणाम् ॥
 स्वर्गमोक्षफलं चान्यद्ब्रह्मतीर्थफलं स्मृतम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्राद्धे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम
 द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्र्यश्विप्रशोऽध्यायः ॥३३॥

मुनिगण जानते हैं । इन तीर्थों में स्नान और आचमन करने से मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ।
 सावित्री गायत्री श्रद्धा मेधा और सरस्वती ये चार ज्येष्ठ कन्याएँ हैं जिनके द्वारा धर्म संस्थापन का काम हुआ है ।
 इन सबों में से एक को मैंने निम्बवन में अलौकिक रूपवती बनाया । मुनिः २८ । उस अद्वितीय सुन्दरी को देखकर
 मरी बुद्धि भी विकृत हो गई । कामवश मैंने जब उसको पकड़ना चाहा तब वह मुझको देखकर भाग राखी हुई ।
 जब वह मृगी बन कर भागने लगी तब मैं भी मृग बन गया । यह देखकर शत्रु धर्म की रक्षा के लिये 'मनुज' मृग
 व्याध (शिकारी) का रूप धारण कर लिया । वे पाँच कन्याएँ मुझसे डरकर महानदी गंगा में मिट गईं । उनके
 बाद ही धर्म रक्षा के लिये उद्यत सागर भी पीछ पीछ आये । तब मृगवधिवं (शिकारी) ने हाथ में बाण महित
 धनुष लेकर मृगरूपधारी मुझसे कहा मैं अबय तुम्हारा वध करूँगा ॥१०॥ किसी प्रकार उमकम म पिण्ड हूँडाकर
 मैंने अपनी कन्याओं को विवस्वान् के हाथों सौंप दिया । इधर सावित्री आदि पाँच कन्याएँ नगी रणप्राङ्गण गयीं म मिल
 गई थीं परन्तु पुनः वस्वगतं म मुझसे मिली । नारद ! जहाँ जहाँ वे पाँच मिट गईं वे पाँच स्थान पाँच
 तीर्थ बन गये । जहाँ वे सरस्वती आदि पाँच नदियाँ मिटकर पवित्र तीर्थ बनानी हैं उन तीर्थों में स्नान दान
 अथवा जो कुछ गुण वापस दिले जाते हैं सब अविमल कामनाओं का दान वाउ होने हैं तथा निष्काम भाव में दिये जाने पर
 मुक्तिदायक होते हैं वही मनुष्यों को सब दुःखाओं का पूण करने वाला मृगव्याध तीर्थ भी है । दूसरा जो
 ब्रह्मतीर्थ है वह भी स्वर्ग अथवा मोक्षार्थ को देने वाला कहा गया है ॥८१॥

श्री ब्रह्मपुराण में पञ्चतीर्थ-माहात्म्य वचन नामक एवं सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥१०२॥

अथ व्यधिकशततमोऽध्याय

शम्यादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शमीतीर्थमिति ख्यात सर्वपापोपशान्तिदम् । तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
 आसीत्प्रियव्रतो नाम क्षत्रियो जयता वर । गौतम्या दक्षिणे तीरे दीक्षा चक्रे पुरोषता ॥२॥
 हयमध उपरान्त ऋत्विग्भिर्ऋषिभिर्वृते । तस्य राज्ञो महाबाहोर्वसिष्ठस्तु पुरोहित ॥३॥
 तद्यज्ञवाटमगमद्दानवोऽयं हिरण्यक । त दानवमभिप्रेक्ष्य देवास्त्विन्द्रपुरोगमा ॥४॥
 भीता केचिद्दिव्य जगुर्हव्यवाटशमिमाविशत । अश्वत्थं विष्णुरगमद्भ्रानुरकं वटं शिव ॥५॥
 सोमं पलाशमगमदगङ्गाम्भो हव्यवाहन । अश्विनो तु हयं गृह्यं वायसोऽभूद्यमं स्वयम् ॥६॥
 एतस्मिन्नतरे तत्र वसिष्ठो भगवानृषिः । यष्टिमादाय दैत्यान्मवारयदयाऽनया ॥७॥
 ततः प्रवृत्तं पुनरेव यज्ञो, दैत्यो गतः स्वेन बलेन युक्तः ।
 इमानि तीर्थानि ततः शुभानि, दशाश्वमेधस्य फलानि दद्युः ॥८॥
 प्रथमं तु शमीतीर्थं द्वितीयं वैष्णवं विदुः । आकं शंखं च सौम्यं च वासिष्ठ सर्वकामदम् ॥९॥

अध्याय १०३

शमी आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा न कहता—शमीतीर्थ सम्पूर्ण पापा से मुक्त करने वाला है उसकी कथा मैं कह रहा हूँ नारद । तुम चाव से सुनो । विजयप्रसी राजाओं में श्रेष्ठ शिवव्रत नामक एक क्षत्रिय राजा था । उसने गौतमी के दक्षिण तीरे पर पुरोहित द्वारा यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की । उस महाबलवान् राजा के अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हो जाने पर सब ऋषि बड़ा ऋषिक वनाये गये । वसिष्ठ ने पुरोहित का आसन ग्रहण किया । यज्ञ प्रारम्भ हो जाने के बाद हिरण्यक नाम का एक दानव यज्ञ मण्डप की ओर आया । उस दानव को देखकर इंद्र आदि सभी देवता भयभीत हो गये । कुछ तो स्वयं भाग गये । स्वयं अग्निदेव शमी वक्ष में छिप गये । विष्णु पीपल के वक्ष में सूय अक (मदार) में शिव वट में और सोम पलाश में घुस गये । वैद्यारे हव्यवाहन गया जल में कूदकर छिपे अश्विनीकुमारों ने यज्ञाश्व में छिप कर प्राण रक्षा की यम ने कौए का रूप धारण किया । इसी बीच मेरी आज्ञा से भगवान् ऋषि वसिष्ठ ने हाथ में डण्डा लेकर हुडात उन दैत्य पुत्रों को यज्ञ मूमि में आने से रोक दिया ॥१॥ ७॥ तदनन्तर जब वह दैत्य अपने अनुचर सैनिका के साथ लौट गया तब पुनः यज्ञ प्रारम्भ हुआ । तब से ये आगे कहे हुए तीर्थ शुभ और दण्ड अश्वमेध के फल को देने वाले हुए ॥८॥ उनमें से पहला शमी तीर्थ दूसरा वैष्णवं तीसरा आक (सूय सम्बन्धी) तीर्थ माना गया है । इसी प्रकार बड़ा सम्पूर्ण अग्निमत वस्तुओं के देने वाले नैव सौम्य और वासिष्ठ तीर्थ भी हुये ॥९॥

देवाश्च ऋषयः सर्वे निवृत्ते मलविस्तरे । तुष्टाः प्रोचुर्वसिष्ठस्तं यजमानं प्रियव्रतम् ॥१०॥
ताश्च वृक्षास्तां च गङ्गा मुदा युवता पुनः पुनः । हयमेघस्य निष्पत्य एते याता इतस्ततः ॥११॥
हयमेघफलं वद्युस्तीर्थानीत्यवदन्सुराः । तस्मात्स्नानेन बानेन तेषु तीर्थेषु नारद ॥
हयमेघफलं पुण्यं प्राप्नोति न मृषा वचः ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिनाहो स्वयम्भुक्पितृवादे तीर्थमाहात्म्ये शम्पादितोर्थवर्णनं नाम

अधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शेष च रोहिनम् । वारणं ब्राह्ममाण्येयमैन्द्रमन्दवमेश्वरम् ॥१॥
मग्नं च वंणव चैव याम्यमाश्रितमौशनम् । एतयोः पुण्यतीर्थानां नामधेयं शृणुष्व मे ॥२॥
हरिश्चन्द्र इति त्वासोदिक्वाकुप्रभवो नृप । तस्य गृहे मुनी प्राप्ता नारद पर्यवताया ॥
हृत्वाऽऽतिथ्य तयोः सम्पद्यरिश्चन्द्रोऽन्नवीदृषी ॥३॥

जब उस महान् यज्ञ से सभी निवृत्त हुये तब देवा और ऋषिया ने प्रसन्न और आनन्दित होकर पुरोहित बसिष्ठ और उस यजमान प्रियव्रत से कहा कि यह गंगा और ये सभी वृक्ष अश्वमेध यज्ञ की पूर्ति के लिये ही यज्ञ तत्र विभिन्न रूपां में उत्पन्न हुये हैं ॥१० ११॥ देवा ने पुनः कहा कि ये तीर्थ अश्वमेध यज्ञ के समान फल देने वाले हैं । इसलिये हे नारद ! उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से मनुष्य अश्वमेध का पावन कृत्य प्राप्त करता है इसको यथार्थ मन समझना ॥१२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण शम्पादिलीय वणन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥१०३॥

अध्याय १०४

विश्वामित्र आदि बाईस हजार तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इन पवित्र विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शेष रोहित वारण ब्राह्म आग्नेय इन्द्रनील ईश्वरलीय सैन वंणव याम्य आश्रित और मग्न आदि इन तीर्थों के नाम बता । पर इनको भी मुझसे सुनो । इन्द्रावुक्ता में उत्पन्न हरिश्चन्द्र नामक एक राजा था । एक समय उसने घर नारद और पवन नामक दो मुनि आपे । उन दोनों की मली मूर्ति अनिष्टि सेवा कर हरिश्चन्द्र ने ऋषियों से कहा ॥१ ३॥

हरिश्चन्द्र उवाच

पुत्रार्थं विलश्यते लोकं किं पुत्रेण भविष्यति । ज्ञानी वाऽप्यथवाऽज्ञानी उत्तमो मध्यमोऽथवा ॥
एतं मे सशप नित्यं ब्रूतामृषिवरावृभो ॥४॥

ब्रह्मोवाच

तावच्चतुर्हरिश्चन्द्रं पर्वतो नारदस्तथा ॥५॥

नारदपर्वतावृचतु

एकधा दशधा राजञ्जशतधा च सहस्रधा । उत्तरं विद्यते सम्पत्तथाऽप्येतदुदीर्यते ॥६॥
नापुत्रस्य परो लोको विद्यत नृपसत्तम । जाते पुत्रे पिता स्नानं करोति जनाधिप ॥७॥
दशानामश्वमथानामभिपेक्षफलं लभेत । आत्मप्रतिष्ठा पुत्रात्स्याज्जायते चामरोत्तम ॥८॥
अमृतनामरा देवा पुत्रेण ब्राह्मणादयः । त्रिऋणान्मोचयेत्पुत्रं पितरं च पितामहान् ॥९॥
किंतु मूलं किमु जलं किंतु श्मश्रुणि किं तपः । विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गो भुवि सुतात्स्मृता ॥१०॥
पुत्र एव परो लोको धर्मं कामोऽर्थ एव च । पुनो भुवि परं ज्योतिस्तारकं सर्वदेहिनाम् ॥११॥
विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गमोक्षौ सुदुर्लभौ । पुन एव परो लोको धर्मकामार्थसिद्धये ॥१२॥
विना पुत्रेण यद्वत् विना पुत्रेण यद्वत्तम । विना पुत्रेण यज्जन्म व्यर्थं तदवभाति मे ॥१३॥
तस्मात्पुत्रसमं किञ्चित्काम्यं नास्ति जगत्त्रये । तच्छ्रुत्वा विस्मयवास्तावुवाच नृप पुन ॥१४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—सगर के लोग पुत्र के लिये बहुत चिन्तित रहते और कष्ट उठाते हैं चाहे वे ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी उत्तम मनुष्य हो अथवा मध्यम सबकी यही गति है । परन्तु पुत्र से क्या होता है । यही सबका मुश्किल सदेह बना रहता है आप दोनों ऋषिवर मुझ समझा कर कहें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनों नारद तथा पर्वत हरिश्चन्द्र से बोले ॥५॥

नारद और पर्वत ने कहा—राजन ! इस प्रश्न के एक दश सौ और हजार प्रकार के भवितव्य उत्तर हैं । तथापि यहाँ सक्षप म कहा जा रहा है । न पण्डित ! अत्र के लिये स्वर्गलोक में कोई स्थान नहीं । जनाधिप ! पुत्र हो जाने पर जो पिता स्नान करता है वह दश अश्वमेध के अभिषेक का फल प्राप्त करता है । पुत्र के द्वारा ही आम प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और उत्तम दत्त की प्राप्ति भी । अमृत के द्वारा देव अमर हुए हैं परन्तु ब्राह्मण आदि मानव पुत्र के द्वारा । पुत्र अपने पिता और पितरों को तीनों (देव पित ऋषि) ऋणा से छुड़ाता है । पुत्र के बिना मूल (वेदाध्ययन) जल (स्नान-तपण) पचकेन (वाडी आदि रखने) और तपस्या से क्या लाभ । राजेन्द्र ! स्वर्ग अथवा भुवि की प्राप्ति पुत्र द्वारा ही होती है ऐसा कहा गया है ॥६-१०॥ पुत्र ही उत्तम लोक धर्म काम और अर्थ भी है । पुत्र ही भुवि पर ज्योति और सब मनुष्यों का उद्धारकर्ता है । राजेन्द्र ! पुत्र के बिना स्वर्ग और मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ हैं । इस लोक में धर्म काम और अर्थ सिद्धि के लिये पुत्र ही एकमात्र साधन है । मेरा मत है कि पुत्र के बिना दिया हुआ दान हवन व्रत (यज्ञ) यहाँ तक कि पुत्र के बिना मानव जीवन भी व्यर्थ है । इसलिये तीनों लोक में पुत्र के समान कोई काम्य कर्म नहीं । इन बातों को सुनकर राजा को अत्यन्त आशय हुआ और पुन कहा—॥११-१४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

कथं मे स्यात्सुतो भूता यत्र क्वापि यथातथम् । येन केनाप्युपायेन कृत्वा किञ्चित् पौरुषम् ॥
मन्त्रेण यागदानाभ्यामुत्पाद्योऽसौ सुतो मया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तावच्चतुर्नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र सुतार्थिनम् । ध्यात्वा क्षण तथा सम्यगौतमीं याहि मानद ॥१६॥
तत्रापापतिरुत्कृष्टं ददाति मनसीप्सितम् । वरुण सर्वदाता वै मुनिभिः परिकीर्तित ॥१७॥
स तु प्रीतः शनैः काले तव पुत्रं प्रदास्यति । एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो मुनिवाक्यं तथाऽकरोत् ॥१८॥
तोषयामास वरुणं गौतमीतीरमाश्रितः । ततश्च तुष्टो वरुणो हरिश्चन्द्रमुवाच ह ॥१९॥

वरुण उवाच

पुत्रं दास्यामि ते राजल्लोकत्रयविभूषणम् । यदि यक्ष्यसि तेनैव तव पुत्रो भवेद्भ्रुवम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुण यक्ष्ये तेनेत्यवोचत । ततो गत्वा हरिश्चन्द्रश्चर कृत्वा तु वारुणम् ॥२१॥
भार्यायै नृपतिं प्रदात्ततो जातः सुतो नृपात् । जाते पुत्रे अपामीश प्रोवाच वदता वर ॥२२॥

वरुण उवाच

अद्यैव पुत्रो यष्टव्यः स्मरसे वचनं पुरा

॥२३॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा इसको आप बतायें । मैं जिस किसी उपाय से—बाहे कही जाने से अथवा कोई पौरुष करने से—मन्त्र से अथवा दान से—वह पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहता हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—क्षण भर ध्यातावस्थित होकर (सोच विचार कर) पुत्राकांक्षी हरिश्चन्द्र से उन ऋषियों ने कहा—मानद ! तुम गौतमी के समीप जाओ । वहाँ जल के अधिपति वरुण उत्तम से उत्तम मनोवाञ्छित पुत्र को प्रदान करते हैं क्योंकि मुनियों ने वरुण को सर्व दाता कहा है । वह शनैः शनैः तुम्हारी आराधना से प्रसन्न होकर अथवा यथासमय तुम्हें पुत्र प्रदान करेगा । मुनियों की उपयुक्त बात सुनकर श्रेष्ठ नृपति ने तदनुकूल ही काय किया । गौतमीतीर पर आसनस्थ होकर उसने वरुण को प्रसन्न किया । तदनन्तर वरुण प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र से बोले—॥१६ १९॥

वरुण ने कहा—राजन् ! तीन लोकों को अपने गुणों से विभूषित करने वाला पुत्र दूंगा यदि तुम उसी पुत्र द्वारा मेरा यज्ञ करने की प्रतिज्ञा करो । ऐसी प्रतिज्ञा करने पर तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा यह भ्रूव है ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्रकामि हरिश्चन्द्र ने उत्पन्न पुत्र से यज्ञ करेगा ऐसी प्रतिज्ञा वरुण से की । वर प्राप्ति के बाद नृपति हरिश्चन्द्र ने घर जाकर वारुण चर (हविष्य) बनाया और भार्या को खिलाया । पत्न्यरूप राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्र उत्पन्न होने पर जल के पति वाग्मी वरुण ने कहा—॥२१ २२॥

वरुण ने कहा—आज ही पुत्र द्वारा यज्ञ कीजिये, क्या पहले की बातों का स्मरण है ? ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं प्रोवाचेद क्रमागतम्

॥२४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

निर्दंशो मेध्यतां याति पशुर्यक्ष्ये ततो ह्यहम्

॥२५॥

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणोऽगात्स्वमालयम् । निर्दंशे पुनरभ्येत्य यजस्वेत्याह तं नृपम् ॥२६॥

राजाऽपि वरुणं प्राह निर्दन्तो निष्फलं पशुः । पशोर्दन्तेषु जातेषु एहि गच्छाधुनाऽप्स्यते ॥२७॥

तच्छ्रुत्वा राजवचनं पुनः प्रायादपापतिः । जातेषु चैव दन्तेषु सप्तवर्षेषु नारद ॥२८॥

पुनरप्याह राजानं यजस्वेति ततोऽब्रवीत् । राजाऽपि वरुणं प्राह पत्स्यन्तीमे अपांपते ॥२९॥

सपत्स्यन्ति तथा चान्ये ततो यक्ष्ये ब्रजाधुना । पुनः प्रायात्स वरुणः पुनर्दन्तेषु नारद ॥

यजस्वेति नृपं प्राह राजा प्राह त्वपांपतिम् ॥३०॥

राजोवाच

यदा तु क्षत्रियो यज्ञे पशुर्भवति वारिषः । धनुर्वेदं यदा वेत्ति तदा स्यात्पशुरुत्तमः ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा राजवचनं वरुणोऽगात्स्वमालयम् । यदाऽस्त्रेषु च शस्त्रेषु समर्थोऽभूत्स रोहितः ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिश्चन्द्र ने भी इस प्रकार क्रमशः वरुण से कहा ॥२४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—दाँत निकल जाने पर ही पशु मेध्य (यज्ञ-योग्य) माना जाता है, इसलिये दाँत निकलने पर ही यज्ञ करूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—राजा की बातें सुनकर वरुण अपने स्थान पर चले आये । दाँत निकल आने पर पुनः आकर वरुण ने राजा से कहा 'यज्ञ करो' । राजा ने वरुण से कहा—निदन्त (बहुत-से दाँतों के बिना) पशु यज्ञ के योग्य नहीं होते । यज्ञपशु के बहुत दाँत निकल जाने पर पुनः आइये । वरुण ! इस समय आप चले जाइये । राजा की बातें सुनकर वरुण लौट गये । नारद ! सात वर्षों में बहुत दाँत निकल आने पर पुनः राजा से वरुण ने कहा कि 'जब यज्ञ करो' । राजा ने वरुण से कहा कि जब ये दाँत गिर जायेंगे और दूसरे दाँत निकल आयेंगे तबुपरान्त यज्ञ करूँगा, इस समय आप जाइये । नारद ! पुनः दाँतों की निदिष्ट अवधि बीत जाने पर वरुण आये और राजा से यज्ञ करने के लिये कहा । यह सुनकर राजा ने वरुण से कहा ॥२६-३०॥

राजा ने कहा—जलरक्षक वरुण ! जब क्षत्रिय यज्ञ में पशु बनाया जाता है तब धनुर्वेद जान लेने पर ही वह उत्तम पशु होता है ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की बातें सुनकर वरुण पुनः अपने स्थान को वापस चले गये । जब वह राजपुत्र रोहित अस्त्र और शस्त्र विद्या में निपुण हो गया, शत्रुनाशक, एवं सब वेदों और शास्त्रों का भी विद्वान् हो गया और जब

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु धेत्ताऽभूत् त्वरिवमः। युवराज्यमनुप्राप्ते रोहिते षोडशाब्दिके॥३३॥
प्रोतिमानगमत्तत्र यत्र राजा सरोहितः। आगत्य वरुणः प्राह यजस्वाद्य सुतं स्वकम्॥३४॥
ओमित्युक्त्वा नृपवर ऋत्विजः प्राह भूपतिः। रोहितं च सुतं ज्येष्ठं शृण्वतो वरुणस्य च॥३५॥

हरिश्चन्द्र उवाच

एहि पुत्र महावीर यक्ष्ये त्वां वरुणाय हि

॥३६॥

ब्रह्मोवाच

किमेतदित्यथोवाच रोहितः पितरं प्रति। पिताऽपि यद्यथावृत्तमाचक्षते सविस्तरम्॥
रोहितः पितरं प्राह शृण्वतो वरुणस्य च ॥३७॥

रोहित उवाच

अहं पूर्वं महाराज ऋत्विग्भिः सपुरोहितः। विष्णवे लोकनायाय यक्ष्येऽहं त्वरितं शुचिः॥
पशुना वरुणेनाय तदनुज्ञातुमर्हसि ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

रोहितस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वारोश्वरस्तदा। कोपेन महताऽऽविष्टो जलोदरमयाकरोत्॥३९॥
हरिश्चन्द्रस्य नृपते रोहितः स वन ययौ। गृहीत्वा स धनुर्दिव्य रथाह्णो गतव्ययः॥४०॥
यत्र चाऽऽराध्य वरुण हरिश्चन्द्रो जनेदवरः। गङ्गायां प्राप्तवानुपुत्र तत्रागात्सोऽपि रोहितः॥४१॥
व्यतीताग्नयय वर्षाणि पञ्चपष्ठे प्रवर्तन्ति। तत्र स्थित्वा नृपसुतः शुश्राव नृपते रजम्॥४२॥
मया पुत्रेण जातेन पितुचं बलेशकारिणा। किं फलं किमु कृत्य स्यादित्येव पर्यचिन्तयत्॥४३॥

उसने सोलह वर्ष का होकर युवराज पद का अधिकार भी प्राप्त कर लिया तब वरुण प्रसन्न चित्त हो, जहाँ राजा और रोहित थे वहाँ गये और कहा कि आज अपने पुत्र द्वारा यज्ञ करो। वह नृपज्येष्ठ ऋत्विज् राजा वरुण के सामने ही अपने ज्येष्ठ पुत्र रोहित से बोला ॥३२-३५॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—पुत्र ! आजो, मैं वरुण की प्रसन्नता के लिये तुम से यज्ञ करूँगा ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर रोहित ने अपने पिता से कहा 'यह क्या'। पिता ने भी पूर्व की घटना का विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दिया। पिता से सारा रहस्य जानकर रोहित ने वरुण के सामने ही कहा ॥३७॥

रोहित ने कहा—महाराज ! पहले मैं ही ऋत्विजो और पुरोहित के सहित वरुण को यज्ञ-यज्ञ बनाकर लोक-स्वामी विष्णु का यज्ञ शीघ्र ही करना चाहता हूँ आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥३८॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित की बातें सुनकर वरुण अत्यन्त क्रोधान्ध होकर राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग का रोगी बना दिया। वह रोहित दिव्य धनुष लेकर रथ पर सवार होकर शान्त भाव से वन को चला गया। वह रोहित भी उस स्थान पर—जहाँ जनतायक हरिश्चन्द्र ने शरणागति के सङ्गीत ब्रह्म की आराधना कर पुत्र को प्राप्त किया था—गया। वहाँ रहकर उसने पाँच वर्ष बिता दिये। छठे वर्ष के प्रारम्भ में ही सुना कि राजा को जलोदर रोग हो गया है। वह सोचने लगा कि 'पिता को कष्ट देने वाले धेरे समान पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ हुआ ? अब इस

तस्यास्तीरे ऋषीन्पुष्पानपश्यन्पते सुत । गङ्गातीरे वर्तमानमपश्यदृषिसत्तमम् ॥४४॥
 अजीगतमिति ख्यातमृषेस्तु ययस सुतम् । त्रिभिः पुनरनुवृत भार्यया क्षीणवृत्तिकम् ॥४५॥
 त दृष्ट्वा नृपते पुत्रो नमस्येद पचोऽब्रवीत्

रोहित उवाच

क्षीणवृत्ति कृश वस्मादुर्मना इव लक्ष्यसे ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

अजीगर्तोऽपि चोवाच रोहित नृपते सुतम् ॥४७॥

अजीगतं उवाच

वर्तन नास्ति देहस्य भोक्तारो बहवश्च मे । विनाऽग्नेन मरिष्यामो ब्रूहि किं करयामहे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा पुनरप्याह नृपपुत्र ऋषि तदा ॥४९॥

रोहित उवाच

तव किं वर्तते चित्ते तदब्रूहि वदतावर ॥५०॥

अजीगतं उवाच

हिरण्य रजत गावो धान्य वस्त्रादिक न मे । विद्यते नृपशार्दूल वतन नास्ति मे तत ॥५१॥
 सुता मे सन्ति भार्या च अहं वं पञ्चमस्तथा । नैतया कतमस्यापि भेताऽग्नेन नृपोत्तम ॥५२॥

समय मेरा क्या वक्तव्य है । उसी समय नृपपुत्र ने गंगा के तट पर पवित्र ऋषिदा को देखा । उसी तट पर वर्तमान वय नामक ऋषि के पुत्र अजीगत नामक ऋषिविष्वक्ष को देखा जो अपनी भार्या और तीन पुत्रों के साथ थे परन्तु जीविका के साधन से हीन थे । उनको देखकर राजपुत्र ने नमस्कार करके पूछा ॥३९॥४५॥

रोहित ने कहा—आप इतने दुबल और जीविकाहीन क्यों हैं किस कारण इतने ध्वष्ट से जान पड़ते हैं ? ॥४५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर अजीगत ने नृप पुत्र रोहित से कहा—॥४७॥

अजीगत ने कहा—शरीर रक्षा के साधन नहीं है और मेरे परिवार में भोजन करने वाले बहुत से हैं अन्न के बिना हम लोग मर जायेंगे कहीं इस अवस्था में हम लोग क्या कर ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि की बातों को सुनकर नृपपुत्र ने पुत्र ऋषि से कहा—॥४९॥

रोहित ने कहा—हे श्रष्ट वक्ता ! तुम्हारे क्या विचार है वह बताओ ॥५०॥

अजीगत ने कहा—नृपपुत्र ! मेरे पास सोना चाँदी गो धान्य और वस्त्रादि कुछ नहीं हैं इसके अतिरिक्त मेरे पास जीविका का भी कोई साधन नहीं है । हाँ मेरे पास पुत्र भार्या और पाँचवाँ मैं हूँ । नृपोत्तम ! हम लोगों में से किसी को अन्न देकर खरीदने वाला भी कोई नहीं है ॥५१॥५२॥

रोहित उवाच

किं क्रीणासि महाबुद्धेऽजीगर्त सत्यमेव मे । वद नान्यच्च वक्तव्यं विप्रा वं सत्यवादिन ॥५३॥

अजीगर्त उवाच

प्रयाणामपि पुत्राणामेकं वा मा तथैव च । भार्या वाऽपि गृहाणेमा क्रीत्वा जीवामहे वयम् ॥५४॥

रोहित उवाच

किं भार्याया महाबुद्धे किं त्वया बृद्धरूपिणा । युवानं देहि पुत्रं मे पुत्राणां यं त्वमिच्छसि ॥५५॥

अजीगर्त उवाच

ज्येष्ठपुत्रं शुनं पुच्छ नाहं क्रीणामि रोहित । माता कनीयस चापि न क्रीणाति ततोऽनयो ' ॥

मध्यमं तु शुनं शेषं क्रीणामि वद तद्वनम् ॥५६॥

रोहित उवाच

वरणाय पशुं कल्प्यं पुरयो गुणवत्तर । यदि क्रीणासि मूल्यं त्वं वद सत्यं महामुने ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तथैत्युक्त्वा त्वजोगतं पुत्रमूल्यमकल्पयत् । गवा सहस्रं धाव्यानां निष्काणां चापि वाससाम् ॥

राजपुत्रं वरं दहि दास्यामि स्वसुतं तव ॥५८॥

रोहित ने कहा—महाबुद्धिमान् अजीगर्त ! आप किसको किसने मे बचना चाहते हैं सत्य बहिय । दूसरी बात मत कहियेगा ब्राह्मण सबका सत्य वक्ता होते हैं ॥५३॥

अजीगर्त ने कहा—इन तीनों पुत्रों में से किसी एक को अथवा मुझको या इस भार्या को ही खरीद कर ले जाओ जिससे कि हम लोगों की जीवन रक्षा हो ॥५४॥

रोहित ने कहा—इस भार्या से क्या होगा बृद्ध रूपा तुम्हारी श्री आवश्यकता नहीं । हाँ इन पाँचों में से किसी युवक पुत्र को जिसको तुम चाहो दे दो ॥५५॥

अजीगर्त ने कहा—रोहित ! ज्येष्ठ पुत्र शुन पुच्छ को मैं नहीं बेच सकता । माता अपने कनिष्ठ पुत्र को भी बेचना नहीं चाहती है इसलिये इन दोनों से अतिरिक्त भसले पुत्र शुन शेष को बेचूंगा इसका मूल्य कहो ॥५६॥

रोहित ने कहा—एक अधिक गुणवान् पुरय की वरुण-यज्ञ में यज्ञ-यन्त्र बनाने के लिये आवश्यकता है महामुने ! यदि तुम बचना चाहते हो तो उचित मूल्य कहो ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही हो यह कहकर अजीगर्त ने सहस्र गौ सहस्र निष्क (अर्णव) धाव और सहस्र वस्त्र अपने पुत्र का मूल्य बताया और कहा राजपुत्र ! इतना दे दो मैं तुमको अपना पुत्र दे दूंगा ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा रोहितोऽपि प्रादात्सवसनं धनम् । दत्त्वा जगाम पितरमृषिपुत्रेण रोहित ॥
पित्रे नियेदयामास प्रयत्नीतमूये सुतम् ॥५९॥

रोहित उवाच

वरुणाय यज्ञस्य त्वं पशुना त्वमरुग्भय ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

तथोवाच हरिश्चन्द्र पुत्रवाक्पादनन्तरम् ॥६१॥

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या राजा पाल्या इति श्रुति । विशेषतस्तु वर्णानां गुरवो हि द्विजोत्तमा ॥६२॥
विष्णोरपि हि ये पूज्या मादृशा कुत एव हि । अयज्ञयाऽपि येषां स्यान्नृपाणां स्वकुलक्षय ॥६३॥
तान्पशून्कुत्वा कृपणं कथं रक्षितुमुत्सहे । अहं च' ब्राह्मणं पुर्यां पशुं नैतद्धि युज्यते ॥६४॥
वरं हि जातु भरणं न कथंचिद्विजं पशुम् । वरोमि तस्मात्पुत्रं त्वं ब्राह्मणेन सुखं व्रज ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरं तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित ने भी उसको स्वीकार कर लिया और ऋषि को मुह मांगा वस्त्र और धन दे दिया । धन देकर ऋषिपुत्र को साथ ले वह अपने पिता के पास गया । पिता से मूल्य देकर खरीदे हुये ऋषि पुत्र के विषय में सारी बातें बताइ ॥५९॥

रोहित ने कहा—आप वरुण का इस पशु से यज्ञ कीजिये और भीरोग हो जाइये ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्र की बातों को सुनकर हरिश्चन्द्र ने कहा ॥६१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का पालन राजा का कर्तव्य है ऐसी श्रुतियों की आशंका है । उत्तम ब्राह्मण की रक्षा तो विशेष रूप से होनी चाहिये इसलिये कि वे सब वर्णों के गुरु हैं । जो ब्राह्मण विष्णु के भी पूज्य हैं तो मेरे समान व्यक्तियों के लिये तो कुछ कहना ही नहीं । जिनके अपमान से भी राजाओं का कुल-क्षय हो जाता है उन देवपूज्यों को पशु बनाकर अपने क्षुद्र जीवन की रक्षा करने का साहस मुझसे नहीं होगा । मैं ब्राह्मण को यज्ञ पशु बनाऊ यह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है । बल्कि मृत्यु उत्तम है परन्तु विज को किसी प्रकार पशु नहीं बनाऊँगा । इसलिये पुत्र । तुम सुखपूर्वक इस ब्राह्मण पुत्र के साथ जाओ मुझे रोगी ही रहने दो ॥६२-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी समय वहा आकाशवाणी हुई ॥६६॥

आकाशवागुवाच

गौतमीं गच्छ राजेन्द्र ऋत्विग्भि सपुरोहित । पशुना विप्रपुत्रेण रोहितेन सुतेन च ॥६७॥
त्वया काय ऋतुर्ध्रुव शुन शेषवध विना । ऋतु पूर्णो भवेत्तत्र तस्माद्याहि महामते ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन शीघ्र गङ्गामगानूषोत्तम । विश्वामित्रेण ऋषिणा वसिष्ठेन पुरोधसा ॥६९॥
वामदेवेन ऋषिणा तथाऽयंमुनिभि सह । प्राप्य गङ्गा गौतमीं ता नरमेधाय दीक्षित ॥७०॥
वेदिमण्डपकुण्डादि यूपपशवादि चाकरोत् । कृत्वा सर्व यथायाय तस्मिन्पञ्चे प्रवर्तिते ॥७१॥
शुन-शेष पशु यूपे निबध्नाय समन्वयकम् । वारिभि प्रोक्षित दृष्ट्वा विश्वामित्रोऽब्रवीद्विदम् ॥७२॥

विश्वामित्र उवाच

देवानूपीहरिश्चन्द्र रोहित च विशेषत । अनुजानत्विम सर्वे शुन-शेष द्विजोत्तमम् ॥७३॥
येभ्यस्त्वय हविर्वेधो देवेभ्योऽय पृथक्पृथक् । अनुजानतु ते सर्वे शुन शेष विशेषत ॥७४॥
यत्ताभिर्लौभिस्त्वग्भिर्मर्मासं समिन्त्रैर्मल । अग्नौ होष्य पशुश्चाय शुन शेषो द्विजोत्तम ॥७५॥
उपासिता स्युर्विप्रेन्द्रास्ते सर्वे त्वनुमय माम् । गौतमीं यातु विप्रेन्द्रा स्नात्वा देवाप्यवपृथक् ॥७६॥
मन्त्रं स्तोत्रं स्तुवतस्ते मुद यातु शिवे रता । एन रक्षतु मुनयो देवाश्च हविषो भुज ॥७७॥

आकाशवाणी ने कहा—राजेन्द्र । तुम अपने ऋत्विजों और पुरोहित के साथ गौतमी के तट पर जाओ । साथ में ऋषिपुत्र और राजपुत्र रोहित को भी ले लो । तुम यज्ञ करो । 'गुन' 'ग' के वध के बिना ही तुम्हारा यज्ञ पूरा हो जायगा । इसलिये महामति वहाँ जाओ ॥६७-६८॥

ब्रह्मा ने कहा—आकाशवाणी को सुनकर नृपोत्तम हरिश्चन्द्र शीघ्र ही ऋषि विश्वामित्र पुरोहित वसिष्ठ वामदेव एवं अयाय मुनियों के साथ गया तट पर गया । वही गौतमीगंगा के तट पर जाकर नरमेध यज्ञ की दीक्षा लेकर वेनी मन्त्र यूप और पशु आदि की व्यवस्था करने लगा । यथाविधि सब सामग्री एतन्न करयज्ञ काय प्रारम्भ हुआ । यूप में शुन 'ग' को पशु बनाकर मात्र पाठ पूजन किया गया । उसको अल से अभिषिक्त होते देखकर विश्वामित्र ने यह कहा ॥६९-७२॥

विश्वामित्र ने कहा—देव ऋषि हरिश्चन्द्र विशेषरूप से रोहित से मैं कह रहा हूँ कि सभी इस द्विजोत्तम गुन गेय को आज्ञा दे । जिन देवताओं को यह हवि (गुन गेय) पृथक् पृथक् दी जायगी वे सब देवता भी विशेष रूप से इस गुन गेय को अनुमति दें । इस यज्ञपशु द्विजवध गुन गेय के वसा (चर्बी) लोम त्वचा मांस से मात्रो ब्यवहारपूर्वक यज्ञानि में हवन किया जायगा । अर्थात् गुनगेय इन सभी ब्राह्मणों और देवों की पूजा कर । वे सभी विप्रेन्द्र (देवा) आज पूजित ह । मेरी ओर ध्यान देकर आज सब विप्रवध भी गौतमी के तीर पर जाय और स्नान कर यूप पृथक् मात्र स्तोत्रों से देवताओं की स्तुति करने हुए आनन्तपूर्वक निव उपासना में लीन हो जाय । इस प्रकार आज आप मुनि हविष्य को ग्रहण करने वाले देवता गण इस 'गुन' 'ग' की प्राण रक्षा कर ॥७३-७७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्यूचुश्च मुनयो मेने च नृपसत्तम । ततो गत्वा शुनशेषो गङ्गा प्रलोक्ष्यपावनीम् ॥७८॥
 स्नात्वा तुष्टाव तादेवान्ये तत्र हविषो भुज । ततस्तुष्टा सुरगणा शुनशेष च ते मुने ॥
 अवदन्त सुरा सर्वे विश्वामित्रस्य शृण्वन्त ॥७९॥

सुरा ऊचुः

क्रतु पूर्णो भवत्वेष शुनशेषवध विना

॥८०॥

ब्रह्मोवाच

विशेषेणाय वरणश्चावदन्नृपसत्तमम् । तत पूर्णोऽभवद्वाजो नृमेधो लोकविभूत ॥८१॥
 देवाना च प्रसादेन मुनीना च प्रसादत । तीर्थस्य तु प्रसादेन राज्ञ पूर्णोऽभवत्प्रतु ॥८२॥
 विश्वामित्र शुनशेष पूजयामास ससदि । अकरोदात्मन पुत्र पूजयित्वा सुरान्तिके ॥८३॥
 ज्येष्ठ चकार पुत्राणामात्मन स तु कौशिक । न मेनिरे ये च पुत्रा विश्वामित्रस्य धीमत ॥८४॥
 शुनशेषस्य च ज्येष्ठ्य ताञ्जशाप स कौशिक । ज्येष्ठ्य ये मेनिरे पुत्रा पूजयामास तान्सुतान् ॥८५॥
 वरेण मुनिशार्दूलस्तदेतत्कथित मया । एतत्सर्वं यत्र जात गौतम्या दक्षिणे तटे ॥८६॥
 तत्र तीर्थानि पुण्यानि विख्यातानि सुरादिभि । बहूनि तेषा नामानि मत्त शृणु महामते ॥८७॥
 हरिश्चन्द्र शुनशेष विश्वामित्र सरोहितम् । इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थान्यय चतुर्दश ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनियो ने ऐसा ही होगा यह कहा और नृपथष्ठ ने भी इसको स्वीकार किया । इसके अनन्तर शुनशेष त्रिमुवन पावनी गंगा के पास गया । गंगा में स्नानकर जितने वहाँ हविष ग्रहण करने वाले देवता थे उनको स्तुति द्वारा प्रसन्न किया । वे सभी देवता शुनशेष पर प्रसन्न हो गये । मुने । सब देवताओं ने विश्वामित्र के सामने ही कहा ॥७८ ७९॥

देवो ने कहा—यह यज्ञ शुनशेष के वध के बिना ही पूर्ण हो जाय ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—वरुण ने विशेषरूप से नृपवर्य को यज्ञपूर्ति का आशीर्वाद दिया । तदनन्तर राजा का वह लोक प्रसिद्ध नरमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ । देवताओं की कृपा से मुनियो के अनुग्रह से और तीर्थ के माहात्म्य से राजा का यज्ञ इस प्रकार निविघ्न समाप्त हुआ । उस सभा में ही विश्वामित्र ने शुनशेष का सत्कार किया और देवों के समीप ही उसकी पूजा कर अपना पुत्र स्वीकार कर लिया । उस विश्वामित्र ने उसको ज्येष्ठ पुत्र बनाया । परम बुद्धिमान् ऋषि विश्वामित्र के जिन पुत्रों ने उसका ज्येष्ठत्व स्वीकार नहीं किया उनको ऋषि ने शाप दे दिया और जिन पुत्रों ने उसकी ज्येष्ठता स्वीकार कर ली उनका उस मुनिशादूल ने वर देकर आदर सत्कार किया । इस प्रकार नारद । मैंने इस घटना को सुना दिया । यह सारा काय गौतमी के दक्षिण तीर पर जहाँ सम्पन्न हुआ वहाँ बहुत से पवित्र देवताओं के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हो गये । महामति नारद । इनके नाम मैं कह रहा हूँ मुने—हरिश्चन्द्र शुनशेष विश्वामित्र सरोहित आदि बाईस हजार तीर्थ हैं । उन तीर्थों में स्नान करना और दान देने से

तेषु स्नानं च दानं च नरमेधफलप्रदम् । आश्यात चास्य माहात्म्यं तीर्थस्य मुनिसत्तम ॥८९॥
य पठेत्पाठयेद्वाऽपि शृणुयाद्वाऽपि भक्तितः । अपुत्रं पुत्रमाप्नोति यच्चान्यन्मनसः प्रियम् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसर्वादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्र-
तीर्थवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चात्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ब्रूयात् पितृणां प्रीतिवर्धनम् । तत्र वृत्तं महापुण्यं शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
सोमो राजाऽमृतमयो गन्धर्वाणां पुराऽभवत् । न देवानां तदा देवा मामभ्येत्येदमब्रुवन् ॥२॥

देवा ऊचुः

गन्धर्वराहृतं सोमो देवानां प्राणदः पुरा । तमध्यायन्सुरगणा ऋषयस्त्वत्पितुः खिताः ॥
यथा स्यात्सोमो ह्यस्माकं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥३॥

नरमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है । मुनिथपठ ! इस तीर्थ की कथा और माहात्म्य को जो पढ़ता या पढ़ाता है
अथवा भक्तिपूर्वक सुनता है वह अपुत्र रहने पर पुत्र को प्राप्त करता है अथवा जो कुछ उसकी अमिलापा होती
वह पूरी होती है ॥८९ ९०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विश्वामित्र आदि चारों हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौथा
अध्याय समाप्त ॥१०४॥

अध्याय १०५

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सोमतीर्थ नामक पितरों को आनन्द देने वाला एक तीर्थ है । नारद ! वहाँ जो अत्यन्त
पवित्र शुभ घटना हुई उसको सुना रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो । बहुत पहले गन्धर्वों का अमृतमय सोम राजा हुआ देवों
का नहीं (अर्थात् गन्धर्वों को सोम प्राप्त हो गया देवों को नहीं) । यह देखकर देवता मेरे पास आये और बोले ॥१ २॥

देवों ने कहा—देवताओं के जीवनाधार सोम को गन्धर्वों ने पहले ही ले लिया । यह देखकर हम देवता लोग
अत्यन्त चिन्तित हैं, ऋषिगण अति दुःखी हैं । जिस प्रकार सोम हम लोगों को मिले वैसे कोई युक्ति कीजिये ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तत्र वाग्विबुधानाह गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । तेभ्यो वत्साऽथ मा देवा सोममाहर्तुमह्य ॥४॥
 याच प्रत्यूचुरमरास्त्वा दातु न क्षमा वयम् । विना तेनापि न स्यात् शक्य नैव त्वया विना ॥५॥
 पुनर्वागन्नवीद्देवान्पुनरेष्याम्यह त्विह । अत्र बुद्धिविधातव्या क्रियता ऋतुस्तम ॥६॥
 गौतम्या दक्षिणे तोर भयेद्देवागमो यदि । मल्ल तु विषय कृत्वा आयातु सुरसत्तमा ॥७॥
 गन्धर्वा स्त्रीप्रिया नित्य पणध्व त मया सह । तथेत्युक्त्वा सुरगणा सरस्वत्या ध्वज स्थिता ॥८॥
 देवदूतं पृथग्देवायक्षान्गन्धर्वपन्नगान् । आह्वान चक्रिरे तत्र पुण्ये देवगिरी तदा ॥९॥
 ततो देवगिरिर्नाम पवतस्याभवन्मुने । तत्राऽऽगमन्सुरगणा गन्धर्वा यक्षकिन्नरा ॥१०॥
 दवा सिद्धाश्च ऋषयस्तथाऽऽष्टौ देवयोनिः । ऋषिभिर्गौतमीतीरे क्रियमाणे महाध्वरे ॥११॥
 तत्र दवं परिवृत सहस्राक्षोऽभ्यभाषत ॥१२॥

इन्द्र उवाच

गन्धर्वानि य संपूज्य सरस्वत्या समीपत । सरस्वत्या पणध्व नो युष्माकममृतात्मना ॥१३॥

ब्रह्मा न कहा—उस समय वाणी (सरस्वती) ने कहा कि गन्धर्व अत्यन्त स्त्रीवामी होते हैं उनके हाथ मुझको सौंप कर तुम लोग सोम को प्राप्त कर सकते हो । वाणी की बात सुनकर देवताओं ने उत्तर दिया तुमको कभी भी हम देने को तैयार नहीं हैं । न तो हम सोम के बिना जीवित रह सकते हैं न तो तुम्हारे बिना । पुन वाणी ने देवताओं से कहा—मे पुन वहाँ से यहाँ चली आऊँगी । यहाँ चतुराई दिखलानी चाहिये । तुम लोग एक उत्तम यज्ञ का उपक्रम (तयारी) करो । गौतमी के दक्षिण तीर पर यदि यज्ञ को लक्षित कर देवागम (देवाचन) हो तो वहाँ सब सुर वर एकत्र हो जाय । गन्धर्व सबदा स्त्रीप्रमी होते हैं इसलिये मेरे साथ उनका सौदा पटा दिया जाय । इस बात को स्वीकार कर वे देव सरस्वती के कथनानुसार वाय करने लगे । इसके अनन्तर उन लोगों ने देवदूतों को भेजकर पृथक् पृथक् देवों गन्धर्वों यक्ष और पन्नगों को उस पवित्र देवगिरि पर बुलवाया ॥९॥ मुने ! उस समय से ही उस पवत का नाम देवगिरि पड़ा । वहाँ सुर गण गन्धर्व यक्ष किन्नर देव सिद्ध ऋषि तथा आठ देवयोनिज उपस्थित थे । जब उस गौतमी के तीर पर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय देव ताओं से घिरे इन्द्र ने कहा ॥४ १२॥

इन्द्र ने कहा—सरस्वती के समीप गन्धर्वों की पूजा कर हम लोग अमल प्राप्ति के लिये तुम लोग से सरस्वती का विनिमय करना चाहते हैं तुम लोग यह सौदा स्वीकार कर लो ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छक्रवचनात्ते वै गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । सोम दत्त्वा सुरेभ्यस्तु जगद्गृह्णता सरस्वतीम् ॥१४॥
सोमोऽभवच्चामराणा गन्धर्वाणा सरस्वती । अवसत्तत्र वागीशा तथाऽपि च सुरान्तिके ॥१५॥
आयाति च रहो नियमुपाशु प्रियतामिति । अत एव हि सोमस्य क्रयो भवति नारद ॥१६॥
उपाशुना वतितव्य सोमऋषण एव हि । ततोऽभवद्देवताना सोमश्चापि सरस्वती ॥१७॥
गन्धर्वाणां नैव सोमो नैवाऽऽसीच्च सरस्वती । तत्रागमन्सर्व एव सोमार्थं गौतमीतटम् ॥१८॥

गावो देवा पर्वता यक्षरक्षा, सिद्धा साध्या मुनयो गुह्यकाश्च ॥ ॥ ॥

गन्धर्वास्ते मरुत पद्मगाश्च, सर्वोऽप्यधो मातरो लोकपाला ॥ ॥

रुद्रादित्या वसवश्चाश्विनौ च, येऽन्ये देवा यज्ञभागस्य योग्या ॥१९॥

पञ्चविंशतिनद्यस्तु गङ्गाया सगता मुने । पूर्णाहुतिर्यत्र दत्ता पूर्णस्नानं तदुच्यते ॥२०॥
गौतम्या सगता यास्तु सर्वाश्चापि यथोदिता । तन्नामधेयतीर्थानि सक्षेपाच्छृणु नारद ॥२१॥
सोमतीर्थं च गान्धर्वं देवतीर्थमत परम् । पूर्णातीर्थं तत शाल श्रोषणसगमं तथा ॥२२॥
स्यागतासगम पुण्य कुसुमायाश्च सगमम् । पुष्टिसगममाख्यात कर्णिकासगमं शुभम् ॥२३॥
वृणवीसगमश्चैव कृशरासगमस्तथा । वासवीसगमश्चैव 'शिवशर्पा तथा शिल्पी' ॥२४॥
कुसुम्बिका 'उपारथ्या शान्तिजा देवजा तदा । अजो बृद्ध सुरो भद्रो गौतम्या सह सगता ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की घोषणा के अनुसार स्त्रीप्रेमी गन्धर्वों ने सोम को देकर बदले में सरस्वती को ले लिया । अब सोम देवताओं का अधिकार में आ गया और सरस्वती गन्धर्वों की हो गई फिर भी वागीश्वरी देवी के ही समीप रहती थी ॥१४ १५॥ प्रतिदिन एकान्त भाव से (छिपे रूप में) आती थी और देवों को उपाशु (मौन) रहने के लिए कहती थी । नारद ! इसी कारण यज्ञ में सोम को सरीदा जाता है ॥१६॥ और सोमऋष के समय उपाशु व्यवहार किया जाना चाहिये अर्थात् मौन रहना चाहिये । इस प्रकार चतुराई से सोम और सरस्वती दोनों देवताओं के ही अधिकार में रह गये ॥१७॥ गन्धर्वों के साथ न तो सोम और न तो सरस्वती ही थी । सोम के इस प्रकार प्राप्त हो जाने पर उस गौतमीतट पर यज्ञ में सब गोमैं देव पवन यज्ञ रक्ष सिद्ध साध्य भुनि गुह्यक गन्धर्व मरुत् पद्मग सब ओषधियाँ मातृगण लोकपाल रुद्र आदित्य वसु अश्विन अथवा जो और यज्ञभाग के अधिकारी देवता थे आये ॥१८ १९॥ मुने ! पचीस नदियाँ गंगा में आकर मिल गईं । जहाँ पूर्णाहुति दी गई वह पूर्णस्नान नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२०॥ गौतमी में जितनी नदियाँ मिली जिनका कि ऊपर वृणव हो चुका है नारद ! उन नामों में प्रसिद्ध तीर्थों का नाम थोड़े में सुनो ॥२१॥ सोमतीर्थ गान्धर्वतीर्थ देवतीर्थ पूर्णातीर्थ शाल श्रोषणासगम पवित्र स्वागतासगम कुसुमासगम प्रसिद्ध पुष्टिसगम शुभकर्णिकासगम तथा वृणवीसगम कृशरासगम, वासवीसगम शिवशर्पासगम शिल्पी कुसुम्बिका उपारथ्या शान्तिजा देवजा बृद्धअज और भद्रसुर इतनी नदियाँ और नद गौतमी के साथ सम्मिलित हुये ॥२२-२५॥ इसके अतिरिक्त बहुत सी नदियाँ और नद सम्मिलित

१. पूर्णाती० । २. शिल्पा आर्या । ३. शिल्पी । ४. यथा रन्तिता देवनी नद । आजो बुज्य सरो ।

एते चान्ये च बहवो नदीनदसहायगा । पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यगमन्देवपर्वते ॥२६॥
 सोमार्थं धं तथा चान्येऽप्यागमन्मलमण्डपम् । तानि तीर्थानि गङ्गाया सगतानि यथाक्रमम् ॥२७॥
 नदोरूपेण कान्येव नदरूपेण कानिचित् । सरोरूपेण कान्यत्र स्तरूपेण कानिचित् ॥२८॥
 तान्येव सर्वतीर्थानि विख्यातानि पृथक्पृथक् । तेषु स्नानं जपो होमः पितृतर्पणमेव च ॥२९॥
 सर्वकामप्रदं पुता भूषितं भुक्तिभाजनम् । एतेषां पठनं चापि स्मरणं वा करोति यः ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णुपुरं जनः ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये पूर्णाविपश्चर्विशतिनदी-
 देवनदीनदसगमवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥
 गौतमीमाहात्म्ये षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३६॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

देवदानवानां मेरुपर्वतं प्राप्य मन्त्रवरणम्

ब्रह्मोवाच

प्रवरासगमो नाम श्रेष्ठा चंब महानदी । यत्र सिद्धेश्वरो देव सर्वलोकोपकारकृत् ॥१॥

हुये । उस देवगिरि पर पृथिवी के जितने तीर्थ आये थे व सभी तथा अन्य भी शोभ के लिये उस यज्ञ-मंडप में आये ॥२६॥ उन सब तीर्थों में से कुछ नदी रूप में कुछ नद रूप में कुछ सरोवर के रूप में और कुछ स्तव (स्तुति) के रूप में ही गौतमी गंगा में सम्मिलित हुये ॥२७ २८॥ वे सभी तीर्थ पृथक् पृथक् प्रसिद्ध हैं । उन तीर्थों में स्नान जप होम और पितृतपण आदि कर्म मनुष्यों के लिए सब मनोरथ तथा भुक्ति और मुक्ति के देने वाले हैं । इन तीर्थों की महिमा का जो कोई पठन या स्मरण करता है वह भी सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णा आदि पचीस नदी देवनदी नद सगम वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

अध्याय १०६

देवता और दानवों का सुमेरुपर्वत पर जाकर मंत्रणा करना

ब्रह्मा ने कहा—प्रवरा सगम नामक तीर्थ और प्रवरा नामक श्रेष्ठ महानदी है । जहाँ सब लोक के उपकार

१५ ० मुक्तश्चान्ते विष्णुपदं व्रजत् । पुण्याप्रवरयोर्मध्यं नद्यो विशतिरीरित । वृद्धाप्रवरयोर्मध्ये या मुनि-
 श्रयसयुता । तत्रस्था प्राणिनः सर्वे भुक्तिभाजो न सशयः । अहं च वा य आसीच्च सृष्ट्यर्थं यजनं कृतम् । प्रणीतान्-
 सगमायार्थं पुरतः कथयामि ते । ६० । २६ ० गम श्रेष्ठ श्रे० । ३६ संब ।

देवाना दानवाना च सगमोऽभूत्सुदारुण । तेषां परस्परं वाऽपि प्रीतिश्चाभूमहामुने ॥२॥
तेऽप्येव मन्त्रयामासुर्देवा यं दानवा मिथ । मेरुपर्वतमासाद्य परस्परहर्तृविणि ॥३॥

देवदैत्या ऊचुः

अमृतेनामरत्वं स्यादुत्पाद्यामृतमुत्तमम् । पिबाम सख्यं एवंतं भवामश्चामरा वयम् ॥४॥
एकीभूत्वा वयं लोकान्पालयाम सुखानि च । प्राप्स्याम सगरं हित्वा सगरो दुःखकारणम् ॥५॥
प्रीत्या चैवाजितानर्यान्भोक्ष्यामो गतमत्सरा । यत स्नेहेन वृत्तिर्यासाऽस्माकं सुखदा सदा ॥६॥
वैपरोत्य तु यद्वृत्तं न स्मर्तव्यं कदाचन । न च त्रैलोक्यराज्येऽपि वैवत्ये वा सुखं मनाकं ॥७॥
तदूर्ध्वमपि वा यत्तु निर्वैरत्वादवाप्यते ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एव परस्परं प्रीता सन्तो देवाश्च दानवा एकीभूताश्च सुप्रीता विमय्य वरुणालयम् ॥८॥
मन्थान् मन्दरं कृत्वा रज्जुं कृत्वा तु वासुकिम् । देवाश्च दानवा सर्वे ममन्युर्वरुणालयम् ॥९॥
उत्पन्नं च तत् पुण्यममृतं सुरवरलभम् । निष्पन्ने चामृते पुण्ये ते च प्रोचुः परस्परम् ॥१०॥
याम स्व स्वमधिष्ठानं कृतकार्या श्रमं गता । सर्वे समं च सर्वेभ्यो यथायोग्यं विभज्यताम् ॥११॥
यदा सर्वागमो यत्र यस्मिन्नलम्बे शुभावहे । विभज्यतामिदं पुण्यममृतं सुरसत्तमा ॥१२॥

करने वाले सिद्धेश्वर महादेव विराजमान हैं । एक समय देवों और दानवों में अति मयकर युद्ध हुआ । महामुने !
चोडे समय बाद उन में परस्पर प्रेम भी हो गया । उन देव-दानवों ने आपस में मिलजुल कर मेरु पर्वत
पर परस्पर हित की कामना से परामर्श किया ॥१३॥

देव दानवों ने कहा—अमृत से अमरत्व की प्राप्ति होती है । अतः अमृत उत्पन्न कर हम सभी पान
करें जिससे हम सब अमर हो जायें । तब हम एक होकर लोक-पालन कर और युद्ध का त्याग कर सुख भोग कर ।
वास्तव में युद्ध ही दुःख का कारण है । इस प्रकार प्रमत्तों को अपने श्रम से अजित सम्पत्ति का परस्पर मात्सर्य छोड़
कर भोग करेंगे । क्योंकि प्रमत्तों को हम लोगों का परस्परिक व्यवहार होगा वह सदा सुखकर होगा । आज
तक के जो विपरीत व्यवहार हमें उनका स्वप्न में भी स्मरण नहीं करना चाहिये । जो सुख बर-बलह को छोड़कर
जीवन यापन करने में मिलता है उसका स्वल्पाग भी निभुवन के राज्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति में नहीं ॥४७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव और दानव परस्पर की प्रीति वार्ता से प्रसन्न होकर एक हो
गये और प्रसन्नतापूर्वक समुद्र को मयकर अमृत उत्पन्न करने की युक्ति सोची । मन्दराचल को मथनी और
वासुकि को रस्सी बनाकर सब देवों और दानवों ने समुद्र को मथ डाला । मथन के बाद समुद्र से देवा का
प्रिय पवित्र अमृत निकला । अमृत उत्पन्न हो जाने पर उन लोगों ने परस्पर विचार किया—हम सब अपने-अपने
स्थान को इस समय चल अब तो हम सफलमनोरथ हो गये सारा श्रम दूर हो गया । पुनः जब सब लोग
सुप्त लम्ब में जहाँ-वहाँ एकत्र होंगे तब सब देवता सबको यथाभाग यह पवित्र अमृत बांट देंगे ।

इत्युक्त्वा ते ययु सर्वे दैत्यदानवराक्षसा । गतेषु दैत्यसघेषु देवा सर्वेऽन्वमग्नयन् ॥१३॥

देवा ऊचुः

गतास्ते रिपवोऽस्माक देवयोगादरिदमा । रिपूणाममृत नैव देय भवति सर्वथा ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिस्तथेत्याह पुनराह सुरानिदम

॥१५॥

बृहस्पतिरवाच

न जानन्ति यथा पापा पिबध्व च तथाऽमृतम् । अयमेवोचितो मन्त्रो यच्छत्रूणा पराभव ॥१६॥

द्वेष्या सर्वात्मना द्वेष्या इति नीतिविदो विदुः । न विश्वास्या न चाऽऽख्येया नैव मन्त्र्याश्च शत्रव ॥१७॥

तेभ्यो न देयममृत भवेयुरमरास्तत । अमरेषु च जातेषु तेषु दैत्येषु शत्रुषु ॥

॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति समन्व्य ते देवा वाचस्पतिमथान्बुवन्

॥१९॥

देवा ऊचुः

वद याम कुत्र मन्त्र स्यात्वव पिबाम धव सस्थिति । कुर्मस्तदेव प्रथम वद वाचस्पते तथा ॥२०॥

यह कहकर वे सब दैत्य दानव और राक्षस चले गये । उन दैत्य समूहों के चले जाने पर सब देवता परामर्श करने लगे ॥८१३॥

देवों ने कहा—शत्रुनाशक । दैवयोगसे हम लोगों के वे शत्रु चले गये । शत्रुओं को किसी भी प्रकार से अमृत देना उचित नहीं ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति ने भी इसका समर्थन किया । पुन उ होने देवताओं से कहा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—तुम लोग यह अमृत पी जाओ । किसी प्रकार वे पापी राक्षस इस भेद को न जान पाय । यह उचित मन्त्र है कि शत्रुओं की हार हो । नीतिज्ञों ने कहा है कि शत्रुओं से सब प्रकार से द्वेष करना चाहिये । शत्रु किसी प्रकार भी विश्वसनीय नहीं शत्रुओं से कोई हृदय की धात नहीं कहनी चाहिये न तो उनसे रहस्यमय परामर्श ही करना चाहिये । उनको अमृत नहीं देना चाहिये अन्यथा अमृत पान से वे अमर हो जायेंगे । उन शत्रु दैत्यों के अमर हो जाने पर हम किसी प्रकार उनको जीत न सकेंगे । इसलिये उनको अमृत नहीं देना चाहिए ॥१६ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर भ्रमणा कर देवताओं ने पुन बृहस्पति से कहा ॥१९॥

देवताओं ने कहा—वाचस्पति । कहाँ जायें कहा परामर्श किया जाय और कहाँ स्थित होकर हम लोग अमृत पान करें । आप जैसा कहेंगे हम वही करेंगे आप कहिये ॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच

यान्तु ब्रह्माणममरा. पृच्छन्त्यत्र गतिं पराम्। स तु ज्ञाता च वक्ता च दाता चैव पितामहः॥२१॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतेर्वचः श्रुत्वा मदन्तिकमयाऽऽगमन्। नमस्य मां सुराः सर्वे यद्वृत्तं तन्न्यवेदयन्॥२२॥
तद्देवचचनात्पुन तैः सुरैरगमं हरिम्। विष्णवे कथितं सर्वं शंभवे विषहारिणे॥२३॥
अहं विष्णुश्च शंभुश्च देवगन्धर्वैकतरैः। मेरुकंदरमागत्य न जानन्ति यथाऽसुराः॥२४॥
रक्षकं च हरिं कृत्वा सोमपानाय तस्थिरे। आदित्यस्तत्र विज्ञाता सोमभोज्यानयेतरान्॥२५॥
सोमो दाताऽमृतं भागं चक्रधूप्रक्षकस्तथा। नैव जानन्ति तद्वैत्या दनुजा राक्षसास्तथा॥२६॥
विना राहुं महाप्राज्ञं संहिकेयं च सोमपम्। कामरूपधरो राहुर्मरतां मध्यमाधिपत्॥२७॥
मरुद्वपुं समास्थाय पानपानधरस्तथा। ज्ञात्वा दिवाकरो दैत्य तं सोमाय न्यवेदयत्॥२८॥
तदा तदमृत तस्मै दैत्यायादैत्यरूपिणे। दत्त्वा सोमं तदा सोमो विष्णवे तन्न्यवेदयत्॥२९॥
विष्णुः पीतामृतं दैत्यं चक्रेणोद्यम्य तच्छिरः। चिच्छेद तरसा वत्स तच्छिरस्त्वमरं त्वभूत्॥३०॥
शिरोमात्रविहीनं यद्वेहं तदपतद्भुवि। देहं तदमृतस्पृष्टं मतितं दक्षिणे तटे॥३१॥
गौतम्या मुनिशार्दूल कम्पयद्बसुधातलम्। देहं चाप्यमरं पुन तदद्भुतमिवाभवत्॥३२॥

बृहस्पति ने कहा—सब देवता ब्रह्मा के पास जायें और इस विषय में उन्हीं से उचित राय पूछें। वे पितामह ज्ञाता, वक्ता और दाता हैं। ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति की बातें सुनकर देवता मेरे पास आये और मुझे नमस्कार कर के जो कुछ हुआ था कह सुनाया ॥२२॥ पुनः उन देवताओं के कथनानुसार मैं उन लोगों के साथ विष्णु के समीप गया। सारा रहस्य विष्णु और विषपान करने वाले शकर से कह दिया गया ॥२३॥ मैं, विष्णु शम्भु, देव, गन्धर्व और विनायक मेरु की कन्दरा में आकर जिस प्रकार असुर न जान पायें, उस प्रकार ॥२४॥ हरि को रक्षक बनाकर सोम पान के लिये बैठ गये। वहाँ आदित्य ही सोम पान के योग्य और अयोग्य व्यक्तियों को जानते थे ॥२५॥ सोम देव अमृत को बाँटने वाले तथा चक्रधारी विष्णु रक्षक थे, इस रहस्य को महाबुद्धिमान् और सोम-पायी सिद्धि का सुत राहु को को छोड़कर अन्य दैत्य दानव तथा राक्षस नहीं जानते थे ॥२६॥ माया रूपधारी राहु मरुद्वपु के मध्य घुस गया और मरुद्वपु का रूप धारण कर पान-पात्र हाथ में लेकर बैठ गया ॥२७॥ दिवाकर ने उस रहस्यमय दैत्य को जानकर सोम को वक्ता दिया ॥२८॥ उस समय देवरूपधारी उस दैत्य को सोम अमृत दे चुके थे, तब इस घटना को उन्होंने विष्णु से कहा ॥२९॥ विष्णु ने अमृत पान कर चुके उस दैत्य के शिर को चक्र उठाकर बलपूर्वक काट डाला ॥३०॥ वत्स! काटने पर भी उसका शिर अमर हो गया। शिर से रहित जो कबच था वह पृथिवी पर गिर पड़ा। मुनि शार्दूल! वह अमृत से स्पृष्ट शरीर गौतमी के दक्षिण तट पर पृथ्वीतल को कँपाता हुआ सा गिर पड़ा। पुनः उस अमर देह की अद्भुत अवस्था हो गई ॥३१-३२॥ देह शिर की अपेक्षा रखती और शिर देह के

देहं च शिरसोऽपेक्षि शिरो देहमपेक्षते। उभयं चामरं जातं दैत्यश्चायं महाबलः॥३३॥
 शिरः काये समाविष्टं सर्वाङ्गभक्षयते सुरान्। तस्माद्देहमिवं पूर्वं नाशयामो महीगतम्॥
 ततस्ते शंकरं प्राहुर्देवाः सर्वे ससंभ्रमाः॥३४॥

देवा ऊचुः

महीगतं दैत्यदेहं नाशयस्व सुरोत्तम। त्वं देव कृष्णासिन्धुः शरणागतरक्षकः॥३५॥
 शिरसा नैव युज्येत दैत्यदेहं तथा क्रुध॥३६॥

ब्रह्मोवाच

प्रेषयामास चेशोऽपि श्रेष्ठां शक्तिं तदाऽऽत्मनः। मातृभिः सहितां देवीं मातरं लोकपालिनीम्॥३७॥
 ईशायुधधरा देवी ईशशक्तिसमन्विता। महीगतं यत्र देहं तत्रागाद्भक्षयकाङ्क्षिणी॥३८॥
 शिरोमात्रं सुरा सर्वे मेरे तत्रैव सान्त्वयन्। देहो देव्या पुनस्तत्र युयुधे बहवः समाः॥३९॥
 राहुस्तान् सुरानाह भित्त्वा देहं पुरा मम(?)। अत्राऽऽस्ते रसमुत्कृष्टं तदाकृष्य शरीरतः(?)॥४०॥
 पृथग्भूते रसे देहं प्रवरं रसतमुत्तमम्। भस्मीभूयात्क्षणैर्नैव तस्मात्कुर्वन्तु तत्पुरा॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वाहुवचः श्रुत्वा प्रीताः सर्वेऽसुरारयः। अन्यपिञ्चनप्रहाणां त्वं ग्रहो भूया मुदाऽन्वितः॥४२॥

बिना अलग नहीं रह सकता परन्तु वह महाबली (शिर और घड) उभय रूप में भी अमर हो गया ॥३३॥ देवताओं ने सोचा कि यदि शिर पुनः घड पर जुट जायगा तो यह राक्षस सब देवों को खा जायेगा, इसलिये पृथ्वी पर पड़े इस शरीर का पहले ही नाश कर दिया जाय। यह सोच कर उन देवताओं ने बड़ी शीघ्रता से शंकर के पास जाकर निवेदन किया ॥३४॥

देवों ने कहा—सुरोत्तम! पृथ्वी पर पड़े इस दैत्य-शरीर को मष्ट कीजिये। देव! आप कृष्णा के सागर है, शरणागत जनो के एकमात्र रक्षक हैं। यह देह शिर से युक्त न होने पाये, ऐसा कोई उपाय कीजिये ॥३५-३६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों की प्रार्थना सुनकर शंकर ने अपनी श्रेष्ठ शक्ति लोकपालक माता, देवी चण्डिका को मातृकाओं के साथ भेजा। शिव के आयुधों और उनकी शक्ति से युक्त होकर वह देवी उस दैत्य शरीर को खा जाने की इच्छा से वहाँ गई। ऊपर सब देवता केवल शिर माग को उसी मेरु पर्वत पर रोक रखे। ऊपर वह देह देवी के साथ बहुत वर्षों तक युद्ध करती रही। अन्त में मेरु स्थित राहु के शिर ने देवों से कहा कि पहले मेरे शरीर को फाड़ कर उसमें से उत्तम रस को शरीर से अलग खींच लो। उस उत्तम रस के अलग हो जाने पर वह अमर शरीर क्षण भर में ही भस्म हो जायगा। इसलिये पहले इस कार्य को करें ॥३७-४१॥

ब्रह्मा बोले—राहु की वही हुई बात को सुनकर सब देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन लोगों ने राहु का प्रसन्नता-पूर्वक अभिषेक करते हुए कहा कि तुम आनन्दपूर्वक ग्रहों के मध्य एक ग्रह हो जाओ ॥४२॥ देवताओं के कथनानुसार

तद्देववचनाच्छक्तिरीश्वरी या निगद्यते । देहं भित्वा दैत्यपतेः सुरशक्तिसमन्विता ॥४३॥
 आकृष्य शीघ्रमुत्कृष्टं प्रवरं चामृतं बहिः । स्थापयित्वा तु तद्देहं भक्षयामास चाम्बिका ॥४४॥
 कालरात्रिर्भद्रकाली प्रोच्यते या महाबला । स्थापितं रसमुत्कृष्टं रसानां प्रवरं रसम् (?) ॥४५॥
 व्यध्वत्स्थापितं तत्तु प्रवरा साऽभवन्नदी । आकृष्टममृतं चैव स्थापितं साऽप्यभक्षयत् ॥४६॥
 ततः श्रेष्ठा नदी जाता प्रवरा चामृता शुभा । राहुदेहसमुद्भूता खद्रशक्तिसमन्विता ॥४७॥
 नदीनां प्रवरा रम्या चामृता प्रेरिता तथा । तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च ॥४८॥
 तत्र शंभुः स्वयं तस्यै सर्वदा सुरपूजितः । तस्य तुष्टाः सुराः सर्वे देव्यं नद्यं पूयक् पूयक् ॥४९॥
 वरान्दुर्मुदा युक्ता यथा पूजामवाप्स्यति । शंभुः सुरपतिर्लोके तथा पूजामवाप्स्यति ॥५०॥
 निवासं कुरु देवि त्वं लोकानां हितकाम्यया । सदा तिष्ठ रसेशानि सर्वेषां सर्वसिद्धिदा ॥५१॥
 स्तवनात्कीर्तनाद्धानात्सर्वकामप्रदायिनी । त्वां नमस्यन्ति ये भक्त्या किञ्चिदापेक्ष्य सर्वदा ॥५२॥
 तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुर्देवताज्ञया । शिवशक्त्योर्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत्सनातनः ॥५३॥
 अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यदः । प्रवरायाः पुरा देवाः सुप्रोतास्ते वरान्दुः ॥५४॥
 गङ्गायाः संगमो यस्ते विख्यातः सुरबल्लभ । तत्राऽऽप्लुतानां सर्वेषां भुक्तिर्वा मुक्तिरेव च ॥५५॥
 यद्वाऽपि मनसः काम्यं देवानामपि दुर्लभम् । स्थाप्तेषां सर्वमेवेह एवं दत्त्वा सुरा ययुः ॥५६॥

ईश्वरी नाम से विख्यात शिवशक्ति ने देवों की शक्ति से उत्साहित होकर दैत्यराज का शरीर फाड़ कर शीघ्र ही उस उत्कृष्ट अमृत रस को खींचकर बाहर निकाल डाला । और कालरात्रि भद्रकाली एव महाबला कही जानेवाली वह अम्बिका उसके शरीर को खा गई और उस रसों में श्रेष्ठ रस को एक स्थान पर स्थापित कर दिया ॥४३-४५॥ उस रखे गये रस का जो भाग बाहर बह गया उससे प्रवरा नाम की उत्तम और शुभ नदी हो गई । उस घटस्थापित उत्तम अमृत को भी वह अम्बिका खा गई ॥४६॥ इस प्रकार राहु देह से निकली हुई, खद्रशक्ति से युक्त वह शुभ श्रेष्ठ प्रवरा नाम की अमृत सरिता उत्पन्न हो गई । वहाँ पाँच हजार पवित्र पुण्यप्रद तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं ॥४७-४८॥ वहाँ देवपूजित शंभु सर्वदा विद्यमान रहते हैं । देवताओं ने प्रसन्न होकर उस देवी (नदी) को पूषक्-पूषक् वरदान दिया कि जिस प्रकार मगवान् शम्भु लोक में पूजा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम भी लोक में पूजा प्राप्त करागो ॥४९-५०॥ देवि ! तुम लोकहित की कामना से सर्वदा इस पृथ्वी पर निवास करो, रसेशानि ! सबको सर्वदा सिद्धि प्रदान करने वाली तुम सर्वदा यहाँ बिराजमान रहो ॥५१॥ स्तुति कीर्तन और ध्यान करने से मनुष्यों को सब मनोरथ देने वाली बनो । जो भक्तिपूर्वक किसी मनोरथ की पूर्ति के लिए सर्वदा तुम्हें नमस्कार करेंगे उन भक्तों के सभी कार्य देवताओं की आज्ञा से अवश्य पूर्ण होंगे । यत वहाँ शिव और शक्ति का सर्वदा निवास रहता है इसलिये उस तीर्थ को मुनिगण 'निवासपुर' कहते हैं । इस भाँति देवताओं ने प्राचीन काल में प्रवरा को प्रसन्न होकर वर प्रदान किया ॥५२-५४॥ जो देवों का अत्यन्त प्रिय विख्यात गंगा-संगम है वहाँ स्नान करने वालों को भुक्ति और मुक्ति अथवा जो भी उनका मनोमिलयित है चाहे वह देव-दुर्लभ ही क्यों न हो, सब उनको प्राप्त हो, ऐसा वर देकर देवता चले गये ॥५५-५६॥ सब से वह

ततः प्रभृति तत्तीर्थं प्रवरासंगमं विदुः। प्रेरिता देवदेवेन शक्तिर्या प्रेरिता तु सा ॥५७॥
अमृता' संव विख्याता प्रवरंवे महानदी ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे शिवप्रेरितामृतासंगमादितीर्थवर्णनं नाम
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

वृद्धासंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वृद्धासंगममाख्यात यत्र वृद्धेश्वरः शिवः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पापप्रणाशनम् ॥१॥
गौतमो वृद्ध इत्युक्तो मुनिरासीन्महातपाः। यदा पुराऽभवद्बालो गौतमस्य सुतो द्विजः ॥२॥
अनास' स पुरोत्पन्नस्तस्माद्विकृतरूपकृ'। स वैराग्याज्जगामाय देशं तीर्थमितस्ततः ॥३॥
उपाध्यायेन नैवाऽऽसीत्लज्जितस्य समागमः। शिष्यैरन्यैः सहाध्यायो लज्जितस्य च नाभवत् ॥४॥

तीर्थं प्रवरासंगम के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार देवदेव शिव ने जिस शक्ति को प्रेरित प्रेरित किया था, वही प्रेरित होने पर विख्यात अमृत स्वरूपिणी महानदी प्रवराहो गद्दी ॥५०-५८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे शिव प्रेरित अमृतासंगमादि तीर्थ वर्णन नाम
एक सौ छठा अध्याय समाप्त ॥१०६॥

अध्याय १०७

वृद्धासंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्म वृद्धेश्वर शिव निवास करते हैं उस वृद्धासंगम नाम से प्रसिद्ध तीर्थ की पालविनाश
कथा का वर्णन कर रहा हूँ उसको सुनो ॥१॥ वृद्ध गौतम नामक एक महातपस्वी मुनि थे। बहुत पहले गौतम मुनि
को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि जन्म में ही नामिका हीन था। इसलिये विरूप होने के कारण विरक्त होकर वह
बाल गौतम इधर उधर देग और तीर्थ का भ्रमण करने लगा ॥२-३॥ अपनी विरूपता से लज्जित होने
के कारण वह उपाध्याय (विद्यागुरु) के समीप न जा सका, न तो अन्य शिष्यों के साथ उस सङ्गोष्णील गौतम का
सहाध्ययन ही हुआ ॥४॥ किसी प्रकार उसने पिता गौतम से उद्यत, उरनयन सम्भार कर दिया। इनने ही ब्रह्म-

उपनीत कथञ्चिच्च पित्रा वै गौतमेन स । एतावता गौतमोऽपि ध्यगमच्चरितु बहि ॥५॥
 एव बहुतिथे काले ब्रह्ममात्रा धृते द्विजे । नैव चाध्ययन तस्य सजात गौतमस्य हि ॥६॥
 नैव शास्त्रस्य चाभ्यासो गौतमस्याभवत्तदा । अग्निकार्यं ततश्चक्रे नित्यमेव यतव्रत ॥७॥
 गायत्र्यभ्यासमात्रेण ब्राह्मणो नामधारक । अग्न्युपासनमात्रं च गायत्र्यभ्यसन तथा ॥८॥
 एतावता ब्राह्मणत्वं गौतमस्याभवत्मुने । उपासतोऽग्निं विधिवद्गायत्रीं च महात्मन ॥९॥
 तस्याऽऽयुर्वबुधे पुत्र गौतमस्य चिरायुष । न दारसप्रह लेभे नैव दाताऽस्ति कन्यकाम् ॥१०॥
 तथा चरस्तोर्यदेशे वनेषु विविधेषु च । आश्रमेषु च पुण्येषु अटलास्ते स गौतम ॥११॥
 एव भ्रमञ्छीतगिरिमाश्रित्याऽऽस्ते स गौतम । तत्रापश्यद्गुहा रम्या वल्लीविटपमालिनीम् ॥१२॥
 तत्रोपविश्य विप्रेन्द्रो वस्तु समकरोन्मतिम् । चिन्तयस्तु प्रविष्टोऽसावपश्यत्स्त्रयमुत्तमाम् ॥१३॥
 शिथिलाङ्गीमथ कुशा वृद्धा च तपसि स्थिताम् । ब्रह्मचर्येण वर्तन्तं विरागा रहसि स्थिताम् ॥१४॥
 स ता दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठो नमस्काराय तस्थिवान् । नमस्यन्त मुनिश्रेष्ठ त गौतममवारयत् ॥१५॥

वृद्धोवाच

गुरुस्त्व भविता मह्य न मा वन्दितुमर्हसि । आर्युर्विद्या धन कीर्तिधर्म स्वर्गादिक च यत् ॥
 तस्य नश्यति वै सर्वं य नमस्यति वै गुरु ॥१६॥

चिह्न से (यशोपवीत सत्कार) से युक्त होकर वह बाहर भ्रमण करने चला गया ॥५॥ इस प्रकार यशोपवीत मात्र (ब्रह्म चिह्न) धारण किये हुये उस ब्राह्मण के जीवन का बहुत अंश बीत गया । उस द्विज गौतम न तो अध्ययन ही किया और न तो शास्त्रों का अभ्यास ही । परन्तु उस समय व्रत वाले गौतम ने अग्न्याधान अवश्य किया और गायत्री जप के अभ्यास से ब्रह्मत्व की रक्षा अवश्य करता रहा । मुने । इस प्रकार अग्निपूजा और गायत्रीजप मात्र ही उसके ब्राह्मणत्व का प्रतीक रहा ॥६ ८३॥ विधिपूर्वक अग्नि की उपासना एवं गायत्री का जप करते करते हे पुत्र ! उस दीपजीवी महात्मा ब्राह्मण की आयु अधिक हो चली । परन्तु उसका विवाह नहीं हुआ क्योंकि उस विष्णु को कोई अपनी कन्या देने वाला नहीं था ॥९ १०॥ इस प्रकार अविवाहित वह गौतम तीर्थों विविध वनों और पुण्य आश्रमों में गडकता हुआ समय बिताने लगा ॥११॥ एक समय वह घूमता हुआ हिमालय पहाड़ पर पहुँचा । यहाँ उसने लताओं और वृक्षमालाओं से सुशोभित एक रमणीय गुफा का देखा ॥१२॥ वहीं बैठकर उस विप्र ने उसी गुफा में निवास करने का विचार किया । इसी विचार से वह उस गुहा में प्रविष्ट हुआ इतने में उसने एक उत्तम स्त्री को जो कुशकाय और वृद्ध थी जिसके अंग शिथिल हो गये थे जो सबदा एगान्त में रहने वाली बीतराग और ब्रह्मचर्यपरायण थी देखा । वह मुनिश्रेष्ठ उसको देखकर नमस्कार करने के लिये उद्यत हुआ । यह देखकर उस वृद्धा ने नमस्कारो मुख उस मुनि गौतम को रोका ॥१३ १५॥

वृद्धा ने कहा—तुम मेरे भविष्यद् गुरु हो मुझ नमस्कार मत करो उस व्यक्ति की आयु विद्या, धन, कीर्ति, धर्म स्वर्ग आदि सब कुछ नष्ट हो जाते हैं जिसको गुरुजन नमस्कार करते हैं ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

कृताञ्जलिपुटस्तां वं गौतमः प्राह विस्मितः

॥१७॥

गौतम उवाच

तपस्विनी त्वं वृद्धा च गुणज्येष्ठा च भामिनी । अल्पविद्यस्त्यल्पवया अहं तव गुरुः कथम् ॥१८॥

वृद्धोवाच

आर्ष्टियेणप्रियपुत्र ऋतुध्वज इति श्रुतः । गुणवान्मतिमाञ्जूरः क्षत्रधर्मपरायणः ॥१९॥
स वदाचिद्वनं प्रायान्मुगयावृष्टचेतनः । विश्राममकरोदस्यां गुहायां स ऋतुध्वजः ॥२०॥
मुया स मतिमान्दक्षो बलेन महता वृतः । तं विश्रान्तं नृपवरमप्सरा ददशे ततः ॥२१॥
गन्धर्वराजस्य सुता सुश्यामा इति विश्रुता । तां दृष्ट्वा चकमे राजा राजानं चकमे च सा ॥२२॥
इति श्रीडा समभवत्तया राज्ञो महामते । निवृत्तकामो राजेन्द्रस्तामापृच्छ्याऽऽगमद्गृहम् ॥२३॥
उत्पन्नाहं ततस्तस्यां सुश्यामायां महामते । गच्छन्ती मां तदा माता इदमाह तपोधन ॥२४॥

सुश्यामोवाच

यस्त्वस्यां प्रविशेद्भूद्रे स ते भर्ता भविष्यति

॥२५॥

वृद्धोवाच

इत्युक्त्वा सा जगामाय माता मम महामते । तस्मादन प्रविष्टस्त्वं पुमान्नाग्न्यः वदाचन ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुनवर विस्मित गौतम ने हाथ जोड़कर उस वृद्ध ब्रह्मचारिणी से कहा ॥१७॥

गौतम ने कहा—तुम तपस्विनी, वृद्ध और गुणज्येष्ठ स्त्री हो, मैं, अल्पज्ञ तथा अल्प वय वाला व्यक्ति जिस प्रकार तुम्हारा गुरु हो सकता हूँ ॥१८॥

पूढ़ा ने कहा—ऋतुध्वज नाम का आर्ष्टियेण का प्रिय पुत्र था । वह बड़ा ही गूरु, गुणशाली, बुद्धिमान् और क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाला था । वह ऋतुध्वज किसी समय मुगया (गिकार) खेलने की प्रवृत्ति इच्छा से प्रेरित होकर वन में आया और इसी गुहा में विश्राम करने लगा । वह मुया, बुद्धिमान्, कुशल, महाबलवान् ऋतुध्वज वहाँ विश्राम कर रहा था कि उस ज्येष्ठ नृप को गन्धर्वराज की कन्या सुश्यामा नामक अगम्य ने देग दिया । राजा उसको देगकर बाधातवन हो गया और वह राजा का दयकर । महामति । इसीद्वारे राजा का उस अप्सरा के साथ प्रेम-सम्बन्ध हुआ गया । राजेन्द्र की काम-विश्यामा जब शान्त हो गई तब उससे परिचय-भाषण कर अपने घर की ओर गये । महामति । तदनन्तर मैं उस सुश्यामा के गर्भ से उत्पन्न हुई । तपोधन ! मुझको यहाँ छोड़कर जानी हुई माता ने मृत्यु दे दी कहा—॥१९-२४॥

सुश्यामा ने कहा—अरे ! जो इस गुहा में प्रवेश करेगा वही तुम्हारा भर्ता होगा ॥२५॥

वृद्धा ने कहा—महामति ! इससे बाद यह कहकर वह मेरी माता पत्नी गई । इस कारण मात्र इस गुहा में आये हुए तुम सभी भी अग्न्य (अधोर्गति से अग्न्य) नहीं हो सकते । मेरे पिता एक हजार अग्न्यी रूप तक राज्य

सहस्राणि तयाऽशीति कृत्वा राज्यं पिता मम । अत्रैव च तपस्तप्त्वा ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥२७॥
स्वर्गं यातेऽपि पितरि सहस्राणि तया दश । वर्षाणि मुनिशार्दूलं राज्यं कृत्वा तया पर ॥२८॥
स्वर्गं यातो मम भ्राता अहमत्रैव संस्थिता । अहं ब्रह्मज्ञान्यवृत्ता न माता न पिता मम ॥२९॥
अहमात्मेश्वरो ब्रह्मन्निविष्टा' क्षत्रकथका । तस्माद्भजस्व मा ब्रह्मन्व्रतस्या पुण्यायिनीम् ॥३०॥

गौतम उवाच

सहस्रापुरह भद्रे मत्तस्त्व वयसाऽधिका । अहं बालस्त्व तु वृद्धा नैवाय घटते मिथ ॥३१॥

वृद्धोवाच

त्व भर्ता मे पुरा विष्टो नान्यो भर्ता मतो मम । धात्रा दत्तस्तत्तस्त्व मा न निराकर्तुमर्हसि ॥३२॥
अथवा नेच्छसि मा त्वमप्रदुष्टामनुव्रताम् । ततस्त्यक्ष्यामि जीव मे इदानीं तय पश्यत ॥३३॥
अपेक्षिताप्राप्तितो हि देहिना मरणं वरम् । अनुरक्तजनत्पाणे पातकान्तो न विद्यते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धायास्तद्वच्च श्रुत्वा गौतमो धावयमब्रवीत्

॥३५॥

गौतम उवाच

अहं तपोविरहितो विद्याहीनो ह्याकिंचन । नाहं वरो हि योग्यस्तं कुरूपो भोगवर्जित ॥३६॥

पालनं कर यद्वा तपस्या कर स्वयं को चने गये । मुनिशार्दूल ! पिता के स्वयं चले जाने पर एक हजार दस वर्ष तक राज्य कर दूसरा मेरा भाई भी स्वयं चला गया और मैं यही देखत हूँ । ब्रह्मन् ! मैं अब किसी से दत्त (व्याही गई) नहीं हूँ न तो मेरी माता और पिता ही हैं । इस समय मैं स्वयं अपनी स्वामिनी हूँ । ब्रह्मन् ! मैं क्षत्रिय-कन्या हूँ तपस्विनी हूँ इसलिये पति की इच्छा करने वाली मुझ सदाचारिणी को तुम अपना लो ॥३६॥ ३०॥

गौतम ने कहा—भद्र ! मैं सहस्रायु हूँ तुम मुझसे आयु में अधिक हो मैं बालक हूँ तुम वृद्ध हो अतः हम दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध उपयुक्त नहीं जब रहता है ॥३१॥

वृद्धा ने कहा—पहले से ही तुम मेरे भर्ता निविष्ट (कहे गये) हो । ब्रह्मा ने तुम्हारे हाथों मुझ से पालन दिया । इसलिये मेरा अन्याय करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है । अथवा यदि तुम (निष्पाप) सदाचारिणी व्रतपरायण मुझको नहीं अपनाओगे तो अभी तुम्हारे देखते देखते मैं अपने प्राणा को छोड़ दूँगी । क्योंकि अपेक्षित (मनचाही) वस्तु को न पाने की अपेक्षा मनुष्या का मर जाना ही अच्छा है । और यह भी समझ लो कि अनुरक्त (प्रमी) जन के परित्याग में पापों का अन्त भी नहीं है । अर्थात् प्रमी के परित्याग से अनन्त पाप होते हैं ॥३२॥ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धा की उन बातों को सुनकर गौतम ने कहा ॥३५॥

गौतम ने कहा—मैं तपस्या विमूख अशिक्षित और धनहीन हूँ इसलिये कुरूप और भोगरहित मैं तुम्हारे घर बनने के योग्य नहीं हूँ । नाशिकाहीन मूख और तपोहीन मैं क्या करूँ मैं सबदा तुम्हारे लिए अयोग्य हूँ । इसलिये

अनातोऽहं किं करोमि अतपोविद्य एव च । तस्मात्सुरूपं सुविद्यामापाद्य प्रथमं शुभे ॥
पश्चात्ते वचन कार्यं ततो वृद्धाऽब्रवीद्द्विजम् ॥३७॥

वृद्धोवाच

मया सरस्वती देवी तोषिता तपसा द्विज । तथैवाऽऽपो रूपवत्यो रूपदाताऽग्निरेव च ॥३८॥
तस्माद्वागीश्वरी देवी सा ते विद्या प्रदास्यति । अग्निश्च रूपवान्देवस्तव रूप प्रदास्यति ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गौतम त वृद्धोवाच विभावसुम् । प्रार्थयित्वा सुविद्यं तं सुरूपं चाकरोन्मुनिम् ॥४०॥

ततः सुविद्यः सुभग सुकान्तो, वृद्धां स पत्नीमकरोत्प्रीतियुक्तः ।

तया स रेमे बटूला मनोज्ञया, समाः सुखं प्रीतमना गुहायाम् ॥४१॥

कदाचित्तत्र वसतोर्दम्पत्योर्मुदतो गिरौ । गुहाया मुनिशार्दूल आजग्मुर्मुनयोऽमला ॥४२॥

वसिष्ठवामदेवाद्या ये चान्ये च महर्षयः । भ्रमन्तः पुण्यतीर्थानि प्राप्नुवंस्तस्य तां गुहाम् ॥४३॥

आगतास्तानुपोञ्जत्वा गौतमः सह भार्यया । सत्कारमकरोत्तेषां जहसुस्तं च केचन ॥४४॥

ये बाला यौवनोन्मत्ता वयसा ये च मध्यमाः । वृद्धां च गौतम प्रेक्ष्य जहसुस्तत्र केचन ॥४५॥

ऋषय ऊचुः

पुत्रोऽयं तव पोत्रो वा वृद्धे को गौतमोऽभवत् । सत्यं वदस्व कल्पाणि इत्येव जहसुर्द्विजाः ॥४६॥

शुभे । पहले तुम मुझको रूपवान् और विद्यावान् बनाओ, पश्चात् मैं योग्य होकर तुम्हारी बातों का पालन करूँगा । यह सुनकर वृद्धा ने ब्राह्मण से कहा ॥३६-३७॥

वृद्धा ने कहा—द्विज । मैंने अपनी तपस्या से सरस्वती देवी को प्रसन्न कर लिया है, इसी प्रकार रूपवान् जलदेव (वरुण) और रूपशता अग्नि को भी । इसलिये वह वागीश्वरी देवी तुम्हें विद्या और रूपवान् अग्नि तुम्हें रूप प्रदान करेंगे ॥३८-३९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस गौतम ने कहकर वृद्धा ने सूर्यदेव से प्रार्थना की और उनको प्रार्थना से प्रसन्न कर उस कुरूप मुनि का रूपवान् और विद्यावान् बना दिया ॥४०॥ इस प्रकार रूपवान् बनने के बाद उस कुरूप विद्वान् और माय्यजाली ब्राह्मण ने उस वृद्धा को अपनी पत्नी बना लिया और उस गुहा में उस मुन्दरी के साथ बहुत वर्षों तक आनन्दपूर्वक विहार किया ॥४१॥ मुनिशार्दूल । उस गिरि पर सानन्द विहार करने वाले दम्पति के पास किसी समय पवित्र मुनि लाग आये । वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि जो अन्य महर्षियों के साथ पवित्र तीर्थों का भ्रमण कर रहे थे गौतम की उमर गुहा में पहुँचे ॥४२-४३॥ उन महर्षियों को अपना अतिथि जान कर भार्या सहित गौतम ने उनका आतिथ्य सत्कार किया । उनमें जो बाल यौवन की उमर से मरे और आयु में मध्य श्रेणी के थे वे उस वृद्धा गौतम को देखकर हँस पड़े ॥४४-४५॥

ऋषियों ने कहा—वृद्धे । यह गौतम तुम्हारा पुत्र है या पोत्र ? कल्पानी । सत्य बतलाओ, यह तुम्हारा कौन है, यह कहकर वे द्विज होमन लगे । अहा । वृद्ध के लिये युवती विष तुल्य और वृद्धा के लिये युवक

विष वृद्धस्य युवती वृद्धाया अमृत युवा । इष्टानिष्टसमायोगो वृष्टोऽस्माभिरहो चिरात् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमूचिरे केचिद्वपत्यो श्रुत्वतोस्तदा । एवमुक्त्वा कृतातिथ्या ययु सर्वे महर्षय ॥४८॥
 ऋषीणां वचन श्रुत्वा उभावपि सुदु खितौ । लज्जितौ च महाप्राज्ञौ गौतमो भार्याया सह ॥
 पप्रच्छ मुनिशार्दूलमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥४९॥

गौतम उवाच

को देश किमु तीर्थं वा यत्र श्रेय समाप्यते । शीघ्रमेव महाप्राज्ञ भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

अगस्त्य उवाच

वदद्भिर्मुनिभिर्ब्रह्मन्मया श्रुतमिदं वच । सर्वे कामास्तत्र पूर्णा गौतम्यो नात्र सशय ॥५१॥
 तस्माद्गच्छ महाबुद्धे गौतमी पापनाशिनीम् । अहं त्वामनुपास्यामि यथेच्छसि तथा कुरु ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वाऽगस्त्यवाक्यं वृद्धया गौतमोऽभ्यगात् । तत्र तेषे तपस्तीव्रं पत्न्या स भगवानुयि ॥५३॥
 स्तुतिं चकार देवस्य शभोविष्णोस्तथैव च । गङ्गा च तोषयामास भार्यायै भगवानुयि ॥५४॥

अमृत तुल्य है इस प्रकार इष्ट (अच्छे) और अनिष्ट (बुरे) का संयोग हम लोग ने बहुतसमय के बाद देखा है ॥४६ ४७॥

ब्रह्मा बोले—कुछ मुनियों ने इस प्रकार की हास्यजनक बात उन दम्पतियों के सामने कहा। ऐसी हास्यजनक बातें बहुरे वे सब महर्षि आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के बाद चले गये। ऋषियों की बातें सुनकर बुद्धिमान वे दोनों ही अत्यन्त दुःखी और लज्जित हो गये। माया के साथ गौतम-ऋषि श्रद्धा अगस्त्य ऋषि से पूछा ॥४८ ४९॥

गौतम ने कहा—महाप्राज्ञ ! वह कौन सा देश अपवा तीर्थ है जहाँ जाकर कल्याण प्राप्त किया जा सकता है आप ग्रीष्म ही उस भुक्ति और मुक्ति देने वाले तीर्थ को बनलाइय ॥५०॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मन् ! थय-थय बताने वाला मुनियों के मुख से मैं सुना है कि गौतमी के पास जाने से मनुष्य की सारी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं इसमें संदेह नहीं। इसलिये महाबुद्धि ! तुम पापमाचिनी गौतमी के पास जाओ । मैं तुमको केवल पथ प्रदर्शन कर रहा हूँ तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥५१ ५२॥

ब्रह्मा बोले—अगस्त्य की उपयुक्त बातों का सुनकर बुद्ध पत्नी के साथ गौतम गौतमी के तट पर चला गया। वहाँ पर उस समय ऋषि ने पत्नी के सहित घोर तपस्या की। उस दक्षितसम्पन्न ऋषि ने इस प्रकार पत्नी के लिये धाम और भगवान् विष्णु की स्तुति की तथा गया की प्रशंसा किया ॥५३ ५४॥

गौतम उवाच

खिन्नात्मनामत्र भवे त्वमेव शरण शिव । महभूमावध्वगाना विटपीव प्रियायुत ॥५५॥
 उच्चावचाना भूताना सर्वथा पापनोदन । सस्याना घनवत्कृष्ण त्वमवग्रहशोषिणाम् ॥५६॥
 वेंकुण्डदुर्गनि श्रेणिस्त्व पीयूषतरङ्गिणी । अधोगताना तप्ताना शरण भव गौतमि ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टाऽब्रवद्वाक्य गौतम वृद्धया युतम् । शरणागतदीनार्तं शरण्या गौतमी मुदा ॥५८॥

गौतम्युवाच

अभिपिञ्चस्व भार्या त्व मज्जलर्मन्त्रसयुतं । कलशैरपचारैश्च तत पत्नी तव प्रिया ॥५९॥
 सुरूपा चारुसर्वाङ्गी सुभगा चारुलोचना । सर्वलक्षणसपूर्णा रम्यरूपमवाप्स्यति ॥६०॥
 रूपवत्या पुनस्त्व वै भार्यया चाभिपेक्षित । सर्वलक्षणसपूर्ण कान्त रूपमवाप्स्यसि ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

तथेति गाङ्गवचनाद्ययोक्त तौ च चक्रतु । सुरूपतामुभौ प्राप्ता गौतम्याश्च प्रसादत ॥६२॥
 अभिपेक्षोदक यच्च सा नदी समजायत । तस्या नाम्ना तु विख्याता वृद्धाया मुनिसत्तम ॥६३॥
 वृद्धा नदीति विख्याता गौतमोऽपि तथोच्यते । वृद्धगौतम इत्युक्त ऋषिभि समवासिभि ॥
 वृद्धा तु गौतमी प्राह गङ्गा प्रत्यक्षरूपिणीम् ॥६४॥

गौतम ने कहा—इस ससार में आर्तजनो के तप्त मरभूमि के मध्य यात्रा करने वाले पथिकों के रक्षक वृक्ष के समान हे उमा सहित चक्र जी ! आप ही रक्षक हैं । वृष्ण ! अनावृष्टि से मूखते हुए घान के खेतों को जिस प्रकार मेघ हरा बना देता है उसी प्रकार तुम अधम पुरष के पापों को दूर कर सुखी बना देते हो । भगवति गौतमी ! तुम अमृतमय तरंगों वाली और स्वर्ग रूपी दुर्ग की सीढ़ी हो, इस समय अधम और आर्त मेरी रक्षा करो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्रार्थना सुनकर भक्तवत्सल गौतमी ने प्रसन्न होकर वृद्ध भार्या के सहित शरण में आये दीन और आर्त गौतम से कहा ॥५८॥

गौतमी ने कहा—तुम मात्रोच्चारण कण्ठस्वाशन और अयास यात्रिक उपचारों और क्लेश में रेंगे हुए मेरे जल से अपनी भार्या का अभिषेक करो । ऐसा करने से तुम्हारी प्रिय पत्नी सर्वाङ्गसुन्दरी, सुरूपा शोभायुक्ती सुशोभना और सब लक्षणों से युक्त हो मनोहर रूप को प्राप्त कर लेगी । पुन अपनी रूपवती भार्या द्वारा अभिषिक्त होने पर तुम भी सुन्दर रूप प्राप्त कर लोगे ॥५९-६१॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा यह कहकर गंगा के कथनानुसार उन दोनों ने परस्पर अभिषेक किया, जिसमें गौतमी की वृषा से वे दोनों अत्यन्त रूपवान् हो गये । अभिषेक का जो जल था उससे एक नदी उत्पन्न हो गई । मुनि २८३ । वृद्ध उग्र वृद्धा व नाम से वृद्धानदी नाम से प्रसिद्ध हो गई । गौतम भी वृद्धा के साथ रहने के कारण महयोगी ऋषियों के कथनानुसार वृद्ध गौतम नाम से प्रसिद्ध हो गया । उस वृद्धा ने प्रत्यक्ष रूपवाली गौतमी गंगा से कहा ॥६२-६४॥

बृद्धोवाच

मन्नाम्नीयं नदी देवि वृद्धा चेत्यभिधीयताम् । त्वया च संगमस्तस्यास्तस्यास्तीर्यमनुत्तमम् ॥६५॥
 श्यसौभाग्यसंपत्तिपुत्रपौत्रप्रवर्धनम् । आयुरारोग्यवत्पाणं जयप्रीतिविवर्धनम् ॥
 स्नानदानादिहोमैश्च पितॄणां पावनं परम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

अस्तिवत्पाह च तां गङ्गा सुबृद्धां गौतमप्रियाम् । गौतमस्यापितं लिङ्गं वृद्धानाम्नेव कीर्तितम् ॥६७॥
 तत्रैव च भुवं प्राप्तो वृद्धया मुनिसत्तम । तत्र स्नानं च दानं च सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥६८॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं वृद्धासंगममुच्यते ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वृद्धासंगमाद्युभयतटसप्तदशतीर्थवर्णन नाम

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

इ त्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इलातीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । ब्रह्महत्यादिपापानां पावनं सर्वकामदम् ॥१॥

वृद्धा ने कहा—देवि । यह नदी मेरे नाम पर 'वृद्धा' इस नाम से पुकारी जाय और इसका लुम्हारे साथ संगम हो तथा यह संगम-तीर्थ परमोत्तम हो । यहाँ स्नान, दान और होम करने से यह रूप, सौभाग्य, संपत्ति, पुत्र, पौत्र बढ़ाने वाला, आयु, आरोग्य, वत्पाण, विजय और प्रेम बढ़ाने वाला, तथा पितरों को पवित्र कर देने वाला हो ॥६५-६६॥

ब्रह्मा ने कहा—मया ने उस सुख्यवृद्धा, गौतम माया से कहा कि ऐसा ही होगा । गौतम द्वारा स्थापित लिङ्ग भी वृद्धा नाम से ही प्रसिद्ध हुआ । यही उस वृद्धा के साथ गौतम को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ था । उस तीर्थ में स्नान और दान करने से सब अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं । तब मे वृद्ध तीर्थ वृद्धासंगम के नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥६७-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे वृद्धासंगमतीर्थमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सातवीं अध्याय समाप्त ॥१०७॥

अध्याय १०८

इलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला इलातीर्थ नामक एक विख्यात पवित्र तीर्थ है, जो ब्रह्महत्या आदि पापों को भी दूर कर मनुष्य को सब प्रकार की इच्छायें पूर्ण करता है । वैवस्वत वरा मे इल

वैवस्वतान्वये जात इलो नाम जनेश्वर । महत्या सेनया सार्धं जगाम मृगयावनम् ॥२॥
परिवधाम गहन बहुव्यालसमाकुलम् । नानाकारद्विजयुत विटपं परिशोभितम् ॥३॥
घनेचर नृपश्रेष्ठो मृगयागतमानस । तत्रैव मतिमाधत्त इलोऽमात्यानाथान्नवीत् ॥४॥

इल उवाच

गच्छन्तु नगर सर्वे मम पुत्रेण पालितम् । देश कोश बल राज्य पालयन्तु पुनश्च तम् ॥५॥
वसिष्ठोऽपि तथा यातु आदायान्गोन्पितेव न । पत्नीभि सहितो धीमानरण्येऽहं वसाम्यय ॥६॥
अरण्यभोगभुग्भिश्च वाजिवारणमानुषं । मृगयाशीलिभि कंश्चिद्यान्तु सर्वं इत पुरीम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ययुस्तेऽपि स्वयं प्रायाच्छर्नंगिरिम् । हिमवन्त रत्नमय वसस्तत्र इलो नृप ॥८॥
वदर्श कन्दर तत्र नानारत्नविचित्रितम् । तत्र यक्षेश्वर कश्चित्समन्युरिति विश्रुत ॥९॥
तस्य भार्या समानाम्नी भर्तृव्रतपरायणा । तस्मिन्वसत्यसौ यक्षो रमणीये नगोत्तमे ॥१०॥
मृगरूपेण व्यवहरद्भार्यया स महामति । स्वेच्छया स्ववने यक्ष श्रीडते नृत्यगीतकं ॥११॥
इत्थं स यक्षो जानाति मृगरूपधरोऽपि च । इलस्तु त न जानाति कन्दर यक्षपालितम् ॥१२॥

नामक एक नरेश हुआ । एक समय वह बहुत बड़ी सेना लेकर शिकार खेलने के लिये वन में गया । वह अनेकों सपों
स मरे विभिन्न आकार वाले पक्षियों से व्याप्त अनेक प्रकार के वृक्षां से सुशोभित उस गहन वन में घूमने लगा ।
उस वन में घूमते हुए मृगयाप्रमी नृपश्रेष्ठ के मन में उसी वन में रहने की भावना उत्पन्न हुई । अतः उन्होंने अपने
मंत्रिया से कहा ॥१४॥

इल ने कहा—तुम सब मेरे पुत्र द्वारा रक्षित नगर को चले जाओ । वहाँ जाकर देग कोश, सेना राज्य
और उस मरे पुत्र की रक्षा करो । पितृमुल्य गुण वसिष्ठ भी अग्नि और रात्रिया को साथ लेकर चले जाय । मैं यहीं
जंगली पक्षियों को खाकर रह सकने वाले अपन घोड़े स अनुचर आघेटबुसङ्ग हाथी घोड़ और मनुष्या के साथ
निवास रहूँगा । और सब यहाँ स अपनी पुरी (राजधानी) को लौट जायें ॥५-७॥

ब्रह्मा ने कहा—जैसी आज्ञा यह कहकर वे सभी चले गये । वह राजा ऋतु भी धीरे धीरे रत्नमय हिमालय
पहाड़ की ओर चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने ढरा ढाल दिया ॥८॥ उसने एक दिन नाना रत्नों से सुसज्जित
कन्दरा देखी । उस कन्दरा में कोई सुमन्यु नाम का यक्षराज रहता था ॥९॥ उसकी समा नाम की पत्निब्रता भार्या
थी । पत्नी सहित वह यक्ष उस परम रम्य हिमगिरि पर रहता था ॥१०॥ वह महामति यक्ष इच्छानुरूप मृगरूप
धारण कर अपनी भार्या के साथ नृत्य गान करता हुआ स्वच्छया विहार करता था ॥११॥ इस प्रकार मृग रूप धारण
करने पर भी वह यक्ष अपनी कन्दरा को अच्छी तरह जानता था परन्तु इल यक्ष द्वारा अधिभूत उस कन्दरा के विषय

यक्षस्य गेहं विपुलं नानारत्नविचित्रितम् । तत्रोपविष्टो नृपतिर्महत्या सेनया वृत ॥१३॥
वास चक्रे स तत्रैव गेहे यक्षस्य धीमतः । स यक्षोऽधर्मकोपेन भार्यया भृगरूपधृक् ॥१४॥
इलं जेतुं न शक्नोमि याचितो न वदाति च । हृतं गेहं ममानेन किं करोमीत्यचिन्तयत् ॥१५॥
युधि मत्तं कथं हन्या चेति स्थित्वा स यक्षराट् । आत्मीयान्प्रेषयामास यक्षाञ्छरान्धनुर्धरान् ॥१६॥

यक्ष उवाच

युद्धे जित्वा च राजानमिलमुद्धतदन्तिनम् । गृहाद्ययाऽन्यतो याति मम तत्कर्तुमर्ह्यम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

यक्षेश्वरस्य तद्वाक्याद्यक्षास्ते युद्धदुर्मदाः । इलं गत्वाऽन्वयन्त्ये निर्गच्छास्माद्गुहालयात् ॥१८॥
न चेद्युद्धात्परिभ्रष्टं पलाय्यं वयं यमिष्यसि । तद्यक्षवचनात्कोपाद्युद्धं चक्रे स राजराट् ॥१९॥
जित्वा यक्षान्बहुविधानुवासं दश शर्वरी । यक्षेश्वरो भूगो भूत्वा भार्ययाऽपि धने वसन् ॥२०॥
हृतगेहो वनं प्राप्तो हृतभृत्यः स यक्षिणीम् । प्राह चितापरो भूत्वा भूगोरुपधरां प्रियाम् ॥२१॥

यक्ष उवाच

राजाऽयं दुर्भेना कान्ते व्यसनसक्तमानसः । कथमायाति विपदं तत्रोपायो विचिन्तयताम् ॥२२॥
पापधिव्यसनान्तानि राज्यापखिलभूभुजाम् । प्रापयोमावनं सुभ्रूमृगीं भूत्वा मनोहराम् ॥२३॥

मे अनमित्र-ता या ॥१२॥ यक्ष का वह गृह बहुत बड़ा और नाना रत्नों से सुसज्जित था । अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ वह नृपति उस बुद्धिमान् यक्ष के घर में निवास करने लगा । भृगरूप धारी भार्या के सहित वह यक्ष इस अत्याय को देखकर अत्यन्त कुपित हुआ । वह सोचने लगा कि इस इल को मैं युद्ध में जीत नहीं सकता मैंने पर यह दे नहीं रहा है अब क्या करूँ । इस उमत्त को युद्ध में मैं हराऊँ—यह सोचकर उस यक्ष ने अपने धनुषधर गुर यक्ष सैनिका को लटन के लिय भेजा और कहा ॥१३ १६॥

यक्ष ने कहा—सैनिक । राजा इल को—जिसके पास बहुत से मतवाल हाथी हैं—युद्ध में जीत कर जिस किसी प्रकार वह मेरे घर से अलग चला जाय वही प्रयत्न करना ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—यथाघपति की वाता को सुनकर वे युद्ध दुर्मद यम उसने पास गय और कहा कि हे राजन् । तुम इस गुहा-गृह से निकल जाओ । नहीं तो युद्ध में हार जाने पर तुम भग्नकर वहाँ जा सकोय । यक्षा की अगिष्ट वातों को सुनकर वह सम्राट इल कुपित हो युद्ध करने लगा । युद्ध में उमन अनेका यक्षा को हराकर दगरानि तत्र आनन्दपूर्वक उस गुहा में रहा । इधर वह भृगरूपधारी यक्ष जो अपनी भार्या के साथ वन में निवास कर रहा था गृह बिहीन और जन बिहीन हो गया । उसने वन में भूगी रूप धारी अपनी यक्षिणी भार्या से अत्यन्त चिन्तित होकर कहा ॥१८ २१॥

यक्ष ने कहा—कान्ते । यह दुष्ट राजा किस प्रकार विपत्ति घस्त हो सकता है दमन लिय उपाय सोचना चाहिये । अधिकतर भृगून् भूमिपालों का शासन इसी प्रकार अन्याय और दमन से चरित्रित है । हे सुन्दर भौ बाली । तुम मनोहर भूगी बनकर इस राजा को उमावन में पहुँचा दो । जब यह उस वन में घुसगा निश्चय ही

प्रविशेत्तत्र राजाऽय स्त्री भविष्यत्यसशयम् । करणीय त्वया भद्रे न चैतद्युज्यते मम ॥
अहं तु पुरुषो येन त्वं पुन स्त्री च यक्षिणी ॥२४॥

यक्षिण्युवाच

कथं त्वया न गन्तव्यमुमावनमनुत्तमम् । गतेऽपि त्वयि को दोषस्तन्मे कथय तत्त्वतः ॥२५॥

यक्ष उवाच

हिमवत्पर्वतश्रेष्ठ उमया सहित शिव । देवगणैरनुवृतो विचचार यथासुखम् ॥
पार्वती शकर प्राह कदाचिद्ब्रह्मसि स्थितम् ॥२६॥

पार्वत्युवाच

स्त्रीणामेव स्वभावोऽस्ति रत गोपायित भवेत् । तस्मान्मे नियत देशभाजया रक्षित तव ॥२७॥
देहि मे त्रिदशेशान उमावनमिति श्रुतम् । विना त्वया गणेशेन कार्तिकेयेन नन्दिना ॥२८॥
यस्त्वत्र प्रविशेन्नाथ स्त्रीत्व तस्य भवेदिति ॥२९॥

यक्ष उवाच

इत्याज्ञोमावने वत्ता प्रसन्नेनेन्दुमौलिना । किं करोमि पुमान्कान्ते त्वया प्रणयनादित ॥
तस्मान्मया न गन्तव्यमुमाया वनमुत्तमम् ॥३०॥

स्त्री हो जायगा । भद्र ! यह बात तुम्हारे ही करन योग्य है मुझसे यह नहीं हो सकता । क्योंकि मैं पुरुष हूँ इसलिए
वहाँ नहा जा सकता । तुम तो यक्षिणी स्त्री हो ॥२२ २४॥

यक्षिणी ने कहा—तुम उस परम मनोहर उमावन में क्यों नहीं जा सकते ? तुम्हारे जाने से क्या
अनिष्ट होगा ? उसको यथाथ रूप से मुझको कहो ॥२५॥

यक्ष ने कहा—एक समय पर्वतशिरोमणि हिमालय पर उमा के साथ शकर जी मुख पूर्वक धमन कर
रहे थे उनका पीछ पीछ देवता भी थे । किसी समय पार्वती ने एकांत में बैठ कर संवहा ॥२६॥

पार्वती ने कहा—स्वयं का यह स्वभाव है कि अत्यन्त गुप्त रूप से उनका पुष्प के साथ सहवास
हो । इसलिये देवगण ! भरे लिये एक नियत रूप से गुप्त और अपनी आगा से गुरगित रथान दीजिये । वह
उमावन नाम से प्रसिद्ध रहे । नाथ ! तुमको गणेश कार्तिकेय और नन्दी को छाठकर जो कोई इतर व्यक्ति
यहाँ प्रवेश करे वह अवश्य स्त्रीत्व प्राप्त करे (स्त्री हो जाय) ॥२७ २९॥

यक्षगोला—शकर ने प्रसन्न होकर इस प्रकार की आगा दे दी । बान्ते ! मैं पुरुष हूँ इसलिये विवश
हूँ क्या करूँ । तुमने मुझसे प्यार से पूछा है इसलिये यह रहस्य बता दिया । इसलिये उस परम रमणीय उमावन
में मेरा जाना उचित नहीं है ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तद्भूतवचनं श्रुत्वा यक्षिणी कामरूपिणी । मृगी भूत्वा विशालाक्षी इत्यस्य पुरतोऽभवत् ॥३१॥
यक्षस्तु संस्थितस्तत्र ददर्शलो मृगीं तदा । मृगयासक्तचित्तो वै मृगीं दृष्ट्वा विशेषतः ॥३२॥
एक एव ह्यारूढो नियमौ ता मृगोमनु । साऽऽकर्षत शनंस्तं तु राजान मृगयाकुलम् ॥३३॥
शनंजंगम सा तत्र यदुमावनमुच्यते । अदृश्या तु मृगी तस्मै दर्शयन्ती ववचित्ववचित् ॥३४॥
तिष्ठन्ती चैव गच्छन्ती धावन्ती च विभोतवत् । हरिणी चपलाक्षी सा तमाकर्षदुमावनम् ॥३५॥
अनुप्राप्तो ह्यारूढस्तत्प्राप स उमावनम् । उमावनं प्रविष्ट त ज्ञात्वा सा यक्षिणी तदा ॥३६॥
मृगोरूपं परित्यज्य यक्षिणी कामरूपिणी । दिव्यरूपं समास्याय चाशोकतरसनिधौ ॥३७॥
तच्छालालम्बितकरा दिव्यगन्धानुलेपना । दिव्यरूपधरा तन्धौ कृतकार्या समा तदा ॥३८॥
हसन्ती नृपतिं प्रेक्ष्य श्रान्तं हृद्यत तदा । मृगीमालोकयन्त त चपलाक्षमिल तदा ॥३९॥
भर्तृवाक्यमशेषेण स्मरन्ती प्राह भूमिपम् ॥४०॥

समोवाच

ह्यारूढाऽबला तन्वि वव एवं तु गच्छसि । पुरुषस्य च वेषेण इले कमनुयात्यसि ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इलेति वचनं श्रुत्वा राजाऽसीं श्रोधमूर्च्छितः । यक्षिणीं भर्त्सयित्वाऽसीं तामपृच्छन्मृगीं पुनः ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—पति की बातें सुनकर इच्छानुकूल रूप परिवर्तन करनेवाली यक्षिणी दीर्घलोचन मृगी बनकर राजा इले के सामने आई। वही बैठे हुए राजा ने उस समय मृगी और यक्ष को देखा। उस मृगी को देखकर मृगया प्रेमी राजा विलेप रूप से आह्वित हो गया। वह अकेलाही घोड़े पर सवार होकर उस मृगी के पीछे निकल पड़ा। उस मृगी से आछेद के लिये उतावले राजा को अपने वश में कर लिया। वह धीरे धीरे उस स्थान पर गई जो उमा वन कहा जाता था। वह कहीं कहीं अपने को प्रकट करती कभी छिपाती कभी, बैठती कभी चलती और कभी ठरी हुई सी दौड़ती थी। इस प्रकार अनेको हाव भाव दिखाती हुई वह चपल नव्या वाली मृगी उस राजा को उमा वन तक खींच ल गई। राजा अस्वारूढ़ हो उसके पीछे पीछे उस उमा वन तक चला गया। उस समय जब उस यक्षिणी ने राजा को उमा वन में फँसा हुआ जान लिया तब वह काम रूपिणी यक्षिणी मृगीरूप छोड़ दिव्यरूप धारण कर अयोध वृक्ष के निवृत्त शाखा को हाथ में पकड़ कर खड़ी हो गई। दिव्य मुगधित लेपा को अंग में लगाव हुई दिव्य रूप वाली वह तन्धौ समा अपने को कृतकृत्य सी समझने लगी। तब वह चपल नव्या वाला यक्ष माँदा अस्वारोही मृगी को इधर उधर देखने लगा। इस प्रकार विस्मित राजा को देखकर वह हँसने लगी और अपने पति (यक्ष) की बातों को पूनरूप से स्मरण करती हुई राजा से बोली ॥३१-४०॥

समा बोली—ब्रह्माग्नि! घोड़े पर सवार होकर अबला तुम अकेले कहाँ जा रही हो? इले! पुरुष-वेष बनाकर किस प्रेमी के पीछे पागल हो रही हो? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर वह राजा क्रोध से पागल हो उठा। पुनः यक्षिणी को बुरा मला कहकर उठाने ७२

तथाऽपि यक्षिणी प्राह इले किमनुवीक्षसे। इलेति वचनं श्रुत्वा धृतचापो ह्यस्थितः ॥४३॥
 क्रुपितो दर्शयामास त्रैलोक्यविजयी धनु। पुनः सा प्राह नृपतिं महात्मानमिले स्वयम् ॥४४॥
 प्रेक्षस्व पश्चान्मा ब्रूहि असत्या सत्यवादिनीम्। तदा चाऽऽलोकयद्वाजा स्तनौ तुङ्गौ भुजान्तरे ॥४५॥
 किमिदं मम संजातमित्येव चकितोऽभवत् ॥४६॥

इलोवाच

किमिदं मम संजातं जानीते भवती स्फुटम्। वद सर्वं यथातथ्यं त्वं का वा वद सुव्रते ॥४७॥

यक्षिण्युवाच

हिमवत्कंदरुधेष्ठे समन्युर्वसते पति। यक्षाणामधिपः श्रीमास्तद्भार्याऽहं तु यक्षिणी ॥४८॥
 यत्कदरे भवान्राजा तूषविष्टः सुशीतले। यस्य यक्षा हता मोहात्त्वया हि संगरं विना ॥४९॥
 ततोऽहं निर्गमार्थं ते मृगी भूत्वा उमायनम्। प्रविष्टा त्वं प्रविष्टोऽसि पुरा प्राह महेश्वरः ॥५०॥
 यस्त्वत्र प्रविशेन्मन्दः पुमान्स्त्रीत्वमवाप्स्यति। तस्मात्स्त्रीत्वमवाप्तोऽसि न त्वं दुःखितुमर्हसि ॥
 प्रौढोऽपि कोऽत्र जानाति विचित्रभवितव्यताम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीवचनं श्रुत्वा ह्यारुढस्तदाऽपतत्। तमाश्वास्य पुनः संव यक्षिणी वाचयन्ब्रवीत् ॥५२॥

उत्त मृगी के विषय में पूछा। पूछने पर यक्षिणी ने कहा—‘इले’। क्या डूब रही हो? ‘इले’ ऐसा संबोधन सुनकर अश्व पर बैठे बैठे, राजा ने क्रुपित होकर अपना त्रैलोक्य-विजयी धनुष दितलाया। फिर यक्षिणी ने महात्मा इल से कहा ‘स्वयं अपने का देख लो, पश्चात् मुझे सत्यवादिनी या असत्यवादिनी कहो’। तब राजा ने अपनी मुजाआ के बीच उमड़े हुए दो स्तनों को देखा। आह! ‘यह क्या हो गया’ इस प्रकार वह आश्चर्यचकित हो गया ॥४२-४६॥

इला ने कहा—यह मुझे क्या हो गया, इस बात को तुम अच्छी तरह जानती हो। मुझसे सब ठीक ठीक रहो। सुव्रते! तुम कौन हो यह भी बताओ ॥४७॥

यक्षिणी ने कहा—हिमालय की रमणीय कन्दरा में मेरा समन्यु नामक पति रहता है जो यशो का राजा और अत्यन्त श्रीमान् है। मैं उसी की भार्या यक्षिणी हूँ। जिस अतिशीतल रम्य कन्दरा में आप राजा बन कर बैठे थे और जिसने यक्षा को आपने प्रमाद वश विना मुझ के ही मार डाला। उसके कारण मैं आपको यहाँ से निरालने के लिये मृगी बन कर इस उमायन में प्रविष्ट हुई। मेरे पीछे तुम भी घुस आये। कुछ समय पहले पत्थर ने पार्वती से कहा था कि जो दूर्म पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा वह स्त्रीरूप प्राप्त करेगा। इस प्रकार तुम स्त्री हो गये हो, तुम्हें इस विषय में दुःखित होने की आवश्यकता नहीं। इस समार में कोई अति चतुर ध्यनि भी विचित्र भवितव्यता को नहीं जानता है ॥४८-५१॥

ब्रह्मा बोले—यक्षिणी की बात सुनकर वह घोड़े पर से गिर पड़ा। उसे सामन्तना देकर पुनः यक्षिणी उससे कहने लगी ॥५२॥

यक्षिण्युवाच

स्त्रीत्य जात जातमेव न पुस्त्य कर्तुमर्हसि । गृहाण विद्यां स्त्रीयोग्या नृत्य गीतमलकृतिम् ॥
स्त्रीलालित्य स्त्रीविलास स्त्रीकृत्य सर्वमेव तत् ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इला सर्वमयावाप्य यक्षिणीं वाययमब्रवीत् ॥५४॥

इलोवाच

को वा भर्ता किं तु कृत्य पुन पुस्त्य कथं भवेत् । एतद्वदस्व कल्याणी दुःखार्ताया विशेषतः ॥
आर्तानामार्तिशमनाच्छ्रेयो नाम्नाधिकं भवचित् ॥५५॥

यक्षिण्युवाच

बुध सोमसुतो नाम वनादस्माच्च पूर्वतः । आश्रमस्तस्य सुभगे पितर नित्यमेधयति ॥५६॥
अनेनैव पया सोम पितर स बुधो ग्रहः । द्रष्टुं याति ततो नित्यं नमस्कर्तुं तथैव च ॥५७॥
यदा याति बुधः शान्तस्तदाऽऽत्मानं च दर्शय' । त दृष्ट्वा त्वं तु सुभगे सर्वकामानवाप्स्यसि ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तामाश्वस्य ततः सुभूर्यक्षिण्यन्तरधीयत । यक्षिणी सा तमाचष्ट यक्षोऽपि सुखमाप्तवान् ॥५९॥ १

यक्षिणी ने कहा—अब स्त्रीत्व हो गया सो तो रहेगा ही तुम किसी भी प्रकार इसको पुस्त्य में बदल नहीं सकते हो । अर्थात् अब स्त्री से पुरुष नहीं बन सकते । अब स्त्रीजनोचित नृत्य गीत अलंकार स्त्रियों के हावभाव सौन्दर्य आदि सम्पूर्ण स्त्री योग्य कलाओं को मुझसे सीख लो ॥५३॥

ब्रह्मा ने कहा—इरा सब कलाओं को यक्षिणी से सीखकर पुनः यक्षिणी से बोली ॥५४॥

इला बोली—मेरा पति कौन होगा मुझे क्या करना होगा पुनः मैं पुरुषत्व कैसे प्राप्त करूँगी । इन बातों को विशेष रूप से मुझ बुद्धि को बतलाओ । बुद्धियों के दुःख को दूर करने की अपेक्षा अधिक पुण्य इस सत्कार में वही भी नहीं है ॥५५॥

यक्षिणी ने कहा—सुभगे ! सोमपुत्र बुध का इस वन से पूर्व की ओर आश्रम है । वह प्रतिदिन पिता के पास जाने हैं । वह बुध (ग्रह) इसी मार्ग से पिता को देखने और प्रणाम करने के लिये प्रतिदिन जाते हैं । जब दान्त बुध इस मार्ग से जाने लगें तो तुम अपने को दिखाओ । सुभगे ! तुम उनको देखकर (परिचय प्राप्त कर) अवश्य सम्पूर्ण इच्छाओं को प्राप्त कर सकोगे ॥५६-५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उसको समझा-बुझाकर वह सुन्दर भी वाली यक्षिणी अतृप्त हो गई । उसने अपने पति (यक्ष) से सारी घटना सुना दी । यक्ष ने भी यह सुनकर सुख को प्राप्त किया । जो वहाँ इल की सेना पड़ी

इलसैन्य च तत्राऽऽसीत्तद्गत च यथासुखम् । उमावनस्थिता चेला गायन्ती नृत्यती पुन ॥६०॥
 स्त्रीभावमनुचेष्टन्ती स्मरन्ती कर्मणो गतिम् । कदाचित्क्रियमाणे तु इलया नृत्यकर्मणि ॥६१॥
 तामपश्यद्बुधो धीमान्पितर गन्तुमुद्यत । इला दृष्ट्वा गति त्यक्त्वा तामागत्याब्रवीद्बुध ॥६२॥

बुध उवाच

भार्या भव मम स्वस्था सर्वाभ्यस्त्व प्रिया भव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

बुधवाक्यमिला भक्त्या त्वभिनन्द्य तथाऽकरोत् । स्मृत्वा च यक्षिणीवाक्य ततस्तुष्टाऽऽभवन्मुने ॥६४॥
 बुधो रेमे तथा प्रीत्या नीत्वा स्वस्थानमुत्तमम् । सा चापि सर्वभावेन तोययामास त पतिम् ॥६५॥
 ततो बहुतिथे काले बुधस्तुष्टोऽवदत्प्रियाम्

बुध उवाच

किं ते देय मया भद्रे प्रिय यन्मनसि स्थितम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु पुत्र देहीत्यभाषत । इला बुध सोमसुत प्रीतिमन्त प्रिय तथा ॥६७॥

बुध उवाच

अमीघमेतन्मद्वीर्यं तथा प्रीतिसमुद्भवम् । पुत्रस्ते भविता तस्मात्क्षत्रियो लोकविधुत ॥६८॥

हुई थी वह अपनी राजधानी को सुखपूर्वक लौट गई । (इधर इला उस उमावन में रहने लगी । वह कभी गाती नाचती पुन अपने कम की गति का स्मरण करती हुई स्त्री-मुलम कानाओं की इच्छा करती थी । किसी समय इला नृत्य कर रही थी उसी समय बुद्धिमान् बुध पिता के पास जाने को तैयार थे । उसको देखकर उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और इला के पास आकर कहा ॥५९-६२॥)

बुध ने कहा—तुम मेरी प्रिय भार्या बन जाओ । तुम सब स्त्रियों से अधिक प्रिय बनो ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने बुध की बातों का आदर के साथ समझन किया और उसकी भार्या बन गई । मुने ! वह यक्षिणी की बातों का स्मरण कर अत्यन्त प्रसन्न हुई । बुध उसको अपने उत्तम स्थान पर लिवा ले गये और प्रीतिपूर्वक उसके साथ विहार करने लगे । उसने भी प्रत्येक प्रकार से अपने पति को प्रसन्न किया । इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर बुध ने प्रसन्न होकर अपनी प्रिया से कहा ॥६५॥

बुध ने कहा—भद्रे ! तुमको क्या दू ? तुम्हारे मन में जिस प्रिय वस्तु की इच्छा हो, वही मैं अवश्य प्रदान करूँगा ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध की बातें अमी समाप्त नहीं हुई थी कि 'पुत्र दीजिये, ऐसा उसने अपने प्रिय प्रेमी सोमपुत्र बुध से कहा ॥६७॥

बुध ने कहा—मेरा यह तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रेम के कारण निकला हुआ वीर्य अमीघ है । इसलिए तुमको

सोमवशकर श्रीमानादित्य इव तेजसा । बुद्ध्या बृहस्पतिसम क्षमया पृथिवीसम ॥६९॥
वीर्येणाऽऽजौ हरिरिव कोपेन हृतभुग्यया ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु बुधपुत्रे महात्मनि । जयशब्दश्च सर्वत्र त्वासीच्च सुरवेष्टमनि ॥७१॥
बुधपुत्रे समुत्पन्ने तत्राऽऽजगम् सुरेश्वरा । अहमप्यागम तत्र मुदा युक्तो महामते ॥७२॥
जातमात्र सुतो रावमकरोत्स पृथुस्वरम् । तेन सर्वेऽप्यवोचन्वं सगता श्रुपय सुरा ॥७३॥
यस्मात्पुष्करवोऽस्येति तस्मादेव पुष्करवा । स्यादित्येव नाम चक्रु सर्वे सतुष्टमानसा ॥७४॥
बुधोऽप्यध्यापयामास क्षात्रविद्या सुत शुभाम् । धनुर्वेद सप्रयोग बुध प्रादात्तदाऽऽत्मजे ॥७५॥
स शीघ्र वृद्धिमगमच्छुक्लपक्षे यथा शशी । स मातर दुःखयुता समीक्ष्येला महामति ॥
नमस्थाय विनीतात्मा इलामेलोऽब्रवीदिवम् ॥७६॥

ऐल उवाच

बुधो मातर्मम पिता तव भर्ता प्रियस्तथा । अहं च पुत्र कर्मण्य कस्मात्ते मानसो ज्वर ॥७७॥

इलोवाच

सत्य पुत्र बुधो भर्ता त्वं च पुत्रो गुणाकर । भर्तृपुत्रकृता चिन्ता न ममास्ति कदाचन ॥७८॥
तथाऽपि पूर्वज किञ्चिद्दुःख स्मृत्वा पुन पुन । चिन्तयेय महाबुद्धे ततो मातरमब्रवीत् ॥७९॥

लोक विख्यात क्षत्रिय पुत्र होगा । वह सोमवश की नीव डालने वाला बुद्धिमान् तेज में आदित्य के समान बुद्धि में बृहस्पति के समान क्षमा में पृथिवी के समान युद्ध में पराक्रम प्रदर्शन में विष्णु के समान और श्रेष्ठ में अग्नि के समान होगा ॥६८-७०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस महात्मा बुध पुत्र के उत्पन्न होने पर स्वर्ग में सर्वत्र जयध्वनि होने लगी । बुध-पुत्र के उत्पन्न होने पर वहाँ देवेश उपस्थित हो गये । महामति । मैं भी वहाँ प्रसन्न होकर आया । उस बालक ने उत्पन्न होते ही अग्नि ऊँचे स्वर से शब्द किया । इसलिये सब देवताओं और ऋषियों ने मिलकर कहा । यत इसका रव (ध्वनि) पुष् (गम्भीर) है इसलिये इसका नाम पुष्करवा रखा जाय । इस प्रकार विचार विमर्श कर प्रसन्नतापूर्वक सबने उसका नाम पुष्करवा रख दिया । बुध ने भी अपने पुत्र को शुभ क्षात्रविद्या पढ़ाई और प्रयोगविधि सहित धनुर्वेद पुत्र को प्रदान किया । वह शीघ्रता से जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ता है उसी प्रकार बढ़ने लगा । उस विनीत महामतिमान् ऐल ने माता इला को दुःखी देख कर नमस्कार करके पूछा ॥७१-७६॥

ऐल ने कहा—माता । बुध मेरे पिता और तुम्हारे प्रिय पति हैं । मैं तुम्हारा वधुपुत्र बनस्वी पुत्र हूँ । तो किस कारण तुमको इतना मानसिक व्यथित है ? ॥७७॥

इला ने कहा—पुत्र । यह सत्य है कि बुध मेरे पति आर अतिगुणवान् तुम मेरे पुत्र हो । मुझ जिन प्रकार की पुत्र और पति सम्बन्धी चिन्ता नहीं है । फिर भी महाबुद्धिमान् । अपने पूज्य काज क दुःख का स्मरण कर बार-बार मुझ चिन्ता हो जाती है । यह सुनकर ऐल ने पुन माता से कहा ॥७८-७९॥

ऐल उवाच

निवेदयस्व मे मातस्तदेव प्रथमं मम

॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इला चेन्मुवाचेदं ब्रह्मोवाचं कथं वदे। तथाऽपि पुन ते वन्मि पित्रोः पुत्रो यतो गतिः॥
मन्मतां दुःखपायोऽधी पुनः प्रवहणं परम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा विनोतः प्राह मातरम्। पादयो पतितश्चापि वद मातर्यथा तथा॥८२॥

ब्रह्मोवाच

सा पुरुरवसं प्राह इक्ष्वाकूणां तथा कुलम्। तत्रोत्पत्तिं स्वस्य नाम राज्यप्राप्तिं प्रियान्सुतान्॥८३॥
पुरोधसं वसिष्ठं च प्रियां भार्यां स्वकं पदम्। वननिर्याणमेवाय अमात्यानां पुरोधसः॥८४॥
प्रेषणं च नगधौ ता मृगयासंयुतमेव च। हिमवत्कंदरगतिं यक्षेश्वरगृहे गतिम्॥८५॥
उमावनप्रवेशं च स्त्रीत्वप्राप्तिमशेषतः। महेश्वराज्ञया तत्र चाप्रवेशं नरस्य तु॥८६॥
यक्षिणीवाक्यमप्यस्य वरदानं तथैव च। बुधप्राप्तिं तथा प्रीतिं पुत्रोत्पत्त्याद्यशेषतः॥८७॥
कथयामास तत्सर्वं श्रुत्वा मातरमब्रवीत्। पुरुरवाः किं करोमि किं कृत्वा सुकृतं भवेत्॥८८॥
एतावता ते तृप्तिश्चेदलमेतेन चाम्बिके। यदप्यन्यन्मनोवति तदप्याज्ञापयस्व मे॥८९॥

ऐल ने कहा—मेरी माता ! इसलिये मुझे सबसे पहले वही बात बताओ ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने पुत्र ऐल से कहा 'यह गुण भेद है, दशाः मैं बनें कहूँ। फिर भी हे पुत्र ! तुम मेरे कह रही हो। क्योंकि माता पिता का एकमात्र आचार पुत्र ही है। इसलिये मातर म इन्हीं गुणों ने जिनसे पुत्र ही उद्धार करने वाला महान् नौका है ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की वाना का सुनकर वह माता ने चरणा पर गिर पड़ा और उगने माता से विनम्र हो कहा कि माता ! तुम सब सत्य कहो ॥८२॥

ब्रह्मा बोले—इला ने अपने पुत्र पुरुरवा से, इक्ष्वाकु का वंशवर्मा की कुल, उम कुल में अपनी उत्पत्ति, जल नाम राज्य-प्राप्ति, प्रियपुत्रा की उत्पत्ति, पुरोहित वसिष्ठ, प्रिय भार्या आनी राज्य-प्रतिष्ठा, मन्त्रिणा और पुरोहितों के साथ वन को जाना, पुन उनको राजवर्मा का भेजना मृगया के प्रति आभिन, हिमालय की कन्दरा में पाम आना, यक्षेश्वर के घर में प्रवेश करना, उमावन म प्रवेश करना, स्त्रीत्व प्राप्ति आदि बानें पूज्य से मया महेश्वर की आज्ञा से उमावन म पुरुरवा का प्रवेश-निषेध, यक्षिणी की बानें, बुध-प्राप्ति का वरदान और उनका विनाश प्रेम, पुत्र का उत्पन्न होना आदि सब कुछ बानें सम्पूर्ण रूप में कह दी। उन सब घटनाओं का सुनकर पुरुरवा ने माता से कहा— मैं क्यों सा कार्य करूँ क्या करने से क्या होगा ? माता ! यदि इतने से (वर्तमान अवस्था से) मुझे मनोप है तब ता इस प्रकार की विन्ता की आवश्यकता नहीं। यदि मुझसे मन म कोई दूसरी इच्छा है तो मुझे आज्ञा प्रदान करो ॥८३-८९॥

इलोवाच

इच्छेय पुस्त्वभुक्तुष्टमिच्छेय राज्यमुत्तमम् । अभिपेक्ष च पुत्राणां तव चापि विशेषतः ॥९०॥
दानं दातुं च यष्टुं च मुक्तिमार्गस्य वीक्षणम् । सर्वं च कर्तुमिच्छामि तव पुत्र प्रसादतः ॥९१॥

पुत्र उवाच

उपायं त्वां तु पृच्छामि येन पुस्त्वमवाप्स्यसि । तपसो वाज्यतो वाऽपि वदस्व मम तत्त्वतः ॥९२॥

इलोवाच

बुधं त्वं पितरं पृच्छ गत्वा पुत्रं ययार्थवत् । स तु सर्वं तु जानाति उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

तन्मत्स्त्वबनार्दलो गत्वा पितरमञ्जसा । उवाच प्रणतो भूत्वा मातुः कृत्यं तस्याऽऽत्मनः ॥९४॥

बुध उवाच

इलं जाने महाप्राज्ञ इलां जातां पुनस्तथा । उभावनप्रवेशं च शमोराज्ञां तथैव च ॥९५॥
तस्माच्छुभप्रसादेन उभायाश्च प्रसादतः । विशापो भविता पुत्रं तावाराध्य न चान्यथा ॥९६॥

पुरूरवा उवाच

पश्येयं तं कथं देवं कथं वा मातरं शिवाम् । तीर्याद्वा तपसो वाऽपि तत्पितं प्रथमं वद ॥९७॥

इला ने कहा—मैं पुनः अपना उत्तुष्ट पुरुषभाव और उत्तम राज्य को चाहती हूँ । आने पुत्रों का अभिपक्ष विनायक रूप से तुम्हारा अभिपक्ष करना चाहती हूँ । पुत्र ! तुम्हारे प्रयास से मैं दान देना यत्न करना और मुक्ति मार्ग का अनुसरण आदि सब कुछ चाहती हूँ ॥९०-९१॥

पुत्र ने कहा—मैं तुमसे उन उपायों को पूछता हूँ जिन्हें पुनः तुम पुस्त्व प्राप्त कर सकती हो । चाहें वह तपस्या से हो या अन्य किसी प्रकार से, मुझसे तुम यथाथरूप में कहो ॥९२॥

इला ने कहा—पुत्र ! तुम पिता बुध के पास जाओ उनसे यथायथा प्रार्थना पूछो । वह सब कुछ जानते हैं तुम्हारा हितकर उपाय बतावेगे ॥९३॥

ब्रह्मा ने कहा—माता व कथनानुसार एलने पिता के पास जाकर विनम्र भाव से माता की सेवा अपना सम्पूर्ण बर्तन : मुना दो ॥९४॥

बुध ने कहा—महाप्राज्ञ मैं इल को तथा फिर उनका इलाक्ष्य में परिवर्तन हो जाना उभावन में प्रवेश करना और शक्र का आना अग्निष्टमात्रा का जनित होना इसलिये हे पुत्र ! तपः और उमा का उपाय सही मार्ग से उद्धार हो सकेगा । उनकी आराधना से ही यह कार्य होगा अन्यथा नहीं ॥९५-९६॥

पुरूरवा ने कहा—उस देव शक्र और माता उमा को कैसे देख सकता हूँ तीर्थयात्रा से या तपस्या से इसको पितानी ! आप पहले बतलाइये ॥९७॥

बुध उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व तत्राऽस्ते सर्वदा शिव । उमया सहित श्रीमाञ्छापहन्ता वरप्रद ॥९१॥

ब्रह्मोवाच

पुरूरवा पितुर्वक्ष्य श्रुत्वा तु मुदितोऽभवत् । गौतमीं तपसे धीमान्गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् ॥९२॥

पुस्त्वमिच्छस्तया मातुर्जंगाम तपसे त्वरन् । हिमवन्त गिरिं नत्वा मातर पितर गुरुम् ॥९३॥

गच्छन्तमन्वगात्पुत्रमिला सोमसुतस्तथा । ते सर्वे गौतमीं प्राप्ता हिमवत्पर्वतोत्तमात् ॥९४॥

तत्र स्नात्वा तप किञ्चित्कृत्वा चक्रु स्तुतिं पराम् । भवस्य देवदेवस्य स्तुतित्रयमिमं शृणु ॥९५॥

बुधस्तुष्टाव प्रयममिला च तदनन्तरम् । तत पुरूरवा पुत्रो गौरीं देवीं च शकरम् ॥९६॥

बुध उवाच

यौ मुकुटमेन स्वशरीरजेन, स्वभावहेमप्रतिमौ सहपौ ।
यावचितौ स्कन्दगणेश्वराभ्या, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०४॥

इलोवाच

ससारतापत्रयदावदग्धा, शरीरिणो यौ परिचिन्तयन्त ।

सद्य परा निर्वृतिमाप्नुवन्ति, तौ शकरी मे शरण भवेताम् ॥१०५॥

आर्ता ह्यह पोडितमानसा ते, क्लेशादिगोप्ता न परोऽस्ति कश्चित् ।

देव त्वदीयो चरणौ सुपुण्यौ, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०६॥

बुध ने कहा—पुत्र ! तুম गौतमी के तट पर आया। वही उवादा उमा सहित धीमान् शकर जी निवास करते हैं। वही शाय को नष्ट करने वाले और धरदाता हैं ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—पिता के वाक्या को सुनकर पुरूरवा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह धीमान् त्रिमुवनगर्जन गौतमी नदी के पास माता इला को पुन पुरुषत्व प्राप्त करा देने की इच्छा से तपस्या करने के लिये माता पिता गुरु और हिमालय को प्रणाम कर द्वाप्र ही गया। पुत्र का तपस्या के लिये जाते हुए देखकर साम सुत बुध और इला उस हिमालय पहाड़ से उतर कर पुत्र के पीछे प छ चले और गौतमी तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान और कुछ तपस्या कर देवाधिदेव शकर की अति उत्कृष्ट स्तुति की। जिस व्रम से स्तुति हुई इसको सुना। सबसे पहले बुध ने तदनन्तर इला ने तत्पश्चात् पुत्र पुरूरवा ने देवी गौरी और शकर की स्तुति की ॥९९ १०३॥

बुध ने कहा—जो प्रकृत्या सुवर्ण के समान गौर वण सुन्दर रूप वाले और स्कन्द एवं गणेश के अंग में लगे मुकुट से सज्जा पूजित रहते हैं ऐसे भक्तवत्सल शकर और पावनी हमारे रक्षक हैं ॥१०४॥

इला ने कहा—ससार के त्रिविध ताप रूपी दावानल से दग्ध व्यक्ति जिस शकर और पावनी का ध्यान कर अत्यन्त सुख तथा शान्ति प्राप्त करते हैं वे पावनी शकर हमारे सहायक हैं। मैं अत्यन्त आनन्द और व्यक्तिभक्ति हूँ। आपका छोड़ कर और कोई मेरा रक्षक नहीं। दय ! आपका वे दाम पुर्णतः चरणायन की रक्षा करने वाले चरण मेरे रक्षक हैं ॥१०५ १०६॥

पुरुषा उवाच

ययो सकाशादिदमभ्युदति, प्रयाति चान्ते लयमेव सर्वम् ।
जगच्छरण्यौ जगदात्मकौ तु, गौरीहरौ मे शरण भवेताम् ॥१०७॥
यौ देववृन्देषु महोत्सवे तु, पादौ गृहाणेश (ति) गिरीशपुत्रा-
प्रोक्त धृतौ प्रीतिवशाच्छिवेन, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०८॥

श्रीदेव्युवाच

किमभीष्ट प्रदास्यामि युष्मभ्य तद्ददन्तु मे । कृतकृत्या स्य भद्र वो देवानामपि दुष्करम् ॥१०९॥

पुरुषा उवाच

इलो राजा तवाज्ञात्वा यन प्राविशदम्बिके । तत्क्षमस्त्व सुरेशानि पुस्त्व दातु त्वमर्हसि ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रोवाच तान्सर्वाभवस्य तु मते स्थिता । तत स भगवानाह देवीवाक्यरत सदा ॥१११॥

शिव उवाच

अग्राभियेकमाश्रेण पुस्त्व प्राप्नोत्वय नृप ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

स्नाताया बुधभार्याया शरीराद्धारि सुख । नृत्य गीत च लावण्य यक्षिण्या यदुपाजितम् ॥११३॥

पुरुषा ने कहा—जिनके समीप से (जिम प्रकृति पुरुष से) यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ अर प्रलय वाला सृजनम पुन लीन हो जाता है उस जगत् व एक मात्र रक्षक व जगन्निभ (संसार रूप) पावनी-चक्र मरे रक्षक हा । परमोख क अक्सर पर दबवृन्द की उपस्थिति म गिरि-पुत्री ने मरे चरणा की पकड़िय ऐसा कहा । उस समय प्रमदुर्बक चक्र जी बिना किसी सकोच क पावता के जिन करणा का पकड़ लिया वे गरणागत की रक्षा करने वाच पावनी ने चरण मेरी रक्षा कर ॥१०७-१०८॥

श्री देवी (पावती) ने कहा—तुम लागा की अमाष्ट वस्तु क्या है वही मैं अवश्य प्रदान करूंगी चाहे वह देवदुर्लभ ही क्या न हो । तुम लाग अब सफल मनारथ हा (अपन को सफल समझो) तम लाग वा कल्याण हो । देवताभा से भी दुर्लभ वर प्राप्त करागे यह निश्चित समझो ॥१०९॥

पुरुषा ने कहा—अम्बिके ! राजा इल तम्हारी महिमा और आप्ण को न जानकर उमावत म घुस गया । सुरेवती ! उस अरराध को क्षमा कर दो तुम हृषा कर उनको पुन पुस्त्व (पुत्रभाव) प्रदान कर दो ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—गहर की आगा व अनुसार ही वाप करने वाली पावती ने गहर का अभिप्राय समझ कर एसाही हा यह कह दिया । यह सुनकर सर्वत्र दवी उमा म ही लीन रहने वाले गहर ने कहा ॥१११॥

शिव ने कहा—यही केवल अभिपय करने से ही यह राजा पुस्त्व (पुत्रभाव) प्राप्त कर लगा ॥११२॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध भार्या इला क स्नान करने से जो जल गिरा और नृत्य गीत सौन्दर्य आदि जो कुछ यगिणी से सीखे गये वे सभी जल-पारा क रूप म परिणत होकर गंगा के जल म मिल गये ॥११३॥ जिससे नृत्या

तत्सर्वं वारिधाराभिर्गङ्गाभसि समाविशत् । नृत्या गीता च सौभाग्या इमा नद्यो बभूवुरे ॥११४॥
 ताश्चापि संगता गङ्गा ते पुण्याः संगमास्त्रयः । तेषु स्नानं च दानं च सुरराज्यफलप्रलदम् ॥११५॥
 इला पुंस्त्वमवाप्याय गौरीशंभोः प्रसादतः । महाभ्युदयसिद्धयर्थं याजिमेधमयाकरोत् ॥११६॥
 पुरोधसं वसिष्ठं च भार्या पुत्रांस्तथैव च । अमात्यांश्च बल कोशमानीय स नृपोत्तमः ॥११७॥
 चतुरङ्गं बलं राज्यं दण्डकेऽस्थापयत्तदा । इलस्य नाम्ना विलयातं तत्र तत्पुरमुच्यते ॥११८॥
 पूर्वजातानयो पुत्रान्सूर्यवंशप्रमाणतः । राज्येऽभिषिच्य पश्चात्तमैलं स्नेहादसिञ्चयत् ॥११९॥
 सोमवंशकरः श्रीमानयं राजा भवेदिति । सर्वेभ्यो मतिमानेभ्यो ज्येष्ठः श्रेष्ठोऽभवन्मुने ॥१२०॥
 यत्र च ऋतवो वृत्ता इलस्य नृपतेः शुभा । यत्र पुंस्त्वमवाप्याय यत्र पुत्राः समागताः ॥१२१॥
 यक्षिणीदत्तनृत्यादिगीतसौभाग्यमङ्गलाः । नद्यो भूत्वा यत्र गङ्गा संगतास्तानि नारद ॥१२२॥
 तोर्यानि शुभदान्यासन्सहस्राण्ययं षोडशः । उभयोस्तीरयोस्तात तत्र शंभुरिलेश्वरः ॥
 तेषु स्नानं च दानं च सर्वं क्रतुफलप्रदम् ॥१२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसंवादे तीर्थमाहात्म्ये बुधेलापुरेश्वरवोवसिष्ठ-
 नृत्यगीतसौभाग्येश्वरादिषोडशसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

गीतमीमाहात्म्ये एकोनचत्वारिंशतमोऽध्यायः ॥३९॥

गंगा और सौभाग्या नाम की नदियाँ उत्पन्न हो गईं । वे सभी नदियाँ जहाँ गंगा से मिली, वे तीनों संगम-स्नान
 अत्यन्त पुण्य देनेवाले सिद्ध हुये । उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥११४-११५॥
 इसके अनन्तर गौरी और शम्भु की कृपा से पुरुषत्व प्राप्त हो जाने के बाद राजा इल ने परम कल्याण (सौख्य)
 की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥११६॥ उस उत्तम नृप ने पुरोहित वसिष्ठ, भार्या, पुत्र, राज-
 कोश, मन्त्रीगण और सेना को लेकर उस दण्डकारण्य में चतुरङ्ग सैन्य से युक्त विस्तृत राज्य की स्थापना की ।
 इल के नाम से ही उस राज्य में वह नगर, जो कि राजधानी था, इलपुर नाम से कहा जाने लगा ॥११७-११८॥
 इसके पश्चात् अपने पहले के उत्पन्न पुत्रों को पैतृक राज्य (यज्ञ यज्ञ से प्राप्त राज्य) पर अभिषिक्त कर दिया ।
 (राज्याधिकारी बना दिया) । तत्पश्चात् नवीन राज्य पर ऐल (पुरुखा) को वह सोच कर कि यह सोम यज्ञ का
 सस्यापन श्रीमान् राजा हो—स्नेह से अभिषिक्त कर दिया ॥११९॥ मुने । वह पुरुखा शेष अपने भाइयों से बुद्धि
 मान्, गुणवान् और श्रेष्ठ हुआ ॥१२०॥ राजा इल के जिस स्थल पर शुभ यज्ञ हुये, जहाँ उनकी पुरुषत्व की प्राप्ति
 हुई, जहाँ उनके सब पुत्र आयु और जहायति की वे दिये हुये नृत्य, गीत और सौभाग्य आदि नदी होकर गंगा में मिले,
 नारद । वे सब शम्भुदायक तीर्थ वहाँ हुये साथ ही अन्य सोलह हजार और भी तीर्थ वहाँ उसके दोनों तट पर स्थापित
 इलेश्वर शंकर भी हैं । उन तीर्थों में स्नान, दान आदि पुण्य कर्म करने से सब यशो का फल

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ब्रह्महत्यादिनाशनम् । यत्र चक्रेश्वरो देवदचक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शकरं प्रभु । पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमदाहृतम् ॥२॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापः प्रमुच्यते । दक्षत्रतो प्रवृत्ते तु देवानां च समागमे ॥३॥
दक्षेण दूषिते देवे शिवे शर्वे महेश्वरे । अनाह्वाने सुरेशस्य दक्षचित्ते मलौमसे ॥४॥
दाक्षायण्या श्रुते वाक्ये अनाह्वानस्य कारणे । अहत्यायां चोक्तवत्या कुपिताऽभूत्सुरेश्वरी ॥५॥
पितरं नाशये पापं क्षमेयं न कथंचन । शृण्वतो दोषवाक्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि ॥६॥
पत्युः शृण्वन्ति या निन्दां तासा पापावधि । कुत । यादृशस्तादृशो वाऽपि पतिः स्त्रीणां परा गतिः ॥७॥
किं पुनः सकलाधीशो महादेवो जगद्गुरु । श्रुतं तन्निन्दनं तर्हि धारयामि न देहकम् ॥८॥
तस्मात्पश्य इमं देहमित्युक्त्वा सा महासती । कोपेन महताऽऽविष्टा प्रजज्वाल सुरेश्वरी ॥९॥

अध्याय १०६

चक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्महत्या आदि सभी पापों को नष्ट करने वाला विष्णु चक्रतीर्थ है, जहाँ चक्रेश्वर देव से विष्णु ने चक्र प्राप्त किया था ॥१॥ जिस स्थान पर स्वयं प्रभु विष्णु ने चक्र के लिये शकर की पूजा की, वह तीर्थ चक्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२॥ जिसके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥३॥ एक समय दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया । उसमें सब देवता एकत्र हुए । दक्ष के मन में शिव के प्रति कुछ मलिनता हो गई थी, जिससे उन्होंने महेश्वर, शर्व, देव, शिव को दूषित (अश्लाघ्य) घोषित कर दिया ॥४-४॥ दाक्षायणी ने इन बातों को सुना और निमग्नित न होने का कारण समझ लिया । अहत्या के मुद्य से कुछ अनुचित वाक्यों की सुनकर वह सुरेश्वरी अत्यन्त क्रुपित हो गई ॥५॥ उन्होंने अपने पति के प्रति पिता की आक्षेपमयी बातें सुनकर कहा कि मैं अवश्य पापात्मा पिता का नाश करूँगी, किसी प्रकार उसको क्षमा नहीं कर सकती ॥६॥ क्योंकि जो स्त्रियाँ अपने पति की निन्दा सुनती हैं, उनके पापा का अन्त नहीं होता । अर्थात् असंख्य पाप होते हैं । पति चाहे कैसा भी हो वह स्त्री के लिये परम गति है ॥७॥ तो फिर सबके स्वामी जगद्गुरु शकर के विषय में क्या कहा जाय । ऐसे पति की मीने निन्दा सुनी है, इसलिए अब अपने शरीर को धारण न करूँगी ॥८॥ इस अवधि शरीर को छोड़ दूँगी । यह कहकर वह महासती सुरेश्वरी अत्यन्त क्रोध से स्वयं जलने लगी ॥९॥ शिव ने ही अपने ध्यान को लगाकर उन्होंने योग द्वारा

दह बलाघोगाच्च तत्पजे । महेश्वरोऽपि सकल वृत्तमाकार्यं नारदात् ॥१०॥
 कोप प्रपच्छ जया च विजया तथा । ते ऊचतुभे देव दक्षक्रतुविनाशनम् ॥११॥
 इति श्रुत्वा मल्ल प्राया महेश्वर । भोमैर्गणे परिवृतो भूतनाथं सम ययौ ॥१२॥
 त सर्वो देवब्रह्मपुरस्कृत । दक्षेण यजमानेन शुद्धभावेन रक्षित ॥१३॥
 रत्नयुग्मं मुनिभिः परिवारित । इन्द्रादित्याद्यैर्वसुभिः सर्वतः परिपालित ॥१४॥
 मवदंश्च स्वाहा शब्दैरलकृत । श्रद्धा पुष्टिस्तथा तुष्टिः शान्तिर्लज्जा सरस्वती ॥१५॥
 त्वरी क्षान्तिरुषा आशा जया मति । एताभिश्च तयाऽन्याभिः सर्वतः समलकृत ॥१६॥
 त्मना चापि कारितो विश्वकमणा । सुरभिनन्विनो धनुः कामधुक् कामदोहिनी ॥१७॥
 तमवर्षाभिः सवकामसमुद्भिमान । कल्पवृक्ष पारिजातो लता कल्पलतादिका ॥१८॥
 किञ्चित्तत्र तस्मिन्मन्त्रे स्थितम् । स्वयं मघयता पूष्णा हरिणा परिरक्षित ॥१९॥
 गतां वाऽपि क्रियतां स्योयतां सुखम् । एतंश्च सर्वतो वाक्पदं दक्षस्य पूजितं मल्लम् ॥२०॥
 वीरभद्रोऽसौ भद्रकाल्या यतो ययौ । शोककोपपरोऽतात्मा पश्चाच्छूलपिनाकधुक ॥२१॥
 महादयो महाभूतैरलकृत । तानि भूतानि परितो मल्ले वेष्ट्य महेश्वरम् ॥२२॥
 तस्यामासुस्तत्र क्षोभो महानभूत । पलायन्त ततः क्वचित्केचिदगत्वा ततः शिवम् ॥२३॥
 तं देवशः केचित्कुप्यन्ति शः करम् । एव विध्वंसितं यज्ञं दृष्ट्या पूषा समभ्यगात् ॥२४॥

छोड़ दिया । नारद के मुख से सारी घटना की सुनकर घनर अत्यन्त दुःखित हो गये । उन्होंने जया और वरद इस विषय में पूछा । उन दोनों ने दाशायणी की अपेक्षा से इति तत्र की कथा दक्ष के यज्ञ की विलम्ब करने की थी । यह सुन कर महेश्वर अपने भयङ्कर अनुचरों और भूतनाथों (रुद्रगण) के साथ उस यज्ञ में गये । वहाँ वह दक्ष का यज्ञ निगणों से घेर लिया गया जहाँ देव और ब्रह्मा भलीभाँति सम्मानित थे जो से शुद्धता पूवक अत्यन्त रक्षित था जो वणिष्ठ आदि तेजस्वी मुनियों से घिरा हुआ इन्द्र आदि त्रिमेचारी आर से रक्षित ऋषयः यजुस सामवेद की ध्वनि और स्वाहा आदि से गुह्य श्रद्धा पुष्टि तुष्टि । सरस्वती भूमि द्यौः सवरी शान्ति उषा आगा जया मति आदि तथा अपेक्षा से गुणभिन्ना महा वैश्वकर्मा से भलीभाँति वनया हुआ सुरभिनन्विनी धनुः कामधनुः कामदाहिनी आदि वस्तुनामा की वर्षा के सुरभिया तथा सम्पूर्ण वैभवा से युक्त और कल्पवृक्ष पारिजात कल्पलता लता आदि का कुछ अभिष्ट । व उस यज्ञ में उपस्थित थे । वह स्वयं इन्द्र पूषा और विष्णु से परितः गया ॥१३ ॥१९॥ शीमेवे भ्रातृन् यः शरम्भ कीजिये यहाँ मुगधुक् विराजित आदि निष्ठ वाक्पद से दक्ष का वह यज्ञस्थल दलाप्य पढ़ते वीरभद्र मद्रकाली के साथ वहाँ गया पीछे गूल और पिता (पुत्र) घोरण करने वाद घनर इस प्रकार महातेज घनर अपने उद्धृत और भयङ्कर अनुचरों महाभूता से गुणभिन्ना हो वहाँ गये उन भूता की वारा और पयास्यान निपुण वरयण का विनाश कर दिया । इस विनाशालीला को देखकर तोलाहल हो गया ॥२२॥ कुछ दूर उधर भागने लगे कुछ देवेग घनर का पास जाकर स्तुति करने लग तो त्रिभुवने से घनर लगे । इस प्रकार यज्ञ का ध्वस्त होने देगनर पूषा घनर का गायने आये ॥२३ ॥२४॥

। दन्तानयोत्पाद्य इन्द्रं व्यद्रावयत्क्षणात् । भगस्य चक्षुषो विप्र वीरभद्रो व्यपाटयत् ॥२५॥
करं पुनर्दोर्म्या परिधाम्य समाक्षिपत् । ततः सुरगणाः सर्वे विष्णुं ते शरणं ययुः ॥२६॥

देवा ऊचुः

१ त्राहि गदापाणे भूतनाथकृताद्भयात् । महेश्वरगणः कश्चित्प्रमथानां तु नायकः ॥
दग्धो मल्लः सर्वो वैष्णवः पश्यतो हरेः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एषा चक्रमुत्सृष्टं भूतनाथवधं प्रति । भूतनाथोऽपि तच्चक्रमापतच्च तदाऽग्रसत् ॥२८॥
ते चक्रे सतो विष्णोर्लोकपाला भयाद्ययुः । तथा स्थितानवेक्षाय दक्षो यज्ञं सुरानपि ॥
दाव शंकरं देवं दक्षो भक्त्या प्रजापतिः ॥२९॥

दक्ष उवाच

य शंकर सोमेश जय सर्वज्ञ शंभवे । जय कल्याणभृच्छंभो जय कालात्मने नमः ॥३०॥
।दिकर्तनमस्तेऽस्तु नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते । ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥३१॥
त्रिमूर्तये नमो देव त्रिधाम परमेश्वर । सर्वमूर्ते नमस्तेऽस्तु त्रैलोक्याधार कामदे ॥३२॥
।मो वेदान्तवेद्याय नमस्ते परमात्मने । यज्ञरूप नमस्तेऽस्तु यज्ञधाम नमोऽस्तु ते ॥३३॥
।जदान नमस्तेऽस्तु हव्यवाह नमोऽस्तु ते । यज्ञहव्रे नमस्तेऽस्तु फलदाय नमोऽस्तु ते ॥३४॥

एतु उहानि पूषा के दात उखाड लिये और इन्द्र की क्षण भर मे वहाँ से भगा दिया । विप्र ! वीरभद्र ने भग की आँखें
नकाश की ॥२५॥ सूर्य को भुजाओं के बीच पकड़ कर घुमा कर फेंक दिया । तदनन्तर सब अशरण होकर विष्णु
की शरण मे गये ॥२६॥

देवताओं ने कहा—हे गदापाणि । भूतनाथों के इस उपद्रव से रक्षा करो, वचाओं । तुमहारे देखते देखते
उपद्रविया के शरदार (शस्त्र के गण) से यह वैष्णव (विष्णु का) यज्ञ जला दिया गया, नष्ट कर दिया गया ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुहार सुनकर विष्णु ने भूतनाथ को भारते के लिये चक्र चलाया । भूतनाथ ने भी, चक्र
को अपनी ओर आते देखकर पकड़ लिया । विष्णु के असीम चक्र की दक्ष प्रकार व्यर्थ होते देखकर सर्व लोकपाल
भयभीत हो इधर उधर भागने लगे । प्रजापति दक्ष ने यज्ञ और देवों की, ऐसी स्थिति देखकर विवर्जित भाव से शस्त्र
की स्तुति की ॥२८-२९॥

दक्ष ने कहा—शंकर ! सोमेश । आपकी जय हो, हे सर्वज्ञ ! ययु ! जय हो । कल्याण करने वाले !
जय हो । शम्भु ! जय हो । काल रूप शस्त्र को नमस्कार है । आदिकर्ता ! आपको नमस्कार है । नीलकण्ठ !
आपको नमस्कार है । ब्रह्मप्रिय ! आपको नमस्कार है । ब्रह्मरूप ! आपको नमस्कार है । त्रिमूर्ति को
नमस्कार है । परमेश्वर ! देव ! त्रैलोक्यव्यापी ! आपको नमस्कार करते हैं । विरवमूर्ति । त्रिभुवन के आधार !
हव्यवाह ! आपको नमस्कार है । वेदान्त (ज्ञान) के ज्ञानने योग्य भागको नमस्कार है । परमात्मा को
नमस्कार है । यज्ञरूप ! आपको नमस्कार है । यज्ञधाम ! आपको नमस्कार है । यजमान ! आप को नमस्कार है ।

ब्राहि ब्राहि जगन्नाथ शरणागतवत्सल । भक्तानामप्यभक्तानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः । किं ददामीति तं प्राह क्रतुः पूर्णोऽस्तु मे प्रभो ॥३६॥
तथेत्युवाच भगवान्देवदेवो महेश्वरः । शंकरः सर्वभूतात्मा करुणावरुणालयः ॥३७॥
क्रतुं कृत्वा ततः पूर्णं तस्य दक्षस्य वै मुने । एवमुक्त्वा स भगवान्भूतैरन्तरधोयत ॥३८॥
यथागत सुरा जम्मुः स्वमेव सदनं प्रति । ततः कदाचिद्देवानां दैत्यानां विप्रहो महान् ॥३९॥
बभूव तत्र दैत्येभ्यो भीता देवाः श्रियः पतिम् । तुष्टुवुः सर्वभावेन वचोभिस्तं जनार्दनम् ॥४०॥

देवा ऊचुः

शक्रादयोऽपि त्रिवशा. कटाक्षमवेक्ष्य यस्यास्तप आचरन्ति ।
सा चापि यत्पादरता च लक्ष्मीस्तं ब्रह्मभूतं शरणं प्रपद्ये ॥४१॥
यस्मात्त्रिलोक्यां न परः समानो, न चाधिकस्ताक्षर्यान्नुसिहात् ।
स देवदेवोऽवतु नः समस्तान्महाभयेभ्यः कृपया प्रपन्नान् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाञ्चाङ्गुचक्रगदाधरः । किमर्थमागता सर्वे तत्कर्तास्मीत्युवाच तान् ॥४३॥

हृष्य को डोने वाले । (अने ।) आगको नमस्कार है । यज्ञ का नष्ट करने वाले का नमस्कार है, फल देने वाले को नमस्कार करते हैं । जगन्नाथ । शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले । रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । प्रभो । तुम्हीं भक्ता जीव अभक्ता के रक्षक हो ॥३०-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—४६ प्रकार शक्र की स्तुति करने पर महेश्वर प्रसन्न हो गये । उन्होंने दक्ष से कहा कि 'वया दू' । दक्ष ने कहा—प्रभो । मेरा यज्ञ पूर्ण हो । भगवान् देवदेवेश्वर शंकर ने ऐसा ही हो यह कहा । मुने । वदना के माग, सब प्राणियों में निवास करने वाले भगवान् उम दक्ष के यज्ञ को पूरा कर आने अनुचर भूतों के साथ अन्तर्हित हो गये । आप हुए देवता भी अपने अपने स्थान को चले गये । अनन्तर किसी समय देवा और दानवा में अति भयंकर युद्ध हुआ । उस युद्ध में देवता दानवा में भयभीत हो गये । विवश हो लक्ष्मीपति जनार्दन की शरण में गये । वहाँ जाकर उन लोगों ने सब भावां से भगवान् को प्रार्थना द्वारा प्रमत्त किया ॥३६-४०॥

देवताओं ने कहा—जिसने वेबल बटाया मात्र का देवशर इन्द्र आदि देवता उच्छरी प्राणि के लिए सतपत्ता करते हैं, वही हमारी त्रिम विष्णु की शरण-सेवा में लम्पित रहनी है । उम ब्रह्मवरुण विष्णु की शरण में हम आये हुए हैं । त्रिम शरण चाहते भगवान् मुनिहू में त्रिम की में उत्तम, समान या अधिक दूगता कोई नहीं है वे देवदेव प्रमत्त (शरण में आये) हम लोगों की समस्त मयदर विभीषिता में रक्षा करें ॥४१-४२॥

ब्रह्मा ने कहा—देश की प्रार्थना मुदकर गये, जब और मर्यापारी भगवान् अपन्न प्रमत्त हो गये । उन्होंने देशों से कहा कि 'किमलिये तुम लोग यहाँ आये हो, मैं उन सब इच्छाओं को पूर्ण कर दूंगा' ॥४३॥

देवा ऊचुः

भयं च तीव्रं दैत्यैर्मयो देवानां मधुसूदन । ततस्त्राणाय देवानां मतिं ध्रुवः जनार्दन ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

तानागतान्ह्रिः प्राह प्रसन्नं चक्रं हरेण मे । किं करोमि गतं चक्रं भवन्तश्चातिमागता ॥४५॥
यातु सर्वे देवगणा रक्षां व क्रियते मया ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

ततो गतेषु देवेषु विष्णुश्च प्रार्थयमुद्यतः । गोदावरीं ततो गत्वा शम्भो पूजां प्रचक्षते ॥४७॥
सुवर्णकमलैर्दिव्यैः सुगन्धैर्दशभिः शतैः । भक्तिततो नित्यवत्पूजां चक्रे विष्णुरमापते ॥४८॥
एव संपूज्यमाने तु तपोस्तत्त्वमिदं शृणु । कमलानां सहस्रे तु यदेकं नैव पूर्यते ॥४९॥
तदाऽसुरारि स्व नेत्रमुत्पाट्य ध्याय्य मकल्पयत । अर्घ्यपात्रं करे गृह्य सहस्रकमलान्वितम् ॥
ध्यात्वा शम्भुं ददावर्घ्यं मनन्य शरणो हरिः ॥५०॥

विष्णुरवाच

त्वमेव देव जानीषे भवमन्तर्गतं नृणाम् । त्वमेव शरणोऽधीशोऽयं का भवेद्विचारणा ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

वदन्नुदभ्रुनयनो निलिल्येऽसावितीश्वरे । भवानीसहितं शम्भुं पुरस्तादभवत्तदा ॥५२॥

देवो ने कहा—मधुसूदन ! देवा से हेतु देवा का दारण भय होता है । इसलिये आप देवताओं का रक्षा का उपाय कीजिये ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन शरणागत देवा से भगवान् विष्णु ने कहा—मया चक्रं शस्त्रं मे च लिया है । वया कर ? चक्र हाथ में निकल गया और आप लोग इस समय विपत्ति में पड़ गये । फिर भी आप लोग इस समय जो इस में आप लोगों की रक्षा करुणा ॥४५ ४६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं के लिये जान पर विष्णु चक्र लान के लिये उद्यत हो गया । इस अभिप्राय से व गोदावरी के तट पर गया और शस्त्र का पूजा करने लगे । विष्णु ने प्रतिष्ठा भक्तिपूर्वक दिव्य मुद्राधित हवा में मुख पर कमला से उग्रापति का पूजा करने लगा । इस प्रकार पूजा करते समय उन दाता देवा से जो रहस्य प्रकट हो उभरा सुनी । जब महेश्वर कमला में एक कमल ही गया तब असुरराज विष्णु ने अपने कमल नयन की निजालकर अर्घ्य देने के लिये उग्र (मरवा) को पूजा किया । इस प्रकार हजार कमला से पूजा कर अर्घ्य पात्र का हाथ में लेकर अन्य भादना से विष्णु ने शस्त्र का ध्यान कर अर्घ्य प्रदान किया ॥४७ ५०॥

विष्णु ने कहा—स्व ! तुम्हीं मनुष्या के मन के भावा का आनन्द हो स्वर्ग ! तुम्हीं एकमात्र शरण हो । इसमें विचार का क्या आवश्यकता है ? ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् विष्णु इस प्रकार प्राचना करते हुए शस्त्र में ललित हो गया, जननी की भाँसा से प्रभापु

गङ्गमालिङ्गञ्च विविर्षेर्वररापूरयद्धरिम्। तदेव चक्रमभवन्नेत्रं चापि यथा पुरा॥५३॥
 ततः सुरगणाः सर्वे तुष्टुबुर्हंरिशंकरो। गङ्गां चापि सरिच्छेष्टां देवं च वृषभध्वजम्॥५४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमिति स्मृतम्। यस्यानुश्रवणेनैव मुच्यते सर्वकिल्बिषः॥५५॥
 तत्र स्नानं च दानं च यः कुर्यात्पितृतपणम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृभिः स्वर्गं भाग्भवेत्॥५६॥
 तत्तु चक्राङ्कितं तीर्थमद्यापि परिदृश्यते ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रतीर्थवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः॥१०९॥

गौतमीमाहात्म्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४०॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

पिप्पलतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पिप्पलं तीर्थमाख्यातं 'चक्रतीर्थदिनन्तरम्। यत्र चक्रेश्वरो देवदचक्रमाप यतो हरिः॥१॥
 यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकर विभुम्। पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्॥२॥

बहने लगे। इति। समय भवानो सहित शंकर प्रकट हुये। उन्होंने उनको प्रेमपूर्वक गल लगाकर विविध वरदानों की वर्षा कर प्रसन्न किया। पुनः वही चक्र विष्णु के समीप चला आया और उनका नेत्र भी पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर सब देवताओं ने हरि और शंकर तथा श्रेष्ठ नदी गंगा की स्तुति की। तभी से वह तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात हो गया। उसने नामश्रवणमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त जाता है। उस तीर्थ में जो कोई स्नान, दान और पितृतपण आदि शुभ कर्म करता है वह सब पापों से मुक्त होकर अपने पितरों के साथ स्वर्ग प्राप्त करता है। ऐसा यह तीर्थ आज भी चक्र से चिह्नित देवा जाता है॥५२-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चक्रतीर्थवर्णनं नामक एक भी नवी अध्याय समाप्त ॥१०९॥

अध्याय ११०

पिप्पलतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—चक्रतीर्थ के बाद पिप्पलतीर्थ परम प्रसिद्ध है, जहाँ चक्रेश्वर देव, त्रिनने हरि ने चक्र प्राप्त किया था—रहने हैं॥१॥ जहाँ विष्णु ने चक्र के लिये प्रभु शंकर की पूजा की, वही तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात

यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शंभुस्तत्पिप्पलं विदुः। महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः॥३॥
चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम्। शृणु नारद तद्भक्त्या 'साक्षाद्देवोदितं मया॥४॥
दधोचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः। तस्य भार्या महाम्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता॥५॥
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गभस्तिनी। इति नाम्ना च विख्याता वडवेति प्रकीर्तिता॥६॥
दधोचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेपे तया महत्। दधोचिरग्निमाश्रित्यं गृहधर्मपरायणः॥७॥
भागीरथीं समाश्रित्य देवातिथिपरायणः। स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भघोनिरिवापरः॥८॥
तस्य प्रभावात्तं देशं नारयो दैत्यदानवाः। आजगमुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः॥९॥
तत्र देवाः समाजग्मु र्द्वादित्यास्तयाऽश्विनौ। इन्द्रो विष्णुर्महोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान्॥१०॥
जयेन जातसंहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः। दधोचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः॥११॥
दधोचिर्जातसंहर्षः सुरान्पूज्य पूयवपूयक्। गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह॥१२॥
पृष्टाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रुः सुरा अपि। दधोचिमन्त्रव्रतदेवा भार्यया सुखित पुनः॥१३॥
आसीनं हृष्टमनस ऋषिं नत्वा पुनः पुनः॥१४॥

देवा ऊचुः

किमद्य दुर्लभं लोके ऋषेऽस्माकं भविष्यति। त्वादृशं सङ्गो येषु मुनिर्भूक्तपदादपः॥१५॥

हुआ॥१२॥ जहाँ भगवान् शम्भु विष्णु पर प्रसन्न हुए वह पिप्पलतीर्थ कहा जाता है, जिसकी महिमा वर्णन करने में
येपनाम भी समर्थ नहीं है॥३॥ नारद। चक्रेश्वर और पिप्पलेश नाम पटने का कारण भक्तिपूर्वक मुनो। यह आख्याय
साक्षात् वेद में भी कहा गया है॥४॥ दधोचिनाम के एक परमविख्यात, गुणवान् मुनि थे। उनकी परम दुर्लभ
बुद्धिभरी और पतिव्रता पत्नी थी॥५॥ वह प्रसिद्ध लोपामुद्रा का वहिन गभस्तिनी थी, जिसका लोग वडवा भी
कहा करते थे॥६॥ दधोचि की वह प्रिया भी प्रतिदिन महान् तप किया करती थी। स्वयं दधोचि नित्य ही अग्नि
स्वायम्भुव गृहस्थ धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते थे॥७॥ वे भार्यारथी के तट पर निवास कर देव और अतिथिया की
एकान्त सेवा में लगे रहते थे। अपनी प्रिया के प्रति अन्य प्रेम रखने वाले वे शान्त दधोचि दूसरे अगस्त्य के समान
थे॥८॥ मुनिशार्दूल। उनकी तपस्या के प्रभाव में उस प्रदेश में और अगस्त्य ऋषि के आश्रम में कार्य भी सम्पन्न
दैत्यदानव आने का आह्वान नहीं करते थे॥९॥ एक दिन आश्विनवारी उपद्रवी दैत्या का जातकर रुद्र, आदित्य, अश्विन,
इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, आदि देवता उनके यहाँ आये जो विजय से अन्यन्त प्रसन्न थे, मरुद्गण उनकी स्तुति कर रहे थे।
उन देवेश्वर ने मुनिपुङ्गव दधोचि को देखकर उनकी अमित्रद्वन्द्व किया॥१०-११॥ दधोचि अपने देव अतिथिया का
देखकर आनन्द के भारे कूले न समझे। भार्या का सहित उन्होंने उन देवा का प्रेमपूर्वक अतिथि-संस्कार किया॥१२॥
गुणल प्रसन्न होने के बाद देवनाश ने अपनी कुशल-वार्ता सुनाई। पुनः देवगण प्रसन्न होकर भार्यासहित बैठे हुए ऋषि
दधोचि की बार-बार नमस्कार करने लगे॥१३-१४॥

देवों ने कहा—ऋषे! अब तुम्हारे समान पृथ्वी के कल्पवृक्ष की कृपा हम लोगों पर है तब भला हम

एतदेव कल मुसा जीवता मुनिसत्तम। तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशम् ॥१६॥
 यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने। जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपुगवान् ॥१७॥
 वयं च सुखिनो ब्रह्मस्त्वयि दृष्टे विशेषतः। नाऽऽयुधं फलमस्माकं वोढुं नैव क्षमा वयम् ॥१८॥
 स्थाप्यदेशं न पदयाम आयुधाना मुनीश्वर। स्वर्गे सुरद्विषो जात्वा स्थापितानि हरन्ति च ॥१९॥
 नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले। तस्मात्तवाश्रमे पुण्ये स्थाप्यन्तेऽस्त्राणि मानद ॥२०॥
 नैवान किञ्चिद्भयमस्ति विप्र, न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
 त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यदेशो, न विद्यते तपसा ते समान ॥२१॥
 जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ, वयं च पूर्वं निहता दैत्यसघा ।
 अस्त्रैरलं भारभूतं कृतार्थं, स्थाप्य स्थानं ते समीपे मुनीश ॥२२॥
 दिव्यान्भोगाकामिनीभिः समेतान्देवोद्याने नन्दने सभजाम ।
 ततो याम कृतकार्या सहेंद्रा, स्व स्व स्थानं चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३॥
 त्वया कृता जायता तत्प्रशाधि समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यमाकर्ण्य दधीचिरेव, वाक्यं जगौ विबुधानेयमस्तु ।
 निवायमाणं त्रिपशोलया स्त्रिया, किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा ॥२५॥

लोगा को कौन सा पदार्थ दुर्लभ होगा ? मुनिसत्तम । मनुष्य जीवन को पल तीयाठ प्राणिमा पर दया आपर समान महापुरुषा को दशन ह ॥१६॥ १६॥ मुने । आज हम लोग विनम्र भाव से प्रमत्तव जो कुछ कह रहे हैं उस पर ध्यान दाजिये। वर वर वलगाती दैत्या को जितकर हम यहाँ आय हुए हैं। ब्रह्मन् । हम लोग गुप्ता हैं। आपने देखकर और विचार रूप से प्रसन्न हो रही हैं। ये अस्त्र गस्त्र अब भार मे जोन पडते हैं यकायत के कारण इन व्यय अस्त्रा को दोने की गक्ति भी नहीं रह गई है ॥१७॥ १८॥ मुनीश्वर । इन आयुषा को रखन क लिये कोई सुरा इन स्थान भी नहीं दियाई दे रहा है। स्वयं म रखन पर राक्षस पता पा जान पर छान लेंगे। इसी प्रकार यदि इन अस्त्रा को रसातल ले जाया जाय तो वहाँ भी यही दगा है। इमन्त्ये ह मानद' (प्रतिष्ठा देने वाले छवर्षी प्रतिष्ठा करने वाग्) आपने आश्रम म इन अस्त्रों को रखा जा रहा ॥१९॥ २०॥ वयाकि ह विप्र । यहाँ न तो राग्या से और न तो दानवों से ही भय है। यह पुण्य स्थान आरक्षी जागा (नर) म सुरक्षित है आपके समान तरस्या म भी कोई नहीं है ॥२१॥ मुनं ग । स्त्रिया म अष्ट । हम लोग नगपुत्रा को जान लिया है दैया को पत्रे हा विनष्ट कर दियाई अब इन भाटपून पुत्राप अगाय व्यय अस्त्रा म कोई आवदवला नही और आपने सम प रखने पाय स्थान भी ॥२२॥ अब हम लोग कामिण्या व राय दवाचान नन्दनवन म दिव्य भागा का भोग करेग इमलिये हम लोग इन्द्र के सहित आरक्षी दया मे कृत्रुय हाव अपने-अपने स्थान को जा रहे हैं। अब रास्त्राग्या की रक्षा आप के ही हाथ होगी इमलिय आप दीविय आप ही इन अस्त्रा की रक्षा और देख भाल करन म समर्थ है ॥२३॥ २४॥

ब्रह्मा ने कहा—आरक्षी आपने मुनिकर दर्पाचि न देवा से कहा कि एकमस्तु । यह देवात्र त्रिय स्वभाव वाली स्त्री ने बार बार भना दिया कि इधुर्बन्धनस्यर्पादा करन वाच देव-नाय म हाय छगाने की क्या आवश्यकता ॥२५॥

ये ज्ञातशास्त्रा परमार्थनिष्ठा, ससारचेष्टासु गतानुरागं	1
तेषां परार्थं यस्यनेन किं मुने, येनात्र चाऽमुत्र सुखं न किञ्चित्	॥२६॥
देवद्विषो द्वेषमनुप्रयान्ति, दत्ते स्थाने विप्रवर्धं शृणुष्व	1
नष्टे हृते चाऽऽयुधाना मुनीश, कुप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति	॥२७॥
तस्मान्नेदं वेदविदा वरिष्ठ, युक्तं द्रव्ये परकीये ममत्वम्	1
तावच्च मंत्रो द्रव्यभावश्च तावन्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति	॥२८॥
चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते, दातव्यमेवायिने किं विचार्यम्	1
नो चेत्सन्त परकार्याणि कुर्युर्वाग्भिर्मनोभि कृतिभिस्तथैव	॥२९॥
परस्वसधारणमेतदेव, सद्भिर्निरस्तं त्यज कान्तं सद्य	॥३०॥

ब्रह्मोवाच

एव प्रियाया वचनं स विप्रो, निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे, नेतीति वाणो न सुखं ममति ॥३२॥

मुने ! जो शास्त्रन परमाय (मोक्षज्ञान) में निष्ठा रखने वाले और सासारिक व्यापारों से विरक्त हैं उनको ऐसे दूसरों के व्यर्थ कामों में पड़ने से क्या लाभ ? जिनके करने से न तो कोई लौकिक सुख हो न पारलौकिक ॥२६॥ विप्रवय ! मुनिये इस प्रकार स्थान देने से रागस कुपित हो जायगा। मुनीश ! शास्त्रा के मध्य में जाने से या चोरी चले जाने से देवता कुपित हाने और शत्रु बन जायेंगे ॥२७॥ इन कारणों से हे देवता में श्रद्धा ! दूसरे के द्रव्य में इस प्रकार ममत्व उत्पन्न करना कदापि उचित नहीं। जब तक यह पाप (पगोहर) रहित है तब तक मंत्री है नष्ट हो जाने पर अपना चोरी चल जाने पर वे ही शत्रु हो जायेंगे ॥२८॥ यदि द्रव्यदान की शक्ति है तो पाचका को घन अन्न देना चाहिये वहाँ आग-प्रीति सोचने की आवश्यकता नहीं। यदि दान की शक्ति नहीं है तो सज्जन व्यक्ति को दूसरों का वाप वाणी मन तथा रचनाओं से करना चाहिये ॥२९॥ यही कारण है कि दूसरा की सम्पत्ति अपने पास रखने को सज्जना ने बार बार मना किया है और निन्द्य माना है। इसलिये कान्त ! आप अपने घन निश्चय का छोड़ दीजिये ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इस प्रकार की बात सुनकर विप्र दधीचि ने अपनी सुन्दर भी वाली पत्नी से कहा ॥३१॥

दधीचि ने कहा—भद्र ! पहले देवताओं को दानदान द्वारा सम्मानित कर पुन नहीं बहना मुझको उचित अपना सुन्दर नहीं जान पड़ता ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया के प्रति पति का बड़ी हुई बातों को सुनकर वे देवता अपने तेजोमय (चमकने वाले) अस्त्रों को मुनि के आश्रम में रखकर मुनि की प्रशाम कर अपने लोक को चले गये। पत्नी भी मनुष्या के भाव के

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेरितं पत्युरिति प्रियायां, दैवं विनाऽन्यत्र नृणां समर्थम् ।	
तूष्णीं स्थिताया सुरसत्तमास्ते, संस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति ॥३३॥	
नत्वा मुनोन्द्रं यपुरेव लोकान्दैत्यद्विषो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः ।	
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः ॥३४॥	
गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते, देवे वर्षे संख्यया वै सहस्रे ।	
न ते सुरा आयुधानां मुनीश, वाचं मनश्चापि तथैव चक्रुः ॥३५॥	
दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा, देवारयो मां द्विषतीह भद्रे ।	
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति, संस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम् ॥३६॥	
सा चाऽहं कान्तं विनयादुक्तमेव, त्वं जानीषे नाथ यदत्र युक्तम् ।	
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धास्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि ॥३७॥	
तदस्त्ररक्षार्यमिदं स चक्रे, मन्त्रैस्तु संक्षाल्य जलैश्च पुण्यैः ।	
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्यं, तेजोयुक्तं तच्च पणौ दधीचिः ॥३८॥	
निर्वार्यैरूपाणि तदायुधानि, क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोपात् ।	
सुराः समागत्य दधीचिमूचुर्मुहामयं ह्यागतं शात्रवं नः ॥३९॥	

अतिरिक्त और कोई पदार्थ बलवान् नहीं, यह सोच कर चुप हो गई। डबेर देवद्वन्द मुनि-आश्रम में रात्रि रखकर अपने को अत्यन्त कृतकृत्य समझने लगे ॥३३॥

देवताओं के बल जाते पर मुनिजनों भाषों के साथ धर्म का पालन करते हुए सानन्द जीवन बिताने लगे। मुनीश ! देवा के हजार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु देवीं ने अपने रथे हुए अस्त्रा के विषय में कोई खोज भी नहीं की, ले जाने की चर्चा नहीं की, मन से भी अस्त्रों के बारे में कुछ नहीं सोचा ॥३४-३५॥ यह देखकर दधीचि ने अन्तः प्रिया गभस्तिनी से कहा—भद्रे ! सुरासु राक्षस मेरे इस कार्य से द्वेष करते हैं, और अब तक देवता इस रक्षित अस्त्रों को ले जताने नहीं चाहते, इसलिये इस वागे में कोई उचित उपाय बताओ ॥३६॥ उसने अपने पति से बिना पूर्वक कहा 'मैंने तो पहले ही वज्र दिया था, नाथ ! इस विषय में जो कुछ उचित है उसको आप स्वयं जानते हैं। तब मैं बड़ा और महाशक्तिशाली राक्षस अपने अस्त्रों को छीन ले जायेंगे, यह सोचकर दधीचि ने उन अस्त्रा की रक्षा के लिये मन्त्रों से जटका अभिमन्त्रित कर उससे अन्तों को घा दिया। और उस तेजोमय पवित्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-गच्छा की शक्ति से सम्पन्न उस जल को पी गये, इस प्रकार उन्होंने अस्त्रा की रक्षा की ॥३७-३८॥ अधिक समय बीत जाते के कारण वे अस्त्र बेकार हो गये और धीरे धीरे नष्ट हो गये। अब जबकि देखकर देवताओं ने आकर वर्षादि से कहा कि हम लोगों के लिए पर शत्रुओं का भीषण भय आ गया ॥३९॥ इसलिये मुनिप्रवर ! आप उन

ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैव शीघ्रं, तस्या भोता विप्रमूचुः कुरुष्व ।
 तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रोतियुक्तो यथासुखं देहमिमं जुषध्वम् ॥४७॥
 मदस्थिभि प्रीतिमन्तो भवन्तु, सुरा सर्वे किंतु देहेन कार्यम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्यो, नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्नः ।
 वायु सर्वाह्ण मध्यमोद्घाटयोगाग्नीत्वा शनैर्वहेराकाशगर्भम् ॥४९॥
 यदप्रमेयं परमं पदं यद्यद्ब्रह्मरूपं यदुपासितव्यम् ।
 तत्रैव विन्यस्य धियं महात्मा, सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥५०॥
 निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवाः, कलेवरं तस्य सुराश्च सम्पक् ।
 त्वष्टारमप्यूचुरतस्त्वरन्तः, कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५१॥
 स चापि तानाह कथं नु कार्यं, कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः ।
 बिभेमि कर्तुं, दारुणं चाक्षमोऽहं, विदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५२॥
 तदस्यिभूतानि करोमि सद्यस्ततो देवा गाः समूचुस्त्वरन्तः ॥५३॥

प्रिय वचन बोलने वाली, अतिथि-सेविका पत्नी वहाँ उपस्थित न थी। वे देव उसको वहाँ उपस्थित न देखकर, उसने भय से भयभीत होकर ब्राह्मण से बोले कि दीघ्रता बीजिये। देवा की बातें सुनकर दधीचि प्रसन्न हो अपने अत्यन्त बृष्ट से छोड़ने योग्य प्राणा को यह कहते हुए कि मेरे इस शरीर का इच्छानुबूल उपयोग कीजिये, सब देवता मेरी हृद्भिः से प्रसन्न हो, इस व्यर्थ शरीर का परोपकार के अतिरिक्त और कौन सदुपयोग हो सकता है, इस शरीर से कोई लाभ नहीं, छोड़ दिया ॥४६-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर दधीचि पद्मासन लगाकर बैठ गये, नासाग्र में अपनी दृष्टि एकाग्र कर दी, योग द्वारा सुषुम्ना को जाग्रत कर शरीर सत्तरी वायु और अग्नि को दीप्त कर शनैः शनैः हृदय-गद्गद् भरे पहुँचा दिया ॥४९॥ और जो अप्रमेय (अजैय), परम पद ब्रह्म का स्वरूप है, उसी में अपनी बुद्धि (भावना) को लगाकर उस महात्मा ब्राह्मण ने परब्रह्म की सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर ली। इस प्रकार उस ब्राह्मण के शरीर को निर्जीव देखकर, देवताओं ने विद्वक्कर्मा से कहा—‘शीघ्र ही इसी क्षण बहुत से अस्त्रों को बना डालो’। विद्वक्कर्मा ने भी देवताओं से कहा—‘देवगण ! यह ब्राह्मण का शरीर है, मैं कैसे यह दारुण कार्य कर सकता हूँ, यह भीमतर कार्य करने में मैं असमर्थ हूँ, यदि असिधियों को कोई पांड कर अलग कर दे तब मैं उनसे उत्तम से उत्तम अस्त्र शीघ्र बना दूंगा। यह सुनकर देवताओं ने दीघ्र ही गौत्रों से कहा ॥५०॥-५३॥

देवा ऊचुः

वज्रं मुखं व क्षिपते हितार्थं, गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन ।
दधौचिदेहं तु विदार्य मूममस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

ता देववाक्यान्च तथैव चक्रुः, सलिहय चास्थीनि बहु सुराणाम् ।
सुरास्त्वरा जग्मुरद्वीनसत्त्वा, स्वमालय चापि तथैव गाव ॥५५॥
कृत्वा तथाऽऽस्त्राणि च देवतानां, स्वष्टा जगामाथ सुराज्जगता तदा ।
ततश्चिराच्छीलवती सुभद्रा, भर्तुं प्रिया बालगर्भा स्वरन्ती ॥५६॥
धरे गृहीत्वा कलशं वारिपूर्णमुमा नत्वा फलपुष्पं समेत्य ।
अग्निं च भर्तारिमथाऽऽश्रमं च, सद्रष्टुकामा हृद्याजगामाथ शीघ्रम् ॥५७॥
आगच्छन्तीं तां प्रातिथ्येयीं तदानीं, निवारयामास तदोलूकपात ।
सा सध्रमादागता चाऽऽश्रमं स्व, नैवापश्यत्तत्र भर्तारिमग्रे ॥५८॥
कथं वा गतश्चेति सविस्मया सा, पप्रच्छ चाग्निं प्रातिथ्येयीं तदानीम् ।
अग्निस्तदोवाच सविस्तरं तां, देवागमं याचन बं शरीरे ॥५९॥

देवो ने कहा—गौशा ! आज देवों के हित के लिये तुम सबों का मुख वज्र के रमान कट कर का दिया जाता है इसलिए तत्काल ही दधीचि के शरीर को पाउकर हडिडया को गूद कर दा जिससे वि देवा के लिये अस्त्रालय बनाये जायें ॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन गौशों ने देवों के कथनानुसार बँस ही। त्रिया हडिडयो को पाट पाट कर स्वच्छ कर देवताओं को दे दिया। रक्षकभूतारय ही पुराणमा देवता ग प्रह्ला। अपने अपने स्थान को चले गये वग प्रकार गौशा ने भी अपना रास्ता पकड़ा ॥५५॥ स्वष्टा (विश्वकर्मा) भी देवताओं के अस्त्र बना कर उनको आता पार कर गये। इसके बाद त्रिचारी सुगला दधीचि की प्रिय पत्नी जो गर्भवती थी बहुत बिलम्ब से भावें पूरा कर हाथ में अलस भरा कला आर फल पुष्प लिये हुय आदी-नत्वा वही पहुँचा। उसके हृदय में आश्रम अग्नि और भता के दान का अच्युत उत्सुकता प ॥५६ ५७॥ यह अतिथि-मेवाभराण सार्वी, जन्म आ रही थी उसी समय रास्त में उत्तरपात हुआ जिससे कि उसको अगस्त्य की पूव भूचना मिली। यह देख कर उसके हृदय में और अधिक आकांक्षा हो गई। वह दौड़ी हुई गिरा अपने आश्रम में आई परन्तु आत ही उसने अपने प्राण पिब पति का नहीं देखा ॥५८॥ उस अतिथि मेवाभराण न अच्युत विस्मित हो उस समय अग्नि से पूछा कि मेरे पति देव कहीं गये। यह सुनकर अग्नि ने विस्तारपूर्वक उसने देवों का आश्रम में आना दधीचि से शरीर का भोगना उनका प्राणत्याग हडिडया का निहोतता उसने अस्त्र निर्माण और पुन देवताओं का कला जाना आदि बातें कह सुनाई। इन बातों को सुनकर

अस्थानमुपादानमय प्रयाण, श्रुत्वा सर्वं दुःखिता सा बभूव
दुःखोद्वेगात्सा पपाताथ पृथ्वा, मन्द मन्द वह्निनाऽऽवासिता च ॥६०॥

प्रातिथेय्युवाच

शापेऽमराणां तु नाहं समर्थः, अग्निं प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कोपं च दुःखं च नियम्य साध्वी, तदाऽवादीद्वर्मयुक्तं च भर्तुं ॥६२॥

प्रातिथेय्युवाच

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं, न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके ।

गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति, प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्या ॥६३॥

सत्सारचक्रे परिवर्तमाने देहं समर्थं धर्मयुक्तं त्ववाप्य ।

प्रियान्प्राणान्देवविप्रार्थहेतोस्ते वै धन्या प्राणिनो ये त्यजन्ति ॥६४॥

प्राणा सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य, यातारो वै नात्र सदेहलेशः ।

एव ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनार्थं चैतान्त्सुजन्तीश्वरास्ते ॥६५॥

निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया, चकार देवास्त्रपरिग्रहं स ।

मनोगतं घेत्यथवा विधातुं, को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य ॥६६॥

उसकी अत्यन्त दुःख हुआ दुःख का आवेग से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। अग्निदेव ने धीरे धीरे उसको पुनः ऊभूत-रुजाके रूप में किया ॥५९, ६०॥

प्रातिथेयो ने कहा - श्रेयसाभाषों गाय देना मेरे लिए उचित नहीं अब अग्नि प्रवेश (मर्त्यलोका) ही कहेंगे। इसके अतिरिक्त मेरे लिए रास्ता ही बचता था ॥६१॥

ब्रह्म ने कहा - परेन्द्रीर उभ साध्या न प्रया जाता काह और आन्तरिक व्यापार पर अधिकार किया, सब उभने अपने पति के विषय में धर्मयुक्त (कर्मयुक्त) बात कहना प्रारम्भ किया ॥६२॥

प्रातिथेयो ने कहा—इह मनुष्यलोक में जा कुछ उत्पन्न होता है वह मनुष्य (क्षणभूत) है इह मनुष्य इसमें विषय में साक्षात् कर्मात्प्राप्तं है मनुष्य के मनुष्य अथ पृथ्वा भी है जाया विप्र और देवा के लिए अपने प्रिय प्राणा का बलिदान करते हैं। इस परिवर्तन के कारण (कर्म) में प्रपन्न (वाप्यमान) धर्मयुक्त (धर्मयुक्त) सदा सत्सर रहने वाला। मनुष्य सत्सर पश्चात् अपने प्रिय प्राणा का देह और प्राणा के लिए छोड़ देता है व प्राणा धर्म है। इस पश्चात् में निवार्यमाणे प्राण मनुष्य (मनुष्य) है इसमें मनुष्य में देह नहीं है। यह रहस्य जानकर आ विप्र गो देव और दीनो के भित्ति अपने प्राणा का छोड़ देता है व अर्थात् ही मायमर्त्य और मनुष्य है। मैंने बड़े अनुभव-विषय में उनको रोना परन्तु उद्धार देना भी कर सका था तब किया। अथवा टीका है, मनुष्य के रहने वाले (मनुष्य) के सर्वथा अतिरिक्त स्वभाववाला विषय का मनोगत भाव का बचन आता है ॥६३, ६४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वाऽऽपूज्य चानीन्यथावद्भर्तुस्त्वचालोमभिः सा विवेदा ।
गर्भस्थितं बालकं प्रातिथेयी, कुक्षिं विदार्याय करे गृहीत्वा ॥६७॥
नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च, वनस्पतीनोपधीराश्रमस्थान् ॥६८॥

प्रातिथेय्युवाच

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजेश्च, मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघास्तथोपध्वो बालकं लोकपालाः ॥६९॥
ये बालकं मातृपितृप्रहीणं, सन्निविशेयं स्वतन्तुप्रहृष्टैः ।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नून, ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा चात्यजद्वाल भर्तृचित्तपरायणा । पिप्पलाना समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च ॥७१॥
अग्निं प्रदक्षिणोऽकृत्य यत्तपात्रसमन्विता । विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्ता सह दिवं ययौ ॥७२॥
दग्दुदत्वाऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः । पुत्रवत्सोपिता येन ऋषिणा च दधीचिना ॥७३॥
विना तेन न जीवामस्तथा मात्रा विना तथा । मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४॥

वृक्षा ऊचुः

स्यगमासेदुयोः पित्रोस्तदपर्येष्वकृत्रिमम् । ये कुर्वन्त्यनिश स्नेह त एव कृतिनो नराः ॥७५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर उस अतिथि मेविका ने अग्नि की यथाविधि पूजा की, पति के अवशिष्ट विधा, लोम आदि को एवम विधा और अपनी, कुक्षि का फाड़कर गर्भस्थ बालक को अपने हाथों पर लिया । अनन्तर आश्रम की वनस्पतिया, ओरधिया, गंगा, पृथ्वी और अपने आश्रम की प्रणाम करती हुई वह अग्नि में प्रवेश करने की कामना से बोली—॥६७-६८॥

प्रातिथेयी ने कहा—आप सभी प्राणि समूह, ओरधिया और लोकपाल पिता, माता, भाई, बन्धु और कृपात्रा से रहित इस बालक की रक्षा करें । जो व्यक्ति माता-पिता से हीन (अनाथ) बालक को अपने औरत पुत्र के समान समझ कर पालन करते हैं वे भाग्यमाली हैं और ब्रह्मा आदि देवा के भी वन्दनीय हैं ॥६९-७०॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर पति-भरण में लगे रहने वाली उस मुर्खाला ने बालक को एक पौंसल के वृक्ष के नीचे रख दिया । फिर यज्ञान्न हाथ में लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा तथा अभिचार करते वह अग्नि में प्रविष्ट हो गई । इस प्रकार अपने पति के साथ वह स्वयं की चली गई । यह कहण दुस्य देवगण, आश्रम तथा वन के दूत, पक्षी, मृग आदि, त्रिनका ऋषि दधीचि ने पुत्र के समान पालन किया था, १।५८ । व परस्पर कहने लगे कि उस माता के बिना हम लोग कैसे जी सके ? ॥७१-७४॥

पुत्रों ने कहा—जो व्यक्ति अपना पिता मेवविन मगान पर अपना महान स्नेह भंडा दितलाने है, वे ही बालक में भाग्यमाली हैं । पिता दधीचि और माता प्रातिथेयी जिन्हें महान्-स्नेहमयी दृष्टि से हम लोग की देखते थे,

दधीचिः प्रातिथेयो वा धीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा । तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो धयम् ॥७६॥
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम् । बालो दधीचिः प्रातिथेयो बालो धर्मः सातनः ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदौपध्यो वनस्पतिसमन्विताः । सोमं राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८॥
स चापि दत्तवांस्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम् । ददुर्बालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ॥७९॥
स तेन तृप्तो बबूधे शुक्लपक्षे यथा शशी । पिप्पलं पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः ॥
प्रबृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः ॥८०॥

पिप्पलाद उवाच

मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः । बीजेभ्यो बीरुधो लोके वैपम्यं नैव दृश्यते ॥
बाक्षंस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूर्च्यथाक्रमम् । दधीचेर्मरणं साध्व्यास्तथा चाग्निप्रयेशनम् ॥८२॥
अस्या सहरणं देवैरेतत्सर्वं सविस्तरम् । श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ॥८३॥
आश्वसितः पुनर्वृक्षैर्विषयैर्धर्मार्थसंहितैः । आश्वस्तः स पुन प्राह तदौपधिवनस्पतीन् ॥८४॥

उस प्रकार कोई माता या पिता भी अपनी सुत्तान का नहीं देख सकते । ऐसे पिता-माता से हम विदुक्त हो गये ।
हाय ! हम पापिया को पिक्कार है । अत आज हम लोग यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि दधीचि और प्रातिथेयों के
इस बाल आत्मा का पालन-पोषण हम लोग अवश्य करेंगे । यही सनातन धर्म है ॥७५-७७॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय ऐसी प्रतिज्ञा करके वनस्पतियों सहित वे औपधियाँ राजा साम के समीप गईं
और अमृत माँगा । उस राजा साम ने भी उनको वह परमात्म अमृत दे दिया । उन्होंने भी देवा को प्रिय लगने वाला
अमृत बालक को दे दिया । वह बालक भी अमृत पान से तृप्त होकर शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिनदिन
बढ़ने लगा । पीपल के वृक्षा ने उस बालक का पालन किया था, इसलिये उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा गया । जब
वह बड़ा हुआ, सब अत्यन्त विस्मित होकर पीपल के वृक्षा से कहा ॥७८-८०॥

पिप्पलाद ने कहा—प्रायः छात्र म मनुष्या मे मनुष्य, पक्षिया से पक्षी और बीज से वनस्पतियाँ उत्पन्न होती
हैं, इससे कभी भी वैपम्य नहीं देखा जाता परन्तु मेँ हाथ पर बाला, प्राणघारी मानव कैसे वृक्षामे उत्पन्न हो गया ? ॥८१॥

ब्रह्मा बोले—बालक पिप्पलाद की स्वाभाविक वाता वा सुन्दर वृक्षा ने आदि से अन्त तक—दधीचि की
मृत्यु, साध्वी का पति के साथ अग्नि प्रवेश (सर्वा होना), देवताओं द्वारा अस्थि के लिये कपट उपाय आदि—
सारी घटनायें विस्तारपूर्वक सुना दीं । यह सुन्दर उसका अत्यन्त ध्याया हुई । वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ।
बालक को इस प्रकार मूर्च्छित देखकर वृक्षा ने धर्मार्थ-संगत वाक्य बहकर बाढ़ग बँपाया । वृक्षा ने आश्वासन से
अपने को समालाकर उसने पुन औपधिया और वनस्पतियाँ से कहा ॥८२-८४॥

पिप्पलाद उवाच

पितृहन्तृहनिष्येऽहं नान्यथा जीवितुं क्षमः। पितृमित्राणि शत्रून् च तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५॥
स एव पुत्रो योज्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः। वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तं बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः। बालवाक्यं तु ते वृक्षाः सोमायाय न्यवेदयन् ॥
श्रुत्वा सोमोऽपि तं बालं पिप्पलादमभाषत ॥८७॥

सोम उवाच

गृहाण विद्यां विधिवत्समप्रां, तपःसमृद्धिं च शुभां च वाचम्
शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं, संप्राप्त्यसे पुत्र मदाजया त्वम् ॥८८॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तमप्याह ओपधीशं विनीतवत् ॥८९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वमेतद्वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम्। न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथमं वद ॥९०॥
यस्मिन्देवे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके। यत्र तीर्थं च सिध्येत मत्संकल्पः सुरोत्तम ॥९१॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने पिता के हत्यारों का अवश्य वध करूँगा। बिना ऐसे किये मैं जी नहीं सकता। यह भीति वचन है कि पिता के शत्रु और मित्रों के प्रति पुत्र को भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। वही पुत्र है जिसने उपर्युक्त वचन को सत्य सिद्ध किया, नहीं तो वह पुत्र नहीं प्रत्युत पुत्र रूप में पिता का शत्रु है। ऐसे ही पुत्र पिता के उदारवर्त्ता होते हैं जो पिता के मित्रों और शत्रुओं के प्रति यथायोग्य व्यवहार करते हैं, ऐसा नीतिज्ञों ने कहा है ॥८५-८६॥

ब्रह्मा ने कहा—बालक की यह दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर वृक्ष उसको साथ लेकर सोम के समीप गये और उनसे बालक की वही हुई बातें कह सुनाई। सोम ने यह सुनकर बालक पिप्पलाद से कहा ॥८७॥

सोम ने कहा—बेटा! तुम विधिपूर्वक सब विद्यायें बहुत बड़ी तपस्यायें, कल्याणमयी वाणी, वीरता, रूप, बल तथा बुद्धि प्राप्त करो। मेरी आज्ञा से तुम्हें सब चीजें मिल जाएँगी ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर पिप्पलाद ने पुनः राजा सोम से नम्रतापूर्वक कहा ॥८९॥

पिप्पलाद बोले—पिता के हत्यारों से बदला लेने में कुछ भी सहायता न देने वाले इस वरदान की व्यर्थ समझता हूँ। जितना आप कह गये हैं उनमें से किसी की भी मैं स्वीकार नहीं करता। इसलिए हे देववर! पहले आप यह बतलाइये कि किस देव में किस समय किस देवता के पास किस मन्त्र का जप करने से या किस तीर्थ में जाने से मेरा संकल्प सिद्ध होगा? ॥९०-९१॥

ब्रह्मोवाच

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा । सर्वं महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र संशयः ॥९२॥
स सोमं पुनरप्याह कथं द्रक्ष्ये महेश्वरम् । बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तया ॥९३॥

चन्द्र उवाच

गौतमीं गच्छ भद्र त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम् । प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सक ॥९४॥
प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्कारणिकः शिवः । आस्ते साक्षात्कृतः शंभुर्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५॥
वरं च दत्तवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिदशाक्षितम् । गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमीं नदीम् ॥९६॥
चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योपधयस्तु तत् । तं गत्वा स्तुहि देवेशं सर्वभावेन शंकरम् ॥
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनिः । आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः ॥९८॥
तं बालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमाग्ययुः । गोदावर्यां ततः स्नात्वा गत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ॥
तुष्ट्वा सर्वभावेन पिप्पलादः शिवं शुचिः ॥९९॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ देर तक ध्यान करते चन्द्र ने कहा—‘भुक्ति या मुक्ति सब कुछ पाकर भगवान् से ही प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं।’ पुनः बालक ने सोमदेव से प्रश्न किया, मैं बालक हूँ, थोड़ी बुद्धि रखता हूँ, कठोर तपस्या करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। तब मैं किस प्रकार महेश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकूँगा ? ॥९२-९३॥

चन्द्र ने कहा—भद्र ! तुम गौतमी के तट पर जाओ, वहाँ चक्रेश्वर शंकर की स्तुति करो ! वल ! तुम्हारे थोड़े प्रयत्न से ही शंकर प्रसन्न हो जायेंगे। महादेव शंकर साक्षात् करणा के अवतार हैं, वे अवश्य तुम्हारी बाल-उपासना से प्रसन्न होकर दर्शन देंगे। परम साधर्म्यवान् विष्णु ने शंकर का साक्षात्कार किया है। शंकर ने उनको देवा से पूजित कर और अग्न्याग्य कर दिये हैं। महाबुद्धिमान् ! तुम दण्डक वन में गौतमी के तट पर जाओ। ये औपधियाँ भी उस चक्रेश्वर तीर्थ को जानती हैं। वहाँ जाकर अग्न्याग्य भाव से भगवान् शंकर की स्तुति करो। तब ! वे प्रसन्न होकर अवश्य तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करेंगे ॥९४-९७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा माग के आदेशानुसार महामुनि पिप्पलाद उस स्थान पर गये, जहाँ चक्र के दाता जगन्नाथ शंकर निवास करते हैं। पीपल वृक्ष में कदगा ग विह्वल होकर उस बालक को वहाँ पहुँचाकर अपने आश्रम का बतल गये। इसके उपरान्त पिप्पलाद ने गोदावरी में स्नान किया और पवित्र होकर त्रिभुवनेश्वर शंकर को प्रणाम करने अग्न्याग्य भाव में उनकी स्तुति की ॥९८-९९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वाणि कर्माणि विहाय धोरास्त्यवतंपणा निर्जितचित्तवाताः	।
यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्नात्तमादिदेवं प्रणमामि शंभुम्	॥१००॥
यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा, सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम्	।
विज्ञाय मच्चित्तगतं समस्तं, स मे स्मरारिः कर्णां करोतु	॥१०१॥
दिगोश्वराञ्जित्य सुरार्चितस्य, कंलासमान्दोलयतः पुरारेः	।
अदगुप्यकृत्यैव रसातलादथोगतस्य तस्यैव दशाननस्य	॥१०२॥
आलूनकायस्य गिर निशम्य, विहस्य दध्या सह दत्तमिष्टम्	।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्वदमुक्तवाताऽसि महेश्वर त्वम्	॥१०३॥
सौत्रामणीमृद्धिमधः स चक्रे, योज्ज्वां हरौ (रे) नित्यमतीव कृत्वा	।
वाणः प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजां, रम्या मनोज्ञां शशिलण्डमौलेः	॥१०४॥
जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य, गुहं नमस्कर्तुमगाद्विशालः	।
चूकोप दृष्ट्वा गणनाथमूढमङ्गु तमारोप्य जहास सोमः	॥१०५॥
ईशाङ्कूहडोऽपि शिशुस्वभावाच्च मातुरङ्गुं प्रमुमोच बालः	।
मृद्धं सुतं बोधितुमप्यश्वतस्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोमः	॥१०६॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं उस व्यापकशिव को प्रणाम करता हूँ जिसकी शरण में जाकर मनस्वी जन अपनी सम्पूर्ण सासारिक इच्छाओं और सब बर्णों का त्याग कर अपने चित्त एवं प्राणवायु को वश में करके मुक्ति-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं ॥१००॥ वे शत्रु सबके सार्थी हैं, सबके अन्त कारण में निवास करते हैं, सबके ईश्वर और सम्पूर्ण कला के कोश हैं, वे भवतरिपु मेरे हृदय की समस्त भावनाओं को जानकर मेरे ऊपर कृपा करें ॥१०१॥ हे महेश्वर! शिव ने दिक्पालों की जीतकर देवताओं से पूजा प्राप्त की और वर्ष से आपके कंलाश पर्वत को हिला दिया। उसकी इस घृष्टता से कुपित होकर आपने उसे अगूठ से दबाकर रसातल भेज दिया, परन्तु उस छिन्न शरीर वाले राक्षस की प्रार्थना सुनकर कुपित होने पर भी आप पार्वती सहित प्रसन्न हो गए और उसको अभिलषित वरदान दिया। इस प्रकार आप औदारवाणी हैं ॥१०१-१०३॥ प्रशस्तीय वाण ने शशिमौलि की उच्च कोटि की रम्य और मनोहर पूजा के द्वारा सौत्रामणि यज्ञ सम्बन्धी सिद्धियों को तुच्छ कर दिया ॥१०४॥ अब कालिकेय शत्रुओं की जीतकर और देवताओं की पूजा करके गुरुजना की प्रणाम करने के लिये आप तब गणनाथ (गणेश) को पहले ही आपकी गोद में बैठे देखकर कुपित हो गये, फिर आप कालिकेय को गोद लेकर मे पार्वती सहित हँस पड़े ॥१०५॥ आपकी गोदी में बैठे हुए उस बालक ने अपनी बाल प्रकृति के कारण माता की गोद नहीं छोड़ी। तब अपने मृद्ध पुत्र को और किसी प्रकार से समझाने में अपने को असमर्थ पाकर पार्वती सहित आपने अर्धनारी का रूप धारण कर लिया ॥१०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स्वयंभूः सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत

॥१०७॥

शिव उवाच

वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम्

L

॥१०८॥

पिप्पलाद उवाच

हूतो देवैर्महादेव पिता मम महायशः। अवाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९॥
 देवेभ्यश्च तपोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम्। दुःखकोपसमाविष्टो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११०॥
 तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेयं सुरान्यथा। अवध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर ॥१११॥

इंश्वर उवाच

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोषि मेऽनघ। ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान् ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभो। न शशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम् ॥११३॥

इंश्वर उवाच

किंचित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम्। तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नाथ संशयः ॥११४॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद की प्रार्थना सुनकर स्वयंभू शंकर जी अत्यन्त प्रसन्न होकर पिप्पलाद से बोले ॥१०७॥

शिव ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपना अभीष्ट वर मागो ॥१०८॥

पिप्पलाद ने कहा—महादेव ! मेरे अतिविनम्र, साधु, सत्यवादी और महाप्रतापी पिता तथा पतिव्रता माता को देवताओं ने मार डाला। नाथ ! देवताओं द्वारा अपने माता पिता का नाश सुनकर दुःख और नाथ से अन्धा हो गया हूँ, मुझे जीने की इच्छा नहीं हो रही है। इसलिये मुझे ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे मैं देवताओं का नाश कर सकूँ। शशिशेखर ! इस त्रिभुवन में आप ही अवध्य एव सेव्य हैं ॥१०९-१११॥

इंश्वर ने कहा—हे निष्पाप ! यदि तुम मेरे तीसरे नेत्र को देख सको तो तुम देवताओं को नष्ट करने में समर्थ हो जाओगे ॥११२॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर व्यापक शंकर के तृतीय लोचन को देखने के लिये उसने प्रयत्न किया, परन्तु देख न सका। तब शंकर से कहा कि मैं देखने में समर्थ नहीं हूँ ॥११३॥

इंश्वर ने कहा—बालक कुछ और तपस्या करो जब तुम तृतीय नेत्र को देखो तब निश्चय ही अपने अभीष्ट को प्राप्त करोगे ॥११४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेतानवावयं तपसे कृतनिश्चयः। दधीचिसूनुर्ममात्मा तदेव बहुलाः समाः॥११५॥
शिवध्यानंनिरतो बालोऽपि बलवानिव। प्रत्यहं प्रातस्त्याय स्नात्वा मत्वा गुरुन्त्रमात्॥११६॥
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः। हस्तस्वस्तिकमारोप्य नाभौ विस्मृतसंभृतिः॥११७॥
स्यानात्स्थानान्तरोत्कर्षान्विदध्यां शोभयं महः। ददशं चक्षुर्द्वयस्य तृतीयं 'पिप्पलाशन'॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत् ॥११८॥

पिप्पलाद उवाच

शंभुना देवदेवेन वरो दत्तः पुरा मम। तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात्॥११९॥
सर्वं ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः। तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रपच्छ मे॥१२०॥
तदेव पिप्पला, प्रोचुर्बडवाऽपि महाद्युते। माता तव प्रातिथेयी वदन्त्येव दिव गता॥१२१॥
पराभिद्रोहिनिरता विस्मृतात्महिता नराः। इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटे॥१२२॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशनः। अभिमाने ज्वलत्पन्तः साधुवादो निरर्थकः॥१२३॥

ब्रह्मा ने कहा—शकर जी की इतनी बातें सुनकर धर्मात्मा दधीचि-पुत्र ने तपस्या के लिये दृढ़ सकल्प कर लिया और वह वही पर एकमात्र शिव के ध्यान में तल्लीन होकर बालक होते हुये भी बलवान् के समान दीर्घकालीन तपस्या करने लगा। प्रतिदिन प्रातःकाल उठता, स्नानापरान्त भ्रमशः गुरुजनो को प्रणाम करता था। पुन आसन पर मुखपूर्वक बैठकर सुषुम्ना में एकत्र मन से ध्यान लगाता और नाभिस्थान में हस्त-स्वस्तिक लगाकर सप्तर की ओर से एकदम अपना मन हटा लेता था। इस प्रकार अपने ध्यान को एक स्थान से हटाकर दूसरे उत्कृष्ट स्थान में जमाता हुआ शम्भु के महातेज का ध्यान करता था। अन्त में पिप्पलाद ने अपनी उत्कृष्ट योग-साधना द्वारा शकर के तृतीय नेत्र को देख लिया। तब हाथ जोड़कर विनीत भाव से शकर जी से कहा॥११५-११८॥

पिप्पलाद ने कहा—महले देवों के देव शकर ने मूढको बर दिया था कि 'जब तुम मेरे तीसरे नेत्र की ज्योति को देखोगे तब उसी क्षण मुझारे सब मनोरथ पूरे हो जायेंगे'॥११९३॥ इसलिये शत्रु का विनाश करने के लिये मुझे शक्ति प्रदान कीजिये। उसी समय पीपल के वृक्षा और बडवा ने कहा 'हे महातेजस्वी! तुम्हारी माता प्रातिथेयी इस प्रकार बहती हुई ही स्वर्ग चली गई थी कि दूसरो के अपकार में निरत रहने वाले, अपने हित को भुला देने वाले और दूषर उषर मटकने वाले मानव नरक गुण्ड में गिरते हैं॥१२०-१२२॥ माता की वही हुई बातों को सुनकर पिप्पलाद कुपित हो गया। उसका अन्त कारण अभिमान के अग्नि में जलने लगा। उसने कहा कि यह साधु उपदेश निरर्थक है॥१२३॥ उसी क्षण उसके नेत्र से एक कल्ला निकली और बोलने लगी—'दो दो।' चूँकि उस समय

देहि देहीति तं प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता। घडबेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि घडवाकृतिः॥१२४॥
 सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलग्निणी। गभस्तिनी बालगर्भा या माता पिप्पलादिनः॥१२५॥
 तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलग्निणी। उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा॥१२६॥
 अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्यं मे वदस्व तत्। पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्छाद रिपुन्मम॥१२७॥
 जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम्। स प्राह किमिदं कृत्यं सा चाप्याह त्वयोदितम्॥१२८॥
 देवंश्च निर्मितं देहं ततो भीतः शिवं ययौ। तुष्टाव देवं स मुनिः कृत्यां प्राह तदा शिवः॥१२९॥

शिव उवाच

योजनान्तः स्थिताञ्जीवान्न गृहाण मदाज्ञया। तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुरु॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

तीर्यात्तु पिप्पलात्पूर्यं यावद्योजनसंख्यया। प्रातिष्ठद्घडवाह्पा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता॥१३१॥
 तस्यां जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः। तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे त्रस्ताः शंभुमुपागमन्॥१३२॥
 चक्रैरद्वरं पिप्पलेशं पिप्पलादेन तोषितम्। स्तुवन्तोऽभीतमनसः शंभुमूचुर्द्वौकसः॥१३३॥

ब्राह्मण ने घडवा की स्मरण किया था, अतएव कृत्या भी घडवा (घोड़ी) जैसी आकृति में प्रकट हुई। वह सभी प्राणियों को विनष्ट करने के लिए अपने गर्भ में प्रचुर अग्नि धार किये हुई थी॥१२४॥ पिप्पलाद की माता बड़ी शक्तिशाली तथा बालगर्भा थी, इसलिये उसका ध्यान करने के कारण कृत्या भी अग्निगर्भा हुई। इस प्रकार अत्यन्त क्रूर एवं मृत्यु की जाँच के समान भयंकर वह कृत्या उत्पन्न होकर पिप्पलाद से बोली—मेरे लिए कौन सा कार्य है, वह बताओ। पिप्पलाद ने भी उससे कहा कि तुम मेरे पास देवताओं को ला डालो॥१२५-१२७॥ 'अच्छी बात' यह कहकर उसने पहले सामने खड़े हुये पिप्पलाद की ही पकड़ लिया। पिप्पलाद बोली—'कृत्या! यह क्या कर रही है?' वह बोल उठी—'तुमने ही तो कहा है। तुम्हारा शरीर भी तो देवताओं द्वारा ही निर्मित है।' तब पिप्पलाद डरकर शिव की शरण में गया और उनकी स्तुति करने लगा। तब धीकर ने कृत्या से कहा॥१२८-१२९॥

शिव ने कहा—कृत्या! मेरी आज्ञा से यौदन-परिमित मीमा के भीतर रहने वाले प्राणियों को मत पकड़ो। इसलिये यहाँ से दूर जाओ और तब अपना कार्य करो॥१३०॥

ब्रह्मा बोले—अदनन्तर वह ऋषि द्वारा उत्पन्न की हुई घडवारूप भारिणी कृत्या पिप्पल तीर्थ-से पूर्व एक मीमा के क्षेत्र में अवस्थित हो गई। वहाँ उसके शरीर से सम्पूर्ण लोक को भस्म कर देने की क्षमता रखने वाला अग्निज्वाला उत्पन्न हुई। उसको देखकर सब देव भयवस्त हो शरीर के मर्षीय गये। वहाँ जाकर भयभीत देवगण पिप्पलाद से सन्तुष्ट किये गये पिप्पलादपि रत चक्रैरद्वरं गमू की स्तुति करते हुए बोले॥१३१॥-१३३॥

देवा ऊचुः

रक्षस्व शनो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भुवानल । शरण भव सर्वेश' भीतानामभयप्रद ॥१३४॥
 सर्वत परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम् । सर्वेषामेव जन्तूनां त्वमेव शरण शिव ॥१३५॥
 ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या त्वच्चक्षुर्वल्लिनिर्गता । सा जिघांसति लोकास्त्रोत्स्व नःत्राता न चेतर ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तानब्रवीज्जगन्नाथो योजनान्तनिवासिन । न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्यूपमहनिशम् ॥१३७॥
 इहैवाऽऽसध्वममरास्तस्या वो न भय भवेत् ॥१३८॥

ब्रह्मोवाच

पुनरुचु सुरेशान त्वया दत्त त्रिविष्टपम् । तत्पक्त्वाऽत्र कथं नाथ वत्स्यामस्त्रिदशार्चित ॥१३९॥

ब्रह्मोवाच

देवानां वचन श्रुत्वा शिवो वाक्यमथाब्रवीत् ॥१४०॥

शिव उवाच

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुख । यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मत ॥१४१॥
 स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा । स्थितिं करोतु तन्मूर्तीं भविष्यन्त्यखिला स्थिता ॥१४२॥

देवगण बोले—शमा ! रक्षा कीजिये । कृत्या और उससे निकली हुई ज्वाला हम लोगों को नष्ट कर रही है । हे सबके स्वामी ! डरे हुएों को अभय प्रदान देने वाले ! हम लोगों के शरणदाता होइये । हे शिव ! सब ओर से पराजित हुएों तथा घने हुए चित्त वाले सभी प्राणिमा के लिए आप ही शरणदाता हैं । ऋषि से प्रार्थित और आप के नेत्र का ज्वाला से निकली हुई वह कृत्या तीनों लोका को नष्ट करना चाहती है । आप ही हम लोगों को बचा सकते हैं दूसरा कोई नहीं बचा सकता ॥१३४-१३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह मुनिकर जगन्नाथ शंकर ने देवों से कहा—यह कृत्या योजन परिमित सीमा के भीतर रहने वाला कोई क्षति नहीं पहुँचाती, इसलिये तुम लोग रातदिन यही रहो । तुम्हें उसका कोई भय नहीं होगा ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—पुन देवताओं ने शंकर से कहा—आप ने ही तो हम लोगों का स्वयं प्रधान किया है तब हे नाथ ! हे देवों के पूज्य ! उस स्वयं को छोड़कर महा हम कैसे निवास करेंगे ? देवताओं की बातें मुनिकर शिव ने पुन देवा से कहा ॥१३८-१४०॥

शिव ने कहा—जिसके चारों ओर नेत्र है तथा चारों ओर मुख है और जो नित्य ही अपना किरणों से प्रकाश भान रहते हैं तथा ससार के प्राणदाता है वे ही सूर्य देवता अकेले यहाँ सर्वदा प्रत्यक्ष रूप से निवास करेंगे और उनकी मूर्ति में सभी देवता अवस्थित होंगे ॥१४१-१४२॥

ब्रह्मोवाच

तयेति शभुवचनात्पारिजाततरोस्तदा । देवा दिवाकर चम्रुस्त्वष्टा भास्करमब्रवीत् ॥१४३॥

त्वष्टोवाच

इहैवाऽऽस्व जगत्स्वामिच्छेमाग्विबुधान्स्वयम् । स्वाशैश्च वयमप्यत्र तिष्ठाम शभुसन्निधौ ॥१४४॥

चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसहस्रया । गङ्गाया उभय तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमा ॥१४५॥

अङ्गुल्यर्धार्धमात्र तु गङ्गातीर समाश्रिता । तिस्र कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम ॥

तीर्याना तत्र व्युष्टि च क शृणोति ब्रवीति वा ॥१४६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा सर्वे विनीता शिवमब्रुवन् ॥१४७॥

देवा ऊचु

पिप्पलाद सुरेशान शम नय जगन्मय ॥१४८॥

ब्रह्मोवाच

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथ पिप्पलादमबोचत ॥१४९॥

शिव उवाच

नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति । दत्ता पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये ॥१५०॥

दीनार्तकरुणायधु को हि तादृग्भवे भयेत् । तया याता दिय तात तय माता पतिव्रता ॥१५१॥

ब्रह्मा ने कहा—एक ही बात यह कहकर गहर व आदिमानुस्यार उस समय देवताओं ने पारिव्रज वृत्त व काण्ड से मूय व मूर्ति बनाई। तब विश्वकर्मा ने मूय से कहा ॥१४३॥

विश्वकर्मा ने कहा—हमसार व स्वामी। आप यहीं रह और स्वयं इन देवा की रक्षा करें। हम लोग भी अपने अपना अंग स यहीं गहर व समीप निवास करेंगे। इस प्रकार चक्रेश्वर व चारों ओर एक यात्रन के परिमाण में गङ्गा के दोनों तटों पर देव-वृक्ष निवास करने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! व तम करोड़ पाँच सौ देवता गंगा-पर आप आप अगुल मात्र स्थान पाकर भी रहने लगे। वही व तीर्थों का फल बोन बना सत्ता अद्वय गुण सत्ता है ॥१४४ १४५॥

ब्रह्मा ने कहा—अन्तर सब देवता विरल भाव में गहर में बाध ॥१४७॥

देवगण बोले—हे देवायुध! जगद्भारव! पिप्पलाद की अब मान वीर्यव ॥१४८॥

ब्रह्मा ने कहा—अच्छा! यह कहकर निव ने पिप्पलाद से कहा ॥१४९॥

निव ने कहा—यह व मष्ट है। जान पर भी मुझसे पिता नहीं आयेगे और मुझसे पिता व तो दश की वार निर्दिष्ट के लिए अन्न प्राणा का विलीन किया है। इस कारण मैं उन सत्ता दीन-मु मिया पर करना विलीन होकर बोन हूँ। पुत्र! मुझसे पतिव्रता माता भी लीकहित व निवे ही स्वयं गई है। मुझसे माता व सत्ता

समा काश्यत्र न तथा लोयामुद्राज्यलन्धती । यदस्थिभिः सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा ॥१५२॥
 तेनावाप्तं यशः स्फोटं तव मात्राश्रयं कृतम् । त्वया पुत्रेण सर्वत्र नातः परतरं कृतम् ॥१५३॥
 स्वप्नप्रतापभयात्स्वर्गच्युतास्त्वं पातुमर्हसि । कादिशोकांस्तथ भयादमरास्त्रातुमर्हसि ॥
 नाज्जर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं क्वापि विद्यते ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरित चाह मनुष्यलोक अहानि तावन्ति दिवं गतस्य ।
 दिने दिने वर्षसंख्या (हयं) परस्मिन्लोको वासो जायते निर्विकारः ॥१५५॥
 मृतास्ति एवात्र यशो न येयामन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।
 ये दानशोला न नपुंसकास्ते, ये धर्मशोला न त एव शोच्याः ॥१५६॥

ब्रह्मोवाच

भाषितं देवदेवस्य' श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनिः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नायमयाब्रवीत् ॥१५७॥

पिप्पलाद उवाच

वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
 तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥१५८॥
 संरक्षितो वैरभिर्वाधितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्म ।
 तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमीलं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१५९॥

लोयामुद्रा अथवा अलन्धती कोई भी इस भूतल पर नहीं है। उनकी हड्डियों से सम्पूर्ण देवता सर्वदा विजयी और सुखी रहेंगे? इस महात्याग से तुम्हारी माता ने अपने यश को फैलाया और अविनाशी बनाया। परन्तु उनका पुत्र हीकर तुमने उनसे अधिक यश अर्जन नहीं किया। तुम्हारे प्रताप के भय से वे देवता स्वर्ग से च्युत हो गए हैं। भागने को उन्हें दिशा नहीं मिल रही है। ऐसे देवों की तुम रक्षा करो। कही भी दुर्खि/जर्मी की रक्षा से बचकर और कोई पुण्य नहीं है। इस मनुष्यलोक में मनुष्य का जितने दिनों तक विमल यश स्वी प्रकाश फैलता रहता है वह मनुष्य मरने पर दिनों की संख्या के अनुसार उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में सुखपूर्वक निवास करता है। इस ससार में जिनकी स्थाति नहीं है वे ही मृत हैं, जो वेदज्ञानहीन हैं वे ही अन्धे हैं जो दानपरायण नहीं हैं वे नपुंसक हैं और जो धर्मशाल नहीं हैं वे ही शोचनीय हैं ॥१५०-१५६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवाधिदेव शंकर का वचन सुनकर मुनि शान्त हो गये, और दोनों हाथ जोड़कर भगवान् शंकर को प्रणाम करने बोले—

पिप्पलाद ने कहा—जो मेरे हित का ध्यान रखते और वाणी, मन तथा कार्यो द्वारा मेरा उपकार करते हैं, उनके और अन्यो के हित के लिये मैं देव आदि के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ। जिन लोगों ने मेरी रक्षा की,

येरह वर्धितो नित्य मातृवत्पितृवत्प्रभो । तन्नाम्ना जायता तीर्थं देवदेव जगत्त्रये ॥१६०॥
यशस्तु तेदा भविता तेभ्योऽहमनृणस्तत । यानि क्षेत्राणि देवाना यानि तीर्थानि भूतले ॥१६१॥
तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता । तत क्षमेऽहं देवानामपराध निरञ्जन ॥१६२॥

ब्रह्मोवाच

तत समक्ष सुरसाक्षरा गिर, सहस्रचक्षु प्रमुखास्तथाऽग्रत ।
उवाच देवा अपि मेनिरे वचो, दधीचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३॥
बालस्य बुद्धि विनय च विद्या, शौर्यं बल साहस सत्यवाचम् ।
पित्रोर्भक्ति भावशुद्धि विदित्वा, तदाऽवादीच्छकर पिप्पलादम् ॥१६४॥

शकर उवाच

वत्स यद्वं प्रिय काम यच्चापि सुरबलभम् । प्राप्त्यसे वद कल्याण नान्यथा त्व मन कृपा ॥१६५॥

पिप्पलाद उवाच

ये गङ्गायामाप्नुता धर्मनिष्ठा, सपश्यन्ति त्वत्पदान्ज महेश ।
सर्वान्कामानाप्नुवन्तु प्रसह्य, वेहान्ते ते पदमापान्तु शैवम् ॥१६६॥
तात प्राप्तस्त्वत्पद चाम्बिका मे, नाथ प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च ।
सुख प्राप्ता नायनाथ विलोक्य, त्वां पश्येयुस्त्वत्पद ते प्रपान्तु ॥१६७॥

पालन पोषण किया और जा मेरे साथ तथा समान धर्म वाले हैं उनसे भलाइयाँ को भगवान् शकर पूज करें। मैं द्वितया के चक्षुओं को गिर पर धारण करने वाले शकर को नित्य प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! हे देवाधिदेव! जिहाने माता और पिता के समान नित्य मेरा पालन करने इतना बड़ा बनाया है उहीं का नाम स यह साथ प्रसिद्ध हो। जब उन लोगों का किंति राम र म पीयेगी तभी मैं उनसे श्रद्धा से उद्गृह्य हो सकूँगा। इस भूलाल पर जितने सत्य और देवस्थान हैं उन सबमें श्रेष्ठ इस तीर्थ को यदि देवगण सर्वकार करें तो शिव! मैं देवताओं के अपराध को क्षमा कर सकता हूँ ॥१६७ १६२॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर ऋद्ध आदि देवताओं का समूह यह वात रणी गई। देवाने भी दर्शिवन्मुख की वृद्ध हुई वाता का आदर व शोभ स्वकार किया। अन्त में बालक की बुद्धि विद्या विनय शौर्य बल सहस्र सत्य वचन मोक्ष पिता का भक्ति और भाव-शुद्धि का जानकर शकर ने पिप्पलाद से कहा—॥१६३ १६४॥

शकर ने कहा—काम । जा तुम्हारा अमात्र है वह देव दुष्ट हो गया न हो उस बनाओ! अवश्य पात्राग। मन में अथवा न समझना ॥१६५॥

पिप्पलाद ने कहा—नमो । जा घमघमा गया मैं स्तान कर आपसे करणबल का ध्यान करते हैं वे अवश्य ही आपने सब मनोरथा का प्राप्त कर और गरीरज्याय का बाद निवन्धन में बिराजे। नाथ! मेरे पिता और माता ने आपका पावन पद प्राप्त किया पिप्पल और देवताओं ने भी नाथा का नाथ (अंग) का दान कर मुझ प्राप्त किया। इस प्रकार जा कोई आपसे दान का समाग्य प्राप्त करें वे सभी अपने लाभ में जोय ॥१६६-१६७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः। अभिनन्द्य च तं देवः सार्धं वाक्यमथान्वीत् ॥१६८॥
देवा अपि मुदा युक्ता निर्भयास्तत्कृताद्भयात्। इदमूचुः सर्व एव दाधीचं शिवसन्निधौ ॥१६९॥

देवा ऊचुः

सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसशयम्। पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी ॥१७०॥
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽत्माने द्विज। तस्मादन्यतमं ब्रूहि किञ्चिद्वास्यामहे वयम् ॥१७१॥

ब्रह्मोवाच

पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसधा द्विजोत्तमम्। कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शम्भुसुरानिदम् ॥
उवाच पिप्पलादश्च उमां नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२॥

पिप्पलाद उवाच

पितरौ ब्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ। ते धन्या प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वशे स्थिता ॥१७३॥
शुश्रूषणपरा नित्य तत्पादाज्ञाप्रतीक्षका। इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्तिं धियं वपुः ॥१७४॥
परिलभ्य तयोः कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम्। पशूनां पक्षिणां चापि सुलभं मातृदर्शनम् ॥१७५॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा के देव शक्र ने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर पिप्पलाद की प्रशंसा की और पुन देवों के साथ उस बालक से समापन किया। देवगण भी उसके द्वारा उत्पन्न किये गये भय से अपने को मुक्त जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और निर्गम होकर सब देवों ने भी शिव के समीप की दक्षोच्चिगुप्त से कहा ॥१६८-१६९॥

देवगण बोले—जि सदैव तुमने त्रिभुवन को विभूषित करने वाली शिवाज्ञा का पालन किया है और इस प्रकार देवों का जो अभीष्ट था, वह तुमने पूरा कर दिया। द्विज! परन्तु तुमने अब तक परोपकार के लिये ही याचना की, अपने लिये कुछ नहीं मागा, इसलिये कोई दूसरी चीज अपने लिए माँगी, हम अवश्य प्रदान करेंगे ॥१७०-१७१॥

ब्रह्मा ने कहा—बार बार देवा न द्विजवर्य पिप्पलाद से वहाँ बातें दुहराईं। पिप्पलाद ने भी हाथ जोड़कर शम्भु, देव, उमा और पिप्पली को प्रणाम कर के वाक्य कहे ॥१७२॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता को देखना चाहता हूँ, जिनका नाम मैं सदा सुनता हूँ। ससार में वे प्राणी धन्य हैं जो माता और पिता के वश में रहते हैं, उनकी सेवा में समर्पण करते हैं और उनके चरणों की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं। भगुप्य इन्द्रियाँ, शरीर, कुल, पौष्ट्य वृद्धि और शरीर को धारक यदि उनको माता-पिता के सेवार्थ में लगायें तो वह स्वयं ही कृत्यकृत्य हो जायें। पशुओं और पक्षियों को भी माता का दर्शन नित्य हुआ

दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम् । दुर्लभं च तथा चेत्स्यात्सर्वेषा यस्य कस्यचित् ॥१७६॥
 नोपपद्येत सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत् । तयोर्वर्शनमात्रं च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमा ॥१७७॥
 मनोवाक्कायकर्मभ्यः फलं प्राप्तं भविष्यति । पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) ससृता ॥
 तेषां महापातकानां क' संख्या कर्तुमीदवर. ॥१७८॥

ब्रह्मोवाच

तदुपेर्वचनं श्रुत्वा मयि. समन्वयं ते सुरा । विमानवरमाहूदौ पितरौ दपती शुभौ ॥१७९॥
 तव संदर्शनाकाङ्क्षी ब्रह्मसे वाऽऽय निश्चितम् । विपादं लोभमोही च त्यक्त्वा चित्तं शमय ॥१८०॥
 पश्य पश्येति तं प्राहुर्वाधीच सुरसत्तमा. । विमानवरमाहूदौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ ॥१८१॥
 तव सददर्शनाकाङ्क्षी पितरौ दपती शुभौ । वीज्यमानौ सुरस्त्रीभिः स्तूयमानौ च किनरं. ॥१८२॥
 दृष्ट्वा स मातापितरौ 'ननाम शिवसनिधौ । हर्षवाष्पाश्रुनयनौ स कथंचिदुवाच तौ ॥१८३॥

पुत्र उवाच

तारयन्त्येव पितरावग्ये पुत्रा कुलोद्बहा । अहं तु मातुरदरे केवलं भेदकारणम् ॥
 एषं भूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मति ॥१८४॥

बता है, परन्तु मुझ अभाग्य के लिये वह दुर्लभ हो गया है । मैं पूछता हूँ कि यह मेरे जिस पाप का फल है ? यदि सबके लिए मातृदर्शन दुर्लभ होता तो जिस किसी एक व्यक्ति को सुलभ न होने पर कोई आपत्ति नहीं होती, परन्तु मेरे विषय में यह विपरीत है । अतः मेरे समान पापी दूसरा कोई नहीं है । हे श्रेष्ठ देवगण ! यदि मैं अपने माता पिता का दर्शन मात्र पा जाऊँगा तो भन, वचन और कर्म का फल मिल गया—ऐसा मैं समझूँगा । इस लोक में जो जन्म लेकर अपने माता-पिता को नहीं देखते हैं उन महापापियों के पापों का गिनती करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥१७३-१७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस क्षण की बातों को सुनकर देवा ने परस्पर दग्धपा करके कहा कि तुम आज निश्चित रूप से श्रेष्ठ विमान पर आरुढ़ अपने शुभ मूर्ति माना पिता का जा स्वयं तुम्हें दर्शन देने के लिए उत्सुक हैं, दर्शन करोगे । तुम विपाद, लोभ और माह का परित्याग कर अपने चित्त को शांत करो । पुनः उन सर्वश्रेष्ठ देवा ने उस दक्षिदिग्धुन से कहा कि—देवी, देवी, उत्तम विमान पर चढ़े हुए स्वर्ण अभूषणा में सुशोभित तुमका दर्शन देने के लिए लालायित, और पवित्र दग्धति तुम्हारे माता पिता आ रहे हैं । उन्हें देवालयों में पसे-नाल रही हैं और किन्नरगण स्तुति कर रहे हैं । निज के समीप अपने माता-पिता का दर्शन पाकर पितालाद न उह प्रणाम किया । उमते नेत्रों में आनन्द के आँसू आ गया । फिर किन्हीं प्रकार अपने को गोभाल कर उभने सात पिता से कहा ॥१७९-१८३॥

पुत्र ने कहा—यों का धारण करने का दूधरे पुत्र अपने माता पिता का उद्धार करते हैं, परन्तु मैं अभाग्य माता के उदर में आकर केवल उसने दुःख का कारण बना । ऐसा भाग्यहीन होकर मैं आज अत्यन्त दुःख में मोहवश अपने माता पिता को देख रहा हूँ ॥१८४॥

ब्रह्मोवाच

तावालोवय ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शशाक सः। देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमयाद्भवन् ॥१८५॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिगता दिवम्। साक्षात्कृतस्त्वया त्र्यशो देवाश्चाऽऽवासितास्त्वया ॥
त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि। जयशब्दः सुरैरुक्तः प्राबुभूतो महामुने ॥१८७॥
आशिषं तु सुते दत्त्वा दधीचिः सह भार्यया। शभुं गङ्गा सुरान्नत्वा पुत्रं वाक्यमयाद्बोत् ॥१८८॥

दधीचिरुवाच

प्राप्य भार्यां शिवे भक्तिं कुर गङ्गा च सेवय। पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सर्वक्षिणान् ॥
कृतकृत्यस्ततो यत्स आक्रमस्व चिरं दिवम् ॥१८९॥

ब्रह्मोवाच

करोम्येवमिति प्राह दधीचि पिप्पलाजनः। दधीचिः पुत्रमाश्वास्य भार्यया च पुनः पुनः ॥१९०॥
अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स दिवमानभत्। देवा अप्मूर्चिरे सर्वे पिप्पलादं ससंभ्रमा ॥१९१॥

ब्रह्मा बोले—इसके अनन्तर जनकी देवकर यह दुःख के मारे कुछ बोल न सका। तब देवगण तया मातापिता ने पिप्पलाद से कहा—॥१८५॥

देवगण बोले—पुत्र! तीनों लोक में तुम धन्य हो, तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग में भी पहुँच गई। तुमने शिव का साक्षात्कार किया और देवों को भी आश्वासन दिया। तुम्हारे सभान पुत्र के उत्पन्न होने से उत्सव लाला का क्या हारा नहीं होता ॥१८६॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय उसके शिर पर स्वर्ग में पुष्पवृष्टि हुई। महामुने! देवा ने जयघोष किया। पत्नी, समेत दधीचि ने पुत्र का आशीर्वाद दिया और शकर, गंगा तथा देवों को नमस्कार करके, पुत्र से कहा ॥१८७-१८८॥

दधीचि ने कहा—पुन! पहले विवाह करा। शिव में अपनी भक्ति करो, गंगा की सेवा करा, शास्त्रानुसार पुत्रों को उत्पन्न करो, फिर यज्ञों का अनुष्ठान करो और उनमें भरपूर दक्षिणा दा। इस प्रकार अपने जीवन का सफल बना बिरकाल तक स्वर्ग में बने रहो ॥१८९॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद ने ऐसा ही कहेंगा यह अपने पिता दधीचि से कहा। दधीचि ने भी बार-बार अपने पुत्र को आश्वासन देकर देवताओं से आज्ञा लेकर भार्या सहित स्वर्ग का चले गये। तदनन्तर सब देवताओं ने भी सहसा पिप्पलाद से कहा ॥१९०-१९१॥

देवा ऊचु

कृत्वा शमय भद्र ते तदुत्पन्न महानलम्

॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे । असत्यं नैव वक्ताऽहं यूय कृत्यां तु ब्रूत ताम् ॥१९३॥
मा दृष्ट्वा सा महारौद्रा विपरीतं करिष्यति । तामेव गत्वा विबुधा प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४॥
अनलं च यथाप्रीतिं ते उभे नेत्यबोचताम् । सर्वेषां भक्षणायैव सृष्टा चाहं द्विज-मना ॥१९५॥
तथा च मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत् । महाभूतानि पञ्चापि स्यावरं जङ्गमं तथा ॥१९६॥
सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्वयतथ्यं नावशिष्यते । मया समन्त्र्य ते देवा पुनरुच्युः प्रभाषि ॥१९७॥
भक्षयेतामुभौ सर्वं ययानुश्रमतस्तथा । बडवाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु नारद ॥१९८॥

बडवोवाच

भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्य मे सुरसत्तमा

॥१९९॥

ब्रह्मोवाच

बडवा सा नदी जाता गङ्गाया सगता मुने । तदभवस्तु महानग्निय आसीदतिभीषण ॥
तमाहुरमरा यद्भिर्भूतानामावितो विदुः

॥२००॥

देवगण बोले—हृयां आर उतसे उत्पन्न नरकर जाल का ग त करा। तुम्हारा क्याण हमा ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद न उन देवा से कहा—मैं उनका शान्त करने में असमर्थ हूँ। मैं अमर नहीं कह रहा हूँ। आप लोग स्वयं उतसे कहिए। मुझका देवकर वह महाभयकर हृयां उत्पन्न हो करेगा। तदुत्पन्न देवगण उमा हृयां काण्ड गम और उतसे तथा अग्नि से प्रसूतक गन्त हो जाते का कहा। उन दाना मे कहा नह । मर भस्म कर देने क लिय हा मेरी तथा मुझसे उत्पन्न इस भट नू अग्नि की प्राप्ति न सृष्टि की है। तब भला कहे वि। रीति कस हो सता है? गोवा भूभूज स्वाकर तथा जगम स्वका हमारे मुम म समया अब हम शिष्य में उ कहने का तोप नहीं है। पुन मुझसे मक्का बर उन देवताआ न उन दाना से क्या—तब हम दाना कम्हा करण मा दाना। नाए। मुनी क्या न भी दवताआ म हम प्रकार कहा ॥१९० १९८॥

बडवा ने कहा—हृथठ देवा। आप लोग की दकता से रुक रुक मरा भय है। ॥१९९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुन। इतना कहने की बडवा नहीं हो गई। और गंगा म मिल गई। उमने उमात्र जो अनिर्गम्य महान अनल या उमारी क्या ने कहिन कहा और वह पञ्चवहाभया का आदि भूभूज दाना जता है ॥२००॥

सुरा ऊचुः

आपो ज्येष्ठतमा ज्ञेयास्तथैव प्रथम भवान् । तत्राप्यपापति ज्येष्ठ समुद्र (तिज्येष्ठस्तस्य त्व) मशन कुरु ॥
पर्यव तु घय क्षमो गच्छ भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥२०१॥

ब्रह्मोवाच

अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथं त्वहम् । व्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदकं महत् ॥२०२॥
भवन्त एव तेऽप्याहुः कथं तेऽग्ने गतिर्भवेत् । अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी ॥२०३॥
हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कन्याभूचु सरस्वतीम् ॥२०४॥

देवा ऊचुः

नयनमनलं शीघ्रं शिरसा वरुणालयम् ॥२०५॥

ब्रह्मोवाच

सरस्वती सुरानाह नंका श्वता च धारणे । युक्ता चतसृभिः शीघ्रं बहेय वरुणालयम् ॥२०६॥
सरस्वत्या च च श्रुत्वा गङ्गा च यमुना सथा । नमदा तपती चैव सुरा प्रीचु पृथक्पृथक् ॥२०७॥
ताभिः समन्वितोवाह^१ हिरण्यकलशेऽनलम् । सस्थाप्य शिरसाऽऽधाय ता जग्मुर्वरुणालयम् ॥२०८॥
सस्थाप्य यत्र देवेश सोमनाथो जगत्पति । अभ्यास्ते विवृथं सार्धं प्रभासे शशिभूषण ॥२०९॥

देवो ने कहा—जल सबसे थप्ट माना गया है उसी प्रकार आप भी हैं। उसने भी जगति समुद्र सबसे ज्येष्ठ है इसलिये उसको ही लाओ। जैसा हम कह रहे हैं उसी के अनुसार जाओ और अग्नि देवों के भक्षण करो ॥१०१॥

ब्रह्मा बोले—अनल ने देवा से कहा जहाँ जल है वहाँ मैं कैसे रह सकता हूँ? यदि आप मुझ उस अग्न को जल के मुख्य पट्टों का देता मैं जा सकता हूँ। यह सुनकर उन्होंने कहा—अग्ने! किस प्रकार तुम वहाँ तक जा सकते हो? अग्नि ने भी देवा से कहा कि यदि (ब्रह्मा का) गुणशालिनी क्या सरस्वती मुझ सुवर्ण कलश में रख कर वहाँ तक के जाय तो मुझ में गति हो सकती है अर्थात् वहाँ मैं जा सकता हूँ। उसकी उक्त बातों को सुनकर देवों ने मेरी क्या संस्कर्ता से कहा—॥२०२ २०४॥

देवगण बोले—तुम इस अनल का शीघ्र ही शिर पर रखकर समुद्र में ले जाओ ॥२०५॥

ब्रह्मा बोले—सरस्वती ने देवताओं से कहा मैं अनेक अनल का ले जाने में असमर्थ हूँ। यदि चार और रुह्यक मिल जायें तो शीघ्र ही समुद्र में पहुँचा सकता हूँ।

सरस्वती ने बातें सुनकर देवताओं ने गंगा यमुना नमदा और तपती (तापती) से अलग अलग कहा। अन्त में सरस्वती ने उन चारों सहयोग नदियों के साथ सुवर्ण कलश में अनल को रखा और उस कलश का गिर पर

प्रापयामासुरनलं पञ्चनद्यः सरस्वति । अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनैः शनैः ॥२१०॥
ततः सुरगणाः सर्वे शिवमूचुः सुरोत्तमम् ॥२११॥

देवा ऊचुः

अस्मिन् च पावनं ब्रूहि अस्माकं च गवा तथा ॥२१२॥

ब्रह्मोवाच

शिवः प्राह तदा सर्वान्ब्रह्माप्लुत्य यत्नतः । देवाश्च गावस्तत्पापान्मुच्यन्ते नात्र सशयः ॥२१३॥
प्रक्षालितानि चास्थीनि ऋषिदेहभवाग्नयः । तानि प्रक्षालनादेव तत्र प्राप्तानि पूतताम् ॥२१४॥
यत्र देवा मूषतपापास्तत्तीर्थं पापनाशनम् । तत्र स्नानं च दानं च ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥२१५॥
गवां च पावनं यत्र गोतीर्थं तदुदाहृतम् । तत्र स्नानान्महाबुद्धिर्गोमेधफलमाप्नुयात् ॥२१६॥
यत्र तद्ब्राह्मणास्थीनि आसन्पुण्यानि नारदः । पितृतीर्थं तु यं ज्ञेयं पितॄणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥२१७॥
भस्मास्थिनखरोमाणि प्राणिनो यस्य वस्यचित् । तत्र तीर्थं संप्रमेरन्यावच्चन्द्रार्क्षतारवम् ॥२१८॥
स्वर्गो वासो भवेत्तस्य अपि दुष्कृतकर्मणः । तथा चश्रेयवरास्तोयान्त्रिषु तीर्थानि नारदः ॥
ततः पूताः सुरगणा गावः शभुमयाबुधन् ॥२१९॥

पारण करने समुद्र की ओर ले जाती। जहाँ प्रभास क्षेत्र में देवताओं के साथ गन्धार के पनि तथा देवताओं के प्रभु वाहर रहते हैं, वहाँ अन्तर्गत रत्नकर सरस्वती आदि पाँच नदियों ने पुनः उमगे समुद्र में पड़वा दिया। वहाँ वह जल का घीरे घीरे जलना रहता है। तदनन्तर सब देवताओं ने गुरुप्रेष्ठ वाहर से कहा ॥२०६-२११॥

देवगण बोले—अस्ति, हम सब और आपके जिस प्रकार पवित्र हो गये हैं इसका आप यत्नादयः ॥२१२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब वाहर ने उन सब देवताओं से कहा कि यज्ञार्थक गदा म रत्नान् करने में सब देव और आपके अनेक पाप से छूट जायेंगे, इसमें कुछ भी गलत नहीं। ऋषि-वर्गों ने प्राप्त अग्निवर्षा वहाँ केवल प्रक्षालन मात्र कर देने से पवित्र हो जायेंगे। जहाँ देवगण पाप-मुक्त हो गये थे, वह तीर्थ पापों का विनष्ट करने वाला है। वहाँ स्नान करने और दान देने से ब्रह्महत्या आदि पाप भी छूट जाते हैं। जहाँ आपके पवित्र हो गई था, वह तीर्थ पाप से कहा जाता है। बुद्धिमान्, वसिष्ठ वहाँ स्नान कर मानव (पुत्र) का पुत्र प्राप्त करता है। नारद! जिस स्थान पर ब्राह्मण दर्शन का पवित्र अग्निवर्षा रत्नान् गये थी, वह विद्वत् का परमानन्द हो जाता। तृतीय नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पवित्र तीर्थ में जिस किसी प्राणी के शरीर का भस्म अग्नि लग और राज पहुँच जाते हैं, वह दुष्ट भी होने पर भी स्वर्ग में सब सब निवास करता है जब तक मृत, ब्रह्मा और मार है। नारद! इस भूमि के चतुर्विध तीर्थों में तीन तीर्थ उत्तम होते हैं। इससे उत्तम गुरुणा और आपके पवित्र हो जान पर समुद्र में जाते ॥२१३-२१९॥

गोसुरा ऊचुः

याम स्व स्वमधिष्ठानमत्र सूर्यं प्रतिष्ठित । अस्मिन्स्थिते दिनकरे सुरा सर्वे प्रतिष्ठिता ॥२२०॥
भवेयुजंगतामीश तदनुज्ञातुमर्हसि । सूर्यो ह्यात्मास्य जगत्स्तस्थुषश्च सनातन ॥२२१॥
दिवाकरो देवमयस्तनात्माभि प्रतिष्ठित । यत्र गङ्गा जगद्धात्री यत्र च त्र्यम्बक स्वयम् ॥
सुरवासे प्रतिष्ठान भवेद्यत्र च त्र्यम्बकम् ॥२२२॥

ब्रह्मोवाच

आपृच्छथ पिप्पलाद त सुरा स्व सदन ययु । पिप्पला कालपर्याये स्वर्गं जग्मुरथाक्षयम् ॥२२३॥
पादपाता पदं विप्र पिप्पलाद प्रतापवान् । क्षेत्राधिपत्ये सस्याप्य पूजयामास शकरम् ॥२२४॥
दधीचिसुनुर्मुनिरुप्रतेजा, अवाप्य भार्यां गौतमस्याऽऽत्मजा च ।
पुत्रानयावाप्य श्रिय यशश्च, सुहृज्जनं स्वर्गमवाप धीर ॥२२५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुच्यते । सर्वं क्रतुफल पुण्य स्मरणादघनाशनम् ॥२२६॥
किं पुन स्नानदानान्यामादित्यस्य तु दर्शनात् । चण्डेश्वर पिप्पलेशो देवदेवस्य नामनी ॥२२७॥
सरहस्य विदित्वा तु सर्वकामानवाप्नुयात् । सूर्यस्य च प्रतिष्ठानात्सुरवासे प्रतिष्ठिते ॥
प्रतिष्ठान तु तत्क्षेत्र सुराणामपि बल्लभम् ॥२२८॥

गायें और देवगण बोले—हम सब अपने अपने स्थान को जा रहे हैं। यहाँ सूर्य प्रतिष्ठित है। इनके यहाँ रहने से सब देवता भी रहने हे सत्कार के ईश । ऐसा आप आजा प्रदान कीजिये। इस वर्तमान जगत् का सूर्य सनातन आत्मा है। हमने सूर्य को सब देवा के रूप में वहाँ प्रतिष्ठित किया है अतः हम सभी वहाँ प्रतिष्ठित से हैं। जहाँ जगन्माता गंगा और स्वयं त्रिनेत्र शंकर विराजमान हैं वह स्थान सकल देवताओं का मंदिर तथा सस्यान है ॥२२१-२२२॥

ब्रह्मा ने कहा—देववृन्द उस पिप्पलाद से पूछ कर अपने लोक को चले गये। वे पापल के वंश भी कालक्रम से अमर लोक को बने गये। इधर प्रतापी विप्र पिप्पलाद ने क्षेत्र का अधिपति के रूप में वृक्षों का स्थापना करके शकर की पूजा की। पुन अतिशेखरी मुनि दधीचिपुत्र ने गौतम-कन्या को अपना भाय्य बनाई और उससे पुत्र उत्पन्न किये। तदनंतर वह पार पुण्य यश और लक्ष्मी को प्राप्त कर इष्ट मित्रों के साथ स्वर्ग में चला गया। तब से वह तीर्थ पिप्पलेश्वरताय कहा जाता है। वह ताय सब यशों के फल को देने वाला है और उसके स्मरण से समूह पापों का नाश हो जाता है। उस ताय में स्नान दिन और आदित्य के दशन से जा फल प्राप्त होता है उसका तो कहना ही क्या ? चण्डेश्वर और पिप्पल ये दोनों देवदेव शकर के नाम हैं। उस ताय का रहस्य को जानकर मनुष्य अपना समूह कामनाओं को प्राप्त करता है। सूर्य की वहाँ प्रतिष्ठा होने से और सब देवताओं के निवास करने से यह क्षेत्र देवताओं का भी प्रिय हो गया है। यह आस्थान अत्यन्त पुण्यप्रद है, इस पुण्य आस्थान को जो पढ़ता मुनता अथवा स्मरण करता

इतीदमाख्यात्मनीव पुण्यं, पठेत वा यः शृणुयात्स्मरेद्वा
स दीर्घजीवी धनवान्धर्मयुक्तश्चान्ते स्मरञ्जंभुमुपैति नित्यम् ॥२२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रेश्वरपिप्पलेश्वरपापप्रणाशनगोतीर्थपितृतीर्थसूय
प्रतिष्ठानकोट्यादितीर्थवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥
शौतमीमाहात्म्ये एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नागतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नागतीर्थमिति स्थातं सर्वकामप्रदं शुभम् । यत्र नागेश्वरो देवः शृणु तत्स्यापि विस्तरम् ॥१॥
प्रतिष्ठानपुरे राजा शूरसेन इति श्रुतः । सोमवंशभवः धीमान्मतिमान्गुणापरः ॥२॥
पुत्रार्थं स महायत्नमकरोत्प्रियया सह । तस्य पुत्रविचारादासीत्सर्पो वै भीषणाकृतिः ॥३॥
पुत्रं तं गोपयामास शूरसेनो महीपतिः । राज्ञः पुत्रः सर्प इति न वदितुं हिन्दते जनः ॥४॥
अन्तर्वर्ती परो वापि मातरं पितरं विना । धात्रेऽप्यपि न जानाति नामात्यो न पुरोहितः ॥५॥

हे, वह दीर्घजीवी, धनवान् और धार्मिक होता है तथा अन्तःकाल में मनुष्य का स्मरण करता हुआ शिव वा सात्रिप्थ प्राप्त करता है ॥२२९-२२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पिप्पलेश्वरतीर्थवर्णनं नामक एक सौ दसवीं अध्याय समाप्त ॥११०॥

अध्याय १११

नागतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—भव का भनार्थी को देने वाला नागतीर्थ नामक एक शुभ तीर्थ है जहाँ नागेश्वर देव निवास करते हैं। उसके विषय में भी विस्तारपूर्वक बात बताई है, सुनी। प्रतिष्ठानपुर में शूरसेन नाम का अत्यन्त गुणवान्, धीमान् और बुद्धिमान् सोमवंशी राजा था। पुत्र की कामना से उसने अपनी प्रिया के साथ महान् प्रयत्न किया। विरवाले के बाद उसके एक भयंकर आकार वाला सौ पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा शूरसेन ने उसको अत्यन्त गुप्त रखा। ताकि कहीं कोई यह न जान जाय कि राजा का पुत्र सर्प है। माता-पिता के अनिश्चित कोई भी दूसरा व्यक्ति, चाहे वह अत्यन्त आत्मीय ही क्यों न रहा हो, नहीं जानता था।

तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं सभायौ नृपसत्तमः। संतापं नित्यमाप्नोति सर्पाद्विरमपुत्रता ॥६॥
एतदस्ति महासर्पो बलिं नित्यं मनुष्यवत्। स सर्पः पितरं प्राह कुरु 'चूडामपि' क्रियाम् ॥७॥
तथोपनयनं चापि देदाध्ययनमेव च। यावद्देवं न चाधीते तावच्छूद्रसमो द्विजः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पुत्रबचः शूरसेनोऽतिदुःखितः। ब्राह्मण कंचनाऽऽनीय सस्कारादिं तदाऽकरोत् ॥
अधीतवेदः सर्पोऽपि पितरं चाब्रवीदिदम् ॥९॥

सर्प उवाच

विवाहं कुरु मे राजन्स्त्रीकामोऽहं नृपोत्तम। 'अन्यथाऽपि च कृत्यं तेन सिध्येदिति' मे मतिः ॥१०॥
जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽखिलसंस्कृतीः। न कुर्याद्यः पिता तस्य नरकान्नास्ति निष्कृतिः ॥११॥

ब्रह्मोवाच

विस्मितः स पिता प्राह सुत तमुरणाकृतिम् ॥१२॥

शूरसेन उवाच

यस्य शब्दादपि त्रासं यान्ति शूराश्च पूरया। तस्मै कन्यां तु को दद्याद्वद पुत्रं करोमि किम् ॥१३॥

यहाँ ०२ कि मन्त्रों, पुरोहित और घाई भी इस रहस्य की नहीं जानती थी। उस भाषण सप की देखकर वह श्रेष्ठ राजा भार्या सहित अत्यन्त व्यथित रहता था और सोचता था कि इस सर्प पुत्र की अपेक्षा पुत्र का न होना ही अच्छा था। इसपर वह सप सबदा मनुष्य के समान बोलता था। एक दिन उस सर्प ने पिता से कहा कि मेरा चूडाकरण संस्कार, उपनयन और वेदाध्ययन करा दो। द्विज जब तक वेद का अध्ययन नहीं करता तब तक वह शत्रु के समान रहता है ॥१-८॥

ब्रह्मा बोले—शूरसेन पुत्र की बातें सुनकर अति दुःखित हुआ और विवश हो किन्तु ब्राह्मण का बुलाकर संस्कार आदि करवा दिया। बाँडे़ दिना बाद जब वह वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका तब पुन पिता से कहा ॥९॥

सर्प ने कहा—राजन् ! मेरा विवाह कर दो। नृपोत्तम ! मैं इस मध्य स्त्री का इच्छुक हूँ। यदि ऐसा नहीं करने तो मुझारे बलायक, पूणता नहीं सिद्ध होगी, ऐसी मरी चारणा है। जो पिता पुत्रा को उत्तम कर वेद-विधि से उनके सब संस्कार नहीं करता उसे नरक से छुटकारा नहीं मिलता है ॥१०-११॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर आश्चर्य म पडा हुआ पिता अपने सपरिवारियों पुत्र स बोला ॥१२॥

शूरसेन ने कहा— जिसके राज्य भाग से बड़े बड़े वीर भयभीत हो जाते हैं, उसे भला अपन। कन्या कौन देगा ? पुत्र ! मुझी बलाओ मैं क्या करूँ ? ॥१३॥

१४ सतोप नित्य नाऽऽनीय ०। २५ ०वादिनी कि०। ३६ ०मणित्रिया । त०। ४७ ०स्वाराधय तयाऽऽ०। ५५ ०र ह्यत्रोद्वेह०। विवाहकर्म हे तात मय त्व कुरु निर्भय । अ०। ६६ ०या पितृहृत्य मेव । ७५ ०ह त्व सर्पो ह्यतिभीषण । य०। ८ ०मानवा ।

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवर्चनं श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः

॥१४॥

सर्प उवाच

विवाहा बहवो राज्ञाज्ञां सन्ति जनेश्वर। प्रसह्याऽऽहरणं चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च॥१५॥
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवेत्। नो चेदत्रैव गङ्गायां मरिष्ये नात्र संशयः॥१६॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रनिश्चयं ज्ञात्वा अपुत्रो नृपसत्तमः। विवाहार्थममात्यास्तानाहूयेदं वचोऽब्रवीत्॥१७॥

शूरसेन उवाच

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकरः। गुणवान्मतिमाञ्जरो दुर्जयः शत्रुतापनः॥१८॥
रथे नामे स धनुषि पृथिव्यां नोपमीयते। विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यहं बृद्धस्तथैव च॥१९॥
राज्यभारं सुते न्यस्य निश्चिन्तोऽहं भवाम्यतः। न दारसंग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रियः॥२०॥
बालभावं नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च। विवाहायाय कुर्वन्तु यत्नं मम हिते रताः॥२१॥
न मे काचित्तदा चिन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽमजः। सुते न्यस्तभरां यान्ति कृतिनस्तपसे वनम्॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर पंडित सर्प ने कहा ॥१४॥

सर्प ने कहा—राजन् ! प्रजाओं के प्रभु ! राजाओं के बहुत प्रकार के विवाह होते हैं, बलात् कन्यान्धरण, और युद्ध द्वारा जीतकर विवाह करना भी राजाओं के लिये विधेय है। पुत्र का विवाह ही जाने पर ही पिता कृतकृत्य होता है। यदि आप मेरा विवाह नहीं कराएंगे, तो मैं इसी गंगा में डूबकर प्राण दे दूंगा, इसमें सन्देह नहीं ॥१५-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा शूरसेन ने उस पुत्र के हठ को जानकर विवाह-परायण बनने के लिये मन्त्रियों को बुलाकर कहा ॥१७॥

शूरसेन ने कहा—मेरा गुणवान्, दूर, बुद्धिमान्, दुर्जय और शत्रुओं को घेरे से न रहने देने वाला पुत्र नागेश्वर अब युवराज हो गया है, वह रथ, हाथी और धनुष चलाने में इस पृथ्वी पर अपनी समता नहीं रखता। अतः अब उसका विवाह कर देना चाहिए। मैं बृद्ध हो चला हूँ, इसलिये विवाहोपरान्त पुत्र को राज्यभार सौंप कर निश्चिन्त हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है। जब तक पुत्र का विवाह नहीं होता तब तक यह मेरा प्रियपुत्र बालभाव का नहीं छोड़ सकता, अतः मेरे हितचिन्तक आप लोग इसने विवाह के लिये प्रयत्न कीजिये। जब मेरा पुत्र विवाहित हो जायगा तब क्याचिन् मुझे किसी प्रकार की चिन्ता न होगी। प्रायः विजय पुत्र को सारा भार सौंप कर तपस्या के लिये वन में चले जाते हैं ॥१८-२२॥

ब्रह्मोवाच

अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत् । ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम् ॥२३॥

अमात्या ऊचुः

तव पुत्रो गुणग्रेष्ठस्त्वं च सर्वत्र विश्रुतः । विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किंतु चिन्त्यते ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

अमात्येषु तयोक्तेषु गम्भीरो नृपसत्तमः । पुत्रं सर्पं त्वमात्यानां न चाऽऽख्याति न ते विदुः ॥२५॥

राजा पुनस्तानुवाच^१ का स्यात्कन्या गुणाधिका । महावशभवः^२ श्रीमान्को राजा स्याद्गुणाश्रयः^३ ॥२६॥

संबन्धयोग्यः शूरश्च यत्संबन्धः प्रशस्यते । तद्राजवचनं श्रुत्वा अमात्यानां महामतिः ॥२७॥

कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिते रतः । राज्ञो मतिं विदित्वा^४ तु इङ्गितज्ञोऽब्रवीद्विदम् ॥२८॥

अमात्य उवाच

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपतिः । वाजिबारणरत्नानां यस्य संख्या न विद्यते ॥२९॥

अष्टौ पुत्रा महेश्वासा महाराजस्य धीमतः । तेषां स्वसा भोगवती साक्षालक्ष्मीरिवापरा ॥

तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता^५ ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—सभी मन्त्रियो ने राजा की बातें सुनकर अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर हर्षपूर्वक अत्यन्त तेजस्वी राजा से कहा ॥२३॥

मंत्री बोले—आपके कुमार बड़े गुणवान् हैं और आप भी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, तब आपके पुत्र के विवाह में परामर्श और चिन्ता की क्या आवश्यकता है ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—मन्त्रियो के इस प्रकार कहने पर गम्भीर महाराज ने न तो सर्पपुत्र के विषय में कुछ कहा और न मन्त्रिया ने कुछ जाना । राजा ने पुनः उन मन्त्रियो से कहा कि वह कौन-सी गुणवती कन्या है और वह कौन अत्यन्त बुद्धीमत्, गुणवान्, श्रीमान् तथा सम्बन्ध योग्य राजा है, जिसके साथ सम्बन्ध करना श्रेयस्कर और प्रशस्त होगा । राजा की बातें सुनकर मन्त्रियो में अत्यन्त बुद्धिमान्, कुलीन, साधु, चेष्टाभा द्वारा मन की बात जानने वाले और राजा के अत्यन्त हितैषी एक मन्त्री ने राजा का अभिप्राय समझकर कहा ॥२५-२८॥

मंत्री बोले—महाराज ! पूर्व देश में विजय नाम का एक राजा है, जिसके असंख्य हाथी, घोड़े और रत्नों की गणना नहीं की जा सकती । उस धीमान् राजा के धनुर्विद्या में कुशल आठ पुत्र हैं । उसकी भोगवती नाम की बहिन साक्षात् द्वितीय लक्ष्मी के समान है । राजन् ! आपके पुत्र के योग्य वही कन्या है, वही मेरा कथन है ॥२९-३०॥

१ घ पुत्ररूपत्वः । २ क० चक्रस्य कन्या । ३ घ ०सधरः श्री० । ४ घ ०णाधिकः । स० ।

५ घ ०त्वाऽय । ६ क ००दितम् । व० ।

ब्रह्मोवाच

बृद्धामात्यवचः श्रुत्वा राजा तं प्रत्यभापत

॥३१॥

राजोवाच

सुता तस्य कथं मेऽस्य सुतस्य स्याद्वदस्व तत्

॥३२॥

बृद्धामात्य उवाच

लक्षितोऽसि महाराज^१ यत्ते मनसि वर्तते^२। यच्छूरसेन कृत्यं स्यादनुजानीहि मा ततः॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बृद्धामात्यवचः श्रुत्वा भूपणाच्छादनोक्तिभिः। संपूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह^३॥३४॥
 स पूर्वदेशमागत्य महाराजं समेत्य च। संपूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नोतिसंभवं^४॥३५॥
 महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः। शूरसेनस्य नृपते सुनोर्नागस्य धीमतः॥३६॥
 विवाहापाकरोत्साधि मिथ्यामिथ्यावचोक्तिभिः। पूजयामास नृपति भूपणाच्छादनादिभिः॥३७॥
 अवाप्य पूजा नृपतिर्दंवाभोत्ययदत्तदा। तत आगत्य राज्ञेऽसौ बृद्धामात्यो महामतिः॥३८॥
 शूरसेनाय तद्वृत्तं वंवाहिकमवेदयत्। ततो बद्धतिथे काले बृद्धामात्यो महामतिः॥३९॥
 पुनर्वलेन महता वस्त्रालंकारभूषितः। जगाम तरसा सर्वैरन्यैश्च सचिवैर्वृतः॥४०॥

यहमा ने कहा—बृद्ध मन्त्री की बात सुनकर राजा ने उससे कहा ॥३१॥

राजा ने कहा—उसकी कन्या किस प्रकार मेरे पुत्र की भार्या होगी यह बतलाओ ॥३२॥

बृद्धे मन्त्री ने कहा—महाराज ! आपने मन में जो बात है, उसका मैंने समझ लिया। 'शूरसेन' अब जा रहा है, उसने लिय मुझे आजा दीजिये ॥३३॥

यहमा ने कहा—बृद्धमन्त्री की बात सुनकर राजा ने अभूषण, वस्त्र और आदर की वार्णा से उसका सम्मान कर बहुत बड़ा सेना ने साथ उग भेज दिया। यह पूरा देश भरकर महाराज से मिला, उनकी, पूजा करने की सम्मति उपाया और अनेक प्रकार के, वार्णा से उस महाबुद्धिमान मन्त्री ने भूपति शूरसेन के बुद्धिमान पुत्र नाग के साथ महाराज-कन्या भागवत्वा के विवाह की, मन्थि की। इस वाप में उसने सत्य, असत्य प्रत्यक्ष प्रकार के उपाया और उक्तिवा का सहारा लिया, विविध अभूषणा और वस्त्र आदि भेट की। सामर्थ्या से उस राजा की पूजा भी की। पूजा से प्रसन्न होकर राजा ने कन्या-दान की स्वीकृति दे दी। कार्यसिद्धि जानकर उस बृद्धमन्त्री ने लौट कर शूरसेन से भार्या वैवाहिक पटना को मुना दिया। इसके उपरान्त कुछ समय बीत जाने पर वह महाबुद्धिमान् बृद्धमन्त्री बहुत बड़ी सेना के साथ वस्त्र और अभूषणा से सुसज्जन होकर अत्यन्त मन्थिवा का भी साथ

विवाहाय' महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान्'। सर्वं प्रोवाच बृद्धोऽसावमात्य सचिवंवृत ॥४१॥

बृद्धामात्य उवाच

अत्राऽऽगन्तु न चाऽऽया(चेच्छ)ति शूरसेनस्य भूपते । पुत्रो नाग इति श्रूयतो बुद्धिमान्गुणसागर ॥४२॥
क्षत्रियाणां विवाहाश्च भवेयुर्वहुधा नृप । तस्माच्छस्त्रैरलकारं विवाहं स्यान्महामते ॥४३॥
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्या वाच वदन्ति हि । तस्माच्छस्त्रैरलकारं विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

बृद्धामात्यवच श्रुत्वा विजयो राजसत्तम । मेने वाक्य तथा' सत्यममात्य भूपति' तदा ॥४५॥
विवाहमकरोद्राजा भोगवत्यां सविस्तरम् । शस्त्रेण च यथाशास्त्र प्रेषयामास ता पुन ॥४६॥
स्वानमात्यास्तथा गाश्च हिरण्यमुरगादिकम् । बहु दत्त्वाऽयं विजयो हर्षेण महता युत ॥४७॥
तामादायाश्च सचिवा बृद्धामात्यपुरोगमा । प्रतिष्ठानमथाभ्येत्य शूरसेनाय तां स्नुषाम् ॥४८॥
न्यवेदयस्तथोचुस्ते विजयस्य वचो बहु । भूषणानि विचित्राणि दास्यो वस्त्रादिक च यत ॥४९॥
निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरै । विजयस्य तु येऽमात्या भोगवत्या सहाऽऽगता ॥५०॥
तान्भुजयित्वा राजाऽसी बहूमानपुर सरम् । विजयाय यथा प्रीतिस्तथा कृत्वा व्यसर्जयत् ॥५१॥
विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी । श्वभूदश्वशूरयोनिन्य शुभयन्ती सुमध्यमा ॥५२॥

लेकर दप के साथ राजा विजय के पास गया। आर अपने सहायक मन्त्रियों के सहित उस बृद्ध महामन्त्र ने विवाह के लिये महाराज से प्रस्ताव किया ॥३४-४१॥

बृद्ध मन्त्री ने कहा—राजा शूरसेन का वह गुणसागर बुद्धिमान पुत्र नाग यहाँ आना नहीं चाहता है। नृप! क्षत्रिया के विवाह बहुत प्रकार से होते हैं इसलिये महामते! यह विवाह शस्त्र और अभूषणों द्वारा ही सम्पन्न हो जाय। क्षत्रिय और ब्राह्मण सत्य वचन बोलते हैं। इसलिये शस्त्र और अभूषणों से विवाह विधि सम्पन्न हो एसो आना दीजिये ॥४२-४४॥

ब्रह्मा ने कहा—बृद्ध मन्त्री की बात सुनकर महाराज विजय ने अमात्य राजा तथा बृद्धमन्त्री की बात को साथ समझ लिया। राजा ने शास्त्रानुसार शस्त्र के साथ धूमधाम से भागवतों का विवाह कर उसकी पतिगृह भेज दिया। इस धूम कृत्य से प्रफुल्लित होकर राजा विजय ने अपने मन्त्रियों सेवकों और ब्राह्मणादिकों को गायें सुगन्ध और घोंच इत्यादि पुरस्कार और दान म दिये। उधर बृद्ध मन्त्रा सहित सचिवा ने प्रतिष्ठान पुर आकर राजा शूरसेन को उनकी पुत्रवधू अर्पित कर दी। तथा महाराज विजय का बहुत से बातें सुनायी साथ ही उनके दिये हुए विविध प्रकार के वस्त्र अभूषण और दास आदि अर्पित कर के लौग इत्यादय ही गये। राजा शूरसेन ने भी भोगवत के साथ आये हुए राजा विजय के मन्त्रियों का बहुत आदर-सत्कार करके राजा विजय की

१ घ विजयाय । २ ड ०मासगुणात्कर । ३ घ तज्ज अथमत्वा बद्धस्य भूपति । वि० ।

४ ड ०पतिस्तदा ।

भोगवत्याश्च यो भर्ता महासर्पोऽतिभीषण । एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते ॥५३॥
 सुगन्धद्रुसुमाकीर्णं तत्राऽऽस्ते सुखशीतले । स सर्पो मातरं प्राह पितरं च पुन पुन ॥५४॥
 मम भार्या राजपुत्री किं मा नैवोपसर्पति । तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सर्पमातेदमब्रवीत् ॥५५॥

राजपत्न्युवाच

धात्रिकं गच्छ सुभगे शीघ्रं भोगवतीं धृद । तव भर्ता सर्प इति तत सा किं वदिष्यति ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवतीं तदा । रहोगता उवाचेदं विनीतवदपूर्ववत् ॥५७॥

धात्रिकोवाच

जानेह सुभगे भद्रे भर्तारं तव देवतम् । न चाऽऽख्येयं त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भोगवत्प्रब्रवीदिदम्

॥५९॥

भोगवत्युवाच

मानुषीणां मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेत् । किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यते ॥६०॥

प्रसन्नता के अनुरूप उद्दे विदा किया । राजा विजय की वह रूपवती सुवर्णी और सुन्दर कटिवर्त्ति, कया सदा अपने सास-ससुर की गुथूपा में लगा रहती थी । भोगवती का जो सप पति या वह भी एकांत जनगूँघ रमा से सुगन्धित और सुगन्धित पुष्पो से सुसज्जित गृह में निवास करता था । एक दिन उस सप ने अपनी माता और पिता से अनुरोध पूर्वक बार बार कहा कि मेरी राज कन्या पति मेरे पास क्या नहीं आता है । पुत्र का बात सुनकर सामाता ने कहा ॥५५, ५६॥

राजपत्नी ने कहा—पार्वी ! सुन्दरी ! जाओ गाघ्र भोगवती से कहो कि तुम्हारा पति सप है इसका उत्तर मे वह क्या कहता है सा पुत्र बनाना ॥५६॥

ब्रह्मा ने कहा—पार्वी ! जैसा आता यह कहकर भोगवती का पास गई । एकांत पात्रर बनीं नम्रता और अप्रवृत्त वग से बाली ॥५७॥

पार्वी बोली—सुभगे ! भद्र ! मैं जानती हूँ कि तुम्हारा पति देवता है । परन्तु तुम निश्चय ही इस बात का कहो भी न कहता कि तुम्हारा पति मनुष्य नहीं बल्कि सप है ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—पार्वी की बात का सुनकर भोगवती ने यह कहा ॥५९॥

भोगवती बोली—माधारण्यका मानुषी स्त्रिया का पति मनुष्य ही होता है । देवतानाम् स्त्रयीं तो महान् पुण्य स प्राप्त होता है ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेदयत् । सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम् ॥६१॥
हरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा तां कर्मणो गतिम् । भोगवत्यपि तां प्राह उक्तपूर्वा पुनः सखीम् ॥६२॥

भोगवत्युवाच

कान्तं दर्शय भद्रं ते वृथा याति धयो मम ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा दर्शयामास सर्पं तमतिभोषणम् । सुगन्धकुसुमाकीर्णं शयने सा रहोगता ॥६४॥
तं दृष्ट्वा भोषणं सर्पं भर्तार रत्नभूषितम् । कृताञ्जलिपुटा 'वाक्यमवदत्कान्तमञ्जसा ॥६५॥

भोगवत्युवाच

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे दैवत पतिः ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा तं सर्पं 'सर्पभावने' । खेलयामास तन्वङ्गी गीतेश्चैवाङ्गसंगमे ॥६७॥
सुगन्धकुसुमं पानेस्तोषयामास तं पतिम् । तस्याश्चैव प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने ॥६८॥
स्मृत्वा सर्वं दैवकृतं रात्रौ सर्पोऽब्रवीत्प्रियाम्

ब्रह्मा ने कहा—उस धाई ने भोगवती की बातों को सप, उसकी माता और राजा की कर्मश विस्तारपूर्वक सुना दिया । राजा उसकी बातों को सुनकर उसके कम-विपाक का स्मरण करके रो पड़ा । इसपर भोगवती ने अपने उस सन्देशवाहक सखी से कहा ॥६१-६२॥

भोगवती ने कहा—मेरे कान्त को दिखलाओ, मेरा जीवन व्यर्थ बीतता जा रहा है, यह कार्य करने से तुम्हारा कल्याण होगा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर उस सेविका ने सुगन्धित फूलों से सजी शय्या पर विराजमान उस भोषणाकृति सर्प को दिया दिया । एकान्त में अवस्थित भोगवती ने रत्नों से अलंकृत भयङ्कर सर्पपति को देखकर विनीत भाव से बद्धाञ्जलि होकर पति से तुरन्त कहा ॥६४-६५॥

भोगवती ने कहा—मैं धन्य हूँ अनुगृहीत हूँ कि मुझ देवता पति-प्राप्त हुआ ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कह कर स्वयं शय्या पर स्थित हो उस सुकुमारी ने अपने सर्पपति के साथ उसके मनो-नुकूल गीत और अगस्त्यशय्यापारपूर्वक दाम्पत्य क्रीडा की, और सुगन्धित फूल एवं पेय पदार्थों से अपने पति को प्रसन्न किया । हे मुनि (नारद) ! उसी राजकन्या के प्रसाद से सर्प की पूर्व-स्मृति हो गई । भाग्य की सब वस्तुतः स्मरण करने सर्प ने रात्रि में अपनी पत्नी से कहा ॥६७-६८॥

राजकन्याऽपि मा दृष्ट्वा न भीताऽसि कथं प्रिये । सोवाच दंबविहित कोऽतिक्रमि तुमीश्वर ॥
पतिरेव गति स्त्रीणां सर्वदेवं विधेयत ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति दृष्टस्तामाह नागं प्रहसितानन

॥७०॥

सर्प उवाच

तुष्टोऽस्मि तव भक्त्याऽहं किं ददामि तवेप्सितम् । तव प्रसादाच्चावङ्गि सर्वस्मृतिरभूदियम् ॥७१॥
शक्तोऽहं देवदेवन कुपितेन पिनाकिना । महेश्वरकरे नागं शेषपुत्रो महाबल ॥७२॥
'सोऽहं पतिस्त्वच्च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा । उमावाक्याज्जहासोच्चं शम्भु प्रीतो रहोगत ॥७३॥
ममापि 'चाऽऽगत भद्रे हास्य तद्देवसनिधौ । ततस्तु कुपितं शम्भुं प्रादाच्छापं ममेदृशम् ॥७४॥

शिव उवाच

मनुष्ययोनौ त्वं सर्पो भविता ज्ञानवानिति

॥७५॥

सर्प उवाच

ततः प्रसादितं शम्भुस्त्वया 'भद्रे मया सह' । ततश्चोक्तं तेन भद्रे गौतम्या मम पूजनम् ॥७६॥
'कुर्वतो' ज्ञानमाधास्ये' यदा 'सर्पाकृतेस्तव' । तदा विशापो भविता' भोगवत्या प्रसादतः ॥७७॥

सर्प ने कहा—प्रिये ! तुम राजकुमारी हाथकर भ, मुझका देखकर क्या नहीं डरी ? यह मुनकर उरने कहा—
भाय विषाण कः उलट देने में कौन समय हो सकता है ? पति है मया स्त्रिया की विशेष गति होता है ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—यत्ना कः बाता का मुनकर मुस्तुराते हुए नाग ने हय से कहा ॥७०॥

सर्प बोला—तुम्हारी इस पति भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारी कौन-सी कामना मैं पूरा करूँ ? तुम्हारी कृपा में मुझ पूर का रसी घटनाओं का अब स्मरण हो आया है । मैं शपनाग का पुत्र महाबल नाम का कृपाकर रहा था । एक बार देवदेव विवने ने कुपित होकर मुझ नाग दे दिया था । वही मैं तुम्हारा पति हूँ और तुम भद्रा पूर अम्ब का कहे भागवती नाम का भार्या हो । एक बार एकान्त में मैं उमा क प्रभावशाली से शक्ति प्राप्त में हूँ पंड । भद्र ! उस दयता क ममापि मुझे भी हँसी आ गई । तब कुपित होकर पाकर ने मुझ परा धार दे दिया ॥७१-७४॥

शिव ने कहा—तुम मनुष्य कुल में ज्ञानी गौर होये ॥७५॥

सर्प ने कहा—भद्र ! तदनन्तर तुम्हारे माप मैं भी बड़ी विनम्रता से उनका प्रगम किया । तब उद्दान कहा कि गाम्भः भद्र ! मज मेरा पूजन करोगे तब भागवती की कृपा में मुझ भी क गौरव एकबार किया । मुमुक्षा ।

१ प ०६ म३ त्व च । २ प ०३ तत्र हगित दय० । ३ प ०४ च । ४ प ०५ ह । पुनः ०॥ ५ प ०६ पुरा । ६ प ०७ वी सर्वमावेन सहमस्तिपुरमस्म । त० । ७ प ०८ मापय० । ८ प ०९ तत् । ९ प ०१० च । १० प ०११ ता वग मय० । ११ प ०१२ ता वग मो० ।

तस्मादिदं ममाऽऽपन्नं तव चापि शुभानने । तस्माद्भोत्वा गौतमीं मां पूजां कुरु मया सह ॥७८॥
ततो विद्यापो भविता आवां यावः शिवं पुनः । सर्वेषां सर्वदाऽऽर्तानां शिव एव परा गतिः ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा भर्तृवचनं सा भर्त्रा गौतमीं ययौ । ततः स्नात्वा तु गौतम्यां पूजां चक्रे शिवस्य तु ॥८०॥
ततः प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूपं ददौ मुने । आपृच्छथ पितरौ सर्पो भार्यया गन्तुमुद्यतः ॥
शिवलोकं ततो ज्ञात्वा पिता प्राह 'महामतिः' ॥८१॥

पितोवाच

युवराज्यधरो ज्येष्ठः पुत्र एको भवानिति । तस्माद्राज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुतान्वहन् ॥
याते मयि परं धाम ततो याहि शिवं पुरम्' ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराट् । कामरूपमवाप्पाय भार्यया सह सुव्रत ॥८३॥
पित्रा मात्रा तथा पुत्रं राज्यं कृत्वा सुविस्तरम् । याते पितरि स्वर्लोकं पुत्रान्स्थाप्य स्वके पदे ॥८४॥
भार्यामात्यादिसहितस्ततः शिवपुरं ययौ । ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमिति श्रुतम् ॥८५॥

उसी शाप के प्रभाव से मेरे और तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति आई। इसलिये मुझको वहाँ ले चलो और मेरे साथ पूजा करो। तब हम दोनों शाप-मुक्त होकर पुनः शिव का समीप्य प्राप्त करेंगे। भगवान् शंकर ही सदा सब विषय प्राणियों के एकमात्र आधार हैं ॥७६-७९॥

ब्रह्मा ने कहा—मति की बातें सुनकर वह पति (साँप) को लेकर गौतमी के तट पर गई। इसके अनन्तर गौतमी ने स्नान कर उसने शिव की पूजा की। मुने! पूजा से प्रसन्न होकर शंकर ने नाग का दिव्य रूप दिया। अपनी माता और पिता से अनुमति लेकर वह साँप भार्या के साथ शिवलोक जाने के लिये उद्यत हुआ। यह जानकर महाबुद्धिमान् पिता ने कहा—॥८०-८१॥

पिता ने कहा—तुम्हीं मेरे एकमात्र युवराज पद का धारण करने वाले पुत्र हो। इसलिये मेरे सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कर बृहत् से पुत्रों का उत्पन्न करो। फिर जब मैं स्वर्ग को सिंघार जाऊँ तब तुम शिवपुरी जाओ ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर नागराज ने उसे स्वाकार कर लिया। तदनन्तर वह महाव्रती नाग यथेच्छ रूप पाकर पत्नी, पिता, माता तथा पुत्रों के साथ अपने विस्तृत राज्य का उपभोग करने लगा। पुनः पिता ने स्वर्ग लोक चले जाने पर अपने पद पर पुत्रों को स्थापित करके स्त्री और आमात्य आदि के सहित वह

'यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठितः। तत्र स्नानञ्च दानं च सर्वकृतुफलप्रदम् ॥८६॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नागतीर्थवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

मातृतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मातृतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि ॥१॥
देवानामसुराणां च संगरोऽभूत्सुदाहणः। नाशवनुवंस्तदा जेतुं देवा दानवसंगरम् ॥२॥
'तदाऽहमगमं देवंस्तिष्ठन्तं शूलपाणितम्। अस्तवं विविधैर्वायैः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥३॥
संमन्य देवैरसुरैश्च सर्वैर्यदाऽऽहृतं संमथितुं समुद्रम् ।
यत्कालकूटं समभून्महेश, तत्त्वां विना को प्रसितुं समर्थः ॥४॥

शिवपुरी को चला गया। तब से वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जहाँ भोगवती के द्वारा नागेश्वर देव प्रतिष्ठित हुये हैं, वहाँ स्नान और दान करने से सम्पूर्ण यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ-माहात्म्य वर्णन के प्रसंग मे नागतीर्थ वर्णन-नामक एक मौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

अध्याय ११२

मातृतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला मातृतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से भी मनुष्य मानसिक व्यथाओं से छूट जाता है। एक समय देवा और दानवों मे अति घोर युद्ध हुआ। जब देवगण वह दानव-मश्रम जीतने मे समर्थ नहीं हुए, तब मैं देवताओं के सहित कैलाश पर्वत पर विराजमान रहकर के पास गया और हाथ जाडकर पीरे पीरे विविध काश्यप से उनकी स्तुति करने लगा—
'महेश! जब सब देवता और दानव आपस मे मत्तना कर समुद्र का मथन करने लगे, उस समय जी बालकूट विष उत्पन्न हुआ, उसको निगलने मे आपको बिना दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? जा कामदेव पुण्य-दान के

पुष्पप्रहारेण^१ जगत्त्रयं यः, स्वाधीनमापादयितुं समर्थः ।
मारो हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो, वितायमानो विलयं प्रयात । ॥५॥
विमध्य वारीशमनङ्गशत्रो, यदुत्तमं तत्तु दिवौकसेभ्यः ।
दत्त्वा विषं संहरन्नीलकण्ठ, को वा धर्तुं त्वामृते वं समर्थः ॥६॥

ततश्च तुष्टो भगवानादिकर्ता त्रिलोचनः

शिव उवाच

दास्येऽहं यदभीष्टं वो ब्रूयन्तु सुरसत्तमाः

॥७॥

देवा ऊचुः

दानदेम्यो भय घोरं तत्रैहि वृषभध्वज । जहि शत्रून्सुरान्माहि नाथवन्तस्त्वया प्रभो ॥९॥
निष्कारण. सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भुवान्यदि । तदाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ता सर्वदेहिनः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्पुवतस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवशत्रवः । तत्र तद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम् ॥११॥
ततस्त्रिलोचनः^२ श्रान्तस्तमोरूपधरः शिव । ललाटाद्व्यपतन्तस्य युध्यतः स्वेदबिन्दवः ॥१२॥
स सहरन्दत्यगणास्तामसीं मूर्तिमाश्रित । ता मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्भुवं ययुः ॥१३॥
स सहरन्सर्वदेत्यास्तदाऽगच्छद्भुव हरः । इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वा महोमिमाम् ॥१४॥

प्रहार सेनाओं लोको को अपने वर्णभक्त करने में समर्थ हुआ, तथा अन्य सब देवताओं द्वारा वन्दित हुआ, वही मदन जब आप पर अपनी सक्ति का प्रयोग (प्रदान) करने लगा तब स्वयं विनष्ट हो गया । मदन-रिपु ! समुद्र को मथने से जो उत्तम चीजें निकलीं उनका तो देवताओं ने ले लिया, परन्तु नीलकण्ठ ! विनाशकारी विष आपको दिया गया । सत्य है कि आपको छाड़कर उस महाविष को धारण करने में कौन समर्थ था ? इस स्तुति से आदिकर्ता शंकर प्रसन्न हो गये ॥१-७॥

शिव ने कहा—हे देवदेष्टा ! आप लोग अपना अभीष्ट बनाइए, मैं अवश्य दूंगा ॥८॥

देवो ने कहा—हे वृषबाहन ! दानवा से हम देवा को क्षाण भय हा गया है, आप वहाँ चलिये और राक्षसा को मारकर दवा की रक्षा कीजिये । प्रभो ! तुम सही हम सनाथ हैं । शमो ! यदि आप आज अकारण वधु (रक्षक) नहीं हलिये तो दुःखा से आत्त मुक्त प्राणी क्या कर सकेंगे ? ॥९-१०॥

ब्रह्म ने कहा—इस प्रकार निवेदन किये गान पर शंकर जी तुरन्त वहाँ गये जहाँ राक्षस लग थे । वहाँ उनके साथ राक्षसा का भयकर युद्ध हुआ । इसके अनन्तर तमिस रूप धारण करने वाले त्रिनेत्र शिव यत्र-से गये । युद्ध करते समय उनके लगट से पराजित की बूंद गिरने लगी । तब वे रौद्र मूर्ति धारण कर दैत्यो का सहार करने लगे । उनकी उस भयकर महारक्षणी मूर्ति को देखकर वे दानव मेरुपृष्ठ से भाग कर पृथ्वी पर चले जाये । यह देखकर शंकर जी

तथैव कोपाद्बुद्धोऽपि शत्रूस्ताननुधावति । तथैव युध्यतः शंभोः पतिताः स्वदेविन्दव ॥१५॥
यत्र यत्र भुवं प्राप्तो बिन्दुमहिंश्वरो मुने । तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जज्ञिरे ततः ॥१६॥
प्रोचुर्महेश्वरं सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति । ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः ॥१७॥

शिव उवाच

स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम् । अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः शृण्वन्तु मम भाषितम् ॥१८॥
यत्र यत्र द्विषो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः । रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भूयाद्द्विषः ॥
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विषः ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

ताश्च जम्मुर्भुवं भित्त्वा यत्र ते दैत्यदानवाः । तान्हत्वा मातरः 'सर्वान्देवारीनतिभोषणान् ॥२०॥
पुनर्देवानुपाजग्मुः' पया तेनैव मातरः । गताश्च मातरो यावद्यावच्च पुनरागताः ॥२१॥
तावद्देवाः स्थिता आसन्गीतमोतीरमाश्रिताः । प्रस्थानास्तत्र मातृणा सुराणां च प्रतिष्ठितेः ॥२२॥
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं पुण्यं विजयवर्धनम् । मातृणां यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्थं पृथक्पृथक् ॥२३॥
तत्र तत्र बिलान्यासग्रसातलगतानि च । सुरास्ताभ्यो 'धरान्प्रोचुर्लोकं पूजां यथा शिवः ॥२४॥

सब दानवा का सहार करते हुये पृथ्वी पर चले आये । वहाँ भी शकर को देखकर राक्षस भयभीत हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर इधर उधर भागने लगे । शकर भी क्रुद्ध होकर उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे । जैसे जैसे वे दौड़ते थे वैसे वैसे उनके शरीर से पसीने की बूँदें गिरने लगीं । मुनि ! 'जहाँ-जहाँ शिव के शरीर से निकल कर बूँदें पृथ्वी पर गिरीं वहाँ-वहाँ शिव के आकार की मातायें उत्पन्न हो गईं । उन माताओं ने शकर से कहा कि 'हम अमुरा को खाँयेंगी ।' यह सुनकर मगधान् ने सब देववृन्दा के सामने ही कहा ॥११-१७॥

शिव ने कहा—ये सब राक्षस स्वर्ग से भागकर पृथ्वी पर आए, फिर वहाँ से रसातल को चले गये । इसलिये आप सब मेरा कहना मुनिये । जहाँ-जहाँ शत्रु जायें, वहाँ-वहाँ मातायें भी जायें । इस समय मेरे भय से शत्रु रसातल को चले गये हैं । इसलिये आप सब भी शत्रुआ का पीछा करती हुई रसातल को जाइये ॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे मातायें पृथ्वी को भेदकर वहाँ गईं, जहाँ दैत्य-दानव थे । वहाँ जाकर सभी महामयार राक्षसा को मार डाला । पुनः वे उर्ग मार्ग से जिस मार्ग से इधर से गई थी—देवताओं के पास चली आईं । जिस समय मातायें रसातल का गईं और जब तक पुनः वहाँ से नहीं लौटीं तब तक देवगण गीतभी के तट पर स्थित रहे । वहाँ माताओं के प्रस्थान करने और देवताओं के प्रतिष्ठित होने से वह क्षेत्र पवित्र और विजय देनेवाला क्षेत्र माना गया । जहाँ माताओं की उत्पत्ति हुई और जहाँ रसातल की जाने वाले बिल थे वे पृथक्, पृथक्, एक-एक भान्नीय बह गये ।

प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्य पूजा भवतु सर्वदा । इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसस्तत्रैव मातर ॥२५॥
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदुः । सुराणामपि सेव्यानि किं पुनर्मनुषादिभिः ॥२६॥
तेषु स्नानमयो दानं पितृणां चैव तर्पणम् । सर्वं तदक्षयं ज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा ॥२७॥
यस्तिवद भृगुयाग्नित्य स्मरेदपि पठेत्तथा । आरयान मातृतीर्थानामायुष्मान्स सुखी भवेत् ॥२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुक्पुत्रिसवादे देवतीर्थमातृतीर्थप्रतिष्ठानवर्णनं नाम

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

गीतमीमाहास्ये त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इदमप्यपरं तीर्थं देवानामपि दुर्लभम् । ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१॥

देवा ने माताआ का वर दिया कि जिस प्रकार लोक में गिव व पूजा होता है उसी प्रकार सबदा माताआ को भ पूजा प्राप्त होगी । यह कहकर देवता अतर्हित हो गये परन्तु माताय वही रही । जहाँ जहाँ माताय स्थित रहा वहाँ वहाँ मातृत्व य स्थापित हुय । वे त य देवा के लिये भ सेवा माने गये हैं फिर मनुष्या के लिये तो कहना ही क्या ? उन तीर्थों में किये गये स्नान दान और पितृ शरण अति कम उस प्रकार असंभव होते हैं जिस प्रकार शिव के वरदान वाक्य । जो मनुष्य मातृत्वाय वा कथा को सुनता स्मरण करता और पठता है वह दास ज व आर सुख होता है ॥२० २८॥

यात्रह्यमहापुराणे म देव ताय मातृताय प्रतिष्ठान-वर्णनं नाम कण्वसौवारहर्षा अध्यायः समाप्तः ॥११२॥

अध्याय ११३

ब्रह्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यह एक दूसरा मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्मताप नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है जो देवा के लिये भी दुर्लभ माना गया है ॥१॥ मुनिश्रेष्ठ । जब राक्षस रस तल में घुस गये तब उनके पीछ पीछ

स्थितेषु देवसैन्येषु प्रविष्टेषु रसातलम् । दैत्येषु च मुनिश्रेष्ठ तथा मातृषु ताननु ॥२॥
 मदीयं पञ्चमं ववत्रं गर्दभाकृति भोषणम् । तद्ववत्रं देवसैन्येषु मयि तिष्ठत्युवाच ह ॥३॥
 'हे दैत्याः किं पलायन्ते न भयं वोऽस्तु सत्वरम् । 'आगच्छन्तु सुरान्सर्वान्भक्षयिष्वे क्षणादिति' ॥४॥
 निवारयन्तं मामेवं भक्षणापोद्यतं तथा । तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे वित्रस्ता विष्णुमब्रुवन् ॥५॥
 ब्राहि विष्णो जगन्नाथ ब्रह्मणोऽस्य 'मुखं लुन । चक्रधुनिबुधानाह च्छेदमि चञ्चेन' वै शिरः ॥६॥
 किं तु तच्छिन्नमेवेदं संहरेत्सचराचरम् । मन्त्रं ब्रूमोऽत्र विबुधाः श्रूयतां सर्वमेव' हि ॥७॥
 त्रिनेत्रः कशिरश्छेत्ता स' च धत्ते न संशयः । मया च' शंभु' सर्वैश्च स्तुत प्रोक्तस्तथैव च ॥८॥
 याग' क्षणी दृष्टफलेऽसमर्थ', स नैव कर्तुः फलतीति मत्वा ॥
 फलस्य दाने प्रतिभूजंतीति, निश्चित्य लोकः प्रतिकर्म यातः ॥९॥
 ततः सुरेशः संतुष्टो देवानां कार्यसिद्धये । लोकानामुपकाराय तथेत्याह सुरान्प्रति ॥१०॥
 तद्ववत्रं पापहृषं यद्भीषणं लोमहर्षणम् । निकृत्य नक्षत्रास्त्रैश्च वयं स्थाप्यं चेत्यथाब्रवीत् ॥११॥
 तत्रेला विबुधानाह नाहं बोद्धुं शिरः क्षमा । रसातलमयो यास्ये उददिशचाप्याथाब्रवीत् ॥१२॥

मातायें मई गई और देव सेनायें बही रह गईं, उस समय मेरा पाँचवाँ गर्वहे की अहंति का भयकर मूल देवताओं और सैनिकों के बीच मुझको बैठा देख कर बोल उठा ॥२-३॥ हे दैत्यो ! तुम लोग क्या भाग रहे हो ? तुम लोग भयभीत हो होओ, आओ, मैं एक ही क्षण में सब देवा को खा जाऊँगा ॥४॥ मैं उस मूल को जो इस प्रकार देवा को खाने के लिए उद्यत हो रहा था, रोकने लगा । यह देखकर सब देव भयभीत हो भगवान् विष्णु से बोले ॥५॥ विष्णो ! क्या कीजिये । यद्वा वे इस मूल को रक्षा काट डालिये । विष्णु ने देवताओं से कहा 'मैं चक्र से शिरच्छेद तो अवश्य कर सकूँ । हँ, किन्तु वह शिर कट जाने पर भी चराचर संहार जगत् का संहार कर सकता है । इसलिये देवगण ! मैं इस विषय में एक उचित परामर्श दे रहा हूँ, संवधान होकर मुनिए । भगवान् जिलावन इस दुष्ट शिर का छेदन कर, इसकी धारण कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं ।' यह सुनकर मैंने और सब देवताओं ने मिलकर सार्वभौम स्तुति की और कहा ॥६-८॥ 'यज्ञ क्षणभर में सम्पन्न होने वाला, प्रत्यक्ष फल देने में असमर्थ तथा वर्णा को पानही देता है, इस सिद्धान्त को मानकर, फल देने में शरारत न । साक्षी माना जाता है और तब प्रत्यक्ष काम में सहाय प्रवृत्त होता है ॥९॥ तदनन्तर सन्तुष्ट हुए सब देव कार्य को सिद्ध करवा लोककल्याण के लिये देवताओं से कहा कि मैं ऐसा हूँ, कर्तृणा ॥१०॥ परन्तु इस दुष्टिना रूप वाले, भीषण और रागते सजे कर देने वाले दैत्य को भगवन् अस्त्रों से काट कर वही स्थापित करें । यह बनाइए ॥११॥ यह सुनकर पृथ्वी ने देवा से कहा कि मैं इस शरीर का रीने

शोष यास्ये क्षणादेव पुनश्चोचु शिव सुरा । त्वयैवेतद्ब्रह्मशिरो धार्यं लोकानुकम्पया ॥१३॥
अच्छेदे जगता नाशश्छेदे दोषश्च तादृश । एव विमृश्य सोमेशो दधार कशिरस्तदा ॥१४॥
तद्दृष्ट्वा दुष्कर कर्म गौतमो प्राप्य पावनोम् । अस्तुवञ्जगतामीश प्रणयाद्भक्तित सुरा ॥१५॥

देवत्वमित्र कशिरोऽतिभीम, तान्भक्षणायोपगत नितृत्य

नखाप्रसूच्या शकलेन्दुमौलिस्त्यागेऽपि दोषात्कृपयाऽनुधत्ते

॥१६॥

तत्र ते विबुधा सर्वे स्थिता ये ब्रह्मणोऽन्तिके । तुष्टुर्विविबुधेशान कर्म दृष्ट्वाऽतिदंवतम् ॥१७॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम् । अद्यापि ब्रह्मणो रूपं चतुर्मुखमवस्थितम् ॥१८॥
शिरोमात्रं तु य पश्येत्स गच्छेद्ब्रह्मण पदम् । यत्र स्थित्वा स्वयं रदो लूनवान्ब्रह्मण शिर ॥१९॥
हृद्गतोऽयं तदेव स्पात्तत्र साक्षाद्दिवाकर । देवानां च स्वरूपेण स्थितो यस्मात्तदुत्तमम् ॥२०॥
सौर्यं तीर्थं तदार्प्यात् सर्वं क्रतुफलप्रदम् । तत्र स्नात्वा रविं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥२१॥
महादेवेन यच्छिन्नं ब्रह्मण पञ्चमं शिर । क्षेत्रेऽविमुक्ते सस्थाप्य देवतानां हितं कृतम् ॥२२॥

मे असमर्थ हूँ यदि ऐसा कहूँ तो इसके भार से मैं ही रसातल चला जाऊँगा । समुद्र ने कहा यदि मैं इसको धारण करूँ तो क्षण भर में ही सुख जाऊँगा । निदान विवश हो देवी ने पुनः शंकर से कहा कि लोक पर दया करके आप ही इस शिर को धारण काजिये ॥१२-१३॥ शंकर जाने इस शिर को न काटने से ससार का नाश हो जायगा और काट देने पर भाँसा ही दोष होगा यह विचार कर उस समय उस गदभाकृति शिर को धारण कर लिया ॥१४॥ इस दुष्कर काय को देखकर सब देवता पावन गौतम के पास पर जाकर प्रभु से भक्तिपूर्वक जगत्पति शंकर की स्तुति करने लगे ॥१५॥ देवी के मध्य शत्रु धनकर रहने वाले ब्रह्मा के पाँच मुख को जाकि सब देवताओं को खा जाने के लिये उद्यत था—द्विताया के चंद्र की गिर पर धारण करने वाले आपने नखाग्र रूपा सूचा अस्त्र से काट कर दोषो के कारण त्यागने योग्य उस शिर को भी ह्मपुत्रक धारण कर लिया ॥१६॥ वहा ब्रह्मा के सनाप जिनने देवता थे उ होने शंकर के इस देवतात् काय को देखकर उनका अत्यन्त स्तुति क ॥१७॥ तब से बहुताय ब्रह्मतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ । आज भी ब्रह्मा का चतुर्मुख रूप वहा स्थित ह ॥१८॥ जो मनुष्य उनके शिरोभाग का दशन कर लेता है वह अवश्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है । जहा स्थित होकर स्वयं शंकर ने ब्रह्मा का शिर काटा था वहा हृद्गताय कहलाता है । वहाँ साक्षात् सूर्य देवताओं के स्वरूप से स्थित है । वह अयुक्तग शिर तीर्थ माना जाता है और सब यनों का फल देने वाला है । उस तीर्थ में स्नानकर सूर्य बिम्ब का दशन करने से मनुष्य आवागमन के वाचन से छूट जाता है ॥१९-२१॥ महादेव ने ब्रह्मा के जिस पाँचव शिर का छदन किया और अविमुक्त क्षत्र में जिसका स्थापना कर देवताओं का हित साधन किया गोमती तटवर्ती ब्रह्मतीर्थ में उस शिर

ब्रह्मतीर्थं शिरोमात्रं यो दृष्ट्वा गौतमी तटे। क्षेत्रेऽविमुक्ते तस्यैव स्थापितं योऽनुपश्यति॥
कपालं ब्रह्मणः पुण्यं ब्रह्महा पतता व्रजेत् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मतीर्थप्रह्लादशिरोलिङ्गशिवतीर्थसूर्य-
तीर्थादिषडशीतितीर्थवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुदचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अविघ्नतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अविघ्नं तीर्थमाख्यातं सर्वविघ्नविनाशनम्। तत्रापि घृतमाख्यास्ये शृणु नारद भविततः॥१॥
देवसन्ने प्रवृत्ते तु गौतम्याश्चोत्तरे तटे। समाप्तिर्नैथ सत्रस्य संजाता विघ्नदोषतः॥२॥
ततः सुरगणाः सर्वे भामयोच्चर्हन्ति तदा। ततो ध्यानगतोऽहं तानवोच' बोध्य कारणम्॥३॥

मात्र का दर्शन करने जो व्यक्ति अविमुक्त क्षेत्र में ब्रह्मकपाल का दर्शन करता है, वह यदि ब्रह्मघाती भी हो तो भी पवित्र हो जाता है ॥२३-२३॥

अ. ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मतीर्थ, गिरालिंग, शिवतीर्थ, सूर्यतीर्थ, आदि छियास। तीर्थों का वर्णन
नामक एक गौ सेरहदी अध्याय समाप्त ॥११३॥

अध्याय ११४

अविघ्नतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मैं अविघ्न का वृत्त करने वाला अविघ्ननामक विद्याएक तीर्थ है। उसका भी वृत्तान्त
याज्ञिका है। नारद ! तुम थका से सुनो। एक समय गौतमी के उत्तर तीरे पर देवयज्ञ प्रारम्भ हुआ, परन्तु बिज्जी
और बुद्धि का कारण उम्र, यज्ञ का समाप्ति नहीं हो पाया। तदनन्तर मंत्र देवताओं ने मुझसे और बिष्णु ने निवेदन
किया। मैंने ध्यानस्थ रह कर यज्ञ-दृष्टि में कारण जान लिया और कहा कि यह यज्ञ गणेशद्वारा किया के

विनायककृतैर्विघ्नैर्न तत्सत्रं समाप्यते । तस्मात्स्तुवन्तु ते सर्वे आदिदेवं विनायकम् ॥४॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्नात्वा ते गौतमीतटे । अस्तुवन्भक्तितो देवा आदिदेवं गणेश्वरम् ॥५॥

देवा ऊचुः

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसंभवानाम् ।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं ब्रजामः ॥६॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसंप्रदाता ।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरान्तकोऽपि, तं पूजयामास घघे पुराणाम् ॥७॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन्महाशक्तौ सत्वरमाम्बिकेयः ।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजं, पूर्णं भविष्यन्ति मनोभिलाषाः ॥८॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या, जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव ।
अतोऽवदन्सुरसंघाः कृतार्थाः, सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः ॥९॥
यो मातुस्तुल्यगतोऽयं मात्रा, निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम् ।
संगोपयामास पितुर्जटासु, गणाधिनाथस्य विनोद एषः ॥१०॥
पपी स्तन मातुरयापि तृप्तो, यो भ्रातृमात्सर्यकपायबुद्धिः ।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो, लम्बोदरं नाम चकार शंभुः ॥११॥
संवेष्टितो देवगणमंहेश, प्रवर्ततां नृत्यमितिष्युवाच ।
सतोषितो नूपुररावमात्रादगणेश्वरत्वेऽभिषिपेच पुनम् ॥१२॥

कारण समाप्त नहीं हो पा रहा है । अब आप लोग आदिदेव विनायक की स्तुति करें । देवताओं ने इसे स्वीकार किया और गौतमी में स्नान कर भक्तिपूर्वक आदिदेव गणेश की स्तुति की ॥ १-५ ॥

देवगण बोले—जो सब कार्यों में सर्वदा देवता, शंकर, विष्णु और कृष्ण लयादि ब्रह्मा आदि के भी पूज्य, नमस्कारणीय और ध्यान करने योग्य है उस विघ्नराज की शरण में हम आये हैं ॥६॥ मन्त्रार्थ पूर्ण करने में विघ्नराज ने सभान कोई भी दूसरा देवता नहीं है, यहाँ निश्चय कर त्रिपुरारि शंकर ने भी त्रिपुरासुर के वध के समय उस गणेश की पूजा की ॥७॥ वे अम्बिका मुक्त—जिनके ध्यान करने से सम्पूर्ण प्राणियों के मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं—हमारे इस महाथर में मङ्गल करें ॥८॥ देवी शिवा को पुत्र उत्पन्न हुआ, इसका मात्र ध्यान करने से सम्पूर्ण ससार को महान् आनन्द हुआ, इसलिये देवगणों ने कृतार्थ होकर उस सर्वोद्गाता बालक को नमस्कार करते हुये विघ्नराज कहा ॥९॥ वे गणेश माता की गोद में बैठ हुए थे, परन्तु माता का बार-बार मला करने पर भी उन्होंने हठात् चन्द्र को पिता की जटा में छिपा दिया । यह गणनाथक का विनोद रहा ॥१०॥ वे माता के स्तनपान से तृप्त थे, फिर भी स्कन्द के प्रति ईर्ष्या से उनकी बुद्धि क्लुपित हो जाती थी । इसलिये शंकर ने उनसे कहा कि विघ्नराज ! तुम लम्बोदर (पेटू) हो, यह बृहदारिच ने उनका नाम लम्बोदर रख दिया ॥११॥ देवा से घिरे हुए महेश ने आपसे कहा—‘अपना नृत्य दिखाओ’ आपने भी अपने नूपुर के संचालन मात्र से पिता को प्रसन्न कर दिया । यह देखकर पिता ने भी पुत्र गणेश को गणनाथक की पदवी से विभूषित कर दिया ॥१२॥ जो एक हाथ में विष्णुपाश धारण करते और दूसरे हाथ से कृन्ध पर

यो विघ्नपाशं च करेण विभ्रत्स्कंधे कुठारं च तथा परेण ।
 अपूजितो विघ्नमयोऽपि मातुः, करोति को विघ्नपतेः समोज्ज्वलः ॥१३॥
 धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो, देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम् ।
 यस्यार्चनं नैव विनाशमस्ति, तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि ॥१४॥
 यस्यार्चनात्प्रार्थनयाऽनुरूपां, दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम् ।
 स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं, भ्रातृप्रियं त्वाङ्मुखं तमोडे ॥१५॥
 यो मातरं सरसं नृत्यगीतैस्तथाऽभिलाषैरखिलैर्विनोदैः ।
 संतोषयामास तदाऽतितुष्टः, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये ॥१६॥
 'सुरोपकारं सुरैश्च युद्धेः, स्तोत्रैर्नमस्कारपरैश्च' मन्त्रैः ।
 पितृप्रसादेन सदा समृद्धः, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये ॥१७॥
 जये पुराणामकरोत्प्रतीपं, पित्राऽपि हर्षात्प्रतिपूजितो यः ।
 निविघ्नतां चापि पुनश्चकार, तस्मै गणेशाय नमस्करोमि ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतः सुरगणैर्विघ्नेशः प्राह तान्युतः ॥१९॥

गणेश उवाच

इतो निविघ्नता सत्रे मत्तः स्यादसुरारिणः ॥२०॥

कुठार लिये रहते हैं, और पूजा न पाने पर माता के कार्य में भी विघ्न उत्पन्न कर देते हैं, ऐसे विघ्नराज के समान
 दूसरा कौन देवता है ॥१३॥ धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों में देव और अमुरा द्वारा आप सर्वदा पूर्वपूज्य के
 रूप में पूजे जाते हैं। जिसका पूजन करने से कार्य निश्चित रूप से पूर्ण हो जाते हैं, ऐसे पूर्वपूज्य (प्रथम पूजा पाने
 योग्य) देव को प्रथम नमस्कार है ॥१४॥ जिसकी पूजा और श्रद्धा के अनुरूप ही सब फल की सिद्धि होती जाती
 है ऐसे अपनी स्वतन्त्र शक्ति पर गर्व करने वाले, स्वल्पप्रिय, और चूहे पर सवारी करने वाले देव को नमस्कार है
 ॥१५॥ जो अपनी माता को सरस नृत्य, गीत और बालक/बाधा से प्रसन्न करने स्वयं अनिप्रसन्न हो जाते थे।
 ऐसे श्री गणेश जी के हम शरणागत हैं ॥१६॥ जिन्होंने देवा के उपकार, अमुरा से युद्ध में स्थायित्व और नमस्कार-
 परक मन्त्रों के द्वारा पिता की कृपा से समृद्धि प्राप्त की, ऐसे श्रीगणेश की शरण में हम लाग आये हैं ॥१७॥ निपुणों
 की विजय के समय जिन्होंने कुछ विघ्न कर दिया, जिससे पिता (शत्रु) तभी प्रसन्नता से जिनकी पूजा की, तद-
 नन्तर जिन्होंने निविघ्न रूप से कार्य होने दिया, ऐसे गणेश को हम नमस्कार करते हैं ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थना की जाने पर विघ्नराज ने पुनः कहा ॥१९॥

गणेश ने कहा—अमुरासु ! आज से आप लोगों के यज्ञ में मेरी ओर से किसी प्रकार का विघ्न नहीं
 होगा ॥२०॥

१ धर्म ० अर्थ ० २ धर्म ० विमानम ० ३ द. गुराण ० ४ धर्म सर्व ० ५ युद्ध ० ६ धर्म ० ७ धर्म ० ८ धर्म ० ९ धर्म ० १० धर्म ० ११ धर्म ० १२ धर्म ० १३ धर्म ० १४ धर्म ० १५ धर्म ० १६ धर्म ० १७ धर्म ० १८ धर्म ० १९ धर्म ० २० धर्म ०

ब्रह्मोवाच

देवसत्रे निवृत्ते तु गणेशः प्राह तान्सुरान्

॥२१॥

गणेश उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतव्रताः। तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन ॥२२॥

अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः। तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मन्वताम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु तथेत्पूवः सुरा अपि। निवृत्ते तु मध्ये तस्मिन्सुरा जग्मुः स्वमालयम् ॥२४॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थमविष्णमिति गच्छते। सर्वकामप्रदं। पुंसां सर्वविघ्नविनाशनम् ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽविष्णुतत्तीर्थवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

गीतमीमाहात्म्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

शेषतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शेषतीर्थमिति ख्यात सर्वकामप्रदायकम्। तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम् ॥१॥

शेषो नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः। सर्वनागैः परिवृतो रसातलमथाम्यगात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देव-यज्ञ के पूण हो जाने पर गणेश ने उन देवों से कहा ॥२१॥

गणेश ने कहा—जो सयमी व्यक्ति इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे उन्हें कभी भी दारिद्र्यता से कष्ट नहीं होगा। इस स्थान पर जो उत्साही व्यक्ति स्नान और दान करेंगे उनके सब कार्य पूर्ण होंगे, इस पर आप विश्वास करें ॥२२-२३॥

ब्रह्मा ने कहा—गणेश जी के इस प्रकार के आसीर्वाद-कथन के साथ ही देवा ने भी ऐसा ही हो यह कहा। इस प्रकार उस यज्ञ के सम्राट् हो जाने पर सब देवता अपने स्थान को चले गये। तब से वह तीर्थ मनुष्यों के सब मनोरथ पूर्ण करने वाला और विघ्नविनाशक अविष्णुतीर्थ कहा जाता है ॥२४-२५॥

श्रीब्रह्मपुराण में अविष्णुतीर्थ वर्णन नामक एक सी चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥११४॥

अध्याय ११५

शेषतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब कामनाओं को देने वाला शेषतीर्थ नाम से विख्यात एक तीर्थ है। उसका परिचय जिसे मैं पहले बनी बता चुका हूँ—दे रहा हूँ। रसातल का स्वामी महान् शेषनाग अपने अनुचर भागों के सहित रसातल-

राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रविष्टा ये रसातलम् । तन्निरस्तो भोगिपतिर्मायुवाधाय विह्वलः ॥३॥

शेष उवाच

रसातलं त्वया दत्तं राक्षसानां भमापि च । ते मे स्थानं न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः ॥४॥
ततोऽहमब्रुवं नागं गीतमीं याहि पन्नग । तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम् ॥५॥
नाग्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः । मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः ॥६॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम्

शेष उवाच

नमस्त्रैलोक्यनायाय दक्षयज्ञविभेदिने । आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ॥७॥
नमः सहस्रशिरसे नमः संहारकारिणे । सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः ॥८॥
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः । पाहि शंकर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग ।
जगन्नाथ नमस्तुभ्यं देहि मे मनसेप्सितम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततो महेश्वरः प्रीतः प्रादान्नामेप्सितान्बवान् । विनाशाय सुरारीणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०॥
शेषाय प्रददौ शूलं जह्यनेनारिपुंगवान् । ततः प्रोक्तः शिवेनासौ शेषः शूलेन भोगिभिः ॥११॥
रसातलमयो गत्वा निजघान रिपूगणे । निहत्य नागः शूलेन दैत्यदानवराक्षसान् ॥१२॥

लोक में गया । किन्तु राक्षस, दैत्य और दानवी ने पहले ही रसातल में घुस गये थे—सर्पपति को वहाँसे निकाल दिया । तब वह व्याकुल होकर मुझसे बोला—॥१-३॥

शेष ने कहा—आपने राक्षसी को और मुझको रसातल तो दिया, परन्तु वे मुझको वहाँ रहने नहीं देते, इसीलिये आपकी शरण में आया हुआ हूँ । तब मैंने नाग से कहा कि सर्प ! गीतमी के तट पर जाओ, वहाँ महादेव की स्तुति कर अपना मनोरथ अवश्य प्राप्त करोगे । इस त्रैलोक्य में शंकर के समान मनोरथ पूर्ण करने वाला और कोई नहीं । मेरे कथन से प्रेरित होकर वह नाग प्रेमपूर्वक गंगा में स्नान कर हाथ जोड़ कर देवता की स्तुति करने लगा ॥४-६॥

शेष ने कहा—त्रैलोक्य के स्वामी, दक्ष-यज्ञ को नष्ट करने वाले शिव की नमस्कार है, आदिकर्ता ! तुमकी नमस्कार है, त्रिलोकी के रूप में रहने वाले वा नमस्कार करते हैं । हजारशिर वाले वा नमस्कार है, संहार करने वाले प्रभु की नमस्कार है, सोम, सूर्य, अग्नि और जल वाले आपको नमस्कार है । सर्वदा सब रूप में रहने वाले कालरूप आपको नमस्कार है, शंकर ! रक्षा कीजिये, सर्वेश ! सोमेश ! सर्वव्यापी ! रक्षा कीजिये । जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है । आप मेरे अभिमत को प्रदान कीजिये ॥७-९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रार्थना सुनकर महादेव प्रसन्न हो गये, उन्होंने नागराज को अभ्यर्च्य कर प्रदान किया । गुरु-शत्रु राक्षसा और दैत्यदानवी के नाश के लिये शंकर ने अपना शूल दिया और कहा कि इससे अपने प्रबल शत्रुओं का नष्ट कर दो । शूल प्राप्ति के बाद शंकर वा इस प्रकार अर्घ्यार्पण प्राप्त कर नागराज अनुचरो को साथ लेकर रसातल को

न्यवर्तत पुनर्देवो यत्र शेषेश्वरो हरः। पथा येन समायातो देवं द्रष्टुं स नागराद् ॥१३॥
रसातलाद्यत्र देवो बिलं तत्र व्यजायत। तस्माद्बिलतलाद्यातं गङ्गां वार्यतिपुण्यदम् ॥१४॥
तद्वारि गङ्गामगमद्गङ्गायाः' संगमस्ततः। देवस्य पुरतश्चापि कुण्डं तत्र सुविस्तरम् ॥१५॥
नागस्तत्राकरोद्धोमं यत्र चाग्निः सदा स्थितः। सोष्णं तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र संगमः ॥१६॥
देवदेवं समाराध्य नागः प्रीतो महायज्ञाः। रसातलं ततोऽभोष्टं शिवात्प्राप्य तलं ययौ ॥१७॥
ततः प्रभृति तृतीयं नागतीर्थमुदाहृतम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥१८॥
आयुर्लक्ष्मीकर पुण्यं स्नानदानाच्च मुक्तिदम्। शृणुयाद्वा पठेद्भवत्या यो वाऽपि स्मरते तु तत् ॥१९॥
तीर्थं शेषेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रदः शिवः। एकाविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयोः ॥
शतानि मुनिलार्दूल सर्वसंपत्प्रदायिनाम् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उभयतीरगतशेषतीर्थशेषेश्वरशूलेश्वराग्नि-
कुण्डरसातलगङ्गासंगमोष्णतीर्थार्धेकाविंशतिशततीर्थवर्णनं नाम
पञ्चदशधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

गया और मुक्त म शत्रुआ का सहार करने लगा। इस प्रकार शूल से दैत्य, दानव और राक्षसों को विनष्ट कर पुन
जहाँ शेषेश्वर शंकर ये वहाँ नागेन्द्र लौट आया। जिस माग से वह नागराज शंकर का दशन करने के लिये रसतल
से शिव-स्थान तक आया था वह मार्ग बिल के रूप में हो गया। उस बिल से होकर गौतम, गंगाका अति पुनः जल
वहने लगा और वह गंगा के जल से मिल गया, जिससे वहाँ शंकर के सामन ही दो गंगाया का पुनः संगम एक दार्पा
वार कुण्ड के रूप में बन गया। उस कुण्ड में नाग ने हवन किया। वहाँ अग्निदेव सर्वदा स्थित रहते हैं, इसलिये गंगा
के संगम का जल सर्वदा के लिये उष्ण हो गया। महायज्ञास्वी नाग देवाधिदेव शंकर की आराधना कर प्रसन्न हो
शंकर से अपना अर्भीष्ट पाकर रसातल को चला गया। तब से सब कामनाओं को प्रदान करने वाला रोग और
दरिद्रता को दूर करने वाला वह तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो व्यक्ति इस तीर्थकथा को भक्तिपूर्वक
मुनता, पढ़ता या स्मरण करता है उसको वह पावन ताय आयु और लक्ष्मी प्रदान करता है। वहाँ स्नान और दान
करने से मुक्ति प्राप्ति होती है। जहाँ शक्ति-दाना शंकर रहते हैं वहाँ शेषेश्वर ताय हैं। मुनिश्रेष्ठ गौतमी के
दाना तटा पर सब प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाल इक्ष्वाकु भी ताय विराजमान हैं ॥१०-२०॥

श्रीब्रह्मपुराण म शेषतीर्थ-वर्णनं नामक एक स पन्द्रहवा अध्याय समाप्त ॥११५॥

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

वडवादिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

महानलमिति रयात वडवानलमुच्यते । महानलो यत्र देवो वडवा यत्र सा नदी ॥१॥
 तत्तीर्थं यत्र वक्ष्यामि मृत्युदोषजरापहम् । पुराऽऽसन्नमिपारण्ये ऋषयः सन्नकारिणः ॥२॥
 शमितार च ऋषयो मृत्यु चक्रुस्तपस्विनः । वतमाने सन्नयागे मृत्योः शमितारि स्थिते ॥३॥
 न ममार तदा कश्चिदुभय स्यात् न जङ्गमम् । विना पशून्मुनिश्रेष्ठ मर्त्यं चामर्त्यता गतम् ॥४॥
 ततस्त्रिविष्टपे शून्ये मर्त्ये चैवातिसभृते । मृत्युनोपेक्षिते देवा राक्षसानूचिरे तदा ॥५॥

देवा ऊचुः

गच्छध्वमुपि सत्र तन्नाशयध्व महाध्वरम् ।

ब्रह्मोवाच

इति देववच श्रुत्वा प्रोचुस्ते राक्षसा सुरान् ।

॥६॥

असुरा ऊचुः

विध्वसयामस्त यज्ञमस्माकं किं फलं ततः । प्रयतते विना हेतुं न कोऽपि बवापि जातुचित् ॥७॥

अध्याय ११६

वडवा आदि सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा — महानल — जिस की दूसरी नाम वडवानल भी कहा जाता है — एक प्रसिद्ध तीर्थ है । जहाँ महानल दहता है और वडवा नहीं है उस जगह में तप करने का तीर्थ का वर्णन मैं करूँगा । बहुत पढ़े नमिपारण्य में ऋषि लोग दण्ड कर रहे थे । ७ याम उन ऋषी — पितृ ने मृत्यु को नमि बनाया । इस प्रकार राक्षसा मर्त्य में व पद पर मायक प्र सिद्धि है न उमर में उस्थावर वा जगह वाला मरवाई भी भराता नहीं था । मुनि श्रेष्ठ ! वन — पशुपति का छात्र वरुण भी मर्त्य रक्षित हो रहे । एवं जगह में राक्षस मृत्यु हो गया । मृत्यु मरुतुल जगह में भरा उगा । इस प्रकार मरुतुल जगह में भरा देवों देवों ने राक्षसा से कहा ॥१५॥

देवगण बोले — नमः तपः तपि यम मर्त्य और उमः महायम का नष्ट कर दो ।

ब्रह्मा ने कहा — जवाक गर्म वा मुनिक उन राक्षसा न देवा म कहा — ॥६॥

असुरों ने कहा — हम जगह उम दण्ड का नष्ट कर रहे पद मृत्यु हम जगह का दण्ड विनाग में क्या लाभ होगा ? हम जगह मरवाई भी कभी बिना प्रयाजन के काय म प्रवृत्त नहीं हुआ है ॥७॥

ब्रह्मोवाच

देवा अप्सुरानूचुर्यशार्धं भवतामपि। भवेदेव ततो यातु ऋषीणा सत्रमुत्तमम् ॥८॥
 ते श्रुत्वा त्वरिता सर्वे यत्र यत्र प्रवर्तते। जग्मुस्तत्र विनाशाय देववाक्याद्विशेषतः ॥९॥
 तज्ज्ञात्वा ऋषयो मृत्युमाहू किं कुमहे वयम्। आगता देववचनाद्राक्षसा यज्जनाशिनः ॥१०॥
 मृत्युना सह समन्वयं नैमिषारण्यवासिनः। सर्वे त्यक्त्वा स्वाश्रमं त शमित्रा सह नारद ॥११॥
 अग्निमात्रमुपादाय त्यक्त्वा पात्रादिकं तु यतः। ऋतुनिष्पत्तये जग्मुर्गौतमौ प्रति सत्वरं ॥१२॥
 तत्र स्नात्वा महेशान रक्षणायोपतस्थिरे। कृताञ्जलिपुटास्ते तु तुष्टुवुस्त्रिदशेश्वरम् ॥१३॥

ऋषय ऊचुः

यो लीलया विदधमिदं चकार, घाता विघाता भुवनत्रयस्य।
 यो विश्वरूप सदसत्परो य, सोमेश्वर त शरणं व्रजाम ॥१४॥

मृत्युर्वाच

इच्छामात्रेण यः सर्वं हन्ति याति वरोति च। तमहं त्रिदशेशान शरणं यामि शकरम् ॥१५॥
 महानलं महाकायं महानागविभूषणम्। महामूर्तिधरं देवं शरणं यामि शकरम् ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा ने यह सुनकर असुरों से कहा तो तुम लोगों को भी यज्ञ में आवा भाग दिलिए। अब तो शत्रु ऋषियों व उस यज्ञ में जाओ। यह सुनकर वे राजसूय यज्ञ यज्ञ का विनाश करने के लिये यज्ञभूमि देवा का विधेय प्रणाम से बहा गये जहाँ यज्ञ हो रहा था। यह जानकर ऋषिया ने मरु से कहा—अब हम लोग क्या कर देवा का प्रणाम स यज्ञ का नष्ट करने के लिये राक्षस आ गये हैं। नारद मरु से परामर्श करने के उपरान्त वे नैमिषारण्य निवास ऋषिगण अपने अधिपति तथा पात्र आदि को भा छात्रकर गमित्रा के साथ अग्निमात्र लेकर यज्ञ भूमि करने के लिये गौतम के तट पर जल्दा से पहुंचे। उसमें स्नान कर वे वे यज्ञ रक्षा के लिये गकर के निकट गए और वदनाञ्जलि होकर देवेश्वर की स्तुति करने लगे ॥८ १३॥

ऋषिगण बोले—जिस्ने सहज ही मरिच का निर्माण कर दिया जीतना लोका का पालक और सत्त्व है जो विश्वमूर्ति है और जो सत्य एवं असत्य से परे है उस सोमेश्वर गकर का गरण में हम आये हुये हैं ॥१४॥

मरु ने कहा—जो वेद व इच्छामात्र सत्त्व का सहार पालक और निर्माण करता है उस देवेश्वर गकर का गरण में हम उपस्थित हैं। महान अग्निरूप महान गहर वाले महान नागा के आभूषण वागे और महान मूर्ति धारण करने वाले शकर देव की गरण में हम आये हैं ॥१५ १६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवान्मृत्यो का प्रीतिरस्तु ते

॥१७॥

मृत्युरुवाच

राक्षसेभ्यो भय घोरमापन्न त्रिदशेश्वर । यज्ञमस्माश्च रक्षस्व यावत्सत्र समाप्यते ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथा चकार भगवास्त्रिनेत्रो वृषभध्वज । शमित्रा मृत्युना सत्रमूषीणा पूर्णता ययौ ॥१९॥
हविषा भागधेयाय आजग्मुरमरा क्रमात् । तानबोचन्मुनिगणा संक्षुब्धा मृत्युना सह ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

अस्मन्मखविनाशाय राक्षसा प्रेषिता यत । तस्माद्भूचद्भूच पापिष्ठा राक्षसा सन्तु शत्रव ॥२१॥
तत प्रभृति देवाना राक्षसा वैरिणोऽभवन् । कृत्या च वडवा तत्र देवाश्च ऋषयोऽमला ॥२२॥
मृत्योर्भार्या भव त्व तामित्युक्त्वा तेऽभ्यपेक्षयन् । अभिषेकोदक यत्तु सा नदी वडवाऽभवत् ॥२३॥
मृत्युना स्थापित लिङ्ग महानलमिति श्रुतम् । तत प्रभृति तत्तीर्थं वडवासगम विदु ॥२४॥
महानलो यत्र देवस्तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिदम् । सहस्र तत्र तीर्थाना सर्वाभीष्टप्रदायिनाम् ॥

ब्रह्मा ने कहा—नव भगवान् गिर ने कहा हे मृत्यु ! मैं तुम्हारा काम सा प्रिय क्या सम्पदन करूँ ? ॥१७॥

मृत्यु ने कहा—देव विपति ! राक्षसा ने भय पण सकट खडा कर दिया है जब तक यज्ञ समाप्त न हो जाय सब तक आप यज्ञ कर और हमारा भी रक्षा कर ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वृषभध्वज भगवन् त्रिनेत्र ने बँसाई। क्या जिससे मृत्युगमिता का, राक्षसा म ऋषियो का बहयन पूरा हो गया। यज्ञ पूर्ण हो जाने पर देवबृद्ध भक्तों अपना यज्ञ भाग लाने के लिये आये। यह देवबृद्ध मृत्यु के साथ क्षुब्ध मुनियों ने देवा से कहा ॥१९-२०॥

ऋषियों ने कहा—जिस लिये यज्ञ लगायन हमारे यज्ञ का नष्ट करने के लिये राक्षसा का भेजा हमलिये के पक्षी राक्षस आपने शत्रु हो जायें ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—उक्त समय से राक्षस देवताओं के वैरी हो गये। हमने साथ ही वहाँ निमज्ज करिया और देवताओं ने तुम मृत्यु का भार्या बनो, यह कहकर वडवा कपि कृत्या का अभिषेक किया। जो अभिषेक जल या वही वडवा नदी बन गया। मृत्यु द्वारा स्थापित लिङ्ग महानल नाम प्रसिद्ध हुआ। तब से वह स्थान वडवा सगम नाम से कहा जाने लगा। जहाँ महानल महादेव है वह भुक्ति और मुक्ति देने वाला तीर्थ है। इससे अतिरिक्त

उभयोस्तीरयोस्तत्र स्मरणादघघातिनाम्

॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बडवादिमहस्रतीर्थवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमो-
ऽध्यायः ॥११६॥

गीतमीमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

आत्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आत्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्तिभुक्तिप्रदं नृणाम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिवः ॥१॥
दत्त इत्यपि विख्यातः सोऽत्रिपुत्रो हरप्रियः । दुर्वाससः प्रियो भ्राता सर्वज्ञानविशारदः ॥
स गत्वा पितरं प्राह विनयेन प्रणम्य च ॥२॥

दत्त उवाच

ब्रह्मज्ञानं कथं मे स्यात्कं पृच्छामि वव यामि च ॥३॥

यहाँ गीतमा की दोना लडा पर सब प्रकार के अमोष्ट देने वाले तथा केवल स्मरण मात्र से पापा को नष्ट करने वाले सहस्रा तीर्थ हैं ॥२२-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बडवा आदि सहस्रतीर्थवर्णनं नामक एक में सोलहवां अध्याय समाप्त ॥११६॥

अध्याय ११७

आत्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ननुष्या को भाग और भाग्य प्रदान करने वाला एक आत्मतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है, जहाँ ज्ञानेश्वर शिव निवास करते हैं। उससे प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनी। अत्रि का पुत्र दाशर का प्रिय और दुर्वासा का भाई दत्त नाम से विख्यात था। वह सब प्रकार के ज्ञान में निपुण था ॥१-२॥ एक दिन वह अपने पिता के पास जाकर विनम्रपूर्वक प्रणाम करके बोला ॥१-२॥

दत्त ने कहा—ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति मुझे कैसे होगी ? मैं किससे पूछूँ ? और कहाँ जाऊँ ? ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाऽत्रि पुत्रवाक्यं ध्यात्वा वचनमब्रवीत्

॥४॥

अत्रिरुवाच

गीतमीं पुत्रं गच्छ त्वं तत्र स्तुहि महेश्वरम् । स तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि ॥५॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा तदाऽऽ त्रेयो गङ्गा गत्वा मुचिर्यत । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भवत्या तुष्टाव शकरम् ॥६॥

दत्त उवाच

ससाररूपे पतितोऽस्मि देवान्मोहेन गुप्तो भवदुःखपङ्के ।

अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽहं, परं न विन्दामि सुराधिनाय ॥७॥

भिन्नस्त्रिशूलेन बलीयसाऽहं, पापेन चिन्ताक्षुरपाटितश्च ।

तप्तोऽस्मि पञ्चेन्द्रियतीव्रतापं, श्रान्तोऽस्मि सतारय सोमनाय ॥८॥

बद्धोऽस्मि दारिद्र्यमयंश्च बन्धेहंतोऽस्मि रोगानलतीव्रतापं ।

क्रान्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजगमेन, भीतो भूश किं करयाणि शम्भो ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रि-पुत्र का वाता की सुनहर घाड़ी देर तक विचार मग्न रहे फिर बोले ॥४॥

अत्रि ने कहा—पुत्र ! तुम गान्धर्व के पास जाओ। वहाँ महेश्वर का स्तुति करो। वे जर प्रसन्न हो जायेंगे तब तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रिपुत्र दत्त ऐसा ही कहेंगे कहार गया व समीप गया और स्नान कर पवित्र हो गयन भाव से हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक शवर की स्तुति करने लगा ॥६॥

दत्त ने कहा—दैवदाग से ससार रूपा कुल में गिर पड़ा हूँ। माह न मुझ समार व दुःख रूपी बावड़ में छिपा दिया है। अज्ञानांपकार में डर गया हूँ। सुरा व स्वामी ! आपकी नहीं पा रहा हूँ ॥७॥ बलशान् पापरूपा चिन्ता से मैं क्षण विभ्रान्त हो गया हूँ तथा चिन्ता के अस्तुरे में पाड़ गिया गया हूँ। पाँच इंद्रिया व सतः प्रताप से जल गया हूँ। सोमनाथ ! मैं घबरा गया हूँ। विषय प्रसार पार उगादय ॥८॥ दरिद्रता व बधन में मैं बंध गया हूँ। रोग रूपा अग्नि व सतः दाह में मार डाला गया हूँ। मृत्यु रूपी सायन मुझ डग लिया है। शम्भो ! मैं अत्यन्त भयभीत हो गया हूँ। क्या करूँ ? समझ में नहीं आता ॥९॥ जन्म और अजन्म का परमेश शेषा तृष्णा रत्राणु और तमगुण

१५ व ०२वा गिव तुष्टाव भविष्यत् । ४० । १६ ०२प२ग ५० । ३५ ०३मि रोगा-वन्ती० । ४५ ०२व पाटीर्द्वौ स्मि । ५५ ०३मो । मायाम० ।

भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं, तृष्णाक्षुधान्यां च रजस्तमोभ्याम् ।
 ईदृक्षया^१ जरया^२ चाभिभूतः^३, पश्यावस्थां कृपया मेऽद्य नाथ ॥१०॥
 कामेन कोपेन च मत्सरेण, दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः ।
 एकैकशः^४ कष्टगतोऽस्मि विद्वस्त्वं^५ नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११॥
 कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो, दुःखप्रणोदी भवतीति सत्यम् ।
 विना भवन्त मम सोमनाथ, कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२॥
 तावत्स कोपो भयमोहुदुःखान्यज्ञानदारिद्र्यरुजस्तथैव ।
 कामादयो मृत्युरपीह यावन्नमः शिवायेति न वच्मि वाक्यम् ॥१३॥
 न मेऽस्ति धर्मो न च मेऽस्ति भक्षितर्नाह विवेकी कष्टा कुतो मे ।
 दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते, निर्धेहि सोमेति पदं मदीये ॥१४॥
 याचे न चाहं सुरभूपतित्वं, हृत्पदममध्ये मम सोमनाथ ।
 श्रीसोमपादाम्बुजसंनिधानं, याचे विचार्यैव च तत्कुहूष्व ॥१५॥
 यथा तवाहं विदितोऽस्मि पापस्तयाऽपि विज्ञापनमाभृणुष्व ।
 संभ्रूयते यत्र वचः शिवेति, तत्र स्थितिः स्यान्मम सोमनाथ ॥१६॥
 गौरीपते शकर सोमनाथ, विद्वेश कारुण्यनिधेःखिलात्मन् ।
 संस्तूयते यत्र सदेति तत्र, केयामपि स्यात्कृतिना निवासः ॥१७॥

से मैं पीडित हूँ। ऐसी घृणावस्था से ओतान्त हूँ। नाथ^१। आज मेरी इस अवस्थाको कृपापूर्वक देखिये ॥१०॥
 वाम, शोथ, डह दम्भ अभिमान आदि अनेक शत्रु एक-एक करके मुझे कष्ट दे रहे हैं, घेव रहे हैं। प्रभा^२। आप मेरे रक्षक बन कर शत्रुओं को दूर भगादिये ॥११॥ किसी पतित प्राणी का कोई मनुष्य दुःख दूर करने वाला होता है यह सत्य है, किन्तु सोमनाथ^३। आपके अतिरिक्त किसी के सम्मुख मैं अपनी कष्ट कहानी भी तो नहीं कह सकता ॥१२॥ शोथ, भय, मोह, दुःख, अज्ञान, दरिद्रता, रोग, काम आदि तथा मृत्यु-भय धर्मी तब है जब तब 'नम शिवाय' मन्त्र मेरे मुख से नहीं निकलता है ॥१३॥ मेरे पास न तो धर्म है, न भक्ति है, न मैं जानी हूँ। फिर कष्टा मुझमें कहाँ से आएंगी? परन्तु हे शरण देने वाले^४। आप दाता है इसीलिये मेरे हृदय में शीघ्र सोमनाथ नाम को स्थापित कर दीजिये ॥१४॥ मैं इन्द्र-वदनी की याचना नहीं करता। सोमनाथ^५। मेरे हृदय-जगल के मध्य में श्रीसोमनाथ के चरण-जगल की स्थापना हो यही प्राथना है। पहले विचार कर लीजिये तब उसको स्वीकार कीजिए ॥१५॥ जैसे आपने मुझ को पापी समझ लिया है उन्हीं प्रकार मेरी भी आप से एक प्राथना है उसको भलीभाँति गुनिए। सोमनाथ^६। जहाँ 'शिव ऐसा शब्द गुना जाता है वहाँ मेरा निवास हो ॥१६॥ (क्याकि) जहाँ शर्वदा गौरीपते! शकर^७। सोमनाथ^८। विद्वेश^९। कारुण्यनिधे^{१०}। अखिलात्मन्^{११}।' आदि शब्दा द्वारा स्तुति की जाती है, वहाँ किसी पुण्यात्मिआ का निवास होता है ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्यात्रेयस्तुतिं श्रुत्वा तुतोष भगवान्ह्रः । वरदोऽस्मोति तं प्राह योगिनं विश्वकृद्भूवः ॥१८॥

आत्रेय उवाच

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च भुक्तिं च विपुलां त्वयि । तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशाक्षित ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति तं शंभुस्त्वत्वा चान्तरधीयत । ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं विदुर्बुधाः ॥

तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिः स्यादिह नारद ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य आत्मतीर्थवर्णनं नाम सप्तदशाधिक-

शततमोऽध्यायः ॥११७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

'अश्वत्थतीर्थमाख्यातं पिप्पलं च ततः परम् । उत्तरे मन्दतीर्थं तु' तत्र व्युष्टिमितः शृणु ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार अत्रि-पुत्र की स्तुति सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये । उस विश्व-स्रष्टा शंकर ने उस योगी से कहा मैं 'वर देना चाहता हूँ, माँगो ॥१८॥

आत्रेय ने कहा—हे देवदेव ! आत्मज्ञान, मुक्ति, आपमें प्रचुर भक्ति और तीर्थ का माहात्म्य मुझे प्राप्त हो, यह वर दीजिये ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर शंभु अन्तर्हित हो गये । उस समय से उस तीर्थ को विद्वान् लोग आत्मतीर्थ कहने लगे । नारद ! उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मुक्ति अवश्य मिलती है ॥२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आत्मतीर्थवर्णन नामक एक सर्ग सप्तहवीं अध्याय समाप्त ॥११७॥

अध्याय ११८

अश्वत्थ आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अश्वत्थ और पिप्पलतीर्थ दोनों प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उत्तर दिशा में मन्दतीर्थ भी है । इन तीर्थों

१. इ. भक्ति । २. तदुच्यते । ३. स्यान्नित्यं फलम् । ४. ०४. ५. ६. ०५. ७. ८. ०६. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

पुरा त्वगस्त्यो भगवान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। देवंस्तु प्रेरितः पूर्वं विन्ध्यस्य प्रार्थनं प्रति॥२॥
स शनैर्विन्ध्यमम्यागात्सहस्रमुनिभिर्वृतः। तमागत्य नगश्रेष्ठं बहुवृक्षसमाकुलम्॥३॥
स्पर्धितं मेरुभानुभ्यां विन्ध्यं शृङ्गशतैर्वृतं। अत्युन्नतं नगं धीरो लोषामुद्रापतिर्मुनिः॥४॥
वृत्तातिष्यो द्विजैः साधं प्रशस्य च नगं पुनः। इदमाह मुनिश्रेष्ठो देवकार्यायंसिद्धये॥५॥

अगस्त्य उवाच

अहं यामि नगश्रेष्ठ मुनिभिस्तत्त्वदक्षिभिः। तीर्थयात्रां करोमीति दक्षिणाशां व्रजाम्यहम्॥६॥
देहि मार्गं नगपते आतिथ्यं देहि याचते। याचदागमनं मे स्यात्स्यातथ्यं तावदेव हि॥७॥
नान्यथा भवितव्यं ते तथेत्याह नगोत्तमः। आक्रामन्दक्षिणामाशां तैर्वृतो मुनिभिर्मुनिः॥८॥
शनैः स गौतमीमागात्सत्रयागाय दीक्षितः। यावत्संवत्सरं सत्रमकरोद्विभिवृतः॥९॥
कंदभस्य सुतो पापौ राक्षसो धर्मकण्ठको। अश्वत्थः पिप्पलश्चेति विख्यातौ त्रिदशालये॥१०॥
अश्वत्थोऽश्वत्थरूपेण पिप्पलो ब्रह्मरूपधृक्। यावुभावन्तरं प्रेप्सु यज्ञविध्वसनाय तु॥११॥
कुरुतां कादक्षितं रूपं दानवो पापचेतसो। अश्वत्थो वृक्षरूपेण पिप्पलो ब्राह्मणाकृतिः॥१२॥
उभौ तौ ब्राह्मणान्नित्यं पीडयेता तपोधन। आलभन्ते च येऽश्वत्थं तास्तानश्नात्यसौ ततः॥१३॥

का परिचय तथा फल अब सुनो। बहुत पहले दक्षिण दिशा के स्वामी भगवान् अगस्त्य से देवताओं ने विन्ध्य के विषय में प्रार्थना की। देवताओं ने प्रेरित होने पर अगस्त्य ऋषि सहस्र मुनियों को साथ ले घीरे से विन्ध्य के निकट आये। बहुत से वृक्षा ये भरे, मेरु और भानुपर्वत से स्पर्श करने वाले, शैलकुंडो शिखरा से युक्त, अत्यन्त ऊँचे विन्ध्य पर्वत के पास आकर लोषामुद्रा के स्वामी धीर मुनि अगस्त्य ने विन्ध्य का आतिथ्य ग्रहण किया। पुन विन्ध्याचल की प्रशंसा करते हुए देवकार्य की सिद्धि करने के लिये मुनिश्रेष्ठ ने कहा॥१५॥

अगस्त्य बोले—हे पर्वतश्रेष्ठ! मैं तत्त्वदर्शी मुनियों के साथ तीर्थयात्रा के उद्देश्य से दक्षिण दिशा को जा रहा हूँ॥१॥ नगपते! मुझे मार्ग दी यहाँ आतिथ्य के रूप में दान रहा हूँ। जब तक मैं इधर से न लौटूँ तब तक तुम इसी प्रकार विनम्र रहो, इसके प्रतिकूल कोई कार्य न हो। विन्ध्याचल ने इसे स्वीकार कर लिया। उन मुनियों के साथ अगस्त्य मुनि ने दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया। शनैः शनैः वे गौतमी के तट पर आये और सत्रयाग के लिए दीक्षा लेकर एक वर्ष ऋषियों के साथ यज्ञ करते रहें॥७॥ स्वर्ग में कंदम के दो पापी, धर्म के मार्ग में बाधा पहुँचाने वाले, अश्वत्थ और पिप्पल नाम से विख्यात राक्षस पुत्र थे॥१०॥ अश्वत्थ पिप्पल का और पिप्पल ब्राह्मण का रूप धारण कर यज्ञ नष्ट करने के लिये जाते थे। दोनों इस गुप्त रूप को यज्ञ का भेद जानने के लिये धारण किया करते थे। हे तपस्वी! इस प्रकार वे दोनों पापात्मा राक्षस इच्छानुसार अश्वत्थ वृक्ष और ब्राह्मण को आश्रित धारण कर ब्राह्मणों का नित्य प्रति पीडा पहुँचाते थे॥११-१२॥ जो सन्निधा के लिये वृक्ष की दह नियाँ तौड़ने आता था उसको वह अश्वत्थ खा जाता था और राक्षस पिप्पल क्षाम-गायक बनकर अपने शिष्यों को

पिप्पल सामगो भूत्वा शिष्यान्नाति राक्षस । तस्मादद्यापि विप्रेषु सामगोऽतीव निष्कृप ॥१४॥
 क्षीयमाणान्द्विजान्दृष्ट्वा मुनयो राक्षसाविमो । इनि ब्रुध्वा महाप्राज्ञा दक्षिण तोरमाश्रितम् ॥१५॥
 सौरि शनैश्चर मन्द तपस्यन्त धृतव्रतम् । गत्वा मुनिगणा सर्वे रक्ष कर्म न्यवेदयन् ॥१६॥
 सौरिर्मुनिगणानाह पूर्णं तपसि मे द्विजा । राक्षसो हन्यपूर्णं तु 'तपस्यक्षम एव हि ॥१७॥
 पुन प्रोचुर्मुनिगणा तस्यामस्त तपो गृह्यत । इत्युक्तो ब्राह्मणं सौरि कृतमित्याह तानपि ॥१८॥
 सौरिर्ब्राह्मणवेपेण प्रापादश्वत्थरूपिणम् । राक्षस ब्राह्मणो भूत्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥१९॥
 प्रदक्षिण तु बुध्वाणि मेने ब्राह्मणमेव तम् । नित्यपद्राक्षस पापो भक्षयामास मायया ॥२०॥
 तस्य काय समाविश्य चक्षुषाऽन्त्राण्यपश्यत् । दृष्ट स राक्षस पापो मन्देन रविसूनुना ॥२१॥
 भस्मीभूत क्षणेनैव गिरिवज्रहतो यथा । अश्वत्थ भस्मसात्कृत्वा अन्य ब्राह्मणरूपिणम् ॥२२॥
 राक्षस पापगिलयमेक एव तमभ्यगात् । अधीयानो विप्र इव शिष्यरूपो विनीतवत् ॥२३॥
 पिप्पल पूर्ववच्चापि भक्षयामास भानुजम् । स भक्षित पूर्ववच्च कुक्षावन्त्राण्यवक्षत ॥२४॥
 तेनाऽऽलोकितमात्रोऽसौ राक्षसो भस्मसादभूत् । उभौ हत्वा भानुसुत किं कृत्य मे वदत्वथ ॥२५॥
 मुनयो जातसहर्षा सर्व एव तपस्विन । तत प्रसन्ना ह्यभवन्प्रयोजस्त्यपूवका ॥२६॥

सा जाता या। यह कारण कि अब भ ब्राह्मण म सामान्यक अर्थात् कल्याणीन माना जाता है ॥१३॥ १४॥
 बुद्धिमान मुनिवृन्द इस प्रकार ब्राह्मण क मर्यादा हने देखकर ये दाना राक्षस ह यह जानकर दक्षिण तार पर
 लपस्या करने वाले प्रापरायण मयमुत नि वे पास गये और प्रणाम कर राक्षस के इस घृणित कर्म को उनसे निवे
 दन किया। यह सुनकर मूयमुत ने मुनिया से कहा तपस्या पूर्ण हो जाने पर हमें राक्षस का वध कर सकेंगे हैं
 तपस्या का अपूर्ण रहने पर तो मैं सक्षमा अक्षम हूँ ॥१५॥ १७॥ पुन मुनिया ने कहा आपका हम सब अपनी महा
 तपस्या के रहे हैं। यह सुनकर दानि ने ब्राह्मण से कहा कि तब काय हो गया ऐसा समझिये ॥१८॥ गनि ब्राह्मण का वध
 कर्ताकर अश्वत्थ रूप वाले राक्षस के पास गये और प्रदक्षिणा करने लग ॥१९॥ राक्षस इस प्रकार उनको प्रदक्षिणा
 करते देखकर सामान्य ब्राह्मण समझ कर नित्य का तरह अपन माया से उनका निगल गया ॥२०॥ दानि ने उरर
 धारीर म घुसकर उठरन। आत्मा को देया। देखते ही वह पापी राक्षस गनि ने द्वारा क्षणभर म उनी प्रार
 भस्म कर दिया गया जिस प्रकार वज्र से पवन विनष्ट कर दिया गया था ॥२१॥ अश्वत्थ का भस्म कर
 गनि दूसरे ब्राह्मणवेपारा पापो राक्षस के पास गया। उसने ब्राह्मण का समान गिर्यरूप से निर्मित होकर
 पड़ने लगे ॥२३॥ पहल क भाति पिप्पल ने इस भानुपुत्र का भी रा लिया। खाये जाने पर दानि ने भी
 पहल क भाति उदर म आत्मा का देया ॥२४॥ उरर इस प्रकार दान मत्र स वह राक्षस भस्माभूत
 हो गया। दानि इस प्रकार नष्ट कर भानुपुत्र ने कहा कि अब अयोग्या का कर्म सा प्रिय काय बहो बतल इव ॥२५॥
 सब सत्सवी मुनि आनन्द-विभार हो गये ॥२६॥ तदनंतर अगम्य आदि महर्षिना न प्रसन्न होकर इच्छानुसार मन्द

वरान्ददुर्यथाकाम सौरये मन्दगामिने । स प्रीतो ब्राह्मणानाह शनि सूर्यसुतो बली ॥२७॥

सौरिखाच

मदद्वारे नियता ये 'च कुर्वन्त्यश्वत्थलम्भनम् । तेषां सर्वाणि कार्याणि स्युः पीडा मवभवा न च ॥२८॥
तीर्थं चाश्वत्थसजे वै स्नानं कुर्वन्ति य नराः । तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरपरो वरः ॥२९॥
मन्दवारे तु येऽश्वत्थं प्रातस्तथाय मानवाः । आभलन्ते च तेषां वै ग्रहपीडा व्यपोहतु ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थमश्वत्थं पिप्पलं विदुः । तीर्थं शनैश्चर तत्र तत्रागस्तथ च सात्रिकम् ॥३१॥
याज्ञिकं चापि तत्तीर्थं सामगं तीर्थमेव च । इत्याद्यष्टोत्तराण्यासन्सहस्राण्यथ षोडश ॥
तेषु स्नानं च दानं च 'सत्रप्रागफलप्रदम् ॥३२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्यश्वत्थाद्यष्टोत्तरषोडशसहस्र

तीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

गौतमीमाहात्म्य ऊनपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥४९॥

गति से चलने वाले शनि को यथेष्ट वर प्रदान किये । बलवान् सुपुत्र शनि ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणों से कहा ॥२७॥

शनि ने कहा—मेरे दिन अर्थात् शनिवार को जो मनुष्य निम्नलिखित रूप से अश्वत्थ वृक्ष वा स्पृश करके उनके सब काय सिद्ध होंगे वया मुझसे उनके कोई पीडा नहीं होगी ॥२८॥ जो व्यक्ति इस अश्वत्थ तथ में स्नान करके उनके सब मनारथ पूरा हों यह दूसरा वरदान है ॥२९॥ जो शनिवार को प्रातः वा न उठकर अश्वत्थ का स्पृश करके उन्हें ग्रहत्रय पाडा नहीं होगी ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से ही बहुतों ने अश्वत्थ तथ और पिप्पल व वहाँ जाने लगा । वहाँ पर शनैश्चरताय आगस्त्य और सात्रिक तथ तथा याज्ञिक सामग आदि चौब स हजार नथ प्रतिष्ठित हैं । उन तथों में स्नान और दान करने से मनुष्य सत्रप्राग का फल प्राप्त करता है ॥३१ ३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अश्वत्थ तथ पिप्पलाय और मन्दत व वर्णन

नमः एक सौ अठारहवा अध्याय समाप्त ॥११८॥

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यात तदप्युक्त 'महात्मभि । तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफल लभेत ॥१॥
जगता मातर पूर्वमोषधयो जीवसमता । ममापि मातरो देव्य 'पूर्वाता पूर्ववत्तरा ॥२॥
आसु प्रतिष्ठितो धम स्वाध्यागो यज्ञकर्म च । आभिरेव धृत सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥३॥
अज्ञधरो गोपशमो भवत्याभिरसशयम् । अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम् ॥४॥
अत्रौषधयो जगद्वन्द्या मामूचुरनहकृता ॥४॥

औषध्य ऊचु

अस्माक त्व पति दहि राजान सुरसत्तम

॥५॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन 'ताता मयोक्ता औषधीरिदम् । पति प्राप्त्यथ सर्वाश्च राजान प्रीतिवर्धनम् ॥६॥
राजानमिति तच्छ्रुत्वा मामूचु पुनर्मुने । गतव्यं क्व पुनश्चोक्ता गौतमी यातु मातर ॥७॥
तुष्टायामस्य तस्या धो राजा स्याल्लोकपूजित । ताश्च गत्वा मुनिश्चेष्ट तुष्टुवृगो तमो नदीम् ॥८॥

अध्याय ११६

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्मभि द्वारा वर्णित सोमतीर्थ नाम का एक प्रसिद्धत व है। उस तथ म स्नान करने और दान देने से मनुष्य सोमपान का फल प्राप्त करता है। पहले औषधियाँ प्राणिमात्र से माय और सत्तर की माता कहलाती थी। पूव उत्पन्न औषधियों से भा पूव काल क औषधियाँ मेरी भा माता थी। इही औषधियों से धम स्वाध्याय और यज्ञकर्म प्रतिष्ठित हैं इहानहीं सम्पूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य को धारण किया है। इनसे ही सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं इससे सन्देह नहै। सब प्राणियों की प्राणरक्षा करने वाले अन्न इनसे ही उत्पन्न होते हैं। एक बार जगदवन्ध इन औषधिया ने विनीत भाव से मुझसे कहा ॥१४॥

औषधियाँ बोलीं—हे देवा म श्रुत ! हम लगा को आप राजा पति दीजिए ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—उनका वाता की सुनकर मैंने औषधिया से कहा कि तुम सब प्रम वढ़ाने वाले राजा पति का प्राप्त करोगी। मून ! राजा ऐसा शब्द सुनकर उड़ाने मूयसे पुन पूछा —इसके लिए कहाँ जाता होगा। मैंने कहा—मानवून् । गौतमी के तट पर जाओ । उसकी प्रसन्नता पर ५५५ ही एतपूजित राजा तुम लगा का पति बनेगा। वे सब औषधिया पास जाकर गौतमा नदी की स्तुति करने लगा ॥६८॥

ओषध्य ऊचु

किं वाञ्छकरिष्यन्भवतिनो जना, नानाधसधाभिभवान्च दुःखिता ।
 न चाऽऽगमिष्यदभवतो भुव चेत्पुण्योदके गौतमि शम्भुकान्ते ॥९॥
 को वेत्ति भाग्य नरदेहभाजा, महोगताना सरितामघोशे ।
 एषा महापातकसघहन्त्री, त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सदैव ॥१०॥
 न ते विभूति ननु वत्ति कोऽपि, त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे ।
 गौरीसमालिङ्गितविप्रहोऽपि, धत्ते स्मरारि शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११॥
 नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि, नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
 नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनि सूते, नमोऽस्तु ते शम्भुजटाविनि सूते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतामीशा किं 'दवामीत्यवोचत ॥१३॥

ओषध्य ऊचु

पति देहि जगन्माता' राजानमतितेजसम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तदोवाच नदो गङ्गा ओषधीस्ता इद वच ॥१५॥

ओषधियाँ बोलीं—गौतमि ! शम्भुकान्ते ! य अनेक पापसमूह से अभिभूत दुःख ससारी जन क्या कर सकते थे (अर्थात् इनका उद्धार कैसे होता) ? यदि पुण्यालये ! आप इस भूतल पर न आता । नदिया का अवधारण ! मनुष्य-देह धारण करने वाला का अहमागम कल्प जानता था ? हे अम्ब ! गङ्गा ! आज इन पापियों के पापसमूह को नष्ट करने वाला तुम इनको सन्ने के लिये सुलभ हो गई हो । जगदम्ब ! जगदम्ब ! गङ्गा ! तुम्हारे विभूति को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है । क्याही पावता से अलङ्गित गौरीवाल भूतन मन्त्रिय शक्तिर म तुमका अपन गिर ५९ बठाये रहने हैं । भगिना ! मनोरथ-दायिनी ! तुमका नमस्कार है ब्रह्मस्वरूपिणी । पार्वतीनागिनि ! तुमको नमस्कार है ! विष्णु के चरण कमल से निकलने वाल ! तुमको नमस्कार है ! गङ्गा के जटा से निकलने वाला ! तुमका बार बार नमस्कार है ॥९१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार आपधियाँ की, स्तुति से प्रसन्न हो गौतम, ने कहा क्या दू ? ॥१३॥

ओषधियाँ बोलीं—जगन्माता ! हम अत्यन्त तेजस्वी राजा पति द जिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—ओषधियाँ क प्रायता मुनस्कार गौतम, गङ्गा ने उन ओषधियाँ से यह बात कही ॥१५॥

गङ्गोवाच

अहं चामृतरूपाऽस्मि ओषध्यो मातरोऽमृता । तादृशं चामृतात्मानं पतिं सोमं ददामि च ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

देवाश्च ऋषयो वाक्य मेनिरे सोम एव च । ओषध्यश्चापि तद्वाक्यं ततो जग्मुः स्वमालयम् ॥१७॥

यत्र चाऽऽप्नुमं हौषध्यो राजानममृतात्मकम् । सोमं समस्तसतापपापसघनिवारकम् ॥१८॥

सोमतीर्थं तु तत्पयात् सोमपानफलप्रदम् । तत्र स्नानेन दानेन पितरं स्वर्गमाप्नुयुः ॥१९॥

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा भक्तितः स्मरेत् । दीर्घमायुरवाप्नोति स पुत्रीं धनवान्भवेत् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिशास्त्रे तीर्थमाहात्म्ये सोमतीर्थवर्णनं नामोर्विंशत्यधिकशत-

तमोऽध्यायः ॥११९॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

धान्यतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम् । सुभिक्षं क्षेमदं पुसां सर्वापद्भिर्निवारणम् ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मैं अमृत स्वरूप हूँ और आप ओषधि मातापिता अमृत रूप ही हैं अतः वेसे ही अमृतात्मा साम को आप लागा को पति के रूप में दे रहें हैं ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—इवा ऋषिया और सोम ने भी इस वाक्य का समर्थन किया । ओषधिया ने भी यह स्व स्वरूप ले लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपना स्थान को चला गई । जिस स्थान पर उन भहोषधियों ने सब सताप और पाप समूह को दूर करने वाले अमृतस्वरूप साम का प्राप्त किया वह स्थान सोमपान का फल को देने वाला सोमतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । उस ताय में स्नान करने और दान देने से पितरों का स्वर्ग प्राप्त करते हैं । जो व्यक्ति इस अस्थान का नित्य भक्तिपूर्वक ध्वजन पाठ या स्मरण करता है वह दीर्घायु प्राप्त करता है और धनवान् तथा पुत्रवान् होता है ॥१७-२०॥

अथ ब्रह्मपुराण में सामनियवर्णन नामक एक सी उल्लासकी अध्याय समाप्त ॥११९॥

अध्याय १२०

धान्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्या का सब कामनाओं का पूरा करने वाला सब आपदाओं का निवारक और सुभिक्ष

ओषध्य सोमराजान पति प्राप्य मुदाऽन्विता । ऊचुः सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेप्सित वच ॥२॥

ओषध्य ऊचुः

वैदिकी पुण्यगाथाऽस्ति या वै वेदविदो विदुः । भूमि सस्यवतीं कश्चिन्मातर मातृसमिताम् ॥३॥

गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् । भूमि सस्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वित ॥४॥

विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्यादभक्षितमाश्रय । सर्वं तदश्नय विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥५॥

ओषध्य सोमराजन्या सोमश्चाव्योषधीपति । इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्यं प्रदास्यति ॥६॥

सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महोयते । ता एव सोमराजन्या प्रीता प्रोचु पुन पुन ॥७॥

ओषध्य ऊचुः

योऽस्मान्ददाति गङ्गाया त राजन्यारयामसि । त्वमुतमश्चोपधीश त्वदधीन चराचरम् ॥८॥

ओषध्य सबदन्ते सोमेन सह राजा । योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्त राजन्यारयामसि ॥९॥

यद्य च ब्रह्मरूपिण्य प्राणरूपिण्य एव च । योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्त राजन्यारयामसि ॥१०॥

अस्मान्ददाति यो नित्यं ब्राह्मणेभ्यो जितव्रत । उपास्तिरस्ति साऽस्माकं त राजन्यारयामसि ॥११॥

एव कल्याण प्रदान करने वाला धार्मिक नामक एक तीर्थ है। राजा सोम को अपना पति पाकर अत्यन्त हर्षित हुई ओषधिया ने सब लोक तथा गंगा को प्रिय जगन वाले वचन कहे ॥१२॥

ओषधियाँ बोलें—यह एक बहिरः पवित्र गाथा है जिसे वेदों ब्रह्मपुराण जानते हैं कि जा कोई व्यक्ति गंगा के समीप मनुष्य एव सस्य सम्पन्न भूमी भूमि का दान करता है उसकी स्त्री कर्मयोग पूर्ण होती है। जो भक्त मनुष्य प्रसन्न होकर सस्यसम्पन्न भूमि गाये या ओषधियाँ विष्णु ब्रह्मा और ईशरूप (ब्रह्मण या मन्दिर) को दान में देता है वह अपने सब अभिप्रायों को प्राप्त करता है और उसकी दान की हुई वस्तु अगम्य हो जाती है। ओषधियाँ सम्राट् का राजनियाँ हैं और सोम ओषधियाँ के राजा हैं यह समझ कर जो ओषधियाँ का दान करता है वह अपने सब भगवानों को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में उरका पूजा होता है। इस दान कथा को जो ओषधियों ने ही प्रमगदगन् हार कर बार बार कहा था ॥३७॥

ओषधियाँ बोलें—राजन् ! जो गंगा में हम सबका दे दता है उसका हम इस सप्त रक्षगर से पार लगा देती हैं। ओषधियाँ के स्वामी । तुम थोड़े हो तुम्हारे हाथ में यह चराचर है। ओषधियाँ राजा सोम के साथ वानरवत करती हैं कि जो हमका ब्राह्मणा को दान करता है राजन् ! उसका हम उद्धार करती हैं। हम ब्रह्मरूप हैं प्राण रूप हैं हम जो विद्या का प्रदान करता है उसको हम ससार से पार कर देती हैं। जगत्पति ब्रह्मण्य व्यक्ति निय हमको ब्राह्मणा का दान में देता है वह हम सब का प्रिय होता है उसका हम भवसगर से पार कर देती हैं। राजन् ! स्यावर और जगम जो कुछ जगत् है सब हमसे व्याप्त है। एसी हमका जो ब्राह्मणा का निय दान कर देता है उसको हम ससार से पार कर देती हैं। हव्य (देवा के लिए दद्यात्) कव्य (पितरा का दिया जाने वाला अन्न)

स्यावर जङ्गम किञ्चिदस्माभिव्यपित जगत । योऽस्मान्बुधति' विप्रेभ्यस्त राजा पारयामसि ॥१२॥
 हव्य कव्य यदमृत यत्किञ्चिदुपभुज्यते । यदगरीयश्च यो ब्रह्मात्त राजा पारयामसि ॥१३॥
 इत्येता वैदिकीं गाथा य शृणोति स्मरत वा । पठते भविमापन्नस्त राजा पारयामसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

यत्रैषा पठिता गाथा सोमन सह राजा । गङ्गातीरं चोपधीभिर्धान्यतीर्थं तदुच्यते ॥१५॥
 तत प्रभृति तत्तीर्थमौषध्य सोम्यमेव च । अमृत वेदगाथ च मातृतीर्थं तथैव च ॥१६॥
 एषु स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम् । अन्नदानं तु य कुर्यात्तदानं त्याग कल्पते ॥१७॥
 पटशताधिकसाहस्रं तीर्थानां तीर्थयोर्द्वयोः । सर्वपापनिहन्तृणां सर्वसप्तद्विवधनम् ॥१८॥

इति महापुराण आदिब्राह्म तीर्थमाहात्म्ये धान्यतीर्थादिषट्शताधिकसहस्रतीर्थवर्णनं

नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

गीतमोमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विदर्भासगमरेवतीसगमादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विदर्भासगम पुण्य रेवतीसगम तथा । तत्र यद्भक्तमाह्वयास्य यत्पुराणविदो विदुः ॥१॥

रूप जो अमृत पदार्थ है जो कुछ उपभाग किया जाता है और जो सर्वोत्तम पदार्थ है उस जो दान करता है उसका हम उद्धार करते हैं । हे राजन ! इस वैदिक गाथा को जो भक्तियुक्त मुनित स्मरण करता या पठता है उसका हे राजन ! हम उद्धार कर देते हैं ॥८१४॥

ब्रह्मा ने कहा—गगनतटवर्ती जिस स्थान पर ओषधियां न राजा सोम के साथ इस गाथा को पढ़ा वह पाप नष्ट हो जाता है । तब से वह तीर्थ ओषधियं सोम्यं य अमृतं य वेदगाथतीर्थं मातृगाथ आग्निमी ये प्रतिष्ठ ह । इन तीर्थों में जा मनुष्य स्नान जप होम दान पितृतर्पण और अन्नदान करते हैं वे अन्तर्फल के अधिकारी होते हैं । उस गौतम के दाना कटा पर एक हजार छह सौ त्रय है जो रात्र पापों को दूर करनेवाले तथा सब प्रकार की सम्पत्ति देने वाले हैं ॥१५ १८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धान्य तीर्थवर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२०॥

अध्याय १२१

विदर्भा-सगम और रेवती सगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—“सप्त उ रान्त पवित्र विदर्भा सगम तथा रेवती-सगम की कथा का वर्णन मैं करूँगा जिससे

भरद्वाज इति ख्यात ऋषिरासीत्तपोऽधिक । तस्य स्वसा रेवतीति कुरुषा विकृतस्वरा ॥२॥
 ता द्रष्टुं विकृता भ्राता भरद्वाज प्रतापवान् । चिन्तया परया युक्तो गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३॥
 कर्म दद्यामिमा कन्या स्वसार भीषणाकृतिम् । न कश्चित्प्रतिगूहणाति दातव्या च स्वसा तथा ॥४॥
 अहो भूयान्न कस्यापि कन्या दुर्लभकारणम् । मरण जीवतोऽप्यस्य प्राणिनस्तु पदे पदे ॥५॥
 एव विमृशतस्तस्य स्वाश्रमे चातिशोभने । द्रष्टुं मुनिवर प्रायाद्भरद्वाज यतव्रतम् ॥६॥
 द्वघण्टवर्षं शुभवपु शान्तो दान्तो गुणाकर । नाम्ना कठ इति ख्यातो भरद्वाज ननाम स ॥७॥
 विधिवत्पूज्य त विप्र भरद्वाज कठ तदा । तस्याऽऽगमनकार्यं च पप्रच्छ पुरत स्थित ॥८॥
 कठोऽप्याह भरद्वाज विद्यार्थं हमुपागत । तथा च दर्शनाकाङ्क्षी यद्युवत तद्विधोपताम् ॥९॥
 भरद्वाज कठ प्राह अधोष्व यदभीप्सितम् । पुराण स्मृतयो वेदा धर्मस्थानान्यनेकश ॥१०॥
 सर्वे वेद्मि महाप्राज्ञ रुचिर वद मा चिरम् । कुलीनो धर्मनिरतो गुरुशुश्रूषणे रत ॥
 अभिमानी श्रुतधर शिष्य पुण्यैरवाप्यते ॥११॥

कठ उवाच

अध्यापयस्व भो ब्रह्मजिज्ञाष्य मा धीतकल्मषम् । शुश्रूषणरत भक्त कुलीन सत्यवादिनम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा भरद्वाज प्रादाद्विद्यामशेषत । प्राप्तविद्य कठ प्रीतो भरद्वाजमयाब्रवीत् ॥१३॥

पुराणवेत्ता लोग मली भाँति जानते हैं । भरद्वाज नामक एक अत्यन्त तपस्वी ऋषि थे । उनकी एक बहिन थी जो अति कुरूप और अस्वस्थ स्वर से बोलने वाली थी । प्रतापी भाई भारद्वाज उस कुरूप कन्या को देखकर एक दिन गंगा के दक्षिण तट पर बैठ चिन्तामग्न हो विचार करने लग कि इस भयङ्कर आकार वाली कन्या (बहिन) को फिरने होया गोर्खु । यदि इसको ग्रहण भी तो नही करेगा परन्तु इस बहिन को क्या विप्र का देना अनिवार्य है । हाय ! दुःख का एकमात्र कारण कन्या किमी को उत्पन्न न हो । ऐसे कन्या वात् प्राणी (पिता) को जीवन में दाण दाण में मृत्यु का स्वाद मिलता है । इस प्रकार वे विचार कर रहे थे कि उनका उस रम्य आश्रम में भाई मुनिवर सायमी भारद्वाज ऋषि को देने के लिये । उस पांडाकार्त्तव्य शुभमूर्ति गाँत उदार और गुणा आत्मुक्त का नाम कठ था । उसने भरद्वाज को नमस्कार किया । मुनि ने उसका स्तुति किया । और स्वयं उसके सामने स्थित हो उसके आन का कारण पूछा । कठ ने भा भारद्वाज मुनि से कहा कि 'मैं विद्या प्राप्त करने के लिए यहाँ उपस्थित हुआ हूँ उसी बहाने दाण की भी अमिलाया था अब जो कुछ उपयुक्त आता हो प्रदान कर दिये । यह मुनिकर भारद्वाज ने कठ से कहा 'जो कुछ पढ़ने को इच्छा हो पढ़ा । पुराण स्मृतियाँ वेद आदि अनेक धर्मग्रन्थ हैं । महाबुद्धिमान मैं सब कुछ जानता हूँ इच्छानुसार बतौ । विलम्ब करने का आवश्यकता नहीं है । कुलीन कर्त्तव्यप्रीमी गुरुमया में लीन रहने वाला स्वाभिमानी और प्रतिभाशाली शिष्य बड़े भाग्य से गुरु का प्राप्त होता है ॥११॥११॥

कठ ने कहा—ब्रह्मन् ! मुझ निष्ठाप गुरुपापरायण भक्त कुलीन और सत्यवादी शिष्य को पढ़ाइय ॥१२॥

प्रह्ला ने कहा—एक ही है । यह कहकर भारद्वाज ने उसको सब विद्यायें पूरुष से पढ़ा दी । विद्या प्राप्त कर लने का बाद कठ ने प्रसन्न होकर भारद्वाज से कहा ॥१३॥

कठ उवाच

इच्छेय दक्षिणा दातु गुरो तव मन प्रियाम् । वदस्व दुर्लभं वाऽपि गुरो तुभ्य नमोऽस्तु ते ॥१४॥
विद्या प्राप्यापि ये मोहात्स्वगुरो पारितोषिकम् । न प्रयच्छन्ति निरय ते यान्त्याचन्द्रतारकम् ॥१५॥

भरद्वाज उवाच

गृहाण कन्या विधिवद्भार्यां कुरु मम स्वसाम् । अस्या प्रीत्या वर्तितव्यं याचेय दक्षिणामिमाम् ॥१६॥

कठ उवाच

ग्यातृवत्पुत्रवच्चापि शिष्य स्यात्तु गुरो सदा । गुरुश्च पितृवच्च स्यात्सख्योऽग्रं कथं भवेत् ॥१७॥

भरद्वाज उवाच

मद्भाष्य कुरु सत्यं त्वं ममाऽज्ञा तव दक्षिणा । सर्वं स्मृत्वा कठाद्यं त्वं रेवतीं भर तन्मना ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा गुरोर्वाक्यात्कठो जग्राह पाणिना । रेवतीं विधिवद्दात्ता समीक्ष्य कठस्तव्यम् ॥१९॥
'तत्रैव पूजयामास देवेश शंकर तदा' । रेवत्या रूपसप्तत्यं शिवप्रीत्यं च रेवती ॥२०॥
सुरुपा चारुसर्वाङ्गी न रूपेणोपमीयते । अभिषेकोदके तत्र रेवत्या यद्विनि सृतम् ॥२१॥

कठ ने कहा—गुरो! मैं आपको मन-मसद दक्षिणा देना चाहता हूँ। गुरो! चाहे आपकी इच्छा कुछ वस्तु के लिए ही क्यों न हो आप कहिये। आपको नमस्कार है। जो विद्या प्राप्त कर अनानवग गुरु की दक्षिणा नहीं देते हैं वे जब तक आकाश में चंद्र और नक्षत्र रहते हैं तब तक वे लिये नरक को जाते हैं ॥१४ १५॥

भरद्वाज ने कहा—मेरी इस कुमारी बहिन को गालवानुसार अपनी भार्या बना लो। इससे प्रमदूषक व्यवहार करना इसी दक्षिणा का याचना करता हूँ ॥१६॥

कठ ने कहा—गिर्य गुरु के लिए माई के समान या पुत्र के समान सबदा माना जाता है। गुरु गिर्य के पिता के तुल्य होता है। ऐन, स्थिति मे (आपक यहाँ मेरा) वैवाहिक सम्बन्ध कैसे होगा? ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—मेरे शब्दा को तुम सत्य सिद्ध करो यह मेरी आज्ञा और तुम्हारी दक्षिणा है। कठ! आज सब कुछ स्मरण कर लो रेवती का प्रमदूषक पाणिग्रहण करो ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—जो आज्ञा बहुर कठ ने अपने गुरु के कथनानुसार विधिपूर्वक की हुई रेवत का पाणि ग्रहण कर लिया कठ ने रेवती को देखकर उसकी रूपरत्ना बनाने के अभिप्राय से भगवान् शंकर को प्रार्थन करने के लिये वही देवेश शंकर की पूजा की। पूजा के प्रभाव से वह गुरुपा रेवती सुरुप सर्वोद्गमुन्दरी बन गई। उसका रूप का सादृश्य किसी अन्य से करना कठिन हो गया। उसका अभिषेक से जो जल बहा वह उसी का नाम पर रूप और सीमाय देने वाली रेवती नाम की नदी बन गई जो कि गंगा में जाकर मिल गई। पुनः कठ ने पवित्र रूप की

साऽभवत्तत्र गङ्गाया तस्मात्तन्नामतो नदी । रेवतीति समाख्याता रूपसौभाग्यदायिनी ॥२२॥
 पुनर्दर्भेश्च विविधैरभिषेक चकार स । पुण्यरूपत्वसत्सिद्ध्यै विदर्भा तदभून्नदी ॥२३॥
 श्रद्धया सगमे स्नात्वा रेवतीगङ्गयोर्नर । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२४॥
 तथा विदर्भागीतम्यो सगमे श्रद्धया मुने । स्नान करोत्यसौ याति भुक्ति मुक्ति च तत्क्षणात् ॥२५॥
 उभयोस्तोरयोस्तत्र तीर्थाना शतमुत्तमम् । सर्वपापक्षयकर सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विदर्भासगमरेवतीसगमादितोर्थवर्णन
 नामैकाविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१२१॥

गीतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५२॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णादितोर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पूर्णतीर्थमिति ख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे । तत्र स्नात्वा नरोऽज्ञानात्तयाऽपि शुभमाप्नुयात् ॥१॥

प्राप्ति के लिये अनेक दुःखों से उसका अभिषेक किया । उस अभिषेक के जलसे विदर्भा नाम का नद बन । मनुष्य रेवता और गंगा के सगम में स्नान कर सब पापों से छूट जाता और विष्णुलोक में पूजित होता है । मुने । इसी प्रकार विदर्भा और गीतमी के सगम में स्नान करने से भी मनुष्य तत्क्षण भुक्ति और मुक्ति का प्राप्त करता है । यह नहीं वहाँ दोषों तटों पर सब पापों को नष्ट करने वाले और सब प्रकार का सिद्धियाँ प्रदान करने वाले तीर्थ तथे भा हैं ॥१९ २६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विदर्भा सगम रेवती-सगम आदि तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तट पर पूरा तथे नामक एक तीर्थ है । उसमें यदि मनुष्य मूलकर भी स्नान करे तो भी शुभ फल प्राप्त करेगा ॥१॥ जहाँ स्वयं पत्रधर विष्णु और पिताक, शिव निवास करते हैं,

पूर्णतोर्यस्य माहात्म्यं वर्ण्यते केन जतुना । स्वयं सस्थोपते यत्र चक्रिणा च पिनाकिना ॥२॥
 पुरा धन्वन्तरिर्नाम कल्पादावायुय सुत । इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैरश्वमेधपुर सरै ॥३॥
 दत्त्वा दानान्यनेकानि भुक्त्वा भोगाश्च पुष्कलान् । विज्ञाय भोगवैषम्यं परं वैराग्यमाश्रित ॥४॥
 गिरिशृङ्गेऽम्बुधे पारे तथा गङ्गानदीतटे । शिवविष्णवोगूहे वापि विशेषात्पुण्यसगमे ॥५॥
 तप्तं हृतं च जप्तं च सवमक्षयतां व्रजेत् । धन्वन्तरिरिति ज्ञात्वा तत्र तैपतपो महत् ॥६॥
 ज्ञानवैराग्यसंपन्नो भीमेशचरणाश्रयः । तपश्चकार विपुलं गङ्गासागरसगमे ॥७॥
 पुरा च निकृतो राज्ञा रणं हित्वा महासुरः । सहस्रमेकं वर्षाणां समुद्रं प्राविशद्भूयात् ॥८॥
 धन्वन्तरौ वनप्राप्ते राज्यप्राप्ते तु तत्सुते । विरागं च गते राज्ञि ततः प्रायादथार्णवात् ॥९॥
 तपस्यत तमो नाम बलवानसुरो मुने । गङ्गातीरं समाश्रित्य राजा धन्वन्तरियत ॥१०॥
 जपहोमरतो नित्यं ब्रह्मज्ञानपरायणः । तं रिपुं नाशयामीति तमं प्रायादथार्णवात् ॥११॥
 नाशितो बहुशोऽननं राज्ञा बलवता त्वहम् । तं रिपुं नाशयामीति तमं प्रायादथार्णवात् ॥१२॥
 मायया प्रमदाहूय कृत्वा राजानमभ्यगात् । नृत्यगीतवती सुभ्रह्मन्ती चारदशना ॥१३॥

उस पूण तप का माहात्म्य वर्णन भला बोन कर सकता है ? ॥२॥ बहुत पहले कल्प के आदि में आयु का धन्वन्तरि नामक पुत्र था । उसने अश्वमेध आदि विविध यज्ञ किये अनेक प्रकार के दान दिये और अन्तर्गत भोगों का भोग किया । अन्त में भोगों का विषम-परिणाम जानकर वह परम विरक्त हो गया ॥३॥ उसने यह जानकर कि परम विरक्त समुद्रतट गंगा-ट अथवा बिबिष्णु के मन्दिर में और विष्णु रूप से पवित्र सगङ्ग-स्थान में जप रूप आर हवन करने से अगम पुण्य प्राप्त होगा है—यह जानकर धन्वन्तरि महान् तप करने लगा ॥४॥ उसने गंगा और सागर के सगङ्ग पर जप एवं वैराग्य से युक्त होकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥५॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥६॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥७॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥८॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥९॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥१०॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥११॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥१२॥ पहले राजा (धन्वन्तरि) ने गाँव में रह कर राजा में रण में हाथकर एक महाराज के समान रहने लगा ॥१३॥

ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गी बहुकालं नयान्विताम् । शातामनुव्रता भवता कृपया चान्नवीक्षणम् ॥१४॥

नृप उवाच

काऽसि त्वं कस्य हतोर्वा वतस गहने वने । क दृष्ट्वा ह्यपीव त्वं वद कल्याणि पृच्छत ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

प्रमदा चापि तद्वाक्यं श्रुत्वा राजानमब्रवीत् ॥१६॥

प्रमदोवाच

त्वयि तिष्ठति को लोकः हनुहपस्य म भवत । अहमिन्द्रस्य या लक्ष्मीस्त्वा दृष्ट्वा वामसंभृतम् ॥१७॥
हर्षाच्चिरामि पुरतो राजस्तव पुनः पुनः । अगण्यपुण्यविरहादहं सवस्य दुर्लभा ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचो निगम्याऽऽतु तपस्त्यक्त्वा सुदुष्करम् । तामव मनसा ध्यायस्तत्तिष्ठस्तत्परायण ॥१९॥
तदकशरणो राजा बभूव स यदा तमः । अतर्धानं गतो ब्रह्मन्नागयित्वा तपो बृहत् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरं ह्येव वरान्दातु समन्वयगामः । तदृष्ट्वा विह्वलीभूतः तपोऽग्रेष्टं ययामृतम् ॥२१॥

वह राजा के पास गया। राजा ने उस स्यादगमुंदर कियेगल गल भव और ब्र रायण महिला को बहुत बार देखा। अत म स्वय कृपा और प्रम से आद्र हो उस माया रमण से पूछा ॥१३ १४॥

राजा बोला—तुम कौन हो। किसलिए इस गहन वन में घूम रही हो? क्याणि किसका देववर द ने प्रसन्न हो रहे हो? तम वतलाओ मैं पूछ रहा हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा न यहा—वह रमण भा राजा क वाक्य का सुनकर उक्त बोले ॥१६॥

रमणी बोली—तुम्हारे रूते दूसरा कौन मेरे आनन्द का कारण हो सकता है? राजन! मैं इन्द्र क दरबार क गोमा हूँ आद्र तुम को काममोहित देववर आनन्द से बार-बार तुम्हारे सामने घूम रहा हूँ। परंतु यह कसम का मैं अगणि पुण्य मे रहि व्यक्ति क लिए दुर्लभ हूँ ॥१७ १८॥

ब्रह्मा न यहा—यह सुनकर राजा सा प्र अपने अति दुष्कर प को छानकर उन का ध्यान करने लगा। उर्ग म उक्त एकमात्र निष्ठा हा आई और उक्त पछ वह पमिल-सा हो गया। ब्रह्मन जब म ने देखा कि राजा एकमात्र महा पर अनुरक्त हो गया है तब वह उक्त महान रूप को अपनी माया से नष्ट कर स्वय अर्पित हो गया। नारद! इस बात म उक्तों के दन के लिए उक्त पाम गया। उस तपोऽग्रेष्ट व्याकुल और मृतपुंय महाराज को देववर मने विविध मुक्तिया और उगहरणा से उक्तों कान्विता दा कि देखा वह तम नामक तुम्हारा मृदु था जा

१५ अन्विता ॥१०॥ २५ अनुपमामकया ॥ ३६ इ ०वीन्द्रिदम् ॥ ५० ॥ ४५ इ ०इत्यत्रम् ॥

५५ एतारोगमवत् । अनाप्यत्तपस्तस्य तम वैनाति हेतुना । तं ॥ ६५ च । ७५ इ महत् ।

तमाश्वास्याय विविधैर्हेतुभिर्नृपसत्तमम् । तव शत्रुस्तमो नाम कृत्वा तां तपसश्च्युतिम् ॥२२॥
चरितार्थो गतो राजन्न त्वं शोचितुमर्हसि । आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम् ॥२३॥
सर्वा एव विशेषेण किमु मायामयो तु सा । तत कृताञ्जली राजा मामाह विगतभ्रमः ॥२४॥

राज्ञोवाच

किं करोमि कथं ब्रह्मस्तपसः पारमान्नुयाम्

॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्योत्तरं प्रादा देवदेवं जनार्दनम् । स्तुहि सर्वप्रयत्नेन ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२६॥
स ह्यशेषजगत्प्रण्टा वेदवेद्यः पुरातनः । सर्वार्थसिद्धिदः पुंसां नाभ्योऽस्ति भुवनत्रये ॥२७॥
स जगाम नगश्रेष्ठ हिमवन्त नृपोत्तमः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुं तुष्टाय भविततः ॥२८॥

धन्वन्तरिरुवाच

जय विष्णो जयाचिन्त्य जय जिष्णो जयाच्युत । जय गोपाल लक्ष्मीश जय कृष्ण जयन्मय ॥२९॥
जय भूतपते नाथ जय पद्मगशायिने । जय सर्वग गोविन्द जय विश्वकृते नमः ॥३०॥

इस प्रकार तुम्हको तपस्या से बहुत बड़ा सफलमनोरथ हासिल चला गया । राजन् ! तुम चिन्तित मत हो । सम-
रसिगिमी विशेष रूप से मानव की आनन्दित करता और क्लेश पहुँचाता है । वह तो मायाविन, यी, फिर उसके
नियम म कहता है । क्या ? तदनन्तर मेरी बात को सुनकर उसका भ्रम दूर हो गया, उसने हाथ जाड़कर मुझसे
कहा ॥१९-२४॥

राजा ने कहा—ब्रह्मन् ! तो अब मैं क्या करूँ ? किस प्रकार तप सिद्धि को प्राप्त करूँ । ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त मैंने उसको उत्तर दिया कि तुम देवाधिदेव जनार्दन की स्तुति करो । उससे सिद्धि
प्राप्त करोगे । वे सम्पूर्ण जगत् के रचयिता, वेदों से जानने योग्य पुरातन और मनुष्यों को सब प्रकार की मनोरथ-
सिद्धि प्रदान करने वाले हैं । उनके समान इस त्रिभुवन म और कोई नहीं है । मेरे आदेश को मानकर वह नृपोत्तम
पर्वतराज हिमालय पर गया और वहाँ अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक विष्णु की स्तुति करने लगा ॥२६-२८॥

धन्वन्तरि ने कहा—विष्णो ! आपकी जय हो, अचिन्त्य ! जय हो, जयशील ! जय हो, अभ्युत ! जय
हो ! गोपाल ! जय हो, लक्ष्मीपते ! जय हो, जगन्मय ! कृष्ण ! जय हो ॥२९॥ भूतपते ! जय हो ! नाथ !
सर्व परमोत्तम ! जय हो ! व्यापक ! जय हो ! गोविन्द ! जय हो ! समार के बनाने वाले ! आपकी नमस्कार
है ॥३०॥ विश्व के मोक्षदा ! देव ! आपकी जय हो, विश्व के पारण करने वाले को नमस्कार है । ईश ! जय

जय विश्वभुजे^१ देव जय विश्वधृते^२ नम । जयेश^३ सदसत्त्व वै जय माधव धर्मिणे ॥३१॥
 जय कामद काम त्वजय राम गुणार्णव । जय पुष्टिद पुष्टीश जय कल्याणदायिने ॥३२॥
 जय भूतप भूतेश जय मानविधायिने । जय कर्मद कर्म त्व जय पीताम्बरच्छद ॥३३॥
 जय सर्वेश सर्वस्त्व जय मङ्गलरूपिणे । जय सत्त्वाधिनाथाय जय वेदविदे नम ॥३४॥
 जय जन्मद जन्मिस्थ^४ परमात्मन्नमोऽस्तु ते । जय मुक्तिद मुक्तिस्त्व^५ जय भुक्तिद केशव ॥३५॥
 जय लोकद लोकेश जय पापविनाशन । जय वत्सल भक्तानां जय चक्रधृते नम ॥३६॥
 जय मानद मानस्त्व जय लोकनमस्कृत । जय धर्मद धर्मस्त्व जय सत्तारपारग ॥३७॥
 जय अन्नद अन्न त्व जय वाचस्पते नम । जय शक्तिद शक्तिस्त्व जय जंत्रवरप्रद ॥३८॥
 जय यज्ञद यज्ञस्त्व^६ जय पद्मदलेक्षण । जय दानद दान त्व जय कंटभसूदन ॥३९॥

हो । आप सत और असत् रूप हैं । माधव^१ धर्मात्मन्^२ जय हो ॥३१॥ काम के देने वाले^३ कामरूप^४ जय हो गुण के सागर^५ राम । आपकी जय हो । पुष्टि के देने वाले^६ जय हो पुष्टि के ईश^७ जय हो । कल्याण दाता की जय हो ॥३२॥ समस्त प्राणियों के पालन करने वाले^८ भूतेश^९ जय हो । सम्मान देने वाले की जय हो । काम के देने वाले^{१०} कामरूप^{११} जय हो । पीताम्बरधारी^{१२} आप की जय हो ॥३३॥ सर्वो^{१३} सब^{१४} आपकी जय हो । मंगल रूप की जय हो । जीवों के अधिपति की जय हो । वेदों के ज्ञाता की जय हो । आपको नमस्कार है ॥३४॥ जन्मदाता^{१५} जन्म देने वालों के हृदय में रहने वाले^{१६} परमात्मन्^{१७} आपको नमस्कार है । मुक्तिदाता^{१८} जय हो । आप मुक्ति रूप भी हैं । केशव^{१९} मुक्तिदाता^{२०} जय हो ॥३५॥ लोक के मनोरथ दाता^{२१} लोकेश^{२२} पापविनाशक^{२३} जय हो भक्तवत्सल^{२४} जय हो चक्रधारी की नमस्कार है । ॥३६॥ मान देने वाले^{२५} आप मानस्वरूप हैं । ससार से पूजित^{२६} जय हो । धर्म के देने वाले^{२७} और धर्मस्वरूप^{२८} आपकी जय हो । सत्तार के पार जाने वाले^{२९} जय हो ॥३७॥ अन्नदाता^{३०} आप अन्नस्वरूप हैं । आपकी जय हो । वाणीपति की नमस्कार है । शक्ति के दाता^{३१} जय हो । आप शक्तिस्वरूप हैं । विजयी जनों को धर देने वाले^{३२} जय हो ॥३८॥ यन्त्रफल देने वाले^{३३} आप यज्ञस्वरूप हैं । आपकी जय हो । पद्म की पल्लवियों के समान नेत्रवाले^{३४} जय हो । दानदाता^{३५} आप दानस्वरूप हैं । आपकी जय हो । पट्टम नामक अमुर के शत्रु^{३६} जय हो ॥३९॥ कीर्तिदाता^{३७} आप कीर्तिस्वरूप हैं । आप की जय हो ।

१च विवर्चिदे । २ध च पाशभूते । ३ध इ जय सत्यद सत्य त्व ज० । ४ध मायावि० । ५ध च तत्पद सत्यस्थ ज० । ६इ जन्म त्व १० । ७च मुक्तीश जय सपद माधव । ८ध च ०धभूते । ९ध च अन्नत्न ज्ञय । १० ध च शक्त्यात्मज्जय ज्ञान्व० । ११ध च यज्ञात्मज्जय ।

जय कीर्तिद कीर्तिस्त्व जय मूर्तिद मूर्तिधृक् । जय सौख्यद सौख्यात्मञ्जय पावनपावन ॥४०॥
 जय शान्तिद शान्तिस्त्व जय शकरसमभव । जय पानद पानस्त्व जय ज्योति स्वरूपिणे ॥४१॥
 जय वामन वित्तेश जय धूमपताकिने । जय सर्वस्य जगतो दातृमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥४२॥
 त्वमेव लोकप्रपर्वतिजीवनिकापसबलेशविनाशदक्ष ।
 श्रीपुण्डरीकाक्ष कृपानिधे त्व, निधेहि पाणि मम मूर्ध्नि विष्णो ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुवन्त भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः । धरेण च्छन्दयामास सर्वकामसमृद्धिद ॥४४॥
 धन्वन्तरिः प्रीतमना वरदानेन चक्रिण । वरदानाय देवेश गोविन्दं संस्थितं पुरः ॥४५॥
 तमाह नृपति प्रह्व सुरराज्य ममेप्सितम् । तच्च दत्तं त्वया विष्णो प्राप्नोऽस्मि कृतकृत्यताम् ॥४६॥
 स्तुतः संपूजितो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत । तथैव त्रिदशेशत्वमवाप नृपतिः क्रमात् ॥४७॥
 प्रापजितानेककर्मपरिपाकवशात्ततः । त्रि कृत्वो नाशमगमत्सहस्राक्षः स्वकात्पदात् ॥४८॥
 नहुषद्वत्रहत्यायाः सिन्धुसेनवधात्ततः । अहल्यायां च गमनाद्येन केन च हेतुना ॥४९॥
 स्मार स्मार तत्तदिन्द्रदिचिन्तासतापदुर्मनाः । तत सुरपतिः प्राह धाचस्पतिमिदं वचः ॥५०॥

मूर्ति देने वाले ! मूर्ति धारण करने वाले ! जय हो ! सौख्य प्रदान करने वाले ! सौख्यरूप ! जय हो ! पवित्र को भी पवित्र करने वाले ! जय हो ! ॥४०॥ शान्ति प्रदान करने वाले ! आप शान्तिरूप हैं ! आपको जय हो ! शकर के उद्गम ! जय हो ! वेद्य प्रदान करने वाले ! आप वेद्यरूप हैं ! आपको जय हो, ज्योति स्वरूप की जय हो ॥४१॥ वामन ! जय हो ! धनेश ! जय हो ! अग्निरूप की जय हो ! सम्पूर्ण ससार के दातास्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥ आप ही त्रिमूर्ति में रहने वाले प्राणि समूह के महान् कलेशो को विनष्ट करने में दक्ष हैं ! श्रीवमलनयन ! कृपानिधान ! विष्णो ! आप मेरे शिर पर अपना (वरद) हस्त रखिए ॥४३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने वाले धन्वन्तरि को सब प्रकार की वामनाओं और सम्पत्तियों को देने वाले तथा सब चक्र एवं गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने वर प्रदान किया । चक्री के वरदान से धन्वन्तरि प्रसन्न हो गया । उसने बड़ी विनम्रता से वर देने के लिये सामने खड़े भगवान् से कहा—‘विष्णो ! आपने मेरी अमीप्सित कामना देवराज्य को प्रदान कर दिया । इससे मैं कृतहृत्य हो गया हूँ ।’ भगवान् विष्णु भी राजा की स्तुति और पूजा से प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये । राजा ने भी त्रम से देवेन्द्र की पदवी प्राप्त की । तदनन्तर पूर्वजन्म के अनेक कर्मों के परिपाक से वह सहस्राक्ष (इन्द्र) अपने पद से तीन बार च्युत हुए । पहली बार दुर्न-हत्या के कारण नहुष द्वारा पदच्युत चिये गये, दूसरी बार सिन्धुसेन-वध के कारण, इसके बाद तीसरी बार अहल्या के पास अनुविन रूप से जाने के कारण वे पदच्युत हुए । इस प्रकार त्रिस विभी कारण से पदभ्रष्ट होने पर इन्द्र अपने उन-उन पवन की पटनाओं अथवा कारणों को सोचकर चिन्ता की अग्नि से जलन से लगे । तब अत्यन्त व्याकुल हो देवेन्द्र ने ब्रह्मपति से यह प्रश्न किया ॥४४-५०॥

इन्द्र उवाच

हेतुना केन वागीश भ्रष्टराज्यो भवाम्यहम् । मध्ये मध्ये पदभ्रंशाद्वरं निःश्रीकता नृणाम् ॥५१॥
गहनां कर्मणां जीवगतिं को वेत्ति तत्त्वतः । रहस्यं सर्वभावानां ज्ञातुं नाग्न्यः प्रगल्भते ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिर्हरिं प्राह ब्रह्माणं पृच्छ गच्छ तम् । स तु जानाति यद्भूतं भविष्यच्चापि वर्तनम् ॥५३॥
स तु वक्ष्यति येनेदं जातं तच्च महामते । तावागत्य महाप्राज्ञो नमस्कृत्य समान्तिकम् ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मामूचतुरिदं वचः ॥५४॥

इन्द्रबृहस्पतो ऊचतुः

भगवन्केन दोषेण शचीभर्ता उदारधीः । राज्यात्प्रग्रश्यते नाय संशय छेतुमर्हसि ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽहमब्रव ब्रह्मर्षिचरं ध्यात्वा बृहस्पतिम् । खण्डधर्माख्यदोषेण तेन राज्यपदाच्छ्रुतः ॥५६॥
देशकालादिवोषेण श्रद्धामन्त्रविपर्ययात् । यथावद्दक्षिणादानादसद्ब्रव्यप्रदानतः ॥५७॥
देवभूदेवतावज्ञापातकाच्च विशेषतः । यत्खण्डत्व स्वधर्मस्य देहिनामुपजायते ॥५८॥

इन्द्र ने कहा—वागीश । किस कारण मैं सिंहासन-व्युत हो जाता हूँ । मनुष्यों के बीच-बीच में पद-भ्रंश से तो जीवनमर श्री-हीन होना ही उत्तम है । दुर्ज्ञेय कर्मों के अनुसार वठिन जीवगति को कौन व्यक्तित्व यथार्थतः जान पाता है ? सब भावों (व्यापारों) के रहस्यों को जानने की क्षमता अन्य किसी में नहीं है ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि तुम ब्रह्मा के पास जाओ और उनसे ही पूछो । वे भूत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं । महामते ! वही जिस कारण ऐसा हुआ है उसको बतायेंगे । ऐसा परामर्श करके वे दोनों महामतिमान् मेरे समीप आये और नमस्कार कर बड़ाञ्जलि हो मुझसे बोले ॥५३-५४॥

इन्द्र और बृहस्पति ने कहा—भगवन् । किस दोष से उदार बुद्धि वाले देवराज अपने राज्य से व्युत होते हैं । नाथ ! इस संशय को आप ही दूर कर सकते हैं ॥५५॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्मन् । तब मैंने बहुत देर तक सोच विचार कर बृहस्पति से कहा कि ये खण्ड धर्म नामक दोष के कारण राज्यपद से व्युत हो गये हैं । क्योंकि देशकाल आदि के दोष से श्रद्धा और मन्त्र के विपर्यय से यथोचित दक्षिणा कै न देने से, असद्ब्रव्य के दान देने से और विशेष रूप से देवता एवं ब्राह्मण के अपमानजन्य पाप से मनुष्यों का जो धर्म खण्डित होता है, उससे अत्यन्त मानसिक सताप होता है और अवश्यमेव पदहानि होती है । क्षुब्धचित्त होकर धर्म करने से भी अनिष्ट ही होता है । वह धर्म कार्य सिद्धि के लिये नहीं होता, है, अतएव मनुष्य को स्थिरचित्त

तेनातिमानसस्ताप पदहानिश्च दुस्त्यजा । कृतोऽपि धर्मोऽनिष्टाय जायते क्षुब्धचेतसा ॥५९॥
 कायस्य न भवत्सिद्धये तस्मादध्याकुलाय च । असंपूर्णे स्वधर्मे हि किमनिष्ट न जायते ॥६०॥
 ताम्ना यत्पूर्ववृत्तान्तं तदप्युक्तं मयाऽनघ । आयुषस्तु सुत श्रीमान्धवत्तरिहदारधो ॥६१॥
 तमसा च कृतं विघ्नं विष्णुना तच्च नाशितम् । पूवजन्मसु वृत्तान्तमित्यादि परिकीर्तितम् ॥६२॥
 तच्छ्रुत्वा विस्मिता चोभी मामेव पुनरुचतु ॥६३॥

इन्द्रबृहस्पती ऊचतु

तद्दोषप्रतिबन्धस्तु केन स्यात्सुरसत्तम

॥६४॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा तावदध्वं भूपता दोषका (ह)रकम् । कारणं सर्वसिद्धीनां दुस्तसारत्तारणम् ॥६५॥
 शरणं तप्तचित्तानां निर्वाणं जीवतामपि । गत्वा तु गौतमीं देवीं स्तूयेता हरिशकरी ॥६६॥
 नोपायोऽन्योऽस्ति सद्गुदयं तो सा हित्वा जगत्त्रये । तदेव जन्मतुष्टो गौतमीं मुनिसत्तम ॥
 स्नातो 'कृतक्षणी चोभी देवी तुष्टुवतुर्मुदा ॥६७॥

इन्द्र उवाच

नमो भर्तृपाय कूर्मपि घराहाय नमो नम । नरसिंहाय देवाय वामनाय नमो नम ॥६८॥

होकर धर्मकाय करना चाहिये । अपने धर्म के अपूण रहने पर कौन सा अनिष्ट नहीं होता है ? निष्पाप ! मैंने उन दोनों से जो कुछ पूव जन्म का वृत्तान्त था उसको भी कह दिया । उदारबुद्धि आद्य-गुण धवन्तरि का होना तम राक्षस द्वारा उनकी तपस्या में विघ्न डालना और विष्णु के द्वारा पुनः उन विष्णु का नाम आदि जो कुछ पूव जन्म के वृत्तान्त थे सब बताने दिये । इस प्रकार की बातें सुनकर वे दोनों विस्मित हो गये । पुनः उन दोनों ने मुझे कहा ॥५९-६३॥

इन्द्र और बृहस्पति ने कहा—हे देवयष्ट ! इस दोष का निराकरण किसमें होगा ? ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—गुरु मैंने विचारकर उन दोनों से कहा कि गुनो सब प्रकार की सिद्धियाँ के आश्रितारण ससार के दुःसा में पार लगाने वाले दुस्त-दग्ध जीवों के एकमात्र आधार और जीवन मरुत निर्वाण गुरु देने वाले उपाय को गुन । गौतमी गंगा के तट पर जाकर हरि और गङ्गा की स्तुति करो । दोष-शुद्धि के लिए हरि और गङ्गा की स्तुति को छोड़कर इन तीनों सोश में अन्य कोई उपाय नहीं है । मुनि-यष्ट ! यह गुनकर वे दोनों उसी समय गौतमी के समीप गये और स्नान कर समय पाकर दोनों देवों की स्तुति करने लगे ॥६५-६७॥

इन्द्र ने कहा—भगवान् मत्स्य को नमस्कार है कूर्म को नमस्कार है घराह को बार बार नमस्कार है नरसिंह देव और वामन को नमस्कार है नमस्कार है । अन्तरंग भगवान् को नमस्कार है । तीन रूपों से सम्पूर्ण मुचनमगदल

नमोऽस्तु ह्यरूपाय त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते । नमोऽस्तु' बुद्धरूपाय रामरूपाय कल्किने ॥६९॥
 अनन्तायाच्युतायेश जामदग्न्याय ते नमः । वरुणेन्द्रस्वरूपाय यमरूपाय ते नमः ॥७०॥
 परमेशाय देवाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे । बिम्बत्सरस्वतीं यवत्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥७१॥
 लक्ष्मीयानस्यतो लक्ष्मीं बिम्बद्वक्षसि धानध । बहुबाहू रूपादस्त्वं बहुकर्णाक्षिशीर्षकः ॥
 त्वामेव सुखिनं प्राप्य बह्वयः सुखिनोऽभवन् ॥७२॥
 तायन्नि.श्रीकृता पुंसां मालिन्यं दैन्यमेव वा । यावन्न यान्ति शरणं हरे त्वयं कथणार्णवम् ॥७३॥

बृहस्पतिवृत्तः

सूक्ष्मं परं जो (ज्यो) तिरनन्तरूपमोकारमात्रं प्रवृत्तेः परं यत् ।
 चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं यदन्तोऽहं मुमुक्षयस्त्वाम् ॥७४॥
 आराधयन्त्यत्र भवन्तमीदां, महामर्त्यः पञ्चभिरप्यकामाः ।
 संसारसिन्धोः परमाप्तकामा, विदन्ति दिव्यं भुवनं वपुस्ते ॥७५॥
 सर्वेषु सत्त्वेषु समत्वबुद्ध्या, संवीक्ष्य पद्सूमिषु शान्तभावाः ।
 ज्ञानेन ते बन्धफलानि हित्वा, ध्यानेन ते त्वां प्रविशन्ति शंभो ॥७६॥

को नापने वाले (त्रिविक्रम) । आपको नमस्कार है । बुद्धरूप, रामरूप और कल्की रूप में अवतीर्ण होने वाले मगवान् को नमस्कार है । ईश ! अनन्त अच्युत और परमुराम रूप आपको नमस्कार है । वरुण इन्द्र और यम रूप आपको नमस्कार है । परमेश देव और त्रैलोक्यरूपधारी को नमस्कार है । अपने मूल में गरुडवती को धारण करने वाले आप सर्वेश हैं, आपको नमस्कार है । निष्कल्मष ! आप लक्ष्मीवान् हैं । इन्द्रिण्य लक्ष्मी को यदा स्थल पर धारण करने हैं । आप अनन्त बाहु, ऊरु (अपा), वरुण बान, आप और शिर बाड़े हैं । मुमुक्षुजि आपको पाकर ही बहुत-से मनुष्य गुणी हो गये । हरे ! मनुष्या के पास दरिद्रता, मज्जितता और दीनता तभी तक रहती है जब तक वे ब्रह्मा-मागर आपकी धारण में नहीं आते हैं ॥६८-७३॥

बृहस्पति ने कहा—ईश ! मुमुक्षु लोग आपको सूक्ष्म पर, ज्योति स्वरूप अनन्तरूप ओंकार मात्र प्रवृत्ति में परे, बिन्दु, आनन्दमय और सम्पूर्ण (विश्वरूप) ऐसा करते हैं ॥७४॥ निष्काम साधक पाँच महायज्ञ द्वारा आप प्रभु को ही आराधना करते हैं । समार-मागर में पार आने की इच्छा करने वाले लोग आप ही के दिव्य भुवन रूपी शरीर में प्रवेश करते हैं ॥७५॥ धर्मो ! सब प्राणियों में समान बुद्धि में देखकर उन्हें प्रारण के कल्पे—सूक्ष्म ध्याय, सोम, मोह सती और गर्मी में शान्त भाव में रहने वाले मुमुक्षुजन मुझसे जान में बन्धन-को छोड़कर ध्याने द्वारा तुम में ही प्रवेश करते हैं ॥७६॥ मुझमें मैं तो जनि-धर्म है न वेद-ध्याय वा ज्ञान है न ध्यान-योग

न जातिधर्माणि न वेदशास्त्र, न ध्यानयोगो न 'समाधिधर्मं	।
रुद्र शिव शंकर शान्तचित्त, भक्त्या देव सोममहं नमस्ये	॥७७॥
मूर्खोऽपि शभो तव पादभक्त्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनु ते	।
ज्ञानेषु यज्ञेषु तपसु चैव, ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु	॥७८॥
सपन्नमेतत्फलमुत्तमं यत्सोमेश्वरे भक्तिरहनिश यत्	।
स्वर्गस्य जीवस्य सदा प्रियस्य, फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य	॥७९॥
स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास, सोपानपङ्क्तिस्तव भक्तिरेषा	।
त्वत्पादसंप्राप्तिफलाप्तये तु, सोपानपङ्क्तिं न वर्दन्ति धीरा	॥८०॥
तस्माद्दयालो मम भक्तिरस्तु, नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा	।
आत्मीयभालोक्य महत्त्वमीश, पापेषु चास्मासु कुरु प्रसादम्	॥८१॥
स्थूलं च सूक्ष्मं त्वमनादि नित्यं, पिता च माता यदसच्च सच्च	।
एव स्तुतो यं श्रुतिभिः पुराणैर्नमामि सोमेश्वरमीशितारम्	॥८२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रीतो हरिहराबूचतुस्त्रिदशेश्वरौ	॥८३॥
--------------------------------------	------

हरिहराबूचतु

प्रियता यमनोभीष्टं यद्गुरोर्चातिदुर्लभम्	॥८४॥
--	------

का बल है और न समाधि धर्म ही है। मैं केवल भक्तिपूर्वक शान्तचित्त रुद्र शिव शंकर और सोमदेव को नमस्कार करता हूँ ॥७७॥ शभो! मूर्ख भी तुम्हारे चरणों की भक्ति से आपके मुक्तिमय शरीर को प्राप्त कर लेता है। ज्ञान यज्ञ तपस्या ध्यान होम महान् फल वाले कार्यों का उत्तम फल यही है कि भगवान् सोमेश्वर के चरणों में सर्वदा अवलम्बित हो ॥७८॥ जगन्निवास! आपकी यह भक्ति स्वर्ग के फल तथा जीवों को प्रिय लगने वाले दृष्ट एवं श्रुत फल और स्वर्ग तथा मोक्ष (प्राप्त करने) की सीढ़ियाँ की परम्परा है ॥७९॥ परन्तु धीर पुरुष तुम्हारे चरणों तक पहुँचा देने के लिये इस सीढ़ियों के मिलसिले को नहीं बताते हैं ॥८०॥ इसलिये हे दयालो! तुममें मेरी भक्ति हो तुम्हारी रूप सेवा (भक्ति) के अतिरिक्त मेरे लिये और कोई उपाय नहीं है। ईश! अपनी महत्ता का ध्यान कर हम पापात्माओं के ऊपर आप प्रसन्न होइए ॥८१॥ श्रुतियाँ और पुराणों में स्थूल सूक्ष्म अनादि नित्य पिता माता असत् और सत् कहकर जिसकी स्तुति की है उस प्रभु सोमेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा न क्वा—तत्पश्चात् देवेश हरि और हर प्रसन्न होकर बोले ॥८३॥

हरिहर ने कहा—तुम लोगो को जो अभीष्ट हो और जो अतिदुर्लभ वर हो वह माँगो ॥८४॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्र प्राह सुरेशान मद्राज्य तु पुन पुन । आपते नश्यते चैव तत्पापमुपशाम्यताम् ॥८५॥
यथा स्थिरोऽहं राज्ये स्या सर्वं स्यान्निश्चल मम । सुप्रीतो यदि देवेशो सर्वं स्यान्निश्चल सदा ॥८६॥
तथेति हरिवाक्यं तावभिनन्देदमूचतु । पर प्रसादमापन्नो तावालोच्य स्मिताननो ॥८७॥
निरपायनिराधारनिर्विकारस्वरूपिणी । शरण्यो सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदाबुधो ॥८८॥

हरिहराबूचतु

त्रिदिवत्प महातीर्थं गौतमी वाञ्छितप्रदा । तस्यामनेन मन्त्रेण कुरुता स्नानमादरात् ॥८९॥
अभिषेकं महेंद्रस्य मङ्गलाय बृहस्पति । करोतु तस्मिन्नावा सपदा स्वर्गसिद्धये ॥९०॥
इह जन्मनि पूर्वस्मिन्पार्थकिंचित्सुकृतं कृतम् । तत्सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥९१॥
एव स्मृत्वा तु यः कश्चिद्गौतम्यां स्नानमाचरेत् । आवाप्यां तु प्रसादेन धर्मं सपूर्णतामियात् ॥
पूर्वजन्मकृतादोषात्स मुक्त पुण्ययानभवेत् ॥९२॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चयतु प्रीतो सुरेन्द्रधिपणो तत । महाभिषेकमिन्द्रस्य चकार शुसदा गुरु ॥९३॥
तेनाभूत्ता नदी पुण्या भद्रगलेत्युदिता तु सा । तया च सगम पुण्यो गङ्गाया शुभदस्त्वसौ ॥९४॥
इन्द्रेण सस्तुतो विष्णु प्रत्यक्षोऽभूज्जगमय । त्रिलोकसमिता शक्तो भूमि सेभे जगत्पते ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र ने गवर से कहा—जिस पाप से बार बार मेरा राज्य होता है और नष्ट हो जाता है उस पाप को गान्त कीजिये । यदि आप दोनों देवेश परम प्रसन्न हैं तो मैं जिस प्रकार अपने राज्य पर स्थिर हो जाऊँ और सब पर मेरा अधिकार अचल हो जाय वैसा कीजिये । विष्णु न ऐसा ही हो यह कहा । इस स्वीकारात्मक वाणी को सुनकर उन दोनों ने अग्नि दन किया और पुन कहा—अविनाशी निराधार निर्विकारस्वरूप समस्त लोका के रक्षक और भोग-भोग देने वाले आप दोनों को प्रसन्नमुख देखकर हम दोनों अत्यन्त आनन्दित हो गए ॥८५ ८८॥

हरिहर ने कहा—यह त्रिवक्त्र (तीन देवताओं वाला) महातीर्थ है और यह गौतमी वाञ्छित फल को देने वाली है । उगमे इस (निम्नलिखित) मन्त्र से भक्तिपूर्वक स्नान करो । बृहस्पति इन्द्र के कल्याण तथा सम्पत्ति की स्थिरता के लिए हम दोनों का स्मरण करते हुए देवराज का अभिषेक कर । (स्नान-मन्त्र) इस जन्म में तथा पूर्व जन्म में जो कुछ मैंने श्रावण करने हैं वे सब (कर्म) पूर्ण हो जाय । हे गोदावरी ! आपको नमस्कार है । इस प्रकार स्मरण कर जो कोई गौतमी में स्नान करता है उसका सङ्गित धर्म हम लोगों की कृपा से पूर्ण हो जाता है और वह पूर्व जन्म के किये दोषों से मुक्त हो पुण्यवान् हो जाता है ॥८९ ९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त भेदर और वाचस्पति ने ऐसा ही करेंगे यह कहकर प्रसन्न हो वायु प्रारम्भ किया । देवमुद्र ने इन्द्र का महाभिषेक किया । उग अभिषेक-जल से जो नदी उत्पन्न हुई वह पवित्र मंगला नाम से प्रसिद्ध हुई । गंगा के साथ उसका सगम पवित्र और शुभप्रद हुआ । इन्द्र की स्तुति से जग-मूर्ति विष्णु वहाँ प्रत्यक्ष हुये । उम जगत्पति की कृपा से इन्द्र ने त्रिलोक-भूजिन (भूमि) प्राप्त की । इसलिये वहाँ 'गोविन्द' इस नाम से

तन्नाम्ना चापि विख्यातो गोविन्द इति तत्र च । त्रिलोकसंमिता लब्धा तेन गौर्वज्रधारिणा ॥९६॥
 दत्ता च हरिणा तत्र गोविन्दस्तदभूद्धरिः । त्रिलोक्यराज्यं यत्प्राप्तं हरिणा च हरेर्मुने ॥९७॥
 निश्चलं येन (तच्च) 'संजात देवदेवान्महेश्वरात् । बृहस्पतिर्देवगुर्यंत्रास्तौषोन्महेश्वरम्' ॥९८॥
 राज्यस्य स्थिरभावाय' देवेन्द्रस्य महात्मनः । सिद्धेश्वरस्तत्र देवो लिङ्गं तु त्रिदशाक्षितम् ॥९९॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं गोविन्दमिति विश्रुतम् । 'मङ्गलासंगमं चैव पूर्णतीर्थं ततः परम्' ॥१००॥
 इन्द्रतीर्थमिति ह्येतं बार्हस्पत्यं च विश्रुतम् । यत्र' सिद्धेश्वरो देवो विष्णुर्गोविन्द एव च ॥१०१॥
 तेषु' स्नानं च दानं च यत्किञ्चित्सुकृताजर्जम् । सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणामतिवल्लभम् ॥१०२॥
 शृणोति यश्चापि पठेद्यश्च स्मरति नित्यशः । तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥१०३॥
 सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तीर्थानि तोरयोर्द्वयोः । उभयोर्मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥१०४॥
 न पूर्णतीर्थसदृश तीर्थमस्ति महाफलम् । निष्फलं तस्य जन्मादि यो न सेवेत तन्नरः ॥१०५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य उभयोस्तीरयोः पूर्णतीर्थमङ्गलासंगम-

गोविन्दसिद्धेश्वरादिसप्तत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥१२२॥

श्रीतमोमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

विख्यात द्वये, क्योंकि उस वज्रधारी इन्द्र ने वहाँ त्रिलोक्यपूजित गौ (गूँमि) प्राप्त की। विष्णु ने वहाँ इन्द्रको गौ
 दी थी, इसलिए हरि गोविन्द हो गये। मुने' विष्णु से इन्द्र ने जो त्रिलोक्य राज्य प्राप्त किया वह राज्य
 देवाधिदेव महेश्वर की कृपा से अचल हो गया। देव-गुरु बृहस्पति ने जहाँ महात्मा देवेन्द्र ने राज्य की स्थिरता के
 लिये महेश्वर की स्तुति की, वहाँ सिद्धेश्वर देव और देवपूजित लिंग की स्थापना की गई। उस समय से वह तीर्थ
 गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसके पश्चात् मंगला-संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ और बृहस्पति तीर्थ विख्यात तीर्थ द्वये।
 जहाँ सिद्धेश्वर देव विष्णु और गोविन्द (इन्द्र) स्थित है, उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से जो कुछ पुण्य
 प्राप्त होते हैं, वे सब अक्षय होते हैं और उनसे पितरों को अत्यन्त प्रसन्नता मिलती है। उस तीर्थ के माहात्म्य
 को जो कोई नित्य पढ़ता है, या स्मरण करता है उसका गया हुआ राज्य और नष्ट वंशव पुन प्राप्त हो जाते हैं।
 मुनिवर! उस पुण्य सलिल नदी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सैनीम हजार तीर्थ
 हैं। पूर्ण तीर्थ के समान उत्तम फल देने वाला कोई भी तीर्थ इस भूमण्डल पर नहीं है। उस मनुष्य ने जन्म आदि
 निष्फल है जो इस पूर्णतीर्थ का सेवन नहीं करता है ॥९३ १०५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णतीर्थ, मङ्गला तीर्थ आदि सैनीम हजार तीर्थों का

माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ बाईसवा अध्याय समाप्त ॥१२२॥

१५ च तत्प्राप्त । २६ ०१ तत्तं देवाः । ३५ च ०२स्तोत्र नीत्वा महे० । ४ ०२स्तत्र स्थाप्य महे० ।
 ४५ च ०२तां प्रायाहे० । ४ ०२तां प्राप दे० । ५५ च ०३ वेति तत्र स्नात्वा शुक्तिर्भवेत् । ६० । ६४. च
 ७३ । ७८. तत्र । ८५ ४ च ०५ । यत्र सिद्धेश्वरो देवो गोविन्दो जनवल्लभ । ८० ।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तीर्थमिति ख्यातं भ्रूणहत्याविनाशनम् । तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापे प्रमुच्यते ॥१॥
 कुवशप्रभवः क्षत्रियो लोकविश्रुतः । बलवान्मतिमाञ्जुरो यथा शक्रः पुरंदरः ॥२॥
 पितृमहः राज्यं कुर्वन्नास्ते यथा बलिः । तस्य तिस्रो महिष्यः स्यू राज्ञो दशरथस्य हि ॥३॥
 ल्या च सुमित्रा च कंकयो च महामते । एता कुलीना सुभगा रूपलक्षणसमुता ॥४॥
 मन्त्राजनि राज्ये तु स्थितेऽयोध्यापती मुने । वसिष्ठे ब्रह्मविच्छेष्टे पुरोधसि विशेषतः ॥५॥
 व ध्याधिर्न दुर्भिक्षं न चावृष्टिर्न चाऽऽधयः । ब्रह्मक्षत्रविशा नित्यं शूद्राणां च विशेषतः ॥६॥
 मणा तु सर्वेषामानन्दोऽभूत्पृथक्पृथक् । तस्मिञ्ज्ञासति राजेन्द्र इक्ष्वाकूणां कुलोद्बन्धे ॥७॥
 ना दानवानां तु राज्याय विप्रहोऽभवत् । यवापि तत्र जयः प्राप्नुवेवा यवापि तथेतरे ॥८॥
 प्रवर्तमाने तु प्रलोक्यमतपोडितम् । अभून्नारदः तत्राहमधद दैत्यदानवान् ॥९॥

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—रामहत्या के पाप को दूर करने वाला रामतीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसके नामश्रवण से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१॥ इक्ष्वाकुवंशी विश्व प्रसिद्ध बलवान् क्षत्रिय राजा दशरथ इन्द्र के पुत्र और बुद्धिमान् थे ॥२॥ वे बलि के समान अपने पिता पितृमह के राज्य का पालन करते थे। उस राजा रथ की तीन रानिया थी ॥३॥ महामते । उनके नाम कौशल्या कंकयी और सुमित्रा थे। वे कुलीन भाग्यशालिनी रूप-लक्षण-संपन्ना थी ॥४॥ मुने । उस अयोध्यापति राजा दशरथ के शासन काल में विशेषकर महाब्रह्म ती वसिष्ठ के पुरोहित रहते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और विशेषतया शूद्र को कभी भी मानसिक पीड़ा व्याधि अथवा अवृष्टि (सूखा) इत्यादि से कष्ट नहीं होता था ॥५॥ ६॥ इक्ष्वाकु-कुल की मर्यादा बढ़ाने वाले उस राजेन्द्र शासन में सब आश्रमों को पृथक्-पृथक् इच्छानुल्ल आनन्द प्राप्त था ॥७॥ इसी समय देवताओं और दानवा मे ल के लिये युद्ध हो गया कहीं पर राक्षसों की विजय तो किसी मोर्चे पर देवों की विजय हुई ॥८॥ इस प्रकार युद्ध जाने पर त्रिभुवन दुःख से काप उठा। नारद । यह देखकर मैंने दैत्य दानवों और विशेषकर देवताओं को शायी परन्तु उन रण-दुर्मदों ने मेरा कहना नहीं सुना ॥९॥ प्रत्युत पुनः उनमें परस्पर अति गन्धक युद्ध छिड़

१४ च ०त ब्रह्मह० । २४ ०स्य स्मरण० । ३४ ड च ०प्रवरः क्ष० । ४४ च ०हे । एतस्मिन्नन्तरे महत्कायमुपस्थितम् । दे० ।

देवांसचापि विशेषेण न कृतं तर्मेदीरितम् । पुनश्च संगरस्तेषां बभूव सुमहान्मियः ॥१०॥
 विष्णुं गत्वा सुराः प्रोचुस्तथेशानं जगन्मयम् । तावूचतुष्टभौ देवानसुरान्देत्यदानवान् ॥११॥
 तपसा बलिनो यान्तु पुनः कुर्वन्तु संगरम् । तथेत्याहुर्धृष्यः सर्वे तपसे नियतव्रताः ॥१२॥
 ययुस्तु राक्षसान्देवाः पुनस्ते मत्सरान्विताः । देवानां दानवानां च संगरोऽभूत्सुदारणः ॥१३॥
 न तत्र देवा जेतारो नैव दैत्याश्च दानवाः । संयुगे वर्तमाने तु बाहुबाचाशरीरिणी ॥१४॥

आकाशवाग्वाच

येषां दशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जयायोभौ जग्मतुर्देवदानवौ । तत्र वायुस्त्वरन्प्राप्तो राजानमवदत्तदा ॥१६॥

वायुरुवाच

आगन्तव्यं त्वया राजन्देवदानवसंगरे । यत्र राजा दशरथो जयस्तत्रेति विश्रुतम् ॥१७॥
 तस्मात्त्वं देवपक्षे स्या भवेयुर्जयिनः सुराः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायुवचनं श्रुत्वा राजा दशरथो नृपः । आगम्यते मया सत्यं गच्छ वायो ययासुखम् ॥१९॥
 गते वायो तदा दैत्या आजग्मूर्भूषति प्रति । तेष्व्यूचुर्भगवन्मत्सहाय्यं वर्तुमर्हसि ॥२०॥

गया । देवताओं ने विष्णु और जगद्गुरु शंकर से सारा वृत्तान्त कह सुनाया । उन दोनों देवताओं ने देव, असुर, दैत्य और दानव सबको एकत्र कर कहा कि पहले तपस्या से बल प्राप्त करो, फिर युद्ध करना । दोनों पक्ष वालों ने इस आदेश को स्वीकार किया और उमयपक्ष दृढव्रत होकर तपस्या के लिये चले गये । यद्यपि वे दोनों (राक्षस और देवता) गये तो परन्तु पुन वे ईर्ष्या करने लगे, जिसके परिणामस्वरूप पुन अति कठिन युद्ध छिड़ गया । परन्तु उस युद्ध में न तो देवता ही विजयी हुये और न दानव ही । इसी बीच युद्ध के अवसर पर आकाशवाणी हुई ॥१०-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—जिनके पक्ष में राजा दशरथ रहेंगे वे ही जीतेंगे, दूसरे नहीं ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर दोनों देव और दानव विजय की इच्छा से राजा दशरथ के पास पहुँचने लगे ।

(उनमें से देव-पक्ष के दूत) वायु ग्रीष्म राजा के पास पहुँच गये और राजा से बोले ॥१६॥

वायु ने कहा—राजन् ! देव-दानवों के युद्ध में आपको आना चाहिये, क्योंकि जिस ओर आप रहेंगे वही पक्ष विजयी होगा यह बात प्रसिद्ध है । इसलिये आप देव-पक्ष में रहे, जिससे देव विजयी हो जायें ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु की बात सुनकर राजा दशरथ ने कहा कि आप मुझपूर्वक जाइयें, मैं अवश्य आपके पक्ष में आऊँगा । जब वायु चले गये तब दैत्य भी राजा के समीप आये । उन लोगों ने भी कहा—'महवन् ! हम लोगों

राजन्दशरथ श्रीमन्विजयस्त्वयि सस्थित । तस्मात्त्व वं दैत्यपते साहाय्य कर्तुमर्हसि ॥२१॥
 तत प्रोवाच नृपतिर्वयुना प्रार्थित पुरा । प्रतिज्ञात मया तच्च यान्तु दैत्याश्च दानवा ॥२२॥
 स तु राजा तथा चक्रे गत्वा चैव त्रिविष्टपम् । युद्ध_चक्रे तथा दैत्यैर्दानवै सह राक्षसै ॥२३॥
 पश्यत्सु देवसंघेषु नमुचेर्भ्रतरस्तदा । विविधुर्निशितैर्बाणैरथाक्ष नृपतेस्तथा ॥२४॥
 भिन्नाक्ष त रथ राजा न जानाति स सभ्रमात् । राजान्तिके स्थिता सुभ्रू कंकेय्याञ्जायि नारद ॥२५॥
 न ज्ञापित तथा राज्ञे स्वयमालोक्य सुव्रता । भग्नमक्ष समालक्ष्य चक्रे हस्त तदा स्वकम् ॥२६॥
 अक्षवन्मुनिशार्दूल तदेतन्महद्भुतम् । रथेन रथिनां ॥ श्रेष्ठस्तथा दत्तकरेण च ॥२७॥
 जितवान्दैत्यदनुजान् देवै प्राप्य वरान्बहून् । ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्या पुनरभ्यगात् ॥२८॥
 स'तु मध्ये महाराजो मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम् । कंकेय्या कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मय परम गत ॥२९॥
 ततस्तस्यै वरान्प्रादात्त्रीस्तु नारद सा अपि । अनुमान्य नृपप्रोक्त कंकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥

कंकेय्युवाच

त्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी

॥३१॥

की सहायता कीजिये । श्रीमान् । राजन् । दशरथ । विजय आप ही के हाथ में है । इसलिये आप अवश्य दैत्यपति की सहायता कीजिये । यह सुनकर राजा ने कहा—वायु ने पहले ही आकर प्रायना की है मैंने भी उस प्रायना के अनुसार जाने की प्रतिज्ञा कर ली है अतः (आप) दैत्य दानव चले जाय । उस राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वयं जाकर दैत्य दानव तथा राक्षसों के साथ युद्ध किया । उस समय देवताओं के देखते देखते नमचि ने भाइयों ने राजा के रथ की धुरी को तीखे बाणों से तोड़ डाला । वह राजा युद्धरत होने के कारण इस घटना को न जान सका परन्तु नारद । उसके समीप बैठी हुई सुन्दर मी वाली कंकेयी ने जान लिया । उस सुव्रता ने स्वयं देखकर भी राजा को नहीं बताया अपितु अपना हाथ धुरी की जगह लगा दिया । मनिवर ! उसने यह बड़ा अदभुत वाय किया । रथियों में थपट राजा दशरथ ने उसी रथ पर बैठ कर दैत्य दानवा को जीता और देवताओं से अनेका वर प्राप्त किये । तदनन्तर देवताओं से सादर विदा हो पुनः अयोध्या पुरी को लौट आये । उस समय माग म राजा अपनी प्रिया को देखकर और कंकेयी के उस अति अदभुत वर को जानकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया । नारद । तब (उसके इस वर से कृतज्ञ हो) राजा ने रानी को तीन वर दिये । कंकेयी ने भी राजा के दिये तीन वरों को स्वीकार कर राजा से कहा—॥१९ ३०॥

कंकेयी ने कहा—राजद्र । तुम्हारे दिये ये तीन वर तब तक तुम्हारे ही पास धरोहर के रूप में रहे ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

विभूषणानि राजेन्द्रो दत्त्वा स प्रियया सह । रथेन विजयी राजा ययौ स्वनगर सुखी ॥३२॥
 योषिता किमदेयं हि प्रियाणामुचितागमे । स कदाचिद्दशरथो मृगयाशीलिभिर्वृत ॥३३॥
 अटन्नरण्ये शर्वर्या वारिवन्धमयाकरोत् । सप्तव्यसनहीनेन भवितव्यं तु भूभुजा ॥३४॥
 इति जानन्नपि च तच्चकार तु विधेर्वशात् । गर्तं प्रविश्य पानार्थमागताग्निशितं शरैः ॥३५॥
 मृगान्हन्ति महाबाहु शृणु कालविपर्ययम् । गर्तं प्रविष्टे नृपतौ तस्मिन्नेव नगोत्तमे ॥३६॥
 वृद्धो वंशवणो नाम न शृणोति न पश्यति । तस्य भार्या तयाभूता तावन्नूता तदा सुतम् ॥३७॥

मातापितराबूचतुः

आवा तृपातौ रात्रिश्च कृष्णा चापि प्रवर्तते । वृद्धानां जीवितं बृहत्स्म बालस्त्वमसि पुत्रक ॥३८॥
 अन्धानां बधिराणां च वृद्धानां धिक्च जीवितम् । जराजर्जरदेहानां धिग्धिक्पुत्रक जीवितम् ॥३९॥
 तावत्पुभिर्जीवितव्यं यावत्लक्ष्मोर्दृढं वपुः । यावदाज्ञाऽप्रतिहता तीर्थादावप्यथा मृति ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वृद्धमोर्गुहवत्सल । पुत्रं प्रोवाच तददुःखं गिरा मधुरया हरन् ॥४१॥

ब्रह्म ने कहा—वह विजयी राजा अपनी प्रिया को विविध आभूषण देकर प्रिया के साथ रथ से सुखपूर्वक अपने नगर को गया । सब कहा है कि उचित समय आने पर प्रिय स्त्रियों के लिये कौन सी वस्तु न देने योग्य है ?

किसी समय वह राजा शिकार के प्रेमी अनुचरों के साथ वन में ऊपर उपर घूमने लगा । रात्रि में उसने पानी को बाँपा से रोकवा दिया । 'राजा को सात प्रकार के व्यसन। स (जिनमें एक शिकार भी है) प्युषक रहना चाहिये' यह जानकर भी विधि प्रेरणा से उगने एक अनप्य किया । वह महाराजमी राजा स्वयं गड्डे में छिपकर पानी पीने के लिये आए हुए वन्य पशुओं को अपने तीखे बाणों से मारने लगा । अब समय की कुटिलता की कहानी सुनो—उसी ऊँचे पर्वत पर—जहाँ कि राजा गड्डे में घुमकर आघट कर रहा था—एक वृद्ध रहना था जो न गुनता था न देखता था । उसकी स्त्री भी उसी के समान थी । उन दोनों वृद्ध दम्पति ने अपने पुत्र से कहा ॥३२-३७॥

माता पिता ने कहा—हम दोनों प्यास में व्याकुल हैं और इस समय रान अथेरी है । वन्य ! तुम्हीं मह वृद्ध के एकाग्र जीवन हो । अथा वृद्धा और वृद्धा न जीवन को धिस्सार है । बेटा ! वृद्धावस्था में जीण दारीर वाला के जीवन को धिस्सार है । धिस्सार है । 'मनुष्यों को तब तक ही जीना चाहिये जब तक उनका पाग लक्ष्मी हो तथा दारीर दृढ़ हो और उनकी आत्मा का बरौह-टाक पाग्न होना हो । नहीं तो उन्हें तीर्थों में दारीर त्याग देना चाहिए ॥३८-४०॥

ब्रह्म ने कहा—बूढ़ माँ-बाप की इन बातों को सुनकर अपनी मधुर वाणी से उनका दुःख को हटाना हुआ वह गुरुवान पुत्र बोला ॥४१॥

पुत्र उवाच

मयि जीवति किं नाम युवयोर्दुःखमोदशम् । न हरत्यात्मजः पित्रोर्यश्चरित्रमनोरुजम् ॥४२॥
तेन किं तनुजेनेह कुलोद्वेगविधापिना ॥ ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा तायाश्वास्य महामना । तस्मिन्नेव समारोप्य बृद्धौ च पितरौ तदा ॥४४॥
हस्ते गृहीत्वा कलशं जगाम ऋषिपुत्रकः । स ऋषिर्नतु राजानं जानाति नृपतिर्द्विजम् ॥४५॥
उभौ सरभसौ तत्र द्विजा वारि समाविशत् । सत्वरं कलशे न्युब्जे वारि गृह्णन्तमाशुगैः ॥४६॥
द्विजं राजा द्विपं मत्वा विव्याध निशितं शरैः । वनद्विषोऽपि भूपानामवध्यस्तद्विदन्नपि ॥४७॥
विव्याध तं नृपः कुर्यान्न किं किं विधिवञ्चितः । स विद्धो मर्मदेशे तु दुःखितो वाक्पमन्नवीत् ॥४८॥

द्विज उवाच

केनेदं दुःखद कर्म कृतं सद्ब्राह्मणस्य मे । मंत्रो ब्राह्मण इत्युक्तो नापराधोऽस्ति कश्चन ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचनं श्रुत्वा मुनेरातस्य भूपतिः । निश्चेष्टश्च निःशसाहो शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥५०॥
तं तु दृष्ट्वा द्विजवरं ज्वलन्तमिव तेजसा । असावप्यभवत्तत्र सशल्य इव मूर्च्छितः ॥५१॥

पुत्र ने कहा—मेरे जीते जी आप लोगों को इस प्रकार दुःखी होने की क्या आवश्यकता ? जो पुत्र अपने
आवरण से माता-पिता की मानसिक व्यथा को दूर नहीं करता उस कुलाचार पुत्र से क्या लाभ ? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—यह बहुर उक्त महामना ने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया, पुत्र प्रणाम कर
उनको बृष के स्वन्य पर बैठा दिया और स्वयं अपने हाथ में कलश लेकर वह ऋषि-नुभार जल लेने के लिए चल पड़ा ।
उस समय न तो वह ऋषिपुत्र मृगयासक्ता राजा के विषय में जानता था और न राजा ही उस द्विज का जानता था ।
दोनों अपने-अपने व्यापार में आवश्यकता में अधिक शीघ्रता कर रहे थे । उस गड्ढे में पानी के लिए वह द्विज उतरा,
शीघ्र ही वन्य को मुनकर पानी मरने लगा । उसी समय राजा ने उसको जगली हाथी जानकर अपने तीथे और
शीघ्रगामी बाणों से बेध डाला । 'राजा जगली हाथी को भी अवध्य समझे' यह जानते हुए भी राजा ने उसको मार
ही डाला । मांस में प्रतारित होने पर मनुष्य क्या-क्या नहीं कर डालता है ? मर्म-स्थल में बाण लगने से वह ऋषि-
नुभार अत्यन्त पीड़ित हो बोला—॥४४-४८॥

ब्राह्मण ने कहा—आह ! मुझ निरपराध सद्ब्राह्मण के प्रति विमने यह पीडाकारक कार्य किया ? ब्राह्मण
सत्ता मित्र बड़ा जाता है, फिर मैंने तो कोई अपराध भी नहीं किया है ॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा आनं मुनि की इन बातों को सुनकर चिक्कतव्यविमूढ़ हो गया । उसका सारा उत्साह

आत्मानमात्मना कृत्वा स्थिरं राजाऽब्रवीदिदम्

॥५२॥

राजोवाच

को भवान्द्विजशार्दूल किमर्थमिह चाऽऽगतः । वद पापकृते मह्यं वद मे निष्कृतिं पराम् ॥५३॥

ब्रह्महर्षिभिः कितु श्वपचरपि जातुचित् । न स्पृष्टव्यो महाबुद्धे द्रष्टव्यो न कदाचन ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाजवचनं श्रुत्वा मुनिपुत्रोऽब्रवीद्वचः

॥५५॥

मुनिपुत्र उवाच

उत्तमिष्यन्ति मे प्राणा अतो वक्ष्यामि किञ्चन । स्वच्छन्दवृत्तिताज्ञाने विद्धि पाकं च कर्मणाम् ॥५६॥

आत्मार्यं तु न शोचामि वृद्धौ तु पितरौ मम । तयोः शुश्रूषकः कः स्यादन्धयोरेकपुत्रयोः ॥५७॥

विना मया महारण्ये कथं तौ जीवयिष्यतः । ममाभाग्यमहो कीदृक्षितुशुश्रूषणे क्षतिः ॥५८॥

जाता मेऽद्य विना प्राणैर्हर्षा विधे किं कृतं त्वया । तयाऽपि गच्छ तत्र त्वं गृहीतकलशस्त्वरन् ॥५९॥

ताभ्यां देहचुषपानं त्वं यथा तौ न मरिष्यतः ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं श्रुत्वतस्तस्य गताः प्राणा महाबने । विमुञ्च्य संशरं चापमादाय कलशं नृपः ॥६१॥

तत्रागात्स तु वेगेन यत्र वृद्धौ महाबने । वृद्धौ चापि तदा रात्रौ तावन्योग्यं समूचतुः ॥६२॥

जाता रहा । वह धीरे धीरे उस स्थान पर आया । वह तेज से जलते हुए उस ब्राह्मणकुमार को देखकर स्वयं बाण-विद्ध-सा मूर्च्छित हो गया । धीरे-धीरे उस राजा ने अपने को सम्हलकर कहा—॥५८-५९॥

राजा ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आप कौन हैं ? यहाँ किसलिए आये ? आप इस पापी से कहिये, साथ ही इस महापाप का क्या प्रतिकार है, इसको भी बतलाइये । महाबुद्धिमान् ! ब्रह्मघाती मनुष्य किसी वर्ण के मनुष्यों में तो कौन कहे पाण्डला से भी छूने योग्य नहीं होना । उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिए ॥५३-५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस राजा की बातों को सुनकर मुनिपुत्र ने कहा ॥५५॥

मुनिपुत्र ने कहा—मेरे प्राण अभी निकल जायेंगे इसलिये कुछ कह रहा हूँ सुनो, स्वयं हा जाने वाले व्यवहारा का कारण पूर्वजन्म के कर्मों का फल समझो । मैं स्वयं अपने लिये शोक नहीं कर रहा हूँ, परन्तु मेरे वृद्ध माँ-बाप हैं, उन इकलौते पुत्र वाले अग्ये वृद्धों की सेवा करने वाला अब कौन होगा ? मेरे विना अब इस घनघोर जंगल में वे कैसे जीवित रहेंगे ? आह ! मेरा यह किंसा दुर्भाग्य है कि मेरी मृत्यु से माता पिता की सेवा में बाधा पड़ गई । हा ! अकरण विधाता ! तुमने यह क्या किया ? तथापि तुम बल्ग ले लो और क्षीष्ट वहाँ जाओ । उनको पानी पीने के लिये दो, जिससे कि वे दोनों मरने न पायें ॥५६-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार वह कह ही रहा था कि उसके प्राण उस महाबन में निकल गये । राजा यह देखकर बाण सहित घनघोर को फेंक दिया तथा स्वयं जल-जन्तु से चर बड़ी मीथना में चली गया, जहाँ दोनों वृद्ध थे । ये दोनों वृद्ध भी कुछ अधिक बिलम्ब होने के कारण उस समय रात्रि में एतद्दूगरे से कह रहे थे ॥६१-६२॥

बृद्धावूचतुः

उद्विग्न. कुपितो वा स्यादथवा भक्षितः कथम् । न प्राप्तश्चाऽऽवयोर्यष्टिः किं कुर्मः का गतिर्भवेत् ॥६३॥
न कोऽपि तादृशः पुनो विद्यते सचराचरे । यः पित्रोरन्धया वाक्यं न करोत्यपि निन्दितः ॥६४॥
यच्चादपि कठोरं वा जीवितं तमपश्यतोः । शीघ्रं न यान्ति यत्प्राणास्तदेकायत्तजीवयो ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एवं बहुविधा याचो बृद्धयोर्वदतोर्वने । तदा दशरथो राजा शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥६६॥
पादसंचारशब्देन मेनाते सुतमागतम् ॥६७॥

बृद्धावूचतुः

कुतो बत्स चिरात्प्राप्तस्त्व दृष्टिस्त्व परायणम् । न श्रूये किंतु हृष्टोऽसि बृद्धयोरन्धयोः सुतः ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

सशल्य इव दुःखार्तः शोचन्दुष्टतमात्मनः । स भीत इव राजेन्द्रस्तापुवाचाय नारद ॥६९॥
उदपानं च कुस्तां तच्छ्रुत्वा नृपभाषितम् । नायं वक्ता सुतोऽस्माकं को भवास्तत्पुरा वद ॥७०॥
पश्चात्पिबावः पानीय ततो राजाऽब्रवीच्च तौ ॥७१॥

राजोवाच

तत्र तिष्ठति वा पुनो यत्र वारिसमाश्रयः ॥७२॥

बृद्धो ने कहा—क्या वह ऊब गया या कुपित हो गया ? अथवा जगली जानवर ने उसको खा डाला ?
आह ! वह हम लोग के हाथ की रकड़ी (सहारा) नहीं आया। क्या करें ? हम लोगों की उसके बिना क्या
गति होगी ? अशिल चराचरात्मक जगत् में उसके समान कोई भी पुत्र नहीं, जो डाँटने-फटकारने पर भी माता
के कहने के विरुद्ध काम नहीं करता। हम लोगों का जीवन वय से भी अधिक कठोर है जो उसको न देखकर उसी
के सहारे जीने-बाले हमारे प्राण शीघ्र नहीं निवर्तते ॥६३-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की बहुत सी बातें वे दोनों बृद्ध उस वन में कह रहे थे कि इतने में राजा दशरथ
पीरे से उस स्थान पर पहुँचा। उसने पीर की आहट पाकर सोचा कि उनका प्रिय-पुत्र आ गया ॥६६-६७॥

बृद्धों ने कहा—बत्स ! क्यों इनने बिलम्ब में आया ? तुम हमारे नष्ट हो, एकमात्र आधार हो, बोलने
नहीं हो, क्या इन बूढ़े अन्धों के पुत्र तुम रह्य हो गये हो ? ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इन शब्दों की सुनकर वह राजा मानो बाणों से आहत-मा हो गया। दुःख से उसको क्षीय
वेदना हुई। नारद ! पाप का स्मरण करते हुए, उस राजेन्द्र ने दहते-दहते उन दोनों बृद्धों से कहा—‘यह जल
पीजिये।’ राजा की उस बोली की सुनकर उन दोनों ने कहा—‘यह वक्ता मेरा पुत्र नहीं जान पड़ता। अतः आप
पहले यह बतलाइये कि आप कौन हैं, पीछे हम जल ग्रहण करेंगे।’ यह सुनकर राजा ने उनसे कहा ॥६९-७१॥

राजा ने कहा—इस समय आता पुत्र जलाशय के तट पर पड़ा हुआ है ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वोचतुरातो तौ सत्यं ब्रूहि न चाग्न्यथा । आचक्षे ततो राजा सर्वमेव यथातथम् ॥७३॥
ततस्तु पतितौ बृद्धौ तत्राऽऽवां नय मा स्पृश । ब्रह्मघ्नस्पर्शनं पापं न कदाचिद्विनश्यति ॥७४॥
नित्ये वै श्रवणं बृद्ध सभार्यं नृपसत्तमः । यत्रासौ पतितः पुत्रस्तं स्पृष्ट्वा तौ विलेपतुः ॥७५॥

बृद्धाबूचतुः

यथा पुत्रवियोगेन मृत्युर्नो विहितस्तथा । त्वं चापि पाप पुत्रस्य वियोगान्मृत्युमाप्स्यसि ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु जल्पतोर्ब्रह्मन्मताः प्राणास्ततो नृपः । अग्निना योजयामास बृद्धौ च ऋषिपुत्रकम् ॥७७॥
ततो जगाम नगरं दुःखितो नृपतिर्मुने । वसिष्ठाय च तत्सर्वं न्यवेदयदशेषतः ॥७८॥
नृपाणां सूर्यवदयानां वसिष्ठो हि परा गति । वसिष्ठोऽपि द्विजश्रेष्ठः संमन्य्वाऽऽह च निष्कृतिम् ॥७९॥

वसिष्ठ उवाच

गालवं वामदेवं च जाबालिमय कश्यपम् । एतानन्यान्समाहूय हयमेधाय यत्नतः ॥८०॥
यजस्व हयमेधैश्च बहुभिर्बहुदक्षिणैः ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह मुनिकर उन दुखी बृद्धों ने कहा—‘सच्ची बात कहो झूठी मत बोलो । तदनन्तर राजा ने सत्य सत्य आदि से अन्त तक सब कुछ कह मुनाया । यह मुनिकर वे दोनों बृद्ध मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़े । पुनः कुछ अपने को सम्हाल कर उन्होंने कहा कि हम दोनों को वहाँ ले चलो, परन्तु शरीर-स्पर्श मत करो, क्योंकि ब्रह्महत्या करने वाले के स्पर्श से जो पाप होता है वह कभी भी दूर नहीं होता है । अन्त में वह राजर्षि बृद्ध ध्वज को स्त्रीसहित वहाँ लिखा ले गया जहाँ उनका वह प्यारा पुत्र मरा पड़ा हुआ था । उसका स्पर्श कर वे दोनों विलाप करने लगे ॥७३-७५॥

• बृद्ध ने कहा—जिस प्रकार पुत्र-वियोग से हम दोनों की मृत्यु हो रही है उसी प्रकार ऐ पापी ! तू भी अपने पुत्र के वियोग से मरेगा ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहन हुए उन दोनों ने प्राण-त्याग कर दिया । इसके बाद राजा ने अग्नि में उन दोनों बृद्धों और ऋषि-मुनिकर की दाह क्रिया की । मुने ! तब वह राजा अति दुखी हो नगर की ओर लौटा । नगर जाकर उसने गुरु वसिष्ठ से सारा वृत्तान्त पूर्णरूप से कह मुनाया । गुरु वसिष्ठ ही सूर्यवर्णी राजाओं के एकमात्र गति (आधार) थे । उन्होंने भी अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणों से परामर्श कर इन पाप की निवृत्ति (उद्धार) बनाई ॥७७-७९॥

वसिष्ठ ने कहा—गालव वामदेव जाबाल और कश्यप इनकी तथा अन्य ऋषिया को हयमेध यज्ञ के नित्ये विशिष्टपूर्वक निमन्त्रण देकर बुझाओ । फिर अनेका उत्तम दक्षिणावाले अश्वमेध यज्ञ करा ॥८०-८१॥

ब्रह्मोवाच

अकरोद्धयमेधाश्च राजा दशरथो द्विजं । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥८२॥

आकाशवाष्पुवाच

पूत शरीरमभवद्वाज्ञो दशरथस्य हि । व्यवहार्यश्च भविता भविष्यन्ति तथा सुता ॥
ज्येष्ठपुत्रप्रसादेन राजाऽपापो भविष्यति ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

ततो बहुतिथे काले ऋष्यशृङ्गान्मुनीश्वरात् । देवानां कार्यसिद्धयर्थं सुता आसन्सुरोपमा ॥८४॥
कौशल्याया तथा राम सुमित्राया च लक्ष्मण । शत्रुघ्नश्चापि कङ्क्रेया भरतो मतिमत्तर ॥८५॥
ते सर्वे मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिता । त राजानमृषि प्राप्य विश्वामित्र प्रजापति ॥८६॥
राम च लक्ष्मण चापि अयाचत महामते । यज्ञसरक्षणार्थाय ज्ञाततन्महिमा मुनि ॥८७॥
चिरप्राप्तसुतो वृद्धो राजा नैवेत्यभाषत ॥८८॥

राजोवाच

महता दैवयोगेन क्वचिद्द्वार्धके मुने । जातावानन्दसदोद्भायकौ मम बालकौ ॥८९॥
सशरीरमिव राज्य दास्ये नैव सुताविमौ ॥९०॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा दशरथ ने गृध्र के आदेशानुसार अनेको अश्वमेध यज्ञ किये । इसी बीच वहाँ आकाश वाणी हुई ॥८२॥

आकाशवाणी ने कहा—अब राजा दशरथ का शरीर पवित्र हो गया । अब इनके साथ (सामाजिक) व्यवहार किया जाता चाहिये । उनके पुत्र उत्पन्न होंगे । और अपन जेठे पुत्र के पुण्यप्रभाव से ये राजा निष्पाप हो जायेंगे ॥८३॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ समय बीत जाने के बाद मुनीश्वर ऋष्यशृङ्ग के प्रभाव से देवों की वाय सिद्धि के लिये राजा के देव तुल्य चार पुत्र उत्पन्न हुए । कौशल्या से राम सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कङ्क्रेयी से भरत नाम के महाबुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुए । वे सभी बुद्धिमान् बालक राजा के प्रिय और वशवर्ती थे । महाबुद्धिमान् । एक बार प्रजापति ऋषि विश्वामित्र उस राजा के पास आये और यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को माँगने लगे । क्योंकि तत्त्वदर्शी मुनि उन दोनों पराक्रमी बालका की महिमा को जानते थे । परन्तु वृद्ध राजा दशरथ ने चिरकाल के बाद प्राप्त इन दोनों पुत्रों को देने में आनाजानी की और कहा ॥८४ ८८॥

राजा ने कहा—मुने ! बहुत बड़ी दैव-शुभा से किसी प्रकार इस बुद्धावस्था में अपार आनन्द देने वाले ये दोनों पुत्र मुझे प्राप्त हुए हैं । अब मैं शरीर व सहित अपना सारा राज्य दे सकता हूँ परन्तु ये दोनों पुत्र नहीं दूँगा ॥८९ ९०॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठेन तदा प्रोक्तो राजा दशरथस्त्विति

॥९१॥

वसिष्ठ उवाच

रघव प्रार्थनाभङ्गं न राजन्ववापि शिक्षिता

॥९२॥

ब्रह्मोवाच

राम च लक्ष्मण चैव कथञ्चिदवदन्तु

॥९३॥

राजोवाच

विश्वामित्रस्य ब्रह्मर्षे कुरुता (त) यज्ञरक्षणम्

॥९४॥

ब्रह्मोवाच

वदन्निति सुतौ सोऽष्ट निश्वसन्ग्लपिताधर । पुत्री समर्पयामास विश्वामित्रस्य 'शास्त्रकृत्' ॥९५॥
 तथेत्युक्त्वा दशरथ नमस्य च पुन पुन । जगत् रक्षणार्थाय विश्वामित्रेण तौ मुदा ॥९६॥
 तत प्रहृष्ट 'स मुनिर्मुदा प्रादात्तदोभयो । माहेऽवरौ महाविद्या धनुर्विद्यापुरसराम् ॥९७॥
 शास्त्रोमास्त्रौ लौकिकौ च रथविद्या गजोद्भ्रुवाम् । अश्वविद्या गदाविद्या मन्त्राह्वानविसर्जने ॥९८॥
 सर्वविद्यामथावाप्य उभौ तौ रामलक्ष्मणौ । वनोक्तौ हितायार्थाय जघनतुस्ताटका घने ॥९९॥
 अहल्या शापनिर्मुक्ता पादस्पृशच्च चक्रत । यज्ञविध्वंसनायाताञ्जघ्नतुस्तत्र राक्षसान् ॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—तब वसिष्ठ ने राजा से इस प्रकार कहा ॥९१॥

वसिष्ठ ने कहा—रघुवर्गियों ने प्रार्थना को अस्वीकार कर देना कही भी नहीं सीखा है ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुरुवाक्य सुनकर राजा ने किसी प्रकार राम और लक्ष्मण से कहा ॥९३॥

राजा ने कहा—विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करो ॥९४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार पुत्रों को आज्ञा दते समय राजा ने गरम सीत ली उसके ओठ मूक बय, फिर भी शास्त्रज्ञ राजा ने दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के हाथ में सीप दिया ॥९५॥ पुत्रों ने भी जैसी आज्ञा कहकर बार-बार पिता को प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त हुए यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र के साथ चक्र दिये ॥९६॥ तदनन्तर प्रसन्न मुनि ने आनन्दपूर्वक उन दोनों बालकों का धनुर्विद्या और महाविद्या आदि महाविद्या एवं आह्वान और विसर्जन व मन्त्राह्वान शस्त्रविद्या अस्त्रविद्या लौकिक विद्या रथ विद्या हस्ति विद्या अश्व विद्या और गणा विद्या प्रदान की ॥९७-९८॥ इस प्रकार गुरु विश्वामित्र ने मनु विद्या प्रदान कर उन दोनों राम और लक्ष्मण ने वनवास की शपथ-मुक्ति के हित के लिये वन में ताड़ना का मार डाला ॥९९॥ अंग्रेज पावन चरण के स्पर्श से अहल्या की शाप मन्त्र रिया और यज्ञ दिव्य के लिये आय हुए यम राक्षसों का वध किया ॥१००॥ उन दोनों विद्या-मुक्त

'कृतविद्यो धनुष्पाणो चक्रतुर्यन्तरक्षणम् । ततो महामखे वृत्ते विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥१०१॥
 पुत्राभ्या सहितो राज्ञो जनकं द्रष्टुमभ्यगात् । चित्रामदर्शयत्तत्र राजमध्ये नृपात्मजः ॥१०२॥
 रामः सौमित्रिसहितो धनुर्विद्यां गुरोर्मताम् । तत्प्रोतो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम् ॥१०३॥
 तयैव लक्ष्मणस्यापि भरतस्यानुजस्य च । शत्रुघ्नभरतादीनां वसिष्ठादिमते स्थितः ॥१०४॥
 राजा दशरथः श्रीमान्विवाहमकरोन्मुने । ततो बहुतिथे काले राज्यं तस्य प्रयच्छति ॥१०५॥
 नृपती सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि । मन्यरात्मकदुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला ॥१०६॥
 कैकेयी विष्णमातस्ये वनप्रयाजनं तथा । भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान् ॥१०७॥
 पितरं सत्यवाक्यं तं कुर्वन्ग्रामो महावनम् । विवेश सीतया सार्धं तथा सौमित्रिणा सह ॥१०८॥
 सतां च मानसं शुद्धं स विवेश स्वकंगुणैः । तस्मिन्विनिर्गते रामे धनवासाय दीक्षिते ॥१०९॥
 समं लक्ष्मणसीताभ्यां राज्यतृष्णाविर्जिते । तं रामं चापि सौमित्रि सीतां च गुणशालिनीम् ॥११०॥
 दुःखेन महताऽऽविष्टो ब्रह्मशापं च संस्मरन् । तदा दशरथो राजा प्राणास्तत्प्राजं दुःखितः ॥१११॥
 कृतकर्मविषाकेन राजा भीतो यमानुगैः । तस्मै राज्ञे महाप्राज्ञं यावत्स्यावयज्जमे' ॥११२॥
 यमसदमन्यनेकानि तामिस्रादीनि नारद । नरकाण्यथ घोरानि भीषणानि बहूनि च ॥११३॥

धनुर्धारी कुमार ने इस प्रकार यज्ञ की रक्षा की । तदनन्तर महायज्ञ के विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाने के बाद महा-
 मुनीश्वर विश्वामित्र उस कुमार के साथ राजा जनक को देखने के लिये जनकपुर गये ॥१०१॥ वहाँ नृप-कुमार
 राम ने लक्ष्मण के सहित उस राज-समा में गुरु द्वारा प्राप्त और अभिमत अद्भुत धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया ।
 उनकी कला से प्रसन्न होकर राजा जनक ने अपनी कन्या-लक्ष्मी अयोनिजा सीता राम को दे दी ॥१०२-१०३॥
 उसी प्रकार वसिष्ठ आदि गुरुजना के कथनानुसार श्रीमान् राजा दशरथ ने भरतानुज लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न
 आदि भाइयों का भी विवाह कर दिया ॥१०४॥

बहुत दिन बीत जाने पर राजा ने प्रजा और गुरु की अनुमति से राम को राज्य देने का विचार किया परन्तु
 मन्यरा के रूप में आये दुर्दैव की प्रेरणा से कैकेयी ईर्ष्या से उन्मत्त हो गई ॥१०५-१०६॥ उसने इस कार्य में विष्णु
 उपस्थित किया और राम को वन भेजने और भरत का राज्य देने का वर माँगा । विन्तु राजा ने (पुत्र-स्नेह वश)
 नहीं दिया ॥१०७॥ पितृभक्त राम अपने पिता के वचन को सत्य मिद्ध करने के लिये सीता और सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण
 के साथ महावन में प्रविष्ट हुए, और साथ ही अपने (उच्च) गुणों के कारण सज्जनों के शुद्ध मन में भी प्रविष्ट
 हो गये ॥१०७-१०८॥ इधर वनवास के लिये दीक्षित (दृढ़ प्रतिज्ञ) तथा राज्य-लोभ से रहित राम के सीता और
 लक्ष्मण के सहित चले जाने पर राम लक्ष्मण और गुणवती सीता के वियोग की महान् व्याध से व्यथित होकर ब्रह्म-
 शाप का स्मरण करते हुए दुःखी राजा ने अपने प्राणा को छोड़ दिया ॥१०९-१११॥ त्रिषु रूपों के परिणामस्वरूप
 राजा को यम के अनुचर ले गये । महाप्राज्ञ नारद । स्यावर-जगम रूप यमाय्य में जिनने भयकर और
 तामिस्र आदि नरक हैं, उनमें राजा (दशरथ) पृथक्-पृथक् रूप से डाले गये ॥११२-११३॥ उनकी अग्नि में जलाया

तत्र क्षिप्तस्तदा राजा नरकेषु पृथक्पृथक् । पच्यते छिद्यते राजा पिध्यते' चूर्ध्वते तथा ॥११४॥
 शोष्यते दश्यते भूयो बहुते च निमज्ज्यते । एवमाविषु घोरेषु नरकेषु च पच्यते ॥११५॥
 रामोऽपि गच्छन्नध्वानं चित्रकूटमथागमत् । तत्रैव श्रीणि वर्षाणि ध्यतीतानि महामते ॥११६॥
 पुनः स दक्षिणामाशामाश्रामहृण्डकं वनम् । विहृषातं त्रिषु लोकेषु देशानां तद्धि पुण्यदम् ॥११७॥
 प्राविशत्तन्महारण्य भीषण दैत्यसेवितम् । तद्भूयादुपिभिरत्यवतं हृत्वा दैत्यांस्तु राक्षसान् ॥११८॥
 विचरन्दण्डकारण्ये ऋषिसेव्यमथाकरोत् । तत्रेदं वृत्तमाह्वारये शृणु नारद यत्नतः ॥११९॥
 तावच्छनैस्त्वगाद्रामो यावद्योजनपञ्चकम् । गौतमीं समनुप्राप्तो राजाऽपि नरके स्थितः ॥१२०॥
 यमः स्वर्गिकरानाह रामो दशरथात्मजः । गौतमीमभितो याति पितरं तस्य धीमतः ॥१२१॥
 आकर्षन्त्वय राजान नरकान्नात्र संशयः । उत्तीर्य गौतमीं याति यावद्योजनपञ्चकम् ॥१२२॥
 रामस्तावत्तस्य पिता नरके नैव पच्यताम् । यदेतन्मद्वचः पुण्यं न कुर्युर्पदि दूतकः ॥१२३॥
 ततश्च नरके घोरे यूयं सर्वे निमज्जय । या काऽप्युक्ता परा शक्तिः शिवस्य समयायिनी ॥१२४॥
 तामेव गौतमीं सन्तो यदन्त्यग्भ स्वरूपिणीम् । हरिब्रह्ममहेशानां मान्या यद्याच संव यत् ॥१२५॥
 निस्तीर्यते न केनापि तदतिश्रमजस्त्वधम् । पापिनोऽप्यतमजः कश्चिच्छदश्च (स्य) गङ्गामनुमरेत् ॥१२६॥

गया, चक्की में पीसा गया, मुगाया गया, दाँतो से बाटा गया, पुन जलाया गया, फिर डुबाया गया, इस प्रकार विभिन्न घोर नरकों में उन्हे यत्रणा दी गई ॥११४-११५॥

इपर राम भी वन-मार्ग पर चलते-चलते चित्रकूट आये । महामते । उसी स्थान पर उन्होंने तीन वर्ष ध्यनीत किये ॥११६॥ पुन वे दक्षिण दिशा की ओर चले और सीनो स्त्रोत्र में विख्यात, परम पुण्यप्रद उस दण्ड वन में प्रविष्ट हुये, जो दैत्यों के रहने के कारण अत्यन्त भयङ्कर था । दैत्यों के भय से ऋषियोंने भी उस वन को छोड़ दिया था । उन्होंने उस दण्डकारण्य में घूम-घूम कर उन दैत्यों का वध किया तथा वन को ऋषियों के निवास-योग्य बनाया ॥११७-११८॥ नारद । अब आगे जो घटना हुई उसको कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । राम भी तब तब धीरे-धीरे गौतमी की ओर बढ़े और केवल पाँच योजन दूर रह गये थे, उस समय तब राजा नरक में ही थे ॥११९-१२०॥ यह देखकर यमराज ने अपन अनुचरों से कहा कि दशरथ-पुत्र राम गौतमी के समीप जा रहे हैं अतः उस बुद्धिमान् व पिता राजा दशरथ को नरक से निराल दो इशारे सन्तुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । ॥१२१॥ जब तब राम गौतमी को पार कर पाँच योजन दूर नहीं चले जाते, तब तब उनके पिता को नरक में मन पराओ ॥१२२॥ यदि मेरे इस पवित्र वचन की उपाशा करागे तो ऐ दूतो । तुम लोग अबश्य घोर नरक में डूबोगे ॥१२३॥ शिव की जो गंधी-भूत पराशरिणि है उनी व जन्ममय रूप को सन्त स्त्रोत्र गौतमी कहत है ॥१२४॥ किमनिए वही गौतमी हरि, ब्रह्मा और महेश की मान्य और पूज्य है, अतः उगने अवमान करने से उत्पन्न पापों से किसी का उद्धार नहीं हो सकता ॥१२५॥ पापी पिता का भी बर्दा गुन यदि गया का स्मरण करता है तो उगता विष्णु अर्थात् घोर नरक में निरुद्ध कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥१२६॥ फिर किम पिता का राम से समान पुत्र गौतमी

सोऽनेकदुर्गनिरयान्निर्गतो मुक्तता व्रजेत् । किं पुनस्तादृशः पुनो गौतमीनिकटे स्थितः ॥१२७॥
यस्यासौ नरके पवतुं न करिषि हि शक्यते । दक्षिणाशापतेर्वार्यं निशम्य यमकिंकरा ॥१२८॥
नरके पच्यमानं तमयोध्याधिपतिं नृपम् । उत्तार्य घोरनरकाद्वचनं चेदमब्रुवन् ॥१२९॥

यमकिंकरा ऊचुः

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य पुनः स तादृशः । इह चामुत्र विश्रान्तिः सुपुनः केन लभ्यते ॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

॥१३१॥

स विश्रान्तः शनं राजा किंकरान्वाक्यमब्रवीत्

राजोवाच

नरकेऽप्य घोरेषु पच्यमानः पुनः पुनः । कथं त्वाकपितः शीघ्रं तन्मे वक्तुमिहार्हम् ॥१३२॥

ब्रह्मोवाच

॥१३३॥

तत्र कश्चिच्छान्तमना राजानमिदमब्रवीत्

यमदूत उवाच

वेदशास्त्रपुराणादावेतद्गोप्यं प्रयत्नतः । प्रकाशयते तदपि ते सामर्थ्यं पुत्रतीर्थयोः ॥१३४॥
रामस्तव सुत श्रीमान्गौतमीतोरमगतः । तस्मात्त्वं नरकाद्यघोरादाकृष्टोऽसि नरोत्तम ॥१३५॥
यदि त्वा तत्र गौतम्या स्मरेद्भ्रमः सालक्ष्मणः । स्नानं कृत्वाऽथ पिण्डादि ते दद्यात्स नृपोत्तम ॥
ततस्त्वं सर्वपापेभ्यो मुक्तो यासि त्रिविष्टपम् ॥१३६॥

वे निवृत्त अवस्थित हो, उसके विषय में तो कहना ही क्या है? अतएव इस समय दशरथ को नरक में कोई भी नहीं पीड़ित कर सकता है। दक्षिण दिशा के स्वामी यम की बातों को सुनकर यम-दूता ने नरक में पड़े उस अयोध्या-पति राजा को उस घोर नरक से निकाला और कहा ॥१२७-१२९॥

यमदूत बोले—नृपथेष्ठ । तुम धन्य हो, जिसका बंसा (राम के समान) पुत्र है। (ययोवि) इहलोक और परलोक में शान्ति प्रदान करने वाला सुपुत्र किसको मिलता है? (अर्थात् बड़े भाग्यशाली को ही मिलता है) ॥१३०॥

ब्रह्मा ने कहा—घोरे-घोरे (उस नरक-यातना से) विधाम मिलने पर राजा ने यमदूतों से कहा ॥१३१॥

राजा ने कहा—बार-बार घोर नरक में यातना सहने वाले मुझको तुम लोगों ने क्यों निकाला? यह पीछ ही मुझसे बतलाओ ॥१३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दूतों में से किसी शान्त दूत ने राजा से कहा ॥१३३॥

यमदूत ने कहा—वेद-शास्त्र और पुराण आदि में यह बात यत्नपूर्वक गुप्त रूप में बही गई है, परन्तु आज मैं तुमको पुत्र और तीर्थ वा सामर्थ्य बता रहा हूँ। तुम्हारे पुत्र श्रीमान् राम गौतमी-वट पर आये हुये हैं, नरोत्तम । इसीलिये तुम इस घोर नरक से निकाले गये हो। यदि लक्ष्मण के सहित वह राम उस गौतमी में तुम्हारा स्मरण करे और हे नृपोत्तम । यदि स्नान कर तुम्हें पिण्ड आदि देगे, तो तुम सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग चले जाओगे। ॥१३४-१३६॥

राजोवाच

तत्र गत्वा भवद्वाक्यमावस्थायस्ते स्वसुतो प्रति । भवत एव शरणमनुज्ञा दातुमर्हस्य ॥१३७॥

ब्रह्मोवाच

तदाजवचन श्रुत्वा कृपया यमकिंकरा । आज्ञा च प्रददुस्तस्मै राजा प्रागात्सुतो प्रति ॥१३८॥

भीषण यातनादेहमापन्नो निश्चसन्मुहु । निरीक्ष्य स्वयं लज्जमान कृत कर्म च सस्मरत् ॥१३९॥

स्वेच्छया विहरन्गङ्गामाससाद च राघव । गीतम्यास्तदभाभित्य रामो लक्ष्मण एव च ॥१४०॥

सीतया सह बँदेह्या ससनी चैव यथाविधि । नैव तत्राभवद्भोज्य भक्ष्य वा गीतमोतद ॥१४१॥

तद्दिने तत्र वसता गीतमीतीरवासिनाम् । तददृष्ट्वा दुःखितो भ्राता लक्ष्मणो राममब्रवीत् ॥१४२॥

लक्ष्मण उवाच

पुत्री^१ दशरथस्याऽज्जा तवापि बलमीदृशम् । नास्ति भोज्यमथास्माकं गङ्गातीरनिवासिनाम् ॥१४३॥

राम उवाच

भ्रातयद्विहितं कर्म नैव तच्चाप्यया भवेत् । पृथिव्यामन्नपूर्णाया वयमन्नाभिलाषिण ॥१४४॥

सौमित्रे भूतमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हृतम् । अवज्ञया महोदेवास्तर्पयत्यर्चयन्ति न^२ ॥१४५॥

ते यं लक्ष्मण जायन्ते सबदैव बुभुक्षिता । स्नात्वा देवानयाम्यर्घ्यं होतव्यश्च हुताशन ॥१४६॥

तत् स्वसमये^३ देवो विधास्यत्यशनं तु नो ॥१४६॥

राजा न कहा—वहाँ जाकर अपने पुत्रा से आपकी बात कहूँगा । अब आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं आता दीजिये ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की प्रायना भुगकर यमभूतो ने कृपाकर उस राजा को आना दे दी । राजा भी अपने पुत्रा के समीप चत्र पडा । उसका यातना-शरीर (मरु के बाद पाप मोग के लिए जीव को एक शरीर दिया जाता है वही यातना-शरीर कह जाता है) मरकर था । वह बार-बार लवी सीत ले रहा था और अपने पूर्व के सिये यमों का स्मरण कर तथा अपनी वतमान दशा को देखकर लज्जित हो रहा था । राघव भी स्वेच्छया यमत हुय गङ्गा तट-पर आये । गीतमी-नट पर आश्रय पाकर लक्ष्मण और विद्वन्ताया सीता के साथ उहने यथा विधि स्नान किया परन्तु उस दिन गीतमी-नट पर निवास करनेवाले उन तीनों को कोई भी भोज्य या मय्य पत्राय प्राप्त नहीं हुआ । यह देखकर लक्ष्मण अत्यंत दुःखा हुये । उन्होंने राम से कहा ॥१३८ १४२॥

लक्ष्मण ने कहा— हम दोनों दशरथ के पुत्र हैं और आपको ऐसी अन्भुन शक्ति भी प्राप्त है । फिर भी आज गंगा-नट पर निवस करत हुए हम लोगों को भोज्य सामग्री नहीं मिल रही है ॥१४३॥

राम ने कहा—भ्राता ! जो सिय हुये कम हैं वे करने नञ्ज जा सकत । इस शस्य-मय्यन्न पृथ्वी पर हम अन्न के लिए निम्नित हैं तो सौमित्र अवश्य ह हम लोगों के ब्राह्मण बसम्भ व वार्द पत्रा नहीं दिया है अर्थात् किसी ब्राह्मण को नट्टा गिलाया है । जो ब्राह्मण को अवघा स तप्त करत हैं उनकी पूजा नहीं करत हैं वे (उनके अपमान के कारण) यमका भूय रहत हैं । अतः स्नात कर त्रवात्रा की पूजा करनी चाहिए और तत्पननर अग्नि में हवन करतों चाहिए । इससे देवता अपने समय पर हम लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था कर दग ॥१४४ १४६॥

ब्रह्मोवाच

आनोः संजल्पतोरेवं पश्यतोः कर्मणो गतिम् । शनैर्दशरथो राजा तं देशमुपजग्मिवान् ॥१४७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । धनुराहृष्य कोपेन रक्षस्त्वं दानवोऽप्यवा ॥१४८॥
आसन्नं च पुनर्दृष्ट्वा याहि यात्य (ह्य) प्र पुण्यभाक् । रामो दशरथो राजा धर्मभाक्पश्य वर्तते ॥१४९॥
गुरुभक्तः सत्यसंधो देवब्राह्मणसेवकः । प्रेलोकपरक्षादक्षोऽसौ वर्तते यत्र राघवः ॥१५०॥
न तत्र त्वादृशमस्ति प्रवेशः पापकर्मणाम् । यदि प्रविशसे पाप ततो वधमवाप्स्यसि ॥१५१॥
तत्पुनर्वचनं श्रुत्वा शनैराहूय वाचया । उवाचाधोमुखो भूत्वा स्तुषां पुत्री कृताञ्जलिः ॥
महुरन्तर्विनिधायान्ति दुष्टृतकर्मणः ॥१५२॥

राजोवाच

अहं दशरथो राजा पुत्री मे शृणुतं वच । तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्बृतोऽहं दुःखभागतः ॥
छिन्नं पश्यत मे देहं नरकेषु च पातितम् ॥१५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृताञ्जली रामः सीतया लक्ष्मणेन च । भूमौ प्रणेमुस्ते सर्वे वचनं चेतदब्रुवन् ॥१५४॥
सीतारामलक्ष्मणा ऊचुः
वस्येदं कर्मणस्तात फल नृपतिसत्तम ॥१५५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार दोनों भाई परस्पर वार्तागण कर रहे थे और कर्म की गति का अनुभव कर रहे थे कि राजा दशरथ धीरे से उस स्थान पर पहुँचे । उनको देखकर लक्ष्मण ने अपना धनुष खींच लिया और क्रोधपूर्वक कहा—एक जाओ, एक जाओ । तुम दानव हो या राक्षस ? पुनः उस मयङ्करी प्रणिमा को समीप आने दबकर उन्होंने कहा—जाओ जाओ देवा, यहाँ पुण्यशाली धर्मिणा राजा राम हैं । जहाँ गुरु-भक्त सत्य प्रसिद्ध देव-ब्राह्मण-सेवक और प्रेक्षित की रक्षा में मुझसे राम रहते हैं वहाँ तुम्हारे समान पापीजनों का प्रवेश नहीं होता । पापी ! यदि तुम प्रवेश करोगे तो तुम्हारा वध अवश्य कर दिया जायगा । पुत्र की उन बातों को सुन कर उन्होंने धीरे से वृन्धार नीचे मिर चिये हुए हाथ जोड़कर अपनी पुत्र-ज्यौ और पुत्रास वार-वार अपने दुष्टमर्मों के फल का ध्यान करत हुए कहा ॥१४७-१५३॥

राजा ने कहा—मैं राजा दशरथ हूँ । पुत्री ! मेरी बातें सुनो ! मैं तीन ब्रह्महत्याओं के पाप से अत्यन्त दुःख पा रहा हूँ । नरकों में गिराये हुए मर बैठे शरीर को देखो ॥१५३॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दनर सीता और लक्ष्मण के साथ राम ने हाथ जोड़कर साष्टांग प्रणाम किया तथा उन मंत्र ने यह वचन कहा ॥१५४॥

सीता राम और लक्ष्मण ने कहा—महाराज ! यह आपके किस कर्म का फल है ? ॥१५५॥

ब्रह्मोवाच

स च प्राह ययावृत्तं ब्रह्महत्यानयं तथा

॥१५६॥

राजोवाच

निष्कृतिर्ब्रह्महन्तृणा पुनो षवापि न विद्यते

॥१५७॥

ब्रह्मोवाच

ततो दुःखेन महताऽऽवृताः सर्वे भुवं गताः । राजानं वनवासं च मातरं पितरं तथा ॥१५८॥

दुःखागमं कर्मगतिं नरकं पातनं तथा । एवमाद्यं सस्मृत्य मुमोह नृपते. सुतः ॥

विसंज्ञं नृपतिं दृष्ट्वा सीता वाक्यमयाब्रवीत्

॥१५९॥

सीतोवाच

न शोचन्ति महात्मानस्त्वादृशा व्यसनागमे । चिन्तयन्ति प्रतीकारं दैव्यमप्यथ मानुषम् ॥१६०॥

शोचद्भिर्युगसाहस्रं विपत्तिर्नैव तोर्यते । व्यामोहमाप्नुवन्तोह न कदाचिद्विचक्षणा ॥१६१॥

किमनेनात्र दुःखेन निष्कलेन जनेश्वर । देहि हत्यां प्रथमतो या जाता ह्यतिभीषणा ॥१६२॥

पितृभक्तः पुण्यशीलो वेदवेदाङ्गपारगः । अनाया यो हतो विप्रस्तत्पापस्यात्र निष्कृतिम् ॥१६३॥

आचरामि यथाशास्त्रं माशोक कुतस्तं युवाम् । द्वितीयां लक्ष्मणो हत्यां गृह्णानु त्वपरा भवान् ॥१६४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन्होंने, जिस प्रकार तीन ब्रह्म-हत्यामें हुई थी उनको उसी प्रकार कह दिया ॥१५६॥

राजा ने कहा—पुत्रो ! ब्रह्म-हत्या करनेवालों के पाप का प्रतीकार कही भी नहीं है ॥१५७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर सभी अत्यन्त दुःखी हो गये और दुःस्वप्न से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । नृपति-पुत्र राम राजा की अवस्था वनवास माना पिता दुःखों की प्राप्ति, कर्म-गति और पिता का नरक में गिराया जाना आदि बातों का स्मरण करके सजा-हीन से हो गये । इस प्रकार राम को सत्ता-भूष्य देवकर सीता ने कहा—॥१५८-१५९॥

सीता ने कहा—आपके समान महात्मा लोग अपत्तियों के आ जान पर शोक नहीं करते, प्रत्युत उसके प्रतीकार को सोचते हैं, चाहे वह प्रतीकार मानवीय हो या दैवी । सहस्र-युग तक शोक करते रहने पर भी विपत्तियाँ से पार नहीं पाया जा सकता । अतएव विद्वान् व्यक्ति कभी भी इस स्तर में मोह को नहीं प्राप्त होते हैं । जनेश्वर ! इस निष्फल दुःख करने से क्या लाभ ? पहली अति भीषण हत्या हो गई है । उसका फल मुझे दे दीजिये । पित्र-भक्त पुण्यशील, वेदवेदाङ्ग के पारदर्शी विद्वान् और निष्पाप ब्राह्मण की जो हत्या हुई है, उस पाप का प्रतीकार मैं शास्त्र-सम्मत उपाय से करूँगी । आप दोनो शास्त्र मन कीजिये । दूसरी हत्या को लक्ष्मण और अवशिष्ट को आप दहन कर लीजिये ॥१६०-१६४॥

ब्रह्मोवाच

एतद्धर्मं पृत वाक्य सीतया भाषितं दृढम् । तथेति चाऽऽह तु ततो दशरथोऽब्रवीत् ॥१६५॥

दशरथ उवाच

त्व हि ब्रह्मविदं कन्या जनकस्य त्वयोनिजा । भार्या रामस्य किं चित्रं यद्युक्तमनुभाषसे ॥१६६॥
न कोऽपि भवता किंतु श्रमं स्वल्पोऽपि विद्यते । गौतम्या स्नानदानेन पिण्डनिवपणेन च ॥१६७॥
तिसृभिर्ब्रह्महृत्याभिर्मुक्ता यामि त्रिविष्टपम् । त्वया जनकसंभूते स्वकुलोचितमौरितम् ॥१६८॥
प्रापयन्ति परं पारं भवाब्धे कुलयोषितं । गोदावरीं प्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥१६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेति क्रियमाणे तु पिण्डदानाय शनुहा । नैवापश्यद्भूदयभोज्यं ततो लक्ष्मणब्रवीत् ॥१७०॥
लक्ष्मणं प्राह विनयादिङ्गुलैश्च फलानि च । सन्ति तेषां च पिण्याकमानीततत्क्षणदिव ॥१७१॥
पिण्याकैनाय गङ्गाया पिण्डं दातुं तथा पितुः । मनः कुर्वन्ततो रामो मन्दोऽभूदनु क्लितस्तदा ॥१७२॥
देवी वागभवत्तत्र दुःखं त्यज नृपात्मज । राज्यभ्रष्टो वनं प्राप्तः किं वं निर्दिक्षन् नो भवान् ॥१७३॥
अशतो धर्मेनिरतो न शोचिषुमिहाहसि । वित्तशाठ्येन यो धर्मं करोति स तु पातकी ॥१७४॥

ब्रह्मा ने कहा—सीता की इस घम-ममत्त और दृढ़ वाक्यों को सुनकर उन दाना माइयो ने भी स्वीकार कर लिया। इसका बाद स्वयं दशरथ ने अपने मनोभाव व्यक्त किये ॥१६५॥

दशरथ ने कहा—तुम ब्रह्म-जानी जनक की अयाजिजा कन्या हो राम की भार्या हो तुम यदि एसी युक्ति पूरा पाते कहती हो तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु तुम लोग को कोई भी श्रम करने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये एक लघु उपाय है। गौतमी में स्नान-दान करने और पिण्ड-दान मात्र में मैं तीनो ब्रह्म-हत्याओं से मुक्त होकर स्वर्ग चला जाऊँगा। जन्मकात्मजे। तुमने अपने कुल के अनुरूप ही उपाय बतलाया है। सत्य है कुशीन स्थियाँ मनुष्य को भवसागर से पार करा देती हैं। गोदावरी की कृपा से इस संसार में कौन-सा पदार्थ रह जाता है ॥१६६-१६९॥

ब्रह्मा ने कहा—शनुहस्ता (राम) ने पिता के आज्ञानुसार वस ही पिण्डदान करने को प्रस्तुत हूँ परन्तु पिण्ड के उपयुक्त कोई मध्यम भोज्य पश्या नहीं देखा तब लक्ष्मण ने कहा—लक्ष्मण ने विनयपूर्वक कहा—इन्द्रमुदी के पत्र हैं। अतः उन्हीं तक्षण उन फल का चण (आग) ला दिया। जब राम उस इन्द्रमुदी के चण का पिण्ड पिता को दान के लिये प्रस्तुत हूँ तब उनको कुछ दुःख हुआ। उसी समय आकाश वाणी हुई कि हे नृप-पुत्र। तुम मोन छोड़ो तुम इस समय राज्यच्युत हो अरं सबका द्रव्यहारी हो। तुम उगार हो और घम में लीन रहने वाले व्यक्ति हो इमन्त्रिये मोक्ष करने की आवश्यकता नहीं है। जो घन रत्न वृषण वन कर घम वाप्य करता है वह पातकी होता है। राम। जो घम-गारको भ्रम माना गया है उसको मावधान होकर सुनो। राजन्। जो अन्न गुरय खाता है या प्राप्त करता है उसने देवता भी उसी अन्न के प्रेमी या अधिपति होते हैं। तब राम ने पिण्ड को पृथ्वी पर

भूयते सवशास्त्रेषु यद्राम शृणु यत्नत । यदन पुर्यो राजस्तद्व्रास्तस्य देवता ॥१७५॥
 पिण्डे निषत्तिरे भूमौ नापश्यत्पितर तदा । श्व च पतित यत्र श्वतीर्थमनुत्तमम् ॥१७६॥
 महापातकसघातविघातकृदनुस्मृति । तत्राऽऽगच्छत्लोकपाला रुद्रादित्यास्तथाऽग्निनी ॥१७७॥
 स्व स्व विमानमारुढास्तथा मध्येऽतिदीप्तिमान । विमानवरमारुढ स्तूपमानश्च किनरै ॥१७८॥
 आदित्यसदृशाकारस्तेषा मध्य बभौ पिता । तमदृष्ट्वा स्वपितर देवा दृष्ट्वा विमानिन ॥१७९॥
 कृताञ्जलिपुटो राम पिता मे क्वत्यभाषत । इति (ततो) दिव्याऽभवद्वाणी राम सबोधय सीतया ॥१८०॥
 तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्भुक्तो दशरथो नृप । वृत पश्य सुरैस्तात देवा अप्यूचिरे च तम ॥१८१॥

देवा ऊचु

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि राम स्वर्गं गत पिता । नानानिरपसघातात्पूर्वजानुद्धरेत्तु य ॥१८२॥
 स धन्योऽलंकृत तन कृतिना भुवनत्रयम् । एन पश्य महाबाहो मुक्तपाप रविप्रभम् ॥१८३॥
 सवसपत्तिपुत्रोऽपि पापी दग्धद्रुमोपम । निष्किंचनोऽपि सुकृती दृश्यत च द्रमोलिवत ॥१८४॥

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वाऽब्रवीत्सुत राजा आशीर्भिरभिनन्द च ॥१८५॥

राजोवाच

कृतकृत्योऽसि भद्र ते तारितोऽह त्वयाऽनघ । धन्य स पुत्रो लोकऽस्मिन्पितृणा यस्तु तारक ॥१८६॥

गिराया । किन्तु उन्होंने अपने पिता को नहीं देखा केवल जब वहाँ गया हुआ दिखई दिया । जहाँ वह जब गिरा वह परमोत्तम श्वतीर्थ बन गया । जिसके स्मरणमान से महापापा का समूह सृज ही में नष्ट हुआ जाता है । इससे बाद वहाँ लोकपाल रुद्र आदित्य तथा अश्विनीकुमार अपने-अपने विमानों पर आरुढ़ होकर आये । उनके माथ में एक उत्तम विमान पर आरुढ़ अत्यन्त कांतिमान रूप में राम व पिता शोभित थे । वे सूर्य के समान धमक रहे थे और विप्ररक्षण उनकी स्तुति कर रहे थे । उस समय राम ने अपने पिता को नहीं देखा केवल देवता विमानों पर दिखाई दिया । तब हाथ जोड़कर वे बोले कि मेरे पिता वहाँ हैं । उसी समय सीता सहित राम को संबोधित कर आकाशवाणी हुई कि तात । तीनों ब्रह्म-हत्याओं का राजा दशरथ मुक्त हो गया । इनका श्वो से घिरा हुआ देखो । पुन देवा ने उनका कहा ॥१७०-१८१॥

देवगण बोले—राम ! तुम धन्य हो । तुम्हारा जीवन सफल है । देखो तुम्हारा पिता स्वर्ग को चले गये । जो अपने पिता को अनेक तरह जाता से उबारता है वह धन्य है । उसने अपनी कृति से त्रिभुवन को मुक्तित्व कर दिया । महाबाहु ! इस मुक्त-पाप एवं सूर्य व समान लज्जका पिता का देखा । सब प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण रहने पर भी पापी व्यक्ति जन्म व ममान हैं इसका विपरीत अकिंचन पुण्यात्मा व्यक्ति शिव व ममान पुन्य भाव से देखा जाता है ॥१८२-१८४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पुत्र को राजा ने आशीर्वादन किया और उसकी प्रशंसा करने हुए कहा ॥१८५॥

राजा ने कहा—जम कृत्य-कृत्य हो गया हो तुम्हारा बन्धन हो । निष्पाप ! तुमने मुझको तार दिया । इस लोक में वह पत्र धन्य है जो अपने पिता का उद्धार करता है ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा प्रोचुर्देवता कार्यसिद्धये । राम च पुरुषश्रेष्ठ गच्छ तात यथासुखम् ॥

ततस्तद्वचन श्रुत्वा रामस्नानब्रवीत्सुरान् ॥१८७॥

राम उवाच

गुरौ पितरि म देवा किं कृत्यमवशिष्यते ॥१८८॥

देवा ऊचुः

नदी न गङ्गा त्वया न त्वया सदृशं सुत । न शिवेन समो देवो न तारेण समो मनु ॥१८९॥

त्वया राम गुरुणा च कायं सर्वमनुष्ठितम् । तारिता पितरो राम त्वया पुत्रेण मानद ॥

गच्छन्तु सर्वे स्वस्थानं त्वं च गच्छ यथासुखम् ॥१९०॥

ब्रह्मोवाच

तद्वचनान्निष्ठं सीतया लक्ष्मणाग्रज । तद्वद्वत्त्वा गङ्गामाहात्म्यं विस्मितो चाकथयन्ब्रवीत् ॥१९१॥

राम उवाच

अहो गङ्गाप्रभावोऽयं त्रैलोक्यं नोपमीयते । वयं धन्या यतो गङ्गां दृष्ट्वाऽस्माभिस्त्रिपादनी ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

हर्षेण महता यक्तो देव स्थाप्य महेश्वरम् । तं षोडशभिरीशानमुपचारे प्रयत्नत ॥१९३॥

ब्रह्मा न क्वा—इसके बाद देवताओं ने देव-नाय की सिद्धि के लिये पुरपोत्तम राम से कहा—तात । अब सुलभूवक जाओ । देवों की बातें सुनकर राम ने उन देवताओं से पूछा ॥१८७॥

राम ने कहा—देवगण । आदरणीय पिता के विषय में कौन सा कृत्य गैर रह गया है ? ॥१८८॥

देवगण बोले—गंगा के समान कोई नदी नहीं है तुम्हारे समान कोई पुत्र नहीं है शिव के समान कोई देवता नहीं है और ओवार के समान कोई माँ नहीं है । राम । तुमने अपने गुरु के समस्त कार्यों को पूरा कर दिया । राम । पुत्र होकर तुमने अपने पितरा का उद्धार कर दिया । अब सब अपने-अपने स्थान को जायें तुम भी अपने स्थान को सुलभूवक जाओ ॥१८९ १९०॥

ब्रह्मा ने कहा—ज्यों की उपयुक्त वाता को सुनकर सीता सहित लक्ष्मणाग्रज राम अत्यंत प्रसन्न हुए और गंगा के उस अमृत महामय को देखकर आश्चर्य के साथ बोले ॥१९१॥

राम ने कहा—अहो ! गंगा के इस प्रभाव की उपमा त्रैलोक्य में किसी से नहीं दी जा सकती । हम धन्य हैं कि आज इस त्रिमुखन-पावनी गंगा का दान हम प्राप्त हुआ ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्यंत आनंद से युक्त हावर उन्होंने महेश्वर देव की स्थापना की । बड़ यत्न से उनका

संयुज्याऽऽवरणैर्धुवतं पटत्रिशत्कलमोदवरम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्तुष्टाव शंकरम् ॥१९४॥

राम उवाच

नमामि शंभु पुरुष पुराणं, नमामि सर्वज्ञभारभावम्	।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षय त, नमामि शर्वं शिरसा नमामि	॥१९५॥
नमामि देवं परमव्यय तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि	।
नमामि दारिद्र्यविदारण तं, नमामि रोगापहरं नमामि	॥१९६॥
नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं, नमामि विद्वोद्भूवबोजरूपम्	।
नमामि विद्वत्स्थितिकारण त, नमामि संहारकर नमामि	॥१९७॥
नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं, नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्	।
नमामि चिद्रूपममेयभाव, त्रिलोचनं त शिरसा नमामि	॥१९८॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य, भयंकरं वाऽपि सदा नमामि	।
नमामि दातारमभीप्सितानां, नमामि सोमेशमुमेशमादौ	॥१९९॥
नमामि वेदत्रयलोचनं तं नमामि भूतत्रयवर्जित तम्	।
नमामि पुण्यं सदसद्व्यतीतं, नमामि तं पापहरं नमामि	॥२००॥

पोडघोषचारपूजन किया। अगो सहित छत्तीस कला वाले महेश्वर की अर्चना करके राम हाथ जोड़कर शंकर की स्तुति करने लगे ॥१९३-१९४॥

राम ने कहा—पुराण-पुरुष शम्भु को नमस्कार करता हूँ। सर्वज्ञ तथा अतन्त्र भय वाले को नमस्कार करता हूँ। अक्षय (नित्य) प्रभु रुद्र को नमस्कार करता हूँ। उस शर्व को शिर मुकाबर प्रणाम करता हूँ ॥१९५॥ उस परम अव्यय देव को नमस्कार करता हूँ। उमापति, लोकगुरु का नमस्कार करता हूँ। दारिद्र्य को नष्ट करने वाले को नमस्कार करता हूँ। रोगों को दूर करने वाले उस शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥१९६॥ कल्याणमय, अचिन्त्यरूप को नमस्कार करता हूँ। विद्वत्-निर्माण के आदि कारण को नमस्कार करता हूँ। विश्व की स्थिति के कारण को नमस्कार करता हूँ। संहार करने वाले विष्णु को नमस्कार करता हूँ ॥१९७॥ उस गौरी प्रिय शंकर को नमस्कार करता हूँ। उस नित्य क्षर और अक्षर रूप को नमस्कार करता हूँ। ज्ञानरूप एवं अनिष्ट प्रभाव वाले को नमस्कार करता हूँ। उस त्रिनेत्र को शिर मुकाबर प्रणाम करता हूँ ॥१९८॥ संहार पर करण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। भय प्रदान करने वाले को सदा नमस्कार करता हूँ। मनोरथ प्रदान करने वाले को नमस्कार करता हूँ। सर्वप्रथम सोमेश और उमेश को नमस्कार करता हूँ ॥१९९॥ तीन बदनपी नत्र पाद को नमस्कार करता हूँ। त्रिमूर्ति वर्जित उस शंकर को नमस्कार करता हूँ। सन् और असन् से परे उस पुण्यस्वरूप को नमस्कार करता हूँ। उस पापहर को नमस्कार करता हूँ ॥२००॥ विश्व के हित में लीन रहने वाले को नमस्कार करता हूँ। सदा हित के विविध रूप

नमामि विश्वस्य हिते रतं तं, नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते	।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता, नमामि त विश्वपतिं नमामि	॥२०१॥
यज्ञेश्वरं संप्रति हृद्यकथ्यं, तथा गतिं लोकसदाशियो यः	।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं, नमामि ज्ञानप्रियमिष्टदेवम्	॥२०२॥
नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि	।
नमामि विघ्नेश्वरनन्दिनाथं, पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि	॥२०३॥
नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि	।
नमामि गङ्गाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि	॥२०४॥
नमाम्यज्ञादीशपुरंदरादिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम्	।
नमामि देवीमुखवादनानामीक्षार्यमक्षित्रितयं य ऐच्छत्	॥२०५॥
पञ्चामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मन्त्रैः	।
अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः, संपूजितं सोममहं नमामि	॥२०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवानाह रामं शंभुः सलक्ष्मणम् । वरान्वृणोष्व भद्र ते राम प्राह वृषध्वजम् ॥२०७॥

धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। जो विश्व का रक्षक तथा सन् और असत् का रक्षिता है, उसको नमस्कार करता हूँ। उस विश्वपति को नमस्कार करता हूँ ॥२०१॥ जो सम्प्रति यज्ञेश्वर, हृद्य और कथ्य है, जो सर्वदा लोक को मंगल दान करने वाला एवं गति है, जो आराधना करने पर सेवक को सब कुछ प्रदान करता है उस दान-पट्ट इष्टदेव को नमस्कार करता हूँ ॥२०२॥ सोमेश्वर तथा अस्वतन्त्र (भक्त के अधीन) उमापति को नमस्कार करता हूँ, उस विजय को नमस्कार करता हूँ। विघ्नेश्वर नन्दिनाथ को नमस्कार करता हूँ। पुत्र प्रेमी को शिरसा नमामि, उस देव भवदुःख और शोक को नष्ट करने वाले देव को नमस्कार करता हूँ। गङ्गाधर-महादेव को नमस्कार करता हूँ। देवधेष्ठ चन्द्रमा को धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। पञ्च गङ्गाधर-महादेव को नमस्कार करता हूँ। देवधेष्ठ उमापति को नमस्कार करता हूँ ॥२०४॥ जिनके चरण बमल की अञ्जना ब्रह्मा आदि तथा प्रभु इन्द्र आदि देवता एवं राक्षस करने है, उनको नमस्कार करता हूँ जिन्होंने देवी का मुख-वादन के विशेषावलोकन की इच्छा से तीन नैऋती की इच्छा की, उनको नमस्कार करता हूँ ॥२०५॥ पञ्चामृत गन्ध सुगन्धित घूप दीप, विचित्रपुष्प एवं विविधमन्त्रा तथा अन्न प्रकार के भोज्य पदार्थ म जिसकी पौष्टिकोपचार पूजा होती है उस सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०६॥

ब्रह्मा ने कहा—राम की प्रापना म प्रमत्त होकर भगवान् राम ने लक्ष्मण सहित राम से कहा—‘वर मांगो, मुहारा कृपाएँ हो। यह गुनकर राम न शत्रु से कहा ॥२०७॥

राम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या तोष्यन्ति त्वां सुरोत्तम । तेषां सर्वाणि कार्याणि^१ सिद्धिं यान्तु महेश्वर ॥२०८॥
 येषां च पितरः शम्भो पतिता नरकार्णवे । तेषां^२ पिण्डादिदानेन पूता यान्तु त्रिविष्टपम् ॥२०९॥
 जन्मप्रभृति पापानि (यच्चापि) मनोवाक्कायिक^३ त्वघम् । अत्र तु स्नाननात्रेण तत्सद्यो^४ नाशमाप्नुयात् ॥२१०॥
 अत्र ये भक्तितः शम्भो ददत्पथिभ्यः अण्वपि । सर्वे तदक्षयः शम्भो दातुणा^५ फलकृद्भवेत् ॥२११॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति तं राम शंकरो हृषितोऽब्रवीत् । गते^१ तस्मिन्सुरथेष्टे रामोऽप्यनुचरं^२ सह ॥२१२॥
 गौतमी यत्र चोत्पन्ना शनस्तं देशमभ्यगात् । ततः प्रभृतिं तत्तीर्थं^३ रामतीर्थमुदाहृतम् ॥२१३॥
 दयालोरपतत (द्य) ब्र लक्ष्मणस्य कराच्छरः । तद्बाणतीर्थमभवत्सर्वापद्धिनिवारणम् ॥२१४॥
 यत्र सौमित्रिणा स्नानं शंकरस्यार्चनं^४ कृतम् । तत्तीर्थं लक्ष्मणं जातं तथा सीतासमुद्भवम् ॥२१५॥
 नानाविधाश्लेषपापसंघनिर्मूलनक्षमम् । यदद्वात्रिसङ्गादभवद्गङ्गा त्रिलोचनपावनी ॥२१६॥
 स यत्र स्नानमकरोत्तद्वैशिष्ट्यं किमुच्यते । तद्रामतीर्थसदृश तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥२१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये रामतीर्थवितीर्थवर्णनं नाम त्रयोविंश-

धिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

राम ने कहा—सुरोत्तम । इस स्तोत्र से जो तुम्हारी स्तुति करें महेश्वर^१ उनमें सब मनोरथ सिद्ध हो जायें। शम्भु ! जिनके पितर नरक में गिरे हों, उनके यहाँ पिण्ड-दान देने से वे स्वर्ग भी चले जायें। यहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्यों के जन्म से लेकर सभी कायिक, वाक्किक और मानसिक पाप नष्ट हो जायें। शम्भो ! यहाँ जो याचकों को भक्ति-पूर्वक अनुमान भी प्रदान करें, वह उन दाताओं के लिए अक्षय फल प्रदान करने वाला हो ॥२०८-२११॥

ब्रह्मा ने कहा—शंकर ने प्रसन्न होकर उस राम से 'एवमस्तु' कहा। उस देवेश के चले जान पर राम भी अपने अनुयायियों के साथ धीरे धीरे उस स्थान पर गये, जहाँ से गौतमी नदी निकलती है। तब वे दूर स्थान राम-तीर्थ कहा जाता है। दयालु लक्ष्मण के हाथ से जहाँ बाण गिरा वह लक्ष्मण-तीर्थ हा गया। इसी प्रकार बनी अनेक प्रकार के अखिल पाप-समुह का नष्ट कर देने वाला सीतातीर्थ भी प्रसिद्ध है। जिनके चरण-स्पर्श से गंगा त्रिभुवन-शुद्धि हो गई, उन्हीं राम न जहाँ स्नान किया उस स्थान की विधिपना का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? उस राम-तीर्थ का समान कहीं भी दूसरा तीर्थ नहीं है ॥२१२-२१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में रामतीर्थवर्णन नामक एक सी तीर्थवा अध्याय समाप्त ॥१२३॥

१ घ ट च ० गि सिद्धिं यान्तु शंकर । २ घ ट च तेषां । ३ च ० पितरानि च । ४ ० । ५ घ ट च तदपि । ५ घ ट च दातुणा । ६ घ ट च यावे । ७ घ ट च ० नुवर्तते सः ।

अथ चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

पुत्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुत्रतीर्थमिति ह्येतत् 'पुण्यतीर्थं तदुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति यन्महिम्नः श्रुतेरपि ॥१॥

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद । दितेः पुत्राश्च दनुजाः परिक्षीणा यदाऽभवन् ।

अदितेस्तु सुता ज्येष्ठा । सर्वभावेन नारद ॥२॥

तदा दितिः पुत्रवियोगदुःखालसंस्पर्धमाना दनुमाजगाम ॥३॥

दितिरुवाच

क्षीणा । सुता आवयोरेव भद्रे, किं कुर्महे कर्म लोके गरीयः ।

पश्यादितेर्वैशमभिघ्नमुत्तम, सीराज्ययुवत यशसा जयश्रिया ॥४॥

जितारिमभ्युन्नतकीर्तिधर्मं, मच्चित्तसंहर्षविनाशदधम् ।

समानभर्तृत्वं समानधर्मं, समानगोत्रेऽपि समानरूपे ॥५॥

अध्याय १२४

पुत्रतीर्थं का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—एक प्रसिद्ध पुत्रतीर्थ है। उसको पुण्यतीर्थ भी कहा जाता है। उसकी महिमा के सुनने से भी मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है। उससे स्वरूप का वर्णन मैं करता हूँ। नारद ! तुम ध्यान से सुनो। जब वैश्य और दानव बहुत क्षीण हो गए तथा देवगण सब प्रकार से श्रेष्ठ हो गए तब नारद ! दिनि पुत्र-विषाग से शान्त और सौत की विभूति की प्रति-स्पर्धा से दुखी होकर दनु के पास आई ॥१॥

दिति ने कहा—भद्रे ! हम दोनों ही के पुत्र नष्ट हो गये। क्या करें ? तमाम मैं कम समय बलवान् होता है। देखो, अदिनि का धन जिस प्रकार जय-स्वामी, बीति और उत्तम राज-मुल का निरन्तर उपयोग कर रहा है, अपने दानुजा को जीत कर धन की बड़ी बजा रहा है, बीति और धर्म की पताका पट्टा कर मरे हृदय को सर्वदा नष्ट कर रहा है। मरुति अदिनि भी मेरे ही पति की पत्नी है और दोन और धर्म तथा रूप में भी समान है, तथापि उमने पुत्रों की भी एक उन्नति देगकर मैं दुर्वल हो गई हूँ। अब जीने की सम्भावना भी नहीं है। अदिनि की उन्नति

न जीवयेय धियमुन्नतिं च, जीर्णस्मि दृष्ट्वा त्वदितिप्रसूतान् ।
 कामप्यवस्थामनुयामि दुःस्थाऽदितेविलोक्याथ परा समृद्धिम् ॥
 दावप्रवेशोऽपि सुखाय नून, स्वप्नेऽप्यवेक्ष्या न सपत्नलक्ष्मी ॥६॥

ब्रह्मोवाच

एव ब्रुवाणामतिदीनवक्त्रा, विनिश्चयसन्तीं परमेष्ठिपुत्र ।
 कृताभिपूजो विगतश्रमस्ता, स सान्त्वयन्नाह मनोभिरामाम् ॥७॥

परमेष्ठिपुत्र उवाच

खेदो न कार्यं समभीप्सित यत्तत्प्राप्यते पुण्यत एव भद्रे ।
 तत्साधन वेत्ति महानुभाव, प्रजापतिस्ते स तु यक्ष्यतीति ॥८॥
 साध्येतत्तत्सर्वभावेन प्रश्रयावनता सती ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एव ब्रुवाणः च दितिं दनु प्रोवाच नारद ॥१०॥

दनुरुवाच

भर्तार कश्यप भद्रे तोषयस्व निर्जगुर्णं । तुष्टो यदि भवेद्भूतां तत कामानवाप्स्यसि ॥११॥

समृद्धि को देखकर अस्वस्थ हो गई हैं और किसी दूसरी ही दगा को प्राप्त करने जा रही हूँ क्योंकि स्वप्न में भी सीत का वैभव देखने की अवेक्षा अग्नि में जल कर मर जाना वहाँ अधिक गुल्मकर है ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर निति आह भरने गंगा दीर्घाच्छिवासे छोड़न गंगी और उसके मुँह पर दीनता के भाव दिखाई देने लग। यह देखकर परमेष्ठि-पुत्र (कश्यप) ने उसका सम्मान किया और स्वयं शान्त होकर उस मनोहारिणी दिति को आश्रय देत हुये कहा ॥७॥

परमेष्ठि-पुत्र ने कहा—भद्र ! इस प्रकार पत्र करने का आवश्यकता नहीं है। मनोरथ पुण्य द्वारा ही प्राप्त हात हैं। महानुभाव प्रजापति तुम्हारे मनोरथ का पूरा करने का उपाय जानत हैं। वे अवश्य तुम्हें उपयुक्त साधन बतायेंगे। इस पर विनयावता पतिव्रता निति ने कहा—यह सत्र तरह से अच्छा है ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार कहने वाली निति स दनु ने कहा ॥१०॥

दनु ने कहा—भद्र ! अपने पति कश्यप को अपने गुणों से प्रसन्न करो। यदि तुम्हारे पति प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम अपनी मनकामना अवश्य प्राप्त करोगी ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथैव कृत्वा सर्वं भावं स्तोपयामास कश्यपम् । दितिं प्रोवाच भगवान्कश्यपोऽथ प्रजापति ॥१२॥

कश्यप उवाच

किं ददामि यदाभीष्टं दिते वरय सुव्रते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

दितिरप्याह भर्तारं पुत्रं बहुगुणान्वितम् । जेतारं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१४॥

येन जातेन लोकेऽस्मिन् भवेयं वीरपुत्रिणी । तं वरेयं सुरपितरित्याह विनयान्विता ॥१५॥

कश्यप उवाच

उपदेश्ये व्रतं श्रेष्ठं द्वादशान्वफलप्रदम् । तत आगत्य ते गर्भमाधास्ये यन्मनोगतम् ॥

निष्पापताया जाताया सिध्यन्ति हि मनोरथा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

भर्तृवाक्यादिति प्रीता तं नमस्याऽऽयतक्षणा । उपदिष्टं व्रतं चक्रे भर्त्राऽऽदिष्टं यथाविधि ॥१७॥

तीर्थसेवापात्रदानव्रतचर्यादिब्रजिता । कथमासादयिष्यन्ति प्राणिनोऽन मनोरथान् ॥१८॥

ततश्चोर्णं व्रतं तस्या दित्या गभमधारयत् । पुन कान्तामयोवाच कश्यपस्तां दितिं रह ॥१९॥

ब्रह्म न कहा—दिति न इसको स्वीकार किया और अपने प्रत्येक प्रयत्न से कश्यप को प्रसन्न किया । अनन्तर भगवान् प्रजापति कश्यप ने दिति से कहा ॥१२॥

कश्यप ने कहा—‘निति ! तुमको क्या दू ? तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो । सुव्रत ! वर मागो ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—दिति ने भी अपन भर्ता से विनयपूर्वक कहा मैं अत्यन्त गुणगानी सब लोका को जीतने वाला और सब लोग से पूजित पुत्र चाहती हूँ । हृदय के पिता ! जिसके उत्पन्न होने से मैं इस ससार में वीर पुत्र की माता कहलाऊँ उसको मैं चाहती हूँ ॥१४ १५॥

कश्यप ने कहा—‘वाराह वर्षों में एक बार देन वाल श्रेष्ठ व्रत को बता रहा हूँ । इस व्रत का पालन के बाद तुम्हारी इच्छा के अनुसार गर्भपात करवा क्याकि पापान्तर होने पर ही मनोरथ पूर्ण होत है ॥१६॥

ब्रह्मा न कहा—‘निति की बातों से निति प्रसन्न हो गई । तत्पश्चात् उस विद्यालनत्रा ने निति को प्रणाम कर उनसे द्वारा कह हुप व्रत का विधिपूर्वक पालन किया । तीर्थ-जला उपयुक्त पात्र को दान देना व्रत-पालन आदि पुण्या नुष्ठान के बिना प्राणी बने इस लोका में अपने मनोरथ को प्राप्त कर सकते हैं ? ऐसे बड़ी व्रत-पालन के बाद कश्यप ने उस निति में गर्भपात किया । एक दिन एक रात में कश्यप ने उस त्रिप निति से कहा ॥१७-१९॥

कश्यप उवाच

न पाप्नुवन्ति यत्कामामुनयोऽपि तपस्थिता । यथाविहितकर्माङ्गावजया तच्छुचिस्मित ॥२०॥
 निन्दितं च न कतव्यं सध्ययोर्हभयोरपि । न स्वप्तव्यं न गन्तव्यं भुवतः कशो च नो भव ॥२१॥
 भोक्तव्यं सुभगं नव क्षुतं वा जम्भणं तथा । सध्याकालं न कतव्यं भूतसघसमाकुल ॥२२॥
 सातर्धानं सदा कार्यं हसितं तु विदधत । गृहात्तदशं सध्यासु न स्थातव्यं कदाचन ॥२३॥
 मुशलो लूखलादीनि शूषपीठपिधानकम् । नैवातिक्रमणीयानि दिवा रात्रौ सदा प्रिय ॥२४॥
 उदवशीषं तु दायनं न सध्यासु विदधत । वक्तव्यं तान्त्रं किंचिन्नायगृहाटनं तथा ॥२५॥
 कान्तादयो न वीक्ष्यस्तु प्रयत्नन नरं क्वचित् । इत्यादिनियमैर्युक्ता यदि त्वमनुवर्तसे ॥
 ततस्तं भविता पुत्रस्त्रलोचयश्चयभाजनम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तयति प्रतिजनं सा भर्तारं लोकपूजितम् । यतश्च कश्यपो ब्रह्मस्मिन्तश्चत सुराप्रति ॥२७॥
 दितगर्भोऽपि बबूधं बभूवानुष्णसम्भवः । एतस्य मयो दियो मायया वसति तत्त्वतः ॥२८॥
 इन्द्रस्य सहस्रमभवमयं प्रीतिपूर्वकम् । मयो गत्वा रहं प्राह इन्द्रं स विनयाचितः ॥२९॥

कश्यप न कहा—पवित्र हास्य वाली । तपस्या मलीन मणिमण भी जो अपने मनोरथ को प्राप्त करने में असफल होते हैं उसका मुख्य कारण शास्त्र-सम्मत नियमों की उपेक्षा है। (अतः उन नियमों को मुन्ना) दोनों सध्या काल में कोई निन्दित वस्त्र नहीं करना चाहिए। न सोना चाहिये न (बाहर) जाना चाहिये और न उस समय बेगान को चिन्तनी अवस्था में रखना चाहिए। सुदरी सध्याकाल में विनोद अनेक प्राणियों से भरे स्थान में भोजन नहीं करना चाहिए। न छीकना चाहिए और न जम्मा नहीं चाहिये। हसने व समय तो अवश्य कोई अवसर लगा लेना चाहिए। सध्याकाल में घर की ओर नहीं जाना रहना चाहिए। प्रिये नित्य रात्रि में सवदा मंगल आसल। धूप पीडा आदि को नगा भी नहीं लेना चाहिये। उत्तर की ओर गिर कर नही सोन। च हिय विनोद सध्या समय। धोना भी असय मापन नही करना चाहिये। दूसरे घर नही जाना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक पति व अनिश्चित विषय अन्य पुरुष को नही दगना चाहिये। इस प्रकार यदि तुम उपयुक्त नियमों का पालन करोगी तो त्रिभुवा व एवय को प्राप्त करने वाला तुम्हारा पुत्र होगा ॥२०-२६॥

ब्रह्मा न कहा—निज न लोकपूजित पति के सामने ऐसा ही करनी ऐसी प्रीति करनी। ब्रह्मन् । कश्यप भी इधर उधर देवताओं व निवास स्थानों का आरंभ करके परमपितामही और पुण्य द्वारा प्राप्त निज का मंगल बड़ा लगा। न मंगल बाना व मय नामक दैत्य अपनी माया व द्वारा पराजित हो स ज्ञानवा था। मय की दृष्टि व साथ पहलू है स अग्नि प्रीतिवत् प्रियता थी। मय न दृष्ट व दृष्टी जोकर दिनभर भाव में एगल म निज और दम्पती व अग्नि

दितेर्दनोरभिप्रायं व्रतं गर्भस्य वर्धनम् । तस्य वीर्यं च विविधं प्रीत्येन्द्राय न्यवेदयत् ॥३०॥
विश्वातंकगृहं मित्रमपायप्रासवजितम् । अजितं सुव्रतं नानाविधं चैतदवाप्यते ॥३१॥

नारद उवाच

नमुचेरुच प्रियो भ्राता मयो दैत्यो महाबलः । भ्रातृहन्ता कथं मेऽयं मयस्याऽसीत्सुरेन्द्रवर ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

दैत्यानामधिपश्चाऽऽसीद्बलवान्नमुचिः पुरा । इन्द्रेण वरमभवद्भीषण लोमहर्षणम् ॥३३॥
युद्धं हित्वा कदाचिद्भो गच्छन्तं तु शतक्रतुम् । दृष्ट्वा दैत्यपतिः शूरो नमुचिः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥३४॥
तमायास्तमभिप्रेक्ष्य शचीभर्ता भयातुरः । ऐरावतं गजं त्यक्त्वा इन्द्रः फेनमथाऽऽविशत् ॥३५॥
स वज्रपाणिस्तरसा फेनेर्नवाहनद्रिपुम् । नमुचिर्नशिगमस्तस्य भ्राता मयोऽनुजः ॥३६॥
भ्रातृहन्तृविनाशाय तपस्तेपे मयो महत् । माया च विविधामाप देवानामतिभीषणाम् ॥३७॥
वराश्चावाप्य तपसा विष्णोर्लोकपरायणात् । दानशीघ्रः प्रियालापी तदाऽभवदसौ मयः ॥३८॥
अर्नीदं च ब्राह्मणान्पूज्य जेतुमिन्द्रे कृतक्षणः । दातारं च तदाऽयिम्यः रतूपमानं च बन्दिभिः ॥३९॥
विवित्वा मघधा वायोर्मयं मायाविनं रिपुम् । उपश्रान्तं सुमुद्धाय विप्रो भूत्वा तमभ्यगात् ॥
शचीभर्ता मयं दैन्यं प्रोवाचेदं पुनः पुनः ॥४०॥

प्रायः, व्रत-पालन, गर्भ का दिना दिन बढ़ना तथा उस भावी पुत्र का पराक्रम आदि विविध बातें बड़े प्रेम से कही ।
कहा भी है कि 'एकमात्र विश्वास-पात्र और मैत्री विच्छेद के मय से रहित मित्र मनुष्य को अनेको अजित सत्कर्मों के प्रभाव से प्राप्त होता है ॥२७ ३१॥

नारद ने पूछा—सुरेन्द्र ! महाबलवान् मय नमुचि का प्रिय भाता था । उस मय को भ्रातृ-हन्ता इन्द्र ने साथ कैसे मित्रता हो गई ? ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राचीन काल में बलवान् नमुचि दैत्या का स्वामी था । उसकी इन्द्र से भीषण एवं रोमाञ्चकारी शत्रुता हो गई । किसी समय युद्धभूमि को छोड़कर भागते हुए इन्द्र को देखकर दैत्यराज शूर नमुचि उनका पीछा करने लगा । उसको अपना पीछा करते देख शचीपति इन्द्र मय से विह्वल हो ऐरावत हाथी से उतरकर फेन में घुस गये । उन्होंने उस फेन से ही उस शत्रु को शीघ्रता से मारा । नमुचि उस प्रहार से मर गया । मय उसी नमुचि का छोटा भाई था । उसने भाई के हत्याकारी को मष्ट करने के लिये तपस्या की । उसने तपोबल से देवा को डरा देने वाली भीषण माया प्राप्त की और तप के द्वारा लोचपालक विष्णु में वर पाकर वह मय अति दान-शुशल तथा भयुरमापी बन गया । अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा कर वह इन्द्र को जीतने का मौका दूढ़ने लगा । धर्मी और शान्त लोग उसकी स्तुति किया करते थे । वह इन्द्र से युद्ध के लिए तैयार हो रहा था । ऐसे मायावी शत्रु को वायु के द्वारा जानकर शचीपति इन्द्र ब्राह्मण के वेश में उस मय दैत्य के पास गये और बार-बार उससे यह कहने लगे ॥३३-४०॥

इन्द्र उवाच

देहि दैत्यपते महधर्मयिनेऽपेक्षित वरम् । त्वां श्रुत्वा दातृतिलकमागतोऽहं द्विजोत्तमः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मयोऽपि ब्राह्मणं मत्वाऽयदहस्य मया तव । विचारयन्ति कृतिनो बह्वत्सवं वा पुरोऽधिनि ॥४२॥
 इत्युक्ते तु हरिः प्राह सद्यमिच्छे ह्यहं त्वया । इन्द्र मयः पुन प्राह किमनेन द्विजोत्तम ॥४३॥
 न त्वया मम वर भोः स्वस्तोऽत्याह हरिर्मयम् । तत्त्वं वदेति स हरिर्दैत्येनोक्तः स्वकं वपुः ॥४४॥
 दशोयामास दैत्याय सहस्राक्ष यदुच्यते । ततः सविस्मयो दैत्यो मयो हरिमुवाच ह ॥४५॥

मय उवाच

किमिदं वज्रपाणिस्त्व तवायोग्या कृतिः सखे । ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

परिष्वज्य विहसयाय वृत्तमित्यब्रवीद्धरिः । केनापि साधयन्त्यत्र पण्डिताश्च समीहितम् ॥४७॥
 ततः प्रभृति शकस्य मयेन महती ह्यभूत् । सुप्रोतिर्मुनिशार्दूल मयो हरिर्हितः सदा ॥४८॥
 इन्द्रस्य भवनं गत्वा तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । किं मे कृत्यमिति प्राह मयं मायाविनं हरिः ॥४९॥
 हरये च मयो माया प्रादात्प्रोत्या तथा हरिः । प्राप्तः संप्रोतिमानाह किं कृत्यं मय तद्वद ॥५०॥

इन्द्र ने कहा—दैत्यपति ! मुझ याचक को मेरा अभीष्ट वर दो । दाताआ मे सर्वश्रेष्ठ तुम्हें मुनवर मैं उत्तम ब्राह्मण तुम्हारे पास आया हूँ ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—मय ने भी उसको ब्राह्मण जानकर कहा—तुम जो चाहो, वह मैं देने के लिए तैयार हूँ । क्या दानशील ध्यवित याचक ने आ जाने पर उसने सामने दान की छोटाई या बड़ाई पर विचार करत हैं ? इतना कहने पर इन्द्र ने कहा मैं तुम्हारे साथ मित्रता चाहता हूँ । मय ने पुन इन्द्र से कहा 'द्विजवर' इसका क्या अर्थ ? ओ ! तुम्हारे साथ तो मेरी कोई शत्रुता नहीं । इन्द्र ने मय से "स्वस्ति" यह कहा । यह मुन दैत्य ने उस ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र से कहा कि इसका रहस्य बतलाओ । तब इन्द्र ने दैत्य को अपना सहस्र नेत्र वाला शरीर दिखाया । इन्द्र की इस कपट माया को देखकर विस्मित हो दैत्य ने इन्द्र से कहा ॥४२-४५॥

मय ने कहा—यह क्या, तुम तो वज्रपाणि इन्द्र हो । सखे ! यह कपट तुम्हारे समान देवता के लिये उचित नहीं है ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र ने हँसकर मय को गले लगाया और कहा कि जो होना था हो गया । इस लोभ में बुद्धिमान् व्यक्ति जिस किसी प्रकार स अपने इष्ट वा साधन करते हैं । मुनिशार्दूल ! तभी से मय के साथ इन्द्र की अति घनिष्ठ मैत्री हो गई । मय भी संबंध के लिये इन्द्र का हितेच्छु बन गया । इन्द्र के भवन में जाकर मय ने सारा रहस्य बह दिया । यह मुन वर हरि ने मायावी मय से कहा कि मुझे क्या करना चाहिये । मय ने प्रेमपूर्वक अपनी माया (विद्या) हरि को दे दी । हरि ने माया विद्या पाकर अति प्रसन्न हो कहा कि 'मय ! मुझे क्या करना होगा वह बताओ' ॥४७-५०॥

मय उवाच

अगस्त्यस्याऽऽथमं गच्छ तदाऽऽस्ते गर्भिणी दितिः । तस्याः शुश्रूषणं कुर्वन्नास्त्व तत्र क्रियन्ति च ॥५१॥
अहानि मघवंस्तस्या गर्भमाविश्य वज्रधृक् । वधंमानं च तं छिन्धि यावद्वश्योऽयवा मृतिम् ॥
प्राप्नोति तावद्वज्रेण ततो न भविता रिपुः ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्युक्त्वा मयं पूज्य मघवानेक एव हि । विनीतवत्तदा प्रायार्थितं मातरमञ्जसा ॥५३॥
शुश्रूषमाणस्तां देवीं शक्रो दैतेयमातरम् । सा न जानाति तच्चित्तं शक्रस्य द्विपतो दितिः ॥५४॥
गर्भे स्थितं तु यद्भूतं देवेन्द्रस्य विचेष्टितम् । अमोघं तन्मुनेस्तेजः कश्यपस्य दुरासदम् ॥५५॥
ततः प्रगृह्य कुलिशं सहस्राक्षः पुरंदरः । अन्तःप्रवेशकामोऽसौ बहुकालं समावसन् ॥५६॥
संघोदवशीर्षनिद्रां तामवेक्ष्य कुलिशायुधः । इदमन्तरमित्युक्त्वा दित्याः कुक्षिं समाविशत् ॥५७॥
अन्तर्वाति च यद्भूतमिन्द्रं दृष्ट्वा धृतायुधम् । हन्तुकामं तदोवाच पुनः पुनरभीतवत् ॥५८॥

गर्भस्थ उवाच

किं मां न रक्षसे वज्रिभ्रातरं त्वं जिघांससि । नारणे मारणादन्यत्पातकं विद्यते मत् ॥५९॥

मय ने कहा—अगस्त्य के आश्रम में जाओ, वहाँ गर्भिणी दिति रहती है। उस आश्रम में कुछ दिनों तक उसकी शुश्रूषा करते हुए रहो। वज्रहस्त ! समय पाकर उसके गर्भ में घुसकर उस वड़ने हुए गर्भ को जब तक वह वयवता न स्वीकार करे अथवा मर न जाय तब तक वज्र से काटो। ऐसा करने से वह तुम्हारा शत्रु नहीं होगा ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा, यह कहकर मय की पूजा कर यह इन्द्र अकेले विनीत भाव से क्षीघ्र ही माता दिति के पास गया। वहाँ जाकर वह उस दैत्य-माता देवी की सेवा करने लगा। परन्तु वह दिति ईर्ष्यालु इन्द्र के मनोगत भावों को नहीं जानती थी। उस मुनि कश्यप के अमोघ और दुर्लभ तेज के गर्भस्थ होने पर इन्द्र के मन में बँने विचार हुये होंगे इस बात को भी दिति नहीं जानती थी। इधर सहस्राक्ष इन्द्र वज्र हाथ में लिये गर्भ में प्रवेश करने की इच्छा से बहुत समय तक वहाँ प्रतीक्षा करते हुये रह गये। निदान एक दिन दिति को सध्या समय उत्तर की ओर शिर रखकर सोते हुये देखकर 'यह अच्छा अवसर है' यह कहकर इन्द्र दिति के उदर में घुस गये। वज्र हाथ में लिये हुये और मारने के लिये उद्यत इन्द्र को देखकर गर्भस्थ जोब निर्भीक होकर बार-बार कहने लगा ॥५३-५८॥

गर्भस्थ शिशु ने कहा—वज्रिन् ! तुम क्यों मेरी रक्षा नहीं करते ? क्या अपने माई का ही वध करना चाहते हो ? युद्ध से अन्यत्र किसीको मारने से जो महापाप होता है, उससे बचकर और कोई पाप नहीं है। पराक्रमी इन्द्र ! बाहर निकलने पर मुझसे युद्ध करो। इसलिये इस प्रकार का यह दुष्कर्म तुम्हारे लिये उचित नहीं होगा।

ऋते युद्धान्महाबाहो शक्र युध्यस्व निर्गते । मयि तस्मान्नतदेव तव युक्तं भविष्यति ॥६०॥
 शतक्रतुः सहस्राक्षः शचीभर्ता पुरंदर । वज्रपाणिः सुरेन्द्रस्त्वं ते न युक्तं भवेत्प्रभो ॥६१॥
 अपवा युद्धकामस्त्वं मम निष्क्रमण यथा । तथा कुरु महाबाहो मार्गदस्मादपासर ॥६२॥
 कुमार्गे न प्रवर्तन्ते महान्तोऽपि विपद्गताः । अविद्यश्चाप्यशस्त्रश्च नैव चाऽऽयुधसंग्रहः ॥६३॥
 त्वं विद्यायान्वज्रपाणे मा निर्घ्नान्कि न लज्जसे । कुर्वन्ति गंहितं कर्म न कुलीनाः कदाचन ॥६४॥
 हत्वा वा किं तु जायेत यशो वा पुण्यमेव वा । वध्यन्ते भ्रातरः कामाद्गर्भस्थाः किं न पौरुषम् ॥६५॥
 यदि वा युद्धभक्तिस्ते मयि भ्रातरसंशयम् । ततो मुष्टि पुरस्कृत्य वज्रिणेऽसौ व्यवस्थितः ॥६६॥
 बालघातो ब्रह्मघातो तथा विश्वासघातकः । एवंभूतं फलं शक्र कस्मान्मम हन्तुमुद्यतः ॥६७॥
 यस्याऽऽज्ञया सर्वमिदं वर्तते सचराचरम् । सहन्ता बालकं मां वै किं यशः किन्तु पौरुषम् ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुन्तं तं गर्भं चिच्छेद कुलिशेन सः । श्रोत्रान्धानां लोभिनां च न घृणा क्वापि विद्यते ॥६९॥
 न ममार ततो दुःखादाहुस्ते भ्रातरो धयम् । पुनश्चिच्छेद तान्खण्डान्मा यथोरिति चाब्रुवन् ॥७०॥
 विश्वस्तान्मातृगर्भस्याग्निजभ्रातृशतक्रतो । द्वेषविध्वस्तबुद्धीनां न चित्ते कवणाकणः ॥७१॥

प्रभो ! तुम शतक्रतु (सी यज्ञ करने वाले) सहस्राक्ष, शची के भर्ता, वज्र-पाणि, पुरन्दर और सुरेन्द्र हो, अतः यह कार्य तुम्हारे लिये युक्त नहीं होगा । अपवा यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो जिस प्रकार मैं यहाँ से निकलूँ बैसा करो । परन्तु महाबाहु ! इस कुमार्ग से अपने को हटाओ । महान् व्यक्ति आपत्ति में पड़ने पर भी कुमार्ग की ओर नहीं आते । तुम तो विद्या विमुख और शस्त्र-हीन भी नहीं हो । वज्रपाणे ! तुम तो आयुधवान् हो, विद्यावान् हो । तो क्या मुझको मारने में तुम लज्जित नहीं होते ? कुलीन व्यक्ति कभी भी निन्दित कर्म नहीं करते । सोचो तो, मुझको मारने से तुमको क्या मिलेगा यश या पुण्य ? लोमवश गर्भस्थ भ्राता को मारकर तुम कौन-सा पौरुष करोगे ? अपवा भाई ! यदि तुम्हारी मुझसे निदिचन ही युद्ध करने की इच्छा है (यदि तुम मुझे मारना चाहते हो) (तो उमने अपनी बघी मुट्टी इन्द्र को दिखाते हुये कहा) तो तुम बालघाती, ब्रह्मघाती और विश्वास-घातक हो । शक्र ! तुमको इस पापघर्मे से क्या फल मिलेगा ? किस लिये तुम मुझे मारने के लिये तैयार हो ? जिसकी आज्ञा से यह सम्पूर्ण स्यावर-जगम रूप जगत् संचालित होता है क्या वह मेरे समान बालक का हत्यारा बने ? इसमें तुम्हें क्या यश मिलेगा ? और क्या पुरस्कार होगा ? ॥६९-६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बातचीत करने हुए उस गर्भ को इन्द्र ने वज्र से काट डाला । सत्य है, श्रोत्र और लोभी जनों को किसी काम में घृणा नहीं होती । बटने पर भी वह गर्भरूप जीव मरा नहीं । किन्तु दुःख से गर्भ ने टुकड़ों में कहा—‘हम लोग भाई हैं । फिर इन्द्र ने उन खण्डों को भी काटा । इस पर खण्डों ने कहा—‘घनक्रतो ! विश्वासपात्र एक माना वे गर्भ में स्थित अपने मादया को मत मारो ।’ परन्तु द्वेष से जिन प्राणियों की बुद्धि नष्ट

एवं तु खण्डितं खण्डं हस्तपादादिजीववत् । निर्विकारं ततो दृष्ट्वा सप्तसप्त सुविस्मितः ॥७२॥
 'एकवद्वहुरुपाणि गर्भस्थानि शुभानि च । खदन्ति बहुरूपाणि मा खेत्यब्रवीद्वरिः ॥७३॥
 ततस्ते मरुतो जाता बलवन्तो महोजसः । गर्भस्था एव तेऽन्योन्यमूचुः शक्रं गतभ्रमाः ॥७४॥
 अगस्त्य मुनिशार्दूलं माता यस्याऽऽश्रमे स्थिता । अस्मत्पिता तव भ्राता सद्यं ते बहु मन्यते ॥७५॥
 अस्मानुपरि सस्नेहं मनस्ते विद्महे मुने । न यत्करोति श्वपचः प्रवृत्तस्तत्र वज्रघृक् ॥७६॥
 इत्येतद्वचनं श्रुत्वा अगस्त्योऽगात्ससभ्रमः । दितिं संबोधयामास व्यथितां गर्भवेदनात् ॥
 तत्रागस्त्यः शचीकान्तमशपत्कुपितो भृशम् ॥७७॥

अगस्त्य उवाच

सदग्रामे रिपवः पृष्ठं पश्येयुस्ते सदा हरे । जीवतामेव मरणमेतदेव हि मानिनाम ॥
 पृष्ठं पलायमानानां यत्पश्यन्त्यहिता रणे ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

साऽपि तं गर्भसंस्थं च शशापेन्द्रं दया दितिः ॥७९॥

दितिस्त्वाच

न पौरुषं कृतं तस्माच्छापोऽयं भविता तव । स्त्रीभिः परिभवं प्राप्य राज्यात्प्रभ्रश्यसे हरे ॥८०॥

हो गई है, उनके हृदय म थोड़ी सी भी करुणा के लिये स्थान कहाँ? इस प्रकार इन्द्र ने प्रत्येक खण्ड को खण्डित करने भी हाथ पैर वाले जीव के समान उनकासा भागो को निर्विकार देखा । यह देखकर वे अतिविस्मित हो गये । उन एक प्रकार के बहुत से रूपवाले पवित्र गर्भस्थ जीवो को विभिन्न प्रकार से रोते हुये दखकर इन्द्र ने कहा—'मा रण (मत रोओ) । इतना कहने से व जीव महादेवस्वी एव बलवान् 'मारुत' हो गये । गर्भम रहकर ही उन जीवो ने मुनिवर अगस्त्य से जिनके आश्रम में उनकी माता रहती थी, इन्द्र के बारे म परस्पर बातचीत की फिर नि शक होकर कहा 'मुन ।' हमारे पिता तुम्हारे भाई हैं और तुम्हारी मित्रता पर अचिन् विस्वास करते हैं । मुने ! हम लोगो पर तुम्हारे मन में स्नेह है, यह हम जानते हैं, परन्तु इतना होने पर जिस काम को एक चाण्डाल भी नहीं कर सकता, उस कार्य में वज्रधारी इन्द्र प्रवृत्त हुए हैं । यह सुनकर अगस्त्य शीघ्र वहाँ पहुँचे और गर्भपीडा से व्यथित दिति को संबोधित करने लगे । वहाँ अगस्त्य ने अत्यन्त कुपित होकर इन्द्र को शाप दिया ॥६९-७७॥

अगस्त्य ने कहा—हरे ! सर्वदा शत्रु सग्राम में तुम्हारी पीठ देखें । मान प्रिय व्यक्तियों के लिय यही जीते हुये भी मृत्यु के समान कष्ट भोगना है कि रण में उनके शत्रु भागते हुये उन मनस्विमो की पीठ देखें ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उम दिनि ने भी जोष मे उस इन्द्र को शाप दिया, जो कि अमी गर्भ में ही था ॥७९॥

दिति ने कहा—तुमने पुरुषार्थ नहीं किया है (अर्थात् तुमने यह वायवता की है) । अतः तुमको यह शाप है कि ऐ इन्द्र ! तुम स्त्रिया में अनादर पाकर राज्य में व्युत्त होये ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्यपो वै प्रजापतिः । प्रायाच्च व्यथितोऽगस्त्याच्छ्रुत्वा शक्रविचेष्टितम् ॥
गर्भान्तरगतः शक्रः पितरं प्राह भीतवत् ॥८१॥

शक्र उवाच

अगस्त्याच्च दितेश्चैव बिभेमि क्रमितुं धहिः ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्य कश्यपोऽपि प्रजापतिः । पुत्रकर्म च तद्दृष्ट्वा गर्भान्तः स्थितिमेव च ॥
दितिशापमगस्त्यस्य श्रुत्वाऽसौ दुःखितोऽभवत् ॥८३॥

कश्यप उवाच

निर्गच्छ शक्र पुत्रेत्तत्पापं किं कृतवानसि । न निर्मलकुलोत्पन्ना मनः कुर्वन्ति पातके ॥८४॥

ब्रह्मोवाच

स निर्गतो वज्रपाणिः सत्रीडोऽधोमुखोऽज्जयोत् । तन्मूर्तिरेव धदति सदसच्चेष्टितं नृणाम् ॥८५॥

शत्र उवाच

यदुक्तमत्र श्रेयः स्यात्तत्कर्ताऽहमसंशयम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

ततो ममान्तिकं प्रायात्लोकपालः स कश्यपः । सर्वं वृत्तमयोवाच पुनः पप्रच्छ मां सुरैः ॥८७॥
दितिगर्भस्य वै शान्तिं सहस्राक्षविशापताम् । गर्भस्थानौ च सर्वेषामिन्द्रेण सह मिश्रताम् ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच प्रजापति कश्यप भी वही आ गए । वे अगस्त्य के मुँह से इन्द्र के दुष्कर्म को सुनकर अत्यन्त व्यथित हुये । इन्द्र मयभीत होकर गर्भ के भीतर से ही पिता से बोले ॥८१॥

इन्द्र ने कहा—अगस्त्य और दिति के भय से मैं बाहर आने से डर रहा हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस समय प्रजापति कश्यप भी पुत्र के उस कर्म को और गर्भ के भीतर उसको धुसा देकर एव दिति तथा अगस्त्य के शाप को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए ॥८३॥

कश्यप ने कहा—शक्र ! निकलो । पुत्र ! तुमने यह पाप कार्य क्या किया है ? उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति कभी भी पाप की ओर अपना मन नहीं लगाते ॥८४॥

ब्रह्मा ने कहा—वह वज्रपाणि इन्द्र लज्जा से मुँह नीचे किए हुए निकला और बोला । सत्य है मनुष्य की आहुति ही उगरे सन् और असन् कर्मों को बता देती है ॥८५॥

इन्द्र ने कहा—जिस कार्य के करने में कल्याण होगा, यह मैं अवश्य करूँगा । आप कृपापूर्वक बताइये ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर लोकापालों के साथ कश्यप मेरे पास आये । सारी घटना कह सुनाई । पुनः देवताओं ने धुसते धुसा—जिस प्रकार दिति की गर्भ-शान्ति, इन्द्र का शाप से उद्धार, गर्भरूप सब जीवों की इन्द्र के साथ मैत्री

तेषामारोग्यता चापि शचीभर्तुरदोषताम् । अगस्त्यदत्तशापस्य विशापत्वमपि क्रमात् ॥८९॥
 ततोऽहमब्रुव वाक्य कश्यप विनयान्वितम् । प्रजापते कश्यप त्व वसुभिर्लोकपालकं ॥९०॥
 इन्द्रेण सहित शीघ्र गौतमीं याहि मानद । तत्र स्नात्वा महेशान स्तुहि सर्वे समन्वित ॥९१॥
 तत शिवप्रसादेन सर्वे श्रेयो भवेदिति । तथेत्युक्त्वा जगामासी कश्यपो गौतमीं तदा ॥९२॥
 स्नात्वा तुष्टाव देवेशमेभिरेव पदक्रमे । सर्वेदु स्नापनोदाय द्वयमेव प्रकीर्तितम् ।
 गौतमी वा पुष्यनदी शिवो वा करुणाकर ॥९३॥

कश्यप उवाच ।

पाहि शकर देवेश पाहि लोकनमस्कृत । पाहि पावन बागीश पाहि पन्नगभूषण ॥९४॥
 पाहि धर्म धृष्टारुढ पाहि वेदत्रयक्षण । पाहि गोघरलक्ष्मीश पाहि शर्व गजाम्बर ॥९५॥
 पाहि त्रिपुरहन्त्राय पाहि सोमार्घभूषण । पाहि यमेश सोमेश पाह्यभीष्टप्रदायक ॥९६॥
 पाहि कारुण्यनिलय पाहि मङ्गलदायक । पाहि प्रभव सर्वस्य पाहि पालक वासव ॥९७॥
 पाहि भास्कर वित्तेश पाहि ब्रह्मनमस्कृत । पाहि विश्वेश सिद्धेश पाहि पूर्ण नमोऽस्तु ते ॥९८॥
 घोरससारकान्तरसंचारोद्विग्नचेतसाम् । शरीरिणा कृपासिन्धो त्वमेव शरण शिव ॥९९॥

और उन जीवा का उत्तम स्वास्थ्य राखीपति के दोषा का निराकरण एवं अगस्त्य के लिये हुए शाप से इन्द्र का उद्धार होया ? तब मैं विनयावनत कश्यप से कहा—प्रजापत ! कश्यप ! मानद ! तुम शीघ्र वसुधा लोकपालों और इन्द्र के सहित गौतमी के पास जाओ । उसमें स्नान कर सबके साथ महेशान (शकर) की स्तुति करो । शिव की कृपा में सब प्रकार में कल्याण होगा । कश्यप ने उसको स्वीकार किया और गौतमी के तट पर गया । उसमें स्नानकर इन आप के कहे गये छान्दास शरकर की स्तुति की । इस लोक में सब प्रकार के दुष्टा को दूर करने के लिए शिवदेवता ही समर्थ मान गये हैं—एक पुष्य-नदी गौतमी और दूसरे करुणा के सागर भगवान शरकर ॥८७-८९॥

कश्यप ने कहा—देवताओं के प्रभु शरकर ! रक्षा करो । लोकपूजित ! रक्षा करो । परमपावन ! बाणी के स्वामी ! रक्षा करो ! सपके आभूषण वाले ! रक्षा करो । धर्म ! नन्दी पर (अथवा धर्मरूप बृषरूप) आसङ्ग होने वाले ! रक्षा करो । तीन बन्धुप्रीति तीन नवबाल ! रक्षा करो । बाल्य की लक्ष्मी (सोमा) के ईश ! रक्षा करो । गज चमदारित ! रक्षा करो । त्रिपुर को नष्ट करने वाले नाथ ! रक्षा करो । अष्ट चन्द्रमा को चिराभूषण बनाने वाले ! रक्षा करो । यन्त्र ! रक्षा करो । सोम ! मन्त्रार्थ देने वाले ! रक्षा करो । करुणामूर्ति ! रक्षा करो । मङ्गलायक ! रक्षा करो । सर्वको उत्पन्न करने वाले ! रक्षा करो । वासव ! पालक ! रक्षा करो । भास्कर ! घनग ! रक्षा करो । ब्रह्मा से भी पूजित ! रक्षा करो । विज्जेग ! रक्षा करो । सिद्धग ! रक्षा करो । पूर्ण ! आपका नमस्कार है । शिव ! कृपासिन्धो ! समारोपी भयकर वन में संचार करने से उद्विग्न हुए चित्त वाले प्राणियों के लिये तुम्हा एकमात्र शरण हो ॥९४-९९॥

ब्रह्मोवाच

एव सस्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूद्वध्वज । वरेण च्छन्दयामास कश्यप त प्रजापतिम् ॥१००॥
 कश्यपोऽपि शिव प्राह विनीतवदिदं वच । स प्राह विस्तरेणाय इन्द्रस्य तु विचेष्टितम् ॥१०१॥
 शाप नाश च पुत्राणां परस्परमभिन्नताम् । पापप्राप्तिं तु शत्रुस्य शापप्राप्तिं तथैव च ॥
 ततो धृषाकपि प्राह विंति चागस्त्यमेव च ॥१०२॥

शिव उवाच

मरुतो मे भवत्युत्रा पञ्चाशच्छर्वकर्वजिता । सर्वे भवेयु सुभगा भवेयुर्गजभागिन ॥१०३॥
 इन्द्रेण सहिता नित्यं वर्तयेयुर्मुदाऽन्विता ॥१०४॥
 इन्द्रस्य तु हविर्भागो यत्र यत्र मले भवेत् । आदौ तु मरुतस्तत्र भवेयुर्नात्र सशय ॥१०५॥
 मरुद्भिः सहितं शक्रं न जयेयु कदाचन । जेता भवेत्सर्वदेव सुखं तिष्ठ प्रजापते ॥१०६॥
 अद्यप्रभृति ये कुर्युरनयाद्भ्रातृघातनम् । वशच्छेदो विपत्तिश्च नित्यं तेषां भविष्यति ॥१०७॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यमृषिशार्दूल शभुरप्याह यत्नत ॥१०८॥

शभुरुवाच

न कुर्यास्त्व च कोप च शचीभर्तरी वै मुन । शमं व्रज महाप्राज्ञ मरुतस्त्वमरा भवन् ॥१०९॥

ब्रह्मोवाच

विंति चापि शिव प्राह प्रसन्नो वृषभध्वज ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर कश्यप के सामने शक्र ने प्रकट होकर उस प्रजापति कश्यप को वरप्रदान किया। कश्यप ने भी विनीत भाव से इन्द्र के लिए वर—शाप पुत्रों वा नाश परस्पर की ईर्ष्या इन्द्र की पाप तथा शाप की प्राप्ति आदि—विस्तार के साथ बता दिया। यह सुनकर शिव ने अगस्त्य और गिरि से कहा ॥१००-१०२॥

शिव ने कहा—जो मरुत नाम के तुम्हारे जनचास पुत्र हैं। वे सब भाग्यशाली और यज्ञार्थ जाने वाले होंगे। वे इन्द्र के साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे। जिन यज्ञों में इन्द्र को यज्ञ भाग प्राप्त होगा वहाँ इन्द्र के पहले मरुत ही यज्ञ भाग पायेंगे यह निश्चित समझो। मरुता के सहित इन्द्र को कभी कोई जीव न सकेगा। प्रजापते! आप सुखपूर्वक निश्चित रहिये। यह आपका पुत्र सबदा ही विजयी होगा। आज स जो कोई अन्याय-पूर्वक भाइया वा बंध बरसे उनका वध-नाश होगा। और वे सबदा विपत्ति-ग्रस्त रहेंगे ॥१०३-१०७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त गमु ने बड़ प्रेम से शिवपर अगस्त्य से कहा ॥१०८॥

शभु ने कहा—मुने! शचीपति के उपर आप क्रोध न करें। महाप्राज्ञ! आप शान्त हो जाइय। मरुद्गण तो अब अमर हो गये हैं ॥१०९॥

ब्रह्मा ने कहा—परम प्रसन्न श्वपम ध्वज शक्र ने विंति से भी कहा ॥११०॥

शिव उवाच

एको भूयान्मम सुतस्त्रैलोक्यैश्वर्यमण्डित । इत्येव चिन्तयन्ती त्व तपसे नियताऽभव ॥१११॥
तदेतत्सफल तेऽद्य पुत्रा बहुगुणा शुभा । अभवन्बलिन शूरास्तस्माज्जहि मनोदजम् ॥

अन्यानपि वरान्तुभूर्याचस्व गतसभ्रमा

॥११२॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचन श्रुत्वा देवदेवस्य सा दिति । कृताञ्जलिपुटा नत्वा शम्बु वाक्यमथान्नवीन् ॥११३॥

दितिरुवाच

लोके यदेतत्परम यत्पित्रो पुत्रदर्शननम् । विशेषेण तन्मातु प्रिय स्यात्सुरपूजित ॥११४॥

तत्रापि रूपसपत्तिशीयविक्रमवान्भवेत् । एकोऽपि तनय किन्तु बहवश्चेत्किमुच्यते ॥११५॥

मत्पुत्रास्ते प्रभावाच्च जेतारो बलिनो ध्रुवम् । इन्द्रस्य भ्रातर सत्य पुत्राश्चैव प्रजापते ॥११६॥

अगस्त्यस्य प्रभावाच्च गङ्गापाश्च प्रसादत । यत्र देव प्रसादस्ते तच्छूभ षोऽत्र सशय ॥११७॥

कृतार्याऽह तयाऽपि त्वा भक्त्या विज्ञापयाम्यहम् । शृणुष्व देव वचन कुरुष्व च जगद्धितम् ॥११८॥

ब्रह्मोवाच

वदेत्पुत्रता जगद्धात्रा विनिर्णयाऽब्रवीद्विदम्

॥११९॥

दितिरुवाच

सन्ततिप्रापण लोके दुर्लभं सुरवन्दित । विशेषेण प्रिय मातु पुत्रश्चेत्किं नु वर्ण्यते ॥१२०॥

शंकर ने कहा—मुझ त्रलोक्य के एश्वर्य का अधिकारी एक पुत्र हो इस विचार से तुमने कठिन तपस्या की है। तो आज तुम्हारी कामना सफल हो गई। मुन्हूरे पुत्र बहुगुणाली गुम्भूनि बली और गूर हो गये हैं। अब भानविक सन्ताप छोड़ दो। सुन्दर भी बाली। तुम अब निश्चिन्त हो, अन्य वरा को मांगो ॥१११ ११२॥

ब्रह्मा ने कहा—दवाधिष्ठेव शंकर की इन बातों को सुनकर वह दिति हाथ जाडकर शम्बु का प्रणाम करने बोली ॥११३॥

दिति ने कहा—गुरुपूजित इस सत्तार में यह परम सौभाग्य का विषय है कि माता पिता पुत्र का सुख देखें। माना के लिये तो यह और भी अधिक प्रिय विषय है। तिस पर भी यदि एक भी पुत्र रूप सम्पत्ति गूरता और पराक्रम वाला हो जाता है तो महान् आनन्द होता है फिर एम बहुत से पुत्रों को हो जान पर तो कहना ही क्या है। आपने प्रभाव में तथा अगस्त्य और गंगा की कृपा से मेरे सभी पुत्र बलवान् विजयो द्रष्टा क माई और प्रजापति व पुत्र हैं, यह सच है। जहां आपकी कृपा होगी वहां तो गुम्भू हांगा ही, सम सन्ध की गुंजायग नहीं है। अब मैं कृताप हो गई तिस पर भी आज मैं भक्तिपूर्वक आपसे प्रार्थना करती हूँ। देव ! इस प्रार्थना को मनिये और जगत का कल्याण कीजिय ॥११४ ११५॥

ब्रह्मा ने कहा—जगन्माता ने कहा कहा। तब निनि नम्रता के साथ बोली ॥११९॥

दिति ने कहा—सुरवन्दित ! इस लोक में सन्तान प्राप्ति दुर्लभ है विनापकर माता को सन्तान बहुत प्रिय

स चापि गुणवाञ्छीमानाद्युष्मान्यदि जायते । किंतु स्वर्गेण देवेश' पारमेष्ठ्यपदेन वा ॥१२१॥
 सर्वेषामपि भूतानामिहामुन फलैषिणाम् । गुणवत्पुत्रसंप्राप्तिरभीष्टा सर्वदेव हि
 तस्मादाप्लवनादत्र क्रियता समनुग्रह ॥१२२॥

शंकर उवाच

महापापफल चेद मदेतदनपत्त्यता । स्त्रिया वा पुरुषस्यापि बन्ध्यत्व यदि जायते ॥१२३॥
 तदन स्नानमात्रेण तद्दोषो नाशमान्नुयात् । स्नात्वा तत्र फल दद्यात्स्तोत्रमेतच्च य पठेत् ॥१२४॥
 स तु पुत्रमवाप्नोति' त्रिमासस्नानदानत । अपुत्रिणी त्वत्र स्नान कृत्वा पुत्रमवाप्नुयात् ॥१२५॥
 ऋतुस्नाता तु या काचित्तत्र स्नाता सुताल्लभेत् । त्रिमासाम्यन्तर या तु गुर्विणी भक्तितस्त्वह ॥१२६॥
 फलं 'स्नात्वा तु मा पश्येत्स्तोत्रेण स्तौति मा तया । तस्या शत्रुसम पुत्रो जायते नात्र सशय ॥१२७॥
 पितृदोषैश्च ये पुत्र न लभन्ते दिने शृणु । घनापहारदोषैश्च तत्रैषा निष्कृति परा ॥१२८॥
 तत्रैषा पिण्डदानेन पितृणा प्रीणनेन च । किंचित्सुवर्णदानेन तत पुत्रो भवेद्भुवम् ॥१२९॥
 ये न्यासाद्यपहर्तारो रत्नापह्नवकारका' । श्राद्धकमविहीनाश्च तेषा वशो न यथंते ॥१३०॥
 दोषिणा तु परेताना गतिरेषा भवेदिति । सततिर्जायता श्लाघ्या जीवता तीर्थसेवनात् ॥१३१॥

होती है उस पर भी पुत्र हो तो फिर कहना ही क्या है ? देवेन ! यदि वह पुत्र गुणवान् धीमान् और दीपजीवी हो जाय तब तो उसके सामने स्वयं या ब्रह्मपद का भी कोई महत्त्व नहीं होता । लौकिक एवं पारलौकिक फल को इच्छा करने वाले सभी प्राणियों को गुणी पुत्र पाने की सबका इच्छा बनी रहती है । इसलिय आप इस विषय में बल्य-मपन्त के लिये अनुग्रह कीजिये ॥१२० १२२॥

शंकर ने कहा—जो यह अनप-यता (सतान-हीनता) है वह महापाप का परिणाम है । अतः यदि स्त्री या पुरुष किसी को बध्यापन दोष हो जाय तो यहाँ स्नान करने से ही वह दोष नष्ट हो जायगा । जो उस तीर्थ में स्नान कर किसी को फल का दान करेगा और इस स्तोत्र का पाठ करेगा उसे तीन मास का स्नान-दान से पुत्र की प्राप्ति होगी । अपुत्रिणी स्त्री यहाँ स्नान करने से पुत्रवती होगी । जो कोई ऋतु-स्नाता स्त्री यहाँ स्नान करेगा वह पुत्र का प्राप्त करेगी । जो गर्भिणी स्त्री यहाँ तीन महीने तक स्नान कर पञ्च ह्यम भोजन करेगी और भरे स्तोत्र से राजि करेगी उसको इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं । इति । जो अपने पिता के दोष तथा पन अपहरण करने के दोष का कारण पुत्र नहीं प्राप्त करत उनके लिये उत्तम उपाय बता रहा हूँ उनको । ऐसे व्यक्ति यदि उस तीर्थ में पिण्डदान कर और पितरा को प्रसन्न कर तथा कुछ सोना दान दतो वे अवश्य पुत्रवान् होंगे । जो किसी की घनोदर को हृदय-लन अवका रत्न को भूतना स बन्धनते हैं और जो श्राद्ध आश्रित नही करत हैं उनकी वश वृद्धि नहीं होती है । एक दृष्ट व्यक्तिमा के मरने पर यही गति (बन्ध विच्छेद) होती है । अतः जायित व्यक्तिमा को इस तीर्थ में बचन में उत्तम सन्तति की प्राप्ति होती है । जो निति और गंगा के समान में स्नान कर प्रभु सिद्ध कर

सममे दितिगङ्गाया स्नात्वा सिद्धेश्वर प्रभुम् । 'अनाद्यपारमजर चित्सदानन्दविग्रहम् ॥१३२॥
 देवर्षिसिद्धगन्धर्वयोगेश्वरनिर्घोषितम् । लिङ्गात्मक महादेव ज्योतिर्मयमनामयम् ॥१३३॥
 पूजयित्वोपचारैश्च नित्य भक्त्या यतव्रत । स्तोत्रेणानेन य स्तौति चतुर्दशष्टमीपु च ॥१३४॥
 यथाशक्त्या (नित) स्वर्णवान् ब्राह्मणानां च भोजनम् । य करोत्यत्र गङ्गाया स पुत्रशतमानुयात् ॥१३५॥
 सप्राप्य सकलान्कामानन्ते शिवपुर व्रजेत । स्तोत्रेणानेन य कश्चिद्यत्र क्वापि स्तवीति माम् ॥
 पश्मासात्पुत्रमाप्नोति अपि 'बन्ध्याऽप्यशङ्कितम् ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रभूति तत्तीर्थं 'पुत्रतीर्थमुदाहृतम् । तत्र तु स्नानदानाद्यं सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१३७॥
 मरुद्भिः सह मन्त्रेण मित्रतीर्थं तदुच्यते । निष्पापत्वेन चन्द्रस्य शस्त्रतीर्थं तदुच्यते ॥१३८॥
 ऐन्द्री श्रिय यत्र लेभे तत्तीर्थं वमलानिधम् । एतानि सर्वतीर्थानि सर्वाभीष्टप्रदानि हि ॥१३९॥
 सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा शिवश्चान्तरधीयत । कृतकृत्याश्च ते जन्मु सर्व एव यथागतम् ॥
 तीर्थानां पुण्यं तत्र लक्षमेकं प्रकीर्तितम् ॥१४०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भूपिसवादे तीर्थमाहात्म्ये पुत्रतीर्थादिलक्ष-
 तीयवर्णन नाम चतुर्विंशतिशततमोऽध्याय ॥१२४॥
 गौतमीमाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५५॥

अनादि अपार अजर सत चित् एव आनन्दमयशरीरवाले देव ऋषि सिद्ध गन्धर्व और योगीश्वरों से सबदा सेवित
 लिङ्गात्मक ज्योतिर्मय तथा निर्विकार महादेव की समय और शक्तिपूर्वक नित्य षोडशोपचार स पूजा करते हैं
 और चतुर्दशी अष्टमी आदि तिथियों में इस स्तोत्र से स्तुति करते यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराते और उस
 गंगा में स्नान दान देते हैं वे सौ पुत्र पाते हैं । वे अपने जीवन की सम्पूर्ण कामनाओं का उपभोग कर अन्त में शिव
 लोक को जाते हैं । जो कोई जहाँ वहाँ भी इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है वह चाहे वांछ ही क्यों न हो छह महीने
 के भीतर ही निश्चित रूप से पुत्रवान् हो जाता है ॥१२३ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब से वह तीर्थ पुत्र-तीर्थ कहा जाने लगा । उसमें स्नान दान आदि करने से सब कामनाय
 प्राप्त होती हैं । मरुत के साथ इंद्र की मैत्री होने से वह मित्र-तीर्थ भी कहा जाता है । इंद्र का वहाँ पाप दूर हो गया
 अतएव उसको शत्रु-तीर्थ भी कहा जाता है । जहाँ इंद्र ने अपनी श्री प्राप्ति की वहाँ कमला-तीर्थ बन गया है । ये
 सब तीर्थ सब प्रकार की मन कामनाओं को देने वाले हैं । तदनन्तर सब कुछ प्राप्त होगा यह कहकर शिव अतर्हित
 हो गये । वे सभी इंद्र आदि ब्रह्मदेव होकर अपने गन्तव्य स्थान को चले गये । वहाँ एक लाख पवित्र तीर्थ निवास
 करते हैं ऐसा कहा जाता है ॥१३७ १४०॥

श्री ब्रह्मपुराण में पुत्र-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२४॥

अथ पञ्चविंशधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यात पितृणा प्रीतिवर्धनम् । दृष्टादृष्टेष्टद सर्वदेवर्षिगणसेवितम् ॥१॥
 तस्य प्रभाव वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् । अनुह्लाद इति ख्यात कपोतो बलवान्भूत् ॥२॥
 तस्य भार्या हेतिनाम्नो पक्षिणो कामरूपिणो । मृत्यो 'पौत्रो ह्यनुह्लादो दौहित्री हेतिरेव च ॥३॥
 कालेनाय तपो पुत्रा पौत्राश्चैव बभूवुरे । तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराट् ॥४॥
 तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोत्कटा । तयोश्च वैरमभवद्बहुकाल द्विज-मनो ॥५॥
 गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत् । तस्याश्च दक्षिणे कूल उलूको नाम पक्षिराट् ॥६॥
 वास चक्रे तत्र पुत्रं पौत्रंश्च द्विजसत्तम । तयोश्च युद्धमभवद्बहुकाल विरुद्धयो ॥७॥
 पुत्रं पौत्रंश्च वृत्तयोर्बलिनोर्बलिभि सह । उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽप्नोति जयाजयौ ॥८॥
 कपोतो यममाराध्य मृत्यु पंतामह तथा । याम्यमस्त्रमवाप्याय सर्वेभ्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥९॥
 तथीलूकोऽग्निमाराध्य बलवानभवद्भुशम् । वरंरुमत्तयोर्युद्धमभवच्छातिभीषणम् ॥१०॥
 तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽपि कपोतायास्त्रमाक्षिपत् । कपोतोऽप्यथ पाशावै याम्यानाक्षिप्य शत्रवे ॥११॥

अध्याय १२५

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरों के आनन्द को बढ़ाने वाला दृष्ट अदृष्ट और इष्ट फल को देने वाला और सब देवा एव ऋषिया से मन्त्रित यम-तीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। सब प्रकार के पापा को नष्ट करने वाले उस तीर्थ के प्रभाव की बखला रहा हूँ। एक अनुह्लात् नाम का बलवान् बबूतर था। उसकी हेति नाम की भार्या थी, जो अश्वन्त मुन्दर पक्षिणी थी। अनुह्लाद मृत्यु का पौत्र और हेति उसकी नतिनी (बन्धा की बन्धा) थी। समय आने पर उनके पुत्र और पौत्र हुए। उसका एक उलूक नामक बलवान पक्षिराज गन्तु था। उसने भी अत्यन्त विवट अग्निवर्णी पुत्र और पौत्र हुए। उन दोनों पक्षिजुला में दोषकालीन वैर हो गया। गंगा के उत्तर तीर पर बबूतर का पासला था और उसके दक्षिणी तट पर पक्षिराज उलूक निवास करता था। द्विजवर! पुत्रा और पौत्रों से युक्त दोनों बन्धुगाली पक्षीदला का बहुत बाल सङ्ग युद्ध चलता रहा परन्तु कपोत या उलूक दोनों में से किसी की हार-जीत नहीं हुई। कपोत न पितामह मृत्यु (यम) का आराधना कर याम्य अस्त्र प्राप्त कर लिया जिससे वह सबम अपिष पक्षिनाली हो गया। इसी प्रकार उलूक भी अग्नि की आराधना से अत्यन्त बलवान् हो गया। इस प्रकार देव-वर पात्रेन से उमत्त उन दोनों पक्षिया में धीर सङ्ग्राम हुआ। उस युद्ध में उलूक ने कपोत पर आग्नेयास्त्र और कपोत ने

उलूकापाय दण्ड च मृत्युपाशानवासृजत् । पुनस्तदभवद्युद्धं पुराऽऽडोन्नकयोर्वथा ॥१२॥
हेति कपोतकी दृष्ट्वा ज्वलनं प्राप्तमन्तिके । पतिवता महायुद्धे भर्तुं सा दुर्लभिवृत्ता ॥१३॥
अग्निना वेष्टयमानाश्च पुनान्दृष्ट्वा विशेषतः । सा गत्वा ज्वलनं हेतिस्तुष्टाव विविधोपितभिः ॥१४॥

हेतिरुवाच

रूपं न दानं न परोक्षमस्ति, यस्याऽऽत्मभूतं च पदार्थजातम् ।
अनन्ति हव्यानि च येन देवा, स्वाहापतिं यज्ञभुजं नमस्ये ॥१५॥
मुखभूतं च देवानां देवानां हव्यवाहनम् । होतारं चापि देवानां देवानां द्रुतमेव च ॥१६॥
तं देवं शरणं यामि आग्निदेवं विभावसुम् । अन्तःस्थितं प्राणरूपो बहिर्दधानप्रदो हि यः ॥
यो यज्ञसाधनं यामि शरणं तं धनजयम् ॥१७॥

अग्निरुवाच

अमोघमेतदस्त्रं मे न्यस्तं युद्धे कपोतकि । यत्र विश्रमयेदस्त्रं तं मे ब्रूहि पतिव्रते ॥१८॥

कपोत्युवाच

मयि विश्रम्यतामस्त्रं न पुनः न च भर्तारि । सत्यवाग्भव हव्येश जातवेदो नमोऽस्तु तः ॥१९॥

जातवेदा उवाच

तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते । तवापि भर्तृपुत्राणां हेति क्षेमं ददाम्यहम् ॥२०॥
आग्नेयमेतदस्त्रं मे न भर्तारि सुतानपि । न त्वा दहेत्ततो याहि सुखेन त्वं कपोतकि ॥२१॥

रात्रि उलूक पर याम्य पास की छोड़ा । इस प्रकार प्राचीन काल के आडी और वक् पक्षियों के समान वह युद्ध होने लगा । पतिव्रता कपोतकी हेति ने देखा कि उसके पति के पास अग्नि की लपट पहुच गई है और पुत्रों की अग्नि ने घेर लिया है इससे वह बहुत घबराई । तब अग्नि के पास जाकर वह विविध वाक्यों से स्तुति करने लगी ॥११॥

हेति ने कहा—जिनका स्वरूप और दान किसी से छिपा नहीं है जो सभी पदार्थों को आमसात कर लेते हैं, जिनकी सहायता से देवता हव्य ग्रहण करते हैं ऐसे स्वाहा के पति यज्ञभक्त अग्नि को नमस्कार करती हूँ । जो अग्निदेव देवताओं के मूर्त के समान हैं जो देवों के हव्य देने वाले हैं जो देवताओं के होता और द्रुत हैं उस अग्निदेव विभावसु (अग्नि) की शरण में ग्रहण करती हूँ । जो प्राणरूप होकर समस्त प्राणियों के अन्तः में स्थित हैं जो बाहर (जगत में) रहकर सबके अन्तः दाता हैं जो यज्ञ के एकमात्र साधन हैं ऐसे धनजय अग्नि की शरण में ग्रहण करती हूँ ॥१५-१७॥

अग्नि ने कहा—कपोतकि । मरा यह अस्त्र अमोघ है जिसका इस युद्ध में प्रयोग हो गया है । इसलिये पतिव्रते ! जहाँ यह विश्राम ले (अर्थात् जिसको मार कर यह शान्त हो जाय) वह मुझ वताओ ॥१८॥

कपोती ने कहा—मुझ पर यह विश्राम करे । मेरे पुत्र और पति पर इसका प्रभाव न पड़े । हव्येश ! आप अपनी बात सत्य कीजिये जातवेदा ! आपको नमस्कार है ॥१९॥

अग्नि ने कहा—पतिव्रते ! तुम्हारे पति प्रम और इन वाक्यों से मैं प्रसन्न हूँ हेति ! तुम्हारे भर्ता पुत्र और स्वयं तुमको भी कल्याण का वरदान देता हूँ । यह मेरा आग्नेयस्त्र न तो तुमको ही जलायेगा न तुम्हारे पति या पुत्रों को ही । कपोतकि ! तुम सुखपूर्वक जाओ ॥२०-२१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूकी ददृशे पतिम् । वेष्ट्यमानं याम्यपाशैर्यमदण्डेन ताडितम् ॥
उलूकी दुःखिता भूत्वा यमं प्रायाद्भ्रमयातुरा ॥२२॥

उलूक्युवाच

त्वद्भूता अनुद्रवन्ते जनास्त्वद्भूता ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
त्वद्भूता साधु चरन्ति धीरास्त्वद्भूता कर्मनिष्ठा भवन्ति ॥२३॥
त्वद्भूता अनाशकमाचरन्ति, ग्रामादरथ्यमभि यच्चरन्ति ।
त्वद्भूताः सौम्यतामाश्रयन्ते, त्वद्भूताः सोमपानं भजन्ते ॥
त्वद्भूताश्चाग्नगोदाननिष्ठास्त्वद्भूता ब्रह्मवादं वदन्ति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एवं 'श्रुत्वयां तस्या तामाह दक्षिणदिवपतिः ॥२५॥

यम उवाच

वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच उलूकी ने नी अपने पति का मुँह में मृत्युपाश से घेरा और यमदण्ड से चिटिते देखा । यह देखकर उलूकी खुसी और भयातुर होकर यम के समीप गई ॥२२॥

उलूकी ने कहा—देव ! तुमसे भयभीत होकर सभी प्राणी माग जाते हैं । तुमसे डरकर ही प्राणी ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं । धीर पुरुष तुम्हारे भय से ही साधु आचरण करते हैं और तुम्हारे भय से ही सभी अपने वर्त-व्या में आरंभ करते हैं । तुम्हारे ही भय से अविध्वंस्य कार्य किये जाते हैं और लोग गाँव से जंगल को जाने हैं । तुम्हारे भय में मनुष्य अपनी बर्बरता छोड़कर विनीत बन जाते हैं । तुम्हारे डर से सोम-पान किया जाता है । तुम्हारे डर से मनुष्य अन्नदान, गोदान आदि में निष्ठा रखते हैं और तुम्हारे भय में मनुष्य ब्रह्मवाद (आस्तिकवाद) का प्रवचन करते हैं । ॥२३-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की स्तुति सुनकर दक्षिण दिशा के स्वामी यम ने उस उलूकी से कहा ॥२५॥

यम ने कहा—भद्रे ! वर मागो ! मैं तुम्हारी मन-कामना पूर्ण करेगा ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यम की बातें सुनकर उम पतिव्रता ने यम से कहा ॥२७॥

उल्लूक्युवाच

भर्ता मे वेष्टित पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव । तस्माद्रक्ष सुरश्रेष्ठ पुत्रान्भर्तारमेव च ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

॥२९॥

‘तद्वाक्यात्कृपया युक्तो यम प्राह पुन पुन

यम उवाच

॥३०॥

पाशाना चापि दण्डस्य स्थान वद शुभानने

ब्रह्मोवाच

॥

सा प्रोवाच यम देव मयि पाशास्त्वपेरिता । आदिशतु जगन्नाथ दण्डो मय्येव सविशेत् ॥

॥३१॥

तत प्रोवाच भगवान्यमस्ता कृपया पुन

यम उवाच

॥३२॥

तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वरा

ब्रह्मोवाच

॥

न्यवारयद्यम पाशानाग्नेयास्त्र तु हव्यवाद । वपोतोलूकयोश्चापि प्रीति वं चक्रत सुरौ ॥

॥३३॥

आहतुश्च द्विजन्मानौ त्रियता वर इस्मित

पक्षिणावूचतु

॥३४॥

भवतोर्दर्शनं लब्धं वैरव्याजेन दुष्करम् । धय च पक्षिण पापा किं वरेण सुरीत्तमौ ॥३४॥

उल्लूकी ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! मेरा पति तुम्हारे पाग से बँधा हुआ है । तुम्हारे दण्ड से पीड़ित है । इसलिये मेरे पुत्र और पति की रक्षा करो ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—उल्लूकी की वाता को सुनकर यम ने दयाद्र होकर बार-बार कहा ॥२९॥

यम ने कहा—हे शुभानने ! मेरे पाश और दण्ड के लिये स्थान बतलाओ ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उसने यम देवता से कहा—तुमने अपने पाशा को मेरे ऊपर ही फका है । अतः जगन्नाथ ! य पाश और दण्ड भजम ही शीन हो जायें । इसके बाद भगवान् यम न कृपापूर्वक उससे कहा ॥३१॥

यम ने कहा—तुम्हारे पुत्र और पति सब निष्कण्टक होकर जीय ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार यम ने उल्लूकी को वर देकर अपने पाशों (बन्धन) को और अग्नि ने अपने आग्नेयास्त्र को हटा दिया । वपोत और उल्लूक पर भी उन दोनों देवा ने अपनी प्रसन्नत ध्यक्त की और उन दोनों पक्षिया से कहा कि अपन अभीष्ट वर मागो ॥३३॥

दोनों पक्षी बोले—सुरोत्तम ! आज अपने परस्पर के वैर के बहाने ही आप लोका का यह दुःख दान प्राप्त हुआ । हम तो पापकर्मा पक्षी हैं हम लोगों को वर की क्या आवश्यकता ? यदि आप देवता हम लोगों को वर देना

अथ देवो वरोऽस्माक भवद्भूया प्रीतिपूर्वकम् । नाऽस्त्यर्थमनुयाचावो दीयमान वर शुभम् ॥३५॥
 आत्मार्यं यस्तु याचेत स शोभ्यो हि सुरेश्वरी । जीवितसफल तस्य य परार्थेद्यत सदा ॥३६॥
 अग्निरापो रवि पृथ्वी धान्यानि विविधानि च । परार्थं वर्तन तेषा सता चापि विशेषत ॥३७॥
 ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह । एव ज्ञात्वा तु देवेशो वृथा स्वार्थेपरिश्रम ॥३८॥
 जन्मना सह यत्पुसा विहित परमेष्ठिना । कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा विलश्यन्ति जन्तव ॥३९॥
 तस्माद्याचावहे किंचिद्धिताय जगता शुभम् । गुणदायि तु सर्वेषा तद्युवा (युवाभ्या) मनुमन्यताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तावाहुतुरुभो देवी पक्षिणौ लोकविभ्रुतौ । धर्मस्य यदासौऽवाप्य लोकाना हितकाम्यया ॥४१॥

पक्षिणावूचतु.

आवाभ्यामाश्रमो तीर्थे गङ्गाया उभये तटे । भवेता जगता नाथावेष एव परो वर ॥४२॥
 स्नान दान जपो होम पितृणा चापि पूजनम् । सुकृती दुष्कृती वाऽपि य करोति यथा तथा ॥
 सर्वं तदक्षय पुण्य स्यादित्येष परो वर ॥४३॥

देवावूचतु.

एवमस्तु तथाचान्यत्सुप्रीतो तु ध्रुवावहं

॥४४॥

ही चाहत हैं तो हम भी आप लोग का यह दिया हुआ शुभ वर अपने स्वाय के लिये नहीं चाहते हैं क्योंकि हे सुरेश्वर गण ! जो व्यक्ति अपने शुद्ध स्वाय के लिये याचना करता है उसका जीवन प्रगल्भीय नहीं होता । उसी व्यक्ति का जीवन सफल कहा जाता है जो सदा परोपकार के लिये उत्तम रहता है । अग्नि, जल, सूर्य, पृथ्वी विविध प्रकार के लाभ आदि परोपकार के लिए ही अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं और प्रायः सज्जन व्यक्ति विभिन्न रूप से परोपकार के लिए जीते हैं । जब ब्रह्मा आदि देव भी मृत्यु की पागल बधे हैं तो यह जानकर हे देवस ! स्वाय के लिए परिश्रम करना व्यर्थ है । परमेष्ठी (ब्रह्मा) न प्राणियों के जन्म के साथ जो कुछ निर्दिष्ट कर दिया है, वह किसी प्रकार से बदल नहीं जा सकता । तब जीवा की अपने स्वाय के लिए कष्ट उठाना व्यर्थ है । इसलिये लोभ-वत्स्याण के लिये कुछ धूम और गुण प्रयत्न करने मत रहें उसको आप दोनों स्वीकार करें ॥३४४०॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोनों लाल प्रसिद्ध देवताओं से उन दोनों पक्षियों ने धर्म और यश की प्राप्ति के लिये साथ ही लोभ-वत्स्यता की कामना से कहा ॥४४१॥

दोनों पक्षियों ने कहा—जन्म के स्वामी ! गंगा के दोनों तट पर हम लोगों का आश्रम है । वे दोनों आश्रम तीर्थ बन जायें यही हमारे लिए उत्तम वर है । सुकृती या दुष्कृती कोई भी हो और वह यही स्नान दान जप होम और पित्रा की पूजा आदि कर्म चाहे जित किमी प्रकार कर परन्तु उसको उसमें अभय-पुण्य प्राप्त हो यही हमारा अमीष्ट वर है ॥४४२-४४३॥

दोनों देवों ने कहा—हम दोनों प्रसन्न होकर कहते हैं कि ऐसा ही होगा तथा दूसरी बातें भी हाथी ॥४४४॥

यम उवाच

उत्तरे गौतमीतीरे यमस्तोत्रं पठन्ति ये । तेषां सप्तसु वंशेषु नाकाले-मृत्युमाप्नुयात् ॥४५॥
 पुरुषो भाजनं च स्यात्सर्वदा सर्वसंपदाम् । यस्त्विदं पठते नित्यं मृत्युस्तोत्रं जितात्मवान् ॥४६॥
 अप्पाशोतिसहस्रैश्च व्याधिभिर्न स बाध्यते । अस्मिन्तीर्थे द्विजश्रेष्ठो त्रिमासाद्गुविणी सती ॥४७॥
 अर्वाग्वन्ध्या च यन्मासात्सप्ताहं स्नानमाचरेत् । वीरसूः सा भवेन्नारी क्षतायुः स सुतो भवेत् ॥
 लक्ष्मीवान्मतिमाञ्छूरः पुत्रपौत्रविवर्धनः । तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥४८॥
 मनोवाक्कायजात्यापात्स्नानमुक्तो भवेन्नरः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

॥५०॥

यमवाक्यादानु तथा हव्यवाडाह पक्षिणी

अग्निरुवाच

मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतव्रताः । तेषामारोग्यमैश्वर्यं लक्ष्मीं रूपं ददाम्यहम् ॥५१॥
 इदं स्तोत्रं तु यः कश्चिद्यत्र ववापि पठेन्नरः । नैवाग्नितो भयं तस्य लिखितेऽपि गृहे स्थिते ॥५२॥
 स्नानं दानं च यः कुर्यादग्नितीर्थे शुचिर्नरः । अग्निष्टोमफलं तस्य भवेदेव न संशयः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमानेयमेव च । कपोतं च तपोलूकं हेत्यलूकं विदुर्बुधाः ॥५४॥

यम ने कहा—जो गौतमी के उत्तर तीर पर यम का स्तोत्र पढ़ेगे उनकी सात पीढ़ी में किसी की अकाल-मृत्यु नहीं होगी। जो समयी व्यक्ति उस मृत्यु-स्तोत्र का सर्वदा पाठ करेगा वह सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करेगा और अष्टासी हजार व्याधियां से कभी भी पीड़ित नहीं होगा। पक्षिश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में गर्भिणी स्त्री यदि तीन महीने तक और वन्ध्या छः महीने से कम (या) सात दिन भी स्नान कर ले तो वह नारी वीर-पुत्र की जननी होगी और वह पुत्र क्षतायु, लक्ष्मीवान्, मतिमान् शूर और पुत्र-पौत्र को बढ़ाने वाला होगा। उस तीर्थ में पिण्डदान करने से पितर मुक्ति प्राप्त करते हैं। मनुष्य उसमें स्नान करने, से मानसिक वायिक और वायिक पापा से छूट जाता है ॥४५-४९॥


ब्रह्मा ने कहा—यम के कहने के बाद अग्नि ने पक्षियों से कहा ॥५०॥

अग्नि ने कहा—जो व्रती मेरे स्तोत्र को दक्षिण तीर पर पढ़ेगे उनको मैं आरोग्य ऐश्वर्य, लक्ष्मी और सुन्दर रूप प्रदान करूँगा। जो कोई व्यक्ति इस स्तोत्र को जहाँ-वहाँ भी पढ़ता है अथवा लिखकर अपने घर में रखता है उसको अग्नि से भय नहीं होता। जो मनुष्य पुनीत भाव से इस अग्नि-तीर्थ में स्नान करता है और दान देता है, उसको अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल मिलता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥५१-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से उस तीर्थ को याम्य, आग्नेय, कपोत, उलूक तथा हेति-उलूक तीर्थ के नामसे

तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ॥ पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येकं मुक्तिभाजनम् ॥५५॥
तेषु स्नानेन दानेन प्रेतीभूताश्च ये नराः । पूतास्ते पुत्रचित्ताद्या आक्रमेयुर्दिव शुभा ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे भादिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यमाम्न्यादिनवत्युत्तरत्रिंशताधिक-
त्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥
गीतमीमाहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः 
तपस्तीर्थवर्णनम्

तपस्तीर्थमिति एषात् तपोवृद्धिकरं महत् । सर्वकामप्रदं पुण्या पितृणां प्रीतिवर्धनम् ॥१॥
तस्मिन्स्तीर्थे तु यद्वत् शृणु पापप्रणाशनम् । अपामग्नेश्च सवादमृषीणां च परस्परम् ॥२॥
अपो ज्येष्ठतमा केचिन्मेनिरेऽग्निं तथाऽपरे । एव ब्रुवन्तो मुनयः सवादं चाग्निवारिणो ॥३॥
विनाऽग्निं जीवनं न स्याज्जीवभूतो यतोऽनलः । आत्मभूतो ह्यवभूतश्चाग्निना जायतेऽखिलम् ॥४॥
अग्निना ध्रियते लोको ह्यग्निर्ज्योतिर्मयं जगत् । तस्मादग्ने परं नास्ति पादनं दैवतं महत् ॥५॥
अन्तर्ज्योतिं स एवोक्तं परं ज्योतिं स एव हि । विनाऽग्निना किञ्चिदस्ति पश्य धाम जगत्त्रयम् ॥६॥

विद्वान् लोग कहने लगे । वहाँ इसके अतिरिक्त तीन हजार तीन सौ नब्बे तीर्थ भी हैं जिनमें से प्रत्येक ही मुक्ति देने वाले हैं । उनमें स्नान करने और दान देने से मनुष्य पवित्र हो जाता तथा पुनः और पुनः से परिपूर्ण होकर मृत्यु के बाद स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥५४-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यमादि तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२५॥

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद तपस्या की वृद्धि करने वाला तपस्तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है जो पवित्र सब कामनाओं को देने वाला और पितरों का आनन्द बढ़ाने वाला है । उस तीर्थ में जो पापों को दूर करने वाली घटना हुई उसको मुनी । एक बार ऋषियों में जल और अग्नि को लेकर परस्पर सवाद हुआ । कुछ ऋषि जल को ज्येष्ठ मानते थे तो कुछ अग्नि को । इस प्रकार अग्नि और जल की श्रेष्ठता को लेकर बातचीत होन लगी और धीरे धीरे बड़ विवाद का रूप में बदल गई । कुछ मुनि कहत थे कि बिना अग्नि के जीवन दुःख है क्योंकि अग्नि ही प्राणरूप है अग्नि ही आत्मा स्वरूप और हृदय रूप भी है अग्नि सही सम्पूर्ण बिम्ब की उत्पत्ति होती है अग्नि सही यह लोग दिवा हुआ है और अग्नि से ही संसार ज्वालिमय हाता है । इसलिये अग्नि स बड़कर कोई पवित्र स्थान नहीं है । वहीं अन्तर्ज्योति है, वहीं पर ज्वालि भी है, जिसका स्थान तीन लोकों में है उस अग्नि का बिना इस जगत् में अन्य किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है । इसलिये सम्पूर्ण भूतों में अग्नि के अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ कहलाने के योग्य नहीं है ।

तस्मादग्नेः परं नास्ति भूतानां ज्येष्ठ्यभाजनम् । योषित्तेत्रेऽर्पितं बीजं पुरुषेण यथा तथा ॥७॥
तस्य देहादिका शक्तिः कृशानोरेव नान्यथा । देवानां हि मुखं वह्निं नस्तस्मान्नातः परं विदुः ॥८॥
अपरे तु ह्यपां ज्येष्ठ्यं मेनिरे वेदवादिनः । अद्भिः संपत्स्यते ह्यघ्नं शुचिरद्भिः प्रजायते ॥९॥
अद्भिरेव धृतं सर्वमापो वं मातरः स्मृताः । त्रैलोक्यजीवनं वारि वदन्तीति पुराविदः ॥१०॥
उत्पन्नममृतं ह्यदम्यस्ताम्यश्चौषधिसंभवः । अग्निज्येष्ठ इति प्राहुरापो ज्येष्ठतमाः परे ॥११॥
एवं भीमांसमानास्ते ऋषयो वेदवादिनः । विरुद्धवादिनो मां च समम्येत्येदमब्रुवन् ॥१२॥

ऋषय ऊचुः

॥१३॥

अग्नेरपां वद ज्येष्ठ्य त्रैलोक्यस्य भवान्प्रभुः

ब्रह्मोवाच

अहमप्यब्रवं प्राप्तानूषोत्सर्वान्यतव्रतान् । उभौ पूज्यतमौ लोक उभाभ्यां जायते जगत् ॥१४॥
उभाभ्यां जायते हव्यं कव्यं चामृतमेव च । उभाभ्यां जीवनं लोके शरीरस्य च धारणम् ॥१५॥
नानयोश्च विशेषोऽस्ति ततो ज्येष्ठ्यं समं मतम् । ततो मद्बचनाज्येष्ठ्यमुभयोर्नैव कस्यचित् ॥१६॥
ज्येष्ठ्यमन्यतरस्येति मेनिरे ऋषिसत्तमाः । न तृप्ता मम वाक्येन जाम्बव्यं तपस्विनः ॥१७॥

जिस किसी प्रकार पुरुष द्वारा स्त्री-श्रेष्ठ में डाले गये बीज का देहात्मक भाग अग्नि का ही है दूसरे का नहीं । देवताओं का मुख भी अग्नि ही है । अतः अग्नि नि सन्नेह सबसे बड़ा है । अपर पक्ष जो कि वेदवादी या वह जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार करता था । उनका कहना था कि जल से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है, जल से ही सब पदार्थ शुद्ध होते हैं, जल ने सम्पूर्ण लोक को धारण किया है, आप (जल) को ही माता कहा जाता है, प्राचीन मर्मज्ञ जन जल को ही त्रैलोक्य का जीवन कहते हैं, जल से ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जल से ही ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार कुछ ऋषि अग्नि को ज्येष्ठ कहते थे और अपर जल को उससे भी श्रेष्ठ कहते थे । इस प्रकार की भीमांसा करते हुए ये वेदवादी तथा विरुद्ध पक्ष वाले मेरे पास आये और कहा ॥१-१२॥

ऋषिगण बोले—आप त्रिलोकी के प्रभु हैं, अतः आप ही निर्णय करें कि अग्नि और जल में कौन श्रेष्ठ है ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—मैंने भी आये हुए उन ब्रती ऋषियों से कहा कि दोनों ही इस लोक में पूज्य हैं, क्योंकि दोनों से जगत् की उत्पत्ति होती है । दोनों से हव्य कव्य और अमृत उत्पन्न होते हैं, दोनों ही ससार के जीवन हैं और दोनों से लोक में शरीर का धारण किया जाता है । इन दोनों में कोई बढकर नहीं है, इसलिये दोनों की श्रेष्ठता समान है, यही मेरा मत है । तदनन्तर मेरे कहने से किसी की भी श्रेष्ठता सिद्ध नहीं हुई । परन्तु उन मुनिवरो को किसी एक की श्रेष्ठता अभीष्ट थी, इसलिये मेरे निर्णय से वे तृप्त नहीं हुये और तपस्वी वायु के पास गये ॥१४-१७॥

मुनय ऊचु

कस्य ज्यैष्ठ्य भवान्प्राणो वायो सत्य त्वयि स्थितम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

वायुराहानलो ज्येष्ठ सर्वमग्नौ प्रतिष्ठितम् । नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमूपयो जग्मुस्तेऽपि वसुधराम् ॥१९॥

मुनय ऊचु

सत्य भूमे यद ज्यैष्ठ्यमाधाराऽसि चराक्षरे ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूमिरप्यराह विनयादागतास्तानृषीनिवम् ॥२१॥

भूमिरवाच

ममाप्याधारभूता स्युरापो देव्य सनातना । अद्भ्यस्तु जायते सर्वं ज्यैष्ठ्यमप्सु प्रतिष्ठितम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमूपयो जग्मु क्षीरोदशापिनम् । तुष्टुर्वृविधिं स्तोत्रं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥२३॥

ऋषय ऊचु

यो वेद सर्वं भुवन् भविष्यद्यजायमानं च गुहानिविष्टम्
लोकत्रयं चित्रविचित्ररूपमन्ते समस्ते च यमायिवेश ॥२४॥
यदक्षरं शाश्वतमप्रमेयं, यं वेदवेद्यमूपयो यदस्ति

मुनियो ने कहा—वायु ! आप जगत के प्राण हैं । किसी श्रद्धा आप स्वीकार करते हैं ? आप में सत्य की स्थापना है । ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु ने कहा कि अग्नि श्रेष्ठ है क्योंकि अग्नि में सब कुछ प्रतिष्ठित है । परन्तु वे ऋषि यह उचित निगय नहीं है इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए वसुधरा के पास गये ॥१९॥

मुनिगण ने कहा—पृथ्वी ! तुम सत्य बताओ कि कौन श्रेष्ठ है क्योंकि तुम चर-अचर सबकी आधार हो ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी ने भी उन आये हुए मुनिया से नम्रतापूर्वक कहा ॥२१॥

भूमि ने कहा—मेरा आधार भी सनातन (जल) है । जल सही सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं । अतः श्रेष्ठता जल में प्रतिष्ठित है ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—एक पक्ष में इसकी भी स्वीकार नहीं किया इस प्रकार इस निगय पर भी विवाद न कर वे मुनि क्षीरसागरापी विष्णु के पास गये और शङ्ख-चक्र-गदाधारी विष्णु की विविध स्तोत्रांश स्तुति करने लगे ॥२३॥

ऋषियों ने कहा—जो सब भुवन तथा मूल भविष्य और वर्तमान को जानने हैं जिनमें अन्तर्यामि यह चित्र-विचित्रमय त्रैलोक्य समा जाना है जो अक्षर नित्य तथा अप्रमेय है जिनको ऋषिगण वेदांश वेद्य (जानने

यमाश्रिताः स्वेप्सितमाप्नुवन्ति, तद्वस्तु सत्यं शरणं ब्रजामः
भूतं महाभूतजगत्प्रधानं, न विन्दते योगिनो विष्णुरूपम्
तद्वक्तुमेते ऋषयोऽत्र याताः, सत्यं वदस्वेह जगन्निवास
त्वमन्तरात्माऽखिलदेहभाजा, त्वमेव सर्वं त्वयि सर्वमीश
तयाऽपि जानन्ति न कोऽपि कुत्राप्यहो भवन्तं प्रकृतिप्रभावात्
अन्तर्बहिः सर्वत एव सन्तं, विश्वात्मना संपरिवर्तमानम्

॥२५॥

॥२६॥

॥

॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्राह जगद्धात्री देवी वागशरीरिणी

॥२८॥

देवी वागुवाच

उभावाराध्य तपसा भक्त्या च नियमेन च । यस्य स्यात्प्रथमं सिद्धिस्तद्भूतं ज्येष्ठमुच्यते ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा यदुः सर्वे ऋषयो लोकपूजिताः । श्रान्ताः छिन्नान्तरात्मानः परं वैराग्यमाश्रिताः ॥३०॥
सर्वलोककं जननीं भुवनत्रयपावनीम् । गौतमीमगमन्सर्वे तपस्तप्तुं यतन्वताः ॥३१॥
अब्धयत तयाग्निं च पूजनापोद्यतास्तदा । अग्नेश्च पूजका ये च अपां वै पूजने स्थिताः ॥
तत्र वागब्रवीद्देवी वेदमाता सरस्वती ॥३२॥

योग्य) बताते हैं और त्रिनके आश्रितजन अपने मनोरथ को प्राप्त करते हैं, ऐसे सत्य वस्तु ब्रह्म की शरण में हम आये हुए हैं। योगी जन भी महामृतात्मक जगत् में प्रधानतया व्याप्त एव सत्य विष्णुरूप को नहीं जान पाते हैं, अतः जगन्निवास ! इतने ऋषि आपसे सभी आये हुये हैं। आप कृपा कर स्वयं इस सत्य को व्यक्त कीजिये। ईश ! देहधारी सम्पूर्ण जीवा के आप ही अन्तरात्मा हैं, आप ही सब कुछ हैं और आप में ही सब कुछ है। परन्तु प्रकृति के प्रभाव से बोर्ड भी वही भी आपको जान नहीं पाते हैं यद्यपि आप भीतर, बाहर, चारों ओर विश्वात्मा के रूप में परिवर्तमान (घुले-मिले) हैं ॥२४-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त जगत् का धारण करने वाली आकाशवाणी ने कहा ॥२८॥

आकाशवाणी ने कहा—तपस्या, भक्ति और सयम से दोनों की औरतियाँ करो, जिससे या जिसने पहले सिद्धि प्राप्त होगी वही ज्येष्ठ माना जायगा ॥२९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसको स्वीकार कर के सब लोक-वन्दित, श्रान्त, अपने अन्तःकरण में कुछ झुँझलाये हुये थे और अत्यन्त वैराग्यभाव से भरे ऋषि लौट गये और तीना लोक को पवित्र करने वाली, सब लोगों की एकमात्र जननी गौतमी के सट पर सयमपूर्वक तपस्या करने के लिये बैठ गये। उस समय वहाँ जो जल देवता के भक्त थे वे जल की पूजा करने के लिए और जो अग्निभक्त थे वे अग्नि की पूजा करने के लिये प्रस्तुत हुए। उसी समय वेद-माता सरस्वती रूप देवी वाणी ने कहा ॥३०-३२॥

देवी वाग्वाच

अग्नेरापस्तया योनिरद्भिः शौचमवाप्यते । अग्नेश्च पूजका ये च विनाऽद्भिः पूजनं कथम् ॥३३॥
 अप्सु जातासु सर्वत्र कर्मण्यधिकृतो भवेत् । तावत्कर्मण्यनर्होऽयमशुचिर्मलिनो नरः ॥३४॥
 न मग्नः श्रद्धया यावदप्सु शीतासु वेदवित् । तस्मादापो वरिष्ठा स्युर्मातृभूता यतः स्मृता ॥
 तस्माज्ज्येष्ठ्यमपामेव जनन्योऽग्नेर्विशेषतः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचः शुश्रुवुस्ते श्रुययो वेदवादिनः । निश्चयं च ततश्चक्रुर्भवेज्ज्येष्ठ्यमपामिति ॥३६॥
 यत्र तीर्थे घृतमिदमृषिसत्रे च नारद । तपस्तीर्थं तु तत्प्रोक्तं सत्रतीर्थं तदुच्यते ॥३७॥
 अग्नितीर्थं च तत्प्रोक्तं तथा सारस्वतं विदुः । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥३८॥
 चतुर्दश शतान्यत्र तीर्थानां पुण्यदायिनाम् । तेषु स्नानं च दानं च स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥३९॥
 कृतं संवेहहरणमृषीणां यत्र भायया । सरस्वत्यभवत्तत्र गङ्गाया संगता नदी ॥
 माहात्म्यं तस्य को वक्तु संगमस्य क्षमो नरः ॥४०॥

इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपस्तीर्थादिचतुर्दशशततीर्थवर्णनं
 नाम पङ्क्तिशतधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥५७॥

देवी वाणी ने कहा—जल अग्नि वा उत्पादक है, जल से ही पवित्रता प्राप्त होती है । जो अग्नि के पूजक हैं वे विना जल के पूजन कैसे करेंगे ? जल में स्नान करने के बाद ही सब कर्मों के करने का अधिकार प्राप्त होता है । तब तक वह मनुष्य किसी अनुष्ठान के अयोग्य समझा जायगा, चाहे वह वेदज्ञ ही क्या न हो जब तक कि वह शीतल जल में स्नान नहीं करेगा । इसलिये जल ही सर्वश्रेष्ठ है । अतः जल मातृभूत है, इसलिये जल की ही श्रेष्ठता सर्वमान्य है, विशेष रूप से इसलिये कि वह अग्नि की भी जननी है ॥३३-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन बातों को उन वेद-वादी श्रुयिषो ने सुना । तदनन्तर यह निश्चय हुआ कि जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार हो । नारद ! जिस तीर्थ या श्रुषि-सत्र (यज्ञ) में यह सब कुछ हुआ, उसकी तपस्तीर्थ या सत्रतीर्थ नाम से प्रसिद्धि हुई । वही अग्नि-तीर्थ या सारस्वततीर्थ भी माना जाता है । उसमें स्नान और दान अत्यन्त पुण्य और सब अमीष्टों के दाता माने जाते हैं । जहाँ वाणी द्वारा श्रुयिषा का सन्देश दूर किया गया वहाँ सरस्वती नाम की एक नदी हो गई जो कि गंगा में जाकर मिली । उस संगम की महत्ता वर्णन करने में बौन मनुष्य समर्थ हो सक्ता है ? ॥३६-४०॥

धीमहापुराण में तपस्तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२६॥

अथ सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवतीर्यमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
आष्टिपेण इति ख्यातो राजा सर्वगुणान्वितः । तस्य भार्या जया नाम साक्षालक्ष्मीरिवापरा ॥२॥
तस्य पुत्रो भरो नाम मतिमान्पुत्रवत्सलः । धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातो दक्ष एव च ॥३॥
तस्य भार्या रूपवती सुप्रभेत्यभिभूता । आष्टिपेणस्ततो राजा पुत्रे राज्यं निवेद्य सः ॥४॥
पुरोधसा च मुख्येन दीक्षां चक्रे नरेश्वरः । सरस्वत्यास्ततस्तीरे हयमेधाय यत्नवान् ॥५॥
ऋत्विग्भिर्ऋषिमुख्यैश्च वेदशास्त्रपरायणैः । दीक्षितं तं नृपश्रेष्ठं ब्राह्मणानिसमीपतः ॥६॥
मियुर्दानवराट्शूरः पापबुद्धिः प्रतापवान् । मखं बिध्वस्य नृपतिं सभार्यं सपुरोहितम् ॥७॥
आदाय वेगात्स प्रापाद्रसातलतल मुने । नीते तस्मिन्पवरे यज्ञे नष्टे ततोऽमरा ॥८॥
ऋत्विजश्च ययः सर्वे स्वं स्वं स्थानं मखात्ततः । पुरोहितसुतो राज्ञो देवापिरिति विश्रुतः ॥९॥

अध्याय १२७

देवतीर्थ का वर्णन

अह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तीर पर देवतीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले प्रभाव को कह रहा हूँ। आश्टीषेण नाम से प्रसिद्ध एक सर्वगुणी राजा था। उसकी जया नाम की भार्या थी, जो (रूप और गुण में) दूसरी साक्षात् लक्ष्मी के समान थी। उसका भर नामक पुत्र था जो बुद्धिमान् और पितृ भक्त था। वह धनुर्वेद और वेद में अत्यन्त निपुण और पारदर्शी विद्वान् था। उसकी सुप्रभा नाम की अतिरूपवती भार्या थी। अपने पुत्र को योग्य और वयस्क जानकर राजा ने सारा राज्य-भार पुत्र को सौंपकर अपने प्रधान पुरोहित से यज्ञ-दीक्षा ले ली। तदनन्तर वह सरस्वती के तीर पर अद्व-मेघ यज्ञ करने के लिये तैयारी करने लगे। परन्तु यज्ञ में वेदशास्त्रों के पारदर्शी प्रधान ऋषियों के रहते हुए भी एक पापात्मनः, प्रतापी और बीर दानवराज मिक्षु यज्ञ को नष्ट-ध्वस्त कर पुरोहित और स्त्री के सहित उस यज्ञ-दीक्षित राजा को लेकर ब्राह्मण और अनिन के समीप से उड़ाकर बड़े वेग से पाताल चला गया। यह देखकर सब देवता और ऋत्विज यज्ञ भूमि को छोड़कर अपने-अपने आश्रम को चले गये। राजा के पुरोहित का देवाधि नामक एक पुत्र था। उस बालक ने अपनी माता को तो देखा, परन्तु पिता को नहीं देखा। यह देखकर उसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ वह पितृ वियोग से बातर हो उठा।

'बालस्तां मातरं दृष्ट्वा आत्मनः पितरं न, च । दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा दुःखितोऽतीव चाभवत् ॥१०॥
स मातरंतु प्रपच्छ पिता मे वव गतोऽम्बिके । पितृहीनो न जीवेयं मातः सत्यं वदस्व मे ॥११॥
धिग्धिक्पितृविहीनानां जीवितं पापकर्मणाम् । न वक्षि यदि मे मातर्जलमग्निमथाऽविशे ॥१२॥
पुत्र प्रोवाच सा माता राज्ञो भार्या पुरोधसः । दानवेन तलं नीतो राज्ञा सह पिता तव ॥१३॥

देवापिरुवाच

वव नीतः केन वा नीतः कथं नीतः वव कर्मणि । केयु पश्यत्सु किं स्थानं दानवस्य वेदस्य मे ॥१४॥

मातोवाच

दीक्षितिं यज्ञसदसि सभार्यं सपुरोधसम् । राजानं तं मियुदंत्यो नीतवान्स रसातलम् ॥
पश्यत्सु देवसघेषु बहिनर्ग्राह्यणसंनिधौ ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवधनं श्रुत्वा देवापिः कृत्यमस्मरत् । देवान्पश्येऽथवाऽग्निं वा ऋत्विजो वाऽसुरांस्तथा ॥१६॥
एतेऽथेव पिताऽम्बेभ्यो नान्यत्रेति मतिमम । इति निश्चित्य देवापिभिरं प्राह नृपात्मजम् ॥१७॥

देवापिरुवाच

तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च । आनेतव्या भया सर्वे नीता ये च रसातलम् ॥१८॥

उसने अपनी माता से पूछा—'माँ ! मेरे पिता जी कहाँ चले गये ? माता ! मैं पितृ-हीन होकर जीता नहीं चाहता । तुम मुझसे सत्य कहो । पापी, पितृ-हीनो के जीवित को धिक्कार-धिक्कार है, माता ! यदि तुम नहीं बतलाओगी तो मैं या तो जल में डूब मरूँगा या अग्नि में जल जाऊँगा ।' पुत्र की इस प्रकार की कातरता देखकर राजपुरोहित बो उस भार्या ने अपने पुत्र से कहा—'राजा के सहित तुम्हारे पिता को लेकर दानव रसातल चला गया ॥१-१३॥

देवापि ने कहा—कहाँ ले गया ? कौन ले गया ? किस वार्य के लिए और क्यों ले गया ? तिनके देखते-देखते यह दुष्कार्य हुआ ? दानव वा कहाँ स्थान है ? इन सब बातों को बताओ ॥१४॥

माता ने कहा—यज्ञ-मण्डप में दीक्षित राजा को उनकी भार्या और पुरोहित के सहित, वह निषु नामक दैत्य अग्नि और ब्राह्मण के समीप से देवों के देखते-देखते लेकर चला गया ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की बातों को सुनकर देवापि सोचने लगा कि क्या करूँ, देवा के पास जाऊँ या अग्नि अथवा ऋत्विज के समीप अथवा सीधे असुरों को ही देखूँ । इन्हीं स्थानों में पिता जी को खोजना चाहिये, अन्यत्र नहीं । यही मेरा निश्चय है ।' इस प्रकार निश्चयकर देवापि ने राज-पुत्र भर से कहा ॥१६-१७॥

देवापि ने कहा—मैं तपस्या, ब्रह्मचर्य व्रत तथा अनुष्ठान के बल से उन लोगों को, जिन्हें दानव रसातल ले गया है, ले आना चाहता हूँ । जो नरपथम बठोरतापूर्वक अपमानित होने पर भी बदला नहीं लेता उसके जीवन से

जाते पराभवे घोरे यो न कुर्यात्प्रतिक्रियाम् । नराधमेन किं तेन जीवता वा मृतेन वा ॥१९॥
त्वं प्रशाधि महीं कृत्स्नामार्ष्टिपेण पिता यथा । माता मम त्वया पाल्या राजन्यावन्ममाऽऽपति ॥
भवेच्च कृतकार्यस्य अनुजानीहि मा भर ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भरेणोक्त स देवापि सर्वं निश्चित्य यत्नतः ॥२१॥

भर उवाच

सिद्धिं कुरु सुखं याहि मा चिन्तामल्पिकां भज ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

ततो देवापिरमरराजाद्भिर्ध्यानतत्परः । ऋत्विजोऽन्वेय्य यत्नेन नत्वा तानृत्विजं पूयक् ॥
कृताञ्जलिपुटो बालो देवापिर्वाक्पमब्रवीत् ॥२३॥

देवापिरुवाच

भवद्भिश्च मखो रक्ष्यो यजमानश्च दीक्षितः । पुरोधाश्च तथा रक्ष्य पत्नी या दीक्षितस्य तु ॥२४॥
भवत्सु तत्र पश्यत्सु यज्ञविध्वस्य दैत्यराट् (ऋत्विजः) । राजादयस्तेन नीतास्तत्र यक्ततम भवेत् ॥२५॥
अथाप्येतदहं मन्ये भवन्तस्तानरोगिणः । दातुमर्हन्ति तान्स (वं स) र्वानन्यथा शापमर्ह्य ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः

मखेऽग्निं प्रथमं पूज्यो ह्यग्निरेवात्र देवतम् । तस्माद्वयं न जानीमो ह्यग्नीनां परिचारका ॥२७॥

क्या लाम ? या मृत्यु से क्या हानि ? तुम इस पृथिवी का शासन अपने पिता आर्ष्टिपेण के समान करो । राजन् ! जब तक मैं लौटकर नहीं आता तब तक मेरी माता की देखरेख या पालन तुमको करना होगा । भर ! मैं अपने कार्य में वृत्त-कृत्य (सफल) हो जाऊँ ऐसा तुम मुझे आदेश दो ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—सब कुछ विचारपूर्वक निश्चित कर भर ने देवापि से कहा ॥२१॥

भर ने कहा—तुम अपने कार्य में सफलता प्राप्त करो, सुखपूर्वक जाओ, किसी विषय की धोड़ी-सी भी चिन्ता न करो ॥२१-२२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद देवापि ने देवराज के धरणी का ध्यान करता हुआ बड़े परिश्रम से ऋत्विजों का पता लगाया, उनको प्रणाम कर एवान्त में उनसे अलग अलग हाथ जोड़कर कहा ॥२३॥

देवापि ने कहा—आप लोगों को यज्ञ-दीक्षित यजमान पुरोहित और यजमान की पत्नी की रक्षा करनी चाहिये, परन्तु आप लोगों के सामने से ही दैत्यराट् यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर राजा आदि को लेकर चला गया यह अच्छा नहीं हुआ । फिर भी मैं आप लोगों से कहूँगा कि उन सबको आप शीघ्र स्वस्थरूप में ले आएं । अन्यथा आप लोग शाप के भागी होंगे ॥२४-२६॥

ऋत्विज गण ने कहा—यज्ञ में अग्नि की पहले पूजा होती है, अतः अग्नि ही इसका देवता है इसलिये इस

स एव दाता भोक्ता च हर्ता कर्ता च हव्यवाद् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ऋत्विजं पृष्ठतः कृत्वा देवापिर्जातवेदसम् । पूजयित्वा ययान्यायमग्नये तद्भ्यवेदयत् ॥२९॥

अग्निरुवाच

यथार्त्विजस्तथा चाह देवानां परिचारकः । हव्यं ब्रह्मामि देवानां भोक्तारो रक्षकाश्च तः ॥३०॥

देवापिरुवाच

देवानांहूय यत्नेन हविर्भागान्पृथक्पृथक् । दास्येऽहमेव दोषो मे तस्माद्याहि सुरान्प्रति ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

देवापि स सुरान्प्राप्य नत्वा तेभ्यः पृथक्पृथक् । ऋत्विग्वाक्यं चाग्निवाक्यं शापं चापि न्यवेदयत् ॥३२॥

देवा ऊचुः

आहूता वैदिकंमन्त्रैर्ऋत्विग्भिश्च ययाक्रमम् । भोक्ष्यामहे हविर्भागान्न स्वतन्त्रा द्विजोत्तमा ॥३३॥

तस्माद्वेदानुगा नित्यं वयं वेदेन चोदिताः । परतन्त्रास्ततो विप्रः वेदेभ्यस्तन्निवेदय ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

स देवापि शुचिर्भूत्वा वेदानांहूय यत्नतः । ध्यानेन तपसा युक्तो वेदाश्चापि पुरोऽभवन् ॥३५॥

वेदानुवाच देवापिर्नमस्त्य तु पुनः पुनः । ऋत्विग्वाक्यं चाग्निवाक्यं देववाक्यं न्यवेदयत् ॥३६॥

विषय मे हम कुछ नहीं जानते क्योंकि हम लोग तो केवल अग्नि के सेवन हैं। वे ही दाता भोक्ता हर्ता, कर्ता और हव्य को देने वाले हैं ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋत्विजों को पीछे करने देवापि ने अग्नि की शास्त्रोक्त विधि से पूजा की और मह निवेदन किया ॥२९॥

अग्नि ने कहा—जिस प्रकार ऋत्विज देवा के सवन हैं उसी प्रकार मैं भी। मैं तो केवल देवों के लिये यत्नपूर्वक हव्य पहुँचा दिया करता हूँ, यम के रक्षक या भोक्ता वे ही हैं ॥३०॥

देवापि ने कहा—मैं देवताओं को यत्नपूर्वक बुलाकर पृथक्-पृथक् हविर्भाग दे देता हूँ। यही मेरा दोष है। अतः तुम देवताओं के पास जाओ ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह देवापि देवताओं के पास गया और प्रणाम कर एक-एक से ऋत्विजों का वचन अग्नि की बातें और शाप की बयां नहीं ॥३२॥

देवगण बोले—द्विजवर ! हम सबको ऋत्विज यदि मन्त्रों से जगमगा बुलाते हैं इस प्रकार हम अपने हविष्यांग को खाते हैं। हम भी स्वतन्त्र नहीं हैं। इस कारण हम नित्य वेदा के अनुयायी हैं और वेदों की प्रणाली से प्रेरित होते रहते हैं। अतएव हम परतन्त्र हैं। विप्र ! तुम उन वेदों में अपना अभिप्राय कहो ॥३३-३४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस देवापि ने परित्र होकर अपनी लक्ष्म्या एव ध्यान के द्वारा वेदा का आह्वान किया। वेद भी उसके सामने प्रकट हुए। देवापि ने भी बार-बार प्रणाम कर वचन से ऋत्विजों, अग्नि और देवताओं की बात कह सुनायी ॥३५-३६॥

वेदा ऊचुः

परतन्त्रा वयं तात ईश्वरस्य वशानुगाः । अशेषजगदाधारो निराधारो । निरञ्जनः ॥३७॥
सर्वशक्त्यैकसदनं निधानं सर्वसंपदाम् । स तु कर्ता महादेवः संहर्ता स महेश्वरः ॥३८॥
वयं शब्दमया ब्रह्मन्वदामो विप्र एव च । अस्माकमेतत्कृत्यं स्याद्ब्रह्मदामो यस्तु पृच्छति ॥३९॥
केन नीतास्तस्य नाम तत्पुरं तद्बलं तथा । भक्षिता किंतु नो नष्टा एतज्जानोमहे वयम् ॥४०॥
यथा च तव सामर्थ्यं यमाराध्यं च यत्र च । स्यादित्येतच्च जानीमो यथा प्राप्स्यसि तान्पुरः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

॥४२॥

एतच्छ्रुत्वाऽवदद्वेदान्विचार्यं सुचिरं हृदि

देवापिरुवाच

वेदा वदन्त्येतदेव सर्वमेव यथार्थतः । सर्वान्प्राप्स्ये तलं नीतानलं तेभ्यो नमोऽस्तु व ॥४३॥

वेदा ऊचुः

गीतमीं गच्छ देवापे तत्र स्तुहि महेश्वरम् । सुप्रसन्नस्तवाभीष्टं दास्यत्येव कृपाकरः ॥४४॥
भवेद्देवः शिवः प्रीतः स्तुतः सत्यं महामते । आर्ष्टिर्घणश्च नृपतिस्तस्य जाया जया सती ॥४५॥

देवो ने कहा—तात । हम परतन्त्र हैं, ईश्वर के सकेत के अनुसार चलने वाले हैं । सम्पूर्ण विश्व के आधार, निराधार, निर्विकार सर्वशक्तिसम्पन्न, और समस्त विभूतियों के पुज्य वे महादेव ही सब के निर्माता और वे महेश्वर ही सबके सहार करने वाले हैं । ब्रह्मन् ! हम तो शब्द-स्वरूप हैं सब कुछ जानते हैं और उसको बता देते हैं । हम लोग यही कार्य कर सकते हैं कि जो कुछ तुम पूछोगे बता देंगे । कौन ले गया, उसका नाम उसका नगर, उसकी सम्पत्ति और वे खा लिये गये किन्तु नष्ट नहीं हुए (या वह उन व्यक्तियों को खा गया या वे नष्ट हो गये), यह सारे रहस्य हम जानते हैं । इसके अतिरिक्त तुम्हारी शक्ति, जहाँ जिसकी आराधना से कार्यसिद्धि होगी और जिस प्रकार तुम उन लोगों को सामने पाओगे आदि बातों को भी हम जानते हैं ॥३७-४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वेदो की ये बातें सुनकर अपने हृदय में मलीमति सोच विचार कर उसने वेदो से कहा ॥४२॥

देवापि ने कहा—वेदगण ! आपको नमस्कार है । कृपाकर आप इन्हीं सब बातों को यथार्थ रूप से बता दीजिये कि कैसे मैं रसातल में पहुँचाया हुए उन लोगों को प्राप्त करूँगा, और कुछ अधिक नहीं जानना चाहता ॥४३॥

वेदगण ने कहा—देवापे । गीतमी के तट पर जाओ । वहाँ महेश्वर की स्तुति करो । वे कृपा के सागर अवश्य प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे । महामति ! स्तुति करने पर महादेव

पिता तवाप्युपमन्युस्तले तिष्ठन्त्यरोगिणः । वरदानान्महेशस्य मिथुं हत्वा च राक्षसम् ॥
यशः प्राप्त्यसि धर्मं च एतच्छक्यं न चेतस्म ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वेदवचनाद्बालो देवापिगौतमीं गतः । स्नात्वा कृतशणो विप्रस्तुष्टाव च महेश्वरम् ॥४७॥

देवापिरुवाच

बालोऽहं देवदेवेश गुरुणां त्वं गुरुर्मम । न मे शक्तिस्त्वत्स्तवने तुभ्यं शंभो नमोऽस्तु ते ॥४८॥
न त्वां जानन्ति निपमा न देवा मुनयो न च । न ब्रह्मा नापि बंकुण्डो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥४९॥
येऽज्ञाथा ये च कृपणा ये दरिद्राश्च रोगिणः । पापात्मानो ये च लोके तास्त्वं पासि महेश्वर ॥५०॥
तपसा नियमर्मन्त्रैः पूजितास्त्रिदिवौकसः । त्वया दत्तं फलं तेभ्यो दास्यन्ति जगतां पते ॥५१॥
याचितारश्च दातारस्तेभ्यो यद्यन्मनीषतिम् । भवतीति न चित्रं स्यात्त्वं विपर्ययकारक ॥५२॥
येऽज्ञानिनो ये च पापा ये मग्ना नरकार्णवे । शिवेति वचनान्नाथ तान्पासि त्वं जगद्गुरो ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरः प्राह त्रिलोचनः ॥

॥५४॥

शकर अवश्य प्रसन्न होगे । राजा आष्टियेण उनकी पतिव्रता स्त्री जया, तुम्हारे पिता उपमन्यु समी रसातल में कुशलपूर्वक हैं । तुम शकर की कृपा से वरदान प्राप्त कर मिथू राक्षस को मार कर कीर्ति और धर्म प्राप्त करोगे । यही कार्य तुमसे हो सकता है, इसके अतिरिक्त नहीं ॥४४-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—उन वेदों की आज्ञा के अनुसार बालक देवापि गौतमीतट पर गया । उसमें स्नान कर बड़ी तपस्या से वह विप्र शकर की स्तुति करने लगा ॥४७॥

देवापि ने कहा—देवदेवेश । मैं बालक हूँ । तुम मेरे गुरुओं के भी गुरु हो । तुम्हारी स्तुति करने की मुझमें शक्ति नहीं है । शंभो ! तुमको नमस्कार है । तुमको न तो वेद जानते हैं न देवता और न मुनि । ब्रह्मा और बंकुण्डपति विष्णु भी तुमको नहीं जानते । तुम जो हो वही हो । तुमको नमस्कार है । इस ससार में जो अनाथ हैं, कृपण हैं, दृष्टि हैं, रोगी हैं और पापी हैं उनकी हे महेश्वर ! तुम्हीं रक्षा करते हो । जगन् के स्वामी । जो व्यक्ति तपस्या नियम और मन्त्रों से देवताओं की पूजा करते हैं उनको भी देवतागण तुमने पाये हुये फल की ही प्रदान करते हैं । उन व्यक्तियों के मनोरथों को स्वयं पाचक बनकर ही वे देवता दान करते हैं इसमें कुछ आश्चर्य नहीं । क्योंकि तुम विपरीत कार्य करते भ समर्थ हो । हे नाथ ! जगद्गुरो ! जो अज्ञानी, पापी और नरक के मागर में गिरे हुए हैं, उनमें 'शिव' इस शब्द के कहने पर ही तुम उसकी रक्षा करते हो ॥४८-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस बालक की ऐसी स्तुति सुनकर त्रिनेत्र शकर स्वयं उसके सामने प्रवृत्त होकर बोले ॥५४॥

शिव उवाच

॥५५॥

वर ब्रूहृष्य देवापे अल दैन्येन बालक

देवापिरुवाच

राजान राजपत्नीं च पितर च गुरु मम । प्राप्तुमिच्छे जगन्नाथ निधन च रिपोर्मम ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

देवापिवचन श्रुत्वा तथेत्याहाखिलेश्वर । देवापे सर्वमभवदाज्ञया शकरस्य तत् ॥५७॥
पुनरप्याह त (आहूय स्वगण) शम्भुर्देवापिकरुणाकर । नन्दिन प्रेययामास शम्भु (तत्) शूलेन नारद ॥५८॥
रसातल मियु नन्दी हत्वा चासुरपुगवान् । तत्पित्रादीन्समाणीय तस्मै तान्स न्यवेदयत् ॥५९॥
ह्यमेधश्च तत्राऽऽसीदाष्टिषेणस्य धीमत । अग्निश्च ऋत्विजो देवा वेदाश्च ऋषयोऽनुवन् ॥६०॥

अग्न्यादय ऊचु

यत्र साक्षादभूच्छम्भुर्देवापे भवतवत्सल । देवदेवो जगन्नाथो देवतीर्थमभूच्च तत् ॥६१॥
सर्वपापक्षयकर सर्वसिद्धिप्रद नृणाम् । पुण्यद तीर्थमेतत्स्यात्तव कीर्तिश्च शाश्वती ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

अश्वमेधे निवृत्ते तु सुरास्तेभ्यो वरावदु । स्नात्वा कृतार्था गङ्गायां ततस्त दिवमाक्रमन् ॥६३॥

शिव ने कहा—देवापे । वर मागो । बालक । अब दीन की भावना छोडो ॥५५॥

देवापि न कहा—जगन्नाथ । राजा राजपत्नी और अपने गुरु पिता को प्राप्त करना चाहता हूँ साथ ही मेरे शत्रु का नाश भी हो यही मेरा वर है ॥५६॥

ब्रह्मा न कहा—देवापि की बातों को सुनकर अखिल जगत के ईश्वर ने ऐसा ही हो यह कहा । शकर की आज्ञा से देवापि की सभी कामनाय पूरा हो गईं । नारद । पुन देवापि पर करुणा करने वाले शम्भु ने अपने गण नन्दी को बुलाकर सब बातें कही और त्रिशूल देकर उसको रसातल भेज दिया । नन्दी ने रसातल में जाकर मियु एवं बड़ बड़े असुरों का वध किया और उस बालक के पिता आदि को लाकर उसको दे दिया । इसके बाद पुन धीमान् आष्टिषेण ने वहाँ अश्व-मेध यज्ञ किया । उस यज्ञ में अग्नि ऋत्विज देवता वेदो और ऋषियों ने कहा ॥५७-६०॥

अग्नि आदि ने कहा—देवापे । जिस स्थान पर भक्तवत्सल देवों के देव तथा जगन्नाथ शकर का साक्षात्कार हुआ था वह स्थान देवतीर्थ हो गया है । वह सब पापों को नष्ट करने वाला मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और पुण्य देने वाला तीर्थ तुम्हारी शाश्वत कीर्ति का स्मारक है ॥६१-६२॥

ब्रह्मा ने कहा—अश्वमेध सम्पन्न हो जाने पर देवों ने उन सबको वर दिया । वे भी गंगा में स्नान कर स्वर्ग

ततः प्रभृति तत्राऽऽसंस्तोर्यानि दश पञ्च च । सहस्राणि शतान्यष्टाबुभयोरपि तोरयोः ॥
तेषु स्नानं च दानं च ह्यतीव फलदं विदुः ॥६४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आष्टिपेणाष्टोत्तरशताधिक-
पञ्चदशसहस्रतीर्थवर्णनं नाम सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥५८॥

अथाष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

तपोवनादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तपोवनमिति ख्यातं नन्दिनीसंगमं तथा । सिद्धेश्वरं तत्र तीर्थं गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
शार्दूलं चेति विख्यातं तेषां वृत्तमिदं शृणु । यस्याऽऽकर्णनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
अग्निर्होता पुरा त्वासीद्देवानां हव्यवाहनः । भार्यां प्राप्तो दक्षसतां स्वाहानाम्नीं सुरुपिणीम् ॥३॥
साऽनपत्या पुरा चाऽसीत्युत्रायं तप आविशत् । तपश्चरन्तीं विपुलं तोययन्तीं हुताशनम् ॥
स भर्ता हृतभुक्प्राह भार्यां स्वाहामनिन्विताम् ॥४॥

वृत्तवृत्त्य हो गये और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त किया । तब से वहाँ उस गया के दोनों तट पर पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थं प्रतिष्ठित हो गये । उनमें स्नान और दान करना अधिक फलदायक माना गया है ॥६३-६४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आष्टिपेण आदि पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ
सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२७॥

अध्याय १२८

तपोवन आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गौतमी के दक्षिणी किनारे पर तपोवना तथा नन्दिनीसंगम नामक विख्यात तीर्थ हैं, वहीं सिद्धेश्वर और शार्दूल नामक दो और भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं । उनका इतिहास सुनो, जिससे सुनने से ही सब पाप छूट जाते हैं ।

बहुत पहले देवों को हव्य पहुँचाने वाले अग्नि होते थे । उनका दश बी परम मुन्दरी स्वाहा नाम की बन्ना से विवाह हुआ । पहले वह सन्तानहीन रही । तब पुत्र के लिये तपस्या करने लगी । उमने अपनी बटोर तपस्या से हुताशन को प्रयत्न करने की श्रद्धा की । पढ़ देखाइ उसके पति अग्नि ने अपनी अनिन्द मुन्दरी भार्या से कहा ॥१-४॥

अग्निहोवाच

अपत्यानि भविष्यन्ति मा तप कुरु शोभने

॥५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा भर्तुर्वावय निवृत्ता तपसोऽभवत् । स्त्रीणामभीष्टद नान्यदभर्तुर्वावय विना वदचित् ॥६॥

तत कतिपये काले तारकादभय आगते । अनुत्पन्ने कार्तिकेये चिरकालरहोगते ॥७॥

महेश्वरे भवान्या च अस्ता देवा समागता । देवाना कार्यसिद्धयथर्माणि प्रोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचु

देव गच्छ महाभाग शम्भु त्रिलोक्यपूजितम् । तारकादभयमुत्पन्न शभवे त्व निवेदय ॥९॥

अग्निहोवाच

न गन्तव्य तत्र देश दपत्यो स्थितयो रह । सामान्यमात्रतो न्याय कि पुन शूलपाणिनि ॥१०॥

एकान्तस्थितयो स्वर जल्पतोर्ध सरागयो । दपत्या शृणुयाद्वाक्य निरयात्तस्य नोदधृति ॥११॥

स स्वाम्यखिललोकाना महाकालस्त्रिशूलवान । निरीक्षणीय कन स्यादभवान्या रहसि स्थित ॥१२॥

देवा ऊचु

महाभय चानुगतं न्याय कोऽन्वन्न वण्यत । तारकादभय आपन्न गच्छ त्व तारको भवान् ॥१३॥

अग्नि ने कहा—सुदगी ! तपस्या मत करो तुम्हें सन्तान होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—भर्ता की बातों को सुनकर उसने तपस्या छोड़ दी । क्योंकि बिना पति के वचन के स्त्रियों के अभीष्ट को सिद्ध करने वाली दूसरी कोई बात नहीं होती । कुछ समय बीत जाने पर देवताओं को तारक का मय उत्पन्न हुआ । चिरकाल तक महेश्वर और भवानी के एकान्त विलास के बाद भी कार्तिकेय की उत्पत्ति नहीं हुई । यह देखकर देवता भयत्रस्त हो गये । वे देव अपने काय की सिद्धि के लिए एकत्र हुये और अग्नि से कहें ॥६॥

देवों ने कहा—महाभाग ! देव ! तुम त्रिलोक्य से वंचित शकर के पास जाओ । वहाँ जानकर शम्भु से वहाँ कि तारक के वारण देवों के सामने महान सकट आ गया है ॥९॥

अग्नि ने कहा—उस स्थान पर जहाँ पति-पत्नी एकान्तवास करते हो नहीं जाना चाहिये यह एक सब साधारण के लिए नियम है फिर शूलपाणि शकर के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं । जो एकान्त में स्थित प्रम पूवक स्वेच्छया बातचीत करने वाले पति-पत्नी की बातों को सुनता है उसका नरक से कभी भी उद्धार नहीं होता । वे तो अखिल लोक के स्वामी हैं महाकाल हैं और त्रिशूलधारी हैं । एकान्त में भवानी के साथ स्थित उनको कौन देख सकता है ? ॥१०॥ १२॥

देवों ने कहा—महान् सकट आ जाने पर कौन सा काय उचित है इसको कौन कह सकता है ? इस समय तारक के मय से रक्षा करने वाले आप ही हैं अतः आप अवश्य जायें । क्योंकि महासकट के समुद्र से उबारने के

महाभयाब्धौ साधूना यत्परार्थाय जीवितम् । रूपेणान्येन वा गच्छ वाच वद यथा तथा ॥१४॥
विश्रान्त्य देववचन शभुमागच्छ सत्वर । ततो दास्यामह पूजामुभयोर्लोकयो कवे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

शुको भूत्वा जगामाऽऽशु देववाक्याद्धृताशनम् । यत्राऽऽसीज्जगता नाथो रममाणस्तदोमया ॥१६॥
स भीतवदय प्रायाच्छुको भूत्वा तदाऽनल । नाशकद्वारदेशे तु प्रवेष्टु ह्यववाहन ॥१७॥
ततो गवाक्षदेशे तु तस्यौ धुन्वन्नयोमुखः । त दृष्ट्वा प्रहसन्शंभुरुमा प्राह रहोगत ॥१८॥

शंभुरुवाच

पश्य देवि शक प्राप्त देववाक्याद्धृताशनम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

लज्जिता चावदद्देवमल देवेति पावती । पुरश्चरन्त देवेशो ह्यग्निं त द्विजहृषिणम् ॥२०॥
आहूय बहुशऽचापि ज्ञातोऽस्यग्नेऽत्र मा वद । विदारयस्व स्वमुख गृहाणेद नयस्व तत् ॥२१॥
इत्युक्त्वा तस्य चाऽऽस्येऽग्ने रेत स प्राक्षिपद्बहु । रेतोगभस्तदा चग्निर्गन्तु नैव च शक्तवान् ॥२२॥
सुरनद्यास्ततस्तीरं ध्रान्तोऽग्निरुपतस्थिवान । कृत्तिकासु च तद्व्रेत प्रक्षेपात्कार्तिकोऽभवत् ॥२३॥

लिये साधुओं का जीवन ही परोपकार की भावना से आगे बढ़ता है। इसलिये अपने इसी रूप में या किसी अन्य वेग में आप जाइये और जिस किसी प्रकार से उनसे कहिये। इस प्रकार शवर से देवताओं का सङ्कट सुनाकर शीघ्र ही आइये। कवे! तदनन्तर हम लोग दोनों लोकों की श्रेष्ठ पूजा आपको अपित करेंगे ॥१३-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—शेनों के कहने के अनुसार अग्नि गुक का रूप धरकर वहाँ गये जहाँ कि ससार के स्वामी उमा के साथ विलास कर रहे थे। अग्नि गुक के रूप में डरते डरते वहाँ गये परन्तु वे मुख्य द्वार की ओर से पुनर्ने में समर्थ न हो सके। अतः लिङ्ग की पर मूह सीधे लटकाये और कुछ काँते हुए बैठ गये। उनकी लिङ्ग की पर बैठ देखकर एवान्त में विलास करने वाले गम्भीर शवर पावती से बोले ॥१६-१८॥

शम्भु ने कहा—देवि! देखो देवों के कहने से अग्नि गुक के रूप में यहाँ आया है ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—लज्जित होकर पावती ने शवर से कहा—देव! अब बस कीजिये। देवेश ने सामने घूमते हुए पक्षीरूपधारी अग्नि को बुलाकर कहा—अग्ने! अपने विषय में कुछ मत कहो। तुम किसलिये आप ही यह मैं पूषरूप से जान गया हूँ। अपना मुख फैलाओ यह लो और लेकर जाओ। यह कहकर उम अग्नि ने मुख में बहुत—सा बीर्य उड़ल दिया। अग्नि उम शिवबीर्य को मुख में रखकर ले जाने में असमर्थ हो गये। अतः धक्का कर गया गनी के तट पर बैठ गये। कृत्तिका नाम में उस बीर्य को डाल देने से कार्तिक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। अग्नि की देह में बचा हुआ शम्भु का जो कुछ बीर्य था उसी को अग्नि ने अपनी विष्णु रूप से पुत्र की इच्छा रखने वाली प्रिय भार्या

अवशिष्टं च पत्किंचिदनेदंहे च शाभवम् । तदेव रेतो बहिर्मस्तु स्वभार्याया द्विधाऽक्षिपत् ॥२४॥
 स्वाहाया प्रियभूताया पुनर्यिन्या विशेषत । पुरा साऽऽश्वासिता तेन सततित्ते भविष्यति ॥२५॥
 तद्वह्निनाऽय सस्मृत्य तत्क्षिप्त शाभव मह । तदग्ने रेतसस्तस्या जज्ञे मियुनमुत्तमम् ॥२६॥
 सुवर्णंश्च सुवर्णां च रूपेणाप्रतिम भुवि । अग्ने प्रीतिकर नित्य लोकानां प्रीतिवर्धनम् ॥२७॥
 अग्नि प्रीत्या सुवर्णां ता प्रादाद्धर्माय धीमते । सुवर्णस्याथ पुत्रस्य सकल्पामकरोत्प्रियाम् ॥
 एव पुत्रस्य पुत्र्याश्च विवाहमकरोत्कवि ॥२८॥

अन्योन्यरेतोव्यतिषङ्गदोषादान्नेरपत्यमुभय तथैव ।
 पुत्र सुवर्णो बहुरूपरूपो, रूपाणि कृत्वा सुरसत्तमानाम् ॥२९॥
 इन्द्रस्य वायोधनदस्य भार्या, जलेश्वरस्यापि मुनीश्वराणाम् ।
 भार्यास्तु गच्छत्यग्निश सुवर्णो, यस्या प्रिय पच्य ययु स कृत्वा ॥३०॥
 याति क्वचिच्चाप कवस्तनूजस्तद्भूर्तृरूप च पतिव्रतासु ।
 कृत्वाऽग्निश ताभिस्त्वारभावः, कुर्वन्कृतार्थं मदन स रेमे ॥३१॥
 कृत्वा गता ववापि चैव सुवर्णा, धर्मस्य भार्याऽपि सुवर्णनाम्नी ।
 स्वाहासुता स्वैरिणी सा बभूव, यस्यापि यस्यापि मनोगता या ॥३२॥
 भार्यास्वरूपा संव भूत्वा सुवर्णा, रेमे पतीन्मानुषानासुराश्च ।
 देवानृषीन्वितृरूपास्तथाऽन्यान्नूप्रीदार्यस्थैर्यंगाम्भीर्ययुवतान् ॥३३॥

स्वाहा मे दो माया म बोट कर छोड़ दिया क्योंकि पहले उन्होंने उसको आश्वासन दिया था कि तुमको सतान अवश्य होगी । इसी प्रतिज्ञा का स्मरण कर अग्नि ने उस शम्भु तेज को स्वाहा के शब्द में छोड़ दिया । अग्नि ने उसी दिने हुए रेतस (वीथ) से युगल (जुड़वा) सन्तान सुवर्ण और सुवर्णा उत्पन्न हुई । वह सति सौदरता में भूमण्डल पर बेजोड़ थी । उससे अग्नि को तो अधिक आनन्द मिलता ही था परन्तु उसके साथ-साथ लोक को भी विशेष आनन्द प्राप्त होता था । अग्नि ने अपनी उस कन्या सुवर्णा को प्रज्ञावान् धर्म को प्रम-पूवक दे दिया । इसके उपरान्त पुत्र सुवर्णा का विवाह सकल्या ने साथ कर दिया । इस प्रकार अग्नि ने पुत्र और पुत्री का विवाह कर दिया ॥२० २८॥ एक दूसरे के बीच सम्मिश्रण-दोष के कारण अग्नि की दोनों सन्तान उसी के अनुसार अतृप्तामिलायी हो गई । अनेको कष्ट-वैश धारण-गद पुत्र सुवर्ण देवा के वेश में इन्द्र वायु कुबेर वरुण और मुनीश्वरों की स्त्रिया के साथ उनकी इच्छा के अनुसार मनोहर शरीर धारण कर प्रतिदिन एकांत विलास करता था ॥२९ ३०॥ वहीं पर अग्नि पुत्र पतिव्रता स्त्रिया के यहाँ उनसे पति का रूप धारण कर प्रतिदिन जाता था और स्वेच्छया अपनी कामेच्छा को पूति करता हुआ रमण करता था ॥३१॥ इसी प्रकार धर्म की रूपवती भार्या सुवर्णा भी मायारूप धारण कर वहीं भी चली आती थी । वह स्वाहा पुत्री इतनी स्वच्छाचारिणी हो गई कि जिन जिन पुरुषों को जो जो स्त्रियाँ प्रिय लगती थी उन्हीं उन्हीं के रूप धारण कर उन मानव अथवा अमर पतियों के साथ या देव ऋषि पितर या अन्य रूप उदारता गम्भीरता आदि से युक्त पतियों के साथ विहार करती थी । जिस देवता को जो स्त्री प्रिय थी उसी का

याऽभिप्रेता यस्य देवस्य भार्या, तद्रूपा सा रमते तेन सार्धम्
 नानाभेदः करणश्चाप्यनेकैराकर्ष्यन्ती तन्मनःकामसिद्धिम् ॥३४॥
 एवं सुवर्णस्य निरीक्ष्य चेष्टामग्नेः सूनोः पुत्रिकायास्तथाजनेः ॥
 सर्वे च श्रेष्ठः कुपितास्तदाग्नेः, पुत्रं च पुत्रीं च सुरासुरास्ते ॥३५॥

सुरासुरा ऊचुः

कृतं यदेतद्व्यभिचाररूपं यच्छप्ना वर्तनं पापरूपम् ।
 तस्मात्सुतस्ते व्यभिचारबाधक, सर्वत्र गामी जायतां हव्यबाह ॥३६॥
 तथा सुवर्णाऽपि न चैकनिष्ठा, भूयादग्ने नैकतृप्ता बह्वंश्च ।
 नानाजातीन्निन्दितान्देहभाजो, भजित्री स्यादेव दोषश्च पुण्याः ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

इत्थेतच्छापवचनं श्रुत्वाऽग्निरतिभीतवत् । मामभ्येत्य तदोवाच निष्कृतिं यद पुत्रयोः ॥३८॥
 तदाऽहमश्रवं बहूने गीतमीं गच्छ शकरम् । स्तुत्वा तत्र महाबाहो निवेदय जगत्पते ॥३९॥
 माहेश्वरेण वीर्येण तव देहस्थितेन च । एवविधं त्वपत्यं ते जातं बहूने ततो भवान् ॥४०॥
 निवेदयस्य (तु) देवाय देवानां शापमीदृशम् । स्यात्पत्यरक्षणायासौ शंभुः श्रेयः करिष्यति ॥४१॥
 स्तुहि देवं च देवीं च भक्त्या प्रीतो भवेच्छिवः । ततस्त्वपत्यविषये प्रियाङ्कामानवाप्स्यसि ॥४२॥

रूप धारण कर वह नाना प्रकार के स्त्री-मुल्लभ हाव-भावों और अदम्य-सञ्चालन के द्वारा उनके मन में काम-भावना जागरित कर उनको अपनी ओर आकृष्ट करने उनके साथ रमण करती थी ॥३२-३४॥ इस प्रकार अग्नि के पुत्र और पुत्री की त्रिया को देखकर देवों तथा असुरों ने कुपित होकर शाप दे दिया ॥३५॥

सुर और असुरों ने कहा—अग्ने ! वषट्कार से तुम्हारे पुत्र में जो यह व्यभिचाररूप पापकर्म त्रिया है, इसका फलस्वरूप यह व्यभिचारी और सबत्रगामी हो जाय ! और तुम्हारी कन्या सुवर्णा भी कभी भी एव पति से प्रेम करने वाली तथा एत से तृप्त होने वाली न हो । नाना जातियों तथा निन्दित देहधारियों के साथ विलास-शील हो ऐसी तुम्हारी पुत्री की दूषितप्रकृति हो जाय ॥३६-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—शाप की इस माया को सुनकर अग्नि अत्यन्त भय-भीत से हो गये । मेरे पास जाकर उन्होंने कहा—मरी सन्तानों के उद्धार का मार्ग बताइये । तब मैंने कहा—‘अग्ने ! गीतमी के तट पर जाओ, वहाँ दाक्ष की स्तुति कर दे महाबाहु ! जगत्पति से निवेदन करो कि किस प्रकार तुम्हारे मुख में रखे गये शम्भु के वीर्य से इस प्रकार की तुम्हारी सति उत्पन्न हुई । तत्पश्चात् अग्ने ! तुम शकर से देवताओं के इस शाप का वर्णन करो । अपने अपत्य की रक्षा के लिये भगवान् दाक्ष अवश्य कोई न कोई कल्याणकर प्रवचन करेंगे । दाक्ष जाकर तुम शकर और देवी गीतमी की भक्तिपूर्वक स्तुति करो । तब दाक्ष जी प्रसन्न होंगे और तदनन्तर तुम अपनी

ततो मद्रचनादग्निर्पङ्गां गत्वा महेश्वरम् । तुष्टाव नियतो धावयः स्तुतिभिर्वेदसंमितः ॥४३॥

अग्निरुवाच

विश्वस्य जगतो धाता विश्वमूर्तिनिरञ्जनः । आदिकर्ता स्वयंभूश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥

योऽग्निर्भूत्वा संहरति खष्टा वं जलरूपतः । सूर्यरूपेण यः पाति तं नमामि च त्र्यम्बकम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाननन्तः शंभुरव्ययः । वरेण च्छन्दयामास पावकं सुरपूजितम् ॥४६॥

स विनीतः शिवं प्राह तव वीर्यं मयि स्थितम् । तेन जातः सुतो रम्यः सुवर्णो लोकविश्रुतः ॥४७॥

तया सुवर्णा पुत्री च तस्मादेव जगत्प्रभो । अग्न्योऽग्न्यवीर्यसङ्गाच्च तद्दोषादुभयं त्विदम् ॥४८॥

व्यभिचारात्सदोषं च अपत्यमभवच्छिव । शापं ददुः सुराः सर्वे तयोः शान्तिं कुरु प्रभो ॥४९॥

तदग्निवचनाच्छम्भुः प्रोवाचेदं शुभोदयम् ॥५०॥

शंभुरुवाच

मद्वीर्यादभवत्सुतः सुवर्णो भूरिविक्रमः । सम्प्रा ऋद्धयः सर्वाः सुवर्णोऽस्मिन्समाहिताः ॥५१॥

भविष्यन्ति न संदहो बहूने शृणु वचो मम । प्रमाणाभिमि लोकानां पावनः स भविष्यति ॥५२॥

स एव चामृतं लोके स एव सुरबल्लभः । स एव भुक्तिमुक्तो च स एव मखदक्षिणा ॥५३॥

मन्तान के विषय में अपने मनोरथ को प्राप्त करोगे ।' इसके बाद मेरे कहने के अनुसार अग्नि गया के समीप गये और सयन नाव से भगवान् आशुतोष की वेदसम्मत स्तुति वचना मे स्तुति करने लगे ॥३८-४३॥

अग्नि ने कहा—तुम गतिशील विषय के पालक, विश्वरूप, निर्विचार, आदिकर्ता और स्वयम्भु हो, ऐसे जगत्पति शक्ति को प्रणाम करता हूँ । जो अग्नि रूप से विश्व का संहार करता है, जलरूप में सृष्टि करता और सूर्यरूप से ससार की रक्षा करता है, उस विनेत्र शक्ति को नमस्कार है ॥४४-४५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् अनन्त, अव्यय शम्भु ने प्रसन्न होकर देव-पूजित अग्नि को बरदान दिया । विनीत अग्नि ने शक्ति से कहा कि मेरे मुख में रखे हुए तुम्हारे वीर्य से लोक प्रसिद्ध सुवर्ण नामक एक मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ । प्रभो ! उसी (वीर्य) से पुत्री सुवर्णा की भी उत्पत्ति हुई । परस्पर के वीर्य-मयोजन से और उसके दोष से ये दोनों अपत्य व्यभिचारदोष से दूषित हो गये । प्रभो ! मर देवताओं ने उस दोष के कारण शाप भी दे दिया । उनके पापों की शान्ति कीजिये । अग्नि की उन बातों को सुनकर शम्भु ने यह मंगल-जनक वाणी कही ॥४६-५०॥

शंभु ने कहा—मेरे वीर्य से तुम्हारे द्वारा यह परम विक्रमशाली सुवर्ण हुआ है । इस सुवर्ण में सम्पूर्ण श्रेष्ठियाँ समाहित (एकत्र) होगी ! अग्नि । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । और मुने, वह सुवर्ण तीना लोका में पवित्र होगा । समार में वही अमृत है, वही देवों को भी द्रिय है, वही मृत्वि-मृत्वि है वही यज्ञ की दक्षिणा भी है । वही सवता रूप और गुरुओं का भी गुरु है । उसको परम श्रेष्ठ वीर्य समझो । मुझसे उत्पन्न जो उत्तम वीर्य था,

स एव रूपं सर्वस्य गुरुणामप्यसौ गुरुः । वीर्यं श्रेष्ठतमं विद्याद्वीर्यं मत्तो यदुत्तमम् ॥५४॥
 विशेषतस्त्वयि क्षिप्त तस्य का स्याद्विचारणा । हीनं तेन विना सर्वं संपूर्णास्तेन सपदः ॥५५॥
 जीवन्तोऽपि मृताः सर्वे सुवर्णेन विना नराः । निर्गुणोऽपि धनी मान्यः सगुणोऽप्यधनो नहि ॥५६॥
 तस्मान्नातः परं किञ्चित्सुवर्णाद्वि भविष्यति । तथा चैषा सुवर्णाऽपि स्यादुत्कृष्टाऽपि चञ्चला ॥५७॥
 अनया वीक्षितं सर्वं न्यूनं पूर्णं भविष्यति । तपसा जपहोमैश्च 'येयं प्राप्या जगत्त्रये ॥५८॥
 तस्या प्रभावः प्राशस्त्यमगने किञ्चिच्च कीर्त्यते । सर्वत्र या तु सतिष्ठेदायातु विचरिष्यति ॥५९॥
 सुवर्णा कमला साक्षात्पवित्रा च भविष्यति । अद्य प्रभृत्यात्मजयोस्तथा स्वरं विचेष्टतोः ॥६०॥
 तथाऽपि चैतयोः पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा ततः शंभुः साक्षात्तत्राभवच्छिवः । लिङ्गरूपेण सर्वेषां लोकानां हितकाम्यया ॥६२॥
 वरान्प्राप्य सुताभ्यां च अग्निस्तुष्टोऽभवत्ततः । स्वभर्त्रा च सुवर्णा सा धर्मेणाग्निसुता मुदा ॥६३॥
 यतंयामास पुत्रोऽपि वह्नेः संकल्पया मुदा । एतस्मिन्नन्तरे स्वर्णमग्नेर्दुहितरं मुने ॥६४॥
 परिभूय च धर्मं तं शार्दूलो दानवैश्वरः । अहरद्भाग्यसोभाग्यविलासवसति छलात् ॥६५॥

जो विशेष रूप से तुम (अग्नि) मंत्रक्षिप्त होने के कारण और अधिक निखर सा गया, उसकी उत्तमता के विषय में अधिक क्या विचार किया जाय । उसने विना सारा ससार मुच्छ है । उससे सब प्रकार की सम्पत्ति को पूर्ण समझो । सुवर्ण के बिना जीवित मनुष्य को भी मृत समझो । ससार में गुणहीन धनी व्यक्ति आदर का पात्र है और गुण भी धनमात्र के कारण उद्देश्य होता है । इसलिए इस सुवर्ण के उद्घुष्ट कोई भी पदार्थ नहीं होगा । और यह सुवर्ण भी परम उद्घुष्ट परबु चंचला होगी । इसने दृष्टि विशेष मात्र से सारे अभाव भाव में परिणत हो जायेंगे । इनतीना लोकों में तपस्या जप और होम द्वारा प्राप्त करने योग्य जो यह सुवर्ण है अग्ने ! इसने प्रभाव और महत्त्व का घोडा-मा वर्णन किया गया है । जो सुवर्ण सर्वत्र रहती है, वह सर्वत्र रहे और धूम पुनरपि यह साधान् लक्ष्मी और पवित्र मानी जायगी । आज मे इस प्रकार का स्वेच्छाचार करते हुये भी तुम्हारी ये मन्त्रनि पवित्र हैं । इनके समान पवित्र पदार्थ न हुये न होंगे ॥६१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर राम् सब लोका के हित की कामना से लिङ्ग रूप में वहाँ प्रवृत्त हुए ॥६२॥ वे अग्नि भी वाकर से अपने पुत्रों के लिये वरदान पाकर प्रसन्न हो गये । इसके अनन्तर अग्नि-मनया वह सुवर्ण त्रीनितुर्वच अपने पति धर्म के साथ रहन लगी । अग्नि-पुत्र सुवर्ण की आनन्दपूर्वक सरला के साथ काल बिताने लगा ॥६३॥ मुने ! इस बीच दानवराज शार्दूल धर्म को हराकर भाग्य सोभाग्य और विभाग की चेष्टामुचि विषय विधुन सुवर्ण का छन्द म अपहरण करने रामानल में ले गया । यह देखकर अग्नि के जामाता धर्म

नीता रसातल तेन सुवर्णा लोकविश्रुता । जामाताऽग्ने स धर्मदश्च अग्निश्चैव स हव्यवाद् ॥६६॥
 विष्णवे लोकनायाय स्तुत्वा चैव पुन पुन । कार्यविज्ञापन चोभौ चक्रतु प्रभविष्णवे ॥६७॥
 ततश्चक्षेण चिच्छेद शार्दूलस्य शिरो हरि । साऽऽनीता विष्णुना देवी सुवर्णा लोकसुन्दरी ॥६८॥
 महेश्वरसुता चैव आनेश्चैव तथा प्रिया । महेश्वराय तां विष्णुर्दशायामास नारद ॥६९॥
 प्रीतोऽभवन्महेशोऽपि सस्वजे ता पुन पुन । चक्र प्रक्षालित यत्र शार्दूलच्छेदि दीप्तिमत् ॥७०॥
 चक्रीयं तु विख्यात शार्दूल चेति तद्विदु । यत्र नीता सुवर्णा सा विष्णुना शक्ररान्तिकम् ॥७१॥
 तत्तीर्थं शाकर ज्ञेय वैष्णव सिद्धमेव तु । यत्राऽऽनन्दमनुप्राप्तो ह्यग्निर्धर्मदश्च शाश्वत ॥७२॥
 आनन्दाश्रूणि न्यपतन्ग्रामनेर्मुनिसत्तम । आनन्देति नदी जाता तथा वै नन्दिनीति च ॥७३॥
 तस्याश्च सगम पुण्यो गङ्गाया तत्र वै शिव । तत्रैव सगमे साक्षात्सुवर्णाद्यापि सस्थिता ॥७४॥
 दाक्षायणी सैव शिवा आग्नेयी चेति विश्रुता । अम्बिका जगदाधारा शिवा कात्यायनीश्वरी ॥७५॥
 भक्ताभीष्टप्रदा नित्यमलकृत्योभय तटम् । तपस्तेपे यत्र चाग्निस्तत्तीर्थं तु तपोवनम् ॥७६॥
 एवमादीनि तीर्थानि तीरयोक्तृभयोर्मुने । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥७७॥
 उत्तरे चैव पारे च सहस्राणि चतुर्दश । दक्षिणे च तथा पार सहस्राण्यथ षोडश ॥७८॥

और स्वयं हव्य-वाट अग्नि ने लोक-यति महामहिम् विष्णु की बार-बार स्तुति करके उनको इस अन्याय-काय की सूचना दी ॥६४॥ ६७॥ हरि ने उन दोनों की प्रार्थना सुनकर चक्र से शार्दूल का शिर काट डाला और लोक-सुन्दरी महेश्वर और अग्नि की प्रिय पुत्री उस अपहृत सुवर्णा देवी को ला दिया । नारद ! विष्णु ने लाकर उसको शक्र की दिखलाया ॥६८॥ ६९॥ उसको देखकर व प्रसन्न हो गये और बार-बार उसको छाती से लगाया । जहाँ पर उन्होंने शार्दूल के गिर के काटने वाले चक्र को जल से धोया वह चक्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ । शार्दूल तीर्थ भी लोग उसी को कहते हैं ॥७०॥ जहाँ वह सुवर्णा विष्णु के द्वारा शक्र के पास लाई गई उसको शाकर वैष्णव और सिद्ध-तीर्थ कहा गया ॥७१॥ मुनिप्रेष्ठ ! जहाँ अग्नि और घम की अतिशय आनन्द प्राप्त हुआ और अग्नि के नेत्रों से आनन्द के अश्रु बिन्दु गिरे वहाँ आनन्द नाम की नदी—जिसको नन्दिनी भी कहते हैं—उत्पन्न हो गई ॥७२॥ ७३॥ उसने गंगा में मिलने से जो सगम बना वह अत्यन्त पवित्र तीर्थ हो गया । वहाँ गिर और साक्षात् सुवर्णा आज तक प्रतिष्ठित हैं ॥७४॥ उसी की दाक्षायणी शिवा आग्नेयी आदि नामों से प्रसिद्ध है । उस नदी के दोनों तटों पर भक्ताओं की अभीष्ट प्रदान करने वाली जगदाधार अम्बिका शिवा और ईश्वरी कात्यायनी नित्य निवास कर उन तटों की प्रीति बड़ाती हैं । जहाँ अग्नि ने तपस्या की वह तीर्थ तपोवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७५॥ ७६॥ मुने ! इस प्रकार के तीर्थ उसके दोनों तटों पर स्थित हैं जहाँ स्नान और दान करना शुभ एवं सब प्रकार की काम नाशों को देने वाला है ॥७७॥ इसने उत्तर तट पर चौदह हजार और दक्षिण तीर पर सोलह हजार तीर्थ हैं । ये सब तीर्थ विनाश घटनाओं के रमारे हैं । इनके नाम अलग-अलग हैं । मैंने तो संक्षेपरूप में कुछ के नाम गिनाये हैं

तत्र तत्र च तीर्थानि साभिज्ञानानि सन्ति वै । नामानि च पृथक् सन्ति सक्षेपात्तन्मयोच्यते ॥७९॥
 एतानि यश्च शृणुयाद्यश्च वा पठति स्मरेत् । सर्वेषु तत्र काम्येषु परिपूर्णो भवेन्नर ॥८०॥
 एतद्वृत्तं तु यो ज्ञात्वा तत्र स्नानादिकं चरेत् । लक्ष्मीवाञ्छायते नित्यं धर्मवाश्च विशेषतः ॥८१॥
 अञ्जनात्पश्चिमे तीर्थं तच्छार्दूलमुदाहृतम् । वाराणस्यादितोऽर्थेभ्यः सर्वेभ्यो ह्यधिकं भवेत् ॥८२॥
 तत्र स्नात्वा पितृन्देवान्बन्धुवन्तं तर्पयत्यपि । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महोपते ॥८३॥
 तपोवनाच्च शार्दूलान्मध्ये तीर्थान्यशेषतः । तस्यैकैकस्य माहात्म्यं न केनाप्यत्र वर्ण्यते ॥८४॥

इति श्रीमहापुराणे आदित्राह्ये तीर्थमाहात्म्ये तपोवननन्दिनीसगमेश्वरदेवीदाक्षा-
 यणोसिद्धेश्वरवैष्णवशार्दूलान्मित्रतीर्थानिर्दिशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टा-
 विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

गौतमीमाहात्म्य एकोनपष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तत्रैव च वृषाकपम् । केनाया सगमो यत्र हनूमत तथैव च ॥१॥

॥७८७९॥ जो इन तीर्थों का नाम श्रवण करता है पढ़ता है अथवा स्मरण करता है वह मनुष्य अपने सम्पूर्ण
 अमिलपित फलों को प्राप्त करता है ॥८०॥ इन तीर्थों के इतिहास को जानकर जो व्यक्ति इनमें स्नान आदि करता
 है वह नित्य प्रति लक्ष्मीवान् और विशेषरूप से धार्मिक होता जाता है ॥८१॥ अञ्जनात् पश्चिम ओर जो तीर्थ
 है वह शार्दूलतीर्थ कहलाता है । वह वाराणसी आदि सब तीर्थों से अधिक पवित्र है ॥८२॥ जो व्यक्ति जगमें
 स्नानकर पितर और देवों की श्रद्धा करना है या तपण करता है वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक में स्थान
 पाता है ॥८३॥ तपोवन से लेकर शार्दूलतीर्थ के बीच के सम्पूर्ण तीर्थों की महिमा पृथक्-पृथक् रूप से इस लोक में
 कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है ॥८४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तपोवन, नन्दिनी-सगम आदि तीस हजार तीर्थों का वर्णन नामक
 एक सो अष्टादशवां अध्याय समाप्त ॥१२८॥

अध्याय १२६

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यहाँ इन्द्रतीर्थ तथा वृषाकपतीर्थ प्रसिद्ध हैं । यहाँ केना का सगम हनूमन तीर्थ एवं अञ्जना

अञ्जकं चापि यत्प्रोक्तं यत्र देवस्त्रिविक्रमः । तत्र स्नानं च दानं च पुनरावृत्तिवर्लभम् ॥२॥
 तत्र वृत्तान्ययाऽऽख्यास्ये गङ्गाया दक्षिणे तटे । इन्द्रेश्वरं चोत्तरे च शृणु भक्त्या यत्प्रतः ॥३॥
 नमुचिर्बलवानासोदिन्द्रशत्रुमंदोत्कटः । तस्येन्द्रेणाभवद्युद्धं फेनेन्द्रेऽहर्च्छिरः ॥४॥
 अपां च नमुचे, शत्रोस्तत्फेनवच्चरूपधृक् । शिरश्छित्त्वा तच्च फेनं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥५॥
 न्यपतद्भूमिं भित्त्वा तु रसातलमयाऽऽविशत् । रसातलभव गाङ्गं वारि यद्विश्वपावनम् ॥६॥
 वज्रादिष्टेन मार्गेण व्यगमद्भूमिमण्डलम् । तज्जलं फेनाम्ना तु नदी फेनेति गद्यते ॥७॥
 तस्यास्तु संगमः पुण्यो गङ्गाया लोकविश्रुतः । सर्वपापक्षयकरो गङ्गायमुनयोर्विव ॥८॥
 हनूमदुपमाता यं यत्राऽऽप्लवनमाव्रतः । मार्जारत्वाद्भवन्मुक्ता विष्णुगङ्गाप्रसादतः ॥९॥
 मार्जारं चेति तत्तीर्थं पुरा प्रोक्तं मया तव । हनूमतं च तत्प्रोक्तं तत्राऽऽख्यानं पुरोहितम् ॥१०॥
 वृषाकपं चाञ्जकं च तत्रेदं प्रपत, शृणु । हिरण्य इति विख्यातो, दैत्यानां पूर्वजो बली ॥११॥
 तपस्तप्त्वा सुरैः सर्वरज्येऽभूत्सुदारुणः । तस्यापि बलवान्मुनो देवानां दुर्जय, सदा ॥१२॥
 महागनिरिति ख्यातस्तस्य भार्या पराजिता । तेनेन्द्रस्याभवद्युद्धं बहुकालं निरन्तरम् ॥१३॥
 महाशनिर्मावीर्यं सततं रणमूर्धनि । जित्वा नागेन सहितं शक्रं पित्रे व्यवेदयत् ॥१४॥

तीर्थं है जहाँ स्वयं विष्णु निवास करते हैं ॥११॥ वहाँ स्नान और दान करने से पुन जन्म लेना दुर्लभ हो जाता है ॥२॥
 अब वहाँ का इतिहास बताता हूँ—गंगा के दक्षिण तट पर जैसी घटना हुई और उत्तर तीर पर जिस प्रकार इन्द्रेश्वर
 तीर्थ को स्थापना हुई, उसका वर्णन हे नारद । मक्तिपूर्वक एकात्मभाव से सुनो ॥३॥ नमुचि इन्द्र का अति मदोन्मत्त
 और बलवान् शत्रु था । उसका इन्द्र के साथ सग्राम हुआ । युद्ध में इन्द्र ने फेन से उसका शिर उतार लिया ॥४॥
 वह फेन वच्चरूप होकर गङ्गा नमुचि के शिर को काटकर गंगा के दक्षिण तट पर गिर पड़ा और पृथिवी को फोड़कर
 रसातल में धुस गया । विश्व को पवित्र कर देने वाला पाताल गंगा का जो जल वज्र के प्रवेश से बन हुये छिद्र-मार्ग
 से निकलकर पृथ्वी तल पर आया, उस जल की फेन नाम से प्रसिद्धि हुई । अतः उससे निकली नदी भी फेना कहलाने
 लगी ॥५-७॥ उसका गंगा के साथ पावन लोच प्रसिद्ध संगम गंगा-यमुना के संगम के समान सब पापा को नष्ट
 करने वाला हुआ ॥८॥ हनूमन् की उपमाता जहाँ स्नान करने से ही विष्णु और गंगा की कृपा से बिल्ली की
 आदृति को छोड़कर परम मुन्दरी बन गई ॥९॥ उसका मार्जार-तीर्थ नाम से परिचय पहले ही तुमसे कह चुका हूँ ।
 हनूमन् तीर्थ भी उसी को कहा गया है । इसकी बया भी पहले ही कह दी गई है ॥१०॥ अब वृषाकप और अञ्जक
 तीर्थ कैसे बने, इसकी सावधान होकर सुनो । बली हिरण्य दैत्या का पूर्वज था ॥११॥ वह अति मयानक दैत्य अपनी
 बहोर तपस्या के कारण देवा से न जीतने-योग्य (अजेय) हो गया ॥१२॥ उसका बलवान् पुत्र भी जिसका नाम
 महागनि था—सदा देवताओं के लिए दुर्जय ही रहा । उसकी पराजिता नाम की स्त्री थी । उस महागनि का
 इन्द्र के साथ निरन्तर युद्ध होता रहा ॥१३॥ सदा व पराजित उस दैत्य ने उस मयङ्कर युद्ध में ऐरावत के सहित
 इन्द्र को जीत कर पिता के हाथों सौंप दिया ॥१४॥ जिस समय हाथी के सहित इन्द्र को बाँधकर ले आया, उस

बद्ध्वा हस्तिसमायुक्त स्वसार वीक्ष्य ता तदा । विहाय क्रूरता दंत्यो हिरण्याय न्यवेदयत् ॥१५॥
 महाशनिपिता दंत्य पूर्ववा पूर्ववत्तर । शचोकान्त तले स्थाप्य तस्य रक्षामथाकरोत् ॥१६॥
 महाशनिर्हिरं जित्वा जेतु वरुणमभ्यगात् । वरुणोऽपि महाबुद्धि प्रादात्कन्या महाशने ॥१७॥
 उर्वध स्वालय प्रादाद्वरुणस्तु महाशने । तयोश्च सख्यमभवद्वरुणस्य महाशने ॥१८॥
 वारुणो चापि या कन्या सा प्रियाऽभू-महाशने । वीर्येण यशसा चापि शीर्येण च बलेन च ॥१९॥
 महाशनिर्महादेत्यस्त्रैलोक्ये नोपमीयते । निरिन्द्रत्व गते लोक देवा सर्वे न्यमन्त्रयन् ॥२०॥

देवा ऊचुः

विष्णुरेवन्द्रदाता स्यादंत्यहन्ता स एव च । मन्त्रद्वावा स एव स्यादिन्द्र चान्य करिष्यति ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एव समन्त्र्य ते देवा विष्णोमन्त्र न्यवेदयन् । ममावध्यो महादंत्यो महाशनिरिति ब्रुवन् ॥२२॥
 प्रायाद्वारोश्चर विष्णु श्वशुर वरुण तदा । वेश्मो वरुण गत्वा प्राहेन्द्रस्य पराभवम् ॥२३॥
 तथा त्वर्षतत्कर्तव्य यथाऽऽप्स्यति पुरंदर । तद्विष्णुवचनाच्छीघ्र ययौ जलपतिर्मुन ॥२४॥
 सुतापतिं हिरण्यसुत विक्रान्त त महाशनिम् । अतिसमानितस्तन जामात्रा वरुण प्रभु ॥२५॥
 पप्रच्छाऽऽगमन दंत्यो यिनयाच्छ्वशुर तदा । वरुण प्राह त दंत्य यदागमनकारणम् ॥२६॥

समय अपनी कहित इ द्राणी को देखकर उसने अपनी धूरता का त्यागकर . वा पिता हिरण्य के हाथ सोप दिया । ॥१५॥ महानि का वह दंत्य पिता जो पूव के समी दंत्या से अधिक बड़ी और दीघदीघी या दावी-यति को पाताल में बन्नी बना कर रख दिया और उनकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया ॥१६॥ इसर महानि ने इन्द्र को जीतकर वरुण को जीतने के लिये अभिपान किया । महाबुद्धि वरुण ने इस आगत सकट को टालने के लिये महानि को अपनी कन्या वारुणी और अपना वास-स्वान समुद्र दे दिया । फलस्वरूप उन गना (वरुण और महानि) में मित्रता हो गई ॥१७ १८॥ वरुण की जो कन्या वारुणी थी वह भी महानि की प्राणप्रिया बन गई । वह दंत्येन्द्र अपने पराक्रम कीति गीय और बल में त्रैलोक्य में बेजोड़ हो गया । तब स्वर्गलोक का इन्द्र से शून्य देखकर देवताओं ने मन्त्रणा की ॥१९ २०॥

देवो ने कहा—विष्णु ही इन्द्र के दाता हाग । वही दंत्या के हन्ता भी हैं । वही मन्त्रद्रष्टा हैं और वही दूसरा इन्द्र बनायगे ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं ने इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा की और विष्णु से कहा कि हम लोगों से यह महानि नाम का महादंत्य अवध्य है । यह मुनिकर विष्णु अपने स्वशुर जेम्बर वरुण के पास गये । वहाँ जाकर वेगव ने इन्द्र की पराजय की वषा वरुण से वहीं और बतलाया कि तुमको वसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे इन्द्र यहाँ आ जायें । मुन ! विष्णु की बातों को मुनिकर वरुण गीघ्र ही अपने पराक्रमी जामाता हिरण्य-युव महानि के पास गये । उस जामाता ने अपने स्वशुर वरुण का अव्यक्त सम्मान दिया और वही नेत्रता ने उनका आन का कारण पूछा । वरुण ने अपने आन का जो कारण था वह बतला दिया ॥२२ २६॥

तज्जीवनं यत्तु यशोनिधानं, स एव मृत्युर्यशसो यद्विरोधि
 एवं जानञ्जक्ष कथं जलेशान्मुक्तिं प्राप्तो नैव लज्जां भजेयाः^१ ॥३४॥
 त्रिविष्टपस्य. परवेष्टितः सन्सर्वैः सुरैः कान्तया वीज्यमानः
 संस्तूयमानश्च तयाऽऽसरोभिन्नं लज्जा ते बिभेतीति मन्ये ॥३५॥
 त्वं वृत्रहा नमुचेश्चापि हन्ता, पुरां भेत्ता गोत्रभिद्वज्रबाहुः
 एवं सुरास्त्वां परिपूजयन्तीत्यतो जिष्णो सर्वमेतत्पयस्व ॥३६॥
 विकारमाप्याप्यहितोद्भवं ये, जीवन्ति लोकाननुसविशन्ति
 भवादृशां दुश्च्यवनाञ्जजन्मा, कथं न हृद्भेदमवाप कर्ता ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु दैत्येशो वरुणाय महात्मने । प्रादादिदं पुनश्चेदं वचनं तदभापत ॥३८॥

महाशनिरुवाच

अथ प्रभृत्सती शिष्य इन्द्रः स्याद्वरुणो गुरुः । इवशुरो मम येन त्वं मुक्तिमाप्तोऽसि वासव ॥३९॥
 तया त्वं भृत्याभावेन वर्तेया वरुण प्रति । नो चेद्बद्ध्वा पुनस्त्वं वै क्षेप्ये चैव रसातलम् ॥४०॥

और शक्ति रखने वाला अस्त्र वज्र तो वही का भी नहीं रहा। तुम्हारे पास चिन्ता दूर करनेवाली चिंतामणि, नन्दनवन, मनोमोहिनी स्त्रियाँ (अप्सरार्ये) कीर्ति, बल (सैन्यशक्ति) आदि देवराज के उपभोग योग्य सब साम-ग्रियाँ हैं, परन्तु आज तुम वरुण द्वारा छुड़ाये जा रहे हो। फिर भी जीना चाहते हो। विकार है तुम्हारी इस जीवना-काक्षा को। जीवन वही है जो यश का भाण्डार हो। कीर्ति-विरोधी जीवन ही मृत्यु है। इन्द्र! ऐसा जानते हुए भी तुम वरुण की वृथा से मुक्ति प्राप्त कर रहे हो। क्या इससे तुमको कुछ भी लज्जा नहीं हो रही है? मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि जब तुम सब देवताओं के बीच में स्वर्गासन पर विराजमान होते हो, सभी पक्षी मलने लगती है और अप्सरायें स्तवन गान करने लगती हैं तब लज्जा तुमसे डर जाती है। तुमको वृत्रहा (वृत्रको मारने वाले) नमुचि को मारने वाले, पुरंदर पर्वतों के पक्ष-च्छेदन करने वाले वज्रबाहु आदि कहकर देवगण तुम्हारी पूजा करते हैं परन्तु आज से हे जयसील! अपनी इन सब उपाधियों को छोड़ दो। आपके समान अपकीर्ति-जन्य निन्दा (लोतापवाद) को पारर भी जो जीते हैं और इस लोक में मूढ़ दिखाते हैं, उन्हें देखकर अच्युत बमलयोगि, ब्रह्मा का हृदय पट क्यों नहीं जाता? ॥३१-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर दैत्यन्द्र ने महात्मा वरुण के हाथ इन्द्र को सौंप दिया और पुनः उनसे यह वचन कहा ॥३८॥

महाशनि ने कहा—आज से यह इन्द्र शिष्य और मेरे समुद्र वरुण गुरु होंगे। क्योंकि इन्द्र! तुमको इन्हीं के कारण मुक्ति प्राप्त हुई है। साथ ही तुम सर्वदा वरुण के प्रति दास-भाव से रहना। यदि ऐसा नहीं करोगे तो पुनः तुमको बांधकर पाताल की बारा में डाल दूंगा ॥३९-४०॥

ब्रह्मोवाच

एवं निर्भर्त्स्य तं शक्रं हसंश्चापि पुनः पुनः । अन्नवीद्वग्च्छ गच्छेति वरुणं चानुमन्यतु ॥४१॥
स तु प्राप्तः स्वनिलयं लज्जया कलुषीकृतः । पौलोम्यां प्राह तत्सर्वं यत्तच्छत्रुपराभवम् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

एवमुक्तः कृतश्चैव शत्रुणाऽहं वरानने । निर्वापयामि येन स्वमात्मानं सुभगे वद ॥४३॥

इन्द्राण्युवाच

दानवानामथोद्भूति शक्र मायां पराभवम् । वरदानं तथा मृत्युं जानेऽहं बलसूदन ॥४४॥
तस्माद्यस्मात्तस्य मृत्युरथवापि पराभवः । जायेत शृणु तत्सर्वं वक्ष्येऽहं प्रीतये तव ॥४५॥
हिरण्यस्य सुतो वीरः पितृव्यस्य सुतो बली । तस्मान्मम स्यात्स भ्राता वरदानाच्च दर्पितः ॥४६॥
ब्रह्माणं तोषयामास तपसा निपमेन च । ईदृशं बलमापन्नं तपसा किं न सिध्यति ॥४७॥
तस्मात्त्वया चित्तरागो विस्मयो वा कथंचन । न कार्यः शृणु तत्रेदं कार्यं यत्तु व्रमागतम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पौलोमी प्राहेन्द्रं चिनयान्विता

॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस इन्द्र को फटकार गुनाकर और बार-बार हँसते हुये उस दैत्य ने कहा—
'जाओ जाओ, वरुण की सेवा स्वीकार करो । इन्द्र इस प्रकार की अपमानजनक बातों को सुनकर लज्जा से उदास होकर अपने भवन थाप और पौलोमी से शत्रु के द्वारा किये गये अपमान को कहा ॥४१-४२॥

इन्द्र ने कहा—गुन्दर मुख वाली ! मैं इस प्रकार शत्रु द्वारा अपमानित किया गया हूँ, और कटु वचन सुन चुका हूँ । सुभगे ! जिस प्रकार इस अपमान का बदला ले सकूँ, ऐसी युक्ति बताओ, जिससे कि अपने को शान्त कर सकूँ ॥४३॥

इन्द्राणी ने कहा—शक्र ! बलसूदन ! दानवों की उत्पत्ति, उनकी माया, उनका पराभव वरदान तथा उनकी मृत्यु के कारण आदि बातों को मैं जानती हूँ । अतः जिससे उसकी मृत्यु अथवा पराजय होगी उसको मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कह रही हूँ सुनो । वह मेरे पितृव्य (चाचा) हिरण्य का बलवान् पुत्र है इसलिये वह मेरा भाई हुआ । वह इस समय वरदान से उन्मत्त हो गया है । उसने तपस्या और सवय के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया था । इसी कारण उसको इस प्रकार बल प्राप्त हुआ है । सच है, तपस्या के द्वारा क्या नहीं प्राप्त होता है ? इसलिये तुमको अपने मन में किसी प्रकार का शोक या विस्मय नहीं करना चाहिये । इस विषय में जो कुछ करना है, वह सुनो ॥४४-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर विनीत पौलोमी ने पुन इन्द्र से कहा ॥४९॥

१ घ. च. ०न्य च ॥४१॥ स । २क. ०लोम्या प्रा० । ३द. येनाऽऽशु चाऽऽत्मा० । ४ घ दक्षित ।

५ घ. ०या न चित्ताऽत्र कार्यं शक्र वदानेन । एकाग्र शृणु तत्रेदं कार्यं ।

इन्द्राभ्युवाच

नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञकर्मणः । नासाध्यं लोकनायस्य विष्णोर्भवत्या हरस्य च ॥५०॥
 पुनश्चेदं मया कान्त श्रुतमस्त्यतिशोभनम् । रत्रीणां स्वभावं जानन्ति स्त्रिय एव सुराधिप ॥५१॥
 तस्माद्भूमेस्तथा चापां नासाध्यं विद्यते प्रभो । तपो वा यज्ञकर्मादि ताम्यामेव यतो भवेत् ॥५२॥
 तत्रापि तीर्थभूता तु या भूमिस्तां व्रजेद्भवान् । तत्र विष्णु शिवं पूज्य सर्वान्कामानवाप्स्यति ॥५३॥
 श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्त्रियो याश्च पतिव्रता । ता एव सर्वे जानन्ति धृतं तामिश्चराचरम् ॥५४॥
 पृथिव्यां सारभूत स्यात्तन्मध्ये दण्डक वनम् । तत्र गङ्गा जगद्धात्री तत्रेशं पूज्य प्रभो ॥५५॥
 विष्णुं या जगतामीशं दीनार्तातिहरं विभुम् । अनायानामिह नृणां मज्जतां दुःखसागरे ॥५६॥
 हरो हरिर्वा गङ्गा वा ववाप्यन्यच्छरणं नहि । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तोषयेत्तान्समाहितः ॥५७॥
 भक्त्या स्तोत्रैश्च तपसा क्रुद्ध चैव मया सह । ततः प्राप्स्यति बल्याणमीशविष्णुप्रसादजम् ॥५८॥
 अज्ञात्वंकृपुण कर्म फलं दास्यति कर्मिणः । ज्ञात्वा शतगुणां तत्सयाद्भार्यया च तदक्षयम् ॥५९॥
 पुंसः सर्वेषु कार्येषु भार्येवैह सहायिनी । स्वल्पानामपि कार्याणां नहि सिद्धिस्तया विना ॥६०॥
 एकेन यत्कृतं कर्म तस्मादर्धफलं भवेत् । जायया तु कृतं नाय पुष्कलं पुष्टयो लभेत् ॥६१॥

इन्द्राणी ने कहा—तपस्या के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं, यज्ञ के द्वारा सब कुछ साध्य है और लोकपति विष्णु तथा शरर की शक्ति से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इससे अतिरिक्त हे कान्त ! एक और अवि-
 उपदृष्ट बात सुनी है। सुराधिप ! स्त्रियों की प्रकृति को स्त्रियाँ ही जानती हैं ॥५०-५१॥ प्रभो ! इगलिये
 भूमि और जल के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, क्योंकि तपस्या अथवा यज्ञ आदि इन्हीं दो पंदाबों में निष्पन्न
 होन है ॥५२॥ इनमें भी जो तीर्थभूमि है वहाँ आज आप जाइये। वहाँ विष्णु और शिव की पूजा कर आप अपने
 सब मनोरथों को प्राप्त करिए ॥५३॥ और यह भी सुना जाता है कि जो पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं वे सब कुछ
 जानती हैं। इन्हीं व द्वारा यह वराचक्रस्मर जगन् टिका हुआ है ॥५४॥ पृथ्वी का जो मुख्य प्रदेश है उसी के
 मध्य में दण्डक वन है। उगम जगज्जननी गौतमी बहती है। प्रभो ! वहाँ चलकर इस विष्णु अथवा दीनार्तजना के
 चरणों को दूर करने वाले जगत्पति शरर की पूजा करो ॥५५॥ इन विपत्ति-सागर में डूबते हुए अनाथ मनुष्यों के लिये
 शरर, विष्णु और गौतमी की छोड़कर अन्यत्र कहीं भी शरण नहीं है। इसलिए तन्मय होकर अपने प्रिय प्रयत्नों
 में इन देवियों की प्रशंसा करो। सुप्त मरे साथ मन्त्रपूर्वक स्तोत्र-पाठ और तपस्या से उनकी उपासना करो। हृद-
 यन्तर शरर और विष्णु की कृपा में वरदान प्राप्त करोगे ॥५६-५८॥ विना जाने कर्म करने में कर्म करने वाले को
 एक गुना फल मिलता है, जानकर करने पर दस गुना हो जाता है गच्छीक करने से दस गुना अन्न हो
 जाता है ॥५९॥ इन गवार में पुण्य के प्रदेश काय मन्त्री ही महापरा है। छोटे-छोटे कामों में भी उगने दिना
 मरका नहीं या न होती ॥६०॥ अनेके को काम बिना जाता है, उगने आधा पत्र मिलता है। नाथ ! रत्नी के साथ
 बरसो तु वर वरु कड रात करस है ॥६१॥ इतीकिये वहाँ में भी 'जाया अर्द्धभाग है' ऐसा कहा गया है।

तस्मादेतत्सुविदितमर्थो' जाया इति श्रुतेः । श्रूयते दण्डकारण्ये सरिच्छ्रेष्ठाऽस्ति गौतमी ॥६२॥
अशेषावप्रशमनी सर्वाभोष्टप्रदायिनी । तस्माद्गच्छ मया तत्र कुरु पुण्यं महाफलम् ॥६३॥
ततः शनूनिहत्याऽऽजो महत्सुखमवाप्स्यति ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तथेष्टयुस्त्वा स गुरणा भार्यया च शतक्रतुः । ययौ गङ्गां जगद्धात्रीं गौतमीं चेति विधुताम् ॥६५॥
दण्डकारण्यमध्यस्थां ययौ स (दृष्ट्वा ता) प्रातिमान्हरिः । तपः कर्तुं मनश्चक्रे देवदेवाय शभवे ॥६६॥
गङ्गा नत्वा तु प्रथमं स्नात्वा च स कृताञ्जलिः । शिवंकशरणो भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततोऽब्रवीत् ॥६७॥

इन्द्र उवाच

स्वमायया यो ह्यखिल चराचरं, सृजत्यवत्यस्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
एकः स्वतन्त्रोऽद्वयचिन्तुस्त्वात्मकः, स नः प्रसन्नोऽस्तु पिनाकपाणिः ॥६८॥
न यस्य तत्त्व सनकादयोऽपि, जानन्ति वेदान्तरहस्यविज्ञाः ।
स पार्वतीशः सकलामिलापदाता प्रसन्नोऽस्तु ममान्धकारिः ॥६९॥
सृष्ट्वा स्वयभूर्भगवान्विरिञ्चि, भयकरं चास्य शिरोऽन्वपश्यत ।
ऽतिस्वा नखाग्रैर्नखसक्तमेतच्चिक्षेप तस्मादभवत्त्रिवर्गं ॥७०॥

मुना जाता है कि दण्डकारण्य में गौतमी नाम की अनेक पाषो को नष्ट करने वाली एक अतिपवित्र नदी है । इसलिये मेरे साथ वहाँ चलो और महाफलदाता पुण्य (तप) करो । तदनन्तर शनू को समर में मारकर महान् आनन्द प्राप्त करोगे ॥६२-६४॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो', यह कहकर व इन्द्र गुरु और भार्या के साथ प्रसिद्ध जगज्जननी दण्डकारण्य के मध्य में सुसोमित गौतमी के तट पर गये । उसको देखते ही इन्द्र प्रसन्न हो गये और देवदेव शनू की आराधना करने के लिये प्रस्तुत हो गये । पहले तो गंगा में स्नान किया, पुन हाथ जोड़कर शिव भ ही अपनी एकान्त भावना स्थिर करके यह (अग्रिम) स्तोत्र पढ़ने लगे ॥६५-६७॥

इन्द्र ने कहा—जो अपनी माया में अखिल चराचर की सृष्टि करते, रक्षा करते और पुन संहार करते हैं, फिर भी अनासक्त ही रहते हैं, एव जो एक स्वतन्त्र अद्वैत, चिन्, मुख-स्वरूप हैं, ऐसे पिनाकपाणि (शंकर) हम पर प्रसन्न हो ॥६८॥ त्रिवर्गे तत्त्व को वेदान्त के रहस्य जानने वाले सनकादि ऋषि भी नहीं जानते हैं, वे पार्वतीपति, सब अभिलाषों को पूर्ण करनेवाले, अन्धकारिण शिव मुण पर प्रसन्न हो ॥६९॥ स्वयम्भू भगवान् शंकर ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया, परन्तु जब उन्होंने उनके भयंकर शिर को देखा तब नखाग्र से उसको काट डाला । किन्तु वह नख में ही चिपका रहा । पुन उसको फट दिया । उससे त्रिवर्गं (धर्म, अर्थ, काम) की उत्पत्ति हुई ॥७०॥ उद्यो त्रिवर्गं से पाप दूरिता लोभ, याचना, मोह, विपत्ति और अनन्त प्रभावशाली सात्त्विक दुःख उत्पन्न हुये,

पाप दरिद्र त्वय लोभयाच्चे मोहो विपच्चेति ततोऽप्यनन्तम्	।
जातप्रभाव भवदुःखरूप, बभूव तैर्ध्याप्तिमिदं समस्तम्	॥७१॥
अवेक्ष्य सर्वं चकित सुरेशो, देवीमवोच्चज्जगदस्तमेति	।
त्व पाहि लोकेश्वरि लोकमातरुमे शरण्ये सुभगे सुभद्रे	॥७२॥
जगत्प्रतिष्ठे वरदे जय त्व, भुक्ति समाधि परमा च भुक्ति	।
स्वाहा स्वधा स्वस्तिरनादिसिद्धिर्गोबुद्धिरासीरजरामरे त्वम्	॥७३॥
विद्यादिरूपेण जगत्त्रये त्व, रक्षा करोष्येव 'मदाज्ञया च	।
त्वयैव सृष्ट भुवनत्रय स्याद्यत प्रकृत्यैव तयैव चित्रम्	॥७४॥
इत्येवमुक्ता दधिता हरेण, सश्लेषसलापपरा बभूव	।
श्रान्ता भवस्यार्धतनो सुलग्ना, चिक्षेप च स्वेदजल कराग्रं	॥७५॥
तस्माद्बभूव प्रथम स धर्मो, लक्ष्मीरथो दानमयो सुवृष्टि	।
सत्त्व सुसपन्नधर सरासि, धान्यानि पुष्पाणि फलानि चैव	॥७६॥
सौभाग्यवस्तूनि धनु सुवेष, शृङ्गारभाजीनि महौषधानि	।
नृत्यानि गीतान्यमृत पुराण, ध्रुतिस्मृती नीतिरथालापाने	॥७७॥
शस्त्राणि शास्त्राणि गृहोपयोग्यान्यस्त्राणि तीर्थानि च काननानि	।
इष्टानि पूतानि च मङ्गलानि, यानानि शुभ्राभरणासनानि	॥७८॥

जिनसे यह सारा लोक भर-सा गया ॥७१॥ सुरेश ने जब यह सब देखा तो चकित हो गये और देवी से कहा कि सारा जगत् बिनाग की ओर जा रहा है। लोकेश्वरी! जगज्जननी! उमे! सुभगे! सुभद्रे! शरणदायिनी! तुम रक्षा करो। वरदायिनी! जगत् को नाश से बचाने वाली! तुम्हारी जय हो। तुम भुक्ति परम समाधि (दान्ति) और भुक्ति हो। तुम स्वाहा स्वधा स्वस्ति अनादि सिद्धि वाणी बुद्धि और अजर अमर हो ॥७२ ७३॥ तीनों लोकों में तुम विद्या आदि रूप से रक्षा करती हो। मेरी आज्ञा से यत् प्रकृतिरूपा तुमने ही त्रिभुवन की सृष्टि की है अतः यह त्रिभुवन आश्चर्यमय है। इस प्रकार गहरने अपनी त्रिया से कहा। तब उमा उनका आलिंगन प्रमोदपूर्ण में तल्लीन हो गई। इस प्रकार शहर के पास में चिपकी हुई उमा ने धान्त होकर अपनी अगुलिया से श्वस-स्वेद (पसीने) को गिराया ॥७४ ७५॥ उसी पसीने की बूंदों से पहेट धर्म तब लक्ष्मी दान सुवृष्टि, पृथ्वी को समृद्ध बनाने वाले प्राणी सरोवर धान्य पुष्प, फल, सौभाग्य-पदार्थ, शरीर को सुन्दर बनाने वाले पदार्थ शृंगारोपयोगी वस्तुयें महौषधियाँ नृत्य गीत अमृत पुराण, ध्रुति-स्मृति, नीति, अन्न, पेयपदार्थ शस्त्र शस्त्र गृहोपयोगी अस्त्र तीर्थ कानन, इष्टकर्म पूतकर्म (तालाब खोदवाना आदि), मंगल, सकारियाँ स्वच्छ आभूषण आसन आदि पदार्थ उल्लभ हुये ॥७६-७८॥ देवि! इसी प्रकार तुम्हारे और शहर के अद्य-मयोग एरान्तवासक सुखद हास और सलापत्रय

भयाङ्गसंसर्गसुसंग्रहासमुत्वेदसंलापरहःप्रकारैः ।

तथैव जातं सचराचरं च, अपापकं देवि ततश्च जातम् ।

॥७९॥

सुखं प्रभूतं च शुभं च नित्यं, विराजि घेतत्तव देवि भावात् ।

॥

तस्मात्तु मां रक्ष जगज्जनित्रि, भीतं भयैर्म्यो जगतां प्रपाने ।

॥८०॥

एके तर्के विमुह्यन्ति लीयन्ते तत्र चापरे । शिवशक्त्योस्तदाश्रितं सुन्दर नोमि विग्रहम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः ।

॥८२॥

शिव उवाच

विमभीष्टं वरयसे हरे वद परायणम् ।

॥८३॥

इन्द्र उवाच

यत्तवात्मे रिपुद्वन्द्वोऽसौ 'द्वन्द्वे' शनिर्यया । तेन बद्धस्तलं नीतः परिभूतस्त्वनेकया ॥८४॥

याशसापकस्तया विद्धस्तद्वधाय त्विष पृति । तदयं जगतामोघ येन जेष्ये रिपु प्रभो ॥८५॥

तवेव देहि धीर्यं मे यच्चान्यद्रिपुनाशनम् । जात पराभवो यस्मात्तद्विनाशो कृते सति ॥

पुनर्जातमहं मन्ये यर कीर्तिर्जयधियोः ।

॥८६॥

स्वेद (पसीन) से घराचरात्मक ससार (पापरहित) उत्पन्न हुए । देवि ! इस लाभ में जो प्रचुर सुख और नित्य सुमं सँग हुआ है यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है । इसलिये हे जगज्जननी ! कोर-प्रदाने ! तुम मयमीन एवं विपत्ति में पड़े हुए मरी रक्षा करो । कुछ मनीषी अपने तर्कों के जाल में पड़कर मोह में पड़ जाते हैं और दूसरे उसी मीन हो जाते हैं । ऐम शिव और शक्ति अद्वैत (अभिन्न) एव सुन्दर विग्रह (शरीर) को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७९-८१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्र के सम्मुख पाकर प्रकट हुए ॥८२॥

शिव ने कहा—इन्द्र ! किम उत्तम अभीष्ट को चाहते हो, कहो ॥८३॥

इन्द्र ने कहा—मेरा कल्याण रिपु, जो कि दम्भ में साक्षान् शक्ति-मा जात पड़ता था मुझको बाँधकर रमावल से गया और वहाँ अनेकों प्रकार से उमने मुझे आश्रयानि किया और बाधवाना मैं मरा हृदय छल्नी बना दिया । उगी के बंध के लिये यह मेरा प्रयत्न है । अगन् के स्वामी ! इसलिये त्रिग प्रकार मैं उमको जीत सकूँ, वैसी ही मुझे शक्ति दीजिये । तारि मैं अन्य सबका का भी नाश कर सकूँ । जिसने मैं परामुन हुआ हूँ, उमको विनष्ट कर देने पर अपना पुनर्बन्ध समझूँगा । क्याकि कीर्ति विजय और लक्ष्मी मे धेष्ट होती है ॥८४-८६॥

ब्रह्मोवाच

स शिवः शक्रमाहेदं न मयैकेन ते रिपुः । वधमाप्नोति तस्मात्त्वं विष्णुमप्यव्ययं हरिम् ॥८७॥
 आराधयस्व पौलोम्या सह देवं जनार्दनम् । लोकत्रयकशरण नारायणमनन्यधीः ॥८८॥
 ततः प्राप्स्यसि तस्माच्च भक्तश्चापि प्रियं हरे । पुनश्चोवाच भगवानादिकर्ता महेश्वरः ॥८९॥
 मन्त्राम्यासस्तपो वापि योगाम्यसनमेव च । संगमे यत्र कुत्रापि सिद्धिदं मुनयो विदुः ॥९०॥
 किं पुनः संगमे विप्र गौतमीसिन्धुफेनयोः । गिरीणः गह्वरे यद्वा सरितामथ सगमे ॥९१॥
 विप्रो धियैव भवति मुकुन्दाङ्घ्रिनिविष्टया । गङ्गाया दक्षिणे तीरे आपस्तम्बो मुनीश्वरः ॥९२॥
 आस्ते तस्याप्यहं तोयमगमं धलसूदन । तेन त्वं भार्यया चैव तोययस्व गदाधरम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बेन सहितो गङ्गाया दक्षिणे तटे । तुष्ठाव देव प्रयतः स्नात्वा पुण्येऽथ संगमे ॥९४॥
 फेनायाश्चैव गङ्गायास्तत्र देवं जनार्दनम् । वैदिकैर्विधिर्भन्त्रेस्तपसाऽतोपयत्तदा ॥९५॥
 ततस्तुष्टोऽभवद्विष्णुः किं देयं चेत्प्रभापत । देहि मे शत्रुहन्तारमित्याह भगवान्हरिः ॥९६॥
 दत्तमित्येव जानीहि तमुवाच जनार्दनः । तत्राभवच्छिवरथेव गङ्गाविष्णवोः प्रसादतः ॥९७॥
 अम्भसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपयुक् । चक्रपाणिः शूलधरः स गत्वा तु रसातलम् ॥९८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शिव ने इन्द्र से कहा 'अकेले मुझसे तुम्हारा शत्रु मारा नहीं जायगा । इसलिये तुम अव्यय, हरि, विष्णु तीनों लोकों के एकमात्र आधार, नारायण और जनार्दन देव की इन्द्राणी के साथ अन्त्य माव से आराधना करो । हरे । इससे बाद तुम भूशसे और उनसे अपन प्रिय मनोरथ को प्राप्त करोगे ।' आदितर्ता महेश्वर ने पुन कहा—'मुनिपः ने मन्त्राम्यास, तपस्या, तथा योगाम्यास को जिस निरी सगम पर करने से सिद्धि प्रद कहा है । विप्र । तब जहाँ गंगा, सिन्धु और फेना का सगम हो, गिरि-गुहा हो या अनेक नदिया का सगम हो उनके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है । गंगा के दक्षिणी तट पर विप्र मुनीश्वर आपस्तम्ब मुकुन्द के चरणमल में अपनी बुद्धि को लगाये हुए रह रहे हैं । बलसूदन । उनका भी मैंने इसी प्रकार सन्तुष्ट किया है । अतः तुम अपनी माया के साथ गदाधर विष्णु को प्रसन्न करो' ॥८७ ९३॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा और फेना के पवित्र सगम में स्नात्वा कर गंगा के दक्षिण तट पर आपस्तम्ब के साथ इन्द्र एवाग्र मन से विष्णु की स्तुति करने लगे । विविध वैदिक मन्त्रों और तपस्या से इन्द्र ने जनार्दन देव की स्तुति की । तदनन्तर विष्णु प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा कि तुमको क्या दू । 'मैंने शत्रु का नाश करने वाला साधन प्रदान कीजिये' ऐसा इन्द्र ने कहा । यह सुनकर जनार्दन ने इन्द्र से कहा—'दे दिया गया ऐसा शमशो । उमी समय बड़ा शिव, गंगा और विष्णु की कृपा से जल के बीच से शिव और विष्णु दोनों के सिधे जुड़े आकार का हाथ में धर और शूल लिये हुए एक पुरुष उत्पन्न हुआ । उमने रसातल जाकर इन्द्र के शत्रु उस ईश्वर महाशक्ति की मार डाला । परन्तु वह अस्त्रक, वृषाकपि इन्द्र का मित्र बन गया । इन्द्र स्वर्ग में रहने हुए भी सर्वदा उस वृषाकपि का अनुसरण

निजघान तदा दत्थमिन्द्रशत्रु महाशनिम् । सखाऽभवत्स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः ॥१९॥
दिविस्थोऽपि सदा चेन्द्रस्तमन्वेति वृषाकपिम् । कुपिता प्रणयेनाभूदग्यासक्तं विलोक्य तम् ॥
शचीं तां सान्त्वयन्नाह शतमन्युर्हंसप्रिदम् ॥१००॥

इन्द्र उवाच

नाहमिन्द्राणि शरणमृते सख्युर्वृषाकपेः । वारि वाऽपि हविर्यस्य अग्ने प्रियकरं सदा ॥१०१॥
नाहमन्यत्र गन्ताऽस्मि प्रिये चाङ्गेन ते शपे । तस्मान्नाहंसि मां वक्तुं शङ्कयाऽन्यत्र भामिनि ॥१०२॥
पतिव्रता प्रिया मे त्व धर्मं मन्त्रे सहायिनी । सापस्या च कुलीना च त्वत्तोऽग्या का प्रिया मम ॥१०३॥
तस्मात्तवोपदेशेन गङ्गा प्राप्य महानदीम् । प्रसादाद्देवदेवस्य विष्णोर्वे चक्रपाणिनः ॥१०४॥
तया शिवस्य देवस्य प्रसादाच्च वृषाकपेः । जलोद्भवाच्च मे मित्रादब्जकाल्लोकविश्रुतात् ॥१०५॥
उत्तीर्णदुःखः सुभगे इत इन्द्रोऽहमव्युतः । किं न साध्यं यत्र भार्या भर्तृचित्तानुगामिनी ॥१०६॥
दुष्करा तत्र नो मुक्तिः कित्वर्यादित्रय शुभे । जायं व परमं मित्रं लोकद्वयहितैषिणी ॥१०७॥
सा चेत्कुलीना प्रियभायिणी च, पतिव्रता रूपवती गुणाढ्या ।
संपत्सु चाऽऽपत्सु समानरूपा, तया ह्यसाध्यं किमिह त्रिलोभयाम् ॥१०८॥
तस्मात्तव धिया कान्ते ममेद शुभमागतम् । इतस्तवोदितं चैव कर्तव्यं नान्यदस्ति मे ॥१०९॥

करने लगे । इस प्रकार अपने सखा मे इन्द्र की प्रेममय आसक्ति देखकर शची कुपित हो गई । उसका कोप देखकर इन्द्र हँसने लगे और उसको समझाते हुए बोले ॥१०४-१००॥

इन्द्र ने कहा—इन्द्राणि । मैं सखा वृषाकपि को छोड़कर और किसी के वश में नहीं हूँ । प्रिये । मैं तुम्हारे अग की शपथ साक्षर कहता हूँ कि जिस वृषाकपि अग्नि को हवि और वारि (जल) सदा प्रिय हैं उसको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता । इसलिए हे भामिनी । मुझसे शका की दृष्टि से मत बोधो ॥१०१-१०२॥ तुम धर्म और सलाह मे सदा सहायता करने वाली मेरी पतिव्रता प्रिया हो । ऐसी सन्तानवती, कुलीन तुमको छोड़कर और कौन मेरी प्रिया हो सकती है ? ॥१०३॥ तुम्हारे ही उपदेश से मैंने महानदी गंगा को प्राप्त किया । देवाधि देव चक्रपाणि विष्णु, देव शंकर की कृपा और जल से उत्पन्न, लोक-प्रसिद्ध अब्जक और वृषाकपि नामक मित्र की सहायता से अपने दुःखो मे पार पाया है । सुभगे । तुम्हारे ही प्रयत्नो से मैं अच्युत इन्द्र हुआ । जिसकी भार्या पति के अनुकूल आचरण करने वाली है, उसके लिये ससार मे कौन ऐसा काम है जो न हो सके । शुभे । उसके लिये मुनि भी दुर्लभ नहीं है, अर्ध, धर्म और काम की तो बात ही क्या । पुरुष के लिये लोक-परलोक दोनों का हित चाहने वाली स्त्री ही परम मित्र है ॥१०४-१०७॥ वह स्त्री यदि कुलीन है, प्रिय बोलने वाली है, पतिव्रता, कृपा, पूणवती, और सपत्ति तथा विपत्ति मे समान रूप से रहने वाली है तब तो उसके लिये त्रिभुवन मे कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१०८॥ कान्ते । इसीलिये तुम्हारी मूर्खि के प्रभाव से ही मेरा शुभोदय हुआ है, आज से मेरे लिये तुम्हारा सन्नेत ही एकमात्र कर्तव्यप्रदर्शक है, दूसरा नहीं ॥१०९॥ सत्युक्त के समान परलोक और धर्म का सहायक

परलोके च धर्मं च सत्पुत्रसदृशं न च । आतस्थ पुरुषस्येह भार्यायद्भेजं न हि ॥११०॥
 निःश्रेयसपदप्राप्तये तथा पापस्य मुक्तये । गङ्गाया सदृशं नास्ति शृणु चान्यद्वरानने ॥१११॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तये पापमुक्तये । शिवविष्णुवोरनन्यत्वज्ञानाग्रास्त्यत्र मुक्तये ॥११२॥
 तस्मात्तव प्रिया साध्वि सर्वमेतन्मनोगतम् । अवाप्तं च शिवादिष्णोर्गङ्गायाश्च प्रसादतः ॥११३॥
 इन्द्रत्वं मे स्थिरं चेतो मन्ये मिश्रबलात्पुनः । वृषाकपिर्मम सखा यो जातस्त्वप्सु भामिनि ॥११४॥
 त्वं च प्रियसखो नित्यं नान्यत्प्रियतरं मम । तीर्थानां गौतमी गङ्गा देवानां हरिशंकरो ॥११५॥
 तस्मादेभ्यः प्रसादेन सर्वं चेप्सितमाप्तवान् । मम प्रीतिकरं चेदं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११६॥
 तस्मादेतद्धि याचिष्ये देवान्सर्वाननुक्रमाम् । अनुमन्यन्तु ऋषयो गङ्गा च हरिशंकरो ॥११७॥
 इन्द्रेश्वरे घाञ्जके च उभयोस्तीरयोः सुराः । एकत्र शंकरो देवो ह्यपरत्र जनार्दनः ॥११८॥
 पावयन्दण्डकारण्यं साक्षाद्विष्णुस्त्रिविक्रमः । अन्तरे यानि तीर्थानि सर्वपुण्यप्रदानि च ॥११९॥
 अत्र तु स्नानमात्रेण सर्वे ते मुक्तिमाप्नुयुः । पापिष्ठाः पापतो मुक्तिमाप्नुयुर्धे च धामिणः ॥१२०॥
 तेषां तु परमा मुक्तिः पितृभिः पञ्चपञ्चभिः । अत्र किञ्चिच्च ये द्युरारियम्यस्तिलमात्रकम् ॥१२१॥
 दातृभ्यो ह्युक्षयं तत्स्यात्कामदं मोक्षदं तथा । धन्य यस्तस्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यवर्धनम् ॥१२२॥
 आस्थानं विष्णुशंभ्वोदच ज्ञात्वा स्नानान्च मुक्तिदम् । अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च ॥१२३॥

दूसरा नहीं और दुखी पुरुष के लिए मार्ग के समान कोई ओपधि नहीं ॥११०॥ सुन्दर मुख वाली ! पाप से छूटने के लिये एव मोक्ष-पद पाने के लिए गंगा के समान और कोई साधन नहीं ॥१११॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्ति के लिए तथा पाप-मुक्त होने के लिये शिव-विष्णु के ऐक्य-ज्ञान के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं ॥११२॥ पतिव्रते ! तुम्हारी बुद्धि के प्रभाव से ही मेरी समस्त मनोगत कामनायें शिव, विष्णु और गंगा के प्रसाद से पूर्ण हुई हैं ॥११३॥ इसके अतिरिक्त मेरा इन्द्रत्व भी मेरे मित्र की सहायता से ही पुनः स्थिर हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ । भामिनि ! मेरा मित्र भी दूसरा कोई नहीं अपितु वही वृषाकपि है, जो जल से उत्पन्न हुआ ॥११४॥ तुम मेरी सर्वदा की प्रिय सखी हो । तुमसे बढकर मेरा कोई प्रियपात्र नहीं । तीर्थों में गौतमी गंगा तथा देवों में विष्णु और शंकर ही मेरे मान्य हैं ॥११५॥ इनकी कृपा से ही मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुये हैं । यह त्रैलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ मुझे बहुत प्रिय है ॥११६॥ इसलिये मैं क्रमशः सब देवताओं से यही याचना करता हूँ और ऋषिगण, गंगा, हरि और शंकर से भी मेरा यही अनुरोध है कि गंगा के दोनों तटों पर इन्द्रेश्वर और अञ्जक नामक तीर्थों में सब देवता व्रतानुसार निवास करें । एक स्थान पर शंकर और दूसरे पर स्वयं जनार्दन निवास करें तथा इस दण्डकारण्य को साक्षात् विष्णु पवित्र करें । इसके मध्य में जितने तीर्थ हैं वे सभी सब पुण्यों के देने वाले हों ॥११७-११९॥ यहाँ स्नान करने से ही सबको मुक्ति मिले । पापी इस तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो जाय । जो धार्मिक व्यक्ति स्नान करें, वे परम मुक्ति प्राप्त करें और उनकी पाँच आगे की तथा पाँच पीछे की पीढ़ी मुक्त हो जाय ॥१२०॥ यहाँ जो कोई याचको को तिलमात्र भी दान करे तो वह दाता के लिये अक्षय्य हो जाय । उस क्षुद्रदान से वह मोक्ष और अपने मनोरथ को प्राप्त करे ॥१२१॥ जो इस धन्य, कीर्तिप्रद, आयु, आरोग्य और पुण्य प्रद विष्णु और शम्भु के आस्थान और स्नान से मुक्ति देने वाले इस तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण या पाठ करते हैं वे पुष्पात्मा हो जाते हैं और उनकी इसी लोक

पुण्यभाजो भवेयुस्ते तेभ्योऽत्रैव स्मृतिर्भवेत् । शिवविष्ण्वोरशेषाद्यस्यविच्छेदकारिणी ॥
यां प्रायेयन्ति मुनयो विजितेन्द्रियमानसा ॥१२४॥

ब्रह्मोवाच

भविष्यत्यवमेवेति त देवा ऋषयोऽब्रुवन् । गौतम्या उत्तरे पारे तीर्थानां मोक्षदायिनाम् ॥१२५॥
देवर्षिसिद्धसेय्यानां सहस्राण्ययं सप्त वै । तथैव दक्षिणे तीरे तीर्थान्येकादशैव तु ॥१२६॥
अञ्जकं हृदयं प्रोक्तं गोदावर्यां मुनीश्वरं । विश्रामस्थानमोशस्य विष्णोर्ब्रह्मण एव च ॥१२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गौतम्युत्तरकूलस्यैश्वराविसप्तसहस्र
तीर्थदक्षिणकूलस्यापस्तम्बसोमेश्वरफेनासगमवृषाकपादजकवैष्णवहनुमत्तीर्थनार्जा
रेत्याद्येकादशतीर्थवर्णनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥
गौतमीमाहात्म्ये पष्ठितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । स्मरणावप्यशेषाद्यस्यविध्वंसनक्षमम् ॥१॥

मं सब पापा को नष्ट करने देने वाली गिर और विष्णु की स्मृति हो जाती है जिस स्मृति के लिये इन्द्रिय और मन
पर समय रखने वाले मुनि प्रायना किया करते हैं ॥१२२ १२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की बात मुनिकर देवताओं और ऋषियों ने कहा कि आपका कहा हुआ सब सच होगा ।
गौतमी के उत्तर तट पर देव ऋषि और सिद्धजनों के रहने योग्य सात हजार मोक्षदायक तीर्थ हैं । इसी प्रकार
दक्षिणी तीरे पर ग्यारह तीर्थ हैं । मुनीश्वरों ने ईश विष्णु और ब्रह्मा के निवास-स्थान अञ्जक को गोदावरी का
हृदय स्वीकार किया है ॥१२५ १२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म गौतमी के उत्तर तट पर स्थित इन्द्रश्वर आदि सात हजार तीर्थों
एव दक्षिण तटवर्ती आपस्तम्ब सोमेश्वर अञ्जक आदि ग्यारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ उनवीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥१२९॥

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) तीना लोक म प्रसिद्ध आपस्तम्ब नामक एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र

आपस्तम्बो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायशः । तस्य भार्याक्षसूत्रेति पतिधर्मपरायणा ॥२॥
 तस्य पुत्रो महाप्राज्ञ कर्किनामाश्रय तत्त्ववित् । तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तम ॥३॥
 तमगस्त्य पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वर । शिष्यैरनुगतो धीमास्त प्रष्टुमुपचक्रमे ॥४॥

आपस्तम्ब उवाच

त्रयाणां को नु पूज्य स्याद्देवानां मुनिसत्तम । भुक्तिर्मुक्तिश्च कस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत् ॥५॥
 अनन्तश्चापि को विप्र देवानामपि देवतम् । यस्तं क इज्यते देव को वेदेष्वनुगीयते ॥
 एव मे सशयं छेत्तुं वदागस्त्य महामुने ॥६॥

अगस्त्य उवाच

धर्मायकाममोक्षाणां प्रमाणं शब्द उच्यते । तत्रापि वैदिक शब्द प्रमाणं परमं मतं ॥७॥
 वदेन गीयते यस्तु पुरुषः स परात्परः । मृतोऽपरः स विज्ञेयो ह्यमृतः पर उच्यते ॥८॥
 योऽमृतः स परो ज्ञेयो ह्यपरो मूर्त उच्यते । गुणाभिव्याप्तिभेदेन मूर्तोऽसौ त्रिविधो भवेत् ॥९॥
 ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते । त्रयाणामपि देवानां वेद्यमेकं परं हि तत् ॥१०॥
 एकस्य बहुधा व्याप्तिगुणकर्मविभेदतः । लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितयं भवेत् ॥११॥
 यस्तत्त्वं वेत्ति परमं स च विद्वान् चैतनः । तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते ॥१२॥

से समस्त पापों का विध्वंस हो जाता है । महायशस्वी एव महाबुद्धिमान् आपस्तम्ब नामक एक ऋषि धर्म । उनकी अक्षसूत्रा नाम की पतिव्रता भार्या थी । उनके तत्त्वज्ञ तथा महागैधावी कर्क नामक पुत्र था । एक दिन मुनि-पुङ्गव अगस्त्य उनके आश्रम में आये । मुनीश्वर आपस्तम्ब ने उनकी पूजा की । पुनः अपने समस्त शिष्यों के साथ बुद्धिमान् मुनि ने मान्य अस्तिवि से पूछा ॥१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—भूमिश्चेष्टः । तीनों देवों में कौन पूज्य है ? किसके द्वारा मुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है ? कौन अनादि है ? विप्र ! कौन अनन्त और देवों का भी पूज्य देव है ? यनों से किसकी पूजा की जाती है ? किसकी वेदों में स्तुति की गई है ? यही मेरा सदेह है जिसका निराकरण चाहता हूँ । महामुनि अगस्त्य । कृपाकर कहिये ॥५१॥

अगस्त्य ने कहा—धर्म अथ काम और मोक्ष के शब्द ही प्रमाण कहे जाते हैं । उनमें भी वैदिक शब्द परम प्रमाण माने जाते हैं । वेद जिस पुरुष का गान करते हैं वह परात्पर कहा जाता है । परममृत है और अपरमृत है । जो अमृत (अप्रत्यक्ष) है वह पर और जो मृत (प्रत्यक्ष) है वह अपर कहा जाता है । वह मृत गुणों की अभिव्याप्ति (उत्कर्षापेक्ष) भेद से तीन प्रकार का हो जाता है । ब्रह्मा विष्णु और शिव एक के ही तीन रूप हैं । इन तीनों देवों से भी जो एक ही वेद्य है वही पर है । एक की ही गुण-कर्म के भेद से बहुत रूपों में व्याप्ति होती है । लोकों के उपकार के लिए ही ये तीन रूप होते हैं । जो परमतरण की जानता है वही विद्वान् है दूसरा नहीं । उनमें जो भेद

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद्ब्रह्मम् । प्रयाणामपि देवानां भूतिभेदः पूयवपूयक् ॥१३॥
वेदाः प्रमाणं सर्वत्र साकारेषु पूयवपूयक् । निराकारं च यत्त्वेकं तत्तेभ्यः परमं मतम् ॥१४॥

आपस्तम्ब उवाच

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत् । तत्राप्यत्र रहस्यं यत्तद्विमृश्याऽऽशु कीर्तयताम् ॥
निःसंशयं निर्विकल्पं भाजनं सर्वसंपदाम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम् । तथाऽपि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः ॥१७॥
प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः । तमेव साधय हरं भक्त्या परमया मुने ॥
गौतम्यां सकलाघौघसंहर्ता दण्डके वने ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं परां प्रीतिमुपागतः । भुक्तिदो मुक्तिदः पुंसां साकारोऽय निराकृतिः ॥१९॥
'सृष्ट्याकारस्ततः' शक्तः पालनाकार एव च । दाता' च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते ॥२०॥

बुद्धि रखता है, वह लिंग-भेदी कहा जाता है। जो इन तीनों में भेद बतलाते हैं, उनके लिये कोई भी प्रायश्चित्त नहीं। इन तीनों में केवल पूयक्-पूयक् स्वरूप का ही भेद है। सर्वत्र साकार पदार्थों में वेद ही पूयक्-पूयक् प्रमाण माने जाते हैं। जो एक निराकार तत्त्व है, वह उन तीनों से पर माना गया है ॥७-१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—इस कथन से कोई भी निर्णय मुझे ज्ञात नहीं हुआ। इसमें भी जो कुछ रहस्य है, उसको मही माति विचार कर कहिये, क्योंकि निःसंशय और निर्विकल्प (ननु नच रहित) ज्ञान ही सब प्रकार की समृद्धियों का एकमात्र स्थान है ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर भगवान् अगस्त्य ने कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—यद्यपि इन देवों में परस्पर भेद नहीं है तो भी आनन्दात्मा शिव से ही सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस प्रपञ्च का जो निमित्त कारण है, वह पर ज्योति शिव है। मुने! अपनी उत्कृष्ट भक्ति से उसी शक्ति की साधना करो। दण्डक वन में गौतमी के तट पर सब पाप-समूह को नष्ट करने वाले शक्ति रहते हैं, वही जाओ ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की इन बातों को सुनकर आपस्तम्ब परम प्रसन्न हुये। मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्म साकार है और निराकार भी। वही सृष्टि करने वाला, पालन करने वाला, देने वाला और सबका संहार करने वाला भी है। उसी में सब कुछ समाप्त हो जाता है ॥१९-२०॥

अगस्त्य उवाच

ब्रह्माकृति कर्तृरूपा घण्णवो पालनी तथा । खद्राकृतिनिहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

आपतम्बस्तदा गङ्गा गत्वा स्नात्वा यतव्रत । तुष्टाय शकर देव स्तोत्रेणानेन नारद ॥२२॥

आपस्तम्ब उवाच

काष्ठेषु वह्नि कुसुमेषु गन्धो, बीजेषु वृक्षादि द्रुपत्सु हेम ।

भूतेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो वै, त सोमनाथ शरणं व्रजामि ॥२३॥

यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।

यो विश्वरूपः सदसत्परो यः, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२४॥

य स्मृत्य दारिद्र्यमहभिशापरोगादिभिर्न स्पृश्यते, शरीरी

यमाभिताश्चेप्सितमाप्नुवन्ति, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२५॥

येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं, ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च ।

एव द्विधा येन कृतं शरीरं, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२६॥

यस्मै नमो गच्छति मन्त्रपूतं, हुतं हविर्या च कृता च पूजा ।

यत हविर्येन सुरा भजन्ते, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२७॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मा की आकृति कर्त्तारूप है विष्णु की आकृति पालन करने वाली और रुद्र की आकृति नाश करने वाली है। यह सब वेदों के द्वारा समर्पित है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद । तदनन्तर आपस्तम्ब गंगा-तट पर गये और उसमें स्नानकर सयत नाव से इस आगे कहे स्तोत्र से शकर की स्तुति करने लगे ॥२२॥

आपस्तम्ब ने कहा—जिस प्रकार शमी काष्ठ में अग्नि फूलों में सुगन्ध बीजों में वृक्ष और पत्थरों में सुवर्ण रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों में जो छिपा हुआ है उस सोमनाथ की शरण में आया हूँ। जिसने अनायास इस विश्व की रचना कर दी जो त्रिभुवन का धाता और विधाता है जो विश्वरूप सत् और असत् से परे है मैं उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ। जिसके स्मरण करने से प्राणी दरिद्रता महामिश्राप एवं रोगादि से सर्वथा पृथक् हो जाता है और जिसकी शरण में आये हुये व्यक्ति अपने मन चाहे फल को प्राप्त करते हैं उस सोमेश्वर की शरण में मैं जाता हूँ। आदि काल में ब्रह्मा आदि जिसके द्वारा वेद-ज्ञान प्राप्त कर पुनः उसी के ध्यान में समाविष्ट हो गये तथा जिसने अपने शरीर को दो भागों (प्रकृति पुरुष के रूप) में बांट दिया उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ। जिसके पास सबके नमस्कार जाते हैं जिसको मन्त्र से पवित्र की हुई आहुतियाँ और हवि प्राप्त होती हैं जिसके निकट की हुई पूजा चली जाती है और जिसकी दी हुई हवि सब देवता ग्रहण करते हैं उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ। जिससे

यस्मात्परं नान्यदस्ति प्रशस्तं, यस्मात्परं नैव सुसूक्ष्ममन्यत्	।
यस्मात्परं नो महतां महच्च, सोमेश्वरं तं शरणं ब्रजामि	॥२८॥
यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्रमचिन्त्यरूपं विविधं महच्च	।
एकक्रियं यद्वदनुप्रयाति सोमेश्वरं त शरणं ब्रजामि	॥२९॥
यस्मिन्विभूतिः सकलाधिपत्यं, कर्तृत्वदातृत्वमहरधमेव	।
प्रीतिर्पेशः सौख्यमनादिधर्मः, सोमेश्वरं तं शरणं ब्रजामि	॥३०॥
नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो, नित्यं प्रियो यः शरणागतस्य	।
नित्यं शिषो यः सकलस्य रूपं, सोमेश्वरं त शरणं ब्रजामि	॥३१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं मुनिं (नवर वृषिवति चाऽऽह त) म् ।	।
आत्मार्यं च परार्यं च आपस्तम्बोऽब्रवीच्छिवम्	॥३२॥
सर्वान्कामान्पुमुस्ते ये स्नात्वा देवमोश्वरम् । पश्येयुर्जगतामोशमसिधर्याह शिषो मुनिम् ॥३३॥	
ततः प्रभृति तत्तीर्थमापस्तम्बमुदाहृतम् । अनाद्यविद्यातिमिरघ्रातनिर्मूलनक्षमम्	॥३४॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दक्षिणकूलस्थापस्तम्बसोमेश्वरतीर्थवर्णनं	
नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥	
गौतमीमाहात्म्ये एकपटितमोऽध्यायः ॥६१॥	

बढकर उत्तम कोई पदार्थ नहीं है जिससे बढकर कोई अति सूक्ष्म वस्तु नहीं है और जिस महान् से बढकर कोई महान् पदार्थ नहीं, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसकी आज्ञा से यह विचित्र, विविध, महान्, और अचिन्त्य रूप वाला विश्व एकक्रिय (सहकर्मी) के समान पीछे-पीछे चलता है, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसमें सम्पूर्ण विश्व की विभूतियाँ, सबका स्वामित्व, कर्तृत्व, दानशीलता, महत्त्व, प्रीति, यश, सौख्य और अनादि धर्म समाहित हैं, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जो नित्य है, शरण देने वाला है सबका पूज्य है जो शरण में आये हुये से नित्य प्रेम करने वाला है, जो नित्य शिव (मंगल) है, जो सबका रूप है उस सोमेश्वर देव की शरण में जाता हूँ ॥२३-३१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद । मुनि की उपर्युक्त स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उस मुनिवर से वर माँगने के लिए कहा । आपस्तम्ब ने भी आत्मनक्ष्पाण तथा लोवक्ष्पाण की दृष्टि से कहा कि जो यहाँ स्नान करके जगत् के स्वामी ईश (शक्र) का दर्शन करें वे अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करें । यह सुनकर शिव ने कहा 'ऐसा ही हो' । तब से यह तीर्थ आपस्तम्ब कहा जाता है, जो अनादि अविद्या रूपी अघकार के समूह को नष्ट कर देने में समर्थ है ॥३२-३४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आपस्तम्बतीर्थवर्णन नामक एवं सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३०॥

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् । अशेषपापशमनं तत्र वृत्तमिदं शृणु ॥१॥
 तत्राऽऽख्यानमिदं त्वासोदितिहासं पुरातनम् । सरमेति प्रसिद्धाऽस्ति नाम्ना देवशुनो मुने ॥२॥
 तस्याः पुत्रौ महाश्रेष्ठौ श्वानौ नित्यं जनाननु । गामिनौ पयनाहारौ चतुरक्षौ यमप्रियौ ॥३॥
 गा रक्षति स्म देवानां यज्ञार्थं कल्पितान्पशून् । रक्षन्तीमनुजग्मुरस्ते राक्षसा दंत्यदानवाः ॥४॥
 रक्षन्तीं तां महाप्राज्ञाः श्वानयोर्मतरं शुनीम् । प्रलोभयित्वा विविधैर्वाक्यैर्दानंश्च यत्नत ॥५॥
 हता गा राक्षसः पापः पश्वर्थे कल्पिताः शुभाः । तत आगत्य सा देवानिदमाह क्रमाच्छुनी ॥६॥

सरमोवाच

मां बद्ध्वा राक्षसः पार्श्वस्ताडयित्वा प्रहारकः । नीता गा यज्ञसिद्धयर्थं कल्पिता पशवः सुरा ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तस्या वाच निशम्याऽऽशु सुरान्प्राह बृहस्पतिः

॥८॥

अध्याय १३१

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरों की प्रीति बढ़ाने वाला तथा समस्त पापों को दूर करने वाला एवं यम-तीर्थ है, उसतीर्थ में जो घटना हुई उसको सुनो । उसके विषय में यह एक पुराना इतिहास सुना जाता है । मुने । सरमा नाम की एक प्रसिद्ध देवशुनी (देवों की कुतिया) थी । उसके दो बहुत अच्छे पुत्र (कुत्ते) थे, जो वायु पीकर रहने वाले, सर्वदा प्यार से देवों के पीछे चलने वाले, चतुरक्ष (चार नेत्र वाले) और यम के प्रिय थे । वह देव-शुनी यज्ञ के लिए पालित-पशुओं और गायों की रक्षा करती थी । एक बार राक्षस और दंत्य उस रक्षा करने वाली कुतिया के पास गये । और उसको चतुराई से विविध प्रकार के खाद्य-पदार्थों के लोभ में फँसावर और चटुल वचनों के द्वारा उसको बोखा देकर वे पापी राक्षस सब गायों और पशुओं को चुरा ले गये । उन पशुओं को अपने यज्ञ का शुभ पशु भी बना लिया । तब वह कुतिया देवों के पास आकर बोली ॥१-६॥

सरमा ने कहा—देवगण । राक्षसों ने मुझे रस्सी से बांधकर डड़ो से खूब पीटा है और यज्ञ के लिये रक्षित सब गायों को ले जाकर अपने पशु बना लिये हैं ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—उसकी बातों को सुनकर बृहस्पति ने देवों से कहा ॥८॥

बृहस्पतिरवाच ।

इयं विकृतरूपाऽऽस्ते अस्या पापं च लक्षये । अस्या मत्तनं तां गावो नीता नान्येन हेतुना ॥
पापेयं सुकृतोवेति लक्षयते देहचेष्टितं ॥१॥

ब्रह्मोवाच

तद्गुरोर्बन्धनाच्छक्रं पदा तां प्राहरच्छुनीम् । पदाघातात्तदा तस्या मुखाक्षीरं प्रसूयुवे ॥१०॥
पुनः प्राह शचीभर्ता क्षीरं पीतं स्वयां शुनि । राक्षसैश्च तदा बभूव तस्मात्नीतास्तु गां मम ॥११॥

सरमोवाच

नापराधोऽस्ति मे नायं न चान्यस्यापि कस्यचित् । नापराधो न चोपेक्षा ममाशितं त्रिदशदिवसं ॥
तस्माद्वृष्टोऽस्ति किं नायं रिपवो बलिनस्तु ते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा देवगुरुर्ज्ञात्वा तस्या विचष्टितम् । सत्यं शक्रं त्वयि द्रुष्ट्वा रिपूणां पक्षकारिणी ॥१३॥
ततः शशाप तां शक्रं पापिष्ठे त्वं शुनी भव । मर्त्यलोके पापभूता अज्ञानात्पापकारिणी ॥१४॥
तदेन्द्रस्य तु ज्ञापेन मानुषे सा व्यजायत । यया शप्तता मघवता पापात्सा ह्यतिभोगिणी ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—यह इस समय विवृत रूप दिखाई देती है जिसमें उसका पाप स्पष्ट लक्षित हो रहा है । इसी की राय से गौयें चुराई गई हैं और कोई कारण नहीं । यह पापिष्ठा अपनी शारीरिक चेष्टाओं से निर्दोष-सी दिखाई दे रही है ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने गुरु की बातों को सुनकर इंद्र ने उस कुतिया को घेर स मार । उस समय पर की चोट से उसने मह ने दूध निकल आया । पुनः इंद्र ने कहा—‘गुनी ! तुमने राक्षसों का दिया दूध दूध पिया है इस प्रकार तुम्हारे कारण ही वे मेरी गाया को ले गये हैं ॥१०-११॥

सरमा ने कहा—नाथ ! ‘मम मेरा अराधन नहीं है किसी दूसरे का भी नहीं है । देवेन ! न तो मेरा अपराध है और न इस विषय में मेरी उदासीनता ही है । नाथ ! वे शत्रु ! (राक्षस) बली हैं । आप क्या स्पष्ट हो रहे हैं ? ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब देवगुरु ने ध्यान समाकर उसकी वषट् चष्टाओं को जान लिया और कहा ‘रात्रि ! सबमघ यह द्रष्टा शत्रुओं का पक्ष करने वाली है ॥१३॥ तब इंद्र ने उसकी नाप दिया पापिष्ठे ! तुम मर्त्यलोक में अज्ञानवश पाप करने वाली पापकारिणी कुतिया हो जाओ ॥१४॥ तब इंद्र के नाथ ! वह मर्त्यलोक में जैसा कि इंद्र ने नाप दिया था अपने पापों के कारण मघद्वार कुतिया हुई ॥१५॥ इंद्र देवेन्द्र उन राक्षसों द्वारा चुराई हुई गोत्रों को ले

गावो या राक्षसैर्नोतास्तामामानयनाय च । यत्नं कुर्वन्सुरपतिविष्णवे तन्मयवेदयत् ॥१६॥
 विष्णुर्देत्याश्च दनुजान्गोहर्तृश्चैव राक्षसान् । हन्तुं प्रयत्नमकरोज्जगृहे च गृहदनुः ॥१७॥
 शाङ्गं यत्लोकविख्यातं दैत्यनाशनमेव च । जितारिः पूजितो देवः स्वयं स्थित्वा जनादनः ॥१८॥
 यत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्गपाणिर्जगत्प्रभुः । तत्रस्यान्दैत्यदनुजाग्राक्षसाश्च बलीयसः ॥१९॥
 पुनर्जने स वै विष्णुर्गा यर्नोताश्च राक्षसैः । तत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्गपाणिरिति श्रुतः ॥२०॥
 युध्यमानस्ततो विष्णुर्दितिजं राक्षसैः सह । ते जग्मुर्दक्षिणामाशां विष्णोस्त्रासान्महामुने ॥२१॥
 अन्यगच्छततो विष्णुस्तानेव परमेश्वरः । गरुडता तानवाप्य शाङ्गमुवर्तमनोजवैः ॥२२॥
 बाणैस्तानव्याहनद्विष्णुर्गङ्गाया उत्तरे तटे । देवारयः क्षयं नोता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२३॥
 शाङ्गमुक्तमहावेगं सुस्वनेश्च सुमन्त्रितः । क्षयं प्राप्ता विष्णुबाणैस्ततस्ते देवशत्रवः ॥२४॥
 गावो लब्धा यत्र देवर्वाणतीर्थं तदुच्यते । धृष्णयं लोकविदितं गोतीर्थं चेति विधृतम् ॥२५॥
 पद्मवर्षे कल्पिता गावो गङ्गाया दक्षिणे तटे । प्रदुतास्ते सुराः सर्वे गङ्गायां संन्यवेशयन् ॥२६॥
 तन्मध्ये फारयामासुर्द्वीपं ध्रुवाऽऽश्रयं गवाम् । तर्गेभिस्तत्र गङ्गायां सुरयज्ञो व्यजायत ॥२७॥
 यज्ञतीर्थं तु तत्प्रोक्तं गोद्वीपं गाङ्गमध्यतः । देवानां यजनं तच्च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२८॥

आने के लिये प्रयत्न करने लगे और यह सारी कथा विष्णु से कह सुनायी ॥१६॥ विष्णु यह सुनकर उन गौओं के चुराने वाले राक्षसों, दनुजों और दैत्यों को मारने के लिये उद्यत हो गए । उन्होंने दैत्यों को नष्ट करने वाले लोक-विख्यात महान् शाङ्ग (धनुष) को हाथ में लिया ॥१७॥ शत्रुविजयी, देवों से पूजित तथा ससार के स्वामी विष्णु हाथ में धनुष लेकर उस दण्डकारण्य में गये और वहाँ के बलवान् दैत्य, दनुज और राक्षसों को मारने लगे । पुनः शाङ्ग पाणि नाम से प्रसिद्ध विष्णुदेव ने उन गावों के चुराने वाले राक्षसों को भी मार डाला । इसके अनन्तर विष्णु अन्य दैत्यों और राक्षसों से युद्ध करने लगे । महामुने । विष्णु के मय से वे राक्षस दक्षिण-दिशा की ओर भाग गये ॥१८-२१॥ तब परमेश्वर विष्णु ने गरुड पर सवार होकर उनका पीछा करने लगे और उनको पाकर मन के समान वेग-वाले अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से गंगा के उत्तर तट पर उन्हें मार गिराया । इस प्रकार पराक्रमी विष्णु ने राक्षसों का सहार कर डाला ॥२२-२३॥ तदनन्तर वे सभी देव-शत्रु धनुष से फेंके गये सुमन्त्रित (मन्त्री द्वारा प्रयुक्त) गन्भीर शब्द करने वाले और महावेग वाले विष्णु के बाणों से नष्ट कर दिये गये ॥२४॥ जहाँ देवताओं ने गौओं को पाया उसको बाणतीर्थ कहा जाता है । लोक-विदित धृष्णव तीर्थ एव गतीर्थ नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई ॥२५॥ गंगा के दक्षिण तट पर वे गायें यज्ञ-यज्ञ बनाई गई थी । वे देवता यह देख दौडकर गंगा में घुस गये ॥२६॥ उसके मध्य में उन्होंने गौओं के रहने के योग्य एक उत्तम द्वीप बनाया । वहाँ उन गौओं के द्वारा देव-यज्ञ सम्पन्न हुआ ॥२७॥ गंगा के मध्य में जहाँ वह सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला देवों का शुभ-यज्ञ हुआ, वह गोतीर्थ और यज्ञ-तीर्थ कहालाया ॥२८॥ महाकान्तिमान् । इस असार और अपार ससार रूपी सागर से पार लगाने में नौका के समान, विवैश्वरी,

स्वयं मूर्तिमती भूत्वा गङ्गाशक्तिर्महाद्युते । असारापारसंसारसागरोत्तरणे तरिः ॥२९॥
 विश्वेश्वरी योगमाया सद्भवतामयदायिनी । शोरक्षं तु ततरतीथं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३०॥
 ती श्वानी सरमापुनो चतुरक्षौ यमप्रियौ । मातुः शापं चापराधं सर्वं चापि सविस्तरम् ॥३१॥
 निवेद्य तु यथान्यायं कार्यं चापि सुखप्रदम् । विशापकरणं चापि पप्रच्छतुभौ यमम् ॥३२॥
 स ताम्यां सहितः सौरिः पित्रे सूर्याय चाब्रवीत् । श्रुत्वा सूर्यः सुतं प्राह गङ्गायां सुरसत्तम ॥३३॥
 लोकत्रयं कपायन्यां गीतम्यां दण्डके वने । श्रद्धया परया वत्स सुस्नातः सुसमाहितः ॥३४॥
 ब्रह्माणं चैव विष्णुं च मामीशं च यथाक्रमम् । स्तुहि त्वं सर्वभावेन भूतयौ प्रीतिमवाप्स्यतः ॥३५॥
 तस्मिन्नुर्वचनं श्रुत्वा यमः प्रीतमनास्तदा । तपोश्च प्रीतये प्रायाद्देवतपणयोग्यम् ॥३६॥
 गौनश्रामयहारिण्यां सुसमाहितमानसः । तथैव तोययामास गङ्गायां सुरसत्तमान् ॥३७॥
 श्वभ्यां च सहितः धीमान्दक्षिणादापतिः प्रभुः । ब्रह्माणं तोययामास भान् वं दक्षिणे तटे ॥३८॥
 ईशानमुतरे विष्णुं स्वयं धर्मः प्रतापवान् । दत्तवन्तो वरं श्रेष्ठं सरमाया विशापकम् ॥
 वरानमाधत्त बहूल्लोकानामुपकारकान् ॥३९॥

यम उवाच

एषु स्नानं तु ये कुर्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । आत्मार्यं च परार्यं च ते कामानप्नुयुः शुभान् ॥४०॥
 बाणनीर्ये तु ये स्नात्वा शाङ्गैर्वाणि स्मरन्ति वै । तेभ्यो दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्मुने भूगे ॥४१॥

योगमाया और अच्छे भक्तों को अमय प्रदान करने वाली गंगा-शक्ति मूर्ति धारण करने उस यज्ञ में उपस्थित थी । इसके बाद गंगा के दक्षिण तट पर गोरक्ष नामक तीर्थ बना ॥२९-३०॥

इस सरमा के पुत्र उन दोनों यम के प्रिय-मात्र चार आँखों वाले श्वानों ने माता के अपराध और पाप को यथावत् विस्तारपूर्वक यम से कह सुनाया और माता के पापमोचन का उपाय तथा उसको मुक्त पहुँचाने वाले कार्य के विषय में भी पूछा ॥३१-३२॥ सूर्य-तनय यम ने अपने प्रिय श्वानों के साथ सूर्य के पास जाकर सारी कथा कह सुनाई । यह सुनकर सूर्य ने अपने पुत्र से कहा—'गुरुर्येष्ट' । वत्स' तुम दण्डक वन में त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली गंगा में अति श्रद्धा के साथ स्नान करो और एकाग्र मन से ब्रह्मा, विष्णु मेरी (सूर्य की) और शंकर की कृपा स्तुति करो । ऐसा करने से तुम्हारे ये मृत्यु सब प्रकार का सुख प्राप्त करेंगे ॥३३-३५॥ पिता की बातों को सुनकर यम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने सेवकों को मुखी बनाने की इच्छा से देवा को तृप्त करने के लिये पापहारिणी गंगा के पास गये । अपने कुत्तों के सहित दक्षिण दिशा में स्वामी प्रभु यम ने एकाग्र-मन से गंगा में स्नान कर श्रेष्ठ देवताओं को प्रणम किया । पहले गंगा के दक्षिण तट पर ब्रह्मा और सूर्य की तथा उत्तर तट पर ईशान और विष्णु को स्वयं प्रतापी यम ने प्रणम किया । देवों के प्रसन्न होकर सरमा को पाप-रहित करने के लिये वर प्रदान किया । फिर स्वयं यम ने बहूत-से लोकात्याज्यकारी वरों की भी माँगा ॥३६-३९॥

यम ने कहा—हे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ! जो कोई इन तीर्थों में आत्मार्य या परार्य स्नान करेगा उन्हें अक्षय अपने शुभ मनोरथों की प्राप्ति होगी । बाण तीर्थ में स्नान कर जो शाङ्गैर्वाणि विष्णु का स्मरण करेगा, उनको

गोतीर्थे ब्रह्मतीर्थे वा यस्तु स्नात्वा यतव्रत । ब्रह्माण त नमस्याय द्वीपस्यापि प्रदक्षिणम् ॥४२॥
 य कुर्यात्तेन पृथिवी सप्तद्वीपा वसुधरा । प्रदक्षिणोक्ता तन किंचिद्दत्त्वा वसु द्विजम् ॥४३॥
 तद्देवयजन प्राप्य किंचिदधुत्वा हृताशने । अश्वमेधादियज्ञाना फल प्राप्नोति पुष्कलम् ॥४४॥
 य सकृत्तत्र पठति गायत्रीं वेदमातरम् । अधीतास्तेन वेदा वै निष्कामो मुक्तिभाजनम् ॥४५॥
 स्नात्वा तु दक्षिणे कूले शक्तिं देवीं तु भक्तितः । पूजयित्वा यथाग्याय सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥४६॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशाना शक्तिर्माता त्रयीमयी । सर्वान्कामानवाप्नोति (स्नात्वाऽत्र पूजयेद्यस्ता) ॥
 पुत्रवान्वनवान्भवेत् ॥४७॥
 आदित्य भक्तितो यस्तु दक्षिणे नियतो नरः । स्नात्वा पश्येत् तेनेष्टा यज्ञा विविधदक्षिणा ॥४८॥
 कूले यशोतरं चैव गङ्गाया दैत्यसूदनम् । स्नात्वा पश्येत् त नत्वा तस्य विष्णो पर पदम् ॥४९॥
 यनःवरं तनो यस्तु यमतीर्थे तु पूजितम् । स्नात् पश्यति युक्तात्मा स करोत्यचिरेण हि ॥५०॥
 विष्णुमक्षय पुण्य फलद कोतिवर्धनम् । तत्र स्नानेन दानेन जपेन स्तवनेन च ॥
 अपि दुष्कृतकर्माण पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थानि श्रीणि नारद । तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥५२॥

युग-युग तक दरिद्रता के कण्ट नही होंगे । जो सयमी व्यक्ति गोतीर्थ और ब्रह्मतीर्थ में स्नान कर उस ब्रह्मा को नमस्कार करता है और द्वीप की प्रदक्षिणा करता है उसे सात द्वीप वाली वसुमती पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का फल मिलता है । वह यदि कुछ धन ब्राह्मणों को दे देता और उस देव-यजन के पास जाकर अग्नि में हवन कर देता है तब तो अश्वमेध यज्ञ का अपरिमित फल उसको प्राप्त हो जाता है । जो वहाँ निष्काम होकर एव बार भी वेद भक्त गायत्री का पाठ करता है वह सब वेदों का पाठ करने वा फल प्राप्त करता है एव मुक्ति का अधिकारी हो जाता है । जो दक्षिण तट पर स्नान कर शक्ति देवी की भक्तिपूवक यथा विधि पूजा करता है वह अपने सारे मनोरथों को प जाता है । जो ब्रह्मा विष्णु और महेश की शक्ति वेदमयी माता की पूजा करता है वह अपने सब मनोरथों को प्राप्त कर पुत्रवान् और धनवान् होता है । मनुष्य नियम-पूवक दक्षिण तट पर स्नान कर भगवान् भूय का दशन करता है वह विविध दक्षिणा वाले यज्ञों के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है । जो गया के उत्तर तट पर स्नान कर दैत्य नाशक विष्णु को नमस्कार करता है उसको विष्णु का परम पद प्राप्त हो जाता है । इसके बाद जो यम तीर्थ में स्नान कर एताप मन से यमेश्वर का दशन और पूजन करता है वह शीघ्र ही पितरो को अक्षय पुण्य तथा तथा यथा विस्तारक फल का अधिकारी बना देता है । उस तीर्थ में स्नान दान जप और स्तुति करने से अति दुष्कर्म करने वाले पितर भी मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं ॥४०-५१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार आठ हजार तीन तीर्थ वहाँ प्रतिष्ठित हैं । उनमें स्नान और दान करने

एतेषा स्मरणं पुण्यं नानाजन्माघनाशनम् । श्रवणारिपतृभिः सार्धं पठनात्स्वकुलैः सह ॥५३॥
 तेषामप्यतिपापानि नाशयान्ति ममाऽऽज्ञया । तत्र स्नानादियं कृत्वा किञ्चिद्दत्त्वा यतात्मवान् ॥५४॥
 पितृणां पिण्डदानादि कृत्वा नत्वा सुरानिमान् । धनं धान्यं यशो वीर्यमायुरारोग्यसम् ॥५५॥
 पुत्रान्पौत्रान्प्रिया भाग्या लब्ध्वा चान्यन्मनोपितम् । अविद्युक्तं प्रीतमना बन्धुभिश्चातिमानित ॥५६॥
 नरकस्थानं पितृस्तारयित्वा कुलानि च । पाययित्वा प्रियैर्युवतो ह्यन्ते विष्णुं शिवं स्मरेत् ॥
 ततो मुक्तिपदं गच्छेद्देवानां वचनं यथा ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बाणतीर्थशाङ्गपाणीयगोद्वीपदेव-
 यजनब्रह्मतीर्थशक्तियमादित्यसुपर्णदैत्यसूदनयमेश्वरपितृतीर्थोदित्यधिकाष्ट-
 सहस्रतीर्थवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥
 गौतमीमाहात्म्ये द्विपण्डितमोऽध्यायः ॥६२॥

से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। इन तीर्थों का स्मरण भी पुण्यकारक और अनेक जन्मों के पापों को दूर करने वाला है। इन तीर्थों के माहात्म्य सुनने और पढ़ने से उस व्यक्ति के पितरों तथा कुल के अत्यन्त पाप भी भेरी आज्ञा से नष्ट हो जाते हैं। जो समयी उनमें स्नान कर विप्रा को कुछ दान देता एवं पितरों को पिण्डदान देकर इन देवों को नमस्कार करता है वह धन धान्य यश पराक्रम आयु आरोग्य सम्पत्ति पुत्र पौत्र प्रिय भाग्या एवं अपने अथ मनोरथा को प्राप्त कर सबदा प्रसन्नतापूर्वक अपने परिवार के साथ बन्धुजनों से सम्मानित होकर निवास करता है। वह अपने नरकगामी पितरों का उद्धार कर और कुल के पवित्र कर प्रियजनों के सहित अन्तर्काल में विष्णु और शिव का स्मरण करता है। तदनन्तर देवों के कथनानुसार वह मुक्ति प्राप्त करता है ॥५२-५७॥

श्रीब्रह्मपुराण म यमतीर्थवर्णनं नामक एक सौ इक्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३१॥

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यक्षिणीसंगममाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीसंगमं नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम् । तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
 यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भुक्तिमुक्तिदः । तत्र च स्नानमात्रेण 'सत्रयागफलं' लभेत् ॥२॥
 विश्वावसोः स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासिनी । ऋषीणां सत्रमगमद्गौतमीतीरवर्तिनाम् ॥३॥
 दृष्ट्वा तत्र ऋषीणामान्ता जहासातिगविता । या गत्वाऽऽश्रावय धोषडस्तु धोषडिति स्थिरम् ॥४॥
 विश्वरेण ब्रुवती तां तेशेयुः स्याविणी भव । ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति 'सुविश्रुता ॥५॥
 ततो विश्वावसुः पूज्य ऋषीन्देवं त्रिलोचनम् । संगम्य चैव गौतम्यां तां विशापामयाकरोत् ॥६॥
 ततः प्रभृति ततोर्थं यक्षिणीसंगमं स्मृतम् । तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥७॥
 विश्वावसोः प्रसन्नोऽभूद्यत्र शम्भुः शिवान्वितः । शंभं तत्परमं तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम् ॥८॥
 सर्वपापौघहरणं सर्वदुर्गतिनाशनम् । सर्वेषां तीर्थमुत्थानां तद्धि सारं महामुने ॥९॥
 तीर्थं मुनिवरः ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥१०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यक्षिणीसंगमदुर्गादितोर्थवर्णनं नाम

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिपष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अध्याय १३२

यक्षिणी-संगम का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) सब फलों को देनेवाला यक्षिणी-संगम नामक एक तीर्थ है उसमें स्नान एवं दान करने में मनुष्य अपने सब मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ केवल दर्शनमात्र से भक्ति और मुक्ति देने वाले यक्षेश्वर देव हैं, उस तीर्थ में स्नान मात्र से यज्ञपत्र मिल जाते हैं। विश्वावसु की सूत्र ठहारा मारकर हमने वाली पिप्पला नाम की एक बहिन थी। वह एक दिन गौतमी-तीर पर रहने वाले ऋषियों के यज्ञ में गई। वहाँ दुबले-पतले ऋषियाँ को देखकर घमड़ में हँस पड़ी और यज्ञ के भिन्न जाकर 'बोषट, धोषट', इन शब्दों का मद्दे और अगुद स्वर में पाठ कर उनकी धिड़ाने लगी। यह देखकर ऋषियाँ ने उस पिप्पला को घायप दिया कि 'तुम नदी हो जाओ'। शाय मुनते ही वह यक्षिणी नाम की प्रसिद्ध नदी हो गई। तब विश्वावसु ने ऋषियाँ और त्रिनेत्र शार की पूजा की तथा यक्षिणी को गौतमी से मिलाकर उसको घायप मुक्त किया। उस समय से वह स्थान यक्षिणी-संगम नामक तीर्थ हो गया। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मनुष्य अपने सारे मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ शिवा सहित शिव विश्वावसु पर प्रसन्न हुए वह सब पाप-समूहों एवं कठिन पीडाओं को दूर करनेवाला अति उत्तम तीर्थ और दुर्ग-तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। महामुनि नारद। उस तीर्थ को ऋषिवरों ने मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और सब प्रसिद्ध तीर्थों का शारभूत तीर्थ घोषित किया है ॥१-९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यक्षिणी-संगम वर्णन नामक एक तीर्थवर्णन अध्याय समाप्त ॥१३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

शुक्लतीर्थमिति श्रुत्वा सर्वसिद्धिकरं मुणाम् । यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१॥
भरद्वाज इति श्रुत्वा मुनि परमधार्मिक । तस्य पैठोनीसी नाम भार्या सुकुलभूषणा ॥२॥
गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा । अग्नीधोमीयमैत्रान पुरोडाशमकल्पयत् ॥३॥
पुरोडाशे श्रप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत । पुरोडाश भक्षयित्वा लोकत्रितयभीषण ॥४॥
यत्त मे ह्यत्र को हसि कोयात्वमितित मुनि । प्रोवाच सत्वर क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तम ॥५॥
तद्वेषेर्वचनं श्रुत्वा राक्षस प्रत्युवाच तम् ॥

राक्षस उवाच

हव्यधन इति विख्यात भरद्वाज निबोध माम् । सध्यासुतोऽहं ज्येष्ठश्च पुन प्राचीनबहिष ॥६॥
ब्रह्मणा मे धरे दत्तो यज्ञान्खाद ययामुलम् । ममानुज कञ्चिदचापि बलवानतिभीषण ॥७॥
अहं कृष्ण पिता कृष्णो माता कृष्णा तथाऽनुज । अहं मल हनिष्यामि यूप छेपि कृतान्तक ॥८॥

अध्याय १२३

शुक्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) मनुष्या को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाला शुक्ल-सीय नामक एक विख्यात तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य अपनी मन कायनाशा को अनायास प्राप्त कर लेता है । (इसकी क्या इस प्रकार है) —

भरद्वाज नाम के एक परम धार्मिक विख्यात मुनि थे । उनकी पैठोनीसी नाम की अत्यन्त मुणवती भार्या थी । वह पति-परायणा गौतमी-तीर पर रहती थी । एक बार वह अग्नि-सोम देवता तथा इन्द्र-अग्नि देवता के लिए चर बना रही थी । जब वह चर पक्के जग्रा तब धुँये से एक शैलोक्य भयङ्कर जीव निकला जो चर को चट कर गया । यह देख दिग्भय मुनि भरद्वाज ने त्रोध स तुरत उसको ढाँटकर कहा— तुम कौन हो जो मेरे यज्ञ को नष्ट कर रहे हो ? अर्थात् वही बात मुनिकर राक्षस ने मुनि से कहा ॥१-५॥

राक्षस ने कहा—भरद्वाज ! मुझ को प्राचीनबहिष का सध्या से उत्पन्न यज्ञज्ज नामक प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र जानो । ब्रह्मा ने मुझ वरदान दिया है कि तुम दृष्टानुसार यज्ञा को खाया करो । मेरा बलवान् अतिभीषण अनुज भी इसी दय का है । मैं बाला मेरे पिता वाले माता वाली और भाई भी बाला है । मैं यम होकर यज्ञा को नष्ट करूँगा और यूपों को तोड़ दालूँगा ॥६-८॥

भरद्वाज उवाच

रक्ष्यतां मे त्वया यज्ञः प्रियो धर्मः सनातनः । जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विज रक्ष मे क्रतुम् ॥९॥

यज्ञघ्न उवाच

भरद्वाजं निबोधेदं वाक्यं मम समासतः । ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसंनिधौ ॥१०॥
ततः प्रसादितो देवो मया लोकपितामहः । अमृतं प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वा मुनिसत्तमः ॥११॥
तदा विशापो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा । एवं करिष्यसि यदा ततः सर्वं भविष्यति ॥
यद्यदाकाङ्क्षितं ब्रह्मर्षैरन्मिथ्या कदाचन ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

भरद्वाजः पुनः प्राह सखा मेऽसि महामते । मखसंरक्षणं येन स्यान्मे वद करोमि तत् ॥१३॥
सभूय देवा दैतेया ममन्युः क्षीरसागरम् । अलभन्तामृतं कण्ठात्तदस्मत्सुलभं कथम् ॥१४॥
प्रीत्या यदि प्रसन्नोऽसि सुलभं यद्वदस्व तत् । तदुपैर्बचनं श्रुत्वा रक्ष प्राह तदा मुदा ॥१५॥
अमृतं गौतमीवारि अमृतं स्वर्णमुच्यते । अमृत गोभवं चाऽऽज्यममृतं सोम एव च ॥१६॥
एतैर्मांसमिषिञ्चस्व अथ वेतस्तथा त्रिभिः । गङ्गाया वारिणाऽऽज्येन हिरण्येन तथैव च ॥
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम् ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—देखो, मैं यज्ञ विध्वंसक तुमको जानता हूँ तुम एक अच्छे ब्राह्मण हो, तुम मेरे यज्ञ और प्रिय सनातन धर्म की रक्षा करो ॥९॥

यज्ञघ्न ने कहा—भरद्वाज ! मेरी बातों को मधोप म सुनो । देव-दानवों के सामने ब्रह्मा ने मुझे साप दिया । तब मैंने बड़े अनुनय विनय से लोक-पितामह को प्रसन्न किया । उन्होंने कहा कि जब मुनिवर्यगण अमृत से तुम्हारा अभिषेक करेंगे, तब हे हव्यघ्न ! तुम साप-मूक होओगे अन्यथा नहीं । यदि तुम ऐसा वारोगे तब हे ब्रह्मन् ! जो जो तुम चाहोगे वह सब हो जायगा, यह बात कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती ॥१०-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—भरद्वाज ने पुनः कहा 'महामते' । तुम मर गन्वा हो । जिस प्रकार मेरे यज्ञ की रक्षा हो, बड़ो मैं अवश्य बहूँगा । एक बात है कि देवों और दैत्या ने मिलकर क्षीर-सागर को मँथा । तब बड़े कष्ट से अमृत को प्राप्त किया । ऐसा दुर्गम अमृत हम लोगों को कैसे गुप्त हो सकता है ? यदि तुम हृदय से मेरे ऊपर प्रेमप्र हो तो बनाओ कि वह कैसे गुप्त होगा । श्रृष्टि की बात को मुनकर राक्षस ने प्रसन्न होकर कहा ॥१३-१५॥

राक्षस ने कहा—गौतमी वा अज अमृत है । सोम को भी अमृत कहते हैं । गो में घृत और सोम को भी अमृत माना जाता है । इनमें मरा अभिषेक कीजिये अथवा मरा-अज घृत और सुवर्ण इन तीनों से ही अभिषेक हो । या सबसे अधिक दिव्य अमृत गौतमी वा जल ही है ॥१६-१७॥

ब्रह्मोवाच ।

एतदाकर्ण्य स श्रुपि. परं संतोषमागतः । पाणावादाय गङ्गायाः सलिलामृतमावरात् ॥१८॥
 तेनाकरोद्वयो रक्षोऽहमभियुक्तं तदा मखे । पुनश्च यूपे च पशावृत्तिक्षु मखमण्डले ॥१९॥
 सर्वमेवाभवद्वृक्षमभियेकान्महात्मनः । तद्रक्षोऽपि तदा शुबलो भूत्वोत्पन्नो महाबलः ॥२०॥
 यः पुरा कृष्णरूपोऽभूत्स तु शुबलोऽभवत्क्षणात् । यत्तं सर्वं समाप्याय भरद्वाजः प्रतापवान् ॥२१॥
 श्रुत्विजोऽपि विसृज्याय यूपं गङ्गोदकेऽक्षिपत् । गङ्गामध्ये तद्धि यूपमद्याप्यास्ते महामते ॥२२॥
 अभियुक्तं चामृतेन अभिज्ञानं तु तन्महत् । तत्र तीर्थे पुना रक्षो भरद्वाजमुवाच ह ॥२३॥

रक्ष उवाच

अहं यामि भरद्वाज कृतः शुबलस्त्वया पुनः । तस्मात्तवात्र तीर्थे ये स्नानदानाद्विपूजनम् ॥२४॥
 कुर्वुस्तेषामभोष्टानि भवेयुर्लोकं मखे । स्मरणादपि पापानि नाशं भान्तु सदा मुने ॥२५॥
 ततः प्रभृति सतीर्थं शुबलतीर्थमिति स्मृतम् । गौतम्यां दण्डकारण्ये स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२६॥
 उभयोस्तोरयो सप्त सहस्राण्यपराणि च । तीर्थानां मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शुबलतीर्थाद्युभयतीरस्यसप्त-

सहस्रतीर्थवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस शुबल उपाय को सुनकर श्रुपि अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये । उन्होंने बड़े आदर से हाथ में मगजल ले लिया । उसने उस यज्ञ में ही उस राक्षस का अभियेक किया । पुन उसी जल को यूप, यज्ञ-यन्त्र और श्रुचिज। पर भी छिड़ा । उस महात्मा ने अभियेक में सब कुछ शुक्ल-वर्ण का ही रखा । यह महाबली राक्षस भी शुक्ल होकर प्रकट हुआ । जो पहले अति कृष्ण था वह क्षण भर में ही शुक्लवर्ण का हो गया । प्रन्.पी भरद्वाज ने अपने यज्ञ की समस्त क्रियायें समाप्त की । सब श्रुचिजों को बिदा कर दिया और उस यूप को गंगा के मध्य में फेंक दिया । महामत ! वह फेंका हुआ यूप आज भी गंगा के बीच में वत्तमान है । गौतमी के जन्म-जन्म में अभि-पिक्त होने पर उस राक्षस को पूर्व की बाणी का स्मरण हो आया । तब उसने पुन उस तीर्थ में भरद्वाज से कहा ॥१८-२३॥

राक्षस ने कहा—भरद्वाज ! मुझको तुमने पुन शुबल कर दिया । अब इस तीर्थ में जो स्नान-दान और देवपूजा करेये उनसे सब अभिमत्त पूरे होंगे और उनको यज्ञ करने का वल प्राप्त होगा । मुने ! इससे स्मरणमात्र से सब पाप नष्ट हो जायेंगे । उस समय ये वह तीर्थं शुक्ल-तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया । यह दण्ड वन में गौतमी-तट पर स्वर्ग का एक सुखा द्वार है । मुनिशार्दूल ! यहीं गौतमी के दोन। तटा पर सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले और भी सान हजार तीर्थ हैं ॥२४-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शुक्ल-तीर्थ आदि सान हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक श्रीतीर्थावली अध्याय समाप्त ॥१३३॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
 ऋषयः सप्त विख्याता वसिष्ठप्रमुखा मुने । गौतम्यास्तोरमाश्रित्य सत्रयज्ञमुपासते ॥२॥
 तत्र विघ्न उपक्रान्ते रक्षोभिरतिभीषणे । मामभ्येत्याथ मुनयो रक्षःकृत्यं न्यवेदयन् ॥३॥
 तदाऽहं प्रमदारूपं मापयाऽऽसृज्य नारद । यस्याश्च दर्शनादेव नाशं यात्यय राक्षसाः ॥४॥
 एवमुक्त्वा तु तां प्रादामृषिभ्यः प्रमदा मुने । मद्वाक्यादुपयो मायामादाय पुनरागमन् ॥५॥
 अर्जुना या समाख्याता कृष्णलोहितरूपिणी । मुक्तकेशीत्यभिधया साऽऽस्तेऽद्यापि स्वरूपिणी ॥६॥
 लोकत्रितयसंमोहदायिनी कामरूपिणी । तद्बलात्स्वस्थमनसः सर्वे च मुनिपुंगवाः ॥७॥
 गौतमी सरितां श्रेष्ठां पुनर्यज्ञाय दीक्षिताः । पुनस्तन्मलनाशाय राक्षसाः समुपागमन् ॥८॥
 यज्ञवाटान्तिके मायां दृष्ट्वा राक्षसपुंगवाः । ततो नृत्यन्ति गायन्ति हसन्ति च रदन्ति च ॥९॥
 माहेश्वरी महामाया प्रभावेणातिदर्पिता । तेषां मध्ये दैत्यपतिः शम्बरः नाम वीर्यवान् ॥१०॥

अध्याय १३४

चक्रतीर्थ का वर्णन

• ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) चक्रतीर्थ नामक तीर्थ है, जिसके स्मरणमात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं। नारद ! उससे प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। मुने ! वसिष्ठ आदि सात प्रसिद्ध मुनि गौतमी के तीर पर कुटी बनाकर सत्र-यज्ञ कर रहे थे। जब अतिभीषण राक्षसों ने यज्ञ में विघ्न डालना प्रारम्भ किया तब मुनिया ने मेरे पास आकर राक्षसों का वह उद्भव बताया। नारद ! तब मैंने अपनी माया से एक ऐसी स्त्री उत्पन्न की, जिसके देखने से ही सम्पूर्ण राक्षस नष्ट हो जायें। मुने ! मैंने मुनियों से इस प्रकार वह सुनकर उस स्त्री को ऋषियों के साथ कर दिया। मेरे समझाने से वे ऋषि उस माया-स्त्री को लेकर चले गये। वह कृष्ण और ईषद् रक्तवर्ण की मुक्तकेशी नाम की अज्ञा माया आज भी अपने स्वरूप में वर्तमान है, जो मायारूपिणी है और त्रिभुवन को मोह में डाल देने वाली है। व मुनिश्रेष्ठ उसकी शक्ति से स्वस्थचित होकर उस श्रेष्ठ गौतमी के तट पर पुनः यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। राक्षस यह देखकर फिर यज्ञ को नष्ट करने के लिये उपस्थित हुए ॥१-८॥ वे बड़े-बड़े राक्षस यज्ञ-यथ में उस मोहिनी माया को देखकर माहेश्वरी महामाया के प्रभाव से अनिर्गति होकर नाचने, गाने, हँसने और रोने लगे। उनमें एक अनिपरायनी शम्बर नामक दैत्यराज था। नारद ! उगने उस माया रूप प्रमदा को सा लिये। उसका यह कार्य उसके मायाबल को देखने वालों के

मायारूपां तु प्रमदां भक्षयामास नारद । तदद्भुतमतीवाऽऽसीत्तन्मायाबलदर्शिताम् ॥११॥
 मखे विध्वंस्यमाने तु ते विष्णुं शरणं ययुः । प्रादाद्विष्णुश्चक्रमयो मुनीनां रक्षणाय तु ॥१२॥
 चक्र तद्राक्षसानाजो दैत्यांश्च दनुजांस्तथा । चिच्छेद तद्भूयादेव मृता राक्षसपुंगवाः ॥१३॥
 ऋषिभिस्तन्महासत्रं संपूर्णमभवत्तदा । विष्णोः प्रक्षालितं चक्रं गङ्गाम्भोभिः सुदर्शनम् ॥१४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् । तत्र स्नानेन शनेन सत्रयागफलं लभेत् ॥१५॥
 तत्र पञ्च शतान्यास्तत्तीर्थानां पापहारिणाम् । तेषु स्नानं तथा दानं प्रत्येकं मुक्तिदायकम् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थादिपञ्चशततीर्थवर्णनं नाम

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ पञ्चात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वाणीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

‘वाणीसंगममाख्यातं यत्र वागीश्वरो हरः । तत्तीर्थं सर्वपापानां मोचनं सर्वकामदम् ॥१॥

लिये अतिविस्मयजनक था । वे ऋषि पुन. अपने यज्ञ को नष्ट होते देख विष्णु की शरण में गये । विष्णु ने मुनिगणों की रक्षा के लिये अपना चक्र भेजा । उस चक्र ने युद्ध में उन राक्षसों, दैत्यों और दनुजों का शिर काट डाला । कितने राक्षस तो उससे भय से ही मर गये । तब ऋषियों का वह महा-यज्ञ पूर्ण हुआ । विष्णु का वह सुदर्शन चक्र जहाँ गया-जल से घोसा गया वह स्थान तब से चक्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया । उसमें स्नान और दान करने से सत्र-यज्ञ का फल प्राप्त होता है । वहाँ पाप-समूह को दूर करने वाले पाँच सौ और भी तीर्थ हैं जिनमें स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्त होती है ॥१-१६॥

श्रीब्रह्मपुराण में चक्रतीर्थ आदि पाँच सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चोत्तिसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३४॥

अध्याय १३५

वाणीसंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) वाणीसंगम नामक तीर्थ है, जहाँ वागीश्वर वाक्वर विद्यमान हैं । वह तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला और सब कामनाओं को देने वाला है । उस तीर्थ में स्नान और दान करने से ब्रह्म-हत्या जन्म

तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् । ब्रह्मविष्णोश्च संवादे महत्त्वे च परस्परम् ॥२॥
 तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभूत्किल । तत्रैव वागुवाचेवं देवी पुत्र तयोः शुभा ॥३॥
 अहमस्मि महास्तत्र अहमस्मीति वै मिथः । देवी वाक्तावुभौ प्राह यस्त्वस्यान्तं तु पश्यति ॥४॥
 स तु ज्येष्ठो भवेत्समाग्मा वाद कर्तुमर्हयः । तद्वाक्याद्विष्णुरगमदधोऽहं चोर्ध्वमेव च ॥५॥
 ततो विष्णुः शीघ्रमेत्य ज्योतिःपार्श्वं उपाविशत् । अप्राप्यान्तमहं प्राप्यां दूराद्भूततरं मुने ॥६॥
 ततः श्रान्तो निवृत्तोऽहं द्रष्टुमीशं तु तं प्रभुम् । तदेवं मम धीरासीद्दृष्टश्चान्तो मया भूशम् ॥७॥
 अस्य देशस्य तद्विष्णोर्मम ज्येष्ठ्यं स्फुटं भवेत् । पुनश्चापि मम त्वेवं मतिरासीन्महामते ॥८॥
 सत्यैवंशत्रैः कथं वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृतं वचः । नानाविधेषु पापेषु मानुतात्पातकं परम् ॥९॥
 सत्यैवंशत्रैरसत्यां वा वाचं वक्ष्ये कथं त्विति । ततोऽहं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृतिभीषणम् ॥१०॥
 कृत्वा तूतानात् वक्ष्य इति ध्यात्वा चिरं तदा । अब्रवं तं हरिं तत्र आसीनं जगतां प्रभुम् ॥११॥
 अस्य चान्तो मया दृष्टस्तेन ज्येष्ठ्यं जनार्दन । ममेति वदतः पार्श्वे उभौ तौ हरिशंकरौ ॥१२॥
 एकलक्षस्वमायसौ सूर्याचन्द्रमसायिव । तौ दृष्ट्वा विस्मितो भीतश्चास्तवं तावुभावपि ॥
 ततः क्रुद्धो जगन्नाथो वाचं तामिदमूचतुः ? ॥१३॥

॥१३॥ हरिहरावूचतुः

दुष्टे त्वं निम्नगा भूणानानुतादस्ति पातकम् ।

॥१४॥

दोष भी मिट जाते हैं । एक बार ब्रह्मा और विष्णु ने 'मैं बड़ा हूँ तो मैं बड़ा हूँ' इस विषय पर आपस में वाद-विवाद होने लगा । उस समय उन दोनों के मध्य महादेव की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई और शुभ आकाशवाणी हुई । उसने दोनों से कहा कि पुत्र ! जो इस ज्योतिर्मयमूर्ति का अन्त देख लेगा, वही श्रेष्ठ माना जायगा, अतः धैर्य का निवास मत करो । उसके कथनानुसार विष्णु नीचे की ओर और मैं ऊपर की ओर गया । तदनन्तर विष्णु नीचे ही नीचे से लौटकर चले आये और उस मूर्ति के समीप बैठ गये । मुने ! मैं तो उसका अन्त न पाकर बहुत दूर चला गया । अन्त में यह कर उस प्रभु ईश को देखने के लिये लौटा । उस समय मेरे मन में ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि यदि मैं जोर देकर यह कहूँ कि मैंने अन्त देख लिया है तब तो उस विष्णु से मेरा श्रेष्ठत्व स्वयं सिद्ध हो जायगा, परन्तु फिर ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि पीडित होने पर भी सत्य वचन कहने वाले इन मुखों से किस प्रकार असत्य बोल्गा । नाना प्रकार के पापों में असत्य से बड़कर दूसरा पाप नहीं । अतः सत्यवादी मुखों से कैसे असत्य बोल्, यह सोचकर गदगद की आहृति का अतिभीषण पाँचवीं भूत बना कर उसी ने असत्य बोल्गा । इस प्रकार व्यवस्था कर धिरबाल तब ध्यायमान होकर वहाँ बैठे हुए जगन्प्रभु विष्णु ने कहा कि जनार्दन ! इसका अन्त मैंने देख लिया है अतः मेरी श्रेष्ठता स्वन सिद्ध है । इस प्रकार कहने ही मेरे बगल में दोनों हरि और शंकर सूर्य-चन्द्र की ज्योति के समान एकाकार हो गये । इस प्रकार उन दोनों को देखकर मैं तो हैरान हो गया । दर-दर दोनों की स्तुति करते लगा परन्तु उन दोनों जगन्नाथियों ने क्रुद्ध होकर उस वाणी में कहा ॥१-१३॥

हरिहर ने कहा—दुष्टे ! तुम नदी बन जाओ । असत्य से बड़कर दूसरा पाप नहीं है ॥१४॥

ब्रह्मवाच

ततः सा ब्रह्मलया भूत्वा नवीभावमुपागता । तद्दृष्ट्वा विस्मितो भोतस्तामब्रवमहं तदा ॥१५॥
यस्मादसत्यमुक्ताऽसि ब्रह्मवाचि स्थिता सती । तस्मादद्दृश्या त्वं भूयाः पापहृत्पाऽस्त्यसंशयम् ॥१६॥
एतच्छापं विदित्वा तु तौ देवौ प्रणता तदा । विशापत्वं प्रार्यपन्ती सुष्टाव च पुनः पुनः ॥१७॥
ततस्तुष्टौ देवदेवौ प्रायितौ त्रिवशाघ्नौ । प्रीत्या हरिहरावेवं वाचं वाचमथोचतुः ॥१८॥

[[1]] ' ।
गङ्गाया संगता भवे यदा त्वं लोकपावनी । तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने ॥१९॥

ब्रह्मवाच

तथेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गाया संगताऽभवत् । भागीरथी गौतमी च ततश्चापि स्वकं वपुः ॥२०॥
देवौ सा व्यगमद्ब्रह्मन्देवानामपि दुर्लभम् । गौतम्या संव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा ॥२१॥
भागीरथ्यां संव देवौ सरस्वत्यभिधीयते । उभयत्रापि विख्यातः सगमो लोकपूजितः ॥२२॥
सरस्वतीसगमश्च वाणीसंगम एव च । गौतम्या संगता देवौ वाणी वाचा सरस्वती ॥२३॥
संश्रयं पूजितं तीर्थं तत्र वाचा मित्रं प्रभुम् । देवेश्वरं पूजयित्वा विशापमगमद्यतः ॥२४॥
ब्रह्मा ब्रह्मर वाऽशौच्यं स्वं च धामागमन्पुनः । तस्मात्तत्र भुविर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च संगमे ॥२५॥
वागोऽक्षरं तनो दृष्ट्वा तानना मुनिमान्पुयात् । दानहोमादिकं किञ्चिदुपवासादिकां क्रियाम् ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब व्याकुल होकर वह मेरी असत्य वाणी नदी के रूप में परिणत हो गई । यह देखकर मैं विस्मित हो गया । उस समय डरते डरते मैंने उस वाणी से कहा—जिसलिये तुमने ब्रह्मवाणी में रहकर भी असत्य कहा है, अतः तुम निःसन्देह पापी हो, तुम अद्भुत हो जाओ । इस शाप को सुनकर वह उन दोनों देवों के चरणों पर गिर पड़ी । और बार बार प्रार्थना करती हुई अपने शाप-मोचन का उपाय पूछने लगी । इस प्रकार प्रार्थना करने पर देवपूजित वे दोनों देव प्रसन्न हो गये और उस वाणी से इस प्रकार बोले ॥१५-१८॥

हरिहर ने कहा—भद्रे ! लोकपावनी तुम जब गंगा से मिलोगी तब पुनः शुभानने ! तुम पवित्र शरीर प्राप्त करोगी ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही हो’ यह कहकर वह देवी भागीरथी गंगा और गौतमी में मिल गई । तदनन्तर ब्रह्मन् ! उमने देव-दुर्लभ अपना शरीर प्राप्त कर लिया । गौतमी में मिलने वाली वह देवी वाणी नाम में प्रसिद्ध हुई और भागीरथी गंगा में सरस्वती नाम से । दोनों स्थानों पर ये सगम लोक-विख्यात और लोकपूजित हैं । इस प्रकार दोनों गंगा (गौतमी, भागीरथी) में मिलने पर वही वाणी वाणी और सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुई और उसका सगम सरस्वती-सगम और वाणी-सगम कहलाने लगा । यत वहाँ वाणी देवेश्वर निज की पूजा कर शाप मुक्त हुई, अब बहुतीर्थ सब तीर्थों से उत्तम और श्रेष्ठ समझा जाता है । स्वयं ब्रह्मा वहाँ अपनी वाणी से दुष्प्रयोग-अन्य पापों को छोड़कर पुनः अपने लोह को चले गये । इसलिये जो कोई वहाँ पवित्र होकर सगम में स्नान करता और

य कुप्यत्सगमे पुण्ये ससारे न भवेत्पुन । 'एकोनविंशतिशत तीर्थाना तीरयोर्द्वयो' ॥
 नानाजन्मार्जिताशेषपापक्षयविधायिनाम् ॥२७॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये 'वाणीसगमवागीश्वराद्युभयतटस्थेकोन
 विंशतिशततीर्थवर्णन नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१३५॥
 गौतमीमाहात्म्ये षट्पण्डितमोऽध्याय ॥६६॥

अर्थ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

विष्णुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विष्णुतीर्थमिति ख्यात तत्र वृत्तमिदं शृणु । मौदगल्य इति विख्यातो मुदगलस्य सुतो ऋषिः ॥१॥
 तस्य भार्या तु जाबाला नाम्ना ख्याता सुपुत्रिणी । पिता ऋषिस्तथा वृद्धो मुदगलो लोकविश्रुतः ॥२॥
 तस्य भार्या तथा ख्याता नाम्ना भागीरथी शुभा । स मौदगल्यः प्रातरैव गङ्गा स्नानं यतव्रतः ॥३॥
 नित्यमव त्विदं कर्म तस्याऽऽसौ-मुनिसत्तम । गङ्गातीरे कुशैर्मृद्भिः 'शमीपुष्पैरहनिशम' ॥४॥

वागीश्वर का दान करता है वह इतने से ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है । जो उस पुण्य सगम पर दान होम और
 उपवास आदि अनुष्ठानों को करता है उसका पुनः ससार में जन्म नहीं होता है । इसने अतिरिक्त वहाँ दोन
 सटों पर अनेक जगों के उपाजित पाप को नष्ट करने वाले उन्नीस सौ तीर्थ हैं ॥२० २७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वाणीसगम आदि के दोनों सटों पर स्थित उन्नीस सौ तीर्थों का वर्णन
 नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३५॥

अध्याय १३६

विष्णुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) विष्णुतीर्थ नामक एक तीर्थ है । वहाँ जो घटना हुई उसको सुनो । मुदगल
 ऋषि ने मौदगल्य नामक प्रसिद्ध पुत्र था । उसकी सुपुत्रवती जाबाला नाम की पत्नी थी । उसके पिता वृद्ध मुदगल
 भी लोक प्रसिद्ध ऋषि थे । उसी प्रकार उनकी भागीरथी नाम की भार्या भी भगवन्मयी थी । वह पत्नी मौदगल प्रातः
 काल ही नियमत गंगा में स्नान करता था । मुनिव्रत ! उसका यह नित्य का कर्म था । गंगा-तीर पर प्रतिदिन
 वह मौदगल कुशा मृत्तिका और शमीपुष्प अथवा मणियों से पितृ द्वारा बताई विधि में अनुसार अपने मानस रूपी

गृहदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे । आवाहनं नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मौद्गलिः ॥५॥
 तेनाञ्जहूतस्त्वरत्रेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः । वैनतेयमयाञ्जहू शङ्खचक्रगदाधरः ॥६॥
 पूजितस्तेन श्रुपिणा स मौद्गल्येन यत्नतः । प्रब्रूते च कथाश्चित्रा मौद्गल्याय जगत्प्रभुः ॥७॥
 ततोऽनराहूणसमये विष्णुः प्राह स मौद्गलिम् । याहि वत्स स्वभवनं श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः ॥८॥
 एवमुक्तः स देवेन विष्णुना याति स द्विजः । जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम् ॥९॥
 मौद्गल्योऽपि तयाऽभ्येत्य किञ्चिदादाय नित्यशः । स्वमेव भवनं विद्वान्भार्यायै स्वाजितं धनम् ॥१०॥
 ददाति स महाविष्णुचरणाञ्जपरायणः । मौद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा ॥११॥
 शाकं मूलं फलं वाऽपि भर्त्राऽऽनीत तु यत्नतः । सुसंस्कृत्याप्यतिथीना बालानां भर्तुरेव च ॥१२॥
 दत्त्वा तु भोजन तेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्ते यतव्रता । भुक्तवत्स्वयं सर्वेषु रात्रौ नित्यं स मौद्गलिः ॥१३॥
 विष्णोः श्रुताः कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्तव्यं ह्यपि तः । एव बहुतिथे काले व्यतीते चातिविस्मिता ॥
 मौद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तारं वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥

जावालोवाच

यदि ते विष्णुरभ्येति समीपं त्रिदशाचित । तयाऽपि कष्टमस्माकं कस्मादित जगत्प्रभुम् ॥१५॥
 तत्पुच्छ त्वं महाप्राज्ञ यदाऽज्ञौ विष्णुरेति च । यस्मिंश्च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजौ भूतिः ॥
 नासं यान्ति कुतो दृष्टे तस्मात्पुच्छ जगत्पतिम् ॥१६॥

कमल म विष्णु का नित्य आवाहन करता था । उसके आह्वान को सुनकर जगत्पति और लक्ष्मी के पति शङ्ख-चक्र-गदा-धारी विष्णु गद्द पर सवार होकर दीर्घ चले आते थे । श्रुति मौद्गल्य उनकी भक्तिपूर्वक मलीमाँति पूजा करता था । पूजा से प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ उससे तरह की कथायें कहा करते थे । तदनन्तर अनराहूण काल में विष्णु मौद्गलि से कहते 'वत्स !' तुम अब अधिक थक गये हो, अपने भवन को जाओ' ॥१-८॥ इस प्रकार विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण घर जाता था । तब स्वयं भगवान् भी देवा के साथ अपने मन्दिर को आते थे । वह विष्णु के चरण-चमले में अनन्य निष्ठा रखने वाला विद्वान् मौद्गल्य प्रतिदिन इस प्रकार भगवान् का मुखद दशन पाता था । बाद में षोडासा घन भी कमा लेता था और उस घन का धर ल जाकर अपनी भार्या को दे दता था । उसकी वह प्रिया भार्या भी अति पतिव्रता थी । पति के द्वारा लाये हुए शाक, मूल और फल को यत्नपूर्वक स्वच्छ कर-रखती थी । बड़े प्रेम से अतिथि, बालक और पति को भोजन करा कर पीछे वह व्रतिनी स्वयं भोजन करती थी । मगरे भोजन कर लेने के बाद रात्रि में वह मौद्गलि विष्णु से सुनी हुई अनुपम कथा को बड़ी प्रसन्नता से अपने उन बाल-बच्चों को सुनाया करता था । इस प्रकार बहुत समय बीत गया । एक दिन पत्नी अत्यन्त विस्मित होकर अपने पति से एकान्त में बोली ॥९-१४॥

जावाला ने कहा—जब कि स्वयं दब-पूज्य विष्णु तुम्हारे पास आते हैं तब हम लोगों को इतना कष्ट क्या सहन करना पड़ता है ? इस बात को जब जगत्प्रभु तुम्हारे पास आये तब हे महामति ! तुम (उनसे) पूछना । त्रिमूर्ति स्मरण मात्र से जरा, जन्म और मृत्यु सम्बन्धी व्याधिचो नष्ट हो जाती है उसके दर्शन पाने पर हमारी विपत्तियाँ क्यों नहीं नष्ट होती । इसलिए इस रहस्य को जगन् के स्वामी से पूछो ॥१५-१६॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा प्रियावाक्यान्मोद्गल्यो नित्यवद्धरिम् । पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलिः ॥१७॥

मौद्गल्य उवाच

त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्र्यदुष्कृतम् । नाश याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथं स्थिता ॥१८॥

श्रीविष्णु उवाच

स्वकृतं भुज्यते भूतैः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा । न कोऽपि कस्यचित्किञ्चित्करोत्यत्र हिताहिते ॥१९॥

यादृश चोप्यते बीज फलं भवति तादृशम् । रसालः स्यान्न निम्बस्य बीजाज्जात्वपि कुत्रचित् ॥२०॥

न कृता गीतमोसेवा मार्चितौ हरिशकरो । न दत्तं यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथं भाजनं श्रियः ॥२१॥

त्वया न दत्तं किञ्चित्च ब्राह्मणेभ्यो ममापि च । यद्दीयते तदेवेह परस्मिन्चोपतिष्ठति ॥२२॥

मृद्भिर्वाभिः कुशैर्मन्त्रैः शुचिकर्म सर्ववत् यत् । करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात् ॥२३॥

विना दानेन न क्वापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत् । सत्कर्मचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्यात्ततो नरः ॥२४॥

ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत् । सर्वेषां सुलभा मुक्तिर्मद्भक्त्या चेह पूर्वतः ॥२५॥

भुक्तिर्दानादिना सर्वभूतदुःखनिवर्हणात् । अथवा लप्स्यसे मुक्तिं भक्त्या भुक्तिं न लप्स्यसे ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही बहूँगा’ यह कहकर प्रिया ने कवनानुसार उस श्रपि ने नित्य की भाँति हरि की पूजाकर विनीत भाव से हाथ जोड़कर पूछा ॥१७॥

मौद्गल्य ने कहा—जगन्नाथ ! तुम्हारे स्मरण मात्र से मनुष्यों के शोक, दारिद्र्यता और पापकर्म नष्ट हो जाते हैं। तब आपने दत्तन करने पर भी क्या मेरी विपत्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं ? ॥१८॥

श्री विष्णु ने कहा—तब सर्वदा अपने किये कर्मों का फल भोगते हैं। कोई भी किसी का इस तत्कार में हित या अहित नहीं करता। जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल भी मिलता है। वही पर भी मीम के बीज से आम का शोषा नहीं उगता। जिन्होंने कभी गौतमी की सेवा नहीं की, हरि शकर की अर्चना नहीं की, ब्राह्मणों को भोजन-दान नहीं दिया वे किस प्रकार लक्ष्मी के अधिकारी हो सकते हैं। तुमने आज तक किसी ब्राह्मण को अथवा मुसको कुछ नहीं दिया। जो कुछ दूसरों को दिया जाता है, वही इस लोक और परलोक में प्राप्त होता है। तुम जो सर्व मिट्टी, जल, भुष और मन्त्रों से शुचिकर्म करते हो, इसलिये शरीर से बन्ध सहेते हुए भी पुनीत आ मा वाले हो। बिना दान के वही भी मनुष्य को भोग-मुक्त की प्राप्ति नहीं होती। सत्कर्म के आचरण से मनुष्य मुक्त हो जाता है। बाद में वह विरक्त हो जाता है। इससे बाद वह अवाधित ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह जीवन्मुक्त हो जाता है। मेरी भक्ति और पूर्ण कर्मों (सात्विक आदि योगदानों और मदिर बनवाने) से सब मनुष्यों के लिये इस लोक में मुक्ति सुलभ है। दान आदि देने और सब प्राणियों से दुःख दूर करने से मुक्ति या मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है, विन्तु केवल भक्ति से मुक्ति नहीं मिलती ॥१९-२६॥

मौद्गल्य उवाच

भक्त्या मुक्तिं कथं भूयाद्भुक्तेर्भुक्तिं सुदुर्लभा । जाता चेदेहिना मुक्तिं किमन्येन प्रयोजनम् ॥२७॥

भक्त्या मुक्तिं सर्वपूज्या तामिच्छेय जगन्मय

॥२८॥

विष्णु उवाच

एतदेवान्तरं ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन् । ब्राह्मणायाथवाऽयिम्यस्तदेवाक्षयतां व्रजेत् ॥२९॥

मामध्यात्वाऽथ यद्दद्यात्तन्मात्रफलप्रदम् । तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र कल्पते ॥३०॥

तस्मादेहि महाबुद्धे भोज्यं किञ्चिन्मम ध्रुवम् । अथवा विप्रमुखाय गीतमीतीरमाश्रित ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्य प्राह तं विष्णु देयं मम न विद्यते । नान्यत्किञ्चन देहादि यत्तत्त्वयि समर्पितम् ॥३२॥

ततो विष्णुर्गुरुमन्त्रं प्राह शीघ्रं जगत्पति । इहाऽऽनयस्व कण्ठे ममाय चार्पयिष्यति ॥३३॥

ततो योगदानय भोगान्प्राप्स्यते मनसः प्रियान् । आकर्ण्य स्वामिनाऽऽदिष्टं तथा चक्रे स पक्षिराट् ॥३४॥

विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रत । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्विद्वक्कर्माणमब्रवीत् ॥३५॥

मौद्गल्य ने कहा—भुक्ति से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है भुक्ति से तो मुक्ति अत्यंत दुर्लभ है ? यदि भुक्ति से ही मुक्ति मिल जाय तो मनुष्य को अथ वस्तु की आवश्यकता ही नहीं ? जगन्मय । यदि भुक्ति से मिली भुक्ति सर्वमान्य है तो मैं उसी को चाहता हूँ ॥२७ २८॥

विष्णु ने कहा—दान देने के भी कई मार्ग हैं । ब्रह्मन् । उनमें अन्तर यह है कि जो दान ब्राह्मणों या याचकों को मेरा स्मरण करते हुए दिया जाता है वह असय हो जाता है । और जो मर स्मरण के बिना दिया जाता है उससे केवल उतन परिमाण में ही फल मिलता है । वह दिया हुआ दान तो केवल दान-मात्र है वह इस जीवन में भोग-मुक्त का कारण नहीं बनता । अतएव महाबुद्ध ! मुझको कुछ अवश्य दो अथवा इस गीतमी के तीर पर श्रद्धा ब्राह्मण को दो ॥२९ ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर मौद्गल्य ने भगवान् विष्णु से कहा कि परन्तु मेरे पास इस समय कुछ भी देने योग्य नहीं है । देह को छोड़ कर और कुछ नहीं है । वह भी आपको अर्पित हो चुकी है । तदनन्तर जगत्पति विष्णु ने गृह्य स गीत कहा तुम यहाँ कुछ अन्न के दान ले आओ जिसको यह मेरा भक्त मुझको देकर उचित मनो वाञ्छित भोगों को प्राप्त कर सके । स्वामी की आज्ञा को सुनकर पक्षिराज ने शीघ्र उसका पालन किया । तब ब्रह्मा मौद्गल्य ने विष्णु के हाथ में अन्न-वर्णा को रख दिया । इसी बीच विष्णु ने विष्वक्वर्मा से कहा ॥३२ ३५॥

विष्णुखाच

यावच्चास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु । भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनोपिताः ॥

गावो हिरण्यं धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

यच्च किञ्चिन्मन प्रीत्यै लोके भवति भूषणम् । तत्सर्वमाप मोद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावतः ॥३७॥

गृहं गच्छेति मोद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ । आश्रमे स्वस्य सर्वार्थं दृष्ट्वा ऋषिरभापत ॥३८॥

ऋषिरुवाच

अहो दानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृतिः । अहो गङ्गाप्रभावश्च कविचार्यो महानयम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

मोद्गल्यो भार्यया सार्धं पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः । पितृभ्यां द्रुभुजे भोगान्भुक्तिं भुक्तिमवाप च ॥४०॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं मोद्गल्यं वेषणं तथा । तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिभुक्तिफलप्रदम् ॥४१॥

तत्र श्रुतिः स्मृतिर्वाङ्मि तीर्थस्य स्यात्कथंचन । तस्य विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापमुक्तः सुखी भवेत् ॥४२॥

एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीर्थोद्दयोः । सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मोद्गल्यविष्णुतीर्थार्थिकादशसहस्र-

तीर्थवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

गीतमीमाहात्म्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

विष्णु ने कहा—महाबुद्धि ! जब तक इसके कुल में सात पुरुष (सात पीढ़ियों तक के पुरुष) हो तब तक के लिये मनचाही इच्छायें अर्थात् गौ, सोना, अन्न, वस्त्र और आमूषण आदि इसके घर में हो जायें । ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार में मन की प्रिय लगने वाले जो कुछ आमूषण या पदार्थ हो सकते हैं, वे सब सामग्रियाँ विष्णु और गंगा के प्रभाव से मोद्गल्य को प्राप्त हो गईं । तब विष्णु ने मोद्गल्य को घर आने की आज्ञा दी । वह अपने घर गया । अपने आश्रम में सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण देखकर ऋषि ने कहा ॥३७-३८॥

ऋषि ने कहा—अहा ! यह दान का प्रभाव है ! यह विष्णु की उपासना का प्रभाव है । अहा ! यह गंगा का प्रभाव है । वीन इस महान् प्रभाव को जान सकता है ॥३९॥

ब्रह्मा ने कहा—मार्ग, पुत्र, पौत्र, भाई, बन्धु और माता पिता के सहित मोद्गल्य ने विविध भोगों को भोग-पर भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त किया । उस समय से वह तीर्थं मोद्गल्य और वेषण तीर्थं कहा जाता है । उसमें स्नान-दान करने से भुक्ति एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है । यदि किसी प्रकार किसी को उग तीर्थ का नाम-श्रवण हो जाय तो उस व्यक्ति पर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं और वह सब पापों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है । उगरे दोनों तीर्थ । परस्नान, दान और जप से सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाले ग्यारह हजार तीर्थ हैं ॥४०-४३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मोद्गल्य विष्णुतीर्थ आदि ग्यारह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक ही छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

॥१॥

लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातं साक्षाल्लक्ष्मीविवर्धनम् । अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद ॥१॥
सवादश्च पुरा त्वासील्लक्ष्म्याः पुत्र दरिद्रया । परस्परविरोधिन्यावृभे विश्वं समीपतुः ॥२॥
ताम्यामव्यापृतं वस्तु तत्रास्ति भुवनत्रये । मम जेष्ठ्यं मम ज्येष्ठ्यमित्यूचतुरुभे मियः ॥
अहं पूर्वं समुद्भूता इत्याह श्रियभोजसा ॥३॥

श्रीलक्ष्मीरुवाच

कुलं शीलं जीवितं वा देहिनामहमेव तु । मया यथा देहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव ॥४॥
ब्रह्मोवाच

दरिद्रया च सा प्रोक्ता सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम् । मुक्तिमंदाश्रिता नित्य दरिद्रवं वचोऽब्रवीत् ॥५॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च । यत्राहमस्मि तत्रंते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥६॥
न भयोद्भूतिरुन्माव इर्ष्या उद्धतवृत्तिता । यत्राहमस्मि तत्रंते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥७॥
दरिद्रया वचः श्रुत्वा लक्ष्मीस्तां प्रत्यभाषत ॥८॥

अध्याय १३७

लक्ष्मीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) साक्षात् लक्ष्मी को बड़ाने वाला लक्ष्मी-तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है ।
नारद ! उसकी दरिद्रतानाशक पवित्र कथा को सुनो । पुत्र ! आज से बहुत पहले लक्ष्मी का दरिद्रता के साथ सवाद
हुआ । परस्पर विवाद करती हुई वे दोनों ससार में आईं । तीनों भुवन में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो उनसे अछूता
बचा हो । दोनों परस्पर में बड़ी हैं, मैं बड़ी हूँ, वह बड़ी है । दरिद्रता ने बड़े तपाक से लक्ष्मी से कहा कि मैं पहले
उत्पन्न हुई हूँ । यह सुन कर लक्ष्मी ने कहा ॥१-३॥

श्रीलक्ष्मी ने कहा—प्राणियों का कुल, शील और जीवन मैं ही हूँ । मेरे बिना प्राणी जीते हुए भी मेरे ब
समान हैं ॥४॥

ब्रह्मा बोले—दरिद्रता ने लक्ष्मी से कहा—‘सबसे थोड़ा मैं हूँ । मुक्ति सर्वदा मेरे ही अधीन है ।’ फिर
दरिद्रता ने ऐसा कहा कि जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ काम क्रोध, लोभ मद और मात्सर्य वगैरह भी टिकने नहीं पाते । जहाँ मैं
रहती हूँ वहाँ भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्वेग-व्यवहार वगैरह भी नहीं रहते हैं । दरिद्रता की बातों को सुनकर लक्ष्मी ने
पत्पत्तर दिया ॥५-८॥

लक्ष्मीदेवाच

अलकृतो मया जन्तु सर्वो भवति पूजित । निर्धनं शिवतुल्योऽपि सर्वैरप्यभिभूयते ॥९॥
 देहोति वचनद्वारा देहस्या पञ्च देवता । सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीह्योशान्तिकोत्तय ॥१०॥
 तावद्गुणा गुणत्व च यावन्नार्थयते परम् । अर्थो चेत्पुरुषो जात क्व गुणा क्व च गौरवम् ॥११॥
 तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालय । नमस्य सर्वलोकाता यावन्नार्थयते परम् ॥१२॥
 कष्टमेतन्महापाप निर्धनत्व शरीरिणाम् । न भानयति नो ववित न स्पृश्यतधन जन ॥१३॥
 अहमेव तत श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वच ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तल्लक्ष्मीवचन श्रुत्वा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

दरिद्रोवाच

वक्तु न लक्ष्मीर्ज्येष्ठाऽहमिति वै लज्जते मुहु । पापेषु रमसे नित्य विहाय पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
 विश्वस्तवञ्चका नित्य भवतो श्लाघसे कथम् । सुख न तादृशत्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यथागुरु ॥१७॥
 न तथा जायते पुसा सुरया दारुणो मद । त्वत्सन्निधानमात्रेण यथा धं विदुषामपि ॥१८॥

लक्ष्मी ने कहा—मुझसे अलकृत साधारण मनुष्य भी सम्मान पाता है। निर्धन मनुष्य चाहे जिस के तुल्य ही क्यों न हो वह सबसे अपमानित होता है। 'दो इत शब्द को सुनते ही देह म रहने वाले धी श्री ह्री शान्ति और कीर्ति य पांच देवता तुरत देह स निवृत्त कर चले जाते हैं। मनुष्य में तब तक ही सारे गुण और महत्ता रहती है जब तक कि वह दूसरो से याचना नहा करता। यदि पुरुष याचक बन गया तब तो वहाँ वे गुण और वहाँ वे गौरव। मनुष्य तब तक ही सर्वश्रेष्ठ सब गुणा का घर और सब लोग का पूज्य होता है जब तक वह दूसरो से याचना नहीं करता। मनुष्या के णि निधनता महापाप है बहुत बड़ा कष्ट है। मनुष्य निधन ध्यवित्त का न तो मान करता है न उससे बोझता है यहाँ तक कि उसका स्थान भी नहीं करता है। दरिद्र ! मरी बात सुनो। इसणि मैं ही तुमसे श्रेष्ठ हूँ ॥९१४॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी की बड़ी-बड़ी बात को सुनकर दरिद्र ने कहा ॥१५॥

दरिद्रा ने कहा—लक्ष्मी ! मैं बेटी हूँ यह कहते क्या तुमको फिर लज्जा नहीं हो रही है ? तुमको पता नहीं कि तुम पुरुषोत्तम (महवान् और सत्पुरुष) को छोड़कर पापियों के साथ रहा करती है। विवाह पात्रा के साथ नित्य प्रवचना करने वाली तुम क्या बड़-बड़कर बातें बना रही हो ? तुमको पाने से मनुष्य इतना अधिक मुग नहीं पाना जितना अधिक परचाताप। मनुष्य को गुरु-मान स भी उनका भगा नहीं होता जितना तुम्हारे साथ रहने

सदैव रमसे लक्ष्मी प्रापस्त्व पापकारिषु । अह वसामि योग्येषु धर्मशीलेषु सर्वदा ॥१९॥
 शिवविष्ण्वनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च । सदाचारेषु शातेषु गुरुसेवोद्यतेषु च ॥२०॥
 सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु । निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माद्व्येष्टय मयि स्थितम् ॥२१॥
 ब्राह्मणेषु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु । निर्भयेषु वसिष्णवामि लक्ष्मीस्तव गृणु ते स्थितिम् ॥२२॥
 राजर्षीषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च । पिशुनेषु च लुब्धेषु विकृतेषु शठेषु च ॥२३॥
 अनार्येषु कृतघ्नेषु धर्मघातिषु सर्वदा । मित्रद्रोहिष्वनिष्ठेषु भग्नचित्तेषु वससे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एव विषदमाने ते जगत्तुर्भागुभे अपि । तयोर्वाक्यमुपश्रुत्य मयोक्ते ते उभे अपि ॥२५॥
 मत्त पूर्वतरा पृथ्वी आप पूर्वतरास्तत । स्त्रीणां विवाद ता एव स्त्रियो जानन्ति नेतरे ॥२६॥
 विशेवत पुनस्ताम्य कमण्डलुभवाश्च या । तत्रापि गौतमी देवी निश्चय कथयिष्यति ॥२७॥
 सैव सर्वातिशहर्षा सैव सदेहकर्तरी । ते मद्वाक्याद्बुध गत्वा भूम्या च सहिते अपि ॥२८॥
 अद्भिश्च सहिता सर्वा गौतमी यपुरापगाम् । भूमिरापस्तयोर्वाक्य गौतम्यै क्रमश स्फुटम् ॥२९॥
 सर्वं निवेदयामासुर्पथावृत्त प्रणम्य ताम् । दरिद्रायाश्च लक्ष्म्याश्च वाक्य मध्यस्थवत्तदा ॥३०॥

से चाहे वे विद्वान् ही क्यों न हों। लक्ष्मी ! प्राय तुम सबदा पाप कम करने वालों के साथ ही रमा करती हो। इसके विपरीत मैं सबदा योग्य धर्म प्रेमी व्यक्तियों के समीप रहती हूँ। लक्ष्मी ! मैं सबदा सज्जन विद्वान् शूर बुद्धिमान् साधु शिव और विष्णु के भक्त महान् कृत्तन सदाचार-परायण शान्त और गुरु-सेवा में तत्परता दिखाने वाले जना के समीप रहा करती हूँ इसलिये श्रष्टता मुझमें है। लक्ष्मी ! (मेरे अन्य वास-स्थानों को भी सुन लो) मैं शूद्र ब्राह्मण पवित्रात्मा व्रत प्रेमी त्यागी भिक्षु और निर्भीक जनों के समीप ही निवास करती हूँ। तुम तो राजा के चापलूस या सेवक पापी निष्ठी दुष्ट चुगल्खोर हत्यारे शठ विकृत (चंचल) अनाय कृतघ्न धर्म द्रोही मित्र-द्रोही अनिष्ट करने वाले और रूखे लोगों से ही सबदा प्रेम करती हो ॥१६-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर विवाद करती हुई वे दोनों मेरे पास आई। उनकी बातों को सुनकर मैंने उन दोनों से कहा मुझसे पूव पृथ्वी हुई उससे भी पूव अप्स (जल)। स्त्रियों के विवाद का निपटारा वे स्थित ही जानती हैं दूसरे नहीं। उनमें भी विषेय रूप से जो मेरे कमण्डलु से उत्पन्न नदियाँ हैं वे पूर्ण रहस्य हैं। उनमें भी गौतमी देवी निश्चय ही विषय वर देगे। वही सब कुत्तों को नष्ट करने वाली है सदेहों का काटने वाली छुरी भी वही है। वे दोनों मेरे बचनानुसार पृथ्वी के पास गई। भूमि के सहित वे दोनों जल के समीप गई। वहाँ से वे सब गौतमी नदी के पास गई। गौतमी को प्रणाम कर भूमि और जल ने उन दोनों के बचन को प्रमाण स्पष्ट रूप से जसा कि दोनों कहती थीं कह सुनाया। नारद ! तब दरिद्रा और लक्ष्मी के वाक्यों को सुनकर वह गौतमी गंगा

शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्यां भुवि नारद । शृण्वतीष्वप्सु सा गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् ॥
सप्रशस्य तथा लक्ष्मीं गौतमीं वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

गौतम्युवाच

ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्रीः कीर्तिसंज्ञिता । धनश्रीश्च यशःश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥३२॥
भुक्तिश्रीश्चाय भुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृतिः क्षमा । सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः शान्तिरापस्तथा महौ ॥३३॥
अहशक्तिरथोपध्य भुति शुद्धिविभावरी । द्यौर्ज्योत्स्ना आशिषः स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उपा शिवा ॥३४॥
यत्किञ्चिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्तं घराचरम् । ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वय साधुषु ॥३५॥
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्यनुसारिषु । यद्यद्रम्यं सुन्दरं वा तत्तल्लक्ष्मीविजृम्भितम् ॥३६॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वे लक्ष्मीमयं जगत् । यस्मिन्कस्मिश्च यत्किञ्चिदुत्कृष्टं परिदृश्यते ॥३७॥
लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तथा हीनं न किञ्चन । अत्रेमां सुन्दरीं देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जते ॥३८॥
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् । ततः प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्रावैरकार्यभूत ॥३९॥
तावदरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते । ततः प्रभृति ततोर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम् ॥४०॥
तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवापुष्यवान्भवेत् । तीर्थानां षट्सहस्राणि तस्मितीर्थे महामते ॥
देवैर्मनुजिजुष्टाना सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये लक्ष्मीतीर्थादिषट्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टपष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

मध्यस्थ के समान लोक पालो, पृथ्वी और जल को सुनाती हुई लक्ष्मी की प्रशंसा करके दरिद्रा से बोली ॥२५-३१॥

गौतमी ने कहा—ब्रह्मश्री, तप श्री, यज्ञश्री, कीर्ति नामक श्री, धनश्री, यश श्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती,

भुक्तिश्री भुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, पुष्टि, शान्ति, जल और पृथिवी, एवं आत्मशक्ति इसके बाद ओषधियां धृति, शुद्धि उजेली रात, आकाश, ज्योत्स्ना (चाँदनी) आशीर्वाद, स्वस्ति, व्याप्ति, माया, उपा, शिवा अथवा जो कुछ इस लोक मे है—यह सारा घराचर लक्ष्मी से व्याप्त है । इसके अनन्तर ब्राह्मणों, धीरों, क्षमावानों, साधुओं, विद्वानों अथवा अन्य भुक्ति भुक्ति के अनुरागियों मे जो कुछ रमणीयता या सुन्दरता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मी का ही प्रसार है । और अधिक क्या कहा जाय, सारा जगत् लक्ष्मीमय है । जिस किसी मे जो कुछ उत्कृष्टता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मीमय है, उससे रहित कोई भी वस्तु नहीं । तुम इस विषय मे लक्ष्मी से प्रतिस्पर्धा करने मे लजाती नही ? गंगा ने उस दरिद्रा से कहा । यहाँ से चली जाओ ! जाओ ! तब से गंगाजल दरिद्रा का शत्रु बन गया । दरिद्रा से दुःख तभी तक होता है जब तक कि गंगा की सेवा नही की जाती । उस समय से वह तीर्थ पवित्र और दरिद्रता को भगाने वाला हो गया । वहाँ स्नान और दान करने से मनुष्य धनवान् और पुण्यवान् होता है । महामति ! उस तीर्थ मे सब प्रकार की सिद्धियां देने वाले छह हजार तीर्थ हैं, जिनमे स्नान और वास करने के लिये देवता, ऋषि और मुनि भी लालायित रहते हैं ॥३२-४१॥

श्रीब्रह्मपुराण मे लक्ष्मीतीर्थ आदि छह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३७॥

अष्टाविंशदधिकशततमोऽध्यायः

भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम् ॥१॥
 शर्यातिरिति विख्यातो राजा परमधार्मिकः । तस्य भार्या स्वविष्टेति रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२॥
 मधुच्छन्दा इति ख्यातो वंद्यामिश्रो द्विजोत्तमः । पुरोधस्तस्य नृपतेर्ब्रह्मर्षिः शमिना प्रभुः ॥३॥
 दिशो विजेतुं स जगाम राजा, पुरोधसा तेन नृपप्रवीरः ॥ ॥ ॥
 पुरोपसं प्राह महानुभावः, जित्वा दिशश्चाध्वनिं सनिविष्टः ॥४॥
 पप्रच्छेद केन खेदं गतोऽसि, हेतुं वदस्वेति महानुभावः ।
 त्वमेव राज्ये भव सर्वमान्यः, समस्तविद्यानिखद्योद्योः ॥५॥
 विभूतपापं परितापशून्यं, किमन्यचेता इव लक्ष्यसे, त्वम् ॥ ॥ ॥
 जितेयमूर्ध्नि विजिता नरेन्द्रा, हृष्यस्य हृत्तो महतीह जाते ॥ ॥ ॥ ॥६॥
 किं त्वं कृशो मे वद सत्यमेव, द्विजातिवर्षातिमहानुभावः ।
 सबोध्य शर्यातिमुवाच, विप्रश्छन्दोमधु प्रेममयीं प्रियोक्तिम् ॥७॥

अध्याय १३८

भानु आदि तीन महस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्या को सब सिद्धियाँ देने वाला भानुतीय नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ जो महापापों को दूर करने वाली घटना घटी उसको अब कह रहा हूँ सुना ।

शर्याति नामक एक प्रसिद्ध परम धार्मिक राजा था। उसकी स्वविष्ठा नाम की माया या जो लोक में अनुपम सुन्दरी थी। उस नरेन्द्र के मधुच्छन्दा नामक विद्वान्मित्र-पुत्रोत्पन्न उत्तम ब्राह्मण पुरोहित था जो निःशर्कमिया मगधेष्ट और ब्रह्मर्षि थे। वह मगधेष्ट राजा अपने उस पुरोहित के साथ दिग्विजय करने चला। मगधूय शिवाजी का जीत कर जब लौटने लगा तब रास्ते में महानुमवी पुरोहित का पूछा—‘महानुभाव । आप क्या इतने गिन्न हैं कृपाकर कारण बताइए। आप ही मेरे राज्य में राज्यमान्य हैं समस्त विद्याओं के प्रासंगीय ज्ञाता हैं निरुपाय हैं और सत्पावन्य हैं फिर क्या आज आप अयमनरक-भय शिवाई देने हैं। सारी महती वसुधारा जीत ली गई परन्तु क्या मैं हो गया इस प्रकार महानु आनन्द की सामग्री या जान पर भी आप क्या दुःख माने जा रहे हैं ? हे महानुभाव ! द्विजातिव्यय ! समय सत्य कहिये। विप्र मधुच्छन्दा ख्याति को सबोधित करने हुए इस प्रकार प्रेममय मधुर शरीर बोले—॥१-७॥

मधुच्छन्दा उवाच

शृणु भूपाल मद्वाक्य भार्यया यदुदीरितम् । स्थिते यामे वयं यामो यामिनी चार्धंगामिनी ॥८॥
स्वामिनी चास्य देहस्य कामिनी सा प्रतीक्षते । स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्यं शोषं याति कलेवरम् ॥
विकारे स्मरसजाते जीवातुर्नलिनानना ॥९॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य चाश्रवीद्राजा पुरोधसमरिदम ॥१०॥

राजोवाच

त्व गुरर्मम मित्रं च किमात्मानं विडम्बसे । किमनेन महाप्राज्ञं मम वाक्येन मानद ॥
क्षणविध्वंसिनि सुखे का नामाऽऽस्या महात्मनाम् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य मतिमान्मधुच्छन्दा वचोऽब्रवीत् ॥१२॥

मधुच्छन्दा उवाच

यत्राऽऽनुकूल्यं दपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते । न चेदं दूषणं राजभूषणं चातिमन्यताम् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

आजगाम स्वकं देशं महत्या सेनया वृतं । परोक्षार्थं च तत्प्रेमं पुर्यां वार्तामदीदिशत् ॥१४॥

मधुच्छन्दा बोले—भूपाल ! भार्या ने जो कुछ मुझसे कहा है उसको सुनो । प्रहर बीत जाने पर हम लोग घर जायेंगे और आज अद्ध रात्रि बीत जाने पर मेरे इस शरीर की स्वामिनी मेरे जीवन की सजीवनी कमलमुखी मेरी स्त्री बुढ़ होकर काम भावना से भरी प्रतीक्षा करती रहेगी । उस कामिनी प्रिया के वाक्यों का स्मरण कर मेरा शरीर सुखता जा रहा है ॥८॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित की बात सुनकर शत्रुविजेता राजा ने हँस कर कहा ॥९॥

राजा ने कहा—आप मेरे गुरु हैं मित्र हैं । क्यों इस प्रकार अपने को विडम्बना में डाल रहे हैं । मेरे मानद ! महाप्राज्ञ ! इस वाक्य से क्या प्रयोजन । इस क्षणमगुर सुख के पीछे महापुरुषों को इतनी निष्ठा रखने से क्या लाभ ? ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर मतिमान मधुच्छन्दा ने कहा ॥१२॥

मधुच्छन्दा ने कहा—जहा पति-पत्नी में हृदय की इस प्रकार एकता रहती है वहाँ निवय (धर्म अथ काम) की बढ़ती होती है, राजन् ! इसको जीवन का अभिशप नहीं बरदान मानना चाहिए ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा अपनी महती सेना के साथ अपने देश में आया । पुरोहित-वन्धु की प्रेम-परीक्षा के लिये उन्होंने राजधानी में द्विद्वारा पिटवा दिया कि दिग्विजय के लिए प्रस्थित राजा शर्पाति को पुरोहित के सहित

दिशो विजेतु शर्यातौ याते राक्षसपुंगव । हत्वा रसातल यातो राजान सपुरोधसम् ॥१५॥
राजो भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम । वार्ता श्रुत्वा दूतमुखान्मधुच्छन्द प्रिया पुन ॥१६॥
तदेवाभूदगतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत् । तस्या वृत्त तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञे न्यवेदयन् ॥१७॥
यत्कृत राजपत्नीभि प्रियया च पुरोधस । विस्मितो दुःखितो राजा पुनर्दूतानभाषत ॥१८॥

राजोवाच

शीघ्र गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलैवरम् । रक्षन्तु वार्तां कुस्त राजाऽऽगन्ता पुरोधसा ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तातुरे राज्ञि वागुवाचाशरीरिणी

॥२०॥

आकाशवागुवाच

विधास्यत्यखिल गङ्गा राजस्तव समीहितम् । सर्वाभिपङ्गशमनी पावनी भुवि गौतमी ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रित । ब्राह्मणेभ्यो धन दत्त्वा तर्पयित्वा पितृन्दिजान् ॥२२॥

किसी बली राक्षस ने मार डाला और स्वयं रसातल चला गया । दूतों के मुख से ऐसी वार्ता सुनकर हे मुनिधेष्ठ ! राजा की स्त्री इसकी सच्चाई की जाच करने लगी परन्तु मधुच्छन्दा की स्त्री उसी समय निष्प्राण हो गई । इस प्रकार खिलवाड़ मही एक विचित्र सी घटना हो गई । दूतों ने उसकी इस अवस्था को देखकर राजा से जाकर राज-पत्नियों ने और पुरोहित की स्त्री ने जो कुछ किया यह कह सुनाया । यह सुनकर अत्यन्त विस्मित और दुःखित हुए राजा ने पुन दूतों से कहा—॥१४ १८॥

राजा ने कहा—दूतों ! शीघ्र जाओ ब्राह्मणी का जो शरीर है उसकी रक्षा करो और ऐसा घोषित कर दो कि राजा पुरोहित के साथ आ रहे हैं ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के इस प्रकार चिन्तातुर होने पर आकाशवाणी हुई ॥२०॥

आकाशवाणी ने कहा—राजन् ! तुम्हारी सब कामनाओं को सब आपत्तियों को शान्त करने वाली पृथ्वी की पुनीत नदी गौतमी पूजा कर देंगी ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शर्याति ने गौतमीतट पर स्थित होकर ब्राह्मणा को धन दिया तथा पितरों और दिव्यों को तृप्त किया और उस द्विजधष्ठ पुरोहित को बहुत-सा धन देकर विदा किया । इसके अनन्तर स्वयं दूसरे तीर्थों

'पुरोहितं द्विजश्रेष्ठं प्रेषयित्वा धनान्वितम्। अन्यत्र तीर्थे सार्वपु दानं देहि (ददौ) प्रयत्नतः॥२३॥
 एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्य पुरोहितः। गते तस्मिन्गुरौ राजा वंशवामित्रे महात्मनि॥२४॥
 सर्वं बलं प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्। इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गां भानुं सुगनपि॥२५॥
 यदि दत्तं यदि हृतं यदि त्राता प्रजा मया। तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुष्येण जीवतु॥२६॥
 इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातो नृपसत्तमे। तदं व जीविता भार्या राजस्तस्य पुरोधसः॥२७॥
 अग्निप्रविष्ट राजानं श्रुत्वा विस्मयकारणम्। पतिव्रतां तथा भार्यां मृता जीवान्विता पुनः॥२८॥
 तदर्थं चापि राजानं 'त्यक्तात्मानं' विशेषतः। आत्मनश्च पुनः कृत्यमस्मरन्नृपतेर्गुरुः॥२९॥
 अहमप्यग्निमावेक्ष्य उत यास्ये प्रियान्तिकम्। अथवेह तपस्तप्स्ये ततो निश्चयवान्द्विजः॥३०॥
 एतदेवाऽऽत्मनः कृत्यं मन्ये सुकृतमेव च। जीवयामि च राजानं ततो यामि प्रियां पुनः॥३१॥
 एतदेव शुभं मे स्यात्ततस्तुष्टाव भास्करम्। न ह्यन्यः कोऽपि देवोऽस्ति सर्वाभोष्टप्रदो रवेः॥३२॥

मधुच्छन्दा उवाच

नमोऽस्तु तस्मै सूर्याय मुक्तयेऽमिततेजसे। छन्दोमयाय देवाय ओकारायैव ते नमः॥३३॥
 विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूर्तये। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतवे प्रभविष्णवे॥३४॥

भे अनुचरो के सहित जाकर बड़े चाव से दान दिया,। पुरोहित राजा के इन कार्यों के रहस्य को नहीं जानता था ॥
 इस महात्मा विश्वामित्रकुलोत्पन्न गुरु के चले जाने पर राजा ने सब सेनाओं को राजधानी भेज दिया, और स्वयं
 वह गया-तट पर अग्नि में गया, सूर्य और देवताओं से यह प्रार्थना करता हुआ कि यदि मैंने कुछ दान दिया है, हवन
 किया है और प्रजाओं की रक्षा की है तो मेरे उन पुण्यों के प्रभाव से तथा मेरे शेष आयु से वह साध्वी ब्राह्मणी
 जीवित हो जाय, घुस गया। राजा, शर्याति के अग्नि में प्रवेश करते ही उस राज-पुरोहित की भार्या शीघ्र ही
 जीवित हो गई। नृपति-गुरु ने जब राजा का इस प्रकार का विस्मयजनक अग्नि प्रवेश और अपनी पतिव्रता भार्या
 का मर कर पुन जीवित होना सुना और विशेष रूप से यह सुना कि राजा ने अपने को उसके लिये अग्नि में जला
 दिया है, तब वह अपना कर्त्तव्य सोचने लगा। उसने सोचा कि क्या मैं भी अग्नि-प्रवेश करूँ, या प्रिया के पास
 जाऊँ अथवा यही तपस्या करूँ, अन्तर्गत उसने निश्चय किया कि यही मेरा पुण्य कर्त्तव्य है कि पहले राजा को
 जीवित करूँ तब फिर प्रिया के पास जाऊँ। यही मेरे लिए वस्थानप्रद है। ऐसा सोचकर वह भगवान् भास्कर की
 स्तुति करने लगा और बोला कि सूर्य को छोड़ दूसरा कोई भी सब प्रकार के अभोष्ट को पूरा करने वाला
 नहीं है ॥२२-३२॥

मधुच्छन्दा बोले—उस अमित तेजस्वी, मुक्तिस्वरूप सूर्य को नमस्कार है, ओंकार के अर्थ स्वरूप वेदमय
 देव को नमस्कार है। विरूप, सुरूप, त्रिगुणात्मक, त्रिमूर्ति, स्थिति, सृष्टि और विनाश के आदि कारण एवं महा-
 महिमशाली सूर्य को नमस्कार है ॥३३-३४॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नः सूर्योऽभूद्धरयस्त्वैत्यभाषत

॥३५॥

मधुच्छन्दा उवाच

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम् । आत्मनश्च शुभान्पुत्रान्नाजश्चैव शुभान्वरान् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रादाज्जपन्नायः शर्पातिं रत्नभूषितम् । तां च भार्यां वरानन्यान्सर्वं क्षेममयं तथा ॥३७॥

ततो धातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा । पयो सुखी स्वकं देशं तत्तु तीर्थं शुभं स्मृतम् ॥३८॥

तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च । ततः प्रभृति तत्तीर्थं भानुतीर्थमुदाहृतम् ॥३९॥

मृतसंजीवनं चैव शर्पाति चेति विभ्रुतम् । माधुच्छन्दसमाख्यातं स्मरणात्पापनुन्मुने ॥४०॥

तेषु स्नानं च दानं च सर्वैकनुकूलप्रदम् । मृतसंजीवनं तत्स्यादायुरारोग्यवर्धनम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्ट-

त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

गीतमोमाहात्म्य एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सूर्य प्रसन्न हो गये और कहा कि 'वर माँगे' ॥३५॥

मधुच्छन्दा बोला—'देवेश' ! राजा और मेरी प्रिय भाषिणी भार्या को जीवित कर दो, साथ ही मुझे उत्तम पुत्र और राजा को भी उत्तम वरदान दो ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रसन्न होकर जपन्नाय ने रत्न-भूषित शर्पाति, (तथा) भार्या (विप्रपत्नी को जीवितदान), अन्य वरदान और अत्येक प्रकार के कन्यागमस आसीर्षादि दिये । इस प्रकार वरदान पाकर वह विप्र अपनी प्रिया के साथ आनन्द और सुतपूर्वक अपने देश को चला गया । वह तीर्थ भी इसीलिये शुभ-तीर्थ माना गया । वहाँ फल देने वाले और भी तीन हजार तीर्थ हैं । उन समय से वह तीर्थ भानुतीर्थ कहा जाने लगा । मुने ! मृतसंजीवन और शर्पाति तीर्थ नाम से भी वह विख्यात हुआ । माधुच्छन्द तीर्थ भी उस ही कहा जाता है जिसके स्मरण मात्र से पापों का नाश हो जाता है । उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से सब यज्ञों का फल मिलता है । जो मृतसंजीवन तीर्थ है वह तो आपु और आरोग्य दोनों को बढ़ाने वाला है ॥३७-५१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भानु आदि तीन हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ अष्टोत्तवी

अध्याय समाप्त ॥१३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

खड्गतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

खड्गतीर्थमिति ह्यातं गौतम्या उत्तरे तटे । तत्र स्नानेन दानेन भुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१॥
 तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः । पैलूप इति विख्यातः कवयस्य सुतो द्विजः ॥२॥
 कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्यासौ परिधावति । न किमप्याससादासौ ततो वंराग्यमास्थितः ॥३॥
 अत्यन्तविमुखे दंवे व्यर्षोभूते तु पोरुषे । न वंराग्यादग्न्यदस्ति' पाण्डितस्मावलम्बनम् ॥४॥
 इति संचिन्तयामास तदाऽसौ निःश्वसन्मुहुः । क्रमागतं धनं नास्ति पोष्याश्च बहुधो मम ॥५॥
 मानी चाऽऽत्मा न कष्टार्हो हा धिदुर्देवचेष्टितम् । स कदाचिद्वृत्तिपुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन् ॥६॥
 न लेभे तद्धनं वृत्तेविरागमगमत्तदा । सेवा निषिद्धा या काचिद्गहना दुष्करं तपः ॥७॥
 यत्नादाकर्षणीयं मां तृष्णा सर्वत्र दुष्कृते । त्वयाऽपकृतमजानातस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते ॥८॥
 एवं विचिन्त्य मेधावी' तृष्णाछेदाय किं भवेत् । इत्यालोच्य स पैलूपः पितरं यास्यमब्रवीत् ॥९॥

पैलूप उवाच ।

ज्ञानासिना क्रोधलोभी संसृतिं चातिदुस्तराम् । छेदमीर्मां केन हे तात तमुपायं वद प्रभो ॥१०॥

कवय उवाच

ईश्वराज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः । तस्मादाराधयेजानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स पैलूपो ज्ञानायेश्वरमार्चयत् । ततस्तुष्टो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्विजातये ॥

प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गाथाः प्रोवाच मुक्तिदाः

॥१२॥

पैलूप उवाच

क्रोधस्तु प्रथमं शत्रुनिष्फलो देहनाशनः । ज्ञानखड्गेन त छित्त्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥१३॥

तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी । छित्त्वेतां ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥१४॥

सङ्गस्तु परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुतिः । असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽयं परमो रिपुः ॥१५॥

छित्त्वेनं ज्ञानखड्गेन शिर्वैकत्वमवाप्नुयात् । संशयः परमो नाशो धर्मार्थिना विनाशकृत् ॥१६॥

पैलूप बोला—हे तात ! ज्ञानरूपी खड्ग से इस क्रोध, लोभ और अतिदुस्तर सासारिक माया को कैसे काटूँ, वह उपाय बतलाइये ॥१०॥

कवय ने कहा—ईश्वर (शक्र) से ही ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए, ऐसी वैदिकी श्रुति है । इसलिये शिव की आराधना करो । तब तुम ज्ञान प्राप्त कर सकोगे ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही वरूँगा’ यह कहकर वह पैलूप ज्ञान के लिये ईश्वर की पूजा करने लगा । उसकी आराधना से प्रसन्न होकर महेश ने उस द्विज को ज्ञान प्रदान किया । ज्ञान पा जाने पर उस महाबुद्धिमान् ने ऐसी मुक्तिदायिनी गाथा गाई ॥१२॥

पैलूप बोला—इस देह को नष्ट करने वाला निष्फल क्रोध पहला शत्रु है । ज्ञान की तलवार से उसको काटने से परम सुख प्राप्त होता है । यह मित्र-मित्र प्रकार की तृष्णा पाप कराने वाली तथा बन्धन में डाल देने वाली माया है । इसको ज्ञान-खड्ग से काटकर मनुष्य सुखी होता है । ‘असक्ति’ बहुत बड़ा पाप है, ऐसा देवताओं आदि वा कथन है । इस अनासक्त (मुक्त) आत्मा के लिये यह आसक्ति परम शत्रु है । इसको ज्ञान के खड्ग से काटकर शिव से अद्वैतता प्राप्त करनी चाहिये । संशय परम शत्रु है । यह धम, अर्थ काम, क्रोधादिको का विनाश करने वाला है । इस संशय को दूर कर ही जीव अपने परम मनोरथ को प्राप्त कर सकता है । आशा पिशाची के

छिस्त्वेन सशय जतु परमस्मितमाप्नुयात् । पिशाचीव विशत्याशा निर्दहत्यखिल सुखम् ॥
पूर्णहिंतासिना छित्त्वा जीवन्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीरं समाश्रित । ज्ञानखड्गन निर्मोहस्ततो मुक्तिमवाप स ॥१८॥
तत प्रभृति तत्तीय खड्गतीथमिति स्मृतम् । ज्ञानतीथ च कवय पलूष सबकामदम् ॥१९॥
इत्यादिषट्सहस्राणि तीर्थान्याहुर्महपथ । अशयपापतापोघहराणीष्टप्रदानि च ॥२०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म तीथमाहात्म्य खड्गतीथवर्णन नामकोनचत्वारिंश

दधिकशततमोऽध्याय ॥१३९॥

गीतमोमाहात्म्य सप्ततितमोऽध्याय ॥७०॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

अन्विन्द्रात्रयादितीथवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आश्रयमिति विख्यातमन्विन्द्र तीथमुत्तमम् । तस्य प्रभाव वक्ष्यामि भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥१॥

समान मानव-देह में घुसकर सब सुखों को नष्ट कर देती है । मनुष्य इसको उसी ज्ञानखड्ग से मली माँति नष्ट कर जीवन काल में ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१॥ १७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसने बात वह ज्ञान प्राप्त कर गया नीर पर रहने लगा और ज्ञानखड्ग से मोह का छत्र नष्ट करके उसने मुक्ति प्राप्त कर ली । उस समय से वह तब खड्गनीय नाम से प्रसिद्ध हो गया । उसा को सब काम नाशों को देने वाला ज्ञानतीथ कवय और पलूष नाम से भी पुरातन जाना है । इसने अतिरिक्त महर्षिगण समस्त पाप-लाप के समूह को नष्ट करने वाल और इष्ट प्राप्त करने वाल तीर्थों की स्थिति भी बर्णन करने हैं । १८ २०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीथ माहात्म्य प्रकरण में खड्गनीय वर्णन नामक एक सो उनतालीसवा

अध्याय समाप्त । १३९॥

अध्याय १४०

अन्विन्द्र आश्रय आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—आश्रय नाम से विख्यात अन्विन्द्र नामक उत्तम तीर्थ है । उसका भ्रष्ट राज्य को मिटाने वाले प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ । पीतमी के उत्तर तीर पर भगवान् शिव आश्रय के शक्तिशाली और मुनियों के

गीतम्या उत्तरे तोर आत्रेयो भगवानुवि । अन्वारेभेऽय सत्राणि ऋत्विग्भिर्मुनिभिर्वृत ॥२॥
 तस्य होताऽभवत्त्विग्निर्हव्यवाहन एव च । एव सत्रे तु सपूर्णं इष्टि माहेश्वरी पुन ॥३॥
 कृत्वंश्वर्यमगाद्विप्र सर्वत्र गतिमेव च । इन्द्रस्य भवन रम्य स्वर्गलोक रसातलम् ॥४॥
 स्वेच्छया याति विप्रेन्द्र प्रभावात्तपस शुभात । स कदाचिद्विव गत्वा इन्द्रलोकमगात्पुन ॥५॥
 तत्रापश्यत्सहस्राक्ष सुरं परिवृत शुभं । स्तूयमान सिद्धसाध्यं प्रेक्षन्त नृत्यमुत्तमम् ॥
 शृण्वान मधुर गीतमप्सरोभिश्च योजितम् ॥६॥

उपोषविष्टं सुरनायकंस्तं, संपूज्यमान महदासनस्थम् ।
 जयन्तमङ्गे विनिधाय सूनु, शच्या यूत प्राप्तरति महिष्ठम् ॥७॥
 सता शरण्य वरद महेन्द्र, समीक्ष्य विप्राधिपतिमंहात्मा ।
 विमोहितोऽतो मुनिरिन्द्रलक्ष्म्या, समीहयामास तदिन्द्रराज्यम् ॥८॥
 संपूजितो देवगणैर्यथावत्स्वमाश्रम वै पुनराजगाम ।
 समीक्ष्य ता शक्रपुरीं सुरम्या, रत्नैर्युता पुण्यगुणं सुपूर्णां ॥९॥
 स्वमाश्रम निष्प्रभहेमवर्ज्य, समीक्ष्य विप्रो विरम जगाम ।
 समीहमान सुरराज्यमाशु, प्रिया तदोवाच महाश्विपुत्र ॥१०॥

सहित यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ के होता हव्य वाहन अग्नि स्वयं था। इस प्रकार यज्ञ के पूण हो जाने पर पुन उन्होंने माहेश्वरी इष्टि का अनुष्ठान कर महान् ऐश्वर्य एवं सत्त्व गन्धन करने की शक्ति प्राप्त कर ली। वे विप्रेन्द्र इन्द्र के रम्य भवन स्वर्गलोक और रसातल में अपनी तपस्या के शुभ प्रभाव से स्वेच्छापूर्वक जात थे। वे किसी समय स्वर्ग में गये फिर धूमते हुए इन्द्र-गोक में पहुँचे। वहाँ मगलमय देवताओं के मध्य में बैठ हुये इन्द्र को देखा जिनकी स्तुति सिद्ध और साध्यगण कर रहे थे (जो स्वयं उत्तम नृत्य को देख रहे थे गायकों के मधुर गान को सुन रहे थे अप्सराय जिनको पखा मल रही थी)। उन महेन्द्र का जो उच्च असन पर बैठ हुय थे समीप बैठे हुए सुरनायक जिनकी पूजा कर रहे थे जो अपने पुत्र जयन्त को गोत्र में बैठाकर शची के साथ प्रमोदित कर रहे थे जो महान् सज्जनों के एक मान आश्रय और वर देने वाले थे देखकर विप्रेन्द्र महात्मा मुनि इन्द्र की लक्ष्मी से मोहित हो गये। मन ही मन उन्होंने उस इन्द्र राज्य की इच्छा की। पुन वहाँ देवताओं से मन्त्रीभाति सम्मानित होकर अपने आश्रम में चल आये। उस इन्द्रपुरी को अतिमनोहर विविध रत्ना स सुसज्जित ऐश्वर्यों और उत्तम पदार्थों से भरी-पूरी देख कर और इसके विपरीत अपने आश्रम को ऐश्वर्य एवं धी से हीन देखकर बहु विप्र उदस हो गया। उस ऐश्वर्य-वामी अविशुद्ध के मन में शीघ्र इन्द्र-पद पाने की इच्छा हो गई। तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा ॥१-१०॥

आत्रेय उवाच

भोक्तुं न शक्तोऽस्मि फलानि मूलान्यनुत्तमान्मप्यतिसंस्कृतानि ।
 स्मृत्वाऽमृतं पुण्यतमं च तत्र, भक्ष्यं च भोग्यं च वरासनानि ॥
 स्तुतिं च दानं च सभां शुभा च, अस्त्रं च वासांसि पुरीं वनानि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो महात्मा तपसः प्रभावात्त्वष्टारमाहूय वचो बभाषे ॥१२॥

आत्रेय उवाच

इच्छेयमिन्द्रत्वमहं महात्मन्कुर्वन् शीघ्रं पदमेन्द्रमग्र ।
 श्रूयेऽन्यथा चेन्मदुदीरितं त्वं, भस्मी करोम्येव न संशयोऽत्र ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तदत्रिवाक्यात्स्वरितं प्रजानां, खण्डा विभुर्विश्वकर्मा तदेव ।
 चकार मेघं च पुरीं सुराणां, कल्पद्रुमान्कल्पलतां च धेनुम् ॥१४॥
 चकार वज्रादिविभूषितानि, गृहाणि शुभाण्यतिचित्रितानि ।
 चकार सर्वावयवानवद्यां, शचीं स्मरस्येव विहारशालाम् ॥१५॥
 सभां सुधर्माणमहो क्षणेन, तथा चकाराप्सरसो मनोज्ञाः ।
 चकार चोच्चैःश्रवसं गजं च, वज्रादि चास्त्राणि सुरानशेषान् ॥१६॥

अत्रिपुत्र ने कहा—इन परिष्कृत एवं उत्तुम फल-मूला को खाने में मैं असमर्थ हूँ। स्वर्ग के उन अमृतमय, पवित्रतम भक्ष्य और भोग्य पदार्थों, उत्तम आसनो स्तुति दान, उत्तम सभा, अस्त्र, वस्त्र, पुरी और वना को देखकर इन फलमूलों से अक्षिप्त हो गई है ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्मा आत्रेय ने अपनी तपस्या के प्रभाव से त्वष्टा को बुलाकर कहा ॥१२॥

आत्रेय ने कहा—महात्मन् ! मैं इन्द्रत्व को प्राप्त करना चाहता हूँ। शीघ्र ही यहाँ ऐन्द्र पद के उपयुक्त व्यवस्था कर दो। यदि मेरे कहने के विरुद्ध एवं भी शब्द निकाल तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि मैं तुमको जलाकर भस्म कर दूंगा ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस आत्रेय की आज्ञा से शीघ्र ही प्रजापति ने त्वष्टा, व्यासक विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत, देवपुरी, कल्पद्रुम, वनलता धेनु आदि की सृष्टि कर दी। अति विविध वज्र (मणि) आदि सज्जित सौधशालायें बना दी गईं। सर्वाङ्गसुदरी, वामदेव की विहारशाला के समान शची सुरल प्रस्तुत कर दी गई। मनोहर देवसभा, और अमर रायें क्षण भर में ही बना दी गईं। उच्चैःश्रवा, ऐरावत, वज्रादि अस्त्र और सम्पूर्ण देवता वहाँ प्रस्तुत कर दिये गये। त्रिया के बार-बार मना करने पर भी उस दासी हर्षिणी राक्षी को ऋषि ने अपनी पत्नी बना लिया। तब उसने बाद

निवार्यमाणः प्रियपाञ्चिपुत्रः, शचीसमामात्मवधूं चकार	।
तदाञ्चिपुत्रोऽत्रिमूलैः समेतो, यच्चादिरूपं च चकार चास्त्रम्	॥१७॥
नृत्यादि गीतादि च सर्वमेव, चकार शक्रस्य, पुरे च, दृष्टम्	।
तत्सर्वमासाद्य तदा मुनीन्द्रः, प्रहृष्टचेताः सुतरां बभूव	॥१८॥
आपातरम्येष्वपि कस्य नाम, भवत्यपेक्षा न हि गोचरेयु	।
श्रुत्वा च दत्त्वा दनुजाः समेता, रक्षासि कोपेन युतानि सद्यः	॥१९॥
स्वर्गं परित्यज्य कुतो हरिर्भुवं, समागतो न्वेप मिथः सुखाय	।
तस्माद्वयं याम इतो नु योद्धु, वृत्रस्य हन्तारमदीर्घसत्रम्	॥२०॥
ततः समागत्य तवाञ्चिपुत्रं, संवेष्टयामासुरयासुरास्ते	।
संवेष्टयित्वा पुरमञ्चिपुत्रकृतं तथा, चेन्द्रपुरमिधानन्	॥
सर्वं ध्यमानः शस्त्रपातमहद्भिस्ततो भीतो वाक्यमिदं जगद	॥२१॥

आत्रेय उवाच

यो ज्ञात एवं प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्कनुता पर्यभूयत्	।
यस्य शुष्माद्रोदसी अम्यसेता, नृम्णस्य महूना सजना स इन्द्रः	॥२२॥

अत्रि-मुत्र मे अत्रि प्रमुख ऋषियो के सामने ही वज्रादि अस्त्रों को अपना अस्त्र बना लिया (नृत्य, गीत आदि सब कुछ की व्यवस्था—जैसा कि इन्द्रपुरी में उन्होंने देखा था—कर ली।) उस समय उन सम्पूर्ण सुखद सामग्रियों को पाकर मुनीन्द्र स्वयमेव प्रसन चित्त हो गये। सत्य भी है, आपातरम्य (देखने में ऊपर से अतिआकर्षक) विषय के सामने आ जाने पर किसी भोगाकांक्षा नहीं हो जाती है? जब दैत्यो मनुजों और राक्षसों ने यह सुना तब वे कुपित हो गये। सोचने लगे कि किस कारण यह इन्द्र स्वर्ग को छोड़कर यहाँ पृथ्वी पर आ गया है। यह तो हम लोगों के लिये प्रसन्नता की बात है। इसलिये हम वृत्र-हन्ता, दीर्घकालीन यज्ञों से विमुख इस इन्द्र से मुक्त करने के लिये यहाँ (दैत्यलोक) से प्रस्थान करें। इस प्रकार निश्चय करके उन असुरों ने दैत्यलोक से आवर अत्रि पुत्र को घेर लिया। अत्रि-मुत्र से बसाये गये उस इन्द्रपुर नामक नगर को घेरकर महान् मयकर शस्त्रों के प्रहार से उनको मारने लगे। तब अस्त्र प्रहार से मयसीत होकर आत्रेय ने यह कहा ॥१४-२१॥

अत्रिपुत्र ने कहा—जो उत्पन्न होते ही सबका मुखिया बन गया जिसने स्वयं देव होकर भी अन्य देवों को बशीरुत कर लिया, जिसके शारीरिक बल से स्वर्ग और पृथ्वी काँप उठी है असुर जनों। वह ऐश्वर्यशाली इन्द्र है (मैं नहीं) ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिसूक्तेन रिपूनुवाच, हरिं च तुष्टाव तदाऽत्रिपुत्र

॥२३॥

आत्रेय उवाच

नाह हरिर्नैव शची मदीया, नेप पुरो नैव वन तदन्द्रम्

।

स एव चेन्द्रो वृत्रहन्ता स वज्री, सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहु

॥२४॥

अह तु विप्रो वेदविद्ब्रह्मवृन्दे, समाविष्टो गौतमीतीरसस्य

।

यन्नाऽऽपत्यां नाद्य वा सौख्यहेतुस्तच्चाकार्यं कर्म दुर्देवयोगात्

॥२५॥

असुरा ऊचुः

।

सहरस्वेदमात्रेय यदिन्द्रस्य विडम्बनम् । क्षेमस्ते भविता सत्य नान्यथा मुनिसत्तम ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽऽनेयोऽब्रवीद्वाक्यं यथा वक्ष्यन्ति मामिह । करोम्येव महाभागा सत्येनाग्निं समालभे ॥२७॥

एमुक्त्वा स ईतेयास्त्वष्टार पुनरब्रवीत्

॥२८॥

आत्रेय उवाच

यत्कृतं त्वत्र मत्प्रीत्या ऐन्द्र त्वष्ट पद त्वया । सहरस्व पुन शीघ्र रक्ष मा ब्राह्मण मुनिम् ॥२९॥

पुनर्देहि पदं मह्यमाश्रमं मृगपक्षिणः । वृक्षादच वारि यन्नाऽऽसीन्न मे दिव्यं प्रयोजनम् ॥

सर्वमक्रममायात न सुखाय मनीषिणाम्

॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—तब इस सूक्त से अत्रि-पुत्र ने इंद्र की महत्ता व्यक्त की और पुन अपने शत्रुओं से कहा ॥२३॥

आत्रेय बोले—मैं इंद्र नहीं हूँ न तो यह शची और नगरी ही मेरी है और न यह नन्दनवन ही मेरा है ।

वस्तुतः स्वर्गस्य इंद्र ही इंद्र है वही वृत्र हन्ता वज्र धारण करने वाला सहस्र नन्न वाला, पशुता क पक्षा को काटने वाला वज्रवाहु इंद्र है । मैं तो वेदा को जानने वाला ब्राह्मण हूँ सदा ब्राह्मणों के सहित इस गौतमा तीर पर रहा करता हूँ । जिससे द्वारा भविष्य अथवा वर्तमान कभी भी मुझ का मूल नहीं प्राप्त हो सकता अर्थात् जिस क्रम से कभी मुझ नहीं प्राप्त होता उस क्रम की आर मैं दुर्देव की प्रेरणा से आह्वित हो गया हूँ ॥२४-२५॥

असुरों ने कहा—आत्रेय ! तो तुमने जो यह इंद्र का दाग फैला रखा है उसको समटा । मुनिश्रेष्ठ !

मयाप्यत तुम्हारा कल्याण इसीम है दूसरे में नहीं ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तब आत्रेय ने कहा—महाभाग ! जैसा आप लोग कहते हैं वैसा ही कहेंगा । अग्नि की शरण है सब कहता हूँ । इस प्रकार उन दैत्या से कह कर पुन उन्होंने त्वष्टा से कहा ॥२७-२८॥

आत्रेय ने कहा—त्वष्टा ! तुमने मेरी प्रसन्नता के लिए जिस ऐन्द्र-पद को यहाँ बनाया है उसको शीघ्र दूर करो । इस प्रकार इस मुनि ब्राह्मण की रक्षा करो । पुन मरा वह मृग और पक्षियों से मुनीश्वर आश्रम ही दो जहाँ वृक्ष और जल का मधु खाने या अब मुझे इस स्वर्गीय वस्तुओं की कुछ भी आवश्यकता नहीं । मनीषियों के लिये क्रमविच्छेद (अकस्मात्) प्राप्त पदार्थ सुखद नहीं होते ॥२९-३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रजानाथस्त्वष्टा संहृतवांस्तदा । दैत्याश्च जग्मुः स्वस्यानं कृत्वा वेशमकण्टकम् ॥३१॥
त्वष्टा चापि ययौ स्थानं स्वकं संप्रहसन्निव । आत्रेयोऽपि तदा शिष्यः संवृतः सह भार्यया ॥३२॥
गौनमीतीरमाश्रित्य तपोनष्टोऽखिलैर्बृतः । वर्तमाने महापजे लज्जितो वाक्यमब्रवीत् ॥३३॥

आत्रेय उवाच

अहो मोहस्य महिमा ममापि भ्रान्तचित्तता । किं महेन्द्रपदं लब्धं किं मयाऽत्र पुरा कृतम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्मात्रेयं लज्जितं प्राब्रुवन्सुराः

॥३४॥

सुरा ऊचुः

लज्जां जहि महाबाहो भविता' ह्यतिश्रुता । आत्रेयतीर्थे ये स्नानं प्राणिनः कुर्युरञ्जसा ॥३६॥
इन्द्रास्ते भविनारो वै स्मरणा'सुखभागिनः । तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याहुर्मनीषिणः ॥३७॥
अन्विन्द्रात्रेयदैतेयनामभिः कीर्तितानि च । तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३८॥

ब्रह्मा बोले—तब ऐसा ही हो यह कहकर प्रजापति त्वष्टा ने सब माया समेट ली । दैत्य भी यह देखकर उस स्थान को निरापद कर अपने स्थान को चले गये । त्वष्टा भी हँसते हुये-से अपने स्थान को लौट गये । अनन्तर आत्रेय भी अपने शिष्यों और भार्या के साथ गौतमी-तट पर तपोनिष्ठ हो रहने लगे । कुछ दिनों बाद पुन महायज्ञ प्रारम्भ हुआ, उसमें सब देवों और ऋषियों के सामने ही लज्जित होकर उन्होंने कहा ॥३१-३३॥

आत्रेय ने कहा—अहो ! मोह की महिमा भी क्या है, जिसके कारण मेरे मन में भी भ्रान्ति हो गई । मैंने पहले क्या (तप) किया था और फिर मोह में आकर किस प्रकार महेन्द्र-पद प्राप्त किया ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहने वाले लज्जित मुनि से देवों ने कहा ॥३५॥

देवताओं ने कहा—महाबाहु ! लज्जा को छोड़ो तुम्हारी उत्तम कीर्ति इस लोक में फैलेगी । इस आत्रेय तीर्थ में जो प्राणी विधिपूर्वक स्नान करेंगे, वे अवश्य इन्द्र होंगे और इस तीर्थ के स्मरण मात्र से प्राणी सुखभागी होंगे । वहाँ मनीषियों ने अग्य पाँच हजार अन्विन्द्र, आत्रेय, दैतेय आदि तीर्थों के नाम गिनाये हैं जिनमें स्नान और दान से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३६-३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विबुधा याताः संतुष्टश्चाभवन्मुनिः

॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽग्निकेन्द्रात्रेयादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं

नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कपिलासगमाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । तत्र नारद वक्ष्यामि कथां पुण्यामनुत्तमाम् ॥१॥

कपिलोऽङ्गनाम तत्त्वज्ञो मुनिरासीन्महायशः । क्रूरश्चापि प्रसन्नश्च तपोव्रतपरायणः ॥२॥

तपस्यन् मुनिश्रेष्ठ गौतमीतीरमाश्रितम् । तमागत्य महात्मान धामदेवादयोऽब्रुवन् ॥३॥

हन्त्रा चेनं ब्रह्मज्ञापनंष्टधर्मं त्वराजके । कपिलं सिद्धमाचार्यंमूचुर्मुनिगणास्तदा ॥४॥

मुनिगणा ऊचुः

गने वेदे गते धर्मे किं कर्तव्यं मुनीश्वर

॥५॥

११ ब्रह्मा बोले—यह कहकर देवता चले गये और मुनि भी संतुष्ट हो गये ॥३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे अग्निकेन्द्र-आत्रेयादि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ

अध्याय समाप्त ॥१४०॥

अध्याय १४१

कपिला-सगम की कथा का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—निमुक्त बिश्रुत कपिला-सगम नामक एक तीर्थ है । नारद ! उस तीर्थ की अत्युत्तम पुण्य कथा को कह रहा हूँ सुनो । महायगरवी कपिल नामक तत्त्वदर्शी मुनि थे । वे क्रूर एवं प्रसन्न होकर भी तपस्या और व्रत परायण मुनि थे । गौतमी-तीर पर स्थित होकर तपस्या करते हुये उस महात्मा मुनिवर ने पाश आगर वामदेव आदि ऋषियों ने कहा कि जब वेन को ब्रह्म ज्ञान से मार डाला गया, सारा राजधर्म नष्ट-भ्रष्ट हो गया और देश मे अराजकता फैल गई तब मुनिवो ने सिद्ध आचार्य कपिल से कहा ॥१-४॥

मुनिगण बोले—मुनीश्वर ! देश ने लुप्त हो जाने पर और धर्म ने नष्ट हो जाने पर क्या करना उचित है ? ॥५॥

१ एतदपि यं च पुस्तकयोः त्रिंशोत्तमाध्यायतत्रैव संगमो षोडशिकृतः । स्मरणात्सर्वपापानां नाशनं विन्दुर्दोषान् इत्यपि रं श्लोको वर्तते ।

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीन्मुनिष्यत्वा कपिलस्त्वागतान्मुनीन्

॥६॥

कपिल उवाच

वेनस्पोहं विमय्योऽभूत्ततः कश्चिद्भूविष्यति

॥७॥

ब्रह्मोवाच

तयैव चक्रुर्मनयो वेनस्पोहं विमय्य वं। ततोत्पन्नो महापापः कृष्णो रौद्रपराक्रमः॥८॥
तं दृष्ट्वा मुनयो भीता निषोऽस्त्रेति चाब्रुवन्। निषावः सोऽभवत्तस्मान्निषादाश्चाभवन्ततः॥९॥
वेनबाहु ममन्युस्ते दक्षिणं धर्मसंहितम्। ततः पूयुस्वरश्चैव सर्वलक्षणलक्षितः॥१०॥
राजाऽभवत्पूयः श्रोमान्ब्रह्मसामर्थ्यसप्ततः। तमागत्य सुरा सर्वे अभिनन्द्य वराञ्छुभान्॥११॥
तस्मै ददुस्तयाऽऽराणि मन्त्राणि गुणवन्ति च। ततोऽब्रुवन्मुनिगणास्तं पूयं कपिलेन च॥१२॥

मुनय ऊचुः

आहारं देहि जीवेभ्यो भुवा प्रस्तौयधीरपि

॥१३॥

ब्रह्मोवाच

ततः स धनुरादाय भुवमाह नृपोत्तमः

॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब कपिल मुनि ने सोच-विचार कर आगत मुनियों से कहा ॥६॥

कपिल बोले—वेन का ऊह प्रदेश यदि मया जाय तो कोई समस्या का हल प्राप्त हो जायगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—मुनियों ने मुनि के आदेशानुसार वेन के ऊह को मया। उसमे से एक महापापी कृष्णकाय मयकर बलशाली पुरुष उत्पन्न हुआ। उसको देखकर मुनि लोग डर गये। और 'निषीदस्व' (बैठो) ऐसा कहा। तब वह निषाद बन गया। उससे फिर निषादों की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर उन्होंने धर्मयुक्त वेन की दाहिनी भुजा को मया। तब उसमे से गम्भीर स्वर वाला, सब राजलक्षणों से युक्त श्रीमान् ब्रह्मपुत्रित से युक्त पूय नामक राजा उत्पन्न हुआ। उसके पास आकर सब देवों ने उसका स्वागत किया और उसको विभिन्न शुभ वरदान, अस्त्र और उपयोगी मन्त्र दिये। तदुपरान्त मुनियों ने कपिल के सहित उस पूय से कहा ॥८-१२॥

मुनिगण बोले—समस्त जीवों को भोजन दो और पृथिवी द्वारा निगली हुई ओषधियाँ भी ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—तब हाथ में धनुष लेकर उस नृपोत्तम ने पृथिवी से कहा—॥१४॥

पृथुर्वाच

ओषधीर्देहि या प्रस्ता प्रजानां हितकाम्यया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तमुवाच महो भीता पूयु त पूयुलोचनम् ॥१६॥

मह्युवाच

मयि जोषां महौषध्य कथं दातुमह क्षमा ॥१७॥

ब्रह्मावाच

ततः सकोपो नृपतिस्तामाह पूयिवी पुनः ॥१८॥

पृथुर्वाच

नो चेद्दास्यद्य त्वा वं हत्वा दास्ये महौषधी ॥१९॥

भूमिर्वाच

कथं हसि स्त्रिय राजञ्जानी भूत्वा नृपोत्तम । विना मया कथं चेमा प्रजा सधारयिष्यसि ॥२०॥

पृथुर्वाच

यत्रोपकारोऽनेकानामेकनाशो भविष्यति । न दोषस्तत्र पूयिवी तपसा धारये प्रजा ॥२१॥

न दोषमत्र पश्यामि नाऽऽचक्षेऽनर्थकं वच । यस्मिन्निपातिते सौम्य बहूनामुपजापते ॥

मुनयस्तद्वचः प्राहुरश्वमेधशताधिकम् ॥२२॥

पूयु ने कहा—जिन ओषधियों को तुमने हजम कर लिया है प्रजाओं की मलाई के लिए उनको दीप्त लाओ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—मयगीत पूयिवी ने उस दीघनेत्र पूयु से कहा ॥१६॥

पृथ्वी ने कहा—वे महौषधियाँ तो मेरे उदर में जीण हो गई । अब कैसे उनको दे सकनी हूँ ? ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—तब राजा दुःखित होकर पुनः उस पूयिवी से बोले ॥१८॥

पूयु ने कहा—यदि नहीं दोगी तो आज तुमको मारकर प्रजा को महौषधियाँ दे दूँगा ॥१९॥

भूमि ने कहा—राजन् ! तुम जानी होकर कैसे स्त्री को मारने के लिए उद्यत हो ? नृपात्तम ! मेरे बिना किस प्रकार इन प्रजाओं की रक्षा या पालन करोगे ? ॥२०॥

पूयु बोले—पूयिवी ! जहाँ एक के भाग में अनेक का उपकार होना हो उस एक का वध करने में कोई दोष नहीं । प्रजाओं की रक्षा तो अपनी तपस्या के द्वारा कर लूँगा । इसमें कुछ भी दोष नहीं देख रहा हूँ यह ध्येय की बातें मैं नहीं कर रहा हूँ । जिसने वध में बहुतों को सुख होता हो उमने वध की मुनिगण से अन्वय से भी अधिक पत्र प्रदत्त बतलाते हैं ॥२१ २२॥

देवाऊचुः

ततो देवाश्च ऋषयः सान्त्वयित्वा नृपोत्तमम् । महौ च मातर देवोमूचुः सुरगणास्तदा ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

भूमे गोरूपिणी भूत्वा पयोरूपा महौषधी । देहि त्व पृथवे राज्ञे ततः प्रीतो भवेन्नृपः ॥
प्रजासरक्षणं च स्यात्ततः क्षेमं भविष्यति ॥२४॥

देवा ऊचुः

ततो गोरूपमास्थायं भूम्यासीत्कपिलान्तिके । दुदोहं च महौषधौ (धौ) राजा वेनकरोद्भूव ॥२५॥
यत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः कपिलो मुनिः । महौ गोरूपमापन्ना नर्मदाया महामुने ॥२६॥
सरस्वत्या भागीरथ्या गोदावर्या विशेषतः । महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत् ॥२७॥
सा दुह्यमाना पृथुना पुण्यतोयाऽभवन्नदी । गौतम्या सगता चाभूत्तददभूतमिवाभवत् ॥२८॥
ततः प्रभृति तत्तीथ कपिलासगमं विदुः । तत्राष्टाशीति पूज्यानि सहस्राणि महामते ॥२९॥
तीर्थान्याहुर्मुनिगणा स्मरणादपि नारदः । पावनानि जगत्पार्ष्णिस्तानि सर्वाण्यनुक्रमात् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसवादे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमाष्टाष्टा-

शीतिसहस्रतीर्थवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनंतर देवो और ऋषियो ने उस नृपवय को समझा-बुझा कर शांत किया । तब देवो ने माता पृथिवी देवी से कहा ॥२३॥

देवगण बोले—भूमि ! तू मी गौ रूप होकर दूध के रूप में महौषधियाँ राजा पृथु को दे दो । इससे राजा प्रसन्न हो जायेंगे और तब प्रजा की रक्षा भी हो जायगी । इस प्रकार सबका कल्याण होगा ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद पृथिवी गौ का रूप धारण कर कपिल के समीप खड़ी हो गई जहाँ गधवों के सहित देवता ऋषि और कपिलमुनि थे । वहाँ वेन के हाथ से उपन राजा ने उससे महौषधियों को दूहा । महामुनि नारद । गौ रूप धारण करने वाली उस पृथिवी के दूध को उस राजा ने नर्मदा सरस्वती भागीरथी गोदावरी आदि सब विशिष्ट महानदियों में मली भाँति दूहा । पृथु से दूही गई वह कपिला (गौ) पवित्र जल वाली नदी बन गई और वह गौतमी से आकर मिल गई । इस प्रकार उसका मिलन एक आश्चर्यजनक घटना हुई । तब से वह तीर्थ कपिला सगम कहा जाने लगा । महामति । वहाँ पर मुनिगण और अस्ती हजार पूज्य तीर्थ बदलते हैं । नारद । इस ससार में वे सब तीर्थ क्रमशः स्मरणमात्र से सबको पुनीत कर देते हैं ॥२५-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कपिला-सगम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ इकतालीसवाँ

अध्याय समाप्त ॥१४१॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवस्थानाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवस्थानमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ देवदानवसंगरे । प्रयुक्ते वा सिंहिकेति विख्याता दैत्यसुन्दरी ॥२॥
तस्याः पुत्रो महादैत्यो राहुर्नाम महाबलः । अमृते तु समुत्पन्ने सिंहिकेये च भेदिते ॥३॥
तस्य पुत्रो महादैत्यो मेघहात इति श्रुतः । पितरं धातितं ध्रुत्वा तपस्तेपेऽतिदुःखितः ॥४॥
तपस्यन्तं राहुसुतं गौतमीतीरमाश्रितम् । देवाश्च ऋषयः सर्वे तमूचुरतिभीतवत् ॥५॥

देवर्षय ऊचुः

तपो जहि महाबाहो यत्ते मनसि सस्थितम् । सर्वं भवतु नामेदं शिवगङ्गाप्रसावतः ॥
शिवगङ्गाप्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

परिभूतः पिता पूज्यो युष्माभिर्मम देवतम् । तस्यापि मम चात्यन्तं प्रीतिश्च क्रियते यदि ॥७॥

अध्याय १४२

देवस्थान नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—त्रिमुक्ता मे प्रसिद्ध देवस्थान नामक एक तीर्थ है । नारद ! उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।

बहुत पहले कृतयुग के आदि मे देव-दानवों मे युद्ध छिडा । उस समय सिंहिका नाम की प्रसिद्ध दैत्य-सुन्दरी थी । उसका राहु नामक महाबलवान् दैत्य पुत्र था । जब अमृत उत्पन्न हुआ, तब राहु अमृत-पान के कारण काट दिया गया । उस राहु का पुत्र मेघहास नामक महादैत्य था । अपने पिता का वध सुनकर दुःखी हो वह अति-भीषण तप करने लगा । गौतमी-तीर पर बैठ कर तपस्या करने वाले उस राहु-पुत्र से देव और ऋषि भयभीत-से होकर बोले ॥१-५॥

देव और ऋषि बोले—महाबाहु ! तपस्या छोड़ दो । शिव और गंगा की कृपा से तुम्हारी जो कोई मनः कामना है वह पूर्ण हो जाएगी । इस ससार मे शिव-गंगा की कृपा से कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है ? ॥६॥

मेघहास ने कहा—आप लोगों ने मेरे देवतुल्य पूज्य पिता को पराजित किया है । यदि उनका और मेरा अत्यन्त प्रिय करना चाहते हैं तो मैं अपनी इस तपस्या से आपने उस वीर को दूर कर रहा हूँ । पुत्र का यह वर्तव्य

भवद्भिस्तपसोऽस्माच्च अहं वैरान्निवर्तये। वैरनिर्यातिनं कार्यं पुत्रेण पितुरादरात् ॥
प्रार्थयन्ते भवन्तश्चेत्पूष्पास्तन्मे मनोरथाः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे राहुं चक्रुर्ग्रहानुगम्¹। तं चापि मेघहासं ते चक्रूः राक्षसपुंगवम् ॥९॥
ततोऽभवद्वाहुसुतो नंर्ऋताधिपतिः² प्रभुः। पुनश्चाऽऽह सुरान्दैत्यो मम ह्यातिर्यया भवेत् ॥१०॥
तीर्थस्यास्य प्रभावश्च दातव्य इति मे मतिः। तथेत्युक्त्वा ददुर्देवाः सर्वमेव मनोगतम् ॥११॥
दैत्येऽजरस्य देश्ये तन्नाम्ना तीर्थमुच्यते³। देवा यतोऽभवन्सर्वे तत्र स्थाने महामते ॥१२॥
वेवस्थानं तु तत्तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। यत्र देवेश्वरो देवो देवतीर्थं ततः स्मृतम् ॥१३॥
तत्राष्टादश तीर्थानि दैत्यपूज्यानि नारद। तेषु स्नानं च दानं च महापातकनाशनम् ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवस्थानाष्टादशतीर्थवर्णनं नाम
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

हे कि वह आदरपूर्वक पिता के वैर का बदला चुकाये। यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायें ॥७-८॥

ब्रह्मा बोले—तब सब देवताओं ने राहु को ग्रहों की श्रेणी में परिगणित कर दिया और उस मेघहास को भी श्रेष्ठ राक्षस बना दिया। इसके बाद वह राहु-पुत्र नेकतं दिशा का समर्थ स्वामी हो गया। पुनः उस दैत्य ने देवताओं से कहा कि मेरी कीर्ति जिस प्रकार हो वैसे ही इस तीर्थ को प्रभावशाली बनाइए, यही मेरा विचार है। देवताओं ने 'एवमस्तु' वह (उसे) मनोवाञ्छित सब कुछ दे दिया। देवर्षिनारद! उस दैत्येश्वर के नाम से वह तीर्थ कहा जाता है। महामते¹ यत् उस स्थान पर सब देवता उपस्थित हुये अतः वह तीर्थ देवों के लिए भी दुर्लभ देवस्थान नामक तीर्थ हो गया है। जहाँ दैत्येश्वर देव हैं वह देवतीर्थ कहा जाता है। नारद! वहाँ दैत्यों से पूज्य अट्ठारह और तीर्थ हैं, उनमें स्नान और दान करने से महापातक भी नष्ट हो जाते हैं ॥९-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म देवस्थान आदि अट्ठारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥१४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सिद्धतीर्थमिति श्रुतां यत्र सिद्धेश्वरो हरः। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥१॥
 पुलस्त्यवंशसंभूतो रावणो लोकरावणः। दिशो विजित्य सर्वाश्च' सोमलोकमजीगमत् ॥२॥
 सोमेन सह योत्स्यन्त दशास्यमहमब्रवम्। मन्त्रं दास्ये निवर्तस्व सोमयुद्धाद्दानम् ॥३॥
 इत्युक्त्वाऽष्टोत्तरं मन्त्रं शतनामभिरन्वितम्। शिवस्य राक्षसेन्द्राय प्रादा नारद शान्तये ॥४॥
 निःश्रीकाणां विपन्नानां नानाक्लेशजुषा नृणाम्। शरणं शिव एवात्र ससारेऽन्यो न कश्चन ॥५॥

ततो निवृत्तः स ह मन्त्रियुवतस्तत्सोमलोकाज्जयमाप्स्य रक्षः ।

स पुष्पकारुण्डगतिः 'सगर्वो, लोकान्पुनः प्राप जवाहृशास्यः ॥६॥

स प्रेक्षमाणो दिवमन्तरिक्षं, भुवं च नागांश्च गज्याश्च विप्रान्' ।

आलोकयामास नगं महान्तं, कैलासमावाप्त उमापतेर्यः ॥७॥

वृष्ट्वा स्मयोत्फुल्लद्वाराजं, स मन्त्रिणो रावण इत्युवाच ॥८॥

अध्याय १४३

सिद्धतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सिद्धतीर्थ नामक एक तीर्थ है, जहाँ सिद्धेश्वर हर निवास करते हैं। मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाले उसके प्रभाव को बना रहा हूँ। पुलस्त्यकुलोत्पन्न लोचनमयङ्कर रावण सम्पूर्ण दिशाओं को जीतकर चन्द्रलोक में पहुँचा। चन्द्रमा के साथ युद्ध-रत उस दशमुग से मैंने कहा—'दशानन'। तुमको मन्त्र दूंगा, चन्द्रमा के साथ युद्ध करना बन्द कर दो। नारद। यह कहकर मैंने उमवी शान्ति के लिए उस राक्षसेन्द्र को शिव के एक सौ आठ नामों से युक्त मन्त्र दे दिया। इस समारम्भ श्रीहीन, तथा विषद्वेशन अनेक कलशों को भोगने वाले मनुष्यों के शिव ही एवमात्र शरण है, दूसरा कोई नहीं। तब वह राक्षस सोमलोक को जीत कर मन्त्रिया के सहित वहाँ से लौटा। वह रावण गर्व के साथ पुष्पविमान पर आरुढ़ होकर बड़े बग से पुन लौटा में गया। वह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नागों, गजों एवं विप्रा को देखने लगा। इतने में उमापति वा जो वासस्थान था, उस महापर्वत कैलाश को उसने देखा। पर्वतराज को देखकर उस रावण के नेत्र आनन्द से खिल उठे। उसने अपने दोना मन्त्रियों से कहा ॥१-८॥

रावण उवाच

को वा गिरावन्न वसेन्महात्मा, गिरिं मयाम्पेनमयाधि भूमे ।
लङ्कागतोऽयं गिरिरागु शोभा, लङ्कापि सत्यं श्रियमातनोति ॥९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं वचो राक्षसमन्त्रिणो तो, निशम्य रक्षोधिपतेऽत्र भावम् ।
न युक्तमित्यूचतुरिष्टदुष्ट्या, निशाचरस्तद्वचनं न मेने ॥१०॥
सस्याप्य तत्पुष्पकमाशु रक्ष, पुष्पाव कंलासगिरेऽत्र मूले ।
हिंदोलयामास गिरिं दशास्यो, ज्ञात्वा भव कृत्यमिदं चकार ॥११॥
जित्वा दिगोशाश्च सर्गात्रितस्य, कंलासमाब्दोलयत सुरारे ।
अङ्गुष्ठकृत्यं व रसातलादिलोकाश्च यातस्य दशाननस्य ॥१२॥
आचूतकायस्य गिरिं निशम्य, विहस्य वेग्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्नं कुपितोऽपि शम्भुर्युक्तदातेति न सशयोऽत्र ॥१३॥
ततोऽयमावाप्य वराम्बुवीरो, भवप्रसादात्कुसुमं जगाम ।
गच्छन्तं लङ्कां भवपूजनाय, गङ्गायगाच्छम्भुजटाप्रसूताम् ॥१४॥
सपूजयित्वा विविधैश्च मन्त्रैर्गङ्गाजलं शम्भुमदीनसत्त्वं ।
अस्ति स लभे शशिवण्डभूपात्सिद्धिं च सर्वधर्मभोग्नितां च ॥१५॥

रावण ने कहा—कौन महात्मा इस पर्वत पर रहते हैं ? मैं इस पर्वत को पस्वीनल पर ले जाना चाहता हूँ । यह गिरि लङ्का में अच्युत गोमा प्राप्त करेगा । इससे लङ्कापुरी की शोभा भी अधिक बढ़ जाएगी ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनों राक्षस मन्त्री राक्षसपति की ऐसी वाचा को सुनकर उसके भाव को ठाढ़ गये । उन्होंने उनके हित की दृष्टि से कहा कि यह उचित नहीं है । किन्तु निशाचर ने उनकी बात न मानी । वह राक्षस अपने पुष्पक विमान को घड़ी रखकर कंलागिरि के मूल देश में बूढ़ पड़ा । वहाँ जाकर वह दशानन उस पर्वत को हिलाने लगा । गकर ने रावण का इस घृष्टता को जानकर ऐसा किया कि सब दिक्पालों को जीतने से गवित और कंलास को हिलाने वाले उस मुरागनु दशानन को अणु से बचा दिया । जिससे वह रसातल्लोक में घँसने लगा उसका गरीर क्षत विभ्रत हो गया और वह जोरो से चिल्लाने लगा । अतः म उमवी प्रायना को सुनकर देवी के सहित क्रुद्ध होते हुए भी गकर ने प्रसन्न होकर हँसकर उसको वरदान दे दिया । वास्तव में गकर अयोध्या को भी दान देने वाले हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं । गकर की कृपा से वरो को पाकर वह भीरु पुष्पक विमान के पास गया । लवा जाते समय वह गकर की पूजा के लिए शिव की जटा से निकली हुई गंगा के पास गया । गंगा जल और विविध मन्त्रों से उस पुरोपासी रावण ने शम्भु की पूजाकर उस शशिमौलि से स्रग्ग सिद्धि और अनो

मद्वत्तमन्त्रं शशिरक्षणाय, स साधयामास भवं प्रपूज्य ।
सिद्धे तु मन्त्रे पुनरेव लङ्कामयात्स रक्षोधिपतिः स तुष्टः ॥१६॥

ततः प्रभृत्येतदतिप्रभावं, तीर्थं महासिद्धिदमिष्टदं च ।
समस्तपापौघविनाशनं च, सिद्धैरशेषं परिसेवितं च ॥१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिस्त्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सिद्धतीर्थार्थष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतु सप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

परुष्णीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

परुष्णीसंगमं चेति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापविनाशनम् ॥१॥
अत्रिराराधयामास ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । तेषु तुष्टेषु स प्राह पुत्रा मयं भविष्य ॥२॥
तथा चक्रा रुद्रवती कन्या मम भवेत्पुत्राः । तथा पुनस्त्वमापुस्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३॥

प्लित सब ऋद्धियां प्राप्त की । उसने चन्द्र की रक्षा के लिये शकर की पूजा कर मेरे दिये हुये मन्त्र का अनुष्ठान किया ।
मन्त्र-सिद्धि होने पर वह राक्षस राज प्रसन्न होकर पुन लका में चला आया । तब से महासिद्धियों को देने वाला
दृष्टप्रद, अनिप्रमादशाली और समस्त विघ्नों को नष्ट करने वाला वह तीर्थ समस्त सिद्धों का प्रिय और सेष्य हो
गया ॥१०-१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सिद्ध-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ तैत्तलीमवां अध्याय समाप्त ॥१४३॥

अध्याय १४४

परुष्णी-संगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—परुष्णी-संगम नामक तीर्थ त्रिलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ है । उसने पाप-विनाशक परिणय का वर्णन
कर रहा है, सुनो । अत्रि ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की आराधना की । उनके प्रसन्न होने पर उन्होंने उनसे कहा कि
आप लोग मेरे पुत्र होइये और हे देवगण । मुझे एक रूपवती कन्या भी हो । निदान वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर
उन्हे पुत्र हुये । कुछ समय बाद अत्रि ने आश्वीनी नाम की एक शुभ कन्या उत्पन्न की और उस महात्मा के दत्त,

कन्यां च जनयामास शुभाऽऽत्रेयीति नामतः । दत्तः सोमोऽयं दुर्वासाः पुत्रास्तस्य महात्मनः ॥४॥
अग्नेरङ्गिरसो जातो ह्यङ्गाररङ्गिरा यतः । तस्मादङ्गिरसे प्रादादात्रेयीमातरोचिपम् ॥५॥
अग्नेः प्रभावात्पुरुषमात्रेयीं सर्वदाऽववत् । आत्रेय्यपि च शुश्रूषां कुर्वन्ती सर्वदाऽभवत् ॥६॥
तस्यामाङ्गिरसा जाता महाबलपराक्रमा । अङ्गिराः पश्यं वादीदात्रेयीं नित्यमेव च ॥७॥
पुत्रास्तवाङ्गिरसा नित्यं पितरं शमयन्ति ते । सा कदाचिद्भूतवाक्यादुद्विग्ना पश्याश्रतात् ॥
कृताञ्जलिपुटा दीना प्राब्रवीच्छ्वशुरं गुरुम् ॥८॥

आत्रेय्युवाच

अत्रिजाहं हव्यवाह भार्या तव सुतस्य वै । शुश्रूषणपरा नित्यं पुत्राणा भर्तुरेव च ॥९॥
पतिर्मा पश्य वक्ति वयंवोद्वीक्षते रुषा । प्रशाधि मां सुरज्येष्ठ भर्तरं मम देवतम् ॥१०॥

ज्वलन उवाच

अङ्गारेभ्य समुद्भूतो भर्ता ते ह्यङ्गिरा ऋषिः । यया शान्तो भवेद्भद्रे तथा नीतिविधोपताम् ॥११॥
आग्नेयोऽग्निं समायातो तव भर्ता वरानने । तदा त्वं जलरूपेण प्लावयेथा मदाज्ञया ॥१२॥

आत्रेय्युवाच

सह्यं पश्य वाक्य मा भर्ताऽग्निं समाविशेत् । भर्तरं प्रतिकूलानां योषिता जीवनेन किम् ॥१३॥

सोम और दुर्वासा तीन पुत्र हुये । अग्नि के अङ्गिरस पुत्र थे । जिस लिए अङ्गारों से उसकी उत्पत्ति हुई थी इसलिये उसको अङ्गिरा कहते थे । अग्नि ने अपनी अति तेजस्वी कन्या अङ्गिरा को दे दी । अग्नि के प्रभाव से अङ्गिरा सर्वदा आत्रेयी को जली-कटी सुनाया करते थे परन्तु आत्रेयी सर्वदा पति-शुश्रूषा करती रहती थी । उससे महा बलवान् और पराक्रमी अङ्गिरस उत्पन्न हुआ । अङ्गिरा नित्य प्रति आत्रेयी को कटु बातें सुनाया करता था । वे पुत्र अङ्गिरस नित्य पिता को शान्त किया करते थे । वह किसी दिन पति के कटु शब्दों से उद्विग्न हो गई । उस दिन आत्रेयी ने हाथ जोड़कर अपने पूज्य श्वशुर से कहा ॥१-८॥

आत्रेयी ने कहा—हे हव्य को ढोने वाले अग्नि ! मैं अत्रि तनया आपके पुत्र की भार्या हूँ प्रतिदिन पुत्रों और भर्ता की शुश्रूषा किया करती हूँ, फिर भी मेरे पति वृथा ही कटु शब्द कहा करते हैं क्रोध से आँखें तरेर कर देखा करते हैं । सुरज्येष्ठ ! कृपाकर मेरे मनु देव और मुझको भी उचित उपदेश दीजिये ॥९-१०॥

अग्नि ने कहा—तुम्हारे भर्ता ऋषि अङ्गिरा अगार से उत्पन्न हुये हैं । तो जिस प्रकार वह शांत हो भद्रे ! वैसे ही उपाय करना चाहिए । सुन्दर आनन वाली ! तुम्हारे पति आग्नेय जब अग्नि के पास आये तब तुम जलरूप से उनको मेरी आज्ञा से दबा दो ॥११-१२॥

आत्रेयी ने कहा—मैं उनके कटु वाक्यों को सह लूगी, परन्तु मेरे भर्ता अग्नि मे भत प्रवेश करें । भर्ता से

ज्वलन उवाच

इच्छेय शान्तिवाक्यानि भर्तारं लभते तथा ॥१४॥
 अग्निस्त्वप्सु शरीरेषु स्थावरे जङ्गमे तथा। तव भर्तुरहं धाम नित्यं च जनको मत ॥१५॥
 योऽहं सोऽहमिति ज्ञात्वा न चिन्ता कर्तुमर्हसि। किंचाऽऽपो मातरो देव्यो ह्यग्निं श्वशुर इत्यपि ॥
 इति बुद्ध्या विनिश्चित्य मा विषण्णा भव स्नुषे ॥१६॥

स्नुषोवाच

आपो जनन्य इति यदबभाषे, अग्नेरहं तव पुत्रस्य भार्या ॥
 कथं भूत्वा जननी चापि भार्या, विरुद्धमेतज्जलरूपेण नाय ॥१७॥

ज्वलन उवाच

आदौ तु पत्नीं भरणात् भार्या, जनेस्तु जाया 'स्वगुणै' कलत्रम् ॥
 इत्यादिरूपाणि विभर्षि भद्रे, कुरुष्व धारय मदुदीरितं यत् ॥१८॥
 योऽस्या प्रजातः स तु पुत्र एव, सा तस्य मातृव न सशयोऽत्र ॥
 तस्माद्वदन्ति श्रुतितत्त्वविज्ञा, सा नैव योषित्तनयेऽभिजाते ॥१९॥

प्रतिकूल रहने वाली स्त्रियो के जीवन से क्या लाभ ? मैं तो जिस प्रकार भर्ता शान्ति वचन कहने लगे वैसा ही करना चाहती हूँ ॥१३ १४॥

अग्नि बोले—अग्नि तो जल शरीर स्थावर और अगम में रहता है। मैं तुम्हारे पति को उत्पन्न करने वाला और उनका धाम (आश्रय) हूँ। मैं तो जो हूँ वह हूँ ही या रहूँगा ही ऐसा जानकर तुम कभी भी चिन्ता न करो। दूसरी बात यह है कि आप (जल) देवी माता हैं, और अग्नि तुम्हारे ससुर हैं इसका बुद्धि द्वारा निश्चय कर लो ! तुम उदास मत होओ ॥१५ १६॥

स्नुषा बोली—अग्ने ! आप (जल) जननी हैं यह आपने जो कहा वह ठीक नहीं क्योंकि मैं तुम्हारे पुत्र की भार्या हूँ। नाय ! भार्या होकर स्त्री किस प्रकार जननी हो सकती है ? यह तो जलरूप से (जननी बनना) विरुद्ध जान पड़ता है ॥१७॥

अग्नि ने कहा—पहले (विवाह के समय) स्त्री पत्नी रहती है पुत्र भरणपोषण करने से भार्या बन जाती है पुत्रोत्पत्ति के कारण जाया और अपने गुणों के कारण कलत्र कहलाती है। मद्र ! इस प्रकार स्त्री होने के नाते तुम इन विविध रूपों को धारण करती हो अतः मैं जो कह रहा हूँ उसको करो। जो पति इसम (स्त्रीम) उत्पन्न हुआ वह तो पुत्र ही हुआ और वह उसकी माता हुई इसम सन्देह नहीं। इसीलिये वेद मन्त्रों ने कहा है कि पुत्र उत्पन्न हो जाने पर स्त्री योषित् नहीं प्रयुक्त जननी हो जाती है ॥१८ १९॥

ब्रह्मोवाच

द्वदशरूपस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽऽत्रेयो तदेव तत् । आग्नेयं रूपमापन्नमम्भसाऽप्लावयत्पतिम् ॥२०॥
 उभौ तौ दंपती ब्रह्मन्संगतौ गङ्गावारिणा । शान्तरूपधरो धोभौ दंपती संवभूवतुः ॥२१॥
 लक्ष्म्या युक्तो यथा विष्णुर्मया शंकरो यथा । रोहिण्या च यथा चन्द्रस्तथाऽभून्मियुनं तदा ॥२२॥
 भर्तारं प्लावयन्ती सा दधाराम्बुमयं वपुः । परुष्णी चेति विख्याता गङ्गाया संगता नदी ॥२३॥
 गोशतापणजं पुण्यं परुष्णीस्नानतो भवेत् । तत्र चाऽऽङ्गिरसाश्चक्रुर्यज्ञांश्च बहुवक्षिणान् ॥२४॥
 तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थान्याहुः पुराणगाः । उभयोस्तीरयोस्तात पूयग्यागफलं विदुः ॥२५॥
 तेषु स्नानं च दानं च वाजपेयाधिकं मतम् । विशेषतस्तु गङ्गायाः परुष्ण्या सह सगमे ॥२६॥
 स्नानदानादिभिः पुण्यं यत्तद्वक्तुं न शक्यते ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये परुष्णीसंगमादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं
 नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—समुद्र की इन वानों को सुनकर आग्नेयी ने उसी समय उस आग्नेय रूप पाये हुये पति को जल में डुबो दिया । ब्रह्मन् । वे दोनों दम्पती गङ्गा-जल से मिल जाने पर शान्तस्वरूप वाले दम्पती बन गये । जिस प्रकार लक्ष्मी से युक्त विष्णु, उमा से युक्त शिव और रोहिणी से युक्त चन्द्रमा की शोभा होती है, उसी प्रकार वे दोनों युगल दम्पती सुशोभित हुये । भर्ता को जल से डुबोती हुई उसने जलमय शरीर धारण किया था, अतः वह परुष्णी नाम से विख्यात हुई और वह नदी गंगा में जाकर मिली । परुष्णी में स्नान करने से सौ गोदान का पुण्य प्राप्त होता है । उस सगम तीर्थ में आगिरसो ने बहुत-सी दक्षिणा वाले अनेक यज्ञ किये । पुराण-गायक लोग वहाँ और तीन हजार तीर्थ बताते हैं । तात । वहाँ दोनों तटों के यज्ञों का फल पूय-पूय कहा गया है । उनमें स्नान और दान करने से वाजपेय यज्ञ से भी अधिक फल मिलता है, ऐसा कहा जाता है । गंगा और परुष्णी के सगम में स्नान-दान करने से जो विशेष पुण्य मिलता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में परुष्णी-सगम-तीर्थ-वर्णन नामक एक-सी चौवालीसवां
 अध्याय समाप्त ॥१४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेयतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मार्कण्डेय नाम तीर्थ सर्वपापविमोचनम् । सर्वकृतुफल पुण्यमघौघविनिवारणम् ॥१॥
 तस्य प्रभाव वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत । मार्कण्डेयो भरद्वाजो वसिष्ठोऽत्रिश्च गौतम ॥२॥
 याज्ञवल्क्यश्च जाबालिर्मुनयोऽयंऽपि नारद । एते शास्त्रप्रणेतारो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥३॥
 पुराणन्यायमोमासाक्यास्तु परनिष्ठिताः । मिथः समुच्चविद्वांसो मुक्तिं प्रति ययामति ॥४॥
 केचिज्ज्ञानं प्रशसन्ति कचित्कर्म तयोभयम् । एव विवदमानास्ते मामूचुरुभय मतम् ॥५॥
 मदीयं तु मतं ज्ञात्वा ययुश्चक्रगदाधरम् । तस्य चापि मतं ज्ञात्वा श्रूयस्ते महोजसः ॥६॥
 पुनर्विवदमानास्ते शकरं प्रष्टुमुद्यताः । शङ्गाया च भव पूज्य तमेवायं शशसिरे ॥७॥
 कमणस्तु प्रधानत्वमुवाच त्रिपुरातकः । क्रियारूपं च तज्ज्ञानं क्रिया संघं तदुच्यते ॥८॥
 तस्मात्सर्वाणि भूतानि कर्मणा सिद्धिमाप्नुयुः । कर्मैव विश्वतोऽप्यपि तद्गते नास्ति किञ्चन ॥९॥
 विद्याभ्यासोऽयं कृतकृत्योऽयं योगभ्यासः शिवाचनम् । सर्वं कर्मैव नाकर्मो प्राणी क्वाप्यन विद्यते ॥१०॥

अध्याय १४५

मार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब पापों को छुड़ाने वाला सब यज्ञ फलों को देने वाला पवित्र और अप-समूह की गण्ट करने वाला मार्कण्डेय नामक तीर्थ है । नारद । उसके प्रभाव को बह रहा हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो । नारद । मार्कण्डेय भारद्वाज वसिष्ठ अत्रि गौतम याज्ञवल्क्य जाबालि आदि मुनियों एवं अन्य शास्त्रकर्ता वेदवेदाङ्ग व पारंगत पुराण मीमांसा और यायवर्चों में अति निष्ठा रखने वाले विद्वान् । न मुक्ति के विषय में अपनी भूज के अनुसार परस्पर अपने विचार व्यक्त क्रिय । कोई ज्ञान की प्रशंसा करते थे तो कोई कर्म की तो कोई कर्म और ज्ञान दोनों की । इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन लोगों ने मेरे सामने दोनों पक्ष रखे । मेरे मन की जान कर लोग चक्रगदाधारी विष्णु के समीप गये । उनका मत को भी जान कर महातेजस्वी श्रुति पुन अपने में विवाद करते हुए दावर से पूछन के लिये तैयार हुए । गया में गङ्गा की पूजा कर उनसे पुन उसी विवाद के विषय में निवेदन किया । त्रिपुरारि शिव ने कर्म का ही प्राधान्य बतलाते हुए कहा—यह ज्ञान भी कर्म रूप ही है और वही कर्म ज्ञान कहा जाता है । इसलिए सब प्राणी कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त करते हैं । कर्म ही विवर्धनी है । कर्म के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है । विद्याभ्यास यज्ञकर्म योगभ्यास शिवपूजा सब कुछ कर्म ही है । कोई प्राणी

कर्मैव कारणं तस्मादन्यदुन्मत्तचेष्टितम् । ऋषीणां यत्र संवादोऽयत्र देवो महेश्वरः ॥११॥
 चकार निर्णयं सर्वं कर्मणाऽवाप्यते नृभिः । मार्कण्डं मुख्यतः कृत्वा ततो मार्कण्डमुच्यते ॥१२॥
 तीर्थंमुषिगणाकीर्णं गङ्गाया उत्तरे^१ तटे । पितृणां पावनं पुण्यं स्मरणादपि सर्वदा ॥१३॥
 तत्राष्टो भवतिस्तात तीर्थान्याह जगन्मयः । वेदेन^२ चापि तत्प्रोक्तमूषयो मेनिरे च तत् ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मार्कण्डेयाष्टनवतितीर्थवर्णनं नाम
 पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

गौतमीमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालञ्जरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यायातमपरं तीर्थं यत्र कालजरः शिवः । सर्वपापप्रशमनं तद्वत्समुच्यते^३ मया ॥१॥

अर्कमें वहीं पर भी नहीं देखा गया है । इसलिये अन्य उन्मत्त चेष्टाओं (पागलपन के कामों) का भी कर्म ही कारण है ।' जहाँ ऋषियों का इस प्रकार का संवाद हुआ और जहाँ महेश्वर ने 'मनुष्य सब कुछ कर्म के द्वारा ही प्राप्त करता है' ऐसा नियम विशेष रूप से मार्कण्डेय को ही लक्षित करके किया, इसलिये उसको मार्कण्डेय तीर्थ कहते हैं । गंगा के उत्तर तट पर ऋषियों से व्याप्त तीर्थ पितरों को पवित्र करने वाला और सर्वदा स्मरणमान्य से भी पुण्यदायी है । तात ! जगद्व्यापक मे वहाँ अद्वैतानन्द तीर्थों को कहा है, वेदों ने भी उसको कहा है और ऋषियों ने भी इसका समर्पण किया है ॥१-१४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मार्कण्डेय आदि अद्वैतानन्द तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवालीसवां अध्याय समाप्त ॥१४५॥

अध्याय १४६

कालञ्जरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यायात नामक एक दूसरा तीर्थ है जहाँ कालजर शिव रहते हैं । उसके सब पापों को धात कर देने वाला इतिहास मैं कह रहा हूँ । गङ्गुप का पुत्र यायाति नामक राजा था, जो कालञ्जर तीर्थ इन्द्र के समान

ययानिर्नाहुयो राजा साक्षादिन्द्र इवापरः। तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्कुललक्षणभूयितम् ॥२॥
 ज्येष्ठा तु देवयानीति नाम्ना शुकसुता शुभा। शमिष्ठेति द्वितीया सा सुता स्याद्वृषपर्वणः ॥३॥
 ब्राह्मण्यपि महाप्राज्ञा देवयानी सुमध्यमा। ययातेरभवद्भार्या सा तु शुकप्रसादतः ॥४॥
 शमिष्ठा चापि तस्यैव भार्या या वृषपर्वजा। देवयानी शुकसुता द्वौ पुत्रौ समजीजनत् ॥५॥
 यदुं च तुर्वसुं चैव देवपुत्रसमाबुभौ। शमिष्ठा च नृपाल्लभे त्रीण्युत्रान्देवसनिभान् ॥६॥
 द्रुह्युं चानुं च पूरु च ययातेनृपसत्तमात्। देवयान्याः सुतौ ब्रह्मन्सदृशौ शुकस्पतः ॥७॥
 शमिष्ठायस्तु तनयाः शक्राग्निवरुणप्रभाः। देवयानी कदाचित्तु पितरं प्राह दुःखिता ॥८॥

देवयान्युवाच

मम स्वपत्यद्वितयमभाग्याया भृगूद्वह। मम दास्याः सभाग्याया अपत्यत्रितयं पितः ॥९॥
 तदेतदनुमृश्यामं दुःखमत्यन्तमागता। मरिष्ये दानवगुरो ययातिवृत्तविप्रियात् ॥
 मानभङ्गाद्वरं तात मरणं हि मनस्विनाम् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तदेतत्पुत्रिकावाक्यं श्रुत्वा शुकः प्रतापवान्। कुपितोऽभ्याधयौ शीघ्रं ययातिमिदम्वीत् ॥११॥

या। उसकी कुलीन और सब लक्षणों से सुशोभित दो स्त्रियाँ थीं। जेठी बल्याणमयी शुक-वन्द्या देवयानी नामकी और दूसरी वृषपर्वा की पुत्री शमिष्ठा थी। वह सुन्दर बटिवाली, महाबुद्धिमती देवयानी ब्राह्मणी होते हुए भी शुक की वृषा से क्षत्रिय ययाति की भार्या हुई। वृषपर्वा-तनया शमिष्ठा भी उसी की पत्नी हुई। शुक-वन्द्या देवयानी ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया। उन दोनों के नाम यदु और तुर्वशु या। दोनों देव-पुत्रों के समान थे। शमिष्ठा न भी नृपश्रेष्ठ ययाति से देव तुल्य तीन पुत्र—द्रुह्य, अनु और पूरु—प्राप्त किये। ब्रह्मन्! देवयानी के पुत्र रूप में शुक के समान थे, और शमिष्ठा के पुत्र शक्र, अग्नि और वरुण के समान तेजस्वी थे। किसी समय देवयानी ने अत्यंत दुःखी हो कर पिता से कहा ॥१-८॥

देवयानीने कहा—भृगुकुलोत्पन्न पिता जी! मुझ अभागिनी के दो दो ही पुत्र हैं, किन्तु मेरी सौभाग्य-वती दासी के तीन पुत्र हैं। इन बातों को सोचकर मुझे दुःख हो रहा है। दानव-भृगु! ययाति के द्वारा किये गये अपमान में मैं मर जाऊँगी। तात! मनस्वी के लिए मानभङ्ग की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है ॥९-१०॥

यह्या ने कहा—पुत्री की यह बात सुनकर प्रतापी शुक कुपित हो गए और शीघ्र ययाति के पास जाकर यह बोले ॥११॥

शुक उवाच

यदिदं विप्रिय मे त्वं सुताया कृतवानसि । रूपेण्मत्सेन राजेन्द्र तस्माद्बुद्धो भविष्यसि ॥१२॥
न च भोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयातुर । स्पृहयन्मनसं वाऽऽस्ते निश्वासीच्छ्वासनष्टधी ॥१३॥
बृद्धत्वमेव मरणं जीवतामपि देहिनाम् । तस्माच्छ्रेष्ठ प्रयाहि त्वं जरा भूपातिदुर्धराम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ययातिस्तु शापं शुकस्य धीमतः । कृताञ्जलिपुटो राजा ययातिः शुक्रमब्रवीत् ॥१५॥

ययातिरुवाच

नापरार्धे न सकुप्ये नैवाधर्मं प्रवर्तये । अधर्मकारिणं पापांशस्यैव महात्मनाम् ॥१६॥
धर्ममेव चरन्तं वै कथं मां शप्तवानसि । देवयानीं द्विजश्रेष्ठ वृथा मां वक्ति किंचन ॥१७॥
तस्मान्न मम विप्रेन्द्र शापं दातुं त्वमर्हसि । विद्वांसोऽपि हि निर्दोषे यदि कुप्यन्ति मोहिताः ॥
तदा न दोषो मूर्खाणां द्वेषामिच्छन्त्येव तेषाम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

ययातिवाक्याच्छुक्रोऽपि सस्मार सुतया कृतम् । असकृद्विप्रियं तस्य दिवा रात्रौ प्रचण्डया ॥१९॥
गतकोपोऽहमित्युक्त्वा काव्यो राजानमब्रवीत् ॥२०॥

शुक बोले—तुमने जो यह रूप के पीछ पागल होकर मेरी पुत्री का अपमान किया है राजेन्द्र । इस पाप से तुम बूढ़ हो जाओगे । विषयातुर होते हुए भी बूढ़ा व्यक्ति न तो विषयो का भोग ही कर सकता है और न त्याग ही । केवल वह मन से इच्छा करता रहता है । अतुष्टि के कारण वह सदा आहें मरा करता है । उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है । गरीरधारियों के लिये बुढ़ापा जीते जी मृत्यु है । इसलिये भूपाल । तुम शीघ्र ही दुःखदायी बुढ़ापे का आह्वान करो ॥१२-१४॥

ब्रह्मा बोले—धीमान शुक के इस शाप को सुनकर राजा ययाति हाथ जोड़कर शुक से बोले ॥१५॥

ययाति ने कहा—महात्माओ द्वारा अधर्मी पापी सबदा अनुयासित होते ही हैं किन्तु मैंने न तो कोई अपराध किया है न किसी पर क्रोध किया है और न अधर्म की ओर ही पग बढ़ाया है । सबदा धर्माचरण करने वाले मुझको आपने क्या शाप दिया है ? द्विजश्रेष्ठ । देवयानीं व्यस ही मुझ पर दोषारोपण कर रही है । विप्रन्द्र । इसलिये आपरो मुख गान नहीं देना चाहिये या । यदि विद्वान् भी मोहित होकर निरपराधो पर इस प्रकार कोप करेंगे तो द्रव्यभिन् से जले हुये चित्त वाले मूर्खों को ऐसा काय करने में कोई दोष नहीं होगा ॥१६-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—ययाति के कहने से शुक को भी अपनी त्रि रात बार-बार धृष्टता करने वाली प्रचण्ड क्रिया के दृष्टी की याद आ गई । उन्होंने मेरा क्रोध अब शांत हो गया ऐसा कह कर राजा से कहा ॥१९-२०॥

शुक उवाच

।।

ज्ञातं मयाऽनयाऽकारि विप्रियं न वदेऽनृतम् । शापस्येमं करिष्यामि शृणुष्वानुग्रहं नृप ॥२१॥
यस्मै पुत्राय सदातुं जरामिच्छसि मानव । तस्य सा यातिव्य राजञ्जरा पुत्राय मद्वरात् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ययाति श्वशुरं शुक प्राह विनीतवत् ॥२३॥
यो गृह्णाति मया दत्ता जरा भवितसमन्वितः । स राजा स्याद्वैत्यगुरो तदेतदनुमन्यताम् ॥२४॥

ययातिरुवाच

यो मद्वाक्यं नाभिनन्देत्सुतो दैत्यगुरो वृद्धम् । शपेयमनुजाऽत्र दातव्यं त्वया गुरो ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति राजानमुवाच भृगुनन्दनः । ततो ययाति स्व पुत्रमाहूयेद वचोऽब्रवीत् ॥२६॥

ययातिरुवाच

यदो गृहाण मे शापाञ्जरा जातां सुतो भवान् । ज्येष्ठः सर्वार्थवित्प्रोढः पुत्राणां धुरि सस्थितः ॥
पुत्रो तेनैव जनको यस्तदजाविशे स्थितः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच यदुस्तातं ययाति भूरिदक्षिणम् । ययातिश्च यदु शपवा तुयंसुं काममब्रवीत् ॥२८॥

शुक ने कहा—मैंने जान लिया कि उसने अवश्य अपराध किया है परन्तु मैं कभी भी असत्य नहीं बोलता ।
नृप ! इस शाप का यह परिहार कर रहा हूँ । मानव ! जिस पुत्र को अपना बुढ़ापा देना चाहते हो राजन् !
उसको यह बुढ़ापा मेरे वरदान से मिल जाय और तुम युवा हो जाओ ॥२१-२२॥

ब्रह्मा बोले—पुनः ययाति ने अति विनम्र भाव से श्वशुर शुक से कहा ॥२३॥

ययाति ने कहा—परन्तु दैत्यगुरो ! आप इस बात की अनुमति दीजिए कि जो मन्त्रिपुत्रों के मेरे दिग्ग
हूप बुढ़ापे को अपना ले वह राजा हो । दैत्यगुरो ! जो मरे वाक्य का बुढ़ापा से अनादर करे उसको शाप भी दे
दूँ । गुरो ! आप ऐसी भी आज्ञा दीजिये ॥२४-२५॥

ब्रह्मा बोले—भृगुनन्दन ने 'एवमस्तु' ऐसा राजा से कहा । तब राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर
यह बात कही ॥२६॥

ययाति ने कहा—यदु ! शाप से पाई हुई मेरी इस जरा को ले लो क्योंकि तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र, सब बाजों
को जानने वाले कपस्क और सब पुत्रों के अधिपति हो । पिता उस पुत्र से पुत्रवान् कहा जाता है जो उसकी आज्ञा
के अनुसार कार्य करे ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—यदु ने अति विनम्रता की पिता ययाति से 'नहीं' ऐसा कहा । ययाति ने यदु को शाप

नागृह्णात्तुर्वसुश्चापि पित्रा दत्तां जरां तदा । तं शप्त्वा चाश्ववीद्ब्रह्मं गृहाणेमां जरां मम ॥२९॥
 द्रुमुश्च मेच्छतां दत्तां जरां रूपविनाशिनीम् । अनुमप्यश्ववीद्राजा गृहाणेमां जरां मम ॥३०॥
 अनुनेति तदोवाच शप्त्वा तं पूरुमब्रवीत् । अभिनम्य तदा पूरुर्जरां तां जगृहे पितुः ॥३१॥
 सहस्रमेकं वर्षाणां यावत्प्रीतोऽभवत्पिता । यौवने यानि भोग्यानि वस्तूनि विविधानि च ॥३२॥
 पुत्रयौवनसंपुष्टो ययातिर्बुभुजे सुखम् । ततस्तुप्तोऽभवद्राजा सर्वभोगेषु नाहुषः ॥
 ततो हर्षात्समाहूय [पूरुं] पुत्रमयान्नवीत् ॥३३॥

ययातिरुवाच

। । ।

तुप्तोऽस्मि सर्वभोगेषु यौवनेन तवानघ । गृहाण यौवनं पुत्र जरां मे देहि कश्मलाम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच तदा पूरुर्जरया क्षीयते मया । विकारास्तात भावानां दुर्निवाराः शरीरिणाम् ॥३५॥
 बलात्कालागता सद्गुणा जराऽप्यखिलदेहिभिः । सा चेद्गुरुल्लुपकाराय गृहीता त्यज्यते कथम् ॥३६॥
 स्वीकृतत्यागपापाद्धि देहिनां भरणं वरम् । अथवा तु जरां राजंस्तपसा नाशयाम्यहम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पितरं ययौ गङ्गामनुत्तमाम् । गीतम्या वक्षिणे पारे ततस्तेपे तपो महत् ॥३८॥

देकर तुर्वसु से बड़े प्यार से अपना मनोरथ कहा । उस समय तुर्वसु ने भी पिता के दिये हुए वृद्धापे को नहीं लिया । राजा ने उसको भी शाप देकर द्रुह्य से कहा—‘मेरा यह वृद्धाप ले लो’ । द्रुह्य ने भी रूप सोन्दर्य का विनष्ट करने वाली पितृ-दत्त जरा का अस्वीकार कर दिया । राजा ने अनु से भी कहा कि मेरी इस जरा को ले लो । अनु ने कहा ‘कभी नहीं’ । तब उसको भी शाप देकर राजा ने पूरु से कहा । पूरु ने पिता का सम्मान कर पिता का वृद्धाप ले लिया । पिता ययाति ने एक सहस्र वर्ष तक प्रसन्न एवं पुत्र की जवानी से परिपुष्ट होकर युवावस्थाकित जितने विविध भोग-प्रदाय और सुख थे, उनका उपभोग किया । इसके बाद जब राजा नहुष पुत्र सव भोगों से तृप्त हो गये तब बड़ी प्रसन्नता से पुत्र पूरु को बुलाकर बोले ॥२८-३३॥

ययाति ने कहा—तुम्हारे इस यौवन से मैंने विविध भोगों का भोग किया । अब मैं तृप्त हो गया हूँ । पुत्र ! अब इस यौवन को ले लो और मेरी पापिनी वृद्धावस्था को दे दो ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—तब पूरु ने कहा ‘नहीं तात’ । जरा से मेरी दुर्वासनायें नष्ट हो रही हैं । देह धारियों के नाश-विकार कठिनाई से दूर करने योग्य होते हैं । अतः उन विकारों को दूर करने वाली जरा यदि हठात् समय की प्रेरणा से आ जाय तो भी सब वैदुषारियों को स्वीकार कर लेना चाहिये । वह यदि गुरु के उपकार के लिये हो तब तो उसको क्यों छोड़ा जाय । स्वीकार की हुई वस्तु के परित्याग जनित-पाप से देही का गर जाना ही अच्छा है । अथवा राजन् ! मैं इस जरा को तपस्या के द्वारा नष्ट किये देता हूँ ॥३५-३७॥

ब्रह्मा बोले—पिता से यह कहकर पूरु परमोत्तम गौतमी नद्या के पास गया; और उसके दक्षिण तट पर

ततः प्रीतोऽभवद्देव कालेन महता शिव । लोकातीतमहोदारगुणसम्मणिभूषितम् ॥
किं वदामीति त प्राह पूरु स सुरसत्तम ॥३९॥

पूरुखाच

शापप्राप्ता जरा नाय पितुर्मम सुराधिप । ता नाशयस्व देवेश पितृशप्ताश्च कोपत ॥
मदन्मातृञ्चापतो मुक्तान्कुण्डलं सुरपूजित ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्त्वा जगन्नाय शापाज्जाता जरा तथा । 'अनाशयज्जगन्नायो मातृश्चक्रे विशापिन ॥४१॥
ततः प्रभृति तत्तीथ जरारोगविनाशनम् । अकालजजरादीनां स्मरणादपि नाशनम् ॥४२॥
तन्नाम्ना चापि विख्यात कालजरमुदाहृतम् । यायात नाहुष पौर शोकं शामिष्यमेव च ॥४३॥
एवमादीनि तीर्थानि तन्नाष्टोत्तरमेव च । शतं विद्यान्महाबुद्धे सर्वसिद्धिकरं तथा ॥४४॥
तपु स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा । सर्वपापप्रशमनं भुक्तिमुक्तिप्रदं भवेत् ॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कालजराद्यष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम
पटचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥७७॥

महान् तपस्या करने लगा । तदनंतर मगवान् गगर बहुत समय बाद प्रसन्न हुये । उस सुर वर ने लोकातीत महान्
उदारता रूपी अच्छे मणि से भूषित उस पूरु से कहा कि क्या दू ॥३९॥

पूरु ने कहा—सुर स्वामिन ! नाय ! गाप से पाई हुई मेरे पिता की जरा को नष्ट कर दीजिये । देवेश !
देवपूजित ! शीघ्र से पिता द्वारा अभिगप्त मेरे माइया को गाप से मुक्त कर दीजिये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—एसा ही हो यह कहकर जगन्नाय घर में शाप से उत्पन्न जरा को नष्ट कर दिया और
उसने माइया को भी गाप से मुक्त कर दिया । तब से वह तीथ जरा एवं रोग का विनाशक और स्मरणभाज
से भी अममय के बुढ़ापे को दूर करने वाला हो गया । उस प्रभाव के कारण उसका नाम मा काञ्जर हो गया ।
महाबुद्धे ! यायात नाहुष पौर शोक शामिष्य आदि एक सौ आठ तीर्थ वहाँ विद्यमान हैं जो गय प्रकार की
सिद्धियाँ देने वाले हैं । उनमें स्नान दान क्या श्रवण पठन आदि कम सर पापों को दूर करने वाले और मुक्ति
मुक्ति प्रद हैं ॥४१॥ ४५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यायात काञ्जर आदि एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक
एक सौ छियासीसवीं अध्याय समाप्त । १४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः.

अप्सरयुगसगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

'अप्सरयुगमाख्यातमप्सरासगम तत । तीरे च दक्षिणे पुण्य स्मरणात्सुभगो भवेत् ॥१॥
मुक्तो भवत्यसदेह तत्र स्नानादिना नर । स्त्री सती सगमे तस्मिन्नुत्सनात् च नारद ॥२॥
बन्ध्याऽपि जनयेत्पुत्र त्रिमासात्पतिना सह । स्नानदानेन वर्तन्ती नान्यथा मद्बचो भवेत् ॥३॥
अप्सरयुगमाख्यात तीर्थं येन च हेतुना । तत्रेव कारणं वक्ष्ये शृणु नारद यत्नत ॥४॥
स्पर्धाऽऽसीन्महती ब्रह्मन्विद्वामित्रवसिष्ठयो । तपस्यन्त गाधिसुत ब्राह्मण्यार्थं यतव्रतम् ॥५॥
गङ्गाद्वारे समासीन प्रेरितेन्द्रेण मेनका । त गत्वा तपसो भ्रष्ट कुरु भद्रे ममाऽऽज्ञया ॥६॥
तदोक्तेन्द्रेण सा मेना विश्वामित्र तपश्च्युतम् । कृत्वा कन्या तया दत्त्वा जगामेन्द्रपुर पुन ॥७॥
तस्या गताया सस्मार गाधिपुत्रोऽखिल कृतम् । त तु देशं परित्यज्य तीर्थं तु सुरबल्लभम् ॥८॥
जगाम दक्षिणां गङ्गां यत्र कालजरो हर । तपस्यन्त तदोवाच पुनरिन्द्र सहस्रदृक् ॥९॥

अध्याय १४७

५५११५,

अप्सरयुग या अप्सरा-सगम तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद गौतमा के दक्षिण तीर पर अप्सरो-युग नामक एक पवित्र तीर्थ है जिसको अप्सरासगम भी कहते हैं । उसके स्मरण से भी मनुष्य भाग्यवान् हो जाता है । उस तीर्थ में स्नान आदि से मनुष्य निरासदेह मुक्त हो जाता है । नारद ! उस सगम में यदि शत्रुत्सनाता पतिव्रता स्त्री तीन महाने तक पति के साथ स्नान, दान आदि का व्रत करे तो वह चाहे बन्ध्या हो क्या न हो अवश्य पुत्र उत्पन्न करती है । नारद ! जिस कारण उसका अप्सरा-युग तीर्थ नाम पड़ा वह बता रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो ।

ब्रह्मन् ! विश्वामित्र और वसिष्ठ में बहुत बड़ी प्रतिस्पर्धा थी । ब्रह्मापि बनने के लिए विश्वामित्र ने व्रत धारण करना हरिद्वार में जाकर महान् तपस्या प्रारम्भ की । तपस्वी विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट करने के लिये इन्द्र ने मेनका से कहा मन्त्रे ! मेरी आज्ञा से तुम विश्वामित्र के पास जाओ और उसको तपस्या से व्युत्तर दो । इन्द्र से इस प्रकार की आज्ञा पाकर मेना ने विश्वामित्र का तपोभ्रष्ट कर दिया । वह जनस एक कन्या उत्पन्न कर जनको देकर पुन इन्द्रपुरी चली गई । उसने चले जाने पर श्रुति को पिछली सारी बातों का स्मरण हुआ । सोम उस प्रान्त और सुर प्रिय तीर्थ को छाड़ दक्षिण गंगा के तट पर आये जहाँ कालञ्जरी महादेव स्थित हैं । पुन उन्हीं पहले की ही भाँति तपस्या में लीन देखकर सहस्राक्ष इन्द्र ने उन्हीं मेना रम्भा और तिलोत्तमा

उर्वशीं च ततो मेना रम्भा चापि तिलोत्तमाम्। नैवेत्यूचुर्भयत्रस्ता पुनराह शचीपति ॥१०॥
गम्भीरा चातिगम्भीरामुभे ये गर्विते तदा। ते ऊचतुरुभे देव सहस्राक्ष पुरंदरम् ॥११॥

गम्भीरातिगम्भीरे ऊचतु

आवा गत्वा तपस्यन्त गाधिपुत्र महाद्युतिम्। व्याधवावो नृत्यगीत रूपयौवनसपदा ॥१२॥
पासामपाङ्गे हसिते वाचि विभ्रमसपदि। नित्यवसति पञ्चपुस्ताभि फोऽत्र न जौयते ॥१३॥

ग्रह्योवाच

तथत्युक्ते सहस्राक्षे त आगत्य महानदीम्। ददृशाते तपस्यन्त विश्वामित्र महामुनिम् ॥१४॥
मृत्योरपि दुराधय भूमिस्यमिव धूर्जटिम्। सहस्रमेक वर्षाणामीक्षितु न च शक्नुत ॥१५॥
दूरे स्थिते नृत्यगीतचाटुकाररते तदा। विलोक्य मुनिशार्दूलस्तत कोपाकुलोऽभवत् ॥१६॥
प्रतीपाचरण दृष्ट्वा क्रोध कस्य न जायते। निस्पृहोऽपि महाबाहुस्तमिन्द्र प्रसहन्निव ॥१७॥
आम्या मुक्त सहस्राक्षो ह्यसरोम्या श्वन्निव। दशाप ते स गाधेयो ब्रवरूपे भविष्यथ ॥१८॥
द्रवितु मा समायात यतस्त्विह ततो लघु। तत प्रसादितस्ताभ्या शापमोक्ष चकार स ॥१९॥

आदि से उनको तपोध्रष्ट करने के लिये कहा। परन्तु भयभीत होकर किसी ने कुछ नहीं कहा। तब पुन शची पति ने अपने रूप पर अभिमन करने वाली गम्भीरा और अतिगम्भीरा नामक अप्सराओं से कहा। उन दोनों ने सहस्रनेत्र द्रुद्र से कहा ॥११॥

गम्भीरा और अतिगम्भीरा ने कहा—(हम दोनों जाकर अपने सौंदर्य और सुवासन्या के प्रभाव से एव अपने मृत्यु और गीत के आकर्षण से उस तपोनिष्ठ महातेजस्वी गाधि मुत को च्युत कर देंगी।) उनके कटाक्ष हास, वाणी और विलास से पञ्चवशर मदन सबदा निवास करता है जनसे मला कीन नहीं जीता जा सकता है? ॥१२ १३॥

ग्रह्य ने कहा—द्रुद्र की स्वीकृति मिल जाने पर दोनों अप्सराओं ने महानदी पर आकर तपोरत उस महामुनि को देखा परन्तु मृत्यु से भी अधिक भयकर पृथ्वी पर स्थित भैरव शंकर के समान उस मुनि की ओर एक हजार वर्ष तक आँख उठाकर देखने का साहस नहीं हुआ। (तब वे दूर रहकर ही अपने नृत्य गीत और हाव भाव दिखाने में लग गये।) उनकी यह कीला देखकर वशी विरवामित्र क्रोध से व्याकुल हो गये। टीक है—अनुचित व्यवहार को देखकर किसको क्रोध नहीं होता? निस्पृह होते हुए भी उस महापराक्रमी गाधि-मुत ने द्रुद्र पर हँसते और यह कहते हुए स कि सहस्राक्ष द्रुद्र इन अप्सराओं के भार से अब मुक्त हो गये' उन दोनों को शाप दे दिया कि तुम दोनों जल (द्रव) रूप हो जाओ क्योंकि तुम दोनों मुझकी यही द्रवित (च्युत) करने के लिये आई थी। घादी देर म ही उन दोनों ने मुनि को प्रसन्न कर दिया जिससे उस मुनि ने उसे शाप से मुक्त कर दिया और कहा—जब तुम दोनों गया से मिलोगी तब उसी क्षण शाप से पाये हुए नदी रूप को छोड़ दिव्य रूप पा जाओगी।'

भवेतां दिव्यरूपे वा गङ्गाया संगते यदा । तच्छापात्ते नदीरूपे तत्क्षणात्संवभूवतु ॥२०॥
अप्सरयुगमाख्यातं नदीद्वयमतोऽभवत् । ताम्यां परस्परं चापि ताम्यां गङ्गासु संगमः ॥२१॥
सर्वलोकेषु विख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः । तत्राऽऽस्ते दृष्ट एवासौ सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२२॥
तत्र स्नात्वा तु तं दृष्ट्वा मुच्यते 'सर्वबन्धनात्' ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽप्सरयुगसंगमतीर्थवर्णनं नाम
सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटितीर्थवर्णनम् ब्रह्मोवाच

कोटितीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया 'दक्षिणे' तटे । यस्यानुस्मरणादेव सर्वपार्ष्णं प्रमुच्यते ॥१॥
यत्र कोटीश्वरो देवः सर्वं कोटिगुणं भवेत् । कोटिद्वयं तत्र पूर्णं तीर्थानां शुभदायिनाम् ॥२॥
तत्र व्युष्टिं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः । कण्वस्य तु सुतो ज्येष्ठो ब्राह्मीक इति विश्रुतः ॥३॥

इसलिये नदीद्वय के संयोग से यह तीर्थ अप्सरोयुग नाम से प्रसिद्ध हुआ । उनका परस्पर का संगम, पुन उन दोनों का गंगा से संगम सब लोक में प्रसिद्ध हो गया । उस तीर्थ में भुक्ति-मुक्ति देने वाले एवं दर्शनमात्र से सब सिद्धियाँ देने वाले लोक-विख्यात शिव रहते हैं । तीर्थ में स्नान और उस शिव का दर्शन करने से मनुष्य सब बन्धनों से छूट जाता है ॥१४-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अप्सरोयुग-संगम-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सत्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४७॥

अध्याय १४८

कोटितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के दक्षिण तट पर कोटि-तीर्थ नामक एक तीर्थ है, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१॥ जहाँ कोटीश्वर देव हैं, वहाँ के प्रत्येक कार्य करोड़ गुना फल देते हैं । वहाँ पूरे दो करोड़ पवित्र तीर्थ हैं ॥२॥ नारद ! वहाँ के फल का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । कण्व के ज्येष्ठ पुत्र ब्राह्मीक नाम से प्रसिद्ध थे ॥३॥ और लोग उन्हें कण्व कहते थे । वेदवेदांग के पारंगत विद्वान् वेदज्ञ कण्व अपनी भार्या

काण्वश्चेति ॥ जनेः ह्यातो वेदवेदाङ्गपारगः । इष्टीः पार्वीयणानीर्याः सभार्यो वेदपारगः ॥१४॥
 कुर्वन्नास्ते स गौतम्यास्तोरस्थो लोकपूजितः ॥ १५॥ प्रातःकाले सभार्योऽसौ जुह्वदग्नीं समाहितः ॥१५॥
 सर्वदाऽऽस्ते कदाचित्तु हवनाय समुद्यतः । एकाहुति स हुत्वा तु समिद्धे हव्यवाहने ॥१६॥
 आहुत्यन्तरवानाय हविर्द्रव्यं करोऽहीत् । एतस्मिन्नन्तरे वह्निरुपशान्तोऽभवत्तदा ॥१७॥
 ततश्चिन्तापरः काण्वः कर्तव्यं किं भवेदिति । अन्तर्विचारयामास विपादं परमं गतः ॥१८॥
 आहुत्योश्च द्वयोर्मध्य उपशान्तो हुताशनः । अग्न्यन्तरमुपादेय वैदिकं लौकिकं तथा ॥१९॥
 नव होष्य स्याद्वितीत्यं तु आहुत्यन्तरमेव च । एवं भीमांसमाने तु दैवी वागब्रवीत्तदा ॥२०॥
 अग्न्यन्तरं नैव तेऽत्र उपादेयं भविष्यति । यानि तत्र भविष्यन्ति शकलानि समीपतः ॥२१॥
 अर्धदग्धेषु काष्ठेषु विप्रराजः प्रहृत्यात्मा । नेत्युवाच तदा काण्वः संव वागब्रवीत्पुनः ॥२२॥
 अग्ने पुत्रो हिरण्यस्तु पिता पुत्रः स एव तु । पुत्रे दत्तं प्रियायैव पितुः प्रोक्तं भविष्यति ॥२३॥
 पित्रे देयं सुते दद्यात्कोटिप्रोतिगुणं भवेत् । दैवी वागब्रवीदेवं ततः सर्वे महर्षयः ॥२४॥
 निश्चित्य धर्मसर्वस्व तथा चक्रुर्ययोदितम् । एतज्ज्ञात्वा जगत्पुत्र पुत्रे दत्तं पितुर्भवेत् ॥२५॥
 अपत्याद्युपकारेण पित्रोः प्रीतिर्यथा भवेत् । तथा नान्येन केनापि जगत्प्रेतद्धि विधुतम् ॥२६॥
 सुप्रसिद्धं जगत्प्रेतस्सर्वलोकेषु पूजितम् । तस्मिन्दत्ते भवेत्पुण्य सर्वं कोटिगुणं सुत ॥२७॥

के सहित शौनमी-नट पर पार्वीयणानी नामक इष्टियों को बरत हुय रहते थे ॥१४॥ सर्वदा प्रातःकाल सावधानी से सभार्यसहित अग्नि में हवन करते थे ॥१५॥ एक दिन जब वे हवन के लिये तैयार हुये तब एक आहुति से अग्नि के प्रज्वलित होने पर दूसरी आहुति देने के लिये हवनीय द्रव्य को उन्हेति हाथ में लिया ही था कि इतने में अग्नि एकाएक वृज गया ॥१६-१७॥ तब काण्व विचार करने लग कि अब क्या करना चाहिये । हृदय में विचार करने पर उनको अत्यन्त विपाद हुआ ॥१८॥ दो आहुतिया के बीच में ही अग्नि वृज गया । वैदिक (वेद-प्रतिष्ठित) या लौकिक अग्नि इसके लिए उपादेय (उपयुक्त) होगा कि नहीं अब यह द्वितीय आहुति कहाँ दी जाय, इस प्रकार वे भीमागा बर ही रहे थे कि इतन में आकाशवाणी हुई कि दूसरा अग्नि यहाँ तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है ॥१९-२०॥ जो यहाँ समीप में अग्रजल काठ में अग्नि छण्ड है, विप्रराज ! उन्हीं में आहुति दो । यह सुनकर काण्व ने कहा कि नहीं । पुन उसी दैवी वाणी ने कहा ॥२१-२२॥ अग्नि का पुत्र हिरण्य है । पिता ही तब वह पुत्र है, प्रसन्न करने के लिये पुत्र को दिया हुआ द्रव्य पिता को प्रसन्नता का भी कारण बनता है ॥२३॥ पिता के देय को यदि पुत्र को दे दिया जाय तो यह पिता को बरोड़ गुना आनन्द देता है । जब दैवी वाणी ने इस प्रकार बरती तब सत्र मर्यादा ने धर्म के रहस्य का निश्चय कर जैसा कि दैवी वाणी ने कहा था वैसा ही किया ॥२४॥ (तत्प्रेतः) इस प्रकार ने यह बात फैल गई कि पुत्र को दिया हुआ प्रदायं पिता को दिया हुआ हो जाता है और पुत्र यदि ब उपकार से पिता का जैसा उपकार होता है वैसा दूसरा कार्य करने में नहीं । पुत्र' यह बात भी समार में प्रसिद्ध हो गई कि यहाँ दान देने से बरोड़ गुना फल होगा है । इस बात को दैवी वाणी ने फिर कहा कि इस पवित्र काण्व तीर्थ में आत्म-अग्नि दूर हो जाती तथा महान् गुण की प्राप्ति होती है ॥२५-२७॥ मुनि काण्व के दुष्प के प्रभाव से वह तीनों लोकों के सब तीर्थों

मनोग्लानिनिवृत्तिश्च जायते च महत्सुखम् । पुनरप्याह सा वाणी काण्वेऽस्मिंस्तीर्थं उत्तमे ॥१८॥
 अभवत्तन्महत्तीर्थं काण्वपुण्यप्रभावतः^१ । लोकत्रयाश्रयाशेषतीर्थेभ्योऽपि महाफलम् ॥१९॥
 स्नानदानादिकं किञ्चिद्भूक्त्या कुर्वन्समाहितः । फलं प्राप्स्यस्यशेषेण सर्वं कोटिगुणं मुने ॥२०॥
 यत्किञ्चित्क्रियते चात्र स्नानदानादिकं नरैः । सर्वं कोटिगुणं विद्यात्कोटितीर्थं ततो विदुः ॥२१॥
 यत्रैतद्वृत्तमाग्नेयं काण्वं पोत्रं हिरण्यकम् । वाणीसंज्ञं कोटितीर्थं कोटितीर्थफलं यतः ॥२२॥
 कोटितीर्थस्य माहात्म्यमत्र ध्वस्तु न शक्यते । वाचस्पतिप्रभृतिभिरथ वाज्यैः सुरैरपि ॥२३॥
 यत्रानुष्ठोयमानं हि सर्वं कर्म यथा तथा । गोदावरीः प्रसादेन सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२४॥
 कोटितीर्थे द्विजाग्राय गामैकां यः प्रपठति । तस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्गोकोटिफलमश्नुते ॥२५॥
 तस्मिंस्तीर्थे शुचिर्भूत्वा भूमिदानं करोति यः । श्रद्धायुक्तेन मनसा स्यात्तत्कोटिगुणोत्तरम् ॥२६॥
 सर्वत्र गौतमीतीरे पितृणां दानमुत्तमम् । विशेषतः कोटितीर्थे तदनन्तफलप्रदम् ॥
 अत्रैकान्यूनपञ्चाशत्तीर्थानि मुनयो विदुः ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे ॥ आदिब्राह्मे ॥ तीर्थमाहात्म्ये काण्वारोकोनपञ्चाशत्तीर्थवर्णनं
 नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

गौतमीमाहात्म्य ऊनाश्रीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

से अधिक फल देने वाला महान् तीर्थ हो गया । मुने । इस तीर्थ में मनुष्य एकाग्र होकर भक्तिपूर्वक स्नान-दान
 आदि जो कुछ करता है उससे वह पूर्णरूप से करोड़ गुना फल पाता है ॥१८-२०॥ यहाँ मनुष्य स्नान, दान आदि
 जो कुछ करते हैं व सब करोड़ गुना हो जाते हैं इसीलिये उसको कोटि-तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ जहाँ यह घटना
 हुई उसको आग्नेय, काण्व पोत्र, हिरण्यक वाणीतीर्थ और कोटितीर्थ कहा जाता है, क्योंकि इससे कोटि तीर्थों का
 फल मिलता है ॥२२॥ कोटितीर्थ की महिमा का वर्णन बृहस्पति आदि अथवा दूसरे देवता भी नहीं कर सकते हैं
 ॥२३॥ उस तीर्थ में जिस किसी प्रकार चिये गये कर्म गोदावरी की कृपा से कोटि-गुण फल देने वाले हो जाते हैं
 ॥२४॥ जो उस कोटि तीर्थ में किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को एक गौ देता है, उस तीर्थ की महिमा से वह कोटि गो-दान
 का फल पाता है ॥२५॥ उस तीर्थ में पवित्र होकर जो श्रद्धायुत हृदय से भूमिदान करता है वह कोटिगुण अधिक
 फल पाता है ॥२६॥ सर्वत्र गौतमी-तट पर पितरों के निमित्त दिया हुआ दान उत्तम है, परन्तु कोटि-तीर्थ में दान
 से वह अनन्त फल देने वाला हो जाता है । मुनि लोग यहाँ के उनकास तीर्थों को गलीर्माति जानते हैं ॥२७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कोटितीर्थ, काण्व आदि उनकास तीर्थों का वर्णन नामक एक शो
 अठतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४८॥

अर्थकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

नारसिंहतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नारसिंहमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे । तस्यानुभावं वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम् ॥१॥
 हिरण्यकशिपुं पूर्वमभवद्बलिनां वरः । तपसा विक्रमेणापि देवानामपराजितः ॥२॥
 हरिभक्ततात्मजद्वेषकलुयीकृतमानसः । आविर्भूय सभास्तम्भाद्विश्रयात्मत्वं प्रदर्शयन् ॥३॥
 तं हत्वा नरसिंहस्तत्सैन्यमद्रावयत्तदा । सर्वांहत्वा महादैत्यान्क्रमेणाऽऽजी महामूगः ॥४॥
 रसातलस्याञ्जन्नूँश्च जित्वा स्वर्लोकमीयवान् । तत्र जित्वा भुवं गत्वा दैत्यान्हत्वा नगस्थितान् ॥५॥
 समुद्रस्थान्नदीसंस्थान्ग्रामस्थान्वनवासिनः । नानारूपधरान्दैत्यान्निजघान मुगाकृति ॥६॥
 आकाशगान्वायुसंस्थाञ्ज्योतिर्लोकमुपागतान् । वज्रपाताधिकनखः समुद्रूतमहासटः ॥७॥
 दैत्यगर्भध्वाविगर्जो निर्जिताशेपराक्षसः । महानादैर्बोक्षितैश्च प्रलयानलसंनिभैः ॥८॥
 चपेटैरङ्गविभेदैरेसुरान्पर्यचूर्णयत् । एवं हत्वा बह्विधान्गौतमीमगमद्वरिः ॥९॥

अध्याय १४६

नारसिंह तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के उत्तर तट पर नारसिंह नामक तीर्थ है, उसके सर्वरक्षक प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ ।
 पूर्व समय में हिरण्यकशिपु नामक एक श्रेष्ठ धलवान् राक्षस हुआ । वह अपनी तपस्या और पराक्रम के कारण
 देवों के लिये अजेय हो गया । अपने हरि-भक्त पुत्र के प्रति द्वेष रखने से उसका मन कलुषित हो गया । तब नृसिंह
 रूप धारण कर भगवान् ने समा-मवन के स्तम्भ से अपने विश्व-व्यापक रूप को दिखलाते हुये, प्रकट होकर उस
 राक्षस को मार डाला । फिर उन्होंने उस समय उसके सब सेना का भी सहार कर दिया । नृसिंह समर में सब
 महादैत्यों को क्रमशः मारकर और रसातल में रहने वाले सब शत्रुओं को जीतकर स्वर्लोक में पहुँच गये ।
 वहाँ भी शत्रुओं को पराजित कर मूलोक में चले आये । यहाँ सब पर्वतीय दैत्यों को मारकर उस सिंह-
 शरीरधारी ने समुद्र, नदी, ग्राम और वन में रहने वाले एवं नाना माया-रूप धारण करने वाले दैत्यों का वध किया ।
 आकाशचारी, वायु में विचरण करने वाले एवं ज्योतिर्लोक में गये हुये राक्षसों को वज्रपात से अधिक नयकर नख-
 प्रहार करने वाले, अपनी ग्रीवा के केसर को ऊपर फहराने वाले अपनी गर्जना से दैत्य-स्त्रियों के गर्म को गिरा देने
 वाले और सम्पूर्ण राक्षसों को जीतने वाले नृसिंह ने अपनी नयकर गर्जना, प्रलयाग्नि के समान अपनी नयकर दृष्टि
 अङ्ग विलेप और क्रूर चपेटों से मार डाला । इस प्रकार अनेकों राक्षसों का वध कर हरि अपने पद-नख से उत्पन्न
 तथा मन और नयन दोनों की तुल्य करने वाली गौतमी के पास आये ॥१-९॥ वहाँ अम्बवे नामक दण्डकारण्य का

स्वपदाम्बुजसभूता मनोनयननन्दिनीम् । 'तन्नाम्बयं' इति ख्यातो दण्डकाधिपते' रिपु ॥१०॥
 देवानां दुर्जयो योद्धा बलन महताऽऽवृत । तेनाभवन्महारीद्रः भोषण लोमहर्षणम् ॥११॥
 शस्त्रास्त्रवर्षण युद्ध हरिणा दैत्यसूनुना । निजघान हरि श्रीमास्त रिपु ह्यत्तरे तटे ॥१२॥
 गङ्गाया नारसिंह तु तीर्थं त्रेलोक्यविश्रुतम् । स्नानदानादिकं तत्र सर्वपापप्रहावेनम् ॥१३॥
 सर्वरक्षाकर नित्य जरामरणवारणम् । यथा सुराणां सर्वेषां न कोऽपि हरिणा सम ॥१४॥
 तीर्थानामप्यनेयाणां तथा तत्तीर्थमुत्तमम् । तत्र तीर्थे नर स्नात्वा कुर्यान्नृहरिपूजनम् ॥१५॥
 स्वर्गो मर्त्ये तले वाऽपि तस्य किञ्चिन् दुर्लभम् । इत्याद्यष्टौ मुने तत्र महातीर्थानि नारद ॥१६॥
 पूयकपूयक्तीर्थकोटिफलमाहुर्मनोपिण । अश्रद्धयाऽपि यन्नाग्निं स्मृते सर्वाघसक्षय ॥१७॥
 भवेत्साक्षात्सिंहोऽसौ सबदा यत्र सस्यत । तत्तीर्थसेवासजात फलं कैरिह वर्ण्यते ॥१८॥
 यथा न देशो नृहरेरधिकं क्वापि वर्तते । तथा नृसिंहतीर्थेन सम तीर्थं न कुत्रचित् ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नारसिंहाद्यष्टतीर्थवर्णनं नामकोन

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

गौतमीमाहात्म्येऽसीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

स्वामी विख्यातः गन्तुं या । वह देवताओं से दुर्जय योद्धा बहुत बड़ी सेना के साथ रहता था । उस दैत्य पुत्र के साथ
 मगवान् का अति भयकर लोमहर्षक पण्ड हुआ जिसमें शस्त्रास्त्रों की भयकर वर्षा हुई अतः भे श्रीमान हरि ने
 गौतमी के उत्तर तीरे पर उस गन्तु को मार डाला । वह गौतमी तत्र का नारसिंह तीर्थ त्रिभुवन प्रसिद्ध है । उसमें
 स्नान दान आदि सब प्रकार के पाप ग्रह दूर हो जाते हैं सब प्रकार से रक्षा होती है तथा जरा-मृत्यु का भय दूर जाता
 है । जिस प्रकार सब देवों में नमिह का समान कोई नहीं है उसी प्रकार सम्पूर्ण नाथों में वह उत्तम तीर्थ है । उस तीर्थ
 में स्नान कर जो मनःपूज्य नमिह की पूजा करता है उसके लिये स्वर्ग मय और पाताल में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं
 है । मुने नारद । इस आठ और महानीय हैं । विद्वान् कहते हैं कि ब आठ पथक पथक कोटि तीर्थ के बराबर
 फल देन वाले हैं । उनका अथदा स भी नाम-स्मरण करने में सब पापों का क्षय हो जाता है । जहां सबदा व नसिह
 मगव नृ साक्षात् रूप से स्थित रहते हैं उस तीर्थ की सेवा करने में जो फल मिलता है उसका वर्णन कौन कर
 सकता है । जिस प्रकार नसिह देव सब देवों का ईश्वर नहीं है उसी प्रकार नृमिह तीर्थ के समान कोई तीर्थ
 भी नहीं है ॥१०-१९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में नारसिंहादि अष्ट महानीयों का वर्णन नामक एक ही उपनामों

अध्याय समाप्त ॥१४९॥

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाच तीर्थमाख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे । पिशाचत्वात्पुरा विप्रो मुक्तिमाप महामते ॥१॥
 'सुयवस्याऽऽत्मजो लोकेऽजोगतिरिति विधुतः' । कुटुम्बभारदुःखार्तो दुर्भिक्षेण तु पीडित ॥२॥
 मध्यम तु शुन शेष पुन ब्रह्मविदा घरम् । विनीतवान्क्षत्रियाय वधाय बहुलं धनं ॥३॥
 किं नामाऽऽपद्गत पाप नाऽऽचरत्पि पण्डित । शमितृत्वे धन चापि जगृहे बहुल मुनि ॥४॥
 विदारणार्थं च धन जगृहे ब्राह्मणाधम । ततोऽप्रतिसमाधेयमहारोगनिपीडित ॥५॥
 स मृत कालपर्याये नरकेष्वय पातित । भोगादृते न क्षयोऽस्ति प्राक्तनानामिहाह्वसाम् ॥६॥
 किंकरंयमवाक्येन बहुयोन्यन्तर गत । तत पिशाचो हृद्यभवद्वाङ्मो दारुणाकृति ॥७॥
 शुष्ककाष्ठेष्वथारण्ये निर्जले निर्जने तथा । ग्रीष्मे ग्रीष्मदवव्याप्ते क्षिप्यते धर्माकिंकरं ॥८॥
 कन्यापुत्रमहीवाजिगवा विक्रयकारिण । नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसत्त्वबम् ॥९॥

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के उत्तर तट पर पैशाच नामक एक उत्तम तीर्थ है । महामति ! बहुत पहले उस स्थान पर एक विप्र ने पिशाच योनि से मुक्ति पाई थी । सुयव वा लोक में अजीर्णति नाम से प्रसिद्ध पुत्र था । परिवार के भार से दुःखी और दुर्भिक्ष से पीडित होकर उसने अपने ब्रह्मनाशिया में अष्ट नंशले पृथ शुन शेष को बहुत धन लेकर क्षत्रिय के हाथ वध करने के लिये बेच दिया था । पीडित श्री आपति में पड़ने पर कौन ऐसा पाप है जो नहीं करते हैं । मुनि ने बलि करन के लिये भी बहुत सा धन ले लिया । उस अधम ब्राह्मण ने अपने पुत्रको चीर देने के लिये धन लिया था इसलिये वह एक असाध्य रोग से पीडित हो गया । थोड़े दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई । वह नरक में गिरा लिया गया । यहाँ क किये हुये पापों का क्षय पापभोग के अतिरिक्त और किसी प्रकार से नहीं होता । यम के आदेशानुसार दूतों ने सकीर्ण भिन्न योनियों में पहुँचाया । तदनन्तर अन्त में वह भयङ्कर आकृति वाला भयानक पिशाच हुआ ॥१७॥ यमदूत उसको जगल में सूखे काठों पर निजल और निजल स्थान में और ग्रीष्मऋतु में ग्रीष्म की गर्मी से जलते हुये स्थानों में ढकेल देते थे । सच है कथा पुत्र पृथिवी घोडा और गायबेधने वाले ऽप्यति प्रलयकाल तक नरक से उद्धार नहीं पाते हैं । अपने किये हुए पापों के परिणामस्वरूप गया

स्वकृताघविपाकेन दारुणैर्ममिकरैः । सघाते पच्यमानोऽसौ शरोदोच्चं कृत स्मरन् ॥१०॥
 पथि गच्छन्कदाचित्स जोगर्तेर्मध्यम सुत । शुश्राव हृदतो वाणीं पिशाचस्य मुहुर्मुहु ॥११॥
 पुत्रक्रेतुर्ब्रह्महन्तुर्जोगर्तस्तु । पितुस्तदा । पापिन पुत्रविक्तेतुर्ब्रह्महन्तु पितुश्च ताम् ॥१२॥
 शुन शेषस्तदोवाच को भवानतिदुःखित । जोगतिरब्रवीद्दुःखाच्छुन शेषपिता ह्यहम् ॥१३॥
 पापोयसौ क्रिया कृत्वा योनि प्राप्तोऽस्मि दारुणाम् । नरकेष्वथ पक्वश्च पुन प्राप्तोऽन्तरालकम् ॥
 ये ये दुष्कृतकर्मणस्तोपा तेषामिय गति ॥१४॥

जोगतिपुत्रस्तमुवाच दुःखात्सोऽहं सुतस्ते मम दोषेण तात
 विप्रोक्त्वा मा नरकानेवमाप्तस्तत करिष्ये स्वर्गं त्वामिदानीम् ॥१५॥
 एव प्रतिज्ञाय स गाधिपुत्रपुत्रत्वमाप्तोऽथ मुनिप्रवीर
 गङ्गामभिध्याय पितुश्च लोकाननुत्तमानोहमानो जगाम ॥१६॥
 अक्षेपदुःखानलधूपितानां, निमज्जता मोहमहासमुद्रे
 शरीरिणा नान्यदहो त्रिलोक्यामालम्बन विष्णुपदीं विहाय ॥१७॥
 एव विनिश्चित्य मुनिर्महात्मासमुद्दिधोर्षु पितरं स दुर्गते ।
 शुचिस्ततो गीतमीमाश्रु गत्वा, तत्र स्नात्वा सस्मरञ्छुभिः ॥१८॥
 ददौ जल प्रेतरूपाय पित्रे, पिशाचरूपाय सुदुःखिताय ।
 तद्गानमात्रेण तदैव पुनोजोगतिरावाप वपु सुपुण्यम् ॥१९॥

नव यमदूतों की यातना-यास पाडित यह अपन पूव कृत्या का स्मरण करके चिल्ला कर राता था । किसी दिन जी गति का संशय पुन रागते में जा रहा था । उसने पुत्रविप्रय वरदों वाले ब्रह्माह्वय करने वाले पापी पिता जोगति के—जो पिशाच हो गया था—रोंने की ध्वनि सुनी । तब शुन पाप ने पूछा कि आप कौन है जो इतने दुःखी है । जी गति ने दुःखित होकर कहा मैं शुन शेष का पिता हूँ । पाप-कर्मों के करने से दारुण योनि को प्राप्त हुआ हूँ । माना नरको में मैं पीडा पाता रहा अब पुन उसने छुटकारा पाकर पिशाच बना हूँ । जो पाप कम करने वाले होते हैं उनकी इसी प्रकार दुर्गति होती है ॥८१४॥

यह सुनकर जोगति क पुत्र ने दुःखी होकर कहा— तात । मैं आपका वही पुत्र हूँ । मेरे ही दाप से मुझको बेचकर आप इस प्रकार नरक में गिराये गये । अब मैं अभी आपको स्वर्ग पहुँचाऊंगा ॥८१५॥ इस प्रकार प्रतिज्ञाकर विद्वामित्र का दत्तक पुत्र वह मुनिप्रवीर अपने पिता का उत्तम लोक में पहुँचाने की इच्छा से गया का स्मरण कर (उसी की ओर) चल पडा ॥८१६॥ अहो ! इस त्रिलोक की में समस्त दुःख रूपी अग्नि में जलने वाल तथा महामोह रूपी समुद्र में डूबने वाले देहधारियों का गंगा की छोटकर और बोई सहायक नहीं है ॥८१७॥ इस प्रकार का निश्चय कर वह पवित्र महात्मा मुनि अपने पिता को दुर्गति से छुड़ाने के लिये शीघ्र ही गीतमी के पास पहुँच गया । उसने स्नान कर उठने शम्भु और विष्णु का स्मरण किया तथा अतिदुःखित, पिशाचरूप अपने प्रत पिता को जल दिया । जल देते ही उसी समय अजीगति पवित्र हो कर पुण्य शरीर पा गया और दस हजार सूर्य के समान चमकता

विमानयुक्त सुरसधनुष्ट जिष्णो पद प्राप सुतप्रभावात् ।
 गङ्गाप्रभावाच्च हरेश्च शभोर्विधानुरकार्युतनुत्यतेजा ॥२०॥
 तत प्रभृत्येतदतिप्रसिद्ध पशाचनाश च महागद च ।
 महान्ति पापानि च नाशमाशु प्रयान्ति यस्य स्मरणेन पुताम ॥२१॥
 तीर्थस्य च द गदित तवाद्य, माहात्म्यमेतत्त्रिशतानि यत्र
 तीर्थान्ययान्यानि भवन्ति भुवितभुवितप्रदायीनि किमन्यदन ॥२२॥

सबसिद्धिदमाख्यातमित्पाद्यत्र शतत्रयम् । तीर्थानां मुनिजुष्टाना स्मरणादप्यभीष्टदम् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पेशाचादिशतत्रयतीर्थवर्णन नाम
 पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्याय ॥८१॥

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

निम्नभेदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

निम्नभेदमिति ख्यात सबपापप्रणाशनम् । गङ्गाया उत्तरे पारे तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥१॥

हुआ वह गंगा विष्णु शंकर और ब्रह्मा क प्रभाव से अपन पुत्र की कृपा से विमान पर आरुढ़ होकर देवगणों के साथ सम्मानपूर्वक विष्णुलोक को चला गया । तब से वह पिताचर्यों से मक्त करने वाला तथा महारोगों को छुड़ाने वाला तीर्थ परम प्रसिद्ध हो गया जिसके स्मरण मात्र से मनष्यों के महान पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । आज इस तीर्थ के माहात्म्य को—जहा पर भवित भवित प्रदान करने वाले दूसरे और तीन सौ तीर्थ हैं—तुमसे कह दिया अब और अधिक क्या कहूँ । ये सब सिद्धियों को देने वाले तीन सौ तीर्थ मुनियों के भावति प्रिय और सेव्य हैं । इनके स्मरण से भी मनोरथ सिद्ध हो जाता है ॥१८ २३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे पञ्चाचतीर्थ आदि तीन सौ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥१५०॥

अध्याय १५१

निम्नभेद तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मान कहा —गंगा के उत्तर तट पर सब पापों को नष्ट करने वाला त्रिमन्त्र प्रसिद्ध निम्नभेद नामक

यस्य संस्मरणेनापि सर्वपापक्षयो भवेत् । वेदद्वीपश्च तत्रैव दर्शनाद्वेदविद्भवेत् ॥२॥
 ज्वंशीं चकमे राजा ऐलः परमधार्मिकः । को न मोहमुपायाति विलोक्य मदिरक्षणां ॥३॥
 सा प्रायाद्यत्र राजाऽसौ घृतं स्तोकं समश्नुते । आनन्ददर्शनात्कृत्वा तस्याः कालावधि नृपः ॥४॥
 तां स्वीचकार ललनां यूनां रम्यां नवां नवाम् । सुप्तायां शयने तस्या समुत्तस्थो पुरुरवा ॥५॥
 विलोक्य तं विवसनं तदेवासौ विनिर्गता । विद्युच्चञ्चलचित्तानां क्व स्थये ननु योयिताम् ॥६॥
 ईक्षां चक्रे स शर्वर्या विवस्त्रा विस्मितो महान् । एतस्मिन्नन्तरे राजा युद्धायागाद्रिपूजितः ॥७॥
 ताञ्जित्वा पुनरप्यागाद्देवलोकं सुपूजितम् । स चाऽऽगत्य महाराजो वसिष्ठाच्च पुरोधसः ॥८॥
 उर्वश्या गमनं श्रुत्वा ततो दुःखसमन्वितः । न जहोति न चाश्नानि न शृणोति न पश्यति ॥९॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र मृतावस्थं नृपोत्तमम् । बोधयामास वाक्यंश्च हेतुभूतं पुरोहितः ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

सा मृताऽथ महाराज मा व्ययस्व महामते । एवं स्थित तु मा त्वां वै अशिवाः स्पृश्युराशुगाः ॥११॥
 न वै स्त्रेणानि जानीये हृदयानि महामते । शालावृकाणां यादृशि तस्माच्च भूप मा शुचः ॥१२॥
 को नाम लोके राजेन्द्र कामिनीभिर्न वञ्चितः । वञ्चकत्वं नृशतत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता ॥१३॥

एकतीर्थ है, जिसके स्मरण से भी सब पापों का नाश हो जाता है । वही पर वेदद्वीप भी है जिसके दर्शनसे मनुष्य वैदिक हो जाता है । एक बार परम धार्मिक राजा पुरुरवा उर्वशी पर आसक्त हो गया । कौन ऐसा है जो मत्वाले नेत्र वाली कामिनी को देखकर मोहवश नहीं हो जाता । जहाँ राजा अल्प परिमाण में घृत का पान कर रहा था वहाँ वह पहुँच गई । उसके साथ नग्न न देखने तक रहने की प्रतिज्ञा (शर्त) कर राजा ने युवका को रम्य लगने वाली उस युवती ललना को स्वीकार कर लिया । एक दिन पुरुरवा शय्या पर सोई हुई उसके सामने ही उठ गया । राजा को वस्त्ररहित देखकर वह उसी समय चली गई । विद्युत् के समान चञ्चल चित्त वाली स्त्रियाँ व जीवन में स्थायित्व कहाँ ? उस रात्रि में नग्न पुरुरवा अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर इधर उधर देखने लगा । इसी समय राजा को शत्रुओं से युद्ध करने के लिये जाना पड़ा । उनको पराजित कर वह पुन अतिपूजित देवलोक में गया । वहाँ से आने पर राजा पुरोहित वसिष्ठ के मुख से उर्वशी का पलायन सुनकर दुःखी हो गया । (अतएव) वह न तो हवन करता था, न खाता था, न कुछ सुनता था और न देखता ही था । इस बीच पुरोहित वसिष्ठ उस मृतक तुल्य राजा को उपयुक्त रहस्यमय वाक्यों से समझाने लगे ॥१-१०॥

वसिष्ठ बोले—महाराज ! आज वह मर गई । महाबुद्धिमान् ! उसके लिये क्या मत करो । इस प्रकार अवस्थित तुमको शीघ्र आने वाले अमंगल स्पर्श न करें (अर्थात् अशुभ भावनायें न व्याप्त हों) । महामति ! शालावृक (कुकुर) की जैसी मनोवृत्ति वाली स्त्रियों के हृदय के रम्य को तुम नहीं जानत हो । नृप ! अतः तुम शोक मत करो । राजेन्द्र ! इस लोक में कौन ऐसा व्यक्ति है जो कामिनियों से टगा नहीं जाता है ? जिनकी

इति स्वाभाविकं यासां ताः कथं सुखहेतवः। कालेन को न निहतः कोऽर्थो गौरवमागतः॥१५॥
 श्रियां न श्रामितः को वा योपिद्भिः को न खण्डितः। स्वप्नमायोपमा राजन्मदविप्लुतचेतसः॥१४॥
 सुखाय योपितः कस्य ज्ञातव्यं द्विज्वरो भव। विहाय शकरं विष्णुं गीतमीं वा महामते॥
 दुःखिनां शरणं नान्यद्विद्यते भुवननये ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा दुःखं संहृत्य यत्नतः। गीतम्या मध्यसस्थोऽस्तावैलः परमधार्मिकः॥१७॥
 तत्र चाऽऽराधयामास शिवं देवं जनादेनम्। ब्रह्माणं भास्कर गङ्गा देवानन्यांश्च यत्नतः॥१८॥
 यो विपन्नो न तोर्यानि देवताश्च न सेवते। स कालवशगो जन्तुः का दशामुपयास्यति॥१९॥
 तवीश्वरं कशरणो गीतमीसेवन्तोत्सुकः। परा श्रद्धामुपगतः संसारास्थापराडमुखः॥२०॥
 इंजे यज्ञांश्च बहुलानृत्विग्भिर्बहुदक्षिणान्। वेदद्वीपोऽभवत्तेन यज्ञद्वीपः स उच्यते॥२१॥
 षोणंमास्यां तु शर्वर्यां तत्राऽऽयाति सदेवंशो। तस्य द्यौपस्य यः कुर्यात्प्रदक्षिणमयो नरः॥२२॥
 प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी सागराम्बरा। वेदानां स्मरणे तत्र यज्ञानां स्मरणं तथा॥२३॥
 सुकृती यः तत्र यः कुपद्विदयज्ञफलं लभेत्। ऐलतीर्थं तु तज्ज्ञेयं तदेव च पुरुरवम्॥२४॥
 वासिष्ठं चापि तत्तु स्यान्निम्नभवं तदुच्यते। ऐले राज्ञि न किञ्चित्स्यान्निम्नं सर्वेषु कर्मसु॥२५॥

धूर्तता, क्रूरता, चञ्चलता एवं अनुदारता ही प्रकृति है वे किस प्रकार सुख का कारण बन सकती है? काल ने किसको नष्ट नहीं किया? किस याचक ने गौरव प्राप्त किया है? बौद्ध लक्ष्मी के मद में अपने को मूल न गया? स्त्रियों ने किसको पत्ता नहीं थताया? राजन्! मद से भ्रष्ट चित्त वाले किस मनुष्य के लिये स्वप्न माया के समान स्त्रियाँ सुख का कारण बनी हैं? इस बात को समझ वरतुम मोहको छोड़ दो। महामते! केवल शकर, विष्णु और गीतमी को छोड़कर इस त्रिभुवन में दुःखियों का सहायक कोई नहीं है॥११-१६॥

ब्रह्मा बोले—इन बातों को सुनकर राजा बड़ी तत्परता से अपने दुःखों को कमाकर गीतमी के तट पर गया। उसके बीच में स्थित होकर परम धार्मिक पुरुरवा ने शिव, भगवान् विष्णु ब्रह्मा सूर्य, गंगा एवं अग्न्यादयः देवों की भक्ति पूर्वक आराधना की। जो विपत्ति-ग्रस्त मानव तीर्थ अथवा देवताओं की सेवा नहीं करता, वह मृत्यु के भस्मीय होने पर जिस अवस्था को प्राप्त करेगा या क्या कर सकेगा। वह राजा एकमात्र ईश्वर का अग्रज भक्त, गीतमी की सेवा के लिये उत्सुक एवं संसार की माया से विमुक्त होकर अत्यन्त श्रद्धालु बन गया। उसने ऋत्विजों के साथ बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया, जिनमें अधिन दक्षिणार्थ दी। इस कारण वह स्थान वेदद्वीप नाम से प्रसिद्ध हुआ। यज्ञद्वीप भी उसको कहा जाता है। वहाँ सदा पूर्णिमा की रात्रि में उर्वशी आती है। उस द्वीप की जो व्यक्ति प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो समुद्र समेत पृथिवी की प्रदक्षिणा कर ली। जो सुकृती वहाँ वेदों और यज्ञों का स्मरण करता है, वह वेद-यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसको ऐलतीर्थ कहा जाता है। पुरुरवा और

यदेतन्निम्नमुर्वंश्यां सर्वभावेन वर्तनम् । तच्चापि भेदितं निम्नं वसिष्ठेन च गङ्गाया ॥२६॥
निम्नभेदमभूतेन वृष्टादृष्टेष्टसिद्धिबम् । तत्र सप्त शतान्याहुस्तीर्थानि गुणवन्ति च ॥२७॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम् । स्नानं कृत्वा निम्नभेदे यः पश्यति सुरानिमान् ॥२८॥
इह धामुत्र वा निम्नं न किञ्चित्स्य विद्यते । सर्वोन्नतिमवाप्स्यासी मोदते दिवि शरुवत् ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये निम्नभेदादिसप्तशततीर्थवर्णनं
॥३॥ नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वचशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आनन्दतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नन्दोत्तममिति ह्यपातं तीर्थं वेदविदो विदुः । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
अग्निपुत्रो महातेजश्चन्द्रमा इति विश्रुतः । सर्वान्वेदाश्च विधिवद्धनुर्वेदं यथाविधि ॥२॥

वासिष्ठ भी वहीं है। निम्नभेद उसको इसलिए कहते हैं कि राजा ऐल के शासन-काल में सब कामों में निम्न भावना नहीं थी। उर्वंशी में सब प्रकार से आसक्त हो जाना 'निम्न' था। उस निम्न को भी वसिष्ठ ने गंगा के द्वारा दूर कर दिया। अब वह तीर्थ निम्न-भेद कहा जाता है, जो दृष्ट, अदृष्ट और इष्ट (मनोरथ) की सिद्धि देने वाला है। वहाँ सात सौ और भी गुणगाली (पुण्यप्रद) तीर्थों का होना कहा गया है। उनमें स्नान और दान से सब यज्ञों का फल मिलता है। जो निम्न भेद तीर्थ में स्नान कर इन (पहले बड़े गये) देवों का दर्शन करता है, उसकी इन लोक में अवकाश पर 'लोक' में किसी प्रकार का निम्न (अभाव) नहीं रह जाता है। वह सब प्रकार भी उपनि प्राप्त कर स्वर्ग में इन्द्र के समान आनन्द प्राप्त करता है ॥१७-२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन नामक एवं सौ इष्यावनवा अध्याय समाप्त ॥१५१॥

अध्याय १५२

आनन्दतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—नन्दीतट नामक तीर्थ को वेदवेत्ता लोग जानते हैं। नारद ! मैं उससे प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, तुम ध्यान से सुनो। महानिबन्धी अग्नि-पुत्र चन्द्रमा नाम से प्रसिद्ध है। महामते ! गुरु बृहस्पति से सब वेदों, पनुर्वेद और अन्य विद्याओं का यथाविधि अध्ययन कर उस चन्द्रमा ने बृहस्पति से कहा कि मैं गुरुपूजा

अधीत्य जीवात्सर्पाश्च विद्याश्चान्या महामते । गृह्णुजां करोमीति जीयमाह स चन्द्रमा ॥
बृहस्पतिस्तदा प्राह चन्द्र शिष्य मुदान्वितः ॥३॥

बृहस्पतिरुवाच

मम प्रिया तु जानीते तारा रतिसमप्रभा

॥४॥

ग्रहोवाच

प्रष्टु तां च तदा प्रायादन्तर्वेश्म स चन्द्रमा । तारां तारामूर्त्तीं दृष्ट्वा जगृहे तां करेण स ॥५॥

स्पर्शेऽश्व प्रति तां लोभाद्वल्लादाकर्षयत्तदा । तावद्वर्षं निधिर्जानी मतिमान्विजितेन्द्रिय ॥६॥

यावन्न कामिनीनेत्रवागुराभिर्निबध्यते । क्षिणेऽतो रहसस्यां कामिनीमायतेशणाम् ॥७॥

त्रिजोऽय न मनो याति वस्य पामेषु यश्यताम् । अत एवाग्न्यपुष्टपवर्धनं न वदाचन ॥८॥

कुलपत्न्या रहः पार्यं भीतया शीलविप्लुते । विनाप तत्परिजनात्सहस्रोत्थाय निर्गतं ॥९॥

दृष्ट्वा तददुष्टत कर्म बृहस्पतिरुदारधी । शशाप कोपाच्चाञ्जलिष्य वामिर्भविप्रियकारिभि ॥१०॥

पराभिभूतामात्रोऽय कान्तां च सोऽदुर्मोक्ष्यरः । युष्मत्तेन जीवोऽपि देवश्चन्द्रमसा ख्या ॥११॥

न शार्पहन्वने चन्द्रो नाऽयुषं सुरमन्त्रितं । बृहस्पतिप्रणीतंश्च न मन्त्रैर्हन्वते शशी ॥१२॥

तदा चन्द्रस्तु तां तारां नोऽया सस्याप्य मन्दिरे । युभूजे ब्रह्मर्षाणि रोहिणीं चाकुतोभय ॥१३॥

न जीयेत तदा देवेन कोऽपि शापमन्त्रकं । न राजभिर्न ऋषिभिर्न साम्ना भेददण्डनं ॥१४॥

वर्हेणा । तत्र बृहस्पति प्रसन्न होकर शिष्य चन्द्रमा स बोले ॥१३॥

बृहस्पति ने कहा—रति के समान गुन्गरी मेरी पत्नी तारा से इय विषय म पूछ लो वही जानती है ॥४॥

ग्रहो बोले—वह चन्द्रमा गृह पत्नी स पूछने के लिये अत पुर मे गया । उमने तारा के

समान मुल वाली तारा को देखकर उमको हाथ ग पकड़ लिया और मोहवा उमको हठात् अपन निवासस्थान की

आर साध रु गया । मनुष्य तब तब ही पीयूषील जानी बुद्धिमान और जितेन्द्रिय रहना है जब तक वह कामिनी

के नजदगी पाग से बाँधा नगी जाता अर्थात् बन्धन से आच्छिद्य नहीं होता । विशेष रूप से एकात्म म स्थित

भुगमयनी कामिनी को देखकर बिसरा मन काम के बाधभूत नहीं हो जाता है ? इसलिये कुल-वपुओं को गील

च्युति होने क मय स एकात्म मे कभी भी परपुरुष का दगन नहीं करना चाहिये । अपने स्वजना स इस बात का

पता पारकर उमने बुद्धि बाँके मुख सहसा उठकर बाहर गए और उम दुष्प्रम को देखकर अतिकुपित हो अत्यन्त

अपमानजनक शब्दों से उन्होंने चन्द्रमा को बुरा मला बहकर शाप दे दिया । कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपनी स्त्री

को दूसरे से अभिभूत (अपमानित) देखकर उमको सहने म समथ हो सकता है । इसलिये बृहस्पति भी क्रोध से

उस चन्द्रमा के साथ युद्ध करने लगे । चन्द्रमा का शाप से कुछ नहीं हुआ देवों के आमन्त्रित अस्त्रों से भी उसका

कुछ नष्टा विगडा और न तो वह चन्द्रमा बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त मन्त्रों से ही मारा गया । तब वह अपराजित

चन्द्रमा उस तारा को लेकर चला गया । अपने घर मे उसको रखकर रोहिणी के सहित उसका बहुत वर्षों तक

उपभोग करना रहा ॥५॥१३॥ जब वह चन्द्रमा देवों क्रोधों और शाप मन्त्रों से भी न जीता जा सका और न

राजाओं ऋषियों साम भेद दण्ड आदि से ही बल मे आ सका तथा बृहस्पति सब प्रकार के प्रयत्नों से भी अपनी

यदा भार्या न लेभेऽसौ गुरुः सर्वप्रयत्नतः। सर्वोपायक्षये जीवस्तदा नीतिमयास्मरत् ॥१५॥
 अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृच्छतः। स्वार्थमुद्धरते प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥१६॥
 साध्यं केनाप्युपायेन जानद्भिः पुरुषैः फलम्। व्याभिमानिनः शीघ्रं विपद्यन्ते विमोहिताः ॥१७॥
 एवं निश्चित्य मेधावी शुकं गत्वा न्यवेदयत्। तमागतं कविर्ज्ञात्वा संमानेनाभ्यनन्दयत् ॥१८॥
 उपविष्टं सुविश्रान्तं पूजितं च यथाविधि। पर्यपृच्छद्देत्यगुरुस्तदागमनकारणम् ॥१९॥
 गृहागतस्य त्रिमुखा शत्रवोऽप्युत्तमा न हि। तस्मै स विस्तरेणाऽऽह भार्याहरणमादित् ॥२०॥
 बृहस्पतेस्तदा वारयं श्रुत्वा कोपान्वितः कविः। अपराधं तु चन्द्रस्य मेने शिष्यस्य नारदः ॥२१॥
 अतिक्रममिमं श्रुत्वा कोपात्कविरयाग्रवीत् ॥२२॥

शुक उवाच

तदा भोक्ष्ये तदा पात्ये तदा स्वपस्ये तदा वदे। यदाऽऽनये प्रियां ग्रातस्तव भार्या परादिताम् ॥२२॥
 तामानीय भुवं पूज्य चन्द्र शप्त्वा गुरुद्वहम्। पश्चाद्भोक्ष्ये महाबाहो शृणु वाचं ग्रहेऽवर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा स जीवेन। दैत्याचार्यो जगाम ह। शिवमाराध्य यत्नेन परं सामर्थ्यमाप्तवान् ॥२४॥

भार्या को न पा मने और उनके मर उपाय नष्ट से हो गये तब उन्होने नीति का अनुसरण किया कि बुद्धिमत् मनुष्य अपमान को आगे करे और मान को पीछे करे अपन स्वाध को सिद्ध करे। यथाचि स्वाध हानि करना सबसे बड़ी मूर्खता है। ज्ञानी पुरुष को विर्गा भी उपाय से अपने फल को प्राप्त करना चाहिये। व्याभिमान बनने वाले मूर्ख मोहबश शीघ्र ही विपत्तियों में पड़ने जात है। इस प्रकार का निश्चय कर मेधावी शुक ने शुक व पाप जाकर निवेदन किया। शुक बृहस्पति को अपना अतिथि जानकर उनका सम्मान के साथ अभिनन्दन किया। यथ विधि उनकी पूजा कर गुणासीन शुक सदैव शुक शुक ने उनके आन का कारण पूछा। क्योंकि घर घर आन हुआ मात्र तो भी विमुक्त होकर लोग जाना अज्ञानी हैं। बृहस्पति ने शुक से स्त्री-हरण की कथा आदि म अन्त तक बात सुनाई। नारद। उस समय बृहस्पति ने मेरी बातें सुनकर कवि दुःखित हो गये और शिष्य चन्द्र वः अपराध अहनि स्वीकार किया। भर्षा का यह अतिक्रमण देखकर कवि ने कोप से व्याकुल होकर कहा ॥१६ २१॥

शुक बोले—मार्द। मैं नर गाँऊँ, तप विऊँगा तब सोऊँगा और तभी कुछ बहूँगा जब कि तुम्हारी अग्यो पसुन थिय भार्या को ले आऊँगा। मर्यादा। शर की पूजाकर गुरुद्वोही चन्द्र को पाप देख ही मे लाऊँगा। बहो ने स्वामी। मेरी प्रिया सुना ॥२२ २३॥

ब्रह्मा बोले—दैत्याचार्य शुक इस प्रकार बृहस्पति से कहकर चले गए और बड़ी लगनता म शिव की आराधना कर उन्होने भक्ति से पूजित शरक म विविध बरों को पाकर परमात्मम गामध्य प्राप्त किया। इस

वरानपाप्य विविधाञ्चरादभावपूजितात। शिवप्रसादात्किं नाम देहिनामिह दुर्लभम् ॥२५॥
जगाम शुभो जीवेन तारया यत्र चन्द्रमा। वतते त शशापोच्चं शृणु त्व चन्द्र मे वच ॥२६॥
यस्मात्पापतर यमं त्वया पाप मदात्कृतम्। पुष्टी भूपास्ततश्चन्द्र शशापैव स्या कथि ॥२७॥
कविशापप्रदग्धोऽभूत्तदेव मृगलाञ्छन। प्रापु क्षय न के ताम गुरस्यामितखिद्रुह ॥२८॥
तत्पाज तां स चन्द्रोऽपि ता तारां जगृह कवि। शुभोऽपि देवानाहूय ऋषीन्पितृगणास्तथा ॥२९॥
नदीनंदांश्च विविधागोपधीश्च पतिव्रता। तत सप्रष्टुमारेभे तारावृत्तविनिष्पद्यम् ॥३०॥
तत श्रुति सुरानाह गौतम्या भक्तितस्त्ययम्। स्नान करोतु जीवेन तारा पूता भविष्यति ॥३१॥
रहस्यमेतत्परम न कथ्य यस्य वस्यचित्त। सर्वास्वपि दशास्वेह शरण गौतमी नृणाम् ॥३२॥
तथाऽकरोच्चैव तारा भर्त्रा स्नान यथाविधि। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जयशब्दो ध्ववर्तत ॥३३॥
पुनर्वै देवा अदबु पुनमनुष्या उत। राजानं सत्य कृष्णानां ब्रह्मजायां पुनर्दंडु ॥३४॥
पुनर्दत्त्वा ब्रह्मजायां कृता देवैरकल्मषाम्। सर्वे क्षेममभूत्तत्र तस्मात्तीर्थं महामुने ॥३५॥
तदभूत्सकलाघोषध्वसन सर्वकामदम्। आनन्द क्षेममभवत्सुराणामसुरारिणाम ॥३६॥
बृहस्पतेश्च गुरुस्य तारायाश्च विशेषत। परमानन्दभाषणो गुरुर्गङ्गामभाषत ॥३७॥

ससार म गिव की कुरा स देहधारियो के लिये कौन सा पदार्थ दुलभ है ? गुरु गुरु के साथ वहाँ गये जहाँ तारा ने साथ चन्द्रमा रहता था। उन्होंने उसको उच्च स्वर से गाप दिया— चन्द्र ! तुम मेरी बात सुनो—जिस मद से तुमने पापकर्म किया है इसके परिणामस्वरूप तुम कोटी हो जाओ। इन प्रचार कवि ने शेषपूयक चन्द्रमा को गाप दे दिया। मृग चिह्न से युक्त चन्द्र कवि के गाप से उसी समय दग्ध हो गया। सत्य है कि गुरु स्वामी और मित्रों स द्रोह करने वाले बौन ऐसे हैं जो मर्त्य नहीं हो गये ? उस चन्द्रमा ने भी उस तारा को छोड़ दिया। कवि ने उस तारा को ले लिया। शुक ने भी सब देवों श्रुतियों पितरों नदियों नदी विविध ओषधिया और पतिव्रता स्त्रियों स तारा के कर्मों व प्रतीकार (प्रायश्चित्त) पूछना प्रारम्भ किया। तत्र श्रुति ने देवों से कहा— यह गौतमी मे गुरु के सहित भक्तिपूर्वक स्नान करे। उससे तारा पवित्र हो जायगी। यह परम गुप्त रहस्य है। जिस किसीसे इसको नहीं कहना चाहिए। प्रत्येक अवस्था मे गौतमी मनुष्य मात्र के लिये एवमात्र शरण है तदनुसार तारा ने यथा विधि भर्ता के साथ स्नान किया। इस पर ब्रह्मा आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और चारों ओर जय ध्वनि होने लगी। पुन देवों ने उसको शुद्धता का आशीर्वाद दिया। फिर मनुष्यों ने पुन राजाजाने उस ब्रह्म भार्या को सत्य घोषित करते हुए दे दिया। फिर इस प्रकार देवताओं ने उस ब्राह्मण-पत्नी को निष्पाप बना कर देवगुरु को सौंप दिया। महामुनि ! उस स्थान पर सब कल्याण ही हुआ इसलिये वह स्थान सब पापों का ध्वंस करने वाला और सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाला तीर्थ हो गया। वहाँ असुर द्रोही देवों बृहस्पति गुरु और विशेष रूप से तारा को परम आनन्द और क्षम प्राप्त हुआ। परम आनन्द से युक्त गुरु ने गंगा से कहा ॥२४ ३७॥

गुरुवाच

त्व गौतमि सदा पूज्या सर्वेषामपि मुक्तिदा । विशेषतस्तु सिंहस्थे मयि त्रैलोक्यपावनो ॥३८॥
भविष्यसि सरिच्छ्रेष्ठे सर्वतीर्थे समन्विता । यानि कानि च तीर्थानि स्वर्गमृत्युरसातले ॥
त्वा स्नातु तानि यास्यन्ति मयि सिंहस्थितेऽम्बिके ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धन्य यशस्यमायुष्यमारोग्यश्रीविवर्धनम् । सौभाग्यैश्वर्यजनन तीर्थमानन्दनामकम् ॥४०॥
तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थायाह स गौतम । स्मरणात्पठनाद्वाऽपि द्रष्टुं सयुज्यते सदा ॥४१॥
शिवस्यात्र निविष्टस्य नन्दो गङ्गातटेऽनिशम् । साक्षात्स्मरत्यसौ धर्मस्तस्मान्न्दीतट स्मृतम् ॥
आनन्दमपि ततीर्थं सर्वानन्दविवर्धनात् ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आनन्दतीर्थादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णन
नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५२॥

गौतमीमाहात्म्ये अष्टोत्तितमोऽध्याय ॥८३॥

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

भावतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भावतीर्थमिति प्रोक्त यत्र साक्षादभव स्थित । अशेषजगदन्तस्यो भूतात्मा सच्चिदाकृति ॥१॥

गुरु ने कहा—गौतम ! तुम अब पूज्य हो । मन्त्रों को मुक्ति देने वाली हो । विष्णु रूप में मेरे सिंहस्थ
(सिंह राशि पर) रहने पर तुम सरित्सारोमणि । तुम सब तीर्थों का युक्त हाकर त्रिभुवनपावनी होगी । अम्बिक ।
स्वर्ग मृत्यु और रसातल में जितने तीर्थ हैं वे सब मेरे सिंहस्थ होने पर तुम्हारे पास स्नान करने आयेगे ।
॥३८ ३९॥

ब्रह्मा बोले—वह तीर्थ धन्य कीर्तिप्रद आयु आरोग्य और श्री को बढ़ाने वाला सौभाग्य और ऐश्वर्य
को पैदा करने वाला आनन्द नामक तीर्थ है । उस गौतम ने वहाँ पाँच हजार लाख बतलाये हैं । उनका स्मरण और
पठन से मनुष्य के सब प्रकार के मनोरथ पूरे हो जाते हैं । यहाँ गंगानदी पर घातावस्थित शिव का धर्म रूप नन्दी
साक्षात् विवरण करता है इसलिए इसका नाम नन्दीतट पड़ा है । वह सब का आनन्द बढ़ाने वाला है अतः उसको
आनन्दनाम कहते हैं ॥४० ४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आनन्दतीर्थ आदि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक ही वाक्यवाची अध्याय
समाप्त ॥१५२॥

अध्याय १५३

भावतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ समस्त संसार के जन-वरण में रहने वाले, भूतात्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप साक्षात्

तत्रेमा शृणु वक्ष्यामि कथा पुण्यतमां शुभाम् । सूर्यवदाक्षर श्रीमान्क्षत्रियाणा धृग्वर ॥२॥
 प्राचीनबहिराहपात सर्वधर्मेषु पारण । तिस्र षोडशोऽर्धकोटिद्वय वर्षाणा राज्य आस्थित ॥३॥
 तस्येदृश व्रत चाऽऽसीद्यदह यौवनच्युत । भवेय प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभि ॥४॥
 वियुज्येय ततो राज्य त्यक्ष्येऽह नात्र संशय । विवेकिना कुलीनानामिदमवोचित नृणाम् ॥५॥
 स्थीयते विजने क्वापि विरवतैर्विभवक्षये । तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोग प्रियं ववचित् ॥६॥
 नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्ष न यन्धुकलहो नृणाम् । तस्मिन्प्रशासति राज्य तु न च कश्चिद्वियुज्यते ॥७॥
 तत पुत्रार्थमकरोद्यत्त राजा महामति । तत प्रसन्नो भगवान्वर प्रादाद्यथेस्तितम् ॥८॥
 गौतमीतीरसस्याय राज्ञे देवो महेश्वर । पुत्र देहीति राजा वै भव प्राह स भार्यया ॥९॥
 भव प्राह नृप प्रोत्था पश्य नेत्र तृतीयकम् । तत पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद ॥१०॥
 चक्षुर्दोष्याऽभक्तपुत्रो महिमा नाम विश्रुत । येनाकारि स्तुति पुण्या महिम्न (?) 'इति विश्रुता ॥११॥
 किमलम्य भगवति प्रसन्ने त्रिपुरान्तके । य नित्यमनुवर्तन्ते हर्षब्रह्मादय सुरा ॥१२॥
 प्राप्तपुत्रश्च नृपतिस्तीर्थश्रेष्ठधर्मयाचत । महापापमहारोगमहाव्यसनिना नृणाम् ॥१३॥
 नानाविपद्गणार्ताना सर्वाभिमतलब्धये । प्रादाज्यैष्ठ्य भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥

शकर विराजमान हैं उसको भावतीर्थ कहा गया है। उसकी शुभ एवं पुण्यतम कथा कह रहा हूँ सुनो। सुपवन को बहाने वाला सत्र धर्मों में पारङ्गत श्रीजीवन और क्षत्रिय कुलधुरधर एक प्राचीनरहित नामक राजा था। वह राज सिंहासन पर साठ तीन करोड़ वर्ष तक रहा। उसने ऐसा नियम किया कि यदि मैं यौवन च्युत हो जाऊँगा या प्रिया या अपनी प्रिय वस्तुओं से अलग हो जाऊँगा तो मैं अपना राज्य अवश्य छोड़ दूँगा इसमें कोई भी संदेह नहीं। कुलीन और ज्ञानी मनुष्यों के लिए यह उचित है कि वह विभवहीन होने पर विरक्त हो वही एकाग्र स्थान में जीवन व्यतीत करे। उसने शासनकाल में कहीं किसी को प्रिय वियोग नहीं होता था। मनुष्यों का किसी प्रकार की आधि व्याधि दुर्भिक्ष तथा बन्धुजा से कलह नहीं होता था। उसके राज्य शासन काठ में कोई अपने प्रिय से वियुक्त नहीं होता था। इसने बाद महाबुद्धिमान राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। तब प्रसन्न होकर भगवान् महेश्वर देव न गौतमी तीर पर रहने वाले राजा को इच्छानुकूल वर दिया। भार्या सहित उस राजा ने पुत्र दीजिये यह वर शकर से मांगा ॥१९॥ शकर ने प्रमत्तक राजा से कहा कि मरे तीसरे नेत्र को देखो। मानद। तब उनके तीसरे नेत्र को देखने पर राजेन्द्र को नेत्र की दीप्ति के प्रभाव से महिमा नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ जिसने महिम्नस्तोत्र नामक प्रसिद्ध स्तोत्र को बनाया और उसी से स्तुति की। जिसकी आज्ञा का अनुसरण हरि ब्रह्मा आदि देवता करते हैं उस भगवान् विपुलारि के प्रसन्न होने पर सप्तर ने क्या अलम्ब है? पुत्र पा जाने पर राजा ने उस तीर्थ की श्रद्धा का भी वर मांगा। भव ने महापापी महारोगी महाव्यसनी और अनेक विपत्तियों से दुखी मनुष्यों की अमोघ सिद्धि के लिये उस तीर्थ को आदि श्रद्धा दे दी। अब वह भावतीर्थ कहा जाता है।

तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् । भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनवर्हिषः ॥१५॥
महिमा गौतमीतीरे भावतीर्थं तदुच्यते । तत्र सप्ततितीर्थानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भावतीर्थादिसप्ततितीर्थवर्णनं नाम
त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सहस्रकुण्डाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सहस्रकुण्डमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः । यस्य स्मरणमात्रेण सुखी संपद्यते नरः ॥१॥
पुरा दाशरथ्यो रामः सैतुं बद्ध्वा महार्णवे । लङ्कां दग्ध्वा रिपून्हत्वा रावणादीन्गणे शरैः ॥२॥
वेदेहो च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत् । पश्यत्सु लोकपालेपु तस्याऽऽचार्यं पुरः स्थिते ॥३॥
अग्नौ शुद्धिगतां सीतां रामो लक्ष्मणसंनिधौ । एहि वेदेहि शुद्धासि अङ्कुमारोदुमहंसि ॥४॥

उसमे स्नान और दान करने से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त करता है । भगवान् भव की वृषा से प्राचीनवर्हिष को गौतमी-तट पर महिमा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, इसलिये उसको भावतीर्थ कहा जाता है । इसके अतिरिक्त वहाँ पवित्र और अखिल मनोरथों को देने वाले सत्तर तीर्थ हैं ॥१०-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भावतीर्थ आदि सत्तर तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तिरपनवाँ

अध्याय समाप्त ॥१५३॥

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वेदों के जानने वाले व्यक्ति सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ को जानते हैं, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सुखी हो जाता है । प्राचीन-काल में दशरथ-पुत्र राम ने महासमुद्र पर पुल बंध कर लंका को जला रण में अपने बाणा से रावण आदि शत्रुओं को मारकर वेदेही को प्राप्त किया । तत्पश्चात् सब लोकपालों और क्षत्रियों आचार्य के सामने ही राम ने लक्ष्मण के समीप अग्नि में शूद्र की गर्द सीता से कहा—‘वेदेहि’ तुम पवित्र हो, अब मेरी गोद में आरुढ़ होने के योग्य हो ।’ उस समय यह मुनिरा श्रीमान् अगद तथा हनुमान् ने इसका निषेध किया और कहा ‘वेदेहि’ हम सब अपने शुद्धजनों के साथ अपोष्या चलेंगे । वहाँ शूद्र होने पर और साथ ही भ्रातागण,

नेत्युवाच तदा श्रीमानङ्गदो हनुमांस्तथा । अयोध्यायां तु वंदेहि सार्धं यामः सुहृज्जनैः ॥५॥
 तत्र शुद्धिमवाप्स्यथ पुनर्भातृषु मातृषु । लौकिकेष्वपि पश्यत्सु ततः शुद्धा नृपात्मजा ॥६॥
 अयोध्याया सुपुण्येऽह्नि अङ्कुमारोद्गमहंसि । अस्याश्चरित्रविषये सदेहः कस्य जायते ॥७॥
 लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनेषु हि । तयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभोषण ॥८॥
 रामश्च जाम्बवाश्चैव तामाह्वयन्प्राप्तमजाम् । स्वस्त्योक्त्या देवताभ्यो राज्ञोऽङ्कुं चाऽऽहरोह सा ॥९॥
 मुवत्तिस्ते ययुः शीघ्रं पुष्पकेण विराजता । अयोध्या नगरीं प्राप्य तथा राज्यं स्वकं तु यत् ॥१०॥
 मुदितस्तेऽभवन्सर्वे सदा रामानुवर्तिनः । ततः कतिपयाहेषु अनार्यस्यो विरूपिकाम् ॥११॥
 वाचं श्रुत्वा स तत्याज गुविर्णो तामयोनिजाम् । मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः ॥१२॥
 बाल्मीकीर्मुनिमुख्यस्य आश्रमस्य समीपतः । तत्याज लक्ष्मणः सीतामदुष्टा ददतीं ददन् ॥१३॥
 नीललङ्घ्याऽऽजा गुरुणामित्यसौ तदकरोद्भिया । ततः कतिपयाहेषु व्यतीतेषु नृपात्मजः ॥१४॥
 रामः सौमित्रिणा सार्धं हयमेधाय दीक्षितः । तत्रैवाऽऽजगमत्पुत्रो रामपुत्रो यशस्विनी ॥१५॥
 लवः कुशश्च विख्यातो नारदाविष गायको । रामायण समग्रं तद्गन्धर्वाविष सुस्वरो ॥१६॥
 रामाय चरितं सर्वं गायमानो समीयतुः । यज्ञवाट राजसुतो हेतुभिलक्षितो तदा ॥१७॥
 रामपुत्रावुभौ शूरो वंदेह्यास्तनयाविति । तावानोय ततः पुत्रावभिषेच्य यथाक्रमम् ॥१८॥
 अङ्गारुढौ ततः कृत्वा सस्वजे तौ पुनः पुनः । ससारदुःखखिन्नानामगतीना शरीरिणाम् ॥१९॥

मातापे और समस्त प्रजायें जब इस अग्नि-परीक्षा को देख लेंगी तब नृप-तनया सीता शुद्ध होगी । इसके अनन्तर पवित्र शुभ दिन में उसी अयोध्या में वे आपके अकारुढ होगी । वास्तव में इनके चरित्र के विषय में किसको सन्देह होगा ? फिर भी स्वजनो में फैले लोकापवाद को अवश्य दूर करना चाहिये । 'उन दोनों की इन बातों का अनादर कर विभीषण सहित राम लक्ष्मण और जाम्बवान् ने उस शुद्ध नृप कन्या को बुलाया, देवताओं ने स्वस्ति-पाठ किया और सीता आदरपूर्वक राजा के अंक में आरुढ हुई ॥१-९॥ सभी पुष्पक-विमान पर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र अयोध्या की ओर चले । अयोध्या नगरी और अपने राज्य को पा सदा राम की आज्ञा का पालन करने वाले वे सब लोग अति प्रसन्न हुये । इसके बाद कुछ दिनों में राजा राम ने अनायों के मुख से सीता के सबध में अनुचित बात सुनकर उस अयोनिजा को गर्भवती अवस्था में ही छोड़ दिया, क्योंकि कुलीन व्यक्ति मिथ्यापवाद को भी नहीं सहते हैं । लक्ष्मण ने मुनिशिरोमणि बाल्मीकि के आश्रम के समीप उस रोती हुई पवित्र सीता को स्वयं रोते हुए छोड़ दिया । गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, इस डर से उन्होंने यह बुरा कर्म किया । इसके बाद कुछ समय बीत जाने पर नृप-पुत्र राम ने लक्ष्मण के सहित अवधमें यज्ञ की दीक्षा ली । उसी यज्ञ में वे दोनों यशस्वी तथा नारद के समान विख्यात गायक रामपुत्र लव और कुश उस सम्पूर्ण रामचरित्र—रामायण को गन्धर्व के समान मीठे स्वर से गाते हुए पहुँचे । उस समय जब वे दोनों राज-पुत्र यज्ञ-पथ पर आये तब अपने अग-लक्ष्मणों से दोनों सीता से उत्पन्न राम के पुत्र पहचाने गये । राम ने अपने उन दोनों पुत्रों को बुलाकर यथाक्रम उनका अभिषेक किया, पुनः गोद में लेकर बार-बार छाती से लगाया ॥१०-१८॥ सत्य है कि ससार के दुःखों से जडिग्न एवं निरुपाय देहधारियों के लिये इस ससार में पुत्र का आलिंगन ही अत्यन्त सुख-शान्ति का कारण है । राम उन दोनों पुत्रों को बार-बार अपनी छाती से लगाते, चूमते और आलिंगन करते, कुछ हृदय में सोचते-तो थे,

पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विश्रान्तिकारणम् । मुहुरालिङ्ग्य तौ पुत्री मुहुः स्वजतिं चुम्बति ॥२०॥
 किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि वै मुहुः । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कवासिनः ॥२१॥
 सुग्रीवो हनुमाश्चैव अङ्गदो जाम्बवास्तथा । अन्ये च वानराः सर्वे विभीषणपुरः सराः ॥२२॥
 ते चाऽऽगत्य नृपं प्राप्ताः सिंहासनमुपस्थितम् । सीतामवृष्ट्वा हनुमानङ्गदः कनकाङ्गदः ॥२३॥
 क्व गताऽयोनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते । रामेण सा परित्यक्ता इत्युचुर्द्वारपालकाः ॥२४॥
 पश्यत्सु लोकपालेषु आर्ये तत्र प्रवर्द्धिनि । अग्नौ शुद्धिगतं (ता) सीतां (ता) कितु राजा निरंकुशः ॥२५॥
 उत्पन्नैर्लौकिकैर्वाक्यैः रामस्त्यजति तां प्रियाम् । भरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमीं पुनरीयतुः ॥२६॥
 रामस्तौ पृष्ठतोऽभ्येत्य (?) अयोध्यावासिभिः सह । आगत्य गौतमीं तत्राकुर्वन्ते परमं तपः ॥२७॥
 स्मरं स्मरं निश्वसन्तस्तां सीता लोकमातरम् । संसारास्याविरहिता गौतमीसेवनोत्सुकाः ॥२८॥
 लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः । प्राप्तः स्नात्वा च गौतम्यां शिवाराधनतत्परः ॥२९॥
 परितापं जही सर्वं सहस्रपरिवारितः । यत्र चाऽऽसीत् वृत्तान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते ॥३०॥
 दशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च । तत्र स्नानं च दानं च सहस्रफलदायकम् ॥३१॥
 यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरैः । सर्वपतारकं होममकारपदधान्तकम् ॥३२॥
 सहस्रसंख्यायुक्तेषु कुण्डेषु वसुधारायाः । सर्वानपेक्षितान्कामानवापासौ महातपाः ॥३३॥

और फिर बार-बार लम्बी आँहे भरने लगते थे । इसी बीच लकावासी विभीषण आदि राक्षस, सुग्रीव, हनुमान्, अंगद और जाम्बवान् एव अन्य वानर आये । उन सबों ने सिंहासन पर बैठे राम को तो देखा, परन्तु सीता को न देखा । तब वनक और बेयूर पहले दृष्टे हनुमान् और अंगद ने पूछा कि मेरी अयोनिजा माता सीता कहाँ चली गई, केवल अकेले राम ही दिखाई पड़ रहे हैं । द्वारपाल ने कहा कि राम न उनको छोड़ दिया है । तब सब लोकपालों के देखते-देखते और आर्य राम के रोक्ते रहते पर भी उन्होंने कहा कि ओह ! अग्नि के द्वारा शुद्ध की गई प्रिय सीता को राम ने लोका-पवाद के कारण छोड़ दिया है । ' ' ठीक है राजा अति निरंकुश होते हैं । अब हम अवश्य मर जायेंगे । यह कह गौतमी-तट पर चले आये । राम भी उन दोनों के पीछे-पीछे अयोध्यावासियों के साथ उस गौतमी-तट पर आये । संसार से निराश और गौतमी-भवन के लिये उत्सुक वे सब उस लोकमाता सीता का बार-बार स्मरण कर और दीर्घ-च्छ्वास छोड़ते हुए परमोत्पृष्ट तप करने लगे । सीता लोक के स्वामी साक्षात् राम अपने अनुज के साथ गौतमी के तट पर आये और उनमें स्नान कर शिवाराधन म लीन हो गये ॥१९-२९॥ इस प्रकार उन्होंने सहस्रजनों के साथ दीर्घ तपस्या कर सब दुःखा से अपने को मुक्त किया । जहाँ बड़े घटना हुई उसको सहस्रकुण्ड कहा जाता है । वहाँ और भी सब अमिमत्त पदार्थों को दान वाले दान तीर्थ हैं । उनमें स्नान और दान करने से सहस्रगुण फल प्राप्त होता है । जहाँ श्री गौतमी के तट पर वसिष्ठादि मुनीश्वरों से युक्त होकर सहस्रकुण्ड में पाप नष्ट करने वाली और सब आपत्तियों को दूर करने वाली आहुतियों को वसुधारा के साथ दिया और राक्षसों के विध्वंसक

गौतम्या सरिदम्बाया प्रसादाद्वाक्षसान्तक । सहस्रकुण्डाभिष तदभूत्तीर्थं महाफलम् ॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सहस्रकुण्डादिदशतीर्थवर्णनं नाम
चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशोत्तितमोऽध्याय ॥८५॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

कपिलातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलातीर्थमाख्यात तदेवाऽऽङ्गिरस स्मृतम् । तदेवाऽऽदित्यमाख्यात संहिकेय तदुच्यते ॥१॥
गौतम्या दक्षिणे पारे आदित्यान्मुनिसत्तम । अयाजयन्नङ्गिरसो दक्षिणां ते भुव इदु ॥२॥
अङ्गिरोऽयस्नवाऽऽदित्यास्नपसेऽङ्गिरसो ययु । सा भूमिं संहिकी भूत्वा जनान्सर्वान्भक्षयत् ॥३॥

उस महापस्वी राम ने माता गौतमी नदी की कृपा से सब अमीष्ट मनोरथों को प्राप्त किया, वह महाफल देने वाला सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ विख्यात हो गया ॥३० ३४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सहस्रकुण्ड आदि दस तीर्थों का वर्णन नामक एवं सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५४॥

अध्याय १५५

१

कपिलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कपिलासगम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसी को आगिरस आदित्य और संहिकेय तीर्थ भी कहा जाता है। मुनिश्रेष्ठ ! अङ्गिरसों ने गौतमी के दाहिने तट पर आदित्या को घन कराया। उन आदित्या ने दक्षिणा में अङ्गिरसा का पवित्री दी। अङ्गिरस तपस्या के लिये चले गये। वह भूमि सहिकी बनकर मनुष्यों को खात लगी। वे सब लोग मयन्न हो गये और उन्होंने जाकर अङ्गिरसा से अपनी बचत-माया मुनाई। अपने अन्तःज्ञान से उग पवित्री का सहका होता जानकर वे भी डरने लगे। इनके बाद वे आदित्या के पास जाकर बोले— अपनी दी

तत्रसुस्ते जनाः सर्वे अङ्गिरोम्यो न्यवेदयन् । विभीता ज्ञानतो ज्ञात्वा भुवं तां संहिकीमिति ॥४॥
 आदित्याननुगत्वाऽथ धाचमङ्गिरसोऽब्रुवन् । भुवं गृह्णन्तु या दत्ता नेत्यादित्यास्तदाऽब्रुवन् ॥५॥
 निवृत्तां दक्षिणां नैव प्रतिगृह्णन्ति सूरयः । स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुंधराम् ॥६॥
 पण्डित्वैर्धनहृत्त्राणि विष्टायां जायते कृमिः । भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्वचित् ॥७॥
 पापमस्ति महारौरवं न स्वीकुर्मः पुनस्तु ताम् । एवं यदा स्वदत्ताया हरणे किं तदा भवेत् ॥८॥
 तचाऽपि क्रूररूपेण गृह्णीमो दक्षिणां भुवम् । तथेत्युक्ते तु ते देवाः कपिला शुभलक्षणाम् ॥९॥
 गङ्गाया दक्षिणे पारे भुवः स्थाने तु ता ददुः । भुक्तिमुक्तिप्रदः साक्षाद्विष्णुस्तिष्ठति मूर्तिमान् ॥१०॥
 कपिलासंगमं तच्च सर्वाधीधविनाशनम् । तत्राभवद्दानतोयादायगा कपिलाभिधा ॥११॥
 सस्यवत्या अपि भुवो दानाद्गोदानमुत्तमम् । लोकरक्षां चकारासौ कृत्वा विनिमयं मुनिः ॥१२॥
 यत्र तीर्थं च तद्वृत्तं गोतीर्थं । तदुदाहृतम् । पुण्यदं तत्र तीर्थानां शतमुक्तं मनीषिभिः ॥१३॥
 तत्र स्नानेन दानेन भूमिदानफलं लभेत् । सगता गङ्गाया तच्च कपिलासंगमं विदुः ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमादिशततीर्थवर्णन नाम

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

हुई पृथ्वी को ले लीजिये ।' तब आदित्यो ने कहा 'नहीं, ज्ञानी दक्षिणा मे दिये गये पदार्थ को पुन स्वयं अपने नहीं लेते । जो अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि को छीन लेता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्टा में कीड़ा बनता है । अपनी अथवा दूसरे की दी हुई भूमि को ले लेने की अपेक्षा बदाचित् और दूसरा महामयङ्कर पाप नहीं है । इसलिये पुन उस भूमि को हम नहीं ग्रहण करेंगे ॥१७॥ यद्यपि स्वदत्त पृथ्वी के पुन ग्रहण में पाप होता है तब अब क्या होगा ? तथापि मृत्यु देकर ऋय के रूप में इस दक्षिणा दी हुई पृथिवी को ले लेता हूँ ।' 'ऐसा ही हो' ऐसा अङ्गिरसो के कहने पर उन आदित्यो ने क्षम लक्षणो वाली कपिला गौ को पृथ्वी के निष्पन्न के रूप में गंगा के दक्षिण तीर पर दे दिया । उस स्थान पर भुक्ति और मुक्ति देने वाले साक्षात् मूर्तिमान् विष्णु निवास करते हैं । वहाँ वह कपिला-सगम नामक एक तीर्थ बन गया जो सब पापों को दूर करने वाला है । वही दान-जल के गिरने से कपिला नाम की एक नदी बन गई । सस्य-सम्पन्न पृथ्वी के दान से भी गोदान उत्तम दान है । इस प्रकार उस मुनि ने दान का विनिमय कर लोकर-रक्षा की । जहाँ वह घटना हुई उसको गोतीर्थ कहा जाता है । मनीषियों ने वहाँ और पुण्यप्रद सौ तीर्थों को कहा है । वहाँ स्नान और दान करने से भूमि-दान का फल प्राप्त होता है । गंगा से मिलने पर उस स्थान को कपिला-सगम कहा जाता है ॥८-१४॥

श्रीब्रह्मपुराण मे कपिला-सगम आदि सौ तीर्थों का वर्णन नामक

एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५५॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शङ्ख ह्रदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शङ्खह्रद नाम तीर्थं यत्र शङ्खगदाधरः । तत्र स्नात्वा च तद्दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥१॥
तत्रैव वृत्तमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ ब्रह्मण सामगायिन ॥२॥
ब्रह्माण्डागारसभूता राक्षसा बहुरूपिणः । ब्रह्माण खादितुं प्राप्ता बलान्मत्ता धृतायुधाः ॥३॥
तदाऽहमब्रव विष्णु रक्षणाय जगदगुरुम् । स विष्णुस्तानि रक्षासि हन्तुं चक्रेण चोद्यत ॥४॥
छित्त्वा चक्रेण रक्षासि शङ्खमापूरयत्तदा । निष्कण्टकं तलं कृत्वा स्वर्गं निर्वैरमेव च ॥५॥
ततो ह्यंप्रकर्षेण शङ्खमापूरयद्वरि । सतो रक्षासि सर्वाणि हचनीनशुरशेषतः ॥६॥
यत्रैतद्वृत्तमखिलं विष्णुशङ्खप्रभावतः । शङ्खतीर्थं तु तत्प्रोक्तं सर्वक्षेमकरं नृणाम् ॥७॥
सर्वाभीष्टप्रदं पुण्यं स्मरणान्मङ्गलप्रदम् । आयुरारोग्यजननं लक्ष्मीपुत्रप्रवर्धनम् ॥८॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि सर्वकामानवाप्नुयात् । तीर्थानामप्युत तत्र सर्वपापनुदं मुने ॥९॥
तीर्थान्यप्युतसरयानि सर्वपापहराणि च । येषां प्रभावः जानाति वक्तुं देवो महेश्वरः ॥१०॥

अध्याय १५६

शङ्ख ह्रद नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शङ्ख ह्रद नामक एक तीर्थ है जहाँ शङ्ख और गदा को धारण करने वाले भगवान् रहते हैं। उस तीर्थ में स्नान कर उस भगवान् का दर्शन करने से मनुष्य ससार के बन्धन से छूट जाता है। वहाँ जो यह भुक्ति और मुक्ति देने वाली घटना हुई उसको कह रहा हूँ। बहुत पहले कृत युग के आदि में साम भान करने वाले ब्राह्मण थे। उस समय ब्रह्माण्ड रूपी गृह में उत्पन्न भिन्न भिन्न रूप वाले तथा बल से उन्मत्त रहने वाले राक्षस हाथ में शस्त्र लेकर ब्रह्मा को खाने के लिये आये। तब मैंने जगदगुरु विष्णु से रक्षा के लिये कहा। वे विष्णु उन राक्षसों को चक्र से मारने के लिये तैयार हो गये। चक्र से राक्षसों को काट कर अपना शङ्ख बजाया। मृतल को शत्रु रहित और स्वर्ग को निश्चित कर हरि ने आनन्दानन्द के से अपने शङ्ख को बजाया। इस प्रकार सब राक्षसों को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। जहाँ यह सारी घटना हुई वही विष्णु के शङ्ख के प्रभाव के कारण मनुष्यों के सब प्रकार के कल्याण करने वाला शङ्खतीर्थ हो गया। वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र सब मनोरथों को देने वाला स्मरण मान से मंगल प्रदान करने वाला और आपु आरोग्य लक्ष्मी तथा पुत्र को बढ़ाने वाला है। मनुष्य उसके स्मरण और पठन से सब कामनाओं को पा जाता है। मुने! वहाँ सब पापों को नष्ट करने वाले दस हजार तीर्थ हैं।

पापक्षयप्रतिनिधिर्नैतेभ्योऽस्त्यपर यच्चित्

॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शङ्खतीर्थार्चयुततीर्थवर्णनं नाम

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५६॥

गीतमीमाहात्म्ये सप्तशतितमोऽध्याय ॥८७॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

किष्किन्धातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किष्किन्धातीर्थमाहयात् सर्वकामप्रदं नृणाम् । सर्वपापप्रशमनं यत्र तनिहितो भव ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि यत्नेन शृणु नारद । पुरा दाशरथी रामो रावणं लोकरावणम् ॥२॥
किष्किन्धावासिभिः सार्धं जघान रणमूढनिः । सपुत्रं सबलं हत्वा सीतामादाय शत्रुहा ॥३॥
भ्रात्रा सीमित्रिणा सार्धं वानरैश्च महाबलैः । विभीषणेन बलिना देवं प्रत्यागतो नृप ॥४॥
कृतस्वस्त्ययनं श्रीमान्पुष्पकेन विराजितः । यदासीद्धनराजस्य कामगेनाऽऽशुगामिना ॥५॥
अयोध्यामगमन्सर्वे गच्छन्गङ्गामपश्यतः । रामो विरामं शत्रूणां शरण्यं शरणार्थिनाम् ॥६॥

उन सब पापों को हरने वाला दस हजार तीर्थों का प्रभाव का वणन मन्त्रवर देव ही कर सकत हैं । पापा का नाश करने वाला ऐसा प्रतिनिधि सीय और दूसरा कोई भी इस भूमण्डल पर नहीं है ॥११॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में सप्त-पञ्चाश आदि दस हजार तीर्थों का वणन नामक

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५६॥

अध्याय १५७

किष्किन्धा तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों की सब प्रकार की कामनाओं का पूरा करने वाला तथा सब पापों को दूर करने वाला किष्किन्धातीर्थ नामक एक साथ है जहाँ भगवान् गजर मक्का निकाल करत हैं । नारद ! उसके स्वरूप का वणन कर रहा हूँ ध्यान से सुनो । बहुत पहले दशरथ-पुत्र राम ने गेरु के छलन वाले रावण का किष्किन्धा निवासियों के सहयोग से मयङ्गुर युद्ध मारा । शत्रुनाशक राजा राम पुत्र और सौ सखि रावण को मारकर सीता को लाने आई लक्ष्मण महाबलशाली वानरा बली विभीषण और दत्ता का साथ लीज आये । श्रीमान् राम स्वयं यन आदि मांगलिक कार्यों को समाप्त कर कुबर क इच्छा वालिन शास्त्रयामा विमान पर विराजमान होकर सबके साथ अयोध्या को चल रास्ते में गंगा का दान हुआ । मुने ! गङ्गा के तीर्थ एक गङ्गापद्मा के प्रतिफल

गौतमीं तु 'जगत्पुण्यां सर्वकामप्रदायिनीम् । मनोनयनसंतापनिवारणपरायणाम् ॥७॥
ता दृष्ट्वा नृपति श्रीमान्गङ्गातीरमथाऽऽविशत् । तां दृष्ट्वा प्राह नृपतिर्हृदयगदगदया गिरा ॥
हरीन्सर्वानथाऽऽमन्य हनुमत्प्रमुखांस्मृते ॥८॥

राम उवाच

अस्याः प्रभावाद्वरयो याऽसौ मम पिता प्रभुः । सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो यातस्त्रिविष्टपम् ॥९॥
इयं जनित्री सकलस्य जन्तोर्भुक्तिप्रदा भुक्तिमयापि दद्यात्
पापानि हन्यादपि दारुणानि, काऽन्याऽनयाऽस्त्यत्र नदी समाना ॥१०॥
हृतानि शत्रवद्दुरितानि चैव, अस्याः प्रभावाद्वरयः सखायः
विभीषणो मंत्रमुपैति नित्यं, सीता च लब्धा हनुमाश्च बन्धुः ॥११॥
लङ्का च भग्ना सगणं हि रक्षो, हतं हि यस्याः परिसेवनेन
या गौतमी देववरं प्रपूज्य, शिवं शरण्यं सजटामवाप ॥१२॥
सेयं जनित्री सकलेप्सितानाममङ्गलानामपि सनिहन्त्री
जगत्पवित्रीकरणैकदक्षा, दृष्ट्वाऽथ साक्षात्सरितां सवित्री ॥१३॥
कायेन वाचा मनसा सदैनां, व्रजामि गङ्गां शरणं शरण्याम् ॥१४॥

राम मन और नेत्र के सताप को निवारण करने में अतिकुशल, सत्तार की अति पवित्र और सब मनोरथों को देने वाली उस गौतमी को देखकर गंगा-तीर पर उतर पड़े । मुनि नारद । उसको देखकर राजा हर्ष से प्रफुल्लित होकर हनुमान् आदि प्रमुख वानरों को बुलाकर गदगद् वाणी से बोले ॥१-८॥

राम बोले—वानरगण । इस महानदी के प्रभाव से मेरे प्रभु पिता सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग को चले गये । यह समस्त प्राणियों की माता है और सबको भुक्ति और मुक्ति दोनों देती है और उनके दारुण पापों को भी नष्ट कर देती है । इस मू पर इसके समान कोई अन्य नदी नहीं है । इसने सब पापों को पुन पुन नष्ट किया, इसके प्रभाव से शत्रु मित्र हो गये, विभीषण नित्य का मित्र हो गया, सीता मिल गई और हनुमान्, बन्धु (सहायक) मिल गया । इसकी सेवा से लका नष्ट कर दी गई और राक्षस अपने परिजनो सहित मारे गये । गौतम ऋषि ने देववर शरण रक्षक शिव की पूजा कर जिस गौतमी को जटा सहित प्राप्त किया था, वह यह सबल मनोरथों को प्रदान करने वाली और सब अमंगलों को नष्ट करनेवाली सत्तार को पवित्र करने में एकमात्र कुशल और सब नदियों को उत्पन्न करने वाली गौतमी आज प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर हुई है । मैं ऐसी शरणवत्सल गंगा की शरण में शरीर, मन और ध्वन से सदा के लिये आया हूँ ॥९-१४॥

ब्रह्मोवाच

एतत्समाकर्ण्य वचो नृपस्य, तत्राऽऽप्लवन्हरयः सर्व एव
 पूजां चक्रुर्विधिवत्ते पृथक्च, पुष्पैरनेकैः सर्वलोकोपहारैः ॥१५॥
 संपूज्य शवं नृपतिर्यथावत्स्तुत्वा वाक्यैः सर्वभावोपयुक्तैः
 ते वानरा मुदिताः सर्व एव, नृत्यं च गीतं च तथैव चक्रुः ॥१६॥
 मल्लोपितस्तां रजनीं महात्मा, प्रियानुयुक्तः संवृतः प्रेमवद्भाभः
 दुःखं जहौ सर्वममित्रसंभवं, किं नाऽऽप्यते गीतमोसेवनेन ॥१७॥
 सविस्मयः पश्यति भृत्यवर्गं, गोदावरौ स्तोति च संप्रहृष्टः
 संमानयन्भृत्यगणं समग्रमवाप रामः कमपि प्रमोदम् ॥
 पुनः प्रभाते विमले तु सूर्ये, विभीषणो वाशरथिं बभाषे ॥१८॥

विभीषण उवाच

नाद्यापि तृप्तास्तु भवाम तीर्थे, कंचिच्च कालं निवसाम चात्र
 वत्स्या (सा) म चात्रैव पराश्चतस्रो, रात्रोरथो याम वृतास्त्वयोध्याम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच ॥

तस्याथ वाक्यं हरयोऽनुमेनिरे, तथैव रात्रोरपराश्चतस्रः
 संपूज्य देवं सकलेश्वरं तं, भ्रातृप्रियं तीर्थमथो जगाम ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—राजा राम की उपर्युक्त बातों की सुनकर वे सब वानर उस पुष्पतोया गया में कूद पड़े और स्नान कर सब लोको के उपहार स्वरूप भक्ति-भक्ति के फूलों से विधिवत् पूजा की। राजा ने भी शिव की पूजा कर सब भावों को व्यक्त करने वाले उपर्युक्त वाक्यों से विधिपूर्वक स्तुति की। उन सभी वानरों ने मुदित होकर उसी प्रकार नृत्य-गान किया। महात्मा राम ने प्रिया सीता के सहित अपने प्रेमी अनुचरों के साथ उस रात्रि को वहीं बिता दिया और सब शत्रुओं के कारण पाये हुये दुःख को वे मूल गये। सत्य है, गीतमी की सेवा से मनुष्य क्या नहीं कर पा सकता है? वे कभी विस्मित हो अपने अनुचरवर्ग को देखते तो कभी प्रसन्न हो गोदावरी की स्तुति करते थे। अपने समस्त अनुचरों को सम्मानित करते हुए राम को कोई अनिवंचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। पुनः प्रातः काल जब विमल सूर्योदय हुआ तब विभीषण ने राम से कहा ॥१५-१८॥

विभीषण ने कहा—इस तीर्थ में रहने से अभी हम तृप्त नहीं हुये हैं, अतः यहाँ कुछ समय तक और रहना चाहते हैं। यहीं और चार रात तक रहें, पुनः अयोध्या की आनन्दपूर्वक प्रशान करें ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद वानरों ने भी विभीषण की बातों का समर्थन किया और उसी प्रकार आनन्द-पूर्वक अन्य चार रात्रियाँ भी बिताई गईं। इसके बाद सब के प्रभु शक्र की पूजाकर सब उस भ्रातृ-प्रिय जगत्प्रसिद्ध

सिद्धेश्वरं नाम जगत्प्रसिद्धं, यस्य प्रभावात्प्रबलो दशास्यः ।	
एवं तु पञ्चाहमयोपिरे ते, स्वं स्वं प्रतिष्ठापितलिङ्गमच्यं	॥२१॥
शुश्रूषणं तत्र करोति वायो, सुतोऽनुगामी हनुमान्नृपस्य	।
गच्छन्नुपेन्द्रो हनुमन्तमाह, लिङ्गानि सर्वाणि विसर्जयस्व	॥२२॥
मत्स्यापितान्युत्तममन्त्रविद्भिस्तयेतरैः शंकरांककरंश्च	।
नोद्वास्य पूजा परशंकरेण, बाहय' समायोज्यमहो भवस्य (?)	॥२३॥
तिष्ठन्ति सुखास्तवनान्तरेण, ते खड्गपद्मादियु सभवन्ति	।
येऽभ्रदधानाः शिवलिङ्गभूजा, विधाय कृत्यं न समाचरन्ति	॥२४॥
ययोचितं ते यमांककरं हि, पच्यन्त एवाखिलदुर्गन्तीषु	।
रामाज्ञया वायुसुतो जगाम, दोर्म्यां न चोत्पाटयितुं शशाकः	॥२५॥
[ततः स्वपुच्छेन ग्रहीतुकामः, संवेष्टय लिङ्गं तु विसृष्टकामः]	[।
नैवाशक्तस्तन्महदद्भुतं स्यात्कपीश्वराणां नृपतेस्तपैव]	॥२६॥
कश्चालयेत्लब्धमहानुभावं, महेशलिङ्गं पुरुषो मनस्वी	।
तन्निदचलं प्रेक्ष्य महानुभावो, नृपप्रवीरः सहसा जगाम	॥२७॥
विप्रांनथाऽऽमन्त्र्य विधाय पूजां, प्रदक्षिणीकृत्य च रामचन्द्रः	।
शुद्धातिशुद्धेन हृदाऽखिलैस्तैलिङ्गानि सर्वाणि ननाम राम	॥२८॥

सिद्धेश्वर नामक तीर्थ मे गये, जिसके प्रभाव से रावण प्रबल हो गया था । इस प्रकार वे सब पाँच दिनों तक वहीं रहकर अपने अपने स्थापित किए हुए शिवलिंग की पूजा करते रहे । वहाँ वायु-पुत्र, अनुगामी हनुमान् राजा राम की शुश्रूषा करते थे । जाते समय राजशिरोमणि राम ने हनुमान् से कहा कि मेरे द्वारा प्रतिष्ठापित इन सब लिङ्गों का उत्तम मन्त्रज्ञो अथवा इतर शंकर-भक्तों ने उपदेश से विसर्जन कर दो ॥२०-२२॥ अहो ! शंकर के भक्तों को उनकी पूजा का विसर्जन किये बिना इतर कार्य नहीं करना चाहिये । भक्त विधिपूर्वक पूजा करके ही सुखपूर्वक रहते हैं अर्थात् उन (शंकर) के अनादर से वे असिपन्न-वन नामक नरक में कष्ट पाते हैं । जो अश्रद्धालु जन शिव-लिङ्ग की प्रतिष्ठा कर, विहित कार्यों का अनुष्ठान नहीं करते हैं वे यमदूतों द्वारा विभिन्न नरकों में यातना पाते हैं । राम की आज्ञा से वायु पुत्र चले, परन्तु अपनी भुजाओं से उस लिङ्ग को उखाड़ न सके । तब उन्होंने अपनी पूँछ से बाँधकर उस लिङ्ग को उखाड़ना चाहा, परन्तु बैसा भी न कर सके । यह देख कर कपीश्वरो और राजा राम को महान् विस्मय हुआ । कौन ऐसा मनस्वी पुरुष है जो उस महामहिम शिवलिङ्ग को हटा सकता है ? नृपश्रेष्ठ महानुभाव राम उस लिङ्ग को अवल देखकर सहसा वहाँ गये और ब्राह्मणों को बुलाकर उस लिङ्ग की विधिवत् पूजा और प्रदक्षिणा की । फिर अति विशुद्ध हृदय से राम ने अखिल अनुयायी वर्गों के साथ उन लिङ्गों को नमस्कार

किष्किन्धवासिप्रवरंरशेषं, संसेवित तीर्थमतो बभूव	।
अत्राऽऽप्लवादेव महान्ति पापान्यपि क्षयं यान्ति न संशयाऽत्र	॥२९॥
पुनश्च गङ्गां प्रणनाम भक्त्या, प्रसीद मातर्मम गौतमी-	।
जल्पन्मुहुर्विस्मितचित्तवृत्तिबिलोकयन्प्रणमन्गौतमीं ताम्	॥३०॥
ततः प्रभृत्येतदतीव पुण्यं, किष्किन्धतीर्थं विबुधा वदन्ति	।
पृष्ठेऽस्मरेद्वाऽपि शृणोति भक्त्या, पापापहं कि पुनः स्नानदानैः	॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये किष्किन्धातीर्थवर्णनं नाम सप्तपञ्चा-

[शदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥]

गौतमीमाहात्म्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अथाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यासतीर्थवर्णनम्

॥ ब्रह्मवाच ॥

व्यासतीर्थमिति स्थातं प्राचेनसमतः परम् । नात. परतरं किञ्चित्पावनं सर्वसिद्धिदम् ॥१॥
यस्य मे मानसा. पुत्रा स्मृष्टारो जगतामपि । अन्तं जिज्ञासवस्ते वै पृथिव्या जन्मुरोजसा ॥२॥

दिया । किष्किन्धा के रहने वाले सब श्रेष्ठ वानरो से सेवित होने के कारण उसका नाम किष्किन्धतीर्थ पड़ा । इस तीर्थ में स्नान करने से ही बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥२३-२९॥ फिर राम ने 'हे माता गौतमी ! प्रसन्न हो' यह कहकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । इस प्रकार वे सभी आश्चर्यचकित हो बार-बार आपस में बातचीत करते हुये उस गौतमी की ओर देखते हुए और बार बार प्रणाम करते हुए वहाँ से चल पड़े । उस समय से पंडित जन उसको अति पवित्र किष्किन्धतीर्थ कहते हैं । जो भक्तिपूर्वक उस तीर्थ का स्मरण, माहात्म्य-प्रवण या पाठ करते हैं उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । फिर उसके स्नान और दान की महिमा का वर्णन क्या किया जाय ॥३०-३१॥

श्रीब्रह्मपुराण में किष्किन्धातीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवा अध्याय समाप्त ॥१५७॥

अध्याय १५८

व्यासतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद व्यास-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है, जिसे प्राचेनस तीर्थ भी कहते हैं । इस तीर्थ से बड़ेकर पवित्र तथा सब सिद्धियों को देने वाला अन्य कोई तीर्थ नहीं है । ससार की भी सृष्टि करने वाले

पुनः सृष्टाः पुनस्तेऽपि यातास्तान्समवेक्षितुम् । नैव तेऽपि समायाता ये गतास्ते गता गताः ॥३॥
 तदोत्पन्ना महाप्राज्ञा दिव्या अङ्गिरसो (सा) मुने । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥४॥
 तेऽनुज्ञाता अङ्गिरसा गुहं नत्वा तपोधनाः । तपसे निश्चिताः सर्वे नैव पृष्ट्वा तु मातरम् ॥५॥
 सर्वेभ्यो ह्यधिकं माता गुरुभ्यो गौरवेण हि । तदा नारद कोपेन सा शशाप तवाऽऽत्मजान् ॥६॥

मातोवाच । { - ।

मामनादृत्य ये पुत्राः प्रवृत्ताश्चरितुं तपः । सर्वेऽपि प्रकारेस्तत्र तेषां सिद्धिमेष्यति ॥७॥

ब्रह्मोवाच

नानादेशांश्च चिन्वानास्तपः सिद्धिं न यान्ति च । विघ्नमन्वेति तान्सर्वानितश्चेतश्च धावत ॥८॥
 क्वापि तद्राक्षसैर्विघ्नं क्वापि तन्मानुषैर्भूत । प्रमदाभिः क्वचिन्क्वापि क्वापि तद्देहदोषतः ॥९॥
 एव तु भ्रममाणास्ते ययुः सर्वे तपोनिधिम् । अगस्त्यं तपतां श्रेष्ठं कुम्भयोनिं जगद्गुहम् ॥१०॥
 नमस्कृत्वा ह्यङ्गिरसा ह्यग्निर्वंशसमुद्भवाः । दक्षिणाशापतिं शान्तं विनीताः प्रष्टुमुद्यताः ॥११॥

अङ्गिरसा ऊचुः

भगवन्केन दोषेण तपोऽस्माकं न सिध्यति । नानाविधैरप्युपायैः कुर्वतां च पुनः पुनः ॥१२॥

मेरे दस मानस पुत्र हुये । वे पृथ्वी का अन्त जानने की इच्छा से बड़े साहस के साथ चले गये । फिर मैंने अन्य
 ही मानस पुत्रों को उत्पन्न किया । वे भी उनको ढूँढ़ने के लिये चले गये । वे भी लौट कर नहीं आये । जो गये वे चले
 ही गये । मुने ! तदनन्तर महाबुद्धिमान्, वेद-वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाले तथा सब शास्त्रों के परिनिष्ठित
 विद्वान् दिव्य अङ्गिरस उत्पन्न हुए । तपस्वी अङ्गिरसों ने गृह से आज्ञा लेकर तपस्या के लिये दृढनिश्चय हुये,
 परन्तु अपनी माता से इस विषय में राय नहीं ली । यह देख कर माता को क्रोध हो गया, क्योंकि माता गौरव में
 सब गुरुओं से बड़कर है । तब उसने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रों को शाप दे दिया ॥१-६॥

माता बोली—जो मेरे पुत्र मेरा अनादर कर तपस्या करने के लिये प्रवृत्त हुए हैं, वे सब प्रयत्न करने पर
 भी तपस्या में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकेंगे ॥७॥

ब्रह्मा बोले—वे उपर्युक्त स्थान ढूँढ़ते हुये अनेक देशों में गये, परन्तु तप सिद्धि प्राप्त नहीं हुई । इधर-उधर
 दौड़ने वाले उन लोगो के पीछे-पीछे विघ्न भी लगे रहते थे । कहीं तो राक्षस विघ्न उत्पन्न करते तो कहीं मनुष्य ।
 कहीं स्त्रियों के कारण विघ्न हो जाता था तो कहीं उनके निजी दोषों के कारण । इस प्रकार चक्कर खाटते हुये वे
 तपस्त्रियों में श्रेष्ठ, ससार के गुरु एवं आत्मव्युत्पन्न अगस्त्य के पास गये । अग्निवशीय वे अङ्गिरस दक्षिण दिशा के
 स्वामी, परम शान्त अगस्त्य को नमस्कार कर विनीत भाव से पूछने लगे ॥८-११॥

आङ्गिरस बोले—मगवन् ! बार-बार नाना प्रकार के उपाय करते हुए भी हम लोगो की तपस्या किस
 दोष के कारण सिद्ध नहीं हो रही है ? क्या करें ? इस तपस्या का कौन सा प्रकार (नियम) है ? विप्रेन्द्र !
 कृपाकर उपाय वन-आदये, आप निश्चय ही तपस्या में सर्वश्रेष्ठ हैं । ब्रह्मन् ! आप शानियों में श्रेष्ठ शाला हैं तथा

किं कुर्मः कः प्रकारोऽत्र तपस्येव भवाम किम् । उपायं ब्रूहि विप्रेन्द्र ज्येष्ठोऽसि तपसा द्रुवम् ॥१३॥
 ज्ञाताऽसि ज्ञानिनो ब्रह्मन्वक्ताऽसि वदता वरः । शान्तोऽसि यमिना नित्यं दयावान्प्रपकृतया ॥१४॥
 अत्रोधनश्च न द्वेष्टा तस्माद्ब्रूहि विवक्षितम् । साहंकारा दयाहीना गुहसेवाविर्जिता ॥
 असत्यवादिनः क्रूरा न ते तत्त्वं विजानते ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यः प्राह तान्सर्वान्क्षणं ध्यात्वा शनैः शनैः । ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

शान्तात्मानो भवन्तो वै स्रष्टारो ब्रह्मणा कृताः । न पर्याप्तं तपश्चाभूत्स्मरध्वं स्मयकारणम् ॥१७॥
 ब्रह्मणा निर्मिता, पूर्वं ये गताः सुखमेधते । ये गताः पुनरन्वेष्टुं ते च त्वाङ्गिरसोऽभवन् ॥१८॥
 ते यूयं च पुनः कात्रे याता याताः शनैः शनैः । प्रजापतेरप्यधिका भवितारो न संशयः ॥१९॥
 इतो यान्तु तपस्तप्तुं गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् । नोपायोऽन्योऽस्ति संसारे विना गङ्गा शिवप्रियाम् ॥२०॥
 तत्राऽऽश्रमे पुण्यदेशे ज्ञानद पूजयिष्यथ । स च्छेदयिष्यत्यखिलं संशयं वो महाभतिः ॥
 न सिद्धिः क्वापि केवाचिद्धिना सद्गुरुणा यतः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ते तमूचुर्मुनिवरं ज्ञानद कोऽभिधीयते । ब्रह्मा विष्णुर्महेशो वा आदित्यो वाऽपि चन्द्रमा ॥२२॥

वक्ताओ मे खेष्ठ वक्ता हैं । आप समयशीलो मे सबसे अधिक शान्त और सयमी हैं । आप सर्वदा दया दिलाने वाले और प्रिय बरने वाले हैं । आप क्षमाशील और उदार हैं । इसलिये कृपाकर उपयुक्त उपाय बतलाइये । जो अहं-कारी, निर्दय गुरु-सेवा-पराश्रम, दूठ बोलने वाले और क्रूर हैं वे तत्त्वों को नहीं जानते है ॥१२-१५॥

ब्रह्मा बोले—क्षण भर तक विचार कर अगस्त्य ऋषि ने धीरे धीरे उनसे कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—तुम लोग शान्त चित्त वाले, स्रष्टा (प्रजापति) और ब्रह्मा के पुत्र हो, फिर भी पर्याप्त तपस्या नहीं हुई । इस आश्चर्यजनक असफलता का कारण सोचो । पहले ब्रह्मा ने जिनको उत्पन्न किया और जो सुख की खोज में गये, वे सुख का अनुभव कर रहे हैं । जो पुनः उनको खोजने के लिये गये, वे आङ्गिरस हो गये । वे ही तुम लोग पुनः समय पाकर शनैः शनैः आगे बढ़ते ही गये और अब इसमें सन्देह नहीं कि तुमलोग प्रजापति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाओगे । अब त्रिमुवन-पावनी गंगा के तट पर तपस्या करने के लिये जाओ । समार में शिव प्रिया गंगा के बिना और कोई कल्याण का उपाय नहीं । वहाँ पवित्रस्थान में आश्रम बनाकर जब ज्ञानदाता (शकर) की पूजा करोगे तो वे महाभति सब सन्देहों को अवश्य मिटा देंगे । क्योंकि कहीं पर किसी को अच्छे गुरु के बिना सिद्धि नहीं मिलती है ॥१७-२१॥

ब्रह्मा बोले—उन लोगों ने उन मुनिवर से कहा कि कौन ज्ञान-दाता कहा जाता है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य या चन्द्रमा । मुनिखेष्ठ ! अग्नि अथवा वरुण बौन ज्ञानदाता हैं ? यह सुन ज्ञानदाता अगस्त्य ने कहा—ज्ञान

अग्निश्च वरुणः कः स्याज्ज्ञानदो मुनिसत्तम। अगस्त्यः पुनरप्याह ज्ञानदः श्रूयतामयम्॥२३॥
 या आपः सोऽग्निरित्युक्तो योऽग्निः सूर्यः स उच्यते। यश्च सूर्यः स वै विष्णुर्यश्च विष्णुः स भास्करः॥२४॥
 यश्च ब्रह्मा स वै रुद्रो यो रुद्रः सर्वमेव तत्। यस्य सर्वं तु तज्ज्ञानं ज्ञानदः सोऽत्र कीर्तयते॥२५॥
 देशिकप्रेरकव्याख्याकृदुपाध्यायदेहदाः। गुरवः सन्ति बहवस्तेषां ज्ञानप्रदो महान्॥२६॥
 तदेव ज्ञानमत्रोक्तं येन भेदो विहन्यते। एक एवाद्वयः शम्भुरिन्द्रमित्राग्निनामभिः॥
 वदन्ति बहुधा विप्रा भ्रान्तोपकृतिहेतवे॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वीर्यं गाथा गायन्त एव ते। जम्बु पञ्चोत्तरां गङ्गां पञ्च जम्बुश्च दक्षिणाम्॥२८॥
 अगस्त्येनोदितान्देवान्पूजयन्तो यथाविधि। आसनेषु विशेषेण हृद्यासीनास्तत्त्वचिन्तकाः॥२९॥
 तेषां सर्वे सुरगणाः प्रीतिमन्तोऽभवन्मुने। स्मृत्त्वं तु युगादौ यत्कल्पितं विश्वयोनिना॥३०॥
 अधर्माणां निवृत्त्यर्थं वेदानां स्थापनाय च। लोकानामुपकारार्थं धर्मकामार्थसिद्धये॥३१॥
 पुराणस्मृतिवेदार्थधर्मशास्त्रार्थनिश्चये। स्मृत्त्वं जगतामिष्टं तादृगूपा भविष्यत्॥३२॥
 प्रजापतित्वं तेषां वै भविष्यति शनैः क्रमात्। यदा ह्यधर्मो भविता वेदानां च पराभवः॥३३॥
 वेदानां व्यसनं तेभ्यो भाविष्यासास्ततस्तु ते। यदा यदा तु धर्मस्य ग्लानिर्वेदस्य दृश्यते॥३४॥

देने वाली इन बातों को सुनो। जो जल है वही अग्नि कहा गया है। जो अग्नि है, वही सूर्य, जो सूर्य है, वही विष्णु और जो विष्णु है, वही भास्कर है। जो ब्रह्मा है, वही रुद्र है। और जो रुद्र है, वही सब कुछ है। जिसका सब कुछ है, उसको ज्ञान है और वही ज्ञान का दाता यहाँ कहा जाता है। उपदेशक, प्रेरणा करने वाला, व्याख्याकार, उपाध्याय और पिता आदि बहुत से गुरु हैं। उनमें ज्ञानाता गुरु महान् है। वही ज्ञान यहाँ कहा गया है जिससे भेद-भुक्ति का नाश होता है। शम्भु एक ही है वह अद्वितीय है। बहुधा भ्रान्ति निवारण करने के लिए विप्रगण उन्हीं को अग्नि, इन्द्र, मित्र आदि नामों से अभिहित किया करते हैं॥२२-२७॥

ब्रह्मा बोले—मुनि की इन बातों को सुनकर गाथा गाते हुए उनमें से पाँच तो गंगा के उत्तर तट पर और पाँच गंगा के दक्षिण तट पर गये। अगस्त्य के बतलाये हुए देवों की यथाविधि पूजा करते हुये वे तत्त्वचिन्ता करने-वाले मुनि विशेष रूप से आसनों पर बैठ गये। मुने! उनकी तपस्या से उनके ऊपर सभी देवता प्रसन्न हो गये और वहाँ 'युग के आदि में विश्व स्रष्टा ब्रह्मा ने अधर्म की निवृत्ति के लिये वेदों की स्थापना, लोकोपकार, धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि तथा पुराण स्मृति, वेद एवं धर्मशास्त्रों के अर्थ-निश्चय के लिये जिस रूपरेखा की कल्पना की थी, तुम लोग उसी कल्पना के अनुरूप हो जाओगे। क्रमशः शनैः शनैः प्रजापति का पद अवश्य प्राप्त कर लोगे। इसके अतिरिक्त जब-जब अधर्म का आदर और वेदों का अनादर होगा, तब तब तुम लोगों को वेदों के अध्ययन और अध्यापन का स्वभाव सा हो जायगा और मावी व्यास तुम लोग होगे। जब जब धर्म और वेद का ह्रास दिखाने देगा, तब तब तुम लोग व्यास बनकर जगत् का उपकार करोगे। मुने! उन लोगों का जो गंगा के तट पर उत्तम तपस्या का

तदा तदा तु ते व्यासा भविष्यन्त्युपकारिणः। तेषां यत्सप्तः स्थानं गङ्गायास्तीरमुत्तमम् ॥३५॥
 तत्र तत्र शिवो विष्णुरहमादित्य एव च। अग्निरापः सर्वमिति तत्र संनिहितं सदा ॥३६॥
 नैतेभ्यः पावनं किञ्चिन्नैतेभ्यस्त्वधिकं स्वचित्। तत्तदाकारतां प्राप्तं परं ब्रह्मैव केवलम् ॥३७॥
 सर्वात्मकः शिवो व्यापी सर्वभावस्वरूपधृक्। विशेषतस्तत्र तीर्थं सर्वप्राण्यनुकम्पया ॥३८॥
 सर्वदेवैरनुवृत्तस्तदनुग्रहकारकः। धर्मव्यासास्तु ते ज्ञेया वेदव्यासास्तथैव च ॥३९॥
 तेषां तीर्थं तेन नाम्ना व्यपदिष्टं जगत्त्रये। पापपङ्कजालनाम्भो मोहध्वान्तमदापहम् ॥
 सर्वसिद्धिप्रदं पुंसां व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये व्यासतीर्थवर्णनं नामाष्टपञ्चाश-

दधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

गीतमीमाहात्म्य एकोनवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वजरासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वजरासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। ऋषिभिः सेवितं नित्यं सिद्धे राजर्षिभिस्तथा ॥१॥

स्थान है, वहाँ शिव, विष्णु और मैं आदित्य, अग्नि, जल आदि सब देवता सर्वदा रहा करते हैं। उन स्थानों से बहकर कोई दूगरा पवित्र और श्रेष्ठ स्थान नहीं है। वे ती ब्रह्माकार की प्राप्ति के कारण ब्रह्म रूप हैं। सर्वदिग्गज, व्यापक, सब की भावनाओं के अनुसार स्वरूप धारण करने वाले शिव विशेष रूप से उस तीर्थ में सब प्राणियों के ऊपर दया और अनुग्रह कर सर्वदा ही निवास करते हैं। वे आङ्गिरस धर्म-व्यास माने जाते हैं। उसी प्रकार वे ही वेदव्यास भी कहे जाते हैं। पापरूपी पत्रक को धोने वाले जल स युवन तथा मोहरूपी अन्धकार के नशे को दूर करने वाला वह पवित्र तीर्थ उन्हीं लोगों के नाम से तीना लोक में प्रसिद्ध हो गया। वह मनुष्या को सब सिद्धियाँ देने वाला व्यास-तीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है ॥२८-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यासतीर्थ-वर्णन नामक एक सौ अष्टावगवाँ अध्याय समाप्त ॥१५८॥

अध्याय १५६

वजरासगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वजरा सगम नामक तीर्थ तीना लोक में प्रसिद्ध है। वहाँ सर्वदा ऋषि, सिद्ध, और राजर्षि-गण निवास करते हैं। पढ़के पक्षी गरुड नागा के दास हो गये थे, क्योंकि उनकी माता उस समय नागा की

दासत्वमगमत्पूर्वं नागानां गरुड खग । 'मातृदास्यात्तदा दुःखपरिसत्तप्तमानस ॥३॥
कदाचिच्चिन्तयामास रह स्थित्वा विनिश्चयन् ॥२॥

गरुड उवाच

त एव धन्या लोकोऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि । नान्यसेवा कृता येस्तु न येया ध्यसनागम ॥३॥
सुखं तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च । स्वदेहप्रभवो धन्या धिग्धिगन्यवशे स्थितान् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तासमाविष्टो जननीमेत्य दुःखित । पर्यपृच्छदमेयात्मा वनतेयोऽथ मातरम् ॥५॥

गरुड उवाच

कस्यापराधान्मातस्त्व पितुर्धा मम दास्यत । दासीत्वमाप्ता वद तत्कारणं मम पृच्छत ॥६॥

ब्रह्मोवाच

साऽब्रवीत्पुत्रमात्मीयमरुणस्यानुज प्रियम् ॥७॥

विनतोवाच

नेव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदित । यस्या वाक्यं विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम् ॥८॥
कद्रुश्चापि तथैवाह सा भया सयुता ययौ । कद्रवा ममाभवद्वादश्छद्मनाह तया जित्ता ॥९॥

माता की नासी थी। यह देखकर उनका मन दुःख से सतप्त रहता था। किसी समय एकांत में बैठकर लम्बी साँसें छोड़ते हुए वे विचार करने लगे ॥१२॥

गरुड बोले—इस लोक में वे ही धन्य हैं और वे ही धर्मात्मा हैं जिन्होंने दूसरे की दासता नहीं की और जो आपत्तियों के बन्दी नहीं हुए। वे अपने तन के राजा थे यही क्योंकि वे सुखपूर्वक रहते हैं गाते हैं सोते हैं और हसते हैं। जो दूसरों के बश में हैं उनको धिक्कार है, धिक्कार है ॥३॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्तित एवं दुःखी होकर वे माता के पास गये और अपरिमित शक्ति सम्पन्न विनता-पुत्र ने माता से पूछा ॥५॥

गरुड ने कहा—माता! तुम किसके अपराध से—पिता के या मेरे या अन्य के कारण दासी बनाई गई? मैं इसको पूछ रहा हूँ बताओ ॥६॥

ब्रह्मा बोले—उसने अपने प्रियपुत्र अरुण के छोटे भाई गरुड से कहा ॥७॥

विनता बोली—किसी का अपराध नहीं मेरा ही अपराध है। मैंने एक बार कद्रू से कहा कि जिसका बहना झूठा हो जायगा वह दासी होगी। कद्रू ने भी ऐसा ही कहा। इस प्रकार मैं और वह दोनों साथ-साथ गई। कद्रू के साथ मेरा विवाद हुआ। कद्रू ने घोषे से मुझ पर दया। विधि बलवान है। तात! वह कि

विधिह बलवांस्तात कां कां चेष्टां न चेष्टते। एवं दासीत्वमगमं कद्रवाः कश्यपनन्दन ॥

यदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्वं द्विजन्मज

॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तूष्णीं तदा बभूवासौ गरुडोऽतीव दुःखितः। न किंचिद्रूपे जननीं चिन्तयन्भवितव्यताम् ॥११॥

कद्रूः कदाचित्सा प्राह पुत्राणां हितमिच्छती। आत्मनो भूतिमिच्छन्ती विनतां खगमातरम् ॥१२॥

कद्रूवाच

पुत्रः सूर्यं नमस्कर्तुं तव यात्यनिवारितः। अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि घत दास्यपि ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

स्वदुःखं गूहमाना सा कद्रूं प्राह सुविस्मिता

॥१४॥

विनतोवाच

तव पुत्रास्तु किमिति रविं द्रष्टुं न यान्ति च

॥१५॥

कद्रूवाच

पुत्रान्मदीयान्सुभगे नय नागालयं प्रति। समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतलं सरः ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

सुपर्णस्त्ववहन्नागान्कद्रूं च विनता तथा। ततः प्रोवाच मुदिता वनतेयस्य मातरम् ॥१७॥

विन चेष्टाया (व्यापारा) को नहीं करता है? कश्यपनन्दन! इस प्रकार मैं दासी हो गई। जब मैं दासी हो गई हूँ, तो हे पक्षि-पुत्र! तুম भी दास हो ॥९-१०॥

ब्रह्मा बोले—वे गरुड तब अति दुःखित होकर मोन हो गये, अपनी भवितव्यता की चिन्ता करते हुए अपनी जननी से कुछ नहीं बोले। किसी समय पुत्र-हित और अपने एश्वर्य की इच्छा से उस कद्रू ने पक्षि-माता विनता से कहा ॥११-१२॥

कद्रू बोली—तुम्हारा पुत्र विनता बाधा के सूर्य का नमस्कार करने जाता है। अहो! तুম दासी होती हुई भी इम त्रिलोकी में भाग्यशालिनी हो ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अपने दुःखो को हृदय में छिपानी हुई विनता न विस्मित होकर कद्रू से कहा ॥१४॥

विनता ने कहा—तो तुम्हारे पुत्र क्या नहीं सूर्य को देखने जाते? ॥१५॥

कद्रू बोली—तुमने! मेरे पुत्रा को नागालय ले चलो। वहाँ समुद्र के समीप शीतल जल से पूर्ण एक सरोवर है ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—गरुड उन नागा, कद्रू और विनता का डोकर ल गये। तब कद्रू प्रसन्न होकर गरुड की

सुराणा नेतु निलयं गरुडो मत्सुतानिति । पुनः प्राह सर्पमाता गरुडं विनयान्वितम् ॥१८॥

सर्पमातोवाच

पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हंसं त्रिजगतां गुरुम् । नमस्कृत्वा ततः सूर्यमेष्यन्ति निलयं मम ॥

हण्डे त्वं नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम्

॥१९॥

ब्रह्मोवाच

सा वेपमाना विनता दीना कद्रूभयापत

॥२०॥

विनतोवाच

नाहं क्षमा सर्पमात. पुत्रो मे नेष्यते सुतान् । दृष्ट्वा दिनकरं देवं पुनरेव प्रयान्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

विनता स्वसुत प्राह विहगानामधोश्वरम् । नमस्कर्तुमयेच्छन्ति नागाः स्वामित्वमागताः ॥२२॥

भास्वन्तमित्युवाचेयं मा सर्पजननी हठात् । तथेत्युक्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगा ॥२३॥

तदाऽऽरुढ सर्पसैन्य गरुड विहगाधिपम् । शनैः शनैरुपगमयन्न देवो दिवाकरः ॥

ते बहचमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विव्ययुः

॥२४॥

सर्पा ऊचुः

निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो नमः । अलं सूर्यस्य सदनं दग्धा. सूर्यस्य तेजसा ॥

यामस्तवया वा गरुड विहाय स्वामथापि वा

॥२५॥

माता से बोली—गरुड मेरे पुत्रों को देवलोक मे ले चले ।' पुन सर्पों की माता ने विनयशील गरुड से कहा ॥१७-१८॥

सर्पमाता ने कहा—मेरे पुत्र त्रिलोकी के गुरु सूर्य को देखना चाहते हैं । इसके बाद सूर्य को नमस्कार करके पुन मेरे घर चले आयेंगे । दासी । तुम मेरे पुत्रों को प्रतिदिन वहाँ ले जाया करो ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—कांपती हुई दीन विचारी विनता ने कद्रू से कहा—॥२०॥

विनता ने कहा—सर्पमाता । मैं वहाँ ले जाने मे असमर्थ हूँ । मेरा पुत्र वहाँ ले जायगा । वे देव सूर्य को देखकर पुन चले आयें ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—विनता ने अपने पुत्र पक्षिराज गरुड से कहा—'इस सर्पमाता ने बलपूर्वक मुझसे कहा है कि ये तुम्हारे स्वामी नाग सूर्य को नमस्कार करना चाहते हैं । गरुड ने कहा कि अच्छी बात है । नाग मेरी पीठ पर चढ़े । विहगपति गरुड की पीठ पर आरुढ होकर वे सर्प शनैः शनैः उस ओर चले जहाँ भगवान् दिनकर रहते हैं । वे सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी से जलने लगे और अति व्यथित हो गये ॥२२-२४॥

सर्पों ने कहा—महाबुद्धिमान् ! लौटो, लौटो, भगवान् सूर्य को बार बार नमस्कार है । अब सूर्यलोक को जाना नहीं चाहते । हम लोग सूर्य के तेज से जल गये । गरुड । हम लोग तुम्हारे साथ जायेंगे अथवा तुम्हारे बिना भी चले जायेंगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवं नागेह्यमान आदित्यं दर्शयामि वः। इत्युक्त्वा गगनं शीघ्रं जगामाऽऽदित्यसंसंमुखः॥२६॥
 'दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीपं तं घोरणं प्रति। बहवः शतसाहस्राः पीडिता दग्धविग्रहाः॥२७॥
 पुत्राणामार्तसंतादं पतितानां महीतले(?)। आश्वासितुं समामाता तान्सा कद्रूः सुविह्वला॥२८॥
 उवाच विनतां कद्रूस्तव पुत्रोऽतिदुष्कृतम्। कृतवानतिदुर्मोघा येषां शान्तिर्न विद्यते॥२९॥
 नामयया कर्तुमायाति स्वामिवाक्यं फणोश्वरः। स काश्यपो बृहतेजा यद्यत्र स्यादनामयम्॥३०॥
 भवेच्चैवं कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि। कद्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा विनता ह्यतिभीतवत्॥३१॥
 पुत्रमाह महात्मानं गरुडं विहगाधिपम्॥३२॥

विनतोवाच

नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि। 'वर्तितुं युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न युज्यते॥३३॥
 नामितेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जिह्वं कदाचन। श्रोत्रिये चान्त्यजे वाऽपि समं चन्द्रः प्रकाशते॥३४॥
 कुर्वन्त्यनिष्टं कपटंस्त एव मम पुत्रक। प्रसह्य कर्तुं ये साक्षादशक्ताः पुरुषाधमाः॥३५॥

ब्रह्मोवाच

विनता च तत प्राह कद्रुं तां सर्पमातरम्

॥३६॥

ब्रह्मा बोले—इम प्रकार नागों के कहन पर 'मैं तुम लोगों को अवश्य मूर्खदर्शन कराऊँगा' यह कह कर गरुड बड़ी शीघ्रता से मूर्ख की ओर चला। असह्य गर्मी से उनमें से कितनों की फणायें जल गईं। घोरण द्वीप में, मुलसवर सैकड़ा और हजारों की संख्या में पीडित होकर वे गिर पड़े। पृथ्वीलाल पर गिरे हुये पुत्रों के आर्तनाद को सुनकर वह कद्रू अतिविह्वल होकर उनकी आश्वासन देने के लिये वहाँ आई। कद्रू ने विनता से कहा कि तुम्हारे अति-दुष्टबुद्धि पुत्र ने महान् दुष्कर्म किया है जिसकी शान्ति के उपाय नहीं हैं। फणोश्वर (भयनाय) मेरे स्वामी के आदेश को अग्र्या नहीं कर सकता है। वह अति तेजस्वी कश्यपपुत्र यदि यहाँ होता तो अवश्य रोग शान्ति हो जाती। भामिनि! अब मेरे पुत्रों का शान्ति किस प्रकार मिलेगी? कद्रू की उन बातों को सुनकर विनता डरी हुई-सी अपने पक्षिराज गरुड से बातें ॥२६-३२॥

विनता ने कहा—पुत्र! यह तुमने ध्वंसा नहीं किया। विनम्र व्यवहार ही जीवन का आभूषण है, ऐसा कहा गया है। इन्मे के विपरीत आचरण करना ठीक नहीं है। सज्जनों की कभी भी अपने दासों के प्रति नी कपट-व्यवहार नहीं करना चाहिए। देखो वेदपाठी और चाण्डालों पर चन्द्रमा की किरणें समान रूप से प्रकाश-दान करती हैं। मेरे अज्ञानी पुत्र! वेही कष्ट में अनिष्ट व्यवहार करते हैं, जो पुरुषाधम साक्षान् ब्रह्मप्रयोग करने में अग्रमर्ष रहते हैं ॥३३-३५॥

ब्रह्मा बोले—नर विनता ने सर्पमाता कद्रू से कहा ॥३६॥

बिनतोवाच

किं कृत्वा शान्तिरभ्येति पुत्राणां ते करोमि तत् । जरया तु गृहीतास्ते वद शान्तिं करोमि तत् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

कद्रूप्याह बिनतां रसातलगतं पयः । तेनाभिपेक्षितानां मे पुत्राणां शान्तिरेष्यति ॥३८॥

कद्र्वाह्नद्वचनं श्रुत्वा रसातलगतं पयः । क्षणेनैव समानीय नागास्तानभ्यपेक्षयत् ॥

ततः प्रोवाच गरुडो मघवानं शतक्रतुम् ॥३९॥

गरुड उवाच

मेघाश्चाप्यन वर्पन्तु त्रैलोक्यस्योपकारिणः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

'तथा ववर्षं पर्जन्यो नागानामभवच्छिवम् । रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं पय ॥४१॥

जराशोकविनाशार्थंभानीतं गरुडेन यत् । यत्राभिपेक्षिता नागास्नन्नागालयमुच्यते ॥४२॥

गरुडेन यतो वारि आनीतं तद्रसातलात् । तद्गाङ्गं वारि सर्वेषां सर्वपापप्रणाशनम् ॥४३॥

जराया वारण यस्मान्नागानामभवच्छिवम् । रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं यतः ॥४४॥

जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे । साक्षादमृतसंवाहा यंजरा साऽभवन्नदी ॥४५॥

जरादारिद्र्यसंतापहारिणी वलेशवारिणी । रसातलभवा गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या ॥४६॥

बिनता ने कहा—वया करने से तुम्हारे पुत्रों को शान्ति मिलेगी ? वही मैं वैसा ही कहूँगी । व इस समय व्याधि-पीडित है । वहा, मैं अवश्य शान्ति कहूँगी ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—'यद् ने बिनता से कहा—'रसातल में जल है । उससे अभिषेक (स्नान) करने पर अवश्य मेरे पुत्रों को शान्ति मिलेगी ।' यद् की इन बातों को सुनकर गरुड ने क्षणभर में रसातल में जा कर उगरे उन नागा का नहा दिया । इसके बाद गरुड ने शतक्रतु इन्द्र से कहा ॥३८-३९॥

गरुड ने कहा—त्रिवारी का उपहार करने वाले मेघ भी यहाँ अवश्य वर्षा करें ॥४०॥

ब्रह्मा बोले—मेघा ने तदनु रूप ही वर्षा की त्रितये नागों का बल्पाण हुआ । जहाँ गरुड नागों को जीवित कर देने वाला रसातल में उल्लस गया-जहाँ जरा-शोक दूर करने के लिये ले आये थे और जहाँ उस जल से नाग नहलाये गये उगरी नागाग्य कहा जाता है । यत गरुड रसातल से जल ले आया, अतः वह गंगाजल भवा पापी को नष्ट करने वाला हुआ । त्रिग जल से जरा की निवृत्ति हुई नागा का बल्पाण हुआ यह रसातल में उल्लस गया-जहाँ नागा व शिव मजीवनी जल हुआ । शिवग्य जरा-शोक को बिनष्ट करने के लिये गंगा के दक्षिण तट पर साक्षात् अमृत सहाय काशी वजरा नाम की नदी हो गई । जरा दारिद्र्य, संताप और बन्धन का दूर करने वाली रसात-

तपोश्च सगमो य स्मार्त्तिक पुनस्तत्र वर्ण्यते । यस्यानुस्मरणादेव नाश यान्त्यघसत्त्रया ॥४७॥
तत्र च स्नानदानानां फल को घबतुमीश्वर । सपाद तत्र तीर्थानां लभ्यमाहुर्मनीषिण ॥४८॥
सर्वसंपत्तिदातया सर्वपापौघहरिणाम् । वजरासगमसम तोर्यं क्वापि न विद्यते ॥
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तयः ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वजरासगमादिसपादलक्षतीर्थवर्णन
नामैकोनषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

गौतमीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अथ षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः.

देवागमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवागम नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शिवम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां पितृणां तृप्तिवारकम् ॥१॥
तत्र वृत्त समाख्यास्ये तव यत्नेन नारद । देवानामसुराणां च स्पर्शाऽभूद्वनहेतवे ॥२॥
स्वर्गं सुराणामभवत्सुराणामिलाऽभवत् । कर्मभूमिवष्टम्य असुराः सबतोऽभवन् ॥३॥

लान्तर गंगा का मध्य लोक की गंगा के साथ जो सगम हुआ है उसके माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय ? जिसके स्मरण से ही अघा व समझ नष्ट हो जाते हैं उसमें स्नान और दान से जो फल मिलते हैं उसको बहने की शक्ति किम है ? वहाँ पर मनीषीगण और मया लाख तीर्थों को बतलाते हैं । जो मय प्रचार की सम्पत्ति देने चाहें तथा सब पाप समूहों को नष्ट करने चाहें हैं । वजरा-सगम का समान तीर्थ वही पर नहीं है जिसका स्मरण से भी विपत्तियाँ स्वयं नष्ट हो जाती हैं ॥४१-४९॥

आब्रह्ममहापुराण में वजरा-सगम आदि सवा लाख तीर्थों का वर्णन
नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त । १५९॥

अध्याय १६०

देवागम नामव तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—देवागम नामक तीर्थ मय प्रकार के मनारवा को देने वाला और मयजन्त है मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति देने वाला तथा पितरों को तृप्ति देनेवाला है । नारद ! मैं वहाँ की घटना को तुमसे बतलाना चाह रहा हूँ । एक बार यन्त्र के नियम देवा और असुरों में प्रतिस्पर्धा हुई । देवताओं को स्वर्ग मिला और असुरों को पृथ्वी ।

देवानां यज्ञभागंश्च दातुं गन्तव्यसुरास्ततः। ततः सुरगणाः सर्वे यज्ञभागैर्विना कृताः॥४॥
 व्यथिता मामुपाजम्भुः किं कृत्यमिति चाब्रुवन्। मया घोक्ताः सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात्॥५॥
 भुवं प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यशांसि च। तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिनः॥६॥
 दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिताः। एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयितो युद्धकाङ्क्षिणः॥७॥
 अहिर्बुध्नो बलिस्त्वाप्तिर्नमुचिः शम्भरो मयः। एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिताः॥८॥
 अग्निरिन्द्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ। मरुतो लोकपालाश्च नानायुद्धविशारदाः॥९॥
 ते दानवा सर्वे एव याम्यां वै दिशि संगरे। अकुर्वन्त महायत्नं दक्षिणार्णवसंस्थिताः॥१०॥
 त्रिकूटः पर्वतश्रेष्ठो राक्षसानां पुराऽभवत्। तद्वनेन ययुः सर्वे तैः सार्धं दक्षिणार्णवम्॥११॥
 सर्वेषां मेलनं यत्र पर्वतो मलयस्तु तः। 'मलयस्यापि देशोऽसौ देवारोणामभूत्तदा॥१२॥
 देवानां गौतमीतीरे तत्र संनिहितः शिवः। इति तेषां समायोगो देवानामभवत्किल॥१३॥
 देवाः स्वरयमाह्लास्तत्र तत्र समागमन्। गौतम्याः सरिदम्बायाः पुलिने विमलाशयाः॥१४॥
 प्रसन्नाऽभोऽष्टदा या स्यात् पित्राणामखिलस्य तु। ततो देवगणाः सर्वे स्तुत्वा देवं महेश्वरम्॥
 अभयं चिन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम्॥१५॥

अमुरगण वर्धमूमि (पृथ्वी) को रोजकर अर्थात् उस पर अपना अधिकार जमा कर सब जगह फैल गये। तब वे राक्षस देवों के यज्ञ-भाग को बन्द करने और दाताओं को मारने लगे। इस प्रकार उन्होंने देवताओं को यज्ञाग से रहित कर दिया। निदान वे देव व्यथित होकर मेरे पास आये और बोले "अब क्या करना चाहिये?" मैंने उन देवताओं से कहा कि युद्ध में बलपूर्वक ययुओं को जीतकर पृथ्वी पर अधिकार करो। तब सुभ्रवम, हवि और वीति प्राप्त करोगे। 'ऐसा ही होगा यह कहकर वे युद्धार्थी पृथ्वी पर गये। इधर जयामिलायी दैत्य, दानव तथा बल का घमड़ रखने वाले राक्षस संगठित होकर युद्ध करने के लिये आये ॥१-७॥ अहि वृष, वनि, स्वाष्टि, नमुचि, शम्भर और मय आदि तथा और भी दूसरे बहुत से पराक्रम पर अभिमान करने वाले लड़ाकू राक्षस इकट्ठे हुये। उधर अग्नि इन्द्र, वरुण त्वष्टा पूषा अश्विनीकुमार मरुत, लोकपाल आदि नाना प्रकार के युद्ध में कुशल देवता युद्धार्थ प्रस्तुत हुए। उन सभी दानवों ने दक्षिण दिशा में दक्षिण-समुद्र के किनारे स्थित होकर (बूढ़-रचना कर) युद्ध में महान् प्रयत्न किया। पहले राक्षसों ने पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूट पर अधिकार जमा लिया। तब वे देवतागण वन के रास्ते उन राक्षसों से लड़ने के लिये दक्षिण समुद्र के किनारे पहुँचे। जहाँ सबका सपर्य हुआ, वह मलय पर्वत हुआ। तदनन्तर वह मलय प्रदेश भी राक्षसों का हो गया। वहाँ गौतमी-नद पर देवों के प्रिय देव रावर समीप ही थे, यह सुझबझर जानकर वहाँ सब देवता एकत्र हुए। त्रिमूर्ति हृदय बाल देवता अपने रथा पर आरुढ़ होकर उम माता गौतमी के तट पर आये जो प्रसन्न होने पर राक्षसों को असीम प्रदान करती है और सब पित्रों को नृपत करने वाली है। तब सब देवता महेश्वर देव की स्तुति करने लगे और आपस में निर्भय होने की बात सोचने लगे ॥८-१५॥

देवा ऊचुः

अनाप्युवायः कोऽस्माकं निर्जितानां परंहृतात् । एकमेवात्र नः श्रेयो विजयो वाज्यवा मृतिः ॥

सपत्नरभिभूतानां जीवितं धिडमनस्विनाम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे पुत्रं वागुवाचाशरीरिणी ॥१७॥

आकाशवागुवाच

क्लेशेनालं सुरगणा गौतमीमाशु गच्छत । भक्त्या हरिहरौ तत्र समाराध्यतेश्वरौ ॥१८॥

गोदावर्यास्तपोश्चैव प्रसादात्किन्तु दुष्करम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नान्यां हरीशान्या देवा जयमभीप्सितम् । अवाप्य सर्वतो जग्मुः पालयन्तो दिवौकसः ॥२०॥

यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थं ; तेन विश्रुतम् । देवागमं प्रशसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥२१॥

तत्राज्ञोतिसहस्राणि शिवलिङ्गानि नारद । देवागमः पर्वतोऽसौ प्रिय' इत्यपि कथ्यते ॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवागमतीर्थवर्णनं नाम षष्ठ्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥१६०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकनवतितमोऽध्यायः ॥११॥

देवगण बोले—शत्रुओं से हठात् पराजित किये गये हम लोगों के लिये अब कौन-सा उपाय है ? अब ध्येय का एक ही मार्ग है—विजय या मृत्यु । शत्रुओं से पराजित मनस्वीजनों के जीवन को धिक्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—पुनः इसी बीच आकाशवाणी हुई ॥१७॥

आकाशवाणी ने कहा—सुरगण ! व्यर्थ क्लेश मत करो । गौतमी के पास शीघ्र जाओ । वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् हरि और हर की आराधना करो । गादावरी और उन दोनों प्रभुओं की कृपा से कौन-सा कार्य दुष्कर है ? ॥१८-१९॥

ब्रह्मा बोले—प्रसन्न बिष्णु और शक्र सह अपना अभीसिप्त विजय-वरदान पाकर आकाशवाणी का मली-मौलि अनुसरण करते हुए वे श्रवता चले गये । जहाँ देवी का आगमन हुआ वह तीर्थ उसी देवागम नाम से प्रसिद्ध हो गया । तत्त्वदर्शी मुनि देवागमतीर्थ की प्रशंसा करते हैं । नारद ! वहाँ अस्सी सहस्र शिवलिङ्ग हैं । वह देवागम पर्वत प्रिय इस नाम से भी कहा जाता है । इसलिये तब से वह तीर्थ देव प्रिय प्रख्यात हुआ ॥२०-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में देवागम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६०॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवीं कर्मभू यव विधीयते। तदा नारद नैवाऽऽसीद्भूगोरध्वय नर्मदा ॥२१॥
यमुना नैव तापो सा सरस्वत्यथ गौतमी। समुद्रो वा नद कश्चिन्न सरः सरितोऽमला ॥
सा शक्ति पुनरप्येव मामुवाच पुन पुन ॥२२॥

देवी वागुवाच

सुमेरोर्दक्षिणे पाश्वे तथा हिमवतो गिरेः। दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्यश्चैव वाय दक्षिणे ॥
सर्वस्य सर्वकाले तु कर्मभूमि शुभोदया ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्वा मेरु महागिरिम्। त प्रदेशमयाऽगत्य स्थातव्यं क्वेत्यचिन्तयम् ॥
ततो मामब्रवीत्संव विष्णोर्बाण्यशरीरिणी ॥२४॥

आकाशवागुवाच

इतो गच्छ इतस्तिष्ठ तथोपविश चात्र हि। सकल्प कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञ समाप्यते ॥२५॥
कृते चैवाय सकल्पे यज्ञार्थे सुरसत्तम। यद्वदन्यखिला वेदा विधेः तत्तत्समाचर ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम्। स्वतो मुखे मम प्रायादभूच्च स्मृतिगोचरम् ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—किर मैंने उस देवी से कहा—कर्मभूमि कहाँ है? नारद। उस समय भागीरथी नमदा यमुना तापी वट् सरस्वती और गौतमी नदी थी। कोई समुद्र, नद, सरोवर या निमल जल बागी नदियाँ भी नहीं था। उस शक्ति ने पुन मुझसे इस प्रकार बार-बार कहा ॥२१-२२॥

देवी वाणी ने कहा—सुमेरु गिरि के दक्षिण और हिमालय विन्ध्य तथा सह्य के दक्षिण की भूमि सत्रे न्यस सबन्ध गुप्त देन बागी कर्मभूमि है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—उम आदेश वाक्य का सुनकर उम महागिरि मेरु को छोड़कर मैं उस प्रदेश में आया और सोचन लगा कि कहाँ रहना चाहिये। इनके बाद उस विष्णु की देवी वाणी ने मुझसे कहा ॥२४॥

आकाशवाणी ने कहा—इधर चलो यहाँ ठहरो। यहाँ बँटो। यज्ञ का सन्तान करो। वट् तुम्हारा यज्ञ अवश्य समाप्त होगा। सुन्येष्ट! यन्त्राय सबल्य कर दन पर ब्रह्मन्! अखिल वेद जैसा कहते हैं उसका अनुसार वाप्य करो ॥२५-२६॥

ब्रह्मा बोले—निहास, पुराण आदि जा अन्य धर्म्य शब्द स्वतः मरे मुख में आय, वे धीरे धीरे स्मृति में आन लगे। तत्काल मुझ गय वंशय शास्त्र हुआ गये। तदनन्तर उस लोक विख्यात पुण्यगूक का स्मरण किया। तदनुसू

वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्क्षणेन च । तत् पुरयसूक्त तदस्मर लोकविश्रुतम् ॥२८॥
यज्ञोपकरण सर्वं तदुक्तं च त्वकल्पयम् । तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपानाण्यकल्पयम् ॥२९॥
अहं स्थित्वा यत्र वेशे शुचिर्भूत्वा यतात्मवान् । दीक्षितो विप्रदेशोऽसौ मन्त्राम्ना तु प्रकीर्तित ॥३०॥
महोदयजन पुण्य नाम्ना ब्रह्मगिरि स्मृत । 'चतुरशीतिपर्यन्तं योजनानि महामुने ॥३१॥
महोदयजन पुण्य पूर्वतो ब्रह्मणो गिरे । तत्र मध्ये वेदिका 'स्याद्गार्हपत्योऽस्य (?) दक्षिणे ॥३२॥
तत्र घ्राऽहवनीयस्य एवमग्नौस्त्वकल्पयम् (?) । विना पत्न्या न सिध्येत यज्ञ श्रुतिनिदर्शनात् ॥३३॥
शरीरमात्मनोऽहं वै द्वेधा चाकरव मुने । पूर्वार्धेन तत् पत्नी ममाभूद्यज्ञसिद्धये ॥३४॥
उत्तरेण त्वहं 'तद्वर्धो जाया इति श्रुते । काल वसन्तमुत्कृष्टमाज्यरूपेण नारद ॥३५॥
अकल्पय तथा चेष्म ग्रीष्म चापि शरद्वि । श्रुतं च प्रावृष पुत्र तदा बर्हिर्वकल्पयम् ॥३६॥
छन्दासि सप्त वै तत्र तदा परिधयोऽभवन् । कलाकाष्ठानिमेषा हि समित्पानकुशा स्मृता ॥३७॥
योऽनादिश्च त्वनन्तरश्च स्वयं कालोऽभवत्तदा । यूपरूपेण देवर्षे योक्त्रं च पशुवन्धनम् ॥३८॥
सत्त्वादित्रिगुणा पाशा नैव तन्नामव्रतशु । ततोऽहमश्वं वाचं घैष्णवीमशरीरिणीम् ॥३९॥
विनैव पशुना नाप यज्ञं परिसमाप्यते । ततो मामवदद्देवी संव नित्याऽशरीरिणी ॥४०॥

आकाशवागुवाच

पौरुषेणाय सूक्तेन स्तुहि, त पुरुष परम्

॥४१॥

मैंने सब यन्त्र सामग्रियों को इकट्ठा किया । उसी के अनुसार यज्ञ पात्रों को प्रस्तुत किया । विप्र ! जिस प्रदेश में पवित्र और एकाग्रचित्त होकर मैंने आसन लगाया और यन्त्र-दीप्य ग्रहण की वह देव मर ही नाम में प्रसिद्ध हो गया । मरा पवित्र दत्तयजन ब्रह्मगिरि के नाम से विख्यात हो गया । महामुनि नारद ! ब्रह्मगिरि के पूर्व में चौरासी योजन तक मरा पवित्र देव यजन फैला था । उससे मध्य में एक बड़ा बनाई गई । उसके दक्षिण गार्हपत्य अग्नि की स्थापना हुई । वहां आहवनीय अग्नि की भी स्थापना की गई । इस प्रकार यज्ञाग्नि की विधि पूरा हुई । विना स्त्री के यन्त्र का सिद्धि नहीं होती इस बात का कारण मुने ! मैं अपने गराद को दो भागों में बाँट लिया । तदनन्तर पर यन्त्र की सिद्धि के लिये पूर्वाह्न भाग में पत्नी उत्पन्न हुई और उत्तराह्न में मर रहा । वन् भी कहना है कि पत्नी आधा भाग है । नारद ! वसन्त ऋतु को उत्कृष्ट श्रुत ग्रीष्म को इष्म (समिधा) और गरद को हवि बनाया । इस प्रकार पुत्र ! बरषा ऋतु को कुश बनाया ॥२७-३६॥ इसके बाद मान छन्द परिधि बन । क्या काष्ठा और निमग्न (ममय-परिमाण) समिधा पात्र और कुशा हुये । उस समय जा अनादि और अनन्त स्वयं काल है वह है देवर्षे ! यूप रूप में पशुओं को बाधने के लिए पशुवन्धन काष्ठ हुआ । सत्त्व रज और तम आदि गुण पात्र (रस्सी) हुए । परन्तु वहाँ पशु तो था ही नहीं । तब मैंने उस अप्रत्यक्ष वैष्णवा आकाशवाणी से कहा कि विना पशु के यह यन्त्र नहीं समाप्त होगा । यह सुन उस नित्य अप्रत्यक्ष देवी ने मुझसे कहा ॥३७-४०॥

आकाशवाणी ने कहा—पुरुष-सूक्त से उस परम पुरुष की स्तुति करो ॥४१॥

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कुशतर्पणतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशतर्पणमाख्यात प्रणीतासगम तथा । तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापहर शुभम् । बिन्ध्यस्य दक्षिणे पादौ सह्यो नाम महागिरि ॥२॥
यदद्भिर्म्योऽभवत्तद्यो गोदाभीमरथीमुखा । यत्राभवत्तद्विरजमेकवीरा च यत्र सा ॥३॥
न तस्य महिमा कैश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितुम् । तस्मिन्गिरौ पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नत ॥४॥
गुह्याद्गुह्यतरं वक्ष्ये साक्षाद्वेदोदितं शुभम् । यत्र जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुरा ॥५॥
तदहं प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम् । परं स पुरुषो ज्ञेयो ह्यव्यक्तोऽक्षर एव तु ॥६॥
अपरश्च क्षरस्तस्मात्प्रकृत्यन्वित एव च । निराकारात्सावयव पुरुष समजायत ॥७॥
तस्मादाप समुद्भूता अद्भ्यश्च पुरयस्तथा । ताभ्यामब्ज समुद्भूत तत्राहमभव मुने ॥८॥
पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिस्तथैव च । एते मत्त पूर्वतरा एकदैवाभवन्मुने ॥९॥
एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्यावरजङ्गमम् । नैव वेदास्तदा चाऽऽसन्नाह द्रष्टाऽस्मि किञ्चन ॥१०॥
यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यथ । तूर्णोऽस्थिते मयि तदा अश्रौष वाचमुत्तमाम् ॥११॥

अध्याय १६१

कुशतर्पण नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कुशतर्पण और प्रणीतासगम नामक तीर्थ सभी लोकों में प्रख्यात है और मुक्ति-मुक्ति को देने वाला है । उसका पापहर और मङ्गल स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ सुनो ।

विन्ध्य के दक्षिण ओर एक सह्य नामक महापर्वत है जिसके चरण (तलहटी) में गोदा और भीमराजी आदि प्रमुख नदियाँ निकलती हैं । जहाँ प्रसिद्ध विरज और एकवीरा नामक नदियाँ हैं उसकी महिमा का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकता । नारद ! उस पुण्य पर्वत प्रदेश में जो अति रहस्यमय घटना हुई जिसका साक्षात् वरदा में वर्णन किया गया है जो गुप्त है और जिसके श्रवणमात्र से सारा कामनायें पूर्ण हो जाती हैं जिसको मुनि दैव पितर और अमुर भी नहीं जानते हैं । उसको मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कह रहा हूँ । वह पुरुष पर है अध्यक्ष और अपर भा बहो ! । अगर क्षर (नष्ट होने वाला) और प्रकृति गमयित है । उस (पर पुरुष) निराकार परब्रह्म में सावयव पुरुष (व्यवस्था) उत्पन्न हुआ । उसमें जल और जल में पुरुष (विष्णु) की उत्पत्ति हुई । मुने ! पुरुष में वाम और वाम में मग्नी (ब्रह्मा की) उत्पत्ति हुई । मुने ! पृथ्वी वायु आकाश जल और ज्योति (तत्त्व) य मूलतः पाँच एतद्वा बार उत्पन्न हो गये । मैं इन पाँचों को ही दत्ता था । उस समय मैं तो बड़ ही बड़ और न ता मैं किसी अन्य पाँचों को ही दत्ता था । जिसमें मैं उत्पन्न हुआ उसका भी मैं नहीं दत्ता था । तब मैं अथाक् हा बैठ गया । उस समय मुझे उत्तम वाणा मुनाई दी ॥१-११॥

आकाशवागुवाच

॥ १२॥

ब्रह्मन्कुरु जगत्सृष्टिं स्यावरस्य चरस्य च

ब्रह्मोवाच

ततोऽहमब्रवं वाचं 'पह्या तत्र नारद । कथं लक्ष्ये क्व वा लक्ष्ये केन लक्ष्य इदं जगत् ॥ १३ ॥
संव वागब्रवीद्देवी प्रकृतिर्यामिधीयते । विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥ १४ ॥

आकाशवागुवाच

यज्ञं कुरु ततः श्रवितस्ते भवित्री न संशयः । यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मसनातनी ॥ १५ ॥
किं यज्वनामसाध्य स्यादिह लोके परत्र च ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवीं क्व वा केनेति तद्वद । यज्ञः कार्यो महाभागे ततः सोवाच मा प्रति ॥ १७ ॥

आकाशवागुवाच

ओंकारभूता या देवी मातृकल्पा जगन्मयी । कर्मभूमौ यजस्वेह यज्ञेश यज्ञपूष्यम् ॥ १८ ॥
स एव साधन ते स्यात्तेन तं यज सुव्रत । यज्ञं स्वाहा स्वधा मन्त्रा ब्राह्मणा हविरादिकम् ॥ १९ ॥
हरिरेवाखिल तेन सर्वं विष्णोरवाप्यते ॥ २० ॥

आकाशवाणी ने कहा—ब्रह्मन् ! तुम स्यावर और चर (जगम) रूप ससार की सृष्टि करो ॥ १२ ॥

ब्रह्मा बोले—नारद ! तब मैंने कठोर और उग्र स्वर से कहा—'कैसे सृष्टि करूँ ? कहाँ और किस वस्तु से इस जगन् की सृष्टि करूँ ? यह सुन कर विष्णु से प्रेरित, ससार की स्वामिनी जगन्मयी माता उस देवी वाणी ने—
जिसको प्रकृति भी कहते हैं—कहा ॥ १३-१४ ॥

आकाशवाणी ने कहा—यज्ञ करो । तब तुम्हें शक्ति प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं है । यज्ञ ही विष्णु है ।
ब्रह्मन् ! यही सनातन वेद कहलाता है । इस लोक और परलोक में यज्ञ करने वाला के लिये क्या असाध्य है ? ॥
१५-१६ ॥

ब्रह्मा बोले—युत मैंने उस देवी से कहा—'कहाँ और किस साधन से यज्ञ करूँ ? महाभागे ! इसको बतलाइये ।' तब देवी ने मुझसे कहा—॥ १७ ॥

आकाशवाणी ने कहा—मातृ-तुल्य जगन्मयी तथा आकाररूपिणी जो देवी है उससे इस कममूर्ति में यज्ञपति, यज्ञपुरुष का यन करो । वही तुम्हारे साधन (सहायक) होगा । सुव्रत ! इसलिए उनका यजन करो । स्वाहा, स्वधा, मन्त्र, ब्राह्मण और हवि आदि सब यज्ञ ही है । सब कुछ विष्णु ही हैं, इसलिये सब कुछ विष्णु से ही प्राप्त किया जाता है ॥ १८-२० ॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायसमकालं तु क्रमशो यज्ञयोनिषु। गार्हपत्ये दक्षिणाग्नी तथा चैव महामुने ॥५४॥
 पूर्वस्मिन्नपि चैवाग्नी क्रमशो जुह्वतस्तदा। तत्र तत्र जगद्योनिमनुसंधाय पूरयम् ॥५५॥
 मन्त्रपूतं शुचिः सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मयः। लोकनाथो विश्वकर्ता कुण्डानां तत्र सनिधौ ॥५६॥
 शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके। श्यामो विष्णुर्दक्षिणाग्नेः पीतो गृहपते कवेः ॥५७॥
 सर्वकालं तेषु विष्णुरतो देशेषु सस्थितः। न तेन रहितं किञ्चिद्विष्णुना विश्वयोनिना ॥५८॥
 प्रणीतायाः प्रणयनं मन्त्रं दद्यात्करवं ततः। प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा ॥५९॥
 व्यसर्जय प्रणीता ता मार्जयित्वा कुशेरथ। मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदकविन्दवः ॥६०॥
 पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च। संजाता मुनिशार्दूल स्नानात्क्रतुफलप्रदा ॥६१॥
 याज्ञिकृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा। सोपानपङ्क्तिं सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा ॥६२॥
 संमाजिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे। कुशतर्पणमाख्यात बहुपुण्यफलप्रदम् ॥६३॥
 कुशैश्च तर्पिताः सर्वे कुशतर्पणमुच्यते। पद्माच्च संगता तत्र गौतमी कारणान्तरात् ॥६४॥
 'प्रणीताया महामुने प्रणीतासगमोऽभवत्। कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम् ॥६५॥
 तत्रैव कल्पितो यूपो मया विन्ध्यस्य चोत्तरे। विसृष्टो लोकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः ॥६६॥
 अक्षयश्चाभवच्छ्रीमानक्षयोऽसौ। धटोऽभवत्। नित्यश्च कालरूपोऽसौ स्मरणात्क्रतुपुण्यदः ॥६७॥

ब्रह्मा बोले—महामुने ! उस आकाशवाणी के समकाल ही मैंने क्रमशः यज्ञ-कुण्डो, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि में एक-एक करके अग्नि में भी क्रमशः उन-उन स्थानों में जगत्पट्टा, मन्त्र-पूत पुष्टि का ध्यान कर हवन करना प्रारम्भ किया। वहाँ कुण्डों के समीप अतिपवित्र, जगन्मय, यज्ञदेव लोक-स्वामी विश्वकर्ता, शुक्लरूपधारी विष्णु आहवनीयक में हुए। दक्षिण अग्नि में श्याम विष्णु और गार्हपत्याग्नि में पीत विष्णु हुए। सर्वदा उन देशों में विष्णु रहते हैं। उस विश्व के आदि कारण विष्णु से रहित कुछ भी नहीं है। तदनन्तर मैंने मन्त्रों से प्रणीता का निर्माण किया। यह प्रणीता-जल ही शुभ प्रणीता नाम की नदी हुई। इसके बाद कुशों से उस प्रणीता का मार्जन कर विशर्जन किया। मार्जन करने से प्रणीता-पत्र से जहाँ-जहाँ जल-विन्दु गिरे वहाँ-वहाँ गुणशाली तीर्थ हो गये। मुनिवर ! स्नान करने से वहाँ यज्ञफल देने वाली एक नदी हो गई, जो सर्वदा देवाधिदेव विष्णु से सुशोभित रहती है। वह नदी वैकुण्ठ में जाने के लिए सर्वसाधारण की तोपान परम्परा है। जिस शुभ भूतल पर सम्मार्जन कुश गिरे वह बहुत फल देने वाला कुश-तर्पण नामक तीर्थ हो गया ॥५४-६३॥ यत्र वहाँ कुशों से सबका तर्पण हुआ, अतः उसको कुश-तर्पण कहा जाता है। पश्चात् वहाँ गौतमी अन्य कारण से आकर मिल गई। महामुनिमान् ! प्रणीता में गौतमी के सगम से प्रणीता सगम नामक तीर्थ हो गया। जिस प्रदेश में कुशों से तर्पण हुआ। वह कुश-तर्पण तीर्थ हो गया। वही विन्ध्य के उत्तर में उस कल्पित यूप को मैंने छोड़ दिया जो लोक-पूज्य और विष्णु का एकमात्र निवासस्थान है। वह यूप अति शोभाशाली और अक्षय (नाश-रहित) वटवृक्ष हुआ। अतः उसका नाम अक्षयवट पड़ा। वह नित्य, कालरूप और स्मरण-मात्र से यज्ञ के पुण्य को देने वाला है। मेरा वह देवयजन-प्रदेश दण्डकारण्य कहा जाता है। यज्ञ पूर्ण हो जाने पर मैंने भक्ति

मद्देवयजन चेद दण्डकारण्यमुच्यते । सपूर्णे तु क्रतौ विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादित ॥६८॥
 यो विराडुच्यते चेदे यस्मान्मूर्तमजायत । यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येद विवृत जगत ॥६९॥
 तमह देवदेवशमभिवन्द्य व्यसर्जयम् । योजनानि चतुर्विंशन्मद्देवयजन शुभम् ॥७०॥
 तस्मादद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद । यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्विं चक्रपाणिन ॥७१॥
 तत प्रभृति चाऽऽख्यात मद्देवयजन च तत । तत्रस्थ कृमिकीटादि सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम् ॥७२॥
 धर्मबीज मुक्तिबीज दण्डकारण्यमुच्यते । विशेषाद्गौतमीशिलष्टो देश पुण्यतमोऽभवत् ॥७३॥
 प्रणीतासगमे चापि कुशतर्पण एव वा । स्नानदानादि य कुर्यात्स गच्छेत्परम् पदम् ॥७४॥
 स्मरण पठन वाऽपि श्रवण चापि भक्तित । सर्वकामप्रद पुसा भुक्तिमुक्तिप्रद विदु ॥७५॥
 उभयोस्तौरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिण । पडशीतिसहस्राणि तेषु पुण्य पुरोदितम् ॥७६॥
 वाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम् । नानेन सदृश तीर्थं विद्यते सचराचरे ॥७७॥
 ब्रह्महत्यादिपापाना स्मरणादपि नाशनम् । तीर्थमेतन्मुने प्रोक्त स्वर्गद्वार महोत्तले ॥७८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये प्रणीतासगमकुशतर्पणादिपडशीति-
 सहस्रतीर्थवर्णन नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विनवतितमोऽध्याय ॥९२॥

से विष्णु को प्रसन्न किया । जो वनों में विराट कहा गया है जिससे यह मूल जगत उत्पन्न हुआ है जिससे मेरी उत्पत्ति हुई जिसका विकार यह जगत् है उस देवा के देव ईश की स्तुति कर विसर्जन कर दिया । चौबीस योजन पयन्त मेरा गुम देवयजन प्रदेश है । नारद ! इसीलिए वहाँ आज भी चक्रपाण विष्णु के यज्ञेश्वर स्वरूप की सूचना देने वाले तीन कुण्ड हैं । उस समय से वह मेरा देव-यजन प्रदेश प्रसिद्ध हो गया । वहाँ के जो कृमि कीट आदि हैं व भी अत म भुक्ति के अधिकारी होते हैं । दण्डकारण्य घमबीज एव मुक्तिबीज कहा जाता है । गौतमी के आसपास की भूमि विषय रूप से पुण्य भूमि मानी जाती है । प्रणीता सगम अथवा कुशतर्पण तीर्थ म जो स्नान दान आदि करता है वह परम पद को प्राप्त करता है । उस तीर्थ का भक्तिपूर्वक स्मरण पठन और श्रवण भी पुरुषा के लिए सबल्य मनोरप-मदाता तथा मुक्ति और मुक्ति देने वाला (कहा गया) है । विद्वान् लोग वहाँ दोनों तटों पर छिपासी हजार तीर्थों का निवास वसन्तते हैं । उनका पुण्य पहले बताया जा चुका है । मुने ! कुशतर्पण वाराणसी से भी उत्तम तीर्थ है । इस तीर्थ व समान इस चराचर जगत् म दूसरा तीर्थ नहीं है । मुने ! इससे स्मरण से भी ब्रह्म हत्या आदि पाप नष्ट हो जात है । यह तीर्थ क्या है मान ! इस पृथ्वी-तल पर स्वर्ग-द्वार है ॥६४७८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म कुशतर्पण प्रणीता-सगम आदि तीर्थों का माहात्म्य-वर्णन नामक
 एक सौ एकषठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६१॥

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्युतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मन्युतीर्थमिति ह्यात सर्वप्रापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं नृणां स्मरणादधनाशनम् ॥१॥
तस्य प्रभाव वक्ष्यामि शृणुष्वभावहितो मुने । देवानां दानवानां च सगरोऽभून्मय पुरा ॥२॥
तत्राजयश्रवं सुरा दानवा जयिनोऽभवन् । पराङ्मुखा सुरगणा सगरादगतचेतसः ॥३॥
मामम्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम् । तानह प्रत्यबोच वै गङ्गा गच्छत सर्वशः ॥४॥
तत्र च गौतमीतीरे स्तुत्वा देव महेश्वरम् । अतपायनिरायाससहजानन्दसुन्दरम् ॥५॥
लप्स्यते सर्वविबुधा जयहतुर्महेश्वरात् । तथेत्युक्त्वा सुरगणा स्तुवन्ति स्म महेश्वरम् ॥६॥
तपोऽतप्यन्त केचिद्वै ननृतुश्च तयाऽपरे । अस्नापयश्च केचिच्चापूजयश्च तयाऽपरे ॥७॥
ततः प्रसन्नो भगवान्शूलपाणिर्महेश्वर । देवानथान्नवीत्तुष्टो विपता यदभीप्सितम् ॥८॥
देवा ऊचुः सुरपति विजयाय ददस्व न । पुरुष परमश्लाघ्य रणेण पुरतः स्थितम् ॥९॥
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवाम सुखिनो वयम् । तथेत्युवाच भगवान्देवान्प्रति महेश्वर ॥१०॥

अध्याय १६२

मन्युतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों के सब पापों को नष्ट करने वाला सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाला और स्मरण मात्र से अघों को नष्ट कर देने वाला मन्यु-तीर्थ नामक एक तीर्थ है । मुने ! उसके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ एकाग्र होकर सुनो । प्राचीन काल में देवों और दानवों में परस्पर युद्ध छिड़ा । उसमें देव विजयी नहीं हुए प्रयुक्त विजयधी दानवों के हाथ लगी । युद्ध से पराङ्मुख देवों की चेतना लुप्त-सी हो गई । वे मेरे पास आकर बोले—हम लोगों को अमय करने वाला उपाय बतलाइये । मैंने उन देवों से कहा—देवगण ! सवथा गंगा की शरण में जाओ । वहाँ गौतमी के तट पर नित्य एव स्वतः सहजानन्द सुन्दर महादेव की स्तुति कर उस महादेव से विजय माधन प्राप्त करो । (एसा ही होगा यह कहकर देवगण महेश्वर की आराधना करने लगे । उनमें से कोई तरस्या करते थे कोई प्रमद्विह्वल हो नाचते थे) कोई स्नान कराते थे तथा कोई उनका पूजा करते थे । निदान देवनाथ भगवान् शिव महेश्वर प्रसन्न हुये और बोले—जो अभीप्सित वरदान हो मागो । देवा ने सुरपति (शिव) से कहा—हम लोगों की विजय के लिये रण में आगे रहने वाला परम पराक्रमी पुरुष को दीजिए जिसके बाहुबल

आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निर्मितः परमेष्ठिना। मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम् ॥११॥
तं नत्वा त्रिदशाः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम्। मन्युना सह चाम्येत्य पुनर्युद्धाय तस्थिरे ॥१२॥
युद्धे स्थित्वा तु दनुर्जवेतेयंश्च महाबलैः। विबुधा जातसन्नदा मन्युमूचुः पुरः स्थिताः ॥१३॥

देवा ऊचुः

।

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परं। तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मानं मन्योऽस्माकं युयुत्सताम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव

॥१५॥

मन्युरुवाच

जनिता मम देवेशः सर्वशः सर्वद्वयप्रभुः। यः सर्वं वेत्ति सर्वेषां धामनाम' मनःस्थितम् ॥१६॥
नैव कश्चिन्व तं वेत्ति यः सर्वं वेत्ति सर्वदा। अमूर्तं मूर्तमप्येतदेति कर्ता जगन्मयः ॥१७॥
परोऽसौ भगवान्साक्षात्तया दिव्यन्तरिक्षगः। कस्तस्य रूपं यो वेद कस्य कर्ता जगन्मयः ॥१८॥
एवं विवादहं जातो मा कथं वेत्तुमर्हय। अथवा द्रष्टुकामा ये भवन्तो माऽनुपश्यत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा दर्शयामास मन्यु रूपं स्वकं महत्। तार्तीयचक्षुषोद्भूतं भवस्य परमेष्ठिनः ॥२०॥

के मरोसे हम सुखी हो।' भगवान् महादेव ने 'ऐसा ही हो ब्रह्मा और परमेष्ठी शिव ने अपने तेज से किसी मन्यु नामक अति प्रतापी पुरुष को अग्रणी बना दिया। सब देवता उस मन्यु को प्रणाम कर उसको साथ लेकर अपने घर आये और पुन युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। महाबलवान् दनुज और दैत्यो के साथ युद्ध की घोषणा कर देवता स्वय युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये और मन्यु के आग जाकर उससे बोले ॥१-१३॥

देवगण बोले—पहले हम लोग तुम्हारे सामर्थ्य की परीक्षा करना चाहते हैं तब हम दानुओं के साथ लड़ेंगे। इसलिये मन्यु! युद्ध के लिये प्रस्तुत हम लागा को अपना पराक्रम दिखालाओ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—देवा की वाने सुनकर मन्यु ने हँसते हुए कहा—॥१५॥

मन्यु ने कहा—देवा व ईश, तमश, सब ओर देखन वाले प्रभु स्रकर मेर उत्पादक हैं, जो सबके धाम (स्थान), नाम और आन्तरिक बाना को सर्वश जानने हैं और उनको कोई भी नहीं जानता है। वही जगन्मय कर्ता शिव मूर्त और अमूर्त सब पदार्थों का जानन हैं। वह पर भगवान् स्वय स्वर्ग और अन्तरिक्ष में अप्रतिहत गति रखते हैं। ऐसा बौन है जो उनके स्वरूप को जानता है? वह जगन्मय सर्वप्रथम जन्म की सृष्टि करने वाले हैं। ऐसे महाप्रभु के तेज से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मुझको कैसे मुम जान सकते हो? अथवा यदि मुमलाग देवता ही चाहते हो तो मुझका देखा ॥१६-१९॥

ब्रह्मा बोले—मन्यु ने यह कह कर अपन उग महान् तेजस स्वरूप को दिखाया जो परमेष्ठी शिव के तीनों

तेजसा सभृत रूप यत् सर्वं तदुच्यते। पौरुष पुरुषेष्वेव अहकारश्च जन्तुषु ॥२१॥
 श्रेय सर्वस्य यो भीम उपसहारकृद्भवेत्। त शरुप्रतिनिधि उवलन्त निजतेजसा ॥२२॥
 सर्वायुधधर दृष्ट्वा प्रणेमु सर्वदेवता। विनेसुर्वैत्यमनुजा कृताञ्जलिपुटा सुरा ॥२३॥
 भूत्वा मन्युमयोचुस्ते त्व सेनानी प्रणे भव। त्वया दत्तमिदं राज्य मन्यो भोक्ष्यामहे वयम् ॥२४॥
 तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता त्व जयवर्धन। त्वमिन्द्रस्त्व च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च ॥२५॥
 अस्मासु सर्वदेवेषु प्रविश त्व जयाय वै। मन्यु प्रोवाच तान्सर्वान्विना मत्तो न किञ्चन ॥२६॥
 सर्वेष्वन्त प्रविष्टोऽहं न मा जानाति कश्चन। स एव भगवामप्युस्ततो जात पूयकपूयक ॥२७॥
 स एव रुद्ररूपी स्याद्भद्रो मन्यु शिवोऽभवत्। स्यावर जङ्गम चैव सर्वं व्याप्त हि मयुना ॥२८॥
 तनवाप्य सुरा सर्वे जयमापुश्च ॥ सगरे। जयो मयुश्च शीर्यं च ईशतेज समुद्भवम् ॥२९॥
 मयुना जयमाप्याय कृत्वा दैत्यैश्च सगमम्। धयागत ययु सर्वे मयुना परिरक्षिता ॥३०॥
 यत्र यं गीतमीतीरे शिवमाराध्य ते सुरा। मयुमापुजंय चैव मयुतीर्यं तदुच्यते ॥३१॥
 उत्पत्ति च तया मन्योर्धो नर प्रयत् स्मरेत्। विजयो जायते तस्य न कश्चित्परिभूयने ॥३२॥

मेत्र ने उलग्न हुआ है जो तेज स युक्त है और त्रिमस सब कुछ उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा जाता है। जो पुरुषा म पौरुष ज हुआ म अहकार तथा सबका श्रेय है और जो भीमरूप होकर सबका सहार करनेवाला है उस अपन तेज स जन्म बाल मय प्रवार के गस्त्रा को धारण करने वाले गवर क प्रतिनिधि को देखकर सब देवताओं न प्रणाम किया। दैत्य और दानव उसको देखकर भयवस्त हो गये। वे देवतागण हाथ जाकर मयु म बोले— प्रमा! तुम हमारे सेना नायक बनो। मन्यो! तुम्हारे निय हुए इस स्वराज्य का हम भोग करेंगे। इसनिय मय बापों म तुम्ही विजय लाने वाले और जय-वृद्धि करने वाले हो। तुम इन्द्र हो तुम वरुण हो तुम्हा लक्ष्मण भी हो। तुम हम सब देवा म विजय के लिय प्रवेश कर जाओ। मन्यु म उन देवा स कहा— मर बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं। मैं सबके अन्त म रहता हूँ। परन्तु मुझको कोई नहीं जानता है। तदनन्तर वही भगवान् मयु पूषण-पूषण रूप म व्यक्त हुआ। वही मयु रुद्र रूप हुआ और रुद्र शिव हुआ। स्यावर-जगम आदि मय मयु स व्याप्त है। उस मयु को पाकर देवा ने रण म विजय पाई। जय मयु और धीरता की उत्पत्ति धारण तत्र म हुई थी। अतएव दैत्या स मघप कर देवा न मयु की सहायता स विजय पाई और उनका संहारण मय मय देवता जहाँ म आय ये वहाँ चले गये। जहाँ गीतमी के तीर पर देवा न शिव की आराधना कर मयु और जय का प्राप्ति फिर वरु मयुतीर कहा जाता है। जो मनुष्य मन्यु की उत्पत्ति का यज्ञपूर्वक स्मरण करता है उसकी सबका विजय होती है। वे किमा स पराजित नहा होता। महामुनि। मयु क समान कोई पवित्र ताम नहा है। जहाँ

न मन्युतीर्थसदृशं पावनं हि महामुने। यत्र साक्षान्मन्युरूपी सर्वदा शंकरः स्थितः॥
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मन्युतीर्थवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशतत-
मोऽध्यायः ॥१६२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥१३॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सारस्वतं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शुभम्। भुक्तिभुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
सर्वरोगप्रशमन सर्वसिद्धिप्रदायकम्। तत्रेमं शृणु धृत्तान्तं विस्तरेणाय नारद॥२॥
पुष्पोत्कटात्पूर्वभागे पर्वतोऽङ्गुलविभूतः। शुभ्रो नाम गिरिश्रेष्ठो गौतम्या दक्षिणे तटे॥३॥
शाकल्य इति विख्यातो मुनिः परमर्षिष्ठिकः। तस्मिञ्शुभ्रे पुण्यगिरौ तपस्तेषु ह्यनुत्तमम्॥४॥
तपस्यन्तं द्विजश्रेष्ठं गौतमीतीरमाधितम्। सर्वे भूतगणा नित्यं प्रणमन्ति स्तुवन्ति तम्॥५॥
अग्निशुभ्रपुष्पपरः वेदाध्यनतत्परम्। ऋषिगन्धर्वसुमन सेवितः, तत्र पर्वते ॥६॥

साक्षात् मन्यु रूपी शंकर निवास करते हैं, वहाँ स्नान, दान और तीर्थनाम के स्मरण से सब कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं ॥२०-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मन्यु तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६२॥

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब कामनाओं को देनेवाला, सुम सारस्वत नामक तीर्थ है जो मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है और उनके सब पापों का नाश करता है, सब रोगों को दूर करता है और सब प्रकार की मित्रियाँ प्रदान करता है। नारद! यहाँ के इस धृत्तान्त को विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ मुनो। गौतमी के दक्षिण तट पर पुष्पोत्कट से पूर्व की ओर लोच-विख्यात शुभ्र नामक एक उत्तम पर्वत है। उस स्वच्छ पवित्र पर्वत पर शाकल्य

तस्मिन्निरी महापुण्ये देवद्विजभयंकरः । यत्तद्वेपो ब्रह्महन्ता परशुर्नाम राक्षसः ॥७॥
 कामरूपी विचरति नानारूपधरो वने । क्षणं च ब्रह्मरूपेण कदाचिद्द्व्याघ्ररूपधृक् ॥८॥
 वदाचिद्देवरूपेण कदाचित्पशुरूपधृक् । कदाचित्प्रमदारूपः कदाचिन्मृगरूपतः ॥९॥
 कदाचिद्बालरूपेण एवं चरति पापकृत् । यत्राऽऽस्ते ब्राह्मणो विद्वान्शाकल्यो मुनिसत्तमः ॥१०॥
 तमायाति महापापी परशू राक्षसाधमः । शुचिष्मन्त द्विजश्रेष्ठं परशुनित्यमेव च ॥११॥
 नेतुं हन्तुं प्रवृत्तोऽपि न शशाक स पापकृत् । स कदाचिद्द्विजश्रेष्ठो देवान्म्यच्च यत्नतः ॥१२॥
 भोवतुकामः किलाऽऽयातस्तनायात्परशुर्मुने । ब्रह्मरूपधरो भूत्वा शिथिलः पलितोऽबली ॥
 कन्यामादाय काचिच्च शाकल्यं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

परशुरवाच

भोजनस्यायिनं विद्धि मां च कन्यामिमां द्विज । आतिथ्यकाले संप्राप्तं कृतकृत्योऽसि मानव ॥१४॥
 त एव धन्या लोकेऽस्मिन्प्रेषामतिथयो गृहात् । पूर्णाभिलाषा निर्यान्ति जीवन्तोऽपि मृताः परे ॥१५॥
 भोजने तूपविष्टे तु आत्मार्यं कल्पितं तु यत् । अतिथिम्यस्तु या दद्याद्दत्ता तेन वसुंधरा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु शाकल्यो ददामीत्येवमब्रवीत् । आसने चोपवेश्यायानानात् परशुं द्विजम् ॥१७॥
 ययान्वाप्यं पूजयित्वा शाकल्यो भोजनं ददौ । आपोशनं करे कृत्वा परशुर्वैषम्यमब्रवीत् ॥१८॥

नामक परम वैष्टिः मुनि अति बठोर तपस्या करते थे । गीतमी-तीर पर अग्नि-सेवा-परायण और वेदाध्ययन में लीन रहने बाद उम द्विजवर्य को मंत्र प्राणी प्रतिदिन प्रणाम करने और स्तुति करते थे । उस क्षण, गन्धर्व और गज्जनी के निवास योग्य, महापुण्यप्रद पवत पर देव और ब्राह्मण को मय देने वाला, यशविरोधी तथा ब्रह्म-पापी परशु नाम का एक राक्षस रहता था । वह मायावी अनवरूप धारण कर घूमा करता था । वह क्षणभर में बम्बी ब्राह्मण का रूप धारण कर लेता था तो बम्बी वाघ का, बम्बी देवरूप में घूमता था तो बम्बी पशुरूप में । किसी समय स्त्रीरूप में किसी समय मृगरूप में और किसी समय बालक के रूप में वह पापवर्मा घूमता था । जहाँ मुनिवय विद्वान् ब्राह्मण शाकल्य रहते थे, वहाँ वह महापापी परशु उनके पास आता था । उस पवि-
 त्वात्मा द्विजश्रेष्ठ को परशु नित्य मारने के लिये या हार लेने के लिये आता था । परन्तु वह पापी इसम सफ़र नहीं हो पाता था । मुन । किसी समय वह द्विजश्रेष्ठ अति श्रद्धापूर्वक देवों की पूजा करने की इच्छा से आय । उसी समय वहाँ वह परशु सितकेस एक शिथिल ब्राह्मण का वेश धारण कर किसी कन्या को साथ लिये हुए शाकल्य के पास आता और बाला ॥१-१३॥

परशु ने कहा—द्विज ! मुझको और इस कन्या को इस आतिथ्योचित काल में आये भोजनार्थी समझो । मानद ! तुम कृपित्व हो गये । क्योंकि इस लोक में वे धन्य हैं जिनके घर में अतिथि अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने बाहर आते हैं । हमने विपरीत जो अनुप्य हैं वे जीते-जी मरे हुये-स हैं । भोजन के लिये बैठे जो व्यक्ति अपने गिय परता हुआ भोजन अतिथि को दे देता है वह मानो पृथ्वी का दान कर देता है ॥१४-१५॥

ब्रह्मा बोले—यह मुनिर शाकल्य ने कहा—'दृष्ट्वा' । हमने बाद वह द्विजरूपधारी परशु को आसन पर बैठा-
 कर अज्ञात से शाकल्य ने उसकी यथार्थ पूजा कर भोजन दे दिया । परशु ने भोजन को हाथ में लेकर कहा ॥१७-१८॥

परशुरवाच

दूरादभ्यागतं श्रान्तमनुगच्छन्ति देवताः । तस्मिंस्तृप्ते तु तृप्ताः स्युरतृप्ते तु विपर्ययः ॥१९॥
 अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्वबान्धवौ । अपवादी हरेत्पापमतिथिः 'स्वर्गसंक्रमः' ॥२०॥
 अभ्यागतं पथि श्रान्तं सावज्ञं योऽभिवीक्षते । तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः ॥२१॥
 तस्मादभ्यागतः श्रान्तो याचेऽहं त्वां द्विजोत्तम । दास्यसे यदि मे कामं तद्भोक्ष्येऽहं न चान्यथा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

दत्तमित्येव शाकल्यो भुङ्क्ष्येत्पेवाऽहं राक्षसम् । ततः प्रोवाच परशुरहं राक्षससत्तमः ॥२३॥
 नाहं द्विजस्तव रिपुर्न बृद्धः पलितः कृशः । बहूनि मे व्यतीतानि वर्षाणि त्वां प्रपश्यतः ॥२४॥
 शुष्यन्ति मम गात्राणि द्रोष्णे स्वल्पोदकं यथा । तस्मान्नेष्ये सानुषं त्वां भक्षयिष्ये द्विजोत्तम ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा परशुवाक्यं तच्छाकल्यो वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

शाकल्य उवाच

ये महाकुलसंभूता विज्ञातसकलागमाः । तत्प्रतिश्रुतमभ्येति न जात्वत्र विपर्ययम् ॥२७॥
 ययोचितं कुरु सखे तयाऽपि शृणु मे धवः । निहन्तुमप्सुद्यतेषु वधतव्यं हितमुत्तमः ॥२८॥

परशु ने कहा—दूर से आये हुये, यहाँ अतिथि के पीछे पीछे देवता आते हैं । उनके तृप्ता होने पर वे तृप्त होते हैं और अनुत्प होने पर अनुत्प । अतिथि और अपवादी दोनों सत्तार के बन्धु हैं । अपवादी (निन्दक) पाप को हर लेता है । अतिथि मनुष्य को स्वर्ग का अधिकारी बनाने वाला है । जो रास्ते के यहाँ-माँद अतिथि को ठहराकर पी दृष्टि से देवता है, उसी क्षण उसका धर्म, और श्री नष्ट हो जाती है । इसलिये द्विजोत्तम ! मैं श्रान्त अतिथि तुमसे याचना करता हूँ कि यदि तुम मुझे पर्याप्त भोजन दोगे तब तो साँझो अन्वया नही ॥१९-२२॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य ने राक्षस से कहा—'इतना ही था, जो दे दिया । अब इसको साओ ।' तब परशु ने कहा—'मैं राक्षसराज हूँ, द्विज नहीं हूँ, तुम्हारा शत्रु हूँ, बृद्ध, दुर्बल तथा मितवैश नहीं हूँ । तुमको देखते-देखते मेरे बहुत साल बीत गये । घोरमश्रु म जिस प्रकार थोड़ा जल सूख जाता है, उसी प्रकार मेरे अंग सूखते जा रहे हैं । इसलिए द्विजात्तम ! आज तुमको अनुयायिया समन उठा ले जाऊँगा और खा जाऊँगा ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—परशु की बात सुनकर शाकल्य ने कहा ॥२६॥

शाकल्य ने कहा—जो महाकुल म उगम होने हैं और जो सब शास्त्रों के ज्ञाता होने हैं वे अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा करने हैं इगम विपर्यय (परिवर्तन) नहीं होता । मने । जैसा उचित समझो करो । फिर भी मेरी बात सुनो । सम्जन सागा का स्वभाव है कि वे हत्या के लिय प्रस्तुत हत्यारों से भी उचित वान बहते हैं । मैं वस के

ब्राह्मणोऽहं वज्रतनुः सर्वतो रक्षको हरिः । पादौ रक्षतु मे विष्णुः शिरो देवो जनार्दनः ॥२९॥
बाहू रक्षतु वाराहः पृष्ठं रक्षतु कूर्मराट् । हृदयं रक्षतात्कृष्णो ह्यङ्गुली रक्षतान्मृगः ॥३०॥
मुखं रक्षतु वागीशो नेत्रे रक्षतु पक्षिग । श्रोत्रं रक्षतु वित्तेशः सर्वतो रक्षताद्भवः ॥
नानापत्स्वेकशरणं देवा नारायण स्वयम् ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु शाकल्यो नय वा भक्ष वा सुखम् । मां राक्षसेन्द्र परशो त्वमिदानीमतन्द्रितः ॥३२॥
राक्षसस्तस्य वचनाद्भूक्षणाय समुद्यतः । नास्त्येव हृदये नूनं पापिनां करुणाकणः ॥३३॥
दंष्ट्राकरालवदनो गत्वा तस्यास्तिकं तदा । ब्राह्मणं तं निरोक्ष्यैवं परशुर्वैक्यमब्रवीत् ॥३४॥

परशुरवाच

शङ्खचक्रगदापाणिं त्वां पश्येऽहं द्विजोत्तम । सहस्रपादशिरसं सहस्राक्षकरं विभुम् ॥३५॥
'सर्वभूतैकनिलयं छन्दोर्लप्य जगन्मयम् । त्वामद्य विप्र पश्यामि नास्ति ते पूर्वकं वपुः ॥३६॥
तस्मात्प्रसादये विप्र त्वमेव शरणं भव । ज्ञानं देहि महाबुद्धे तीर्थं ब्रूह्यपनिष्कृतिम् ॥३७॥
महता दर्शनं ब्रह्मज्जायते नहि निष्फलम् । द्वेपादज्ञानतो वाऽपि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः ॥३८॥
अयसः स्पर्शसंस्पर्शो ह्यमत्वार्यैव जायते ॥३९॥

समान शरीर वाला ब्राह्मण हूँ । विष्णु मेरी चारा ओर से रक्षा करने वाले हैं । विष्णु मेरे चरणों की रक्षा करें जनार्दन देव शिर की रक्षा करें वाराह मेरी भुजाओं की रक्षा करें कूर्मराज पृष्ठभाग की रक्षा करें कृष्ण हृदय की ओर नृसिंह अङ्गुलियों की रक्षा करें । वागीश मुख की गरुडबाहन नेत्रों की कुबेर कानों की तथा शंकर चारों ओर से मेरी रक्षा करें । स्वयं नारायण देव नाना आपत्तियों में एकमात्र मेरे शरणदाता हों ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहकर शाकल्य ने राक्षस से कहा—'राक्षसेन्द्र । परशो ! मुझको ले चत्री या इस समय आलस्यरहित होकर आनन्द पूर्वक मुझको खा जाओ । तब राक्षस मुनि के वचनानुसार (मुनि को) खाने के लिए तैयार हो गया । वास्तव में पापी मनुष्यों के हृदय में दया का एक कण भी नहीं होता है । उस भयानक दाँत और विकराल मुखवाले परशु ने जब उस ब्राह्मण के समीप जाकर उसे देखा तो इस प्रकार कहा ॥३२-३४॥

परशु ने कहा—द्विजोत्तम । मैं इस समय तुमको शङ्ख चक्र और गदाधारी सहस्र चरण और शिरवाला, सहस्र नेत्र और भुजा वाला व्यापक सब प्राणियों का एकमात्र वासस्थान छन्दस्वरूप और जगन्मय के रूप में देख रहा हूँ । विप्र ! तुम्हारा वह पहलू का शरीर नहीं है । इसलिये हे विप्र ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुम्हीं मेरे रक्षक बनो । महाबुद्धिमान् ! ज्ञान दो मेरे पापों को दूर करने वाले तीर्थ को बताओ । ब्रह्मन् ! महान् व्यक्तित्व का दर्शन कभी भी निष्फल नहीं होता है । द्वेपदा, अज्ञान से, प्रसंगवश या भूल से किसी भी प्रकार से पारस या स्पर्श लोहे को सोना बना ही देता है ॥३५-३९॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वाक्यं समाकर्ण्य राक्षसेन समीरितम् । शाकल्यः कृपया प्राह वरदा सा सरस्वती ॥४०॥
 तवाचिराद्दृश्यते ततः स्तुहि जनार्दनम् । मनोरथफलप्राप्तौ नान्यन्नारायणस्तुते ॥४१॥
 किंचिदप्यस्ति लोकेऽस्मिन्कारणं शृणु राक्षस । प्रसन्ना तव सा देवी मद्वाक्याच्च भविष्यति ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स परशुर्गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् । स्नात्वा शुचिर्मेतमना गङ्गामभिमुखः स्थितः ॥४३॥
 तत्रापश्यद्विव्यरूपां दिव्यगन्धानुलेपनाम् । सरस्वतीं जगद्धात्रीं शाकल्यवचने स्थिताम् ॥४४॥
 जगज्जाड्यहरां विश्वजननीं भुवनेश्वरीम् । तामुवाच विनीतात्मा परशुर्गतकल्मषः ॥४५॥

परशुरुवाच

गुरुः शाकल्य इत्याह माकान्तं स्तुहि विध्वजम् । तव प्रसादात्सा शक्तिर्यथा मे स्यात्तथा कुरु ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्तिवति च सा प्राह परशुं श्रोतसरस्वती । सरस्वत्याः प्रसादेन परशुस्तं जनार्दनम् ॥४७॥
 तुष्टाव विविधैर्वाक्यैस्तत्स्तुष्टोऽभवद्धरिः । वरं प्रादाद्राक्षसाय कृपासिन्धुर्जनार्दनः ॥४८॥

जनार्दन उवाच

यद्यन्मनोगतं रक्षस्तत्तत्सर्वं भविष्यति ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

शाकल्यस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः । सरस्वत्या प्रसादेन नरसिहप्रसादतः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—राक्षस की कही हुई इन बातों को सुनकर शाकल्य ने कृपापूर्वक कहा—‘दैत्यपते ! यह सरस्वती शीघ्र तुमको वर प्रदान करेगी । इसलिए जनार्दन की स्तुति करो । नारायण की स्तुति के अतिरिक्त मनोरथ पूर्ण करने का और कोई सरल साधन इस लोक में नहीं है । राक्षस ! मुनो, भेरे बहने से सरस्वती देवी तुम्हारे ऊपर अवश्य प्रसन्न होगी ॥४०-४२॥

ब्रह्मा बोले—‘ऐसा ही कहूँगा’ यह कहकर वह परशु त्रिभुवन-पावनी गंगा में स्नान कर पवित्र हो एकाग्र मन से गंगा के सम्मुख बैठ गया । उसने दिव्य रूप वाली दिव्य गंध और अमराग (लेप) से युक्त तथा ससार का धारण-शोषण करने वाली सरस्वती को, शाकल्य के वचन के अनुसार स्थित देखा, निष्पाप एवं विनीत परशु ने जगत् की जड़ता को दूर करने वाली, विश्व-जननी और भुवनेश्वरी उस सरस्वती से कहा ॥४३-४५॥

परशु ने कहा—गुरु शाकल्य ने मुझसे कहा है कि लक्ष्मीपति गरुडध्वज विष्णु की स्तुति करो । अतः आपकी कृपा से जिस प्रकार मुझमें वैसी शक्ति हो, वैसा ही आप करें ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—उस श्री सरस्वती ने परशु से कहा कि ऐसा ही हो । सरस्वती की कृपा से परशु उस जनार्दन भगवान् की विविध वाक्योंसे स्तुति करने लगा । तब हरि उसने ऊपर प्रसन्न हो गये और कृपा-सागर जनार्दन ने राक्षस को वरदान दिया ॥४७-४८॥

जनार्दन बोले—राक्षस ! तुम्हारे जो जो मनोरथ हैं, वे सब पूरे हो जाएंगे ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य, गौतमी, सरस्वती तथा नरसिंह की कृपा से उस परम पापी परशु ने भी स्वर्ग

पापिष्ठोऽपि तदा रक्ष परशुदिवमेयिवान । सर्वतीर्थार्थिप्रपद्मस्य प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वन ॥५१॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं सारस्वतमिति श्रुतम् । तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोके महीयते ॥५२॥
वाग्जवेष्णवशाकल्पपरशुप्रभवाणि हि । बहून्यभूवस्तोर्थाणि 'तस्मिन्वं' श्वेतपर्वते ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये श्वेतपर्वतस्थशाकल्यादितीर्थ-
वर्णन नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६३॥
श्रीतमीमाहात्म्ये चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥१४॥

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

चिच्चिकतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच^१

चिच्चिका (व) तीर्थमित्युक्त सर्वरोगविनाशनम् । सर्वचिन्ताप्रहरण सर्वशक्तिकरं नृणाम् ॥१॥
तस्य स्वरूपं ध्यायामि शुभ्रे तस्मिन्नगोत्तमे । गङ्गाया उत्तरे पारे यत्र देवो गदाधर ॥२॥

को प्राप्त किया और सकल तीर्थों को अपने चरण कमल में बसाने वाले विष्णु की कृपा से वह तीर्थ सब से सार-
स्वत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । वहाँ स्नान करने और दान देने से मनुष्य विष्णु 'लोच' में पूजित होता है । उस
श्वेतपर्वत पर सारस्वत वैष्णव शाकल्य और परशु राक्षस के नाम से प्रसिद्ध और भी बहुत से तीर्थ हैं ॥५०-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्वेतपर्वत पर अवस्थित शाकल्य आदि तीर्थों का वर्णन
नामक एकसौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६३॥

अध्याय १६४

चिच्चिकतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यः क सब रोगों को नष्ट करने वाला सब चिन्ताओं को दूर करने वाला तथा सब प्रकार
की गति देने वाला चिच्चिक तीर्थ नामक एक तीर्थ है । उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ । गंगा के उत्तर
तट पर जहाँ देव गङ्गा पर निवास करते हैं उस उत्तम शुभ पर्वत पर चिच्चिक नामक मातमोजा पक्षिराज—त्रिसको

चिन्धिक^१ पक्षिराद् तत्र भेरुण्डो योऽभिधीयते । सदा वसति तत्रैव मांसाशी श्वेतपर्वते ॥३॥
 नानापुष्पफलाकीर्णः सर्वतुङ्गसुमनसः । सेविते द्विजमुख्येऽथ गौतम्या चोपशोभिते ॥४॥
 सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरामरसकुले । तत्समीपे नग कश्चिद्द्विपदा च चतुष्पदाम् ॥५॥
 रोगातिक्षुत्पाचिन्ताभरणानां न भाजनम् । एव गुणान्विते शैले नानामुनिगणावृते ॥६॥
 पूर्वदेशाधिपः कश्चित्पवमान इति श्रुत । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान्देवब्राह्मणपालकः ॥७॥
 बलेन महता युक्तः सपुरोधा वन ययौ । रेमे स्त्रीभिर्मनोज्ञाभिर्नृत्यवादित्रजः सुखं ॥८॥
 स च एवं धनुष्पाणिर्गयाशोलिभिवृत् । एव भ्रमन्कदाचित् श्रान्तो द्रुममुपागतः ॥९॥
 गौतमीतीरसंभूतं नानापक्षिगणैर्वृतम् । आश्रमाणां गृहपति धर्मज्ञमिव सेवितम् ॥१०॥
 तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं पवमानो नृपोत्तमः । स विश्रान्तो जनवृत् ईक्षा चक्रे नगोत्तमम् ॥११॥
 तत्रापश्यद्विजं स्थूलं द्विमुखं शोभनाकृतिम् । चिन्ताविष्टं तथा श्रान्तं तमपृच्छन्नृपोत्तमः ॥१२॥

राजोवाच

को भवान्द्विमुख पक्षी चिन्तावानिव लक्ष्यसे । नैवान् कश्चिद्दुःखार्तं कस्मात्त्वं दुःखमागतः ॥१३॥

भेरुण्ड भी कहते हैं—सर्वदा निवास करता था । नाना पुष्प और फलों से भरे, सब ऋतु के फूलों और वृक्षों से युक्त एव गौतमी से सुशोभित उस पर्वत पर मुख्य द्विज (ब्राह्मण या पक्षी) सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और देवता सर्वदा निवास करते थे । उसके समीप ही कोई वृक्ष था जहाँ जाने से किसी मनुष्य या चार पैर वाले (चतुष्पद जन्तु) को रोग, दुःख, मूख, प्यास चिन्ता और मृत्यु का भय नहीं रहता था । ऐसे गुणों से युक्त और अनेकों मुनियों से सुशोभित उस पर्वत पर वह पक्षी भी रहता था । एक दिन कोई पवमान नामक पूर्व देश का अधिपति, क्षत्रिय-धर्म-परायण, श्रीमान्, देवी और ब्राह्मणों का पालक राजा अपने असह्य वैनिकों और पुरोहित के साथ वन में आया । (बहुत मनोहर स्त्रियों के साथ नृत्य वाद्य-जन्म मुखों का अनुभव करता हुआ वह विहार करने लगा) इस प्रकार एक दिन वह अपने अनुचर शिकारियों के साथ हाथ में धनुष लिये हुये घूमता हुआ यका सा उस वृक्ष के नीचे आया, जो गौतमी के तट पर अनेक पक्षियों से भरा हुआ था और आश्रमवासियों के लिये धर्मज्ञाता गृहपति के समान (मोजनदाता) था । उस वृक्ष के नीचे आकर उस नृप-श्रेष्ठ पवमान ने अपने अनुचरों के सहित विश्राम किया, और उस पर्वत की ओर दृष्टि दीवाई । उस पर्वत पर उसने स्थूल परन्तु सुन्दर आकार और दो मुख वाले पक्षी को देखा, जो यका हुआ-सा चिन्तातुर था । नृपोत्तम ने उस पक्षी से पूछा ॥११॥

राजा ने कहा—तुम दो मुख वाले पक्षी कौन हो ? क्यों चिन्ताकुल-से दिखाई देते हो ? यहाँ कोई दुःखी नहीं दिखाई देता । फिर तुम इतने दुःखी क्यों हो ? ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच नृपति पवमान शनं शनं । समाश्वस्तमना पक्षी चिच्चिको^१ नि श्वसन्मुहु ॥१४॥

चिच्चिक उवाच

मत्तो भय न चान्येषा मम वाऽन्योपपादितम् । नानापुष्पफलाकीर्णं मुनिभि परितेवितम् ॥१५॥
पश्येय शून्यमेवाद्रि तत शोचामि मामहम् । न लभामि सुख किञ्चिन्न तृप्यामि कदाचन ॥
निद्रा प्राप्नोमि न क्वापि न विश्रान्ति न निर्वृतिम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

द्विमुखस्य द्विजस्योक्त श्रुत्वा राजाऽतिविस्मित ॥१७॥

राजोवाच

को भवान्कि कृत पाप कस्माच्छून्यश्च पर्वत । एकेनाऽऽस्येन तृप्यन्ति प्राणिनोऽन नगोत्तमे ॥१८॥
किमुताऽऽस्यद्वयेन त्व न तृप्तिमुपयास्यसि । किंवा ते दुष्कृत प्राप्तमिह जन्मन्यथो पुरा ॥१९॥
तत्सर्वं शत मे सत्य त्रास्येत्वा महतो भयात् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

राजान त द्विज प्राह नि श्वसन्नथ चिच्चिक^१ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद उस चिच्चिक पक्षी ने अपने को सम्हाला और बार-बार लबी आह भरता हुआ वह राजा पवमान से घीरे घीरे बोला ॥१४॥

चिच्चिक ने कहा—मुझसे किसी दूसरे को भय नहीं और न मुझको ही किसी दूसरे का भय है । परन्तु मुनिजनोंसे तेवित और रग विरग के फूलों और फलों से सुगोमित यह पर्वत मुझ सूना-सा दिखाई देता है । इसीलिये मुझको अपने ऊपर शोक होता है । यहाँ न तो मुझ सुख मिलता है न कमी आत्म-तृप्ति न नीद और न कहीं विश्राम या शांति ही मिलती है ॥१५ १६॥

ब्रह्मा बोले—उस दो मुख वाल पक्षी की कही हुई बातों को सुनकर राजा विस्मित हो गया ॥१७॥

राजा बोला—आप कौन हैं ? आपने कौन सा पाप किया है ? क्यों आपके लिए पर्वत गूँघ है ? इस उत्तम पर्वत पर प्राणी अपने एक मुखसे तृप्त हैं । फिर आप दो मुख रखते हुए भी क्यों नहीं तृप्त हो रहे हैं ? अथवा इस जन्म में या पूर्वजन्म में कौन सा पाप किया है ? आप सब बातें सत्य रूप से कहिये । मैं आपको सब महान सक्ती से बनाऊँगा ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—इतना सुनने के बाद पक्षी चिच्चिक ने दीघश्वास लेते हुए उस राजा से कहा ॥२१॥

चिच्छिन्न उवाच

यक्ष्यऽहं त्वां पूषवृत्तं पवमानं नृण्युष्यं ततः । अहं द्विजातिप्रयरो वेदवदान्नपारगः ॥२२॥
 कुलीनो विदितप्राज्ञः पापहन्ता वृत्तिप्रियः । यवः पुरस्तथा पृष्ठे अयदयच्च जतुषु ॥२३॥
 परपृष्ठया सदा दुष्टो मायया विश्वयश्चकः । शृत्यन् सत्परहितः परनिदायिचक्षणः ॥२४॥
 मित्रस्वामिगुरोरो दम्भाचारातिनिषुणः । मनसा वमणा याचा तापयामि जनाग्रहणः ॥२५॥
 अयमयः विनोदो मः सदा यः परहितान् । युग्मभेदः गणोच्छेदः मर्यादाभेदनः सदा ॥२६॥
 परोमि निर्विचारो हृदिदत्तवापराद्मुक्तः । न मया सद्गुणः परिचापातरी भुवनत्रये ॥२७॥
 तनाहं द्विमुखो जातस्तापाददुःखभाग्यहम् । तस्माददुःखेन सतप्तः पूयोऽयं पवतो मम ॥२८॥
 अयच्च नृणुः भूपात्रं यावयः धर्मायसहितम् । ब्रह्महत्यासमः पापः तद्विना तदवाप्यते ॥२९॥
 क्षत्रियः सगरः गत्वा अयवाज्यत्रः सगरात् । पलायन्तं न्यस्तगत्रं विश्वस्तं च पराद्मुक्तम् ॥३०॥
 अधिज्ञानं चोपविष्टं विभ्रमोति च यादिनम् । तं यदि क्षत्रियो ह्यात्स नु स्यादब्रह्मपातकम् ॥३१॥
 अधीतं विस्मरति यस्तु परोति तथोत्तमम् । अनादरं च गुरोः तमाह्वयन्तपातकम् ॥३२॥
 प्रत्यग्ने च प्रियं वञ्चितं परोग्ने परपाणिं च । अन्यद्विदं यच्चस्थयत्करोत्ययत्तादेव यः ॥३३॥
 गृह्णतां पापयवर्तां द्विष्टा ब्राह्मणनिन्दकः । मिथ्या विनोतः पापात्मा स तु स्यादब्रह्मपातकः ॥३४॥

चिच्छिन्न उवाच—पवमान ! मनुष्य पूष वृत्तान्तबहुला उभयमुखी । मैं पहले बंद-बेजाग का पारदर्शी उभय ब्राह्मण था । बुद्धिमान विद्वान् तो था परन्तु दूसरे वक्तव्यों को बिगड़ाने वाला तथा क्षमालू था । लोग के महार पर दुस्तरा बान बहता था परन्तु पीछे पीछे दूसरी । दूसरा की बातों स सज्जद दुखी रहता था अपनी धृतिता स सासार को ठगता करता था और शृत्यन् अत्यवादी परनिदायिचित मित्र स्वामी और गुरो स ब्राह्मण करने वाला दरिद्र अति घृणित वाय करने वाला और मन वचन तथा कर्म से बहुत लोगो को वष्ट पङ्कचाता था । मही मेरा सबदा का मनबहलाव था कि दूसरा का वष्ट दना । मैं विद्वाना की सेवा स पराङ्मुख रहकर बिना विचारे दो जना म पट डानला समाज म भेज उअन करता और मर्यादा का उल्लंघन आदि करता था । साराण यह कि मेरे समान निब्रवण म कोर पापी नहा था । उसके पत्रस्वरूप म दो मुख वाला पक्षी हुआ । दूसरो का पीडा पङ्कचाने से दुखी हूँ । गलिय दुःख सतत मरे गिये यह पवत पूष है ॥२२-२८॥ मवाल ! अब धर्माय से यवत बात सुनो ब्रह्म हय के सम न पापब्रह्म हत्या न करने से भी होते हैं (जैसे) क्षत्रिय यद्ध म जाकर या यद्ध स अ पन मागत हये गरण म आये हय विव सपात्र रण विमल अपरिचित बठ हुये और म डरता हूँ । एसा कहने वाल का यदि मारे ता वः ब्रह्म पातक कहा जाता है जो अध्ययन किम हूए (शास्त्र) को म जाता है श्रष्ट यवित को तुम बह्वर पुकारता है और सरजना का अनादर करता है वह ब्रह्मपातक हूँ । जो सामने प्रिय कोनता है किन्तु पीछे पाण्ड, कृत् और जो मर स हूखरी वचन म हूखरी और कण्ठ मर स हूखरी ही जात करता है और जो गरु का पापय लने वाला द्वय करने वाला ब्राह्मणो की निंदा करने वाला मिथ्या विनात तथा पापात्मा है वे ब्रह्मपातक होते है जो देवता वेद अध्या मज्ञान धर्म तथा ब्राह्मण की सगति की द्वय से निंदा करता

देवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसंगतिम् । एताद्विन्दति धो द्वेपात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥३५॥
 एवं भूतोऽप्यहं राजन्दम्भार्थं लज्जया तथा । सद्वृत्त इव वर्तेऽहं तस्माद्वाजन्द्विजोऽभवत् ॥३६॥
 एवं भूतोऽपि सत्कर्म किञ्चित्कर्ताऽस्मि कुञ्चित् । तेनाहं कर्मणा राजन्स्वतः स्मर्ता पुरा कृतम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

‘तच्चिच्चिकवच श्रुत्वा पवमानः सुविस्मितः । कर्मणा केन ते मुक्तिरित्याह नृपतिर्द्विजम् ॥३८॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपतिं प्राह पक्षिराट् ॥३९॥

चिच्चिक उवाच

अस्मिन्नेव नगथेष्टे गौतम्या उत्तरे तटे । गदाधरं नाम तीर्थं तत्र मां नय सुव्रत ॥४०॥
 ‘तद्वि तीर्थं पुण्यतमं सर्वपापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं चेति महद्भिर्मुनिभिः श्रुतम् ॥४१॥
 न गौतम्यास्तथा विष्णोरपरं क्लेशनाशनम् । सर्वभावेन तत्तीर्थं पश्येयमिति मे मतिः ॥४२॥
 महत्तेन प्रयत्नेन नंतच्छक्यं कदाचन । कथमाकाङ्क्षितप्राप्तिर्भवेद्दुष्टकर्मणाम् ॥४३॥
 सप्रयत्नोऽप्यहं वीर न पश्ये तत्सुदुष्करम् । तस्मात्तव प्रसादाच्च पश्येयं हि गदाधरम् ॥४४॥
 अवितापितदुःखं कुरुणावरुणालयम् । यस्मिन्दृष्टे भवक्लेशा न दृश्यन्ते पुनरनरैः ॥४५॥
 दुष्टैर्वै तं विदं यास्ये प्रसादात्तव मुव्रत ॥४६॥

है, वह ब्रह्मघातक माना है। राजन् ! इस प्रकार का होता हुआ भी मैं दम्भ के लिये जयवा लोचलज्जवावश सदाचारी की तरह वाद्य व्यवहार करता था। राजन् ! इर्मालिय मैं पक्षी हुआ। ऐसा होता हुआ भी मैं कहीं-कहीं कभी सत्कर्म कर देता था। उन कर्मों के प्रभाव से ही मुझे पूर्व के विषय हुए कर्मों का स्वतः स्मरण है ॥३९-३७॥

ब्रह्मा बोले—चिच्चिक की बात सुन कर राजा पवमान अतिविस्मित हो गया। उसने पत्नी से कहा—
 ‘किन कर्म से तुम्हारी मुक्ति हो गयी है ? उसकी बात सुनकर पक्षिराज ने राजा से कहा ॥३८-३९॥

चिच्चिक ने कहा—डमी पर्वत श्रेष्ठ पर गौतमी के उत्तर तट पर गदाधर नामक एक तीर्थ है। मुव्रत ! वही मुझको लक्ष्मी है। वह तीर्थ अनिपवित्र, सब पापों को दूर करने वाला तथा सब कामनाओं का दान वाला है, ऐसा महामुनिय से हमने सुना है। गौतमी एवं विष्णु मन्त्रों द्वारा कर्षण पापों का नष्ट करनेवाला नहीं है। इसलिए मेरा विचार है कि उस तीर्थ का बड़ी श्रद्धा से देखूँ। यह मेरे प्रयत्न से कभी भी नहीं हो सकता। मगर, दुष्कर्म करने वालों को किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? वीर ! प्रयत्न करने पर भी मैं उस अत्यन्त कठिन कार्य की सिद्धि नहीं देखता हूँ। अब मैं तुम्हारी महापत्नी और कृपा से ही भगवान् गदाधर को देख सकता हूँ, जो स्वयं दूसरों के दुःखों को जानने वाले और कुरुणा व मारुणा नामक नद्यों पर गङ्गा पर गङ्गा पुन मागारि कष्टों के फन्दे में नहीं पड़ने हैं। मुव्रत ! तुम्हारी कृपा से उनका दर्शन करते ही मैं स्वयं को क्षमा पाऊँगा ॥४०-४६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः स 'नृपतिश्चिच्चिकेन द्विजन्मना । दर्शयामास तं देवं तां च गङ्गां द्विजन्मने ॥४७॥
ततः स चिच्चिकः' स्नात्वा (प्राह) गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ॥४८॥

चिच्चिक उवाच

गङ्गे गौतमि यावत्त्वां त्रिजगत्पावनीं नरः । न पश्यत्युच्यते तावदिहामुग्रापि पातकी ॥४९॥
तस्मात्सर्वासमपि मामुद्धर सरिद्धरे । ससारे देहिनामन्या न गतिः काऽपि कुत्रचित् ॥
त्वां विना विष्णुचरणसरोरुहसमुद्भवे ॥५०॥

इति श्रद्धाविशुद्धात्मा गङ्गकशरणो द्विजः । स्नानं चक्रे स्मरन्तन्तर्गङ्गे त्रायस्व मामिति ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

गदाधरं ततो नत्वा ॥ पश्यत्सु नगवाप्तिषु । पवमानाभ्यनुज्ञातस्तदेव दिवमाक्रमत् ॥५२॥
पवमानः स्थनगरं प्रययो सानुगस्ततः । ततः प्रभृति तत्तीर्थं पावमानं 'सचिच्चिकम् ॥५३॥
गदाधरं कोटितोयमिति वेदविदो विदुः । कोटिकोटिगुणं कर्म कृतं तत्र भवेद्गुणाम् ॥५४॥

इति महापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पावमानचिच्चिकगदाधरकोटितोयवर्णनं

नाम चतुःपट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—पक्षी चिच्चिक ने उस नृपति से ऐसा कहा और राजा ने उस पक्षी को उस देव गदाधर और गौतमी गंगा का दर्शन करा दिया । तदनन्तर चिच्चिक ने गौतमी में स्नान कर उस त्रैलोक्य-पावनी गंगा से कहा ॥४७-४८॥

चिच्चिक ने कहा—गङ्गे ! गौतमि ! मनुष्य जब तक त्रिमुक्ता-पावनी तुमको नहीं देखता है तभी तक उसको इस लोक में या परलोक में पापी कहा जाता है । इसलिये श्रेष्ठ नदी ! इस प्रकार अपराध करने वाले मेरा भी उद्धार करो । हे विष्णु के चरणकमल से उत्पन्न होने वाली ! इस ससार में तुम्हारे बिना देहधारियों के लिये कहीं पर और कोई सहाय (गति) नहीं है ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार श्रद्धा से विशुद्ध आत्मा वाले, और एकमात्र गंगा की शरण में रहने वाले उस ब्राह्मण ने 'गङ्गे ! मेरी रक्षा करो इस प्रकार हृदय में ध्यान करते हुए गंगा में स्नान किया । तत्पश्चात् भगवान् गदाधर को नमस्कार कर पर्वतनिवासियों के देखते देखते उसी समय वह पक्षी पवमान से विदा की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया । तब पवमान भी अनुचरों के साथ अपने नगर को चला गया । उस समय से वह तीर्थ पवमान चिच्चिक और कोटितोय इन नामों से वेदज्ञों द्वारा पुकारा जाने लगा । वहाँ मनुष्य के किये हुए कर्म कोटि कोटि गुना फल देते हैं ॥५१-५४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पवमान चिच्चिक-गदाधर-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ बीसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६४॥

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम् । सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम् ॥१॥
 आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता । छायाऽपि भार्या सवितुस्तस्याः पुत्रः शनैश्चरः ॥२॥
 तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापरूपिणी । तां कन्यां सविता कस्मै ददामोति मतिं दधे ॥३॥
 यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरुः प्रभुः । तच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया ॥४॥
 एयं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता ॥५॥

विष्टिरुवाच

बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरुपिणे । स कृतार्थो भवेत्लोके न चेद्दुष्कृतवान्पिता ॥६॥
 चतुर्थद्विस्तरादूर्ध्वं यावन्न दशमात्ययः । तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यं प्रयत्नतः ॥७॥
 श्रीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने । उवाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ॥८॥
 एतच्चेदन्यथा कुर्यात्पिता स निरयो सदा । धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर ॥९॥
 नरकस्थेव मूर्खाणां कामोपहतचेतसाम् । एकतः पृथिवी कृत्स्ना शशैलवनकानना ॥१०॥

अध्याय १६५

भद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब अनिष्टों को दूर करने वाला, सब पापों को शान्त करने वाला तथा महान् शान्ति को देने वाला भद्रतीर्थ नामक एक तीर्थ है। त्वाष्ट्रा की पुत्री त्वाष्ट्री सूर्य की प्रिय एवं पतिव्रता भार्या थी। छाया भी उन्हीं की भार्या थी जिसका पुत्र शनैश्चर है। उसकी अति कुरूप और भयकर आकार वाली विष्टि नाम की वहिन थी। सूर्य 'वह कन्या को किसे दूँ' यह सोचने लगे। लोक गुरु प्रभु सूर्य जिस-जिसको देना चाहते थे सभी मुनिकर मही कहते थे कि 'ऐसी भीषण भार्या को लेकर हम क्या करेंगे।' यह दशा देख कर एक दिन विष्टि दुःखी होकर पिता से बोली ॥१-५॥

विष्टि ने कहा—जो पिता अपनी बाला (छोटी अवस्था की) कन्या सुरूप वर को देता है वह लोक में वृत्तव्य हो जाता है, अन्यथा पिता पाप का भागी होता है। चौथे वर्ष के बाद जबतक दसवाँ न बीत जाय तब तक पिता को कन्या का विवाह यत्नपूर्वक कर देना चाहिए। श्रीमान्, विद्वान्, युवक कुलीन, यशस्वी, उदार और माता-पिता या अभिभावक वाले घर को ही कन्या देनी चाहिये। जो इसके विपरीत कार्य करता है वह सर्वदा नरक भोगता है। भास्कर ! विद्वानों के लिये भी कन्या धर्म का साधन है। कामसे दग्ध हृदय वाले मूर्खों के लिए कन्या नरक का

स्वलंकृतोपाधिहीना सुकन्या चैकतः स्मृता । विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि ॥११॥
 न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत् । विवाहातिश्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ॥१२॥
 तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कल्पते । यावत्लज्जां न जानाति यावत्क्रोडति पांशुभिः ॥१३॥
 तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पितरोरधोगतिः । पितुः स्वरूपं पुनः स्याद्यः पिता पुन एव सः ॥१४॥
 आत्मनः सुखिता लोको को न कुर्यात्करोति च । यत्कन्यायां पिता कुर्याद्दानं पूजनमीक्षणम् ॥१५॥
 यत्कृतं तत्कृतं विद्यात्तासु दत्तं तदक्षयम् । यद्वत्तं तासु कन्यासु तदानन्त्याय कल्पते ॥१६॥
 पुत्रेषु चैव पौत्रेषु को न कुर्यात्सुखं रये । करोति यः कन्यकानां स संपद्भाजनं भवेत् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

एवं तां वादिनीं कन्यां विष्टि प्रोवाच भास्करः

॥१८॥

सूर्य उवाच

किं करोमि न गृह्णाति त्वाकश्चिद्भीयणाकृतिम् । कुलं रूपं वयो यित्तं विद्यां वृत्तं सुशीलताम् ॥१९॥
 मियः पश्यन्ति सबन्धे विवाहे स्त्रीषु पुत्रे च । अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणैः शुभे ॥
 किं करोमि वव दास्यामि वृथा मा धिक्करोमि किम् ॥२०॥

साधन है । एक ओर सौल, वन तथा उपवन से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी है तो दूसरी ओर अलकारी से अलंकृत विकार-हीन सुकन्या । जो व्यक्ति कन्या, अथवा गौ और तिल को बेचता है, उसका रौरव आदि नरक से कभी भी उद्धार नहीं होता । साथ ही कन्या के विवाह-धर्म का अतिक्रमण कभी मीनही होना चाहिये । ऐसा करने से कन्या के पिता को जो पाप होता है, उसको कौन कह सकता है ? जब तक कन्या लज्जा करना नहीं जानती, जब तक वह घूल मिट्टी से खेलती रहती है, तब तक कन्या का दान बर देना चाहिये । यदि ऐसा नहीं होता तो पिता-माता की अधोगति होती है । पिता का स्वरूप पुन है । जो पिता है वही पुत्र है । लोक में अपने को सुखी बनाना कौन नहीं चाहेगा या नहीं चाहता ? परन्तु पिता कन्या के लिये जो कुछ दान, पूजन, दशन (वर निरीक्षण) आदि करता है वही करना (कार्य) उत्तम समझा जाता है । जो कन्या के लिये दिया जाता है वह अक्षय दान है और वह अनन्त फल प्रदान करता है । खै ! पुत्र और पौत्र के सुख के लिये कौन नहीं प्रयत्न करता परन्तु जो कन्या के सुख के लिये प्रयत्न करता है वही सम्पत्ति का प्रियपात्र होता है अर्थात् वही धनवान् होता है ॥१६-१७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने वाली उस कन्या विष्टि से भास्कर ने कहा ॥१८॥

सूर्य ने कहा—क्या करूँ ? तुम भयङ्कर आकृति वाली को कोई भी ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं होता । स्त्री और पुरुषों के विवाह में परस्पर के कुल रूप अवस्था, धन विद्या, व्यवहार और सौजन्य को देखा जाता है । शुभे ! हम लोगों में और सब कुछ है परन्तु केवल तुममें कोई गुण नहीं है । क्या करूँ ? कहाँ तुमको दूँ ? वयो वृथा मुझे धिक्कार रही हो ? ॥१९-२०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा पुनस्ता च विष्टिं प्रोवाच भास्कर

॥२१॥

सूर्य उवाच

यस्मै कस्मै च दातव्या त्व वै यद्यनुमन्यते । दीयसेऽथ मया विष्टे अनुजानीहि मा तत ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पितर प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुत्रा धन सुखम् । आयू रूप च सप्रीतिर्जायते प्रावतनानुगम् ॥२३॥
यत्पुरा विहितं कर्म प्राणिना साध्यसाधु वा । फल तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवति ॥२४॥
स्वदोष एव तत्पित्रा परिहर्तव्य आदरात् । तादृगेव फल तु स्याद्यादृगाच्चरित पुरा ॥२५॥
तस्मात्तद्दानसयन्य स्ववशानुगत पिता । करोति शेष देवेन यद्भाव्य तद्भूविद्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा दुहितुर्वाक्य त्वष्टु पुत्राय भीषणाम् । विश्वरूपाय ता प्रादाद्विष्टिं लोकभयकरीम् ॥२७॥
विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृतिः । एव मिथ सचरतो क्षीलरूपसमानयो ॥२८॥
प्रीति कदाचिद्वैद्यस्य वपत्योरभवन्मिय । गण्डो नामाभवत्पुत्रो ह्यतिगण्डस्तथैव च ॥२९॥
'रवताक्ष शोधनश्चैव ध्ययो दुर्मुख एव च । तेभ्य कनीयानभवद्वर्षणो नाम पुण्यभाक् ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—एसा कहकर पुन भास्कर ने उस विष्टि से कहा ॥२१॥

सूर्य ने कहा—तुम यदि इस बात कलिय अनुमति दो कि जिस किसी के हाथ मुझ ने दिया जाय ता आज ही मैं किनाका द देता हूँ । विष्टे ! केवल मुझ अपनी स्वीकृति दो । ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—उस विष्टि ने अपने पिता से कहा—भता पुत्र धन सुख आयु रूप प्रीतिसद्वपहृत् क विय गये कर्मों का अनुसार ही हाते हैं । प्राणी पूव जन्म में जो अच्छा या बुरा कर्म करते हैं दूसर जन्म में भी उगा के अनुसार फल पत हैं । इसलिय पिता का आदर पूवक अपन दोषों का ही परिहार करना चाहिये । फल ता वैसा ही होगा जैसा कि पूव जन्म में किया गया है । इसलिये पिता अपने वग के अनुरूप ही कर्मों दान-सम्बन्ध करे गये देव के अनुसार जो हूने को होगा वह होगा ही ॥२३ २४॥

ब्रह्मा बोले—पुत्री की बात सुनकर सूर्य ने उस लोक भयकरी विष्टि को त्वष्टा पुत्र विश्वरूप के हाथ दे दिया । विश्वरूप भा उसी की तरह भयकर और भीषण आकार वाला था । इस प्रकार समान स्वभाव और रूप वाले दोनों परस्पर प्रीतिपूवक व्यवहार करने थे परन्तु किसी समय उन दोनों दम्पति में वषम्य (मन मुटाव) हो गया । उनसे गण्ड अतिगण्ड रवताक्ष नामक व्यध और दुर्मुख नामक पुत्र हुये । सबग छाटा हृषण नामक पुत्र पुण्यात्मा पा । वह सुशील माग्यवान् गात गुड हृदय और पवित्र पुत्र किसी समय दम गृह के देखने

सुत सुशील सुभग शान्त शुद्धमति शुचि । स कदाचिद्यमगृह द्रष्टु मातुलमभ्यगात् ॥३१॥
स ददर्श बहुञ्जन्तून्स्वर्गस्यानिव दुःखिन । स मातुल तु पप्रच्छ नत्वा धर्मं सनातनम् ॥३२॥

हर्षण उवाच

क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते नरके च के ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

एव पृष्टो धर्मराज सर्वं प्राह यथार्थवत् । तत्कर्मणा गतिं सर्वामशेषेण न्यवेदयत् ॥३४॥

यम उवाच

विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम् । न ते पश्यन्ति निरयं कदाचिदपि मानवा ॥३५॥
न मानयन्ति ये शास्त्रं नाऽऽचारं न बहुश्रुतान् । विहितातिश्रमं कुर्युर्मे ते नरकगामिन ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षण पुनरब्रवीत् ॥३७॥

हर्षण उवाच

पिता त्वाप्तो भीषणश्च माता विष्टिश्च भीषणा । भ्रातरश्च महात्मानो येन ते शातबुद्धय ॥३८॥
सुरूपाश्च भविष्यन्ति निर्दोषा मङ्गलप्रदा । तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कर्ताऽस्मि सुरोत्तम ॥३९॥

के लिये मामा यम के यहा गया । उसने वहाँ बहुत से प्राणियों को स्वर्ग के समान सुख भोगते तथा बहुतो को दुःखी देखा । उसने मामा को प्रणाम कर उनसे सनातन धर्म के विषय में पूछा ॥२७-३२॥

हर्षण ने कहा—तात ! ये कौन हैं जो सुखी हैं और ये कौन हैं जो नरक में या नरका भोग रहे हैं ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार पूछने पर धर्मराज यम ने उनके कर्मों की सब गति को ठीक-ठीक पूर्णरूप से कह दिया ॥३४॥

यम बोले—जो कमी भी विहित (उचित या वेद विहित) कर्मों को नहीं छोड़ते हैं वे मनुष्य कमी भी नरक में नहीं जाते हैं । जो शास्त्रों को नहीं मानते हैं आचार और बहुश्रुतों (पंडितों) का आदर नहीं करते हैं और विहित कर्मों का उल्लंघन करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—उस हर्षण ने धर्मराज की बात सुनकर पुनः कहा ॥३७॥

हर्षण ने कहा—मेरे अग्रज भीषण पिता भीषण माता विष्टि तथा भाई जिस उपाय से शान्त-बुद्धि महात्मा, सुरूप निर्दोष और कल्याणदायक हो जाय उस कम को बतलाइये । सुरोत्तम ! मैं उन वार्यों को आज ही कहूँगा । अथवा मैं उनके पास नहीं जाऊँगा । यह सुनकर धर्मराज ने उस शुद्धबुद्धि हर्षण से कहा—तुम वास्तव

अनया तान्न गच्छेममित्युक्तं प्राह धर्मराट् । हर्षणं शुद्धबुद्धि त हर्षणोऽस्ति न सशय ॥४०॥
 बहव स्य सुता केचिन्नैव ते कुलतन्तव । एक एव सुत कश्चिद्येन तदधिपते कुलम् ॥४१॥
 कुलस्याऽऽधारभूतो यो य पित्रो प्रियकारक । य पूर्वजानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गद ॥४२॥
 यस्मात्त्वयाऽनुरूप मे प्रोक्त मातामह प्रियम् । तस्मात्त्व गौतमीं गच्छ स्नात्वा नियतमानस ॥४३॥
 स्तुहि विष्णु जगद्योनि शान्त प्रीतेन चेतसा । स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्टं प्रदास्यति ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षणो गौतमीं ययौ । शुचिस्तुष्ट्याव देवेश हरि प्रीतोऽभवद्धरि ॥४५॥
 हर्षणाय' ततः प्रादात्कुलभद्रं ततस्तु स । सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वकं भद्रमस्तु त ॥४६॥
 तद्ब्रूया प्रोच्यते विष्टिं पिता भद्रस्तया सुता । ततः प्रभृति तत्तीर्थं भद्रतीर्थं तदुच्यते ॥४७॥
 सर्वमङ्गलदं पुसा तत्र भद्रपतिर्हरि । तत्तीर्थसेविनां पुसा सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥
 मङ्गलं कनिधि साक्षाद्देवदेवो जनार्दन ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भद्रतीर्थवर्णनं नाम

पञ्चपष्टपदिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

गौतमीमाहात्म्ये षण्णवतितमोऽध्यायः ॥१६॥

य हर्षण (आनन्द देन वाला) हो । कुल में बहुत सारे पुत्र हो जाते हैं परन्तु व कुलतन्तु (कुल की मर्यादा बढाने वाले) नहीं होते । वह कोई एक ही पुत्र होता है जिससे कुल की रक्षा होती है । जा पुत्र कुल का आधारभूत है जो माता पिता का प्रिय करने वाला है और जो पूर्व पुरुषों का उद्धार करता है वही पुत्र है अथवा कुल के लिए विपत्ति है । जिसलिए तुमने अपने मातामह को प्रिय लगने वाली और अनुरूप बात प्रसन्न मूछी है इगर्गिय तुम गौतमी का पास जाओ । उसमें स्नान कर एवाग्र होकर प्रसन्न चित्त स जगन् के आदि कारण मान विष्णु की स्तुति करो । वे यदि तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम्हारे सब मनारथों को पूरा कर दग ॥८६॥

ब्रह्मा बोले—धर्मराज की इन बातों को सुनकर हर्षण गौतमी का पास गया । पवित्र होकर वह हरि की स्तुति की । हरि उगकी स्तुति स प्रसन्न हो गये । उन्होंने हर्षण को कुल का मंगल का वर्णन किया और कहा कि तुम लोगो का सब अमंगल नष्ट हो जाय तथा कल्याण हो । इस कारण वह विष्टि नाम पिता पुत्र और पुत्र भी शुभ हो गये । उस समय से वह तीर्थ भद्रतीर्थ कहा जाता है । वहाँ मनुष्यों को सब प्रकार का कल्याण दन वाल मंगल का एकमात्र कोण साक्षात् देवाधिपति जनार्दन विष्णु निवास करत है । उगतीय की सेवा करने वाला योगी को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥४८॥

श्रीब्रह्मपुराण म भद्रतीर्थ वर्णन नामक एक सो पैगवकी अध्याय समाप्त ॥१६५॥

अथ पट्पण्ड्यधिकशततमोऽध्यायः

पतत्रित्तीयवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पतत्रित्तीयमाख्यात रोगघ्नं पापनाशनम् । तस्य श्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१॥
वभूवतुः कश्यपस्य सुतावरुणबोश्वरी । संपातिश्च जटायुश्च संभवेतां तदन्वये ॥२॥
ताक्ष्यप्रजापतेः पुत्रावरुणो गरुडस्तथा । तदन्वये च संभूतः संपातिः पतगोत्तमः ॥३॥
जटायुरिति विख्यातो ह्यपरः सोदरोऽनुजः । अग्न्योऽन्यस्पर्धया युक्तावुन्मत्तो स्ववलेन तौ ॥४॥
सजगमनुदिनकरं नमस्कृतुं विहायसि । यावत्सूर्यस्य सामीप्यं प्राप्तौ तौ विहगोत्तमौ ॥५॥
दग्धपक्षादुभौ श्रान्तौ पतितौ गिरिर्मूर्धनि । बान्धवौ पतितौ दृष्ट्वा निश्चेष्टौ गतचेतसौ ॥६॥
तावद्दुःखाभिभूतौऽसावरुणः प्राह भारकरम् । तौ दृष्ट्वा त्वरुणः सूर्यं प्राहेदं पतितौ भुवि ॥
आश्वासयन्तौ तिग्मांशौ यावन्नंतौ मरिष्यतः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा दिनकरो जीवयामास तौ खगौ । गरुडोऽपि तपोः श्रुत्वा अवस्थांसह विष्णुना ॥८॥
आगत्याऽऽश्वासयामास सुखं चक्रे च नारद । सर्वं एव तदा जग्मुर्गङ्गा तापापनुत्तये ॥९॥

अध्याय १६६

पतत्रित्तीय का वर्णन

ब्रह्मा बोले—रोगी तथा पापी को नष्ट करने वाला पतत्रित्तीय नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है । उसके (नाम को) सुनने से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । कश्यप ने अरुण और ईश्वर दोपुत्र हुए । उन्हीं के कुल में सम्पाति और जटायु भी थे । ताक्ष्य प्रजापति ने पुत्र अरुण और गरुड हुये । उस वंश में पक्षिश्रेष्ठ संपाति भी हुआ । उसका जटायु नामसे विख्यात दूसरा छोटा सगा भाई था । वे अपने घर से उन्मत्त थे और सर्वदा परस्पर प्रतिस्पर्धा (होड़) किया करते थे । व दोनो आकाश में सूर्यदेव को नमस्कार करने के लिये उड़े । ज्यों ही दोनों पक्षि-श्रेष्ठ सूर्य के समीप गये त्यों ही उनके पंख जल गये और वे थक कर पंचत की चाटी पर गिर पड़े । अपने बन्धुओं को मूर्च्छित और निश्चेष्ट अवस्था में गिरते देखकर अरुण को अत्यन्त दुःख हुआ । वह अरुण दुःख से कातर हो भूमि पर गिरे उन दोनों की ओर लक्ष्य करके सूर्य से बोला— तीक्ष्ण किरण वाले ! इन चारों को बचाइये ताकि वे मरने न पायें ॥१-७॥

ब्रह्मा बोले—दिनकर ने ऐसा ही हो यह कहकर उन दोनों पक्षियों को जिला दिया । नारद ! विष्णु सहित गरुड ने भी उन दोनों की शोचनीय अवस्था का पता पाया और आकर उन दोनों को आश्वासन दिया और सुनी बनाया । तब सभी उसी समय ताप की शान्ति के लिये सगा के पास गये । जटायु अरुण, संपाति, गरुड,

जटापुश्चकारुणश्चैव संपातिर्गरुडस्तथा । सूर्यो विष्णुस्तत्प्रथमो तत्तीर्थं बहुपुण्यदम् ॥१०॥
पतत्रितोयंमाह्वयातं विपद्घ्नं सर्वकामदम् । स्वयं सूर्यस्तथा विष्णुः सुपर्णेनारुणेन च ॥११॥
आसते गीतमीतीरे तथैव वृषभध्वजः । त्रयाणामपि देवानां स्थितेस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥१२॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा नमस्कुर्व्यात्सुरानिमान् । आधिष्ठाधिधिविनिर्मुक्तः स परं सौख्यमाप्नुयात् ॥१३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पतत्रितोयंवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१६६॥

गीतमीमाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥१७॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विप्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विप्रतीर्थमिति ह्यातं तथा नारायणं विदुः । तस्याऽऽह्वयानं प्रवक्ष्यामि शृणु विस्मयकारकम् ॥१॥
अन्तर्वेद्या द्विजः कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः । तस्य पुत्रा महाप्राज्ञा गुणरूपदयान्विताः ॥२॥
तेषां कनीयान्यो भ्राता श्रान्तो गुणगर्णवृत्तः । आसन्निव इति ह्यातः सर्वज्ञानो महामतिः ॥३॥

सूर्यं तथा (स्वयं) विष्णुं उक्तस्थान परमये । इसलिये अत्यन्त पुण्य देने वाला, विषाको दूर करने वाला और
सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला वह तीर्थ पतत्रितोयं नाम से प्रसिद्ध हो गया । गीतमी के तीर पर उसी तीर्थ
में अरुण और गरुड के साथ सूर्य तथा विष्णु एवं वृषभध्वज शकर रहते हैं । तीनों देवों के रहने के कारण वह तीर्थ
अति उत्तम तीर्थ हो गया है । उसमें स्नान कर पवित्र हो जो इन देवों को नमस्कार करता है वह सम्पूर्ण आधिपत्य
और व्यापियों से छूट कर महान् सुख को प्राप्त करता है ॥ ८ १३ ॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पतत्रितोयं-वर्णन नामक एक सो छठठठां अध्याय समाप्त ॥१६६॥

अध्याय १६७

विप्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—विप्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जिसको नारायणतीर्थ भी कहते हैं । उसका आश्चर्य-
जनक आस्थान को कहता हूँ, सुनो—ब्रह्मवर्ण (मय) और यमुना के बीच के प्रदेश) में कोई वेदावा पारदर्शी
ब्राह्मण रहता था । उसने पुत्र महाबुद्धिमान् गुण, रूप और दया समुत्तम थे । उनमें छोटे नार्द का नाम आस-
न्निव था, जो श्रान्त, गुणवान्, सर्वज्ञ तथा महाबुद्धिमान् था । पिता आसन्निव के विवाह के लिये प्रयत्न कर रहे

विवाहाय पिता तस्मा आसन्दिवाय यत्नवान् । एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ सुप्त त द्विजपुत्रकम् ॥४॥
 अविष्णुस्मरण सौम्यशिरस्कमसमाहितम् । आसन्दिव क्रूररूपा राक्षसी कामरूपिणी ॥५॥
 तमादायागमच्छीघ्र गीतम्या दक्षिणे तटे । श्रीगिरेरुत्तरे 'पारे बहुब्राह्मणसेवितम् ॥६॥
 नगर धर्मनिलय लक्ष्म्या निलयमेव च । तत्र राजा बृहत्कीर्ति सर्वक्षत्रगुणान्वित ॥७॥
 तस्यामितक्षेमसुभिक्षयुक्त, निशावसाने द्विजपुत्रयुक्ता ।
 सा राक्षसी तत्पुरमाससाद, मनोज्ञरूपाणि विभक्ति, नित्यम् ॥८॥
 सा कामरूपेण चरत्यशेषा, महोमिमा तेन सम द्विजेन ।
 गोदावरीदक्षिणतीरभागे, बृद्धाकृतिस्त द्विजमाह भीमा ॥९॥

राक्षस्युवाच

एषा तु गङ्गा द्विजमुख्य सध्या, उपास्यता विप्रवरं समेत्य ।
 यथोचित विप्रवरास्तु काले, नोपासते यत्नत एव सध्याम् ॥१०॥
 नीचास्त एवाभिहिता सुरेशैरन्त्यावसायिप्रवरास्त एते ।
 अहं जनित्री तव चेति वाच्य, नो चेदिदानीं त्वमुपैषि नाशम् ॥११॥
 मद्वाक्यकर्ताऽसि यदि द्विजेन्द्र, सुख करिष्ये तव यत्प्रिय च ।
 पुनश्च देश निलय गुरुद्वय, सप्रापयिष्ये ननु सत्यमेतत् ॥१२॥

शे । इसी बीच एक रात बिना विष्णु का स्मरण किये असावधानीपूर्वक सोये उस गुप्तर सिर वाले ब्राह्मण पुत्र आसन्दिव को एक स्वेच्छा से रूप धारण करने वाली तथा भयकर रूप वाली राक्षसी उठाकर गोदावरी के दक्षिण तट पर ले गई । श्रीगिरि के उत्तरतट पर बहुत ब्राह्मणों से मुसेवित तथा धर्म वा के द्र रूप एक नगर है जहां मानो लक्ष्मी का ही आवास है । वहां समस्त राज गुणों से सम्पन्न बृहत्कीर्ति नामक राजा है । राजा के अंत में उसी कल्याणमय तथा धन धान सम्पन्न नगर में नित्य मनोहर रूपों को धारण करने वाली वह राक्षसी ब्राह्मण पुत्र के साथ जा पहुंची । अनंतर वह स्वेच्छा से रूप धारण कर उस द्विज के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करती हुई गोदावरी के दक्षिण तट पर आयी । वहां बृद्धा का रूप धरानकर वह भयानक राक्षसी ब्राह्मण से कहने लगी ॥११॥

राक्षसी बोली—द्विजवध यह गंगा है । ब्राह्मणों को चाहिये कि यहां आकर साध्वीपासना करें । जो विप्र वर समय पर सावधानी से सध्या की उपासना नहीं करत है उनको देवताओं ने नीच तथा चाण्डाल तुल्य बतलाया है । मैं तुम्हारी माता हूँ—यह तुम्हें कहन पड़गा अथवा तुम तत्क्षण मर्त्य को प्राप्त करोगे । द्विज श्रेष्ठ । यदि तुम मेरी बात मानोगे तो मुझ भोगों । मैं तुम्हारी कामनाओं को पूरा करूँगी और पुन तुम्हें अपने देश में पहुंचाकर गुरुजनों से मिला दूँगी यह सत्य बात है ॥१० १२॥

ब्रह्मोवाच

स प्राह का त्वं द्विजपुंगवोऽपि, सोवाच तं राक्षसी कामरूपा ।
विश्वासयन्ती शपथंरनेकैस्तं भ्रान्तचित्त मुनिराजपुत्रम् ॥१३॥
कङ्कालिनी नाम जगत्प्रसिद्धा, विप्रोऽसि तामाह निवेदितं यत् ।
तदेव कर्ताऽस्मि न संशयोऽत्र, यत्तत्प्रियं वच्मि करोमि चैव ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा राक्षसी कामरूपिणी । वृद्धा तयाऽपि चार्वङ्गी दिव्यालंकारभूषणा ॥१५॥
द्विजमादाय सर्वत्र मत्सुतोऽयं गुणाकरः । एवं वदन्ती सर्वत्र याति वक्ति करोति च ॥१६॥
तं विप्रं रूपसौभाग्यवयोविद्याविभूषितम् । तां च वृद्धां गुणोपेतामस्य मातेति मेनिरे ॥१७॥
तत्र द्विजवरः कश्चित्स्वा कन्यां भूषणान्विताम् । राक्षसीं तां पुरस्कृत्य प्रादात्तस्मै द्विजातये ॥१८॥
सा कन्या त पति प्राप्यकृतार्थाऽस्मीत्यचिन्तयत् ।
स द्विजोऽपि गुणैर्युक्तां पत्नीं दृष्ट्वा सुदुःखितः ॥१९॥

द्विज उवाच

मामियं भक्षयेदेव राक्षसी पापरूपिणी । किं करोमि ब्रह्म गच्छामि कस्यैतत्कथयामि वा ॥२०॥
महत्संकटमापन्न रक्षयिष्यति कोऽत्र माम् । भार्या ममेयं कल्याणी गुणरूपवयोयुता ॥
एनामप्यशुभाऽकस्माद्भूक्षयिष्यति राक्षसी ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—उस ब्राह्मण ने भी पूछा—‘तुम कौन हो ? तब वह कामरूपिणी राक्षसी अनेक शपथों से विश्वास दिलाती हुई उस भ्रान्त चित्त वाले मुनिराज पुत्र से कहने लगी— मैं कङ्कालिनी नाम मैं संसार में विख्यात हूँ ।’ तब ब्राह्मण ने भी उससे निवेदन किया—‘तुम सदेह मत करा । जो तुम कहोगी वही मैं करूँगा’ ॥१३-१४॥

ब्रह्मा बोले—विप्र के वचन सुनकर स्वेच्छा से रूप बदाने वाली राक्षसी वृद्धा होती हुई भी मुन्दर अगो एवं दिव्य अलंकारों से विभूषित हो गई । फिर वह ब्राह्मण को लेकर यह मेरा गुणवान् पुत्र है ऐसा कहती हुई सब जगह जाने बोलने और (वाय) करने लगी । लोगों ने समझा कि रूप सौभाग्य अवस्था तथा विद्या से सम्पन्न यह ब्राह्मण उसी सर्वगुण सम्पन्ना वृद्धा का पुत्र है । तब एक द्विजवर ने अलंकारों से युक्त अपनी कन्या को उसी राक्षसी के आगे उस ब्राह्मण को दे दिया । उस कन्या ने पति को पाकर साचा नि में कृतार्थ हो गई, पर वह ब्राह्मण गुणवती पत्नी को देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ ॥१५-१९॥

द्विज बोला—यह पापरूपिणी राक्षसी मुझे खा ही लेगी । क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे यह बात कहूँ ? महान् संकट उपस्थित हो गया है । कौन मेरी रक्षा करेगा ? यह मेरी भार्या कल्याणमयी तथा गुण, रूप एवं अवस्था से सम्पन्न है । इसे भी पतिपत्नी राक्षसी अचानक खा डालेगी ॥२०-२१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भार्या सा गुणशालिनी । वृद्धाऽप्यतिकुराधर्या सा गता कुञ्चित्तदा ॥२२॥
प्रश्रयावनता भूत्वा बाला चापि पतिव्रता । भर्तारं दुःखितं ज्ञात्वा पतिं प्राह रहः शनैः ॥२३॥

भार्योवाच

कस्मात्ते दुःखमापन्नं स्वामिस्तत्त्वं वदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

शनैः प्रोवाच तां भार्या यथावत्पूर्वविस्तरम् । किमक्यं प्रिये मित्रे कुलीनायां च योषिति ॥२५॥
भर्तृवाक्यं निशम्येदं प्रोवाच वदता वरा ॥२६॥

भार्योवाच

अनात्मनः सर्वतोऽपि भयमस्ति गृहेष्वपि । कुतो भयं ह्यात्मवतां किंपुनर्गोतमीतटे ॥२७॥
वसतां विष्णुभक्तानां विरक्तानां विवेकिनाम् । अत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा स्तुहि देवमनामयम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य गङ्गायां स्नात्वा विगतकल्मषः । तुष्टाव गौतमीतीरे द्विजो नारायण तथा ॥२९॥

द्विज उवाच

त्वमस्तरात्मा जगतोऽस्य नाथ, त्वमेव कर्ताऽस्य मुकुन्द हर्ता ।
त्वं पालकः पालयसे न दीनमनाथबन्धो नरसिंह कस्मात् । ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—इसी बीच (एक दिन) वह भयकर वृद्धा कही चली गई। वह गुणवती, प्रीडा तथा पतिव्रता पत्नी स्वामी को दुःखित जानकर एकान्त में अत्यन्त नम्रतापूर्वक पति से धीरे-धीरे कहने लगी ॥२२-२३॥

भार्या बोली—स्वामिन् ! किससे तुम्हें दुःख हुआ है ? मुझे सही सही बताओ ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—प्रिये ! मित्र तथा कुलीन स्त्री से क्या गोपनीय है ? ब्राह्मण ने धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक सब बातें बता दी ॥२५-२६॥

भार्या बोली—अज्ञानी के लिए घर पर भी भय है। किन्तु ज्ञानियों के लिये कहीं भय नहीं है। उस पर भी गोदावरी के तट पर निवास करने वाले विष्णु-भक्त, विरक्त तथा वैकी पुरुषों की तो भय हो ही नहीं सकता। तुम इस (गोदावरी) में स्नान करके पवित्र होकर कल्याणदाता भगवान् की स्तुति करो ॥२७-२८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर ब्राह्मण गंगा में स्नान करके निष्पाप होकर गोदावरी के तट पर नारायण की स्तुति करने लगा ॥२९॥

द्विज बोला—नाथ ! आप ही ससार के अन्तरात्मा हैं। मुकुन्द^१ आप ही इसके कर्ता, हर्ता तथा पाल-यिता हैं। दीनबन्धो ! नरसिंह ! आप मुझ दीन का पालन क्यों नहीं करते ? उसकी यह प्रार्थना सुनकर ससार

श्रुत्वंतत्प्रार्थनं तस्य 'जगच्छोकनिवारण । नारायणोऽपि ता पापां निजघान स राक्षसोम् ॥३१॥
सुदर्शनेन चक्रेण सहस्रारेण भास्वता । तस्मै प्रादाद्वरानिष्टान्प्रापयच्च' गुरु प्रभु ॥३२॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं विप्र नारायण विदुः । स्नानदानेन पूजार्थैर्यत्र सिध्यति वाञ्छितम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विप्रनारायणतीर्थवर्णनं नाम सप्तपट्य-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥१८॥

अथाष्टपट्यधिकशततमोऽध्यायः

भानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यात त्वाष्ट्र माहेश्वर तथा । ऐन्द्र याम्य तथाऽऽग्नेय सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
अभिष्टुत इति ख्यातो राजाऽऽसीतिप्रयदर्शन । हयमेधेन पुष्येन यष्टुमारब्धवान्सुरान् ॥२॥

के शोक निवारण करने वाले नारायण ने अपने जमकते हुए सहस्रो अरो (दाँता) वाले सुदर्शन चक्र से उस राक्षसी का काम तमाम कर डाला और ब्राह्मण को वरदान देकर उसे अपने गुरुजनों के पास पहुँचा दिया। तब से लेकर बहुतीर्थं विप्र तथा नारायण नाम से प्रसिद्ध हुआ जहाँ स्नान दान पूजा आदि करने से अभीष्ट सिद्धि होती है ॥३० ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य वर्णन प्रसंग मे विप्र नारायण-तीर्थ वर्णन नामक
एक सौ सरसठवा अध्याय समाप्त ॥१६७॥

अध्याय १६८

भानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—समस्त पापों के नाश करने वाले त्वाष्ट्र माहेश्वर ऐन्द्र याम्य तथा आग्नेय तीर्थ भानुतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हैं। अभिष्टुत नामक एक सुन्दर राजा था। उसने पवित्र अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया। उस

तत्रत्विज. षोडश स्युर्बसिष्ठात्रिपुरोपमाः । क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमिः कथं भवेत् ॥३॥
ब्राह्मणे दीक्षिते राजा भुव दास्यति यज्ञियाम् । भूपतो दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचते ॥४॥
याच्यो यमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी । केनाप्यतो न कार्यं व क्षत्रियेण विशेषतः ॥५॥
एवं मीमांसमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम् । तत्र प्राह महाप्राज्ञो वसिष्ठो धर्मवित्तमः ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

राज्ञि दीक्षायमाणे तु सूर्यो याच्यो भुवं प्रति । देहि मे देव सवितर्यजनं देवतोचितम् ॥७॥
देवं क्षत्रमसि ब्रह्मभूतनाथ नमोऽस्तु ते । याचितः सविता राजा देवानां यजनं शुभम् ॥८॥
वदात्येव ततो राजन्प्रार्थयेशं दिवाकरम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेवं दिवाकरम् । श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशजात्मकं रविम् ॥१०॥

राजोवाच

देवानां यजनं देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते ॥११॥

ब्रह्मोवाच

क्षत्र देव यत. सूर्यो दत्ता भूर्भुवतेस्ततः । सविता देवदेवेशो ऽ ददामीत्यभ्यभाषत ॥१२॥
एवं करोति यो यज्ञ तस्य रिष्टिर्न काचन । तया वाजिमले सत्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥१३॥

यज्ञ म वसिष्ठ, अत्रि आदि सोऽह ऋत्विज हुए । वहाँ ब्राह्मणों म परस्पर यह विचार होने लगा कि क्षत्रिय के यजमान होने पर यज्ञभूमि की व्यवस्था कैसे की जाय, क्योंकि ब्राह्मण के यज्ञ करने पर तो क्षत्रिय यज्ञ भूमि देते हैं पर क्षत्रिय के यज्ञ करने पर कौन भूमि देगा ? और कौन माँगेगा ? यह याचना अत्यन्त अशुभ करने वाली तथा पापरूपिणी वही गई है । इसलिये विशेष कर किसी क्षत्रिय को यह यज्ञ करना ही नहीं चाहिये । (इस तरह के विवाद उपस्थित होने पर) वहाँ महापण्डित तथा धर्मवेत्ता वसिष्ठ बोले ॥१-६॥

वसिष्ठ ने कहा—राजा के दीक्षित होने पर सूर्य से भूमि की याचना की जा सकती है । जैसे—‘देव । सत्कर्मों मे लोगों के प्रेरक । देवतोचित यज्ञ भूमि मुझे प्रदान कीजिये । ब्रह्मन् । आप क्षत्रियों के देवता हैं । भूतनाथ । आपको नमस्कार है । इस प्रकार राजा द्वारा याचना करने पर सूर्य अवश्य देवोचित यज्ञ-भूमि देंगे । राजन् । इसलिये आप दिनकर की प्रार्थना करें ॥७-९॥

ब्रह्मा बोले—‘ऐसा ही हो यह कहकर राजा श्रद्धापूर्वक ब्रह्मा विष्णु तथा महेश रूप देवाधिदेव सूर्य की प्रार्थना करने लगा ॥१०॥

राजा ने कहा—दिनकर । देवताओं के लिय यज्ञभूमि मुझे प्रदान कीजिये । आपको नमस्कार है ॥११॥

ब्रह्मा बोले—जिसलिये सूर्य क्षत्रियों के देवता है अतः देवाधिपति सूर्य ने ‘मैं देता हूँ यह कहकर राजा को यज्ञ-भूमि दे दी । इस प्रकार जो यज्ञ करता है उसका किसी प्रकार अशुभ नहीं होता है । वेदपारगत विप्रों द्वारा

प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञा यथागाद्भूपतिं रविः । देवानां यजनं दातुं भानुतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥
त देवक्रतुमुत्कृष्टं हयमेघं सुरैर्युतम् । दैत्याश्च वनुजाश्चैव तथाऽन्ये यज्ञघातकाः ॥१५॥
ब्रह्मवेषधराः सर्वे गायन्तः सामगा इव । तेऽपि तत्र महाप्राज्ञाः प्राविशन्ननिवारिताः ॥१६॥
चमसानि च पात्राणि सोमं चपालमेव च । सोमपानं हविस्त्यागमृत्विजो भूपति तथा ॥१७॥
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुराः । तेऽपि चेष्टां न जानन्ति विश्वरूपं विनामुने ॥१८॥
विश्वरूपोऽपि पितरं प्राह दैत्या इमे इति । तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम् ॥१९॥

त्वष्टोवाच

गृहीत्वा चारिदभांश्च प्रोक्षयध्वं समन्ततः । ये निन्दन्ति मत्तं पुण्यं चमसं सोममेव च ॥२०॥
मया त्वपहताः सर्वे इत्युक्त्वा परिपिञ्चत ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तथा चक्रुः सुरगणास्त्वष्टा चापि तथाऽकरोत् । भस्मीभूतास्ततः सर्वे कांदिशीकास्ततोऽभवन् ॥२२॥
हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत् । ततः क्षीणायुषो दैत्याः प्रातिष्ठन्नुपितास्ततः ॥२३॥
यत्रैतत्प्राक्षिपद्धारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः । त्वाष्ट्रं तीर्थं तदाख्यात सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
त्वष्टुर्वाक्याच्छ्रुत्वा तदा दैत्याग्निजघान यमस्तदा । कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मन्युना ॥२५॥

राजा अभिष्टुत् से आरम्भ किये गये अश्वमेध यज्ञ में दिवाकर देवताओं के निमित्त यज्ञ भूमि देने के लिए राजा के निकट पहुँचे थे, इसलिये उस स्थान का नाम भानुतीर्थ पड़ा । देवताओं से युक्त उस उत्कृष्ट अश्वमेध नामक देवयज्ञ में विघ्न डालने के लिये दैत्य, दानव तथा दूसरे यज्ञ-विघ्न कर्ता जन्तु ब्राह्मणों का वेश बनाकर साम गान करते हुए-सबे वहाँ आये । उन्हें प्रवेश करने से किसी ने नहीं रोका । उनमें से कोई चमस पात्र, सोम चपाल (यज्ञिय पशुको बाँधने के लिए काष्ठ), सोमपान, हविस्त्याग मृत्विज तथा राजा की निन्दा करने लगा कोई (सामग्रियों को) फेंकने लगा और कोई हँसने लगा । उन राक्षसों के कृत्यों को सिवा विश्वरूप के और किसी ने नहीं समझा । तब विश्वरूप ने अपने पिता से कहा कि ये दैत्य हैं । पुत्र के वचन सुनकर त्वष्टा ने देवताओं से यह कहा ॥१२-१९॥

त्वष्टा बोले—कुश-जल लेकर सब ओर छिड़क दो । 'जो पवित्र यज्ञ, चमस तथा सोम की निन्दा करते हैं, वे सब मेरे द्वारा विनष्ट हों यह कहकर सर्वत्र जल से सिञ्चन करो ॥२०-२१॥

ब्रह्मा बोले—देवबृन्द तथा त्वष्टा ने भी वीरता ही किया । समस्त दैत्य भस्मसात् हो गये । उन्हें इतना भी पता नहीं रहा कि किस दिशा की ओर भागें । 'मैंने पापियों को मार दिया यह कहकर त्वष्टा ने जल फेंक दिया । तब क्षीणायु दैत्यसमूह कुपित होकर भाग निकले । जिस द्वार पर लोक-प्रजापति त्वष्टा ने जल फेंका, वह अखिल पापनाशन त्वाष्ट्र तीर्थ कहलाया । त्वष्टा के वाक्य से सबे दैत्यों को यम ने क्रुद्ध होकर कालदण्ड, चक्र तथा कालपाश से मार दिया । जहाँ वे दैत्य मारे गये, उस स्थान का नाम याम्यतीर्थ पड़ा । जहाँ अग्नि म हविष्य

यत्र ते निहता देवास्तत्तीर्थं याम्यमुच्यते । यत्राभवत्कृतु पूर्णो हुत्वाऽग्नौचामृत बहु ॥२६॥
 धाराभि शरमानाभिरखण्डाभिर्महाध्वरे । यत्राभवद्वल्यवाहस्तृप्तरतस्य ह्यभिष्टुत ॥२७॥
 अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम् । इन्द्रो मरुद्भिर्नृपति प्राहेद वचन शुभम् ॥२८॥
 त्व सग्राडभविता राजनुभयोरपि लोकयो । सखा मम प्रियो नित्य भविता नात्र सशय ॥२९॥
 स कृतार्थो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च तर्पणम् । कुर्यात्पितृणा प्रीत्यर्थं यमतीर्थे विशेषत ॥३०॥
 माहेश्वर तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुत शिव । भवितुमुक्तेन विप्रंश्च सर्ववर्मविशारदै ॥३१॥
 वैदिकैर्लोकिर्केशचैव मन्त्रं पूज्य महेश्वरम् । नृत्यैर्गीतेस्तथा वाद्यैरमृतं पञ्चसभयं ॥३२॥
 उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणै । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यं पुष्पैर्गन्धै सुगन्धिभि ॥३३॥
 पूजयामास देवेश विष्णु शम्भु धियंकया । तत प्रसन्नो देवेशो वरादवतुरोजसा ॥३४॥
 अभिष्टुत नरेन्द्राय भुक्तिमुक्तो उभे अपि । माहात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुस्तमम् ॥३५॥
 तत प्रभृति तत्तीर्थं शैव वेषणवमुच्यते । तत्र स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं विदुः ॥३६॥
 इमानि सर्वतीर्थानि स्मरेदपि पठेत् वा । विमुक्त सर्वपापेभ्य शिवविष्णुपुर व्रजेत् ॥३७॥
 भानुतीर्थे विशेषेण स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम् । तत्र तीर्थं महापुण्यं तीर्थानां शतमत्र हि ॥३८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भाग्यादिशततीर्थवर्णन नामाष्टपष्ट्य

धिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥

गीतमीमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्याय ॥१९१॥

ढालकर यज्ञ सम्पन्न किया गया और जहां महायज्ञ में वाण के समान अखण्ड धाराओं से अभिष्टुत द्वारा अग्निदेव तृप्त हुए उस स्थान का नाम अग्नितीर्थ पड़ा जो अश्वमेध के समान फलदायक है । तब इंद्र ने वायु के द्वारा राजा से यह गुण वचन कहलाया कि राजन ! तुम दोनों लोक के सम्राट् होगे और मेरे त्रियपान वनोगे इसमें कोई संशय नहीं । मृत्युलोक में वह व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है जो इंद्रतीर्थ में और विशप करके यमतीर्थ में पितरों की प्रीति के लिये तपण करता है ॥२२ ३०॥ माहेश्वर तीर्थ वह कहलाता है जहां अभिष्टुत ने शिव की पूजा की थी । जब अखिल कर्मा में निपुण विप्रों ने भक्तिपूर्वक वैदिक तथा लौकिक मन्त्रों नय गीत वाद्य पञ्चामृत अनेक उपहार दण्डवत् प्रणाम प्रदक्षिणा धूप दीप नैवेद्य पुष्प गन्ध तथा सुगन्धित द्रव्यों से देवताओं के स्वामी विष्णु तथा शंकर की एक ही भाव से पूजा की तब दोनों देवों ने राजा अभिष्टुत को वरदान के रूप में भोग और मोक्ष दोनों दिये तथा उस तीर्थ के माहात्म्य को भी गूढ़ा दिया । तब से लकर वह तीर्थ शैव और वष्णव दोनों नामों से पुकारा जाता है । वहाँ स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है । जो व्यक्ति इन सब तीर्थों का स्मरण या पाठ करेगा वह निखिल पापों से मुक्त होकर शिवलोक तथा विष्णुलोक को जाएगा । विशेष करके भानुतीर्थ का स्नान समस्त कामनाओं को पूरा करता है । उस तीर्थ में स्नान करने से महान पुण्य होता है । उसमें एक सौ तीर्थ वास करते हैं । ॥३१ ३८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रसंग में गानु आदि सौ तीर्थों के वर्णन-नामक

एक सौ अरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६८॥

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भिल्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भिल्लतीर्थमिति ख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम् । महादेवपदाम्भोजयुग्मभक्तिप्रदायकम् ॥१॥
 तत्राप्येवविधा पुण्यां कथां शृणु महामते । गङ्गाया दक्षिणे तीरे श्रीगिरेरुत्तरे तटे ॥२॥
 आदिकेश इति ख्यात ऋषिभिः परिपूजितः । महादेवो लिङ्गरूपी सदाऽऽस्ते सर्वकामदः ॥३॥
 सिन्धुद्वीप इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः । तस्य भ्राता घेब इति स चापि परमो ऋषिः ॥४॥
 तमादिकेशं वं देवं त्रिपुरारि त्रिलोचनम् । नित्यं पूजयते भक्त्या प्राप्ते मध्यन्दिने रवौ ॥५॥
 भिक्षाटनाय वेदोऽपि याति ग्रामं विचक्षणः । याते तस्मिन्द्विजवरे व्याधः परमधार्मिकः ॥६॥
 तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये मृगयां याति नित्यशः । अटित्वा विविधान्वेशान्मृगान्गृह्णन् यथासुखम् ॥७॥
 मुखे गृहीत्वा पानीयमभिवेकाय शूलिनः । न्यस्य मांसं धनुष्कोट्या श्रान्तो व्याधः शिवं प्रभुम् ॥८॥
 आदिकेशं समागत्य न्यस्य मांसं ततो बहिः । गङ्गा गत्वा मुखे वारिगृहीत्वाऽऽगत्य तं शिवम् ॥९॥
 यस्य कस्यापि पत्राणि करेणाऽऽदाय भवितुः । अपरेण च मांसानि नैवेद्यायै च तन्मनाः ॥१०॥
 आदिकेश समागत्य वेदेनार्चितमोजसा । पादेनाऽऽहृत्य तां पूजां मुखानीतेन वारिणा ॥११॥

अध्याय १६६

भिल्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भिल्लतीर्थ रोगनाशक, पापहारी तथा शिव के चरणमुगल में भक्ति बढ़ाने वाला है। महा-
 बुद्धिमान् । उसके बारे में भी इस प्रकार की एक पवित्र कथा सुनो। श्रीगिरि के उत्तर प्रदेश में गंगा के दक्षिण तट
 पर आदिकेश नाम से प्रसिद्ध, मुनियों से परिपूजित तथा समस्त कामनादायक शिवलिंग सदा विद्यमान रहते
 हैं। सिन्धुद्वीप नामक मुनि परम धर्मात्मा था। उसका वेद नामक भाई भी महान् ऋषि था। वह ऋषि त्रिपुर
 के सन्तु तथा तीन नेत्र वाले आदिकेश नामक शंकर देव की प्रतिदिन मध्याह्न काल में पूजा किया करता था। तत्प-
 श्चात् विद्वान् वेब भिक्षाटन करने के लिये गाँव की ओर चल देता था ॥१-५३॥ उस ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक
 परम धर्मात्मा व्याध उसी पवित्र पर्वत की गुफा में नित्य शिकार करता था। विविध प्रदेशों में पर्यटन करके
 मृगों को मारकर शिव को जल चढ़ाने के लिये मुख में जल लेकर घनुष में मांस को लटका कर वह श्रान्त व्याध
 आदिकेश नामक सर्वभक्तिमान् शिव के पास आता था। गंगा में जाकर वह मुख में जल भर कर भक्तिपूर्वक जिस-
 किसी वृक्ष का पत्र हाथ से तोड़ लेता था। फिर नैवेद्य के लिये मांस लेकर आदिकेश के समीप आता था और
 वेद द्वारा पूजित शिव को लात मारकर उसकी पूजा को नष्ट करके अपने मुख-जल से शिव को नहलाता था। तब
 पत्थों से शंकर की पूजा करके उन्हें मांस चढ़ाता था और कहता था कि शिव । मुख पर प्रसन्न होइये । वह कल्याण-

स्नापयित्वा शिवदेवमर्चयित्वा तु पत्रकं । फल्पयित्वा तु (समर्पयति) तन्मास शिवो मे प्रीयतामिति ॥१३॥
 नैव किंचित्स जानाति शिवभक्तिविना शुभम् । ततो याति स्वक् स्थानमासेन तु यथागतम् ॥१३॥
 करोत्येतादृशं गत्याऽऽगत्य प्रत्यहमेव स । तथाऽप्येतास्तुतोपास्य विचित्रा होद्वरस्थिति ॥१४॥
 यावन्नायात्यसौ भिल्ल शिवस्तावन्न सौख्यभाक् । भवतानुकम्पिता शमोर्भनार्तता तु येति क ॥१५॥
 सज्जयत्पादिकेशमुमया प्रत्यहं शिवम् । एव बहुतिथे काले याते वेदश्चुषोप ह ॥१६॥
 पूजा मन्त्रवर्ती चित्रा शिवभक्तिसमचित्ताम् । को नु विध्वसते पापो मत्त स वधमान्नुयात ॥१७॥
 गुह्यदेवद्विजस्वामिद्रोहो वध्यो मुनेरपि । सर्वस्यापि वधाहोऽसौ शिवस्य द्रोहकृष्ण ॥१८॥
 एव निश्चित्य मेधावो वेदं सिन्धोस्तथाऽनुज । कस्येय पापचेष्टा स्यात्पापिष्ठस्य दुरात्मन ॥१९॥
 पुण्यर्वन्मभवेद्विध्यं कन्दमूलफलं शुभं । कृता पूजा स विध्वस्य ह्यन्या पूजा करोति य ॥२०॥
 मासेन तरुप्रदेशं स च वध्यो भवेन्मम । एव सचिन्त्य मेधावो गोपयित्वा तनु तदा ॥२१॥
 त पश्येयमह पाप पूजाकर्तारमीश्वरे । एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्वधायो देव यथा पुरा ॥२२॥
 नित्यवत्पूजयन्त तमादिकेशस्तदाऽश्वतो ॥२३॥

आदिकेश उवाच

भो भो व्याध महाबुद्धे श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः । चिराय कथमायातस्त्वा विना तात दुःखित ॥
 न विन्दामि सुख किंचित्समाश्वसिहि पुत्रक ॥२४॥

मयी शिवभक्ति को छोड़कर कुछ नहीं जानता था । तदुपरांत वह मास लेकर अपने स्थान को चला जाता था । वह प्रतिदिन ऐसा किया करता था । फिर भी शकर उस पर प्रसन्न हो गये । क्योंकि शकर की लीला अपरम्पार है । जब तक वह व्याध नहीं आता था तब तक शिव को चैन नहीं पड़ती थी । भवत के ऊपर जो शकर की निसीम अनुकम्पा होती है उसे कौन जानता है ? ॥६१५॥ वह प्रतिदिन उमासहित शकर की पूजा करता था । इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर वेद को कोष हुआ । वह कहने लगा— शिवभक्तियुक्त तथा मन्त्रविहित मेरी अप्रुव पूजा को कौन पापी नष्ट कर देता है ? मैं उसे अवश्य मारूँगा । गुरु देवता द्विज तथा स्वामी से द्रोह करने वाला मुनि भी वध्य है । शिव का द्रोही मनुष्य सबके लिए वध्य है । सिन्धु के अनुज मेघावी वेद ने ऐसा ही निश्चय किया । उसने सोचा— कौन ऐसा पापिष्ठ तथा दुरात्मा है जो वनीय दिव्य पुण्य कन्द मूल तथा पवित्र फलों से की हुई पूजा को बिनष्ट करने मास तथा वृक्ष पत्रों से दूसरी पूजा करता है ? उस पापी शिव पूजक को मैं देखूँगा । ऐसा सोचकर विद्वान् वेद छिपकर वहाँ स्थित हुआ । इसी बीच वह व्याध पहले की तरह वहाँ आ पहुँचा । नित्य की तरह पूजा करते हुए उस व्याध से आदिकेश ने कहा ॥१६२३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमान व्याध ! तुम बड़ श्रान्त हो । तुम्हें आने में देरी क्यों हुई ? तुम्हारे बिना मैं दुःखी हूँ । मुझ कुछ भी सुख नहीं मिल रहा है । पुत्र ! मुझ आश्वस्त करो ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तमेव वादिन देव वेद श्रुत्वा विलोक्य तु । चुकोप विस्मयाविष्टो न च किंचिदुवाच ह ॥२५॥
व्याधश्च नित्यवत्पूजा कृत्वा स्वभवन ययौ । वेदश्च कुपितो भूत्वा आगत्येशमुवाच ह ॥२६॥

वेद उवाच

अयं व्याध पापरत क्रियाज्ञानविर्वर्जित । प्राणिहिसारत क्रूरो निर्दय सर्वजन्तुषु ॥२७॥
हीनजातिरर्किचिज्ज्ञो गुरुश्रमविर्वर्जित । सदाऽनुचितकारी चार्निजिताखिलयोगेण ॥२८॥
तस्याऽऽत्मान दर्शितवान्न मा किंचन वक्ष्यति । पूजा मन्त्रविधानेन करोमीश यतव्रत ॥२९॥
त्वदेकशरणो नित्य भार्यापुत्रविर्वर्जित । व्याधो मासेन दुष्टेन पूजा तव करोत्यसौ ॥३०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान् ममेति महाद्भुतम् । शास्तिमस्य करिष्यामि भिल्लस्य ह्यपकारिण ॥३१॥
मृदो कोऽपि भवेत्प्रीत कोऽपि तद्वद्बुरात्मन । तस्मादहं मूर्ध्नि शिला पातयेयमसशयम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति वं वेदे विहस्येशोऽब्रवीदिवदम् ॥३३॥

आदिकेश उवाच

इव प्रतीक्षस्व पश्चान्मे शिला पातय मूर्धनि ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स वेदोऽपि शिला सत्यज्य बाहुना । उपसहृत्य त कोप इव करोमीत्युवाच ह ॥३५॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए शकर को देखकर तथा उनके वचन सुनकर वेद आश्चर्य चकित तथा क्रुद्ध हुआ । पर कुछ भी नहीं बोला । व्याध भी नित्य की तरह पूजा करके अपना घर चला गया । वेद कुपित होकर शकर से आकर कहने लगा ॥२५ २६॥

वेद बोला—यह व्याध पापी क्रिया ज्ञान शून्य प्राणियों की हिंसा में निरत क्रूर सब जीवा के प्रति निर्दय नीच जाति का कुछ भी नहीं जानने वाला गुरु रहित अनुचित काम करने वाला तथा अजितेन्द्रिय है । इसको तो आपने दशन दिया पर मुझे क्यों नहीं दिया ? वतगइये । शिव । मैं पूणव्रती होकर मन्त्रविहित पूजा करता हूँ । नित्य आप ही मेरे रक्षक है । मैं भार्या पुत्र से भी वंचित हूँ । यह व्याध दूषित मास से आपकी पूजा करता है । फिर भी इसके ऊपर आप प्रसन्न हुए और मेरे ऊपर नहीं । यह महान् आश्चर्य की बात है । मैं इस दुष्ट व्याध को धण्ड दूंगा । कोई मनुष्य सज्जन का मित्र होता है और कोई बुरात्मा का । इसलिये मैं नि सन्देह आपके मस्तक पर पत्थर पटक दूंगा ॥२७ ३२॥

ब्रह्मा बोले—वेद के इतना कहने पर शकर हँसकर यह बोले ॥३३॥

आदिकेश ने कहा—कल तक ठहर जाओ । पश्चात् मेरे मस्तक पर पत्थर गिरा देना ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही सही कहकर वेद ने हाथ से शिला-खण्ड को फेंक दिया और श्रोत्र का परित्याग करने

ब्रह्मोवाच

वरेण च्छन्दयामास व्याध देवो महेश्वर । व्याध प्रोवाच देवेश निर्मल्य तव यद्भवेत् ॥४६॥
तवस्माक भवेन्नाथ मन्नाम्ना तीर्थमुच्यताम् । सर्वकृतुफल तीर्थ स्मरणादेव जायताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच देवेशस्ततस्तत्तीर्थमुत्तमम् । भिल्लतीर्थं समस्ताघसघविच्छेदकारणम् ॥४८॥
श्रीमहादेवचरणमहाभक्तिविधायकम् । अभवत्स्नानदानार्चंभुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥
वेदस्यापि वरान्प्रादाच्छिवो नानाविधान्वहन् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भिल्लतीर्थमहिमवर्णनं नामकोनसप्त-
त्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥

गौतमीमाहात्म्ये शततमोऽध्याय ॥१००॥

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चक्षुस्तीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्षुस्तीर्थमिति रयात रूपसौभाग्यदायकम् । यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
पुर भौवनमाख्यात गिरिमूर्ध्न्यभिधीयते । पन्नासो भौवन्तो राजा क्षत्रधर्मपरायण ॥२॥

ब्रह्मा बोले—महेश्वर ने व्याध से वर मागने को कहा । व्याध ने देवेश से कहा— आपका निर्मल्य जो हो वही मेरे नाम से तीर्थ बहूँ दूँ। उस तीर्थ के स्मरण मात्र से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त हो ॥४६४७॥

ब्रह्मा बोले—देवेश ने कहा ऐसा ही होगा । तब से उस उत्तम तीर्थ का नाम भिल्लतीर्थ पड़ा जो समस्त पापसमूह का नाश करने वाला तथा शिव के चरणों में महाभक्ति प्रदान करने वाला है । उसमें स्नान दान आदि करने से योग मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं । शिव ने वेद को भी अनेक प्रकार के वरदान दिये ॥४८४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रसंग में भिल्लतीर्थ की महिमा का वर्णन नामक
एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१६९॥

अध्याय १७०

चक्षुस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गोदावरी के दक्षिण तट पर रूप-सौभाग्य देने वाला प्रसिद्ध चक्षुस्तीर्थ है जहाँ योगेश्वर भगवान् रहते हैं । पर्वत के शिखर पर भौवन नामक एक नगर था, जहाँ क्षत्रियवर्ग में निरत भौवन नामक

तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो वृद्धकौशिक । तत्पुत्रो गौतम इति ख्यातो वेदविदुत्तम ॥३॥
 तस्य मातुर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्विज । सखा तस्य वणिक्कश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते ॥४॥
 तेन सख्य द्विजस्याऽऽसीद्विषम द्विजवैश्ययो । श्रीमद्विरद्वयोर्नित्य परस्परहितैषिणो ॥५॥
 कदाचिद्गौतमो वैश्य वित्तेश मणिकुण्डलम् । प्राहेद वचनप्रीत्या रह स्थित्वा पुन पुन ॥६॥

गौतम उवाच

यच्छामो धनमादातु पर्वतानुदधीनपि । योवन तद्वथा ज्ञेय विना 'सौरयानुकूल्यत ॥
 धन विना तत्कथ स्यादहो धिक्निर्यत नरम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

कुण्डलो द्विजमाहेद मत्पित्रोपाजित धनम् । बह्वस्ति कि धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम ॥
 द्विज पुनरुवाचेद मणिकुण्डलमोजसा ॥८॥

गौतम उवाच

धर्मयज्ञानकामाना को नु तूप्सु प्रशस्यते । उत्सर्पप्रान्तिरेवेषां' सखे श्लाघ्या शरीरिणाम् ॥९॥
 स्वेनैव व्यवसायेन धन्या जीवन्ति जन्तव । परदत्तार्थसमुप्टा कष्टजीविन एव ते ॥१०॥
 स पुत्र शस्यते लोके पितृभिक्षाभिनन्दते । य पैत्र्यमभिलिप्सते न वाचाऽपि तु कुण्डल ॥११॥

राजा रहता था । उसी उत्तम नगर में वृद्धकौशिक नामक कोई ब्राह्मण रहता था । उसने वेदब्रह्माभ्यास किये गौतम नामक एक पुत्र था । वह अपनी माता के मनोदोष के कारण (पिता से) विपरीत हुआ । मणिकुण्डल नामक कोई बनिषा उसका मित्र था । ब्राह्मण और वैश्य की मित्रता विषम थी । चूनि एक साधनिक और दूसरा था गरीब फिर भी परस्पर एक दूसरे का हित चाहता था । किसी समय गौतम ने धनी मणिकुण्डल से कहा कि मैं प्रमत्तवचन कह कर बार-बार कहा ॥१६॥

गौतम बोला—यदि कामान के लिए पवन पर या समुद्र में भी हम लोग चढ़ें । बिना गुणयोग किये जयन्ती क्या है । बिना धन से गुण मित्रता भी तो असम्भव है । हाय ! निधन मनुष्य को विचार है ॥७॥

ब्रह्मा बोले—कुण्डल ने द्विज से कहा—ब्राह्मण कष्ट । मेरे पिता का कामाया हुआ बन्तना था है । उस धन से मैं क्या करूँगा ? द्विज ने पुन मणिकुण्डल से कहा ॥८॥

गौतम बोला—यदि धन और काम से जीवन समुप्ट होता है ? मित्र ! प्राणियों का उन्नति करत रहना ही अच्छा माना गया है । अपने ही उद्योग में जीवन बाल प्राणी का जीवन धन्य है । जादूगरे के दिने धन से समुप्ट रहता है वह कष्टजीवी है । कुण्डल ! वही पुन प्रामाण्य तथा पिता का प्रीतिपात्र होता है जो कानि

स्वबाहुबलमाश्रित्य योज्यार्जयते सुत । स कृतार्थो भवेत्लोकपञ्च वित्त न तु स्पृशेत् ॥१२॥
स्वयमाज्यं सुतो वित्त पित्रे दास्यति बन्धवे । त तु पुत्र विजानीयादितरो योनिर्कीटक ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्य ब्राह्मणस्याभिलाषिण । तथेति मत्वा तद्वाक्य रत्नान्यादाय सत्वर ॥१४॥
आत्मकीयानि वित्तानि गौतमाय न्यवेदयत् । धनेनैतेन देशाश्च परिभ्रम्य यथासुखम् ॥१५॥
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहे' गृहम् । सत्यमेव वणिग्वित्तं स तु विप्र प्रतारक ॥१६॥
पापात्मा पापचित्तश्च न ध्रुवो वणिग्विद्वजम् । तौ परस्परमामन्य मातापित्रोरजानतौ ॥१७॥
देशाद्देशान्तरं यातौ धनार्थं तौ वणिग्विद्वजौ । वणिग्व्यस्तस्थितं वित्तं ब्राह्मणो हर्तुमिच्छति ॥१८॥

ब्राह्मण उवाच

येन केनाप्युपायन तद्धनं हि समाहरे । अहो पृथिव्या रम्याणि नगराणि सहस्रश ॥१९॥
इष्टप्रदाश्च कामस्य देवता इव योषित । मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया ॥२०॥
धनमाहृत्य यत्नेन योषिदम्यो यदि दीयते । भुज्यन्ते तास्ततो नित्यं सफलं जीवितं हि तत ॥२१॥
नृत्पगोतरतो नित्यं पण्यस्त्रीभिरलंकृत । भोक्ष्य कथं तु तद्वित्तं वैश्यामद्वस्तमागतम् ॥२२॥

स भी पितृधन की लिप्सा नहीं करता है । जो अपने बाहु बल से धन उपार्जन करता है और पैतृक संपत्ति को छूटा तब भी नहीं वही लोक में कृताय होता है । जो स्वयं धन कमाकर पिता तथा बन्धवों को देता है उसी को पुत्र समझना चाहिये । उससे भिन्न तो योनि का कीटक है । ॥१९॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अभिलाषा करने वाले ब्राह्मण की यह बात सुनकर तथा उसकी बात को मानकर कुण्डल अपन रत्ना को लाकर गौतम को समर्पित करके कहने लगा— हम लोग इस धन से सुखपूर्वक देशभ्रमण करके धन कमाकर पुन घर लौट आयेंगे । पापी और दग ब्राह्मण ने कहा— तुम ठीक कहते हो । बनिये ने पापयक्त चित्त वाले ब्राह्मण को नहीं समझा । वे दोनों परस्पर सगह करके माता पिता को बिना जताय ही घर से निकल पडे । बनिया और ब्राह्मण दोनों धन की कामना से देश देशांतर में जाने लगे । पर ब्राह्मण बनिय के हाथ से धन का अग्रहरण कर लेना चाहता था ॥१४॥१८॥

ब्राह्मण ने कहा—जिस किसी उपाय से मुझ धन अग्रहरण कर लेना चाहिये । अहो ! पृथिवी पर हजारों रमणीय नगर हैं जिनमें अमीष्ट सिद्ध करने वाली देवता तुल्य मनोहर कामिनियां रहती हैं । तो मुझ क्या करना चाहिये ? यदि प्रयत्न से धन चुराकर स्त्रियों को दूँ और उनके साथ उपभोग करूँ तो मेरा जीवन सफल हो जाय । (नित्य नृत्प-गात-परायण तथा वश्याओं से अलंकृत होकर मैं रहूँगा) पर कैसे वैश्य के हाथ से धन को प्राप्त करूँ ? ॥१९॥२२॥

१४ च ०प्यावहे । २४ च रत्नानि रम्याणि च सहस्रश । नगराणि च रम्याणि मुग्धयुवतानि सवष्टा । ॥१॥

ब्रह्मोवाच

एव चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव । मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः ॥२३॥
 वृद्धिं सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न संशयः । धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दुःखपन्ते दुःखभागिनः ॥२४॥
 तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुता ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच ततो वैश्यः सुखं धर्मे प्रतिष्ठितम् । पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं प्लेश एव च ॥
 यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदतोस्तत्र संपरायस्तयोरभूत् । यस्य पक्षो भवेज्जयायान्स परार्थमवाप्नुयात् ॥२७॥
 पृच्छाव' कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः । वेदात्तु लौकिकं ज्येष्ठं लोके धर्मात्सुखं भवेत् ॥२८॥
 एव विवदमानौ तावूचतुः सकलाज्जनान् । धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भवि ॥२९॥
 तद्वदन्तु यथावृत्तमेवमूचतुरोजसा । एवं तत्रोचिरे केचिद्ये धर्मेणानुवर्तिनः ॥३०॥
 तैर्दुःखमनुभूयते पापिष्ठाः सुखिनो जनाः । संपराये धनं सर्वं जितं विप्रे न्ययेदयत् ॥३१॥
 मणिमान्धर्मविच्छेष्टः पुनर्धर्मं प्रशंसति । मणिमन्तं द्विजः प्राह किं धर्ममनुशंसति ॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चेत्याह वैश्यो ब्राह्मणः पुनरब्रवीत् ॥३२॥

ब्रह्मा बोले—यह सोचते हुए गौतम ने हंसकर मणिकुण्डल से कहा—‘जीव अथम से ही अभीप्सित मुक्त को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। लोग में धर्मिष्ठ प्राणी दुःखी देने जाते हैं। इसलिये जिसका एक दुःख ही फल है, ऐग धर्म से क्या प्रयोजन ? ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—तब वैश्य ने कहा—‘नहीं, मुक्त धर्म में प्रतिष्ठित है। पाप में दुःख, भय, शोक, दारिद्र्य तथा प्लेश है। जहाँ धर्म है, वही मुक्ति है। स्वधर्म का वही विनाश नहीं होता है’ ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार विवाद करते-करते दोनों ने बाजी लगाई कि जिसका पक्ष उत्तम होगा, वह दूसरे का घन ले लेगा। लोगों ने हम दोनों यह पूछे कि धर्मिष्ठा ज्येष्ठ होता है या अधर्मिष्ठा। वैदिक धर्म से लौकिक धर्म ज्येष्ठ होता है या लौकिक धर्म से गुण होता है। (यहाँ प्रश्न यह है कि वैदिक धर्म ज्येष्ठ होता है या लौकिक धर्म ? धर्म से मुक्त मिला है या अधर्म से ?) इस प्रकार विवाद करते हुए दोनों ने लोग में पूछा—‘पृथ्वी पर धर्म की प्रबलता है या अधर्म की ? आप लोग यथायथं बतलायें।’ तब कुछ लोग ने बतलाया—‘जो धर्म से पच पर है, वे दुःख अनुभव करते हैं और जो धर्म से, वे सुखी हैं।’ बाजी में ब्राह्मण ने गव घन जीत लिया। फिर भी मणिकुण्डल धर्म की प्रशंसा करता रहा। तब द्विज ने मणिकुण्डल से कहा—‘क्या धर्म की प्रशंसा करते हो ?’ ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य ने कहा—‘मैं नहीं जाना।’ ब्राह्मण ने फिर कहा ॥३२॥

ब्राह्मण उवाच

जित मया धन वैश्य निर्लज्ज किन्तु भापसे। मयैव विजितो धर्मो ययेष्टचरणात्मना ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्ब्राह्मणवच श्रुत्वा वैश्य सस्मित ऊचिवान् ॥३४॥

वैश्य उवाच

पुलाका इव धायेयु पुत्तिका इव पक्षिषु। तथैव तान्स्थे मन्ये येया धर्मो न विद्यते ॥३५॥
चतुर्णां पुरुषार्यानां धर्मं प्रथम उच्यते। पश्चादर्थश्च कामश्च स धर्मो मयि तिष्ठति ॥
वयं स्मृते द्विजश्रेष्ठ मया विजितमित्यद ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

द्विजो वैश्य पुन प्राह हस्ताभ्या जायता पण। तथेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरुच्यतु ॥३७॥
पूर्वश्लोकाङ्गत्वा जितमित्यब्रवीद्विज। करो छित्त्वा तत प्राह कथं धर्मं तु मन्यसे ॥
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैव वैश्यो वचनमब्रवीत् ॥३८॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मये प्राणै कण्ठगतरपि। माता पिता सुहृदबन्धुधर्म एव शरीरिणाम् ॥३९॥

ब्राह्मण बोला—वैश्य ! मैंने धन जीत लिया। अब बोलने में तुम्हें लाज नहीं आती ? ययेष्ट आचरण
को हूँ मैंने ही धर्म को जीत लिया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मण का वचन सुनकर वैश्य आश्चर्यित होकर बोला ॥३४॥

वैश्य बोला—मगे ! मैं उन मनुष्यों को धाया मपुलाक (खसरी चुन्च धाया) तथा पक्षियों म शुद्ध
मातिका की तरह समझता हूँ ओ धर्मात्मा नहा है। चारों पुरुषार्थों म पहिले धर्म ही कहा जाता है पश्चात् अर्थ
और काम। वही धर्म मूलम विद्यमान है। द्विजश्रेष्ठ ! कम तुम कहते हो कि मैंने इस धर्म को जीत लिया ?
॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—द्विज ने पुन वैश्य से कहा— तो इस बार हाथा की बाजी लगाओ। वैश्य ने कहा— अस्तु।
तब दोनो व्यक्तियों ने लोया से जाकर पूछा। लोया न पहिले की तरह बतलाया। ब्राह्मण ने कहा—मेरी जीत
हुई। वैश्य ने अपने हाथ बटवा लिये। तब ब्राह्मण न पूछा—कहो अब भी धर्म को मानते हो ? ब्राह्मण का
व्यंग्य वचन सुनकर वैश्य ने कहा ॥३७ ३८॥

वैश्य बोला—जब तक कण्ठ म प्राण रहेगा तब तक मैं धर्म को मानूंगा। शरीरधारिया के लिये धर्म ही
माता पिता मित्र तथा बन्धु है ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदमानौ तावर्थवान्ब्राह्मणोऽभवत् । विमुक्तो वैश्यस्तत्र ब्राह्म्या च धनेन च ॥४०॥
 एव भ्रमन्तौ संप्राप्तौ गङ्गा योगेश्वर हरिम् । यदृच्छया मुनिश्रेष्ठ मिथस्तावूचतु पुन ॥४१॥
 वैश्यो गङ्गा तु योगेश धर्ममेव प्रशंसति । अतिकोपाद्विजो वैश्यमाक्षिपन्पुनरब्रवीत् ॥४२॥

ब्राह्मण उवाच

गत धन करौ छिन्नावशिष्टोऽसुभिर्भवान् । त्वमन्यथा यदि ब्रूय आहरिष्येऽसिना शिर ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य पुनराह्व वैश्यो गीतममञ्जसा ॥४४॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मन्ये यथेच्छसि तथा कुह । ब्राह्मणाश्च गृह्णन्देवान्वेदान्धर्मं जनार्दनम् ॥४५॥
 यस्तु निदयत् पापो नासी स्पृश्योऽय पापकृत । उपेक्षणीयो दुर्वृत्त पापात्मा धमदूषक ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तत् प्राह स कोपेन धर्मं यद्यनुशसति । आवयो प्राणयोरत्र पण स्यादिति वै मुने ॥४७॥
 एवमुक्ते गीतमेन तयत्प्राह वणिक्तदा । पुनरप्युचतुर्धमौ लोकैस्तल्लोकारतयोच्चिरे ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार के विवाद से ब्राह्मण तो धनवान् हुआ पर वैश्य धन तथा हाथ दोनों से वंचित होगया । फिर इस तरह भ्रमण करते हुए दोनों गंगा के तट पर पहुँचे जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं । मुनिश्रेष्ठ । स्वेच्छा से वहाँ भी उन दोनों ने वही बात छड़ दी । वैश्य ने गंगा योगेश्वर तथा धर्म की ही प्रशंसा की । तब ब्राह्मण ने अत्यन्त क्रोध से व्यग्न करते हुए उनसे कहा ॥४०-४२॥

ब्राह्मण बोला—तुम्हारे धन तथा दोनों हाथ तो गये । अब प्राण भी बँवाना चाहते हो ? यदि इस तरह बोलो तो मैं तत्वार म तुम्हारा गिर बाट डालूँगा ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—वचन न हँसकर पुन गीतम म यह शीघ्र कहा ॥४४॥

वैश्य ने कहा—मैं तो धर्म का ही श्रेष्ठ मानूँगा । तुम्हें जो इच्छा हो सो करो । जा पापी मनुष्य ब्राह्मण गुरु देवता धर्म वचन तथा भगवान् की निन्दा करता है वह पापात्मा अस्पृश्य उपेक्षणीय दुराचारी तथा धमदूषक है ॥४५-४६॥

ब्रह्मा बोले—तब द्विज न कोप म कहा— यदि तुम धर्म की प्रशंसा करते हो तो इस बार हम दोनों के प्राणा की बाजी हो । गीतम व इतना कहने पर वनिज न कहा— ऐसा ही मही । तब दानान लाग्य म पूछा । लोग ने वही उत्तर दिया । तब गीतग्वरी व दक्षिण तट पर योगेश्वर के सामने वैश्य को पटार कर द्विज न उसकी एक बाँस निकाल ली और कहा ॥४७-४८॥

योगेश्वरस्य पुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे । तनिपात्य विश विप्रश्चक्षुस्तपाद्य चाब्रवीत् ॥४९॥

विप्र उवाच

गतोऽसौमा दशा वैश्य नित्य धर्मप्रशसया । गत धन गत चक्षुश्छेदितौ करपल्लवौ ॥
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैव ब्रूया कथान्तरे ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि । हा कष्ट मे किमभवद्धर्मकमनसो हरे ॥५१॥
स कुण्डलो वणिक्श्रेष्ठो निर्धनो गतबाहुक । गतनेत्र शुच प्राप्तो धर्ममेवानुसस्मरन् ॥५२॥
एव बहुविधा चिन्ता कुर्वन्नास्ते महोत्तले । निश्चेष्टोऽथ निरुत्साह पतित शोकसागरे ॥५३॥
दिनावसाने शर्वर्यामुबिते चन्द्रमण्डले । एकादश्या शुक्लपक्षे तत्राऽऽयाति विभीषण ॥५४॥
स तु योगेश्वर देव पूजयित्वा यथाविधि । स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गा सपुत्रो राक्षसंवृत ॥५५॥
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवापर । वैभीषणिरिति ख्यातस्तमपश्यदुवाच ह ॥५६॥
वैश्यस्य वचन श्रुत्वा यथावृत्त स धर्मवित । पित्रे निवेदयामास लङ्केशाय महात्मने ॥
स तु लङ्केश्वर प्राह पुत्र प्रीत्या गुणाकरम् ॥५७॥

विभीषण उवाच

श्रीमात्रामो मम गुरुस्तस्य मान्य सखा मम । हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽसीतो गिरिमहान् ॥५८॥

विप्र बोला—वैश्य । नित्य धर्म की प्रशंसा करते करते तुम इस दशा में प्राप्त हो गये हो कि तुम्हारा धन गया आख गयी और हाथ भी कटे । मित्र ! अब मैं जा रहा हूँ । किन्तु इतना कहे देता हूँ कि फिर तुम कभी ऐसा न धोऊना ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—उसके चले जाने पर वैश्य चिन्ता करने लगा—हाय भगवान् ! एक धर्म में ही मन को लगाते हुए मुझ कितना कष्ट हुआ । निधन अथवा तथा हाथों से वंचित वणिक्श्रेष्ठ कुण्डल धर्म का ही स्मरण करते करते शोक को प्राप्त हो गया । इस प्रकार अनेक तरह की चिन्ता करते हुए वह निश्चेष्ट तथा निरुत्साह होकर गोक सागर में डूबते हुए धरती पर गिर पड़ा । शुक्लपक्ष की एकादशी को दिन के अन्त में तथा रात्रि में चन्द्रोदय होने पर विभीषण पुत्र तथा राक्षसों से युक्त होकर वहाँ आते थे और गोदावरी में स्नान करके योगेश्वर की विधिपूर्वक पूजा करते थे । विभीषण का पुत्र वैभीषणि जो अपर विभीषण ही था वैश्य को ओर देखने लगा । पश्चात् उस धर्म के बलाने वैश्य का सब समाचार सुनकर अपने पिता महात्मा लङ्के से निवेदन कर लिया । लवापति ने प्रेमपूर्वक गुणगाली पुत्र से कहा ॥५१ ५७॥

विभीषण बोले—मरे गुरु श्रीमान् राम हैं । उन्हीं का प्रियपुत्र मेरा मित्र हनुमान् है । वही महान् पवन को ले आया था । पूव समय वह कायका समस्त ओपधिषा के आध्यक्ष मूत पवन को ले आया था । पुन काय

पुरा कार्यान्तरे प्राप्ते सर्वोपध्याश्रयोऽचलः । जाते कार्ये तमादाय हिमवन्तमथागमत् ॥५९॥
 विशल्यकरणी चेति मृतसंजीवनीति च । तदाऽऽजीय महाबुद्धी रामायविलष्टकर्मणे ॥६०॥
 निवेदयित्वा तत्साध्यं तस्मिन्वृत्ते समागतः । पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम् ॥६१॥
 तामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन् । ततः प्राप्स्यत्ययं सर्वमपेक्षितमुदारधीः ॥६२॥
 गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः । अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः ॥६३॥

वंभीपणिरुवाच

तामोपधीं मम पितदंशयाऽऽशु विलम्ब मा । परार्तिशमनादन्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

विभीषणस्तथेत्युक्त्वा तां पुत्रस्याप्यदंशयत् । इषे त्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखां चिच्छेद तत्सुतः ॥
 वैश्यस्य चापि वं प्रीत्या सन्त परहिते रताः ॥६५॥

वंभीपणिरुवाच

यत्रापतन्नगे चास्मिन्स वृक्षस्तु प्रतापवान् । तस्य शाखां समादाय हृदयेऽस्य निवेशय ॥
 तत्स्पृष्टमात्र एवासी स्वकं रूपमवाप्नुयात् ॥६६॥

सम्पन्न हो जाने पर वह उसे लेकर हिमालय पर चला गया । तब उसी महाबुद्धिमान् ने विशल्यकरणी तथा मृतसंजीवनी नामक ओपधिया को लेकर अथवा काम करने वाले राम को समर्पित कर दिया और उन ओपधियों का गुण भी बतला दिया । पुनः कार्य सम्पन्न हो जाने पर हनुमान् उस पर्वत को लेकर देवपर्वत पर चला गया । तब उसी ओपधि को लेकर हरि का स्मरण करते हुए, वैश्य के हृदय में लगा दो । तब यह उदार बुद्धि वाता व्यक्त अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करेगा । अब हनुमान् वेग से जा रहा था तब विशल्यकरणी गोदावरी के तट पर उसी जगह गिर गयी जो जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं ॥५८-६३॥

वंभीपणि बोला—पिता जी ! शीघ्र वह ओपधि मुझे दिया जा दीजिये । दूसरे की पीड़ा को शान्त कर देने से जितना कल्याण होता है, उतना (कल्याण) तीना लोक में और किसी से नहीं होता है ॥६४॥

ब्रह्मा बोले—विभीषण ने 'टीर' कहकर पुत्र को वह ओपधि दिया दी। तब उगने पुत्र ने वैश्य पर स्नेह के कारण 'इषे'त्वा इग मन्त्र से उस वृक्ष की एक शाखा तोड़ ली। क्योंकि मत्स्यप दूसरे के ही कल्याण में निरत रहते हैं ॥६५॥

विभीषण बोले—इन पर्वत पर जो यह प्रतापी वृक्ष गिरा है, उसकी शाखा लेकर इगने हृदय में लगा दो । उगता स्यां होने ही यह अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेगा ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवर्ण्यं वैभीषणिरुदारधीः । तथा चकार वं सम्यक्काष्ठखण्डं न्यवेशयत् ॥६७॥
हृदये स तु वैश्योऽपि सचक्षुः सकरोऽभवत् । मणिमन्त्रौषधीनां हि धीर्यं कोऽपि न वृध्यते ॥६८॥
तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसंस्मरन् । स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां तथा योगेश्वरं हरिम् ॥६९॥
नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वैश्यकः । परिग्रमन्नृपपुरं महापुरमिति श्रुतम् ॥७०॥
महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महाबलः । तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका नष्टलोचना ॥७१॥
सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमीदृशम् । देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत् ॥७२॥
वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा । तस्मै देया इयं पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति ॥७३॥
राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्यघोषयत् । अहनिशमतो वैश्यः श्रुत्वा घोषमथान्नवीत् ॥७४॥

वैश्य उवाच

अह नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या असशयम्

॥७५॥

ब्रह्मोवाच

तं वैश्य तरसाऽऽदाय महाराजे न्यवेदयत् । तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभूद्रूपात्मजा ॥७६॥
ततः सविस्मयो राजा को भवानिति चान्नवीत् । वैश्यो राज्ञे यथावृत्तं न्यवेदयदशेषतः ॥७७॥

ब्रह्मा बोले—पिता का यह वचन सुनकर उदार चित्त वाले वैभीषणि ने उस लकड़ी के टुकड़े को हृदय और एक टुकड़े को उसके हृदय में लगा दिया। हृदय में स्पर्श होते ही वह वैश्य नेत्र तथा हाथों से युक्त हो गया। मणि, मन्त्र तथा औषधियों के प्रभाव को कौन जान सकता है। उसी काष्ठ-खण्ड को लेकर धर्म का स्मरण करते हुए उसने गोदावरी में स्नान किया और योगेश्वर हरि को नमस्कार करके पुनः काष्ठ-खण्ड धारण कर वहीं से प्रस्थान कर दिया। इतस्तत् भ्रमण करते हुए वह महापुर नाम से प्रसिद्ध एक राजधानी में पहुँचा। उस नगर में महाराज नाम से प्रसिद्ध एक महाबलवान् राजा रहता था। उसके कोई पुत्र नहीं था। एक कन्या भी थी तो नेत्रों से बधित। वहीं कन्या उसके पुत्र के स्थान पर थी। राजा ने नियम किया— जो कोई देवता या दानव या ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र या गुणवान् या निर्गुणी व्यक्ति मेरी पुत्री को नेत्र प्रदान करेगा, उसी को मैं राज्य के साथ कन्या दूंगा। वह वैश्य दिनरात यह घोषणा सुनकर बोला ॥६७-७४॥

वैश्य ने कहा—मैं राजपुत्री को नेत्र दूंगा, इसमें कोई संशय नहीं ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—उस वैश्य को लेकर तुरन्त राजदूत ने महाराज से निवेदन किया। उस काष्ठ का स्पर्श होते ही राजकुमारी नेत्रयुक्त हो गई। तब राजा ने विस्मयपूर्वक उससे पूछा—‘आप कौन हैं?’ वैश्य ने राजा से सारी घटना निवेदन कर दी ॥७६-७७॥

वैश्य उवाच

ब्राह्मणानां प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तथा । दानप्रभावाद्यज्ञैश्च विविर्धभूरिदक्षिणं ॥
दिव्योपधिप्रभावेन मम सामर्थ्यमोदशम् ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वैश्यवच श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महोपति ॥७९॥

राजोवाच

अहो महानुभावोऽयं प्रायो वृन्दारको भवेत् । अन्यथैतादृगन्यस्य सामर्थ्यं दृश्यते कथम् ॥
तस्मादस्मै तु ता कन्या प्रदास्ये राजपूर्विकाम् ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इतिसकल्प्य मनसि कन्या राज्यं च दत्तवान् । विहारार्थं गत स्वैरपर खेदमुपागत ॥८१॥
न मित्रेण विना राज्यं न मित्रेण विना सुखम् । तमेव सततं विप्रं चिन्तयन्वैश्यनन्दन ॥८२॥
एतदेव 'सुजातानां लक्षणं भुवि देहिनाम् । कृपाद्रं यन्मनो नित्यं तेषामप्यहितेषु हि ॥८३॥
महानूपो वनं प्रायात्स राजा मणिकुण्डल । तस्मिञ्शासति राज्यं तु कदाचिद्गौतम द्विजम् ॥८४॥
हृतस्व धूतकं पापैरपश्यन्मणिकुण्डल । तमादाय द्विजं मित्रं पूजयामास धर्मवित् ॥८५॥
धर्माणां तु प्रभावः तत्तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । स्नापयामास गङ्गायां तं सर्वाघनिवृत्तये ॥८६॥

वैश्य बोला—ब्राह्मणों की कृपा से और धर्म तपस्या दान दिव्य औपमि तथा विविध दक्षिणा सम्पन्न यन्त्रों के प्रभाव से मुझे यह सामर्थ्य प्राप्त हुआ है ॥७८॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य का यह बचन सुनकर राजा आश्चर्यचकित हुआ ॥७९॥

राजा बोला—अहा ! यह महानुभाव प्रायः दत्तवा हागा । अन्यथा दूसरों से ममका सामर्थ्य कहाँ दत्ता है ? इमलिये हमी को राज्यमर्गित कन्या प्रदान करेगा ॥८०॥

ब्रह्मा बोले—तेमा मन से सत्कार करके राजा ने उस कन्या तथा राज्य दे दिया । जब वह विहार करने के लिये गया तो उस वृक्षा में हुआ । वह माचन लगा—'विना मित्रं न मुञ्च राज्यं ही मुहाना है न सुख ही ।' वैश्यपुत्र उस वृक्षा की गन्तु विता करता था । मगर म कृतीना का यहा लगन हुआ है कि वह पशुओं के ऊपर भी गर्व कृपा करने रहने है । मगराज वन में चला गया । मणिकुण्डल हा शत्रु राज्य-नायक मालाया था । राज्य पर नासन करने विगी समय मणिकुण्डल ने उमा गौतम नामका द्विज को दत्ता मित्रका घन पारी ऊआरिया न हृत कर दिया था । उस वृक्षाण मित्र का लाजर धर्मवत्ता वैश्य ने उसकी पूजा की और धर्मों का ममत्त प्रभाव उसे बनला दिया । अगिला पाद निवृत्ति के लिए उसने द्विज को मगा सरनाय करवाया । गौतम,

तेन विप्रेण सर्वैस्तैः स्वकीयेर्गोत्रजैर्वृतः । वंश्यैः स्वदेशसंभूतैर्ब्राह्मणस्य तु बान्धवैः ॥८७॥
 वृद्धकीशिकमुख्यैश्च तस्मिन्योगेश्वरान्तिके । यत्नानिष्कृत्वा सुरान्पूज्य ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥८८॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं मृतसंजीवनं विदुः । चक्षुस्तीर्थं सयोगेशं स्मरणादपि पुण्यदम् ॥
 मनःप्रसादजननं सर्वदुर्भावनाशनम् ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्षुस्तीर्थादिवर्णनं नाम
 सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

गीतमीमाहात्म्ये एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

उर्वशीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

उर्वशीतीर्थं माह्व्यातमश्वमेधफलप्रदम् । स्नानदानमहादेववासुदेवाचर्चनादिभिः ॥१॥
 महेश्वरो यत्र देवो यत्र शाङ्गधरो हरिः । प्रमतिनाम राजाऽऽसीत्सर्वभौमः प्रतापवान् ॥२॥

अपने वंशजा स्वदेशोत्पन्न वंश्या, गीतम के बान्धवों तथा श्रेष्ठ याज्ञिकों के साथ योगेश्वर के समीप यज्ञ तथा देवताओं की पूजा करके मणिकुण्डल ने स्वर्ग प्राप्त किया । तब स लेकर उस तीर्थ का नाम मृतसंजीवनी पड़ा । योगेश्वर सहित चक्षुस्तीर्थ के स्मरण करने से पुण्य, मन की प्रसन्नता तथा समस्त दुर्भावनाओं का नाश होता है ॥७१-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ-माहात्म्यकथन-प्रसंग म चक्षुस्तीर्थ आदि
 का वर्णन नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७०॥

अध्याय १७१

उर्वशीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उर्वशी नामक तीर्थ म स्नान दान शिव और विष्णु की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । वहाँ शंकर तथा शाङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले हरि रहते हैं । (पूज काल में) प्रमति नामक

१ध च. ०द्वा प्रजा पूज्य । २ध ०र्थ च यो० । ३इ ०बंदुशविना० । ४ध च मृगेश्वरो । ५ मृगेश्वरो ।

रिपुञ्जित्वा जगामाऽऽशु इन्द्रलोकं सुरैर्वृतम् । तत्रापश्यत्सुरपतिं मरुद्भिः सह नारद ॥३॥
जहासेन्द्रं पाशहस्तं प्रमतिः क्षत्रियपंभः । त हसन्तमथाऽऽलक्ष्य हरिः प्रमतिमब्रवीत् ॥४॥

इन्द्र उवाच

देवालये महाबुद्धे मरुद्भिः क्रीडितैरलम् । विशो जित्वा दिवं प्राप्तः कुरु क्रीडां मया सह ॥५॥

ब्रह्मोवाच

सकषायं हरिश्चो निशम्य प्रमतिनृपः । तथेत्युवाच देवेन्द्रं निष्कृतिं कां तु मन्यसे ॥
तच्छ्रुत्वा प्रमतेर्वारिय सुरराणूपमब्रवीत् ॥६॥

इन्द्र उवाच

उवंश्येव पणोऽस्माकं प्राप्या या निखिलैर्मखैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेन्द्रवचनं प्रमतिः प्राह गवितः । उवंशीं निष्कृतिं मन्ये त्व राजन्कि नु' मन्यसे ॥८॥
यद्ब्रवीषि सुरेशान तन्मन्येऽहं शतक्रतो । 'प्राहेन्द्रं प्रमतिस्तद्वन्निष्कृत्यं दक्षिण करम् ।
सर्वमं सशर धर्म्यं देहि' (मन्ये) दीध्यामहे' वयम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तावेवं संविदं कृत्वा देवनायोपतस्यतुः । प्रमतिजितवास्तत्र उवंशीं देवतस्त्रियम् ॥१०॥

एक प्रतापी तथा चक्रवर्ती राजा रहता था । वह एक बार, शत्रुओं को जीतकर देवताओं से घिरे हुए इन्द्रलोक को गया । नारद । वहाँ उसने मरुद्गण के साथ इन्द्र को देखा । हाथ में पाशा लिये हुए इन्द्र को देखकर क्षत्रियपण्डित प्रमति ने हँस दिया । हँसते हुए प्रमति को देखकर इन्द्र ने उसको कहा ॥३॥

इन्द्र बोले—महाबुद्धिमान् । देवलोक में मगता के साथ मैं बहुत खेल किया । आप समस्त दिशाओं को जीत कर स्वर्ग आये हैं । इसलिये अब आप मेरे साथ क्रीडा करें ॥५॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र के सप्रेम वचन को सुनकर राजा प्रमति ने इन्द्र से कहा—'तो इसमें आप बाजी क्या लगाते हैं ?' प्रमति की बात सुनकर इन्द्र ने कहा ॥६॥

इन्द्र बोले—उवंशी की ही मैं बाजी लगाता हूँ, जो अतिरिक्त धन के करने से मिलती है ॥७॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र की यह बात सुनकर प्रमति गर्व में बोला—'उवंशी की बाजी मुझे खीनकर है।' तब इन्द्र ने पूछा—'गजन् । आप क्या बाजी रखते हैं ?' उसने कहा—'इन्द्र आप जा कह मैं वही रखने के लिये तैयार हूँ।' इन्द्र ने कहा—'मैं यह चाहता हूँ कि आप कवच, बाण तथा वनस्पति गहिन अपने दाहिने हाथ को रखें ॥८॥

ब्रह्मा बोले—ये दाना इम तरह बाजी रखकर जुआ खेलन लगे, जिसमें प्रमति ने देवाङ्गना उवंशी को जीत लिया । उगे जीतकर प्रमति ने अभिमानपूर्वक इन्द्र ने कहा ॥९॥

प्रमतिरुवाच

निष्कृत्य पुनरन्यन्मे पश्चाद्दीव्ये त्वया विभो

॥११॥

इन्द्र उवाच

देवयोग्यमयो धञ्जं जंत्रं सरथमुत्तमम् । दीप्येऽहं तेन नृपते करेणाप्यविचारयन् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

स गृहीत्वा तदा पाशानन्यांश्च मणिभूषितान् । जितमित्यब्रवीच्छक्रं प्रमतिः प्रहसंस्तदा ॥१३॥

एतस्मिन्नन्तरे प्रायादक्षतस्तत्र नारद । विश्वावसुरिति ख्यातो गन्धर्वाणां महेश्वरः ॥१४॥

विश्वावसुरुवाच

गन्धर्वविद्यया राजस्तया दीव्यामहे त्वया । तथेत्युक्त्वा स नृपतिर्जितमित्यब्रवीत्तदा ॥१५॥

तां जित्वा नृपतिर्मां ख्याद्देवेन्द्रं प्राह कश्मलम् ॥१६॥

प्रमतिरुवाच

रणे वा देवने वाऽपि न त्व जेता कथंचन । महेन्द्र सततं तस्मादस्मदाराधको भव ॥

यद केन प्रकारेण जाता देवेन्द्रता तव ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तथा प्राहोर्वंशीं गर्वाद्गच्छ क्रमंकरो भव । उर्वंशी प्राह देवेवु यथा वर्ते तथा त्वयि ॥

वर्तेयं सर्वभावेन न मां धिक्कर्तुमर्हसि ॥१८॥

प्रमति बोला—भगवन् ! अब दूसरी बाजी लगाइये ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देव ने योग्य जयशील वस्त्र तथा उत्तम रथ को मैं तान पर रखता हूँ । राजन् ! आपने हाथ को भी इस बार मैं रखवाना नहीं चाहता हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने मणिभूषित दूसरे पासे लेकर फेंके और इन्द्र से हँसकर कहा—‘मेरी जीत हुई’ । नारद ! इसी बीच ब्रह्मा देखने में निगुण गन्धर्वों का स्वामी विश्वावसु वहाँ आ पहुँचा ॥१३-१४॥

विश्वावसु ने कहा—‘राजन् ! गन्धर्व विद्या की बाजी रखकर मैं आपसे ब्रह्मा खेलना चाहता हूँ ।’ राजा ने स्वीकार कर पाशा पेंका और कहा—‘मेरी जीत हुई ।’ प्रमति ने दोनों का जीतकर मूर्खनावस इन्द्र से कहा ॥१५-१६॥

प्रमति बोला—महेन्द्र ! न युद्ध में और न जुए में तुम किसी तरह मुझे जीत सके । इसलिए तुम सतत मेरी पूजा किया करो और यह भी बखलाओ कि तुम इन्द्र के सेवन करेंगे ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—उसी तरह उर्वंशी से भी उगल सर्व से कहा—‘तुम जाओ और मेरी नीजरी करो ।’ उर्वंशी ने उगम कहा—‘मैं जंग देवनाभा के साथ व्यवहार करती हूँ, उसी तरह आपसे भी साथ करूँगी । आपा मुझे पटकरिये पत्र’ ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्रमतिः प्राह त्वादृश्यं सन्ति चारिकाः । त्वं किं विलज्जसे भद्रे^१ गच्छ कर्मकरी भव ॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा नृपेणोक्तं गन्धर्वाधिपतिस्तदा । चित्रसेन इति श्यातः (प्राह) सुतो विश्वावसोर्बली ॥२०॥

चित्रसेन उवाच

दीव्येऽहं वै त्वया राजस्सर्वेणानेन भूपते । राज्येन जीवितेनापि मदीयेन तवापि च ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा पुनरुभौ चित्रसेननृपोत्तमौ । दीव्येतामभिसंरब्धौ चित्रसेनोऽजयतदा ॥२२॥
गान्धर्वेस्त महापाशैर्बन्ध नृपतिं तदा । चित्रसेनोऽजयत्सर्वं मुर्वसौमुह्यत. पणः ॥२३॥
राज्यं कोशं बलं चैव यदन्यद्वसु किञ्चन । चित्रसेनस्य तज्जात यदासीत्प्रमतेर्धनम् ॥२४॥
ता जित्वा प्रमतिः प्राह संरम्भात्तं शतक्रतुम् ॥२५॥

प्रमतिपुत्र उवाच

किं मे पित्रा कृत पापं ख व वा ब्रह्मो महामतिः । कथमेष्यति स्वं स्थानं कथं पाशैर्विमोक्ष्यते ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

सुमतेर्वचन श्रुत्वा ध्यात्वा स मुनिसत्तमः । मधुच्छन्दा जगादेवं प्रमतेर्वर्तनं तदा ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने उर्वशी से कहा—‘भद्रे ! तुम्हारी जैसी मेरी अनेक परिचारिकाये हैं । तुम क्यों लज्जा करती हो ? जाओ, मेरा काम करो ।’ राजा की यह बात सुनकर गन्धर्वों के स्वामी विश्वावसु के पुत्र बन्वान् चित्रसेन ने कहा ॥१९-२०॥

चित्रसेन बोला—राजन् ! मैं सब कुछ की बाजी लगाकर आप से जूझा खेलना चाहता हूँ । मैं अपने तथा आपके राज्य एवम् जीवन की बाजी लगाना चाहता हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—राजा ने कहा—‘ऐसा ही सही ।’ फिर चित्रसेन और राजा ने खेलना आरम्भ कर दिया । चित्रसेन की विजय हुई । तब उसने गान्धर्व पाश में राजा को बाँध दिया । चित्रसेन ने बाजी में उर्वशी आदि सबको जीत लिया । प्रमति का राज्य कोश, सेना, धन आदि जो कुछ भी था, सबको चित्रसेन ने जीत लिया । तब प्रमति के पुत्र ने जो विलकुल बालक ही था, अपने पुरोहित विश्वामित्र के पुत्र महापण्डित मधुच्छन्दा से पूछा ॥२२-२५॥

प्रमति का पुत्र बोला—मेरे महाबुद्धिमान् पिता ने कौनसा पाप किया ? कहाँ बाँधे गये ? कैसे पाश से विमुक्त होकर अपने स्थान पर आवेंगे ? ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—सुमति के वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ मधुच्छन्दा ने ध्यान करके प्रमति के बारे में कहना आरम्भ किया ॥२७॥

मधुच्छन्दा उवाच

देवलोकं तव पिता यद्वा आस्ते महामते । कंतवंबहुदोषैश्च भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥२८॥
 यो याति कंतवसभा स चापि क्लेशभाभवेत् । द्यूतमद्यामिपादोनि व्यसनानि नृपात्मज ॥२९॥
 पापिनामेव जायन्ते सदा पापात्मकानि हि । एकैवमप्यनर्थाय पापाय नरकाय च ॥३०॥
 यानासनाभिलाषाद्यैः कृतैः कंतवर्त्तिभिः । कुलीनाः कलुषीभूताः किं पुनः कितघो जनः ॥३१॥
 कितवस्य तु या जाया तप्यते नित्यमेव सा । स चापि कितवः पापो योपितं धीक्ष्य तप्यते ॥३२॥
 तां दृष्ट्वा विग्नानन्दो नित्यं वदति पापकृत् । अहो संसारचक्रेस्मिन्मया तुल्यो न पातकी ॥३३॥
 न किञ्चिदपि यस्याऽस्ते लोके विषयजं सुखम् । लोकद्वयेऽपि न सुखी कितवः कोऽपि दृश्यते ॥३४॥
 विभाति च तथा नित्यं लज्जया दग्धमानसः । गतधर्मो निरानन्दो ग्रस्तगर्वस्तथाऽदति ॥३५॥
 अकंतधी च या वृत्तिः सा प्रशस्ता द्विजन्मनाम् । कृपिगोरक्ष्यवाणिज्यमपि कुर्यान्न कंतवम् ॥३६॥
 यस्तु कंतववृत्त्या हि धनमाहर्तुमिच्छति । धर्मार्थकामाभिजनैः स विमुच्येत पौरुषात् ॥३७॥
 चेदेऽपि दूषितं कर्म तव पित्रा तदाऽऽदृतम् । तस्मार्तिकं कुर्महे वत्स यदुवत् ते विधीयते ॥३८॥
 विधातृविहितं मार्गं को नुवाऽत्येति पण्डितः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एतत्पुरोधसो वाक्यं श्रुत्वा सुमतिरब्रवीत्

॥४०॥

मधुच्छन्दा बोले—महाधीमान् । देवलोक में तुम्हारे पिता बाँधे हुए हैं । अनेक दोषों से युक्त द्यूतवर्ग (जूआ) करने से ये राज्यच्युत हो गये । जो कोई भी द्यूतसभा में जाता है, वह अवश्य दुःख पाता है । नृपपुत्र । द्यूत, मद्य, मांस आदि पापरूपी व्यसन पापिया के लिये ही हैं । इनमें से एक भी अनर्थ, पाप तथा नरक के लिये पर्याप्त है । जुआरिया के साथ चलने बैठने तथा बातचीत करने से कुलीन व्यक्ति भी दूषित हो जाते हैं, और जो जुआरी ही हैं, उसके विषय में तो कहना ही क्या ? जुआरी की जो स्त्री होती है वह सदा अनुताप करती है । वह पापी जुआरी की स्त्री को देखकर परश्चात्ताप करता है । स्त्री का देखकर वह पापी आनन्दगुण्य होकर बहने लगता है—‘हाय । इस संसार-चक्र में मरे जैसा पानगी कोई नहीं है ।’ लोक में ऐसा कोई नहीं है, जिस विषयग्न्य सुख नहीं मिलता है । पर जुआरिया के लिए दोनों लोक में भी सुख नहीं है । वह नित्य लज्जा से दग्धचित्त बना रहता है और धर्म तथा आनन्द से शून्य होकर मदमत्त की तरह घूमता है । द्विजानिया के लिये छल-रहित वृत्ति ही प्रशस्त मानी गई है । छत्र में घेनी, गोरक्षा तथा व्यापार भी नहीं करता चाहिये । जो छल-वृत्ति से धन उपार्जन करना चाहता है, वह धर्म अर्थ, काम, कुटुम्ब तथा पुरस्त्व से वंचित हो जाता है । वेद में भी जो धर्म दूषित माना गया है, वही तुम्हारे पिता ने किया । वत्स ! इसलिये हमलोग क्या करें ? तुम जो कहो, वही कर दो । भला, बौन विद्वान् विधाता के मार्ग का उल्लंघन कर सकता है ? ॥२८-२९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित का यह वाक्य सुनकर सुमति बोला ॥४०॥

सुमति रुवाच

किं कृत्वा प्रमतिस्तातः पुनः राज्यमवाप्नुयात्

॥४१॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्घ्यात्वा मधुच्छन्दाः सुमतिं चेदमब्रवीत्

॥४२॥

मधुच्छन्दा उवाच

गौतमीं याहि वत्स त्वं तत्र पूजय शंकरम् । 'अदितिं वरुणं विष्णुं ततः पाशाद्विमोक्ष्यते ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामाऽऽशु गङ्गां नत्वा जनार्दनम् । पूजयापास शंभुं च तपस्तेपे यतव्रतः ॥४४॥

सहस्रमेक वर्षाणां धृष्टं पितरमात्मनः । मोक्षयामास देवेभ्यः पुनः राज्यमवाप सः ॥४५॥

शिवे (हरी) शाश्वतो मुक्तपाशो राज्यं प्राप सुतात्स्वकात् । अवाप्य विद्यां गान्धर्वीं प्रियश्चाऽऽसीच्छ-

तव्रतोः ॥४६॥

शाम्भवं वैष्णवं चैव उर्वशीतीर्थमेव च । ततः प्रभृति तत्तीर्थं कैतवं चेति विश्रुतम् ॥४७॥

शिवश्चिन्तितरिन्मातुः प्रसादादाप्यते न किम् । तत्र स्नानं च दानं च बहुपुण्यफलप्रदम् ॥

पापपाशविमोक्षं तु सर्वदुर्गतिनाशनम्

॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उर्वशीपादितोर्थवर्णनं नामैकसप्तत्यधि-

कशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

सुमति ने कहा—क्या करने से पिता प्रमति पुनः राज्य प्राप्त करेंगे ? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—फिर ध्यान करके मधुच्छन्दा ने सुमति से कहा ॥४२॥

मधुच्छन्दा बोले—वत्स ! तुम गोदावरी जाओ और वहाँ शंकर, अदिति, वरुण तथा विष्णु की पूजा करो । तब तुम्हारे पिता पाश से मुक्त हो जायेंगे ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—'अस्तु' कहकर सुमति ने शीघ्र ही गंगा के लिये प्रस्थान कर दिया । वहाँ पहुँच कर वह गंगा को प्रणाम कर विष्णु तथा शंकर की पूजा करके नियमपूर्वक तप करने लगा । एक हजार वर्षों तक तपस्या करके उसने अपने पिता को देव-बन्धन से मुक्त किया । तब प्रमति ने अपने पुत्र से पुनः राज्य तथा शिव एवम् विष्णु की भक्ति प्राप्त की । वह गन्धर्व-विद्या को प्राप्त कर इन्द्र का प्रियपान बना । तब से उस तीर्थ का नाम शाम्भवं वैष्णवं उर्वशीतीर्थ एवम् कैतवतीर्थ भी पड़ा । शिव विष्णु तथा गंगा की कृपा से क्या नहीं प्राप्त हो सकता है ? वहाँ स्नान तथा दान करने से बहुत पुण्य, पाप तथा बन्धन से मुक्ति और समस्त दुर्गंतियों का नाश होता है ॥४४-४८॥

श्रीब्रह्ममहपुराण में तीर्थमाहात्म्य-कथन-प्रसंग में उर्वशी आदि तीर्थ वर्णन नामक एक

श्री एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७१॥

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सामुद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सामुद्र तीर्थमाख्य सर्वतीर्थफलप्रदम् । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मता ॥१॥
 विसृष्टा गौतमेनासी गङ्गा पापप्रणाशनी । लोकानामुत्कारार्थं प्रायाःपूर्वार्णव प्रति ॥२॥
 आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृता भया । शिरसा च धृता देवी शम्भुना परमात्मना ॥३॥
 विष्णुपादात्प्रसूता ता ब्राह्मणेन महात्मना । आनीता मर्त्यभवन स्मरणाद्यनाशनीम् ॥४॥
 गुरोर्गुह्यतमा सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत । या व द्या जगतामोशा ब्रह्मेशार्चनमश्रुता ॥५॥
 तामह प्रतिगच्छेय नो चेत्स्याद्वर्मदूषणम् । आगच्छ त महात्मान यो मोहान्नोपतिष्ठते ॥६॥
 न तस्य कोऽपि त्राताऽस्ति पापिनो लोकयोर्द्वयो । एव विमृश्य रत्नेशो मूर्तिमान्विनयावित ॥
 कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेद सरितापति ॥७॥

सिन्धुरवाच

'रसातलगत वारि पृथिव्या यत्रभस्तले । तन्मामेवात्र विशतु नाह वक्ष्यामि किञ्चन ॥८॥

अध्याय १७२

सामुद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सामुद्रतीर्थ समस्त तीर्थों का फलदायक है । उसका स्वरूप-वर्णन मैं कहूँगा । नारद ! आप ध्यान से सुनिये । गौतम सत्यका होकर अतिलपापनाशिनी गंगा गोपा के उपकार के लिये पूव समुद्र की ओर चले पड़ी । आती हुई उस देवतनी को मैं कमण्डलु में धारण कर लिया और परमामा गकर न उस अपन गिर पर अवस्थित किया । विष्णु के चरण से निकली हुई उस पापनाशिनी देवी को महात्मा ब्राह्मण मृगुलाक म ले आया । उस सब-पटा देवी को देखकर समुद्र अपने वक्ष्य की चिन्ता करने लगा कि जो भगवती ससार का पूजनीया तथा ब्रह्मा गिव आदि देवताओं की प्रणम्या है उससे मुझ सगम करता पड़गा । इसमें धमनाय तो नहीं है क्योंकि जो मोहवग आते हुए महात्मा का सत्कार नहीं करता है उस पापा का सपक्षक दोना लाक म काई नहीं हन्ता है । एसा सोचकर मानो नम्रता की मूर्ति धारण कर रत्नाकर ने हाथ जोड़कर गया स कहा ॥१७॥

समुद्र बोला—पाताल म पृथिवी पर तथा आकाश म जो जल है वह मुझम ही प्रविष्ट है । (वस इतना ही) और मैं कुछ नहा कहूँगा । मैं रत्न अमृत पवत रागस देवता तथा दूसरे जीवा की धारण करता हूँ । मरे

मयि रत्नानि पीयूषं पर्वता राक्षसासुराः। एतानप्यखिलानन्यान्भीमान्संधारयाम्यहम् ॥१॥
 ममान्तः कमलायुक्तो विष्णुः स्वपिति नित्यदा। ममाशयं न किमपि विद्यते सचराचरे ॥१०॥
 महत्पद्मपागते कुर्यात्प्रत्युत्थानं न यो मदात्। स धर्मादिपरिभाटो निरयं तु समाप्नुयात् ॥११॥
 न तान्मे विभ्रतः खेदो विनागस्त्यपराभवात्। किंतु त्वं गौरवेणैषामतिरिक्ता स्तस्वहम् ॥१२॥
 अवीमि देवि गङ्गे मां त्वं साम्यात्संगता भव। नैकरूपामह शक्तः संगन्तुं बह्वधा यदि ॥१३॥
 सङ्गमेष्यसि देवि त्वं संगच्छेऽहं न चान्यथा। गङ्गे समेष्यसि यदि बह्वधा तद्विचारये ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तमेवंवादिनं सिन्धुमपामोशं तदाऽब्रवीत्। गङ्गा सा गीतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम ॥१५॥
 सप्तर्षीणां च या भार्या अरुन्धतिपुरोगमाः। भर्तृभिः सहिताः सर्वा आनय त्वं तदा त्वहम् ॥१६॥
 अल्पभूता भविष्यामि ततः स्यां तव संगता। तयेत्युक्त्वा सप्तर्षीणां भार्याभिर्भृष्ट (श्चक्र) पिभिवृतः
 (ताः) ॥१७॥

आनयामास तां (ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यत। सा चैवं गीतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता ॥१८॥
 सप्तर्षीणां तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन्। तत्र स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा ॥१९॥

मीतर लक्ष्मीयुक्त विष्णु सदा शयन करते हैं। ससार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मुझसे अवाप्य हो। महान् व्यक्ति के आने पर जो अभिमान से उठता नहीं है, वह धर्म आदि से भ्रष्ट होकर नरक में जाता है। उन चीजों को धारण करने से मुझे खेद नहीं होता है, यदि खेद होता है तो केवल एक अगस्त्य द्वारा पराजय से। किन्तु तुम अपनी महत्ता के कारण दनसे अतिरिक्त हो। इसलिये, देवि! गये!, मैं कहता हूँ कि तुम सामान होने के कारण मुझसे सगम करो। तुम जब तक एक रूप में रहोगी तब तक मैं तुमसे सगम करने में असमर्थ रहूँगा। पर यदि तुम अनेक रूप धर कर सामान करोगी तो मैं सगम कर पाऊँगा, अन्यथा नहीं। गये। सोचो, जिससे वि तुम अनेक रूप बनाकर सगम कर सको ॥८-१४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए जल के स्वामी समुद्र से उस गीतमी देवी गंगा ने कहा—‘तो मेरी यह बात करो कि सप्तर्षियों की अरुन्धती आदि जो भार्या है, उनको पतियों के सहित ले आओ। तब मैं सीमित हो जाऊँगी, जिससे तुम्हारे साथ मेरा सगम हो जायगा।’ ‘ऐसा ही सही’ कहकर समुद्र ऋषि पतियों सहित सप्तर्षियों की भार्याओं को ले आया। तब गंगा सात भागों में विभक्त हो गई। वही यह गीतमी गंगा है, जो सात भागों में बँटकर समुद्र में मिल गई। तब सप्तर्षियों के नाम से सात गंगाएँ हुईं। वही, स्नान, दान श्रवण तथा पाठ करने से या स्मरण

स्मरणं चापि यद्भक्त्या सर्वकामप्रद भवेत् । नास्मादव्यपारं तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये ॥
पापहानी भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तधागोदावरीसमुद्रागमनवर्णनं नाम
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

• गौतमीमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋषिसत्रमिति ख्यातमूपय सप्त नारद । निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वर शिव ॥१॥
तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपितृबृंहितम् । शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२॥
सप्तधा व्यभजन्गङ्गामूपय सप्त नारद । वासिष्ठी दाक्षिण्यो स्याद्वैश्वामित्रो तदुत्तरा ॥३॥
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यतः शुभरा । भारद्वाजो स्मृता चान्या आत्रेयो चेत्यथापरा ॥४॥
जामदग्नौ तथा चान्या व्यपदिष्टा तु सप्तधा । तं सर्वैर्ऋषिभिस्तत्र यष्टुमिष्टं महात्मभि ॥५॥

करने से भी सप्त कामनायें पूरी होती हैं । पापा को नष्ट करने में और मुक्ति मुक्ति तथा मनवी प्रसन्नता देने में इस समुद्र से बड़कर तीनों लोक में कोई तीर्थ नहीं है ॥१५॥ २०॥

श्रीब्रह्मपुराण में नावमाहात्म्यकथनप्रसंग में साती गंगायां व समुद्र मिलन वर्णन
नामक १३ गी बहतरवां अध्याय समाप्त ॥१७२॥

अध्याय १७३

भीमेश्वरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद । उस तीर्थ का नाम ऋषिसत्र है जहाँ तप करने के लिए सात ऋषि अवस्थित हुए थे और जहाँ भीमेश्वर निव रहत हैं । वहाँ देवर्षियों और पितरों द्वारा जो वृत्तान्त हुआ था उसे मैं बतलाऊंगा । उस ऋषि वृत्तान्तकामनादायक एवम् पवित्र वृत्तान्त को ध्यान में मुनिय । नारद । सप्तर्षियों ने गंगा को सात भागों में विभक्त कर दिया । गंगा में वासिष्ठी हुई और उत्तर में वैश्वामिनी । वामदेवी तमरी हुई और मध्य में पवित्र गौतमी हुई । इनके अनिरुद्ध भारद्वाजी आत्रेयी एवम् जामदग्नौ हुई । इस प्रकार गंगा सात भागों में बँट गई । वहाँ उन महात्मा तथा भविष्यदग्नी सप्तर्षियों ने महासत्र नामक यज्ञ करना आरम्भ किया । इसी बीच देवताओं

निष्पादितं महासत्रमृषिभिः पारवशिभिः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रियुः॥६॥
 विश्वरूप इति श्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात्। ब्रह्मचर्येण तपसा तानाराध्य यथाविधि॥
 विनयेनाय पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ॥७॥

विश्वरूप उवाच

ध्रुव सर्वे यथाकामं मम स्वास्थ्येन हेतुना। यथा स्याद्बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरः॥
 यतैर्वा तपसा वाऽपि मुनयो ववतुमर्हय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामना। ॥९॥

विश्वामित्र उवाच

कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च। त्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम्॥१०॥
 ततश्च कारणं कर्ता ततश्चान्यत्प्रकीर्तितम्। उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्दुधाः॥११॥
 कर्मणा कारणत्व च कारणे पुष्कले सति। भावाभावौ फले दृष्टौ तस्मात्कर्माश्रितं फलम्॥१२॥
 कर्मापि द्विविधं श्रेयं क्रियमाणं तथा कृतम्। कर्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यच्चदुच्यते॥१३॥
 तद्भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम्। यद्बलभावयते जन्तुः कर्म कुर्वन्निचक्षणः॥१४॥
 तद्भावतानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते। करोति कर्म विधिवद्विना भावनया यदि॥१५॥
 अन्यथा स्यात्फलं सर्वं तस्य भावानुरूपतः। तस्मात्तपो व्रतं दानं जपयज्ञादिका क्रियाः॥१६॥

का प्रबल शत्रु विश्वरूप मुनियों के यज्ञस्थल में आ गया। ब्रह्मचर्य तथा तपस्या से विधिपूर्वक मुनियों की त्रयशा-
 आराधना करके उसने वज्रता के साथ उनसे प्रश्न किया ॥१७॥

विश्वरूप ने कहा—मेरी स्वस्थता के कारण जिस उपाय से—यज्ञ या तप करने से—बलवान् एवम्
 देवताओं से भी अजेय पुत्र मुझे उत्पन्न हो, वह आप लोग बतलायें ॥८॥

ब्रह्मा बोले—उन्में से महाबुद्धिमान् तथा महामनस्वी विश्वामित्र ने कहा ॥९॥

विश्वामित्र बोले—तात! कर्म से अनेक प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। तीन कारणों में कर्म ही प्रथम कारण
 माना जाता है। उसके बाद कारण, कर्ता तथा दूसरी वस्तु वही जाती है। विद्वान् लोग उपादान कारण एवम्
 बीज को कर्म नहीं मानते हैं। कारणों के आधिव्य होने पर ही कर्मों में कारणत्व माना जाता है। कर्म के दो फल
 होते हैं—एक माव और दूसरा अभाव। इसलिये कर्म-फल कर्म के अधीन है। कर्म भी दो प्रकारका माना गया है—
 एक क्रियमाण और दूसरा कृत। कर्तव्य क्रियमाण का साधन कहा जाता है। कर्तव्य की भावना कर्म तथा उसकी
 सिद्धि में कारण होती है। विद्वान् भगुष्य जिस भावना से कर्म करता है उसी भावना के अनुरूप उसे फल मिलता
 है। जो बिना भावना के विधिपूर्वक कर्म करता है, उसे अपनी भावना के प्रतिकूल फल मिलता है। इसलिये तप,

कर्मणस्त्वनुरूपेण फलं दास्यन्ति भावतः । तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम् ॥१७॥
 भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजसस्तथा । तामसस्तु तथा ज्ञेयः फलं कर्मानुसारतः ॥१८॥
 भावनानुगुणं चेति विचित्रा कर्मणां स्थितिः । तस्माद्विच्छानुसारेण भावं कुर्याद्विचक्षणः ॥१९॥
 पश्चात्कर्मणि कर्तव्यं 'फलदाताऽपि तद्विधम् । फलं ददाति फलिनां 'फले यदि प्रवर्तते ॥२०॥
 कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावतः । तदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥२१॥
 भावात्प्रारम्भे तद्भावं फलमवाप्स्यते । धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्म चैव हि कारणम् ॥२२॥
 भावस्थित भवेत्कर्म मुक्तिदं व्यवहारणम् । स्वभावानुगुणं कर्म स्वस्यैवेह परत्र च ॥२३॥
 फलानि विविधान्याशु करोति समतानुगम् । एक एव पदार्थोऽसौ भावर्भेदः प्रदृश्यते ॥२४॥
 क्रियते भुज्यते वाऽपि तस्माद्भावो विशिष्यते । दयाभावं कर्म कुह दयेऽस्ति तमवाप्स्यति ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वार्यं विश्वामित्रस्य धीमत । तपस्तपसा बहुकालं तामसं भावमाश्रितः ॥२६॥
 विश्वरूप कर्म भीम चकार सुरभीषणम् । पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु वार्यमाणोऽपि नित्यशः ॥२७॥
 आत्मकोषानुसारेण भीम कर्म तथाऽवरोत् । भीषणे कृष्टेऽस्मात्तु भीषणे जातवेदसि ॥२८॥

व्रत, दान, जप, यज्ञ आदि क्रियायें भावना के अनुरूप कर्मफल देती हैं । अतः भावना के अनुसार ही कर्म का फल प्राप्त होता है । भाव तीन प्रकार का होता है—एक सत्त्विक दूसरा राजस और तीसरा तामस । फल कर्म तथा भावना के अनुसार मिलता है । कर्मों की स्थिति विचित्र है । इष्टानि विद्वान् मनुष्य इच्छाक अनुसार भाव करे । पश्चात् कर्म भी करता चाहिये । फलदाता भी कर्मकर्ता को भावना के अनुरूप ही फल देत हैं । वस्तुतः कर्मकर्ता अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करता है । वही कर्म उपादान आदि कारणा और सत्त्व आदि गुणों के भेद के कारण भाव से प्रारम्भ होता है । और उसी तरह भाव से फल प्राप्त होता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारण कर्म ही है । भावनायुक्त कर्म मोक्ष भी देता है और बन्धन का कारण भी होता है । अपनी भावना के अनुसार किया गया कर्म इस लोका में तथा परलोक में शीघ्र ही विविध फलों को देता है । एक ही पदार्थ भावा के भेद से भिन्न हो जाता है । अर्थात् एक ही पदार्थ बताया जाता है और खाया भी जाता है । इसलिये भाव विशिष्ट माना गया है । जैसी भावना से कर्म करोगे वैसा फल पाओगे ॥१०-३५॥

यथा बोले—धीमान् विश्वामित्र मुनि की यह बात सुनकर विश्वरूप से तामस भाव का अवलम्बन लेकर विशाल तप तप किया और देवताओं का इगल पाया मयादक कर्म किया । ऋषिगण उसका कर्म दसत से और नित्य उगे सदा भी कहते थे । फिर भी अपन शेष के अनुसार वह मयादक कर्म करता ही रहा । वह मयादक कृष्ट

१५ फल तथापि । २६ इ. फलेच्छेद । च फलेच्छीव । २७ य च न्याहु क० । ४६. समतानुगम् ।

भोग्यं रौद्रपुरुषं ध्यात्वाऽऽत्मानं गृहायाम् । एव तपन्तमालक्ष्य धाम्नुवाचाशरीरिणी ॥२९॥
 जटाजूटं विनाऽऽत्मानं न च वृत्रो व्यजोयत । ध्यात्वाऽऽत्मानं विश्वरूपो जहृपाञ्जातवेदति (?) ॥३०॥
 स एवेन्द्र स वरुण स च स्यात्सर्वमेव च । त्यक्त्वाऽऽत्मानं जटामात्रं हुतवान्बृजिनोद्भव ॥३१॥
 वृत्र इत्युच्यते वेदे स चापि^१ बृजिनोऽभवत् । भीमस्य महिमानं को जानाति जगदीशितु ॥३२॥
 सृजयशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते । विररामेति सकीर्त्य सा वाण्येन मुनीश्वरा ॥३३॥
 भीमेश्वरं नमस्कृत्य जग्मुः स्वस्वमयाऽऽश्रमम् । विश्वरूपो महाभीमो भीमकर्मा तथाकृति ॥३४॥
 भीमभात्रो भीमननु ध्यात्वाऽऽत्मानं जुहाव ह । तस्माद्भीमेश्वरो देव पुराणे परिपठ्यते
 तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिदत्तं नात्र सशय ॥३५॥

इति पठति शृणोति यश्च भवत्या, विबुधपति शिवमत्र भीमरूपम् ।
 जगति विदितमशेषपापहारिस्मृतिपदशरणेन^२ भुक्तिदत्तश्च (?) ॥३६॥
 गोदावरी तावदशेषपापसमूहहन्त्री परमार्थदात्री
 सदैव सर्वत्र विशेषतस्तु, यन्नाम्बुराशिं समनुप्रविष्टा ॥३७॥
 स्नात्वा तु तस्मिन्सुकृती शरीरी, गोदावरीवारिधिसगमे य ।
 उद्धृत्य तीव्रान्निरयादशेषात्स पूर्वजान्याति^३ पुर पुरारे ॥३८॥

मे भयकर अग्नि मे हवन करता था और हृदयस्थित आत्मा का दारुण पुरुष के रूप में ध्यान करता था । इस प्रकार
 ता रुग्णे दृग् । यः २०० को देव कर जाकाशवाणी ने कहा— शिव के बिना वृत्र ने आत्मा को नहीं जीता । विश्वरूप
 ०२४ हो अ न्न मे आत्मा को आहुति देगा । वही इन्द्र वही वरुण और वही सब कुछ है । बृजिन के पुत्र ने आत्मा को
 छोड़कर जगत्मान की आहुति दी थी । वेद में जो वृत्र कहा गया है वह बृजिन से इतर नहीं है । सत्तार के स्वामी
 भीम पुरुष की महिमा को कौन जानता है ? भयकर भाव वाले विश्वरूप ने भयकर शरीर का ध्यान करके आत्मा
 की आहुति दी । इसलिये भीमेश्वर देव पुराणों में पढ़ जाते हैं ॥ वही स्नान तथा दान करने से नि सदेह भुक्ति
 मिलता है ॥२९ ३५॥ जो मनष्य देवताओं के स्वामी तथा जगदविदित भीम रूप वाले शिव के इस आश्रयान का
 श्रवण तथा पाठ करेगा उसके समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे और मोक्ष मिलेगा । गोदावरी सब जगह अशेष-पाप-हारिणी
 तथा मोक्ष देने वाली है । पर उस जगह तो और भी फल देती है जहाँ वह समुद्र में प्रविष्ट हुई है । जो धर्मात्मा
 मनुष्य गयासागरसमग में स्नान करता है वह भयकर नरक से पितरों का उद्धार करके शिवलोक को जाता है ।

१ इ ० न तव पुत्रोऽभ्यजायत । तथाऽऽत्मा ० । २ च ० क्त्वाऽऽत्मनो ज ० । ३ क ० टामोर्लि
 ह्वनादबृजिनोऽभवत् । ४ घ ० श ह्वनादबजितो भवान् । वृ ० । च ० च ह्वनादबृजिनोदभव । वृ ० ।
 ५ क वेदै । इ देव । ६ घ ० पि ब्रजितोऽम ० । च ० पि ब्रजितोऽम ० । ७ क ० रणभुक्तिदत्तश्च पुत्राम् ।
 गो ० । ८ घ ० ति पद मुश ० ।

वेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं, तद्ब्रह्म साक्षात्खलु भीमनाथः ।

दृष्टे हितस्मिन्न पुनर्विशन्ति, शरीरिणः संसृतिमुग्रदुःखाम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थवर्णनं नाम

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

गोतमीमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गंगासागरसगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सा संगता पूर्वमपापतिं त, गङ्गासुराणामपि बन्धनीया ।

देवैश्च सर्वैरनुगम्यमाना, सस्तूयमाना मुनिभिर्महद्भिः ॥१॥

यसिष्ठजाबालिसयाज्ञवल्क्यश्रुङ्गिरोदक्षमरीचिवैष्णवाः ।

शातातपः शौनकदेवरातभृगुवग्निवेद्यात्रिमरीचिमुह्याः ॥२॥

सुधूतपापा मनुगौतमादयः, सकौशिकास्तुम्बरपर्वताद्याः ।

अगस्त्यमार्कण्डसपिप्पलाद्याः, सगालवा योगपरायणाश्च ॥३॥

वेदान्त से ज्ञानने योग्य एवम उपासना करने योग्य जो ब्रह्म है वह माझात् भीमनाथ है । उसने दर्शन हा जाने पर मनुष्य उग्र दुःख देने वाले इस ससार मे पुन प्रवेश नहीं करते हैं ॥३६-३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थमाहात्म्य-अथन प्रसंग मे ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थ-वर्णन नामक

एक सौ तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७३॥

अध्याय १७४

गंगा और मागर के सगम का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिसरी देवगण बन्धना करते हैं मुनि तथा मन्त्रगण स्तुति करते हैं और समस्त देवता अनु-
गमन करने हैं, वह गंगा समुद्र मे जाकर मिल गई ॥१॥ यसिष्ठ जाबालि याज्ञवल्क्य श्रुङ्गिरोदक्ष मरीचि
वैष्णव, शातातप, शौनक दररात भृगु अग्निवेद्य अत्रि निष्ठाप मनु गौतम आदि, कौशिक तुम्बर पर्वत आदि ।
अगस्त्य, मार्कण्ड निषादा सात्य बागवतगण वामदेव अङ्गिरा आदि भागवत स्मृतिवा म प्रवीण वेद-गुरुणों

सवामदेवाङ्गिरसोऽय भार्गवाः, स्मृतिप्रबोणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः ।

सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञास्ते गौतमी देवनदी तु गत्वा ॥४॥

स्तोष्यन्ति मन्त्रं. श्रुतिभिः प्रभूतं ह्येवंच तुष्टं मुदितं मनोभिः ।

ता सगता बोक्ष्य शिवो हरिश्च, आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्यः. ॥५॥

तथाऽमरास्तौ पितृभिश्च दृष्टौ, स्तुवन्ति देवो सकलातिहारिणी ॥६॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालकाः । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्ति हरिशंकरौ ॥७॥

संगमेषु प्रसिद्धेषु नित्य सप्तसु नारद । समुद्रस्य च गङ्गाया नित्यं देवो प्रतिष्ठितौ ॥८॥

गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः । नित्यं सनिहितस्तत्र माधवो रमया सह ॥९॥

ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयंवा स्थापितः शिवः । लोकानामुपकारार्थमारुनः कारणाग्नौ ॥१०॥

चक्रपाणिरिति ख्यातः स्तुतो देवर्मया सह । तत्र सनिहितो विष्णुर्देवैः सह मरुद्गणैः ॥११॥

ऐन्द्रतीर्थमिति ख्यातं तदेव हयमूर्धकम् । हयमूर्धा तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि ॥

सोमतीर्थमिति ख्यातं यत्र सोमेश्वरः शिवः ॥१२॥

इन्द्रस्य सोमश्रवसो देवंश्च ऋषिभिस्तथा । प्रार्थितः सोम एवाऽऽविन्द्रायेन्दो परिलख ॥१३॥

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।

देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभिरक्ष न इन्द्रायेन्दो परिलख ॥१४॥

के तत्त्वज्ञाता एवम् बहुज्ञाता मुनिवृन्द देवनदी गोदावरी के निचट जावर प्रफुल्ल चित्त से वेदमन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥२-४॥ गंगा का संगम देखकर शिव और हरि ने मुनियों को दर्शन दिया । पितर तथा देवगण सकल पीडाओं को हरने वाले उन दोनों देवों की स्तुति करने लगे ॥५-६॥ आदित्य, वसु रुद्र मरुत् तथा लोकपाल ह्यय जोडकर हरि और शंकर की स्तुति करने लगे ॥७॥ नारद । समुद्र तथा गंगा के सातों प्रसिद्ध संगमों में नित्य हरि हर वास करते हैं । जहाँ गौतमेश्वर नाम से प्रसिद्ध शिव रहते हैं वहाँ लक्ष्मी सहित विष्णु भी रहते हैं ॥८-९॥ लोगो के उपकार के लिये मैंने ही ब्रह्मेश्वर नामक शिव की स्थापना की । फिर अपने दूसरे कारण से चक्रपाणि नामक शिव की स्थापना करके मैंने देवताओं के साथ उनकी स्तुति की । वहाँ मरुद्गणों के साथ विष्णु वास करते हैं । ऐन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक हयमूर्धक नामक तीर्थ है जहाँ हयमूर्धा नामक विष्णु और देवगण वास करते हैं । सोमतीय नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है जहाँ सोमेश्वर शिव वास करते हैं ॥१०-१२॥ सोमश्रवा नामक इन्द्र के यज्ञ में देवता तथा ऋषियों ने सोम से प्रार्थना की—सोम । इन्द्र के लिये आप क्षरण करें । सात दिशाओं अनेक सूर्यों सात होताओं ऋत्विजा देवो एवम् आदित्यो से आप हमारी रक्षा करें और इन्द्र के लिये क्षरण करें । राजन् । सोम । आपका जो पवत्र हविष् है उससे हमारी रक्षा करें । धनु हमारा पार न पाये कुछ बिगाडे नही और आप

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभिरक्ष नः ।
 अराती वा मा नस्तारोन्मो च नः किञ्चनामदिन्द्रायेन्दो परिल्व ॥१५॥
 ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
 सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञेवोरुधा पतिरिन्द्रायेन्दो परिल्व ॥१६॥
 कारुरहं ततो भियगुपलप्रक्षिणो नना ।
 नानाधियोवसूयवोऽनु गा इव तस्यमेन्द्रायेन्दो परिल्व ॥१७॥

एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च बज्रिणे । तेभ्यो दत्त्वा ततो यज्ञ-पूणो जातः शतक्रतोः ॥१८॥
 तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत् । अग्निरिष्ट्वा महायज्ञं मारामाध्य मनोपितम् ॥१९॥
 संप्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव नित्यशः । स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा ॥२०॥
 तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्य तदनन्तरम् । यत्राऽऽदित्यो देवस्यो नित्यमेति उपासिदुम् ॥२१॥
 रूपान्तरेण मध्याह्ने द्रष्टु मा शंकरं हरिम् । नमस्कार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने स्वलो जनः ॥२२॥
 रूपेण केन सविता समायातीत्यनिश्चयात् । तस्मादादित्यमाख्यात बार्हस्पत्यमनन्तरम् ॥२३॥
 बृहस्पतिः सुरं पूजां तस्मात्तीर्थादवाप ह । ईजे च यज्ञान्विधान्बाहंस्पर्शं ततो विदुः ॥२४॥
 तत्तीर्थं स्मरणादेव ग्रहशान्तिर्भविष्यति । तस्मादप्यपर तीर्थमिन्द्रगोपे नगोत्तमे ॥२५॥

इन्द्र के लिये परिशरण करें। ऋषे । कश्यप । मन्त्रकारों के स्तोमों से वाणी को बढ़ाइये। वृक्षा के पति सोम राजा को नमस्कार है। चन्द्र । इन्द्र के लिये आप परिशरण करें। हम ऋषि, पिता, यज्ञब्रह्मा तथा बालुका मे यवा को कूटने वाली माता हैं। जैसे गाये गोष्ठ मे परिचरण करती है वैसे अनेक कर्म करने वाले तथा धन की इच्छा करने वाले हम लोग बिचरण करते हैं। चन्द्र । आप इन्द्र के लिये शरण करे ॥१३-१७॥ ऋषिया मे इस प्रकार प्रायना करके इन्द्र के लिये सोम को प्राप्त किया। फिर इन्द्र ने ऋषियों को देखकर यज्ञ सम्पन्न किया। उसी का नाम सोमतीर्थ पडा। उससे आगे आग्नेयतीर्थ है। अग्नि ने महायज्ञों द्वारा विष्णु की आराधना की और मेरी वृष से उनको प्राप्ति भी की। वहाँ लोगों के उक्तर के लिये विष्णु और शिव नित्य वास करते हैं ॥१८-२०॥ इसीलिये उनका नाम आग्नेय पडा। उसके बाद आदित्यतीर्थ है जहाँ वेदमय आदित्य नित्य उपासना करने के लिये आते हैं और मध्याह्न काल मे स्वरूप बदल कर मेरे, शंकर और हरि के दर्शन करते है। जिस रूप मे सूर्य आते हैं—यह अनिश्चित है। इसलिये वहाँ मध्याह्न काल मे समस्त प्राणियों की नमस्कार करे। इसी कारण उसतीर्थ का नाम आदित्य पडा। उसके आगे बार्हस्पत्यतीर्थ है ॥२१-२३॥ वहाँ बृहस्पति ने देवताओं द्वारा पूजित होकर बृहत से यज्ञ किये। इसलिये वह तीर्थ बार्हस्पत्य कहलाया ॥२४॥ उस तीर्थ के स्मरणमात्र से ग्रहशान्ति हो जाती है। उसके आगे इन्द्रगोपनामक उत्तम पर्वत पर एक दूसरा तीर्थ है। ॥२५॥ किसी कारण वहाँ महालिङ्ग (शंकर) की

प्रतिष्ठित महालिङ्गं वस्मिंश्चित्कारणात्तरे । हिमालयेन तत्तीर्थंमद्वितीर्थं तदुच्यते ॥२६॥
 तत्र स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् । एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्माद्रेःच विनि सुता ॥२७॥
 यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित् । सक्षेपेण मयोक्तानि रहस्यानि शुभानि च ॥२८॥
 वेदे पुराणे ऋषिभिः प्रसिद्धा, या गौतमी लोकनमस्कृता च ।
 ववतु कथं तामतिसुप्रभावामशेषतो नारद वस्य शक्ति ॥२९॥
 भक्त्या प्रवृत्तस्य यथावयचिन्नेवापराधोऽस्ति न सशयोऽत्र ।
 तस्माच्च दिङ्मात्रमतिप्रयासात्ससूचितं लोचहिताय तस्या ॥३०॥
 कस्तस्या प्रतितीर्थं तु प्रभावं ववतुमोऽश्वर । अपि लक्ष्मीपतिविष्णुरल सोमेश्वर शिव ॥३१॥
 वयचित्कस्मिन्च तीर्थानि कालयोगे भवन्ति हि । गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम् ॥३२॥
 सर्वत्र सर्वदा पुण्या को न्वस्या गुणकीर्तनम् । ववतु शश्वतस्तस्तस्यै नमः इत्येव युज्यते ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गासागरसगमवर्णनं नाम चतु सप्त-
 त्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥

प्रतिष्ठा हुई । हिमालय से सम्बद्ध होने के कारण उसका नाम अद्वितीय पड़ा । वहाँ स्नान दान करने से समस्त कामनाय सिद्ध होती है । इस प्रकार गौतमी गंगा ब्रह्मपवत से निचला है और जब तक वह देवी समुद्र से मिलती है इस बीच में जितने तीर्थ पड़ जाते हैं उनका रहस्य सक्षप स मैंने बतला दिया ॥२६ २८॥ नारद ! वेदों और पुराणों में ऋषियों ने जिस गोदावरी का प्रशंसा की है और जो त्रिभुवनप्रणम्या है उस महामहिमाभरी देवी का अशेष वर्णन मला कौन कर सकता है ? ॥२९॥ उसके यथावयचित वर्णन करने में मैं शक्ति भाव से प्रवृत्त हुआ हूँ । नि स देह इसमें मेरा कोई अस्वराध मटा है । इसलिये लोचहित के लिये मैंने उसके दिग्दर्शनमात्र कराने का प्रयास किया है ॥३०॥ कौन उसके तीर्थों का प्रभाव वर्णन कर सकता है ? लक्ष्मीपति विष्णु तथा सोमेश्वर शिव भी वर्णन करने में असमर्थ हैं । महापण्डित ! तीर्थ किसी स्थान में किसा अवसर पर गुण सम्पन्न होते हैं । पर गोदावरी तो मनुष्यों के लिये सदा सवत्र गुणसम्पन्ना एवम् पुण्यदायिका है । उसके गुणों का वर्णन कौन कर सकता है ? अतः उसे प्रणाम कर लेना ही उचित है ॥३१ ३३॥

श्री ब्रह्ममहपुराण म त व्रमाहात्म्यवचनप्रसंग म गंगासागर-वर्णनं नामक एक सौ चौहत्तरवाँ
 अध्याय समाप्त ॥१७४॥

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थादीना चातुर्विध्यादिनिरूपणम्

नारद उवाच

त्रिदेवत्या सुरेशान गङ्गा ब्रूये सुरेश्वर । ब्राह्मणेनाऽऽहूता पुण्या जगत पावनौ शुभाम् ॥१॥
आदिमध्यावसाने च उभयोस्तीरयोरपि । या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम ॥
पुन ससेपतो ब्रूहि न मे तृप्ति प्रजायते ॥२॥

ब्रह्मोवाच

कमण्डलुस्थिता पूर्वं ततो विष्णुपदानुगा । महेश्वरजटाजूटे स्थिता संव नमस्कृता ॥३॥
ब्रह्मतेज प्रभावेण शिवमाराध्य धत्तत । तत् प्राप्ता निर्गिर पुण्य तत् पूर्वाण्व प्रति ॥४॥
आगत्य सगता देवी सर्वतोभयमी नृणाम् । ईप्सिताना तथा दात्री प्रभावोऽस्या विशिष्यते ॥५॥
एतस्या नाधिक मन्ये किञ्चित्तोयं जगत्त्रये । अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्य यच्च मन स्थितम् ॥६॥
अद्याप्यस्या हि माहात्म्य वक्तुं कश्चिन्न शक्यते । भक्तितो वक्ष्यते नित्यं या ब्रह्म परमार्थतः ॥७॥
तस्या परतर तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम । अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथंचन ॥८॥

अध्याय १७५

तीर्थ आदि के चार प्रकार के होने का वर्णन

नारद बोले—देवताओं के स्वामी । आपने गंगा के बारे में बतलाया है कि वह त्रिदेवमयी ससारपावनी कल्याणमयी और ब्राह्मण द्वारा लाई गई है और उसके दोनों तटों के आदि मध्य तथा अंत में विष्णु व्याप्त हैं । अब फिर उसी के विषय में सक्षप में कहिये । मुझ (मुनने से) तृप्ति नहीं होती है ॥१॥ २॥

ब्रह्मा बोले—यहिले वह कमण्डलु म थी । तब विष्णु के चरणा की अनुगामिनी हुई । तत्परचात यही प्रणम्या देवी शकर की जटाओं में अवस्थित हुई । ब्रह्मतेज के प्रभाव से यत्नपूर्वक शिव की आराधना करके वह पवित्र पवन पर पहुँची । तदुपरान्त पूवसमद्र से मिलकर वह देवी मनुष्या के लिये सवतीषमयी बन गई । वह धमी प्सित फला को देने वाली है । उसका प्रभाव बहुत विगिण्ट है । तीनों लोक में उससे बढकर कोई तीथ मैं नहीं मानता । उसी के प्रभाव से जो कुछ मेरे मन में है वह होगा । आज भी उसका माहात्म्य कोई भी वर्णन नहीं कर सकता । वह वस्तुत ब्रह्म है । मैं भक्ति के प्रताप से उसके विषय में कुछ कहूँगा । उससे बढकर कोई तीथ नहीं है—यह मेरा सिद्धान्त है । अन्य तीर्थों से उसकी उपमा नहीं हो सकती । मुने । तीनों लोक में गंगा के गुणवर्णन

१ष छ च वन्दते । २ष छ च ०मार्थिम । त० । ३क कदावन ।

श्रुत्वा महाव्यपीयूषं ज्ञाया गुणकीर्तनम् । सर्वेषां न मतिः कस्मात्तत्रैवोपरतिं गता ॥
इति भाति विचित्रं मं मुने खलु जगत्त्रये ॥ १९ ॥

नारद उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं येता चोपदेशकः । छन्दांसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च ॥ १० ॥
धर्मशास्त्राणि यच्चान्यत्तव वाक्ये प्रतिष्ठितम् । तीर्थानामथ दानानां यज्ञानां तपसा तथा ॥ ११ ॥
देवतामन्त्रसेवानामधिकं किं वद प्रभो । यद्द्रुपे भगवन्भक्त्या तथा भाव्यं न चान्यथा ॥ १२ ॥
एत मे संशय ब्रह्मन्वावयात्त्व छेतुमर्हसि । इष्टं मनोगतं श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागतं ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्य धर्ममुत्तमम् । चतुर्विधानि तीर्थानि तावन्त्येव युगानि च ॥ १४ ॥
गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवाः सनातनाः । वेदाश्च स्मृतिभिर्ब्रह्माश्चत्वारस्ते प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥
पुरुषार्थाश्च चत्वारो वाणी चापि चतुर्विधा । गुणा ह्यपि तु चत्वारः समत्वेनेति नारद ॥ १६ ॥
सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मं सनातनः । साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः ॥ १७ ॥
तस्मादश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा । कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा ॥ १८ ॥
युगानामनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते । धर्मस्येति महाप्राज्ञ देशापेक्षा तथोभयम् ॥ १९ ॥

रूपी मेरे वचनामृत को पीकर सबको सुबुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न होगई—यह मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है ॥ १३-१९ ॥

नारद ने कहा—आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ज्ञाता एवम् रहस्य सहित वेद, पुराण, स्मृति तथा धर्म-शास्त्रों के उपदेशक हैं। आपके वाक्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्रभो! अब तीर्थ, दान, यज्ञ, तप तथा देवताओं के भक्तो एवम् उपासनाओं के बारे में ही कहिये। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। भगवन्! यह जो आपने कहा है कि भक्ति से यह हो सकता है, अन्यथा नहीं, इसमें मुझे सत्य है। ब्रह्मन्! उसका आप निवारण करें। मैं अपनी अभिलषित बात को सुनकर आश्चर्य-चकित हो गया हूँ ॥ १०-१३ ॥

ब्रह्मा बोले—नारद! मुने, मैं रहस्य सहित उत्तम धर्म को बतलाऊंगा। चार तीर्थ हैं और उतने ही युग हैं ॥ १४ ॥ गुण तीन हैं और सनातन देवगुण भी तीन ही हैं। स्मृतियों से युक्त वेद चार माने गये हैं। ॥ १५ ॥ पुरुषार्थ चार हैं और वाणी भी चार प्रकार की है। नारद! समता की दृष्टि से ब्रह्म भी चार है ॥ १६ ॥ धर्म सब जगह सामान्य है, जिसलिये वह सनातन धर्म है। वही धर्म साध्य-साधन भेद से अनेक हो जाता है ॥ १७ ॥ उसके आश्रय भी दो हैं—देश और काल। काल का आश्रित जो धर्म है उसका ह्रास और क्षय होता है ॥ १८ ॥ युगों के अनुरूप उसका एक-एक पाद क्षीण होता रहता है। महापण्डित! देशाश्रित धर्म का भी ह्रास और क्षय होता है। कालाश्रित धर्म सदा

कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः । युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु स हीयते ॥२०॥
 उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता । तस्माद्देशाश्रितो धर्मश्चतुष्पात्सु प्रतिष्ठितः ॥२१॥
 स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति । कृते देशं च कालं च धर्मोऽव्यवस्थ्य तिष्ठति ॥२२॥
 श्रेतायां पादहीनेन स तु पादः प्रवेशतः । द्वारे चार्थतः काले धर्मो देशे समास्थितः ॥२३॥
 कलो पादेन चैकेन धर्मश्चलति संकटम् । एवमपि तु या धर्मो वेत्ति तस्य न हीयते ॥२४॥
 युगानामनुभावेन जातिभेदाश्च सस्थिताः । गुणैर्म्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसंस्थितिः ॥२५॥
 गुणानामनुभावेन उद्भूताभिभवो तथा । तीर्थानामपि वर्णानां वेदानां स्वर्गमोक्षयोः ॥२६॥
 तादृशप्रवृत्त्या तु तदेव च विशिष्यते । कालोऽभिव्यञ्जकः प्रोक्तो देशोऽभिव्यञ्जक उच्यते ॥२७॥
 यदा यदा अभिव्यक्तिं कालो घटते तदा तदा । तदेव व्यञ्जनं ब्रह्मस्तस्मान्नास्त्यत्र संशयः ॥२८॥
 युगानुरूपा मूर्तिः स्याद्देवानां वैदिकी तथा । कर्मणामपि तीर्थानां जातीनामाश्रमस्य तु ॥२९॥
 त्रिदेवत्यं सत्ययुगे तीर्थं लोकोषु पूज्यते । द्विदेवत्यं युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदेविकम् ॥३०॥
 कलो न किञ्चिद्विजेयमन्यदपि तच्छृणु । देवं कृतयुगे तीर्थं श्रेतायामासुरं विदुः ॥३१॥

देशो मे प्रतिष्ठित रहता है । युगों के क्षय होने पर भी देशो मे उस धर्म का ह्रास नहीं होता है ॥१८-२०॥ दोनों जगह उसका ह्रास होने पर धर्म का अभाव हो जायगा । इसलिये देशाश्रित धर्म चार चरणों से युक्त तथा सुप्रतिष्ठित है ॥२१॥ वह भी धर्म देशो मे तीर्थरूप से रहता है । सत्ययुग मे देश और काल को व्याप्त कर धर्म स्थित रहता है ॥२२॥ श्रेता मे वह एक चरण से हीन हो कर देशो मे विद्यमान रहता है । द्वार मे दो चरणों से हीन होकर वह देश और काल मे स्थित रहता है ॥२३॥ कलियुग मे एक ही पंर से युक्त होकर धर्म संकट से चलता है । इस प्रकार जो धर्म को जानता है, उसका धर्म क्षीण नहीं होता ॥२४॥ युगों मे अनुसार गुणों एवम् गुणकर्ताओं से जाति-भेद बनता है । धर्म की स्थिति विचित्र है ॥२५॥ गुणों मे अनुसार उत्पत्ति और प्रलय भी होता है । तीर्थों, वर्णों, वेदों स्वर्ग और मोक्ष की भी उसी रूप मे प्रवृत्ति होती है । काल प्रकाशक और देश प्रकाशक माना गया है ॥२६-२७॥ ब्रह्मन् ! जब-जब काल प्रकाश का कारण करता है तब तब उससे बड़ी प्रकाश होता है, इसमे कोई सन्देह नहीं ॥२८॥ युगों के अनुरूप ही देव, कर्म, तीर्थ, जानि तथा आश्रम की वैदिकी मूर्ति होती है । सत्ययुग मे त्रिदेवमय तीर्थ की लोको म पूजा होती है, श्रेता मे द्विदेवमय तीर्थ की पूजा होती है, द्वार मे एकदेवमय तीर्थ की पूजा होती है और कलियुग मे त्रिती की भी नहीं । अत्र और भी गुणों ॥२९-३०॥ कृतयुग मे द्वैततीर्थ, श्रेता मे आसुर, द्वार मे आर्य और कलियुग मे मानुषतीर्थ कहलाता है ॥३१॥ नारद ! अब और भी कारण बतलाता

१क. ड. ०पु मही० । २क. ड. पादप्र० । ३क. ड. ०मो हीयेत्समग्रत । ४० । ४क. ०न याति भेदाश्च सस्थितिम् । गु० । ५घ. ०तिवेदासमास्थिति । गु० । ६घ. ०ना दृशनात्स्वर्ग० । ७ ड. देवानां । ८क. ०व्यक्ति का० । घ. ड. च. ०व्यक्ति का० । ९क. ड. धर्मः । घ. धर्मस्तदा । १०क. ड. च. व्यज्यते । ११घ. ०स्मादस्य० । १२घ. च. विस्मय । १३ड. ०त्य श्रेतयुगे द्वार० ।

आर्षं च द्वारे प्रोक्त कलौ मानुषमुच्यते । अगान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम् ॥३२॥
 गौतम्या यत्त्वया पृष्टं तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात् । यदा चैव हरशिर प्राप्ता गङ्गा महामुने ॥३३॥
 तदा प्रभृति सा गङ्गा शभो प्रियतराऽभवत् । तद्देवस्य मतं ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा ॥३४॥
 उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता । शान्ता श्रुतिरिति ह्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा गजवक्त्रोऽभ्यभाषत

॥३६॥

गजवक्त्र उवाच

किं कृत्यं शाधि मां मातस्तत्कर्ताऽहमसंशयम्

॥३७॥

ब्रह्मोवाच

उमा सुतमुवाचेदं महेश्वरजटास्थिता । त्वयाऽवतार्यता गङ्गा सत्यमौशप्रिया सती ॥३८॥
 पुनश्चेशस्तत्र चित्रमध्यास्ते सर्वदा सुत । शिवो यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदा सनातना ॥३९॥
 तत्रैव ऋषयः सर्वे मनुष्याः पितरस्तथा । तस्मान्निवर्तयेषान् देवदेव महेश्वरम् ॥४०॥
 तस्या निवर्तिते देवे गङ्गाया सर्वे एव हि । निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेदं वचो मम ॥
 निवर्तय ततस्तस्या सर्वभावेन शकरम् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुनराह गणेश्वर

॥४२॥

हैं सुनो। गोदावरी के विषय में जो तुमने पूछा है उसे मैं विस्तार से बतलाऊंगा। महामुने! जब से यह गया शकर के शिर पर पहुँची तब से यह शिव की प्रिया हो गई ॥३२ ३३॥ शिव का आशय समझकर तीनों लोक की ईश्वरी सत्ता की माता तथा हितविणी शान्ता श्रुतिरूपा और भुक्ति मुक्तिदायिनी पावनी ने गणेश से यह बात कह दी ॥३४ ३५॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर गणेश ने कहा ॥३६॥

गणेश बोले—माता! आज्ञा करो! क्या काय है? मैं निःसन्देह उसे पूरा करूँगा ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—उमा ने पुत्र से कहा—शकर की जटा में उनकी प्रिया सती गया अवस्थित है। उसे तुम हटा दो। क्योंकि शकर सदा उसमें अनुरक्त रहते हैं और जहाँ शिव रहते हैं वहाँ दक्षता सनातन वेद समस्त ऋषि मनुष्य एवम पितर रहते हैं। इसलिये देवों के देव शिव को उससे अलग करो। उनके अलग हो जाने पर सब अलग हो जायेंगे। इसलिये मेरी बात सुनो और सब प्रकार से शकर को अलग करो ॥३८ ४१॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर पुनः गणेश ने कहा ॥४२॥

गणेश्वर उवाच

नैव शक्यः शिवो देवो मया तस्या निर्वर्तितुम् । अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निर्वर्तितुम् ॥४३॥
न शक्या जगता मातरयान्यच्चापि कारणम् । गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना ॥४४॥
ऋषिणा लोकपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा । सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा ॥४५॥
आराधयित्वा देवेशं तपोभिः स्तुतिभिर्भवम् । तुष्टेन शंकरेण दमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा ॥४६॥

शंकर उवाच

वरान्वरय पुण्यांश्च प्रियांश्च मनसेप्सितान् । यद्यदिच्छसि तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि शृण्वति । इदमेव तदोवाच सजटां देहि शंकर ॥
गङ्गां मे याचते पुण्यां किमन्येन वरेण मे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

पुनः प्रोवाच तं शभुः सर्वलोकोपकारकः ॥४९॥

शंभुरुवाच

'उक्तं न चाऽऽत्मनः किञ्चित्स्माद्याचस्व दुष्करम् ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

गौतमोऽदीनसत्त्वस्तं भवमाह कृताञ्जलिः ॥५१॥

गणेश बोले—मेरे द्वारा शिव उससे अलग नहीं किये जा सकते हैं और शिव के अलग नहीं होने पर देवता भी निवृत्त नहीं हो सकेंगे। जगन्माता ! इसका और भी कारण है कि पूर्वं काल में महात्मा गौतम गंगा को लाये थे। लोकपूज्य तथा त्रैलोक्यहितकारी ऋषि ने तपस्या, स्तुति तथा सामगान द्वारा शंकर की आराधना की। सतुष्ट होकर शिव ने गौतम से कहा ॥४३-४६॥

शंकर बोले—महागुह्यम् ! तुम पवित्र प्रिय तथा मनोमिलित वरदान मागो। तुम जो-जो चाहोगे, वह सब आज मैं तुम्हें दूंगा ॥४७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार शिव द्वारा कहे जाने पर मेरे मुनते ही गौतम ने यह कहा—'शंकर' अपनी जटासहित पवित्र गंगा मुझे दीजिये, दूसरा वरदान मुझे नहीं चाहिये ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—समस्त लोकों के उपकारक शिव ने पुनः गौतम से कहा ॥४९॥

शंभु बोले—तुमने अपने लिये कुछ नहीं माँगा। इसलिये कठिन वरदान भी मुझसे माग लो ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—दीनता-शून्य गौतम ने हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥५१॥

गौतम उवाच

एतदेव च सर्वेषां दुष्करं तव दर्शनम् । मया तदद्य संप्राप्तं कृपया तव शकर ॥५२॥
स्मरणादेव ते पद्भ्यां कृतकृत्या मनीषिणः । भवति किं पुन साक्षात्स्वयि दृष्टे महेश्वरे ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ते गौतमेन भवो हर्षसमन्वितः । त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया ॥५४॥
नचाऽऽत्मनो महाबुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम् । एव प्रोक्तं पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिवः तथा ॥५५॥
विनीतवददीनात्मा शिवभक्तिसमन्वितः । सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम् ॥
शृण्वत्सु लोकपालेषु जगादेव स गौतम ॥५६॥

गौतम उवाच

यावत्सामरगा देवी निसृष्टा ब्रह्मणो गिरे । सर्वत्र सर्वदा तस्या स्यात्तव्यं वृषभध्वज ॥५७॥
फलेप्सूना फल दाता त्वमेव जगतः प्रभो । तीर्थान्यन्यानि देवेश क्वापि क्वापि शुभानि च ॥५८॥
यत्र तं सनिर्धिनित्यं तदेव शुभं विदुः । यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसंस्थिता ॥
'सर्वत्र तव सानिध्यात्सर्वतीर्थानि' शकर ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

तदगौतमवच श्रुत्वा पुनर्हर्षाच्छिवोऽब्रवीत्

॥६०॥

गौतम बोले—आपका दर्शन ही सबके लिये कठिन है। शकर! आप की कृपा से आज मैंने उसे प्राप्त कर लिया। आपके चरणों के स्मरण से ही विद्वान् लोग कृतकृत्य हो जाते हैं। जिसे आपका साक्षात्कार हो जाता है उसका तो भला कहना ही क्या? ॥५२-५३॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के इतना कहने पर शकर प्रसन्न हो गये और बोले—'तीनों लोकों के उपकार के लिये तुमने याचना की। पर महाबुद्धिमन्! अपने लिये तुमने याचना नहीं की। इस प्रकार कहे जाने पर शिवभक्ति से युक्त दीनता से रहित तथा विनीत गौतम ने शिव से कहा। लोकपालों के सुनते गौतम ने समस्त लोकों के उपकार के लिये पुन यह याचना की ॥५४-५६॥

गौतम बोले—ब्रह्मगिरि से लेकर समग्र पयन्त इस गंगा में सबत्र सब काल आप रहे। जगप्रभो! फल चाहने वालों को फल आप ही देते हैं। देवेश! जहाँ-कहीं भी जो अन्य पवित्र तीर्थ हैं उनमें भी जिस तीर्थ में आपका सान्निध्य है वही शमदायक माना गया है। शकर! जहाँ आपने अपने जटा मुकुट में अवस्थित गंगा को प्रदान किया है वहाँ सब जगह आपके सान्निध्य से समस्त तीर्थ रहेंगे ॥५७-५९॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के वचन को सुनकर पुन हर्ष से शिव ने कहा ॥६०॥

शिव उवाच

यत्र यवापि च यत्किंचिद्यो वा भवति भविततः (?) यात्रां स्नानमयो दानं पितृणा वाऽपि तर्पणम् ॥६१॥
 श्रवणं पठनं वाऽपि स्मरणं वाऽपि गौतम । यः करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रतः ॥६२॥
 सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना । सरत्ना सोषधी रम्या साणवा धर्मभूयिता ॥६३॥
 वत्सा भवति यो धर्मः स भवेद्गौतमीस्मृतेः । एवं विधा इत्था विप्र गोदानाद्याऽभिधीयते ॥६४॥
 चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्स्रानिधये यतव्रतः । भूभूते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः ॥६५॥
 गाः सुन्दराः सवत्साश्च संगमे लोकविभ्रुते । यो ददाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥६६॥
 तस्माद्द्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः । गौतम्यां विश्ववन्द्यायां महानद्या तु भविततः ॥६७॥
 तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति । सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥६८॥

गणेश्वर उवाच

एतच्छ्रुत मया मातवन्दतो गौतम शिवात् । एतस्मात्कारणाच्छ्रुतगङ्गाया नियतः स्थितः ॥६९॥
 को निवर्तयितुं शक्तस्तम्ब कृष्णोदधिम् । अथापि मातरेतस्यान्मानुषा विघ्नपाशकः ॥७०॥
 विनिबद्धा न गच्छन्ति गोदामप्यन्तिकस्थिताम् । न नमन्ति शिवं देवं न स्मरन्ति स्तुवन्ति न ॥७१॥
 तथा मातः करिष्यामि तव सतोपहेतवे । सतिरोद्धुमयो बलेशस्तव वाक्य क्षमस्व मे ॥७२॥

शिव बोले—गौतम ! जो मनुष्य नियमपूर्वक गोदावरी में जहाँ-कहीं भी जो कुछ भी भवित से करता है अर्थात् यात्रा, स्नान, दान पितृ-तर्पण श्रवण, पठन या स्मरण—करता है, उसे उतना ही धर्म होता है जितना सातों द्वीप, पर्वत, वन, रत्न, ओषधि तथा समुद्र सहित एवम् धर्मभूयिता पृथ्वी के दान करने से होता है। विप्र ! इस प्रकार की पृथ्वी दान करन से जो धर्म होता है उतना धर्म चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण काल में गोदावरी में गोदान करने से होता है। द्विजवर ! उसे भी उतना धर्म होता है, जो लोक-प्रसिद्ध गंगा-सागर के संगम पर भुवन के धारण करने वाले विष्णु की प्रीति के लिये बछड़े सहित सुन्दर गो दान करता है। इसलिये मनुष्य विश्ववन्द्या तथा महानदी गोदावरी में भविष्यपूर्वक स्नान-दान करने से अत्यन्त पुण्य प्राप्त करता है। अतः समस्त पापों को नष्ट करने वाली तथा अखिल कामनाओं को देने वाली गोदावरी गंगा को तुम ले जाओ ॥६१-६८॥

गणेश्वर बोले—माता ! मैंने गौतम तथा शिव का इतना सवाद सुना है। इसी कारण शंकर नियमपूर्वक गंगा में रहते हैं। अम्ब ! उस कण्ठासागर को कौन निवारण कर सकता है ? माता ! इतना तो मैं तुम्हारे सतोष के लिये बर्हूँगा कि विघ्न-जाल में फँसकर मनुष्य समीप रहने पर भी गंगा में स्नान करने नहीं जायगा और शिव को प्रणाम, स्मरण तथा स्तुति नहीं करेगा। पर उतना निवारण तो असम्भव है। इसलिये मुझे क्षमा करो ॥६९-७२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति विघ्नेशो मानुषान्प्रति किञ्चन । विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रयतन्ते ॥७३॥
 अथो विघ्नमनादृत्य गौतमीं याति भक्तितः । सकृत्तार्यो भवेत्लोकं न कृत्य मवशिष्यते ॥७४॥
 विघ्नान्पनेकानि भवन्ति गेहाग्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य ।
 निधाय तन्मूर्ध्नि पदं प्रयाति, गङ्गा न किं तेन फलं प्रलब्धम् ॥७५॥
 अस्याः प्रभावो ब्रूयादपि साक्षात्सदाशिवः । सक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम् ॥७६॥
 धर्मार्थकामभोक्षाणां साधनं यच्चराचरे । तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरे ॥७७॥
 वेदोदितं श्रुतिसकलरहस्यमुक्तं, सत्कारणं समभिधानमिदं सर्वम् ।
 सम्यक्च दृष्टं जगतां हिताय, प्रोक्तं पुराणं बहुधर्मयुतम् ॥७८॥
 अस्य श्लोकं पदं वाऽपि भक्तितः शृणुयात्पठेत् । गङ्गा गङ्गेति वा वाक्यं स तु पुण्यमवाप्नुयात् ॥७९॥
 कलिकलङ्कुविनाशनदक्षमिदं, सकलसिद्धिकरं शुभदं शिवम् ।
 जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं, गाङ्गमेतदुदीरितमुत्तमम् ॥८०॥
 साधु गौतम भद्रं ते कोऽप्योऽस्ति सदृशस्त्वया । य एनां गौतमीं गङ्गां दण्डकारण्यमाप्नुयात् ॥८१॥
 गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥
 तिस्रः कोट्योऽर्धकोटौ च तीर्थानि भुवनत्रये । तानि स्नानात् समायाज्य गङ्गायां सिंहो गुरौ ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—तब से गणेश मनुष्यों को विघ्न करते हैं। जो उनकी उपासना करता है, उसे छोड़ देते हैं। जो मनुष्य गणेश की वन्दना कर सकित से गोदावरी को जाते हैं, वे लोक में कृतार्थ हो जाते हैं और उन्हें कुछ करना शेष नहीं रहता। घर से बाहर जाने वाले नराधम को अनेक विघ्न होते हैं। जो भस्त्रक पर गंगा के चरणों को रखकर (अर्थात् उनका ध्यान करते हुए) प्रयाण करता है, उसे कौन-सा फल नहीं मिलता है? (अर्थात् सब मिलते हैं) ॥७३-७५॥ गंगा का प्रभाव कौन बतला सकता है? साक्षात् ब्रह्माशिव भी भरसक बतला सकते हैं। सक्षेप में मैंने इस इतिहास को बतलाया है ॥७६॥ ससार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जितने साधन होते हैं, वे सब इस विस्तृत इतिहास में विद्यमान हैं ॥७७॥ ससार के कल्याण के लिये मैंने अनेक धर्मों से युक्त पुराण सुना दिया, जो वेद प्रतिपादित सम्पूर्ण रहस्यों का सार, सत्कारणस्वरूप, सदुक्तिस्वरूप तथा सम्यक् दर्शनरूप हैं ॥७८॥ इस पुराण का एक श्लोक या एक पद जो मनुष्य भक्ति से सुनेगा या पढ़ेगा या 'गंगा-गंगा' यह उच्चारण ही करेगा, उसे पुण्य लाभ होगा ॥७९॥ 'गंगा' इस पवित्र नाम का उच्चारण कलियुग के कलकों को नष्ट करने में दक्ष, सकल सिद्धियों को देने वाला कल्याणकारक सुन्दर जगत्पूज्य तथा अभीष्टफलदायक है ॥८०॥ गौतम! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे सदृश कौन दूसरा है जो इस गौतमी गंगा को दण्डकारण्य में प्राप्त करे ॥८१॥ जो व्यक्ति सैकड़ों योजन दूर से भी 'गंगा-गंगा' यह उच्चारण करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥८२॥ तीनों लोकों में साढ़े तीस करोड़ तीर्थ हैं, वे सिंह राशि पर बृहस्पति के जाने पर गंगा में स्नान करने आते हैं ॥८३॥ बृहस्पति के सिंह राशि पर अवस्थित होने पर गोदावरी में एक बार स्नान करने से उतना ही फल

पष्टिर्धर्षसहस्राणि भगोरथ्यवगाहनम् । सङ्ख्यगोदावरीस्नानं सिंहयुवते बृहस्पती ॥८४॥
 इयं तु गौतमी पुत्र यत्र बवापि ममाऽऽज्ञया । सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ॥८५॥
 अश्वमेधसहस्राणि बाजपेयशतानि च । कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ॥८६॥
 यत्पैतृत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम् । न भयं विद्यते तस्य कलिफालस्य नारद ॥८७॥
 यस्य कस्यापि नाऽऽख्येय पुराणमिदमुत्तमम् । श्रद्धधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने ॥८८॥
 इदं कोट्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम् । एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥८९॥
 लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति । सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसंवादे गङ्गामाहात्म्यश्रवणा-
 दिफलवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

समाप्तं गौतमीमाहात्म्यम्

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न हि मस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम् । पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१॥

होना है, जितना साठ हजार वर्षों तक गया में स्नान करने से होता है ॥८४॥ पुनः । यह गौतमी गया (अपने में)
 जहाँ-वही भी स्नान करने से मनुष्या को मेरी आज्ञा से मुक्ति दे देती है ॥८५॥ सङ्ख्यो अश्वमेध यज्ञ तथा सैवडो
 बाजपेय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इसके श्रवणमात्र से होता है ॥८६॥ नारद । जिसके घर में यह
 ब्रह्मपुराण रहता है, उसने लिए कलिफाल का कोई डर नहीं है ॥८७॥ जिस रिची को यह पुराण नहीं सुनाना
 चाहिये । श्रद्धा, शान्त, विष्णुभक्त तथा महात्मा को यह पापनाशन तथा भुक्ति-मुक्ति-दायक पुराण सुनाना
 चाहिये ॥८८॥ इसके श्रवणमात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । जो इस पुस्तक का लिखकर ब्राह्मण का समर्पित
 करता है, वह सब पापों से निर्मुक्त होकर पुनर्गर्भ में नहीं आता है ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थमाहात्म्य म ब्रह्मा और नारद क संवाद म गङ्गामाहात्म्य-अरण
 आदि का फल-वर्णन नामक एक मी पञ्चत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७५॥

अध्याय १७६

अनन्त वासुदेव का माहात्म्य-निरूपण

मुनिषो ने कहा—भगवत्कथा मुनये-मुनयेहम तृप्ति नहीं होती है । आप पुनः संपूर्ण रहस्य को बतलायें ।

अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग्वर्णितं त्वया । श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः ॥२॥

ब्रह्मोवाच

प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठा । सारात्सारतरं परम् । अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥३॥
 आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान् । विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम् ॥४॥
 वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माणप्रकामिणम् । प्रतिमा वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि ॥५॥
 यां प्रेक्ष्य विधिवद्भवताः सेन्द्रा वै मानुषादयः । येन दानवरक्षोभ्यो विनाय सुमहद्भयम् ॥६॥
 त्रिदिवं समनुप्राप्य सुमेरुशिखर चिरम् । वासुदेवं समाराध्य निरातङ्गा वसन्ति ते ॥७॥
 मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्क्षणात् । चकार प्रतिमा शुद्धां शङ्खलक्ष्मणगदाधराम् ॥८॥
 सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम् । श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तामत्युग्रां प्रतिमोत्तमाम् ॥९॥
 धनमालावृतोरस्का मुकुटाङ्गदधारिणीम् । पीतवस्त्रा सुपीनासां कुण्डलाम्बामलंकृताम् ॥१०॥
 एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम् । प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निमिता पुरा ॥११॥
 तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्खेचरः सह । जगाम ब्रह्मसदनमाहूय गजमुत्तमम् ॥१२॥
 प्रसाद्य प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः । प्रतिमां तां समाराध्य (दाय) स्वपुरं पुनरागमत् ॥१३॥
 तां समाराध्य सुचिरं यतवाक्कायमानसः । वृत्राद्यानसुराङ्गकूराभ्रमुचिप्रमुखान्स च ॥१४॥

अनन्त वासुदेव का आपने सम्यक् वर्णन नहीं किया । देव ! (यही) हम सुनना चाहते हैं । विस्तारपूर्वक बहिये ॥१-२॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठो ! अनन्त वासुदेव का जगद्दुर्लभ तथा सारतम माहात्म्य मैं बतलाऊँगा ॥३॥
 विप्रबृन्द ! पहले आदिकल्प में अव्यक्तजन्मा मैंने अत्यन्त धलवान्, देवताओं के कारीगर और बड़ों के काम में
 अग्रणी विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—पृथ्वी पर वासुदेव की एक ऐसी पत्थर की मूर्ति बनाओ, जिसे विधि पूर्वक देखकर
 भक्त, इन्द्र तथा मनुष्य आदि, दानव-राक्षसों के महान् मय से स्वर्ग में आकर अर्थात् सुमेरु पर्वत के शिखर पर चिर-
 काल तक वासुदेव की आराधना करते हुए सुख से वास करें ॥४-७॥ मेरे वचन को भुनकर तत्काल विश्वकर्मा ने
 शुद्ध, शङ्ख, चक्र, तथा गदा धारण करने वाली, सर्वलक्षणसम्पन्न, कमल के समान दीर्घ नेत्रों वाली, श्रीवत्स चिह्न से
 युक्त, अत्यन्त उग्र, वनमाला से आवृत वक्षस्थल वाली, मुकुट तथा अगद धारण करने वाली, पीतवस्त्रा, स्थूल स्वर्ण
 वाली तथा कुण्डलो से अलङ्कृत प्रतिमा को बना डाला ॥८-१०॥ इस प्रकार बना दिव्य प्रतिमा में मैं स्वयं गुह्य
 मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करने लगा । उस समय देवबृन्दा के साथ इन्द्र उत्तम हाथी पर चढ़कर ब्रह्मलोक में आये ।
 इन्द्र बार-बार स्नान-दानों से प्रतिमा की आराधना करते अपने नगर को चले गये ॥११-१३॥ चिरकाल तक कायिक,
 वाक्विक तथा मानसिक समय के साथ उस प्रतिमा की आराधना करते इन्द्र ने वृत्र, नमुचि आदि क्रूर राक्षसों को
 मारकर तीनों लोक का उपमोष किया ॥१४॥ द्वितीय युग प्राप्त होने पर अर्थात् प्रेता आने पर राक्षसराज, प्रतापी

१। स्व. कर्मलुक्मङ्गल । २। स्व. ० दिवेयामनुश्रु । ३। स्व. गिरे । ४। ग. गुह्या । ५। स्व. ० पर-
 वत । ६। ७।

निहत्य वानवान्भोमान्भुक्तवान्भुवनत्रयम् । द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेताया राक्षसाधिप ॥१५॥
 बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीव प्रतापवान् । दश वर्यसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रिय ॥१६॥
 चत्वार व्रतमत्युग्र तप परमदुश्चरम् । तपसा तेन तुष्टोऽह वर तस्मै प्रदत्तवान् ॥१७॥
 अवध्य सर्वदेवानां स दैत्योरगयक्षसाम् । शापप्रहरणं परैरवध्यो यमार्किकर ॥१८॥
 वर प्रा प्र तदा रक्षो यज्ञान्वाग्निमान् । धनाध्यक्ष विनिजित्य शक्र जेतु समुद्यत ॥१९॥
 सग्राम सुमहावीर कृत्वा देवं स राक्षस । देवराज विनिजित्य तदा इन्द्रजितेति वै ॥२०॥
 'राक्षसस्तत्सुतो नाम मेघनाद प्रलब्धवान् । अमरावर्तो तत प्राप्य देवराजगृहे शुभे ॥२१॥
 'ददर्शञ्जनसकाशा रावणस्तु यलान्वित । प्रतिमा वासुदेवस्य सर्वलक्षणसयुताम् ॥२२॥
 श्रीवत्सलक्ष्मसयुक्ता पद्मपत्रायतेक्षणा । वनमालावतीरका मुकुटाङ्गदभूषिताम् ॥२३॥
 शङ्खचक्रगदाहस्ता पीतवस्त्रा चतुर्भुजाम् । सर्वाभरणसयुक्ता सर्वकामफलप्रदाम् ॥२४॥
 विहाय रत्नसङ्घाश्च प्रतिमा शुभलक्षणा । पुष्पकेण विमानेन लब्ध्वा प्रास्यापयद्ब्रुतम् ॥२५॥
 पुराध्यक्ष स्थित श्रीमन्धर्मता स विभीषण । रावणस्यानुजो मन्त्री मारायणपरायण ॥२६॥
 दृष्ट्वा ता प्रतिमा दिव्या देवेन्द्रभयनच्युताम् । रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मय समपद्यत ॥२७॥
 प्रणम्य शिरसा देव प्रहृष्टेनान्तरात्मना । अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप ॥२८॥
 इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मह । उयेष्ठ आतरमासाद्य कृताञ्जलिर्भासत ॥२९॥

तथा महाप्रवित्तगाली रावण ने दस हजार वर्षों तक निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त उग्र तप किया ॥१५॥ १६॥
 उसको तपस्या से सतुष्ट होकर मैंने उसे वरदान दिया कि तुम समस्त देवता दैत्य सर्प राक्षस शापप्रहार तथा यम
 दूतो स अवध्य होंगे । तदुपरान्त वर प्राप्त कर वह राक्षस यक्षगण सहित कुवेर को जीतकर ऋद्र को जीतने के लिये
 उद्यत हुआ ॥१७॥ १९॥ देवताओं के साथ घोर सग्राम करके उसने देवराज पर विजय प्राप्त की । तब से उसका
 पुत्र मेघनाद इन्द्रजित् कहलाने लगा ॥२०॥ बलवान् रावण ने अमरावती मे धूसकर इन्द्र के पवित्र गृह से अञ्जन
 तुल्य सबलक्षणसम्पन्न श्रीवत्स चिह्न से युक्त कमण्डप के समान दीप नेत्रा वाली वनमाला से आवृत वक्ष स्थल
 वाली मुकुट तथा अपन्ना से विमूषित हाथा भ शङ्ख चक्र-गन्धा धारण करने वाली पीतवस्त्रा चतुर्भुजा समस्त आभूषणा
 से युक्त गुम्फलक्षणी से सम्पन्न तथा समस्त कामनाओं के फल को दन वाली वासुदेव की प्रतिमा को लेकर रत्नसमूह
 को बिना छूए ही पुष्पक विमान से लब्ध के लिये शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥२२॥ २५॥ नगर का अच्यन्त श्रीमान्
 धर्मात्मा वासुदेव भक्त मन्त्री तथा रावण का छोटा भाई विभीषण था ॥२६॥ वह इन्द्र भवन से लाई हुई दिव्य
 प्रतिमा को देखकर आश्चर्य चरित हो गया ॥२७॥ उसे रोमाञ्च्य हो आया । हृदय से गदगद होकर उसने गिर युका
 कर वासुदेव को प्रणाम किया और कहा— आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ, ॥२८॥ यह
 कहकर उस धर्मात्मा ने बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर अपने ज्येष्ठ भाई से कहा— राजन् ! यह प्रतिमा

राजन्प्रतिमया त्व मे प्रसाद कर्तुमहसि । यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरये भवार्णवम् ॥३०॥
 भ्रातुर्वचनमाकण्य 'रावणस्त तदाऽब्रवीत् । गृहाण प्रतिमा वीर त्वनया किं करोम्यहम् ॥३१॥
 स्वयंभुव समाराध्य त्रैलोक्य विजय त्वहम् । नानाश्चयमय देव सर्वभूतभवोद्भवम् ॥३२॥
 विभीषणो महाबुद्धिस्तदा ता (रासाद्य) प्रतिमा शुभाम । शतमण्डोत्तर चाब्द समाराध्य जनादनम् ॥३३॥
 अजरामरण प्राप्तमणिमादिगुणर्षुतम् । राज्य लब्ध्वाधिपत्य च भोगाभुङ्क्ते यथेप्सितान् ॥३४॥

मुनय ऊचु

अहो नो विस्मयो जात श्रुत्वेद परमामृतम् । अनतवासुदेवस्य सभव भुवि दुर्लभम् ॥३५॥
 श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण यथातथम् । तस्य देवस्य माहात्म्यं वक्तुमहस्यशेषत् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तदा स राक्षस क्रूरो देवगन्धर्वकिन्नरान् । लोकपालान्समनुजान् मुनिसिद्धाश्च पापकृत् ॥३७॥
 विजित्य समरे सर्वानाजहार तदङ्गना । सस्याप्य नगरौ लब्ध्वा पुन सीतार्थं (ता च) मोहित ॥३८॥
 'शङ्कितो मृगरूपेण सौवर्णेन च 'रावण । तत् क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह ॥३९॥

मुझे दे देने की वृषा करो। जगत के स्वामी ! इसकी आराधना करके मैं सत्तार समझ से पार उतर जाऊँगा।
 माई का वचन सुनकर रावण ने कहा— वीर ! प्रतिमा ले लो मुझ इससे क्या करेगा ? मैंने सबमृतमय सत्तार
 को उत्पन्न करने वाले तथा अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त ब्रह्म की उपासना करके तानों लाज को जीत लिया
 है। तब महाबुद्धिमान् विभीषण ने प्रतिमा का लेकर एकसी आठ वर्षों तक जनान की आराधना करके अजररत्न
 अमरत्व अणिमा आदि सिद्धियाँ तथा स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त किया और अनेक अभिलषित भोगों का उपभोग
 किया ॥२९-३४॥

मुनियो ने कहा—अहा ! आन्तर्वासुत्त्व का यह समार-दलम् बतान्त सुनकर हम मन्दाभयन मिल गया
 है तथा आश्चर्य हो रहा है। हे देव हम विष्णुरूपवक् यथाय वचन सुनना चाहते हैं। उस देव का अगिल माहात्म्य
 आप बतलाइय ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—तब उस क्रूर तथा पापी राक्षस ने देव गन्धर्व विभ्रर लाङ्कायान् मनुष्य मुनि तथा शिष्टो को
 समर में जीतकर देवागन्नाया का अन्वहरण कर लिया ॥३७॥ उनको लब्ध म रत्नरत्न पुन उगन साधा व लिय
 मोहित होकर सान के मृग का रूप धारण किया। तन्मन्तर राम ने लामय व साय रण म रावण के वष के निमित्त

रावणस्य वधार्याय हत्वा वालिं मनोजवम् । अभिषिक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तथा ॥४०॥
 हनुमान्नलनीलश्च जाम्बवान्पनसस्तथा । गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमौजसः ॥४१॥
 एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्वीरैः समहावलैः । समावृतो महाघोरं रामो राजीवलोचनः ॥४२॥
 गिरीणां सर्वसंघातैः सेतुं यद्ध्वा महोदधौ । बलेन महता रामः समुत्तीर्य महोदधिम् ॥४३॥
 संग्राममतुलं चक्रे रक्षोगणसमन्वित । प्रमहस्तं प्रहस्तं च निकुम्भं कुम्भमेव च ॥४४॥
 नरान्तकं महावीर्यं तथा चैव यमान्तकम् । मालाढ्यं मालिकाढ्यं च हत्वा रामस्तु वीर्यवान् ॥४५॥
 पुनरिन्द्रजितं हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम् । वेदेहौ चाग्निनाऽऽशोध्य दत्त्वा राज्यं विभीषणे ॥४६॥
 वासुदेवं समादाय यानं पुण्यकमारुहत् । लीलया समनुप्रापदयोध्यां पूर्वपालिताम् ॥४७॥
 कनिष्ठं भरतं स्नेहाच्छत्रुघ्नं भवतवत्सलम् । अभिषिच्य तदा रामः सर्वराज्येऽधिराजवत् ॥४८॥
 पुरातनीं स्वमूर्तिं च समाराध्य ततो हरिः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥४९॥
 भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः । राज्यमासाद्य सुगतिं वंणवं पदमाविशत् ॥५०॥
 तां चापि प्रतिमां रामः समुद्रेशाय दत्तवान् । घन्यो रक्षयितासि त्वं तोयरत्नसमन्वितः ॥५१॥
 द्वारपरं युगमासाद्य यदा देवो जगत्पति । धरण्याश्चानुरोधेन भावशैथिल्यकारणात् ॥५२॥
 अवतीर्णः स भगवान्वसुदेवकुले प्रभुः । कंसादीनां वधार्याय संकर्यणशहायवान् ॥५३॥

मन के तुल्य वेण वाले वालि को मारकर सुग्रीव को अभिषिक्त किया एवम् अंगद को युवराज बनाया ॥३८-४०॥
 हनुमान नल, नील जाम्बवान् पनस गवय, गवाक्ष पाठीन आदि ओजस्वी बन्दरी तथा दूसरे भी बहुत से बलवान्
 तथा महामयवर बन्दरा से युक्त हाकर कमलालन राम ने पर्वतों के समूहों से समुद्र में पुल बौध कर विशाल सना
 के साथ समुद्र पार करते राघवता के साथ अतुल सघाम किया । फिर यमहस्त, प्रहस्त, निकुम्भ कुम्भ महामक्तिशाली
 नरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य मालिकाढ्य मेघनाद कुम्भकर्ण तथा रावण को मार कर शक्तिसम्पन्न राम ने जानकी
 को अग्नि से शुद्धकर विभीषण को राज्य दे वासुदेव की प्रतिमा को लेकर पुण्य विमान से प्रस्थान कर दिया ।
 दश मही पूर्वपालित अयोध्या पहुँचकर भक्तवत्सल राम ने स्नेह से छोटे भाई भरत तथा शत्रुघ्न को सम्पूर्ण राज्य
 में राजा की तरह अभिषिक्त कर अपनी पुरातनी प्रतिमा की आराधना करते हुए प्यारह हजार वर्षों तक समुद्र
 पर्यन्त पृथ्वी का भोग किया । राज्य-बाल के बाद तुम जल तथा रत्नों से सम्पन्न हो घन्य हो, इसकी रक्षा करो
 यह कहकर समुद्र के जघिष्ठित देवता को यह प्रतिमा देकर राम ने विष्णुलोक में प्रवेश किया ॥४१-५१॥ विप्रवृन्द ।
 द्वारपर युग में जब घर्म के नाश होने के कारण तथा पृथ्वी के अनुरोध से जगत्पति भगवान् कस आदि के वध के
 निमित्त वर-राम सहित वसुदेव के कुल में अवतीर्ण हुए थे तब किसी कारण समस्त कामनाओं के फल का देने वाली

१क प्लवगमम् । २म० न्यवनस्त० । ३ख ०यदचैव वेन्दश्च वानरेशो महौज० । ४ख ०हामासी राम० ।

५ग ०न ॥५२॥ शतश शाल्वस० । ६क महोदर । ७क मालिन माल्यवन्त च । ८ग ०मादाय मु० । ९ख राज्ञे ।

तदा तां प्रतिमां विप्राः सर्ववाञ्छाफलप्रदाम् । सर्वलोकहितार्थाय कस्यचित्कारणान्तरे ॥५४॥
 तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे । उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितां पतिः ॥५५॥
 तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजाः । आस्ते स देवो देवानां सर्वकामफलप्रदः ॥५६॥
 ये संश्रयन्ति चानन्तं भक्त्या सर्वेश्वरं प्रभुम् । वाङ्मनः कर्मभिनित्य ते यान्ति परमं पदम् ॥५७॥
 दृष्ट्वाऽनन्तं सकृद्भक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च । राजसूयाश्वमेधाम्या फलं दशगुणं लभेत् ॥५८॥
 सर्वकामसमुद्भूतं कामगेन सुखं वंसा । विमानेनाकं वर्णनं किङ्किणीजालमालिना ॥५९॥
 त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रोगणसेवितः । उपगोयमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥६०॥
 तत्र भुक्त्वा वरान्भोगाञ्जरामरणवर्जितः । दिव्यरूपधरः श्रीमान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥६१॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽमातश्चतुर्वेदो द्विजोत्तमः । वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥६२॥
 एवं मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमाः । कः शक्योति गुणाः वदतु तस्य दर्शयितुं रपि ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसंवादेऽनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपणं नाम
 पदसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

उस प्रतिमा को अखिल लोको के हित के लिये उस पवित्र, उत्तम तथा दुर्लभ पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में सरिताओं के स्वामी समुद्र ने जल से बाहर कर दिया । द्विजगण ! तब से लेकर उठी मुक्तिदायक क्षेत्र में देवों के देव तथा अखिल कामनाओं के दाता भगवान् रहते हैं । जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा भक्तिपूर्वक सब के ईश्वर, सर्वराजिन्मान्, अनन्त वामुदेव की शरण में जाते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं । एक बार अनन्त भगवान् के दर्शन, पूजन तथा प्रणाम करने से मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों से दश गुने अधिक फल प्राप्त करते हैं । देहान्त के बाद वे निखिल कामनाओं से सम्पन्न, स्वेच्छाचारी, सूर्य सदाश वर्ण वाले तथा शत्रु घण्टिकाओं में मुक्त विमान पर चढ़कर अपने इक्कीस कुल का उद्धार करके दिव्य बनिताओं से सुमेयिन तथा गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुपुर को जाते हैं । ॥५२-६०॥ वहाँ बृहत् तथा मृत्यु से रहित होकर दिव्य रूप धारण कर बलान्त तब उत्तम भागों को प्राप्ति करते हैं । फिर पुण्यत्रय होने पर इस लोक में आते हैं और चारों वेदों के ज्ञाता द्विजवर होते हैं । तदनन्तर वैष्णव योग में स्थित होकर मात्र प्राप्त करते हैं । मुनिधेष्ठो ! इस प्रकार मैं अनन्त भगवान् का गुणकीर्तन किया है । यो तो सकृद्वारों से भी उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥६१-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषिमतवाद प्रकरण में अनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपण नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७६॥

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव बोधन्तमाहात्म्य क्षेत्रं च पुरुषोत्तमम् । भुक्तिमुक्तप्रदं नृणां मया प्रोक्तं सुदुर्लभम् ॥१॥
यत्राऽऽस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर । पीताम्बरधर कृष्ण कसकेशिनिपूदन ॥२॥
ये तत्र कृष्णं पश्यन्ति सुरासुरनमस्कृतम् । सकर्षणं सुभद्रा च धन्यास्ते नात्र संशयः ॥३॥
श्र्लोषघाधिपतिं देवं सर्वकामफलप्रदम् । ये ध्यायन्ति सदा कृष्णं मुक्तास्ते नात्र संशयः ॥४॥
कृष्णे रता कृष्णमनुस्मरन्ति, रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये ।
ते भिन्नवेहा प्रविशन्ति कृष्णं हविर्यथा मग्नं हृतं हुताशनम् ॥५॥
तस्मात्सदा मुनिश्रेष्ठा कृष्णं कमललोचन । तस्मिन्क्षेत्रे प्रयत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥६॥
'शयनोत्थापने कृष्णं ये पश्यन्ति मनोषिणः । हलायुध सुभद्रा च 'हरे' स्यान् व्रजन्ति ते ॥७॥
सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् । रौहिणेय सुभद्रा च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥८॥

अध्याय १७७

पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य-वर्णनं

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अनन्त का माहात्म्य तथा मनुष्या के लिये भाग मोक्ष-दायक एवम् अत्यन्त दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र मैंने बताया ॥१॥ उस क्षेत्र में कमललोचन शङ्ख चक्र-गदाधारी पीताम्बर तथा कस ओर बेनी के सहर्ता कृष्ण वास करते हैं ॥२॥ वहाँ जा मनुष्य देव राक्षसा सब बानीय कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे नि सन्देह धन्यवादार्ह हैं ॥३॥ जो त्रिगोत्री के स्वामी तथा समस्त कामताभा के फलदाता कृष्ण का ध्यान करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं ॥४॥ जो कृष्ण में निरत होकर सतत कृष्ण का स्मरण करते हैं अर्थात् रात्रि में तथा उठने पर भी कृष्ण का ध्यान करते हैं वे शरीर छत्र पर उभी तरह कृष्ण में प्रवेश करते हैं जैसा मन्त्रपूवक छांड गय हविर् अग्नि में ॥ ॥ मुनिवर ! इसलिये मोक्षामिलापिदा को यत्नपूर्वक उस क्षेत्र में जाकर कमललोचन कृष्ण का दर्शन करना चाहिये ॥६॥ जो साने-उठने संग कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक का जाते हैं ॥७॥ जो सब कांठ में कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे विष्णु सागर को जाते हैं ॥८॥ जो वय में चार भाग पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते हैं वे पृथ्वी पर समस्त तापयात्राओं

आस्ते यश्चतुरो मासान्वापिकान्पुरुषोत्तमे । पृथिव्यास्तीर्थयात्राया फल प्राप्नोति चाधिकम् ॥१॥
 ये सर्वकाल तत्रैव निवसन्ति मनीषिण । जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपस फलम् ॥१०॥
 तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुत नर । यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे ॥११॥
 तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन यत्फलम् । तत्फल सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१२॥
 सवतीर्थेषु यत्पुण्य स्नानदानेन कीर्तितम् । तत्फल सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१३॥
 'सम्यक्तीर्थेन यत्प्रोक्त व्रतेन नियमेन च । तत्फल लभते तत्र प्रत्यह प्रयत शुचि ॥१४॥
 यस्तु नानाविधैर्यज्ञैर्यत्फल लभते नर । तत्फल लभते तत्र प्रत्यह सयतेन्द्रिय ॥१५॥
 देह त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे । कल्पवृक्ष समासाद्य मुक्तास्ते नात्र सशय ॥१६॥
 वटसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते दुर्लभ पर मोक्ष प्राप्नुवन्ति न सशय ॥१७॥
 अनिच्छन्नपि यस्तत्र प्राणास्त्यजति मानव । सोऽपि दुःखविनिर्मुक्तो भुक्ति प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥१८॥
 कृमिकोटपटङ्गाद्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये । सत्र देह परित्यज्य से यान्ति परमा गतिम् ॥१९॥
 भ्रान्ति लोकस्य पश्यध्वमन्यतीर्थं प्रति द्विजा । पुरुषारयेन यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम् ॥२०॥
 सकृत्पश्यति यो मत्स्य श्रद्धया पुरुषोत्तमम् । पुरुषाणा सहस्रेषु स भवेदुत्तम पुमान् ॥२१॥
 प्रकृते स परो यस्मात्पुरुषादपि चोत्तम । तस्माद्देवे पुराणे च लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तम ॥२२॥

के फल से अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥१॥ जो विद्वान् श्रेष्ठ तथा इन्द्रिया को जीतकर सब समय वही वास करते हैं वे तपस्या का फल प्राप्त करते हैं ॥१०॥ अन्य तीर्थों में दस हजार वर्षों तक तप करने से जितना फल प्राप्त होता है उतना एक पुरुषोत्तम में एक मास तक तप करने से होता है ॥११॥ तपस्या ब्रह्मचर्य तथा आसक्ति त्याग से जो फल मिलता है वह फल उस क्षेत्र में विद्वाना का सतत प्राप्त होता है ॥१२॥ सत्र तीर्थों में स्नान-दान करने से जो पुण्य होता है वह फल वहाँ सतत विद्वाना को प्राप्त होता रहता है ॥१३॥ शीघ्र व्रत तथा नियम करने से जो फल मिलता है वह फल प्रतिदिन पवित्रतापूर्वक वहाँ रहने से प्राप्त होता है ॥१४॥ अनेक यत्न करने में मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वह फल वहाँ प्रतिदिन इन्द्रिय सम्यक् करने से मिलता है ॥१५॥ जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में कल्पवृक्ष का समीप देहत्याग करते हैं वे निःसंशय मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१६॥ वटवृक्ष तथा सागर का मध्य जो गरीरत्याग करते हैं वे दुःख मोक्ष को प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥१७॥ न चाहत हुए भी जो मनुष्य वहाँ प्राणत्याग करता है वह भी दुःख से रहित होकर दुर्लभ भुक्ति का प्राप्त करता है ॥१८॥ कृमि कीट पतङ्ग आदि तिर्यग् मानि वा के जीव भी वहाँ देहत्याग करने से परम गति को प्राप्त करते हैं ॥१९॥ द्विजगण 'दूधरे तीर्थों' का प्रति जो लागा म थड़ा है उस भ्रान्ति समझिए । क्योंकि अन्य समस्त तीर्थों का फल तो एक पुरुषोत्तम से प्राप्त हो जाता है ॥२०॥ जो मनुष्य थड़ापूर्वक एक बार भी पुरुषोत्तम का दान कर देता है वह हजारों पुरुषों में उत्तम पुरुष होकर जन्म लेता है ॥२१॥ जिगम्यि प्रवृत्ति तथा पुण्य से भी वह उत्तम है इगम्यि इस लोक में वेद और पुराण में वह उत्तम माना गया है ॥२२॥ जो पुराण तथा वेदान्त में परमात्मा नाम से पुकारा जाता है

योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मैत्युदाहृतः । 'आस्ते विश्वोपकाराय सेनासौ' पुरुषोत्तमः ॥२३॥
 पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा, रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र ।
 इच्छन्नच्छन्नपि तत्र देहं, संत्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः ॥२४॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः । देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यग्भोगाभिकाङ्क्षिभिः ॥२५॥
 पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति । त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥२६॥
 गुणानामेकदेशोऽयं मया क्षेत्रस्य कीर्तितः । कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्णशतैरपि ॥२७॥
 यदिदं नृणां मुनिश्रेष्ठा मोक्षमिच्छन् शश्वतम् । तस्मिन्क्षेत्रे वरे पुण्ये निवसध्वमतन्निताः ॥२८॥

व्यास उवाच

ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । निवासं चक्रिरे तत्र अवापुः परमं पदम् ॥२९॥
 तस्माद्गृहं प्रयत्नेन निवसध्वं द्विजोत्तमाः । पुरुषाख्ये वरे क्षेत्रे यदि मुक्तिमभीप्सथ ॥३०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ब्रह्मऋषिसंवादे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधि-
 कशततमोऽध्यायः ॥१७७॥

विश्व के उपकार के लिये पुरुषोत्तम कहलाता है ॥२३॥ पुरुषोत्तम क्षेत्र में मार्ग, श्मशान गृहमण्डप तथा गलियों में या जहाँ-वहीं भी चाहते हुए या बिना चाहते हुए भी जो मनुष्य देहत्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥२४॥ द्विजश्रेष्ठो ! इसलिये माय के इच्छुका को अखिल प्रयत्न करके उस क्षेत्र में शरीरत्याग करना चाहिये ॥२५॥ पुरुषोत्तम के माहात्म्य की समता करने वाला न कोई तीर्थ हुआ है न होगा । वहाँ देहत्याग करने से मानव दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है ॥२६॥ यह तो उस क्षेत्र के गुणा का एकदेशी वर्णन ही मैंने किया है । क्योंकि उसके निखिल गुणों का वर्णन तो कोई सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कर सकता ॥२७॥ मुनिवर ! यदि आप लोग शाश्वत मोक्ष चाहते हैं तो आलस्य से रहित होकर उस पवित्र तथा उत्तम क्षेत्र में वास कीजिये ॥२८॥

व्यास ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के वचना को सुनकर मुनिवृन्द ने वहाँ निवास करके परमपद को प्राप्त किया । द्विजश्रेष्ठो ! इसलिये यदि आप लोग भी मोक्ष चाहते हों तो प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम नामक श्रेष्ठ क्षेत्र में निवास कीजिए ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवादप्रकरण में क्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७७॥

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कण्डुचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्त्वमुखावहे । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे ॥१॥
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः । सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ॥२॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः । अवाप परमा सिद्धिमाराध्यः पुरुषोत्तमम् ॥३॥
अन्येऽपि तत्र संसिद्धा मुनयः सशितव्रताः । सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः ॥४॥

मुनय ऊचुः

कौञ्जो कण्डुः कथं तत्र जगाम परमा गतिम् । श्रोतुमिच्छामहे तस्य चरितं ब्रूहि सत्तम ॥५॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथा तस्य मनोहराम् । प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम् ॥६॥
'पवित्रे गौतमीतीरे विजने सुमनोहरे । कन्दमूलफलैः पूर्णं प्लवङ्गपुष्पकुशान्वितैः ॥७॥
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभिते । नानापक्षिरुते रम्ये नानामृगगणान्विते ॥८॥

अध्याय १७८

कण्डुऋषि के चरित्र का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवर ! समस्त जीवा के लिये सुखदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फल देने वाले उस पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में महातेजस्वी, परमधर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र, दान्त, अखिल प्राणियों के हित में निरत, जितेन्द्रिय, जितक्रोध तथा वेद-वेदाङ्ग-पारगत कण्डु नामक ऋषि ने पुरुषोत्तम विष्णु की आराधना करने सिद्धि प्राप्त की । फिर पूषणव्रती, अशेष भूता के हित में निरत, इन्द्रियो का दमन करने वाले, शोध को जीतने वाले तथा दाह से रहित दूसरे मुनिवृन्द भी वहाँ सिद्धि को प्राप्त हुए ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! कण्डु कौन थे ? कैसे उन्होंने परम गति प्राप्त की ? उनका चरित्र वर्णन कीजिए, हम सुनना चाहते हैं ॥५॥

व्यास बोले—मुनिवर ! उनकी मनोहर कथा को सुनिये । मैं संक्षेप में उनकी कथा का वर्णन करूँगा । मुनिश्रेष्ठ ! पवित्र, विजय, मनोहर, कन्द-मूल फलों से परिपूर्ण, लकड़ी, पुष्प, तथा कुशों से युक्त, अनेक वृक्ष-लताओं से प्रभूत, नाना पुष्पा से सुशोभित विविध पक्षियों से शब्दायमान, रमणीय तथा नाना मृगगणों से युक्त गोदा-

१क. स. ०द्विमाप्य पु० । २क. स. सत्येन्द्रियाः । ३स. ०म यदिमा । ४क. प्रसिद्धे । ५क. ग.

०फलमैर्ष्यैः स० । ६स. ०पक्षरतैः कुशैः । ना० ।

तत्राऽऽश्रमपदं कण्डोर्बभूव मुनिसत्तमाः । सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं कदलीखण्डमण्डितम् ॥९॥
 तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्भुतम् । व्रतोपवासैर्नियमैः स्नानमौनसुसंयमैः ॥१०॥
 ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशयः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते स तेपे सुमहतपः ॥११॥
 दृष्ट्वा तु तपसो वीर्यं मुनेस्तस्य सुविस्मिताः । बभूवुर्देवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥१२॥
 भूमिं तयाऽन्तरिक्षं च दिवं च मुनिसत्तमाः । कण्डुः सतापयामास प्रलोभ्य तपसो बलात् ॥१३॥
 अहोऽस्य परमं धैर्यमहोऽस्य परमं तपः । इत्यनुवंस्तवा दृष्ट्वा देवास्तं तपसि स्थितम् ॥१४॥
 मन्त्रयामासुरव्यग्राः शक्रेण सहितास्तदा । भयात्तस्य समुद्विग्नास्तपोविघ्नमभीप्सवः ॥१५॥
 ज्ञात्वा तेषामभिप्रायं शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः । प्रम्लोचाख्या वरारोहा रूपयौवनगविताम् ॥१६॥
 सुमध्यां चारुजड्यां तां पीनश्रोणिपयोधराम् । सर्वलक्षणसपन्नां प्रोवाच फलसूदनः ॥१७॥

शक्र उवाच

प्रम्लोचे गच्छ शीघ्रं त्वं यदाऽतो तप्सते मुनिः । विघ्नार्थं तस्य तपसः क्षोभयत्वा (स्वाऽऽ) शु सुप्रभे ॥१८॥

प्रम्लोचोवाच

तव वाक्यं सुरश्रेष्ठ करोमि सततं प्रभो । किंतु शङ्का ममैवान् जीवितस्य च शशयः ॥१९॥
 बिभेमि तं मुनिवरं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम् । अत्युग्रं दीप्ततपसं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥२०॥
 ज्ञात्वा मां स मुनिः क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपागतम् । कण्डुः परमतेजस्वी शाप दास्यति दुःसहम् ॥२१॥

वरी के तट पर कण्डु का आश्रम था, जो सब ऋतुओं में होने वाले फल-पुष्पों से सुसम्पन्न एवम् कदली वृक्षों से शोभित था । उस आश्रम में मुनि व्रत, उपवास, नियम, स्नान मौन तथा सयम के द्वारा परम अद्भुत तप करते थे । ग्रीष्म-ऋतु में पञ्चवागिन-सेवन, वर्षा में भूमिशयन और हेमन्त में गीले वस्त्रों का धारण करके वे महान् तप करते थे । मुनि भी तपशक्ति को देखकर देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधर अत्यन्त विस्मित हुए । मुनिश्रेष्ठो ! वण्डु ने तप के बल से भूमि, आकाश, स्वर्ग—तीनों लोक—को तपा डाला । तपस्या में निरत मुनि को देखकर देवताओं में कहा— 'अहा ! इसका महान् धैर्य तथा महान् तप आश्चर्यजनक है ।' तब मुनि के मय से उद्विग्न होकर तप में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र सहित देवगण परस्पर मन्त्रणा करने लगे । देवता के अभिप्राय को समझ कर तीना भुवन के ईश्वर तथा फल देने वाले इन्द्र ने वनिताओं में श्रेष्ठ, रूप तथा यौवन से गवित, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर जघा वाली, स्थूल नितम्ब तथा स्तन वाली और सर्वलक्षण सम्पन्न प्रम्लोचा नामक अप्सरा से कहा ॥१६-१७॥

इन्द्र बोले—प्रम्लोचा ! तुम शीघ्र जाओ ! सुन्दर कान्ति वाली ! ये जो मुनि तपस्या कर रहे हैं, उनके तप में विघ्न डालकर उन्हें शीघ्र विचलित करो ॥१८॥

प्रम्लोचा बोली—मुरश्रेष्ठ ! मैं आप के वचन को सतत पूरा करती हूँ । किन्तु इस बार निश्चित रूप से मेरे जीवन में सन्देह है । ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, अत्यन्त उग्र, प्रदीप्त तप से युक्त तथा जागृत्यमान सूर्य के समान कान्ति वाले उन मुनिवर से मैं डरती हूँ । परम तेजस्वी कण्डु मुझे विघ्न डालने के लिये आयी हुई समझकर

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्थला । विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२२॥
 अलम्बुषा मिश्रकेशी शशिलेखा च वामना । अन्याश्चाप्सरसः सन्ति रूपयौवनगविताः ॥२३॥
 सुमध्याश्चावदनाः पीनोन्नतपयोधराः । कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र सनियोजय ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह शचीपतिः । तिष्ठन्तु नाम चान्यास्तास्त्वं चात्र कुशला शुभे ॥२५॥
 कामं वसन्त वायु च सहायार्थे ददामि ते । तं साधं गच्छ सुश्रोणि यथाऽऽस्ते स महामुनिः ॥२६॥
 शत्रुस्य वचनं श्रुत्वा तदा सा चाहलोचना । जगामाऽऽकाशमार्गेण तैः साधं चाऽऽश्रमं मुनेः ॥२७॥
 गत्वा सा तत्र रुचिरं ददर्श वनमुत्तमम् । मुनिं च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकल्मषम् ॥२८॥
 अपश्यत्सा वन रम्य तैः साधं नन्दनोपमम् । सर्वर्तुवरपुष्पाढ्यं शाखाभृगगणाकुलम् ॥२९॥
 पुष्पं पद्मबलोपेतं सपल्लवमहाबलम् । श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्जशब्दान्मृगमुखेरितान् ॥३०॥
 सर्वर्तुफलभाराद्यचान्सर्वर्तुकुसुमञ्ज्वलान् । अपश्यत्पादपादं च विहङ्गं रनुनादितान् ॥३१॥
 आभ्यानाभ्यातकान्भव्याभारिकेरान्सतिन्दुकान् । अथ बिल्वास्तथाजीवान्वाडिमान्बोजपूरकान् ॥३२॥
 पनसाल्लिकुचाभ्रोपाञ्जिरीषान्सुमनोहरान् । पारावतास्तथा कोलानरिमेदाभ्यवेतसान् ॥३३॥
 भल्लातकानामलकाञ्जशतपणश्च किशुकान् । इङ्गुदान्करवीराश्च हरीतकीविभीतकान् ॥३४॥

हु सह शाप देंगे । उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा, अलम्बुषा, मिश्रकेशी, शशिलेखा, वामना तथा दूसरी भी रूप-यौवन-गविता, सुन्दर बटि वाली, सुन्दर मुख वाली, स्पूल एवम् उन्नत स्तन वाली और कामशास्त्र मनिपुण अप्सरायें हैं । उन्हीं को इस कार्य के लिये नियुक्त करे ॥१९-२४॥

ब्रह्मा बोले—उसके वचन को सुनकर पुन इन्द्र ने कहा—‘दूसरी अप्सरायें मही जाएंगी। कामिनी ! तुम्ही इस काम में कुशल हो । कामदेव वसन्त तथा वायु को तुम्हारी सहायता के लिये देता है । सुन्दर बटि वाली ! उनके साथ तुम उम महामुनि के पास जाओ ।’ शत्रु की बात सुनकर वह मनोहर नेत्र वाली अप्सरा उनके साथ आवागमन से मुनि के आश्रम के लिये चल पड़ी । वहाँ जाकर उसने उत्तम वन तथा आश्रमवासी निष्पाप एवम् अत्यन्त तपस्वी मुनि को देखा ॥२५-२८॥ उसने नन्दनवन तुल्य रमणीय वन को देखा, जो सब ऋतुओं में होने वाले उत्तम पुष्पा में सम्पन्न शाखाओं तथा मृगगणों से परिपूर्ण, पवित्र और कमलों तथा पल्लवों से युक्त था । वहाँ शगवृन्द शबलमुषद तथा अचल मयूर शब्द कर रहे थे । उस वन में ऐसे वृक्ष शोभायमान थे, जो सब ऋतुओं में फलते-पड़ते थे और जिन पर पक्षियों का समूह मधुरालाप करता रहता था । आम आमला, सुन्दर मारियल, तिन्दुल (तेंदू), विन्ध जीव, (वत्सयन), दाडिम, कीजपूर, बटहल, बडहूर, बडम्ब शिरीष, मनोहर पारावत, कोल (बेर), अरिपेद (मैर), अम्बरेज (अमलबैंग), भल्लातक (मिलाना), छतिवन, पलाश, इगुद (हिणोट), करवीर, हड़, बहेरा—इन वृक्षों तथा अन्य वृक्षों की भी उस विसालाधी अप्सरा ने वहाँ देखा ॥२९-३४॥ उसी तरह अशोक

एतान्न्यांश्च सा वृक्षान्दशं पृथुलोचना । तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानय ॥३५॥
 पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्द्रीवरान्स्तथा । पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदारुमास्तथा ॥३६॥
 शालास्तालास्तमालाश्च निचुल्लोलोमकास्तथा । अन्याश्च पादपश्रेष्ठानपश्यत्फलपुष्पितान् ॥३७॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुक्रैः । कोकिलैः कलविज्जुश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥३८॥
 प्रियपुनश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः । धोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्विश्वाप्यधिष्ठितम् ॥३९॥
 सरासि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदं पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥४०॥
 कङ्कहारैः कमलैश्चैव आक्षितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुवकुटैः ॥४१॥
 कारण्डवैर्बकैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च । एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥४२॥
 क्रमेणैव तथा सा तु वनं बभ्राम तैः सह । एवं दृष्ट्वा वनं रम्यं तैः सार्धं परमाद्भुतम् ॥४३॥
 विस्मयोत्फुल्लनयना सा बभूव वराङ्गना । प्रोवाच वार्युं कामं च वसन्तं च द्विजोत्तमाः ॥४४॥

प्रम्लोचोवाच

कुरुष्वं मम साहाय्यं यूयं सर्वे पृथक्पृथक्

॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा सा तु तथेत्युक्ता सुरद्विजा । प्रत्युवाचाद्य यास्यामि यत्रासी संस्थितो मुनि ॥४६॥
 अथ त देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् । स्मरशस्त्रगलद्रश्मि करिष्यामि कुसारयिम् ॥४७॥
 ब्रह्मा जनादेनो वाऽपि यदि वा नीललोहितः । तयाऽऽप्यद्य करिष्यामि कामवाणक्षतान्तरम् ॥४८॥

पुन्नाग, केतकी, मीलसिरी, पारिजात, कचदार, मन्दार, नीलकमल, पाटला देवदारु, शाल ताल तमाल निचुल (बेत), लोमक तथा ब्रूसरे भी पल्लवपुष्पो से युक्त वृक्षा को उसने देखा । चकोर, मयूर मृङ्गराज तोते, कोयल गोरये हारीत, जीवजीवक, प्रियपुत्र चातक तथा अन्य विविध पक्षीगण मनोरम एवम् सुमधुर शब्द बर्हान्कर रहे थे ॥३५-३९॥ वहाँ मनोहर तथा स्वच्छ जल से युक्त अनेक सरोवर ध, जो कुमुद, कमल, नील कमल, रक्तकमल, कलहंस, चक्रवाक जलकुवकुट, कारण्डव बक, हंस, बटुए, मद्गु तथा अन्य जलजन्तुओं से व्याप्त थे । काम आदि के साथ प्रम्लोचा ने श्रमना वन में अभय किया । इस प्रकार परम आश्चर्यजनक मनोरम वन का देखकर उस वरागता के नेत्र विस्मय से प्रदुल्लित हो गये । द्विजधेनो ! तब उसने वार्यु काम तथा वसन्त से कहा ॥४०-४४॥

प्रम्लोचा बोली—तुम सब अलग अलग मेरी सहायता करो ॥४५॥

ब्रह्मा बोली—द्विजगण ! उन्होंने उमका वचन स्वीकार किया । तब उसने कहा—‘आज मैं मुनि के पास जाऊँगी । देह का समयन करने वाले इन्द्रिय रूपी घोडों को जीतने वाले तथा कुसारयि से युक्त मुनि के घोडों की डोरी को आज मैं कन्दर्प रूपी शस्त्र से काट डालूँगी । ब्रह्मा या विष्णु या महेश ही बयो नही, उन्हें भी आज मैं काम-

इत्युक्त्वा प्रययौ^१ साऽथ यत्रासौ तिष्ठते मुनिः । मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्चापदाधमम् ॥४९॥
 सा पुंस्कोकिलमाधुर्यं नदीतीरे व्यवस्थिता । स्तोकमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराञ्जराः ॥५०॥
 ततो वसन्तः सहसा^२ बलं समकरोत्तदा । कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम् ॥५१॥
 वदो गन्धर्वहर्षचैव मलयार्द्रनिकेतनः । पुष्पानुच्चावचान्मेध्यान्पातयश्च शनैः शनैः ॥५२॥
 पुष्पबाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपतः । मुनेश्च क्षोभयामास कामस्तस्यापि मानसम् ॥५३॥
 ततो गीतध्वनिं श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानसः । जगाम यत्र सा सुभ्रूः कामबाणप्रपीडितः ॥५४॥
 दृष्ट्वा तामाह संदृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचनः । ऋणोत्तरीयो विकलः पुलकाञ्चितविग्रहः ॥५५॥

ऋषिरवाच

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चारुहासिनि । मनो हरसि मे सुभ्रू ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे ॥५६॥

प्रम्लोचोवाच

तव कर्मकरा चाहं पुष्पायर्महमागता । आदेशं देहि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया ॥५७॥

व्यास उवाच

श्रुत्वेवं वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः । आदाय हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥५८॥

बाण से क्षत विक्षत कर दूगी, इतना कहकर वह वहाँ के लिए चल पड़ी, जहाँ मुनि रहते थे । मुनि के तप प्रभाव से आश्रमस्थ हितव्र जीव भी शान्त हो गये थे । नर कोयलो के मधुरालाप से युक्त नदी तट पर यह रव गई । मुनि से थोड़ी ही दूर पर स्थित होकर वह वरागना गाने लगी । तब सहसा वसन्त ने आकर असमय में ही बोनिलो के आलाप को मनोहर तथा मधुर बना दिया । मलयचल स्थित मुगन्धित वायु भी धीरे-धीरे धरते हुए छोटे-बड़े मुललित पुष्पा को गिराने लगे । स्वयं बन्दर्प पुष्पो का बाण लेकर मुनि के समीप जाकर उनके मन को विचलित करने लगा । गीतध्वनि सुनकर मुनि आश्चर्यान्वित हो गये और काम-बाण से पीडित होकर उसी सुन्दर मौह वाली अप्सरा के पास पहुँचे । उसे देखकर विस्मय से मुनि ने नेत्र उत्फुल्ल हो गये, उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर पड़ा और शरीर में रोमाञ्च हो आया ॥४९-५५॥

ऋषि बोले—सुन्दर नितम्ब वाली ! मनोहर हास्य करने वाली ! सुन्दरि ! तुम कौन हो ! किसकी हो ? सुन्दर कटि वाली ! सुन्दर माँ वाली ! सच-सच बतलाओ । तुम मेरे मन का हरण कर रही हो ॥५६॥

प्रम्लोचा बोली—मैं आपकी अनुचरी हूँ । पूछो के लिए मैं यहाँ आई हूँ । क्षीघ्र आप आदेश करें । मैं आपकी आज्ञा से सब कुछ कर सकती हूँ ॥५७॥

व्यास ने कहा—उसकी बातों को सुनकर माधव मुनि ने धैर्य का परित्याग कर उस कामिनी का हाथ पकड़-कर अपने आश्रम में प्रवेश किया ॥५८॥ (द्विजधेष्ठो । तदनन्तर काम, वायु तथा वसन्त ने कृतकृत्य होकर स्वर्ग

ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः । जग्मुर्ययागतं सर्वं कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम् ॥५९॥
 शशंसुश्च हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम् । श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन् ॥६०॥
 स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम् । आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृतिः ॥६१॥
 रूपयौवनसंपन्नमतीव सुमनोहरम् । दिव्यालंकारसंयुक्तं ॥६२॥ [योऽश्वत्सराकृतिः ॥६२॥
 दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्त्रगन्धभूषितम् । सर्वोपभोगसंपन्नं सहसा तपसो बलात् ॥६३॥
 दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता । अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिताऽभवत् ॥६४॥
 स्नानंसंध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम् । व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः ॥६५॥
 त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्धमर्हनिशम् । मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम् ॥६६॥
 संध्यारात्रिदिवापक्षमास्तत्त्वं यनहायनम् । न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ॥६७॥
 सा च तं कामजर्भोर्विदग्धा रहसि द्विजाः । वरयामास सुश्रोणिः प्रलापकुशला तदा ॥६८॥
 एवं कण्डुस्तया सार्धं वर्षाणामधिकं शतम् । अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्या ग्राम्यधर्मरतो मुनिः ॥६९॥
 सा तं प्राह महाभाग गन्तुमिच्छाम्यह दिवम् । प्रसादसुमुखो ब्रह्मन्ननुज्ञातुं त्वमर्हसि ॥७०॥
 तपैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः । दिनानि कतिचिद्बुद्धे स्थीयतामित्यभाषत ॥७१॥

आकर इन्द्र से अप्सरा तथा मुनि की चेष्टाओं का वर्णन कर दिया । यह सुनकर इन्द्र तथा देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५९-६०॥ उस कण्डु ने अप्सरा के साथ आश्रम में प्रवेश करते ही अपना रूप कामदेव जैसा बना लिया । मुनि तपस्या के बल से एकाएक सोलह वर्ष का युवक रूप-यौवन से सम्पन्न, अत्यन्त सुन्दर दिव्य आभूषणों से विभूषित, दिव्यवस्त्रधारी, कमनीय दिव्य माला तथा सुगन्ध से युक्त और सब प्रकार के उपभोग से सम्पन्न हो गया । अप्सरा उसकी वह विभूति देखकर परम आश्चर्यित हुई और यह कहकर प्रसन्न हुई कि 'अहा ! वंसा इसके तप का प्रभाव है । मुनिवर ! तत्परचात् वह मुनि स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन, व्रत उपवास, नियम तथा ध्यान छोड़कर दिनरात अप्सरा के साथ आनन्दपूर्वक रमण करने लगा । काम से व्यथित हृदय वाले मुनि ने तपस्या के क्षय को नहीं समझा । विषय में आसक्त बित्त वाले मुनि ने संध्या, रात, दिन, पक्ष मास, ऋतु, अयन तथा वर्ष तक को भी नहीं समझा । द्विजगण ! तदनन्तर वातचीत करने में चतुर एवम् हाव-भाव दिखाने में प्रवीण उस वरागणा ने मुनि का वरण कर लिया । इस प्रकार सौ वर्षों से अधिक काल तक कण्डु मुनि ग्राम्यधर्म में निरत होकर उसके साथ मन्दराचल की शील में पड़ा रहा ॥६१-६९॥ (एक दिन) अप्सरा ने महामायाशाली मुनि से कहा— मैं स्वर्ग जाना चाहती हूँ । ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न पूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये । उसके इतना कहने पर उसमें आसक्त मन वाले मुनि ने कहा— 'मद्रे ! कुछ दिन और ठहरो ।' तदनन्तर पुनः सौ वर्षों से अधिक समय तक अप्सरा ने उस महात्मा

एवमुक्ता ततस्तेन साधं वर्षशतं पुनः । बुभुजे विषयास्तन्वी तेन साधं महात्मना ॥७२॥
 अनुज्ञा देहि भगवन्नजामि त्रिदशालयम् । उक्तस्तथेति स पुनः स्थीयतामित्यभाषत ॥७३॥
 पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना । याम्यह निदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ॥७४॥
 उक्तस्तथैवं स मुनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणां । इहाऽऽस्यता मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥७५॥
 तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनपिणा पुनः । शतद्वय किंचिद्वनं वर्षाणा समतिष्ठत ॥७६॥
 गमनाय महाभाणो देवराजनिवेशनम् । प्रोक्तः प्रोक्तस्तथा तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥७७॥
 तस्य शापभयाद्भूरेर्दक्षिण्येन च दक्षिणा । प्रोक्ता प्रणयभङ्गातिवेदिनो न जहौ मुनिम् ॥७८॥
 तथा च रमतस्तस्य परमर्षैर्हनिशम् । नवं नवमभूत्प्रेम मन्मथासक्तचेतसः ॥७९॥
 एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोदजान्मुनिः । निष्क्रामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥८०॥
 इत्युक्त सतया प्राह परिवृत्तमहः शुभे । संध्योपास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽप्यथा भवेत् ॥८१॥
 ततः प्रहस्य मुविता सा त प्राह महामुनिम् । किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥
 गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कथ्यते ॥८२॥

मुनिरुवाच

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिवं शुभम् । मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम् ॥८३॥

के साथ विषय का उपभोग किया ॥७०-७२॥ तब उसने मुनि से कहा—‘मगवन् ! आज्ञा दीजिये । मैं स्वर्ग जाऊँगी ।’ उसके कहने पर फिर मुनि ने कहा—‘नही, अभी ठहरो ।’ पुनः सौ वर्ष से अधिक समय तक ठहर कर अम्बरा प्रेम से मुस्कराते हुए कहा—‘ब्रह्मन् ! मैं स्वर्ग जाऊँगी ।’ तब मुनि ने दीर्घ नेत्र वाली उस अम्बरा से कहा—‘गुन्दर भी वाली ! चिरकाल तक मेरे साथ और रहे तब जाना ।’ मुनि के शाप के डर से वह दो सौ वर्षों से कुछ कम बाल तब मुनि के साथ फिर ठहर गई । तत्पश्चात् उसने इन्द्रपुरी जाने के लिये मुनि से आज्ञा मागी । पुनः मुनि ने कहा—‘अभी ठहरो ।’ मुनि के शाप के डर में प्रणयमगम्य पौडा को समझन वाली उस चतुर अम्बरा ने मुनि का त्याग नहीं किया । उसका साथ रातदिन रमण करते हुए विषयलोभुव मुनि के हृदय में नवीन-नवीन प्रेम का संचार होन लगा । एक दिन आश्रम में शीघ्रनापूर्वक निवृत्त हुए मुनि से अम्बरा पूछ बैठी—‘कहाँ जा रहे हैं ?’ मुनि ने उत्तर दिया—‘कल्याण । दिनान्त हो रहा है मैं सन्ध्यासामन करूँगा, अन्यथा क्रिया का लाप हो जायगा ।’ तब हँसकर अम्बरा ने महामुनि से कहा—‘अखिल धर्मों के ज्ञाना ! क्या आज ही दिनान्त हो रहा है ? इनने दिन बीत गये । आप क्या करते थे ?’ ॥७३-८२॥

मुनि बोले—भद्रे ! प्रातःकाल तुम पवित्र नदी-सट पर आई । गुन्दर नितम्ब वाली । मैंने तुम्हें देखा

‘इयं च यतंते संध्या परिणाममहो गतम् । अवहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यता मम ॥८४॥

प्रम्लोचोवाच

प्रत्यूषस्त्यागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मुषा । किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यद्दशतानि ते ॥८५॥
ततः संसाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयत्तेशनाम् । कथ्यता भीरु कः कालस्त्वया मे रमतः सदा ॥८६॥

प्रम्लोचोवाच

‘सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च । ‘मासाश्च षट्त्वर्यवान्यत्समतोतं दिनत्रयम् ॥८७॥

ऋषिरुवाच

सत्यं भीरु धदस्येतत्परिहासोऽयवा शुभे । दिनमेकमह मन्ये त्वया सार्धमिहोषितम् ॥८८॥

प्रम्लोचोवाच

वदिष्याम्यनुतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके । विशेषादद्य भवता पृष्टा मार्गानुगामिना ॥८९॥

व्यास उवाच

निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः^१ । धिग्धिङ्मामित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽत्मानमात्मना ॥९०॥

और तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुईं । यह सन्ध्याकाल है । दिन का अवसान हो गया है । क्यों तुम उपहास कर रही हो ? सच्ची बात बतलाओ ॥८३-८४॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन् । प्रातःकाल मैं आई—यह कहना आपका ठीक है । किन्तु उस प्रातःकाल को बीते आज सैंकड़ों वर्ष हो गये हैं । तब अथयुक्त मुनि ने लम्बी आँखों वाली प्रम्लोचा से पूछा—‘कहो, तुमसे रमण करते मुझे कितने समय हो गये ?’ ॥८५-८६॥

प्रम्लोचा बोली—नौ सौ वर्ष, छ मास, तीन दिन व्यतीत हुए ॥८७॥

ऋषि बोले—कल्याणि ! क्या यह सत्य कह रही हो या उपहास करती हो ? मैं तो समझ रहा हूँ कि तुम्हारे साथ एक ही दिन बीता है ॥८८॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन् । विशेष करके जब आपने अन्वेषण की दृष्टि से पूछा है तब मैं आपके समीप बसत्य क्यों बोलूँ ? ॥८९॥

व्यास बोले—द्विजधेष्ठो ! उसका वचन सुनकर मुनि आचारशून्य अपने आपको धिक्कारने लगे तथा निन्दा करने लगे ॥९०॥

१स सप्तम्युनान्यती० । २स. ०एच थोडदीवान सम० । ३क ०मा । विदित्वा इत्य० ।

मुनिरुवाच

तपासि मम नष्टानि हृतं ब्रह्मविदां धनम् । हृतो विवेकः केनापि' योषिन्मोहाय निर्मिता ॥९१॥
ऊर्मिपट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे । गतिरेषा कृता येन धिक्कृतं काममहाग्रहम् ॥९२॥
प्रतानि' सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च । नरकग्राममार्गेण कामेनाद्य' हृतानि मे ॥९३॥
'विनिन्द्येत्वं स धर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना । तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ॥९४॥

ऋषिरुवाच

गच्छ पापे यथाकाम यत्कार्यं तत्त्वया कृतम् । देवराजस्य' यत्क्षोभं कुर्वन्त्या भावचेष्टितं ॥९५॥
न त्वां करोम्यहं भस्म श्रोधतोव्रेण वह्निना । सता' साप्तपदं' मध्यमुपितोऽहं त्वया सह ॥९६॥
अथवा तव दोषः कः किंवा' बुयमिहं तव । ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥९७॥
यथा शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मत्तपसो व्ययः । त्वया दृष्टिमहामोहमनुनाऽहं जुगुप्सितः ॥९८॥

व्यास उवाच

यावदित्यं स विप्रपिस्ता ब्रवीति सुप्रध्यमाम् । तावत्स्खलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेषयुः ॥९९॥
प्रवेपमाना स च तां स्विन्नगात्रलतां सतीम् । गच्छ गच्छेति सप्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥१००॥

मुनि बोले—मेरे तप नष्ट हो गये, ब्रह्मवेत्ताओं का धन नष्ट हो गया, किसी ने विवेक का अपहरण कर लिया। अहो! मोह भ डालने के लिये ही स्त्रिया की रचना हुई है। वहाँ तो मैं इन्द्रियों को जीतकर ब्रह्म को प्राप्त करने वाला था और वहाँ मेरी यह दशा? उस महाग्रह रूपी काम को धिक्कार है जिसने मेरी यह दशा की है। नरकसमूह में पहुँचाने वाले काम ने आज मेरे व्रत समस्त वेद तथा अखिल कारणों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार धर्मज्ञ मुनि ने अपने से अपनी निन्दा करके बँटी हुई उस अप्सरा से कहा ॥९१-९४॥

ऋषि बोले—यापिनी! तुम स्वेच्छा से चली जाओ। इन्द्र का जो काम तुम्हें करना था वह तुमने हाव-भाव दिखाकर कर दिया। तीव्र क्रोध रूपी अग्नि से मैं तुम्हें जलाऊँगा नहीं। सज्जनों की जो सत्परी मित्रता होती है वह तुमसे हो गई, क्योंकि सात सौ वर्षों से ऊपर मैं तुम्हारे साथ रह चुका हूँ। अथवा तुम्हारा दोष ही क्या है या मैं ही तुम्हारा क्या कर लूँगा? यह मेरा ही दोष है कि मैं इन्द्रियों को न जीत सका। इन्द्र के बल्याण करने की इच्छा से तुमने मेरे तप का नाश किया। तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही मैं महामोह में पँसकर निन्दा का पात्र बन गया ॥९५-९८॥

व्यास बोले—इस प्रकार जब वे ब्राह्मण अप्सरा से कह रहे थे तब वह पगीने से तर-बतर होकर नीचे खी थी। उनी अवस्था में मुनि ने जोरपूर्वक उससे कहा—'जाओ जाओ।' पटवार साकर उस अप्सरा ने आधम मे

सा तु निर्भत्सिता तेन विनिष्कम्प्य तदाश्रमात् । आकाशगामिनी स्वेदं ममार्जं तरुपल्लवैः ॥१०१॥
 वृक्षाद्भक्षं ययौ बाला उदग्राहणपल्लवैः । निर्ममार्जं च गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै ॥१०२॥
 ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः । निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपी तवद्भूतः ॥१०३॥
 त वृक्षा जगुर्गर्भमेकं चक्रे च मारुतः । सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स तदा धवृधे शनैः ॥१०४॥
 मारिष्या नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना । प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः ॥१०५॥
 स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः । पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ ॥१०६॥
 ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम् । दक्षिणस्योदधेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम् ॥१०७॥
 सुरम्यं बालुकाकीर्णं केतकीवनशोभितम् । नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिरुतं शिवम् ॥१०८॥
 सर्वत्र सुखसंचारं सर्वतुकुसुमान्वितम् । सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम् ॥१०९॥
 भृगवाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरस्तथा । गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैस्तथाऽयंमोक्षकाडक्षिभिः ॥११०॥
 ददर्श च हरिं तत्र देवैः सर्वैरलंकृतम् । ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्थैर्निषेवितम् ॥१११॥
 दृष्ट्वैव स तदा क्षेत्रं देव च पुरुषोत्तमम् । कृतकृत्यमिवाऽऽजमानं मेने स मुनिसत्तमः ॥११२॥
 तत्रैकाग्रमना भूत्वा चकाराऽऽराधनं हरेः । ब्रह्मपारमयं कुर्वन्जपमेकाग्रमानसः ॥
 ऊर्ध्वं बाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तमः ॥११३॥

निजल वर आकाश-मार्ग से गमन करती हुई तर पल्लवा से पसीने को पोछ डाला । एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर होती हुई वह जाती थी और गर्भजल को वृक्ष पल्लवों से पोछ देती थी । ऋषि ने उसके शरीर में जो गमाधान किया था वह गर्भ पसीना बन कर उसके अग्रा से निजल गया । वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया और वायु ने उसे एकत्रित कर दिया । चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा उसे पालने लगे । तब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा । उसी गर्भ से वृक्षा की चारुलोचना मारिष्या नामक कन्या उत्पन्न हुई, जो प्रचेताआ की पत्नी तथा दक्ष की माता बनी । भगवान् कण्डु भी तब के क्षय हो जाने पर पुरुषोत्तम नामक विष्णु-क्षेत्र को चले गये ॥९९-१०६॥ दक्षिण समुद्र के तट पर उन्होंने मोक्षदायक, पृथ्वी पर दुर्लभ, अखिल कामनाओं के फल को देने वाले, मनोहर, बालुका से परिपूर्ण केतकीवन से सुगोभित, अनेक वृक्ष-लताओं से श्याप्त, नाना पक्षियों से शनित तथा कल्याणकारी क्षेत्र को देखा । वहाँ सर्वत्र सुख का साम्राज्य था । सब ऋतुओं में होने वाले पुष्प खिले हुए थे । मनुष्यों को समस्त सुख प्राप्त थे । वह क्षेत्र माना निखिल गुणों की निधि था । पहले भृगु आदि मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अन्य मोक्षामिलायिका ने उस क्षेत्र की सेवा की थी । वहाँ पर कण्डु ने देवगणा से अलंकृत तथा ब्राह्मण आदि वर्णों एवं आश्रमवासियों से सुसेविन हरि को देखा । पुरुषोत्तम देव तथा क्षेत्र को देखते ही वे अपने को कृत-कृत्य मानने लगे । वहाँ एकाग्रचित्त होकर हरि की आराधना करने लगे । उन्होंने मुद्राओं को उठाकर एकाग्र मन से ब्रह्मपारम्य का जप करते हुए योगाभ्यास करना आरम्भ कर दिया ॥१०७-११३॥

मुनय ऊचुः

ब्रह्मपारं 'मुने श्रोतुमिच्छामः परमं' शुभम् । जपता कण्डुना देवो येनाऽराध्यत केशवः ॥११४॥

व्यास उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः, परः परेभ्यः 'परमात्मरूपः' ।

स ब्रह्मपारः परपारभूतः, परः पराणामपि पारपारः ॥११५॥

स कारणं 'कारणसंघितोऽपि, तस्यापि हेतुः' परहेतुहेतुः ।

'कार्योऽपि चैव सह कर्मकर्तृ . . . 'रूपैरनेकैरवतीह 'सर्वम्' ॥११६॥

ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो, ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ।

ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गः ॥११७॥

ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः । तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥११८॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तस्य 'मुनेर्जायं ब्रह्मपारं द्विजोत्तमः । भक्तिं च परमां ज्ञात्वा सुदुर्गां पुरुषोत्तमः ॥११९॥

प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भवतवत्सलः । गत्वा तस्य 'समीपं तु प्रोवाच मधुसूदनः ॥१२०॥

मेघगम्भीरया वाचा दिशः संनादयन्निव । आरुह्य गरुडं विप्रा विनताकुलनन्दनम् ॥१२१॥

मुनियों ने कहा—मुने ! हम परम पवित्र ब्रह्मपार मन्त्र के विषय में सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए बण्डु ने वेदाव की आराधना की थी ॥११४॥

व्यास बोले—विष्णु पारपर, अपारपार, परो से भी परे तथा परमात्मा स्वरूप हैं । वे ब्रह्मपार, परपार-मूल, परो से भी परे तथा पारपार हैं ॥११५॥ वे कारण, कारणों के आश्रय, कारणों के कारण तथा दूसरों के कारणों के कारण हैं । वे कार्य, कर्म, कर्ता होते हुए भी अनेक रूपों से सब की रक्षा करते हैं । वे ब्रह्म, प्रभु, सर्वमूलमय तथा प्रजाओं के स्वामी हैं । वे अविनाशी, नित्य, अजन्मा, विष्णु तथा क्षय आदि से रहित हैं । जैसे पुरुषोत्तम भगवान् ब्रह्म, अविनाशी, अजन्मा तथा नित्य हैं वैसे मेरे राग आदि दोष शान्त हो जायें ॥११६-११८॥

व्यास बोले—द्विजवर ! मुनि ने ब्रह्मपार मन्त्र का जप सुनकर तथा अत्यन्त दुःख मक्ति जानकर भक्तवत्सल भगवान् परम प्रसन्न हो गये । तब विनता के बेटा को बड़ाने वाले गरुड पर चढ़कर मधुसूदन मुनि के समीप जाकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से दिशाओं को गन्धित करते हुए कहने लगे ॥११९-१२१॥

१ मुने । २ क स स्तवम् । ३ म परमापेक्षणी । ४ न. ०णतत्ततो० । ५ स ०रपारहे० । ६ क ग कापेनुर्ध्वस० । ७ क. स ०रपेपर० । ८ क विष्णु । ९ क. ०नेवर्त्तिं व्र० । १० ०नेर्त्रय । १० ग समीपे ।

श्रीभगवानुवाच

मुने ब्रूहि परं कार्यं यत्ते मनसि वर्तते । वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥१२२॥
 श्रुत्वं वचनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः । चक्षुस्मील्य सहसा ददशं पुरतो हरिम् ॥१२३॥
 अतस्तीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् । शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१२४॥
 चतुर्बाहुमुदारङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम् । श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥१२५॥
 सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम् । दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥१२६॥
 ततः स विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः । दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा ॥१२७॥
 अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । इत्युक्त्वा 'मुनिशार्दूलास्तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥१२८॥

कण्डुरुवाच

नारायण हरे कृष्ण श्रीवत्साङ्गु जगत्पते । 'जगद्बीजं जगद्धाम जगत्साक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥१२९॥
 अव्यक्त जिष्णो' प्रभव प्रधानपुरुषोत्तम । पुण्डरीकाक्ष गोविन्द' लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥१३०॥
 हिरण्यगर्भं श्रीनाथ पद्मनाथ सनातन । भूगर्भं ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥१३१॥
 अनाद्यन्तामृताजेय जय त्वं जयतां वर । अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥१३२॥
 पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित । दुःखातिनाशन हरे जलशायिन्नमोऽस्तु ते ॥१३३॥

श्री भगवान् बोले—मुने ! तुम्हारे मन में जो हो सो बोलो । मैं तुम्हें वर देने आया हूँ । सुव्रता ! वर मागो । देवों के देव तथा चक्रधारी विष्णु के वचन को सुनकर मुनि ने जब आँखें खोली तो सामने अलसी-पुष्प के समान वर्ण वाले, कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, हाथों में शस्त्र चक्र तथा गदा धारण करने वाले मुकुट तथा अगद पहिने वाले, चार भुजा वाले, मुडील अंग वाले, पीतवस्त्रधारी, पवित्र, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, वनमाला से विभूषित, सर्वलक्षणसम्पन्न, समस्त रत्नों से आभूषित दिव्य चन्दन से लिप्ताङ्ग और दिव्य माला से सुशोभित हरि को देखा । मुनि पर दण्ड की तरह गिर कर मुनि ने वेशव को प्रणाम किया और 'आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ' यह कहकर उनकी स्तुति प्रारम्भ की ॥१२२-१२८॥

कण्डु बोले—नारायण ! हरे ! श्रीवत्सचिह्न से युक्त ! जगत्पते ! जगद्बीज ! जगद्धाम ! जगत्साक्षिन् ! आपको नमस्कार है ॥१२९॥ अव्यक्त ! जयशील ! आदिकारण ! प्रधान ! पुरुषोत्तम ! कमल-लोचन ! गोविन्द ! लोकनाथ ! आपको नमस्कार है ॥१३०॥ हिरण्यगर्भ ! लक्ष्मीनाथ ! पद्मनाथ ! सनातन ! भूगर्भ ! ध्रुव ! ईशान ! हृषीकेश ! आपको नमस्कार है ॥१३१॥ अनादि ! अनन्त ! अमर ! अजेय ! विजेताओं में श्रेष्ठ ! आपकी जय हो ! अजित ! अखण्ड ! श्रीकृष्ण ! श्रीनिवास ! आपको नमस्कार है ॥१३२॥ मेघ के धर्मों के वर्ता ! दुष्पार ! दुराग्रय ! दुःख तथा आर्ति के नाशक ! हरे ! जलशायिन् ! आपको नमस्कार

भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वरनाकुल । भूताधिवास भूतात्मन्भूतगर्भं नमोऽस्तु ते ॥१३४॥
 यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञघाताऽभयप्रद । यज्ञगर्भं हिरण्याङ्गं पृथिनगर्भं नमोऽस्तु ते ॥१३५॥
 क्षेत्रज्ञ क्षेत्रभूक्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृदशी । क्षेत्रात्मन्क्षेत्ररहित क्षेत्रस्रष्ट्रे नमोऽस्तु ते ॥१३६॥
 गुणालय गुणावास गुणाश्रय गुणावह । गुणभोक्तृ गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते ॥१३७॥
 त्व विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्व जिष्णुस्त्व जनादेन । त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्व भवत्प्रभुः ॥१३८॥
 त्व भूतकृत्वमव्यक्तस्त्व भवो भूतभूद्भवान् । त्वं भूतभावनो देवस्त्वामाहुरजमोदवरम् ॥१३९॥
 त्वमनन्त कृतज्ञस्त्व प्रकृतिस्त्व वृषाकपि । त्वं रुद्रस्त्वं दुराधर्षस्त्वममोघस्त्वमोदवरः ॥१४०॥
 त्व विश्वकर्मा जिष्णुस्त्व त्व शंभुस्त्व वृषाकृतिः । त्व शंकरस्त्वमुशनात्वं सत्यं त्वं तपो जनः ॥१४१॥
 त्व विद्वज्जेता त्व शर्म त्व शरण्यस्त्वमक्षरम् । त्वं शंभुस्त्वं स्वयंभूश्च त्वं ज्येष्ठस्त्वं परायणः ॥१४२॥
 त्वमादित्यस्त्वमोकारस्त्व प्राणस्त्वं तमिस्रहा । त्वं पर्जन्यस्त्वं प्रथितस्त्वं वेधास्त्वं सुरेश्वरः ॥१४३॥
 त्वमृग्यजु सामचैव त्वमात्मा समतो भवान् । त्वमग्निस्त्वं च पवनस्त्वमापो वसुधा भवान् ॥१४४॥
 त्व स्रष्टा त्व तथा भोक्ता होता त्व च हविः क्रतुः । त्वं प्रभुस्त्वं विभुः श्रेष्ठस्त्व लोकपतिरच्युतः ॥१४५॥
 त्व सर्वदर्शन श्रीमांस्त्व सर्वदमनोऽरिहा । त्वमहस्त्व तयारात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं बुधाः ॥१४६॥
 त्व कालस्त्व कला काष्ठा त्वं मूर्तः क्षणालवा । त्व बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्री नपुंसकः ॥१४७॥
 त्व विद्वयोनिस्त्व चक्षुस्त्व वेदाङ्गं त्वमव्ययः । त्वं वेदवेदस्त्वं धाता विधाता त्व समाहितः ॥१४८॥

हे ॥१३३॥ भूतरक्षक ! अव्यक्त ! भूतेश ! पंचमहाभूतो के तत्त्वो से अव्यग्र ! भूताधिवास ! भूतात्मन् ! भूत-
 गर्भ ! आपको नमस्कार है ॥१३४॥ यज्ञघर्ता ! यज्ञधर ! यज्ञघाता ! अमयदाता ! यज्ञगर्भ ! हिरण्याण !
 पृथिनगर्भ ! आपको नमस्कार है ॥१३५॥ क्षेत्रज्ञ ! क्षेत्रगर्ता ! क्षेत्री ! क्षेत्रत्यागी ! क्षेत्रवर्ता ! वशी ! क्षेत्रात्मा !
 क्षेत्ररहित ! क्षत्रस्रष्टा ! आपको नमस्कार है ॥१३६॥ गुणालय ! गुणावास ! गुणाश्रय ! गुणावह ! गुण-
 भोक्ता ! गुणाराम ! गुणत्यागी ! आपको नमस्कार है ॥१३७॥ आप विष्णु है । आप हरि हैं । आप चक्रघारी
 हैं । आप जयशील हैं । आप जनादेन हैं । आप भूत, वषट्कार, मय्य, प्रभु, भूतकर्ता, अव्यक्त, भव, भूतगर्ता तथा
 भूतो के कारण हैं । आपको अजग्धा तथा ईश्वर कहा गया है ॥१३८-१३९॥ आप अनन्त, कृतज्ञ, प्रकृति, वृषा-
 कपि, रुद्र, अत्युग्र, अमोघ, विश्वकर्मा, शंकर, शुक, सत्य, तप, जन, विश्वजेता, कल्याण, शरण्य, अक्षर, स्वयम्, ज्येष्ठ
 परायण, आदित्य, ओंकार प्राण, सूर्य, मेघ, प्रथित, वेधा, सुरेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आत्मा, सम्मत, अग्नि,
 वायु, जल पृथ्वी, स्रष्टा भोक्ता, होता, हवि, यज्ञ, प्रभु, विभु, श्रेष्ठ, लोकपति, अच्युत, सर्वदर्शन, श्रीमान्, सर्वदमन,
 शत्रुनाशन, दिन तथा रात्रि हैं । पण्डितों ने आपको वर्ष कहा है ॥१४०-१४६॥ आप काल, कला, काष्ठा, मूर्त,
 क्षण, लव बालक वृद्ध, पुण्य, स्त्री, नपुंसक, विश्वयोनि, नेत्र, स्याणु, सुचिधवा, शाश्वत, अजित, इन्द्र, उत्तम, विश्व

१ख पृथ्वीग० । २क ऽणुस्त्वमश्विनो त्व जनादेन । त्व । ३क ख ऽश्वरेतास्त्व श० । ४ख स्त्वमा-
 वाशस्त्व । ५ख द्विजा । ६ग ऽदान्तस्त्वम० ।

त्व जलनिधिरामूल त्व धाता त्व पुनर्वसु । त्व वैद्यस्त्व घृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचर ॥१४९॥
 त्वमप्रणीर्ग्रामिणीस्त्व त्व सुपर्णस्त्वमादिमान । त्व सप्रहृस्त्व सुमहत्त्व धृतात्मा त्वमच्युत ॥१५०॥
 त्व यमस्त्व च नियमस्त्व प्रागुस्त्व चतुर्भुज । त्वमेवान्तरात्मा त्व परमात्मा त्वमुच्यते ॥१५१॥
 त्व गुरुस्त्व गुरुतमस्त्व वामस्त्व प्रदक्षिण । त्व पिप्पलस्त्वमगमस्त्व व्यक्तस्त्व प्रजापति ॥१५२॥
 हिरण्यनाभस्त्व देवस्त्व शशी त्व प्रजापति । अनिर्देश्यवपुस्त्व च त्व यमस्त्व सुरारिहा ॥१५३॥
 त्व च सकपणो देवस्त्व कर्ता त्व सनातन । त्व वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जित ॥१५४॥
 त्व ज्येष्ठस्त्व वरिष्ठस्त्व त्व सहिष्णुश्च माधव । सहस्रशीर्षा त्व देवस्त्वमव्यक्त सहस्रदृक् ॥१५५॥
 सहस्रपादस्त्व देवस्त्व विराट्स्त्व सुरप्रभु । त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुल ॥१५६॥
 यदभूत तत्त्वमवोक्त पुरुष शक्र उत्तम । यदभाव्य तत्त्वमोक्षानस्त्वमृतस्त्व तथाऽमृत ॥१५७॥
 त्वत्तो रोहत्यय लोको महोयास्त्वमनुत्तम । त्व ज्यायानुरुपस्त्व च त्व दव दशधा स्थित ॥१५८॥
 विश्वभूतश्चतुर्भंगो नवभागोऽमृतो दिवि । 'नवभागोऽतिरिक्षस्व' पीरुषेय 'सनातन' ॥१५९॥
 भागद्वय च भूसस्य चतुर्भागोऽप्यभूदिह । त्वत्तो यज्ञा सभवति जगतो वृष्टिकारणम् ॥१६०॥
 त्वत्तो विराट्समुत्पन्नो जगतो हृदि य पुमान् । सोऽतिरिच्यत भूतेभ्यस्तजसा यज्ञासा श्रिया ॥१६१॥
 त्वत्त सुराणामाहार पृषदाज्यमजायत । ग्राम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्त पशुमृगादय ॥१६२॥
 ध्येयध्यानपरस्त्व च कृतवानसि चौषधी । त्व देवदेव सप्तास्य कालाख्या दीप्तविग्रह ॥१६३॥

को मुख देने वाले वेदाग अव्यय वेदो के वेद धाता विधाता समाहित समुद्र पुनर्वसु नक्षत्र वय घृतात्मा इन्द्रियो से परे अग्रनेता ग्रामनेता सुपर्ण आदिमान् सप्रह अतिमहान यम नियम पागु चतुर्भुज अन्न अन्तरात्मा परमात्मा गुरु गुरुतम वाम प्रदक्षिण पिप्पल अगम व्यक्त प्रजापति हिरण्यनाभ देव चद्रमा अनिर्दिष्ट शरीर वाले शक्षस नाशन बलराम कर्ता सनातन वासुदेव अमितात्मा गुणवर्जित ज्येष्ठ वरिष्ठ सहिष्णु माधव सहस्र गिर वाले सहस्र नेत्र वाले सहस्र पर वाले विराट तथा देवो के प्रभु हैं । देवदेव । दशांगुल परिमित देव भी आप हा है ॥१४७ १५७॥ भूत आप हा हैं । पुरुषोत्तम एक आप ही को कहा गया है । मविष्य ईशान तथा अमृत भा आप ही है । आप से इस लोक की उत्पत्ति होती है । आप अयन्त महान तथा सबसे उत्तम हैं । हे देव । आप ज्येष्ठ पुरुष तथा दत्त प्रकार से स्थित हैं ॥१५८ १५९॥ आप विश्व में चार भागो से स्वर्ग में नौ भागो से आकाश में भा नौ भागो से और पृथ्वी पर दो एवम् चार भागो से भी अवस्थित है । आप सनातन पुरुष हैं । ससार में वृष्टि के कारण यज्ञ आप से उत्पन्न होते हैं । आप से ही विराट उत्पन्न हुए हैं, जो ससार के हृदय में पुरुष रूप से विद्यमान हैं । वे तेज यज्ञ तथा सोमा में भूतो से बढकर हैं । आपसे देवताओ का आहार—दधिसिक्त घृत—उत्पन्न हुआ । ग्रामाण एवम् आपघिया तथा पशु मृग आदि आपसे उत्पन्न हुए । आप ध्येय तथा ध्यानपरायण हैं । ओषधिया का निर्माण आपने

जङ्गमाजङ्गम सर्वं जगदेतच्चराचरम् । त्वत्त सर्वमिदं जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१६४॥
 अनिरुद्धस्त्व माधवस्त्व प्रद्युम्न सुरारिहा । देव सर्वसुरश्रेष्ठ सर्वलोकपरायण ॥१६५॥
 ग्राहि मामरविन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते । नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१६६॥
 नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते कमलालय । गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर ॥१६७॥
 वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम । जनादेन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन ॥१६८॥
 नमस्ते योगिना गम्य योगावास नमोऽस्तु ते । गोपते श्रोपते विष्णो नमस्तेऽस्तु महत्पते ॥१६९॥
 जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिना पते । दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महोपते ॥१७०॥
 नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षणे । कंटभघ्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते ॥१७१॥
 नमोऽस्तु ते महामोने श्रुतिपृष्ठधरायुत । समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लादकारिणे ॥१७२॥
 अश्वशीर्षं महाघोणे महापुरुषविग्रह । मधुकंटभहन्त्रे च नमस्ते तुरगानन ॥१७३॥
 महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च । विधृताद्रिस्वरूपाय महाकूर्माय ते नमः ॥१७४॥
 नमो महावराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे । नमश्चाऽऽदिवराहाय विश्वरूपाय वेधसे ॥१७५॥
 नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च वराय च । परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नमः ॥१७६॥

ही किया । देवो के देव । आप देवीप्यमान शरीरधारी काल पुरुष है । स्थावर जगम या चराचर रूप यह सम्पूर्ण जगत आपसे उत्पन्न हुआ है तथा आप में प्रतिष्ठित है । आप अनिरुद्ध माधव प्रद्युम्न तथा राक्षसनाशन हैं ॥१६०-१६५॥ देव । सबल देवो में श्रेष्ठ । समस्त-लोक परायण । मेरी रक्षा करें । कमलाक्ष । नारायण । आपको नमस्कार है । गगवन् । विष्णो । पुरुषोत्तम । आपको नमस्कार है । समस्त लोको के ईश्वर । आपको नमस्कार है । कमलालय । आपको नमस्कार है । गुणालय । आपको नमस्कार है । गुणाकर । आपको नमस्कार है ॥१६६-१६८॥ वासुदेव । आपको नमस्कार है । सुरोत्तम । आपको नमस्कार है । जनादेन । आपको नमस्कार है । सनातन । आपको नमस्कार है ॥१६९॥ योगियो के प्राप्य । आपको नमस्कार है । योगावास । आपको नमस्कार है । इन्द्रियपते । लक्ष्मीपते । विष्णो । आपको नमस्कार है । महत्पते । जगत्पते । जगदुत्पादक । आपको नमस्कार है । ज्ञानियो के स्वामी । स्वयं के स्वामी । आपको नमस्कार है । पृथ्वीपते । आपको नमस्कार है ॥१७०-१७१॥ मधुनाशन । आपको नमस्कार है । कमललोचन । आपको नमस्कार है । कंटभ के मारने वाले । आपको नमस्कार है । सुब्रह्मण्य । आपको नमस्कार है ॥१७२॥ महामत्स्य । आपको नमस्कार है । वेधो को पीठ पर धारण करने वाले । आपको नमस्कार है । समुद्र के जल को सन्तुष्ट करने वाले । ब्रह्मा को प्रसन्न करने वाले । आपको नमस्कार है । अश्व के समान शिर वाले । महानासिका वाले । महापुरुष का शरीर धारण करने वाले । मधु-कंटभ-नाशन । आपको नमस्कार है । अश्व के समान मुख वाले । महाकच्छप का रूप धारण करने वाले । पृथिवी के उद्धारक । पवतस्वरूप । महाकूर्मस्वरूप । आपको नमस्कार है । महावराहस्वरूप । आपको नमस्कार है । आदिवराहस्वरूप । विश्वरूप । ब्रह्मन् । आपको नमस्कार है । अनन्त । सूक्ष्म । मुख्य । श्रेष्ठ ।

तस्मै नमः कारणकारणाय, योगोन्मत्तनिलयाय सुदुर्विदाय ।
क्षीराणवाधितमहाहिसुतल्पगाय, तुभ्यं नमः कनकरत्नसुकुण्डलाय ॥१७७॥

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच माधवः । क्षिप्रं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥१७८॥

कण्डुरुवाच

संसारोऽस्मिञ्जगन्नाथ दुस्तरे लोमहर्षणे । अनित्ये दुःखयहुले कदलीदलसंनिभे ॥१७९॥
निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले । सर्वोपद्रवसंयुक्ते दुस्तरे चातिभरवे ॥१८०॥
ग्रमामि सुचिरं कालं मायया मोहितस्तव । न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः ॥१८१॥
त्वामहं चाद्य देवेश संसारभयपीडितः । गतोऽस्मि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवार्णवात् ॥१८२॥
गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम् । प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८३॥

श्रीभगवानुवाच

भवतोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ मामाराधय नित्यशः । मत्प्रसादाद्भ्रुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समीहितम् ॥१८४॥
मद्भवताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः । प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥१८५॥
श्वपाकोऽपि च मद्भवतः सम्यक्श्रद्धासमन्वितः । प्राप्नोत्यभिमतं सिद्धिं भगवेषां तत्र का कथा ॥१८६॥

परमाणुस्वरूप ! योगियम् ! आपको नमस्कार है ॥१७३-१७७॥ कारणों के कारण ! योगीन्द्रों की वृत्ति के आधार ! अत्यन्त दुर्ज्ञेय ! शीरसमुद्रस्वित महासंपरूपी शय्या पर सोने वाले ! भुवर्ण एवम् रत्न के कुण्डल पहिने वाले ! आपको नमस्कार है ॥१७८॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्तुति करने पर माधव प्रसन्न होकर कहने लगे—‘मुनिश्रेष्ठ ! तुम जो चाहते हो, वह शीघ्र मुझसे मागो ॥१७९॥

कण्डुरु बोले—जगन्नाथ ! दुष्पार, रोमाञ्चकारी, अनित्य, विविध दुःखों से युक्त, बेल के पत्तों के समान स्थित, निराश्रय, निरालम्ब, पानी के बुलबुले के समान चञ्चल, अस्थिर उपद्रवों से युक्त तथा अति भयंकर इस संसार में आपकी माया से मोहित होकर मैं चिरकाल से चक्कर काट रहा हूँ । मन के विषय में आसक्त होने के कारण मैं इसका अन्त नहीं पा रहा हूँ । देवेश ! संसार के मय से पीडित होकर आज मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ । कृष्ण ! संसाररूपी समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये । देवों के स्वामी ! आपको कृपा से मैं अपने सनातन परम पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जहाँ से फिर लौटना न पड़े ॥१८०-१८४॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिवर ! तुम मेरे भक्त हो । निय मेरी आराधना करो । मेरी कृपा से तुम निराश्रय अभिलषित मोक्ष को प्राप्त करोगे । मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चाण्डाल तक भी परा सिद्धि को प्राप्त करते

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु त विप्रा स देवो भवतवत्सल । दुर्विजयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१८७॥
 गत तस्मिन्निध्रेष्ठा कण्डु सहृष्टमानस । सर्वान्कामापरित्यज्य स्वस्वचित्तोऽभवत्पुन ॥१८८॥
 सर्वेन्द्रियाणि सयम्य निममो निरहृति । एकाग्रमानस तैम्यगध्यात्वा त पुरुषोत्तमम् ॥१८९॥
 निर्लेप निर्गुण शान्त सत्तामात्रव्यवस्थितम् । अवाप परम मोक्षं सुराणामपि दुर्लभम् ॥१९०॥
 य पठच्छृणुयाद्वापि कथा कण्डोर्महात्मन । विमुक्त सवपापस्य स्वर्गलोक स गच्छति ॥१९१॥
 एष मया मुनिध्रेष्ठा कमभूमिरुदाहृतः । मोक्षक्षेत्रं च परम देव च पुरुषोत्तमम् ॥१९२॥
 य पश्यन्ति विभु स्तुवन्ति वरदध्यायन्ति मुक्तिप्रद ॥
 भक्त्या श्रोतुर्पुरुषोत्तमाख्यमजर ससारदुःखापहम् ॥१९३॥
 ते भुक्त्वा मनुजेन्द्रभोगममला रदग्ं च दिव्यं सुख ॥
 पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिता स्थान हररव्ययम् ॥१९४॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म स्वयभुवृत्तिसवादे कण्डोरुपाख्याननिरूपण नामाष्ट
 सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७८॥

है। तुम तो फिर ब्राह्मण हो। पूरा थकालु मक्त चाण्डाल भी अमिमल गिद्धि को प्राप्त करता है ओरो की तो क्या ही क्या ? ॥१८५ १८७॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द । मक्तसत्त्वलाल तथा दुर्विजय विष्णु इतना बहुर बड़ी अनर्थान हो गए। उनके चल जाने पर अत्यन्त प्रसन्न चित्त वाले कण्डु गमस्त कामो को छोड़कर पुन स्वस्वचित्त हो गए। निर्मल इन्द्रियो का समग्र निरमम निरहृत्कार तथा एकाग्रचित्त होकर निर्लेप निर्गुण शान्त तथा सत्तामात्र से अवस्थित पुरुषोत्तम व सम्पूर्ण ध्यान करने उठ्ठे देवदुःख मोक्ष को प्राप्त किया। महारम कण्डु की कथा को जो पढ़या या सुनेगा वह समस्त पापों से मुक्त होकर स्वर्ग जायगा। मुनिवर ! इस प्रकार मैंने कमभूमि मोक्षक्षेत्र तथा पुरुषोत्तम देव का वर्णन कर दिया। जो सबभोग्य वरणावन मोक्षायक अजर तथा सगार-दुःखनाशन श्री पुरुषोत्तम के मन्त्रपूजा ध्यान शान्त तथा स्तुति करने है व मनुजेन्द्र निर्मल तथा समग्र पापों से रहित होकर स्वर्ग में दिव्य सुख का उपभोग करके पश्चात् हरि व अविनाशी स्थान का प्राप्त करत है ॥१८८ १९४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और श्रुतियों व गकारप्रकरण म कण्डु का उपख्यान-निरूपण नामक
 एक तो अष्टशतकी अध्याय समाप्त ॥१७८॥

अथोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वादरायण प्रति श्रीकृष्णावतारविषयका मुनीना प्रश्न

लोमहर्षण उवाच

ध्यासस्य वचनं श्रुत्वा मुनयः सत्यतन्द्रियाः । प्रीता बभूवुः सहृष्टा विस्मिताश्च पुनः पुनः ॥१॥

मुनय ऊचुः

अहो भारतवर्षस्य त्वया सकीर्तिता गुणा । तद्वच्छ्रीपुरुषारूपस्य क्षेत्रस्य पुरुषोत्तम ॥२॥
 'विस्मयो हि न चकस्य श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् । पुरुषारूपस्य क्षेत्रस्य प्रीतिश्च वदता वरः ॥३॥
 चिरात्प्रभृति चास्माकं सशयो हृदि वसते । त्वद्वत् सशयस्यास्य छेत्ता नाग्योऽस्ति भूतले ॥४॥
 उत्पत्तिं बलदेवस्य कृष्णस्य च महीतले । भद्रायाश्चैव कात्स्न्येन पृच्छामस्त्वां महामुने ॥५॥
 किमयं तो समुत्पन्नो कृष्णसकर्पणावुभौ । वसुदेवसुतो वीरो' स्थितो नन्दगृहे मुने ॥६॥
 नि सारे मृत्युलोकेऽस्मिन् दुःखप्रायेऽतिचञ्चले । जलबुद्बुदसकाशे भैरवे लोमहर्षणे ॥७॥
 विष्णुमूत्रपिच्छले कण्ठे सकटे दुःखदायकम् । कथं घोरतरं तेषां गर्भवासमरोचत ॥८॥

अध्याय १७६

श्रीकृष्णावतार के सबध मे व्यास जी से मुनियों का प्रश्न

सूत बोले—व्यास ने वचन को सुनकर जितेन्द्रिय मुनिगण परम हर्षित तथा आश्चर्य चकित हुए ॥१॥

मुनियो ने कहा—पुरुषपूजक । अहा ! भारतवर्ष का और उसी तरह श्रीपुरुष नामक क्षेत्र का गुण वगन आपने कर दिया ॥२॥ पर वक्ताआ मे श्रष्ट एक पुरुषक्षेत्र के ही उत्तम माहात्म्य को सुनकर हमे सतोष तथा विस्मय नही हो रहा है ॥३॥ क्योंकि चिरकाल से हमारे हृदय मे अनेक सन्धय हो रहे है जिनका निराकरण बिना आपके पृथ्वी पर कोई नही कर सकता है ॥४॥ महामुने ! बलदेव कृष्ण तथा मुग्धा की उत्पत्ति के विषय मे हम विस्तार पूर्वक सुनना चाहते हैं ॥५॥ किसलिये कृष्ण तथा बलराम उत्पन्न हुए और क्यों दोनो बीर वसुदेव के पुत्र होकर नन्द के घर मे पाले-प्राप्ते गये ? ॥६॥ साररहित दुःखयुक्त अत्यन्त चञ्चल पाना के बुलबुले के समान अस्थिर भयंकर तथा रोमाञ्चकारी इस मृत्युलोक मे गर्भवास पिच्छा तथा मूत्र से युक्त सकटमय दुःखदायक और महा भयंकर माना गया है । तब फिर यह कृष्ण को कैसे अच्छा लगा ? वक्ताआ मे श्रष्ट ! उन्हुनि पृथ्वी पर जन्म लेकर कौन से कम किये ? उन कमों को विस्तारपूर्वक हम बतल दिये ॥६८॥ उनके अदभुत तथा लोकोत्तर सम्पूर्ण

१ ग जिते० । २ ग विस्मये । ३ क ०१ सा च न० । स ०१ स च तत्र ग० । ४ स ०१ गे
 पापेऽति० ।

यानि कर्माणि चक्रुस्ते समुत्पन्ना महीतले । विस्तरेण मुने तानि ब्रूहि नो' वदतां वर ॥१॥
 समग्रं चरितं तेषामद्भुतं चातिमानुषम् । कथं स भगवादेवः सुरेशः सुरसत्तमः ॥२॥
 वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागत । अमरंश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृदिभरलंकृतम् ॥३॥
 देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगतः । देवमानुषयोर्नैता द्योर्भुवः प्रभवोऽव्ययः ॥४॥
 किमयं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत् । यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ॥५॥
 स मानुष्ये कथं बुद्धिं चक्रे चरुगदाधरः । गोपादनं यः कुरुते जगतः सार्वभौतिकम् ॥६॥
 स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः । महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ॥७॥
 श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः । येन लोकान्त्रिमंजित्वा त्रिभिर्वै त्रिदशोत्सया ॥८॥
 स्थापिता जगतो मार्गस्त्रिवर्गश्चाभवस्त्रयः । योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ॥९॥
 लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन' चाऽऽत्मना । यः पुराणः पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः ॥१०॥
 विषाणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदनः । यः पुरा पुरुहूतायै त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥११॥
 ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः । येन संहवपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुनः ॥१२॥
 पूर्वदंत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हंतः । यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः ॥१३॥
 पातालस्योष्णवरसं पपौ तोयमयं हरिः । सहस्रचरणं ग्रह्य सहस्रांशुसहस्रदम् ॥१४॥

चरित्र को सुनाइये । देवताओं में धेष्ट, धीमान् तथा देवों के स्वामी भगवान् ने वसुदेव के कुल में वसुदेवत्व को कैसे प्राप्त किया अर्थात् जन्म लिया ? देवताओं से आवृत, पवित्र तथा परमात्माओं से अलंकृत देवलोक को छोड़कर क्यों वे मृत्युलोक में आये ? देवता तथा मनुष्यों के नायक, स्वर्ग, मर्त्य के आदिकारण तथा अविनाशी होकर किसलिये उन्होंने दिव्य आत्मा को मनुष्य-शरीर में स्थापित किया ? जो चक्र-गदा-धारी भगवान् अकेले मनुष्यमात्र के चक्र को चलाते हैं, उन्हें मनुष्य-योनि में आने की इच्छा कैसे हुई ? जो प्रभु विष्णु सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं, व पृथ्वी पर आकर गोपाल कैसे बने ? ॥१-१४॥ आ अखिलात्मा पञ्चमहाभूतों का धारण करते हैं, उनकी भूमि पर चलने वाली एव सामान्य स्त्री ने कैसे गर्भ में धारण किया ? देवताओं की इच्छा से उन्होंने तीन इगों में तीनों लोकों को जीत कर ससार के मार्गों को मुख्यस्थित कर दिया । तब त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम भी व्यवस्थित हुए । वे अन्तकाल में जगत् को पीकर जलमय शरीर धारण कर दृश्य तथा अदृश्य आत्मा से लोक को एकार्णवं अर्थात् जलप्लावित कर देते हैं ॥१५-१७॥ पुराण, पुराणात्मा तथा वाराहरूप धारण कर उन्होंने दण्डा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार किया । पूर्वकाल में इन्द्र के लिये तीनों लोक का जागर देवधेष्ट विष्णु ने देवताओं को पृथ्वी दे दी । उन्होंने सिंह का शरीर धारण कर पुनः उससे दो भाग करके महावीर्य हिरण्यकशिपु को निहत किया ॥१८-२०॥ प्राचीन समय में उन्होंने और्वं तथा सवर्तक नामक अभि होकर पाताल में रहकर समुद्र के जलमय रस को पी लिया । उनक सहस्र चरण तथा सहस्र करण हैं । वे ब्रह्मा हैं तथा सहस्रा के दाता हैं ॥२१-२२॥ प्रतिपुग में वे सहस्र शिर धारण करते हैं । उनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मा

सहस्रशिरसं देवं यमाहर्वं युगे युगे। नाम्ना पद्मं समुद्भूतं यस्य पंतामहं गृहम् ॥२३॥
एकार्णवे नागलोके सद्दिरण्मयपङ्कजम्। येन ते निहता देव्याः संप्रान्ने तारकामये ॥२४॥
येन देवमयं कृत्वा सर्वापिधरं ययुः। गृहासंस्थेन चोत्तिष्ठतः कालनेर्मिनिपातितः ॥२५॥
उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधौ। यः शोते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत् ॥२६॥

सुरारणी' गर्भमस्त दिव्यं तपः' प्रकर्षादिति: 'पुराणम्

शक्रं च यो देत्यगणावरुद्धं,' गर्भाधानेन कृतं चकार

॥२७॥

पदानि यो योगमयानि कृत्वा, चकार देत्यान्तलिलेशयस्थान्

।

कृत्वा स देवास्त्रिदशेश्वरास्तु, चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव

॥२८॥

गार्हपत्येन विधिना अन्वाहाय्येण कर्मणा। अग्निमावहनीयं च वेद दीक्षा समिद्धुवम् ॥२९॥

प्रोक्षणोप्यं स्त्रुवं चैव आवभृथ्यं तथैव च। अवावपाणिस्तु यश्चक्रे हव्यभागभुजस्तथा ॥३०॥

हव्यादांश्च सुराश्चक्रे कव्यादाश्च पितृभ्यः। भोगार्थं यज्ञविधिनाऽयोजयद्यज्ञकर्मणि ॥३१॥

पात्राणि दक्षिणां दीक्षां चरुश्चोलूक्षलानि च। यूपं समित्स्त्रुव सोम पवित्रान्परिधोनपि ॥३२॥

यज्ञियानि च द्रव्याणि चमसांश्च तथाऽपरान्। सदस्याग्न्यजमानांश्च मेधादांश्च क्रतूतमान् ॥३३॥

विबभाज पुरा यस्तु पारमेष्ठ्येन कर्मणा। युगानुरूपं यः कृत्वा लोकाननुपराकमात् ॥३४॥

क्षण निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च। गृहूर्तास्तिथयो मासा दिनं सवत्सरस्तथा ॥३५॥

ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिषु। आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षण रूपसौष्ठवम् ॥३६॥

का पर ब्रह्मा गया है। वह कमल एकार्णव रूप नागलोक में सुन्दर सुवर्णमय ब्रह्मा जाता है। उन्होंने तारकामय नामक संप्रान्ने में देवियों को निहृत किया। उन्होंने देवमय तथा समस्त आपृधो से युक्त शरीर धारण कर गुफा में स्थित होकर कालनेर्मि वा सहार किया। वे क्षीरसमुद्रक्षणी अमृतसमुद्र के उत्तरी भाग में महान् अधवार रूपी शाश्वत योग में स्थित होकर शयन करते हैं ॥२३-२६॥ जब तप की प्रवर्षता से देवमाता अदिति ने इन्द्र को गर्भ में धारण किया तब उन्होंने ही देत्यगणों से गर्भ को वचाया ॥२७॥ उन्होंने योगिक चरणों की रचना कर देवियों को जल में सुला दिया और देवताओंको स्वर्ग लौटाकर इन्द्र को ही स्वर्ग का अधिनायक बनाया ॥२८॥ बिना वाणी और हाथ के ही, उन्होंने गार्हपत्य (गृहस्पोचित) विधान से अन्वाहाय्ये कर्म के द्वारा अग्नि, आहवर्ग्य, वेद, दीक्षा, समिधा, ध्रुव, प्रोक्षणीपात्र, स्त्रुव, आवभृथ्य तथा हव्य-भाग भोक्ताओं का निर्माण किया। यज्ञकर्म में यज्ञविधि से भाग के लिये देवताओं को हव्यभोक्ता और पितरों को काव्यभोक्ता बनाया। पात्रों, दक्षिणा, दीक्षा, चरु, ओखली, यूप, समिधा, स्त्रुव सोम पवित्री, परिधि, यज्ञिय द्रव्य, चमस, सदस्य, यजमान तथा यज्ञों में उत्तम मेवा आदि का निर्माण करके उन्होंने ब्रह्मा आदि के बर्गों का भी विभाग किया। युग के अनुरूप ही उन्होंने लोकों को बनाया ॥२९-३४॥ उन्होंने अनन्त कर्मों द्वारा क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, तीनों काल, गृहूर्ता, तिथि, मास, दिन, वर्ष, ऋतु, कालयोग तथा तीनों प्रकार के प्रमाण बनाये। आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप-सौन्दर्य, तीनों लोक, तीनों देव, तीनों विद्या, तीनों अग्नि, तीनों काल,

भावा रसानुगाश्चैवा योजे च शशिपादवी । कफवर्गे भवेच्छुक्र पित्तवर्गे च शोणितम् ॥५२॥
 कफस्य हृदय स्थान नान्या पित्त प्रतिष्ठितम् । देहस्य मध्ये हृदय स्थान तन्मनस स्मृतम् ॥५३॥
 नाभिकोष्ठान्तर यत्तु तत्र देवो हृताशन । मन प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विभाव्यते ॥५४॥
 पित्तमग्नि स्मृत त्वेष्टमग्निरोमा मक जगत । एव प्रवर्तिते गर्भे वर्धितश्चुदसनिभे ॥५५॥
 वायु प्रवेश सचक्रे सगत परमात्मन । स पञ्चधा शरीरस्यो भिद्यते 'वर्तते पुन ॥५६॥
 प्राणपानी समानद्व उदानो व्यान एव च । प्राणोऽस्य परमात्मान वर्धय'परिवर्तते ॥५७॥
 अपान पश्चिम वायुमुदानोऽर्ध शरीरिण । व्यानस्तु व्याप्यते येन समान सनिवर्तते ॥५८॥
 भूतावाप्तिस्ततस्तस्य आप्येतेन्द्रियगोचरा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५९॥
 तस्येन्द्रियनिविष्टानि स्व स्व भाग प्रचक्रिरे । पार्थिव 'देहमाहुस्तु प्राणात्मान च भारतम् ॥६०॥
 छिद्राण्याकाशयोनीनि जगत्स्राव प्रवर्तते । ज्योतिश्चक्षुषि तेजश्च आत्मा तेषा मन स्मृतम् ॥६१॥
 ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य धीर्यात्प्रवर्तिता । इत्येतान्पुरुष सर्वान्सृजेल्लोकान्सनाता ॥६२॥
 नैघनेऽस्मिन्त्य लोके नरत्वं विष्णुरागत । एष न सशयो ब्रह्मत्रेय नो विस्मयो गृहान् ॥६३॥
 कय गतिगतिमतामापनो मानुषो तनुम् । आश्चर्य परम विष्णुर्देवैर्देव्यश्च कथ्यते ॥६४॥
 विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामुने । प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजस ॥६५॥

और पित्तवर्ग म शाणित ॥५०-५२॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त का नाभि । देह क मध्य म हृदय रहता है और उद्यम मन । नाभिकोष्ठ के बीच अग्नि का स्थान है । मन प्रजापति कहलाता है और कफ चंद्रमा । पित्त अग्नि कहलाता है और अग्नि तथा चंद्रमा रूप ही जगत् माना जाता है । इस प्रकार मानसिष्ठ क आकार म गम उत्पन्न होने पर परमात्मा से मिलकर वायु प्रवाह करता है । शरीर म वायु पाँच प्रकार से विभक्त हो जाता है । जैसे—प्राण अपान समान उदान और व्यान । प्राण परमात्मा को वर्णित है अपान शरीर क पिछले भाग को और उदान आध शरीर का । व्यान सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त रहता है और समान लीन जाता है ॥५०-५८॥ तत्र भूता की प्राप्ति उस की 'न्द्रियगोचर होती है । वहाँ पृथिवी वायु आकाश 'ल तथा अग्नि अपन-अपने भाग का रचना करते हैं । शरीर पृथिवी का माग है और प्राणात्मा वायु का । शरीर के सम्मस्त छिद्र आकाशमूलक है और शोणित अग्नि का प्रस्रवण 'ल स होना है । नेत्र तत्र तथा अन्नरत्ना अग्नि का भाग माना गया है । विषयममह म उन्ही विष्णु के बाय से उत्पन्न हुए हैं । इन लोक का सज्जन करते हुए सनतन पुरुष सत्य'ग'क म मनुष्य'व को कैसे प्राप्त हुए ? ब्रह्मन् । य'ल हमारा मग'न है और वह गृहान आश्चर्य है ॥५०-६२॥ गतिमाना की गति कह जान का विष्णु मानव-शरीर म कैसे आय ? देव और देव्य विष्णु को परम आश्चर्य का वस्तु बतलाते हैं । महामुने ! विष्णु की आश्चर्यजनक उत्पत्ति के बारे म कहिये । प्रसिद्ध विष्णुमाली अत्यन्त तेजस्वी तथा आश्चर्यजनक कम

कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम् । कथं स देवो देवानामातिहा पुरुषोत्तमः ॥६६॥
 सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः । सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः ॥६७॥
 अक्षयः शाश्वतोऽनन्त क्षयवृद्धिविर्जितः । निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः ॥६८॥
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः । अविकारो विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः ॥६९॥
 अचलो निर्मलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः । 'विशुद्धं श्रूयते यस्य हरित्वं च कृते युगे ॥७०॥
 वंकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च । ईश्वरस्य हि तस्येमां गहनां कर्मणो गतिम् ॥७१॥
 समतीतां भविष्य च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते । अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः ॥७२॥
 नारायणो ह्यनन्तत्मा प्रभवोऽव्यय एव च । एष नारायणो भूत्वा हरीरासीत्सनातनः ॥७३॥
 ब्रह्मा शकश्च रुद्रश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः । प्रधानात्मा पुरा हृष्ये ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥७४॥
 सोऽसृजत्पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन् । एवं स भगवान्विष्णुः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
 किमर्थं मर्त्यलोकोऽस्मिन्यातो यदुकुले हरिः ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे ऋषिप्रदत्तनिरूपणं नामोनाशी-
 त्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

वरने वाले विष्णु के तत्त्व को बतलाइये । देवों के दुःख निवारण करने वाले, पुरुषों में उत्तम, सर्वव्यापक, जगन्नाथ, समस्त लोकों के महान् ईश्वर, उत्पत्ति-स्थिति प्रलय करने वाले अखिल लोकों के सुखदायक, अविनाशी, नित्य, अनन्त, ह्लास तथा वृद्धि स रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, निर्विल उपाधियों से रहित, सत्तामात्र से अवस्थित, विनाशरूप, विभु परमात्मा, सनातन, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निराश्रय देव ने कैसे मृत्युलोक में जन्म लिया ॥६४-७०॥ देवों में वंकुण्ठत्व तथा मनुष्यों में कृष्णत्व उनका प्रसिद्ध है । ऐसे ईश्वर के बीते हुए तथा होने वाले बर्णों की गहन गति को हम सुनना चाहते हैं । वे अणुवत्, व्यक्त विह्वों में स्थित, नारायण, अनन्तत्मा, आदिवारण तथा अव्यय हैं । वे नारायण होकर सनातन हरि हैं । ब्रह्मा, रुद्र, रुद्र, धर्म शुक्र तथा बृहस्पति भी वे ही हैं । पहिले प्रधानात्मा प्रभु ने ब्रह्मा की सृष्टि की । उस पूर्वपुरुष ब्रह्मा ने प्रजापतियों की रचना की । इस प्रकार भगवान् विष्णु सब लोकों के महेश्वर है । वे किसलिये मृत्युलोक तथा यदुकुल में उतरा प्र हुए ? ॥७१-७५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में ऋषिप्रदत्तनिरूपण नामक एक ही
 उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१७९॥

अथाशौत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णचरिताराम्भ.

व्यास उवाच

नमस्कृत्वा सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे । पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायव्ययाय च ॥१॥
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै निर्गुणाय गुणाय च । वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामिताय' च ॥२॥
यज्ञाङ्गायाखिलाङ्गाय देवाद्यैरोप्सिताय च । यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ॥३॥
येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन सवराचरम् । आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ॥४॥
वदन्ति यत्सृष्टमिति तयैवाप्युपसहृतम् । ब्रह्मणे चाऽऽदिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ॥५॥
अधिकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सर्वैकरूपरूपाय विष्णवे विष्णवे नमः ॥६॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे' ॥७॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलतूक्ष्मात्मने नमः । अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुवितहेतवे ॥८॥
सर्गस्थितिबिनाशानां जगतो यो जगन्मयः । मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमहमने ॥९॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् । प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥१०॥

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित का आरम्भ

व्यास ने कहा—सुरेश, विष्णु, प्रभविष्णु, पुरुष, पुराण, शाश्वत, अव्यय, चतुर्व्यूहरूप, निर्गुण, सगुण, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य, अप्रमेय, यज्ञाग, अखिलाग तथा देवता आदि से अभीप्सित विष्णु को नमस्कार है। जिनसे कोई छोटा या बड़ा नहीं है (उन्हें नमस्कार है), जिन अजन्मा हृदिने चराचर विश्व की सृष्टि की, (उन्हें नमस्कार है), आविर्भाव, तिरोभाव तथा दृष्ट, अदृष्टरूपक जगत् की जिन्होंने सृष्टि की तथा संहार किया (उन्हें नमस्कार है), जो ब्रह्मा, आदिदेव, विकारान्य, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप, जयशील तथा विष्णु हैं उन्हें नमस्कार है ॥१-६॥ हिरण्यगर्भ, हरि, शंकर, वासुदेव, तारके वाले, सृष्टि-स्थिति प्रलय करने वाले, एक तथा अनेक स्वरूप वाले, स्थूल तथा सूक्ष्म रूप वाले, अव्यक्त एवम् व्यक्त रूप वाले तथा मोक्ष के कारण विष्णु को नमस्कार है। संहार की उत्पत्ति, स्थिति तथा बिनाश के कारण, जगन्मय, परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्व के आधार, अणु से भी अणु, सर्वभूतस्थित, पुरुषोत्तम विष्णु को नमस्कार है। ज्ञान के स्वरूप, तत्त्वतः अत्यन्त निर्मल तथा पदार्थ-

ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः। तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥११॥
 विष्णु प्रसिष्णु विद्वत्स्य स्थितिसर्गे तथा प्रभुम्। अनादि जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥१२॥
 कथयामि यथा पूर्वं यक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः। पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥१३॥
 ऋक्सामान्युदिगर्न्ववत्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम्। प्रणिपत्य तथेशानमेकार्णवविनिर्गतम् ॥१४॥
 यस्यासुरगणा यज्ञान्विलुम्पन्ति न याजिनाम्। प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१५॥
 येन सृष्टिं समुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः। आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शभिः ॥१६॥
 अयनं तस्य ता. पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ॥१७॥
 चतुर्धा सस्थितो ब्रह्मा सगुणो निर्गुणस्तथा। एका मूर्तिरनुद्देश्या शुक्ला पश्यन्ति ता बुधाः ॥१८॥
 'ज्वालामालावनद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिना परा। दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा' ॥१९॥
 वासुदेवाभिधानाऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते। रूपवर्णवियस्तस्या न भावाः कल्पनामयाः ॥२०॥
 आस्ते च सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठकरूपिणी। द्वितीया पृथिवी मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ॥२१॥
 तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपागता। तृतीया कर्म कुर्वते प्रजापालनतत्परा ॥२२॥
 सत्त्वोद्विक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी। चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पद्मगततत्परा ॥२३॥

रूप से भासित विष्णु को नमस्कार है। ससार को प्रसने वाले, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति करने में समर्थ, अनादि, ससार के स्वामी, अजन्मा, अक्षय तथा अव्यय विष्णु को नमस्कार है ॥७-१२॥ पूर्वकाल में यक्ष आदि मुनियों द्वारा पूछे जाने पर कमल्योनि ब्रह्मा ने जैसे बतलाया था वैसे में कहूँगा। जो ऋग्वेद तथा सामवेद के उच्चारण करने तीनों लोकों को पवित्र करते हैं तथा एकार्णव से निःसृत हैं, उन ईश्वर को प्रणाम है। जिनके यात्रकों के यज्ञों को राक्षस-गण नष्ट नहीं कर पाते हैं, उनको प्रणाम करके अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सम्पूर्ण मत का मैं वर्णन कहूँगा। विष्णु ने सृष्टि के उद्देश्य से धर्म आदि को प्रकट किया। तत्त्वदर्शी मुनियों ने जल का नाम 'नार' बतलाया है। पहिले विष्णु का अयन (घर) जल था। इसलिए उनका नाम नारायण पड़ा। वे विष्णु नारायण भगवान् सबको व्याप्य बरके चार प्रकार से अवस्थित ब्रह्मा कहलाते हैं। वे सगुण तथा निर्गुण भी हैं। उनकी एक अनुद्देश्य शुक्ल मूर्ति है, जिसे विद्वान् लोग देखते हैं ॥१३-१८॥ वह योगियों की, ज्वाला-माला से बद्ध अंग वाली परा निष्ठा है। वह दूरस्थ, समी-पस्थ तथा त्रिगुणातीत है। उसी की ममतारहित बहुदेव सत्ता वही गई है। उसके कल्पनामय रूप, वर्ण, भाव आदि नहीं होते। वह सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित एवम् एकरूपिणी है। शेष नामच दूसरी मूर्ति नीचे पृथ्वी को धारण करती है। वह तामसी कहलाती है। और वक्र बनी रहती है। तीसरी मूर्ति प्रजापालन में निरत होकर कर्म करती है। उसमें सत्त्वगुण की प्रधानता है। वह धर्म की स्थापना करती है। चौथी मूर्ति जल के बीच संपाद्या पर सोती है। उसका

रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि । या तृतीया हरैर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा ॥२४॥
 सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि । प्रोद्धतानसुरान्हन्ति धर्मघ्न्यच्छित्तिकारिणः ॥२५॥
 पाति' देवान्सगन्धर्वान्धर्मरक्षापरायणान् । यदा यदा च धर्मस्य क्लान्तिः समुपजायते ॥२६॥
 अमृत्यान्ममधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजत्यसौ । भूत्वा पुरा घराहेण तुण्डेनापो निरस्य च ॥२७॥
 एकया बन्धूद्योत्खाता नलीनीव वसुंधरा । कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हन्ति ॥२८॥
 विप्रचित्तिमुखाश्चाप्ये दानवा विनिपातिताः । वामनं रूपमास्थाय बलिं संयम्य' मायया ॥२९॥
 प्रलोक्य' क्रान्तवानेष विनिजित्वा दितेः सुतान्' । भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥३०॥
 जघान क्षत्रियाग्रामः पितुर्बन्धमनुस्मरन् । तथाऽन्नितनयो भूत्वा दत्तात्रेयः प्रतापवान् ॥३१॥
 योगमष्टाङ्गमाचख्यावलर्काय महात्मेन । रामो दशरथिर्भूत्वा स तु देवः प्रतापवान् ॥३२॥
 जघान रावणं संख्ये त्रैलोक्यस्य भयंकरम् । यदा चंकारणवे सुप्तो देवदेवो जगत्पतिः ॥३३॥
 सहस्रयुगपर्यन्तं नागपर्यङ्कुगो विभुः । योगनिद्रां समास्थाय स्वे महिम्नि व्यवस्थितः ॥३४॥
 त्रैलोक्यमुदरे कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम् । जनलोकगतं' सिद्धैः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥३५॥
 तस्य नाभौ समुत्पन्नं पदम् 'दिक्पत्रमण्डितम्' । मरत्किञ्चलसंयुक्तं गृह पंतामह वरम् ॥३६॥
 यत्र ब्रह्मा समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः । तदा कर्णमलोद्भूतो दानवो मधुकंठभौ ॥३७॥

युग रज है। वह सदा ही सृष्टि करती रहती है। हरि की जो तीसरी प्रजापालन में निरत रहने वाली मूर्ति है वह पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था करती है, धर्मसंरक्षक उद्धत असुरों को मारती है और धर्म-रक्षा-परायण देव गन्धर्वों का पालन करती है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब वह अपनी सृष्टि करती है ॥१९-२६॥ पूर्वकाल में उसने वराह का रूप धारण कर धूमनी से पानी को हटाकर एक ही दाँत से कमलिन की तरह पृथ्वी को उखाड़ डाला। नृसिंह रूप धार कर उसने हिरण्यकशिपु को निहत्त किया और विप्रचित्ति आदि दानवों का संहार किया। वामन रूप धारणकर उसने माया से बलि को बाधा और दैत्यो को जेतकर तीनों लोक का नाप लिया। भृगुवश में उत्पन्न होकर प्रतापी परशुराम ने पिता के वैर का स्मरण करके क्षत्रियों का संहार किया ॥२७-३०॥ उसी तरह अग्नि-युत्र तेजस्वी दत्तात्रेय होकर उसने महात्मा अर्क को अष्टांग योग का उपदेश दिया। दशरथ पुत्र भोजस्वी राम होकर उसने युद्ध में त्रैलोक्य भ्रमर रावण का संहार किया। जब एकाणवे में देवदेव जगत्पति अपनी महिमा में व्यवस्थित तथा योगनिद्रा में अवस्थित हुए हज़ारों युग तक तीना लोच (चराचर जगत्) को अपने पेट में रखकर सर्वसंख्या पर सौ रहे थे तब जनलोकवासी महर्षियों एवम् सिद्धों ने उनकी स्तुति की ॥३१-३५॥ तदनन्तर उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, जो दिया रूपी पत्रों से अलङ्कृत तथा वायुरूपी विञ्जत्व (वमल-पराय) से युक्त था। वह ब्रह्मा का उत्तम गृह हुआ। उगी से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उस समय भगवान् के कर्णमल से मधु और बँटम नामक दो महाबली तथा महापराक्रमी दानव उत्पन्न होकर ब्रह्मा को मारने के लिए

महाबलौ महावीरौ ब्रह्माण हतुमुद्यतौ । जघान तौ दुराघघ्नौ उत्थाय^१ शयनोदधे ॥३८॥
 एवमार्द्धोस्तथवायानसरयातुमिहोत्सह । अवतारो ह्यजस्यह मायुर साप्रतस्त्वयम ॥३९॥
 इति सा सात्त्विकी भूतिरवतार करोति च । प्रद्यम्यन्ति समाख्याता रक्षाकमण्यवस्थिता ॥४०॥
 दबत्वऽथ मनुष्यत्व त्रिपग्योनौ च सस्थिता । गृह्णाति तत्स्वभावश्च वासुदवच्छया सदा ॥४१॥
 ददायभिमताकामा पूजिता सा द्विजोत्तमा । एव मया समाख्यात कृतकृत्योऽपि य प्रभु ॥
 मानुषत्व गतो विष्णु शृणुध्व चोत्तर पुन ॥४२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म व्यासरूपिसबाद चतुर्व्यह्वणन
 नामाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशादूला प्रवक्ष्यामि समासत । अवतार हरश्चान् भारवतरणच्छया ॥१॥
 यदा यदा त्वधमस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा । धमश्च ह्रासमम्यति तदा दधो जनादन ॥२॥

तयार हो गये । तब शयन-समय से उठकर विष्णु ने दोनों प्रचण्ड दानवी को मार डाला । इस प्रकार भगवान् ने जितने अवतार हो गये हैं उनको सख्या में नहीं बता सकता । पर अजमा के इस अवतार का नाम मायुर है ॥३६॥
 ३९ भगवान् की प्रसुम्न नामक सात्त्विक भूति जो रक्षाकमण्य रहता है अवतार लेता है । वासुदेव व इन्द्रा से वह देवयानि मनष्ययानि तथा त्रिपग्य योनिये मे मा अवतारण होकर उस उस यानि का स्वभाव ग्रहण करती है । द्विज गण्टो पूजित होने पर वह अमीप्सित कामनाया का प्रदान करता है । इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भा विष्णु मनुष्य-योनिये मे जैसे अवतीर्ण हुए वह मैंने बतला दिया । अब इससे आगे मुनिये ॥४०॥ ४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषिया ने सब प्रवरण मे चतुर्व्यह्वणन
 नामक अस्सर्वा अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर । मार उतारने का इच्छा स हरि ने जो अवतार लिया उसके विषय मे मैं सगण ग बतलाऊँगा मुनिवर । द्विजगण । जब-जब अधम का वृद्धि और धम का ह्रास होता है तब-तब जनादन सापुत्रा की

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम् । साधूना रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टानां निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम् । प्रजानां रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल महो विप्रा भूरिभारावपीडिता । जगाम धरणी मेरी समाजे त्रिदिवीकसाम् ॥५॥
सब्रह्मवान्सुरा सर्वान्प्रणिपत्याथ मेदिनी । कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

धरण्यावाच

अग्निं सुवर्णस्य गुरुर्वा सूर्योऽपरो गुरुः । ममाप्यखिललोकानां वन्द्यो नारायणो गुरुः ॥७॥
तत्ताप्रतमिमे देत्या कालनेमिपुरोगमा । मर्त्यलोकं समागम्य वाधन्तेऽहनिश प्रजा ॥८॥
कालनेमिहंतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना । उग्रसेनसुत कसं सभूतं सुमहासुरं ॥९॥
अरिष्टो धेनुकं केशीं प्रलम्बो नरकस्तथा । सुन्दोऽसुरस्तथाऽधुग्नो बाणश्चापि बलं सुत ॥१०॥
तथाऽप्ये च महाबोर्या नृपाणां भवनेषु ये । समुत्पन्ना दुरात्मानस्तां सख्यातुमुत्सहे ॥११॥
अक्षीहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृता सुराः । महाबलानां दृप्तानां दैत्येन्द्राणां ममोपरि ॥१२॥
तदभूरिभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वरा । विभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि व ॥१३॥
क्रियता तन्महाभागा मम भारवतारणम् । यथा रसातलं नाहं गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषंस्त्रिदशैस्ततः । भुवो भारवतारार्यं ब्रह्मा प्राह च चोदित ॥१५॥

रक्षा धर्म का स्थापना सुरजोही दुष्टों के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग में अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके अवतार लेते हैं । प्राचीन काल में अत्यन्त भार से पाड़ित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओं के समक्ष म पड़ी । ब्रह्मा सहित अखिल देवों को प्रणाम करके खेद से करुणभाषिणी धरणा अपना वृत्तान्त कहने लगी ॥१६॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि हैं गौओं के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल उग्रवध नारायण हैं । इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक में आकर रातदिन प्रजा का उत्पन्न करते हैं । जिस कालनेमि का विष्णु ने नारायण वही उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कस हुआ है । अरिष्ट धेनुक बैगा प्रलम्ब नरक सुन्द बलि-गुप्त अत्यन्त भयंकर बाण तथा अप्य जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण हैं उनकी ती मैं सख्या ही नहीं बतला सकता । सुरगण ! मद से चूष महाबली दैत्येन्द्र की दिव्य मूर्तिधारी अक्षीहिणा सेना भी काफी तादाद में मेरे ऊपर भार लाद रही है । अमरवृन्द ! इस महामार से पाड़ित होकर मैं अपने को नहीं समाल सकता । यहाँ निवेदन करने के लिये मैं आई हूँ । महाभागो ! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न काजिये ताकि मैं अत्यन्त विह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७॥१५॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया । तब पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

महाबलौ महावीर्यौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ । जघान तो दुराधर्यौ उत्थाय^१ शयनोदधेः ॥३८॥
 एवमादीस्तथैवान्यानसंख्यातुमिहोत्सहे । अवतारो ह्यजस्येह माधुरः सांप्रतस्त्वयम् ॥३९॥
 इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतार करोति च^२ । प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥४०॥
 देवत्वेऽय मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च सस्थिता । गृह्णाति तत्त्वभावश्च वासुदेवेच्छया सदा ॥४१॥
 वदात्यभिमतान्कामान्पूजिता सा द्विजोत्तमा । एवं मया समाख्यातः कृतकृत्योऽपि यः प्रभुः ॥
 मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुध्वं चोत्तरं पुनः ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासश्रुतिसंवादे चतुर्व्यूहवर्णनं
 नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूल^१ प्रवक्ष्यामि समासतः । अवतार हरेश्चात्र भारवतरणेच्छया ॥१॥
 यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा । धर्मश्च ह्रासमभ्येति तदा देवो जनार्दनः ॥२॥

तैयार हो गये । सब शयन-समुद्र से उठकर विष्णु ने दोनों प्रचण्ड दानवों को मार डाला । इस प्रकार मगवान् ने जितने अवतार हो गये हैं, उनकी संख्या मैं नहीं बता सकता । पर अजन्मा के इस अवतार का नाम माधुर है ॥३९-३९॥ मगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विकी मूर्ति, जो रक्षाकर्म में लगी रहती है, अवतार लेती है । वासुदेव की इच्छा से वह देवयानि, मनुष्ययानि तथा तिर्यग्यानि में भी अवतरण होकर उस उस योनि का स्वभाव ग्रहण करती है । द्विजधेष्ठे^२ पूजित होने पर वह अभीप्सित कामनाओं को प्रदान करती है । इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भी विष्णु मनुष्य-योनि में जैसे अवतीर्ण हुए, वह मैंने बतला दिया । अब इससे आगे सुनिये ॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के संवाद प्रकरण में चतुर्व्यूहवर्णन नामक अस्तीर्वा अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर ! मार उतारने की इच्छा से हरि ने जो अवतार लिये, उसके विषय में मैं सशेष से बतलाऊँगा, सुनिये । अव-यव अधर्म की वृद्धि और धर्म का ह्रास होता है तब-तब जनार्दन सायूमा की

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम् । साधूना रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टाना निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम् । प्रजाना रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल महो विप्रा भूरभारावपीडिता । जगाम धरणी मेरी समाजे त्रिदिवीकसाम् ॥५॥
सब्रह्मवान्सुरान्सर्वान्प्रणिपत्याय मेदिनी । कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

धरण्युवाच

अग्नि सुवर्णस्य गुरुर्वा सूर्योऽपरो गुरु । ममाप्यखिललोकानां घन्धो नारायणो गुरु ॥७॥
तत्ताप्रतमिमे दंत्या कालनेमिपुरोगमा । मर्त्यलोक समागम्य बाधन्तेऽहर्निश प्रजा ॥८॥
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना । उप्रसेनसुत कस सभूत सुमहासुर ॥९॥
अरिष्टो धेनुक फेदी प्रलम्बो नरकस्तथा । सुन्दोऽसुरस्तथाऽप्युग्रो बाणश्चापि बले सुत ॥१०॥
तथाऽप्ये च महावीर्या नृपाणा भवनेषु ये । समुत्पन्ना दुरात्मानस्तां सख्यानुमुत्सहे ॥११॥
असौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृता सुरा । महाबलाना दृष्टाना दैत्येन्द्राणा ममोपरि ॥१२॥
तदभूरभारपीडार्ता न शक्नोम्यमरेश्वरा । विभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि य ॥१३॥
त्रिपता तन्महाभागा मम भारावतारणम् । यया रसातल नाह गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषैस्त्रिदशंस्तत । भुवो भारावतारायं ब्रह्मा प्राह च चोदित ॥१५॥

रक्षा घम का स्थापना सुरद्रोह दुष्टो के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग मे अपने शरीर को द्विधा विभक्त करके अवतार लेते हैं । प्राचीन काळ मे अत्यंत भार से पाडित होकर पृथ्वी सुमेरुवत् पर देवताओं के समक्ष म गई । ब्रह्मा सहित अखिल देवो को प्रणाम करके खेद से करुणभाषिणी धरणी अपना वृत्तान्त कहने लग ॥१६॥

पृथ्वी बोली—गुण के गुरु अग्नि है गौओं के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल लोकव्याप नारायण है । इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक मे आकर रातदिन प्रजा का उत्पादन करते हैं । जिस कालनेमि को विष्णु ने मारा था वहा उससेन वा पुत्र महाराक्षस कस हुआ है । अरिष्ट धनुव केसा प्रलम्ब नरक सुद बलि-पुत्र अत्यंत मयकर बाण तथा अय जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजगण है उनकी तो मैं सख्या ही नहीं बताना सकता । सुरगण । मद से चूण महाबली दैत्येन्द्रा की दिव्य मूर्तिधारी अक्षौहिणी सेना भी काफी तादाद मे मेरे ऊपर भार लाद रही है । अमरवृद्ध । इस महामार से पाडित होकर मैं अपने को नहीं समाल सकती । यहा निवेदन करने के लिये मैं आई हू । महानागो । इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न कीजिये ताकि मैं अत्यन्त विह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७१४॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवो ने ब्रह्मा से निवेदन किया । तब पृथ्वी के भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

यदाह वसुधा सर्वं सत्यमेतद्दिवौकसः। अहं भवो भवन्तश्च सर्वं नारायणात्मकम् ॥१६॥
 विभूतयस्तु यास्तस्य तासामेव परस्परम्। आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते ॥१७॥
 तदागच्छत गच्छामः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम्। तत्राऽऽराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ॥१८॥
 सर्वदेव जगत्पथं स सर्वात्मा जगन्मयः। स्वल्पाशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवः पितामहः। समाहितमना भूत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रमूर्ते, सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद ।
 नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशस्थानपराप्रमेय ॥२१॥
 सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च बृहत्प्रमाणं गरीयसामप्यतिगौरवात्मन् ।
 प्रधानबुद्धीन्द्रियबाक्प्रधानमूलापरात्मन्भगवन्प्रसीद ॥२२॥
 एषा मही देव महीप्रसूतमहासुरैः पीडितशैलबन्धा ।
 परायणं त्वां जगतामुपैति, भारावतारायमपारपराम् ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द ! पृथ्वी ने जो कहा, सब ठीक है। 'मैं, शिव तथा आप लोग सब नारायण के अंश हैं। उनकी जो विभूतियाँ हैं, उन्हीं में परस्पर बाध्यबाधक भाव से कमी-बेसी होती है। इसलिये आद्य हम लोग क्षीरसमुद्र के तट पर चले। वहाँ हरि की आराधना करके उनसे सब निवेदन करेंगे। जगत् के लिए वे अस्त्रिगत्मा तथा जगन्मय प्रभु पृथ्वी पर अवतार लेकर सदा धर्म की स्थापना करते हैं ॥१६-१९॥

व्यास बोले—इतना कहकर देववृन्द सहित ब्रह्मा वहाँ जाकर एकाग्र चित्त से भगवान् की स्तुति करने लगे ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र रूप वाले ! सहस्र भुजा वाले ! बहुत मुख तथा चरण वाले ! आपको नमस्कार है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले ! अप्रमेय ! आपका नमस्कार है। सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म ! महान् से भी अत्यन्त महान् ! बुद्धि, इन्द्रिय, वाणी तथा प्रवृत्ति रूप ! परात्मन् ! भगवन् ! प्रसन्न होइये। यह पृथ्वी, अपन पर उत्पन्न हुए महाराक्षसी द्वारा पीडित होकर भार उतरवाने के लिये आपकी चरण में आई है। अब समार न रहता है। आपका कोई पार नहीं पा सकता। सुरताप ! हम सब—इन्द्र, अश्विनी कुमार, वरुण,

एते वयं वृत्ररिपुस्तथाऽयं, नास्त्यदस्त्री वरुणस्तथैवः ।
इमे च रुद्रा वसवः ससूर्याः, समीरणाग्निप्रमुखास्तथाऽन्ये ॥२४॥
सुराः समस्ताः सुरनाथ कार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्वम् ।
आज्ञापयाऽऽज्ञां प्रतिपालयन्तस्तवैव तिष्ठाम सदाऽस्तदोपा ॥२५॥

व्यास उवाच

एवं सस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वर' । उज्जहाराऽऽत्मनः केशो सितकृष्णो द्विजोत्तमाः ॥२६॥
उवाच च सुरानेती मत्केशो वसुधातले । अवतीर्य भुवो भारवलेज्जहान् करिष्यत ॥२७॥
सुराश्च सकलाः स्वाशैरवतीर्य महीतले । कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तः पूर्वोत्पन्नमहामुरं ॥२८॥
ततः क्षयमशेषास्ते देतेया धरणीतले । प्रयास्यन्ति न सवेहो नानामुधविचूर्णिता ॥२९॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा । तस्या गर्भोऽष्टमोऽयं तु मत्केशो भविता सुरा ॥३०॥
अवतीर्य च तत्राय कस घातयिता भुवि । कालनेमिसमुद्भूतमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे हरिं ॥३१॥
अदृश्याय ततस्तेऽपि प्रणिपत्य महात्मने । मेरुपृष्ठं सुरा जम्बुरवतेश्च भूतले ॥३२॥
कसाय चाष्टमो गर्भो देवक्या धरणीतले । भविष्यतीत्याचक्षे भगवान्भारदो मुनि ॥३३॥
कसोऽपि तदुपश्रुत्य नारदात्कुपितस्ततः । देवकीं वसुदेव च गृहे गुप्तावधारयत् ॥३४॥
जातं जातं च कसाय तेनैवोक्तं यया पुरा । तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमपितयान्द्विजा ॥३५॥

रुद्र, वसु सूर्य, वायु, अग्नि आदि देवगण—सदा दोषो से रहित होकर आपही के आज्ञापालन में निरत रहते हैं ।
इसलिये, ईश ! हमे आज्ञा कीजिये ॥२१-२५॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो ! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने अपने दो सफेद तथा काले केशों को उखाड़ कर देवताओं से कहा—'मेरे दोनों केश पृथ्वी पर अवतार लेकर धरती के मारजन्य क्लेशों को दूर करेंगे । सकल देवगण भी अपने-अपने से भूतल पर अवतीर्ण होकर पूर्वोत्पन्न मन्दमत महाराक्षसों से युद्ध करेंगे । तत्पश्चात् अनेक अल्प शस्त्रों से चूर-चूर होकर अदोष देव्य वितण्ड हो जायेंगे, इसमें तवेह नहीं । देवगण ! वसुदेव की देवतुल्य देवकी नामक पत्नी के आठवें गर्भ से मेरा केश अवतीर्ण होकर अपर कालनेमि कण को मारेगा ।' इतना कहकर हरि अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर अदृश्य भगवान् को प्रणाम कर समस्त देवगण सुमेरु पर्वत पर चल गये और पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए । (इधर) नारद मुनि ने कस से आकर कह दिया—'पृथ्वी पर 'देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारे लिए घातक होगा ।' नारद की बात सुनकर कस कुपित हो गया । उसने देवकी तथा वसुदेव को जेल में भेज दिया । द्विजगण ! वसुदेव भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जैसे-जैसे पुत्र उत्पन्न होता वैसे-वैसे लाकर कस को समर्पित कर देते थे । द्विजगणियु के छ गर्भावस्थित पुत्रों को विष्णु की भेजी हुई योगनिद्रा क्रमशः देवकी के गर्भ में

हिरण्यकशिपो पुत्रा पङ्गर्भा इति विभ्रुता । विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भे न्ययोजयत ॥३६॥
योगनिद्रा महामाया वैष्णवी मोहित यया । अविद्याया जगत्सर्वं तामाह भगवान्हिर ॥३७॥

विष्णुरुवाच

गच्छ निद्रे ममाऽऽदेशात्पातालतलसश्रयान् । एकैकश्येन पङ्गर्भादेवकीजठरे नय ॥३८॥
हृतेषु तपु कसेन शेषारयोऽशस्ततोऽनघ । अशशेनोदरे तस्या सप्तमं सभविष्यति ॥३९॥
गोकुञ्चे वसुदेवस्य भार्या वै रोहिणी स्थिता । तस्या प्रसूतिसमये गर्भो नेयस्त्वयोदरम् ॥४०॥
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधत । देवक्या पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥४१॥
गभसकपणात्सोऽथ लोके सकर्षणेति वै । सज्ञामवाप्स्यते वीर श्वेताद्रिशिखरोपम ॥४२॥
ततोऽहं सभविष्यामि देवकीजठरे शुभे । गर्भे त्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम् ॥४३॥
प्रवृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि । उत्पत्स्यामि नवम्या च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ॥४४॥
यशोदाशयने मा तु देवक्यास्त्वामनिन्दिते । मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति ॥४५॥
कसश्च त्वामुपादाय दधि शैलशिलातल । प्रक्षेप्यत्यन्तरिक्षे च त्वं स्थानं समवाप्स्यसि ॥४६॥
ततस्त्वा शतधा शक्रं प्रणम्य मम गौरवात् । प्रणिपातानतशिरा भगिनीत्वे ग्रहीष्यति ॥४७॥
ततः शुम्भनिशुम्भादीन्हत्वा दैत्यान्सहस्रशः । स्थानैरनेकैः पृथिवीमशेषा मण्डयिष्यसि ॥४८॥

ला-लाकर रख छोड़ती थी। विष्णु ने अपनी महाविद्या योगनिद्रा से जो अविद्या से ससार को मोहित करती है कहा ॥२६ ३७॥

विष्णु बोले—निद्रा । तुम जाओ और मेरी आज्ञा से पातालस्थित छोड़ो गर्भों को एक एक करके देवकी के पेट में रख छोड़ो। कस द्वारा उनके निहृत हो जाने पर मेरा शेष सप्तक अश अशो के अश से देवकी के पेट में सातवाँ गम होकर अवस्थित होगा। वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल में रहती है। प्रसव समय उस गम को लेकर तुम रोहिणी के पेट में रख छोड़ना। तब कस के मय से या कैंद के कारण देवकी का सातवाँ गम गिर पड़ा—दम तरह लोक में जनधर्ति फैल जायगा। गर्भ से खिच जाने के कारण लोक में उस श्वेतपवतदुग्ध वीर की सहा सवपण हो जायगी। तदुपरान्त मैं देवकी के पवित्र उदर से उत्पन्न हूँगा। तुम शीघ्र यशोदा के गम में चली जाओ। वर्षाश्रुतु मे भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की रात्रि में मैं जन्म लूँगा और नवमी में तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३८ ४४॥ मेरी शक्ति से प्रेरणा पाकर वसुदेव जा मुझ ले जाकर यशोदा की पवित्र शय्या पर छोड़ आएँगे और तुम्हें लाकर देवकी के विछोने पर रख दगें। तब कस तुम्हें उठाकर पवत के शिलातल पर पटक देगा पर तुम वहाँ से उड़कर आकाश में अपना स्थान प्राप्त कर लोगी। वहाँ इन्द्र मेरी प्रतिष्ठा के कारण तुम्हें माया टेक कर सैकड़ों बार प्रणाम करके अपनी बहू बनायगे। तदनंतर तुम अनेक स्थानों पर शुम्भ निशुम्भ आदि सहस्रों दैत्यो को मारकर

त्वं भूतिः संनतिः कीर्तिः कान्तिर्वै पृथिवी धृतिः । लज्जापुष्टिरुपा या च काचिदन्या त्वमेव सा ॥४९॥
ये त्वाभार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च । भद्रेति भद्रकालीति 'क्षेम्या क्षेमकरीति च ॥५०॥
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यत्यानन्ममूर्तयः । तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥५१॥
सुरामांसोपहारंस्तु भक्ष्यभोज्यंश्च पूजिता । नृणामशेषकामास्त्व प्रसन्नाया प्रदास्यसि ॥५२॥
ते सर्वे सर्वदा भद्रा मत्प्रसादादसशयम् । असदिग्धं भविष्यन्ति गच्छ देवि ययोदितम् ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हरेरंशावतारनिरूपण
नामकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणम्

व्यास उवाच

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वं पुरा । 'षड्गर्भगर्भविन्यासं चक्रे चान्यस्य कर्षणम् ॥१॥
सप्तमे रोहिणीं प्राप्ते गर्भे गर्भं ततो हरिः । लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश वं ॥२॥

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूषित करोगी । भूति, सन्ति, कीर्ति कान्ति, पृथिवी, धृति, लज्जा, पुष्टि, उपा और जो कोई दूसरी है, सब तुम ही हो । जो प्रातः काल तथा सायंकाल मस्तक झुकाकर आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या तथा क्षेमकरी आदि नामों से तुम्हारी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त अमिलापाये मेरी कृपा से पूरी होगी । जो मनुष्य भय, मास, भक्ष्य, भोज्य तथा उपहारों से तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हें तुम प्रसन्न होकर अशेष कामताएँ प्रदान करोगी । वे सब मेरी कृपा से निःसन्देह बल्याण प्राप्त करेंगे । देवी ! अब तुम मेरे वशानुसार जाओ ॥४५-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे विष्णु का अवतारनिरूपण नामक
एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८१॥

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

व्यास बोले—विष्णु के वशानुसार जगद्धात्री ने छहों गर्भों का बीजा ही विन्यास किया और सातवें गर्भ को रोहिणी के उदर में स्थित कर दिया । तब तीनों लोक के उपकार के लिये भगवान् ने देवकी के उदर में प्रवेश

योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव ततो दिने । सभूता जठरे तद्वद्यथोक्त परमष्टिना ॥३॥
 ततो ग्रहगण सम्यक्प्रचचार दिवि द्विजा । विष्णोरशे महीं यात ऋतवोऽप्यभवञ्जुभा ॥४॥
 नोत्सहे देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यतितजसा । जाज्वल्यमाना ता दृष्ट्वा मनासि क्षोभमाययु ॥५॥
 अदृष्टा पुरुषं स्त्रीभिर्देवकीं देवतागणा । बिन्नाणा वपुषा विष्णुं तुष्टुवुस्तामहनिशम् ॥६॥

देवा ऊचुः

त्व स्वाहा त्व स्वधा विद्या सुधा त्व ज्योतिरेव च । त्व सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥७॥
 प्रसीद देवि सर्वस्य जगतस्त्व शुभ कुरु । प्रीत्यर्थं धारयेषान धृत म्रैनाखिल जगत् ॥८॥

व्यास उवाच

एव सस्तूयमाना सा 'देवैर्देवमधारयत । गर्भेण पुण्डरीकाक्ष जगता' नाणकारणम् ॥९॥
 तनोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभानुना । देवक्या पूर्वसध्यायामाविर्भूत महात्मना ॥१०॥
 मध्यरात्रिऽखिलाधारे जायमाने जन्तार्दने । मन्द जगज्जलदा पुष्पवृष्टिमुच सुरा ॥११॥
 फुल्लन्दीवरपत्राभ चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम । शीवत्सवक्षस जात तुष्ट्वाऽनकदुन्दुभि ॥१२॥
 अभिष्टूय च त वाग्भि प्रसन्नाभिमहामति । विज्ञायापमास तदा कसाद्भूतो द्विजोत्तमा ॥१३॥

ब्रह्मा के कथनानुसार योगनिद्रा मी उसा दिन यशोदा के उदर मे प्रविष्ट हुई । द्विजगण । पृथ्वी पर विष्णु के अश वे जाने पर ग्रहगण सुचारु रूप से विचरण करने लगे । ऋतुर्णे मी सुखदायिनी हो गई । अत्यन्त तेज के कारण देवकी को देखने का किसी को साहस नहीं होता था । तेज से देखीप्यमान देवकी को देखकर लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते थे । (अतएव) देवकी पुरुष तथा स्त्रियो से अदृश्य रहती थी । देवगण शरीर मे विष्णु को धारण किये हुई देवकी की रातदिन स्तुति किया करते थे ॥१६॥

देवो ने कहा—तुम स्वाहा स्वधा विद्या सुधा तथा ज्योति हो । अखिल लोको की रक्षा के निमित्त तुम पृथ्वी पर अवतान हुई हो । देवि ! तुम प्रसन्न होओ और ससार का कल्याण करो । अपनी प्राति के लिये तुम उस ईश्वर को धारण करो जिसने सम्पूर्ण जगत् का धारण किया है ॥७८॥

व्यास बोल—देवो द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर देवकी ने ससार की रक्षा के कारण कमललोचन भगवान को गर्भ मे धारण किया । तदनन्तर सम्पूर्ण जगत् रूपी कमल को खिलाने के लिये सूर्यरूपी महात्मा हरि रात्रि के प्रथम प्रहर मे देवकी से प्रादुर्भूत हुए । सबके आचारभूत जनादन के अवतीर्ण हो जाने पर मध्यरात्रि मे मेघ मद-मद गरजने लगे और सुरवृन्द पुष्प-वृष्टि करने लगे । विकसित कमलपत्र के समान कान्ति वाले चतु भुज तथा वक्ष पर श्र वत्स नामक चिह्न धारण करने वाले भगवान की देखकर वसुदेव स्तुति करने लगे । द्विजयष्टो । सुन्दर वाणी से उनकी स्तुति करके कस से डरे महाबुद्धिमान वसुदेव ने निवेदन किया ॥९१३॥

१क ०या । चित्राभि स्तुतिभिर्विष्णु । २ख देवदेव० । ३ख ख ०गद्रसजवा० । ४ख ०ति । चिन्तया० । ५ख ०स कसाय तदा भीतो द्वि० ।

वसुदेव उवाच

ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । दिव्य रूपमिदं देव प्रसादेनोपसहर ॥१४॥
अद्यैव देव कसोऽयं कुरते मम यातनाम् । अवतीर्णमिति ज्ञात्वा त्वामस्मिन्मन्दरे मम ॥१५॥

देवदयुवाच

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो, गर्भोऽपि लोकान्वपुषा बिभ्रति ।
प्रसीदतामेव स देवदेव, स्वमाययाऽऽविष्कृतबालरूप ॥१६॥

उपसहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम् । जानातु माऽवतारं ते कसोऽयं दितजान्तक ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्तुतोऽहं यत्स्वया पूर्वं पुनाधिभ्या तदद्य ते । सफलं देवि सजातं जातोऽहं यत्तवोदरात् ॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवास्तूर्णो बभूव मुनिसत्तमा । वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहि ॥१९॥
मोहिताश्चाभवत्तत्र रक्षिणो 'योगनिद्रया' । मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यागवदुन्मुभौ ॥२०॥
वर्षता जलदाना च ततोयमुत्सृज्य निद्रि । सञ्जाद्य तं ययौ शेषं फणेरानकदुन्दुभिम् ॥२१॥
यमुनां चातिगम्भीरां नानावर्तशताकुलाम् । वसुदेवो वहन्विष्णुं जानुमानवहा ययौ ॥२२॥

वसुदेव बोले—देवो के देव ! शङ्ख चक्र-गदा धारी ! मैं आपको पहचान गया । देव ! ब्रूपा नरके इस दिव्य रूप को बदल दीजिये । मेरे घर में आप अवतीर्ण हुए हैं—यह जानकर कस आज ही मुझ महाबल देगा ॥१४॥
१५॥

देवकी बोलें—जो अनन्तरूप तथा अखिल विश्वरूप होते हुए गम में भी लोको का धारण करते हैं और जो अपनी माया से बाल रूप में प्रकट हुए हैं वे देवो के स्वामी प्रसन्न हो । सर्वात्मन् ! इस चतुर्भुज रूप को हटा दिये, ताकि महादेव कस आपका अवतार न समझ पाए ॥१६॥ १७॥

श्रीभगवान् बोले—देवि ! पहिले जो तुमने पुत्र की अमिलापा से मेरी स्तुति की थी वह प्रायत्ता आज तुम्हारी सफल हुई । मैं तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुआ ॥१८॥

व्यास बोले—मुनिवर ! इतना कहकर भगवान् चुप हो गए । वसुदेव भी रात्रि में ही उन्हें लेकर बाहर निकल गये । वसुदेव के जाते समय वहाँ के रक्षकगण तथा मथुरा के द्वारपाल योगनिद्रा से मोहित हो गये । रात में बरसते हुए बादलों के जल से बचाने के लिये गगनाय ने वसुदेव को अपनी फणाओं से पूननया डक दिया । अत्यन्त गम्भीर तथा अनेक आवर्तों (मँवर) से व्याप्त यमुना विष्णु को ढोते हुए वसुदेव की जघा बराबर

कसस्य परमादाय त्रैपागागतास्तदे । नन्दादीगोपवृद्धाश्च यमुनाया ददर्श स ॥२३॥
 तस्मिन्काले यशोदाऽपि मोहिता योगनिद्रया । तामव कन्या मुनय प्रासूत मोहिते जन ॥२४॥
 वसुदेवोऽपि त्रियस्य दाशपश्य दारिकाम । यशोदाशयन तूणमाजगामामितद्युति ॥२५॥
 ददग च विबुधधा सा यशोदा जातमामजम । नीलोपलदलश्याम ततोऽन्यथं मुद ययौ ॥२६॥
 आदाय वसुदेवोऽपि दारिका निजमन्दिरम् । दवकीशयन न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२७॥
 ततो बालध्वनि श्रुत्वा रक्षिण सहस्रोत्थिता । कसमावदयामासुर्देवकीप्रसव द्विजा ॥२८॥
 कसस्तूणमुपत्यना ततो जग्राह बालिकाम । मुञ्च मुञ्चति दवक्याऽऽसन्नकण्ठ निवारित ॥२९॥
 चिक्षप च शिलापृष्ठ सा क्षिप्ता विपति स्थितिम् । अवाप रूप च महत्सायुधाष्टमहाभुजम् ॥
 प्रजहास तथैवोच्च कस च रुषिताऽन्नवीत ॥३०॥

योगमायोवाच

किं मयाऽऽक्षिप्तया कस जातो यस्त्वा हनिष्यति । सवस्वभूतो दयानामासीमृत्यु पुरा स त ॥
 तदतस्तप्रधार्याऽऽशु क्रियता हितमात्मन ॥३१॥

बहने लगी। कस क ब चकाने के लिये आये नन्द आदि वृद्ध गोपों को वसुदेव ने वही यमना के तट पर देखा। उस समय यशोदा भी योगनिद्रा से मोहित हो गई थी। मनिवद ! मोहित व्यक्तियों के सामने यशोदा ने उसी वचन को प्रसव किया था। अपरिमित पान्ति वाले वसुदेव भी बालिका को यशोदा की शय्या पर सुला कर और बालिका को लेकर ग प्रत से चल पड़े। जगने पर यशोदा ने ल कमल के समान श्यामवर्ण पुत्र को देखकर आनन्द विभोर हो गई। वसुदेव भी अपने घर में बालिका को देवकी का शय्या पर रखकर पहिले की तरह अवस्थित हो गये। द्विजगणों ने तदनन्तर बाल ध्वनि सुनकर रक्षकगण सहसा उठ पड़े और जाकर कस से देवकी के प्रसव का समाचार सुनने लगे। तब कस ने शत्रु देवकी के पास जाकर बालिका को पकड़ लिया। देवकी छोड़ दो छोड़ दो कहती ही रह गई। पर उसने बालिका को शिलापृष्ठ पर पटक दिया। हाथ से छूटते ही वह आकाश में उड़ गई और महान् अस्त्र गर्तों से सुसज्जित अष्टभजाधारिण् बन गई। अष्टाहास करके उसने श्रेष्ठपूवक कस से कहा। १९-३०॥

योगमाया बोली—कस ! मत्त पटक कर तुम्हें क्या मिला ? जो देवों के सवस्वभूत देव तुम्हें मोक्ष के घट उतारने के लो पहिले ही जन्म ले चके। यह जानकर तुम शीघ्र अपने बचाव के लिये उपाय करो ॥३१॥

व्यास उवाच

इष्टुत्वा प्रययौ देवो दिव्यस्त्रगन्धभूषणा । पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धं विहायसा ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदि ब्राह्मे श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नाम
द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८२॥

अथ द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्याय

कसविचारकथनम्

व्यास उवाच

कसस्त्वथोद्विग्नमना प्राह सर्वा महासुरान । प्रलम्बकशिप्रमुखानाहूयासुरपुंगवान् ॥१॥

कस उवाच

हे प्रलम्ब महाबाहो कशिधनुक पूतन । अरिष्टाद्यैस्तया चार्यं श्रूयता वचन मम ॥२॥
मा हतुममरंयत्न कृत किल दुरात्मभि । मद्योयतापिता बोरान्न त्वतागणयाम्यहम् ॥३॥

व्यास बोले—इतना कह कर निम्न माला गन्ध तथा आभूषणा से युक्त एवम सिद्धगणों से स्तुत भगवता
कस क दखते ह देखते आवाग म विग्न हो गई ॥३२॥

श्रीब्रह्मपुराणे म श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नामक
एवं सौ व्यास उवाच अध्याय समाप्त ॥१८२॥

अध्याय १८३

कस का अपना विचार कहना

व्यास न कहा—एतदुपरान्त कस उद्विग्न मन से प्रलम्ब बेनी आदि महासुरा को बुला कर कहने लगा । १॥

कस बोला—महाभक्तिशाली प्रलम्ब ! बेनी ! धनुक ! पूतने ! तुम लोग तथा अरिष्ट आदि दूसरे
सब मा मेरे वचन का सुन । कुछ दवताओं ने मेरे मारने का उपाय किया है परन्तु मेरे प्रताप से सतप्त इन
दवता का मैं परबाह नहीं करता । दत्तश्रेष्ठो ! कृपा का बात से मुझ आश्रय होता है और उन यन्त्राल देव

१ म ० म । पराकायेन देवैश्च प्ररितो वासवानुत्र । म० । २ स ० पितृर्वासा नन्वेनामूदपा० ।

३ म ० म । अमरेषु भगवता वा० ।

आश्चर्यं कन्यया चोषत् जायते दैत्यपुंगवाः। हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥४॥
 तथाऽपि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥५॥
 उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतभव्यभवत्प्रभुः। इत्येतद्बालिका प्राह देवकीगर्भसंभवा ॥६॥
 तस्माद्बालेषु परमो यत्नः कार्यो महीतले। यत्रोद्विक्तं बलं बाले सहन्तव्यः प्रयत्नतः ॥७॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञाप्यासुराङ्कसं प्रविश्याऽऽत्मगृहं ततः। उवाच वसुदेवं च देवकीमविरोधतः ॥८॥

कंस उवाच

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवंते मयाऽधुना। कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥९॥
 तदल परितापेन नूनं यद्भाविनो हि ते। अर्भका युवयोः को वा आयुषोऽन्ते न हन्यते ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य विमुच्यैव कसस्तीं परितोष्य च। अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठाः प्रविशेश पुनः स्वकम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णबालचरिते कंसविचारकथनं नाम

अथशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

राश्री के प्रति हँसी भी आती है। तो भी उन दुरात्मा देवों का अब अधिक अपवार हमें करना है। दैत्यपुंगवों !
 इसके लिये वटिवद्ध हो जाओ। देवकी के गर्भ से उत्पन्न कुमारिका ने बतलाया है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान
 के अवीश्वर ने तुम्हें मारने के लिये जन्म ले लिया है। इसलिये पृथ्वी-तल के बालको पर हमें खास करने
 ध्यान रखना है। जिस बालक में बल का आधिक्य दीख पड़े, उसे यत्नपूर्वक मार दिया जाय ॥२-७॥

व्यास ने कहा—असुरों को इस प्रकार आज्ञा देकर कंस अपने घर में प्रविष्ट हुआ और बिना विरोध के
 वसुदेव तथा देवकी से कहने लगा ॥८॥

कंस बोला—तुम दोनों के बालको को मैंने ध्वंस ही मार डाला। मेरे नाश के लिये कोई दूसरा ही बालक
 उत्पन्न हुआ है। इसलिये अब तुम सोच मत करो। जो तुम्हारे भाग्य में था, वह होकर रहा। आयु के अन्त हो
 जाने पर कौन नहीं मरता है ? ॥९-१०॥

व्यास बोले—द्विजवर ! इस प्रकार उन दोनों को सान्त्वना दे बन्धन से मुक्त करके वस ने पुनः अपने
 अन्तर्गृह में प्रवेश किया ॥११॥

श्रीशतमहापुराण में श्रीकृष्ण के बालचरित्र वर्णन प्रसंग में कंस विचार-बन्धन नामक एक सौ
 तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३॥

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरितवर्णनम्

व्यास उवाच

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः । प्रहृष्टं दृष्टवान्नन्द पुत्रो जातो ममेति च ॥१॥
वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम् । वार्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥२॥
दत्तो हि वापिक सर्वो भवद्भिर्गुणैः पते करः । यदर्थमागतस्तस्मान्नान्न स्येयं महात्मना ॥३॥
यदर्थमागतं कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते । भवद्भिर्गुण्यता नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४॥
ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः । स रक्षणीयो भवता यथाऽयं तनयो निज ॥५॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः । शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबला ॥६॥
वसता गोकुले तेषां पूतना बालघातिनी । सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ च प्रवदौ स्तनम् ॥७॥
यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सप्रयच्छति । तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यत ॥८॥
कृष्णस्तस्या स्तनं गाढं करान्ध्यामतिपीडितम् । गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ श्रोधसमन्वितं ॥९॥

अध्याय १८४

श्रीकृष्ण का बाल-चरित्र वर्णन

व्यास बोले—विमुक्त होने पर वसुदेव भी नन्द की गाड़ी के पास पहुँचे । उन्होंने पुत्रोत्सव से नन्द को प्रसन्न देखकर आदरपूर्वक कहा—आनन्द की बात है कि बूढ़ापे में भी आपको अब पुत्र हो गया । आप लोग ने राजा को बापिक कर अदा कर दिया । जिसके लिये आप लोग यहाँ आये थे वह बाय सम्पन्न हो गया । नन्द अब आप यहाँ न ठहरे । शीघ्र अपने गाबुल चले जाय । मेरा भी बालक जो राहिणी से उत्पन्न हुआ है वहीं पर है । उसकी भी आप अपने पुत्र की तरह रक्षा करेंगे ॥१-५॥

व्यास बोले—यह वही जान पर नन्द आदि महाबलवान् गांधी कर देकर बतनी का गाडियो पर लाद कर प्रस्थित हो गये । गोकुल मे उन लोगो के रहते ही रात्रि मे बालघातिनी पूतना ने साये कृष्ण को उठाकर उनका मुँह मे अपना स्तन दे दिया । रात्रि मे जिस जिस बालक के मुख मे पूतना अपना स्तन डालता थी उस उस बालक की तत्काल मृत्यु हो जाती थी । कृष्ण ने क्रोध से उसने स्तन को देवो हाथो से बसकर दबा दिया और प्राण सहित

सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना । पपात पूतना भूमी म्रियमाणाऽतिभीषणा ॥१०॥
 तन्नादश्रुतिसन्नासाद्विबुद्धास्ते व्रजौकस । ददृशु पूतनोत्सङ्गे कृष्ण ता च निपातिताम् ॥११॥
 आदाय कृष्ण सन्नस्ता यशोदा च ततो द्विजा । गोपुच्छग्रामणाद्यंश्च बालदोषमपाकरोत् ॥१२॥
 गोपुरीषमुपादाय मन्दगोपोऽपि मस्तके । कृष्णस्य प्रददौ रक्षा कुर्वन्निदमुदरयत् ॥१३॥

‘नन्दगोप उवाच

रक्षते त्वामशोषाणा भूताना प्रभवो हरि । यस्य नाभिसमुद्भूतात्पञ्चजादभवज्जगत् ॥१४॥
 येन दष्टाग्रविधृता धारयत्यवनी जगत् । वराहरूपधृग्देव स त्वा रक्षतु केशव ॥१५॥
 गुह्यं स जठरं विष्णुर्जंघ्या पादौ जनार्दन । वामनो रक्षतु सदा भवन्त य क्षणादभूत् ॥१६॥
 त्रिविक्रमश्चक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुध । शिरस्ते पातु गोविन्द कण्ठ रक्षतु केशव ॥१७॥
 मुखबाहू प्रबाहू च मन सर्वेन्द्रियाणि च । रक्षत्वव्याहृतं श्वर्यस्तव नारायणोऽयम् ॥१८॥
 त्वा विक्षु पातु वंकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदन । हृषीकेशोऽम्बरं भूमौ रक्षतु त्वा महीधर ॥१९॥

व्यास उवाच

एव कृतस्वस्थयनो नन्दगोपेन बालक । शायित शकटस्याधो बालपर्याङ्मुकात्ले ॥२०॥
 ते च गोपा महददृष्ट्वा पूतनाया कलैररम् । मृताया परम त्रास विस्मय च तदा ययु ॥२१॥

स्तन को पी लिया । स्तन को छोड़ देने पर अतिमयकरी पूतना के समस्त स्नायु-बन्धन छिन मिन्न हो गये और वह महान्घब्र करती हुई निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसने शब्द से समस्त व्रजवासी जाग पड़े और बड़ मयमीत हुए । उन्होंने गिरी हुई पूतना तथा उसकी गोद में कृष्ण को देखा । द्विजगण । तब अत्यन्त त्रस्त यशोदा ने कृष्ण को उठाकर उनके ऊपर गो-मुच्छ घुमाने आदि के द्वारा बाल-दोष का निराकरण किया । नन्दगोप ने भी कृष्ण के मस्तक पर गोबर रखकर यह बहते हुए रक्षा की ॥६१३॥

नन्द गोप बोले—समस्त भूतों के आदिकारण हरि तुम्हारी रक्षा करें । जिनकी नाभि से उत्पन्न कमल से जगत् की सृष्टि हुई और जिन्होंने बराह रूप बनाकर दष्टा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार कर सत्सार को धारण किया वे केशव तुम्हारी रक्षा कर । केशव तुम्हारे गुह्य स्थान की विष्णु जघाओं की और जनार्दन पैरों की रक्षा करें । वे वागमन तुम्हारी सदा रक्षा करें जा एक ही क्षण में तीन पगों में तीनों लोक को आजात कर चमकते हुए अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो गये थे । गोविन्द तुम्हारे शिर की केशव कण्ठ की और अप्रतिहत शक्ति वाले अविनाश नारायण मुख बाहू मन तथा समस्त इन्द्रियों की रक्षा करें । दिशाओं में वंकुण्ठ तथा विदिशाओं में मधुसूदन तुम्हारी रक्षा करें । आकाश में हृषिकेश और भूमि पर महीधर तुम्हारी रक्षा करें ॥१४१९॥

व्यास बोले—इस प्रकार रक्षा करके नन्दगोप ने बालक को गाड़ी के नीचे बच्चों के पङ्क पर मुला दिया । मृतक पूतना के महावाय को देखकर गोपगण परम त्रस्त तथा विस्मित हुए । किसी समय शकट के नीचे सोये मधु

यशोदोवाच

यदि शक्तोऽसि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टित

॥३६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा च निजकर्म सा चकार' कुटुम्बिनो । व्यग्रायामय तस्यां स कर्षमाणः उलूखलम् ॥३७॥
 यमलार्जुनयोर्मध्ये जगाम कमलेक्षणः । कर्षता वृक्षयोर्मध्ये त्रियंगेवमुलूखलम् ॥३८॥
 भग्नवस्तुङ्गशाखाप्रो तेन तो यमलार्जुनो । ततः कटकटाशब्दसमाकर्णनवातर ॥३९॥
 आजगाम व्रजजनो ददृशे च महाद्रुमो । भग्नस्वन्धो निपतितो भग्नशाखो महीतले ॥४०॥
 ददश चाल्पदन्तास्य स्मितहास च बालकम् । तयोमध्यगत बद्ध दाम्ना गाढ तयोदरे ॥४१॥
 ततश्च दामोदरता स ययौ दामवन्धनात् । गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमा ॥४२॥
 मन्त्रयामासु रुद्विग्ना महोत्पातातिभोरवः । स्थानेनेह न न कार्यं व्रजामोऽयन्महावनम् ॥४३॥
 उत्पाता बहवो ह्यप्र दृश्यन्ते नासाहेतवः । पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्ययः ॥४४॥
 बिना वातादिदोषेण द्रुमयो पतन तथा । वृन्दावनमित् स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ॥४५॥
 यावद्भूमिमहोत्पातदोषो नाभिभवेद्व्रजम् । इति कृत्वा भति सर्वे गमने ते व्रजोक्तः ॥४६॥
 ऊचुः स्व स्व कुल शीघ्र गम्यता मा विलम्ब्यताम् । ततः क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोधर्नस्तथा ॥४७॥

यशोदा बोली—नटखट । अब यदि तुझमें शक्ति है तो जा ॥३६॥

व्यास बोले—इतना बहुर कुटुम्ब वाली यशोदा अपने काम में लग गई। जब वह काय में व्यस्त हो गई तब ओखली को खींचते हुए कमललोचन कृष्ण यमलार्जुन (नाम से प्रसिद्ध दो वृक्षों) के मध्य में चले गये और वृक्षों के बीच ही ओखली को तिरछी करके खींचने लगे। इससे उत्तुंग शस्त्रा वाले दोनों यमलार्जुन टूट कर गिर पड़े। तदनन्तर उनकी घड़ों के बीच आवाज से सन्नत व्रजवासी वहाँ आये। उन्होंने देखा कि टूटे स्कंध तथा टूटी शाखा वाले दोनों वृक्ष भूमि पर गिरे पड़े हैं और अल्प दातों से युक्त मुँह वाला बालक मुसकर रहा है जो उन्हीं वृक्षों के बीच में सड़ा है और जिसके पेट में रस्सी से ओखली बँधी हुई है। उसी दिन से रस्सी से बँध जाने के कारण गगवान दामोदर कहलाने लगे ॥३७-४१॥ तब गोप आदि बृद्ध गोप महान उत्पात के डर से उद्विग्न होकर परस्पर परामर्श करने लगे—इस स्थान में अब हमें नहीं रहना चाहिये। दूसरे महावन में चलना चाहिए। क्योंकि बहुत-से नाग के कारण रूप उपद्रव यहाँ देखे जाते हैं। पूतना का विनाश गाड़ी का उलटना बिना आधी-नूफान के ही वृक्षों का गिरना आदि उपद्रव हो रहे हैं। इसलिये जब तक बड़-बड़ भौतिक उत्पात व्रज पर आक्रमण न कर उससे पहिले शत्रु ह्रा हम लोग इस स्थान से वृन्दावन को चले दें। इस प्रकार समस्त व्रजवासी जाने के लिए एकत्रिय करके अपने अपने परिवार से बहने लगे—शीघ्र तैयार हो जाओ विलम्ब मत करो। तत्पश्चात् क्षण में ही व्रजवासी शकट

१ख नितम्बिनो । २ख तयो । ३क ०पमुक्यास्तः । ४ख ०तिगडिकता । स्था० । ५ख दो गगवचोदभवः । ६० ।

यूथशो वत्सपालीश्च कालयन्तो व्रजौकसः^१ । सर्वावयवनिर्धूत क्षणमात्रेण तत्तदा ॥४८॥
 काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विजा । वृन्दावन भगवता कृष्णेनाविलष्टकर्मणा ॥४९॥
 शुभेन मनसा ध्यातं गवा वृद्धिमभीप्सता । ततस्तथातिरक्षेत्रपि घर्मकाले द्विजोत्तमा ॥५०॥
 प्रावृट्काल इवामृच्च नवशाप्य समन्ततः । स समावासित सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः ॥५१॥
 शकटोदाटपथेन्तचन्द्रार्धाकारसंस्थिति । वत्सबाली च सर्वतो रामदामोदरो ततः ॥५२॥
 तत्र स्थितौ तौ गोष्ठे चेरतुर्बालिलया । बहिपत्रकृतापीडो^२ वन्यपुष्पावतसकौ ॥५३॥
 गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनी । काकपक्षधरो बालो कुमारविष पावकी ॥५४॥
 हसन्तो च रमन्ती च चेरतुस्तन्महद्वनम् । ववचिद्धसन्तावन्योन्य श्रीडमानौ तथा परं ॥५५॥
 गोपपुत्रं सम वत्साश्चारयन्ती विचेरतु । कालेन गच्छता तौ तु सप्तवयं बभूवतु ॥५६॥
 सर्वस्य जगत पालो वत्सपालो महाव्रजे । प्रावृट्कालस्ततोऽप्रीव मेघोद्यस्थगिताम्बर ॥५७॥
 बभूव वारिधाराभिरैक्य कुर्धन्दिशामिव । प्ररूढनवपुष्पाढ्या^३ शकगोपवृता मही ॥५८॥
 यथा मारकते वाऽऽसीत्पदमरागविभूषिता । ऊहुरुन्मार्गंगामीनि निम्नगाम्भासि सर्वतः ॥५९॥

गोपन बछड आदि अपनी समस्त चीजों को लेकर विदा हो गये। द्विजगण^१ क्षणमात्र में व्रज मनुष्यबिहीन हो गया। वहा कोई चारों ओर छा गये। महाकर्मशाली भगवान् कृष्ण ने गौओं की वृद्धि करने का इच्छा से गुम मन से वृन्दावन का ध्यान किया। द्विजधण्डो^२ तदनंतर अत्यंत रूक्षा ग्रीष्म ऋतु में भी वहाँ वर्षा ऋतु का तरह नयी घास-पीव चारों तरफ उग गई। समस्त व्रजवासी वृन्दावन में सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥४२-५१॥ गाड़ी के माग पयन्त उन लोगों का आवास अथवा द्राकार-सा प्रतीत होता था। राम और कृष्ण बछड़ों को चराने जाते थे। गोष्ठ में रहकर वे दोनों बाल-लीला करते थे। वे भयूर-पक्ष के शिरोमूषण तथा वन्य पुष्पों के कणभूषण बनाते बसुरी बजाते चरवाहे की लाठी रखते और बालों का सिंगार करते थे। इस प्रकार दोनों अग्नि के समान तेजस्वा कुमार हँसते खेलते और महावन में विचरण करते थे। वही परस्पर हँसते कहीं दूसरों के साथ हँसते और कहीं गोप पुत्रों के साथ बछड़ों को चराते हुए विचरण करते थे। इस तरह समय बीतते हुए उन्हें सात वर्ष हो गये। जो समस्त ससार के पालक हैं वे महाव्रज में बछड़ों के पालक बने। तदनन्तर वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। आवागमन बादल छा गये। माना वे जलपारा से दिशाओं को एक करने लगे हो। नवीन पुष्पों तथा इन्द्रगोपों से आच्छादित होकर पृथ्वी इस तरह सुशोभित हो रही थी मानो वह मरुतमणि तथा पद्मरागमणि से विभूषित हो गई हो। नदी का जल उस प्रकार उल्लस होकर बहने लगा जैसे दुष्ट जनों का मन नया धन पाकर (उत्पथगामी हो जाता है) तब

१क ख ०स। द्रव्याव०। २क ख व्याप्त। ३ग ०त्र स्थानाप्लुतो। ४क गुञ्जाहारविभूषितो।

५क ०ताम्यासी मानावाद्यविशारदो। का०। ६क प्रभूतन०। ७क ख ०वशाप्याद्या।

मनासि दुर्विनीताना प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव । विकाले च यथाकाम व्रजमेत्य महाबली ॥
गोपे समाने सहितौ चिक्रीडान्तेऽमराविव ॥६०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे बालचरिते वृन्दावनप्रवेशवर्णन नाम
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८४॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालीयदमनारयानम्

व्यास उवाच

एकदा तु विना राम कृष्णो वृन्दावन गयो । विचचार वृतो गोपेर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वल ॥१॥
स जगामाय कालि-र्दौ लोलकल्लोलशालिनीम् । तीरसलग्नफनौघैर्हंसन्तीमिव सर्वत ॥२॥
तस्या चातिमहाभीम विषाग्निकणद्वयितम् । हृद कालीयनागस्य ददर्शातिविभोषिणम् ॥३॥
विषाग्निना विसरता दग्धतीरमहातरुम् । याताहताम्बुविक्षेपस्पर्शदग्धविहङ्गमम् ॥४॥

दोनों महाबली बालक स्वेच्छा से असमय में ही व्रज में आकर समवयस्क गोपों के साथ देवों की तरह खेलने लगे ॥५२ ६०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बाल चरित्र-वर्णन प्रसंग में वृन्दावनप्रवेश निरूपण
नामक एक सौ चौरास वां अध्याय समाप्त ॥१८४॥

अध्याय १८५

कालीय दमन का आख्यान

व्यास बोले—एक समय विना राम के ही कृष्ण वृन्दावन चले गये और वन्य पुण्डों की उ० बल माला पहन कर गोपों के साथ विचरण करने लगे। वे चञ्चल तरंगों से व्याप्त यमुना नदी में तट पर गये जो मानों तीर सलग्न फन-समूहों से हास्य करती-सी दीखती थी। उस में उन्होंने अग्न्य भयकर तथा विषाग्नि के कणों से दूषित कालीय नाग वा हृद (कुण्ड) देखा जो विषाग्नि से तट पर वे बक्षों को जला रहा था। उसके ऊपर से उड़ने

तमतीव महारौद्र मृत्युवक्त्रमिवापरम् । विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदन ॥५॥
 अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालीयोऽसौ विषायुध । यो मया निर्जितस्त्वक्त्वा दुष्टो नट पयोनिधौ ॥६॥
 तेनेय दूषिता सर्वा यमुना सागरगमा । न नरैर्गोधनैर्वाऽपि तृषातैरपभुज्यते ॥७॥
 तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया । नित्यव्रस्ता सुख येन चरेयुर्ब्रजवासिन ॥८॥
 एतदर्थं नृलोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृत । यदेवामृत्युस्थाना कार्या शास्तिर्दुरात्मनाम् ॥९॥
 तदेतन्नातिदूरस्य कदम्बमुरुशाखिनम् । अधिरुह्योत्पतिष्यामि ह्रदेऽस्मिञ्जीवनाशिन ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्थं विचिन्त्य बद्ध्वा च गाढ परिकरं तत । निपपात ह्रदे तत्र सर्पराजस्य वेगत ॥११॥
 तेनापि पतता तत्र क्षोभित स महाह्रद । अत्ययंदूरजाताश्च ताश्चासिञ्चन्महीरुहान् ॥१२॥
 तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्ताम्बुतपनोक्षिता । जञ्चलु पादपा सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तरा ॥१३॥
 आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रदं भुजं । तच्छब्दश्रवणाच्चाय नागराजोऽभ्युपागमत् ॥१४॥
 आताम्रनयन कोपाद्विषज्वालाकुलं फणं । वृत्तो महाविषं चान्यैरुणैरनिलाशने ॥१५॥
 नागपत्न्यश्च शतशो हारिहरोपशोभिता । प्रकम्पिततनूत्क्षेपचलत्कुण्डलाकृतय ॥१६॥

वाले पक्षियों को कही वायु के क्षोभ से जल के छोटे पड़ जाते तो उनकी मृत्यु हो जाती। उस महामयानक तथा मृत्यु-मुख के समान ह्रद को देखकर भगवान् मधुसूदन सोचने लगे— इसमें वह दुष्टात्मा तथा विषरूप अस्त्र वाला कालीय नाग रहता है जो दुष्ट मेरे द्वारा जीतकर छोड़ दिया जाने पर समुद्र में भाग गया था। उसने समुद्रगामिन यमुना को दूषित कर दिया है। मनुष्य या गोधन प्यासे होने पर भी इसका जल नहीं पीते हैं। इसलिये मुझ इस नाग राज को दण्ड देना चाहिये ताकि नित्य डरने वाले ब्रजवासी मुखपूर्वक विचरण कर सकें। इसलिये तो मैंने मृत्यु लोक में अवतार भी लिया है ताकि उत्पथगामी दुरात्माओं को दण्ड दे सकूँ। विपुल शालाओं से युक्त वह कदम्ब वृक्ष भी कोई दूर नहीं है। इसी पर चढ़कर जीवनाशी कालीय के ह्रद में कूद पड़ूँगा ॥११॥

व्यास बोले—एसा विचार कर के दृढ़ता से काष्ठ बाँधकर सपर्राज के ह्रद में वेग से कूद पड़। उनके गिरने से ह्रद में अत्यन्त क्षोभ पैदा हुआ जिससे अत्यन्त दूरस्थ वृक्षों के ऊपर भी जल के छोटे पड़ गये। दुष्ट विष रूपी ज्वाला से सतप्त जल के पड़ने से वृक्षों में सच इतनी ज्वाला धधक उठी कि चारों ओर ज्वाला ही ज्वाला दलने लगी। तब कृष्ण ने अपनी भुजाओं से नाग ह्रद में ताल ठोका या आघात किया। वह शब्द सुनते ही नागराज दौड़ पड़ा। क्रोध से आँख लाल कर विष की ज्वाला से व्याप्त फणाओं से कालीय ने कृष्ण को आ-आघात कर दिया। लाल रंग वाले तथा महाविष वाले दूसरे सर्पों ने भी कृष्ण को घेर लिया। वहाँ सैकड़ों मनोहर हरो से सुगन्धित नाग-मलियाँ थीं जिनके शरीर-वस्त्र होने से चञ्चल कुण्डलों की छटा देखते ही बनती थी। तब फणाओं

१ख सागराङ्गना। २क सपर्राजस्य। ३ग नित्यावस्था मु०। ४ग शान्ति०। ५ख स।
 ६ग ०हरदे गुजम्। त०। ७ख ०ता। यमु प्र०। ८ख ०मित्तास्तत्र च०। ९ख ०लजातय।

ततः प्रवेष्टितः सर्पः स कृष्णो भोगबन्धनैः । ददंशुश्चापि ते कृष्णं विपञ्चालाविलम्बुलैः ॥१७॥
त तत्र पतितं दृष्ट्वा नागभोगनिपीडितम् । गोपा व्रजमुपागत्य चुक्रुशुः शोकलालसाः ॥१८॥

गोपा ऊचुः

एष कृष्णो गतो मोहमग्नौ वै कालिये हृद्रे । भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥१९॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो गोपा वज्रपातोपमं वचः । गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्यशोदाप्रमुखाः हृदम् ॥२०॥
हा हा वृषासाविति जनो गोपीनामतिबिह्वलः । यशोदया समं चान्तो द्रुतः प्रस्खलितो ययौ ॥२१॥
नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः । त्वरितं यमुना जग्मुः कृष्णदर्शनलालसाः ॥२२॥
ददंशुश्चापि ते तत्र सर्पराजवशंगतम् । निष्प्रयत्नं कृतं कृष्णं सर्पभोगेन वेष्टितम् ॥२३॥
नन्दगोपश्च निश्चेष्टः पश्यन्पुत्रमुखं भृशम् । यशोदा च महाभागा द्रभूव मुनिसत्तमाः ॥२४॥
गोप्यस्त्वग्न्या रुदत्यश्च ददंशुः शोककातराः । प्रोचुश्च केशवं प्रीत्या भयकातरगद्गदम् ॥२५॥
सर्वा यशोदया सार्धं विशाभोऽत्र महाहृद्रे । नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे ॥२६॥
दिवस को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा । विना दुग्धेन का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥
विना कृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ॥२७॥

से कृष्ण को वेष्टित कर सर्पगण विप की प्वाला से व्याप्त मुखो से उन्हे काटने भी लगे । नाग की कणाओ से पीडित कृष्ण को देखकर गोप शोकबिह्वल हो व्रज आकर आक्रोश करने लगे ॥११-१८॥

गोप बोले—कालिय नाग के हृद मे कृष्ण मोहवश चले गये । सर्पराज उन्हे खा रहा है । इसलिये जल्दी आओ ॥१९॥

व्यास बोले—तदुपरान्त वज्रपात के सदृश ध्वन सुनकर गोप तथा यशोदा आदि गोपियाँ दौडते ही वहाँ गईं । गोपियाँ अत्यन्त शोकातुर होकर रोने लगी— हाय ! हाय , कहीं कृष्ण पडे है ।' नन्दगोप यशोदा के साथ गिरते-पडते जल्दी जल्दी वहाँ पहुँचे । अन्य गोप तथा अद्भुत पराशमी राम भी कृष्ण-दर्शन की लालसा, से बीघ्न ही यमुना के किनारे पहुँच गए । उन लोगो ने देखा—'कृष्ण सर्पराज के पश मे आ गये हैं । अपनी पणाओ से वेष्टित करके उसने कृष्ण को निश्चेष्ट बना दिया है ।' पुत्र के मुख को देखते ही नन्दगोप भी अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये । मुनिधेष्ठो ! यशोदा की भी वही दशा हुई । अन्य गोपियाँ शोक से कातर हो रोने लगी और नय से बिह्वल होकर कृष्ण से प्रेमपूर्वक कहने लगी—'यशोदा सहित हम सब नागराज के महाहृद मे प्रवेश करत है । यो व्रज मे जाना हम लोगो के लिये उचित नहीं । जैसे विना सूर्य के दिन, विना चन्द्रमा के रात और विना दूध के गाव कुत्तिन है, उसी तरह विना कृष्ण के व्रज निन्द है । विना कृष्ण के हम गोकुल नहीं जायेंगे ॥२०-२७॥

व्यास उवाच

इति गोपीवचः श्रुत्वा रोहिण्यो महाबलः । उवाच गोपान्विधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणः ॥२८॥
नन्द च दीनमत्ययं न्यस्तदृष्टि सुतानने । मूर्च्छाकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसंज्ञया ॥२९॥

वलराम उवाच

किमयं देवदेवेश भावोऽयं मानुषस्त्वया । व्यज्यते स्वं तमात्मानं किमन्यं त्व न वेत्ति यत् ॥३०॥
त्वमस्य जगते नाभिः सुराणामेव चाऽऽश्रयः । कर्ताऽपि हर्ता पाता च त्रिलोक्यं त्वं त्रयोमयः ॥३१॥
अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि धान्धवाः । गोप्यश्च सीदतः कस्मात्त्वं बन्धून्समुपेक्षसे ॥३२॥
दर्शितो मानुषो भावो दर्शित बालचेष्टितम् । तदयं दम्पता कृष्ण दुरात्मा दशनायुधः ॥३३॥

व्यास उवाच

इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिन्नोष्ठसंपुटः । आस्फाल्य मोचयामास स्वं देह भोगबन्धनात् ॥३४॥
आनाम्य चापि हस्ताभ्यामुभ्याम् मध्यमं फणम् । आरुह्य भुग्नशिरसः प्रनततोऽह्विक्रमः ॥३५॥
व्रणाः फणेऽभवस्तस्य कृष्णस्याद्विधिविकृन्तैः । यत्रोन्नतिं च कुरुते ननामास्य ततः शिरः ॥३६॥
मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नागः कृष्णस्य कृन्तैः । दण्डपातनिपातेन वचाम रुधिर बहु ॥३७॥
तं निर्भुग्नशिरोप्रोवमास्यप्रक्षुतशोणितम् । विलोक्य शरणं जग्मुस्तत्पत्न्यो मधुसूदनम् ॥३८॥

व्यास बोले—गोपियो का वचन सुनकर महाबलशाली तथा निनिमेष नेत्रा से देखने वाले राम ने दुःखी गोपी को, पुत्र के मुख पर दृष्टि गड़ाये अत्यन्त दीन नन्द को तथा मूर्च्छा से आकुल यशोदा को देखकर कृष्ण के माहात्म्य की ओर सचेत बरके कहा ॥२८-२९॥

वलराम बोले—देवदेवेश ! क्या आप यह मनुष्य-नाव प्रवृत्त कर रहे हैं ? क्या आप अपनी उस दूसरी आत्मा को नहीं जानते हैं। आप त्रिलोक्य के कर्ता, हर्ता तथा रक्षक हैं। आप वेदमय हैं। कृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण हुए हम दोनों के गोप-गोपियाँ ही बन्धु हैं। संदिग्ध होते हुए बन्धुओं की क्यों आप उपेक्षा कर रहे हैं ? आपने मनुष्य-नाव दिखला दिया। बाल चेष्टायें भी दिखला दी। कृष्ण ! अब इस दुरात्मा सर्प का दमन कीजिए ॥३०-३३॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्मरण दिलाने पर मुस्कराते हुए कृष्ण ने फणाओं को तोड़कर तद्रूप बन्धन से अपने शरीर को मुक्त कर दिया। (दोनों हाथों से बीच की फणाओं को शूरा कर टूटे हुए शिर पर चढ़कर महापराक्रमी कृष्ण नाचने लगे।) कृष्ण के चरणप्रहार से सर्प की फणा म धाव हो गये। जहाँ वह शिर उगाता वही पर मगबल कुचल देते। कृष्ण के कुचलने से नाग अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। दण्डप्रहार से वह शोणित बमन करने लगा। भग्न-शिर तथा ग्रीवा से युक्त और शोणित से लथ-थथ वालीय को देखकर नाग-पत्नियाँ मधुसूदन की शरण में गईं ॥३४-३८॥

१ख ०क्षणान् । न० । २क ०तो योनिश्चराणामपि सध० । ३क. त्रैलोक्ये । ४ख गं आस्फोट्य ।
५ख ग ०ह्य मज्ज० । ६ग रेचकै ।

नागपत्न्य ऊचुः

जातोऽसि देवदेवेश सर्वेशस्त्वमनुत्तम । पर ज्योतिरचिन्त्य यत्तदंशः परमेश्वरः ॥३९॥
न समर्थाः सुर स्तोतु यमनग्यभव प्रभुम् । स्वरूपवर्णनं तस्य कथं योषित्करिष्यति ॥४०॥
यस्याखिलमहोष्णमजलाग्निपवनात्मकम् । ब्रह्माण्डमल्पकांशांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम् ॥४१॥
ततः कुरु जगत्स्वामिन् प्रसादमवसीदत । प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम् ॥४२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते ताभिराश्वास्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः । प्रसीद देवदेवेति प्राह वाक्यं शनैः शनैः ॥४३॥

कालीय उवाच

तथाष्टगुणमंश्वर्यं नाथ स्वाभाविक परम् । निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किन्त्वहम् ॥४४॥
एव परस्व परस्याऽऽद्यः पर त्व तत्परात्मकम् । परस्मात्परमो यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्त्वहम् ॥४५॥
यथाऽहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वरः । स्वभावेन च संपुक्तस्तयेदं चेष्टितं मया ॥४६॥
यद्यन्यथा प्रवर्तय देवदेव ततो मयि । न्याय्यो दण्डनिपातस्ते तवैव वचनं यथा ॥४७॥
तथाऽपि य जगत्स्वामी दण्डं पातितवान्मयि । स सोढोऽयं वरो दण्डस्त्वत्तो नान्योऽस्तु मे वरः ॥४८॥
हृतवीर्यो हृतविरो दमितोऽहं त्वयाऽच्युत । जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि हिम् ॥४९॥

नाग-पत्नियों बोलीं—देवदेवा ! हमने आपको पहिचान लिया । आप सबसे स्वामी तथा सबसे उत्तम हैं । परम ज्योति तथा अचिन्त्य रूप जो है, ये भी आप ही के अंश हैं । आप परमेश्वर हैं । जिन स्वतः उत्पन्न होने वाले प्रभु की स्तुति करने में देवता भी समर्थ नहीं होते हैं, उनका स्वरूप-वर्णन मला रानी कैसे करेगी ? पृथ्वी, आकाश, जल अग्नि तथा वायु रूप अखिल ब्रह्माण्ड जिनके अलग अलग अंश हैं, उनकी स्तुति हम कैसे करेंगी ? इसलिए, जगन्नाथ ! हम दुर्गियों पर कृपा कीजिये । नाग प्राणत्याग कर रहा है । स्वामि भिक्षा हमें दीजिये ॥३९-४२॥

व्यास बोले—स्तुति के बाद यद्यपि सब का शरीर तिरछ था, तो भी उनमें धीरे-धीरे कहा—‘देवदेव ! प्रसन्न ह्रादये ।’ ॥४३॥

कालीय बोला—नाथ ! आठ प्रकार के ऐश्वर्य आपने स्वामाविक गुण हैं । आप अनिर्वचनीय हैं । आपकी मैं क्या स्तुति करूँगी ? आपने जैगी जाति, जैगा रूप और जैगा स्वभाव देकर मेरी सृष्टि की बैगा ही मैंने व्यवहार किया । देवदेव ! यदि मैं बुरा व्यवहार करूँ तो आप मुझे उधिन दण्ड दें । यह तो आपका कथन ही है । जगत्स्वामी ने मुझे आ दण्ड दिया, उमरा मैंने गहून किया । मेरे लिये आपसे बड़कर दूसरा कौन थोड़ा है ? अच्युत ! आपने मेरा दमन किया । मैं हतबल तथा हतवि हो गया । आप मुझे वैचय जीवन प्रदान करें । आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ॥४४-४९॥

१४ ७४ वृत्ता नाथ प्रभा० । २४ ०प्रसीद न भव । प्र० । ३९ ०की जानना तय । ४९ ०वाक्य ।

श्रीभगवानुवाच

नात्र स्येष त्वया सर्पं कदाचिद्यमुनाजले । 'सभृत्यपरिवारस्त्व समुद्रसलिलं ब्रज ॥५०॥
मत्पदानि च ते सर्पं दृष्ट्वा मूर्धनि 'सागरे । गरुडं पतंगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥५१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सर्पराजान् मुमोच भगवान्हरिः । प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसानिधिम ॥५२॥
पश्यता सर्वभूतानां सभृत्यापत्यवान्धव । समस्तभार्यासहितं परित्यज्य स्वकं हृदम् ॥५३॥
गन् सर्वे परिष्वज्य मृतं पुनरिवाऽऽगतम् । गोपा मूर्धनि गोविन्दं सिपिचुर्नैत्रजंजलं ॥५४॥
कृष्णमविलष्टकर्माणमन्ये विस्मितचेतसः । तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा 'शिवजला नदीम् ॥५५॥
गीयमानोऽथ गोपीभिश्चरितंश्चाश्चेष्टितं । सस्तूयमानो गोपालं 'कृष्णो ब्रजमुपागमत ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कालीयदमननिरूपणं नाम
पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

श्री भगवान् बोले—सप ! तुम यहा यमुना जल मे कमा भी मत ठहरो । अपने नौकर तथा परिवार सहित तुम समुद्र के जल मे चले जाओ । सप ! समुद्र मे तुम्हारे मस्तक पर मेरे पदचिह्नों को देखकर गरुड तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करेगा ॥५० ५१॥

व्यास बोले—सपराज से इतना कहकर भगवान् हरि ने उसे छोड़ दिया । वह भी कृष्ण को प्रणाम कर समस्त भूता के देखते ही देखते अपने नौकर वच्चे बंधु तथा अस्त्र पत्नियो समेत अपने हृद को छोड़कर समुद्र मे चला गया । सप के चले जाने पर गोपी ने भरबर पुन लौट आये की तरह कृष्ण वा आलिंगन कर नेत्रजल से उनके मस्तक को भिगो दिया । दूसरे गोप नदी के जल को निदुष्ट देखकर आश्चर्यचकित हो हृष से महापराक्रमी कृष्ण की स्तुति करने लगे । गोपियाँ उनसे सुन्दर चरित्रा का गान करने लगी और गोपाल उनकी प्रशंसा करने लगे । इस प्रकार कृष्ण ब्रज मे आये ॥५२ ५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बालचरित्रवर्णन प्रसंग मे कालीयदमन निरूपण नामक
एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८५॥

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धेनुकवधाख्यानम्

व्यास उवाच

गाः पालयन्ती च पुनः सहितौ^१ रामकेशवौ । अममाणौ वने तत्र रम्यं तालवनं गतौ ॥१॥
तच्च तालवनं नित्यं धेनुको नाम दानवः । नृगोमांसकृताहारः सदाऽध्यास्ते खराकृतिः ॥२॥
तत्र तालवनं रम्यं फलसम्पत्समन्वितम् । दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलदानेऽद्भुतवचः ॥३॥

गोपा ऊचुः

हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैव रक्ष्यते । भूप्रदेशो^२ यतस्तस्मात्त्यक्तानोमानि सन्ति वै ॥४॥
फलानि पश्य तालानां गन्धमोदयुतानि वै । वयमेतान्यभीप्तामः पात्यन्तां यदि रोचते ॥५॥
इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा संकर्षणो वचः । कृष्णश्च पातयामास भुवि तालफलानि वै ॥६॥
तालानां पतता शब्दमाकर्ण्यसुरराट् ततः । आजगाम स दुष्टात्मा कोपाहृतैयगर्दभः ॥७॥
पद्भ्यामुभयभ्यां स तदा पश्चिमाम्यां च तं बली । जघानोरसि ताम्यां च स च तेनाप्यगृह्यत ॥८॥
गृहीत्वा ग्रामणेनैव चाम्बरे गतजीवितम् । तस्मिन्नेव प्रचिक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९॥

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

व्यास बोले—गुन राम और कृष्ण एक साथ वन में गौओं को चराते हुए इधर-उधर घूमते हुए एक रमणीय तालवन में प्रविष्ट हो गए । उस तालवन का रक्षक धेनुक नामक दानव था । जो मनुष्यों तथा गौओं के मांस का भोजन करता था । फलस्वरूप उस रमणीय तालवन को देखकर गोपों को फल लेने की इच्छा हुई । तब उन्होंने यह वचन कहा ॥१-३॥

गोप बोले—हे राम ! हे कृष्ण ! इस भूमि-प्रदेश की रक्षा धेनुक करता है । इसलिए ये फल लोगो से परित्यक्त हैं । तुम इन सुगन्धित तालपत्रों को देखो । हमें ये चाहिए । यदि तुम्हें पसन्द आए तो इन्हें तोड़ दो । गोप-ब्राह्मणों का यह वचन सुनकर बलराम तथा कृष्ण ने भूमि पर तालपत्रों को गिरा दिया । गिरते हुए पत्रों का शब्द सुनकर गर्दभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य गोप से वहाँ आ पहुँचा । उस बलवान् ने अपने पिछले दोनों पैरों से राम की छाती पर मारा, पर उन्होंने उरावी टाँचें पकड़ कर घुमाते घुमाते आवाज में ही उसे निष्प्राण कर दिया और उसी क्षण वेग से तालपत्रों में उपर फेंक दिया । ताल के ऊपर से गिरते हुए उस गधे ने अनेकों पत्तों

ततः फलान्यनेकानि तालाग्रान्निपतन्धरः । पृथिव्यां पातयामास महाबातोऽम्बुदानिव ॥१०॥
 अन्यानप्यस्य धं ज्ञातीनागतान्दैत्यगर्दभान् । कृष्णदिचक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया ॥११॥
 क्षणेनालंकृता पृथ्वी पक्वस्तालफलंस्तदा । दैत्यगर्दभदेहंश्च मुनयः शुशुभेऽधिकम् ॥१२॥
 ततो गावो निरावाधास्तस्मिस्तालवने द्विजाः । नवशर्पं सुखं चैर्यत्र भुक्तमभूत्पुरा ॥१३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते धेनुकवधवर्णनं नाम
 षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामकृष्णकृतबहुविधलीलावर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्नासभदैतेये सानुजे विनिपातिते । सर्वगोपालगोपीनां रम्यं तालवनं बभौ ॥१॥
 ततस्ती जातहर्षो तु वसुदेवसुताबुभौ । शुशुभाते महात्मानो बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥२॥

को उसी तरह पृथ्वी पर गिरा दिया, जैसे आँधी वादलो को छित्त-मिन्न कर देती है। वहाँ आये हुए गर्दभरूपधारी अन्य दैत्यो को भी, जो धेनुक के भाई-बन्धु थे, कृष्ण तथा बलभद्र ने सहज ही में तालवृक्ष के ऊपर फेंक दिया। मुनिगण ! क्षण भर में पृथ्वी पक्व तालफलो से अलङ्कृत हो गई तथा गर्दभरूपधारी दैत्यो की देहों से वह विशेष रूप से शोभित हुई। द्विजवृन्द ! तब से उस तालवन में गायें निर्वाणपूर्वक नवीन घासों को सुख से चरने लगीं, जहाँ वे पहले खाती थीं ॥४-१३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित-कथन प्रसंग में धेनुक-वर्णन नामक
 एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८६॥

अध्याय १८७

राम और कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन

व्यास बोले—बभ्रुवर्गसहित उस राक्षस के विनष्ट हो जाने पर समस्त गोप-गोपियों के लिये तालवन रमणीय स्थान बन गया। तदनन्तर वसुदेव के दोनों महात्मा पुत्र हर्ष से उसी तरह मुगोभित हुए, जैसे नये सींग

चारयन्ती च गा दूरे व्याहरन्ती च नामभिः । नियोगपाशस्कन्धौ तौ वनमालाविभूषितौ ॥३॥
 सुवर्णज्जनचूर्णम्या तदा तौ भूषिताम्बरी । महेंद्रायुधसंकाशी श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥४॥
 चेरतुर्लोकसिद्धाभिः श्रीडाभिरितरेतरम् । समस्तलोकनाथानां नाथभूतौ भुवं गतौ ॥५॥
 मनुष्यधर्माभिरतौ मानयन्तौ मनुष्यताम् । तज्जातिगुणयुक्ताभिः श्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥६॥
 ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च निपुण्ड्रैश्च महाबली । व्यायामं चक्रुस्तत्र क्षेपणीयंस्तथाऽश्मभिः ॥७॥
 तल्लिप्सुरसुरस्तत्र उभयो रममाणयोः । आजगाम प्रलम्बाख्यो गोपवेपतिरोहितः ॥८॥
 सोऽवगाहत निःशङ्कं तेषां मध्यममानुषः । मानुषं रूपमास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥९॥
 तयोश्छिद्रान्तरप्रेप्सुरतिशोघममन्यत । कृष्णं ततो रोहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥१०॥
 हरिणा श्रीडन नाम बालश्रीडनकं ततः । प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पन्नम् ॥११॥
 श्रीदाम्ना सह गोविन्द प्रलम्बेन तथा बलः । गोपालरपरैश्चान्ये गोपालाः सह पुप्लुषुः ॥१२॥
 श्रीदामान् ततः कृष्ण प्रलम्बं रोहिणोसुतः । जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्यैः पराजिताः ॥१३॥
 ते बाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डीरस्कन्धमेरुध्वं । पुनर्निवृत्तास्ते सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ॥१४॥
 संकर्षणं तु स्कन्धेन शोघमुत्क्षिप्य दानवः । न तस्यौ प्रजगामैव सचन्द्र इव वारिदः ॥१५॥
 अशक्तो बहने तस्य संरम्भादानवोत्तमः । बध्ने सुमहाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥१६॥

वाले बछड़े । वनमाला से विभूषित तथा कंधे पर हाँकने की रस्सी रखे हुए कृष्ण एवम् राम गोओं को दूर ले जाकर चराते थे तथा उनके नामा से पुकारते थे । सुवर्ण तथा अञ्जनचूर्ण से भूषित बस्त्रधारी, (अर्थात् पीताम्बर और नीलाम्बर), इन्द्रधनुष के तुल्य और बादल की तरह श्वेत एवम् कृष्ण दोनों माई परस्पर लोक-प्रसिद्ध श्रीडाभा से खेल करते थे । समस्त लोकनाथों के नाथ तथा महाबली कृष्ण-राम पृथ्वी पर आकर मनुष्य-धर्म-निरत होकर मनुष्यत्व का परिचय देने हुए मनुष्य जाति के अनुरूप ही बन से प्रीडा करते थे । वे हिडोले पर झूलते, मुद्द करते और पेंचने योग्य पत्थर के टुकड़ा से व्यायाम करते थे । (एक दिन) खेल करते हुए कृष्ण और राम से बदन्य लेने की इच्छा से प्रलम्ब नामक असुर गोप-वेश में अपने को छिपाकर वहाँ उपस्थित हुआ । वह उन दाना का छिद्रान्वेषण करने लगा । अत्यन्त शीघ्र ही उसे अवसर मी मालूम हो गया । तब वह कृष्ण और बलमद को मार देने की कामना करने लगा ॥१-१०॥ हरि ने बालश्रीडनक नामक खेल आरम्भ किया । उगमें दो-दो बालक एक ही वार दौड़ने लगे । श्रीदामा के साथ गोविन्द, प्रलम्ब के साथ बजराम और अन्य गोपालों के साथ दूसरे गागात्र दौड़ने लगे । कृष्ण ने श्रीदामा को और बलमद ने प्रलम्ब को जीत लिया । कृष्ण ने पक्ष के गोपाला में अन्य गागात्रों को जीत लिया । पराजित पक्ष वाले विजयी पक्ष वालों को कन्ये पर दोतर नियत बटवूश तक ले जाते थे और पुन लौट आते थे । उग समय दीव्य वज्रराम को पूर्ण से कन्ये पर उड़ाकर उनी तरह भागने लगा जैने चन्द्रमा के साथ बादल । बलमद ने मार के कारण जब वह बहने करने में अगम्य हुआ तब उगने वर्णाश्रुतु में बाध की तरह अपने शरीर को बहुत बिलगुन कर दिया । जले पर्वत

सकपणस्तु त दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम् । स्रग्दामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तकम् ॥१७॥
रोद्र शकटचक्राक्ष 'पादन्यासचलत्क्षितिम् । ह्रियमाणस्तत कृष्णमिद वचनमब्रवीत् ॥१८॥

बलराम उवाच

कृष्ण कृष्ण ह्रिये त्वेय पर्वतोदग्रमूर्तिना । केनापि पश्य दंत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ॥१९॥
यदत्र साप्रत कार्यं मया मधुनिषूदन । तत्कथ्यता प्रयात्येय दुरात्माऽतित्वरान्वित ॥२०॥

व्यास उवाच

तमाह राम गोविन्द स्मितभिन्नोष्ठसपुट । महात्मा रीहिण्यस्य बलवीर्यप्रमाणवित् ॥२१॥

कृष्ण उवाच

किमय मानुषो भावो व्यक्तमेवावलम्ब्यते । सर्वात्मन्सर्वगुह्याना गुह्याद्गुह्यात्मना त्वया ॥२२॥
स्मरान्नोपजगदीश कारण कारणाग्रज । आत्मानमेक तद्वच्च जगत्प्रेकार्णवे च य ॥२३॥
भवानह च विश्वात्मन्नेकमेव हि कारणम् । जगतोऽस्य जगत्पथे भवेनाऽऽवा व्यवस्थितौ ॥२४॥
तत्स्मर्यताममेयात्मस्तवयाऽऽत्मा जहि दानवम् । मानुष्यमेवमालम्ब्य बन्धूना क्रियता हितम् ॥२५॥

व्यास उवाच

इति सस्मारितो विप्रा कृष्णेन सुमहात्मना । विहस्य षोडश्यामास प्रलम्ब बलवान्बल ॥२६॥
मुष्टिना चाहनन्मूर्ध्नि कोपसरक्तलोचन । तेन चास्य प्रहारेण दहियर्ति विलोचने ॥२७॥

के समान आहुति वाले पुष्पमाँगा तथा अभयपणा से युक्त मस्तक पर मुकुट धारण किये भयकर गाड़ी के चक्र के समान नेत्र वाले और पाद प्रक्षप से पृथ्वा को कँपाने वाले उस दानव को देखकर अपहृत किय जाते हुए बलराम ने दृष्ट्य से कहा ॥११ १८॥

बलराम बोले—कृष्ण ! गोपालवेशधारी किसी पर्वताकार दानव के द्वारा मैं अपहृत किया जा रहा हूँ । मधुसूदन ! इस समय मुझ क्या करना चाहिये ? कहिये । यह दुरात्मा तेजी से भाग रहा है ॥१९ २०॥

व्यास बोले—यन्मद्र क पराक्रम की इच्छा को जानने वाले महात्मा गोविन्द ने मुस्करा कर उनसे कहा ॥२१॥

कृष्ण बोले—अखिलात्मन् ! गुप्त से भी गुप्त को समझने वाले ! आप क्या इस स्पष्ट मनव्य नाव का अवलम्बन कर रहे हैं ? सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ! एक आत्मा का स्मरण कीजिये । किसी निमित्त से अप्रज होने वाले धारण का स्मरण कीजिये । विश्वात्मन् ! जगत् के एकाग्र होने से भी हम और आप एक ही कारण हैं । सत्त्व के लिये ही हम दोनों भिन्नतया अवस्थित होते हैं । अप्रमेयात्मन् ! इसलिये आत्मा का स्मरण कीजिये । दानव का नाश कीजिये । इस प्रकार मनुष्य का अवलम्बन कर बन्धुओं का हित कीजिये ॥२२ २५॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द ! महात्मा कृष्ण के इस प्रकार स्मरण दिलाने पर बलवान् बलराम हँसकर प्रलम्ब को पीटा देने लगे । क्रोध से आँखें लाल कर उन्होंने मुट्ठी से उसके मस्तक पर दे मारा । इस प्रहार से उसकी आँखें

स निष्कासितमस्तिष्को मूखाच्छोणितमुद्धमन् । निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्योममार च ॥२८॥
 प्रलम्ब निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा । प्रहृष्टास्तुष्टुवुर्गोपा साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२९॥
 सस्तूयमानो 'रामस्तु गोपदैत्ये निपातिते । प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययौ ॥३०॥

व्यास उवाच

तयोर्विहरतोरेव रामकेशवयोर्व्रजे । प्रावृड्ध्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥३१॥
 विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागते व्रजम् । 'ददर्शेन्द्रोत्सवारम्भप्रवृत्तान्न्रजवासिन ॥३२॥
 कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान् । कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धान्महामतिः ॥३३॥

कृष्ण उवाच

कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्षं आगत' । प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ॥३४॥

नन्द उवाच

मेघाना 'पयसामोशो देवराज शतक्रतुः । येन संचोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बुमयं रसम् ॥३५॥
 तद्वृष्टिजनित सस्य वयमन्ये च देहिन । वर्तयामोपभुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥३६॥
 क्षीरवत्य इमा गावो धत्सवत्यश्च निवृत्ता' । तेन संवर्धितैः सस्यैः पुष्टास्तुष्टा भवन्ति यैः ॥३७॥
 नासस्या नामृणा भूमिर्न बुभुक्षादितो जन । दृश्यते यत्र दृश्यन्ते दृष्टिमन्तो दत्ताहवा' ॥३८॥

निक्कल गई गिर टूट गया और मुख से शोणित बहने लगा । इस प्रकार वह दामव श्रेष्ठ पृथ्वी पर गिर कर मर गया ।
 अद्भुत-बर्म-बारी बलमद द्वारा प्रलम्ब के मारे जाने पर गोपगण 'ठीक ठीक' कहते हुए अपनी प्रशंसा करने लगे ।
 प्रलम्ब के गिर जाने पर गोपो द्वारा स्तुत होते हुए बलराम कृष्ण के साथ पुनः गोकुल आ गये ॥२९-३०॥

व्यास बोले—व्रज में राम और केशव के इस प्रकार विहार करते हुए वर्षा ऋतु धीत गई और शरद ऋतु प्रारम्भ हुआ निर्मल आवास में तारे सुबोमित होने लगे । व्रजवासी इन्द्रपूजा की तैयारी में लग गये । उत्सव मनाने की लालसा से दोड़-धूप करते हुए गोपो की देखकर महाबुद्धिमान् कृष्ण ने उत्सुकतापूर्वक बृद्धों से पूछा ॥३१-३३॥

कृष्ण बोले—इन्द्र कौन है जिससे आप लोगो को इतना हर्ष हो रहा है । इस प्रकार पूछते हुए कृष्ण से नन्दगोप अत्यन्त आदरपूर्वक बहने लगे ॥३४॥

नन्द बोले—देवराज इन्द्र मेघा के स्वामी हैं । उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जन्ममय रस वृष्टि करते हैं । उसी वृष्टि से अन्न पैदा होता है, जिसे सावर हम तथा दूसरे प्राणी जीते हैं और देवताओं को तृप्त करते हैं । उसी अन्न से गायें हृष्ट-पुष्ट होकर दूध तथा बछड़े देती हैं । जहाँ मेघ धरसते हैं, वहाँ भूमि सस्यसम्पन्न होती है, ऋषण नहीं लेने पड़ते और प्राणी भूखा नहीं मरते हैं । बादल पृथ्वी पर के जल को सूर्य की विरणों द्वारा खींच लेते हैं और

भौममेतत्पयो गोभिर्धत्ते सूर्यस्य वारिदः । पर्जन्यः सर्वलोकस्य भवाय भुवि धर्यति ॥३९॥
तस्मात्प्रावृषि राजानः शक्रं सर्वे मुदान्विताः । महे सुरेशमर्षन्ति वयमन्ये च देहिनः ॥४०॥

व्यास उवाच

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्थं शक्रपूजने । कोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥४१॥

कृष्ण उवाच

न वयं कृषिकर्तारो वणिज्याजीविनो न च । गावोऽस्मद्देवता तात वयं वनचरा यतः ॥४२॥
आन्वीक्षिकी त्रयी ।वार्ता दण्डनोतिस्तथाऽपरा । विद्याचतुष्टयं त्वेतादृशमत्र शृणुष्व मे ॥४३॥
कृषिर्धनिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनम् । विद्या ह्येता (पा) महाभागा वार्ता वृत्तित्रयाश्रया ॥४४॥
कर्षकाणां कृषिवृत्तिः पण्यं तु पणजीविनाम् । अस्माक गाः परा वृत्तिवार्ता भेदेरियं त्रिभिः ॥४५॥
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा देवता महत् । सैव पूज्याऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिका ॥४६॥
योज्यस्याः फलमश्नन्त्वं पूजयत्यपरा नरः । इह च प्रेत्य चंवासी तात नाऽऽप्नोति शोभनम् ॥४७॥
पूज्यन्ता प्रथिताः सीमाः^१ सीमान्तं च पुनर्वनम् । वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं परा गतिः ॥४८॥
गिरियज्ञस्तव्यं तस्माद्गोयज्ञश्च प्रवर्त्यताम् । किमस्माकं महेन्द्रेण गावः शैलाश्च देवताः ॥४९॥
मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीरयज्ञाश्च कर्षकाः । गिरिगोयज्ञशैलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः^२ ॥५०॥

समस्त लोक के हित के लिये पुन भूमि पर वरस देते हैं । इसलिये वर्षाऋतु मे (?) समस्त नृपगण, हम तथा दूसरे लोग भी हर्षपूर्वक इन्द्र की पूजा करते हैं । ॥३५-४०॥

व्यास बोले—शक्रपूजन के बारे मे नन्द का यह वचन सुनकर इन्द्र को कुपित करने के लिये दामोदर ने कहा ॥४१॥

कृष्ण बोले—तात ! हम न तो कृषक हैं न व्यापारी ही । हम लोग वनवासी हैं । इसलिए गोएँ हमारी देवता हैं । चार प्रकार की विधायें होती हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति । इनमे वार्ता के विषय मे मुझसे सुनिये । वृषि, व्यापार और पशुपालन—इन्हीं तीन वृत्तियों के आश्रित वार्ता मानी जाती है । किसानों की वृत्ति खेती, बनियों की व्यापार और हमारी पशुपालन वृत्ति ही कही गई है । वार्ता के यही तीन भेद हैं । जो जिस विधा से युक्त है, उसका वही देवता है । उसी की पूजा करनी चाहिए । वही उसका उपकार करता है । तात ! जो मनुष्य पद प्राप्त करता है किसी देवता से और पूजा करता है किसी और की, उसका इस लोक मे तथा परलोक मे कल्याण नहीं होता है । हम लोग विस्तृत सीमाओं की पूजा करें, फिर सीमान्त वन की और वनान्त पर्वतों की पूजा करें । समस्त पर्वत ही हमारे रक्षक हैं । इसलिये पर्वतयज्ञ और गोयज्ञ हम लोग आरम्भ करें । हमे इन्द्र से क्या प्रयोजन ? हमारे देवता तो गायें तथा पर्वत है । ब्राह्मणों को मन्त्रयज्ञ, किसानों को हलयज्ञ और हम वनवासियों को पर्वतों तथा

तस्माद्गोवर्धनः शैलो भवद्भिविविधारुहं । अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यं पशुं हत्वा विधानतः ॥५१॥
 सर्वघोषस्य संदोहा गृह्यन्तं माविचार्यताम् । भोज्यन्तातेन वै विप्रास्तथाऽन्ये चापि वाञ्छकाः ॥५२॥
 तमर्चितं कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु । शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥५३॥
 एतन्मम मतं गोपाः संप्रीत्या क्रियते यदि । ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥५४॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते ब्रजौकसः । प्रीत्युत्फुल्लमुखा विप्राः साधु साध्वित्यथान्ववन् ॥५५॥
 शोभनं ते मत वत्स तदेतद्भूवतोदितम् । तत्करिष्याम्यहं सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥५६॥
 तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञ ब्रजौकसः । दधिपायसमांसाद्यैर्दुदुः शैलवर्लि ततः ॥५७॥
 द्विजाश्च भोजयामासुः शतशोऽय सहस्रशः । गावः शैलं ततश्चक्रुरर्चितास्तं प्रदक्षिणम् ॥५८॥
 वृषभाश्चाभिनन्दन्तः सतोया जलदा इव । गिरिमूर्धनि गोविन्दः शैलोऽहमिति मूर्तिमान् ॥५९॥
 वृभुजोऽन्न बहुविध गोपवर्षाहतं द्विजाः । कृष्णस्तेनैव रूपेण गोपैः सह गिरेः शिरः ॥६०॥
 अधिरह्यार्चयामास द्वितीयामात्मनस्तनुम् । अन्तर्धानं कृते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा ततो वरान् ॥
 कृत्वा गिरिमह गोष्ठं निजमभ्यापयुः पुनः ॥६१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोवर्धनगिरियज्ञप्रवर्तनं नाम

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

गौत्रा का यज्ञ करना चाहिए। इसलिये आप लोग विधानपूर्वक पवित्र पशु की बलि देकर गोवर्धन पर्वत की विविध पूजा कीजिये। सब गांव वालों को सूचना दे दीजिये। अब इसमें सोचिये नहीं। ब्राह्मणा को तथा अपेक्षितों को भोजन कराइय। गोवर्धन की पूजा, हवन तथा ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त गो-समूह को घर-घर श्रुतु में होने वाले पुण्यास सुश्रुजित कीजिये। यह मेरा विचार है। यदि गावगण प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करेंगे तो गौत्रा तथा पर्वत को और मुझे भी परितोष होगा ॥४२-४५॥

व्यास बोले—विप्रबुद्ध ! कृष्ण ने वचन सुनकर, नन्द आदिब्रजवासी प्रेम से गद्गद हँसकर कहने लगे—
 'ठीक-ठीक'। वयम् । तुमने जो कहा, सब अच्छा है। हम वैम ही करेंगे। अब हम पर्वतपूजा आरम्भ करें। तदनन्तर समस्त ब्रजवागिन्या न पवन-यज्ञ किया। पवन का दही, खीर, मास, आदि की बलि दी गई। सैन्य-हजारों ब्राह्मण खिलायें गये। सुश्रुजित गाथा तथा जन्मपूर्व वादल की तरह शब्द करते हुए बँला ने पवन की प्रदक्षिणा की। द्विबुद्ध ! पर्वत के शिखर पर प्रतिमा की आहूति में अपन का पवन बलाते हुए गोविन्द ने गोपा के चढ़ाये हुए अनेक प्रकार के अन्ना का साया। कृष्ण ने उसी रूप से गाथा के माय पर्वत के शिखर पर चढ़कर अपने दूसरे शरीर की पूजा की। मूर्ति के अन्तर्धान हो जान पर गोगण उत्तम वरदान प्राप्त कर तथा पर्वतोत्सव सम्पन्न कर पुन गाहुल आ गये ॥५५-६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बालचरित-वचन-प्रसंग में गोवर्धनगिरि-यज्ञ-प्रवर्तनं

नामक एव ही सप्ताशीर्वा अध्याय समाप्त ॥१८७॥

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्धनाख्यानवर्णनम्

व्यास उवाच^१

महे प्रतिहृते शक्रो भृशं कोपसमन्वितः । संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥१॥

इन्द्र उवाच

भो भो मेघा निशम्यैतद्वक्तो वचनं मम । 'आज्ञानन्तरमेवाऽशु क्रियतामविचारितम् ॥२॥

नन्दगोपः सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यः सहायवान् । 'कृष्णाथयवलाध्मातो महभङ्गमचोकरत् ॥३॥

आजीवो यः परं तेषां गोपत्वस्य च कारणम् । ता गावो वृष्टिपातेन पीडयन्तां वचनान्मम ॥४॥

अहमप्यद्रिभृङ्गानं तुङ्गमारह्य वारणम् । साहाय्यं वः करिष्यामि 'वायूनां संगमेन च ॥५॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्ताः सुरेन्द्रेण मुमुचुस्ते बलाहकाः । वातवर्षं महाभीममभावाय गवां द्विजाः ॥६॥

ततः क्षणेन धरणी ककुभोऽम्बरमेव च । एक धारामहासारपूरणेनाभवद्द्विजाः ॥७॥

यावस्तु तेन पतता वर्षवातेन वेगिना । धृताः प्राणाञ्जहुः सर्वास्तिर्यङ्मुखशिरोधराः ॥८॥

अध्याय १८८

गोवर्धन का आख्यान

व्यास बोले—उत्सव नष्ट हो जाने पर (अर्थात् इन्द्र की पूजा रुक जाने पर) इन्द्र को बहुत क्रोध हुआ । तब बादलों में से संवर्तक नामक गण को बुला कर उन्होंने कहा ॥१॥

इन्द्र बोले—बादलो ! मेरी बात सुनो और आज्ञा के बाद बिना विचारे शीघ्र ही उस कार्यरूप में परिणत कर ढालो । दुष्टबुद्धि नन्दगोप ने अन्य गोपों की सहायता से तथा कृष्ण के बल से मेरे उत्सव का भग किया । जो गौएँ उनकी अधिकारी हैं तथा गायत्व का कारण हैं, उन्हें ही तुम मेरे वचनानुसार वृष्टिपात से पीड़ित करो । मैं भी पर्वतशिखर के तुल्य उत्तुंग हस्ती पर चढ़कर वायु के साथ तुम्हारी सहायता करूँगा ॥२-५॥

व्यास बोले—द्विजवर ! इन्द्र की आज्ञा पाकर बादल गौओं के नाश के लिये भूसलधार वृष्टि करने लगे । तदनन्तर क्षण में ही पृथ्वी, विद्राव्य तथा आकाश अनन्त धाराओं से भरकर एक-से बन गये । उस भीषण वृष्टिपात से समस्त गौएँ मुख और ग्रीवा को तिरछा करके प्राणत्याग करने लगीं । द्विजधैष्टी ! कितनी गौएँ बछड़ों को क्रोड-

१. व. ०. च.—यज्ञे च प्रह० । २. व. ०. ज्ञा पर ममैवाऽऽ० । ३. व. ०. बलोल्लसो म० । ४. व. वायुमुत्सर्ग-
योजितम् । व्या० ।

क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तत्स्थुरन्या द्विजोत्तमा । गावो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापरा ॥१॥
 वत्साश्च दीनवदना 'पवनाकम्पिकधरा । त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दा कृष्णमूर्चुरिवाऽस्तका ॥२॥
 ततस्तद्गोकुल सर्व गोपगोपीगोपसकुलम् । अतीवाऽऽर्तं हरिदृष्ट्वा त्राणायाचिन्तयत्तदा ॥३॥
 एतत्कृत महेन्द्रेण महभङ्गविरोधिना । तदतदखिल गोष्ठ त्रातव्यमधुना मया ॥४॥
 इममद्रिमह वीर्यादुत्पाटचोरशिलातलम् । धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥५॥

व्यास उवाच

इति कृत्वा मति कृष्णो गोवर्धनमहीधरम् । उत्पाटयैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१॥
 गोपाश्चाऽऽह जगन्नाथ समुत्पाटितभूधर । विशध्वमत्र सहिता कृत वपनिवारणम् ॥२॥
 सुनिर्वर्तिषु देशेषु यथायोग्यमिहाऽऽस्यताम् । प्रविश्य नान भेतव्य गिरिपातस्य निभये ॥३॥
 इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनं सह । शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चाऽऽसारपीडिता ॥४॥
 कृष्णोऽपि त दधारंय शैलमत्यन्तनिश्चलम् । व्रजौकोवासिभिर्हृषयिस्मिताक्षैर्निरोक्षित ॥५॥
 गोपगोपीजनैर्दृष्टं प्रीतिविस्तारितेक्षणे । सस्तूयमानचरित कृष्ण शैलमधारयत् ॥६॥
 सप्तरात्र महामेघा ववर्पुनन्दगोकुले । इन्द्रेण चोदिता मेघा गोपाना नाशकारिणा ॥७॥
 ततो धृते महाशैल परित्राते च गोकुले । मिथ्याप्रतिज्ञो वत्रभिद्वारयामास तान्घनान् ॥८॥

प्रदेग म छिपावर छडा हो गइ और कितनी गौओं को तो जलघारा ने बत्खरहित ही कर दिया । वायु रा धरयराते हुए बच वात्र दीन मुख थाले एवम् भयपीडित बछड कृष्ण से रक्षा करो रक्षा करो की तरह कुछ अल्प शब्दों में बहने लगे । तब गोप-गापा समेत समस्त गोकुल को अत्यन्त पीडित देखकर कृष्ण रक्षा का उपाय सोचने लगे—
 उस सब व भय हुआ जाने स इन्द्र ने ऐसा किया है । इसलिये सम्पूर्ण गावुज की रक्षा इस समय मुझ परती चाहिये । मैं अपनी शक्ति से इस विस्तृत गिरानमय पर्वत को उखाड़ कर गोकुल के ऊपर बिगाड छत्र की तरह उसका धारण करूँगा ॥६॥ १३॥

व्यास बोले—एसा निश्चय करने सहज ही म गोवर्धन पर्वत को उखाड़कर कृष्ण म एक ही हाथ से उरका धारण कर लिया । पर्वत का उखाड़कर जगन्नाथ ने गोपा से कहा— हमने अन्दर सब बात आनी बर्षा से बच जाओगे । यहाँ वायु भी नहीं है मुख पूर्वा रहो । निभय हानर यहाँ प्रवाग करो पर्वत व गिरने की कोई शक्ता न करो । कृष्ण के बहुत पर व गाव गाधिया पर भाणा को लात्र कर गाथा सहित उसम प्रविष्ट हु गये । जगन्नाथ स पीडित गापिया भी बहो गइ । कृष्ण न अत्यन्त निश्चयता से पर्वत का धारण किया । प्रजवासा आनन् स विस्मित नेत्रा स उनका और दग्गन लगे । गाव-गापिया प्रम से आस पाड-पाड कर उनका आर तारन और प्रसन्नतापूर्वक उनके चरित्रा की प्रशंसा करने लगे । गाथा का गाव करने व लिय इन्द्र स प्रति महामय सात राता तर नद व गावुल म वृष्टि करने रहे । कृष्ण द्वारा महापर्वत के धारण रिय जान पर और गोकुल की रक्षा हो जाने पर इन्द्र भी

व्यत्रे नभसि देवेन्द्रे वितये शकमन्त्रिते । निष्कम्प्य गोकुलं हृष्टः स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२२॥
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहागिरिम् । स्वस्थाने विस्मितमुखेद्दृष्टस्तैर्ब्रजवासिभिः ॥२३॥

व्यास उवाच

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले । रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥२४॥
सोऽधिहृष्ट्य महानागमैरावतममित्रजित् । गोवर्धनगिरीं कृष्णं ददर्श त्रिदशाधिपः ॥२५॥
चारयन्तं महावीर्यं गावश्च गोपवपुर्धरम् । वृत्स्नस्य जगतो गोपं धृतं गोपकुमारकैः ॥२६॥
गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्धानगतं द्विजाः । कृतच्छायां हरेर्मूर्ध्नि पक्षाम्यां पक्षिपुगवम् ॥२७॥
अवरुह्य स नागेन्द्राद्वैकान्ते मधुसूदनम् । शक्रः सस्मितमाहेदं प्रीतिर्विस्फारितेक्षणः ॥२८॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण शृणुष्वेवं यदर्थमहमागतः । त्वत्समीपं महाबाहो नैतच्चिन्त्यं त्वयाऽन्यथा ॥२९॥
भारावतरणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतलम् । अवतीर्णोऽखिलाधारस्त्वमेव परमेश्वर ॥३०॥
महभङ्गविह्वलेन मया गोकुलनाशकाः । समादिष्टा महामेघास्तैश्चैतत्कदनं कृतम् ॥३१॥
नातास्तापास्त्वया गावः समुत्पादय महागिरिम् । तेनाहं तोषितो वीरः कर्मणाऽप्यद्भुतेन ते ॥३२॥

प्रतिज्ञा असत्य हुई। तब उन्होंने मेघों को रोक दिया। इन्द्र के विचार निष्फल हो जाने पर वे गोकुल को छोड़कर पुनः अपने स्थान पर चले गये। आकाश स्वच्छ हो गया। तब कृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत को यथास्थान रख दिया। ब्रजवासियों ने विस्मित मुखों से कृष्ण का अवलोकन किया ॥१४-२३॥

व्यास बोले—गोवर्धनपर्वत के धारण तथा गोकुल की रक्षा करने के कारण इन्द्र को कृष्ण-दर्शन की लालसा हुई। तब देवों के अधीश इन्द्र ने ऐरावत नामक महाहस्ती पर आरुढ़ होकर गोवर्धन गिरि पर कृष्ण का दर्शन किया। उस समय अखिल जगत् के रक्षक महाबलशाली कृष्ण गोप-शरीर धारण कर गोपकुमारों के साथ गायें चरा रहे थे और ऊपर से छिपे-छिपे पक्षिश्रेष्ठ गरुड अपने पखा से भगवान् के मस्तक पर छाया कर रहे थे। तब एकान्त में हाथी पर से उतर कर इन्द्र प्रेम से आँखें पाड़-पाड़ कर कृष्ण की ओर ताकते हुए मुस्कराकर उनसे बहने लगे ॥२४-२८॥

इन्द्र बोले—कृष्ण ! कृष्ण ! मैं जिसलिए आप के समीप आया हूँ, वह सुनिषे। महाबाहो ! उसे आप अन्यथा न समझेंगे। पृथ्वी के भार उतारने के लिए आप मूल पर अवतीर्ण हुए हैं। आप सबके आचार हैं। आप ही परमेश्वर हैं। उत्सव के भग होने के कारण मैंने गोकुल को नष्ट करने के लिये महामेघों को आदेश दिया था। यह मैंने अपराध किया। आपने महापर्वत को उखाड़कर गौओं को नष्ट से बचा लिया। वीर ! आपके अत्यन्त आश्चर्य-

१क. ०गा गोपं सहित तदा । कु० । २क ०क्षणम् । इ० । ३क ०चिन्तय विमो त्वयि । भा० ।

४ख. देव ।

क्षोधित कृष्ण देवानामद्य मन्ये प्रयोजनम् । त्वयाऽयमद्रिप्रवर करेणैकेन चोद्धत ॥३३॥
 गोभिश्च नोदित कृष्ण त्वत्समीपमिहाऽगत । त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्कारणवारणात् ॥३४॥
 स त्वा कृष्णाभिषेक्ष्यामि गवा वाक्यप्रचोदित । उपेन्द्रत्वे गयामिन्द्रो गोविन्दस्त्व भविष्यसि ॥३५॥
 अयोपवाह्यादादाय घण्टामैरावतादगजात् । अभिषेकं तया चक्रे पवित्रजलपूजया ॥३६॥
 क्रियमाणेऽभिषेके तु गाव कृष्णस्य तत्क्षणात् । प्रक्षबोदभूतदुग्धाद्रां सद्यश्चकुर्वंसुधराम् ॥३७॥
 अभिषिच्य गवा वाक्याद्देवेन्द्रो वै जनार्दनम् । प्रीत्यासप्रश्रय कृष्ण पुनराह शचीपति ॥३८॥

इन्द्र उवाच

गवामेतत्कृत वाक्यात्तथाऽन्यदपि मे शृणु । यदब्रवीमि महाभाग भारवतरणेच्छया ॥३९॥
 ममाश पुरुषव्याघ्र पृथिव्या पृथिवीधर । अवतीर्णोऽर्जुनो नाम स रक्ष्यो भवता सदा ॥४०॥
 भारवतरणे सख्य स ते वीर करिष्यति । स रक्षणीयो भवता यथाऽऽत्मा मधुसूदन ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि भारते वशे जात पार्थ तवाशत । तमह पालयिष्यामि यावदस्मि महीतले ॥४२॥
 यावमहीतले शक्र स्थास्याम्यहमरिदम । न तावदर्जुन कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ॥४३॥
 कसो नाम महाबाहुर्देवोऽरिष्टस्तया पर । केशी कुवल्यापीडो नरकाद्यास्तयाऽपरे ॥४४॥

जनक वचन से मैं प्रसन्न हूँ । कृष्ण ! आज मैं मानता हूँ कि आपने देवताओं का वाय सिद्ध कर दिया । आपने एव ही हाथ से इस पवतश्रेष्ठ का पारण किया । कृष्ण ! आपसे अभिरक्षित गौओं द्वारा प्ररित होकर मैं आपके ही के कारण आप के पास आया हूँ । मैं गौओं की बाता से प्ररित होकर आपकी उपेन्द्र के पद पर अभिषिक्त रहूँगा । आप गोविन्द तथा गौओं के स्वामी बहुराएँगे । इसके बाद एरावन हाथी से घण्टा उतारकर इन्द्र ने पवित्र जल से कृष्ण का अभिषेक किया । कृष्ण के अभिषेक के समय गौआ ने दूध से पृथ्वी को सद्य आप्णुत कर दिया । गौओं के वचन से जनार्दन का अभिषेक करने गवापति ने पुन कृष्ण से प्रम तथा विनयपूर्वक कहा ॥३९-३८॥

इन्द्र बोले—महामाग ! गौआ के वचन से जैसे आपने यह किया वैसे और भी जो मैं कहता हूँ वह श्रुनिये । पृथ्वीधर ! भार उतारने की इच्छा से मरा आ पुरुषपुंगव होकर अवतीर्ण हुआ है जिसका नाम अर्जुन है । उसकी आप सदा रक्षा करेंगे । भार उतारने में वह वीर आपकी सहायता करेगा । मधुसूदन ! आमा की तरह आप उसकी रक्षा करेंगे ॥३९-४१॥

श्री भगवान् बोले—मैं जानता हूँ भारतवर्ष में आपने आ से पाप उत्पन्न हुआ है । मैं जब तक पृथ्वी पर रहूँगा तब तक उसका पालन रहूँगा । शक्र ! शत्रु का दमन करने बाल ! मैं जब तक मृत्यु पर पहुँगा तब तक युद्ध में अर्जुन का कोई नहीं पराजित कर सकूँगा । वग नाम का एक महाकर्मात्मा दीप है । उसी तरह अरिष्ट केनी कुवल्यापाड नरक आदि भी हैं । देवेन्द्र ! उनसे निहत होने के बाद महासंग्राम होगा जिसमें पृथ्वी

हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः^१। तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारावतरण कृतम् ॥४५॥
स त्वं गच्छ न संतापं पुत्रार्थे कर्तुमर्हसि। नार्जुनस्य रिपुः^२ कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥४६॥
अर्जुनार्थं^३ त्वहं सर्वान्मुधिष्ठिरपुरोगमान्। निवृत्ते भारतेयुद्धे कुन्त्यं दास्यामि विक्षतान् ॥४७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः सपरिष्वज्य देवराजो जनादेनम्। आरुह्यैरावतं मातुं पुनरेव दिव्यं ययौ ॥४८॥
कृष्णोऽपि सहितो गोभिर्गोपालंश्च पुनर्व्रजम्। आजगामाथ गोपीनां दृष्ट्वापूतेन वर्त्मना ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोविन्दाभिषेकवर्णनं

नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

अथोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अरिष्टवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

यत्ने शक्ने तु गोपालाः कृष्णमविलष्टकारिणम्। ऊचुः प्रीत्या धृतं दृष्ट्वा तेन गोवर्धनाचलम् ॥१॥

का भार उतर जायगा। सहस्राक्ष^१ इसलिये आप आइये। पुत्र के लिए सोच न कीजिये। मेरे सामने अर्जुन का कोई धनु नहीं होगा। अर्जुन के कारण मैं युधिष्ठिर आदि सबको बिना क्षत हुए ही महामारत युद्ध के अन्त में कुन्ती को समर्पित कर दूंगा ॥४२-४७॥

व्यास बोले—एतदुपरांत देवराज जनादेन का आलिंगन करके ऐरावत हाथी पर चढ़कर पुनः स्वर्ग चले गये। कृष्ण भी गौआ तथा गोपाला के साथ गोपियों के दृष्टिपात से पवित्र हुए माग से पुनः व्रज में आ गये ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्ममहपुराण में बालचरित वचन-प्रसंग में गोविन्दाभिषेक वर्णन नामक एक सौ

अष्टासीवां अध्याय समाप्त ॥१८८॥

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

व्यास बोले—इत्र के चले जाने के उपरान्त गोवर्धनपर्वत का धारण करने वाले एवं बिना क्लेश के बंभं करने वाले कृष्ण से गोपालो ने प्रेमपूर्वक कहा ॥१॥

गोपा ऊचुः

वयमस्मान्महाभाग भवता महतो भयात् । गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२॥
 बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम् । दिव्यं च कर्म भवतः किमेतत्तात कथ्यताम् ॥३॥
 कालियो दमितस्तोये प्रलम्बो विनिपातितः । धृतो गोवर्धनश्चायं शङ्कितानि मनासि नः ॥४॥
 सत्यं सत्यं हरेः पादौ श्रयामोऽमितविक्रम । यथा त्वद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥५॥
 देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा । किं चास्माकं विचारेण बान्धवोऽस्ति नमोऽस्तु ते ॥६॥
 प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य तव केशव । कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥७॥
 बालत्वं चातिवीर्यं च जन्म चास्मास्वशोभनम् । चिन्त्यमानममेयात्मजशङ्कां कृष्ण प्रयच्छति ॥८॥

व्यास उवाच

क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चित्प्रणयकोपवान् । इत्येवमुक्तस्तर्गोपेराह कृष्णो द्विजोत्तमाः ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

मत्संबन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते । श्लाघ्यो वाऽहं ततः किं धो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०॥
 यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः श्लाघ्योऽहं भवतां यदि । तदर्घा बन्धुसदृशो बान्धवाः क्रियतां मयि ॥११॥
 नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः । अहं धो बान्धवो जातो नातश्चिन्त्यमतोऽन्यथा ॥१२॥

गोप बोले—महाभाग ! तुमने पर्वत धारण कर इस महाभय से हमें तथा गौओं को बचाया। यह बाल-
 क्रीडा तो अनुपमेय है। तुम्हारा कर्म दिव्य है पर गोपालत्व तो निन्दित है। तात ! यह वही यात है, बलशाली।
 जल में तुमने कान्ति का दमन किया, प्रलम्बानुर को मारा और गोवर्धन का धारण किया। इससे हमारे मन में शका
 हो रही है। अमितपराक्रमी ! हम सत्य यह रहे हैं, हमारा आश्रय हरिचरण ही है। तुम्हारी शक्ति देखकर हम
 तुम्हें मनुष्य नहीं मान रहे हैं। हमारे विचार से तुम देव या दानव, या यक्ष या गन्धर्व हो। फिर भी हमारे बन्धु
 हो। तुम्हें नमस्कार है। केशव ! शत्रु के स्त्री बच्चे सब तुमसे प्रेम करते हैं। तुमने जो काम किया है, उसे अलिक
 देव भी नहीं कर सकते। वहाँ बचपन और वहाँ अतिपराक्रम ! हम लोगों के बीच तुम्हारा जन्म टीका नहीं हुआ।
 अमेयात्मन् ! यह सोच विचार कर हमें शका होती है ॥२-८॥

व्यास बोले—द्विजप्रेते ! गोपा से इस प्रकार कहे जाने पर कृष्ण क्षण भर चुप रहे, फिर कुछ प्रणय-
 कोप दितते हुए बोले ॥९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—गोपगुन्द ! यदि मेरे सम्बन्ध में तुम्हें लज्जा न भाव्यम पड़े तो मुझसे स्नेह करो।
 तुम्हें विचार से क्या प्रयोजन ? बान्धवो ! यदि तुम्हें मुझसे स्नेह है और तुम मेरी प्रशंसा करते हो तो मुझसे
 बन्धुसदृश व्यवहार करो। मैं न देव न गन्धर्व न यक्ष न दानव ही हूँ। मैं तुम्हारा बन्धु हूँ। इससे दूराय कुछ
 मेरे विषय में मठ सोचो ॥१०-१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमोनास्ततो बलम् । ययुर्गोपा महाभागास्तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३॥
 कृष्णस्तु विमलव्योमशरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् । तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितविगन्तराम् ॥१४॥
 धनराज्ञीं तथा कूजदभृङ्गमालामनोरमाम् । विलोक्य सह गोपीभिर्मनञ्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥
 सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् । जगौ 'कमलपादोऽसौ नाम तत्र' कृतव्रतः ॥१६॥
 रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा संत्यज्यावसथास्तदा । आजगमुस्त्वविरता गोप्यो यत्राऽऽस्ते मधुसूदनः ॥१७॥
 शनैः शनैर्जगौ गोपी काचित्तस्य पदानुगा । दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसाऽस्मरत् ॥१८॥
 काचित्कृष्णेति कृष्णेति चोक्त्वा लज्जामुपापयो । ययौ च काचित्प्रेमान्धा 'तत्पाद्वन्मविलज्जिता ॥१९॥
 काचिदावसथस्यान्तः स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम् । तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥२०॥
 गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम् । मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२१॥
 गोप्यश्च वृन्दशः कृष्णचेष्टाम्यायत्तमूर्तयः । 'अन्यदेशगते कृष्णे चेहवृन्दावनान्तरम् ॥२२॥
 बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यः कृष्णदर्शनलालसाः । कृष्णस्य चरणं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावने द्विजाः ॥२३॥
 एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च । गोप्यो व्यप्राः सम चेह रम्यं वृन्दावन वनम् ॥२४॥
 निवृत्तास्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने । यमुनातीरमागम्य जगुस्तच्चरितं द्विजाः ॥२५॥

व्यास बोले—महानागो ! हरि के वचन सुनकर गोप चुप हो गये और उनका प्रणय-कोप देखकर वहाँ से चले गये । तब कृष्ण ने स्वच्छ, आकाश, शरच्चन्द्र वी चन्द्रिका, विकसित तथा दिशाओं को आमोदित करती हुई कुमुदिनी, वनपङ्क्ति और मनोरम शब्द करती हुई भ्रमरावति को देखकर गोपियों के साथ रमण करना चाहा । बाद में व्रतधारी तथा कमलचरण कृष्ण राम के साथ वनिताओं को माहने वाली मुमधुर तान छढने लगे । मनोरम गीत-ध्वनि सुनकर गोपियाँ गृहा को छोड़कर शीघ्र मधुसूदन के पास आ गईं ॥१३-१७॥ कोई गोपी उन्हीं के पदों का अनुसरण करती हुई मन्द-मन्द गाने लगी, कोई सावधानतापूर्वक मन से उन्हीं का स्मरण करने लगी, कोई कृष्ण-कृष्ण कह कर लज्जा करने लगी, कोई प्रेमान्ध होकर निर्लज्जतापूर्वक उनके पास जाने लगी, कोई घर के बाहर गुहजन को देखकर उसने अन्दर ही ओलैं मूँद कर तन्मयता से गोविन्द का ध्यान करने लगी । रास आरम्भ करने के इच्छुक गोविन्द ने गोपियों से वेष्टित होकर मनोरम शरच्चन्द्रयुक्त रात्रि को ही इसके लिये उपयुक्त समझा । कृष्ण की लीलाया से वशीभूत होकर गोपियाँ अपने को मूल गईं । कृष्ण के छिप जाने पर वे वृन्दावन के बाहर भी उनको इधर-उधर दूढ़ने लगी । द्विजवृन्द ! कृष्ण के दर्शन की लालसा करने वाली भ्रमणशील गोपियों ने वृन्दावन में ही रात्रि में कृष्ण के चरण को देखा । इस प्रकार कृष्ण की अनेक चेष्टाओं में आसक्त होकर गोपियों ने रमणीय वृन्दावन में विचरण किया । ॥१८-२४॥ द्विजगण ! कृष्ण के दर्शन से निराश होकर गोपियाँ यमुनातट पर आकर उनके चरित्रों का गान करने लगी । तदनन्तर गोपियों ने विकसित वमल के समान मुख वाले, शैलीकपरक्षक तथा

ततोददृशुरायान्तं विकाशि मुखपङ्कजम् । गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं* कृष्णमविलष्टकारिणम् ॥२६॥
 काचिदालोक्य गोविन्दमायान्तमतिहृषिता । कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राहोत्फुल्लविलोचना ॥२७॥
 काचिद्भूभङ्गुर कृत्वा ललाटफलक हरिम् । विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्या पपी तन्मुखपङ्कजम् ॥२८॥
 काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलितविलोचना । तस्यैव रूप ध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ ॥२९॥
 ततः* काचित्प्रियालापे* काचिद्भूभङ्गवीक्षितः* । निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः ॥३०॥
 ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम् । रराम रासगोष्ठीभिरुदारचरितो हरिः ॥३१॥
 रासमण्डलबद्धोऽपि कृष्णपाश्वर्मनूदगता । गोपीजनो न चैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥३२॥
 हस्ते प्रगृह्य चक्रेका गोपिका रासमण्डलम् । चकार च करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः ॥३३॥
 ततः प्रवयुते* रम्या चलद्वलयनिस्वनैः । "अनुयातशरत्काव्यगेयगोतिरनुकमाम् ॥३४॥
 कृष्णः* शरच्चन्द्रमस* कीमुदीकुमुदाकरम् । "जगो गोपीजनस्त्येक" कृष्णनाम पुनः पुनः ॥३५॥
 परियुता" "श्रेमेणका चलद्वलयतापिनी । इदो बाहुलतां स्कन्धे गोपी "मधुविधातिनः ॥३६॥
 काचित्प्रविलसद्बाहुः परिरम्य चुचुम्ब तम् । गोपी गीतस्तुतिव्याजनिपुणा मधुसूदनम् ॥३७॥
 गोपीकपोलसश्लेषमभिपद्य हरेर्भुजौ । पुलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्बुधनता गतौ ॥३८॥

अद्भुत वार्यवर्ता कृष्ण को आते देखा । गोविन्द को आते देखकर कोई गोपी अत्यन्त आनन्दित होकर 'कृष्ण, कृष्ण' कहने लगी, हर्ष से उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये । कोई भू-मगी से हरि की ओर देखती हुई अपने नेत्र रूपां भीरा द्वारा उनका मुख-जमल वा पान करने लगी । कोई गोविन्द को देखकर आँखें मूंद कर योगी की तरह उन्हीं के रूप का ध्यान करने लगी ॥२५-२९॥ तब किसी को प्रिय बचना से, किसी को भू-मगिमापूर्वक देखने से तथा किसी को वस्त्रपरी से माधव ने मना लिया । रास-लीला में उपस्थित उन प्रसन्नचित्त गोपियों के साथ उदार चरित्र वाले हरि रमण करते लगे । रास-लीला में मडली बँगाकर कृष्ण की बगल में स्थित गोपियाँ एक स्थान में स्थिर नहीं रहनीं थीं । एक-एक गोपी का हाथ पकड़ कर हरि रास करते थे । मगवान् के बर-रसों होने ही गोपियों का स्वभाविक ही आँखें मूंद लेती थीं । रास करते समय गोपियों के चाल-चरणा के शब्द बहुत ही मनोहारी होने से । वे प्रमदा शरत्तालीन वाद्य तथा गीत गातीं थीं । कृष्ण शरद्-ऋतु के चन्द्रमा एवम् उसकी ज्योतिस्त्वा का वर्णन करते थे और गोपियाँ एक कृष्ण-नाम का ही बार-बार गातीं थीं । किसी गोपी ने चञ्चल चरणा से पीठा तथा परिधम से घनावट का अनुभव कर कृष्ण के कण्ठ पर अपनी वाग्म्यता डाल दी और गान तथा स्तुति करने में निपुण किसी दूसरी गोपी ने मधुसूदन का बाहुलता में जलद्वार चूम लिया ॥३०-३७॥ गोपी के वषागस्पर्श से हरि की भुजाओं में रोमाञ्च हो आया तथा पगीन टपकने लग । कृष्ण राग के गीता का गाने से । जब गोपियाँ 'बाहू कृष्ण, बाहू कृष्ण' कहकर

१४ ०६४४। गो०। २४ ०४४४४४। ३४ ०४ ४४४०। ४४ ०४ ४४४०। ५४. ०४।
 विषयान् गमयामास रमस्पर्शनं मानिनी । ता०। ६४ प्रसन्नचित्तामिदं च ०। ७४ ०नुयातशिराशाय गायन्ती-
 निर०। ८४ कृष्ण। ९४ शरच्चन्द्रनिम। १०४ ०नुयुमा०। ११४ ०सवेव राम कृष्ण पु०।
 १२४ ०रिवाय०। १३४ ०गोप्यकाचि०। १४४ ०पुनिपाति०।

‘रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः । साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः ॥३९॥
गतेऽनुगमनं चक्रुर्बलने संमुखं ययुः । प्रतिलोमानुलोमेन भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥४०॥
स तदा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः । स वर्षकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाऽभवत् ॥४१॥
ता वार्यमाणाः पितृभिः पतिभिर्भ्रातृभिस्तथा । कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥४२॥
सोऽपि केशोरफवया मानयन्मधुसूदनः । रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥४३॥
तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः । आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४४॥
यया समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवी जलम् । वायुश्चाऽऽत्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४५॥

व्यास उवाच*

प्रदोषार्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने । प्रासयन्समदो गोष्ठानरिष्टः समुपागतः ॥४६॥
सतोयतोयदाकारस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः । खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ॥४७॥
लेलिहानः सनिष्पेयं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः । संरम्भाक्षिप्तलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥४८॥
उदग्रककुवाभोगः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः । विष्णूत्रालिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्देगकारकः ॥४९॥
प्रलम्बकण्ठोऽभिमुखस्तर्ह्यताडिताननः । पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक् ॥५०॥

तालियाँ बजाती सब कृष्ण और द्विगुण मात्रा में गाने लगते। कृष्ण चलते तो वे भी उनके पीछे चल देती, कृष्ण मुँह घुमाते तो वे उनके सामने आ जाती। इस प्रकार प्रतिलोम-अनुलोम भाव से गोपाननायें कृष्ण के साथ केलि करती थीं। मधुसूदन गोपियों के साथ रमण करते थे। विना कृष्ण के गोपियों के लिये एक क्षण भी करोड़ों वर्ष के समान मालूम पड़ता था। पिता, पति तथा माद्यों के रोकने पर भी रतिप्रिय गोपियाँ रात में कृष्ण से रमण कराती थीं। किशोर मधुसूदन भी, जिनकी शक्ति अप्रमेय थी, उनका आदर करते हुए रात में उनसे रमण करते थे। क्योंकि उनके पतिव्रतों में उनमें तथा समस्त भूतों में आत्मस्वरूप से व्याप्त होकर कृष्ण ही तो अवस्थित थे। जैसे सकल भूतों में आकाश, अग्नि, जल, पृथिवी तथा वायु अवस्थित हैं उसी तरह परमात्मा कृष्ण भी सबको व्याप्त करके स्थित हैं ॥३८-४५॥)

व्यास बोले—विश्वी समय अर्ध प्रदोषकाल में जब कृष्ण रास में आसक्त थे तब एक (वृषभरूपधारी) मदमत्त रासस गौओं को रास दिखाते हुए द्रज में आया। उसकी आकृति जलपूर्ण बादल की-सी थी, सींग तीक्ष्ण थे, आँखें सूर्य के समान चमकती थीं। वह अपने खुरों के अग्रभाग से धरती को विदीर्ण कर रहा था, जिह्वा से होठों को बार-बार सपर्यपूर्वक चाट रहा था, पुच्छ को बड़े वेग से झेंझ-उधर फेंकता था। उसके कन्ये का बन्धन बड़ा बड़ोर था। उसके ककुद का विस्तार असाधारण था। उसका पृष्ठभाग विष्ठा-भूत से लिप्त था। वह गौओं को

१क. ग. ०वृश्चल०। २ख. ०लोमेन मार्गेण ययुर्गो०। ३ख. ०प्य चाऽऽत्मन्यवस्थि०। ४ख. ०च। परेऽङ्गि च क०। ५क. सतिष्कम्पो। ६क. कपिलस्क०। ७क. स. ०बन्धुर। ८०। ९क. ०रपाता०। १क. ०न। घात०।

सूदयस्तरसा सर्वाङ्गनाथयति य सदा । ततस्तमतिधोराभमवेक्ष्यातिभयातुरा ॥५१॥
 गोपा गोपस्त्रियश्चैव कृष्णकृष्णति चुक्रुशु । सिंहनाद ततश्चक्रे' तलशब्द च केशव ॥५२॥
 तच्छब्दश्रवणाच्चासौ दामोदरमुख ययौ । अग्रन्यस्तविषाणाग्र कृष्णकुक्षिकृतेक्षण ॥५३॥
 अभ्यधावत दुष्टात्मा दैत्यो वृषभरूपधृक् । आयान्त दैत्यवृषभ दृष्ट्वा कृष्णो महाबलम् ॥५४॥
 न चचाल तत स्यानादवशास्मितलीलया । आसन्न चैव जग्राह ग्राहवन्मधुसूदन ॥५५॥
 जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम् । तस्य दर्पबल हत्वा गृहीतस्य विषाणयो ॥५६॥
 आपीडयदरिष्टस्य कण्ठ' विलसन्निवाम्बरम् । उत्पाद्य शृङ्गमेक च तेनैवाताडयत्तत ॥५७॥
 ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्धमन । तुष्टुबुनिहते तस्मिन्गोपा दैत्ये जनार्दनम् ॥
 जम्भे हते सहस्राक्ष पुरा देवगणा यया ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरितेऽरिष्टवधनिरूपण
 नामोेनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८९॥

उद्भिन् वर रहा था । उसका वण्ट घट्ट लम्बा था । उसके मुख पर वृषो के आघात करने का चिह्न था । वह वृषभरूपधारी दैत्य गाया के गर्मों को गिरा रहा था । वेग से बनो को मष्ट भ्रष्ट करता हुआ वह भूम रहा था । उस अत्यन्त भयानक और बाल वृषभ को देखकर गोप गोपिणी भयातुर होकर 'कृष्ण-कृष्ण' चिल्लाने लग । तब नेत्र ने सिंहनाद करते हुए ताल ठारा ॥४६ ५२॥ उनसे शर सुनते ही दय सीमा के अप्रमाण को सामने करते कृष्ण को कुक्षि की ओर घूरत हुए दामोदर के सम्मुख जाने लगा । वृषभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य जोर से दौड़ रहा था । महाबली दैत्यरूपी वृषभ का आत देखकर कृष्ण तिरस्कारपूर्वक मुस्कारते हुए अपने स्थान से विचलित न हुए । मधुसूदन ने समाप आने पर उस ग्राह की तरह पकड़ लिया । सींगो को पकड़ कर घुटने से उसकी कुर्ी म मार णिया । सींगो को पकड़त हा दय के गव तथा बल को घूर घूर कर उससे गल को गीले पपड़ की तरह निचोड़ दिया । फिर एक सींग को उखाड़ कर उसा से उसको मारत लग । यह भट्टादैव मुक्त से नागिन वमन करते हुए मर गया । उस दैत्य व मर जाने पर गापा ने कृष्ण की उसा तरह स्तुति की जिस तरह जम्भासुर के मरने पर देवगणो ने इत्र की स्तुति की था ॥५३ ५८॥

श्रीमहापुराण म बालचरित-वधन प्रमाण म अरिष्ट-वध निरूपण
 नामक एव सो नवासीवा अध्याय समाप्त ॥१८९॥

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

केशिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे धेनुके च निपातिते । प्रलम्बे निधन नीते धृते गोवर्धनाचले ॥१॥
 दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्रुमद्वये । हताया पूतनाया च शकटे परिवर्तिते ॥२॥
 कसाय नारद प्राह यथावृत्तमनुकृमात् । यशोदादेवकीर्णपरिवर्तच्छोषेत् ॥३॥
 धृत्वा तत्सकल कसो नारदाद्देवदर्शनात् । वसुदेव प्रति तदा कोप चक्रे स दुर्मति ॥४॥
 सोऽतिक्रोपादुपालम्ब्य सर्वयादवससदि । जगर्ह यादवाश्चापि कार्यं चेतदचिन्तयत् ॥५॥
 यावन्न बलमाल्ढौ बलकृष्णौ सुबालकौ । तावदेव मया बध्नायसाध्यौ हृदयौवनी ॥६॥
 चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबल । एताभ्या मल्लयुद्धे तौ घातयिष्यामि दुर्मदौ ॥७॥
 धनुर्महामहापागव्याजेनाऽऽनीय तौ धजात । तथा तथा करिष्यामि यास्यत सक्षय यथा ॥८॥

व्यास उवाच

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कसो रामजनादनी । हतु कृतमतिर्वीरमकूर बावयमब्रवीत् ॥९॥

अध्याय १६०

केशी नामक असुर का वध

व्यास बोले—वृषभासुर धनुक तथा प्रलम्ब ये मारने पर गोवधनपवत के घारण करने पर कालिय के वधन करने पर दोनों अत्युच्च वृक्षों के तोड़ने पर पूतना के निहत करने पर और शकट के उलटाने पर नारद ने कस से आकर प्रमश सम्पूर्ण वत्सात् कह दिया । यशोदा तथा देवकी के गम-परिवर्तन का भी अखिल वृणन कर दिया । देवर्षि नारद से सक्त्र वृत्तात् सुनकर दुर्मति कस वसुदेव के प्रति कोप करने लगा । वह अत्यन्त क्रोध में आकर समस्त यादवा की सभा में यादवा की भी निन्दा करने लगा । उसने सोचा—यावत् बलमद्र तथा हृष्ण सबल नहीं होते हैं उससे पहले ही उनको समाप्त कर देना चाहिये अन्यथा पूण यौवन प्राप्त करने पर तो ये दोनों असाध्य हो जायेंगे । चाणूर और मुष्टिक महाबलवान् हैं । मल्लयुद्ध में इन्हीं के द्वारा उन दोनों अभिमानियों को मरवाऊंगा । धनुष-जस्र रूपी महापाग के व्याज से उनको यहां भँगवाकर मैं वसा ही उपाय करूँगा जिससे वे विनष्ट हो जायेंगे ॥१८॥

व्यास बोले—यह सोचकर राम तथा कृष्ण को मारने की इच्छा से दुष्टात्मा कस ने अचूर से यह वचन कहा ॥१॥

कंस उवाच

भो भो दानपते वाक्यं क्रियतां प्रीतये मम । इतःस्थन्दनमाण्ड्य गम्यतां नन्दगोकुलम् ॥१०॥
 वसुदेवसुतो तत्र विष्णोरंशसमुद्भवो । नाशाय किल संभूतो मम दुष्टो प्रवर्धतः ॥११॥
 'धनुर्महामहायागश्चतुर्दश्या' भविष्यति । आनेयो भवता तौ तु मल्लयुद्धाया तत्र वै ॥१२॥
 चाणूरमुष्टिको मल्लो नियुद्धकुशलो मम । तान्धां सहानयोर्युद्धं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥१३॥
 नागः कुवलयपीडो महामात्रप्रचोदितः । स तौ निहंस्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू ॥१४॥
 तौ हत्या वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम् । हनिष्ये पितरं चैव उग्रसेनं च दुर्मतिम् ॥१५॥
 ततः समस्तगोपानां गोधनान्यखिलान्यहम् । वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मत्तर्धपिणाम् ॥१६॥
 त्वामृते 'यादवाश्चेमे दुष्टा दानपते मम । एतेषां च वधायाहं प्रयतिष्याम्यनुक्रमत् ॥१७॥
 ततो निष्कण्टक सर्वं राज्यमेतदयादवम् । प्रसाधिष्ये त्वया तस्मान्मत्प्रोत्था वीर गम्यताम् ॥१८॥
 यथा च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहार्यं वै । गोपाः समानयन्त्याशु त्वया वाच्यास्तथा ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तस्तदाऽङ्कुरो महाभागवतो द्विजाः । प्रीतिमानभक्तकृष्णं श्वो द्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥२०॥
 तथेत्युक्त्वा तु राजानं रथमारुह्य सत्वरः । निश्चक्राम तदा पुर्या मयुराया मधुप्रियः ॥२१॥

कंस बोला—दानवेश्वर ! मेरे परितोष के लिये मेरी बात मानो । यहाँसे रथ पर चढ़कर नन्द के गोकुल में जाओ । विष्णु के अंश से समुत्पन्न वसुदेव के दो दुष्ट पुत्र मेरे नाश के लिये ही बढ़ रहे हैं । धनुष-महायज्ञ चतुर्दशी को होगा । उसमें मल्लयुद्ध के लिये उन दोनों को तुम ले आना । मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक युद्ध-प्रवीण हैं । उन्हीं के साथ उन दोनों का युद्ध होगा, सब लोग देखेंगे । कुवलयपीड नामक हाथी महाव्रत की प्रेरणा से वसुदेव के दोना पत्नी बालकों को मारेगा । उनको मारकर वसुदेव, दुष्टयुद्धि नन्दगोप तथा दुर्मति पिता उग्रसेन को मैं मारूँगा । तब मेरे वध के इच्छुक समस्त गोपों के अखिल गोधन का मैं अपहरण करूँगा । दानवपते ! केवल तुम्हें छोड़कर इन दुष्ट यादवों के भी क्रमशः वध करने के लिये मैं यत्न करूँगा । तदनन्तर यादवरहित सम्पूर्ण निष्कण्टक राज्य का मैं उपभोग करूँगा । इसलिये वीर ! तुम मेरी सतुष्टि के लिये जाओ । तुम उस ढग से बातचीत करोगे, जिससे कि गोपगण दही धी भी लेते आचेंगे ॥१०-१९॥

व्यास बोले—द्विजवृन्द इस प्रकार आशा पाकर महामगबद्धमत्त अङ्कुर 'कल कृष्ण का दर्शन होगा' यह सोचकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और राजा से 'एवमस्तु' कहकर तुरन्त रथ पर आरुढ़ होकर मयुरापुरी से बाहर निकल गया ॥२०-२१॥

व्यास उवाच

केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतः प्रचोदितः । कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी वृन्दावनमुपागमत् ॥२२॥
सखुरक्षतभूपृष्ठः सटाक्षेपधुताम्बुदः । पुनर्विक्रान्तचन्द्रार्कमार्गो गोपान्तमागमत् ॥२३॥
तस्य ह्येपितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः । गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥२४॥
ग्राहि ग्राहीति गोविन्दस्तेषां श्रुत्वा तु तद्वचः । सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥२५॥

गोविन्द उवाच

अलं त्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः । भवद्भिर्गोपजातीयैर्वीरवीर्यं विलोप्यते ॥२६॥
किमनेनाल्पसारेण ह्येपितारोपकारिणा । दैत्यबलबाहुयेन वल्यता दुष्टवाजिना ॥२७॥
एहोहि दुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्त्विव पिनाकधृक् । पातयिष्यामि दशानावदनादखिलास्तव ॥२८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स तु गोविन्दः केशिनः संमुखं ययौ । विवृतास्यश्च सोऽप्येनं दैत्यश्च उपाद्रवत् ॥२९॥
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनादेनः । प्रवेशयामास तदा केशिनो दुष्टवाजिनः ॥३०॥
केशिनो वदनं तेन विशता कृष्णबाहुना । शातिता दशनास्तस्य सिताग्नावयवा इव ॥३१॥
कृष्णस्य बबूधे बाहुः केशिदेहगतो द्विजाः । विनाशाय यथा व्याधिराप्तभूतैरुपेक्षितः ॥३२॥

व्यास बोले—कंस का दूत बलोन्मत्त केशी भी प्रेरित होकर कृष्ण को मारने की इच्छा से वृन्दावन पहुँचा । वह अश्व का रूप बना कर अपने खुरो से भूपृष्ठ को क्षत-विक्षत करते हुए, सटा (गर्दन पर के बाल) के प्रक्षेप से वादन को कँपाते हुए और सूर्य-चन्द्रमा के मार्ग को अवरुद्ध करते हुए गोपों के पास आया । दैत्य रूपी अश्व के हिन-हिनाने से गोप-गोपियाँ भय से उद्विग्न होकर गोविन्द की शरण में गयीं । उनके 'बचाओ बचाओ' यह वचन सुनकर जलपूर्ण मेघ की तरह गम्भीर वाणी से सगवान् ने कहा ॥२२-२५॥

गोविन्द बोले—गोपालो ! क्यों मयातुर हो रहे हो ? केशी से क्या डरता है ? तुम लोग गोप जाति के होकर वीर-शक्ति को मूल जाते हो ? इस दुष्ट दैत्य रूपी अश्व के सारहीन हिनहिनाने से क्यों डरते हो ? दुष्ट ! आओ । जैसे शिव ने पूषा के दाँतो को तोड़ा था उसी तरह मैं भी तुम्हारे वदन से अखिल दाँता को गिरा देता हूँ ॥२६-२८॥

व्यास बोले—इतना कहकर गोविन्द केशी के सामने गये । दैत्य भी मुँह खोलकर इन पर दूट पड़ा । तब मुखा को फैला कर कृष्ण ने केशी नामक उस दुष्ट अश्व के मुख में घुसेड़ दिया । केशी के मुख में कृष्ण की मुखा के प्रवेश होते ही उसके दाँत स्वच्छ बादल के अवयव की तरह उखड़ने लगे । द्विजगण ! केशी के देह में प्रविष्ट होने पर कृष्ण की बाँह उसको विनष्ट करने के लिए उसी तरह बढ़ने लगी जैसे रोगियों से उपेक्षित होने पर व्याधि ।

विपाटितौष्ठो बहुलं सकेनं रुधिरं वमन् । सुक्कणो विवृते चक्रे विदिलष्टे मुक्तबन्धने ॥३३॥
 जगाम धरणीं पार्श्वः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् । स्वेदाद्रगात्रः श्रान्तश्च 'निर्यत्नः सोऽभवत्ततः ॥३४॥
 व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना । निपपात द्विधाभूतो वंद्युतेन यथा द्रुमः ॥३५॥
 द्विपादपृष्ठपुच्छार्धभ्रवणेकाक्षनासिके । केशिनस्ते द्विधा भूते शकले च विरेजतुः ॥३६॥
 हत्वा तु केशिन कृष्णो मुदितगोपकैर्बुधैः । अनायस्ततनुः स्वस्थो हसस्तत्रैव 'संस्थितः ॥३७॥
 ततो गोपाश्च गोप्यश्च हते केशिनि विस्मिताः । तुण्ड्युः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥३८॥
 आपयौ त्वरितो विप्रो नारदो जलदस्थितः । केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः ॥३९॥

नारद उवाच

साधु साधु जगन्नाथ लीलयायैव यदच्युत । निहतोऽयं त्वया केशी बलेशदस्त्रिवीकसाम् ॥४०॥
 मुकर्माण्यवतारे तु कृतानि मधुसूदन । यानि वै विस्मित चेतस्तोपमेतेन मे गतम् ॥४१॥
 तुरगस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च विस्मयन् । धृतकेशरजालस्य ह्येतोऽग्रावलोकितः ॥४२॥
 यस्मात्त्वयैष दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन । तस्मात्केशवनाम्ना त्वं लोके गम्यो भविष्यसि ॥४३॥
 स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यमि कंसयुद्धेऽधुना पुनः । परश्वोहं समेष्यामि त्वया केशिनिपूदन ॥४४॥
 उपसेनमुते कंसं सानुगे विनिपातिते । भारावतारकर्ता त्वं पृथिव्या धरणीधर ॥४५॥

उसने होठ फाड़ दिये गये, मुख से फेन सहित रुधिर प्रचुर मात्रा में बहने लगा, गलफड़ चीर दिये गये, नसों लोड दी गईं। तब वह मल-मूत्र त्याग करता हुआ पैरों से धरती को खुरचने लगा। उसने अगो से पसीना टपकने लगा। वह श्रान्त होकर निरबेष्ट हो गया। कृष्ण की भुजा ने उस महामयनर राक्षस के मुख की विदीर्ण कर दिया। तब वह विसृन् से आहत वृक्ष की तरह दो टुकड़े होकर गिर पड़ा। उसने पैर, पीठ, पुच्छ, वान, आँख, नाक सब के दो-दो टुकड़े हो गए। इस प्रकार केशी के अंगा के दो-दो टुकड़े विराजमान हुए। केशी को भारकर प्रमुदित गोपी के साथ कृष्ण हैंसते हुए वही अवस्थित हुए। उनके शरीर में कोई आयास नहीं हुआ। वे स्वस्थ थे। तत्पश्चात् केशी की मृत्यु से विस्मित गोप-गोपियाँ मनोहर कृष्ण की स्तुति करने लगे। केशी को निहत देखकर मेघ-स्थित विप्र नारद अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त वहाँ आये ॥२९-३९॥

नारद बोले—जगन्नाथ! आपन समुचित ही किया जो कि देवा की वरदान देने वाले केशी को सहज ही मे मार डाला। मधुसूदन! इस अवतार में आपने जो-जो आश्चर्यजनक गुरमं किये, उनसे मुझे बड़ा सतोष हुआ। केशरजाल (अपार) को हिलाने वाले तथा हिनहाने से बादल की तरह प्रणीत होने वाले इस अश्व से देवगण तथा इन्द्र भी डरते थे। जनार्दन! जिमात्रिये आपने इस दुष्टात्मा केशी को मारा इतलिये केशव नाथ से आप लोग मे पुकारे जायेंगे। आपका कल्याण हो। इस समय मैं जाता हूँ। केशिनाशन! फिर परसो वस के युद्ध मे मैं आपसे

१ क निपण्ण । २ क ०णो गोपात्वंदुमिवं० । ३ क तस्थियान् । ४ क ग ०म् । अथाद् त्व० । ५ क छदेऽरिप० ।

तत्रानेकप्रकारेण युद्धानि पृथिवीक्षिताम् । द्रष्टव्यानि मया युष्मत्प्रणीतानि जनादेन ॥४६॥
सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम् । त्वया सभाजितश्चाहं स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्बुहम् ॥४७॥

व्यास उवाच

नारदे तु गते कृष्ण सह गोपैरविस्मित । विवेश गोकुल गोपीनेत्रपानंकभाजनम् ॥४८॥
इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे कृष्णबालचरिते कशिवधनिरूपण नाम
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

अर्थकनधत्यधिकशततमोऽध्याय

अक्रूरगमनवर्णनम्

व्यास उवाच

अक्रूरोऽपि विनिष्कम्प्य स्यन्दनेनाऽऽशुगामिना । कृष्णसदशनासक्त प्रययौ नन्दगोकुले ॥१॥
चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति धन्यतरो मया । योऽहम् शशवतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चञ्चिण ॥२॥
अद्य मे सफल जन्म सुप्रभाता च मे निशा । यदुतिद्राञ्जपत्राक्ष विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥३॥

मिलूंगा । घरणीवर ! उग्रसेन के पुत्र वसुको वपुवर्ण सहित नष्ट कर देने पर आप पृथ्वी का भार हल्का करेंगे ।
जनादन ! तब आपके रचाये हुए राजाआ के अनेक प्रकार के युद्धों का मैं देखूंगा गोविन्द ! अब मैं जाऊंगा ।
आपने देवताआ का महान काम किया ! आपका कल्याण हो मैं चला हूँ ॥४०४७॥

व्यास बोले—नारद के चले जाने पर गोपिया के नयना के पीने व एकमात्र पात्र कृष्ण गोपा के साथ बिना
किसी आरक्ष्य के गोकुल में प्रावृष्ट हुए ॥४८॥

श्रीब्रह्मपुराण में कृष्ण के बालचरित-कथन प्रथम में केशिवधनिरूपण नामक एक सौ
नववा अध्याय समाप्त ॥१९०॥

अध्याय १६१

अक्रूर के जान का वर्णन

व्यास बोले—कृष्ण-दान के लिए लायावित अक्रूर भी श्रीब्रजामी रख से नन्द-गोकुल के किन्हे प्रस्थित हुए ।
अक्रूर सोचने लगे—‘मुझसे बढकर कोई धन्य नहीं है क्योंकि अगावतार विष्णु का मैं मन्द-दान करूँगा । आज मेरा
जन्म सफल हुआ आज मेरी रात सुप्रभात हुई जो मैं विकसित कमल-पत्र के सद्ग नेत्र वाले विष्णु का मुखावलीकन

पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम् । तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रव्याम्यहं मुखम् ॥४॥
 निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च । द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम् ॥५॥
 यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः । इज्यते योऽखिलाधारस्त द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६॥
 इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम् । अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७॥
 न ब्रह्मा नेन्द्रब्रह्माशिवबस्वादित्यमरुद्गणाः । यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यद्य स मे हरिः ॥८॥
 सर्वात्मा सर्वंगः सर्वं सर्वभूतेषु सस्थितः । यो भवत्यव्ययो व्यापी स वीक्ष्यते भवाद्य ह ॥९॥
 मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम् । चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति ॥१०॥
 सांप्रतं च जगत्स्वामी कार्यंजाते व्रजे स्थितिम् । कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहधृगव्ययः ॥११॥
 योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम् । सोऽवतीर्णो जगत्पर्यं मामकूरेति वक्ष्यति ॥१२॥
 पितृबन्धुसहोद्भातृमातृबन्धुमयीमिमाम् । यन्मायां नालमुद्धतुं जगत्तस्मै नमो नमः ॥१३॥
 तरल्यविद्या वितता हृदि यस्मिन्निवेक्षिते । योगमायादिनां मत्प्राप्तस्मै विद्यात्मने नमः ॥१४॥
 यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च शाश्वतैः । वेदान्तवेदिर्भविष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५॥
 तथा यत्र जगद्भामि धार्यते च प्रतिष्ठितम् । सदसत्त्वं स सत्त्वेन मय्यसी यातु सोम्यताम् ॥१६॥
 स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते । पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१७॥

बहेगा । स्मरण तथा चिन्ता करने से जो मनुष्यों के पापों का भूट बनते हैं, उस पुण्डरीकाक्ष विष्णु के मुख को मैं देखूंगा । जिस मुख से वेद तथा वेदों के अखिल अंग नि सृत हुए और जो देवों का परम धाम है, उस भगवन्मुख का मैं दर्शन करूँगा । जा यज्ञा में यज्ञपुरुष, पुरुषा भ उत्तम तथा सब के आधार हैं, उन जगत्पति का मैं दर्शन करूँगा । सौ यज्ञा से जिसकी आराधना करने इन्द्र न देवराजत्व का प्राप्त किया, उन्हीं आदि-अन्त-रहित वेशव का मैं दर्शन करूँगा ॥१-७॥ ब्रह्मा इन्द्र, इन्द्र, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण जिनके स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन्हीं हरि का आज मैं स्पर्श करूँगा ॥८॥ जा सर्वात्मा, सर्वत्रगामी, सब, समस्त मूर्तों में अवस्थित, अव्यय तथा व्यापक हैं, उन्हीं को आज मैं देखूंगा ॥९॥ जिन्होंने मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंह आदि का रूप धारण किया और योग का मार्ग दिलाया वे मुझसे समापण करेंगे ॥१०॥ इस समय कार्य उपस्थित होने पर जगत्स्वामी, अव्यय तथा स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले भगवान् मनुष्य शरीर धारण कर व्रज में अवस्था हैं । जो अनन्त भगवान् पर्वतारोहिविदिष्ट पृथिवी का धारण करते हैं वे ही जगत्पते निमित्त अवतीर्ण हुए हैं । वे मुझे 'अकूर' कहेंगे जिनके पिता, बन्धु मित्र, भाई तथा माता रूपी माया का पार सत्तार नहीं पाना है, उनको नमस्कार है । हृदय में जिनके प्रविष्ट होने से मनुष्य विष्णु अवधारणी योगमाया को पार कर जाते हैं उन विद्यात्मा को नमस्कार है । जिनको यज्ञकर्ता यज्ञपुरुष बृहन्न तथा ब्रह्मन्वत्ता विष्णु बृहन्न पुरा करते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ । जो गगार का धारण करते हैं अर्थात् जिनके तंत्र में शब्द अक्षर रूप अक्षर प्रविष्ट हो जा है, वे मेरे प्रति गौम्य हों । जिनके स्मरण करने से सब प्रकार का कल्याण होता है, उन्हीं पुरुषप्रवर हरि की धारण मैं जा रहा हूँ ॥११-१७॥

व्यास उवाच

इत्थं स चिन्तयन्विष्णुं भक्तितनूनात्ममानसः । अक्रूरो गोकुलं प्राप्तः^१ किञ्चित्सूर्ये विराजति ॥१८॥
 स ददर्श तदा तत्र^२ कृष्णमाबोहने गवाम् । वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम् ॥१९॥
 'प्रफुल्लपद्मपत्राक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । प्रलम्बबाहुमायामतुङ्गोरस्थलमुन्नसम् ॥२०॥
 सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम् । तुङ्गरवतनखं पद्म्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम् ॥२१॥
 बिभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम् । सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२॥
 हंसेन्दुकुन्दधवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः । तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुन्नन्दनम् ॥२३॥
 प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं च विकशिमुखपङ्कजम् । मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिमिवापरम् ॥२४॥
 तौ दृष्ट्वाविकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः ।^३ 'पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाऽक्रूरोऽभवद्विजाः'^४ ॥२५॥
 य एतत्परमं धाम एतत्तत्परमं पदम् । अभवद्वसुदेवोऽसौ द्विधा योज्यं व्यवस्थितः ॥२६॥
 साफल्यमक्षणोर्ध्वगणममास्तु, दृष्टे जगद्धातरि हासमुच्चैः (?) ।
 अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादाद्दत्ताङ्गसङ्गे फलवर्धम् तत्स्यात् ॥२७॥
 अद्यैव स्पृष्ट्वा मम हस्तपद्मं, करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः ।
 यस्याङ्गुलिस्पर्शं हताखिलाघैरवाप्यते सिद्धिरनुत्तमा नरैः ॥२८॥

व्यास बोले—इस प्रकार विष्णु का ध्यान करते हुए भक्ति से विनम्र चित्त वाले अक्रूर गोकूलविलास मे गोकुल पहुँच गये ॥१८॥ वहाँ उन्होंने गायो के दोहन-काल मे बछड़ो के बीच अवस्थित कृष्ण को देखा । कृष्ण की छाँव प्रफुल्लित नील कमल के पत्र जैसी थी, उनकी आँखें विकसित कमल-दल के समान थी, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न था, बाँहें लम्बी थी, छाती चौड़ी थी नासिका उन्नत थी, मुखकमल सुन्दर हास्य से युक्त था, नख उत्तुंग तथा लाल थे, पैर पृथ्वी पर सुप्रतिष्ठित थे । वे पीतवस्त्र पहने हुए थे और वनमाला से विभूषित थे । सघननीललता के समान उनके हाथ थे और उज्ज्वल कमल के आभूषण थे । उनके वाद अक्रूर ने हस, चन्द्रमा तथा कुन्दपुष्प के समान शुभ्र, नीलवस्त्रधारी, आजानबाहु, विकसित कमल से समान मुख वाले, मेघमाला से परिवृत तथा कैलासपर्वत के तुल्य पवल यदुन्नन्दन बलभद्र को देखा । द्विजवृन्द । उनको देखते ही महाबुद्धिमान् अक्रूर के सर्वांग शरीर मे (आनन्द के मारे) रोमाञ्च हो आया और मुखकमल खिल उठा । उन्होंने कहा—'ये ही परमधाम तथा ये ही परमपद हैं । ये अपने को दो वरके वासुदेवरूप से व्यवस्थित हैं ॥१९-२६॥ जगद्धाता के दर्शन करके मेरे दोनों नेत्र एक ही काल मे सफल हो । मेरे अंग भी भगवान् की कृपा से उनके अंग-स्पर्श करके सफल हो । आज ही मेरे हस्तकमल का स्पर्श करके अनन्तमूर्ति भगवान् मुझे कृतार्थ करेंगे । जिन मनुष्यों को उनकी अंगुलि का स्पर्श होता है, वे निष्पाप हो जाते हैं, उत्तम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और अश्विन, रुद्र, इन्द्र तथा वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हैं ।

१क. ०प्त विद्यत्सू० । २क. स दक्ष । ३ग. प्रस्पष्टप० । ४क. ०काङ्कितमात्रोऽसौ तदाऽ० ।

५क. ०तरोमात्रो तदाऽ० ।

तथाऽऽश्विखट्वेन्द्रवसुप्रणीता, देवाः प्रयच्छन्ति वरं प्रहृष्टाः ।
 चक्रं धनता दैत्यपतेर्हृतानि, दैत्याङ्गनानां नयनान्तराणि ॥२९॥
 यत्रा (तोऽ)म्बु विन्यस्य बलिर्मनोम्याम (ज्ञान) वाप भोगान्वसुधातलस्थः ।
 तथाऽमरेशस्त्रिदशाधिपत्यं, मन्वन्तरं पूर्णमवाप शनः ॥३०॥
 अथेश (थापि) मां कंसपरिग्रहेण, दोषास्पदीभूतमदोषयुक्तम् ।
 कर्ता न मानोपहितं धिगस्तु, यस्मान्मनः साधुबहिष्कृतो यः (?) ॥३१॥
 ज्ञानात्मकस्याखिलसत्त्वरशोव्यवृत्तदोषस्य सदाऽस्फुटस्य ।
 किं वा जगत्पत्र समस्तपुंसामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ॥३२॥
 तस्मादहं भक्तिविनम्रगात्रो, यजामि विश्वेश्वरमीश्वराणाम् ।
 अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य, अनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ॥३३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णक्रीडायामक्रूरागमनवर्णनं
 नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

७

दैत्यराज की सेना को विनष्ट करते हुए उन्होंने दैत्य वनिताओं के नयनों को अपनी ओर खींच लिया था। उनको धान देकर बलि ने पाताल में रहकर भी सकल भोगों को प्राप्त किया। उनकी कृपा से इन्द्र ने पूरे मन्वन्तर तक देवताओं का आधिपत्य प्राप्त किया। ऐसे भगवान् को मैं कंस की आज्ञा से लेने आया हूँ। अतएव मैं निर्दोष होता हुआ भी दोषी हूँ। ऐसे मानविग्रहित मुझे धिक्कार है, क्योंकि मैं मन से साधु-समाज से बहिष्कृत हो गया हूँ। वे भगवान् ज्ञानस्वरूप, अलिखित सात्त्विक वृत्तियों के पुञ्ज, दोषों से रहित, सदा अस्फुट तथा सबने हृदय में वास करने वाले हैं। संसार में समस्त पुरुषों की ऐसी कौन सी बात है, जो उन्हें अविरत हो? इसलिये मैं भक्ति से नत शरीर होकर पुरुषोत्तम, आदि, मध्य तथा अन्त से रहित एवम् अजन्मा विष्णु के अंग से अवतीर्ण विश्वेश्वर के समीप जाता हूँ। ॥२७-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कृष्ण-क्रीडा-वर्णन प्रसंग में क्रूरागमन-वर्णन नामक एक छोटी कथानवेक अध्याय समाप्त ॥१९१॥

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अक्रूरप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादव । अक्रूरोऽस्मीति 'चरणौ ननाम शिरसा हरे ॥१॥
सोऽप्येन ध्यजदञ्जराजकृतचिह्नेन पाणिना । सम्पृश्याऽऽकृष्य च प्रीत्या सुगाढ परियस्वजे ॥२॥
'कृतसवदनो तेन यथावद्वलकेशवौ । ततः प्रविष्टौ सहसा तस्मादायाऽऽत्ममन्दिरम् ॥३॥
सह तान्या तदाऽक्रूर कृतसवदनादिक । भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचक्षे ततस्तथो ॥४॥
यथानिर्भस्तिस्तस्तेन कसेनाऽऽनकडुन्दुभि । यथा च देवको देवी दानवेन दुरात्मना ॥५॥
उग्रसेने यथा कस स दुरात्मा च वर्तते । य चेवार्थं समुद्दिश्य कसेन स विसर्जितः ॥६॥
तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्केशिसूदन । 'उवाचाखिलमेतत् ज्ञात दानपते ॥७॥
करिष्ये च महाभाग यवप्रीपायिक मतम् । विचिन्त्यं नान्ययत्तत्ते विद्धि कस हृत मया ॥८॥
अहं रामश्च मथुरा इवो यास्याव सम त्वया । गोपवृद्धाश्च यास्पन्ति आदायोपायनं बहु ॥९॥
निशेष नोपता धीर न चिन्ता कर्तुमर्हसि । त्रिराश्रम्यन्तरे कस हनिष्यामि सहानुगम् ॥१०॥

अध्याय १६२

अक्रूर के लौटने का वर्णन

व्यास बोले—इस तरह सोचते हुए यह यदुवशी अक्रूर गोविन्द के पास जाकर उनके चरणों पर शिर झुकाकर प्रणाम करने लगे । कृष्ण ने भी ध्वजा, वज्र तथा कमल के चिह्नों से युक्त हस्त से उनका स्पर्श करते हुए अपनी ओर खींच कर प्रेम से गाढ़ आलिंगन किया । बलम्रद तथा कृष्ण व्यवहारपूर्वक अक्रूर से मिलकर उन्हें पकड़े हुए अपने घर ले गये । उन्होंने अक्रूर को विधिपूर्वक भोजन कराया । तब अक्रूर ने उन दानों से जैसे दुरात्मा दानव कस वसुदेव देवता तथा उग्रसेन को खाता था और जिस उद्देश्य से उसने अक्रूर को गोकुल भेजा था वह सब समाचार वह सुनाया । विस्तारपूर्वक अखिल वृत्तान्त सुनकर केशिनाशन भगवान् ने कहा—'दानपते ! यह सब तो मुझे मालूम ही था । महाभाग ! जो उपाय मैंने सोच रखा है वह तो कर्षणा ही, वह अन्धया नहीं ही सचता । तुम कस को मेरे द्वारा निहत ही समझो । कल मैं और राम तुम्हारे साथ मथुरा जायेंगे । गोपवृद्ध भी बहुत-से उपहार लेकर जायेंगे । वीर ! इस रात को सोतने दो । चिन्ता मत करो । तीन रात के अन्दर ही अनुयायियों सहित कस को मैं मार दूँगा ॥१-१०॥

व्यास उवाच

समाविश्य ततो गोपानकूरोऽपि सकेशव । सुध्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे गत ॥११॥
 तत प्रभाते विमले रामकृष्णौ महाबली । अकूरेण सम गन्तुमुद्यतो मथुरा पुरीम् ॥१२॥
 दृष्ट्वा गोपीजन साक्ष श्लथद्वल्यबाहुक । निश्वसश्चातिदुःखार्तं प्राह चैव परस्परम् ॥१३॥
 मथुरां प्राप्य गोविन्द कथं गोकुलमेव्यति । नागरस्त्रीकलालापमधु श्रोत्रेण पात्यति ॥१४॥
 विलासिवाक्यजातेषु नागरीणा कृतास्पदम् । चित्तमस्य 'कथं ग्राम्यगोपगोपीषु यात्यति ॥१५॥
 सार समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम् । प्रहृत गोपयोपित्सु निघृणेन दुरात्मना ॥१६॥
 भावगर्भस्मित वाक्य विलासललिता गति । नागरीणामतोर्वतत्काटाक्षेक्षितमेव तु ॥१७॥
 ग्राम्यो हरिरयं तासां विलासनिगड्यंत । भवतीनां पुनः पार्श्वं कथा मुक्या समेव्यति ॥१८॥
 एषो हि रथमारुह्य मथुरा याति केशव । अकूरकूरकेणापि 'हताशोऽनं प्रतारित ॥१९॥
 किं न वेत्ति नृशतोऽयमनुरागपरं जनम् । येनेममक्षराह्लादं नयत्यन्ध्रं नो हरिम् ॥२०॥
 एष रामेण सहितः प्रयात्यत्यन्तनिघृण । रथमारुह्य गोविन्दस्त्वयंतामस्य धारणे ॥२१॥
 गुरुणामप्रतो वक्तुं किं ब्रवीषि न न क्षमम् । गुरवः किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना ॥२२॥
 नन्दगोपमुत्ता गोपा गन्तुमेते समुद्यता । नोद्यमं कुस्ते कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३॥

व्यास बोले—तदुपरान्त गोपो को आदेश करके अकूर भी केशव और बलभद्र के साथ नन्दगोप के घर में जाकर सोये ॥११॥ सुप्रभात होने पर महाबली राम और कृष्ण अकूर के साथ मथुरापुरी जाने के लिये तैयारी करने लगे ॥१२॥ यह देखकर रागिनियों के आँसू बहने लगे और बहिनें डीली पड़ गईं जिनसे कगन निकलने लगे । उन्होंने शोरशोर होकर 'बी साँस ली और परस्पर कहा—मथुरा जान पर कृष्ण गाकुल क्या आयेंगे ? वहाँ नगर की बनिताजा का मथुरा-गप सुनेंगे । नगर-नारियों के विलासपुत्र बचन। मैं चित्त बैठ जान पर ग्राम्य गाप-नारियों की बातों को सुनने के लिये मला कौन आएगा ? हरि को ले जाते हुए विधाता न समस्त व्रज का सार हर लिया । गोपांगनाओं का तो उस निष्ठुर दुरात्मा ने सबस्व ही छीन लिया । नगर की महिलाओं का बचन सारगर्भित एवम् हास्यपुत्र हाना है गति सविगस एवम् मुल्लित होती है और अवलोकन अत्यन्त बटाक्षूण होना है ॥१३-१७॥ ये हरि गाँव के हैं । उन लीला के विलास रूपा पाग म फंगरर व फिर तुम लीला के पास कैसे आयेंगे ? यह देखो रथ पर चढ़कर बैगद मथुरा जा रहे हैं । निगोडा एवम कूर अकूर इन्हें टग कर ले जा रहा है । क्या यह हथारा इनकी प्रमिया को नहीं जानता है जा निच आह लाने देने वाल हमारै हरि का लिय जा रहा है ? यह अत्यन्त निग्य अकूर रथ पर चढ़कर कृष्ण राम को लिये जा रहा है जल्दी करो इगरो रीत दें ॥१८-२१॥ क्या बहती हो कि गुरुजना के सामने हम ऐसा बचन म असमर्थ हैं । अरे ! विरहाग्नि स जल का गुरुजन क्या करेगे ? नन्दगोप प्रमृति गरा तो जा ही रहे हैं मला गाधिद का निवारण कौन करे ? आज मथुरा की रमणिया के लिये सुप्रभात हुआ जो

१४ ०४ गगनाये २४ ०४ मृगो ग्राम्यगोपी ० १३ ग निरागेन ४४ ०४ ०४ ०४ पात्रि हागे-
 नैवमुक्त्वा सर्वं सतीजनम् । ५३ मन्तानिना ।

सुप्रभाताञ्छ रजनी मयुरावासियोषिताम् । यासामच्युतववत्राब्जे याति नेत्रालिभोग्यताम् ॥२४॥
 धन्यास्ते ययि ये कृष्णमितो यान्तमवारिताः । उद्धहिष्यन्ति पश्यन्तः स्वदेहं पुलकाञ्चितम् ॥२५॥
 मयुरानगरीपौरनयनानां महोत्सवः । गोविन्दधनालोकादतीवाद्य भविष्यति ॥२६॥
 को नु स्वप्नः सभाग्याभिर्दृष्टस्ताभिरधोक्षजम् । विस्तारिकान्तनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारितम् ॥२७॥
 अहो गोपीजनस्यास्य दर्शयित्वा महानिधिम् । उद्धृतान्यद्य नेत्राणि विधात्राऽकृष्णात्मना ॥२८॥
 अनुरागेण शंयित्यमस्मासु व्रजतो हरेः । शंयित्यमुपयान्त्वाशु करेपु वलयान्यपि ॥२९॥
 अक्रूरः क्रूरहृदयः शीघ्रं प्रेरयते हयान् । एवमातसि धोषित्सु घृणा कस्य न जायते ॥३०॥
 हे हे कृष्ण रयस्योच्चैश्चक्षुरेणुनिरीक्ष्यताम् । दूरोद्धृतो हरिर्येन सोऽपि रेणुनं लक्ष्यते ॥३१॥
 इत्येवमतिहासेन गोपीजननिरीक्षितः । तस्याज व्रजभूभागं सह रामेण वेशवः ॥३२॥
 गच्छन्तो जवनादवेन रथेन यमुनातटम् । प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दनाः ॥३३॥
 अयाऽह कृष्णमक्रूरो भवद्भ्यां तावदास्यताम् । यावत्करोमि कालिन्द्यामाह्निकाह्णमभ्रसि ॥३४॥
 तथेत्युक्ते ततः स्नातः स्वाद्यान्तः स महामतिः । दध्मो ब्रह्म परं विप्राः प्रविश्य यमुनाजले ॥३५॥
 फणसिहस्रमालाढ्यं बलभद्रं ददर्श सः । कुन्दामलाङ्गमुद्रिप्रपदमपत्रायतेक्षणम् ॥३६॥
 वृत्तं 'वासुकिडिम्भोर्धर्महृद्भि' पयनाशिभिः । 'सस्तूपमानसद्वगन्धिवनमालाधिभूषितम् ॥३७॥

उत्तरे नेत्र रूपी भौरे कृष्ण के मुख रूपी वमल का रसास्वादन करेंगे । ये व्यक्ति धन्य हैं, जो मार्ग में कृष्ण का दर्शन करते आनन्द से सारी को रोमाञ्चित करेंगे ॥२२-२५॥ आज गोविन्द के मुखावलोकन से मयुरावासियों को अपार हर्ष होगा । उन लोगों ने बौन सा सुस्वप्न देखा था जो आज प्रफुल्लित नेत्रों से कृष्ण का सदशन करेंगे । हाय ! गोपीजनो को महानिधि दिखाकर आज निर्दय विघाता ने उनके नेत्रों को निवाल लिया । ' हम लोगों में अपने अनुराग को सिधिल करने हरि के चले जाने पर हमारे हाथों के बगन भी सिधिल हो रहे हैं । इस प्रकार आते अय-लाभों के प्रति निसे दया उत्पन्न नहीं होगी ? किन्तु यह क्रूरहृदय अक्रूर तेजी से घोंबों को हॉन रहा है । हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! वह बहुत ऊपर रथ के चक्र की घूर्ति देखो । अब तो जिस घूर्ति ने कृष्ण को अलक्षित कर दिया, वह भी गिराई नहीं देनी ॥२३-२१॥ इस प्रकार अत्यन्त अनुराग से गोपीयां तावती ही रही कि राम सहित कृष्ण व्रज के भू-भाग को पार कर गये । शीघ्रगामी अश्वयुक्त रथ से दोपहर के समय राम, अक्रूर और कृष्ण यमुना-तट पर पहुँचे । तब अक्रूर ने कृष्ण-राम में कहा—'तबतक आप दोनों आराम करें जब तक मैं यमुना-जल में नित्यवर्ध (सध्या-वदन करि) मग्न रहूँगा । विप्रबुद्ध ! उनकी स्वीकृति मिल जाने पर महाबुद्धिमान् अक्रूर यमुना-जल में स्नान कर आभयन करने परब्रह्म का ध्यान करने लगे ॥२३-२५॥ उन्होंने जल के भीतर सहस्र पद्माओं से युक्त, कुन्दपुष्प के लहान रत्नोंवा, विभिन्न कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, वामुनि के बच्चों से आवुन, महान् शरी से स्तूपमान, वनमाला से विभूषित, नीलवस्त्रधारी, मनोहर आम्रपत्रों से युक्त, चार कुण्डलों से सुशोभित और मद से झूमते हुए

दधानमसिते वस्त्रे चारुरूपावतंसकम् । चारुकुण्डलितं मत्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८॥
 तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताग्रायतलोचनम् । चतुर्बहुमुदाराङ्गं चनाद्यायुधभूषणम् ॥३९॥
 पोते वसानं वसने चित्रमाल्यविभूषितम् । चक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०॥
 श्रीवत्सवक्षसं चारुकेयूरमुकुटोज्ज्वलम् । ददर्श कृष्णमविलष्टं पुण्डरीकावतसयम् ॥४१॥
 सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः सिद्धयोगैरकल्मषैः । 'सच्चिन्त्यमानं मनसा नास्त्यग्रन्थस्तलोचनं ॥४२॥
 बलकृष्णो तदाऽकूरं प्रत्यभिज्ञाय विस्मितः । अचिन्त्यदयो शोध्रं कथमत्रागतविति ॥४३॥
 विवक्षो स्तम्भयामास वाचं तस्य' जनार्दनः । ततो निष्क्रम्य सलिलाद्वयमभ्यागतं पुनः ॥४४॥
 ददर्श तत्र चंबोभी रयस्योपरि सस्थितौ । रामकृष्णौ यथा पूर्वं मनुष्यवपुषाऽऽन्वितौ ॥४५॥
 निमग्नश्च पुनस्तोये दृष्टो स तथैव तौ । सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगं ॥४६॥
 ततो विज्ञातसद्भावः स तु दानपतिस्तदा । तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७॥

अकूर उवाच

तन्मात्ररूपेणैव चिन्त्यमहिम्ने परमात्मने । व्यापिते नैकरूपैरवस्थायां नमो नमः ॥४८॥
 शब्दरूपाय तैश्चिन्त्यहविर्भूताय ते नमः । नमो विज्ञानरूपाय पराय प्रकृते प्रभो ॥४९॥
 भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् । आत्मा च परमात्मा च त्वमेक पञ्चधा स्थितः ॥५०॥

बलमद्र को देखा । उनके थोडा प्रदेश म मेध के समान श्यामवर्ण वाले, लाल तथा दीर्घ नेत्र वाले, चतुर्भुज, सुन्दर अव-
 यवा से युक्त, चक्र आदि आयुधो से विभूषित पीताम्बर, विचित्र मालाआ से सुशोभित, इन्द्रधनुष, विद्युत् तथा मेघ
 के सदृश दीप्तने वाले, श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त, सुन्दर केयूर तथा उज्ज्वल मुकुट से आभूषित, कमल-गुप्ता के
 आभूषण धारण करने वाले, प्रसन्न और नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर करने निष्पाप एवम् सिद्ध सनन्दन आदि
 मुनिवा द्वारा ध्यान निय आते हुए कृष्ण का भी देखा ॥३६-४२॥ तब अकूर 'य ही बलमद्र और कृष्ण हैं' यह जानकर
 आश्चर्यान्वित हुए और साबन लगे—'इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ गये । वे बोल्ला ही चाहत थे कि कृष्ण ने उनका
 वास्तवगमन कर दिया । तब वे जल से बाहर निकल कर पुनः रथ के पास आये । यहाँ भी पहिले की तरह मनुष्य-
 परीक्षारी राम-कृष्ण का रथ पर बैठे देखा । पुनः वे जल में डूबे तो उनका उसी रूप में देखा कि गन्धर्व, मुनि,
 सिद्ध तथा महात्मा उनका स्तुति कर रहे हैं । तब यथार्थभाव को समझकर अकूर ने सर्वविज्ञानमय ईश्वर कृष्ण
 की स्तुति प्रारम्भ की ॥४३-४७॥

अकूर बोले—एकतन्मात्ररूप, अचिन्त्य महिमा से युक्त, व्यापक और एव तथा अनन्त रूपा से परे पर-
 मात्मा का नमस्कार है । शब्दरूप तथा अचिन्त्यहविर्भूत शाश्वत नमस्कार है । प्रभो ! विज्ञानरूप तथा प्रकृति से
 परे आत्मा नमस्कार है । आप भूतात्मा इन्द्रियात्मा प्रधानात्मा, आत्मा तथा परमात्मा हैं । आप एव होत हुए
 भी उपर्युक्त पाँचा प्रकार से स्थित हैं ॥४८-५०॥ सर्वमतिमन् ! शराधार ! महेश्वर ! प्रसन्न हास्ये । ब्रह्मा,

प्रसीद सर्वधर्मात्मन्क्षराक्षर' महेश्वर । ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिर्दोरितः' ॥५१॥
 अनाख्येयस्वरूपात्मन्नाख्येयप्रयोजन । अनाख्येयाभिधान त्वां नतोऽस्मि परमेश्वरम् ॥५२॥
 न यत्र नाय विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः । तद्ब्रह्म परमं नित्यमधिकारि भवानजः ॥५३॥
 न कल्पनामृतोऽयस्य सर्वस्याधिगमो यतः । ततः कृष्णाच्युतानन्त विष्णुसंज्ञाभिरोड्यसे ॥५४॥
 सर्वात्मन्स्त्वमज विकल्पनाभिरेतैर्देवास्त्वं जगदखिलं त्वमेव विश्वम् ।
 विश्वात्मन्स्त्वमतिविकारभेदहीनः, सर्वस्मिन्न हि भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत् ॥५५॥
 त्वं ब्रह्मा पशुपतिर्यमा विधाता, त्वं घाता त्रिदशपतिः । समीरणोऽग्निः ।
 तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको, भिन्नात्मा जगदपि पाप्ति शक्तिभेदेः ॥५६॥
 विश्वं भवान्सृजति हन्ति गमस्तिरूपो, विश्वं च ते गुणमयाऽयमज प्रपञ्चः ।
 रूपं परं सदितिवाचकमक्षरं यज्जानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७॥
 ओं नमो वासुदेवाय नमःसकर्मणाय च । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिष्टदाय ते नमः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमन्तर्जले कृष्णमभिष्टूय स यादवः । अर्घयामास सर्वेषां धूपपुष्पमनोमयः ॥५९॥
 परित्यज्यान्यविषयं मनस्तत्र निवेदय सः । 'ब्रह्मभूते चिर स्थित्वा विरराम समाधितः ॥६०॥
 श्रुतश्रुत्यभिवाऽऽत्मानं मन्यमानो द्विजोत्तमाः । आजगाम रमं भूयो निर्गम्य' यमुनाम्भसः ॥६१॥

विष्णु, शिव आदि नामों से आप ही पुकारे जाते हैं। आपके स्वरूप, प्रयोजन तथा सत्ता भी अनिर्वचनीय हैं। पर-
 मेश्वर । आपको नमस्कार है। नाथ ! जहाँ नाम, जाति आदि की कल्पना नहीं होती है, वह नित्य, अविकारी,
 अजन्मा परब्रह्म आप ही हैं। जिसलिये बिना कल्पना (सत्ता) के अर्थ (वस्तु) का अवबोध नहीं होता है इसलिये
 कृष्ण, अच्युत, अनन्त, विष्णु आदि संज्ञाओं से आपकी स्तुति की जाती है ॥५१-५४॥ अखिलात्मन ! अज ! इन
 विनश्यताओं से युक्त आप ही हैं, देव, सम्पूर्ण जगत् तथा विश्व भी आप ही हैं। विश्वात्मन् ! आप विकार तथा भेद
 से अत्यन्त रहित हैं। आप सब मे हैं। आपने अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आप ब्रह्मा, शिव, अर्धमा, विधाता, घाता,
 इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर तथा यम हैं। आप एक होने हुए भी भिन्नात्मा हैं। आप शक्तिभेदों से सत्कार का
 पालन करते हैं ॥५५-५६॥ गमस्ति (मृपे ?) रूप से आप विश्व का सृजन तथा नाश करते हैं। विश्व आपका गुण-
 मय है। यह आप ही का प्रपञ्च है। 'सत्' यह आकार, परम रूप तथा ज्ञानात्मा है। आपने उन सत्-असत् रूप
 को प्रणाम है। वासुदेव का नमस्कार है। सकर्मण को नमस्कार है, प्रद्युम्न को नमस्कार है तथा अनिष्टद को
 नमस्कार है ॥५७-५८॥

व्यास बोले—इस प्रकार जल के भीतर कृष्ण की स्तुति करके यादव ने मनोमय धूप-पुष्पों से परमेश्वर को
 अर्घ किया। अन्य विषयों का परित्याग कर ब्रह्मभूत कृष्ण में मन को लगाकर चिरकाल तक वे वही समाधि में दूरे

रामकृष्णी ददर्शाय यथापूर्वमवस्थितौ । विस्मिताक्ष तदाऽक्रूर त च कृष्णोऽभ्यभाषत ॥६२॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं त्वया दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले । विस्मयोत्फुल्लनयनो भवासलक्ष्यते यतः ॥६३॥

अक्रूर उवाच

अन्तर्जले यदाश्चर्यं दृष्ट तत्र मयाऽच्युत । तदत्रैव हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम् ॥६४॥
जगदेत महाश्चर्यरूप यस्य महात्मन । तेनाऽऽश्चर्यपरेणाह भवता कृष्ण सगत ॥६५॥
तत्किमेतेन मथुरा प्रयामो मधुसूदन । बिभेमि 'कसाद्विजन्म परपिण्डोपजीविन' ॥६६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा चोदयामास सान्न्त्यान्धातरहस । सप्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरा पुरीम् ॥
विलोक्य मथुरा कृष्ण राम छाऽह स यादव ॥६७॥

अक्रूर उवाच

पद्भ्यां यात महावीर्यो रथेनैको विशाम्यहम् । गन्तव्य वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहे ॥
युवयोर्हि वृत्ते वृद्ध कसेन स निरस्यते ॥६८॥

रहे । द्विजधृष्टो । अपने को वृत्तवृत्त समझते हुए वे यमुना जल से निराश कर पुन रथ पर आये । वहाँ राम-कृष्ण को मयाजुव अवस्थित देखकर उन्होंने विस्मय से आँखें मूढ़ ली । तब कृष्ण ने उनसे कहा ॥५९-६२॥

श्रीकृष्ण बोले—अक्रूर । यमुना-जल में तुमने क्या आश्चर्य देखा है जोकि तुम्हारे नेत्र विस्मय से प्रफुल्लित हो रहे हैं ? ॥६३॥

अक्रूर बोले—अच्युत । जल के भीतर जो मैंने आश्चर्य देखा वह यहीं पर मेरे सामने मूर्तरूप में अवस्थित है । कृष्ण । जिन महात्मा का यह निराल ससार ही आश्चर्यरूप है उन्हीं आश्चर्यों से भी पर वे साथ में हैं । मधुसूदन । तो क्यों हम लोग मथुरा जायें ? कस से मुझ डर लगता है । दूगरे का पिण्ड खाकर जाने वाले के जन्म को विस्तार है ॥६४-६६॥

व्यास बोले—इतना कहकर धाम् के समान तीव्र चलने वाले घोड़ा का हाँस कर सायरात्र अक्रूर मथुरा पुरी पहुँचे । मथुरा को देखकर यादव ने कृष्ण तथा राम से कहा ॥६७॥

अक्रूर बोले—महापराक्रमी । आप दानो पीठ घल और मैं अकाल ही रथ से वसुदेव जी के घर जाता हूँ । आप लोग वहाँ अभी न जायें । ऐसा करने से कस वसुदेव जी को निराल बाहर कर देगा ॥६८॥

व्यास उवाच

पुक्त्वा प्रविवेशासावकूरो मयुरां पुरीम् । प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥६९॥
 भिन्नैरेव सान्द्रलोचनैरभिवीक्षितौ । जम्भतुलौलया धोरी प्राप्यौ बालगजाच्चिव ॥७०॥
 ममाणी तु तौ दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् । अपाचेतौ स्वरूपाणि वासांसि हचिराणि तौ ॥७१॥
 तस्य रजकः सोऽय प्रसादारुढविस्मयः । बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चं रामकेशवौ ॥७२॥
 स्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः । पातयामास कोपेन रजकस्य शिरो भुवि ॥७३॥
 वाऽऽदाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः । कृष्णरामौ मुदायुवतौ मालाकारगूह गतौ ॥७४॥
 कासिनेत्रयुगलो मालाकारोऽतिविस्मितः । एतौ कस्य कुतो यातौ मनसाऽचिन्तयत्तत ॥७५॥
 तनीलाम्बरधरो दृष्ट्वाऽतिसुमनोहरौ । स तर्कयामास तदा भुव देवावुपागतौ ॥७६॥
 काशिमुलपद्मान्यां ताम्बा पुष्पाणि याचितः । भुवं विष्टम्य हस्ताभ्यां परस्पर्शं शिरसा महीम् ॥७७॥
 तावत्सुमुखौ नाथो मम गेहमुपागतौ । धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ मातृजोषिकः ॥७८॥
 तः प्रहृष्टदन्तस्तयोः पुष्पाणि कामतः । चारुष्येतानि चैतानि प्रददौ स विलोभयन् ॥७९॥
 नः पुनः प्रणम्यासौ मालाकारोत्तमो ददौ । पुष्पाणि ताम्बां चारुणि गन्धवन्त्यमलानि च ॥८०॥

व्यास बोले—इतना कहकर अकूर मयुरापुरी में प्रविष्ट हुए और राम-कृष्ण भी राजमार्ग पर चलने लगे । र-नारिणां आनन्दित नेत्रों से उनको देखने लगी । वे दोनों वीर बालगज की तरह लीला करते हुए चलते थे । मग्न करते हुए उन्होंने एक रंगरेज घोड़ी को देखा । उससे अपने अनुरूप सुन्दर वस्त्रों की याचना की । वह उस वा घोड़ी था । इसलिये विस्मित होकर उसने राम-केशव से उच्चस्वर में बहुत व्यग्ययुक्त वचन कहे । तब कृष्ण ने त्रौघ से उस दुरात्मा घोड़ी के शिर को हस्त प्रहारसे भूमि पर गिरा दिया । उसे मारकर पीले तथा नीले रंगों को लेकर हर्षित कृष्ण तथा राम माली के घर की ओर बढ़े । माली पीत-नीलाम्बरधारी दोनों माद्यों को देखकर तत्पन्त आश्चर्यान्वित हुआ और प्रफुल्लित नेत्रों से उनकी ओर दाकते हुए मन में सोचने लगा—‘ये दोनों किसके हैं ? कहाँ जा रहे हैं ?’ ॥६९-७५॥ उसने अनुमान किया कि ये देव हैं । अपने मुखमाल को खोकर दोनों ने उससे पुष्पों की याचना की । माली ने पृथ्वी पर दोनों हाथों को रखकर शिर से भूमि का स्पर्श किया और कहा—‘नाथ ! प्रसन्न मुख वाले ! आप दोनों मेरे घर आये, इसी से मैं अपने को धन्य समझता हूँ । मैं आप दोनों की पूजा करूँगा ।’ इतना कहकर वह प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर-सुन्दर फूलों से उन दोनों को लुगते हुए पुष्प समर्पित करने लगा । पुनः पुनः प्रणाम करते मालाकार ने उन्हें मनोहर, सुगन्धित तथा स्वच्छ पुष्प दिये । कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर माली को वरदान दिया—‘भद्र ! मेरी आश्रित लक्ष्मी तुम्हें कभी भी न छोड़ेगी । सौम्य ! जब तक पृथ्वी

१क ०णो ततो ६० । २ख सुहृपाणि । ३. ख. ग. ०गलो मा० । ४क ख जीवन । ५० । ६ख. ०धन स्वय पु० । ६क. हृष्टात्मा ।

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रवदौ धरम् । श्रीस्त्वांमत्संश्रया भद्रं न कदाचिर्यजिष्यति ॥८१॥
 बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरथापि वा । यावद्वरणिसूर्यौ च संततिः पुत्रपौत्रिकी ॥८२॥
 भुक्त्वा च विपुलान्भोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः । ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यलोकमवाप्स्यसि ॥८३॥
 धर्मं 'मनश्च ते भद्र सर्वकालं भविष्यति । युष्मत्संततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥८४॥
 नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्संततिसंभवः । अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ॥८५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तद्गुहात्कृष्णो बलदेवसहायवान् । निजंगाम मुनिश्रेष्ठा मालाकारेण पूजितः ॥८६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मेऽक्षूरप्रत्यागमनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जोद्धारवर्णनम्

व्यास उवाच

राजमार्गे ततः कृष्णः सानुलेपनभाजनाम् । ददर्श कुब्जामायांतीं नवयौवनमोक्षराम् ॥१॥
 तामाह ललित कृष्णः कस्येदमनुलेपनम् । भवत्या नीयते सत्यं वदेद्वीरलोचने ॥२॥

तथा सूर्य रहेगे तब तक तुम्हारी बलहानि, तथा धनहानि नहीं होगी। पुनःपुनः आदि सन्तानें होगी। विपुल भोगों को भोगकर अन्त में तुम मेरी वृषा से मेरे स्मरण करते हुए दिव्यलोक को जाओगे। नद्र ! धर्म में तुम्हारा मन सदा लगेगा। तुम्हारी सन्तानों की लक्ष्मी आयु होगी। महाभाग ! जब तक सूर्य रहेगे तब तक तुम्हें किसी प्रकार के उत्पन्न आदि दोष नहीं हूँ ॥८६-८५॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठा ! इतना कहकर मालाकार द्वारा पूजित कृष्ण बलराम के साथ उसके घर से बाहर निकल गए ॥८६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अक्षूर-प्रत्यागमन नामक एक सौ बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९२॥

अध्याय १९३

कुब्जा का उद्धार-वर्णन

व्यास बोले—तदुपरान्त कृष्ण ने राजमार्ग पर अनुलेप (चन्दन, बेसर आदि) के पात्र को लिये आती हुई नवयौवना कुब्जा को देखा। उसको देखकर कृष्ण ने कहा—'नमस्त्वोन्मते ! जिसने लिये तुम यह सुललित

सकामेनैव सा प्रोक्ता सानुरागा हरि प्रति । प्राह सा ललित कुब्जा ददर्श च यलात्तत ॥३॥

कुब्जोवाच

कान्त कस्मान्न जानासि कसेनापि नियोजिता । नैकवक्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि ॥४॥
नान्यपिष्ट हि कसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम् । भवत्यहमतीवास्य प्रसादयन्भाजनम् ॥५॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुगन्धभेतद्राजाहं रुचिर रुचिरानने । आवधोगत्रिसदृश दीयतामनुलेपनम् ॥६॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तमाह सा कृष्ण गृह्यतामिति सादरम् । अनुलेप च प्रददौ गात्रयोग्यमथोभयो ॥७॥
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गी ततस्तौ पुरुषर्षभौ । सेन्द्रचापौ विराजन्तौ सितकृष्णाविधाम्बुदौ ॥८॥
ततस्तां चिबुकौ 'शौरिरुल्लापनविधानवित । उल्लाप्य तोलयामास द्वयङ्गुलेनाग्रपाणिना ॥९॥
चवर्यं पद्भ्या च तदा शृङ्गुत्व केशयोऽनयत् । तत सा शृङ्गुता प्राप्ता योयितामभवद्वरा ॥१०॥
विलासललित प्राह प्रेमगर्भभरालसम् । यस्त्रे प्रगृह्य गोविन्द व्रज गेहं ममेति वै ॥११॥
आपास्ये भवतीगेहमिति ता प्राह केशव । विससर्ज जहासोच्चं रामस्याऽल्लोक्ष्य चाऽऽननम् ॥१२॥

अनुलेपन लिय जा रही हो? सब बोले। कुब्जा भी सकाम भाव से कृष्ण की ओर देखकर सुन्दर वचन बोली ॥१३॥

कुब्जा ने कहा—वान्त ! क्यों नहीं आप जानते कि कुब्जा कस के अनुलेपन कम के लिये रखी गई है । दूसरे का पिता हुआ चन्दन कस को नहीं गहाता है । मैं उसकी अत्यन्त कृपापात्र हूँ ॥४५॥

श्रीकृष्ण बोले—समुति ! राजा के योग्य यह सुगन्धित अनुलेप हम दोनों के अंगों में लगाने योग्य है । यह हम दे दो ॥६॥

व्यास बोले—यह सुनकर कुब्जा ने कृष्ण से आदरपूर्वक कहा—लीजिये । बाद में उसने उन दोनों का घीर का योग अनुलेप दे दिया । चित्रकारीपूर्वक अनुलेप के लगाने पर दोनों नरपुंगव इन्द्रधनुष तथा 'गुब्ज-कृष्ण' नाम की तरह गगोमित हुए । तत्पश्चात् उगने के विधान को जानने वाले कृष्ण ने अपनी हाथ की दो अंगुलिया को कुब्जा की ठुडकी में लगाकर ऊपर की उठा दिया और पैरों से सींचा (अर्थात् अपने पैरों से उसका पैरों को दवाकर पवित्र को उगा दिया) । इस प्रकार कृष्ण ने उसको सींचा कर दिया । सींची होने पर वह थपल रमणी बन गई । तब गोविन्द के सख पण्डित उसने प्रेम से लज्जालव मरी होने के कारण अस्मायी हुई तथा हाव भाव से सुन्दर बात कृष्ण से बोली कि मेरे घर चलिये । 'मैं आऊँगा' ऐसा कृष्ण ने भी उससे कह दिया । राम का मुख देखकर जार से

भक्षितच्छेदानुलिप्ताङ्गौ नीलपीताम्बरावुभौ । धनुशाला ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥१३॥
 अध्यास्य च धनूरत्न ताम्बा पृष्ठस्तु रक्षिभि । आरयात सहसा कृष्णो गृहीत्वाऽपूरयद्धनु ॥१४॥
 तत पूरयता तेन भक्ष्यमान बलाद्धनु । चकारातिमहाशब्द मधुरा तन पूरिता ॥१५॥
 अनुपुवतौ ततस्ती च भग्ने धनुषि रक्षिभि । रक्षिसम्य निकृत्योभौ निष्क्रान्तौ कामुकालयात ॥१६॥
 अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य तथा धनु । भग्न श्रुत्वाऽथ कसोऽपि प्राह चाणूरमुष्टिकौ ॥१७॥

कम उवाच

गोपालदारकौ प्राप्ता भवद्भूषा तौ ममाग्रत । मल्लयुद्धेन हतव्यौ मम प्राणहरो हि तौ ॥१८॥
 निपुद्धे तद्विनाशन भवदभ्या तोषितो ह्यहम् । वास्याभ्यभिक्ता कामाक्षा यथैत महाबलौ ॥१९॥
 न्यायतोऽयायतो वार्षि भवदभ्या तौ ममाहितौ । हन्तव्यौ तद्वधाद्राज्य सामा य वो भविष्यति ॥२०॥

व्यास उवाच

इत्यादिश्य स तौ मल्लौ ततश्चाऽह्य हस्तिपम । प्रोवाचोच्चैस्त्वया 'मत्त समाजद्वारि कुञ्जर ॥२१॥
 स्थाप्य कुबलयोपिडस्तेन तौ गोपदारकौ । घातनीयौ नियुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ ॥२२॥
 तमाज्ञाप्याथ दृष्ट्वा च मञ्चान्सवानुपाहृतान । आसन्नमरण कस सूर्योदयमुदक्षत ॥२३॥

हंसते हुए कृष्ण ने उसको बिदा किया । तदुपरान्त भक्तिपूर्वक समर्पित अनुलेप से शिप्याग नील-पीत-वस्त्रधारी तथा विचित्र मालाओं से सुशोभित राम और कृष्ण धनुष-शाला की ओर प्रस्थित हुए । वहाँ रणबा से धनुष के बारे में पूछा । उनके बतलाने पर कृष्ण ने सहसा धनुष को उठाकर खींचा । बलपूर्वक खींचने से धनुष टूट गया । उसने महागर्ज से मयुरापुरी गूँज उठी । धनुष के टूट जाने पर रक्षकों ने उनके ऊपर आक्रमण किया । पर रक्षा-सैनिकों को भार-भीत कर दोना बीर धनुषालय से निरल गये । अक्रूर के आगमन का वृत्तान्त एवम धनुष भग का समाचार सुनकर कस ने चाणूर और मुष्टिक से कहा ॥१७॥

कस बोला—दोनों गोपा-कुमार मरे पास आ गये हैं । वे मेरे प्राणा के ग्राहक हैं । तुम उनको मार्युद्ध में मार दो । युद्ध में उनके मार दन से मैं प्रसन्न हूँगा और तुम दोनों महाबलवानों को मुह माग मुराद दूँगा । ऐसे असाय न रामगो । 'याय स या जन्वाय ते उन दोनों मरे शत्रुओं को अवश्य मारता । उनसे बच करने से राज्य पर तुम्हारा समानाधिकार होगा ॥१८-२०॥

व्यास बोले—उन महानानों को एगा आगे देकर कस महावत को बुगवर जार से बटन गगा—कुबल धापी नामक मनवाले हाथी को सुध द्वार पर रणता । युद्ध के लिये वे दोना गोपा-कुमार व्याही समर-द्वार पर आग त्योही हाथी से डूँड भरवा डारता । उसको आगा देकर सप्तत रण-मचा को देखकर मुमुषु कस ने सूर्योदय को देता ।

तत समस्तमञ्चेषु नागर स तदा जन । राजमञ्चेषु चाऽऽवृद्धा सह भृत्यमंहोभूत ॥२४॥
मल्लप्राशिनकवर्गश्च रङ्गमध्ये समीपग । कृत कसेन कसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थित ॥२५॥
• अन्त पुराणा मञ्चाश्च यथाऽप्ये परिकल्पिता । अन्ये च वारमुत्पानामन्ये नगरयोपिताम ॥२६॥
नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिता । अक्रूरवसुदेवो च मञ्चप्रान्ते व्यवस्थितौ ॥२७॥
नगरोयोपिता मध्ये देवकी पुत्रगन्धिनी । अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुख स्थिता ॥२८॥
वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणूरे चातिवल्गति । हाहाकारपरे लोक आस्फोटयति मुष्टिके ॥२९॥
हत्वा ध्रुवल्यापीड हस्त्यारोहप्रचोदितम् । मदासृगनुलिप्ताङ्गो गजदन्तवराधुधौ ॥३०॥
मृगमध्ये यथा सिंहौ गर्वलीलावलोकितौ । प्रविष्टौ सुमहारङ्ग बलदेवजनान्नौ ॥३१॥
हाहाकारो महाञ्जज्ञे सर्वरङ्गेष्वनन्तरम् । कृष्णोऽय बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयात् ॥३२॥
सोऽय येन हता घोरा वृत्तना सा निशाचरी^१ । प्रक्षिप्त शकट येन भग्नौ च यमलार्जुनौ ॥३३॥
सोऽय य कालिय नाग ननर्ताऽऽरुह्य बालक । धृतो गोवर्धनो येन सप्तरात्र महागिरि ॥३४॥
अरिष्टो धनुक् केदारी लील्येव महात्मना । हतो येन च दुर्वृत्तो दृश्यते सोऽयमच्युत ॥३५॥
अय चास्य महाबाहुर्बलदेवोऽप्रजोऽप्रत । प्रयाति लीलया योपिन्मनोनयननन्दन^२ ॥३६॥
अय स^३ व्यप्यते प्राज्ञे पुराणार्थावलोकिभि । गोपालो यादव वंश मगमभ्युद्धरिष्यति ॥३७॥

तब समस्त मन्चों पर नागरिक लोग बैठ गये । राज मन्चों पर अनुचरों समेत राजगण भी बैठ गये । पहलवाना का समुदाय रंगमंच के समीप ही अवस्थित हुआ । वस अयुज्ज मंच पर विराजमान था । अन्त पुरवासिनी अन्तर्वासी के बन्पात्रा का तथा नागरिक महिमाओं के मंच पुष्क-पुष्क बनाये गये थे । नन्दगोप आदि गोप भी अय मञ्चों पर बैठ थे । अनूर तथा वसुदेव भी मञ्चप्रान्त में अवस्थित हुए । अन्तकाल में भी पुत्र का मुख देखूगी इस लालसा से देवकी नगर-नारिया के बीच जा बैठी । नगाड बजने लगे । चाणूर अत्यन्त वागाडम्बर कर रहा था । मष्टिक ताल ठान रहा था । लोग भी हाहाकार मच रहा था ॥२१-२९॥ महावत द्वारा प्ररित ध्रुवल्यापीड को मारकर उमक दौना को अस्त्र रूप में धारण कर तथा गव से तमाशा देखने वाले मद एवम शीणित सेलिप्त अग बाल बन्धेव और कृष्ण रंगमूमि में जसी तरह प्रविष्ट हुए जैसे सिंह मृग के मध्य में । समस्त रंगमूमि में महान् कोराहल मच गया । यह कृष्ण है यह बलराम है इस प्रकार बहते हुए लोग आदर्य के साथ एक दूसरे से पुछने लगे— य वही हैं जिन्होंने वृत्तना नामक शयकर राक्षसी को मारा शकट को फका यमलार्जुन को तोना कालिय नाग के ऊपर चढ़कर नृत्य किया सात रात्रि तक गोवर्धन पर्वत का धारण किया और दुर्गाचारी अरिष्ट धनुक् तथा केदारी को सहज ही में मार डाला । य अच्युत आज हमारे सामने हैं । ये महाशक्तिशाली बलदेव इनके ज्येष्ठ भाई हैं । य सहज ही में वनिताका क चित्त तथा मयना को मुग्ध कर देत हैं । इनके विषय में पुराणा के तत्त्ववेत्ता विद्वान् कहत हैं कि ये

अथ स सर्वभूतस्य विष्णोरखिलजन्मन । अवतीर्णो' महीमशो नून भारहरो भुव ॥३८॥
इत्येव धर्णिते पौरै रामे कृष्णे च तत्क्षणात् । उरस्तताप देवक्या स्नेहस्नुतपयोधरम् ॥३९॥
महोत्सवमिवालोक्य' पुत्रावेव विलोकयन । युवेव' वसुदेवोऽभूद्विहायाम्यागतो जराम् ॥४०॥
विस्तारिताक्षियुगला राजान्त'पुरयोपित । नागरस्त्रीसमूहश्च द्रष्टु न विरराम तो ॥४१॥

स्त्रिय ऊचु

सत्य पश्यत कृष्णस्य मुखमप्यम्बुजेक्षणम् । गजयुद्धकृतायास्तस्वेदाम्बुकणिकाञ्चितम् ॥४२॥
विकासोव सरोम्भोजमवश्यायजलोक्षितम् । परिभूताक्षर जन्म सफल क्रियता दश ॥४३॥
श्रीवत्साङ्क जगद्धाम बालस्येत्तद्विलोकयताम् । विपक्षक्षपण वशो भुजयुग्म च भामिनि ॥४४॥
बलगता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा परे । क्रियते बलभद्रस्य हास्यमोपद्विलोक्यताम् ॥४५॥
सत्य पश्यत चाणूर नियुद्धार्थमय हरि । समुपैति न सत्यत्र कि वृद्धा युक्तकारिण ॥४६॥
यव यौवनोन्मुखीभूत सुकुमारतनुहरि । यव यञ्जकठिनाभोगशरीरोऽय महासुर ॥४७॥
इमो सुललितो रङ्गे वर्तते नवयौवनो । दंतेयमल्लाशचाणूरप्रमुखास्त्वतिदारुणा ॥४८॥
निमुद्धप्राप्तिनकाना तु महानेय व्यतिक्रम । यद्बालबलिनोर्युद्ध मध्यस्थं समुपैष्यते ॥४९॥

हूबे हुए यादन वगैरा उद्धार करने । ये सबजना तथा सबभूत विष्णु के अङ्ग से पृथ्वी के भार उतारने के लिये धरणी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥३८॥ इस प्रकार पुरवासी लोग राम और कृष्ण के वपन कर रहे थे और देवकी की छाती सतप्त होकर स्नेह से दूध बहा रही था । वसुदेव महान् उत्सव की तरह दोना पुत्रा को ही देखते थे । वे मानी आई हुई वृद्धता का त्याग कर युवक हो गये थे । राजा के अन्तःपुर की रमणियाँ तथा नगर की ललनाय आँस पाड़-फाड़ कर उनकी ओर अविरत गति से देख रही थी ॥३९॥ ४१॥

स्त्रियो ने कहा—सखियो ! कृष्ण के मुखकमल का देखो । गजयुद्धजय प्रस्वेद-जल की वृद्धा से व्याप्त इनका मुख कैसे सुगोमित हो रहा है जैसे हिम-जल से सींचा हुआ विविध रंगमल । इनका दान करके आज जन्म सफल करो । तिलासिनिया ! इनके श्रीवपन चिह्न 'गुग्गुला' को दान करन काको भुजाया तथा छाती को देखो । बाचाल मुष्टिक तथा चाणूर बलभद्र ता उपहास कर रहे हैं अथ देखो ता । सखियो ! चाणूर को देखो यह कृष्ण से लड़ने जा रहा है । क्या यहाँ न्याय करने वाले वृद्ध लोग नहीं हैं ? कहाँ यौवन को प्राप्त करते हुए ये सुगोमित-तनु कृष्ण और कहाँ यह यक्ष के गमान बलोर तथा मन्त्राद्य महासुर ? रत्नमूर्ति म ये दोना नवयुवक सुकुमार हैं और चाणूर प्रभूति दीय पहलवान अत्यन्त दारुण है । यद्ध के परीक्षा का यह महान् अध्याय है जो य वाच्य तथा बन्धु वानों को लडा रहे हैं ॥४२॥ ४९॥

रक्तस्त्रायमहापङ्कजा चकार स तदा भुवम । बलदेवस्तु' तत्काल मुष्टिकेन महाबल ॥६३॥
 युयुधे दत्तमल्लेन चाणूरेण यथा हरि । सोऽप्यन मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥६४॥
 पातयित्वा घरापृष्ठे निष्पिपेय गतायुपम । कृष्णस्तोशलक भूयो मल्लराज महाबलम ॥६५॥
 वाममुष्टिप्रहारण पातयामास भूतल । चाणूरे निहत मल्ल मुष्टिके च निपातिते ॥६६॥
 नोत क्षय तोशलक सर्वे मल्ला प्रवृद्धवु । धवलगतुस्तदा रङ्ग कृष्णसकणयाबुभौ ॥६७॥
 समानवयसो गोपाबलादावृष्य हृषितौ । कसोऽपि कोपरवताक्ष 'प्राहोच्चैर्व्यापितान्नरान' ॥६८॥
 'गोपावतौ' 'समाजीधान्निष्क्रम्यता बलादित । नन्दोऽपि गृह्यता पापो निगडैराशु बध्यताम ॥६९॥
 अवृद्धाह्णेण दण्डन वसुदवोऽपि 'बध्यताम । वल्गन्ति गोपा कृष्णेन ये चमे सहिता पुन' ॥७०॥
 गावो ह्रियन्तामपा च यच्चास्ति वसु किंचन । एवमाज्ञापयत त प्रहस्य मधुसूदन ॥७१॥
 उत्पत्याऽऽरुह्य तन्मञ्च कस जघ्राह 'वगित । केशोत्पाकृत्य विगलिविरीट्स्वर्नतले ॥७२॥
 स कस पातयामास तस्योपरि पपात च । नि शयजगदाधारगुह्या पतसोपरि ॥७३॥
 कृष्णन त्वाजित प्रण द्वादसेनाऽजो नृप । स्मृत्यय वश्यु तदा गृहीत्वा मधुसूदन ॥७४॥

मुष्टिके के साथ बैसो ही उठ रहे थे जैसे दैत्य-मल्ल चाणूर के साथ हरि । उन्होंने भी उसने मस्तक पर मुष्टिप्रहार कर पुनः स उसकी छाती पर मारा । इस प्रकार गतजीवित कर घराशायी करके उसे पीस दिया । कृष्ण ने दूसरी बार तागलव नामक महाबली मल्लराज को वाम मुष्टिप्रहार से घराशायी किया । पहलवान चाणूर मुष्टिके तथा तागलव के निहत हो जल पर रक्त मल्ल माग गया । तब अखाड मकृष्ण और राम हूय ने अपन समवयस गापा को हट्युक्त खींच कर उनका साथ लपटन लय । वसु श्रेय से आग-बबूआ हार कर अपन अनुचरों से बहल ग्या— इन क्षत्रियों गोपा का बगल सामाज से निरान दा पापी नद को भी कैद कर लो और बूढ़ा को न दन माग्य दण्ड से वसुध्व का वष करो । कृष्ण के साथ जो गाप लपट रहे हैं उनको पकड़ आ और उनका घन तथा गापा का अटहरण कर लो ॥६९॥ ७०॥ इस प्रकार उसका आभा गुनवर मधुसूदन हसन लग और तक्षण छलांग मार कर मञ्च पर पड़ गया । वहाँ उगान कम के बागा का पकड़ लिया । उसका मुकुट धरता पर गिर पड़ । तलवात्ता उ घरता पर गिरा कर मगवान भा उगत उगत गिर पड़ । आग जगत् के आधार कृष्ण के गिरन से उग्रमन का पुत्र निर्बल हो गया । तब मूर्ता वग के बगल का पकड़ कर महाबला कृष्ण घसीटत हुए उस रगमक के मध्य में आया । यद्यपि कस का गारा बहल मारी था तो भी महाभा कृष्ण वग से उस घसीट ल गए । कृष्ण द्वारा वग के पकड़ जान पर उत्तरा मर्द

१४ स ०२०३१० । २१ ०२५० गो० । ३१ ०२५३१०० । ४४ ०२५३१०० । ५४ ०२५३१००
 द्वा रङ्गान्निष्ठराजार्थि । अ० । १५ ०२५३१०० निगडैराशुमर्धि । अर्थात् । ७१ ०२५३१०० । ८१ पु० ।
 १४ बज्र । स वेगा ।

चक्षुषं देहं कसस्य रङ्गमध्ये महाबल । गौरवेणातिमहता परिपातेन' कृष्यता ॥७५॥
 कृता कसस्य देहेन वेगितेन महात्मना । कसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽभ्यागतो रूपा ॥७६॥
 सुनामा बलभद्रेण लीलयेव निपातित । ततो हाहाकृत सर्वमासीत्तद्रङ्गमण्डलम् ॥७७॥
 अवज्ञया' हत दृष्ट्वा कृष्णेन मयुरेश्वरम् । कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरम् ॥७८॥
 देववयाश्च महापाहुर्बलदेवसहायवान् । उत्थाप्य वसुदेवस्तु देवकी च जनार्दनम् ॥
 स्मृतजन्मोक्तवचनौ तावेव प्रणतो स्थितौ ॥७९॥

वसुदेव उवाच

प्रसीद देवदेवेश देवानां प्रवर प्रभो । तयाऽऽवयो प्रसादेन कृताभ्युद्धार केशव ॥८०॥
 आराधितो' यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम । दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन न पावित कुलम् ॥८१॥
 त्वमन्त सर्वभूतानां सर्वभूतेष्ववस्थित । वर्तते च समस्तात्मस्त्वत्तो भूतभविष्यती ॥८२॥
 यतो त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमयाध्युत । त्वमेव यज्ञो' यज्ञा' च यज्ञानां परमेश्वर ॥८३॥
 सापह्नव मम मनो यदेतत्त्वयि जायते । देववयाश्चाऽऽत्मजप्रोत्था तदत्यन्तविडम्बना ॥८४॥
 त्वं वर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान् । क्व च मे मानुषस्येया जिह्वा पुत्रेति वक्ष्यति ॥८५॥
 जगदेतज्जगन्नाथ सभूतमखिल यत' । कया युक्त्या विना' माया सोऽस्मत्त सभविष्यति ॥८६॥

सुनामा श्रीव वरते हुए वहाँ आया किन्तु बलभद्र ने सहज ही म उसे मार डाला । तब सम्पूर्ण रंग नूमि में हाहाकार मच गया । तिरस्कारपूर्वक वसु को मारकर महाबली वन्देव सहित कृष्ण शीघ्र ही जाकर वसुदेव तथा देवकी के चरणों पर गिरा । दयाना तथा वसुदेव जनार्दन को उठाकर जन्मार्थीन बचन का स्मरण कर उन्हा को प्रणाम करते हुए छोड़े हुए ॥७९७९॥

वसुदेव बोले—द्वन्द्वदत्त । दत्ता म श्रुत । प्रभो । प्रसन्न होइय । केशव । आपन कृपा करने हम दोनों का उद्धार कर दिया । मेरी आराधना करने पर दुष्टचारिया के वसु के निमित्त जा आपने मेरे घर में अवतार लिया उमम हमारा कुल पवित्र हो गया । आप समस्त भूता का अन्त करण में वास करने हैं । आप अलि' मृतो म अवस्थित हैं । अमितात्मन् । आप ही से मून भविष्य वतमान उत्पन्न हुए हैं । अचिन्त्य । निमित्तदेवमय । अच्युत । यम आप ही की उपासना की जाता है । परमेश्वर । आप ही यम तथा यज्ञकर्ता हैं । मरु और दवरी का मन जा पुत्र-नर-मुद्रमा आप म लगता है वह विडम्बनामात्र है । आप समस्त भूता के वर्ता तथा जन्म मरण स रहित हैं । मैं मनुष्य हूँ । मेरी जिह्वा पुत्र कैसे कहणी ? जगन्नाथ । यह सम्पूर्ण जगन् जिनम उत्पन्न हुआ है व विना माया के किम प्रकार हमस उत्पन्न हाग ? जिनम स्थावर-जगम रूप निमित्त विषय प्रतिष्ठित है वे पंसा मनुष्य स उत्पन्न

१९ परिव्रासन । २० परिव्रातेन । २१ वषपाऽऽ० । २२ स ० भाषि मय० । २३ यज्ञे । २४ स मय्या । २५ मयेत् । २६ ० भा सादुस्य स० ।

यस्मिन्प्रतिष्ठित सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । स कोष्ठोत्सङ्गशयनो मनुष्याज्जायते कथम् ॥८७॥
 स त्व प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्वमशावतारकरणं ममासि पुत्र
 आब्रह्मपादपमय जगदोश सर्वं, चित्ते विमोहयसि किं परमेश्वरात्मन् ॥८८॥
 मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति, कसाद्भय कृतवता तु मयाऽस्तितीव्रम्
 नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलस्य, वृद्धिं गतोऽसि मम चैव गवामधीश ॥८९॥
 कर्माणि ह्रदमरुदशिवशतकृतूना, साध्यानि यानि न भवन्ति निरोक्षितानि
 त्व विष्णुरीशजगतामुपकारहेतोः, प्राप्तोऽसि न परिगत परमो विमोहः ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कसवधकथन नाम

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवकीवसुदेवाभ्या सह कृष्णसंवाद

व्यास उवाच

तौ समुत्पन्नविज्ञानी भगवत्कर्मदर्शनात् । देवकीवसुदेवौ तु दृष्ट्वा मायां पुनर्हरिः ॥१॥

होकर गोद में सोये ? ॥८० ८७॥ परमेश्वर ! वह आप प्रसन्न होइये विश्व की रक्षा कीजिये। आप अंग से अवतीर्ण हुए हैं मेरे पुत्र नहीं हैं। जगदीश ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्भ पर्यन्त सब आप ही हैं। परमेश्वरात्मन् ! क्यों चित्त को मोह भ डाल रहे हैं ? माया-मोहित बधु से मैंने आपको पुत्र रूप में देखा। फिर कस के अत्यन्त भय से मैंने आपको गोकुल पहुँचाया। गवेन्द्र ! शत्रु-भय से मैं व्याकुल था। आपने मेरा उद्धार किया। जो वायु ह्रद भरतु अश्विन् तथा इंद्र के साथ नहीं हैं जिन्हें वे देख भी नहीं सकते उन्हीं कार्यों को आपने सत्कार के कल्याण के लिये किया। ईश ! आप विष्णु हैं। हम महामोह में प्राप्त हैं ॥८८ ९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित-कथन प्रसंग में कसवध-कथन नामक

एक सौ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९३॥

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

व्यास बोले—भगवान् श्रीकृष्ण देखने से देवकी तथा वसुदेव को ज्ञान उत्पन्न हो गया। यह देखकर यादवों को मोह में डालने के लिये हरि न पुनः अपनी वैष्णवी माया को पैला दिया और कहा— तात ! अम्ब ! कस से

मोहाय 'यदुचक्रस्य विततान स वंष्णवीम् । उवाच चाम्ब भोस्तात चिरादुत्कण्ठितेन तु' ॥२॥
 भवन्तो' कंसभीतेन' दृष्टौ संकर्षणेन च । कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ॥३॥
 स' वृथा क्लेशकारी वं साधूनामुपजायते । गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ॥४॥
 कुर्वतः सफलं जन्म देहितस्तात जायते । तत्क्षन्तव्यमिदं सर्वमतिक्रमकृतं पितः ॥
 'कंसवीर्यप्रतापाम्यामावयोः परवश्ययोः ॥५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽथ प्रणम्योभौ यदुवृद्धाननुक्रमत् । पादानतिभिः सस्नेहं चक्रतुः पौरमानसम् ॥६॥
 कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य हतं भुवि । विलेपुर्मातरश्चास्य शोकदुःखपरिप्लुता ॥७॥
 बहुप्रकारमस्वस्थाः पश्चात्तापातुरा हरिः । ताः समाश्वासयामास स्वयमस्याविलेक्षणः ॥८॥
 उप्रसेनं ततो बन्धान्मुमोच मधुसूदनः । अभ्यधिञ्चत्तर्बवं न निजराज्ये हतात्मजम् ॥९॥
 राज्येऽभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहः सुतस्य सः । चकार प्रेतकार्याणि ये चाम्ये तत्र घातितः ॥१०॥
 कृतौर्ध्वदेहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः । उवाचाऽऽज्ञापय विभो यत्कार्यमविशङ्क्या ॥११॥
 ययातिशापाद्वंशोऽयमराज्याहोऽपि सांप्रतम् । मयि भृत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपे ॥१२॥
 इत्युक्त्वा चोप्रसेनं तु वायुं प्रतिजगाद ह । नृवाचा चैव भगवान्केशवः कार्यमानुषः ॥१३॥

देरे हुए बलराम का तथा मुझे चिरकाल से आपके दर्शन करने की उत्कण्ठा थी । सो आज पूरी हुई । जिसका ममय माता-पिता के पूजन किये बिना ही कटता है, वह व्यर्थ है, केवल साधुओं को क्लेश देने के लिये वह उत्पन्न होता है । तात ! गुरु, देवता, ब्राह्मण तथा माता-पिता की पूजा करने वाले मनुष्य का जन्म सफल है । पिता जी ! अब आप क्षमा करेंगे । कंस के पराक्रम तथा प्रताप से पराधीन होकर हम दोनों ने इन सब का अतिक्रमण किया ॥१-५॥

व्यास बोले—इतना कहकर दोनों ने भ्रमश यदुवशी वृद्धों के चरण धूकर प्रणाम किया । पुरवासियों के मन में उनके प्रति अत्यन्त स्नेह हो गया । मूर्ति पर निहत्त कंस को देखकर कंस की पत्नियाँ तथा मातायें शोकातुर होकर विलाप करने लगीं । पश्चात्ताप करती हुई उन अस्वस्थ अवस्था को स्वयम् आँखों से धीसू बहाते हुए कृष्ण ने बहुत प्रकार से आश्वासन दिया । तब मधुसूदन ने उप्रसेन को बन्धन से उन्मुक्त किया और पुत्र के मर जाने पर अपने राज्य में उन्हीं को अभिषिक्त किया । कृष्ण द्वारा राज्य में अभिषिक्त होकर उप्रसेन ने पुत्र के तथा वहाँ जितने मारे गये थे, उन सबके श्राद्ध किये । और्ध्वदेहिक किया करने के बाद उप्रसेन के सिंहासनासीन होने पर कृष्ण ने उनसे कहा—'प्रभो ! आप नि सत्कोच मुझे आज्ञा कीजिये । ययाति के शाप के कारण यदुवशी तो राजा ही नहीं सकते । फिर भी मेरे जैसे मृत्यु के रहते आप देवताओं का भी आज्ञा दीजिये । राजाओं की तो बात ही क्या !' उप्रसेन से इतना कहकर कार्याय मनुष्यशरीरधारी भगवान् केशव ने वायु से मनुष्यवाणी भी ही कहा ॥६-१३॥

१. बसुदेवस्य । २. ग. मे । ३. भवतो । ४. ० न न कृत सेवन मया । कु० । ५. स तु दुरत्ययो-
 श्रप्यं ता० । ६. ० वीर्यप्रवसतोराव० ।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव । दीपतामृषसेनाय सुधर्मा भवता सभा ॥१४॥
कृष्णो ब्रवीति राजाहंमेतद्रत्नमनुत्तमम् । सुधर्माख्या सभा युक्तमस्यां यदुभिरासितुम् ॥१५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम् । ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरंदरः ॥१६॥
वायुना चाऽऽहृता दिव्या ते सभा यदुपुंगवाः । बभुजुः सर्वरत्नाद्व्यां गोविन्दभुजसंभवाः ॥१७॥
विदिताखिलविज्ञानी सर्वज्ञानमयावपि । शिष्याचार्यत्रयं वीरो व्यापयन्तो यद्वत्तमो ॥१८॥
ततः सादीपनि काश्यपवन्तिपुरवासीनम् । अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरो बलदेवजनार्दनो ॥१९॥
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरो हि तौ । दर्शयाचक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ॥२०॥
सरहस्यं धनुर्वेदं ससंग्रहमधीयताम् । अहोरात्रं चतुःपट्या तदद्भुतमभूद्विजाः ॥२१॥
सादीपनिरसंभाष्य तयोः कर्मातिमानुपम् । विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्ता चन्द्रदिवाकरो ॥२२॥
अस्त्रप्राममशेषं च प्रोक्तमाववाप्य तौ । ऊचतुर्व्रियतां या ते वातध्या गुरुदक्षिणा ॥२३॥
सोऽप्यतीन्द्रियमालोक्य तयोः कर्म महामतिः । अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे लवणार्णवे ॥२४॥

श्रीकृष्ण बोले—जाओ और इन्द्र से गर्वपूर्वक कहो—‘आप उपसेना को सुधर्मा नामक देवसभा दे दीजिये ।
कृष्ण कहते हैं कि यह उत्तम रत्न राजा के योग्य है । सुधर्मा नामक सभा मे यादवों का बैठना उचित है ॥१४-१५॥

व्यास बोले—एतदुपरान्त पवन ने इन्द्र से जाकर सब समाचार कह दिये । उन्होंने भी वायु को सुधर्मा नामक सभा दे दी । वायु देवसभा को ले आये । गोविन्द के भुजबल से यदुपुंगव अखिल रत्नों से सुसम्पन्न देवसभा का उपभोग करने लगे । निखिल विज्ञान को जानने वाले, सर्वज्ञानमय तथा वीर वादयश्रेष्ठ कृष्ण और बलराम शिष्य तथा आचार्य के त्रय को विख्यात करने के निमित्त अवन्तिपुरवासी सादीपनि से अस्त्र विद्या सीखने के लिये गये । उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर के गुरुसेवापरायण होकर दोनों वीर लोगों को आचार दिखलाने लगे । द्विजगण ! यह आश्चर्य की बात है कि चौंसठ अहोरात्र मे ही उन्होंने सग्रह तथा रहस्य सहित धनुर्वेद को सीख लिया ॥१६-२१॥ सादीपनि ने उन दोनों के असमव तथा लोकोत्तर कर्म को देखकर उन्हें सूर्य तथा चन्द्रमा समझा । अस्त्र समूह का प्रयोग तो बताते ही उन्होंने सीख लिया । तब उन्होंने गुरु से कहा—‘आप दक्षिणा के लिये हमें आदेश करें ।’ महाबुद्धिमान् सादीपनि ने भी उनके अतीन्द्रिय कर्म को देखकर प्रभास नामक क्षार समुद्र मे मरे हुए अपने पुत्र के लिये याचना की । तब अस्त्र लेकर वे दोनों लवण समुद्र को गये और समुद्र से कहा—‘गुरु-गुप्त को दे दो । द्विजश्रेष्ठो ।’

१ख वाङ्मिता । २क ख ता । ३क यदुन्दता । ४क शिष्टाचारक्रमाचार्यो व्या० ।
५क शस्त्रार्थ । ख शिक्षार्थ । ६ख ०णा । असाधारणमा० ।

गृहीतास्त्रौ ततस्तौ तु' गत्वा त लवणोदधिम् । ऊचतुश्च गुरो पुत्रो दीयतामिति सागरम् ॥२५॥
 वृताञ्जलिपुटदृशच्चिद्विस्तावथ द्विजसत्तमा । उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति ॥२६॥
 दंत्य पञ्चजनो नाम शङ्खरूप' स बालकम् । जप्राह सोऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन ॥२७॥
 इत्युक्तोऽन्तर्जल गत्वा हत्वा पञ्चजन' तथा । कृष्णो जप्राह तस्यास्थिप्रभव' शङ्खमुत्तमम् ॥२८॥
 यस्य भादेन दैत्याना बलहानि प्रजायते । देवाना वर्धते तेजो यात्यधर्मश्च सक्षयम् ॥२९॥
 त पाञ्चजन्यमापूर्य गत्वा धमपुरीं हरि । बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा वैवस्वत यमम् ॥३०॥
 त बाल यातनास्य यथापूर्वंशरीरिणम् । पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिना वर ॥३१॥
 मयूरा च पुन प्राप्तावुप्रसेनेन पालिताम् । प्रहृष्टपुरयस्त्रोकावुभौ रामजनादंनौ ॥३२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिवाहो बालचरिते चतुर्नष्टयधिष्ठिततमोऽध्याय ॥१९४॥

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

जरासधेन सह रामजनादंनयुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

जरासन्धसुते कस उपयेमे महाबल । अस्ति प्राप्तिश्च भो विप्रास्तयोभर्तृ' हण हरिम् ॥१॥

समुद्र ने हाथ जोड़कर कहा—असुरसूदन ! सादीपनि के पुत्र का अपहरण मैंने नहीं किया है बल्कि शख का रूप धारण कर पञ्चजन नामक राक्षस मेरे जल में रहता है। उसी ने बालक को पकड़ रखा है। यह सुनकर कृष्ण ने जल के भीतर घुसकर पञ्चजन को मारकर उसकी हड्डियों के बने उत्तम शख को ले लिया जिसके शङ्ख से दैत्यों की बलहानि देवा की तेजोवृद्धि तथा अयम का क्षय होता है। उस पाञ्चजन्य नामक शख को बजाते हुए कृष्ण और बलदेव यमपुरी को गये। कृष्ण तथा बलवान् बलराम ने वहाँ वैवस्वत यम की भीत कर यातना भोगते हुए उस बालक को यथापूर्वं शरीर में प्राप्त करके पिता (सादीपनि) को दे दिया। पुन राम और जनादन उग्रसेन द्वारा प्रतिपालित मयूरा पुरी में आकर नर-नारियों को प्रमुदित करने लगे। ॥२२३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बालचरित-अध्याय प्रसंग में एक सौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९४॥

अध्याय १६५

जरासध के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

व्यास बोले—जरासध की अस्ति और प्राप्ति नामक दो बन्ध्याओं ने साथ बस का विवाह हुआ था।

१५ तु ऊचतुश्च महोदधिम् । उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति । २० । २४ बहुरूपी । ३१ ० न च समु । ४० । ४४ ० स्वाङ्गप्र० ।

महाबलपरीवारो मागधाधिपतिर्बली। हन्तुमभ्याययौ कोपाज्जरासंधः सयादवम् ॥२॥
 उपेत्य मयुरां सोऽय एरोध मगधेश्वरः। अक्षौहिणीभिः सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्वृत ॥३॥
 निष्कम्पाल्पपरीवाराबुभौ रामजनार्दनौ। ययुधाते समं तस्य बलिनी बलिसैनिकं ॥४॥
 ततो बलश्च कृष्णश्च मतिं चक्रे महाबलः। आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तमा ॥५॥
 अनन्तरं चक्रशाङ्गं तूष्णीं चाप्यक्षयौ शरैः। आकाशादागतौ वीरौ तदा कौमोदकी गदा ॥६॥
 हलं च बलभद्रस्य गगनादागमत्करम्। बलस्याभिमतं विप्राः सुनन्दं मुशलं तथा ॥७॥
 ततो युद्धे पराजित्य स्वसैन्यं मगधाधिपम्। पुरां विवशतुर्वीराबुभौ रामजनार्दनौ ॥८॥
 जिते तस्मिन्सुदुर्वृत्ते जरासंधे द्विजोत्तमाः। जीवमाने गते तत्र कृष्णो मेने न तं जितम् ॥९॥
 पुनरप्याजगामाप जरासंधो बलान्वितः। जितश्च रामकृष्णभ्यामपकृत्य द्विजोत्तमा ॥१०॥
 दश चाष्टौ च संप्रामानेबमत्यन्तदुर्मदः। यदुभिर्मगधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमः ॥११॥
 सर्वेष्वेव च युद्धेषु यदुभिः स पराजितः। अपक्रान्तौ जरासंधः स्वल्पसैन्यैर्बलधिकः ॥१२॥
 तद्बलं यादवानां वै रक्षितं यदनेकशः। तत्तु सनिधिमाहात्म्यं विष्णोरशस्य ध्वनिः ॥१३॥
 मनुष्यधर्मशीलस्य लोला सा जगतः पते। अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति ॥१४॥
 मनसंब जगत्सृष्टिसंहारं तु करोति यः। तस्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमवित्तरः ॥१५॥

कृष्ण द्वारा वन के निहत् हो जाने पर बनी मगधेश्वर जरासन्ध कोध से विषाल सेना को लेकर यादव सहित कृष्ण को मारने के लिये आया। मयुरा पहुँच कर मगधपति ने तेईस अक्षौहिणी सेनाओं से उसको घेर लिया। घोड़ों-सी सेना लेकर बलशाली राम-जनार्दन निकल आये और जरासन्ध के सैनिकों के साथ जुड़ पड़े। मुनिश्रेष्ठा! पहिले तो महाबली बलराम तथा कृष्ण ने प्राचीन आयुधों का ग्रहण किया, फिर बाद में आकाश से समागत चक्र, शाङ्ग नामक धनुष बाणा से परितुल्य अश्व तरवस तथा कौमोदकी नामक गदा को ग्रहण किया। बलभद्र का हल भी आकाश से हाथ में आ गया। विप्रगण! बलराम का प्रिय सुनन्द नामक मुशल भी उनके पास आ गया। तब युद्ध में सेना सहित मगधेश्वर का जीतकर दोना वीर राम और कृष्ण नगर में प्रविष्ट हुए। विप्रवर! दुराचारी जरासन्ध के जीत लिये जाने पर तथा उगने जीवित रहने जाने पर कृष्ण ने उसको पराजित न माना। पुन बनी जरासन्ध आया और बलराम तथा कृष्ण ने द्वारा अपकार करने जीता गया ॥१-१०॥ द्विजश्रेष्ठो! इस प्रकार अत्यन्त दुर्मद राजा जरासन्ध ने अट्टहास कर कृष्ण आदि यादवों से युद्ध किया। प्रत्येक युद्ध में यदुओं से पराजित होकर अल्प सेनाओं के साथ वह भाग जाता था। यादवों की अनेक सेनाओं की जो रक्षा हो जाती थी, वह तो विष्णु के अग्रभूत कृष्ण के सामीप्य का माहात्म्य था। मनुष्यधर्मशील जगत्पति ने जो प्राणियों के ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किया, वह तो उनकी लीला थी। जो बेवक़्त मन में ममत्ता की मूर्छा का गह्वार कर देने है, उन्हें प्राणियों के नाश करने में

तयाऽपि च मनुष्याणां धर्मस्तदनुवर्तनम् । कुर्वन्बलवतां संधिं हीनयुद्धं करोत्यसौ ॥१६॥
सामं चोपप्रदानं च तया भेदं च दर्शयन् । करोति दण्डपातं च बवचिदेव पलायनम् ॥१७॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते । लीला जगत्पतेस्तस्य च्छन्दतः संप्रवर्तते ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

अथ षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालयवनोपाख्यानम्

व्यास उवाच'

गार्ग्यं गोष्ठे द्विजो [ज] श्यालः पण्ड [ण्ड] इत्युक्तवान्द्विजाः । यदूनां सनिधौ सर्वे जहसुर्यावचास्तदा' ॥१॥
ततः कोपसमाविष्टो दक्षिणापयमेत्य सः । सुतमिच्छस्तपस्तेपे यदुचक्रभयावहम्' ॥२॥
'आराधयन्महादेवं' 'सोऽयश्चूर्णमभक्षयत् । ददौ वरं च तुष्टोऽसौ वर्षे द्वादशके हरः' ॥३॥
'संभावयामास स त यवनेशो' ह्यनात्मजम् । 'तद्योपित्संगमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसप्रभः' ॥४॥

कितना उद्यम करना पड़ता ? तो भी मनुष्य-धर्म का अवलम्बन करते हुए उन्होंने जरासन्ध के साथ युद्ध किये । वे साम, दान, भेद, दण्ड तथा बर्ही पलायन भी करते थे । मनुष्यों जैसी चेष्टा करते हुए जगत्पति की लीला स्वच्छन्द तथा प्रवृत्त होती है ॥११।१८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्र-वर्णन प्रसंग मे एक सौ पचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९५॥

अध्याय १९६

कालयवन का उपाख्यान

व्यास बोले—भट्टेजगण ! (एक बार) समा मे यादवों ने द्विज गार्ग्य को साले, नपुंसक आदि कहकर गालियाँ दी । तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्षिणापथ में आकर यदुवशियो के लिए मयावह पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से तप करने लगे । उन्होंने शिव की आराधना करते हुए लोहे का चूर्ण मक्षण किया । बारहवें वर्ष में शक्र ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया । तब वे पुत्र विहीन यवनेश (म्लेच्छों के राजा) से आकर मिले । यवनेश ने उनका सम्मान किया । अनन्तर उन्होंने उसकी स्त्री से सगम करके मौरों के समान नान्ति वाले पुत्र को उत्पन्न किया । उसका नाम कालयवन

१४. ०४ । शालोऽयं द्विजसार्द्धं पण्डमित्यु० । ३४ ०६वा स्थिता । त० । ३१ ०३मुखाव० । ४४ ०६वमोजस्तीक्ष्णममृतदा । ६० । ५६. सोऽयं प्रत्यक्षता गत । ६० । ६१ समोनया० । ७३ ०शो जना० । ८४ ०मातस्य । ९४ ०दसमञ्जस । त ।

त कालयवन नाम राज्ये स्वे यवनेश्वर । अभिविध्य वन यातो वज्राप्रकठिनोरसम् ॥५॥
 स तु धीर्यमदोन्मत्त पृथिव्या बलिनो नृपान । पप्रच्छ नारदश्चास्मै कथयामास यादवान् ॥६॥
 म्लेच्छगोटिसहस्राणा सहस्रं सोऽपि सवत् । गजाश्वरयसपन्नंश्चकार परमोद्यमम् ॥७॥
 प्रययौ चाऽस्तव(प)च्छिन्नं प्रयाणं स दिने दिने । यादवान्प्रति सामर्थ्यं मुनयो मथुरा पुरीम् ॥८॥
 कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपित यादव 'बलम्' । यवनेन समालोक्य मागध 'सप्रयास्यति ॥९॥
 मागधस्य बल क्षीण स कालयवनो बली । हन्ता तदिदमायात यदूना व्यसन द्विधा ॥१०॥
 तस्माददुर्गं करिष्यामि यदूनामतिदुर्जयम् । स्त्रियोऽपि यत्र युध्येयु किं पुनर्वृष्णियादवा ॥११॥
 मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसितोऽपि वा । यादवाभिभव दुष्टा मा कुर्वन्वं(मुवं) र्णिषोर्धिकम् ॥१२॥
 इति सचिन्त्य गोविन्दो योजनानि महोदधिम् । ययाचे द्वादश पुरीं द्वारका तत्र निर्ममे ॥१३॥
 महोद्याना महावप्रा तडागशतशोभिताम् । प्रकारशतसंवापामि द्रस्येवामरावतीम् ॥१४॥
 मथुरावासिन लोक तप्राऽनेय जनाईम् । अस्त्रे वास्यदने मथुरा च रस्य दयौ ॥१५॥
 बहिरायासित संये मथुराया निराधुध । निजगाम स गोविन्दो ददश यक्षनश्च तम् ॥१६॥
 स ज्ञात्वा वासुदेव त बाहुप्रहरणो नृप । अनुयातो महायोगिचेतोभि प्रायते न य ॥१७॥
 तेनानुयात कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम । यत्र शते महावीर्यो मुचुकुन्दो नरेश्वर ॥१८॥

पडा । बल के अग्रभाग के समान कठोर छाती काले कालयवन को राज्य में अभिविक्त करके यवनेश्वर वन को चले गये ॥१५॥ बल के मद से उन्मत्त कालयवन बली राजाओं के बारे में पूछ-ताछ करने लगा । नारद ने उससे यादवों का नाम बतग दिया । तब वह हाथी घोड़ों से सुसज्ज हुआ गे करोड़ सेनाओं से युक्त होकर यादवों के प्रति कोप करते हुए मथुरा के लिये प्रस्थित हुआ । प्रयाण करती हुई उसकी सेनाओं के चरण रज से सूय आ-छादित हो गये । कृष्ण भी सोचने लगे—यवन द्वारा यादवों के बल का क्षय होते देखकर जरासंध टूट पड़ेगा । मगधस्य की क्षीण सेना तथा बली कालयवन दोनों लड़गे । तब तो यादवों के लिये दो सकट उपस्थित हो जायेंगे । इसलिये यदुगणियों के निमित्त मैं अजैय दुग की रचना करूंगा जहाँ से स्त्रिया भी युद्ध कर सकेंगी । वृष्णि और यादवों की तो बात ही क्या ? ॥६१॥ ऐसा सोचकर गोविन्द ने समुद्र से कोसो लंबे-चौड़े स्थान की य चन की ओर वहाँ द्वारका पुरी का निर्माण किया । उसमें बड़े-बड़ उद्यान तथा मिट्टी के टीले थे सैकड़ों तालाब थे और सकड़ों चहा रदीवारियों से आवृत होकर वह नगरी इन्द्रावती की शोभा प्राप्त कर रही थी । जनादन ने मथुरावासियों को लाकर वहाँ रख दिया । कालयवन के मथुरा पहुँचने पर ये स्वयं वहाँ चले गये ॥१२१५॥ मथुरा के बाहर ही सेनाओं को रक्षकर गोविन्द निराश्रय होकर जाने लगे । यवन ने उनको देख लिया । तब कृष्ण को पहचान कर गुजाओं से प्रहार करने वाले राजा ने उनका पीछा किया जिहे महायोगियों के चित्त भी नहीं प्राप्त करते हैं । कृष्ण आगे आगे मार्गते हुए महागुहा में प्रविष्ट होकर वहाँ पहुँच गये जहाँ महापराक्रमी राजा मुचुकुन्द शयन कर रहे थे । दुर्मति यवन ने भी गुफा में पैठ कर

१ख ०म बल स य० । २ख बलवत्कठि० । ३क ख ०हृत्तवापि । ४ग कुलम् । ५क ०म । पवते नगरे रम्ये मागधस्य भविष्यति । ६ग ०गधस्य भविष्यति । न मा० । ७ख त्ताऽत्र० सुसमा० । ८ख बहूना । ९ख महोन्नता । १०ख क द्वारकामानयदरि । उन्मत्त का० । ११ख ०वतो मथुराया स्व० ।

सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा शय्यागत नरम् । वादेन ताडयामास' कृष्ण मत्वा स दुर्मति ॥१९॥
 दृष्टमात्रश्च तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना । तत्क्रोधजेन मुनयो भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२०॥
 स हि देवासुरे युद्धे गत्वा जित्वा महासुरान् । निद्रार्तं सुमहाकाल निद्रा वव्रे वर सुरान् ॥२१॥
 प्रोक्तश्च देवं ससुप्त यस्त्वामुत्थापयिष्यति । देहजेनाग्निना सद्य स तु भस्मीभविष्यति ॥२२॥
 एव दग्ध्या स त पाप दृष्ट्वा च मधुसूदनम् । कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽह शशिन कुले ॥२३॥
 वसुदेवस्य तनयो यदुवशसामुद्भव । मुचुकुन्दोऽपि तच्छ्रुत्वा बृद्धगार्ग्यवच स्मरन् ॥२४॥
 सस्मृत्य प्रणिपत्येन सर्वं सर्वेश्वर हरिम् । प्राह ज्ञातो भयान्विष्णोरशस्त्य परमेश्वर ॥२५॥
 पुरा गार्ग्येण' कथितमष्टाविंशतिमे युगे । द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवशे भविष्यति ॥२६॥
 स त्व प्राप्तो न सदेहो' मर्त्यानामुपकारकृत् । तथा हि सुमहत्तेजो नाल सोऽदुमह तव ॥२७॥
 तथा हि सुमहाम्भोदध्वनिधीरतर तत । वावय तमिति होवाच युष्मत्पादसुलालितम् ॥२८॥
 देवासुरे महायुद्धे दंत्याश्च सुमहाभटा । न शेकुस्ते' महत्तेजस्तत्तेजो न सहाम्यहम् ॥२९॥
 ससारपतितस्यैको जन्तोस्तस्य शरण परम् । सप्रसीद प्रपन्नार्तिहर्ता हर 'ममाशुभम् ॥३०॥
 त्व पयोनिधय शैला सरितश्च वानि च । मेदिनी गगन' वायुरापोऽग्निस्त्व तथा पुमान् ॥३१॥

सोये हुए मनुष्य को देखकर उसे कृष्ण समझ कर पैर से मार दिया । मुनिवृन्द । मुचुकुन्द की दृष्टि पड़ते ही उनके श्रेष्ठ जय अग्नि से यवन तत्क्षण जलकर नभमसात हो गया ॥१६ २०॥ मुचुकुन्द देवासुर सग्राम में गये थे । वहाँ उन्होंने असुरा को जब तब निद्रा से पीडित होकर देवताओं से यही वरदान मागा था कि मैं चिरकाय तक साया रहूँ । देवों ने उनका कहा था कि जा व्यक्ति सोये हुए तुमको उठावेगा वह देहोत्पन्न अग्नि से सद्य भस्म हो जायगा । इस प्रकार उस पापी को जगाकर मधुसूदन की देखकर उन्होंने पूछा—तुम कौन हो ? कृष्ण ने उत्तर दिया । 'मेरी उत्पत्ति चन्द्रकु' म हुई है । मैं वसुदेव का पुत्र हूँ । यदुआ का वंश मैं उत्पन्न हुआ हूँ । यह सुनकर मुचुकुन्द भी गार्ग्य के वचन का स्मरण करके सर्वेश्वर हरि को प्रणाम करते हुए वहाँ लगे—मैंने आपको जान लिया । आप विष्णु के अंग स अवतीर्ण परमेश्वर हैं । पहिले गार्ग्य ने कहा था कि अटार्द्रसब युग में द्वार के अंत में यदुवंश में हरि का जन्म होगा । मनुष्या में उपकार करने वाले व आप ही पधार हैं । मुने इसमें तनिव भी सदेह नहीं है । मैं आपके तज को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ । आपके गङ्गासमुद्र के समान धीर वचन भी मुझ असह्य हो रहा है । देवासुर सग्राम में महावीर दैत्यगण भी आपने तेज को नहीं सह सके थे वही महान् तेज मुझ सह्य नहीं हो रहा है ॥२१ २९॥ ससार में पतित जीव के लिये आप ही एक शरण हैं । शरणागत की आति हरण करने वाले ! प्रसन्न होइये । मेरे अंगुस का नाग कीजिय । आप समुद्र पर्वत नदी वन पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि तथा पुरुष हैं । आप पुरुष

१४ घातयामास । २६ ० द्वावयमनुस्म ० । ३२ गार्ग्य । ४१ ० हो यादवानुप ० । ५२ ० कुमम यते ० । ६२ वायु पयोनिधय त ० । ७२ ० नृ । त्वयापि युगपत्सर्वं व्याप्त ज ० ।

पुंसः परतरं सर्वं व्याप्य जन्म विकल्पयत् । शब्दादिहीनमजरं वृद्धिक्षयविवर्जितम् ॥३२॥
 त्वत्तोऽमरास्तु पितरो यक्षगन्धर्वराक्षसाः । सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥३३॥
 सरोसुपा मृगाः सर्वे त्वत्तश्चैव महीरुहाः । यच्च भूतं भविष्यद्वा किञ्चिदत्र घराचरे ॥३४॥
 अमृतं मूर्तमयवा स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा । तत्सर्वं त्वं जगत्कर्तर्नास्ति किञ्चित्स्वया बिना ॥३५॥
 मया संसारचक्रेऽस्मिन्ग्रमता भगवन्सदा । तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥३६॥
 दुःखान्येव सुखानीति भृगतृष्णा जलाशयः । मया नाथ गृहीतानि तानि तापाय मेऽभवन् ॥३७॥
 राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तथाऽऽत्मजाः । भार्या भृत्यजना ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥३८॥
 सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमव्यय । परिणामे च देवेश तापात्मकमभूमम ॥३९॥
 देवलोकगतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि । मत्तः साहाय्यकामोभूच्छाश्वतो कुत्र निर्वृतिः ॥४०॥
 त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवास्पदम् । शाश्वतो प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः ॥४१॥
 त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान् । अवाप्य पापान्पश्यन्ति प्रेतराजानमन्तरा ॥४२॥
 ततः पाशशतैर्बद्धा नरकेष्वतिदारुणम् । प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं विश्वरूपमिदं तव ॥४३॥
 अहमत्यन्तविषयी मोहितस्तव मायया । ममत्वागधगर्तान्ते भ्रमामि परमेश्वर ॥४४॥

ये भी परे हैं। सब मे व्याप्त होकर आप स्थित हैं। आपका जन्म विकल्पित, शब्दादि से हीन, अजर तथा ह्रास और क्षय से विवर्जित है। आप ही से देव, पितर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष उत्पन्न हुए हैं। इस घराचर जगत् में जो कुछ भी भूत, भविष्य, अमृत, मूर्त, स्थूल तथा सूक्ष्म हैं, वह सब आप ही हैं। जगत्कर्ता। बिना आपके कुछ भी नहीं है। भगवन् । इस संसारचक्र में भ्रमण करते हुए मैंने तापत्रय से अभिमूर्त होकर कहीं शान्ति नहीं पायी ॥३०-३६॥ नाथ । भृगतृष्णा मे पड़वर मैंने दुःख ही को सुख समझा। पर उससे मुझे सताप ही मिला। प्रभो । राज्य, पृथ्वी, सेना, कोष, मित्रसमूह, पुत्र, स्त्री, मृत्यु तथा शब्द आदि जितने विषय हैं, उन सबको मैंने सुख समझकर ग्रहण किया। परन्तु परिणाम मे मुझे ताप ही हुआ। देवेश । मैं देवलोक को गया। वहाँ देवगण ने मुझसे सहायता मांगी, फिर नित्य सुख वहाँ है? परमेश्वर । संसार के आदि-कारण रूप आपकी आराधना किए बिना शाश्वत सुख वहाँ से मिल सकता है? आपकी माया से मुग्ध होकर प्राणी जन्म, मृत्यु, अरा आदि को प्राप्त कर बिना यमराज के ही और पापियों को देखते हैं। तब सैकड़ों पाशों मे बद्ध होकर नरकों मे अत्यन्त भयकर दुःख पाते हैं। यह आपका विश्वरूप है। परमेश्वर । मैं अत्यन्त विषयी हूँ। आपकी माया से मोहित होकर भ्रमरारूपी अगाध गर्त मे भ्रमण कर रहा हूँ। यही मैं ईश तथा स्तुत्य प्रभु की धारण मे प्राप्त

१ख. ०त् । मृत्यादि० । २ख. ०र जन्मक्ष० । ३ख. ०र्षेकिनरा । सि० । ४ख. तापत्रययुतेन
 भो । रा० । ५ख. ०दिकै । शस्त्रवाप्या प्रपश्य० । ६ख. ०नन तथा । त० । ७ख. ०श स्वक्षप
 निन्दतस्तव ।

सोऽह त्वा शरणमपारमेशमीडय, सप्राप्त परमपद यतो न किञ्चित् ।
ससारथमपरितापतप्तचेता निर्विण्णे परिणतधाम्नि साभिलाष

॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे काल्यवनवधे मुचुकुन्दस्तुतिनिरूपण
नाम धणवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९६॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच'

इत्य स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता । प्राहेश सर्वभूतानामनादिनिधनो हरि ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

ययाभिवाञ्छिताल्लोकादिद्व्यान्गच्छ नरेश्वर । अव्याहृतपरं देवयो मत्प्रसादोपबृंहित ॥२॥
भुक्त्वा दिव्यान्महाभोगा भविष्यसि महाकुले । जातिस्मरो मत्प्रसादात्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥३॥

हैं । आपके अतिरिक्त कोई परमपद नहीं है । सासारिक ताप से परितप्त होकर मैं विरक्त एवं रूपान्तर को प्राप्त
पाम वाले आपकी अभिलाषा करता हूँ । ॥३७४५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में काल्यवन वध कथन प्रसंग में मुचुकुन्द स्तुति निरूपण
नामक एक सौ छानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९६॥

अध्याय १९७

गोकुल में बलराम का लौटवा

व्यास बोले—इस प्रकार धीमान् मुचुकुन्द द्वारा प्रस्तुत होने पर समस्त प्राणियों के ईश तथा जम मरण
से रहित कृष्ण ने कहा ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! तुम मेरे कृपापात्र होकर अभिवाञ्छित निव्य लोको को जाओ । वहाँ समस्त
ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर दिव्य महामोयों को भोग कर महान् कुल में उत्पन्न होगे । मेरी कृपा से तुम्हें पूर्व जन्मों
का स्मरण रहेगा । इसके बाद तुम मोक्ष पाओगे ॥२३॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येशं 'जगतामच्युतं नृप' । गुहामुखाद्विनिष्क्रान्ता ददृशे सोऽल्पकान्नरान् ॥४॥
 ततः कलियुगं ज्ञात्वा प्राप्तं तप्तु ततो नृप । नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥५॥
 कृष्णोऽपि घातयित्वाऽरिमुपायेन हि तद्बलम् । जग्राह मथुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम् ॥६॥
 आनीय चोपसेनाय द्वारकत्या न्यवेदयत् । पराभिभवनिःशङ्कं बभूव च^१ यदोः कुलम् ॥७॥
 बलदेवोऽपि विप्रेन्द्राः^२ प्रशान्ताखिलविग्रहः । जातिदर्शनसोत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८॥
 ततो गोपाश्च गोप्यश्च यथापूर्वममित्रजित् । तथैवाम्यवदत्प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥९॥
 कैश्चापि संपरिष्वक्तः काश्चित्स परित्वजे । हासं चक्रे समं कैश्चिद्गोपगोपीजनैस्तथा ॥१०॥
 'प्रियाण्यनेकान्यवदन्गोपास्तन' हलायुधम् । गाप्यश्च प्रेममुदिताः प्रोचुः सेष्यमथापराः ॥११॥
 गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनवल्लभः । कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलत्प्रेमरसाकुलः ॥१२॥
 अस्मच्चचेष्टोपहसनं न कच्चिदुरयोपिताम् । सौभाग्यनालमधिक करोति क्षणसौहृदः ॥१३॥
 कच्चित्स्मरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कृतम्^३ । अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर राजा जगत्पति कृष्ण को प्रणाम करके गुफा से बाहर हो गये । उन्होंने घोड़े ही मनुष्यों को देखा । तब कलियुग जानकर वे तप करने के लिये निमित्त गन्धमादनपर्वत पर नरनारायण के स्थान के लिये प्रस्थित हो गये । कृष्ण ने युक्ति से शत्रु को मरवा कर मथुरा आकर उसकी सेना को विनष्ट किया, फिर उसके हाथी, घोड़े तथा उज्ज्वल रस को लेकर द्वारका में उपसेना का दे दिया । तब यदुवशी पराजय की आशंका से रहित हो गये । द्विजधेष्ठो^१ अखिल युद्धों के शान्त हो जाने पर बन्धुओं के दर्शन करने की उत्कण्ठा से बलदेव नन्द के गोकुल गये ॥४-८॥ वहाँ शत्रुजित् बलराम ने गोप-गोपियों साथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक प्रेम से वार्तालाप किया । किसी ने उनका आलिंगन किया और किसी का आलिंगन उन्होंने ही किया । विन्ही गोप-गोपियों के साथ उन्होंने हास्य किया । गोपी ने बलराम से अनेक प्रिय बातें कही । गोपियों ने प्रेम से बिमोर होकर ईर्ष्यायुक्त वचन कहा । कुछ गोपियों ने पूछा —नगर नारियों के प्रिय तथा प्रेमलम्पट कृष्ण कुशल से तो हैं ? क्षणिक स्नेह करने वाले हरि नागरिक रमणियों के सौभाग्य तथा मान को खूब बढ़ाते होंगे और हम लोगों का उपहास करते होंगे । कभी कृष्ण हम लोगों के गीतों का स्मरण करते हैं ? क्या वे एक बार भी माता के दर्शन करने के लिये आये ? अथवा उनके बारे में बातचीत करने से क्या लाभ ? दूसरी कथा कीजिये, जो हमसे और उनसे कोई सम्बन्ध नहीं

१ क ०तामीश्वर नृ० । २ ग ०ज्ज्वलाम् । ३ क ख यदोर्बलम् । ४ क भुनय । ख भुनिमि ।

५ क ०दगोपास्त० । ६ क ०युष । गो० । ७ क कलम् ।

अथवा कि तदालापं क्रियन्तामपरा कथा । यदस्माभिविना तेन (तस्य) विनाऽस्माक भविष्यति ॥१५॥
पिता माता तथा भ्राता भर्ता बन्धुजनश्च क' । न त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञस्ततो हि स ॥१६॥
तथाऽपि 'कच्चिदात्मोयमिहाऽऽगमनसश्रयम् । करोति कृष्णो वक्तव्य भवता' वचनामृतम् ॥१७॥
दामोदरोऽसौ गोविन्द पुरस्त्रीसक्तमानस । अपेतप्रीतिरस्मासु दुर्दशं* प्रतिभाति न ॥१८॥

व्यास उवाच

आमन्त्रित स कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च । जहसु सुस्वर गोप्यो हरिणाकृष्टचेतस ॥१९॥
सर्वेश* सौम्यमधुरं प्रेमगर्भैरगर्वित । रामेणाऽऽश्वासिता गोप्य कृष्णस्यातिमधुस्वरं ॥२०॥
गोपंश्च पूर्ववद्राम परिहासमनोहरं । कथाश्चकार प्रेम्णा च सह तर्जजभूमिषु ॥२१॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णन नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९७॥

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हलिक्रीडावर्णनम्

व्यास उवाच

वने 'बिहरतस्तस्य सह गोपमहात्मन' । मानुषच्छदमरूपस्य शेषस्य धरणीभूत ॥१॥

रखती हो । उनके निमित्त हमने पिता माता भाई स्वामी बन्धुजन तथा किसका परियाग नहीं किया ? इसलिये वे अहतज है । तो भी आप बतलाइए कि क्या वे कभी यहाँ आने के लिये आत्मयता दिखलायेंगे ? नागरिक राम शिष्या य आसक्त मन वाले तथा हम लोगों की प्राति की उपेक्षा करने वाले दामोदर गोविन्द का दान तो हम लोगो के लिये असम्भव हा है ॥१-१८॥

व्यास बोले—कृष्ण द्वारा आकृष्ट चित्त वाल गोपियाँ कृष्ण ! दामोदर ! इस प्रकार सम्बोधन करती हुई मधुर स्वर मे हुं सने लगा । तब राम ने अत्यंत मधुर स्वर से कृष्ण के सौम्य मधुर प्रेमगर्भित और निरमिमान सद्गंगा को सुनावर गापियो को आवासन दिया । ब्रज मे गोपा ने राम के साथ पहले की तरह प्रेम से मनोहर परिहास तथा वातालाप किये ॥२१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे गोकुल मे बलराम के प्रत्यागमन वर्णन नाम
एक सौ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९७॥

अध्याय १६८

बलराम की क्रीडा का वर्णन

व्यास बोले—गोपो के साथ वन मे बिहार करते हुए अजोषधरणी का धारण करने वाले महान् बावों को

१क ग किम् २क ख ०दालापमि० । ३क ०ता कृष्ण हृद्गत० । ख ०ता कृष्णपूवज । दा० ।
४क ०दर्शो मन्दमागिनाम् । ध्या० । ५ग ०शं सामम० । ६ ख विचर० । ७ख ०तमि । मा० ।

निष्पादितोरुकार्मस्य कार्पण्यं वावतारिण । उपभोगार्थं मत्पर्यं वरुण प्राह वारुणीम् ॥१॥

वरुण उवाच

अभीष्टां सर्वं वा ह्यस्य मदिरं त्वं महोजस । अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥३॥

ध्यास उवाच

इत्युक्ता वारुणी तेन सनिधानमयाकरोत् । वृन्दावनतटोत्पन्नकदम्बतटकोटरे ॥४॥
 विचरन्बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुद्धतम् । आध्राय मदिराहर्षमवापाय पुरातनम् ॥५॥
 ततः कदम्बात्सहसा मद्यधारा स लाङ्गली । पतन्तीं वीक्ष्य मुनयः प्रययौ परमा मुदम् ॥६॥
 पपी च गोपगोपीभिः समवेतो मुदाऽन्विता । उपगोयमानो ललित गीतवाद्यविशारदः ॥७॥
 श्रमतोऽप्यन्तर्धर्माग्भः कणिकामौषितकोज्ज्वल । आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामोत्याह विह्वल ॥८॥
 तस्य वाच नदी सा तु मत्तोक्तामयमन्य वै । नाऽऽजगाम ततः क्रुद्धो हलजग्राह लाङ्गली ॥९॥
 गृहीत्वा तां तटेनैव चकप्य मदविह्वल । पापे नाऽऽयासि नाऽऽयासि गम्यतामिच्छयाऽन्यतः ॥१०॥
 सा कृष्टा तेन सहसा मार्गं सत्यज्य निम्नगा । यत्राऽऽस्ते बलदेवोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११॥
 शरीरिणी तयोपेत्य त्रासविह्वललोचना । प्रसीदेत्यब्रवीद्राम मुञ्च मा मुशलायुध ॥१२॥
 सोऽब्रवीदयजानासि मम शौर्यबल यदि । सोऽह त्वा हलपातेन नयिष्यामि सहस्रधा ॥१३॥

सम्पन्न करने वाले कायवन् अवतारण होने वाले तथा मनुष्यशरीरधारी महात्मा बलराम ने अत्यन्त उपभोग के लिए वरुण ने वारुणी मदिरा से कहा ॥ १ ॥

वरुण बोले—वत्याणि ! मदिरं ! महातजस्वी बलमद्र के उपभोग के लिये तुम जाओ ॥३॥

ध्यास बोले—इसके बाद वृन्दावन में यमुनातट पर उत्पन्न कदम्बवृक्ष के कोटर में बलमद्र को वारुणी मदिरा प्राप्त हुई । विचरण करते हुए बलदेव ने मदिरा की अत्युत्कट गंध को सूँघ कर अपने पुरातन मदिराज्य हर्ष को प्राप्त किया । मुनिवृन्द ! तदनन्तर सहसा कदम्ब से गिरती हुई मद्यधारा को देखकर बलमद्र परम हर्षित हुए बाद में उन्होंने गोप-गोपियों के साथ आनन्दपूर्वक मदिरा का पान किया । गाने-बजाने में प्रवीण व्यक्तियों ने उनसे स्वागत किया । श्रीहार्जन्य श्रम से उनके घबल शरीर पर पसीने की बूँदें मोतियों की तरह सुशोभित होने लगीं तब उन्होंने विह्वल होकर कहा—यमुने ! आओ मैं स्नान करना चाहता हूँ । उनकी वाणी को प्रमत्त की उक्ति समझकर यमुना नहीं आई । तब क्रुद्ध होकर उन्होंने हल उठाया और तट पर से ही नदी को खींचते हुए कहा—पापे ! तूही जाती हो तो मत भाओ । इच्छापूर्वक तूझी तरफ चली जाओ । बिची जाने पर यमुना अपने मांस को त्याग कर जहाँ बलदेव थे वहाँ के वन को आप्लावित कर दिया । शरीरधारण करके भय से कातरलप्य यमुना राम से आकर कहने लगी—मुशलायुध ! प्रसन्न होइये मुझे छोड़ दीजिये ! बलमद्र ने कहा—यदि तुम मेरा शौर्यबल का अपमान करती हो तो हल के प्रहार से मैं तुम्हारे सहस्र टुकड़ कर दूँगा ॥ १३ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्तयाऽतिस्रस्ततया नद्या प्रसादित । भूभागे प्लाविते तत्र ममोच यमुना बल ॥१४॥
तत स्नातस्य^१ वै कान्तिराजगाम महावने । अवतसोत्पल चारु गृहीत्वैकं च कुण्डलम् ॥१५॥
वरुणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम् । समुद्रार्हो^२ तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥१६॥
कृतावतस स तदा चारुकुण्डलभूषित । नीलाम्बरधर स्वामी शुशुभे कान्तिसयुत ॥१७॥
इत्य विभूषितो रेमे तत्र रामस्तदा व्रजे । मासद्वयेन यातश्च पुन स मथुरा पुरीम् ॥१८॥
रैवतीं चैव तनया रैवतस्य महीपते । उपयेमे बलस्तस्या जज्ञाते निशठोत्सुकौ ॥१९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हलिक्रीडावर्णन नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९८॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणीविवाहवर्णनम्

व्यास उवाच

भीष्मक कुण्डिने राजा विदमं विषयेऽभवत् । रुक्मिणी तस्य दुहिता रुक्मी चैव सुतो द्विजा ॥१॥
रुक्मिणीं चकमे कृष्ण सा च त चारुहासिनी । न ददौ याचते चैना रुक्मी द्वेष्टेन क्षत्रिण ॥२॥

व्यास बोले—इतना कहने पर यमुना अत्यन्त डर कर उनको मनाने लगी अन्त में वहाँ के मू प्रदेन के जगप्लाविन हा जाने पर बलराम न नदी को मुक्त कर लिया । तब महावन में स्नान करने पर बलमद्र की कान्ति बढ गई । उन्होंने आमूषण के लिए मुदर कमल तथा एक कुण्डल ग्रहण किया । वरुण ने उनका म्लान न होने वाल कमला की माता दी । लक्ष्मी ने समुद्र के योग्य दा नील वस्त्र उन्हें प्रदान किये । तब मूषणों से मुक्त मनोहर कुण्डल से विभूषित नीलवस्त्रधारी मालाधारी तथा कान्ति से युक्त होकर बलदेव सुगोमित हुए । इस प्रकार विभूषित होकर राम व्रज में दा महीना । तब रमण करते रहे । पुन वे मथुरा आय । रैवत नामक राजा की रैवती नामक कन्या से बलमद्र ने विवाह किया और उससे निगठ तथा उत्सुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१४ १५॥

श्रीब्रह्मपुराण म हलिक्रीडा वर्णन नामक एव सौ अठठानवेवीं अध्याय समाप्त ॥१९८॥

अध्याय १९६

रुक्मिणी के विवाह का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर ! विष्णु राज्य के कुण्डिन नगर में भीष्मक नामक राजा हुए । उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामक बह्या थी । कृष्ण रुक्मिणी को चाहते थे और मनोहर हास्य करने वाली रुक्मिणी

ददौ स शिशुपालाय जरासंधप्रचोचितः। भीष्मको रुक्मिणा साधे रुक्मिणीमुद्विक्रमः॥३॥
 विवाहाय ततः सर्वे जरासंधमुखा नृपाः। भीष्मकस्य पुरं जम्मुः शिशुपालश्च कुण्डिनम्॥४॥
 कृष्णोऽपि बलमद्राष्टवंदुभिः परिवारितः। प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चंचभूपते॥५॥
 श्वोभाविति विवाहे तु तां कन्या हृतवान्हरिः। विपक्षभावमासाद्य रामाद्यैर्वेव वन्धुषु॥६॥
 ततश्च पौण्ड्रकः श्रीमान्दन्तवरो विदूरथः। शिशुपालो जरासंधः शाल्वाद्याश्च महीभूतः॥७॥
 कुपितास्ते हरि हन्तु चक्रुःस्योगमुत्तमम्। निजिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुंगवैः॥८॥
 कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि अहत्वा युधि केशवम्। कृत्वा प्रतिज्ञां स्वमी च हन्तुं कृष्णमभिद्रुतः॥९॥
 हत्वा बलं स नाभाश्चपतिस्त्वन्वनसंकुलम्। निजितः पातितश्चोर्ध्वा लीलप्य स चक्रिणा॥१०॥
 निजित्य रुक्मिणं सम्पुण्यमे स रुक्मिणीम्। राक्षसेन विधानेन संप्राप्तो मधुसूदनः॥११॥
 तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनंशः। स वीर्यवान्। जहूर शम्बरौ यं वं यो जघान च शम्बरम्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९९॥

उनको चाहती थी। ईर्ष्यावश स्वमी ने याचना करते हुए कृष्ण को रुक्मिणी नहीं दी। जरासंध के कहने से पराक्रमी भीष्मक ने स्वमी के साथ रुक्मिणी को शिशुपाल को दे दिया। तब विवाह के निमित्त जरासंध आदि राजा तथा शिशुपाल भी भीष्मक के कुण्डिन नगर में पहुँचे। कृष्ण भी बलमद्र आदि घादकों सहित शिशुपाल का विवाह देखने के लिये कुण्डिन में पधारे। विवाह कल होता विन्तु आज ही हरि ने उस कन्या का अपहरण कर लिया। राम आदि वन्धुओं में ही शत्रु-भाव को देखकर पौण्ड्रक, श्रीमान्, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध तथा शाल्व आदि नृप-गण कुपित होकर हरि को मारने के लिये महान् प्रयत्न करने लगे। पर राम आदि यदुपुंगवों द्वारा वे पराजित हो गये। तब युद्ध में बिना केशव को मारने के लिये महान् प्रयत्न करने लगे। इस तरह प्रतिज्ञा करके स्वमी कृष्ण को मारने के लिए दौड़ पड़ा। पर कृष्ण ने सहज ही में हाथी, घोड़े, पैदल सिपाही तथा रथों से युक्त सेना को मारकर स्वमी को जीत कर पृथ्वी पर गिरा दिया। स्वमी को जीतकर मधुसूदन ने राक्षस विधि से रुक्मिणी के साथ बली भाँति विवाह किया। उससे कन्दर्प क अशभूत शक्तिशाली प्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई, जिसका शम्बर ने अपहरण किया और जिसने शम्बर को मार दिया॥१-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण-चरित्र वर्णन-प्रसंग में एक सौ निन्यानबेवाँ

अध्याय समाप्त॥१९९॥

अथ द्विशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम्

मुनय ऊचुः

शम्बरेण^१ हृतो वीर^२ प्रद्युम्नं स कथं पुन^३ । शम्बरश्च महावीर्यं प्रद्युम्नेन^४ कथं हत ॥१॥

व्यास उवाच

पठेऽह्नि^५ जातमात्रे प्रद्युम्नं सूतिकागृहात् । ममैव हन्तेति द्विजा हृतवान्कालशम्बर^६ ॥२॥
नीत्वा चिक्षेप^७ चंदनं प्राहोऽग्रे लवणार्णवे । कल्लोलजनितावर्ते सुधोरे मकरालये ॥३॥
पतितं चंदं तत्रैको मत्स्यो जग्राह बालकम् । न ममार च तस्यापि जठरानलदीपित^८ ॥४॥
मत्स्यबन्धेऽथ मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्ये सह द्विजा । घातितोऽसुरवर्याय शम्बराय निवेदित ॥५॥
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेश्वरी । कारयामास सूदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥६॥
दारिते मत्स्यजठरे बद्धो साऽतिशोभनम् । कुमारं मन्मथतरोदंघ्रस्य प्रथमाङ्कुरम् ॥७॥
कोऽयं कथमयं मत्स्यजठरे समुपागत । इत्येव कौतुकाविष्टा ता तन्वीं प्राह नारद ॥८॥

अध्याय २००

प्रद्युम्न का आख्यान-वर्णन

मुनियो ने कहा—कैसे शम्बर ने वीर प्रद्युम्न का अपहरण किया और कैसे फिर प्रद्युम्न ने महाशक्ति-शाली शम्बर को मारा ? ॥१॥

व्यास बोले—विप्रवर ! उत्पत्ति के छठे दिन 'मूशे यह मारेगा यह सोचकर सूतिकागृह से ही बाल शम्बर ने प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया और उसे ले जा कर लवणसमुद्र में फेंक दिया । अत्यंत मयबूर तथा हिलकोरी द्वारा उत्पन्न आवर्ती से युक्त समुद्र में पतित बालक को एक मत्स्य निगल गया । वही मी वह जठरान्नि से दान होकर नहीं मरा । द्विजगण ! मछुओं ने अन्य मत्स्यों के साथ उस मत्स्य को भी मारकर असुरवर शम्बर से निवेदन कर दिया । शम्बर की मायावती नामक पत्नी गृहस्वामिनी थी । वही अनिन्द्य रमणी रसाई घर का देव माल किया करती थी । मत्स्य के पेट फाड़ने पर उसने दग्धममय रूप ब्रह्म के प्रथम अङ्कुर रूप अतिमुन्दर कुमार को देखकर कहने लगी—'यह बाल है ?' कैसे मत्स्य के पेट में जा गया ? इस प्रकार कुतूहल करती हुई उस वनिता स नारद ने कहा ॥२॥

१ग शम्बरेण । २ग वीर । ३ग सम्ब० । ४ग मत्स्यम्ब० । ५क मय जलघो मत्स्योऽग्रे । ५ग ठठेऽग्रे । ६ग मपिते । म० ।

नारद उवाच

अथ समस्तजगता सृष्टिस्तहारकारिणः । शम्बरं हृत कृष्णतनय सूक्तिकामूहात ॥९॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्येन निगोणस्त वश गत । नररत्नमिदं सुभ्रुविश्रद्धा परिपालय ॥१०॥

व्यास उवाच

नारदेनैव मुक्ता सा पालयामास त शिशुम् । बाल्यादशतिरागण रूपातिशयमोहिता ॥११॥
त यदा यौवनाभोगभूषितोऽभूदद्विजोत्तमा । साभिलाषा तदा सा तु बभूव गजगामिनी ॥१२॥
मायावती ददौ चास्मै माया सर्वा महात्मने । प्रद्युम्नायाऽऽत्मभूताय तान्यस्तद्वदयेक्षणा ॥
प्रसज्जन्तो तु तामाह स कार्त्तुः कमललोचन ॥१३॥

प्रद्युम्न उवाच

मातृभाव विहायैव किमर्थं यतंसेऽप्यथा ॥१४॥

व्यास उवाच

सा चास्मै कथयामास न पुत्रस्त्व ममेति व । तनय त्वामय विष्णोर्हृतवाकालशम्बर ॥१५॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्यस्य सप्राप्तो जठरान्मया । सा तु रोदिति ते माता कान्ताऽद्याप्यतिवत्सला ॥१६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त शम्बर युद्धे प्रद्युम्न स समाद्वयत । क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे च महाबल ॥१७॥

नारद बोले—सम्पूर्ण जगत् के सह र करने वाले शम्बर ने सूक्तिकामूह से कृष्ण के पुत्र का अपहरण करके समुद्र में फेंक दिया । उसे एक मत्स्य निगल गया । वह बालक तुम्हें प्राप्त हुआ है । सुधर भी वाली ! इस नररत्न को विश्वासपूर्वक तुम पाल ॥९॥ १०॥

व्यास बोले—नारद के इस प्रकार कहने पर वह बालक के अतिशय रूप पर मोहित होकर अत्यंत अनुराग से उसका पालन करने लगी । द्विजघण्टो । बालक जब युवावस्था से परिपूर्ण हुआ तब वह गजगामिनी उसके प्रति अभिलाषा करने लगी । आत्मा की तरह प्रिय बने हुए प्रद्युम्न में मन तथा नेत्रों को लगाकर मायावत ने उसका समस्त माया दे दी (अर्थात् उससे हाव भाव करने लगी) । इस प्रकार व्यवहार करत हुई मायावता से कमललोचन प्रद्युम्न ने कहा ॥११॥ १२॥

प्रद्युम्न बोले—तुम मातृ भाव को छाड़कर और तरह से क्यों बरतत हो ? ॥१४॥

व्यास बोले—उसने उससे कहा—तुम मेरे पुत्र नहीं हो । तुम विष्णु के पुत्र हो । कालशम्बर ने तुम्हें अपहरण करके समुद्र में फेंक दिया था । तब मत्स्य के उदर से मैंने तुम्हें प्राप्त किया । तुम्हारी अतिवत्सला माता तो आज भी रा रही है ॥१५॥ १६॥

व्यास बोले—यह कहे जाने पर क्रोध के व्याकुल चित्त वाले महाबल प्रद्युम्न ने शम्बर को युद्ध के लिये

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य माघवि । सप्त माया व्यतिश्रम्य माया संपुण्यजेऽष्टमीम् ॥१८॥
तया जघान त दैत्य मायया 'कालशम्बरम्' । उत्पत्य च तया सार्धमाजगाम पितु पुरम् ॥१९॥
अन्त पुरे च पतितं मायावत्या समन्वितम् । त दृष्ट्वा हृष्टसक्त्या बभूव कृष्णयोषित ॥
रविमणौ चाश्रवीत्प्रेम्णाऽऽसक्तदृष्टिरनिन्दता ॥२०॥

रविमण्युवाच

घन्याया खल्वयं पुनो वर्तते नवपीवने । अस्मिन्वपसि पुनो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ॥२१॥
सभाया जननी वत्स त्वया काऽपि विभूयिता । अथवा मादृश स्नेहो मम यादृक्पुत्रच ते ॥
हरेरपत्य सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति ॥२२॥

व्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त सह कृष्णेन नारद । अन्त पुरवरा देवीं रविमणौ प्राह हृषित ॥२३॥

श्रीकृष्ण उवाच

एष ते तनय सुभ्रू हत्वा शम्बरमागत । हतो येनाभवत्पूर्वं पुनस्ते सूतिकापूहात् ॥२४॥
इय मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती । शम्बरस्य न भार्येय श्रूयतामत्र कारणम् ॥२५॥

वाह्मन्त विद्या । सधाम म दैत्य की समस्त सेनाया वा नाश करने प्रद्युम्न ने सात मायाया वा अतिश्रमण कर
आठवीं माया (मायावती) से सयोग किया । उस माया के द्वारा कालशम्बर का मारकर उसी के साथ उठकर वह
पिता के नगर में आया । अन्त पुर में मायावती, समस्त प्रद्युम्न को गिरे हुए देखकर कृष्ण की स्त्रियाँ प्रमुदित हुईं ।
अनिन्दित रविमणौ उसकी ओर दृष्टि की लगाकर देखती हुई प्रेम से बोली ॥१७-२०॥

रविमणौ बोली—जिसी मायाशालिनी, वा यह पुत्र नवपीवन में संप्राप्त है । वास ! यदि इस अवस्था
में मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता । वत्स ! तुमने जिस मायावती, माता को विभूयित किया है ? अथवा मेरा जैन
स्नेह है और तुम्हारा जैसा पतिर है, इससे तुम स्पष्ट ही हरि के पुत्र होगे ॥२१-२२॥

व्यास बोले—इसी बीच कृष्ण के साथ नारद वहाँ आ पहुँचे । कृष्ण ने अन्त पुर में श्रेष्ठ रमणी रविमणों से
कहा ॥२३॥

श्रीकृष्ण बोले—मुन्दर भौ बाली ! यह तुम्हारा पुत्र उम, शम्बर को मारकर आया है जिसने द्वारा
तुम्हारा पुत्र मूडिरा-गृह से अगदूत हुआ था । यह मायावती, तुम्हारे पुत्र की, गर्भ, भार्या है । यह शम्बर की, पत्नी, नन्दा है

ममथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा । शम्बर' मोहयामास मायारूपेण रुक्मिणि' ॥२६॥
 विवाहाद्युपभोगेषु रूपं मायामय' शुभम् । दशयामास दैत्यस्य तस्येय मदिरक्षणा ॥२७॥
 कामोऽवतीर्णं पुनस्ते तस्येय दयिता रति । विशङ्का नान कर्तव्या स्नुषेय तव शोभना' ॥२८॥

व्यास उवाच

ततो हर्षसमाविष्टो रुक्मिणीकेशवो तदा । नगरो च समस्ता सा साधु साधिव्यभापत ॥२९॥
 चिर' नष्टेन पुत्रेण सगत प्रेक्ष्य रुक्मिणीम् । अवाप विस्मय सर्वो द्वारवत्यां जनस्तदा ॥३०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे शम्बरहृतप्रद्युम्नागमनवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

चारुदेण सुदेण च चारुदेह च शोभनम् । सुपेण (विचारं) चारुगुप्त च भद्रचारु तथाऽपरम् ॥१॥
 चारुबिन्द (चन्द्र) सुचारु च चारु च बलिना वरम् । रुक्मिण्यजनपत्युत्पन्नान्या चारुमतीं तथा ॥२॥

इसका कारण सुनो । रुक्मिणी । ममथ के विनष्ट हो जाने पर उसकी उत्पत्ति के लिए प्रयत्नरत रति ने माया रूप से शम्बर को मोह लिया । इस सुनयना ने विवाह जाति उपभोगों में दैत्य को मायामय सुन्दर रूप दिखला दिया । काम तुम्हारा पुत्र होकर अवतीर्ण हुआ । उसी की पत्नी रति यह है । इसमें शरा मत करो । यह तुम्हारी पवित्र पुत्र वधू है ॥२४-२८॥

व्यास बोले—तदुपरान्त रुक्मिण और केशव हर्षित हुए । नगर के सभी लोग बाह बाह कहने लगे । चिरकाल से नष्ट पुत्र के साथ रुक्मिण को देखकर अखिल द्वारकावासी आश्चर्य करने लगे ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शम्बर द्वारा अपहृत प्रद्युम्न के आगमन वर्णन नामक ।
 दो सौवां अध्याय समाप्त ॥२००॥

अध्याय २०१

अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध

व्यास ने कहा—रुक्मिण ने—चारुदेण, सुदेण सुन्दर चारुदेह सुपेण चारुगुप्त भद्रचारु चारुबिन्द सुचारु और बलिष्ठ चारु—इन पुत्रों का तथा चारुमती नामक वधू को उत्पन्न किया । कृष्ण की दूसरी भी सात
 १. शम्बर । २. रुक्मिणी । ३. ख मायावतृ । ४. क शोभने । ५. पुत्र ।

अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः । कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नामजितौ तथा ॥३॥
 देवी जाम्बवती चापि सदा तुष्टा तु रोहिणी । मद्राजसुता चान्या सुशोला शीलमण्डला ॥४॥
 सत्राजितौ सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनौ । षोडशात्र सहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः ॥५॥
 प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो हविर्मणस्तनया शुभाम् । स्वयवरस्यां जग्राह साऽपि त तनय हरेः ॥६॥
 तस्यामस्याभवत्पुत्रो - महाबलपराक्रमः । अनिरुद्धो रणे रद्धो वीर्योदधिररिन्दमः ॥७॥
 तस्यापि हविर्मण पौत्रो वरयामास केशवः । दौहित्राय ददौ स्वमी स्पर्धयन्नपि शौरिणा ॥८॥
 तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह । हविर्मणो नगरं जम्मुर्नाम्ना भोजकट द्विजाः ॥९॥
 विवाहे तत्र निवृत्ते प्राद्युम्ने सुमहात्मनः । कलिङ्गराजप्रमुखा हविर्मणं वाक्यमब्रुवम् ॥१०॥

कलिङ्गादय ऊचुः

अनसजो हलो द्यूते तयाऽस्य व्यसनं महत् । तत्र (ज्ज) यामो बलं तस्माद्द्यूतेनैव महाद्यूते ॥११॥

व्यास उवाच

तथेति तानाह नृपान् स्वमी बलसमन्वित । सभाया सह रामेण चक्रे द्यूतं च वै तदा ॥१२॥
 सहस्रमेक निष्काणा हविर्मणा विजितो बल । द्वितीये दिवसे चान्यत्सहस्र हविर्मणा जित ॥१३॥

सुन्दरी भार्यायै श्री—कालिन्दी क. पुत्री, मित्रविन्दा नामजित क. पुत्री, सत्या, देवी, जाम्बवती, सदा प्रसन्न रहने वाली, रोहिणी मद्रराज क. वन्दा सुन्दर स्वभाव वाली, शीलमण्डला, सत्राजित् क. पुत्री, सत्यभामा और मन्तराम हास्य करने वाली, लक्ष्मणा, चक्रवर्ती (कृष्ण) क. अन्य सोलह हजार स्त्रियाँ थीं। महापराक्रमी, प्रद्युम्न न रत्नम्, क. पक्षि वन्दा क. स्वयंवर से ग्रहण किया। वन्दा ने भी, कृष्ण ने पुत्र को स्वीकार किया। प्रद्युम्न ने सहस्रशाली युद्ध करने में समर्थ, नाविक वा समुद्र और शत्रु का दमन करने वाला अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। स्वमी, क. पौत्री नृ जम्बा वरण किया। स्वमी, यद्यपि कृष्ण से स्पर्धा करता था, त. भी, दौहित्र को, उसने पौत्री व्याह दी। द्विजगण उसने विवाह में बरतार आदि मोक्ष कृष्ण व साथ स्वमी व भोजकट नामक नगर में गये। महारामा अनिरुद्ध की विवाह सम्पन्न होने पर कलिङ्ग नरेश आदि (राजाओं) ने स्वमी से यह वाक्य कहा ॥१-१०॥

वर्तमान आदि ने कहा—महाबलान्तरम् । वन्दा पाता चलाना नहीं जानता फिर भी, जुए में इससे बड़ा व्यसन है। इसलिए जुए में ही इसे पराजित किया जाय ॥११॥

व्यास ने कहा—वर्त, स्वमी ने उन राजाओं से कहा—ऐसा ही, रही और समा में बलराम के साथ जुआ खेलना प्रारम्भ भी कर दिया। (पहले दिन) स्वमी ने बलराम से एक हजार निष्क (सत्तने वा एक प्रार्थन

१४ स ० वि रो० । २४ स ० श्री कामरूपिणी । म० । ३३ मन्तराजमुता । ग मद्रराजमुता ।
 ४४ ०० । तथा षोडश स । ५४ ० वेदवि पण चा० ।

ततो दश सहस्राणि निष्काणा^१ पणमादद । बलभद्रप्रपन्नानि स्वमी द्युतविदा वर ॥१४॥
ततो जहासाय बल कलिङ्गाधिपतिद्विजा । दन्ताविदशयन्मूढो स्वमी चाऽऽह मदोद्धत ॥१५॥

स्वम्युवाच

अविद्योऽय महायूत बलभद्र पराजित । मूर्खवाक्षावलपत्वाद्योऽय मेनेऽक्षकोविदम ॥१६॥
दण्वा बलिङ्गराज तु प्रकाशदशनाननम । स्वमिण चापि दुर्वावियकोप चक्र हलामुध ॥१७॥

व्यास उवाच

तत कोपपरीतात्मा निष्ककोटि हलामुध । ग्लह जग्राह स्वमी च ततस्त्वक्षानपातयत ॥१८॥
अजयदबलदवोऽय प्राहोच्चस्त जित मया । ममति स्वमी प्राहोच्चरलीकोवर्तैरल बलम ॥१९॥
त्वयोवतोऽय ग्लह सत्य न ममैषोऽनुमोदित । एव त्वया चेद्विजित न मया विजित कथम ॥२०॥
ततोऽन्तरिक्ष वागुच्च प्राह गम्भीरनादिनी । बलदेवस्य त कोप वधयती महात्मन ॥२१॥

आकाशवागुवाच

जित तु बलदवन स्वमिणा भायित मया । अनुत्वा^२ वचन किञ्चित्कृत भवति कमणा ॥२२॥

व्यास उवाच

ततो बल समुत्थाय क्रोधसरक्तलोचन । जघानाष्टापदनैव स्वमिण स महाबल ॥२३॥

सिखा जो प्राय १६ मासे का हुआ था) जते। दूसरे दिन भी स्वमी ने एक सहस्र निष्क जते। तदनंतर जुआ खेले में म चतुर स्वमी ने बलमद से दस हजार का बाज जत। द्विजगण^१ तब बलिराज बलमद की हस उठने लगा। मद से उद्धत मूख स्वमी ने दांत दिखाते हुए बालने लगा ॥१२ १५॥

स्वमी ने कहा—जए मैं यह मूख बलमद पराजित हुआ है। व्यर्थ ही पासे के अमिमान से इतने अपने को जए का विरोध करने लगा है। हसते हुए बलिराज तथा दुर्वाविय बलते हुए स्वमी को देखकर बलमद का क्रोध आ गया ॥१६ १७॥

व्यास ने कहा—तब क्रोध से आग-बबुके होकर बलमद ने एक करोड़ निष्कों की बाज लगाई। स्वमी ने भी स्व पर किया। पास पक गये पर विजय बलदेव का हुई। बलदेव ने उच्च स्वर से कहा—मेरी विजय हुई। स्वमी ने भी जोर से कहा—मेरी विजय हुई। तुम निष्का बोलते हो। तुमने गलत रस्सी ठाक पर मैने उसका समर्थन नहीं किया। अगर इस तरह तुमने जीता तो मैंने क्यों नहीं जीता? ॥१८ २१॥

आकाशवाणी ने कहा—बलदेव का विजय हुई। स्वमी असह्य बाला। बिना कुछ बोले काम करना मैं समर्थन करता हूँ ॥२२॥

व्यास ने कहा—तदनंतर क्रोध से आग लाल रिये महाबलवान् बलमद ने उठकर आठ गालों (के प्रहार) सह स्वमी को मार दिया। लज्जित हुए बलिराज को भी पकड़कर कुछ बलमद ने उससे उन दांतों को तोड़ दिया

कलिङ्गराज चाऽऽदाय विस्फुरन्त बलादबल । बभञ्ज दन्ताकुपितो यं प्रकाश जहास स ॥२४॥
आवृण्व च महास्तम्भ जातरूपमय बल । जघान ये तत्पक्षास्तान्भूत कुपितो बल ॥२५॥
ततो हाहाकृत सर्वं पलायनपर द्विजा । तद्राजमण्डल सर्वं बभूव कुपित बल ॥२६॥
बलेन निहत श्रुत्वा रुक्मिण मधुसूदन । नोवाच वचनं किञ्चिद्रुक्मिणीबलयोभयात् ॥२७॥
ततोऽनिरुद्धमादाय कृतोद्वाहं द्विजोत्तमा । द्वारकामाजगामाय यदुच्य सकशवम ॥२८॥

इति श्रीमहापुराण अनिरुद्धविवाह रुक्मिवधनिरूपण

नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१॥

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवधवर्णनम्

व्यास उवाच

द्वारकत्या तत शीरि शक्रस्त्रिभुवनश्वर । आजगामाय मुनयो मत्तरावतपृष्ठग ॥१॥
प्रविश्य द्वारका सोऽथ समीपे च हरेस्तदा । कथयामास दैत्यस्य नरकस्य विचष्टितम् ॥२॥

जिहें निवाल कर बह हँस रहा था । स्वर्णमय महास्तम्भ को उखाड़ कर कुपित बलराम ने स्वयं के पक्ष में और
जा राजा थे उन्हें मार दिया । द्विजपण । तदनंतर कुपित बलराम को देखकर स्वयं के पक्ष का राज मंडल
हाहाकार करते हुए नौ दो ग्यारह होने लगी । बलराम द्वारा निहत स्वयं के विषय में मुनवर रुक्मिणी और बलराम
के भय से कृष्ण कुछ भी नहीं बोले । द्विजवर । तदनंतर विवाहित अनिरुद्ध को लेकर कृष्ण सहित सुमस्तु यादव
गण द्वारका चले गये ॥२३ २८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण ये अनिरुद्ध विवाह प्रसंग में स्वयं का वध निरूपण

नामक दो सौ एव अध्याय समाप्त ॥२०१॥

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिव । तदुपरात त्रिभुवन के स्वामि इन्द्र मत्त एरावत का पंठ पर चढ़कर कृष्ण से
मिलने के लिए द्वारका आये । द्वारका में प्रवेश कर हरि के सम प इन्द्र ने नरक नामक दैत्य के त्रियाजो का वर्णन
किया ॥१ २॥

इन्द्र उवाच

त्वया नाथेन देवाना मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठता। प्रशम सर्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन ॥३॥
 तपस्विजनरक्षायं सोऽरिष्टो धेनुकस्तथा। प्रलम्बाद्यास्तथा केशी ते सर्वे निहतास्त्वया ॥४॥
 कस कुबलापीड पूतना बालघातिनी। नाश नीतास्त्वया सर्वे येऽन्ये जगदुपद्रवा ॥५॥
 युष्मद्दोदण्डसद्बुद्धिपरित्राते जगत्त्रये। यज्ञे यज्ञहवि प्राश्य तृप्तिं यागति द्विब्रीकस ॥६॥
 सोऽहं साप्रतमायातो यन्निमित्तं जनादेन। तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्नं कर्तुमहसि ॥७॥
 भीमोऽयं नरको नाम प्राग्ज्योतिषपुरेऽम्बर। करोति सर्वभूतानामपघातमरिदम ॥८॥
 देवसिद्धसुराशोना नृपाणां च जनादेन। हत्वा तु सोऽसुरं कन्यां हरोध निजमन्दिरे ॥९॥
 छत्र यत्सलिलत्वावि तज्जहार प्रचेतस। मन्दरस्य तथा शृङ्गं हूतवान्मणिपर्वतम् ॥१०॥
 अमृतस्त्राविणीं दिव्यं मातुर्ममृतकुण्डले। जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छयैरावतं द्विपम् ॥११॥
 'दुर्नीतमेतदगोविन्द भया तस्य तबोदितम्। यदत्र 'प्रतिकर्तव्यं तत्स्वयं परिमृश्यताम् ॥१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीसुत। गृहीत्वा वासव हस्ते समुत्तस्थो वरासनात् ॥१३॥
 सचिन्तिमपराहृष्ट गेहद गगनेऽवरम्। सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्ज्योतिष पुरम् ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—नाथ ! मधुसूदन ! मनुष्यों के बँचे रहते हुए भी आपने देवताओं के समस्त कष्टों का निवारण कर दिया। तपस्वियों के रक्षा के निमित्त अरिष्ट धेनुक कस तथा प्रलम्ब आदि सबको आपने निहृत किया। कस कुबलापीड पूतना आदि जितने संहारक उपद्रव, जब ये उन सबका आपने नाश किया। आपने बाहु-बल तथा बुद्धिबल से तानी लावों के रक्षा होने पर हे देवता लाय यन म हविष्य मोहन कर तुल्य हुते है। जनादेन ! इस समय मैं जिसलिए आया हूँ वह सुनकर आप उसका प्रतिकार करें। हे धनुक दमन करने वाल ! प्राग्ज्योतिषपुर का राजा नरक नामक दैत्य समस्त प्राणियों का अपघात करता है। भगवन् ! उसने देव सिद्ध सुर आदि का तथा राजाओं को मारकर उनको बनाया को अपने घर में रोक रखा है। वरुण का जाल बहान बना छाता था उसे अपहृत कर लिया है। मन्दराचल के मणिमय गिर का अपहरण कर लिया है। मेरी माना के अमृत टपवाने वाल दिव्य अमृतकुण्डला का तथा एरावत हाथ को भी हरण करके वह राक्षस ले गया। गतिविन्द उसका यह दुर्नीति मैं आपसे बचन के। अब इसका जो प्रतिकार हो वह आप स्वयं सोच ल ॥३॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर मुस्कराते हुए भगवान् कृष्ण इन्द्र का हाथ पकड़ कर अपने उत्तम आसन पर तो

आहूँरावत नाग शक्रोऽपि त्रिदशालयम् । ततो जगाम सुमना पश्यता द्वारकौकसाम् ॥१५॥
प्राग्ज्योतिषपुरस्यास्य समन्ताच्छतयोजनम् । आचित भैरवं पाशं परसैन्यनिवारणे ॥१६॥
सादिचच्छेद हरि पाशान्क्षिप्त्वा चक्र सुदर्शनम् । ततो मुर समुत्तस्थौ त जघान च केशव ॥१७॥
मुरोस्तु (रस्य) तनयान्सप्त सहस्रास्ता (सा ता) स्ततो हरि । चक्रधाराग्निनिर्दंशाश्चकार
शलभानिव ॥१८॥

हत्वा मुरं हयग्रीव तथा पञ्चजन द्विजा । प्राग्ज्योतिषपुर धीमास्त्वरावान्समुपाद्रवत् ॥१९॥
नरकेनास्य तत्राभून्महासैन्येन सयुग । कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यांसहस्रश ॥२०॥
शस्त्रास्त्रवर्ष मुञ्चन्त स भीम नरक बली । क्षिप्त्वा चक्र द्विधा चक्रे चक्रौ दैतेयचक्रहा ॥२१॥
हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वाऽदितिकुण्डले । उपतस्थे जगन्नाथ वावय चेदमथाब्रवीत् ॥२२॥

धरण्युवाच

यदाऽहमुद्धता नाथ त्वया शूकरमूर्तिना । त्वत्सस्पर्शभवं पुत्रस्तदाऽयं मथ्यजायत ॥२३॥
सोऽयं त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातित । गूहाण कुण्डले चेमे पालयास्य च सततिम् ॥२४॥
भारावतरणार्थाय ममैव भगवान्निमम् । अशेन लोकमायात प्रसादसुमुख प्रभो ॥२५॥

उठ गये और ध्यान मात्र से उपस्थित आकाशविहारी गह्वर पर सत्यमामा सहित स्वयं चक्रकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए प्रस्थित हो गये । तब इन्द्र भी प्रसन्न मन से ऐरावत हस्ती पर आरुढ़ होकर द्वारकावासियों के देखते हूँ देखते देवलोक को चले गये । प्राग्ज्योतिषपुर का चारों तरफ सात योजन तक शत्रु सेना के निवारणार्थ भयंकर जाल बिछा हुआ था । उन जालों को सुदर्शन चक्र से कृष्ण ने काट डाला । तदनन्तर मुर नामक राक्षस उठ खड़ा हुआ । उस कृष्ण ने मार डाला । मुर के सात हजार पुत्र थे । उनको हरि ने अपने चक्र के धारान्ति से पतगो की तरह जला डाला । द्विजपण । मुर हयग्रीव तथा पञ्चजन को मारकर बुद्धिमान् कृष्ण ने शीघ्रता से प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण कर दिया । वहाँ बड़ी सेना से युक्त नरक के साथ कृष्ण का सप्राप्त छिड़ गया । गोविन्द ने हजारों दैत्यों को विनष्ट किया । दैत्या के चक्रसमूह को नष्ट करने वाले चक्रधारी बली कृष्ण ने अपना चक्र चला कर बाह्य-अस्त्रों की वर्षा करते हुए नरक के दो द्वार बंद कर दिये । नरक के मर जाने पर पृथ्वी अदिति के कुण्डलों को लेकर भगवान् ने पास आकर यह बात कहने लगी ॥१३ २२॥

पृथ्वी ने कहा—नाथ ! जब बराह रूप धारण कर आपने मेरा उद्धार किया था तभी आपके स्पर्श से यह पुत्र मुझमें उत्पन्न हुआ था । सो आपने ही इसको दिया था और आपने ही इसे नष्ट भी किया । अब य कुण्डल कीजिये और इसकी सतानों का पालन कीजिये । मेरे ही मार उतारने के लिए आप एक अश्व से इस लोक में आये

त्वं कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽव्ययः । जगत्स्वरूपो यश्च त्वं स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२६॥
 व्यापो व्याप्यः क्रिया कर्ता कार्यं च भगवान्सदा । सर्वभूतात्मभूतात्मा स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२७॥
 परमात्मा त्वमात्मा च भूतात्मा चाव्ययो भवान् । यदा तदा स्तुतिर्नास्ति किमर्थं ते प्रवर्तताम् ॥२८॥
 प्रसोद सर्वभूतात्मन्नरकेन कृतं च यत् । तत्क्षम्यतामदोषाय मत्सुतः स निपातितः ॥२९॥

व्यास उवाच

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान्भूतभावनः । रत्नानि नरकाबासाञ्जग्राहं मुनिसत्तमा ॥३०॥
 कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुलविक्रमः । शताधिकानि ददुशे सहस्राणि द्विजोत्तमाः ॥३१॥
 चतुर्दशान्मजांश्चोप्राण्यदसहस्राणि दृष्टवान् । काम्बोजानां तथाऽऽवानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥३२॥
 कन्यास्ताश्च तथा नागास्तान्द्वान्धारकां पुरीम् । प्रापयामास गोविन्दः सद्यो नरकाककरैः ॥३३॥
 ददुशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम् । आरोपयामास हरिर्गण्डे पतगेद्वरे ॥३४॥
 आरुह्य च स्वयं कृष्णः सत्यभामासहायवान् । अदित्याः कुण्डले दातुं जगाम त्रिवशालयम् ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णचरिते नरकवधो नाम

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

हुए हैं । प्रभो ! सुन्दर मुख वाले । प्रसन्न होइये । आप कर्ता, विशिष्टकर्ता, संहर्ता, प्रभु, अव्यय तथा जगत्स्वरूप हैं । अच्युत । मैं क्या आपकी स्तुति करूँ ? आप जब परमात्मा, आत्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी हैं, तब तो आपकी स्तुति ही नहीं हो सकती, फिर कैसे की जाय । हे समस्त प्राणियों के आत्मा ! वृषा कीजिये । नरक ने जो अपराध किया, उसे दोष हटाने की दृष्टि से क्षमा कर दीजिये । वह मेरा पुत्र था, जिसे आपने मारा ॥२९-२९॥

व्यास ने कहा—मुनिवर । (पृथ्वी से) ऐसा ही होगा, इतना बहुर प्राणियों के उत्पादन भगवान् ने नरक के घर से रत्नों को ले लिया । द्विजोत्तम ! अतुल पराक्रमी कृष्ण ने कन्यापुर (रतिधारा) में सोलह हजार एक सौ कन्याओं को देता । चार दाँत वाले छह हजार भयकर हाथियों को तथा इक्कीस लाख बम्बोजी (अफगान) घोड़ों को भी देता । गोविन्द ने तुरन्त उन कन्याया, हाथियों एवं घोड़ों को नरक के नीचरे द्वार द्वार पहुँचा दिया । भगवान् कृष्ण वरुण के छत्र तथा मणिपर्वत को पश्चिम-राज गडह के ऊपर रखकर सत्यभामा के साथ स्वयं चढ़कर अदिति को कुण्डल देने के लिए देवलोका गये ॥३०-३५॥

श्रीमहापुराण के कृष्णचरित-वर्णनोपक्रम में नरकवध नामक

दो सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥२०२॥

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अदितिऋता भगवत्स्तुति

व्यास उवाच

गण्डो वारुण छत्रं तथैव भणिपवंतम्। सभार्यं च हृषीकेशं लीलयैव वह्न्ययी ॥१॥
ततः शङ्खमुपाध्माय स्वर्गद्वारं गतो हरिः। उपतस्थुस्ततो देवा सार्धपात्रा जनादनम् ॥२॥
स देवैरचितः कृष्णो देवमातुर्निवेशनम्। सिताभ्रशिखराकारं प्रविश्य ददृशोऽदितिम् ॥३॥
स तां प्रणम्य शक्रेण सहितः कुण्डलोत्तमे। ददौ नरकनाशं च शशंसास्यं जनादनं ॥४॥
ततः प्रीता जगन्माता धातार जगता हरिम्। तुष्टावादितिरव्यग्रं कृत्वा तत्प्रवणं मनः ॥५॥

अदितिरुवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भवतानामभयकर। सनातनात्मन्भूतात्मन्सर्वात्मन्भूतभावन ॥६॥
प्रणेतमनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मकः। सितदीर्घादिनि शेषकल्पनापरिवर्जित ॥७॥
जन्मादिभिरसस्पृष्टः स्वप्नादिपरिवर्जित। सध्या रात्रिरहर्भूमिर्गणनं वायुरम्बु च ॥८॥
दृशानशो मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्व तथाऽच्युत। सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता कर्तृपतिर्भवान् ॥९॥

अध्याय २०३

अदिति द्वारा भगवान् की स्तुति

व्यास ने कहा—गण्ड वरुण के छत्र, भणि-भवत तथा पत्नी सहित कृष्ण को बड़ी आसानी से ढोता हुआ जा रहा था। स्वर्ग-द्वार पर पहुँचने पर माधव ने शङ्ख-ध्वनि की। अधपात्र लिए समस्त देवगण जनादन के पास उपस्थित हुए। देवताओं से पूजित होने पर कृष्ण ने देवमाता के स्वच्छ मेघों से आवृत पर्वत-शिखरतुल्य भवन में प्रवेश कर अदिति को देखा। इन्द्र-सहित उपेन्द्र ने उनको प्रणाम कर उत्तम कुण्डल दे दिये और नरक का नाश भी उन्हें कह सुनाया। तत्पश्चात् जगन्माता प्रसन्न होकर चित्त को व्यग्रता से रहित करके जगद्धाता हरि में ही मन को लगा कर उनकी स्तुति करने लगी ॥१-५॥

अदिति ने कहा—वन्द्यलोचन! नक्तो को विभय करने वाले! आपकी नमस्कार है। सनातनात्मन्! भूतात्मन्! सर्वात्मन्! भूतोत्पादक! मन बुद्धि और इन्द्रियों के निर्माता! त्रिगुणात्मक! शुक्ल, दीर्घ आदि सब कल्पनाओं से रहित! आप जन्म आदि से अस्पृष्ट तथा स्वप्न आदि से वर्जित हैं। आप सध्या, रात्रि, दिन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि तथा प्राणियों के आदि हैं। आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कर्ता, कर्ता

'ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरोश्वर । मायाभिरेतद्व्याप्त ते जगत्स्यावरजङ्गमम् ॥१०॥
 अनात्मन्यात्मविज्ञानं सा ते माया जनार्दन । अहंममेति भावोऽत्र यया समुपजायते ॥११॥
 सत्सारमध्ये मायायास्तवंतन्नाथ चेष्टितम् । ये स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान् ॥१२॥
 ते तरन्त्यखिलामेता मायामात्मविमुक्तये । ब्रह्माद्या सकला देवा मनुष्या पशवस्तथा ॥१३॥
 विष्णुमायामहावर्ते मोहान्यतमसाऽऽवृता । आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मभक्तये ॥१४॥
 पदे ते पुरुषा बद्धा मायया भगवस्तव । मया त्वं पुत्रकामिन्या वैरिपक्षयाय च ॥१५॥
 आराधितो न मोक्षाय मायाविलसितं हि तत् । क्रीडोपाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ॥१६॥
 ज्ञायते यदपुण्यानां सोऽपराध स्वदोषज । तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराद्यय ॥१७॥
 अज्ञानं ज्ञानसद्भावं भूतभूतेशं नाशय । नमस्ते चक्रहस्ताय शङ्खहस्ताय ते नमः ॥१८॥
 गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय* ते नमः । एतत्पश्यामि ते रूपं स्थूलचिह्नोपशोभितम् ॥
 न जानामि परं यत्ते प्रसीद परमेश्वर ॥१९॥

व्यास उवाच

अदित्यैव स्तुतो विष्णुः प्रहस्याऽऽह सुरारणिम्

॥२०॥

के पति और ब्रह्मा विष्णु तथा शिव सशक्त अपनी मूर्तियों से ईश्वर कहलाते हैं । आपकी माया से यह स्यावर जगम रूप जगत व्याप्त है । जनार्दन ! अनात्मा मे आत्मा का ज्ञान ही माया है जिससे मैं और मेरा यह नाथ उत्पन्न होता है । नाथ ! ससार मे आपका माया की यह चेष्टा है । जिन घमपरायण मनुष्यों ने आपकी आराधना की वे आत्ममूर्ति के लिए इस अखिल माया को पार कर गये । ब्रह्मा आदि सबल देवता मनुष्य तथा पशु विष्णु माया रूपा महान् मंत्र मे मोहरूपी तिमिर से आवृत हो आपकी उपासना कर अपने तथा सत्सार के नाथ के लिए अमित्रपायें करते हैं ॥१६-१४॥ भगवन् ! पुरुष आपकी माया से आपने चरणा म बद्ध हैं । मैंने पुत्र का कामना से तथा शत्रु-पक्ष के नाथ की इच्छा से आपकी आराधना का परन्तु मोक्ष के लिए नहीं की । यह भी माया का (ही) खेल है । पापिया को जो कल्पद्रुम से भी केवल क्रीडान तथा आच्छादन-यस्त्र का इच्छा होती है यह उसका निज दापजय अपराध है । इसलिए अखिल जगत् को माया-मोह म डालन वाल ! अद्वय ! प्राणिया के अर्थात् ज्ञानपूज ! आप प्रसन्न हृदये और मेरे अज्ञान का नाश करजिय । चक्र धनुष मण तथा गदा हाथों मे धारण करने वाले ! आपको नमस्कार है । स्थूल चिह्नों से सुशोभित आपका इह रूप का मैं देखना हूँ पर इससे भी परे जो आप का रूप है उसे नद्दा देख पा रही हूँ । परमेश्वर ! कृपा करजिए ॥१५-१९॥

व्यास ने कहा—अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर विष्णु हँसकर देवमाता से कहने लगे ॥२०॥

श्रीकृष्ण उवाच

माता दधि त्वमस्माक प्रसीद वरदां भव

॥२१॥

अदितिरुवाच

एवमस्तु ययच्छा त त्वमशयसुरासर । अजय पुरुषव्याघ्र मत्पलोक भविष्यसि ॥२२॥

व्यास उवाच

ततोऽन तरमवाप्त्य शक्राणीसंहिता दितिम । सत्यभामा प्रणम्याऽऽह प्रसीदति पुन पुन ॥२३॥

अदितिरुवाच

मत्प्रसादान् त सुभ्रु जरा वरूपमय च । भविष्यत्यनवद्याङ्गि सबकामा भविष्यसि ॥२४॥

व्यास उवाच

अदित्या तु कृतानुज्ञो दवराजो जनादनम । यथावपूजयामास बहुमानपुर सरम् ॥२५॥

ततो ददश कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान । दवोद्यानानि सर्वाणि नदनादीनि सत्तमा ॥२६॥

ददश च सुगन्धाढ्य मञ्जरीपुञ्जधारिणम् । शत्याह्लावकर दिव्य ताम्रपल्लवशोभितम् ॥२७॥

मय्यमान ऽमृत जात जातरूपसमप्रभम् । पारिजात जगन्नाथ षडाय कशिसूदन ।

त दृष्ट्वा प्राह गोविन्द सत्यभामा द्विजोत्तमा ॥२८॥

श्रीकृष्ण बोले—देवी तुम हमारी माता हो कृपा करो वर दो ॥२१॥

अदिति न कहा—एवमस्तु ! तुम्हारी जसी इच्छा । पुरुषधृष्ट ! मयलोक मे तुम अशेष देव-दैत्य से अशेष हूँगे २२

व्यास न कहा—तदनंतर इच्छाणी सहित सत्यभामा दिति को बार बार प्रणाम कर कहने लगी—प्रसन्न होइये ॥२३॥

अदिति न कहा—सुन्दर भौ बाली ! अनिन्द्य अग्रे बाली मेरी कृपा से तुम्हें बढ़ाया तथा कुरूपत नहीं व्यापेगी तुम्हारी सारी वामनाय पूरी होगी २४ ।

व्यास न कहा—अदिति की आज्ञा पाकर इन्द्र ने बहुत आदर से जनादनक विधिपूर्वक पूजा की । त सत्यभामा सहित कृष्ण दैवताओं के नन्दन आदि समस्त उद्यानों को देखने लगे । केशी नामक राजस के मारुं काले जगन्नाथ केशव ने सुगन्धिस परिपूर्ण मञ्जरीयों से सुशोभित शीतलता तथा आह्लादवत्ता से सज्जन दिव्य ताम्रपल्लव बाल प—वो से विमलित स्वर्णतुल्य कामिमान् और अमृत-मयन से उत्पन्न वरूपवश को देखा । द्विजवर ! उसे देखकर सत्यभामा ने गोविन्द से कहा ॥२५ २८॥

सत्यभामोवाच

कस्मान्न द्वारकामेव नीयते कृष्ण पादपः^१ । यदि ते तद्वचः सत्यं सत्याश्रयं प्रियेति मे ॥२९॥
 मद्गृहे निष्कुटार्याय तदयं नीयतां तवः । न मे जाम्बवती तादृग्भीष्टा न च रुक्मिणी ॥३०॥
 सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम् । सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं वचः^२ ॥३१॥
 तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम् । विभ्रतो पारिजातस्य केशपाशेन मञ्जरीम् ॥
 सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ॥३२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तं स प्रहस्येनं पारिजातं गृह्णति । आरोपयामास हरिस्तमूचुर्वनरक्षणः^३ ॥३३॥

वनपाला ऊचुः

भोः शची देवराजस्य महिषी तत्परिग्रहम् । पारिजातं न गोविन्द हर्तुमहंसि पादपम् ॥३४॥
 चोविभूषणार्थाय देवैरमृतमन्यने । उत्पादितोऽयं न क्षेमो गृहीत्वैनं गमिष्यसि^४ ॥३५॥
 रौढ्यात्प्रार्थयसे क्षेमो गृहीत्वैनं च को व्रजेत्^५ । अवश्यमस्य देवेन्द्रो विकृतिं^६ कृष्ण यास्यति ॥३६॥
 ज्योद्यतकर शक्रमनुयास्यन्ति चामराः । तदलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ॥
 पाककटु यत्कर्म न तच्छंसन्ति पण्डिताः ॥३७॥

सत्यभामा बोली—कृष्ण ! यदि आपका यह वचन—सत्या ! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो—सत्य है तो
 ३ वृक्ष को द्वारका क्यों नहीं ले चलते हैं ? अन्त-पुर में रखने के लिए इसे मेरे घर ले चलिए । कृष्ण ! आपने
 १ प्रिय वचन अनेक बार कहा था, कि सत्या ! तुम मुझे जितनी प्रिय हो उतनी न जाम्बवती न रुक्मिणी ही मुझे
 भीष्ट है । गोविन्द ! यदि आपका यह वचन सत्य है, केवल मुखमुखायें नहीं कहा गया था, तो यह बल्पवृक्ष
 द्वारका भूषण बने । कल्पवृक्ष की मजरी को मैं अपने वाली पर धारण कर सपत्नियों के बीच शोभा प्राप्त
 होंगी ॥२९-३२॥

व्यास ने कहा—इतना बहने पर हरि ने हँस कर बल्पवृक्ष को गृह के ऊपर रख दिया । तब वन-रक्षकों
 उनसे कहा ॥३३॥

वनरक्षकों ने कहा—हे गोविन्द ! इन्द्र की महारानी इन्द्राणी का यह बल्पवृक्ष है । इसका आप हरण न
 १ । अमृतमन्यने ने समय शची के भूषण के निमित्त देवताओं ने इसे उत्पन्न किया था । आप इसे ले जाने में
 २ । सत्य नहीं हो पायेंगे । कृष्ण ! आप मूर्खतावश प्रार्थना कर रहे हैं । वीन सामर्थ्यवान् पुरुष इसे ले जायेगा ?
 ३ । ले जाने से इन्द्र बहुत नृद्व होगे । जब इन्द्र हाथ में वज्र धारण कर तैयार हो जायेंगे तब समस्त देवगण उनका
 ४ । समन करेंगे । अच्युत ! सकल देवबन्दा से आपका बलह करना व्यर्थ है । जिस वाम का परिणाम, बड़बुदा हो,
 ५ । पण्डित लोग अच्छा नहीं कहते हैं ॥३४-३७॥

१ स. मूढ । २ स. तव । ३ क. ० पुस्तक ० । ४ स. कृष्ण । ५ क. ० त्ति । मोहात्प्रा ० । स. ० त्ति ।
 वा प्रार्थ ० । ६ स. ग. ० यते क्षे ० । ७ स. ० त् । यथेतास्य । ८ क. स. निष्कृति ।

व्यास उवाच

॥३८॥

इत्युक्ते तैरुवाच तान्सत्यभामाऽतिकोपिनी

सत्यभामोवाच

का शची पारिजातस्य को वा शक्र सुराधिप । सामान्य सर्वलोकाना यद्येपोऽमृतमन्यते ॥३९॥
समुत्पन्न पुरा कस्मादेवो गृह्णाति वासव । यथा सुरा यथा चेन्दुर्यथा श्रीर्बनरक्षिण ॥४०॥
सामान्य सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुम । भर्तृबाहुमहागर्वाद्गुणद्व्येनमयो शची ॥४१॥
तत्कथ्यता द्रुत गत्वा पोलोम्या वचन मम । सत्यभामा वदत्येव भर्तृगर्वोद्धताक्षरम् ॥४२॥
यदि त्व दयिता भर्तुर्यदि तस्य प्रिया ह्यसि । मद्भर्तुर्हृरतो वृक्ष तत्कारय निवारणम् ॥४३॥
जानामि ते पति शक्र जानामि त्रिदशेश्वरम् । पारिजात तथाऽप्येन मानुषी हारयामिते ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा प्रोचन् प्रोचुर्यथोदितम् । शची चोत्साहयामास त्रिदशाधिपति पतिम् ॥४५॥
तत समस्तदेवाना संन्ये परिवृतो हरिम् । प्रवृत्त पारिजातार्थमिन्द्रो योधयितुं द्विजा ॥४६॥
तत परिधर्निस्त्रिशगदाशूलधरायुधा । बभूवुस्त्रिदशा सज्जा शक्रे वज्रकरे स्थिते ॥४७॥
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो नागराजोपरि स्थितम् । शक्र देवपरीवार युद्धाय समुपस्थितम् ॥४८॥

व्यास ने कहा—यह सुन कर शीव से तपसमाप्ती हुई सत्यभामा उनसे कहने लग ॥३८॥

सत्यभामा बोली—कल्पवृक्ष का इद्राणी कौन होती है या देवस्वामी इद्र ही कौन होता है ? यह तो सब लोगों के लिये समान है । यदि यह अमृतमन्थन व समय उत्पन्न हुआ तो अनेक इन्द्र ने क्या इसे ग्रहण किया ? बन रक्षको ! सब लोगों के लिये जैसे सुरा (अमृत) चन्द्रमा तथा लक्ष्मी सामान्य है वैसे कल्पवृक्ष भी है । यदि अपने स्वामी के बाहु-बल के गर्व से शची इसे राखता है तो शास्त्र जाकर उससे मेरी बात कहा—स्वामी के गव से उद्धता सत्यभामा इस प्रकार कहती है कि यदि तुम अपने पति की प्रयत्नी हो तो कल्पवृक्ष का हरण करते हुए मरे स्वाम का निवारण कराओ । मैं तुम्हारे पति इद्र को जानती हूँ देवताओं के ईश्वर को भी जानता हूँ तो मैं मानुषा होकर कल्पवृक्ष का हरण करवाती हूँ ॥३९-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर रक्षकगण शची के पास जाकर जोर-ओर से सब वृत्तात कहने लग । शची ने देवताओं के पति इद्र को उत्साहित किया । द्विजगण ! तदुपरान्त अखिल देवों की सेना से युक्त इद्र कल्पवृक्ष के लिये वृष्ण से युद्ध करने का तैयार हो गये । इद्र ने हाथ में वज्र लिया और अतिरिक्त देवगण न मुद्गर तलवार, गदा, शूल आदि अस्त्र-शस्त्रों का धारण किया । तब गोविन्द ने युद्ध के लिये उपस्थित तथा हस्तिराज पर स्थित

चकार शङ्खनिर्घोषं दिशः शब्देन पूरयन् । 'मुमोच च शरव्रातं सहस्रायुतसंमितम् ॥४९॥
 ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशताचितम् । मुमुक्षुस्त्रिदशाः सर्वे शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः ॥५०॥
 एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवैर्मुक्तं सहस्रधा । चिच्छेद लीलयेवेशो जगतां मधुसूदनः ॥५१॥
 पाशं सलिललराजस्य समाकृष्योरगाशनः । चचाल खण्डशः कृत्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५२॥
 यमेन प्रहितं वण्डं गदाप्रक्षेपखण्डितम् । पृथिव्या पातयामास भगवान्देवकीसुतः ॥५३॥
 शिबिकां च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः । चकार शौरिरकैन्धू दृष्टिपातहतौजसौ ॥५४॥
 नीतोऽग्निः शतशो बाणैर्द्राविता वसवो दिशः । चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा द्वा भुवि निपातिताः ॥५५॥
 साध्या विश्वे च मरुतो गन्धर्वाश्चैव सायकैः । शार्ङ्गिणा प्रेरिताः सर्वे व्योम्नि शाल्मलितूलदत् ॥५६॥
 'गहडश्चापि वज्रेण पक्षाम्यां च नखाङ्कुरैः । भक्षयन्नहन् देवान्दानवाश्च सदा खग ॥५७॥
 ततः शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ । परस्परं ववर्षति धाराभिरिव तोयदौ ॥५८॥
 ऐरावतेन गरुडो ययुधे तत्र सकुले । देवैः समेतैर्ययुधे शक्रेण च जनार्दनः ॥५९॥
 छिन्नेषु शीर्यमाणेषु शस्त्रेष्वस्त्रेषु सत्वरम् । जग्राह वासवो वज्रं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ॥६०॥
 ततो हाहाकृतं सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् । वज्रचक्रधरो दृष्ट्वा देवराजजनार्दनौ ॥६१॥
 क्षिप्तं वज्रमयेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः । न मुमोच तदा चक्रं तिष्ठति तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥६२॥

इन्द्र को देव-परिवारो के साथ देखा । उन्होंने शस्त्रध्वनि की । चारो दिशाएँ शब्द से गूँज उठी । एक लाख की संख्या में बाण छोड़े गए ।' दिशाएँ एवम् आकाश सँकड़ो बाणों से भर गये । तब देवताओं ने भी अनेकों अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया । जगत्सामी मधुसूदन ने लीला से ही देवताओं द्वारा छोड़े गए एक-एक अस्त्र-शस्त्र के हजार टुकड़े कर दिये । गहड़ ने बाल सपों की देह के समान वरुण के पाश को सींच कर उसके खण्ड खण्ड कर दिये ॥४५-५२॥ मगवान् देवकी-भुव ने यम के द्वारा प्रक्षिप्त गदा को तोड़ कर पृथ्वी पर गिरा दिया । कुबेर की पालकी को वज्र से तिल के बराबर बाट-बाट कर रख दिया, सूर्य-चन्द्रमा को दृष्टिपात से ही तेजोहीन बना दिया । अग्नि को सँकड़ा बाणों से बिड़ कर दिया । यमुना चारो दिशाओं में माग गये । चक्र से बटे त्रिशूल के अग्रभाग वाले द्रवण पृथ्वी पर गिर पड़े । शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले कृष्ण के बाणों से आहत साध्य, विश्वेदेव, मरुत् तथा गन्धर्वगण सेमल की रुई की तरह आकाश में दीखने लगे । गरुड भी मुह, पक्ष तथा नत्तो से देव दानवों को मारने तथा खाने लगे । तब देवेन्द्र और मधुसूदन परस्पर बादल की तरह हजारों बाणों की वृष्टि करने लगे । उस युद्ध में ऐरावत के साथ गरुड और देवों तथा इन्द्र के साथ जनार्दन युद्ध करते थे ॥४३-५९॥ शीघ्र ही सब अस्त्र-शस्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर इन्द्र ने वज्र तथा कृष्ण ने सुदर्शन चक्र धारण किये । वज्र-वज्रधारी इन्द्र-जनार्दन को देखकर चराचर सहित सँतो लोक हाहाकार करने लगे । मगवान् हरि ने इन्द्र द्वारा प्रक्षिप्त वज्र को पकड़ लिया, पर अपना चक्र नहीं छोड़ा ।

प्रनष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतबाहनम् । सत्यभामाऽब्रवीद्वाक्यं पलायनपरायणम् ॥६३॥

सत्यभामोवाच

त्रैलोक्येश्वर नो युक्त शचीभर्तुः पलायनम् । पारिजातस्रगाभोगात्स्यामुपस्थास्यते शची ॥६४॥
कोदृश देव राज्य ते पारिजातस्रगुज्ज्वलाम् । अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयान्मयागता शचीम् ॥६५॥
अल शक्र प्रयासेन न श्रीडा यातुमर्हसि । नीयता पारिजातोऽय देवा सन्तु गतव्यथा ॥६६॥
पतिगर्वावलेपेन बह्वमानपुर सरम् । न ददर्श गृहायातामुपचारेण मा शची ॥६७॥
स्त्रीत्वाद्गुरुचित्ताऽहं स्वभर्तुः श्लाघनापरा । तत कृतवती शक्र भयता सह विप्रहम् ॥६८॥
तदल पारिजातेन परस्येन हृतेन वा । रूपेण यशसा चैव भवेत्स्त्री कान गविता ॥६९॥

व्यास उवाच

इत्युक्ते च निवृत्ते 'देवराजस्तया द्विजा । प्राह चैनामल चण्डि ससि' खेदातिविस्तरं ॥७०॥
न चाऽपि सर्गसंहारस्थितिकर्ताऽखिलस्य य । जितस्य तेन मे श्रीडा जायते विश्वरूपिणा ॥७१॥
यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्ये, यस्माद्यतश्च न भविष्यति सर्वभूतात् ।
तेनोच्चप्रलयपालनकारणेन, श्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७२॥

यद्य नष्ट होने के साथ ही ऐरावत भी गरुड द्वारा क्षत विभक्त हो गया । इन्द्र भाग्य लगे । हरि न कहा — ठहरो ठहरो ।' तब सत्यभामा इन्द्र स कहने लगी ॥६०-६३॥

सत्यभामा बोली—तीना लाका के ईश्वर तथा शची के स्वामी हाकर आपका भागना नहीं चाहिय । कल्प-वृक्ष के पुरषों की माला पहनकर शची आपसे पास जायगी । पहले की तरह कल्पवृक्ष की उम्मेद माला धारण कर प्रेम से आमी हुई शची क बिना देखे आपका राज्य कैसा ? इन्द्र ! आप व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं । आपको लज्जा नहीं करनी चाहिय । आप कल्पवृक्ष ले जाइये । देवगण व्यापारहित हो जाय । पति के गव से शची ने गृह में आयी हुई मुझे बहुत आदर के साथ नहीं देता । स्त्री होने के कारण मेरा हृदय बिगल नहीं है । अत अपने पति स हठ करने मैंने आपसे विप्रह किया । अब मुझे कल्पवृक्ष की कोई आवश्यकता नहीं है । मैं दूसरे का घन हरण नहीं करना चाहती । रूप तथा यश (मिलने) से वित स्त्री को गर्व नहीं होता ॥६४-६९॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! इतना कहकर चुप हो जाने पर देवराज ने उससे कहा—चण्डिके ! ससि ! मेद का अतिविस्तार करना व्यय है । सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता विश्वरूपा से पराजित होने पर भुध लज्जा क्यों हली ? देवि ! जिस आदिमध्य-रहित (परमात्मा) में संपूर्ण अग्न लीन हो जाता है तथा जिसस उत्पन्न होता है उस उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय के कारण (ब्रह्म) से हारने पर लज्जा कैसी ? जिस अखिल जगत् रूप सृष्टि वाले (परमात्मा) की मूर्ति अणु एवम् अति सूक्ष्म है और जिसे समस्त वेदा के शाता ही जानते हैं दूसरे नहीं उस अजन्मा,

१क ग^१ ०बीटीर ५० । २क ल ०भतं ५० । ३क ल प्रतापेन । ४ण ०ण गविता सा तु मर्ता स्त्री कालग ० । ५क ०जस्वनायुत । ६प्र ० । ६क ०खि वरेण वेवलम् । न । ७क ०वारिणा मे श्री ० ।

सकलभुवनमूर्तेर्मूर्तिरत्ना सुसूक्ष्मा, विदितसकलवेदेज्ञायते यस्य नान्यैः
तमजमकृतमोक्ष शाश्वतं स्वेच्छयनं, जगदुपकृतिमाद्य को विजेतुं समर्थः ॥७३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे पारिजातहरणे शक्रस्तवनिरूपणं
नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

इन्द्रकृष्णसवादवर्णनम्

व्यास उवाच

संस्तुतो भगवानित्यं देवराजेन केशवः । प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचेदं' द्विजोत्तमाः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

देवराजो भवानिन्द्रो वयं मर्त्या जगत्पते । क्षन्तव्यं भवतैवेतदपराधकृतं मम ॥२॥
पारिजाततृक्ष्णाय नीयतामृचितास्पदम् । गृहीतोऽयं मया शक्र सत्यावचनकारणात् ॥३॥
वज्रं चेदं गृहाण त्वं यष्टव्यं' प्रहितं स्वया । तवैवेतत्प्रहरणं शक्रवैरिविदारणम् ॥४॥

अथ, ईश, नित्य, आद्य तथा सत्तार के उपकारी को कौन व्यक्ति स्वेच्छा से जीतने में समर्थ (हो सकता) है ? ॥७०-७३॥'

श्रीब्रह्ममहापुराण में कल्पवृक्ष के हरण-प्रसंग में इन्द्रस्तुति निरूपण
नामक दो सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥२०३॥

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के सवाद का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर ! इन्द्र से इस प्रकार स्तुत होने के उपरान्त वेगव ने हँसकर सारगमित वाक्य
बोला ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा—उपलब्धामी ! आप देवताओं के राजा इन्द्र हैं और मैं मनुष्य हूँ । इसलिए आप ही
मेरे अपराध को क्षमा करें । इस कल्पवृक्ष को उचित स्थान पर रखा दें । शक्र ! मैंने तो केवल सत्या के कथन के कारण
इसे ग्रहण किया । इस वस्तु का भी आप के लीजिए । आपसे छोड़ा गया यह पुनर्नीय है । शत्रुओं का विदारण करने
वाला यह वस्तु आप ही का है ॥२-४॥

शक्र उवाच

विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् । जानीमस्त्वां भगवतोऽनन्तसौख्यविदो वयम् ॥५॥
योऽसि सोऽसि जगन्नाथ प्रवृत्तो नाथ सस्थितः । जगतः शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६॥
नोपता पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवर्तो पुरोम् । मर्त्यलोके त्वया भुक्ते नाथ संस्थास्यते भुवि ॥७॥

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा तु देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः । प्रयुक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तूयमानस्त्वयिपिभि ॥८॥
जगाम कृष्ण सहसा गृहीत्वा पादपोत्तमम् । ततः शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि सस्थितः ॥९॥
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विजा । अवतीर्याथ गरुडास्तपभामासहायवान् ॥१०॥
निष्कुटे स्थापयामास पारिजात महातरुम् । यमम्येत्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥११॥
वास्त्यते यस्य पुष्पाणा गन्धेनोर्वो त्रियोजनम् । ततस्ते यादवा सर्वे देवगन्धानमानुषान् ॥१२॥
द्वयं पादपे 'तस्मिन्कुर्वतो' मुखदर्शनम् । किंकरं समुपानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम् ॥१३॥
स्त्रियश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहात् । ततः काले शुभे प्राप्त उपयेमे जनार्दनः ॥१४॥
ता कन्या 'नरकाबासात्सर्वतो या' समाहृता । एकस्मिन्नेव गोविन्दः कालेनाऽऽप्ता द्विजोत्तमाः ॥१५॥
जग्राह विधिवत्पाणीनृपादेहे स्वधर्मतः । षोडश स्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथाऽधिकम् ॥१६॥

शुक्र ने कहा—ईश । 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर क्यों आप मुझे मोह में डाल रहे हैं ? मैं आपको जानता हूँ । आप ही से हम सब अनन्त सुखों को प्राप्त करते हैं । जगन्नाथ । 'राक्षसों के संहारक' । आप जो हैं सो हैं, पर आप पृथ्वी पर स्थित होकर ससार का सफट कर रहे हैं । कृष्ण । इस कल्पवृक्ष को आप द्वारका लें जाय । आपके मर्त्यलोक छोड़ देने पर यह पृथ्वी पर नहीं ठहरेगा ॥५-७॥

व्यास ने कहा—इन्द्र से 'एवमस्तु' कहकर भगवान् कृष्ण उत्तम वृक्ष को लेकर सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषियों द्वारा स्तुत होते हुए धीमे मृत्युलोक आ गये । विप्रवृन्द । द्वारका पहुँचकर उन्होंने शल्यध्वनि से द्वारकावासियों को आनन्दित किया और गरुड़ पर से सत्यनामा सहित उतर कर अन्त पुर में महातरु कल्पवृक्ष को स्थापित कर दिया । उसको देखकर मनुष्य को पूर्व जाति का स्मरण हो आता था और उसकी सुगंध से पृथ्वी तीन यात्रण तक सुगन्धित रहती थी । यादवगण उस अलौकिक गन्ध को सूँघते थे, उस वृक्ष में अपना मुखदर्शन करते थे । सेवकगण उससे हारिया-पाड़े आदि घन प्राप्त करते थे । नरक नामक राक्षस के बन्धन से उन्मुक्त स्त्रियों को कृष्ण ने स्वीकार किया । शुम्भकाल प्राप्त होने पर जनार्दन ने उन सब कन्याओं से विवाह कर लिया, जो नरक के गृह से लाई गई थी । विप्रवर । गोविन्द ने पुण्ड्र-मुषक शरीर धारण कर एक ही समय सब कन्याओं से विधिपूर्वक विवाह किया । सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थी । भगवान् मधुसूदन ने उतने ही रूप बनाये । उन कन्याओं ने मधुसूदन को

तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान्मधुसूदनः। एकैकशश्च ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनम् ॥१७॥
ममैव पाणिग्रहणं गोविन्द. कृतयानिति। निशासु जगतः स्रष्टा तासां गेहेषु केशव ॥
उवास विप्राः सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्या 'कथिता द्विजाः। भान्वादिकांश्च वै पुत्रान्सत्यभामा ध्यायापत ॥१॥
दीप्तिमन्तः प्रपञ्चाद्या रोहिण्यास्तनया हरेः। बभूवुर्जाम्बवत्याश्च 'साम्बाद्या बाहुशालिनः ॥२॥
तनया भद्रविन्वाद्या नाम्नजित्यां महाबलाः। संप्रामजितप्रधानास्तु शैब्यायां चाभवन्सुताः ॥३॥
वृकाद्यास्तु सुता 'माद्री गानवत्प्रमुखांसुतान्। अवाप लक्ष्मणा पुत्रान्कालिन्याश्च श्रुतादयः ॥४॥
अन्यासा चैव भार्याणां समुत्पन्नानि चक्रिणः। अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा ॥५॥

एक-एक करके मान्ता और समझा कि गोविन्द ने मुझसे ही पाणिग्रहण किया है। द्विजगण । रात्रि में जगत्स्रष्टा
केशव विद्वत्स्वरूप धारण कर उन सबके घरो में वास करते थे ॥८-१८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग मे दो सौ बीया अध्याय समाप्त ॥२०४॥

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का चरित्र-वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवृन्द । हरि के रुक्मिणी से उत्पन्न प्रद्युम्न आदि पुत्रों के बारे में मैंने कहा । (अब
और सुनिये) गानु आदि पुत्र सत्यभामा से उत्पन्न हुए । हरि के रात्रिणी से प्रपञ्च आदि दीप्तिमन्त पुत्र हुए । जाम्ब-
वती से साम्ब आदि प्रतापी पुत्र हुए । नाम्नजिती के भद्रविन्द आदि मष्टारत्नवान् पुत्र हुए । संप्रामजित् आदि पुत्र
शैब्या के हुए । माद्री के वृक आदि पुत्र हुए । लक्ष्मणा ने गानवान् आदि पुत्रों को प्राप्त किया । कालिन्दी के
शुन आदि पुत्र हुए । कृष्ण की दूगरी स्त्रिया में आठ करोड़ एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न

प्रद्युम्नः 'प्रमुखस्तेषां हविमण्यास्तु सुतस्ततः। प्रद्युम्नानिरुद्धोऽभूद्वज्रस्तस्मादजायत ॥६॥
अनिरुद्धो रणे रद्धो बलः पौत्रो महाबलः। बाणस्य तनयाम् (मु) पामुपयेमे द्विजोत्तमाः ॥७॥
यत्र युद्धमभूदधोरं हरिदांकरयोर्महत्। छिन्नं सहस्रं बाहूना यत्र बाणस्य चक्रिणा ॥८॥

मुनय ऊचुः

कथं युद्धमभूदब्रह्मनुषार्ये हरदृष्टयोः। कथं क्षयं च बाणस्य बाहूनां हृतबाहुरिः ॥९॥
एतत्सर्वं महाभाग^१ वक्तुमर्हसि नोऽखिलम्। महत्कौतूहलं जातं धोतुमेतां कथां शुभाम् ॥१०॥

व्यास उवाच

उषा बाणसुता विप्राः पार्वतीं शंभुना सह। कीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदा^२ स्वयम् ॥
ततः सकलचित्ता गौरी तामाह भामिनीम् ॥११॥

गौर्युवाच

अलमित्यनुतापेन भर्ता त्वमपि रस्यसे ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा चक्रे वदेति मतिमात्मनः। को वा भर्ता ममेत्येनां पुनरप्याह पार्वती ॥१३॥

प्रधान था। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध की उत्पत्ति हुई। द्विजश्रेष्ठों। रणदुर्मद महाबली अनिरुद्ध ने बेलि की पौत्री तथा बाण की पुत्री उषा से विवाह किया। उस विवाह में हरि और शरर के बीच महायुद्ध हुआ। कृष्ण ने बाण की हजारों भुजाओं का काट डाला ॥१-८॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्। उषा के लिये क्यों शिव तथा कृष्ण में युद्ध हुआ? क्यों हरि ने बाण की बांह काट डाली? महाभाग। यह सब सविस्तार हमें बतलाइये। इस शुभ कथा को सुनने के लिय हम बड़ी उत्प्रेक्षा हो रही है ॥९-१०॥

व्यास ने कहा—विप्रद्वन्द्व। बाण की कन्या उषा ने शरर के साथ रंझा करती हुई पार्वती को देखकर इच्छा की, कि बाधा। मैं भी ऐसा करती। तब अपने चित्त को जानने वाली गौरी ने उससे कहा ॥११॥

गौरी बोली—तुम व्यर्थ ही अनुताप कर रही हो, पति के साथ तुम भी रमण करोगी ॥१२॥

व्यास ने कहा—पार्वती का इतना कहने पर उषा मन में सोचने लगी, कि जब कौन मेरा स्वामी होगा। फिर पार्वती ने उससे कहा ॥१३॥

पार्वत्युवाच

वैशाख शुक्लद्वादश्या स्वप्ने योऽभिभव तव । करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४॥

व्यास उवाच

तस्या तिथौ पुमान्स्वप्ने यथा देव्या उदीरित । तथैवाभिभव चक्रे राग चक्रे च तत्र सा ॥
'तत प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती तमुत्सुका ॥१५॥

उषोवाच

यव गतोऽसीति निर्लज्जा द्विजाश्चोक्तवती सखीम । बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा तु तत्सुता ॥१६॥
तस्या सख्यभवत्सा च प्राह कोऽप्य त्वद्योच्यते । यदा लज्जाकुला नास्य कथयामास सा सखी ॥१७॥
तदा विश्वासमानीय सवमेवान्ववेदयत । विदिताया तु तामाह पुनरुषा यथोदितम् ॥
दव्या तथैव तत्प्राप्तौ योऽभ्युपाय कुरुष्व तम ॥१८॥

व्यास उवाच

तत पट सुरानन्द्यान्गधर्वाश्च प्रधानत । मनुष्याश्चाभिलिख्यासौ चित्रलेखाऽप्यदर्शयत ॥१९॥
अयास्य सा तु गन्धर्वास्तथोरगसुरासुरान । मनुष्येषु वदौ दृष्टि तेष्वप्यन्धकवृष्टिण्यु ॥२०॥

पार्वती ने कहा—राजकुमारी । वैशाख शुक्ल द्वादशी तिथि में जो व्यक्ति स्वप्न में तुमसे प्रसंग करेगा वही तुम्हारा पति होगा ॥१४॥

व्यास ने कहा—पार्वती के वचनानुसार उसी तिथि का एक पुरुष ने स्वप्न में उषा से रमण किया और उषा को उसके साथ प्रेम भी हो गया । तब जागने पर उस पुरुष को न देखती हुई उषा (उसके लिए) उत्प्लिष्ट हो गई ॥१५॥

उषा बोली—द्विजगण । कहाँ गये हो यह बात उषा निर्लज्ज होकर अपनी सखी से पूछ बैठी । बाण के मन्त्री कुम्भाण्ड के चित्रलेखा नामक क्या थी । वह उषा की सखी होने के नाते बोली—रिखने बारे में तुम कह रही हो ? जब उषा ने लज्जा के मारे कुछ नहीं कहा तब चित्रलेखा उस विश्वास सिंगने के लिये सब वृत्तान्त निवेदन करने लगी । यह सब समझ गई । ऐसा जानकर उषा न उससे कहा—उसकी प्राप्ति के लिए गौरी ने जो उपाय बतलाया है वह करो ॥१६-१८॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चित्रलेखा ने चित्रगट पर देव राक्षस गन्धर्व और मुख्य मुख्य मनुष्यों को चित्रित कर दिखलाया । उषा ने गन्धर्व राक्षस तथा देवों को छोड़कर मनुष्यों के ऊपर दृष्टि दौड़ायी उनमें भी अन्धकार और वृष्टि का कालों के ऊपर छास तीर से दृष्टिपात किया । मुन्दर भी बाँकी उषा वृष्ण राम को देखकर

कृष्णरामो विलोक्याऽऽसीत्सुभ्रूलंज्जायतेक्षणा । प्रद्युम्नदर्शने व्रीडादृष्टिं निन्ये ततो द्विजा ॥२१॥
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं च ततो लज्जां ववापि निराकृता । सोऽयं सोऽयं ममेत्युक्ते तथा सा योगयामिनी ॥
ययौ द्वारवतीमू (मु)या समाश्वास्य ततः सखी ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वाणयुद्धे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०५॥

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

वाणयुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

वाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे ततश्चाऽहं त्रिलोचनम् ॥१॥

वाण उवाच

देव बाहुसहस्रेण निविण्णोऽहं विनाऽऽहवम । कच्चिन्मर्मपा बाहूनां साफल्यकरणो रण ॥
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजं ॥२॥

शकर उवाच

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा वाण भविष्यति । पिशिताशिजनानन्दं प्राप्स्यसि त्वं तदा रणम् ॥३॥

लाज्जित हो गई। द्विजवृन्द । उसने प्रद्युम्न ऊपर लज्जापूर्ण दृष्टि डाली। अनिरुद्ध का देखकर वह यम माग से चलने वाली उपा लज्जा दूर करके बोल उठी—यही है मेरा यही है। तब उपा को सात्वता देकर सखी द्वारा वा गयी ॥१९-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वाण-युद्ध प्रसंग में दो सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥२०५॥

अध्याय २०६

वाण के युद्ध का वर्णन

व्यास ने कहा—वाण भी शिव के सामने माथा टेक कर बहने लगा ॥१॥

वाण ने कहा—देव ! मैं हजार मुजाओं से युक्त होकर विना युद्ध के दुःखी हो रहा हूँ। यदि कोई ऐसा युद्ध हो जो मेरी बाँहों को भरिताय कर सके तो ठीक है अन्यथा विना युद्ध के भुजायें भारमात्र हैं ॥२॥

शकर ने कहा—वाण ! जब तुम्हारी मयूर-पताका मन्न होगी तब माताहारी जीवों को आनन्द देने वाला रण तुम्हें प्राप्त होगा ॥३॥

व्यास उवाच

ततः प्रणम्य मुदितः शमुमभ्यागतो गृहात् । भग्नं ध्वजमथाऽऽलोक्य हृष्टो हर्षं परं ययौ ॥४॥
 एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्यायलेन तम् । अनिरुद्धमथाऽऽनिन्ये चित्रलेखा यया सखी ॥५॥
 कन्यान्तःपुरमध्ये तं रममाणं सहोदया । विज्ञाय रक्षितो गत्वा दशशुद्धैर्त्यभूपते ॥६॥
 व्यादिष्टं किकराणां तु संन्यतेन महात्मना । जघान परिघं लौहमादाय परवीरहा ॥७॥
 हतेषु तेषु बाणोऽपि रयस्यस्तद्वधोद्यतः । युध्यमानो यथाशक्ति यदा धीरेण निजितः ॥८॥
 मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदितः । ततश्च पन्नगास्त्रेण बन्धं यदुनन्दनम् ॥९॥
 द्वारवत्या वयं यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम् । यदूनामाचक्षते तं बद्धं बाणेन नारदः ॥१०॥
 तं शोणितपुरे श्रुत्वा नीतं विद्याविदग्धया । योयिता प्रत्ययं जग्मुर्यादवा नाम वैरिति (णि) ॥११॥
 ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रां गतं हरिं । बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
 पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमातीन्महाबलैः । ययौ बाणपुराभ्याशं नीत्वा तान्मक्षयं हरिः ॥१३॥
 ततस्त्रिपादस्त्रिशिरां ज्वरो माहेश्वरो महान् । बाणरक्षार्थमत्यर्थं युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
 'तद्भस्मस्पर्शस्तभूततापः' कृष्णाङ्गसगमात् । 'अवाप बलदेवोऽपि' समं समीलितैक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शकर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकल और पताके को भग्न देखकर बड़ा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के धल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध की ले आई ॥५॥ बन्धा पुर में उपा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महात्मा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवकों को आज्ञा दे दी । पर धीरे शत्रुओं के ताशकूर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुद्गर लेकर सैनिकों को नष्ट कर दिया । सेनाओं को निहत्त हो जाने पर अनिरुद्ध का बंध करने के लिए उद्यत बाण भी खराब होकर शक्तिभर युद्ध करने लगा । पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया । तब भवसिद्ध बाण मर्या से युद्ध करने लगा और अतत सर्पस्त्र से यदुकुमार को बांध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले जाने पर) द्वारका में यादवगण बोलने लगे—अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) नारद ने (कहीं से आकर) बाण द्वारा बांधे गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या में निपुण स्त्री, अनिरुद्ध की शोणितपुर के गई यह सुनकर यादवों की विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गरुड पर चढ़कर कृष्ण बलमद् और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए तुरन्त प्रस्थित हो गये । नगर में प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणों के साथ उनका युद्ध छिड़ गया । हरि उनका नाश करने बाण-पुर के समीप पहुँचे । तब शकर का तीन पीर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अंग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव की भी महाज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया । उन्होंने आँखें मूढ़ ली । तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

ततः संयुध्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा । वैष्णवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहाग्निराकृतः ॥१६॥
 नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् । तं वीक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः ॥१७॥
 ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वैष्णवं ज्वरम् । आत्मन्येव लयं नित्ये भगवान्मधुसूदनः ॥१८॥
 मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः । विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ हरिः ॥१९॥
 ततोऽग्नोन्मगवान्पञ्च जित्वा नोत्वा क्षपं तथा । दानवातां बलं विष्णुश्चूर्णयामास लीलया ॥२०॥
 ततः समस्तसंन्येन दंतेयानां बलेः सुतः । युयुधे शंकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
 हरिशंकरयोर्वुद्धमतोवाऽऽसौत्सुवाक्षणम् । चुक्षुभुः सकला लोकाः शस्त्रास्त्रैर्बहुधाऽदितः ॥२२॥
 प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः । मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्तमाने महाहवे ॥२३॥
 जूम्भणास्त्रेण गोविन्दो जूम्भयामास शंकरम् । ततः प्रणेशुर्दंतेयाः प्रमथाश्च समन्ततः ॥२४॥
 जूम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थमुपाविशत् । न शशाक तदा थोद्धं कृष्णेनाकिल्ष्टकर्मणा ॥२५॥
 गण्डक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः । कृष्णहंकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः ॥२६॥
 जूम्भिते शंकरे नष्टे दैत्यसंन्ये गुहे जिते । नोते प्रमथसंन्ये च सक्षय शार्ङ्गधन्वना ॥२७॥
 नन्दीशसंगृहीताश्वमधिरुद्धा महारथम् । बाणस्तथाऽऽययौ थोद्धं कृष्णकार्ष्णिबलैः सह ॥२८॥
 बलभद्रो महावीर्यो बाणसंन्यमनेकधा । विव्याध बाणैः प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायतः ॥२९॥

हुए माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५-१६॥ हरि की भुजाओं के आघात से परिपीडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—‘क्षमा कर दीजिये’ । विष्णु ने कहा—‘क्षमा ही है ।’ तब भगवान् मधुसूदन ने वैष्णव ज्वर को अपने में लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा—‘जो मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करे, वे विज्वर हो जायेंगे ।’ इसका कहकर हरि आगे बढ़े ॥१७-१९॥ तब भगवान् ने पाँच अग्नि्यों को जीतकर दानवों की सेना को आसानी से धूर-धूर कर दिया । तब समस्त सैनिकों से युक्त बाण, शंकर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे । हरि और शिव ने बड़ा भयकर युद्ध छिड़ गया । अनेक बार अस्त्र शस्त्रों से पीडित सबल लोक वापने लगे । उस युद्ध की विद्यमानता ने देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब संपूर्ण जगत् में प्रलय मच जायगा । गोविन्द ने जूम्भणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे शंकर को जैमाई आने लगी । तब चारों ओर दैत्य और प्रमथगण नष्ट होने लगे ॥२०-२४॥ जैमाई से अभिभूत शिव, महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने में असमर्थ होकर रथ पर बैठ गये । गण्ड ने कार्तिकेय की बाहुओं को क्षत-विक्षत कर दिया । प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया । कृष्ण ने हुंकार से उसकी घन्ति नष्ट कर दी । फिर वह टिक नहीं सका । जब शंकर जूम्भास्त्र के वशीभूत हो गये, दानव सेनायें नष्ट हो गईं, कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमथ-सेना को भी कृष्ण क्षीण कर चुके तब सारथिक के रूप में शिव को लेकर रथारुढ़ बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा ॥ २५-२८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मत न मारने वाले प्रद्युम्न ने बाणों से बाण की सेना को कई बार आहत किया । बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुसल

ततः प्रणम्य मुदितः शम्भुमभ्यागतो गृहात् । भग्नध्वजमयाऽऽलोक्य हृष्टो हर्षपरयौ ॥४॥
 एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम् । अनिरुद्धमथाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी ॥५॥
 कन्यान्तपुरमध्ये तं रममाणं सहोपपरा । विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशसुदन्त्यभूपते ॥६॥
 व्यादिष्टं किंकराणां तु संन्यतेन महात्मना । जघान परिधौ लोहमादाय परवीरहा ॥७॥
 हृतेषु तेषु बाणोऽपि रयस्थस्तद्वयोद्यतः । युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीरेण निर्जितः ॥८॥
 मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदितः । ततश्च पद्मगात्रेण ध्वजं यदुनन्दनम् ॥९॥
 द्वारवत्या क्व यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम् । यद्वनामाचक्षते तं वद्धं बाणेन नारदः ॥१०॥
 तं शोणितपुरे श्रुत्वा नीतविद्याविदग्धया । योषिता प्रत्ययजन्मुर्यादवा नाम वैरिति (णि) ॥११॥
 ततो गुरुमासुहृद्यस्मृतमात्रां गतहरिः । बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
 पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धभासीन्महाबलैः । ययौ बाणपुराभ्याशनीत्या तान्सक्षयहरिः ॥१३॥
 ततस्त्रिपादस्त्रिशिरज्वरो महाेश्वरो महान् । बाणरक्षार्थमत्यर्थं युयुधे शार्ङ्गधन्वना ॥१४॥
 'तद्भस्मस्पर्शं भूतताप' कृष्णाङ्गसगमात् । 'अवाप बलदेवोऽपि' समं समोल्लेखेन ॥१५॥

व्यास ने कहा—तुपुरान्त शहर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकला और पताने का भग्न देखकर बड़ा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के बल से उतमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को ले आई ॥५॥ वन्या पुर में उपा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महात्मा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवकों को आज्ञा दे दी । पर वीर शत्रुओं के नाशकर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुदगर लेकर सैनिकों को नष्ट कर दिया । सेनाओं को निहृत हो जाने पर अनिरुद्ध का वध करने के लिए उद्यत बाण भी रथाखंड होकर शक्तिमत् युद्ध करने लगा । पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया । तब मन्त्रसिद्ध बाण माया से युद्ध करने लगा और अन्ततः सर्पास्त्र से यदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले जाने पर) द्वारका में यादवगण बोलने लगे—'अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) नारद ने (कहीं से आकर) बाण द्वारा बाध गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या में निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई यह सुनकर यादवों को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गुरु पर चढ़कर कृष्ण बलमग्न और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए तुरन्त प्रस्थित हो गये । नगर में प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणों के साथ उनका युद्ध छिड़ गया । हरि उनका नाश करके बाण-पुर के समीप पहुँचे । तब शहर का तीन पैर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव को भी महाज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया । उन्होंने आखें मूंद लीं । तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

तत सपुण्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा । ध्वंशनेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहान्निराकृत ॥१६॥
 नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् । त योक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देव पितामह ॥१७॥
 ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य त ध्वंशव ज्वरम् । आत्मन्येव लय निन्ये भगवान्मधुसूदन ॥१८॥
 मम त्वया सम युद्ध ये स्मरिष्यन्ति मानवा । विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैन ययौ हरि ॥१९॥
 ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षय तया । दानवानां बल विष्णुश्चूर्णयामास लोलया ॥२०॥
 तत समस्तसंन्येन दंतेयाना बले सुत । युयुधे शकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
 हरिशकर्पयोर्युद्धमतीवाऽऽसीत्सुदावणम् । चुक्षुभु सकला लोका शस्त्रास्त्रैर्बहुधाऽर्दिता ॥२२॥
 प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागत । मेनिरे त्रिदशा यत्र धर्तमाने महाहवे ॥२३॥
 जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शकरम् । तत प्रणेशुर्दंतेया प्रमथ्याश्च समन्तत ॥२४॥
 जृम्भाभिभूतश्च हरो रयोपस्थमुपाविशत । न शशाक तदा योद्धुः कृष्णेनाविलष्टकमणा ॥२५॥
 गण्डक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडित । कृष्णहृकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुह ॥२६॥
 जृम्भिते शकरे नष्टे दंत्यसंन्ये गुहे जिते । नीते प्रमथसंन्ये च सक्षय शार्ङ्गधन्वना ॥२७॥
 नवीशसगृहीताश्वमधिरुद्धा महारथम् । बाणस्तत्राऽययौ योद्धुः कृष्णकार्णिकबलं सह ॥२८॥
 बलभद्रो महावीर्यो बाणसंन्यमत्तेकथा । विव्याध बाणं प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलायत ॥२९॥

हुए माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५ १६॥ हरि की भुजाओं के आघात से परिपाडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा— समा कर दीजिये । विष्णु ने कहा— समा हा है । तब भगवान् मधुसूदन ने ध्वंशव ज्वर को अपने मे लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा— जा मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध वा स्मरण करोगे वे विज्वर हा जायेंगे । इतना कहकर हरि आगे बढ़े ॥१७ १९॥ तब भगवान ने पांच अग्नि्यों को जीतकर दानवों की सेना का आसना से धूर-धूर कर दिया । तब समस्त सैनिकों से युक्त बाण शक्कर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करणे लगे । हरि और शिव मे बड़ा मयकर युद्ध छिड़ गया । अनेक बार अस्त्र शस्त्रों से पाडित सबल लोक कापने लगे । उस युद्ध का विद्यमानता मे देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब सपूर्ण जगत मे प्रलय मच जायगा । गाधिद ने जृम्भणास्त्र वा प्रयोग किया जिससे शक्कर को जैमाई आने लगी । तब चारो आर दैत्य और प्रमथगण नष्ट हुने लगे ॥२० २४॥ जैमाई से अभिभूत शिव महापराकमी कृष्ण के साथ युद्ध करने मे असमर्थ होकर रथ पर बैठ गया । गण्ड ने कार्तिकेय की बाहुओं को क्षत विसत कर दिया । प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया । कृष्ण ने हुकार से उसका शक्ति नष्ट कर दा । फिर वह टिक नहीं सका । जब शकर जृम्भास्त्र के बर्षाभूत हो गये दानव सेनाय नष्ट हा गइ कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमथ-सेना को मा कृष्ण बाण कर चुके तब सारथी के रूप मे शिव को लेकर रथाण्ण बाण कृष्ण तथा उगकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा ॥२५ २८॥ महापराकमी बलभद्र तथा धमत न मागने वाले प्रद्युम्न ने बाणों से बाण की सेना को कई बार आहत किया । बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुशल

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेन च पोथितम् । बलं बलेन ददशे बाणो बाणैश्च चक्रिणः ॥३०॥
 ततः कृष्णस्य बाणेन युद्धमासीत्समासतः । परस्परं तु संदीप्तान्कायघ्राणविभेदिनः ॥३१॥
 कृष्णश्चिच्छेद बाणंस्तान्बाणेन प्रहिताञ्जरं । विभेद केशवं बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक् ॥३२॥
 मुमुचाते तथाऽस्त्राणि बाणकृष्णौ जिगीषया । परस्परक्षतिपरी परिघांश्च ततो द्विजा ॥३३॥
 छिद्यमानेष्वशेषेषु शस्त्रेष्वस्त्रे च सीदति । प्राचुर्येण हरिर्बाणं हन्तुं चक्रे ततो मनः ॥३४॥
 ततोऽर्कशतसंभूततेजसा सदृशद्युति । जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३५॥
 मुञ्चतो बाणनाशाय तच्चक्रं मधुविद्विषः । नम्ना दैतेयविद्याभूत्कोटरी पुरतो हरेः ॥३६॥
 तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा मीलितक्षः सुदर्शनम् । मुमोच बाणमुद्दिश्य छेतुं बाहुवनं रिपोः ॥३७॥
 क्रमेणास्य तु बाहूनां बाणस्याव्युत्तचोदितम् । छेदं चक्रेऽसुरस्याऽऽसु शस्त्रास्त्रक्षेपणाद्भुतम् ॥३८॥
 छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्यं मधुसूदनः । मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ॥३९॥
 स उत्पत्याऽऽह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः । विलोक्य बाणं दोदण्डच्छेदासुवस्त्राववर्षिणम् ॥४०॥

रद्र उवाच

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुरुषोत्तमम् । परेशं परमात्मानमनादिनिधनं परम् ॥४१॥
 देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका । लीलेय तव चेष्टा हि दैत्याना बधलक्षणा ॥४२॥
 तत्प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य मया प्रभो । तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं यच्च ॥४३॥

से और कृष्ण ने बाणों से शत्रु की सेना को तहस-नहस कर दिया । तब कृष्ण और बाण ने घोर युद्ध होने लगा । बाण के द्वारा प्रक्षिप्त कवचभेदी बाणों को कृष्ण अपने शरीर से काट देते थे । बाण केशव को वेष करता था और केशव बाण को । वे दोनों विजय की इच्छा से अस्त्रों को छोड़ते थे । तब परस्पर क्षति पहुँचाने में व्याकुल दोनों व्यक्ति मुसलो का प्रयोग करने लगे । समस्त अस्त्र-शस्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर हरि ने बाण को मार देने का विचार किया । अनन्तर दैत्य-समूह नाशन हरि ने सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र को उठा लिया । ॥२९-३५॥ बाण के नाश के लिये चक्र छोड़ते हुए मधुसूदन के आगे कोटरी नामक राक्षसी बिचा नग्न होकर खड़ी हो गई । उसे सामने देखकर हरि ने नेत्र को बंद कर लिया और शत्रु की मुजा रूपी बन को काटने के लिए बाण को उद्देश्य करके सुदर्शन छोड़ दिया । कृष्ण के छोड़े हुए चक्र ने क्रमशः बाण की सारी मुजाओं को शस्त्रास्त्र फेंकने से भी पहले द्रुत गति से काट डाला । बाहु समूह के विच्छिन्न हो जाने पर शर-श्रेष्ठ-जाता मधु-सूदन ने बाण-नाश के लिए छोड़े हुए चक्र को अपने हाथ में ले लिया । बाँहों के कट जाने से शोणित-वर्षा करते हुए बाण की देखकर महादेव गोविन्द के पास आकर प्रार्थना करने लगे ॥३६-४०॥

रद्र ने कहा—कृष्ण, कृष्ण ! जगन्नाथ ! मैं जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम, परमात्मा, ईश्वर तथा जन्म-मरण से रहित हैं । दैत्यो का बध करने के लिए देव, पक्षी तथा मनुष्य का शरीर जो आप धारण करते हैं, यह तो आपकी लीला है । प्रभो ! प्रसन्न होइये । मैंने बाण को अमयदान दिया है । मेरे वचन को मिथ्या मत कीजिए ।

अस्मत्सश्रयवृद्धोऽयं नापराधस्तवाव्ययः। मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्तं प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम्। प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मद्वत्तवरो बाणो जीवतादेयं शकर। त्वद्वाक्यगौरवादेतन्मया चक्रं निर्वर्तितम् ॥४६॥

त्वया यदभयं दत्तं तद्वत्तमभयं मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मानं ब्रह्ममर्हसि शकर ॥४७॥

योऽहं स त्वं जगन्नेदं सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मानं पुरुषां भिन्नदर्शिनं ॥४८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्या प्रययौ कृष्णं प्राद्युम्निर्मयं तिष्ठति। तद्वन्धफणिनो नेशुर्गुह्यानिलशोषिता ॥४९॥

ततोऽनिरुद्धमारोप्य सप्तलीकं गच्छति। आजग्मुर्द्वारिकां रामकाष्णिगामोदरा पुरीम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणपुत्रे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६॥

यह मेरे आश्रय में रहकर समृद्ध हुआ है। आपका कोई अपराध नहीं है। मैंने इस दैत्य को बरदान दिया था। इस लिए क्षमा कर रहा हूँ ॥४१-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर गोविन्द राक्षस के प्रति क्रोध त्याग कर प्रसन्नमुख हो शूल पाणि उमापति से कहने लगे ॥४५॥

श्री भगवान् ने कहा—शकर! आपने जब इसे बरदान दिया है तब यह जीवित रहे। आपके वचन की प्रतिष्ठा के कारण मैंने चक्र को निवृत्त कर लिया है। आपने जो अभय दान दिया वह (मानो) मैंने अभय दान दिया। आप मुझ अपने से अलग न समझें। शिव! जो मैं हूँ वही आप तथा देव राक्षस मनुष्य सहित वह संपूर्ण जगत है। अविद्या से मोहित चित्त वाले पुरुष भिन्नदर्शी होते हैं ॥४६-४८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कृष्ण वहाँ गये जहाँ अनिरुद्ध था। अनिरुद्ध को बाँधे हुए सर्पगण गरुड के वायु से शोषित होकर नष्ट हो गये। तदनंतर पत्नी सहित अनिरुद्ध को गरुड पर चढ़ाकर कृष्ण राम अपनी द्वारिकापुरी आ गये ॥४९-५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बाण-युद्ध प्रसंग में दो सौ छठा अध्याय समाप्त ॥२०६॥

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

पौण्ड्रकवधवर्णनम्

मुनय ऊचुः

चक्रे कर्ममहच्छोरीर्विभ्रद्यो मानुषीं तनुम् । जिगाय शक्र शर्वं च सर्वदेवांश्च लीलया ॥१॥
यच्चान्यदकरोत्कर्म 'दिव्यचेष्टाविधातकृत् । कथ्यतां तन्मुनिषेष्ठ पर कौतूहल हि न ॥२॥

व्यास उवाच

गदतो मे मुनिषेष्ठा धूयतामिदमादरात् । नरावतारे कृष्णेन दग्धा वाराणसी यथा ॥३॥
पौण्ड्रको वासुदेवदध वासुदेवोऽभवद्भुवि । अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनेरज्ञानमोहितं ॥४॥
स भेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महोत्तले । नष्टस्मृतिस्तत सर्वं विष्णुचिह्नमचोकरत् ॥
दूत च प्रेषयामास' स कृष्णाय' द्विजोत्तमा ॥५॥

दूत उवाच

त्पश्चा चक्रादिक चिह्नं मरीच नाम माऽऽत्मन । वासुदेवात्मकं भूढ मुक्त्वा सर्वमशेषत ॥६॥
आत्मनो जीवितार्थं च तथा मे प्रणतिं व्रज ॥७॥

अध्याय २०७

पौण्ड्रक-वध-वर्णनं

मुनियो ने कहा—कृष्ण ने मनुष्य-शरीर धारण कर महान् काय किया जा कि इन्द्र शिव तथा अखिल देवों को सहज ही में जीत लिया । मुनिषेष्ठ ! दिव्यचेष्टानाग्न कृष्ण ने और जा काय किया वह हमें बतलाइये हमें थका उत्कण्ठा है ॥१ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! आदरपूर्वक मुनिये मैं कहता हूँ । नरावतार मे कृष्ण ने काशीपुरी को जलाया । पौण्ड्रक और वासुदेव—दो कृष्ण पृथ्वी पर हो गये । अर्थात् अज्ञानमोहित व्यक्तियों ने पौण्ड्रक से कहा—तुम अवतारा पुरुष हो । उसने स्वयं भी अपने को समझा कि मैं वासुदेव हूँ पृथ्वी पर अवतार हूँ । द्विजश्रेष्ठ ! पश्चात् उसने सब कुछ मूलकर अपने शरीर में विष्णु के चिह्नों का धारण किया और कृष्ण के पास एक दूत भेजा ॥३ ५॥

दूत ने कहा—मूख ! तू मेरे चक्र आदि चिह्नों को तथा वासुदेव नाम को त्याग दे और यदि जीने की इच्छा है तो मुझ आकर प्रणाम कर ॥६ ७॥

व्यास उवाच

इत्युक्त स प्रहर्षय दूत प्राह जनार्दन

॥८॥

श्रीभगवानुवाच

निजचिह्नमह चक्र समुत्सदये त्वयोति वै । वाच्यश्च पौण्ड्रको गत्वा त्वया दूत यचो मम ॥९॥
ज्ञातस्त्वद्वाक्यसदभावो यत्कार्यं तद्विधीयता । गृहीतचिह्न एवाहमागमिष्यामि ते पुरम् ॥१०॥
उत्सदयामि च ते चक्र निजचिह्नमसशयम् । आनापूर्वं च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम् ॥११॥
सपादयिष्ये श्वस्तुन्य तदप्येषोऽविलम्बितम् । शरण ते समम्येत्य कर्ताऽस्मि नृपते तथा ॥
यया त्वतो भय भूयो नैव किंचिद्भविष्यति ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तेऽपगतं दूतं सस्मृत्याम्यागत हरि । गह्वरमन्त समाह्वय त्वरित तत्पुर ययौ ॥१३॥
तस्यापि केशवोद्योग ध्रुत्वा काशिराजस्तदा । सर्वसैन्यपरीवारपार्ष्णप्राहमुपाययौ ॥१४॥
ततो बलेन महता काशिराजबलेन च । पौण्ड्रको वासुदेवोऽसौ केशवाभिमुख ययौ ॥१५॥
त ददर्श हरिर्वूरादुदारस्यन्वने स्थितम् । चक्रशङ्खगदापाणि पाणिना विधृताम्बुजम् ॥१६॥
स्वधर धृतशङ्खं च सुपर्णरचनाम्बुजम् । वक्ष स्थलकृत, चास्य श्रीवत्स ददुशे हरि ॥१७॥
किरीटकुण्डलधर पीतवास समन्वितम् । दृष्ट्वा त भावगम्भीर जहास 'मधुसूदन' ॥१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर जनार्दन हँसकर दूत से कहने लगे ॥८॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत ! तुम जाकर पौण्ड्रक से कहना कि मैं उनके सामने अपने चिह्न-चक्र का परि-
त्याग कर दूंगा । उनके वाक्य का आशय मैं समझता हूँ । वे अपना काय करें । मैं चिह्न सहित उनके नगर में आऊँगा ।
यदि तुम्हारे कहने पर वे मुझ जाने के लिए आना देंगे तो निःसन्देह मैं अपने चिह्न चक्र को छाड़ दूंगा । उनका
कल्याण हो । मैं शीघ्र ही यह कार्य करूँगा । उनकी शरण में जाकर मैं सब कुछ कहूँगा जिससे फिर मुझ उनसे
कोई भय न रहे ॥९॥१२॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर दूत चला गया । हरि आगन्तुक का स्मरण कर तुरन्त गह्वर पर चढ़कर
पौण्ड्रक के नगर के लिए प्रस्थित हो गये । कृष्ण के प्रयत्न के बारे में मुनिकर काशीनरेश समस्त सैनिका से मुक्त होकर
शत्रु से सघर्ष करने के लिए चल पड़ा । तब अपनी बड़ी सेना तथा काशीपति की सेना के साथ वासुदेव रूपधारी
पौण्ड्रक भी केशव के सामने गया । हरि ने विशाल रथ पर स्थित मालाधारी धनुषधारी गरुडचिह्नित यताका से
मुक्त, वक्ष स्थल पर श्रीवत्सचिह्न से विभूषित मुकुट-कुण्डलधारी पीतवस्त्रसमन्वित तथा हाथों में शङ्ख,
चक्र, गदा वषा लिये पौण्ड्रक को दूर से ही देखा । भावगम्भीर पौण्ड्रक को देखकर मधुसूदन हँसने लगे । द्विजगण !

युधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विजाः। निर्विघ्नशष्टिगदाशूलशक्तिकार्मुकशालिना ॥१९॥
क्षणेन शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैरग्निविदारणैः। गदाचक्रातिपातैश्च सूदयामास तद्बलम् ॥२०॥
काशिराजबलं धैव क्षपं नीत्वा जनार्दनः। उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षणम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

पौण्ड्रकोवर्तं त्वया यत्तद्भूतवक्त्रेण मा प्रति। समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते संपादयाम्यहम् ॥२२॥
चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता। गह्वमानेय निदिष्टः समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३॥
इत्युवाच विमुक्तनेत्र चक्रेणासौ विदारितः। 'पोषितो गदया भग्नो गह्वमांश्च गह्वमता ॥२४॥
ततो हाहाकृते लोके 'काशीनामधिपस्तदा। युधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥२५॥
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्दिष्टत्वा तस्य शरैः शिरः। काशिपुर्यां स चिक्षेप कुर्वल्लोकस्य विमत्स्यम् ॥२६॥
हत्वा तु पौण्ड्रकं शौरिः काशिराज च सानुगम्। रेमे द्वारवतीं प्राप्तोऽमरः स्वर्गगतो यया ॥२७॥
तच्छिरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे। जनः किमेतदित्याह केनेत्यत्यन्तविस्मितः ॥२८॥
ज्ञात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः। पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शंकरम् ॥२९॥
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शंकरः। वरं धृणीवेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥३०॥
स वद्रे भगवन्कृत्या पितुर्हन्तुर्वंधाय मे। समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादान्महेश्वरः ॥३१॥

तलवार, गदा, शूल, शक्ति, घनुप तथा हाथी-धोदो से युक्त सैनिकों से कृष्ण युद्ध करने लगे। क्षण में ही जनार्दन ने अपने अग्निवर्षी बाणों से तथा गदा-चक्र से उसकी सेना को विनष्ट कर दिया। काशीपति की सेना का भी सहार करके कृष्ण ने निजचिह्न से युक्त मूर्ख पौण्ड्रक से कहा ॥१३-२१॥

श्रीभगवान् ने कहा—पौण्ड्रक ! तुमने दूत के मुख से जो मुझे चिह्न त्याग देने को बहलाया था, उस काम को मैं कर रहा हूँ। इस चक्र को मैंने छोड़ दिया। तुम्हारे लिए इस गदा को भी छोड़ दिया, यह गरुड तुम्हारी पताका धारण करे। इतना कहकर कृष्ण ने चक्र छोड़ दिया। चक्र ने पौण्ड्रक को पाद डाला, गदा ने उसे धूर-धूर कर डाला, गरुड ने उसकी ध्वजा का नाश कर दिया। तब लोगों ने हाहाकार मच गया। मित्र-क्षय होने पर काशीपति वासुदेव से युद्ध करने लगा। तब लोगों को आश्चर्यित करते हुए कृष्ण ने अपने बाणों से उसका शिर काट कर काशी-पुरी में फेंक दिया। वासुदेव काशिराज सहित पौण्ड्रक को मार कर द्वारका में उसी प्रकार रमण करने लगे, जैसे स्वर्ग में देवता। काशीपुरी में गिरे हुए उसके शिर को देखकर लोग 'यह क्या' कहकर अत्यन्त विस्मित हुए। 'वासुदेव ने मारा' यह जानकर काशीपति का पुत्र पुरोहित सहित शंकर को समुष्ट करने लगा। अविमुक्त नामक महाक्षेत्र में राज पुत्र से प्रसन्न होकर शंकर ने उससे वर मागने की कहा। उसने वर मागा—'महेश्वर ! आपकी कृपा से मेरे पिता के बचकर्ता कृष्ण को मारने के लिए कृत्या उत्पन्न हों ॥२२-३१॥

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम् । महाकृत्या समुत्तस्यो तस्यैवाग्निनिवेशनात् ॥३२॥
ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशफलापिका । कृष्ण कृष्णेति कुपिता कृत्वा द्वारवतीं ययौ ॥३३॥
तामवेश्य जन सर्वो रीडा विकृतलोचनाम् । ययौ शरण्यं जगता शरणं मधुसूदनम् ॥३४॥

जना ऊचुः

काशिराजसुतेनेयमाराध्य धूपमध्वजम् । उत्पादिता महाकृत्या वधाय तव चन्निनः ॥
जहि कृत्यामिमामुप्रां वह्निज्वालाजटाकुलाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

चक्रमुत्सृष्टमक्षेपु क्रीडासन्तेन लीलया । तदग्निमालाजटिलं ज्वालोद्गारातिभीषणम् ॥३६॥
कृत्यामनुजगामाऽशु विष्णुचक्रं सुदर्शनम् । ततः सा चन्निविध्वस्ता कृत्या माहेदवरो तदा ॥३७॥
जगाम वेगिनी वेगात्तदप्यनुजगाम ताम् । कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश त्वरान्विता ॥३८॥
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तमाः । ततः काशिवलं भूरि प्रमथानां तथा बलम् ॥३९॥
समस्तशस्त्रास्त्रयुत चक्रस्याभिमुखं ययौ । शस्त्रास्त्रमोक्षबहुलं दग्ध्वा तद्वलमोजसा ॥४०॥
कृत्वाऽक्षेमामशेषा ता पुरीं वाराणसीं ययौ । प्रभूतभूत्यपीरा ता साश्वमातङ्गमानवाम् ॥४१॥

व्यास ने कहा—शिवने कहा—‘ऐसा ही होगा ।’ पश्चात् अग्निबुण्ड से महाकृत्या उत्पन्न हुई, जिसने मूँह और केश ज्वालाओं से भयंकर हो रहे थे । वह क्रोध से कृष्ण-कृष्ण बोली हुई द्वारवा पहुँची । रुद्र की उस विकृत नेत्र वाली कृत्या को देखकर लोग अखिललोकेश्वर मधुसूदन की शरण में गये ॥३२-३४॥

लोगों ने कहा—काशिराज के पुत्र ने श्वर की आराधना करके आपने वध के निमित्त महाकृत्या को उत्पन्न कराया है । अग्निज्वाला से व्याप्त जटा वाली इस भीषण कृत्या को आप मारिये ॥३५॥

व्यास ने कहा—चूत-क्रीडा में आसक्त कृष्ण ने लीला करने के लिए अपना चक्र छोड़ दिया । अग्नि-पुञ्ज से व्याप्त तथा ज्वालाओं से अतिमथान्वित सुदर्शन चक्र शीघ्रता से कृत्या वा पीछा करने लगा । चक्र की चोट सागर शिव की कृत्या वेग से गमन करने लगी । चक्र ने नीचे वेग से उतरा अनुसरण किया । विष्णु चक्र ने उसकी पकित को नष्ट कर दिया । वह शीघ्रता से वाराणसी में प्रविष्ट हुई । मुनिवर ! तब काशीपति की सेना और प्रमथण समस्त शस्त्र-अस्त्रा से युक्त होकर चक्र के सामने आये । चक्र ने शस्त्र-अस्त्र छानने में व्यस्त साथी सेना को दग्ध कर संपूर्ण वाराणसी पुरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । प्रचुर सेवकों तथा पुरवासियों से युक्त-

अशेषदुर्गकोष्ठां ता वुनिरीक्ष्यां सुरैरपि । ज्वालापरिवृताशेषगृहप्राकारतोरणाम् ॥४२॥
 ददाह' ता पुरीं चक्र सकलामेव सत्वरम्' । अक्षीणामर्षमत्यत्पसाध्यसाधनरिस्पृहम्' ॥४३॥
 तच्चक्रं प्रस्फुरद्दीप्तिं विष्णोरभ्यापयो करम् ॥४४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पीण्डूकवासुदेववधे काशीदाहवर्णनं नाम
 सप्ताधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०७॥

अथाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे भूयो बलभद्रस्य धीमत । मुने पराक्रम शौर्यं तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
 यमुनाकपेणादोनि श्रुतान्यस्माभिरद्वयं । तत्कथ्यता महाभाग यदन्यत्कृतवान्बल ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनय कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम् । अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीभूता ॥३॥
 दुर्योधनस्य तनया स्वयवरकृतेक्षणात् । बलादादत्तवान्वीर साम्बो जाम्बवतीसुत ॥४॥

परकोटे तथा तोरणा से युक्त उस समय पुरी के शास्त्र ही चक्र ने जला दिया । अनन्तर साधनो से नि स्पृह अक्षीण
 कोच वाला वह कात्तिमान् चक्र विष्णु के हाथ में आ गया ॥३६ ४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरितोपक्रम में पीण्डूक वासुदेव के वध प्रसंग में काशीदाह-वर्णन
 नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥२०७॥

अध्याय २०८

बलदेव का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—मुने । पुन हम धीमान बलभद्र की वीरता तथा पराक्रम के बारे में सुनना चाहते हैं
 आप वर्णन करें ॥१ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवृन्द । अनन्त अप्रमेय शेष तथा धरणीधर राम ने जा किया वह आप मुनिये ।
 जाम्बवतापुत्र वीर साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयवर में बलात् पकड़ लिया । तब क्रुद्ध बलशाली कर्ण दुर्योधन

१ ग ० ह तद्वरेचक्र । २ ख ० म् । सुक्षीणस्तारा कृत्वेमा सा ० । ३ ख ० नकारकम् ।

ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः। भीष्मद्रोणादयश्चैव बन्धुर्युध निर्गतम् ॥५॥
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे क्रोधं दुर्योधनादिषु। मुनयः प्रतिचक्षुश्च तान्विहन्तुं महोद्यमम् ॥६॥
तान्निवार्य बलः प्राह मदलोककुलाक्षरम्। मोक्षयन्ति ते मद्वचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान् ॥७॥
बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाहवयम्। बाह्योपवनमध्येऽभूत् विवेश च तत्पुरम् ॥८॥
बलमागतमाजाय तदा दुर्योधनादयः। गामर्धमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ॥९॥

बलदेव उवाच

आज्ञापयत्युग्रसेनः साम्बमाशु विमुञ्चत

॥१०॥

व्यास उवाच

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो द्विजाः। कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्रुधुर्द्विजसत्तमाः ॥११॥
ऊवुश्च कुपिताः सर्वे बाह्लिकाद्याश्च भूमिपाः। अराजाहं यदोर्वंशमवेक्ष्य मृशलायुधम् ॥१२॥
कौरवा ऊचुः

भो भोः किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः। आज्ञां कुरुकुलोत्थाना यादवः कः प्रदास्यति ॥१३॥
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञा कौरवानां प्रदास्यति। तदलं पाण्डुरंश्छत्रं नृपयोग्यं रलंकृतं ॥१४॥
तद्गच्छ बलभद्र त्वं साम्बमन्यायचेष्टितम्। विमोक्षयामो न भवतो मोघसेनस्य शासनात् ॥१५॥

भीष्म, द्रोण आदि ने युद्ध में पराजित साम्ब को बांध दिया। मुनिगण। यह सुनकर यादवा को दुर्योधन आदि के ऊपर क्रोध हुआ। वे उनको मारने के लिए तैयारी करने लगे। पर बलभद्र ने उन्हें रोक कर अविमानपूर्ण वाक्य कहा—'मिरे कहने से वे लोप छोड़ देंगे। मैं अकेला ही कौरवों के पास जाऊँगा।' तत्पश्चात् बलदेव हस्तिनापुर पहुँच कर नगर के उपवन में ही ठहरे, पुरी में प्रविष्ट नहीं हुए। बलराम के आगमन को जानकर दुर्योधन प्रमृष्टि से राम को अर्घ्य—अल-माद समर्पित किये। राम ने विधिपूर्वक सब कुछ ग्रहण कर कौरवों से कहा ॥३-९॥

बलदेव बोले—उग्रसेन की आज्ञा है कि तुम लोग शीघ्र साम्ब को छोड़ दो ॥१०॥

व्यास ने कहा—द्विजगण। राम के वचन की सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि क्रुद्ध हो गये। बाह्लिक आदि क्षमस्त नृपगण 'यदुवश राजवश' नहीं हैं। यह सोचकर बलदेव की ओर लक्ष्य करने बोले ॥११-१२॥

कौरवों ने कहा—बलभद्र जी। यह आपने क्या कह दिया। कौरवों की आज्ञा देने वाला यादव कौन होता है? यदि उग्रसेन भी कौरवों की आज्ञा दे तो नृपयोग्य अलंकृत श्वेतच्छत्र धारण करने से क्या लाभ? बलभद्र। इसलिये आप चले जायें। न आपके कहने से न उग्रसेन की आज्ञा से हम इस अन्यायी साम्ब को छोड़ेंगे।

प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकः। न नाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः॥१६॥
 गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनैः। को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीणात्यनपेक्षिता॥१७॥
 अस्माभिरर्च्यो भवता योऽयं बल निवेदितः। प्रेम्णैव न तदस्माकं कुलाद्युपमत्तुलोचितम्॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कुरवः सर्वे नामुञ्चन्त हरेः सुतम्। कृतंकनिश्चया सर्वे विविशुर्गजसाह्वयम्॥१९॥
 मत्तः कोपेन चाऽऽपूर्णं ततोऽधिपेजज्मना। उत्थाय पाण्ण्यां वसुधां जघान स हलायुधः॥२०॥
 ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघातात्महात्मनः। आस्कोटयामास तदा दिशः शब्देन पूरयन्
 उवाच चातिताम्राक्षो भ्रुकुटोऽकुटिलाननः॥२१॥

बलदेव उवाच

अहो महाबलेपोऽयमसारणां दुरात्मनाम्। कौरवाणामाधिपत्यमस्माकं किल कालजम्॥२२॥
 उपसेनस्य ये नाऽज्ञां मन्यन्ते चाप्यलङ्घनाम्। आज्ञा प्रतीच्छेद्धर्मण सह देवैः शचीपति॥२३॥
 सदाऽध्यास्ते सुधर्मा तामुग्रसेनः शचीपते। विद्धमनुष्यशतोच्छिष्टे तुष्टिरेया नृपासने॥२४॥
 पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वेनितान्। बिभर्ति यस्य भृत्याना सोऽप्येया न महोपति॥२५॥
 समस्तभूभुजां नाथ उपसेनः स तिष्ठतु। अद्य निष्कौरवामुर्वीं कृत्वा यास्यामि तापुरीम्॥२६॥
 कर्णं दुर्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सबाह्विकम्। दुःशासनादोन्मूरं च भूरिध्रुवसमेघ च॥२७॥
 सौमदत्तं शलं भीममर्जुनं समुधिष्ठिरम्। धर्मजी कौरवाश्चान्यान्हन्त्या साध्वरथद्विपान्॥२८॥

जिन कुकुर-अन्धक पक्ष वालो ने हमे प्रणाम किया, वे हमे आज्ञा दें। सेवक स्वामी पर शासन करे। हमने आप लोगों को समान आसन-भोजन देकर अमिमानी बना दिया। आपका दोष ही क्या है? यह तो नीति है। बल! हम जो आपकी पूजा करते हैं, वह केवल प्रेम के कारण। हमारे कुल का यह धम नहीं है कि हम आपके कुल की प्रतिष्ठा करें॥१३-१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कौरवों ने साम्ब को नहीं छोड़ा। सब एक निश्चय करके हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए। आक्षेपजन्य क्रोध से मत्त होकर बलदेव ने उठकर ऐंडी से पृथ्वी पर ठोकर मारी। महात्मा की ऐंडी के प्रहार से विदारित पृथ्वी दिशाओं को शब्द-पूर्ण करती हुई फटने लगी। आँखें लाल कर तथा मुँह-मौँह को कुटिल कर (अर्थात् त्योरी चढाकर) बलदेव बोले॥१९-२१॥

बलदेव ने कहा—अहो! तुच्छ दुरात्माओं को महान् गर्व हो गया है। हमारे ऊपर कौरवों का आधिपत्य हो गया है। उपसेन की अलप्यनीय आज्ञा को कौरव नहीं मानेंगे। देवदण सहित इन्द्र धर्मपूर्वक उपसेन की आज्ञा चाहते हैं। उपसेन इन्द्र की देवसभा के अध्यक्ष हैं। सैकड़ों मनुष्यों के उच्छिष्ट राजसिंहासन से सतीत करने वाले इन (कौरवों) को धिक्कार है। जिन (उपसेन) के वासों की स्त्रियाँ नल्पवृक्ष के पुष्पों तथा मज्जरियाँ नारण करती हैं, वे इनके शासक नहीं हैं? उपसेन समस्त राजाओं के अधिपति हो। आज ही मैं पृथ्वी को कौरव विहीन करके उस पुरी में जाऊँगा। आज ही हाथी, घोड़े तथा रथ सहित कर्ण, दुर्योधन, द्रोण,

वीरमादाय त साम्ब सपत्नीक ततः पुरीम् । द्वारकामुप्रसेनादीनात्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥२९॥
अथवा कौरवादीना समस्त कुरुभि सह । भारवत्तरणे शीघ्र देवराजेन चोदित ॥३०॥
भागोरथ्या क्षियाभ्याशु नगर नागसाह्वयम् ॥३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा 'क्रोधरक्ताक्षस्तालाङ्गोऽधोमुख हलम्' । प्राकारवप्रे' विन्यस्य चकषं मुशलायुध ॥३२॥
आधूणित तत्सहसा ततो च हस्तिनापुरम् । वृष्ट्वा सक्षुब्धहृदयाश्चुकुशु सर्वकौरवा ॥३३॥

कौरवा ऊचु

राम राम महाबाहो क्षम्यता क्षम्यतास्वया । उपसह्रियता कोपः प्रसीद मुशलायुध ॥३४॥
एष साम्ब सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल । अविज्ञातप्रभावाणा क्षम्यतामपराधिनाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

ततो निर्यातिवामासु साम्ब पत्न्या समवित्तम् । निष्क्रम्य स्वपुरीं तूर्णं कौरवा मुनिसत्तमा ॥३६॥
भीष्मद्रोणकृपादीना प्रणम्य वदता प्रियम् । क्षान्तमेव मयेत्याह बलो बलवता वर ॥३७॥
अद्याप्याधूणिताकार लक्ष्यते तत्पुर द्विजा । एष प्रभावो रामस्य बलशौर्यवतो द्विजा ॥३८॥

भीष्म बाह्यिक दुःशासन भूरि भूरिश्रवा सोमदत्त शल भीम अजुन युधिष्ठिर नकुल सहदेव तथा अय कौरवो
को मैं मार दूंगा । फिर पत्नी सहित वीर साम्ब को लेकर द्वारका जाऊंगा और भाई-बन्धुओं से मिलूंगा । अथवा
इन्द्र की प्रणया से पृथ्वी का सार उतारने के लिये समस्त कौरवों सहित हस्तिनापुर को गया मे डुबो दूंगा ॥२९ ३१॥

व्यास ने कहा—वदता कहकर क्रोध से आग लाल किये मुशलधारी बलदेव ने हल को अधोमुख करके प्राचीर
और स्तूप का विन्यास करके हल को खींचा । जिससे सम्पूर्ण हस्तिनापुर एकाएक धूमने लगा । यह देखकर समस्त
कौरव व्याधितहृदय होकर चिल्लाने लगे ॥३२ ३३॥

कौरवों ने कहा—यहाबाहो ! राम ! राम ! क्षमा कीजिये क्षमा कीजिये । मुशलायुध ! कृपा कीजिये
क्रोध को हटाइये । बल ! पत्नी सहित साम्ब प्रस्थान कर चुके । हमने आपके प्रभाव को नहीं जाना । हम अपराधियों
को क्षमा कीजिये ॥३४ ३५॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! कौरवों ने शीघ्रतापूर्वक अपनी नगरी से निकल कर पत्नी सहित साम्ब को
विदा किया । बलवानों मे थण्ड बलदेव ने भीष्म द्रोण कृप आदि को प्रणाम करके कहा—क्षमा ही है ।
द्विजगण ! आज भी हस्तिनापुर धूमा हुआ सा प्रतीत होता है । बल-वीरताशाली बलराम का यह प्रभाव

ततस्तु कौरवा साम्य सपूज्य हलिना सह। प्रेपयामासुद्धाहपनभार्यासमन्वितम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राज्ञे श्रीकृष्णचरिते बलदेवमाहात्म्यनिरूपण
नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०८॥

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्विविदवानरवधवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनय सर्वे बलस्य बलशालिन। कृत यदन्यदेवाभूतदपि भूयता द्विजा ॥१॥
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवयसविरोधिन। सखाऽभयन्महावीर्यो द्विविदो नाम वानरः ॥२॥
वैरानुबन्ध बलवान्स चकार सुरान्प्रति ॥३॥

द्विविद उवाच

नरक हतश्राकृष्णो वरुणसमवितम्। करिष्ये सर्वदेवाना तस्मादेय प्रतिक्रियाम ॥४॥

है। तदुपरान्त कौरवों ने बलराम सहित साम्य की पूजा कर दान-दहेज देकर भार्या सहित साम्य को बिदा किया ॥३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरित्र प्रसंग में बलदेव-माहात्म्य निरूपण
नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥२०८॥

अध्याय २०९

द्विविद नामक वानर का वध-वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिबूढ़। शक्तिशाली बलदेव ने और मैं जो वाय किये वे भी आप लोग सुन लीजिये।
देवताओं के विरोधी राक्षसराज नरक का मित्र द्विविद नामक बन्दर था। बल देविविद अपने मित्र के कारण
देवताओं से वैर करने लगा ॥१॥

द्विविद बोला—कृष्ण ने बल तथा रज से युक्त नरक को मार दिया है। इसलिए मैं समस्त देवों से
इसका बदला लूंगा ॥४॥

व्यास उवाच

पञ्चविधस्य कुर्वन्मर्त्यलोकक्षयं तथा । ततो विध्वंसयामास यज्ञानजानमोहित ॥५॥
विभेदं साधुमर्यादा क्षयं चक्रे च देहिनाम् । ददाहं चपलो देशं पुरप्रामात्यन्तराणि च ॥६॥
वचिचच्च पर्वतक्षेपाद्रामादीन्समचूर्णयत् । शैलानुत्पाट्य तोयेषु मुमोचाम्बुनिधौ तथा ॥७॥
पुनश्चाण्डवमध्यस्थ्य क्षोभयामास सागरम् । तेनातिसोभितश्चाब्धिच्छेलो जायते द्विजा ॥८॥
पञ्चावपत्न्योरजान्प्रामान्पुरादीन्तिविवेकवान् । कामरूपं महारूपं कृत्वा सस्यान्यनेकश ॥९॥
लुठन्ममणसमर्द्धं सचूर्णयति वानर । तेन विप्रकृतं सर्वं जगदेतद्दुःखरात्मना ॥१०॥
निस्त्राव्याप्रवपटकारं द्विजाश्चाऽऽसीत्सुदुःखितम् । कदाचिद्वैभवतोद्याने पयो पानं हलायुध ॥११॥
रेवती च महाभागा तयैवान्या वरस्त्रिय । उदगोपमानो विलसत्ललनामौलिमध्यग ॥१२॥
रमे यदुवरश्रेष्ठ कुबेर इव मन्दरे । ततः स वानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा तीरिणो हलम् ॥१३॥
मुशलं च चक्रास्य समुखं स विडम्बनाम् । तयैव योयिता तासां जहासाभिमुखं कपि ॥१४॥
पानपूर्णांश्च करकांश्चिक्षेपाऽऽहृत्य वै तदा । ततः कोपपरोतात्मा भर्त्सयामास तं बलम् ॥१५॥
तथापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलाध्वनिम् । ततः समुत्थाय बलो जगृहे मुशलं हवा ॥१६॥
सोऽपि शैलजिज्ञा भोना जग्राह प्लवगोत्तम । चिक्षेप च स तां क्षिप्ता मुशलेन सहस्रधा ॥१७॥

व्यास ने कहा—अज्ञानमोहित द्विविदयज्ञो वा विध्वंस तथा लोगो का नाश करने लगा । वह साधु-मर्यादा का भग्न करता प्राणियों का विनाश करता गाँवों तथा देशों को जला डालता वही पहाड़ों को फेंककर प्राम आदि को बुर-बुर कर देता पहाड़ों को उखाड़ कर जल में तथा समुद्र में फेंक देता और पुनः सागर के बीच में पर्वतकर समुद्र को सलुब्ध कर डालता था । द्विजगण ! उससे अति क्षुब्ध समुद्र चंचल हो उठता और अत्यन्त वेग से तट पर के गाँवों तथा नगरों को बहा डालता । वह बदर भनमाना रूप तथा विशालकाय धारण करके सस्यो पर लोट जाता और भ्रमण-समर्द्धन से उन्हें कुचल डालता । उस दुष्ट ने सम्पूर्ण ससार में उपद्रव मचा रखा ॥५॥ १०॥ ब्राह्मण लोग स्वर्ण्य य तथा यज्ञ आदि से वधित होकर बड़े दुखी हो गए । किसी समय रेवत के उद्यान में बलराम (सुरा) पान कर रहे थे । महामाया रेवती तथा दूसरी स्त्रियाँ भी थीं । ललनाओं के बीच में यदुवर बलदेव गाने-बजाने के साथ उसी तरह विलास कर रहे थे जैसे मन्दराबल पर कुबेर । तब वह बदर समीप आकर बलदेव के हल और मुशल लेकर उनके सामने ही खेल बूद करने लगा । वह स्त्रियों के सामने हँसता और पान-पानों को ककडों से भर देता । फिर अत्यन्त क्रोध से उसने बलराम की भर्त्सना की और उनकी अवहेलना करते हुए किलकिला शब्द किया । तदनन्तर बलदेव ने क्रोध से उठकर मुशल ग्रहण किया ॥११॥ १६॥ उस श्रेष्ठ बदर ने भी भयकर पर्वत-गिला को उठाने काँटा । यादव-श्रेष्ठ बल ने मुशल से उसने हजार टुकड़े कर दिये । शिला छिन्न मित्र होकर

१क व पुरोहेश । २क तदा । ३क ०जान्युसानरा० । ४क ०म् । एकदा रेव० ।
५क ०यान ययो व देहला० । ६ मन्दिरे ।

बिभेद यादवश्रेष्ठ सा पपात महीतले । अपतन्मुशलं चासौ समुल्लङ्घ्य प्लवंगमः ॥१८॥
 वेगेनाऽऽयम्य रोपेण बलेनोरस्यताडयत् । ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः ॥१९॥
 पपात रुधिराद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः । पतता तच्छरीरेण गिरिः शृङ्गमशीर्यत ॥२०॥
 मुनयः क्षतघा वञ्चवज्रेणेव हि ताडितम् । पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः ॥२१॥
 प्रशशंसुस्तवाऽभ्येत्य साध्येतते महत्कृतम् । अनेन दुष्टकपिना दैत्यपक्षोपकारिणा ॥
 जगन्निराकृतं वीर दिष्टघा स क्षयमागतः ॥२२॥

व्यास उवाच

एवंविधान्यनेकानि बलदेवस्य धीमतः । कर्माण्यपरिमेयानि शेषस्य धरणीभूतः ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बलदेवमाहात्म्ये द्विविदयानरवधवर्णनं नाम
 नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०९॥

पूर्वा पर गिर पड़ी और मुगल भी गिर गया। बन्दर ने वेग में छलांग मार कर जोर से बलराम की छाती पर मारा। तब बल ने कोप से मुट्ठी बाँधकर बन्दर के गिर पर मारा। द्विविद लिप्राण होकर रुधिर बमर बरते हुए गिर पड़ा। मुनिवृन्द! गिरते हुए उठते शरीर में पर्वत का गितार उसी तरह सँभल राखों मैं परिणत हुआ गया जैसे इन्द्र के बध से आहुत जाने पर हुआ था। तब देवनाभा ने बलराम के ऊपर पुष्प-शृष्टि की और सभी देव आचर (इस प्रकार) प्रशंसा की—'यह आपने महान् कार्य किया, बहुत ही अच्छा किया। वीर! देव! ब! आचर बरते वाले इस दुष्ट बन्दर न मगर का अतिष्ठ किया था। भाग्य में, यह गष्ट हो गया है ॥१७-२२॥

व्यास ने कहा—भीमान्, धरणीपर तथा देशावतार बन्दर के लिये अनेक कार्य हैं, जो अनुपात में बरे हैं ॥२३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बलदेव-माहात्म्य-वचन प्रमाण में द्विविद-आचर-वध-वर्णन नाम
 का छठे सर्ग अध्याय समाप्त ॥२०९॥

२. अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भूमिभारावतरणकथनम्

व्यास उवाच

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान् । चक्रे दृष्टक्षितीशानां तथैव जगतः कृते ॥१॥
क्षितेश्च भारं 'भगवान्फाल्गुनेन समं विभुः । अवतारयामास हरिः समस्ताक्षीहिणीवधात् ॥२॥
कृत्वा भारावतरणं भुवो हत्वाऽखिलान्नृपान् । शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ॥३॥
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मभूः । स्वांशो विष्णुभयं स्थानं प्रविवेश पुनर्निजम् ॥४॥

मुनय ऊचुः

स विप्रशापव्याजेन संजह्ने स्वकुलं फयम् । कथं च मानुषं देहमुत्ससर्ज जनार्दनः ॥५॥

व्यास उवाच

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः । पिण्डारको महातीर्थे दृष्टा यदुकुमारकः ॥६॥
ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिताः^१ । साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा^२ स्त्रियं यथा ॥
प्रसृतास्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरः सरम् ॥७॥

अध्याय २१०

पृथ्वी के भार उतारने का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार बलदेव की सहायता से कृष्ण ने ससार के लिए दुष्ट राजाओं का वध किया ।
वर्जुन के साथ सर्वशक्तिमान् हरि ने समस्त अक्षीहिणी सेनाओं का वध करके पृथ्वी का भार उतारा । अखिल
राजाओं को मारकर पृथ्वी का भार उतार कर भगवान् ने ब्राह्मणों के शाप के बहाने कुल का सहार किया । द्वारका
को छोड़कर मनुष्य-शरीर त्याग कर कृष्ण अपने अश्व से पुनः अपने विष्णुभयं स्थान पर चले गये ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—जनार्दन ने विप्र-शाप के व्याज से कैसे अपने कुल का सहार किया ? कैसे उन्होंने
मनुष्य-शरीर को त्यागा ? ॥५॥

व्यास ने कहा—पिण्डारक नामक महातीर्थ में यदुवर्षी कुमारों ने विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद
को देखा । तदनन्तर यौवन से उन्मत्त तथा भावी घटना से प्रेरित कुमारों ने जाम्बवती-पुत्र साम्ब को सर्वोर्ध्व की
तरह धज-धज कर मुनियों को प्रणाम करके कहा ॥६-७॥

कुमारा ऊचु

इय स्त्री पुनकामा तु प्रभो किं जनयिष्यति

॥८॥

व्यास उवाच

दिव्यज्ञानोपपन्नास्त विप्रलब्धा कुमारकं । शापदुस्तदा विप्रास्तथा नाशाय सुव्रता ॥९॥
 मुनयः कुपिता प्रोचुर्मुशलं जनयिष्यति । यनाखिलकुलोत्सादो यादवाना भविष्यति ॥१०॥
 इत्युक्तास्तः कुमारस्त आचक्षुषयातथम् । उपसनाय मुशलं जज्ञ साम्बस्य चोदरात् ॥११॥
 तदुपसनां मुशलमयश्चूणमकारयत् । जज्ञ तच्चरका, चूर्णं प्रक्षिप्तं च महोदधौ ॥१२॥
 मुसलस्याय लोहस्य चूर्णितस्याधकद्विजा । खण्डं चूणयितुं शकुनवत् ततोमराकृति ॥१३॥
 तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः । घातितस्योदरात्तस्य लुब्धो जग्राह तज्जरा ॥१४॥
 विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवामधुसूदन । नैच्छत्तदयथा कर्तुं विधिना यत्समाहृतम् ॥१५॥
 देवंश्च प्रहितो द्रुतं प्रणिपत्याऽऽह कशयम् । रहस्यमहं द्रुतं प्रहितो भगवत्सुर ॥१६॥
 वस्वस्विवमरुदादियरुद्रसाध्यादिभिः सह । विज्ञापयति च शनस्तदिदं श्रूयतां प्रभो ॥१७॥

देवा ऊचु

भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम् । भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदश सप्रसादितः ॥१८॥
 दुर्वृत्ता निहता दत्त्वा भुवो भारोऽवतारितः । त्वया सनाथास्त्रिदश व्रजतु त्रिदिवशताम् ॥१९॥

कुमार बोल—यह स्वा पुत्रामिलापिना है। बतलाइय यह क्या जनमा ? ॥८॥

व्यास ने कहा—कुमारो ने दिव्यज्ञानी मुनियो से छल किया। अतः सुव्रती विप्रों ने उनके नाश के लिए शाप दे दिया। क्रुद्ध मुनियो ने कहा—यह मुगल पदा करेगी जिससे यादवों का संपूर्ण वंश नष्ट हो जायगा। तदुपरात् कुमार ने उपसेन से वह घटना निवेदन की। साम्ब के पेट से मुगल उत्पन्न हुआ। उपसेन ने उस लोह मय मुगल का चूर बर करवा दिया। समुद्र में फका जाने पर वह चूर्ण एरका (तृण विनोय) होकर उत्पन्न हुआ। द्विजगण । उस चूर्णित मुगल के तोमर (रायवांग) के रत्नान एण्ड को अर्घ्य वाग वाले चूर चूर नहीं बर सब। समुद्र में फका जाने पर एक मछला ने उसे खा लिया। मल्लाहा द्वारा मारी गई उस मछला का पेट से मुगल-चूर्ण निकला जिस पर जरा नामक व्यास ने ले लिया। वस्तुस्थिति का जानते हुए माधवसूदन ने विधि विधान का अन्वया करना कहा चाहा। देवताओं का भेजा हुआ द्रुत एतन्त में वाग को प्रणाम करने बोला—महान् । मैं देवा का भेजा हुआ द्रुत हूँ। प्रभो! वसु अश्विनीकुमार मरुत् आदिय साम्य आदि देवगण सहित इन्द्र ने आपसे जो निवेदन किया है वह आप सुन ॥९१७॥

देवताओं ने कहा—पृथ्वी का भार उतारने के लिये देवताओं से स्तुत होकर आपने भूलोक में अवतार लिया। तो यहाँ से अधिवृत्त हुआ गया। दुर्गचारी दैत्य गण मार गये। पृथ्वी का भार भी आपने उतार दिया। आपने

१५ ० वामस्थ वक्त्राणि । २१ ० लोच्छेदो । ३३ ० मि । ३५ ० पितृत्वात् । ३६ ० पि । ३७ ० पि । ३८ ० पि । ३९ ० पि । ४० ० पि । ४१ ० पि । ४२ ० पि । ४३ ० पि । ४४ ० पि । ४५ ० पि । ४६ ० पि । ४७ ० पि । ४८ ० पि । ४९ ० पि । ५० ० पि । ५१ ० पि । ५२ ० पि । ५३ ० पि । ५४ ० पि । ५५ ० पि । ५६ ० पि । ५७ ० पि । ५८ ० पि । ५९ ० पि । ६० ० पि । ६१ ० पि । ६२ ० पि । ६३ ० पि । ६४ ० पि । ६५ ० पि । ६६ ० पि । ६७ ० पि । ६८ ० पि । ६९ ० पि । ७० ० पि । ७१ ० पि । ७२ ० पि । ७३ ० पि । ७४ ० पि । ७५ ० पि । ७६ ० पि । ७७ ० पि । ७८ ० पि । ७९ ० पि । ८० ० पि । ८१ ० पि । ८२ ० पि । ८३ ० पि । ८४ ० पि । ८५ ० पि । ८६ ० पि । ८७ ० पि । ८८ ० पि । ८९ ० पि । ९० ० पि । ९१ ० पि । ९२ ० पि । ९३ ० पि । ९४ ० पि । ९५ ० पि । ९६ ० पि । ९७ ० पि । ९८ ० पि । ९९ ० पि । १०० ० पि ।

तदतीत जगन्नाय घर्षाणामधिक शतम् । इदानीं गम्यता स्वर्गो भवते यदि रोचते ॥२०॥
देवैर्विनाशितो देवोऽप्यथाश्रव रतिस्तव । तत्स्थीयता यथाकालमाख्येयमनुजीविभि ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

यत्स्वमात्पाखिल दूत वेदमि चैतदह पुन । प्रारब्ध एव हि मया यादवानामपि क्षय ॥२२॥
भुवो 'नामातिभारोऽय 'यादवैरनिर्वाहिते' । अवतार करोम्यस्य सप्तरात्रेण सत्वर ॥२३॥
यथागृहीत चाम्भोर्धो हृत्वाऽह द्वारकां पुन । यादवानुपसहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४॥
मनुष्यदेहमुत्सृज्य सकृपणसहायवान् । प्राप्त एवास्मि भन्तव्यो देवेन्द्रेण तया सुरै ॥२५॥
जरासपादयो येऽप्ये निहता भारहेतव । क्षितेस्तेभ्य 'सृभारो हि 'यद्वना' समधीयत ॥२६॥
तदेतत्सुमहाभारमवतार्य क्षितेरहम् । यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय श्वधीहि तान् ॥२७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन देवदूत प्रणम्य तम् । द्विजा स दिव्यया गत्या देवराजान्तिक ययौ ॥२८॥
भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यान्भौमान्तरिक्षगान् । ददर्श द्वारकापुर्या विनाशाय दिवानिदम् ॥२९॥
तादृष्ट्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान् । महोत्पातान्दशमार्येषा प्रभास याम माचिरम ॥३०॥

साधन्याय देवता लोग स्वर्ग पधारें । जगन्नाय । सौ वर्षों से अधिक हो चुका है । अब यदि आपकी इच्छा हो तो स्वर्ग को प्रस्थान करें । देवताओं का निवेदन सुनकर यदि श्रीमान् को अच्छा लगता हो तो अपने अनुचरों समेत यथाकाल यहीं रहें । इतना ही हमें कहना है ॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत ! जो तुमने कहा है वह सब मुझे मालूम है । मैंने यादवों का क्षय करना भी आरम्भ कर दिया है । असंख्य यादवों से पृथ्वा का मार बहुत बढ़ गया है । मैं गीन्द्र ही रात रात के अन्दर इसको दूर कर दूंगा । द्वारका को समुद्र में स्थापित कर यादवों का सहार नरके में स्वयं चला आऊंगा । मनुष्य-शरीर का त्याग कर बलराम के साथ मैं इन्द्र तथा देवताओं के पास पहुँचा ही हूँ—यही समझो । मार के कारण जो जरा सघ आदि मारे गये हैं उनसे बड़बड़ यदुओं का मार पृथ्वी पर हो गया है । इसलिए इस महामार को पृथ्वी पर से उतार कर मैं अमरलोक का पालन करने के लिए आऊँगा । तुम उनसे कह देना ॥२२ २७॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! वासुदेव ने इतना कहते पर देवदूत उन्हें प्रणाम कर दिव्यगति से इन्द्र के पास चला गया । भगवान् भी रातदिन द्वारकापुरी में विनाश-मूक अलौकिक उत्पत्तियों को पृथ्वी तथा आकाश के बीच देखने लगे । उन्हें देखकर भगवान् न यादवों से कहा—'इन्द्र महामयकर उत्पत्तियों को देखो । इनकी स्थिति करने के लिए हम क्षीप्र ही प्रमास (तीर्थस्थान) को जाना है ॥२८ ३०॥

१३ ग नायापि मा० । २३ ० रतिब० । ३३ ० निवाहित । ४४ ० एकामुवम् । ५५ ० ।
५६ ० म्य कुमारोऽपि य० । ६३ ० इनामवपी ० । ७३ ० नाना नारवीपते । ८० ।

व्यास उवाच

महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम्

॥३१॥

उद्धव उवाच

‘भगवन्मया कार्यं तदाज्ञापय सांप्रतम्। मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति॥
नाशायस्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३२॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ त्वं दिव्यया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया। बदरीमाश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते॥३३॥
नरनारायणस्थाने पवित्रितमहोत्तले। मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि॥३४॥
अहं स्वर्गं गमिष्यामि उपसंहृत्य वं कुलम्। द्वारकां च मया त्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति॥३५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येनं जगाम स तदोद्धवः। नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः॥३६॥
ततस्ते यादवाः सर्वे रयनारुह्य शीघ्रगान्। प्रभासं प्रययुः सार्धं कृष्णरामादिभिर्द्विजाः॥३७॥
प्राप्य प्रभासं प्रयता प्रीतास्ते कुक्कुरान्वकाः। चक्रुस्तत्र सुरापानं वासुदेवानुमोदिताः॥३८॥
पिबता तत्र वं तेषां सघर्षेण परस्परम्। यादवानां ततो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः॥३९॥
जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दिव्यलात्कृताः। क्षीणशस्त्रास्तु जगुहुः प्रत्यासन्नामधैरकाम्॥४०॥

व्यास ने कहा—महाभक्त उद्धव ने प्रणाम करके हरि से कहा ॥३१॥

उद्धव ने कहा—भगवन्! मुझे जो इस समय करना है, वह आप आज्ञा दें। मैं समझता हूँ कि भगवान् समस्त कुल का संहार करेंगे। अभ्युत! कुल के विनाश के कारणों को मैं देख रहा हूँ ॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा—मेरी कृपा से प्राप्त दिव्यगति से तुम गन्धमादन पर्वत पर स्थित पवित्र बदरिमाश्रम में चले जाओ। उस पवित्र भूमि पर नर नारायण के स्थान में मेरी कृपा से मुझमें मन लगाकर सिद्धि प्राप्त करोगे। मैं कुल का नाश करके स्वर्ग चला जाऊँगा। मुझसे परित्यक्त द्वारका को समुद्र डुबो देगा ॥३३-३५॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर उद्धव वेशव से आज्ञा लेकर उन्हें प्रणाम करते नरनारायण के स्थान पर चले गये। द्विजगण। तदनन्तर समस्त यादवों ने कृष्ण, राम आदि के साथ शीघ्रगामी रथों पर बैठ कर प्रभास के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर कुक्कुर और अन्यक वश वाले बड़े प्रयत्न हुए। वासुदेव की आज्ञा पाकर वे लोग मदिरापान करने लगे। पीते ही पीते उन लोगों में परस्पर सघर्ष हो गया। यादवों के बीच संहारकारी कलहाग्नि उत्पन्न हो गया। दौर्भाग्य से वे एक दूसरे को मारने लगे। शस्त्र क्षीण हो जाने पर उन्होंने सभीपक्षों एखा (तुण विशेष) को ले लिया। एखा वय के समान दीवता था। उससे वे लोग परस्पर भयंकर प्रहार

एरका तु गृहीता तैर्वज्रभूतेषु लक्ष्यते। तया परस्परं जघ्नुः संप्रहारेः सुदारुणः ॥४१॥
 प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माश्च सात्यकिः। अनिरुद्धादयश्चाग्रे पृथुविपृथुरेव च ॥४२॥
 चारुवर्मा सुचारुश्च तयाऽकूरादयो द्विजाः। एरकारुपिभिर्वज्रंस्ते निजघ्नुः परस्परम् ॥४३॥
 निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम्। सहायं मेनिरे प्राप्तं ते निजघ्नुः परस्परम् ॥४४॥
 कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे। वधाप्य तेषां मुशलं मुष्टिलोहमभूत्तदा ॥४५॥
 जघान तेन नि शेषानातततायी स यादवान्। जघ्नुश्च सहसाऽभ्येत्य तयाऽन्ये तु परस्परम् ॥४६॥
 ततश्चार्यवमध्येन जंत्रोऽसौ चक्रिणो रयः। पश्यतो दारुकस्याऽऽशु हृतोऽश्वैर्द्विजसत्तमाः ॥४७॥
 चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणौ शङ्खोऽसिरेव च। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा जग्मुरादित्यवर्त्मना ॥४८॥
 क्षणमात्रेण वै तत्र यादवानामभूत्क्षयः। ऋते कृष्णं महाबाहुं दारुकं च द्विजोत्तमाः ॥४९॥
 चङ्क्रम्यमाणौ तौ रामं वृक्षमूलकृतासनम्। ददृशाते मुक्ताञ्चास्य निष्क्रामन्तं महोरगम् ॥५०॥
 निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महामोगो भुजंगमः। प्रयातश्चार्यवं सिद्धैः पूज्यमानस्तथोरगः ॥५१॥
 तमर्घ्यमादाय तदा जलधिः संमुखं ययौ। प्रधिवेश च तत्तोयं पूजितः पद्मगोतमैः ॥
 दृष्ट्वा बलस्य निर्याणं दारुकं प्राह केशवः ॥५२॥

वरने लगे ॥३६-४१॥ प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, सुचारु तथा अकूर आदि एरका रूपी वज्रो से एक दूसरे को मारने लगे। कृष्ण उनका निवारण करना चाहते थे। पर उन्होंने कृष्ण को अपना सहायक समझ लिया। वे मार-पीट करने में डटे ही रहे। तब कृष्ण ने कुपित होकर एक मुट्ठी एरका से लिया। यादवों के विनाश के निमित्त एरका मुशलरूप में परिणत हो गया। उससे कृष्ण ने आततायी बनकर अशेष यादवों का संहार कर दिया। दूसरे भी सहसा आकर परस्पर वध करने लगे। विप्रवर। तब कृष्ण का जयश्रीलं रय दारुक (कृष्ण के सारथि) के देखते ही देखते समुद्र के बीच से अरवों के द्वारा अपहृत हो गया। चक्र, गदा, वनूप, तरकश, शङ्ख तथा शार्ङ्ग कृष्ण की प्रदक्षिणा करके सूर्य-मार्ग से चले गये। द्विजश्रेष्ठो महाशक्तिशाली कृष्ण तथा दारुक को छोड़कर समस्त यादवों का क्षण भर में क्षय हो गया। फुर्ती से चलते हुए कृष्ण तथा दारुक ने देखा कि एक वृक्ष की जड़ में आसन जमाए हुए बलराम के मुख से एक महासर्प निकल रहा है। महुती पृथा। बाला वह सर्प उनके मुख से निकल कर समुद्र की ओर चल पड़ा। सिद्ध तथा सर्प-समूह उसकी पूजा करने लगे। अर्घ्य लेकर समुद्र उसके सम्मुख आया। उत्तम सर्पों से पूजित होकर वह समुद्रजल में प्रविष्ट हो गया। बलराम का महा-प्रयाण देखकर केशव ने दारुक से कहा ॥४२-५२॥

श्रीभगवानुवाच

इदं सर्वं त्वमाचक्ष्व वसुदेवोऽप्रसन्नो । निर्याण वलदेवस्य यादवानां तथा क्षयम् ॥५३॥
 योगं स्थित्वाऽहमप्यतत्परित्यज्य कलवरम् । वाच्यश्च द्वारकावासी जनः सवस्तथाऽऽहुक ॥५४॥
 ययमां नगरीं सर्वां समुद्रं प्लावयिष्यति । तस्माद्रथ सुसज्जस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागम ॥५५॥
 न स्थय द्वारकां मध्यं निष्क्रान्ते तत्र पाण्डव । तनव सह गतव्यं यत्र याति स कौरव ॥५६॥
 गत्वा च ब्रूहि कौन्तयमजुन वचनमम् । पालनीयस्त्वया शयत्या जनोऽयं मत्परिग्रह ॥५७॥
 इत्यजुनः सहितो द्वारवत्या भवाञ्जनम् । गृहीत्वा धातुं वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥५८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म श्रीकृष्णचरित श्रीकृष्णनिजधाममननिरूपण नाम
 दशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१०॥

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्याय

कृष्णमानुषोत्सर्गकथनम्

व्यास उवाच

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः । प्रदक्षिणं च बहुश कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥१॥
 स च गत्वा तथा चक्रे द्वारकायां तथाऽऽजुनम् । आनिनाय महाबद्धिं वज्रं चक्र तथा नृपम् ॥२॥

श्रीभगवान् न कहां—ये सब बातें—वलदेव का प्रयाण तथा यादवों का क्षय—तुम वसुदेव तथा उग्रसेन से निवेदन कर देना। याग में स्थित हुकर मैं मा' इस शरार का त्याग कर दूंगा। तुम समस्त द्वारिकावासियों तथा आहुक से मा' कह देना कि सपूर्ण नगर को समुद्र में प्लावित कर देगा। इसलिये तुम लोग रथों पर चढ़कर तैयार हो जाओ और अजुन के आने का प्रतापना करो। अजुन के प्रयाण करने पर द्वारका में कोई न रहना। उसी के साथ चल देना चाहें जहाँ वह जाय। फिर तुम जाकर अजुन से मेरा वचन कहना—तुम्हें यथागति मेरी पत्नियों का पालन करना चाहिए। अजुन के साथ वज्र द्वारका में भवाञ्जन केर जायगा और वहीं यदुओं का राजा होगा ॥५३-५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण चरित्र-वर्णन प्रसंग में श्रीकृष्ण के निज धाम-मनन निरूपण नामक दश सो दसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१०॥

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

व्यास न कहां—इसके बाद दारुक कृष्ण का बार-बार प्रणाम कर तथा अनेक बार उनकी प्रदक्षिणा कर भेता गया। उसने जाकर कृष्ण का वचन सब को सुनाया तथा द्वारका में अजुन को लाकर महाबुद्धिमान् वयस को

भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम् । ब्रह्मात्मनि समारोप्य 'सर्वभूतेष्वधारयत्' ॥३॥
 स मानयन्निजवचो दुर्वासा यदुवाच ह । योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तमाः ॥४॥
 संप्राप्तो वै जरा नाम तदा तत्र स लुब्धकः । मुशलशेषलोहस्य' सायकं' धारयन्परम् ॥५॥
 स तत्पादं मृगाकारं समवेक्ष्य' व्यवस्थितः । ततो' विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तमाः ॥६॥
 गतश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुधरं 'नरम् । प्रणिपत्याऽऽह चैवं प्रसीदति पुनः पुनः ॥७॥
 अजानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कुया । क्षम्यतामात्मपापेन दयं मा दधुमर्हसि ॥८॥

व्यास उवाच

ततस्तं भगवानाह नास्ति ते भयमण्वपि । गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध' स्वर्गेश्वरास्पदम् ॥९॥

व्यास उवाच

विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम् । आहूय प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥१०॥
 गते तस्मिन्स भगवान्त्संयोज्याऽऽत्मानमात्मनि । ब्रह्मभूतेऽव्ययेऽचित्ये वासुदेवमयेऽमले ॥११॥
 अजन्मन्यजरऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि । त्यक्त्वा स मानुषं देहमवाप त्रिविधां गतिम् ॥१२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे श्रीकृष्णचरिते कृष्णमानुषोत्सर्गकथनं नामका-
 दशाधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२११॥

राजा बनाया । भगवान् गोविन्द ने भी अपने में वासुदेव रूप परब्रह्म को अधिष्ठित करके अखिल प्राणिपि वा धारण किया । दुर्वासा के वचन को सत्य करने के लिये उन्होंने योग युक्त होकर घुटने के ऊपर पैर को रखा । तब उसी मुशल के शेष लाहे से बने धनुष को धारण किये वह जरा नामक व्यास बहूँ आ पहुँचा । उसने भगवान् के पैर को मृग समझ कर उसी तोमर (रायबाँस) से वेध कर दिया । समीप जाने पर उसने चार मुजा वाले मनुष्य को देखा । उसको बार-बार प्रणाम करते कहा—'कृपा कीजिये । मैंने अज्ञानता से हरिण समझ कर ऐसा किया । क्षमा कीजिये । मैं अपने ही पाप से जल रहा हूँ । मुझे मत जलाइये' ॥१-८॥

व्यास बोले—तब भगवान् ने कहा—'व्यास' तुम्हें जरा भी भय नहीं है । तुम मेरी कृपा से स्वर्ग चले जाओ ॥९॥

व्यास ने कहा—कृष्ण के वाक्य समाप्त होते ही एक विमान आ गया, जिस पर चढ़कर व्यास उनकी कृपा से स्वर्ग चला गया । उसके जाने के पश्चात् भगवान् ब्रह्मभूत, अव्यय, अचित्य, वासुदेवमय, निर्मल, जन्म-रहित, अजर, अमर, अखिलात्मा तथा अप्रमेय आत्मा में आत्मा को मिला कर मनुष्य देह का त्याग कर त्रिविध गति (देव-गति) को प्राप्त हुए ॥१०-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास तथा श्रुणियों के संवाद में कृष्ण-चरित-वर्णन-प्रसंग में कृष्ण के मनुष्य-शरीर-त्याग निष्पन्न नामक दो सी व्यासहोवा अध्याय समाप्त ॥२११॥

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्यादीना परलोकगमनम्

व्यास उवाच

येऽपि तदाऽन्विष्य कृष्णरामकलेवरे । सत्कार लम्भयामास तयाऽन्येषामनुक्रमात् ॥१॥
महिष्य कथिता रुक्मिणीप्रमुखास्तु या । उपगृह्य हरेर्देहं विविशुस्ता द्रुताशनम् ॥२॥
चैव रामस्य देहमाश्लिष्य सतमा । विवेश ज्वलित बह्निं तत्सङ्गाह्लादशीतलम् ॥३॥
नस्तु तच्छ्रुत्वा तथैवाऽऽनकदुन्दुभिः । देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥४॥
नूनं प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां ययाविधिः । निश्चक्राम जन सर्वं गृहीत्वा यच्चमेव च ॥५॥
तया विनिष्क्रान्ता कृष्णपत्न्य सहस्रशः । यच्च जन च कौन्तेय पालयऽशनकैर्ययौ ॥६॥
सुधर्मा कृष्णेन मर्त्यलोके समाहृता । स्वर्गं जगाम भो विप्रा पारिजातश्च पादप ॥७॥
दिने हरिर्यातो दिव सत्यज्य मेदिनीम् । तस्मिन्दिनेऽयतीर्णोऽय कालकाय कलिः किल ॥८॥
यामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधिः । यदुधेष्टगृह त्वेक नाऽऽप्लायपत सागरः ॥९॥
क्रामति भो विप्रास्तदद्यापि महोदधिः । नित्यं सनिहितस्तत्र भगवान्केदावोद्यत ॥१०॥
य महापुण्य सर्वपातकनाशनम् । विष्णुःक्रीडावित स्थानं दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥११॥

अध्याय २१२

रुक्मिणी आदि का परलोक-गमन

व्यास ने कहा—अनुन ने भी कृष्ण तथा राम के गरीर को दूढ़कर दाह-संस्कार दिया और जमना दूधरों के भी जलाया । कृष्ण की रुक्मिणी आदि आठ स्त्रियों को भी वत्सल घुरा हूँ । वे हरि के गरीर को अग्नि में प्रविष्ट हो गईं । सज्जनों ! राम के गरीर का आश्लिष्य करके देवकी ने प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश किया । स्वर्ग-मुरा से अग्नि पीतल हो गया । यह गुनवर देवकी, रोहिणी उषसेन तथा यमुने ने भी अग्नि में प्रवेश । तदुरास्त अनुन ने सबका आदा दिया और वय तथा समस्त द्वारकावासियों को लेकर वहाँ से प्रयाण । कृष्ण की हजारों पत्नियाँ भी द्वारका छोड़ कर चली गईं । अनुन वय तथा द्वारकावासियों का पालन हुए पीरे-धीरे प्रस्थान करने लगे । विप्रबृन्द ! सुधर्मा नामक देवसभा तथा बलवृण को कृष्ण मर्त्यलोक में ले गे । वे दोनों अब स्वर्ग को चले गये ॥१७॥ जिस दिन हरि पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले गये उसी दिन तत्कथं बलिभुग अवतीरन हुआ । शून्य द्वारका को समुद्र ने प्लावित कर दिया । केवल एक यदुधेष्ट के घर नुद ने नहीं बुझाया । द्विगुण ! आज भी समुद्र उग्रका अतिक्रमण नहीं करता, जिसलिए वहाँ भगवान् केन्द्र

पार्थः पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते। चकार वासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तमाः॥१२॥
ततो लोभः समभवत्पार्थैर्नकेन धन्विना। दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः॥१३॥
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः। आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्यात्यन्तदुर्मदाः॥१४॥

आभीरा ऊचुः

अयमेकोर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम्। नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतत्क्रियता बलम्॥१५॥
हृत्वा गर्वतनारुडो भोगमद्रोगजपद्रयान्। कर्णादींश्च न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम्॥१६॥
वक्रः प्रेङ्गाक्षरानन्यान्ग्राम्याश्चैव विशेषतः। सर्वनिवाधजानाति किं धो बहुभिरुत्तरैः॥१७॥

व्यास उवाच

ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टहरिणः। सहस्रशोऽभ्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम्॥
ततो निवृत्तः कौन्तेय प्राहाऽऽभीराहसन्निव

॥१८॥

अर्जुन उवाच

निवर्तध्वमधर्मज्ञा मदीतो न मुमूर्षवः

॥१९॥

व्यास उवाच

अवज्ञाय वचस्तस्य जगृहस्ते तदा धनम्। स्त्रीजनं चापि कौन्तेयाद्विध्वयसेनपरिग्रहम्॥२०॥
ततोर्जुनो धनुर्विद्यं गाण्डीवमजर युधि। आरोपयितुमारभे न शशाक स वीर्यवान्॥२१॥

का नित्य सामिध्व रहता है। उस महापवित्र, सर्वपापनाशन तथा विष्णु-क्रीडा से युक्त स्थान के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! धन-धान्य-सम्पन्न पञ्चनद देश में पार्थ ने सबको बसा दिया। मृत पति वाली स्त्रियों को ले जाते हुए अकेले धनुषधारी पार्थ को देखकर चोरो को लोभ हुआ। लोभ से नष्ट चित्त वाले पापी अहीर अत्यन्त भयान्य होकर परस्पर मन्त्रणा करने लगे ॥८-१४॥

अहीरों ने कहा—यह अकेला धनुषधारी अर्जुन हम लोगों की अवहेलना कर विषवाओं को ले जा रहा है। ऐसे साहस को धिक्कार है। हम बल प्रयोग करें। इस अभिमानी ने मीमा, द्रोग, जयद्रथ तथा कर्ण आदि को तो मारा। पर इसे ग्रामवासियों की शक्ति का परिचय नहीं है। यह बलवाली मनुष्यों का विशेष कर ग्रामीणों का तथा सबका अपमान करता है। इस सब में बहुत उत्तर-प्रत्युत्तर करने से क्या लाभ ॥१५-१७॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त हजारों की सख्या में चोरगण लाठी-ढेले लेकर विषवाओं के पीछे दौड़ने लगे। अब निश्चित कौन्तेय ने हँसकर अहीरों से कहा ॥१८॥

अर्जुन ने कहा—पापियों! यदि मरना नहीं चाहते हो तो यहाँ से लौट जाओ ॥१९॥

व्यास ने कहा—अर्जुन की अवहेलना कर अहीरों ने धन ले लिया और कृष्ण की स्त्रियों का भी अपहरण किया। अब अर्जुन ने दिव्य तथा अजर गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाहा, पर वह बली ऐसा न कर

चकार सज्जं कृच्छ्रात् तदभूच्छिथिलं पुनः । न सस्मार तथाऽत्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२॥
 शरान्मुमोच चेतोऽप्यार्यः शोषान्स हृषितः । न भेदं ते परं चक्रुरस्ता गाण्डीवधन्वता ॥२३॥
 वह्निना चाक्षया दत्ताः शरास्तोऽपि क्षयं ययुः । युध्यतः सह गोपालैरर्जुनस्याभवत्क्षयः ॥२४॥
 अचिन्तयत्तु कौन्तेय कृष्णस्यैव हि तद्वलम् । यन्मया शरसंघातैः सबला भूभृतो जिताः ॥२५॥
 म्रियतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमदोत्तमाः । अपाकृष्यन्त चाऽऽभीरैः^१ कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥२६॥
 ततः शरोऽप्यु क्षीणेऽप्यु धनुष्कोटधा धनंजयः । जघान दस्युंस्ते चास्य प्रहाराज्जहसुद्विजः ॥२७॥
 पश्यतस्त्वेव पार्थस्य वृण्ण्यन्धकवरस्त्रियः । जम्बुरादाय ते म्लेच्छाः 'समन्तान्मुनिसत्तमाः ॥२८॥
 ततः स दुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति श्रुवन् । अहो भगवता तेन मुषतोऽस्मीति हरोदधे' ॥२९॥

अर्जुन उवाच

तदनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः । सर्वमेकपदे नष्टं^२ दानमधोत्रिये यथा ॥३०॥
 अहो^३ चाति दलं देवं विना तेन महात्मना । यदसामर्थ्ययुवतोऽहं^४ नीचैर्नीतः पराभवम् ॥३१॥
 तौ बाहू स च मे मुष्टिः^५ स्थानं ततोऽस्मि चार्जुन । पुण्येनेव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२॥
 ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृतं ध्रुवम् । विना तेन यदाभीरैर्जितोऽहं कथमन्यथा ॥३३॥

सका । कष्ट करने पर धनुष चढ़ा भी तौ वह पुन शिथिल हो गया । ध्यान करने पर भी पाण्डव अस्त्रों का स्मरण नहीं कर पाया । हृष से पाण्डव ने अपने अवशिष्ट वाणों को चोरो के ऊपर छोड़ा । किन्तु गाण्डीव धनुष से छूटे हुए वे बाण अहीरो के कुछ नहीं बिगाड़ सके । अग्नि ने अर्जुन को अक्षय वाण दिये थे । वे भी नष्ट हो गये । अहीरो के साथ युद्ध करते हुए अर्जुन का क्षय हो गया । पाण्डव ने सोचा—'मैंने जो वाण-समूहों से बली राजाओं की पीता वह वृष्ण का ही प्रताप था ।' अहीरो ने पाण्डुपुत्र से बलपूर्वक अवलाओं को छीन लिया । कुछ महिलायें स्वेच्छा से भाग गईं । तब वाण क्षीण हो जाने पर धनजय धनुष के अग्रभाग से चोरो को मारने लगे । चोरण इसके प्रहारा को देखकर हँसने लगे । मुनिश्रेष्ठो । पार्थ के देखते ही देखते म्लेच्छगण चारों ओर से वृष्णि तथा अन्यत्र यश वालों की स्त्रियों को लेकर भाग गये । तब दुःखी अर्जुन 'कष्ट, कष्ट ! अहो ! भगवान् ने मुझे छोड़ दिया' यह बोल्ते हुए रोते लगे ॥२०-२९॥

अर्जुन ने कहा—यही धनुष, वही रथ, वे ही अस्त्र, वे ही घोड़े—सब एव ही पग मे नष्ट हो गये, जैसे अधोत्रिय को दिया हुआ दान (नष्ट हो जाता है) । अहो ! माय प्रबल है । विना उस महात्मा के मैं असमर्थ होकर नीचों से पराजित हुआ । वे ही मेरी बाँहें हैं, वही मेरी मुट्ठी है, वही स्थान है, और वही अर्जुन मैं हूँ । किन्तु जैसे विना पुण्य के प्रियार्थे निष्फल होती है उसी तरह वृष्ण के बिना मेरा सब कुछ निष्फल हो गया । मेरा अर्जुनत्व तथा भीम का भीमत्व निदधय ही वृष्ण का किया हुआ था । अन्यथा उनसे बिना क्यों मैं अहीरो से पराजित हुआ ? ॥३०-३३॥

१क. ०भीरैस्ते शराः प्रमयुः क्षयम् । त० । २क. ०मस्ता मुनि० । ३स. ह । ४क. भ्रष्ट । ५स. ग. 'होप्रतिबलवद्देव । ६स. ग. ०युक्तेऽपि नीचवर्गे अप्रदम् । ७क. ०ष्टिः सोऽस्मि बाहू तथाऽर्जुन० ।

७ व्यास उवाच

इत्थं यदन्यथो जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् । चकार तत्र राजानं यच्च यावद्वनन्दनम् ॥३४॥
स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनं काननाश्रयम् । तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादायत् ॥३५॥
तं वन्दमानं चरणपावलोक्ष्य सुनिश्चितम् । उवाच पार्थ विच्छायाः कथमत्यन्तमीदृशः ॥३६॥
अजारजोऽनुगमनं ब्रह्महत्याप्यवा कृता । जयाशामभङ्गदुःखी वा भ्रष्टच्छायोऽसि साप्रतम् ॥३७॥
सान्त्वानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः । अगम्यस्त्रीरतिर्वाऽपि तेनासि विगतप्रभः ॥३८॥
भुङ्क्ते प्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकमथो भवान् । किं वा कृपणवित्तानि हृतानि भवताऽर्जुन ॥३९॥
कच्चिन्नं सूर्यवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन । दुष्टचक्षुर्हृतो वाऽपि निश्चीकं कथमन्यथा ॥४०॥
स्पृष्टो नखाम्भसा वाऽपि घटाम्भं प्रोक्षितोऽपि वा । तेनातोवासि विच्छायो न्यूनैर्वायुधिर्निजितः ॥४१॥

व्यास उवाच

ततः पार्थो विनिश्चस्य श्रूयतां भगवन्निति । प्रोक्तो यथावदाचष्ट विप्रा आत्मपराभवम् ॥४२॥

अर्जुन उवाच

यद्बलं यच्च नस्तेजो यद्दीर्घं यत्पराक्रमं । या शोदछाया च न सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः ॥४३॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार कहता हुआ अर्जुन इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम नगर में पहुँचा । वहाँ उसने यादव-पुत्र वषट् को राजा बनाया । तदनन्तर अर्जुन वन में व्यास से मिला । उसने विनयपूर्वक महाभावा व्यास का अभिवादन किया । चरणपावलोक्ष्य करते हुए पार्थ को देखकर व्यास ने पूछा—एसे अत्यन्त वान्तिहीन क्यों हो गये हो ? क्या तुमने अजारज (मर्ग में वक्रे-वक्रियों के चलने से जो घूँघ उठती है वह 'अजारज' है) । उससे पड़ने से पाप लगता है) का अनुगमन किया है ? अथवा ब्रह्महत्या की है ? या तुम विजय की आशा में मग हो जाने से दुःखी हो ? या इस समय तुम निराश्रय हो गये हो ? या तुम्हारे पुत्र आदि याचना करते हुए निराश्रय दिये गये हैं या तुम अगम्या स्त्री में अनुक्त हो गये हो जिससे तुम्हारी वान्ति नष्ट हो गई है ? क्या तुमने ब्राह्मणों को मिष्टान्न देकर स्वयं खा लिया है ? अर्जुन ! क्या तुमने कृपणा का वित्त हरण किया है ? वही तुम मूय-बाध के घामने तो महो पड़ गये ? दूषित दृष्टि तो नहीं लग गई है ? अथवा तुम (इतना) हतधीन क्या होते ? तुम्हें नष्ट डाले गये जल का स्पर्श हो गया है या (ऐसे) घड़े के जत्र से तुमने स्नान कर लिया है । या नीचा से तुम घुड़ में हार गये हो । इसलिए तुम अत्यन्त वान्तिहीन मालूम पड़ते हो ॥३४-४१॥

व्यास ने कहा—विप्रवन्द । आह भरकर पार्थ ने कहा—'भगवन् ! सुनिवे !' तब उसने अपने पराजय का सब समाचार सुनाया ॥४२॥

अर्जुन ने कहा—हमारे जो बल, तेज, शक्ति, पराक्रम, पन तथा ऐश्वर्य ये, वे हरि हम छोड़ कर बने

१ ग ० भागो वि० । २ ग तं दुष्टा वै मुनिप्रेष्टा पुष्टवानहमर्जुनम् । अहो विनायं वि० । ३ य ० य । गुजरज्योत्र० । ग ० य । इत राजानु० । ४ क स ० यो नीचैर्वा । ५ क स ० प्रायाऽयम् ।

इतरेणेव महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा । हीना वय मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४॥
 अस्त्राणां सायकानां च गाण्डीवस्य तथा मम । सारता याऽभवन्मूर्तां स गत पुरयोत्तम ॥४५॥
 यस्यावलोकनादस्माञ्श्रीर्जय सपदुन्नति । न तत्याज स गोविन्दस्त्यक्त्वाऽस्मान्भगवान्गत ॥४६॥
 भीष्मद्रोणाङ्गराजाद्यास्तथा दुर्योधनादयः । यत्प्रभावेण निर्दग्धा स कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ॥४७॥
 त्रिभुवनं हतश्रीका गृष्टच्छायेव मे महो । विभाति तात नैकोऽह विरहे तस्य चम्रिण ॥४८॥
 यस्यानुभावाद्भ्रीष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभायितम् । विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निजित ॥४९॥
 गाण्डीव त्रिषु लोकेषु ख्यात यदनुभावत । मम तेन विनाऽऽभीरैलंगुडैस्तु तिरस्कृतम् ॥५०॥
 स्त्रीसहस्राप्यनेकानि हृषनायानि महामुने । यततो मम नीतानि दस्युभिलंगुडायुधैः ॥५१॥
 आनीयमानमाभीरं सर्वं कृष्णावरोधनम् । हृत यष्टिप्रहरणं परिभूय बल मम ॥५२॥
 नि श्रोकता न मे चित्र यज्जीर्वाणि तदद्भुतम् । नीचावमानपङ्काङ्की निर्लज्जोऽस्मि पितामह ॥५३॥

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽह तस्य तद्वाक्यमद्भवं द्विजसत्तमा । दुःखितस्य च दीनस्य पाण्डवस्य महात्मन ॥५४॥
 अल ते श्रीडया'पार्थ न त्व शोचितुमर्हसि । अवोहि' सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५५॥

गये। मुने । मुसकरावर' बोलने वाले उस महान् महात्मा ने इतर व्यक्ति की तरह हमें छोड़ दिया । उससे हम तृण के बराबर हो गये । मेरे अस्त्रों बाणों तथा गाण्डीव धनुष का जो मूर्तरूप तत्त्व था वे पुरपोत्तम चले गये । जिनके दान स लक्ष्मी विजय संपत्ति तथा उन्नति हम नहीं छूटते थे वे भगवान् गोविन्द हम त्याग कर चले गये । जिनके प्रभाव से भीष्म द्रोण अंगराज आदि तथा दुर्योध आदि दम्ब हुए उन कृष्ण ने पृथ्वी का परित्याग कर दिया । तात । मुझे पृथ्वी योक्ताहीन श्रीहीन तथा छायाहीन दीखती है । अवेला मैं ही कृष्ण के विरह में नहीं घुलता । जिनके प्रताप से भीष्म आदि मुझ रूपी अग्नि में पतंगों की तरह गिर पड़े थे, उन कृष्ण के बिना आज मैं स्वान्ते से हार गया । जिनके सामर्थ्य से मेरा गाण्डीव धनुष तीनों लोक में प्रख्यात हुआ उन कृष्ण के बिना यही धनुष खाली की लाठियों से तिरस्कृत हुआ । महामुने । मेरे यत्न करने पर भी हजारों अनाथ स्त्रियाँ लट्ठ-घर चोरा द्वारा अपहृत कर ली गई । 'ताडी चलाने वाले अहीरा ने मेरे बल को पराजित कर कृष्ण की सारी दस्तियाँ को हार लिया । मुझ अपनी श्रीविहीनता से उन आश्चर्य नहीं होता है जितना कि मैं जी रहा हूँ इससे आश्चर्य होता है । पितामह । मैं नीचा के अपमान रूपी बचड में पड़ा हूँ, मैं निर्लज्ज हूँ ॥४३-५३॥

व्यास ने कहा—द्विजवर । मैं दुःखी दीन महात्मा पाण्डव की बात सुनकर बहने लगा—'पार्थ ! तुम व्यर्थ उन्मत्त हो रहे हो । तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये । समझा प्राणिमात्र में बाल की गति ऐसी ही होती है ।

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव । कालमूलमिदं ज्ञात्वा कुह स्यैर्यमतोऽर्जुन ॥५६॥
 नद्यः समुद्रा गिरयः सकला च वसुंधरा । देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरोसूपाः ॥५७॥
 सुष्टाः कालेन कालेन पुनर्यास्यन्ति संक्षयम् । कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५८॥
 ययाऽऽस्य कृष्णनाहात्म्यं तत्तथैव धनंजय । भारावतारकार्यार्थमवतीर्णः स मेदिनीम् ॥५९॥
 भाराकान्ता घरा याता देवानां संनिधौ पुरा । तदर्थमवतीर्णोऽसी कामरूपो जनार्दनः ॥६०॥
 तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभूतो हताः । वृण्वन्धककुलं सर्वं तथा पार्योपसंहृतम् ॥६१॥
 न किञ्चिद्व्यक्तर्तन्यमस्य भूमितलेऽर्जुन । ततो गतः स भगवान्कृतकृत्यो ययेच्छया ॥६२॥
 सृष्टिं सर्गं करोत्येष देवदेवः स्थितिं स्थितौ । अन्ते ताप(लयं)समर्थोऽयं सांप्रतं वै यया कृतम् ॥६३॥
 तस्मात्पापं न संतापस्त्वया कार्यः पराभवात् । भवन्ति भवकालेषु पुष्ट्याणां पराक्रमाः ॥६४॥
 यतस्त्वयंकेन हता भीष्मद्रोणादयो नृपाः । तेषामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ॥६५॥
 विष्णोस्तस्यानुभावेन यया तेषां पराभवः । त्वत्तस्तथैव भवतो दस्युभ्योऽन्ते तदुद्भवः ॥६६॥
 स देवोऽन्यशरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम् । करोति सर्वभूतानां नाशं चान्ते जगत्पतिः ॥६७॥
 भयोद्भवे च क्रान्तेय सहायस्ते जनार्दनः । भवान्ते त्वद्विपक्षास्ते केशवेनावलोकिताः ॥६८॥
 क. अद्ध्यत्सगान्धेयान्हन्यास्त्व सर्वकौरवान् । आभीरेभ्यश्च भवतः कः अद्ध्यत्पराभवम् ॥६९॥

पाण्डव ! बाल ही प्राणियो की उत्पत्ति तथा विनाश करता है । ससार को बालमूलक जानकर स्वस्थ होओ । बाल ने ही नदी, समुद्र, पर्वत, सपूर्ण पृथ्वी, देव मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सर्प की सृष्टि की और ये सब पुन बाल ही मे विलीन हो जायेंगे । सपूर्ण जगत् को बालरूप जानकर शान्ति धारण करो ॥५४-५८॥ धनजय ! जैसे तुमने कृष्ण वा माहात्म्य-वर्णन किया है, वैसे ही वे भार उतारने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे । पूर्वकाल मे भार से आक्रान्त होकर पृथ्वी देवताओं के पास गई थी । इसी निमित्त बामरूपी जनार्दन ने अवतार लिया । उन्होंने कार्य सम्पन्न किया, अशेष राजाओं को मारा और वृष्णि-अन्यत्र कुल का सहारा किया ॥५९-६१॥ अर्जुन ! मूल पर उनका कोई वर्तन्य नहीं शेष नहीं रहा । भगवान् कृतकृत्य होकर स्वेच्छा से चले गये । देवों के देव समर्थ भगवान् सृष्टिबाल मे सृष्टि, स्थितिबाल मे स्थिति तथा प्रलयबाल मे प्रलय करते हैं, जैसे इस समय उन्होंने किया है । पार्य ! इसलिए तुम्हें परामर्श से सताप नहीं करना चाहिये । ससार मे रहने के समय पुरुषों मे पराक्रम होते हैं, जिसलिए तुमने अनेक ही भीष्म, द्रोण आदि राजाओं को निहत् किया । क्या यह उनका बालजन्य परामर्श कम हुआ ? ॥६२-६५॥ उसी विष्णु के प्रताप से जैसे तुमसे उनका पराजय हुआ उसी तरह अन्त मे चोरा से तुम्हारा भी हुआ । वह जगत्पति अन्य शरीरों मे प्रवेश कर ससार की स्थिति करते हैं और अन्त मे समस्त प्राणियों का नाश कर देते हैं । बुद्धी-पुत्र ! तुम्हारे उद्भव-काल मे जनार्दन सहायक थे और अन्तकाल मे केशव ने तुम्हारे शत्रुओं की देखा था । कौन विस्वास करता कि तुम भीष्म सहित अशेष कौरवों और भारीयों और अहीरों से तुम्हारा पराजय होगा ? पार्य !

पार्थतत्सर्वभूतेषु हरेर्लोलाविषेदितम् । त्वया यत्कौरवा ध्वस्ता यदाभीरर्भवाञ्जितः ॥७०॥
 गृहीता दस्युभिर्यच्च रक्षिता भवता स्त्रियः । तदप्यहं यथावृत्तं कथयामि तवाजुं ॥७१॥
 अष्टावक्रः पुरा विप्र उदवासरतोऽभवत् । बहून्वर्षगणान्पार्थ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥७२॥
 जितेष्वसुरसंघेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवः । बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं सुरस्त्रियः ॥७३॥
 रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च शतशोऽप्य सहस्रशः । तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च पाण्डव ॥७४॥
 आकण्ठमनः सलिले जटामारधरं मुनिम् । विनयावनताश्चैव प्रणेमुः स्तोत्रतत्पराः ॥७५॥
 यया यया प्रसन्नोऽभूत्तुष्टुवुस्तं तथा तथा । सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ वरिष्ठं तं द्विजन्मनाम् ॥७६॥

अष्टावक्र उवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते । मत्तस्तद्विषयां सर्वं प्रदास्याम्यपि दुर्लभम् ॥७७॥

व्यास उवाच

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च दिव्याश्चाप्सरसोऽभूवन् ॥७८॥

अप्सरस ऊचुः

प्रसन्ने त्वय्यर्पसंप्राप्तं किमस्माकमिति द्विजाः ॥७९॥

इतरास्तुवद्भुवन्विप्र प्रसन्नो भगवन्पदि । तदिच्छाम पतिं प्राप्तुं विप्रेन्द्र पुरुषोत्तमम् ॥८०॥

प्राणि-भाव मे यह सब तो हरि की लीला है । अर्जुन ! तुमने जो कौरवों को मारा, अर्हुरों ने जो तुम्हें जीता और तुमसे रक्षित स्त्रियों का जो चोरी ने हरण किया, वह सब वृत्तान्त मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥६६-७१॥ पार्थ ! प्राचीन-काल में विप्र अष्टावक्र सनातन ब्रह्म की स्तुति करते हुए बहुत वर्षों तक जलवास में निरत रहे । असुरसमूह के पराजय होने के उपलक्ष्य में तुमेश्वरों पर महान् उत्सव हो रहा था । उसी में सम्मिलित होने के लिये जाती हुई सैकड़ों हजारों देवायनायें तथा रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सरायें महात्मा अष्टावक्र को देखकर उनकी स्तुति तथा प्रशंसा करने लगी । पाण्डव ! स्तुति करने में तत्पर बनितार्यों जल में कण्ठ तक निमग्न तथा जटामारवादी मुनि को विनय से झुक कर प्रणाम करने लगी । कौरवश्रेष्ठ ! जैसे जैसे मुनि प्रसन्न होते जाते थे वैसे-वैसे स्त्रियाँ उनकी स्तुति करती जाती थीं ॥७२-७६॥

अष्टावक्र ने कहा—महाभागा ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम लोगों को जो इच्छा हो, वह सब मुझसे बर माग लो, मैं दुर्लभ वस्तु भी दूँगा ॥७७॥

व्यास ने कहा—रम्भा, तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सरायें बौली ॥७८॥

अप्सरार्यों ने कहा—आपके प्रसन्न होने पर हम क्या नहीं मिला । द्विजाण । इतर स्त्रियों ने कहा—विप्रेन्द्र ! भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह बर दीजिये कि पुरुषोत्तम हमारे पति हों, ॥७९-८०॥

१ ख प्रसन्नवृत्तवन् । आ० । २ क ० कर्म० । ३ कं स ० टाचीर० । ४ क. प. ० ५ व वैदिस्यो-
 ज्ज० । ५ ख. ग. द्विज ।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा उत्ततार जलान्मुनिः। तमुत्तीर्णं च ददुर्गुविरूपं यत्रमष्टधा ॥८१॥
तं दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत्। ताः शशाप मुनिः कोपमवाप्य कुरुनन्दनः ॥८२॥

अष्टावक्र उवाच

यस्माद्विरूपं मां भत्वा हासावमानना। भवतीभिः कृता तस्मादेव शापं ददामि यः ॥८३॥
मन्त्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुर्योत्तमम्। मच्छापोपहृताः सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥८४॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकण्यं मुनिस्ताभिः प्रसादितः। पुनः सुरेन्द्रलोकं च प्राह भूयो गमिष्यथ ॥८५॥
एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य कोदावम्। भर्तारं प्राप्य ताः प्राप्ता दस्युहस्तं वराङ्गनाः ॥८६॥
तद्वशा नात्र कर्तव्यः शोकोऽप्येवमपि हि पाण्डव। तेनैवाखिलनायेन सर्वं तदुपसंहृतम् ॥८७॥
भवतां घोषसंहारमासनं तेन कुर्यता। बलं तेजस्तया वीर्यं माहात्म्यं घोषसंहृतम् ॥८८॥
जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतः। विप्रयोगायसानं तु संयोगः संचयः क्ष (याक्षा) यः ॥८९॥
विज्ञाय न युधाः शोकं न हर्षमप्याप्ति ये। तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति सादृशाः ॥९०॥
तस्मात्तथा नरप्रेष्ठ शर्व्वतद्भातुभिः सह। परित्यज्याखिलं राज्यं गन्तव्यं तपसे वनम् ॥९१॥
तद्गच्छ धर्मराजाय नियतं तद्वचो मम। परश्वो भ्यातुभिः सायं गतिं वीर यथा कुरु ॥९२॥

व्यास ने कहा—'ऐसा होगा' यह कह कर मुनि जल से बाहर निकले। स्त्रियों ने देखा कि मुनि कुरूप तथा बाढ स्थानों में बक हैं। उन्हें देखकर जिन स्त्रियों का हास्य छिगने पर भी स्फुट हो गया, उन्होंने मुनि ने श्राप से शाप दे दिया ॥८१-८२॥

अष्टावक्र ने कहा—'त्रिस्तम्बे मुनें कुरूप ममन्तर मेरा अपमान करते हुई तुम हँसी इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ—'मेरी कृपा से पुर्योत्तम को पतिरूप में प्राप्त करते तुम सब मेरे शाप से चोरों के हाथ में पड़ोगी ॥८३-८४॥

व्यास ने कहा—इतना बचन सुनकर स्त्रियों ने मुनि को प्रसन्न किया। पुनः मुनि ने कहा—'तुम लोग फिर देवलोफ जाओगी।' इस प्रकार अष्टावक्र मुनि के शाप से वे स्त्रियाँ बैराग को स्वामी के रूप में प्राप्त कर चोरों के हाथों में पड़ीं। पाण्डव। इसलिए तुम्हें जरा भी शोक नहीं करना चाहिये। उगी जगन्नाथ में सबरा उप-सहार किया है। तुम्हारा भी सहार निश्चयी है। बल तुम्हारे बल, तेज, वीर्य तथा माहात्म्य को उन्नति समेट लिया है। उन्नत प्राणी का मरण, पतन, उन्नति, विनाश, समाप्ति, संबोध, सबय तथा क्षय विनिश्चय है—यह जानकर जो विद्वान् दृढ-योग नहीं करते हैं, उन्हीं का चेष्टाओं से इतर व्यक्ति गिरा प्रहृत करने हैं। नरप्रेष्ठ। इसलिए यह जानकर तुम अखिल राज्य का परित्याग कर माद्यों के हाथ लक्ष्म्या करने के लिए वन में चले जाओ। ममः धर्मराज से बाहर मेरा बचन यह देना और पर्यों माद्यों के शाप प्रत्यान कर देना ॥८५-९२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो धर्मराजं तुं समम्येत्य तथोक्तवान् । दृष्टं चैवानुभूतं वा कथितं तदशेषतः ॥१३॥
 व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वाऽर्जुनसमीरितम् । राज्ये परीक्षितं कृत्वा ध्रुवः पाण्डुसुता वनम् ॥१४॥
 इत्येवं वो मुनिश्रेष्ठा विस्तरणे मयोदितम् । जातस्य च यदोर्वशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरितसमाप्तिकथनं नाम
 द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

वराहावतारवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं चातिमानुषम् । रामस्य च मुनिश्रेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम् ॥१॥
 न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम् । तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम् ॥२॥
 प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः । सतां कथयतामेष वराह इति नः श्रुतम् ॥३॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त अर्जुन ने मुनिश्रेष्ठ के पास जाकर दृष्ट, अनुभूत, कथित—सारी बातें वह सुनायी । अर्जुन द्वारा कथित व्यास-वाक्य को सुनकर वे सब पाण्डु-मुनि राज्य में परीक्षित को नियुक्त करके वन में चले गये । मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार मैंने यदुवश में उत्पन्न वासुदेव की लीला का वर्णन कर दिया ॥१३-१५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरित-समाप्तिकथन नामक दो सौ
 बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१२॥

अध्याय २१३

वाराह-अवतार का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! बहा ! आपने कृष्ण-राम का अद्भुत, अलौकिक तथा पृथ्वी पर दुर्लभ माहात्म्य सुनाया । पर भगवान् की कथा को सुनते-सुनते तृप्ति नहीं होती । महाभाग ! इसलिये फिर भगवान् की लीला सुनायें । सत्पुरुषों के मुँह से हमने सुना है कि पुराणों में अमित्र तेजस्वी विष्णु का वराह अवतार माना गया

न जानामीऽस्य चरितं न विधिं च च विस्तरम् । न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमनोपितम् ॥४॥
किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः का च देवता । किमाचारप्रभावो वा किंवा तेन तदा कृतम् ॥५॥
यज्ञायै समवेतानां मिषतां च द्विजग्मनाम् । महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥६॥
यया नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्यामुज्जहारारिमर्दनः ॥७॥
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुपातिनः । श्रोतुं नो यतन्ते बुद्धिहरेः कृष्णस्य धीमतः ॥८॥
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः । या वाऽस्य प्रकृतिर्ब्रह्मांस्तादृचाऽऽख्यातुं स्वमर्हसि ॥९॥

व्यास उवाच

प्रश्नभारो महानेष भवद्भिः समुदाहृतः । यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां विष्णवं यदा ॥१०॥
विष्णोः प्रभावश्चरणे दिष्ट्या धो मतिरुत्थिता । तस्माद्विष्णोः समस्ता वै शृणुध्वं याः प्रवृत्तयः ॥११॥
सहस्राक्षं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम् । सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥१२॥
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् । सहस्रबं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥१३॥
हयनं सयनं चैव होतारं हव्यमेव च । पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां समित्स्त्रुवम् ॥१४॥
क्षुत्सोमसूर्यमुशलं प्रोक्षणीं दक्षिणायनम् । अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सवः ॥१५॥
यूपं चक्रं ध्रुवां दर्वीं चक्षुश्चोलूखलानि च । प्रावृंशं यज्ञभूमिं च होतारं च परं च यत् ॥१६॥

है। परन्तु हम लोग न उसका चरित्र, न विस्तृत विधान, न कर्म-गुण और न अन्वेषण-रहित कारण ही जानते हैं। वराह का क्या स्वरूप है? कैसी मूर्ति है? कौनसा देवता है? कैसा आचार तथा प्रभाव है? जिस समय यज्ञ करने के लिए द्विजादिगण एकत्रित हुए थे, उस समय उसने क्या किया? महावराह का चरित्र सब लोगों को सुख देने वाला है। कैसे शत्रुमर्दन नारायण ने वराह का रूप धारण कर दैतों से समुद्र-स्थित पृथ्वी का उद्धार किया? रिपुनाशन धीमान् कृष्ण के बारे में सभी को विस्तार से हम सुनना चाहते हैं। ब्रह्मन् । हरि के कर्म, प्रादुर्भाव तथा प्रकृति के बारे में हम क्रमशः बतलाइये ॥१-९॥

व्यास ने कहा—यह तो आपने ब्रह्मन् प्रश्न कर दिया। मैं यथाशक्ति बूझूंगा। विष्णु के यश को सुनिये। माय से विष्णु के प्रताप सुनने की इच्छा आपको हुई है। इसलिए विष्णु की समस्त प्रवृत्तियाँ को मुन कीजिये। ॥१-०-१॥ जो सहस्र मुख वाले, सहस्र चरण वाले, सहस्र नेत्र वाले, सहस्र शिर वाले, सहस्र हाथ वाले अव्यय, सहस्र जिह्वा वाले, प्रशासमान, सहस्र मुकुट वाले, सूर्य, सहस्रो देने वाले, सहस्रो के आदि, सहस्र भुजा वाले, हवन, सोमपात्र, होरा, देवाग्र, पात्र, पवित्री, वेदि, दीक्षा, समिधा, सुव, चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, प्रोक्षणीपात्र, दक्षिणायन, अध्वर्यु, साम पाने वाले विप्र, सदस्य, सदन, समा, यूप, चक्र, धुरी, चक्र, ओलूखली, प्रावृंश (यज्ञशाला में हविर्गृह के पूरक का घर जिसमें यज्ञमान आदि रहते हैं), यज्ञभूमि, सवसे परे, हव्य, अतिदीर्घ, स्थावर, जगम, प्रायश्चित्त, अर्घ, स्यण्डिन्, (समन्तल मंदिर), बुध, मन्त्र तथा यज्ञवाह्य अग्नि, भाग, भागवाह्य, आगे बैठने वाले, सोममोर्जता, अग्नि में हवन करने वाले

हृस्वाप्यतिप्रमाणानि स्यावराणि चराणि च । प्रायश्चित्तानि वाऽर्घ्यं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥१७॥
 'मन्त्रयज्ञवहं बलिं भागं भागवहं च यत् । 'अप्राप्तिनं सोमभुजं हुताचिषमुदायुधम् ॥१८॥
 आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं प्रभुम् । तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्गस्य धीमतः ॥१९॥
 प्रादुर्भासहस्राणि समतीतान्यनेकशः । भूयश्चैव भविष्यन्ति हृद्येवमाह पितामहः ॥२०॥
 यत्पृच्छध्वं महाभागा दिव्यां पुण्यामिमं कथाम् । प्रादुर्भावाभितां विष्णोः सर्वपापहरां शिवाम् ॥२१॥
 शृणुध्वं तां महाभागास्तद्गतेनान्तरात्मना । प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येण यत्पृच्छध्वं ममानघाः ॥२२॥
 वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महामतेः । हितार्थं सुरमत्यानां लोकानां प्रभवाय च ॥२३॥
 बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति धीर्यवान् । प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिव्यान्गुणान्वितान् ॥२४॥
 सुप्तो युगसहस्रं यः प्रादुर्भवति कार्पतः । पूर्णं युगसहस्रेऽप्य देवदेवो जगत्पतिः ॥२५॥
 ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिदशस्तथा । देवाः सप्तर्षयश्चैव नागाश्चाप्सरस्तथा ॥२६॥

सनत्कुमारश्च महानुभावो, मनुर्महात्मा 'भगवान्प्रजाकरः

पुराणदेवोऽप्य पुराणि चक्रे' प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः

योऽज्ञो चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्यावरजङ्गमे । नष्टे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥२८॥
 योऽङ्गकामो दुराधरो तावुभौ मधुकंठभौ । ह्यौ 'भगवता' तेन तयोर्वत्स्वामितं' वरम् ॥२९॥
 पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि । पुष्करे तत्र' संभूता देवाः सपिणगास्तथा ॥३०॥

धारण तथा अस्त्र बरने वाले हैं और जिनको वेदवेत्ता ब्राह्मण यज्ञ में 'नित्य' कह कर पुरात है, उन देव, श्रीवत्सबलि से युक्त, धीमान् विष्णु के हजारों अवतार हो चुके हैं और फिर होये—ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ॥१२-२०॥ महाभाग ! जो आप विष्णु की सर्वनापनाशिनी, कल्याणमयी, दिव्य, पवित्र तथा अवतार से सम्बन्ध रखने वाली कथा पूछते हैं, वह वृष्ण में मन लगाकर सुनिये । निष्ठाप । देव-मनुष्यों के हित के लिए तथा लोगों की उत्तरति के लिए मैं महाबुद्धिमान् वासुदेव वा माहात्म्य तथा चरित्र अक्षरशः बराबर ज्ञाता ॥२१-२३॥ अखिल प्राणिमा के आत्मा शक्ति-शाली वृष्ण के अनेक अवतार हुए हैं, उन दिव्य गुणों से युक्त तथा पवित्र अवतारों में विषय में मैं ब्रह्मा ॥२४॥ देवदेव जगत्पति हजार युग तक रायन करते हैं और सहस्रयुग पूर्ण होने पर कार्यवश अवतार लेते हैं ॥२५॥ अनन्तर प्रज्जलित अमितुल्य तेजस्वी पुराणदेव ब्रह्मा, कपिल, शिव, देवा, राक्षस, नाग, अप्सरा, महानुभाव सनत्कुमार, महात्मा मनु, मगवान् प्रजापति तथा पुरो की सृष्टि करते हैं ॥२६-२७॥ जो हरि स्वानर, जगन्, देव, अशु, नर, राक्षस तथा राक्षस के नष्ट हो जाने पर समुद्र-मध्य में विराजमान थे, उन्होंने अतिराक्षसी तथा मुदामिलायी मधुकंठम की अपरिमित बर देकर निहत किया था ॥२६-२९॥ पूर्व काल में जब कमलनाभ मगवान् समुद्र में क्षयन कर रहे थे उस समय उस कमल से अपिणग सहित देवता उत्पन्न हुए थे ॥३०॥ महारमा हरि वा यह पीणर

१३. ०यत् बहिर्षत् मा० । २३. अप्राप्तिनं । ३३. ०प्य मनीस्वरा । पा० । ४१. कार्यवान् । ५३. ०वि अक्षरदेवगुणः । ६३. स. धीर्यवान् । ७३. ०प्रमाणा । ८३. ०के राष्ट्रानि वं० । ९३. ०ती प्रमत्तः । १०३. ०ताप्तेन । ११३. ०एवा वरं ततः । पु० । १२ ग. यत् ।

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मन । पुराण कथ्यते यत्र देवश्रुतिसमाहितम् ॥३१॥
 धाराहस्तु श्रुतिमुख प्रादुर्भावो महात्मन । यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो धाराह रूपमास्थित ॥३२॥
 वेदपादो यूपदण्ड ऋतुदन्तश्चितीमुख । अग्निजिह्वो वर्भरोमा ब्रह्मशीरो महातपा ॥३३॥
 अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वदाङ्ग श्रुतिभूषण । आज्यतासं द्रवतुण्ड सामघोषस्त्वरो महान् ॥३४॥
 सत्यधर्ममय श्रीमान्क्रमविक्रमसत्कृत । प्रायश्चित्तनखो घोर पशुजानुर्मुखाकृति ॥३५॥
 उद्गाता त्रो होमलिङ्गो बीजौषधिमहाफल । वाद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृत सोमशोणित ॥३६॥
 वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् । प्राग्वशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित ॥३७॥
 दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् । 'उपाकर्माष्टदक्षक' 'प्रवर्गवर्तभूषण ॥३८॥
 नानाच्छदोगतिपयो गुह्योपनिषदासन । छायापत्नीसहायोऽसी मणिशृङ्ग इवोत्थित ॥३९॥
 महीं सागरपर्यन्तां संशलवनकाननाम् । एकाण्वजलभ्रष्टामेकाण्वगत प्रभु ॥४०॥
 दण्ड्या य समुद्रृत्य लोकानां हितकाम्यया । सहस्रशीरो लोकादिश्चकार जगतीं पुन ॥४१॥
 एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना । उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा ॥४२॥

प्रादुर्भाव हे जहाँ देवतालोग समाहितचित्त होकर पुराणध्वनन करते हैं ॥३१॥ महात्मा (विष्णु) के धाराह अवतार का मुख वेद है जहाँ सुरश्रेष्ठ विष्णु धाराह रूप से स्थित है ॥३२॥ वेद उनके चरण है यूप दण्ड है यज्ञ दाँत है चिति (अग्नि-सत्त्वार) मुख है अग्नि जिह्वा है कुश रोम है ब्रह्म शिर है दिन और रात आँखें हैं वेदांग कण-भूषण हैं धी नाक है सूत्र भूषण है और समगान नायक स्वर है ॥३३-३४॥ वे महातपस्वी सत्यधर्ममय श्रीमान् तथा पराक्रम द्वारा सत्कृत हैं । प्रायश्चित्त उनका मयकर नख है और पशु के घुटने उनके मुख की आकृति है ॥३५॥ उद्गाता उनकी अँतड़ है । होम उनका लिंग है । महाफलशाली औषधियाँ बीज हैं । अन्तरात्मा बाजा है मन्त्र विहृत चूतड़ है सोम शाणित है वेदि कंधा है हविष्य गन्ध है, हव्य-कव्य अत्यन्त वेग है और प्राग्वश (यज्ञशाला में हविर्गृह के पूरक का घर) गारर है । वे वातिमान् तथा नाना दीक्षाओं से युक्त हैं ॥३६-३७॥ दक्षिणा उनका हृदय है । वे योगी महान् तथा महासत्रमय हैं । उपासन उनके कुण्डल हैं प्रवर्ग (होमानि का भेद) आवर्त-भूषण (चक्ररदार आभूषण विशेष) है नाना छद्म मार्ग हैं उपनिषद् आसन है और छाया पत्नी है । वे मणि पवत की तरह उठे हुए हैं । ॥३८-३९॥ जब पवत धन तथा कानन सहित समुद्र पवत पृथिवी एकाण्व हो गई तब लोकों के आदि तथा सहस्र शिर वाले प्रभु ने लोकों के हित के निमित्त एकाण्व में प्राप्त होकर दण्ड से पृथ्वा या उद्धार कर पुन संसार बसाया ॥४०-४१॥ इस प्रकार प्राचीन काल में प्राणियों के कल्याण के इच्छुक भगवान् ने यज्ञवराह होकर सागर के जल या धारण करने वाली पृथ्वी देवी का उद्धार किया ॥४२॥ द्विजगण ।

१ग यत्र । २क य ० क वेदस्तुति० । ३क ०स्तु कृतो जात प्रा० । ३ग ०तुहस्तादिकनीमु० ।
 ४क महात्मय । ५क ०समुत्तो । ६क ०प्रायमु० । ७क ०लिङ्ग फलजीवमहोषधि । बा० ।
 ८क मस्तिष्कविक्र० । ९क ०महाम० । १०क उपाक० । ११क ०कर्मोष्ठ० । १२क ०वर्मावलम्ब० ।

ह एष कथितो नारसिंहस्ततो द्विजाः। यत्र भूत्वा मृगन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हृतः ॥४३॥
 कृतयुगे नाम^१ सुरारिबलदपितः। दैत्यानामाविपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥४४॥
 वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च। 'जपोपवासनिरतस्तस्थौ' मौनव्रतस्थितः ॥४५॥
 शमदमाभ्या च ब्रह्मचर्येण चैव हि। प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च ॥४६॥
 वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजाः। विमानेनाकं बर्णेन हसयुवतेन भास्वता ॥४७॥
 इत्येवंसुभिः सार्धं महद्भिर्देवतस्तथा। रुद्रांश्चैव सहार्यंश्च यक्षराक्षसकिनरैः ॥४८॥
 भिः प्रदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा। नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाप्रहैः ॥४९॥
 पभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरेव च। राजर्षिभिः पुण्यतर्मगन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥५०॥
 चरगुरु श्रीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा। ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

॥०॥ तव भवतस्य तपसाग्नेन सुव्रत। वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥५२॥

हिरण्यकशिपुर्वाच

देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः। ऋषयो वाज्य मा शार्पः क्रुद्धा लोकपितामह ॥५३॥
 युस्तपसा युक्ता शर एष व्रतो मया। न शस्त्रेण न वाऽऽस्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ॥५४॥
 शुष्केण न चाऽऽर्ध्रेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यधः। पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्थबलवाहनम् ॥५५॥

। बराहवतार है। इसके बाद नरसिंह अवता ८ हुआ था, जिसमें सिंह होव ८ भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा था ३॥ पहले सत्ययुग में दैत्यों के आदिपुरुष बलभिमानी राक्षस (हिरण्यकशिपु) ने महान् तप किया ॥४४॥ ग्यारह ॥ पाँचवीं वर्षों तक वह मौनव्रत में स्थित होकर जप-उपवास करता रहा ॥४५॥ उसने शम, दम, ब्रह्मचर्य, तपस्या ॥ नियम से भगवान् प्रसन्न हुए ॥४६॥ द्विजबुन्द । इस से युक्त, दीप्तमान तथा सूर्य के समान वर्ण वाले विमान ॥ जप ब्रह्माजी आदित्य, धनु, मरुत, देवता, रुद्र, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस, विष्मर, दिशा, प्रदिशा, नदी, सागर, नक्षत्र, त आकाशचर, महाप्रह, देवर्षि, तपोवृद्ध मिद्ध, विद्वान्, राजर्षि, पुण्यतम, गन्धर्व तथा अप्सरागण से आवृत होकर ॥ के समीप आये। चराचर के गुरु तथा ब्रह्मानिधियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दैत्य से कहा ॥४७-५१॥

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रती । तुम्हारे इस तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो । तुम यथेष्ट वर ॥ ५२॥

हिरण्यकश्यप ने कहा—हे नरसिंह । मैं यही वर माँगता हूँ कि देव, अशुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस ॥ ऋषि तपस्या से युक्त होकर कभी स मुझ शार्प । दैत्यों न शस्त्र से, न अस्त्र से न पर्वत से, न वृक्ष से, न गुरु नीले पदार्थ से, न ऊपर और न नीचे ही मेरी मृत्यु हो। जो एक ही हस्त-प्रहार से सेना तथा चाहन समेत

यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति । भवेयमहमेवाकंः सोमो वायुर्हताशनः ॥५६॥
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः । अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥५७॥
घनदश्च घनाघ्नश्चो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या शरास्तात मया दत्तास्तयाद्भुताः । सर्वाङ्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्जगामाऽऽनु पितामह । वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मपिगणसेवितम् ॥५९॥
अतो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा । वरप्रदानं श्रुत्वा पितामहमुपस्थिताः ॥६०॥

देवा ऊचुः

वरेणानेन भगवन्वाधिप्यति स नोऽसुरः । तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्बधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६१॥
भगवन्सर्वभूतानां स्वयम्भूरादिकृत्प्रभु । स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्ययतं प्रकृतिर्ध्रुवम् ॥६२॥

व्यास उवाच

ततो लोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः । प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वदेवगणांस्तथा ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् । तपसोऽन्ते च भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥६४॥

मुझे मारने में समर्थ होगा, उसी से मेरी मृत्यु हो । मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, आकाश, श्राव, वाम, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर और यक्ष होऊँ ॥५३-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—तात । ये आश्चर्यकारी दिव्य वर मैं देता हूँ । तुम्हारी समस्त कामनायें पूरी होगी, इन्हें कोई समय नहीं ॥५८॥

व्यास ने कहा—इतना बहुर शीघ्र ही भगवान् पितामह ब्रह्मपिगणों से सेवित वैराज नामक ब्रह्मसदन में चले गये । तदनन्तर देव, नाग, गन्धर्व और मुनिबृन्द वरदान सुनकर ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए ॥५९-६०॥

देवों ने कहा—भगवन् । इस वर से वह राक्षस हम वध देगा । अतः कृपा करके उसका वध का ही उपाय सोचिये । भगवन् । आप अति-प्रणिया के आश्रितों स्वयम्भू, हव्यकव्या के स्रष्टा, अज्ययत, प्रकृति तथा ध्रुव हैं ॥६१-६२॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त आका के व्यापणकारी वाक्य को सुनकर भगवान् प्रजापति ने समस्त देवगणों से कहा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवबृन्द । वह तपस्या का फल अवश्य पायेगा । तप के अन्त में भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥६४॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पञ्चजन्मनः । स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥६५॥
 लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः । हिरण्यकशिपुर्देवो वरदानेन दपितः ॥६६॥
 आश्रमेयु महाभागान्मुनीन्वं संशितव्रतान् । सत्यधर्मरतान्दान्तास्तदा धर्षितवांस्तथा ॥६७॥
 त्रिदिवस्यांस्तथा देवान्पराजित्य महाबलः । त्रैलोक्यं व्रशमानीय स्वर्गे वसति सोऽसुरः ॥६८॥
 यदा वरमदोन्मतो विचरन्दानवो भुवि । यज्ञोपानकरोद्देत्यानयज्ञोपाश्च देवताः ॥६९॥
 आदित्या वसवः साध्या विश्वे च भरतस्तथा । शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ॥७०॥
 देवब्रह्मण्यं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम् । मूर्तं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥
 नारायणं विभुं देवं शरण्यं शरणं गताः ॥७१॥

देवा ऊचुः

प्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् । त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ॥७२॥
 त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम । उत्कृल्लामलपत्राक्ष शनुपक्षक्षयंकर ॥
 'क्षयाय दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः ॥७३॥

वासुदेव उवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् । तथैव त्रिदिवं देवाः 'प्रतिलप्स्यथ मा चिरम् ॥७४॥
 एषोऽहं सगण दैत्यं वरदानेन दपितम् । 'अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम् ॥७५॥

ध्यास ने कहा—पितामह ना बचन सुनकर देवगण प्रसन्नता से अपने-अपने दिव्य स्थानों पर चले गये । वर प्राप्त करते ही दैत्य हिरण्यकशिपु वरदान के गर्व से प्रजा को पीड़ित करने लगा । आश्रमों में व्रतनिष्ठ, सत्य-धर्मपरायण, इन्द्रियों के दमन करने वाले महाभाग मुनियों को वह कष्ट देने लगा । स्वर्गस्थ देवों की जीतिवारीनों लोक की वश में लाकर वह महाबली राक्षस स्वर्ग में वास करने लगा । जब बर के मद से उन्मत्त होकर उस दानव ने पृथ्वी पर विचरण करके दैत्यों की यज्ञ-भाग-भोक्ता तथा देवताओं को यज्ञ से वंचित कर दिया तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और मरुत्-गण महाबली, शरणदाता, देव-ब्रह्मण्य, यज्ञरूप, ब्रह्मदेव, सनातन, मूर्त, भव्य, भविष्य, प्रभु, लोकों से नमस्कृत, नारायण तथा व्यापक विष्णुदेव ने समीप उपस्थित हुए ॥६५-७१॥

देवों ने कहा—देवताओं के स्वामी ! हिरण्यकशिपु ने मय से बचाइये । सुरोत्तम ! आप हमारे परमदेव हैं, परम गुरु हैं और हम ब्रह्मा आदि देवों के परम धाता (पारण करने वाले) हैं । विरसित कमल के समान नेत्र-वाले ! शनुपक्ष का क्षय करने वाले ! दैत्यों के नाश के लिये हम आपकी शरण में आये हैं ॥७२-७३॥

वासुदेव ने कहा—देववृन्द ! भय त्यागो । मैं तुम्हें अमय देता हूँ । पीछे ही तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे । अभी मैं वरदान से गरुड तथा देवताओं से अवध्य दानवेन्द्र को गणसहित मार डालता हूँ । ॥७४-७५॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य 'त्रिदशेश्वरान् । हिरण्यकशिपोः स्थानभाजगाम महाबलः ॥७६॥
नरस्पर्धतनुं कृत्वा सिंहस्पर्धतनुं प्रभुः' । नारसिंहेन वपुषा पाणिं संपृश्य पाणिना ॥७७॥
घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः । घनजीमूतदीप्तोजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८॥
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा वृष्टशार्दूलविक्रमः । दृष्टदैत्यगर्गुपुतं हतवानेकपाणिना ॥७९॥
नृसिंह एष कथितो 'भूयोऽयं वामनः' परः । यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ॥८०॥
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा । विक्रमेस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१॥
विप्रचित्तिः शिवः शङ्कर्यः शङ्कुस्तथैव च । अयः शिरा अश्वशिरा ह्यप्रोवश्च वीर्यवान् ॥८२॥
वेगवान्केतुमानुषः 'सोऽग्रव्यग्रो महासुरः' । पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा) श्वोऽश्वपतिरेव च ॥८३॥
'प्रह्लादोऽश्वपतिः कुम्भः संह्लादो गमनप्रियः । अनुह्लादो हरिहयो' वाराहः' 'संहरोजुजः ॥८४॥
शरभः शलभश्चैव कुपयः' क्रोधनः क्रयः । बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुर्णो महास्वनः ॥८५॥
दीप्तजिह्वोऽर्कनयनो 'मृगपादो' मृगप्रियः । वायुर्गरिष्ठो नमुचिः 'सम्बरो' विस्करो महान् ॥८६॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च । कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥८७॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ । इन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः ॥८८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर देवताओं को विदा करके महाबलशाली मगवान् आधा शरीर मनुष्य का और आधा शरीर सिंह का बनावर हाथ से हाथ को छूते हुए हिरण्यकशिपु के स्थान पर आये ॥७६-७७॥ मेघ के समान वर्ण वाले, मेघतुल्य शब्द वाले, मेघतुल्य कान्ति वाले, मेघतुल्य वेग वाले और सिंह के सदृश पराक्रमी हरि ने अतिबलशाली दैत्य को देखकर अविमाननी दैत्यगणों से रक्षित हिरण्यकशिपु को एक ही हाथ से मार डाला ॥७९॥ यह नृसिंह-अवतार बतला दिया । अब दूसरा वामन-अवतार आता है, जिसमें दैत्यविनाशकारी वामन रूप धर कर बली विष्णु ने बलवान् बलि के यज्ञ में महाराक्षसों को समुच्च कर दिया था ॥८०-८१॥ (जैसे—) विप्रचित्ति, शिव, शङ्कु, अयःशङ्कु, अयःशिरा, अश्वशिरा, ह्यप्रोव, वीर्यवान् ॥८२॥ वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोऽग्रव्यग्र, महामुघ, पुष्कर, पुष्कल, शा (सा)श्व, अश्वपति ॥८३॥ प्रह्लाद, कुम्भ, संह्लाद, गमनप्रिय, अनुह्लाद, हरिहय वाराह, सहर्, अनुज, ॥८४॥ शरभ, शलभ, कुपय, क्रोधन, क्रय, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, शङ्कुर्ण, महास्वन ॥८५॥ दीप्तजिह्व, अर्कनयन, मृगपाद, मृगप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्बर, विस्करो, महान् ॥८६॥ चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता, क्रोधवर्धन, कालक, कालकोप, वृत्र, क्रोध, विरोचन ॥८७॥ गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापी, केतुमान्, बल-

१ख त्रिविश्व० । २क ख हरि । ३क ०योऽसौ वा० । ४क ०मनस्तत । य० । ५क. सोऽग्रव्य
हि म० । ६क ०ह्लाद स्वन० । ७क गगन० । ८क ०हरो वा० । ९ग. वराह । १०ग ०होरोजः ।
११क कुश । १२क मृदुता० । १३क मृदुभि० । १४क ख सम्बरो । १५क ख विस्वरो ।

असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः । 'स्वमित्रः' कालवदनः करालः केशिरेव च ॥८९॥
 एकाक्षश्चन्द्रमा' राहुः संह्लादः' सम्बरः' 'स्वनः । शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुशलपाणयः ॥९०॥
 अश्वघ्ननायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा । शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ॥९१॥
 पाशमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः । महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ॥९२॥
 नानाप्रहरणा घोरा नानावेशा महाबला' । कूर्मकुबकुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥९३॥
 खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा । मार्जारशिखिवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथा परे ॥९४॥
 तन्मेषाननाः शूरा गोजाविमहिषाननाः गोघाशल्लकिवक्त्राश्च' क्रोष्टृवक्त्राश्च दानवाः ॥९५॥
 आखुर्दुर्बुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा । भीमा मकरवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः ॥९६॥
 'अश्वाननाः खरमुखा मयूरवदनास्तथा । गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥९७॥
 चोरसंवृतगात्राश्च तथा' नीलकवाससः । उष्णोपिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥९८॥
 किरीटिनो लम्बशिखाः 'कम्बुग्रीवा सुवर्चसः । नानावेशधरा दैत्या मानामाल्यानुलेपनाः ॥९९॥
 स्वान्यायुधानि संपूह्य प्रदीप्तानि' च तेजसा । 'श्रममाणं' 'हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥१००॥

दर्शित ॥८८॥ असिलोमा, पुलोमा, बाष्कल, प्रमद, मद, स्वमित्र, कालवदन, कराल, केशि ॥८९॥ एकाक्ष, चन्द्रमा, राहु, संह्लाद, सम्बर, स्वन, एवम् शतघ्नी तथा चक्रहाय मे रखने वाले, मुशल हाथ मे रखने वाले ॥९०॥ अश्व, यन्त्र तथा आयुधो से युक्त, भिन्दिपाल, अस्त्र से युक्त, शूल तथा ऊखल हाथ मे रखने वाले, परशुधारी ॥९१॥ पाश तथा मुद्गर धारण करने वाले, परिघ हाथ मे रखने वाले, महाशिला के आयुध वाले, हाथ मे शूल लिये हुए दानव, ॥९२॥ नाना अस्त्रों से युक्त, मयानव, अनेक-वेशधारी, महाबली, बहुए तथा मुर्ग के समान मुंह वाले, खरगोश तथा उलूख के समान मुंह वाले ॥९३॥ गधे तथा ऊँट के सदृश मुख वाले, मूअर के समान मुंह वाले, बिलाड तथा मयूर के समान मुंह वाले, महामुख वाले ॥९४॥ परिवाल तथा भेडे के समान मुंह वाले, वीर, वील, बन्दरे तथा भैंसे के समान मुंह वाले, गहू तथा साही के समान मुंह वाले, सियार के समान मुंह वाले दानव ॥९५॥ बूहे तथा भेडन के समान मुंह वाले, भेडिये के समान मुख वाले, ग्राह के समान मुंह वाले, वर्राकुल पक्षी के समान मुंह वाले ॥९६॥ घाड़े के समान मुंह वाले गजचर्मधारी, कृष्णमृगचर्मधारी ॥९७॥ वस्त्र से ढके शरीर वाले, नीलवस्त्रधारी, पगडीधारी, मुकुटधारी, कुण्ड-धारी राक्षस ॥९८॥ लम्बी चोटी वाले, शस्त्र के समान ग्रीवा वाले, अतितेजस्वी, अनेक मालाओं तथा लेप से युक्त राक्षसवृन्द ने अपने चमकते हुए शस्त्र-अस्त्रा को लेकर पीर से पृथ्वी को नापते हुए भगवान् के ऊपर आक्रमण कर दिया ॥९९-१००॥ विष्णु ने अपने पैर-हाथों के प्रहार से दैत्यसमूह को नष्ट कर महामयानव रूप बनाकर पीछे

१ख स्वमित्र । ग सगुम् । २क कालवदन । ख वालनामन्व । ३ग ०न्द्रहा रा० । ४व ०हूरादो हूराद एव च । ५० । ५ग अमरः । ६ग स्वम । ७ख स ०द्वच श्रोष्टु० । ८ग ग मरुदानना । ९ख स ०पा पल० । १०ख कम्बुवष्टा । ११क ०पानीव ले । १२ख ०माणे हृषी० । १३ख ०वेश उपा० ।

प्रमय्य सर्वाङ्गैतेयान्यादहस्ततर्लंबिभु । रूपं कृत्वा महाभोगं 'जहाराऽऽशु स मेदिनीम् ॥१०१॥
 तस्य विक्रमतो भूमि चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे । नभः प्रक्रममाणस्य नाम्ना किल तथा स्थितौ ॥१०२॥
 'परमाक्रममाणस्य जानुदेशे ध्यवस्थितौ । विष्णोरभितवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातय ॥१०३॥
 हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्ना हत्वा चासुरपुगवान् । ददौ शक्राय वसुधा' विष्णुर्बल्यता धर ॥१०४॥
 एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मन । वेदविद्विद्विजरेतकथ्यते वैष्णव यश ॥१०५॥
 भूयो भूतात्मनो' विष्णो प्रादुर्भावो महात्मन । दत्तात्रेय इति रपात क्षमया परया युत ॥१०६॥
 तेन नष्टेषु 'वेदेषु प्रक्रियासु' मध्येषु च । चातुर्वर्ण्ये च सक्तीर्णे धर्मे शिथिलता गते ॥१०७॥
 'अतिवर्धन्ति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते । प्रजासु शोयमाणासु धर्मे चाऽऽकुलता गत ॥१०८॥
 सयज्ञा सक्रिया वेदा प्रत्यानीता हि तेन वै । चातुर्वर्ण्यमसक्तीर्णं कृत तेन महात्मना ॥१०९॥
 तेन हंहयराजस्य कातवीर्यस्य धीमत । वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥११०॥
 एतदबाहुद्वयं यत्ते तत्ते मम कृते' नृप । शतानि दश बाहूना भविष्यन्ति न सशय ॥१११॥
 पालयिष्यसि कृत्स्ना च वसुधा वसुधेश्वर । दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां युद्धस्यश्च भविष्यसि ॥११२॥
 एष वो वैष्णव श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुत शुभ । भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मन ॥११३॥
 यत्र बाहुसहस्रेण द्विपता दुर्जय रणे । रामोऽर्जुनमनीकस्य जघान नृपतिं प्रभु ॥११४॥

पृथ्वी का हरण कर लिया ॥१०१॥ विद्वानो का कहना है कि पृथ्वी नापने के समय सूयवद्रमा आमन 'किन्नाल' विष्णु का स्तन का बाध स्थित हुए आकाश नापने के समय व उनकी नाभि में और उससे ऊपर नापन का समय वे ऊपर जानुदेश में अवस्थित हुए ॥१०२॥ १०३॥ संपूर्ण पृथ्वी का हरण कर असुरपुंगवों को मारकर बलवाना भयंकर विष्णु ने हनु का पृथ्वी दे दी ॥१०४॥ यह महामा विष्णु का वामन अवतार का वगन आपस किया गया है । वनेता ब्राह्मण इस विष्णु का यग कहत है ॥१०५॥ पुन अखिला मा विष्णु का दत्तात्रेय नाम स प्रख्यात था अथवा क्षमा स युक्त अवतार हुआ ॥१०६॥ जिस समय वे धमगात्र तथा यग नष्ट हो रहे थे चारों वर्णों में साक्ष्य हो गया था धर्म में शिथिलता आ गई थी अथम बड़ रहा था सत्य नष्ट हो रहा था अथवा फट रहा था प्रजा छिन्न भिन्न हो रहा था और धर्म अस्त-व्यस्त हो गया था उस समय उन्होंने यग तथा धमगात्र सहित वेदा का पुन स्थापित किया । महामा ने चातुर्वर्ण्य का साक्ष्यरहित किया ॥१०७॥ १०९॥ वरदात्रेय धमगान् दत्तात्रेय ने हैहयराज कातवय का वरदान दिया—नृप । मरा कृपा से तुम्हारा दोनो बांह एक सहस्र भुजाओं में परिणत हो जायगा इसमें कोई संशय नहीं ॥११०॥ १११॥ पृथ्वीपति । तुम समस्त वसुधा का पालन करोगे और युद्ध में गानु-मनहो से दुर्निरीक्ष्य होगे ॥११२॥ यह वैष्णव अवतार अद्भुत तथा गुमराव हुआ । पुन महामा का परागुण अवतार हुआ जिसमें शक्तिमान राम ने रण में सहस्र भुजाओं के कारण गानुओं से अजय राजा अर्जुन (राजवय) का मार दिया ॥११३॥ ११४॥ राम ने रण में स्थित अर्जुन को पृथ्वी पर गिरा दिया । आक्रोश करते

रजस्यं पार्ष्विं राम. पातयित्वाऽर्जुनं भुवि। धर्षयित्वाऽर्जुनं रामः क्रोशमानं च मेघवत्॥११५॥
 कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः। परश्वधेन दीप्तेन 'ज्ञातिभिः सहितस्य वै॥११६॥
 कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मरुमन्दरभूषणा। त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी तेन नि.क्षत्रिया' कृता॥११७॥
 कृत्वा नि.क्षत्रियां चैना' भार्गवः सुमहायशाः। सर्वपापविनाशाय वाजिमेघेन चेष्टवान्॥११८॥
 यस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः। मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम्॥११९॥
 'वारणास्तुरगाञ्शुभ्राग्र्याश्च रथिनां वरः। हिरण्यमक्षयं धेनुर्गजेन्द्राश्च 'महीपतिः॥१२०॥
 ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेघे महायशाः। अद्यापि 'च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः॥१२१॥
 चरमाणस्तपो धोरं जामदग्न्यः पुनः प्रभुः। आस्ते वै* देववच्छ्रीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे॥१२२॥
 एष विष्णोः सुरेशस्य शादवतस्याव्ययस्य च। जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः॥१२३॥
 चतुर्विंशे युगे वाऽपि विश्वामित्रपुरःसरः। जज्ञे दशरथस्याय पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥१२४॥
 कृत्वाऽत्मानं महाबाहुदचतुर्धा प्रभुरीश्वरः। लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः॥१२५॥
 'प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निग्रहाय च। धर्मस्य च विबुद्धयर्थ' जज्ञे तत्र महायशाः॥१२६॥
 तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतहिते रतम्। यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्विंश वनेऽप्यसत्॥१२७॥
 लक्ष्मणानुचरो रामः' सर्वभूतहिते रतः। चतुर्विंश वने तप्त्वा तपो वर्षाणि राघवः॥१२८॥

हुए अर्जुन को मेघ की तरह फटकार कर भृगुपुत्र ने अपने चमकते हुए फरसे से उसकी हजार बाहों को काट दिया और उसने भाई-बन्धुओं को भी विध्वस्त कर दिया॥११५-११६॥ सुमेरु तथा मन्दराचल से भूषित एवम् क्षत्रियों से व्याप्त पृथिवी को राम ने इक्कीस बार नि.क्षत्रिय किया॥११७॥ इसको क्षत्रियविहीन बना कर महायशस्वी राम ने सब पापी के विनाश के लिए अश्वमेध यज्ञ किया॥११८॥ जिस यज्ञ में भृगुनन्दन ने महादान की दक्षिणा में मारीचपुत्र कश्यप को पृथ्वी दे दी॥११९॥ उस अश्वमेध नामक महायज्ञ में महायशस्वी राम ने हाथी, उज्ज्वल घोड़े, रथ, अक्षय मुक्कण, धेनु तथा गजेन्द्र दान किये। आज भी लोकहित के निमित्त जमदग्नि-पुत्र राम महेन्द्र नामक उत्तम पर्वत पर धोर तप करते हुए देवता के समान विद्यमान हैं॥१२०-१२२॥ सुरेश, नित्य, अव्यय तथा महात्मा विष्णु का यह परमुराम-अवतार हुआ। चौबीसवें युग में भी विश्वामित्र के आगे चलने वाले कमललोचन राम दशरथ के पुत्र हुए॥१२३-१२४॥ अपने को चार रूपों में विभक्त करके सूर्य के समान तेजस्वी महाशक्तिमान् ईश्वर लोक में राम नाम से ख्यात हुए॥१२५॥ लोक को प्रसन्न करने, राक्षसों का दलन करने तथा धर्म की वृद्धि करने के लिए महायशस्वी (राम) ने वहाँ अवतार लिया॥१२६॥ लोग उन्हें मनुष्यों के राजा तथा अखिल प्राणियों के हित में रत रहते हैं, जिन्होंने चौदह वर्षों तक वनवास किया और जिनने अनुचर लक्ष्मण थे। रामस्त प्राणियों के बल्याण में निरत 'रघुवरी' राम ने चौदह वर्ष वन में तप किया। उनकी स्त्री लोच मे सीता नाम से प्रख्यात

रूपिणी तस्य 'पाद्वस्था सीतेति प्रथिता 'जने । पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२९॥
 जनस्याने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार स । तस्यापकारिण क्रूर पौलस्त्य' मनुजर्षभ ॥१३०॥
 सीताया पदमन्विच्छन्निजधान महायशः । देवासुरगणानां च यक्षराक्षसभोगिनाम् ॥१३१॥
 यत्रावध्य राक्षसेन्द्र रावण युधि' दुजयम् । युक्त राक्षसकोटीभिर्नोलाञ्जनचयापमम् ॥१३२॥
 श्रैलाक्ष्यद्रावण क्रूर रावण राक्षसेश्वरम् । दुजय दुर्धर' दृप्त शार्दूलसमविक्रमम् ॥१३३॥
 दुर्निरीक्ष्य सुरगणैर्वरदानेन दपितम् । जघान सच्चिवं सार्धं ससैन्यं रावण युधि ॥१३४॥
 महाभ्रगणसकाश महाकाय महाबलम् । रावण निजधानाञ्जु रामो भूतपति पुरा ॥१३५॥
 सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः । वाली विनिहत सद्ये सुग्रीवश्चाभिपचितः ॥१३६॥
 मयोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः । हतो मधुवने वीरो वरमत्तो महासुरः ॥१३७॥
 यज्ञविघ्नकरो येन मुनीनां भावितात्मनाम् । मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिना वरो ॥१३८॥
 निहतो च निराशो च कृतो तेन महात्मना । समरे युद्धशौण्डेन तथाऽप्ये चापि राक्षसाः ॥१३९॥
 विरापश्च कवधश्च राक्षसो भीमविज्रभौ । जघान पुष्पव्याघ्रो गधवौ' शापमोहिताः ॥१४०॥
 हुताशनार्काशुतडिदगुणाभं प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खं ।
 महेन्द्रवज्राशनिमुल्यसारं' रिपून्स राम समरे निजघ्ने ॥१४१॥

तथा सुदरी थी । लक्ष्मी की तरह वह स्वामी का अनुगमन करती थी ॥१२७-१२९॥ जनस्यान म निवास करते हुए उन्होंने देवताओं का वाय किया । स ता का अन्वेषण करते हुए महायशस्वी राम ने अपकारी तथा क्रूर रावण का वध किया । युद्ध म लक्ष्मी राम ने देव अमुर यक्ष राक्षस तथा सर्पों से अवध्य युद्ध मे दुर्जय, श्रैलाक्ष्य के सतापक क्रूर महाहिमान व्याघ्र के समान पराक्रम' देवगणों से दुर्निरीक्ष्य वरदान से दपित करोड़ों राक्षसों से युक्त नील अञ्जन की रागि तुय महाभेगण के सद्ग महाकाय तथा महाबली रावण को सेना तथा मन्त्रीगण सहित निहत किया ॥१३०-१३४॥ सुग्रीव के लिये उन्होंने युद्ध मे चद्रों के स्वामी महाबलशाली वाली को मारा और सुग्रीव को अभिपन्न किया ॥१३५-१३६॥ मधुवन में वीर राम ने मधु के पुत्र लवण नामक महाहिमानी दानव को विनष्ट किया ॥१३७॥ उस महामा ने सयतात्मा मुनियों के यज्ञ मे विघ्न करने वाले अयन्त बलगाही मारीच और सुबाहु को निराग तथा निहत किया । युद्धदमद राम ने समर में अन्य अनेक राक्षसों को भी विध्वस्त किया ॥१३८-१३९॥ पुष्पयुगल रायव ने मयवर पराक्रम' विराघ और कवच नामक राक्षसों को जो शापमोहित रूपव से मार गिराया ॥१४०॥ रण म राम ने अग्नि भूयविरेण तप्त सुवण तथा विद्युत् के समान प्रमा वाले और दृढ के वध के समान सारयुक्त बाणों से शत्रुओं को निहत किया ॥१४१॥ देवताओं से भी अजेय देवानुशों

१स गृहिणी । २स रामस्य । ३स ग जनै । ४क ०स्त्य पुरणपमा । सी० । ५स ०पमा । सी० ।
 ६स मुनि । ७क दमद । ८ ०पविलतो । स पवीशितो । ९ग ०साट सरे । सरीरेण विपोजितो बलान् । त० ।

तस्मै दत्तानि 'शस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता । वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धर्षाणां सुरैरपि ॥१४२॥
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः । भग्नं माहेश्वरं चापं श्रीडता लीलया पुरा ॥१४३॥
एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः । दशश्वमेधाञ्जारूष्यानाजहार निरगेलान् ॥१४४॥
नाश्रूयन्ताशुभा वाचो^१ नाऽऽकुलं माहती ववौ । न वित्तहरणं चाऽऽसीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥१४५॥
परिदेवन्ति विधवा नानर्याश्च कदाचन । 'सर्वमासीच्छुभं तत्र रामे राज्यं प्रशासति ॥१४६॥
न प्राणिनां भयं चाऽऽसीज्जलग्न्यनिलघातजम् । न चापि बृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि चक्रिरे ॥१४७॥
'ब्रह्मचर्यपरं क्षत्रं 'विशस्तु क्षत्रिये रताः । शूद्राश्चैव हि वर्णास्त्रोऽशुश्रूयन्त्यनहंकृताः ॥१४८॥
नार्यो नात्यचरन्भर्तृभार्या^२ नात्यचरत्पतिः । सर्वमासीज्जगद्दान्त^३ निर्दस्पुरभवन्महो ॥१४९॥
राम एकोऽभवद्भूतां रामः पालयिताऽभवत् । आसन्वर्षसहस्राणि तया पुत्रसहस्रिणः ॥१५०॥
अरोगाः प्राणिनश्चाऽऽसन्ग्रामे राज्यं प्रशासति । देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ॥१५१॥
पृथिव्यां 'समवायोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति । गायामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥१५२॥
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः । श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः ॥१५३॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः । दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१५४॥
श्रुत्वासामयजुषा घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः । अव्युच्छिन्नोऽभवद्वाष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति ॥१५५॥

के वध के लिए धीमान् विश्वामित्र ने राम को शस्त्र दिये ॥१४२॥ महात्मा जनक के यज्ञ में राम ने खेलते-खेलते सहज ही में शिव के घनुष को तोड़ डाला ॥१४३॥ इतने कर्मों को करके धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राम ने विघ्न-बाधाओं से रहित आरुध्य नामक दश अश्वमेध यज्ञ किये ॥१४४॥ राम के राज्य-काल में असुभ वाणी नहीं सुनी जाती थी, व्याकुल करने वाला वायु नहीं बहता था, वित्तों का हरण नहीं होता था, विधवायें अनुताप नहीं करती थी और अनर्थ कभी नहीं होते थे । राम-राज्य में सब कुछ कल्याणमय होते थे, प्राणियों को जल, अग्नि तथा वायु के आघात-जग्य मय नहीं होता था, बृद्धों को बालकों का श्राद्ध नहीं करता पड़ता था, क्षत्रिय ब्राह्मणों की वैश्य क्षत्रियों की और शूद्र सौतों वर्णों की सेवा अधिमानरहित भाव से किया करते थे, पत्नियां पतियों को और पति पत्नियों को नहीं छोड़ते थे, सम्पूर्ण जगत् नियंत्रित एवम् चौररहित था, एक राम ही सबके स्वामी तथा पालन-वर्ता थे, प्राणी नारीय तथा सहस्रो पुर्णों से युक्त होकर हजारों वर्णों तक जीते थे ॥१४५-१५०॥ राम के तत्त्व को जानने वाले पुराणवेत्ता लोग बुद्धिमान् राम के माहात्म्य तथा इस विषय में एक गाथा भी गाते हैं कि राम के राज्य-शालन के समय पृथिवी पर देवता, ऋषि तथा मनुष्यों का मिलन होता था । श्यामवर्ण, युवक, लालनेत्र, प्रदीप्तमुख, मितभाषी, आजानुबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध तथा महाबाहु राम ने दश हजार वर्षों तक राज्य किया था ॥१५१-१५४॥ उस महात्मा के राष्ट्र में श्रुक्, साम तथा यजुर्वेदों का घोष, घनुष का घोष एवम् 'दान करो और उपभोग करो' वा शब्द

सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥१५६॥
 ईजे क्रतुशतं पुण्यं समाप्तवरदक्षिणं । हित्वाऽयोध्यां दिवं यातो राघवो हि महाबलः ॥१५७॥
 एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकु कुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः ॥१५८॥
 अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः । विख्यातो मायुरेकल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥१५९॥
 यत्र शाल्वं च चैद्यं च कंसं द्विविदमेव च । अरिष्टं वृषभं कैशं पूतनां दैत्यदारिकाम् ॥१६०॥
 नामं कुबल्यापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा । दैत्यान्मानुषदेहेन सूदयामास वीर्यवान् ॥१६१॥
 छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः । नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥१६२॥
 हतानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा । दुराचाराश्च निहिताः पार्ष्णिवा ये महीतले ॥१६३॥
 एष लोकहितार्थाय प्रादुर्भावो महात्मनः । कल्की विष्णुयशा नाम शम्भलप्रामत्संभवः ॥१६४॥
 सर्वलोकहितार्थाय भूयो देवो महायशः । एते चान्ये च बहवो दित्या देवगणवन्तः ॥१६५॥
 प्रादुर्भावः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः । यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ॥१६६॥
 पुराणं धत्ते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् । एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ॥१६७॥
 कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्बभौ । पीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ॥१६८॥
 विष्णोरमितवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः ॥१६९॥

निरन्तर होता ही रहता था । सात्त्विक, गुणसंपन्न तथा अपने तेज से दीप्यमान दशरथ-पुत्र राम सूर्य-चन्द्र से भी अधिक सुशोभित थे ॥१५५-१५६॥ महाबलशाली राघव ने सबको पवित्र यज्ञ किये, उत्तम दक्षिणा दी और (अन्त में) अयोध्या छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की । इसी प्रकार इक्ष्वाकु कुलमुपगम महाबाहु राम गणसहित रावण को मारकर स्वर्ग पधारें ॥१५७-१५८॥ अखिललोकहित के लिये महात्मा विष्णु का दूसरा (वृष्ण) अवतार मायुर कल्प में प्रसिद्ध ही है, जिसमें शाल्व, शिशुपाल, कंस द्विविद अरिष्ट, वृषभ, कैश, दैत्य-बन्ध्या, पूतना, कुबल्यापीड नामक हाथी, चाणूर, मुष्टिक तथा दैत्यो को मनुष्यसरीर से शक्तिशाली भगवान् ने विलुप्त किया था । उन्होंने अद्भुत कर्म करने वाले बाण की सहस्र मुजाओ को बाटा, युद्ध में नरक तथा महाबली काल्यवन को मारा तेज से राजाओ के अखिल रत्नो का अपहरण किया और पृथ्वीतल पर जितने दुराचारी राजा थे, उन सबका निहृत किया ॥१५९-१६३॥ महात्मा का यह अवतार लोक-कल्याण के निमित्त हुआ था । पुनः महायशस्वी (विष्णु) देव निखिल-लोक-हित के निमित्त शम्भलप्राम में विष्णुयशस नाम से कल्की अवतार लिये ॥१६४॥ ये और दूसरे भी बहुत से रम्य तथा देवताओ से आवृत अवतार पुराणों में ब्रह्मवादिनों द्वारा गाये जाते हैं । अवतारों के वर्णन करने में देवगण मुग्ध हो जाते हैं । वेद और श्रुति से सम्मत पुराण इस विषय में प्रमाण है । यह अखिल लोकों के गुरु परमात्मा के अवतार का वर्णन संक्षेप में किया गया है । अमित शक्तिशाली विष्णु के अवतारों का वर्णन जो मनुष्य अजलि-बद्ध होकर सुनता है, उसके पितर सुप्त हो जाते हैं । योगेश्वर की इस योगभाषा को सुनकर मनुष्य सब पापा से मुक्त

एताश्च योगेश्वरयोगमायाः, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः।

ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात् ॥१७०॥

एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहराः पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छामः पुण्यधर्माभूतस्य च । मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि नः ॥१॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । वेत्ति सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वां महामतिम् ॥२॥

श्रूयते यमलोकस्य मार्गः परमदुर्गमः । दुःखक्लेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः ॥३॥

कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदतां वर ॥४॥

मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने ॥५॥

हो जाता है और दीप्ति ही मयवत्कृपा से ऋद्धि, समृद्धि तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता है ॥१६५-१७०॥
मुनिवर । इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरको का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने । आपके मुख से निष्पन्न पवित्र तथा धर्ममय वचनाभूत के पान करने से हमें तृप्ति नहीं मिलती, प्रत्युत उत्सुकता बढ़ती ही जा रही है । आप उत्पत्ति, प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों की गति को जानते हैं । इसलिये आपसे पूछ रहे हैं । मुनते हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम, कष्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है । वक्ताओं ने श्रेष्ठ । कैसे उस मार्ग से प्राणी यमलोक जाते हैं ? उस मार्ग का कितना प्रमाण है ? हमें बतलाइये । सर्वज्ञ । मुने । हम पूछते हैं । आप पूर्णतः सब वनग्राह्ये । मुने । किस उपाय, दान, धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते ? मनुष्यलोक तथा

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च । मानुषस्य च याम्यस्य लोकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
 'कयं च स्वर्गंति यान्ति नरकं केन कर्मणा । स्वर्गस्थानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
 कयं सुकृतिनो यान्ति कयं दुष्कृतकारिणः । किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
 जीवस्य^१ नोयमानस्य यमलोकं^२ ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूल वदतो मम सुव्रताः । संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
 सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम् । उत्क्रान्तिकालादारभ्य यया नान्यो वदिष्यति ॥१०॥
 स्वहृषं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छय सत्तमाः । यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
 योजनानां सहस्राणि पडशोतिस्तदन्तरम् । तप्तताम्रमिवाऽऽतप्तं^३ तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
 तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जोवसंज्ञकं^४ । पुण्यापुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतोऽधमा^५ ॥१३॥
 द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः । येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
 नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च । कुम्भीपाको महाघोरः शात्मलोऽय विमाह्नः ॥१५॥
 कोटादः कुमिभक्षश्च ना(ला)लाभक्षो भ्रमस्तथा । नद्यः पूषवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च ॥१६॥
 अग्निज्वाला महाघोरः संदंशः शुनभोजनः । घोरा वैतरणी चैव असिपत्रधनं तथा ॥१७॥
 न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च । न वाप्यो दीधिका वाऽपि न कूपो न^६ प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक मे वित्तना अन्तर है ? कैसे स्वर्ग मिलता है ? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है ? स्वर्गस्थान वित्तने है ? नरक वित्तने है ? घमर्त्ता कैसे जाते हैं ? पापी कैसे जाते हैं ? उनका क्या रूप है ? क्या प्रमाण है ? दानों का वर्ण कैसे होना है ? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे में भी हमें बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियों^१ मुनिप्रेष्ठों^२ मुझसे सुनिये । संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नहीं है । इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नहीं कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ । यमलोक तथा मनुष्यलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है । यमलोक का माग तपे तबि ये समान सतप्त बहा गया है ॥११-१२॥ जीव सनक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं । पुण्यात्मा पवित्र लाल को जाते हैं और पापी पापलोक को । यम के राज्य में बाँट स नरक हैं, जिनमें पुण्य-पुण्य कुल^३ भी जीव सताये जाते हैं ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शात्मल, विमाह्न, कोटाद, कुमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीप बहाने वाली नदियाँ, शानित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाला, महाघोर, संदश, शुनभोजन, भयंकर वैतरणी तथा असिपत्रधन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षों की छाया, न वादालियाँ, न सरोंवर, न तालाव, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ, न पर्वत ही हैं । यम के मार्ग में कोई विश्राम स्थान

१। कर्मणा केन नरक स्वर्ग वा मनुजा मुने । स्व० । २। ०स्य नियमात्तस्य । ३। ०लोके व्र० ।
 ४। ०न एव मार्ग उदाहृत । त० । ५। ०सप्तये । पु० । ६। महारौद्रः । ७। न नदी प्लवाः । न ।

एताश्च योगेश्वरयोगमाया, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापं ।

ऋद्धिं समृद्धिं विपुलाश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात्

॥१७०॥

एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहरा पुण्या प्रादुर्भावा प्रकीर्तिता ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णो प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छामः पुण्यधर्माभूतस्य च । मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि न ॥१॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । वेत्ति सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वा महामतिम् ॥२॥

श्रूयते यमलोकस्य मार्गं परमदुर्गमं । दुःखक्लेशकरं शश्वत्सर्वभूतभयावहं ॥३॥

कथं तेन नरा यावन्ति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदता वर ॥४॥

मुने पृच्छामः सर्वज्ञं ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने ॥५॥

हा जाता है और सारा हा भगवच्छपा से ऋद्धिं समृद्धिं तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता है ॥१६५ १७०॥

मुनिवर ! इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवा अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरको का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने ! आपके मुख से निःसृत पवित्र तथा धर्ममय वचनभूत क पाप करने से हमें तृप्ति नहीं मिलती प्रत्युत उन्मुक्तता बढ़ती ही जा रहा है । आप उत्पत्ति प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों का गति को जानते हैं । इसलिये आपसे पूछ रहे हैं । मुने हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम वष्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है । वक्ताओं में श्रद्धा । कैसे उस मार्ग से प्राणा यमलोक जाते हैं ? उस मार्ग का कितना प्रमाण है ? हमें बतलाइये । सर्वज्ञ ! मुने ! हम पूछते हैं । आप पूर्णतः सब बतलाइये । मुने ! किछ उपाय दान धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख भण्डों को प्राप्त नहीं होते ? मनुष्यलोक तथा

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। मानुषस्य च याम्यस्य लाकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
‘कथं च स्वर्गंति यान्ति नरकं केन कर्मणा। स्वर्गस्यानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कथं सुकृतिनो यान्ति कथं दुष्कृतकारिणः। किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
जीवस्य नोयमानस्य यमलोकं’ ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला धृवतो मम सुव्रताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्। उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥१०॥
स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छथ सत्तमा। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
योजनानां सहस्राणि षडशोतिस्तदन्तरम्। तप्तताम्रमिवाऽऽतप्तं तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
तद्वश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः। पुण्यानुपुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतोऽधमाः ॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च। कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽयं विमाहनः ॥१५॥
कोटादः कृमिभक्षश्च ना(ला)लाभशो भ्रमस्तथा। नद्यः पूषवहाश्चान्या रुधिराम्भस्तथैव च ॥१६॥
अग्निज्वाला महाघोरः संदशः शुनभोजनः। घोरा वंतरणी चैव असिपत्रवनं तथा ॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च। न वाप्यो दीधिका वाऽपि न कूपो न प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक में कितना अन्तर है? कैसे स्वर्ग मिलता है? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है? स्वर्गस्थान कितने हैं? नरक कितने हैं? धर्मात्मा कैसे जाते हैं? पापी कैसे जाते हैं? उनका क्या रूप है? क्या प्रमाण है? दानों का वर्ण कैसा होता है? यमलोक को लिये जाते हुए जीव के बारे में भी हमें बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुव्रतियों! मुनिश्रेष्ठों! मुझसे सुनिये। संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नहीं है। इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नहीं कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ। यमलोक तथा मनुष्यलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है। यमलोक का मार्ग तपे तपे के समान सतप्त कहा गया है ॥११-१२॥ जीव सज्ञक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं। पुण्यात्मा पवित्र लाक को जाते हैं और पापी पापलोक का। यम के राज्य में बाँट स नरक हैं, जिनमें पृथक्-पृथक् दुष्कर्मी जीव सताये जाते हैं ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमाहन, कोटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, भ्रम, पीष बहाने वाली नदियाँ, शोणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाला, महाघोर, संदश, शुनभोजन, भयकर वंतरणी तथा असिपत्रवन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षों की छाया, न बावर्लियाँ, न सरोवर, न तालाब, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ न पर्वत ही हैं। यम के मार्ग में कोई विश्राम-स्थान

१ग कर्मणा केन नरक स्वर्ग वा मनुजा मुने। स्व०। २ख ०स्य नियमास्तस्य। ३ख ०लोके ब्र०।
४क ०न न एतन्मात्र उदाहृतं। त०। ५ग, ०सप्तये। पु०। ६क. महारौद्रः। ७क न नदी प्लवा। न।

न मण्डपो नाज्यतनं 'न नद्यो न च पर्वताः। न किञ्चिदाश्रमस्थानं विद्यते तत्र वर्त्मनि ॥१९॥
 यत्र विश्रमते श्रान्तः 'पुरुषोऽतीव कर्षितः। अवश्यमेव गन्तव्यः स सर्वेऽस्तु महापथः ॥२०॥
 प्राप्ते काले तु संत्यज्य सुहृद्बन्धुधनादिकम्। क्षरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्चोद्भिजास्तथा ॥२१॥
 जङ्गमाजङ्गमाश्चैव गमिष्यन्ति महापथम्। देवासुरमनुष्यैश्च वैवस्वतवशानुगं ॥२२॥
 स्त्रीपुंनपुंसकैश्चैव पृथिव्यां जीवसंज्ञितैः। पूर्वाह्णे चापराह्णे वा मध्याह्ने वा तथा पुनः ॥२३॥
 संध्याकालेऽर्धरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽप्युपस्थिते। वृद्धैर्वा मध्यमैर्वाऽपि यौवनस्यैस्तथैव च ॥२४॥
 गर्भवासेऽथ बाल्ये वा गन्तव्यः स महापथः। प्रवासस्यैर्गृहस्यैर्वा पर्वतस्यैः स्थलेऽपि वा ॥२५॥
 क्षेत्रस्यैर्वा जलस्यैर्वा गृहमध्यगतैस्तथा। आसीनैश्चास्थितैर्वाऽपि शयनीयगतैस्तथा ॥२६॥
 जाग्रद्भिर्वा प्रसुप्तैर्वा गन्तव्यः स महापथः। इहानुभूय निर्दिष्टमायुर्जन्तुः स्वयं तदा ॥२७॥
 तस्यान्ते च स्वयं प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते। जलमग्निविषं शस्त्रं क्षुब्ध्याधिः पतनं गिरेः ॥२८॥
 निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते। विहाय सुमहत्कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥२९॥
 अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं 'स्वकर्मजम्। दृढं शरीरमाप्नोति 'सुखदुःखोपभुक्तये ॥३०॥
 तेन भुङ्क्ते स ऋच्छ्राणि पापकर्ता नरो भूशम्। सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो' धमक्षये ॥३१॥
 ऊष्मा प्रकुपितः काये 'तीव्रवायुसमीरितः। भिनन्ति ममस्थानानि क्षीप्यमानो निराधनः ॥३२॥
 उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुज्यता (क्ताना) मम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥३३॥

नदी है, जहाँ अत्यन्त चलने से श्रान्त जीव आराम करे। उस महापथ से सबको प्रयाण करना ही पड़ता है ॥१८-२०॥
 बाल पट्टेबने पर मित्र, बन्धु, धन आदि को छोड़कर जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, स्यावर, जगम-समी महापथ से जाते हैं ॥२१॥ वैवस्वत (मनु) के अनुगामी देव, राक्षस, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, नपुंसक तथा पृथ्वी पर जितने जीव-संज्ञक प्राणी हैं, वृद्ध या मध्यवयस्क या युवक या गर्भवासी या बालक होकर वे सब पूर्वाह्णे मे या अपराह्णे मे या मध्याह्ने मे या संध्याकाल या आधी रात को या प्रातः काल उस महापथ पर जाते हैं। प्रवास मे, गृह मे, पर्वत पर, स्थल मे, क्षेत्र मे, जल मे तथा गृह-मध्य मे रहते, बैठते, खड़े होते, शय्या पर जाते, जागते तथा सोते हुए प्राणी उस महापथ पर जाते हैं ॥२२-२६॥ यहाँ निर्धारित आयु तक भोग करके स्वयं न चाहता हुआ भी प्राणी प्राणो से मुक्त हो जाता है। जल, अग्नि, विष, शस्त्र, मूख, व्याधि, पर्वत-पतन—इनमें से किसी निमित्त को प्राप्त कर जीव प्राणो से मुक्त हो जाता है और अति महान् पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग कर अपने कर्मों से उत्पन्न अन्य यातना-शरीर को प्राप्त करता है। सुख-दुःख के उपभोग के लिए दृढ शरीर प्राप्त होता है ॥२७-३०॥ उसी से पापी मनुष्य यमालय मे लाया जाने पर अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मात्मा मनुष्य प्रसन्न होकर सुख भोगता है ॥३१॥ शरीर मे तीव्र वायु द्वारा प्रेरित गर्मी बढ़ जाती है और जलते हुए अग्नि की तरह ममस्थानो को पकाने लगती ॥३२॥ तब खाये-पिये हुए भक्ष्य तथा जल की अधोगति को रोककर उदान नामक वायु ऊपर की ओर बढ़ता जाता

ततो येनान्बुदानानि कृतान्यध्वरसास्तथा । दत्ताः स तस्यामाह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥३४॥
 अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूर्वेण चेतसा । सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाऽप्यन्नेन वै तदा ॥३५॥
 येनानूतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च । आस्तिकः श्रद्धाधानश्च सुखमृत्युं स' गच्छति ॥३६॥
 देवब्राह्मणपुत्रायां निरताश्चानसूयकाः । शुक्ला वदान्या ह्योमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥३७॥
 यः कामान्नापि संरम्भात् द्वेषाद्धर्ममृत्युञ्जेत् । यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमुच्छति ॥३८॥
 वारिदास्तृषितानां ये क्षुधिताभ्रप्रदायिनः । प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम् ॥३९॥
 शोतं जयन्ति धनदास्ताप'चन्दनदायिनः । प्राणघ्नी' वेदनां कष्टां ये 'चान्योद्वेगधारिणः' ॥४०॥
 मोहं ज्ञानप्रदातारस्तथा दीपप्रदास्तमः । कूटसाक्षी मृषावादी यो' गुरुनिन्दास्ति वै ॥४१॥
 ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा ये वेदनिन्दकाः । विभोषिणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः ॥४२॥
 आगच्छन्ति' दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तथा' । प्राप्तेषु दूषयं तेषु जायते तस्य वेषयुः ॥४३॥
 ऋन्त्यविरतः सोऽय भ्रातृमातृपितृस्तथा । सा तु वागस्कृता विप्रा एकवर्णा विभाव्यते ॥४४॥
 दृष्टिबिभ्राम्यते' त्रासात्कासावृष्टद्यत् (विष्टम) थाऽननम्' । ततः स वेदनाविष्टं तच्छरीरं
 विमुञ्चति ॥४५॥

हे । जो मनुष्य अन्नदान तथा जलदान किये रहता है, उसे वह दत्त वस्तु उस विपत्ति में आनन्द देता है । जिसने पवित्र पित्त से श्रद्धापूर्वक अन्नदान किया है, उसे बिना अन्न के भी उस समय तृप्ति मिलती है ॥३३-३५॥ जो असत्य नहीं बोलता, प्रीतिभेद नहीं करता तथा आस्तिक एवम् श्रद्धालु है, वह सुख से मृत्यु प्राप्त करता है ॥३६॥ जो मनुष्य देव-ब्राह्मणों की पूजा में निरत रहता है, किसी से डाह नहीं करता तथा स्वच्छ, दानी एवम् लज्जाशील है उसकी मृत्यु सुखपूर्वक होती है ॥३७॥ जो न इच्छा से, न कठिनाई से, न द्वेष से ही धर्म का परित्याग करता है और शास्त्रविहित वर्म करता है तथा सौम्य है, वह सुख से मरता है ॥३८॥ जो नर प्यासे को जल तथा मूत्र को अन्न देता है, वह समय आने पर सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त करता है ॥३९॥ धन देने वाले सर्वों को जीतते हैं, चन्दन देने वाले धर्मों को जीतते हैं और दूसरे के उद्वेग को दूर करने वाले जन प्राणनाशिनी वेदना को पार कर लेते हैं । ॥४०॥ ज्ञानदाता मोह को, तथा दीपदाता अंधकार को पार करता है । मिथ्या गवाही देने वाले, असत्यवादी तथा वेदनिन्दक व्यक्ति मोह से मृत्यु प्राप्त करते हैं । भयकर, दुर्गन्ध तथा मुद्गर हाथों में लिये यम के दुरात्मा पुरुष उनके पास आते हैं, जिन्हें देखते ही वे नापने लगते हैं ॥४१-४३॥ तब वे माई, माता, पिता आदि के नाम लेकर विलगने लगते हैं । विप्रबुद्ध । उनकी वह अस्कृष्ट वाणी एकाक्षर-सी प्रतीत होती है ॥४४॥ डर से आँखें धूमने लगती हैं और भुँह लारों की दृष्टि करने लगता है, सब वे वेदनायुक्त शरीर को छोड़ देते हैं और वायु से प्रेरित होकर दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं । वह शरीर माता-पिता से उत्पन्न नहीं होता । वह केवल कर्म-भोग के लिये

१ ग समुच्छ० । २ क ०५ पवन० । ३ क प्राणितो । ४ क प्राणिनो । ५ क चान्योद्वेगधारि०
 ५ ग ०गारि० । ६ क योऽध्वर्मननु० । ७ ग ०च्छन्तो दु० । ८ क. ०स्तदा । प्रा० । ९ क ०भ्रान्तनेत्रा सा
 कासोच्छ्वासेन वेपितम् । १० क ०म् । अन्तश्च वै ।

वाय्वप्रसारी तद्रूपदेहमन्यत्प्रपद्यते । तत्कर्मयातनार्ये च न मातृपितृसंभवम् ॥४६॥
 'तत्प्रमाणव्योवस्थासंस्थानैः' प्राप्यते व्यथा । ततो दूतो यमस्याथ पाशेर्बध्नाति दारणः ॥४७॥
 जन्तोः संप्राप्तकालस्य वेदनातस्य' वं भृशम् । भूतैः संत्यक्तदेहस्य कण्ठप्राप्तानिलस्य च ॥४८॥
 'शरीराच्छ्वावितो जीवो रोरवीति तथोल्वणम् । निर्गतो वायुभूतस्तु' पादकौशिककलेवरे ॥४९॥
 मातृभिः पितृभिश्चैव भ्रातृभिर्मातुलैस्तथा' । दारैः पुत्रैर्वयस्यैश्च' गुरुभिस्त्यज्यते भुवि ॥५०॥
 दृश्यमानश्च तैर्दीनैरश्रुपूर्णैर्भृशम् । स्वशरीरं समुत्सृज्य वायुभूतस्तु गच्छति ॥५१॥
 अन्धकारमपारं च' महाघोरं तमोवृतम् । सुखदुःखप्रदातारं दुर्गमं पापकर्मणाम् ॥५२॥
 दुःसहं च दुरन्तं' च दुर्निरीक्षं दुरासदम् । दुरापमस्तिदुर्गं च पापिष्ठानां सदाऽहितम् ॥५३॥
 कृष्यमाणाश्च' तैर्भूतैर्याम्यैः पाशैस्तु सयताः । मुद्गरैस्ताड्यमानाश्च नोयन्ते' तं महापथम् ॥५४॥
 क्षीणायुषं समालोक्य प्राणिनं चाऽऽयुषक्षये । निनीपवः समायान्ति यमद्वृता भयज्जरा ॥५५॥
 आरूढा यानकाले तु ऋक्षव्याघ्रखरेषु च । उष्ट्रेषु वानरेष्वग्रे वृश्चिकेषु वृक्षेषु च ॥५६॥
 उलूकसर्पमार्जारं तथाऽन्ये गृध्रवाहनाः । श्येनशृगालमारूढाः' सरघाकञ्जुवाहनाः ॥५७॥
 वराहपशुवेतालमहिषास्यास्तथा परे । नानारूपधरा घोराः सर्वप्राणिभयंकराः ॥५८॥

मिलता है ॥४५-४६॥ उस शरीर में भी कर्मानुसार अवस्था प्राप्त कर जीव कष्ट भोगते हैं । तब समय पूर्ण होने पर वेदना से पीड़ित जीव के शरीर को पञ्चभूत छोड़ देते हैं और प्राणवायु वृण्मगत हो जाता है । उसी समय यमदूत उसे भयंकर जाल में बाँध देता है । शरीर से मुक्त जीव बहुत जोर से रोने लगता है । छड़ काला से युक्त शरीर से वायुभूत जीव के निकल जाने पर माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र तथा गुरु उसका पृथ्वी पर छोड़ देते हैं ॥४७-५०॥ वे लोग दीन होकर अधुपूर्ण नेत्रों से देखते हैं रहते हैं, पर वह वायुभूत जब अपने शरीर को छोड़कर चल पड़ता है ॥५१॥ तिमिराच्छादित, पाररहित, महाघोर, सुखदुःखदाता, पापियों के लिए दुर्गम, दुःसह, दुष्पार, दुर्निरीक्ष्य, भीषण, अतिदुर्गं तथा पापिष्ठों के लिये सदा अहितकर उस महापथ पर यमदूत जीव को जाल में दृढ़ता से बाँध कर मुद्गर से पीटते हुए ले जाता है । आयु के क्षय होने पर क्षीणायु प्राण, को देखकर उसे ले जाने की इच्छा से भयंकर यमदूत आते हैं ॥५२-५५॥ रीछ, बाघ, गधा, ऊँट, बिच्छू, भेड़िया, उल्लू, साँप, बिल्लाड, गीध, बाज, सियार, मयमकली, सफेद बाल आदि वाहनों पर चढ़कर समस्त प्राणियों के लिये भयानक, नानारूप-धारी, सूजर पशु वेताल तथा महिष के समान मुख वाले, लंबे अङ्गुलि वाले, विकराल मँह वाले, टेढ़े, नाक वाले, तीन नेत्र वाले, महान् ठुड्डी, कपोल तथा मुख वाले, लंबे दाँत वाले, अकुर के सदृश निचले तथा विजित आकार के

१क ०माणा व० । २क ०स्यासरीरं प्रा० । ३क ख ०नास्तस्य । ४क ख. ०रावनीतोऽसौ जीवो
 रीति त० । ५ग ०ट्कौषिक० । ६क ख ०तुलादिभि । दा० । ७क. ०स्व गद्विभस्त्व० । ८ग त । ९क. ख.
 सुद्धर । १०ख तैर्दृष्ट्यै० । ११क. ०न्ते यमसादनम् । १२ग. ०ढाः खञ्जरीक० ।

दीर्घमुष्काः करालास्या वक्रनासास्त्रिलोचनाः । 'महानुकपोलास्याः प्रलम्बदशनच्छदाः ॥५९॥
निर्गतविकृताकारदंशनैरङ्कुरोपमैः । मांसशोणितदिग्धाङ्गा दंष्ट्राभिर्भुजमुत्थणैः ॥६०॥
मुखैः पातालसदृशज्वलज्जिह्वैर्भयंकरैः । नेत्रैः सुविकृताकारज्वलत्पिङ्गलचञ्चलैः ॥६१॥
'मार्जारोलूकखद्योतशरभोपबद्धतैः । केकरैः संकुलस्तब्धलोचनैः पावकोपमैः ॥६२॥
भृशमाभरणभोमैराबद्धैर्भुजगोपमैः । शोणासरलगात्रैश्च मुण्डमालाविभूषितैः ॥६३॥
कण्ठस्थकृष्णसर्पैश्च फूत्कारारवभोपणैः । वह्निज्वालोपमैः केशैस्तद्वद्वक्षैर्भयंकरैः ॥६४॥
वध्रुपिङ्गललोचैश्च कटुश्मश्रुभिरावृताः । भुजदण्डमैर्हृद्योरैः प्रलम्बैः परिघोपमैः ॥६५॥
केचिद् द्विबाहवस्तत्र तथाऽप्ये च चतुर्भुजाः । द्विरष्टबाहवश्चान्ये दशविंशभुजास्तथा ॥६६॥
असंख्यपातभुजाश्चान्ये केचिद्बाहुसहस्रिणः । आयुर्धैर्विकृताकारैः प्रज्वलद्भिर्भयानकैः ॥६७॥
शक्तितोमरचक्राद्यैः सुदीर्घैर्विविधायुधैः । पाशशृङ्खलदण्डैश्च भोपयन्तौ महाबलाः ॥६८॥
आगच्छन्ति महारौद्रा मर्त्यानामायुधैः क्षये । 'ग्रहीतुं प्राणिनः सर्वं यमस्याऽऽज्ञाकरास्तथा ॥६९॥
यत्तच्छरीरमावृत्ते यातनीयं स्वकर्मजम् । 'तदस्य नीयते जन्तोर्यमस्य सदनं प्रति ॥७०॥
वद्व्या तत्कालपाशैश्च निगडैर्वज्रशृङ्खलैः । ताडयित्वा भृशं क्रुद्धैर्नीयते यमकिंकरैः ॥७१॥
प्रस्रलन्तं रुदन्तं च आक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः । 'हा तात' मात' पुन्रेति वदन्तं कर्मदूषितम् ॥७२॥

दाते वाले, मांस तथा शोणित से बड़े अंगो वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण दंष्ट्रा वाले, पाताल सदृश मुख वाले, जलर्तः हुई जिह्वा वाले, चञ्चल, पीत तथा विकृताकार नेत्र वाले, विलाड, उल्लू, जुगनू, तथा वीर वहूटी के समान उदित आँखों वाले, अग्नि के समान चमकाले, ऐंघे, सर्काण तथा निर्दिमेष नेत्रा वाले सर्प के समान भोपण भूषणों से आवृद्ध, लाल तथा कर्कश शरीर वाले, मुण्ड-मालाओं से विभूषित, भयंकर 'फूत्कार' शब्द करने वाले, कृष्ण रूपाँ को गले में धारण करने वाले, अग्निज्वाला तुल्य, रुक्ष, भयंकर तथा अचल वेश वाले, चञ्चल तथा भूरे एवम् पीत रंग की दाढ़ी मूठों से आवृत और महामयंकर तथा भाले के समान लम्बी भुजा वाले यमदूत आते हैं ॥५९-६५॥ उनमें कोई दो बाँहें वाले, कोई चार भुजा वाले, कोई सालह भुजा वाले, कोई तीस (या दो सौ) भुजा वाले, कोई हजार भुजा वाले और कोई असंख्य भुजा वाले होते हैं ॥६६॥ जाज्वल्यमान, भयानक तथा विचित्र आकार के अस्त्र-शस्त्रों से, देदीप्यमान शक्ति, तोमर, चक्र आदि विविध आयुधों से पाश, साँवल तथा दण्डों से डराते हुए महादारुण यमदूत मृत्युलववासियों के आयु क्षय होने पर प्राणियों को पकड़ने के लिये आते हैं ॥६७-६९॥ जब अपने बर्माँ से जलज्र यातना-शरीर को प्राप्त करता है और वह यमालय ले जाया जाता है ॥७०॥ साँवलों तथा बाल-धाराओं से बाँध कर अत्यन्त दुषित यमकिंकर पीटते हुए उसे ले जाते हैं ॥७१॥ गिरते, रोते, बार-बार चिल्लाते और 'हा पिता, माता, पुत्र' बोलते हुए दुष्कर्मों के कारण तीक्ष्ण, झूल, मुदगर, अत्यन्त तेज तलवार तथा शक्ति के प्रहारों से एवम्

१क. ०कपाला०। २क ख ०वचापरिवोदगतै। ३क ०भूपणै। ४क ०। ५क ख चापहस्ता।
५क ख गृहीत्वा। ६क ख तदाऽस्य। ७क ०रै। कृत्वा वज्रमय कायभाशो०। ८क मुहुर्मदं। ९ग ०त
पुत्र भातेति। हा बलमेति चासकृत्। आ०।

आहत्य निशितैः शूलैर्मुद्गरैर्निशितध्वनैः । खड्गशक्तिप्रहारैश्च वज्रदण्डैः सुदारुणैः ॥७३॥
 भत्स्यमानो महाराजैर्वज्रशक्तिसमन्वितैः । एकैकशो भृशं क्रुद्धेस्ताडयद्भिः समन्ततः ॥७४॥
 स मुह्यमानो दुःखात् प्रतपञ्च इतस्ततः । आकृष्य नीयते जन्तुरध्वान् सुभयंकरैः ॥७५॥
 कुशकण्टकवस्त्रमौकशपायाणशर्करैः । तथा प्रदीप्तज्वलने 'क्षारवज्रशतोत्कटे ॥७६॥
 प्रदीप्तादित्यतस्तेन दह्यमानस्तदंशुभिः । कृष्यते यमदूतैश्च शिवांसनादभोषणैः ॥७७॥
 विकृष्यमाणस्तर्धोरभक्ष्यमाणः शिवाशतैः । प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मा यमालयम् ॥७८॥
 वचिद्भूतैः क्वचित्प्रस्तैः प्रस्खलद्भिः क्वचित्क्वचित् । दुःखेनाऽक्रन्दमानैश्च गन्तव्यः स महापथः ॥७९॥
 निर्भत्स्यमानैरुद्विग्नैर्विद्रुतैर्भयविह्वलैः । कम्पमानशरीरैस्तु गन्तव्यं जीवसंज्ञकैः ॥८०॥
 कण्टकाकीर्णमार्गेण संतप्तसिकतेन च । दह्यमानैस्तु गन्तव्यं नरैर्दानविबर्जितैः ॥८१॥
 मेघशोणितदुर्गन्धैर्वस्तगात्रैश्च पूगशः । 'वधस्फुटवद्वाऽऽकीर्णगन्तव्यं जीवघातकैः ॥८२॥
 कूजद्भिः क्रन्दमानैश्च विक्रोशद्भिश्च विस्वरम् । वेदनातैश्च सद्भिश्च गन्तव्यं जीवघातकैः ॥८३॥
 शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च खड्गतोमरसायकैः । भिद्यद्भिरुत्तीक्ष्णशूलाग्रैर्गन्तव्यं जीवघातकैः ॥८४॥
 श्वानैर्व्याघ्रैर्वृकैः कर्तुर्भक्ष्यमाणैश्च पापिभिः ॥८५॥
 कृतद्भिः श्रकचाघातैर्गन्तव्यं मांसखादिभिः । महिष्यर्षभशृङ्गाग्रैर्भयमानैः समन्ततः ॥८६॥

बठोर वज्र-दण्डों से पीटते हुए यमदूत ले जाते हैं । ग्लानि करते हुए इधर-उधर तडपते हुए दुःख पीडित जीव को दण्ड-शक्ति सन्वित महाबाहू से धिक्कारते हुए महाभयानक तथा अत्यन्त क्रुपित यमदूत मार्ग पर ले जाते हैं ॥७२-७९॥ कुदा, वण्टव, क्लृप्त, शत्रु, पत्थर तथा बालू-वण से युक्त, जाखल्यमान, सैरडो बठोर वज्र के समान उत्पट एव प्रदीप्त सूर्य-किरणों से जलते हुए मार्ग पर शूला-के समान भोषण नाद करने वाले यमदूत जीव को ले जाते हैं ॥७६-७७॥ यमला-के लिये दारुण मार्ग से प्रयाण करते हुए पापकर्मी जीव को सैरडो भयानक शूला-लिया खाती है और यमदूत खीचातानी करते हैं ॥७८॥ वही डरते हुए, वही त्रस्त होते हुए, वही गिरते हुए और वही आक्रोश करते हुए उस महापथ पर चलना पड़ता है ॥७९॥ उद्विग्न तथा भयविह्वल होकर पटवार खाते हुए तथा भागते हुए जीव वाँपते हुए शरीर से उस महापथ पर जाते हैं ॥८०॥ दानरहित मनुष्य को संतप्त बालू-व तथा वण्टवा-कीर्ण मार्ग से जाना पड़ता है । जीवहत्या करने वाले मनुष्यों को चरबी, घोंगित तथा दुर्गन्ध से युक्त एकम् जल कर फटी हुई त्वचा वाले घोर घोरण कर जाना पड़ता है ॥८१-८२॥ जीवघातों को अभ्यक्त शब्द करते, खाते, और से चिल्लाते तथा वेदना से पीडित हाते हुए जाना पड़ता है । जीवघातकों को धक्का, भिन्दिपाल, ललवार, तोमर, बाण तथा उत्तीक्ष्ण शूल के अधभाग से विद्ध होकर जाना पड़ता है । महापथ पर जाते हुए पापियों को कुत्ते, बाघ, भेड़िये तथा रुफेद बिल खाते हैं ॥८३-८५॥ माताहायी जीवों को आरे से चिरबा कर जाना होता है । वही जाते हुए मांसमर्धः जीवों को चारों ओर से महिष तथा बिल साँगों से छिन्न-भिन्न करते

'उल्लिखद्भिः शूकरैश्च गन्तव्यं मांसखादकैः। सूचीममरकाकोलमक्षिकामिश्च' संघशः ॥८७॥
 भुज्यमानैश्च गन्तव्यं पापिष्ठमधुघातकैः। विश्वस्तं स्वामिनं मित्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥८८॥
 शस्त्रैर्निकृत्यमानैश्च गन्तव्यं चातुरैर्नरैः। घातयन्ति च ये जन्तूस्ताडयन्ति निरागसः ॥८९॥
 राक्षसैर्भक्ष्यमानास्ते यान्ति घाम्यपयं नराः। ये हरन्ति परस्त्रीणां वरप्रावरणानि च ॥९०॥
 ते यान्ति विद्रुता नग्नाः प्रेतीभूता यमालयम्। वासो धान्य हिरण्यं वा गृहक्षेत्रमथपि वा ॥९१॥
 ये हरन्ति दुरात्मानः पापिष्ठाः पापकर्मिणः। पापार्णैर्लगुडैर्वण्डैस्ताड्यमानस्तु जजरैः ॥९२॥
 हृद्भिः शोणितं भूरि गन्तव्यं तु यमालयम्। ब्रह्मस्य ये हरन्तीह नरा नरकनिर्भयाः ॥९३॥
 ताडयन्ति तथा विप्रानाश्रितान्ति नराधमाः। शुष्ककाष्ठनिबद्धास्ते छिन्नकर्णाक्षिनासिकाः ॥९४॥
 पूषशोणितदिग्घास्ते कालगृधैश्च जम्बुकैः। किकरैर्भोषणैश्चण्डैस्ताड्यमानाश्च दाहणैः ॥९५॥
 विक्रोशमाना गच्छन्ति पापिनस्ते यमालयम्। एव परमदुर्घर्षमध्वानं ज्वलनप्रभम् ॥९६॥
 रोख दुर्गन्धिम निद्रिष्टं मानुषस्य च। प्रनस्ततामवर्णाभिं वृद्धिज्वालास्कुलिङ्गवत् ॥९७॥
 कुरण्टकण्टकाकोर्णैः पृथुविकटताडनैः। शक्तिवच्चरैश्च सक्तेर्गुम्बज्ज्वल तीव्रकण्टकम् ॥९८॥
 अङ्गारबालुकामिध्र वह्निनकीटकदुर्गमम्। ज्वालामालाकुलं रोद्रं सूर्परदिप्रतापितम् ॥९९॥

है तथा सूखर चीखते हैं ॥८६॥ मधुघाती (मधुमक्खिवयो को मारने वाले) पापिष्ठ जीवो कः मूई, भीरे, कीए तथा मक्खियो से आहत होकर जाना पड़ता है ॥८७॥ विश्वस्त स्वामी, मित्र तथा स्त्री वा जः मारता है, उसे शस्त्रो से आहत होकर जाना पड़ता है ॥८८॥ जः मनुष्य निरपराध जीवो को मारता है, उसे यमपय पर राक्षस खाते हैं ॥८९॥ जः मनुष्य परस्त्रियो को आडनी चुरा लेता है। वह मरने पर नग्न होकर यमलोका जाता है ॥९०॥ जो दुरात्मा पापिष्ठ कपडे, धान्य, सोने तथा वासस्थान वा अपहरण करता है, वह पत्थर, लाठी तथा डडो से जर्जरगात्र होकर प्रचुर शोणित बहाते हुए यमालय जाता है ॥९१-९२॥ जः नर नरक से निर्भय होकर ब्राह्मणा वा धन हरण करता है और विप्रों की पीटता है, वह नरायम सूखी लकड़ी में बाँध दिया जाता है, उसकी आँख, नाक, नाभ वाट दी जाती है, पीप तथा शोणित से उसका सर्वांग शरीर लिप्त हो जाता है, गीब तथा शिपार उसे खाते हैं, प्रचण्ड तथा मयकर ममदूत उसे पीटते हैं, तब वह पापा आकाश करता हुआ यमसदन जाता है ॥९३-९५॥ इस प्रकार वह महापथ मनुष्य के लिए परम वडिभ, अमृतितुल्य प्रमा वाला, विषम, भयकर तथा रोख नरक तुल्य बतलाया जाता है। तो तबि के तुल्य, अग्नि ज्वालाओ के कण के सदृश कुरण्ट वृक्ष के काँटा से व्याप्त दिसाल तथा दिकट ताडनो (चानुका), वाकितया तथा चञ्चो से भरे हुए, जम्बुज, तीर्थ, काँटो से युक्त, अगार सदृश, बालू से मिश्रित, अग्निपाया कीडो के वारण दुर्गम, ज्वालाओ से परिपूर्ण, मयानव तथा सूर्य किरणो से सतप्त माग पर प्रार्णा अत्यन्त निष्ठुर ममदूता द्वारा घसीटता हुआ ले जाया जाता है ॥९६-९९॥ जर्म, दुःखपीडित जीव कहीं गिर कर खाने लगता है

१क ख उतिष्ठद्भि। २क ख ०कामि सहस्रश। ३ग ०संघषा०। ४क ०न्ति घन स्त्री०। ५क मन्ता। ६ग गावो। ७क ०म्। देवद्रव्य ह०। ८क ख ०ह गुहर्मम तथैव च। ता०। ९क ०र्ण वृथा वि०। ग ०र्ण वृथावि०। १०ख ०टरडचुरै। पा०। ग ०टमडचुर। श०। ११क ख ०द्र दीप्तसूर्य प्र०।

अध्वान नीयते देही कुप्यमाण सुनिष्ठुरं । यदेव ऋदते जतुर्दुष्पातं पतितं^१ ववचित् ॥१००॥
 तदेवाऽऽह्न्यते सर्वैरामुधैर्यमैकिकरं । एव सताडघमानश्च लुब्ध पापेषु योऽनय ॥१०१॥
 अवशो नीयते जन्तुर्दुधैर्यमैकिकरं । सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वान तत्तुदुर्गमम् ॥१०२॥
 नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया । नीत्वा सुदारुण भागं प्राणिन यमैकिकरं ॥१०३॥
 प्रवेक्ष्यते पुरीं घोरा साध्यायसमयीं द्विजा । सा पुरी विपुलाकारा लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
 'चतुरस्रा विनिर्दिष्टा चतुर्द्वारयती शुभा । प्राकारा काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिता ॥१०५॥
 इन्द्रनीलमहानीलपदमरागोपशोभिता । सा पुरी विविधं सधैर्घोरा घोरं समाकुला ॥१०६॥
 देवदानगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । पूर्वद्वारं शुभ तस्या पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
 वज्रेऽनीलवैद्युदैर्यमुक्ताफलविभूषितम् । गीतनृत्यैः समाकोणैः गन्धर्वोत्तरसो गणैः ॥१०८॥
 प्रवेशस्तेन देवानामूषीणा योगिता तथा । गन्धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
 'उत्तरं नगरद्वारं घण्टाचामरभूषितम् । छत्रचामरविन्यास नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
 घोषारैर्गुरवै रम्यैर्गोतमङ्गकनादितः^२ । 'ऋषयः सामनिर्घोषमुनिवन्द्यमाकुलम् ॥१११॥
 विशन्ति येन धर्मज्ञा सत्यव्रजरायणा । ग्रीष्मे वारिप्रशये च शीते चाग्निप्रदानरा ॥११२॥
 धान्तसवाहका यः च प्रियवादरताश्च ये । ये च दानरता शूरा मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

१. तम यमदूत विविध आयुजा से उसे आहन कर देते हैं ॥१००॥ इत प्रचार पापी और अनैतिक जै बने ताड़ते हुए यमैकिकर के जाते हैं । उस अयत दुर्गम भाग पर सबको जाना पड़ता है । द्विगण । अनेक भयवर यमदूत प्राणी को दारुण भाग पर तिरस्कारपूर्वक के जाते हैं और अन्तर उसे लाभ-नैहमय पुरी में प्रवेश कराते हैं ॥१०१॥ १०३॥
 वह पुरी विस्तृत तारार वाली एवं गत योजन लम्बी चौकीर चार द्वार वाली तथा गुरुर है । उत्तरी मुख मय चतुरद्वारी दीर्घा द्वार यजन विस्तृत है ॥१०४॥ १०५॥ वह पुरी इन्द्रपुरी महान् तथा पद्मराग रंग से सुगमि विविध सधो से भयवर और देव दानव गन्धर्व दक्ष राक्षस तथा सन्नि से परिपूर्ण है । उत्तरा पूर्वद्वार पवित्र सैवकोपताशा से गमित वज्र इन्द्र नैल वैद्युदैर्यमुक्ताफलविभूषित तथा मोतिया से विभूषित नृत्य-गीतों तथा गन्धर्व और अक्षराओं के गणों से प्रपूर्ण है ॥१०६॥ १०८॥ उग द्वार से देव ऋषि योगी गन्धर्व सिद्ध, पदा तथा विद्याधर का प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार घण्टा तथा चामरों से भूषित छत्र तथा नाना रत्नों से अलंकृत रथों बाँसुरी व शङ्खा तथा मृग-मृग से रम्य ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद के निर्घोष एवम् मुनि-वृन्द से परिपूर्ण है ॥११०॥ १११॥ उग भाग से धर्मज्ञ तथा सत्यव्रजरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं । जो मनुष्य धर्म-व्रत म जगन्मन और नीतिपाल में अभिमान करते हैं वे उग भाग से जाते हैं ॥११२॥ ज वन मोक्ष के सेवा करते हैं जा प्रियवक्ता हैं जा दान हैं जो वीर हैं जा मानुषी मन्त्र हैं जा पित्रसमा भिन्न हैं और जो अनिमिषूत्रा हैं वे उग भाग से जाते हैं ॥११३॥ नन्दी का पश्चिमद्वार रत्नों से विभूषित विविध मणिमय

द्विजशुभ्रपणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमतु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूषितम् ॥११४॥
 विचित्रमणिशोभानं तोमरैः समलकृतम्। भेरीमृदङ्गसंनद्धैः शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
 सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मङ्गलैः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टाना शिवभक्तमतानृणाम् ॥११६॥
 सर्वतोऽप्यप्लुता ये च पञ्चानेयै च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालंजरे गिरी ॥११७॥
 अग्नौ विपन्ना ये धीराः साधितं वैरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थं गोघ्ने संकुले हताः ॥११८॥
 ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पुर्या तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
 हाहाकारसमाद्भुतं दक्षिणं द्वारमोदशम्। अन्धकारसमायुक्तं तीक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
 कण्टकवृश्चिकैः सपञ्चकटीः सुदुर्गमः। विलुम्पद्भिर्वृक्षैर्व्याघ्रैश्च सिंहैः सज्जम् ॥१२१॥
 श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्जालकवल्लैर्मखैः। प्रवेशस्तेन ये नित्यं सर्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
 ये धातयन्ति विप्राणा बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
 येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहरिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवहिनः प्रबाधक्ये ॥१२४॥
 परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्राञ्जकारहरिणः। परश्वेषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः ॥१२५॥
 'ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने' महाबुधप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदादातारः 'कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
 अभक्ष्यभक्षणरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पितरं चैव ये वदन्ति च पीडयन् ॥१२७॥

सीधियों से युक्त, तोमरों से अलङ्कृत, डोल, मृदङ्ग, शङ्ख तथा डमरू से शोभित और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धवृन्दों से सुशोभित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवभक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थ-रूपाय हैं, जो पञ्चानेय के उपासक हैं, जो वीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो कालञ्जरे पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, गो तथा दूसरों के लिये प्राण देते हैं वे तपस्वी, तथा वीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११६-११८॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जंगलों के लिए भयंकर, हाहाकार शब्दों से व्याप्त, तिमिरावृत, तीक्ष्ण शृंगों से समन्वित, कटि, बिच्छू, साँप, बज्र तथा कीड़ों से अतिदुर्गम, मुहं फैलाये उपद्रवी भेड़िये, बाघ, चीछ, सिंह, सियार, कुत्ते, बिल्लू तथा गंधों से युक्त है। उस द्वार से दित्य पापियों का प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण, गो, बालक, वृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, स्त्री, मित्र तथा निराश्रय व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ़, दूसरे के धन हरण करने वाले, घरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने वाले हैं जो दूसरे के भूमि, गृह, शय्या वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरे के छिद्रान्वेषी, सदा मिथ्या-वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरी में उपद्रव भजाने वाले, मिथ्या गवाहों, देने दाते, बन्धा वेचने वाले तथा अभक्ष्यभक्षण

१४ ०पानमम०। २१ ०वै शङ्खकाहलना०। ३४ ख मृता ये पतने गि०। ४ख जले। ५४ ग ०वार निरालोक सी०। ६४ ख ०वेषा पापका०। ७ख ग्रामे पुरे निवसता। म०। ८क ०व्रासम०। ९क ०प्रवर्धका। १००। १०क ग ०न्यावादे च येऽनृता। अ०। १११ ०र दुहित०। १२ग ये गच्छन्ति स्वसामनि। अ०।

अध्वानं नीयते देही कृष्यमाणः सुनिष्ठुरः। यदेव क्रन्दते जन्तुर्बुधार्तः पतितः। स्वचित् ॥१००॥
 तदेवाऽऽहन्त्यते सर्वैरायुधैर्मर्षिकरैः। एव संताड्यमानश्च लुब्धः पापेषु योजनयः ॥१०१॥
 अवशो नीयते जन्तुर्बुधैर्मर्षिकरैः। सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वानं तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
 नीयते विविधैर्मर्षिकरैर्महूर्तैरवजया। नीत्वा सुदारुण मार्गं प्राणिनं यर्मर्षिकरैः ॥१०३॥
 प्रवेश्यते पुरीं घोरं ताम्रायसमर्थं द्विजाः। सा पुरी विपुलाकारा लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
 'चतुरस्या विनिदिष्टा चतुर्द्वारयती शुभा। प्राकाराः काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिताः ॥१०५॥
 इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता। सा पुरी विविधैः सपंचौरा घोरैः समाकुला ॥१०६॥
 देवदानगन्धर्वैश्चराक्षसपन्नगैः। पूर्वद्वारं शुभं तस्याः पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
 यश्चेन्द्रनीलवैदूर्यमयताफलविभूषितम्। गीतनृत्यैः समाकीर्णं गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥१०८॥
 प्रवेशस्तेन देवानामृषीणां योगितां तथा। गन्धर्वैस्तद्वयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
 'उत्तर नगरद्वारं घण्टाचामरभूषितम्। छत्रचामरविन्यासं नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
 वीणारं गुरवं रम्पंगौतमं ह्यनादितैः'। 'शृङ्गयु सापनिधौर्वैर्मुनिवन्द्यसमाकुलम् ॥१११॥
 विजान्ति येन धर्मज्ञाः सत्यप्रतपरायणाः। शीघ्रे वारिप्रदा ये च शीते चार्णिप्रदानराः ॥११२॥
 धान्तसत्राहूता ये च त्रिपदादरतदय ये। ये च दानरता शूरा मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

तर्माः यमदूत विविध आयुषो से उसे आहूत कर देते हैं ॥१००॥ इत प्रसार पानी और अर्धतिव जैद की ताड़ते हुए यमर्षिकर से जाते हैं। उस अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर सखी जाना पडता है। द्विजगण। अनेक मयवर यमदूत प्राणी को दारुण मार्ग पर तिरस्कारपूर्वक से जाते हैं और अन्तर उसे ताम्र-नीलमर्षी पुरी में प्रवेश कराते हैं ॥१०१-१०३॥ यह पुरी विस्तृत आकार वाली, एक लाख योजन लम्बी, चौकीर, चार द्वार वाली तथा सुन्दर है। उत्तरी सुवर्ण-मयी, चहार दीवारी दस हजार योजन विस्तृत है ॥१०४-१०५॥ यह पुरी इन्द्रपुरी, महानील तथा पद्मराग रंग से सुसज्जित, विविध सभो से मयवर और देव, दानव, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस तथा सभी से परिपूर्ण है। उसका पूर्वद्वार पवित्र, रीतको पताकाओं से सज्जित, यय, इन्द्र, मील, वैदूर्य आदि रत्नित। तथा मोतियों से विभूषित, नृत्य-गीतों तथा मयर्व और अन्तराओं से गणों से प्रपूर्ण है ॥१०६-१०८॥ उग द्वार से देव, श्रृंगि, यार्मी, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष तथा विद्याधरो वी प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार घण्टा तथा चामरों से भूषित, छत्र तथा नाना रत्नों से अलङ्कृत, रंग, बागुरी के दाम्बो तथा रीत-मगडा से रम्प, श्रृंगेद तथा गामवेद के निधौय एवम् मुनि-वृन्द से परिष्पाण है ॥११०-१११॥ उस मार्ग से धर्मज्ञ तथा सत्यपरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं। जो मनुष्य धर्म-मार्ग से अज्ञान और शक्तिशून्य में अन्विष्टान करते हैं, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११२॥ ज. धर्म-मार्ग से जाते हैं, जो त्रिपदादर है, जो दानी है, जो वीर है, जो मातृ-पितृ-भक्त है, जो धर्मप्रेमा से रित है और जो अनिपिबुद्ध है, वे उस मार्ग से जाते हैं ॥११३॥ नगरी का परिषमद्वार रत्ना से विभूषित, विविध रत्नमय

द्विजशूयणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमतु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्यभूषितम् ॥११४॥
 विचित्रमणिसोपानं तोमरैः समलंकृतम्। भरोमूदङ्गसंनादः शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
 सिद्धवन्देः सदा हृष्टमङ्गलः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
 सर्वनोर्यल्लुता ये च पञ्चान्नेर्ये च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालंजरे गिरौ ॥११७॥
 अग्नी विपद्ना ये वीराः साधितं वरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्ये गोप्रहे संकुले हताः ॥११८॥
 ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पुर्या तस्या महाघोरं सर्वतत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
 हाहाकारसमानुष्टं दक्षिणं द्वारमीदृशम्। अन्धकारसमापुनत तोक्षणशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
 कण्टकैर्विचकैः सर्पैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमः। विलम्पद्भिर्वृकैर्व्याघ्रैर्ऋक्षैः सिंहैः सजम्बुकैः ॥१२१॥
 श्वानमार्जारगृध्रैश्च सज्जालकवर्लमुखैः। प्रवेशस्तेन च नित्यं सर्वेषामपकारिणाम् ॥१२२॥
 ये धातयन्ति विप्रान्ना बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
 येऽगम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहरिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विपवहिनः प्रवाशच ये ॥१२४॥
 परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्राङ्गहारहारिणः। पररज्ज्वेषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः ॥१२५॥
 'ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने' महादुःखप्रदा' हि ये। कूटसाक्षिप्रवादातारः 'कन्याविक्रयकारकाः ॥१२६॥
 अमक्ष्यमक्षरणता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पितरं च वध्रे वदन्ति च पीडयन् ॥१२७॥

सीढियों से युक्त, तोमरों से अलंकृत, डोल, मृदग शङ्ख तथा डमरू से शक्ति और सदा प्रकृत रहने वाले सिद्धवन्दों से सुषेवित है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवमक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थ-स्नानी हैं, जो पञ्चाम्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो बालञ्जर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, भो तथा दूसरा के लिये प्राण देते हैं वे तपस्वी तथा वीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११८३॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयंकर, हाहाकार शब्दों से व्याप्त, तिमिरावृत, तोक्षण शृंगों से समन्वित, बाँटे विच्छू, सर्प वज्र तथा कंटो से अतिदुर्गम मुह पँताये उपद्रवी, भेडिये, बाध, रीझ, सिंह, सियार, कुत्ते, विलाड तथा गी, घो से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण गो, बालक वृद्ध, आतुर, शरणागत विश्वस्त, स्त्री मित्र तथा नि शस्त्र व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ़ दूसरे के घन हरण करने वाले, घरोहर के अपहर्ता, विप तथा अग्नि डालने वाले हैं, जो दूसरे के भूमि, गृह शय्या, वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरे के उद्भ्रान्तेयों, सदा मिथ्या-वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरी में उपद्रव मचाने वाले, मिथ्या गदाहर् देने वाले, वन्या बेचने वाले तथा अमक्ष्यमक्षण

१ख ०पानमम०। २ग ०दं शङ्खकाहलना०। ३क ख मृता ये पतने गि०। ४ख जले। ५क ग ०कार निरालोक ती०। ६क ख ०वेषा पापका०। ७ख ग्रामे पुरे निवसता। म०। ८क ०रासम०। ९क ०श्रवका। १०। १०क ग ०न्यावादे च येजुता। अ०। ११ख ०र दुहित०। १२ग ये गच्छन्ति स्वयामपि। अ०।

अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिण । दक्षिणतु ते सर्वे द्वारणप्रविशन्ति वै ॥१२८॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसवादे यमलोकस्य भागस्वरूपारयाननिरूपण
नाम चतुदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१४॥

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्याय

दक्षिणमार्गवर्णनम्

मुनय ऊचु

कथ दक्षिणमार्गेण विशन्ति पापिण पुरम् । श्रोतुमिच्छाम तदब्रूहि विस्तरण तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

सुघोर तमहाघोर द्वार वक्ष्यामि भोषणम् । नानाश्वापदसंकीर्ण शिवाशतनिनादितम् ॥२॥
फक्काररवसपुवतमगम्य लोमहृषणम् । भूतप्रतपिशाचश्च धृत चार्यैश्च राक्षसैः ॥३॥
एव दृष्ट्वा सुदूरान्त द्वार दुष्कृतकारिण । मोह गच्छन्ति सहस्राः प्रासादप्रलपन्ति च ॥४॥
ततस्ताञ्शृङ्खल पार्श्वदध्वा कपन्नि निभया । ताडयन्नि च दण्डश्च भस्मयन्नि पुन पुन ॥५॥

करने वाले हैं जो पुत्रा तथा पुत्रवच से गमन करते हैं जो माता पिता को कट वचन कहते हैं और जो महापातक
कारा हैं वे निश्चय ही दक्षिण द्वार से प्रवेश करते हैं ॥१२३ १२८॥

आ ब्रह्महापुराण में व्यास जी और श्रु धर्मों के सवाद प्रकरण में यमलोक के भागस्वरूप व्याख्यान
नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१४॥

अध्याय २१५

दक्षिण मार्ग का वर्णन

मुनिधो न कहा—रूप धन । पाप जिन दक्षिण मार्ग से कसे पुर में प्रवेश करते हैं ? हमें यह सुनने
का इच्छा है, विस्तारपूर्वक वतनाइये ॥१॥

व्यास न कहा—मैं उस महाघोर तथा भयानक द्वार के बारे में बतूंगा । अनेक हिवर जानवरो से प्रपूर्ण
सकड़ा क्षिपारियों से न युक्त फेदार शब्दा से समुक्त अगम्य र माचवार भूत प्रत पिशाच तथा राक्षसों से
आवृत दक्षिणद्वार का दूरह से देखकर दुष्कर्मी जिन सहस्रा धवा जाते हैं आ डर से बिलाप करने लगते हैं ॥२४॥
तब भयानक यमवृत्त सावला तथा पाश से लड़े बरखबर, दजो, मे, पी टले है और धार-धार गाला देते हैं ॥५॥

लब्धसंज्ञास्ततस्ते च रूधरेण परिप्लुताः । व्रजन्ति दक्षिणं द्वारं प्रस्थलन्तः पदे पदे ॥६॥
 तीव्रकण्टकयुक्तेन शर्करानिचितेन च । क्षुरधारानिभंस्तोक्षेणं पापाणैर्निचितेन च ॥७॥
 बवचित्पञ्चने निचिता निरुतारंश्च खातकैः । लोहसूचीनिभंदन्तैः संछन्नेन बवचित्त्ववचित् ॥८॥
 तटप्रपातविषमैः पर्वतैर्बृक्षसंकुलैः । प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखित्तः ॥९॥
 बवचिद्विषमगतीभिः बवचिल्लोष्टैः सुपिच्छलैः । सुतप्तवालकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ॥१०॥
 अयःशृङ्गाटकैस्तप्तैः बवचिद्वाग्निना युनम् । बवचित्तप्तशिलाभिश्च बवचिद्व्याप्तं हिमेन च ॥११॥
 बवचिद्वालक्या व्याप्तमाकण्डान्तःप्रवेशया । बवचिदुष्टाभ्युना व्याप्तं बवचित्कर्पाणिना पुनः ॥१२॥
 बवचित्सिंहवृक्षैर्व्याप्तैर्दशकीटैश्च दारुणैः । बवचिन्महाजलोकाभिः बवचिदजगरैः पुनः ॥१३॥
 मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः बवचित्तपैर्विपोत्वणैः । बवचिदुष्टगजैश्चैव बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१४॥
 पण्यानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्नहावृणैः । महाशृङ्गैश्च महिषैरुष्टैर्मत्तैश्च खादनैः ॥१५॥
 डाकिनीभिश्च रौद्राभिविकारालैश्च राक्षसैः । व्याधिभिश्च महारौद्रैः पीडयमाना व्रजन्ति ते ॥१६॥
 महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना । महापापाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥१७॥
 बवचिद्विद्युन्निपातेन क्षीयमाणा व्रजन्ति ते । महता बाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वशः ॥१८॥
 पतद्भिर्वज्रनिघटिस्त्वापातं सुदारुणं । प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना विशन्ति च ॥१९॥

पेतना आने पर वे जीव रक्त से लयपय होकर पग-पग पर गिरते हुए दक्षिणद्वार की जाते हैं ॥६॥ तीव्र नदियों से युक्त, कबडों से व्याप्त, अस्तुरे की धार के समान तीक्ष्ण पत्थरों से समन्वित, वही कंकड़ों से युक्त वही खादियों से युक्त, वही-वही लोहे की सूई के समान दाँता से युक्त, तट-प्रदेश में विषम पर्वता तथा वृक्षों से संकुल और जाज्वल्यमान अगारों से युक्त मार्ग से दुर्ख होकर जीव जाते हैं ॥७-९॥ वही विषम गड्ढों से, वही फिसलने वाले पत्थरों से, तप्त बालुओं से, तीक्ष्ण खूटियों से, लोहे की तप्त कीलों से वही दादाग्नियों से, वही तप्त शिलाओं से वही पाले से, वही बण्ड के भीतर घुसने वाली बालुओं से, वही झुपित जल से वही अग्नि से, वही दारुण सिंह, भेड़िये, बाघ तथा हस्तेन वाले कीड़ों से, वही बड़े-बड़े जानकों से, वही अजगरों से, वही मयकर मन्त्रियों से वही विष वमन करने वाले सर्पों से, वही दुष्ट, बलोनमत्त तथा कुचलने वाले हाथियों से, तीले शीमों से मार्ग का उखाड़ने वाले साँड़ों से, पिशाच सीम वाले महिषों से, खा जाने वाले मनुष्यों के अँटों से, मयकर डाकिनियों से विकाराल राक्षसों से और महा-मयकर व्याधियों से पीड़ित होते हुए जीव जाते हैं ॥१०-१६॥ बहुत धूलि मिश्रित प्रचण्ड वायु से तथा मयकर पत्थरों की वृष्टि से आहत, निराश्रय और वही विजली के गिरने से बिदीर्ण होते हुए जीव जाते हैं ॥१७॥ महान् वाणों की वृष्टि से छिन-भिन्न दारुण उल्कापात तथा बज्रप्रहारों से आहत और जाज्वल्यमान शृङ्गारों की वृष्टि से दण्ड होते हुए जीव प्रवेश करते हैं ॥१८-१९॥ महान् धूलि-वृष्टि से भर कर जीव रोते हैं और मयकर मेघ-गर्जन

महता पांशुवर्षेण पूर्वमाणा रुदन्ति च । मेघारवंः सुघोरंश्च विव्रात्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२०॥
 निःशेषाः शरवर्षेण चूर्ण्यमानाश्च सर्वतः । महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना व्रजन्ति च ॥२१॥
 महाशीतेन महता रुक्षेण परुषेण च । समन्ताद्दीर्घमाणाश्च शुष्यन्ते संकुचन्ति च ॥२२॥
 इत्थं मार्गेण पुरुषाः^१ पाथेयरहितेन च । निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ॥२३॥
 अतिश्रमेण महता निर्गतेनाऽश्रमाय वं । नीयन्ते देहिनाः सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ॥२४॥
 यमदूतमंहाघोरंस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् । एकाकिनः पराधीना मित्रवन्धुविर्वाज्जिताः ॥२५॥
 शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्ति च मुहुर्मुहुः । प्रेतीभूता निषिद्धारते शुष्ककण्ठीष्ठतालुकाः ॥२६॥
 कृशाङ्गा भीतभीताश्च बह्यमानाः क्षुधानिना । बद्धाः शृङ्खलया 'केचित्केचिदुत्तानपादयोः ॥२७॥
 आकृष्यन्ते शुष्यमाणा यमदूतैर्बलोकटैः । नरा अधोमुखान्दृष्ट्वा भोज्यान्पेयाश्च पुष्कलान् ॥२८॥
 अन्नपानीयरहिता याचमानाः पुनः पुनः । देहि देहीति भाषन्तः साश्रुगद्गदया गिरा ॥२९॥
 कृताञ्जलिपुटा दीनाः क्षुत्तृष्णापरिपोडिताः । भक्ष्यानुच्चावचान्दृष्ट्वा भोज्यान्पेयाश्च पुष्कलान् ॥३०॥
 सुगन्धद्रव्यसंपुक्तान्याचमाना पुनः पुनः । 'दक्षिणोरधूतोन्मिधं दष्ट्वा शाल्योवभं तथा ॥३१॥
 पानानि च सुगन्धीनि शीतलान्युदकानि च । तान्याचमानास्ते याम्याः भर्त्सयन्तस्तदाऽब्रुवन् ॥
 घचोभिः पर्यर्भोमाः, क्रोधरक्तान्तलोचनाः ॥३२॥

से बार-बार वस्तु होते हैं ॥२०॥ बाणों की, वर्षों से नि शेषतया चूर-चूर होते हुए तथा अत्यन्त खारे जल की, धाराओं से मींगते हुए जीव जाते हैं ॥२१॥ बहुत ठंडी, रुखी तथा कठोर वायु से प्राणी फट जाते हैं, सूख जाते हैं तथा संकुचित हो जाते हैं ॥२२॥ इस प्रकार पाथेयरहित, निरालम्ब, निर्जल तथा दुर्गे मार्ग से पापकर्मी मूख जीव अत्यन्त पथ से महामयवर यमदूतों द्वारा बलपूर्वक यमाश्रम को ले जाये जाते हैं ॥२३-२४॥ अबैले, पराधीन तथा मित्र-वन्धुआ से रहित जीव अपने बर्भों का सावते हुए बार-बार राते हैं । प्रेत होने पर जीव दूषित हो जाते हैं; उनके कण्ठ, होठ तथा तालु सूख जाते हैं शरीर रक्ष हो जाते हैं । बलान्मत यमदूत क्षुधानि से दम्ब, भयो से भ्रस्त, सक्किली से बद्ध तथा शुष्क जीवों का उत्तानपाद करने लगे होते हैं, कितने जीवों को अधोमुख करके अत्यन्त दुःख देते हुए खींचते हैं ॥२५-२८॥ अन्न-जल से रहित जीव 'दा दा' कहते हुए अश्रुपूर्ण स्वर से बार-बार याचना करते हैं ॥२९॥ भूयः प्यास से परितप्त तथा दीन जीव प्रचुर मात्रा में सुगन्धित द्रव्य मिश्रित भोज्य तथा पेय पदार्थों को देखकर अञ्जलिबद्ध हाकर बार-बार याचना करते हैं । दर्हा, दूध, घी, चावल, भात, सुगन्धित पान पदार्थ, तथा शीतल जल—इन चीजों का देखकर जब जीव मांगते हैं तब भयवर यमदूत आँखें लाल कर बटुबचन कहते हुए पटवारते हैं ॥३०-३२॥

याम्या ऊचुः

न भवद्भिर्हुतं काले न दत्तं ब्राह्मणेभ्यु च । प्रसभं दीपमानं च वारितं च द्विजातिषु ॥३३॥
तस्य पापस्य च फलं भयतां समुपागतम् । नाग्नौ दग्धं जले नष्टं न हृतं नृपतस्करं ॥३४॥
हुतो वा सांप्रतं विप्रे यन्न दत्तं पुराऽधमाः । यदन्तानि तु दानानि साधुभिः सात्त्विकानि तु ॥३५॥
तेषामेते प्रदृश्यन्ते कल्पिता ह्यन्नपर्वताः । भक्ष्यभोज्याश्च पेयाश्च लेह्याश्चोप्याश्च संवृताः ॥३६॥
न यूपमभिलप्स्यध्वे न दत्तं च कथंचन । यस्तु दत्तं हृतं चेष्टं ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥३७॥
तेषामन्नं समानीय इह निक्षिप्यते सदा । परस्वं कथमस्माभिर्दातुं शक्येत नारकाः ॥३८॥

व्यास उवाच

किंकराणां घ्नः धृत्वा निःस्पृहाः क्षुत्तृषादिताः । ततस्ते दारुणंश्चास्त्रं पीडयन्ते यमकिंकरैः ॥३९॥
मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च शक्तितोमरपट्टिभिः । परिघैर्भिन्दिपालैश्च गदापरशुभिः शरैः ॥४०॥
पृष्ठतो हन्यमानाश्च यमदूतैः सुनिर्दयैः । अग्रतः सिंहव्याघ्राद्यैर्भक्ष्यन्ते पापकारिणः ॥४१॥
न प्रवेष्टुं न निर्गन्तुं लभन्ते दुःखिता भूशम् । स्वकर्मापहृताः पापाः क्रन्दमानाः सुदादयाः ॥४२॥
तत्र संपीड्य सुभुशं प्रवेशं यमकिंकरैः । नीयन्ते पापिनस्तत्र यत्र तिष्ठेत्स्वयं यमः ॥४३॥
धर्मात्मा धर्मकृद्देवः सर्वसंयमनो यमः । एवं पयाऽतिकष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं नराः ॥४४॥

यमकिंकर बोले—समय पर न तुमने हवन किया न ब्राह्मणों को दान दिया, प्रत्युत विप्री को दिये जाने वाले दान को तुमने हठात् रोक दिया । उसी पाप का फल तुम्हें मिला है । नीचो ! तुम्हारा घन अग्नि में नहीं जला था, जल में नष्ट नहीं हुआ था और राजा तथा चोरों में भी नहीं लिया था, फिर भी तुमने ब्राह्मणों को नहीं दिया । इसलिए अभी वहाँ से मिलेगा ? जिन घाघुओं ने सात्त्विक दान दिये थे, उनके लिये ये अन्नपर्वत, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य (चाटने योग्य) तथा चाय (चूसने योग्य) पदार्थ तैयार हैं । तुमने कर्मों का दान नहीं किया । इसलिए पाने की इच्छा मत करो । जिन्होंने दान दिया, हवन किया, यज्ञ किया तथा ब्राह्मणों की पूजा की, उनके लिए अन्न लेकर यहाँ रखा जाता है । नरक में जाने वालों ! हम दूसरे का घन तुम्हें कैसे देंगे ? ॥३३-३८॥

व्यास ने कहा—यमदूतों के वचन सुनकर जीव भूय-व्यास से व्याकुल तथा इच्छारहित हो जाते हैं । तब यमकिंकर दारुण अस्त्रों से उन्हें कष्ट देते हैं ॥३९॥ मुद्गरे, लाठे के डंडे, शक्ति, तामर, पट्टिय, परिष, मिन्दिपान, गदा, परसे, तथा बाणों से निर्दय यमदूत जीवों का पीछे से मारते हैं ॥४०॥ पापकारी जीवों को अग्रभाग से सिंह, बाघ आदि खाते हैं । अन्तर्ग दुर्ग अतिमयकर तथा पापों, जीव न प्रवेश कर पाते हैं न निग्न ही पाते हैं । वहाँ यमदूत पापिमा का अत्यन्त कष्ट देकर वहाँ ले जाते हैं, जहाँ धर्मात्मा, धर्मकर्ता तथा सर्वनियामक यम स्वयं रहते हैं । इस प्रकार अति कष्टदायक मार्ग से मनुष्य प्रेतपुरी जात हैं ॥४१-४४॥

प्रज्ञापितास्तथा दूतनिवेश्यन्ते यमाग्रतः । ततस्ते पापकर्मणस्त पश्यन्ति भयानकम् ॥४५॥
पापापविद्वन्प्रज्ञा विपरीतात्मबुद्धयः । दष्टाकरालवदन भुवद्वीकुटिलेक्षणम् ॥४६॥
ऊर्ध्वकेश महाश्मश्रु प्रस्फुरदधरोत्तरम् । अष्टादशभुज नुद्ध नीलाञ्जनचयोपमम् ॥४७॥
सर्वायुधोद्यतकर तीव्रदण्डेन सयुतम् । महामहिषमारूढ दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥४८॥
रक्तमात्याम्बरधर महामेघमिवोच्छ्रितम् । प्रलयाम्बुदनिर्घोष पिवन्निव महोदधिम् ॥४९॥
प्रसन्नमिव त्रलोचनमुदगिरन्तमिवानलम् । मृत्यु च तत्समीपस्थ कालानलसमप्रभम् ॥५०॥
प्रलयानलसकाश कृतात च भयानकम् । मारीचीना महामारी कालरात्री च दारुणा ॥५१॥
विविधा व्याधय कण्ठा नानारूपा भयावहा । शक्तिशूलाङ्कुशधरा पाशचक्रसिधारिण ॥५२॥
वज्रदण्डधरा रौद्रा क्षुरतूणधनुर्धरा । असंख्याता महावीर्या क्रूराश्चाञ्जनसप्रभा ॥५३॥
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानका । अनेन परिवारेण महाघोरेण सवृतम् ॥५४॥
यम पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त विभीषणम् । निभर्त्सयति चाऽप्यर्थं यमस्तान्पापकारिण ॥५५॥
चित्रगुप्तस्तु भगवान्धर्मवाक्यं प्रबोधयन् ॥५६॥

चित्रगुप्त उवाच

भो भो दुष्कृतकर्मण परद्रव्यापहारिण । गविता रूपवीर्येण परदारविमर्दका ॥५७॥
यत्स्वयं क्रियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः । तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ॥५८॥

तब यमदूत उहे यम क सामने उपस्थित करते हैं। पापा स अ घ आ मा क विपरत प्रकार से समझने वाले पापकर्मी ज न मयानक दष्टाओं से विकराल मुख वाले मी टेढ़ करक देखन वाले ऊपर उठ केश वाले लम्ब दाढ़ मछ वाले फड़कते होठ वाले अठारह मजा वाले नुद्ध न ल अञ्जन का राशि के तुल्य समस्त अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हूँ न वाले त व दण्डधारा बिनाल महिष पर आरूढ प्रज्वालत अग्नि के समान नत्र वाले लाल माला तथा अस्त्र धारण किये हुए महामेघ के समान उच्च और प्रलयकाल न बादल के समान शब्द करने वाले यम क देखते हैं। यम देखने में ऐसा लगता है मानः समद्र का प रहा है और अग्नि क उगल रहा है ॥४५ ४९३॥ उनके सम प वालाग्नि के समान का त-बाल तथा प्रज्वालि तुल्य महामयानक मृत्यु रहत है मारचा उग्र महामार कालरात्र दारुणा तथा विविध प्रकार के व्याधिया रहता हैं। नानारूपधारी भयानक शक्ति शूल अकुश पाश चक्र तलवार वज्र दण्ड छुरे तरकस तथा धनुष धारण करने वाले अञ्जन के समान वांति वाले महापरक्रमा तथा समस्त अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हूँ न वाले यमदूत रहते हैं। ऐसे महामयानक परिवार से युक्त यमराज तथा न धन चित्रगुप्त को पापी लोग देखते हैं। उन पापियों को यमराज बहुत फटकारते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मवाक्यों से समझाते हैं ॥५० ५६॥

चित्रगुप्त ने कहा—दुष्कर्मियों! दूसरे का धन हरण करने वालों! रूप तथा शक्ति का अस्मिमान करने वालों! दूसरे का स्त्री का सताव लूटने वालों! जा जैसा कर्म करता है वह वैसा फल भागता है। तुम लोग ने

इदानीं किं नु शोचध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः । भुञ्जध्व स्वानि दुःखानि न हि दोषोऽस्ति कस्यचित् ॥५९॥
य एते पृथिवीपालाः संप्राप्ता मत्समीपतः । स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रजा बलगविताः ॥६०॥
भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिण । अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥६१॥
राज्यलोभेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः । 'यद्दण्डिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ॥६२॥
कुतो राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम् । तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥६३॥
'पश्यामो न बलं सर्वं येन विध्वंसिताः प्रजाः । यमदूतैः पाटयमाना अधुना कीदृशं फलम् ॥६४॥

व्यास उवाच

एवं बहुविधैर्वर्धैरुपालब्धा यमेन ते । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पाथिवाः ॥६५॥
इति कर्म समादिश्य नृपाणां 'धर्मराट्स्वयम् । तत्पातकविशुद्ध्यर्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥६६॥

यम उवाच

भो भोश्चण्ड महाचण्ड गृहीत्वा नृपतीनिमान् । विशोधयध्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निषु ॥६७॥

व्यास उवाच

ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः । ग्रामपित्वा तु वगेन क्षिप्त्वा चोर्ध्वं प्रगृह्य च ॥६८॥

आत्महन्त के लिये क्यों दुष्कर्म किया ? अब तुम अपने कर्मों से पीड़ित होकर क्या साज रहे हो ? अपने दुःखों को भोगो, इसमें किसी का दोष नहीं है । ओ ये मूर्ख बलाभिमानों राजा लोग मेरे पास आये हैं, य अपने मघवर कर्मों के कारण आये हैं । प्रजा का नाश करने वाले दुराचारी राजाओ ! थोड़े समय के लिये राज्य पाकर क्यों तुमने दुष्कर्म किया ? राज्यलाल से तथा मोह से जो तुमने अन्याय किया तथा बलपूर्वक प्रजा को दण्ड दिया, उसका फल बर्मा भोगो । जिसके लिये तुमने पाप किया, वह राज्य तथा स्त्री कहाँ है ? क्यों उन सब का परित्याग कर तुम अकेले यहाँ हो ? हम तुम्हारे उस बल को नहीं देख रहे हैं, जिससे तुमने प्रजा का विध्वंस किया था । यमदूतों से पंटे जाने पर अब तुम्हें कैसा फल मिल रहा है ? ॥५७-६४॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार यम द्वारा अनेक वाक्यों में उलाहता सुनकर राजा लोग अपने कर्मों का साक्ष्य देख चुके रहते हैं । स्वयं धर्मराज, राजाओं के लिये कर्मों का आदेश देकर उनके पापों का शुद्धि के लिये ये वचन कहते हैं ॥६५-६६॥

यम कहते हैं—चण्ड ! महाचण्ड ! इन राजाओं को पकड़ कर क्रमशः नरकाग्नियों में डालकर पापों का प्रायश्चित्त कराओ ॥६७॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर यमदूत शीघ्र उठकर राजाओं के दानों पैरों को पकड़कर वेग से घुमाने लगते हैं और ऊपर पेंच कर फिर पकड़ लेते हैं । पश्चात् शिला-खण्ड पर इस प्रकार पटकते हैं मानो बज्र से आहत महाबृक्ष

१. यत्पीडिता । २. पश्यत । ३. स ०म् । सर्वपापवि० । ४. ग च । सर्वपापेन महता सुयत्ने चि० ।

तत्तत्पापप्रमाणेन यमदूता - शिलातले । 'आस्फोटयति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ॥६९॥
ततस्तु रक्त स्रोतोभि खयते जर्जरीकृत । नि सज्ज' स तदा देही निदचेष्टश्च प्रजापते ॥७०॥
तत स धातुना स्पृष्ट शनैरुज्जीवते पुन । तत पापविशुद्धयर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे ॥७१॥
अन्याश्च ते तदा दूता पापकर्मरताम्ररान् । निवेदयन्ति विप्रेन्द्रा यमाय भूशतु खितान् ॥७२॥

यमदूता ऊचुः

एष देव तवाऽऽदेशादस्मान्निर्मोहितो भूशम् । आनीतो धर्मविमुख सदा पापरत पर ॥७३॥
एष लुब्धो दुराचारो महापातकसयुत । उपपातककर्ता च सदा हिसारत' शुचि ॥७४॥
'अगम्यागामी दुष्टात्मा परद्रव्यापहारक । कन्याश्रयो कूटसाक्षी धृतघ्नो मित्रवञ्चक ॥७५॥
अनेन मदमत्तेन सदा धर्मो विनिन्दित' । पापमाचरित वर्म मर्त्यलोके दुरात्मना ॥७६॥
'इदानीमस्य देवेश निग्रहानुग्रहौ वद' । प्रभुरस्य क्रियायोगे वय वा परिपन्थिन ॥७७॥

व्यास उवाच

इति विज्ञाप्य देवेश न्यस्याग्ने पापकारिणम् । नरकाणा सहस्रेषु' लक्षकोटिशतेषु" च ॥७८॥
किंकरास्ते ततो यान्ति" ग्रहीतुमपरान्नरान् । प्रतिपन्ने कृते दोषे यमो वै पापकरिणाम् ॥७९॥
समादिशति तान्घोराग्निग्रहाय स्वर्गिकरान् । यया यस्य विनिर्दिष्टो वसिष्ठाद्यैर्विनिग्रह ॥८०॥

गिरा हो । उनका गरार जजर हो जाता है रक्त क धारामें फूट निकलती हैं । वे सनाहून तथा निर्वचष्ट हो जाते हैं । वायु का स्पर्श होने से पुन प्राण संचार हाता है । तब पाप-शुद्धि कराने के लिये यमदूत उन्हें नरक समुद्र में फेंक देते हैं । विप्रवर' तब तब अथ दूत दूसरे अत्यन्त दुष्टी तथा पापकर्मों में निरत मनुष्यों को यम राज के सामने उपस्थित कर निवेदन करते हैं ॥६८ ७२॥

यमदूत कहते हैं—देव । आपकी आज्ञा से मैं अत्यन्त मोहित धर्मविमुख तथा सदा पापा में रत इस मनुष्य को ले आया हूँ । यह लोभ दुराचारी महापापी उपपापी सदा हिंसा में निरत अपवित्र अगम्यागामी दुष्टात्मा दूसरे का धनहर्ता तथा निन्दक है । इस दुरात्मा ने मर्त्यलोक में पापाचरण किया है । देवेश' अब इस पर आप जा दण्ड या क्षमा करें वह बतलाइये । इसने अध्यक्ष आप हैं हम तीं केवल आज्ञाकारी हैं ॥७३ ७७॥

व्यास ने कहा—यमराज से इतना निवेदन कर यमदूत उनके सामने पापा का छोड़ देते हैं और संकड़ों हजारों लाखों और करोड़ों नरकों से दूसरे मनुष्यों को पकड़ने के लिये बल पड़ते हैं ॥७८॥ पापिया के दाप प्रमाणित हो जाने पर धर्मराज उन्हें पकड़ने के लिये अपने मयवर अनुचरों को आज्ञा देते हैं । वसिष्ठ आदि मुनिया ने

१क आस्फालयन्ति । ख आपोषयन्ति । २ग नि सज्ज । ३ख ०सापरोऽणु० । ४क ग ०गम्याग० । ५क ग कन्यानुत्ती । ६ख विनाशित । ७क ख ०दानी तस्य । ८ख ग तव । ९क ०स्रग ल० । १०क ०तेन च । ११क ०न्ति गृहीत्वा चाप० ।

पापस्य' तदभू (तं भू) शं क्रुद्धाः कुर्वन्ति यमकिंकराः । अङ्कुशमृन्दगरदण्डैः प्रकचैः शविततोमरैः ॥८१॥
 'स्रज्जालनिपातेश्च भिद्यन्ते पापकारिणः । नरकाणां सहस्रेषु लक्षकोटिशतेषु च ॥८२॥
 स्वकर्मापाजितदोषैः पीडयन्ते यमकिंकरैः । शृणुष्व नरकाणां च स्वरूपं च भयकरम् ॥८३॥
 नामानि च प्रमाणं च येन यान्ति नराश्च तान् । महाबाचीति विख्यातं नरकं शोणितप्लुतम् ॥८४॥
 यञ्जकण्टकसंमिश्रं योजनायुतविस्तृतम् । तत्र संपीडयते मनो भिद्यते वञ्जकण्टके ॥८५॥
 वर्षलक्षं महाघोरं गोघातो नरके नरः । योजनानां शतं लक्षं कुम्भीपाकं सुदारुणम् ॥८६॥
 ताम्रकुम्भवती दीप्ता बालुकाङ्गारसंवृता । ब्रह्महा 'भूमिहर्ता' च निक्षेपस्यापहारकः ॥८७॥
 दहयन्ते तत्र संक्षिप्ता यावदाभूतसंश्लवम् । रोरवो वञ्जनाराचैः प्रज्वलद्भिः समावृतः ॥८८॥
 योजनानां सहस्राणि पष्टिरायामविस्तरैः । भिद्यन्ते तत्र नाराचैः सज्वालैर्नरके नराः ॥८९॥
 इक्षुवत्तत्र पीडयन्ते ये नराः कूटसाक्षिणः । अपोमयं प्रज्वलितं मञ्जूर्यं नरकं स्मृतम् ॥९०॥
 निक्षिप्तास्तत्र दहयन्ते यन्दिप्राहकृताश्च ये । अप्रतिष्ठेति नरकं पूयमूत्रपुरोपकम् ॥९१॥
 अपोमुखः पतेत्तत्र ब्राह्मणस्योपपीडकः । लाक्षाप्रज्वलितं घोरं नरकं तु विलेपकम् ॥९२॥

जिस पाप का जो दण्ड बतलाया है, मृदु यमभूत वही दण्ड देते हैं । अङ्कुश, मुगरे, डंडे, आरे, शक्ति, तीमर, तलवार तथा शूल—इनके प्रहारों से पापी लगे सताये जाते हैं । सैंकड़ों, हजारों, लाखों और बराबों नरकों में अपने-वर्ग जन्य दोषों से जीव यमभूतों द्वारा पीडित किये जाते हैं ॥७८-८२॥ नरकों के भयकर स्वरूप, नाम तथा प्रमाण सुनिये, जिससे मनुष्य वहाँ जाते हैं । महाबाची नाम से विख्यात नरक शोणित से परिपूर्ण, द्रव्य तुल्य बाँटों से मिश्रित एकम् दस हजार याजन विस्तृत है । उसमें दूब वर जीव बाँटों से छिन्न मिश्र होकर व्यथित होता है ॥८३-८५॥ कुम्भीपाक नामक नरक अत्यन्त दारुण तथा सौ लाख योजन विस्तृत है । ग्राहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में एक लाख वर्षों तक कष्ट भोगता है ॥८६॥ ताम्रकुम्भवती नामक नरक सतप्त बालुआ से प्रपूर्ण है । ब्रह्महा करने वाला, भूमिहरण करने वाला तथा घरोहर वा अपहरण करने वाला मनुष्य उसी नरक में कल्पान्त तक दण्ड होता है । रोरव नामक नरक जलते हुए लोहे के बाणों से आवृत है ॥८७-८८॥ वह साठ हजार याजन व्याप्त-बाँटा है । उस नरक में ज्वलित लोहे के बाणों से मनुष्यों को वेध किया जाता है । जो मनुष्य मिथ्या गवाही देते हैं, वे उसी नरक में गर्भ की तरह पेड़े जाते हैं ॥८९॥ मञ्जूर्य नामक नरक प्रज्वलित, लाहमय है । निराशाप व्यक्तिको बन्दी बनाने वाले मनुष्य उसी नरक में पक्कर दण्ड होते हैं । अप्रतिष्ठ नामक नरक पीप मूत्र तथा विष्टा से भरा है । ब्राह्मण को पीडा देने वाले मनुष्य उसी नरक में नीचे गूँह करके मारते हैं ॥९०-९१॥ विलेपक नामक नरक भयकर तथा प्रज्वलित लाहो से प्रपूर्ण है । दिग्बधेष्टो । मयपान म निरत मनुष्य उस नरक में दण्ड होते हैं ॥९२॥ महाप्रम नामक नरक प्रदीप्त शूलों से युक्त तथा बहुत ऊँचा है । पति-पत्नी में भेद कराने

निम्नास्तत्र दहन्ते मद्यपाने द्विजोत्तमाः। महाप्रभेति नरकं दीप्तशूलमहोच्छ्रयम् ॥९३॥
 तत्र शूलेन भिद्यन्ते पतिभायोपभेदिनः। नरकं च महाघोरं जयन्तो चाऽऽयसी शिला ॥९४॥
 तथा चाऽऽम्यते पापः परदारोपसेवकः। नरकं शालमलार्यं तु प्रदीप्तदृढकण्टकम् ॥९५॥
 तथा (दा) लिङ्गति दुःखार्ता नारो बहूनरंगमा। ये वदन्ति सदाऽस्त्य परमार्थवर्तनम् ॥९६॥
 जिह्वा चोच्छ्रय (च्छिद्य) तेतेपा सदस्यैर्यमार्ककरं। ये तु रागं षटाक्षैश्च वीक्षन्ते परयोपितम् ॥९७॥
 तेपा चक्षुषि नाराचैर्विध्यन्ते यमार्ककरं। मातर येऽपि गच्छन्ति भगिनीं दुहितरं स्नुषाम् ॥९८॥
 स्त्रीबालबृद्धहन्तारो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। 'ज्वालामालाकुलं रौद्रं महारौरवसंज्ञितम् ॥९९॥
 नरकं योजनानां च सहस्राणि चतुर्दश'। पुरंक्षेत्रगृहं ग्रामं यो वीपयति वह्निना ॥१००॥
 स तत्र दह्यते मूढो यावत्कल्पस्थितिनरः। तामिस्रमिति विख्यातं लक्षयोजनविस्तृतम् ॥१०१॥
 'निपतद्भि' सदा रौद्रः खड्गपटित्दशमुदगरः। तत्र चौरानराः क्षिप्तास्ताड्यन्ते' यमार्ककरः ॥१०२॥
 शूलशक्तिगदाखड्गार्णवकल्पशतत्रयम्। तामिस्राद्विगुणं प्रोक्तं महातामिस्रसंज्ञितम् ॥१०३॥
 जलोकासपसंपूर्णा निरालोक सुबु खदम्। मातृहा पितृहा च य मित्रविस्त्रम्भघातकः ॥१०४॥
 तिष्ठन्ति' तक्ष्यमाणाश्च यावत्तिष्ठति मेदिनो। अतिपत्रवनं नाम नरकं भूरिबु खदम् ॥१०५॥
 योजनायुतविस्तारं ज्वलत्खड्गः समाकुलम्। पातितस्तत्र तैः खड्गैः शतधा तु समाहतः ॥१०६॥

बाले मनुष्य वहाँ शूलों से बिद्ध होते हैं। जयन्तो नामक महामयवर नरक लोहमिश्रित पत्थर का है ॥९३-९४॥ दूसरे की स्त्री से सम्भोग करने वाले पार्थ, मनुष्य उसी नरक में पड़ते हैं। शालमल नामक नरक जलते हुए दृढ़ कटकों से युक्त है। बहुत पुराणों के साथ उपभोग करने वाली नारी उस नरक में पड़ती है। जो मनुष्य दूसरे के मर्मों को वतारने वाले वचन बोलते हैं, उनकी जीभ को यमदूत काट देते हैं। जो अनुराग मयी चितवन से दूसरे की स्त्री को देखते हैं, उनकी आँखों को यमविवर लाहे के बाणों से काट डालते हैं ॥९५-९७॥ जो मनुष्य माता, बहिन, पुत्री तथा पुत्र-वधू से सम्भोग करते हैं और जो स्त्री, बालक तथा वृद्ध की हत्या करते हैं, वे चौदह इन्द्र जब तक रहते हैं तब तक, ज्वालाओं के समूह से व्याप्त, चौदह हजार योजन विस्तृत तथा भयवर महारौरव नामक नरक में पड़ते हैं। नगर, क्षेत्र घर तथा ग्राम में जो आग लगता है, वह मूर्ख उस नरक में कल्पान्त तक दग्ध होता रहता है। तामिस्र नामक नरक एक लाख याजन विस्तृत है जहाँ तलवार पट्टिश (पटा) तथा मुदगरों का सदा प्रहार होता रहता है। चार मनुष्य वहाँ फँके जाते हैं और यमदूतों द्वारा पीछित होते हैं ॥९८-१०२॥ तीन सौ वर्षों तक उनके ऊपर शूल, शक्ति, गदा तथा तलवारों का प्रहार होता रहता है। महातामिस्र नामक नरक तामिस्र से दूना है, जो जोक तथा साँपो से परिपूर्ण, प्रकाशरहित तथा अत्यन्त दुःखदायी है ॥१०३॥ मातृहत्या करने वाले, पितृहत्या करने वाले तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने वाले मनुष्य उस नरक में छँले जाते हुए तब तक रहते हैं जब तक पृथ्वी रहती है ॥१०४॥ अति दुःखदायी अविपत्रवन नामक नरक दश हजार याजन विस्तृत तथा जलते हुए तलवारों से प्रपूर्ण है। मित्रहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में तलवारों से सैकड़ों जगह आहत होते हुए कल्पान्त तक

मित्रघ्न कृत्यते तावद्यावदाभूतसत्त्ववम । करम्भबालुका नाम नरक योजनायुतम् ॥१०७॥
 कृपाकार वृत्त दीप्तैर्बालुकाङ्गारकण्टकं । दह्यत भिद्यत वपलक्षायुतशतत्रयम् ॥१०८॥
 यन दग्धो ज्ञानो निच मिष्योपाये सुदारणं । काकोल नाम नरक कृमिपयपरिप्लुतम् ॥१०९॥
 भिष्यते तत्र दुष्टात्मा एकाकी मिष्टभुङ्गनर । कुडमल नाम नरक पूष विषमनशोणिनं ॥११०॥
 पञ्चयज्ञप्रियाहीना क्षिप्यते तत्र वै नरा । सुदुग्ध महाभीम मासशोणितसकुलम् ॥१११॥
 'अमश्यान्ने रतास्तत्र निपतन्ति नराधमा । त्रिमिकीटसमाकीण शवपूष महावटम् ॥११२॥
 अधोमुख पतेत्तत्र कन्याविश्रयकृष्णर । नाम्ना वै तिलपाकति नरक दारण रभूतम् ॥११३॥
 तिलवस्तत्र पीडयत परपीडारताश्च य । नरक तलपाकति ज्वलत्तलमहीप्लवम् ॥११४॥
 पच्यत तत्र मित्रघ्नो हन्ता च शरणागतम् । नाम्ना वज्रकपाटति वज्रभृद्दहत्रयाऽन्वितम् ॥११५॥
 पीडयत निदय तत्रय कृत क्षीरविश्रय । निरच्छवास इति प्रोक्ता तमोऽधवातवर्जितम् ॥११६॥
 निष्वट क्षिप्यत तत्र विप्रदाननिरोधकृत । अङ्गारोपचय नाम दीप्ताङ्गारसमुज्ज्वलम् ॥११७॥
 दह्यते तत्र यनोक्त दान विप्राय नापितम् । महापापीति नरक लक्ष्योजनमायतम् ॥११८॥

रहता है ॥१०५॥ १०६॥ करम्भबालुका नामक नरक दण्ड द्वारा याजन विस्तृत प्रज्वलित बालू रूपा अगार
 तथा कण्टका से व्याप्त और कुएँ के आवार का है । जा भयवर मिष्या प्रपञ्च करने नित्य लागू का जलाते हैं
 वे एक लाख दण्डद्वारा तान सी बंधों तक उस नरक में जलाये जाते हैं तथा बाटे जाते हैं ॥१०७॥ १०८॥ बाकल
 नामक नरक क ड तथा पं प स आप्लुत है । अकटे म ठा खान वाला दुष्टात्मा मनष्य वहाँ पका जाता है ॥१०९॥
 कुडमल नामक नरक विष्टा मूत्र तथा गाणित से परिपूर्ण है । पञ्चयज्ञप्रिया से ह न मनुष्य उस नरक में पके जाते
 हैं ॥११०॥ १११॥ एक नरक अत्यन्त दुग्ध महाभयवर तथा मास-शोणित से प्रपूर्ण है । अमश्या अन्न खान में निरत
 मनुष्य उस नरक में गिरते हैं ॥१११॥ ११२॥ महावट नामक नरक कीड पत्तियों तथा गावों से आत प्राप्त है । कन्या वेशने
 वाले मनुष्य अधामुख होकर उस नरक में गिरते हैं ॥११२॥ ११३॥ तिलपाक नामक नरक भयकर है । दूसरे का उत्पन्न
 करने वाले मनुष्य वहाँ तिल क तरह पेठ जाते हैं ॥११३॥ ११४॥ तलपाक नामक नरक जलते हुए तल से प्रपूर्ण है ।
 मित्रहया करने वाले तथा शरणागत का मारने वाले मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥११४॥ ११५॥ वज्रकपाट नामक
 नरक वज्र की तरह दूढ़ सौंरलो से युक्त है । दूध चिकता मनुष्य वहाँ दिव्यतमपूष प डित नित्ये जाते हैं ॥११५॥
 निरच्छवास नामक नरक अपकारावृत तथा वायुरहित है । ब्राह्मणा का दान र रत्न वाला मनुष्य वहाँ सदाह न करने
 पके जाते हैं ॥११६॥ अगारोपचय नामक नरक जागृत्यमान अगार से पूर्ण है । आ ब्राह्मणा का वह कर दान
 नहीं देना है वह वहाँ दग्ध किया जाता है । ॥११७॥ ११८॥ महापापी नामक नरक एक लाख याजन उम्मा है । जा
 मनुष्य सग मिष्या भाषण करत हैं व अधामुख करके वहाँ गिराये जाते हैं ॥११८॥ महाज्वाल नामक नरक

'पात्यन्तेऽधोमुखास्तत्र ये जल्पन्ति सदाऽनृतम् । महाज्वालेति नरकं ज्वालाभास्वरभीषणम् ॥११९॥
 दह्यते तत्र सुचिरं यः पापे बुद्धिकृमरः । नरकं क्रकवाख्यात पीडयन्ते तत्र वै नराः ॥१२०॥
 क्रकचैर्वज्रधारोऽग्रगम्यागमने रताः । नरकं गुडपाकेति ज्वलद्गुडहृदवृतम् ॥१२१॥
 निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन्वर्णसंकरकृमरः । क्षुरधारेति नरकं तीक्ष्णक्षुरसमावृतम् ॥१२२॥
 छिद्यन्ते तत्र कल्पान्तं विप्रभूमिहरा नराः । नरकं 'चाम्बरीपात्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२३॥
 कल्पकोटिशतं तत्र दह्यते स्वर्णहारकः । नाम्ना वज्रकुठारेति नरकं वज्रसंकुलम् ॥१२४॥
 छिद्यन्ते तत्र छेत्तारो द्रुमाणां पापकारिणः । नरकं 'परितापात्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२५॥
 गरदो मधुहर्ता च पच्यते तत्र पापकृत् । नरकं कालसूत्रं च वज्रसूत्रयिनिर्मितम् ॥१२६॥
 भ्रमन्तस्तत्र च्छिद्यन्ते 'परसस्योपलुण्ठकाः । नरकं कश्मलं नाम श्लेष्मशिङ्घाणकावृतम् ॥१२७॥
 तत्र सक्षिप्यते 'कल्पं सदा मांसरुचिर्नरः । नरकं चोऽग्रगम्येति लालामूत्रपुरोषवत् ॥१२८॥
 क्षिप्यन्ते तत्र नरके पितृपिण्डाप्रयच्छकाः । नरकं दुर्धरं नाम जलोकावृश्चिकाकुलम् ॥१२९॥
 'उत्कोचभक्षकस्तत्र तिष्ठते धर्षकायुतम् । यच्च वज्रमहापीडा नरकं वज्रनिर्मितम् ॥१३०॥
 तत्र प्रक्षिप्य दह्यन्ते पीडयन्ते यमकिंकरैः । धनं धान्यं हिरण्यं वा परकीयं हरन्ति ये ॥१३१॥

भीषण ज्वालाओं से व्याप्त है । जो मनुष्य पाप में बुद्धि लगाते हैं, वे वहाँ चिरकाल तक जलाये जाते हैं ॥११९॥
 पञ्च नामक नरक में अगम्यागमन करने वाले मनुष्य वज्र के समान उग्र धार वाले आरे से पीरे जाते हैं ।
 ॥१२०॥ गुडपाक नामक नरक जलते हुए गुडों की झीलों से युक्त है । वर्णसंकर उत्पन्न करने वाले मनुष्य वहाँ दग्ध
 विये जाते हैं ॥१२१॥ क्षुरधार नामक नरक तीक्ष्ण अस्तुरों से आवृत है । ब्राह्मण की भूमि हरण करने वाले मनुष्य वहाँ
 कल्पान्त तक बाटे जाते हैं ॥१२२॥ अम्बरीष नामक नरक प्रलयान्त के समान प्रचलित है । सोना चुराने वाले
 मनुष्य वहाँ बराडा कल्पों तक जलाये जाते हैं ॥१२३॥ वज्रकुठार नामक नरक वज्रों से व्याप्त है । वृक्षों के बाटने
 वाले पापी मनुष्य वहाँ बाटे जाते हैं ॥१२४॥ परिताप नामक नरक प्रलयान्त के समान प्रदीप्त है । विष देने
 वाले तथा मधु हरण करने वाले पापी मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥१२५॥ कालसूत्र नामक नरक वज्र तुल्य सूत्रों
 से निर्मित है । दूसरे की कसलों को लूटने वाले मनुष्य वहाँ भ्रमण करते हुए बाटे जाते हैं ॥१२६॥ कश्मल नामक
 नरक वक् तथा नासिकामल (नकटी) से आवृत है । सदा मांस की अमिलाषा रखने वाला मनुष्य एक कल्प तक
 वहाँ फँका जाता है ॥१२७॥ उग्र गन्ध नामक नरक लार, मूत्र तथा विष्टा से युक्त है । पितरों को पिण्ड देने
 वाले मनुष्य वहाँ फँके जाते हैं ॥१२८॥ दुर्धर नामक नरक जोकों तथा बिच्छुओं से व्याप्त है । घुस लेने वाला
 व्यक्ति वहाँ दश हजार वर्षों तक रहता है ॥१२९॥ वज्रमहापीडा नामक नरक वज्रों का बनाया हुआ है । जो
 दूसरे के धन धान्य तथा सुवर्ण का अपहरण करते हैं, वे वहाँ यमदूता द्वारा जलाये जाते हैं और उत्प्लिखित होते
 हैं ॥१३०-१३१॥ जो मूल प्राणिमों को मारकर कौए तथा मीध की तरह खाते हैं, उन्हें कल्पान्त तक यमदूत अपना

'यमदूतैश्च चौरास्ते छिद्यन्ते लवशः क्षुरैः । ये हत्वा प्राणिनं मूढाः खादन्ते काकगृध्रवत् ॥१३२॥
 भोग्यन्ते च स्वमांसं ते कल्पान्तं यमकिंकरैः । आसनं शयनं वस्त्रं परकीयं हरन्ति ये ॥१३३॥
 यमदूतैश्च ते मूढा भिद्यन्ते शक्तितोमरैः । फलं पत्रं नृणाम् वाऽपि हृतं यैस्तु कुबुद्धिभिः ॥१३४॥
 यमदूतैश्च ते क्रुद्धैर्दहन्ते तृणवह्निभिः । परद्रव्ये कलत्रे च यः सदा दुष्टधीनरः ॥१३५॥
 यमदूतैर्ध्वलस्तस्य हृदि शूलं निखन्यते । कर्मणा मनसा वाचा ये धर्मविमुखा नराः ॥१३६॥
 यमलोके तु ते घोरा लभन्ते परियातनाः । एवं शतसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥१३७॥
 नरकाणि नरैस्तन 'भुज्यन्ते पापकारिभिः । इह कृत्वा स्वल्पमपि नरः कर्माशुभात्मकम् ॥१३८॥
 प्राप्नोति नरके घरे यमलोकेषु यातनाम् । न शृण्वन्ति नरा मूढा धर्मोक्तं साधु भाषितम् ॥१३९॥
 दृष्टं केनेति प्रत्यक्षं 'प्रत्युक्त्येवं वदन्ति ते । दिवा रात्रौ प्रयत्नेन पापं कुर्वन्ति ये नराः ॥१४०॥
 नाऽऽचरन्ति हि ते धर्मं प्रमादेनापि मोहिताः । इहैव फलभोक्तारः परत्र विमुखाश्च ये ॥१४१॥
 ते पतन्ति सुघोरेषु नरकेषु नराधमा । दारुणो नरके धांसः स्वर्गवासः सुखप्रदः ॥
 नरैः संप्राप्यते तत्र कर्म कृत्वा शुभाशुभम् ॥१४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे नरकगतपृथग्यातनाकीर्तनं नाम
 पञ्चदशाधिकद्विशतमोऽध्यायः ॥२१५॥

मान गिरते हैं ॥१३२॥ जो दूसरे के आसन, राय्या तथा वस्त्र वा अपहरण करते हैं उन मूर्खों को यम दूत शक्ति
 और तामर से खादते हैं ॥१३३॥ जो मनुष्यों के फल तथा पत्र वा भी कुबुद्धिपूर्वक अपहरण करते हैं उन्हें
 दूत यमदूत तृणवह्नि से जगाते हैं ॥१३४॥ जो नर दूसरे के द्रव्य तथा स्त्री व प्रति कुभाव रखते हैं यमदूत उससे
 हृदय में जलता हुआ शूल गाड़ते हैं ॥१३५॥ जो मानव कर्म, मन तथा वाणी से धर्मविमुख हैं, उन्हें यमलोके
 में घोर यातनायें मिलती हैं ॥१३६॥ इस प्रकार पापकारी मनुष्य सैबडों, हजारों, लाखों तथा करोड़ों नरकों वा
 भाग मंगते हैं ॥१३७॥ इस लाव में पाडा भी पाप करते वाला मनुष्य यमलोके में घोर नरक कर्म यातना प्राप्त
 करता है ॥१३८॥ मूर्ख मनुष्य धर्मशास्त्र-प्रतिपादित सुन्दर वचन को नहीं सुनते हैं, बल्कि प्रतिवाद करते हुए
 करते हैं—'प्रत्यक्ष किमन देखा है?' जो मनुष्य दिन रात यत्नपूर्वक पाप करते हैं, वे मोहित होकर भूल स भी
 पर्यावरण नहीं करते हैं । जो परलोके को नहीं मानते हैं और 'यही फल वा भाग होता है' ऐसा मानते हैं, वे नराधम
 घोर नरक में गिरते हैं । नरक वा वास्तव भयकर है और स्वर्गवाम सुखप्रद है । मनुष्य शुभ-अशुभ कर्म करते स्वर्ग-
 नरक प्राप्त करते हैं ॥१३९-१४२॥

श्री.ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और श्रुति के संवाद-प्रकरण में नरकों में पृथक्-पृथक् यातना-कीर्तन
 नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१५॥

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकगतदुःखनिवारणाय धर्माचरणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहोऽतिदुःखं घोरं च यममार्गे त्वयोदितम् । नरकाणि च घोराणि द्वारं याम्यं च सप्तम ॥१॥
अस्त्युपायो न वा ब्रह्मन्यममार्गेऽतिभीषणे । ब्रूहि येन नरा यान्ति सुखेन यमसादनम् ॥२॥

व्यास उवाच

इह ये धर्मसमुक्तास्त्वहिंसानिरता नराः । गुरुश्रूषणे युक्ता देवब्राह्मणपूजकाः ॥३॥
यस्मिन्मनुष्यलोकास्ते सभार्याः ससुतास्तया । तमध्वानं च गच्छन्ति यथा तत्कथयामि वः ॥४॥
विमानैर्विविधैर्दिव्यैः काञ्चनध्वजशोभितैः । धर्मराजपुरं यान्ति सेवमानाप्सरोगणैः ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यस्तु दानानि नानारूपाणि भक्षितः । ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति सुखेनैव महापथे ॥६॥
अन्नं ये तु प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यः सुसंस्कृतम् । श्रोत्रियेभ्यो विशेषेण भक्त्या परमया युतः ॥७॥
तृणैर्भिवैरस्त्रीभिः सेव्यमानाः प्रयत्नतः । धर्मराजपुरं यान्ति विमानैर्म्यलंकृतैः ॥८॥
ये च सत्यं प्रभाषन्ते बहिरन्तश्च निर्मलाः । तेऽपि यान्त्यमरप्रहया विमानैर्यममन्दिरम् ॥९॥

अध्याय २१६

नारकीय दुःख निवारण करने वाले धर्माचरण का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सज्जनो मे श्रेष्ठ । आपने यममार्ग का महान् वाप्ट, मयकर नरक तथा यम-द्वार भी बतलाये । ब्रह्मन् । अतिभीषण यममार्ग के बारे मे ऐसा कोई उपाय है, जिससे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक जा सकें ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—इस लोक मे जो मनुष्य धार्मिक, अहिंसानिरत, गुरु सेवा मे रत, देव-ब्राह्मणों के पूजक तथा मनुष्यलोकधारी हैं, वे पत्नी-पुत्र समेत यममार्ग मे जैसे जाते हैं, वह मैं आप लोगों को बतलाता हूँ । ॥३-४॥ सुवर्ण पताकाओ से श्यामित विविध दिव्य विमानों से वे यमपुरी जाते हैं, जहाँ अप्सरायें उनको सेवा किया करती हैं ॥५॥ जो भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान देते हैं, वे सुख से ही महापथ पर जाते हैं ॥६॥ जो ब्राह्मणों को विशेष करके श्रोत्रियो को परम भक्तिपूर्वक पवित्र अन्न देते हैं, वे उत्तम युवती स्त्रियो से सेवित तथा अलंकृत होकर विमानों से यमपुरी जाते हैं ॥७-८॥ जो सत्यभाषण करते हैं तथा बाहर भीतर से निर्मल हैं, वे भी देवतुल्य होकर विमानों से यममन्दिर जाते हैं ॥९॥ जो धर्मज्ञ मनुष्य कृशदाय, तपस्वी साधुओं को विष्णु के उद्देश से पवित्र

गोदानानि पवित्राणि विष्णुमुद्दिश्य साधुषु । ये प्रयच्छन्ति धर्मज्ञाः कृशेषु कृशवृत्तिषु ॥१०॥
 ते यान्ति दिव्यवर्णाभिर्विमानैर्मणिचित्रितैः । धर्मराजपुरं श्रीमान्सेव्य (व) मानाप्सरोगणैः ॥११॥
 उपानद्युगलं छत्रं शय्यासनमयापि वा । ये प्रयच्छन्ति वस्त्राणि तथैवाऽऽभरणानि च ॥१२॥
 ते यान्त्यश्वै रथैश्चैव कुञ्जरैश्चाप्यलंकृताः । धर्मराजपुरं दिव्यं छत्रैः सोवर्णराजतैः ॥१३॥
 ये च भक्त्या प्रयच्छन्ति गुडपानकमर्चितम् । 'ओदनं च द्विजाग्र्येभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना ॥१४॥
 ते यान्ति 'काञ्चनैर्नैर्विविधैस्तु यमालयम् । वरस्त्रीभिर्नयाकामं सेव्यमानाः पुनः पुनः ॥१५॥
 ये च क्षीरं प्रयच्छन्ति घृतं दधि गुडं' मधु । ब्राह्मणेभ्यः 'प्रयत्नेन' शुद्धयोपेतं सुसंस्कृतम् ॥१६॥
 चक्रवाकप्रयुक्तैश्च विमानैस्तु हिरण्यैः । यान्ति गन्धर्ववादिनैः सेव्यमाना यमालयम् ॥१७॥
 ये फलानि प्रयच्छन्ति पुष्पाणि सुरभीणि च । हंसयुक्तैर्विमानैस्तु यान्ति 'धर्मपुरं' नराः ॥१८॥
 ये तिलांस्तिलधेनुं च घृतधेनुमथापि वा । श्रोत्रियेभ्यः प्रयच्छन्ति विप्रैः श्रद्धयाऽन्विताः ॥१९॥
 सोममण्डलसंकाशैर्नैस्तु यान्ति निर्मलैः । गन्धर्वैरुपगीयन्ते पुरे वैधव्यतस्त्य ते ॥२०॥
 येषां वाप्यश्च कूपाश्च तडागानि सरांसि च । दीधिकाः पुष्करिण्यश्च शीतलाश्च जलाशयाः ॥२१॥
 यान्ति हेमचन्द्राभिर्दिव्यघण्टानिनादितैः । व्यजनैस्तालयूतैश्च दीज्यमाना महाप्रभाः ॥२२॥
 'येषां देवकुलान्यत्र चित्राण्यातमानि च । रत्नैः प्रस्फुरमाणानि मनोज्ञानि शुभानि च ॥२३॥

गार्ग्ये देते हैं, वे अष्टरत्नो से सेवित होकर भणिलिखित दिव्य वर्ण वाले विमानो से यमपुरी जाते हैं ॥१०-११॥
 जो जोडा जूता, छत्ता, शय्या, आसन, वस्त्र तथा मूषण दान करते हैं, वे घोड़े, हाथी, रथ तथा सोने-चादी के दिव्य
 छत्रो से अलंकृत होकर यमालय जाते हैं ॥१२-१३॥ जो पवित्र हृदय से भक्तिपूर्वक गुड, पान तथा भात ब्राह्मणो
 को देते हैं, वे सुवर्णमय विमानो से यम-नवन जाते हैं और दिव्याङ्गनायें उनकी पूर्ण सेवा करती हैं ॥१४-१५॥
 जो पवित्र तथा सुसंस्कृत दूध, घी, दही, गुड और मधु यत्नपूर्वक ब्राह्मणो को देते हैं, वे चक्रवाकयुक्त सोने के विमानो
 से यमालय जाते हैं और गन्धर्वगण सगीत द्वारा उनकी सेवा करते हैं ॥१६-१७॥ जो सुगन्धित पुष्प तथा फल दान
 करते हैं, वे नर हंसयुक्त विमानो से धर्मपुर जाते हैं ॥१८॥ जो तिल, तिलधेनु (तिलो की बनी गाय) तथा घृत
 धेनु (घी की बनी गाय) श्रद्धापूर्वक श्रोत्रियो को देते हैं, वे चन्द्रमण्डल के समान निर्मल विमानो से यमालय जाते हैं
 और यमपुरी मे गन्धर्वगण उनकी सेवा करते हैं ॥१९-२०॥ जो बावली, कुआँ, पीछरा सरोवर, दीधिका, पुष्करिणी
 तथा तालाब दान करते हैं, वे महातेजस्वी होकर दिव्य घण्टा-नादो से युक्त, सुवर्ण तथा चन्द्रमा के समान वांस्ति
 वाले विमानो से यमालय जाते हैं और उनके ऊपर पखे झोले जाते हैं ॥२१-२२॥ इस लोक मे जिन्होंने विच विचित्र
 रत्नवदित, मनोहर तथा पवित्र देवालय बनवाये हैं, वे लोकपालो के साथ पवनतुल्य वेगवाले विमानों से माना

१४ दक्षिणा । स अयने । २४ ० विमानैर्वाम्यमा० । ३४ स तथा । ४४ पुण्यदिने । ५४ श्रद्धो-
 पेन । स दृष्ट मन्त्रमु० । ६४ धर्मपुरी । ७४ स निर्मल । ८४ ये च कुर्वन्ति मूलोके दिव्यान्वाय० ।

ते यान्ति लोकपालंस्तु विमानं वार्तारं हंसः। धर्मराजपुरं 'दिव्यं नानाजनसमाकुलम् ॥२४॥
 पानीय ये प्रयच्छन्ति सर्वप्राण्युपजोषितम्'। ते वितृष्णाः सुखं यान्ति विमानंस्तं महापथम् ॥२५॥
 काष्ठपादुकयानानि पीठकान्यासनानि च। येदंस्तानि द्विजातिभ्यस्तेऽध्यानं यान्ति वै सुखम् ॥२६॥
 सौवर्णमणिपीठेषु पादौ कृत्वोत्तमेषु च। ते प्रयान्ति विमानंस्तु अप्सरोगणमण्डितं ॥२७॥
 आरामाणि विचित्राणि पुष्पाढधानीह मानवाः। रोपयन्ति फलाढयानि नराणामुपकारिणः ॥२८॥
 वृक्षच्छायासु रम्यासु शीतलासु स्वलकृताः। वरस्त्रोगीतवाद्यंश्च सेव्यमाना व्रजन्ति ते ॥२९॥
 सुवर्णं रजत वाऽपि विद्रुम भौक्षितक तथा। ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति विमानंः कनकोज्ज्वलैः ॥३०॥
 भूमिदा दीप्यमानाश्च सर्वकामंस्तु तर्पिताः। उदितादित्यसंकाशं विमानं भूशनादितं ॥३१॥
 कन्यां तु ये प्रयच्छन्ति ब्रह्मदेयामलंकृताम्। दिव्यकन्यावृता यान्ति विमानंस्ते यमालयम् ॥३२॥
 सुगन्धामुरुकर्पूरान्पुष्पधूपान्द्विजोत्तमाः। प्रयच्छन्ति द्विजातिभ्यो भक्त्या परमयाऽन्विताः ॥३३॥
 ते सुगन्धा सुवेशाश्च सुप्रभाः सुविभूषिताः। यान्ति धर्मपुरं यानेर्विचित्रैरभ्यलंकृताः ॥३४॥
 दीपदा यान्ति यानंश्च दीपयन्तो दिशो वश। आदित्यसदृशानिर्दीप्यमाना यथाऽनयः ॥३५॥
 गृहावसथदातारो गृहं काञ्चनमण्डितं। व्रजन्ति बालार्कनिर्भरं धर्मराजगृहं नराः ॥३६॥
 जलभाजनदातारः कुण्डिकाकरकप्रदाः। पूज्यमानाप्सरोभिश्च यान्ति दृप्ता महागजैः ॥३७॥

प्राणियो से परिपूर्ण दिव्य यमपुरी को जाते हैं ॥२३-२४॥ जो समस्त प्राणियो के जीवन स्वरूप जल दान करते हैं, वे प्यास रहित होकर विमानों से उस महापथ पर जाते हैं ॥२५॥ जो लकड़ी की सवारी, पीढा तथा आसन ब्राह्मणों को देते हैं, वे सुवर्णपूर्वक उस मार्ग में जाते हैं ॥२६॥ वे सुवर्ण तथा मणि के उत्तम आसनों पर बैठ रखकर अप्सराओं से मण्डित होकर विमानों से प्रयाण करते हैं ॥२७॥ जो लोगों के उपकार के लिये मनोहर तथा फल-गुप्ती से सम्पन्न उपवन लगाते हैं, वे सुमरु तथा शीतल वृक्षों की छाया में अलङ्कृत एवम् उत्तम बनिता, गीत तथा वाद्यों से सुषेजित होकर जाते हैं ॥२८-२९॥ जो सोना, चादी, मूगा तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्ण के समान उज्ज्वल विमानों से जाते हैं ॥३०॥ भूमिदान करने वाले मनुष्य कान्तिमान् तथा समस्त कामनाओं से तृप्त होकर महानादों से युक्त तथा उदयकालीन सूर्य के समान विमानों से जाते हैं ॥३१॥ जो अलंकृता कन्या ब्राह्मणों को देते हैं, वे दिव्य कन्याओं से आयुत होकर विमानों से यमालय जाते हैं ॥३२॥ द्विजश्रेष्ठो! जो परम भक्ति से सुगन्धित द्रव्य, अगर, कर्पूर, पुष्प तथा धूप ब्राह्मणों को देते हैं, वे अत्यन्त कान्तिमान्, सुविभूषित तथा सुन्दर गन्धो एवम् वेशों से युक्त होकर विभिन्न विमानों से यमलोक जाते हैं ॥३३-३४॥ दीप दान करने वाले मनुष्य दशा दिशाओं को आलोकित करते हुए तथा सूर्य सदृश विमानों से अग्नि की तरह प्रदीप्त होते हुए धर्मपुर जाते हैं ॥३५॥ जो मनुष्य गृहदान करते हैं, वे बालमूर्त्य के समान सुवर्णमण्डित गृहों से युक्त होकर यममघन जाते हैं ॥३६॥ जलपात्र देने वाले तथा वामण्डल देने वाले मनुष्य अप्सराओं से पूजित होते हुए गजराज पर चढ़ कर जाते हैं ॥३७॥ जो पैर तथा शिर का उवटन

पादाम्बुजं शिरोम्बुजं स्नानपानोदकं तथा । ये प्रयच्छन्ति विप्रैर्म्यस्ते यान्त्यश्वयंमालयम् ॥३८॥
 विधामयन्ति ये विप्राञ्छान्तानध्वनि कशितान् । चक्रवाकप्रयुक्तेन यान्ति यानेन ते सुखम् ॥३९॥
 स्वागतेन च यो विप्रं पूजयेदासनेन च । स गच्छन्ति तमध्वानं सुखं परमनिर्वृतः ॥४०॥
 नमो ब्रह्मण्यदेवेति यो हरिं चाभिवादयेत् । गां च पापहरेत्युक्त्वा सुखं यान्ति च तत्पथम् ॥४१॥
 अनन्तराशिनो ये च दम्भानृतविर्वजिताः । तेऽपि सारसयुक्तेस्तु यान्ति यानेश्च तत्पथम् ॥४२॥
 वर्तन्ते ह्येकभक्तेन शाठ्यदम्भविर्वजिताः । हंसयुक्तेर्विमानेस्तु सुखं यान्ति यमालयम् ॥४३॥
 चतुर्थैकभक्तेन वर्तन्ते ये जितेन्द्रियाः । ते यान्ति धर्मनगरं यानेर्बह्निपोजितैः ॥४४॥
 तृतीये दिवसे ये तु भुञ्जते नियतव्रताः । तेऽपि हस्तिरथैर्दिव्यैर्यान्ति यानेश्च तत्पथम् ॥४५॥
 षष्ठेऽन्नभक्षको यस्तु शौचनित्यो जितेन्द्रियः । स याति कुञ्जरस्थस्तु शचीपतिरिव स्वयम् ॥४६॥
 धर्मराजपुरं दिव्यं नानामणिबिभूषितम् । नानास्वरसमायुक्तं जयशब्दरवेयुतम् ॥४७॥
 पक्षोपवासिनो यान्ति यानैः शार्दूलपोजितैः । पुरं तदधर्मराजस्य सेव्यमानाः ॥ सुरासुरैः ॥४८॥
 ये च मासोपवासं तु कुर्वते संयतेन्द्रियाः । तेऽपि सूर्यप्रदीप्तैस्तु यान्ति यामर्यमालयम् ॥४९॥
 "महाप्रस्थानमेकाग्रो यः प्रयाति दृढव्रतः । सेव्यमानस्तु गन्धर्वैर्याति यानैर्यमालयम् ॥५०॥

और नहाने तथा पीने के लिये जल ब्राह्मणों को देते हैं, वे घोड़ों पर चढ़कर यमालय जाते हैं ॥३८॥ जो रास्ते के बचे हुए तथा दु खी विप्रों को विधाय देते हैं, वे चक्रवाक युक्त विमान से सुखपूर्वक यमपुरी जाते हैं ॥३९॥ जो स्वागत तथा आसन से विज की पूजा करते हैं, वह परम सुख से उस मार्ग में जाते हैं ॥४०॥ जो 'नमो ब्रह्मण्यदेव' कहकर विष्णु की तथा 'पापहरे' कहकर गाय की वन्दना करते हैं, वे उस मार्ग में सुख से जाते हैं ॥४१॥ जो दूसरों (को खिलाने) के बाद भोजन करते हैं और दम्भ-मिथ्या से रहित हैं, वे सारस पक्षी स युक्त रथों से उस मार्ग में जाते हैं ॥४२॥ जो एक ईश्वर के भक्त हैं, तथा दम्भ मिथ्या से शून्य हैं, वे हंस युक्त विमानों से यमालय जाते हैं ॥४३॥ जो ईश्वरभक्त तथा जितेन्द्रिय हैं, वे मयूरयुक्त रथों से धर्मनगर जाते हैं ॥४४॥ जो नियमपूर्वक व्रत करते हुए तीसरे दिन भोजन करते हैं, वे भी दिव्य गजयुक्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४५॥ जो जितेन्द्रिय तथा नित्य शुचि होकर छठे दिन भोजन करते हैं, वे साक्षात् इन्द्र की तरह हाथा पर चढ़ कर नाना मणियों से विभूषित, अनेक स्वरों से युक्त तथा जयशब्दों से समन्वित धर्मराजपुरी को जाते हैं ॥४६-४७॥ जो पाक्षिक उपवास करते हैं वे शार्दूलों (परी या बाघ) से युक्त रथा से यमपुरी जाते हैं और देवता तथा अमुर उनकी सेवा करते हैं ॥४८॥ जो द्वात्रिंशत्सप्त पूर्वक मासिक उपवास करते हैं, वे भी सूर्य के समान प्रदीप्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४९॥ जो दुइव्रती होकर एकाग्रचित्त से शरीर त्याग करते हैं वे गन्धर्वों से सेवित होते हुए विमानों से यमालय जाते

१४ ०म् । ये तोषयन्ति पवित्रानासने स्वागतेन । २४ च । ते गच्छन्ति महाध्वा० । ३४ ०वृता । पत्र० । ४४ ०वृ । गाव सर्वे सहेत्यु० । ५४ तत्पुरम् । ६४ ०पि हंससमायु० । ७४ ०वर्नविमानैर्यान्ति त० । ८४ स ०तदम् । ९४ शाकभयवि० । १०४ ०मान सु० । ११४ स सुममाहिता । १२४ ०नसमये हरि स्मरति मानव । १० ।

'शरीरं साधयेद्यस्तु वैष्णवेनान्तरात्मना । स रथेनाग्निवर्णेन यातीह त्रिदशालयम् ॥५१॥
 अग्निप्रवेशं यः कुर्यान्नारायणपरायणः । स यात्यग्निप्रकाशेन विमानेन यमालयम् ॥५२॥
 प्राणांस्त्यजति यो मर्त्यं स्मरन्विष्णुं सनातनम् । यानेनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः ॥५३॥
 प्रविष्टोऽन्तर्जलं यस्तु प्राणांस्त्यजति मानवः । सोममण्डलकल्पेन याति यानेन वै सुखम् ॥५४॥
 स्वशरीरं हि गृध्रेभ्यो वैष्णवो यः प्रयच्छति । स याति रथमुत्थेन काञ्चनेन यमालयम् ॥५५॥
 स्त्रीग्रहे गोग्रहे वाऽपि युद्धे मृत्युमुपैति यः । स यात्यमरकन्याभिः सेव्यमानो रविप्रभः ॥५६॥
 वैष्णवा ये च कुर्वन्ति तोययात्रा जितेन्द्रियाः । तत्पथं यान्ति ते घोरं सुखयानरलंकृताः ॥५७॥
 ये यजन्ति द्विजश्रेष्ठाः ऋतुभिर्भूरिदक्षिणैः । तप्तहाट्यसंकाशैर्विमानैर्यान्ति ते सुखम् ॥५८॥
 परपीडामकुर्वन्तो भूत्यानां भरणादिकम् । कुर्वन्ति ते सुखं यान्ति विमानैः वनकोऽज्ज्वलैः ॥५९॥
 ये क्षान्ता सर्वभूतेषु प्राणिनामभयप्रदाः । शोधमोहविनिर्मुक्ता निर्मदाः संपतेन्द्रियाः ॥६०॥
 पूर्णचन्द्रप्रकाशेन विमानेन महाप्रभाः । यान्ति वैवस्वतपुरं देवगन्धर्वसेविताः ॥६१॥
 एकभावेन ये विष्णुं ब्रह्माणं ध्यम्बकं रविम् । पूजयन्ति हि ते यान्ति विमानैर्भास्करप्रभैः ॥६२॥
 ये च मास न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः । तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः ॥६३॥

हैं ॥५०॥ जो विष्णु में चित्त लगाकर शरीर की साधना करते हैं, वे अग्नि के समान वर्ण वाले रथों से यमालय जाते हैं ॥५१॥ जो नारायणपरायण होकर अग्नि-प्रवेश करते हैं, वे अग्नि तुल्य प्रकाश वाले विमानों से यमालय जाते हैं ॥५२॥ जो मनुष्य सनातन विष्णु का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश वाले रथ से धर्मपुर जाता है ॥५३॥ जो मानव जल के अन्दर प्रवेश कर प्राणत्याग करता है, वह चन्द्रमण्डल तुल्य रथ से सुखपूर्वक यमलोक जाता है ॥५४॥ जो विष्णु-भक्त गीधों को अपना शरीर दे देता है, वह सुवर्ण के उत्तम रथ से यमालय जाता है ॥५५॥ जो स्त्री के लिये या गाय के लिये युद्ध में मरता है, वह रवि तुल्य कान्तिमान् होकर देव-गन्धाओं से सेवित होते हुए धर्मपुर जाता है ॥५६॥ जो वैष्णव जितेन्द्रिय होकर तीर्थयात्रा करते हैं, वे अलंकृत होकर विमानों से सुखपूर्वक उस मार्ग पर जाते हैं ॥५७॥ द्विजश्रेष्ठों जो बहुत दक्षिणाओं से यज्ञ करते हैं वे सुवर्ण सद्गुण विमानों से सुखपूर्वक यमालय जाते हैं ॥५८॥ जो दूसरे को कष्ट नहीं देते तथा नीकरो को उचित पारिथमिव देते हैं, वे वनक समान उज्ज्वल विमानों से सुखपूर्वक जाते हैं ॥५९॥ जो जितेन्द्रिय, क्षमाशील, श्रेष्ठ माह तथा अभिमान से रहित और प्राणीमात्र को अभयदान देने वाले हैं, वे देव-गन्धर्वों से सेवित तथा अति-कान्तियुक्त होकर पूणचन्द्र के समान प्रकाश वाले विमानों से यमपुर जाते हैं ॥६०-६१॥ जो एकभाव से विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा दिनकर की पूजा करते हैं, वे सूर्यतुल्य प्रभा वाले विमानों से जाते हैं ॥६२॥ जो नर सत्य-शौच से युक्त हैं तथा भासमक्षण नहीं करते हैं, वे भी सुख से यमपुर जाते हैं ॥६३॥ भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों में मास से बचकर

मांसाग्निष्टतरं नास्ति भक्ष्यभोज्यादिकेषु च । तस्मान्मांसं न भुञ्जीत नास्ति मिष्टं सुखोदयः ॥६४॥
 गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तुमांसं न भक्षयेत् । समावेतो पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदा वरः ॥६५॥
 सर्वतोय्येषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्तामम् ॥६६॥
 एव सुखेन ते यान्ति यमलोकं च धार्मिकाः । दानव्रतपरा यानैर्यत्र देवो रवेः सुतः ॥६७॥
 दृष्ट्वा तान्धार्मिकान्देवः स्वयं संमानयेद्यमः । स्वागतासनदानेन पाद्याध्यैण प्रियेण तु ॥६८॥
 धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः । येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृत कृतम् ॥६९॥
 इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूयिताः । स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥७०॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यपरिक्षयात् । यत्किंचिदल्पमशुभं फलं तदिह भोक्ष्यथ ॥७१॥
 ये तु तं धर्मराजानं भराः पुण्यानुभावतः । पश्यन्ति सौभ्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः ॥७२॥
 'तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा भुक्तिफलप्रदः । धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते ॥७३॥
 धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा । धर्मः स्वामी सखा गोप्ता' तथा धाता च पोषकः ॥७४॥
 धर्मादर्थोऽर्ज्यतः कामः कामाद्भोगः सुखानि च । धर्मादिद्वयधर्मकाग्र्य धर्मात्स्वर्गगतिः परा ॥७५॥
 धर्मस्तु सेवितो विप्रास्त्रायते महतो भयात् । देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्नोत्यसशयम् ॥७६॥
 यदा च क्षीयते पाप नराणां पूर्वसंचितम् । तदैषां भजते बुद्धिधर्मं चात्र द्विजोत्तमा' ॥७७॥

मीठा कोई नहीं है। इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये, क्योंकि मधुरी से सुख नहीं होता है ॥६४॥ जो हजार
 गायें दान करेगा और जो मांस नहीं खायेगा, वे दोनों समान हैं—ऐसा वेदवेत्ताओं में थेष्ठ ब्रह्मा ने पहले ही कहा है
 ॥६५॥ विप्रबृन्द ! समस्त तीर्थों (के सबन) और अखिल यज्ञों (के अनुष्ठान) से जो पुण्य पत्र मिलता है,
 वह पत्र मांस का भक्षण न करने से प्राप्त होता है ॥६६॥ इस प्रकार धार्मिक तथा दान व्रतपरायण मनुष्य सुख
 से यमलोक जाते हैं, जहाँ सूर्यपुत्र यम स्वयं रहते हैं ॥६७॥ उन धार्मिकों को देखकर स्वयं यम आसन, पाद्य तथा
 अर्घ्य से स्वागत करते हैं और प्रियवचन बहते हैं (वि)—'हे महात्माओ ! अपना बल्याण करने का तो ! आप धन्य
 हैं ! जिसलिये आपने दिव्यसुख के निमित्त पुण्य किया, अतः इस विमान पर चढ़कर दिव्य-स्त्री-मत्तगा से मूर्धित तथा
 अनेक वामनाओं से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाइये । वहाँ विपुल मोगा के भोगकर अन्त में पुण्य क्षय होकर पर जा कुछ
 पोंदा-मा अशुभ धर्म आपका किया हुआ है, उसका फल यहाँ भोगेंगे ॥६८-७१॥ पुण्य के प्रत्यय से मनुष्य धर्मराज
 का अपने बल्याणमय पिता के रूप में देखते हैं ॥७२॥ इसलिये मोक्ष-फल-दायक धर्म की उपायना सदा
 करनी चाहिये । धर्म से अर्थ, काम, और मोक्ष (का मिलना) भी बढ़ा गया है । ॥७३॥ धर्म ही माता, पिता, भाई,
 स्वामी, मित्र, बन्धु, रक्षक, धाता तथा पोषक है । धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से भोग तथा सुख
 होता है । धर्म से ऐश्वर्य, मन की एकाग्रता और स्वर्ग मिलता है ॥७४-७५॥ विप्रबृन्द ! सुरक्षित धर्म महान् मय से
 बचाता है । धर्म से देवत्व तथा ब्राह्मणत्व नि सन्देह प्राप्त होता है ॥७६॥ द्विजश्रेष्ठो ! जब मनुष्या के पूर्वसंचित
 पापों का क्षय हो जाता है तब उन्हें धर्म करने की बुद्धि होती है ॥७७॥ हजारों जन्म के बाद दुर्लभ मनुष्य-जन्म

जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् । यो हि नाऽऽचरते धर्मं भवेत्स खलु वञ्चितः ॥७८॥
 कुत्सिता ये दरिद्राश्च विरूपा व्याधितास्तथा । परप्रेष्याश्च मूर्खाश्च ज्ञेया धर्मविराजिताः ॥७९॥
 ये हि दीर्घायुः शूराः पण्डिता भोगिनोऽयिनः । अरोगा रूपवन्तश्च तैस्तु धर्मः पुरा कृतः ॥८०॥
 एवं धर्मरता विप्रा गच्छन्ति गतिमुत्तमाम् । अधर्मं सेवमानास्तु तिर्यग्योनिं व्रजन्ति ते ॥८१॥
 ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुग्रता । ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा ॥८२॥
 अनादिनिधन देव दंत्यदानवदारणम् । ये नमन्ति नरा नित्यं नहि पश्यन्ति ते यमम् ॥८३॥
 कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युत शरण गताः । न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः ॥८४॥
 ये जना जगता नार्थं नित्यं नारायणं द्विजाः । नमन्ति नहि ते विष्णोः स्थानादन्यत्र गामिनः ॥८५॥
 न ते द्रुतास्त तन्मार्गं न यम न च ता पुरीम् । प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि 'कथंचन' ॥८६॥
 कृत्वाऽपि बहुशः पाप नरा मोहसमन्विताः । न यान्ति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम् ॥८७॥
 शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम् । तेऽपि यान्ति 'तनुं' स्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयम् ॥८८॥
 अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम् । सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं 'लभे'च्चेद्विपतिर्यथा ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृवादे धामिकाणां सुगतिनिरूपणं नाम

पोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

पाप'र जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता है, वह (परम लाम से) वञ्चित ही रहता है ॥७८॥ जो निन्दित, दरिद्र, बुरूप, रोगी, दूत तथा मूर्ख हैं, उन्हें धर्मविराजित समझना चाहिये ॥७९॥ जो दीर्घायु, वीर, पण्डित, भोगी, धनवान्, नीरोग तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पहले धर्म लिया है (ऐसा समझना चाहिए) ॥८०॥ विप्रवृन्द ! इस प्रकार धर्म-परायण मनुष्य उत्तम जाति को प्राप्त करते हैं और अधर्मसेवी नर पशु-पक्षी योनि में जाते हैं ॥८१॥ जो मनुष्य नरकवासन कृष्ण के भक्त हैं, वे स्वप्न में भी यम या नरको का नहीं देखते हैं ॥८२॥ जो मनुष्य दंत्य-दानवों का दलन करने वाले आदिअन्तरहित भगवान् को नित्य प्रणाम किया करते हैं, वे यम को नहीं देखते हैं ॥८३॥ जो मन, कर्म तथा वाणी से भगवान् के शरणगत हो चुके हैं, उन्हें पकड़ने के लिये यमदूत समर्थ नहीं होते और वे मोक्षफल-भागी हो जाते हैं ॥८४॥ द्विजवृन्द ! आ मनुष्य नित्य जगत्पति नारायण को प्रणाम करते हैं, वे वैकुण्ठ छोड़ दूसरी जगह नहीं जाते ॥८५॥ विष्णु को प्रणाम करने वाले मनुष्य न यमदूतों को, न यमगार्ग को, न यम 'को', न यमपुरी को, न नरको को 'भी' देखते हैं ॥८६॥ अखिलपापहारी हरि को प्रणाम कर मोहयुक्त मनुष्य अनेक पाप करके भी नरक नहीं जाते ॥८७॥ जो नर शाठ्य से भी नित्य जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे भी शरीर त्यागने के बाद सुखमय विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं ॥८८॥ यदि अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी कभी हरि का कीर्तन करता है तो वह भी दोषों के क्षय हो जाने से मोक्ष प्राप्त करता है, जैसे शिशुपाल ने किया था ॥८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाक-प्रकरण में धर्मात्माओं के गतिनिरूपण नामक दो सौ

सौलहर्वा अध्याय समाप्त ॥२१६॥

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धर्मश्च्रेष्ठचवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा यममार्गं ते नरकेषु च यातनाम्^१। पप्रच्छुश्च पुनर्व्यास सशय मुनिसत्तमा ॥१॥

मुनय ऊचुः।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद। मर्त्यस्य क सहायो वै पिता माता सुतो गुरु ॥२॥

ज्ञातिसवन्धिचवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च। गृह शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जन ॥

गच्छन्त्यमुत्र लोके वै कश्च ताननुगच्छति ॥३॥

व्यास उवाच

एक प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति। एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्^४ ॥४॥

असहाय पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरु^५। ज्ञातिसवन्धिचवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ॥५॥

मृत शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जना। भूहर्तृमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखा ॥६॥

तैस्तच्छरीरमुत्सृष्ट धर्म एकोऽनुगच्छति। तस्माद्धर्म सहायश्च सेवितव्य सदा नृभि ॥७॥

अध्याय २१७

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर। इस प्रकार यममार्ग तथा नरको की यातना के बारे में सुनकर मुनियों ने फिर व्यास से अपना सहाय पूछा ॥१॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! अथ धर्मों के ज्ञाता। सर्वशास्त्रविशारद। मनुष्य का कौन सहायक होता है—पिता या माता या पुत्र या गुरु या बंधुवर्ग या मित्रवर्ग? मनुष्य लकड़ी तथा ढले के समान घर एवम् शरीर को छोड़कर चले जाते हैं। मरने पर कौन उनका अनुगमन करता है? ॥२॥ ३॥

व्यास ने कहा—विप्रवृद्ध। मनुष्य अकेला जन्म लेता है अकेला मरता है अकेला बर्तनाइयों को पार करता है और अकेला दुर्गति प्राप्त करता है। पिता माता, माई पुत्र गुरु बंधुवर्ग तथा मित्रवर्ग—कोई उसका साथ नहीं देता है। लोग लकड़ी-ढले के समान उससे मृत शरीर को त्याग कर दो घड़ी रो रो कर निवृत्त हो जाते हैं। उन लोगों से परित्यक्त शरीर का अनुगमन एव धर्म ही करता है। इसलिए मनुष्यों का अपने सहाय धर्म की सदा

^१य यातनम्। ^२ग मृत। ^३न स्वगतिम्। ^४यस्य ०तमपि रो०। ^५क स एवानु०।

प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गं गतिं पराम् । तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते ॥८॥
 'तस्मात्पापागतैरर्थं नानुरज्येत' पण्डितः । धर्मं एको मनुष्याणां महायः परिकीर्तितः ॥९॥
 'नोभान्मोहादनुभोशाद्भयाद्वाऽयं बहुश्रुतः' । नरः करोम्यकार्याणि परार्थं लोभमोहितः ॥१०॥
 धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिनयः जीवतः फलम् । एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ॥११॥

मुनय ऊचुः

श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम् । शरीरनिश्चयं ज्ञातुं बुद्धिर्नोऽत्र प्रजायते ॥१२॥
 मृतं शरीरं हि नृणां सूक्ष्ममव्यक्ततां गतम् । अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति ॥१३॥

व्यास उवाच

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तरम् । बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा ॥१४॥
 प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूता दिवानिशम् । एतंश्च सह धर्मो हि तं जीवमनुगच्छति ॥१५॥
 त्वगस्थि मांसं शुक्रं च शोणितं च द्वितोत्तमा । शरीरं वर्जयन्त्येते जीवितेन विवर्जितम् ॥१६॥
 ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते । इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि व ॥१७॥

मुनय ऊचुः

तद्दशितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति । एतत्तु ज्ञातुमिच्छामः कथं रेतः प्रवर्तते ॥१८॥

सेवा करनी चाहिये । धर्मात्मा प्राणी उत्कृष्ट स्वर्ग को प्राप्ति करता है और पापी नरक में जाता है । अतः पण्डित-जन को चाहिये कि वे अधर्मों से प्राप्त धन में अनुरक्त न हों । मनुष्यों का एक धर्म ही सहायक माना गया है । बहुश्रुत मनुष्य भी लोभ से, मोह से, दया से या मय से अकार्य कर बैठते हैं । धर्म, अर्थ और काम—ये तीन ही जीवन के फल हैं । इन तीनों की प्राप्ति अधर्म पूर्वक नहीं करनी चाहिए ॥४-११॥

मुनियो ने कहा—आपका धर्मयुक्त तथा परमवल्याणकारी वाक्य हमने सुना । अब शरीर के विषय में हम सुनना चाहते हैं । मनुष्यों का मृत शरीर सूक्ष्म तथा अव्यक्त कहा गया है । वह दृष्टिगोचर नहीं होता है । फिर धर्म कैसे उसका अनुगमन करता है ? ॥१२-१३॥

व्यास ने कहा—पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सब नित्य धर्म को देखते हैं । ये विनिरात सगुण प्राणियों के साक्षी बने रहते हैं । इन्हीं के साथ धर्म जीव का अनुगमन करता है । द्विजवर ! प्राणों के छोड़ देने पर त्वचा, हड्डी, मांस, धीर्य और शोणित रूप शरीर को ये भी छोड़ देते हैं । तदनन्तर धर्मयुक्त जीव इस लोक में तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है । अब फिर आप लोगों से क्या कहूँ ? ॥१४-१७॥

मुनियो ने कहा—यह तो अज्ञाने बतलाया कि धर्म कैसे अनुगमन करता है । अब हम यह जानना चाहते हैं कि धीर्य कैसे बनता है ॥१८॥

१ख ०स्मान्याग० । २ख ०धर्मं सेव्यस्तु प० । ३ख । पण्डितं ४ख एष । ५ग ०द्राश्यव० ।

६क ग जीविते । ख जीविन । ७क ०तत्तु धर्मवाक्य मे अध० । ८ख अतिनिवि० । ९क ख ०वा ।

सर्वधात्विह । १०ग ०तानि चानि० । ११ख ०रीरे वर्तते सर्व जी० । १२क वर्तय० । १३ख ०तेनाऽऽयुते पुन । १४ ।

व्यास उवाच

अन्नमश्नन्ति ये देवा शरीरस्या द्विजोत्तमा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥१९॥
ततस्तृप्तोपु भो विप्रास्तेषु भूतेषु पञ्चषु । मन षष्ठ्यु शुद्धात्मा रत सपद्यत महत ॥२०॥
ततो गर्भं स भवति श्लेष्मा स्त्रीपुंसयोर्द्विजा । एतद्भव सवमात्मात किं भूय श्रोतुमिच्छय ॥२१॥

मुनय ऊचु

आख्यात भो भगवता गम सजायत यथा । यथा जातस्तु पुरय प्रपद्येत तदुच्यताम ॥२२॥

व्यास उवाच

'जासन्नमात्रपुरुषस्तभूतंरभिभूयते' । विप्रपुक्तास्तु तंभूतं पुनर्यात्यपरा गतिम ॥२३॥
'स च भूतसमायुक्त प्राप्नोति जीवमव हि । ततोऽस्य कम पश्यन्ति शुभ वा यदि याऽनुभम ॥
दवता पञ्चभूतस्या किं भूय' श्रोतुमिच्छय ॥२४॥

मुनय ऊचु

त्वग्न्य मासमुत्सृज्य तंस्तु भूतंविवाजित । जीव स भगवद्वयस्य सुखदुःख समश्नुत ॥२५॥

व्यास उवाच

जीव कमसमायुक्त शीघ्र रत समागम । स्त्रीणा पुष्प समासाद्य तत कालन भो द्विजा ॥२६॥

व्यास ने कहा—विप्रवर । शरीरस्य देव जा अन्नमक्षण करते हैं उससे पृथिवी वायु आकाश जल अग्नि और मन तत्प होते हैं । पञ्च महामूला तथा छठ मन के तत्प हा जाने पर शुद्ध आत्मा ह महान् वय बन जाता है । तब स्व-मुखा वा रज-वय मम रूप म परिणत होता है । यह सब मैंने आपसे बतला दिया । अब क्या सुनना चाहते हैं ? ॥१९ २१॥

मुनियों ने कहा—गम जैसे उत्पन्न होता है वह ता आपन बतला दिया । अब पुरय वंस उत्पन्न होता है—यह कहिये ॥२२॥

व्यास ने कहा—पुरय उत्पन्न होते हैं पञ्चमहामूल से आजात हो जाता है । पुन उन मूलों से विभक्त होने पर वह दूसरी गति को प्राप्त करता है । मूलों से युक्त होने पर वह जीवमात्र को हा प्राप्त करता है । तदुपपन्न पञ्चमूलों में रहने वाले देवता उसने गुम-अगुम वर्गों को देखते हैं । फिर आप क्या सुनना चाहते हैं ॥२३ २४॥

मुनियों ने कहा—मगवन् । मूलों से परित्यक्त जब जब त्वचा हूडक तथा मांस का छान देता है तब वह वहां रह कर सुख-दुःखों का भोग करता है ? ॥२५॥

व्यास ने कहा—द्विजवन् । वर्गों से युक्त जब धर्म वय का प्राप्त करता है । तब समय पाकर स्त्रिया व रज म समाविष्ट होता है ॥२६॥ मनुष्य सत्कारक म पदकर दुःख कष्टों धमदूता द्वारा कष्टों तथा

१९ ०षष्ठमात्तु पु० । २० छ ०प्य स्वगर्भैरनु० । २१ छ ०स्तुत सर्वे पु० । २२ छ सवमू० । २३ छ ०ञ्च वि । २४ छ भूयो मुतय था० । २५ छ ०त प्रवर्तते स्त्री० ।

यमस्य पुरुषः क्लेशो यमस्य पुरुषैर्वंधः । दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं च त्रिन्दति ॥२७॥
 इह लोके स तु प्राणी जन्मप्रभृति भो द्विजाः । सुकृतं कर्म च भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः ॥२८॥
 यदि धर्मं समायुज्य जन्मप्रभृति सेवते । ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥२९॥
 अथान्तरान्तरं धर्ममधर्ममुपसेवते । सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति ॥३०॥
 अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः । महादुःखं समासाद्य तिर्यग्योनीं प्रजायते ॥३१॥
 कर्मणा येन येनेह यस्या योनीं प्रजायते । जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे शृणुत सांप्रतम् ॥३२॥
 यदेतदुच्यते शास्त्रं । सेतिहासंश्च छन्दसि । यमस्य विषयं घोरं 'मर्त्यलोकं' प्रवर्तते ॥३३॥
 इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भो द्विजाः । तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥३४॥
 यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणः । 'कर्मभिर्नियतंबद्धो' जन्तुर्दुःखान्युपादनुते ॥३५॥
 येन येन हि भावेन येन वै कर्मणां गतिम् । प्रयाति पुरुषो घोरान् तथा वक्ष्याम्यतः परम् ॥३६॥
 अथोत्थ चतुरो वेदान्द्विजो मोहसमन्वितः । पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनीं प्रजायते ॥३७॥
 खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥३८॥
 बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः^१ । ब्रह्मराक्षस्तु मातांस्त्रीस्ततो जायेत 'ब्राह्मणः' ॥३९॥
 पतितं याजयित्वा तु कृमियोनीं प्रजायते । तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः ॥४०॥

यमद्वारा द्वारा वध को प्राप्त करता है ॥२७॥ विप्रगण^१ इस लोक में वह प्राणी जन्म से लेकर पुण्य करता है और धर्म का फल भोगता है ॥२८॥ यदि वह जन्म से लेकर धर्म की सेवा करता है तो वह पुरुष होकर नित्य सुख प्राप्त करता है ॥२९॥ वीष वीच में वह धर्म-अधर्म दोनों करता है । वह जीव सुख के बाद दुःख भी प्राप्त करता है ॥३०॥ अधर्म करने पर वह यमलोक जाता है । फिर घोर दुःख पाकर पत्नीयोनि में जाता है ॥३१॥ जिस-जिस धर्म के करने से मोह-बद्ध जीव जिस योनि में उत्पन्न होता है, वह उसी मुखसे सुनिये ॥३२॥ वेद, शास्त्र तथा इतिहास बतलाते हैं कि जीव यम के भयकर राज्य को छोड़कर मर्त्यलोक में आता है ॥३३॥ यहाँ अनेको देवतुल्य पवित्र स्थान हैं, जहाँ पशु-पक्षी योनि के अतिरिक्त योनियाँ जाती हैं ॥३४॥ यमराज के ब्रह्मलोक के समान गुणी वाले दिव्य भवन में जीव अपने कर्मों से बद्ध होकर दुःख भोगता है ॥३५॥ जिस माव से या जिस धर्म से मनुष्य घोर गति को प्राप्त करता है, वह मैं इसके बाद बतलाऊँगा ॥३६॥ जो ब्राह्मण चारों वेदों को पढ़कर मोहवश पतितों से दान लेता है, वह मरने पर गवा होता है ॥३७॥ द्विजगण^२ गवा होकर वह पन्द्रह वर्ष जीता है । फिर मरने पर वह बैल होकर सात वर्ष जीता है ॥३८॥ बैल की देह त्यागने पर वह ब्रह्मराक्षस होता है । तीन महीनों तक ब्रह्मराक्षस रह कर बाद में ब्राह्मण हो जाता है ॥३९॥ पतितों के याग करने से कीड़े की योनि में जाना पड़ता है । वहाँ पन्द्रह वर्ष रहने पर कीटयोनि से मुक्ति मिल जाती है । तब गवे की योनि में जाना पड़ता है । वहाँ भी

१ख ०मास्थित । २ग मर्त्या लोक प्रजायते । ३ख ०मिर्मियते बद्धो० । ४ग ०तान्प्रति० । ५ख ०सः । राक्षसत्वं समासाद्य ततो । ६क ०ह्यराक्षसमासासी ततो । ७क ०ख राक्षसः ।

त्रिमिभावाद्भिर्मुक्तस्ततो जायेत गर्दभः । गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि शूकरः ॥४१॥
 कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः । श्वः वर्षमेकं भवति ततो जायेत मानवः ॥४२॥
 उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान् । स जन्मानोह संसारे त्रीनाप्नोति न संशयः ॥४३॥
 प्रावशः भवति भो विप्रास्ततः क्रत्यास्ततः खरः । प्रेत्य च परिविलष्टेषु पद्माङ्गायेत ब्राह्मणः ॥४४॥
 मतसापि गुरोर्भार्या यः शिष्यो याति पापकृत् । उदघ्रांतिं संसारानधर्मेणैव चेतसा ॥४५॥
 श्वयोनी तु स संभूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति । तत्रापि निधनं प्राप्तः त्रिमियोनी प्रजायते ॥४६॥
 कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति । ततस्तु निधनं प्राप्य ब्रह्मयोनी प्रजायते ॥४७॥
 यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्त्यादकारणम् । आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते ॥४८॥
 दिनरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते । सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः ॥४९॥
 गर्दभत्वं तु संप्राप्य दश वर्षाणि जीवति । संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः ॥५०॥
 पुत्रस्य मातापितरो यस्य रष्टावुभावपि । गुर्वपघ्याननः सोऽपि मृतो जयेत गर्दभः ॥५१॥
 यरो जीवति मासांश्च दश चापि चतुर्दश । त्रिडालः सप्त मासास्तु ततो जायेत मानवः ॥५२॥
 मातापितरावाप्तुश्च सारोक्तः संप्राजयते । ताडयित्वा तु तापेव जायते कच्छपो द्विजाः ॥५३॥
 कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः । ध्यालो भूत्वा तु एष्मासास्तनो जायेत मानुषः ॥५४॥
 भर्तृपिण्डमुपाप्नोतीति राजद्विष्टानि सेवते । सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायेत वानरः ॥५५॥

पाँच वर्षों तक रहकर जीव सूअर हाथर जन्म लेता है ॥४०-४१॥ फिर पाँच वर्षों तक मुर्गा और पाँच वर्षों तक गिपार होता पड़ता है । फिर एक वर्ष तक कुत्ते की योगिनी में रहकर जीव मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४२॥ जो मूर्ख शिष्य अपने अध्यापक के प्रति पापाचरण करता है, वह इस संसार में निःसन्देह तीन योगिनियों में जाता है । पहले वह कुत्ता होता है तदनन्तर राक्षस और तदनन्तर गधा । फिर मरने पर अनेकविध बप्टों को सहकर पदचात् वह ब्राह्मण होता है ॥४३-४४॥ जो शिष्य मन से भी गुरु-पत्नी के प्रति पापाचरण करता है, वह अधर्मयुक्त चित्त केर सगर में जन्म लेता है, और कुत्ते की योगिनी में तीन वर्षों तक जीवर मर जाता है । फिर कीड़े की योगिनी में उत्पन्न होता है ॥४५-४६॥ वही भी एक वर्ष जीता है । तदनन्तर ब्राह्मण-योगिनी में उत्पन्न होता है ॥४७॥ यदि पुत्र तुल्य शिष्य को गुरु अवधारण ही या अपने स्वार्थवश मार देता है तो वह भी हिंसक योगिनी में उत्पन्न होता है ॥४८॥ विप्रवृन्द ! जा पुत्र माता-पिता की अपहेलना करता है, वह भी मरने पर गधा होता है ॥४९॥ गर्दभ-योगिनी में वह दस वर्षों तक रहता है । तब एक वर्ष तक मगर होकर रहता है । तदनन्तर मनुष्य योगिनी में उत्पन्न होता है ॥५०॥ जिस पुत्र ने ऊपर माता, पिता तथा गुरु रुष्ट रहते हैं, वह मरने पर गधा होता है ॥५१॥ तदनन्तर श्वयोनी मास तक गधा और सात मास तक बिल्व होकर फिर मनुष्य होता है ॥५२॥ माता-पिता की निन्दा करने वाला मनुष्य सारोक्त (पक्षी विशेष) होता है और उनकी ताडना करने वाला बछ्छा होता है ॥५३॥ कच्छपयोगिनी में दश वर्षों तक रहकर सही होता है । फिर छह महीनों तक साँप हाथर बाद में मनुष्य होता है ॥५४॥ स्वामी के अप्र का सावर उसने पानुओं की सेवा करने वाला मोहयुक्त मनुष्य मरने पर बन्दर होता है ॥५५॥ दस वर्षों तक बन्दर, सात वर्षों तक बूढ़ा और छह मासों तक कृत्ता रह कर वह मनुष्य होता है ।

वानरो दश वर्षाणि सप्त वर्षाणि मूपकः । इवा च भूत्वा तु यन्मासांस्ततो जायेत मानवः ॥५६॥
 न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः । संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥५७॥
 तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । दुष्कृतस्य क्षय कृत्वा ततो जायेत मानुषः ॥५८॥
 असूयको नरश्चापि मृतो जायेत शाड्गर्गकः । विश्वामहर्ता च नरो मोनो जायेत दुर्मतिः ॥५९॥
 भूत्वा मोनोऽष्टवर्षाणि मृगो जायेत भो द्विजाः । मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥६०॥
 छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णं सवत्सरे ततः । कीटः सजायते जन्तुस्ततो जायेत मानुषः ॥६१॥
 धान्यान्व्यांस्तिलान्मापान्कुलित्यान्सर्पपाशचणान् । कलापानथ मुद्गाश्च गोधूमानतसोस्तथा ॥६२॥
 सस्यान्पश्यानि हर्ता च मर्त्यो मोहादचेतनः । सजायते मुनिधेष्ठा मृधिको निरपन्नपः ॥६३॥
 ततः प्रेत्य मुनिधेष्ठा मृतो जायेत शूकरः । शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते पुनः ॥६४॥
 इवा तनो जायते मूकः कर्मणा तेन मानवः । भूत्वा इवा पञ्च वर्षाणि ततो जायेत मानवः ॥६५॥
 परवाराभिर्मर्शं तु कृत्वा जायेत वं वृकः । इवा शृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कडको बकस्तथा ॥६६॥
 भ्रातृभार्या तु पापतमा यो धर्षयति मोहितः । पुस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि सवत्सरं द्विजाः ॥६७॥
 'सखिभायी गुरोर्भायी राजभायी तथैव च । प्रधर्षयित्वा कामात्मा मृतो जायेत शूकरः ॥६८॥
 शूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि वं बकः । पिपीलिकस्तु मासास्त्रोन्कीटः स्यान्मासमेव च ॥६९॥

॥५६॥ परोहर वा अपहरण करने वाला मनुष्य यम के राज्य में पहुँचता है। सौ बार जन्म-मरण पाकर (या नरको का भोगकर) कृमि-योनि में उत्पन्न होता है ॥५७॥ वहाँ पन्द्रह वर्षों तक रहकर पापी वा क्षय करने मनुष्य-योनि में आता है ॥५८॥ निन्दक मनुष्य मरने पर शाड्गर्गक (सींग वाला जीव) होता है। विस्वाध-घाती दुष्टबुद्धि मनुष्य मछली होता है ॥५९॥ आठ वर्षों तक मछली रह कर हरिण होता है चार महीनों तक हरिण रहकर बकरा होता है ॥६०॥ एक वर्ष तक उस योनि में रहकर कीड़ा होता है। तदनन्तर मनुष्य होता है ॥६१॥ मुनिधेष्ठो^१ धान, यव, तिल, उड़द, कुलर्षी, सरसो, चने, मूग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे अन्न को चुराने वाला मूर्ख मनुष्य निर्लज्ज चूहा होता है ॥६२-६३॥ फिर मरने पर सूअर होता है। शूकर-योनिमें वह उत्पन्न होते ही रोग से मर जाता है ॥६४॥ तब वह गृगा कुत्ता होता है। पाँच वर्षों तक उस योनि में रहकर मनुष्य होता है ॥६५॥ दूसरे की पत्नी के साथ सम्भोग करने वाला मनुष्य भेडिया होता है। तदनन्तर वह कुत्ता, छिपार, गीध, साँप, सफेद पील और बगला होता है ॥६६॥ जो मूर्ख मनुष्य भ्रातृ-पत्नी के साथ सम्भोग करता है, वह भी एक वर्ष तक पुस्कोकिल (कोयल वा नर) होता है ॥६७॥ मित्र-पत्नी, गुरु-पत्नी तथा राज-पत्नी के पास जाने वाला कामी मनुष्य सूअर होता है ॥६८॥ पाँच वर्षों तक सूअर, दस वर्षों तक बगला, तीन महीनों तक पीटी और एक मास तक वह कीड़ा होता है ॥६९॥ इतनी योनियों में

एतानासाद्य ससारान्कृमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश ॥७०॥
 नरोऽयमक्षय कृत्वा ततो जायत मानुष । पूर्वं दत्त्वा तु य कया द्वितीये दातुमिच्छति ॥७१॥
 सोऽपि विप्रा मृतो जन्तु क्रिमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश द्विजोत्तमा ॥७२॥
 अधमसक्षये मुक्तस्ततो जायत मानुष । देवकायमकृत्वा तु पितकायमयापि वा ॥७३॥
 अनिर्याप्य पितुर्देवामृतो जायत वायस । वायस शतवर्षाणि ततो जायेत कुक्कुट ॥७४॥
 जायत व्यालकदवापि मास तस्मात्तु मानुष । ज्येष्ठ पितृसम चापि भ्रातर योऽयमयत ॥७५॥
 सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायत । क्रौञ्चो जीवति वर्षाणि द्वात्रिंशत् जायेत जीवक ॥७६॥
 ततो निधनमाप्नोति मानुषवमवानुयात । वृषलो ब्राह्मणो गवा कृमियोनौ प्रजायते ॥७७॥
 तत सप्राप्य निधन जायत शूकर पुन । शूकरो जातमात्रस्तु रोगण त्रियत द्विजा ॥७८॥
 इवा च वै जायते मूढ कमणा तनभो द्विजा । इवा भूत्वा कृतकर्माजितो जायते मानुषरतत ॥७९॥
 तत्रापत्य समुत्पाद्य मृतो जायत मूषिक । कृतघ्नस्तु मृतो विप्रा यमस्य विषय गत ॥८०॥
 यमस्य विषय क्रूरबद्ध प्राप्नोति वदनाम । दण्डक मुदगर गूलमग्निदण्ड च वारुणम् ॥८१॥
 असिपत्रवन घोर बालका कटशा मलीम । एताश्चायाश्च बहवो यमस्य विषय गता ॥८२॥
 यातना प्राप्य घोरान्तु ततो याति च भो द्विजा । ससारचक्रमासाद्य क्रिमियोनौ प्रजायते ॥८३॥

आकर फिर कृमि-योनि में उत्पन्न होता है । कृमि योनि में वह चौदह मास तक जीवित रहता है ॥७०॥ वहाँ जीव पाप-क्षय करने तक मनुष्य होता है । जो व्यक्ति पहले एक को कया देकर फिर दूसरे को देना चाहता है वह भी मरने पर कृमि-योनि में उत्पन्न होता है ॥७१॥ वहाँ तेरह वर्षों तक वह जीता है और पाप-क्षय हो जाने पर फिर मनुष्य हो जाता है ॥७२॥ जो मनुष्य देवकर्म पितृकर्म या देव पितरों का तर्पण बिना क्रिये ही मर जाता है वह कोआ होता है । सो वर्षों तक कोआ होकर फिर मूर्खा होता है ॥७३॥ तदनन्तर साँप होकर फिर मनुष्य होता है । जो पिता के समान ज्येष्ठ भाई का अपमान करता है वह भी मरने पर बर्राकुल पक्षी होता है । दस वर्षों तक बर्राकुल होकर फिर चकोर होता है । तदनन्तर मनुष्य-योनि में जाता है ॥७४॥ ब्राह्मणा के पास जाने वाला गूढ़ कृमि-योनि में उत्पन्न होता है । वहाँ से मरने पर फिर शूकर होता है । गूकर-योनि में उत्पन्न होते ही वह रोग से मर जाता है ॥७५॥ उस कर्म से वह मूष होता है । उस योनि में अपना कम समाप्त कर वह मनुष्य होता है । वहाँ भी सतान उत्पन्न कर मरने के बाद चूहा होता है ॥७६॥ कृतघ्न व्यक्ति मरने पर यमलोक जाता है । वहाँ वह पूर यमदूता द्वारा बद्ध होकर कष्ट पाता है । दण्डक मुदगर गूल मयकर अग्निदण्ड मयकर असिपत्रवन बालका तथा कूटशास्त्रपत्नी नामक नरकों की यातनायें तथा दूसर भी बहुत-सी मयानक यातनायें पाकर वह फिर ससारचक्र को प्राप्त कर कृमि योनि में उत्पन्न होता है ॥८०॥ ८३॥ पन्द्रह वर्षों तक उस योनि में रहकर फिर गम में जाते ही वहाँ मर जाता है ।

क्रिभिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव क्षियते नरः ॥८४॥
 ततो गर्भं शतं जन्तुर्बहुशः संप्रपद्यते । संसारान्सुबहून्गत्वा ततस्तिर्यक् प्रजायते ॥८५॥
 ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानि वै । स पुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मं प्रजायते ॥८६॥
 वधिं हत्वा बकश्चापि प्लवो मत्स्यान्संस्कृणान् । चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधुंशः प्रजायते ॥८७॥
 फलं वा मूलकं हत्वा पुप वाऽपि पिपीलिकः । चोरयित्वा तु निष्पावं जायते फलमूषकः ॥८८॥
 पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरस्वमवाप्नुयात् । हत्वा पिष्टमयं पूषं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥८९॥
 अपो हत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः । कांस्यं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारीतो जायते नरः ॥९०॥
 राजतं भाजनं हत्वा कपोतः संप्रजायते । हत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनीं प्रजायते ॥९१॥
 पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कुरुरत्यं नियच्छति । कोशकारं ततो हत्वा नरो जायते नर्तकः ॥९२॥
 अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायेत मानवः । चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥९३॥
 श्रीञ्च कार्पासिकं हत्वा मृतो जायेत मानवः । चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भो द्विजाः ॥९४॥
 क्षौमं च वस्त्रमाहुत्य शशो जन्तुः प्रजायते । चूर्णं तु हत्वा पुरयो मृतो जायेत ब्रह्मिणः ॥९५॥
 हत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः । वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः ॥९६॥
 चुचुन्वग्नित्यभान्नोति विप्रो लोभपरायणः । तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च ॥९७॥
 अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानवः । चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥९८॥

तदनन्तरं सैकडों गर्मों में वह इसी प्रकार जाता है । अनेको बार जन्म लेकर वह पक्षीयोनि में उत्पन्न होता है ।
 वहाँ बहुत वर्षों तक दुःख भोगकर फिर कष्टप्रा होता है ॥८४-८६॥ दही चुराने वाला मनुष्य बगला होता है ।
 असह्यत मछलियाँ चुराने वाला दुर्बुद्धि मनुष्य मधुमक्खी होता है ॥८७॥ फल-मूल या पूषा चुराने वाला
 चीटी होता है । सेम चुराने वाला गिलहरी होता है ॥८८॥ खीर चुराने वाला तीतर होता है । मालपूषा चुराने-
 वाला उल्लू होता है ॥८९॥ जल चुराने वाला मूख मनुष्य कौआ होता है । वाँसा चुराने वाला मूख मनुष्य हारीत
 पक्षी होता है ॥९०॥ चाँदी वा पात्र चुराने वाला कबूतर होता है । सुवर्णपात्र चुराने वाला द्विमयोनिग
 उत्पन्न होता है ॥९१॥ रेशमी वस्त्र चुराने वाला कुरुर पक्षी होता है । (रेशम वा कीडा चुराने वाला नर्तक होता है)
 ॥९२॥ महीन वस्त्र चुराने वाला मनुष्य तोता होता है । दुकूल (चिन्ता और महीन वस्त्र) चुराने वाला व्यक्ति
 मरने पर हंस होता है ॥९३॥ सूतीवस्त्र चुराने वाला मनुष्य मरने पर करीकुल पक्षी होता है । ऊनीवस्त्र तथा
 रेशमीवस्त्र चुराने वाला खरगोश होता है । पूर्ण हरण करने वाला पुष्य मरने पर मयूर होता है ॥९४-९५॥ लाल-
 वस्त्र चुराने वाला मनुष्य चकोर होता है । गन्ध, चन्दन आदि चुराने वाला लोभी मनुष्य छछूंदर होता है । यहाँ
 पन्द्रह वर्षों तक रहकर अपर्मक्षय करने मनुष्य होता है ॥९६-९७॥ दूध चुराने वाला बगली होता है ॥९८॥ जा

१ग शिशु । २क ओते । आदिर्मूत्वा ब० । ख ओते । अहिर्मूत्वा ब० । ३व ०पि ततो जायेत मानवः ।
 चो० । ४क तु वै मत्स्यान्पुण्ड्रदत्त प्र० । ५क फलपोषकः । ग हल्मोलकः । ६क ० त्वा पुष्य च पय च
 बु० । ७व पुण्यमयः । ८क ०द्विर्वक- योनीं प्रजायते । रा० । ९क ख कुक्कुटत्वः । १०ग बोशिता० । ११ख
 मर्वटः । १२क कोयो । ख हसी । १३ग वक्षः ।

यन्तु चोरयते तलं नरो मोहसमन्वितः । सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते ॥९९॥
 अशस्त्रं पुरुष हत्वा सशस्त्रः पुरुषाघमः । अर्थायं यदि वा वैरी मृतो जायेत वै खरः ॥१००॥
 परो जीवति धर्मं द्वे तनः शस्त्रेण बध्यते । स मृतो मृगयोनी तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥१०१॥
 मृगो विध्येत शस्त्रेण गते संवत्सरे सतः । हतो मृगस्ततो मोनः सोऽपि जालेन बध्यते ॥१०२॥
 मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते । श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपो वर्षाणि पञ्च च ॥१०३॥
 ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायोदितः । अधर्मस्य शयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुयात् ॥१०४॥
 बाधं हत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते । तथा पिण्याकसंमिश्रमग्नं यश्चोरयेन्नरः ॥१०५॥
 स जायते यभ्रुसटो दारुणो मूयिको नरः । दशव्यं मानुषान्तिथं पापात्मा स द्विजोत्तमाः ॥१०६॥
 घृतं हत्वा तु दुर्वृद्धिः वाको मदगुः प्रजायते । मत्स्यमांसमयो हत्वा काको जायेत मानवः ॥१०७॥
 लवणं चोरयित्वा तु चिरिकाकः प्रजायते । विद्यासेन तु निक्षिप्तं योऽपनिह्नोति मानवः ॥१०८॥
 स गतायुर्नरस्तेन मत्स्ययोनी प्रजायते । मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायेत मानुषः ॥१०९॥
 मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुःप्रजायते । पापानि तु नरः कृत्वा तिर्यग्जायेत भो द्विजाः ॥११०॥
 न चाऽऽत्मनः प्रमाणं तु धर्मं जानाति किंचन । ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतं सदा ॥१११॥

मनुष्य मोहवश तेल चुगता है, वह भी तेल पीन बाग जीव होता है ॥९९॥ धन की इच्छा से या शत्रुता से जो नीच मनुष्य शस्त्र लेकर शस्त्रविहीन पुरुष को मारता है, वह मरने पर गया होता है ॥१००॥ या वर्षों तक गया होकर शस्त्र द्वारा मारा जाता है और मरने के बाद मृगयोनि में जन्म लेकर नित्य उद्विग्न बना रहता है ॥१०१॥ एक वर्ष बीतने पर वह शस्त्र से मारा जाता है। तदनन्तर मछली होकर जाल में फँसता है ॥१०२॥ चार मास व्यतीत होने पर कुत्ता होता है। दश वर्षों तक कुत्ता होकर पाँच वर्षों तक बाप होता है ॥१०३॥ तब काल की प्रेरणा से मृत्यु प्राप्त कर पापों का क्षय कर मनुष्य होता है ॥१०४॥ बाजा चुगने वाला बहुत रोएँ खाला जीव होता है। हींग मिश्रित अन्न चुगने वाला मनुष्य भूरे रंग के रागटों से युक्त भयंकर चूहा होता है। वह पापी मनुष्यों को नित्य काटना रहता है ॥१०५-१०६॥ घी चुगने वाला कौआ तथा मागुर मछली होता है। मत्स्य-मांस चुगने वाला भी कौआ होता है। नमक चुगने वाला चिरवाल तक कौआ होता है। जो मनुष्य विश्वाशपूर्वक रखे गये घराहट को छिपा लेता है वह गतायु होकर मत्स्यपानि में जन्म लेता है। मत्स्यपानि के बाद मनुष्य होता है ॥१०७-१०९॥ मनुष्यत्व प्राप्त कर क्षीणायु होता है। पाप करने वाला मनुष्य पक्षी-पानि में जाता है और आत्मा के प्रमाण किसी धर्म को नहीं जानता है। जो नर पाप करता है तथा बना से विमुक्त रहता है, वह मुक्त-मुक्ता का मोह करते हुए रोगी होता है। लोभ-मोह से युक्त तथा पापाचरण करने वाले

१ग मयन चोरः। २ग ०समो दा०। ३व ०र। दशको मरको नित्य। ४व क्षीणद्रव्य प्रजा०।

५क पानीय तु। ६क नरो हत्वा। ७त ०त्वा निव्रतापाय मो।

सुखदुःखसमायुक्ता ध्याधिमन्तो भवन्त्युत' । 'असवीता प्रजायन्ते' श्लेच्छाश्चापि न सशय ॥११०॥
 नरा पापसमाचारा लोभमोहसमन्विता । वजयन्ति हि पापानि जन्मप्रभृति ये नरा ॥११३॥
 अरोगा रूपवन्तश्च धनिनस्ते भवन्त्युत । स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयु ॥११४॥
 एतेषामेव पापानां भार्यात्वमुपयान्ति ता । प्रायण हरणे दोषा सब एव प्रकीर्तिता ॥११५॥
 एतद्वै लेशमात्रेण कथितं वो द्विजपथा । अपरस्मिन्कथायोग भूय श्रोष्यथ भो द्विजा ॥११६॥
 एतन्मया महाभाग ब्रह्मणो वदत पुरा । सुरर्षाणां श्रुतं मध्ये पृष्टं चापि यथा तथा ॥११७॥
 मयाऽपि तुभ्य कात्स्न्येन यथावदनुवर्णितम् । एतच्छ्रुत्वा मुनिश्रष्टा धर्मं कुर्वत मानसम् ॥११८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये व्यासपितृवादे सप्तरचक्रनिरूपण नाम
 सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१७॥

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अन्नदानप्रशसावर्णनम्

मुनय ऊचु

अधर्मस्य गतिब्रह्मकथिता नस्त्वयाऽनघ । धर्मस्य च गतिं श्रोतुमिच्छामो वदता वर ॥१॥

मनुष्य मर्यादा के उल्लंघन करने वाले श्लेच्छ होते हैं ॥११० ११२३॥ जो मनुष्य जन्म से लेकर पाप नहीं करते हैं वे नारोग सुन्दर तथा धनी होते हैं । स्त्रिया भी इस प्रकार रहने पापनामी बनती हैं ॥११३ ११४॥ प्राय इन्हीं पापिया की स्त्री वे बनती हैं । प्राय वरके ये दोषहरण के प्रकरण में बतलाये गये हैं ॥११५॥ द्विज-श्रष्टो ! यह तो दिग्दानमान करा दिया गया है । दूसरे कथा प्रकरण में फिर आप सुनेंगे । महामागो ! देव पियो के बीच ब्रह्म के मुख से मैंने यह कथा सुनी थी । मैंने भी उसी प्रकार आप लोगों से निःपतया वचन वर दी । मुनिश्रष्टा ! इसे सुनकर आप लोग धर्म में मन को लगायें ॥११६ ११८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के संवाद प्रकरण में सप्तरचक्रनिरूपण नामक दो सौ सनह्रां अध्याय समाप्त ॥२१७॥

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् ! निष्पाप ! आपने पाप की गति हम बतला दी । अब हे धन्ताजी मे श्रष्ट !

कृत्वा पापानि कर्माणि कथं यान्त्यशुभां गतिम् । कर्मणा च कृतेनेह केन यान्ति शुभां गतिम् ॥२॥

व्यास उवाच

कृत्वा पापानि 'कर्माणि त्वधर्मवशागतः । मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥३॥

मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुत्पद्यते । मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ॥४॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गृह्यते । तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥५॥

'यदि विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम् । ततोऽधर्मकृतात्किमपराधात्प्रमुच्यते ॥६॥

यथा यथा नरः 'सम्पदधर्ममनुभाषते । समाहितेन मनसा विमृञ्चति तथा तथा ॥७॥

भुजंग इव निर्मोकान्पूर्वभुक्ताञ्जहाति तान् । दत्त्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ॥८॥

मनःसमाधिसंयुक्तः 'स्वर्गं प्रतिपद्यते' । दानानि तु प्रवक्ष्यामि यानि दत्त्वा द्विजोत्तमाः ॥९॥

नरः 'कृत्वाऽप्यकार्याणि' ततो धर्मेण युज्यते । सर्वेषामेव दानानामग्रं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥१०॥

सर्वमग्रं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता । प्राणा ह्यत्र मनुष्याणां तस्माज्जनुः प्रजायते ॥११॥

अग्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादग्रं प्रशस्यते । 'अग्रमेव प्रशंसन्ति देवपितृमानवा' ॥१२॥

अन्नस्य हि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानवः । न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिन्योऽन्नमुत्तमम् ॥१३॥

धर्म की गति हम मुन्ना चाहते है । किन पापकर्मों के करने से जीव को अशुभ गति मिलती है और निरुधर्म कर्म के करने से शुभ गति प्राप्त होती है ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—उलटे मन से पाप कर्मों को करने अधर्म के दश होकर मनुष्य नरक जाता है ॥३॥ जो मोहवश पाप करने मन की एवाग्रतापूर्वक परचास्ताप करता है, वह पापमागी नहीं होता ॥४॥ जैसे-जैसे उसका मन पाप की निन्दा करता है, वैसे-वैसे उसका शरीर अधर्म से मुक्त होता है ॥५॥ विप्रबन्ध ! यदि वह धर्मवादी ब्राह्मणों से अपना पाप बतला देता है तो अधर्मकृत अपराधों से वह शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥६॥ जैसे-जैसे मनुष्य एवाग्र मन से ठीक-ठीक अपना अधर्म बतलाता है वैसे-वैसे पाप छूट जाता है ॥७॥ जैसे साँप केंबुली को छोड़ता है वैसे वह पापों को छोड़ देता है । ब्राह्मण को अनेका दान देकर मन की समाधि लगाकर वह स्वर्ग जाता है । द्विजश्रेष्ठो ! मैं उन दानों को बतलाऊँगा, जिन्हें देकर मनुष्य कुर्म करने पर भी परमात्मा हो जाता है ॥८-९॥ सन दानों में अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है । धर्म के इच्छुक व्यक्ति को निष्कपट भाव से अन्नदान करना चाहिये । अन्न ही मनुष्या का प्राण है । उसी से जीव की उत्पत्ति होती है ॥१०-११॥ अन्न में समस्त एवा प्रतिष्ठित है । इसलिये अन्न प्रशस्त माना गया है । देव, ऋषि पितर तथा मनुष्य अन्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥१२॥ अन्नदान करने से मानव स्वर्ग प्राप्त करता है । वैदगादी ब्राह्मणों को प्रसन्नचित्त से न्याय-प्राप्त उत्तम अन्न देना चाहिये ॥१३॥ हृषित मन से जो दश ब्राह्मणों को एक बार भी खिलाता है, वह पशुयोनि में

१ग णि स्वर्गम्० २ग णि वाक्च चरेद्रिषा विप्राणां ३क स ऽप्यशुभम्० ४क स गुणति ।

५क स ०ते । प्रदानानि प्रद० ६क स ऽप्यधर्माणि । ७क णि नहि पापान् शु० ८स अन्नं चैव ।

९क स ०व । यावत्सम्य प्र० ।

स्वाध्यायसमुपेत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना । यस्य त्वन्नमुपादन्ति 'ब्राह्मणाश्च सकृदश ॥१४॥
 हृष्टेन मनसा' दत्त न स तिर्यग्गतिर्भवेत् । ब्राह्मणानां सहस्राणि दशाऽऽभोज्य द्विजोत्तमा ॥१५॥
 नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत पापेत्वभिरत सदा । भक्षेणात्र' समाहृत्य विप्रो वेदपुररुत ॥१६॥
 'स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते । अहिंसन्ब्राह्मणस्त्वानि न्यायेन परिपात्य च ॥१७॥
 क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन यो वै प्रयच्छति । द्विजेभ्यो वेदमुपेभ्य प्रयत्त सुसमाहित ॥१८॥
 तेनापोहति धर्मात्मा दुष्कृत कर्म भो द्विजा । पट्भागपरिशुद्ध च कृपेर्भागमुपाजितम् ॥१९॥
 वैश्यो ददद्द्विजातिभ्य पापेभ्य परिमुच्यते । अवाप्य प्राणसदेह' 'कार्कश्येन' समाजितम् ॥२०॥
 अत्र दत्त्वा द्विजानिभ्य शूद्र 'पापात्प्रमुच्यते । औरसेन दलेनान्नमर्जयित्वा विहितम् ॥२१॥
 य प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि सेवते । न्यायेनावाप्तमन्नं तु नरो हर्षसमन्वित ॥२२॥
 द्विजेभ्यो वेदशूद्रेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते । अन्नमर्जस्कर लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नर ॥२३॥
 सता पन्नानमावृत्य सर्वपापं प्रमुच्यते । दानविदभि 'कृत पन्था येन यान्ति मनोपिण ॥२४॥
 तेष्वप्यन्नस्य दातारस्तेभ्यो धर्मं सागतेन । सर्ववस्थ मनुष्येन न्यायेनान्नमुपाजितम् ॥२५॥
 कार्या न्यायागत नित्यमन्नं हि परमा गति । अन्नस्य हि प्रदानेन 'नरो याति परा गतिम् ॥२६॥

नहीं जाता है ॥१४३॥ द्विजश्रेष्ठो ! दश हजार ब्राह्मणों को खिलाकर मनुष्य सदा पापों में निरत रहने पर भी
 अधम से मुक्त हो जाता है ॥१५३॥ वेदवेत्ता विप्र भिक्षावृत्ति से अन्न खाकर वेदाध्ययन में रत ब्राह्मण को
 समर्पित कर सुख प्राप्त करता है ॥१६३॥ द्विजवृन्द ! जो क्षत्रिय ब्राह्मण के घन वा अपहरण नहीं करता, बलि
 न्यायपूर्वक उसकी रक्षा करता है और पवित्र तथा सावधान होकर वेदवेत्ता ब्राह्मणों को अन्नदान देता है वह पापों
 वा त्याग कर धर्मात्मा हो जाता है ॥१७३॥ जो वैश्य खेती का छठा पवित्र माग ब्राह्मणों को दे देता है
 वह पापों से मुक्त हो जाता है ॥१८३॥ जो शूद्र प्राणों तक खाकर बठिनाई से अन्न उपाजित कर ब्राह्मणों को दे
 देता है वह पापों से मुक्ति पा जाता है ॥२०३॥ जो हिंस्र व्यक्ति अपनी छत्ता के बल से अन्न चुरा कर विप्रा
 को देता है वह बप्ती को नहीं मागता है ॥२१३॥ जो मनुष्य न्याय से प्राप्त अन्न वेदवेत्ता ब्राह्मणों को हर्षपूर्वक
 देता है उसे पाप से मुक्ति मिल जाती है ॥२२३॥ लोभ भयवध्वं अन्न दान कर मनुष्य ओजस्वी होता है ॥२३॥
 शत्रुरक्षा के माग वा असुरण बल से मनुष्य अलिल पापों से मुक्त होता है । दानवेत्ताओं ने वह माग बना
 दिया है जिस पर विद्वान् लज्ज चलेते हैं ॥२४॥ अन्नदान करने वाले भी उन्हीं में से हैं । उनसे सनातन धर्म की रक्षा
 होती है । मनुष्य को किसी क्षत्रम न्याय से ही अन्न चमत्ता चाहिये । नित्य न्याय से प्राप्त अन्न ही परम गति
 है । अन्न प्रदान करने से परम गति को प्राप्त करता है ॥२५३॥ उसकी सब अभिजातार्थ पूरी होती हैं ।

१४ ग ० गाना शत दश । २४ ० सा तस्य पवित्र च कुत्र भवेत् । ३१ भोगादन्न । ४ भोग्यान्न
 च स० । ५ ग ० रता वि० । ५५ ० हिमाया ब्राह्मणभ्योऽप्यन्नं दद्यात्त्र ब्राह्मण । ६० । ६५ ह यन्न
 सामुत्ति० । ७५ वायव्य स० । ८५ समाहित० । ९५ ० त । तनान्न विनाम्ना स स्वर्गोत्तरे महीपते ।
 यात्र स० । १०५ हृत्त पुण्य यथायाग्य भवयुत । ११५ ० रोग्यमन्नं सेवन । स० ।

सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् । एवं पुण्यसमायुक्तो नरः पापैः प्रमुच्यते ॥२७॥
 तस्मादन्नं 'प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् । यस्तु' प्राणाहृतीपूर्वमन्नं भुङ्क्ते गृही सदा ॥२८॥
 अद्यन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः । भोजयित्वा शतं नित्यं नरो वेदविदां वरम् ॥२९॥
 न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा । न याति नरकं घोरं संसारं न च सेयते ॥३०॥
 सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् । एवं कर्मसमायुक्तो रमते विपतज्वरः ॥३१॥
 रूपवाङ्कीर्तिमांश्चैवं धनवांश्चोपजायते । एतद्धः सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत् ॥
 मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भो द्विजाः ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे संसारचक्रेऽन्नदानप्रशंसावर्णनं
 नामाष्टादशधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्धविधि वर्णनम्

मुनय ऊचुः

परलोकगतानां तु स्वकर्मस्थानवासिनाम् । तेषां श्राद्धं कथं ज्ञे (दे) यं पुत्रैश्चान्यैश्च बन्धुभिः ॥१॥

मरने पर भी सुख मिलता है । इस प्रकार धर्म से युक्त मनुष्य पापों से मुक्त होता है ॥२७॥ इसलिये अन्याय से रहित अन्न दान करना चाहिये । गृहस्थ को अग्नि में आहुति डाल कर अन्न खाना चाहिये ॥२८॥ मनुष्य अन्नदान से दिन को अद्यन्ध्य (सफल) बनाये । जो मानव वेदवेत्ता, न्यायवेत्ता, धर्मवेत्ता तथा इतिहास-वेत्ताओं में श्रेष्ठ सो मनुष्यों को नित्य भोजन कराता है, वह न तो घोर नरक में जाता है न जन्म ही लेता है ॥२९-३०॥ उसकी समस्त कामनाएँ पूरी होती हैं । वह मरने के बाद भी सुख प्राप्त करता है । इस प्रकार कर्मयोगी मनुष्य व्यवहारहीन होकर रमण करता है और रूपवान्, कीर्तिमान् तथा धनवान् होता है । अन्नदान का यह महाफल मैंने वर्णन कर दिया । द्विजगण ! यह धर्मों तथा दानों का मूल है ॥३१-३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवादप्रवरण में संसारचक्र में अन्नदान-प्रशंसा वर्णन नामक दो सो अष्टादशहवीं अध्याय समाप्त ॥२१८॥

अध्याय २१६

श्राद्धविधि का वर्णन

मुनियो ने कहा—मृत्यु के उपरान्त अपने कर्मों से प्राप्त स्थानों में वास करने वाले जीवों का श्राद्ध उनके पुत्र तथा बन्धुवर्ग कैसे करें ? ॥१॥

१४ स ० न्यायेन विव० । २१ ० स्तु श्राद्धेणपूर्वं हि भोक्तुमुन्नं गू० । ३४ ० व नर स० । ग ० व सलु स० । ४१. ० पपयने ।

व्यास उवाच

नमस्तृप्य जगन्नाथ वाराह लोबभावनम । शृणुध्व सप्रवक्ष्यामि श्राद्धवत्प यथोदितम् ॥२॥
पुरा कौकाजल 'मग्नापितुनुद्धृतवाविभु । श्राद्ध कृत्वा तदा ददौ यथा तत्र द्विजोत्तमा ॥३॥

पितर ऊचु

किमथ त तु कोकाया निमग्ना पितरोऽभसि । कथं तनोद्धृतास्त व वाराहेण द्विजोत्तमा ॥४॥
तस्मिन्कोवामुख सीर्थे भुक्तिभुक्तिफलप्रद । श्रोतुमिच्छामह ब्रूहि पर कौतूहलं हि न ॥५॥

व्यास उवाच

नेताद्वापरयो सधी पितरो दिव्यमानुषा । पुरा मेरुगिरे पृष्ठं विन्वेद्वैवं सह स्थिता ॥६॥
तेषां समुपविष्टानां पितॄणां सोमसभवा । कथा कातिमती दिव्या पुरतः प्राञ्जलि स्थिता ॥
तामचु पितरो दिव्या य तत्राऽऽसत्समागता ॥७॥

पितर ऊचु

कासि भद्रे प्रभु को वा भवत्या वक्तुमहसि ॥८॥

व्यास उवाच

सा प्रोवाच पितॄदेवान्यला चाद्रमसीति ह । प्रभुत्ये भयतामेव वरयामि यदीच्छथ ॥९॥

व्यास न कहा—लोकत्रष्टा जगत्पति तथा वाराह (सूजर) रूप धारण करने वाले भगवान् को नमस्कार कर सुनिये । मैं यथावचित-श्राद्धरूप वतलाता हूँ । द्विजश्रेष्ठो ! प्राचीन काल में कोका नामक तथैव जल में निमग्न पितरो वा श्राद्ध कर भगवान् ने उनका उद्धार किया था ॥२३॥

मुनिपौ न कहा—द्विजश्रेष्ठ ! कथो पितरलोक कोका के जल में निमग्न हुए ? कैसे वाराह रूप धारण कर भगवान् ने उस भुक्ति मुक्ति फलदायक वातावीथ से पितरा वा उद्धार किया ? हम सुनना चाहते हैं । कहिय हमें यही उकण्ठा हो रही है ॥४५॥

व्यास न कहा—पहले तता और द्वार युग के सधिवाल म दिव्य मानव पितर सुमेरुपर्वत के पृष्ठ पर विन्वेद्वैवो के साथ बैठ हुए थे । उन बैठ हुए पितरों के समक्ष चन्द्रमा की कातिमती नामक कथा अजगिष्य कर लड़ी हो गई । वहाँ जा पितर आये हुए थे उन्होंने उससे पूछा ॥६७॥

पितरा न कहा—मद्र ! सुम कीन हो ? कीन तुम्हारा स्यामा है ? कहो ॥८॥

व्यास ने कहा—कन्या कहने लगी—मैं चन्द्रमा की कन्या हूँ । स्थामी के विषय में यदि आप लोग चाहें तो मैं आप ही लोग का वरण करूँ ॥९॥ मेरा पहनाग ताम ऊर्जा है दूसरा स्वधा और त्रिंश ताम तो

ऊर्जा 'नामास्ति प्रथमं स्वधा च तदनन्तरम् । भवद्भिश्चाद्यैव कृतं नाम कोक्तेति भाषितम् ॥१०॥
 ते हि तस्या वचः श्रुत्वा पितरो दिव्यमानुषाः । तस्या मुखं निरोक्षन्तो न तृप्तिमधिगमिरे ॥११॥
 विश्वेदेवाश्च ताज्जात्वा कन्यामुखं निरोक्षकान् । योगघ्न्युताग्निरीक्ष्यैव विहाय त्रिदिवं गताः ॥१२॥
 भगवानपि शीतान्द्रुर्जं नापश्यत्वात्मजाम् । समाकुलमना दध्यौ वरं गतेति महायशाः ॥१३॥
 स जिवेद तदा सोमः प्राप्ता पितृंश्च कामतः । तैश्चावलोकिता हार्दात्स्वीकृता च तपोबलात् ॥१४॥
 ततः श्रोथपरीतात्मा पितृञ्चाशपरो द्विजाः । शशाप निपतिष्यध्वं योगघ्नष्टा विचेतसः ॥१५॥
 यस्मादस्तां मत्कन्यां कामयध्वं सुबालिशाः । यस्माद्धृतवती चेयं पतीन्पितृमती सती ॥१६॥
 स्वतन्त्रा धर्ममुत्सृज्य तस्माद् भवतु निम्नगा । कोक्तेति प्रथिता लोके शिशिराद्रिसमाधिता ॥१७॥
 इत्य शप्ताश्चन्द्रमता पितरो दिव्यमानुषाः । योगघ्नष्टा निपतिता हिमवत्पादभूनले ॥१८॥
 ऊर्जा तत्रैव पतिता गिरिराजस्य पितृन्ते । प्रस्थे तीर्थं समासाद्य सप्तसामुद्रमुत्तमम् ॥१९॥
 कोरा नाम ततो वेणान्नदी तीर्थं शताकुला । प्लावयन्ती गिरेः शृङ्गं सर्पणास्तु सरित्स्मृता ॥२०॥
 अयं ते पितरो विष्णा योगहीना महानदीम् । ददृशुः शीतसलिलां न विदुस्तां सुलोचनाम् ॥२१॥
 ततस्तु गिरिराड्दृष्ट्वा पितृस्तास्तु क्षुधादिताम् । यदरीमादिदेशाय धेनुं चैकां मधुस्रयाम् ॥२२॥

आज ही आर कौनों ने राय दिया है ॥१०॥ वे दिव्यमानुष्यसरीरगारी पितर उसका वचन सुनकर उसी मुखकी ओर धारने लगे, पर वृत्त नहीं हुए ॥११॥ विश्वेदेव कन्या-मुख निरीक्षण करते हुए पितरों का योगघ्नष्ट समझ कर उन्हें छोड़ कर स्वर्ग चले गये ॥१२॥ भगवान् चन्द्रमा भी अपनी पुत्री ऊर्जा को न देखकर चिन्तित हो गये और धारने लगे, कि वह वहाँ चली गई ॥१३॥ तब चन्द्रमा ने जान लिया कि वह वामदेव पितरों के पास गई है। पितरा ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा है और तपोबल से स्वीकार भी कर लिया है ॥१४॥ तब श्रोथ से आग-बबूला होकर चन्द्रमा ने पितरों को क्षाप दिया—'मूर्खों! जिस लिये तुम मेरी असमर्पित कन्या की वामना करते हो इसलिये तुम योगघ्नष्ट तथा हृदयहीन होकर गिर पड़ोगे ॥१५॥ जिस लिये इस सर्पि कन्या ने पिता वाली होगी हुई भी स्वतन्त्र होकर धर्म का उल्लंघन करके पतिया का वरण किया इसलिय यह नदी हो जाय। हिमालय की आश्रित होकर यह लोका में कोरा नाम से प्रख्यात हो' ॥१६-१७॥ इस प्रकार चन्द्रमा से अभिज्ञात दिव्य मानव-पितर योग-घ्नष्ट होकर हिमालय की तराई में आ गिरे ॥१८॥ वहीं पर ऊर्जा भी गिरी। गिरिराज के दित्तुन पदप्राप्त में यह शांता समुद्रा से जल लेकर उत्तम तीर्थ का रूप में परिणत हो गई। कोरा नामक यह नदी शतधा सीधों से मुक्त तथा वेगवती हुई। पर्वत के शिखरों का प्लावित करत हुए वहन के कारण यह सरित् बहानी ॥१९-२०॥ तदनन्तर उन योगघ्नष्ट पितरों ने शीतल जल वाली महानदी का देखा पर सुलावना चन्द्रपुत्री को पहचाना नहीं। ॥२१॥ तब हिमालय ने मूस से पीठिन उन पितरा को देगनर बेर के पल तथा मधुसमान दूध देने का एरा साथ उद्द दी ॥२२॥ गिरिराज ने उनका पायन के निमित्त दिव्य मधुस्रय दूध, कोरा का जल तथा

क्षीरं मधु च तद्दिव्यं कोकाम्भो बदरीफलम् । इव गिरिवरेण्यं पोषणाय निरूपितम् ॥२३॥
 तथा घृत्या तु वसतां पितृणा मुनिसत्तमाः । दश वर्षसहस्राणि यपुरेकमहो यथा ॥२४॥
 एवं लोके विपितरि तथैव विगतस्वधे । दंत्या बभूवुर्बलिनो यातुधानाश्च राक्षसाः ॥२५॥
 ते तान्पितृगणान्दंत्या यातुधानाश्च वेगिताः । विश्वेर्देवैरहिताग्नसर्वतः समुपाद्रवन् ॥२६॥
 दंत्यान्यानुधानाश्च दृष्ट्वैवाऽऽपततो द्विजाः । कोकातटस्थामुत्तुङ्गां शिलां ते जगूह रुपा ॥२७॥
 गृहीतायां शिलायां तु कोका वेगवती पितृन् । छादयामास तोयेन प्लावयन्ती हिमाचलम् ॥२८॥
 पितृनन्तर्हितान्दृष्ट्वा दंत्या राक्षसास्तथा । विभीतकं समारुह्य निराहारास्तिरोहिता ॥२९॥
 सलिलेन विपीदन्त पितरः क्षुब्धमातुराः । विपीदमानमात्मानं समीक्ष्य सलिलाशयाः ॥
 'जगुर्जनार्दनं देवं पितरः शरणं हरिम् ॥३०॥

मुनय ऊचुः

जयस्व गोविन्द जगन्निवास जयोऽस्तु नः 'केशव' ते प्रसादात् ।
 जनार्दनास्मान्सलिलान्तरस्यानुद्धर्तुमर्हस्यनघप्रनाप' ॥३१॥
 निशाचरैर्दारुणदर्शनेः प्रभो वरेण्य वैकुण्ठ वराह विष्णो ।
 नारायणाशेषमहेश्वरेश प्रयाहि भीताञ्जय पचनाभ ॥३२॥

बदरीफल का प्रबन्ध कर दिया ॥२३॥ मुनिश्रेष्ठो । उस वृत्ति से निर्वाह करते हुए पितरों के दस हजार वर्ष एक दिन के समान बीत गए ॥२४॥ इस प्रकार लोक में पितरों तथा स्वधा के न रहने से दैत्य तथा राक्षस बलवान् हो गये ॥२५॥ बली राक्षसों ने विरवेदेवों से रहित पितरों के ऊपर सब ओर से आक्रमण कर दिया ॥२६॥ राक्षसों को देखते ही पितर गिर पड़े । कोका के तट पर स्थित एक उत्तुंग शिला को उन्होंने क्रोध से पकड़ लिया ॥२७॥ शिला को पकड़ लेने पर हिमालय को प्लावित करती हुई वेगवती कोका ने जल से पितरों को ढा दिया ॥२८॥ पितरों को बिलीन जानकर राक्षसबुन्द एक बहेड़े के पेड़ के ऊपर चढ़ गये और बिना भोजन के छिप कर रहने लगे । जल में भूख से आतुर तथा सींचित होते हुए अलाघार पितर अपने को वृष्ट में देखकर मगवान् जनार्दन की शरण में गये और उनकी स्तुति करने लगे ॥२९-३०॥

पितरों ने कहा—गोविन्द । ससार में निवास करने वाले । आपकी जय हो ! केशव ! आपकी कृपा से हमारी भी जय हो । जनार्दन ! निपात्य प्रताप वाले । जल के भीतर से हमारा उद्धार करें । भयकर दीप्तने वाले राक्षसों से हमें बचायें । प्रभो ! श्रेष्ठ ! वैकुण्ठ ! वराह ! विष्णो ! नारायण ! सबने प्रभु ! महेश्वर !

उपेन्द्र योगिन्मधुकुण्डभङ्ग विष्णो अनन्ताच्युत वासुदेव ।

श्रीशाङ्गचक्राम्बुजशङ्खपाणे रक्षस्य देवेदवर राक्षसेभ्यः ॥३३॥

त्वं पिता^१ जगतः शंभो नान्यः शक्तः प्रब्रूयितुम् । निशाचरगणं भीममतस्त्वां शरणं गताः ॥३४॥

त्वन्नामसंकीर्तनतो निशाचरा ब्रवन्ति भूतान्यपयान्ति^२ चारयः ।

नाशं तथा संप्रति यान्ति विष्णो धर्मादि सत्य^३ भवतीह मुख्यम् ॥३५॥

व्यास उवाच

इयं स्तुतः स पितृभिर्धरणीधरस्तु तुष्टस्तदाऽऽविष्कृतदिव्यमूर्तिः ।

कोकामुखे पितृगणं सलिले निमग्न देवो ददर्श शिरसाऽथ शिलां बहन्तम् ॥३६॥

तं दृष्ट्वा सलिले भग्नं क्रोडरूपी जनार्दनः । भीतं पितृगणं विष्णुरुद्धतुं^४ मतिरादधे ॥३७॥

दृष्ट्वाप्रेण समाहृत्य शिलां चिक्षेप शूकरः । पितृनादाय च विभुरुज्जहार^५ शिलातलात् ॥३८॥

धराहृदं दृष्ट्वा संलग्ना, पितरः कनकोज्ज्वलाः । कोकामुखे गतभयाः 'कृता देवेन विष्णुना' ॥३९॥

उद्धृत्य च पितृदेवो विष्णुतीर्थं^६ तु शूकरः । ददौ समाहितस्तेभ्यो^७ विष्णुर्लोहार्गले^८ जलम् ॥४०॥

प्रपाण कीजिये तथा डरे हुए (राक्षसों) को जीतिये । नामि मे कमल धारण करने वाले ! इन्द्र के छोटे भाई ! योगी ! मधु-कूटम नामक राक्षसों को मारने वाले ! विष्णु ! अनन्त ! अच्युत ! वासुदेव ! धनुष, चक्र, कमल तथा शङ्ख हाथों में धारण करने वाले ! देवों के ईश्वर ! राक्षसों से हमारी रक्षा करें ! बलघाण करने वाले ! आप ससार के पिता हैं । बिना आपके कोई नहीं मयानव राक्षस-समूह को मार सकता है । अतः हम लोग आपकी धारण में आये हैं । आपके नाम लेने से ही दैत्यगण भाग जाते हैं, (तुष्ट) प्राणी अलग हो जाते हैं तथा शत्रुसमूह विनष्ट हो जाते हैं । विष्णो ! यहाँ धर्म आदि सत्य ही मुख्य हैं ॥३१-३५॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पितरों द्वारा स्तुत होने पर धरणीधर भगवान् सतुष्ट हो गये और दिव्यमूर्ति धारण कर कोक^१ के जल में डूबे हुए तथा शिर पर शिला को बोधे हुए पितरों की ओर देखने लगे ॥३६॥ वर-ह-रूपी जनार्दन भगवान् पितरों को जल में निमग्न देखकर उन्हें उसमें से निकालने के लिए सोचने लगे ॥३७॥ धूर्वर रूपी भगवान् ने अपने दाँतों के अग्रभाग से शिला को तोड़कर शिलातल से पितरों को निकाला ॥३८॥ वराह के दाँतों में सलग्न एवं सुवर्ण के समान चमकने वाले पितरों को भगवान् विष्णु ने कोवार्तीर्थ में मयरहित कर दिया ॥३९॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने पितरों का उद्धार कर विष्णुतीर्थ में सावधान होकर लोहे के अर्गल में उन्हें जल दिया ॥४०॥ तब अपने रोबों से उत्पन्न कुशों को लेकर वेशव ने अपने पर्वतों से तिल उत्पन्न किया,

१ ग घाता । २ क स. अन्यपि या० । ३ ग सर्वं म० । ४ ग अर्द्धमृगचक्रम् । ५ द । ५ ग ग ० र रसातल० । ६ ग. ० हृदहृत् । ७ ग. हृता । ८ ग. ० यं धू० । ९ ग. ० स्तेम्यस्तिरलोमागतं ज० । १० ग. ० हावुल ज० ।

तत स्वरोमसभूतान्कुशानादाय केशव । स्वेदोद्भवास्तिलाश्चैव चक्रे' चोल्मुकमुत्तमम् ॥४१॥
 ज्योति सूर्यप्रभं कृत्वा पात्र तीर्थं च कामिकम् । स्थित 'कोटिवटस्याधो धारि गङ्गाधर शुचि' ॥४२॥
 तुङ्गकूटात्समादाय यज्ञीयानोषधीरसान् । मधुक्षीररसान्गान्ध्यानुष्पधपानुलेपनान् ॥४३॥
 आदाय धेनु सरसो रत्नान्यादाय चार्णवात् । दष्ट्रयोल्लिख्य धरणीमभ्युक्ष्य सलिलेन च ॥४४॥
 धर्मोद्भवनेपोलिप्य कुशैरल्लिख्य ता पुन । 'परिणीयोल्मुकेनेनामभ्युक्ष्य च पुन पुन ॥४५॥
 कुशानादाय प्रागग्राल्लोमकूपान्तरस्थितान् । ऋषीनाहूय पप्रच्छ करिष्ये पितृतर्पणम् ॥४६॥
 तैरप्युक्ते कुरुष्वेति विश्वान्देवास्ततो विभु । आहूय मन्त्रतस्तेषां विष्टराणि ददौ प्रभु ॥४७॥
 आहूय मन्त्रतस्तेषां वेदेवतविधिना हरि । अक्षतदेवतारक्षा चक्रे चक्रगदाधर ॥४८॥
 अक्षतास्तु' यवौपध्य सर्वदेवाशसभवा । रक्षन्ति सर्वत्र' दिशो रक्षाय निर्मिता हि ते ॥४९॥
 देवदानवदैत्येषु यक्षरक्षसु चैव हि । नहि कश्चित्क्षय तेषां कतु शवतश्चराधरे ॥५०॥
 'न केनचित्कृत (क्षता) यस्मात्तस्मात्ते ह्यक्षता कृता । देवानां ते हि रक्षार्थं नियुक्ता विष्णुना पुरा ॥५१॥
 'कुशान्धयै पुष्परर्थं कृत्वा च शूकर । विश्वेभ्यो देवेभ्य इति ततस्तात्पर्यपृच्छत ॥५२॥

एक उत्तम अगार को सूर्य के समान प्रभा से युक्त किया इच्छानुसार तीर्थ को पात्र बनाया और कोटि वट वृक्ष के नाचे स्थित हाकर गया को धारण करने वाला पवित्र जल उत्पन्न किया । फिर वे पवत के शिखरो पर से यज्ञीय ओषधियाँ मधु दूध गन्ध पुष्प, घूप तथा चन्दन ले आए ॥४१-४३॥ सरोवर से धनु तथा समुद्र से रत्न ले आए । दातो से पृथ्वी पर रेखा खींच कर जल से उसे अभिषिक्त किया फिर उसे लीपकर कुशो से रेखा खींच कर पत्ताने से उत्पन्न प्रणीता-पात्र व जल से उसे बार-बार अभिषिक्त किया ॥४४-४५॥ अपने शोम-कूप के मातर स्थित कुशो के अग्रभाग को पूर्वाभिमुख कर ऋषियो को बुलाकर उनसे कहा कि मैं पितृतर्पण करना ॥४६॥ उन्होंने भी कहा कि कीजिए । तब विश्वेदेवो को बुलाकर विभु ने मात्र पढ़कर उन्हें आसन दिया ॥४७॥ वेदोक्त विधि से मन्त्रोच्चारण पूवक उन्हें बुलाकर चक्र-गदा धारी हरि ने अक्षतो से देवताओं को रक्षा की ॥४८॥ यव तथा ओषधियाँ अक्षत हैं । निखिल देवो के अश से इनकी उत्पत्ति हुई है ॥४९॥ सब जगह दिशाओं की रक्षा निमित्त इनका निर्माण हुआ है ॥४९॥ देव दानव दैत्य यक्ष राक्षस तथा चराचरो में इनका नाश कोई नहीं कर सकता ॥५०॥ किसी ने इनका नाश नहीं किया इसलिए इनका नाम अक्षत पड़ा । पहले देवताओं की रक्षा के लिए विष्णु ने इन्हें नियुक्त किया था ॥५१॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने कुश गन्ध घूप तथा अर्ध लेबर विश्वेदेवो से कहा कि मैं जितने दिव्य देह धारी तथा मनुष्य-शरीर धारी पितर हैं उन सबको बुझाऊँगा ? उन्होंने

पितृनावाहयिष्यामि ये दिव्या ये च मानुषाः । आवाहयस्वेति च तं स्वतस्त्वावाहये (य) च्छुचिः ॥५३॥
 श्लिष्टमूलाग्रदभास्तु 'सतिलाग्नेव वेदवित् । जानावारोप्य हस्तं तु 'ददौ सव्येन चाऽऽसनम् ॥५४॥
 तथैव जानुसंस्थेन करेणकेन तान्पितॄन् । 'वाराहः पितृविप्राणामायान्तु' न इतीरयन् ॥५५॥
 अपहृतेत्युधाचैव रक्षणं चापसव्यतः । कृत्वा चाऽऽवाहनं चक्रे पितॄणां नामगोत्रतः ॥५६॥
 तत्पितरो (पितरोऽत्र) मनोजरानां वा आ (गच्छत इतीरयन् (?)) । संवत्सरैरित्युदीर्य ततोऽर्घ्यं तेषु
 विन्यसेत् ॥५७॥

यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो 'यन्मेति' च पितुः पितुः । यन्मे 'पितामहेत्येवं ददावर्घ्यं' पितामहे ॥५८॥
 यन्मे प्रपितामहेति' ददौ च प्रपितामहे । कुशगन्धतिलोन्मिश्रं सपुष्पमपसव्यतः ॥५९॥
 तदन्मातामहेभ्यस्तु विधिं चक्रे जनार्दनः । तानर्घ्यं भूयो गन्धाद्यैर्घ्र्यं दत्त्वा तु 'भक्तितः ॥६०॥
 आदित्या वसवो रुद्रा इत्युच्चार्य जगत्प्रभुः । ततश्चात्र समादाय 'सर्पिस्तिलकुशाकुलम् ॥६१॥
 विधाय' पात्रे' तच्चैव पर्यपृच्छत्ततो मुनीन् । 'अग्नौ करिष्य इति तैः कुरुवेति च चोदितः ॥६२॥
 'आहुतित्रितयं' 'दद्यात्सोमायानेयमाय च । ये मामकेति च जपेद्यजुः सप्तकमच्युतम् ॥६३॥

बह्वि—'बृलाजो' । तब वेदवेत्ता हरि ने पवित्र होकर घुटने पर हाथ रखकर तिलयुक्त कुशो के मोटक (मोड़े) पितरों को आसन रूप में दिये । घुटने पर एक हाथ रखे ही वाराह ने 'आयान्तु नः' यह मन्त्र पढ़कर 'अपहृता' यह मन्त्र भी जनेऊ को दाहिने कंधे पर रख कर पढ़ा । तब पितरों के नाम-गोत्र उच्चारण कर 'तत्पितरो मनोजरा-नागच्छत, संवत्सरैः' यह पढ़कर आवाहन किया । 'यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो यन्मेति च पितुः' इस मन्त्र से पिता को अर्घ्य दिया । 'यन्मे पितामह' इस मन्त्र से पितामह को अर्घ्य दिया ॥५२-५८॥ 'यन्मे प्रपितामह' इस मन्त्र से प्रपिता-मह को दिया । अपसव्य होकर (जनेऊ दाहिने कंधे पर रखकर) कुश, गन्ध, तिल तथा पुष्प दिये ॥५९॥ इसी प्रकार मातामह आदि को भी जनार्दन ने सब कुछ दिया । पुनः गन्ध आदि से उनकी पूजा कर भक्तिपूर्वक घृप देकर जगत्स्वामी विष्णु ने 'आदित्या वसवो रुद्राः' इस मन्त्र का उच्चारण किया । तब एक पात्र में अन्न, घी, तिल तथा कुश रखकर मुनियों से निवेदन किया कि मैं अग्नि में आहुति दूंगा । उन्होंने कहा—'दीजिये' ॥६०-६२॥ तब वाराह ने चन्द्रमा, अग्नि तथा यम के लिये तीन आहुतियाँ ढाली । 'ये मामक' इस मन्त्र का जप किया । हवन

१क. ०चि। शिष्ट० । २क. ०सलिलाग्नेवदेवाचिन। जा० ख सलिलाग्नेन वेदवित् । ३क. ०दौ चाऽऽवाहनास० ।
 ख ०दौ वय्य सनातन० । ४क. ख ०न् । आप्यायन्तु पितर सयवास्तिलवहिषा। वा। ५ग. ०राहोऽपि त्रिवि० ।
 ६क. ख ०माप्याययन्तिवती० । ७क. ०न् । संवत्सरैरिति दत्त्वा च ततोऽर्घ्यं चा० । ख न् । संवत्सरे ततो दीर्घं तेषु
 तेषु च स० । ८ ०न्मे पितुस्तत्पितुश्च तत् । तन्मे । ९ग. ०ति पितुस्तत्पितु । १०ग. ०महीत्ये० । ११क. ०हेऽव्येव
 दद्यावर्घ्यं समाहित । कु० । १२ग. ०महीति । १३ख. ०महन् । कु० । १४क. ख. शक्तित । १५क. ०मान्वितम् ।
 १६ग. पिपाय । १७ख. ग. ०येणान्येन य० । १८ख. ०तिमिद्वच द० । १९ख. ०मायेति यमा० ।

हुतावशिष्टं च ददौ नामगोत्रसमन्वितम् । त्रिराहुतिकमेकैकं पितरं तु प्रति द्विजा ॥६४॥
 अतोऽवशिष्टमन्नाद्य पिण्डपात्रे तु निक्षिपेत् । ततोऽन सरस स्वाङ्गु ददौ पायसपूर्वकम् ॥६५॥
 प्रत्यग्रमेकदा^१ स्विन्नमपर्युपितमुत्तमम् । अल्पशाक बहुफल षड्सममृतोपमम् ॥६६॥
 यद्ब्राह्मणेषु प्रददौ पिण्डपात्रे पितृस्तथा । वेद (देव) पूर्वेपितृस्व (ध्व) न्नाग्यप्लुत मधूक्षितम् ॥६७॥
 मन्त्रित पृथिवीर्येव 'मधुवातातृच जगौ । भुञ्जानेषु तु विप्रेषु जपन्वं मन्त्रपञ्चकम् ॥६८॥
 'यत्ते प्रकारमारभ्य 'नाधिक' ते ततो जगौ । त्रिमधु त्रिसुपर्णं च बृहदारण्यक तथा ॥६९॥
 जजाप वंषा जाप्य तु सूक्त सौर सपौरुषम् । भुक्तवत्सु च विप्रेषु पृष्ट्वा तृप्ता स्य 'इत्युत ॥७०॥
 तृप्ता स्मेति 'सकृत्तोय ददौ मौनविमोचनम् । पिण्डपात्र 'समादाय च्छायायै प्रददौ तत ॥७१॥
 'सा तदन्न द्विधा कृत्वा त्रिधैकैकमथाकरोत् । वाराहो भूमयोऽल्लिख्य समाच्छाद्य^२ कुशैरपि ॥७२॥
 दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा^३ तेषामुपरि चाऽऽसनम् । सतिलेषु समूलेषु कुशेष्वेव तु सध्रप ॥७३॥
 गन्धपुष्पादिक कृत्वा तत पिण्डं तु भवितत । पृथिवी 'दधीरित्युक्त्वा तत पिण्ड (पित्रे) प्रदत्तवान् ॥७४॥

पितामहा 'प्रपितामहास्तथेति (?) चान्तरिक्षत । मातामहानामप्येव ददौ पिण्डान् शूकर ॥७५॥

वे अवशिष्ट पदार्थ भी पितरों के नाम गोत्र उच्चारण करके दे दिये । एक एक पितर के प्रति तीन-तीन आहुतियाँ दी । तब अवशिष्ट अन्न आदि को पिण्डपात्र में रख कर सरस तथा सुस्वाङ्गु खीर एवम् अन्न दिये ॥६३-६५॥ नया, ताजा तथा उत्तम शाक, अनेक फल, अमृत के समान छोटी प्रकार के रस ब्राह्मणों को खिलाये तथा पिण्डपात्र में पितरों को प्रदान किये । अन्न को घी तथा मधु से सिकत एवम् 'पृथिवी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दिया । 'मधुवाता' इस श्रुति का भी पाठ किया ॥६६-६७३॥ ब्राह्मणों को भोजन कराते समय 'यत्ते प्रकारम्, नाधिकम्' त्रिमधु, त्रिसुपर्णम् बृहदारण्यकम्' इन पाँच मन्त्रों का जप किया ॥६८-६९॥ फिर 'सहस्र सीर्षा इत्यादि पुरुष सूक्त का पाठ किया । ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनसे पूछा—आप तृप्त तो हुए ?' 'हम तृप्त हैं—ऐसा ब्राह्मणों के कहने पर उन्हें जल दिया और पिण्डपात्र उठाकर छाया को दे दिया ॥७०-७१॥ छाया ने उस अन्न के दो भाग किये और फिर एक-एक के तीन भाग किये । वाराह ने भूमि पर रेखा खीचकर कुशा से उसे आच्छादित कर दिया ॥७२॥ कुशा के अन्न भागों को दक्षिण की ओर रखे उनसे ऊपर आसन दिया । मूल तथा तिल से मुक्त कुशों के ऊपर गन्ध, पुष्प आदि रखकर भक्ति से पिण्ड दिया । 'पृथिवी दधी' यह पढ़ कर पिता को पिण्ड दिया ॥७३-७४॥ पितामह तथा प्रपितामह को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया । वाराह ने मातामह आदि को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया ॥७५॥ पिण्ड के उच्छिष्ट अन्न को लेप भाग खाने वाले पितरों को दिया ।

१क स ०वेपु नि० । २क ०दाऽप्यत्रमासाद्य समपूक्षि० । ३ग ०वात ततो ज० । ४ग यत । ५ग नाचिनेन त० । ६ख ०धिकांते त० । ७ग इत्यत्र । ८ख ग ०हृदेवो द० । ९क ०य मधुवाता जगौ त० । १०ख स स । ११ख ग समस्तुम्य । १२ग ०शादत्त्वा । १३ख दस्युरि० । १४ख ०हास्तुप्येवान्तरिक्षत ।

पिण्डनिर्वापणोच्छिष्टमन्नं लेपभुजेष्वदात् । एतद्वः पितरित्युक्त्वा ददौ वासांसि भविततः ॥७६॥
 'द्वयङ्गुलजानि शुक्लानि धौतान्यभिनवानि' च । गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा कृत्वा चैषां प्रदक्षिणाम् ॥७७॥
 आचम्याऽऽचमयेद्भिद्रान्पत्रानादौ ततः सुरान् । ततस्त्वभ्युक्ष्य तां भूमिं दत्त्वाऽपः सुमनोऽक्षतान् ॥७८॥
 सतिलाभ्यु पितृत्वाद्दो दत्त्वा देवेषु साक्षतम् । अक्षय्यं नस्त्विति पितृप्रीयतामिति देवताः ॥७९॥
 प्रीणयित्वा परावृत्य त्रिजपेच्छाद्यमर्पणम् । ततो निवृत्य तु 'जपेद्यन्मे नाम इतीरयन्' ॥८०॥
 गृहाश्र पितरो दत्त धनधान्यप्रपूरितान् । अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरं 'स' पवित्रकान् (?) ॥८१॥
 निशिष्योर्जं वहन्तीति कोकातोयमयोऽजपत् । हिमक्षोरं मधुतिलान्पितॄणां तर्पणं ददौ ॥८२॥
 स्वस्तीत्युपते पतुर्कस्तु सोराह्णे प्लावतर्पयन् (?) । रजतं दक्षिणां दत्त्वा विप्रान्देवो गदाधरः ॥८३॥
 सविभाग मनुष्येभ्यो ददौ स्वदिति चान्द्रयन् । कश्चिच्च (चिच्च) तसंपन्नमि (त्यु) क्त्वा प्रत्युक्तस्तैर्द्विजोत्तमाः ॥८४॥

अभिरम्यतामित्युवाच प्रोचुस्तेऽभिरताः स्म वै । शिष्टमन्नं च पप्रच्छ तैरिष्टं सह चोदितः ॥८५॥
 पाणावादाय तान्विप्रान्कुर्यादनुगतस्त' (सं त) वा । वाजे वाजे इति 'पठन्वहिर्वेदि विनिर्गतं ॥८६॥
 कोदितोर्थं जलेनासावपसध्यं समुत्क्षिपन् । 'अलानान्विपुलान्वालाभ्रार्थयामास चाशिपम् ॥८७॥
 दातारो भोऽभिवर्धन्तां तैस्तयेति समोरित । प्रदक्षिणमुपावृत्य कृत्वा पादाभिवादनम् ॥८८॥

'एतद्व पित' इस मंत्र से मक्तिपूर्वक दो अंगुल प्रमाण स्वच्छ तथा नवीन वस्त्र दिये । फिर गन्ध, पुष्प आदि देकर प्रदक्षिणा की ॥७६-७७॥ तदनन्तर स्वयं आचमन किया और ब्राह्मणों तथा देवताओं को आचमन कराया । तब भूमि को जल से सिक्त कर पितरों तथा देवताओं को जल पुष्प, अक्षत तथा तिल दिया । फिर 'अक्षय्य न अस्तु' इससे पितरों को और 'प्रीयताम्' इससे देवताओं को जल दिया ॥७८-७९॥ जल देकर तीन बार 'अथमर्पण' मंत्र का जप किया । तदनन्तर 'यन्मे' इसका पाठ किया ॥८०॥ 'गृहाश्र कोकातोयम्' इसका भी जप किया । दूध, मधु तथा तिल से पितरों का तर्पण किया ॥८१-८२॥ गदाधारी हरि ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में चाँदी देकर उनसे स्वस्तिवाचन करवाया । 'स्वत्' यह पढ़कर मनुष्यों को मांग दिया । माग्य से संपन्न हो गया यह कहकर हरि ने ब्राह्मणों से विराम करने को कहा । उन्होंने उत्तर दिया—'हम विराम कर रहे हैं । तब अवशिष्ट अन्न को हाथ में उठाकर ब्राह्मणों को दे दिया । 'वाजे वाजे' यह पढ़ते हुए हरि वेदी के पास से उठकर बाहर आये । बरोहों तीर्थों के जल में अपने विपुल बालों को पोंक कर अपसर्ग होते हुए आशीर्वाद के लिये 'दातारो' इस मंत्र से पितरों की प्रार्थना की । फिर प्रदक्षिणा करते उनकी चरणबन्धना की ॥८३-८८॥ बाराह ने उन्हें

१क ख द्विगुणेयानि । २ख अन्यपत्रिनानि । ३क तत मुपेक्षिता । ४क ख ०म् । आशिपमिति । ५क ख ०भुवै प्रीयः । ६क ०वेद्येन मेनामिती । ७ख ०न् । घाराभ्रपितरो दत्तघाराभ्रप्रदौ तत । अ० । ग ०न् । वीरायः । पितरो द्वावीराभ्रप्रदौ तत । अ० । ८क ०नामितरे । ९ख समविभक्तान् । राजर्त । १०क ०न् । राजर्त । ११क, ०दितमीरयन् । १२क ख ०नुमतः । १३ग, ०ठप्रन्तर्वे । १४ग ०लान्वालाभ्राः ।

आसन्नानि ददौ चेषां छादयामास शूकरः । विश्राम्यतां प्रविश्याय पिण्डं जग्राह मध्यमम् ॥८९॥
 छायामयी मही पत्नी तस्यै पिण्डमदात्प्रभुः । आधत्त पितरो गर्भमित्युक्त्वा साऽपि रपिणी ॥९०॥
 पिण्डं गृहीत्वा विप्राणां चक्ष्रे पादाभिवन्दनम् । विसर्जनं पितॄणां स कर्तुकामश्च शूकरः ॥९१॥
 कोका च पितरश्चैव प्रोचुः स्वार्थंकरं वचः । शप्ताश्च भगवन्पूर्वं दिवस्था हिमभानुना ॥९२॥
 योगभ्रष्टा भविष्यध्वं सर्वं एव दिवश्च्युताः । तदेव भवता प्राताः प्रविशन्तो रसातलम् ॥९३॥
 योगभ्रष्टांश्च विश्वेशस्तत्यजुर्योगरक्षणः । तत्ते भूयोऽभिरक्षन्तु विश्वे देवा हि नः सदा ॥९४॥
 स्वर्गयास्यामश्च विभो प्रसादात्तव शूकर । सो (य) मोऽधिदेवोऽस्माकं च भवत्वच्युत योगधृक् ॥९५॥
 योगाधारस्तथा सोमस्त्रायते न कदाचन । दिवि भूमौ सदा वासो भवत्वस्मासु योगतः ॥९६॥
 अन्तरिक्षे च केषाचिन्मासं पुष्टिस्तथाऽस्तु नः । ऊर्जां चैर्यं हि नः पत्नी स्वधानाम्ना तु विश्रुता ॥९७॥
 भवत्वेषैव योगाद्या योगमाता च खेचरी । इत्येवमुक्तः पितृभिर्वाराहो भूतभावनः ॥९८॥
 प्रोवाचाय पितृन्विष्णुस्तां च कोकां महानदीम् । यदुक्तं तु भवद्भिर्नै सर्वमेतद्भविष्यति ॥९९॥
 यमोऽधिदेवो भवतां सोमः स्वाध्याय ईरितः । अधिपज्ञस्तथैवाग्निर्भवतां कल्पना त्वियम् ॥१००॥
 अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च स्थानं हि भवतामिति । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवतामधिपूरुषाः ॥१०१॥

आसन्न देवर विश्राम करने की कहा । तदनन्तर प्रभु ने गृह में प्रवेश कर बीच के पिण्ड को उठा लिया और अपनी स्त्री छायामयी पृथ्वी को दे दिया । सुन्दरी छाया ने भी 'आधत्त पितरो गर्भम्' यह कहकर पिण्ड को ग्रहण किया और ब्राह्मणों की चरणवन्दना की । तब बराह ने पितरों का विसर्जन करना चाहा ॥८९-९१॥ उस समय कोका और पितर स्वार्थयुक्त वचन कहने लगे—'भगवन्' पहले स्वर्ग में रहने वाले चन्द्रमा ने हम शाप दिया था कि तुम लोग योगभ्रष्ट होकर स्वर्गच्युत हो जाओगे । सो इस प्रकार पाताल में प्रवेश करने से हमें आपने बचा लिया । योगरक्षक विश्वेदेव ने हमें योगभ्रष्ट समझकर छोड़ दिया था सो अब विश्वेदेव पुनः सतत हमारी रक्षा करें ॥९२-९४॥ विभो ! आपकी कृपा से फिर हम स्वर्ग जायें । अच्युत ! योगधारण करने वाले चन्द्रमा हमारे अधिनायक हों । योग के आधार चन्द्रमा सतत हमारी रक्षा करें । योगवत् से सदा हम पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में वास करें ॥९५-९६॥ कुछ मासों तक आकाश में हमारा पोषण हो । स्वर्चा नाम से प्रख्यात यह ऊर्जा हमारी पत्नी है । यही योग से सम्पन्न होकर आकाशचारिणी यागमाता हो ॥९७३॥ पितरों के इतना कहने पर सृष्टिकर्ता बराहरूपवारी विष्णु पितरों तथा महानदी कोका से कहने लगे—'आपने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सब होगा ॥९८-९९॥ आप के यम देवता, चन्द्रमा स्वाध्याय और अग्नि यज्ञ होंगे । आपकी कल्पना तो यही है न ? ॥१००॥ अग्नि, वायु तथा सूर्य आपका स्थान होंगे । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आपके पूर्व पुरुष कहलायेंगे ॥१०१॥ सूर्य, वायु तथा रुद्र आपकी मूर्तियाँ कहलायेंगे । आप योगी, योगशरीरधारी, योगाधार तथा सुवर्ती

आदित्या वसवो रुद्रा भवतां मूर्तयस्त्विमाः । योगिनो योगदेहाश्च योगधाराश्च सुवताः ॥१०२॥
 कामतो विचरिष्यध्वं फलदाः सर्वजन्तुषु । स्वर्गस्थान्नरकास्यांश्च भूमिस्थांश्च चराचरान् ॥१०३॥
 निजयोगबलेनैवाऽऽप्यायिष्यध्वमुत्तमाः । इयमूर्जा शशिसुता कीलालभधुविग्रहा ॥१०४॥
 भविष्यति महाभागा दक्षस्य दुहिता स्वधा । तत्रेयं भवतां पत्नी भविष्यति वरानना ॥१०५॥
 'कोकानदीति विख्याता गिरिराजसमाश्रिता । तीर्थकोटिमहापुण्या मद्रूपपरिपालिता ॥१०६॥
 अस्यामद्य प्रभृति वै निवत्स्याम्यघनाशकृत् । वराहदर्शनं पुण्यं पूजनं भुक्तिमुक्तिदम् ॥१०७॥
 कोकासलिलपानं च महापातकनाशनम् । तीर्थेष्वप्लवनं पुण्यमुपवासश्च स्वर्गदः ॥१०८॥
 दानमक्षय्यमुदितं जग्ममृत्युजरापहम् । माघे मास्यसिते पक्षे भवद्भिरुदुपसये ॥१०९॥
 कोकामुखमुपागम्य स्यात्तद्वयं दिनपञ्चकम् । तस्मिन्काले तु यः श्राद्धं पितॄणां निर्वपिष्यति ॥११०॥
 प्रागुक्तफलभागी स भविष्यति न संशयः । एकादशीं द्वादशीं च स्थेयमत्र मया सदा ॥१११॥
 यस्तत्रोपवसेद्धीमान्स प्रागुक्तफलं लभेत् । तद्ब्रजध्वं महाभागा स्यान्मिष्टं ययेष्टतः ॥११२॥
 अहमप्यत्र वत्स्यामीत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत । गते वराहे पितरः कोकामामन्य ते ययुः ॥११३॥

होकर स्वेच्छा से विचरण करेंगे और समस्त जीवों को फल देंगे ॥१०२॥ आप स्वर्ग में, पृथ्वी पर तथा नरक में रहने वाले समस्त चराचरों को अपने योगबल से समृद्ध करेंगे । यह चन्द्रमा की पुत्री ऊर्जा, जिसका शरीर जल तथा मधु का है, दक्ष की महामाग्यवती तथा स्वधा नाम से प्रख्यात कन्या होगी । वही पर यह मुमुक्षु आपकी पत्नी होगी ॥१०३-१०५॥ यह हिमालय के अधीन होकर कोकानदी नाम से विख्यात होगी और वरोडो तीर्थ के समान पुण्यदायक एवम् मेरे रूप से सुरक्षित होगी ॥१०६॥ आज से लेकर मैं इसमें निवास करूँगा और लोगों के पापों का नाश करूँगा । वराह के दर्शन तथा पूजन पुण्यकारक तथा भोग-भोग-दायक है ॥१०७॥ कौवा का जल पान करने से महापापों का नाश होता है । तीर्थों में स्नान पुण्यकारक एवम् उपवास स्वर्गदायक माना जाता है । ॥१०८॥ कभी मष्ट न होने वाला दान तो अक्षय्य तथा जन्म, मृत्यु एवम् दुःखापे का नाश करने वाला होता है । माघ मास के कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के क्षय होने पर आप लोग कौवा तीर्थ में आकर पाँच दिन ठहरेंगे ॥१०९॥ उन दिनों जो यहाँ पितरों का श्राद्ध करेंगे, वह नि सन्देह पूर्वकचित फल का भागी होगा ॥११०॥ एकादशी और द्वादशी तिथि को मैं यहाँ सदा रहूँगा । जो बुद्धिमान् मनुष्य उन तिथियों में यहाँ उपवास करेंगे, वह पूर्वकचित फल प्राप्त करेंगे ॥१११॥ महाभागी ! इस लिये आप लोग स्वेच्छा से अपने वाञ्छित स्थान को जाइय । मैं भी यहाँ निवास-करूँगा । इसका बहुर भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥११२॥ वराह के विलीन हो जाने पर पितर लोग कौवा से विदाई लेकर चले गये । कौवा भी तीर्थों के साथ हिमालय पर रहने लगी । पृथ्वीमयी छाया ने, जिसने धूँवरी का

१५ ०पा। आनेयदुहिता ५०। २४ दुहिता। ३४ ०का नाम्ना च वि०। ४४ ०टिवहा।
 ५५. पूजया। स. पूजया तु विमु०। ६४ ०ध्वत्स तथा दानमु०। ७४ मास्यसि०। ८ मासि सि०
 ८४ स. नरोत्तम. ए०।

कोकाऽपि तीर्थसंहिता सस्थिता गिरिराजनि । छाया महीमयी कोडो पिण्डप्राशनबृंहिता ॥११४॥
 'गर्भमादाय सश्रद्धा वाराहस्यैव सुन्दरी । ततोऽस्या' प्राभवत्पुत्रो भौमस्तु नरकासुर ॥'
 प्राग्ज्योतिष च नगरमस्य दत्त च विष्णुना ॥११५॥

एव मयोक्त वरदस्य विष्णो कोकामुखे दिव्यवराहरूपम् ।

भूत्वा नरस्त्यक्तमलो विषाग्मा दशाश्वमेधेष्टिफल लभेत ॥११६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासश्रुतिसवादे श्राद्धविधिनिरूपण

नामकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१९॥

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय.

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मुनय ऊचु

भूय प्रब्रूहि भगवञ्श्राद्धकल्प सुविस्तरात् । कथं वच च कदा कोपु 'कंस्तदब्रूहि तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्दूला श्राद्धकल्प सुविस्तरात् । यथा यत्र यदा 'यपु यद्रयेस्तद्वदाम्यहम् ॥२॥

रूप बनाकर पिण्ड का भक्षण किया था श्राद्धपूर्वक वाराह ही का गर्भ धारण किया । तदनन्तर छाया के नरकासुर भौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । विष्णु ने उसे प्राग्ज्योतिष नामक नगर (आधुनिक गोहाटा) दिया । इस प्रकार मैंने वरदायक विष्णु के कोकातीर्थ में दिव्यवाराह रूप धारण करने का कारण बतला दिया । जो इस आख्यान को सुनेगा वह निमल तथा पापरहित होकर दश अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करेगा ॥११३ ११६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के सहाद प्रकरण में श्राद्धविधिनिरूपण नामक दो सी
 उनीसवीं अध्याय समाप्त ॥२१९॥

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प का वर्णन

मुनियों ने कहा—भगवन ! पुन श्राद्धकल्प को विस्तार से बतलाइये । तपोधन ! कैसे वहाँ जिस समय जिन स्थानों में तथा जिन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह बताइए ॥१॥

व्यास ने कहा—मुनिश्रेष्ठो ! आप लोग श्राद्धकल्प को विस्तारपूर्वक सुनिये । जिस प्रकार जहाँ जहाँ जिन स्थानों में तथा जिन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह मैं बतलाता हूँ ॥२॥ कुत्रधर्मों को मानने वाले ब्राह्मण

१५ ०५ सप्तर्षिद्वि० । २४ ०५मम० । ३५ ०२कोशु० । ४६ कंस्तु ब्रूहि । ५६ येन ।

ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यैः 'श्राद्धं स्ववरणोदितम् ।' कुलधर्ममनुसिद्धिर्दातव्यं मन्त्रपूर्वकम् ॥३॥
 स्त्रीभिर्वर्णवरैः 'शूद्रैर्विप्राणामनुशासनात् ।' अमन्त्रकं विधिपूर्वं 'क्षत्रियागविवर्जितम् ॥४॥
 पुष्करादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वप्यतनेषु च । शिखरेषु गिरीन्द्राणां पुण्यदेशेषु भो द्विजाः ॥५॥
 सरित्सु पुण्यतोयासु नदेषु च सरःसु च । संगमेषु नदीनां च समुद्रेषु च सप्तसु ॥६॥
 स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुनापितेषु च । दिव्यपादपमूलेषु यज्ञिषेषु हृदेषु च ॥७॥
 श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु चोच्यते । किरातेषु कलिङ्गेषु कोट्टकणेषु कृमिष्वपि ॥८॥
 दशार्णेषु कुमार्येषु तद्गणेषु क्रथेष्वपि । सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे ॥९॥
 पूर्वेषु करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते । श्राद्धं देयमुशन्तीह मासि मास्युद्गुपक्षे ॥१०॥
 पौर्णमासेषु (?) श्राद्धं च 'कर्तव्यमृक्षगोचरे । नित्यश्राद्धमदैवं च 'मनुष्यैः सह गोप्यते ॥११॥
 नैमित्तिकं सुरैः सार्धं नित्यं नैमित्तिकं तथा । 'काम्याग्न्यानि श्राद्धानि प्रतिसंवत्सरं द्विजैः ॥१२॥
 वृद्धिश्राद्धं च कर्तव्यं जातकर्मादिकेषु 'च । तत्र 'धुमान्द्रिजानाहुर्मन्त्रपूर्वं तु यं द्विजाः ॥१३॥
 कन्यां गते सवितरि दिनानि दश पञ्च च । पूर्वर्णवेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥१४॥

क्षत्रिय तथा वैश्य अपने वर्णधर्मानुसार मन्त्रपूर्वक श्राद्ध करें ॥३॥ स्त्री तथा वर्णों में नीच शूद्र ब्राह्मणों की आज्ञा से बिना मन्त्र के अग्नि तथा यज्ञ से रहित विधिपूर्वक श्राद्ध करें ॥४॥ द्विजवृन्द । पुनर आदि तीर्थों में, पवित्र नदियों में, पर्वतों के शिखरों पर, पवित्र देशों में, पवित्र जलवाली नदियों, नदों, सरोवरों, नदियों के संगमा, सातों समुद्रों के किनारे, अच्छी तरह लीपे-मीते हुए अपने घरों में या आज्ञा लेकर दूसरे के घरों में, दिव्य वृक्षों के मूलों में, यज्ञिय स्थानों में तथा क्षीलों के पास श्राद्ध करना चाहिये । अब वहाँ नहीं करना चाहिये, वह बल्लता है ॥५-७॥ निरातदेश, कलिङ्गदेश, कोकणदेश, कृमिदेश, दशार्णदेश, कुमार्यदेश, तगणदेश, त्रयदेश, सिन्धु नदी से उत्तर, नर्मदा से दक्षिण तथा करतोया से पूर्व देशों में श्राद्ध नहीं देना चाहिये ॥८-९॥ प्रत्येक मास में चन्द्रशय होने पर श्राद्ध देना चाहिये । पौर्णमासी को नक्षत्रगोचर हान पर श्राद्ध करना चाहिये । मनुष्यों के साथ जो किया जाता है । वह नित्यश्राद्ध तथा अदैव श्राद्ध कहलाता है ॥१०-११॥ देवताओं के साथ हान वाला श्राद्ध नैमित्तिक कहलाता है । अन्य जो प्रतिवर्ष श्राद्ध दिये जाते हैं, वे काम्य कहलाते हैं । द्विजाओं को जातकर्म आदि सत्सत्कारों में वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीश्राद्ध करना चाहिये । वहाँ दो-दो ब्राह्मणों को बुलाना चाहिये ॥१२-१३॥ कन्याराशि में सूर्य के प्रवेश करने पर पन्द्रह दिनों तक पूर्ववर्णित विधान से ही श्राद्ध करना चाहिये ॥१४॥ प्रतिपदा में श्राद्ध करने से घन

१क ०६ कार्यं यथोदि० । २ग ०धर्माण (य) मनुर्जर्दा० । ३क ग ०इदं विप्रानु० । ४क ०तु । समन्त्रक्षत्रिय क्षत्रिय व० । ग. ०तु । बह्विजं तु पूर्ववद्वि० । ५क ग ०क्षत्रियागवि० । ६ग वा । ७ग. ०मु । अनु० । ८ख. ०पु त्रिमिष्व० । ९ग कुपेष्वपि । १०क. ख. ०याया नः । ११क ख मासे मासे च पशयो । १० । ५० । १२ख. ०तव्य चशुगो० । १३ख ०नुना पारिणी० । १४ग. ०म्याग्न्यानि । १५क. ख व । १६ख ०हर्मावपू० । १७ग. च पावनेह ।

प्रतिपद्धन्ताभाय द्वितीया द्विपदप्रदा । पुत्रायिनो तृतीया तु चतुर्थो शत्रुनाशिनी ॥१५॥
 धियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः । गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां बुद्धिमुत्तमाम् ॥१६॥
 त्रिज्यो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् । वेदांस्तयाऽऽप्नुयात्सर्वानेकादश्यां त्रियापरः ॥१७॥
 द्वादश्यां जयलभं च प्राप्नोति पितृपूजकः । प्रजावर्द्धि पशुं मेधां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥१८॥
 दीर्घायुरयवैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् । अवाप्नोति न संदेहः धाढं श्रद्धासमन्वितः ॥१९॥
 यथासंभविनाऽग्नेन धाढं श्रद्धासमन्वितः । युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥२०॥
 तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता । धाढं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥२१॥
 सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानन्तमश्नुते । अतः परं मुनिश्रेष्ठाः शृणुष्व वदतो मम ॥२२॥
 पितॄणां प्रीतये यत्र यद्देयं प्रीतिकारिणः । मासं तृप्तिः पितॄणां तु हविष्याग्नेन जायते ॥२३॥
 मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः । त्रीन्मासान् हारिणं मासं विजयेयं पितृतृप्तये ॥२४॥
 पुष्पाति चतुरो मासाश्शशस्य पिशितं पितॄन् । शाकुनं पञ्च वै मासान्यभ्यासाञ्शूकरामिषम् ॥२५॥
 छागलं सप्त वै मासानैण्यं चाष्टमासकान् । करोति तृप्तिं नव वै रुहमांसं न संशयः ॥२६॥

लाम होता है, द्वितीया में सन्तान, तृतीया में पुत्र, चतुर्थी में शत्रुनाश, पञ्चमी में लक्ष्मी-प्राप्ति, षष्ठी में सम्मान, सप्तमी में गणों का आधिपत्य, अष्टमी में उत्तम बुद्धि, नवमी में स्त्री और दशमी में मनोरथ पूर्ण होता है। एकादशी को धाढक्रिया में तत्पर व्यक्ति समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है ॥१५-१७॥ द्वादशी में धाढ करने वाला व्यक्ति विजय प्राप्त करता है। त्रयोदशी में धाढ से धाढ करने वाला व्यक्ति निःसन्देह प्रजा, पशु, बुद्धि, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥१८-१९॥ जिसका पितर युवावस्था में ही मर गया हो या राक्षसी से आहत होकर मर गया हो, वह यदि पितर की तृप्ति चाहे तो यथासमर्थ अन्न से चतुर्दशी में धाढपूर्वक धाढ करे ॥२०॥ अमावास्या में पवित्र होकर यत्नपूर्वक धाढ करने से मनुष्य की समस्त अभिलाषायें पूरी होती हैं और वह अनन्त काल तक स्वर्ग में सुख करता है। मुनिश्रेष्ठो! अब इससे बाद प्रीतिपूर्वक धाढ करने वाले मनुष्य को पितरों की तृप्ति के लिये क्या देना चाहिये, वह मुझसे सुनिश्चये ॥२१-२२॥ हविष्याग्न से पितरों को एक मास तक तृप्ति मिलती है। मत्स्य-मासों से दो मासों तक तृप्ति मिलती है। हिरण्य के मास से पितरों को तीन मास तक तृप्ति मिलती है। शरणाग के मास से पितरों को चार मास तक तृप्ति मिलती है ॥२३-२४॥ पक्षी के मांस से पाँच मास तक और शूकर के मांस से छह मास तक तृप्ति मिलती है ॥२५॥ बकरे के मास से सात मास तक और हरिण के मांस से आठ मास तक तृप्ति मिलती है। वृष्णमृग का मांस निःसन्देह नौ मास तक तृप्ति देता है

१स. त्रिज्य। २क. श्रेष्ठो। ३स. ०म्। सप्तम्यां धियमाप्नोति कार्यप्रदाष्टमी मता। त्रिज्यो। ४स. ०म्यां पशुमाप्नो। ५स. पुत्रलभ। ६क. स. धाढे। ७क. स. ०दापरो नष्ट। ८। ८क. य. षष्ठ्य प्रदेश। ९क. ग. ०कारणम्। मा०। १०क. शाकुनः।

'गव्यं मांसं पितृवृत्तिं करोति दशमासिषीम् । तयंकादश मासांस्तु ओरध्रं पितृवृत्तिदम् ॥२७॥
 संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव च । याध्रीनमा(धीनता) मिषं लोहं कालशार्कं तथा मधु ॥२८॥
 रोहितामिषमन्नं च दत्तान्पातमनुलोद्भवैः । अनन्तं वै प्रयच्छन्ति तृप्तियोगं सुतांस्तथा ॥२९॥
 पितृणां नात्र संदेहो गवाश्चाद्वं च भो द्विजाः । यो ददाति गुहोन्मिथांस्तिलान्या धाद्वकर्मणि ॥३०॥
 मधु या मधुमिश्रं वा अशयं सयमेव तत् । अपि नः स कुले भूपाद्यो नो दद्याज्जलाज्जलिम् ॥३१॥
 पायसं मधुमंदुक्कं यथासु च मघासु च । एष्टव्या घृहवः पुत्रा घटेशोऽपि गवां व्रजेत् ॥३२॥
 गौरो वाऽप्युदहेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् । वृत्तिषासु पितृनच्यं स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥३३॥
 मयश्चामो रोहिण्यां सोम्ये तेजस्वितां लभेत् । शौर्यमाद्रासु चाऽऽप्नोति क्षेत्राणि च पुनर्वसो ॥३४॥
 पुष्ये तु धनमक्षय्यमादलेवे" चाऽप्युदत्तमम् । मघासु च प्रजां पुष्टिं सौभाग्यं फाल्गुनीषु च ॥३५॥
 प्रधानशीलो भयनि सापत्यश्चोत्तरासु च । प्रयाति ध्येष्टतां शास्त्रे हस्ते धाद्वप्रदो नरः ॥३६॥
 रूपं तेजश्च चित्रासु तयाऽऽयमग्रानुपात् । याजिष्यलाभदा स्याती" विद्याता पुत्रशामदा ॥३७॥

कुवता चानुराधाम् ता दद्युश्चश्र्वर्तिताम । आधिपय च ज्येष्ठासु मूले चाऽऽरोग्यमुत्तमम् ॥३८॥
 आपादासु यश प्राप्तिरुत्तरासु विशोक्ता । श्रवणेन शुभाल्लोकान्धनिष्ठासु धनं महत् ॥३९॥
 वदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धि च वारुणे । अजाविक प्रौष्ठपद्या विददगावस्त (श्च त) योत्तरे ॥४०॥
 रयतोपु तथा कुप्यमश्विनीपु तुरङ्गमान । श्राद्ध कुर्वेत्स्थाऽऽप्नोति भरणीध्वायुरुत्तमम् ॥४१॥
 एव फलमवाप्नोति ऋक्षध्वतपु तस्ववित् । तस्मात्काम्यानि श्राद्धानि देयानि विधिवदद्विजा ॥४२॥
 कयाराशिगत भूयै फलभत्यन्तमिच्छता । यायान्कामानभिध्याय कन्याराशिगत रवौ ॥४३॥
 श्राद्ध कुर्वन्ति मनुजास्तास्ता कामांलभन्ति ते । नादोमुखाना कतव्य कयाराशिगते रवौ ॥४४॥
 पौणमास्यां तु कतव्य वाराहवचन यया । दिव्यभौमान्तरिक्षाणि स्यावराणि चराणि च ॥४५॥
 पिण्डमिच्छन्ति पितर कन्याराशिगते रवौ । कया गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ॥४६॥
 ऋतुभिस्तानि तुल्यानि दधौ नारायणोऽब्रवीत् । राजसूयाश्वमेधाम्या य इच्छेददुलभ फलम् ॥४७॥
 अप्यम्बुशाकमलाद्य पितृकयागतस्ययेत् । उत्तराहस्तनक्षत्रगत तीक्ष्णाशुमालिनि ॥४८॥
 षोऽचयस्वपितृभवाया तस्य वासस्त्रिविष्टपे । हस्तक्षग दिनकर पितृराजानुशासनात् ॥४९॥

मे स्वामित्व तथा मूल मे उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है । पूर्वाषाढ में यग की प्राप्ति तथा उत्तराषाढ में घोवनाग होता है । श्रवणा म शुभलोक तथा धनिष्ठा मे बहुत धन मिलता है ॥३८ ३९॥ अभिजित् मे श्राद्ध करने से मनुष्य वेदवेत्ता होता है । गतमिया मे वयक की सिद्धि होत है । पूवमाद्रपद मे भेदे तथा बकरे का लाम होता है । उत्तरमाद्रपद मे गौ का लाम होता है । रेवती मे दस्ते (घातु) की प्राप्ति होती है । अश्विनी म घोडा की प्राप्ति होता है । भरणी मे श्राद्ध करने वाला व्यक्ति उत्तम आयु प्राप्त करता है ॥४० ४१॥ इन नक्षत्रों मे श्राद्ध करनेवाला तत्त्ववेत्ता मनुष्य इस प्रकार फल प्राप्त करता है । द्विजवद । इसलिये काम्य श्राद्ध करना चाहिये ॥४२॥ अत्यन्त फल के इच्छुत् मनुष्य सूर्य के कयाराशि म प्रवेग करने पर श्राद्ध करे । कया राशि म सूर्य के जाने पर मनुष्य (मन म) जो जा कामनाय रखवर श्राद्ध करता है वह सब कामनायें उसका पूरी होती है ॥४३॥ सूर्य के कयाराशि मे जाने पर पौणमासी को नाग/मुख श्राद्ध करना चाहिये जैसा कि वाराह ने कहा है ॥४४॥ सूर्य के कयाराशिगत होने पर स्वर्ग मे पृथ्वी पर स्थावर जगम—जिस विंती भा रूप मे रहत हुए पितर पिण्ड चाहते हैं । नारायण भगवान् का कहना है कि सूर्य के कयाराशिगत होने पर जो सोलह दिन होते हैं वे यग तुय हैं । जो राजसूय तथा अश्वमेध के दुलभ फल की इच्छा करता है वह सूर्य के कयाराशिगत होने पर जउ घात मूल आदि से पितरों की पूजा करे ॥४५ ४६॥ उत्तराषाढ तथा हस्त मे सूर्य के प्रवेग करने पर जो मन्त्र से पितरों की पूजा करता है उतवा वास स्वर्ग मे होता है ॥४८॥ हस्त नक्षत्र मे सूर्य के प्रवेग करने पर यमराज की आगा से पितरों का मगर तब तन शून्य रहता है जब तन वृश्चिक राशि का दान नदी

तावन्निपुणो शूया यावद्युश्चिचदर्शनम् । युश्चिके समतिव्राते पितरो देवते सह ॥५०॥
 'निन्दस्य प्रतिगच्छन्ति दातव्यं दत्त्वा सुदुःखम्' । अष्टकासु च वर्तय्य आढ मन्वन्तरासु यं ॥५१॥
 अन्वष्टकासु ऋमशो मातृपूयं तद्विध्यते । ग्रहणे च व्यतीपाते 'रविचन्द्ररुमागमे ॥५२॥
 जन्मने ग्रहपौडायां आढ पार्यणमुच्यते । अयनद्वितये आढ विषुवद्वितये तथा ॥५३॥
 तार्कान्यु च वर्तय्य आढ विषुवदुत्तमम् । एषु कार्ये द्विजा आढ पिण्डनिर्वापणादृते ॥५४॥
 वैशाखस्य तृतीयायां नवम्यां वातिकस्य च । आढ कार्यं तु शुक्लायां सत्रान्तिविधिना नरं ॥५५॥
 प्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे च दशयेऽहनि । आढ कार्यं पायसेन दक्षिणायनवच्च सत् ॥५६॥
 यश च श्रौत्रियोऽम्पेति गेह 'षेदविदग्निमान् । तेनेरेन च वर्तय्य आढ विषुवदुत्तमम् ॥५७॥
 आदौयद्रथसंप्राप्तियंदा" स्यात्ताधुसमना । पार्यणेन विधानेन आढ कार्यं तथा द्विजं ॥५८॥
 प्रतिपद्यत्तर कार्यं "मानापिप्रोमृतेऽहनि । पितृप्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातृभ्योऽस्य संय हि ॥५९॥
 पार्यणं देवपूयं स्यादेकोद्दिष्टं सुरैर्यना । द्वौ देवे "पितृकार्ये श्रीनेरं कमुभयत्र या ॥६०॥
 मानामहानामप्येव सत्यमूहेन कीर्तितम् । प्रेतीभूतस्य सततं भुवि पिण्डं जलं तथा ॥६१॥

सतिलं सकुशं दद्याद्बर्हिर्जलसमोपतः । तृतीयेऽह्नि च कर्तव्यं' प्रेतास्थिचयनं द्विजैः ॥६२॥
 दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः' वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥६३॥
 'सूतकान्ते गृहे श्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते' । द्वादशेऽह्नि मासे च त्रिपक्षे च ततः परम् ॥६४॥
 मासि मासि च कर्तव्यं यावत्संवत्सरं द्विजाः । ततः परतरं कार्यं सपिण्डीकरणं श्रमात् ॥६५॥
 कृते सपिण्डीकरणे पार्वणं' प्रोच्यते पुनः । ततः प्रभृति निर्मुक्ताः प्रेतत्वात्पितृतां गताः ॥६६॥
 अमूर्ता मूर्तिमन्तश्च पितरो द्विविधाः स्मृताः । नान्दीमुखास्त्वमूर्ताः स्युर्मूर्तिमन्तोऽय पार्वणाः ॥
 एकोद्दिष्टाशिनः प्रेताः' पितृणां निर्णयस्त्रिधा ॥६७॥

मुनय ऊचुः

कथं सपिण्डीकरणं कर्तव्यं द्विजसत्तम । प्रेतीभूतस्य विधिवद्ब्रूहि नो वदतां वर ॥६८॥

व्यास उवाच

सपिण्डीकरणं विप्राः शृणुध्वं वदतो मम । तच्चापि देवरहितमेकार्धकपवित्रकम् ॥६९॥
 नैवान्नोकरणं तत्र तच्छास्त्राहन्वर्जितम् । अपसध्यं च तत्रापि भोजयेद्युजो द्विजान् ॥७०॥
 विश्लेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासत्रयादिकः । तं कथ्यमानमेकाप्राः शृणुध्वं मे द्विजोत्तमाः ॥७१॥

बाहुर मे देना चाहिए । द्विजातियो को तीसरे दिन प्रेत वा अस्थिसचय करना चाहिये ॥६१-६२॥ दस दिन पर ब्राह्मण, बारह दिन पर क्षत्रिय, पन्द्रह दिन, पर वैश्य और एक मास में शूद्र शुद्ध होता है ॥६३॥ अशौच वा अन्त होने पर घर में एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये । बारहवें दिन एक मास में, तीन पक्ष में और उसके बाद प्रत्येक मास में एक वर्ष तक श्राद्ध करना चाहिये । उसके बाद श्रम से सपिण्डीकरण करना चाहिये ॥६४-६५॥ सपिण्डीकरण के हो जाने पर पार्वण हो जाता है । तब से जीव प्रेतत्व से मुक्ति पाकर पितर हो जाता है ॥६६॥ पितर दो प्रकार के होते हैं—एक स्वरूपवान् और दूसरे स्वरूपरहित । उनमें नान्दीमुख श्राद्ध वाले पितर स्वरूप-रहित कहलाते हैं और पार्वण श्राद्ध वाले स्वरूपवान् कहलाते हैं । एकोद्दिष्ट श्राद्ध के पिण्ड छाने वाले प्रेत कहलाते हैं—यह तीन प्रकार का निर्णय पितरो के विषय में किया गया है ॥६७॥

मुनियो ने कहा—द्विजवर ! प्रेत वा सपिण्डीकरण कैसे करना चाहिये, वह हमें विस्तार से बतलाइये ॥६८॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द ! सपिण्डीकरण के बारे में मुझसे मुनिये । वह एक अर्ध से तथा एक पवित्री से देवरहित करना चाहिये ॥६९॥ यहाँ हवन न हो तथा आवाहन किया जाये । यहाँ भी आपसव्य करना चाहिये और अपुम (जोड़े नहीं) ब्राह्मणों को खिलाना चाहिये ॥७०॥ द्विजप्रेतो ! उसमें प्रतिमास कर्म आदि करने की दूसरी विधेयता है । उस वही जाने वाली विधेयता को आप लोग एवात्र मन से सुनें ॥७१॥ यहाँ तिल-गन्धों से

१क. व्य प्रत्यगावाहन । ए व्य प्रत्यगाह्वनी द्वि० । २क. मूनिप । ३ग. ०न्ते मृतप्रा० । ४ग. प्रसस्यते । ५क. ए. ०ये चैव मा० । ए. ०ये चैवमा० । ६क. ए तदा । ७क. ए. ०ण प्रारभेत्युन । ८ग. पार्वणे । ९क. ०वाः प्रेतत्वान्निवृतां गताः । क० ।

'तिलगन्धोदकयुक्तं' तत्र पात्रचतुष्टयम् । कुर्यात्पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य च द्विजाः ॥७२॥
 पात्रत्रये प्रेतपात्रादघं चैव प्रसेचयेत् । ये समाना इति जपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥७३॥
 स्त्रीणामप्येवमेव स्यादेकोद्दिष्टमुदाहृतम् । सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥७४॥
 प्रीतसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः । मृताहनि च तत्कार्यं पितॄणां विधिचोदितम् ॥७५॥
 पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदराः । कुर्युरेतं विधिं सम्यक्पुनस्य च सुताः सुताः ॥७६॥
 कुर्यान्मातामहानां तु पुत्रिकातनयस्तथा । च्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥७७॥
 पूजयेद्युष्यायणाय श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि । सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ॥७८॥
 तदभावे च नृपतिः कारयेत्स्वकुटुम्बिनाम् । तज्जातीयैर्नरैः सम्याग्वाहाद्याः सकलाः त्रियाः ॥७९॥
 सर्वेषामेव वर्णानां चान्धवो नृपतियंतः । एता च कथिता विप्रा नित्या नैमित्तिकास्तथा ॥८०॥
 वश्ये श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकां त्रियाम् । दर्शस्त (शं त) त्र निमित्तं तु विद्यादिन्दुक्षयान्वितं (तम्)
 ॥८१॥

नित्यस्तु नियतः कालस्तस्मिन्कुर्याद्यथोदितम् । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितॄण्यः प्रपितामहः ॥८२॥
 स तु लेपभुजं याति प्रलुप्तः पितृपिण्डतः । तेषां हि यश्चतुर्थोऽन्यः स तु लेपभुजो भवेत् ॥८३॥

युक्त चार पात्र होने चाहिये, जिनमे तीन तो पितरों के लिये और एक प्रेत के लिये होना चाहिये ॥७२॥ 'ये समाना' इसका जप करते हुए तीनों पात्रों में प्रेतपात्र से जल छोड़ना चाहिये और अवशिष्ट विधान पूर्ववत् करना चाहिये । स्त्रियों का भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध इसी प्रकार होगा । पर पुत्र के अभाव में उनका सपिण्डीकरण नहीं हो सकता ॥७३-७४॥ मनुष्य स्त्री का एकोद्दिष्ट प्रतिवर्ष किया करे । पितरों का एकाद्दिष्ट उनकी मृत्यु-नित्यि पर विधिपूर्वक करना चाहिए ॥७५॥ पुत्र के अभाव में सपिण्ड (पिंड देने के अधिकारी) और उनके अभाव में सहोदर माई एकोद्दिष्ट करें । पुत्र के पुत्र और उनके भी पुत्र विधान पूर्वक कर सकते हैं ॥७६॥ मातामह का श्राद्ध दोहिन कर सकता है । दोनों की सन्तान बहलाने वाले मनुष्य मातामह तथा पितामह दोनों के नैमित्तिक श्राद्ध न्याय-पूर्वक करें । सब के अभाव में पत्नी पति का श्राद्ध बिना मन्त्र के ही करे ॥७७-७८॥ स्त्री के अभाव में कुटुम्ब-गुण्य व्यक्ति का श्राद्ध राजा कराये । उसकी जाति-बिरादरी के लोगों द्वारा उसकी सारी क्रियायें राजा द्वारा सम्पन्न हो जानी चाहिये, जिसलिये कि राजा समस्त वर्णों का बन्धु बहलाता है ॥७९॥ विप्रवृद्ध । य नित्य-नैमित्तिक श्राद्ध मैंने बतला दिये । अब श्राद्ध सम्बन्धी नित्य-नैमित्तिक क्रिया को भी मैं बतलाऊंगा ॥८०॥ उसमें चन्द्रशाय-युक्त अमावस्या ही कारण है । नित्य तो निश्चित समय का नाम है । उसमें जैसे बताये गये हैं वैसे करना चाहिये । सपिण्डीकरण से आगे पिता का जो प्रपितामह है, वह लेपभुज म पहुँच जाता है । अनएव पित्रों का पिण्ड उसे नहीं पड़ता है । मातामह के पक्ष में भी जो चौथा पड़ता है, वह भी लेपभुज है । इसलिये वह भी सम्बन्ध से हीन

१क. ०लदमोद० । २क. ०वन कुर्यादप्रव० । ३क. ०म् । पितॄणां तय० त्रि० । ४य यं स्त्रीणां तद्विधि० ।

५क. ०पा । आमु० । ६क. ०येच कु० । ७ग. ०म्यग्वायायाः । ८क. सप्राप्ते ।

सोऽपि संबन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥८४॥
 पिण्डसंबन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः । लेपसंबन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् ॥८५॥
 प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः । इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबन्धः सान्तपोष्यः ॥८६॥
 यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा । ततोऽप्ये पूर्वजाः सर्वे ये चान्ये नरकोकसः ॥८७॥
 येऽपि तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः । तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्त्यथर्विधिः ॥८८॥
 स समाप्यायते विप्रा येन येन वदामि तत् । अन्नप्रक्रिणं यत्तु मनुष्यैः त्रियते भुवि ॥८९॥
 तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः । यदम्बु स्नानवर्जित्वं भूमौ पतति भो द्विजाः ॥९०॥
 तेन ये तरता प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते । यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥९१॥
 ताभिराप्यायनं तेषां देवत्वं ये कुले गताः । उद्धृतैवैव पिण्डेषु यादचाम्बुकणिका भुवि ॥९२॥
 ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः । ये चादन्ताः कुले बालाः त्रियायोगादवहिष्कृताः ॥९३॥
 विपन्नास्त्वन्धिकाराः समार्जितजलाशिनः* । भुक्त्वा चाऽऽचामता यच्च यज्जलं चाद्विज्ञौचजम् ॥९४॥
 ब्राह्मणानां तथैवान्यत्तेन तृप्तिं प्रयान्ति यः । एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥९५॥
 किञ्चिज्जलान्नविशेषः शुचिरच्छिष्ट एव वा । तेनाग्नेन कुले तत्र ये च शोण्यन्तरं गताः ॥९६॥

होने के कारण पिण्ड नहीं पाता है । पिता, पितामह, प्रपितामह—ये ही तीन पुरुष पिण्डसम्बन्धी कहलाते हैं । पितामह के पितामह से लेकर तीन पुरुष तक लेप सम्बन्धी कहलाते हैं और सातवां यजमान कहलाता है । यही सात पुरुषों का सम्बन्ध मुनिया ने बतलाया है ॥८१-८६॥ यजमान से लेकर ऊपर अनुलेप-भुज कहलाते हैं और उनके अतिरिक्त सब पूर्वज कहलाते हैं । जो नरक में रहते हैं, जो पश्यायोनियों में प्राप्त हैं तथा जो भूत आदि हैं, योनियों में स्थित हैं, उन सबका श्राद्ध यजमान विधान पूर्वक करे ॥८७-८८॥ विप्रबृन्द ! अब जो-जो करने से जीव को तृप्ति मिलती है, वह मैं कहता हूँ । भूमि पर जो अन्न बिखरा जाता है, उससे पिशाच-योनियों में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥८८-९१॥ स्नान करने से जो जल पृथ्वी पर गिराया जाता है, उससे वृक्षायोनियों में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९०-९२॥ जो मुण्णित जल के फुहारे भूतल पर गिराये जाते हैं, उनसे देवकुल में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९१-९३॥ पिण्डों के उठा लेने पर पृथ्वी पर जो जल-बिन्दु गिरता है, उससे पश्यायोनियों में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९२-९४॥ ब्राह्मणों का जो जल पिलाया जाता है उससे उन लोगों को (भृत्य के बाद) तृप्ति मिलती है, जो निर्वन्त बालक त्रियायों से कुलच्युत कर दिये गए हों, जो विपत्ति-ग्रस्त होकर अधिकार-वंचित कर दिये गए हों, जिन्होंने घनीय जल पी लिया है, और जिन्होंने खाकर चरण धोने के बाद बचे जल से आभयन किया हो । इस प्रकार (आदित्यल में) जो यजमान और उन ब्राह्मणों का पवित्र या जूठा जल और अन्न गिरता है, उससे उस (यजमान के) कुल में घर-पर अन्य योनियों में गये हुए जीव तृप्ति को प्राप्त करते हैं । ९३-९६॥ द्विजगण ! लोग भली भाँति श्राद्धक्रिया से सम्पन्न व्यक्तियों का अन्यायपूर्वक उपार्जित धन से जो श्राद्ध

१क. ०मन्त ले० । २क. धान्यश । ३क. ०योगपयास्थिता । ४क. ०मार्जनाप्यताशि० । ५क. ०वान्ये तेन । ६क. ०रिचितला० । ७क. तेन तेन ।

प्रयान्त्याप्यायनं विप्राः सम्यक्श्राद्धक्रियावताम् । अन्यायोपाजितैरर्थैश्छाद्वं त्रियते नरैः ॥९७॥
 तृप्यन्ते ते न चाण्डालपुलकसाद्यासु योनिषु । एवमाप्यायनं विप्रा बहूनामेव बान्धवै ॥९८॥
 श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नाम्बुविशेषैः संप्रजयते । तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैनापि यथाविधि ॥९९॥
 कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सोदति । श्राद्धं देयं तु विप्रेषु सयतेष्वग्निहोत्रिषु ॥१००॥
 अवदातेषु विद्वत्सु श्रोत्रियेषु विशेषतः । त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णं षडङ्गवित् ॥१०१॥
 मातापितृपरश्चैव स्वस्त्रीयः सामवेदवित् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमुपाध्याय च भोजयेत् ॥१०२॥
 मातुलः स्वशुरः श्यालः संचन्धी द्रोणपाठकः । मण्डलब्राह्मणो यस्तु पुराणार्थविशारदः ॥१०३॥
 अकल्पः कल्पसंतुष्टः प्रतिग्रहविवर्जितः । एते श्राद्धे नियोक्तव्या ब्राह्मणाः पंडितकपावनाः ॥१०४॥
 निमन्त्रयेत पूर्वेषु पूर्वोक्ताङ्घ्रिजसत्तमान् । देवे नियोगे पित्र्ये च तास्तथैवोपकल्पयेत् ॥१०५॥
 तैश्च संयमिभिर्भायं यस्तु श्राद्धं करिष्यति । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥१०६॥
 पितरस्तस्य वै मासं तस्मिन्नेतसि शेरते । गत्वा च योपितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यस्तु य (य) न्छति ॥१०७॥
 रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः । तस्मात्त्व (त्तु) प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ॥१०८॥
 अप्राप्तौ तद्विदने वाऽपि वर्ज्यं योपितप्रसङ्गिनः । भिक्षार्थमागतांश्चापि कालेन सयतान्यतीन् ॥१०९॥

करते हैं, उस श्राद्ध से चाडाल-व्याधि आदि योनियो में भी वे व्यक्ति तृप्त नहीं होते हैं। विप्रवृन्द ! इस प्रकार श्राद्ध करने हुए वन्धुओं द्वारा जो जल दिया जाता है, उससे बहुतो को तृप्ति होती है। इसलिये मनुष्य शाक लेकर भी भक्ति से विधान पूर्वक श्राद्ध करे ॥९७-९९॥ श्राद्ध करने से कुल में किसी का वण्ट नहीं होता है। सयमी, अग्निहोत्री, शुद्ध, विद्वान् तथा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणों को श्राद्धीय द्रव्य देना चाहिये ॥१००॥ पञ्चाग्नि सेवन करने वाले, 'मधुचाता' इत्यादि मन्त्रों के ज्ञाता, छोहो अगों के ज्ञाता, मातृ पितृ-भक्त, भागिनेय, सामवेदज्ञ, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा उपाध्याय का भाजन करना चाहिए ॥१०१-१०२॥ मामा स्वशुर, साला, सम्बन्धी, पुराणार्थ विशारद, मण्डलब्राह्मण, द्रोणपाठक, सशररहित, सतुष्ट, प्रतिग्रह-रहित—ये पण्डित-पवित्र करने वाले ब्राह्मण श्राद्ध में नियुक्त होने चाहिये ॥१०३-१०४॥ श्राद्ध से पहले ही दिन पूर्वोक्त उत्तम ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे देना चाहिये। देवकम तथा पितृवर्मदोनों में उसी प्रकार से करना चाहिये ॥१०५॥ जा श्राद्ध करे उसे सयमी हीना चाहिये। श्राद्ध करके तथा श्राद्धाभ खाकर जा मैथुन करता है, उनके पितर को उसी वीथ में एक मास तक साना पड़ता है ॥१०६॥ स्त्री के पास जाकर जो श्राद्ध में भोजन करता है और जो भोजन करके स्त्री के पास जाता है, उन दोनों के पितरों को एक मास तक वीर्य तथा मूत्र खाना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि वह पहले ही निमन्त्रण दे दे ॥१०७-१०८॥ पता लग जाने पर उस दिन भी स्त्री-प्रसंग करने वालों को छोड़ देना चाहिये। समय से मिला के लिए आये हुए सयमी सग्यासियों को अनुनय-विनय पूर्वक यत्न से भाजन कराये।

भोजयेत्प्रणिपाताद्यः प्रसाद्य यतमानसः । योगिनश्च तदा ध्यात्वे भोजनीया विपश्चिता ॥११०॥
 योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान्पूजयेत्सदा । ब्राह्मणानां सहस्राणि एको योगी भवेद्यदि ॥१११॥
 यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् । पितृगाथा तथैवात्र गीयते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
 या गीता पितृभिः पूर्वमेलस्याऽऽसीन्महीपतेः । कदा नः संततावगम्यः कस्यचिद्भूविता सुतः ॥११३॥
 यो योगिभुवतशेषान्नो भुवि पिण्डान्प्रदास्यति । गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं तथा हविः ॥११४॥
 कालशाक तिलाज्यं च तृप्तये कृसरं च नः । वैश्वदेवं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ॥११५॥
 विषाणवर्जं शिरस आ पादावाशिषामहे । दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ॥११६॥
 मधुसपि समायुक्तं पायसं दक्षिणायने । तस्मात्संपूजयेद्भक्त्या स्वपितृन्विधियन्तरः ॥११७॥
 कामानभीप्सन्सकलान्पादात्तमविमोचनम् । वसून्नुद्रांस्तथाऽऽदित्यान्क्षत्रप्रहृतारकाः ॥११८॥
 प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धर्तपिताः । आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥११९॥
 प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धर्तपिताः । तथाऽपराह्णः पूर्वाह्णोत्पितृणामतिरिच्यते ॥१२०॥
 संपूज्य स्वागतैर्नतान्सदनेऽभ्यागतान्द्विजान् । पवित्रपाणिराचान्तानासनेपूपवेशयेत् ॥१२१॥
 श्राद्धं कृत्वा विधानेन संभोज्य च द्विजोत्तमान् । विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भविततः ॥१२२॥

विद्वान् व्यक्ति यागियों को श्राद्ध में भोजन कराये । जिस लिए पितर योग के आधार माने जाते हैं इसलिए सदा योगियों का सम्मान करे ॥१०९-११०॥ हजरो ब्राह्मणों में यदि एक भी योगी हो तो वह यजमान तथा भोजन करने वालों को जल में नाव की तरह तार देते हैं ॥१११॥ इस विषय में ब्रह्मवादियों ने एक पितृ-नाम्ना गायी है जि राजा ऐल के पितरों ने कहा था—‘हमारी सन्तानों में जिसको पहले पुत्र होगा, जो योगियों के खाने से बचे अन्न के पिण्ड पृथ्वी पर देगा अथवा गया में पिण्ड देगा और हमारी तृप्ति के लिय गंडे का मांस, घी, कालशाक, तिलमिश्रित घी तथा शिखड़ी देगा । सींग को छोड़कर सिर से पैर तक गंडे का मांस विश्वदेव तथा सोम को प्रिय है, उसे हम चाहते हैं ॥११२-११५॥ त्रयोदशी, मघा नक्षत्र तथा दक्षिणायन में मधु तथा घी से युक्त शीर श्राद्ध में देना चाहिये । इसलिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक अपने पितरों की पूजा करे । श्राद्ध में तृप्त लिये गये पितर मनुष्यों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं, उन्हें पाप से मुक्त करते हैं और उनसे प्रति वसुओं, छद्मों, आदित्यों नक्षत्रों, ग्रहों और तारों को अनुकूल बना देते हैं । श्राद्ध से सन्तुष्ट पितर आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग मोक्ष, राज्य तथा सुख प्रदान करते हैं । पितरों का समय पूर्वाह्न की अपेक्षा अपराह्न उत्तम माना जाता है । गृह में आये हुए द्विजों का स्वागत करने पवित्र हाथों से उन्हें जल दे और आचमन कराकर आसनो पर बैठाये ॥११६-१२१॥ विधानपूर्वक श्राद्ध करने और उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय-वातो से उन्हें बिदाई दे ॥१२२॥ द्वार तक उनसे पीछे-पीछे चलकर पुन उनकी आज्ञा से

१स. ०दि। योगी च भोजितश्चेत्स्यान्नौरि० । २क. स. ०भिः सायं पू० । ३क. स. ०स्य भूप० ।

४ग. ०वर्ग्या गह्वारच आमदानासप्तानुते । ५क. ०सान्ये दिव्या य च मानुषा । ६० ।

आहारमनुगच्छेच्च आगच्छेदनुमोदितः । ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन् ॥१२३॥
 नित्यक्रिया पितृणां च केचिदिच्छन्ति सत्तमा । न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१२४॥
 पृथक्त्वेन वदन्त्यन्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत् । ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥१२५॥
 एवं कुर्वीत धर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः । यथा च विप्रमुह्यानां परितोषोऽभिजायते ॥१२६॥
 इदानीं संप्रवक्ष्यामि वर्जनीयाग्निराधमान् । मित्रध्रुवकुन्ती बलीवः क्षयी शुक्लो वणिक्पयः ॥१२७॥
 श्यावदन्तोऽय खलवाटः काणोऽग्न्यो बधिरौ जडः । मूकः पङ्गुः कुणिः पण्डो दुश्चर्मा व्यङ्गकेकरो ॥१२८॥
 कुण्डो रक्तक्षेत्रः कुञ्जो वामनो विकटोऽलसः । मित्रशत्रुदुष्कुलीनः पशुपालो निराकृतिः ॥१२९॥
 परिव्रित्तिः परिवेत्ता परिवेदनिकासुतः । वृषलीपतिस्तत्पुत्रश्च न भवेच्छ्राद्धभुङ्गिजः ॥१३०॥
 वृषलीपुत्रसंस्कर्ता अनुदो द्विधिपूषतिः । भूतकाध्यापको यस्तु भूतकाध्यापितश्च यः ॥१३१॥
 सूतकाश्रोपजीवी च मृगयुः सोमविक्रयो । अभिशस्तस्तथा स्तेनः पतितो वार्धुषिः शठः ॥१३२॥
 पिशुनो वेदसत्यागो दानाग्नित्यागनिष्ठुरः । राज्ञः पुरोहितो भृत्यो विद्याहीनोऽय मत्सरो ॥१३३॥
 वृद्धद्विदुधरः शूरो मूढो देवलकस्तथा । नक्षत्रमूचकश्चैव पर्वकारश्च गहितः ॥१३४॥

लौट जाये। तब नित्यक्रिया करने अतिथियों को भोजन कराये ॥१२३॥ मुनिबुन्द । कोई तो पितरो की नित्य-
 क्रिया करते हैं और कोई नहीं भी करते हैं। शेष क्रिया तो पहले ही की तरह करनी चाहिये ॥१२४॥ कोई कहते
 हैं, पितरो की पृथक्-पृथक् क्रिया होनी चाहिये, कोई कहते हैं नहीं, पहले की तरह ही सब कर्म करने
 चाहिये। श्राद्ध का वस्त्र सेवक आदि के साथ खाना चाहिये ॥१२५॥ धर्मज्ञ मनुष्य सावधान होकर पितरो
 के इस प्रकार श्राद्ध करें जिससे श्राद्धाणो को सन्तोष हो जाय ॥१२६॥ अब मैं श्राद्ध में निषिद्ध ब्राह्मणों के
 बारे में बतलाऊँगा। मित्र के साथ शत्रुता करने वाला, खराब नखवाला, नपुंसक, क्षय रोग वाला, श्वेत कुष्ठ
 वाला, व्यापार करने वाला, मद्य पीने वाला, रजो शिर वाला, बाना, अन्या, बहूबा, जड, गुग्गु, लगडा, विवृत
 चर्म वाला, ऐंजाताना, कुष्ठराली, लाल नेत्र वाला, बौना, दन्तुल, आलसी, दुष्कुलीन, पशु पालने वाला,
 परिव्रित्ति, (जिसका छाटा माई उससे पहले विवाह करले), परिवेत्ता, (जो बड़े माई से पहले विवाह कर ले)
 परिवेदनिका (जिसका स विवाह करने पर परिवेदन दोष ल्ये) का पुत्र, शूद्रा का पति और उसका पुत्र
 ब्राह्मण श्राद्ध में वर्जनीय हैं ॥१२६-१३०॥ शूद्रा के पुत्र का सत्कार करने वाला, अविवाहित, दूसरा विवाह
 करने वाली स्त्री का पति, बेतन लेकर पढ़ाने वाला, बेतन देकर पढ़ने वाला, मृतक के अन्न से जीने वाला,
 विवाह खेलने वाला, मद्यव्रिक्ता, कलकी चार, पतित, मूढलोर, दुष्ट, चुगलखोर वेदत्यागी, दान तथा अग्नि
 का त्याग करने वाला निष्ठुर, राजा का पुरोहित, मृत्यु, विद्याहीन, डाह रखने वाला, वृद्धों से डेर करने वाला,
 उदत, बुर, मूर्ख, पुजारी, ग्रह बताने वाला, पर्वकार, निन्दित और यज्ञ के अनधिकारी को यज्ञ कराने वाला,

१क स ०णा प्राक्तेचि०। २ग ०न च नित्यत्वे के०। ३ग स्विस्री। ४क पण्ड कुकर्मा। ५क कुशि-
 कुप्यो रक्तकुण्डो रक्त दुष्टिर्वाम०। ६क ०श्रुदुस्त्रालो प०। ७ग ०स्तत्पुत्रश्च तथा
 वृद्धा०। ८क ०र्ताजुतवाग्निदधि०। ९ख मूर्तिकानिष्ठकर्ता च। १०क णी होताग्नि०।
 १ख ०द्विग्निधुनश्चैव पतितस्यैव पोषकः। न०।

अयाज्ययाजक पण्डो गृहिता ये च येऽधमा । न ते श्राद्धे नियोज्यस्या दृष्ट्वाऽमी पंडितदूषकाः ॥१३५॥
 असता प्रग्रहो यत्र सता चवावमानना । दण्डो देवकृतस्तत्र सद्य पतति दारुणः ॥१३६॥
 हित्वाऽऽगम सुबिहित बालिश यस्तु भोजयेत् । आदिधर्मं समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति ॥१३७॥
 यन्त्वाश्रित द्विज त्यक्त्वा अन्यमानीय भोजयेत् । तत्रि श्वासाग्निनिर्दग्धस्तत्र दाता विनश्यति ॥१३८॥
 वस्त्राभावे त्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपासि च । तस्माद्वासासि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः ॥१३९॥
 कौशेय क्षौमकार्पास दुकूलमहत तथा । श्राद्धे त्वेतानि यो दद्यात्कामानानोति चोत्तमान् ॥१४०॥
 यथा गोषु प्रभूतासु वस्तो धिन्वति मातरम् । 'तथाऽग्न' तत्र विप्राणां जनुयंत्रावतिष्ठते ॥१४१॥
 नामगोत्रं च मन्त्राश्च दत्तमत्र भवन्ति ते । अपि ये निधनं प्राप्तास्तृप्तिस्तानुपतिष्ठते ॥१४२॥
 देवताभ्यं पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । 'नम स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव' भवन्ति च ॥१४३॥
 आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या अपेक्षदा । पिण्डनिर्बपणे चाऽपि जपेदेव समाहितः ॥१४४॥
 क्षिप्रमायान्ति पितरो राक्षसाः प्रद्वन्ति च । 'प्रोयन्ते त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽग्न' तारयत्युत ॥१४५॥
 क्षौमसूत्रं नवदद्याच्छा (च्छो) ण कार्पासिकं तथा । 'पत्राणं पट्टसूत्रं च कौशेयं च विवर्जयेत् ॥१४६॥

नपुंसक तथा अधम—ये ब्राह्मण श्राद्ध में त्याज्य हैं। ये पण्डित को दूषित करने वाले हैं ॥१३१-१३५॥ जहाँ अच्छे पुरुष का सम्मान और सत् पुरुष का अपमान होता है वहाँ क्षीघ्र ही मयकर दैविक दण्ड मिलता है ॥१३६॥ जो परम्परागत धर्म का उल्लंघन कर शास्त्रविहित ब्राह्मण का छोड़कर मूर्ख को खिलाता है, उसका नाश हो जाता है ॥१३७॥ जो आश्रित द्विज का परिचर्य कर दूसरे को लावार खिलाता है, वह उससे श्वास रूपी अग्नि से दग्ध होकर नष्ट हो जाता है ॥१३८॥ वस्त्र के अभाव में किया, यज्ञ, वेद तथा तपस्या नहीं होती है। इसलिये श्राद्धकाल में विशेष करने वस्त्र देना चाहिये ॥१३९॥ जो रेशमी वस्त्र, पट्ट-वस्त्र, सूती वस्त्र तथा महीन वस्त्र श्राद्ध में देता है वह उत्तम कामनाओं को प्राप्त करता है ॥१४०॥ जैसे अनेक गायों के बीच बछड़ा अपनी माँ के पास पहुँच जाता है उसी तरह ब्राह्मण को खिलाया अन्न जीव के पास पहुँच जाता है ॥१४१॥ नाम गोत्र उच्चारण वस्त्र मन्त्रपूर्वक जो अन्न दिया जाता है वह मृत्यु के बाद भी जीव का प्राप्त होता है ॥१४२॥ श्राद्ध के आदि तथा अन्त में देवताभ्यं 'इस मन्त्र का जप तीन बार करे। पिण्डदान व समय भी सावधान होकर दगवा जप करे। इससे पितर रक्षित आ जाते हैं और राक्षस भाग जाते हैं। इस मन्त्र से तीनो लक्ष्मण मिलर प्रसन्न होते हैं। यह सब का तारण करने वाला है ॥१४३-१४५॥ महीन रेशमी सूत्र देना चाहिये, पर बपास, ऊन, पट्ट तथा कौशेय वस्त्र का सूत्र नहीं देना चाहिये ॥१४६॥ यदि वस्त्र पूरा हो किन्तु उसमें बिनारी न हो तो वह

१४ ंण्डो दैव। ग ंण्डा दैवदृ०। २१ ंस्ति जपवे०। ३१ ंथाऽग्नमेति तत्रैव ज०। ४१ ंप्र नये विप्रो ज०। ५४ यान्ति। ६१ ंम स्वधायै स्वाहायै नि०। ७४ ंव नमो नमः। आ०। ८१ ंवन्तु न। आ०। ९१ चापि। १०४ प्रयन्ते। ११मन्त्रास्तास्तार०। १२१ त्रिषु।

'वर्जयेच्चादशं प्राज्ञो यद्यप्यव्याहृतं भवेत् । न प्रीणयन्त्ययंतानि दातुश्चाप्यनयो भवेत् ॥१४७॥
न निवेद्यो भवेत्पिण्डः पितॄणां यस्तु जीवति । इष्टेनाग्नेन भक्ष्येण भोजयेत्तं यथाविधि ॥१४८॥
पिण्डमनो सदा दद्याद्भोगार्थो सतन नरः । पत्न्यं दद्यात्प्रजार्थो च मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥१४९॥
'उत्तमा द्युतिमन्विच्छन्पिण्ड गोपु' प्रयच्छति । प्रजां चैव यशः कीर्तिमप्यु' चैव' निवेदयेत् ॥१५०॥
प्रायण्वदीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति । कुमारशालामन्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति ॥१५१॥
एके विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमद्वत । अनुजातस्तु विप्रैस्तेः काममुद्दिध्यतामिति ॥१५२॥
तस्माच्छ्राद्धं तथा' कार्यं यथोक्तमृषिभिः पुरा । अन्यथा तु भवेद्दोषः पितॄणां नोपतिष्ठति ॥१५३॥
यवैर्ब्राह्मिहितिलैर्मर्षिर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत्पितॄन्मुद्गैः श्यामार्कैः सर्पपद्मैः ॥१५४॥
नीवारैर्हस्तिश्यामार्कैः प्रियङ्गुभिस्तथाऽधयेत् । प्रसातिकां (असतिकाः) सतूलिकां च (सोलकान्द)
श्राच्छ्राद्धे विचक्षणः ॥१५५॥
आम्रमाश्रातकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम् । प्राचीनामलकं क्षीरं नारिकेलं परुषकम् ॥१५६॥
नारङ्गं च सखजूरं द्राक्षामोलकपित्तकम् । पटोलं च प्रियालं च कर्कण्ठूदराणि च ॥१५७॥
'विकटवतं वत्सकं च' कस्तूरं (काहू) चारकानपि । एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः ॥१५८॥
गुडशर्करमत्स्यण्डो देयं पाणितमूर्मुरम्" । गव्यं पयो वधि घृतं तैलं च तिलसंभवम् ॥१५९॥

नहीं देना चाहिये । ये वर्जनीय चीजें पितरो को तृप्ति नहीं देतीं । दाता के लिये भी ये हानिकारक हैं ॥१४७॥
पितरों ने जो जीवित हैं, उसे पिण्ड नहीं देना चाहिये, बल्कि विधानपूर्वक उसे सुन्दर भोजन करना चाहिये ।
॥१४८॥ भोगार्थो मनुष्य सदा अग्नि में पिण्ड चढ़ाये । प्रजा वा इच्छुक मनुष्य मन्त्रपूर्वक पत्नी को पिण्ड दे
॥१४९॥ उत्तम कानि वा इच्छुक व्यक्ति गौ को पिण्ड दे । बुद्धि यस तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला मनुष्य जल में
पिण्ड दे ॥१५०॥ दीर्घायु चाहने वाला व्यक्ति कीर्ति को पिण्ड दे । कुमार-शाला चाहने वाला मुर्गों को दे ॥१५१॥
बुद्धि विद्वानो वा रहना है कि अग्रभाग से पिण्ड को उठाना चाहिए । जैसे धियो की आज्ञा लेकर जैसे चाहें जैसे
उठा सकते हैं ॥१५२॥ इसलिये जिस प्रकार ऋषियो ने बतलाया है उसी प्रकार श्राद्ध करना चाहिये । अन्यथा
दोष होता है और पितरो को भी तृप्ति नहीं मिलती है ॥१५३॥ यव, व्रीहि, तिल, उडद, गेहूँ तथा चने से पितरों
वा संतर्पण करना चाहिए । मूग श्यामार्क, (साई), सरसो, नीवार, हस्तिश्यामर्क (सामा) तथा प्रियंगु (कपनी)
से पितरो को अर्घ्य देना चाहिये । विद्वान् मनुष्य श्राद्ध में सावकरण शय्या दान करें ॥१५४-१५५॥ आम, आमला,
बेल, दाडिम, विजौरा नींबू, पानीयामलक नारियल, नारंगी, खजूर, दाख, बटबेल, पटोल, प्रियाल (पियासाल),
वेर, विकटवत, वत्सक, कस्तूर, चारक ?—ये फल श्राद्ध में देने चाहिये ॥१५६-१५८॥ गुड, शर्करा, खीर,
राख, गोका दूध, दही, घी, तिल वा तेल, सन्ध्या नमक, पवित्र गन्ध, चन्दन, अगार, कुकुम, बालशाक, तन्दुलीय, वास्तुक,

१क स ०येशेदश । २क ०मां गति० । ३क ०ति । आनोति च य० । ४ ०कीर्ति मस्तु नित्य नि० ।
५ख नित्य । ६ग सदा । ७ख तीक्ष्ण । ८ख ०त बीजपूर वैकामपि च पूरकम् । ए० । ९क च सर्वविश्वका० ।
१०ख ०तशू० ।

मैन्धवं सागरोत्थं च लवणं सारसं तथा । निवेदयेच्छुचीगन्धाश्चन्दनागुरुकुङ्कुमान् ॥१६०॥
 कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा । शाकमारण्यकं चापि दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च ॥१६१॥
 जातिचम्पकलोध्राश्च मल्लिकाबाणवर्बरी । वृन्ताशोकादरूपं च तुलसी तिलकं तथा ॥१६२॥
 'पावन्ती' शतपत्रा च गन्धशोफालिकामपि । कुब्जकं तगरं चैव मृगमारण्यकेतकीम् ॥१६३॥
 यूथिकामतिमुक्तं च श्राद्धयोग्यानि भो द्विजा । कमलं कुमुदं पद्म पुण्डरीकं च यत्नतः ॥१६४॥
 इन्दीवरं कोकनदं फल्लारं च नियोजयेत् । कुष्ठं मासी बालकं च कुक्कुटी जातिपत्रकम् ॥१६५॥
 नलिकोशीरमुस्तं च ग्रन्थिपर्णी च सुन्दरी । पुनरप्येवमादीनि गन्धयोग्यानि चक्षते ॥१६६॥
 गुग्गुलु चन्दनं चैव श्रीवासमगुरु तथा । धूपानि पितृयोग्यानि ऋषिगुग्गुलमेव च ॥१६७॥
 राजमापाश्च चणकान्सूरान्कोरदूषकान् । विप्रुष्यामर्कटांश्चैव कोदवांश्चैव वर्जयेत् ॥१६८॥
 माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्भवं । स्त्रंगमौष्ट्रमाविकं च दधि क्षीरं घृतं त्यजेत् ॥१६९॥
 तालं वरुणकाकोलीं बहुपत्रार्जुनीफलम् । जम्बीरं रक्तबिल्वं च शालस्यापि फलं त्यजेत् ॥१७०॥
 मत्स्यसूकरकर्माश्च गायो वज्र्यां विशेपत । पूतिकं मृगनाभिं च रोचनीं पद्मचन्दनम् ॥१७१॥
 कालेयकं तूप्रगन्धं तुरष्कं चापि वर्जयेत् । पालङ्कं च कुमारीं च किरातं पिण्डमूलकम् ॥१७२॥
 गृध्रजनं चित्रिकां चतुर्ध्वं वरुणा चनपत्रिकाम् । 'जीवं' च 'दानपुष्पां' च नालिकां गन्धशकरम् ॥१७३॥

(वयुर्द्वि) मूली तथा वन्य शाकं देना चाहिये और ये फूल भी देने चाहिए—॥१५९-१६१॥ मालती, चम्पा, लोप मल्लिका बाण वर्बरी, वृन्त, अशाक, अदरूप, तुलसी, तिलक, शतपत्रा गन्धशोफालिका कुब्जक तगर, मृग जगली वेतवी, जूही तथा अतिमुक्त—ये पुष्प श्राद्ध के योग्य हैं ॥१६२-१६३॥ कमल, कुमुद श्वेतकमल, नीलकमल तथा बहुलार श्राद्ध में देना चाहिए। कुष्ठ जटामासी बालक, कुक्कुटी जातिपत्रक नलिक, उशीर (खस) मुस्त ग्रन्थिपर्णी—ये पितरों के लिये गन्धयोग्यां बतलाये जाते हैं ॥१६४-१६६॥ गुग्गुल, चन्दन, श्रीवास अगर ऋषिगुग्गुल—ये पितरों के धूपयोग्य माने गये हैं। राजमाप, चणक, मसूर, कोरदूषक, विप्रुष, मर्कट, कोदो—ये श्राद्ध में त्याज्य हैं ॥१६७-१६८॥ मैस, चमरी गाय हरिणी, मेंढ एक खुर वाले जानवर, स्त्री, जैट—इनका दही दूध और घी त्याज्य है ॥१६९॥ ताल, वरुण काकाल, बहुपत्र अर्जुनीक, जम्बीर, लालबिल्व तथा शाक वा भी पत्र त्याज्य है ॥१७०॥ मछली, सूअर, बछड़ा तथा विशेष करके गायें त्याज्य हैं। पूतिक, वस्तूरी, गारोचन, पद्मचन्दन, कालेयक तथा सीधन गध वाले जवान वा भी परित्याग करे ॥१७१॥ पालक, कुमारी, किरात, पिण्डमूल, गाजर, चित्रिका, चक्र वरुणा, चनपत्रिका जीव, शतपुष्पा, नालिका, गन्धशुक्ल, हृत्पुष्प, सरसो, प्याज तथा लभुन वा परित्याग करे ॥१७२-

१ग नियोजये०। २क पारधि। ३स पारत्री। ३स सुसता। ४क गन्धयोग्यानि। ५स श्राद्धयोग्यानि। ५स ०माप पत्र चैव मसू०। ६ग ०मापानलुश्चैव मसू०। ६क ०टीरचोपान्त्रोद०। ७क ०ष्टमत्राचोद०। ८स ०ष्टमत्रोद०। ८क करम्म। ९ग ०क बुवकावरोतिता०। १०ग जीवक श०। ११ग शतपत्रा च। १२क गन्धमूतकीम्। १३ गन्धमूतकम्।

हलभृत्यं सर्पपं च पलाण्डुं लघुनं त्यजेत् । मानकन्दं विषकन्दं वज्रकन्दं गदास्थिकम् ॥१७४॥
 'पुष्पात्वं सपिण्डालु' आढकर्मणि वर्जयेत् । अलाबुं तिक्तवर्णां च कृष्णान् कटुकत्रयम् ॥१७५॥
 वार्ताकं शिवजातं च लोमशानि घटानि च । 'कालीयं रक्तवाणां च बलाकां लकुचं तथा ॥१७६॥
 आढकर्मणि वर्ज्यानि विभीतकफलं तथा । आरनालं च शुक्लं च शीर्षं पर्युषितं तथा ॥१७७॥
 नोपग्रन्थं च दातव्यं 'कोविदारकशिप्रुकी । अत्यम्लं पिच्छलं सूक्ष्मं यातयामं च सत्तमाः ॥१७८॥
 न च देयं गतरसं मद्यगन्धं च यद्भवेत् । 'हिङ्गुप्रगन्धं फणिशं भूनिम्बं निम्बराजिकं ॥१७९॥
 कुस्तुम्बुरु कलिङ्गोत्थं वर्जयेदम्लघेतसम् । दाडिमं मागधीं चैव नागराद्रंकतित्तिडीः ॥१८०॥
 आघ्रातकं जीवकं च तुम्बुरुं च नियोजयेत् । पायसं शाल्मलीमुद्रान्मोदकादींश्च भविततः ॥१८१॥
 पानकं च रसालं च गोक्षीरं च निवेदयेत् । यानि चाम्यवहायाणि स्वादुस्निग्धानि भो द्विजा ॥१८२॥
 ईषदम्लकटूष्वेव देयानि आढकर्मणि । अत्यम्लं 'चातिलवणमतिरिक्तकटुं च ॥१८३॥
 आसुराणीह भोग्यानि तान्यतो दूरतस्म्यजेत् । मृदस्निग्धानि यानि स्युरीपकटुम्लकानि च ॥१८४॥
 स्वादूनि देवभोग्यानि तानि आढे नियोजयेत् । 'छायमासं वार्तिकं च तैत्तिरि दशकामियम् ॥१८५॥

१७३३॥ मानकन्द, विषकन्द, वज्रकन्द, गदास्थिक, पुष्पात्वं तथा पिण्डालु को गी आढकर्म म छोड दे । अलाबू (लोही), तिक्तवर्णा (करैला) कुम्हडा, निकटुक, (सोड, पीपर और रिच) बैंगन शिवजात, लोमश, घट, कालीय, रक्तवाण, बलाका, बडहर—य आढकर्म म वर्जनीय है । बहेडा आरनाल शुक्ल फटा हुआ बासी तथा तीक्ष्ण गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये । अत्यन्त खट्टा किसलने वाला सूक्ष्म बहुत देर का, रसहीन तथा मद्य समान गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये ॥१७४-१७८॥ हींग के समान तीक्ष्ण गन्ध वाला फल फणिश भूनिम्ब, निम्बराजिक, कलिङ्ग देश का कुस्तुम्बुरु तथा अमलतास को छोड दे ॥१७९॥ दाडिम मागधी नागर, अदरक, इमली, आवला, जीवक, तुम्बुरु—ये देने चाहिये । खीर, शाल्मली मूग, मोदक पानक, आम तथा गी का दूध भक्तिपूर्वक देना चाहिये ॥१८०-१८३॥ जो भोग्य सुस्वादु, स्निग्ध तथा विचित्र खट्टा एवम् बडका पदार्थ हो, वह आढ कर्म में देना चाहिये ॥१८२॥ अत्यन्त खट्टा, अधिक तमकीन और अधिक बडका भोग्य पदार्थ राक्षसी भोग्य बहलता है, उसे दूर ही त्याग दे ॥१८३॥ जो मधुर स्निग्ध तथा थोडा बडका एवम् खट्टा हो वह देव भोग्य बहलता है, उसे रखे ॥१८४॥ बरहे का मास, बटेर पक्षी का मास, तैतर का मास, खरहे का मास, और शिवा, लावक तथा सर्प का मास आढ में देना चाहिए ॥१८५॥ वाघ्रीणस, (मंडा) रक्तशिव, लवका से युक्त, लोह (?), सिंहपुण्ड

१स ०नस्कन्द । २स कृपस्वन्द । ३क वक्रवन्द । ४क पुरपाल । ५क परपाल । ६क तिक्तवर्ण । ७क सपक्षवर्ण । ८ ग कटुपत्रिकाम् । ९क बालिद्रग रक्तवाण च वीणापाति कुबालुकम् । था० । १० बालिन्द्र रक्तदाह च वीणाका वृत्तवाहम् । था० । ११क ०कविभूरी । १२क ०कवित्वको । १३क हिङ्गुगन्धी पाणिश च भू० । १४क ०तित्तिक् । १५क ०स च वार्ताकतै० ।

शिवालावकराजीवमास श्राद्धे नियोजयेत् । 'वाघ्रोणस रवतशिव लोह शल्कसर्मा वतम् ॥१८६॥
 'निहतुण्ड' च खडग च श्राद्धे योग्य तथोच्यते । 'यवप्युक्त हि मनुना रोहित प्रतिनियोजयत् ॥१८७॥
 योवतव्य 'हृव्यकव्येषु तथा न विप्रयोजयेत् । एवमुक्त मया' विप्रा वाराहणावलोकितम् ॥१८८॥
 मया निषिद्ध भुञ्जानो रौरव नरक व्रजेत् । 'एतानि च निषिद्धानि वाराहण तपोधना ॥१८९॥
 अमक्ष्याणि द्विजातीना न देयानि पितृष्वपि । रोहित शूकर कूर्म गोधाहस' च 'व्रजयत् ॥१९०॥
 चक्रवाक च मदगु च शल्कहीनाश्च मत्स्यकान् । कुरुर च निरास्थि च वासहात च (?) कुक्कुटान् ॥१९१॥
 कलविट्कमयूरांश्च भारद्वाजांश्च शाङ्गकान् । 'नकुलोलकमार्जारालोपान'या सुदुग्रहान् ॥१९२॥
 'टिटिढा'सार्धजम्बूका'व्याघ्रश्चक्षुस्तरक्षुकान् । एतान'याश्च 'सदृष्टा'यो भक्षयति दुर्मति ॥१९३॥
 स महापापकारी तु रौरव नरक व्रजत । पितृष्वतास्तु यो दद्यात्पापात्मा गहितामिपान् ॥१९४॥
 स स्वगस्थानपि पितृभरक पातयिष्यति । कुसुम्भशाक जम्बोर सिपूक कोविदारकम् ॥१९५॥
 पिण्याक विप्रुष' चैव मसूर' गृञ्जन शणम् । कोद्रव कोकिलाक्ष च चक्र कम्बुकपयस्कम् ॥१९६॥
 चकोरश्चनमास च बर्तुलालबुतालिनीम् । फल तालतरुणा च भुवत्या नरकमृच्छति ॥१९७॥

तथा खड्ग का मास श्राद्ध मे देना चाहिए ॥१८६॥ मनु के कथनानुसार रेहू मछल मा देना चाहिए । हृव्य-व्यो की तयारी मे इन पदार्थों का उपयोग करना चाहिए पर इनका दुस्प्रयोग न होने पाए । विप्रवृद्ध । वाराह द्वारा निर्मित मास को मैंने आप लोगों से बतला दिया ॥१८७॥ मैंने जिनका निषेध बतलाया है उनका व्यवहार करने वाला मनुष्य रौरव नरक मे जाता है । तपस्विन्या । इनका निषेध तो वाराह ने किया है ॥१८९॥ पितृ कर्म मे भी अमक्ष्य वस्तु ब्राह्मणों को नहीं देनी चाहिये । रोहू मछरी, शूकर वछडा गो तथा हस्त श्राद्ध मे निषिद्ध है ॥१९०॥ चक्रवाक मदगु (पनिडुब्बी) त्वचाहीन मत्स्य कुरुरपक्षा अस्थिविहीन वासहात ? मुर्गा गौरवा मयूर भारद्वाज शाङ्ग नेबला उल्लू बिलाड टिटिहरी सिया बाघ रीछ उबडबग्घा—इन दुष्ट जातों को जो दुर्गति मनुष्य खाता है वह महापाप का माग होकर रौरव नरक मे जाता है ॥१९१॥ जो पार्थ मनुष्य पितरों को यह निर्दिष्ट मास खिलाता है उसके पितर स्वर्गच्युत हो जाते हैं । कुसुम्भशाक जम्बोर सिपूक कोविदारक पिण्याक विप्रुष मसूर गाजर शण कोबो कोकिलाक्ष चुक्र कम्बक पयस्क चकार तथा बाज का मास गोल लौकी और ताल वृक्ष का फल जो खाता है वह नरक मे जाता है ॥१९७॥ पितरों को ये चार्जे देकर मनुष्य उनके साथ पाप से भरे नरक मे जाता है । इसलिये सुधीजन यत्न करके इन चीजों को न खाये । वाराह मययान ने पितरों के सम्मान के लिये स्वयं इन चीजों का निषेध कर दिया है । मुनिवद । मनुष्य अपना मास भक्षण करे यह उचित

१व बादिनत्रिगलानोहगंगा० । २ग सिंह तु० । ३क ०तुडिक्क० । ४स ०यष्टुक्त । ग यष्टुक्त । ५ग ०युकापिल न नियो० । ६स प्रिय । ग पुरा । ७ग ०त्रिना । म० । ८ग श्राद्धानि । ९स ०वामास । १०क व चन्द्रम् । ११ग जार नोपकायस्ववतान् । १२क मान्वा । १३क ०घ्नोमुच्छमर्कटान् । १४ व सद्रूपान्यो । १५क ख गृञ्जन । १६क ०र विदुष मत्तम् । १७ग वञ्चुक० ।

दत्त्वा पितृषु तैः सार्धं अजेत्पूयवहं नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽऽहरेत्तु विचक्षणः ॥१९८॥
निषिद्धानि वराहेण स्वयं पित्र्यमादरात् । वरमेवाऽऽजमांसस्य भक्षणं मुनयः कृतम् ॥१९९॥
न त्वेव हि निषिद्धानामादानं पुंभिरादरात् । अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा सकृदेतानि च द्विजाः ॥२००॥
भक्षितानि निषिद्धानि प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् । फलमूलदधिशीरतन्त्रगोमूत्रपावकैः ॥२०१॥
'भोज्यान्नभोज्यसंभुक्ते' प्रत्येकं दिनसप्तकम् । एवं निषिद्धाचरणे कृते सकृदपि द्विजैः ॥२०२॥
शुद्धिं नेयं शरीरं तु विष्णुभक्तैर्विशेषतः । निषिद्धं वर्जयेद्ब्रह्मं यथोक्तं च द्विजोत्तमाः ॥२०३॥
समाहृत्य ततः श्राद्धं कर्तव्यं निजशक्तितः । एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम् ॥
आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानवः ॥२०४॥

मुनय ऊचुः

पिता जीवति यस्याय मृतो द्वौ पितरो पितुः । कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद ॥२०५॥
व्यास उवाच
यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम् । एवं न होयते धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा ॥२०६॥

मुनय ऊचुः

मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन्पितामहः । स हि श्राद्धं कथं कुर्यादितत्त्वं वक्तुमर्हसि ॥२०७॥

हे पिन्तु निषिद्ध वस्तुओं का सेवन न करे ॥१९८-१९९॥ मनुष्य अज्ञान से या असावधानी से एक बार भी निषिद्ध वस्तुओं का भक्षण कर ले तो सात दिनों तक प्रत्येक दिन भोज्य अन्न के साथ फल, मूल, दही, दूध, तक्र, गामूत्र तथा पावको (कुलथी) से प्रायश्चित्त करे ॥२००-२०१॥ ब्राह्मणवर्ग यदि एक बार भी इस प्रकार का निषिद्ध आचरण कर लें तो उन्हें शरीर-शुद्धि करनी चाहिये। विष्णुभक्तों को विशेष करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। निषिद्ध द्रव्यों का त्याग कर अपनी शक्ति के अनुसार सामग्री जुटाकर श्राद्ध करना चाहिये। इस तरह विधानपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार श्राद्ध करने से मनुष्य ब्रह्मा से लेकर तृण तक संपूर्ण जगत् को तृप्त करता है ॥२०२-२०४॥

मुनियों ने कहा—जिसका पिता जीवित है और पिता के माँ-बाप मर चुके हैं, वह कैसे श्राद्ध करे, यह हमें विस्तार से बतलाइये ॥२०५॥

व्यास ने कहा—पिता जिसका श्राद्ध करे पुत्र भी उसी का श्राद्ध करे। ऐसा करने से लौकिक तथा वैदिक धर्म बँट हाँकि नहीं होती है ॥२०६॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् । जिसका पिता मर चुका है और पितामह जीवित है, वह कैसे श्राद्ध करे, यह बतलाइये ॥२०७॥

व्यास उवाच

पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम् । प्रपितामहस्य पिण्डं वै ह्ययं शास्त्रेषु निर्णयः ॥२०८॥
 मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत् । मपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमित्यते ॥२०९॥
 'आचारमाचरेद्यस्तु पितृमेधाश्रितं नरः । आयुषा धनपुत्रैश्च वर्धयेत्त्याशु न संशयः ॥२१०॥
 'पितृमेधाध्यायमिमं श्राद्धकालेषु यः पठेत् । तदन्नमस्य पितरोऽन्नमिति च त्रियुगं द्विजाः ॥२११॥

एवं मयोक्तः पितृमेधकल्पः, पापापहः पुण्यविवर्धनश्च ।

श्रोतव्य एष प्रयत्नैरंशश्च, श्राद्धेषु चैवाप्यनुकीर्तयेत्

॥२१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ध्यासपिसंवादे श्राद्धकल्पनिरूपणं नाम

विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

अथैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं सम्यग्गृहस्थेन देवता पितरस्तथा । संपूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिग्रान्धयाः ॥१॥

व्यास ने कहा—वह पिता और प्रपितामह को पिण्ड दे तथा पितामह को भोजन कराये—यही शास्त्रों का निर्णय है। वह भरे हुए को पिण्ड दे और जीवित को भोजन दे। उसे सपिण्डीकरण तथा पार्वण नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य अपने पूर्वजों के अनुसार आचरण करता है, वह शीघ्र ही आयु, धन तथा पुत्रों से सम्पन्न होता है, इसमें कोई संशय नहीं। द्विजगण। जो श्राद्धकाल में पितरों के इस अध्याय का पाठ करता है, उसका अन्न पितर तीन युगों तक खाते हैं। पापों को दूर करने वाले तथा पुण्य बढ़ाने वाले इस पितृमेधकल्प का वर्णन मैंने कर दिया। मनुष्य को यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। श्राद्धों में भी इसका पाठ होना चाहिये ॥२०८-२१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में श्राद्धकल्प-निरूपण

नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२०॥

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार गृहस्थ लोग हव्य-कव्यों से देवता और पितरों की पूजा करें और अन्न से अतिथि

१ ग यं श्राद्धेषु निर्णयं कृतं । मृ० । २ स ० शास्त्रेषु पुत्रं स्यान्वितृग्नीनाति श्राद्धतः । आ० । ३ क ० धामृत
 पुण्यं प्रातः ॥१॥

भूतानि भूत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः । भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये पान्यका गृहे ॥२॥
सदाचाररता विप्राः साधुना गृहमेधिना । पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः त्रियाः ॥३॥

मुनय ऊचुः

कथितं भवता विप्र नित्यनैमित्तिकं च यत् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं कर्म पौरुषम् ॥४॥
सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव । यं कुर्वन्सुखमानोति परत्रेह च मानव ॥५॥

व्यास उवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम्^१ । न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा ॥६॥
यज्ञदानतपासीह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते^२ ॥७॥
दुराचारो हि पुरुषो^३ नेहाऽऽयुर्विन्दते महत् । कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षणम् ॥८॥
‘तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य’^४ भो द्विजाः । आत्मनंकमना भूत्वा^५ तथैव परिपालयेत् ॥९॥
त्रिवर्गसाधने यत्नं कर्तव्यो गृहमेधिना । नत्ससिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥१०॥
पादेनाप्यस्य^६ पारम्यं^७ कुर्याच्छ्रेयं स्वमात्मवान् । अर्थेन चाऽऽत्मभरणं नित्यनैमित्तिकानि च ॥११॥

तथा माई-बन्धुओं को सतुष्ट करें। सद्गृहस्थ को चाहिये कि वह घर पर आये हुए समस्त प्राणी, सेवक, पशु, पक्षी, चीटी, मिल्बुत, पक्षि तथा दूसरे भी याचको का सत्कार करे। जो नित्य तथा नैमित्तिक त्रिया का उल्लंघन करता है, वह मानो पाप खाता है ॥१-३॥

मुनियों ने कहा—विप्र! आपने नित्य-नैमित्तिक कर्म बतला दिये। पुरुष के तीन प्रकार के कर्म होते हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। मुने! अब हम सदाचार के बारे में सुनना चाहते हैं, जिसके करने से मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है ॥४-५॥

व्यास ने कहा—गृहस्थ को सदा आचार की रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्य का कल्याण न यहाँ होता है, न परलोक में ॥६॥ जो सदाचार का उल्लंघन करता है, उसके यज्ञ, दान और तप ऐश्वर्यवर्षक नहीं होते हैं ॥७॥ दुराचारी पुरुष की आयु बड़ी नहीं होती है। सदाचारयुक्त धर्म करना चाहिये। द्विजगण! सदाचार का स्वरूप मैं बतलाऊँगा, जिसका पालन मनुष्य एकाचित होकर करे। गृहस्थ को धर्म, काम और अर्थ के साधन में यत्नशील रहना चाहिये। उनकी सिद्धि होने पर यहाँ और परलोक में भी सिद्धि मिलती है ॥८-१०॥ विचारवान् व्यक्ति उनके चतुर्धा साधन करने से भी पारलौकिक श्रेय प्राप्त करता है और अर्थ साधन करने से अपना भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कर्म कर लेता है ॥११॥ फिर भी चतुर्धा साधन

१क ख परिपालनम्। २ख ०ते। सदाचार स पु०। ३ख ०यो ब्रह्मेद विन्द०। ४क य ०चारो हृत्यल०। ५क तथा च व प्रव०। ख तथा। ६ख स्वपन्न। ७क ०चार तु भो। ८ख ०त्वा व ध्वं। ९ख पाविष्य।

पादेनैव तथाऽध्यस्य मूलभूतं विवर्धयेत् । एवमाचरतो विप्रा अर्थः साफल्यमुच्छति ॥१२॥
 तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थस्तद्वद्वान्यः 'कार्योऽर्थेव फलप्रदः ॥१३॥
 प्रत्यवायभयात्कामस्तथाऽन्यश्चाविरोधवान् । द्विधा कामोऽपि रचितस्त्रिवर्गापाविरोधकृत् ॥१४॥
 'परस्परानुबन्धांश्च' सर्वानेतान्विचिन्तयेत् । विपरीतानुबन्धांश्च बुध्यध्वं तान्द्विजोत्तमाः ॥१५॥
 धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो' नाऽऽत्मार्थपीडकः । उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६॥
 ब्राह्मे मूर्तं बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् । समुत्थाय तयाऽऽचम्य 'प्रस्तातो नियतः शुचिः ॥१७॥
 पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् । उपासीत यथाग्यायं नैतां जह्यादनापदि ॥१८॥
 'असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसह्यादमसत्सेवां च वै द्विजाः ॥१९॥
 सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् । नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२०॥
 केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमज्जनम् । पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥२१॥
 'द्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव 'वर्त्मनि । न विष्मन्नमनुष्येयं न च कृष्टे न गोद्वजे ॥२२॥

करते हुए ही उनकी जड़ को दूढ़ बनाना चाहिये । विप्रबृन्द । इस प्रकार आचरण करने से घन सफल होता है ॥१२॥
 उसी प्रकार पाप मिटाने के लिये विद्वान् को धर्म करना चाहिये । परलोक के लिये तथा इहलोक के लिये धर्म करना चाहिए, जो यही फलदायक होता है ॥१३॥ धर्म, काम और अर्थ का अविरोधी काम भी दो प्रकार का माना गया है—एक पाप से डरने वाला और दूसरा सबका अविरोधी । द्विजश्रेष्ठो । ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं, पर तीनों एक दूसरे के विपरीत हैं । धर्म का सहायक अर्थ भी धर्म ही है और आत्मा तथा घन का नाश करने वाला धर्म भी धर्म नहीं है । धर्म और अर्थ के भेद से काम दो प्रकार का होता है और काम-भेद से धर्म-अर्थ भी दो-दो प्रकार के होते हैं ॥१४-१६॥ ब्राह्म मूर्त में उठकर धर्म-अर्थ का चिन्तन करना चाहिये । उसी प्रकार उठने के बाद शौचादि से निवृत्त हो स्नान करके पवित्रतापूर्वक आचमन कर प्रातः कालीन सन्ध्या तारो के रहते हुए ही कर लेनी चाहिये, और सायंकाल की संध्या सूर्य के रहते करनी चाहिये । ठीक समय पर इसकी उपासना अवश्य करनी चाहिये । आपत्तिकाल में भी इसका परित्याग न करे ॥१७-१८॥ असत्य भाषण तथा वाणी की बर्तोरता को त्यागना चाहिये । असत् शास्त्र, असत् विवाद तथा असत् सेवा का त्याग कर देना चाहिए । सायंकाल तथा प्रातः काल हवन करे । उदय एवम् अस्त होने के समय सूर्य को न देखे ॥१९-२०॥ बालों का परिष्कार, दन्तधावन तथा अजन करे । पूर्वाह्ण में ही देवताओं का तर्पण करे ॥२१॥ गाँव, घर, तीर्थ, खेत, मार्ग, ओर्ता हुई भूमि तथा गोष्ठ में मल-मूत्र का त्याग न करे ॥२२॥ नन्न स्त्री तथा अपनी विष्ठा को न देखे । रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श एवम् सभाषण न करे । जल में मल-मूत्र-त्याग तथा मैथुन न करे । मल, मूत्र, केश, भस्म, कपाल, मूसी, कोंयला, रस्सी

१क ग काम्योऽर्थः । २क ल ०रस्य धातुः । ३क ०बन्धार्थं सः । ४ ०बन्धाच्च सः । ४क. ०मो वाऽर्थार्थपादक । ५ग प्राङ्मुखे । ६क ख ०मत्यर्थं वाः । ७क पूजनम् । ८क. ०मावासे च तीः । ९ख. ०नि । विष्ठा मूत्र न कर्तव्य नः ।

नानां परस्त्रियं नेशेन पश्येवात्मनः शक्नुत् । 'उदकयादर्शनस्पर्शमेवं संभाषणं तथा ॥२३॥
नाप्नु मूत्रं पुरीषं वा मैयुनं वा समाचरेत् । नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मसपालिकाः ॥२४॥
तुषाङ्गारविशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च । नाधितिष्ठेतथा प्राज्ञः पथि^१ वस्त्राणि^२ वा भुवि ॥२५॥
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां च तथाऽर्चनम् । कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि स्वावान्तो वाग्यतः शुचिः । भुञ्जीत चाऽन्नं तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः
॥२७॥

'उपघातमृते दोषान्नान्नस्योदीरयेद्बुधः'^३ । प्रत्यक्षलवणं^४ वऽयमन्नमुच्छिष्टमेव च ॥२८॥
न गच्छन्न च तिष्ठन्वं विष्णुमूर्तोत्सर्गमात्मवान् । कुर्वीत^५ 'चैवमुच्छिष्टं न किञ्चिदपि भक्षयेत् ॥२९॥
उच्छिष्टो^६ 'नालपेत्किञ्चित्स्त्रवाध्यायं न विवर्जयेत् । न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः ॥३०॥
भिक्षासनं च शय्या च भाजनं च विवर्जयेत् । गुरुणामासनं^७ 'देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥३१॥
अनुकूलं तथाऽऽलापमभिकुर्वीत बुद्धिमान् । तत्रानुगमनं^८ कुर्यात्प्रतिकूलं न संचरेत् ॥३२॥
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् । नाऽऽवाहयेद्द्विजानग्नौ होमं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥३३॥
न स्नायीत नरो ननो न शयीत कदाचन । न पाणिन्यामुभय्यां तु कण्डूयेत शिरस्तथा ॥३४॥
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं बुधः^९ । शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदुपस्पृशेत् ॥३५॥

तथा (केवल) वस्त्र आदि पर न बैठे । विद्वान् मनुष्य मार्ग मे भूमि पर वस्त्र बिछा कर न बैठे ॥२३-२५॥ पितर
देवता, मनुष्य तथा पचमूर्तो की पूजा करने के उपरान्त गृहस्थ भोजन करे ॥२६॥ पूर्व या उत्तर मुंह धीठवर आचमन
करके पवित्र हो मौन होकर भोजन करे । मनुष्य अन्न खाते समय उसी मे मन लगाये और जव के नीचे करने
अर्थात् पचासन लगा कर बैठे ॥२७॥ विद्वान् व्यक्ति उपघात या क्षति के बिना भोजन की निन्दा न करे ।
जिस भोजन मे अशुभ नमक हो, उसको त्याग दे ॥२८॥ चलते हुए तथा खड़ा होकर मल-मूत्र त्याग नहीं करना
चाहिये । जूठ कुछ भी नहीं खाना चाहिए । जूठे मुंह से कुछ भी न बोले, स्वाध्याय न करे, सूर्य, चन्द्रमा तथा
नक्षत्रो को भी स्वेच्छा से न देखे । फटा आसन, पटी शय्या तथा फूटा बरतन नहीं रखना चाहिये । गुरु को उठवर
सत्कारपूर्वक आसन देना चाहिये ॥२९-३१॥ बुद्धिमान् मनुष्य गुरु के अनुकूल समापण करे उनका अनुगमन
करे और उनसे प्रतिकूल कुछ भी न करे ॥३२॥ बुद्धिमान् व्यक्ति एव वस्त्र धारण कर भोजन, देवपूजा ब्राह्मणो
का आह्वान तथा अग्नि मे हवन न करे ॥३३॥ नन्न होकर मनुष्य बन्नी भी स्नान तथा शयन न करे । दाना
हाथों से शिर को न खुजलाये ॥३४॥ विद्वान् बार-बार तथा निष्कारण तिर से स्नान न करे । मिर से स्नान
करके अग्रा मे तेल न लगाये ॥३५॥ अतध्यायो मे वेदाध्ययन न करे । बन्नी भी ब्राह्मण, अग्नि, गाय तथा सूर्य का

१क. ०स्पर्शं सहस० । २क. परयन्त्राणि । ३क. पत्राणि । ४क. ०पि कुर्याद्वाप्यं व वा० । ५क. उच्चार-
येत्सदा दो० । ६क. ०भस्य भोजने बुधः । ७क. ०मशुद्ध सत्यकीर्तितम् । न । ८क. चैवाऽऽचमन न । ९क. स.
०लभेत्कि० । १०क. ०मल्युच्च चापि० ।

अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत्^१ । ब्राह्मणानलग्नसूर्यान्नावमन्येत्कदाचन ॥३६॥
 उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुख ॥ आवाधासु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयो ॥३७॥
 दुष्कृतं न गुरोर्ध्यात्तद्बुद्धं च न प्रसादयेत् । परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥३८॥
 पन्था देवो ब्राह्मणानां राजो दुःखानुरस्य^२ च । विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगातंस्य महोयत ॥३९॥
 मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च । देवालयं चैतत्तथैव च चतुष्पथम् ॥४०॥
 विद्याधिकं गुरुं चैव दुष्टं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । उपानद्वस्त्रमाल्यादि^३ धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥४१॥
 चतुर्दश्या तथाऽष्टम्या पञ्चदश्या च पर्वसु । तैलाम्यङ्गं तथा भोगं योऽपि तद्वच्च विवर्जयेत् ॥४२॥
 नोत्क्षिप्तवाहुजटघश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन^४ । न चापि व्रिक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाऽऽक्रमेत् ॥४३॥
 पुश्चल्या कृतकार्यस्य चात्रस्य पतितस्य च । मर्माभिघातमाक्रोशं पशुन्य च विवर्जयेत् ॥४४॥
 दम्भाभिमानं तदंशं च न कुर्वीत विचक्षणः^५ । मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ॥४५॥
 'मूनाङ्गाश्चाधनाश्चैवं नोपहासेन दूषयेत् । परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं शिष्यपुत्रयो ॥४६॥
 तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽकुप्य चाऽऽसनम् । सयाव कृशं भासं नाऽऽस्त्यार्थमुपसाधयेत् ॥४७॥
 साथं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि वाग्यतो^६ तत्पाठयन्^७ ॥४८॥

अपमान न करे ॥३६॥ दिन में उत्तर मुहू तथा रात में दक्षिण मुहू बैठकर मल मूत्र त्याग करे । सवट बाल में किसी भी मुहू होकर त्याग कर सकता है ॥३७॥ गुरु को कटुवचन न बहे । कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे । गुरु की निन्दा दूसरे के मुहू से भी न सुने ॥३८॥ ब्राह्मणों को राजाओं को दुःखानुराग को अधिक विद्या वालों को गर्भिणियों को महान् राक्षसों को गूगों को बहुरों को अघों को तथा पागलों को रास्ता दे देना चाहिये । पण्डित लोग देवालय गाँव का सीमा पर के वृक्ष चौराहे अधिक विद्या वाले तथा गुरु का प्रदक्षिणा करे । दूसरे के धारण किये हुए जूते वस्त्र, माला आदि न पहने ॥३९४१॥ चतुर्दशी अष्टमी, अमावास्या तथा त्योहारों में तेल तथा स्त्री-सम्भाग का परित्याग करे ॥४२॥ बाँहों तथा जाँघों को ऊपर उठा कर अवस्थित नहीं होना चाहिये । पैरों को झटकारना नहीं चाहिये । एक पैर को दूसरे पैर से मलना नहीं चाहिए ॥४३॥ पुश्चली स्त्री अपना कार्य किये हुए बालक तथा पतित व्यक्ति के प्रति ममबेबी आकाश तथा पिशुनता का व्यवहार नहीं करना चाहिये । विद्वान् मनुष्य दम्भ अभिमान तथा तीक्ष्णता को छोड़ दे ॥४४३॥ मूख पागल दुष्पत्न्या कुरूप तथा कम-अधिक जग वाले व्यक्ति का उपहास न करे । शिष्य तथा पुत्र का शिक्षा के निमित्त दूसरे का डड को न उठाये ॥४५४६॥ पैर से आसन स्वीच कर न बैठे । (केवल) अपने लिए हलुआ तिल का लड्डू तथा भास नहीं बनाना चाहिए । सायकाल और प्रातःकाल (अर्थात् दिन और रात्रि में) अतिथि-सत्कार करके भोजन करना चाहिए । पूब या उत्तर मुहू बैठकर मौन

१ श्रु ०त । मिश्राटन सदा कुर्याद्ब्राह्मणानां च स सु । २क दुःखानुरस्य । ३क ०माल्य तु पु० ।

४क ०त । नापि स्रक्षिपेत्पादौ । ५क ०स्वाध्याय-मात्रं नो० । ६क ०सच्छदन्त्य मित्रपुत्रयो । ७क ०म् ।

ध्यान स० ।

यादृश पुण्यस्येह 'परदारभिमशनम् । देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुणविवादनम् ॥६२॥
 कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् । अफेनशब्दगन्धाभिरिन्द्रिच्छाभिरावरात ॥६३॥
 'आचामच्चैव तद्वच्च प्राडमुखोदङ्मुखोऽपि वा । अतजलादावसयाद्वल्मीकाभूपिकास्थलात ॥६४॥
 कृतशौचावशिष्टाश्च वज्रयेत्पञ्च वै मूढ । प्रक्षाय हस्तौ पादौ च समम्युक्ष्य समाहित ॥६५॥
 अतर्जनुस्तथाऽऽचामेत्त्रिञ्चतुर्वाऽपि' ये नर । परिमृज्य द्विरावृत्य ह्यग्निं मर्धानमव च ॥६६॥
 सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचि । क्षुतस्वलीढे 'वाते च तथा निष्ठीवनादिषु ॥६७॥
 कुर्यादाचमनं स्पर्शं वाऽस्पृष्टम्याकदशनम् । कुर्वीताऽऽलम्भन चापि दक्षिणश्रवणस्य च ॥६८॥
 यथाविभवतो ह्यतत्पूर्वाभावे तत परम् । न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥६९॥
 न कुर्याददन्तसर्पणं नाऽऽत्मनो देहताडनम् । स्वापध्वनि तथा भुञ्ज स्वाध्याय च विवज्यत ॥७०॥
 सध्याया मथ्युन चापि तथा प्रस्थानमव च । तथाऽपराह्णं कुर्वीत श्रद्धया पितृतपणम् ॥७१॥
 शिरस्नानं च कुर्वीत देवपियमयापि च । प्राडमुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकम् च कारयत् ॥७२॥
 व्यङ्गिनीं वज्रय क'या 'कुलजा' वाऽप्यरोगिणीम् । उद्वहेत्पितृमानोश्च सप्तमीं 'पञ्चमीं तथा ॥७३॥
 रक्षद्वारास्त्यजदोष्यां तथाऽह्नि स्वप्नमथ्युने । परोपतापकं कम जतुपीडां च सबदा ॥७४॥

है । लोक में परस्त्री प्रसंग से बढ़कर आयुधय करने वाली कोई चीज नहीं है ॥६१॥ देव अग्नि तथा पितरो का कर्म और गुरु की वन्दना करके अन्न खाना चाहिए । फल शब्द तथा गंधों से रहित एवम् स्वच्छ जल से पूव या उत्तर मुह होकर वे आचमन करे । जल के भीतर की तथा गृह शमीक एव चूहों के स्थान की ओर शौच की अवगिष्ट मतिवा—इन पाँचों मत्तिकाओं का त्याग करे । मनुष्य हाथ-भर धोकर जल शरीर पर छिड़के ॥६२ ६५॥ फिर सावधान होकर पधासन लगाकर तीन या चार बार आचमन करे । माजन करके आस कान नाक मुह तथा मस्तक का स्पर्श करे ॥६६॥ अच्छी तरह जल से आचमन कर पवित्र होकर क्रिया करे । छीकने पर धुवने पर तथा वायु त्याग आदि करने पर आचमन करे या सूर्य का दशन करे और दाहिने कान को जमेठ । इनमें शक्ति के अनसार सब करे अथवा पूर्व-पूव के अभाव में उत्तर-उत्तर क्रिया करे । अर्थात् पहला यदि विद्यमान न हो तब पिछला विधान करे । ६७ ६९। दाँतो को न बटकटाये शरीर को न ठीके सोकर रास्ते में चलते हुए तथा खाते हुए नहीं पडना चाहिये ॥७०॥ सध्याकाल में मथ्युन तथा प्रस्थान नहीं करना चाहिये । अपराह्ण में श्रद्धा से पितरो का तर्पण करना चाहिये ॥७१॥ पूव या उत्तर मुह होकर शिर से स्नान देव पितरो का कम तथा दाढी मूछ कटाना चाहिये ॥७२॥ कम-अधिक अन्न वाली कन्या कुलीन तथा नीरोग होने पर भी त्याग्य है । जो बन्धा अपने पिता-माता की सातवीं या पाचवीं सन्तान हो उससे विवाह न करे ? स्त्री की रक्षा करे । ईर्ष्या का त्याग करे । दिन में शयन तथा भयन करना छोड़ दे । दूसरे को सताप देने वाला तथा जीवों को पीडा देने वाला कर्म न करे ॥७३॥

१क ०दारोपसेवन० । २ख ०वमदमिश्च प्रा । ३क ०तुर्वा पिवेत्तर । ग ०तुर्वापि वेदप । प० ।
 ४क वान्ते । ५ग ०म् । स्वप्नाध्ययनमोज्यानि स्वाध्या० । ६क ०लटा चातिरो० । ७ग ०जा चातिरो० ।
 ८क ०पामी प० । ९ ०ञ्चमी पु या । २० ।

उदक्या मध्वर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम् । स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमौ चापि वर्जयेत् ॥७५॥
ततः पट्यां वज्रेद्रात्र्यां ज्येष्ठयुग्मासु रात्रिषु । युग्मानु पुनः जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥७६॥

विधामिणो वै 'पर्वदी मंघ्याकालेषु 'पण्डकाः' । क्षुरकर्मणि रिचतां वै वर्जयेत् विचक्षणः ॥७७॥
युवनामविनीतानां न श्रोतव्यं कदाचन । न चोत्कृष्टासनं देयमनुत्कृष्टस्य चाऽऽदरात् ॥७८॥
क्षुरकर्मणि चा (वा) न्ते च स्त्रीसंभोगे च भो द्विजाः । स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः बटभूमिमुपेत्य च ॥७९॥
देववेदद्विजातीनां माधुसूत्यमहामनाम् । गुरोः पतिव्रतानां च 'ब्रह्मयज्ञतपस्विनाम् ॥८०॥
परिवादं न कुर्यात् परिहासं च भो द्विजाः । धयलाम्बरसंबोतः सितपुष्पविभूषितः ॥८१॥
सदा मागल्पवेषः स्यात्त चाऽमाङ्गल्यवान्भवेत् । नोद्धतोन्मत्तमूर्धश्च' नाविनीतेऽच पण्डितः ॥८२॥
'गच्छेमन्मोमशोणेन न यथोजातिदूषितः । न चातिव्ययशीलंश्च पुरुषेणैव वंरिभिः ॥८३॥
'वार्याक्षमनिन्दितं न चैव' विटसङ्गिभिः' । निस्वर्गं वादेकपरं नरेन्द्रचाम्येस्तथाऽधमैः ॥८४॥
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्चशूरः सह । उत्तिष्ठेद्विभयाच्चैतानचर्षेद्गृहमागतान् ॥८५॥

७५॥ चार रात तक सब वर्णों को रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए । कन्या का जन्म अमिश्रित न हो तो पाँचवीं रात में स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिये । छठी रात में स्त्री-प्रसंग करे । युग्म रातों में स्त्री-प्रसंग करने से पुत्र होता है और अयुग्म में कन्या ॥७५-७६॥ चतुर्दशी आदि पूर्वकाल में स्त्री-प्रसंग करने से विषमों पुत्र होता है और अष्टम्याकाल में करने से नपुंसक । चतुर्थी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथि में शौर्यम नहीं करना चाहिये ॥७७॥ अर्जुन तै व्यक्ति की बात बर्नी न सुने । नीच मनुष्य को आदर से उच्चासन न दे । शौर्यम तथा स्त्री-संभोग के बाद तेल लगाकर स्नान करना चाहिये । अपवित्र जगह पर जान से भी सावधान स्नान करना चाहिये ॥७८-७९॥ द्विजवृन्द ! देवता वेद, ब्राह्मण, साधु, सत्यमहात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञ तथा सारस्वत्या की निन्दा तथा परिश्रम नहीं करना चाहिए । स्वच्छ वस्त्र पहन । शुक्ल पुष्पा से विभूषित हो ॥८०-८१॥ सदा भगलमय वेश धारण करे । अमगलकारी वेश कदापि धारण न करे । उजड़, पागल, मूर्ख, अविनयी, शैलहीन, अवस्था तथा जानि से दूषित, अपव्ययी तथा शत्रुता करने वाल पुरुषों के साथ मित्रता बर्नी नहीं करनी चाहिये । कार्य करने में अपटु निन्दित, बेस्वामी, दरिद्र निन्दक तथा दूसरे की अवम व्यक्तिता के साथ मित्रता न करे ॥८२-८४॥ घर पर आये हुए मित्र, दीक्षित व्यक्ति, राजा, स्नातक तथा स्वशूर को देखकर उठ जाय और यथाशक्ति उनकी पूजा करे । द्विजवृन्द ! सपत्नि के अनुसार, प्रतिवर्ष नाम दूए इन लोग की अच्छी तरह पूजा करे ।

१स ज्येष्ठायु० । २क स पूर्वदी । ३क कष्टका । ४ग सण्डका । ५स ०का । अपवादी । ६स ०का । स्थान चैवानि० । ७स ०तप्य ० । ८क ०ह्यचारित० । ७व ०द्धतं च नीर्वच ० । ८क ०मूर्धश्च ० । ८व. ०न्मथा न शैलपूर्णं च वा जा० । ९ग ०व सर्वस० । १०व स ०मि । ११स ०समुद्भिर्न च देवपरं सह । सु० ।

यथाविभवतो विप्रा प्रतिशवत्सरोपितान् । सम्पगृहेऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥८६॥
 सपूजयेत्तथा यज्ञी प्रदद्याच्चाऽहुतो क्रमात् । प्रथमा ग्रहणे दद्यात्प्रजाता पतये तत ॥८७॥
 तृतीया चैव गृह्येभ्यः कश्यपाय तथाऽपराम् । ततोऽनुमतये दद्याद्दद्याद्बहु (द्वगृह) बलि तत ॥८८॥
 पूर्वं दद्याता मया या तु नित्यक्रमविधौ क्रिया । देवदेव तत 'कुर्वाद्द्विदत्त शृणुत द्विजा ॥८९॥
 यथास्थानविभाग तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् । 'पजन्यापोधरित्रीणा दद्यात्तु 'मणिके त्रयम् ॥९०॥
 'पायवे च प्रतिदिश दिग्भ्य प्राच्यादिषु श्रमात् । ग्रहणे चातरिक्षाय सूर्याय च यथाश्रमात् ॥९१॥
 विश्वेभ्यश्चैव दग्भ्यो विश्वभूतेभ्य एव च । उपसे भतपतये दद्याद्वोत्तरत शुचि ॥९२॥
 स्पृधा च नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे । कृत्वाऽपसव्य वायव्या व्यश्मैतत्तेति रावदन् ॥९३॥
 अन्नावशपमिश्र वै तोय दद्याद्यथाविधि । देवाना च तत कुर्याद्ब्राह्मणाना नमस्त्रियाम् ॥९४॥
 'अङ्गुष्ठोत्तरतो रक्षा पाणेषां दक्षिणस्य च । एतदन्नाह्नमिति १ पात तीर्थमाचमनाय वै ॥९५॥
 तज्यङ्गुष्ठयोरतः पितृय तीथमुदाहृतम् । पितृणा तेन तोयानि दद्याद्गान्दीमुखादृते ॥९६॥
 अङ्गुल्यप्र तथा देव तेन दिव्यत्रियाविधि । तीर्थे कनिष्ठिकामले काय तत्र 'प्रजापते ॥९७॥
 एवमभि सदा 'तीर्थे विधान पितृभि सह । सदा, कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थे कदाचन ॥९८॥

पूजा करके अग्नि म त्रयश आहुतियाँ दे ॥८५ ८६॥ पहिली आहुति ब्रह्मा का दूसरा प्रजापति वः त सर गृह वालों को और चौथी वश्यप को दना चाहिए। तब बहुत-सी बलियाँ चढ़ाये ॥८७-८८॥ पहला नित्यक्रम के विधान म जो क्रिया मीने बतलायी थी उसक अनुसार विश्वदेव का कम करना चाहिए। द्विजयण । अब मुझसे सुनिये ॥८९॥ देवताआ को उद्ध्य कर' पयन-पयक स्थान की रचना करे। मेघ जल तथा पृथ्वी को बलि दे। प्रत्येक दिशा म वायु को बलि दे। पूव आदि त्रिशाओ मी क्रमन बलि दे। ब्रह्मा आकाश तथा सूर्य को त्रयश बलि चढ़ाय ॥९० ९१॥ विश्वदेव तथा विश्वभूत का भी बलि दे। भूतपति उपा को उत्तर दिशा म पवित्रता पूवक बलि दे ॥९२॥ 'स्पृधा च नम यह पढ़कर दक्षिण दिशा मे पितरो का बलि दे। अपसव्य ह कर 'वश्मै तत यह पढ़ते हुए वायव्य कोण मे अवर्णिष्ट अन्नमिश्रित जल पितर को समर्पित करे तब देवताआ और ब्राह्मणों को नमस्कार करे ॥९३ ९४॥ बाहिने हाथ मे अगुष्ठ से उत्तर की रेखा ब्राह्मतीय कहलाती है। इससे आचमन करना चाहिये। तजनी तथा अगुष्ठ व व च पितृय व माना गया है। उससे पितरों को जल दे केवल नान्दी मुख श्राद्ध मे नही दे ॥९५ ९६॥ अगुलियों के अग्रभाग मे दैक्षत व गा ग जाता है। उससे देवत्व म करे। कनिष्ठिका के मूल मे प्रजापति का कायार्थ माना जाता है ॥९७॥ पितृक्रम मे दहा तीर्थों का विधान है। इन्ही तीर्थों से सदा काय करे। अन्यतीर्थों से कमी म न करे ॥९८॥ ब्राह्मण व से आचमन प्रशस्त है। पितृयताय से पितृक्रम

१ ग गृह्यम् । २ ग ग ० योदबलय' गृ० । ३ ग ० न्यायोध० । ग ० न्याय घ० । ४ क कुर्वीतु ।
 ५ क दितके । ६ ग दीयते । ७ ग तपसे । ८ ग यमे त से विमोजनात् । अ० । ग यश्मैतत्तज्यमोजयेत् । अ०
 ९ ग ० ष्टोत्तर० । १० क ख प्रजापते । ११ क ० तीर्थे कुर्यात्क्रम यथोचितम् । ना० ।

ब्राह्मणेऽऽचमनं शस्तं पञ्चं पित्र्येण सर्वदा । देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्य जिते (त्यजले) न च ॥९९॥
 नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् । प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित्प्रजापते ॥१००॥
 युगपज्जलमग्निं च विभूयान्न विचक्षणः । गुरुदेवपितृन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत् ॥१०१॥
 नाऽऽचक्षीत धयन्तीं गा जलं नाञ्जलिना पिबेत् । शौचकालेषु सर्वेषु गुरुध्वरूपेषु वा पुनः ॥
 न विलम्बेत् मेधावी न मुखेनानलं धमेत् ॥१०२॥
 तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् । ऋणप्रदाता वंशश्च श्रोत्रियः सज्जलानदी ॥१०३॥
 जितभृत्यो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः । तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम् ॥१०४॥
 पीरा सुसंहता यत्र सततं न्यायवर्तिनः । शान्तामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ॥१०५॥
 यस्मिन्कुपीबला राष्ट्रे प्रायशो नातिमानिनः । यत्रोपधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः ॥१०६॥
 तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा । जिगीषुः पूर्ववैरदश्च जनश्च सततोत्सवः ॥१०७॥
 वसेन्नित्यं सुशौलेषु सहाचारिषु पण्डितः । यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यप्रदा महो ॥१०८॥
 इत्येतत्कथितं विप्रा मया वो हितकाम्यया । अतः परं प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोज्यविधिक्रियाम् ॥१०९॥
 भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहावतं चिरसभृतम्* । अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसवित्रिया ॥११०॥

सदा करना चाहिये । देवतीर्थ से देवताओं का और कायतीर्थ से प्रजापति का कर्म करना चाहिये ॥९९॥
 विद्वान् मनुष्य नान्दीमुख आदि में पिण्डदान तथा जल क्रिया करे । प्राजापत्य तीर्थ से प्रजापति का कर्म करे । पण्डितजन
 एक समय जल तथा अग्नि का धारण न करे । गुरुदेव पितर तथा ब्राह्मणों के ऊपर पैर न उठाये । बच्चे का पिलाती
 हुई या स्वयं जल पीती हुई गाय को न बहे (अर्थात् दूसरे का बताकर गाय के जल पीने में बाधा न डाले) । अजलि
 से जल न पिये । छोटे बड़े सभी प्रकार के शौच के कार्यों में विलम्ब न लगाये । मेधावी व्यक्ति मुंह से आग को न फूँके
 ॥१००-१०२॥ विप्रवृन्द । वहाँ नहीं वास करना चाहिये, जहाँ ऋणदाता वैश, श्रोत्रिय, जलवाली नदी—ये चार
 चीजें न हों ॥१०३॥ सेवकों को बश में रखने वाला बलवान तथा धर्मपरायण राजा जहाँ (के राज्य में) रहता
 है, वही विद्वान् व्यक्ति नित्य वास करे । निश्च राजा के राज्य में सुख कहाँ ? जहाँ पुरवासी आपस में मिल-जुल कर
 रहते हों तथा सदा न्यायानुगामी, शान्त एवम् ईर्ष्याशून्य हों वहाँ का निवास सुखदायी होता है ॥१०४-१०५॥ जिस
 राष्ट्र में विज्ञान अभिमानी न हों और ओषधियाँ पर्याप्त मिलती हों वहाँ विद्वान् व्यक्ति वास करे ॥१०६॥
 विप्रवृन्द । वहाँ वास नहीं करना चाहिये जहाँ लोग विजय के इच्छु हैं, वैर करने वाले एवम् सदा उत्सवकारी हों ।
 पण्डित व्यक्ति सदा सुधील सहवासियों के साथ रहे । जहाँ राजा घृष्ट न हो और पृथ्वी सस्यसम्पन्ना हो वहाँ वास
 करना चाहिये । विप्रगण ! आप लोगों के हित के निमित्त मैंने इतना कहा । अब भक्ष्य माज्य के विधान को
 बतलाऊँगा ॥१०७-१०९॥ स्निग्ध माज्य अन्न वासी हो, चिरवालीन हो, फिर भी ग्राह्य है । स्नेह से रहित
 गेहूँ, यव तथा गोरस के विकार—धी, मट्ठा आदि—ग्राह्य हैं ॥११०॥ खरगोश, कछुआ, गेहूँ साही तथा मत्स्य

१क ०तुनत्रे न च । २ख ०तवयो जन्तोर्जल । ३ग ०लक्ष्येत वात च न । ४ ग सज्जला । ५ख
 ०श्च तथा न सः । ६ग ०हवासिपु । ७क ०सचितः ।

शशकः कच्छपो गोधा श्वाविन्मत्स्योऽथ शल्यकः । भश्याश्चेते तथा वज्र्यो ग्रामशूकरबुबकुटी ॥१११॥
 पितृदेवादित्ये च 'श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया । प्रोक्षितं' चोपधार्यं च खादन्मास न दुप्यति ॥११२॥
 शङ्खाश्मत्स्वर्णहृष्याणां 'रज्जुनामय वाससाम् । शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् ॥११३॥
 मणिवस्त्रप्रवालानां तथा मुथताफलस्य च । पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिप्यते ॥११४॥
 तथाऽश्मकानां तोयेन अश्मसंघर्षणेन च । सम्नेहानां च पात्राणां शुद्धिश्चर्षणेन धारिणा ॥११५॥
 शूर्पाणामजिनानां च मुशालोलूखलस्य च । संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्सचयस्य च ॥११६॥
 'वल्कलानामशेषाणामम्बुमूच्छौचमिप्यते । आविकानां समस्तानां केशानां' चैवमिप्यते ॥११७॥
 सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । शोधनं चैव भवति उपघातवनां सदा ॥११८॥
 तथा कार्पासिकानां च शुद्धिः स्यान्नजलभस्मना । दारुदन्तास्थिशृङ्गाणां तथ्याच्छुद्धिरिप्यते ॥११९॥
 पुनः पाकेन भाण्डानां पाथिवानामभेद्यता । शुद्धं भक्ष्यं 'काहस्तः' 'पण्यं' योपिन्मुखं 'तथा ॥१२०॥
 'रथ्यागमनविज्ञान' 'दासवर्गण' 'सस्त्रुतम् । प्रावप्रशस्तं चिरातोत्तमनेकान्तरितं लघु ॥१२१॥
 अन्त' प्रभूतं बालं च 'वृद्धान्तरविचेष्टितम् । कर्मान्तागारशालाश्च स्तनद्वय शुचि स्त्रियाः ॥१२२॥

मस्य है । गाँव के मूँजर तथा मुर्गे अमक्ष्य हैं ॥१११॥ श्राद्ध में पितृ-देव कर्म के अवशिष्ट मात तथा ब्राह्मण और औषध के निमित्त लाये गये मास को सस्त्रुत करने के लिये कोई दोष नहीं ॥११२॥ श्वेत, पत्थर, सोना तथा चाँदी के पात्रों एवं चर्मको की जल से धो देने पर उनकी शुद्धि हो जाती है । रस्सी, बस्त्र, शाक, वस्त्र, फल, बाँस का पात्र, मृग आदि का चर्म, मणि, मृगा तथा मोती जल से धो देने पर शुद्ध हो जाते हैं । पत्थर जल से या पत्थरों की रगड़ से शुद्ध होता है । स्नेह (तेल आदि) से युक्त पात्र गरम जल से शुद्ध होता है । मृग चर्म-वस्त्र, मुशल, ओखली, सिला हुआ वस्त्र तथा वल्कल (छाल) जल से शुद्ध होता है । भेड़ का बाल भी जल से शुद्ध हो जाता है ॥११३-११७॥ सरसो या तिल की छली से चट्टिलो या घाव वाले की शुद्धि होती है ॥११८॥ गंधास का वस्त्र जल तथा भस्म से शुद्ध होता है । लवङ्ग, दाँत, हड्डी तथा सींगों की शुद्धि छीलने से होती है । मिट्टी का बरतन पुन पाक करने से अपवित्र हो जाता है । मिट्टा, दुकानदार का हाथ, दुकान में रखी चीजें तथा रस्ती का मुख शुद्ध होता है ॥११९-१२०॥ सेवकों द्वारा साफ सुधरा विद्या गया राजमार्ग शुद्ध होता है । पहले जिसकी प्रशंसा की गई हो, ऐसी वस्तु बहुत दिना के बाद भी शुद्ध रहती है । अनेक वस्तुओं से ढकी हुई छोटी चीज शुद्ध होती है । शरीर में सलग्न केश और वृद्ध की चेष्टा शुद्ध होती है (?) । जहाँ सत्वर्म किये गये हों ऐसी शालायें तथा स्त्रिया के दोनों स्तन शुद्ध होते हैं ॥१२१-१२२॥ गन्धरहित बहता जल शुद्ध होता है । मूँस जलाने, शाङू देने, गोष्ठ बनाने

१क ग श्राद्ध । २क देवतानां । ३क रज्जुताना च वा० । ४क ०णा च फलाना । ग ०णा वसनानां ।
 ५क ०सहृतस्य । ६क च । कल्कानामप्यशे० । ७क ०म्बुमूच्छौ० । ८क ०ना चाप्यभेद्यता । सि० ।
 ९क ख साधूना । १०क ०हस्तात्पण्य । ११क पण्ययो० । १२क ०या गतमविज्ञात दा० । १३क ०गतम-
 विज्ञात दा० । १४क ०वर्गोऽथ सत्कृत० । १५क ०म् । बाह्यस्य० । १६क ०दाबुर० ।

शुचयश्च तथैवाऽऽपः स्ववन्त्यो 'गन्धवजिताः । भूमिविशुद्धते कालाद्वाहमार्जनगोकुलैः' ॥१२३॥
 लेपादुल्लेखनास्तेकाद्वेदम' संमार्जनादिना । केशकीटावपन्ने च गोघ्राते 'मक्षिकान्विते ॥१२४॥
 मृदम्बु भस्म चाप्यपन्ने प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये' । औदुम्बराणामम्लेन वारिणा 'त्रपुसीतयोः ॥१२५॥
 भस्मान्बुभिश्च कास्थानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च । अमेध्यावतस्य 'मृत्तोयंगन्धापहरणेन' च ॥१२६॥
 अन्येषां चैव द्रव्याणा वर्णगन्धाश्च हारयेत् । शुचि मांसं तु चाण्डालव्रत्यादंविनिपातितम् ॥१२७॥
 रथ्यागतं च तैलादि शुचि गोतृप्तिदं 'पयः । रजोऽग्निरश्वगोलायारश्मय' पवनो मही ॥१२८॥
 बिम्बुयो मक्षिकाद्याश्च दुष्टमङ्गाददोषिणः । अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोर्वत्सस्य चाऽऽननम् ॥१२९॥
 मातुः प्रत्यवणे (जं) मेध्यं शकुनिः फलपातने । आसनं शयनयानं' तटौ नद्यारतृणानि च ॥१३०॥
 'सोमसूयांशुपवने' 'शुध्यन्ते तानि पण्यवत् । रथ्यापसर्पणे स्नाने 'क्षुत्पानाना च वर्मसु ॥१३१॥
 आचामेत यथान्यायं वासतः 'परिधापने । स्पृष्टानामथ 'सस्पर्शं द्विरथ्याकदंभाम्भसि' ॥१३२॥
 पक्वेष्टकचित्ताना च मेध्यता वायुसंश्रयात् । प्रभूतोपहृतादन्नादग्रमुद्धृत्य सत्यजेत् ॥१३३॥

कीपने, कुडेदने, तथा सिक्त करने से शुद्ध होती है । घर झाड़ू-जहाड़ू आदि करने से शुद्ध होता है । अन्न में केश तथा कीड़े पड़ जाय, गाय सूख ले या मक्खी बैठ जाय, तो उसे मिट्टी या जल या भस्म से शुद्ध करना चाहिए । ताँबा, रौंदा तथा झींसा खटाईयुक्त जल से शुद्ध होता है । बाँसा भस्म तथा जल से शुद्ध होता है । अश्विन वस्तु से युक्त द्रव्य मिट्टी या जल तथा गन्ध को मिटा देने से शुद्ध होता है ॥१२३-१२६॥ दूसरे भी द्रव्य वर्ण गन्धों को मिटा देने से शुद्ध हो जाते हैं । चाण्डाल तथा हिंसक जीवों द्वारा गिराया हुआ मांस शुद्ध होता है । राजमार्ग पर गिरे हुए तेल आदि शुद्ध होते हैं । गाय का तृप्ति देने वाला दूध शुद्ध होता है । बालू, अग्नि, घाड़ी, गाय, छाँह, निरण, पवन और पृथ्वी शुद्ध होती है ॥१२७-१२८॥ बिन्दु तथा मक्खी आदि चीजें दुष्टसग से दूषित नहीं होती । बकरी तथा घोड़े का मुख शुद्ध होता है । गाय तथा बछड़े का मुख शुद्ध नहीं होता है । माता के स्तन से निकलता हुआ दूध शुद्ध होता है । फल गिराने के समय पक्षी शुद्ध होता है ॥१२९॥ आसन, शय्या, सबारी और नदी-तट वा तुण सूर्य चन्द्रमा की निरणों से तथा वायु से शुद्ध हो जाता है जैसे दुकान मर्याही हुई चीजें ॥१३०॥ गली में चलने पर, स्नानकाल में स्नाने-पीने के समय तथा वस्त्र पहनने के समय विधि के अनुसार आचमन करना चाहिए ॥१३१॥ चूरे रास्ते और कीचड़ सने हुए जल वा स्पर्श हो जाने पर वायु लगने से शुद्ध होती है । पक्षी ईंटों से वर्णा हुई वस्तुओं की शुद्धि भी वायु से होती है । बहुत सफ़ेद हुए अन्न के आगे से निताल कर फेंक दे और

१ ऽन्वबुद्बुदा । २ व ० गोत्रम् । ले० । ३ ख ० कादृमहमना मा० । ४ क ० ते । भस्म चात्र तु विद्विष
 प्र० । ५ व ० ये । उडु० । ६ क ० यो । तस्मात् माक्षिकान्गाना शु० । ७ क ० तोयं शुद्धिर्मगं । ८ क.
 ० पसर्पणात् । अ० । ९ क ख ० य । राजाग्निव्यगो० । १० ख पान । ११ ग ० सूर्याम्बुप० । १२ क ध्वन्यन्तानि ।
 १३ क शुद्धा वातारिक० । १४ व ० ने । घृष्टा० । १५ ख ० स्पर्शं द्विर० । १६ ग. भस्माम् । प० ।

शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा । उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ताशिनो भवेत् ॥१३४॥
 अज्ञाने ज्ञानपूर्वे तु तद्वदोपोपशमे न तु । 'उदवयां' वावलग्नं च सूतिकात्यावसायिनः ॥१३५॥
 स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचायै तथैव मृतहारिणः । नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेह स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥१३६॥
 आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालम्ब्यार्कमोक्ष्य वा । न लङ्घयेत्तथैवाथ ष्ठीवनोद्वर्तनानि च ॥१३७॥
 गृहादुच्छिष्टविष्मन् पादाम्भस्तस्किपेद्वह्निः । पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न म्नायात्परवारिणि ॥१३८॥
 स्नायीत देवखातेषु गङ्गाह्रदसरिस्तु च । 'नोद्यानादौ विकालेषु' प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥१३९॥
 नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्वीरहीनास्तथा स्त्रियः । देवतापितृसच्छास्त्रयज्विसंन्यासिनिन्दकैः ॥१४०॥
 कृत्वा तु स्पर्शनालाप शुध्यत्यर्कबलोकनात् । अवलोचय तथोदवयां संन्यस्तं पतितं शवम् ॥१४१॥
 'विधर्मसूतिकापण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः' । मृतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये ॥१४२॥
 एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः । अभोज्यभिभूपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान् ॥१४३॥
 पतितापविद्धचाण्डालमृताहारांश्च धर्मवित् । सम्पूज्य शुध्यते स्नानादुदवयाग्रामशूकरी ॥१४४॥
 तद्वच्च 'सूतिकाशौचद्वयितौ पुरपावपि । यस्य चानुदिनं हानिगृहे नित्यस्य कर्मणः ॥१४५॥

बचे को जल से शिवत्त करे । जानकर या बिना जाने दूषित मात खाने से दोषशान्ति के लिये तीन रात उपवास करे ॥१३२-१३४॥ रजस्वला तथा नवप्रसूता स्त्री वा स्पर्श हो जाने पर पवित्रता के लिये स्नान करे । शव-वाहक व्यक्तियों का स्पर्श होने पर भी स्नान करे । मनुष्य की हृद्दी छू जाने पर ब्राह्मण तेल लगाकर स्नान करने से शुद्ध होता है ॥१३५-१३६॥ अथवा बिना सबैल स्नान किये ही गाय को छू लेने से, सूर्य को देख लेने से तथा आचमन कर लेने से वह पवित्र हो जाता है । शूक, उवटन, उच्छिष्ट, विष्टा, मूत्र तथा चरण घोंटे से बचे जल को नहीं लाधना चाहिये । दूसरे के जल में बिना पाँच पिण्ड मिट्टी निकाले स्नान नहीं करना चाहिये ॥१३७-१३८॥ जलाशय, गंगा, झील तथा सरोवरो में स्नान करना चाहिये । विद्वान् व्यक्ति कुसमय में धनीचे आदि में न रहे ॥१३९॥ मनुष्यों से द्रोह करने वाले व्यक्ति से तथा कुलटा स्त्री से समापण नहीं करना चाहिये । देवता, पितर, सत् शास्त्र, यज्ञ-वर्ता तथा सन्यासियों के निन्दक से स्पर्श तथा समापण करके मनुष्य सूर्य के दर्शन से शुद्ध होता है ॥१४०॥ रजस्वला, त्यक्त, पतित, शव, विधर्मी नवप्रसूता नपुसक, वस्त्रहीन स्त्री, चाण्डाल, शव-वाहन तथा परस्त्रीगामी को देखकर विद्वान् मनुष्य अर्थात् प्रायश्चित्त करे (अर्थात् सूर्य का दर्शन कर ले) ॥१४१-१४२॥ अभोज्य वस्तु, मिश्रक, पाखण्डी, विलाड, गधे, मुर्गे, पतित, चाण्डाल तथा शव ढोने वाले का स्पर्श कर धर्मवेत्ता मनुष्य स्नान से शुद्ध होता है । रजस्वला, गाय के मूत्रर तथा नवप्रसूता के अशौच से दूषित पुरुषों का स्पर्श करने पर मनुष्य स्नान करे । जो प्रतिदिन नित्यकर्म से वचित रहता है, जो ब्राह्मणों से परित्यक्त है और जो पापाशी (बिना भग-

यश्च ब्राह्मणसंत्यक्तः किल्बिषाशी नराधमः । नित्यस्य कर्मणो हानि न कुर्वीत कदाचन ॥१४६॥
 तस्य त्यकरणं वश्ये केवलं मृतजन्मसु । दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविर्जितः ॥१४७॥
 शत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्धमेव च । शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविर्जितः ॥१४८॥
 ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोचितम् । प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गत्वा तु गोत्रकं ॥१४९॥
 प्रथमेऽह्नि क्षतुर्ये च सप्तमे नवमे तथा । तस्यास्थिसंचयः कार्यश्चतुर्थेऽह्नि गोत्रकं ॥१५०॥
 ऊर्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शा विधीयते । गोत्रकंस्तु त्रियाः सर्वाः कार्याः संचयनात्परम् ॥१५१॥
 'स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ।' अन्वयमिच्छया 'शस्त्ररज्जुबन्धनवह्निषु ॥१५२॥
 विप्रप्रतापादिमृते' प्रायानाशकधोरपि । बाले देशान्तरस्ये च तथा प्रव्रजिते मृते ॥१५३॥
 सद्यः शीतं भृगुध्यानां त्र्यह्मुक्तमशौचकम् । सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽप्यस्मिन्मृते यदि ॥१५४॥
 पूर्वशौचं समाप्तवान् कार्यास्तत्र दिनत्रियाः । एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सत्के ॥१५५॥
 सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च । पुत्रे जाते पितुः स्नानं मर्चलस्य विधीयते ॥१५६॥
 तत्रापि यदि वाऽऽन्यस्मिन्ननुयातस्ततः परम् । तत्रापि शुद्धिरुदिता पूर्वज-मवतो दिनैः ॥१५७॥

बान् को सम्पत्ति किये भोजन करने वाला) है, उनसे स्पर्श करने पर भी स्नान करे। नित्यवर्ग को कमी नहीं छोड़ना चाहिये ॥१४३-१४६॥ सगोत्र मे किसी के मरने पर तथा जन्म लेने पर नित्यवर्ग छोड़ दे। अर्थात् अशौच मे ब्राह्मण दस दिनो तक दान-होम छोड़ दे ॥१४७॥ शत्रिय बारह दिनो तक, वैश्य पन्द्रह दिनो तक और शूद्र एक मास तक अपने-अपने नित्यवर्गों से वंचित रहे ॥१४८॥ इससे बाद सब अपने-अपने यथोचित कर्म करें। सगोत्र के लोप बाहर जाकर पहले दिन, चौथे दिन, सातवें दिन तथा नवें दिन प्रेत को जल दें और चौथे दिन उसका अस्थि-संचय करें। अस्थि-संचय के बाद अगस्पर्श वा विधान है। गोत्र वाले अस्थि-संचय के बाद सारी क्रियायें करें ॥१४९-१५१॥ मृत्यु के दिन सपिण्डों द्वारा स्पर्श करना ही विहित है मले ही वह व्यक्ति स्वेच्छा से मरा हो या शस्त्र से या फाँसी से या अग्नि से या विष से या अनशन के द्वारा मरा हो। विदेश मे बालक के मर जाने तथा संन्यासी के मर जाने पर मनुष्यों को तीन दिनो का सद्य अशौच लगता है ॥१५२-१५३॥ सगोत्र बालो मे एक के मर जाने के बाद दूसरे दिन दूसरा भी कोई मर जाय तो पहले के अनुसार ही अशौच माना जाता है। उसमे केवल दैनिक क्रियायें करनी चाहिए। यही विधान जन्माशौच मे भी लागू होता है ॥१५४-१५५॥ किन्तु यह नियम सपिण्डों के प्रति तथा जिनके मरने पर जल दिया जाय उनसे सम्बन्ध मे है। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता सर्वल स्नान करे। वहाँ भी यदि दूसरे दिन दूसरा (बालक) जन्म ले ले तो पहले जो उत्पन्न हुआ हो, उसी के दिनो के अनुसार शुद्धि होगी। समस्त वर्ण दण्ड, बारह, पन्द्रह तथा एक मास के हिसाब से विधिपूर्वक

१४. ०ते। सोदरंस्तु। ग. ०ते। सोदकं०। २ग सर्वं। ३क अन्विच्छति०। ४य ०स्त्रनेवोदतं०।

५क. स. ०पप्रयत्नायुते। ६स. ०नुष्यस्य न्य०। ग ०नुष्यस्य न्य०। ७ग ०स्मिन्जाते जायेदयाप०।

दशद्वादशमासार्धमाससह्येदिनर्गनं । स्वा स्वा कर्मत्रिण कुर्यं सर्वे वर्णा यथाविधि ॥१५८॥
 प्रेतमुद्दिश्य वतव्यमेकोद्दिष्टमन परम् । दानानि चैव देयानि द्राह्मण्यो मनोपिभि ॥१५९॥
 यद्यदिष्टतम लोके यच्चास्य दयित गृहे । तत्तदगुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥१६०॥
 पूर्णंस्तु दिवसं स्पृष्टया सलिलं वाहनायुधं । दत्तप्रेतोदपिण्डाञ्च सर्वे वर्णा कृतप्रिया ॥१६१॥
 कुर्यु समग्रा शुचिन् परत्रेह च भतये । अध्येतव्या त्रयी नित्य भवितव्य विपश्चिता ॥१६२॥
 धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्य चापि यत्नत । येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्सामेति भो द्विजा ॥१६३॥
 तत्कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्य महाजनं । एवमाचरतो विप्रा पुरपस्य गृहे सतः ॥१६४॥
 धर्मार्थिकाम सप्राप्य परत्रेह च शोभनम् । इदं रहस्यमायुष्य धाय बुद्धिविवर्धनम् ॥१६५॥
 सर्वपापहर पुण्य धीपुष्ट्यारोग्यद शिवम् । यन्न कीर्तिप्रद नृणा तेजोबलविवर्धनम् ॥१६६॥
 अनुष्ठय सदा पुंभि स्वयसाधनमुत्तमम् । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च मुनिसत्तमा ॥१६७॥
 ज्ञातव्य सुप्रयत्नेन सम्बन्धेयोभिकाङ्क्षिभिः । ज्ञातव्यं य सदा बालमनुष्ठान करोति यः ॥१६८॥
 सर्वपापयिनिर्मुक्त स्वर्गलोके महोयते । सारात्सारतर चेदमारयात् द्विजसत्तमा ॥१६९॥

अपनी-अपनी वस्त्र क्रिया करें ॥१५६-१५८॥ इसके बाद प्रत को उद्दिश्य करवे एकतद्दिष्ट करना चाहिये । विद्वान् व्यक्ति ब्राह्मणा को दान भी दें ॥१५९॥ लोचन म जो सबसे प्रिय हो और अपने गृह म सुन्दर हो उसी चाज को अक्षय बनाने के इच्छा से गुणवान् को देना चाहिये ॥१६०॥ दिन पूरे होने पर काहुन तथा दास्य-अस्त्रा से युक्त होकर समस्त वन जात्रा का स्नान करें और प्रत को जल तथा पिण्ड देकर क्रिया सम्पन्न करें ॥१६१॥ इस लोचन में तथा परलोचन में बल्याण व लिय मनुष्य पवित्र होकर क्रिया सम्पन्न करें । विद्वान् व्यक्ति नित्य वेदों का अध्ययन करें ॥१६२॥ धर्मपूवक धन बनाना चाहिये और यत्नपूर्वक यज्ञ करना चाहिये । द्विजगण ! जिससे आत्मा कुण्ठित न हो तथा निर्द्वन्द्व न बने, वह निश्चय होकर करना चाहिये ॥१६३॥ जो महान् व्यक्तिया से गोपनीय न हो, वह भी करना चाहिये । इस प्रकार आचरण करते हुए गृहस्थ मनुष्य धर्म अर्थ और काम की प्राप्ति कर इस लोचन म तथा परलोचन म सुखी होते हैं । यह रहस्य धन आयु तथा बुद्धि बढ़ाने वाला, समस्त पापों का नाश करने वाला पुण्य, लक्ष्मी पुष्टि तथा आरोग्य देने वाला, बल्याणकारक, यस प्रतिष्ठा दायक और तेजावन्वितवर्धक है ॥१६४॥ १६५॥ पुरुषों को स्वयं व इस उत्तम साधन का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये । मुनिश्रेष्ठो ! बल्याण पाहने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रों को यत्नपूर्वक इसे जानना चाहिये ॥१६७॥ इसे जानकर जो सबदा इसका अनुष्ठान करता है वह सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग म पूजित होता है । द्विजश्रेष्ठो ! सार से भी सार (सब से

श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं न देयं यस्य कस्यचित् । न नास्तिकाय दातव्यं न दुष्टमतये द्विजाः ॥
न दाम्भिकाय मूर्खाय न कुतर्कप्रलापिने ॥१७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे सदाचारनिरूपणं
नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२१॥

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्वर्णधर्मान्विशेषतः । चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्यं व्रथोहि तान् ॥१॥

व्यास उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम् । शृणुध्व संयता भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान् ॥२॥
'दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परं' । नित्योदकी भवेद्विप्रः कुर्याच्चान्निपरिग्रहम् ॥३॥
'वृत्त्यर्थं' याजयेत्त्व-यान्द्विजानध्यापयेत्तथा । कुर्यात्प्रतिग्रहादानं यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजाः ॥४॥
सर्वलोकहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद्द्विजा । मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तम धनम् ॥५॥

उत्तम) यह रहस्य मैंने बतला दिया । श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित यह धर्म जिस किसी को नहीं देना चाहिए । नास्तिक,
दुष्टबुद्धि, दाम्भिक, मूर्ख तथा असत्य बोलने वाले को यह नहीं देना चाहिए ॥१६८-१७०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सदाचार निरूपण नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२१॥

अध्याय २२२

वर्णाश्रमधर्म का वर्णन

मुनियो ने कहा—ब्रह्मन् ! द्विजवर्य ! हम चारो आश्रमो के धर्मों को तथा विशेष कर वर्ण-धर्मों को
सुनना चाहते हैं, आप बतलाएँ ॥१॥

व्यास बोले—क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रो के वर्णधर्मों को आप लोग ध्यान से सुनिये, मैं कहता
हूँ ॥२॥ ब्राह्मण दान, दया, तप देवयज्ञ तथा स्वाध्याय मे सत्पर हृत्तर नित्य जलकर्म और अग्निहोत्र किया करे
॥३॥ जीविका के लिये अन्य द्विजा को पढ़ाये एवम् यज्ञ कराये । जान-बूझ कर यज्ञ के लिये प्रतिग्रह न स्वीकार
करे ॥४॥ सब का बल्याण करे, अहित किसी वा न करे । समस्त प्राणियों से मित्रता ही ब्राह्मण का उत्तम

१क प्रयता । २ग दान दयायज्ञेदेवान्यज्ञः । ३स ०यांन्च प्रयत गृहः । ४स ०धं सेवयेत्त्वः ।
५ग ०ग्रह दान शृङ्गार्यं न्यायतो । ६ग्रह दान सत्पर्यं न्यायतो ।

गवि रत्ने च पारश्वे समबुद्धिर्भवेदद्विजा । ऋतावभिगम पत्न्या शस्यते वाऽस्य भो द्विजा ॥६॥
 दानानि दद्याद्विच्छातो द्विजेभ्य क्षत्रियोऽपि हि । यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च भो द्विजा ॥७॥
 शस्त्राजीवो महोरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तस्यापि प्रथमे 'कल्पे पृथिवीपरिपालनम् ॥८॥
 धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या वराधिपा । भवन्ति 'नृपते रक्षा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥९॥
 दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमताल्लोकान्वर्णसंस्थापको नृप ॥१०॥
 पाशुपाल्य वणिज्या च कृषि च मुनिसत्तमा । वैश्याय जीविका ब्रह्मा ददौ लोकपितामह ॥११॥
 तस्याप्यध्ययन यज्ञो दान धर्मश्च शस्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च वर्मणाम् ॥१२॥
 द्विजातिसंश्रय कर्म 'तदर्थं तेन पोषणम् । क्रयविक्रयजैर्वाऽपि धनं काहर्भवंतु वा ॥१३॥
 दानं दद्याच्च शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्र्यादिकं च यं सर्वं शूद्र कुर्वीत तेन वै ॥१४॥
 भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहा । ऋतुकालाभिगमन स्वदारेषु द्विजोत्तमा ॥१५॥
 दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता । सत्य शीघ्रमनायासो मङ्गल प्रियवादिता ॥१६॥
 मेत्री चैवास्पृहा तद्वदकार्पण्यं द्विजोत्तमा । अनमूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणा ॥१७॥
 आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः । गुणास्तथोपधर्माश्च विप्रादीनामिमे द्विजा ॥१८॥
 क्षात्र वर्मं द्विजस्योक्तं वैश्यकर्म तथाऽऽपदि । राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्माणि चैतयो ॥१९॥

घन है ॥५॥ गो, रत्न तथा परलोक के निमित्त कर्मों में समबुद्धि रखे । ब्राह्मणों के लिये ऋतुवाल म मार्गागमन करना प्रशस्त है ॥६॥ क्षत्रिय दच्छापूर्वक ब्राह्मणों को दान दे, विविध यज्ञ करे तथा अध्ययन करे ॥७॥ शस्त्र धारण करना और पृथ्वी की रक्षा करना उसकी उत्तम जीविका है । प्रथम कल्प में पृथिवी का परिपालन ही क्षत्रिय का धर्म बतलाया गया है ॥८॥ धरित्रीपालन से ही क्षत्रिय वृत्तवृत्त्य हो जाते हैं, जिसलिये कि इससे यज्ञ आदि कर्मों की रक्षा होती है ॥९॥ दुष्टों को दण्ड देने से सज्जनों का परिपालन करने से वंश सस्थापक राजा वाञ्छित लोक में जाते हैं ॥१०॥ मुनिवर ! लोकपितामह ब्रह्मा ने वैश्यों को पशुपालन, खेती तथा व्यापार जीविका में दिये हैं ॥११॥ वैश्य भी अध्ययन यज्ञ दान, धर्म और नित्य, नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान करे ॥१२॥ द्विजातियों के कर्म से या खरीद बिक्री आदि व्यापार से वह अपना पोषण करे ॥१३॥ शूद्र भी दान दे और पाक-यज्ञ करे । वह पितृ-धर्म आदि सब कुछ करे ॥१४॥ द्विजपण्डित ! गौवर आदि के भरण के लिये सबका दान लेना, ऋतुवाल में स्त्राप्रसंग करना, समस्त प्राणियों पर दया करना, सहनशीलता अग्निमानन करना सत्य, शीघ्र अनायास, मङ्गल, प्रियवादिता मैत्री अस्पृहा, अवापण्य, अनमूया—ये गुण सब वर्णों के लिये सामान्य हैं ॥१५-१७॥ समस्त आश्रमों के लिये ये गुण सामान्य लक्षण हैं । द्विजगण । ब्राह्मण आदि के लिये ये उपधर्म हैं । आपत्तिवाल में ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य का कर्म न कर सकता है और क्षत्रिय वैश्य एवम् शूद्र का कर्म न कर सकता है ॥१८-१९॥ सामर्थ्य

स(अ)सामर्थ्यं सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः । तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥२०॥
 इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽद्य वै । धर्ममाश्रमिणां सम्पन्नुचतोऽपि निबोधत ॥२१॥
 बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः । गुरोर्गृहे वसन्विप्रा ब्रह्मचारी समाहितः ॥२२॥
 शौचाचाररतस्तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः । व्रतानि चरता 'ग्राह्यो वेदश्च' कृतबुद्धिना ॥२३॥
 उभे संध्ये रवि विप्रास्तयैर्वाग्निं समाहितः । उपतिष्ठेत्तया कुर्याद्गुरोरप्यभिवादनम् ॥२४॥
 स्थिते तिष्ठेद्भजेद्याति नोचेरासीत चाऽऽसितः । शिष्यो गुरौ द्विजश्रेष्ठाः प्रतिकूलं च संत्यजेत् ॥२५॥
 तेनैवोक्तं पठेद्देवं नान्यचित्तः पुरस्थितः । अनुज्ञातं च भिक्षान्नमश्नोयाद्गुरुणा ततः ॥२६॥
 अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः । समिञ्जलादिकं चास्य कल्पकल्पमुपात्तयेत् ॥२७॥
 'गृहीतग्राह्यवेदश्च सतोऽनुज्ञामवाप्य वै । गार्हस्थ्यमावसेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिवृत्तिः ॥२८॥
 विधिनाश्वाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा । गृहस्थकार्यमखिलं 'कुर्याद्विप्राः स्वशक्तितः ॥२९॥
 निवर्षेण पितृनर्घ्यं यज्ञैर्देवास्तयाऽस्तिथिन् । अन्नैर्मुनोश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥३०॥
 बलिकर्मणा भूतानि वाक्सत्येनाखिलं जगत् । प्राप्नोति 'लोकान्गुरोपो निजकर्मसमाजितान् ॥३१॥
 भिक्षामुज्जच्च ये केचित्परिश्राद्ब्रह्मचारिणः । तेऽप्यत्र' प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥३२॥
 वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजाः । अटन्ति वसुधां विप्राः पूयिवोदर्शनाय च ॥३३॥

रहने पर उन्हें ऐसा मही करना चाहिये, परन्तु आपत्तिबाल मे करते से कोई दोष नहीं। दूसरे का कर्म दूसरा न करे ॥२०॥ विप्रबृन्द । आपको वर्णधर्म मैंने बतला दिये। अब आश्रमों के धर्म भी आप मुझसे सुन लें ॥२१॥ द्विजगण । बालक का उपनयन हो जाने के बाद वह वेदाध्ययन करने के लिये गुरु के गृह मे वास करे। ब्रह्मचर्य, शाकपानी, शौच तथा आचार रखते हुए वह गुरु-शुश्रूषा मे निरत रहे, व्रत करे, ध्यानपूर्वक वेदाध्ययन करे, दोनों सन्ध्या समाहित होकर सूर्य का उपसवान, अग्निहोत्र एवम् गुरु का अभिवादन करे। ॥२२-२४॥ द्विजश्रेष्ठो । शिष्य गुरु के सखा होने पर सखा हो जाय, चलने पर चले, बैठने पर नीचे बैठे और उनसे प्रतिकूल बर्तन न हो ॥२५॥ गुरु के वचनानुसार अनन्यचित्त से वेदाध्ययन करे। उनकी आज्ञा लेकर भिक्षान्न भोजन करे ॥२६॥ आचार्य को स्नान करा कर तब स्वयम् स्नान करे। नित्य प्रातः काल गुरु के लिये समिधा, जल आदि का प्रवण्य करते रखे ॥२७॥ वेदाध्ययन करने के उपरान्त गुरु का दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से बुद्धिमान व्यक्ति गृहस्थाश्रम मे वास करे ॥२८॥ विधिपूर्वक विवाह कर अपने कर्म से धन प्राप्त कर वाक्यनुसार गृहस्थाश्रम के अखिल कार्यों का सम्यक् करे ॥२९॥ श्राद्ध आदि से पितरों को, यज्ञों से देवों को अन्न से अतिथिया को, स्वाध्यायो से मुनियों को, स्नान से प्रजापति को, बलिकर्म से भूता को तथा सत्यवाणी से अखिण जगत् को सन्तुष्ट करने मनुष्य अपने कर्मों द्वारा उपाजित लोकों को प्राप्त करते हैं ॥३०-३१॥ भिक्षाजीवी सन्ध्यासी तथा ब्रह्मचारी भी गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर करते हैं। इसलिये गार्हस्थ्य समस्त श्रेष्ठ है ॥३२॥ द्विजगण । वेदाध्ययन के लिये, तीर्थस्नान के

१क स ग्राह्य। २क स ०दबुद्धि सनातनी उ। ३स ०वद न त०। ४स ०द्विप्र स्व०।
 ५ग ०नुपदव नि०। ६ग ०पयैर्वावतिष्ठते गा०।

अनिकेता ह्यनाहारा' ये तु साय गृहास्तु ते । तेषा गृहस्थ ' सतत प्रतिष्ठा योनिरुच्यते ॥३४॥
 तेषा स्वागतदानानि वषतव्यं मधुरं सदा । गृहगताना दद्याच्च शयनासनभोजनम् ॥३५॥
 अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥३६॥
 अवज्ञानमहंकारो दम्भश्चापि गृहे सतः । परिवादोपघातौ च पाह्यं च न शस्यते ॥३७॥
 यश्च सम्पन्नोऽप्येव गृहस्थः परमं विधिम् । सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाम्प्रोति चोत्तमान् ॥३८॥
 'वयं परिणतो विप्रा वृत्कृत्यो गृहाश्रमी । पुत्रेषु भार्या' निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा' ॥३९॥
 पर्णमूलपलाहारं केशमश्रुजटाधरः । भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिः सर्वातिथिद्विजा ॥४०॥
 चर्मकाशकुशं कुयत्परिधानोत्तरीयके । तद्वस्त्रपवणं स्नानं शस्तमस्य द्विजोत्तमा ॥४१॥
 देवताभ्यर्चनं होमं सर्वाभ्यागतपूजनम् । भिक्षा बलिप्रदानं तु शस्तमस्य प्रशस्यते ॥४२॥
 वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चापि शस्यते । तपस्या तस्य विप्रेन्द्रा शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥४३॥
 यस्त्वेतां नियतश्चर्या वानप्रस्थश्चरेन्मुनिः । स दहत्यग्निवद्दोषाञ्जयेत्ल्लोकाश्च शाश्वतान् ॥४४॥
 चतुर्थश्चाऽऽश्रमो भिक्षो प्रोच्यते यो मनीषिभिः । तस्य स्वरूपं गवतो बुध्यध्वं मम सत्तमा ॥४५॥
 पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यजेत्स्नेहं द्विजोत्तमा । 'चतुर्थमाश्रमस्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरं ॥४६॥

लिये तथा पृथिवी-दरान के लिये जो बिना घर तथा भोजन के पृथ्वी पर पड्येन करते हैं, उनका आश्रम गृहस्थ ही है ॥३३-३४॥ मधुर वाणी से सदा उनका स्वागत करना चाहिये । गृह पर आने पर उन्हें शय्या, आसन तथा भोजन देना चाहिये ॥३५॥ अतिथि निराश होकर जिसके घर से लौट जाते हैं, उसे वे पाप देकर तथा (उसका) पुण्य लेकर चले जाते हैं । गृहस्थ के लिये तिरस्कार अभिमान, दम्भ, निन्दा घात तथा बढोरता प्रशस्त नहीं है ॥३६-३७॥ जो गृहस्थ सम्पत् प्रकार से गृहस्थ-जीवन बिताता है वह समस्त बन्धनों से निर्मुक्त होकर उत्तम लोको को प्राप्त करता है ॥३८॥ विप्रबृन्द ! परिपक्व अवस्था होने पर वृद्धत्व हो पुत्रों के ऊपर पत्नी का भार सौंप कर गृहाश्रमी अकेले वन जाय या भार्या के साथ जाय ॥३९॥ वहाँ पर पत्र, मूल, फल का जाहार करे भूमि पर सोये, मनन करे, सबका आतिथ्य स्वीकार करे, चर्म, वास तथा कुशा के परिधान (पहिनने के वस्त्र) तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे विवाह स्नान करे, शान्ति रखे, देवपूजन, हवन, अभ्यागता का सत्कार, भिक्षा तथा बलिप्रदान करे । वह वर्नीय स्निग्ध पदासी का उद्वेग दारीर में लया सत्ता है । सर्वां गर्मी आदि का सहना उसके लिये तपस्या है ॥४०-४३॥ जो वानप्रस्थ मुनि इस प्रकार नित्यचर्या करते हैं वे अग्नि की तरह दाया की जलाकर शाश्वत लवों को प्राप्त करते हैं ॥४४॥ मुनिबृन्द ! मर्न पियो ने मिथुन के जिस चतुर्थ आश्रम का निर्देश किया है, उसका भी स्वरूप मुजस मुन जीत्रिये ॥४५॥ मनुष्य पुत्र, स्त्री तथा द्रव्य की ममता छोडकर गृह से रहित होकर चतुर्थ आश्रम में प्रवेश करे ॥४६॥ वह तीना वर्णों के समस्त कर्मों का त्याग करे, मित्र आदि अतिर

१३ निराहारा । ४ ह्यनाहारा । २५ गृह गता । त्रिषा गृ० । ३६ समये । ४० गतो वि० । ५५ वा । वन्द्यम् । ६५ अस्तस्य च वि० । ७० अस्तस्य च वि० । ७३ य एव नि० । ८३ व्यपारो वा० । ९४ स अनुयायकस्य ।

धैर्वाण्यस्य जेतुं सर्वानारम्भान् विजसत्तमा । मित्रादिषु समो मैत्राः सुसमन्तेष्वेव जन्तुषु ॥४७॥
 जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनःकर्मभिः क्वचित् । युवतः कुर्वानं न द्रोहं सर्वसङ्गादं च वर्जयेत् ॥४८॥
 एकरात्रस्थितिप्रप्ते पञ्चरात्रस्थितिः पुरे । तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु द्वेपो वा नास्य जायते ॥४९॥
 प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्ग्यारेऽभुयस्तवज्जने । काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थो पर्यटेषु गृहान् ॥५०॥
 अलभे न विषादी स्यात्कालो नैव च हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५१॥
 अतिपूजितश्चाभास्तु जुगुप्सं चै (प्तेच्चै) व सर्वतः । अतिपूजितलाभैस्तु यतिर्भुवतोऽपि बध्यते ॥५२॥
 कामं क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयश्च ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य परिव्राजितममो भवेत् ॥५३॥
 अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो दत्त्वा यश्चरते महिम् । तस्य देहाद्विभुवतस्य भयं नोत्पद्यते क्वचित् ॥५४॥
 कुन्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं, शरीरमग्निं स्वमुखे जुहोति ।
 विप्रस्तु भिक्षोपगतं हविर्बिभ्रिचताग्निना स व्रजति स्म लोकान् ॥५५॥
 मोक्षाश्रमं यश्चरते श्रयोक्त, शुचिश्च संकल्पितबुद्धियुक्त ।
 अग्निधनं ज्योतिरिव प्रशान्तं, स ब्रह्मलोकं व्रजति द्विजति ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम
 द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

प्राणियो मे समान भाव से व्यवहार करे, मनु, वाणी, तथा कर्म से जरायुज अण्डज आदि का द्रोह न करे, सर्वस्य का परित्याग न करे, एक रात गौव मे घात करे तो पाँच रात नगर में रहे। इस तरह सन्यासी किसी से प्रीति तथा द्वेष न करे ॥४७-४९॥ केवल प्राणरक्षा के निमित्त वह प्रशस्त वर्णों के घर मे भिक्षाटन करे, नहीं मिलने पर दुःख न करे और मिलने पर हर्षित न हो। आसक्ति से रहित होकर वह केवल प्राणयात्रा के लिये कर्म करे, अत्यन्त सम्मान तथा लाभ से बचा रहे। क्योंकि अतिमान तथा लाभ से मुक्त यति भी बद्ध हो जाता है ॥५०-५२॥ सन्यासी काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह आदि दोषों का त्याग कर निर्मम हो जाय। जो निखिल प्राणियो को अभय-दान देकर परित्री पर विचरण करता है, वह शरीर से मुक्त हो जाता है, उसे वही भय नहीं होता है ॥५३-५४॥ जो विप्र इस तरह अग्निहोत्र करता है, जिसमे कि अपने शरीरस्थ अग्नि को अपने मुख मे डालता है अर्थात् उस अग्नि में भिक्षा से प्राप्त घृत से हुवन करता है और चिताग्नि से शरीर को जलाता है, वह (उत्तम) लोका को प्राप्त करता है। जो द्विजति संकल्पित बुद्धि से युक्त होकर पवित्रतापूर्वक मोक्षाश्रम मे जीवन व्यतीत करता है, वह दघनहीन अग्नि की तरह प्रशान्त ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ॥५५-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नामक दो सौ बाईसवा अध्याय समाप्त ॥२२२॥

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

संकरजातिलक्षणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग सर्वभूतहिते रतः । भूत भग्यं भविष्यं च न तेऽस्त्वावहितं मुने ॥१॥
कर्मणा केन वर्णानामधर्मा जायन्ते गतिः । उत्तमा च भवेत्केन 'ब्रूहि' तेषां महामते ॥२॥
शूद्रस्तु कर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति । श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥३॥

व्यास उवाच

हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविभूषिते । नानाद्रुमलताकीर्णे 'नाना'दचयंसमन्विते ॥४॥
तत्र स्थित महादेवं निपुरध्नं त्रिलोचनम् । शैलराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेन्द्वरम् ॥५॥
इमं प्रश्नं पुरा विप्रा अपृच्छच्छारलोचना । तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मम सत्तमाः ॥६॥

उमोवाच

भगवन्भगनेन्द्रध्न पूष्णो दन्तविनाशन । दक्षत्रनुहर् द्रव्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥७॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा । केन कर्मविपाकेन वेदयो गच्छति शूद्रताम् ॥८॥

अध्याय २२३

संकरजाति ना लक्षण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाभाग ! आप सर्वज्ञ तथा प्राणीमात्र के बल्याण में निरत हैं। मुने ! आप भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हैं। आपसे कुछ अविदित नहीं है। महाबुद्धिमान् ! किस कर्म से यणों की नीच गति होती है और किस कर्म से उत्तम—यह हमें बतलाइये। शूद्र किस कर्म से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति करता है और ब्राह्मण विगते गृह्य वा—यह हम सुनना चाहते हैं ॥१-३॥

व्यास ने कहा—विप्रबुद्ध ! पहले हिमालय के मनोरम, नाना प्रकार की धातुओं से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त तथा आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त शिखर पर स्थित, देवों के ईश्वर, त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले तथा तीन नख वाले शर को प्रणाम कर मुन्दर नयन वाली गिरिधारी उमा ने उनसे यह प्रश्न पूछा था। मुनिबुद्ध ! उसे मैं बतलाऊँगा, आप सोच लें ॥४-६॥

उमा ने कहा—मयबन् ! भग नामक देवता के नेत्र पीछेने वाले। पूषा के दाँत सोहने वाले ! दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले ! तीन नेत्र वाले ! यह मुझे महान् मदेह है कि मयबन् ब्रह्मा ने पढ़े पारों यणों

वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् । प्रतिलोमे कथं देव' शक्यो धर्मो निर्वातितुम् ॥९॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनीं प्रजायते । क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥१०॥
एतं मे संजयं देव वद भूतपतेऽनघ । त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥११॥

शिव उवाच

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप नितर्गाद्ब्राह्मणः 'शुभे । क्षत्रियो वैश्यशूद्रो वा नितर्गादिति मे मतिः ॥१२॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्याताद्भ्रश्यति स द्विजः । श्रेष्ठं' वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥१३॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति । क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो' वा 'ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥१४॥
पञ्च विप्रत्वमुत्तृज्य' क्षत्रधर्माभिपेक्षेन' । ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनीं प्रजायते ॥१५॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यापाश्रयः । ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥१६॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् । स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१७॥
तत्रासौ निरयं प्राप्तो 'वर्णभ्रष्टो' बहिष्कृतः । ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनीं' प्रजायते ॥१८॥
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि । स्वानि कर्माण्यपाकृत्य शूद्रकर्म निपेवते ॥१९॥

की सृष्टि की। फिर किस कर्म के फल से वैश्य शूद्रत्व को प्राप्त करता है? अथवा वैश्य किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है या ब्राह्मण किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है? देव! विपरीत होने पर धर्म कैसे निवृत्त हो जाता है? किस कर्म से ब्राह्मण शूद्रयोनि में उत्पन्न होता है? विभो! क्षत्रिय किस कर्म से शूद्रत्व को प्राप्त करता है? भूतपते! निष्पाप! देव! इस लोके में तीनों वर्ण स्वभाव से कैसे ब्राह्मणत्व को प्राप्त करेंगे? मेरे इस सदेह का निराकरण कीजिए ॥७-११॥

शिव ने कहा—देवी! कल्याणमयी! ब्राह्मणत्व पाना बहुत कठिन है। मेरा तो यह विचार है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र स्वभावसिद्ध हैं। ॥१२॥ दुष्कर्म करने से ब्राह्मण स्थानन्वुत होता है। फिर सुवर्म करने से वह श्रेष्ठ वर्ण में आ जाता है ॥१३॥ ब्राह्मणधर्म में स्थित क्षत्रिय या वैश्य ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है ॥१४॥ जो विप्रत्व को त्याग कर क्षात्रधर्म को ग्रहण करता है, वह ब्राह्मणत्व से च्युत होकर क्षत्रिय-योनि में जन्म लेता है ॥१५॥ जो शूद्रवृद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लोभ-मोह में पड़कर वैश्य का कर्म करता है, वह वैश्य बन जाता है। वैश्य शूद्र का कर्म करने से शूद्र बन जाता है। स्वधर्मच्युत ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है ॥१६-१७॥ वह जाति-बहिष्कृत तथा वर्णभ्रष्ट होकर नरक में गिरता है, ब्रह्मलोकात् से परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनि में जन्म लेता है ॥१८॥ महाभागे! धर्माचरण करने वाली! जो क्षत्रिय या वैश्य अपने कर्मों का परि-त्याग कर शूद्र का कर्म करता है, वह अपने स्थान से भ्रष्ट होकर वर्णसंहर हो जाता है। इस तरह करने वाले

१क. ०व वर्णधर्मविवर्जिते। के०। २ख शुभ। ३ग ज्येष्ठ। ४ग शूद्रो। ५क. ०भूत स। ६क. स ०ग क्षात्र धर्म निपे०। ७क. स. ०ते। तस्य क्षत्रत्वमाश्रय क्षत्रियो प्र०। ८क' वर्णाचारव०। ९ख. ग. ०द्वत्त्वमुपजा०।

स्वस्थानात्स परिश्रष्टो वर्णसंकरतां गतः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ॥२०॥
 यस्तु 'शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्छुचि' । धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते ॥२१॥
 इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम् । अध्यात्म नैष्ठिकी सिद्धिर्धर्मकामनिषेधते ॥२२॥
 उग्रान्न गृहीतं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् । घुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा वचिच् ॥२३॥
 शूद्रान्नं गृहीतं देवि सदा देवमहात्मभिः । पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥२४॥
 शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः । आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्रगतिभाभवेत् ॥२५॥
 तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः । ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥२६॥
 यस्यान्नेनावशेषेण जठरे म्रियते द्विजः । तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥२७॥
 ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते । अभोज्यान्नानि वाऽश्नानाति स द्विजत्वात्पतते यः ॥२८॥
 'सुरापो ब्रह्महा स्तेयो चौरौ' भग्नव्रतोऽशुचिः । स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥२९॥
 अव्रतो वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयी । विहीनमेवो विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनितः ॥३०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्र हो जाते हैं ॥१९-२०॥ जो शूद्र स्वधर्मपूर्वक ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करता है तथा पवित्र, धर्मेज और धर्मेनिरत है, वह धर्मफल वा भोग करता है ॥२१॥ देवी ! यह तथा दूसरा भी अध्यात्म-विषय ब्रह्म द्वारा वर्णित है । धर्माभिलाषियों को परा सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये ॥२२॥ देवी ! उग्रजाति वा अन्न, गणो वा अन्न, श्राद्ध तथा सूतक वा अन्न, निन्दित अन्न और शूद्रान्न नहीं खाना चाहिये ॥२३॥ देवी ! देव-महात्माओं ने सदा शूद्रान्न को निन्दित बतलाया है । ब्रह्मा के मुख से निकला हुआ वचन प्रमाण है—यह मेरा विचार है ॥२४॥ जो अग्न्याधान तथा यज्ञ करने वाला ब्राह्मण पेट में शूद्रान्न वा अवशेष रखकर मरता है, यह शूद्र की गति को प्राप्त करता है ॥२५॥ उस शूद्रान्न के शेष रहने के कारण ब्रह्मस्थान से व्युत् ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥२६॥ जिसके अन्न वा अवशेष पेट में रखकर ब्राह्मण मरता है, उसकी योनि में यह ब्राह्मण जन्म लेता है । जो दुर्लभ ब्राह्मणत्व को सुखपूर्वक प्राप्त कर इसका अपमान करता है तथा अभोज्य अन्न मद्यन करता है, वह द्विजत्व से गिर जाता है ॥२७-२८॥ मद्य पीने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, चोर, व्रतभग्न करने वाला, अपवित्र, स्वाध्याय से रहित, पापी, लोभी, दाम्भिक, दुष्ट, अव्रती, शूद्रापति, जार-युव के साथ खाने वाला, मद्यविनेता, तथा नीच की सेवा करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मयोनि से गिर जाता है ॥२९-३०॥ गुरु-पत्नीगामी, गुरु से द्वेष करने वाला, गुरु की निन्दा करने वाला तथा ब्राह्मणों से द्रोह करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म-

१ग वृद्ध । २ख ०त स्वयं० । ३न ब्राह्मण्य । ४क ०ष्टिकी वृद्धि धर्मज्ञाने निषेध मे । उ० ।
 ५न. पुष्टान्न । न पिष्टान्न । ६०क ०दा प्रोक्त मनीषिणि । ख ०दा प्रोक्त महा० । ७न. ०ज्वा गृह्ययोगी
 प्रजा ते । ते० । ८ग ०पाहृत । ९०षो ब्राह्मण स्ते० । १०क चौरस्त्यसन्न० । ११न. दुराशी । १२. न. ०पी ।
 हीनाचारो शुचिर्नित्य ५० ।

गुह्यतपो गुरुद्वेषो गुरुकुत्सारतिश्च' यः । ब्रह्मद्विद्वाऽपि पतति ब्राह्मणे ब्रह्मयोनिः ॥३१॥
 एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभंराचरितंस्तथा । शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्द्वैश्यः क्षत्रियनां व्रजेत् ॥३२॥
 शूद्रः कर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि । सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्छोपाद्रकृतभोजनः ॥३३॥
 शुभ्रूपां परिचर्यां यो ज्येष्ठवर्णं प्रयत्नतः । कुर्यादविमनाः श्रेष्ठः सततं सत्पथे स्थितः ॥३४॥
 देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यवृत्तव्रतः । ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ॥३५॥
 दक्षः शिष्टजनान्वेषी शोषाद्रकृतभोजनः । वृथा मांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ॥३६॥
 ऋतवागनहवादी निर्वृद्धः' सामकोविदः । यजते नित्ययज्ञेऽथ स्वाध्यायपरम' शुचिः ॥३७॥
 दान्तो' ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णानसूयकः' । गृहस्थव्रतमातिष्ठन्दिवाकृतभोजनः ॥३८॥
 शोषाशी विजिनाहारी निष्कामो निरहंवदः । अग्निहोत्रमुपासीनो जुह्वानश्च यथाविधि ॥३९॥
 सर्वातिथ्यमुपातिष्ठञ्छोपाद्रकृतभोजनः । व्रतान्निमात्रविहितं वैश्यो भवति च द्विजः ॥४०॥
 स वैश्यः क्षत्रियकुले शुचिर्भूति जायते । स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ॥४१॥
 उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति संस्कृतः । 'ददाति यजते यज्ञं' समुद्धैराप्तदक्षिणः ॥४२॥
 अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा । 'आर्द्रहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥४३॥

योनि से च्युत हो जाता है ॥३१॥ देवी ! इन (ब्राह्मण-) कर्मों से तथा शुभ आचरणों से शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और वैश्य क्षत्रिय हो जाता है ॥३२॥ न्यायपूर्वक तथा विधानपुरस्सर समस्त कर्मों को करने वाला, सब का स्वागत करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, यत्न से श्रेष्ठ वर्णों की सेवा करने वाला, मनोमालिन्य को हटा कर सदा सत्य पर दृढ़ रहने वाला, देव-ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, सबका आतिथ्य करने वाला, ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाला, नियमपूर्वक भोजन करने वाला, प्रवीण, सम्यक् मनुष्यों का अनुगमन करने वाला और व्यर्थ मांस न खाने वाला शूद्र वैश्यत्व को प्राप्त करता है ॥३३-३६॥ सत्यवादी, अग्निमानसूय, द्वन्द्वरहित, सामवेद का पण्डित, नित्य यज्ञवर्ता, स्वाध्याय में निरत, पवित्र, इन्द्रियों का दमन करने वाला, ब्राह्मणों का सत्कार करने वाला, किसी वर्ण की निन्दा न करने वाला, गृहस्थों का व्रत धारण करने वाला, दो समय भोजन करने वाला, अवशिष्ट अन्न खाने वाला, भोजन पर नियन्त्रण रखने वाला, कामनारहित, अग्निहोत्री, विधानपूर्वक हुक्म करने वाला, सब का आतिथ्य करने वाला और गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियों की उपासना करने वाला वैश्य ब्राह्मण हो जाता है ॥३७-४०॥ वह वैश्य महान् क्षत्रिय-कुल में जन्म लेता है । वह वैश्य जन्मप्रभृति सत्कारों से युक्त क्षत्रिय होता है ॥४१॥ वह उपनयन संस्कार से युक्त व्रतपरायण ब्राह्मण होता है और पूर्ण दक्षिणा देकर यज्ञ करता है ॥४२॥ वेदाध्ययन करने स्वर्ग की कामना से तीनों अग्नियों की उपासना करता है । सदा दानशील होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता है । सत्यव्यवहार करते हुए पवित्र विचार रखता है । धर्म, काम और अर्थ का साधन करते हुए धर्म-

१क. ०रतश्च । २क. ०ति । सुमावद्वान् ० । ३ग. ०ऽऽ साम ० । ४क. दीनो । ५ग. ०वर्णवृम्भक' ।

६क. ०तमन्विच्छन्दि ० । ७क. ०निमन्त्रवि ० । ८क. ०निमन्त्रावि ० । ९क. तदाऽपि । १०क. आनं ह ० ।

सत्य सत्यानि कुरुते नित्य य शुद्धिदर्शन । धर्मदण्डेन निर्दग्धो धर्मकामार्थसाधक ॥४४॥
 यन्त्रित कार्यकरणं पटभागकृतलक्षण । ग्राम्यधर्मात्तं सेवेत 'स्वच्छन्देनार्थकोविद ॥४५॥
 ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा । सदीपवासी नियतं स्वाध्यायनिरत शुचि ॥४६॥
 वहिस्कान्तरिते (?) नित्य शयानोऽस्ति सदा गृहे । सर्वातिथ्य त्रिवर्गस्य कुर्वाण सुमना सदा ॥४७॥
 श्राद्धाणां 'चापन्नकामानां नित्य 'सिद्धमिति श्रुवन । स्वार्थाद्वा यदि वा 'कामात् किञ्चिदुपलक्षणेन' ॥४८॥
 पिनदेवातिथिकृते साधन कुरुते च यत । स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भक्ष्यमेव च ॥४९॥
 द्विकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि । गोब्राह्मणहितायार्थं रणे च अभिमुखो हत ॥५०॥
 त्रेताग्निमन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत् । शानविज्ञानसपन्नं सस्कृतो वेदपारग ॥५१॥
 वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रिय स्वेन कर्मणा । एतं कमफलं देवि न्यूनजातिकुलोदभव ॥५२॥
 शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति सस्कृत । ब्राह्मणो वाऽप्यसद्वृत्तं सवसकरभोजन ॥५३॥
 स ब्राह्मण्यं समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृश । कर्मभिः शुचिभिर्देवो शुद्धात्मा विजितेन्द्रिय ॥५४॥
 शूद्रोऽपि द्विजवत्सत्त्वमिति ब्रह्माऽप्रबोत्सवधम् । 'स्वभावकर्मणा चैव घट (श्च) 'शूद्रोऽधिनिष्ठति ॥५५॥
 विशुद्धं स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मति । न योनिर्नापि सत्पारो न श्रुतिर्न च 'सतति ॥५६॥

दण्ड धारण करता है । कार्यों के अनुसार दण्ड (राजनीति) को (संधि विग्रह) आदि छह भागा में विभक्त कर देता है । अर्थशास्त्र का ज्ञाता मनुष्य स्वतन्त्रता से ग्राम्य-धर्मों की सेवा न करे ॥४२-४५॥ धर्मात्मा व्यक्ति सदा ऋतुवर्षा में पत्नीयमन करे । नियमपूर्वक उपवास करने वाला स्वाध्याय में निरत पवित्र सदा दीप रहित (?) घर में गयन करने वाला सब वा आतिथ्य करने वाला सदा प्रसन्न मन से धर्म अर्थ और काम का साधन करने वाला अन्नभिलाषी शूद्रा से नित्य सिद्ध ही है यह कहने वाला स्वार्थ से या काम से विभीषी हानि नहीं करने वाला पितर देव तथा अतिथिया का पूजन अपने घर में न्यायपूर्वक भिन्नावृत्ति से रहने वाला दोनों समय विधान पूर्वक अग्निहोत्र करने वाला गो-ब्राह्मण क निर्मित मुद्र म भरने वाला तीनों अग्नियों की उपासना से पवित्र ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न सत्कारयुक्त और वेदपारग धर्मात्मा वैश्य अपने धर्म से क्षत्रिय हो जाता है ॥४६-५१॥ देवी ! इन धर्मों के फल से नीच कुल में उत्पन्न शूद्र भी वेदसम्पन्न सस्कृत ब्राह्मण हो जाता है । असद्वृत्ति तथा सबका साथ मात्रान करने वाला ब्राह्मण मा ब्रह्मणत्व को त्याग कर बैसा शूद्र बन जाता है । पवित्र धर्मों से युक्त शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रिय शूद्र भी ब्राह्मण की तरह पूज्य है—यह साक्षात् ब्रह्म में कहा है । स्वमात्रसिद्ध धर्मों से युक्त शूद्र द्विजातियों से पवित्र है—यह मेरा मत है ॥५२-५५॥ ब्राह्मणत्व का कारण न योनि है न सत्कार है, न श्रुति है और न सत्तान ही है । वृत्त (आचरण) ही इसका कारण है । लोक में आचरण से ब्राह्मण माना

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् । सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥५७॥
 वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च 'गच्छति । ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः ॥५८॥
 निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः । एते ये विमला देवि स्थानाभावनिदर्शकाः ॥५९॥
 मयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः । ब्रह्मणो हि महत्त्वेन लोके चरति पादवत् ॥६०॥
 यस्तत्र बीजं पतति सा कृपिः प्रेत्य भाविनी । संतुष्टेन सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना सदा ॥६१॥
 ब्राह्मं हि मार्गमाश्रम्य वर्तितव्यं दुभूपता । संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वं गृहमेधिना ॥६२॥
 नित्यं स्वाध्याययुक्तेन न चाध्ययनजीविना । एवंभूतो हि यो विप्रः स्ततः सत्पथे स्थितः ॥६३॥
 आहिताग्निग्धीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते । ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना ॥६४॥
 योनिप्रतिग्रहादानः कर्मभिश्च शुचिस्मिते । एतत्ते गृह्यमाख्यात यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ॥
 ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे संकरजातिलक्षणवर्णनं नाम
 त्रयोविंशत्यधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

जाता है ॥५६-५७॥ वृत्त में स्थित शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है । सुन्दर कटि वाली । ब्राह्मण का स्वभाव
 सब जगह समान है—यह मेरा मत है ॥५८॥ निर्गुण, निर्मल ब्रह्म जिसमें वास करता है, वह ब्राह्मण है । देवी ।
 प्रजा की सृष्टि करने वाले स्वयं वरदायक ब्रह्मा ने कहा है कि स्थानाभाव के उदाहरणस्वरूप निर्मलचित्त वाले जो
 हैं वे ब्राह्मण हैं । लोक में ब्रह्मा का महान् क्षेत्र पैर की तरह चलता है ॥५९-६०॥ उसमें जो बीज डाला जाता है,
 वही कृपि के रूप में उत्पन्न होता है । मनुष्य को सदा संतुष्ट एवम् सत्पथावलम्बी होना चाहिये ॥६१॥ होन-
 वरी कृपि के रूप में उत्पन्न होता है । मनुष्य को सदा संतुष्ट एवम् सत्पथावलम्बी होना चाहिये ॥६२॥ जो
 ब्राह्मण नित्य स्वाध्याय से युक्त, अध्ययन द्वारा जीविका न बमाने वाला सदा सत्पथ पर स्थित, वेदाध्ययन करने वाला
 और अभ्यासान करने वाला है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ॥६३॥ देवी । ब्राह्मणत्व प्राप्त कर यत्न-
 पूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिये । पवित्र हास्य करने वाली । योनि के आदान-प्रदान (परिवर्तन) से तथा कर्मों
 से जैसे शूद्र ब्राह्मण हो जाता है या ब्राह्मण धर्मभ्रष्ट होकर शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है, वह रहस्य तुमसे
 खला दिया ॥६४-६५॥

श्रीब्रह्मपुराण में संकरजातिलक्षणवर्णनं नामक
 दो सीं तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२३॥

१४ स ०ति । ब्राह्मणश्च भवेच्छूद्रोऽप्येववृत्तश्च मे । २४. ०भाषा निरूपका । ३४ पुरा । ४४
 दावत् । ५४. दुभूपणा । ६४. योनि प्र० ।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसवादे मानवानामुत्तमगतिप्राप्तिवर्णनम्

उमोवाच

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत । धर्माधर्मं नृणां देव ब्रूहि मे सशय विभो ॥१॥
 कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्देहि न सदा । बध्यन्ते बन्धनं कर्वा मुच्यन्ते वा कथं वद ॥२॥
 केन शीलेन वै देव कर्मणा कीदृशेन वा । समाचारेणुं कर्वा भव्यं यान्तीह मानवा ॥३॥

शिव उवाच

देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्य उमे सदा । सर्वप्राणहितं प्रश्नं धूयतां बुद्धिवर्धन ॥४॥
 सत्यधर्मरता शान्ता सर्वलिङ्गविवाजिता । नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसशया ॥५॥
 प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञा सर्वज्ञा सर्वदर्शिनः । वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषा कर्मबन्धनं ॥६॥
 कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन । ये न भग्नान्ति कस्मिंश्चित्ते न च्यवन्ति कर्मभिः ॥७॥
 'प्राणातिपाताद्विरता' शीलवन्तो दयान्विता । तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनं ॥८॥

अध्याय २२४

मनुष्यो को उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा बोली—भगवन् ! अखिल प्राणियों के ईश्वर ! देवराक्षसों से नमस्कृत ! देव ! सबशक्तिमान् ! मनुष्यों के धर्म-अधर्म के विषय मैं मुझे सदेह है उसे दूर कीजिये । वायिक, वाचिक, मानसिक—इन तीन प्रकार के कर्मों में किस कर्म का द्वारा प्राणी सदा बद्ध होता है और किस कर्म के द्वारा उसकी मुक्ति होती है—यह मुझे बतलाइये । देव ! किस स्वभाव से या किस कर्म से या किस तरह के आचरण से या किन गुणों से मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ? ॥१॥ ३॥

शिव बोले—देवी ! धर्म-अधर्म के तत्त्व को जानने वाली ! सदा धर्म में निरत रहने वाली ! तुम्हारा प्रश्न समस्त प्राणियों का बल्याणकारक तथा बुद्धिवर्धक है ॥४॥ सुनो । सत्य और धर्म में रत शान्त, सब प्रकार के लालचों से रहित तथा सदेहशून्य पुरुष धर्म या अधर्म से बद्ध नहीं होते हैं ॥५॥ उत्पत्ति तथा प्रलय के तत्त्व को जानने वाले सबग, सर्वदर्शी तथा रागशून्य पुरुष धर्म-बन्धनों में नहीं पड़ते हैं ॥६॥ जो कर्म से मन से तथा वाणी से किसी की हिंसा नहीं करते हैं और जो किसी में आसक्त नहीं होते हैं, वे कर्मों से बद्ध नहीं होते हैं ॥७॥ जो जीव हिंसा से परे शीलवान् दयावान् शत्रु मित्र में सम बुद्धि वाले तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं वे कर्म-बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥८॥ जो अखिल प्राणियों पर दया करने वाले, समस्त जीवों का विश्वासापात्र

१५ ० धर्मो नृ० । २४ बुद्धिवर्धनि । ३४ स वदन्त । ४४ स सान्ति । ५४ स बध्यन्ति ।
 ६४ प्राणनिवृत्तुः । ७४ ० प्राणिनां ।

सर्वभूतदयावन्तो विश्वाम्याः सर्वजन्तुषु । 'त्यक्तहिंस्रसमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९॥
 परस्वनिर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः । धर्मलब्धार्थभोवतारस्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१०॥
 मातृवत्स्वस्वच्छैव नित्यं दुहितृवच्च ये । परदारेषु धर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥११॥
 स्वदारनिरता ये च श्रुतुकालाभिगामिनः । अप्राप्त्यनुसुखभोगाच्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१२॥
 स्तन्याश्रिवृत्ताः सततं सतुष्टाः स्वधनेन च । स्वभाग्यानुपजीवन्ति ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१३॥
 परदारेषु ये नित्यं चारित्रावृत्तलोचनाः । जितेन्द्रियाः शीलपरारते नरा स्वर्गगामिनः ॥१४॥
 एष देवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः । अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा धर्मः ॥१५॥
 अवृथापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा धर्मः । दानकर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥
 स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेध्यस्तद्यत उत्तरः ॥१६॥

उमोवाच

वाचा तु 'वध्यते येन' मुच्यते ह्यथवा पुनः । तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥१७॥
 शिव उवाच
 आत्महेतोः परार्थे वा अधर्माश्रितमेव च । ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१८॥

तथा हि सावृत्ति से निवृत्त है, वे स्वर्ग जाते हैं ॥९॥ दूसरे के धन में ममता न करने वाले, परस्त्री-प्रसंग से रहित तथा धर्मपूर्वक प्राप्त धन के भोक्ता मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता, बहन तथा बेटी की तरह देखते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥११॥ जो मनुष्य अपनी स्त्री में निरत, श्रुतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाले तथा ग्राम्य-मुख-भोग से रहित हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१२॥ जो चोरी से रहित सदा अपने धन से सतुष्ट और और अपने माय के भरोसे जीते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को देसकर चरित्ररक्षा के लिये आँखें मूढ़ लेते हैं और जितेन्द्रिय एवम् शीलवान् हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१४॥ मनुष्य इस देवमार्ग का सदा अनुसरण करे । विद्वान् मनुष्य शिष्टसम्मत मार्ग का सदा सेवन करे । पण्डित जन सदा निरुद्ध मार्ग का अवलम्बन करें ॥१५॥ दान, कर्म, तपस्या, शील, शौच तथा दया से युक्त एवम् स्वर्ग की कामना करने वाले मनुष्य इससे भिन्न मार्ग को कभी न अपनार्यें ॥१६॥

उमा बोलीं—भूतपते ! निष्पाप ! जिन वाचिक कर्मों से मनुष्य बद्ध होता है अथवा मुक्त होता है, वे मुझे बतलाइये ॥१७॥

शिव बोले—जो मनुष्य अपने लिये या दूसरे के लिये असत्य नहीं बोलते, वे स्वर्ग जाते हैं । जो मनुष्य

१क य ०हिमास० । २क ०या शौच० । ३ग कुर्ष । ४रा ०च । कर्मभिर्विषय वध्यत यैर्वा मुच्यत पूर्य । ता० । ५क बदते । ६क ये तु मुखते । ७ग वा माहात्म्यध्वनात्तया । य ।

वृत्रयं धर्महेतोर्वा कामकारास्तथैव च । अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१९॥
 श्लक्ष्णां वाणीं 'मृच्छवर्णां' मधुरां पापवर्जिताम् । स्वर्गतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२०॥
 पश्य ये न भाषन्ते कटुवं निष्ठुरं तथा । न पशुन्यस्ताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२१॥
 पिशुनं न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरं तथा । परपोडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२२॥
 ये वर्जयन्ति 'पश्यं' परद्रोहं च मानवाः । सर्वभूतसमा^१ दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२३॥
 शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः । सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२४॥
 न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम् । शान्तिं विन्दति ये वृद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२५॥
 एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः । शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया मूढा बुधैः ॥२६॥

उमोवाच

मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा । तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिताकथूक् ॥२७॥

महेश्वर उवाच

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा । स्वर्गे गच्छन्ति कल्याणि तन्मे वीर्तयतः शृणु ॥२८॥
 दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीतान्तराकृतिः । नरो बध्येत येनेह शृणु वा तं शुभानने ॥२९॥
 अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा । मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३०॥

जीविका के लिये या धर्म के निमित्त या स्वेच्छा से असत्य भाषण नहीं करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य कोमल, स्फीत, मधुर तथा पाप-रहित वाणी बोलते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य बठोर तथा बटु बचन नहीं बोलते हैं तथा चुगली नहीं करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य मित्रों में फूट नहीं डालते हैं और दूसरे को पीडा नहीं देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दूसरे से द्रोह नहीं करते हैं, समस्त प्राणियों में समान भाव रखते हैं और इन्द्रियो का दमन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य दुष्टभाषण से रहित, विरोध-भूत तथा मधुरभाषी हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो मनुष्य श्रेष्ठ से हृदयविदारक बचन नहीं बोलते हैं और वृद्ध होने पर भी तुल्य शान्त हो जाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। देवी ! मनुष्य सदा इस वाचिक धर्म का पालन करे। विद्वान् मनुष्य शुभ तथा सत्यगुणों से युक्त होकर असत्य वा परित्याग करे ॥१८-२६॥

उमा बोलीं—महाभाग ! धनुषधारी ! देवों के देव ! जिस मानसिक कर्म से मनुष्य बद्ध होता है, वह मुझे बतलाइये ॥२७॥

महेश्वर ने कहा—वत्प्राणमयी ! मानसिक धर्म से युक्त पुरुष स्वर्ग जाते हैं—इसके बारे में मुझसे सुनो । पवित्र मुख वाली ! जिस मनुष्य का मन तथा अन्तरात्मा दूषित है, वह बद्ध होता है। जो वन में तथा एकाग्र स्थान में दूसरे के पदों हुए घन को देखकर मनसे भी उसे ग्रहण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो मनुष्य एकाग्र में दूसरे की स्त्री का देखकर मन से भी उगरे साथ पापाचरण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है। जो

१३ निराश्रया । १४ निरापारा । १५ ०करी निरम् । १६ मित्रंस्तु भाषन्ते ते । १७ सनत । ४४ स ०गदा शान्ता ० । ५५ बाध्यते ।

तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः । मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३१॥
 शत्रु मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः । भजन्ति मंत्र्यं संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३२॥
 श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः । स्वैरर्थैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३३॥
 अवेरा ये स्वनायासा मंत्रचित्तरताः । सदा । सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३४॥
 ज्ञातवन्तः क्रियावन्तः क्षमावन्तः सुहृत्प्रियाः । धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३५॥
 शुभानामशुभानां च कर्मणा 'फलसंचये । निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३६॥
 'पापोपेतान्वर्जयन्ति देवद्विजपरा' सदा । 'समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३७॥
 शुभं' कर्मफलं देवि मयं ते परिकीर्तिताः । स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥३८॥

उमोवाच

महाग्ने संशयः 'कश्चित्मर्त्याग्रिप्रति महेश्वर । तस्मात्त्वं निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥३९॥
 केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरयः प्रभो' । तपसा वापि देवेश केनाऽऽयुर्लभते महत् ॥४०॥
 क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः । विपाकं कर्मणां देव 'ववतुमर्हस्यनिन्दित ॥४१॥
 अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे । अकुलीनाः कुलीनाश्च संभवन्ति तथा परे ॥४२॥

मनुष्य शत्रु तथा मित्र के साथ समान नाव से व्यवहार करता है, वह स्वर्ग जाता है । जो मनुष्य वेदों के ज्ञाता, दयावान्, पवित्र, सत्यात्मा तथा अपने धन से संतुष्ट हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । जो शत्रुता से रहित, अनायास ही सदा सबसे मैत्री करने वाला तथा प्राणी मात्र पर दया करने वाला है, वह नर स्वर्ग जाता है । जो ज्ञानी, क्रियाशील, क्षमा चान्, कृप्युश्च वा प्रिय तथा धर्म-अधर्म का ज्ञाता है, वह स्वर्ग जाता है । देवी ! जो मनुष्य शुभ-अशुभ कर्मों का फल नहीं चाहता है, वह स्वर्ग जाता है । जो पापियों से अलग रहता है, देव-ब्राह्मणों की सेवा करता है और अपने धर्म में निरत रहता है, वह स्वर्ग जाता है । देवी ! शुभ कर्मों के द्वारा जैसे क्षीण स्वर्ग जाते हैं, वह मैंने बतला दिया । अब फिर क्या सुनना चाहते हो ? ॥२८-३८॥

उमा ने कहा—महेश्वर ! मनुष्यों के बारे में मुझे एक सदेह है । दक्षतापूर्वक आप उसका निराकरण कीजिए । प्रभो ! किस कर्म से मनुष्य दीर्घायु लाभ करता है ? देवेश ! किस तप से मनुष्य की आयु बढ़ जाती है ? पृथ्वी पर मनुष्य किस कर्म से क्षीणायु होता है ? देव ! निन्दा से रहित । कर्मों का परिणाम आप बतलायें । कोई मनुष्य महामाग्यवान् होते हैं तो कोई भाग्यहीन होते हैं । कोई कुलीन होते हैं तो कोई अकुलीन होते हैं ।

१क ०न । श्रद्धावन्तो न ये । ख न । श्रद्धावन्तश्च ये । २क मैत्री । ३ख मैत्रीचित्तारः । ४ग ०न । श्रद्धावन्तो दयावन्तः सौख्याः सौख्यजनप्रिया । ५ख ग ०चयम् । विपाकज्ञाश्च । ६ख ख पापादोषता ये देवि दे० । ७ख ०नपरा ये च ते न० । ८ख ०चित्तस्त्वान्त्र० । ९क ०यो । गतायुरपि । १०ख ०स्थोपेतः । अ० ।

दुर्दर्शा केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव । प्रियदर्शस्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥४३॥
दुःप्रज्ञा केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः । महाप्रज्ञास्तथा चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥४४॥
अल्पवाचास्तथा केचिन्महावाचास्तथा परे । दृश्यन्ते पुरुषा देव ततो व्याख्यातुमर्हन्ति ॥४५॥

शिव उवाच

हन्त तेषां प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् । मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वं फलमश्नुते ॥४६॥
प्राणातिपत्नी योगोन्द्रो दण्डहस्तो नरः सदा । नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणाधरः ॥४७॥
निर्दयः सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारकः । अपि कोटपतङ्गानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥४८॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते । विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते ॥४९॥
निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिंसकः । यातनां निरये रौद्रां सकृच्छ्रां लभते नरः ॥५०॥
यः कश्चिन्निरयात्सस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् । मनुष्यं लभते वापि हीनायुस्तत्र जायते ॥५१॥
पापेन कर्मणा देवि युवतो हिंसादिभिर्घतः । अहितः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥५२॥
दुष्मेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः । निष्पिस्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिसति कदाचन ॥५३॥
न घातयति नो हन्ति धनन्तं नवानुमोदते । सर्वभूतेषु मस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥५४॥

कोई लकड़ी की तरह देखने में बठोर मालूम पड़ते हैं तो कोई देखने में प्रिय (बोमल) मालूम पड़ते हैं। कोई मूर्ख है तो कोई पण्डित है। कोई ज्ञान-विज्ञान-रम्पन महापण्डित है। कोई मितभापी है तो कोई बहुभापी। देव ! ऐसे पुरुष देखे जाते हैं। इसका कारण आप बतलायें ॥३९-४५॥

शिव ने कहा—देवी ! अच्छा, तो मैं कर्मफल बतलाऊंगा। मृत्युलोके में मनुष्य बर्गों के फल भोगते हैं। प्राण देने वाला योगोन्द्र, दण्ड धारण करने वाला, सदा अस्त्र-शस्त्रों से युक्त रहने वाला मनुष्य भूतगणों को मारता है। प्राणीमात्र पर दया न करने वाला, सब को उद्विग्न करने वाला, कीटपतंग पर्यन्त किसी को भी धारण न देने वाला तथा अत्यन्त घृणा करने वाला मनुष्य नरक जाता है। इससे विपरीत धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग जाता है। हिंसक मनुष्य नरक जाता है और अहिंसक स्वर्ग जाता है। नरक में मनुष्य मयबुर यातना प्राप्त करता है। जो कोई बर्ग उस नरक से निकल आता है, वह अत्यायु होकर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है। देवी ! जिसलिये मनुष्य हिंसा आदि पापकर्म करता है और समस्त प्राणियों का अहित करता है, इसलिये वह अत्यायु होता है। देवी ! जो शुभ बर्गों से युक्त, जीव-हिंसा से रहित तथा शस्त्र एवम् दण्ड से युक्त होकर न किसी को मारता है, न मारने वालों का अनुमोदन करता है और अपने आत्मा की तरह अखिल प्राणियों से प्रेम करता है, वह देवत्व को

१९० नित्यमुद्यतशस्त्राधरे। प्रि०। २९ स० लवाचास्त०। ३९० मुल्लङ्घ्य शस्त्रं च ह०।
४६ स० उद्विगीलानाम०। ५९ मुदृच्छ्रां। ६९ ०ते। यन्तु दुष्कर्मिजानीय प्राणघातविवर्जं। निशि०।
७९ निदग्मा।

ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते । उपपन्नान्सुखान्भोगान्सदाऽऽप्नोति मुदा युतः ॥५५॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते । एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम् ॥
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसंवादे देवलोकप्राप्तिकारणकथनम्

उमोवाच

किंशीलः किसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः । स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥१॥

महेश्वर उवाच

दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु । भक्षभोग्यान्नपानानां वाससां च महामतिः ॥२॥
प्रतिभयान्तभाः कुर्यात्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा । नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयतः शुचिः ॥३॥
आसनं शयनं धानं गृहं रत्नं धनं तथा । सस्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्ययं योयितः ॥४॥

प्राप्त करता है । यदि कदाचित् वह मनुष्यलोक में उत्पन्न होता है तो हर्ष से समस्त सुखों का भोग करता है । सुकर्मी,
सदाचारी तथा जीवहिंसारहित दीर्घायु मनुष्यों का यह मार्ग ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट है ॥४६-५६॥

श्रीब्रह्महमपुराण में धर्मनिरूपण नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२४॥

अध्याय २२४

शिव-पार्वती के संवाद में देवलोक की प्राप्ति का कारण बताना

पार्वती बोलीं—कैसे स्वभाव तथा आचरण वाला पुरुष किन कर्मों से या किस दान से स्वर्ग-प्राप्ति
करता है ? ॥१॥

शिव बोले—देवी ! जो मनुष्य ब्राह्मणों का आदर करता है, दीन-दुखियों को भक्ष्य-भोग्य आदि अन्न,
पान तथा वस्त्र देता है, लोगों की आश्रय देता है, व्याऊँ, पोखरा आदि खुदवाता है, पवित्रतापूर्वक नित्यकर्म आदि
करता है और शान्त चित्त से लोगों को आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, धान्यसम्पन्न क्षेत्र तथा स्त्रियाँ

सुप्रशान्तमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः । एवंभूतो नरो देवि देवलोकोऽभिजायते ॥५॥
 'तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् । सहासरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु ॥६॥
 तस्माच्छ्रुतो महेशानि मानुषेयपजायते । महाभागकुले देवि धनधान्यसमाचिते ॥७॥
 तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदाऽन्वितः । 'महाकार्यो महाभागो धनी भवति मानवः ॥८॥
 एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशालिनः' । ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥९॥
 अपरे भानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजाः । येऽन्नानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ॥१०॥
 दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि । याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोलभसमन्विताः ॥११॥
 न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनम् । न गाश्च नाश्वविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥१२॥
 अप्रलुब्धाश्च' ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः । एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः ॥१३॥
 ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् । धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥१४॥
 क्षुत्पिपासापरोताश्च सर्वलोकवहिष्कृताः । निराशाः सर्वभाग्येभ्यो जीवन्त्यधर्मजोविकाः ॥१५॥
 अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः । अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥१६॥
 अपरे दम्भिनो नित्यं मानिनः परतो रताः । आसनाहंस्य ये पीठं न यच्छन्त्यल्पचेतमः ॥१७॥
 मार्गाहंस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः । अर्घाहंस्य च संस्कारैरच्यन्ति ययाविधि ॥१८॥

देता है, वह देवलोक' में जन्म लेता है ॥३-५॥ प्रिये ! वह देवलोक' में चिरकाल तक उत्तम भोगों को भोगकर नन्दन धन आदि स्थानों में अप्सराओं के साथ रमण कर स्वर्गच्युत होने पर मनुष्ययोनि में आता है ॥६॥ देवी ! यहाँ भी वह किसी धनधान्यसम्पन्न महामाग्यवान् के कुल में जन्म लेकर समस्त गुणों से युक्त, महावार्धवील, महायोगी तथा धनी मनुष्य होता है ॥७-८॥ देवी ! ब्रह्मा ने कहा है कि वे दानवील महामाग्यवान् प्राणी सब के प्रिय होते हैं ॥९॥ जो मनुष्य दान करने में कृपण है, जो दुर्बुद्धि मनुष्य अन्न रहने पर भी दान नहीं करते हैं, जो दीन, अग्ये, दुःखी, भिक्षु तथा अतिथियों के भोगने पर भी उनकी रसनेन्द्रिय को तृप्त नहीं करते हैं, जो धन, वस्त्र, भोग-मदार्ग, सुवर्ण, गाय तथा अन्न नहीं देते हैं, जो लोभी, नास्तिक तथा दानवर्जित हैं, वे सब बुद्धिहीन मनुष्य नरक जाते हैं ॥१०-१३॥ वे जब काल की गति से मनुष्य-योनि में आते हैं तब उन अल्पबुद्धियों का जन्म दरिद्रकुल में होता है । यहाँ वे भूख-प्यास से व्याकुल, लोगों से बहिष्कृत, समस्त भोगों से वंचित तथा अधर्मपूर्वक जीवन बिताने वाले होते हैं ॥१४-१५॥ देवी ! ऐसे कर्मों के द्वारा मनुष्य अल्पभोग भोगने वाले कुल में जन्म लेकर दरिद्रता से जीवन बिताने हैं ॥१६॥ जो मनुष्य दम्भ तथा अभिमान करते हैं, जो दुर्बुद्धि आसन देने योग्य पुरुष को आसन नहीं देते हैं, जो बुद्धिहीन मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग नहीं देते हैं, जो अर्थ चक्रव्यवहारे जाने योग्य व्यक्ति को पाद-आचमनीय नहीं देते हैं तथा उनकी पूजा नहीं करते हैं, जो प्रेम से पुरुष की पण्डना नहीं करते हैं, जो लोभ

पादाचमनीयं वा प्रयच्छन्त्यभिबुद्धयः । शुभं चाभिमतं प्रेम्णा गुरुं नाभिवदन्ति ये ॥१९॥
 अभिमानप्रवृद्धेन लोभेन' सममास्थिताः । समान्याश्चाधमन्यन्ते' वृद्धान्परिभवन्ति च ॥२०॥
 एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः । ते चेद्यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति च ॥२१॥
 'वर्षपूर्वस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले । द्रवपाकपुत्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम् ॥२२॥
 कुलेषु तेऽभिजायन्ते गुरुवृद्धोपतापिनः । न दम्भी' न च मानो यो देवतातिथिपूजकः ॥२३॥
 लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रसूतो मधुरं वचः । सर्वकर्मप्रियकरः सर्वभूतप्रिय सदा ॥२४॥
 अद्वेषो सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा । स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहंसकः ॥२५॥
 यथायं सत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठने । मार्गाहाय ददन्मार्गं गृहमन्यर्चयन्सदा ॥२६॥
 अतिथिप्रहरतस्तथाऽभ्यागतपूजकः । एवंभूतो नरो देवि स्वर्गंति प्रतिपद्यते ॥२७॥
 ततो 'मानुष्यमासाद्य विशिष्टकुलजो भवेत् । तत्रासी विपुलंभोगः सर्वरत्नसमायुतः ॥२८॥
 ययाहुंदाता' चाहंपु धर्मचर्यपरो भवेत् । संमतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ॥२९॥
 स्वकर्मफलमानोति स्वयमेव नरः सदा । एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा' स्वयमीरितः ॥३०॥
 यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयंकरः । हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥३१॥
 लोष्टैः स्तम्भैरुपायैर्वा जन्तून्वाधेत शोभने । हिसार्थं निष्कृतिप्रतः प्रोद्वेजयति चैव हि ॥३२॥

तथा अभिमान से युक्त होकर माननीय व्यक्तियों का अपमान करते हैं और वृद्धों की निन्दा करते हैं, वे सब नरक जाते हैं ॥१७-२०॥ देवी ! वे मनुष्य जब नरको से निकलते हैं तब निन्दित कुल में जन्म लेते हैं । गुरु तथा वृद्ध को खताने वाले मनुष्य निन्दित चित्त वाले चाण्डाल, म्लेच्छ आदि योनियों में जन्म लेते हैं ॥२१-२३॥ जो मनुष्य न दम्भ करते हैं, न अभिमान करते हैं, देवता अतिथियों की पूजा करते हैं, लोभो को नमस्कार करते हैं, मधुर वचन बोलते हैं, समस्त शुभ कर्मों को करते हैं, सदा सब प्राणियों का हित करते हैं, किसी से द्वेष नहीं करते हैं, प्रसन्न रहते हैं स्नेह-युक्त कोमल वाणी बोलते हैं, किसी की हिंसा नहीं करते हैं, सबका स्वागत करते हैं, सत्तिधा करते हैं, मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग देते हैं, गुरु की पूजा करते हैं और अतिथि-अभ्यागतों की सेवा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥२३-२७॥ तदनन्तर वे मनुष्ययोनियों में विशिष्ट कुल में जन्म लेते हैं । वहाँ समस्त रत्नों से युक्त होकर विपुल भोगों को भोगते हैं और धर्मचर्या में निष्ठ रहते हुए योग्य व्यक्तियों को समुचित दान देते हैं । लोग उनका सम्मान करते हैं ॥२८-२९॥ मनुष्य स्वयं अपने विषये कर्मों का फल भोगता है । स्वयं ब्रह्मा का बतलाया हुआ यह धर्म मैंने तुमसे कह दिया ॥३०॥ सुन्दरी ! जो भयंकर कर्म करता है, हाथों से, पैरों से, रस्ती से, लाठी से, डेरों से, खम्भों से तथा अन्य उपायों से जीवों को कष्ट देता है, मन में हिंसा की भावना रखता है, लोगों को

१क ०न सुसमन्विता । २ख ०न्ते विद्वान्प्र० । ३क ०पूगास्त० । ४क ख स्तम्भी । ५क ख ०प्राविश वि० । ६क ०याहं सर्ववर्णेषु ब्रह्मचर्यप० । ७ख ०या च यमादिभि । ४० ।

उपक्रामति जन्तुश्च उद्वेगजननः सदा । एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥३३॥
 स चेन्मनुष्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्यायात् । बह्वाधाधापरिविलष्टे कुले जयति सोऽधमे ॥३४॥
 'लोकद्विष्टोऽधमः पुतां स्वयं कर्मकृते पलेः । एष देवि मनुष्येषु ब्रह्मव्यो ज्ञातिबन्धुषु ॥३५॥
 अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति । मंत्रो दृष्टिः पितृसमो निर्वरो नियतेन्द्रियः ॥३६॥
 मोद्वेजयति भूतानि न च हन्ति दयापरः । हस्तपादंश्च नियते विश्वास्य सर्वजन्तुषु ॥३७॥
 न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टेनोऽऽयुधेन च । उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः ॥३८॥
 एवं शीलसमाचारः स्वयं समुपजायते । तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥३९॥
 स 'चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते । अल्पायासो निरातङ्गकः स जातः सुखमेधते ॥४०॥
 सुखभागी निरायासो निष्ठ्वेग सदा नरः । एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥४१॥

उमोवाच

इमे मनुष्या 'दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः । ज्ञानविज्ञानसंपन्ना प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः ॥४२॥
 दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः । केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावानुरूपो भवेत् ॥४३॥
 अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानव । एवं त्वं संशयं छिन्धि सर्वधर्मभृतां वर ॥४४॥

उद्विग्न करता है तथा जन्तुओं का दमन करता है, वह स्वभाव तथा आचरण से दूषित व्यक्ति नरक जाता है ॥३१-३३॥ यदि बालकम से वह मनुष्ययोगि में जाता है तो अनेक बाधाओं से परिपीडित नीच कुल में जन्म लेता है । लोग उससे द्वेष करते हैं । इस प्रकार वह अथम मनुष्य अपने बगों का फल पाता है । देवी ! मनुष्यों को सबके साथ माई-बन्धुओं की तरह व्यवहार करना चाहिये ॥३४-३५॥ जो समस्त प्राणियों पर दया करता है, पिता के समान भाव रखता है, सबको मित्रता की दृष्टि से देखता है, किसी से बैर नहीं करता है, इन्द्रियों को बरा में रखता है । प्राणियों को उद्विग्न नहीं करता है, हाथ-पैरों से किसी का कष्ट नहीं देता है, सबका विश्वासपात्र बनकर रहता है, रस्सी, लाठी, डेले तथा हथियारों से किसी को हानि नहीं पहुँचाता है और दयामुक्त होकर शुभ कर्म करता है, वह सुन्दर स्वभाव तथा आचरण वाला व्यक्ति स्वर्ग जाता है ॥३६-३८॥ वहाँ वह दिव्य भवन में देवता की तरह हर्ष से रहता है । यदि वह मनुष्य स्वर्गच्युत होने पर मनुष्ययोगि में जाता है तो बिना कष्ट-परिथम से सुखपूर्वक जीवन बिताता है ॥३९-४०॥ उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती, परिथम नहीं करता पड़ता, बल्कि सुख ही सुख मिलता रहता है । देवी ! यही सज्जनों का मार्ग है, जहाँ कोई बाधा नहीं होती ॥४१॥

उमा बोलीं—देव ! कोई मनुष्य तो तर्ज-वितर्क करने में विचारद, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, बुद्धिमान तथा तत्त्व के ज्ञाता होते हैं और कोई ज्ञान-विज्ञान से रहित मूर्ख होते हैं । तीन नेत्र वाले ! (अब कहिये) जिस कर्म के परिणाम से पुरुष विद्वान् होता है और जिस कर्म के फल से मूर्ख होता है ? समस्त धर्मपारिया में घेष्ट ।

जात्यन्धाश्चापरे देव रोगातश्चापरे तथा । नराः बलीबाधे दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥४५॥

महेश्वर उवाच

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा । परिपृच्छन्त्यहर्हः कुशलाकुशलं सदा ॥४६॥
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा । लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके यथासुखम् ॥४७॥
स चेन्मनुष्यतां याति मेधावी तत्र जायते । श्रुतं 'यज्ञानुगं' यस्य कल्याणमुपजायते ॥४८॥
परदारेषु ये चापि 'वधुर्दुष्टं' प्रयुञ्जते । तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि ॥४९॥
मनसापि प्रदुष्टेन नृणां पश्यन्ति ये स्त्रियम् । रोगार्तास्ते भवन्तीह 'नरा दुष्कृतकारिणः' ॥५०॥
ये तु मूढा दुराचारा विधोनी मयुने रताः । पुण्येषु सुदुष्प्राजाः बलीबन्धमुपयान्ति ते ॥५१॥
पशून् ये च बध्नन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः । प्रकीर्णमयुना ये च बलीबाध जायन्ति वै नराः ॥५२॥

उमोवाच

अवद्यं किं तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च । श्रेयः कुर्वन्नवानोति मानवो देवसत्तम ॥५३॥

महेश्वर उवाच

श्रेयासं मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान् । धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥५४॥

इस सत्य को आप धूर कीजिये । कोई मनुष्य तो जन्मान्ध होते हैं और कोई रोगी तथा नपुंसक होते हैं । इसका क्या कारण है ? मुझे बतलाइये ॥४२-४५॥

महेश्वर बोले—जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणों, सिद्धों तथा धर्मज्ञों से प्रतिदिन कुशल-समाचार पूछते हैं और अपने कर्मों का त्याग कर शुभ कर्म करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं और इस लोक में सुख भोगते हैं । वे यदि मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं तो मेधावी, यज्ञकर्ता तथा श्रुतिवेत्ता होते हैं । उन्हें सुख सामान्य प्राप्त होता है । जो परस्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं, वे दुष्टस्वभाव के कारण जन्मान्ध होते हैं । जो मनुष्य दूषित मन से भी तथा स्त्रियों को देखते हैं, वे पापी तथा रोगी होते हैं । जो मूर्ख तथा दुराचारी मनुष्य मनुष्येतर योनि में मयुन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं । जो मनुष्य पशुओं को बाधते हैं, जो गुरुतलीगमन करते हैं, जो अत्यधिक मयुन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं ॥४६-५२॥

उमा बोलीं—देवों में श्रेष्ठ ! कौन ऐसा अनिन्द्य तथा उत्तम कर्म है, जिसके करने से मनुष्य का कल्याण होता है ? ॥५३॥

महेश्वर ने कहा—जो धर्मान्वेषी तथा गुणाकाङ्क्षी मनुष्य सदा ब्राह्मणों से कल्याण का मार्ग पूछते रहते हैं,

यदि मनुष्यतां देवि कदाचित्सनियच्छति । मेधावी धारणायुक्तः प्राज्ञस्तत्रापि जायते ॥५५॥
एष देवि सतां धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः । नृणां हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृतः ॥५६॥

उमोवाच

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः । ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसंपितुम् ॥५७॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः । अव्रता भ्रष्टनियमास्तयाज्ये राक्षसोपमाः ॥५८॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्मोहाश्च तथा परे । केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥५९॥

महेश्वर उवाच

आप्तमालोकधर्माणा मर्यादा, पूर्वनिर्मिताः । प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते ह दृढव्रताः ॥६०॥
अधर्मं धर्ममित्याहुषं च मोहवशं गताः । अव्रता नष्टमर्यादास्ते नरा ब्रह्मराक्षसाः ॥६१॥
ये वै कालकृतोद्योगात्संभवन्तीह मानवाः । निर्होमा निर्वण्टकारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥६२॥
एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते । कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

वे स्वर्ग का भोग करते हैं । देवी ! यदि कदाचित् यह मनुष्य-योनि मे जन्म लेता है तो धारणायुक्त विद्वान् होता है । देवी ! यही सज्जनों का कल्याणकारक धर्म है । मनुष्यों के हित के लिये मैंने यह बतला दिया ॥५४-५६॥

उमा बोलीं—कोई मनुष्य अल्पज्ञानी, धर्मविद्वेषी तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणों के अपमान करने वाले होते हैं । कोई मनुष्य व्रती, श्रद्धालु तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले होते हैं । कोई व्रत तथा नियमों से च्युत होकर राक्षस के समान होते हैं । कोई यज्ञवर्ता तथा निर्मोही होते हैं । जिस धर्म के परिणाम से ये ऐसे होते हैं ? मुझे बतलाइये । ॥५७-५९॥

महेश्वर बोले—वेद, शास्त्र एवं धर्मों की मर्यादा पहिले से ही निर्मित है । दृढव्रती मनुष्य इसी के अनुसार व्रतते हैं । जो मनुष्य मोह में पड़कर अधर्म को धर्म मानता है और व्रत तथा मर्यादा को भग्न करता है, वह ब्रह्मराक्षस होता है । जो मनुष्य बाल की प्रेरणा से निर्मोही तथा वपट्वार (यज्ञ) से धूर्त्य होते हैं, वे नराधम होते हैं । देवी ! तुम्हारा संशय मिटाने के लिये मनुष्यों के कल्याण-अकल्याण रची धर्म-समुद्र का वर्णन किया गया ॥६०-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे धर्मनिरूपण नामक दो सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२५॥

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिमहेश्वरसवादे वासुदेवमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

ध्रुवं सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादितः । हृष्टा बभूव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजः ॥१॥
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारेः समीपतः । तीर्थयानाप्रसङ्गेन गतास्तस्मिन्गिरौ द्विजाः ॥२॥
तेऽपि संपूज्य तं देवं शूलपाणिं प्रणम्य च । पप्रच्छुः संशयं चैव लोकानां हितकाम्यया ॥३॥

मुनय ऊचुः

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षत्रनुविनाशन । पृच्छामस्त्वां जगन्नाथ संशयं हृदि संस्थितम् ॥४॥
संसारोऽस्मिन्महाघोरे भंरवे लोमहर्षणे । भ्रमन्ति सुचिरं कालं पुरुषाश्चात्पमेधसः ॥५॥
येनोपायेन मुच्यन्ते जन्मसंसारबन्धनात् । ब्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि नः ॥६॥

महेश्वर उवाच

कर्मपाशनिबद्धानां नराणां दुःखभागिनाम् । नान्योपायं प्रपद्यामि वासुदेवात्परं द्विजाः ॥७॥
ये पूजयन्ति तं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् । वाङ्मनःकर्मभिः सम्यक्ते यान्ति परमां गतिम् ॥८॥
किं तेषां जीविनेनेह पशुवच्चेष्टितेन च । येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये ॥९॥

अध्याय २२६

शिव और मुनियों के सवाद में वासुदेव की महिमा का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजगण । स्वामी के वचन को आदि से सुनकर जगन्माता पार्वती अत्यन्त प्रसन्न तथा विस्मिता हुई । उस समय शिव के पास बैठे हुए मुनिबृन्द, जो तीर्थ-यात्रा की कामना से उस पर्वत पर गये हुए थे, विशूलधारी शंकर को प्रणाम करते लोगों के कल्याण के निमित्त उनसे सदेह पूछने लगे ॥१-३॥

मुनियों ने कहा—तीन नेत्र वाले ! दक्षत्रनुविनाशन ! आपको नमस्कार है । जगन्नाथ ! हम अपने हृदय का सदेह आपसे पूछते हैं । महामयकर तथा रोमाञ्चकारी इस दारुण संसार में अल्प बुद्धि वाले पुरुष विर बाल तक भ्रमण करते हैं । वे किस उपाय से जन्मरूपी संसारबन्धन से मुक्त होंगे, वह बतलाइये । उसे सुनने के लिये हमें बड़ी उत्प्रेक्षा हो रही है ॥४-६॥

महेश्वर ने कहा—द्विजबृन्द । कर्म-जाल में कैसे दुःखी मनुष्यों के लिये वासुदेव से बढकर दूसरा उपाय तो मुझे नहीं दीखता है । जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा उस शङ्ख-चक्र-गदाधारी देव की पूजा करते हैं, वे परम गति को पाते हैं । जिस मनुष्य का चित्त संसार रूप वासुदेव में नहीं लगता है, उसका जीवन व्यर्थ है, उसकी सारी क्रियायें पशु की तरह होती हैं ॥७-९॥

ऋषय ऊचुः

पिताकिम्भगनेत्रघ्नं सर्वलोचनमस्कृत । माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामः शकर ॥१०॥

महेश्वर उवाच

पितामहावपि वर शाश्वतं पुरुषो हरिः । कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदित ॥११॥
दशबाहुर्महातेजा 'देवतारिनिषूदन । श्रीवत्साङ्को हृषीकेश सर्वदेवतयूयप ॥१२॥
ब्रह्मा तत्स्योदग्भवस्तस्याहं च शिरोभव । शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमम्यश्च सुरासुरा ॥१३॥
ऋषयो देहसभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः । पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च स ॥१४॥
सोऽस्या पृथिव्या कृत्स्नाया स्रष्टा त्रिभुवनेश्वर । सहर्ता चैव भूतानां स्यावरस्य चरस्य च ॥१५॥
स हि 'देवदेव साक्षाद्देवनाथ परतप । सर्वज्ञ सर्वस्रष्टा सर्वेण सर्वतोमुख ॥१६॥
न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । सनातनो महाभागो गोविन्द इति विश्रुत ॥१७॥
स सर्वान्पार्थिवान्तरप्ये घातयिष्यति मानव । सुरकार्यार्यमुत्पन्नो मानुष्यं वपुरास्थित ॥१८॥
न हि देवगणः शक्तास्त्रिविज्रमविनाकुताः । भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जित ॥१९॥
नायक सर्वभूतानां सर्वभूतनमस्कृत । एतस्य देवनाथस्य कार्यस्य च परस्य च ॥२०॥
ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मपिशरणस्य च । ब्रह्मा वसति नाभिस्य शरीरोऽहं च सस्थित ॥२१॥

ऋषियों ने कहा—पिताक नामक धनुषधारी । भग देवता के नेत्र फोड़ने वाले । सब लोगों के वन्दनीय । शकर । वासुदेव का माहात्म्य हम सुनना चाहते हैं ॥१०॥

महेश्वर ने कहा—नित्य पुरुष वह हरि ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ हैं । सुवर्ण के समान कान्ति वाले कृष्ण उदयशालीन सूर्य व समान सुशोभित होते हैं ॥११॥ उनकी दस भुजायें हैं । वे महातेजस्वी तथा देवताओं के शत्रुओं के नाशक हैं । उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित है । इन्द्रियो पर उनका अधिकार है । वे समस्त देवों के अधिनायक हैं ॥१२॥ ब्रह्मा उनके पेट से उत्पन्न हुए हैं । मैं उनके शिर से उत्पन्न हुआ हूँ । उनके शिर के बालों से नक्षत्रगण तथा रीओ से सुर-असुर उत्पन्न हुए हैं ॥१३॥ उनकी देह से ऋषि-समूह की उत्पत्ति हुई है । उनके लोह नित्य हैं । वे ब्रह्मा तथा समस्त देवों के आश्रय हैं ॥१४॥ वे तीनों भुवन के ईश्वर हैं तथा सबल पृथ्वी के सृष्टिकर्ता हैं । स्यावर-जगम क नाशकर्ता भी वे ही हैं ॥१५॥ वे देवों के देव, देव-नाथ धनुषों के तपाने वाले, सर्वज्ञ, सब के स्रष्टा, सर्वगामी और सब और मुख वाले हैं ॥१६॥ तीनों लोक में उनसे बढ़कर कोई या कुछ नहीं है । वे सनातन, महामाण तथा गार्ग्य-द नाम से प्रख्यात हैं ॥१७॥ वे सम्मान-दाता पुष्ट देव-कार्य के लिये मनुष्य-शरीर धारण कर युद्ध में राजाओं को मारते हैं ॥१८॥ बिना उनके देवगण कुछ नहीं कर पाते हैं । देवताओं के कार्य के निमित्त उन्हें किसी नायक की आवश्यकता नहीं पड़ती है ॥१९॥ वे समस्त प्राणियों के नायक तथा सबभूज्य हैं । वे देवताओं के स्वामी ब्रह्मभूत तथा ब्रह्मपियों के रक्षक हैं । उनकी नामि म ब्रह्मा तथा शरीर म मैं वास करता हूँ । उनके शरीर में समस्त देवगण सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥२०-२१॥ वे देव बललोचन श्रीगण, लक्ष्मीरमण, चक्र-धनुष-सङ्ग-

सर्वाः सुखं संस्थिताश्च शरीरे तस्य देवताः । स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः ॥२२॥
 शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः । उत्तमेन सुशोलेन शौचेन च दमेन च ॥२३॥
 पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च । आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसंपदा ॥२४॥
 'आनुशंस्येन रूपेण घलेन च समन्वितः । अस्त्रैः समुदितः सर्वोद्व्येष्टस्तदंशैः ॥२५॥
 योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामनाः' । वाचा मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥२६॥
 समावांश्चानहंवादी स देवो ब्रह्मवायकः' । भयहर्ता भयातानां 'मित्रानन्वविवर्धनः ॥२७॥
 शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः । श्रुतवानथ संपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥२८॥
 समाश्रितानामुपकृच्छ्रूणा' भयकृत्तया । नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥२९॥
 'भवार्यमेव देवानां बुद्ध्या परमया युतः । प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥३०॥
 समुत्पत्त्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः । 'अंशो नाम मनोः पुत्रो ह्यन्तर्धामा ततः परम् ॥३१॥
 अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः । प्राचीनवर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो द्विजा ॥३२॥
 तस्य प्रचेत प्रमुखा भविष्यन्ति दशाऽऽत्मजाः' । प्राचेतसस्तथा दशो भवितेह प्रजापतिः ॥३३॥
 दाशायष्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्ततः । मनोश्च वंशज इला सुशुम्नश्च भविष्यति ॥३४॥
 बुधात्पुरुषाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति । नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥३५॥
 यदुस्तस्मान्महासत्त्वः श्रोष्टा तस्माद्भविष्यति । 'क्रोष्टुश्चैव महानुव्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥३६॥

धारी और गण्डध्वज कहलाते हैं । वे उत्तम शील, दौघ, दम, पराक्रम, शक्ति, दर्शनीय शरीर, अपरिमित वीर्य, शृङ्गता, (सौभाग्य) सौम्य रूप तथा बल से युक्त हैं । उन्हें सब प्रकार के आश्चर्यजनक दिव्य अस्त्र प्राप्त हैं । योगमाया के वे आश्रय हैं । वे महामना सहस्रनेत्रधारी तथा विरूपाक्ष कहलाते हैं । वाणी से वे मित्रों के श्लाघनीय हैं तथा मार्ग-बन्धुओं के प्रिय हैं । वे देव क्षमावान्, अभिमानशून्य, ज्ञानदाता, भयभीतों के भयहर्ता, मित्रों का आनन्द बढ़ाने वाले, सबके रक्षक, दीनों के पालन में निरत, वेदवेत्ता, संपन्न, समस्त प्राणियों से नमस्कृत, आश्रितों के उपकारी, धनुषों के लिए भयवारी, नीतिज्ञ, नीतिसंपन्न, ब्रह्मवादी तथा जितेन्द्रिय हैं ॥२२-२९॥ देव-कार्य के लिये परम बुद्धि से युक्त होकर गोविन्द मनु सम्बन्धी प्रजापति के धर्मयुक्त शुभ मार्ग का अनुगमन करते हुए महात्मा मनु के वंश में उत्पन्न होगे । मनु के अश नामक पुत्र होगा । अश के अन्तर्धाम और अन्तर्धाम के अनित्य प्रजापति हविर्धाम उत्पन्न होगा । हविर्धाम का पुत्र प्राचीनवर्हिस् होगा ॥३०-३२॥ उसके प्रचेता आदि दस पुत्र होंगे । प्रचेता का पुत्र दस प्रजापति होगा । दस के आदित्य और आदित्य के मनु नामक पुत्र होगा । मनु के वंशज इला और सुशुम्न होंगे । बुध से पुरुषरा और उससे आयु की उत्पत्ति होगी । आयु से नहुष और उससे ययाति की उत्पत्ति होगी ॥३३-३५॥ उससे महापराक्रमी यदु और यदु से क्रोष्टा उत्पन्न होगा । क्रोष्टा का महापुत्र वृजिनीवान् होगा ॥३६॥

१ग अनुशंस्येन । २क ०ना । वचो मि० । ३ख ग ०ह्यनाय० । ४ख ०वाणा तद्विनाशन । ५क ०त्रूणापरि धर्मवित् । नी० । ६ख भवतासकर श्रीमान्बुद्ध्या । ७ख अशुनीय । ग अज्ञो । ८क ०जा । प्रचे० । ९क ख क्रोष्टुश्चैव ।

वृजिनीवतश्च भविता 'उपङ्गुरपराजितः' । 'उपङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररथस्तथा ॥३७॥
 तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति । तेषां विख्यातवीर्याणां चारित्रगुणशालिनाम् ॥३८॥
 यज्विनां च विशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसत्तमाः । स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशः ॥३९॥
 स्ववंशविस्तारकरं जनयिष्यति मानदम् । वसुदेवमिति ख्यात पुत्रमानकदुन्दुभिम् ॥४०॥
 तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति । दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ॥४१॥
 राज्ञो बद्धान्स सर्वावे मोक्षयिष्यति यादवः । जरासधं तु राजानं निजित्य गिरिगह्वरे ॥४२॥
 सर्वपाथिवरत्नादयो भविष्यति स वीर्यवान् । पृथिव्यामप्रतिहृतो वीर्येणापि भविष्यति ॥४३॥
 वित्रमेण च संपन्नः सर्वपाथिवपाथिवः । 'शूरः' संहननो भूतो द्वारकायां वसन्प्रभुः ॥४४॥
 पालयिष्यति गां देवीं विनिजित्य दुराशयान् । त भवन्तः समासाद्य ब्राह्मणैरर्हणंवरैः ॥४५॥
 अर्चयन्तु यथान्याय ब्रह्माणमिव शाश्वतम् । यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ॥४६॥
 द्रष्टव्यस्तेन भगवान्यासुदेवः प्रसापवान् । दृष्टे तस्मिन्नह दृष्टो न मेऽप्राप्ति विचारणा ॥४७॥
 पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः । स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतिपुक्तो भविष्यति ॥४८॥
 तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वा भविष्यति । यस्तु त मानवो लोके संश्रयिष्यति केशवम् ॥४९॥
 तस्य कीर्तयंशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति । धर्माणां 'वेशिकः' साक्षाद्भविष्यति स 'धर्मवान् ॥५०॥
 धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः । धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नर्चिते विभौ ॥५१॥

वृजिनीवान् के उपगु नामक विजयी पुत्र होगा । उपगु के चित्ररथ नामक वीर पुत्र होगा ॥३७॥ चित्ररथ का कनिष्ठ शूर नाम से विख्यात होगा । द्विजश्रेष्ठो प्रसिद्ध पराक्रमी, सच्चरित्रगुणशाली, यज्ञकर्ता तथा पवित्र राजाओं के वंश में महापराक्रमी तथा महायशस्वी क्षत्रियश्रेष्ठ शूर अपने वंश को बढ़ाने वाले तथा प्रतिष्ठा वाले वसुदेव एवम् आनन्ददुन्दुभि नाम से ख्यात पुत्र को उत्पन्न करेंगे । उसने पुत्र चतुर्भुज वासुदेव हागे । वासुदेव ब्राह्मणों के सम्मान करने वाले, ब्रह्मभूत तथा द्विजप्रिय होंगे ॥३८-४१॥ वे समस्त बद्ध राजाओं को उन्मुक्त करेंगे । पर्वत की गुफा में राजा जरासन्ध को जीतकर घातितगाली कृष्ण समस्त पृथ्वी के रत्नों से सम्पन्न होंगे । वे पृथ्वी पर अजेय होंगे ॥४२-४३॥ वे पराक्रमी से सम्पन्न तथा सब राजाओं के राजा होंगे । द्वारका में वास करते हुए सर्वशक्तिमान् कृष्ण दृष्ट चित्त वाले राजाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करेंगे । उत्तम ब्राह्मणों के साथ आप लोग उनके समीप जाकर नित्य ब्रह्मा की तरह उनकी उचित सेवा करेंगे ॥४४-४५॥ जो मुझे तथा पितामह ब्रह्मा को देखना चाहता है, उसे प्रतापी भगवान् वासुदेव को देखना चाहिये । उनके देख लेने पर मैं भी दृष्ट (देखा हुआ) हो जाता हूँ, इसमें सोचने की आवश्यकता नहीं है ॥४६-४७॥ जिस परबमललोचन भगवान् प्रसन्न होते हैं, वही उपस्वी सब कुछ वासुदेवमय है, ऐसा समझता है । जो मनुष्य भगवान् केशव का आश्रय लेता है, उस पर ब्रह्मा सहित देवगण प्रसन्न होते हैं । उसका यश बढ़ता है । उसे स्वर्ग प्राप्त होता है । वह धर्मात्मा साक्षात् धर्म का रूप हो जाता है । धर्मवेत्ताओं को सदा अच्युत भगवान् को नमस्कार करना चाहिये । कृष्ण की पूजा से सदा धर्म ही धर्म होता है ॥४८-५१॥ उन महा-

१४ अता श्रुय० । २१ ०५दुर्ग० । ३१ अत । श्रुय० । ४१ ०५दुर्गो० । ५१ घाता । ६१ श्रुता० । ७१ सनहो । ८१ भूपान्धार० । ९१ पोषक । १०१ धर्ममात् ।

स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया । धर्मायै पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटोः ससर्ज च ॥५२॥
ताः सृष्टास्तेन विधिना पर्वते गन्धमादने । सनकुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः ॥५३॥
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुंगवा । वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयित च ॥५४॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रित प्रतिसंश्रयेत् । अचितश्चार्येयमित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥५५॥
एवं तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं तपः । आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥५६॥
भुवनेऽभ्याचितो नित्यं देवैरपि सनातनः । अभयेनानुरूपेण प्रपद्य तमनुग्रहा ॥५७॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा । यत्नवद्भिरुपस्थाप्य द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥५८॥
एष वै विहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमा । तं दृष्ट्वा सर्वदेवेश दृष्ट्वा स्युः सुरसत्तमाः ॥५९॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकिपितामहम् । अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥६०॥
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न सशयः । समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥६१॥
तस्यैव चाग्रजो भ्राता सितान्निचयप्रभः । हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ॥६२॥
त्रिशिरास्तस्य देवस्य दृष्टोजनन्त इति प्रभो । सुपर्णो यस्य दीर्येण कश्यपस्याऽऽत्मजो बली ॥६३॥
अन्तं नैवाशकद्रष्टुं देवस्य परमात्मनः । स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः ॥६४॥
अन्तर्वसति भोगेन परिरम्य वसुंधराम् । य एष विष्णुः सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधरः ॥६५॥

तैजस्वी पुरुषपुण्ड्र ने प्रजा की हित-कामना से करोड़ों ऋषियों की सृष्टि की। पर्वत पर भगवान् ने जिनकी सृष्टि की, वे सनत्कुमार आदि मुनि गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं ॥५२-५३॥ द्विजश्रेष्ठो! इसलिये वे वागीश्वर तथा धर्मश कृष्ण प्रणम्य हैं। वे देव वन्दित होने पर वन्दना करते हैं सम्मानित होने पर सम्मान करते हैं, वृष्टि-गोचर होने पर देखते हैं सेवित होने पर सेवा करते हैं और पूजित होने पर नित्य पूजा करते हैं ॥५४-५५॥ इस प्रकार अनित्य एवं महान् आदिदेव विष्णु का परम तप तथा सर्वदा सज्जना के अनुकूल आचरण है। ॥५६॥ अपने लोक में देवगण भी सनातन कृष्ण की पूजा करते हैं। भगवान् सबको उपासना के अनुरूप अमय-दान देते हैं। ब्राह्मणों को कर्म मन तथा वाणी से कृष्ण को नमस्कार करना चाहिये। यत्नपूर्वक उगसना बरके कृष्ण का दर्शन करना चाहिये ॥५७-५८॥ मुनिवर! इसी मार्ग को मैंने अपनाया है। उन अखिल देवों के स्वामी के दर्शन हो जाने पर समस्त देवों के दर्शन हो जाते हैं ॥५९॥ मैं भी महाबराहरूप, समस्त लोका के उत्पादक तथा ससार के स्वामी कृष्ण को नित्य नमस्कार करता हूँ ॥६०॥ उनमें तीनों देवा का दर्शन नि सन्देह होता है। हम सब देवगण उनकी देह में वास करते हैं ॥६१॥ उन्हीं के ज्येष्ठ भ्राता धरणीधर बलराम हैं, जो हल धारण करने वाले तथा स्वच्छ पर्वतराशि की तरह कान्ति वाले हैं। बलराम का नाम अनन्त है। वसुध-पुत्र षष्ठ शक्ति से जिन परमात्मा बलदेव के अन्त को नहीं देख सके, वे शेषावतार बलभद्र परम हर्ष से विवरण करते हैं ॥६२-६४॥ वे अपनी फणाजी से वसुधरा को वेष्टित कर पृथ्वी के भीतर वास करते हैं। जो विष्णु हैं, वे ही धरणीधर अनन्त हैं ॥६५॥ जा बलराम हैं, वे ही सकल पृथ्वीधर अच्युत भगवान् हैं। मनोहर, दिव्य-

यो राम स हृषीकेशोऽयुत सर्वधराधरः । तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ॥६६॥
 द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ । एष वोऽनुग्रह प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधना ॥
 तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठ पूजयेयु प्रयत्नतः ॥६७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ऋषिमहेश्वरसवादे
 पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२६॥

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिव्याससवादे विष्णुपूजाकथनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यं श्रुतमस्माभिरदभुतम् । सर्वपापहर पुण्यं धन्यं ससारनाशनम् ॥१॥
 संपूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेवं महामुने । कां गतिं यान्ति मनुजा वासुदेवार्चने रता ॥२॥
 किं प्राप्नुवन्ति ते मोक्षं किं वा स्वयं महामुने । अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभयं फलम् ॥३॥
 छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ सशय नो हृदि स्थितम् । छेत्ता नान्योऽस्ति लोकोऽस्मिन्स्त्वद्वृत्ते मुनिसत्तम ॥४॥

व्यास उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्बुद्धवाहृतम् । शृणुध्वमानुपूर्व्येण वंणवानां सुखावहम् ॥५॥

पराक्रमी, तथा चक्र हठधारी वे दोना श्रेष्ठ पुरुष दर्शनीय एव माननीय हैं। मुनिवन्द । यह भगवान् का अनुग्रह समक्षिये जो आपने इस रहस्य को मुझसे प्राप्त किया। इसलिये आपलोग यत्नपूर्वक कृष्ण की पूजा करें ॥६६-६७॥

श्रीब्रह्म महापुराण मे मुनि-महेश्वर के सवाद मे दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२६॥

अध्याय २२७

मुनियो और व्यास के सवाद मे वासुदेव-पूजन का वर्णन

मुनियों ने कहा—अहो! हमन कृष्ण का अद्भुत, सर्वपापहारी, पवित्र, धन्यवादाहूँ तथा ससारनाशन माहात्म्य सुन लिया। महामुन! भक्ति से विधिपूर्वक कृष्ण की पूजा करके वासुदेव की उपासना मे निरत मनुष्य किस गति को प्राप्त हाते है? उन्हें क्या मिलता है? स्वयं या मोक्ष या दानो? सर्वज्ञ! मेरे हृदय के सदेह को आप मिटा सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ! आपके अतिरिक्त इस लोक मे कोई भी सशय का उच्छेद करने वाला नहीं है ॥१-४॥

व्यास ने कहा—मुनिधर! आपने जा कहा सब ठीक है। अब आप लाग विष्णु-भक्ता को सुख देने काय उत्तर सुनें। कृष्ण की दीक्षामाय लेन से मनुष्य माया प्राप्त करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जा सदा भक्तिपूर्वक

मन्वन्तरप्रमाणं तु भुक्त्वा कालं पृथक्पृथक् । 'भुवनानि पृथक्तेषां सर्वभोगैरलंकृताः ॥२०॥
 ततोऽन्तरिक्षं लोकं ते यान्ति सर्वसुखप्रदम् । तत्र भुक्त्वा' वरान्भोगान्दशमन्वन्तरं द्विजाः ॥२१॥
 तस्माद्गन्धर्वलोकं तु यान्ति धं वैष्णवा द्विजाः । विश्वमन्वन्तरं कालं तत्र भुक्त्वा मनोरमान् ॥२२॥
 भोगानादित्यलोकं तु तस्माद्यान्ति सुपूजिताः । त्रिश्वमन्वन्तरं तत्र भोगान्भुक्त्वाऽतिदेवतान् ॥२३॥
 तस्माद्भजन्ति ते विप्राश्चन्द्रलोकं सुखप्रदम् । मन्वन्तराणां ते तत्र चत्वारिंशद्गुणान्वितम् ॥२४॥
 कालं भुक्त्वा शुभान्भोगान्ज्वरामरणवर्जिताः । तस्माद्भक्षत्रलोकं तु विमानैः समलंकृतम् ॥२५॥
 प्रजन्ति ते मुनिधेष्ठा गुणैः सर्वैरलंकृता । मन्वन्तराणां पञ्चाशद्भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥२६॥
 तस्माद्भजन्ति ते' विप्रा देवलोकं सुदुर्लभम् । पष्टिमन्वन्तरं यावत्तत्र भुक्त्वा सुदुर्लभान् ॥२७॥
 भोगान्नानाविधान्विप्रा श्रद्दव्यष्टकसमन्वितान् । शत्रलोकं' पुनस्तस्माद्गच्छन्ति' सुरपूजिताः ॥२८॥
 मन्वन्तराणां तत्रैव भुक्त्वा कालं च सप्ततिम् । भोगानुच्चावचान्दिव्यान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ॥२९॥
 तस्माद्भजन्ति ते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् । भुक्त्वा तत्रेप्सितान्भोगान्सर्ववामगुणान्वितान् ॥३०॥
 मन्वन्तरमशीति च कालं सर्वसुखप्रदम् । तस्मात्प्रेतामहं लोकं यान्ति ते वैष्णवा द्विजाः ॥३१॥
 मन्वन्तराणां नवति क्रीडित्वा तत्र धं सुतम् । इहाऽऽगत्य' पुनस्तस्माद्विप्राणां प्रवरे कुले ॥३२॥
 जायन्ते योगिनो विप्रा येदशाह्न्यार्थपारगाः । एवं सर्वेषु लोकेषु भुक्त्वा 'भोगान्यथेप्सितान् ॥३३॥
 इहाऽऽगत्य पुनर्यान्ति उपर्युपरि च क्रमात् । संभवे संभवे ते तु 'शतवर्षं द्विजोत्तमाः ॥३४॥

सुख देने वाले अन्तरिक्ष-लोक को जाते हैं। वहाँ दश मन्वन्तर बीतने तक उत्तम भोगों को भोगकर गन्धर्वलोक में जाते हैं। वहाँ बीस मन्वन्तरों तक मनोरम भोगों को भोगकर बहुत सम्मान के साथ आदित्यलोक में जाते हैं। ॥२०-२२॥ वहाँ तीस मन्वन्तरों तक देवदुर्गम भोगों को भोगकर सुखदायक चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ चालीस मन्वन्तरों तक जरा-भरण से रहित होकर उत्तम भोगों को भोगकर विमानों से सुखपूर्वक भक्षत्रलोक में जाते हैं। ॥२३-२५॥ मुनिधेष्ठो! वहाँ के समस्त गुणों से युक्त होकर पचास मन्वन्तरों तक यथेच्छ भोगों को भोगकर दुर्लभ देवलोक में जाते हैं ॥२६॥ वहाँ साठ मन्वन्तरों तक नाना प्रकार के अत्यन्त दुर्गम भोगों को भोगकर देश-ताम्रा से पूजित होकर शत्रलोक में जाते हैं ॥२७-२८॥ वहाँ सत्तर मन्वन्तरों तक मन को दबने वाले समस्त दिव्य भोगों को भोगकर उत्तम प्रजापतिलोक में जाते हैं। वहाँ अस्सी मन्वन्तरों तक समस्त गुणों से युक्त अनिलयित भोगों का भोगकर पितामहलोक में जाते हैं ॥२९-३१॥ वहाँ नब्बे मन्वन्तरों तक गुप्त भोगकर इस लोक में ब्राह्मणों के उत्तम कुल में जन्म लेते हैं और वेद-शास्त्र-पारंगत योगी होने हैं ॥३२॥ दस प्रकार समस्त लोकों में यथेष्ट भोगों का भोगकर वहाँ आते हैं और पुनः क्रमशः ऊपर-ऊपर के लोकों में जाते हैं ॥३३॥ द्वित्रयण! प्रत्येक जन्म में सौ-सौ वर्षों तक यथेष्ट भोगों को भोगकर दूसरे लोक में जाते हैं। इस प्रकार जब उनका दस जन्म

१५ मन्वन्तराः। २५ त एवैवा गुमान्मा०। ३५ ते धीराव०। एव त एवैवा गुमान्माव०।
 ५५ त एवैवा गु०। ६५ भगता गु०। ७५ त एवैवापातताम्। ८०। ८५ पष्टिकरं।

भुक्त्वा ययेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तरं ततः । दशजन्म यदा तेषां क्रमेणैवं प्रपूर्यते ॥३५॥
तदा लोकं हरेर्दिव्यं ब्रह्मलोकोद्भवजन्ति ते । गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान् ॥३६॥
मन्वन्तरशतं यापयज्जन्ममृत्युविवाजिताः । गच्छन्ति भुवनं पश्चाद्द्वाराहस्यं द्विजोत्तमाः ॥३७॥
दिव्यदेहाः कुण्डलिनो महाकाया महाबलाः । प्रोडन्ति तत्र विप्रेन्द्राः कृत्वा ह्येवं चतुर्भुजम् ॥३८॥
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणां द्विजसत्तमाः । तिष्ठन्ति शश्वते भावे 'सर्वदेवैर्नमस्कृताः ॥३९॥
[ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृहं द्विजाः । श्रोडन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च ॥४०॥
तदन्ते वैष्णवं यान्ति पुरं सिद्धनिषेवितम् । श्रोडन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च ॥४१॥
ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः । तत्र स्थित्वा चिरं कालं वर्षकोटिशतान्वहन् ॥४२॥
नारायणपुरं यान्ति ततस्ते साधकोश्वरा^१ । भुक्त्वा भोगांश्च विविधान्वर्षकोट्ययुतानि च ॥४३॥
अनिरुद्धपुरं पश्चाद्विद्वयहृषा महाबलाः । गच्छन्ति साधकवराः स्तूयमानाः सुरासुरैः ॥४४॥
तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणां च चतुर्दशं । तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरण्यजिताः ॥४५॥
'प्रद्युम्नस्य पुरं पश्चाद्गच्छन्ति विगतज्वराः । तत्र तिष्ठन्ति' ते विप्रा लक्षकोटिशतत्रयम् ॥४६॥
स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा^२ बलशक्तिसमन्विताः । गच्छन्ति योगिनः पश्चाद्यत्र सकर्षणः प्रभुः ॥४७॥
ततोऽप्येता चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्सहस्रशः । विशन्ति वामुदेवेति विरूपाक्ष्ये निरञ्जने ॥४८॥

पूरे हो जाते हैं तब वे ब्रह्मलोक से विष्णुलोक में जाते हैं। वहाँ जन्म-मरण से रहित होकर सौ मन्वन्तरो तक सर्वगुण-सम्पन्न अक्षय भोगों को भोगकर पश्चात् बाराहलोक में जाते हैं। विप्रवर^१ वहाँ कुण्डलयुक्त दिव्य देह धारण कर महाकाय, महाबलवान् तथा चतुर्भुज होकर दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त क्रीडा करते हैं और ब्रह्मभूत होकर सब देवा से नमस्कृत होते हैं ॥३४-३९॥ तदनन्तर वे धीर पुरुष नरसिंहलोक में जाते हैं। वहाँ भी दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त हर्षपूर्वक क्रीडा कर अन्त में सिद्धमणो से सुसेवित विष्णुलोक में जाते हैं। वहाँ दश हजार वर्ष पर्यन्त सुख से क्रीडा कर उत्तम साधक पुनः ब्रह्मलोक में जाते हैं। वहाँ करोड़ों वर्ष तक रहकर श्रेष्ठ साधक नारायणपुर जाते हैं। वहाँ करोड़ा जराव वर्ष पर्यन्त विविध भोगों को भोगकर श्रेष्ठ साधक पश्चात् अनिरुद्धपुर जाते हैं। वहाँ वे जन्म-मरण से रहित, दिव्यकाय तथा महाबलवान् होकर सुर-असुरों से स्तुत होते हुए चौदह सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त रहते हैं। तदनन्तर वे सुखपूर्वक प्रद्युम्नपुर जाते हैं। वहाँ स्वेच्छाचारी, हृष्ट तथा बल-शक्ति-समन्वित होकर वरोडा वर्ष पर्यन्त रहते हैं ॥४०-४६॥ पश्चात् वे योगी पुरुष बलमदालाक में जाते हैं। वहाँ बिरकाल तक हजारों भोगों को भोगकर रूपरहित निरञ्जन वामुदेव में प्रवेश करते हैं। फिर

१क सर्वलोकनमः । २क ऽधकोत्तमा । मु० । ३क स प्राद्युम्नेय । ४क ऽन्ति वर्षाणि ल० ।

५क स ऽतद्वय० । ६क विप्रा ।

विनिर्मुक्ता परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते । तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र सशय ॥४९॥
एव क्रमेण भुक्ति ते प्राप्नुवन्ति मनोयिण । मुक्तिं च मुनिशार्दूला वासुदेवाचने रता ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वैष्णवानां गतिस्थापन नाम

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२७॥

अथ अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसवादे विष्णुपूजाकथनम्

व्यास उवाच

एकादश्यामुभे पक्षे निराहार^१ समाहित । स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रिय ॥१॥
सपूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहित । पुष्पगन्धैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैस्तथा ॥२॥
उपहारबहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणैः । स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गोतवाद्यैर्मनोहरैः ॥३॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः । एव सपूज्य विधिवद्वात्रौ कृत्वा प्रजागरम् ॥४॥
कथा वा गीतिका विष्णोर्गायन्विष्णुपरायण । याति विष्णो पर स्थान नरो नास्त्यत्र सशय ॥५॥

तो जरा-मरण-वर्जित परम तत्त्व को प्राप्त कर वे नि सन्देह मुक्त हो जाते हैं । मुनिश्रेष्ठो ! वासुदेव की उपासना में निरत बिद्वान् लोग इस प्रकार क्रमशः मुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥४७-५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विष्णु भक्तता की गति निरूपण नामक दो सौ सत्तार्विंशती

अध्याय समाप्त ॥ २२७॥

अध्याय २२८

व्यास और मुनियों के सवाद में विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

व्यास ने कहा—(विष्णु भक्त मनुष्य) दोनों पक्षों की एकादशी में निराहार तथा सावधान होकर रहे। विधानपूर्वक स्नान करके पवित्र वस्त्र पहन और इन्द्रियों को बस में रखे। पुष्प, गन्ध, दीप, धूप, नैवेद्य, अनेक उपहार, जप होम प्रदक्षिणा विविध दिव्य स्तोत्र मनोहर, गीत-वाद्य, दण्डवत्प्रणाम तथा उत्तम जयशब्दों से अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विष्णु की पूजा करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके रात्रि में जागरण करे और विष्णु की कथा या गीत गाये। ऐसा करने से विष्णुपरायण मनुष्य नि सन्देह विष्णुलोक में जाता है ॥१-५॥

मनय ऊचुः

प्रजागरे गीतिकाया.' फलं विष्णोर्महामुने । ब्रूहि तच्छ्रेयस्तुमिच्छामः परं कीतूहलं हि नः ॥६॥

व्यास उवाच

शृणुष्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । गीतिकायाः फलं विष्णोर्जागरे यदुदाहृतम् ॥७॥
 अवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता । तत्राऽऽस्ते भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥८॥
 तस्या नगर्माः पर्यन्ते चाण्डालो गीतिकोविदः । सद्वृत्त्योत्पादितधनो भृत्यानां भरणे रत ॥९॥
 विष्णुभवतः स चाण्डालो मासि मासि दृढव्रतः । एकादश्यां समागम्य सोपवातोऽय गायति ॥१०॥
 गीतिका विष्णुनामाङ्काः प्रादुर्भावसमाश्रिताः । गान्धारपङ्कजनैपादस्वरपञ्चमधैवतैः ॥११॥
 रात्रिजागरणे विष्णुं गार्थाभिरुपनायति । प्रभाते च प्रणम्येशं द्वादश्यां गृहमेत्य च ॥१२॥
 जामातृभागिनेयाश्च भोजयित्वा सकन्यकाः । ततः सपरिवारस्तु पश्चाद्भुङ्क्ते द्विजोत्तमाः ॥१३॥
 एवं तस्याऽऽतस्तत्र कुर्वन्तो विष्णुप्रीणनम् । गीतिकाभिर्विचित्राभिर्ययः प्रतिगत बहु ॥१४॥
 एकदा चैत्रमासे तु कृष्णकादशिगोचरे । विष्णुशुभ्रूपणार्थाय ययो वनमनुत्तमम् ॥१५॥
 वनजातानि पुष्पाणि ग्रहीतुं भविततत्परः । क्षिप्रातटे महारण्ये विभीतकतरोरधः ॥१६॥
 दष्टः स राक्षसेनाथ गृहीतश्चापि भक्षितुम् । चाण्डालस्तमथोवाच नाद्य भक्ष्यस्त्वया ह्यहम् ॥१७॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! जागरण में विष्णु के गीत गाने से क्या फल मिलता है ? हम सुतना चाहते हैं। हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥६॥

[illegible]

१ख ०काया फ० । २ख गीतको० । ३ख सदा सोऽपि मा० । ४ग स्वकन्यका । ५क ०चर । वि० ।

प्रातर्भोदयसि कल्याण सत्यमेव्याम्यहं पुनः । अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस ॥१८॥
 इवः सत्येन समेप्यामि ततः खादसि मामिति । विष्णुशुभ्रयणार्थाय रात्रिजागरणं मया ॥
 कार्यं न व्रतविघ्नं मे कर्तुमर्हसि राक्षस ॥१९॥

व्यास उवाच

तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम् । ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज ॥२०॥
 न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भृशम् । निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्तमुवाच ह ॥

सान्त्वयञ्जलक्षण्या वाचा स सत्यवचनं ददौः ॥२१॥

मातङ्ग उवाच

'सत्यमूलं जगत्सर्वं ब्रह्मराक्षस तच्छृणु । सत्येनाहं शपिष्यामि पुनरागमनाय च ॥२२॥
 आदित्यश्चन्द्रमा बह्निर्वायुर्भूद्यौर्जलं मनः । अहोरात्रं यमः संध्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम् ॥२३॥
 परदारेषु यत्पापं यत्परद्वयहारिषु । यच्च ब्रह्महनः पापं सुरापे मुक्ततल्पे ॥२४॥
 'बन्ध्यापतेश्च यत्पापं यत्पाप वृषलीपतेः । यच्च देवलके पापं मत्स्यमांसाशिनश्च यत् ॥२५॥
 क्रोडमांसाशिनो यच्च' कूर्ममांसाशिनश्च यत् । घृया मांसाशिनो यच्च पृष्ठमांसाशिनश्च यत् ॥२६॥
 कृतघ्ने मित्रघातके यत्पापं विधिपूषतो । 'सूतकस्य च यत्पापं यत्पापं क्रूरकर्मणः ॥२७॥

मैं सत्य कहता हूँ । फिर मैं आऊँगा । राक्षस । आज मुझे बड़ा कार्य है, इसलिये छोड़ दो । बल मैं अवश्य आऊँगा, तब खा लेता । विष्णु की परिचर्या के लिये मुझे रात में जागना है । तुम्हें मेरे व्रत में विघ्न नहीं डालना चाहिये ।' ॥१५-१९॥

। १ व्यास ने कहा—राक्षस ने उसको उत्तर दिया—'चाण्डाल' । मैं दश रात से मूखा हूँ । आज तुमको पाया हूँ । मैं नहीं छोड़ूँगा । क्षुधा से पीडित हूँ । अतः अवश्य खाऊँगा ।' राक्षस की बात सुनकर चाण्डाल कोमल वाणी से उसे सान्त्वना देते हुए दृढ़ तथा सत्य वचन बोलने लगा ॥२०-२१॥

चाण्डाल ने कहा—ब्रह्मराक्षस ! मुनो, सत्यमूलक ही सम्पूर्ण जगत् है । उसी सत्य को लेकर मैं पुनः आने के लिये शपथ करता हूँ ॥२२॥ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, जल, मन, दिन, रात, यम तथा दोनों सन्ध्यायें मनुष्यों की निधायी को जानती हैं । परस्त्री-गमन में जो पाप होता है, दूसरे के घन चुराने में जो पाप होता है, ब्रह्महत्या में जो पाप होता है, मदिरापन तथा गुरु-पत्नी-गमन में जो पाप होता है ॥२३-२४॥ बन्ध्यापति तथा शूद्रापति होने से जो पाप होता है, पुजारी होने में जो पाप होता है । मत्स्य-मांस खाने में जो पाप होता है शूकर का मांस खाने में जो पाप होता है ॥२५॥ बछुए का मांस, व्यर्थ मांस तथा पीठ का मांस खाने में जो पाप होता है, कृतघ्नता तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने में जो पाप होता है, पुत्रविवाहिता स्त्री के पति बनने में जो पाप होता है, भूतब, क्रूरकर्म तथा कृपण होने में जो पाप होता है, बन्ध्या स्त्री के अतिथि होने में जो पाप होता है,

कृष्णस्य च यत्पापं यच्च' वन्द्यातिथेरपि । अमावास्याऽष्टमी पष्ठी कृष्णशुक्लचतुर्दशी ॥२८॥
 'तासु' यद्गमनात्पापं 'यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम् । रजस्वलां तथा पद्माच्छृङ्गं कृत्वा स्त्रियं व्रजेत् ॥२९॥
 'सर्वस्वस्नातभोज्यानां यत्पापं' भलभोजने । मित्रभार्या' गच्छतां च यत्पापं पिशुनस्य च ॥३०॥
 दम्भमायानुरक्ते च यत्पापं 'मधुधातिनः । ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पापं तदयच्छतः ॥३१॥
 यच्च कम्पानूते पापं यच्च गोश्वतरानूते' । स्त्रीबालहन्तुर्यत्पापं यच्च मिथ्याभिभाषिणः ॥३२॥
 'देववेदद्विजनूपुत्रमित्रसतीस्त्रियः । यच्च निन्दयतां पापं' "गुरुमिथ्यापचारतः ॥३३॥
 अग्नित्यागिषु यत्पापमग्निदायिषु यद्वनं" । गृहेष्ट्या पातके यच्च यद्गोघ्ने यद्विजायधमे ॥३४॥
 यत्पापं परिवित्ते च यत्पापं परिवेदिनः । तयोर्दातृप्रहीत्रोश्च यत्पापं भ्रूणधातिनः ॥३५॥
 किं चात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तव राजस । श्रूयतां शपथं भोमं दुर्वाच्यमपि कथ्यते ॥३६॥
 स्वकन्याजीविनः पापं 'गूढसत्येन साक्षिणः । अयाज्ययाजके यच्छे यत्पापं "श्रवणोऽधमे ॥३७॥

अमावास्या, अष्टमी, पष्ठी तथा उभय पक्ष की चतुर्दशी में स्त्रीगमन करने से जो पाप होता है, रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने से जो पाप होता है, श्राद्ध करने के बाद स्त्री प्रसंग करने से जो पाप होता है ॥२८-२९॥ बिना स्नान किये भोजन करने से जो पाप होता है, मल-भोजन करने से जो पाप होता है, मित्रपत्नी-गमन से जो पाप होता है, पिशुनता, दम्भ तथा छल करने से जो पाप होता है, मधु मक्षिणों के मारने से जो पाप होता है, ब्राह्मण के साथ प्रतिज्ञा करके फिर न देने से जो पाप होता है ॥३०-३१॥ असत्यता से कन्या, गाय एवम् अश्व लाम करने से जो पाप होता है, स्त्री तथा बालक की हत्या करने से जो पाप होता है मिथ्यागमन करने से जो पाप होता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, वाहन, मित्र तथा सती स्त्री की निन्दा करने से जो पाप होता है, गुरु के साथ मिथ्या व्यवहार करने से जो पाप होता है, अग्निहोत्र त्यागने से वन में अग्नि लगाने से तथा गृह में याग करने से जो पाप होता है, गोहत्या करने से जो पाप होता है, अधम ब्राह्मण को जो पाप होता है परिवित्ता (बहु बड़ा भाई जिसके छोटे भाई में उससे पहले ही विवाह कर लिया है) परिवेदी, (बहु छोटा भाई जिसने अपने बड़े भाई से पहले ही विवाह कर लिया है) तथा जनके (दान) देने वाले एवम् (उनसे दान की वस्तु) ग्रहण करने वाले को जो पाप होता है, गर्मपात करने वाले को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हो यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३२-३५॥ राजस ! तुम से अधिक शपथ मैं क्या कहूँ ? सुनो, मयकर तथा दुर्वाच्य शपथ भी मैं तुमसे करता हूँ । अपनी कन्या बेचकर जीविका चलाने वाले को जो पाप होता है, सत्य पर पर्दा डालकर गवाही देने वाले को जो पाप होता है, यज्ञ के अनधिकारी के यज्ञ कराने वाले को तथा नपुंसक को जो पाप

१क यत्पाप प्रादयाजके । अ० । २ग ० कलत्रयोदशी । ३क तेषु । ४व यच्छरणात्ता० । ५क ० द्विप्रा ध्यायत स्त्रियः । ६ख ० स्वप्राप्तमोज्या० । ७क शल्पमोजिनाम् । ८क ० धुगन्विन । ९ख ग ० वनरा० । १०क ० पयज्ञसधिस० । ११ग ० प शुरा मिथ्यापचर्यत । १२ख ० मिथ्योपरतत । १३ख ० ने । गूढवेष्टेषु यत्पाप यच्च गोघ्ने द्विजा । १४ग कूटसत्येन । १५ख ० वषाघ० ।

प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिणि कामुके । एतैस्तु पापैर्लिप्येऽहं यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३८॥

व्यास उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा विस्मितो ब्रह्मराक्षसः । प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय ॥३९॥

इत्युक्तः कुणपाशेन श्वपाकः कुसुमानि तु । समादापागमच्चैव विष्णोः स निलयं गतः ॥४०॥

तानि प्रादाद्ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा । विष्णुमभ्यर्च्य निलयं जगाम स तपोधनाः ॥४१॥

सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु तां निशाम् । गायन् हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत् ॥४२॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां स्नात्वा देवं नमस्य च । सत्यं स समयं कर्तुं प्रतस्थे यत्र 'राक्षसः' ॥४३॥

तं श्रजन्तं पथि नरः प्राह भद्रं वव गच्छसि । स तथाऽकथयत्सर्वं सोऽप्येनं पुनरब्रवीत् ॥४४॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः । महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्ब्रुषः ॥४५॥

जीवधर्मार्थसुखं नरस्तथाऽऽप्नोति मोक्षगतिमग्याम् ।

जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके ॥४६॥

मातङ्गस्तद्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाचाय हेतुमतं

॥४७॥

मातङ्ग उवाच

भद्रं सत्यं पुरस्कृत्य गच्छामि शपथाः कृताः

॥४८॥

होता है, निम्न बात ध्वज करने में जो पाप होता है, सम्पास लेकर गृहस्थी करने वाले को तथा कामी ब्रह्मचारी को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हो, यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३६-३८॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस विस्मित हुआ और बोला—‘जाओ, सत्य की शपथ का प्याज रखना।’ राक्षस के बहने के बाद चाण्डाल ने फूल लेकर विष्णु-मन्दिर में जाकर ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण भी फूल को जल से धोकर विष्णु की पूजा कर अपना घर चला गया ॥३९-४१॥ चाण्डाल उस दिन उपवास करके रात में विष्णु प्रीत्यर्थ गीतों को गाते हुए बाहरी भूमि में रह कर जागरण करने लगा। प्रभात होने पर स्नान करके देवता को नमस्कार करके वचन पूरा करने के लिये राक्षस ने पास चल पड़ा। रास्ते में एक व्यक्ति ने उससे पूछा—‘भद्र! कहाँ जा रहे हो?’ उसने सब वृत्तान्त बह सुनाया। उस व्यक्ति ने फिर कहा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन शरीर ही है ॥४२-४५॥ इसलिये विद्वान् मनुष्य महान् प्रयत्न करके इसका पालन करते हैं ॥४२-४५॥ जीवित मनुष्य धर्म, धन, सुख तथा अन्तिम मोक्षगति को प्राप्त करते हैं। जीवन रहने पर ही यश भी मिलता है। मृतक की तो इस लोक में बात ही क्या है?’ चाण्डाल उसका वचन सुनकर सारगमित वाक्य बोला ॥४६-४७॥

चाण्डाल ने कहा—भद्र! मैंने सत्य को आगे करके शपथ की है।

व्यास उवाच

तं भूयः 'प्रत्युवाचाय किमेवं मूढधीर्भवान् । किं न श्रुतं त्वया साधो मनुना यदुदीरितम् ॥४९॥
 गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं', विवाहकाले 'सुरतप्रसङ्गे ।
 प्राणात्यये 'सर्वधनापहारे, पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥५०॥
 धर्मवाक्यं न च स्त्रीषु न विवाहे तथा रिपो । वञ्चने चार्थहानी च स्वनाशेऽनृतके तथा ॥
 एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गः प्रत्युवाच ह ॥५१॥

मातङ्ग उवाच

मवं वदस्व भद्रं ते सत्यं लोकेषु पूज्यते । सत्येनावाप्यते सौख्यं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥५२॥
 सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिकाः । ज्वलत्यग्निश्च सत्येन घाति सत्येन माहृत ॥५३॥
 धर्मायकामसंप्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा । सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न संत्यजेत् ॥५४॥
 सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्यं यज्ञेषु चोत्तमम् । सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न सत्यजेत् ॥५५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सोऽयं मातङ्गस्तं प्रक्षिप्य नरोत्तमम् । जगाम तत्र यत्राऽऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षस ॥५६॥
 तमागतं समीक्ष्य सौ चाण्डाल ब्रह्मराक्षसः । विस्मयोत्कुलनयनं शिर कम्पं तमब्रवीत् ॥५७॥

व्यास ने कहा—उस व्यक्ति ने फिर चाण्डाल से कहा—‘तुम मूर्ख हो । क्या तुमने मनु का वचन नहीं सुना है ? उनका कहना है—‘गाय, स्त्री तथा ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त, विवाहकाल में, रतिप्रसंग में, प्राण-संकट में और सर्वस्व अपहरण में मिथ्या बोलने से पाप नहीं लगता है । स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने में, विवाह में, शत्रु को ठगने में, और घननाश तथा प्राणनाश के समय धर्मवाक्य नहीं माना जाता है ।’ उसका वचन सुनकर चाण्डाल ने उत्तर दिया ॥४८-५१॥

चाण्डाल ने कहा—‘तुम्हारा कल्याण हो । ऐसा मत कहो । तीनों लोक में सत्य की पूजा होती है । ससार में जो कुछ भी सुख है, वह सत्य से प्राप्त होता है । सत्य से सूर्य प्रकाशित होता है, सत्य से जल रसरूप होता है, सत्य से अग्नि प्रज्वलित होता है, सत्य से वायु ध्रुता है । पुरुषों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की दुर्लभ प्राप्ति सत्य से ही होती है । इसलिये सत्य का परित्याग नहीं करना चाहिये । लोक में सत्य परब्रह्म है, सत्य यज्ञों में सबसे उत्तम है, सत्य से स्वर्ग-प्राप्ति होती है । इसलिये सत्य को नहीं छोड़ना चाहिए ॥५२-५५॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर उस मनुष्य को छोड़कर वह चाण्डाल वहाँ के लिये चल पड़ा, जहाँ वह जीवाहितक ब्रह्मराक्षस रहता था । आये हुए चाण्डाल को देखकर ब्रह्मराक्षस परमविस्मित होकर शिर कंपाते हुए बोला ॥५६-५७॥

१क ख ०चासौ कि० । २क ख ०दुदाहृत० । ३ख सुखदे च धर्मो । प्रा० । ग सुहृदा च धर्मो । प्रा० । ४ग ०वर्जनोप० । ५ग ०यो कृतक भवेत् । ए० । ६ख ०समस्तात त० ।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक । न मातङ्गमह मये भवत सत्यलक्षणम् ॥५८॥
 कर्मणाऽनेन मन्ये त्वां ब्राह्मण शुचिमव्ययम् । यत्किंचित्त्वा भद्रमुख प्रवक्ष्ये धर्मसंश्रयम् ॥
 किं तत्र भवता रात्रौ कृत विष्णुगृहे वद ॥५९॥

व्यास उवाच

तमम्युवाच मातङ्ग शृणु विष्णुगृहे मया । यत्कृत रजनीभागे यथातथ्य वदामि ते ॥६०॥
 विष्णोर्देवकुलस्थाध स्थितेनाऽनममूर्तिना । प्रजागर कृतो रात्रौ गायता विष्णुगीतिकाम ॥६१॥
 तब्रह्मराक्षस प्राह कियत् कालमुच्यताम् । प्रजागरो विष्णुगृहे कृत (तो) भक्तिमता वद ॥६२॥
 तमम्युवाच प्रहसन्विशत्यवदानि राक्षस । एकादश्या मासि मासि कृतस्तत्र प्रजागर ॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

मातङ्गवचन श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षस ॥६३॥
 यदद्य त्वा प्रवक्ष्यामि तदभवाच्चतुमहति । एकरात्रिभृत साधो मम दहि प्रजागरम् ॥६४॥
 एव त्वा मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नायथा । त्रि सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह ॥६५॥

व्यास उवाच

मातङ्गस्तमुवाचाय मयाऽऽमा ते निशाचर । निवेदित किमुक्तेन खादस्व स्वेच्छयाऽपि माम् ॥६६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—महाभाग ! सत्य वचन के पालन-कर्ता ! ठीक ठीक ! ! तुम इतने सत्याभा हो कि मैं बन्धी नहीं मान सकता कि तुम चाण्डाल हो। इस कम से मैं तुम्हें पवित्र तथा नाशरहित ब्राह्मण मानता हूँ। तुम अतीव धर्मात्मा हो कल्याणमय हो। मैं जो कुछ पूछता हूँ वह बतलाओ। गत रात्रि में तुमने विष्णु मन्दिर में क्या सब किया ? ॥५८-५९॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने उससे कहा—सुनो रात में मैंने विष्णु मन्दिर में जो किया वह यथापत बतला देता हूँ। विष्णु के नीचे नतमस्तक होकर मैं रात भर विष्णु-गीत गाते हुए जागता रहा। (इस पर) ब्रह्मराक्षस ने उससे पूछा—किन्तु दिनों से तुम विष्णु मन्दिर में जागरण करते हो ? कहो। चाण्डाल ने हसते हुए कहा—राक्षस ! वस वस से मैं प्रत्येक मास की एकादशी को जागरण करता हूँ। चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस बोला ॥६०-६३॥

ब्रह्मराक्षस बोला—आज जो मैं तुमसे पूछ वह बतलाओ। साधो ! तुम अपना एक रात्रि के जागरण का फल मुझ दे दो। ऐसा करने से मैं तुम्हें छोड़ दूँगा अथवा नहीं छोड़ूँगा। महाभाग ! मैं तीन बार सत्य का साक्षी करके कहता हूँ। इतना कहकर राक्षस चुप हो गया ॥६४-६५॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चाण्डाल ने कहा—राक्षस ! मैंने अपने को समर्पित कर दिया। तुम स्वेच्छा से खा डालो। फिर राक्षस ने कहा—अच्छ तो दो घड़ी भर के सगीत के फल देने की कृपा करो।

तमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम् । सगीतं मे प्रयच्छस्व कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥६७॥
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसंबद्धमुच्यते । खादस्व स्वेच्छया मां त्वं न प्रदास्ये प्रजागरम् ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्राह तं ब्रह्मराक्षसः ॥६८॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

को हि द्रुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत् । धर्पयितुं पीडयितुं रक्षितं धर्मकर्मणा ॥६९॥
दीनस्य पापप्रस्तस्य विषयेर्मोहितस्य च । नरकार्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः ॥७०॥
तन्ममत्वं महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम् । यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलयं स्वकम् ॥७१॥

व्यास उवाच

तं पुनः प्राह चाण्डालो न यास्यामि निजं गृहम् । न चापि तव दास्यामि कथं चिद्यामजागरम् ॥
तं प्रहस्याय चाण्डालं प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

राश्ववसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया । तस्याः फलं प्रयच्छस्व त्राहि पापात्समुद्धर ॥७३॥

व्यास उवाच

एवमुच्चारिते तेन मातङ्गस्तमुवाच ह

॥७४॥

चाण्डाल बोला—'क्यों व्यर्थ की बात करते हो ? तुम मथेच्छ खाओ । मैं जागरण का फल नहीं दूँगा ।'
चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस ने कहा ॥६६-६८॥

ब्रह्मराक्षस बोला—कोन ऐसा द्रुष्टमति होगा, जो तुम्हें पटकारने या पीडा देने के लिये तुम्हारी ओर
दृष्टिपात करेगा ? तुम अपने शुभ कर्मों के द्वारा सुरक्षित हो । दीन, पापग्रस्त, विषयान्ध, नरक-पीडित तथा मूर्ख
पर ताम्र लोण दिया करते हैं । 'महाभाग' इसलिये कृपा करके तुम एक घड़ी का जागरण मुझे दे दो अथवा अपने
घर चले जाओ ॥६९-७१॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने फिर उससे कहा—'मैं अपने घर नहीं जाऊँगा और तुम्हें एक घड़ी का जाग-
रण भी नहीं दूँगा ।' तब ब्रह्मराक्षस ने हँसकर उससे कहा ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा—अच्छा तो रात के अन्त में जो तुमने गीत गाया, उसी का फल देकर मुझे पाप से
बचाओ ॥७३॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर चाण्डाल ने उससे कहा ॥७४॥

मातङ्ग उवाच

किं पूर्वं भवता कर्म विवृतं कृतमञ्जसा । येन त्वं दोषजातेन 'सभूतो' ब्रह्मराक्षसः ॥७५॥

ध्यास उवाच

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्ग ब्रह्मराक्षस । प्रोवाच दुःखसतप्तं सस्मृत्य स्वकृतं कृतम् ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

'धूयता योऽहमास वै पूर्वं यच्च मया कृतम् । यस्मिन्कृते पापयोनिं गतवानस्मि राक्षसीम् ॥७७॥

सोमशर्मं इति ह्यात पूर्वमासमहं द्विज । पुनोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वनः ॥७८॥

कस्यचिद्यजमानस्य सूत्रमन्त्रबहिष्कृतं । नृपस्य 'कर्मसपतेन' यूपकर्मसुनिष्ठितं ॥७९॥

आग्नीध्रं चाकरोद्यज्ञं लोभमोहप्रपीडितः । तस्मिन्परिसमाप्ते तु मोक्ष्याददम्भमनुष्ठितं ॥८०॥

यष्टुमारब्धवानस्मि द्वादशाहं महाश्रुतम् । प्रवर्तमाने 'तस्मिन्स्तु' कुक्षिशूलोऽभवन्मम ॥८१॥

'संपूर्णं' दशरात्रे तु न समाप्ते तथा क्रतौ । विटपाक्षस्य दीपन्त्यामाहुत्या राक्षसे क्षणे ॥८२॥

भूतोऽहं तेन दोषेण सभूतो ब्रह्मराक्षसः । "मूर्खेण" मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम् ॥८३॥

अज्ञानता यद्यविद्या यद्विष्टं याजितं च यत् । तेन कर्मविपाकेन सभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥८४॥

तन्मा पापमहाम्भोधो निमग्नं त्वं समुद्धर । प्रजागरे गीतिकंका पश्चिमां दातुमर्हसि ॥८५॥

चाण्डाल बोला—तुझे पहले बीन सा कुछ म निया था, जिसके दोष से तू भ ब्रह्मराक्षस हो गये ? ॥७५॥

ध्यास न कहा—उसकी बात सुनकर अत्यन्त दुःखी ब्रह्मराक्षस ने अपने बर्गों का स्मरण कर चाण्डाल से कहा ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—पहले जो मैं था जो कम किया और जिसके करने से इस पापी राक्षस-योनि में आ गया हूँ वह सब तम मुनो ॥७७॥ पहले मैं सोमशर्मा नामक ब्राह्मण था । अध्ययनशील तथा यज्ञकर्ता देवशर्मा का मैं पुत्र था । मैं सूत्र-मन्त्र कुछ नहीं जानता था । फिर भा एक यज्ञमात के यज्ञकर्म में मैंने भाग ले लिया । लोभ मोह में फँसकर मैंने होता का कायमार ग्रहण किया । यज्ञ समाप्त होने पर मूर्खता तथा दम्भ के कारण मैंने १२ दिनों में सम्पन्न होने वाला महायज्ञ पूरा कर दिया । यज्ञारम्भ में ही मेरे पेट में पीड़ा होने लगी । दश रात बात जाने पर जब मैं गिर को आहुति दे रहा था तभी मेरा देहान्त हो गया । उसी दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ । मूर्ख मन्त्रहीन तथा सूत्र-स्वर से रहित होकर यज्ञविद्या को न जानते हुए भी जो मैंने यज्ञ किया तथा कराया उसी कर्म के दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ । इसलिये मैं पापसमुद्र में निमग्न हूँ मेरा उद्धार करो । जागरण काल के पिछले एक गीत का भी फल मुझ दे दो ॥७८ ८५॥

१क प्राप्नो। २क राक्षसयोनिताम। ३क ०ता हि महाबुद्ध पू०। ४क न। किञ्चिच्च यज०। ग ०न। किञ्चित्तो यज०। ५क ०स्य शूद्रमतबहि०। ख ०स्य शूद्रस्यान्नब०। ६ख कमशक्तेन। ग सुपशातस्तु। ७ख ०न पूर्वक०। ८क ख ०मस्वनुष्ठि०। ९ग कमणि। १०ख ग अपूर्णं। ११ख सुतेन।

तमुवाचाय चाण्डालो यदि प्राणिवधाद्भवान् । निर्वृत्तिं कुस्ते दद्यात्त पश्चिमगीतिकाम् ॥८६॥
बाढमित्यवदत्तोऽपि मातङ्गोऽपि ददौ तदा । गीतिकाफलमाम्ब्य मूढनार्थप्रजागरम् ॥८७॥
तस्मिन्गीतिकले दत्ते मातङ्ग ब्रह्मराक्षस । प्रणम्य प्रययौ हृष्टस्तोर्थवयं पृथदकम् ॥८८॥
तत्रानशनसकल्प कृत्वा प्राणान्जही द्विजा । राक्षसत्वाद्विनिर्मुक्तो गीतिकाफलबुहित ॥८९॥
पृथदकप्रभावाच्च ग्रहलोक च दुर्लभम् । दश वयंसहस्राणि निरातङ्कोऽवसत्त ॥९०॥
तत्त्वान्ते ब्राह्मणो जातो वभूव स्मृतिमान्वशी । तस्याह चरित भूय कथयिष्यामि भो द्विजा ॥९१॥
मानङ्गस्य कयाशेष शृणुध्व गदतो मम । राक्षसे तु गते धीमान्गृहमेत्य यतात्मवान् ॥९२॥
तद्विप्रचरित स्मृत्वा निविण्ण शुचिरप्यसौ । पुत्रेषु भाग्यं निक्षिप्य ददौ भूम्या प्रदक्षिणाम् ॥९३॥
कोकामुखात्समारम्य यावद्दे स्कन्दवशनम् । दृष्ट्वा स्कन्द ययौ धाराचक्रे चापि प्रदक्षिणम् ॥९४॥
ततोऽद्विवरमागम्य विन्ध्यमुच्चशिलोच्चयम् । पापप्रमोचन तीर्थमासताद स तु द्विजा ॥९५॥
स्नानं पापहर चक्रे स तु चाण्डालवशज । विमुक्तपाप सस्मार पूर्वजातीरनेकश ॥९६॥
स पूर्वजन्मन्यर्थाद्भिक्षु सयतबाह्वना । यतकायश्च मतिमावेदवेदाङ्गपारग ॥९७॥
एकदा गोपु नगराद्ध्ययमाणासु तत्करं । भिक्षाऽवधूता रजसा मुक्ता तेनाय भिक्षुणा ॥९८॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त चाण्डाल ने उससे कहा—यदि तुम प्राणियो का भारता बंद कर दो तो मैं पिछले गीत का पल दे दूँ। उसने कहा—हां निश्चय। तब चाण्डाल ने आधी घड़ी के जागरण तथा गीत का फल उसे दे दिया। गीत-फल दे देने पर ब्रह्मराक्षस चाण्डाल को प्रणाम करके पृथूदक नामक तीर्थ में चला गया ॥८६८८॥ द्विजगण वहाँ उसने अनगन का सत्त्व करके प्राणत्याग कर दिया। गीत-फल ले लेने के कारण वह राक्षसयोनि से मुक्त हो गया। पृथूदक तीर्थ के प्रभाव से वह दुलभ ब्रह्मलोक में गया। वहाँ दश हजार वर्ष तक वह सुखपूर्वक वास करता रहा ॥८६९०॥ अंत में वह धर्मशास्त्रा तथा जितेन्द्रिय होकर उत्पन्न हुआ। द्विजवृंद। उसका चरित्र-वर्णन मैं फिर कहूँगा। अभी चाण्डाल का क्याशेष आप लोग सुन ॥९१३॥ रामस के चले जाने पर वह समयमा तथा बुद्धिमान चाण्डाल घर आया। उस ब्राह्मण के चरित्र का स्मरण कर-वह दुःख हुआ। तब पुत्रा पर स्त्री का भार सौंप कर उसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा की। कोकामुख नामक तीर्थ से लेकर स्व-द तीर्थ तक यात्रा की। धाराचक्र की भी प्रदक्षिणा की ॥९२९४॥ तब विध्यावल पर्वतपर चढ़कर वह पाप प्रमोचन नामक तीर्थ में पहुँचा। उसमें स्नान करके वह पापमुक्त होकर अपने पूर्व जन्मा का स्मरण करने लगा ॥९५९६॥ वह पूर्व जन्म में समयमा नाम्नी बुद्धिमान तथा वेदवेदांगधारणत मिश्रुक या ॥९७॥ एक समय बहुत से चोर नगर से गाँवों का केजा रहे थे। मिश्राय पकड़न करते हुए उस मिश्रुक ने देखकर भी गाँवों को नहीं छुड़ाया। उसी पाप के दोष से वह चाण्डाल-योनि में उत्पन्न हुआ। पापप्रमोचन में स्नान करके वह नमदा नदी

१क य ०धारा च०। २ग स्यात्। ३क जितकायश्च। ४ग ०वभूता। ५स भुक्ता।

स 'तेनाधर्मदोषेण चाण्डालीं योनिमागतः । पापप्रमोचने स्नातः स भूतो नर्मदातटे' ॥१९॥
 मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्यां च भो द्विजाः । तत्रास्य वसतोऽबन्धस्तु श्रिंशद्भिः सिद्धपुरुषः ॥१००॥
 विरूपरूपो बभ्राम योगमायाबलान्वितः । तं दृष्ट्वा सोपहासार्यमभिवाद्याभ्युवाच ह ॥१०१॥
 कुशलं सिद्धपुरुषं कुतस्त्वागम्यते त्वया ॥१०२॥

व्यास उवाच

एवं संभाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु । प्रत्युवाचाय वन्द्यस्तं स्वर्गलोकादुपागतः ॥१०३॥
 तं सिद्धं प्राह मूर्खोऽसौ किं त्वं वेत्सि त्रिविष्टपे । नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सरोवराम् ॥१०४॥
 सिद्धस्तमाह तां वेद्मि शक्रचामरधारिणीम् । स्वर्गस्याऽऽभरणं मुख्यमुर्वशीं साधुसंभवाम् ॥१०५॥
 विप्रः सिद्धमुवाचाय ऋजुमार्गविवर्जितः । तन्मित्र मत्कृते वार्तामुर्वश्या भवताऽऽदरात् ॥१०६॥
 कथनीया यच्च सा ते ब्रूयादास्यास्यते भवान् । बाढमित्यब्रवीत्सिद्धः सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः ॥१०७॥
 बभूव सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम् । समेत्य चोर्वशीं प्राह यदुर्वतोऽसौ द्विजेन तु ॥१०८॥
 सा प्राह तं सिद्धवरं नाहं काशिपतिं द्विजम् । जानामि सत्प्रभुवतं ते न चेत्तसि मम स्थितम् ॥१०९॥
 इत्युक्तः प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुनः । वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण व पुनः ॥११०॥

के तट पर जाकर मर गया ॥९८-९९॥ तदनन्तर उसने वाराणसी में महामूर्ख होकर जन्म लिया। वहाँ तीस वर्ष के बाद एक दिन कोई सिद्ध योगी उसे मिले। उन्हो देखकर उपहास करने के लिये उसने प्रणाम करके उनसे पूछा—'कहिये, कुशल है? वहाँ से आ रहे हैं?' ॥१००-१०२॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पूछे जाने पर योगी ने समझा कि इसने मुझे पहचान लिया। इसलिये उन्होने कहा कि मैं स्वर्गलोक से आ रहा हूँ। तब मूर्ख ने फिर उससे प्रश्न किया—'स्वर्ग में भगवान् की जघा से उत्पन्न उर्वशी नामक श्रेष्ठ अप्सरा को आप जानते है?' ॥१०३-१०४॥ सिद्ध ने उत्तर दिया—'हाँ, इन्द्र को चामर डुलाने वाली, स्वर्ग-मुषण तथा महात्मा से उत्पन्न उर्वशी को मैं जानता हूँ ॥१०५॥' ब्राह्मण ने सरल मार्ग को छोड़ कर सिद्ध से कहा—'मित्र! मेरी बात आप उर्वशी से आदरपूर्वक कह देंगे। तब वह जो वहे सो मुझे भी बतला देंगे।' सिद्ध ने कहा—'अच्छा।' ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥१०६-१०७॥ सिद्ध सुमेरुपर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होने उर्वशी से ब्राह्मण का निवेदन कह सुनाया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'मैं काशी के ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ। मैं सत्य कहती हूँ। मेरा उससे कोई परिचय नहीं है।' इसके बाद बहुत दिन बीत जाने पर सिद्ध पुनः वाराणसी गये। फिर उस मूर्ख ने उन्हे देख लिया। देखते ही पूछा—'उर्वशी ने क्या कहा?' सिद्ध ने उत्तर

१क तेन ब्रह्मदो० । ख तेन भगवदो० । २ग मुद्दो । ३क ०टे । मुख्योऽभू० । ख ०टे । मुक्तोऽभू० ।
 ४क ख विशद्विम । ५क ख बलवान्योग० । ६क ०रुप कु० । ७ख ग चिरात् । ८ख वन्द्य तत्त्व० ।
 ९ग ०र्गप्रवर्धितम् । त० ।

दृष्ट पृष्टः किल भूय किमाहोरुभवा तव । सिद्धोऽब्रवीत् जानामि मामुवाचोर्वंशी स्वयम् ॥१११॥
 सिद्धवाक्य ततः श्रुत्वा स्मितभिन्नोऽष्टसप्तुटः । पुनः प्राह कथं वेत्स्यीत्येवं वाच्या त्वयोर्वंशी ॥११२॥
 बाढमेवं करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो दिव गतः । ददर्श शक्रभवनान्निष्क्रामन्तीमयोर्वंशीम् ॥११३॥
 प्रोवाच तां सिद्धवरः सा च तं सिद्धमब्रवीत् । नियमं कचिदपि हि करोतु द्विजसत्तम ॥११४॥
 येनाहं वर्मणा सिद्ध तं जानामि न चान्यथा । तदुर्वंशीवचोऽभ्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु ॥११५॥
 वयमामास सिद्धस्तु सोऽपीमं नियमं जगौ । तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽयं कृतो मया ॥११६॥
 न भोक्ष्येऽद्यप्रभृति वं शकटं सत्यमीरितम् । इत्युक्तं प्रययौ सिद्धः स्वर्गं दृष्ट्वोर्वंशीमय ॥११७॥
 प्राहासौ शकटं भोक्ष्ये नाद्यप्रभृति कर्हिचित् । तं सिद्धमुर्वंशी प्राह ज्ञातोऽसौ साप्रतं मया ॥११८॥
 नियमप्रहणादेव मूर्खो मां (ज्य) मुपहासकः । इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं वासं नारायणात्मजा ॥११९॥
 सिद्धोऽपि विचचारासौ कामचारी महोत्तलम् । उर्वंश्यपि वरारोहा गत्वा वाराणसीं पुरीम् ॥१२०॥
 मत्स्योदरोजले स्नानं चक्रे दिव्यवपुर्धरा । अयातावपि मूर्खस्तु नदीं मत्स्योदरीं मुने ॥१२१॥
 जगामाय ददर्शसौ स्नायमानामयोर्वंशीम् । तां दृष्ट्वा ववृधेऽयास्य मनस्य शोभकृद्बुद्धम् ॥१२२॥
 चकार मूर्खश्चेष्टाश्च तं विवेदोर्वंशी स्वयम् । तं मूर्खं सिद्धगदितं ज्ञात्वा सस्मितमाह तम् ॥१२३॥

दिया—‘उर्वंशी ने कहा—‘मैं उसे नहीं जानती हूँ ॥१०८-१११॥ सिद्ध के वाक्य को सुनकर मुस्कराते हुए ब्राह्मण ने कहा—‘अब की आप उर्वंशी से कहिएगा—‘तुम कैसे जान सकती हो ॥११२॥?’ ‘अच्छा’ कहकर सिद्ध स्वयं चले गये। चद्रमवन से निकलती हुई उर्वंशी को देखकर सिद्ध ने ब्राह्मण का कथन सुना दिया। उर्वंशी ने सिद्ध से कहा—‘यदि वह ब्राह्मण मुझसे कोई प्रतिज्ञा करे तो मैं उसे जान जाऊँगी। अन्यथा तो जान ही नहीं सकती।’ उर्वंशी की बात सिद्ध ने आकर मूल ब्राह्मण से कह दी। ब्राह्मण बोला—‘सिद्धपुरुष! आपका सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं शकट (तिनिय या घब यल का फल या गाड़ी) नहीं खाऊँगा।’ ॥११३-११६॥ इसके बाद सिद्ध ने स्वर्ग में जाकर उर्वंशी से कहा—‘उसने प्रतिज्ञा की है कि आज से लेकर मैं कभी शकट नहीं खाऊँगा।’ तब उर्वंशी ने कहा—‘हाँ, अब मैं जान गयी। प्रतिज्ञा करने से ही मैं समझ गयी कि यह मूर्ख मेरा उपहास करने वाला है।’ इतना कहकर वह शीघ्र ही अपने वासस्थान पर चली गयी ॥११७-११९॥ स्वेच्छाचारी सिद्ध भी पृथ्वी पर विचरण करने लगे। तब सुन्दरी उर्वंशी वाराणसी जाकर दिव्य शरीर धारण कर मत्स्योदरी नामक नदी के जल में स्नान करने लगी। वह मूर्ख ब्राह्मण भी स्नान करती हुई उर्वंशी को देखने के लिये मत्स्योदरी के तट पर पहुँचा। उर्वंशी को देखते ही उसका कामवेग दब गया। वह अपनी चेष्टा भी प्रकट करने लगा। उर्वंशी उस मूर्ख से बोले म सिद्ध के मुख से मुन चुकी थी। इसलिये स्वयं उसे पहचान कर मुस्कगती हुई बाली ॥१२०-१२३॥

उर्वश्युवाच

किमिच्छसि महाभाग मत्त शीघ्रमिहोच्यताम् । करिष्यामि वचस्तुभ्य त्वं विश्रब्ध करिष्यसि ॥१२४॥

मूर्खब्राह्मण उवाच

आत्मप्रदानेन मम प्राणाग्रक्ष शुचिस्मिते

॥१२५॥

व्यास उवाच

त प्राह्यायोर्वशी विप्र नियमस्याऽस्मि साप्रतम् । त्वं तिष्ठस्व क्षणमय प्रतीक्षस्वाऽऽगतं मम ॥१२६॥

स्थितोऽस्मौत्यग्रबोद्धिप्र सार्जप स्वर्गं जगाम ह । मासमात्रेण साऽऽयाता ददर्श तं कृशं द्विजम् ॥१२७॥

स्थित मास नदीतीरे निराहार सुराङ्गना । तं दृष्ट्वा निश्चययुत भूत्वा बृद्धवपुस्ततः ॥१२८॥

सा चकार नदीतीरे शकट शर्करावृतम् । धृतेन मधुना चैव नदीं मत्स्योदरीं गता ॥१२९॥

स्नात्वाऽयं भूमौ वसती शकटं च ययार्थतः । तं ब्राह्मणं समाहूय वाक्यमाह सुलोचना ॥१३०॥

उर्वश्युवाच

मया तोयं व्रतं विप्र चोर्णं सौभाग्यकारणात् । व्रतात्ते निष्कृतिं दद्या प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज ॥१३१॥

व्यास उवाच

स प्राह किमिदं लोके दीयते शर्करावृतम् । क्षुत्क्षामकण्ठं पृच्छामि साधु भद्रे समीरय ॥१३२॥

उर्वशी बोली—महाभाग ! मुझसे क्या चाहते हो ? शीघ्र बतलाओ । तुम विश्वास करो । मैं तुम्हारी बात मानूंगी ॥१२४॥

मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—पवित्र हास्य करने वाली ! तुम आभयान देकर मेरे प्राणों की रक्षा करो ॥१२५॥

व्यास ने कहा—तब उवशी ने उससे कहा— इस समय मैं नियम-पालन कर रही हूँ । तुम क्षण भर मेरे आगमन की प्रतीक्षा करो । ब्राह्मण ने बोला— मैं ठहरता हूँ । उवशी स्वयं चली गई । एक महीने के बाद लौटी । तब तक वह ब्राह्मण नदी तट पर निराहार रहकर कुशाग्र हो गया था । उसका दण्ड निश्चय देखकर उवशी शकट में शककर घी और मधु मिलाकर मत्स्योदरी में स्नान करके तट पर उस ब्राह्मण को बुलाकर बहने लगी ॥१२६-१३०॥

उर्वशी ने कहा—विप्र ! मैंने सौभाग्य में उग्र व्रत को सम्पन्न किया । अब मैं तुम्हें वदना दूंगी । इसे स्वीकार करो ॥१३१॥

व्यास ने कहा—ब्राह्मण ने पूछा— भद्र ! यह गुडमिश्रित चूनि सी चीज तुम दे रही हो ? मैं मुखाभ्यासा हूँ । सब बतलाओ । ॥१३२॥ उर्वशा ने कहा— विप्र ! यह गुडमिश्रित शकट है । इसे शीघ्र खाकर तुम आत्म

सा प्राह शकटो विप्र शर्करापिष्टसंयुतः । इमं त्वं समुपादाय प्राणं तर्पय मा चिरम् ॥१३३॥
 स तच्छ्रुत्वाऽयं संस्मृत्य क्षुधया पीडितोऽपि सन् । प्राह भद्रे न गृह्णामि' नियमो हि कृतो मया ॥१३४॥
 पुरतः सिद्धवर्गस्य न भोक्ष्ये शकटं त्यजति । परित्यागार्थमुर्वंश्या ददस्वान्यस्य कस्यचित् ॥१३५॥
 साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृतः काष्ठमये त्वया । नासौ काष्ठमयो भूदक्ष्य क्षुधया चातिपीडितः ॥१३६॥
 तं ब्राह्मणः प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम् । कृतं भद्रेऽयं नियमः सामान्येनैव मे कृतः ॥१३७॥
 तं भूय प्राह सा तन्वी न चेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण । गृहं गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्बं तव भोक्ष्यति ॥१३८॥
 स तामुवाच सुदति न तावद्योमि मन्दिरम् । इहाऽऽयाता वरारोहा त्रैलोक्येऽप्यधिका गुणैः ॥१३९॥
 सा मया मदनात्तेन प्रार्थिताऽऽवासितस्तया । स्वीयतां क्षणमित्येवं स्थास्यामीति मयोदितम् ॥१४०॥
 मासमात्रं गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च । मम सत्यानुरक्तस्य संगमाय धृतव्रते ॥१४१॥
 तस्य सा वचनं श्रुत्वा कृत्वा स्वं रूपमुत्तमम् । विहस्य भावगम्भीरमुर्वंशी प्राह तं द्विजम् ॥१४२॥

उर्वंश्युवाच

सांघु सत्यं त्वया विप्र व्रतं निष्ठितचेतसा । निष्पादितं हठादेव मम दर्शनमिच्छता ॥१४३॥
 अहमेवोर्वंशी विप्र' त्वां 'जिज्ञासार्थमागता । परोक्षितो निश्चितवान्भवान्सात्यतया ऋषिः ॥१४४॥
 गच्छ' शूकरबोद्धेशं रूपतीर्थेति विश्रुतम् । सिद्धिं यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्वं मामवाप्स्यसि ॥१४५॥

तृत्वि करो।' यह सुनते ही उसे स्मरण हो आया। तब क्षुधा से पीडित होते हुए भी उसने कहा—'भद्रे । मैंने सिद्धपुरुष के सामने प्रतिज्ञा की है कि मैं शकट नहीं खाऊँगा। इसलिये तुम दूसरे किसी को दे दो ॥१३३-१३५॥
 उर्वंशी ने कहा—'भद्र । तुमने लकड़ी के शकट के बारे में प्रतिज्ञा की है। यह तो लकड़ी का नहीं है। तुम अत्यन्त भूखे हो। इसलिये खा लो ॥१३६॥ ब्राह्मण ने कहा—'भद्रे । मैंने सामान्यतया प्रतिज्ञा की थी, विशेष करने नहीं।' उर्वंशी ने कहा—ब्राह्मण । यदि खाओगे नहीं तो इसे घर ले जाओ, तुम्हारे कुटुम्ब का लेंगे ॥१३७-१३८॥ ब्राह्मण ने कहा—'मनोहर दांत वाली । मैं घर नहीं जाऊँगा। तीनों लोक में सबसे अधिक गुणवती कामिनी यहाँ आई है—यह जानकर मैं तुम्हारे पास आया और कामपीडित होकर मैंने तुमसे प्रार्थना की। तुमने भी आश्वासन दिया कि क्षण भर ठहरो। मैंने उत्तर दिया कि ठहरता हूँ ॥१३९-१४०॥ भद्रे' तुम एक मास तक यही रही। मैं तब से यही हूँ। मुझे तुमसे सच्चा प्रेम है।' उनके वचन सुनकर उर्वंशी उत्तम स्वरूप बनाकर हँसती हुई गम्भीरतापूर्वक उससे कहने लगी ॥१४१-१४२॥

उर्वंशी बोली—विप्र । तुमने सत्य कहा। मेरे दर्शन की इच्छा से तुमने श्रद्धापूर्वक व्रत सम्पन्न किया। मैं ही उर्वंशी हूँ। तुम्हारी जिज्ञासा करने के लिये आई हूँ। मैंने परीक्षा की। तुम निश्चयी तथा सत्य तपस्वी ऋषि हो। विप्रेन्द्र । तुम ताते के शब्द के अनुसार रूपतीर्थ में जाओ। वहाँ सिद्धि प्राप्त करने के बाद तुम मुझे पा जाओगे ॥१४३-१४५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजा । स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह ॥१४६॥
 तत्र शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचि । देहोत्सर्गं जगामासी गान्धर्वं लोकमुत्तमम् ॥१४७॥
 तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा यथार्थतः । बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्पर ॥१४८॥
 स यज्वा विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । पुनरेष राज्यं निक्षिप्य ययौ शौकरव पुनः ॥१४९॥
 रूपतीर्थं मृतो भूय शक्रलोकमुपागतः । तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः ॥१५०॥
 प्रतिष्ठाने पुरवरे बुधपुत्रं पुरुरवा । बभूव तत्र चोर्वश्या सगमाय तपोधना ॥१५१॥
 एव पुरा सत्यतपा द्विजातिस्तीर्थे प्रसिद्धे स हि रूपसूते ।
 आराध्य जन्मयथ चार्च्यं विष्णुमवाप्य भोगानथ मुवितमेति ॥१५२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसवादे प्रजागरे गीतिकाया प्रशस्तानिरूपण
 नाम अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२८॥

व्यास ने कहा—द्विजयण ! इतना कहकर उवशा आकाश में उड़ गई । वह सत्यतपस्वा ब्राह्मण रूपतीर्थ के लिये प्रस्थित हुआ । ॥१४६॥ वहाँ शान्ति नियम तथा व्रत धारण कर पवित्रतापूर्वक उसने देहत्याग किया । मृत्यु के पश्चात् वह गन्धर्वलोक में गया । वहाँ सौ भवतरो तक उत्तम भागों को भोग कर सदाश्री राजा होकर उत्पन्न हुआ । उसने प्रजापालन में निरत रहकर उत्तम दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ किये । पश्चात् पुत्रों को राज्य सौंप कर रूपतीर्थ के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पर शरीर त्यागकर वह इन्द्रलोक पहुँचा । वहाँ सौ मन्वन्तरों तक योगों को भोगकर वहाँ से व्यत होने पर प्रतिष्ठान नामक अष्टपरी में बुध का पुत्र पुरुरवा होकर उत्पन्न हुआ । मुनिवृन्द ! वहाँ उर्वशी के साथ उसका संगम हुआ । इस प्रकार पूर्वकाल में सत्यतपा नामक ब्राह्मण ने प्रसिद्ध रूपतीर्थ में विष्णु की आराधना कर जन्म के पश्चात् अनेक भोगों को भोगकर मोक्ष प्राप्त किया ॥१४७-१५२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के सवाद प्रकरण में जागरण-गीत प्रशंसा निरूपण नामक दो सौ अठ्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२८॥

अथैकोनविंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसवादे विष्णुभक्तिहेतुकथनम् -

मुनय ऊचुः.

श्रुतं फलं शीतिकाया अस्माभिः सुप्रजागरे । कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमा गतिम् ॥१॥
यथा विष्णो भवेद्भक्तिस्ततो ब्रूहि महामते । तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम संप्रतम् ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । यथा कृष्णे भवेद्भक्तिं पुरुषस्य महाफला ॥३॥
ससारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे । 'महामोहकरे नृणां नानादुःखशताकुले' ॥४॥
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमानं पुनः पुनः । कथंचित्लभते जन्म देहो मानुष्यकं द्विजा ॥५॥
मानुषत्वेऽपि विप्रत्वं विप्रत्वेऽपि विवेकिता । विवेकाद्धर्मबुद्धिस्तु बुद्ध्या तु श्रेयसा ग्रहः ॥६॥
यावत्पापक्षयं पुसा न भवेज्जन्मसंचितम् । तावन्न जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये ॥७॥
तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्रा भक्तिं कृष्णे यथा भवेत् । अन्यदेवेषु या भक्तिः पुरुषस्येह जायते ॥८॥

अध्याय २२६

व्यास और मुनियों के सवाद में विष्णुभक्ति का कारण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाबुद्धिमान । हमने जागरण-कालीन कृष्ण गीत के फल तथा चाण्डाल के परम गति प्राप्त करने के विषय में सुना । अब विष्णु से जिस प्रकार भक्ति हो वह बतलाइये । जिस तप या कर्म से विष्णु भक्ति होती है वह हम सुनना चाहते हैं ॥१२॥

व्यास ने कहा—मुनिवर । जिस प्रकार पुरुष को कृष्ण ने महाफलदायिनी भक्ति होगी वह मैं अक्षरशः बतलाऊँगा ॥३॥ द्विजगण । महामयबर समस्त प्राणियों के लिये भयावह महामोहकारी तथा अनेक प्रकार के दुःखा से परिपूर्ण इस ससार में प्राणी हजारों नीचयोनियों में बार-बार उत्पन्न होकर कभी मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४५॥ मनुष्ययानि में भी ब्राह्मण होता और ब्राह्मणत्व प्राप्त होने पर भी विवेक होना परम दुर्लभ है । विवेक से धर्मबुद्धि होती है और उससे कल्याण होता है ॥६॥ पुरुषों का पुनर्जन्माजित पाप जब तक नष्ट नहीं होता है तब तक विश्वात्मा वासुदेव में भक्ति नहीं होती है ॥७॥ विप्रबुद्ध । इसलिये जिस उपाय से कृष्ण तथा अन्य देवों में पुरुष को भक्ति होगी वह मैं बतलाऊँगा ॥८॥ मुनिश्रेष्ठो । कम मन, वाणी से उसी देव में

कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना । तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः ॥९॥
 स करोति ततो जिघ्रा भवति 'चाग्नेः समाहितः । तुष्टे हृताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे ॥१०॥
 पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः । प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥११॥
 पूजां करोति विधिवत्स 'तु शम्भोः प्रयत्नतः । तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति येशवे ॥१२॥
 संपूज्य तं जगन्नाथं वामुदेवायमध्ययम् । ततो भुक्ति च मुक्ति च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः ॥१३॥

मुनय ऊचुः

अवेष्टया नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने । किं ते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारणं द्विज ॥१४॥

ध्यास उवाच

द्वौ भूतसर्गौ' विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः । आसुरश्च तथा देवः पुरा सृष्टः स्वयंभुवा ॥१५॥
 देवौ प्रकृतिमासाद्य पूजयन्ति ततोऽच्युतम् । आसुरौ योनिमापन्ना दूषयन्ति नरा हरिम् ॥१६॥
 मायया हतविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः । अप्राप्य तं हरिं विप्रास्ततो मान्यधर्मा गतिम् ॥१७॥
 'तस्य या गह्वरी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः । महामोहकरी नृणां दुस्तरा चावृतात्मभिः ॥१८॥

मुनय ऊचुः

इच्छामस्तां महामायां ज्ञातुं विष्णोः सुदुस्तराम् । ध्वस्तुमर्हसि धर्मज परं कौतूहलं हि न ॥१९॥

चित्त लगाकर यज्ञ करने से भक्ति होती है । सावधान होकर अग्नि की भक्ति करनी चाहिये । अग्नि के सत्पुष्ट होने पर सूर्य में भक्ति होती है ॥९-१०॥ सतत सूर्य की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर शंकर में भक्ति होती है । यत्न करके विधिपूर्वक शंकर की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर कृष्ण में भक्ति होती है । वामुदेव समस्त अविनाशी जगन्नाथ की पूजा करने से मुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥११-१३॥

मुनियो ने कहा—महामुने ! जो मनुष्य अवैष्णव देसो जाते हैं, क्या वे विष्णु की पूजा नहीं करते हैं ? विप्र ! इसका कारण बतलाइये ॥१४॥

ध्यास ने कहा—मुन्निवर ! इस सौर में ब्रह्मा ने प्राणियों की दो प्रशस्ति की गीति की है—एक आसुरी सृष्टि और दूसरी देवी । देवी प्रकृति के मनुष्य वामुदेव की पूजा करते हैं और आसुरी योनि वाले मनुष्य हरि की निन्दा करते हैं । ये नराधम विष्णु की माया से हतबुद्धि होकर हरि को न धाने में अपम गति को प्राप्ति करते हैं । विष्णु की जा बटिटा माया है, उसे देवता तथा राक्षस नहीं जानते हैं । वह मनुष्या को महामोह में डालती है । वह अविनेश्वर्य व्यक्तियों से दुर्जय है ॥१५-१८॥

मुनियों ने कहा—एव विष्णु का दुर्जय माया को जानना चाहते हैं । धर्मज ! बतलाइये ! हमें बड़ी उत्पत्ति हो रही है ॥१९॥

व्यास उवाच

स्वप्नेन्द्रजालसकाशा माया सा लोककर्षणी । क शबनोति हरेर्माया ज्ञातु ता केशवादृते ॥२०॥
 या वृत्ता 'ब्राह्मणस्याऽऽसीन्मायायै' नारदस्य च । विडम्बना तु ता विप्रा शृणुध्व गदतो मम ॥२१॥
 प्राणासीन्नृपति श्रीमानाम्नोध्र इति विश्रुत । नगरे कामदमनस्तस्याय तनय शुचि ॥२२॥
 धर्माराम क्षमाशील पितृशुभ्रूपणे रत । प्रजानुरञ्जको दक्ष श्रुतिशास्त्रकृतधम ॥२३॥
 पिताऽस्य स्वकरोद्यत्न विद्याहाय न चच्छत । त पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसग्रहम् ॥२४॥
 सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छन्ति मनुजा किल । सुखमूला हि दाराश्च तस्मात् त्व समाचर ॥२५॥
 स पितुर्बन्धन श्रुत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात् । मृदुमुहुरत च पिता चोदयामास भो द्विजा ॥२६॥
 क्षयातो पितर प्राह तात नामानुरूपता । मया समाश्रिता व्यक्ता वंष्णवी परिपालिनी ॥२७॥
 त पिता प्राह सगम्य नैप धर्मोऽस्ति पुत्रक । न 'विचारयितव्या स्यात्पुरुषेण विपश्चिता ॥२८॥
 कुह मद्बचन' पुत्र प्रभुरस्मि पिता तव । मा निमज्ज कुल महा नरके सततिसंयात् ॥२९॥
 स हि त पितुरादेश श्रुत्वा प्राह सुतो वशी । प्रीत सस्मृत्य पौराणी ससारस्य विचित्रताम् ॥३०॥

पुत्र उवाच

शृणु तात वचो महा तत्त्ववाक्य सहेतुकम् । नामानुरूप वर्तव्य सत्य भवति पार्थिव ॥३१॥

व्यास ने कहा—लोगों को मोहित करने वाली वह माया स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है । बिना मग-
 धान के उसे कौन जान सकता है ? विप्रबृद । उस माया के कारण विप्र नारद की जो दशा हुई उसे भुझसे सुन
 लीजिये ॥२०-२१॥ प्राचीन समय म आम्नाध्र नामक राजा था । उसका पुत्र कामदमन पवित्र धर्मात्मा क्षमा
 शील, प्रजाप्रमी निपुण तथा वेदशास्त्रवेत्ता था । पिता ने पुत्र के विवाह के लिये यत्न किया पर पुत्र ने अस्वी-
 कार कर दिया । तब पिता ने पुत्र म पूछा— क्या तुम विवाह नहीं करना चाहते हो ? मनुष्य सब कुछ सुख
 ही के लिये चाहते हैं । स्त्री सुख की जड़ है । इसलिये तुम विवाह कर लो ॥२२-२५॥ पुत्र पिता का बचन
 सुनकर चुप हो गया । पिता म बार-बार उसने पूछा ॥२६॥ तब उसने पिता से कहा— तात । मैंने विष्णु के
 नामानुरूप उनकी लोकपालिना माया का आश्रय लिया है । पिता न फिर उससे कहा— पुत्र । यह धम नहीं है ।
 विद्वान् पुरुष को विष्णु माया का धारण नही करना चाहिये । पुत्र । मेरी बात मानो । मैं तुम्हारा अन्यस तथा
 पिता हूँ । सत्तान्धस्य ब्रह्मे कुल को नरक म मत डालो ॥२७-२९॥ पिता की आज्ञा सुनकर वक्ष्यात्मा पुत्र समार
 की पुरातनी विचित्रता का स्मरण करके प्रसन्न हुआ ॥३०॥
 पुत्र ने कहा—तात । मेरे हेतुपूण तत्त्वबचन को आप सुनें । राजन् । विष्णु की माया के अनुरूप वाय

१क ०णध्रष्टा माया० । २ख ०स्यार्थे माया० । ३ग लत । म० । ४ग व्युत्पन्न त्वदाज्ञाप० । ५ग
 ०इ प्रहृष्टाग्राम्य नाम ब० । ६ग विचारयितव्य । ७क ०त् । पितुरादेशेन श्रु० । ८ग कृत्वा ।

मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च । प्राप्तानि दारसंयोगवियोगानि च सर्वशः ॥३२॥
 तृणगुल्मलतावल्लोसरीसुपमगुह्विजाः । पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया ॥३३॥
 गणकिनरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः । यक्षगुह्यकरक्षांसि दानवाप्सरसः सुराः ॥३४॥
 नदीदवरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः । सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ संहारे चापि संहतः ॥३५॥
 दारसंयोगयुवतस्य तातेदृढमे विडम्बना । इतस्तूतीये यद्वत्तं मम जन्मनि तच्छृणु ॥
 कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसंभवम् ॥३६॥

अतीत्य जन्मानि बहूनि तात, मृदेवगन्धर्वमहोरगानाम् ।
 विद्याधराणां खगकिनराणां, जातो हि वंशे सुतया महर्षिः ॥३७॥
 ततो महाभूदचला हि भक्तिजनादने लोकपती मधुघ्ने
 व्रतोपवासंविधिषद्वत् भक्त्या, संतोषतश्चक्रगदास्त्रधारी ॥३८॥
 दुष्टोऽभ्यगात्पक्षिपतिं महात्मा, विष्णुः समारुह्य वरप्रदो मे ।
 प्राहोन्वचशब्दं श्रियतां द्विजाते, वरो हि ये वाञ्छसि तं प्रदास्ये ॥३९॥
 ततोऽहमूचे हरिमोक्षितारं, दुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमिं ।
 या सा त्वदीया परमा हि माया, तां वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम् ॥४०॥
 अयाव्रबोन्मे मधुकंदभारिः, किं ते तया ब्रह्मनामया वै ।
 धर्मार्थकामानि ददानि तुम्यं, पुत्राणि भूष्यानि निरामयत्वम् ॥४१॥

ही सत्य है । मैंने हजारों जन्म, सैकड़ों वृद्धत्व तथा मरण प्राप्त किये । विनयो से संयोग तथा वियोग भी प्राप्त किये । सैकड़ों तृण, गुल्म, लता, मृग आदि प्राप्त किये । पशु, स्त्री, पुरुष, गण, विन्नर, गन्धर्व, विद्याधर, महासर्प, यक्ष, गुह्यकर, राक्षस, दानव, अप्सरा, देवता तथा सहस्रो नदियाँ प्राप्त कीं । अनेकों बार मेरा सर्जन तथा संहार हुआ । तात ! इसलिये मेरी समझ से स्त्री-संयोग करना विडम्बनामान है । इससे पिछले तीसरे जन्म में तीर्थ के माहात्म्य से उत्पन्न जो मेरा वृत्तान्त हुआ वह संक्षेप में कहता हूँ ॥३१-३६॥ तात ! मनुष्य, देवता, गन्धर्व, महासर्प, विद्याधर, पक्षी, विन्नर आदि अनेक जन्मों के बाद मैं सुतपा नामक महर्षि हुआ ॥३७॥ उस समय मधु नामक राक्षस के मारने वाले लोकपति जनार्दन मेरी अबल भक्ति हुई । विविध व्रत, उपवास तथा भक्ति से मैंने शक्र, गदा तथा अस्त्र धारण करने वाले विष्णु को सतुष्ट किया ॥३८॥ प्रसन्न होने पर महात्मा विष्णु गरड़ पर चढ़ कर मुझे वरदान देने के लिये आये । उच्च स्वर में विष्णु ने कहा—'विप्र ! वर मांगो । तुम्हें जो अभीष्ट हो, वह मैं दूँगा' ॥३९॥ तब मैंने सर्वशक्तिमान् हरि से कहा—'केशव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं वर मांगता हूँ । जनार्दन ! आपकी जा परमा माया है, उसे मैं जानना चाहता हूँ' ॥४०॥ तब मधुकंदभ के दानु भगवान् ने मुझसे कहा—'ब्रह्मन् ! माया से तुम्हें क्या करता है ? मैं तुम्हें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र तथा आरोग्य प्रदान करता हूँ' ॥४१॥ तब फिर मैंने मुर नाभक राक्षस के दानु भगवान् से कहा—'अर्थ, धर्म, काम की जीतने वाली जो

ततो मुरारि पुनरुक्तवानहं, भूपोऽर्थधर्मार्थजिगीषितं वत् ।
माया तवैवामिह वेत्तुमिच्छे, ममाद्य तां दर्शय पुष्कराक्ष ॥४२॥
ततोऽभ्युवाचाय नृसिंहमुख्यः, श्रीशः प्रभुविष्णुरिदं वचो मे ॥

विष्णु उवाच

मायां मदीयां न हि वेत्ति कश्चिन्न चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव ॥४३॥
पूर्वं सुरपिद्विज नारदात्म्यो, ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुक्तः ।
तेनोपि पूर्वं भवता ययैव, संतोषितो भक्तिमता हि तद्वत् ॥४४॥
वरं च दत्तं (दातुं) गतवानहं च, स चापि वज्रे वरमेतदेव ।
निधारितो मामतिमूढभावाद्भवान्ययं वृत्तवान्वरं च ॥४५॥
ततो मयोक्तोऽस्मत्ति नारद त्वं, मायां हि मे वेत्स्यति संनिम्नः ।
ततो निम्नोऽस्मत्ति नारदोऽसौ, कन्या बभौ काशिपतेः सुशीला ॥४६॥
तां यौवनाद्यामय चारुधर्मिणे, विदभंराजस्तनयाय वं ददौ ।
स्व (सु) धर्मणे सोऽपि तथा समेत, सिषेव कामानतुलान्महोपः ॥४७॥
स्वर्गे गतेऽसौ पितरि प्रतापवान्नाग्यं क्रमायातमवाप्य हृष्टः ।
विदभंराष्ट्रं परिपालयान्, पुत्रः सपौत्रबहुभिर्वृत्तोऽभूत् ॥४८॥
अयाभवद्भूमिपतेः सुधर्मणः, काशीश्वरेणाथ समं सुयुद्धम् ।
तत्र क्षयं प्राप्य (प) सपुत्रपौत्रं, विदभंराट्काशिपतिश्च युद्धे ॥४९॥

आपकी माया है, उसी को मैं जानना चाहता हूँ। कनकाक्ष ! आज मुझे उसका दर्शन कराइये। तदनन्तर नृसिंह, लक्ष्मीपति, प्रभु, विष्णु आदि नाम वाले भगवान् ने मुझसे यह वचन कहा ॥४२॥

विष्णु धोले—मेरी माया को न कोई जानता है न जानेवा। डिज ! पहले ब्रह्मा के पुत्र भक्तिमान् देवि नारद ने तुम्हारी ही तरह अपनी भक्ति से मुझे सतुष्ट किया। जब मैं वर देने के लिये गया तो उसने भी यही वर मागा। मेरे यत्न करने पर भी उसने अत्यन्त मूर्खता से तुम्हारी ही तरह हठ किया ॥४३-४५॥ तब मैंने कहा—‘नारद ! जल में डूबकर तुम मेरी माया का जानोगे।’ तदनन्तर वह नारद जल में निमग्न होने पर काशी-नरेस की सुशीला नामक बालिका वन गया ॥४६॥ उस पूर्ण युवती कन्या को काशीपति ने चारुधर्मो नामक विदमंपति ने पुत्र को व्याह दिया। सुधर्मा ने उसका साथ अनुत्तमीय कामा का उपभोग किया ॥४७॥ पिता की मृत्यु हो जाने पर प्रतापी सुधर्मा क्रमागत राज्य को प्राप्त कर तृप्त हुआ। विदमं राज्य का परिपालन करते हुए सुधर्मा के अनेको पुत्र-पौत्र हुए ॥४८॥ तत्पश्चात् पृथ्वीपति सुधर्मा की काशीपति ने युद्ध हुआ। उस युद्ध में विदमंराज तथा काशीनरेस दोनों ने सब पुत्र-पौत्र मारे गये ॥४९॥ तब सुशीला पुत्र-पौत्र सहित अपने

तत सुशीला पितर सपुत्र, ज्ञात्वा पतिं चापि सपुत्रपौत्रम्	।
पुराद्विनि सृत्य रणार्वाणि गता, दृष्ट्वा सुशीला कदन महान्तम्	॥५०॥
भर्तृबले तत्र पितुर्बले च, दुःखान्विता सा सुचिर विलप्य	।
जगाम सा मातरमार्तरूपा, भ्रातृन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान्	॥५१॥
भर्तारमेया पितर च गृह्य, महाश्मशाने च महार्चिति सा	।
कृत्वा हुताश प्रददौ स्वयं च, यदा समिद्धो हुतभुग्बभूव	॥५२॥
तदा सुशीला प्रविश शवेगाद्धा पुत्र हा पुत्र इति ब्रुवाणा	।
तदा पुन सा मुनिर्नारदोऽभून्, स चापि बह्वि स्फटियामलम्भ	॥५३॥
पूर्णं सरोऽभूदथ चोत्तार, तस्याप्रतो देववरस्तु केशव	।
प्रहस्य देवपिमुवाच नारदम्	॥५४॥
कस्ते तु पुत्रो वद मे महर्षे मृतं च क शोचसि नष्टबुद्धि	।
श्रीडान्वितोऽभूदथ नारदोऽसी, ततोऽहमेन पुनरेव चाऽह	॥५५॥
इतीदृशा नारद कष्टरूपा, माया मदीया कमलासनाद्यं	।
शयया न वेत्तु समहेन्द्रहृदं, कथं भवान्वेत्यपि दुर्विभाव्याम्	॥५६॥
स वाक्यमाकण्य महामहर्षिर्ब्रुवाच भवित मम देहि विष्णो	।
प्राप्तेऽय काले स्मरणं तथैव, सदा च सदशनमोश तेऽस्तु	॥५७॥
यत्राहमार्तश्चितिमद्य रुढस्तत्तीर्थमस्त्वच्युतपापहन्त्रा	।
अधिष्ठित केशव नित्यमेव त्वया सहाऽस (हेद) कमलोद्भवेन	॥५८॥

पिता तथा पति की मृत्यु का समाचार पाकर नगर से बाहर निकल कर मुद्राक्षत्र में चली गई। पति सेना तथा पितृ सेना दाला तरफ महान दुःख देखकर बह बड़ी शोकान्तर हुई और चिर कांत तन विगाप करके अपनी माता के पास गेट आई। फिर उसने महम्मगान म आकर भाई पुत्र पौत्र पति पिता सजने लिये। वता बनाकर अग्नि प्रदान किया। जब अग्नि प्रज्वलित हुआ तब मुनीन् हा पुत्र हा पुत्र बोली हुई वेग से अग्नि में प्रविष्ट हो गई। प्रवेग करते ही वह मुनि नारद के रूप में परिणत हो गई। अग्नि की स्फटिक के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर के रूप में परिणत हो गया। तदनंतर देवश्रेष्ठ वेगव नारद के सामने आकर हँसते हुए कहने लगे ॥५०॥ ५४॥ महर्षे! तुम्हारा बौन पुत्र या? कहो। मृत्युबुद्धि की तरफ किस मृतक के लिये गोचर कर रहे हो? यह सुनकर नारद बहुत रुजित हुआ। तब फिर मैंने उससे कहा—नारद! मेरी माया ऐसी ही कष्टरूपा है। ब्रह्मा इन्द्र महेश आदि देवता भी इसे नहीं जान सकते हैं। तब तुम क्यों इस अचित्य माया को जानोगे ॥५५॥ ५६॥ यह बात सुनकर महामहर्षि नारद ने कहा—विष्णो! अरु मृत अपनी भक्ति दीजिये। और समय पर आप स्वस्मरण तथा स्मरण होते रहें ॥५७॥ अभ्युत। आज जहाँ पर मैंने बिना बनाई है वहाँ पापहरी तीर्थ हो जाय। ब्रह्मा सहित आप भी वहाँ रहा करें ॥५८॥ तब मैंने कहा—शिव नारद! आपकी रची हुई बिता स्वच्छत्रपुत्र

ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ, तीर्थं सितोदे (६) हि चितिस्तवास्तु ।
 स्थास्याम्यहं चान सदैव विष्णुर्महेश्वर स्यात्पति चोत्तरेण ॥५९॥
 नदा विरञ्चचेन्दन त्रिनेत्र स च्छेत्यथेत्यं च ममु (त्वय चो) प्रवाचम् ।
 तदा कपालस्य तु मोचनाय, समेष्यते तीर्थमिदं त्वदीयम् ॥६०॥
 स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य, पतिष्यते भूमितले कपालम् ।
 ततस्तु तीर्थेति कपालमोचन, रयात पृथिव्या च भविष्यते तत् ॥६१॥
 तदा प्रभृत्यम्बुदवाहोऽसौ, न मोक्ष्यते तीर्थंवर सुपुण्यम् ।
 न चैव तस्मिन्द्विज सप्रचक्षते, तत्क्षेत्रमुग्र त्वय ब्रह्मवध्या ॥६२॥
 यदा न मोक्षयमरारिहन्ता, तत्क्षेत्रमुग्र महदागतपुण्यम् ।
 तदा विमुक्तयेति सुरै रहस्य, तीर्थं स्तुत पुण्यदमध्ययाह्वयम् ॥६३॥
 कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति, तस्मिन्प्रविष्ट शुचिरप्रमादी ।
 यदा तु मा चिन्तयते स शुद्ध, प्रयाति मोक्ष भगवत्प्रसादात् ॥६४॥
 भूत्वा तस्मिन्नुद्रपिशाचसज्जो योयन्तरे दुःखमुपाश्रनुतेऽसौ ।
 विमुक्तपापो बहुवर्षपूर्वकृत्पतिमायास्याति विप्रगोहे ॥६५॥
 शुचिर्यतात्माऽस्य ततोऽन्तकाले, रदो हित तारकमस्य कीर्तयेत् ।
 इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्यं नारद, गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगोहम् ॥६६॥
 स चापि विप्रस्त्रिदिव चचार, गन्धर्वराजेन समर्च्यमान ।
 एतत्तवोक्तं ननु बोधनाय माया मदीया नहि शक्यते सा ॥६७॥

तीर्थं हो जायगी। मैं यहाँ सदा वास करूँगा। बाद में शंकर भी रहेंगे। जब शंकर ब्रह्मा के मुख की काटेंगे तब खोपड़ी को निकालने के लिये वे इस तीर्थ में आयेंगे। शंकर जब इसमें स्नान करेंगे तब कपाल पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। तब से यह तीर्थ कपालमोचन नाम से पृथिवी पर प्रसिद्ध होगा ॥५९६१॥ तब से लेकर इन्द्र इस पवित्र तीर्थ का कभी नहीं छोड़ेंगे। द्विज। इस उपक्षेत्र में ब्रह्महत्या भी नहीं रह पाएगी (अर्थात् इस तीर्थ के सेवन से ब्रह्म हत्या का पाप नष्ट हो जायगा।) जब इन्द्र इस परम पवित्र तीर्थ की न छाँटेंगे तब देवता लोग विमुक्त नाम रख कर इस पुण्यदायक तथा अविनाशी तीर्थ की स्तुति करेंगे। जो मनुष्य महान् पाप करने भी पवित्रता तथा सावधानतापूर्वक इसमें प्रवेश कर मेरा ध्यान करेगा वह मेरी कृपा से शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ॥६२६३॥ जो भयंकर पिशाच है या किसी योनि में बन्धे पाता है वह भी इसमें स्नान करके पापमुक्त होकर ब्राह्मण के घर में जन्म लेगा ॥६५॥ वह पवित्र तथा सयमी होगा। अतःकाल में शंकर उस तारक मन्त्र सुना देंगे। द्विजवर्य! नारद से इतना कहकर मैं अपना घर क्षारसमुद्र चला गया ॥६६॥ वह ब्राह्मण भी गन्धर्वराज ने सम्मानित होते हुए स्वर्ग में विचरण करने लगा। इतन मैंने तुम्हें बोध कराने के लिये कह दिया। मेरी माया को नहीं जान सकते हो ॥६७॥ यदि तुम जानन ही चाहते हो तो जल में प्रवेश करो जिससे जान पाओगे।' इस प्रकार

ज्ञातु भवानिच्छति चेत्ततोऽद्य, एव विशस्वाप्सु च वेत्ति येन ।
 एष द्विजातिर्हंरिणा प्रबोधितो, भाव्ययंयोगाग्निममज्ज तोये ॥६८॥
 कोकामुखे तात ततो हि कन्या, चाण्डालवेशमन्यभवदद्विज स ।
 रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना, अवाप सा यौवनमाससाद ॥६९॥
 चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि, विवाहिता रूपविवर्जितेन ।
 पतिर्न तस्या हि मतो बभूव सा तस्य चंवाभिमता बभूव ॥७०॥
 पुत्रद्वय नेत्रहीन बभूव, कन्या च पश्चादबधिरा तथाऽप्या ।
 पतिदरिद्रस्त्वय साऽपि मुग्धा, नदीगता' रोदिति तत्र नित्यम् ॥७१॥
 गता कदाचित्कलश गृहीत्वा, साऽतर्जल स्नातुमय प्रविष्टा ।
 यावदद्विजोऽसौ पुनरेव तावज्जात त्रियायोगरत सुशील ॥७२॥
 तस्या स भर्ताऽय चिरगतेति, द्रष्टु जगामाय नदीं सुपुण्याम् ।
 ददश कुम्भ न च ता तटस्था, ततोऽतिदुःखात्प्ररुद नादयन ॥७३॥
 ततोऽप्ययुग्म बधिरा च कन्या, दुःखान्विताऽसौ समुपाजगाम ।
 ते वै रुदन्त पितर च दृष्ट्वा, दुःखान्विता वै रुदुर्भृशार्ता ॥७४॥
 तत स पप्रच्छ नदीतटस्थान्द्विजा-भवदभिर्यदि योपिदेका ।
 दृष्टा तु तोयार्थमुपाद्रवन्ती आख्यात ते प्रोचुरिमा प्रविष्टा ॥७५॥
 नदीं न भूयस्तु समुत्तार, एतावदेवेह समोहित न ।

भगवान् द्वारा समझाया जाने पर भी वह ब्राह्मण माथीवश कोकामुख नामक तीर्थ के जल में डूब गया ॥६८॥
 तात ! तब वह द्विज चाण्डाल के घर में कया होकर उत्पन्न हुआ। वह कया रूपवती शील गुण सम्पन्ना तथा
 युवती हुई ॥६९॥ सुबाहु नामक एक कुरुक्ष चाण्डाल-पुत्र से उसका विवाह हुआ। पति उसके मन के अनुरूप
 नहीं हुआ पर वह पति की इच्छानुकूल हुई ॥७०॥ उसके दो अध पुत्र हुए और एक बहरी कया हुई। पति दरिद्र
 था। और वह भूखा प्रतिदिन नदीतट पर जाकर रोती थी ॥७१॥ किसी समय घडा लेकर वह भीतर जल में स्नान
 करने के लिये प्रविष्ट हुई। प्रवेश करते ही वह योग त्रिया नित्य सुशील ब्राह्मण बने गई। उसका पति बहुत देरी
 हुई यह सोच कर पवित्र नदीतट पर देखने को गया। उसने तट पर घड को देखा पर पत्नी को नहीं देखा। तब
 वह जोर से रोने लगा। पश्चात् अध पुत्र तथा बहरी कया उसके पास आई। वे सब रोते हुए पिता को देखकर
 अत्यन्त शोकविह्वल होकर रोने लगे ॥७२॥ ७४॥ तब चाण्डालपुत्र ने सर्पपस्थ ब्राह्मणों से पूछा—'जल मने
 के लिए आई हुई एक स्त्री को आपने देखा हो तो बतलाय। द्विजो ने कहा—एक स्त्री इस नदी में प्रविष्ट हुई

स तद्वचो धीरतरं निशम्य, हरोद शोकाध्रुपरिप्लुतात्	॥७६॥
त वं रुदन्त ससुत सकय, दृष्ट्वाऽहमार्तं सुतरा बभूव	।
आर्तिश्च भेऽभूदय सस्मृतिश्च, चाण्डालयोपाऽहमिति क्षितोऽश	॥७७॥
ततोऽग्रव त नृपते मतङ्ग, किमयमात्तेन हि दृद्यते त्वया	।
तस्या न लाभो भविताऽतिमोर्ध्वादानन्दितनेह वृथा हि किं ते	॥७८॥
स भामुवाचाऽऽत्मजपुग्ममन्ध, कन्या चैका दधिरेय तथैव	।
कय द्विजाते अधुनाऽऽत्मेतमाश्वासयिष्येऽपय पोषयिष्ये	॥७९॥
इत्येवमुक्त्वा स सुतश्च सार्धं, पूत्कृत्य पूत्कृत्य च रोदिति स्म	।
यथा यथा रोदिति स श्वपाकस्तथा तथा ^१ मे ह्यभवत्कृताऽपि	॥८०॥
ततोऽहमार्तं तु निवार्यं त वं, स्ववशावृत्ता तमथाऽऽचक्षते	।
तत स दुःखात्सह पुनरं सविवेश कोकामुखमार्तंरूप ^२	॥८१॥
प्रविष्टमात्रे सलिले मतङ्गस्तीयप्रभावाच्च विमुक्तपाप	।
विमानमारुह्य शशिप्रकाश, यथो दिव तात भमोपपश्यत	॥८२॥
तस्मिं प्रविष्टे सलिले मृते च, भमार्तिरासीदतिमोहकार्त्रो	।
ततोऽतिपुण्ये नृपवर्यं कोकाजले प्रविष्टस्त्रिदिव गतश्च	॥८३॥

पर फिर निकली महा। वस इतना ही हम जानत हैं। ब्राह्मणों का दचन मुनकर सुबाहु राग लगा। उसकी आँखें गोकाध्रु से परिप्लुत हो गई। वंथा-पुन सहित उसे राते हुए देखकर मैं भी दुखी हो गया। राजन! मुझ दुख हुआ और यह स्मरण भी हुआ कि मैं ही इस चाण्डाल की स्त्री हूँ ॥७५-७७॥ पृथ्वीगत! तब मैं चाण्डाल म कहा—क्यों दुख से रो रहे हो? वह नहीं मिलेगा। अब राग अत्यन्त मुखता है। तब उसने मुझसे कहा—विप्र! मेरे दो पुत्र अर्ध हैं तथा एक कन्या बहुरी है। उन्हें मैं कस आश्वासन दूँ? कैसे उनका पालन करूँ? इतना कहकर वह पुत्रों के साथ सितरु मिसक कर राते लगा। जैसे-जैसे वह चाण्डाल राता था वैसे वैसे मुझ उस पर दया आती थी ॥७८-८०॥ तब मैंने उसे रोका कर अपने वश का वस्त्रात मुना दिया। पश्चात् उसने पुत्रों समेत काष्ठामुख साथ म प्रवेग बिगा। जल में प्रवेग करते ही चाण्डाल तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो गया। तब वह चन्द्रमुख्य प्रकाशमान विमान पर चढ़कर मेरे देखते ही स्वर्ग चला गया ॥८१-८२॥ उसके जल म प्रवेश करने पर तथा मर जाने पर मुझ अत्यन्त माहकारण दुःख हुआ। नपवय! तब मैं भी बाह्यजल में प्रवेग कर स्वर्ग का चला गया ॥८३॥ पुन मेरी उत्पत्ति वैश्वकुल म हुई। वहाँ मैं परम दुखी था। पर तीर्थराज की

भूयोऽभवं वैश्यकुले व्ययातौ, 'जातिस्मरस्तोयंवरप्रसादात्	।
ततोऽतिनिविण्णमना गतोऽहं, कोकामुख' संपतवाक्यचित्त'	॥८४॥
अत समास्थाय कलेवरं स्वं, संशोषयित्वा दिवमारोह	।
तस्माच्छ्रुतस्त्वद्भुवने च जातो, जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात्	॥८५॥
सोऽहं समाराध्य 'मुरारिदेव, कोकामुखे त्यक्तशुभाशुभेच्छ'	।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य, गत्वा च कोकामुखमप्रतीर्यम्'	।
विष्णु समाराध्य वराहरूपमवाप सिद्धिं मनुजपंभोऽसौ	॥८६॥
इत्थं स कामदमन' 'सहपुत्रपौत्र', कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये	।
त्यक्त्वा तनुं दोषमयीं ततस्तु, गतो दिवं सूर्यसमंविमानः	॥८७॥
एव भयोक्ता परमेश्वरस्य, माया सुराणामपि दुर्वचिन्त्या	।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारेरया जगन्मोहमुपैति विप्रा'	॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णुधर्मानुकीर्तने मायाप्रादुर्भावनिर्हणं नामकोन-
विंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥

कृपा से मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण था। तब मैं अत्यन्त विषम मन से कोकामुख तीर्थ में गया। वहाँ वास्तव्यम
रूपा चित्तसंशय करके शरीर त्याग कर स्वर्ग पहुँचा। वहाँ से च्युत होने पर आपने घर में मेरा जन्म हुआ है।
तात ! हरि की कृपा से मुझे पूर्व जन्मों का स्मरण है। इसलिये शुभ-अशुभ कामनाओं का परित्याग कर मैं कोका-
मुख में विष्णु की आराधना करूँगा।' इतना कहकर पिता की प्रणाम करके राजपुत्र तीर्थराज कोकामुख की
पत्नी गया। वहाँ वराहरूपी विष्णु की उपासना करके नरपुङ्गव राजपुत्र ने सिद्धि प्राप्त की ॥८४-८६॥ इस प्रकार
पुत्र-पौत्र सहित कामदमन अत्यन्त पवित्र कोकामुखतीर्थ में दोषमय शरीर का त्याग कर सूर्यसम विमानों से स्वर्ग
पत्नी गया ॥८७॥ विप्रवृन्द ! देवताओं से भी अचिन्त्य इस परमेश्वर की माया के बारे में मैंने बतला दिया।
यह स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है। इसी में सतार मोह में पड़ता है ॥८८॥

श्रीब्रह्महृत्पुराण में विष्णु धर्म-कीर्तन-प्रसंग में मायाप्रादुर्भाव-निर्हण नामक दो सौ उन्नीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥२२९॥

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे महाप्रलयवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अस्माभिस्तु श्रुतं व्यास यत्त्वया समुदाहृतम् । प्रादुर्भावाश्रितं पुण्यं माया विष्णोश्च दुर्विदा ॥१॥
श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् । महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२॥

व्यास उवाच

श्रूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसंहृतिः । कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३॥
अहोरात्रं पितृणां तु मासोऽब्दं त्रिदिवीकसाम् । चतुर्युगसहस्रे तु ब्रह्मणोऽहद्विजोत्तमाः ॥४॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । देवैर्वर्षसहस्रेस्तु तद्द्वादशभिरुच्यते ॥५॥
चतुर्युगाण्यशेषाणि सद्शानि स्वरूपतः । आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं मुनयोऽन्त्यं तथा कलिम् ॥६॥
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः । क्रियते चोपसंहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे ॥७॥

मुनय ऊचुः

कलः स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हसि । धर्मश्चतुष्पाद्भूगवान्यस्मिन्वैकल्यमृच्छति ॥८॥

२३० अध्याय

व्यास और मुनियों के संवाद में महाप्रलय का वर्णन

मुनियों ने कहा—हे व्यास जी । विष्णु के अवतार तथा दुर्ज्ञेय माया के बारे में आपने जो कहा, उसे हम सुन चुके । महामुनि । अब कल्पान्त में जो महाप्रलय नामक उपसंहार होता है, उसके विषय में हम सुनना चाहते हैं ॥१-२॥

व्यास ने कहा—मुनिवर । कल्पान्त में तथा प्राकृतिक प्रलय में जैसा (जगत् का) संहार होता है, उसे आप यथार्थतः सुन लीजिए । पितरो के अहोरात्रो का जो एक वर्ष होता है वही देवताओं का एक मास हुआ करता है । द्विज-श्रेष्ठो । जब चारो युग एक सहस्र बार बीत जाता है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है । इत, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं । देवताओं के बारह हजार वर्षों के ये युग होते हैं । समस्त युग स्वरूपतः समान हैं । मुनिवृन्द । पहला कृतयुग है और अन्तिम कलियुग है । क्योंकि आद्य कृतयुग में ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और अन्त्य कलियुग में संहार करते हैं ॥३-७॥

मुनियों ने महा—भगवन् । कलियुग के स्वरूप का वर्णन विस्तार से कीजिये, जिसमें चार चरण वाले भगवान् धर्म की हानि होती है ॥८॥

व्यास उवाच

कलिस्वरूप भो विप्रा यत्पृच्छध्व ममानघा । निबोधध्व, समासेन वर्तते यन्महत्तरम् ॥९॥
 वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर कलौ नृणाम् । न सामश्रम्यजुर्वेदविनिष्पादनहेतुकी ॥१०॥
 विवाहान् कलौ धर्मान् न शिष्या गुरुसंस्थिता । न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च बह्विश्रियाक्रम ॥११॥
 यत्र तत्र कुले जातो बली सर्वेश्वर कलौ । सर्वेभ्य एव वर्णभ्यो नर कन्योपजीविन ॥१२॥
 यन तनैव योगिन द्विजातिर्दक्षित कलौ । यैव संव च विप्रेन्द्रा प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥१३॥
 सवमय कलौ शास्त्र यस्य यद्वचन द्विजा । देवताश्च कलौ सर्वा सव सवस्य चाऽऽश्रम ॥१४॥
 'उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सगस्तथा कलौ । धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्ठानैरनुष्ठित ॥१५॥
 वित्तन भविता पुसा स्वल्पनैव' मद कलौ । स्त्रीणा रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥१६॥
 सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्र चापक्षय गते । कलौ स्त्रिया भविष्यन्ति तदा केशैरलंकृता ॥१७॥
 परित्यक्ष्यन्ति भर्तार वित्तहीन तथा स्त्रिय । भर्ता भविष्यति कलौ 'वित्तवानेव प्रीयिताम् ॥१८॥
 यो यो वदाति बहुल स स स्वामी तदा' नृणाम् । स्वामित्वहतुसबन्धो भविताऽभिजनस्तदा ॥१९॥
 गृहान्ता द्रव्यसपाता द्रव्यान्ता च तथा मति । अर्थाश्चायोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ ॥२०॥

व्यास ने कहा—निष्पाप विप्रबुद्ध । कलि का जो स्वरूप आप पूछ रहे हैं वह बहुत विस्तृत है । उसे सक्षप म सुन लीजिए ॥९॥ बलिपुत्र म मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम के आचार की ओर नहीं होगी । साम, श्रम तथा यजुर्वेद का स्वाध्याय नहीं होगा ॥१०॥ कलि मे धार्मिक विवाह नहीं होगा । शिष्यों मे गुरु भक्ति नहीं होगी । धार्मिक पुत्र नहीं होंगे । अग्निहोत्र आदि क्रिया का भी कोई क्रम नहीं होगा ॥११॥ जिस किसी कुल मे उत्पन्न हुआ मनुष्य बलवान् होने पर सब का नायक बन जाएगा । सभी वर्णों के मनुष्य कर्म से जीविका उपार्जन करेंगे ॥१२॥ कलि मे द्विजाति जिस किसी योग से दीक्षित होगा । विप्रवर । कलि म प्रायश्चित्त का कोई ठिकाना नहीं रहेगा । कलि मे जिस किसी का वचन ही शास्त्र माना जायगा । कलि म सब देवता माने जायेंगे । सब के लिए सब आश्रम होंगे ॥१३॥ १४॥ उपवास परिश्रम तथा धन का त्याग करना पड़ेगा । धर्म का अनुष्ठान मनमाना होगा । धोड़ ही धर्म मे पुरुषों को अग्निमान हो जायगा । स्त्रियों को केवल बालों से ही रूप का अग्निमान हाना । सुवर्ण मणि रत्न वस्त्र आदि वस्त्र हो जाने पर कलि म स्त्रियाँ केवल बेगो से ही अलंकृत होंगी ॥१५॥ १६॥ धनहीन पति को स्त्रियाँ छोड़ देंगी । धनवान् व्यक्ति ही कलि म स्त्रिया का पति होगा ॥१७॥ १८॥ जो बहुत देगा वही मनुष्य का स्वामी होगा । स्वामित्व तथा बन्धुत्व केवल स्वायत्ति के लिये होगा । द्रव्य घर भरने के लिये बुद्धि द्रव्य कमाने के लिये और धन केवल उपभोग करने के लिये होगा ॥१९॥ २०॥ कलि

१ ग ० न हेतु० । २ ग न दास्यत्यनमेषव । ३ स ० भ्यो ज्येष्ठ बन्ध्यापरोधनी । ४ ० । ४ व ० पा यशो वि० । ५ क ग ० त्पेनाऽऽनृपम० । ६ व ० ते । वारिषत्तित्रयो । ७ व चिन्तितस्त्वेव । ८ व सदा ।

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः । अन्यायावाप्तवित्तेषु पुरुषेषु स्पृहालवः ॥२१॥
 अमर्यतोऽपि सुहृदा स्वार्थहर्ता तु मानवः । पणस्यार्धाधमात्रेऽपि करिष्यति तदा द्विजाः ॥२२॥
 सदा सपौरुषं चेतो भावि विप्र तदा कलौ । क्षीरप्रदानसंबन्धि भाति गोषु च गौरवम् ॥२३॥
 'अनावृष्टिभयात्प्रायः प्रजाः क्षुब्धकातराः । भविष्यन्ति तदा सर्वा गगनासक्तदृष्टयः ॥२४॥
 'मूलपणकलाहारास्तापसा इव मानवाः । आत्मानं घातयिष्यन्ति तदाऽवृष्ट्याऽभिदुःखिताः ॥२५॥
 दुर्मिक्षमेव सततं सदा क्लेशमनोद्वराः । प्राप्स्यन्ति व्याहृतसुखं प्रमादानमानवाः कलौ ॥२६॥
 अस्नातभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजनम् । करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम् ॥२७॥
 लोलुपा ह्रस्वदेहाश्च बहुभ्रातृवनतपराः । बहुप्रजात्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥२८॥
 उभाम्यामय पाणिभ्यां शिरःकण्डयनं स्त्रियः । कुर्वन्त्यो गुरुभर्तृणामाज्ञां भेत्यन्तपनावृताः ॥२९॥
 स्वपोषणपराः क्रुद्धा देहसंस्कारवर्जिताः । पर्याप्तभूतभाषिण्यो भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ॥३०॥
 दुःशीला दुष्टशीलेषु कुर्वन्त्यः सततं स्पृहाम् । असदृता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गनाः ॥३१॥
 वेदादानं करिष्यन्ति षडवाश्च तथाऽग्नताः । गृहस्थाश्च न होष्यन्ति न दास्यन्त्युचिताभ्यपि ॥३२॥
 भवेयुर्वनवासा वं ग्राम्याहारपरिग्रहाः । भिक्षवश्चापि पुत्रा हि स्नेहसंबन्धयन्त्रकाः ॥३३॥

में स्त्रियाँ स्वेच्छा से विहार करने वाली तथा ललित कला की इच्छुक होंगी । पुरुष अन्याय से उपाजित धन के इच्छुक होंगे ? वन्धुओं की प्रार्थना करने पर भी मनुष्य एक पैसे के आधे की प्राप्ति होने पर भी उनकी स्वार्थ-हानि करेगा ॥२१-२२॥ चित्त में सदा कठोरता विद्यमान रहेगी । दूध देने तक ही गायों का आदर होगा ॥२३॥ प्रायः अनावृष्टि का भय होगा । प्रजा मूल-गम्य से कातर होगी । सब आकाश की ओर दृष्टि लगाये रहेंगे । मनुष्य मूल, पत्र, फल खाकर तपस्वी की तरह रहेगे । अनावृष्टि से अत्यन्त दुखी होकर मनुष्य आत्महत्या करेंगे ॥२४-२५॥ सतत अकाल ही होगा । मनुष्य अनाथ होकर सदा क्लेश ही पाते रहेगे । कलि में मनुष्यों को प्रमाद से वाधित सुख मिलेगा ॥२६॥ (प्रायः) बिना स्नान किये ही लोग भोजन करेंगे । अग्नि, देवता तथा अतिथियों का पूजन नहीं होगा । कलि में मनुष्य पिण्डदान नहीं करेंगे ॥२७॥ मनुष्य लोभी, ह्रस्वकाय तथा आपक अन्न खाने वाले होंगे । कलि में स्त्रियाँ बहुत सन्तान वाली तथा अल्पगाम्य वाली होंगी ॥२८॥ दोनों हाथों से शिर को धकेलेंगे । कलि में स्त्रियाँ बहुत सन्तान वाली तथा अल्पगाम्य वाली होंगी । कुलाग्नार्थ स्वभाव से दुष्ट, निरत, क्रुद्ध, देह-संस्कार से रहित और कठोर तथा मिथ्या मापण करने वाली होंगी । कुलाग्नार्थ स्वभाव से दुष्ट, निरत, क्रुद्ध, देह-संस्कार से रहित और कठोर तथा मिथ्या मापण करने वाली होंगी ॥२९-३१॥ व्रतसूय ब्राह्मणवृन्द वेद सदा लालसा से युक्त तथा पुष्टियों के प्रति असत् आचरण करने वाली होंगी ॥३२॥ वनवासी तपस्वी भी ग्राम्य नहीं पढ़ावेंगे । गृहस्थ लोग हवन नहीं करेंगे तथा उचित दान भी नहीं देंगे ॥३३॥ वनवासी तपस्वी भी ग्राम्य भोजन तथा भोग-सामग्री ग्रहण करेंगे । सन्यासियों को पुत्र आदि से स्नेह रहेगा । राजा अरक्षक तथा कर के

१ ख ०जा । न सदा पी० । २ग भावि । ३क ०मया प्राय । ४क ख ०लकन्दफ० । ५क ख ०न पात० । ६क ०न्ति अमक्षाच्चापि दु० । ७क तदा । ८ग प्रमोदा मान० । ९क ०हो केविप्र च प्रेतोद० । १०ग ०पि । वनवासिनो भविष्यन्ति प्रा० । ११ग मित्रा । १२क ०न्यपाणय । अ० ।

अरक्षितारो हर्तारः शुल्काज्याजेन पार्थिवाः । हारिणो जनवित्तानां संप्राप्ते च कलौ युगे ॥३४॥
 यो योऽश्वरथनागादयः स स राजा भविष्यति । यश्च यश्चावलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे ॥३५॥
 वैश्याः कृषिवणिज्यादि संत्यज्य निजकर्म यत् । शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति कारकर्मोपजीविनः ॥३६॥
 भक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गितोऽधमाः । पाखण्डसंश्रयां वृत्तिमाश्रयिष्यन्त्यसंस्कृताः ॥३७॥
 दुर्भिक्षकरपोडाभिरतोवापद्रुता जनाः । गोधूमाम्नयवाग्नाद्यान्वेशान्यास्यन्ति दुःखिताः ॥३८॥
 वेदमार्गे प्रलोने च पाखण्डादयः ततो जने । अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९॥
 अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः । नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति ॥४०॥
 भवित्री योषितां सतिः पञ्चषट्सप्तवार्षिकी । नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥४१॥
 पलिनोद्गमश्च भविता तदा द्वादशवार्षिकः । न जीविष्यति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिम् ॥४२॥
 अल्पप्रज्ञा वृथालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ । यतस्ततो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ॥४३॥
 यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिरनुरूपलक्ष्मते । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४४॥
 यदा यदा सतां हानिवेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४५॥
 प्रारम्भाश्चावसोदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम् । तदाऽनुमेयं प्राधाय कलेर्विप्रा विचक्षणैः ॥४६॥
 यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः । इज्यते पुरुषैर्गर्जेतदा ज्ञेयं कलेर्वलम् ॥४७॥

वहाने मनुष्यों के घन अपहरण करने वाले होंगे । जिसके पास घोड़े-हाथी होंगे, वह राजा माना जायगा । जो
 अवल होगा, वही भृत्य (परिचर्या करनेवाला) होगा ॥३३-३५॥ वैश्य अपने कर्म सेती और व्यापार को
 छोड़कर शिल्प आदि, शूद्रों का कर्म करेंगे । अधम शूद्र निष्ठावृत्ति तथा गन्यास धारण करेंगे । वे असंस्कृत होते
 हुए पाखण्डी वृत्ति ग्रहण करेंगे ॥३६-३७॥ मनुष्य दुर्भिक्ष, कर तथा अनेक पीडाओं से दुःखी होंगे । मनुष्य दुःखी
 होकर उन देशों में जायेंगे, जहाँ गेहूँ, यव आदि अन्न होंगे । वेदमार्ग के लुप्त हो जाने पर और लोगों में घूर्तता के आ
 जाने पर अधर्म की वृद्धि होगी और मनुष्य अल्पायु होंगे ॥३८-३९॥ लोग शास्त्रविहित मार्ग को छोड़कर घोर
 तप करने लगेंगे तब राजा के दोष से बालमृत्यु होने लगेगी । पुरुषों के नौ, आठ तथा दश वर्ष के होने पर तथा त्रिवर्षों
 के पाँच, छ तथा सात वर्ष की होने पर ही सन्तानोत्पत्ति होने लगेगी । बारह वर्षों में ही बुढ़ापा आ जायगा ।
 कलि में कोई बीस वर्ष तक जीवित नहीं रहेगा ॥४०-४२॥ मनुष्य अल्पज्ञ, व्यर्थ चिह्न धारण करने वाले तथा
 दुष्ट अन्तःकरण वाले होंगे । अल्पकाल में ही वे नष्ट हो जायेंगे ॥४३॥ जब-जब पाखण्डवृत्ति का प्रचार हो तब-
 तब विद्वान् लोग कलि की वृद्धि का अनुमान करें ॥४४॥ जब-जब वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले सत्पुरुषों की
 हानि हो तब-तब विद्वान् लोग कलिवृद्धि का अनुमान करें ॥४५॥ जब धर्मात्मा मनुष्यों के कार्य में विघ्न पड़े तब
 विद्वान् लोग कलि की प्रधानता का अनुमान करें ॥४६॥ यज्ञ करने वाले पुरुष जब यज्ञों के स्वामी विष्णु की पूजा
 न करें तब पण्डित लोग कलि की प्रवृत्ता का अनुमान करें ॥४७॥ जब वेदों में विरति तथा पाखण्डी में रति

१ग प्रवत्स्यन्ति । २क ०खण्डोद्योतिते ज० । ३क. ०पट्याप्टवा० । ४ग ०नः । नातजीवति । ५स.
 न तु जीवति । ६क ख ०प्रजा व० ।

मुनय ऊचु

कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति 'सुमहाफलम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण श्रोतुं वाञ्छा प्रवर्तते ॥६०॥

व्यास उवाच

धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्वल्पक्लेशैर्महत्फलम् । तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत ॥६१॥

यत्कृते दशभिर्यज्ञैस्त्रेताया हायनेन तत् । द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ॥६२॥

तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजा । प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलौ साध्विति भाषितुम् ॥६३॥

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेताया द्वापरेऽर्ज्वन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥६४॥

धर्मोत्कर्षमतीवान् प्राप्नोति पुरुष कलौ । स्वल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलौ ॥६५॥

अतर्चयार्परैर्प्राह्या वेदा पूर्वं द्विजातिभिः । ततस्तु धर्मसंप्राप्त्यर्थं पठ्य विधिवद्धनं ॥६६॥

वृथा कथा वृथा भोग्यवृथा स्व च द्विजन्मनाम् । पतनाय तया भाव्य तैस्तु 'सम्यतिभिः' सह ॥६७॥

असम्यक्करणे दोषास्तेषां सर्वेषु वस्तुषु । भोग्यपेयादिकं चैषां नेच्छाप्रार्थितकरं द्विजा ॥६८॥

पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषां कार्येषु वै ततः । लोकान्क्लेशेन महता यजन्ति विनयान्विता ॥६९॥

द्विजशुभ्रपणेनैव पाकयज्ञाधिकारवान् । निज जपति धै लोकं शूद्रो धन्यतरस्ततः ॥७०॥

मुनियों ने कहा—किस समय अल्प धर्म करने से भी महान फल होता है उसे हम विस्तार से सुनना चाहते हैं । बतलाइये ॥६०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द ! इस दृष्टि से यह कलियुग धन्य है कि इसमें थोड़ा ही कलेश को सहन करने से बड़ा भारी फल प्राप्त हो जाता है । इसमें स्त्री और शूद्र भी धन्य हो जाते हैं इससे त्रिवा और भी सुनो ॥६१॥ जो फल सत्ययुग में दश वर्षों में त्रेता में एक वर्ष में और द्वापर में एक मास में मिलता है वह कलियुग में एक अहोरात्र में मिल जाता है ॥६२॥ द्विजगण ! इसी हिसाब से कलियुग में मनुष्य तप ब्रह्मचर्य तथा जप आदि का फल प्राप्त करता है । ॥६३॥ व्रतयुग में भगवान् के ध्यान से त्रेता में यज्ञों से और द्वापर में उपासना से जो फल प्राप्त होता है वह फल कलियुग में केवल भगवत्कीर्तन से मिल जाता है ॥६४॥ धर्मज्ञों ! कलियुग में मनुष्य अल्प आध्यात्म से ही महान धर्म प्राप्त कर लेता है । इसलिये मैं कलियुग से खुश हूँ । ब्राह्मण लोग पहले धन धारण कर वेदों का स्वाध्याय करते हैं । तब पाप से प्राप्त धन से विधिपूर्वक यज्ञ करते हैं ॥६५॥ दूषित कथा दूषित भोग्य तथा दूषित धन ब्राह्मणों के पतन के लिये होता है । ब्राह्मणों को समीप होना चाहिये । समस्त वस्तुओं की विपरीत प्रकार से ग्रहण करने से उन्हें दोष लगता है । भोग्य पेय आदि पदार्थ उन्हें इच्छा के अनुसार प्राप्त नहीं होते हैं (अर्थात् काल-पान में उन्हें समय बरतना पड़ता है) । आसन्न कार्यों में उन्हें परत-त्रेता का अनुभव होता है । वे विनयी होकर महान कलेश से घन करते हैं । (किन्तु) पाकयज्ञ का अधिकारी शूद्र केवल द्विजाति की सेवा करने से ही अपने लोक की जीत लेता है । अतएव अथ द्विजातियों की अपेक्षा यह शूद्र अधिक धन्य है ॥६७॥ मुनिप्रह्लो ! मध्या और अम या म जिह पाप लगने की प्राणा नहीं की जाती है और न कोई

१' स ० महत्फलः । २क स कालः । ग कलिः । ३' स मासयान् । ४ग ० वधनं । ५त सपविभिः । ६' सगः । ७ग ० तः । यदन्ति ये द्विजा लोः । ८ ० दा द्विजा द्विः ।

भक्ष्यामक्ष्येषु' नाशा (त्रा) स्तिथेया पापेषु वा यतः । नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वितोरितम् ॥७१॥
 स्वधर्मस्थाविरोधेन नरलंभ्यं धनं सदा । प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि ॥७२॥
 तस्यार्जने महान्क्लेशः पालनेन द्विजोत्तमाः । तथा सद्द्विनियोगाय विज्ञेय गहनं नृणाम् ॥७३॥
 एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः । निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥७४॥
 योषिच्छुभ्रूपाद्भूतः कर्मणा मनसा गिरा । 'एतद्विषयमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः ॥७५॥
 नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यया । तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति श्योषितः ॥७६॥
 एतद्ब्रह्म कथितं विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगताः । तत्पृच्छध्वं यथाकाममहं वक्ष्यामि वः स्फुटम् ॥७७॥
 अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिध्यति वैकली । नरैरात्मगुणान्मोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः ॥७८॥
 शूद्रंश्च द्विजशुभ्रूपात्परं मुनिसत्तमाः । तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुभ्रूयैव हि ॥७९॥
 ततस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतम मतम् । धर्मसराधने क्लेशो द्विजातीना कृतादिषु ॥८०॥
 तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः । धन्याधर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमा ॥८१॥

नियम ही करना पड़ता है ऐसे शूद्रों को इसी कारण अच्छा कहा गया है। पुराणों को सदा अपने धर्म के
 अवरोध से धन का उपार्जन करना, पात्रों को दान देना और विधानपूर्वक यज्ञ करना पड़ता है ॥७१-
 ७५॥ फिर न्याय से धन कमाने में तथा उसके पालन करने में महान् क्लेश होता है। द्विजधेष्ठो! उस धन
 का सदुपयोग करना तो और भी कठिन है ॥७३॥ द्विजवर! इन कष्टों से तथा दूसरे प्रकार के कष्टों से पुरुष
 अपने लोक की तथा क्रमशः ब्रह्मलोक आदि की जीत लेता है। किन्तु मन, क्रम तथा वाणी से पति की शुभ्रूपा
 करने मात्र से स्त्री इस विषय की अर्थात् पुरुष के समान लोकों को प्राप्त कर लेती है, पुरुष जिन लोकों
 को महान् क्लेश से भी नहीं प्राप्त कर पाता है, उनको स्त्री पतिसेवा से ही प्राप्त कर लेती है, इसीलिए स्त्री
 को यह तीसरा साधुवाद देने दिया है। विप्रवृन्द! आप लोग जिस निमित्त यहाँ आये हैं, वह तो मैंने
 बतला दिया। अब पूछिये, क्या पूछना चाहते हैं? मैं स्पष्ट बतलाऊँगा ॥७४-७७॥ कल में अल्प प्रयास से
 ही धर्म सिद्ध हो जाता है। आत्मगुण रूपी जल से अखिल पाप रूपी कीचड़ की धो डालने से मनुष्य सिद्ध हो
 जाते हैं। द्विज सेवा में निरत शूद्र और पति-सेवा में तत्पर स्त्री अनायास ही सिद्ध हो जाती है। इसीलिये
 स्त्री, शूद्र और द्विज तीनों इस युग में धन्य हैं—ऐसा मेरा मत है। सत्ययुग आदि में धर्म की आराधना करने
 में महान् क्लेश होता है, पर कलियुग में मनुष्य अल्प तप से ही सिद्ध हो जाते हैं। इस युग में जो धर्माचरण

१ ग नास्यास्ति ये पापे येषु । २ ग तच्चासत् । ३ ग एतद्ब्रह्म समाप्नोति भवुलोकं ततो । ४ ग योषिताम् ।

५ क ० म् । कर्म० ।

भवदभिर्यदभिप्रेत तदेतत्कथितं मया । अपृष्टेनापि धर्मज्ञा किमन्यत्क्रियता द्विजा ॥८२॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसवादे भविष्यकथन
नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३०॥

अथैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास मुनिसवादे द्वापरयुगान्तकथनम्

मुनय ऊचुः

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विदमहे । ततो द्वापरविध्वंसं युगान्तं स्पृहयामहे ॥१॥
प्राप्ता वयं हि तत्कालमनया धमतृणया । आदद्याम' परं धर्मं' सुखमल्पेन कमणा ॥२॥
सत्रासोद्वेगजननं युगात् समुपस्थितम् । प्रनष्टधर्मं' धमज्ञा' निमित्तैर्देवतुमहसि । २॥

व्यास उवाच

अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिव । युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणा ॥४॥

करते हैं वे धर्म हैं । मुनिऋषी ! आप लोगों का जो अभिप्राय था वह बिना झूठ भी मैंने बतला दिया । धर्मजो !
कहिये अब (मैं आप लोगों के लिये) और क्या कहूँ ? ॥७८-८२॥

श्रीब्रह्मपहापुराण में व्यास और मुनियों के सवाद प्रकरण में भविष्यकथन नामक
दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३०॥

२३१ अध्याय

व्यास और मुनियों के सवाद में द्वापर युग के अन्त का वर्णन

मुनियों ने कहा—हम लोग समीप तथा दूर के काल को तही जानते हैं । इसलिये द्वापर का विध्वंस
करने वाले कलियुग की इच्छा करते हैं । (इसमें) थोड़ा ही कर्मों के करने से हम बहुत धर्म तथा सुख प्राप्त
करेंगे—इसी धमतृण्या से हम इस समय तक आ पहुँचे हैं । मय तथा उद्वेगकारी कलियुग उपस्थित है जिसमें
धर्मों का नाश होता है । धमज्ञ ! अब आप इस युग के अन्त की लक्षणों द्वारा बतलायें ॥१॥

व्यास ने कहा—इस युग के अन्त में अपनी रक्षा में निरत राजा लोग अरक्षक तथा बलिभाग के अप
हरण करने वाले होंगे ॥४॥ क्षत्रियेतर राजा होंगे ब्राह्मणों की जीविका शूद्रा में प्राप्त होगी । युगात्त में शूद्र

'अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः। शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥५॥
 श्रोत्रियाः। 'काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्मणि हवींषि च। एकपक्षतयामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः' ॥६॥
 अशिष्टवन्तोऽयं परा नरा मद्यामिषप्रिया। मित्रभायां भजिष्यन्ति युगान्ते पुरुषाधमाः ॥७॥
 राजवृत्तिस्थिताश्चोरा 'राजानश्चौरादोलिनः। भृत्या ह्यनिदिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये' ॥८॥
 घनानि श्लाघनीयानि सता वृत्तमपूजितम्। अकुत्सना च पतिते भविष्यन्ति युगक्षये ॥९॥
 प्रनष्टनासाः* पुरुषा मुक्तकेशा विरुपिणः। ऊनपोडशवर्षाश्च प्रसोध्यन्ति तथा स्त्रिय ॥१०॥
 अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः। प्रमदा केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥११॥
 सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिकाः। शूद्राभा वादिनश्चैव 'ब्राह्मणाश्चान्यवासिनः ॥१२॥
 शूलदन्ताः' जिताक्षाश्च मुण्डाः कापायवाससः। शूद्राः' धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः' ॥१३॥
 श्वापदप्रचुरत्व च गवा चैव परिक्षय। साधूना 'परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१४॥
 अन्त्यामध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्यनिवासिनः। निर्होकाश्च प्रजाः सर्वा नष्टास्तत्र युगक्षये ॥१५॥
 तपोयज्ञफलानां च विज्ञेतारो द्विजोत्तमा। ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१६॥

ब्राह्मणो का आचरण करेंगे ॥५॥ कहीं कर्म त्रिया तथा हवन आदि नहीं होंगे। मुनिश्रेष्ठो ! श्रोत्रिय तथा शस्त्र-
 जीवी (म्लेच्छ आदि) एक ही पक्षित में भोजन करेंगे ॥६॥ मनुष्य अशिष्ट, घन कमाने में व्यस्त तथा मद्य-
 मासदेवी होंगे। युगान्त में नोच मनुष्य मित्रभायागामी होंगे ॥७॥ चोर राजाओं की वृत्ति में रहेंगे और राजा
 चोरो का आचरण करेंगे। युगक्षय होने पर मृत्युगण अनधिकृत वस्तुओं का उपभोग करेंगे। केवल घन का महत्त्व
 होगा। सज्जनों का सम्मान नहीं होगा। पतितों की निन्दा नहीं होगी ॥८-९॥ पुरुष नाविका विहीन, कुरूप
 तथा कटे वेश वाले होंगे। सोलहवें वर्ष से पहले ही स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करेंगी। देशों में अन्न का विक्रय
 होगा। चोराहो पर अर्थात् यत्र तत्र वेदों का विक्रय होगा। स्त्रियाँ भग विक्रय करेंगी ॥१०-११॥ सब
 यजुर्वेदी ब्राह्मण ब्रह्मवादी होंगे। ब्राह्मण शूद्र के समान तेजोहीन तथा विवादी होंगे ॥ १२॥ चाण्डाल
 स्वच्छ दाँत वाले, माला धारी, मुण्डी तथा कापायवस्त्रधारी होंगे। शठबुद्धि से जीविका उपार्जन करने
 वाले शूद्र धर्म का व्याख्यान करेंगे ॥१३॥ हिंसक जन्तुओं की अधिकता तथा गायों का क्षय होगा।
 युगान्त में साधुओं की निन्दा होगी ॥१४॥ अन्तिम वर्ण वाले (शूद्र) मध्य वर्ण (क्षत्रिय आदि)
 हो जायेंगे और मध्य वर्ण वाले अन्तिम वर्ण के हो जायेंगे। युगक्षय में समस्त प्रजा निर्लज्ज तथा
 विनाशशील होगी ॥१५॥ ब्राह्मण लोग तपस्या तथा यज्ञों का फल विक्रय करेंगे। ऋतुयें विपरीत होंगी ॥१६॥

१ख कृतपापाश्च। २ख ०ण्डस्पृहाश्च। ग ०ण्डस्पृष्टाश्च। ३ख ०मा। सदा साधुदोहप०। ४क
 ख हरिष्यन्ति। ५ क ०ररुपिण। ग०। ६क कलो युगे। ७ग ०ष्टचेतना पुंसो मु०। ८क
 ०शुल्लिग्यो म०। ९ख ०णाश्चैत्यवा०। १०ख ०कलदीक्षाञ्जितोप्याश्च। ११क ०न्तादिनासा च मु०।
 १२क ०द्वयधर्मोप०। १३ग विनिवृत्तिश्च।

तथा द्विहायना 'दम्भा कलौ लाङ्गलधारिणः' । चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥१७॥
 सर्वे शूरकुले जाताः क्षमानाया भवन्ति हि । यथा निम्ना प्रजा सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये ॥१८॥
 पितृदेवानि दत्तानि भविष्यन्ति तथा सुता । न च धर्मं चरिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ॥१९॥
 ऊषरा बहुला भूमिः पन्यानस्तस्करावृता । सर्वे वाणिकाश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥२०॥
 पितृदायान्यदत्तानि विभजन्ति तथा सुताः । हरणे यत्नः प्रवृत्तः प्रीतिर्लोभादिभिर्विरोधिनः ॥२१॥
 सौकुमार्यं तथा रूपे रत्ने चोपक्षयः गते । भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्यः केशरलकृता ॥२२॥
 निर्वायस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति । युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा रतिः ॥२३॥
 कुशोलानार्यभूयिष्ठा वृथारूपसमन्विता । पुरुषाल्प बहुस्त्रीक तदयुगान्तस्य लक्षणम् ॥२४॥
 बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् । राजचौराग्निदण्डादिकीर्णः क्षयमुपैष्यति ॥२५॥
 अफलानि च सस्यानि तरुणा बृद्धशीलिनः । अशोला सुखिनो लोके भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६॥
 वर्षासु परुषा वाता नोचा शर्करवर्षिणः । सदिग्ध परलोकश्च भविष्यति युगक्षये ॥२७॥
 वंश्या इव च राजन्या धनधान्योपजीविनः । युगापक्रमणे पूर्वं भविष्यन्ति न बान्धवा ॥२८॥
 अप्रवृत्ता प्रपश्यन्ति समया शपथास्तथा । ऋण सविनयभ्रशः युगे क्षीणे भविष्यति ॥२९॥
 भविष्यत्यफलो हयं क्रोधश्च सफलो नृणाम् । अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽर्थं युगक्षये ॥३०॥

कलौ में दो वष के बखड हल में जोते जायेंगे । युगान्त में मेघ त्रिचित्र ढग से बरसेगा । वीर के कुल में उत्पन्न पुष्य समायाचक होंगे । युगक्षय में सारी प्रजायें बड़ी अधम होंगी । पुत्र पिता को जो कुछ दैंगे उसे दान समझेंगे और युगान्त में मनुष्य धर्माचरण नहीं करेंगे ॥१७-१९॥ अधिकतर भूमि ऊषरा होगी । माघ चोरो से आवृत होगी । सब मनुष्य वाणिज्यवृत्ति करेंगे ॥२०॥ पुनः पिता के बिना दिये हुए धन का बंटवारा करेंगे । उसे हरण करने में यत्नशील होने हुए भी लोभ आदि के कारण वे परस्पर विरोधी बने रहेंगे । सुबुधाराता, रूप तथा रत्न के क्षय हो जाने पर स्त्रियाँ केशों से ही अलंकृत होंगी ॥२१-२२॥ शक्तिविहीन गृहस्थ को स्त्रियो में अनुदास होगा । युगान्त होने पर स्त्री के समान दूसरी रति नहीं होगी (अथातः लोग स्त्री प्रेम सबकुछ कुछ नहीं मानेंगे) । ल ग दु शील अनायप्राय तथा व्यर्थ के रूप में युक्त होंगे । पुष्पो की सख्या कम और स्त्रियों की अधिक होगी । वही युगान्त का लक्षण है । भागने वाले बहुत होंगे । लोग परस्पर दान आदान नहीं करेंगे । राजा, चोर, अग्नि दण्ड आदि में लोभ क्षय होगा । सत्य फलहीन होगा । युवक बृद्धत्वमात्र के होंगे । दु पील लोग सुखी होंगे ॥२३-२६॥ वर्षाऋतु में तीक्ष्ण वायु बहेगी और बालकान्ध या कन्ध की वृष्टि होगी । युगक्षय में परलोक सदेहास्पद हो आयगा ॥२७॥ वैश्यो की तरह क्षत्रिय भी धन धान्य से जीविका उपाजन करेंगे । युगान्त में वन्धुता किसी से नहीं होगी ॥२८॥ नियम-आपस का पालन कोई नहीं करेगा । ऋण बहुत अविनयपूषक मिलेगा ॥२९॥ मनुष्यो का हृष अफल होगा और मोष सफल होगा । युग का अवसान म दूष के लिए वक्रिया भी

१क वत्सा । २ग ०लक्षपवा । चि० । ३ख ग ०र्वे चौर० । ४ख ता स्वलेनाया म० । ५ख हि । अजा यथाचारयुता म० । ६ख ग भविष्यन्ति । ७ख ग ०रुणा भविष्यति लो० । ८ख ग ०पिता । सी० । ९क ०ण्डाना तैक्ष्ण्यात्साय० । १०ख नीरा । ११ग प्रवित्स्यति ।

अशास्त्रविहितो यज्ञ एवमेव भविष्यति । अप्रमाण करिष्यन्ति नरा पण्डितमानिन ॥३१॥
शास्त्रोक्तस्याप्रयत्नतरो भविष्यन्ति न सशय । सर्वे 'सर्वे विजानाति' यद्भानुपसेव्यं ॥३२॥
न कश्चिददकधिनमि युगान्ते समुपस्थिते । नक्षत्राणि वियोगानि न कर्मस्था द्विजातय ॥३३॥
चोरप्रायाश्च' राजानो युगान्ते समुपस्थिते । कुण्डीवृषा नैकृतिका सुरापा ब्रह्मवादिन ॥३४॥
अश्वमेधेन यक्ष्यन्ते युगान्ते द्विजसत्तमा । याजयिष्यन्त्ययाज्यास्तु 'तयाऽभक्ष्यस्य भक्षिण ॥३५॥
ब्राह्मणा' धनतृष्णांती युगान्ते समुपस्थिते । भो शब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ॥३६॥
एकशब्दास्तया नार्यो गवेधुकपिनद्धका (?) । नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो दश ॥३७॥
सप्यारागो विदग्धाङ्गो' भविष्यति युगक्षये । प्रेषयन्ति पितृन्पुत्रा यधू श्वधू स्वकर्मसु ॥३८॥
युगेष्वेव' निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा । 'अवृत्वाऽग्राणि भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चैवाहुताग्नय ॥३९॥
भिया बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषा स्वयम् । यञ्चयित्वा पतोन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यत ॥४०॥
न ध्याधिताभ्राप्यरूपाधोद्यताभ्राप्यसूयकान् । कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥४१॥

मुनय ऊचुः

एव विलम्बिते धर्मे मानुषा 'करपोडिता । कुत्र देशे निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिण ॥४२॥

वैषी जायेंगी । अशास्त्रविहित यज्ञ होगा । अपने को पण्डित मानने वाले व्यक्ति बिन प्रमाण के सब कुछ करेंगे ॥३०-३१॥ शास्त्रीय वचनो के बचना नहीं मिलेंगे इसमें सन्देह की बात नहीं है । बिना विद्वानों की सेवा रिये ही सब अपने को सज्ज समझेंगे । कोई भी अपने को अविद्वान नहीं मानेगा । नक्षत्र आदि का ज्ञात कोई न होगा । द्विजातिगण कमठ नहीं होंगे । युगांत उपस्थित होने पर राजा बरीब-बरीब चोर ही होंगे । द्विजधष्टो । युगांत में जारज क्रूर वर्म करने वाले तथा मद्यपायी लोग द्रष्टव्य ही होंगे और अश्वमेध यज्ञ करेंगे । वे अनधि-कारियों को यज्ञ करावेंगे तथा अमदय भक्षण करेंगे ॥३२-३५॥ युगावसान में धन की तृष्णा से पीड़ित ब्राह्मण 'मा शब्द का उच्चारण करेंगे (अर्थात् अनधिनारिया सयन करावेंगे) पर पढ़ा कोई नहीं (अर्थात् ब्राह्मण लोग मृत होंगे) । स्त्रियाँ एक गल वाली तथा लूण घाच रखने वाली होंगी । नक्षत्र विषण मालूम पड़ेंगे । दगा दियाँ विपरीत दोरोंगा । सध्या समय का रण विचित्र सा दीखेगा । पुत्र पिता का तथा बहू साग का अपने बगों के लिये भेजेंगी । इस प्रकार युगावसान में स्त्री-गुरूप रहा करेंगे । द्विजगण बिना अग्नि में अहुतियाँ डाल ही मोचन करेंगे । पुरुष स्वयम बिना निशा तथा मून-बलि दिय ही रावेंगे । साय पतिया का टण्टर स्त्रियाँ अयत्र चली जायेंगी । युग क्षय-काय म रोगी कुम्प उपद्रवी तथा निदका का कोई प्रतीकार करने वाला नहीं होगा ॥३६-४१॥

मुनिपौ ने कहा—इस प्रकार घम का नाश होत पर कर का भार से दबे हुए मनुष्य कित देना में निरास करेंगे ? उनका आहार विहार कैसा होगा ? क्या काम करेंगे ? क्या चाहेंगे ? उनकी सबार्थ-बोझाई

१४ ०४ न जा० । २४ ०४ न प्रसे० । ३५ ०४ रिष्या० । ४५ ०४ तन्म० । ५५ ०४ णा ऋण० ।
६५ ०४ गिणा० । ७५ ०४ गप्यव । ८५ ०४ गृताघा० । ९५ ०४ बन्धी० ।

किं कर्माणः किमोहन्तः किं प्रमाणाः किमायुषः । कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति' कृतं युगम् ॥४३॥

व्यास उवाच

अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा । शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्यासमायुषः ॥४४॥
 आयुर्हान्यावलग्नानिर्वलग्नान्या विवर्णता । वंद्यर्थाद्ध्याधिसपोढा निर्वंदो ध्याधिपोडनात् ॥४५॥
 निर्वंदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता । एवं गत्वा परा काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृत युगम् ॥४६॥
 उद्देशतो' धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः । 'किं धर्मशीलाः' केचित्तु केचिदत्र कुतूहलाः ॥४७॥
 प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणमिति निश्चिताः । अप्रमाणं' करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे' जनाः ॥४८॥
 नास्ति वयपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः । भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः ॥४९॥
 तदा त्वमात्रश्रद्धेया शास्त्रज्ञानयहिष्कृताः । दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिताः ॥५०॥
 तथा' विलुलिते धर्मे जनाः श्रेष्ठपुरस्कृताः । शुभान्समाचरिष्यन्ति दानशीलपरायणाः ॥५१॥
 सर्वभक्षाः स्वयंगुप्ता निर्धूणा निरपत्रपाः । भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५२॥
 कषायोपप्लवे काले 'ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने । सिद्धिमन्येन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः ॥५३॥
 विप्राणां शाश्वतौ वृत्तिं यदा वर्णावरे जनाः' । 'संश्रमिष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य' लक्षणम् ॥५४॥

का कितन प्रमाण होगा उनकी आयु कितनी होगी ? कितने समय के बाद पुन वे किस सीमा तक पहुँचकर सत्ययुग में प्रवेश करेंगे ? ॥४२-४३॥

व्यास ने कहा—धर्म का ह्रास होने पर प्रजा गुणविहीन होगी और दुर्व्यसन के कारण उसकी आयु अल्प होगी ॥४४॥ आयु की हानि होने से बल की हानि होगी । बलहानि से नीचता होगी और नीचता से व्याधियाँ होगी । व्याधियाँ से अत्यन्त खेद और उससे आत्मबोध होगा । आत्म-जागृति के बाद धर्मशीलता होगी । इस प्रकार पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) पर पहुँचकर प्रजा सत्ययुग में पहुँचेगी ॥४५-४६॥ कोई मनुष्य कार्यबद्ध धर्मात्मा बनेगा, कोई न धार्मिक न अर्धार्थिक अर्थात् मध्य कोटि में रहेगा, कोई शुद्ध धर्म को अपनायेगा; कोई धर्म के सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकट करेगा । प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने जायेंगे । कोई तो प्रमाण की विलुल्लिख ही नहीं मानेगा ॥४७-४८॥ कोई महानास्तिक होगा तो कोई धर्मों का सहारण होगा । द्विजगण ! मूल मनुष्य भी अपने को पण्डित समझेंगे ॥४९॥ वे वर्तमान समय में होने वाले पदार्थों में थोड़ा रखने वाले और शास्त्रज्ञान से शून्य हो जायेंगे । मनुष्य ज्ञानशून्य तथा धर्मी होंगे । इस प्रकार धर्म के छिन्न-भिन्न हो जाने पर श्रेष्ठ व्यक्तियों से पुरस्कृत लोभ दान के स्वभाव में परायण होकर युग धर्मों का समाचरण करेंगे । बलिमुग में मनुष्य सर्वभक्षी, चोर, धूना करने वाले तथा निर्लज्ज होंगे । यही बलि का लक्षण समझिये ॥५०-५२॥ बलि के उपद्रवकाल में मनुष्यों की ज्ञाननिष्ठा नष्ट हो जायेगी । पर धर्मों की सिद्धि अल्पकाल की ज्ञाननिष्ठा में ही हो जायेगी । ब्राह्मणों की वृत्ति नीच वर्ण के लागू करेंगे । यही बलि का लक्षण समझिये ॥५३-५४॥ बलिमुग

१शु ०परमन्ति । २क उद्देशतो । ३कि धर्म० । ४क ०चित्तव । स ०चित्तवृत्त ० ५क ०ग धरि० । ६स ०परा प्रजा । ना० । ७क ०पातिले गते य० । ८क स ०नविप्रा० । ९ग ०ना । निखिलेन धृष्टीय० । १०ग ०ति तत्त० । ११क स ०स्तदा निष्ठा बले स्मृता । म० ।

महायुद्धं महावपं महावातं महातपः। भविष्यति युगे क्षीणे तत्कपायस्य लक्षणम् ॥५५॥
 विप्ररूपेण यक्षासि राजानः कर्णवेदिनः। पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥५६॥
 नि स्वाध्याप्यवपट्काराः कुनेतारोऽभिमानिनः। ऋष्यादा ब्रह्मरूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः ॥५७॥
 'मूर्खाश्चैवार्थपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः'। व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माश्च शाश्वतास्तु ॥५८॥
 हर्तारः पररत्नानां परदारप्रघर्षकाः। कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥५९॥
 तेषु प्रभवमाणेषु जनेष्वपि च सर्वशः। अभावितो भविष्यति मुनयो बहुहृषिणः ॥६०॥
 बलौ युगे समुत्पन्नाः प्रधानपुरुषाश्च ये। कथायोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥६१॥
 सत्यचोरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः। भोक्ष्यभोज्यहाराश्चैव करण्डानां च हारिणः ॥६२॥
 चोराश्चोरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति। चौरैश्चोरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥६३॥
 नि.सारेक्षुभिते काले निष्ठिष्ये संघवस्थिते। नरा वनं श्रयिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः ॥६४॥
 यत्कर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च। कीटमूपिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥६५॥
 क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामग्यं चैव वन्धुषु। उद्देशेषु नराः श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६६॥

के अवसान म महायुद्ध होमा, अत्यन्त वृष्टि होगी, वायु बहुत जोर से बहेगी और धूप अत्यन्त तीक्ष्ण होगी।
 यही बलि का लक्षण समझिए ॥५५॥ युगान्त उपस्थित होने पर यक्षगण ब्राह्मण का रूप धारण कर और राजा
 लोग कर्णवेदी होकर (अर्थात् केवल मुनी हुई दातो पर चलने वाले) पृथिवी का उपभोग करेंगे ॥५६॥ वे स्वाध्याय
 तथा वपट्कार से रहित, अभिमानी, कुभाग पर लोगा को ले जाने वाले, सर्वभक्षी, निव्याव्रती, मूर्ख, घनलोलुप,
 लोभी, क्षुद्र, तुच्छ साधनो मे युक्त, लोकव्यवहार को बिगाड़ने वाले, धर्मत्रष्ट, दूसरे के रत्नों के अपहर्ता,
 परस्त्री-नामी, कामी, दुरात्मा, छली तथा दु साहसी होंगे। उनके बापिक्य हो जाने पर धूर्त मनुष्य अनेक
 रूप बनाकर मुनि कहलायेंगे ॥५७-६०॥ कलियुग मे जो प्रधान पुरुष उत्पन्न होंगे, उन सबकी मनुष्य तथा के
 योग से (अर्थात् तथा रचकर) पूजा किया करेंगे ॥६१॥ बलि मे मनुष्य सत्य-हर्ता, तेल हर्ता, भक्ष्य-भोज्य-हर्ता
 करण्ड (हली) के अपहर्ता, चोरा के चार तथा हत्यारा के हत्यारे होंगे। चोरो के द्वारा चोरो का शय कर दिये
 जाने पर सत्ययुग मे जाकर मनुष्या का कल्याण होगा ॥६२-६३॥ सारहीन, क्रियाशून्य तथा उद्देशकारी बाल
 उपस्थित होने पर मनुष्य कर के भार से पीडित होकर वन का आश्रय लेंगे ॥६४॥ यज्ञ के नष्ट हो जाने पर
 राक्षस, हिंसक पशु कीड़े, चूहे तथा सर्प मनुष्या का बाट खायेंगे ॥६५॥ युग समाप्त हो जाने पर फिर से कल्याण,
 सुमिध, आरोग्य तथा सकल साधन मनुष्या का प्राप्त होंगे ॥६६॥ कलियुग मे मनुष्य स्वयं रक्षक, स्वयं चोर

१. कर्मवादि०। २. कुनरा लोममा०। ३. स मूर्ता स्वाय०। ४. ल ०रिप्रहा। व्य०। ५. ०रधान्याना। ६. अभिमानिनो। ७. वृते। ८. लोके। ९. स नरथे०।

स्वयंपालाः स्वयं 'चौराः' प्लवसंभारसंभूताः। मण्डलैः संभविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक्॥६७॥
 स्वदेशेभ्यः परिगृष्टा नि.साराः सह बन्धुभिः। नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात्॥६८॥
 ततः सर्वे समादाय कुमारान्द्रुता भयात्। कौशिकी 'संतरिष्यन्ति नराः क्षुब्धभयपीडिता'॥६९॥
 'अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गाश्च काश्मीरानथ 'कोशलान्। ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः 'संश्रयिष्यन्ति मानवा'॥७०॥
 कृत्स्नं च हिमवत्पार्ष्वं कूलं च लवणाम्भसः। विविध जीर्णपत्रं च वत्कलान्यजिनानि च॥७१॥
 स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगक्षये। अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा 'म्लेच्छगर्णः सह॥७२॥
 नैव शून्या 'नवारण्या भविष्यति वसुंधरा। अगोप्तारश्च गोप्तारो भविष्यन्ति 'नराधिपाः॥७३॥
 मृगैर्मत्स्यैर्विहङ्गैश्च स्वापदैः सर्पकोटकैः। मधुशाकफलमूलैर्वंतयिष्यन्ति मानवाः॥७४॥
 शीर्णपर्णफलाहारा वत्कलान्यजिनानि च। स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति यथा मुनिजनस्तथा॥७५॥
 'बीजानामकृतस्नेहा' आहताः 'काष्ठशङ्कुभिः। अजैडक' खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति नित्यशः॥७६॥
 नदीलोतासि रीत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रिताः। पवनान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम्॥७७॥
 'तनूहर्षयथाजातैः 'समलान्तरसंभूतैः। बह्वधृत्याः प्रजाहीनाः कुलशीलविर्वजिताः॥७८॥
 एवं भविष्यन्ति तदा नराश्चाधर्मजीविनः। हीना' हीनं तथा धर्मं प्रजा समनुवत्स्यति॥७९॥

तथा उपद्रवो से कातर होकर देश-देश में पृथक्-पृथक् अपना-अपना सघ बनायेंगे। युग के क्षय होने पर भार्य-
 बन्धुओं सहित समस्त मनुष्य सारहीन तथा स्वदेश-भ्रष्ट हो जायेंगे। तब सब लोग भय के मारे अपने बाल-
 बच्चों को लेकर कौशिकी नदी के पार करके भाग जायेंगे॥६७-६९॥ दुष्टा और भय से पीडित मनुष्य अग,
 वग, कलिंग, कश्मीर तथा कोशल देश में जाकर वास करेंगे। हिमालय की तराई में तथा क्षारसमुद्र के तटप्रांत
 में मनुष्य अनेक प्रकार की जीर्ण पत्तियाँ खाकर वृक्ष के छाल तथा चर्म पहन कर किसी तरह दिन काटेंगे। वनों
 में म्लेच्छों के साथ मनुष्य निवास करेंगे॥७०-७२॥ पृथ्वी पर नये-नये वन होंगे। यह लोगो से शून्य नहीं होगी।
 रक्षक राजा लोग ही मक्षव हो जायेंगे॥७३॥ मृग, मत्स्य, पक्षी, हिसक जीव, सर्प तथा कीड़ों के साथ मनुष्य
 मधु, शाक, फल तथा वन्द खाकर रहेंगे। सड़े-गले पत्र तथा फल खाकर बल्बल तथा चर्म पहन कर मनुष्य मुनि
 की तरह रहेंगे। मनुष्य बीज नहीं बोयेंगे, बल्कि बकरे, भैंसे, गधे तथा ऊँट पालेंगे। वे जल के लिये बाँध बाँधकर
 नदियों की घाटाओं को रोकेंगे, वाजारों में बने-बनाये भोजन का खय विव्रय करेंगे। उनके शरीर बड़े-बड़े रोगों
 से तथा मल से आच्छादित रहेंगे वे बहुत सन्तान वाले, सन्तानहीन तथा कुलमर्यादा से शून्य होंगे॥७४-७८॥
 उस समय ऐसे अधमजीवी मनुष्य होंगे। दीन प्रजा तुच्छ धर्म को अनापेगी। मनुष्यों की जायु की अवधि

१क चौरा युगसं०। २क संसृता। ३ग सश्रयिष्य०। ४क संघ तथा मगधमेवला०। ५त मेज-
 लान्। ६क ऋषिक से नि०। ७ ऋषीसत्त्वा नि०। ८क निगुगर्ण। ८क न चार०। ९ग नरा वृता। म०।
 १०क बीजना०। ११ख कृतस्नेहा हन्तु वा०। १२क पञ्चजन्तुनि। १३क अजाण्डमान्तर०।
 १४क न्यायात्ममलान्तर०। १५ग समूलोत्तर०। १६क नानाधीन।

आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिशद्भविष्यति । दुर्बला विषयलाना जराशोकरं भिप्लुताः ॥८०॥
 भविष्यन्ति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः । आयुःप्रत्ययसंरोधाद्विषयादु (यह) परं स्यते ॥८१॥
 शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः । सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसंक्षयात् ॥८२॥
 भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः । करिष्यन्ति च संस्कारं स्वयं च क्षयपीडिताः ॥८३॥
 एवं शुश्रूषवो दाने सत्ये प्राण्यभिरक्षणे । ततः पादप्रवृत्ते तु धर्मं श्रेयो निपत्स्यते ॥८४॥
 तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम् । स्वादु किञ्चित् विज्ञाय धर्मं एव च दृश्यते ॥८५॥
 यथा हानिक्रमं प्राप्तास्तथा ऋद्धिक्रमं गताः । प्रगृहीते ततो धर्मं प्रपश्यन्ति कृत युगम् ॥८६॥
 साधुवृत्तिः कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते । एक एव तु कालोऽयं होनवर्णो यथा शशी ॥८७॥
 ह्रस्वश्च तमसा सोमो यथा कलियुगं तथा । मुवतश्च तमसा सोम एव कृतयुगं च तत् ॥८८॥
 अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थं इति त विदुः । अविविक्तमविज्ञातं दायार्थमिह धार्यते ॥८९॥
 इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्वविरोधकः । गुणैः कर्माभिनिवृत्तिगुणाः शुध्यन्ति कर्मणा ॥९०॥
 आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनो । युगे युगे यथा कालमृषिभिः समुदाहृता ॥९१॥

तीस तक होगी । वे दुर्बल, विषयलोभ तथा बुढ़ापा और शोक से आज्ञान्त होंगे ॥७९-८०॥ रोगों से उनकी इन्द्रियां क्षीण हो जायेंगी । आयु-क्षय होने के कारण वे विषय से विरत हो जायेंगे । तथा साधुओं की शुश्रूषा एवं दर्शन में निरत होंगे । व्यवहार का क्षय होने पर उनमें सत्यता का उदय होगा । कामों की अप्राप्ति से उनमें धर्म-जागरूकता होगी । तब वे अभाव से पीडित होकर स्वयं अपना सत्कार करेंगे ॥८१-८३॥ इस प्रकार सेवा, दान, सत्य तथा जीव रक्षा में उनकी रुचि होगी । तब चारों चरण लेकर धर्म के प्रादुर्भूत होने पर उनका कल्याण होगा ॥८४॥ उनके गुणों में भी परिवर्तन होगा । तब वे अनुमान करेंगे कि धर्म ही ठीक है । पश्चात् जैसे उनकी हानि हुई थी वैसे फिर समृद्धि होगी । धर्म को ग्रहण कर लेने पर वे सत्ययुग का दर्शन करते हैं ॥८५-८६॥ सत्ययुग में मनुष्यों की साधु-वृत्ति होती है और कलियुग में हानि होती है । यही एक काल है, जो चन्द्रमा की तरह मन्दवर्ण है ॥८७॥ जैसे चन्द्रमा अधकार से आच्छन्न होता है उसी तरह कलियुग भी पापों से आवृत होता है । अधकार से मुक्त होने पर चन्द्रमा की तरह कलियुग भी पापों से मुक्त होकर सुशोभित होता है । अर्थवाद परब्रह्म है और वेदार्थ भी उसी को जानना चाहिये । वह अपने से अपृथक् तथा अविज्ञेय सृष्टि का कारण करता है । इष्टवाद तप का नाम है और तप को इसी में सर्वाधिक किया है । गुणों से कर्मों की निष्पत्ति होती है और गुण कर्मों से शुद्ध होते हैं ॥८८-९०॥ युग-युग में समय-समय पर मनुष्यों को देखकर ऋषि लोग देश-काल के अनुसार उन्हें आशीर्वाद देते हैं । प्रति युग में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा देवताओं की प्रतिविद्या होती है और

१व ० राक्लेश्वर ० । २ख पश्यन्ति । ३ग न । ४ग सकोच । ५क स्वपक्षमय ० । ६ स्वपक्ष ० ।
 ६क सत्यप्रा ० । ७क ० रक्षिण । ८ग ० ने । ९ग ० ने । १०ख चतुष्पदे प्र ० । ११क विपत्स्यति । १२ख
 ० पत्स्यन्ति । १३क स ० व चतुष्कालो ही ० । १४ख ० विमुक्त ० । १५ग ० यादमि ० । १६ख ० मित्रा ०
 १७ग ० गुणैस्तप्येन क ० । १८ग ० हृतम् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां देवानां' च प्रतिक्रिया । आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तथैवाऽऽयुर्युगे युगे ॥९२॥
 तथा युगानां परिवर्तनानि,^१ चिरप्रवृत्तानि विधिस्वभावात्
 क्षणं न सतिष्ठति जीवलोकः, क्षयोदयाम्नां परिवर्तमानः ॥९३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्याससिखावादे भविष्यकथनं नाम
 एकं त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसवादे प्राकृतप्रतिसंचरकथनम्

व्यास उवाच

सर्वेषामेव भूतानां' त्रिविधः प्रतिसंचरः । नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिको मतः ॥१॥
 ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसंचरः । आत्यन्तिको वै मोक्षश्च प्राकृतो द्विपराधिकः ॥२॥

मुनय ऊचुः

पराधसंह्यां भयवस्त्वमाचक्ष्व ययोदिताम् । द्विगुणिकृतपञ्चमेः प्राकृतः प्रतिसंचरः ॥३॥

कल्याणमय एवम् पवित्र आशीर्वाद दिये जाते हैं । विधिवशात् युगों का परिवर्तन होता रहता है । उत्पत्ति तथा प्रलय से युक्त जीवलोक क्षण भर भी एक रूप में नहीं रहता है ॥११-१३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के सवाद-प्रकरण में भविष्यकथन नामक दो सौ एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३१॥

अध्याय २३२

प्राकृत प्रलय का वर्णन

व्यास ने कहा—समस्त प्राणियों का प्रलय तीन प्रकार का माना गया है । एक नैमित्तिक दूसरा प्राकृतिक और तीसरा आत्यन्तिक । (कल्प के अन्त में होने वाला) ब्राह्मप्रलय नैमित्तिक कहलाता है और मोक्ष को आत्यन्तिक कहते हैं । दो परार्ध सख्या चीन जाने पर होने वाला प्रलय प्राकृतिक कहलाता है ॥१-२॥

मुनियों ने कहा—भगवन् ! परार्ध सख्या हमें बतलाइये, जिसने द्विगुण कर देने से प्राकृत प्रलय का बोध होता है ॥३॥

ततो यान्यन्पसाराणि तानि सत्त्वान्यनेकशः । क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठाः । पृथिव्यान्पतिषोडशात् ॥१५॥
 ततः स भगवान्कृष्णो रूद्ररूपो तथाऽव्ययः । क्षयाय यतते कर्तुमात्मस्थाः सकलाः प्रजाः ॥१६॥
 ततः स भगवान्विष्णुर्भानोः सप्तसु रश्मिषु । स्थितः पितृपशोषाणि जलानि मुनिसत्तमाः ॥१७॥
 पीत्वाऽम्भांसि समस्तानि प्राणिभूतगतानि वै । शोषं नयति भो विप्राः समस्त पृथिवीतलम् ॥१८॥
 समुद्रान्तरितः शैलाञ्जलप्रस्रवणानि च । पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९॥
 'ततस्तस्याप्यभावेन' तोयाहारोपबृंहितः । सहस्ररश्मयः सप्त जायन्ते तत्र भास्कराः ॥२०॥
 अपश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततः सप्त दिवाकराः । बहन्त्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विजाः ॥२१॥
 बह्व्यमान्तु तदीप्तैस्त्रैलोक्यं दीप्तभास्करैः । साद्रिनगार्णवाभोगं निस्नेहमभिजायते ॥२२॥
 ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विजाः । भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥२३॥
 ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भूतसर्गहरो हरः । शोषाद्दिवाससतापात्पातालानि बहत्यधः ॥२४॥
 पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलतो महान् । भूमिमभ्येत्य सकलं दग्ध्वा तु वसुधातलम् ॥२५॥
 भुवो लोकं ततः सर्वं स्वर्गलोकं च दाहयन् । ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६॥
 अम्बरोपमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा । ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणवलास्ततः ॥२७॥
 ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः । हृतायकाशा गच्छन्ति महर्लोकं द्विजास्तदा ॥२८॥

रहती है ॥१४॥ उससे जितने अल्प सार चाले जीव हैं, नष्ट हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो ! पृथ्वी के जितने पदार्थ हैं, उनका नाश हो जाता है ॥१५॥ तब रूद्र रूपी अविनाशी भगवान् कृष्ण समस्त प्रजा को विनष्ट करने के लिये यत्न करते हैं ॥१६॥ तब भगवान् विष्णु सूर्य की सातों रश्मियों में स्थित होकर अशेष जल को सोख लेते हैं ॥१७॥ प्राणियों में व्याप्त समस्त जल का पीकर भगवान् सम्पूर्ण पृथ्वी को सुखा देते हैं। समुद्र, नदियों, पर्वतों, झरनों तथा पातालों में जो जल रहता है, उस सम्पूर्ण जल को सोख लेते हैं। सर्वत्र जल के अभाव हो जाने पर जल पीकर परिपुष्ट हुए सूर्य सात हो जाते हैं। तब ऊपर-नीचे सर्वत्र सूर्य तपाने लगते हैं, पाताल महित तीना लोक का जला डालते हैं ॥१८-२१॥ पर्वत और समुद्र भी निर्दग्ध हो जाते हैं। वृक्ष, जल आदि वस्तुओं के जल जाने पर पृथ्वी की आकृति बलुए की पीठ के समान हो जाती है ॥२२-२३॥ तब प्राणियों की सृष्टि के सहर्त रूद्र ज्वालाम्बी का रूप धारण करते हैं। शेषनाग के श्वास की उष्णता में पाताल जल जाता है। समस्त पातालों का जलाकर वह भयंकर लपटें सम्पूर्ण पृथ्वीतल को जला डालती है ॥२४-२५॥ तब वह दाहण ज्वाला समूह भूलोक और स्वर्गलोक का निर्दग्ध कर देता है। तीना लोक ध्राष्ट्र (माड़) की तरह मालूम पड़ते हैं। दोनों लोक (भूलोक और स्वर्गलोक) के निवासी प्राणी ज्वालाओं से सतप्त होकर महर्लोक का जाग हैं ॥२६-२८॥ वहाँ से भी अत्यन्त सतप्त होकर जलाल की जाते हैं। तब रूद्ररूपी विष्णु सम्पूर्ण जगत् को जला कर

तस्मादपि महातापतप्ता लोकास्ततः परम् । गच्छन्ति जनलोकं ते' दशावृत्या परंपिणः ॥२९॥
 ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं स्वरूपी 'जनार्दनः' । मुखनिःश्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तमाः ॥३०॥
 ततो गजकुलप्रहयास्तडिद्वन्तो निनादिनः । उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घनाः ॥३१॥
 केचिदञ्जनसंकाशाः केचित्कुमुदसंनिभाः । धूमवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२॥
 केचिद्वरिद्रावर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा । केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभास्तथा ॥३३॥
 शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जातीकुन्दनिभास्तथा । इन्द्रगोपनिभाः केचिन्मनःशिलनिभास्तथा ॥३४॥
 पद्मपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना घनाः । केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसंनिभाः ॥३५॥
 'कुटागारनिभाश्चान्ये केचित्स्थलनिभा घनाः । महाकाया महारावा 'पूरयन्ति नभस्तलम् ॥३६॥
 वर्षन्तस्ते महासारास्तमग्निमतिभैरवम् । शमयन्त्यखिलं विप्रास्त्रैलोक्यान्तरिक्षस्तुतम् ॥३७॥
 नष्टे चाग्ने शतं तेषां वर्षाणामधिक घनाः । प्लावयन्तो जगत्सर्वं वर्षन्ति मुनिसत्तमाः ॥३८॥
 धाराभिरक्षमानाभिः प्लावयित्वाऽखिला भुवम् । भुवो लोकं तर्पयन्तः प्लावयन्ति दिव द्विजाः ॥३९॥
 अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे । वर्षन्ति ते 'महामेघा वर्षाणामधिक शतम् ॥४०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिस्वादे मंहारलक्षणकथन नाम
 द्वाविंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३२॥

अग्ने मुख के नि श्वास से मेघा का उत्पन्न करते हैं ॥२९-३०॥ फिर हाथी के समान नाद करने वाले मयक
 प्रलयकालीन मेघ अनेक विद्युल्लताञ्ज से युक्त होकर आकाश में उठते हैं ॥३१॥ उनमे से किसी मेघ का वण
 अञ्जन के समान होता है, किसी का कुमुद के समान होता है, किसी का धूम वर्ण होता है, किसी का पीत वण होता है,
 किसी का वर्ण हल्दी के समान होता है, किसी का लाह के समान होता है किसी का वैदूर्य मणि के समान होता
 है, किसी का इन्द्रनील मणि के समान होता है किसी का शख के समान होता है, किसी का कुन्द पुष्प के समान
 होता है, किसी का जाती पुष्प के समान होता है, किसी का इन्द्रगोप के समान होता है, किसी का मन शिला
 के समान होता है और किसी का पद्मपत्र के समान होता है । किसी मेघ की आकृति महानगर के समान
 होती है, किसी की पर्वत के समान होती है, किसी की श्रीङ्गगृह के समान होती है, और किसी की पृथ्वी के
 समान होती है । वे महाशरीर वाले तथा महाशब्द करने वाले मेघ आकाश को मार देते हैं ॥३२-३६॥
 अत्यन्त भीषण वृष्टि करते हैं, जिससे अखिल म फैला हुआ अग्नि शान्त हो जाता है ॥३७॥ मुनिप्रेष्टा ।
 अग्नि के नष्ट हो जाने पर भी सौ वर्ष तक मघ सम्पूर्ण जगत् का प्लावित करते हुए बरसते रहते हैं ॥३८॥
 द्वादश के समान बूंदों से अखिल पृथ्वी को प्लावित करके भूलाक तथा ऊध्वलाक को प्लावित कर देते हैं
 ॥३९॥ सम्पूर्ण लोक के तिमिरावृत हो जाने पर और स्थावर-जगम के नष्ट हो जाने पर सौ वर्षों से अधिक
 काल तक महामेघ बरसते रहते हैं ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषिया के संवाद-प्रकरण में सहारलक्षण कथन नामक दो सौ
 वत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३२॥

१क. ते देश भूत्या । २ग. ०न । अधनि ० । ३ख. कृपागा ० । ४ख. पूरयन्तो । ५ग. ०हामागा व ० ।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्राकृतलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

सप्तपिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि द्विजोत्तमा । एकाग्रं भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिलं तत् ॥१॥
 अयं निश्वासाजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदास्तत् । नाशं नयति भो विप्रा वर्षाणामधिकं शतम् ॥२॥
 सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावन । अनादिरादिविद्वदस्य पीत्वा वायुमशेषतः ॥३॥
 एकाग्रं ततस्तस्मिंशेषशय्यास्थितः प्रभु । ब्रह्मरूपधरं शोते भगवानादिकृद्धरि ॥४॥
 जनलोकगतं सिद्धं सनकाद्यैरभिष्टुत । ब्रह्मलोकगतं चैवं चिन्त्यमानो मुमुक्षुभिः ॥५॥
 आत्ममायामयीं दिव्या योगनिद्रां समास्थितः । आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्त्यन्परमेश्वर ॥६॥
 एष नैमित्तिको नाम विप्रेन्द्रा प्रतिसत्वरः । निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः ॥७॥
 यदा जायते सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगत् । निमीलत्येतदखिलं मायाशय्याशयेऽच्युते ॥८॥
 पदमयोनेदिनं यत्तु चतुर्युगसहस्रवत् । एकाग्रं कृते लोके तावती रात्रिरुच्यते ॥९॥
 तत् प्रबुद्धो रात्र्यन्ते पुनः सृष्टिं करोत्यजः । ब्रह्मस्वरूपधृन्विष्णुर्मथा च कथितं पुरा ॥१०॥

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

ध्याम ने कहा—द्विजवर ! सप्तपिथा के स्थान से लेकर अखिल जगत् एकाग्र अर्थात् जलमय हो जाता है ॥१॥ तदनन्तर विष्णु का श्वासावायु मयो को नष्ट कर देता है और सी वर्षों से अधिक काल तक बहता रहता है ॥२॥ तब सबजीवमय अचित्त्व प्राणिमयो के उत्पादक अनादि तथा विश्व के आदि भगवान् अग्रेष वायु को पीकर उसी एकाग्र में शेषशय्या पर स्थित होने हैं ॥३॥ जब ब्रह्मरूपपापी आदिकर्ता भगवान् हरि रात्रि में रहते हैं तब जनलोक निवासी सनक आदि सिद्धवृन्द उनकी स्तुति करते हैं । ब्रह्मलोकवासी मुमुक्षु जन भी उनकी ध्यान करते हैं । परमेश्वर भगवान् आत्ममायामयी दिव्य योगनिद्रा में स्थित होकर वासुदेव रूप अपने आत्मा की चिन्ता करते हैं । विप्रधृष्टा ! इसी का नाम नैमित्तिक लय है जिसमें ब्रह्मरूपधारी हरि ही निमित्त हैं । जब अखिलात्मा भगवान् जागते हैं तब ससार में त्रिपातिलता आती है । माया रूपी शय्या पर जब सही जनादन सो जाते हैं तब जगत् भी निद्रिय हो जाता है । एक सहस्र चतुर्युग का बराबर का ब्रह्मा का दिन होता है उसी दिन का अनुसार उनको रात होती है जिसमें अखिल लोक एकाग्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है ॥४॥ ९॥ तब रात्रि का अन्त में प्रबुद्ध ब्रह्मा पुनः सृष्टि करते हैं । यह तो पहले ही कहा गया है कि ब्रह्मा का रूप में विष्णु ही होने हैं ॥१०॥ द्विजवर !

इत्येष' कल्पसंहारो अन्तरप्रलयो द्विजाः। नैमित्तिको वः' कथितः शृणुध्वं प्राकृतं परम् ॥११॥
 अवृष्ट्यग्न्यादिभिः सम्यक्कृते शाय्यालये' द्विजाः। समस्तोष्वेय लोकेषु पातालैर्ध्वखिलेषु च ॥१२॥
 महादेविकारस्य विशेषात्तत्र' संक्षये'। कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते' प्रतिसंचरे ॥१३॥
 आपो प्रसन्ति वं पूर्वं 'भूमेर्गन्धादिकं गुणम्। 'आस्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयाय' प्रकल्पते ॥१४॥
 प्रनष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्यूर्ध्वं जलात्मिका। आपस्तदा प्रवृत्तास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥१५॥
 सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति' विचरन्ति च। सलिलेर्नद्योर्मिमता लोकालोकः समन्ततः ॥१६॥
 अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा' पीयते तु सः। नश्यन्त्यापः सुतप्ताश्च रसतन्मात्रसक्षयात् ॥१७॥
 ततश्चाऽऽपोऽमृतरसा' ज्योतिष्द्वं प्राप्नुवन्ति वं। अग्न्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्वतो व्युते ॥१८॥
 स चाग्निः सर्वतो व्याप्य आदत्ते तज्जलं तदा। सर्वमापूर्यतो चाभिः (रयत्यग्निः) स्तदा जगदिदं शनैः ॥१९॥
 अग्निभिः संतते तस्मिन्स्तिर्यग्ध्वं भवत्यथा। ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरस्ति प्रभाकरम् ॥२०॥
 प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतोऽखिलात्मके। प्रनष्टे रूपतन्मात्रे कृतहपो विभावसु ॥२१॥
 प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोषयुते महान्। निरालोके तदा लोके वायुसंस्थे च तेजसि ॥२२॥
 तत' प्रलयमासाद्य 'वायुसंभवमात्मनः। 'ऊर्ध्वं च वायुस्तिर्यक्च दोषधीति विशो दश ॥२३॥

इमी का नाम अन्तरप्रलय, कल्पसंहार तथा नैमित्तिक लय है। जब आप लोग प्राकृत लय के बारे में मुनिने ॥११॥ विप्रवृन्द ! अवृष्टि तथा अग्नि आदि से समुद्र, समस्त लोक तथा अखिल पाताल के नष्ट हो जाने पर महत् आदि विकारों का भी क्षय हो जाता है ॥१२॥ तब कृष्ण की इच्छा से प्राकृत लय होने लगता है जिसमें जल भूमि के गन्ध आदि गुणों को विनष्ट कर देता है ॥१३॥ तब गन्धशून्य पृथिवी प्रलय मचाने लगती है। गन्ध के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी जल रूप में परिणत हो जाती है। जल बहुत वेग से महाशब्द करते हुए बहने लगता है, जिससे सम्पूर्ण जगत् भर जाता है। तीनों लोकों में तरंगयुक्त जल ही जल होता है। जल के गुण को भी अग्नि पी जाता है। रस के नष्ट हो जाने पर अत्यन्त तप्त जल भी विनष्ट हो जाता है ॥१४-१७॥ तब अमृत रूप रस वाला जल ज्योति रूप में परिवर्तित हो जाता है। जब जल अग्निरूप में परिणत हो जाता है और सब ओर तेज से ढक जाता है तब वह अग्नि सब ओर फैलकर उस जल को ग्रहण कर लेता है। तब वह सम्पूर्ण जगत् धीरे धीरे भर जाता है। तिरछे, ऊपर और नीचे ज्वालाओं के फैल जाने पर वायु अग्नि व परम भास्वरूप को भी निगल जाता है ॥१८-२०॥ जब अग्नि वायुरूप में परिवर्तित हो जाता है और उसका रूप नष्ट हो जाता है तब प्रकाश वृक्ष जाता है और 'ह्रस्व' करने बड़े जार से वायु बहने लगता है। अग्नि के वायु रूप में परिणत हो जाने पर समस्त लोक प्रकाशहीन हो जाते हैं। तब वायु प्रलय मचाते हुए दशों दिशाओं को ऊपर, नीचे तथा तिरछे बड़े जोर से ढँपाने लगता है ॥२१-२३॥ वायु के भी स्पर्श गुण का आकाश प्रस

१क ०त्येव क०। २ख ०त्तिकवच क०। ३ग य। ४ग सस्त्वानले। ५ग ०त्तस्य स०। ६ख सवुले। ७क ०प्रकृते प्र०। ८ग ०न्धात्मक रसम्। ९ग शान्तगन्धा। १०क ग लयत्वाय क०। ११ग ०न्ति च रमन्ति। १२क. ०तिपि लीय०। १३ग ०पो हृत०। १४ग वायु स०। १५क ग ०र्ध्वं चावश्च तिर्य०।

वायोऽस्त्वपि गुणं स्पर्शमाकाशं प्रसते ततः । प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४॥
 अहंपरसस्पर्शमगन्धवदमूर्तिमत् । सर्वमापूरयन्नेऽसुमहत्तत्प्रकाशते ॥२५॥
 'परिमण्डलतस्तत्तु आकाशं शब्दलक्षणम् । शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६॥
 ततः शब्दगुण तस्य भूतादिप्रसते पुनः । भूतेन्द्रियेषु युगपदभूतादौ संस्थितेषु वै ॥२७॥
 अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः । भूतादि प्रसते चापि 'महाबुद्धिर्विचक्षणा ॥२८॥
 उर्वी महाश्च जगत प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा । 'एवं सप्तमहाबुद्धिः (?) त्रमात्प्रकृतयस्तथा ॥२९॥
 प्रत्याहारेस्तु ताः सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् । येनेदमावृतं सर्वमण्डमसु प्रलीयते ॥३०॥
 सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तलोकं सपर्वतम् । उदकावरणं ह्यथ ज्योतिषा पोषते तु तत् ॥३१॥
 ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे सभोरणः । आकाशं चैव भूतादिप्रसते तं तथा महान् ॥३२॥
 महान्तमेभिः सहितं प्रकृतिप्रसते द्विजाः । 'गुणसाम्यमनुद्रिक्तमन्यूनं च द्विजोत्तमाः ॥३३॥
 प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतुः प्रधानं कारणं परम् । इत्येषा प्रकृतिः सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३४॥
 व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्यां विप्राः प्रलीयते । एकः दण्डोऽक्षरो' नित्यः सर्वव्यापी तथा पुनः ॥३५॥
 सोऽप्यंशः सर्वभूतस्य द्विजेन्द्राः परमात्मनः । नश्यन्ति सर्वा यत्रापि नामजात्यादिकल्पनाः ॥३६॥
 सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे । स' ब्रह्म' तत्परं धाम परमात्मा' परेश्वरः ॥३७॥

लेता है। तब वायु आकाशरूप में परिणत हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा मूर्ति से रहित वह महान् आकाश ही सर्वत्र प्रकाशित होता है। आकाशमण्डल में केवल शब्द ही होता है। शब्दमात्र करने वाला वह आकाश सबको आवृत कर स्थित होता है। तब आकाश के शब्द गुण को भी अहंकार प्रस लेता है ॥२४-२६॥ यह अहंकार सभी प्राणियों में अभिमान रूप से रहता है और यह तामस है। इस अहंकार को भी विचक्षण महाबुद्धि खा डालती है। महाबुद्धि, उर्वी, महान्, जगत् का आम्पगतराग, बाह्य भाग तथा प्रान्त और प्रह्निये ये सात महाबुद्धि हैं। प्रलय के समय वे परस्पर एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाती हैं, जिससे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल में प्रलीन हो जाता है (??)। जल के आधार समुद्र पर्यन्त सातों द्वीप तथा पर्वत सहित सातों लोक भी अभिनिर्णयित हो जाता है ॥२७-३१॥ अग्नि का लय वायु में और वायु का आकाश में हो जाता है। आकाश को भूतादि और उनकी महान् प्रस लेता है ॥३२॥ भूतादि सहित महान् को प्रकृति प्रस लेती है। द्विज्येष्ठो । गुणा की साम्यावस्था—न कम न अधिक—को प्रकृति कहते हैं। इसी के नाम हेतु, प्रधान, कारण तथा पर हैं। यह प्रकृति व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप वाली है ॥३३-३४॥ विप्रबुद्ध । इसका व्यक्त रूप अव्यक्त रूप में लीन हो जाता है। जो एक, दण्ड, अक्षर, नित्य, तथा सर्वव्यापी है, वह भी सर्वभूतस्वरूप परमात्मा का अंश है। आत्मा के पर रूप में, जो ज्ञेय तथा सत्तामात्र है नाम, जाति आदि की समस्त कल्पनाएँ लीन हो जाती हैं ॥३५-३६॥ वही ब्रह्म, परम धाम, परमात्मा, परेश्वर तथा विष्णु है, जिसमें विलीन होकर वह सत्ता पुन लीनता नहीं है। जा मैंने

१ग ०ण्डल तच्छुषिरमात्रा० । २ग ०क्षण । उ । ३स ०वं मुष्टे महायुद्धे ० । ४न ०जा । ५गुणे सा० । ५न ०म्यमुद्रि० । ६न ०क्षयो नि० । ७न ०ह्राण परोवात् ० । ८स ०र वात् ० । ९न ग ०मा स ये इव० ।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

आध्यात्मिकादि भो विप्रा ज्ञात्वा तापत्रयं बुध । उत्पन्नज्ञानवैराग्यं प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम् ॥१॥
 आध्यात्मिकोऽपि द्विविधा शरीरो मानसस्तथा । शरीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते श्रूयता च स ॥२॥
 शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरशूलभगदरं^१ । गुल्माशं श्वययुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥३॥
 तथाऽक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामयसज्जकं^२ । भिद्यते देहजस्तापो मानसं श्रोतुमर्ह्यम् ॥४॥
 कामत्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादजः । शोकासूयावमानेर्व्यामात्सर्याभिभवस्तथा ॥५॥
 मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठास्तापो भवति नैकधा । इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्यध्यात्मिकः स्मृतः ॥६॥
 मृगपक्षिमनुष्याद्यं^३ पिशाचोरगराक्षसं । सरोसृपाद्यंश्च नृणां जन्यते चाऽऽधिभौतिकः ॥७॥
 शीतोष्णवातवर्षाम्बुबन्धुतादिसमुदभवः । तापो द्विजवरश्रेष्ठा कथ्यते चाऽऽधिदैविकः ॥८॥
 गर्भजन्मजरान्तान्मृत्युनारकजः तथा । दुःखं सहस्रशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तमा ॥९॥
 सुकुमारतनुर्गर्भं जन्तुर्बहुमलावृतं^४ । उत्त्वसवेष्टितो^५ भग्नपृष्ठग्रीवास्थिसहतिः^६ ॥१०॥

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

व्यास ने कहा—विप्रवद । विद्वान् लोगो को आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापो के जानने से ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है जिससे वे आत्यन्तिक लय का प्राप्त करते हैं ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के भी दो भेद हैं—एक शारीरिक और दूसरा मानसिक । शारीरिक ताप के भी बहुत से भेद हैं मुनिये ॥२॥ गिराव्यथा सर्पों ज्वर शूल भगदर प्लेहा कबज्जार हाथीपाँव खाँसी नेत्ररोग अतीसार कुष्ठ आदि अनेक भेद शारीरिक ताप कहते हैं ॥३॥ अब मानस ताप के भेद मुनिये । काम ताप भय द्वेष लोभ मोह विषाद शोक अमूषा अपमान ईर्ष्या मात्सर्य तथा परामर्श—इन भेदों से मानस ताप भी अनेक प्रकार के होते हैं । द्विजपण्डित । इस प्रकार आध्यात्मिक ताप अनेक भेदों से युक्त है ॥४॥ ६॥ मनुष्यों को मृग पक्षी मनुष्य पिशाच सर्प राक्षस तथा रक्षने वाले जीवा म ज्ञा ताप होता है उसका नाम आधिभौतिक है ॥७॥ विजवर । सर्पों गर्मियों का पृथक् जल विजली आदि म ज्ञा ताप होता है उसका नाम आधिदैविक है ॥८॥ गम जन्म जरा अमृतता मृत्यु तथा नरक से जा दुःख होता है उसका हजारों भेद हैं । अनेक प्रकार के मला से युक्त गम म कामल शरीर वाला जीव उत्त्वचम से वेष्टित रहता है जिसकी पीठ ग्रीवा तथा हड्डियाँ मुड़ी रहती हैं ॥९॥ १०॥ माता जो अत्यन्त

१ ग ०को वी द्वि० । २क ०रोगम० । ३क ०रक्ष्यम० । ४क ०नुष्यीर्षं नि० । ५स ०न ।
 वसने व० । ६क ०ता मुन० । ७क ०वात्सर्य० ।

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णलवणैर्मातृभोजनैः । अतितापिभिरत्ययं बाध्यमानोऽतिवेदनः ॥११॥
 प्रसारणाकुञ्चनादौ नागा (ङ्गा) नां प्रभुरात्मनः । शङ्खमूत्रमहापङ्कशाया सर्वत्र पीडितः ॥१२॥
 निरुच्छ्वासः सचेतन्यः स्मरञ्जन्मशतान्यथ । आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः ॥१३॥
 जयमानः पुरीषासृग्मूत्रशुक्राविलाननः । प्राजापत्येन वातेन पीड्यमानास्थिवन्धनः ॥१४॥
 अधोमुखस्तः क्रियते प्रबलैः सूतिमारुतैः । बलेशैर्निष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः ॥१५॥
 मूर्च्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना । विज्ञानभ्रंशमाप्नोति जातस्तु मुनिसत्तमाः ॥१६॥
 कण्टकैरिव तुन्नाङ्गः क्रकचैरिव दारितः । पूतिघ्नान्निपतितो धरण्यां क्रिमिको यथा ॥१७॥
 कण्डूयनेऽपि चाशक्तः परिवर्तैऽप्यनीश्वरः । स्तनपानादिकाहारमवाप्नोति परेच्छया ॥१८॥
 अशुचिस्तरे सुप्तः कीटदंशादिभिस्तथा । भक्ष्यमाणोऽपि नवंपां समयो विनिवारणे ॥१९॥
 जन्मुद्विग्नान्यनेकानि 'जन्मनोऽनन्तराणि च । बालभावे यदाप्नोति आधिभूतादिकानि च ॥२०॥
 अज्ञानतमसा छद्मो मूढान्तःकरणो नरः । न जानाति कुतः कोऽहं कुत्र गन्ता किमात्मकः ॥२१॥
 केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम् । किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं न चोच्यते ॥२२॥

अम्ल, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा लवण मिश्रित भोजन करती है, उससे गर्भस्थ जीव को अतिपीड़ा होती है ॥११॥
 जीव अपने अंगों के फैलाने तथा समेटने में भी असमर्थ रहता है। उसे विष्टा तथा मूत्र के महापंक में सोना पड़ता है। सर्वत्र उसे पीड़ा ही पीड़ा होती रहती है ॥१२॥ श्वास-रहित पर सचेतन रहने हुए जीव को संबन्धी जन्मों का स्मरण होता है। इस प्रकार कर्मबन्धन में पड़कर जीव गर्भ में अत्यन्त दुःख भोगता है ॥१३॥ उत्पत्ति के समय जीव का मुख विष्टा, मूत्र, शोणित तथा वीर्य से लिपटा रहता है प्राजापत्य नामक वायु उसकी हड्डियों की जोड़ में पीड़ा पहुँचाता है, सूति नामक प्रबलवायु उसे अधोमुख कर देता है। इस प्रकार अत्यन्त क्लेश से आतुर होकर जीव माता के पेट से निकलता है ॥१४-१५॥ बाहरी वायु के स्पर्शसे ही उसे अत्यन्त मूर्च्छा आ जाती है। तभी उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥१६॥ उस समय उसकी ऐसी दशा होती है कि मनो उसके अंगों में काँट तनी उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥१७॥ वह अंगों को खोजलाने में तथा नरवट बदलने में भी असमर्थ रहता है। स्तन उसकी स्थिति होती है ॥१८॥ वह अंगों को खोजलाने में तथा नरवट बदलने में भी असमर्थ रहता है। स्तन उसकी स्थिति होती है ॥१८॥ अपवित्र विस्तरे पर सोता है। कीड़े-मकोड़े पान आदि आहार भी उसे दूसरे की इच्छा में मिलता है ॥१९॥ उसे जन्म-दुःख तो अनेक होते ही हैं, जन्म के वे काटने पर भी वह उसका निवारण नहीं कर सकता है ॥२०॥ बचपन में उसे अनेक आधिभौतिक दुःख होते हैं। अज्ञानरूपी बाद भी अनेक प्रकार के दुःख होते हैं ॥२०॥ बचपन में उसे अनेक आधिभौतिक दुःख होते हैं। अज्ञानरूपी बन्धकार से आवृत चित्त वाला मूर्ख अनप्य यह नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, किस बन्धन में पड़ा हूँ, कौन कारण है कौन नहीं कारण है, कौन कार्य है, कौन अकार्य है, क्या बोलना चाहिये, क्या नहीं बोलना चाहिये, कौन धर्म है, कौन नहीं धर्म है, किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, क्या करना

को धर्मः कश्च वाऽधर्मः कस्मिन्वर्तते वै कथम् । किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३॥
 एवं पशुसर्पमृदंरज्जानप्रभवं महत् । अवाप्यते नरदुःखं शिशनोदरपरायणैः ॥२४॥
 अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः । अज्ञानिना प्रवर्तन्ते कर्मलोपस्ततो द्विजाः ॥२५॥
 नरक कर्मणां लोपात्फलमाहुर्महर्षयः । तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम् ॥२६॥
 जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान् । 'विचलच्छोर्णवशनो बलिस्नायुशिरावृतः ॥२७॥
 दूरप्रनष्टनयनो व्योमान्तर्गततारकः । नासाविवरनिर्यतिरोमपुञ्जश्चलद्विपुः ॥२८॥
 प्रकटीभूतसर्वास्यिनंतपृष्ठास्थिसहतिः । उत्सन्नजठराग्नित्वादल्पाहारोऽरूपचेष्टितः ॥२९॥
 कृच्छ्रचंक्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः । मन्दीभवच्छोत्रनेत्रगलललालाविलाननः ॥३०॥
 अनायत्तः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः । तत्क्षणेऽप्यनुभूतानामस्मर्त्ताऽखिलवस्तुनाम् ॥३१॥
 स्रुदुष्चारिते वावये 'समुद्भूतमहाश्रमः । 'श्वासकासामयाससमुद्भूतप्रजागरः ॥३२॥
 अय्येनोत्थाप्यतेऽय्येन तथा संवेद्यते जरी । 'भृत्यात्मपुत्रबाराणामपमानपराकृतः ॥३३॥
 प्रक्षोणाखिलशौचश्च विहाराहारसंपृहः । हास्य परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः ॥३४॥
 अनुभूतमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम् । संस्मरन्धौवने दीर्घं निःश्वसित्यतितापितः ॥३५॥

चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, कौन गुणयुक्त है तथा कौन दोषयुक्त है ॥२१-२३॥ इस प्रकार इन्द्रिय तथा उदर की पूर्ति में निरत पशुतुल्य मूर्ख मनुष्य अज्ञानता से उत्सन्न दुःख का भोगता है । द्विजगण । अज्ञानियों को अज्ञानता रूप तामस भाव कार्यारम्भ-काल में ही जाता है, जिससे वे कर्मों को नहीं कर पाते । महर्षियों ने कर्मों के लाल हो जाने का फल नरक बतलाया है । इसलिये अज्ञानियों का इस लोक में तथा परलोक में दुःख ही दुःख होता है ॥२४-२६॥ वृद्धावस्था में मनुष्य के सब अणु जर्जर तथा शिथिल हो जाते हैं, दाँत गमन हो जाते हैं, स्नायु तथा शिरा उग जाती है, आँखों की शक्ति कम हो जाती है, आँखा की पुतली घँस जाती है, नाक के रन्ध्र में राम-पुञ्ज दोखने लगता है, शरीर बँपने लगता है, हड्डियाँ झलकने लगती हैं, पीठ की हड्डी झुग जाती है, जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, भोजन तथा शारीरिक चेष्टा कम हो जाती है, उठने, सोने तथा बैठने तक में भी बहुत थकता अनुभव होता है, कानों तथा नेत्रों की शक्ति क्षीण हो जाती है, सार टपकने से मुख मलिन हो जाता है । समस्त इन्द्रियाँ तथा वे बाहर हो जाती हैं । तब वह मरणोन्मुख हो जाता है । उस समय अनुभूत वस्तुओं का भी स्मरण नहीं होता है । एक बार बोलने में भी महान् आयास करना पड़ता है ॥२७-३१॥ खाँसी तथा दवात-स्नायु की तीव्रता से नींद खल जाती है । दूसरे ही क्षण उस वृद्ध को उठाते-बैठाते हैं । नौकर, पुत्र तथा स्त्री भी उसकी अवहेलना करती हैं । शरीर की शुद्धि भी वह नहीं कर पाता है । विहार तथा आहार की इच्छा भी नष्ट हो जाती है । परिजनों का भी वह हास्यास्पद बन जाता है । उसने समस्त बान्धव उराते तग आ जाते हैं ॥३२-३४॥ यह युवावस्था का स्मरण करते अत्यन्त सन्ताप से लम्बी साँस लेता है जैसे कि माना वह दूसरे जन्मा की

एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय च । मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति शृणु तान्यपि ॥३६॥
 श्लयप्रोवाद्ग्रहस्तोऽयं 'प्राप्तो वेपथुना नरः । मुहुर्लानिपरश्चासौ मुहुर्लानिबलान्वितः ॥३७॥
 'हृत्पिष्यान्त्यतनयभार्याभूत्यगृहादिषु । एते कथं भविष्यन्तीत्यतोयममताकुलः ॥३८॥
 मर्मविद्भिर्महारोगः ककचैरिव दारुणैः । शरैरिवान्तकस्योप्रेक्षित्यमानास्थिबन्धनः ॥३९॥
 परिवर्तमानतारासिंहस्तपादं मूढः क्षिपन् । संशुष्यमाणतात्त्वोष्कण्ठो घुरघुरायते ॥४०॥
 निरुद्धकण्ठदेशोऽपि उदानश्वासपीडितः । तापेन महता व्याप्तस्तृषा व्याप्तस्तृषा क्षुधा ॥४१॥
 वलेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति धाम्यकिकरपीडितः । ततश्च यातनादेहं पलेशेन प्रतिपद्यते ॥४२॥
 एतान्यन्यानि चोप्राणि दुःखानि मरणे नृणाम् । शृणुष्वं नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषंमृतं ॥४३॥
 याम्यकिकरपाशादिग्रहणं दण्डताडनम् । यमस्य दशनं चोपमुप्रमार्गविलोकनम् ॥४४॥
 कर्मभवाल्पावहृद्यग्रशस्त्राविभीषणे । प्रत्येकं यातनायाश्च यातनादि द्विजोत्तमाः ॥४५॥
 ककचैः पीडयमानानां मू(मू)पायां चापि ध्माप्यताम्कुठारैः पाटयमानानां भूमौ चापि निक्षन्यताम् ॥४६॥
 शूलैश्चारोप्यमाणानां व्याघ्रबध्नैः प्रवेक्ष्यताम् । गुर्ध्रैः संभक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभूज्यताम् ॥४७॥
 वयस्यतां तैलमध्ये च क्लिद्यतां क्षारकदर्मे । उच्चाग्निपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥४८॥

अपनी वियाओ वा अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ इस प्रकार मनुष्य वृद्धावस्था में दुःखों का अनुभव करके मरण के समय जिन दुःखों का अनुभव करता है, वह सुनिये ॥३६॥ उस समय उसकी पीड़ा, पीर तथा हाथ शिथिल पड़ जाते हैं तथा कर्पण लगते हैं । बारम्बार ग्लानि होती है और चेतना भी होती है ॥३७॥ सोना, अन्न, पुत्र, स्त्री, नीकर तथा घर की क्या स्थिति होगी—यह सोचकर वह ममता से व्याकुल हो जाता है ॥३८॥ आरे क समान भयकर तथा मर्मवेधी महान् रोगों से उसकी हृदयों वा बन्धन टूटने लगता है जैसे कि यानों यमदूतों के वाशों से काटा जा रहा हो ॥३९॥ आँखों की पुतली उल्टने लगती है । हाथ-पैर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं । तालु, बोध और कण्ठ सूख कर घुरघुराने लगता है ॥४०॥ कण्ठप्रदेश अवरुद्ध हो जाता है । उदान वायुपीडा देने लगती है । गर्मी अत्यन्त बढ़ जाती है । भूख-प्यास सताने लगती है ॥४१॥ यमदूतों के द्वारा अत्यन्त पीडित होकर वह कष्टपूर्वक प्राण त्याग करता है । तब उसे यातना-शरीर प्राप्त होता है ॥४२॥ मृत्यु-समय में तथा अग्न्य भी तीव्र कष्ट मनुष्यों को होते हैं । अब सुनिये कि नरक में मृतात्मा की कौन कौन सी कष्ट होती है ॥४३॥ यमदूत उसे जाल में बन्ध देता है और लाठी से पीटता है । एक तो यमदशन ही नष्टकर दूसरा यममार्ग तो और भी भयकर है ॥४४॥ तप्त बालूना, अग्नि, यन्त्र, शस्त्र आदि से यममार्ग में कष्ट दिया जाता है ॥४५॥ जीवों की यमदूत आरे से पीरते हैं, कड़ाह में मूत्रते हैं, कुल्हाड़ी से काटते हैं, भूमि में गाड़ते हैं शूलों पर चढ़ाते हैं, बाध के मूह में डालते हैं, गोधों से मोचवाते हैं, सतप्त तैल में डाल कर फाड़ा बनाते हैं, कीचड़ में डुबो देते हैं, ऊपर से जाकर नीचे गिरा देते हैं, प्रक्षेपणयन्त्रा द्वारा फेंक देते हैं ॥४६-४८॥ विप्रबुद्ध ! पापी मनुष्य नरक में जो पापजन्य

१ख प्राप्नोति यातना तत । मु० । २ख ०याततमु० । ३क ०वर्ण । प्र० । ख. ०वणम् । प्र० । यग
 २य पातानां हि द्वि० । ५क. ०म् । यन्त्रैष्वा० ।

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि वै । प्राप्यन्ते नारकविप्रास्तेषां सख्या न विद्यते ॥४९॥
 न केवलं द्विजश्रेष्ठा नरके दुःखपद्धतिः । स्वर्गेषु पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः ॥५०॥
 पुनश्च गर्भो भवति जायते च पुनर्नरः । गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति च ॥५१॥
 जातमात्रश्च म्रियते बालभावे च यौवने । यद्यत्प्रीतिकरं पुंसा वस्तु विप्राः प्रजायते ॥५२॥
 तदेव दुःखवृक्षस्य बीजत्वमुपगच्छति । 'कलत्रपुत्रमित्रादिगृहक्षेत्रधनादिकैः ॥५३॥
 क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम् । इति ससारदुःखाकंतापतापितचेतसाम् ॥५४॥
 विमुक्तिपादपच्छायायामृते कुत्र सुखं नृणाम् । तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य पण्डितैः ॥५५॥
 गर्भजन्मजरारोगेषु स्थानेषु प्रभविष्यतः । 'निरस्तातिशयाह्लादं' सुखभावंकलक्षणम् ॥५६॥
 भेषजं भगवत्प्राप्तिरेका चाऽऽत्यन्तिकी मता । तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः ॥५७॥
 तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं द्विजोत्तमा । आगमोक्तं विवेकाच्च' द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥५८॥
 शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम् । अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चन्द्रयोद्भवम् ॥५९॥
 यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्वै विप्रा विवेकजम् । मनुरप्याह वेदायं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तमाः ॥६०॥
 तदेतच्छ्रयतामन संबन्धे गदतो मम । द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ॥६१॥
 शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति । द्वे विद्ये वै वेदितव्ये इति चाऽऽयर्वणो भृतिः ॥६२॥

दुःख पाते हैं, उन दुःखों की सख्या नहीं हो सकती ॥४९॥ द्विजश्रेष्ठो ! पापियों के लिये केवल नरक में ही दुःखों का बाहुल्य नहीं है । अपितु स्वर्ग में भी उन्हे शान्ति नहीं मिलती है । ॥५०॥ जीव पुन गर्भ में वास करता है और पुन जन्म लेता है । वह फिर गर्भ में विलीन होता है और फिर जन्म लेकर समाप्त होता है ॥५१॥ कभी तो जन्म लेते ही मर जाता है और कभी वचपन में या युवावस्था में पञ्चत्व को प्राप्त करता है । विप्रवृन्द ! मनुष्यों की जो प्रिय वस्तु होती है वही दुःख रूपी वृक्ष का बीज बन जाती है । फिर तो स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, क्षेत्र तथा धन आदि उतना अधिक सुख नहीं देते हैं जितना कि दुःख देने लगते हैं । इसलिये ससार रूपी सूर्य के ताप से सन्तापित चित्त वाले मनुष्यों के लिये मोक्ष रूपी वृक्षच्छाया को छोड़ कर सुख कहाँ है ? ॥५२-५४॥ इस कारण विद्वानो ने बतलाया है कि गर्भ जन्म, वृद्धता आदि स्थानों में होने वाले त्रिविध तापों को मिटाने के लिये अनिशय आह्लादजनक तथा आनन्दरूप भगवत्प्राप्ति ही एक औषध है । इसलिये ज्ञानी मानव भगवत्प्राप्ति के लिये यत्न करें ॥५५-५७॥ द्विजश्रेष्ठो ! भगवत्प्राप्ति का वारण ज्ञान तथा कर्म माना गया है । ज्ञान दो प्रकार का माना गया है—एक शास्त्रजन्य और दूसरा विवेकजन्य । शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्म का विवेकजन्य । अज्ञान अन्धकार के समान है और ज्ञान दीप के समान है ॥५८-५९॥ विप्रगण ! विवेकजन्य ज्ञान सूर्य के समान है । इस सम्बन्ध में वेदार्थ का स्मरण करके मनु के जो कहा है, उसे आप मुनिये । दो ब्रह्म जानने योग्य हैं—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म ॥६०-६१॥ शब्दब्रह्म में निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है । अयं वेद का भी कहना है कि दो विद्याओं को जानना चाहिये ॥६२॥ परा विद्या से ब्रह्म की प्राप्ति होती

तेजोबलैश्वर्यमहावरोधः, स्वधीर्यशक्त्यादिगुणकराशिः ।

'परः पराणां सकला न यत्र, बलेशादयः सन्ति परापरो' ॥७३॥

स ईश्वरो 'व्यष्टिसमष्टिरूपो'ऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।

सर्वेश्वरः 'सर्वदृक्सर्ववेत्ता, समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः' ॥७४॥

संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम् ।

संदृश्यते वाऽऽप्य गम्यते वा, तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवाद आत्यन्तिकलयनिरूपणं नाम
चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगाभ्यासनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेषजम् । यं विदित्वाऽध्ययं तत्र युञ्जामः पुरुषोत्तमम् ॥१॥
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा । 'अब्रवीत्परमप्रोतो योगी' योगविदां वरः ॥२॥

शक्ति आदि गुणों की राशि है। वह परे से भी परे है। उस परात्पर को बलेश आदि नहीं होते हैं ॥७३॥
वह ईश्वर, व्यष्टि-समष्टि रूप, अव्यक्त रूप तथा व्यक्त रूप है। वह सर्वेश्वर, सर्वद्रष्टा, सर्ववेत्ता, सर्वशक्ति-
मान्, तथा परमेश्वर है ॥७४॥ जिसके द्वारा दोषरहित, शुद्ध, पर, निर्मल तथा एकरूप परमात्मा का दर्शन
तथा प्राप्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान है। उसके अतिरिक्त अज्ञान माना जाता है ॥७५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के संवाद-प्रकरण में आत्यन्तिक लय
निरूपण नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३४॥

अध्याय २३५

योगाभ्यास का निरूपण

मुनियों ने कहा—अब दुःखों के संयोग के मिटाने में औषधिरूप योग का वर्णन आप करें, जिससे ज्ञानवर
हम अविनाशी पुरुषोत्तम को प्राप्त कर सकते हैं। उनका वचन सुनकर योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ योगी व्यास परम
हर्ष से कहने लगे ॥१-२॥

१क. स. परावरा०। २ख. ०रावरे०। ३क. व्यस्तसु०। ४क. ०मस्तक०। ५ख. ०वर्तनप्रद्रष्टा स०।
६ख. ०प्रीतस्त्वदा योगवि०। ७न. योगं।

व्यास उवाच

योग वक्ष्यामि भो विप्रा शृणुष्व भवनाशनम् । यमम्यस्याऽऽप्नुयाद्योगी मोक्ष परमदुर्लभम् ॥३॥
 श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भवितत । इतिहास पुराण च वेदाश्चैव विचक्षण ॥४॥
 आहार योगदोषाश्च देशकाल च बुद्धिमान् । ज्ञात्वा 'समम्यसंयोग निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रह' ॥५॥
 भुञ्जन्सक्तु यवागू च' तन्नमूलफल पप । यावक कणपिण्याकमाहार योगसाधनम् ॥६॥
 न मनोविकले ध्माते न भ्रान्ते क्षुधिते तथा । न द्वन्द्वे न च शीते च न चोष्णे नानिलात्मके ॥७॥
 तशब्दे न जलाम्बासे जीर्णगोष्ठे चतुष्पये । सरीसृपे श्मशाने च न नद्यन्तेऽग्निसनिधौ ॥८॥
 न चैत्ये न च बल्मीके सभये कूपसनिधौ । न शुष्कपणनिचये योग युञ्जीत कर्हिचित् ॥९॥
 देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति च । प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारका ॥१०॥
 बाधिर्ग जडता लोप स्मृतेर्मूकत्वमन्धता । ज्वरश्च जायते 'सद्यस्तद्वदजनसभय ॥११॥
 तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदा सदा । धर्मार्थकाममोक्षाणा शरीर साधन यत ॥१२॥
 आश्रमे विजने गृह्ये नि शब्दे निर्भये नगे । शून्यागारे शुचौ रम्ये चकान्त देवतालये ॥१३॥
 रजया पश्चिमे 'यामे पूर्वे च सुसमाहित । पूर्वाह्णे मध्यमे चाह्नि' युक्ताहारो जितेन्द्रिय ॥१४॥

व्यास बोले—विप्रवन्द । मुनिये । मैं सत्कारनाशन याग का बणन करूँगा जिसका अभ्यास कर यानी पुरुष परमदुर्लभ मोक्ष का प्राप्त करता है ॥३॥ पहले भक्तिपूर्वक गुरु का आराधना करत विद्वान् पुरुष यागशास्त्र इतिहास पुराण तथा वेदों का श्रवण करे ॥४॥ पश्चात् आहार योग के दाय तथा देश-काल का ज्ञान कर द्वन्द्व (सुख दुःख आदि) तथा परिग्रह (दाग या सुख साधन) से रहित होकर याग का अभ्यास करे ॥५॥ सत्तु यवागू (रूपसी) तक मूल, फल दूध यावक (जो की बनी वस्तु या साठा चावल) चावल का कण (सुदी) पिण्याक (भस्तर)—इनका आहार करे ॥६॥ मन की विकलता की अवस्था में यागाम्बास न करे । श्रात तथा क्षुधित होने पर भी यागाम्बास न करे । द्वन्द्वावस्था में यागाम्बास न करे । सर्दी गर्मी तथा वायु की तत्प्रावस्था में यागाम्बास न करे । शब्दायमान स्थान में जल के समान पुराने गण्ड में चारों पर माग पर श्मशान में तथा नदी और अग्नि के सन्निध्य में यागाम्बास न करे । जन समा में बल्मीक पर भयावह स्थान में कूप के समान तथा शुष्क पत्तों के ढेर पर भी यागाम्बास न करे ॥७॥ ९॥ इन स्थानों में जा मूलतत्वात् यागाम्बास करता है उमत् विघ्नकारक तथा बललाता है ॥१०॥ ऐसे व्यक्ति का बहुराजन जडता स्मृतिभूयता अधापन ज्वर तथा ज्ञानशून्यता है जाता है ॥११॥ इसलिये याग व्यक्ति का सदा शरीर का रक्षा करने चाहिये । क्योंकि धर्म अथ काम और मत्त का साधन शरीर है ॥१२॥ एकांत आश्रम में मुक्त तथा निशब्द स्थान में भयभूय पर्वत पर शून्य नवन में पवित्र तथा रमणीय स्थान में और एकांत देवालय में रात्रि के प्रथम प्रहर में तथा अन्तिम प्रहर में अत्यन्त सावधान से यागाम्बास करना चाहिए । जितेन्द्रिय तथा समुचितहाराहकर पूर्वाह्ण में तथा मध्याह्न में मा रम्य

१ ग ०घोनी नि० । २ स ० ह । ३ क सक्तु । ३ क च पत्र मू० । ४ ग ० यु शुद्धविज्ञानयोगिन । त० । ५ क ख मागे । ६ क ख बाह्नि ।

आसीन 'प्राडमुखो' रम्य आसने सुखनिश्चले । नातिनीचे न चोच्छिन्ने निस्पृह सत्यवाक्शुचि ॥१५॥
 'युक्तनिद्रो जितक्रोध सर्वभूतहिते रत । सर्वद्वन्द्वसहो धीर समकायाडधिमस्तक ॥१६॥
 नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्त पदमासने स्थित । सस्याप्य दृष्टि नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यत ॥१७॥
 समाहृत्यैन्द्रियग्राम मनसा हृदये मुनि । प्रणव दीर्घमुद्यम्य सवृतास्य ' सुनिश्चल ' ॥१८॥
 रजसा तमसो वृत्ति सत्त्वेन रजसस्तथा । सछाद्य निर्मले शान्ते स्थित सबृतलोचन ॥१९॥
 हृत्पदमकोटरे लीन सर्वव्यापि निरञ्जनम । युञ्जोत सतत योगी मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथम न्यसेत् । क्षेत्रज्ञश्च परे योग्यस्ततो युञ्जति योगवित् ॥२१॥
 मनो यस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम् । सत्यज्य विषयास्तस्य योगसिद्धि प्रकाशिता ॥२२॥
 यदा निविषय चित्त परे ब्रह्मणि लीयते । समाधौ योगयुक्तस्य तदाऽभ्यसति पर पदम् ॥२३॥
 'अससवत यदा चित्त योगिन सर्वकर्मसु । 'भक्त्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमुच्छति ॥२४॥
 शुद्ध धामत्रयातीत तुर्याख्य पुरयोत्तमम् । प्राप्य योगबलालोको मुच्यते नान सशय ' ॥२५॥

निश्चल तथा न अधिक उच्च न अधिक नाच आसन पर पूरवमुह बैठकर निस्पृह सत्यवादी एवं पवित्र होकर योगाभ्यास करे ॥१५॥ योग व्यक्ति को उचित मात्रा में सोना चाहिये । उसे अशोषी समस्त प्राणियों के हित में निरत सुख दुःखों का सहन करने वाला तथा धीर बनना चाहिये । वह शरीर चरण और भस्त्रक को समान स्थिति में रखे ॥१६॥ वह नामि प्रदेश में दोनों हाथों को रखकर शांत होकर पद्मासन लगाये । नासिका के अग्रभाग में दृष्टि को स्थिर कर वक्त्रस्यम पूर्वक प्राणायाम करे ॥१७॥ मन से इन्द्रिय समूह का निरोध करके हृदय में प्रणव (आ) का ध्यान करे । उस समय वह अपना मुख बन्द कर ले और निश्चल रहे ॥१८॥ राजस वृत्ति से तामस वृत्ति का और सात्त्विक वृत्ति से राजस वृत्ति को आच्छान्ति करने शो को बन्द करके निमल तथा शांत हृदय कमल की कणिका मल न सर्वव्यापी निरञ्जन तथा मुक्तिदाता पुरुषोत्तम का योगी सदा ध्यान करे ॥१९॥ योगवेत्ता पुरुष पहले अन्तःकरण सहित इन्द्रियों और पञ्चभूतों को क्षयज्ञ में स्थापित करे और क्षयज्ञ को परमात्मा में नियुक्त करके योगाभ्यास करे । जिसका चञ्चल मन विषया का परित्याग करने परमात्मा में लग जाता है उसकी योगसिद्धि हो जाती है ॥२१॥ २२॥ जब योग का चित्त निविषय होकर समाधि अवस्था में ब्रह्म में लीन हो जाता है तब वह परम पद को प्राप्त करता है ॥२३॥ जब योग का चित्त अखिल कर्मों में अनासक्त हो जाता है तब वह आनन्दरूप परमात्मा को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है ॥२४॥ शुद्ध त्रिगुणातीत तुरीय बहलाने वाले तथा पुरुषोत्तम विष्णु को योगबल से प्राप्त करके योगी निःसंशय मुक्त हो जाता है ॥२५॥ समस्त कामनाओं से निस्पृह सब का प्रिय एवम् राज्ञः

१४ ० द्रमुल देग आ० । २ ग ० खादगा आ० । ३ ग मुक्तिनिद्रो । ४ ख सयतास्य । ५ ग ० ल । सोमपा योगयुक्तस्य युञ्जन्त परम पदम् । बाह्यामा सपरित्यज्य यो ऽन्तर्ध्यानरतः सः । अन्तः सुतोऽन्तराराम स मोक्षलभत ध्रुवम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त च त्वक्वा रणानत्रयं बुध । तुरीय पदमासाद्य न शोचति न काऽदशति । मनो । ६ ख नेवलम् । ७ ख स असाय । ८ ख भगवत्पादमा० । ९ क स ० ऽद्व सूक्ष्म गुणातीत सत्त्वाख्य । १० क ० य । बटप० ।

निस्पृह सर्वकामेभ्य सर्वत्र प्रियदर्शन । सर्वत्रानित्यबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नाग्यया ॥२६॥
इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित । सदा चान्यासयोगेन मुच्यते नात्र सशय ॥२७॥
न च 'पदमासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् । मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥२८॥
एव मया मुनिश्रेष्ठा योग प्रोक्तो विमुक्तिद । ससारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छोतुमिच्छथ ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा ते वचन तस्य साधुसाध्विति चाबुवन । व्यास प्रशस्य संपूज्य पुन प्रष्टु समुद्यता ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृवादे योगान्यासनिरूपण नाम

पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३५॥

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

साख्ययोगनिरूपणम्

मुनय ऊचु

तव यत्राग्निधिसभूतममृत वाङ्मय मुने । पिबता नो द्विजश्रेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते ॥१॥
तस्माद्योग मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तिदम् । साख्यं च द्विपदा श्रष्ट श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२॥

अनित्य बुद्धि रखने वाला योगी नि स देह मुक्त होता है । इन्द्रियो की सेवा से विरत तथा सदा वैराग्य एवं योगान्यास में निरत यागी नि स देह मोक्ष प्राप्त करता है । पपासन लगाना तथा नासिकाग्रमाण का निरीक्षण करना योग नहीं कहलाता है प्रत्युत मन तथा इन्द्रियो का संयोग (एकाग्रता) ही योग कहलाता है । मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार ससार से मोक्ष पाने का कारण तथा मुक्तिदायक योग मैंने बताया । अब क्या सुनना चाहते हैं ? ॥२६ २९॥

लोमहर्षण ने कहा—व्यास के वचन सुनकर श्रोतागणों ने साधु साधु कहकर उनकी प्रशंसा की और पुन जनसे प्रश्न किया ॥३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण मे योगान्यासनिरूपण

नामक दो सौ पत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३५॥

अध्याय २३६

साख्ययोग का निरूपण

मुनियो ने कहा—मुने ! द्विजश्रेष्ठ ! आपके मुखरूपी समुद्र से उत्पन्न वाङ्मयरूपी धमृत का पान करते-करते हमें तृप्ति नहीं हो रही है । इसलिये मुक्तिदायक योग का विस्तृत वणन कीजिये । हम मनुष्यों के

'प्रज्ञावाञ्छोत्रियो यज्वा ख्यात प्राज्ञोऽनसूयक' । सत्यधर्ममतिर्ब्रह्म कथं ब्रह्माधिगच्छति ॥३॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वत्यागेन मेधया । साहये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व न ॥४॥
मनसश्चेन्द्रियाणां च ययैकाग्रमवाप्यते । मनोपायेन पुरुषस्तत्त्व व्याख्यातुमर्हसि ॥५॥

व्यास उवाच

नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नायत्रन्द्रियनिग्रहात् । नान्यत्र सर्वसत्यागात्सिद्धिं विन्दति वश्चन ॥६॥
महामूर्ताति सर्वाणि पूर्वसृष्टि स्वयम्भुव । भूयिष्ठ प्राणभृदग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥७॥
भूमर्देहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्क्षुषी स्मृते । प्राणापानाश्रयो वायु कोष्ठाकाश शरीरिणाम् ॥८॥
क्रांती विष्णुबले शक्र कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति । कर्णयो प्रदिश श्रोत्र जिह्वाया वाक्सरस्वती ॥९॥
कणो त्वक्चक्षुषो जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी । दश तानीन्द्रियोवतानि द्वाराण्यहोहरसिद्धये ॥१०॥
शब्दस्पर्शौ तथा रूप रस गन्ध च पञ्चमम । इन्द्रियार्थान्पृथग्विद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा ॥११॥
इन्द्रियाणि मनो युद्धवते अवश्य (शा) निव राजिन (ल) । मनश्चापि सदा युद्धवते भूतात्मा हृदयाश्रित ॥१२॥

इन्द्रियाणां तथैवेया सर्वेषामोद्धार मन । नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनस्तथा ॥१३॥
'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना' मन । प्राणापानौ च जीवश्च नित्य देहेषु बहिनाम् ॥१४॥

साहय-दसन के बारे में भी सुनना चाहते हैं । प्रज्ञावान् श्रोत्रिय यशकर्ता मेधावी अनिन्दक तथा सत्य धर्म निष्ठ मनुष्य कैसे ब्रह्म का प्राप्त करता है ? तपस्या से या ब्रह्मचर्य से या सवयाग से या मेधा से या साहय से या योग से या जैसे ब्रह्म की प्राप्ति हो वह हमें बतलाइये । जिस उपाय से मन को एकाग्रता प्राप्त हो वह भी बतलाइये ॥१५॥

व्यास बोले—विना ज्ञान तपस्या इन्द्रियनिग्रह तथा सर्वत्याग का कोई सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है ॥६॥ ब्रह्मा ने पहले महामूर्तो की सृष्टि की । फिर उनका प्राणियों के शरीरों में विनिविष्ट किया ॥७॥ भूमि से शरीर जल से स्निग्धता अग्नि से नेत्र वायु से प्राण-अपान तथा आवागम से बन्ध (न व बाध अदि व छन्द) उत्पन्न हुए ॥८॥ शरीर की क्रियाओं का देवता विष्णु बल का इन्द्र बाण का अग्नि रश्मि का दिगार्य तथा जिह्वा का वाक्सरस्वती है । कण त्वचा नेत्र जिह्वा य पाँच इन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियाँ आहार सिद्धि के द्वार मानी जाती हैं । शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध—ये पाँच इन्द्रियों का विषय कहलाते हैं जिन्हें इन्द्रियों से अलग समझना चाहिये । चञ्चल पादों का तरह इन्द्रियों का मन युक्त होता है और मन को भी हृदयाश्रित भूतात्मा युक्त करता है ॥११२॥ नियम तथा उत्सर्ग में समस्त इन्द्रियों का ईश्वर मन है । उसी तरह मन का ईश्वर भूतात्मा है ॥१३॥ देहपारित्याग का देह में इन्द्रियाँ इन्द्रियों का विषय स्वभाव क्षणिकता मन प्राण अपान तथा जीव नित्य रहते हैं ॥१४॥ सत्त्व का न

१क प्रज्ञावा० । २ग ख्यातप्रज्ञो० । ३स ०क । अभ्यासेन सदा ब्रह्म० । ४ ग ०क । अनागतपनिद्र०
५ल वायुश्चेष्टाकाग यो० । ५क शक्त । ल सक्त्या । ६क ०धयि स्व० । ७क ०नाश्रय । प्रा० ।

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतनाः । सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वं कथंचन ॥१५॥
 एव सप्तदशं देहं 'वृत्तं षोडशभिर्गुणैः' । मनीषी मनसा विप्राः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१६॥
 न ह्यप्यं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वरूपोन्द्रियैः । मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥१७॥
 अशब्दस्पर्शरूपं तत्त्वं (च्चा) रसागन्धमव्ययम् । अशरीरं 'शरीरे' स्वे निरीक्षेत निरिन्द्रियम् ॥१८॥
 अव्यक्तं सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमाचितम् । योज्यपश्यति स' प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयत् ॥१९॥
 'विद्याविनयसंपन्नब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः' समदर्शिनः ॥२०॥
 सहि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च । वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥२१॥
 सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि । यदा पश्यति भूतात्मा' ब्रह्म संपद्यते तदा ॥२२॥
 यावानात्मनि वेदाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि । य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२३॥
 सर्वभूतात्मभूतस्य 'सर्वभूतहितस्य च । देवापि मामं मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥२४॥
 शकुन्तानामिवाऽऽकाशो मत्स्यानामिव चोदके । यथा 'गतिनं दृश्येत तथा 'ज्ञानविदां गतिः ॥२५॥
 कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि । यस्मिस्तु पच्यते कालस्तत्र वेदेह कश्चन" ॥२६॥

आश्रय है, न गुण है, न शब्द है और न चेतना है । सत्त्वं तेज का सर्जन करता है, पर गुणों का बन्धी नहीं ॥१५॥
 इस प्रकार सत्रहवां शरीर सोलहों गुणों से युक्त है । विप्रवृन्द ! विद्वान् पुरुष मन से आत्मा को आत्मा में देखता है ॥१६॥ आत्मा को नेत्र से तथा इन्द्रियो से नहीं देखा जा सकता है । मन रूपी दीप से यह महान् आत्मा प्रकाशित होता है ॥१७॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से रहित, अविनाशी एवम् अशरीरी आत्मा को अपने शरीर में देखना चाहिए ॥१८॥ जो समस्त देहों में उस परम पूज्य आत्मा को देखता है, वह मृत्यु के बाद ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥१९॥ पण्डित लोग विद्या-विनय-संपन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को समान भाव से देखते हैं ॥२०॥ वही एक महान् आत्मा समस्त भूतों में तथा स्थावर-जगमा में वास करता है जिससे सपूर्ण जगत् का निर्माण हुआ है ॥२१॥ जब मनुष्य समस्त भूतों में अपने को तथा अपने में समस्त भूतों को देखने लग जाता है तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२२॥ अपने शरीर के मातर जैसा आत्मा है वैसा ही दूसरों के शरीर में भी है, जो ऐसा निरन्तर समझता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२३॥ समस्त प्राणिया को अपना आत्मा समझने वाला, समस्त प्राणियों के हित में निरत तथा अपद (परमात्मा) के पद का इच्छुक जा व्यक्ति है उसने मार्ग में देवता भी माहित हो जाते हैं ॥२४॥ (सुदूर) आकाश में पक्षियों की और (जगत्) जल में मत्स्यों की गति जैसे नहीं दिखाई पड़ती, वैसे जानियों की गति भी समझ में नहीं आती है ॥२५॥ बाल मनस्त भूतों को अपने से अपने में पचाता है । पर काल जिसमें पकाया जाता है, उसे यहाँ कोई नहीं जानता है । उसके ऊपर, नीचे, तिरछे तथा मध्य में कोई कुछ नहीं ग्रहण कर सकता है । ये समस्त लोक जहाँ

१क. वृत्त । २क. ०त्मना । न । ३क. ख ०रेषु नि० । ४क. सर्वेभ्य कल्पान्ते न तु म्रियते । वि० ।
 ५ग. ०द्याभिजनस० । ६क. ०नि । एव च स० । ७ग. सर्वात्मा । ८ख. ०तस्य देहिनि । दे० । ९ख.
 ०विनिनस्ये० । १०ख. ०नस्य चोदय । का० । ११क. ०न । नैवोर्ध्वं न ।

न तद्वर्ध्वं न तिर्यक्च' नाधो न च पुनः पुनः। न 'मध्ये प्रतिगृह्णीते' नैव किञ्चिन्न कश्चन ॥२७॥
 सर्वे तत्स्या इमे लोका बाह्यमेवां न किञ्चन। यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥२८॥
 नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः। तस्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति नास्ति स्थूलतरं तथा ॥२९॥
 सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३०॥
 तदेवाणोरणुतर तन्महद्भ्यो महत्तरम्। तदन्तं सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥३१॥
 अक्षर च क्षरं चैव द्वेषा भावोऽयमात्मनः। क्षर. सर्वेषु भूतेषु दिव्य त्वमृतमक्षरम् ॥३२॥
 नवद्वारं पुरं कृत्वा हंसो हि नियतो वशी। इंदुशः सर्वभूतस्य स्यावरस्य चरस्य च ॥३३॥
 हानेनाभिविकल्पानां नराणां संचयेन च। शरीराणामजस्याऽऽहुहंसत्व पारदर्शिनः ॥३४॥
 हंसोक्त च क्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्। तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥३५॥

व्यास उवाच

भवतां पृच्छतां विप्रा यथावदिह तत्त्वतः। सांख्यं ज्ञानेन संयुक्तं तदेतत्कीर्तितं मया ॥३६॥
 योगकृत्यं तु भो विप्राः कीर्तयिष्याम्यतः परम्। एकत्वं बुद्धिमनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः ॥३७॥
 आत्मनो व्यापिनो ज्ञानं ज्ञानमेतदनुत्तमम्। तदेतदुपशान्तेन शान्तेनाध्यात्मशीलिना ॥३८॥

मे वास करते हैं। उससे बाहर कुछ भी नहीं है। यह उसी भाँति आगे की ओर जाया करता है जैसे धनुष की छोरी से च्युत हुआ बाण जाया करता है। यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है तो भी यह कारण के अंत तक प्राप्त नहीं हो पाता है। क्योंकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म तथा स्थूल वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ-पैर, आँख-सिर तथा मुख-कान हैं। वह सब को आवृत करके स्थित है ॥२६-३०॥ वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। समस्त भूतों के भीतर वह स्थित होते हुए भी अदृश्य है ॥३१॥ आत्मा के दो भाव हैं—अक्षर और क्षर। समस्त भूतों में रहने वाला क्षर बहलाता है और दिव्य तथा अमृत स्वरूप चेतन आत्मा अक्षर है ॥३२॥ नियत तथा वशी हंस (आत्मा) सब द्वारयुक्त शरीर रूपी गृह में वास करता है। इसी प्रकार वह समस्त स्यावर-जगमो में वास करता है ॥३३॥ पारदर्शी लोग विकल्पो की हानि तथा मनुष्यों के संचय से ब्रह्म के शरीरों को ही हंस कहते हैं ॥३४॥ हंस को क्षर कहा जाता है और कूटस्थ अक्षर बहलाता है। जानी पुरुष उसी अक्षर को प्राप्त करके प्राण और जन्म का परित्याग करते हैं ॥३५॥

व्यास ने कहा—विप्रबृन्द! आपने जो शान्तयुक्त साख्य के बारे में पूछा, उसका वर्णन तत्त्वतः मैंने कर दिया ॥३६॥ अब योग-क्रिया का वर्णन मैं करूँगा। बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता का नाम ही एकता है ॥३७॥ व्यापक आत्मा का ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है। यही ज्ञान शम, दम, अध्यात्म-परिशीलन तथा

१क ०यंगधो न च प्राति पु०। २ग मन्वे। ३ग ०ह्णीतो नै०। ४व ०त्वा सोऽत्र वै नियत वतेन्।
 ६०। ५क च। हीनेनापतक०। ६क ०रीर हि नरस्येह नि सर्वं पा०। ७धु ग ०प्रा वर्त०।

‘आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा। योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च’ यान्कवयो विदुः ॥३९॥
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्। क्रोध शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ॥४०॥
सत्त्वसंसेवनाद्दीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति। धृत्या शिद्मोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ॥४१॥
चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा। अप्रमादाद्भूयं जह्याद्भ्रमं प्राप्नोपसेवनात् ॥४२॥
एवमेतान्योगदोषाञ्जयेद्व्रित्यमतन्द्रितः। अग्नींश्च ब्राह्मणाश्चाय देवतः प्रणमेत्सदा ॥४३॥
‘वर्जयेद्बुद्धता वाचं हिंसायुक्तां मनोनुगाम्’। ब्रह्मतेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत् ॥४४॥
एतस्य भूतभूतस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम्। ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीराजवं क्षमा ॥४५॥
शौचं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः। एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ॥४६॥
‘समः सर्वेषु भूतेषु’ ‘लभ्यालभ्येन वर्तयन्’। धृतपाप्मा तु तेजस्वी लब्धाहरो जितेन्द्रियः ॥४७॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा निषेवेद्ब्रह्मण पदम्। मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वंकाप्रयं समाहितः ॥४८॥
पूर्वरात्रे परार्धे च धारयेन्मन आत्मनः। जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यद्येकं क्लिप्तमिन्द्रियम् ॥४९॥
ततोऽप्य ‘स्ववर्ति प्रज्ञा गिरेः पादाविदोदकम्’। मनसः पूर्वमादद्यात्कूर्मानामिव मत्स्यहा ॥५०॥

पवित्र बर्मा के द्वारा आत्मा में रमण करने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त होता है। विद्वान् व्यक्ति योग के पाँच दोषों—काम, क्रोध, लोभ, भय तथा मूढत्व स्वप्न रूप दोषों को, जिन्हें शिष्टान्तों में बताया है, छोड़ दे। शम से क्रोध को तथा सक्त्य-त्याग से काम को जीते। धीर पुरुष सन्निवृत्त वृत्ति के सेवन से निद्रा का जीन लेते हैं। धैर्य से इन्द्रिय तथा उदर की रक्षा करे, नेत्र से हाय-मैर की रक्षा करे, मर से नेत्र तथा वर्ण की रक्षा करे और कर्म से मन तथा वाणी की रक्षा करे। सावधानी से भय का त्याग करे विद्वान् की संज्ञा से दम्भ को छोड़े ॥३८-४२॥ इस प्रकार इन योग-दोषों को निरालस्य पूर्वक त्याग दें। सदा अग्नि, ब्राह्मण और देवताओं को प्रणाम करे ॥४३॥ मन की अनुयायी उद्धत, तथा हिसायाकुल वाणी को त्याग दे। ब्रह्म तथा तेजोमय वीर्य का धारण करे, जिससे स्वावर-जगमारमक संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है ॥४४॥ घ्राण, अर्घ्ययन, दान, सत्य, लज्जा, कोमलता, क्षमा, शौच तथा इन्द्रियो का निग्रह करे। इन सब साधनों से तेज बढ़ता है और पाप नष्ट होता है ॥४५-४६॥ समस्त प्राणियों से समान भाव रखे और जो कुछ मिल जाय उसी से निर्वाह करे। पाप रहित होता है ॥४७-४८॥ समस्त भोजन करने वाला तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्मपद का सेवन करे ॥४९॥ तेजस्वी, अल्प भोजन करने वाला तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्मपद का सेवन करे ॥४९॥ सावधानी से मन और इन्द्रियो को एकाग्रता करके पूर्ववर्ति म तथा अपरवर्ति में मन स आत्मा का धारण करे। मनुष्या की पाँच इन्द्रियो में स एक भी यदि अवश हो जाय तो उसकी प्रज्ञा पर्वत पर से जल की तरह प्रव्रित हो जाती है ॥४८-४९॥ मछुआ पहले कछुआ को पकड़ता है उसी तरह योगी पहले मन को वश में

१ग ०राणेण । २क ख ०ञ्च तान्क० । ३ख ०येदुसदा बा० । ग ०येत्कुश्रिता बा० ।
 ४क ०नोजवाम् । ५ख ०म् । बाह्य ते० । ६क शक्ल । ७ग रस । ८क ०त्य श्रीडाऽऽर्ज० । ९ग
 सम्यक्सर्वे० । १०ख ग लब्धा लब्धेन । ११ख च तत्त्वका० । १२ख धरति । १३क ख मन्त्रा । १४क
 ०घात्कर्मणा ।

तत्र श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राणं च योगवित् । तत एतानि सयम्य मनसि स्थापयेद्यदि ॥५१॥
 तथैवापोह्य सकल्पान्मनो हृषात्मनि धारयेत् । पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि सस्थापयेद्यदि ॥५२॥
 यदेतान्यवतिष्ठन्ते मनःपठानि चाऽऽत्मनि । प्रसीदन्ति च 'सस्थाया तदा ब्रह्म' प्रकाशते ॥५३॥
 विधुम् इव 'दीप्ताचिरागत्य इव दीप्तिमान् । बंधुतोऽग्निरिवाऽऽकाशे' पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥५४॥
 'सर्वे तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते । त पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिण ॥५५॥
 धृतिमन्तो महाप्राज्ञा सर्वभूतहिते रता । एव परिमितं कालमाचरन्तश्चित्तव्रत ॥५६॥
 आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम् । प्रमोहो भ्रम आवर्तो घ्राणं श्रवणदशने ॥५७॥
 अबभूतानि रस स्पर्श शीतोष्णमास्ताकृति । प्रतिभानुपसर्गाश्च प्रतिमगूह्य योगत ॥५८॥
 तास्तत्त्वविदनादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत् । कुर्यात्परिचयं योगे त्रैलोक्ये नियतो मुनि ॥५९॥
 गिरिभृङ्गे तथा चैत्ये वृक्षमूलेषु योजयेत् । सनियम्येन्द्रियग्रामं 'कोष्ठे' भाण्डमना इव ॥६०॥
 'एकाग्रं चिन्तयेन्नित्यं 'योगाग्नौ' द्विजते मनः । येनोपयेन शक्येत नियन्तुं चञ्चलं मनः ॥६१॥
 तत्र युक्तो निषेवेत न चैव विचलेत्ततः । शून्यागाराणि चंकाप्रो निवासार्यमुपक्रमेत ॥६२॥
 नातिव्रजेत्परवाचा कर्मणा 'मनसाऽपि वा । उपेक्षको 'यताहारो' 'लब्धालम्बसमो भवेत् ॥६३॥

करे। इसके अनन्तर कान आँख जिह्वा और नासिका का समय करके मन में इनकी स्थापना करे ॥५०॥ ५१॥
 उसी तरह सकल से मन को हटाकर आत्मा में धारण करे। पाँचों इन्द्रिया को मन में स्थापित करे ॥५२॥
 जब मन सहित पाँचों इन्द्रियाँ आत्मा में स्थित हो जाती हैं तब ब्रह्म का प्रकाश प्राप्त होता है ॥५३॥ आकाश में
 दीप्तिमान् सूर्य की तरह तथा विद्युत् अग्नि की तरह मन में आत्मा का दशन होता है। व्यापक होने के कारण
 आत्मा में अखिल वस्तुएँ तथा अखिल वस्तुओं में आत्मा दीखता है। उस आत्मा को महात्मा धीरे महापण्डित
 तथा समस्त भूतों के हित में निरत मनीषी ब्राह्मण देख पाते हैं ॥५४॥ ५५॥ दृढव्रती मनुष्य अकेले एवान्त में
 बैठकर थोड़ा समय तक ही इस प्रकार आचरण करते हुए ब्रह्म समानता को प्राप्त कर लेते हैं। महामोह
 भ्रम तथा चक्कर ही नाव नान तथा आँख है। रस सदाँ गर्मी तथा वायु अदम्य रस हैं। प्रतिमा तथा
 बाष्पायो का वायु द्वारा राखकर तत्त्ववेत्ता व्यक्ति समता से ही उनको अनाररूपक निवृत्त करे। इस प्रकार
 वश्येन्द्रिय तीनों लोक में योग का परिचय प्राप्त करे। पवत शिखर पर देवालय में तथा वृक्षमूला में इन्द्रिय
 समूह का समय करके योगाभ्यास करे। नित्य मन को एकाग्र करे। योग से मन को उद्विग्न न होना दे।
 जिस उपाय से चंचल मन को स्थीभूत कर सके उसी का अवलम्बन करके योगाभ्यास करना चाहिए। उससे
 विचलित नहीं होना चाहिये ॥५६॥ ५७॥ निवास क'लिये नूय मवन दूढ़ और एकाग्र होकर रहे। मन वचन
 और कम से कमी भी आसक्त न हो। उपेक्षा करने वाले नियमित भोजन करने वाले तथा हानि लाभ में समान भाव
 रखने वाले व्यक्ति योगाभ्यास करे ॥६२॥ ६३॥ अपने निदक तथा प्रणसक दोनों का प्रति समान व्यवहार करे।

१क सच्छाय। २ख ०वाग्निरा०। ३ख ०ग दृश्य०। ४ख सवतत्र य त०।
 ५ख बाष्पे। ६ख तादृक्मना। ७ख एकान्ते। ८ख ०गात्मा चिन्तयन्तर। ९ख स ०न। १०ख
 पु०। १०ख नामिष्वभ्येत बाल वा क०। ११ख ०सा गिरा। १२ख १२ख जित्वाहारी। १३ख लब्धालम्बस०।

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिविदयेत् । समस्तयोश्चाप्यभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥६४॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् । समः सर्वेषु भूतेषु 'सधर्मा मातरिश्चन' ॥६५॥
एवं स्वस्यात्मनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः । यन्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते ॥६६॥
'वेदनातन्पिरान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः । एवं तु निरतो मार्गं विरमेन्न विमोहितः ॥६७॥
अपि वर्णावकृष्टस्तु नारी वा धर्मकाङ्क्षिणी । तावप्येतेन भाग्येण गच्छेतां परमा गतिम् ॥६८॥
अजपुराणमजरं सनातनं, यमिन्द्रियातिगमगोचरं द्विजाः ।

अवेक्ष्य चेमां परमेष्ठिसाम्प्रतां, 'प्रयान्त्यनावृत्तिगतिं मनोविणः ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिंसवादे साख्ययोगनिरूपणं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ज्ञानिनां मोक्षप्राप्तिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

'यद्येवं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च । कां 'दिशं विद्यया यान्ति कां च गच्छन्ति कर्मणा ॥१॥

मुन अशुभ वा ध्यान न करे ॥६४॥ लाभ होने पर प्रसन्न न हो और हानि होने पर चिन्ता न करे । अपु वे समान
समस्त प्राणिय, से तुल्य व्यवहार करे ॥६५॥ इस प्रकार स्वस्यात्मा और सर्वत्र समदर्शी होकर छह मास तक निर
यागम्यास करने वाला को शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥६६॥ जिसका चित्त वेदनाओं से पीडित व्यक्ति वा
को देखकर भी उद्विग्न नहीं होता है तथा जो डेले, पत्थर एवम् सोने में समान भाव रखता है, वही योगयुक्त
बहुलता है । इस प्रकार यागमार्ग पर आरुढ़ होना चाहिये, मोहद्वय उससे भ्रष्ट नहीं होना चाहिये । वह
नीच वर्ण वा व्यक्ति हो, अथवा धर्म चाहूँ वाली स्त्री हो, वे दोनों ही इस मार्ग से चलने पर परम गति को प्राप्त
करते हैं ॥६७६८॥ द्विजगण ! अज, पुराण, अजर, सनातन, इन्द्रिया से परे तथा अगोचर परमात्मा वा धर्म
वरने दिवान् लोग ब्रह्म-समानता रूप अपरिवर्तनीय गति को प्राप्त करते हैं ॥६९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे व्यास और कृपियो के संवाद प्रकरण मे साख्ययोग-निरूपण
नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३६॥

अध्याय २३७

ज्ञानियो की मोक्षप्राप्ति का निरूपण

मुनियो ने कहा—यदि ऐसा वेद का वचन है कि कर्म करो और त्याग भी करा तो मनुष्य ज्ञान के द्वारा

१४ ०मार्त्ता मुनीश्वर । ए० । २१ ०नार्त्ता प्रजा ह० । ३१ ०तिपथ म० । ४४ ग यदिद वे० ।
५६ गति ।

एतद्वं श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु न । एतदन्योन्यवैरूप्य वर्तते प्रतिकूलत ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दला यत्पृच्छध्व समासत । 'कर्मविद्यामयो चोभो ध्याख्यास्यामि' क्षराक्षरो ॥३॥
 या दिश विद्यया यान्ति या गच्छन्ति च कर्मणा । शृणुष्व साप्रत विप्रा गहन हृषेतदुत्तरम् ॥४॥
 अस्ति धर्म इति युक्त नास्ति तत्रैव यो धवेत् । यक्षस्य सादृश्यमिदं यक्षस्येदं भवेदय ॥५॥
 द्वाविमावथ पन्थानी यत्र वेदा प्रतिष्ठिता । प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषित ॥६॥
 कर्मणा बध्यते जन्तुविद्यया च विमुच्यते । तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतय पारदर्शिन ॥७॥
 कर्मणा जायते प्रत्य मूर्तिमान्योऽशात्मक । विद्यया जायते नित्यमव्यक्त हृधक्षरात्मकम् ॥८॥
 कर्म त्वेके प्रशसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नरा । तेन ते 'देहजालेन' रमयन्त उपासते ॥९॥
 ये तु बुद्धि परा प्राप्ता धमनंपुण्यदर्शिनः । न ते कर्म प्रशसन्ति कूप नद्या पिबन्निव ॥१०॥
 कर्मणा फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ । विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥११॥
 न म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते । न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ॥१२॥
 यत्र तदब्रह्म परममव्यक्तमचल ध्रुवम् । अव्याकृतमनायामममृत 'चाधिभोगवित ॥१३॥

(कर्म 'याग देन से') जिस गति का प्राप्त होते हैं और कर्म स जिस गति को प्राप्त होते हैं? यह हम सुनना चाहते हैं आप धन-राश्य। यह परस्पर वैरूप्य प्रतिकूल भाव रखता है ॥१२॥

व्यास बोले—मुनिवर! जा आप पूछते हैं उसे संक्षेप से सुनिय। मैं कर्म तथा ज्ञानमय दाता धर और अक्षर का ध्वन कहेंगा। विप्रवृत्त! 'ज्ञान' मनुष्य जिस गति का प्राप्त करते हैं और कर्म स जिसका प्राप्त करते हैं इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। फिर भी अब सुनिय। धर्म है और धर्म नहीं है—यह कहना वैसा ही हाया जस यह एक यक्ष का सादृश्य है और यह यक्ष का सादृश्य नहीं है यह कथन। ये वा माय है जिनमें वेद प्रतिष्ठित हैं। एक प्रवृत्तिलक्षण धर्म है और दूसरा निवृत्तिलक्षण धर्म है ॥३६॥ कर्म से जीव बद्ध होता है और ज्ञान स मुक्त होता है। इसलिये पारदर्शी समासा लय कर्म नहीं करते हैं ॥७॥ कर्म स जीव देहात्त का बाद सोऽह विचार स युक्त मूर्तिमान होता है अर्थात् जन्म लेना है और ज्ञान स अक्षरात्मक त्व अव्यक्त हो जाता है ॥८॥ स्वल्प बुद्धि वाले मनुष्य कर्म की प्रशंसा करते हैं। इसलिये वे देहजाल स रमण करते हुए कर्म की उपासना करते हैं ॥९॥ जा परा बुद्धि का प्राप्त है तथा धर्म की निपुणता का देखत है वे कर्म की प्रशंसा उसी तरह नहीं करते हैं जैसे नदी का जल पीन शाल हुए की ॥१०॥ कर्मों का फल उत्पत्ति मरण रूप गुण-दुःख हाय हैं। ज्ञान स जीव बंधा जाता है जहाँ ज्ञान पर साध नहीं होता है मृत्यु नहीं होती उत्पत्ति नहीं होती हानि तथा बुद्धि नहीं होती जहाँ परम अव्यक्त अचल ध्रुव नामरूप स रहित अनामय अमृत तथा यागवता ब्रह्म का प्राप्ति होती है और जहाँ मानसिक कर्म तथा (गीत उष्ण अग्नि) ब्रह्म

१३ ० छात्रो व्या०। २३ चराचरी। ३३ जालानि र०। ४ ० जानानि र०। ४४ ० मज्ञा गुण०। ५४ बाधयागत। स बाधियागिना।

द्वन्द्वेन यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा । समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ॥१४॥
विद्यामयोऽन्यः पुरुषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः । विप्राश्चन्द्रसमस्तपशः सौक्ष्मया कलया स्थितः ॥१५॥
तदेतद्विषया प्रोक्तं विस्तरेणानुगोपते । न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं चक्रतन्तुमिदाम्बर ॥१६॥
एकादशविस्मरात्मा कलासंभारसंभूतः । मूर्तिमानिति तं विद्याद्विप्राः कर्मगुणात्मकम् ॥१७॥
देवो यः सन्निवृत्तस्मिन्बुद्धौन्दुरिव पुष्करे । क्षेत्रज्ञं तं विजानीयाप्रित्यं योगजितात्मकम् ॥१८॥
तमो रजश्च सत्त्वं च ज्ञेयं जीवगुणात्मकम् । जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः ॥१९॥
सचेतनं जीवगुणं वदन्ति, सचेष्टं जीवगुणं च सर्वम् ।
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति, प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त ॥२०॥

व्यास उवाच

प्रवृत्त्यास्तु विकारा ये "क्षेत्रज्ञास्ते" परिश्रुताः । ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि ॥२१॥
तैश्चैव कुरुते कार्यं मनः पृष्ठैरिहेन्द्रियैः । सुदान्तैरिव संयन्ता दृढः परमवाजिभिः ॥२२॥
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः । मनस्तस्य परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्वरः ॥२३॥

बाधा नहीं डालते हैं ॥११-१३॥ वहाँ जीव समभाव में स्थित, सर्वत्र मित्रतायुक्त एवम् समस्त मूर्तों के हित में निरत रहते हैं ॥१४॥ द्विजगण । कोई पुरुष मानमय होता है तो कोई कर्ममय । द्विप्रबुद्ध । कोई चन्द्रमा के समान धीतल स्वर्ग वाला तथा सूक्ष्म कला (गुण) से युक्त होता है । यह रहस्य ऋषि ने बतलाया है । उसका विस्तार से मैं वर्णन कर रहा हूँ । वह आकाश में चक्रतन्तु के समान देखा जा सकता है, किन्तु बतलाना नहीं जा सकता है । द्विप्रगण । कर्मगुण वाले को ग्यारह दिवारों से युक्त तथा कलाओं से सम्पन्न मूर्तिमान् समझिये ॥१५-१७॥ तालाब में चन्द्र-प्रतिबिम्ब की तरह शरीर में जो देह अवस्थित है, उसे क्षेत्रज्ञ, नित्य तथा योग-प्रितात्मा समझिये । तब, सत्त्व तथा रज को जीव का गुण समझिये, जीव को आत्मा का गुण और आत्मा को परमात्मा का गुण मानिये । जीव का गुण सचेतन है, वह समस्त जीव के गुण की चेष्टा बिना करता है और सार्ता मुद्रना की बलना करते हुए क्षेत्रवेत्ता उससे परे को बतलाते हैं ॥१८-२०॥

व्यास बोले—प्रवृत्ति के जो दिवार हैं, वे क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं । वे पुरुष को नहीं जानते हैं और पुरुष उन्हें नहीं जानता है । जैसे गुप्तार्थि करके से दृढ सारथि कार्य लेता है उसी तरह मन सहित छोड़ इन्द्रियों से पुरुष कार्य लेता है ॥२१-२२॥ इन्द्रियों से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे महान् आत्मा है ॥२३॥ महान् से परे अव्यक्त है, अव्यक्त से परे अमृत है और अमृत से परे कुछ भी नहीं

१४ विप्रदच० २४ ०न्द्रमस स्पर्शात्स सूक्ष्मो लोवसत्तिय० । ग ०न्द्रमस स्पर्श० ३४ स्थितम् ।
४४ न चक्र दायित दृष्ट्वा चक्रत० । ५४ चक्रतन्तुमिवापरे । ६४ ०स्मिप्रबुद्धिन् । ७४ जीवात्मकगुणम् ।
८४ स तच्छिष्टे चेतयते तु स० । ९४ ० ते चिन्तयन्तीह स० । १०४ ०न्ति प्राक्कल्पयन्ती मु० । ११४
०ज्ञेते ते प० । १२४ ०शास्त्र प० । १३४ मनसश्चेन्द्रिये सह । मु० । १४४ दृष्टे । १५४ स. अनर्थम् ।

महत परमव्यक्तमव्यक्तात्परतोऽमृतम् । अमृताग्रं परं किंचित्सा काष्ठा परमा गति ॥२४॥
 एव सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्ध्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शनि ॥२५॥
 अन्तरात्मनि सलीय मन पष्ठानि मेधया । इन्द्रियैरिन्द्रियार्थाश्च बहुचित्तमचिन्तयन् ॥२६॥
 ध्यानेऽपि परम कृत्वा विद्यासंपादित मन । अनीश्वर प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्पर पदम् ॥२७॥
 इन्द्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृति । आत्मन संप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपायनुते ॥२८॥
 विहृत्य स्रवसकल्पान्तरत्वे चित्त निवेशयेत् । सत्त्वे चित्त समावेश्य तत 'कालजरो भवेत् ॥२९॥
 चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम् । प्रमत्तात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमश्नुते ॥३०॥
 लक्षणं तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुख 'भवेत्' । विवर्ति वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ॥३१॥
 एव पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना । लब्धाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥३२॥
 रहस्य 'सर्ववेदानामनैतिह्यमनागमम् । आत्मप्रत्यायक शास्त्रमिदं पुत्रानुशासनम् ॥३३॥
 धर्माख्यानेषु सर्वेषु सत्याख्यानेषु 'यद्वसु । वशवर्षसहस्राणि निर्म'यामृतमुद्धृतम् ॥३४॥
 नयनीत यथा दध्न काष्ठादग्नियथैव च । तथैव विदुषा ज्ञेयं 'मुक्तिहेतोः समुद्धृतम् ॥३५॥

है। वह पराकाष्ठा तथा परमगति है ॥२४॥ इस प्रकार समस्त भूतों में प्रच्छन्न आत्मा प्रकाशित नहीं होता है। किंतु सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति धृष्ट एव सूक्ष्म बुद्धि से उसको देख लेते हैं ॥२५॥ बुद्धि स मन सहित छोटी इन्द्रियो को अन्तरात्मा में विलीन करके इन्द्रिया से इन्द्रिया के विषया का ध्यान न करते हुए तथा ध्यान हो जाने पर भी मन को विद्या से सुसंयत करके अनीश्वर तथा प्रशान्तात्मा व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है ॥२६-२७॥ समस्त इन्द्रियो के वश में रहने वाला तथा विचलित ध्यान वाला मनुष्य आत्मा का हनन करके मृत्यु को प्राप्त करता है ॥२८॥ जो समस्त सकल्पा को निष्कृष्ट करके सत्त्व में चित्त का निदिष्ट करता है वह बाल को जीत लेता है ॥२९॥ चित्त की प्रसन्नता से सयासी शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके आत्मस्थित होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ प्रसन्नता का लक्षण यह है कि जैसे स्वप्न में सुख होता है और निर्वर्ति स्थान में प्रज्वलित दीप कम्पित नहीं होता है उसी तरह पूव रात्रि में तथा अरर रात्रि में आत्मा से मन का संयोग (ध्यान) बरे और अल्पमोक्षण करते हुए विशुद्धात्मा होकर आत्मा में आत्मा को देखे ॥३१-३२॥ यह शास्त्र अखिल वेदों का रहस्य है इतिहास तथा आगम से मिश्र है आत्मा का ज्ञान कराने वाला है और पुत्रानुशासन है अर्थात् जैसे पिता पुत्र के ऊपर अनुशासन करता है वैसे यह भी सावक के ऊपर शासन करता है ॥३३॥ धर्म के आख्याना में तथा सत्य के आख्याना में जो सार है, वही यह है। दश सहस्र वर्षों तक वेदों का मन्थन करके यह अमृत निकाला गया है। जैसे दही से नयनीत और काष्ठ से अग्नि निकलता है उसी प्रकार मोक्ष के कारण से विद्वाना का ज्ञान निःसृत हुआ है। यह पुत्रानुशासन शास्त्र शिष्या को बतलाना चाहिये।

१क स ०ताज्व ५०। २क ०नेनोप०। ३स ०स्मृत। आ०। ४ग ०लचरो। ५स स्वयम्।
 ६स ०तु। शनैर्वीति य०। ७स ०मनोपम्यमनायमयम्। ८क यद्वसु। स वस्तुम्। ९ग ०गु। दश
 दशस०। १०क ०या दुषात्काष्ठा०। ११स ०हेती स०।

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम् । तदिदं नाप्रशान्ताय नादास्ताय तपस्विने ॥३६॥
 नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च । नास्यकायानुजये न चानिर्दिष्टकारिणे ॥३७॥
 न तर्कशास्त्रद्वयाय तथैव पिशुनाय च । श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने ॥३८॥
 इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु । रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मिन् तु कथयन् ॥३९॥
 यदप्यस्य महो दद्याद्वत्तपूजामिमां नरः । इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित् ॥४०॥
 'अतो गृह्यतरार्यं तदध्यात्ममतिमानुषम् । यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ॥४१॥
 तद्युष्मभ्यं प्रयच्छामि यन्मां पृच्छत सत्तमाः । यन्मे मनसि वर्तेत यस्तु वो हृदि सशयः ॥
 श्रुतं भवद्भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि व' ॥४२॥

मुनय ऊचुः

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व नः । यदध्यात्मं यथा विद्मो भगवन्नृपिसत्तम ॥४३॥

ध्यास उवाच

अध्यात्मं यद्विदं विप्राः पुरुषस्येह पठ्यते । युष्मभ्यं कथयिष्यामि तस्य व्याख्याऽवधार्यताम् ॥४४॥
 भूमिरापस्तथा ज्योतिर्वायुराकाशमेव च । 'महाभूतानि यश्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ॥४५॥

अशान्त और अदान्त तनस्वी को नहीं बतलाना चाहिये ॥३४-३६॥ जो वेदा को नहीं जानता है, उस भी नहीं बतलाना चाहिये । जो अनुगमन न करे, उसे नहीं बतलाना चाहिये । निन्दक, कुटिल, बिना निर्देश किये कार्य करने वाले, तर्कशास्त्र से दग्ध तथा पिशुन का नहीं बतलाना चाहिये । प्रशंसक, प्रशंसनीय, प्रशान्त तथा तनस्वी को यह बतलाना चाहिये । यह रहस्यधर्म प्रिय पुत्र को तथा अनुगमन करने वाले शिष्य को बतलाया जा सकता है और अन्य को तो कभी भी नहीं ॥३७-३९॥ यदि मनुष्य रत्नरिपूरा सकल पृथ्वी को देता भी तत्त्ववेत्ता जन इसी को उससे श्रेष्ठ समझे । अतः अत्यन्त गोप्य तथा लोकोत्तर जो अध्यात्म विद्या है उस महर्षियों न प्राप्त किया । उसी की चर्चा वेदान्तो में की जाती है । मुनिगण ! आप लोग न जो मुझसे पूछा वह मैंने बतला दिया और जो मेरे मन में था तथा जो आपके हृदय में सन्देह था वह भी आप मुन चुके हैं । अब और क्या कहूँ ? ॥४०-४२॥

मुनियों ने कहा—भगवन् ! मुनिवर ! पुन अध्यात्म की विस्तार से बतलाइये, ताकि अध्यात्म को हम समझ जाय ॥४३॥

ध्यास बोले—विप्रवृन्द ! पुरुष का जो अध्यात्म कहा जाता है, वह मैं आपसे बतलाऊंगा । उसकी व्याख्या सुनिये । भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पाँचों महाभूत सभी प्राणियों में स्थित हैं ॥४४-४५॥

१ग ०ने । इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानु० । २ग ०ने । २० । ३ग इद । ४क ख ततो । ५क यत्र गूढ समुद्दिष्ट । ६क ख प्रवक्ष्यामि । ७क ख विप्र । ८ख इष्यते । ९ग तच्छृणुध्वमतन्निद्रता ।
 मू० । १०ख ग ०नि पञ्चैव ।

मुनय ऊचु

आकार तु भवेद्यस्य यस्मिन्देह न पश्यति। आकाशाद्य शरीरेषु कथं तदुपवर्णयेत् ॥
'इन्द्रियाणां' गुणा कचित्कथं तानुपलक्षयेत् ॥४६॥

व्यास उवाच

एतद्वो वणयिष्यामि 'यथावदनुदर्शनम्'। शृणुध्व तद्विहङ्गाभ्यां यथातत्त्वं यथा च तत् ॥४७॥
शब्द श्रोत्र तथा खानि त्रयमाकाशलक्षणम्। प्राणश्चेष्टा तथा स्पश एते वायुगुणास्त्रय ॥४८॥
रूप चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते। रसोऽयं रसन स्वेदो गुणास्त्वन्ते त्रयोऽम्भसाम् ॥४९॥
घ्रेय घ्राण शरीर च भूमरत गुणास्त्रय। एतावानिन्द्रियग्रामो व्याख्यात पाञ्चभौतिक ॥५०॥
वायो स्पर्शो रसोऽदभ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते। आकाशप्रभव शब्दो गन्धो भूमिगुण स्मृत ॥५१॥
मनो बुद्धि स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिजाः*। स्ते गुणानतिवर्तन्ते गुणेश्च परमा मता ॥५२॥
यथा कूर्म इवाङ्गानि प्रसाय सनियच्छति। एवमेबेन्द्रियग्रामं बुद्धिश्चेष्टो नियच्छति ॥५३॥
यदूर्ध्वं पादतलयोरवार्कोऽहं च (गणश्च) पश्यति। एतस्मिन्नव कृत्ये सा वर्तन्ते बुद्धिरुत्तमा ॥५४॥

मुनियों ने कहा—जिसका आकार तो होता होगा किंतु जिसमें कोई देह को नहीं देखता है वह आकाश
आदि शरीर में कैसे विद्यमान रहते हैं इसका वर्णन कीजिए। कुछ इन्द्रियों के गुण होते हैं वे कैसे होते हैं
उन्हें भी बतलाइए ॥४६॥

व्यास बोले—गात्रानुसार मैं ठीक-ठीक इसका वर्णन करूंगा। आप लोग एकाग्रचित्त होकर तत्त्वतः
सुनिये ॥४७॥ गन्ध श्रवणद्रिय तथा सूक्ष्म प्रदेय—ये तीन आकाश के लक्षण हैं। प्राण चेष्टा तथा स्पृश—ये तीन
वायु के गुण हैं ॥४८॥ रूप नेत्र तथा परिणाम—ये तीन अग्नि के गुण हैं। रस जिह्वा तथा स्वेद—ये तीन जल
के गुण हैं ॥४९॥ सूघने योग्य वस्तु, नाक और शरीर—ये तीन भूमि गुण पृथ्वी के हैं। पाँच भूतों के विकार इन्द्रिय
समूह का वर्णन कर दिया। वायु से स्पृश जल से रस अग्नि से रूप आकाश से गन्ध तथा पृथ्वी से घ्राण उत्पन्न
होता है। मन बुद्धि तथा स्वभाव—ये स्वयोनित्तम गुण हैं। ये इतर गुणों का अतिक्रमण करते हैं। अतएव दूसरे
गुणा से ये व्यर्थ माने जाते हैं ॥५०॥ ५२॥ जैसे कच्छप अर्णों को फँसाकर फिर समेट लेता है उसी तरह ज्ञानी
पुरुष इन्द्रियों का नियमन कर लेता है। जो या तो ऊपर आकाश की ओर या नीचे चरणतल की ओर देखे
उसकी बुद्धि उत्तम है (कारण बीच में ऊपर-ऊपर देखने से बुद्धि भ्रान्त होती है अतएव योगी पुरुष को ऊपर
नीचे ही देखना चाहिए) ॥५३॥ ५४॥ गुण बुद्धि का वर्णन करते हैं और बुद्धि छत्र मन सहित पाँच इन्द्रिया का

१ग ०कारात्तात वै यस्य। स ०काशस्तु म०। २क ०णनम्। इ०। ३ग इन्द्रियाणि। ४व य
०णां विचरतां वय। ५क स ०वस्तुपासन०। ६क ०सो द्रवस्तथा स्वे०। ७व ०जा। एते त्रयोऽम्बव०।
८स न। ९स ०ति। नतूर्ध्वं।

'गुणस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेन्द्रियाण्यपि । मनः पठानि सर्वाणि 'बुद्ध्या 'भावात्कुतो गुणाः ॥५५॥
 इन्द्रियाणि नरैः पञ्च पठं तन्मन उच्यते । सप्तमीं बुद्धिमेवाऽऽहुः क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम् ॥५६॥
 'चक्षुरालोकनार्थं संशयं कुरुते मनः । बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥५७॥
 रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिजाः । 'समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलक्षयेत् ॥५८॥
 तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् । प्रशान्तमिव संयुक्तं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥५९॥
 यत् सन्तापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् । प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चाप्युपलक्षयेत् ॥६०॥
 यत् 'संमोहसंयुक्तमव्यक्तं' विषमं भवेत् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥६१॥
 प्रहर्षः प्रीतिरानन्दं स्वाम्यं स्वस्थात्मचित्ता । 'अकस्माद्यदि वा कस्माद्वदन्ति सात्त्विकान्गुणान् ॥६२॥
 'अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथा क्षमा । लिङ्गानि रजस्तानि 'वर्तन्ते हेतुतत्त्वतः ॥६३॥
 तथा मोहः प्रमादश्च तन्द्रो निद्राऽप्रबोधिता । कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणा ॥६४॥
 मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी । हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मचोदना ॥६५॥
 इन्द्रियेभ्यः परा हृद्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः ॥६६॥
 बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका । यदा विकुरुते भावं ॥ तदा भवति सा मनः ॥६७॥

बहुन करती है। बुद्धि के अन्तर्गत में गुण क्या कर सकते हैं (?)। पाँच इन्द्रियाँ तथा छठा मन कहलाता है। शतकी बुद्धि की ओर आठवीं आत्मा को समझिये ॥५५-५६॥ नेत्र अवलोकन के लिये हैं। मन संशय करता है। बुद्धि निश्चय करती है ॥५७॥ क्षेत्रज्ञ (आत्मा) साक्षी कहलाता है। रज, तम, सत्त्व—ये तीनों स्वयोनि गुण समस्त भूतो में समान हैं। इन गुणों का परिदर्शन करें। वहाँ प्रीति-संयुक्त जो कुछ भी आत्मा में दीख पड़े, उस सत्त्व का शान्तिपूर्वक धारण करें ॥५८-५९॥ शरीर में या मन में सन्तापयुक्त जो कुछ मालूम पड़े, उसे रजोगुण समझना चाहिए ॥६०॥ जो मोहसंयुक्त, अव्यक्त, विषम, अप्रतर्क्य तथा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण समझना चाहिये ॥६१॥ महान् हर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाम्य तथा स्वस्वचित्ता यदि अकस्मात् मालूम पड़े तो उन्हें सात्त्विक गुण समझिये ॥६२॥ अभिमान, मिथ्यावाद, लोभ, मोह, क्षमा—ये रजोगुण के चिह्न हैं। मन भाव का सर्जन करता है, बुद्धि निश्चय करती है और हृदय प्रिय ही करता है। यह तीन प्रकार की कर्म-प्रेरणाएँ हैं ॥६३-६५॥ इन्द्रियो से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। बुद्धि मनुष्य का आत्मा है, बुद्धि ही आत्मा की नेत्री है। बुद्धि जब भाव को अभिव्यक्त करती है तब वह मन कहलाती है ॥६६-६७॥ इन्द्रियो के पृथक्-पृथक् व्यापार को बुद्धि ही करती है। ध्वनन करती हुई वह कर्म

१क गुणान्ते नी० । ख गुणागुणाय० । २क बुद्धिमात्र कृता गु० । ३ग भावे ततो । ४ग लोचनो० ।
 ५क स सम । ६ख ०त्तु व्यामो० । ७ग ०व्यक्तविषय म० । ८क अस्माक यदि । ९ख ०नो विवादो
 वा लो० । १०ग ०न्ते देहत० । ११ग ०नी । कृत्य प्रियाप्रिये चैव वि० । १२ख परो मत । १३ख वाच ।

इन्द्रियाणां पृथग्भावादबुद्धिर्विक्रुते 'हृद्यन्। शृण्वती भवति श्रोत्र स्पृशती स्पर्श उच्यते ॥६८॥
 पश्यन्ति च भवेददृष्टी रसन्ती रसना भवेत्। जिघ्रन्ती भवति घ्राण बुद्धिर्विक्रुते पृथक् ॥६९॥
 इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषां वृत्त्या वितिष्ठति। तिष्ठति पुरुषे 'बुद्धिर्बुद्धिभायव्यवस्थिता ॥७०॥
 कदाचित्तलभते प्रीति कदाचिदपि शोचति। न सुखेन न दुःखेन कदाविदिह मुह्यते ॥७१॥
 स्वयं भावात्मिका भावास्त्रोनेतानतिवर्तते। सरिता सागरो भर्ता महाबेलामिवोमिमान ॥७२॥
 यथा प्राययते किञ्चित्तदा भवति सा मनः। अधिष्ठाने च वै बुद्ध्या पृथगतानि सत्स्मरेत् ॥७३॥
 इन्द्रियाणि च मध्यानि विचेतव्यानि कुत्सन्तः। सर्वाण्येवानुपूर्वेण यत्तदा च विधीयते ॥७४॥
 अभिभागमना बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते। प्रवतमानस्तु रजः सत्त्वमप्यतिवर्तते ॥७५॥
 ये वै भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु। अन्वर्थासप्रवर्तन्ते रथनेमिमरा इव ॥७६॥
 'प्रदीपार्थं मनः कुर्याद्विन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमैः। निश्चरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया ॥७७॥
 एव स्वभावभेदेदमिति बुद्ध्या' न मुह्यति। अशोचन्सप्रहृष्यच्च नित्यं विगतमत्सर ॥७८॥
 न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियं कामगोचरं। प्रवर्तमानं रनेकैर्बुधैरैरकृतात्मभिः ॥७९॥

कहलाती है स्पर्श करती हुई स्वभा कहलाती है, देखती हुई नेत्र कहलाती है रसास्वाद करती हुई जिह्वा कहलाती है और सूघती हुई नासिका कहलाती है। इस प्रकार बुद्धि ही सब इन्द्रियां के पृथक् पृथक् कार्य को करती है ॥६८-६९॥ बुद्धि को इन्द्रियां समझिए। उनकी वृत्ति से वह अवस्थित होती है। पुरुष में बुद्धि अशरित है और बुद्धि में भाव अवस्थित है ॥७०॥ बुद्धि कभी प्रीति लग्न करती है और कभी शोक। यह सुख तथा दुःख से कभी भी मुग्ध नहीं होती है ॥७१॥ अरु नित्यो का स्वामी समुद्र तट का उल्लसित करता है उसी तरह भावात्मिका बुद्धि तीनों भावा का अतिक्रमण करती है ॥७२॥ जब किसी चीज के लिये प्रायणा की जाती है तब बुद्धि मन कहलाती है। स्थान विषय में बुद्धि द्वारा इन्द्रिया का पृथक्-पृथक् स्मरण किया जाता है। सरल इन्द्रिया की क्रमशः पवित्र बनाना चाहिये और सज्जवानी से उनका व्यवहार करना चाहिये। बुद्धि मन से अतिरिक्त नहीं है। भाव मन में रहता है। उदीयमान मान रज तथा सत्त्व का भी अतिक्रमण करता है ॥७३-७५॥ जे इन तीन गुणों में भाव से विद्यमान रहते हैं (अर्थात् इनकी भावना करते रहते हैं) वे विषयों से उसी तरह निरस जाते हैं जैसे रथ के पहिये के अन्दर घूमते हैं। ॥७६॥ प्रकाश पाने के लिये निश्चल तथा उदासीन इन्द्रियों द्वारा मन को वा में करे। शब्द रूप तथा र्था स गूय मनुष्य मन का ऐसा ही स्वभाव है यह जान कर मोह में नहीं पड़ता है। कामचारी उदित तथा अज्ञ इन्द्रिया द्वारा इस आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता है।

१क मन २स ०स्तेषु दृश्योवृत्ति०। ग ०स्तेषु दृश्ये च ति०। ३क ०दि सग मा०। ४स ग ० नमिब०। ५क सगर। विष्ट विनिचरै मर्त्ता पु०। स सगर। अविष्ट मिब वै बुद्ध्या पु०। ६क ०ग। भूतान्येवा०। ७क यथावदमिषी०। ८स ०मतो बु०। ९क ०मानोर०। १० ०मानं तु र०। १०ग ०ते। ११क भावा वर्तन्ते भावा सर्वेषु तेषु च। अ०। ११क प्रदीप्यर्थं। १२क निश्चरद्भिः०। १३क ग बुद्ध्या।

'तेषां तु मनसा रश्मीन्यदा सम्यङ्निपच्छति । तदा प्रकाशतेऽस्याऽऽत्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥८०॥
 सर्वेषामेव भूतानां तमस्युपगते यथा । प्रकाशं भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम् ॥८१॥
 यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन् । विमुक्तात्मा तया योगी गुणदोषेन लिप्यते ॥८२॥
 एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयाश्चरन् । असज्जमानः सर्वेषु न कथंचित्प्रलिप्यते ॥८३॥
 त्वस्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदाऽऽत्मनि । सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जतः ॥८४॥
 स्वयमात्मा प्रसवति गुणेष्वपि कदाचन । न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥८५॥
 परिदध्याद्गुणानां स द्रष्टा चैव यथातथम् । सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेदमन्तरं लक्ष्येन्नरः ॥८६॥
 सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् । पृथग्भूतो प्रकृत्यन्तो संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥८७॥
 यथाऽग्निना हिरण्यस्य संप्रयुक्तौ तथैव तौ । मशकौ बुम्बरी वाऽपि संप्रयुक्तौ यथा सह ॥८८॥
 इपिना वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह । तथैव सहिताच्चेतो अन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसवादे
 सप्तत्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

मन द्वारा जब इन्द्रियो का सम्यक् प्रकार से नियमन होता है तब आत्मा उसी तरह प्रकाशित होता है जैसे दीप
 द्वारा रूप । ॥७७-८०॥ अन्धकार ने नष्ट होने पर जैसे समस्त भूलो का स क्षात्कार होता है वैसे आत्मा का भी
 समस्त लीजिये । जैसे जलचर पक्षी जल में विचरण करते हुए भी लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार मुक्तआत्मा
 योगी गुण-दोषों से लिप्त नहीं होता है ॥८१-८२॥ इसी प्रकार प्रज्ञावान् व्यक्ति विषयो का उन्मोग करते हुए
 भी समस्त विषयो में अनासक्त रहने के कारण लिप्त नहीं होता है ॥८३॥ जो पूर्वकृत कर्म का श्याग करने सदा
 आत्मा में निरत रहता है और सबके आत्मा को अपना आत्मा समझता है वह गुण-दोषों से रहित हो जाता है ।
 वदाचित् गुणों में भी स्वयम् आत्मा उत्पत्ति करता है । गुण आत्मा को नहीं जानते हैं पर आत्मा गुणों को सदा
 जानता है ॥८४-८५॥ द्रष्टा आत्मा गुणों का धारण करता है । मनुष्य प्रकृति और आत्मा में यही अन्तर समझे
 कि एक (प्रकृति) गुणों का सर्जन करती है और दूसरा (आत्मा) नहीं करता है । ये दोनों स्वभाव से पृथक् होते हुए
 भी सदा साथ रहते हैं । जैसे पत्थर स सुवर्ण वा सयोग कीडो से उदुम्बर (गूलर) का सयोग और इषिका
 (सीक) से भूँज का सयोग होता है उसी तरह ये दोनों प्रकृति पुरुष परस्पर प्रतिष्ठित (अर्थात् एक दूसरे से समुक्त
 रहते) हैं ॥८६-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियो ने सवाद-प्रकरण में
 दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३७॥

१ख ०पा मुम० । ग२ ०त । मूर्तिमा० । ३ग प्रसरति । ४ग गुणानपि । ५क ख कथचन ।
 ६क ख तद्वच्च ।

अथाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गुणसर्जनकथनम्

व्यास उवाच

सृजते तु गुणान्स्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति । गुणान्विक्रियतः । सर्वानुदासीनवदोशवरः ॥१॥
 स्वभावयुक्तं तत्सर्वं 'यदिमान्सृजते गुणान् । ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं सृजते तद्गुणान्स्तथा ॥२॥
 'प्रवृत्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते । 'एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे ॥३॥
 उभयं संप्रधार्येतदध्यवस्येद्यथामति । अनेनैव विधानेन भवेद्दे संशयो महान् ॥४॥
 अनादिनिघ्नो हृषात्मा तं बुद्ध्वा 'विहरेन्नरः । अक्रुध्यन्नप्रहृष्यंश्च नित्यं विगतमत्सरः ॥५॥
 इत्येवं हृदये सर्वो 'बुद्धिचिन्तामयं' दृढम् । अनित्यं सुखमासीनमशोच्यं छिन्नसंशयः ॥६॥
 तरयेत्प्रच्युता पृथ्वी यथा पूर्णा नदी नराः । अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोलमिमं तथा ॥७॥
 न तु तप्पति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् । एवं विचिन्त्य चाऽऽत्मानं केवलं ज्ञानमात्मनः ॥८॥
 तां(त) तु बुद्ध्वा नरः सर्गं भूतानामागतिं गतिम् । समचेष्टश्च वै सम्पन्नभते शममुत्तमम् ॥९॥
 एतद्विजन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः । आत्मज्ञानसमस्नेहपर्याप्तं तत्परायणम् ॥१०॥

अध्याय २४८

गुणो की सृष्टि का प्रतिपादन

ध्यास बोले—प्रकृति गुणों का सर्जन करती है और आत्मा उदया उपमोग करता है । ईश्वर या परमात्मा विहृत होते हुए सभी गुणों को उदासीन की तरह देखता रहता है । प्रकृति जो गुणों की सृष्टि करती है, वह स्वभावयुक्त है । जैसे मकड़ा सूत्र का सर्जन करता है वैसे प्रकृति गुणों का सर्जन करती है ॥१-२॥ किन्हीं का मत है कि तत्त्वज्ञान से जब गुणों का नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नहीं होते, उनका सर्वथा वाध हो जाता है । इस प्रकार वे भ्रम यः अविद्या के निवारण को ही मुक्ति मानते हैं । दूसरों के मत में शिविष्य दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है ॥३॥ दोनों (मतों) को समझकर अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चय करना चाहिये । अथवा इसी विधान के महान् सशय उत्पन्न हो जाएगा ॥४॥ आत्मा को अनादि और अजर-अमर जानकर मनुष्य श्रेष्ठ, हर्ष तथा ईर्ष्या के शून्य होकर विहार करे । इस प्रकार हृदय में बुद्धिपूर्वक दृढता रखकर अनित्य सुख, शोक तथा संशय का त्याग करे ॥५-६॥ जैसे मनुष्य तैर कर नदी को पार करता है उसी तरह ज्ञानी मनुष्य ससार का सतरण करे । तत्त्ववेत्ता जन ससार में विचरण करते हुए भी सतप्त नहीं होते हैं । ऐसा सोचकर मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये । ज्ञानी जन सृष्टि के रहस्य तथा भूतों की गति और अगति सब कुछ समझ कर उत्तम शान्ति को प्राप्त करते हैं ॥७-९॥ आत्मज्ञान प्राप्त करना द्विकारियों का कार्य है, विशेष करके ब्राह्मण का । तत्त्व को जानकर मनुष्य बुद्ध हो

१स ०यते सं० । २क यदात्मा सृज० । ३ग प्रवृत्ता । ४एकमेव व्य० । ५ ग. विहरेन्न० । ६क. बुद्धि वि० । ६क ०मया दृढात् । ७क स ०मसाध्य छि० । ९क ०या । नानुलिप्येत वै । १०क. स ०म् । एतद्बुद्ध्या ।

त्व बुद्ध्या भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् । विज्ञायतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥११॥
 न भवति विदुषां महद्भयं, यद्विदुषां सुमहद्भयं परत्र
 न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचिद्भवति हि या विदुषः सनातनी ॥१२॥
 लोके मातरमसूयते नरस्तत्र देवमनिरीक्ष्य शोचते
 तत्र चेत्कुशलो न शोचते, ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥१३॥
 यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं, तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम्
 यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं, तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥१४॥

मुनय ऊचुः

यस्माद्धर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन । यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्भवाग्रब्रवीतु नः ॥१५॥

व्यास उवाच

धर्मं च सप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः स्तुतम् । विशिष्टं सर्वधर्मैः शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥१६॥
 इन्द्रियाणि प्रमाथीनि बुद्ध्या संयम्य तत्त्वतः । सर्वतः प्रसूतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान् ॥१७॥
 मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः । विज्ञेयः सर्वधर्मैः स धर्मः पर उच्यते ॥१८॥
 तानि सर्वाणि संधाय मनःपठानि मेधया । आत्मतुष्टः स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥१९॥

जाता है और इसने अतिरिक्त अन्य बुद्ध का क्या लक्षण है—यही जानकर मनीषी लोग कृतकृत्य हो जाते हैं ॥१०-११॥ परलोक में अविद्वान् को जो महामय होता है, वह विद्वान् को नहीं होता है। विद्वान् को जो सनातनी गति प्राप्त होती है, उससे अधिक किसी को नहीं मिलनी है। ससार में मनुष्य माता पिता की गी निन्दा कर बैठता है, किन्तु वहाँ देवता को न देखकर ऐसा सोचता है या करता है। जो वर्तव्य और अकर्तव्य दोनों को जानता है, जो निष्पट होकर कर्म करता है, जो पहले के किये कर्म की निन्दा करता है, जो प्रिय अप्रिय दोनों को उत्पन्न करता है, वह कुशल व्यक्ति लोक में नहीं पड़ता है ॥१२-१४॥

मुनियों ने कहा—जिस धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और जो मृतो से विशिष्ट है, उसे आप बतलायें ॥१५॥

व्यास बोले—मुनिवर । प्राचीन, ऋषियों द्वारा स्तुत तथा समस्त धर्मों से विशिष्ट धर्म को मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनिये ॥१६॥ जैसे पिता शिशुपुत्रों का नियमन करता है उसी तरह मनुष्य बुद्धि से बलवान् इन्द्रिया का सम्यक् करे ॥१७॥ मन और इन्द्रियों की एकाग्रता परम तप है, यह समस्त धर्मों से श्रेष्ठ धर्म है ॥१८॥ बुद्धि से मन सहित समस्त इन्द्रियों का सम्यक् करने अनेक प्रकार की चिन्ता न करते हुए सदा आत्मतुष्ट रहना चाहिये ॥१९॥ जब इन्द्रियों विषयों से विनिवृत्त होकर आत्मा में स्थित हो जाती है तब नित्य आत्मा का

गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्यास्यन्ति धेशमनि । तदा चैवाऽऽमनाऽऽमान पर द्रक्ष्यय शाश्वतम् ॥२०॥
 सर्वात्मान महात्मान विधूममिव पावकम् । प्रपश्यन्ति महात्मान ब्राह्मणा य मनोयिण ॥२१॥
 यथा पुष्पफलोपेतो बहुशालो महाद्रुमः । आत्मनो नाभिजानीते य मे पुष्प य मे फलम् ॥२२॥
 एवमात्मा न जानीते यव गमिष्ये कुतोऽन्वहम् । अन्यो ह्यस्यान्तरात्माऽस्ति य सवमनुपश्यति ॥२३॥
 ज्ञानदोषेन दोष्टेन पश्यत्यात्मानमात्मना । दृष्ट्वाऽऽमान तथा यूय विरागा भवत द्विजा ॥२४॥
 विमुक्ता सवपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगा । परा बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वरा ॥२५॥
 सवत स्रोतस घोरा नदीं लोकप्रवाहिणीम् । पञ्चद्रिप्राह्वतीं मन सकल्परोधसम् ॥२६॥
 लोभमोहतृणच्छन्ना कामक्रोधसरीसृपाम् । सत्यतीर्थानृतक्षोभा क्रोधपङ्कजा सरिद्वराम् ॥२७॥
 अव्यक्तप्रभया शीघ्रा कामक्रोधसमाकुलाम् । प्रतरध्व नदीं बुद्ध्या' बुस्तरामकृतात्मभि ॥२८॥
 ससारसागरगमा योनिपातालदुस्तराम् । आत्मजन्मोदभवा ता तु जिह्वायतदुरासदाम् ॥२९॥
 या तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनीषिणः । ता तीण सवतो मुक्तो विधूतात्माऽऽत्मवाङ्मुचि ॥३०॥
 उत्तमा बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूषाय कल्पते । उत्तीण सवसकलज्ञाप्रसन्नात्मा विकल्मष ॥३१॥
 भूयिष्ठानोव 'भूतानि सवस्थानानिरीक्ष्य च । अक्रुध्यन्नप्रसीदश्च ननु'समतिस्तथा ॥३२॥

दांन होता है। विद्वान् ब्राह्मण अपने आत्मा को तथा सब आत्मा को घूमरहित जनि की तरह देखते हैं ॥२०॥
 २१॥ जस पुष्प फला से युक्त बहुत गाछा वाला महावृक्ष अपने को नहीं जानता है कि कहीं मेरा पुष्प है और कहीं मेरा फल उसी प्रकार जीव नहीं जानता है कि कहीं से मैं आया हूँ और कहीं जाऊंगा। इसके अतिरिक्त अन्तरात्मा है जो सब कुछ देखता है ॥२२ २३॥ 'द्विजगण' ज्ञान रूपी दीप से दीप्त आत्मा द्वारा आत्मा को देखकर आप लोग वैराग्य धारण कीजिए ॥२४॥ जैसे सप कचुली से निमुक्त होता है उसी तरह आप लोग समस्त पापों से विमुक्त होकर परा बुद्धि को प्राप्त कर चिता तथा ज्वर से रहित हो जाइये ॥२५॥ आप लोग बुद्धि द्वारा सब ओर सोन वाली मयकर लेंगा को वहाने वाली पाँचो इन्द्रिय रूपी ग्राहक की मनःसकल रूपी तट वाली लोभ-मोह रूपी तृणा से आ-उदित काम क्रोध रूपी रेंगने वाले जीवों से मुक्त सत्यरूपी तीर्थपाणी मिथ्या रूपी तरंगवाली शोकरूपी कीचड़ वाली अव्यक्त से उत्पन्न होने वाली गीघ्रगामिनी अव्यायताया से न पार होने योग्य ससाररूपी सागर से सगम करने वाली योनिरूपी पाताल तब गभीर अपने जन्म से उत्पन्न होने वाली तथा बिहूषा रूपी मकर से बंठिन नदी को पार कीजिये। उस नदी को धीर मनीषी जन पार करते हैं। ॥२६ २७॥ उससे पार कर मुक्त निष्पाप तथा तत्त्ववेत्ता मनुष्य परा बुद्धि को प्राप्त कर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। निष्पाप प्रसन्नात्मा और क्रोध हृष तथा क्रूरता से रहित मनुष्य समस्त भूतों में व्यापक आत्मा का दांन करके समस्त क्लेशों से उत्तीण हो जाता है। ऐसा करने से आप लोग भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय को भी देखेंगे।

ततो द्रव्यस्य सर्वेषां भूतानां प्रसवाप्ययात् । एतद्धि सर्वधर्मैर्म्यो विशिष्टं मेनिरे शुधाः ॥३३॥
धर्मं धर्मभूतां श्रेष्ठा मुनयः 'सत्यदर्शिनः । आत्मानो व्यापिनो विप्रा 'इति पुत्रानुशासनम् ॥३४॥
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च । आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत् ॥३५॥
अब्रुव यदहं विप्रा 'आत्मसाक्षिकमञ्जसा । नैव स्त्री न पुमानेवं न चैवेदं नपुंसकम् ॥३६॥
अदुष्टमसुखं ब्रह्म भूतभयभवात्मकम् । नैतज्ज्ञात्वा पुनान्स्त्री, या पुनर्भवमानुयात् ॥३७॥
यया भूतानि सर्वाणि तथैतानि यया तथा । कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च ॥३८॥
तत्प्रोक्तियुक्तेन गुणान्वितेन, पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन
दृष्ट्वा हितं प्रीतमना यदयं, यूयात्सुतस्येह यदुक्तमेतत् ॥३९॥

मन्य ऊचुः

मौक्तः पितामहेनोक्त उपायान्नानुपायतः । तमुपायं ययान्यायं श्रोतुमिच्छामहे मुने ॥४०॥

व्यास उवाच

अस्मात्सु तन्महाप्राज्ञा 'युक्तं' निपुणदर्शनम् । यदुपायेन 'सर्वार्यान्मृगयध्वं' सदाऽज्ज्ञाः ॥४१॥
घटोपकरणे 'बुद्धिर्घटोत्पत्तौ' न सा मता । एवं 'धर्माद्युपायायै' 'नान्यधर्मेषु' कारणम् ॥४२॥
पूर्वं समुद्रे यः पत्न्या न स गच्छति पश्चिमम् । एकः पत्न्या हि मोक्षस्य तच्छृणुध्वं' समानघाः ॥४३॥

विद्वानो ने इसी को अखिल धर्मों से विधिष्ट माना है ॥३०-३३॥ विप्रबृन्द ! धर्मात्माओं में येष्ट, सत्यदर्शी तथा महात्मा मुनिया ने इस धर्म को पुनानुशासन (पुनः को उपदेश करने योग्य) बतलाया है ॥३४॥ अत्यन्त गौरवीय यह आत्मज्ञान सद्यमी, ह्रिद तथा अनुगमन करने वाले को देना चाहिये ॥३५॥ द्विजगण ! जिस आत्मा के बारे में मैंने कहा है, वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है ॥३६॥ वह दुःख-सुख-से परे तथा मृत, भविष्य, वर्तमान तीनों रूप है। इसकी ज्ञान लेने से पुष्प या स्त्री का पुनर्जन्म नहीं होता है। विप्रगण ! इस प्रकार के जो मत हैं, वे सब मैंने बता दिये। वे होते भी हैं और नहीं भी होते हैं ॥३८॥ इसलिए प्रीतिपूर्वक, गुणों से युक्त तथा सत्य-श्रोत्रित दया से युक्त पुत्र को जानकर प्रसन्न मन से पूर्वोक्त आत्मज्ञान देना चाहिये।

मुनियों ने कहा—मुने! ब्रह्मा ने कहा है कि मोक्ष उपाय से मिलता है बिना उपाय के नहीं। उस उपाय को हम लोग अच्छी तरह सुनना चाहते हैं॥३९-४०॥

उपाय को हम लोग अच्छी तरह सुनना चाहते हैं ॥५१॥

व्यास बोले—महापण्डितो । समीचीन दर्शन को ही हम लोग इसका उपाय कह सकते हैं, जिससे समस्त पदार्थों का अन्वेषण किया जा सकता है ॥५१॥ षट् की सातधियों में जो कारण होता है, वही घटोत्तम ने नहीं होता। इसी तरह धर्म के उपाय का जो कारण होता है, वह धर्म का नहीं होता है ॥५२॥ पूर्व समुद्र को जो मार्ग जाता है, वह पश्चिम समुद्र को नहीं जाता है। निष्पारो ! मोक्ष का एक ही मार्ग है, वह

१क ह्य सत्यवादिनः । २ग इदं विप्रानु० । ३क ०त्मशान्तिकर परम् । नै० । ४ग यतानि ।

५. मुक्त । ६ग ० र्यान्प्राप्नुवष्य । ७क ० धंटेत्युक्ते न । ८स. नानाप० ।

क्षमया क्रोधमुच्छिन्नात्कामं संकल्पवर्जनात् । सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥४४॥
 अप्रमादाद्भूयं रक्षेत्रक्षेत्रं च सविदम् । इच्छा द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत् ॥४५॥
 निद्रां च प्रतिभा चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित् । उपद्रवास्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात् ॥४६॥
 लोभं मोहं च संतोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात् । अनुक्रोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ॥४७॥
 आपत्या' च जयेदारां' सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात् । अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधा योगेन पण्डित' ॥४८॥
 कारण्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मानं तूष्णां च परितोषत' । उत्पानेन' जयेत्तन्द्रा' वितर्कं निश्चयाञ्जयेत् ॥४९॥
 मौनेन बहुभाषा च शौर्येण च भयं जयेत् । यच्छेद्वाङ्मनसो बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ॥५०॥
 ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः । तवेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ॥५१॥
 योगदोषान्त्वमुच्छिद्य पञ्च यान्त्वयो विदुः । कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥५२॥
 परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात् । ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्योराजवं क्षमा ॥५३॥
 शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः । एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ॥५४॥
 सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते । धूतपापं स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥५५॥
 कामक्रोधौ वशे कृत्वा निर्विशेद्ब्रह्मण' पदम् । अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ॥५६॥

मुञ्चसे सुनिय ॥४३॥ घोर पुरुष क्षमा से क्रोध को नष्ट करे, सकल त्याग से काम को नष्ट करे और सत्त्व गुण के संसेवन से निद्रा का उच्छेद करे ॥४४॥ सावधानता से मय को जीते और शरीर तथा बुद्धि की रक्षा करे । धैर्य से इच्छा, द्वेष तथा काम को निवृत्त करे ॥४५॥ तत्त्ववेत्ता व्यक्ति ज्ञान के अभ्यास से निद्रा को जीते और प्रतिभा को बढ़ाये । योगी हितकारक सुष्व एवम् अल्प भोजन से उपद्रवों को दूर करे ॥४६॥ सतोष से लोभ-मोह का तथा तत्त्वदर्शन से विषयों का त्याग करे । अधर्म को निन्दा से तथा धर्म को उपेक्षा से जीते ॥४७॥ उत्तरकाल से आशा को तथा सगत्याग से सामर्थ्य को जीते । अनित्यत्व से स्नेह को तथा योग से मूल को जीते ॥४८॥ कारण्य से आत्मा को तथा सतोष से तूष्णा को जीते । उत्पान से तन्द्रा को तथा निश्चय से दिनर्क को जीते ॥४९॥ मौन से बहुत बोलने को तथा वीरता से भय को जीते । बुद्धि से वाणी तथा मन को समझे । ज्ञानचक्षु से बुद्धि को समझे, ज्ञान को महान् आत्मा समझे, उसको आत्मा की शान्ति समझे और उसको शान्त एव पवित्र धर्म के द्वारा समझना चाहिये ॥५०-५१॥ विद्वानों ने काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न रूप जिन पाँच पाप-दोषों का बतलाया है, उनका उच्छेद करे ॥५२॥ योगसाधन द्वारा दोषों का परित्याग करने आत्मस्थित होना चाहिये । ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, ऋजूता, क्षमा, धौव, आचार तथा इन्द्रिया का संयम—इनसे तेज बढ़ता है और पाप नष्ट होता है ॥५३-५४॥ योगी के समस्त सकल सिद्ध होते हैं और विज्ञान बढ़ता है । निष्पाप, तेजस्वी, लघ्वाहारी तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्म पद को प्राप्त करता

अदैन्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो ह्यवस्थितिः। एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः॥
तया वाक्कायमनसा नियमाः कामतोऽव्ययाः ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सांख्ययोगनिरूपणं नाम
अष्टात्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः

योगविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सांख्यं योगस्य नो विप्र विशेषं वक्तुमर्हसि। तव धर्मज्ञ सर्वं हि विदितं मुनिसत्तम ॥१॥

व्यास उवाच

सांख्या. सांख्यं प्रशसन्ति 'योगान्योगविदुस्तमाः। वदन्ति कारणः श्रेष्ठः स्वपक्षोद्भवनाय वै ॥२॥
अनीश्वरः कथं मुख्येदित्येव मुनिसत्तमा। वदन्ति कारणः श्रेष्ठ योगं सम्पदमनोदिणः ॥३॥
वदन्ति कारणं वेद सांख्यं सम्पद्विज्ञातय'। विज्ञायेह गतो सर्वा विरक्तो विषयेषु यः ॥४॥

चाहिये। अमूर्खता, असमिक्त, काम-क्रोध-त्याग, अदैन्य, अनुद्वेग, वाणी, शरीर तथा मन का सयम—ये मोक्ष के निर्मल मार्ग बतलाये गये हैं ॥५५-५७॥

श्रीब्रह्महृदपुराण में सांख्य-योग निरूपण नामक दो सौ अठ्ठीसवीं अध्याय समाप्त ॥२३८॥

अध्याय २३६

योगविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्र! सांख्य और योग की विशेषता हम बतलाइये। धर्मज्ञ! मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ जानते हैं ॥१॥

व्यास बोले—सांख्यवेत्ता सांख्य की प्रशंसा करते हैं और यागवेत्ता याग की। दोनों अपने-अपन पक्ष की पुष्टि के लिये उत्तम प्रमाण भी बतलाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! ईश्वर को न मानने वाला व्यक्ति कैसे मुक्त होगा यह कह कर मनीषी लोग योग को श्रेष्ठ बतलाते हैं। परन्तु सांख्यवेत्ता द्विजाति वेद को कारण बतलाकर सांख्य

ऊर्ध्वं स देहात्सुष्यवतं विमुच्येदिति नान्यथा । एतद्वाहुर्महाप्राज्ञाः सार्धं च मोक्षदर्शनम् ॥५॥
 स्वपक्षे कारणं ग्राह्य समर्थं वचनं हितम् । शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसंमतैः ॥६॥
 'प्रत्यक्षं हेतवो योगाः साख्याः शास्त्रविनिश्चयाः । उभे चैते मते तत्त्वे समवेते द्विजोत्तमा ॥७॥
 उभे चैते मते ज्ञाते मुनीन्द्रा' शिष्टसमते । अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमांगतिम् ॥८॥
 तुल्यं शौचं तपोर्युक्तं दया भूतेषु चानघा । व्रतानां धारणं तुल्यं दर्शनं त्वत्समं तपो ॥९॥

मुनय ऊचुः

यदि तुल्यं व्रतं शौचं दया चात्र महामुने । तुल्यं तद्दर्शनं कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१०॥

व्यास उवाच

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं श्लोष च फेवलम् । योगास्थिरोदितान्दोषान्पञ्चैतां प्राप्नुवन्ति तान् ॥११॥
 यथा वाष्पनिमिषाः स्थूल जाल छित्वा पुनर्जलम् । प्राप्नुवन्ति तथा योगात्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥१२॥
 तथैव वागुरां छित्वा बलवन्तो यथा मृगाः । प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥१३॥
 लोभजानि तथा विप्रा बन्धनानि बलान्वित । छित्वा योगात्परं मार्गं गच्छन्ति विमलं शुभम् ॥१४॥
 'अचलास्त्वाविज्ञा विप्रा वागुरासु तथाऽऽपरे । विनश्यन्ति न संदेहस्तद्व्योगबलादृते ॥१५॥

को ही श्रेष्ठ कहते हैं। समस्त क्रियाओं को जानकर जो मनुष्य विषयो से विरक्त होता है वही मुक्त होता है। महापंडिता ने इस साख्य को मोक्षदर्शन बतलाया है। अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये वेदवचन तथा शिष्टा व। मत ग्रहण करना चाहिये। योग वा प्रत्यक्ष प्रमाण है और साख्य वा शास्त्र प्रमाण है। मुनिश्रेष्ठो ! दोनों के शिष्टसंमत मत ज्ञात होने पर और शास्त्रानुसार उनके अनुष्ठान करने पर परम सति की प्राप्ति होती है। दोनों न शौच, दया, तथा व्रतों का धारण तुल्य है, परन्तु दर्शन एक जैसा नहीं है ॥२-९॥

मुनियों ने कहा—महामुने ! यदि दोनों में व्रत, शौच और दया तुल्य है तो दर्शन क्या नहीं तुल्य है ? द्विजश्रेष्ठ ! यह हमें बतलाइये ॥१०॥

ख्यात बोलें—मनुष्य योग में बाधा डालने वाले राग, मोह, स्नेह, काम तथा श्लोष रूपी पाँच दोषों का प्राप्ति करता है ॥११॥ जैसे मत्स्य स्थूल जाल को छेद कर पुनः जल में बला जाता है वैसे मनुष्य योग में निष्ठाप होकर वास्तविक पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥१२॥ जैसे बलवान् मृग जाल को तोड़कर निवृत्त जाते हैं वैसे योगी समस्त बन्धा स मुक्त होकर विमल मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं ॥१३॥ विप्रमुन्द ! बलवन् योगी लामबन्ध बन्धनों का ताड़कर निर्मल तथा शुभ मार्ग को प्राप्त करते हैं ॥१४॥ योगबल के बिना मनुष्य ज्ञान में अवल तथा व्याकुल होकर विनष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥१५॥ बलहीन ब्राह्मण जाल में फँसते हैं। परन्तु निष्ठाप

बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जालं गता द्विजाः। वन्यं न गच्छन्त्यनघायोगास्ते तु सुदुर्लभाः॥१६॥
यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दमाः। तत्राश्रयता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः॥१७॥
कर्मजंबन्धनैर्वद्धास्तद्वद्योगपरा द्विजाः। अवला न विमुच्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः॥१८॥
अल्पकश्च यथा विप्रा वह्निः शाम्यति 'दुर्बलः। आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगबल. स्मृतः॥१९॥
स एव च तदा विप्रा वह्निर्जातबलः पुनः। समीरणगतः कृत्स्नां बहेत्सिधं महोमिनाम्॥२०॥
'तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजा महाबलः। अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्नं संशोपयेज्जगत्॥२१॥
दुर्बलश्च यथा विप्राः स्रोतसा ह्लियते नरः। बलहीनस्तथा योगी विपर्यह्लियते च सः॥२२॥
तदेव तु यथा स्रोतो विष्कम्भयति वारणः। तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विपर्यहृतः॥२३॥
विशन्ति वा 'धवाद्वाऽय योगाद्योगबलान्विताः। प्रजापतीन्मनुस्सर्वान्महाभूतानि चेश्वराः॥२४॥
न यमो नान्तकः 'क्रुद्धो न मृत्युर्भोमविक्रमः'। विशन्ते तद्विजाः सर्वे योगस्यामिततेजसः॥२५॥
'आत्मनां च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः। योगं कुर्याद्यत्नं प्राप्य तंश्च सर्वैर्महो चरेत्॥२६॥
प्राणुषाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोषं तपश्चरेत्। सक्षिप्येच्च पुनर्विप्राः सूर्यं स्तेजोगुणानिव॥२७॥
बलस्यस्य हि योगस्य बलार्थं मुनिसत्तमाः। विमोक्षप्रभव विष्णुमुपपन्नमसशयम्॥२८॥
बलानि योगप्रोक्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः। निदर्शनार्थं सूदमाणि वक्ष्यामि च पुनर्द्विजाः॥२९॥

योगी वन्यन मे नहीं पडते॥१६॥ जैसे पक्षी सूक्ष्म जाल मे फँसकर अशक्त होने के कारण विपत्ति मे पड जाता है वैसे निर्बल मनुष्य भी बद्ध हो जाता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है॥१७॥ द्विजगण ! कर्मजन्य बन्धना से बद्ध होकर बलहीन मनुष्य मुक्त नहीं होता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है॥१८॥ विप्रवृन्द ! जैसे अल्प तथा दुर्बल अग्नि स्थूल इन्धनों से आक्रान्त होने पर वृक्ष जाता है वैसे निर्बल योगी भी नष्ट हो जाता है॥१९॥ पुन जैसे वही बलप्राप्त अग्नि वायु की सहजता से शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वी को जला देने की क्षमता रखता है वैसे तत्त्वज्ञाता, तेजस्वी तथा महाबली योगी प्रलयकालीन सूर्य की तरह निखिल जगत् को सुखा डालने की क्षमता रखते हैं॥२०-२१॥ जैसे दुर्बल मनुष्य धारा मे बह जाता है वैसे बलहीन योगी विषयों मे बह जाता है॥२२॥ जैसे उसी धारा की हाथी सहज मे पार कर जाता है उसी तरह योगबल प्राप्त मनुष्य विषयों को आसानी से पार कर जाता है॥२३॥ योगबल से मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्त कर प्रजापति, मनु तथा महाभूतों मे प्रवेश करते हैं। द्विजगण ! अमित तेजस्वी योगी का वृद्ध धम, काल तथा मृत्यु भी कुछ नहीं विगाड़ सकते॥२४-२५॥ द्विजश्रेष्ठो ! सहस्रो जन्मों के बाद योगाभ्यास करके बल प्राप्त कर मनुष्य सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करता है॥२६॥ कोई योगी विषयों मे फँस जाय तो वह पुन क्षमता करके सूर्य की तरह तेज का आधान करे॥२७॥ मुनिश्रेष्ठो ! योगबल प्राप्त करने के लिये मोक्ष के कारण विष्णु की शरण भजना चाहिये॥२८॥ द्विजश्रेष्ठो ! योग-प्रतिपादित ऐश्वर्यों के बारे मे मैंने इतना कहा, अब योग के सूक्ष्म रहस्य को

आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति वा द्विजाः । निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥३०॥
 अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः । युक्तः सम्यक्तया योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३१॥
 स्नेहपात्रे यथा पूर्णे मन आधाय निश्चलम् । पुरुषो युक्तः आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥३२॥
 मुक्तस्तथाऽयमात्मानं योगं तद्वत्सुनिश्चलम् । करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शने ॥३३॥
 यथा च नावं विप्रेन्द्राः कणधारः समाहितः । महार्णवगता शीघ्रं नयेंद्रिप्राप्तुं पत्तनम् ॥३४॥
 तद्वदात्मसमाधानं युक्तो योगेन योगवित् । दुर्गमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं द्विजाः ॥३५॥
 सारथिश्च यथा युक्तः सदश्वान्सुसमाहितः । देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुषार्थभम् ॥३६॥
 तथैव च द्विजा योगी 'धारणासु समाहितः । प्राप्नोत्याशु परं स्थानं लक्ष्यमुक्त इवाऽऽशुगः' ॥३७॥
 आविश्याऽऽत्मनि चाऽऽत्मानोऽवतिष्ठति सोऽचलः । पाशं वहत्वे मोनानां पदमाप्नोति सोऽजरम् ॥३८॥
 नाम्ना शीघ्रं च कुक्षौ च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः । दर्शने श्रवणे वाऽपि घ्राणे चामितविक्रमः ॥३९॥
 स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः । आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युङ्क्ते सम्यग्द्विजोत्तमाः ॥४०॥
 सुशीघ्रमचलप्रख्यं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम् । उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥४१॥

मुनय ऊचुः

आहारान्कीदृशानृत्वा कानि जित्वा च सत्तम । योगी बलमवाप्नोति तद्भुगान्वक्तुमर्हति ॥४२॥

मुनिये ॥३९॥ आत्मा की समाधि तथा धारणा के प्रति सूक्ष्म विचारों को सुनिये ॥३०॥ जैसे सावधान धनुर्धारी अपने लक्ष्य को बेश कर देता है उसी तरह सम्यक् योगाभ्यास करने वाला योगी नि सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३१॥ जैसे तेलपान को लेकर सीढ़ी पर चढ़ते समय मन को निश्चल रखना पड़ता है उसी तरह मनुष्य मन को सावधान करके योगाभ्यास करे ॥३२॥ इस प्रकार योगाभ्यास से मन को निश्चल करके मुक्त होकर मनुष्य सूर्य की तरह अमल आत्मा का दर्शन करता है ॥३३॥ जैसे सावधान नाविक महासमुद्र में पड़ी नाव को शीघ्र नियतस्थान पर ले जाता है। उसी तरह योगी पुरुष आत्म-समाधान करके देहत्याग के बाद दुर्गम स्थान को प्राप्त करते हैं ॥३४-३५॥ जैसे पूर्ण सावधान सारथि अच्छे घोड़ा को शीघ्र अमिमत स्थान पर ले जाते हैं और उत्तम तीर चलाने वाले के हाथ से मुक्त तीर लक्ष्य पर पहुँच जाता है उसी प्रकार धारणाओं से समाहित योगी परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३६-३७॥ जो आत्मा में आत्मा को प्रक्षिप्त करके निश्चल हो जाता है वह जाल पाँडवर मछली की तरह अपने स्थान को प्राप्त कर लेता है ॥३८॥ नाभि, मस्तक, कुक्षि, हृदय, पार्श्व, नेत्र, कान, तथा नाक—इन स्थानों में महाव्रतधारी, अमिमतजस्वी योगी अच्छी तरह आत्मग्रन् सयोग करके अत्यन्त चञ्चल शुभाशुभ कर्म को दग्ध कर उत्तम योग में स्थित हो इच्छानुसार विमुक्त हो जाता है ॥३९-४१॥

मुनिपों ने कहा—योगी को बलप्राप्ति के लिये किस तरह का भोजन करना चाहिये और किस तरह का नहीं करना चाहिये, यह हम बतलाइये ॥४२॥

१म मुक्त । २स य युक्तेन । ३क. ०णाया स० । ४क स ०व । अवेद्याऽऽत्म० । ५य नादया । ६ग प्राणे । ७क योगस्य फलमाप्नो० ।

॥ व्यास उवाच ॥

कणानां भक्षणं युक्तं पिण्याकस्य च भो द्विजा । स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥४३॥
 भुञ्जानो यावत् रुक्म दीधकालं द्विजोत्तमा । एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४४॥
 पशान्मासान्तुल्यश्चित्रान्सर्वश्च गृहास्तथा । अपोत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४५॥
 अवगुणैः वा मासं सततं मुनिसत्तमा । उपोष्य सम्यक्शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४६॥
 कामं जित्वा तथा क्रोधं शीतोष्णं वयमेव च । भयं शोकं तथा स्वापं पौरुषान्विषयास्तथा ॥४७॥
 अरतिं दुर्जया चैव घोरं दृष्ट्वा च भो द्विजा । 'स्पर्शं निद्रां तथा' तन्ना दुर्जया मुनिसत्तमा ॥४८॥
 दीपयन्ति' महत्मानं सूक्ष्ममात्मानमात्मना । वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाभ्ययनसपदा' ॥४९॥
 दुर्गस्तवेप मत्तं पन्था ब्राह्मणानां विपरिचिताम् । यः कश्चिद्व्रजति क्षिप्रं क्षेमेण मुनिपुंगवा ॥५०॥
 यथा कश्चिद्वनं घोरं बहुसंपत्तरोसुपम् । श्वश्रवतोपहीनं च दुर्गं बहुकण्टकम् ॥५१॥
 अभवत्तमटवीप्रायं शवदग्धमहोरुहम् । पन्थानं तत्कराकोणे क्षेमेणाभिपतेत्तथा ॥५२॥
 योगमार्गं समासाद्य यः कश्चिद्व्रजते द्विज । 'क्षेमेणोपरमेन्मार्गाद्बहुदोषोऽपि' समत ॥५३॥

॥ व्यास बोले—पिण्याव (हींग या कसर) तथा कणों (चावल आदि के महीन टुकड़ा) के भक्षण और
 लिग्य पदार्थों के वर्जन से योगी को बल प्राप्त होती है ॥४३॥ चिरकाल तक रुक्म यव का भक्षण करने से
 और एक ही बार भोजन करने से विशुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है ॥४४॥ पशु, मासां, ऋतुआ तथा
 अपों तक मुकाआ मा वास करने से और दूध मिश्रित जल पीने से योगी बल प्राप्त करता है ॥४५॥ मुनिपण्डितों ।
 महीना तक अलग्ग उपवास करके शुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है ॥४६॥ काम क्रोध सदी, गर्मी, भय, शोक,
 स्पर्श, पुष्य सम्बन्धी विषय, दुर्जय एवं भयकर विवृण्णा स्पर्श निद्रा तन्ना को जीतकर वीतराग महाप्राज्ञा पुष्य
 ध्यान और अभ्ययन के बल से सूक्ष्म आत्मा का ध्यान करते हैं ॥४७-४९॥ मुनिपुंगवों । विद्वान् ब्राह्मणा का यह मार्ग
 अत्यंत कठिन है । जो कोई कुशलता से इस मार्ग को पार कर जाता है, वह पुण्य है ॥५०॥ जैसे समयकर, अनेक
 सप तथा द्विषव जीवा से व्याप्य, जलहीन, दुर्गम, कण्टकाकीर्ण, दावाग्नि से दग्ध वृक्षा से युक्त तथा चोरा से
 आक्रान्त वन के माप पर चलना कठिन है उसी तरह योगमार्ग पर भी चलना दुस्तर है । जो कोई द्विज योगमार्ग
 पर आरुह्य होकर चल पड़ता है, उसे बड़ी कुशलता से उस मार्ग को तप करना चाहिए, क्योंकि वह मार्ग बहुत
 दोषों से युक्त होने पर भी कल्याणप्रद है ॥५१-५३॥ तीक्ष्ण शूर धार पर उहड़ता जैसे दुःसाध्य है वैसे योग की

१ख द्वाष। २ख भय। ३क ०न्ति तयऽऽत्मा०। ४क स ०सयुता। दु० १५ख ०गद्विद्वदोऽपि
 ६क ०दुषोप्यो हि स०।

[आस्थेय] क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमा । धारणा सा तु योगस्य दुर्गममकृतात्मभि ॥५४॥
 विपमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभां गतिम् । नेतृहीना यथा नाव पुरुषाणा तु वै द्विजा ॥५५॥
 यस्तु तिष्ठति 'योगायौ' धारणासु यथाविधि । 'मरण' जन्मदु खित्व सुखित्व स विशिष्यते ॥५६॥
 [नानाशास्त्रेषु नियत] नानामुनिनिषेधितम् । पर योगस्य पन्थान निश्चितं त द्विजातिषु ॥५७॥
 । पर हि 'तद्ब्रह्ममय मुनीन्द्रा, ब्रह्माणमोश वरद' च विष्णुम् ।
 [५] भव च धर्म च महानुभाव', यद्ब्रह्मपुत्रान्सु महानुभावान् ॥५८॥
 । तमश्च कष्ट सुमहद्भजश्च, सत्त्व च शुद्ध प्रकृति परा च ।
 । सिद्धि च देवीं वरुणस्य पत्नीं, तेजश्च कृत्स्न सुमहच्च धैर्यम् ॥५९॥
 । ताराधिप खे विमल सुतार, विश्वाश्च देवानुरगान्पितृश्च ।
 । शैलाश्च कृत्स्नानुदधीश्च वाञ्छलाभदीश्च सर्वा सनगाश्च नागान् ॥६०॥
 । साध्यास्तथा यक्षगणान्दिशश्च, गन्धर्वसिद्धान्पुरुषान्स्त्रियश्च ।
 । परस्पर प्राप्य महान्महात्मा विशेत योगो नचिराद्विमुक्त ॥६१॥
 । कथा च या विप्रवरा प्रसवता, देवे महावीर्यमतौ शुभयम् ।
 । योगान्स सर्वाननुभूय" मर्त्या, नारायण त द्रुतमाप्नुवन्ति ॥६२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसवादे योगविधिनिर्णय

नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३९॥

धारणा भी अवस्थात्मिका स कठिन है ॥५४॥ विप्रबुद्ध । धारणा में विषमता जाने से नाविक विहीन नौका की तरह पुरुषों की शुभ गति नहीं होती है ॥५५॥ जा विषयानुबन्धक धारणा में स्थित होता है वह जन्म-मरण रूप दुःख से मुक्त होकर सुखी हो जाता है ॥५६॥ योग का मार्ग नाना शास्त्रों में निर्णीत अनेक मुनियों द्वारा सुसहित तथा द्विजातियों के लिए सुनिश्चित है ॥५७॥ मुनिवर ! परब्रह्म, ब्रह्मा, शिव, वरदायक विष्णु, धर्म, महानुभाव ब्रह्मपुत्र, तम, कष्ट, रज, सत्त्व, शुद्ध, पराप्रकृति, सिद्धि, वरुण-पत्नी तेज, धैर्य, चन्द्रमा, सूर्य विश्वेदेव, देव, सप्त, पितर, पवत, समुद्र, नदी, नाग, साध्य, यक्षगण, दिश, गणेश, सिद्ध, पुरुष तथा स्त्रियाँ को परस्पर प्राप्त कर महारत्ना योगी धीमन् मुक्त हो जाते हैं । विप्रभण्डो ! महाशक्तिशाली देव के सम्बन्ध में जा कथा प्राप्त है, वह शुभ है । मनुष्य समस्त योगों का अनुभव करके धीमन् नारायण को प्राप्त करते हैं ॥५८-६२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियाँ के संवाद प्रकरण में योगविधिनिर्णय

नामक दो सौ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३९॥

१क ०गान् वै पा० । २क ०रणा तु य० । ३क ०ण दुस्त्रिवित्तय च मु० । ४व स ०पु निष्प्र
 योगेभ्यवेमुदाहृतम् । ५ख ०त तद्द्विजा० । ६ख हित ब्रह्म० । ७क ०द वरिष्ठम् । ८ग महानर ।
 ९क मुभाव । १०ग ०नमिमु० ।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्यविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सम्यक्क्रियेयं विप्रेन्द्र वर्णिता शिष्टसंमता । योगमार्गो यथान्यायं शिष्यायेह हितविष्णा ॥१॥
'सांख्ये त्विदानीं धर्मस्य विधिं प्रब्रूहि तत्त्वतः । त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं सर्वं तद्विदितं' हि ते ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्वं मुनयः 'सर्वमाख्यानं विदितात्मनाम् । विहितं यतिभिर्वृद्धैः कपिलादिभिरोश्वरैः ॥३॥
यस्मिन्सुविश्रमाः केचिद्दृश्यन्ते मुनिसत्तमाः । गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला ॥४॥
ज्ञानेन परिसंख्याय सदोषान्विषयान्द्विजाः । मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्पैशाचान्विषयांस्तथा ॥५॥
विषयानौरगाञ्जात्वा गन्धर्वविषयांस्तथा । पितॄणां विषयाञ्जात्वा तिर्यक्त्वं चरतां द्विजाः ॥६॥
सुपर्णविषयाञ्जात्वा मरुतां विषयांस्तथा । महर्षिविषयांश्चैव राजपिविषयांस्तथा ॥७॥
आसुरान्विषयाञ्जात्वा वैश्वदेवांस्तथैव च । देवपिविषयाञ्जात्वा 'योगानामपि वै परान् ॥८॥
विषयांश्च प्रमाणस्य ब्रह्मणो विषयांस्तथा । आयुषश्च परं कालं लोकैर्विज्ञाय तत्त्वतः ॥९॥

अध्याय २४०

सांख्यविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्रेन्द्र । आपने शिष्ट-समत क्रिया का सम्यक् वर्णन किया । जैसे हितचिन्तक गुह शिष्य को उपदेश देते हैं उसी तरह आपने हमें योगमार्ग का यथोचित उपदेश दिया । अब सांख्यदर्शन के अनुसार तत्त्वतः धर्म की विधि बतलाइये । तीनों लोक में जो ज्ञान है, वह सब आपको विदित है ॥१-२॥

व्यास बोले—मुनिवृन्द । ज्ञानियों के समस्त आख्यान को आप लोग सुनें, जिसका विधान बृद्ध कपिल आदि यतियों ने किया है, जिसमें कितने ही लोग विश्रान्त हो जाते हैं और जिसमें गुण बहुत-से हैं तथा दोषों की हानि बताई गई है ॥३-४॥ द्विजगण ! ज्ञान के द्वारा दोषयुक्त विषयों को समझना चाहिये । मनुष्य सबन्धी तथा पिशाच सबन्धी सकल दुर्जेय विषयों का ज्ञान करना चाहिये ॥५॥ सर्प के विषय, गन्धर्वों के विषय, पितरों के विषय, तिर्यग्योनि में प्राप्त जीवों के विषय, गरुडविषय, वायुविषय, महर्षिविषय, राजपिविषय, असुर-विषय, विश्वेदेवों के विषय, देवपियों के विषय, योगों के विषय, प्रमाण के विषय, ब्रह्म के विषय तथा आयु से परे काल को तत्त्वतः समझना चाहिये ॥६-९॥ मुनिश्रेष्ठो ! मुझ के उत्तरकाल को समझना चाहिये । विषया-

सुखस्य च परं कालं विज्ञाय मुनिसत्तमाः। प्राप्तकाले च यद्दुःखं पततां विपर्ययिणाम् ॥१०॥
 तिर्यक्त्वे पततां विप्रास्तथैव नरकेषु यत्। स्वर्गस्य च गुणाञ्ज्जात्वा दोषान्सर्वाश्च भो द्विजाः ॥११॥
 वेदवादे च ये दोषा गुणा ये चापि वेदिकाः। ज्ञानयोगे च ये दोषा 'ज्ञानयोगे च ये गुणाः ॥१२॥
 सांख्यज्ञाने च ये दोषास्तथैव च गुणा द्विजाः। सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा ॥१३॥
 तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा। षड्गुणं च नभो ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं महत् ॥१४॥
 द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वं चैकगुणं पुनः। मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन 'प्रलयप्रेक्षणेन तु ॥१५॥
 शानविज्ञानसंपन्नाः कारणभावितात्मभिः। प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम् ॥१६॥
 रूपेण दृष्टिं संयुक्तां घ्राणं गन्धगुणेन च। शब्दग्राह्यं तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेन च ॥१७॥
 त्वचं स्पर्शं तथा शक्यं वायुं चैव तदाश्रितम्। मोहं तमसि संयुक्तं लोभं मोहयुः संश्रितम् ॥१८॥
 विष्णुं क्रांते बले शक्रं कोष्ठे सक्तं तथाऽनलम्। अप्सु देवीं समायुक्तामापस्तेजसि सश्रिताः ॥१९॥
 तेजो वायो तु संयुक्तं वायुं नभसि चाऽश्रितम्। नभो महति 'संयुक्तं तमो महसि सस्यितम् ॥२०॥
 रजः सत्त्वं तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथाऽऽत्मनि। सक्तमात्मानमोशे च देवे नारायणे तथा ॥२१॥
 देवं मोक्षे च संयुक्तं ततो मोक्षं च न क्वचित्। ज्ञात्वा सत्त्वगुणं देहं वृत्तं षोडशभिर्गुणैः ॥२२॥

मिलायी जीव के वर्तमानकालीन दुःख, तिर्यग्योनि में प्राप्त होते हुए जीवों के दुःख तथा नरकों के दुःख को समझना चाहिये ॥१०॥ द्विजगण । स्वर्ग के समस्त गुण तथा दोषों को समझना चाहिये। वैदिक गुण-दोष, ज्ञानयोग के गुण-दोष तथा सांख्यज्ञान के गुण-दोषों को समझना चाहिये ॥११॥ सत्त्व के दश गुण, रज के नौ गुण, तम के आठ गुण, बुद्धि के सात गुण, आकाश के छह गुण, और पुनः तम के तीन गुण रज के दो गुण तथा सत्त्व के एक गुण को समझना चाहिए। प्रलय-दर्शनपूर्वक तत्त्वतः मार्ग को जानकर ज्ञान विज्ञान-सम्पन्न मनुष्य अन्तःकरण को पवित्र करने वाले कारणों के द्वारा पवित्र मोक्ष को उसी तरह प्राप्त कर लेते हैं जैसे सूक्ष्म वस्तु आकाश को ॥१२-१६॥ रूप से संयुक्त दृष्टि को, गन्धगुण से युक्त श्रुति को, शब्दग्राह्य कर्ण को, रस-गुण से युक्त जिह्वा को, स्पर्शयुक्त त्वचा को, तदाश्रित वायु को, तमोयुक्त मोह को, मोहयुक्त लोभ को, प्रक्रान्त बल में विष्णु को, कोष्ठ में इन्द्र तथा अग्नि को, जल में देवी को, तेज से युक्त जल को, वायु में संयुक्त तेज को, आकाश के आश्रित वायु को, महत्त्व से जुड़े हुए आकाश को, तेज में स्थित तम को, रज में आश्रित सत्त्व को तथा आत्मा में आश्रित सत्त्व को, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में आश्रित आत्मा को और मोक्ष से संयुक्त देव को समझना चाहिए। मोक्ष को किसी में भी आश्रित नहीं समझना चाहिए ॥१७-२१॥ षोडश गुणा से घिरे हुए सत्त्वगुण-सम्पन्न शरीर को तथा स्वभाव एव देहाश्रित भावना को जानकर मध्यस्थ की तरह आत्मा को समझना

स्वभावं भावनां चैव ज्ञात्वा देहसमाश्रिताम् । मध्यस्थमिव चाऽऽत्मानं पापं यस्मिन्न विद्यत ॥२३॥
 द्वितीयं कर्म यं ज्ञात्वा विप्रेन्द्रा विपर्येषिणाम् । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च सर्वानात्मनि संश्रितान् ॥२४॥
 दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम् । प्राणापानौ समानं च ध्यानोदानौ च तत्त्वतः ॥२५॥
 आद्यं चैवानिलं ज्ञात्वा प्रभव चानिलं पुनः । सप्तधा तांस्तथा शेषान्सप्तधा विधिवत्पुनः ॥२६॥
 प्रजापतीन्प्रीद्वैव सर्गाश्च सुबहून्वरान् । सप्तर्षीश्च बहूञ्ज्ञात्वा राजर्षीश्च परंतपान् ॥२७॥
 सुरर्षीन्मरुतश्चान्यान्ब्रह्मर्षीन्सर्पसंनिभान् । ऐश्वर्याच्छ्यावितान्दृष्ट्वा कालेन महता द्विजाः ॥२८॥
 महतां भूतसंधाना श्रुत्वा नाशं च भो द्विजाः । गतिं वाचां शुभां ज्ञात्वा अर्चार्हाः पापकर्मणाम् ॥२९॥
 वंतरण्यां च यद्दुःखं पतितानां यमक्षये । योनिषु च विचित्रासु संचारानशुभांस्तथा ॥३०॥
 जठरे चाशुभे वासं शोणितोदकभाजने । श्लेष्ममृत्रपुरीषे च तोद्वगन्धसमन्विते ॥३१॥
 शुकशोणितसंधाते मज्जास्नायुपरिग्रहे । शिराशतसमाकीर्णं नवद्वारे पुरेऽथ वै ॥३२॥
 विनाय^१ हितमात्मानं योगांश्च विविधान्द्विजाः । तामसानां च जन्तूनां रमणोयानृतात्मनाम् ॥३३॥
 सात्त्विकानां च जन्तूनां कुत्सितं मुनिसत्तमाः । गर्हितं महतामयं सांख्यानां विदित्तात्मनाम् ॥३४॥
 उपप्लवांस्तथा घोराऽशिनस्तेजसस्तथा । ताराणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम् ॥३५॥

चाहिये, जिसमें पाप नहीं है ॥२२-२३॥ द्विजधेष्टो । विपर्ययमिलापी व्यक्तियों के द्वितीय कर्म को जानकर इन्द्रिया तथा आत्माश्रित इन्द्रिय-विषयो को समझना चाहिये ॥२४॥ वेदानुसार मोक्ष के दुर्लभत्व को जानकर प्राण, अपान, समान, ध्यान तथा उदान को तत्त्वत जानना चाहिये ॥२५॥ आद्यवायु, कारणवायु और पुन उनचासा वायु को विधिपूर्वक जानकर प्रजापति, ऋषि, सर्ग (सृष्टि), सप्तरषि, राजर्षि, देवर्षि, मरुत, सूर्यसदृश ब्रह्मर्षि तथा ऐश्वर्यव्युत व्यक्तियों को समझना चाहिये ॥२६-२८॥ द्विजगण ! महान् भूतसंधो के नाश को सुनकर पापघर्षी की गति तथा शुभ वाणी को जानना चाहिये । पतिता को यममार्ग म वंतरणी में जो दुःख होता है, उस जानना चाहिय तथा विचित्र योनियों में जा उनके संचरण एवं अमगल होते हैं उन्हें जानना चाहिये ॥२९-३०॥ रक्त तथा जल के पात्र, वक्त्र, मूत्र तथा विद्या से युक्त तीद्वगन्धसमन्वित वीर्य, शोणित, मज्जा तथा स्नायु से समयुक्त, सैकड़ शिराओं के समाकीर्ण तथा नवद्वारयुक्त शरीर के अशुभ उदर में वास का जानना चाहिये ॥३१॥ आत्मा, हृद्, विविध याग, रमणीय एवं अनुत्तमा तामस जन्तुओं को जानना चाहिय ॥३३॥ सात्त्विक जन्तुओं के कुत्सित कर्म का तथा विदिततमा सांख्य का गर्हित कर्म का जानना चाहिये ॥३४॥ घोर उपद्रवा, चन्द्रमा के तेज, तारों के पतन, नक्षत्रों के विपर्यय, सुख-दुःख आदि के विप्रयाग तथा कृष्ण का जानना चाहिये ॥३५॥

१. सा सत्त्वितान् । २. क. स. ०. व. मागाश्चैव वसुधराम् । स. ० । ३. क. स. ०. मां प्राप्ता पापाश्च क. ।

४. स. ०. मायादि ।

'द्विजानां विप्रयोगं च विज्ञाय कृपणं द्विजा । 'अन्योन्यमक्षयं दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम् ॥३६॥
 बाल्ये मोहं च विज्ञाय पक्षदेहस्य चाशुभम् । रागं मोहं च संप्राप्तं क्वचित्सत्त्वं समाश्रितम् ॥३७॥
 सहस्रेषु नरैः कश्चिन्मोक्षबुद्धिं समाश्रितः । दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञानं श्रुतिपूर्वकम् ॥३८॥
 'बहूमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थता पुनः । विषयाणां च दौरात्म्यं विज्ञाय च पुनर्द्विजा ॥३९॥
 गतासूनां च सत्त्वानां देहान्मिच्छां तथा शुभान् । वासं कुलेषु 'जन्तूनां मरणाय धृतात्मनाम् ॥४०॥
 सात्त्विकानां च जन्तूनां दुःखं विज्ञाय भो द्विजा । ब्रह्मघ्नानां गतिं ज्ञात्वा पतितानां सुदारुणाम् ॥४१॥
 सुरापाने च सक्तानां ब्राह्मणानां दुरात्मनाम् । गुरुदारप्रसक्तानां गतिं विज्ञाय चाशुभाम् ॥४२॥
 'जननीषु च वर्तन्ते येन सम्पद्भिर्जोत्तमा । 'सदेवकेषु लोकेषु येन वर्तन्ति मानवा ॥४३॥
 तेन ज्ञानेन विज्ञाय गतिं चाशुभकर्मणाम् । तिर्यग्योनिगतानां च विज्ञाय च गतीं पुनः ॥४४॥
 वेदवादास्तथा 'चित्रान्तूनां' पर्यायास्तथा । तस्य सवत्सराणां च मासानां च क्षयं तथा ॥४५॥
 पक्षक्षयं तथा दृष्ट्वा दिवसतानां च क्षयम् । क्षयं वृद्धिं च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा ॥४६॥
 वृद्धिं दृष्ट्वा समुद्राणां क्षयं तेषां तथा पुनः । क्षयं घनानां दृष्ट्वा च पुनर्बुद्धिं तथैव च ॥४७॥
 सयोगानां तथा दृष्ट्वा युगानां च विशेषतः । देहैर्वल्लभ्यतां चैव सम्पद्भिर्विज्ञाय तत्त्वतः ॥४८॥
 आत्मदोषाश्च विज्ञाय सर्वानात्मनि सस्थितान् । स्वदेहादुत्थितान्धास्तथा विज्ञाय चाशुभाम् ॥४९॥

प्राणियों के परस्पर अंगुम मक्षण, बाल्यावस्था के मोह देह के अवल्याण और जीवसमाश्रित राग-मोह को जानना चाहिये ॥३६-३७॥ हजारी मनुष्य में किसी को मोक्षबुद्धि होती है। श्रुतिपूर्वक विज्ञान तथा मोक्ष के दुर्लभत्व को जानना ॥३८॥ अलब्धता म बहुमान तथा लब्धों में मध्यस्थता को देखना चाहिये। विषयों के दौरात्म्य को जानना चाहिये ॥३९॥ गतप्राण शरीरियों के पवित्र देहों को छोड़कर मरण के लिए शरीर धारण किये हुए (अन्य) जंतुओं के कुलों में निवास व तथा सात्त्विक जन्तुओं के दुःख को जानना चाहिये चाहिये ॥४०॥ पतित ब्रह्मघातियों की मंदिरापान में आसक्त दुरात्मा ब्राह्मणों की और गुरुधर्तियामियों की दारुणगति को जानना चाहिये ॥४१॥ ४२॥ द्विजश्रेष्ठो ! मनुष्य जिस ज्ञान से मात आ देवताओं तथा लोगों के साथ व्यवहार करते हैं उस ज्ञान से अंगुम वनों की गति को जानना चाहिये ॥४३॥ तिर्यग्योनिषा में गये जीवों की पुनर्बुद्धि गतियों को समझना चाहिये। वेदवादा का, श्रुतिविषयों को अप मास पक्ष तथा दिन के क्षय को, चन्द्रमा के प्रत्यक्ष क्षय तथा वृद्धि को, समुद्र व क्षय तथा वृद्धि को और घन व क्षय एवम् पुनर्बुद्धि को जानना चाहिये। युगों के सयोग को विशेष करके जानना चाहिये। शरीर की धिक्छता को अच्छी तरह जानना चाहिये। आत्मा में सस्थित दोषों को जानना चाहिये। अपने शरीर से उत्पन्न अंगुम गंधों को जानना चाहिये ॥४४-४९॥

मुनय ऊचुः

कानुत्पातभवान्दोषान्पश्यति ब्रह्मवित्तम। एतं नः संशयं कृत्स्नं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥५०॥

व्यास उवाच

पञ्च दोषान्द्विजा देहे प्रवदन्ति मनीषिणः। मार्गज्ञाः कापिलाः सांख्याः शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥५१॥
 कामक्रोधौ भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते। एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम् ॥५२॥
 छिन्दन्ति क्षमया श्रोत्रं कामं संकल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवनान्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा ॥५३॥
 छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासेत्तत्पाहारतया द्विजः। गुणान्गुणशतं ज्ञात्वा दोषान्दोषशतैरपि ॥५४॥
 हेतूहेतुशतैश्चित्रैश्चित्रान्विज्ञाय तत्त्वतः। अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशतैः कृतम् ॥५५॥
 चित्रभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनर्थकम्। तमःसगमितं दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसन्निभम् ॥५६॥
 नाशप्राप्य सुखाधानं नाशोत्तरमहाभयम्। रजस्तमसि समग्न पङ्के द्विपमिवावशम् ॥५७॥
 साध्या विप्रा महामाज्ञास्त्यक्त्वा स्नेहं प्रजाकृतम्। ज्ञानज्ञेयेन साक्ष्येन व्यापिना महता द्विजाः ॥५८॥
 राजसानुभान्गन्धास्तामसांश्च तथाविधान्। पुण्याश्च सात्त्विकान्गन्धान्पशंजान्देहसञ्चितान् ॥५९॥
 छित्त्वाऽऽत्मज्ञानशस्त्रेण तपोदण्डेन सत्तमाः। ततो दुःखादिकं घोरं चिन्ताशोकमहाह्वयम् ॥६०॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मवेत्ताज्जा म थोष्ट। आज किन उत्पातजन्य दोषों का दखत है? हमारे इस संशय का पूर्ण रूप से समाधान कर दीजिये ॥५०॥

व्यास बोले—मुनिवर! मार्गों के ज्ञाता, कपिलमतानुयायी, सांख्यशास्त्र के विद्वान् शरीर में पाँच प्रकार के दोषों को बतलाते हैं ॥५१॥ काम, क्रोध, भय, निद्रा तथा श्वास—ये पाँच दोष समस्त प्राणियों के शरीरों में देखे जाते हैं ॥५२॥ काम से श्रोत्र का उच्छेद करे, संकल्पत्याग से काम का, सत्त्वसंसेवन से निद्रा का और अप्रमाद से भय का नाश करे ॥५३॥ द्विजगण! अल्पाहार से श्वास का उच्छेदन करे। संकड़ा गुणा से गुणों को, संकड़ा दोषों से दोषों को और संकड़ों कारणों से कारणों को तत्त्वतः जानकर विष्णु की संकड़ा मायाओं से रचित लोक को जल के फेन सदृश समझे ॥५४-५५॥ दीवार के चित्र तुल्य सादृशीन, अनर्थक, तिमिरावृत, वर्षा के बुलबुले के समान, नष्टप्राय, सुखाधान, नाशोत्तर महामय स मुक्त, रज तथा तमोगुण में निमग्न और एक-मग्न हस्ती की तरह विवश सत्तार का त्याग करना चाहिये ॥५६-५७॥ विप्रवृन्द! साक्ष्यवेत्ता महापठित ज्ञान से जानन योग्य साक्ष्यदर्शन व बल से सन्तान-सह का परित्याग करते हैं ॥५८॥ राजस अनुमा को, तामस गन्धा को, सात्त्विक पुण्या को तथा स्पर्शजन्य गन्धा को आत्मज्ञान रूपी शस्त्र से तथा तप रूपी दण्ड से उच्छिन्न कर देना चाहिये ॥५९॥ सदनन्दर महामय रूपी महाकर्षण से मुक्त, तम रूपी वच्छप से समन्वित और रजरूपी मत्स्य से सबलित,

१क. ०ते। पञ्च विध्वंसकर्तारो वर्तन्ते। ख. ०ते। योगविध्वंसकर्तारो वर्तन्ते। २क. व्योमपर। ३ख. चिन्तामि०। ४ख. सुखासीन। ५क. ख. ०स्यान्विप्रा०। ६क. ख. ०ज्ञानं तानाह प्रजापति। अनेन दोषान्साक्ष्ये०।

व्याधिमृत्युमहाघोर । महाभयमहोरगम् । तत कूर्मं रजोमोनं प्रज्ञया सतरन्त्युत ॥६१॥
 स्नेहसङ्कुं जरावुर्गं, स्पर्शद्वीपं द्विजोत्तमा । कर्मागाधं सत्यतीरं स्थितं व्रतमनीषिण ॥६२॥
 हवसधमहावेगं । नानारससमाकुलम् । मानाप्रीतिमहारत्नं दुःखज्वरसमीरितम् ॥६३॥
 शोकतृष्णामहावर्तं तीक्ष्णव्याधिमहारुजम् ॥ अस्थिसघातसघट्टं श्लेष्मयोगं द्विजोत्तमा ॥६४॥
 दानमुक्ताकरं घोरं शोणितोद्गारविद्रुमम् । हस्तितोकुष्टनिर्घोषं नानाज्ञानसुदुष्करम् ॥६५॥
 रोदनाश्रुमलक्षारं सङ्गयोगपरायणम् । प्रलब्ध्वा जन्मलोको यं पुत्रशान्धवपत्तनम् ॥६६॥
 अहिंसासत्यमर्यादं प्राणयोगमयोमिलम् । वृन्दानुगामिनं क्षीरं सबभूतपयोदधिम् ॥६७॥
 मोक्षदुर्लभविषयं वाडवासुखसागरम् । तरन्ति यतयः सिद्धा ज्ञानयोगेन चानघा ॥६८॥
 'तीव्रो च दुस्तरं जन्मं विशन्ति विमलं नभः' । ततस्तान्सुकृतीञ्जात्वा सूर्यो वहति रश्मिभिः ॥६९॥
 पद्मतन्तुवदाविषयं प्रबहन्विषयान्द्विजा । तत्र तान्प्रवहो वायुः प्रतिगृह्णाति चानघा ॥७०॥
 वीतरामान्यतोन्तिद्वान्वीर्ययुवतास्तपोधनान् । सूक्ष्मं शीतं सुगन्धश्च सुखरसश्च भो द्विजा ॥७१॥
 सप्तानां महता श्रेष्ठो लोकान्गच्छति यः शुभान् । स तान्वहति विभ्रेन्द्रा नभसः परमा गतिम् ॥७२॥

महाघात, दुःख चित्तांशक व्याधि तथा मृत्यु रूपी महाहृद का ज्ञान से पार करे ॥६०॥ ६१॥ स्नेहरूपी कीचड़ वाले, वृद्धतारूपी दुःख वाले, स्पर्श रूपी द्वीप वाले, कर्म रूपी अतिगम्भीरता से युक्त, सत्यरूपी तट वाले, हर्षसमूह रूपी महावेग से युक्त, नाना रसा से आकुल, प्रीति रूपी महारत्ना से युक्त, दुःख रूपी ज्वार भाट से युक्त, शोक और तृष्णा रूपी आवर्तों से युक्त, तीक्ष्णव्याधि तथा महारोग भाल, अस्थिसमूह से युक्त, कफ से युक्त, दान रूपी मुक्ताओं के आकर, भयकर, शोणित रूपी मृगों से युक्त, हास्य रूपी शब्दा से युक्त, अनन्त प्रकार के अज्ञान से दुर्लभ, रोदन व अश्रुमल से क्षार, संग-योग में निरत, पुत्र आर वच्यु रूप नगर वांछे (?) अहिंसा तथा सत्यरूपी मर्यादा (सीमा) से युक्त, प्राण-योगमय तरंगा से युक्त समूह के अनुगामी, सब लोक प्राणी रूप दूध या जल से समुद्र, महारूपी दुर्लभ पदार्थ से युक्त और सुख रूपी पद्मफल से युक्त ससार रूपी सागर को सिद्ध एवं निष्ठाप सहायी ज्ञानयोग से पार करते हैं ॥६२॥ ६३॥ दुस्तर जन्म का सहरण करने सिद्धपुरुष निर्मल आवास में प्रवेश करते हैं । द्विजगण ! तब सूर्य उन्हें पुण्यात्मा समझ कर अपनी किरणा में द्वारा ऊपर को उठाते हैं और प्रबहनामक वायु पद्मतन्तु के मीटर प्रक्षिप्त होकर मोक्षपदार्थों को उनके पास पहुँचाता है ॥६९॥ ७०॥ विप्रमुद ! वीतराग, तपोवन, शक्तिशाली सिद्ध यतियों को सूक्ष्म शीत तथा सुगन्धित वायु का सुखस्पर्श होता है ॥७१॥ विभ्रेन्द्रो ! सात महतो में सबसे श्रेष्ठ वायु, जो पवित्र लोका में जाता है, उन सिद्धा को आकाश की चरम सीमा पर पहुँचा देता है ॥७२॥ आकाश उनकी रजोगुण की चरम सीमा पर पहुँचाता है और रजो-

नमो' वहति लोकोशाग्रजसः परमां गतिम् । रजो वहति विप्रेन्द्राः सत्त्वस्य परमां गतिम् ॥७३॥
सत्त्व वहति शुद्धात्मा परं नारायणं प्रभुम् । प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ॥७४॥
परमात्मानमासाद्य तद्भूता यतयोऽमलाः । अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति च द्विजाः ॥७५॥
परमा सा गतिर्विप्रा निर्वन्द्वानां महात्मनाम् । सत्याजंवरतानां वै सर्वभूतदयावताम् ॥७६॥

मुनय ऊचुः

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः । आजन्ममरणं वा ते रमन्ते तत्र वा न वा ॥७७॥
यदन तथ्यं तत्त्वं नो यथावद्वक्तुमर्हसि । त्वद्वृत्ते मानवं नान्यं प्रष्टुमर्हामि सत्तम ॥७८॥
'मोक्षदोषो महानेय प्राप्य सिद्धिं गतानुषीन् । यदि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे ॥७९॥
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्याम परमं द्विज' । मानस्य हि परे जाने किंतु दुःखान्तरं भवेत् ॥८०॥

व्यास उवाच

यथान्यायं मुनिश्रेष्ठाः प्रश्नः पृष्टश्च संकटः । बुधानामपि समोहः । प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमः ॥८१॥
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणुष्व वचन मम । बुद्धिश्च परमायत्र कपिलानां महात्मनाम् ॥८२॥
इन्द्रियाण्यपि बुध्यन्ते स्वदेहे' देहिता द्विजाः । करणान्यात्मनस्तानि सूक्ष्म' पश्यन्ति तैस्तु सः ॥८३॥

गुण सत्त्वगुण की अन्तिम सीमा पर पहुँचा देता है ॥७३॥ शुद्धात्मा सत्त्वगुण उन्हे प्रभु नारायण के पास पहुँचाता है और शुद्धात्मा प्रभु परमात्मा के पास पहुँचा देता है ॥७४॥ परमात्मा को प्राप्त करके निर्मल यति सन्मय हो जाते हैं । द्विजगण ! सब वे अमृतत्व का प्राप्त कर वहाँ से निवृत्त नहीं होते हैं ॥७५॥ विप्रवृन्द ! निर्वन्द्व, सत्य तथा ऋजुता में निरत और समस्त मूलों पर दया करने वाले महात्माओं की वह परमगति है ॥७६॥

मुनियों ने कहा—स्विरव्रती सन्यासी उत्तम स्थान को प्राप्त कर वहाँ जन्म-मरण तक रमण करते हैं कि नहीं ? इसमें जो तथ्य बात है, वह हमें बतलाइये । मुने ! आपको छोड़कर हम दूसरे व्यक्ति से नहीं पूछ सकते । यदि यति लोग वही पर विज्ञान में निरत रहते हैं तो सिद्ध ऋषिया के लिए यह महान् मोक्षदोष है । द्विज ! यह तो प्रवृत्ति-लक्षण धर्म है जो कि परम ज्ञान में निमग्न व्यक्ति के लिए एक दूसरे प्रकार का दुःख है ॥७७-८०॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठो ! यह तो बड़ा कठिन प्रश्न आपने पूछ दिया । ऐसे प्रश्न से तो विद्वान् लोग भी घबरा जाते हैं ॥८१॥ यहाँ भी परमवृत्त को आप मुझसे सुन लीजिए, जिसका निरवयव महात्मा कपिल की उत्कृष्ट बुद्धि ने किया है ॥८२॥ द्विजगण ! प्राणियों की इन्द्रियों भी अपनी देह को जानती हैं । मनुष्य इन्द्रियों द्वारा आत्मा के सूक्ष्म कारणों का देखते हैं ॥८३॥ लकड़ी पर बनाये चित्र जैसे लकड़ी के नष्ट होते ही नष्ट हो

१श्व समो । २य. ते स्मरन्त्यत्र सदाऽनया । य० । ३य. मोक्षलामो । ४ख. ०ज । यस्य दिवापरं ज्ञान कि० । ५क. य० जायते हि म० । ६क स्वदेहे । ७ख सूक्ष्म ।

आत्मना विप्रहीणानि 'काष्ठकुड्यसमानि तु। विनश्यन्ति न सदेहो वेला इव महानवे' ॥८४॥
 इन्द्रियं सह सुप्तस्य देहितो' द्विजसत्तमा'। सूक्ष्मद्वरति सवत्र नभसीव समोरण ॥८५॥
 स पश्यति 'यथान्याय स्मृत्वा स्पृशति चानघ। बुध्यमानो यथाभूवमखिलनह भो द्विजा ॥८६॥
 इन्द्रियाणि ह सर्वाणि स्वे स्व स्थान यथाविधि। अनीशत्वात्प्रलीयन्त सर्पा विपहता इव ॥८७॥
 इन्द्रियाणां तु सर्वेषां स्वस्थानध्वं सवश। आक्रम्य गतय सूक्ष्माव (श्च) रथात्मा न सशय ॥८८॥
 सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नाग्रजसश्च गुणान्पुन। गुणाश्च तमस सर्वान्गुणान्बुद्धश्च सत्तमा ॥८९॥
 गुणाश्च मनसश्चापि नभसश्च गुणास्तथा। गुणान्वायोश्च सवज्ञा स्नहजाश्च गुणान्पुन ॥९०॥
 अपा गुणास्तथा विप्रा पाथिवाश्च गुणानपि। सर्वानेव 'गुणव्याप्य क्षत्रज्ञेषु द्विजोत्तमा ॥९१॥
 आत्मा 'चरति क्षत्रज्ञ कमणा च 'शुभाशुभ। शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि च त द्विजा ॥९२॥
 प्रकृति चाप्यतिक्रम्य शुद्ध सूक्ष्म परात्परम्। नारायण महात्मान निर्विकार परात्परम् ॥९३॥
 विमुक्त सवपापेभ्य प्रविष्ट च ह्यनामयम्। परमात्मानमगुण निवृत्त त च सत्तमा ॥९४॥
 श्रेष्ठ तत्र मनो विप्रा इन्द्रियाणि च भो द्विजा। आगच्छन्ति यथाकाल गुरो सदेशकारिण ॥९५॥
 शव्य वाऽल्पन कालन' शान्तिं प्राप्तुं 'गुणास्तथा। एवमुक्तेन विप्रन्द्रा साख्ययोगन मोक्षिणीम्' ॥९६॥

जाते हैं उसी तरह आत्मा से विमुक्त होते ही इन्द्रियाँ समुद्र में तरंग की तरह विनष्ट हो जाती हैं, इसमें समय नहीं ॥८४॥ द्विजश्रेष्ठो! प्राणी की सुपुप्तावस्था में जब इन्द्रियाँ भी सुप्त रहती हैं तब सूक्ष्म वायु जैसे आकाश में सवत्र संचरण करता है वैसे उससे शरीर में भी संचरित होता है ॥८५॥ प्राणी जागने पर पहले की तरह देखता है स्मरण करता है और स्पृश करता है। आत्मा के चले जाने पर शास्त्रविहीन होन के कारण इन्द्रियाँ उसी तरह विनष्ट हो जाती हैं जैसे दिप नष्ट होन पर तप ॥८६८७॥ इन्द्रियाँ के अपन अपन स्थानों में ही उनका अतिश्रमण कर आत्मा सदेह सूक्ष्म गति में चल देता है ॥८९॥ विप्रबुद्ध! सत्त्व के अखिल गुणों को पुन रज व गुणा का तम व गुणा को बुद्धि के गुणा को मन व गुणा को आकाश व गुणा को वायु व गुणा को स्नेह व गुणा को जल के गुणा का तथा पृथ्वी व सवत्र गुणा को व्याप्त करने क्षत्र आत्मा शुभ अशुभ दोनों को करता है। द्विजगण! जैसे शिष्य महात्मा वा अनुगमन करते हैं उसी तरह इन्द्रियाँ आत्मा का अनुसरण करती हैं ॥८९९२॥ प्रकृति का भी अतिश्रमण कर बुद्ध सूक्ष्म परात्पर, नारायण महात्मा निर्विकार समस्त पापा से विमुक्त अनामय निगुण शाश्वत परमात्मा में मन तथा इन्द्रियाँ प्रविष्ट होती हैं ॥९३॥ गुरु के आशुवादी शिष्य जब यथासमय आ जाते हैं वैसे वे भी उपस्मित होती हैं ॥९३९५॥ विप्रवर! साख्य-योग से अल्पकाल में ही भादा रूप शान्ति प्राप्त हो जाती है। साख्यवेत्ता महापंडित परमगति को प्राप्त करते हैं।

१क स पापकर्मवृत्तानि। २क ०ना व्याकुलस्य तु। सू०। ३क ०मा। मनो भ्रमति।
 ४ग ०य स्थानान्पुन। ५क गुणाव्याप्य। ६ग च शक्ति। ७क ०मागुणा। गि०। ८र स ० देहवत्।
 ९क ०न प्राप्तस्वप्नवत्। १०क ०न प्राप्तुं प्राप्ता गुणमनाम्। ए०। १०ग प्राप्ति गुणादिना। ए०। ११क स
 ०म। धीरोणादि परिपश्य ग०।

सांख्या विप्रा महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमां गतिम् । ज्ञानेनानेन विप्रेन्द्रास्तुल्यं ज्ञानं न विद्यते ॥९७॥
 अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम् । अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्वं ब्रह्म सनातनम् ॥९८॥
 अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तुं शाश्वतम् । कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति शमात्मकाः ॥९९॥
 यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सगमप्रलयविक्रियाः । एवं शंसन्ति शास्त्रेषु प्रवक्तारो महर्षयः ॥१००॥
 सर्वे विप्राश्च वेदाश्च तथा सामविदो जनाः । ब्रह्मण्यं परमं देयमनन्तं परमाच्युतम् ॥१०१॥
 प्रार्थयन्तश्च तं विप्रा ब्रुवन्ति 'गुणबुद्धयः । सम्यगुक्तास्तथा योगाः' 'सांख्याश्चामितदर्शनाः ॥१०२॥
 अमूर्तिस्तस्य विप्रेन्द्राः सांख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः । अभिज्ञानानि तस्याऽऽहुर्महान्ति' 'मुनिसत्तमाः ॥१०३॥
 द्विविधानि हि भूतानि पृथिव्यां द्विजसत्तमाः । अगम्यगम्यसंज्ञानि गम्यं तत्र विशिष्यते ॥१०४॥
 ज्ञानं महद्वै महत्तच्च विप्रा, वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे ।
 यच्चापि दृष्टं विधिवत्पुराणे, सांख्यागतं तन्निखिलं मुनीन्द्राः ॥१०५॥
 यच्चेन्निहासेषु महत्सु दृष्टं, यथार्थशास्त्रेषु विशिष्टदृष्टम् ।
 ज्ञानं च लोके यदिहान्ति किञ्चित्सांख्यागतं तच्च महामुनीन्द्राः ॥१०६॥
 समस्तदृष्टं परमं बलं च, ज्ञानं च मोक्षश्च यथावदुक्तम् ।
 तथापि सूक्ष्माणि च यानि चैव, सांख्ये यथावद्विहितानि विप्राः ॥१०७॥
 विपर्ययं तस्य हितं सदैव, गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन ।
 तांश्चापि संपार्यं ततः कृतार्थाः, पतन्ति विप्रायतनेषु भूयः ॥१०८॥

इस ज्ञान के समान दूसरा ज्ञान नहीं है ॥९६-९७॥ इसमें आप संशय न करें । सांख्य का ज्ञान महान् है । यह अक्षर, ध्रुव, ब्रह्म, सनातन आदि-मध्य तथा अन्त से रहित, निर्द्वन्द्व, वर्ती, शाश्वत, कूटस्थ तथा नित्य है । प्रवक्ता महर्षि शास्त्रा में ऐसा कहते हैं कि इसीसे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होते हैं ॥९८-१००॥ समस्त ब्राह्मण, वेद तथा सामवेत्ता जन, ब्रह्मण्य, परमदेव, अनन्त तथा परम अच्युत की प्रार्थना करते हैं । परमात्मा को समुण समझने वाले लोग ऐसा कहते हैं । योग तथा सांख्य वा सम्यग् वर्णन हो गया । विप्रथेष्ठो ! सांख्य अमूर्त परमात्मा की मूर्ति है, ऐसा मुना जाता है । उनके अभिज्ञान महान् है ॥१०१-१०३॥ पृथिवी पर दो प्रकार के भूत होते हैं—एक अगम्यसंज्ञक और दूसरा गम्यसंज्ञक । उनमें गम्य श्रेष्ठ है ॥१०४॥ मुनीन्द्रो ! महत्तत्त्व ज्ञान है और महत्तत्त्व से वेद, सांख्य, योग तथा पुराणों में जो कुछ देखा जाता है, वह सांख्य से प्राप्त है । महान् इतिहासों में जो कुछ देखा जाता है, यथार्थशास्त्रों में जो विशेषता देखी जाती है और लोक में जो कुछ ज्ञान है वह सांख्य से प्राप्त है । विप्रबुद्ध ! समस्त दर्शन, परम बल, ज्ञान, मोक्ष, तप और सूक्ष्म पदार्थ—ये सब सांख्य में बतलाये गये हैं । सांख्य का अस्तित्ववाद सदैव हितकर है । सांख्यवेत्ता सतत सुख प्राप्त करते हैं । सांख्य-ज्ञान का धारण करने वाले व्यक्ति इतार्थ होकर ब्राह्मण-शरीर को प्राप्त करते हैं । फिर उस देहत्याग के बाद योगी तथा सांख्यक

१क ०५ । शमपुक्ता० । २क योगे । ३क. ०ख्याश्च जात० । ४क ख. ०मंत हि मु० । ५ख विप्रेषु
 घटन्ति । भू० ।

हित्वा च देहं प्रविशन्ति मोक्षं, दिवौकसश्चापि च योगसांख्याः ।
 अतोऽधिकं तेऽभिरता महाहं, सांख्ये द्विजा भो इह शिष्टजुष्टे ॥१०९॥
 तेषां तु तिर्यग्गमनं हि दृष्टं, नाद्यो गतिः पापकृतां निवासः ।
 न वा प्रयाना अपि ते द्विजातयो, ये ज्ञानमेतन्मुनयो न सक्ताः ॥११०॥
 'सांख्यं विशालं परमं पुराणं, महार्णवं विमलमुदारकान्तम् ।
 कृत्स्नं हि सांख्या मुनया महात्मनारायणे धारयताप्रमेयम् ॥१११॥
 एतन्मयोक्तं परमं हि तत्त्वं, नारायणाद्विश्वमिदं पुराणम् ।
 स सर्गकाले च करोति सर्गं, संहारकाले च' हरेत्, भूयः ॥११२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासऋषिसंवादे सांख्यविधिनिरूपणं
 नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपणम्,

मुनय ऊचुः

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्माद्भाऽवर्तते पुनः । किंस्वित्त्वरमित्युक्तं यस्मादावर्तते पुन ॥१॥
 अक्षराक्षरयोग्यं किं पृच्छामस्त्वां महामुने । उपलब्धं मुनिश्रेष्ठ तत्त्वेन मुनिर्पुंगव ॥२॥

मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्विजगण । महापूज्य तथा शिष्ट-जन-सेवित सांख्य में जो व्यक्ति निरत रहते हैं वे वीच-
 योनि में नहीं जाते, उनकी अधोगति नहीं होती और पापियों के यहाँ उनका निवास नहीं होता। मुनिवृन्द
 वे द्विजाति उत्तम नहीं कहलाते हैं जिन्हें सांख्य का ज्ञान नहीं है। सम्पूर्ण सांख्य विशाल, परमपुराण, महार्णव,
 विमल, उदार तथा सुन्दर है। हे सांख्य जानने वाले मुनियो ! महात्मा नारायण ने अप्रमेय ज्ञान का धारण करो।
 यह परम तत्त्व मैंने बतला दिया। नारायण से इस पुरातन विश्व की उत्पत्ति है। वे ही सृष्टिकाल में सृष्टि
 करते हैं और संहार काल में संहार करते हैं ॥१०५-११२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियो के संवाद प्रकरण में सांख्यविधिनिरूपण
 नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४०॥

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

मुनियो ने कहा—वे क्षर कौन है, जिसे प्राप्त कर जीव की पुनरावृत्ति नहीं होती है और वे क्षर कौन
 है, जिसे प्राप्त कर पुनरावृत्ति होती है। महामुने ! क्षर और अक्षर की अनिवार्यता को तत्त्वत उपलब्ध करने

११ सांख्या। २५. च तदति भू०।

त्वं हि ज्ञानविदां श्रेष्ठः प्रोच्यसे वेदपारंगः । ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः ॥३॥
तवेतच्छ्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सर्वं महामते । न तु त्स्मिन्मधिगच्छाम' शृण्वन्तोऽमृतमुत्तमम् ॥४॥

व्यास उवाच

अत्र वो वर्णमिष्यामि इतिहास पुरातनम् । वसिष्ठस्य च संवादं करालजनकस्य च ॥५॥
वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषोणां भास्करद्युतिम् । पप्रच्छ जनको राजा ज्ञानं नैऋत्यसं परम् ॥६॥
परमात्मनि कुशलमध्यात्मगतनिश्चयम् । मन्त्रावरुणिमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥७॥
'स्वच्छन्दं' सुकृतं चैव मधुरं चाप्यनुत्बणम् । पप्रच्छापि वरं राजा करालजनकः पुरा ॥८॥

करालजनक उवाच

भगवन्श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम् । यस्मिन् पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥९॥
यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेद क्षरते जगत् । यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेममनामयम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतीदं यथा जगत् । यत्र क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन चाप्यय ॥११॥
युगं द्वादशसाहस्रं कल्पं विद्धि चतुर्युगम् । दशकल्पशतावर्तमहस्तद्ब्राह्ममुच्यते ॥१२॥
रात्रिश्चैतावती राजन्यस्यान्ते प्रतिबुध्यते । सृजत्यनन्तकर्माणि महान्तं भूतमप्रजम् ॥१३॥

के लिये हम आपसे पूछते हैं। वेदपारंगत महामाग ऋषि और महात्मा यति आपको ज्ञानियों में श्रेष्ठ बतलाते हैं। महामते ! हम लोग इस बात को आपसे तत्त्वपूर्वक समझना चाहते हैं। आपके वचनानुगत का पालन करते हुए हमें तृप्ति नहीं मिल रही है ॥१-४॥

व्यास बोले—इस विषय में मैं आपको एक पुरातन इतिहास बतलाऊँगा, जिसमें वसिष्ठ तथा कराल-जनक का संवाद है। ऋषियों में श्रेष्ठ, सूर्य तुल्य कान्ति वाले और आसित पर विराजमान वसिष्ठ से राजा जनक ने मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान के बारे में प्रश्न किया। पूर्वकाल में, परमात्मा में कुशल तथा अध्यात्मज्ञान का निश्चय करने वाले, समासीन वसिष्ठ को प्रणाम कर राजा करालजनक ने अञ्जलि बौधकर स्वच्छन्द, पवित्र, मधुर तथा अस्पृष्ट तत्त्व के बारे में उनसे पूछा ॥५-८॥

करालजनक बोले—भगवन् ! मैं सनातन परब्रह्म के बारे में सुनना चाहता हूँ, जिस प्राप्त कर मनीषी लोग फिर नहीं लौटते हैं। क्षरती उसे कहते हैं, जहाँ यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो जाता है और अक्षर वह है, जो शिव, कल्याण तथा अनामय (स्वस्थ) रूप है ॥९-१०॥

वसिष्ठ बोले—पृथिवीपाल ! यह जगत् जैसे, जहाँ और जितने कालमें नष्ट होता है, यह सुनिये ॥११॥ बार हजार युग का एक कल्प होता है और दस सौ कल्पों से युक्त चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन होता है। राजन् ! (ब्रह्मा की) रात्रि भी इसी परिमाण से होती है, जिसके अन्त में आगकर ब्रह्मा अनन्त कर्मों का सर्जन करते हैं। निराकार

मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शंभुः स्वयंभुवः । यत्रोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मूलतो नृपसत्तम ॥१४॥
 अणिमा लघिमा प्राप्तिरोज्ज्वलं ज्योतिरव्ययम् । सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशरोमुखम् ॥१५॥
 सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतिः ॥१६॥
 महानिति च योगेयु विरिञ्चिरिति चाप्यय । सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः ॥१७॥
 विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः । धृतमेकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना ॥१८॥
 तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति श्रुतः । एष वै 'विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ॥१९॥
 प्रधानं तस्य संयोगादुत्पन्नं सुमहत्पुण्यम् । अहंकारं 'महातेजाः प्रजापतिनमस्कृतम्' ॥२०॥
 'अव्यक्तादव्यक्तिमापन्नं विद्यासर्गं वदन्ति तम् । महान्तं चाप्यहंकारमविद्यासर्गं एव च ॥२१॥
 अचरश्च चरश्चैव समुत्पन्नी तथैकतः' । विद्याऽविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रानुचितकः ॥२२॥
 भूतसर्गमहंकारात्तृतीयं विद्धि पार्थिव । अहंकारेण नृपते चतुर्थं विद्धि वैकृतम् ॥२३॥
 वायुर्ज्योतिरथाऽऽकाशमापोऽय पृथिवी तथा । शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥२४॥
 एवं युगपदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम् । पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमयंकृतम् ॥२५॥
 श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम् । वाहस्तौ चैव पादौ च पायुर्महं तथैव च ॥२६॥
 बुद्धोन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च । संभूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव ॥२७॥

तथा कल्याणकारी ब्रह्मा ने पहिले पंचमूर्तियों की सृष्टि करके साबार विश्व का निर्माण किया। नृपश्रेष्ठ ! उसकी उत्पत्ति मैं आदि से बतलाऊंगा ॥१२-१४॥ हिरण्यगर्भ भगवान् अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति रूप हैं। वे शम्भु, ज्योति तथा अव्यय हैं। उनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख तथा कर्ण हैं। वे सबको आवृत कर दियत हैं। योगी मे वे महान् कहे गये हैं। विरिञ्चि भी उनका नाम है। सांख्यशास्त्र मे वे बहुत नामों से पुकारे गये हैं। वे विचित्ररूप विश्वात्मा तथा एकाक्षर (ओं) है ॥१५-१७॥ जिसलिये उन्होंने अनेक रूपों से एकात्मरूप त्रैलोक्य का धारण किया इसलिये वे विश्वरूप कहलाये ॥१८॥ वे विचारयुक्त होकर आत्मा से आत्मा का सर्जन करते हैं। उनके संयोग से प्रधान उत्पन्न हुआ। तब महातेजस्वी तथा प्रजापति द्वारा नमस्कृत अहंकार 'उत्पन्न हुआ। वे अव्यक्त से व्यक्त हुए। इसका नाम विद्यासृष्टि है। महान्, अहंकार तथा अविद्यासृष्टि को भी उन्होंने पूरा किया। एक हिरण्यगर्भ से अचर और चर दोनों उत्पन्न हुए। वेद और शास्त्र के चिन्तकों ने विद्यासृष्टि तथा अविद्यासृष्टि दोनों नाम बताये हैं ॥१९-२२॥ राजन् ! मूलसृष्टि को अहंकार से तृतीय समक्षिये। अहं-कारों मे चौथा वैकृत-सृष्टि है ॥२३॥ वायु, अग्नि, आकाश, जल, पृथिवी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये दसों एक ही काल मे उत्पन्न हुए। राजेन्द्र ! पञ्चम भौतिसृष्टि को समक्षिये ॥२४-२५॥ वर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ और वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग—ये कर्मेन्द्रियाँ मन के साथ एक ही काल मे उत्पन्न

एषा तत्त्वचतुर्विंशः 'सर्वाऽऽकृतिः' प्रवर्तते । यां ज्ञात्वा नाभिश्चोचन्ति ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥२८॥
 एवमेतत्तन्मूलं त्रैलोक्यमिदमुत्तमम् । वेदितव्यं नरथेष्ठ सर्वं 'नरकाणंवे' ॥२९॥
 समक्षभूतान्धर्वं सकिनरमहोरगे । सचारणपिशाचे वै सदेवपिनिशाचरे ॥३०॥
 सर्वशकोटिमशके संपूर्तिकृमिमुपके । शुनि 'श्वपाके' चणये 'सचाण्डाले' सपुलकसे ॥३१॥
 हस्त्यश्वक्षरशार्दूले सबूके गवि चैव ह । या च मूर्तिश्च यत्किञ्चित्तर्जनेतन्निदर्शनम् ॥३२॥
 जले भुवि तथाऽऽकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः । स्यान् वेहवतामासीदित्येवमनुशुश्रुम् ॥३३॥
 'कृत्स्नमेतावत्तस्तात क्षरते' 'व्यवस्तसंज्ञकः । अहन्यहनि भूतात्मा' 'यच्चाक्षर इति स्मृतम्' ॥३४॥
 ततस्तत्क्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यथा जगत् । जगन्मोहात्मकं चाऽऽहुरव्ययताद्व्ययतसंज्ञकम्' ॥३५॥
 'महादध्वाक्षरो' नित्यमेतत्क्षरविचर्जनम्' । कथितं ते महाराज यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥३६॥
 'पञ्चविंशतिकोऽमूर्तः' 'स नित्यस्तत्त्वसंज्ञकः । सत्त्वसंश्रयणात्तत्त्वं सत्त्वमाहुर्मनीषिणः' ॥३७॥
 यदमूर्तः सृजद्व्यक्तं तन्मूर्तिमधितिष्ठति । 'चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यचमूर्तिः पञ्चविंशकः' ॥३८॥
 स एव हृदि सर्वासु मूर्तिष्व्यातिष्ठताऽऽत्मवान्' । चेतयश्चेतनो नित्यं सर्वमूर्तिरमूर्तिमान् ॥३९॥
 सर्गप्रलयधर्मेण स सर्गप्रलयात्मकः । गोचरे वर्तते नित्यं निर्गुणो गुणसंजितः ॥४०॥
 'एवमेव महात्मा च सर्गप्रलयकोटिदाः । विकुर्वाणः प्रकृतिमाध्नाभिमन्येत बुद्धिमान् ॥४१॥

हुई ॥२६-२७॥ ये चौबीस प्रकार के तत्त्व हैं, जिन्हें जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण सोच नहीं करते हैं । नरथेष्ठ ।
 इस प्रकार ये उत्तम तीनों लोक उत्पन्न हुए, जिनकी स्थिति नरक, समुद्र, यक्ष, भूत, गन्धर्व, विद्वान्, महासर्प, धारण,
 पिशाच, देवपि, राक्षस, दस (डाँस), कीट, मशक, कृमि, मूषक, कुत्ते, श्वपाक, कृष्णमृगचर्म, चाण्डाल, पुलकस, हाथी,
 घोड़े, गवें, बाघ, भेड़िय तथा गाय आदि मे है । शरीरधारिया की स्थिति जल, पृथ्वी तथा आकाश मे है अन्यत्र
 नहीं—ऐसा निश्चयपूर्वक हमने सुना है । जिसलिए यह जगत् विनष्ट होता है इसलिये इसका नाम क्षर पड़ा ।
 ससारको मोहात्मक बतलाया गया है । अव्यक्त से नि सृज होकर इसने व्यक्त सत्ता धारण की ॥२८-३५॥ महाराज ।
 यह तो मैं कह ही चका हूँ कि अक्षर महान्, नित्य तथा क्षररहित है । इसको प्राप्त कर जीव फिर लीटता नहीं है
 ॥३६॥ यह पचीसवीं निराकार तथा नित्य तत्त्व है । मनीषियों ने सत्त्व के संश्रयण से तत्त्व को सत्त्व कहा है
 ॥३७॥ निराकार जिस व्यक्त की सृष्टि करता है, वह व्यक्त साकार होता है । वह चौबीसवां तत्त्व है और
 अव्यक्त पचीसवां तत्त्व है ॥३८॥ वहीं आत्मवान्, चेतन, नित्य, सर्वमूर्ति तथा अव्यक्त सब हृदयों मे वास करता
 है । वह सृष्टि तथा प्रलयरूप है । वह गोचर मे सदा विद्यमान रहता है और वह निर्गुण तथा सगुणभी
 है ३९-४० प्रकृतिमान् वह महात्मा करोड़ों सृष्टि-प्रलयोंको करते हुए भी अविमान नहीं करता ॥४१॥

१क ०वीं प्रवर्तिवर्त । २ग ०कृतिपु व० । ३ख ०र्णवात् । स० । ४क ०के कृपणे पशुचा० । ५ख
 ०ण्डालपु० । ६क ह । यच्च मूर्तं च य० । ७क सजितम् । अ० । ८ख ०रमा तदक्षरमिति । ९ग ०म् । एत-
 दक्षर० । १० ०वताव्यक्त० । ११क ग ०वाप्रजो नि० । १२ख ग ०रनिदर्शन० । १३ख ०विमो मू० ।
 १४ग विष्णोः । १५क ०तिको व्य० । १६ख ०म् । अचेताश्चे० । १७क एष एव म० ।

तिपंण्योनिःसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्त्वपि । उत्पद्यति तपोयोगाद्गुणैः 'सह गुणक्षयात् ॥२॥
 मनुष्यत्वाद्विषयं याति, देवो मनुष्यमेति च, मनुष्याभिरयस्यानमालय' प्रतिपद्यते ॥३॥
 कोपकारो यथाऽऽत्मानं कीटः समभिरुन्धति । सूत्रतन्तुगुणैर्नित्यं तथाऽयमगुणो गुणैः ॥४॥
 द्वन्द्वमेति च निर्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु । शीर्षरोगोऽक्षरोगे च दन्तशूले गलग्रहे ॥५॥
 जलोदरेऽतिसारे च गण्डमालाविचर्चिके । श्वेतकुष्ठेऽग्निदग्धे च सिन्ध्यापस्मारयोरपि ॥६॥
 यानि चान्यानि द्वानि प्राकृतानि शरीरिणाम् । उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येवाऽऽत्माऽभिमन्यते' ॥७॥
 अभिमानातिमानानां तथैव सुकृतान्यपि । एकवासाश्चतुर्वर्ताः शायी नित्यमधस्तथा ॥८॥
 पण्डकशायी च तथा धीरासनगतस्तथा । धीरमासनमाकाशे तथा शयनमेव च ॥९॥
 इष्टकाप्रस्तरे चैव चक्रप्रस्तरे तथा । भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्यानुलेपनः ॥१०॥
 धीरस्थानाम्मुपाके च शयनं फलकेषु च । विविधासु च शय्यासु फलगृह्यान्वितासु च ॥११॥
 उद्याने खललग्ने तु क्षीमकृष्णाजिनान्वितः । मणिवालपरीधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छिद्यः ॥१२॥
 सिंहचर्मपरीधानः पट्टवासास्तथैव च । फलक(?) परिधानश्च तथा कटकवस्त्रधृक् ॥१३॥
 कटकवसनश्चैव चौरवासास्तथैव च । वस्त्राणि चान्यानि बहून्पभिमन्य च बुद्धिमान् ॥१४॥
 भोजनानि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च । एकराप्रान्तराशित्वमेककालिकभोजनम् ॥१५॥

पर वह मित्र नहीं होता है ॥१॥ हजारोनीच योनियों में और कदाचित् देवयोनियों में भी वह तपोबल से गुणा के साथ उत्पन्न होता है ॥२॥ गुणों की शृङ्खला तथा क्षय से जीव मनुष्यत्व से देवत्व की ओर देवत्व से मनुष्यत्व की प्राप्ति करता है । और मनुष्यत्व से प्रलयकाल तक नरक को भी प्राप्ति करता है ॥३॥ जैसे मकरा मृत-तन्तु रूप गुणों से अपने को अवद्वन्द्व कर लेता है वैसे यह निर्गुण जीव गुणों से अपने को फैला लेता है ॥४॥ यह निर्वन्द्व होते हुए भी तत्तत्तुल्योन्मियों में द्वन्द्व को प्राप्ति करता है । शरीररोग, नेत्ररोग, दन्तपीडा, गलव्याधि, जलोदर, अतिसार, कण्डमाला, चंचल, श्वेतकुष्ठ, ताप, खुजली, मिराई और जो दूसरे प्राकृत द्वन्द्व हैं, वे शरीरों में उत्पन्न होते हैं, परन्तु जीव उन्हें अपना भाग बँटता है ॥५॥ जीव द्वन्द्वों की तरह पुण्यों को भी धनता है । मनुष्य सिद्धि की आकांक्षा से विविध वृष्टों की भोगता है । वह एक घर तथा चार घरों की धारण करता है, मेढक की तरह सोता है, धीरासन लगाता है, आकाश में धीरासन लगाकर शयन भी करता है । ईट व आकार के पत्थर, मडलाकार पत्थर तथा नस्मानुत पत्थर पर सोता है, भूमि शय्या पर अवस्थित होकर लेप लगाता है । धीरो के स्थान में जल पीता है पाक बनाता है और तख्तों पर तथा फला व गुच्छों से मुक्त अनेक प्रकार की शय्याओं पर सोता है । खलिदान स लगे हुए उद्यान में रेशमी वस्त्र तथा कृष्ण मृगचर्म से मुक्त होकर मणि तथा पुँछ के बाल धारण करता है । व्याघ्रचर्म, सिंहचर्म, पट्टवस्त्र, फलक (?), स्वर्ण-वस्त्र धारण करता है ॥८-१३॥ (कमी) एकमात्र स्वर्णवस्त्र तो कमी खड्गवस्त्र धारण करता है । कभी अन्य प्रकार के बहुत से वस्त्रों को पहनता है, अनेक प्रकार के भोजन करता है, विविध रत्नों को धारण

१क ०हृगुप्त० । २ग ०मानुष्य प्र० । ३ख ०मिगच्छति । अ० । ४ख ०इव दुर्वा० । ५क ०य बुधस्य प्र० । ६प. ०त । धालिवान प्र० । ७ख० पटवा० । ८ख. तपोदकमुव० ।

'चतुर्थाष्टमकालः' च। पञ्चकालिकमेव च। यद्वात्रभोजनश्चैव तथा चाष्टाहभोजन ॥१६॥
 मासोपवासो मूलाशी फलाहारस्तथैव च। वायुभक्षश्च पिण्याकदधिगोमयभोजन ॥१७॥
 गोमूत्रभोजनश्चैव काशपुष्पाशनस्तथा। शैवालभोजनश्चैव तथा चान्येन वर्तयन् ॥१८॥
 वर्तयञ्चोर्णपर्णैश्च प्रकीर्णफलभोजन। विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सिद्धिकादृश्या ॥१९॥
 चान्द्रायणानि विधिवल्लिङ्गानि विविधानि च। 'चातुराश्रम्ययुक्तानि धर्माधर्माश्रयाण्यपि ॥२०॥
 उपाश्रयानप्यपरान्याखण्डान्विविधानपि। विविक्ताश्च शिलाछायास्तथा प्रलवणानि च ॥२१॥
 पुलिनानि विविक्तानि विविधानि वनानि च। काननेषु विविक्ताश्च शैलाना महतीर्गुहा ॥२२॥
 नियमान्विविधाश्चापि विविधानि तपासि च। यज्ञाश्च विविधाकारान्विद्याश्च विविधास्तथा ॥२३॥
 धर्णवपथ द्विजक्षत्रवंश्यशूद्रास्तथैव च। दानं च विविधाकार दोनान्धकृपणादिषु ॥२४॥
 'अभिमन्येते सधातु तथैव विविधान्गुणान्। सत्त्व रजस्तमश्चैव धर्मार्थौ काम एव च' ॥२५॥
 प्रकृत्याऽऽत्मानमेवाऽऽत्मा एव प्रविभजत्युत'। स्वाहाकारवपदकारौ स्वधाकारनमस्त्रिये ॥२६॥
 यजनाध्ययने दानं तथैवाऽऽहु प्रतिग्रहम्। याजनाध्यापने चैव तथाऽन्यदपि किञ्चन ॥२७॥
 जन्ममृत्युविधानेन तथा विशसनन च। शुभाशुभमय सर्वमेतदाहु सनातनम् ॥२८॥
 प्रकृतिं कुरुते देवो भय प्रलयमेव च। दिवसान्ते गुणानेतानतीत्येकोऽवतिष्ठते ॥२९॥

करता है बीच में एक रात को छोड़कर भोजन करता है एक ही समय भोजन करता है चाये आठव तथा छठ प्रहर में भोजन करता है महीने में छह रात भोजन करता है आठ दिन भोजन करता है महीने तक उपवास करता है व'द-मूल फल खाना है वायुभक्षण करता है तिलकक दही तथा गोबर खाता है गोमूत्र तथा काशपुष्प भोजन करता है सिवार भोजन करता है ज ण होकर शडे हुए फल-पत्ते खाता है चांद्रायण व्रत करता है विविध बिल्लो को धारण करता है चारो आश्रम व धर्म अवध को करता है, अनेक प्रकार के पाखण्डो को करता है एवा'त स्थान में शिला-खण्ड पर तथा छाया व नीचे विधाम करता है पुलिनो पर विविध वनों में कानना में पवतो पर तथा गुफाओं में रहता है विविध नियम तथा यज्ञ करता है अनेक विद्याओं को पढ़ता है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जातिपा में उत्पन्न होत है दोन अथ तथा कृपणा को दान देता है रज सत्त्व तथा समोगुण को धारण करता है धर्म अर्थ और काम का साधन करता है ॥१४-२५॥ इस प्रकार आत्मा प्रकृति से आत्मा का विभाग करता है। स्वाहाकार वपदकार स्वधाकार नमस्कार, यजन, अध्ययन, दान प्रतिग्रह याजन अध्यापन जग मृत्यु, गुण अशुभ—ये सब आत्मा ही है ॥२६-२८॥ प्रकृतिदेवी भय और प्रलय करती है। दिवसान्त (प्रलय) में इन गुणा का अतिक्रमण करने एक आत्मा ही अवस्थित रहता है। जैसे सूय रश्मिजाल को समेट लेता है, वैसे आत्मा काठ वा नियमन करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् आत्मा की श्रीढा के लिये माना जाता है। आत्मा विविध गुणा को धारण करके सृष्टि तथा प्रलय करता है। बर्ष के भाग पर आरुढ होकर त्रिगुणात्मक तथा त्रिगुणाधिप आत्मा कर्म एवम्

१६ ०कालश्च य०। २४ ०भक्षोऽम्भुपि०। ३६ ०ति वणधर्माश्र०। ४६ ०मन्य तु स०।
 ४ ०मन्यवस०। ५६ ५। स कृत्वाऽऽत्मा०। ६६ ४ ०जतुन। स्वा०। ७६ ५ त्रियापयम्।

रश्मिजालमिवाऽऽदित्यस्तत्फलं संनिपच्छति । एवमेवैष तत्सर्वं श्रीद्वार्यमभिमन्यते ॥३०॥
 आत्मरूपगुणानेतान्विविधान्दृश्यप्रियान् । एवमेतां प्रकुर्वाणः सर्गप्रलयधर्माणि ॥३१॥
 क्रियां क्रियापये रक्तस्त्रिगुणस्त्रिगुणाधिपः । क्रियाक्रियापयोपेतस्तथा तदिति मन्यते ॥३२॥
 प्रकृत्या सर्वमेवेदं जगदन्धोक्तं विभो । रजसा तमसा चैव व्याप्तं सर्वमनेकधा ॥३३॥
 एवं द्वंद्वान्यतीतानि मम घटन्ति नित्यशः । भूत एतानि जायन्ते प्रलये यान्ति मामपि ॥३४॥
 निस्तर्तव्याप्ययंतानि सर्वाणीति नराधिप । मन्यते पक्षद्वित्यासर्थेव सुकृतान्यपि ॥३५॥
 भोक्तव्यानि ममेतानि देवलोकगतेन वै । इहैव चैनं भोक्ष्यामि' शुभाशुभफलोदयम् ॥३६॥
 सुप्तमेवं तु कर्तव्यं सकृत्कृत्वा सुखं मम । यावदेव तु मेसौख्यं जात्यां जात्यां भविष्यति ॥३७॥
 भविष्यति न मे दुःखं कृतेनेहाप्यनन्तकम् । 'सुखदुःखं हि मानुष्यं निरये चापि मज्जनम् ॥३८॥
 निरयाश्चापि मानुष्यं कालेनेप्याम्यहं पुनः । मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौर्ण्यं पुनः ॥३९॥
 मनुष्यत्वाच्च 'निरयं' पर्यायेणोपगच्छति । एष एवं द्विजातीनामात्मा वै स गुणैर्वृतः ॥४०॥
 तेन देवमनुष्येभ्यः निरयं चोपपद्यते । ममत्वेनाऽऽवृत्तो नित्यं तत्रैव परिवर्तते ॥४१॥
 सर्गकोटिसहस्राणि मरणान्तासु मूर्तिषु । य एवं कुर्वते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४२॥
 स एव फलमाप्नोति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान् । प्रकृतिः कुर्वते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४३॥
 प्रकृतिश्च तयाऽऽप्नोति त्रिषु लोकेषु कामगः । तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोकं तथैव च ॥४४॥

कर्ममार्ग से युक्त होकर कर्म करता है ॥२९-३२॥ परमात्मा की प्रकृति ने सम्पूर्ण जगत् को अच्छा बना दिया है । रजोगुण तथा तमोगुण से सब कुछ व्याप्त है ॥३३॥ इस प्रकार जीव के द्वन्द्व नित्य वर्तमान रहते हैं । जीव से ही इनकी उत्पत्ति होती है और प्रलय में ये जीव को ही प्राप्त होते हैं ॥३४॥ राजन् ' ये समस्त द्वन्द्व दुष्पार हैं । उसी तरह पुण्यो को भी समझिये । देवलोक जाने पर भी इनका भोग करना पड़ता है । शुभ और अशुभ कर्मों का फल— सुख और दुःख—सब तक भोगना पड़ता है, जब तक जन्म-मरण होते रहते हैं । जीव को सुख, दुःख, मनुष्यता तथा नरक-भोग भी प्राप्त होता है । समय पाकर जीव पुनः नरक से मनुष्य-योनि में भी जाता है । वह मनुष्यत्व से देवत्व को, देवत्व से मनुष्यत्व को और मनुष्यत्व से नरक को भी कालजन्म से प्राप्त करता है । इस प्रकार द्विजातियों का आत्मा गुणों से आवृत है ॥३५-४०॥ इसलिये जीव देवयोनि में, मनुष्योनि में तथा नरक में भी जाता है । ममता से युक्त होकर जीव सहस्रो करोड़ सृष्टियों में सुख-दुःख भोगता रहता है ॥४१॥ जो इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्म करता है, वह शुभ-अशुभ फल पाता है । तीनों लोक में जाने वाली प्रकृति शुभ-अशुभ कर्म करती है और तदनु रूप फल पाती है । तिर्यग्योनि, मनुष्ययोनि तथा देवयोनि—ये तीन स्थान प्रकृति के माने जाते हैं ।

त्रोणि स्यान्तानि चैतानि जानीयात्प्राकृतानि ह । अलिङ्गप्रकृतित्वाच्च लिङ्गैरप्यनुमोयते ॥४५॥
 तथैव पौरुषं लिङ्गमनुमानाद्धि मन्यते । स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिङ्गमन्नणम् ॥४६॥
 षण्णद्वाराप्यधिष्ठाय 'कर्माण्यात्मनि मन्यते । श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाप्यप्य ॥४७॥
 रागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्विह । गुणः सह । अहमेतानि धं कुर्वन्ममेतानोन्द्रियाणि ह ॥४८॥
 निरिन्द्रियो हि मन्येत षण्णवानस्मि निर्ब्रणः । अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालं कालमात्मनः ॥४९॥
 असत्त्वं सत्त्वमात्मानममृतं मृतमात्मनः । अमृत्युं मृत्युमात्मानमचरं चरमात्मनः ॥५०॥
 अक्षेत्रं क्षेत्रमात्मानमसङ्गं सङ्गमात्मनः । अतत्त्वं सत्त्वमात्मानमभयं भवमात्मनः ॥५१॥
 अक्षरं क्षरमात्मानमबुद्धत्वाद्धि मन्यते । एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥५२॥
 सगंकोटिसहस्राणि पतन्तान्तानि गच्छति । जन्मान्तरसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति ॥५३॥
 त्रिद्व्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च । चन्द्रमा इव 'कोशानां पुनस्तत्र सहस्रशः ॥५४॥
 नोयतेऽप्रतिबुद्धत्वादेवमेव कुबुद्धिमान् । 'कला पञ्चदशी योनिस्तद्धाम' इति पठ्यते ॥५५॥
 'नित्यमेव विज्ञानोहि सोम धं 'योऽशशकैः । 'कलया जायतेऽजस्रं पुनः पुनरबुद्धिमान्" ॥५६॥
 धीमांश्चायं न भवति नृप एवं हि जायते । योऽशो तु कलासूक्ष्मा स सोम उपधायताम् ॥५७॥

जीव अलिङ्गप्रकृतिव' होते हुए भी लिंगों द्वारा समझा जाता है ॥४२-४५॥ उसी तरह पौरुषलिङ्ग अनुमान से माना जाता है । वह अक्षर प्राकृत लिंग को प्राप्त कर षण्णद्वार को अधिष्ठित करने अपने में कर्मों को मानता है ॥४६॥ श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा रागआदि, गुणों में गुणों के साथ विद्यमान रहते हैं । जीव इन्द्रिय-रहित होते हुए भी अज्ञानता से समझ बैठता है कि मैं यह कार्य करता हूँ और मेरी ये इन्द्रियाँ हैं ॥४७-४८॥ वह अलिङ्ग (अरूप) को लिंग, असत्त्व को सत्त्व, अमृत को मृत, अमृत्यु को मृत्यु, अक्षर को क्षर, अक्षेत्र को क्षेत्र, असग को सग, असत्त्व को सत्त्व, अभय को भय और अक्षर को क्षर मान लेता है ॥४९-५३॥ इस प्रकार अविद्वानों की सेवा से सहस्रकोटि सृष्टि पर्यन्त जीव का अप पतन होता रहता है । सहस्रो बार उसने जन्म-मरण होते हैं ॥५२-५३॥ त्रिद्व्योनि, मनुष्योनि तथा देवयोनि में भी वह जाता है । जैसे चन्द्रमा कोसो (लोकों में ?) जाता है वैसे मूर्ख मनुष्य अबोध के कारण तत्त्वत् योनिया भ्रम जाता है ॥५४॥ चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला योनि कहलाती है । उसका नाम घाम भी है । सोलह अशो में युक्त चन्द्रमा को नित्य ही समझिये । अबुद्धिमान् मनुष्य बार-बार कला से उत्पन्न होता है । नृप ! वह ऐसे ही उत्पन्न होता रहता है, पर बुद्धिमान् नहीं होता । सोलहवीं कला सूक्ष्म है । उसे चन्द्रमा समझिये ॥५५-५७॥

१स ०म् । प्राणाद्वारा ० । २व ग कर्माण्यात्म ० । ३ग ०ति । धाम्ना धामस ० । ४व. लोचानां ।
 ५ग कला । ६व ग दश । ७व पयते । ८व ग ०मेन्द्रिया ० । ९व ०द्वारात्मनम् । क० । ग. ०द्वी
 कला । १० । १०क कला पञ्चदशी तेजस्वी पुनरप्य कुबु ० । ११ग. ०न् । धाम तस्योपयुञ्जति भूय एव तु जा ० ।

न तूपयुज्यते देवदेवानपि युनक्ति सः। ममत्वं क्षपयित्वा तु जायते नृपसत्तम ॥५८॥
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु स एव त्रिगुणो भवेत् ॥५९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठं प्रति मोक्षधर्मविषयको जनकप्रश्नः

जनक उवाच

अक्षरक्षरयोरेव द्वयोः सम्बन्ध इष्यते। स्त्रीपुंसयोर्वा सम्बन्धः स वै पुरुष उच्यते ॥१॥
ऋते तु पुरुषं नेह स्त्री गर्भधारयत्युत। ऋते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तते तथा ॥२॥
अन्योन्यस्माभिसंयन्वादन्योन्यगुणसंश्रयात्। रूपं निर्वर्तयेदेतदेवं सर्वास्तु योनिषु ॥३॥
रत्नपर्यमसितं प्रोवादन्योन्यगुणसंश्रयात्। ऋतौ निर्वर्तते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम् ॥४॥
ये गुणाः पुरुषस्येह ये च मातुर्गुणास्तथा। अस्मि स्नायु च मज्जा च जानीमः पितृतो द्विज ॥५॥

श्रीम देवताओं से उपयुक्त नहीं होते, पर वे देवताओं को उपयुक्त करते हैं। वे ममत्व का नाश करके उत्पन्न होते हैं। वे त्रिगुणात्मिका प्रकृति के तीनों गुण हैं ॥५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और जनक के संवाद-प्रकरण में
दो सी ब्यालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४२॥

अध्याय २४३

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

जनक बोले—अक्षर और क्षर (पुरुष और प्रकृति) दोनों का सम्बन्ध होता है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पुरुष कहलाता है ॥१॥ पुरुष के बिना स्त्री गर्भ-धारण नहीं करती है और स्त्री के बिना पुरुष रूप-धारण नहीं करता है ॥२॥ परस्पर के सम्बन्ध तथा गुणों के आदान-प्रदान से समस्त योनियों में रूप की निष्पत्ति होती है ॥३॥ रत्नकालिन्ध अत्यन्त सयोग से तथा परस्पर गुणाधान से अद्भुतभी होने के पश्चात् रूप का निष्पादन किया जाता है। यह मैं उदाहरण के लिये बतलाऊँगा ॥४॥ कुछ गुण पुरुष के होते हैं और कुछ माता के।

१क न भूयश्चेत्य० २ग द्विगुणो। ३ योर्मगवत्सम्बन्धस्तु तदुच्य०। ४क ०५ प्रतिनिवर्तते। अ०।
५ख. ०५। गत्ययनिमित्त०। ६क च याति न पि०।

त्वद्भासिशोणितं चेति मातृजान्यनुशुश्रुम् । एवमेतद्विजथेष्ट वेदशास्त्रेषु पठ्यते ॥६॥
 प्रमाणं यच्च वेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते । वेदशास्त्रप्रमाणं च प्रमाणं तत्सनातनम् ॥७॥
 एवमेवाभिसम्बन्धौ नित्यं प्रकृतिपूरणी । यच्चापि भगवंस्तस्मान्मोक्षधर्मो न विद्यते ॥८॥
 'अथवाऽनन्तरकृतं किंचिदेव निदर्शनम् । तन्ममाऽऽश्चक्ष्व तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वदा ॥९॥
 मोक्षकामा वयं चापि काङ्क्षामो यदनामयम् । अजेयमजरं नित्यमतीन्द्रियमनीश्वरम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम् । एवमेतद्यथा वक्ष्ये तत्त्वग्राही यथा भवान् ॥११॥
 धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः । न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथातत्त्व नरेश्वर ॥१२॥
 यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः । न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्वारणं वृथा ॥१३॥
 भार स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेति यः । यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा ॥१४॥
 ग्रन्थस्यार्थं स पृष्टस्तु मादृशो वक्तुमर्हति । यथातत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति ॥१५॥
 न यः समुत्सुकः कश्चिद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान् । स कथं मन्दवित्तानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात् ॥१६॥
 अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि धाई यः कुरुते नरः । लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापी नरकं व्रजेत् ॥१७॥

द्विज ! अस्मि, स्नायु तथा मञ्जा—ये पिता से प्राप्त होते हैं और त्वचा, मांस तथा शोणित—ये माता से प्राप्त होते हैं । वेद-शास्त्रों में ऐसा ही बतलाया गया है ॥५-६॥ वेदों और शास्त्रों में जो प्रमाण पठित है तथा वेद-शास्त्रों का जो प्रमाण है, वह सनातन प्रमाण है ॥७॥ प्रकृति-गुरु का ऐसा ही नित्य सम्बन्ध है । भगवन् ! उससे बढ़कर कोई मोक्षधर्म नहीं है । अथवा इसके बाद कोई उदाहरण हो तो वह मुझे बतलाइए । आपने तत्त्व का प्रत्यक्ष किया है ॥८-९॥ मैं भी मोक्ष का इच्छुक हूँ । अनामय, अजेय, अजर, नित्य, अतीन्द्रिय तथा ईश्वर से भी परे ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१०॥

वसिष्ठ बोले—आपने वेद-शास्त्रों का उदाहरण देकर कहा है । आप तत्त्वग्राही हैं । मैं उसी प्रकार बतलाऊंगा जैसा आप चाहते हैं । ॥११॥ राजन् ! आप वेद-शास्त्रों के ग्रन्थों को धारण करते हैं, पर उनके यथार्थ तत्त्व को नहीं जानते हैं ॥१२॥ जो व्यक्ति वेद-शास्त्रों के ग्रन्थ-धारण में निरत रहता है, वह ग्रन्थों से तत्त्व को नहीं जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण करना व्यर्थ है ॥१३॥ जो ग्रन्थ के अर्थ को नहीं जानता है, वह केवल भारवाही है । जो ग्रन्थ के तत्त्व को जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण व्यर्थ नहीं है ॥१४॥ उससे ग्रन्थ का अर्थ पूछने पर वह मेरी तरह बतला सता है । क्योंकि वह तत्त्व को समझने के कारण उससे अर्थ को प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ जो स्थूलबुद्धि वाला व्यक्ति ग्रन्थ के अर्थ को जानने के लिये उत्सुक नहीं रहता है, वह जलज जन निर्णयपूर्वक ग्रन्थ को कैसे बतलाएगा ॥१६॥ ग्रन्थ के तत्त्व को न जानकर जो व्यक्ति लोभ से अथवा दम्भ से विवाद करता है, वह पापी

निर्णय चापि छिद्रात्मा न तद्वक्ष्यति तत्त्वतः । सोऽप्यीहास्यार्थतत्त्वज्ञो यस्मान्नेवाऽऽत्मवानपि ॥१८॥
तस्मात्त्व शृणु राजन्द्र यथेतदनुदृश्यते । यथा तत्त्वेन साख्येषु योगेषु च महात्मसु ॥१९॥
यदेव योगा पश्यन्ति साख्यः तदनुगम्यते । एक साख्य च योग च य पश्यति स बुद्धिमान् ॥२०॥
त्वद्वर्मास हृदिर मेद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च । एतदेन्द्रियक तात यदभवानित्यमात्थ माम् ॥२१॥
द्रव्यादद्रव्यस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियाविन्द्रिय तथा । देहाददेहमवाप्नोति बीजादबीज तथैव च ॥२२॥
निरिन्द्रियस्य बीजस्य निद्रव्यस्यापि देहिनः । कथं गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मन ॥२३॥
गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव विरमन्ति च । एव गुणा प्रकृतिजा जायन्ते न च यान्ति च ॥२४॥
त्वद्वर्मास हृदिर मेद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च । अण्टो तान्यय शुक्लण जानीहि । प्रावृत्तन वै ॥२५॥
गुमाश्चैवागुमाश्चैव स्त्रीलिङ्ग प्राकृत स्मृतम् । वायुरेव गुमाश्चैव रसः इत्यभिधीयत ॥२६॥
अलिङ्गा 'प्रकृतिर्लिङ्गैरुपलभ्यते' साऽऽत्मजः । यथा पुष्पफलानित्य मूलं चामतपस्तथा ॥२७॥
एवमप्यनुमानेन स लिङ्गमुपलभ्यते । पञ्चाविंशतिकस्तात लिङ्गेषु नियतात्मक ॥२८॥
अनादिनिधनोऽनन्त सवदर्शनकेवलः । केवल त्वभिमानित्वादगुणेषु गुण उच्यते ॥२९॥
गुणा गुणवत सन्ति निर्गुणस्य कुतो गुणा । तस्मादव विजानन्ति ये जना गुणदर्शिन ॥३०॥

नरक को जाता है ॥१७॥ छिद्रा-वेपी व्यक्ति तत्त्वतः विणय भी नहीं कर पाता है। राजन् ! आप जिसलिए तत्त्व को नहीं जानते हैं इसलिये सुनिये। साख्य और योग में तत्त्वतः कुछ भी अंतर नहीं है। योग जो यथाज्ञाता है साख्य भी वही धरता है। जो साख्य और योग को एक समझता है वही बुद्धिमान् है ॥१८२०॥ 'वचा मास रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि तथा स्नायु—ये इन्द्रियसम्बन्धी' हैं। द्रव्य से द्रव्य को इन्द्रिय से इन्द्रिय को देह से देह को और व 'ज' से बीज की उत्पत्ति होती है। निरिन्द्रिय निर्बीज तथा निद्रव्य प्राणी से गुणों की उत्पत्ति वसे होगी ॥२१२३॥ गुण गुणों से उत्पन्न होते हैं और वही विराम करते हैं। इस प्रकार प्रकृति से गुण उत्पन्न होते हैं किन्तु वे चले नहीं जाते हैं ॥२४॥ त्वचा मांस रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि स्नायु—ये आठ बीज से उत्पन्न होते हैं। पुंलिंग स्त्रीलिंग तथा नपुंसक—ये तीन प्राकृतिक हैं। यह वायु पुरुष ही है और इसको रस कहते हैं ॥२५२६॥ प्रकृति अलिङ्ग है। आत्मजन्म लिंगों से वह उपलब्ध होती है। जैसे पुष्पा और फलों के नियम मूल रूप तथा अमूल रूप की उपलब्धि होती है इसी प्रकार अनुमान से वह लिंग उपलब्ध होता है ॥२७३॥ तात ! पचीसवा तत्त्व जो आदि, अंत तथा मरण से रहित है और सभस्त दाना में एक है वह लिंगा मनियतल्लिङ्ग है। वह कवल अभिमान से गुणों के बीच गुण बहलता है ॥२८२९॥ गुणवान् के गुण होते हैं निर्गुण के गुण कहा से होंगे ? इसलिये जो व्यक्ति गुणदर्शी हैं वे ऐसा जानते हैं ॥३०॥ अब यह गुणवान् आत्मा इन प्राकृतिक गुणा का अभिमान करता है

१क ०ते। याथातथ्येन। २ग साख्यैस्तदभिकथ्यते। ३व जायन्ते। ४क स शुभम्। ५क रेत।
६क ०लिङ्ग उप०। ७ग ०ति चारुम०। ८ग ०त्मकम्। ९०। १ग ०वलम्। के०। १०क ०ल
घलवानीयगुणै०। ११क ०गुणश्च कु०।

यदा त्वेय गुणानेतान्प्राकृतानभिमन्यते । तदा स 'गुणवानेव गुणभेदान्प्रपश्यति ॥३१॥
 यत्तदबुद्ध पर प्राहु साख्ययोग च सर्वस्य । बुध्यमान महाप्राज्ञ प्रबुद्धपरिवर्जनात् ॥३२॥
 अप्रबुद्ध यथा व्यक्त स्वगुणं प्राहुरीश्वरम् । निर्गुण चश्वर नित्यमधिष्ठातारमेव च ॥३३॥
 प्रकृतेश्च गुणानां च पञ्चविंशतिकं बुधा । साख्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमंयिण ॥३४॥
 यदा प्रबुद्धमव्यक्तमवस्थात् (प) ननी (भी) रव । 'बुध्यमान न बुध्यन्तः स्वगच्छन्ति सम' तदा ॥३५॥
 एतन्निदर्शनं 'सम्यग्जनं सम्यगनुदशनम् । बुध्यमानं प्रबुध्यन्ते द्वाभ्यां पृथग्विदम् ॥३६॥
 परस्परणतदुक्तं क्षराक्षरनिदर्शनम् । एकत्वमक्षरं प्राहुर्नामत्वं क्षरमुच्यते ॥३७॥
 'पञ्चविंशतिनिष्ठोऽयं तदा सम्यगप्रचक्षते । एकत्वदर्शनं चास्य नानात्वं चास्य दशनम् ॥३८॥
 'तत्त्ववित्तत्त्वयोरव पृथग्विदं निदर्शनम् । पञ्चविंशतिभिस्तत्त्वं तत्त्वमाहुर्मनीषिण ॥३९॥
 निस्तत्त्वं पञ्चविंशस्य परमाहुर्मनीषिण । वर्ज्यस्य 'वर्ज्यमाचार' तत्त्वं तत्त्वात्सनातनम् ॥४०॥

करालजनक उवाच

नानात्वं कत्वमित्युक्तं त्वयंतद्विजसत्तम । पश्यतस्तद्धि सविधमेतयोर्वे निदर्शनम् ॥४१॥
 तथा 'बुद्धप्रबुद्धाभ्यां' बुध्यमानस्य चानघ । स्थूलबुद्ध्या न पश्यामि तत्त्वमतं सशय ॥४२॥
 अक्षरक्षरयोर्वक्त त्वया यदपि कारणम् । तदप्यस्मिन्बुद्धित्वात्प्रनष्टमिव भेज्जघ ॥४३॥

तब यह गुण भेदों को देखता है । महापंडितों ने कहा है कि साख्य और योग बुद्धि से परे होत हुए भी समझे जाते हैं । साख्य और योग में प्रवीण विद्वान् अप्रबुद्ध अव्यक्त ईश्वर निर्गुण नित्य तथा अधिष्ठाता परमात्मा को जो प्रकृति तथा गुणों का पचीसवां तत्त्व है जानते हैं । जब प्रबुद्ध और अव्यक्त आत्मा को अवस्थित करने से भी पुरुष जाने जाते हुए आत्मा को नहीं जानते हैं तब वे सम भाव को जानते हैं । यह सम्यक् दृष्टान्त है न कि सम्यक् निरीक्षण । हे शत्रुघ्न का दर्शन करने वाले ! तत्त्ववेत्ता जन इन दोनों से पृथक् बुद्धिमान् आत्मा को जानते हैं ॥३१-३६॥ क्षर और अक्षर का निदान परस्पर बतलाया गया है । एकाक्षर को ब्रह्म है और नानात्वं क्षर को कहते हैं । जीव पचीसवें तत्त्व में प्रविष्ट होने पर एकाक्षर तथा नानात्वं का निदान करता है । तत्त्ववेत्ता और तत्त्व के बारे में ही यह दृष्टान्त बतलाया गया है । मनीषियों ने पचीस तत्त्व बतलाये हैं परंतु पचीसवें तत्त्व को निस्तत्त्व कहा गया है । वर्जनीय का वर्जनीय आचार तत्त्व से बढकर सनातन तत्त्व है ॥४०॥

करालजनक बोले—द्विजप्रेष्ठ ! आपने नानात्वं तथा एकाक्षर के बारे में कहा है । परंतु दोनों के दृष्टान्त में भ्रम सादेह है । मैं मदबुद्धि होने के कारण इस तत्त्व को नहीं समझ रहा हूँ । निष्ठाप ! अक्षर और क्षर का कारण जो आपने बतलाया वह भी चञ्चलबुद्धि होने के कारण मैं नहीं समझ सका । इसलिये नानात्वं तथा एकाक्षर

१ग ० व परमेनावप । २ग ० व । प्रबुद्धिमा महाप्राज्ञ प्र० । ३ग ० माने न । ४ग ० नो न श० । ५ग मठ । ६ग ० म्याग यदशनद० । ७ग ० तिविष्णोऽयं । ८ग ० तद्विस्तृतत्वं । ९ग ० वस्य । १०ग ० वरमात्मन व० । ११ग ० नृद प्र० । १२ग ० आत्मा बु० ।

[स्याणवच्चाप्यकम्प्यः स्याद्वाक्वच्चापि निश्चल । बुद्ध्या विधिविधानज्ञस्ततो युक्तं प्रचक्षते ॥५५॥
 न शृणोति न चाऽऽद्याति न च पश्यति किंचन । न च स्पर्शविज्ञानाति न च सकल्पते मनः ॥५६॥
 न चापि मन्यते किंचिन्न च बुध्येत काष्ठवत् । तदा प्रकृतिमापन्नं युक्तमाहुर्मनीषिणः ॥५७॥
 न भाति हियया दीपो दीप्तिस्तद्वच्च दृश्यते । निलिङ्गश्चापश्चोर्ध्वं च तिर्यङ्गतिमवाप्नुयात् ॥५८॥
 तदा तदुपपन्नश्च यस्मिन्दृष्टे च कथ्यते । हृदयस्योन्तरात्मेति ज्ञेयो ज्ञस्तात मद्विधे ॥५९॥
 निर्धूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिवान् । वेद्युतोऽग्निरिवाऽकाशे पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥६०॥
 य पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः । ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ह्ययोनिममृतात्मकम् ॥६१॥
 तदेवाऽऽहुरण्म्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम् । सर्वत्र सर्वभूतेषु श्रुय तिष्ठन्न दृश्यते ॥६२॥
 बुद्धिद्रव्येण दृश्येन मनोदीपेन लोकवृत् । महत्तममसत्तात पारे तिष्ठन्न तामसः ॥६३॥
 तमसो हूर इत्युक्तस्तत्त्वज्ञेर्वेदपारंग । विमलो विमलश्चैव निलिङ्गोऽलिङ्गसगः ॥६४॥
 योग एव हि लोकानां किमन्यद्योगलक्षणम् । एव पश्यन्प्रपश्येन आत्मानमजर परम् ॥६५॥
 योगदर्शनमेतावदुक्तं ते तत्त्वतो मया । साध्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसंख्यानदर्शनम् ॥६६॥

विज्ञान को जानने वाला योआत्मास बरे ॥५५॥ जब यागी न मुक्त है न सुषता है न देशता है न स्पर्श को जानता है न सत्त्व बरता है न भानता है और न काष्ठ की तरह कुछ समझता ही है सब वह प्रकृति का प्राप्त बर लता है ऐसा विद्वाने ने कहा है ॥५७॥ जैसे दीपक यदि बझिया नहीं है तो उसका प्रकाश भा अच्छा नहीं होगा । दीप को ऊपर नीचे तथा अघर में बड़ी भी रक्षिए, उसकी लौ की गति सदा टढ़ी रहेगी । उसी तरह स्वच्छ अन्त बरण म आत्मा प्रकाशित होता है (?) तात ! जात रूप जो आत्मा है उसी को हम लोग हृद यस्थित अन्तरात्मा समझ ॥५९ ५९॥ निर्धूम अग्नि के समान, रश्मियुक्त आदित्य के समान और आकाश म विमुक्तता के अग्नि के समान आत्मा म आत्मा को देखना चाहिए ॥६०॥ धीर भनापी, ब्रह्मन् तथा महात्मा ब्राह्मण जिस अचानिज तथा अमृतरूप आत्मा को देखते हैं वही आत्मा सूक्ष्म स भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है । वह समस्त भूता म निश्चल होता रहता हुआ भा देखा नहीं जाता है ॥६१-६२॥ बुद्धि रूपा द्रव्य के सहयोग से मन रूपी दीप के द्वारा आत्मा को देखना चाहिये । आत्मा महान् तम स परे रहने के कारण तामस नहीं बह- लाता है ॥६३॥ वेदपारंगत तत्त्वज्ञाने आत्मा को तम स हूर, तथा निलिप्त बहा है ॥६४॥ लोच म यही याग का लक्षण है । दूसरा क्या को सक्ता है ? यह विचार कर अजर तथा पर आत्मा को देखना चाहिये ॥६५॥ इतना योदान मन आत्मा को तत्त्वपूर्वक बतला दिया, अब परिसंख्याविधि (जिसम विहित विधि के अतिरिक्त अन्य पन्तु का निषेध हो जाता है) न प्रमाण स साध्यदर्शन का प्रवचन करेगा ॥६६॥ नृपथेष्ठ । साध्य म आत्मा को परा प्रकृति को

१क नित्य । २ग न रस्यति न पश्यति । न । ३क चावम० । ४ग बुध्यति । ५ग णः निवाते हि । ६ग दीप्यदीप्तो दीप प्रद० । ७व ऽदिदृश्येत मानादि येन तत्त्वलोचनैवैतत् । म० । ग ऽदि- द्रव्ये० । ८व ऽप्रनामय । ० । ९क योगानां । १०क साध्ययोग ।

अव्यक्तमाहुः 'प्रख्यानं परां प्रकृतिमात्मनः। तस्मान्महत्समुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम ॥६७॥
 अहंकारस्तु महत्स्तृतीय इति नः श्रुतम्। पञ्चभूतान्पहंकारादाहुः 'सांख्यात्मदर्शिनः ॥६८॥
 एताः प्रकृतयस्त्वष्टी विकाराश्चापि षोडश। पञ्च चैव विशेषाश्च तथा पञ्चेन्द्रियाणि च ॥६९॥
 एतावदेव तत्त्वानां सांख्यमाहुर्मनीषिणः। सांप्ये सांख्यविधानज्ञा नित्यं सांख्यपथे स्थिताः ॥७०॥
 यस्माद्यदभिजायेत तत्तत्रैव प्रलीयते। लीयन्ते प्रतिलोमानि 'गृह्यन्ते चान्तरात्मना ॥७१॥
 आनुलोम्येन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः। गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा ॥७२॥
 सगंप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम। एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च तथा सृजि ॥७३॥
 एवमेव च राजेन्द्र धित्वेयं ज्ञानकोविदः। अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतद्भिर्दानम् ॥७४॥
 एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरनुत्स्ववान्। एकत्वं प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात् ॥७५॥
 बहुधाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसवात्मिकाम्। तच्च क्षेत्रं महानात्मा पञ्चार्चोऽधिष्ठिति ॥७६॥
 अधिष्ठानेन राजेन्द्र प्रोच्यते यनिसत्तमं। अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति न श्रुतम् ॥७७॥
 क्षेत्रं जानाति चाव्यक्तं क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते। अव्यक्तं पुरे क्षेत्रे पुरुषश्चेति कथ्यते ॥७८॥
 अन्यदेव च क्षेत्रं स्यादव्यक्तं क्षेत्रज्ञ उच्यते। क्षेत्रमव्यक्त इत्युक्तं ज्ञातार पञ्चविंशकम् ॥७९॥

अव्यक्त पुरुष कहा गया है। उससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई जो द्वितीय है ॥६७॥ महान् में अहंकार उत्पन्न हुआ जो तृतीय है ऐसा हमने सुना है। और अहंकार से पञ्चभूतों की सृष्टि हुई, ऐसा सांख्यात्मदर्शियों का कहना है ॥६८॥ ये आठ प्रकृतियाँ हैं और सोलह विकार हैं। पाँच विशेष (पदार्थभेद) और पाँच इन्द्रियाँ हैं ॥६९॥ मनीषियों ने सांख्य मतस्वामी की इतनी ही संख्या बतायी है। सांख्य के विधान को जानने वाले व्यक्ति नित्य सांख्य-पथ पर दृढ़ रहते हैं ॥७०॥ जिससे जिसकी उत्पत्ति होती है वही उसका लय होता है। प्रतिलोम लीन हो जति हैं और अन्तरात्मा द्वारा उनका ग्रहण किया जाता है ॥७१॥ सागर की लहरों की तरह गुण गुणा में अनुलोम भाव से उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम भाव से लय को प्राप्त करते हैं ॥७२॥ महाराज ! प्रकृति का यही सगंप्रलय है। प्रलय से इसका एकत्व और सृष्टि में बहुत्व जाना गया है ॥७३॥ राजेन्द्र ! इस प्रकार जानिये कि सत्त्वज्ञाना चाहिये कि इसका अधिष्ठाता अव्यक्त का भी यही निदान है ॥७४॥ प्रकृति की एकता और अनेकता होती है। एकता प्रलय में और अनेकता सृष्टिकाल में होती है ॥७५॥ बहुधा आत्मा प्रकृति से प्रसव करता है। उस क्षेत्र को पञ्चमयी तत्त्व—महान् आत्मा—व्याप्त करके स्थित होता है ॥७६॥ नृपेन्द्र ! यतिवर्गों ने महान् आत्मा को अधिष्ठाता कहा है। क्षेत्र का अधिष्ठान करने से यह अधिष्ठाता कहलाता है, ऐसा हमने सुना है ॥७७॥ अव्यक्त क्षेत्र के जानने से इसका नाम क्षेत्रज्ञ पडा। अव्यक्त पुर में सोने से इसका नाम पुरुष है ॥७८॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ भिन्न हैं। क्षेत्र अव्यक्त का नाम है और क्षेत्रज्ञ पञ्चमयी तत्त्व कहलाता है ॥७९॥ ज्ञान और ज्ञय में भी अन्तर

१ग प्रकृति । २ग ०तिवादिन । ३क सांख्यविचारदा । ए० । ४ग सूच्यन्ते । ५क प्रीतिदे । ६क. ०पास्य तत् । ए० । ७क उत्पद्ये० । ८क स ०कत ओर्मो र्वं पञ्चविंशक । ज० ।

अन्यदेव च ज्ञान स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते । ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयो वै पञ्चविंशक ॥८०॥
 अव्यक्त क्षेत्रमित्युक्तं तथा सत्त्वं तयेश्वरम् । अनोद्वरमतत्त्वं च तत्त्वं तत्पञ्चविंशकम् ॥८१॥
 साध्यदर्शनमेतावत्परिसख्या न विद्यते । सख्या प्रकुप्ते चैव प्रकृति च प्रवक्ष्यते ॥८२॥
 चत्वारिंशच्चतुर्विंशत्प्रतिसख्याय तत्त्वतः । सख्या सहस्रकृत्या तु निस्तत्त्वं पञ्चविंशक ॥८३॥
 पञ्चविंशत्प्रबुद्धात्मा बुध्यमान इति श्रुतः । यदा बुध्यति आत्मानं तदा भवति केवल ॥८४॥
 सम्पदर्शनमेतावद्भाषितं तव तत्त्वतः । एवमेतद्विजानन्तं साम्प्रता प्रतियाज्यते ॥८५॥
 सम्पदनिर्दर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा । गुणवत्त्वाद्यर्थे तानि निर्गुणेन्यस्तथा भवेत् ॥८६॥
 न त्वेव वर्तमानानामावृत्तिर्वर्तते पुनः । विद्यते क्षरभावश्च न परस्परमव्ययम् ॥८७॥
 भवत्यन्त्यमतयो ये न सम्पक्तेषु च दर्शनम् । ते व्यक्तिं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनरारिदम् ॥८८॥
 सर्वमेतद्विजानन्तो न सर्वस्य प्रबोधनात् । व्यक्तिभूता भविष्यन्ति व्यक्तस्यैवानुवर्तनात् ॥८९॥
 "सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसर्वं पञ्चविंशकः" । य एवमभिजानन्ति न भयं तेषु विद्यते ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४३॥

है। ज्ञान अव्यक्त है और ज्ञेय पचीसवाँ तत्त्व है ॥८०॥ क्षेत्र अव्यक्त कहलाता है और सत्त्वं ईश्वर कहलाता है। साध्यदर्शन अनोद्वरवादी और तत्त्वं से रहित है। अथवा उसमें पचीस तत्त्व माने गये हैं। अथवा उसकी गिनती नहीं है। अथवा यह गिनती करता ही है और प्रकृति को बदलाता है। अथवा चौवालीस या पचीस सख्या है। अथवा तत्त्वतः सहस्रों सख्या हैं अथवा निस्तत्त्वं पचीस सख्या है (?) ॥८१-८३॥ पचासवाँ प्रबुद्धात्मा बुध्यमान कहलाता है। जब वह आत्मा को जानता है तब एक हो जाता है ॥८४॥ इस दर्शन को तत्त्वपूर्वक आपस बतला दिया। इसके जानने वाले समता को प्राप्त करते हैं ॥८५॥ प्रकृति का प्रत्यक्ष होता अच्छा उदाहरण है। जैसे ये सगुण स होते हैं वैसे निर्गुण से ना। किन्तु इस प्रकार वर्तमान रहने वालों की आवृत्ति पुन नहीं होती है। और उसका परस्पर नाश भी होता है। वे अविनाशी नहीं हैं। (?) ॥८६-८७॥

राजन् ! जाग्रताहल मनुष्य इस दर्शन को नहीं जानता है वह बार-बार क्षरमात्र को प्राप्त करता है ॥८८॥ व्यक्त को जानने वाले व्यक्त मात्र को ही प्राप्त करते हैं। 'सकल पदार्थ अव्यक्त है केवल पचीसवाँ तत्त्व ही व्यक्त है—एसा जो जानते हैं उन्हें भय नहीं होता ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराणे भ वसिष्ठ और वरालजनक क संवादे
 दो सौ तीतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४३॥

१क स ०कत तथा वै । २ख तन्तुत्वमेकविं । ३ग प्रचक्षते । ४ख ०सप्रकृत्या निं ।
 ५ग ०बुद्ध्या यो बुं । ६ख स्मृत । ७ग केवलम् । ८ग ०णतत्त्वाद्यर्थं । ९ग ०त्यर्थकम् ।
 १०ख ० तो मवान्वर्धप्र० । ११ख प्रविर्ति । १२ग ०वास्तदर्शनां । १३ख ०स्युक्तं च सर्वं प० ।
 १४ख ०कम् । प ।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

विद्याविद्ययोः स्वरूपकथनम्

वसिष्ठ उवाच

सांख्यदर्शनमेतावदुक्तं ते नृपसत्तम । विद्याविद्ये त्विदानीं मे त्वं निबोधानुपूर्वशः ॥१॥
अभेद्यमाहुरव्यक्तं सगंप्रलयधमिणः । सगंप्रलय इत्युक्तं विद्याविद्ये च विदाकः ॥२॥
परस्परस्य विद्या वै तन्निबोधानुपूर्वशः । यथोक्तमुपिभिस्तात सांख्यस्यातिनिदर्शनम् ॥३॥
कर्मन्द्रियाणां सर्वेषां विद्या बुद्धीन्द्रियं स्मृतम् । बुद्धीन्द्रियाणां च तया विद्या इति नः श्रुतम् ॥४॥
विषयाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः । मनसः पञ्च भूतानि विद्या इत्यभिचक्षते ॥५॥
अहंकारस्तु भूतानां पञ्चानां नात्र संशयः । अहंकारस्तथा विद्या बुद्धिर्विद्या नरेश्वर ॥६॥
बुद्ध्या प्रकृतिरव्यक्तं तत्त्वानां परमेश्वरः । विद्या ज्ञेया नरथ्रेष्ठ विधिश्च परमः स्मृतः ॥७॥
'अव्यक्तमपरं प्राहुर्विद्या वै पञ्चविशक' । सर्वस्य सर्वमित्युक्तं ज्ञेयज्ञानस्य पारम्यः ॥८॥
ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयं वै पञ्चविशकम् । तमेव ज्ञानमव्यक्तं विज्ञाता पञ्चविशकः ॥९॥

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

वसिष्ठ बोले—नृपवर ॥ अब तक आपसे जो कुछ कहा गया वह सांख्य दर्शन के विषय में था, अब विद्या और अविद्या के विषय में मैं कह रहा हूँ, इसको आपपूर्वों (अक्षर) आप सुनिये ॥१॥ सृष्टि और प्रलय-धर्मों का स्वरूप अभेद्य और अव्यक्त कहा गया है। इसी प्रकार सगं प्रलय और विद्या तथा अविद्या बीस प्रकार की बही गई है ॥२॥ तात ! पहले परस्पर की विद्या को अनुपूर्वोरूप से जान लो जैसा कि ऋषियों ने सांख्य की प्रमाण मान कर कहा है ॥३॥ सब कर्मन्द्रियों के लिये विद्या ज्ञानेन्द्रिय है और ज्ञानेन्द्रियों के लिए वह विशेष वस्तु है, ऐसा हमने सुना है ॥४॥ इसी प्रकार मनीषियों ने उन (इन्द्रियों) के विषया के लिये मन को विद्या कहा है और मन की विद्या पञ्च महाभूतों को माना है ॥५॥ पाँचों महाभूतों की विद्या अहंकार है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । नरेश्वर ! इसी प्रकार अहंकार की विद्या बुद्धि है। बुद्धि की प्रकृति और प्रवृत्ति (अव्यक्त तत्त्वों) की विद्या परमेश्वर है। नरथ्रेष्ठ ! विधि को तो परम विद्या कहा गया है ॥ ६-७॥ और पञ्चविंश प्रकार के अव्यक्त को भी विद्या कहा गया है। सब के सब, एवं ज्ञेय और ज्ञान के पारम्य की (पुरुष) की विद्या कहा गया है ॥८॥ ज्ञान को अव्यक्त कहा गया है, ज्ञेय के पञ्चविंश भेद हैं। इसी प्रकार अव्यक्त ज्ञान के एव विद्या के भी पञ्चविंश भेद कहे गये हैं। उपर्युक्त विशेष

१ख. ०स्वर द्विधा चैतत्त्व निबो० । २ख ०स्यामिनिवेदन० । ३ख. ०वतस्य प० । ४ख. ०ग्रहम् । स। ५ ०मित्युक्त ।

विद्याविद्ये' तु तत्त्वेन मयोक्ते' वै विशेषतः। अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे ॥१०॥
 उभावेतौ क्षराद्युक्तौ उभावेतावन(था)क्षरौ। कारणं तु प्रवक्ष्यामि' यथाज्ञानं तु ज्ञानत' ॥११॥
 अनादिनिधनावेतौ उभावेवेक्ष्यौ मतौ। 'तत्त्वसज्ञाद्युभावेव प्रोच्यते ज्ञानचित्तकं' ॥१२॥
 सर्गप्रलयधर्मित्वादव्यक्त प्राहुरव्ययम्। तदेतद्गुणसर्गाय' विकुर्याणं पुनः पुनः ॥१३॥
 गुणानां महदादीनामुत्पद्यति परस्परम्। अधिष्ठान' क्षेत्रमाहुरेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥१४॥
 'यदन्तर्गुणजालं' तु तदव्यक्तात्मनि सक्षिपेत्। तबहं तद्गुणैस्तत्सु पञ्चविंशो विलीयते ॥१५॥
 गुणा गुणेषु लीयन्ते तदेका प्रकृतिर्भवेत्। क्षेत्रज्ञोऽपि तदा 'सायत्क्षेत्रज्ञः' संप्रणीयते ॥१६॥
 यदाक्षरं प्रकृतिर्यं गच्छते गुणसंज्ञिता। निर्गुणत्वं च वै देहे गुणेषु परिवर्तनात् ॥१७॥
 एवमेव च क्षेत्रज्ञ क्षेत्रज्ञानपरिक्षयात्। प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येवमनुशुश्रुम् ॥१८॥
 क्षरो भवत्येष यदा गुणवती गुणैश्चय"। प्रकृतिं त्वय जनाति निर्गुणत्व तयात्मनः ॥१९॥
 तया" विशुद्धो भवति प्रकृते परिवर्जनात्। अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति बुद्धिमान् ॥२०॥
 तद्वैपोऽव्ययतामेति न च मिश्रत्वमात्रजेत्। प्रकृत्या चैव राजेन्द्र "मिश्रोऽन्योऽन्यस्य दृश्यते ॥२१॥

प्रकार से मैंने विद्या और निद्या के विषय में तत्त्वतः कहा दिया। अब जो क्षर और अक्षर के विषय में मैं कह रहा हूँ, उसका सुना। य दोनों ज्ञान और ज्ञय (प्रकृत पुरुष) (विद्या, निद्या) क्षर और अक्षर दोनों बड़े गये हैं, इसका कारण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कह रहा हूँ। ये दोनों अनादि और निघन (नाश-शील) एव दोनों ही ईश्वर (समय) भाने गये हैं। इसी प्रकार तत्त्ववित्ता ने दोनों को तत्त्व नाम से कहा है ॥१-१२॥ सग और प्रलय धर्मी होने के कारण अव्यक्त को अव्यक्त कहा गया है। यह अव्यक्त गुण सृष्टि के लिये बार-बार विवृत (विकार को प्राप्त) होता है ॥१३॥ महदादि गुणों की उत्पत्ति परस्पर ने संयोग से होती है। इन पचीस प्रकार के गुणों को ही अधिष्ठान क्षेत्र कहा गया है ॥१४॥ जो अन्तर्गुणों का समूह है वह उस अव्यक्त आत्मा में सक्षिप्त हो जाता है। यह अहं उन गुणों के साथ पचीस तत्त्वा में विलीन हो जाता है ॥१५॥ जब गुण अन्य गुणों में लीन हो जाते हैं तब एक प्रकृति के हो जाते हैं। उस समय क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ के रूप में उत्पन्न हो जाता है। जब अक्षर में गुण सज्ञा से प्रसिद्ध प्रकृति लीन हो जाती है तब वहीं क्षरीर में गुणों के परिवर्तन होने से निर्गुणत्व को प्राप्त होती है। इसी प्रकार क्षेत्र ज्ञान के साथ होने से क्षेत्रज्ञ प्रकृति निर्गुण हो जाता है ऐसा सुना गया है। यह क्षेत्रज्ञ २५ गुणवर्ती प्रकृति के गुणों में विलीन होता है तब क्षर हो जाता है, यद्यपि वह प्रकृति और अपने निर्गुणत्व को नहीं भूलता जानता है। जब बुद्धिमान् पुरुष में अन्य है, वह प्रकृति अन्य है इस बात को जान लेता है तब वह प्रकृति (माया) के परित्याग से शुद्ध हो जाता है ॥१६-२०॥ वह दान्ति का अनुभव करता है और पुनः ससर्ग में नहीं आता है। राजेन्द्र! वह प्रकृति से अय-अय के साथ मिला हुआ सा दीव पड़ता है ॥२१॥ जब वह उस प्राकृत गुण-समूह से मुंह फेर लेता

१ग ० विद्यार्थतः। २ग ० योऽज्ञानवि०। ३स ० पाविज्ञानज्ञा। ४ग ० ज्ञाईमावेन प्री०।

५स. ० सद्यपय। ६ग ० आनाताव०। ७ग ० यद्यन्तः। ८ग ० ल तदव्यक्ता०। ९ग ० साततौ क्षेत्र०। १०स.

० ज्ञानं परिसयेत्। १०। ११स ० इतिस्त्वय। १२स ० यात्रागिगु०। १३स ० मित्याज्येयु स दु०।

यदा तु गुग्गुल तत्प्राकृतं विजृम्भते । पश्यते च परं पश्यस्तदा पश्यन्तु ससृजेत् ॥२२॥
किं मया कृतमेनावद्योऽहं कालनिमज्जनम् । यथा मत्स्यो ह्यभिज्ञानादनूर्वातितवाञ्जलम् ॥२३॥
अहमेव हि समोहादन्यमन्य जनाञ्जनम् । मत्स्यो यथोदकज्ञानादनूर्वातितवानिह ॥२४॥
'मत्स्योऽन्यत्वेमयाज्ञानादुदकान्नाभिमान्यते' । आत्मानं 'तदवज्ञानादन्य' चेवं न वेद्म्यहम् ॥२५॥
ममास्तु धिक्कुबुद्धस्य योऽहं मग्न इमं पुनः । अनुर्वतितवान्मोहादन्यमन्य जनाञ्जनम् ॥२६॥
'अयमनुभवेद्बन्धुरनेन सह मे क्षयम्' । साम्यमेकत्वता यातो यादृशस्तदृशस्त्वहम् ॥२७॥
तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै । अयं हि विमलो व्यक्तमहमोदृशकस्तदा ॥२८॥
योऽहमज्ञानसमोहादज्ञया सप्रवृत्तवान् । 'ससर्गादितिसर्गास्तिथित कालमिव त्वहम्' ॥२९॥
सोऽहमेव वशीभूत कालमेतं न बुद्धवान् । उत्तमाधममध्याना तामहं कथमावसे ॥३०॥
समानमायया चेहं सहवासमहं कथम् । गच्छाम्यबुद्धभावात्वादिहेवानो स्थिरो भव ॥३१॥
सहवासं न यास्यामि कालमेतं विवञ्चनात् । वञ्चितो ह्यनया यद्धि निर्विषारो विकारया ॥३२॥
न तत्तदपराद्धं स्यादपराधो ह्ययं मम । योऽहमज्ञाभव सक्त पराङ्मुखमुपस्थित ॥३३॥

है तब वह पर-स्वरूप का देखन लगता है और तब वह उस मत्स्य की भाँति जो जल को ही केवल जानता है और उसी में झरझर घूमता रहता है सृष्टि भी करने लगता है क्योंकि वह सोचने लगता है कि क्या मैंने समय के बराबर होकर अब तक इतना ही काम किया है। मैं भी मोहवश मत्स्य की भाँति केवल गतानुगतिक काम करता रहा। जिस प्रकार मछली जल व अतिरिक्त और किसी पदार्थ को नहीं जानती है उसी प्रकार मैंने भी आत्म-अज्ञान के कारण अय पदार्थों का ज्ञान नहीं प्राप्त किया ॥२३ २५॥ मेरे समान कुबुद्धि को धिक्कार है कि अब तक मैं केवल इसी में मग्न रहा इस (प्रकृति) का अनुगामी बना रहा। अब इस अज्ञान व साथ भी मेरी वस्तुता हो गई, इसके साथ मेरा क्षय भी होगा। इसके साथ मेरा साम्म और एकत्वानुभूति हो गई, जैसा यह है वैसा मैं भी हो गया। मुझ तो अब इसी की समानता दिखाई देती है प्रतीत होता है कि इसके ससंग से मैं भी इसी क समान हो गया ॥२६ २८॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहमय प्रकृति के पीछे दाड़ता रहा और इसके घनिष्ठ ससंग हो गया ॥२६ २८॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहमय प्रकृति के पीछे दाड़ता रहा और इसके घनिष्ठ ससंग से जुटने समय तक अपने को भुलावे में रखा इसके लिये धिक्कार है। ऐसा अज्ञानी मैं इससे बड़ा होकर मायावाली इस प्रकृति के साथ अब मला किस प्रकार नाता जोड़ सकता हूँ। इस समय मेरा सारा मोह अपनी विचारणीयता के साथ यही रहा। अब मैं अभी भी काल का वञ्चना में पडकर इस प्रकृति व साहाय्य स्वीकार नहीं करूँगा। अज्ञानता के साथ यही रहा। अब मैं अभी भी काल का वञ्चना में पडकर इस प्रकृति व साहाय्य स्वीकार नहीं करूँगा। अज्ञानता के साथ यही रहा। अब मैं अभी भी काल का वञ्चना में पडकर इस प्रकृति व साहाय्य स्वीकार नहीं करूँगा।

१ख पश्यश्च । २ख ०हकारणि० । ३ग ०हादयमयज्जलाज्जलम् । म० । ४क ०यत्त्व यथान्यद्वा
जदक नाशम० । ५ग ०एक नाभि० । ६ग ०दमिजा० । ७ख ग ०दन्त्यत्त्व शैव वे० । ८ख ०मत्र भवेदेव
दुराननसहस्र० । ९क ग ०हादाश० । १० ०गहिस्तु निःसङ्ग स्थित । ११क ०नृ० मध्यमोऽहं हीनतर्स्तानह ।

ततोऽस्मिन्बहुह्योऽयं स्थितो मूर्तिरमूर्तिमान् । अमूर्तिश्चाप्यमूर्तिमा ममत्वेन प्रार्थयत् ॥३४॥
 प्रकृत्या च तथा तेन तासु तास्विह योनिषु । निर्ममस्य ममत्वेन विकृत तासु तासु च ॥३५॥
 योनिषु वतमानेन नष्टसन्नेन चेतसा । समता न मया काचिदहंकारे कृता मया ॥३६॥
 आत्मानं बहुधा कृत्वा सोऽयं भूयो युनक्ति माम् । इदानीमवबुद्धोऽस्मि निर्ममो निरहंकृतः ॥३७॥
 ममत्वं मनसा नित्यमहंकारकृतात्मकम् । अपलग्नामिमां हित्वा सश्रयिष्ये निरामयम् ॥३८॥
 अनेन साम्यं यास्यामि नानयाऽहमचेतसा । क्षमं मम सहानेन नैवंकमनया सह ॥३९॥
 एव परमस बोधात्पञ्चविंशोऽनुबुद्धयान् । अक्षरत्वं निगच्छति त्यक्त्वा क्षरमनामयम् ॥४०॥
 अव्यक्तं व्यक्तधर्माणं सगुणं निर्गुणं तथा । निर्गुणं प्रथमं दृष्ट्वा तादृग्भवति मथिल ॥४१॥
 अक्षरक्षरयोरेतदुक्तं तव निदर्शनम् । मयेह ज्ञानसंपन्नं यथा श्रुतिनिदर्शनात् ॥४२॥
 निःसदिग्धं च सूक्ष्मं च विशुद्धं विमलं तथा । प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तस्मिन्बोधं यथाश्रुतम् ॥४३॥
 साह्ययोगो मया प्रोक्तः शास्त्रद्वयनिदर्शनात् । यदेव साह्यशास्त्रोक्तं योगदर्शनमव तत् ॥४४॥
 प्रबोधनपरं ज्ञानं साह्यानामवनीपते । विस्पष्टं प्रोच्यते तत्र शिष्याणां हितकाम्यया ॥४५॥
 'बृहच्चैवमिदं शास्त्रमित्याहुर्विदुषो जना । अस्मिन्च शास्त्रे योगानां पुनर्भवपुरःसरम् ॥४६॥

अहो ! अमूर्तिमा अमूर्ति का इस प्रकार ममता द्वारा परामव ? ॥३४॥ उस प्रकृति के साथ उन योनिर्मां मैं ममता रहा जिनमे निर्मम मुझको यह ममता घुमाती रही ? मैं सनाहीन हो चेतना छोड़कर अनेक योनियों में भटकता रहा। इस अहंकार मे अज्ञान में मेरी कोई समता नहीं बर सक्ता ॥३५ ३६॥ देखता हू पुन वही अज्ञान अपने को बहुत रूपों में बाँट कर मुझको कुपय की ओर लुगाना चाहता है पर तु अब मैं मायातीत हूँ प्रबुद्ध हूँ और अहंकार विजेता हूँ ॥३७॥ अब मैं अहंकार पर खड़ी हुई ममता को मन से हटाकर इस अनुचित माया को छोड़कर निर्विकार रूप का आश्रय ग्रहण करूँगा ॥३८॥ अब उसी निरामय की समता प्राप्त करूँगा अज्ञानवश इस माया का नहीं। उस निरामय के साथ ही मेरा एकमात्र बरह्यान सख्त है इस प्रकृति में साथ नहीं—इस परमज्ञान के उदबुद्ध होने से पञ्चविंशतमक अव्यक्त जाग्रत हो जाता है और अपने क्षर भाव को छोड़कर अनामय अक्षरत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३९ ४०॥ मैं मथिल ! इस प्रकार अव्यक्त व्यक्त धर्मा सगुण और निर्गुण को देखकर (अनुभव कर) पुन अपने पूर्वरूप (निर्गुण) को श्रयस्कर समक्ष कर बैसा ही (निरामय) हो जाता है ॥४१॥ मैंने इस प्रकार तुमको अक्षर और क्षर का स्वरूप ज्ञान कराया जैसा कि श्रुतियों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त किया था ॥४१॥ अब पुन दयाश्रुत ज्ञान के अनुरूप अस्तिदिग्ध सूक्ष्म विशुद्ध और विमल ज्ञान को तुमसे कह रहा हूँ उसको सुनो ॥४३॥ दो शास्त्रों के उदाहरणों के द्वारा साह्ययोग का प्रवचन कर दिया जो साह्यशास्त्र में कहा गया है कि वही योग-ज्ञान भी है ॥४४॥ मूर्तिपति ! उन दोनों में अब शिष्यों के हित के लिये साह्य का मोक्ष प्रद ज्ञान को स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ ॥४५॥ विद्वान् जना ने इस शास्त्र को अति बृहत् बताया है। नरपाल ! इस शास्त्र में योग का पुनर्भव के साथ साथ पंच-

पञ्चविंशत्परं तत्त्वं पठ्यते च नराधिप । साध्यानां तु परं तत्त्वं यथावदनुवर्णितम् ॥४७॥
बुद्धमप्रतिबुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः । बुध्यमानं च बुद्धत्वं प्राहुर्योगनिदर्शनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अजस्यापि विक्रियया नानाभवनम्

वसिष्ठ उवाच

अप्रबुद्धमथाध्यवर्तितम् । गुणनिधि सदा । गुणानां धार्यता तत्त्वं सृजत्याक्षिपते तथा ॥१॥
अजो हि श्रीडया भूप विक्रिया प्राप्त इत्युत । आत्मानं बहुधा कृत्वा नानैव प्रतिचक्षते ॥२॥
एतदेव विकुर्याणो बुध्यमानो न बुध्यते । गुणानां चरते हृष्ये सृजत्याक्षिपते तथा ॥३॥
अध्यवर्तयोधनार्चवं बुध्यमानं वदन्त्यपि । न त्वेव बुध्यतेऽव्यक्तं सगुणं ततः निर्गुणम् ॥४॥

विश्रात्मक तत्त्व से उत्कृष्ट तत्त्व भी ब्रह्मा गया है । साक्ष्य व परतत्त्व को तो यथावद कह चुका हूँ । बुद्ध अप्रतिबुद्ध और बुध्यमान भा तत्त्वरूप से योग के कहे गये हैं परंतु बुध्यमान और बुद्धत्व ही योग के परमतत्त्व निर्दिष्ट किये गये हैं ॥४६-४८॥

श्रीब्रह्मपुराण में वसिष्ठ और वरालंजन के संवाद में
दो सौ चौआलीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४४॥

अध्याय २४५

ब्रह्म भी विकार को प्राप्त कर अनेक हो जाते हैं

वसिष्ठ बोले—भूप । अज मा ब्रह्म व हृदय मे कीडा की इच्छा से विकार उत्पन्न हो जाता है । उस समय वह अपने को बहुत रूपों मे विभक्त कर देता है तब वह नाता रूपों मे विभक्त के समान अपने को समझने लगता है । अप्रबुद्ध (सुप्त) अव्यक्त गुण समूह की और गुणों के उत्पादक तत्त्वों की सृष्टि और विस्तार करने लगता है । उस समय इस प्रकार अनेक रूपों मे विभूत होने पर भी वह अपने इस रूप की (बहुधा विभक्त) जगता नहीं है यद्यपि बुद्धिपूर्वक ही (जानकर ही) सृष्टि (विकार) गुणों की सृष्टि योग और आक्षेप करता है ।

१ख ०य । बुद्धयः । २ख ०तिबुद्धत्वं प्रा० । ३क ०व्यक्त निर्गुणानां नि० । ४ग ०भानाघाय से ह्येय सु० । ५ख ग अजस द्विजकीटार्यं विकुर्वन्ति जनाधिप । आ० । ६क ग तान्येव । ७ग ०चक्षते । ८क ख ०दन्त्यपि ।

कदाचित्स्वेव खल्वेतत्तदाहु प्रतिबुद्धकम् । बुध्यते यदि चाव्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥५॥
 बुध्यमानो भवत्येष 'ममात्मक' इति श्रुतः । अन्येभ्यः प्रतिबुद्धन वदन्त्यव्यक्तमच्युतम् ॥६॥
 अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमान वदन्त्युत । पञ्चविंश महात्मान न चासावपि बुध्यते ॥७॥
 षड्विंश विमल बुद्धमप्रमेय सनातनम् । सतत पञ्चविंश तु चतुर्विंश विबुध्यते ॥८॥
 दृश्यादृश्ये 'ह्यनुगततत्त्वभावे' महाद्युते । अव्यक्तं चैव तदग्रह्य बुध्यते 'तात' केवलम् ॥९॥
 पञ्चविंश 'चतुर्विंशमात्मानमनुपश्यति । बुध्यमानो यदाऽऽत्मानमन्याऽहमिति मन्यते ॥१०॥
 तदा प्रकृतिमानेष भवत्यव्यक्तलोचन । बुध्यते च परा बुद्धिः विशुद्धाभमला यथा (दा) ॥११॥
 षड्विंश राजशार्दूल तदा बुद्धः कृतो यजेत् । ततस्त्यजति सोऽव्यक्तसंगप्रलयधमिणम् ॥१२॥
 'निगुणा' प्रकृति वेद गुणयुक्तामचेतनाम् । ततः केवलधर्माज्ञो भवत्यव्यक्तदर्शनात् ॥१३॥
 कवलेन समागम्य विमुक्तात्मानमाप्नुयात् । एतत्तु तत्त्वमित्याहुर्नस्तत्त्वमजरामरम् ॥१४॥
 तत्त्वसम्प्रवणादेव तत्त्वज्ञो जायते नृप । पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रवदन्ति मनोपिण ॥१५॥
 न चैव तत्त्ववास्तात् ससारेषु निमज्जति । एषामुपैति 'तत्त्व हि क्षिप्रं बुध्यस्व' लक्षणम् ॥१६॥

अव्यक्त ज्ञान व कारण है। उसको पंडितजन बुध्यमान (जानने योग्य) कहते हैं। तात । इस प्रकार वह अव्यक्त सगुण या निगुण विसा मा रूप में नहीं जाना जाता है। वदचित ही इसे प्रतिबुद्ध कहते हैं। यदि यह अव्यक्त जाना जाता है तो वह पचासवाँ है ॥१५॥ यह बुध्यमान होता है और मेरा आत्मा है—इस प्रकार प्रसिद्ध है। परस्पर जान होने के कारण इसको अव्यक्त और अच्युत कहते हैं ॥६॥ अव्यक्त जानने व कारण ही उसे बुध्यमान कहते हैं। निगु वह मा पचीसवें सहान आत्मा को नहीं जानता है ॥७॥ निमल बुद्ध अप्रमेय और सनातन चोखे सवें पचीसवें और छब्बीसवें आत्मा को वह सतत जानता है ॥८॥ महाकांतिशाली । दृश्य और अदृश्य सब पदार्थ उसने स्वभाव का अनुगमन करते हैं। तात । केवल अव्यक्त ब्रह्म ही उसको जानता है ॥९॥ वह चोखे सवें और पचीसवें आत्मा को देखता है। जी । जब अने को उसने अलग मानता है तब यह प्रकृति युक्त एवम् अव्यक्त व वाला होता है ॥१०॥ है नृपवर । अब वह परा, विशुद्ध व निमल बुद्धि को और छब्बीसवें आत्मा या तत्त्व को जान लेता है तब वह बुद्ध होकर परिजन्त करता है। तदनंतर सृष्टि और प्रलय करने वाले अव्यक्त को वह श्याम देता है और निगुण तथा गुणयुक्त अचेतन प्रकृति को जान जाता है ॥११॥ तत्त्वज्ञात अव्यक्त वे दगर से वह केवलधर्मा हो जाता है। फिर केवल (ब्रह्म) व साथ समागम करने वह विमुक्त आत्मा को प्राप्त करता है। इतना ही तत्त्व वहा गया है और तत्त्व स परे ब्रह्म अग्र-अग्र है ॥१२॥ राजन । तत्त्वा व सम्यक् ध्वज से ही मनुष्य तत्त्व जाता हो जाता है। विद्वान लोग पचास प्रकार व तत्त्व बडलाते हैं ॥१५॥ तात । तत्त्वा का जानकार व्यक्ति ससार में बिलकुल नहीं डूबता है। जो तत्त्व का लक्षण जानते हैं उनके पास तत्त्व सीधे पहुँच जाता है ॥१६॥

१ग 'ममात्मक' २ख '०श तु बुध्यते' ३क 'स' ०तमुमायेव म० । ४क 'महद्वि' ५क 'स' ०ते भावके० । ६ग 'विशच्छु' ७ग '०ग आत्मना च न प० । ८क 'स' बुद्धिम० । ९ग 'स' ०मलो य० । १०ग 'मुद्धतो' ११ग 'निगुण' १२ख '०त निरस्तत्त्वबुद्धिमान्' । १० । ग '०त निरस्तत्त्वबुद्धिमान्' । १० । १३ख 'बुद्धि' १४क 'बुध्यस्व' ।

'षड्विंशोऽयमिति प्राज्ञो गृह्यमाणोऽजरामरः। केवलेन बलेनैव समतां यात्यसशयम् ॥१७॥
 षड्विंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान्। 'एतन्नानात्वमित्युक्तं सांख्यश्रुतिनिदर्शनात् ॥१८॥
 चेतनेन समेतस्य पञ्चविंशतिकस्य ह। एकत्वं वै भवेत्तस्य 'यदा 'बुद्ध्याऽनुबुध्यते ॥१९॥
 बुध्यमानेन' बुद्धेन समतां याति मैथिल। सङ्गधर्मा भवत्येष निःसङ्गात्मा मराधिप ॥२०॥
 निःसङ्गात्मानमासाद्य षड्विंश कर्मज विदुः। विभुस्त्यजति 'चाव्यक्तं यदा त्वेतद्विबुध्यते ॥२१॥
 चतुर्विंशमगाधं च षड्विंशस्य प्रबोधनात्। एष ह्यप्रतिबुद्धश्च बुध्यमानस्तु तेऽनघ ॥२२॥
 उक्तो 'बुद्धश्च तत्त्वेन यथाश्रुतिनिदर्शनात्। मशकोदुम्बरे 'यद्वदन्यत्व तद्वदेतयोः (कता) ॥२३॥
 मत्स्योवकं यथा तद्वदन्यत्वमुपलभ्यते। एवमेव च गन्तव्यं नानात्वंकत्वमेतयोः ॥२४॥
 एतावन्मोक्ष इत्युक्तो ज्ञानविज्ञानसंज्ञितः। पञ्चविंशतिकस्याऽऽशु 'योऽयं देहे प्रवर्तते ॥२५॥
 एष" "मोक्षयितव्येति प्राहुरव्यक्तगोचरात्"। सोऽयमेवं विमुच्येत नान्यथेति विनिश्चयः ॥२६॥

यह छवीसवां है—इस प्रकार समझने वाला विद्वान् अजर-अमर होकर केवल बल से ही समता को प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं ॥१७॥ छवीसवें प्रबुद्ध आत्मा के ज्ञान लेने से अबुद्धिमान् भी बुध्यमान हो जाता है। सांख्य-दर्शन के उदाहरण से यह नानात्व बताया गया है ॥१८॥ जब बुद्धि से समझा जाता है तब चेतन समेत पचीस तत्त्वों में एकता हो जाती है ॥१९॥ मैथिल ! बुध्यमान और बुद्ध के साथ समता हो जाती है, नरेन्द्र ! यह नि सङ्ग आत्मा भी सङ्गी के धर्म को ग्रहण कर लेता है ॥२०॥ नि मङ्ग आत्मा (ब्रह्म) को पाकर छवीस प्रकार के धर्मों का ज्ञान हो जाता है। विभु (व्यापक) आत्मा जब इस कर्मज का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह अपने अव्यक्त रूप को छोड़ देता है ॥२१॥ निष्ठाप ! षड्विंशात्मक स्वरूप के ज्ञान से अगाध (गहन) चतुर्विंशात्मक रूप का ज्ञान हो ही जाता है ॥२२॥ इस प्रकार मैंने वेद सम्मत उदाहरणों के द्वारा अप्रतिबुद्ध, बुध्यमान और बुद्ध को तत्त्वतः बतह दिया। मशक (कीट) और मूलर, मछली तथा जल में जिस प्रकार अन्यत्व नहीं है (अर्थात् दो मित्र पदार्थ होते हुए भी जिसे प्रकार दोनों में एकता रहती है) उसी प्रकार इन दोनों जीव और ब्रह्म का अन्यत्व समझना चाहिये और इनका नानात्व तथा एकत्व भी समझना चाहिये ॥२३-२४॥ यही इस पंचविंशति (पचीस) तत्वा-वलिप्त जीव का ज्ञान-विज्ञान नामक मोक्ष कहा गया है, जो नि इस देह का, देहधारी जीव का एकमात्र प्रवर्तक होता है। अर्थात् मोक्ष-कामना से ही शरीरपत व्यापारों द्वारा ज्ञान की ओर जीव झुकाता है और उसकी मुक्ति होती है। इस प्रकृति-वशज जीव को ही अव्यक्त (ब्रह्म) के साक्षात्कार द्वारा मोक्ष प्राप्त करना रहता है और उसको ही मुक्ति की आवश्यकता है। वह माया-बद्ध जीव इस प्रकार ब्रह्म-साक्षात्कार के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर

१४ ०शोऽहमि० २१ एत वासार्यमि० २३ यथा। ख यदा तु ध्यानबुध्यत। वु०। ४१ ० दया
 न वु०। ५१ ० मानाप्रबु०। ६३ ग वक्तव्य। ७० व बुध्यस्व। ८६ ० न्यमन्यतयोमयो। ९६ ० य वेदेय
 व०। १०६ एत मो। ११६ ० क्षय विप्रा प्रा०। १२६ ० क्तमादरात्।

परश्च परधर्मा च भवत्येव समेत्य वै । विशुद्धधर्माशुद्धेन नाशुद्धेन च बुद्धिमान् ॥२७॥
 विमुक्तधर्मा बुद्धेन समेत्य पुरुषर्षभ । वियोगधर्माणां चैव 'विमुक्तात्मा भवत्ययम्' ॥२८॥
 विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत् । शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितबुद्धिमान् ॥२९॥
 विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना । केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै ॥
 स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्यते ३०॥

एतावदेतत्कथितं ममा ते, तथ्यं महाराज यथार्थतत्त्वम् ।
 अमत्सरस्त्व^१ प्रतिगृह्य^२ बुद्ध्या, सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम्^३ ॥३१॥
 तद्वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन्, प्रदेयमेतत्परमं त्वया भवेत् ।
 विधिस्तमानाय निबोधकारकं, प्रबोधहेतोः प्रणतस्य शासनम् ॥३२॥
 न देयमेतच्च यथाऽनृतात्मने, शठाय क्लोबाय न जिह्मबुद्धये ।
 न पण्डितज्ञानपरोपतापिने, देयं तथा शिष्यविबोधनाय ॥३३॥
 श्रद्धान्वितायाश्च गुणान्विताय, परापवादाद्विरताय नित्यम् ।
 विशुद्धयोगाय बुधाय चैव, कृपावतेऽयं क्षमिणे हिताय ॥३४॥

सत्ता है अन्यथा नहीं यह ध्रुव सत्य है । यह विशुद्ध धर्म वाला जीव पर-धर्म को ग्रहण करने वाला है और
 अय के उपयोग से यह शुद्ध या अशुद्ध हो जाता है अतः इसको शुद्ध बनाने के लिये शुद्ध ज्ञान का ही साहचर्य
 आवश्यक है न कि अशुद्ध का । हे पुरुषधर्म ! विमुक्त धर्मा (मुक्ति-कामी) वियोगधर्मा (मुक्त) का साहचर्य
 पाकर ही मुक्तात्मा होता है । अमित बुद्धिमान विमल ब्रह्म के सान्निध्य से ही मुक्त होता है और शुचि कर्म
 करने वाला ही अपने शुचि (पवित्र) कर्मों के प्रभाव से पवित्र होता है । विमल आत्मा वाले के साहचर्य से
 जीव विशुद्धात्मा होता केवल ज्ञान प्राप्त के सतस्र से केवल-ज्ञानी एव स्वतन्त्र की सगति से ही जीव
 स्वतन्त्र हो स्वतन्त्रत्व को प्राप्त करता है ॥२५-३०॥ महाराज ! मैंने निष्पक्ष भाव से सनातन, विशुद्ध
 आद्यब्रह्म के यथार्थतत्त्व और तत्त्व को इस प्रकार तुमसे कह दिया ॥३१॥ राजन् ! इस परमतत्त्व को तुम
 वेदों मथ्यदा रखने वाले जनो को ही देना । क्योंकि आत्म ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक जनो के लिये उपदेश या
 शासन ज्ञान-बद्धक होता है 'एव विनम्र व्यक्ति के प्रति किया हुआ शासनोपदेश उसके उत्थान का कारण
 बनता है ॥३२॥ यह विमल ज्ञान असत्यवादी गठ नपुंसक बुद्धि और अपने पांडित्य से दूसरे के आत्मा को
 पीडा पहुँचाने वाले व्यक्ति को नहीं देना चाहिए किन्तु ऐसे व्यक्ति को देना चाहिये जो विज्ञायु हो श्रद्धालु
 गुण प्रेमी, नित्य दूसरे की निन्दा करने या सुनने से दूर रहता हो जो विशुद्धयोग प्रेमी, बुद्धिमान् कृपालु, क्षमाशील
 और परहित में निरत रहने वाला हो, जो विक्रान्तसेवी (एकांत प्रेमी), अनुशासन प्रिय विवाद में विरक्त रहने वाला,

विविक्तशीलाय विधिप्रियाय, विद्यावहीनाय बहुश्रुताय	।
विनीतवेशाय नहुंतुकात्मने, सदैव गृह्यं त्विदमेव देयम्	॥३५॥
एतैर्गुणैर्होनतमे न देयमेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः	।
न श्रेयसे योक्ष्यति तादृशे कृतं, धर्मप्रवक्तारमपात्रदानात्	॥३६॥
पृथ्वीमिमां धा यदि रत्नपूर्णं, दद्याददेयं त्विदमन्नताय	।
जितेन्द्रियाय प्रयताय देयं, देयं परं तत्त्वविदे नरेन्द्र	॥३७॥
कराल मा ते भयमस्ति किंचिदेतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाऽद्य	।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं, विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम्	॥३८॥
अगाधमेतदजरामरं च, निरामयं बीतभयं शिवं च	।
समीक्ष्य 'मोहं परवादसंज्ञमेतस्य तत्त्वार्थमिमं विदित्वा	॥३९॥
अदाप्तमेतद्धि पुरा सनातनाद्धिरण्यगर्भाद्धि ततो नराधिप	।
प्रसाद्य यत्नेन तमुपतेजसं, सनातनं ब्रह्म यथा स्वयंतत्	॥४०॥
पृष्टस्त्वया चाऽस्मि यथा नरेन्द्र, तथा मयेदं त्वयि नोक्तमन्यत्	।
यथाऽवाप्तं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र, महाज्ञानं मोक्षविदा परायणम्	॥४१॥

बहुश्रु, विनीत वेश वाला और जो तर्क करने वाला न हो, ऐसे धर्माप्रिय सिध्य की ज्ञान-बुद्धि के लिये इस रहस्यमय ज्ञान को देना चाहिये ॥३३-३५॥ उपर्युक्त गुणों से शून्य व्यक्ति को यह विशुद्ध ब्रह्म-ज्ञान नहीं देना चाहिये। अपात्र को दान देने से (ज्ञान-दान से) धर्म-प्रवक्ता कभी भी उस कुपात्र को श्रेयस्कर पथ पर नहीं ला सकता ॥३६॥ यदि कोई अनुपयुक्त व्यक्ति रत्नों से परिपूर्ण इस पृथ्वी को भी दे देत व भी दत्त-हीन व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं ही देना चाहिये। नरेन्द्र ! यह ज्ञान जितेन्द्रिय प्रयत (पवित्र) और तत्त्वज्ञानी को देना चाहिये ॥३७॥ ऋषिवर ! तुमको अब बाल-बाल का कुछ भी भय नहीं होगा क्योंकि आज तुमने पर ब्रह्म (ज्ञान) को सुन लिया है। मैंने उस परम-व्यक्ति, अगाध शीत को दूर करने वाले, आदिमध्यरहित, अनन्त, अजर, अमर, निर्विकार, बीत-भय और कल्याणमय ज्ञान को यथार्थ रूप से कहा है। नराधिप ! मोह की व्यापकता को साथ ही इसके निवारक ज्ञान के तत्त्वार्थ (धर्म) को समझ कर ही इस ज्ञान को उभय तेजस्वी, सनातन ब्रह्म को यत्नपूर्वक प्रसन्न कर उस सनातन हिरण्यगर्भ से आज से बहुत पहले प्राप्त किया। जिस प्रकार आज तुमने सम्मान और धृष्टा के साथ मुझसे पूछा है और जिस प्रकार तुमसे आज मैंने कहा है, हे नरेन्द्र ! इस प्रकार अन्य किसी ने नहीं कहा। नरेन्द्र ! जिस प्रकार मैंने मोक्ष-ज्ञ या समुद्भूजनों के परमलक्ष्य इस ज्ञान को ब्रह्मा से प्राप्त किया उसी प्रकार तुमने कह दिया ॥३९-४१॥

व्यास उवाच

एतदुक्तं परं ब्रह्म यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः । पञ्चविंश मुनिश्रेष्ठा वसिष्ठेन यथा पुरा ॥४२॥
 पुनरावृत्तिमाप्नोति परमं ज्ञानमव्ययम् । नाति बुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरम् ॥४३॥
 एतन्नि श्रेयसकरं ज्ञानं भो परमं मया । कथितं तत्त्वतो विप्रा श्रुत्वा देवर्षितो द्विजा ॥४४॥
 हिरण्यगर्भादुपिणा वसिष्ठेन समाहृतम् । वसिष्ठादृषिशादूर्लो नारदोऽवाप्तवानिदम् ॥४५॥
 नारदाद्विदितं मह्यमेतदुक्तं सनातनम् । मा शुकध्वं मुनिश्रेष्ठा श्रुत्वा तत्परमपदम् ॥४६॥
 येन क्षराक्षरे भिन्ने न भयं तस्य विद्यते । विद्यते तु भयं यस्य यो नैनं वेत्ति तत्त्वतः ॥४७॥
 अविज्ञानाच्च^१ मूढात्मा पुनः पुनरुपद्रवान् । प्रेत्य जातिसहस्राणि मरणान्तान्मृपाश्नुते ॥४८॥
 देवलोकं तथा तिर्यङ्मानुष्यमपि चाश्नुते । यदि वा मुच्यते वाऽपि तस्मादज्ञानसागरात् ॥४९॥
 अज्ञानसागरे घोरे ह्यव्यक्तागाध उच्यते । अहन्यहनि मज्जति यत्र भूतानि भो द्विजा ॥५०॥
 तस्मादगाधादव्यक्तादुपक्षीणात्सनातनात् । तस्माद्यूपं विरजस्का वितमस्काश्च भो द्विजा ॥५१॥
 एवं मया मुनिश्रेष्ठा सारात्सारतरं परम् । कथितं परमं मोक्षं यं ज्ञात्वा न निवर्तते ॥५२॥

व्यास बोले—श्रुष्ट मुनियो । जिस प्रकार पहले वसिष्ठ ने इस पञ्चविंशत्क परब्रह्म के विषय में जिसको पाकर कोई पुनः आवागमन के बाधन में नहीं पड़ता है कहा है उसको मैंने कह दिया । इस प्रकार उस वसिष्ठ द्वारा ब्रह्मेण्ये शास्वत ज्ञान की आज पुनरावृत्ति हो गई । इस शास्वत अमर ज्ञान को तत्त्वतः समझकर कोई भी बद्धिमान् जगत या माया के पाश में नहीं फँस सकता है । हे विप्रगण ! हे द्विजवय ! इस परम निश्चयस्कर ज्ञान को देवर्षि (नारद) के मुख से सुनकर मैंने यथायत कह दिया ॥४४॥ इस ज्ञान को ऋषि वसिष्ठ ने हिरण्यगर्भ ब्रह्म से प्राप्त किया । जानी वसिष्ठ से इसको ऋषि गादूल नारद ने प्राप्त किया ॥४५॥ नारद से इस सनातन ज्ञान को जान कर मैंने आप लोगों से कहा । मुनिश्रेष्ठो ! अब तो इस परम पद को सुनकर आप लोगो को लगान भी भय या शङ्का नहीं करना चाहिये ॥४६॥ जिसने क्षर और अक्षर का व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लिया उसने अब किस बात का भय रह गया । भय तो उसको होना चाहिये जिसको इस परम ज्ञान का तत्त्व ज्ञात नहीं है ॥४७॥ मूढात्मा ही इस विज्ञान का न जानने के कारण बार बार सकटा में फँसकर सहस्रा योनियो में मटक कर मृत्यु कष्ट का अनुभव करता है ॥४८॥ यदि कश्चित् उस अज्ञानसागर से किसी प्रकार मुक्त भी होते है तो भी वे वर्मानुसार देवलोक तिर्यग और मनुष्य यानि का भोग करते हैं ॥४९॥ द्विजगण ! जिस घोर अज्ञान सागर में प्राणी रातदिन डूबते रहते हैं जिसको अव्यक्त और अगाध कहा जाता है उस अगाध अव्यक्त सनातन और उपशान (क्षयशील) अज्ञान से तुम लोग सबका अछूते हो उनसे रजस् एव तमागुणामक रग से सबका परे हो । मुनिवर ! इस प्रकार मैंने तत्त्वां के तत्त्व परम मोक्ष ज्ञान को कह दिया जिसको जानकर मनुष्य पुनर्जन्म

१क ग पञ्चविंशो । २क ० ते न जरा मोक्षो य एतद्विदितः । ३क ० च्च मोहाद्वा पु० । ४क यदा भवति कालेन त० । ५क ० त मोक्षमास्त्र वै यद्गत्वा ।

न नास्तिकाय दातव्य नाभक्ताय कदाचन । न दुष्टमतये विप्रा न धृढाविमुखाय च ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादसमाप्तिनिर्हपण नाम
पञ्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२४५॥

अथ पट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अस्य श्रवणपठनवर्तुणा फलप्राप्तिकथनम्

लोमहर्षण उवाच

एष पुरा मुनोन्व्यास पुराण इलक्षणया गिरा । दशाष्टदोपरहितैर्वाक्यै सारतरं द्विजा ॥१॥
पूर्णमस्तमलं 'शुद्धैर्नाशास्त्रसमुच्चयं । जातिशुद्धसमायुक्तं' साधुशब्दोपशोभितम् ॥२॥
पूर्वपशोवितसिद्धातपरिनिष्ठासमन्वितम् । ध्यायित्वा यथान्याय विरराम महामति ॥३॥
तेऽपि श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठा पुराण वेदसमितम् । आद्य ब्राह्माभिधानं च सर्वबाञ्छाफलप्रदम् ॥४॥
हृष्टा बभूवुः सुप्रीता विस्मिताश्च पुन पुन । प्रशशसुस्तदा व्यास कृष्णद्वैपायन मुनिम् ॥५॥

भरण के व धन म नही कर्मता है । विप्रगण । इस परमतत्व को किसी नास्तिक भक्त न दुष्टमति और धृढा-हीन व्यक्ति को नहीं देना चाहिये ॥५० ५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म वसिष्ठ-करालजनक-संवाद समाप्ति निरुपण नामक
श्री सी पैंतालीसवा अध्याय समाप्त ॥२४५॥

अध्याय २४६

इस पुराण के सुनने और पढ़ने का फल-वर्णन

लोमहर्षण बोले—द्विजगण 'पूज बा' म महामति व्यास जी न इस प्रकार मुनिवा को अटकार्हा दोषा स रहित अत्यन्त मारमूत निमल किणुद नावा शास्त्रा के तत्व से पूर्ण साधु शास्त्री स सुगोमिन सहज गुद्ध और पूर्वपणन एव मिष्टान्तवचन के सम-वय स युक्त पुराण को न्य धानुवूल रीति म मुना कर मौन हो गये । वे श्रेष्ठमुनि सौ सब मनीरर्यों की पूर्ण करन वाले तथा वै-नुत्य आद्य ब्रह्मपुराण को सुनकर विस्मित और आनन्द-मग्न हो गये । प्रसन्नता से मुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास की बार बार प्रशंसा करन लगे ॥१-५॥

मुनय ऊचुः

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुत्तिसंमितम् । सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं 'परम् ॥६॥
 प्रोक्तं श्रुतं तथाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम् । न तोऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु वं प्रभो ॥७॥
 सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेष्विव ब्रूहस्पतिः । नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वं महामुनिम् ॥८॥
 येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः । कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तव सर्वान्महामुने ॥९॥
 अपीत्य चतुरो वेदान्ताङ्गान्व्याकरणानि च । 'कृतवान्भारतं शास्त्रं तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥१०॥
 नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र'
 येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥११॥
 अज्ञानतिमिरान्धाणां 'भ्रामितानां कुदृष्टिभिः । ज्ञानाञ्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृशः ॥१२॥
 'एवमुक्त्वा समम्यर्च्यं ध्यासं ते चैव पूजिताः । जन्ममृत्यागतं सर्वं कृतकृत्याः स्वमाश्रमम् ॥१३॥
 तथा मया मुनिश्रेष्ठा कवितं हि सनातनम् । पुराणं सुमहापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४॥
 यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं संप्रश्नं द्विजसत्तमाः । व्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया संपरिकीर्तितम् ॥१५॥

मुनियो ने कहा—अहो ! मुनिश्रेष्ठ ! आपने सब प्रकार की अमिप्रेत वस्तुओं को देने वाले, सब पापों को दूर करने वाले, विचित्र पदों वाले और श्रुति तुल्य इस उत्तम पुराण को सुनाया, तथा हम लोगों ने इसे अक्षरशः सुना । प्रभो ! तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो । महामाग ! आप सर्वज्ञ हैं, देवों में ब्रूहस्पति के समान आप का (इस लोक में) स्थान है, आप ऐसे महाविवेकशील, ब्रह्मज्ञानी महामुनि हैं हम सब नमस्कार करते हैं । आपने इस भारतवर्ष में वेदों के अर्थ प्रवट किये हैं । महामुने ! आपने सब गुणों का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६-९॥ आपने अग (पङ्ग) सहित वेदों और सम्पूर्ण व्याख्यान शास्त्रों का अध्ययन कर महाभारत शास्त्र की रचना की है, ऐसे ज्ञानी पुरुष को नमस्कार है ॥१०॥ हे विशाल (व्यापक) बुद्धि वाले, विकसित कमल की पखुडियों के समान आयत नेत्र वाले व्यास ! आपको नमस्कार है, आप जैसे जहामानव को नमस्कार है जिन्होंने महाभारत रूपी तेल से परिपूर्ण ज्ञानदीपक को जला दिया है ॥११॥ आपने अज्ञान के गहन अन्धकार में अपनी भ्रान्त दृष्टि के कारण भूले हुये व्यक्तियों को आँखों में ज्ञान की अञ्जन-शलाका को लगाकर उनकी आँखें खोल दी हैं ॥१२॥ इस प्रकार अपनी वृत्तज्ञता प्रवट कर और महामुनि उस व्यास की पूजाकर वे सब मुनि अपने-अपने आश्रमों को चले गये ॥१३॥

सोमहर्षण बोले—द्विजवर ! जिस प्रकार आप लोगों ने मुझसे पूछा, उसी प्रकार मैंने भी व्यास की हया से पाये हुये अत्यन्त पुण्यप्रद तथा सब पापों को दूर करने वाले सनातन पुराण को आप लोगों से कह दिया । इस पुराण

इदं गृहस्यैः श्रोतव्यं 'यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः' धनसीत्यप्रदं नृणां पवित्रं पापनाशनम् ॥१६॥
 तथा ब्रह्मपरं विप्रैर्ब्राह्मणार्थैः सुसंपतैः श्रोतव्यं सुप्रयत्नेन सम्यक्श्रेयोभिकाङ्क्षिभिः ॥१७॥
 प्राप्नोति ब्राह्मणो विद्यां क्षत्रियो विजयं रणे। वैश्यस्तु धनमक्षय्यं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१८॥
 यं यं काममभिध्यायञ्छृणोति पुरुषः 'शुचिः'। तं तं काममवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥१९॥
 पुराणं वैष्णवं 'त्वेतत्सर्वकित्त्वियनाशनम्'। विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपादकम् ॥२०॥
 एतद्वो यन्मयाऽऽख्यातं पुराणं वेदसंमितम्। श्रुतेऽस्मिन्सर्वदोषोत्थः पापराशिः प्रणश्यति ॥२१॥
 प्रयागे पुष्करे चैव कुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे। उपोष्य यदवाप्नोति तदस्य 'श्रवणाद्भरः' ॥२२॥
 यदग्निहोत्रे सुहृते वर्षे नाऽऽप्नोति वै फलम्। महापुण्यमयं विप्रास्तदस्य श्रवणात्सकृत् ॥२३॥
 'यज्येष्टशुक्लद्वादस्यां स्नात्वा वै यमुनाजले'। मयुरार्या हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति 'पुरुषः फलम्' ॥२४॥
 तदाप्नोति' फलं "सम्यक्समाधानेन कीर्तनात्'। पुराणेऽस्य हितो (?) विप्राः केशवापि तमानसः ॥२५॥
 यत्फलं किं (श्चि) यमलोच्य पुरुषोऽयं लभेद्भरः। तत्फलं समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि ॥२६॥
 इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसंमितम्। यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यैः स याति भुवनं हरेः ॥२७॥

को गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी सबको सुनना चाहिये यह मनुष्य का धन एवं सौख्य देने वाला, पवित्र और पापा को नष्ट करने वाला है ॥१४-१६॥ परम श्रेय की आकांक्षा रखने वाले, ब्रह्मज्ञान पराधन विप्रों और सयमो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को प्रयत्नपूर्वक (यह पुराण) सुनना चाहिये। इस पुराण के श्रवण से ब्राह्मण विद्या और क्षत्रिय युद्ध में विजय प्राप्त करता है, वैश्य अपरिमित धन और शूद्र अति सुख पाता है। पुरुष पवित्र भावना में दिन दिन मनोरथों की इच्छा करता हुआ इस पुराण को सुनता है, उन उनका वह अवश्य प्राप्त करता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥१७-१९॥ यह वैष्णव पुराण सब पापों को नष्ट करने वाला, सब नास्तिकों से अधिक विशेष-पना रखने वाला और पुरुषार्थ-चतुष्टय का देने वाला है। यह जो वेदतुल्य पुराण आप लोगो की मूर्ति मुनाया है, इससे श्रवण से सब प्रकार के दोषों से उत्पन्न पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं ॥२०-२१॥ प्रयाग, पुष्कर, कुक्षेत्र तथा यमुना-जल (आत्रु) में उपवास करने से जो फल मिलता है वह इस पुराण के श्रवण करने से मनुष्य को प्राप्त होता है ॥२२॥ वर्ष भर मलीमति अभिहृत करने से भी उतना फल नहीं प्राप्त होता जितना कि इस महापुण्यप्रद पुराण के एक बार श्रवण करने में प्राप्त होता है ॥२३॥ ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी के दिन यमुना में स्नान कर मयुराराम श्रीहृण-दर्शन से जो फल मिलता है वह इस पुराण के सम्यक् पाठ से प्राप्त होता है ॥२४॥ विप्रगण 'वैश्वदेव' प्यान से जो फल मिलता है वह इस पुराण के सम्यक् पाठ से प्राप्त होता है ॥२५॥ यमलोच्य पुरुषोऽयं लभेद्भरः' फलं "सम्यक्समाधानेन कीर्तनात्"। पुराणेऽस्य हितो (?) विप्राः केशवापि तमानसः ॥२६॥ यत्फलं किं (श्चि) यमलोच्य पुरुषोऽयं लभेद्भरः। तत्फलं समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि ॥२७॥ इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसंमितम्। यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यैः स याति भुवनं हरेः ॥२७॥

१क ०मिधर्मज्ञा०। २क यनारोग्यप्र०। ३क सुधी। ४क ०स्त्यत्र नि०। ५क प्रशाम्पति।
 ६क ०णाद्विज्ञा। ७क ०य यन्मायनु०। ८क ल। ९क ०म्। यदा०। १०क ०ति करो स०।
 ११क ०म्यस्मत्त्वा तु मधुमदनम्। पुराणश्रवणादेव के०।

आयवेद्ब्राह्मणो' यस्तु सदा पवंसु संयतः। एकादश्यां द्वादश्या च विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
 इदं यशस्यमाप्नुय्य सुखदं कीर्तिवर्धनम्। बलपुष्टिप्रदं नृणा धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ॥२९॥
 त्रिस्रध्वं यः पठेद्विद्वाञ्छ्रद्धया सुसमाहितः। इदं वरिष्ठमाख्यानं स सर्वमोप्सितं लभेत् ॥३०॥
 रोगातो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयाद्विमुच्यते भीत' आपदापन्न आपदः ॥३१॥
 जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रार्मेधा' पशून्धृतिम्। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः ॥३२॥
 यान्यान्कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः। तांस्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नाम संशय' ॥३३॥

यश्चेदं सततं शृणोति मनुज' स्वर्गापवर्गप्रद,
 विष्णु लोकगुरु प्रणम्य वरदं भवत्येकचित्त' श्रुतिः।
 भुक्त्वा चात्र सुख विमुक्तकलुषः स्वर्गं च दिव्यं सुखं,
 पश्चाद्याति हरैः पदं सुविमलं मुक्तो गुणैः प्राकृतैः ॥३४॥
 तस्माद्विप्रवरैः 'स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गो'ऽसुभि-
 स्तद्वत्क्षत्रियपुंगवैस्तु' नियतैः श्रेयोयिभिः सर्वदा।
 वैश्यैश्चानुदिनं विशुद्धकुलजैः शूद्रैस्तथा धार्मिकैः
 श्रोतव्य' त्विदमुत्तमं बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम् ॥३५॥

है। जो ब्राह्मण सर्वदा पर्वों के दिन तथा एकादशी और द्वादशी के दिन यह पुराण गुनाता है वह विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥२८-२८॥ यह पुराण मनुष्यों का यश बढ़ाने वाला, आयु सुख और कीर्ति बढ़ाने वाला, बल-पुष्टि प्रद, धन्य और दुःस्वप्न के प्रभाव का दूर करने वाला है ॥२९॥ जो व्यक्ति तीनों काल (प्रातः, मध्याह्न एवं सायम्) एकाप मन से श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ आख्यान (पुराण) को पढ़ता है वह सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥ इस पुराण के पाठ से रोगी मनुष्य रोग से और बन्दी कारागार से छूट जाता है। इसी प्रकार समयीत मय से तथा आपत्तिग्रस्त आपत्तियां से छूट जाता है ॥३१॥ मनुष्य इससे प्रभाव में जानिस्मरत्वं (पूर्वजन्म का ज्ञान) विद्या, पुत्र, मेधा वसुधन, धैर्य धर्म, अर्थ काम यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥३२॥ जिन जिन इष्ट पदार्थों को मन में लेकर सततचित्त से मनुष्य इस पुराण का पाठ करता है उन सबको वह प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं ॥३३॥ जो मनुष्य लोकगुरु बरदाना विष्णु को प्रणाम कर भक्तिभाव में ध्यानपूर्वक पवित्र हो, इस स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाले पुराण का नियत धवण करता है, वह पापमुक्त होकर इस लोक में सुख और स्वर्ग में दिव्य सुखों को भोगन के बाद अपन प्राकृत गुणों से भी मुक्त होकर विष्णु के विमल और शाश्वत पद को प्राप्त करता है ॥३४॥ इसलिये सूचित-प्राप्ति के इच्छुक तथा अपने धर्म में निरत रहने वाले श्रेष्ठ मित्र, सर्वदा अभ्युदय की इच्छा करने वाले एवं नियम पालन करने वाले उत्तम शत्रिय, विशुद्ध कुल में उत्पन्न वैश्य और धर्मप्रेमी शूद्र प्रतिदिन अधिक कल देने वाले एवं धर्म अथ और मोक्ष देने वाले उत्तम पुराण का धवण करें ॥३५॥ अथ पुराण

१४ ह्यन्यास्तु। २४ स ० तदधीरागमुच्येन्महापन। जा०। ३४ ० पां यशो पुरि०। ४४ ० भवेता
 पु०। ५४ ० मर्मकृद०। ६४ ० यतपुर्नस्तु। ७४ ० ध्य तदनुता०।

धर्मं मतिर्भवतु' च पुरुषोत्तमाना, स हृद्येक एव परलोकपतस्य यन्धुः ।
 अर्था स्त्रियश्च निपुणैरपि सेध्यमाना, नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥३६॥
 धर्मेण राज्यं लभते मनुष्य, स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति ।
 आयुश्च कीर्ति च तपश्च धर्म, धर्मेण' मोक्षं लभते मनुष्य ॥३७॥
 धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य, धर्मः सखा चात्र परे च लोके ।
 प्राता च धर्मस्त्वह मोक्षदश्च, धर्माद्वृत्ते नास्ति तु किञ्चिदेव ॥३८॥
 इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसमितम् । न देयं दुष्टमनस्ये नास्तिकाय विशेषतः ॥३९॥
 हृदये मयोक्त प्रथमं पुराणं, पापापहं धर्मविवर्धनं च ।
 श्रुतं भवद्भिः परमं रहस्यमाज्ञापयस्व मुनयो मज्जामि ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे रोमहर्षणमुनिसंवादे पुराणप्रशसनं नाम
 षट्चत्वारिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२४६॥

समाप्तमिदमादिब्राह्माभिधं महापुराणम्

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

येष्टां की धर्म की ओर सदा अभिरुचि हो क्याकि वही परलोक म गय हुये जीवा (मृत) का एवमात्र सहायक है।
 परम बुद्धि व्यक्ति भी यदि अथ और स्त्री की सेवा करे अर्थात् उनका प्रेमी बने तो भी वे न तो कुछ महायत्ना ही
 कर सक्त और न स्थिर ही रहते हैं ॥३६॥ मनुष्य धर्म म ही राज्य प्राप्त करता, धर्म से ही स्वर्ग प्राप्त करता
 और धर्म से ही आयु, कीर्ति तप और धर्म यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥३७॥ इस लोक म धर्म ही
 मनुष्य की माता और पिता है धर्म ही इस लोक तथा परलोक का रक्षा है धर्म ही इस लोक का रक्षा और
 मोक्षदाता है धर्म का अनिरुद्ध और कोई तार पदार्थ समान म नहीं है ॥३८॥ यह श्रेष्ठ पुराण परम मोक्षीय
 तथा वेदगुह्य है। इसकी दुष्ट-दृष्टि विशेषकर नास्तिक व्यक्ति को कभी भी नहीं सुनना चाहिये ॥३९॥
 मुनिगण ! मैंने यह पाप-नाशक उत्तम तथा परम मोक्षीय पुराण बत दिया और आप लोग न भी इसे गुप्त
 किया । अब आपा दीजिये, मैं जाता हूँ ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म रोमहर्षण और मुनियों का संवाद प्रकरण म पुराण
 प्रशंसा नामक दो सी छियासीवर्ष अध्याय समाप्त ॥२४६॥

॥ ब्रह्मपुराण समाप्त ॥

(ब्रह्मपुराण के समस्त श्लोकों की मर्यादा १३७८३)

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

परिशिष्ट

ब्रह्मपुराण में आय व्यक्तिवाची सज्ञा शब्दों की अनुक्रमणी

य

अग—१६ १२०१।

अगुमान्—५५ ४४९।

अगीवान्—३३।

अग्नय—१४६।

अग्नाव—४८।

अग्र—९३ ९५ १०६ १०८ १०९ ११० ९९१

९९३ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ १००० १००१

१००२ १००४ १००५ १०६७।

अग्रमूत्रा—७४०।

अग्रय—९३

अग्रय—४०८ ४१४ ४५२ ५२० ५६३ ५८५

६४१ ६४२ ६०५ ६९६ ६९७ ७४१

७४२ ८२८ ८२० ८३० ८९६ ९०१।

अग्रवत्—९६।

अग्रि—३० ३४० ३६८ ३७८ ४१५ ४८५ ५०९

५१३ ५५७ ५३८ ५६० ५७३ ५८५ ६००

७०१ ७१४ ७१९ ७०० ७२० ७२० ७५

७८९ ७९० ७९४ ८०२ ८३० ८३१ ८३८

९५१ ९९९ १०४० १०७२ १०८१ १०८३

१२१० १२०४ १६६६।

अग्निवा—३५।

अग्निवत्—१०१।

अग्निवृत्—८।

अग्रगत—८४।

अग्र—८ २४।

अङ्ग—८१७ ८१९ ९१७।

अङ्गारक—१९१।

अङ्गावृत्—८७।

आङ्गार—५ ८ १४ ३७ ३३ ७१ ८२ १९५

२३३ ३७८ ५१६ ७८९ ८२० ८२८ ९०१।

अङ्गुल—९६८ १०३४।

अज—५६।

अज—६२ ८२।

अजान्—८६।

अजमाडि—८२ ८३।

अजट—३४।

अजानान्—१५।

अजिन—८।

अजान्—५४४ ५४५।

अजानि—८०६।

अजानान्—१५।

अजानान्—४७१ ४७२।

अजिन—१८ ८७।

अजिनमाय—३३।

अजिनान्—८६३।

अजिनान्—८००।

अजिनान्—१०२।

अजिनान्—८१३।

अजिनान्—१३

अजिनान्—८।

अजि—१ ७ ४ ३० ३४ ५८ ७३ १८९ १८०

१९५ ३७८, ५२२, ६३७ ६३८, ७८८, ७८९,	अभिमन्यु—८ ८५ ९५।
७९२, ८७२, ९०१।	अभिष्टुत—८७१ ८७३।
अदिनि—१६, १७८, १७९ १८० १८१ १९७	अमावस्य—६१।
३७८, ४१९ ६८५, ८९४, ९४१, १०३३, १०३४,	अम्बरीष—४३, ५६ ४०८।
१०३५, १०३६, १०३७।	अम्बर्य—८०४।
अदि—४७२।	अम्बष्ठ—७८।
अद्रिका—४७१, ४७२।	अम्बिका—५५७।
अघृष्ट—३४।	अय शकु—१०८५।
अम्बरीषान्—३४।	अय शिरा—१०८५।
अनय—८०।	अयुताजित—५६, १००।
अनग—३६८।	अयोमुख—१७।
अनामिन्—५६, ९४, १०३।	अरिश्मन्—१०६।
अनरण्य—५६।	अरिन्दम—४०८।
अनल—१४।	अरिमर्दन—९३ १०६।
अनाघृष्टि—९४।	अरिमेजय—८४, ९३ १०६।
अनावृष्टि—१०२।	अरिष्ट—३४, ९४९ ९५७, ९८०, १००५, १०३२,
अनिहृद्ध—३५२, ३६७, १०२८, १०२९ १०३१	१०९१।
१०४४, १०४५ १०४७, १०४८, १०५१, १०६७।	अरिष्टनेमि—१४, १६, ५५, ९३।
अनिल—१४।	अरिष्टा—१६ १९।
अनु—७२, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४ ७९७।	अरुण—१९ ४९५ ८३२, ८६६, ८६७।
अनुज—१०८५।	अरुणवर्त—१४, १९७, ४०३, ४१३ ४६६ ६०३,
अनुहृदि—१७ ७०० १०८५।	८९६।
अनेता—४५ ६६, ६८।	अर्जुनयन्—१०८५।
अन्तर—९७।	अर्जुन—८८ ८९ ९० ९४, ९५, ९८० ९८१
अन्तर्धानि—८।	१०५९, १०६३, १०६८, १०७०, १०७१, १०७२,
अन्तर्धामि—१२०१।	१०७३, १०७५, १०७६ १०७८, १०८८।
अन्तर्धामि—८।	अर्धमा—१६, ३७८, ९९१।
अन्ध—९२ १०० १०१, १०३ ४०८ ७३३।	अष्टिपेण—५६०।
अन्धक—९३।	अलम्बुषा—३९९, ९२४।
अन्धकार—१२२।	अलर्क—७०, ८१, २०२, ९४०।
अपराजित—१५।	अवलि—९१, १०१।
अपरा—२०१।	अविहित—८६ ९३।
अभयद—७६।	अविज्ञान गति—१५।
अभिजित—१०१।	अव्यय—३३।

अमवय—९४।

अव—९३ १०६।

अवप्रव—९३ १०६।

अवत्रर—१९।

अवय—६४१।

अवयामा—३४।

अवपति—१०८५।

अववाहु—९३ १०७।

अवगिरा—१०८५।

अवहनु—९५।

अविन्—३२८ ५१३ ५८५ ९९३ १०१०।

अविनीकुमार—३४ ४० २१२ २२५ २३३ २३४

२७२ २०९ ४९५ ४९६ ५३८ ६८० ८३८

९५० ९९२ १०६४।

अष्टव—६५ ६६ ८३।

अष्टारष—८१।

अष्टावक्र—१०७६ १०७७।

अमयजस—४४८ ४४९।

असभोजा—१०३।

असिक्नी—१२ ९३।

असित—१४६।

अगितामा—१०८६।

अस्ति—१०१३।

अरूपा—४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७

४८८ ५७९ ६५६ ६७२।

अरि—८०८।

अरिर्विष्य—१५।

अहीनगु—५७।

आ

आर्त्ताघ्न—३२ १२२५।

आग्नेया—८।

आङ्गुल—७८९।

आत्तापणि—५६।

आत्रय—७७४ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९।

आत्रया—७८८ ७८९ ७९१।

आदिवा—८७६ ८७७ ८७८।

आदिय—३४ २२५ ४९२ ५१३ ५८० ५८५

६८० ८२० ८२१ ८३१ ९०२ ९९२ १०६४

१०८२ १२०१।

आनकदुदुभि—१२०२।

आनद—११९

आनत—४३ ७१ ८२।

आप—१४ ३२।

आपव—५ ६।

आपस्तम्ब—७३६ ७४० ७४१ ७४२ ७४२।

आयाति—७१।

आयु—६१ ६६ ६५२ १००१।

आयुष्मान्—७।

आरण्य—३३।

आद्र—४५।

आष्टिपण—६९ ७११ ७१३ ७१६ ७१७।

आवा—९९।

आवा—०३ १०६।

आसदिव—८६७ ८६८।

आगुरि—१४६।

आहुव—१०१ १०६८।

आह्नीद—८७।

इ

इक्ष्वा—४१ ४२ ४४ ४५ ५४।

इन्द्र—२१ २२ २० ४९ ६२ ६३ ६८ ७१ ७२

८२ ९४ ११० १४९ १५८ १७४ १८७ १८६

१९१ १९३ १९७ २१० २१३ २१५ २२४

२३७ २४३ २६३ २६५ २७१ ३१० ३३१

३६८ ३७८ ३८१ ३८८ ४०९ ४१९ ४२३

४३७ ४४६ ४५३ ४५९ ४६४ ४७२ ४७७

४७८ ४७९ ४८० ४८२ ४८३ ४८४ ४८५

४८६ ४८७ ४८८ ५०९ ५१० ५१३ ५२०

५२१ ५३१ ५३८ ५४१ ५५० ५८० ५८२
 ५८५ ६५३, ६५९ ६५७ ६५८ ६६१ ६६२
 ६६३ ५८८ ६८६ ६९० ६९१ ६९२ ६९३
 ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९९ ७२१ ७२८
 ७२८, ७२९ ७३० ७३१ ७३५ ७३५ ७३६
 ७३७ ७३५ ७३५ ७३७ ७३८ ७३९ ७९३
 ७९४ ७९९ ८०० ८११ ८३५ ८३८ ८४४
 ८४९ ८७४ ८९० ८९१ ८९४ ९०० ९०२
 ९०३ ९१४ ९१५ ९२३ ९२४ ९२७ ९४०
 ९४१ ९४४ ९५० ९५२ ९५२ ९७४ ९७५
 ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९९१ ९९२
 ९९३ ९९४ ९९९ १०१० १०१२ १०३२
 १०३३ १०३५ १०३७ १०३८ १०३९ १०४०
 १०४१, १०४२ १०५२ १०५८ १०५९ १०६४
 १०६५ १०८३ १११७ १२२८ १२२९ १२६६।

इन्द्रवित्—१७।

इन्द्रतापन—१०८५।

इन्द्रद्युम्न—२६६, २७१, २७२, २८४, २९०, २९२,
 २९४, २९६, २९८, ३०९ ३१०, ३१५, ३८५।

इन्द्रसेना—८३।

इन्द्राणी—७२८, ७३१ ७३२, ७३६, १०३७ १०३८,
 १०३९।

इरा—१६, १९।

इरु—३२, ५६५, ५६६ ५६७, ५७१, ५७७ ५७८।

इला—४१, ४२, ४३, ६०, ८०, ४१५ ५७०, ५७१,
 ५७२, ५७३, ५७४, ५७५ ५७६, ५७७ १२०१।

इत्थल—१७ १८।

ई

ईशान—३२८, ३६८।

ईशवर—८६६।

ईश्वरी—५५७।

उ

उक्थ—५७।

उग्र—१०८५।

उग्रसेन—१०१, १०२, ९४९, ९८८, ९९१ ९९५
 १००८, १०१२, १०१३ १०५७, १०५८, १०६४,

१०६८, १०७०।

उग्रसेना—९३, १०६।

उर्ध्व श्रवा—२२।

उत्थल—४२।

उत्थला—४२।

उत्तङ्क—४६ ४७, ४८।

उत्तम—३१।

उत्तानपाद—७।

उदय—९४, १०६६।

उपदानवी—८०।

उपदेव—९३, १०१, १०६।

उपदेवी—९५, १०१।

उपवाह्यावा—१००।

उपमद्गु—९३ १०६।

उपमन्यु—७१६।

उपेक्ष—१०६।

उमा—२०१, २०४, २०५, २०६, २०९, २१३
 २२३, २३०, ३७९ ४१६, ४२६, ४३४, ४३८,
 ५६८, ५७५, ५७६, ६०५, ७३४, ७९१, ११८२,
 ११८८, ११८९, ११९०, ११९१, ११९६, ११९७।
 ११९८।

उर्वेसी—६० ६१, १८७, २५६ ३९९, ५३४, ५३५,
 ७९९ ८०९, ८१०, ८११, ८९०, ८९१, ८९२,
 ९२४, १२१८, १२१९ १२२०, १२२१ १२२२।

उलूक—१४६, ७००।

उल्मुक—१०२३।

उत्थीनर—७७, ९५।

उपङ्गु—१२०२।

उपत्—९७।

उपद्गु—९७।

उपदय—७८।

उषा—१९७, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, १०४५,	वसन्ती—१०२।
१०४६, १०४७, १०४८।	वसा—१०२।
उष्ण—१२२।	वसुत्सव—४५, ७१।
ऊ	वसुधी—४३।
ऊर्ज—३२।	वसुधीन्—५२९, ५३०।
ऊर्जा—११३४, ११३५, ११४२, ११४३।	वसुधु—७६, ७७।
उर्ध्वबाहु—३३।	वङ्ग—१०२।
शू	वङ्गा—१०२।
शूक्ष्म—८४।	वङ्गालिनी—८६९।
शूचीव—३४, ६३, ६४।	वच—५१९।
शूबु—७६।	वच्छम—६५।
शूबुवृत्त—८०।	वट—६४९, ६५०।
शूबुवृत्त—५६०।	वटु—९२२, ९२३, ९२७, ९३१, ९३३, ९३७,
शूबुवृत्त—५६।	९३८।
शूबुवृत्त—७९।	वटु—१४६, ४७३, ४७४, ४७५, ८०१, १०६३।
ए	वति—६५।
एकचक्र—१७।	वटु—१६, १९, ५३३, ८३२, ८३३, ८३५, ८३६।
एकपथा—२०१, २०२।	वनव—८७।
एकपाटला—२०१।	वनखल—४०८।
एकलव्य—९४।	वनवक—९४, ९५।
एकलव्य—१०८६।	वन्द्य—१०२४।
एकलव्य—१९।	वपरी—१५।
ऐ	वपालगीतव—३४९।
ऐक्याकी—९९।	वपारी—१५।
ऐरावत—१९, २२, २९, १०३३, १०४०, १०४१।	वपित—१७, १९, ५४, ८०, १४६, ४०२, ४४७,
ऐशान्य—८६।	४४८, ४४९, ८५१, ७८०, ७८१, ७८३,
ओ	१०८०।
ओर्व—३२, ३४, ८२, ५३, ५५।	वपिलारव—४८।
व	वपीवान्—३३।
वस—१०१, ९१७, ९४९, ९५१, ९५२, ९५५, ९५६,	वपानरोमा—१०१।
९५७, ९५८, ९८७, ९८८, ९८९, ९९१, ९९४,	ववध—१०८९।
९९५, १०००, १००१, १००३, १००४, १००५,	वमगा—४९९।
१००७, १००८, १०१०, १०११, १०१३, १०१४,	वम्बल—१९।
१०३२, १०९१।	वम्बलवह्नि—९८, १०३।

वरधम—८६।

करम्म—९९।

कराल—१०८६।

करालजनक—१३०१, १३१२।

करप—४१, ४३, ४४।

करुरोम—८७।

कर्कि—७४०।

कर्कोटक—१९, ८९।

कर्ण—१०५६, १०५७, १०५८ १०७१।

कर्दम—७, २२।

कलिङ्ग—१०२९।

कलिन्द—१०२९।

कल्माषपाद—५६।

कवय—७७२, ७७३।

कनि—८, ५१६।

कश्यप—१२, १४, १५, १६ १७ १९ २० ३२
३४, ३६ १४६, १७८, १८१, १८२, १९७ १९८,
१९९, २००, २११, २६३, २७८ ३७८, ४०४, ४०८,
४६८ ४६९ ४९२ ५२२, ५३१ ५३२, ५३३,
५३४, ६७०, ६८६ ६८७ ६८८, ६९१ ६९४,
६९५ ६९६, ८६६ ९०३, १०८८।

काल्ज्वनप्रम—६१।

काण्ड—८०२।

काम—९२५, ९२६।

कामदमन—१२२५।

कामदग्मज—१०३।

कामदेव—२२१।

कामली—६४।

काम्या—६ ७।

कारुष—४३।

काश्यप—६५।

कार्त—८७।

कार्तवीर्य—९१ १०८७।

कार्तिक—७२०।

कार्तिकेय—१५ २५२, २६०, ३२८, ४६४, ४६६

५१२ ५६८ ५९७ ७१९ १०४९।

काल—१५, १७ ८७।

काङ्क—१०८५।

काङ्कप—१०८५।

काङ्कनाम—१७ १८।

कालनेमि—९४१, ९४९।

कालयवन—९६ १०१५, १०१६ १०१९, १०९१।

कालरात्रि—५५७।

काङ्कवदन—१०८६।

कालानल—७७।

कालिका—१८।

कालिन्दा—१०४४।

कालिय—९८२, ९८७, १००५।

का—८५।

काजीय—९६४ ९६५ ९६७ ९६८ ९६९।

कावेरी—६२ ८२।

काव्य—३३।

काश—६९।

कासिक—८१।

कासिकन्या—९५।

काशिप—६९।

काश्य—१०१।

काश्यप—३४, ६९।

काश्या—८५, १०१।

कीर्ति—५९ १९७ ४१४।

कीर्तिमान्—७।

कुतुर—१०१, १०२।

कुक्षि—७, १७।

कुण्डल—८८१, ८८५।

कुत्स—८।

कुन्ति—९४, ९९।

कुपय—१०८५।

कुवेर—२१२ २३३, ३२८, ३६८, ४०२, ४१५

कैटभ—३०, ६४१, ६५५, ६४७, ११३७।

कैशिक—९९।

कोका—११४३।

कोत्लामुर—४०८।

कोष्ठु—९७।

कोशल्या—९९ ६६३, ६७१।

कौशिक—३४, ५०, ८६, ९४ १४६, ९०१।

कौशिकी—६४।

क्रतु—५, ८, ३२, १९५, ३७८, ९०१।

क्रतुस्थला—३९९।

क्रव—९९, १०८५।

क्रमण—१००।

त्रिमि—१००।

क्रोञ्ची—१९।

क्रोध—१०८५।

क्रोधन—८६३ १०८५।

क्रोधवर्द्धन—१०८५।

क्रोधवशा—१६।

क्रोधहन्ता—१०८५।

क्रोष्टा—८७, १२०१।

क्राटु—९, १०३।

क्षत्रवृद्ध—६९।

क्षमाधान्—१५।

क्षान्ति—४१४।

क्षेम—०।

क्षेमव—६९ ७०, ८१, ११९।

क्षेमघन्वा—५७।

क्ष

खट्वाङ्ग—५५।

खलदा—७६।

खसा—१६, १९।

ख

खन्ना—४०९, ४२६ ४४१, ४४२, ६०९, ६४७, ७३८,

७७०, ७८४, ८०८, ८१०, ८९४, ८९६, ११३८।

गणनायक—४३०।

गणपति—४२९।

गणेश—२२७, २६०, ३२८, ४२८, ४३३, ५६८,

५७६, ५९७, ६२८, ६३१, ९०८, ९०९ ९१२।

गणेश्वर—९११।

गण्ड—८६३।

गण्डूय—९४।

गद्र—९६।

गन्धर्वगण—१०४०।

गमस्तिनी—५८५, ५८८।

गमर्नाम्रिय—१०८५।

गम्भीरा—८००।

गय—८, ४२, ८०, ४०८।

गया—४२।

गरिष्ठ—१०८५।

गरुड—१९, २२, ३५५, ४९७, ४९८, ४९९, ५००,

८३१, ८३२, ८३४, ८३५, ८३६, ८६६, ८६७,

९३२, ९६९, १०३३, १०३४, १०३५, १०४०,

१०४१, १०४३, १०४८, १०४९, १०५३, १०५४,

१२२६।

गर्ग—७२, ८०, ९६, १२८, ९६१।

गर्माश्र—१७।

गवय—९१७।

गवाश—९१७।

गवेयण—९३, १०७।

गान्धवान्—१०४४।

गाधि—६३, ६५, ८३।

गान्दिनी—९३, १०६।

गान्धार—८७।

गान्धारी—८५, ९२, १०३।

गायत्री—३६१।

गायत्र्य—९६, १४६, १०१५, १०१७।

गाल्व—३४, ५०, ६५, १४६, ५०२, ५०३, ५०,

५०५, ५०६, ६७०, ९०१।

ज	ज्यामघ—९८।
जटासु—८६६।	ज्योति—३२।
जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७३, १०९० १३०९।	ज्योतिष्मान्—३२।
जनमेजय—७२, ७७, ८४।	त
जनादन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१ १०१३	तमु—८०।
१०१४, ११३६।	तभक्—१९, २२ २९।
जन्तु—८३।	तत्त्वदर्शी—३३।
जप्य—६५।	तनुजं—३२।
जमदग्नि—३४, ६४, ६५। १४६।	तन्त्रिज—९५।
जय—६५, ६९।	तन्त्रिपाल—९५।
जयस्तेन—६९।	तन्वी—३३।
जयद्वय—१०७१।	तद—३३।
जयध्वज—९१।	तपती—६०९।
जयन्त—७७५।	तपस्य—३३।
जया—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०,	तपस्वी—८।
४३१, ४३३, ५८०, ७११।	तपोभूत—३३।
जरा—१०६४, १०६९।	तम—६५२, ६५३, ६५८।
जराहन्त्र—७२, १०१३ १०१४, १०१५, १०१६	ताडका—६७२।
१०२४, १०६५, १२०२।	तापी—४९५ ४९६।
जलद—१२३।	तामस—३१।
जलेयु—७६।	ताम्रा—१६ १९।
जह्नु—३३, ६१, ६२ ८२।	तारक—१७ ४६४, ४६६, ७१९।
जातवेदस्—५२७ ५२८।	तारा—५९, ८१२, ८१४।
जानकी—९१७।	तार्क्ष्य—८६६।
जाबाला—७५८, ७५९।	तालव्य—९१।
जाबालि—५०१ ६७० ७९२, ९०१।	तित्तिभु—७७ ७८।
जाम्बवती—१०५ १०२९ १०४४।	तिलिर—१०१।
जाम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९ ९१७।	तिलोत्तमा—१८७, २५६, ३९९, ७९९, ९२४, १०७६।
जास्रथ—१०९०।	तुम्बुह—१८७, २१६ ९०१।
जागति—८०७।	तुर्वसु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७ ७९४, ७९७।
जीमूत—९९।	तुपित—३२।
जीव—५१६।	तृणयज्ञ—१४६।
जैगोषव्य—२०२।	तोसालन—१००८।
जैमिनि—१४६।	तोषिकेर—९१।

ज	ज्यामघ—९८।
जटासु—८६६।	ज्योति—३२।
जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७३, १०९० १३०९।	ज्यानिष्पान्—३२।
जनमेजय—७२, ७७, ८४।	त
जनादन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१, १०१३,	तसु—८०।
१०१४, ११३६।	तक्षक—१९, २२, २९।
जन्तु—८३।	तत्त्वदर्शी—३३।
जप्स—६५।	तनूजं—३२।
जमदग्नि—३४, ६४, ६५। १४६।	तन्त्रिज—९५।
जय—६५, ६९।	तन्त्रिपाल—९५।
जयत्तन—६९।	तन्वी—३३।
जयद्रथ—१०७१।	तप—३३।
जयध्वज—९१।	तपती—६०९।
जयन्त—७७५।	तपस्य—३३।
जपा—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०,	तपस्वी—८।
४३१, ४३३, ५८०, ७११।	तपाभूत—३३।
जरा—१०६४, १०६९।	तम—६५२, ६५३ ६५८।
जरासन्ध—७२, १०१३, १०१४, १०१५, १०१६,	ताडक—६७२।
१०२४, १०६५, १२०२।	तापी—४९५, ४९६।
जलद—१२३।	तामस—३१।
जलेयु—७६।	ताम्रा—१६ १९।
जल्ल—३३, ६१, ६२, ८२।	तारक—१७, ४६४, ४६६, ७१९।
जातवदसु—५२७ ५२८।	तारु—५९, ८१२, ८१४।
जानकी—९१७।	तार्क्ष्य—८६६।
जाबाला—७५८, ७५९।	तालजघ—९१।
जाबालि—१०१, ६७० ७९२, ९०१।	तितिक्षु—७७ ७८।
जाम्बवती—१०५, १०२९ १०४४।	तिलिर—१०१।
जाम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९, ९१७।	तिलोतमा—१८७ २५६, ३९९ ७९९ ९२४, १०७६।
जारुष्य—१०९०।	तुम्बुह—१८७ २१६, ९०१।
जोगति—८०७।	तुर्वसु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९७।
जोमूत—९९।	तुपिन—३२।
जोद—५१६।	तृणयज्ञ—१४६।
जैगीषका—२०७।	तोगलव—१००८।
जैमिनि—७	तोमिडयेर—९१।

देवघाहु—३३।

देवभाय—९४, ९४।

देवमीदुप—९२, ९३, १०३।

देवयानी—७२, ७९४, ७९५।

देवरक्षित—१०१।

देवरक्षिता—९५, १०१।

देवरात—६५, ६५, ६६ ९९ ९०१।

देवल—१५, ६५, १४६ २०६।

देवान्—१०१।

देवव्रत—८५।

देवसर्मा—१२१६।

देवश्रवा—९४, ९४।

देवस्थान—१४६।

देवानोव—५७।

देवान्त—१०३।

देवापि—८४, ७११, ७१२, ७१३ ७१४, ७१५,

७१६, ७१७, ७१७।

देवावुघ—९९, १००।

देवेन्द्र—४६५।

द्युति—३३, ५९।

द्युतिमान्—३२, १२२।

द्युत—८७।

द्रविण—१५।

द्रुपद—८३।

द्रुप—७२, ७६, ७४, ८६, ८७, १९४, ७९७।

द्रोण—१०५७, १०५७, १०५८, १०७१, १०७४,

१०७५।

द्रोणाचार्य—३४।

द्रिमीड—८२।

द्रिमुर्षा—१७।

द्रिपिद—१०६०, १०६२, १०९१।

ध

धनेजय—१९, ८५।

धनु—६९।

धनेयु—७६।

धन्वन्तरि—६९, ८१ ६५२, ६५४, ६५६, ६५८

धन्वी—३३।

धर्म—८७, १०७, ७२१, ७२४, ७२५ ९४४।

धर्मवेतु—७०।

धर्मघृक्—९३।

धर्मनेत्र—८०, ८७।

धर्ममृत—९३ १०६, १०७, ५४।

धर्मरथ—७९।

धर्मराज—४०।

धर्मा—१०६।

धर्मोश—९३।

धन—१४, १५।

धातवि—१२४।

धाता—१६, ३३।

धार्यव—४३।

धिपणा—८।

धुन्तु—४५, ४६, ४८।

धुन्वमार—४५।

धूमिनी—८२, ८३।

धूम—१४६।

धृतराष्ट्र—१७, १९, ८५।

धृतराज—५०२, ५०३, ५०५, ५०६।

धृति—५९।

धृतिमान्—३३, ३४।

धृष्ट—४१, ४३, ४३, ९९, १००।

धृष्टवेतु—७१।

धेनु—९४९, ९५७, ९७०, ९७१, ९८७, १००५,

१०३२।

धौम्य—१४६।

ध्या—६५।

धुर—७, १४, १५, ११९।

न

नकु—१०५९।

नदान—१४।

नानजित्—१०२९।

नानिवेत्ता—४०८।

नद्वला—७।

नदीन—६९।

नन्द—९५६, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६,
९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९८८, ९८८,
९९१, ९९६, १००५, १००८, १०२०।

नन्दिश्वर—४९७।

नन्दी—४१५, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५१२,
५१५, ५६८, ७१७, ८१५।

नन्दिश्वर—२५२।

नम—३२, ३३, ५७।

नमस्य—३२, ३२।

नमुचि—१८, ४०८, ६६५, ६८९, ७२७, ७३०, ८३८,
९१४, १०८५।

नन—१८, ९४९, ९८०, १०३१, १०३२, १०३३,
१०३५, १०४३, १०६०, १०८५।

नरनारायण—४०८।

नरसिंह—३४२, ३४४, ३४५, ३४७, ३६७।

नरान्त—१०३।

नरामस्त—९१७।

नरिष्यन्त—४१, ४३।

नर्मदा—६०९।

नल—१८, ५६, ५७, ५७, ९१७।

नलदा—७६।

नल—७७, ७८।

नवरत्न—९९।

नवा—७७।

नहुय—१९, ६६, ७१, ६५६, १२०१, ७९३, ७९७।

नाम्नजिनी—१०४४।

नामाग—४१, ४३, ४३, ५६।

नामागारिण—४४।

नारद—१२, १३, ८८, १४६, १७०, १७३, १८७,
१९९

२१६, २३३, ४०३, ४०४, ४०६, ४०७, ४०९,
४१५, ४१७, ४२५, ४३४, ४४१, ४४४, ४४५,
४४८, ४५२, ४५३, ४५४, ४६४, ४६६, ४६७,
४७१, ४९६, ५०१, ५०२, ५०७, ५१५, ५३८,
५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६४१,
६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८७,
४७१, ४९६, ५०१, ५०२, ५०७, ५१५, ५३८,
५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६१०,
६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८४,
६८६, ६८९, ७१०, ७१७, ७२७, ७३३, ६५०,
७५४, ७७२, ७८०, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,
७९२, ८०१, ८११, ८१८, ८२३, ७२४, ८३७,
८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४६, ८५०,
८६६, ८९०, ८९५, ८९७, ९०२, ९०४, ९०५,
९०६, ९०६, ९०७, ९१३, ९५१, ९८७, ९९०,
९९१, १०१६, १०२५, १०२६, १०२६, १०४८,
१०६३, १२२७, १२२८, १२२९, १३२६।

नारायण—३७१, १३२, १९७, ३५९, ३६७, ४११,
८५४, ८७०, ११४८।

नावेय—१०६।

नासत्य—४०।

नासमीना—१०३।

निकास्य—१०३।

निबृम्भ—४८, ७०, ९१७।

निघ्न—५६, १०३।

निम्लोवा—३९९।

निहस्तुङ्ग—३३।

निवातवचन—१८।

निबृहन्नु—९४।

निगठ—९५, १०२३।

निपथ—५६।

नाल—८७, ९१७।

नीलवेना—३९९।

नीली—८२, ८३।

नृग—७७, ७७।

नृगा—७७।

नृसिंह—३४३, ८०४।

नैगमेय—१५।

नैमिषारण्य—१।

नैर्ऋत—७८५।

नैर्ऋत्य—३६८।

न्यग्रोध—१०१।

प

पञ्चजन—५५, ८३, १०१३, १०३३।

पञ्चनद—५४।

पञ्चाल—९४

पनस—९१७

पयाद—८७

परजित्—९८

परस्तप—३३

परमन्यु—७७

परसु—९०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५

पराजिता—७२७

परावती—३९९।

परीशित्—८४, ८५, ७२।

पर्वन्य—२२, ३३।

पर्वत्—१४६, २३३, ५३९, ५४०, ९०१।

पथमान्—८५६, ८५८, ८५९, ८६०।

पाटीन—९१७।

पाणिन—६५।

पाण्डु—८५, ९४।

पाण्डु—८७।

पातालवेनु—४०८।

पानित्—८।

पारिणि—८५।

पारिध—६५।

पार्वती—२०३, २०४, २०७, २११, २१५, २१९।

२२०, २२२, २२८, २३६, २५१, २५२, २६०,

३५०, ३५१, ४१४, ४६४, ५२५, ५७०, ५७७,

५९७, ६४५, ७२०, ९०८, १०४६, ११९३।

पालित—९८।

पिण्डारक—९५।

पिण्ड—६४१।

पिण्डा—७५०।

पिण्डाद—१४६, ५९४, ५९५, ५९६, ५९६, ५९७,

५९८, ५९९, ६००, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५,

६०७, ६०८, ९०१

पीवर—१२२

पुञ्जिकस्थला—९२४

पुण्डरीक—५७।

पुन—३२।

पुनर्वसु—१०१।

पुनश्चय—७७, १००।

पुन—८, ७२, ७३, ७४, ७६।

पुनस्तु—४८।

पुनजाति—८३।

पुनज्ञान्—९९।

पुनमीड—८२।

पुनत्वा—४२, ४३, ६०, ६१, ५३४, ५३६, ५७३,

५७४, ५७४, ५७६, ५७७, ५७८, ८०९, १२२२।

पुनस्त्य—५, ३२, ९०, १४६, १९५, ३७८, ५२४,

५२५, ५२६, ७८६।

पुनह—५, ३२, १४६, १८९, १९५, ३७८।

पुलाभा—१७, १८, १०८६।

पुलाह—४०९, १०८५।

पुनरिणी—७।

पुष्टि—५९, ४१४।

पुष्टिमान्—१०२।

पुण्ड्र—१९।

पुनता—९५९, ९५७, ९६०, ९६२, ९८७, १००५,

१०१२, १०१३।

पूरण—१४६।
 पूरु—७९४, ७९७, ७९८।
 पूर्णमद्र—७९।
 पूर्वचित्ति—३९९, ९२४।
 पूषा—१६, ३७८, ५८०, ८३८, ९८९।
 पूषा—९४, ९४।
 पुषिषी—२८, ७८३।
 पुषु—२०, २३, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३,
 ४५, ९३, १०६, ७८१, ७८२, १०६७।
 पुषुकीर्ति—९४, ९४।
 पुषुवक्त्र—१८।
 पुषुलाक्ष—७९।
 पुषुशवा—९७, ५२९, ५३०।
 पुष्वी—७०८, ७८२, ९४९, १०३३।
 पुंतीनसी—७५१।
 पुण्यलादि—८६।
 पुण्य—१४६।
 पुण्य—७७२, ७७३।
 पुण्य—१०२४, १०५२, १०५२, १०५३, १०५४,
 १०५६।
 पुण्य—६३।
 पुण्य—४१४।
 पुण्य—३३।
 पुण्य—९, १०, १३, ८७, १९६, १९७, ३७८,
 ९३१, १२०१।
 पुण्यमति—४१, ४५९, ६८६, ९४३, १०८०, १०८३।
 पुण्यन—७०, ७०, ८८, ८९।
 पुण्यन—६८, १०२।
 पुण्यन—८०।
 पुण्यन—९३, १०६।
 पुण्यन—३२।
 पुण्यन—८४।
 पुण्यन—१४, १५।
 पुण्यन—३५२, १०२४, १०२५, १०२६, १०२७,

१०२७, १०२९, १०४९, १०४५, १०४७, १०४८,
 १०४९, १०६७।
 पुण्यन—१०४४।
 पुण्यन—१८, ५९, ६७।
 पुण्यन—७६।
 पुण्यन—१५, ४०८।
 पुण्यन—८९०, ८९१, ८९२, ८९४।
 पुण्यन—१०८६।
 पुण्यन—२५६, ३९९, ९२३, ९२५, ९२६, ९२९।
 पुण्यन—९४९, ९५७, ९७२, ९७४, ९८२, ९८७,
 १०३२, १०८५।
 पुण्यन—८०।
 पुण्यन—९३, १०३, १०४, १०५।
 पुण्यन—४८।
 पुण्यन—१०६।
 पुण्यन—९१७।
 पुण्यन—१७, २२, ४०३, १०८५।
 पुण्यन—६, ५३९।
 पुण्यन—८३।
 पुण्यन—४१, ४४।
 पुण्यन—४१, ४३।
 पुण्यन—१८, १९६, १९७, ७५१, ८१६,
 ८१७, १२०१।
 पुण्यन—१५, ३२।
 पुण्यन—५९२, ५९३, ५९४, ५९९।
 पुण्यन—१०१३।
 पुण्यन—
 पुण्यन—७८।
 पुण्यन—
 पुण्यन—६५।
 पुण्यन—१००।
 पुण्यन—८७।
 पुण्यन—५४।

बल—१८, १०५८।

बलदपित्त—१०८५।

बलदेव—४३, १०५, २८४, ३०८, ९३९, १००५,
१०१३, १०२०, १०५६, १०५८, १०५९, १०६०,
१०६३।

बलबर्हिष—१०१।

बलमद्र—१०५, १०८, २६५, ९७१, ९७४, ९८७,
९९३, ९९५, ९९६, ९९८, १००६, १००७, १००९,
१०२४, १०३०, १०४८, १०४९, १०५७।बलराम—४३, १०९, २८५, ३१४, ३४२, ३७३,
३७९, ३८२, ३८४, ३८५, ३८६, ३८८, ९१७,
९१९, ९६७, ९७०, ९७३, १००२, १००१२,
१०१४, १०१९, १०२२, १०२३, १०२९, १०३१,
१०६०, १०६१, १०६२, १०६५, १०६७,

१२०३।

बलाकाश्व—६२, ८२।

बलाहक—१९।

बलि—१७, ७८, ७८, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१,
४२२, ४२३, ६६३, ८३८, ९९४, १०४५-

बलपुत्र—१४, १६।

बलबाहु—९३, १०७।

बलरूप—१५।

बलवायु—६१।

बाल—१७, ५९७, ९४९, १०४५, १०४६, १०४७,
१०४८, १०४९, १०५०, १०९१।बालविलय—१४४, १६७, १८७, २६३, २७८, ३२८,
३८१, ४१५, ५३१, ५३२।

बाष्पल—६५, १०८६।

बाहु—५२।

बाह्यका—१००।

बाह्याश्व—८३।

बाहिलय—८४, १५७, १०५९।

बिन्दु, मती—४८ ।

बुध—४२, ६०, १९१, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४,
५७६, ५७७, १२०१, १२२२ ।

बृहत्—८२।

बृहती—७।

बृहत्तर्मा—७९।

बृहत्कीर्ति—८६८, १०८५।

बृहदश्व—४५, ४६, ४७।

बृहदियु—८३।

बृहदर्म—७९।

बृहदश्व—७२, ५३५।

बृहन्मना—७९।

बृहत्पति—२९, ३२, ५९, ८०, १६१, २४३, २९२,
४१२, ५१९, ५५४, ५५५, ५७३, ६५६, ६५७,
६५८, ६५९, ७४५, ८०३, ८११, ८१२, ९०३,

९१२।

ब्रह्मश्व—८३।

ब्रह्मा—२६, ५८, ५९, १४७, १४८, १५०, १५५,
१५६, १६१, १६७, १७०, १७३, १७४, १७६,
१७८, १७९, १८०, १८१, १८३, १८४, १८५,
१८६, १८८, १९१, १९१, १९३, १९४, १९५,
१९७, १९८, २००, २०२, २०३, २०४, २०५,
२०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २१३, २१६,
२२३, २२४, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०,
२३१, २३२, २३३, २३५, २३६, २३७, २३८,
२४०, २४८, २४३, २४३, २४४, २५०, २५१,
२६१, २६४, २६६, २७२, २७८, २७९, २८०,
२८१, २८४, २८५, २८८, २८९, २९०, २९१,
२९२, २९५, २९६, ३०२, ३०४, ३०६, ३०७,
३०८, ३१०, ३११, ३१४, ३१५, ३१७, ३१९,
३२१, ३२२, ३२३, ३२६, ३२६, ३२९, ३३०,
३३१, ३३४, ३३५, ४३३६, ३४२, ३४३, ३४९,
३५०, ३५१, ३५५, ३५७, ३५८, ३६०, ३६३,
३६६, ३६९, ३७१, ३७२,

३७४, ३७६, ३७१, ३७२, ३७४, ३७६, ३७८,
 ३८१, ३८५, ३८६, ३८८, ३९५, ४०२, ४०४,
 ४०६, ४०७, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३,
 ४१४, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२२,
 ४२३, ४२५, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१,
 ४३१, ४३३, ४३५, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०,
 ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४०,
 ४४१, ४४२, ४४३, ४४५, ४४८, ४६०, ४६१,
 ४६२, ४६३, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९,
 ४७०, ४७१, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७,
 ४७८, ४७९, ४८०, ४८२, ४८६, ४८९, ४९०,
 ४९१, ४९२, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७,
 ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०४, ५०६, ५०७,
 ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१४, ५१४,
 ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१,
 ५२३, ५२४, ५२५, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०,
 ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३८,
 ५३९, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६,
 ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३,
 ५५४, ५५५, ५५६, ५५८, ५६०, ५६१, ५६२,
 ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६९, ५७०,
 ५७१, ५७२, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७९,
 ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८६, ५८६, ५९०,
 ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९८, ५९९,
 ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६,
 ६०७, ६०८, ६०९, ६११, ६१२, ६१३, ६१४,
 ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१,
 ६२२, ६२४, ६२५, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०,
 ६३१, ६३२, ६३४, ६३५, ६३६, ६३६, ६३७,
 ६३८, ६४०, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७,
 ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५३, ६५४, ६५६,
 ६५७, ६५८, ६६०, ६६१, ६६१, ६६३, ६६५,
 ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२,
 ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,

६८०, ६८१, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८६,
 ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३,
 ६९४, ६९६, ६९७, ६९९, ७००, ७०२, ७०३,
 ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०७, ७०९, ७१०,
 ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१६,
 ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२२, ७२३, ७२४,
 ७२६, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३३, ७२५,
 ७३६, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४,
 ७४५, ७४७, ७४८, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३,
 ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७६०, ७६१,
 ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६७, ७६८, ७६९,
 ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७६, ७७८, ७७९,
 ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,
 ७८७, ७८८, ७८९, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५,
 ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०४, ८०६,
 ८०८, ८०८, ८१०, ८११, ८१५, ८१६, ८१७,
 ८२०, ८२२, ८२३, ८२५, ८२७, ८२८, ८२९,
 ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६,
 ८३७, ८३९, ८४०, ८४०, ८४२, ८४४, ८४५,
 ८४७, ८४७, ८४८, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३,
 ८५४, ८५५, ८५७, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२,
 ८६३, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६९,
 ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७५, ८७७, ८७९,
 ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६,
 ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३,
 ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९०१,
 ९०५, ९०६, ९०८, ९०९, ९१०, ९१२, ९१४,
 ९१६, ९१६, ९१९, ९२१, ९२४, ९२५, ९०४०,
 ९४४, ९४४, ९४६, ९४६, ९४७, ९४९, ९५०,
 ९५४, ९५२, ९५८, १०१०, १०३६,
 १०४९, १०८०, १०८०, १०८२, १०८२,
 १०८३, १०८४, १११८, १११९, ११४२,
 ११८७, ११९३, ११९४, ११९५, १२५२, १२६६,
 १२९२।

भ

भग—१६, २११, २१४, २४२, ३७८, ५८१।

भगीरथ—५६, ४२५, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२।

भङ्गकाट—१०६।

भजमान—९९, १००, १०१, १०२ १०२।

भद्रवात्री—५५७ ५८०।

भद्रबाह—१०२८।

भद्ररथ—७९, १०४४।

भद्रथण्ड—७० ८१, ८७, ७६।

भद्रा—७६, ९५।

भद्राङ्गी—३९९।

भद्राश्व—४०८।

भद्र—७११, ७१२, ७१३।

भद्र—८० ९१, ६७१, ६७३। ६७१।

भद्राज—३४, ६९, ८०, ८४, १४६, ६४९, ६५०,

७५१, ७५२, ७५३।

भद्र—७०१।

भद्रभूमि—८२।

भद्र—१७।

भद्रान्न—२२९, ७१९।

भद्र—७।

भद्र—९९।

भद्राक्षी—७५८।

भद्रा—१४ १०४४।

भद्राङ्गा—३४, ४०८, ७९२।

भद्रा—७१।

भद्रभूमि—७१।

भद्राश्व—८१, ८२, १४६ ४०८, ९०१।

भद्रा—१९।

भद्राक्ष—८६२, ८६३।

भद्राक्षि—१४६।

भद्राश्ववैरण—१०३।

भद्रा—६१, ९९, १०५९, १०७२।

भद्रा—६९, ८१, ८१, ९९।

भीमसेन—८४, ९४।

भीष्म—८५, १०५७, १०५७, १०५९, १०७१ १०७४,
१०७५।

भीष्मक—१०२३, १०२४, १०२४।

भूतसत्तापन—१७।

भूति—३५।

भूरि—८४, १०५९।

भूरिधवा—८४, १०५९।

भूगु—३३, ६४, ६५, १८९, १९५, ३७८ ४०२ ५१६
९०१, ९३१।

भोगवती—६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२२।

भोज—९१, ९६, १०१।

भोग्या—९३।

भोत्य—३५।

भोवन—४६८, ४६९, ४७०, ८७९।

भ

मधवान्—१७।

मणि—१९।

मणिवुण्डल—८८०, ८८२, ८८८।

८८९।

मतिनार—८०।

मत्स्यमाधव—३४९, ४५७।

मद—१०८६।

मदन—४१२।

मदिरा—९५।

मद्यु—९३, १०६।

मद्रक—७८।

मद्रा—७६।

मधु—२९, ३०, ३२, ४६, ९१, ९९, ५२७ ९४७
१०८९, ११३७, १२२६।मधुच्छन्द—६५, ७६७, ७६८, ७६९ ७७० ७७१,
८९२, ८९३, ८९४।

मधुपध्वज—९१।

मधुसूदन—३६६, ९६५, १०३२, १०४०, १०६४।

मित्रविन्दा—१०२९।

मित्रसद—५६।

मित्रावरुण—४१, ४२।

मियु—७११, ७१२, ७१६, ७१७।

मित्रवेणी—३९९, ९२४।

मुक्तावेणी—७५४।

मुचुकुन्द—४८, १०१६, १०१७, १०१९।

मुञ्जिकस्यला—३९९।

मुद्गर—१०६।

मुद्गल—६५, ८३, ७५८।

मुनि—१४, १६, १९, १२२।

मुर—१०३३ १२३६।

मुष्टिक—९८७, ९८८, १००४, १००५, १००६,

१००७, १००८, १०९१।

मूहूर्त—१४।

मूहूर्ता—१४।

मूर्ति—३२।

मूर्तिमाम्—६२।

मृगपाद—१०८५।

मृगप्रिय—१०८५।

मृगव्याघ्र—१५।

मेघनाद—९१५, ९१७।

मेघहास—७८४, ७८५।

मेदुर—९३।

मेघातिथि—३२, ११९, १४६।

मेघ—३२।

मेनका—१८७, २५६, ३९९, ४७९, ९२४।

मेना—१९७, २३०, ४११, ७९९।

मेरुतावरुण—३२।

मेरेय—१४६।

मोदाकि—१२३।

मोहिनी—७५४।

मोद्गल्य—८३, १४६, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१,

७६२।

य

यत्तर्ज—७५१, ७५२।

यति—७१।

यतिधर्मा—९३।

यदु—७२, ७३, ७५, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९६
१२०१।

यदुघ्न—३३।

यम—२२, २९, ३७, ३८, ४०, १२९, १८४, २८३,
२८४, ३६८, ४०८, ४७६, ४८०, ४८१, ४९३,
४९५, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५३८,
५८५, ७०२, ७०३, ७०५, ७४७, ८६४, ८७३,
९९९, १०४०, १०८३, १०९३, १०९५, ११०५,
११०६, ११०७, १११९, ११२०, १२१०।

यमकृत—६५।

यमराज—२११, ११०८, ११२४, ११४८।

यमहस्त—९१७।

यमानाक—९१७।

यमुना—३७, ४०, १८३, ४९२, ४९५, ४९६, ६०९,
१०२२, १०२३।यपाति—७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ८६, ८७, ७९३,
७९४, ७९५, ७९६, ७९७, १२०१।

यवन—१०१७।

यवीनर—८३।

ययोदा—९५२, ९५६, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६,
९६७८, ९८७।

याज्ञवल्क्य—४८९, ४९०, ४९१, ७९२, ९०१।

यानि—७१।

यामी—१४।

युक्ता—३३।

युधाजित्—९२ १०३, १०६।

युधिष्ठिर—९४, ०८१, १०५९ १०७८।

युवनाक्षर—४५, ४८, ६२ ८२।

योगपरावण—९०१।

योगमाया—९५६।

लक्ष्मणा—१०२९, १०४४।

लक्ष्मी—५९, १९७, २७८, २८४, ३५३, ३९८, ४०२,
४१४, ४५९, ७११, ७३५, ७५९, ७६०, ७६३,
७६५, ७६६, ७९१, ८६८, ९०२, १०२३, १०८९।

लम्बा—१४।

लव—८१८।

लवण—४०८, १०८९।

लिखित—३०३।

लोकपाल—८४९, ९०२।

लोपामुद्रा—७०, ८१, ५८५, ६४१।

लोमपाद—७९।

लोमश—१४६, ४१४।

लोमहर्षण—६, ११, १६, २३, २८, ३१, ३६, ३७,
४१, ४४, ४५, ४७, ५०, ५३, ५५, ६०, ६१, ६६,
६८, ६७१, ७६, ९२, ९७, ९९, १०२, १०७, १०८,
११२, ११९, १२६, १२९, १३३, १३७, १४०,
१४५, २५३, ११२१, १२६५, १३२७, १३३८।

लोहित—६५।

लोहि—६६, ८३।

व

वश—१८।

वज्र—१०६८, १०७०, १०७३।

वज्रनाभ—१७, ५७।

वडवा—९५, ५८५।

वत्स—७०, ८१, ८२।

वत्सभूमि—७१, ८२।

वत्सवान्—९४।

वनबुद्ध—८७।

वनायु—६१।

वनेयु—७६।

वय—५४४।

वरागी—३९९।

वरिष्ठ—१०८५।

वरीदास—८८।

वदन—१६, २२, ९०, २४३, ३१०, ३२८, ३६८,
३७८, ४०३, ४१५, ४६४, ४८२, ४८९, ४९०,
४९१, ४९५, ५१३, ५४१, ५४२, ५४३, ५४६,
५४८, ७२१, ६२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७९४,
८३८, ८४९, ८९४, ९००, ९५०, ९९९, १०२२,
१०२३, १०३२, १०३४, १०३५, १०४०, १०८३।

वर्षकेतु—८१।

वशाति—४५।

वसन्त—९२५, ९२६।

वसिष्ठ—५, ३२, ३४, ४५, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३,
५४, १४६, १८६, १९५, १९७, ४०८, ४१३, ४१४,
४४६, ५२२, ५३८, ५३९, ५४७, ५६२, ५६६,
५७४, ५७८, ५८०, ६६३, ६७०, ६७२, ६७३,
७५४, ७९२, ७९९, ८०९, ८७२, ९०१, ११०८,
१३०१, १३०४, १३१०, १३१३, १३१७, १३२१।

वसु—७, १४, ३२, ३४, ५९, २२५, ५८०, ९०२,
९५१, ९९२, ९९३, १०६४, १०८२।

वसुगण—१०४०।

वसुदेव—९४, ९४, ९५, १०१, १०६, २२८, ९१७,
९४०, ९५१, ९५२, ९५४, ९५५, ९५६, ९५८,
९५९, ९६१, ९८७, ९८८, ९९५, १०००, १००५,
१००६, १००८, १००९, १०१०, १०१७, १०६८,
१०७०।

वसुन्यरा—१०६।

वसुमेध—१०६।

वसुरोध—८०।

वह्नि—८६।

वाजी—३४।

वानपति—१०६।

वातापि—१८, १०८५।

वात्स्य—१४६।

वामदेव—५४७, ५६२, ६७०, ७८०, ९०१।

वामन—१७, १९, ४१९, ४२०, ४२१।

वामना—९२४।

वायु—१४६ ३६८ ३७८ ६६४ ६६५ ७०८ ७२१
८७४ ९२५ ९२६ ९५१ ९९९ १०८३ १०८५
१२१०।

वायुह—१०८५।

वारिप्लव—३३।

वाल्लि—९१७।

वाल्मी—१०८९।

वाल्मीकि—१४६ ८१८।

वासुकि—१९ २२ ९९७।

वासुदेव—७३ १०५ १०६ ३५२ १०५४ १०५६
११९९ १२०२ १२०७ १२०८ १२२४ १२६१।

वाहलोक—८०१।

वितण—७९।

विकुक्षि—४४ ४५।

विकृति—९९।

विभ्रान्त—१७।

विभोमण—१७।

विघ्नराज—४३१ ४३२ ४३३ ६३०।

विचित्रवायु—८५।

विजय—५२ ६९ ९६ ६१५ ६१८।

विजया—५८०।

वितय—८०।

विदभ—९९।

विदुह—८५।

विदूरय—८४ १०२ १०२४।

विद्रावण—१७।

विद्यागा—९९९।

विनता—१६ १९ १७८ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५
८३६।

विनायक—४२।

विनायक—४२६ ४२७ ५१२ ५२५ ६२९।

विन्माचन—६४१।

विमुलाना—३९९।

विमृषु—९३ १०६ १०६७।

विप्रचित्ति—१७ १८ २५६ ९४७ १०८५।

विभाण्ड—१४६।

विभाषण—५२३ ८१८ ८१९ ८२३ ८२४ ८२५
८८५ ८८६ ९१५ ९१६ ९१७।

विभु—७१ ८१ ८२।

विरगा—३३ ७१ २६१।

विरा—५ ७।

विराघ—१०८९।

विरोचन—१७ २९ १०८५।

विवस्वानु—१६ ३३ ५३७।

विगल—१५।

विभ्रवा—५२३ ५२६।

विश्वकर्मा—१५ १८३ १८५ १८७ ३०६ ३०८
३१४ ४१४ ४६८ ४७० ५९० ६०२ ७६१
९१४।

विश्वजित्—७९।

विश्वयट—४७६।

विश्वरूप—८६२ ८७३ ८९८ ८९९ ९००।

विश्वा—१४।

विश्वाच—७४ १८७ २५६ ३९९ ९२४।

विश्वामित्र—३४ ४९ ५१ ५२ ६५ ६६ ८३ १४६
५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५३९ ५४७ ५४८
६७१ ६७२ ६७३ ७६७ ७७० ७९९ ८०७
८९२ ८९८ ८९९ १०६३ १०९०।

विन्वायु—६१।

विन्वावसु—२३३ ७५० ८९१ ८९२।

विश्वेदेव—१४ ३४ १०४० १०८२ ११३५।

विपहृ—१९।

विष्टरात्र—४५।

विष्टि—४९३ ८६१ ८६२ ८६३ ८६५।

विष्णु—१६ ३२२ ४० ४६ ४७ ५४ ९२ ११५
११८ १२७ १३६ १५८ १६७ १७४ १८९
१९१ १९७ २१२ २१४ २२८ २२४ २३५
२४३ २४८ २७१ २७८ २८७ २९० २९६

३०६	३०७	३०८	३१०	३११	३१५	३२०	वासेन—५७।
३३१	३३६	३३८	३४१	३५२	३५३	३६०	वह—९५।
३६४	३६८	३७८	३८६	३८८	३८९	३९२	वृक—५२ १०४४।
४०२	४०७	४०९	४१३	४१४	४१५	४१८	वृकदव—९६।
४१९	४२२	४२४	४२८	४५३	४५४	४५९	वृकदेवा—९५ ९६ १०१।
४६३	४७९	४९७	४९८	४९९	५००	५१३	वृकन—७।
५१४	५१५	५२२	५३८	५४६	५५५	५६३	वृकलोभा—७।
५७३	५७९	५८०	५८१	५८२	५८३	५८४	वृजिन—९००।
५८५	५९६	६२८	६२९	६४५	६४७	६५१	वृजिनावान—९७ १२०१।
६५२	६५६	६५८	६६२	६६४	६८९	७०८	वृत्र—४०८ ६५६ ८३८ ९०० ९१४ १०८५।
७१६	७२५	७२७	७२८	७३२	७३६	७३७	वृत्रहा—७३०।
७३८	७३९	७४०	७४२	७४६	७४७	७४८	वृद्धकौणिक—८८०।
७४९	७५५	७५६	७५९	७६०	७६१	७६२	वृद्धाव—९९।
७६५	७८८	७९१	७९२	८०८	८१०	८२१	वृद्धार्मा—६६ ९४।
८२२	८२९	८३०	८३१	८४१	८४२	८४४	वृष—९१।
८४५	८४६	८५३	८५५	८५९	८६०	८६५	वृषण—९१।
८६६	८६७	८६८	८७२	८७४	८८९	८९४	वृषदभ—७८।
८९६	९०३	९०४	९०५	९११	९२२	९२५	वृषपर्व—१७ १८ ७२।
९३२	९३३	९३८	९४०	९४२	९४३	९४४	वृषभ—१०९१।
९४५	९४६	९४८	९४९	९५२	९५३	९५४	वृषभासुर—९८७।
९५५	९८८	९९२	९९३	९९४	९९९	१००६	वृषल—१४।
१०१०	१०२६	१०३६	१०५६	१०७५	१०८०		वृषपवा—७९४।
१०८१	१०८३	१०८४	१०८७	१०८८	१०९२		वृषाक्षि—१५ ४०८ ७३६ ७३७७, ७३८।
१११४	१११७	१११८	११३७	११४२	१२०९,		वृष्टि—१०१।
१२२३	१२२६	१२२७	१२३५	१२३३	१२३६		वृष्टि—९२ १००।
१२३७	१२५२	१२५४	१२५५	१२६४	१२६६		वृषवान्—१०८९।
१२९२।							वृष—२३ २४ २५।
विष्णुपाश—१०९१।							वेणुहय—८७।
विजयगत—९४।							वणुहात—७१।
विह्वर—१०८५।							व—८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९।
वार्तिहात—९१।							वन्ध्याग—८५।
वर—६ ७।							वदित्या—३३।
वारण—७ १५।							वेत—८ ७८० ७८१ ७८२।
वारमद—२३८ २३९ २४० २४१ ५८० ५८१।							वैवण—७९।

वैतथ्य—१४।

वैदर्भी—९९।

वैदेही—८१७।

वैभागडकि—७९।

वैभीपणि—८८५।

वैरणी—१३, १४८६, ८८७।

वैराज—७, २२।

वैरिणी—७।

वैरी—३४।

वैवस्वत—२०, २३, ३२, ३५, ४१, १९६, १९७,

४९२, १०१३, १०९४।

वैदाम्पायन—१४६।

वैशाखी—९५।

वैश्वानर—१७, १८।

वैश्वण—१९१, ३३१, ५२६।

व्यय—८६३।

व्यास—३४, १४६, १४७, १४८, २५३, २५४, ४०२,

९२१, ९२२, ९२६, ९२९, ९३०, ९३२, ९३७,

९३८, ९३९, ९४५, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१,

९५३, ९५४, ९५५, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०,

९६२, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९,

९७०, ९७१, ९७२, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७,

९७८, ९७९, ९८१, ९८२, ९८३, ९८५, ९८७,

९८८, ९८९, ९९१, ९९३, ९९५, ९९६, ९९९,

१०००, १००१, १००२, १००३, १००४, १००७,

१०१०, १०११, १०१२, १०१३, १०१५, १०१९,

१०२०, १०२१, १०२२, १०२३, १०२५, १०२६,

१०२७, १०२८, १०२९, १०३०, १०३१, १०३२,

१०३४, १०३५, १०३६, १०३७, १०३८, १०३९,

१०४१, १०४२, १०४३, १०४४, १०४५, १०४६,

१०४७, १०४८, १०५१, १०५२, १०५३, १०५५,

१०५६, १०५७, १०५८, १०५९, १०६०, १०६१,

१०६२, १०६३, १०६४, १०६५, १०६६, १०६८,

१०६९, १०७०, १०७१, १०७३, १०७४, १०७६,

१०७७, १०७८, १०७९, १०८३, १०८४, १०८५,

१०९३, ११०२, ११०५, ११०७, ११०८, १११४,

११२१, ११२२, ११२३, ११३१, ११३४, ११३७,

११४४, ११५०, ११६१, ११६२, ११६३, ११७७,

११८२, ११९९, १२०४, १२०८, १२०९, १२१०,

१२१२, १२१३, १२१४, १२१५, १२१६, १२१७,

१२१८, १२२०, १२२२, १२२३, १२२४, १२२५,

१२३३, १२३४, १२३८, १२४४, १२४८, १२४९,

१२५२, १२५६, १२६३, १२६६, १२६८, १२७२,

१२७३, १२७५, १२७६, १२८०, १२८१, १८८३,

१२८५, १२८६, १२८९, १२९१, १२९५, १२९७,

१३०१, १३२६, १३२७।

व्योमा—९९।

व्रज—८।

श

शरीमा—यू० १९।

शकुनि—१७, ४५, ९९।

शक्ति—७३५।

शक्र—२३९।

शक्र—९६, १५८, १८९, १९६, २०२, २०४, २०६,

२१०, २१२, २१६, २२२, २२६, २२९, २३२,

२३७, २५२, २५३, २८४, ३५०, ३५१, ४०२,

४११, ४१२, ४१४, ४१६, ४२३, ४२४, ४२६,

४३३, ४३७, ४३९, ४४९, ४५०, ४५१, ४५३,

४६३, ४६६, ४८३, ४९७, ४९८, ४९९, ५००,

५०१, ५१२, ५१३, ५१७, ५१८, ५१९, ५२५,

५२६, ५३१, ५३३, ५३६, ५५६, ५५८, ५६४,

५६८, ५७०, ५७५, ५७६, ५७९, ५८०, ५८२,

५८३, ५८४, ५९६, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४,

६०५, ६०७, ६१०, ६११, ६२२, ६२३, ६२४,

६२६, ६२७, ६२९, ६३३, ६३५, ६३७, ६४०,

६४५, ६५०, ६५६, ६५८, ६६१, ६६४, ६८२,

६९६, ६९७, ६९८, ७१६, ७१७, ७२०, ७२२,

७२३, ७२५, ७२७, ७३४, ७३७, ७४७, ७५०,

२२३, २२४, २२७, २२८, २३४, २३६, २४१, २४२, २४३, २४८, २५०, २५२, २५७, २५८, २६०, २६९, २७०, ३१०, ३३१, ३३५, ३३७, ४१५, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४४०, ४४३, ४४४, ४४५, ४५०, ४५१, ४५७, ५११, ५१४, ५१५, ५३८, ५४७, ५७७, ५९७, ६००, ६०१, ६०५, ६०७, ६१२, ६२०, ६२१, ६२५, ६३६, ६३७, ६३९, ६५१, ६५२, ६०, ६७४, ६८१, ६९५, ६९६, ७१६, ७१७, ७३५, ७३६, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४३, ७४९, ७५०, ७५७, ७६४, ७६५, ७७३, ७८४, ७८६, ७९१, ७९३, ८०१, ८१४, ८१५, ८२४, ८३१, ८७४, ८७९, ८८९, ८९७, ९००, ९०२, ९०३, ९०४, ९०९, ९११, ९१२, ९५०, ९८९, ९९९, १०१५, १०३६, १०५२, १०५५, १०८०, १०८५, १०९०, १११८, ११४२, ११८३, ११८८, ११८९, ११९१, ११९३, १२१६, १२९२।	गुम्भ—९५। गुम्भ—९०। गुर—९१, ९३, ९५, १००, १२०२। गुरसेन—९१, ६१२, ६१३, ६१४, ६१६, ६१७। गुला—७६। गुह्यगव—४०८। घेप—१९, ६३२। घेपनाग—१२५०। घैव्या—९८, १०४४। घोषाश्व—१०२। घोनव—६९, ७२, ९०१। शीरि—९५। दयाम—९४, ९५। दयेनी—१९ अम—१४। अवणा—९३, १०२, १०७। अविष्ठा—८६, ९३, १०२, १०७। अन्त—१४। आव—४५। आवहनव—४५। आहुक—१०१। श्रीदामा—९७२। श्रीदेवी—९५। शुन—५६, १०४४। शुनदेवी—१४। शुनसेन—८४। श्रुतायु—१। सिलिटि—७। स्वकलव—९२, ९३, १०६। स्वेन—३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५६, ५१०, ५११, ५१२, ५१३। स्वेतकर्म—८५। स्वनमाश्व—३४९, ३५१, ३५२, ३५७। स्वेतवाहन—१०२।
--	---

स

सयता—८६, ८७।

सयाति—७१।

सवरण—८४।

सवर्त—८६ १४६, ४६९।

सहृताइव—४८।

सहृ—१०८५।

सहृद—१०८५।

सहृद—१७ १८, १०८६।

सज्ञा—३७, ३८ १८३ १८४, १८५।

सगर—५० ५३ ५४ ५५ ४०८ ४४६ ४४७ ४४८, ४४९, ४५२।

सङ्कर्षण—३३८ ३५२ ९५२।

सङ्कल्प्या—१४ ७२१ ७२४।

सङ्कृति—६९।

सङ्क्यामजित्—१०४४।

सञ्जय—६८।

सती—१९४, १९५, १९७, १९८।

सत्त्वान्—९९।

सत्यक—९४।

सत्यवर्णक—८५।

सत्यवेनु—७०, ८२ ९५।

सत्यतपा—१२२२।

सत्यनेत्र—३३।

सत्यभामा—१०६ १०७, १०८ १०२९ १०३३, १०३४, १०३७ १०३८, १०३९, १०४१, १०४३, १०४४।

सत्यरथा—५२।

सत्यवती—६३, ६५।

मत्यवाव्—८, ३३।

सत्यव्रत—४८, ५०, ५१ १०२९, १०४२।

सत्ताजित्—१०२ १०३, १०४, १०६ १०७ १०२९।

सत्त—७३३।

सन्तुमार—५, १४६, २३३ १०८०, १२०३।

सनन्दन—१३४।

सनाज्वात—५०२ ५०४, ५०५।

सनातन—३३।

सन्देव—१०१।

सत्तति—७०।

सन्तयेयु—७६।

सदल—३२।

सभाक्ष—१०६।

सभानर—७७।

सभा—५६६, ५६९।

समुद्र—८९५ ८९६ १०१३।

सम्पाति—८६६।

सम्बर—१०८५ १०८६।

सम्भूत—४९।

सम्नात्—७।

सरमा—७४४, ७४५।

सरमान—१८।

सरस्वती—३७८, ५३५ ५६२
६०९ ६१०, ६५९
८५४, १२६६।

सरस्वान्—५३५।

सर्ववर्मा—५६।

सर्वजित्—१७।

सयन—१२४।

सवर्णा—९, ३७, ३८।

सविता—१६।

ससक—१०१।

सह—३२।

सहज्या—१८७, ३९९, ९२४।

सहदेव—६९, ८३, १०५९।

सहदेवा—९५।

सहस्रजित्—१००।

सहस्राद—८७।

सहिष्णु—३३।

साङ्गति—६५।
 साल्यति—१४, १०८, १०६७।
 साध्य—१४, ३४, १०४०, १०६४।
 साध्या—१४।
 सान्दीपनि—१०१२, १०१३।
 साम्ब—१०४४, १०५६, १०५७, १०५८, १०५९,
 १०६०, १०६३, १०६४, १०६५।
 सात्त्विकावत—१००।
 सावर्ण—३४, ३८, ४०।
 सावर्णि—३२, ४९३।
 सावित्री—२६०।
 साहज्य—८।
 सिद्धिवा—१७, १८, ७८४।
 सिनीवाल—५९।
 सिन्धु—८७६।
 सिन्धुद्वीप—५६, ८७५।
 सिन्धुसेन—४५३, ४५६।
 सीता—५०७, ६७३, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,
 ६८०, ६८१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८५,
 ९१६, १०८८, १०८९।
 सुकृत्या—८२।
 सुकुमार—७१, ८२, १२३।
 सुकृति—३२।
 सुवेतु—५४, ७०।
 सुवेरी—३९९।
 सुखोदय—११९।
 सुप्रीव—८१९, ९१७, १०८९।
 सुप्रीवी—१९।
 सुचारु—८५, १०३, १०२८, १०६७।
 सुचेता—८७।
 सुच्छाया—७।
 सुजात—९१।
 सुतनु—९५, १०५।
 सुतपा—३३, ७८, १२२६।

सुदन्द्र—१०३।
 सुदान्त—१०३।
 सुदास—५६।
 सुदेवा—१०१।
 सुदेष्ण—९४, १०२८।
 सुद्युम्न—८, ४३, १२०१।
 सुधनु—८४।
 सुधन्वा—२२, ५७, ७६, ८४।
 सुधर्मा—९३, १२२७।
 सुधामा—३३।
 सुतद्य—६२।
 सुतहोन—६९।
 सुतामा—९६, १०२, १००९।
 सुताम्नी—९५, १०१।
 सुतीय—७०।
 सुनीया—८, २४।
 सुन्द—९४९।
 सुन्दरी—९३।
 सुपर्णा—५३१।
 सुपावर्क—१०७।
 सुप्रगा—७११।
 सुवाहु—८०, ९३, १०७, १०८९, १२३०,
 १२३१।
 सुमद्रा—९५ २६५, २६६, २७८, २८४, ३०८, ३१४,
 ३३८, ३४१, ३४२, ३६९, ३७३, ३७४, ३७५,
 ३७६, ३७८, ३७९, ३८१, ३८२, ३८१, ३८२,
 ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८ ३९७ ४००,
 ४०५, ९१९, ९३९।
 सुमूषण—१०२।
 सुमति—३४, ८९२ ८९३, ८९४।
 सुमनस्—५।
 सुमन्तु—१४६।
 सुमन्यु—५६६।
 सुमाती—२९।

सुमित्रा—६६३, ६७१, ६७३।

सुमुख—१९।

सुपुत्र—९७।

सुयव—८०६।

सुयति—७१।

सुरय—८४।

सुरभि—१६, १९, १५।

सुरसा—१९, १६ ७६।

सुरवि—३०।

सुरेश—७३४।

सुवर्ण—७२१, ७२४।

सुवर्णा—७२१ ७२४, ७२५।

सुवीर—७८, ७६।

सुवत—७८, ७७।

सुशान्ति—८३।

सुशीला—१२२७, १२२८ १२३०।

सुश्यामा—५६०।

सुपेण—१०२८।

सुप्यन्त—८०।

सुहोतार—८०।

सुहोन—६१, ८०, ८१।

सूत—२, ३, १०, १३, २६ २७ १४६, ९३९।

सूदन—९६१।

सूनुता—७।

सूर्य—१७, २९, ३६, ३८, ३९, ४०, ५७, ७६, ७७,

१५८, १५९, १६२, १६४, १६५, १६६ १६८,

१७३, १७४, १७६ १७७, १७८, १७९, १८०,

१८१ १८२ १८३ १८४, १८५, १८६ १८७,

१८८, १८९, १९१ १९२ १९७ २१२ २४३

२४५ २४९, २५८, २५९ २७० २७२, ३७८,

४७८ ४८०, ४८१ ४९५, ४९६, ५३८ ५६२

५८१, ६०२, ६०१, ६११, ६८०, ७४७, ७४८,

७५६, ७७०, ८१०, ८२९ ८३०, ८३४ ८४५,

८४४, ८६१, ८६२, ८६६ ८६७, ८७२, ९०३

९५१, ९५४, ९७४, १०१२, १०४०, १०८३,

१०८७, १०९१, १२१०, १२२४।

सूर्याषिड—८५।

सूज्जय—७७ ८३ १००।

सोप्रव्यग्र—१०८५।

सोम—१०, १४, १४, ३३, ५८, ७६, १९१, ५३८,

५९४, ५९५, ५८९, ९०२, ९०३।

सोमव—८३।

सोमदत्त—८३, ८४, १०५९।

सोमशर्मा—१२१६।

सौदास—५६।

सौमद्र—८५।

सौमाम्पवती—३९९।

स्मृ—५ १९१, ४०२, ४२६, ४२७, ४२९, ४६५

४६७, ५१२, ५७६।

स्त्रीरत्नकूटा—७६।

स्पर्ण्डलेयु—७६।

स्वविष्टा—७६७।

स्वन—१०८६।

स्वपाश्वक—९३।

स्वमिश्र—१०८६।

स्वयम्भोज—१०२।

स्वरक्त्व—१८।

स्वमानु—१७ १८।

स्वसा—११०।

स्वसुम—१७ १८।

स्वाति—८।

स्वायम्भुव—६, २९, ३१, १३१।

स्वारोचिष—२०, ३१, ३२।

स्वाहा—३७८ ७१८ ७२१।

स्वाहि—९७।

ह

हनुमान्—४७२, ७२७, ८१७, ८१९, ८२४, ८२६

८८५ ८८६, ९१७।

हृष—८७।

हृषीकेश—१०३३, १०८५।

हृषमूर्षा—४०८।

हृषगिरा—१७, १८।

हृष—१५, ३७८, ८३९।

हृषि—२० ९८, ३३५, ४२३, ६७४, ८०५, ८१६,
८३९, ९०२, ९३३, ९४७, ९५१, ९६९, १०४१,
१०४५, १०५३, १०७९, १०८५।

हृषित—५२, १४६।

हृषितस्त—६५।

हृषितचन्द्र—५२, ४०८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२,
५४३, ५४६, ५४७, ५४८।

हृषिहृष—१०८५।

हृषिहृष—६६०, ६६१।

हृष्य—७९।

हृष्यत्व—६९।

हृष्यश्च—१२, १३, ४८।

हृष्य—८६३, ८६४, ८६५।

हृष्यर—३३९।

हृष्यन्त—३२।

हृष्यार्ण—८।

हृष्यार्ण—१२०१।

हृष्य—३२।

हृषित—६५।

हाहा—१८७, २१६।

हिमवान्—२००।

हिमालय—१९७, १९८।

हिरण्य—७२७, ७२८।

हिरण्य—५३८।

हिरण्यवसिष्ठ—१७, ९४, ३४२, ८०४, ९४०, ९४७,
९५१, १०८२, १०८४, १०८५।

हिरण्यगर्भ—३२।

हिरण्यरोमा—२२, ३३।

हिरण्यस्त—१७।

हुतहृष्यपाह—१५।

हुत—१८७, २१६।

हेति—७००, ७०१।

हेमवती—४८।

हेतु—८७।

हृद—१७।

हृद—१७।